निर्देशक

संपूर्णानंद

प्रधान संपादक

रामप्रसाद त्रिपाठी

संपादक

फूलदेवसहाय वर्मा

मुकुंदीलाल श्रीवास्तव

संपादन सहायक तथा सहकारी

भगवान दास वर्मा	(विज्ञान)	चंद्रचूड़ मणि	(मानवतादि)
अजित नारायण मेहरोत्रा	(विज्ञान)	डा० श्याम तिवारी	(मानवतादि)
माधवाचार्य	(विज्ञान)	चारुचंद्र त्रिपाठी	(मानवतादि)
रमेशचंद्र दुबे	(विज्ञान)	जंगीर सिंह	(मानवतादि)

बैजनाथ वर्मा (चित्रकार)

हिंदी विश्वकोश के संपादन एवं प्रकाशन का संपूर्ण व्यय भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया तथा इसकी बिक्री की समस्त आय भारत सरकार को 'सभा' प्रदान कर देती है।

प्रथम संस्करण

शकाब्द १८८८ सं० २०२३ वि० १९६७ ई०

नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

परामर्शमंडल के सदस्य

संपादक समिति

प्राक्कथन

हिंदी विश्वकोश का यह आठवाँ खड, निर्धारित योजना के अनुसार, लगभग छह महीने की अवधि मे प्रकाशित हो रहा है। इसी क्रम से विश्वकोश के शेष दो खंड भी १९६७ के अंत तक प्रकाशित कर देने का लक्ष्य हमारे सामने है। इस खड मे ५०४ पृष्ठ हैं, जिनमे ६५७ लेखो के अंतर्गत विशिष्ट विद्वानो की रचनाओ का समावेश किया गया है। पाँच रगीन तथा कितने ही सादे चित्रफलक, रेखाचित्र और एक रगीन तथा अनेक सादे मानचित्र भी इस खड मे दिए गए हैं।

हमे अपने सपादन और प्रकाशन कार्य मे जिन लेखको, सस्थाओ, कलाकारो तथा दूतावासो, आदि का सहयोग मिला है उनके प्रति तथा विश्वकोश कार्यालय के अपने सहयोगियो के प्रति हम आभारी हैं। नागरीप्रचारिणी सभा और केंद्रीय शिक्षा मत्रालय के अधिकारीगण विशेष रूप से हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं, जिन्होने पहले की भाँति इस खड के भी प्रणयन और प्रकाशन मे पूर्ण उत्साह एव सहयोग प्रदान किया है।

रामप्रसाद त्रिपाठी
प्रधान संपादक

अष्टम खंड के लेखक

अं० प्र० स० तथा अं० प्र०	अंविका प्रसाद सक्सेना, एम० एस-सी०, पी० एच-डी०, प्राचार्य एवं अध्यक्ष भौतिकी विभाग, गवर्नमेंट साइंस कालेज, ग्वालियर।
अं० प्र० सु०	अंबा प्रसाद 'सुमन', एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ।
अ० अ०	अमजद अली, एम० ए०, डी० फिल० डी० लिट० रीडर, इंस्टिट्यूट ऑव इस्लामिक स्टडीज़, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ।
अ० अ० या न० अ० अ०	नजीरुद्दीन अकमल अय्यूबी, एम० ए०, डी० लिट०, इंस्टिट्यूट ऑव इस्लामिक स्टडीज़, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ।
अ० उ०	अनिरुद्ध उपाध्याय, प्रधानाध्यापक, राजकीय केंद्रीय काष्ठ शिल्प विद्यालय, बरेली।
अ० कु० वि०	अवनींद्र कुमार विद्यालकार, पत्रकार, इतिहास सदन, ११८ एम०, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।
अ० ति०	अग्रेश तिवारी, बी० एस-सी०, ए० बी० एम० एस०, डेमास्ट्रेटर, चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
अ० ना० मे०	अजित नारायण मेहरोत्रा, एम० ए०, बी० एस-सी०, बी० एड०, साहित्यरत्न, विज्ञान सहायक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
अ० प्र० स०	दे० अं० प्र० स०।
अ० सि०	अभय सिन्हा, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, ए० आर० आइ० सी० (लंदन), टेक्नालोजिस्ट प्लानिंग ऐंड डेवलपमेंट डिविजन फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑव इंडिया, सिंदरी, धनबाद।
अ० सिं०	अवतार सिंह, प्राध्यापक, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
आ० वे०	फादर आस्कर वेरेक्रुइसे, प्रोफेसर ऑव होली स्क्रिप्चर्स, सेंट अल्बर्टस सेमिनरी, रांची।
आ० स्व० जौ०	आनंद स्वरूप जौहरी, एम० ए०, पी-एच० डी० रीडर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
इ० हु० सि०	इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी, द्वारा–डा० खलीक अहमद निजामी, ३, इंग्लिश हाऊस, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ।
उ० कु० सिं०	उमेश कुमार सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
उ० ना० पं०	उदय नारायण पांडे, एम० ए०, रजिस्ट्रार, लद्दाखी बौद्ध विहार, बेला रोड, दिल्ली।
उ० शं० प्र०	उमाशंकर प्रसाद मेजर, एम० ए० सी० (आर०), एम० बी० बी० एस०, डी० एम० आर० डी० (इंग्लैंड), डी० एम० आर० टी० (इंग्लैंड), रीडर, मेडिकल कालेज, जबलपुर।
उ० सिं०	उजागर सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन), रीडर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
ए० गौ०	(श्रीमती) ए० गौड, डिपार्टमेंट ऑव ओरिएंटल प्रिंटेड बुक्स एंड मेनूस्क्रिप्टस, ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन, डब्ल्यू टी–१।
ए० च०	ए० चटर्जी, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
एच० के० शे०	एच० के० शेरवानी, राहत फिजा, हिमायतनगर, हैदराबाद २९।
ए० पी० ओ०	ए० पी० ओब्रायन, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
ओं० ना० श०	ओंकारनाथ शर्मा, भूतपूर्व वरिष्ठ लोकोफोरमैन, बी० बी० ऐंड सी० आइ० रेलवे, निवृत्त प्रधानाध्यापक, यंत्रशास्त्र, प्राविधिक प्रशिक्षण केंद्र, पूर्वोत्तर रेलवे, लक्ष्मी निवास, गुलाबबाडी, अजमेर।
ओ० प्र०	ओमप्रकाश, एम० एस-सी०, एफ० आइ० ए०, असिस्टैंट डिविजनल मैनेजर, जीवन बीमा निगम, विभागीय कार्यालय, वाराणसी।
ओं० सिं०	ओंकार सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
क० प० त्रि०	करुणापति त्रिपाठी, एम० ए०, साहित्याचार्य, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्रशिक्षण विभाग, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
का० किं० द०	कालीकिंकर दत्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, पी० आर० एस०, वाइस चांसलर, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
का० च० बो०	कार्तिक चंद्र बोस, एम० एस-सी०, डी० फिल०, एम० जेड० एस० एफ० ए० जेड०, एफ० आइ० ए० जेड०, एफ० एन० ए० एस०-सी०, प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, जंतु विज्ञान विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची।
का० ना० सिं०	काशीनाथ सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०,

प्राध्यापक, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

का० प्र० — कार्तिक प्रसाद, बी० एस-सी०, सी० ई०, सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर, पी० डब्ल्यू० डी०, उत्तर प्रदेश, मेरठ।

का० बु० — रवरेंड कामिल बुल्के, एस० जे०, एम० ए०, डी० फिल्०, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सेंट जेवियर्स कालेज, राँची।

कृ० नं० दु० — कृष्णानंद दुबे, एम० एस-सी०, प्राध्यापक, दिल्ली कालेज, दिल्ली।

कृ० प्र० गौ० — कृष्णदेव प्रसाद गौड, 'बेढब बनारसी', एम० ए०, भू० पू० प्रिंसिपल डी० ए० वी० इंटर कालेज, वाराणसी।

कै० चं० मि० — कैलाशचंद्र मिश्र, एम० एस सी०, बी० टी०, पी-एच० डी०, सहायक प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

गं० सिं० — गंडा सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्, लोअर माल, पटिआला–३।

गि० चं० त्रि० — गिरीश चंद्र त्रिपाठी, एम० ए०, पी-एच० डी०, जानकी निकुंज, पुराना किला, लखनऊ।

गि० ना० श० — गिरींद्र नाथ शर्मा, एम० ए०, प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग, हरिश्चंद्र डिग्री कालेज, वाराणसी।

गि० प्र० गु० — गिरजा प्रसाद गुप्त, एम० काम०, पी-एच० डी०, एफ० आर० ई० एस० (लंदन), अध्यक्ष वाणिज्य विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन।

गु० त्रि० — गुरुदेव त्रिपाठी, एम० ए०, लेक्चरर, हिंदी विभाग, बिड़ला इंस्टिटयूट ऑव आर्ट्स एंड सायंसेज, पिलानी (राजस्थान)।

गु० ना० दु० — गुरुनारायण दुबे, एम० एस-सी०, सर्वेक्षण अधीक्षक, भारत सर्वेक्षण विभाग, हैदराबाद (आ० प्र०)।

गो० कृ० अ० — गोपी कृष्ण अरोड़ा, प्राध्यापक विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

गो० चं० पां० — गोविंद चंद्र पांडेय, एम० ए०, डी० फिल०, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

गो० दा० अ० — गोकुलदास अग्रवाल, एम० बी० बी० एस०, विशारद डी० ३७।३०, चुलानाला, वाराणसी।

गो० दे०, भा० गो० दे० — भालचंद्र गोपाल देशपांडे, प्रवक्ता, मराठी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

चं० त्रि० — चंद्रबली त्रिपाठी, एम० ए०, एल-एल० बी०, कवि एवं ग्रंथकार, भूतपूर्व वैयक्तिक सचिव महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, मदनमोहन मालवीय मार्ग, बस्ती उ० प्र०।

चं० भा० पा० — चंद्रभान पांडेय, एम० ए०, पी-एच० डी०, भू० पू० लेक्चरर, कालेज ऑव इंडोलाजी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

चं० भू० मि० — चंद्रभूषणमिश्र, प्रोफेसर बिड़ला इंस्टिटयूट ऑव टेक्नालोजी, मेसरा, राँची।

चं० मो० — चंद्रमोहन, पी-एच० डी० (लंदन), एफ०एस०एस०, रीडर, गणित विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

च० ला० गु० — चमन लाल गुप्त, प्राध्यापक, एक्सटेंशन एडूकेशन इंस्टिटयूट, नीलखेड़ी।

चा० त्रि० — चारुचंद्र त्रिपाठी एम० ए०, संपादकीय विभाग, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

ज० गु० — जगदीश गुप्त, एम० ए०, डी० फिल०, हिंदी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

ज० चं० जै० — जगदीशचंद्र जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, रामनारायण रुइया कालेज, बंबई–२८।

ज० बि० मि० — जगदीश बिहारी मिश्र, अंग्रेजी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

ज० म० — जहीरुद्दीन मलिक, इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

ज० मि० त्रे० — जगदीश मित्र त्रेहन, एडीशनल कंसल्टिंग इंजीनियर, रोड्स विंग, ट्रांसपोर्ट ऐंड काम्युनिकेशन मिनिस्ट्री, ट्रांसपोर्ट भवन, पार्लिमेंट स्ट्रीट, नई दिल्ली।

ज० यू० — जनयूनहुआ, एम० ए०, पी-एच० डी०, लेक्चरर, चीनी साहित्य, चीन भवन, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, पश्चिमी बंग।

ज० ला० च० — जवाहरलाल चतुर्वेदी, प्रधान संपादक, पुष्टिमार्गीय-ग्रंथ-रत्नकोश, सूरसागर कार्यालय, कूवावाली गली मथुरा।

ज० श० ग० — जगदीश शरन गर्ग, एम० एस-सी० (एजी०) एम० एड०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, कृषि प्रसार विभाग, राजकीय कृषि महाविद्यालय, कानपुर।

जि०ना०वा० — जितेंद्रनाथ वाजपेयी, एम० ए०, पी-एच० डी०, इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

जी० एल० चं० — जी० एल० चंदावरकर, प्रार्थना समाज, १६०, राजा राममोहन राय रोड, बंबई–४।

जी० के० अ० — दे० गो० कृ० अ०।

जे० एन० म० — जगदीश नारायण मल्लिक, एम० ए०, अध्यक्ष दर्शन विभाग, राजेंद्र कालेज, छपरा।

झ० ला० श० — स्व० झम्मनलाल शर्मा, डी० एस-सी०, भूतपूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेंट डिग्री कालेज, नैनीताल।

तु० ना० सिं० — तुलसी नारायण सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

त्रि० पं०	त्रिलोचन पंत, एम० ए०, इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
द० श०	दशरथ शर्मा, एम० ए०, डी० लिट० अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।
द० श० व०	दयालु शरण वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, क्वीस कालेज, वाराणसी।
दी० च०	(स्वर्गीय) दीवानचंद, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व वाइस चांस्लर, आगरा विश्वविद्यालय, ६३ छावनी मार्ग, कानपुर।
दी० ना० ब० या दी० ना० व०	दीपेंद्रनाथ बनर्जी, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
दु० शं० ना०	दुर्गाशंकर नागर, बी० एस-सी० (कृषि), उपनिदेशक (प्रशिक्षण), कृषि निदेशालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।
ध० प्र० स०	धर्मप्रकाश सक्सेना, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, भूगोल विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।
न० प्र० सिं०	श्रीकांतनंदन प्रसाद सिंह, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
न० क०	नवरत्न कपूर, एम० ए०, पी-एच० डी० हिंदी विभाग, गवर्नमेंट डिग्री कालेज, लुधियाना, पंजाब।
न० द० मि०	नगेंद्रदत्त मिश्र, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (केम० इंजि०), चीफ केमिस्ट, मण्ड्या नैशनल पेपर मिल्स लि०, बेलागुला, कृष्णराज सागर, मैसूर राज्य।
न० ना०	नरेंद्रनाथ, भूतपूर्व मेडिकल आफिसर ऑव हेल्थ, वाराणसी।
न० प्र०	नर्मदेश्वर प्रसाद, एम० ए०, प्राध्यापक भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
नि० कौ०	निर्मला कौशिक, प्राध्यापिका, भूगोल विभाग, महिला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
नी० पु० जो०	नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, एम० ए०, पी-एच० डी०, क्यूरेटर, संग्रहालय, मथुरा।
प० द०	परमेश्वर दयाल, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन), अध्यक्ष, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
पी० एम० जे०	पी० एम० जोशी, डेक्कन कालेज, पोस्ट ग्रेजुएट एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना–६।
पु० क०	पुष्पा कपूर, एम० ए०, प्राध्यापिका, भूगोल विभाग, महिला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
पु० वा०	पुरुषोत्तम वाजपेयी, एम० ए०, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश बैंक एम्प्लाईज यूनियन, वाराणसी।
प्र० कु० पा०	प्रफुल्ल कुमार पारिख एम० एस-सी०, सबडिवीजनल आफिसर (जिऑलोजी) एमरजेंसी वाटर सप्लाई, पब्लिक हेल्थ इंजीनियरिंग डिवीजन, जमुई, बिहार।
प्र० च० गु०	प्रकाशचंद्र गुप्त, एम० ए०, अंग्रेजी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।
प्र० ब०	प्रभात बसु, ई–२३, सी० आई० टी० बिल्डिंग्स, क्रिस्टोफर रोड, कलकत्ता–१४।
प्र० मा०	प्रभाकर माचवे, सहायक मंत्री, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, ३५ फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली–१।
प्र० व०	प्रमिला वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)।
प्रि० कु० चौ०	प्रियकुमार चौबे, बी० ए०, ए० बी० एम० एस०, डी० पी० पी०, मेडिकल एवं हेल्थ आफिसर, काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।
प्रे० ल० श०	प्रेमलता शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, संगीत शास्त्र विभाग, संगीत भारती, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
फू० स० व०	फूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस-सी० ए० आइ० आइ० एस-सी० भूतपूर्व प्रोफेसर, औद्योगिक रसायन, प्रिंसिपल, कालेज ऑव टेक्नालॉजी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, संपादक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
ब० उ०	बलदेव उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य, निदेशक अनुसंधान संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
ब० प्र० मि०	बलभद्र प्रसाद मिश्र, ४७।१२, कबीर मार्ग, लखनऊ।
ब० प्र० स०	बनारसी प्रसाद सक्सेना, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)।
बा० ना०	बालेश्वर नाथ, बी० एस-सी०, सी० ई० (आनर्स), एम० आइ० ई०, मेंबर, इरीगेशन टीम (कैंप) कमेटी आन प्रोजेक्ट्स प्लानिंग कमीशन, ३ मथुरा रोड, नई दिल्ली।
बि० मु०	बिभा मुखर्जी, एम० ए०, पी-एच० डी० प्राध्यापिका, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
बृ० मो० सा०	बृजमोहन लाल साहनी, एम० ए०, अवकाशप्राप्त रीडर, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
बै० पु०	बैजनाथ पुरी, एम० ए०, बी० लिट० (आक्सफोर्ड), प्रोफेसर इतिहास, नेशनल एकेडेमी ऑव ऐडमिनिस्ट्रेशन, चार्लविल, मसूरी।
ब्र० कि० श०	ब्रजकिशोर शर्मा, एल-एल० एम०, प्राध्यापक, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ।
ब्र० र० दा०	(स्व०) ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील, भू० पू० प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
भ० दा० अ०	भगवानदास अग्रवाल, एम० ए०, बी० एस-सी०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, गणित विभाग, सेंट्रल हिंदू कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
भ० दा० व०	भगवान दास वर्मा, बी० एस-सी०, एल० टी०, भूतपूर्व अध्यापक, डेली (चीफ्स) कालेज, इंदौर, भूतपूर्व सहायक संपादक, इंडियन क्रानिकल, विज्ञान

तथा साहित्य सहायक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भ० दे० ध० — भदन्त देवत धर्म, एम० ए० अंतरराष्ट्रीय छात्रावास, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी–२।

भ० श० उ० — भगवत शरण उपाध्याय, एम० ए०, डी० फिल० (जाग्रेव), भूतपूर्व संपादक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भ० शं० या० — भवानीशंकर याज्ञिक, प्राध्यापक, मेडिकल कालेज, लखनऊ तथा सहायक निदेशक, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विभाग, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार, ८ शाहनजफ मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ।

भा० शं० मे० — भानुशंकर मेहता, एम० बी० बी० एस०, पैथोलाजिस्ट, बुलानाला, वाराणसी।

भा० स० — भाऊ समर्थ, गोएनका उद्यान, सोनेगाँव, नागपुर नं० ५।

भा० सिं० गौ० — भारत सिंह गौतम, एम० ए०, हरिश्चंद्र डिग्री कालेज, वाराणसी।

भी० गो० दे० — भीमराव गोपाल देशपांडे, एम० ए०, बी० टी०, प्रवक्ता, मराठी विभाग, (काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५) डी० २१।२४, कमच्छा, वाराणसी।

भी० ला० आ० — भीखनलाल आत्रेय, एम० ए०, डी० लिट० आत्रेय निवास, लंका, वाराणसी।

भु० ना० मि० — भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, गया।

भृ० ना० प्र० — भृगुनाथ प्रसाद, पी-एच० डी०, रीडर, प्राणिशास्त्र विभाग, सायंस कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भै० ना० सिं० — भैरवनाथ सिंह, एम० ए०, भूत पूर्व प्रध्यापक, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

म० दे० शा० — मंगलदेव शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०, भू० पू० उपकुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय, प्राच्य अनुसंधान संस्थान, इंग्लिशिया लाइंस, वाराणसी।

म० म० प० — मंजुला मणिभाई पटेल, एम० ए०, बी० टी० लेक्चरर, बिड़ला प्लेनेटेरियम, ९६ चौरंगी रोड, कलकत्ता।

म० मा० — मनोहर माडिलकर, संपादक, चैंपियन, लेबर कालोनी, नाटी इमली, वाराणसी।

म० गु० — मन्मथनाथ गुप्त, संपादक, 'आजकल', पब्लिकेशंस डिवीजन, भारत सरकार, पुराना सचिवालय, दिल्ली।

म० ना० मे० — महाराज नारायण मेहरोत्रा एम० एस-सी०, एफ० जी० एस० एम०, प्राध्यापक, भूविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

म० भ० — मधुकर भट्ट, एम० ए०, पी-एच० डी०, एन ११।१८, कृष्णकुंज, धर्मनगर, नगवा, लंका, वाराणसी–५।

म० रा० जै० — महेंद्र राजा जैन, एम० ए० लाइब्रेरियन, विश्वविद्यालय दारुस्सलाम, नैरोबी, अफ्रीका।

म० ला० द्वि० — मनोहर लाल द्विवेदी, साहित्याचार्य एम० ए०, पी-एच० डी०, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

म० वि० या
म० सी० वि० — महेशचंद्र विजावट, विधि विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मि० च० पा० — मिथिलेशचंद्र पाटिया, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अमरोहा (मुरादाबाद)।

मि० च० — मिल्टन चरण, अध्यक्ष, भारतीय मसीही सुधार समाज, एस० १७।३८, गजाबाजार, वाराणसी–२।

मु० अ० अ०अ० — मुहम्मद अजहर असगर अंसारी, प्रोफेसर, आधुनिक भारतीय इतिहास, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

मु० उ० — मुहम्मद उमर, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, इतिहास विभाग, रूरल इंस्टीट्यूट, जामिया मिलिया, नई दिल्ली।

मु० मु० — दे० शुद्ध रूप मु० मो० दे० मुकुंद मोरेश्वर देसाई, एम० ए०, सेवकाशप्राप्त रीडर, अंग्रेजी विभाग काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मु० रा० श० — मुंशीराम शर्मा, एम० ए०, डी० लिट० संचालक वैदिक शोध संस्थान, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

मु० ला० श० — मुरारि लाल शर्मा, एम० ए०, ज्योतिषाचार्य, विद्यावारिधि, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मु० रा० — मुद्रा राक्षस, सोनेगाँव, लखनऊ।

मु० शु० — मुक्ता शुक्ल, एम० ए०, आकाशवाणी, सारनाथ, वाराणसी।

मु० स्व० व० — मुकुंद स्वरूप वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०, भूतपूर्व चीफ मेडिकल ऑफिसर तथा प्रिंसिपल, मेडिकल कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मो० ह० — मोहम्मद हबीब, बी० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व प्रोफेसर, इतिहास और राजनीति, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

य० रा० मे० — यशवंतराम मेहता, एम० एम-सी०, पी-एच० डी०, (यू० एस० ए०) ऐसोसिएट आइ० ए० आर० आइ०, इकानोमिक बोटैनिस्ट, उत्तर प्रदेश, कानपुर।

र० अ० या
मु० र० — मुहम्मद रफीक, एम० ए०, अरबी फारसी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

र० उ० — रत्नाकर उपाध्याय, एम० ए०, प्राध्यापक, इतिहास विभाग, गवर्नमेंट इंटर कालेज, श्रीनगर, गढ़वाल।

र० कु० — (स्वर्गीया) रत्नकुमारी, एम० ए०, पी एच० डी०, प्रधानाध्यापिका, आर्य कन्या पाठशाला, इलाहाबाद।

र० च० क० या र० च० क० — रमेशचद्र कपूर, डी० एस-सी०, डी० फिल०, प्रोफेसर, रसायन विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

र० च० दु० — रमेशचद्र दुबे, एम० ए० सपादक सहायक, हिंदी-विश्वकोश, गाँव और पत्रालय, ऊँचा बहादुर पुर, जिला इटावा।

र० ज० — रजिया सज्जाद जहीर, एम० ए०, भूतपूर्व लेक्चरर, उर्दू विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, वजीर मजिल, वजीर हसन रोड, लखनऊ।

र० ना० दे० — रवीद्रनाथ देव, एम० ए०, लेक्चरर, अंग्रेजी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

र० ना० श० — रमानाथ शर्मा, एम० ए० लेक्चरर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

र० प्र० रा० — रवीद्रप्रताप राव, आर्गैनिक रसायन, यूनिवर्सिटी ऑव ऐडलेड, दक्षिण आस्ट्रेलिया।

र० सिं० — रघुबीर सिंह, रघुबीर निवास, सीतामऊ (म० प्रदेश)।

रा० कु० — रामकुमार, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० प्रोफेसर गणित तथा अध्यक्ष अनुप्रयुक्त गणित विभाग, मोतीलाल नेहरू इजीनियरिंग कालेज, इलाहाबाद।

रा० के० त्रि० — दे० रा० फे० त्रि०

रा० च० द्वि० — रामचद्र द्विवेदी, एम० ए०, पी-एच० डी०, के १।१३, माडल टाउन, दिल्ली।

रा० चं० पां० — रामचद्र पाडेय, एम० ए०, पी-एच० डी०, व्याकरणाचार्य, लेक्चरर, बौद्ध दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

रा० च० मा० — रामचद्र मालवीय, एम० ए०, साहित्याचार्य, प्रस्तोता, सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० च० शु० — रामचद्र शुक्ल, एम० ए०, लेक्चरर, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी।

रा० च० स० — रामचद्र सक्सेना, भूतपूर्व प्राध्यापक, प्राणिविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० दा० ति० या रा० दा० त्रि० — रामदास तिवारी, एम० एस-सी०, डी० फिल० असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

रा० द्वि० — रामाज्ञा द्विवेदी, लेवर कालोनी, ऐशबाग, लखनऊ।

रा० ना० — राजेंदर नागर, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा० ना० — राजनाथ, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (लदन), डी० आइ० सी० एफ० एन० आई०, एफ० एन० ए० एस-सी०, एफ० जी० एम० एस०, प्रिंसिपल, सायस कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० ना० सु० — रामनाथ सुब्रह्मण्यन, एम० ए०, एफ० आई० आई० आई० सी०, सहायक क्यूरेटर, बिडला प्लेनेटोरियम, कलकत्ता-१६

रा० नि० रा० — रामनिवास राय, एम० एस-सी०, डी० फिल०, प्रिंसिपल, सनातन धर्म कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

रा० पू० ति० — रामपूजन तिवारी, एम० ए०, पी-एच० डी०, हिंदी विभाग, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शातिनिकेतन, बोलपुर, पश्चिमी बग।

रा० प्र० सिं० — राजेंद्र प्रसाद सिंह, एम० ए०, रिसर्च स्कालर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० फे० त्रि० — रामफेर त्रिपाठी, एम० ए०, रिसर्च स्कालर (यू० जी० सी०) हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा० ब० सिं० — रामबली सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० भ० क० — रामभरोसेलाल कटियार, एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, दर्शन विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

रा० मू० लु० या रा० लू०, — राममूर्ति लूँबा, एम० ए०, एल-एल० बी०, प्राध्यापक, मनोविज्ञान एव दर्शन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा० रा० शा० — राजाराम शास्त्री, प्राचार्य, समाजविज्ञान विद्यालय काशीविद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० शं० शु० — रामशकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, ४७८। ५१२ मम्फोर्डगज, इलाहाबाद।

रा० श० भ० — रामशकर भट्टाचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०, शोध सस्थान, सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० श्या० अ० — राधेश्याम अबष्ट, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, एफ० बी० एस०, प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० स० ख० — रामसहाय खरे, एम० ए०, रामकृष्ण मिशन हाई स्कूल, वाराणसी।

रा० सिं० का० — रजिंदर सिंह काल्हा डाइरेक्टर, मैप पब्लिकेशन ऑफिस, देहरादून।

रा० सिं० नौ० — रामस्वरूप सिंह नौलखा, एम० ए०, एल० टी०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

रा० ह० स० — रामचद्र हरि सहस्रबुद्धे, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, डी० एस-सी०, अध्यक्ष, रसायन विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर।

र० म० — (स्व०) सर रुस्तम पेस्तन जी मसानी, एम० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व म्यूनिसिपल कमिश्नर बबई, ४६ मिअरवेदर रोड, बबई।

ल० रा० ख० — लवलेशराय खरे, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०,

फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑव इंडिया, सिंदरी, धनबाद।

स० वि० — (स्व०) सत्यदेव विद्यालंकार, लेखक एवं पत्रकार, नई दिल्ली।

सत्य० प्र० या स० प्र० — सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०, एफ० ए० एस-सी०, रीडर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सा० जा० — सावित्री जायसवाल (कुमारी), एम० एस-सी०, प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सी० च० — सीताराम चतुर्वेदी, प्रिंसिपल, टाउन डिग्री कालेज, बलिया।

सु० कु० चा० — सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व अध्यक्ष, बंगाल विधान परिषद्, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता।

सु० च० गौ० — सुरेशचंद्र गौड, एम० एस-सी०, बी० एड, भौतिकी विभाग, गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कालेज, रायपुर।

सु० च० श० — सुरेशचंद्र शर्मा, एम० ए०, एल० एल० बी, अध्यक्ष, भूगोल विभाग, महारानी लाल कुंवरि डिग्री कालेज, बलरामपुर, गोंडा।

सु० न० प्र० — सुरेशनंदन प्रसाद, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, पटना कालेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

सु० ना० शा० — सुरेंद्रनाथ शास्त्री, एम० ए०, डी० फिल० उपकुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सु० प्र० सिं० — सुरेंद्रप्रताप सिंह, एम० ए, पी-एच० डी, अध्यक्ष भूगोलविभाग, राजा हेरिपाल सिंह डिग्री कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर।

सु० सिं० — सुरेशसिंह कुँवर, एम० एल० सी०, कालाकांकर, प्रतापगढ, उ० प्र०।

सु० सिं० कु० — सुरेशसिंह कुशवाहा, एम० एस-सी०, प्राध्यापक, भौतिकी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सै० अ० अ० रि० — सैयद अतहर अब्बास रिजवी, आस्ट्रेलियन नैशनल यूनीवर्सिटी स्कूल ऑव जैनरल स्टडीज, कैनबेरा।

ह० चं० गु० — हरिश्चंद्र गुप्त, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (आगरा, मैनचेस्टर), गणितीय सांख्यिकी में रीडर, दिल्ली विश्वविद्यालय, १८। २० शक्ति नगर, दिल्ली।

ह० दे० बा० — हरदेव बाहरी, एम० ए०, ओ० एल०, शास्त्री, पी-एच० डी०, डी०, लिट०, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

ह० ना० मि० — दे० हृ० ना० मि०।

ह० बा० — दे० ह० दे० बा०

ह० बा० मा० — हरिबाबू माहेश्वरी, एम० बी० बी० एस०, प्राध्यापक, पैथालोजी विभाग, लेडी हार्डिंज मेडिकल कालेज, नई दिल्ली।

ह० वि० का० — हरिविष्णु कामथ, भूतपूर्व संसद सदस्य, वेस्टर्न कोर्ट, जनपथ, नई दिल्ली।

ह० शं० गु० — हरिशंकर गुप्त एम० ए० प्राध्यापक, भूगोल विभाग, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर।

ह० श० चौ० — हरिशंकर चौधरी डी० फिल०, एफ० एन० ए० एस-सी०, पी० ई० एस०, प्राध्यापक, प्राणिविज्ञान विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

ह० श० श्री० — हरिशंकर श्रीवास्तव, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

ही० ना० मु० — हीरेंद्रनाथ मुखोपाध्याय, एम० ए०, बी० लिट० (आक्सन), बार-एट-ला, संसद सदस्य, १२५, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली।

ही० ला० गु० — हीरालाल गुप्त, एम० ए०, डी० फिल०, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)।

ही० ला० जै० — हीरालाल जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट०, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत, पालि और प्राकृत विभाग इंस्टिट्यूट ऑव लैंग्वेजेज ऐंड रिसर्च, जबलपुर युनिवर्सिटी, जबलपुर।

हृ० ना० मि० — हृदयनारायण मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, दर्शन विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

तत्वों की संकेतसूची

संकेत		तत्व का नाम
अ	Am	अमरीकियम
आ$_{इ}$	En	आइन्स्टियम
ऑ	O	ऑक्सिजन
आ	I	आयोडीन
आ$_{ग}$	A	आर्गन
आ$_{स}$	As	आर्सेनिक
आ$_{स}$	Os	ऑस्मियम
इं$_{ड}$	In	इंडियम
इ$_{ट}$	Yb	इटर्बियम
इ$_{ट्र}$	Y	इट्रियम
इ	Ir	इरीडियम
ए$_{ब}$	Eb	एर्बियम
ऐं$_{ट}$	Sb	ऐंटिमनी
ऐ$_{क}$	Ac	ऐक्टिनियम
ऐ	Al	ऐल्यूमिनियम
ऐ$_{स}$	At	ऐस्टैटीन
का	C	कार्बन
कै$_{ड}$	Cd	कैडमियम
कै$_{फ}$	Cf	कैलिफोर्नियम
कै	Ca	कैल्सियम
को	Co	कोबाल्ट
क्यू	Cm	क्यूरियम
क्रि	Kr	क्रिप्टॉन
क्रो	Cr	क्रोमियम
क्लो	Cl	क्लोरीन
ग	S	गंधक
गै$_{ड}$	Gd	गैडोलिनियम
गै	Ga	गैलियम
ज$_{र}$	Zr	ज़र्कोनियम
ज$_{म}$	Ge	जर्मेनियम
ज़ी	Xe	ज़ीनान
ट	W	टंग्स्टन
ट$_{र}$	Tb	टर्बियम
टा$_{इ}$	Ti	टाइटेनियम

संकेत		तत्व का नाम
ट$_{क}$	Tc	टेकनिशियम
टे$_{ल}$	Te	टेल्यूरियम
टैं	Ta	टैंटेलम
डि	Dy	डिस्प्रोशियम
ता	Cu	ताम्र
थू	Tm	थूलियम
थै	Tl	थैलियम
थो	Th	थोरियम
ना	N	नाइट्रोजन
नि$_{ब}$	Nb	नियोबियम
नि	Ni	निकल
नी	Ne	नीऑन
ने$_{प}$	Np	नेप्च्यूनियम
न्यो	Nd	न्योडियम
पा	Hg	पारद
पै	Pd	पैलेडियम
पो	K	पोटासियम
पो$_{ल}$	Po	पोलोनियम
प्रे	Pr	प्रेजीओडिमियम
प्रो$_{ट}$	Pa	प्रोटोऐक्टिनियम
प्रो$_{म}$	Pm	प्रोमीथियम
प्लू	Pu	प्लूटोनियम
प्लै	Pt	प्लैटिनम
फा	P	फॉस्फोरस
फ्रा	Fr	फ्रासियम
फ्लो	F	फ्लोरीन
ब	Bk	बर्कीलियम
बि	Bi	बिस्मथ
बे	Ba	बेरियम
बे$_{र}$	Be	बेरीलियम
बो	B	बोरन
ब्रो	Br	ब्रोमीन
मू	R	मूलक (रैडिकल)
मैं	Mn	मैंगनीज़
मै$_{ग}$	Mg	मैग्नीशियम

संकेत		तत्व का नाम
मो	Mo	मोलिब्डिनम
य	Zn	यशद
यू	U	यूरेनियम
यू$_{र}$	Eu	यूरोपियम
र	Ag	रजत
रु$_{थ}$	Ru	रुथेनियम
रु$_{ब}$	Rb	रुबीडियम
रे$_{ड}$	Rn	रेडॉन
रे	Ra	रेडियम
रे$_{न}$	Re	रेनियम
रो	Rh	रोडियम
लि	Li	लिथियम
लै	La	लैंथेनम
लो	Fe	लोह
ल्यू	Lu	ल्यूटीशियम
व	Sn	वंग
वै	V	वैनेडियम
स	Sm	समेरियम
सि	Si	सिलिकन
सि$_{ल}$	Se	सिलीनियम
सी$_{ज}$	Cs	सीज़ियम
सी$_{र}$	Ce	सीरियम
सी	Pb	सीस
सें	Ct	सेंटियम
सो	Na	सोडियम
स्कैं	Sc	स्कैंडियम
स्ट्रो	Sr	स्ट्रोंशियम
स्व	Au	स्वर्ण
हा	H	हाइड्रोजन
ही	He	हीलियम
है	Hf	हैफ्नियम
हो	Ho	होल्मियम

संकेताक्षर

अ०	अक्षांश; अथर्ववेद; अध्याय
अ० कां०	अरण्यकांड (रामायण)
अथर्व०	अथर्ववेद
अधि०	अधिकरण
अनु०	अनुवादक, अनुशासनपर्व,
अयो०	अयोध्याकांड (रामायण)
आं० प्र०	आंध्र प्रदेश
आ० घ० या आपे० घ०	आपेक्षिक घनत्व
आई० ए० एस०	इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस
आई० सी० एस०	इंडियन सिविल सर्विस
आदि०; आ० प०	आदिपर्व (महाभारत)
आ० श्रौ० सू०	आपस्तंब श्रौतसूत्र
आय०	आयतन
आर्के० स० रि०	रिपोर्ट ऑव दि आर्कयालॉजिकल सर्वे ऑव इंडिया
आश्व०	आश्वलायन
इंट्रो०	इंट्रोडक्शन
ई०	ईसवी
ई० पू०	ईसा पूर्व
उ०	उत्तर
उदा०	उदाहरण
उत्तर०	उत्तरकांड
उ० प्र०	उत्तर प्रदेश
उद्यो०; उद्योग०	उद्योगपर्व (महाभारत)
ऋ०	ऋग्वेद
ए० आई० आर०	आल इंडिया रिपोर्टर
ए० इ०, एपि० इ०	एपिग्राफिया इंडिका
एक०	एकवचन
ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
क० प०; कर्ण०	कर्णपर्व (महाभारत)
का०	कारिका
काम०	कामदकीय नीतिसार; कामशास्त्र
काव्या०	काव्यालंकार
कि० ग्राम	किलोग्राम
कि० मी० या किमी०	किलोमीटर
कु० सं०	कुमारसंभव
क्र० सं०	क्रमसंख्या
क्थ०	क्थनाक
गा०	गाथा
छांदो०	छांदोग्य उपनिषद्
ज०, ज० सं०	जन्म, जन्म संवत्
जि०	जिला, जिल्द
जे० पी० टी० एस०	जर्नल ऑव दि पालि टेक्स्ट सोसायटी
तैत्ति०	तैत्तिरीय
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
द०	दक्षिण
दी० नि०	दीघनिकाय
दी०	दीपवंश
दे०	देखिए, देशांतर
द्रो० प०, द्रोण०	द्रोणपर्व
ध०	धम्मपद
ना० प्र० प०	नागरीप्रचारिणी पत्रिका
ना० प्र० स०	नागरीप्रचारिणी सभा
नि०	निरुक्त
पं०	पंजाबी, पंडित
प०	पट्टाण, पर्व, पश्चिम; पश्चिमी
पद्म०	पद्मपुराण
पु०	पुराण
पू०	पूर्व
पृ०	पृष्ठ
प्र०	प्रकाशक
प्रक०	प्रकरण
प्रो०	प्रोफेसर
फा०	फारेनहाइट
बा०	बालकांड (रामायण)
वाज० सं०	वाजसनेयी संहिता
ब्र० सू०	ब्रह्मसूत्र
ब्रह्म० पु०	ब्रह्मपुराण
ब्रा०	ब्राह्मण
भाग०	श्रीमद्भागवत
भा० ज्यो०	भारतीय ज्योतिष
भी० प०	भीष्मपर्व
मनु०	मनुस्मृति
मत्स्य०	मत्स्यपुराण
म० भा०, महा०	महाभारत, महावंश
म० म०	महामहोपाध्याय
मिता० टी०	मिताक्षरा टीका
मी०	मील
मिमी०	मिलीमीटर
मे० सा०	मेगासाइकिल
म्यू०	माइक्रॉन
याज्ञ०; याज्ञ० स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति
रघु०	रघुवंश
र० का० सं०	रचनाकाल संवत्
राज०, रा० त०	राजतरंगिणी
ल०, लग०	लगभग
ला०	लाला

ली०	लीटर
वन०; व० प०	वनपर्व (महाभारत)
वा० रा०	वाल्मीकीय रामायण
वायु०	वायुपुराण
वि०, वि० स०	विक्रमी सवत्
विनय०	विनयपत्रिका
वि० पु०	विष्णु पुराण
वै० इ०	वैदिक इडेक्स
श०, शत०, श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
श०	शती
शल्य०	शल्यपर्व
शांति०	शांतिपर्व
श्रीमद्भा०	श्रीमद्भागवत
श्लो०	श्लोक
स०,	सख्या, सपादक, संवत्, सस्करण, सस्कृत, सहिता
सं० ग्रं०	सदर्भ ग्रथ
सस्क०	संस्करण
स० ग० स०	सेंटीग्रेड, ग्राम, सेकड पद्धति
स० प०; सभा०	सभापर्व (महाभारत)
सुदर०	सुंदरकांड
सें०	सेंटीग्रेड
साइकॉ०	साइकॉलोजी
सेंमी०	सेंटीमीटर
से०	सेकड
स्कद	स्कदपुराण
स्व०	स्वर्गीय
ह०	हनुमानबाहुक, हरिवशपुराण
हि०	हिजरी
हिं०	हिंदी
हिं० वि० को०	हिंदी विश्वकोश
हि०	हिजरी; हिमांक
हिस्टॉ०	हिस्टॉरिकल

फलक सूची

———

हिंदी विश्वकोश

खंड ८

प्राच्य चर्च जो ईसाई समुदाय पूजा तथा शासन के विषय मे अंतिओक, येरुसलेम, सिकंदरिया और कुस्तुतुनिया जैसे प्राचीन ईसाई केंद्रो की प्रणाली अपनाते हैं उन्हे प्राच्य चर्च कहा जाता है क्योकि वे केंद्र रोम के पूर्व मे हैं। इन समुदायो के सदस्य आजकल पश्चिम यूरोप तथा अमरीका मे भी पाए जाते हैं। अधिकाश तो वे रोम के चर्च से अलग हो गए हैं किंतु उनमे सब मिलाकर लगभग डेढ करोड रोमन काथलिक हैं, जो रोम का शासन स्वीकार करते हैं यद्यपि वे अन्य प्राच्य चर्चवालो की भाँति पूजा मे अपनी ही प्राचीन पद्धति पर चलते हैं और अन्य रोमन काथलिक समुदायो की तरह लैटिन भाषा का प्रयोग नही करते। रोम से सयुक्त रहनेवाले प्राच्य चर्चों को और उनके सदस्यो को यूनिएट (एकतावादी) कहते है। रोम से अलग रहनेवाले प्राच्य चर्चों का सिंहावलोकन उनके अलग हो जाने के काल-क्रमानुसार यहाँ प्रस्तुत है।

(१) सन् ४३१ ई० मे नेस्तोरियस के सिद्धात को भ्रामक ठहराया गया था (दे० अवतारवाद)। यह सिद्धात पूर्व सीरिया (आजकल ईराक-ईरान) के ईसाइयो को ठीक ही जँचा, दूसरी ओर वे रोमन प्राच्य साम्राज्य के बाहर ही रहते थे, अत उन्होंने अपने को एक स्वतत्र नेस्तोरियन चर्च के रूप मे घोषित किया। यह चर्च शताब्दियो तक फलता फूलता रहा और चीन, मध्य एशिया तथा दक्षिण भारत तक फैल गया। १६वी शताब्दी मे इस चर्च से सबध रखनेवाले अधिकाश सदस्य, अर्थात् बाकुल के कालदियन ईसाई (आजकल १७००००) तथा मलाबार के थोमस ईसाई (आजकल लगभग दस लाख) रोमन काथलिक चर्च मे समिलित हुए। दक्षिण भारत के अन्य प्राचीन ईसाई १७वी शताब्दी मे जैकोबाइट चर्च के सदस्य बन गए किंतु सन् १८४३ ई० मे इनमे से एक समुदाय प्रोटेस्टैंट धर्म के कुछ सिद्धात अपनाकर अलग हो गया। वे मार-थोमाइट कहलाते हैं, (आजकल लगभग २,६०,०००)। सन् १९०७ मे एक अन्य समुदाय ने नेस्तोरियन चर्च से अपना सबध स्थापित किया और सन् १९३० ई० मे एक तीसरा समुदाय रोमन काथलिक बन गया (वे सिरोमलकर कहलाते हैं, आजकल लगभग १ लाख)।

नेस्तोरियन ईसाइयो की सख्या आजकल लगभग एक लाख है, वे मुख्य रूप से अमरीका, रूस, ईराक, ईरान तथा दक्षिण भारत मे (लगभग ५,०००) रहते हैं।

(२) सन् ४५१ ई० मे कालसे दोन की ईसाई विश्वसभा ने मोनोफिसिटिज्म का सिद्धात भ्रामक घोषित किया था (दे० अवतारवाद)। बाद मे जब सीरिया, मिस्र तथा आरमीनिया के ईसाई समुदाय कुस्तुतुनिया से अलग हो गए, उन्होंने मोनोफिसिटिज्म का सिद्धात अपनाया।

(अ) सीरिया का ईसाई समुदाय, अपने नेता याकूब बुरदेआना के अनुसार जैकोबाइट कहलाता है। आजकल सीरिया तथा इराक मे एक लाख से कम जैकोबाइट शेष है किंतु दक्षिण भारत मे उनकी सख्या लगभग सात लाख है।

(आ) मिस्र का प्राचीन ईसाई समुदाय प्राय कोप्त (Copt) कहलाता है। यह समुदाय मिस्र से एथियोपिया मे फैल गया, आजकल उसकी सदस्यता इस प्रकार है मिस्र मे १५ लाख तथा एथियोपिया मे आठ करोड।

(इ) सन् ३०० ई० से ईसाई धर्म आरमीनिया का राजधर्म घोषित किया गया था। बाद मे आरमीनिया ने मोनोफिसाइट सिंद्धात अपनाया। आजकल आरमीनियन ईसाइयो की सख्या लगभग २५ लाख है जो अधिकाश रूस मे निवास करते हैं।

(३) रोमन साम्राज्य की राजधानी बनने के कारण कुस्तु तुनिया पूर्व यूरोप का प्रधान ईसाई केंद्र बन गया था। इस केंद्र से ईसाई धर्म रूस तथा समस्त पूर्व यूरोप मे फैल गया। अत सन् १०५४ मे जब कुस्तु तुनिया का चर्च रोम से अलग हो गया तो पूर्व यूरोप के प्राय समस्त ईसाई समुदायो ने कुस्तु तुनिया का साथ दिया (दे० चर्च का इतिहास)। उन समुदायो को आर्थोदोक्स (अर्थात् सही शिक्षा का अनुयायी) कहा जाता है क्योकि वे ११वी शती तक रोमन चर्च द्वारा धर्म सिद्धात के रूप मे घोषित सभी धार्मिक शिक्षाएँ स्वीकार करते हैं।

उत्पत्ति की दृष्टि से वे सभी समुदाय कुस्तु तुनिया से सबद्ध है, किंतु सन् १४४८ ई० मे रूस का चर्च स्वाधीन हो गया और बाद मे बहुत से राष्ट्रीय समुदायो ने अपने को स्वतत्र घोषित किया। फिर भी आजकल पूर्व यूरोप के बहुत से अर्थोदोक्स चर्च (यूनान, साइप्रस, अलबानिया, हगरी, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड) कुस्तु तुनिया अथवा पैत्रियार्क को अपना अध्यक्ष मानते हैं, यथापि वे उनका हस्तक्षेप स्वीकार नही करते। सर्बिया (युगोस्लोविया), बुलगारिया, रूमानिया तथा जार्जिया के आर्थोदोक्स समुदाय अपने को पूर्ण रूप से स्वतत्र घोषित कर चुके है।

पाचवी शती मे जब सीरिया तथा मिस्र के अधिकाश ईसाई अलग हो गए तो उनमे से कुछ कुस्तु तुनिया के साथ रहे थे, उनको मेलकाइट (Melkite) कहा जाता है। बाद मे वे कुस्तु तुनिया के साथ आर्थोदोक्स बन गए किंतु इधर वे पर्याप्त सख्या में रोमन कायलिक चर्च मे समिलित हुए।

आर्थोदोक्स ईसाइयो की कुल सक्या बीस करोड से अधिक है, उन समुदायो मे से रूस का आर्थोदोक्स चर्च सबसे महत्वपूर्ण है।

स० ग्र० — डी अनवाटर दी क्रिश्चियन चर्चेज ऑव दि ईस्ट, द्वितीय खड, आर० जेनिन एग्लिस ओरिएताल, पेरिस, १९५५।

[का० बु०]

प्राणिउपवन (Zoological garden) वह संस्थान है जहाँ जीवित पशु पक्षियों को बहुत बड़ी संख्या में संग्रहीत कर रखा जाता है। जीवित पशु पक्षियों के संग्रह को रखने की परिपाटी बहुत प्राचीन है। ऐसे उपवनों के होने का सबसे पुराना उल्लेख चीन में ईसा के १२०० वर्ष पूर्व में मिलता है। चीन के चाऊ वंश के प्रथम शासक के पास उस समय ऐसा एक पशु पक्षियों का संग्रहालय था। ईसा के २००० वर्ष पूर्व के मिस्र वासियों की कब्रों के आसपास पशुओं की हड्डियाँ पाई गई हैं, जिससे पता लगता है कि वे लोग आमोद प्रमोद के लिये अपने आसपास पशुओं को रखा करते थे। पीछे रोमन लोग भी पशुओं को पकड़कर अपने पास रखते थे। प्राचीन रोमनों और यूनानियों के पास ऐसे संग्रह थे जिनमें सिंह, बाघ, चीता, तेंदुए आदि रहते थे। ऐसा पता लगता है कि ईसा के २९ वर्ष पूर्व ऑगस्टस ऑक्टेवियस (Augustus Octavious) के पास ४१० बाघ, २६० चीते और ६०० अफ्रीकी जंतुओं का संग्रह था, जिनमें बाघ, राइनोसिरस, हिपोपॉटैमस (दरियाई घोड़ा), भालू, हाथी, मकर, साँप, सील (seal), ईगल (उकाब) इत्यादि थे। पीछे जंतुओं के संग्रह की दिशा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है और आज संसार के प्रत्येक देश और प्रत्येक बड़े बड़े नगर में प्राणिउपवन विद्यमान है। ऐसे उपवनों के आज तीन प्रमुख उद्देश्य हैं : (१) मनुष्य का मनोरंजन करना, (२) पशु पक्षियों के आचरण, व्यवहार, चालढाल, प्रकृति आदि का अध्ययन करना ताकि जो पशु पक्षी मनुष्य के लिये अधिक उपयोगी हैं उनकी रक्षा और वृद्धि की जाय और (३) उनपर कुछ ऐसे प्रयोग करना जिनसे प्राप्त ज्ञान को मानव हित में प्रयुक्त किया जा सके। इस अंतिम उद्देश्य की पूर्ति के कारण ही हम अनेक नई नई ओषधियों के आविष्कार करने में समर्थ हुए हैं। इन ओषधियों से अनेक असाध्य रोगों की चिकित्सा आज सफलता से की जा रही है। कुछ पशुओं की शारीरिक क्रिया मनुष्य की शारीरिक क्रिया से बहुत मिलती जुलती है। उन कारण नई ओषधियों का जो प्रभाव उन पशुओं पर पड़ता है वैसा ही प्रभाव मानव शरीर पर भी पड़ता है। पशुओं पर किए गए प्रयोग मनुष्य के लिये बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

एशिया में अनेक प्राणिउपवन हैं जिनमें अलीपुर स्थित कलकत्ते का प्राणिउपवन बड़े महत्व का है। भारत का यह सबसे बड़ा प्राणिउपवन है। इसकी स्थापना १८७५ ई० में बंगाल सरकार द्वारा हुई। इसमें पशु पक्षियों का संग्रह बहुत अच्छा है। इसके अतिरिक्त बंबई, दिल्ली और लखनऊ में भी प्राणिउपवन हैं। पाकिस्तान में कराची का प्राणिउपवन उत्कृष्ट कोटि का है। सिंगापुर, बटाविया और सुराबाया में भी प्राणिउपवन हैं। सुमात्रा के पश्चिमी तट पर फोर्ट-द-कॉक तथा जोहोर बाहरू में भी जंतुओं का संग्रह उत्तम है। जापान में दर्जनों प्राणिउपवन हैं, जिनमें टोकियो, नागोया, क्योटो, ओसाका और कोबे के प्राणिउपवन प्रमुख हैं। शांघाई का प्राणिउपवन यद्यपि छोटा है, तथापि उसमें चीन के जंतुओं का संग्रह अच्छा है। रूस के मॉस्को नगर में जो प्राणिउपवन है उसमें उत्तरी और विदेशी जंतुओं का बहुत अच्छा संग्रह है।

ऑस्ट्रिया और न्यूज़ीलैंड में भी अनेक प्राणिउपवन हैं। ऑस्ट्रेलिया के सिडनी, मेलबर्न, ऐडिलेड और पर्थ के प्राणिउपवन महत्व के हैं, पर इनमें ऑस्ट्रेलिया के पशु पक्षियों का संग्रह अच्छा है। न्यूज़ीलैंड के वेलिंगटन और ऑकलैंड के उपवन अच्छे [illegible] हैं, पर वेलिंगटन के पशु पक्षियों का [illegible] है।

अफ्रीका में [illegible] के प्राणिउपवन [illegible] हैं। उनमें अफ्रीकी जंतुओं का [illegible] है। इन प्राणिउपवनों का प्रबंध वहाँ की सरकार द्वारा होता है। [illegible] प्राणिउपवन है, जिसका प्रबंध वहाँ की नगरपालिका करती है। इन प्राणिउपवनों के सिवाय [illegible] और [illegible] में भी उपवन हैं, जिनका प्रबंध वहाँ की सरकार द्वारा होता है।

उत्तरी अमरीका में कैनाडा, मेक्सिको और संयुक्त राज्य, अमरीका, में अनेक प्राणिउपवन हैं। [illegible] नगर में किसी न किसी प्रकार के छोटे मोटे प्राणिउपवन विद्यमान [illegible]। [illegible] प्राणिउपवनों में पशु पक्षियों का [illegible] है। संयुक्त राज्य, अमरीका, के प्राणिउपवन [illegible] २६५ एकड़ भूमि तक, में फैले हुए हैं। [illegible] सबसे बड़ा है। इसका प्रबंध [illegible] नगरपालिका करती है। वाशिंगटन में जो उपवन है उसे 'नैशनल ज़ूलॉजिकल पार्क' कहते हैं। इसकी स्थापना १८८९-१८९० ई० में आमोद प्रमोद, शिक्षा और प्राणिविज्ञान के अनुसंधान के लिये [illegible]। यह भी बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। फिलाडेल्फिया का फेयरमाउंट पार्क में एक दूसरा सुप्रसिद्ध प्राणिउपवन है। यह नगर के [illegible] के आदेश पर १८५६ ई० में बना था। इसके निर्माण का मुख्य उद्देश्य शिक्षा का प्रसार था।

यूरोप के प्रायः सब देशों, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली इत्यादि, में अनेक प्राणिउपवन हैं। यूरोप का सबसे प्राचीन उपवन शॉनब्रुन (Schonbrunn) का है। बुडापेस्ट के प्राणिउपवन में यूरोप के पक्षियों का अच्छा संग्रह है। लंदन का प्राणिउपवन यद्यपि छोटा है, तथापि यहाँ संग्रह सर्वोत्कृष्ट है। [illegible] में भी छोटे छोटे प्राणिउपवन हैं। एडिनबरा का उपवन [illegible] के लिये सुप्रसिद्ध है। बर्लिन के प्राणिउपवन में [illegible] बहुत विशाल है। यूरोप के अन्य देशों के नगरों, रोम, [illegible], [illegible] इत्यादि, में भी छोटे बड़े प्राणिउपवन विद्यमान हैं। [ह० सं० न०]

प्राणिऊष्मा जंतुओं के शारीरिक ताप से संबंधित शारीरिक क्रियाएँ, शारीरिक ऊष्मा के ह्रास के मार्ग तथा शरीर का ताप स्थायी रखने के लिये आवश्यक ऊष्मोत्पादन की रीति, ये सभी प्रस्तुत विषय के अंतर्गत आते हैं। विविध प्रकार के तापमापियों के आविष्कार ने उपर्युक्त बातों के अध्ययन में बड़ी सहायता पहुँचाई है।

जंतु दो प्रकार के होते हैं : प्रथम समतापी (homeothermic), अर्थात् वे जिनके शरीर का ताप लगभग एक सा बना रहता है। इस वर्ग में स्तनधारी, साधारणत पालतू जानवर तथा पक्षी, आते हैं, जो उष्ण रक्तवाले भी कहे जाते हैं। द्वितीय असमतापी (poikilothermic), अर्थात् वे जिनके शरीर का ताप बाह्य वातावरण के अनुसार बदला करता है। इस वर्ग में कीड़े, साँप, छिपकली, कछुआ, मेढक, मछली आदि हैं, जो शीतरक्तवाले कहे जाते हैं। कुछ ऐसे भी जंतु हैं जो उष्ण ऋतु में उष्ण रक्त के, किंतु शीत ऋतु में, जब वे शीत निद्रा में रहते हैं, शीत रक्तवाले हो जाते हैं, जैसे हिममूष (marmot)। इस अवस्था में हिममूष का शारीरिक ताप ३८° फा० (लगभग ३°

सें०) तक गिर जाने पर भी यह पुन जीवित हो जाता है। उष्ण रक्तवाले प्राणियो के शरीर का ताप सवेदनाहारी अवस्था मे तथा रीढ रज्जु का वियोजन होने पर, वाह्य वातावरण के अनुसार यथेष्ट कम किया जा सकता है।

शारीरिक ताप मे विभेद — जतुओ के शारीरिक ताप मे हाथी के ६६° फा० (३५ ५° सें०) से लेकर छोटी चिडियो के १०६° फा० (४२ ८° सें०) तक अतर हो सकता है। मनुष्य, बदर, खच्चर, गधा, घोडा, चूहा तथा हाथी का ६६°–१०१° फा० (३५ ५°–३८° ३ सें०), गाय, बैल, भेड, कुत्ता, बिल्ली, खरगोश तथा सूअर का १००°–१०३° फा० (३७ ८°–३६ ४° सें०), टर्की, हस, वतख, उल्लू, पेलिकन और गिद्ध का १०४°–१०६° फा० (४०°–४११° सें०) तथा मुर्गी, कबूतर और अनेक छोटी चिडियो का १०७°–१०६° फा० (४१ ७°–४२° ८ सें०) शारीरिक ताप होता है। इसमे प्रति दिन समयानुसार थोडा हेर फेर हो सकता है। वच्चो के शारीरिक ताप मे इस प्रकार का अतर वडो की तुलना मे अधिक होता है।

मनुष्य के शरीर के वाह्य भाग का ताप अतर्भाग से ७°–६° फा० (४°–५° सें०) कम होता है। मलाशय का ताप औसत शारीरिक ताप से २°–४° फा० (१ १°–२ २° सें०) तक अधिक हो सकता है। भोजन के एक या दो घटे पश्चात् तक शरीर का ताप अधिक रहता है। स्त्रियो और पुरुषो पर पर्यावरण के ताप का प्रभाव भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियो का शारीरिक ताप रजोधर्म से डिबोत्सर्ग के समय तक लगभग एक डिग्री गिर जाता है।

शारीरिक तापपरिवर्तन की सीमाएँ — उष्ण रक्तवाले जीव ताप का सीमित अतर ही सह सकते हैं। यह सीमा इस बात पर निर्भर है कि उस जतु के शरीर मे स्वेदग्रथियाँ हैं या नही। ज्वर मे मनुष्य के शरीर का उच्चतम ताप १०७° फा० (४१ ७° सें०) तक चढ जाता है, किंतु मृत्यु के पूर्व ११०° फा० (४३ ३° सें०) तक चढता पाया गया है। मधुमेहजनित समूर्छा मे ताप ६२° फा० (३३ ३° सें०) तक गिर जा सकता है। वर्फ से ढककर मूर्छित मनुष्य के शरीर का ताप ८०° फा० (२६ ६° सें०) के लगभग ८ दिन तक विना हानि रखा गया है। शीत रक्तवाले प्राणियो का शारीरिक ताप हिमताप तक गिर जाने पर भी उन्हें कोई हानि नही होती, किंतु वे इसका ६८ ६° फा० (३७° सें०) से अधिक बढना नही सह सकते। साँप, छिपकली आदि इस अवस्था मे मर जाते हैं।

शारीरिक ताप का नियंत्रण — प्राणियो के शरीर का ताप ऊष्मा के उत्पादन तथा उसकी हानि के अतर से बना रहता है। शीत रक्तवाले जीवो मे ऊष्मोत्पादन वाह्य ताप के अनुसार वदला करता है, किंतु वह सर्वदा ही ऊष्म रक्तवाले प्राणियो से कही कम होता है। उष्ण रक्तवाले भीमकाय जीवो मे ऊष्मा का उत्पादन लघुकायो से अधिक होता है, किंतु यह कायावृद्धि के अनुपात मे नही बढता। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे ऊष्मोत्पादन कम होता है।

शरीर का ताप वनाए रखने के लिये उत्पन्न ऊष्मा का शरीर से वाहर निकलना आवश्यक है। यह क्रिया विकिरण, सवहन तथा जल के वाष्पीकरण से होती है। स्वेद-ग्रथि-रहित जतुओ, जैसे कुत्ते, मे त्वचा से वाष्पीकरण नही होता है। इसकी पूर्ति वह जोर जोर से हाफकर करता है। गाय, भैस आदि मे भी स्वेदग्रथियाँ बहुत कम होती हैं। इसलिये इन्हे उच्च ताप असह्य होता है। उच्च ताप का प्रभाव दुग्धोत्पादन पर भी पडता है। मुर्गियाँ भी गरमी नही सह पाती, किंतु भेड को कोई कष्ट नही होता।

ताप का नियत्रण त्वचा तथा स्वेद द्वारा ही मुख्यत होता है। गरमी मे त्वचा की रक्तनलियाँ फैल जाती है, रक्त का प्रवाह बढ जाता है और ऊष्मा का ह्रास अधिक होता है। शीत ऋतु मे यह प्रत्येक बात विपरीत होती है। गरमी या परिश्रम करने से निकले हुए स्वेद-जल की पूर्ति के लिये जल पीना आवश्यक हो जाता है। जीवो मे ऊष्मा का नियत्रण केंद्रीय तत्रिकातत्र द्वारा होता है। अनुमान है, तापकेंद्र अधश्चेतक ग्र थि (hypothalamus) मे अवस्थित है।

[भ० दा० व०]

प्राणिपारिस्थितिकी (Animal Ecology) जीवाणु से लेकर विशालकाय हाथी तक प्रत्येक छोटे वडे जीवित प्राणी की एक विशिष्ट जीवनपद्धति होती है, जो उसकी वनावट, शारीरिक क्रिया तथा पर्यावरण के भौतिक, मौसमी तथा जैव कारको पर निर्भर होती है। जीवो और उनके पर्यावरण के अत सबधो का अध्ययन प्राणिपारिस्थितिकी की विषयवस्तु है।

वृद्धि, उपापचय (metabolism) तथा अन्य वहुत सी क्रियाओ के लिये जीव सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करते है। वनस्पतियाँ इस ऊर्जा को विकीर्ण सूर्यप्रकाश से प्राप्त करती हैं और अपनी कोशिकाओ मे पर्णहरित (chlorophyll) की प्रकाश-सश्लेषण-क्रिया से कार्वोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन का सश्लेषण करती है। वसा, प्रोटीन और कार्वोहाइड्रेट मे स्थित ऊर्जा प्राणियो के काम आती है, क्योकि आहार का सश्लेषण कुछ प्रोटोजोआओ (protozoa) को छोडकर अन्य सभी प्राणी नही कर सकते। अत प्राणिसमुदाय मे प्राणियो की सख्या और उनका प्रकार परिस्थितियो (environments) से सीधे नियत्रित होता है और अप्रत्यक्ष रूप से वनस्पतियो को प्रभावित करनेवाले कारको से नियत्रित होता है, क्योकि प्राणी आहार, आवास और प्रजनन के लिये इन वनस्पतियो पर निर्भर करते हैं। वनस्पति और प्राणियो के शरीर का निर्माण करनेवाले तत्व पर्यावरण से प्राप्त होते हैं और जीवो के निरतर पैदा होते और मरते रहने के कारण इन तत्वो का अवाध रूप से विनमय होता रहता है।

प्रकृति में रासायनिक चक्र

कार्वन — यह उन सभी कार्वनिक यौगिको मे पाया जाता है जिनसे जीवद्रव्य (protoplasm) वनता है। हवा या पानी मे स्थित कार्वन डाइऑक्साइड से कार्वोहाइड्रेटो का सश्लेषण होता है। ये कार्वोहाइड्रेट वसा और प्रोटीन से मिलकर ऊतक वनाते हैं। जव इन वनस्पतियो को वनस्पतिभक्षी प्राणी खा जाते हैं तव ये कार्वन के यौगिक, पाचन तथा अवशोषण के वाद, जातव जीवद्रव्य के रूप मे पुनर्गठित होते है। क्रम से यह जातव जीवद्रव्य दूसरे प्राणियो मे जाता है। प्राणियो मे भजक उपापचय गारा उत्पन्न कार्वन डाइऑक्साइड श्वसन अपशिष्ट (respiratory waste) के रूप मे निकलकर हवा या पानी मे लौट जाता है।

ऑक्सीजन — ऑक्सीकर प्रक्रम (oxidative process) के लिये प्राणी ऑक्सीजन पानी या हवा से सीधे प्राप्त करते है और फिर कार्वन से सयुक्त होकर कार्वन डाइऑक्साइड के रूप मे या

हाइड्रोजन से संयुक्त होकर पानी के रूप में यह वातावरण में लौटता है। वनस्पतियों द्वारा प्रयुक्त कार्बन डाइऑक्साइड से ऑक्सीजन वातावरण को लौट आता है। लेकिन संतुलित जलजीवशालाओं में देखा गया है कि वनस्पतियां भी कुछ ऑक्सीजन का उपयोग श्वसन में करती हैं।

वायुमंडलीय नाइट्रोजन — इसे मिट्टी या कुछ फलियों की मूल-ग्रंथिकाओं (root nodules) में स्थित नाइट्रीकारी जीवाणु (nitrifying bacteria) नाइट्रेट में बदल देते हैं। पौधे नाइट्रेटों का उपयोग करके वनस्पति प्रोटीन बनाते हैं। ये वनस्पति प्रोटीन की सड़न की क्रिया से मिट्टी में पहुंच जाते हैं, या पशुओं द्वारा खाए जाने पर जांतव प्रोटीन में बदल जाते हैं।

अपचय (catabolism) के दौरान में, जांतव प्रोटीन यूरिया प्रधान नाइट्रोजनी अपशिष्ट के रूप में विभक्त होकर प्राणियों के बाहर आ जाते हैं। भूमिजीवाणु और अन्य जीवाणु इस यूरिया को अमोनिया और नाइट्राइट में परिवर्तित कर देते हैं। जीवाणुओं की क्रिया के कारण नाइट्रोजन या तो वायु में चला जाता है, या नाइट्राइट, अथवा नाइट्रेट में परिवर्तित हो जाता है।

खनिज — वनस्पति अपनी जड़ों से कुछ अकार्बनिक पदार्थ प्राप्त करते हैं, जो वनस्पति के सड़ने पर भूमि में वापस लौटते हैं। प्राणियों को आहार्य वनस्पतियों और पानी से खनिज प्राप्त होते हैं। प्राणियों के उत्सर्जन, विष्ठा और मरणोपरांत शरीर के सड़ने से खनिज भूमि या पानी में लौटता है।

पानी — यह जीवों की सभी उपापचय क्रियाओं के लिये आवश्यक जीवद्रव्य का सारतत्व है। यह कोशिकाओं द्वारा अवशोषण करने या उत्सर्जन के लिये पदार्थों के वाहन का काम करता है। प्राणियों की पाचनक्रिया में पानी के रासायनिक उपयोग से जल-अपघटन (hydrolysis) द्वारा मंड (starch) शर्करा में परिणत होता है और ऑक्सीकर प्रक्रमों से ऊतकों में उपापचयी पानी बनता है।

जलवायु संबंधी कारक

उष्ण कटिबंध में कुछ स्थलों तथा समुद्रों में पर्यावरण लगभग स्थिर रहता है, परंतु पृथ्वी के विशाल विस्तार में ताप, आर्द्रता और सूर्यप्रकाश हर मौसम में बदलते रहते हैं। ये परिवर्तन विभिन्न प्राणियों को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। प्राणी की प्रत्येक जाति का जीवनचक्र वातावरण के जलवायु की दशाओं के अतिशय अनुकूल होता है।

ताप — पक्षियों और स्तनपायियों का शरीर पूर्णत: ऊष्मारोधी होता है। ये नियततापी प्राणी हैं, अत: इनपर तापपरिवर्तन का प्रभाव शायद ही होता है। परंतु उनके खाद्य पदार्थ पर जाड़े की ठंढक और ग्रीष्म की गरमी का असर हो सकता है।

कीटभक्षी पक्षी तथा अन्य प्राणी, जो उत्तर ध्रुवीय और शीतोष्ण प्रदेशों में गर्मियां बिताते हैं, जाड़ों में उपयुक्त आहार के लिये गरम देशों में चले आते हैं। ऊँचे पहाड़ों पर गरमी बितानेवाले प्राणी जाड़ों में निम्न भूमि पर चले आते हैं।

गिलहरी, भालू और कुछ कीटभक्षी स्तनधारियों को जब गरम मौसम के आहार सर्दियों में नहीं मिलते तब वे शीतनिष्क्रियता (hibernation) का सहारा लेते हैं। शीतनिष्क्रियता की स्थिति में प्राणियों का ताप गिरकर आश्रयस्थल के ताप के बराबर हो जाता है, श्वसन मंद हो जाता है, उपापचय घटता है और ये उसी वसा के सहारे जीवित रहते हैं, जो शीतनिष्क्रियता के पूर्व उनके शरीर में संचित हो जाती है।

सरीसृप, उभयचर, मछलियाँ, कीट और अन्य अपृष्ठवंशी (invertebrates) अनियततापी प्राणी हैं और इनके शरीर का ताप इनके वातावरण के ताप के लगभग बराबर होता है। वातावरण के ताप का प्रत्यक्ष प्रभाव इन प्राणियों पर पड़ता है और गरमी से इनका उपापचय, वृद्धि और क्रियाशीलता तीव्र हो जाती है तथा ये सभी ठंढक से मंद पड़ जाते हैं। इस दृष्टि से उपर्युक्त प्राणियों की प्रत्येक जाति की सीमाएँ हैं। अधिक समय तक हिमीभवन (freezing) होने से या घोर गर्मी पड़ने से ये मर सकते हैं। इनके अधिकांश विकासशील अंडे और लार्वा हिमकारी मौसम में मर जाते हैं, जिनसे इनकी संख्या में ह्रास होता है।

सरीसृप और उभयचर गरमी के मौसम में खाते हैं और वृद्धि करते हैं। ठंढे मौसम में इनके लिये पृथ्वी या जल में शीत निष्क्रियता अनिवार्य होती है, अन्यथा उसके अभाव में ये उन भूभागों में, जहाँ ताप निम्न होता है, जमकर मर जाएँ।

शुष्क प्रदेशों के कुछ साँप, जो वसंत ऋतु में दिन में घूमते फिरते हैं, गरमियों में असह्य गरमी से बचने के लिये रात्रिचर हो जाते हैं। शीतऋतु में अलवण जल की अधिकांश मछलियां निष्क्रिय हो जाती हैं। समुद्री जीवों पर जलवायु के मौसमी परिवर्तनों का आकस्मिक असर कम इसलिये होता, क्योंकि समुद्र में ताप कभी चरम स्थितियों पर नहीं पहुँचता। कुछ प्रौढ़ कीट तथा ताजे पानी के क्रस्टेशिया (crustaceans) और रोटिफेरा (rotifera) प्रतिरोधी अंडे देते हैं, जो जल में और स्थल पर हिमांक पर भी जीवित रहते हैं।

तापपरिवर्तन विभिन्न प्राणियों के आहार्य वनस्पतियों की वृद्धि, उत्तरजीविता एवं फलने को प्रभावित करता है। जब बहुत समय तक सर्दी पड़ती है तब घास पत्तों का विकास धीमा हो जाता है, जिससे कीट, कृंतक और चरनेवाले पशुओं के लिये आहारसंकट उपस्थित हो जाता है। यही संकट इनकी उत्तरजीविता की कोटि निर्धारित करता है। अनेक फलों की फसल असामयिक मौसम के कारण घट जाती है, जिससे उनपर निर्भर रहनेवाले पक्षियों को भटकना और भूखों रहना पड़ सकता है।

जल संबंध — अधिकांश जलीय परिस्थितियाँ प्राय स्थिर रहती हैं, विशेषकर ठंढे देशों में। ऐसी स्थिति में, जाड़ों में पानी जमकर सुरक्षित रहता है और गरमियों में वाष्पीकरण द्वारा हुई हानि वर्षा से पूरी हो जाती है। गरम प्रदेशों में वर्षा और हिमपात के उतार चढ़ाव के कारण छोटी बड़ी, सभी झीलें समय समय पर सूख जाती हैं, जिससे मछलियाँ, मेढक, भेक, बतख और पानी के पास दलदलों में रहनेवाले जीव मारे जाते हैं।

बहती हुई जलधाराओं में प्रवाह के परिवर्तन से भी उसमें रहने-वाले जीवों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। भीषण बाढ़, और तीव्र

प्रवाह अनेक जीवो को मार डालता है। नदियो की शाखाओ मे प्रवाह अपर्याप्त होने से पानी शीघ्र गरम हो जाता है और साथ ही जलजीव स्थलीय परभक्षियो के शिकार बनते हैं। कुछ भेक और कीट बरसाती तालो मे प्रजनन करते है। वर्षा के कम होने, बेमौसम होने, या तालो के सूखने से छोटे भेक और कीट तथा इनके लार्वा मारे जाते है।

आर्द्रता — मिट्टी मे रहनेवाले सभी जीव आर्द्रता के जलाश के परिवर्तन से प्रभावित होते हैं। केंचुए तथा कुछ अन्य कीटो के लार्वा सतह की निकटतम मिट्टी मे रहते हैं और गरमियो में सतही परतो के सूखने पर गहराइयो मे चले जाते हैं। कृमियो और लार्वाओ पर निर्वाह करनेवाला छछूंदर भी आवश्यकतानुसार उथली या गहरी परतो मे आया करता है।

मूल आवश्यकताएँ तथा अन्य बातें

आहार — प्राणियो की आहार की आदतें एक दूसरे से भिन्न होती है। प्राप्य की प्रत्येक जाति को आहार की आदतो के अनुसार उचित आहार उचित मात्रा मे मिलना चाहिए। मनुष्य, चूहे, घरेलू मक्खियो आदि जीवो की खाद्य आदतो का सामान्यीकरण हो गया है और ये आवश्यकतानुसार अपना आहार बदल सकते हैं।

प्राणी की कुछ जातियो की आहार सबधी खास आदतें होती हैं और ये जातियाँ वही रह सकती है जहाँ इनका प्रिय खाद्य मिले, जैसे ऊदबिलाव बैतवृक्ष की भीतरी छाल पर, बद गोभी की तितली का लार्वा क्रूसीफेरी (cruciferous) पौधो की पत्तियो पर और घोडामक्खी स्तनपायी के रक्त पर निर्वाह करती है। कुछ खाद्य मौसमी होते है और इनपर निर्वाह करनेवाले जीव दूसरे मौसमो मे आहार बदल देते हैं, या प्रसुप्त हो जाते है, प्रव्रजन करते है या फिर मर ही जाते हैं।

शाकाहारी प्राणी ही प्राणिसमुदाय के आधार होते है, क्योकि ये ही दूसरे प्राणियो के खाद्य हैं। इन्हे इनसे शक्तिशाली प्राणी खा जाते है। इस प्रकार सूर्य से वनस्पतियो द्वारा प्राप्त की गई मौलिक ऊर्जा आहारशृखला मे प्राकृतिक रूप से पारित होती है। समुदाय की सभी आहारशृखलाओ से आहारचक्र (food cycle) बनता है। छोटे से छोटे समुदाय के आहार सबध भी बहुत जटिल होते है, जिन्हे निम्नलिखित उदाहरणो द्वारा समझा जा सकता है

(१) तालो मे जीवाणु और डायटम (diatom) खाद्य पदार्थ को सश्लेपित करते हैं और इसके फलस्वरूप बड़े जीव छोटे जीवो को आगे लिखे हुए क्रम से खा जाते है

जीवाणु और डायटम → छोटे प्रोटोजोआ → बडे प्रोटोजोआ → रोटिफेरा और क्रस्टेशिया → जलीय कीट → मछलियाँ।
बडी मछलियाँ मरने और सडने पर जीवाणुओ का खाद्य बनती हैं और इस प्रकार चक्र पूरा होता है।

(२) स्थल पर आहारचक्र निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है

भूमिखनिज, कार्बन डाइऑक्साइड और पानी → पौधे → वनस्पतिभक्षी कीट, कृतक या चरनेवाले पशु → परभक्षी कीट या छोटे मासभक्षी प्राणी → बडे मासभक्षी। यह चक्र बडे मासभक्षियो की मृत्यु और सडन से पूरा होता है।

प्रत्येक आहारशृखला मे उत्तरवर्ती सदस्य पूर्ववर्ती सदस्य से आकार मे बडे और कुल सख्या मे कम होते हैं। शृखलाएँ सीधी नही होती, बल्कि इनकी अनेक शाखाएँ और वैकल्पिक कडियाँ होती हैं। अत किसी सदस्य की सख्या मे होनेवाले परिवर्तनो का पूर्वानुमान नही हो सकता।

आश्रय और प्रजनन के स्थान — खुले पानी के विशाल क्षेत्र मे रहनेवाले जीव अपनी उत्कृष्ट गमनशक्ति के कारण शत्रु से बच निकलते है, परतु छोटे जलाशयो के जीव और स्थलचर, शत्रु और अपनी प्रकृति के विपरीत पर्यावरण से बचने के लिये, आश्रय या निरापद स्थान का सहारा लेते है। अनेके छोटे स्तनपायी, पक्षी, छिपकली, कीट आदि चरागाह या पेडो के कोटर जैसे आवरणो मे रहते है। समुद्री मछलियाँ और अकशेरुकी जीव तटीय जल मे चट्टानो या प्रवालभित्ति पर रहते है। छछूंदर, साँप, कीट और कृमि हमेशा भूमि मे रहते है। ऐसे स्थानो पर पशु अपने स्वभाव के अनुकूल आहार प्राप्त करते और शत्रु तथा मौसम के कुप्रभावो से बचते हैं।

जीवो की हर जाति को प्रजननस्थान की विशेष आवश्यकता होती है, जहाँ वे बच्चे या अडे जनती है। कुछ जीव आश्रयस्थल ही पर प्रजनन कर लेते है, लेकिन पक्षी और मछलियाँ प्रजनन का स्थान तैयार करते है। छोटे जीव अपने उपयुक्त स्थल मे प्रजनन करते हैं।

अपने और अपने सतान के आहार की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये पक्षियो और स्तनपायियो मे प्रत्येक नर मादा एक सीमित क्षेत्र को अपने अधिकार मे रखते हैं और इस क्षेत्र मे अपनी जाति के अन्य जीव के प्रवेश को रोकते है।

स्पर्धा — आहार के लिये जाति के सभी सदस्यो मे गहरी स्पर्धा चलती है। विभिन्न जाति के प्राणियो का आहार भी एक ही होने पर तो स्पर्धा और भी विकट होती है। एक ही चारागाह टिड्डो, वनस्पतिभक्षी कीटो, कृतको, खरगोशो और घरेलू मवेशियो की आहारभूमि हो सकता है। खाद्याभाव की स्थिति मे, जीवन के लिये सघर्ष तीव्र हो उठता है। प्राणियो की जो जाति निश्चित खाद्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थ खा सकती है वह बच रहती है, परतु जो जाति दूसरा खाद्य नही खा सकती उसका अस्तित्व सकटग्रस्त हो जाता है। फसल खराब होने पर अनेक प्राणी भूखो मरते है।

शत्रु — आहार की आदतो के अनुसार प्राणी तीन प्रकार के होते है (१) मासभक्षी, (२) शाकभक्षी और (३) अपमार्जक (scavengers)। मासभक्षी दो प्रकार के होते हैं (१) परभक्षी (predators) और (२) पराश्रयी (parasites)। परभक्षी अपने शिकार को मारकर खा जाते है, परतु पराश्रयी प्राय अपने जीवित परपोषी (host) को खाते ही रहते हैं। आहारशृखला मे प्रत्येक परभक्षी अपने शिकार से बडा होता है, जबकि पराश्रयी अपने परपोषी से अवश्य ही बहुत छोटा होता है।

कहा जाता है कि परभक्षी अपने शिकार की सख्या को नियन्त्रित रखते है। यह भी ठीक है, पर यह सबध सतुलित होता है। यदि शिकार की जनसख्या बढती है, तो अधिक परभक्षियो का निर्वाह सभव होता है और फलस्वरूप शिकार की सख्या घटती है और परभक्षियो की बढती है। परभक्षियो के लिये, किसी सीमा तक शिकार का ह्रास होना और फिर दूसरे खाद्य की तलाश करना लाभदायक है, अन्यथा आहार के अभाव मे उनका अपना ह्रास होने लगेगा।

उदाहरणार्थ लाल लोमडी खरगोशो, चूहों, चिडियो, कीटो और साथ ही फलो और बेरो पर निर्वाह करती है। ऐसे परभक्षियो की सख्या, जो स्थान और ऋतु के अनुसार आहार बदलते हैं, ध्रुवीय खरगोश या लेमिंग (lemming) पर (जिनकी सख्या घटती बढती रहती है) निर्वाह करनेवाली ध्रुवीय लोमडी की अपेक्षा अधिक स्थिर रहती है।

परजीविता और प्राणियों के रोग — वाइरस (virus), जीवाणु, प्रोटोज़ोआ, पराश्रयी कृमि तथा पराश्रयी सधिपाद प्राणियों में से प्रत्येक अपने अपने परपोषी जीवो पर जीवित रहते है। ये पराश्रयी प्राणी परिस्थिति के विभिन्न कारको से प्रभावित होकर अपने परपोषियो मे रोग उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार अनेक रोगो को उत्पन्न करनेवाली पराश्रयिता, परपोषी प्राणियो की जनसख्या को नियत्रित रखनेवाला बहुत बडा साधन है।

जूँ और जोक जैसे पराश्रयी, जो परपोषी की त्वचा पर रहते हैं, बाह्य परजीवी (ectoparasite) होते हैं और परपोषी के शरीर के अदर आत या यकृत मे रहनेवाले फीताकृमि और पर्णाभ कृमि अत -परजीवी (endoparasite) होते हैं।

कीट और किलनी जैसे कुछ परजीवी मध्यवर्ती परपोषी का काम करते हैं और परजीवी प्रोटोज़ोआ को निश्चित परपोषियो (definitie hosts) तक पहुचाते है। हानिकारक परजीवी रोगोत्पादक कहलाते है। परजीवी के प्राथमिक आक्रमण के बाद स्वस्थ्य हुआ परपोषी, प्राय परजीवियो का वाहक बनकर, उनके अडो और लार्वाओ को अन्य परपोषियो मे सक्रमित करता है।

सहभोजिता (Commensalism) — इसके अतगत एक जाति के प्राणी दूसरी जाति के प्राणियो के शरीर मे उन्हें बिना किसी प्रकार का लाभ या हानि पहुँचाए रहते हैं, जैसे (१) चूषण मत्स्य (remora) यातायात के लिये पृष्ठीय चूषण अग द्वारा दूसरी मछलियो से चिपकता है तथा (२) केकडा आहार और रक्षा के लिये ऐनेलिड (annelid) कृमियो की नलियो मे रहता है।

सहजीविता (Simbiosis) — इसके अतर्गत प्राणियो की दो जातियाँ परस्पर लाभदायक स्थिति मे साथ साथ रहती है। दोनो जातियो का पृथक् जीवन असभव होता है। इसका उदाहरण दीमको की एक जाति है। ये दीमकें लकडी खाती हैं, परतु इन्हे अपनी आँतो मे रहनेवाले सेलुलोज को पचानेवाले कशाभिक (flagellate) प्रोटोज़ोआओ पर निर्भर रहना पडता है। यदि प्रयोग द्वारा दीमको को उनके कशाभिको से अलग कर दिया जाय तो दीमकें भूखी मर जाएँ और कशाभिक भी परपोषी के बाहर जीवित नहीं रह सकते।

प्राणिनिवह (colony) और समाज — सभी पशेरुकी और लगभग सभी सधिपाद प्राणी और अनेक अकशेरुकी भी मुक्त रहनेवाले होते हैं और स्वाश्रय विचरण करते हैं।

स्पज, कई प्रवाल, हाइड्रॉयड (hydroid) तथा कचुकित (tunicate) चट्टानों, पौधो, या अन्य प्राणियो की सतह से चिपके रहते है। स्पजो और प्रवालो दोनो वर्गो मे अनेक एकल जातियाँ है, जिनके सदस्य लगभग स्वतत्र होते हैं और बाकी जातियाँ समूह या निवह मे रहती है। स्पज, कचुकित और ब्रायोज़ोआ (Bryozoans) के सदस्य जन्म से ही जुडे होते है। कीट, मछलियो और चिडियो के निवह तथा खुरदार प्राणियो के यूथ मे सदस्य जन्म से अलग रहते हैं, पर उनके व्यवहार सामाजिक सगठनो के प्रति समान होते हैं।

बाज, मक्खीमार पक्षी, साँप और परभक्षी कीट आदि मासभक्षी अकेले रहते हैं, क्योकि इससे उन्हे अपना आहार सरलता से मिलता है। ये केवल प्रजनन के लिये मादा से सपर्क करते हैं। जाडों मे रोबिन और बतख चारा ढूँढने और निरापद रूप से सोने के लिये साथ रहते हैं।

शीतनिष्क्रियता के समय चमगादड, रैटल साँप तथा सोनपाँखी गुबरैला (lady bird beetle) को एकत्र रहने मे सुविधा होती है। मेढक, भेक, जलमुर्गी (gull) तथा फरदार सील मछलियाँ आदि यूथचर सगम के समय समूह मे रहते हैं।

जहाँ भी एक जाति के बहुत से सदस्य मिल जुलकर रहते है और एक दूसरे के हितो की रक्षा करते हैं वहाँ सामाजिक सगठन पाए जाते हैं। अनेक कीटगण मे सामाजिक आदतो का स्वतत्र विकास हुआ है, जिसका सर्वाधिक उन्नत रूप हीमेनॉप्टेरा (Hymenoptera) मे है। जन्म, कायिकी (physiology) और आदतो की दृष्टि से इनकी अनेक जातियाँ हैं, लेकिन किसी जाति का स्वतत्र अस्तित्व सभव नही।

जनसख्या — पर्यावरण की परिस्थितियों के कारण प्राणियो की जनसख्या मे उतार चढाव होते रहते हैं। हर जाति की जनसख्या हर साल और हर मौसम मे बदलती है।

अनुकूलन (Adaptations) — परिस्थिति के अनुकूल किसी खास पद्धति का जीवनयापन करने के लिये प्राणी की शरीररचना, शारीरिक क्रिया और आदत होती है। मधुमक्खी मे अनेक अनुकूलन हैं, जैसे मधुसचय के लिये मुँह मे चूषण अग और शक्कर पर निर्वाह करने की क्षमता। शरीर के बाल और कूर्च (brushes) पराग सचय मे और मोम को आहार और आश्रय के रूप मे ढालने के लिये उपयोगी होते है। मधुमक्खियो की तीन जातियो की तीन विशेष प्रकार की आदतें होती है।

मनुष्य — मनुष्य व्यापक जाति है, जो विभिन्न परिस्थितियो मे रह सकती है।

चूहा — अपनी विशिष्टताओ के बावजूद यह कुछ तक पर्याप्त व्यापक है और जलवायु, आश्रय और आहार की विविधताओ मे रह सकता है।

छछूँदर — यह जमीन मे रहने के लिये अनुकूलित होता है। इसके दात पतले होते है और कृमियो को पकडने के लिये उपयुक्त होते है। इसके नेत्र आवरणयुक्त, कान सिकुडे हुए, आगे के पैर छोटे, मिट्टी खोदने और मिट्टी मे चलने फिरने के लिये हथेलियाँ बडी और पजे भारी होते हैं। शरीर पर छोटा, प्रतिवर्त्य (reversible) फर (fur) होता है, जो आगे या पीछे चलने मे अव्यवस्थित नही होता।

विभिन्न स्तनपायियो के दाँतो मे उनके विभिन्न आहारो के लिये अनुकूल रूपातर होत है। पक्षियो की चोच भी अनुकूलित होती है। बहुत से परजीवी किसी एक ही परपोषी जाति मे रहते हैं और अन्य अपने जीवनचक्र की पूर्ति के लिये मलेरिया परजीवी और यकृत

पर्णाभ (liver flukes) के समान दो विशिष्ट परपोषियो की अपेक्षा करते है।

अनुकूलन का विकिरण — यह ऑस्ट्रेलिया के धानी प्राणियो (Marsupialia) के एक गण मे पाया जाता है और इसका अनेक जातियो मे विकिरण हुआ है जो दौडती, कूदती, पेडो पर चढती, बिल बनाती और उडती है। इनमे से कुछ निम्नलिखित हैं

पेरामेलीज़ (Perameles) — यह स्थलीय और बिल बनानेवाली है।

फैलेंजर (Phalanger) — यह वृक्षवासी है।

पिटॉरस (Pitaurus) — यह उडनेवाले प्राणियो की जाति है।

मैक्रोपस (Macropus) — यह स्थलीय है।

डेंड्रोलागस (Dendrolagus) — यह वृक्षवासी है।

विभिन्न वर्गो के प्राणियो के सर्वसामान्य आवास मे रहने लगने पर भी अनुकूलन का विकिरण होता है।

समुद्रवासी कशेरुकियो का शरीर सुप्रवाही होता है और उनके पख (fin) तैरने की सुविधा के लिये डाँडे जैसे होते है।

कई अनुकूली गुण प्राणियो के लिये रक्षात्मक होते हैं, जैसे आर्माडिलो (Armadillo), कछुआ और मोलस्क के खोल, साही के पिच्छाक्ष, मधुमक्खियो तथा ततैयो के डक और विषैले साँपो का विष।

प्राणियों के रंग — प्राणियो के चारो ओर व्याप्त वातावरण से मेल खाता हुआ उनका रग एक और अनुकूलन है, जिससे शत्रु उसे पहचान नही पाते। उत्तर कटिबधो मे जब बर्फ पडती है तब वहाँ के शशक और लकडबग्घे सफेद आवरणधारी हो जाते है। कई समुद्री अकशेरुकी प्राणियो और मछलियो के लार्वा पारदर्शी होते है। पेडो की छाल पर रहनेवाले कीडो का रग पृष्ठभूमि से मिलता जुलता होता है।

भयसूचक रग (Warning Colouration) — कुछ तितलियो और कीटो का रग भयसूचक होता है, जिससे शत्रु इन्हे अरुचिकर समझ लेते हैं। तेज डकवाली तितलियो और ततैयो का रग गाढा काला और पीला होता हे।

अनुहरण (Mimicry) — कुछ तितलियाँ, जो सुस्वादु होती हैं और हानिकारक नही होती, वे हानिकारक तितलियो की नकल उतारती है। बैसिलारकिया आर्किपस या वाइसराय तितली (Basilarchia archippus Or viceroy butterfly) तितली अरुचिकर डैनॉस प्लेक्सिपस (Danaus plexippus) की नकल उतारती है।

रक्षात्मक समानता — यह समानता वातावरण मे स्थित किसी पदार्थ से प्राणी के रग और आकार दोनो मे होती है। ज्योमेट्रिक इल्ली (geometric caterpillar) जब पेड पर बैठी होती है, तब वह उस पेड की टहनी जैसी दीखती है। भारत मे कैलिमा (kallema) पतग जब पख समेट कर बैठते है, तब सूखे पत्ते के समान लगते है। कुछ तृणकीट (walking sticks) सूखी या हरी टहनियो जैसे और बाकी हरे पत्तो जैसे होते हैं।

पहचान के चिह्न — कुछ प्राणी अपने शरीर के चिह्नो से अपनी तरह के प्राणियो को खतरे से आगाह करते हैं। जका (Junca) और घासस्थली के चडूल (lark) के पूँछ के पर श्वेत होते हैं। भय की स्थिति में ये इस प्रकार हिलते डुलते हैं कि अन्य पक्षियो को भयावह स्थिति का सकेत प्राप्त हो जाता है। [रा० च० स०]

प्राणियों और वनस्पतियों का देशीकरण

प्राणियों और वनस्पतियों का देशीकरण (Naturalization of Plants and Animals) इस पद का व्यापक रूप से प्रयोग प्राणियो और वनस्पतियो को उनके मूल निवास के समकक्ष, या बिलकुल भिन्न जलवायुवाले दूसरे प्रदेश मे, कृत्रिम या प्राकृतिक तरीके से ले जाकर, सफलतापूर्वक उनका विस्तार किए जाने की पद्धति के लिये किया जाता है। व्यापक अर्थ मे देशीकरण पारिस्थितिक अनुकूलन ही है, किंतु सीमित अर्थ मे देशीकरण का तात्पर्य उस क्रिया से है जिसके द्वारा जीवधारी का, अपने ही अथवा अन्य प्रदेश मे, इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है जिससे वह वहाँ की जलवायु की नई दशाओ को सहन करने की क्षमता प्राप्त कर ले और वहाँ के अनुकूल बन जाय। इस अनुकूलता का प्रतिपादन कुछ लोग लामार्क (Lamarck) और कुछ डार्विन (Darwin) के सिद्धात के अनुसार करते है।

देशीकरण का प्रभाव — जब किसी प्राणी या वनस्पति का किसी नवीन और भिन्न देश मे पदार्पण होता है और उसका देशीकरण किया जाता है तब उसमे निम्नलिखित परिवर्तन की सभावनाएँ हो सकती है

(१) किसी विशेष क्षेत्र मे प्राणी की सख्या मे स्पष्ट तीव्र वृद्धि होती है, जैसा ऑस्ट्रेलिया मे खरगोशो तथा न्यूज़ीलैंड मे हरित चटखो (green finches) की सख्या मे। तीव्र वृद्धि के दो कारण हो सकते है (क) अनुकूलन परिस्थितियाँ, जैसे भोजन की प्रचुरता और उससे प्रजनन की गति मे वृद्धि तथा (ख) नए प्रदेश मे शत्रुओ और अडचनो की अनुपस्थिति।

(२) नए प्रदेश मे व्यक्ति की माप और शक्ति मे वृद्धि।

(३) आवागमन के कारण विभिन्न किस्म के प्राणियो की सख्या मे वृद्धि और कुछ विलक्षण जातियो की उत्तरजीविता (survival)।

(४) प्राणी साधारणतया रूढिवादी होते हैं, पर उनमे कभी कभी मद गति से परिवर्तन होते भी देखे जाते है।

(५) कुछ जीव नए देश मे बहुत शीघ्र ही वहाँ की जलवायु के अभ्यस्त हो जाते हैं और उनमे कोई बाह्य परिवर्तन नही होता, जैसा घोडो, खरगोशो, चूहो, गौरैयो और मुर्गियो मे देखा जाता है, पर कुछ, जैसे तिब्बती याक, कम ऊँचाई के क्षेत्र मे नही पनपते। पशुओ के देशीकरण की सफलता बहुत कुछ उनकी रचनात्मक विलक्षणताओ पर निर्भर करती है।

(६) जब वातावरण, भोजन अथवा प्रकृति मे किसी प्रकार के प्रत्यक्ष परिवर्तन के फलस्वरूप जैविक या आगिक परिवर्तन ऐसा जड पकड लेता है कि उन परिस्थितियो के, जिनके कारण परिवर्तन हुए, समाप्त हो जाने पर भी परिवर्तन दृढ बना ही रहता है, तब ऐसे परिवर्तन को रूपातरण (modification) या व्यक्तिगत गुण (acquired character) का उपार्जन कहते हैं।

स्वदेशीय एवं आगतुक प्राणियों की परस्पर प्रतिक्रिया — जब कोई प्राणी एक देश से दूसरे देश मे पहुँचता है, तब यह आगतुक पहले से रहनेवाले देशी प्राणियो, अथवा पूर्वदेशीकृत प्राणियो का विनाश

कर देता है, जैसे जमैका मे रहनेवाले वक चूहो (crane rats) और विदेश से आगत जहाजों के चूहों (alien shiprats) का समूल नाश आगतुक नेवले ने कर दिया। यह नाश दो प्रकार से होता है (१) आगतुक प्राणियो द्वारा पूर्व के प्राणियों को खाकर, अथवा (२) अपनी वंशवृद्धि कर।

नए देश मे नए जानवरो के साथ साथ उनके परजीवियो (parasites) का प्रवेश भी हो सकता है, जैसे चूहो के साथ प्लेग के पिस्सू का और सूअरों के साथ, मनुष्यो मे ट्राइकिनोसिस (Trichinosis) की बीमारी उत्पन्न करनेवाले, ट्राइकिनेला स्पाइरैलिस (Trichinella spiralis) का प्रवेश।

न्यूज़ीलैंड म प्राणियों के देशीकरण का उदाहरण — यह सदेहात्मक है कि दो जातियो के चमगादडो को छोडकर, न्यूज़ीलैंड का कोई भी स्तनी प्राणी स्वदेशोत्पन्न है। न्यूज़ीलैंड मे ४८ जातियाँ प्रविष्ट की गईं, जिनमे ४४ जातियाँ जान बूझकर और चार अनजाने मे। इन चार अनजाने प्राणियो मे मूषक (mouse) की एक और चूहो (rats) की तीन जातियाँ हैं। यहाँ जब यूरोप के लोगो का बसना प्रारभ हुआ, तब चूहो की इन तीनो जातियो मे से एक जाति मस एक्ज़ुलैंस (Mus exulans) समाप्त हो गई तथा ४८ जातियो मे से २५ जातियाँ भली भाँति स्थापित हो गईं।

कैप्टन कुक के पदार्पण की तारीख से न्यूज़ीलैंड मे १३० जाति के पक्षियो का प्रवेश जान बूझकर कराया गया है। २६ जातियाँ वास्तव मे जगली हो गई है, जिनमे से वन्य हस (mallard), जगली मुर्गी (pheasant), कबूतर, चकवा (skylark), कस्तूरिका (thrush), कस्तूरक (black bird), तुषारचटक (hedge sparrow), रुक (rook), सारिका (starling), भारतीय मैना (Indian mynah), गौरैया, नदी चटक (chaffinch), स्वर्ण चटक (goldfinch), हरित चटक और पीली कलँगीवाली चिड़ियाँ (yellow hammer) हैं। दूसरी तरफ १८६८ ई० से अब तक नौ जाति की चिड़ियाँ या तो विरल हो गई है या विलुप्त हो चुकी है, जैसे देशी कौआ, देशी कस्तूरिका, देशी तीतर (native quail), श्वेत बक (white heron) तथा अन्य पक्षी। ये किसी समय बहुत थे और अब उन स्थानो मे खदेड दिए गए है, जहाँ अधिक आबादी नही है। टामसन लिखते हैं 'ऐसा अवश्य नही सोचना चाहिए कि केवल आगतुक जानवरो के ही कारण ऐसा प्रभाव पडा है, यद्यपि चूहे, बिल्लियाँ, खरगोश, सूअर, मवेशी, तथा चिड़ियाँ अपने निवासक्षेत्र की सीमाओ को पारकर दूसरे क्षेत्र मे बहुत दूर तक घुस गए हैं। निवास तथा प्रजनन स्थानो मे प्रत्यक्ष बाधा और भोजन की पूर्ति मे हस्तक्षेप के कारण, उन मूलदेशीय प्राणियो का विध्वस और ह्रास हुआ है।'

जो बातें चिडियो के लिये लागू होती हैं, वे ही बाते निम्न कोटि के प्राणियो, सरीसृपो से लेकर कीटो तक के लिये लागू होती हैं। किंतु पुन इसका कारण आगतुको की प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा मे न ढूँढकर मानव हस्तक्षेपो मे ढूँढना होगा। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि सन् १८७० के बाद से सरीसृप से लेकर कीटो तक की सख्या मे असाधारण वृद्धि हुई है। इस प्रकार दक्षिणी द्वीप मे वेलवर्ड (bellbird) अधिक संख्या में हो गए हैं, यद्यपि उत्तरी द्वीप में वे विरल हैं।

जलवायु में परिवर्तन — जब देश में जलवायु में तीव्र परिवर्तन होते हैं, जैसे शुष्क जलवायु का शीत जलवायु में, या उष्ण जलवायु शीत जलवायु में परिवर्तित हो जाता है, तब जैविक विभाग में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं

(१) चरम अवस्था में, जैसे यदि कोई देश हिमाच्छादित हो जाय, तो वहाँ से जीव का नाश हो जाता है, जैसा हिमनद काल (Glacial period) में ग्रेट ब्रिटेन के अधिकांश भागों में हुआ।

(२) कम उग्र (severe) अवस्था में, जैसे सापेक्ष प्रतिकूल दशा उत्पन्न होने पर वरण (selection) का प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार शुष्क अवस्था का आगमन निकट होने पर, मरुद्भिदी पौधे (xerophytic plants) जीवित रहते हैं और शीघ्र फूलने और फलनेवाले पौधे, भूमि में प्रकंद (rhizome) और शल्क कंद (bulb) के रूप में जमीन के अंदर चले जाते हैं। जब वर्ष में अनेक महीनों तक भूमि हिमाच्छादित रहेगी, तब भी उपयुक्त पौधे जीवित रहेंगे। गर्मियों में शुष्क होनेवाले देशों में ग्रीष्मनिष्क्रियता (aestivation), और ठंडे देशों में शीतनिष्क्रियता (hybernation), उपयोगी होती है। जलवायु का परिवर्तन वनस्पति और प्राणियों के जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर सकता है।

(३) कुछ प्राणी, जो कुछ दूर तक चल सकते हैं और सीमागामी हैं, जलवायु परिवर्तन के कारण अपना निवास स्थान बदल देते हैं, जैसे जब यूरोप में दक्षिण की ओर हिमावरण का प्रसार हुआ, तब बहुत से उत्तरी स्तनी प्राणी स्पेन में आ गए। अतएव रेंडियर और आर्कटिक लोमड़ी के अवशेष सुदूर दक्षिण तक पाए जाते हैं। जब मृदु जलवायु (milder climate) आरंभ हुई और हिमावरण पिघलने लगा, तब आर्कटिक प्रदेश के पशु, जैसे रेनडियर और श्वेत लोमड़ियाँ, उत्तर की ओर चली गईं।

(४) किसी देश की जलवायु का परिवर्तन, प्राणियों के स्वभाव में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला देता है और जीव के जीवनचक्र को भी निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भाग लेता है। जलवायु परिवर्तन के कारण प्राणी की उपापचयी क्रिया (metabolic) की गति मद या तीव्र हो सकती है, अथवा जीवन की किसी विशेष अवस्था (phases) में परिवर्तन हो सकता है। स्तनी प्राणियों में, कम से कम अंत स्रावी ग्रंथि (endocrine gland) अथवा ग्रंथियों की सापेक्ष क्रियाशीलता, में भिन्नता उत्पन्न हो सकती है।

(५) स्तनी में गर्भकाल एव प्रसव की ऋतु, पक्षियों में देशांतरण की आवर्तिता, शीतनिष्क्रियता, विश्राम, शीततंद्रा (coma), सुस्ती इत्यादि का कारण जलवायु परिवर्तन हो सकता है। आर्द्रता बढ़ने से रसीले पौधों की उत्पत्ति होती है फिर इसके फलस्वरूप रोपण चरनेवाले प्राणियो की वृद्धि होती है, क्योंकि जंगल का विस्तार होता है तो जीवों को आश्रय मिलता है। आर्द्रता की थोड़ी कमी से घास में वृद्धि होती है और उसके कारण घास चरनेवाले जानवरो में वृद्धि होती है। शुष्कता से जंगल की सीमा में सकुचन होता है

और इस प्रकार प्राणी नए आश्रय (haunts) की खोज के लिये प्रेरित होता है ।

देशीकरण की विधि — जब किसी बहुमूल्य वनस्पति या जानवर का बिलकुल नए और भिन्न प्रकार की जलवायुवाले देश मे देशीकरण के लिये आयात करना हो, तब आयातकर्ता को चाहिए कि वह पशु या वनस्पति की किसी ऐसी किस्म को चुने जो उस जलवायु के अनुकूल प्रतीत हो । गुण की विभिन्नता का भी ध्यान रहना चाहिए, क्योकि कुछ मूलवृ त, या पशु वश (stocks), अन्य की अपेक्षा अधिक रूढ होते हैं । होनहार मूलवृ त या पशु का किसी माध्यमिक स्थान मे आयात करना उपयोगी होगा । डार्विन ने प्रेक्षित किया कि इग्लैड मे पाली गई भेडो की अपेक्षा, केप ऑव गुडहोप की मेरीनो नस्ल की भेडें भारत मे भली भाँति वृद्धि करती हैं । उन अवस्थाओ मे जहाँ नए देश मे पशु या वनस्पति की वृद्धि मे सफलता किसी विशेष गुण, जैसे मोटे फर या रोएँदार पत्तियो पर निर्भर करती है, उनका वरण ऐसे परिवर्त (variants) मे किया जाय जिनमे वाछित दिशा मे भिन्नता की प्रवृत्ति भली भाँति जान पडे ।

विलिस (Willis) ने देखा कि वहुत असगत प्रयास करने के कारण मनुष्य देशीकरण मे असफल रहा है । असफलताओ से शिक्षा लेकर मनुष्य क्रमिक परिवर्तन का प्रयास कर रहा है, जैसा उसने लाइबिरिया की काफी (Coffee) को जावा मे उगाने मे किया है । कॉफी के प्रत्येक क्रमिक पीढी के बीज को लेकर, प्रत्येक बार कुछ अधिक गजो की ऊँचाई पर बोकर, जिस प्राकृतिक अवस्था के अनुरूप बीज था उससे भी बहुत अधिक ऊँचाई पर भली भाँति विकसित होने के योग्य बना दिया गया है । लका के वानस्पतिक उपवन मे यूरोप से लाया गया सु दर साइपीरस पपारस (Cyperus papyrus) के बीज को उगाने का प्रयास निष्फल हो गया, किंतु भारत के सहारनपुर से लाए गए बीज के उगने का प्रयास सफल हो गया । इसका निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को बहुत अधिक शीघ्रता नही करनी चाहिए और प्राकृतिक प्रक्रियाओ से सबक लेकर, लबी अवधि मे धीरे धीरे, क्रम से देशीकरण करना चाहिए । [भृ० ना० प्र०]

प्राणियों का जातिवृत्त (Animal Phylogeny) प्राणियो के जातिवृत्त के द्वारा हमे प्राणियो की उत्पत्ति एव उनके विकास का ज्ञान होता है । इसका मुख्य ध्येय प्राणियो के प्रत्येक स्तर के विकास को विचार मे रखते हुए, समस्त प्राणियो के पारस्परिक सबध का सामूहिक रूप से परिचय प्राप्त करना है । विश्व मे प्रथम जीवधारी अत्यत सरल तथा सूक्ष्म रहा होगा । इस सरल जीवधारी से विकास द्वारा, क्रमश विभिन्न प्रकार के जटिल प्राणियो की उत्पत्ति हुई और इस प्रकार ससार के सभी प्राणी एक दूसरे से सबधित हैं । प्राणियो का जातिवृत्त विकासवाद के इन्ही सिद्धातो की सत्यता पर निर्भर रहता है और इसी कारण इनके अध्ययन मे प्रधानत दो प्रकार के उल्लेखनीय प्रमाणो से सहायता मिलती है

जीवाश्मीय प्रमाण (Palaeontological Evidences) — भूमि की लाखो वर्ष पुरानी स्तरीभूत चट्टानो (stratified rocks) से प्राचीन काल के प्राणियो के जो चिह्न अथवा जीवाश्म (fossils) अबतक प्राप्त हुए हैं, वे प्राणियो मे समयानुसार होनेवाले अतरो के प्रतीक हैं । वे उनके जातिवृत्त के अकाट्य तथा सबसे विश्वसनीय प्रमाण हैं । निस्सदेह प्राणियो के जातिवृत्त का पूर्ण ज्ञान जीवाश्मो द्वारा ही हो सकता है । वैज्ञानिको ने घोडे, हाथी, ऊँट तथा अन्य कुछ जीवो की उत्पत्ति, विकास तथा वशावली की, इन्ही प्रमाणो द्वारा, पूर्णतया खोज भी कर ली है । परतु इस प्रकार के प्रमाण मिलने मे अनेको कठिनाइयाँ हैं । प्रथम तो जीवाश्मो का पता लगना एव उनका समूचे रूप मे मिल जाना एक सयोग की बात ही नही, वरन् अत्यत दुर्लभ भी है । दूसरे, प्राणियो के केवल कडे भाग ही भूमि के स्तरो मे जीवाश्मो के रूप मे सुरक्षित हो सकते हैं । यही कारण है कि अस्थिरहित प्राणियो के जीवाश्म प्राय नही पाए जाते । फलस्वरूप कशेरुक प्राणियो का, जिनका उद्गम सभवत अकशेरुक (Invertebrata) से हुआ होगा, प्रारभिक जातिवृत्तो का जीवाश्मो के द्वारा पूर्णरूप से पता लगाना सभव नही । अतएव प्राणियो के विकास के जीवाश्मीय प्रमाण के अपूर्ण होने के कारण बहुधा उनके आकारिकी (morphology) सबधी प्रमाणो का आश्रय लेना आवश्यक होता है ।

आकृतिक प्रमाण (Morphological Evidences) — शारीरिक रचना तथा भ्रूण तत्वो के तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि सबधित प्राणियो के अगो मे अनेक आकृतिक समरूपताएँ होती हैं । इन समरूपताओ की न्यूनता तथा अधिकता के अनुसार प्राणियो की पारस्परिक जातीय निकटता का निर्णय किया जा सकता है । विशेषकर प्राणियो की भ्रूण अवस्था की समानताएँ अधिक महत्वपूर्ण होती हैं । उदाहरणार्थ, स्तनधारियो तथा पक्षियो के भ्रूणो मे मत्स्य की भाँति गलफडो का होना इस बात का प्रतीक है कि इन दोनो श्रेणियो के जीवो की उत्पत्ति तथा विकास मत्स्य पूर्वजो से ही हुआ होगा । परतु ध्यान रहे, कुछ प्राणियो मे अगो की समानता वातावरण की अनुकूलता से भी हो जाती है, जिसको समातर विकास कहते हैं । इस प्रकार की समानता उनकी वशावली तथा जातिवृत्त पर कोई प्रकाश नही डालती । अत आकार की समानताओ के आधार पर प्राणियो के सबध का निर्णय करते समय इस बात का विचार करना परम आवश्यक है ।

उपर्युक्त कठिनाइयो के कारण बहुधा प्राणिविकास तथा जातिवृत्त विषयक जो निष्कर्ष निकलते हैं, वे अस्थायी ही होते हैं । परतु कभी इस प्रकार के दृढ प्रमाण भी मिलते हैं जिनके निष्कर्ष इतने अकाट्य हैं कि सभवत उनमे आगे कोई परिवर्तन सुविधा से नही हो सकता । इन सब बातो को दृष्टि में रखते हुए प्राणियो को दो मुख्य भागो में विभाजित किया जा सकता है, कशेरुकी (Vertebrata) तथा अकशेरुकी (Invertebrata) । सर्वप्रथम कशेरुकी भाग के जातिवृत्त पर आगे विचार किया जायगा और उन्ही सिद्धातो को प्रयोग मे लाते हुए अन्य प्राणियो के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी ।

कशेरुकी — इस भाग का सर्वेक्षण करने तथा उसके जीवाश्म का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कशेरुकी का विकास एक विशेष क्रमानुसार हुआ । सर्वप्रथम बिना जबडेवाले (Agnotha) प्राणी, जैसे लैंप्रे (lamprey) एव मिक्सीन (myxine) उत्पन्न हुए । उसके उपरात मत्स्य श्रेणी एव उभयचर श्रेणी के प्राणियो की उत्पत्ति हुई । तत्पश्चात् सरीसृप (reptiles) श्रेणी और अत मे पक्षी तथा

स्तनधारी श्रेणी का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे जीवाश्म भी पाए गए हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि एक श्रेणी का विकास दूसरी श्रेणी से हुआ। इसलिये यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि विभिन्न श्रेणियाँ एक दूसरे से भली भाँति सबंधित हैं। आर्किआप्टेरिक्स (Archaeopteryx) के जीवाश्म के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा। इसमें, पक्षी होते हुए भी जबड़ों में दाँत, अँगुलियों में नख तथा लंबी कशेरुक युक्त पूँछ विद्यमान है। ये सरीसृप से समानता प्रदर्शित करते हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि कदाचित् पक्षी श्रेणी का विकास सरीसृप से हुआ होगा। इसी प्रकार साइनॉगनैथस (cynognathus) का जीवाश्म स्तनधारियों तथा सरीसृपों में सबध स्थापित करता है। यह भी ज्ञात होता है कि एक श्रेणी के प्राणियों में आपस में बहुत कम अंतर पाया जाता है, परन्तु विभिन्न श्रेणियों के प्राणियों में एक दूसरे से पर्याप्त अंतर होता है। इससे यह प्रत्यक्ष है कि विभिन्न श्रेणियों के बीच नि संदेह अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए होंगे, जिनके कारण उनकी संरचना में धीरे धीरे इतने अधिक अंतर हो गए कि वे एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् प्रतीत होने लगे, जैसे मत्स्य श्रेणी के प्राणी जलीय तथा मीनपक्षधारी होते हैं और गलफड़ों द्वारा श्वसन करते हैं। इनके विपरीत मत्स्य श्रेणी से विकसित उभयचर में मीनपक्ष के स्थान पर पाद होते हैं। इसी प्रकार पक्षी श्रेणी के पक्ष तथा डैने एव स्तनधारियों के स्तन और रोम किसी अन्य श्रेणी में नहीं पाए जाते। इसके अतिरिक्त प्रत्येक शारीरिक श्रेणी के अंतर्गत भी, वातावरण की असमानता के कारण थोड़े बहुत परिवर्तन होने से, उस श्रेणी के प्राणियों में निरंतर भिन्नता होती गई। इस प्रकार प्रत्येक श्रेणी में कई प्रकार के गण बन गए तत्पश्चात् इन गणों में भी रहन सहन की भिन्नता के कारण अनेक छोटे छोटे उपगणों तथा कुलों का निर्माण हुआ। उदाहरणार्थ, स्तनधारियों की उत्पत्ति कदाचित् प्राचीन काल में एक छोटे से कुत्ते के समान प्राणी से हुई। इसके उपरात कुछ स्तनधारी वनों में शाकाहारी, कुछ मासाहारी, कुछ चींटीखोर तथा कुछ कीटभक्षी होकर अपना जीवननिर्वाह करने लगे। साथ ही कुछ स्तनधारी जल में तथा कुछ वायु में भ्रमण की चेष्टा करने लगे। अतएव वातावरण के अनुकूल अनेक शारीरिक संरचनाओं में अंतर होते गए और वे अंगुलेटा (Ungulata), मासाहारीगण (Carnivora) कीटाहारीगण (Insectivora), इडेंटेटा (Edentata), तिमिगण, (Cetacea) तथा चमगादड़गण (Chiroptera) इत्यादि गणों में विभाजित हो गए। फिर प्रत्येक गण में अन्य और भी छोटे छोटे उपगण होते चले गए और विभिन्न प्रकार के स्तनियों का विकास हुआ। अतएव उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर समस्त कशेरुकी प्राणियों के विकास एव उनके जातिवृत्त को एक वृक्ष के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

अकशेरुकी — इनकी संरचना में कशेरुकी की भाँति कोई मूल समानता नहीं मिलती है। इसके अतिरिक्त, इनके जीवाश्मों का भी अभाव है। इस कारण यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है कि अकशेरुकी के विभिन्न संघों (phyla) का विकास एक वृक्ष की शाखा से हुआ है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि ये अनेक स्वतंत्र शाखाओं द्वारा विकसित हुए हैं। कुछ वर्ग तो एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उनके पारस्परिक सबध के विषय में कोई भी अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है। [illegible] विभिन्न वर्गों का प्रश्न है, [illegible] के अनुसार स्तनधारियों के समान ही नवीन [illegible] का निर्माण हुआ और वे विभिन्न गणों में विभाजित हो गए, [illegible] अथवा [illegible] श्रेणियों के [illegible] है। [illegible] विकिरणता (Adaptive radiation) कहते हैं। परन्तु जहाँ तक वर्गों के पारस्परिक संबंध का प्रश्न है, [illegible] न प्राप्त होने के कारण यही अनुमान लगाया जाता है कि कदाचित् अकशेरुकी के विभिन्न [illegible] अवश्य ही संबंधित रहे होंगे और उनका [illegible] के समान विकसित है। अकशेरुकी के जातिवृत्त के अध्ययन में सबसे जटिल समस्या एक संघ से दूसरे वर्ग के पारस्परिक संबंध का पता लगाने की है। चूँकि अकशेरुकी में उपरोक्त [illegible] जीवाश्मविज्ञान (Paleontology) से बिल्कुल सहायता नहीं मिल पाती है, इसलिये उनके प्रौढ़ अथवा भ्रूण अवस्था की शारीरिक रचना के प्रमाणों का आश्रय लेना पड़ता है। परन्तु अनेक भागों में यह देखा गया है कि प्रौढ़ प्राणियों की संरचना उनके भ्रूणविकास में बिल्कुल परिवर्तित हो जाती है, इसलिये उनकी भ्रूण अवस्थाओं पर निर्भर करना पड़ता है। भ्रूणों के प्रमाण द्वारा प्राणिजगत् के विकास का जो अभिलेखन किया गया है, वह इस प्रकार है

अकशेरुक जगत् का सर्वेक्षित अध्ययन करने से सर्वप्रथम यह विदित होता है कि बहुकोशिक प्राणियों का विकास एककोशिकीय जीवधारियों से हुआ है। बहुकोशिक प्राणियों की एक शाखा, जिसको पाराज़ोआ (Parazoa) कहते हैं और जिसमें स्पंज इत्यादि आते हैं, अलग हो गई तथा मुख्य शाखा द्वारा मेटाज़ोआ (Metazoa) प्राणियों का विकास हुआ। ये मेटाज़ोआ प्राणी प्रौढ़ संरचना के अनुसार दो भागों में विभाजित हो गए (१) द्विभित्ति प्राणी (diploblastic), जिनके शरीर दो सतहों, बाह्यत्वचा (ectoderm) तथा अंतस्त्वचा (endoderm), के बने हैं, जैसे सीलेंटरेटा (Coelenterata) प्राणी तथा (२) शेष सब तीन भित्ति (triploblastic) वाले प्राणी, जिनके शरीर में तीन सतहें (बाह्यत्वचा, अंतस्त्वचा तथा मध्यजनस्तर) होती हैं। तीन भित्तिवाले प्राणियों में कुछ देहगुहारहित (acoelomate) तथा अधिकांश देहगुहायुक्त (coelomate) होते हैं। इसके बाद, केवल ऐनेलिडा (Annelida) तथा आर्थ्रोपोडा (Arthropda) को छोड़कर, प्रौढ़ अवस्था द्वारा उनके संबंध स्थापित करने में तनिक भी सहायता नहीं मिलती है। इसी कारण शेष निष्कर्ष भ्रूण अवस्था के अध्ययन के ऊपर निर्भर किए गए हैं। अतएव तीन भित्तिवाले संघों का विकास उनके आकार के अनुसार दो प्रधान शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है — ट्रोकोफोरेलिया (Trochophoralia), जिनमें ट्रोकोफोर (Trochophore) के समान भ्रूण होता है, तथा प्लूटेलिया (Plentalia), जिनमें प्लूटियस (pleuteas) नामक आकार के भ्रूण पाए जाते हैं। संभवत ट्रोकोफोरेलिया वाली शाखा से अनेक संघ, जैसे मोलस्का (Mollusca), आर्थ्रोपोडा, ऐनेलिडा, एंडोप्रोक्टा (Endoprocta) इत्यादि तथा दूसरी शाखा प्लूटेरिया से एकाइनोडर्मेटा एवं संभवत कॉरडाटा (Chordata) का उद्गम तथा विकास हुआ। इस प्रकार निस्संदेह समस्त प्राणियों की

उत्पत्ति और विकास हुआ और सभवत यह है प्राणिजगत् का सक्षिप्त इतिवृत्त, जिसको सक्षिप्त रूप से एक वृक्ष के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। [ह० श० चौ०]

प्राणिविज्ञान (Zoology) विज्ञान की एक शाखा है, जिसमे प्राणियो या जतुओ का अध्ययन होता है। मनुष्य भी एक प्राणी है। प्राणी की परिभाषा कई प्रकार से की गई है। कुछ लोग प्राणी ऐसे जीव को कहते है जो कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा का सृजन तो नही करता, पर जीवनयापन के लिये इन पर निर्भर करता है। इन पदार्थो को प्राणी वाह्य स्रोत से ही प्राप्त करता है। इनके सृजन करनेवाले पादप जाति के पदार्थ होते हैं, जो अकार्बनिक स्रोतो से प्राप्त पदार्थो से इनका सृजन करते हैं। कुछ लोग प्राणी उन जीवो को कहते है जिनमे गमनशीलता होती है। ये दोनो ही परिभाषाएँ सव प्राणियो पर लागू नही होती। पादप जाति के कुछ कवक और जीवाणु ऐसे है, जो अपना भोजन वाह्य स्रोतो से प्राप्त करते है। कुछ ऐसे प्राणी भी है, जो स्टार्च का सृजन स्वय करते है। अत प्राणी और पादप मे विभेद करना कुछ दशाओ मे वडा कठिन हो जाता है। यही कारण है कि प्राणिविज्ञान और पादपविज्ञान का अध्ययन एक समय विज्ञान की एक ही शाखा मे साथ साथ किया जाता था और उसका नाम जैविकी या जीव विज्ञान (Biology) दिया गया है। पर आज ये दोनो शाखाएँ इतनी विकसित हो गई हैं कि इनका सम्यक् अध्ययन एक साथ करना सभव नही है। अत आजकल प्राणिविज्ञान एव पादपविज्ञान का अध्ययन अलग अलग ही किया जाता है।

प्राणिविज्ञान का अध्ययन मनुष्य के लिये वडे महत्व का है। मनुष्य के चारो ओर नाना प्रकार के जतु रहते हैं। वह उन्हे देखता है और उसे उनसे वरावर काम पडता है। कुछ जतु मनुष्य के लिये वडे उपयोगी सिद्ध हुए है। अनेक जतु मनुष्य के आहार होते हैं। जतुओ से हमे दूध प्राप्त होता है। कुछ जतु ऊन प्रदान करते हैं, जिनसे वहुमूल्य ऊनी वस्त्र तैयार होते है। जतुओ से ही रेशम, मधु, लाख आदि वडी उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। जतुओ से ही अधिकाश खेतो की जुताई होती है। वैल, घोडे, खच्चर तथा गदहे इत्यादि परिवहन का काम करते हैं। कुछ जतु मनुष्य के शत्रु भी हैं और ये मनुष्य को कष्ट पहुँचाते, फसल नष्ट करते, पीडा देते और कभी कभी मार भी डालते है। अत प्राणिविज्ञान का अध्ययन हमारे लिये महत्व रखता है।

वौद्धिक विकास के कारण मनुष्य अन्य प्राणियो से भिन्न होता है, पर शारीरिक वनावट और शारीरिक प्रणाली मे अन्य कुछ प्राणियो से वडी समानता रखता है। इन कुछ प्राणियो की इद्रियाँ और कार्य-प्रणाली मनुष्य की इद्रियो और कार्यप्रणाली से वहुत मिलती जुलती है। इससे अनेक नई ओषधियो के प्रभाव का अध्ययन करने मे इन प्राणियो से लाभ उठाया गया है और अनेक नई नई ओषधियो के आविष्कार मे सहायता मिली है।

प्राणियो का अध्ययन वहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। इसका प्रमाण वे प्राचीन गुफाएँ हैं जिनकी पत्थर की दीवारो पर पशुओ की आकृतियाँ आज भी पाई जाती हैं। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने ईसा के ३०० वर्ष पूर्व जतुओ पर एक पुस्तक लिखी थी। गैलेना (Galena) एक दूसरे रोमन वैद्य थे, जिन्होने दूसरी शताब्दी मे पशुओ की अनेक विशेषताओ का वडी स्पष्टता से वर्णन किया है। यूनान और रोम के अन्य कई ग्रथकारो ने प्रकृतिविज्ञान पर पुस्तकें लिखी ह, जिनमे जतुओ का उल्लेख है। वाद मे लगभग हजार वर्ष तक प्राणि-विज्ञान भुला दिया गया था। १६वी सदी मे लोगो का ध्यान फिर इस विज्ञान की ओर आकर्पित हुआ। उस समय चिकित्सा विद्यालयो के अध्यापको का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया और वे इसके अध्ययन मे प्रवृत्त हुए। १७वी तथा १८वी शताब्दी मे इस विज्ञान की विशेष प्रगति हुई। सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार के वाद इसका अध्ययन वहुत व्यापक हो गया। आधुनिक प्राणिविज्ञान की प्राय इसी समय नीव पडी और जतुओ के नामकरण और आकारिकी की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। लिनियस ने 'दि सिस्टम आव नेचर' (१७३५ ई०) नामक पुस्तक मे पहले पहल जतुओ के नामकरण का वर्णन किया है। उस समय तक ज्ञात जतुओ की सख्या वहुत अधिक हो गई थी और उनका वर्गीकरण आवश्यक हो गया था। प्राणिविज्ञान का विस्तार आज वहुत वढ गया है। सम्यक् अध्ययन के लिये इसे कई शाखाओ मे विभाजित करना आवश्यक हो गया है। ऐसे अतर्विभागो मे आकारिकी (Morphology), सूक्ष्मऊतकविज्ञान (Histology), कोशिकाविज्ञान (Cystology), भ्रूणविज्ञान (Embryology), जीवाश्मविज्ञान (Palaeontology), विकृतिविज्ञान (Pa hology), वर्गीकरणविज्ञान (Taxology), आनुवाशिकविज्ञान (Genetics), जीवविकास (Evolution), पारिस्थितिकी (Ecology) तथा मनोविज्ञान (Psychology) अधिक महत्व के हैं।

आकारिकी — जतु भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। उनके वाह्य लक्षण, शरीर का आकार, विस्तार, वर्ण, त्वचा, वाल, पर, आँख, कान, पैर तथा अन्य अग भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। अत शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि जतुओ के वाह्य लक्षणो का ज्ञान साधारण वात है। उनकी आतरिक वनावट से ही कुछ विशेष तथ्य की वातें मालूम हो सकती हैं। अत उनकी वनावट के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया। जतुओ का चाकुओ और अन्य औजारो से चीरफाड कर, काट छाँटकर, अध्ययन शुरू हुआ और सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार और प्रयोग से अनेक वातें मालूम हुईं, जिनसे उनके विभाजन मे वडी सहायता मिलती है। जतु कोशिकाओ से वने हैं। सव जतुओ की कोशिकाएँ एक सी नही होती। ऊतको से ही जतुओ के सब अग उदर, वृक्क आदि वनते हैं। ऊतक भी एक से नही होते। कुछ जतु एक कोशिका से वने हैं, इन्हे एककोशिकीय या प्रोटोजोआ (Protozoa) कहते है। इनकी सख्या अपेक्षया थोडी है। अधिक जतु अनेक कोशिकाओ से वने हैं। इन्हे वहु-कोशिकीय या मेटाज़ोआ (Metazoa) कहते हैं। इनकी सख्या वहुत वडी है। इन जतुओ की आकारिकी के अध्ययन से पता लगता है कि सव जतुओ के प्रतिरूप सीमित किस्म के ही होते हैं, यद्यपि वाह्यदृष्टि से देखने मे वे वहुत भिन्न मालूम पडते हैं। अधिकाश जतु रीढवाले या कशेरुकी (verterbate) हैं और अपेक्षया कुछ थोडे से ही अकशेरुको या अपृष्ठवशी (invertebrate) है।

सूक्ष्मऊतकविज्ञान — इसके अध्ययन के लिये विभिन्न जतुओ के ऊतको को महीन काटकर, उसी रूप मे अथवा रजको से अभिरजित कर, सूक्ष्मदर्शी से निरीक्षण करते हैं। रजक के उपयोग से कोशिकाएँ

अधिक स्पष्ट हो जाती है पर उससे कोशिकाओ की कोई क्षति नही होती। कोशिकाओ को बहुत महीन काटने के लिये (१।१००० मिमी० की मोटाई तक) यंत्र बने है, जिन्हे माइक्रोटोम कहते हैं। ऐसे अध्ययन से ऊतकों को सामान्यत निम्नलिखित चार प्रकार मे विभक्त किया गया है ४ उपकलाऊतक (Epithelial tissue), २ तंत्रिका ऊतक (Nervous tissue), ३ योजीऊतक (Connective tissue) तथा ४ पेशीऊतक (Muscular tissue)।

कोशिकाविज्ञान — इसके अतर्गत जतुओ की कोशिकाओ का अध्ययन होता है। इनकी कोशिकाओ मे जीवद्रव्य (protoplasm) रहता है। कुछ कोशिकाएँ एककोशिकीय होती है और कुछ बहुकोशिकीय। जीवद्रव्य सरल पदार्थ नहीं हैं। इनमे बड़ी सूक्ष्म बनावट के अनेक पदार्थ मिले रहते हैं। कोशिकाओ का आनुवशिकी मे बड़ा घनिष्ट सबध है। कोशिकाएँ भिन्न भिन्न आकार और विस्तार की होती है। सामान्य कोशिका के दो भाग होते हैं एक केंद्रक होता है और दूसरा उसको घेरे हुए कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) होता है।

भ्रूणविज्ञान — जब शुक्राणुकोशिका से सयोजन कर अडकोशिका उद्दीप्त होती है तब उसका भ्रूणविकास प्रारभ हो जाता है। इससे एक विशिष्ट लक्षण प्रकट होता है। इस प्रक्रिया का जब प्राणिविज्ञानियो ने अनेक जतुओ मे अध्ययन किया, तब उन्हे पता लगा कि सभी जतुओ मे इस प्रक्रिया मे बहुत सादृश्य पाया जाता है। अडों का पहले विदलन होता है। इससे नई कोशिकाएँ गेंदो में बँट जाती हैं। इसके बाद एक द्विस्तरी पदार्थ गैस्ट्रुला (gastrula) बनता है। इसके बाद एक बाह्य उपकला और एक अतर उपकला (epithelium) बनती है। किसी किसी दशा मे एक ठोस पिंड, अतर्जनस्तर (entoderm), भी बनता है। अतर्जनस्तर की उत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। अधिकाश दशा मे उत्पत्ति अतर्वलन (invagilation) द्वारा, अथवा बाह्य उपकला के भीतर मुड़ने के कारण होती है। हैकेल (Hackel) तथा कुछ अन्य प्राणिविज्ञानियो का मत है कि प्राथमिक रीति अतर्वलन की रीति है। यदि अन्य कोई रीति है तो वह गौण रीति है और प्राथमिक रीति से ही निकलती है। गैस्ट्रुला अवस्था के स्थापित होने के बाद, बाह्य त्वचा (ectoderm और अतर्जनस्तर के बीच ऊतक बनते हैं, जिसे मध्य जनस्तर कहते हैं। जतुओं मे मध्य जनस्तर कई प्रकार के पाए गए है। पर जो बड़े महत्व का समझा जाता है वह है आत्रगुहा (enterocoele), जिसमे अतर्जनस्तर से कोटरिका (pocket) के ढकेलने से मध्यजनस्तर बनता है। बाह्य चर्म, अतर्जनस्तर और मध्य जनस्तर को जनस्तर (germlayer) कहते हैं। इसी स्तर से प्रौढ जतुओ के ऊतक और अन्य अग बनते हैं। एक पर एक तह के बनने और स्थानातरण द्वारा यह कार्य होता है (देखें भ्रूण विज्ञान)।

जीवाश्मविज्ञान — अनेक जतु ऐसे हैं जो एक समय इस पृथ्वी पर विद्यमान थे। पर वे अब कही कही पाए जाते है। इनके जीवाश्म पृथ्वीस्तरो या चट्टानो मे पाए जाते हैं। इनसे सबधित बातो के अध्ययन को जीवाश्मविज्ञान कहते हैं। अध्ययन से पता लगता है कि ये जतु किस युग मे, कितने लाखो या करोड़ो वर्ष पूर्व विद्यमान थे और वर्तमान युग के कौन कौन जतु उनसे सबधित कहे जा सकते हैं। उच्च प्राणियो के विकास मे कौन कौन अवस्थाएँ हुईं, इनका पता भी जीवाश्म के अध्ययन से बहुत कुछ लगता है। यह विज्ञान भौमिकी मे बहुत घनिष्ट सबध रखता है (देखें फॉसिलविज्ञान)।

आनुवशिक विज्ञान — विज्ञान की इस शाखा का सबध प्राणियों की अनुवशिकता, विभिन्नता, परिवर्धन और विकास से है। प्राणियों में समानता और विभिन्नता का अध्ययन इसी के अतर्गत होता है। पिता और सतान के गुणो मे कैसा सबध है, प्रौढों के विशिष्ट गुण अडो मे कैसे विद्यमान रहते है, अडो के परिवर्धन के साथ साथ प्रौढो में उनके गुणों का कैसे विकास होता है, इनका अध्ययन, निरीक्षण, प्रायोगिक प्रजनन, कोशिकीय और प्रायोगिक आकारिकी से होता है। जतुओ से प्राप्त परिणामो का उपयोग मानव-सुजनन-विज्ञान (eugenics) मे भी हुआ है।

विकास — इसके अतर्गत विभिन्न जतुओ का विकास होकर आधुनिक रूप कैसे प्राप्त हुआ है, इसका अध्ययन होता है।

पारिस्थितिकी — प्राणी कैसे वातावरण मे रहते है, कैसा वातावरण उनके अनुकूल होता है और कैसा वातावरण प्रतिकूल, इसका अध्ययन पारिस्थितिकी में होता है। वातावरण के कारक भौतिक हो सकते हैं अथवा रासायनिक। ताप, प्रकाश, आर्द्रता तथा समुद्री जतुओ के सबध मे समुद्रजल में लवण की मात्रा, जल की गहराई और जल का दबाव इत्यादि विभिन्न कारक है, जिनका अध्ययन इसके अतर्गत आता है। पृथ्वीतल के विभिन्न भागो पर जतु कैसे फैले हुए हैं, इसका भी अध्ययन इसके अतर्गत होता है।

जतुरोग विज्ञान — इसके अतर्गत जतुओ के रोगो का अध्ययन होता है। मानव हित के लिये यह जानना आवश्यक होता है कि जिन जतुओ को हम खाते अथवा जिनसे हम दूध, मक्खन, अडा आदि प्राप्त करते हैं, वे स्वस्थ हैं या नही। पशुओ की अस्वस्थता का प्रभाव मानवशरीर पर भी पड सकता है। उनसे बचने के लिये जतुओ के रोगो का अध्ययन बड़ा महत्व रखता है। रोगो से अनेक जतु मर भी जाते हैं, जिससे आर्थिक दृष्टि से बहुत बड़ी क्षति होती है।

मनोविज्ञान — जतुओ का मस्तिष्क कैसे कार्य करता है, उनमें कितनी समझ है, सिखाने से वे कहाँ तक सीख सकते हैं, इनका मानव तथा अन्य जतुओ के प्रति कैसा व्यवहार होता है, इत्यादि का अध्ययन मनोविज्ञान के अतर्गत होता है। उपर्युक्त बातों के अध्ययन से मनुष्य को बहुत लाभ हो सकता है। कुत्ते के प्रशिक्षण से चोरो, डाकुओ या हत्यारो का पकड़ना आज बहुत कुछ सुलभ हो गया है। प्रशिक्षण से ही हाथी जगलो में लकड़ियो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है और सवारी का काम देता है।

वर्गीकरण — प्राणियों की सख्या बहुत अधिक हो गई है। अब तक इनके दो लाख वर्गो और १० लाख जातियों का पता लगा है। प्राणियो के अध्ययन के लिये प्राणियो का वर्गीकरण बहुत आवश्यक हो गया है। वर्गीकरण कठिन कार्य है। विभिन्न प्राणिविज्ञानी वर्गीकरण मे एकमत नही हैं। विभिन्न ग्रथकारो ने विभिन्न प्रकार से जतुओ का वर्गीकरण किया है। कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनको किसी एक वर्ग में रखना भी कठिन होता है, क्योकि इनके कुछ गुण एक वर्ग के जतुओ से मिलते हैं तो कुछ गुण दूसरे वर्ग के जतुओ से। साधारणतया सभी वैज्ञानिक सहमत हैं कि जतुओ का वर्गीकरण

निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिए जिसमे छोटे समूह से प्रारभ करके क्रमश वडे वडे समूह दिए है १ जाति (species), २ वश (genus), ३ कुल (family), ४ गण (order), ५ वर्ग (class) तथा ६ सघ या फाइलम (phyllum)। इन विभाजनो के भी अतर्विभाग है जिन्हें उप (sub), अव या अध (infra) और अधि (super) जोडकर जताते हैं।

जाति — जतुओ का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार के जतुओ को अलग अलग करके शुरू करते हैं। हम देखते हैं कि गाय समस्त ससार में प्राय एक सी होती है और वह घोडे या भैस से भिन्न होती है। अत हम गाय को एक जाति में रखते हैं, घोडे और भैस को अलग अलग दूसरी जातियो में। गाय की जाति घोडे और भैस की जातियो से भिन्न है। कुछ जातियो की उपजातियाँ भी है। कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनका एक दूसरे से विभेद करना कठिन होता है।

वंश — कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनकी आकारिकी में वहुत सादृश्य है, पर वाह्य आकार में विभिन्नता देखी जाती है। इस प्रकार की कई जातियाँ हो सकती हैं जिनके वाह्य रूप में अतर होने पर भी आकारिकी में सादृश्य हो। ऐसी विभिन्न जातियो को एक वश के अतर्गत रखने के लिये उनमें कितनी समानता और कितनी विभिन्नता रखनी चाहिए, इसका निर्णय वैज्ञानिको पर निर्भर करता है और वहुधा कुछ जातियाँ एक वश से दूसरे वश में वदलती हुई पाई जाती हैं। पहले ऐसा होना सामान्य वात थी, पर अव इसमें वहुत कुछ स्थिरता आ गई है।

कुल — कुछ ऐसे वश है जिनके प्राणियो में समानता देखी जाती है। ऐसे विभिन्न वशवाले जतुओ को एक स्थान पर एक कुल के अतर्गत रखते हैं।

गण — एक ही किस्म की वनावट तथा अन्य सामान्य गुणवाले विभिन्न कुलो के जतुओ को एक साथ रखने की आवश्यकता पड सकती है। इन्हे जिस वर्ग में रखते हैं उसे 'गण' कहते है। कई कुल मिलकर गण वनते हैं पर कुछ प्राणिविद् कुल और गण को पर्यायवाची शव्द मानते हैं। प्राणिविद् जतुओ में ऐसा विभेद करने के लिये उनमे विशेष अतर नही पाते, यद्यपि पादपविज्ञान में ऐसा अतर स्पष्ट रूप से देखा जाता है।

वर्ग—जतुओ के उस समूह को कहते हैं, जिसका पद गण और सघ के वीच का होता है।

सघ — जतुजगत् का प्रारभिक विभाजन सघ है। प्रत्येक सघ के प्राणियो की सरचना विशिष्ट होती है जिसके कारण प्रत्येक सघ के प्राणी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। जतुजगत् के प्राणियो का विभाजन दो उपजगतो में हुआ है। जो जतु केवल एक कोशिका के वने हैं उन्हे प्रोटोजोआ (Protozoa) कहते हैं। यह उपजगत् अपेक्षया वहुत छोटा है। जिस जगत् में सवसे अधिक सख्या में जतु आते हैं उसे मेटाजोआ (Metazco) कहते हैं। ये वहुकोशिकाओ के वने होते हैं।

जंतुओं का नामकरण — विभिन्न देशो और विभिन्न भापाओ में जतुओ के नाम भिन्न भिन्न होते है। इससे इनके अध्ययन में कठिनता होती है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नामो में एकरूपता लाना अत्यावश्यक है। नामो में एकरूपता लाने का सर्वप्रथम प्रयास लिनीयस (Linnaeus) ने किया। उन्होने सव जतुओ को लैटिन नाम दिया। इस नामकरण के अनुसार जतुओ के नाम दो शव्दो से वने होते हैं। इस प्रणाली को 'द्विपद प्रणाली' (Binomial System) कहते हैं। इसके अनुसार जतुओ का पहला नाम वशिक नाम होता है और दूसरा उसका विशिष्ट नाम। वशिक नाम अग्रेजी के कैपिटल अक्षर से और दूसरा नाम छोटे अक्षर से लिख जाता है। इससे विभिन्न देशो में विभिन्न नामो से जो अव्यवस्था होती थी, वह दूर हो गई और इस प्रकार नामो में एकरूपता आ गई। ये वैज्ञानिक नाम आज वडे महत्व के हैं और इनसे विभिन्न देशो के वैज्ञानिको को जतुओ के अध्ययन में वडी सहायता मिली है।

प्रोटोजोआ संघ — प्राय सव ही प्रोटोजोआ वहुत छोटे जतु होते हैं और साधारणतया सूक्ष्मदर्शी के सहारे ही देखे जाते है। पर कुछ प्रोटोजोआ विकसित होकर निवह (colony) वनते है, तव इन्हे केवल आँखो से देखा जा सकता है। प्रोटोजोआ के ऐसे निवह गदे पानी में देखे जा सकते है। इनमें कुछ कशाभिका (flagellum) द्वारा, कुछ पक्ष्माभिका (cilia) द्वारा तथा कुछ अन्य साधनो से तैरते हुए पाए जाते है। अधिकाश प्रोटोजोआ परजीवी होते हैं तथा वडे वडे जीवो पर आश्रित होते है। ये अनेक रोगो, जैसे मलेरिया, निद्रारोग इत्यादि के कारण होते है। इस सघ के अतर्गत निम्नलिखित वर्ग आते है

वर्ग–१ फ्लैजेलेटा (Flagellata), वर्ग–२ राइज़ॉपोडा (Rhizopoda), वर्ग–३ सिलिएटा (Ciliata), वर्ग–४ टैलोस्पोरिडा (Telosporidia), वर्ग–५ नाइडास्पोरिडिया (Cnidasporidia) तथा वर्ग–६ ऐक्निडोस्पोरिडिया (Acnidosporidia)।

पॉरिफेरा (Porifera) सघ — इस सघ मे स्पजी जतु आते हैं। ये एक स्थान पर वढते हैं और अनेक कोशिकाओ से वने होते हैं। इनका शरीर वस्तुत कोशो का वना होता है, जिनके पार्श्व मे अनेक छोटे छोटे छिद्र (pores) होते हैं। इन छिद्रो से पानी जाता है, इन्ही से इन्हें भोजन मिलता है। इनमे भोजन के लिये कोई मुख या इद्रियाँ नही होती। अनेक छोटी छोटी, कडी कटिकाओ (spicules) के कारण इनका शरीर कडा होता है। इन्ही से इनका पजर वनता है, जैसा हम स्पज मे देखते है। इनकी कोशिकाएँ ऊतको से वनी होती हैं।

सिलेंटरेटा (Coelenterata) **संघ** — इसके अतर्गत प्रवाल (मूँगा), जेली फिश, आनमोनि (anemones) आदि सरल जतु आते हैं। इनका शरीर सामान्य कोशिकाओं से वना होता है। वाह्य भाग और आतर भाग ऐसी कोशिकाओ के सघन स्तरो के वने होते है जो एक दूसरे से भिन्न होते हैं। यही वनावट अन्य उच्चतर जतुओ की वनावट का आधार है। आतरिक भाग पाचक क्षेत्र है। सिलेंटरेटा मे एक ही सूराख होता है, जो मुख और गुदा दोनो का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त अन्य तीसरा स्तर नही होता, जैसा अधिक परिवर्धित जतुओ मे पाया जाता है। सिलेंटरेटा अक्रिय होते हैं और यद्यपि ये सक्रिय रूप से तैरते नही हैं, वहते रहते हैं। इनके विभिन्न अग इनके मुख के चारो ओर वृत्ताकार व्यवस्थित रहते है। एक समय इसी के अतर्गत टिनॉफोरा (Ctenophora) भी रखे जाते थे, पर अव अनेक प्राणिविदो ने इन्हे एक अलग सघ मे रखा है।

प्लैटीहेल्मिथीज़ संघ (Platyhelminthes) — इसके अतर्गत चपटे कृमि (flat worms) सदृश अनेक कृमि आते हैं। इनके शरीर की वनावट अधिक विकसित पाई जाती है। ऐसे चपटे कृमि कुछ तो तालावो और सरिताओ मे स्वतत्र रूप से रहते पाए जाते

हैं और कुछ, जैसे पर्णाभ कृमि (flukes), रुधिर पर्णाभ कृमि तथा फीताकृमि (tapeworm) परजीवी होते हैं। इनके शरीर की बनावट समभित होती है, अर्थात् एक आधा दूसरे आधे भाग का दर्पण-बिंब होता है। इनके शरीर में बाह्य और अंतर स्तरों के बीच एक तीसरा स्तर मध्यजनस्तर (mesoderm) होता है।

नेमाटोडा (Nematoda) **संघ** — इस संघ में छोटे छोटे गोल-कृमि (round worm) आते हैं। ये कई प्रकार के परजीवी होते हैं। इनके अंतर्गत अंकुश कृमि (hook worm) और ट्राइकिना (trichina) आते हैं जो मनुष्यों और अन्य उच्च जंतुओं की आँत में बहुधा पाए जाते हैं। इनके शरीर में कुछ ऐसे प्रगतिशील लक्षण पाए जाते हैं, जो चपट कृमि में नहीं होते। इनकी आहारनली (gut) में मुख और गुदा अलग अलग होते हैं। इसी के अंतर्गत गोर्डियेसी (Gordiacea) आते हैं।

नेमरटिनिया (Nemertinea) **संघ** — इसके अंतर्गत सरल कृमि सदृश समुद्री जंतु आते हैं। ये अपनी लंबी जीभ सदृश शुंडिका (proboscis) फैलाकर अपना भोजन पकड़ते हैं।

नेमाटोमॉर्फा (Nematomorpha) **संघ** — इस संघ में प्राणी रोमकृमि हैं। ये पतले होते हैं और पानी में रहते हैं।

रोटिफरा (Rotifera) **संघ** — इस संघ के प्राणी सूक्ष्म जंतु हैं, जो स्थिर ताजे पानी में रहते हैं। इनके सिर पर निकला हुआ एक वृत्त होता है, जिससे ये चक्रधारी कृमि भी कहे जाते हैं। इन्हीं वृत्तों के सहारे ये तैरते हैं और आहार को मुख में डाल लेते हैं। ये सूक्ष्म पदार्थों और सूक्ष्म जंतुओं का भक्षण करते हैं। नर से बच्चे उत्पन्न करने में सहायता मिलती है, पर नर की सहायता के बिना भी मादा बच्चे उत्पन्न कर सकती है। शुष्कावस्था में ये अनेक वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। पवन तथा पक्षियों द्वारा दूर दूर तक जा सकते हैं। एक समय इन जंतुओं को ट्रॉकिलमेंथीज (Trochelmenthes) संघ के अंतर्गत रखा जाता था। अब इनका अपना अलग संघ है।

पॉलिज़ोआ (Polyzoa) **संघ** — इसके अंतर्गत हरितजंतु आते हैं। ये छोटे समुद्री जीव हैं, जो समुद्रतल पर पादप सदृश निवह बनाकर रहते हैं। इनकी कुछ जातियाँ ताजे पानी में भी पाई जाती हैं।

ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) **संघ** — इस संघ के प्राणी ताजे पानी में रहनेवाले जंतु हैं, पर समुद्रतल पर भी पाए जाते हैं। ये कवचों से आच्छादित होते हैं। इनके कवच मोलस्का के कवच सदृश होते हैं। इनके पाँच प्रमुख गण होते हैं और उनकी रचनाओं में पर्याप्त अंतर देखा जाता है।

फोरोनिडी संघ (Phoronidea) — इस संघ के प्राणी समुद्री जंतु हैं, जो बहुत नहीं पाए जाते। ये नलाकार होते हैं।

किटॉग्नाथा (Chaetognatha) **या बाणकृमि संघ** — इस संघ के प्राणी पतले, पारदर्शक तथा बाण के आकार के समुद्री जीव हैं।

ऐनेलिडा (Annelida) — इसके प्राणी खंडयुक्त कृमि हैं। इनमें कशेरुक नहीं होना, अन्यथा ये बहुत अधिक परिवर्धित जंतु हैं। सामान्य केंचुआ इसी वर्ग का जंतु है। समुद्र में इससे बहुत अधिक परिवर्धित जंतु पाए जाते हैं। जोक भी इसी संघ का सदस्य है। इसकी विशेषता यह है कि इसका [illegible] होता है। [illegible] शरीर की रचना [illegible] नहीं होता। [illegible] [illegible] के समान [illegible] हैं, जो [illegible] से बहुत भिन्न होते हैं।

आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) **संघ** — इसमें [illegible] पादवाले जंतु आते हैं। [illegible] [illegible] समानता [illegible] शरीर [illegible] होता है। शरीर के [illegible], इसकी विशेषता है। इस संघ में क्रस्टेशिया (Crustacea) के [illegible] पानी में रहते हैं। इसके अंतर्गत झींगा मछली (lobster), [illegible] मछली (crayfish), [illegible] आदि आते हैं। [illegible] (Arachnida) [illegible], [illegible] आदि इसके अंतर्गत आते हैं। [illegible] (Myriapoda) [illegible], [illegible] आदि आते हैं। [illegible] (Insects) [illegible] ६,००,००० जातियाँ मालूम हैं। [illegible] जाते हैं।

मोलस्का (Mollusca) **संघ** — [illegible] विभिन्न रूपों में समुद्री प्राणी होते हैं, पर [illegible] पानी और [illegible] पर भी पाए जाते हैं। इनका शरीर कोमल और प्रायः [illegible] होता है। ये प्रावार (mantle) से घिरे रहते हैं। [illegible] स्राव द्वारा कड़े कवच का निर्माण करते हैं। [illegible] कई प्रकार के होते हैं। कवच के तीन स्तर होते हैं। [illegible] कैल्सियम कार्बोनेट का बना होता है और मध्यस्तर तथा [illegible] मुक्ता सीप का बना होता है।

ये स्क्विड (squid) और ऑक्टोपोडा से मिलते जुलते हैं, पर उनसे कई लक्षणों में भिन्न होते हैं। इनमें खंडीभवन (segmentation) नहीं होता।

एकाइनोडर्मेटा (Echinodermata) **संघ** — इस संघ के अंतर्गत कंटकीय बहिःकंकाल वाले जंतु आते हैं। तारामीन (starfish), समुद्री अर्चिन (sea-urchin), सैंड डॉलर (sanddollars) इसी के अंतर्गत आते हैं। ये मंद चालवाले होते हैं और साधारणतया समुद्र में रहते हैं। इनके डिंभ द्विपार्श्व सममित होते हैं, पर वयस्क त्रिज्यातः सममित (radially symmetrical) होते हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनके शरीर में जल से भरी हुई नलिका की श्रेणियाँ रहती हैं, जिनसे अनेक पैर निकले रहते हैं। इन्हीं से इनमें गमनशीलता आती है। इनके परिवर्धन से पता लगता है कि ये कॉर्डेटा से न्यूनाधिक संबंधित हैं।

कॉर्डेटा (Chordata) **संघ** — इस संघ के अंतर्गत रीढ़वाले जंतु आते हैं। आद्य किस्म के कुछ जंतु भी इसके अंतर्गत आते हैं। इन सबकी रचना तथा आकृति प्रगतिशील किस्म की होती है। इनका

विकास ऐनेलिडा और आर्थ्रोपोडा से भिन्न प्रकार से हुआ है। ये द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetical) होते है और अशत खडो मे विभाजित होते हैं। इन सबमे गिलछिद्र (gill slits), या कोष्ठ (pouch) होते हैं, जो जलीय जतुओ मे साँस लेने का कार्य करते हैं। पृष्ठ भाग पर पृष्ठरज्जु विकसित होते हैं। ऐनेलिड और आर्थ्रोपोडा मे पृष्ठरज्जु अदर रहते है। इस सघ के जतुओ मे एक लबी नम्य शलाका (rod) होती है, जिसे पृष्ठरज्जु (notochord) कहते है। इसी से इनका शरीर तना हुआ रहता है। इस सघ के निम्नलिखित चार उपसघ अधिक महत्व के हैं

१ हेमिकॉर्डा (Hemichorda) — इस उपसघ के प्राणी समुद्री जतु हैं। इनके दो वर्ग है। देखने मे ये ऐनेलिड जैसे लगते हैं, पर इनकी रचना ऐनेलिड से भिन्न होती है। इनमे कॉर्डेटा के सब लक्षण होते हैं, पर ये बहुत विकसित नही हैं। इनके शरीर के अग्र भाग मे शुड रहता है, जिसके आधार पर कॉलर (collar) होते हैं।

२ यूरोकॉर्डा (Urochorda) — इस उपसघ मे कचुक (tunicates) और समुद्री स्क्वर्ट (squirts) आते हैं। इनमे अनेक गिलछिद्र, तत्रिकारज्जु और पृष्ठरज्जु होते हैं।

३ सेफैलोकॉर्डा (Cephalochorda) — इस उपसघ के प्राणी छोटे पारभासक समुद्री जतु है। देखने मे मछली जैसे लगते हैं, पर इनकी रचना अधिक आद्य होती है। इनमे गिलछिद्र, तंत्रिकारज्जु तथा पृष्ठरज्जु, सब होते हैं। इनके उदाहरण ऐंफिआक्सस (Amphioxus) हैं।

४ वर्टिब्रेटा (Vertebrata) — इस उपसघ के अतर्गत रीढवाले जतु आते हैं। इनमे पृष्ठरज्जु के स्थान मे रीढ होती है। इनका पजर अधिक विकसित होता है और इनके लक्षण (feature) अधिक विकसित होते हैं। इस उपसघ के प्राणियो को सात वर्गो मे विभक्त किया गया है

(१) ऐग्नाथा (Agnatha)— इस वर्ग के अतर्गत विना जबडे-वाले कशेरुकी आते हैं। लैंप्री (lamprey), कुहाकिनी मीन (hogfish, cyclostoma) इस वर्ग के प्राणी हैं।

(२) कांड्रिक्थीईज (Chondrichthyes) — इस वर्ग मे उपास्थियुक्त मीन, हागुर (shark), तनुका (skate) आदि आते हैं। इनमे जबडे होते हैं, पर पजर मे हड्डी नही होती।

(३) आस्टिइक्थीईज (Osteichthyes) — इस वर्ग मे हड्डी-वाले विकसित मीन आते है। सामान्य भोज्य मछलियाँ इसी वर्ग की होती हैं।

(४) ऐंफिबिया (Amphibia) — इस वर्ग के अतर्गत मेढक, भेक (toad), सैलामैंडर (salamander) आदि आते हैं, जो जल और स्थल दोनो पर समान रूप से रहते हैं। इन कशेरुकियो के पैर विकसित होते है, जिससे ये स्थल पर भी चल सकते हैं।

(५) रेप्टिलिया (Reptilia) या सरीसृप वर्ग— इस वर्ग के अतर्गत कछुआ, छिपकली, साँप और मगर आते है, जो स्थल पर अडे देते हैं। इनके अडे कवचित होते हैं।

(६) ऐवीज (Aves) या पक्षिवर्ग — इस वर्ग के अतर्गत पक्षी आते है। ये लोग उड़नेवाले सरीसृपो के वशज हैं।

(७) मैमैलिया (Mammalia) या स्तनी वर्ग — इस वर्ग के अतर्गत मानव और मानव से मिलते जुलते अन्य प्राणी आते हैं। ये उष्ण रुधिरवाले, बडे मस्तिष्कवाले जतु हैं, जिनका शरीर बालो या समूर (fur) से ढँका रहता है। ये बच्चे जनते हैं और उनका लालन पालन करते है। इसी वर्ग के अतर्गत एक गण प्राइमेटीज़ (primates), अर्थात् नर-वानर-गण, है, जिसमे नर, बदर, कपि, लीमर आदि रखे गए हैं। मानव को एक अलग कुल होमिनिडी (Hominidae) मे भी रखते हैं। [फू० स० व०]

प्राणिवैज्ञानिक भूगोल देखें जंतुओं का विस्तार।

प्राणिसंग्रहण (Zoological Collecting) दो प्रकार से होता है। एक सग्रह मे जीवित प्राणियो को पकडकर जीवित ही किसी प्राणि-उपवन (zoological garden) मे रखते है। जीवित प्राणियो के पकडने मे अधिक श्रम लगता है। उन्हें पकडकर उपवन मे रखने से उनके भरण पोषण और देखभाल मे पर्याप्त धन खर्च होता है, इस कारण उपवन का निर्माण राज्यो, या बडी बडी नगरपालिकाओ, द्वारा ही सामान्यत होता है। यद्यपि पूर्वकाल मे कुछ ऐसे धनी व्यक्ति भी थे जो शौक से इन प्राणियो को रखकर उनपर धन खर्च करते थे। दूसरे प्रकार के सग्रह मे प्राणियो को मारकर उनका सग्रह करते हैं। ऐसा सग्रह दो विधियो से होता है। एक विधि मे किसी मृत प्राणी को ऐल्कोहल, फॉर्मेलिन आदि द्रव मे डुबाकर रखते हैं, ताकि उनका आकार ज्यो का त्यो सुरक्षित बना रहे। इन द्रवो मे मृत प्राणी सडते गलते नही हैं और पर्याप्त समय तक अपनी प्रकृत अवस्था मे बने रहते हैं। पर ऐसा छोटे छोटे प्राणियो के साथ ही हो सकता है, क्योंकि इन्हे काच के पात्रो मे रखकर द्रव से भर दिया जाता है। बडे बडे प्राणियो के लिये बडे बडे काचपात्रो की आवश्यकता पडेगी और उसमे अधिक द्रव भी लगेगा। अत उनका सग्रह इस रीति से नही होता। पक्षिशावको और अडो को इस प्रकार सुरक्षित रखते हैं। द्रव मे रखे मृत प्राणियो का सग्रह प्राय प्रत्येक प्राणिप्रयोगशाला मे रहता है। इनसे प्राणिविज्ञान के छात्रो के पढने पढाने मे बडी सहायता मिलती है। दूसरी विधि मे मृत प्राणियो की खालो को निकालकर जीवित सदृश व्यवस्थित कर उन्हे सुरक्षित रखते हैं। मृत प्राणियो को इस प्रकार सुरक्षित और जीवित सदृश व्यवस्थित कर प्रदर्शित करने को चर्मपूरण (Taxidermy) कहते हैं। मछलियो, उरगो, चिडियो तथा स्तनधारियो, जैसे गिलहरी, हिरण, शेर, चीता, रीछ, बदर तथा अन्य जगली प्राणियो को चर्मपूरण द्वारा ही उनकी प्राकृतिक अवस्था मे प्रदर्शित करते है (देखें **चर्मपूरण**, खड ३, पृ० १७६)।

भिन्न भिन्न वर्ग के प्राणियो के सग्रह के भिन्न भिन्न तरीके हैं। १८वी शती मे पक्षियो, स्तनधारियो और बडे बडे सरीसृपो के सग्रह की ओर लोगो का विशेष ध्यान गया था। इसके फलस्वरूप ऐसे जतुओ के सग्रह आज अनेक अजायबघरो मे देखे जा सकते हैं। यह काम १६वी शती के अतिम वर्षों मे शुरू हुआ। ऐसे नमूने तो कुछ सर्वसाधारण के लिये थे और कुछ उन पशुओ पर शोध करनेवालो के लिये थे। ऐसी खालो को सुरक्षित रखने के लिये कुछ पूतिरोधी पदार्थों का उपयोग होता है। साधारणतया सोहागा इस काम के लिये उपयुक्त होता है।

पशु पक्षियों के संग्रह में पहला कदम उनको पकड़ना है। कुछ तो आसानी से पकड़े जा सकते हैं, पर कुछ सब स्थानों में सरलता से नहीं देखे जाते और उनके लिये दूर दूर तक यात्रा कर पकड़ने की व्यवस्था करनी पड़ती है। जो मछलियाँ छिछले पानी में रहती हैं उनको पकड़ना तो सरल होता है, पर जो समुद्र की भिन्न भिन्न गहराइयों में रहती हैं उनको पकड़ने में विशेष प्रयत्न और विशेष उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे अनेक उपकरण बने हैं। इन्हें ड्रेज या ट्राल कहते हैं। ड्रेज लोहे के मजबूत फ्रेम का बना होता है। उसमें मजबूत जाली लगी रहती है। जाली या तो किसी धातु के तार की बनी होती है, अथवा किसी मजबूत डोरी की। जाली में किसी मजबूत डोरी द्वारा यह समुद्र में लटकाई जाती है। जब आवश्यक गहराई, या समुद्र के तल, पर वह पहुँच जाती है, तब उसका मुँह खोल दिया जाता है और जब उसमें कुछ मछलियाँ, या अन्य जंतु, आ जाते हैं तब उसे फिर बंद कर ऊपर उठा लिया जाता है। ड्रेज के निचले भाग में दाँत लगे रहते हैं, जिससे वह तल को कुछ खुरच भी सकता है। ड्रेज के फ्रेम आयताकार लगभग २ से ५ फुट तक लंबे होते हैं। इनका विस्तार नाव के विस्तार पर निर्भर करता है। ट्राल ड्रेज की किस्म का ही होता है, पर इसके पेंदे में दाँत नहीं होता और यह तल को खुरचता नहीं है। ड्रेज से यह अधिक सुविधाजनक होता है। ट्राल प्रधानतया तीन प्रकार के होते हैं एक बीम (beam) किस्म का, दूसरा ऐगैसिज़ (Agassiz) किस्म का और तीसरा आट्टर (Otter) किस्म का। वैज्ञानिक नमूनों के संग्रह के लिये बीम १० से १५ फुट लंबा होता है, पर खाने के लिये मछलियों के पकड़ने में इसका विस्तार बहुत बड़ा हो सकता है। इसके द्वारा मछलियों के पकड़ने में पर्याप्त समय लगता है। ३,००० फैदम की गहराई की मछलियों के पकड़ने में १२ घंटे तक का समय लग सकता है। छिछले पानी की मछलियों के पकड़ने के लिये पीटर्सेन ग्रैब (Petersen grab) अधिक सुविधाजनक है और काम में आता है।

समुद्री जंतु दो प्रकार के होते हैं। कुछ तो धीरे धीरे बहनेवाले होते हैं। उन्हें प्राणिप्लवक (Zooplankton) कहते हैं और कुछ बड़े तेज तैरनेवाले होते हैं। उन्हें तरणक (Nekton) कहते हैं। प्राणिप्लवकों का संग्रह अपेक्षया सरल है और वे जल्द जाल में फँस जाते हैं और पकड़ लिए जाते हैं। पर तरणक उतने जल्दी जाल में नहीं फँसते। उन्हें जाल, महाजाल, अंकुश या हारपून द्वारा पकड़ा जाता है।

कुछ ट्रालों में ऐसे उपकरण भी लगे रहते हैं जिनसे पता लगता है कि जालों में कितना पानी बहा है। ऐसे उपकरणों को 'साइक्लोमीटर' (Cyclometer) कहते हैं। कुछ ट्रालों में ऐसी युक्तियाँ बनी रहती हैं कि एक ही बार की चेष्टा से कई गहराई की मछलियाँ पकड़ी जा सकें। ऐसे ट्राल भी बने हैं जिनसे पता लगता है कि किसी निश्चित क्षेत्र में कितने जल जंतु विद्यमान हैं।

जीव जंतुओं को पकड़कर जब तक उन्हें अपने निश्चित जलजीवशाला, प्रयोगशाला, या अजायब घर तक नहीं पहुँचाया जाता तब तक उन्हें सावधानी से रखने की आवश्यकता पड़ती है। यदि इसमें सावधानी बरती न जाय तो अधिकांश जंतु मरकर नष्ट हो जा सकते हैं। या तो उन्हें जल में रखा जाता है, अथवा जल भरी बालटी में रखकर घास पात से ढँक दिया जाता है। यदि ऐल्कोहल में सुरक्षित रखना है, तो ७० प्रति शत शक्ति वाला ऐल्कोहल अच्छा होता है, यदि फार्मेलिन में रखना है तो ९५ भाग समुद्रजल में ५ भाग फार्मेलिन मिलाकर उसमें रखते हैं। [फू० स० व०]

प्रातिशाख्य शब्द का अर्थ है 'प्रति' अर्थात् तत्तत् 'शाखा' से संबंध रखनेवाला शास्त्र अथवा अध्ययन। यहाँ 'शाखा' से अभिप्राय वेदों की शाखाओं से है। वैदिक शाखाओं से संबद्ध विषय अनेक हो सकते थे। उदाहरणार्थ, प्रत्येक वैदिक शाखा से संबद्ध कर्मकांड, आचार आदि की अपनी अपनी परंपरा थी। इन सब विषयों से प्रातिशाख्यों का संबंध न होकर केवल वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण, वैदिक संहिताओं और उनके पदपाठों आदि के संधिप्रयुक्त वर्णपरिवर्तन अथवा स्वरपरिवर्तन के पारस्परिक संबंध और कभी कभी छंदोविचार जैसे विषयों से था।

यहाँ वैदिक शाखाओं के प्रारंभ, स्वरूप और प्रवृत्ति को संक्षेप में समझ लेना आवश्यक है।

भारतीय वैदिक संस्कृति के इतिहास में एक समय ऐसा आया जबकि आर्य जाति के मनीषियों ने परंपराप्राप्त वैदिक मंत्रों को वैदिक संहिताओं के रूप में संगृहीत किया। उस समय अध्ययनाध्यापन का आधार केवल मौखिक था। गुरु शिष्य की श्रवण परंपरा द्वारा ही वैदिक संहिताओं की रक्षा हो सकती थी। देशभेद और कालभेद से वैदिक संहिताओं की क्रमशः विभिन्न शाखाएँ हो गईं।

वैदिक मंत्रों और उनकी संहिताओं को प्रारंभ से ही आर्य जाति की पवित्रतम निधि समझा जाता रहा है। उनकी सुरक्षा और अध्ययन की ओर आर्य मनीषियों का सदा से ध्यान रहा है। इसी दृष्टि ने भारत में वेद के षडंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छंद, ज्योतिष) को जन्म दिया था।

वैदिक संहिताओं की सुरक्षा और अर्थज्ञान की दृष्टि से ही वैदिक विद्वानों ने तत्तत् संहिताओं के पदपाठ का निर्माण किया। कुछ काल के अनंतर क्रमशः क्रमपाठ आदि पाठों का भी प्रारंभ हुआ।

वेद के षडंगों के विकास के साथ साथ प्रत्येक शाखा का यह प्रयत्न रहा कि वह अपनी अपनी परंपरा में वैदिक संहिताओं के शुद्ध उच्चारण की सुरक्षा करे और पदपाठ एवं यथासंभव क्रमपाठ की सहायता से वेद के प्रत्येक पद के स्वरूप का और संहिता में होने वाले उन पदों के वर्णपरिवर्तनों और स्वरपरिवर्तनों का यथार्थतः अध्ययन करे। मूलतः प्रातिशाख्यों का विषय यही था। कभी कभी छंदोविषयक अध्ययन भी प्रातिशाख्य की परिधि में आ जाता था।

वैदिक शाखाओं के अध्येतृवर्ग 'चरण' कहलाते थे। इन चरणों की विद्वत्सभाओं या विद्यासभाओं को 'परिषद्' (या 'पर्षद्') कहा जाता था। प्रातिशाख्यों की रचना बहुत करके सूत्र शैली में की जाती थी इसीलिये प्रातिशाख्यों के लिये प्रायेण 'पार्षदसूत्र' का भी व्यवहार प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

यास्काचार्य के निरुक्त में कहा गया है

'पदप्रकृतिः संहिता। पदप्रकृतीनि सर्व
चरणानां पार्षदानि।' (नि० १।१७)

अर्थात्, पदों के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं

के प्रातिशाख्यो की प्रवृत्ति पदो को ही सहिता का आधार मानकर हुई है।

इससे यह ध्वनि निकलती है कि प्राचीन काल मे सब वैदिक शाखाओ के अपने अपने प्रातिशाख्य रहे होगे। सभवत वैदिक शाखाओ समान, उनके प्रातिशाख्य भी लुप्त हो गए। वर्तमान उपलब्ध विशिष्ट प्रातिशाख्य नीचे दिए जाते है।

उपलब्ध प्रातिशाख्य

(१) शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य—स्पष्टत इसका सबध ऋग्वेद की सहिता से है। पर परपरा के अनुसार इसको ऋग्वेदीय शाकल शाखा की अवातर शैशिरीय शाखा से सबद्ध बतलाया जाता है। प्रातिशाख्यो मे यह सबसे बडा प्रातिशाख्य है और कई दृष्टियो से अपना विशेष महत्व रखता है। इसमे छह छह पटलो के तीन अध्याय हैं। जहाँ और प्रातिशाख्य सूत्र शैली मे हैं, वहाँ यह पद्यो मे निर्मित है। पर व्याख्याकारो ने पद्यो को टुकडो मे विभक्त कर सूत्ररूप मे ही उनकी व्याख्या की है।

इस प्रातिशाख्य के प्रथम १—१५ अध्यायो मे शिक्षा और व्याकरण से सबधित विषयो (वर्णविवेचन, वर्णोच्चारण के दोष, सहितागत वर्णसधियाँ, क्रमपाठ आदि) का प्रतिपादन है और अत के तीन (१६—१८) अध्यायो मे छदो की चर्चा है। छदो के विषय का प्रतिपादन, यह ध्यान मे रखने की बात है, किसी अन्य प्रातिशाख्य मे नही है। क्रमपाठ का विस्तृत प्रतिपादन (अध्याय १० और ११ मे) भी इस प्रातिशाख्य का एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है। इस प्रातिशाख्य पर प्राचीन उवटकृत भाष्य प्रसिद्ध है। इसका प्रोफेसर एम० ए० रेंइए (M. A, Regnier) द्वारा किया गया फ्रेंच भाषा मे (१८५७-१८५९) तथा प्रो० मैक्सम्यूलर द्वारा किया गया जर्मन भाषा मे (१८५६–१८६९) अनुवाद उपलब्ध हैं।

(२) कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रातिशाख्य—इसका सबध शुक्ल यजुर्वेद से है। यह सूत्रशैली मे निर्मित है। इसमे आठ अध्याय हैं। प्रातिशाख्यीय विषय के साथ इसमे पदो के स्वर का विधान (अध्याय २ तथा ६) और पदपाठ मे अवग्रह के नियम (अध्याय ५) विशेष रूप से दिए गए हैं। इस प्रातिशाख्य का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसमे पाणिनि की घु, घ जैसी सज्ञाओ के समान 'सिम्' (=समानाक्ष), 'जित्' (क, ख, च, छ आदि) आदि अनेक कृत्रिम सज्ञाएँ दी हुई हैं। इसके 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' (१।१३४) आदि अनेक सूत्र पाणिनि के सूत्रो से अभिन्न हैं। अन्य अनेक प्राचीन आचार्यों के साथ साथ इनमे शौनक आचार्य का भी उल्लेख है। इसपर भी अन्य टीकाओ के साथ साथ उवट की प्राचीन व्याख्या प्रसिद्ध है। इसका प्रोफेसर ए० वेबर (A Waber) का जर्मन भाषा मे अनुवाद (१८५८) उपलब्ध है।

(३) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य—इसका सबध कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है। यह भी सूत्रशैली मे निर्मित है। इसमे २४ अध्याय है। सामान्य प्रातिशाख्यीय विषय के साथ साथ इसमे (अध्याय तीन और चार मे) पदपाठ की विशेष चर्चा की गई है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमे २० प्राचीन आचार्यों का उल्लेख है। इसकी कई प्राचीन व्याख्याएँ, त्रिभाष्यरत्न प्रसिद्ध हैं। इसका प्रोफेसर ह्विटनी (W. D Whitney) कृत अंग्रेजी अनुवाद (१८७१) उपलब्ध हैं।

(४) अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका—इसका आलोचनात्मक सस्करण, अंग्रेजी अनुवाद के सहित, प्रो० ह्विटनी (W D, Whitney) ने १८६२ मे प्रकाशित किया था। इसका सबध अथर्ववेद की शौनक शाखा से है। यह भी सूत्रशैली मे और चार अध्यायो मे है।

इनके अतिरिक्त ऋक्तंत्र नाम से एक साम प्रातिशाख्य तथा तीन प्रपाठको मे एक दूसरा अथर्व प्रातिशाख्य भी प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रातिशाख्यो का समय

प्रातिशाख्यो की रचना पाणिनि आचार्य से पूर्वकाल की है। उनकी सारी दृष्टि पाणिनि व्याकरण से पूर्व की दीखती है। हो सकता है, उनके उपलब्ध ग्रथो पर कही कही पाणिनि व्याकरण का प्रभाव हो, पर यह बहुत ही कम मात्रा मे है। यह स्मरण रखने की बात है कि महाभाष्य मे पाणिनीय व्याकरण को सर्व-वेद-पारिषद शास्त्र कहा है।

प्रातिशाख्यो का महत्व

शिक्षा, व्याकरण (और छद) के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से और तत्तद् वैदिक सहिताओ के परपराप्राप्त पाठ की सुरक्षा के लिये भी प्रातिशाख्यो का अत्यत महत्व है।

प्रातिशाख्यों की परंपरा में ह्रास

यद्यपि प्रातिशाख्यो के आलोचनात्मक अध्ययन और प्रकाशन में इधर विद्वानो ने, विशेषत पाश्चात्य विद्वानो ने, विशेष रुचि दिखलाई है, शताब्दियो से इन ग्रथो के अध्ययनाध्यापन की परपरा मे ह्रास और शैथिल्य बराबर बढता हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है कि प्रातिशाख्यो मे और उनकी व्याख्याओ मे भी अनेक पाठ अशुद्ध या अस्पष्ट हैं। यही कारण है कि ऋग्वेद सहिता के सायण भाष्य जैसे महान् ग्रथ मे कदाचित् एक बार भी ऋग्वेदप्रातिशाख्य का उल्लेख नही है, और कई स्थानो पर अनेक पदो की सधि बलात् पाणिनिसूत्र से सिद्ध करने का यत्न किया गया है।

आवश्यकता है कि प्रातिशाख्यो के प्रकाश मे वैदिक सहिताओ का अध्ययन किया जाय। [म० दे० शा०]

प्राथमिक उपचार (First Aid) घायलो और बीमारो की पहली सहायता, अर्थात् प्राथमिक उपचार, की विद्या प्रयोगात्मक चिकित्सा के मूल सिद्धातो पर निर्भर है। इसका ज्ञान शिक्षित पुरुषो को इस योग्य बनाता है कि वे आकस्मिक दुर्घटना या बीमारी के अवसर पर, चिकित्सक के आने तक या रोगी को सुरक्षित स्थान पर ले जाने तक, उसके जीवन को बचाने, रोगनिवृत्ति मे सहायक होने, या घाव की दशा और अधिक निकृष्ट होने से रोकने मे उपयुक्त सहायता कर सकें।

प्राथमिक उपचार आकस्मिक दुर्घटना के अवसर पर उन वस्तुओ से सहायता करने तक ही सीमित है जो उस समय प्राप्त हो सकें।

प्राथमिक उपचार का यह ध्येय नही है कि प्राथमिक उपचारक चिकित्सक का स्थान ग्रहण करे। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि चोट पर दुवारा पट्टी बाँधना तथा उसके बाद का दूसरा इलाज प्राथमिक उपचारक की सीमा के बाहर है। प्राथमिक उपचारक का उत्तरदायित्व किसी डाक्टर द्वारा चिकित्सा सबधी सहायता प्राप्त होने के साथ ही समाप्त हो जाता है, परतु उसका कुछ देर तक वहाँ रुकना आवश्यक है, क्योकि डाक्टर को सहायक के रूप में उसकी आवश्यकता पड सकती है।

प्राथमिक उपचारक के गुण — उपयुक्त प्राथमिक उपचार करनेवाले व्यक्ति को १ विवेकी (observant), जिससे वह दुर्घटना के चिह्न पहचान सके, २ व्यवहारकुशल (tactful), जिससे घटना सबधी जानकारी जल्द से जल्द प्राप्त करते हुए वह रोगी का विश्वास प्राप्त करे, ३ युक्तिपूर्ण (resourceful), जिससे वह निकटतम साधनो का उपयोग कर प्रकृति का सहायक बने, ४ निपुण (dexterous), जिससे वह ऐसे उपायो को काम मे लाए कि रोगी को उठाने इत्यादि मे कष्ट न हो, ५ स्पष्टवक्ता (explicit), जिससे वह लोगो की सहायता में ठीक अगवाई कर सके, ६ विवेचक (discriminator), जिससे गभीर एव घातक चोटो को पहचान कर उनका उपचार पहले करे, ७ अध्यवसायी (persevering), जिससे तत्काल सफलता न मिलने पर भी निराश न हो तथा ८ सहानुभूतियुक्त (sympathetic), जिससे रोगी को ढाढस दे सके, होना चाहिए।

प्राथमिक उपचार में आवश्यक बातें — १ प्राथमिक उपचारक को आवश्यकतानुसार रोगनिदान करना चाहिए तथा २. घायल को कितनी, कैसी और कहाँ तक सहायता दी जाए, इसपर विचार कराना चाहिए।

रोग या घाव सबधी आवश्यक बातें — ये निम्नलिखित हैं १ रोगी की स्थिति, इसमे रोगी की दशा और स्थिति देखनी चाहिए।

२ चिह्न, लक्षण या वृत्तात, अर्थात् घायल के शरीरगत चिह्न, जैसे सूजन, कुरूपता, रक्तसचय इत्यादि प्राथमिक उपचारक को अपनी ज्ञानेंद्रियों से पहचानना तथा लक्षण, जैसे पीडा, जडता, घुमरी, प्यास इत्यादि, पर ध्यान देना चाहिए। यदि घायल व्यक्ति होश मे हो तो रोग का और वृत्तात उससे, या आसपास के लोगो से, पूछना चाहिए। रोगके वृत्तात के साथ लक्षणो पर विचार करने पर निदान में बडी सहायता मिलती है।

३ कारण यदि कारण का बोध हो जाय तो उसके फल का बहुत कुछ बोध हो सकता है, परंतु स्मरण रहे कि एक कारण से दो स्थानो पर चोट, अर्थात् दो फल हो सकते हैं, अथवा एक कारण से या तो स्पष्ट फल हो, या कोई दूसरा फल, जिसका सबध उस कारण से न हो, हो सकता है। कभी कभी कारण बाद तक अपना काम करता रहता है, जैसे गले में फदा इत्यादि।

४ घटनास्थल से सबधित बातें — (क) खतरे का मूल कारण, आग, बिजली का तार, विषैली गैस, केले का छिलका या बिगडा घोडा इत्यादि हो सकते हैं, जिसका ज्ञान प्राथमिक उपचारक को प्राप्त करना चाहिए।

(ख) निदान में सहायक बातें, जैसे रक्त के धब्बे, टूटी शीशी, बोतलें तथा ऐसी वस्तुओं को, जिनसे घायल की चोट या रोग से संबंध हो सुरक्षित रखना चाहिए।

(ग) घटनास्थल पर उपलब्ध वस्तुओं का यथोचित उपयोग करना श्रेयस्कर है।

(घ) कोहरे, पवन, छाने इत्यादि से बीमार की धूप या बरसात से रक्षा करनी चाहिए।

(ङ) बीमार को ले जाने के निमित्त प्राथमिक उपचारक को देखना चाहिए कि घटनास्थान पर क्या क्या वस्तुएँ मिल सकती हैं। ग्राम का स्थान कितनी दूर है, मार्ग की दशा क्या है। रोगी को ले जाने के लिये प्राप्त योग्य सहायता का श्रेष्ठ उपयोग तथा रोगी की पूरी देखभाल करनी चाहिए।

प्राथमिक उपचार के मूल तत्व—१. रोगी में श्वास, नाडी इत्यादि जीवनचिह्न न मिलने पर उसे तब तक मृत न समझें जब तक डाक्टर आकर न कह दे।

२– रोगी को तत्काल चोट के कारण से दूर करना चाहिए।

३– जिस स्थान से अत्यधिक रक्तस्राव होता हो उसका पहले उपचार करें।

४–श्वासमार्ग की सभी बाधाएँ दूर करके शुद्ध वायुसचार की व्यवस्था करें।

५– हर घटना के बाद रोगी की स्तब्धता दूर करने के लिये उसको गरमी पहुँचाएँ। इसके लिये कबल, कोट, तथा गरम पानी की बोतल का प्रयोग करें।

६– घायल को जिस स्थिति मे आराम मिले उसी में रखें।

७– यदि हड्डी टूटी हो तो उस स्थान को अधिक न हिलाएँ तथा उसी तरह उसे ठीक करने की कोशिश करें।

८–यदि किसी ने विष खाया हो तो उसके प्रतिविष द्वारा विष का नाश करने की व्यवस्था करें।

९–जहाँ तक हो सके, घायल के शरीर पर कसे कपडे केवल ढीले कर दें, उतारने की कोशिश न करें।

१०–जब रोगी कुछ खाने योग्य हो तब उसे चाय, काफी, दूध इत्यादि उत्तेजक पदार्थ पिलाएँ। होश मे लाने के लिये स्मेलिंग साल्ट (smelling salt) सुँघाएँ।

११–प्राथमिक उपचारक को डाक्टर के काम मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए, बल्कि उसके सहायक के रूप मे कार्य करना चाहिए।

स्तब्धता (Shock) का प्राथमिक उपचार — इसके अतर्गत निम्नलिखित उपचार करना चाहिए · १– यदि रक्तस्राव होता हो तो वद करने का उपाय करें, २– गर्दन, छाती और कमर के कपडे ढीले करके खूब हवा दें, ३–रोगी को पीठ के बल लिटाकर सिर नीचा एक तरफ करें, ४– रोगी को अच्छी तरह कोट या कबल से ढकें तथा पैर मे गरम पानी की बोतल से सेंक करें, ५– सिर में चोट न हो तो स्मेलिंग साल्ट सुंघाएँ और होश आने पर गरम तेज चाय अधिक चीनी डालकर पिलाएँ।

अस्थिभंग का प्राथमिक सामान्य उपचार—१– अस्थिभग

(fracture) वाले स्थान को पटरियो तथा अन्य उपायो से अचल बनाए विना रोगी को स्थानातरित न करें।

२–चोट के स्थान से यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो प्रथमत. उसका उपचार करें।

३–बडी चौकसी के साथ विना बल लगाए, अग को यथासाध्य अपने स्वभाविक स्थान पर बैठा दें।

४–चपतियो (splints), पट्टियो (bandages) और लटकानेवाली पट्टियो, अर्थात् झोलो, के प्रयोग से भग्न अस्थिवाले भाग को यथासभव स्वाभाविक स्थान पर बनाए रखने की चेष्टा करें।

५–जब सशय हो कि हड्डी टूटी है या नही, तब भी उपचार उसी भाँति करें जैसा हड्डी टूटने पर होना चाहिए।

मोच (sprains) का प्राथमिक उपचार—१ मोच के स्थान को यथासभव स्थिर अवस्था मे रखकर सहारा दें, २ जोड को अपनी प्राकृतिक दशा मे लाकर उसपर खीचकर पट्टी बाँधें और उसे पानी से तर रखें, तथा ३ इससे भी आराम न मिलने पर पट्टी फिर से खोलकर बाँधें।

रक्तस्राव का प्राथमिक उपचार—१ घायल को हमेशा ऐसे स्थान पर स्थिर रखें जिससे रक्तस्राव का वेग कम रहे, २ अगो के टूटने की अवस्था को छोडकर अन्य सभी अवस्थाओ मे जिस अग से रक्तस्राव हो रहा हो उसे ऊँचा रखें, ३ कपडे हटाकर घाव पर हवा लगने दें तथा रक्तस्राव के भाग को ऊँगली से दबा रखें, ४ बाहरी वस्तु, जैसे शीशा, कपडे के टुकडे, बाल आदि, को घाव मे से निकाल दें; ५ घाव के आसपास के स्थान पर जीवाणुनाशक तथा बीच मे रक्तस्रावविरोधी दवा लगाकर रुई, गाज (gauze) या लिंट (lint) रखकर बाँध देना चाहिए।

अचेतनावस्था का प्राथमिक उपचार — बेहोशी पैदा करनेवाले कारणो से घायल को दूर कर देना तथा अचेतनावस्था के उपचार के साधारण नियमो को यथासभव काम मे लाना चाहिए।

डूबने, फाँसी, गलाघुटने तथा बिजली लगने का प्राथमिक उपचार — डूबे हुए व्यक्ति को कृत्रिम रीति से सर्वप्रथम श्वास कराएँ तथा गीले कपडे उतारकर उसका शरीर सूखे वस्त्रो मे लपेटें। फाँसी लगाए हुए व्यक्ति के नीचे के अगो को पकडकर तुरत शरीर उठा दें, ताकि रस्सी का कसाव कम हो जाय। तब रस्सी काटकर गला छुडा दें। फिर कृत्रिम श्वास लिवाएँ। गला घुटने की अवस्था मे पीठ पर स्कैपुला (scapula) के बीच मे जोरो से मुक्का मारें और फिर गले मे उँगली डालकर उसे वमन कराने की चेष्टा करें। इसी प्रकार विषैली गैसो से दम घुटने पर दरवाजे, खिडकियाँ, रोशनदान आदि खोलकर गैस बाहर निकाल दें और रोगी को श्वास द्वारा आक्सीजन देने का प्रयास करें। बिजली मारने पर तुरत बिजली का सबध तोडकर रोगी को कृत्रिम श्वास दिलाएँ तथा उत्तेजक पदार्थो का सेवन कराएँ। [प्रि० कु० चौ०]

प्राथमिक स्वास्थ्यकेंद्र अभी कुछ काल पूर्व तक हमारे स्वायत्तशासन के अधीन ग्रामीण चिकित्सा सेवाएँ तथा कुछ अन्य स्वास्थ्य सेवाएँ भिन्न भिन्न चिकित्सा एव जनस्वास्थ्य विभागो के अतर्गत एक दूसरे से सपर्करहित चल रही थी। इन्हे स्थानीय निकाय अपने करो की अल्प आय से किसी प्रकार चला रहे थे। जनस्वास्थ्य का उत्तरदायित्व लेने पर सरकार के लिये निकट भविष्य मे ग्रामीण क्षेत्रो की जनता का स्वास्थ्यस्तर ऊँचा उठाना सभव हुआ है।

शासन द्वारा इस दायित्व को अपनाने के पूर्व चिकित्सा सेवाएँ दूर दूर स्थित कुछ इने गिने चिकित्सालयों के रूप मे यत्र तत्र बिखरी थी, उनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो की आशिक रोगग्रस्त जनता, लाभान्वित हो रही थी। जनस्वास्थ्य सेवाएँ जिला स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा अपने अत्यंत अपर्याप्त कार्यकर्ताओ की सहायता से सक्रामक महामारियो के निराकरण हेतु दौड धूप तक ही सीमित थीं। निरोधक सेवाओ तथा स्वास्थ्यवर्धक क्रियात्मक सेवाओ का अस्तित्व नही के बराबर था। आधुनिक धारणा यह है कि स्वास्थ्यसेवाओ मे रोग के निदान एव चिकित्सा के साथ ही रोगी के पुनर्वास एव रोग के निरोध पर भी ध्यान देना वाछनीय है। दूसरे शब्दो मे, स्वास्थ्यसेवा के अतर्गत व्यक्ति, परिवार तथा समुदाय की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक दक्षता की वृद्धि का महत्वपूर्ण कार्य समाविष्ट है।

ग्रामीण क्षेत्रो मे उपर्युक्त बहुमुखी सेवाओ की व्यवस्था करनेवाली सस्था को प्राथमिक स्वास्थ्य यूनिट या केंद्र कहते हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य यूनिट या केंद्र की कल्पना सर्वप्रथम सन् १९४६ मे भोर (Bhore) कमेटी ने की थी। उक्त कमेटी ने ४०,००० जनसख्या के क्षेत्र मे दीर्घकालिक चिकित्सासेवा की योजना बनाई थी, जिसमे रोगमुक्ति और रोगनिरोध दोनो सेवाएँ समिलित थी, परंतु यह योजना विश्व-स्वास्थ्य-सगठन द्वारा अपना सविधान और ध्येय घोषित करने तक खटाई मे पडी रही।

सप्रति प्राथमिक स्वास्थ्य इकाई का गठन इस प्रकार है कि विकासखड-स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्यकेंद्र के अतर्गत तीन मातृ-शिशुकल्याण उपकेंद्र होते है। यह इकाई अनुमानत ६० हजार से एक लाख तक जनता की सेवा करती है, यद्यपि स्वास्थ्यकेंद्रो के कार्यकर्ताओ की वर्तमान निर्धारित सख्या के लिये इतनी बडी जनसख्या की सेवा दु साध्य है। योजना आयोग के स्वास्थ्य सदस्यो के अनुसार उपलब्ध प्रशिक्षित कार्यकर्ताओ एव साधनो की दृष्टि से इसका प्रारंभ ठीक हुआ है। वर्तमान उपकेंद्रो को, जो सप्रति २० से ३० सहस्र जनसख्या की सेवा करते हैं, अततोगत्वा स्वतत्र इकाई मे परिणत करने की योजना है परतु यह प्रशिक्षित कार्यकर्ताओ के उपलब्ध होने पर निर्भर करती है।

जिला स्वास्थ्य अधिकारी तथा जिला चिकित्सा अधिकारी (सिविल सर्जन) द्वारा नित्य कार्यव्यवस्था का पर्यवेक्षण किया जाता है। प्राथमिक स्वास्थ्य इकाइयो के कर्मचारी वर्ग का विभाग भिन्न भिन्न प्रदेशो मे भिन्न है, परतु कम से कम एक डाक्टर, एक स्वास्थ्य निरीक्षिका (Health Visitor), एक सामाजिक कार्यकर्ता (Social Worker), एक कपाउडर, चार चपरासी और एक प्रसाविका (मिड वाइफ) हेड क्वार्टर के प्राथमिक स्वास्थ्यकेंद्र मे तथा तीन तीन प्रसाविकाएँ विभिन्न उपकेंद्रो मे अनिवार्य हैं।

प्रत्येक प्राथमिक स्वास्थ्य यूनिट प्रधानतया चिकित्सा सहायता पर्यावरण स्वच्छता, विद्यालय स्वास्थ्य, मातृ तथा शिशु स्वास्थ्य, सक्रामक रोगो का नियत्रण, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य शिक्षा, जन्म मृत्यु के आकड़ो का सकलन आदि कार्य करती हैं। [न० ना०]

प्रादेशिक सेना (Territorial Army) एक या एक से अधिक श्रेणी के सैनिको का वह संगठन है जिसके सैनिक प्रादेशिक सुरक्षा के लिये सगठित किए जाते है। ये सैनिक अपने घरो में रहते हुए समय समय पर सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इसका मूल स्वरूप लार्ड हाल्डेन (Lord Haldane) द्वारा १९०७ ई० में इग्लैंड मे सगठित ब्रिटिश सेना का सहायक विभाग है, जो पुराने 'स्वयंसेवको' के स्थान पर संगठित किया गया था। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व यह विदेशसेवा के लिये बाध्य नही था, किंतु इसके सभी सैन्यदलो ने स्वेच्छा से भिन्न भिन्न मोर्चो पर युद्ध किया। युद्ध के बाद इस सैन्यदल को प्रादेशिक सेना के रूप मे फिर से सगठित किया गया। इसे ससद के नियत्रण मे विदेशसेवा के लिये बाध्य कर दिया गया। सेना के सदस्य प्रति वर्ष पाक्षिक शिविर तथा निर्धारित न्यूनतम कवायद और प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। इग्लैंड मे प्रादेशिक सेना नियमित सेना के निदेशको के अधीन नियमित सेना की द्वितीय पक्ति की नकल के रूप मे सगठित की जाती है। युद्धकाल मे स्थल और समुद्रतट की रक्षा का भार प्रादेशिक सेना पर होता है। इग्लैंड मे प्रादेशिक सेना के अनेक यूनिटो को हवामार यूनिटो मे परिणत कर दिया गया है।

भारतीय सविधान सभा द्वारा सितबर, १९४८ ई० मे पारित प्रादेशिक सेना अधिनियम, १९४८, के अनुसार भारत मे अक्टूबर, १९४९ ई० मे प्रादेशिक सेना स्थापित हुई। इसका उद्देश्य सकटकाल में आतरिक सुरक्षा का दायित्व लेना और आवश्यकता पड़ने पर नियमित सेना को यूनिट (दल) प्रदान करना तथा इस प्रकार नवयुवकों को देशसेवा का अवसर प्रदान करना है। सामान्य श्रमिक से लेकर सुयोग्य प्राविधिज्ञ तक भारत के सभी नागरिक, जो शरीर से समर्थ हो, इसमे भर्ती हो सकते हैं। आयुसीमाएँ १८ और ३५ वर्ष हैं, जो सेवानिवृत्त सैनिको और प्राविधिज्ञ सिविलियनो के लिये शिथिल की जा सकती हैं। सरकारी एव गैरसरकारी सस्थाओ के कर्मचारी भी प्रादेशिक सेना मे भर्ती हो सकते हैं। प्रादेशिक सेना आठ प्रदेशो मे बँटी है। व्यक्ति अपने प्रदेश की यूनिट मे ही भर्ती हो सकता है। प्रादेशिक सेना के कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) नियमित सेना को स्थैतिक (static) कर्तव्यो से मुक्त करना और आवश्यकता पड़ने पर सिविल प्रशासन की सहायता करना।

(२) समुद्रतट की रक्षा और हवामार यूनिटो की व्यवस्था करना।

(३) आवश्यकता होने पर नियमित सेना के लिये यूनिटो की व्यवस्था करना।

प्रादेशिक सेना के कार्मिकों को प्रशिक्षण की अवधि मे और आह्वान करने पर, नियमित सेना के तदनुरूपी पद का वेतन और भत्ता दिया जाता है। असैनिक नियोक्ता को अनिवार्य रूप से प्रादेशिक सेना से, या उसके प्रशिक्षण मे, निवृत्त सदस्य को सिविलियन पद पर पुन नियुक्त करना आवश्यक होता है। प्रादेशिक सेना के कार्मिकों को कठिन परिश्रम और सराहनीय कार्यों मे प्रोत्साहित करने के लिये भविष्य मे राष्ट्रीय रक्षा सेना के सैनिक विभाग की यथार्थ रिक्तियो के २२ प्रति शत पद उनके लिये आरक्षित किए जाएँगे। राष्ट्रीय रक्षा

सेना मे सफलतापूर्वक प्रशिक्षण क्रम पूरा करने के बाद उन्हे सेना मे नियमित कार्यभार दिया जा सकता है।

प्रादेशिक सेना मे भर्ती पाए हुए व्यक्ति या अफसर के लिये भारत की सीमाओ के बाहर सैनिक सेवा करना, यदि केंद्रीय सरकार का व्यापक या विशिष्ट आदेश न हो, तो आवश्यक नही है।

प्रादेशिक सेना के अनेक विभाग हैं, जैसे कवचित कोर (armoured ccrps), तोपखाना कोर, जिसमे हवामार और तटरक्षा यूनिटें समिलित हैं, इजीनियर कोर, जिसमे बदरगाह और रेलवे यूनिटें समिलित हैं, सकेत कोर, जिसमे डाक तार कोर शामिल है, पैदल सेना, सेना सेवा कोर, सेना चिकित्सा कोर तथा विद्युत और यात्रिक इजीनियरी का कोर। प्रादेशिक सेना के यूनिट दो प्रकार के हैं १–नागरिक और २–प्रातीय। प्रातीय यूनिटो मे ग्रामीण अचल के व्यक्ति भर्ती किए जाते हैं और दो या तीन महीने की अवधि का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। नागरिक यूनिटो मे बडे नगरो के व्यक्तियो को भर्ती किया जाता है। इन्हे साप्ताहिक कवायद पद्धति से शाम के समय, रविवार तथा छुट्टियो मे, एव अधिक से अधिक चार दिनो के शिविरो के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है [श० ना० रा०]

प्रायश्चित्त (हिंदू) ` जिस अनुष्ठान के द्वारा किए हुए पाप का निश्चित रूप से शोधन हो उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। जैसे क्षार से वस्त्र की शुद्धि होती है वैसे ही प्रायश्चित्त से पापी की शुद्धि होती है।

धर्म की व्याख्या करते हुए जैमिनि ने बतलाया है कि वेद द्वारा विहित धर्म एव उससे विरुद्ध अधर्म है। धर्म के आचरण से पुण्य तथा अधर्म के आचरण से पाप होता है। पुण्य से इष्टसाधन एव पाप से अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

पाप इस प्रकार कहे गये हैं — ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णस्तेय, गुरुतल्पगमन और इन चतुर्विध पापो के करने वाले पातकी से ससर्ग रखना ये पाँच महापातक हैं। मातृगमन, भगिनीगमन आदि अतिपातक हैं। शरणागत का वध, गुरु से द्वेष आदि अनुपातक है। स्त्रीविक्रय, सुतविक्रय आदि उपपातक है। मित्र से कपट करना, ब्राह्मण को पीडा देना आदि जातिभ्रशकरण पातक हैं। लकडी चुराना, पक्षी की हत्या करना आदि मालिनीकरण पातक हैं। ब्याज से जीविका चलाना, असत्य बोलना आदि अपात्रीकरण पातक हैं, इत्यादि।

पातकी प्रायश्चित्त का भागी होता है। सर्वप्रथम उसे किए हुए पाप के निमित्त पश्चात्ताप होना चाहिए। अपने पाप का प्रायश्चित्त जानने के लिये उसे परिषद् मे उपस्थित होना चाहिए। मीमासा, न्याय और धर्मशास्त्र के जानकार तीन विद्वानो की परिषद् कही गई है। महापातक का प्रायश्चित्त बतलाते समय राजा की उपस्थिति भी आवश्यक है। देश, काल और पातकी की परिस्थिति के अनुकूल प्रायश्चित्त होना चाहिए। बालक, वृद्ध, स्त्री और आतुर को आधा प्रायश्चित्त विहित है। पाँच वर्ष की अवस्था तक नही है। पाँच से पौने बारह वर्ष तक चौथाई प्रायश्चित्त है और यह प्रायश्चित्त बालक के पिता या गुरु को करना चाहिए। बारह से सोलह वर्ष तक आधा और सोलह से अस्सी वर्ष तक पूरा प्रायश्चित्त अनुष्ठेय है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमश पूरा, आधा, तीन भाग और चौथाई प्रायश्चित्त कर्तव्य है। ब्रह्मचारी को द्विगुणित, वानप्रस्थी को त्रिगुणित और यति को चतुर्गुणित प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्त करने मे विलब करना अनुचित है। आरभ के पूर्वदिन सविधि क्षौर, स्नान और पचगव्य का प्राशन करना चाहिए।

पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त रूप मे जप, तप, हवन, दान, उपवास, तीर्थयात्रा तथा प्राजापत्य, चाद्रायण, कृच्छ्र और सातपन प्रभृति व्रत करने का विधान है। उदाहरण रूप पाँच महापातको के प्रायश्चित्त इस प्रकार हैं—ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त—जिस ब्राह्मण की हत्या की गई हो उसकी खोपडी के एक भाग का खप्पर बनाकर सर्वदा हाथ मे रखे। दूसरे भाग को बाँस मे लगाकर ध्वजा बनाए और उस ध्वजा को सर्वदा अपने साथ रखे। भिक्षा मे उपलब्ध सिद्धान्न से अपना जीवननिर्वाह करे। जूते एव छाते का उपयोग न करे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। इन नियमो का पालन करते हुए १२ वर्ष पर्यंत तीर्थयात्रा करने पर ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिलता है। एक ब्राह्मण की अथवा १२ गौओ की प्राणरक्षा करने पर अथवा अश्वमेध याग, अवभृथ स्नान करने पर उपर्युक्त १२ वर्ष की अवधि मे कमी होना सभव है।

जिसने सुरा का पान किया हो उसे सुरा, जल, घृत, गोमूत्र या दूध प्रभृति किसी एक को गरम करके खौलता हुआ पीना चाहिए। और तब तक पान करते रहना चाहिए जब तक प्राण न निकले।

गुरुतल्पगमन प्रायश्चित्त — गुरुपत्नी के साथ सभोग करने पर तपाए हुए लोहे के पलग पर उसे सोना चाहिए। साथ ही तपाई हुई लोहे की स्त्री की प्रतिकृति का आलिगन कर प्राणविसर्जन करना चाहिए।

ससर्गि प्रायश्चित्त— महापातक करनेवाले के ससर्ग मे यदि कोई व्यक्ति एक वर्ष पर्यंत रहे तो उसे नियमपूर्वक द्वादशवर्षीय व्रत का पालन करना चाहिए। इस तरह प्रायश्चित्त करने से मानव पाप से मुक्त हो जाता है।

स० ग्र० — प्रायश्चित्तविवेक (शूलपाणि), प्रायश्चित्तमयूख (नीलकठ), प्रायश्चित्तसार (दलपति), प्रायश्चित्तेदुशेखर (नागेश)। [म० ला० द्वि०]

ईसाई : जिन कार्यों द्वारा मनुष्य पापाचरण के लिये खेद प्रकट करता है तथा ईश्वर से क्षमा माँगता है, उन्हे प्रायश्चित्त कहा जाता है। बाइबिल के पूर्वार्ध मे बहुत से स्थलो पर यहूदियो मे प्रचलित प्रायश्चित्त के इन कार्यो का उल्लेख है—उपवास, विलाप, अपने पापो की स्वीकारोक्ति, शोक के वस्त्र धारण करना, राख मे बैठना आदि।

ईसाइयो का विश्वास है कि ईसा ने क्रूस पर मरकर मनुष्य जाति के सब पापो के लिये प्रायश्चित्त किया है। किंतु ईसा के प्रायश्चित्त से लाभ उठाने के लिये तथा पापक्षमा की प्राप्ति के लिये प्रत्येक मनुष्य को व्यक्तिगत प्रायश्चित्त भी करना चाहिए। ईसाई चर्च की प्रारभिक शताब्दियो मे प्रायश्चित्त को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। बपतिस्मा के बाद जब कोई ईसाई किसी घोर पाप का अपराधी बन जाता था तो बिशप के सामने अपना पाप स्वीकार करने के बाद उसे काफी समय तक प्रायश्चित्त करना पडता था—

पश्चात्ताप के विशेष कपड़े पहनकर उसे पूजा के समय गिरजाघर की एक अलग जगह पर रहना पड़ता था इसके अतिरिक्त उसे उपवास प्रायश्चित्त के काय भी पूरे करने पड़ते थे। अत में उसे क्षमा मिलती थी और वह फिर यूखारिस्ट सस्कार मे सम्मिलित हो सकता था। बारबार पापस्वीकरण सस्कार ग्रहण करने की प्रथा जब फैलने लगी प्रायश्चित्त को कम कर दिया गया और पश्चात्ताप को अधिक महत्व दिया जाने लगा। प्रायश्चित्त के रूप मे विशेषकर उपवास, भिक्षादान तथा प्रार्थनाएँ करने का आदेश दिया जाता था। आजकल पापस्वीकरण सस्कार के समय पश्चात्तापी को प्राय कुछ निश्चित प्रार्थनाएँ करने के लिये कहा जाता है (दे० पापस्वीकरण)। [का० बु०]

प्रायोपवेशन जीवन पर्यंत सकल्पपूर्वक आहार का त्याग करके ध्यानस्थ मुद्रा मे आसीन होने को प्रायोपवेशन कहा है। भागवत पुराण मे उल्लेख है कि पाडववशी राजा परीक्षित ने गगा किनारे अनशन व्रत स्वीकार किया और समस्त सग छोडकर वे श्रीकृष्ण के चरणों मे लीन हो गए। वायु पुराण के अनुसार इद्र द्वारा उसके शिष्यों की हत्या किए जाने पर सुकर्मा ने भी प्रायोपवेशन व्रत स्वीकार किया था। [ज० च० जै०]

प्रार्थनासमाज, जिसकी स्थापना बबई मे ३१ मार्च, १८६७ को हुई, की पृष्ठभूमि १९वी शती के प्रारभ अथवा उससे भी पहले १८वी शती मे हुई कई घटनाओ से बन चुकी थी। अग्रेजी शिक्षा का प्रवेश और ईसाई मिशनरियो के कार्य, ये दो घटनाएँ उस पृष्ठभूमि के निर्माण मे विशेष सहायक बनी। अग्रेजी शिक्षा के प्रसार से शिक्षित भारतीयो मे अपने सामाजिक और आर्थिक विश्वासो तथा रीति रिवाजो के दोषो और त्रुटियो के प्रति चेतना जगी। ईसाई मिशनरियो ने अनेकानेक लोगो, विशेषतया हिंदुओ, का धर्मपरिवर्तन कर उन्हे ईसाई बना लिया, इससे भी लोगो की आँखें खुल गई। फिर मिशनरियो ने अपनी कठोर प्रहारी आलोचना द्वारा भी धर्मपरिवर्तन के अनिच्छुक लोगो के विचारो मे बडा परिवर्तन ले आ दिया। हिंदू दर्शन के उन नेताओ ने जो इन तत्वो के प्रभाव का अनुभव कर रहे थे, और नवीन ज्ञान से भी परिचित हो रहे थे, सास्कृतिक मूल्यो के आधार पर हिंदू समाज के बौद्धिक और आध्यात्मिक पुनरुत्थान के कार्य का श्रीगणेश किया। हिंदू विचारधारा के इन्ही नेताओं मे से कुछ ने प्रार्थनासमाज की स्थापना की।

प्रार्थनासमाज के आदोलन ने, राजा राममोहन राय द्वारा बगाल मे स्थापित ब्रह्मसमाज (१८२८) से प्रेरणा ग्रहण की, और व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के स्वस्थ सुधार के लिये अपनी सारी शक्ति धार्मिक शिक्षा के प्रचार में अर्पित कर दी। बबई के पश्चात् धीरे धीरे इसका विस्तार पूना, अहमदाबाद, सतारा और अहमदनगर आदि स्थानो मे भी हुआ।

प्रार्थनासमाज के प्रमुख प्रकाशस्तभों में आत्माराम पाडुरग, वासुदेव बाबाजी नौरगे, रामकृष्ण गोपाल भडारकर, महादेव गोविंद रानडे, वामन आबाजी मोदक और नारायण गणेश चदावरकर थे। प्रार्थनासमाज के आलोचकों द्वारा किए गए असत्य प्रचार को मिटाने के लिये इन नेताओं को बहुत सघर्ष करना पड़ा। असत्य प्रचार के अतर्गत यह कहा जाता था कि प्रार्थनासमाज ईसाई धर्म के अनुकरण पर आधृत है और यह देश के प्राचीन धर्म के विरुद्ध है। प्रार्थनासमाज का उद्देश्य उसके नेताओं के अनुसार प्रार्थना और सेवा द्वारा ईश्वर की पूजा करना था। जैसा नाम से प्रकट है, प्रार्थना ही समाज की आत्मा है। बगाल के ब्रह्मसमाज की भाँति उपनिषदों और भगवद्गीता की शिक्षाएँ प्रार्थनासमाज के उद्देश्य की आधार हैं किंतु एक बात मे यह ब्रह्मसमाज से भिन्न है, इसमें भारत के, विशेषतया महाराष्ट्र के, मध्यकालीन सतों—ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम—की शिक्षाओं को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

प्रार्थनासमाज ने १९वीं शती के नवें दशक मे नारीजागरण की योजनाओं का आरभ किया। आर्य-महिला-समाज की स्थापना (१८८२) उन्ही योजनाओं का फल है।

१८७८ मे प्रार्थनासमाज द्वारा स्थापित पहला रात्रिविद्यालय जनशिक्षा और प्रौढ़शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहा। वासुदेव बाबाजी नौरग बालकाश्रम की स्थापना लालशकर उमाशकर द्वारा पढरपुर मे १८७५ मे हुई यह बालकाश्रम बाद मे प्रार्थनासमाज के सरक्षण मे आ गया। यह अपने ढग की सर्वाधिक प्राचीन और बडी सस्था है, और यह १९७५ मे अपनी शताब्दी पूरी करेगी। प्रार्थनासमाज के सरक्षण मे दो बालकाश्रम और चलते हैं—एक विले पार्ले (बबई) मे टी० एन० सिरूर होम और दूसरा सतारा जिले के वाई नामक स्थान मे है।

'दि डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसायटी ऑव इडिया' नाम की सस्था, जो अछूतोद्धार के लिये प्रसिद्ध है, प्रार्थनासमाज के एक कार्यकर्ता विट्ठल रामजी शिंदे द्वारा स्थापित हुई।

१९१७ मे प्रार्थनासमाज ने राममोहन अग्रेजी विद्यालय की स्थापना की। अब इसके सरक्षण मे दस से अधिक विद्यालय बबई और उसके आस पास चल रहे है। [जी० एन० च०]

प्रिचर्ड, कैथेरीन सुसन्ना आस्ट्रेलिया की महिला उपन्यासलेखिका कैथेरीन सुसन्ना प्रिचर्ड का जन्म फ़िजी द्वीप मे १८८४ मे हुआ। प्रिचर्ड के उपन्यासो मे श्रमिको के प्रति सहानुभूति विशेष रूप से लक्षित होती है। जीवन के कठोर निर्मम यथार्थ का चित्रण भी वह विशेष मार्मिकता के साथ करती हैं। उनके कई उपन्यास और कथासग्रह है। विशेष प्रसिद्ध रचनाओ मे 'वकिंग बुलक्स' (काम करते हुए बैल, १९२६) दक्षिण की ओर इमारती लकड़ी काटकर बेचने का व्यापार करनेवाले प्रदेश की परिस्थियो पर आधारित है। १९२९ मे प्रकाशित 'कूनार्डू' नामक उपन्यास मे उत्तर-पश्चिम के निर्जन चारागाहो की पार्श्वभूमि पर प्रकृति और मानव के सघर्ष का यथार्थवादी चित्र उभरकर सामने आता है। धीरे धीरे कैथेरीन प्रिचर्ड की समाजवाद के प्रति सहानुभूति उन्हें राजनैतिक प्रचार प्रधान उपन्यास लिखने की ओर प्रेरित करने लगी और निम्न तीन उपन्यासो मे सोने की खदानो की खोज और धीरे धीरे व्यापारिक विकास से बढनेवाली श्रमिको की कठिनाइयाँ और तीव्र होते हुए वर्गविग्रह का चित्र व्यक्त किया गया है दि रोअरिंग नाइटीज (१९४६), 'गोल्डेन माइल्स' (सुनहरे कोस, १९४८) विग्ड सीड्स' (पखवाले बीज, १९५०)। आस्ट्रेलियाई साहित्य मे आधुनिक सामाजिक उपन्यास की नीव डालनेवालो मे

कैथेरीन प्रिचर्ड का नाम वैन्स पामर श्रौर फ्रैंक डेविसन के साथ वहुत श्रादर से लिया जाता है। उस समय श्रास्ट्रेलिया के मूल निवासियो, लवे चौडे खेतो, मैदानो श्रौर प्राकृतिक शात जीवन का उपयोग पार्श्ववर्ती परदे के रूप मे लेखको ने श्रधिक किया। धीरे धीरे नागरिक सभ्यता के विकास श्रौर महानगरो के निर्माण से ग्रामीण श्रचल की वह शाति वदलती गई, नए मानव श्रौर यत्र सवधो ने कई समस्याएँ उपस्थित की। [प्र० मा०]

प्रिटोरिश्रा स्थिति २५° ३८' द० श्र० तथा २८° ११' पू० दे०। यह समुद्रतल से ४,५९३ फुट की ऊँचाई पर ट्रसवाल प्रात मे स्थित दक्षणी श्रफ्रीका सघ की राजधानी है। यह श्रापीज (Aapies) नामक छोटी नदी के दोनो किनारो पर है। १८५५ ई० मे प्रिटोरियस नामक व्यक्ति ने इस नगर को वसाया था। दक्षिण श्रफ्रीका के युद्ध मे सर चर्चिल इसी नगर में कैद किए गए थे। यहाँ पर एक विश्वविद्यालय भी स्थित है। इस नगर की वर्तमान श्रनुमानित जनसख्या ४,२२,५९० (१९६३) है जिसमे लगभग ५० प्रति शत व्यक्ति यूरोपीय वशानुक्रम के हैं। यहाँ पर कई पार्क तथा क्रीडास्थल हैं। इसके मध्य मे एक प्रसिद्ध गिरजाघर है। [रा० व० सिं०]

प्रियप्रवास 'हरिश्रौध' जी को काव्यप्रतिष्ठा 'प्रियप्रवास' से मिली। इसका रचनाकाल सन् १९०९ से सन् १९१३ है। इसके पहिले से ही हिंदी कविता मे व्रजभाषा के स्थान पर खडी वोली की स्थापना हो गई थी। मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथवध' (खडकाव्य) प्रकाशित हो चुका था। फिर भी खडी वोली मे भाषा, छद श्रौर शैली का नवीन प्रयोग किया जा रहा था। 'प्रियप्रवास' भी ऐसा ही काव्यप्रयोग है। यह भिन्न तुकात श्रथवा श्रतुकात महाकाव्य है। इसके पूर्व खडी वोली मे महाकाव्य श्रौर महाकाव्य के रूप मे श्रतुकात का श्रभाव था। हरिश्रौध जी ने 'प्रियप्रवास' की विस्तृत भूमिका मे श्रपने महाकाव्य के लिये श्रतुकात की श्रावश्यकता श्रौर उसके लिये उपयुक्त छद पर विचार किया है। श्रतुकात उनके लिये 'भाषासौदर्य' का 'साधन' है। छद श्रौर भाषा के सवध मे उन्होने कहा हैं—'भिन्न तुकात कविता लिखने के लिये सस्कृत वृत्त वहुत ही उपयुक्त हैं—कुछ सस्कृत वृत्तो के कारण श्रौर श्रधिकतर मेरी रुचि के कारण इस ग्रथ की भाषा सस्कृतगर्भित है'।

'प्रियप्रवास' यद्यपि सस्कृतवहुल श्रौर समासगुफित है, तथापि इसकी भाषा में यथास्थान वोलचाल के शब्दो का भी समावेश है। श्रतुकात होते हुए भी इसके पदप्रवाह मे प्राय सानुप्रास कविता जैसा सगीत है, छद श्रौर भाषा मे लयप्रवाह है, फिर भी वर्णिक छद के कारण यत्रतत्र भाषा हिंदी की प्रवृत्ति से कृत्रिम हो गई है, जकड सी गई है।

'प्रियप्रवास' द्विवेदी युग मे प्रकाशित हुश्रा था। खडी वोली की काव्यकला (भाषा, छद, श्रतुकात, इत्यादि) मे वहुत परिवर्तन हो चुका है। किंतु एक युग वीत जाने पर भी खडी वोली के काव्य-विकास मे 'प्रियप्रवास' का ऐतिहासिक महत्व है।

'प्रियप्रवास' विरहकाव्य है। कृष्णकाव्य की परपरा मे होते हुए भी, उससे भिन्न है। 'हरिश्रौध' जी ने कहा है—मैंने श्री कृष्णचद्र को इस ग्रथ मे एक महापुरुष की भाँति श्रकित किया है, ब्रह्म करके नही। कृष्णचरित को इस प्रकार श्रकित किया है जिससे श्राधुनिक लोग भी सहमत हो सकें।'

महापुरुष के रूप मे श्रकित होते हुए भी 'प्रियप्रवास' के कृष्ण मे वही श्रलौकिक स्फूर्ति है जो श्रवतारी ब्रह्मपुरुष मे। कवि ने कृष्ण का चरित्रचित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया है, उनके व्यक्तित्व मे सहानुभूति, व्युत्पन्नमतित्व श्रौर कर्मकौशल है।

कृष्ण के चरित्र की तरह 'प्रियप्रवास' की राधा के चरित्र मे भी नवीनता है। उसमे विरह की विकलता नही है, व्यथा की गभीरता है। उसने कृष्ण के कर्मयोग को हृदयगम कर लिया है। कृष्ण के प्रति उसका प्रेम विश्वात्म श्रौर उसकी वेदना लोकसेवा वन गई है। प्रेमिका देवी हो गई है, वह कहती है

श्राज्ञा भूलूँ न प्रियतम की, विश्व के काम श्राऊँ
मेरा कौमार-व्रत भव मे पूर्णता प्राप्त होवे।

'प्रियप्रवास' मे यद्यपि कृष्ण महापुरुष के रूप मे श्रकित हैं, तथापि इसमे उनका यह रूप श्रानुषगिक है। वे विशेषत पारिवारिक श्रौर सामाजिक स्वजन हैं। जैसा पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, मुख्य प्रसग है—'प्रियप्रवास', परिवार श्रौर समाज के प्रिय कृष्ण का वियोग। श्रन्य प्रसग श्रवातर हैं। यद्यपि वात्सल्य, सख्य श्रौर माधुर्य का प्राधान्य है श्रौर भाव मे लालित्य है, तथापि यथास्थान श्रोज का भी समावेश है। समग्रत इस महाकाव्य मे वर्णनवाहुल्य श्रौर वाग्वैदग्ध्य का श्राधिक्य है। जहाँ कही सवेदना तथा हार्दिक उद्गीर्णता है, वहाँ रागात्मकता एव मार्मिकता है। विविध ऋतुश्रो, विविध दृश्यो विविध चित्तवृत्तियो श्रौर श्रनुभूतियो के शब्दचित्र यत्रतत्र वडे सजीव है। [शा० प्रि० द्वि०]

प्रियादास यह नाभाजी कृत भक्तमाल की कवित्तोवाली प्रसिद्ध टीका भक्तिरसवोधिनी के रचयिता हैं जिसे इन्होने स० १७६९ मे पूर्ण किया था। इनके दीक्षागुरु मनोहरराम चैतन्य सप्रदाय की राधा-रमणी शिष्यपरपरा मे थे। इनकी श्रन्य रचनाएँ रसिकमोहिनी (स० १७९४), श्रनन्यमोहिनी, चाहवेली तथा भक्तसुमिरनी हैं। इनका उपनाम रसरासि था। [श्र० र० दा०]

प्रीतर मूलत प्रीतर सैनिक उपाधि है। लैटिन नगरो के मजिस्ट्रेटों को यह सर्वोच्च उपाधि प्रदान की जाती थी।

रोमन गणराज्य के श्रधीन रोमन कासुल को प्रीतर कहा जाता था। ई० पू० ३६७ के लिसीनियन के श्रनुसार कासुलो के सहयोगी के रूप मे नए मजिस्ट्रेटो की नियुक्ति की प्रथा शुरू हुई। कासुलो की श्रपेक्षा इन नए मजिस्ट्रेटो के श्रधिकार कुछ कम थे। दीवानी के मामलो मे न्याय करने के श्रधिकार इन्हे प्राप्त थे। इन मजिस्ट्रेटो को नगर (सिटी) प्रीतर कहा जाता था। जव इस प्रकार के प्रीतरो की सख्या वहुत वढ गई, सिटी प्रीतरो को श्रौर श्रधिकार देकर उन्हे मुख्य न्यायाधीश वना दिया गया श्रौर प्रीतर शब्द वाकी वचे हुए मजिस्ट्रेटो के लिये निश्चित रूप से प्रयुक्त होने लगा। वाद मे इन प्रीतरो की सख्या श्रौर वढा दी गई श्रौर वे प्रातों के गर्वनरो के रूप मे भी कार्य करने लगे। रोमन गणराज्य के श्रधीन इन प्रीतरो की श्रतिम श्रवस्था यह थी कि एक निश्चित सख्या मे प्रीतर चुने जाते थे। ये एक साल तक जज का काम करते थे श्रौर वाद मे गवर्नर के रूप मे विभिन्न प्रातो मे भेज दिए जाते थे। [स० वि०]

प्रीस्टलि, जोज़ेफ, (Priestley, Joseph, सन् १७३३-१८०४) १८वीं शती के जगत्प्रसिद्ध, अंग्रेज रसायनज्ञ थे, जिन्होंने ऑक्सिजन की खोज की थी। इनका जन्म लीड्ज़ के समीप फील्डहेड में हुआ था। बाल्यकाल में स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण बहुत दिनों तक इनका अध्ययन बंद रहा, और ये इधर उधर व्यापार संबंधी काम करते रहे। बाद को डा० डाडरिज (Doddridge) द्वारा डेवेंट्री में स्थापित एक अकादमी में इन्होंने धर्मशिक्षा प्राप्त की। प्रीस्टलि ने रूढ़िगत परंपराओं के प्रति आस्था प्रकट न की और अपने निजी ढंग पर प्रत्यक्ष और परोक्ष के प्रश्नों पर विचार करना प्रारंभ किया। १७५५ ई० में ये सफ़क (Suffolk) के एक छोटे से समुदाय के नीडैम मार्केट में पादरी हो गए। यहाँ इन्होंने एक पुस्तक 'दी स्क्रिप्चर डॉक्ट्रिन ऑव रेमिशन' लिखी, जिसमें ईसा की मृत्यु और पाप संबंधी प्रचलित विचारों का विरोध किया गया था। १७५८ ई० में इन्होंने नीडैम अकादमी छोड़ दी और नैंटविच चले गए। १७६१ ई० में ये वैरिंगटन की एक अकादमी में भाषाओं के अध्यापक हो गए। यहीं प्रिस्टलि का साहित्यिक जीवन आरंभ हुआ। इनका लंदन आना जाना लगा रहता था, जिससे प्रिस्टलि का परिचय फ्रैंकलिन से हो गया। फ्रैंकलिन ने जो सामग्री इन्हें प्रदान की, उसके आधार पर प्रीस्टलि ने १७६७ ई० में विद्युत् संबंधी पुस्तक 'हिस्ट्री ऐंड प्रेज़ेंट स्टेट ऑव इलेक्ट्रिसिटी' लिखी। इसके बाद ही इनकी प्रकाश संबंधी पुस्तक 'विज़न, लाइट ऐंड कलर्स' (दृष्टि, प्रकाश और रंग) प्रकाशित हुई। १७६२ ई० में इन्होंने "भाषा और सर्वमान्य व्याकरण के सिद्धांत" पर एक पुस्तक लिखी।

१७६४ ई० में इन्हें एल-एल० डी० की उपाधि एडिनबरा से मिली और १७६६ ई० में ये रॉयल सोसायटी के फेलो निर्वाचित हुए। अगले वर्ष ये लीड्ज़ में एक गिरजा के पादरी हो गए। यहाँ इनके घर के निकट ससाव बनाने का एक छोटा कारखाना प्रारंभ हुआ। प्रीस्टलि ने इस कारखाने में रुचि लेना प्रारंभ किया, जिसके कारण इनका ध्यान रसायन विज्ञान की ओर आकर्षित हुआ। पर प्रमुख वृत्ति अभी साहित्यिक ही थी। १७७३ ई० में ये लार्ड शेलबर्न के साहित्यिक सहायक नियुक्त हुए और यूरोप की यात्रा की। 'मैटर और स्पिरिट' (प्रकृति और पुरुष) पर एक ग्रंथ लिखा, जिसमें प्रकृति में चेतनता और आत्मा में जड़ता, इस प्रकार विरोधी भावों का समन्वय करना चाहा। ये विज्ञान की सत्यता की अपेक्षा बाइबिल की सत्यता में अधिक आस्था रखते थे। बाद को लॉर्ड शेलबर्न का साथ इन्होंने छोड़ दिया और बर्मिंघम के गिरजे के पादरी बने। यहाँ इन्होंने ईसा मसीह से संबंधित विवादास्पद विचारों पर एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम 'हिस्ट्री ऑव अर्ली ओपिनियन्स कन्सर्निंग जीसस क्राइस्ट' है। बर्क की एक पुस्तक 'रिफ्लेक्शन्स ऑन फ्रेंच रेवोल्यूशन' का प्रीस्टलि ने उत्तर लिखा, जिसके परिणामस्वरूप इन्हें फ्रेंच रिपब्लिक का नागरिक बना लिया गया। इस नागरिकता के कारण इनके नगर के लोग बिगड़ उठे, उन्होंने इनका घर लूट लिया और इनकी पुस्तकें तथा पांडुलिपियाँ जला दीं। इसी समय इनके एक बहनोई की मृत्यु हुई, और इन्हें उसकी १०,००० पाउंड की संपत्ति मिल गई। इनके स्वतंत्र विचारों ने इन्हें कहीं चैन से टिकने न दिया। विरुद्ध लोकमत से तंग आकर ये १७९४ ई० में अमरीका चले गए, जहाँ इनका अच्छा स्वागत हुआ। पेनसिलवेनिया के फिलाडेल्फिया नगर में ६ फरवरी, १८०४ ई० को इनकी मृत्यु हो गई।

प्रीस्टलि ने गैसों पर बहुत काम किया। ये सब प्रयोग इन्होंने अवकाश के समय में किए थे। १७७४ ई० में इन्होंने छह खंडों में "ऑब्ज़र्वेशन्स ऑन डिफ़रेंट काइंड्स ऑव एयर", अर्थात् विभिन्न प्रकार की हवाओं संबंधी परीक्षण विषयक पुस्तक प्रकाशित की। इन्होंने अपने प्रयोगों के उपकरणों की स्वयं खोज की। प्रीस्टलि ने नई गैसों की भी खोज की और उनमें से जो गैसें पानी में बहुत विलेय थीं, (जैसे अमोनिया और सल्फर डाइऑक्साइड), उन्हें पारे के ऊपर एकट्ठा करने की विधि बनाई। ऑक्सिजन की खोज इन्होंने १७७४ ई० में की। लगभग उन्हीं दिनों शीले (Scheele) ने भी स्वतंत्र रूप से यह गैस स्वीडन में तैयार की थी। प्रीस्टलि ने पारे के ऑक्साइड पर सूर्य की किरणें १२ इंच व्यास के लेंस द्वारा केंद्रित कीं। ऐसा करने पर इन्होंने देखा कि एक गैस आसानी से निकल रही है। यह गैस पानी में नहीं घुलती थी और उसमें मोमबत्ती जोरों से जलती थी। इन्होंने इस गैस के भीतर साँस भी खींची और साँस लेने में उन्हें सुविधा प्रतीत हुई। इस प्रकार प्रीस्टलि ने ऑक्सिजन की खोज कर डाली। प्रीस्टलि ने नाइट्रिक ऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फ्यूरस अम्ल, कार्बोनिक ऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और अमोनिया आदि गैसों पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। [सत्य प्र०]

प्रीस्टली, जे० बी० (ज० १८९४) अंग्रेजी उपन्यासकार, नाटककार एवं निबंध लेखक। जन्मस्थान ब्रेडफोर्ड-यार्कशायर, पिता अध्यापक। प्रथम विश्वयुद्ध में सैनिक कार्य करने के पश्चात् कैंब्रिज के ट्रिनिटी कालेज से अंग्रेजी, इतिहास, राजनीति में विशेष योग्यता। १९२२ से लंदन में रहकर साहित्य की बहुमुखी सेवा। १९२९ में 'दि गुड कंपैनियन' नामक उपन्यास से ख्याति। इसमें सामाजिक दबाव छूटकर से निकलकर सुंदर रंगीन जीवन का चित्रण किया गया है। १९३० में 'एंजिल पेवमेंट' उपन्यास में कार्यालय कर्मचारियों की अनुचित ढंग से पैसा बनाने की प्रवृत्ति का व्यंग्यात्मक चित्रण है। 'इंग्लिश जर्नी, लेट दी पिपुल्स सिंग (१९३९) विश्वयुद्ध के अनुभव पर आधारित उपन्यास 'ब्लैक आउट इन ग्रेटले', 'डे लाइट ऑन सैटरडे' (१९४३) सफल कृतियाँ हैं। इनके उपन्यासों का चलचित्र विशेष प्रसिद्ध हुआ। वे १९४७-४८ में अंतरराष्ट्रीय थियेटर सम्मेलन के अध्यक्ष थे तथा १९४६-४७ में इंग्लैंड की ओर से यूनेस्को के प्रतिनिधि। वे स्पष्टवादी, भगवत्परायण, कट्टर अंग्रेज, कुशल वक्ता, समाचारप्रसारक तथा देशभक्त साहित्यकार हैं। इनकी पुस्तकों 'मिड नाइट ऑन दी डेज़र्ट', 'रेन अपॉन गाडस हिल' का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ और लाखों प्रतियाँ बिकीं। १९३२ से 'डेंजरस कार्नर' के साथ नाटककार के रूप में अवतरित हुए। इन्होंने नाटक कंपनियों का संचालन तथा सफल फिल्म निर्माण किया। वे परंपरागत नाटक शैली से हटकर नई प्रकार की शैली को अपनाने में सफल हुए। 'एडेन ऐंड', 'टाइम ऐंड दि कानवेज', 'आई हैव बीन हीयर बिफोर', 'इंसपेक्टर्स काल', 'ड्रैगंस माउथ' इनके सफल नाटक हैं। 'दि लिंडेन ट्री' में विश्वयुद्ध के पश्चात् मध्यम वर्गीय परिवार की समस्या का चित्रण है। 'एप्स ऐंड ऐंजिल्स' तथा 'ए फॉलिक' उनके विशिष्ट निबंध-ग्रंथ हैं। इन्होंने अंग्रेजी उपन्यास का संक्षिप्त इतिहास, 'दि इंगलिश

कॉमिक कैरेक्टर्स' तथा 'मेरिडिथ' के सबंध मे साहित्यिक ग्रंथ की रचना की। इनके सभी उपन्यास एव नाटक आलोचना, व्यग तथा आमोद से पूर्ण हैं। वे समसामयिक समस्या के सुलझाने के लिये जनता से वर्गवाद, लोभ और सग्रह का अत चाहते है। 'दि लास्ट ट्रप (१६३८) मे पूँजीवाद का चित्रण किया गया है।

[गि० ना० श०]

प्रूधों, पिएर जोसेफ (१८०६-१८६५) फ्रासीसी अराजकतावादी विचारक। बजासाँन मे उत्पन्न हुआ। आर्थिक कठिनाइयो के कारण शिक्षा पूरी न कर सका। बाद मे उसने मुद्रणकला सीखी। विद्याव्यसनी तो था ही, उसने अध्ययन और ज्ञानप्राप्ति के प्रत्येक अवसर का उपयोग किया। १८३८ मे उसकी 'एसे डि ग्रामेयर जेनरेल' नामक भाषाशास्त्र की पुस्तक प्रकाशित हुई। उस पुस्तक पर बजाँसाँन अकादमी ने प्रूधो को तीन वर्ष तक १५०० फ्राक सालाना की वृत्ति प्रदान की। राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन मे प्रूधो की अत्यधिक रुचि रही, १८४० मे उसकी प्रसिद्ध कृति 'ह्वाट इज़ प्रॉपर्टी' प्रकाशित हुई, जिसके प्रथम पृष्ठ पर प्रूधो की प्रधान मान्यता 'सपत्ति चोरी है' अकित है। इसके पश्चात् उसने दो पुस्तिकाएँ भी लिखी। अतिक्रातिकारी विचारो के आरोप मे उसपर मुकदमा चलाया गया, किंतु न्यायालय ने उसे मुक्त कर दिया। १८४७ मे वह पेरिस चला गया, वहाँ एक मौलिक सुधारवादी के रूप मे विख्यात हुआ। फरवरी, १८४८ की क्राति के पश्चात् उसने एक पत्र निकाला, किंतु राज्य ने उसका प्रकाशन बद करा दिया। कुछ काल के लिये ससद-सदस्य भी चुना गया, मगर सक्रिय राजनीति मे मन न लगा पाने के कारण उसने पुन अध्ययन और लेखन को अपनाया। १८४६ मे उसने एक 'बैंक ऑव पीपुल' की स्थापना का प्रयास किया, जिसका उद्देश्य व्याजप्रथा को समाप्त करना और अततोगत्वा पूँजी का ही उन्मूलन करना था। इस योजना के असफल होने के साथ प्रूधो जेनेवा चला गया। वहाँ से लौटने पर उसे प्रेस नियमो की अवहेलना के अपराध पर तीन वर्ष का कारावास मिला। कारागार से मुक्त होने पर १८५२ मे वह बेल्जियम चला गया, जहाँ उसने लिखने का क्रम जारी रखा।

प्रूधो ने कुल मिलाकर लगभग ४५ पुस्तकें लिखी हैं। राजनीति मे अराजकतावाद के दार्शनिक व्याख्याकारो मे प्रूधो अग्रणी है। उसके अनुसार सपत्तिसचय का कोई औचित्य सिद्ध नही किया जा सकता। श्रमजन्य उत्पादन से श्रमिक को ही अधिकतम लाभ मिलना चाहिए। वह मूल्य के समाजवादी सिद्धात से सहमत था। राज्यहीन समाज के सिद्धात का प्रबल पोषक होने के नाते उसकी मान्यता थी कि व्यक्तिगत सविदा समाज का मुख्य आधार होनी चाहिए।

प्रूधों, पिएर पॉल (१७५८-१८२३) नेपोलियन का दरबारी कलाकार। प्रूधो का जन्म क्लूने मे हुआ था। दीजो अकादमी मे उसने चित्रकला की प्रारभिक शिक्षा पाई। १७८० मे वह पेरिस चला गया। बर्गंडी का रोम पुरस्कार जीता। वह इटली मे भी रहा। वहाँ उसकी कला पर रैफेल, करेज्जिओ तथा लियोनार्दो की कला का यथेष्ट प्रभाव पडा। १७८७ मे वह पेरिस वापस आया और नेपोलियन के दरबार का कलाकार बना। वहाँ उसका मुख्य काम था नेपोलियन की रानियो को चित्रकला सिखाना तथा उनके चित्र बनाना।

गृहसज्जा के चित्र बनाने मे भी उसे विशेष अभिरुचि थी।

[रा० च० शु०]

प्रूफ संशोधन पुस्तको, निबधो तथा अन्य मुद्रित वस्तुओ को पहले टाइपो से कपोज करना पडता है। कपोज करने मे प्राय गलत टाइप लग जाते हैं, अत कपोज की गई सामग्री पहले अशुद्ध रहती है। इनकी छाप लेकर गलत टाइपो के स्थान पर ठीक टाइप लगाने के जो सकेत छाप पर किए जाते हैं उन्हे प्रूफ सशोधन कहते हैं। मुद्रण के साथ ही प्रूफ सशोधन कला भी भारत मे पश्चिम से आई है। प्रूफ सशोधन के सकेत दो प्रकार के होते हैं एक तो कुछ विशेष चिह्न होते हैं और दूसरे अँगरेजी के कतिपय अक्षर होते हैं, जिनका पृथक् पृथक् तात्पर्य होता है। हिंदी मे अभी तक स्वतत्र प्रूफ सकेतो नही बने है। अग्रेजी के चिह्न ही अभी तक इसके लिये भी व्यवहृत होते हैं, किंतु हिंदी मे इन चिह्नो से पूरा काम नही चल पाता। हिंदी की मात्राएँ रेफ, हलत, अनुस्वार आदि के लिये अग्रेजी के प्रूफ सकेतो से काम नहीं चलाया जा सकता। अत यह आवश्यक है कि इनका स्पष्ट उल्लेख हाशिए पर कर दिया जाय।

प्रूफ सशोधन मे सबसे पहले पृष्ठसंख्या, शीर्षक आदि देखकर प्रूफ पढना चाहिए। साकेतिक चिह्न बाएँ हाशिए पर क्रम से बनाना चाहिए और जब इस ओर जगह न रहे, तब दाहिने हाशिए पर उसी क्रम से चिह्न बनाना चाहिए। अच्छा यह होगा कि खडे बल मे प्रूफ के दो भाग मान लिए जाएँ और बाई ओर वाले आधे भाग के लिये चिह्न बाएँ हाशिए पर और दाहिनी ओर के चिह्न दाएँ हाशिए पर बनाए जाएँ। प्रूफ के ऊपर से रेखा खींचकर फिर हाशिए पर शोधन करने का ढग अच्छा नही है। इससे प्रूफ भद्दा हो जाता है और यदि रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई जाती हैं, तो कपोजीटर के लिये ठीक ठीक शुद्धि करना कठिन हो जाता है। शोधन ऐसी स्याही से करना चाहिए, जो स्पष्ट दिखाई दे। इसके लिये लाल स्याही ठीक रहती है। शोधन में, पेंसिल का उपयोग नही करना चाहिए। शोधन के लिये एक सकेत लिखने के बाद एक खडी रेखा खीचकर तब दूसरा शोधनचिह्न बनाना उचित है। लेख मे जो भी सशोधन किए जाएँ, उनके लिये हाशिए पर साकेतिक चिह्न अवश्य बना दिए जाएँ अन्यथा सशोधन व्यर्थ जायँगे। कपोजीटर केवल हाशिए के चिह्नो के अनुसार शोधन करते हैं। सकेतो के अतिरिक्त कपोजीटर की सूचना के लिये, जो कुछ लिखा जाय उसे वृत्त से घेर देना चाहिए। शोधन होने के बाद दूसरी बार पुन पाठ के लिये जो प्रूफ आता है, उसमे केवल पूर्वसशोधन को ही नही देखना चाहिए, अपितु यह भी देखना चाहिए कि एक ही शोधन दो बार तो नही हो गया, या कोई टाइप तो नही निकल गया है, अथवा कोई अचिह्नित टाइप तो नही बदला गया है। साधारणत प्रूफ तीन बार देखा जाता है। अशुद्धियाँ अधिक होने पर इससे अधिक बार भी देखा जा सकता है। केवल वर्णविन्यास के शोधन से ही प्रूफ सशोधक के कर्तव्य की इतिश्री नही हो जाती। विचारो और भावो की स्पष्टता की ओर भी प्रूफशोधक को लेखक का ध्यान आकर्षित करना चाहिए और सदेह-निवारण के लिये पाडुलिपि सहित प्रूफ को लेखक के पास भेज देना चाहिए। प्रेस की भाषा में इस क्रिया को क्वेरी ठीक करना कहते हैं।

प्रूफ संशोधन के लिये निम्नलिखित चिह्नों का उपयोग किया जाता है :

संकेत	अर्थ
ꝺ	टाइप हटा दो या निकाल दो।
ꝺ	हटा दो और शेष को जोड़ दो।
୭	उल्टा लगा है, ठीक करो।
⊂	अक्षरों को मिलाओ।
⊃	वृत्त में घिरे हुए शब्द या अक्षर का स्थान बदलो।
¶	नया पैराग्राफ बनाओ।
?/	विरामचिह्न दो।
' ᑊ	दो अवतरण चिह्न दो।
ꝺ	संक्षिप्त करो।
( )	स्पेसिंग ठीक करो।
ᑊᑊ	एक अवतरण चिह्न दो।
⊢	जगह करो।
ꞁ ꞁ	रिक्त स्थान बराबर करो।
va या v	समान स्थान दो।
×	टूटा अक्षर बदलो।
=	एक लाइन में करो।
[	बाईं ओर हटाओ।
]	दाहिनी ओर हटाओ।
⌐	ऊपर हटाओ।
⌙	नीचे हटाओ।
▭	एक एम स्थान छोड़ो, जैसा नए पैरा के आरंभ में होता है।
≡ या ‖‖	ऊपर नीचे की पंक्तियों को एक सीध में करो।
tr	स्थान बदलो।
w f	विजातीय टाइप बदलो।
en	एक छोटा डैश लगाओ।
em	एक बड़ा डैश लगाओ।
Stet	रहने दो।
run on	पैरा मत छोड़ो।
b f	मोटे टाइप लगाओ।
ꞁ	शेष भाग में उस भाग के टाइप छोटे करो।
⊢ या	वर्ग या टाइप के स्थान के चिह्नों की ओर ध्यान दो।
ed >	दो पंक्तियों के बीच में और स्थान करो।
(	दो पंक्तियों के बीच में जगह कम करो।
,	अर्धविराम चिह्न लगाओ।
, या,	अल्पविराम चिह्न लगाओ।
या ⊙	उपविराम चिह्न लगाओ।
⌢	युक्ताक्षर लगाओ।
√	स्थान कम करो।
ital	इटैलिक टाइप लगाओ।
rom	रोमन टाइप लगाओ।
caps	अंग्रेजी में कैपिटल अक्षर लगाओ।
l c या s c	अंग्रेजी के छोटे अक्षर लगाओ।
!	संबोधन चिह्न दो।
?	प्रश्नवाचक चिह्न दो।
-/ या =/	समासचिह्न लगाओ।
(/)	लघुकोष्ठक।
[/]	बड़ा कोष्ठक।
ा	आकार।
ि	ह्रस्व इ की मात्रा।
ी	दीर्घ ई की मात्रा।
े या (े)	ए की मात्रा।
ै या (ै)	ऐ की मात्रा।
(ु)	उकार।
(ू)	ऊकार।
⊙ या ं	अनुस्वार।
	विसर्ग।
(्)	हलंत।
(ॅ)	रेफ।

[अ० ना० मे०]

प्रूसिक अम्ल (Prussic acid) इसे हाइड्रोजन सायनाइड या हाइड्रोसायनिक अम्ल भी कहते हैं। यह रंगहीन वाष्पशील पदार्थ है, जो बहुत ही विषैला होता है। सन् १७८२ में सी० डब्लू० शीले (K W Scheele) ने इसका पता लगाया था और प्रशियन नील (prussian blue) से इसे प्राप्त किया था। यह कुछ पेड़ों में शर्करावर्गीय पदार्थों के साथ ग्लाइकोसाइड के रूप में पाया जाता है। कड़ुवे बादाम में पाए जानेवाले ऐमिग्डालिन (amygdalin) नामक ग्लाइकोसाइड में यह होता है और ऐमिग्डालिन के जल अपघटन (hydrolysis) से इसे प्राप्त किया जा सकता है।

तैयार करने की विधि — प्रयोगशाला में इसे प्राप्त करने की विधि यह है : १०० मिली० सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल या उतने ही जल में ठंडा विलयन एक गोल पेंदी के फ्लास्क में रखे १०० ग्राम पोटैसियम सायनाइड के ऊपर क्रमश डालते हैं। उस फ्लास्क को एक यू नली से जोड़ दिया जाता है, जिसमें निर्जलित कैल्सियम क्लोराइड भरा होता है। इस नली से निकलनेवाले वाष्प को एक संघनित्र से ले जाकर द्रवीभूत करके इकट्ठा कर लेते हैं। संघनित्र में जल के स्थान पर —१०° सें० ताप का, जल में नमक का, विलयन प्रवाहित करते हैं। यदि प्राप्त अम्ल को और अधिक निर्जलित करना हो, तो उसमें कुछ फॉस्फोरस पेंटाक्साइड डालकर हिलाते हैं और द्रव का पुन आसवन कर लेते हैं।

प्रूसिक अम्ल बनाने की व्यावसायिक विधि यह है : २३% सोडियम सायनाइड के जलीय विलयन पर ६६° बोमे सल्फ्यूरिक अम्ल की अभिक्रिया सीसे के स्तर लगे एक जनित्र (generator) के अंदर करते हैं और उस क्रिया द्वारा प्राप्त वाष्पों को संघनित कर इकट्ठा कर लेते हैं। इस क्रिया के अंतर्गत अम्ल की मात्रा को सायनाइड की मात्रा से अधिक रखा जाता है। इस प्रकार प्राप्त द्रव के आंशिक आसवन से लगभग ९८% सांद्रता का प्रूसिक अम्ल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार सोडियम सायनाइड के स्थान पर कैल्सियम सायनाइड लेकर भी इसे प्राप्त किया जा सकता है।

जर्मनी मे इस अम्ल की काफी मात्रा, चुकदर से बननेवाली शकरा के उद्योग में प्राप्त शीरे (molasses) से भी बनाते है।

इन विधियो के अतिरिक्त सश्लेषण द्वारा भी प्रूसिक अम्ल प्राप्त किया जाता है। इसके लिये दो प्रमुख विधियाँ हैं। पहली विधि मे किसी हाइड्रोकार्बन तथा अमोनिया के मिश्रण का नियन्त्रित ऑक्सीकरण किया जाता है। मेथेन, अमोनिया तथा ऑक्सीजन की अल्पमात्रा, (पूर्ण दहन के लिये आवश्यक मात्रा से कम) के मिश्रण को एक तप्त प्लैटिनम-इरीडियम की जाली के ऊपर से प्रवाहित करते है। निम्नलिखित क्रिया के फलस्वरूप प्रूसिक अम्ल प्राप्त हो जाता है

२ का हा$_४$ + ३ ना हा$_3$ + ३ औ$_२$ → २ हा का ना + ६हा$_२$औ

$$[2\ CH_4 + 3\ NH_3 + 3O_2 \rightarrow 2HCN + 6H_2O]$$
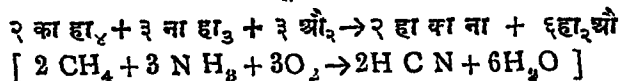
मेथेन के स्थान पर और दूसरे हाइड्रोकार्बन भी प्रयुक्त किए जा सकते हैं पर मेथेन से अभिक्रिया ज्यादा ठीक होती है।

फार्मेमाइड के निर्जलीकरण (dehydration) द्वारा भी प्रूसिक अम्ल बनाया जा सकता है। वाष्पीकृत फार्मेमाइड को अमोनिया की अधिक मात्रा मे मिश्रित करके उत्प्रेरक, एल्यूमिनियम फॉस्फेट, के ऊपर ३६०° सें० ताप पर प्रवाहित किया जाता है

हा का औ ना हा$_२$ → हा का ना + हा$_२$ औ

$$[HCONH_2 \rightarrow HCN + H_2O]$$
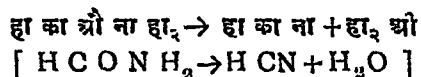
उपर्युक्त समीकरण रासायनिक क्रिया प्रदर्शित करता है। इस प्रकार बने प्रूसिक अम्ल को सोडियम हाइड्रॉक्साइड विलयन मे शोषित कर लिया जाता है जिससे वह सोडियम सायनाइड के रूप मे प्राप्त हो जाता है।

भौतिक तथा रासायनिक गुणधर्म — प्रूसिक अम्ल का क्वथनांक २५.७° सें० है। ठढा करने पर यह बर्फ के समान ठोस के रूप मे जम जाता है जिसका द्रवणांक −१४.६° सें० है। जमी अवस्था मे भी यह काफी वाष्पशील होता है। इसके अणु, प्रबल ध्रुवीय आचरणवाले होते हैं और इस बात मे यह जल से काफी समानता प्रदर्शित करता है। जल की ही तरह यह आयनीकारक विलायक (ionising solvent) भी है। जल तथा अन्य कार्बनिक विलायको के साथ यह हर अनुपात मे मिश्रणीय है। प्रूसिक अम्ल मे विद्यमान तत्व हाइड्रोजन, कार्बन तथा नाइट्रोजन निम्नलिखित दो सभव प्रकारो से सयुक्त हो सकते हैं।

हा − का≡ना या हा − ना≡का

$$[H-C\equiv N \text{ or } H-N\equiv C]$$
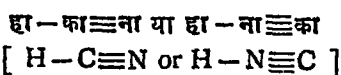
जिनको सामान्य (normal) रूप तथा आइसो (iso) रूप कहते है। डाइजोमेथेन (diazomethane) पर प्रूसिक अम्ल की अभिक्रिया से मेथिल सायनाइड (CH_3CN) तथा मेथिल आयसो सायनाइड (CH_3NC)दोनो प्राप्त होते है। इससे स्पष्ट है कि द्रवित प्रूसिक अम्ल मे ये दोनो रूप एक साथ ही विद्यमान हैं और ये चल समावयवता (dynamic isomerism) या चलावयवता (tautomerism) प्रदर्शित करते है। जलीय विलयन मे १२° सें० पर प्रूसिक अम्ल का वियोजन स्थिराक (dissociation constant) १.३×१०⁻⁹ है, जो कार्बनिक अम्ल के वियोजन स्थिराक का $\frac{१}{२३०}$ ही होता है। अत स्पष्ट है कि यह बहुत ही दुर्बल अम्ल है।

प्रूसिक अम्ल का बहुलकीकरण — शुद्ध अवस्था मे प्रूसिक अम्ल स्थायी पदार्थ है, जिसे काँच के बरतन मे काफी दिन तक अपरिवर्तित अवस्था मे रखा जा सकता है। कुछ क्षारीय पदार्थ, जैसे [illegible] या सोडियम सायनाइड की उपस्थिति मे अम्ल का बहुलकीकरण क्रमश प्रारभ होने लगता है, और इसी क्रिया के फलस्वरूप एक काला सा पदार्थ प्राप्त होता है जिसका रासायनिक सगठन लगभग वही होता है, जो प्रूसिक अम्ल का। इस क्रिया मे पर्याप्त मात्रा मे ऊष्मा निकलती है। साथ ही ऊष्मा व्यवहृत करने से अभिक्रिया का वेग भी बढता है। अत अधिक मात्रा मे इस पदार्थ का बहुलकीकरण होने से ताप की वृद्धि के साथ साथ विस्फोट हो जाने की भी काफी सभावना रहती है। अम्लीय या जल के साथ अम्ल पैदा कर देनेवाले पदार्थो की उपस्थिति मे इस अम्ल को स्थायीकृत (stabilised) बनाया जा सकता है।

रासायनिक क्रियाएँ — इस अम्ल के ऐस्टर साधारण विधि से नही बनाए जा सकते। इसके लिये ऐल्किल हैलाइड या सल्फेट पर सोडियम या पोटैशियम सायनाइड की क्रिया करनी पडती है

मू − है + पो का ना → मू − का ना + पो है

$$[R-X + KCN \rightarrow R-CN + KX]$$
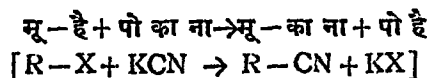
इसके अतिरिक्त ऐल्किल सायनाइड, अम्लो के ऐमाइडो के अनार्द्रीकरण से भी बनाए जा सकते है, जिससे स्पष्ट है कि यह यौगिक सामान्य सायनाइड (normal cyanide) मू − का≡ना [$R-C\equiv N$] है तथा इनको उन अम्लो का नाइट्राइल भी कहते हैं, क्योंकि इनके जलअपघटन से वे अम्ल प्राप्त हो जाते हैं

मू − का औ ना हा$_२$ —(−$_२$हा$_२$ औ)→ मू − का≡ना

मू − का≡ना —($_२$हा$_२$ औ)→ मू − का औ ओ हा + ना हा$_३$

$$\left[\begin{array}{l} R-CONH_2 \xrightarrow{-H_2O} R-C\equiv N \\ R-C\equiv N \xrightarrow{2H_2O} R-COOH + NH_3 \end{array}\right]$$
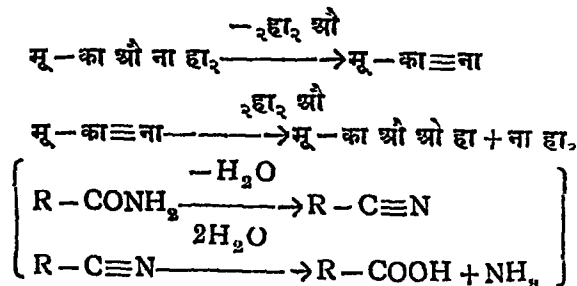
प्रूसिक अम्ल एल्डिहाइडो या कीटोनो से क्रिया करके योगशील पदार्थ (addition products) बनाते है और इन यौगिको का हाइड्रॉक्सी अम्लो के सश्लेषण मे विशेष महत्व है। प्रूसिक अम्ल एथिलीन ऑक्साइड से (उच्च ताप, दाब तथा उत्प्रेरको की उपस्थिति मे) एथिलीन सायनहाइड्रिन बनाता है, जो कुछ उत्प्रेरको की उपस्थिति मे आसुत किए जाने पर जल का एक अणु निकालकर एक यौगिक ऐक्रिलो नाइट्राइल ($CH_2 = CH - CN$) बनाता है। सश्लेषित रबर, रेशे तथा अन्य उद्योगो में इस यौगिक का विशेष महत्व है। अत उपर्युक्त क्रिया इस यौगिक के व्यापारिक निर्माण मे काम आती है।

[औ]

का हा$_२$—का हा$_२$ + हा का ना → का हा$_२$ औ हा − का हा$_२$ का ना

↓ −हा$_२$ औ

का हा$_२$ = का हा का ना

$$\left[\underset{\llcorner O \lrcorner}{CH_2-CH_2} + HCN \longrightarrow CH_2OH-CH_2CN \xrightarrow{-H_2O} CH_2 = CHCN \right]$$
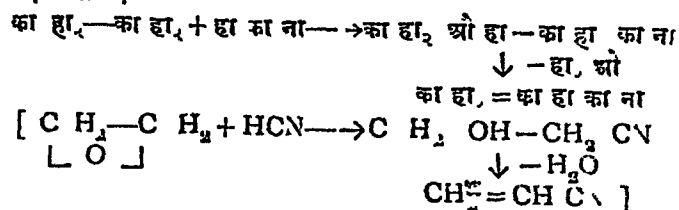
क्लोरीन के साथ प्रूसिक अम्ल की क्रिया से सायनोजन क्लोराइड और इसी प्रकार ब्रोमीन के साथ सायनोजन ब्रोमाइड बनते है,

जो बड़े काम के हैं। अम्लों की उपस्थिति में प्रूसिक अम्ल जल के १ या २ अणु लेकर फार्मेमाइड ($HCONH_2$) या अमोनियम फार्मेट ($HCOONH_4$) बनाता है। तथा इसके जल अपघटन से फार्मिक अम्ल ($HCOOH$) बनता है। इसके हाइड्रोजनीकरण या अपचयन से मेथिल एमिन (CH_3NH_2) बनता है।

धात्विक सायनाइड — अधिकांश अभिक्रियाओं में सायनाइड मूलक (—CN) एकसंयोजी अधात्विक तत्व का सा व्यवहार करता है। जिस प्रकार धातुओं के हैलाइड होते हैं, उसी प्रकार धातुओं के सायनाइड भी होते हैं। क्षारीय धातुओं के सायनाइडों, जैसे सोडियम या पोटैशियम सायनाइड में यह समानता अधिक स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त सायनोजन मूलक जटिल यौगिक (complex compound) भी बनाता है, जैसे पोटैशियम फेरोसायनाइड, [$K_4Fe(CN)_6$]। आठवें वर्ग की धातुओं में तथा संक्रमण (transitional) धातुओं में जटिल सायनाइड बनाने की क्षमता बहुत अधिक है।

सोडियम सायनाइड — व्यवसायों में प्रयुक्त होनेवाले प्रूसिक अम्ल के लवणों में सोडियम सायनाइड प्रमुख है। शुद्ध अवस्था में यह कास्टनर (Castner) विधि में धात्विक सोडियम को अमोनिया तथा कोयले पर अभिक्रिया से प्राप्त किया जाता है। इसे, प्रूसिक अम्ल को सोडियम हाइड्रॉक्साइड विलयन में अवशोषित करके भी बनाया जा सकता है, पर इस प्रकार प्राप्त सोडियम सायनाइड कम शुद्ध होता है। प्राप्त लवण, सो का ना २हा२औ [$NaCN, 2H_2O$], जल, ऐल्कोहॉल तथा अनार्द्र अमोनिया में विलेय होता है तथा इसका गलनांक ५६३·७° सें० है। जलीय विलयन में यह अपघटित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रूसिक अम्ल तथा सोडियम हाइड्रॉक्साइड प्राप्त होते हैं

सो का ना + हा₂ औ → सो औ हा + हा का ना

$$[NaCN + H_2O \rightarrow NaOH + HCN]$$
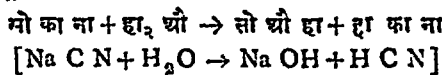
सोडियम सायनाइड के जलीय विलयन के गरम करने पर इसके अपघटन से सोडियम फॉर्मेट तथा अमोनिया प्राप्त होते हैं।

सो का ना + २ हा₂ औ → हा का औ औ सो + ना हा₃

$$[NaCN + 2H_2O \rightarrow HCOONa + NH_3]$$
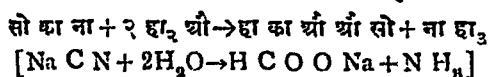
इसी प्रकार पोटैशियम सायनाइड भी प्राप्त हो सकता है। कार्बनिक रसायन की क्रियाओं में प्रूसिक अम्ल के इन दोनों लवणों का विशेष महत्व है।

कैल्सियम सायनाइड — इस लवण का व्यावसायिक महत्व, कैल्सियम सायनाइड द्वारा इसके निर्माण के कारण बहुत बढ़ गया है। शुद्ध अवस्था में यह सफेद चूर्ण के रूप में होता है और धूमक (Fumigants) के रूप में इसका बहुत प्रयोग होता है।

कुछ अन्य धात्विक सायनाइड, जैसे क्यूप्रससायनाइड, सिल्वर-सायनाइड तथा जिंकसायनाइड अनेक व्यवसायों तथा रासायनिक क्रियाओं में काम आते हैं।

संकर सायनाइड — पोटैशियम फेरोसायनाइड पो₄ लो(का ना)₆ [$K_4Fe(CN)_6$] तथा पोटैशियम फेरीसायनाइड पो₃ लो (का ना)₆ [$K_3Fe(CN)_6$] प्रूसिक अम्ल के संकर लवण हैं, जो रासायनिक विश्लेषण में, प्रशियन नील बनाने में, रजक उद्योगों में तथा आयरन सायनाइड नील नामक वर्णकों (pigments) में बड़ा महत्व रखते हैं।

प्रूसिक अम्ल की विषैली प्रकृति — प्रूसिक अम्ल तथा इसके लवण, जैसे पोटैशियम सायनाइड, बहुत विषैले पदार्थ हैं। ये बहुत ही कम मात्रा में भी घातक सिद्ध होते हैं, जो कोशिकीय ऑक्सीकरण क्रिया के अवरोधन के कारण होता है। इस विष के लक्षण शिरोभ्रमण (dizziness), मतली (nausea), लड़खड़ाना (staggering), बेहोशी तथा अंत में मृत्यु है। इस विष के प्रारंभिक उपचार के लिये रोगी को खुली हवा में लिटाकर गरम रखना चाहिए। यदि साँस बंद हो गई हो, तो एक रूमाल में कुछ बूँदें एमिल नाइट्राइट लेकर नाक में लगभग ३० सेकंड के लिये रखना चाहिए या अमोनिया एरोमैटिक स्पिरिट सुँघाना चाहिए। यदि रोगी को होश हो तो उसे एक प्रति शत सोडियम थायोसल्फेट या [illegible] मुख द्वारा प्रति १५ मिनट में देना चाहिए, जब तक कि वमन न होने लगे। बेहोश रोगी को मुख से कुछ न देना चाहिए। यह विष इतना शीघ्र होता है कि कोई चिकित्सा ही [illegible] पाता है और मृत्यु बहुत जल्द हो जाती है।

विनाशी कीट नियंत्रण — साधारण कीटों तथा विनाशी कीटों के नियंत्रण के लिये प्रूसिक अम्ल का प्रयोग सबसे पहले सन् १८८६ में कैलीफोर्निया में नारंगी जाति के पेड़ों में विनाशीकीट मारक के रूप में ज्ञात हुआ था। गोदामों, जहाजों, रेलों आदि में जहाँ सामान भरा रहता है, इसका उपयोग धूमक के रूप में किया जाता है। इस कार्य के लिये प्रूसिक अम्ल लाह के डब्बों में भरा रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य रूपों में भी इसका उपयोग किया जाता है। कैल्सियम सायनाइड का विनाशीकीट मारक के रूप में प्रयोग किया जाता है, जो हवा की नमी के द्वारा प्रूसिक अम्ल का वाष्प देता है। चूहे, गिलहरी आदि के मारने में भी कैल्सियम सायनाइड का प्रयोग करते हैं। चींटी, दीमक आदि के घोंसलों को कैल्सियम सायनाइड द्वारा धूमित करके नष्ट किया जा सकता है। अनाज के गोदामों के धूमीकरण में भी कैल्सियम सायनाइड का उपयोग होता है। [रा० दा० ति०]

प्रेगल् फ्रिट्ज (Pregl Fritz, सन् १८६९–१९३०) ऑस्ट्रिया वासी रसायनविद् थे। इनका जन्म ऑस्ट्रिया के लाइबाख नगर में हुआ था। इसी नगर में शिक्षा पाने के उपरांत उन्होंने ग्राट्स (Graz) विश्वविद्यालय से एम० डी० की डिग्री प्राप्त की और वहीं के शरीर क्रियाविज्ञान संस्थान में सहायक प्राध्यापक नियुक्त हो गए। प्रारंभ से ही उनका झुकाव रसायन शास्त्र की ओर था तथा पित्ताम्ल संबंधी अनुसंधानों से इनकी रुचि उस दिशा में बढ़ती गई। सन् १९०४ में ये जर्मनी गए। वहाँ कुछ समय विल्हेल्म ऑस्टवाल्ड (सन् १८५३-१९३२) की संगति में भौतिक रसायन का अध्ययन करने के पश्चात् ये बर्लिन गए, जहाँ एमिल फिशर का प्रभाव इनपर पड़ा।

ग्राट्स विश्वविद्यालय में लौटने पर ये चिकित्सा रसायन संस्थान में प्रोफेसर हो गए तथा इन्होंने ऐल्बुमिनी वस्तुओं और पित्ताम्लों के विश्लेषण का कार्य आरंभ किया। सन् १९१० से १९१३ तक ये इंसब्रुक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। इसी समय इन्होंने सूक्ष्म विश्लेषण (micro analysis) के क्षेत्र में मार्गदर्शक कार्य किया। कार्बनिक रसायन संबंधी शोधकार्य में शुद्ध पदार्थ अत्यल्प मात्रा में मिलते थे। इसलिये सूक्ष्म मात्राओं का विश्लेषण करने की ऐसी रीतियों का इन्होंने आविष्कार किया, जिनमें केवल तीन से पाँच मिलिग्राम पदार्थ ही सब

प्रकार की मापों के लिये यथेष्ट होता था। आपने सूक्ष्म विश्लेषण विधियो का एजाइम, सीरम (serum) एव पित्त अम्ल सवधी अनुसधानो मे खूब उपयोग किया तथा दिखाया कि न्यायालयो के कार्यों मे उपयोगी विश्लेषण के लिये, जिसमे जहरीले ऐल्केलॉइडो की न्यूनातिन्यून मात्राओ का मापन आवश्यक होता है, उनकी विधियो का व्यवहार सापेक्ष सरलता से किया जा सकता है।

रासायनिक सूक्ष्म विश्लेषण की विधियो के विकास ने अकार्वनिक तत्वविश्लेषण की प्रगति मे महत्व का योग दिया। ये विधियाँ शुद्ध विज्ञान, शरीरक्रिया विज्ञान, चिकित्सा तथा उद्योग से सवधित अनेक प्रकार के अनुसधानो के क्षेत्र मे अनिवार्य हो गई। प्रेगल् ने तत्वो के समूहो के मापन की कई सूक्ष्म विधियो का तथा एक सुग्राही सूक्ष्ममापी तुला का भी अविष्कार किया। सन् १९१७ मे इन्होने 'अकार्वनिक मात्रामूलक सूक्ष्मविश्लेषण' नामक ग्र थ जर्मन भाषा मे लिखा, जिसका अग्रेजी और फ्रेंच भाषा मे भी अनुवाद हुआ। चिकित्सा शास्त्र सवधी कई व्यावहारिक समस्याओ का हल आपने ढूँढ निकाला, जैसे किएवन की उपस्थिति की परीक्षा के लिये ऐब्डर हैल्डैन अपोहन विधि निकाली तथा वृक्को की कार्यक्षमता का पता लगाने के लिये एक सरल रीति का आविष्कार किया।

सूक्ष्म विश्लेषण सवधी इनके कार्य के लिये वियना की ऐकैडेमी ऑव सायस ने सन् १९१४ मे इन्हें लीवेन पुरस्कार देकर समानित किया तथा गटिंजेन के विश्वविद्यालय ने समान मे फिलॉसोफी के डाक्टर की उपाधि प्रदान की। सन् १९२३ मे अकार्वनिक पदार्थो के सूक्ष्म विश्लेषण की विधि के आविष्कार के लिये इन्हे रसायनविज्ञान सवधी नोवेल पुरस्कार मिला। [भ० दा० व०]

प्रेत तथा प्रेतसंस्कार प्रेत की कल्पना केवल भारतीय सस्कृति मे ही नही, वरन् ससार के सभी देशो और सस्कृतियो मे पाई जाती है। प्रेत शब्द के अन्य कई समानार्थी शब्द हमारे देश मे प्रचलित हैं, जैसे भूत, पिशाच, ब्रह्म, चुडैल, दैत्य इत्यादि। यद्यपि इन शब्दो के अर्थों मे थोडा बहुत भेद है तथापि इन सभी के पीछे यह विश्वास है कि शरीरधारियो के देहात के वाद उनकी आत्मा इधर उधर भटकती रहती है। ऐसी आत्माओ को ही प्रेत की सज्ञा दी जाती है। प्रेत शब्द प्र+इत दो शब्दो के सयोग से वना है। इसका अर्थ है 'वह जो चला गया', इसी प्रकार भूत शब्द का अर्थ 'वीता हुआ' होता है। जब किसी मद्यप, पागल, अपराधी या अत्याचारी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसके प्रेत को पिशाच कहते है। ब्राह्मण के प्रेत को ब्रह्म तथा स्त्रियो के प्रेत को चुडैल कहा जाता है।

प्रेतकल्पना का मूल आधार जीववाद (Animism) है (दे० 'सर्वात्मवाद')। इसके अनुसार जीव का अस्तित्व शरीर से भिन्न होता है और देहात के पश्चात् वह अदृश्य रूप मे इधर उधर भटकता रहता है। इसे ही प्रेत कहा जाता है। प्रेत का स्वभाव प्राय प्रतिशोधात्मक माना जाता है।

ससार की अन्य सस्कृतियो मे प्रेत सवधी वहुत सी कल्पनाएँ प्रचलित हैं। बैंक द्वीप के रहनेवाले प्रेत को वी (vui) कहते हैं। इन लोगो का विश्वास है कि वी मे यद्यपि चिंतन शक्ति रहती है तथापि इनमे स्वरूप का अभाव रहता है। ये स्वरूप धारण कर सकते हैं। फिर भी ये अदृश्य ही रहते है। मरे हुए व्यक्ति इनका दर्शन कर सकते है।

असीरियावासी (Assyrians) प्रेत को एडिमू (Edimmu) कहते है। एडिमू अकाल मृत्यु के कारण वनते है। प्रेतो की भाँति एडिमू लोगो को डराते और सताते है। प्रेतपीडित व्यक्तियो को ओझा (Shamans) की सहायता से प्रेतमुक्त किया जाता है। असीरियावासी सात प्रकार के प्रेतो मे विश्वास करते है जो निम्नलिखित हैं —

१—एडिमू (Edimmu), २—उटुक्कू (Utukku), ३—गालू (Gallu), ४—राबिसू (Rabisu), ५—लीलू (Lilu), ६—लिलीतू (Lilitu), ७—आरदतलिली (Ardat Lili)।

चीनी लोग प्रेतो को क्वी (Kwi) कहते हैं। चीनियो का विश्वास है कि क्वी लोग रात्रि मे घूमते फिरते है। मिस्र मे प्रेतो को वियू या खू (Khu) कहते हैं। खू वियू की तुलना मे अधिक घातक माने जाते है। जापानी लोग प्रेतो को ओनी (Oni) कहते है। उनका विश्वास है कि प्रेतो की तीन आँखें होती है। उनकी जीभ वाहर लपलपाती रहती है और उन्हे केवल आधी रात मे देखा जा सकता है। इस्लाम धर्मावलवियो का विश्वास है कि जिन्न या शैतान योनि होती है। इनकी विशेषता यह है कि ये केवल एक तत्व के वने होते हैं। पारसी लोग प्रेतो को देव और प्रेतिनियो को द्रूजेज कहते हैं। ये शरीरधारी नही होते। अहरीमन प्रेतो का मुखिया माना जाता है। तिव्वत मे प्रेतो को ईहा (Iha) कहते हैं।

भारतीय पुराणो के अनुसार प्रेतो का रग काला, स्वरूप विकराल और पैर की उँगलियाँ पीछे रहती हैं। ये नकियाकर वोलते हैं और इनकी छाया नही पडती। मृत्यु के वाद मनुष्य का केवल लिंग शरीर मात्र रह जाता है। जब उसके लिये पिंड आदि दिया जाता है तो उसे प्रेतशरीर प्राप्त होता है। प्रेतशरीर को भोगशरीर भी कहते है। जब तक किसी व्यक्ति को कर्मानुसार स्वर्ग या नरक नही मिल जाता, तब तक वह प्रेतावस्था मे ही माना जाता है। पौराणिक विश्वास के अनुसार कुछ निषिद्ध कर्मों के कारण ही व्यक्तियो को प्रेतयोनि मे जाना पडता है। निषिद्ध कर्मों मे ब्राह्मण की निंदा, माता पिता का निरादर, कन्याविक्रय, कुरुक्षेत्र मे दान लेना, गोवध करना, चोरी करना, शराव, मट्ठा, दूध, दही आदि का विक्रय करना मुख्य हैं। ऐसा विश्वास है कि प्रेत लोग मल मूत्र अथवा अन्य अपवित्र वस्तुओ का सेवन करते हैं और अपवित्र स्थान पर रहते हैं। उनका मुख सुई की तरह पतला और पेट वहुत भारी होता है। इसलिये वे सर्वदा क्षुधा से पीडित रहते हैं।

डा० वी० एल० आत्रेय के अनुसार प्रेत योनि होती है। उनका विश्वास है कि क्रियाओ की सहायता से मृत आत्माओ का आह्वान विशिष्ट किया जा सकता है (दे० पलाचेट)। आजकल परामनोविज्ञान (Para Psychology) मे प्रेतो के अस्तित्व पर शोध कार्य किए जा रहे हैं। आशा है, इन कार्यो से लोगो को प्रेतो के विषय मे विशेष जानकारी हो सकेगी।

प्रेत संस्कार — प्रेत सस्कारो के द्वारा अनेक उद्देश्यो की पूर्ति की जाती है। मृत्यु के वाद पूरक पिंड सस्कार या दर्शपिंड सस्कार द्वारा प्रेतदेह की उत्पत्ति की जाती है। प्रथम पिंड के द्वारा प्रेत का सिर

बनता है। दूसरे के द्वारा कान, आँख तथा नाक, तीसरे के द्वारा गर्दन, कंधा तथा छाती, चौथे के द्वारा मूत्रेंद्रिय, नाभि तथा गुदा, पाँचवें के द्वारा जघा तथा पैर, छठे द्वारा चर्म, सातवें के द्वारा नाडियाँ, आठवें के द्वारा दाँत और बाल, नव के द्वारा वीर्य तथा दसवें पिंड के द्वारा सभी अंगों की पूर्ति होती है। मृत्यु के एक वर्ष बाद सपिंडीकरण सस्कार किया जाता है। इस सस्कार द्वारा मृत व्यक्ति प्रेतदेह का परित्याग करके प्रेतयोनि से मुक्त होता है। प्रेतसस्कार करने का अधिकार केवल ज्येष्ठ या कनिष्ठ पुत्र तथा पौत्र को होता है। यदि ज्येष्ठ पुत्र न रहे तभी कनिष्ठ पुत्र प्रेतश्राद्ध कर सकता है और कनिष्ठ पुत्र के भी न रहने पर पौत्र प्रेतश्राद्ध कर सकता है। कर्म-विशेष से प्रेतश्राद्ध होने पर भी लोग प्रेतयोनि में बने रहते हैं। ऐसे प्रेतों को भूत कहते हैं। प्रेतश्राद्ध के लिये कुछ निश्चित तिथियाँ होती हैं। चैत्र, आश्विन, कृष्ण पक्ष, पितृपक्ष इत्यादि प्रेतश्राद्ध के लिये उपयुक्त तिथियाँ मानी जाती हैं। पुराणों में प्रेतत्व को दूर करने के लिये कुछ अन्य सस्कार भी बताए गए हैं जिनमें वृषोत्सर्ग मुख्य है। इस सस्कार को आर्द्यकोदिष्ट श्राद्ध भी कहते हैं। साल भर तक प्रेत के लिये प्रति दिन अन्न तथा जलदान करने को अन्नुवट श्राद्ध कहते हैं। इसमें भी प्रेतत्व समाप्त होता है।

प्रेतबाधा समाप्त करने के लिये गया में प्रेतशिला पर पिंडदान किया जाता है। हिंदुओं की मान्यता है कि ऐसा करने से प्रेतों का उद्धार हो जाता है और प्रेतबाधा समाप्त हो जाती है। गया में एक प्रेतपर्वत भी है जहाँ पर श्राद्ध करने से प्रेतोद्धार होता है। काशी में पिशाचमोचन नामक स्थान पर प्रेतबाधा से पीडित लोगों को मुक्त किया जाता है।

स० ग्र० — हिंदी विश्वकोश (नगेंद्रनाथ वसु) चौदहवाँ भाग, गरुड पुराण, अग्नि पुराण, श्राद्धविवेक, एनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन ऐंड एथिक्स, इट्रोडक्शन टु पैगमाइकोलोजी। [व० त्रि०]

प्रेमचंद (१८८०–१९३६) का जन्म वाराणसी से पाँच मील दूर लमही ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम मुशी अजायब राय था। वे उसी गाँव के पास डाकखाने में काम करते थे। जहाँ जहाँ उनकी बदली होती थी प्रेमचद भी उनके साथ बालपन में जाया करते थे। उनका आरंभिक जीवन बहुत आर्थिक सकट में बीता। उनकी विधिवत् शिक्षा क्वींस कालेज में हुई। उन्होंने सरकारी स्कूल में अध्यापकी कर ली। कुछ दिनों तक वह सब-डिप्टी इस्पेक्टर भी रहे। जिस समय इन्होंने महात्मा गाधी के असहयोग आदोलन के प्रभाव में सरकारी नौकरी छोडी उस समय यह गोरखपुर में नारमल स्कूल के प्रधानाध्यापक थे। १९१९ में इन्होंने प्राइवेट बी० ए० पास किया। इनका विवाह बाल्यकाल में ही हो गया था। किंतु उस पत्नी से यह असतुष्ट थे इसलिये उसे त्याग दिया और उसी साल सन् १९०५ में शिवरानी देवी से विधवा विवाह किया।

पहले यह उर्दू में लिखा करते थे। उस समय उर्दू के दो बहुत उच्च कोटि के मासिक उत्तर प्रदेश में निकलते थे—कानपुर से 'जमाना' तथा प्रयाग से 'अदीब'। उन्हीं दोनों में इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। अदीब' बद हो जाने के बाद से केवल 'जमाना' में इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। पाठकों को इनकी कहानियाँ बहुत रुचीं। आरभ में यह अपने असली नाम धनपत राय से कहानियाँ लिखते थे। इनकी पहली कहानी 'ससार का अनमोल रत्न' बताई जाती है जो जमाना में छपी थी। इनका पहला कहानीसग्रह उर्दू में 'सोजे वतन' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उन कहानियों में ऐसी राष्ट्रीय भावनाएँ व्यक्त की गई थीं कि उस समय की विदेशी सरकार को सहन न हुई। इनको चेतावनी देकर सारी प्रतियाँ उस सग्रह की सरकार ने जब्त कर लीं। इन्होंने अपना नाम कहानियाँ लिखने के लिये प्रेमचद रख लिया और उसी नाम से बराबर लिखने लगे। इसी नाम से यह विख्यात हुए और इनका असली नाम लोग भूल गए। रामदास गौड के कहने से इन्होंने हिंदी में लिखना आरभ किया। पहले उर्दू लिपि में लिखते थे। बाद में अभ्यास हो जाने पर नागरी लिपि में ही लिखने लगे।

सरकारी नौकरी छोडने के बाद यह काशी विद्यापीठ में पढाने लगे। इसके कुछ दिनों बाद कानपुर के 'जमाना' में और उसके बाद ज्ञानमडल वाराणसी से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'मर्यादा' के सपादन विभाग में भी इन्होंने काम किया। इसके पश्चात् कुछ दिन तक लखनऊ से निकलनेवाली पत्रिका 'माधुरी' में रूपनारायण पांडे के साथ काम किया। किंतु इनका स्वतत्र स्वभाव नौकरी के उपयुक्त न था। वाराणसी आकर इन्होंने अपना स्वय साहित्यिक मासिक 'हंस' का प्रकाशन आरभ किया। पत्र अच्छा था किंतु बराबर घाटा हो रहा था इसलिये बद कर देना पडा। 'हस' के सपादनकाल में ही यह बबई एक फिल्म कपनी में काम करने चले गए। इनके पहले उपन्यास 'सेवासदन' का फिल्म बना। फिल्म असफल रहा और फिल्म जगत् के लिये इन्होंने अपने को अननुकूल पाया। ये दुखी होकर वहाँ से लौट आए और फिर 'हस' का सपादन करने लगे। 'हस' बद हो जाने पर राजनीतिक साप्ताहिक पत्र 'जागरण' का प्रकाशन आरभ किया। वह भी न चला। इसके पश्चात् इन्होंने केवल उपन्यास लिखना ही अपना कार्यक्रम रखा।

कहानीकार—प्रेमचद ने अपना साहित्यिक जीवन कहानीलेखन से ही आरभ किया। पहले उनकी कहानियाँ या तो रोमांटिक होती थीं या ऐतिहासिक या बँगला और दूसरी देशी विदेशी भाषाओं का अनुवाद। प्रेमचद ने जनजीवन को अपनी कहानियों का आधार बनाया। साधारण गाँव के लोगों का जीवन, मध्यवर्गीय लोगों का जीवन, साधारण समाज के पात्र, दिन प्रति दिन की घटनाएँ, यही उनकी कहानी के मुख्य तत्व हैं। उनकी लोकप्रियता का यही कारण है। कला तथा टेकनीक की दृष्टि से इनकी कहानियाँ किसी भी देशी या विदेशी कहानी के सामने रखी जा सकती है और वे उन्नीस नहीं उतरेंगी। हिंदी कहानी ससार में उन्होंने क्रांति उपस्थित कर दी और हिंदी कहानीलेखन की दृष्टि से वह एकमात्र मूर्धन्य कलाकार बहुत दिनों तक माने जाते रहे। उनके उपन्यासों की श्रेष्ठता के सबध में दो मत हो सकते हैं किंतु जहाँ तक उनकी कहानी की कला का सबध है, उनकी श्रेष्ठता के सबध में दो मत नहीं हैं। उनकी शैली के अनुगामी हिंदी के सैकडों कहानी लेखक हुए। उनका पहला कहानीसग्रह 'सप्तसरोज' नाम से १९१७ में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद प्रेमपूर्णिमा १९१८, प्रेमपचीसी १९२३, प्रेमप्रसून १९२४, प्रेमद्वादशी १९२६, प्रेमप्रतिमा तथा प्रेमप्रमोद १९२६, प्रेमतीर्थ १९२९, पाँच फूल, प्रेमचतुर्थी, प्रेमप्रतिज्ञा १९२९, सप्तसुमन, प्रेमपचमी १९३०, प्रेरणा तथा समरयात्रा १९३२, पचप्रसून १९३४

प्रमचंद (पृ० ३०)
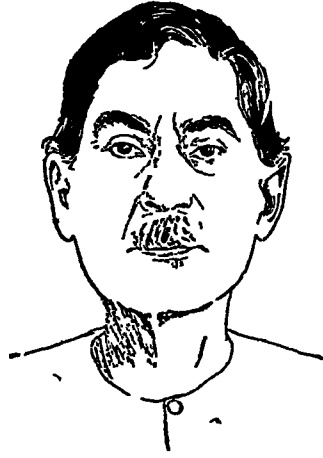
फतेहपुर सिकरी (पृ० ५६)
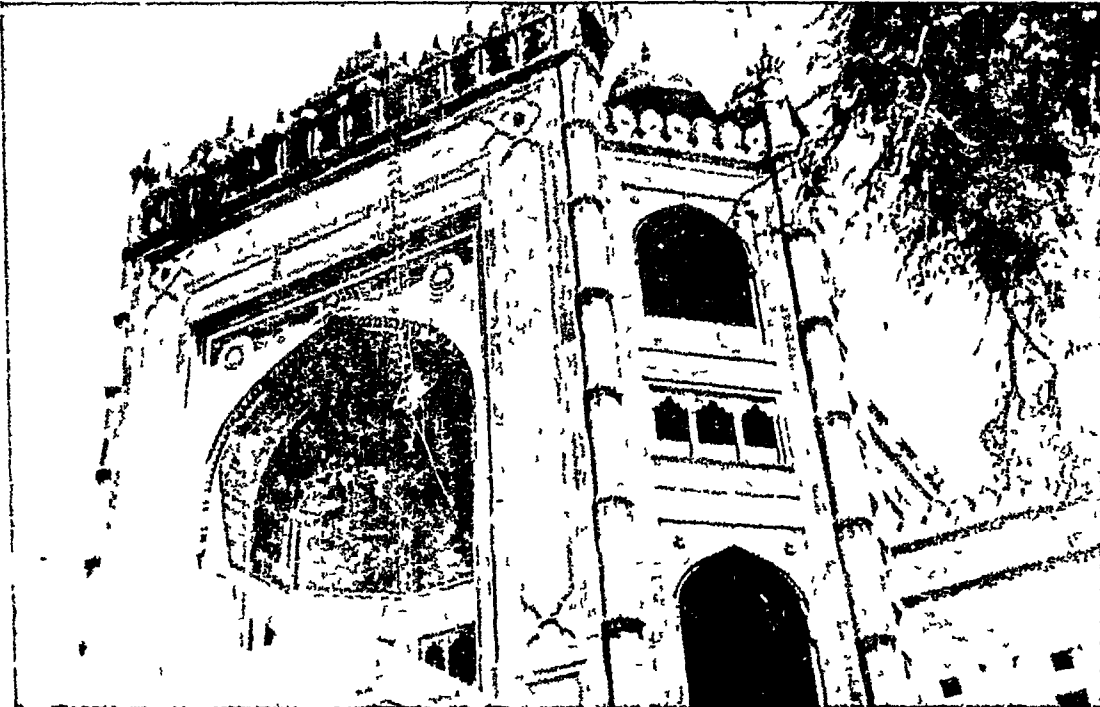
बुलद दरवाजा

[फोटो सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ]

फ्रांस (पृ० १५३-१५६)
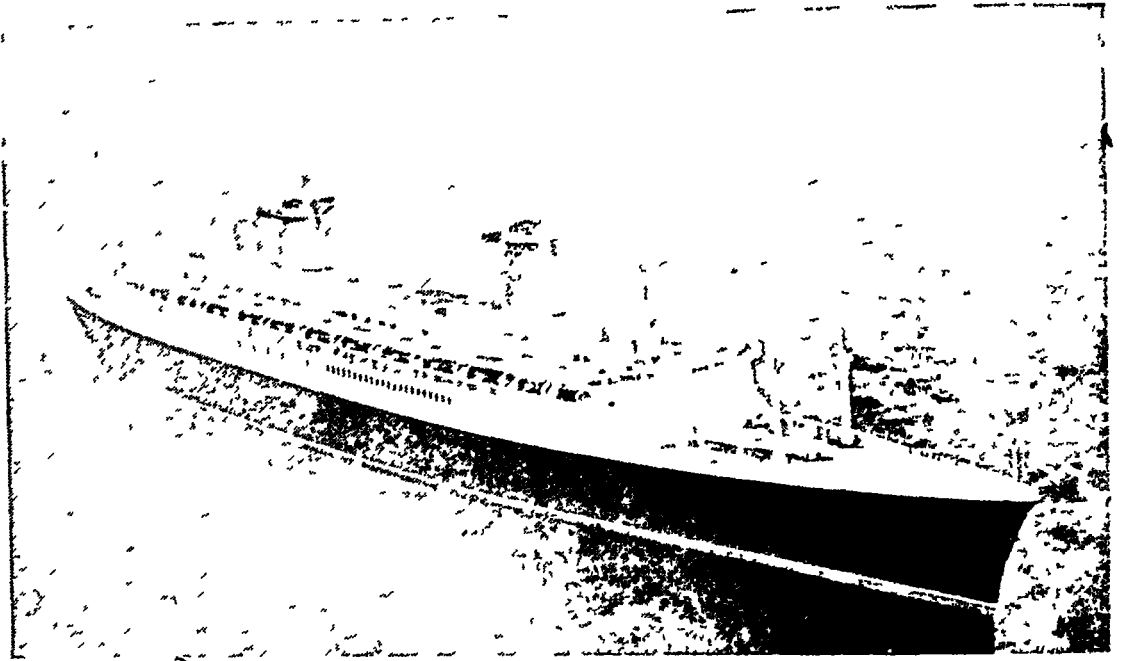
ऊपर—दि ट्रांसऐटलांटिक लाइनर 'दि फ्रांस,
नीचे—बाएँ, दि नेशनल असेंबली बूर्बो,
दाहिनी ओर, दि सीनेट, फ्रांस।
[फोटो फ्रेंच दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]

श्रौर नवजीवन १६३५। इनकी सब कहानियो का सग्रह 'मानसरोवर' नाम से आठ भागो में प्रकाशित हुआ है।

इनकी कहानियो में सजीवता है। पात्रो में स्वाभाविकता है। कथावस्तु चतुर चित्रकार की भाँति चित्रित है श्रौर घटनाएँ ऐसी हैं जिनसे हमारा समाज परिचित है, उसे कल्पना का सहारा नही लेना पडता।।

उपन्यासकार—प्रेमचद ने उपन्यासो की रचना में भी नई जमीन तोडी। समाज की कुरीतियो, तथा विदेशी शासन की दुर्दशा पर उनका ध्यान गया। इनके पहले इधर कम लोगो का ध्यान गया था। यदि, किसी ने कोई इस प्रकार का उपन्यास लिखा भी तो उसकी दृष्टि इतनी गहरी न थी। समस्याश्रो का इतना गभीर अध्ययन किसी श्रौर हिंदी लेखक ने नही किया था। जिस समय प्रेमचद ने उपन्यास लिखना आरभ किया, हमारा देश जागरण की करवटें ले रहा था। आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याएँ मुक्त रूप से हमारे सामने थी। इन सब समस्याश्रो की श्रोर प्रेमचद की दृष्टि गई श्रौर अपने उपन्यासो का उन्हे लक्ष्य बनाया। आलोचको में इस विषय पर विवाद है कि प्रेमचद यथार्थवादी हैं या आदर्शवादी। ऐसा जान पडता है कि प्रेमचद आरभ में आदर्शवादी थे पर धीरे धीरे यथार्थ की श्रोर उन्मुख होते गए हैं — श्रौर 'गोदान'तक पहुँचते पहुँचते यथार्थवादिता अधिक प्रबल हो गई है। फिर भी उनके उपन्यासो की मुख्य विशेषता आदर्शवादिता ही है। उन्होने जिन समस्याश्रो को अपने उपन्यासो में व्यक्त किया है उनका समाधान भी रखा है, यद्यपि प्रत्येक स्थिति में समाधान उपयुक्त नही है श्रौर कही कही असफल भी है।

उनका पहला उपन्यास 'सेवासदन' है। इस सामाजिक उपन्यास मे प्रेमचद की दृष्टि सुधारवादी है। 'सुमन' के जीवन में सुधार करके उससे एक आश्रम प्रतिष्ठापित करके उसके जीवन का परिष्कार करते हैं। 'प्रेमाश्रम' में गाँवो की द्वद्वमय परिस्थिति का चित्रण किया गया है। अत में आदर्श ग्राम की स्थापना करके प्रेमचद ने यथार्थवादिता का ही परिचय नही दिया है, यहाँ वे कुछ उपदेशक मे लगते हैं। देश की समस्याश्रो का जहाँ तक सबध है — प्रेमाश्रम मे प्रेमचद आगे बढे हैं किंतु कला की दृष्टि से सेवासदन अधिक सफल है। 'निर्मला' में आर्थिक कठिनाइयो के कारण अनमेल विवाह का चित्रण है। इस उपन्यास में जिस रूप में निर्मला का चित्रण प्रेमचद ने किया है वह भारतीय नारी के जीवन की दर्दनाक कहानी है। विषम परिस्थिति मे भी प्रेमचद ने भारतीय परिवार के निर्मल चारित्रिक आदर्श की रक्षा की है।

'रगभूमि' उपन्यास सन् १६२५ मे प्रकाशित हुआ। उस समय देश मे सत्याग्रह आरभ हो गया था श्रौर साधारण जनता में तथा किसानो में भी जागृति आरभ हो गई थी। यह उपन्यास गाधीवादी युग का प्रतीक है। इसमें अनेक वर्गो का भी चित्रण है। स्वायत्त शासन पर भी गहरा व्यग है। उस समय के राजनीतिक जीवन की बहुत अच्छी झलक इसमें है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें प्रेमचद ने पहले के उपन्यासो की भाँति किसी रामराज्य की स्थापना करके आदर्श नही उपस्थित किया है। इसमें यदि लबे लबे वर्णन श्रौर कथोपकथन न होते तो यह उपन्यास बहुत ही उच्च कोटि का होता। १६२८ ई० में 'कायाकल्प' उपन्यास लिखा गया। यो तो यह आध्यात्मिक उपन्यास है किंतु इसमे भी राजनीतिक समस्याएँ आ गई है। प्रेमचद का प्रिय विषय किसानो श्रौर मजदूरो का सघर्ष भी इसमे आया है। उन दिनो हिंदू मुस्लिम वैमनस्य जोरो पर था श्रौर प्रमचद ने दिखाया है कि जब तक ख्वाजा महमूद श्रौर यशोदानद जैसे लोग न होगे, देश का कल्याण न होगा।

सन् १६३० मे 'गबन' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसका आधार नारी का आभूषणो के प्रति प्रेम है। इसमे एक छोटे मनोवैज्ञानिक प्रश्न को लेकर सपूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है। यह भी कहा जा सकता है कि इस उपन्यास मे राजनीतिक श्रौर सामाजिक समस्याश्रो के स्थान पर मनोवैज्ञानिक समस्या का चित्रण है। लडको का जीवन, पुलिस की धूर्तता, कलकत्ते का नागरिक जीवन, इसमे दिखाया गया है। इसकी घटनाएँ इलाहाबाद तथा कलकत्ता — दो नगरो मे घटित होती हैं। दो कथाश्रो को एक में मिलाने का प्रयत्न किया गया है। प्रेमचद का सुधारक रूप इसमें कुछ व्यक्त दिखाई देता है। इस उपन्यास की एक विशेषता यह है कि इसकी सभी नारियाँ अपनी दुर्बलताश्रो के साथ हमारे सामने प्रकट होती हैं किंतु ये दुर्बलताएँ कामवासना से प्रेरित नही हैं, अर्थलोलुपता से है। किंतु प्रेमचद ने अपनी आदर्शवादिता से प्रेरित होकर इनका चित्रण ऐसा किया है कि अत मे इन नारियो का परिष्कार हो जाता है। कुछ बातो को यदि छोड दिया जाय तो प्रेमचद का यह बहुत उत्कृष्ट उपन्यास है। इसके पश्चात् १६३२ ई० मे 'कर्मभूमि' प्रकाशित हुआ। इस समय भी देश मे सत्याग्रह आदोलन उग्र रूप मे था। उसका प्रभाव तथा अन्य सामाजिक आदोलनो का प्रभाव इस उपन्यास में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कृषको श्रौर श्रमिको की दीनता, शिक्षा सस्थाश्रो की व्यवसायी नीति, जमीदारो की विलासिता, महथो की स्वेच्छाचारिता तथा राजकर्मचारियो का पतन इसमें चित्रित है। सन् १६३१ में हुए गाधी इर्विन समझौते की भी इसमें झलक है। सन् १६३० में इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' प्रकाशित हुआ जिसमें नागरिक तथा ग्रामीण दो कथाएँ मिलाई गई है। नागरिक कथा गौण है। फिर भी दोनो कथाएँ एक दूसरी से इतनी सबद्ध हैं कि अस्वाभाविक नही जान पडती। यह उपन्यास ग्रामीण जीवन की दीनता श्रौर सामाजिक विषमता को प्रदर्शित करता है। इसमें भारतीय राष्ट्र के जागरण का प्रतिबिंब दिखाई देता है। कुछ लोगो का कहना है कि यह उपन्यास इस युग की प्रतिनिधि रचना है। ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधि 'होरी' है। इस उपन्यास में भी प्रेमचद ने कोई आदर्शवादी समाधान नही उपस्थित किया है।

प्रेमचद का अतिम उपन्यास 'मगलसूत्र' है जो अपूर्ण है।

प्रेमचद के पात्र व्यक्ति नही है, वे प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि है। इनके नारीपात्र अधिक धनी श्रौर सफल हैं। उन्हे हम प्राय आदर्शोन्मुख देखते हैं।

भाषा — प्रेमचद आरभ में उर्दू में ही कहानियाँ लिखते थे। हिंदी में भी उर्दू की शैली का प्रभाव बना रहा श्रौर उर्दू शब्दो का प्रयोग धडल्ले से वह करते रहे। आगे चलकर यह प्रवृत्ति कम होती गई। इनकी भाषा सरल श्रौर मुहावरेदार है। लोकजीवन को

लोकभाषा में प्रस्तुत करने के कारण ही वे सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार हो सके।

स० ग्रं० — जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' प्रेमचंद की उपन्यास कला, रामरतन भटनागर : प्रेमचंद एक अध्ययन, कलाकार प्रेमचंद, शिवरानी देवी : प्रेमचंद घर में। [कृ० प्र० गी०]

प्रेमानंद के काव्य में गुजरात की आत्मा का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। प्राचीन पौराणिक कथाओं और गुजराती जनता की रुचि के बीच जो कुछ व्यवधान शेष रह गया था उसे प्रेमानंद ने अपनी प्रतिभा तथा अद्वितीय आख्यान-रचना-कौशल द्वारा सर्वथा पूर दिया। भालण, नाकर आदि पूर्ववर्ती गुजराती आख्यानकारों ने जिस पथ का निर्माण किया था प्रेमानंद के कृतित्व में वह सर्वाधिक प्रशस्त अवस्था में दृष्टिगत होता है। वे निर्विवाद रूप से गुजराती के श्रेष्ठतम आख्यानकार हैं।

प्रेमानंद मेवाड़ जाति के चौबीसा ब्राह्मण थे और उनका मूल निवासस्थान बडोदरा या बड़ौदा था। उनके पिता कृष्णराम भट्ट पौराणिक वृत्ति से जीवनयापन करते थे और प्रेमानंद को भी उत्तराधिकार में वही वृत्ति मिली। व्यावहारिक दृष्टि से उन्हें पुराण साहित्य का यथेष्ट ज्ञान था। बड़ौदा से सूरत और वहाँ से प्रवासित होकर नंदरबार पहुँचे जहाँ उन्हें देसाई शंकरदास का कृपापात्र बनकर अनेक ग्रंथ लिखने की सुविधा मिली। राजकृपा पाकर प्रेमानंद की काव्य-प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती गई। बाद में साधुसंग से वैष्णव भावना विशेष रूप से जाग्रत हो उठी, परिणामत 'दशम स्कंध' और उसके पश्चात् रचे गए ग्रंथों में राजकृपा का उल्लेख नहीं मिलता। कवि अनन्य भाव से राम का उपासक बन गया। उनके रणयज्ञ तथा विवेक वणझारो का राम का इष्टदेव की तरह स्मरण किया गया है। भालण की तरह प्रेमानंद ने भी कृष्णभक्ति विषयक पदों के अंत में अपने इष्टदेव राम का ही स्मरण किया है। यही नहीं, उन्होंने कृष्ण के लिये सीतापति जैसे शब्दों का भी बराबर प्रयोग किया है। प्रेमानंद के गीतिकाव्य का प्रस्फुटन विशेष रूप से उनके भागवत पर आधारित 'दशम स्कंध' में ही हुआ है।

दशम स्कंध के ५३वें अध्याय के १६५ वें कड़वे तक प्रेमानंद की रचना है, शेष भाग उनके शिष्य सुंदर का रचा हुआ है। इसके अतिरिक्त उनकी कृष्णचरित संबंधी अन्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं — 'रुक्मिणीहरण', 'रुक्मिणीहरण ना सलोको', 'बाललीला', 'व्रजवेलि', 'दाणलीला', 'भ्रमरगीता,' 'भ्रमरपचीसी', 'मान' तथा 'सुदामाचरित'। के० का० शास्त्री के अनुसार प्रेमानंद की २६ कृतियाँ शंकारहित, चार निर्णयरहित तथा १३ ऐसी हैं जिनकी पांडुलिपियाँ अभी तक अप्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त २३ रचनाओं के नाममात्र का उल्लेख नर्मदाशंकर तुलजाशंकर जानी के द्वारा किया गया है। इस प्रकार प्रेमानंद की या उनके नाम पर प्रचलित बहुसंख्यक रचनाएँ सामने आती हैं। 'रोहिदासनिका सत्यभामाख्यान', 'पांचालीप्रसन्नाख्यान' तथा 'तपत्याख्यान' नामक तीन नाटकों को प्रेमानंद कृत सिद्ध करने के लिये कुछ विद्वानों ने भरसक प्रयत्न किया पर वे सफल न हुए। तथापि प्रामाणिक रचनाओं में से पूर्वोल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त जिनका उल्लेख किया जा सकता है उनमें 'ओखाहरण', 'अभिमन्युआख्यान', 'नलाख्यान,' 'चंद्रहासाख्यान', 'मदालसाख्यान,' 'सुधन्वाख्यान,' 'नासिकेतोपाख्यान' आदि आख्यान हैं। 'हुंडी,' 'मामेरु,' तथा 'शामलदास नो' विवाह, नरसी मेहता के जीवन से संबद्ध मुख्य घटनाओं पर आधारित वर्णनात्मक काव्य हैं। 'वामनकथा', 'विष्णुसहस्रनाम' वैष्णव भाव की द्योतक रचनाएँ हैं। 'फुवडनो फजेतो' लोकरुचि की प्रहसनात्मक कृति है। ग्रंथरचना में कवि ने प्रमुख प्रेरणा महाभारत, वाल्मीकि रामायण, भागवत पुराण, मार्कंडेयपुराण तथा अन्य पौराणिक साहित्य से ग्रहण की है। प्रेमानंद में कथाकल्पना की अभूतपूर्व क्षमता थी तथा उनकी वर्णनशक्ति भी अद्वितीय थी।

गुजरात में विविध ऋतुओं, वारों तथा अवसरों पर उनकी अनेक रचनाओं का नियमित रूप से पाठ किया जाता है जिससे कवि की अत्यधिक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

सं० ग्रं० — के० का० शास्त्री : प्रेमानंद, एक अध्ययन।

[ज० गु०]

प्रेरण (Induction) वस्तुत किसी वस्तु के भाव तथा गुण द्वारा उत्पन्न होनेवाले प्रभाव को कहते हैं, जब कि दोनों वस्तुओं का संस्पर्श न हो। इस प्रकार जब कोई वस्तु दूसरी वस्तु से अलग होते हुए भी उसपर अपना प्रभाव आरोपित करती है, तब उसे प्रेरण कहा जाता है। विद्युत् इंजीनियरी में तीन प्रकार के प्रेरण प्रभाव होते हैं

१ विद्युत्स्थैतिक प्रेरण (Electrostatic Induction)

२ चुंबकीय प्रेरण (Magnetic Induction)

३ विद्युच्चुंबकीय प्रेरण (Electromagnetic Induction)

विद्युत्स्थैतिक प्रेरण में कोई वस्तु, निकटवर्ती विद्युच्चालकों पर, आवेश (charge) प्रेरित करती है। जब कोई विद्युत् आवेशित पदार्थ, पृथ्वी से विद्युत्रोधी (insulated) किसी संचालक के निकट आता है, तब चालक के कुछ इलेक्ट्रॉन आवेशित हो जाते हैं और चालक के एक सिरे पर एकत्रित होकर पूरे चालक को ही आवेशित कर देते हैं। यह क्रिया, वास्तव में आवेशित पदार्थ द्वारा प्रेरण से दूसरे विद्युच्चालकों को आवेशित करने की है और विद्युत्स्थैतिक प्रेरण कहलाती है।

चुंबकीय प्रेरण, चुंबकीय क्षेत्र में रखे हुए किसी चुंबकीय पदार्थ द्वारा चुंबकत्व ग्रहण करने की क्रिया है। यदि कोई चुंबकीय पदार्थ किसी दंड चुंबक (bar magnet) के पास लाया जाए, तो उसके ऊपर भी चुंबकीय प्रभाव हो जाएगा।

विद्युच्चुंबकीय प्रेरण, विद्युत् के चुंबकीय गुण का उपयोग कर निकटवर्ती चालक में चुंबकीय प्रभाव का प्रेरण करने की क्रिया है। यदि किसी कुंडली में प्रत्यावर्ती धारा (alternating current) प्रवाहित हो रही हो, तो उसका चुंबकीय क्षेत्र भी धारा के अनुरूप प्रत्यावर्ती प्ररूप का होगा। इस प्रकार चुंबकीय अभिवाह (flux) का रूप भी प्रत्यावर्ती होगा। यह अभिवाह, निकटवर्ती दूसरी कुंडली के चालकों के साथ संबद्ध होकर अपने प्रत्यावर्ती स्वभाव के अनुरूप ही उनमें विद्युद्वाहक बल या वि० वा० ब० (electromotive force or e m f) उत्पन्न करता है। फैरेडे के सिद्धांत के अनुसार, किसी चालक से संबद्ध अभिवाह में परिवर्तन, उसमें वि० वा० ब० की उत्पत्ति करता है, जिसका परिमाण,

अभिवाह परिवर्तन की गति के बराबर होता है। इस प्रकार दोनो कुडलियो मे सस्पर्श न होते हुए भी, और भिन्न परिपथ होते हुए भी, प्रेरण द्वारा दूसरी कुडली मे वि० वा० व० की उत्पत्ति हो जाती है और उसका परिपथ पूर्ण होने की दशा मे धारा भी प्रवाहित होने लगती है। इस धारा को दूसरी कुडली के आर पार एक धारामापी (galvanometer) जोडकर ज्ञात किया जा सकता है। धारामापी का सकेतक कुडली में धारा की व्युत्पत्ति का सकेत करता है। प्रेरित वि० वा० व० को एक सुग्राही विश्लेषण धारामापी (voltameter) द्वारा मापा जा सकता है। यह भी ज्ञात होगा कि वोल्टता का परिमाण, दोनो कुडलियो की लपेट सख्या (number of turns) के अनुपात में है। यदि पहली कुडली में १०० लपेटें हो और दूसरी मे १०००, तो दूसरी कुडली में प्रेरित वोल्टता पहली कुडली में आरोपित वोल्टता से १० गुणा अधिक होगी। विद्युत् इजीनियरी के क्षेत्र में यह सिद्धात बहुत महत्वपूर्ण है और विद्युत् सभरण तत्र (electric supply system) का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण, परिणामित्र (transformer) इसी सिद्धात पर आधारित है। इसके द्वारा कम वोल्टता की विद्युत् शक्ति को अधिक वोल्टता पर परिवर्तित कर दूर दूर तक पारेषित किया जाता है और फिर उसी प्रकार उसे कम वोल्टता पर परिवर्तित कर उपयोग मे लाया जा सकता है।

विद्युच्चुबकीय प्रेरण, दो रूप में हो सकता है। एक तो स्थैतिक रूप में, जैसा ऊपर कहा गया है, जिसमें दोनो कुडलियाँ स्थैतिक होती हैं और वि० वा० व० की उत्पत्ति, अभिवाह बधता (flux linkage) मे परिवर्तन के कारण होती है। ऐसा केवल प्रत्यावर्ती धारा में ही सभव है। यदि पहली कुडली में दिष्ट धारा (direct current) प्रवाहित की जाए तो अभिवाह बधताओ में परिवर्तन का प्रश्न ही

परिणामित्र

इसका कार्य विद्युच्चुबकीय प्रेरण के सिद्धात पर निर्भर है।

क फ्लक्स का मार्ग, ख लोह क्रोड, धा₁ (T_1) प्राथमिक कुडली, धा₂ (T_2) द्वितीयक कुडली, प्र० धा० (A C) = प्रत्यावर्ती विद्युद्धारा, तथा वो (V) वोल्टमीटर।

नही उठता। परतु अभिवाह की दिशा एव परिमाण स्थिर होने पर भी यदि चालक चलनशील हो, तो अभिवाह के काटे जाने के फलस्वरूप, उसमें वि० वा० व० की उत्पत्ति होगी। वस्तुत, अधिकाश विद्युत् मशीनें इसी सिद्धात पर आधारित है। यदि कोई चालक किसी चुबकीय क्षेत्र में घूमता हो, तो उसमें एक वि० वा० व० की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार उत्पन्न हुए वि० वा० व० को गतिकीत प्रेरित वि० वा० व० (Dynamically Induced E M F) कहते है और सभी विद्युज्जनित्र, इस सिद्धात पर आधारित हैं।

प्रेरण के सिद्धात पर केवल वि० वा० व० की ही उत्पत्ति नही होती, वरन् एक विक्रमबल की उत्पत्ति भी हो सकती है। घूर्णी चुबकीय क्षेत्र में चालको पर यह बल क्रियाशील होता है, जो उन्हे घुमा सकता है। प्रेरण मोटर स्पष्टतया इसी सिद्धात पर आधारित है। यह सिद्धात, वस्तुत, विद्युत् ऊर्जा के यात्रिक ऊर्जा मे परिवर्तन और यात्रिक ऊर्जा के विद्युत् ऊर्जा में परिवर्तन को व्यक्त करता है। [रा० कु०]

प्रेरण कुंडली (Induction Coil) कम वोल्टतावाले स्रोत से उच्च वोल्टता प्राप्त करनेवाली एक युक्ति है। इसमे एक क्रोड (core) पर लिपटी दो कुडलियाँ होती हैं, जिन्हे प्राथमिक (primary) और द्वितीयक (secondary) कहते है। प्राथमिक कुडली मे द्वितीयक की अपेक्षा बहुत कम लपेटें होती है। यह कुडली स्विच (switch) द्वारा एक बैटरी से योजित होती है। यह स्विच सपर्क और विच्छेद (make and break) प्रकार का होता है, जिसमे एक कमानी लगी रहती है। कमानी के सिरे पर नरम लोहे का एक सस्पर्शक होता है। सस्पर्शक का सिरा प्लैटिनम धातु का बना होता है, जिससे बार बार आर्क(arc)बनने पर भी सस्पर्शक क्षत न हो। सामान्य रूप मे यह सस्पर्शक दूसरे स्थिर सस्पर्शक से सस्पर्श करता है और इस प्रकार प्राथमिक कुडली का परिपथ पूरा हो जाता है, और उसमे धारा प्रवाहित होती है। धारा प्रवाहित होने से उसके चारो ओर एक क्षेत्र की उत्पत्ति हो जाती है। द्वितीयक कुडली भी इसी क्षेत्र में स्थित है, और इस प्रकार उसके प्रभाव मे है। जब प्राथमिक कुडली का क्षेत्र काफी बढ जाता है, तब स्विच के नर्म लोहे का सस्पर्शक प्राथमिक कुडली के क्रोड की ओर आकर्षित हो जाता है। क्रोड भी नर्म लोहे का बना होता है। सस्पर्शक के क्रोड की ओर खिंच जाने के कारण, उसका स्थिर सस्पर्शक से सस्पर्श टूट जाता है, और इस प्रकार प्राथमिक कुडली की धारा का परिपथ पूरा नही रहता। ऐसा होने से उसमे प्रवाहित होनेवाली धारा भी रुक जाती है। वास्तव मे धारा एकदम शून्य नही हो जाती, वरन् कुडली के प्रेरकत्व (inductance) के कारण उसमे कुछ काल का विलब होता है। धारा द्वारा उत्पन्न चुबकीय क्षेत्र का भी इसी प्रकार निपात (collapse) हो जाता है। परतु ऐसा होने पर, नर्म लोहे का सस्पर्शक भी, क्रोड का आकर्षण समाप्त हो जाने के कारण, अपनी पुरानी स्थिति पर फेंक दिया जाता है। इससे वह फिर स्थिर सस्पर्शक से सस्पर्श करने लगता है। इस प्रकार प्राथमिक कुडली की धारा का परिपथ फिर पूर्ण हो जाता है और बैटरी से धारा फिर प्रवाहित होने लगती है। यह क्रिया बार बार होती रहती है। परिणामस्वरूप, प्राथमिक कुडली की धारा का परिपथ बार बार बनता और टूटता रहता है। इस कारण उसकी धारा द्वारा उत्पन्न क्षेत्र भी आवर्ती रूप मे बढता घटता रहता है। इस प्रकार, अभिवाह भी दूसरी कुडली की लपेट को आवर्ती रूप मे

लोकभाषा में प्रस्तुत करने के कारण ही वे सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार हो सके।

सं० ग्रं० — जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' प्रेमचंद की उपन्यास कला, रामरतन भटनागर प्रेमचंद एक अध्ययन, कलाकार प्रेमचंद, शिवरानी देवी प्रेमचंद घर में। [कृ० प्र० गौ०]

प्रेमानंद के काव्य में गुजरात की आत्मा का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। प्राचीन पौराणिक कथाओं और गुजराती जनता की रुचि के बीच जो कुछ व्यवधान शेष रह गया था उसे प्रेमानंद ने अपनी प्रतिभा एवं अद्वितीय आख्यान-रचना-कौशल द्वारा सर्वथा पूर दिया। भालण, नाकर आदि पूर्ववर्ती गुजराती आख्यानकारों ने जिस पथ का निर्माण किया था प्रेमानंद के कृतित्व में वह सर्वाधिक प्रशस्त अवस्था में दृष्टिगत होता है। वे निर्विवाद रूप से गुजराती के श्रेष्ठतम आख्यानकार हैं।

प्रेमानंद मेवाड़ जाति के चौबीसा ब्राह्मण थे और उनका मूल निवासस्थान वडोदरा या बडौदा था। उनके पिता कृष्णराम भट्ट पौराणिक वृत्ति से जीवनयापन करते थे और प्रेमानंद को भी उत्तराधिकार में वही वृत्ति मिली। व्यावहारिक दृष्टि से उन्हें पुराण साहित्य का यथेष्ट ज्ञान था। बडौदा से सूरत और वहाँ से प्रवासित होकर नंदरबार पहुँचे जहाँ उन्हें देसाई शंकरदास का कृपापात्र बनकर अनेक ग्रंथ लिखने की सुविधा मिली। राजकृपा पाकर प्रेमानंद की काव्य-प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती गई। बाद में साधुसंग से वैष्णव भावना विशेष रूप से जाग्रत हो उठी, परिणामत 'दशम स्कंध' और उसके पश्चात् रचे गए ग्रंथों में राजकृपा का उल्लेख नहीं मिलता। कवि अनन्य भाव से राम का उपासक बन गया। उसके रणयज्ञ तथा विवेक वणझारो का राम का इष्टदेव की तरह स्मरण किया गया है। भालण की तरह प्रेमानंद ने भी कृष्णभक्ति विषयक पदों के अंत में अपने इष्टदेव राम का ही स्मरण किया है। यही नहीं, उन्होंने कृष्ण के लिये सीतापति जैसे शब्दों का भी बराबर प्रयोग किया है। प्रेमानंद के गीतिकाव्य का प्रस्फुटन विशेष रूप से उनके भागवत पर आधारित 'दशम स्कंध' में ही हुआ है।

दशम स्कंध के ५३वें अध्याय के १६५ वें कडवे तक प्रेमानंद की रचना है, शेष भाग उनके शिष्य सुंदर का रचा हुआ है। इसके अतिरिक्त उनकी कृष्णचरित संबंधी अन्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं — 'रुक्मिणीहरण', 'रुक्मिणीहरण ना सलोको', 'बाललीला', 'व्रजवेलि', 'दाणलीला', 'भ्रमरगीता,' 'भ्रमरपचीसी', 'मास' तथा 'सुदामाचरित'। के० का० शास्त्री के अनुसार प्रेमानंद की २६ कृतियाँ शंकारहित, चार निर्णयरहित तथा १३ ऐसी हैं जिनकी पांडुलिपियाँ अभी तक अप्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त २३ रचनाओं के नाममात्र का उल्लेख छगनलाल बुलाकीराम जानी के द्वारा किया गया है। इस प्रकार प्रेमानंद की या उनके नाम पर प्रचलित बहुसंख्यक रचनाएँ सामने आती हैं। 'रोपदर्शिका सत्यभामाख्यान', 'पांचालीप्रसन्नाख्यान' तथा 'तपत्याख्यान' नामक तीन नाटकों को प्रेमानंद कृत सिद्ध करने के लिये कुछ विद्वानों ने भरसक प्रयत्न किया पर वे सफल न हुए। शंकारहित प्रामाणिक रचनाओं में से पूर्वोल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त जिनका उल्लेख किया जा सकता है उनमें 'ओखाहरण', 'अभिमन्युआख्यान', 'नलाख्यान,' 'चंद्रहासाख्यान', 'मदालसाख्यान,' 'सुधन्वाख्यान,' 'नासिकेतोपाख्यान' आदि आख्यान हैं। 'हुंडी,' 'मामेरु,' तथा 'शामलदास नो' विवाह, नरसी मेहता के जीवन से संबद्ध मुख्य घटनाओं पर आधारित वर्णनात्मक काव्य हैं। 'वामनकथा', 'विष्णुसहस्रनाम' वैष्णव भाव की द्योतक रचनाएँ हैं। 'फुवडनो फजेतो' लोकरुचि की प्रहसनात्मक कृति है। ग्रंथरचना में कवि ने प्रमुख प्रेरणा महाभारत, वाल्मीकि रामायण, भागवत पुराण, मार्कंडेयपुराण तथा अन्य पौराणिक साहित्य से ग्रहण की है। प्रेमानंद में कथाकल्पना की अभूतपूर्व क्षमता थी तथा उनकी वर्णनशक्ति भी अद्वितीय थी।

गुजरात में विविध ऋतुओं, वारों तथा अवसरों पर इनकी अनेक रचनाओं का नियमित रूप से पाठ किया जाता है जिसमें कवि की अत्यधिक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

सं० ग्रं० — के० का० शास्त्री - प्रेमानंद, एक अध्ययन। [ज० गु०]

प्रेरण (Induction) वस्तुत किसी वस्तु के भाव तथा गुण द्वारा उत्पन्न होनेवाले प्रभाव को कहते हैं, जब कि दोनों वस्तुओं का संस्पर्श न हो। इस प्रकार जब कोई वस्तु दूसरी वस्तु से अलग होते हुए भी उसपर अपना प्रभाव आरोपित करती है, तब उसे प्रेरण कहा जाता है। विद्युत् इंजीनियरी में तीन प्रकार के प्रेरण प्रभाव होते हैं

१ विद्युत्स्थैतिक प्रेरण (Electrostatic Induction)
२ चुंबकीय प्रेरण (Magnetic Induction)
३ विद्युच्चुंबकीय प्रेरण (Electromagnetic Induction)

विद्युत्स्थैतिक प्रेरण में कोई वस्तु, निकटवर्ती विद्युच्चालकों पर, आवेश (charge) प्रेरित करती है। जब कोई विद्युत् आवेशित पदार्थ, पृथ्वी से विद्युत्रोधी (insulated) किसी संचालक के निकट आता है, तब चालक के कुछ इलेक्ट्रॉन आवेशित हो जाते हैं और चालक के एक सिरे पर एकत्रित होकर पूरे चालक को ही आवेशित कर देते हैं। यह क्रिया, वास्तव में आवेशित पदार्थ द्वारा प्रेरण से दूसरे विद्युच्चालकों को आवेशित करने की है और विद्युत्-स्थैतिक प्रेरण कहलाती है।

चुंबकीय प्रेरण, चुंबकीय क्षेत्र में रखे हुए किसी चुंबकीय पदार्थ द्वारा चुंबकत्व ग्रहण करने की क्रिया है। यदि कोई चुंबकीय पदार्थ किसी दंड चुंबक (bar magnet) के पास लाया जाए, तो उसके ऊपर भी चुंबकीय प्रभाव हो जाएगा।

विद्युच्चुंबकीय प्रेरण, विद्युत् के चुंबकीय गुण का उपयोग कर निकटवर्ती चालक में चुंबकीय प्रभाव का प्रेरण करने की क्रिया है। यदि किसी कुंडली में प्रत्यावर्ती धारा (alternating current) प्रवाहित हो रही हो, तो उसका चुंबकीय क्षेत्र भी धारा के अनुरूप प्रत्यावर्ती प्ररूप का होगा। इस प्रकार चुंबकीय अभिवाह (flux) का रूप भी प्रत्यावर्ती होगा। यह अभिवाह, निकटवर्ती दूसरी कुंडली के चालकों के साथ संबद्ध होकर अपने प्रत्यावर्ती स्वभाव के अनुरूप ही उनमें विद्युद्वाहक बल या वि० वा० ब० (electromotive force or e m f) उत्पन्न करता है। फैरेडे के सिद्धांत के अनुसार, किसी चालक से संबद्ध अभिवाह में परिवर्तन, उसमें वि० वा० ब० की उत्पत्ति करता है, जिसका परिमाण,

अभिवाह परिवर्तन की गति के बराबर होता है। इस प्रकार दोनो कुडलियो मे सस्पर्श न होते हुए भी, और भिन्न परिपथ होते हुए भी, प्रेरण द्वारा दूसरी कुडली मे वि० वा० व० की उत्पत्ति हो जाती है और उसका परिपथ पूर्ण होने की दशा मे धारा भी प्रवाहित होने लगती है। इस धारा को दूसरी कुडली के आर पार एक धारामापी (galvanometer) जोडकर ज्ञात किया जा सकता है। धारामापी का सकेतक कुडली में धारा की व्युत्पत्ति का सकेत करता है। प्रेरित वि० वा० व० को एक सुग्राही विश्लेषण धारामापी (voltameter) द्वारा मापा जा सकता है। यह भी ज्ञात होगा कि वोल्टता का परिमाण, दोनो कुडलियो की लपेट सख्या (number of turns) के अनुपात में है। यदि पहली कुडली में १०० लपेटें हो और दूसरी मे १०००, तो दूसरी कुडली में प्रेरित वोल्टता पहली कुडली में आरोपित वोल्टता से १० गुणा अधिक होगी। विद्युत् इजीनियरी के क्षेत्र में यह सिद्धात बहुत महत्वपूर्ण है और विद्युत् सभरण तत्र (electric supply system) का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण, परिणामित्र (transformer) इसी सिद्धात पर आधारित है। इसके द्वारा कम वोल्टता की विद्युत् शक्ति को अधिक वोल्टता पर परिवर्तित कर दूर दूर तक पारेषित किया जाता है और फिर उसी प्रकार उसे कम वोल्टता पर परिवर्तित कर उपयोग मे लाया जा सकता है।

विद्युच्चुबकीय प्रेरण, दो रूप में हो सकता है। एक तो स्थैतिक रूप में, जैसा ऊपर कहा गया है, जिसमें दोनो कुडलियाँ स्थैतिक होती हैं और वि० वा० व० की उत्पत्ति, अभिवाह बधता (flux linkage) में परिवर्तन के कारण होती है। ऐसा केवल प्रत्यावर्ती धारा में ही सभव है। यदि पहली कुडली में दिष्ट धारा (direct current) प्रवाहित की जाए तो अभिवाह बधताओ में परिवर्तन का प्रश्न ही

परिणामित्र

इसका कार्य विद्युच्चुबकीय प्रेरण के सिद्धात पर निर्भर है।

क फ्लक्स का मार्ग, ख लोह क्रोड, धा१ (T_1) प्राथमिक कुडली, धा२ (T_2) द्वितीयक कुडली, प्र० धा० (A C) = प्रत्यावर्ती विद्युद्धारा, तथा वो (V) वोल्टमीटर।

नही उठता। परतु अभिवाह की दिशा एव परिमाण स्थिर होने पर भी यदि चालक चलनशील हो, तो अभिवाह के काटे जाने के फलस्वरूप, उसमें वि० वा० व० की उत्पत्ति होगी। वस्तुत, अधिकाश विद्युत् मशीनें इसी सिद्धात पर आधारित हैं। यदि कोई चालक किसी चुबकीय क्षेत्र में घूमता हो, तो उसमे एक वि० वा० व० की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार उत्पन्न हुए वि० वा० व० को गतिकीत प्रेरित वि० वा० व० (Dynamically Induced E M F) कहते हैं और सभी विद्युज्जनित्र, इस सिद्धात पर आधारित हैं।

प्रेरण के सिद्धात पर केवल वि० वा० व० की ही उत्पत्ति नही होती, वरन् एक विभ्रमबल की उत्पत्ति भी हो सकती है। घूर्णी चुबकीय क्षेत्र में चालको पर यह बल क्रियाशील होता है, जो उन्हे घुमा सकता है। प्रेरण मोटर स्पष्टतया इसी सिद्धात पर आधारित है। यह सिद्धात, वस्तुत, विद्युत् ऊर्जा के यात्रिक ऊर्जा मे परिवर्तन और यात्रिक ऊर्जा के विद्युत् ऊर्जा मे परिवर्तन को व्यक्त करता है। [रा० कु०]

प्रेरण कुंडली (Induction Coil) कम वोल्टतावाले स्रोत से उच्च वोल्टता प्राप्त करनेवाली एक युक्ति है। इसमे एक क्रोड (core) पर लिपटी दो कुडलियाँ होती हैं, जिन्हे प्राथमिक (primary) और द्वितीयक (secondary) कहते है। प्राथमिक कुडली मे द्वितीयक की अपेक्षा बहुत कम लपेटें होती हैं। यह कुडली स्विच (switch) द्वारा एक बैटरी से योजित होती है। यह स्विच सपर्क और विच्छेद (make and break) प्रकार का होता है, जिसमे एक कमानी लगी रहती है। कमानी के सिरे पर नरम लोहे का एक सस्पर्शक होता है। सस्पर्शक का सिरा प्लैटिनम धातु का बना होता है, जिससे बार बार आर्क(arc)बनने पर भी सस्पर्शक क्षत न हो। सामान्य रूप मे यह सस्पर्शक दूसरे स्थिर सस्पर्शक से सस्पर्श करता है और इस प्रकार प्राथमिक कुडली का परिपथ पूरा हो जाता है, और उसमे धारा प्रवाहित होती है। धारा प्रवाहित होने से उसके चारो ओर एक क्षेत्र की उत्पत्ति हो जाती है। द्वितीयक कुडली भी इसी क्षेत्र मे स्थित है, और इस प्रकार उसके प्रभाव मे है। जब प्राथमिक कुडली का क्षेत्र काफी बढ जाता है, तब स्विच के नर्म लोहे का सस्पर्शक प्राथमिक कुडली के क्रोड की ओर आकर्षित हो जाता है। क्रोड भी नर्म लोहे का बना होता है। सस्पर्शक के क्रोड की ओर खिच जाने के कारण, उसका स्थिर सस्पर्शक से सस्पर्श टूट जाता है, और इस प्रकार प्राथमिक कुडली की धारा का परिपथ पूरा नहीं रहता। ऐसा होने से उसमें प्रवाहित होनेवाली धारा भी रुक जाती है। वास्तव मे धारा एकदम शून्य नही हो जाती, वरन् कुडली के प्रेरकत्व (inductance) के कारण उसमे कुछ काल का विलब होता है। धारा द्वारा उत्पन्न चुबकीय क्षेत्र का भी इसी प्रकार निपात (collapse) हो जाता है। परतु ऐसा होने पर, नर्म लोहे का सस्पर्शक भी, क्रोड का आकर्षण समाप्त हो जाने के कारण, अपनी पुरानी स्थिति पर फेंक दिया जाता है। इससे वह फिर स्थिर सस्पर्शक से सस्पर्श करने लगता है। इस प्रकार प्राथमिक कुडली की धारा का परिपथ फिर पूर्ण हो जाता है और बैटरी से धारा फिर प्रवाहित होने लगती है। यह क्रिया बार बार होती रहती है। परिणामस्वरूप, प्राथमिक कुडली की धारा का परिपथ बार बार बनता और टूटता रहता है। इस कारण उसकी धारा द्वारा उत्पन्न क्षेत्र भी आवर्ती रूप में बढता घटता रहता है। इस प्रकार, अभिवाह भी दूसरी कुडली की लपेट को आवर्ती रूप मे

फाग्ता है और उसमे वि० वा० ब० की उत्पत्ति हो जाती है। चूँकि यह प्रेरित वोल्टता, दोनो कुडलियो की लपेट सख्या के अनुपात में होती है, अत प्राथमिक वोल्टता कम होने पर भी अति उच्च वोल्टता का प्रेरण हो जाता है। विचारणीय है कि यह क्रिया धारा
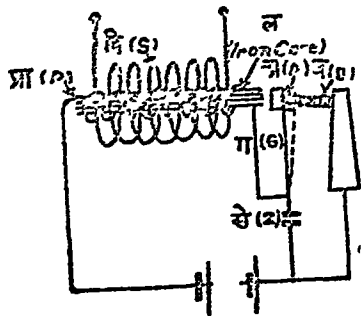
प्रेरण कुंडली

प्रा (P) प्राथमिक कुडली, द्वि (S) द्वितीयक कुडली, ल लोह क्रोड, अ (A) तथा ब (B) चिर तथा स्थिर सम्पर्शक, ग (G) कमानी, तथा से (Z) सधारित्र।

के घटने और बढने के कारण होती है, और यद्यपि बैटरी से स्थिर मान की दिष्ट धारा प्राप्त होती है, तो भी सपर्क विच्छेद स्विच के द्वारा उसे आवर्ती रूप मे प्रवाहित किया जा सकता है।

प्राथमिक एव द्वितीयक कुडलियाँ एक ही क्रोड पर, एबोनाइट अथवा और किसी विद्युद्रोधी नलिका पर लपेटी होती हैं, परतु उनमे कोई योजन नहीं होता, या तो वे इनेमिल किए तारों से लपेटी होती हैं, जिसके कारण एक दूसरे से विद्युद्रोधी रहती हैं, अथवा प्राथमिक के ऊपर एक विद्युद्रोधी नली (insulated sleeve) लगाकर द्वितीयक को लपेट दिया जाता है।

परिपथ के बार बार बनने और टूटने मे दोनो सस्पर्शको के बीच आर्क (Arc) उत्पन्न होता है। इससे सस्पर्शकों के क्षत होने के अलावा आग का भी भय रहता है। आर्क न होने देने के लिये परिपथ मे एक सधारित्र का प्रयोग किया जाता है, जैसा चित्र मे दिखाया गया है।

प्रेरण द्वारा द्वितीयक कुडली मे उच्च वोल्टता होने का तात्पर्य यह नही कि उसमे शक्ति की वृद्धि हो जाती है। वास्तव में धारा का मान उसी अनुपात मे कम हो जाता है। इस प्रकार यदि प्राथमिक कुडली मे १२ वोल्ट पर १ एपीयर धारा ली जा रही हो, तो द्वितीयक कुडली मे १२०० वोल्ट पर केवल $\frac{१}{१००}$ एपीयर धारा ही होगी। वास्तव मे द्वितीयक में धारा का मान अति अल्प होता है।

प्रेरण कुडली के सिद्धात पर ही मोटर मे प्रज्वलन कुडली (ignition coil) होती है। उसमे भी किसी बैटरी से प्राप्त ६ या १२ वोल्ट की वोल्टता से द्वितीयक कुडली में कई हजार वोल्ट की वोल्टता प्राप्त की जाती है, जो प्रज्वलन के लिये आवश्यक होती है। [रा० कु०]

प्रेसबिटरीय चर्च ईसाई समुदायो के सगठन की जो प्रणाली कैलविन के 'सुधार' से चल पड़ी थी उसे प्रेसबिटीरियनिज्म कहते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कुछ वयोवृद्ध (प्रेसबिटर) पादरी के साथ स्थानीय चर्च का सचालन करते हैं। यूरोप मे ऐसे समुदायों को प्राय रिफार्म्ड कहते हैं। किंतु स्कॉटलैंड तथा अमरीका मे उन्हे प्रेसबिटेरीय कहते हैं। १७वी शताब्दी के अत तक इग्लैंड मे प्रेसबिटीरियनिज्म का काफी प्रभाव रहा। प्रेसबिटरीय चर्च का प्रधान क्षेत्र स्कॉटलैंड है। वहाँ इस सप्रदाय का १९वी शताब्दी मे पुनर्जागरण हुआ। अमरीका के प्रेसबिटरीय चर्च की सदस्यता लगभग तैतालीस लाख है (दे० प्रोटस्टैंट धर्म)। [का० बु०]

प्रेस्टन १. नगर, स्थिति ५३° ४६′ उ० अ० तथा २° ४२′ प० दे०। यह इग्लैंड के लैंकाशिर क्षेत्र मे प्रसिद्ध औद्योगिक नगर तथा बदरगाह है। यह सूती तथा रेयन वस्त्र व्यवसाय का प्रमुख केंद्र है। यहाँ वायुयान, मोटरगाड़ियाँ, औद्योगिक मशीनें तथा बिजली के सामान बनते हैं। इस नाम की इग्लैंड मे एक काउंटी बरो भी है जिसका क्षेत्रफल ६,३५७ एकड तथा जनसख्या १,१२,२०८ (१९६२) थी।

२ नगर, स्थिति ४३° २५′ उ० अ० तथा ८०° २०′ प० दे०। कैनाडा के ओटेयरिओ प्रात मे एक औद्योगिक नगर है, जो लकडी उद्योग तथा आटे की मिलों के लिये प्रसिद्ध है। स्वास्थ्य का प्रमुख केंद्र भी है। जनसख्या ७,६१९ (१९५१)।

इस नाम के नगर सयुक्त राज्य, अमरीका के कॉनेक्टिकट, मिनिसोटा तथा आइडाहो राज्यों मे भी हैं। [रा० व० सिं०]

प्रोटीन (Protein) जीवित कोशिकाओ, रक्त तथा अन्य पदार्थों में पाए जानेवाले अधिक अणुभार के पेचीदे पदार्थ हैं, जो ऐमिनो अम्लों से बने है। जीवित कोशिकाओ मे ये बडे महत्व के अवयव हैं। भिन्न भिन्न जीवो की कोशिकाओ मे भिन्न भिन्न प्रकार के प्रोटीन पाए जाते हैं। जीवित कोशिकाओ के उपचित्राव मे प्रोटीन खर्च होते हैं। मिट्टी से नाइट्रेट लेकर पेड पौधे प्रोटीन का निर्माण करते हैं। पेड पौधों से ही प्रोटीन जीवजतुओ मे आता है।

सभी प्रोटीनों के सघटन एक से नहीं होते। सबो मे कार्बन (प्राय ५१%), हाइड्रोजन (प्राय ७%), आक्सीजन (प्राय २५%), नाइट्रोजन (प्राय १६%), अधिकाश मे गंधक (प्राय ०.४%) और कुछ मे फॉस्फोरस (प्राय ०.८%) रहता है। ये अमोनिया या ऐमिनो अम्लों मे बदले हैं। विभिन्न प्रोटीनो मे ऐसे लगभग २० ऐमिनो अम्लो का अब तक पता लगा है।

पौधे मिट्टी से नाइट्रेट लेकर उससे प्रोटीन का सृजन करते हैं। जीवजतु नाइट्रेटों से प्रोटीन का सृजन नहीं करते। पेडपौधो से प्रोटीन लेकर जीवजतु, जातव प्रोटीन बनाते हैं। प्रोटीनो मे उपस्थित प्रमुख ऐमिनो अम्ल हैं ट्रिप्टोफैन (tryptophan), लाइसीन (lysine), हिस्टीडीन (histidine), सिस्टिन (cystine), टाइरोसीन (tyrosine) और आरजिनिन (arginine)। तनु खनिज अम्लों या एजाइमों से प्रोटीनो का विघटन होकर ऐमिनो अम्ल बनते हैं।

प्रोटीनों मे प्राप्त ऐमिनो अम्लों को चार प्रमुख वर्गों मे विभक्त किया गया है (१) उदासीन ऐमिनो अम्ल (२) अम्लीय ऐमिनो अम्ल, (३) क्षारीय ऐमिनो अम्ल तथा (४) विषमचक्रीय ऐमिनो अम्ल।

ऐमिनो अम्लो के सघनन से बड़ी बड़ी शृखलावाले प्रोटीन बने

हुए हैं। ऐसे यौगिको को रसायनशाला मे तैयार करने की चेष्टाएँ हुई हैं। ऐसे कृत्रिम यौगिकों को पोलीपेप्टाइड कहते हैं। अनेक उच्च अणुभार के पोलीपेप्टाइड (polypeptide) अब तक तैयार हुए हैं, जो प्रोटीन की अभिक्रियाएँ भी देते है। इससे प्रोटीन के सघटन के सबध में कोई सँदेह नही रह जाता।

वैज्ञानिको ने प्रोटीन का वर्गीकरण उनके सघटन के आधार पर किया है। प्रोटीनो को उन्होंने तीन श्रेणियो मे विभक्त किया है: एक को सरल प्रोटीन, दूसरे को सयुग्मी प्रोटीन तथा तीसरे को व्युत्पन्न प्रोटीन कहते हैं। सरल प्रोटीनो में एल्ब्यूमिन (Albumin), ग्लोब्यूलिन (Globulin), ग्लूटेलिन (Glutelin), प्रोलैमिन, (Prolamine), ग्लाइएडिन (Gliadin), एलव्यूमिनायडया या स्क्लेरोप्रोटीन (Sclero protein), प्रोटेमिन (Protamine) और हिस्टोन (Histone)। सयुग्मी प्रोटीनो में क्रोमोप्रोटीन, ग्लूको या ग्लाइकोप्रोटीन, न्यूक्लीओ प्रोटीन और फॉस्फोप्रोटीन हैं। व्युत्पन्न प्रोटीनो में मेटा प्रोटीन, प्रोटिओज, पेपटोन और पेप्टाइड आते हैं, जो प्रोटीनो के जल अपघटन से प्राप्त होते हैं।

मनुष्यो और अन्य जीव जतुओ के लिये प्रोटीन महत्वपूर्ण आहार है। इससे शरीर की कोशिकाएँ और ऊतक बनते है। प्रोटीन के अभाव से शरीर क्षीण हो जाता है और रोगो से आक्रात होने की सभावना बढ जाती है। इससे शरीर में ऊर्जा भी उत्पन्न होती है। इससे कार्वोहाइड्रेटो और वसा के पाचन में सहायता मिलती है। ठढे देशो के व्यक्तियो के आहार में प्रोटीन की मात्रा अधिक रहनी चाहिए ताकि वे शीत को सहन कर सकें। साधारणतया एक युवक के लिये प्रति दिन प्राय १०० ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। उद्योगधघो मे भी प्रोटीन का उपयोग होता है। केसीन, सरेस, जिलेटिन सदृश प्रोटीन डिस्टेंपर, बटन, कृत्रिम ऐंवर इत्यादि के निर्माण में प्रयुक्त होते हैं। [स० व०]

प्रोटेस्टैंट धर्म १६वी शताब्दी के प्रारभ में लूथर के विद्रोह के फलस्वरूप प्रोटेस्टैंट धर्म प्रारभ हुआ था (दे० चर्च का इतिहास)। लूथर के अनुयायी लूथरन कहलाते हैं, प्रोटेस्टैंट धर्मावलवियो में उनकी सख्या सर्वाधिक है (दे० लूथर)।

जोहन कैलविन (१५०९-१५६४ ई०) फ्रास के निवासी थे। सन् १५३२ ई० मे प्रोटेस्टैंट बनकर वह स्वित्सरलैंड में बस गए जहाँ उन्होने लूथर के सिद्धातो के विकास तथा प्रोटेस्टैंट धर्म के सगठन के कार्य मे असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित की। बाइविल के पूर्वार्ध को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देने के अतिरिक्त उनकी शिक्षा की सबसे बडी विशेषता है, उनका पूर्वविधान (प्रीडेस्टिनेशन) नामक सिद्धात। इस सिद्धात के अनुसार ईश्वर ने अनादि काल से मनुष्यो को दो वर्गो मे विभक्त किया है, एक वर्ग मुक्ति पाता है और दूसरा नरक जाता है (दे० आर्मिनियस या कोक्स)। कैलविन के अनुयायी कैलविनिस्ट कहलाते हैं, वे विशेष रूप से स्वित्सरलैड, हगरी, चेकोस्लोवाकिया, स्काटलैड (दे० प्रेसविटरीय धर्म), फ्रास (दे० ह्यूगनो) तथा अमरीका मे पाए जाते हैं, उनकी सख्या लगभग पाँच करोड है। ये सब समुदाय एक वर्ल्ड प्रेसविटरीय एलाइस (World Presbyterian Alliance) के सदस्य हैं, जिसका केंद्र जेनोवा मे है।

हेनरी सप्तम के राज्यकाल मे इग्लैड का ईसाई चर्च रोम से अलग होकर चर्च ऑव इग्लैड और बाद मे एग्लिकन चर्च कहलाने लगा। (दे० एग्लिकन समुदाय)। एग्लिकन राजधर्म के विरोध मे १६वी शताब्दी मे प्यूरिटनवाद (दे० प्यूरिटनवाद) तथा काग्रगेशनैलिज्म (दे० सामूहिक चर्चवाद) का प्रादुर्भाव हुआ।

उपर्युक्त सप्रदायो के अतिरिक्त बैप्टिस्ट तथा मेथोडिस्ट चर्च सबसे अधिक महत्व रखते है (दे० 'बैप्टिस्ट चर्च,' 'मेथोडिज्म')। प्रोटेस्टैंट धर्म के विषय मे यह प्राय सुनने मे आता है कि वह असख्य सप्रदायो मे विभक्त है किंतु वास्तव मे समस्त प्रोटेस्टैंटो के ९४ प्रति शत पाँच ही सप्रदायो मे समिलित हैं, अर्थात् लूथरन, कैलविनिस्ट, एग्लिकन, बैप्टिस्ट और मेथोडिस्ट।

अन्य सभी प्रोटेस्टैंट सप्रदायो का विवरण यहाँ नही दिया जा सकता। मेन्नोनाइट, एड्वेंटिस्ट, यहोवा-साक्षी जैसे बैप्टिस्ट चर्च से सबद्ध स्वतत्र सप्रदायो का तथा मुक्तिसेना का किंचित् परिचय अन्यत्र दिया गया है (दे० बैप्टिस्ट, मुक्तिसेना)। शेष संप्रदायो मे से चार का उल्लेख यहाँ अपेक्षित है।

१७वी शती के मध्य मे जार्ज फॉक्स (George Fox) ने 'सोसाइटी ऑव फ्रेंड्स' की स्थापना की थी, जो क्वेकर्स (Quakers) के नाम से विख्यात है। वे लोग पौरोहित्य तथा पूजा का कोई अनुष्ठान नही मानते और अपनी प्रार्थनासभाओ मे मौन रहकर आभ्यतर ज्योति के प्रादुर्भाव की प्रतीक्षा करते हैं। इग्लैंड मे अत्याचार सहकर वे अमरीका मे बस गए। आजकल उनकी सख्या दो लाख से कुछ कम है।

सन् १८३० ई० मे यूसुफ स्मिथ ने अमरीका मे 'चर्च ऑव जीसस क्राइस्ट ऑव दि लैट्टर डेस' की स्थापना की। उस सप्रदाय मे स्मिथ द्वारा रचित 'बुक ऑव मोरमन' वाइविल के वरावर माना जाता है, इससे इसके अनुयायी मोरमस (Mormons) कहलाते हैं। वे मदिरा, तवाकू, काफी तथा चाय से परहेज करते है। प्रारभ मे वे बहुविवाह भी मानते थे किंतु बाद मे उन्होने उस प्रथा को वद कर दिया। यग (Young) के नेतृत्व में उन्होने ऊता स्टेट को बसाया जिसकी राजधानी साल्ट सिटी (Salt city) इस सप्रदाय का मुख्य केंद्र है। मोरमस की कुल सख्या लगभग अठारह लाख है।

मेरी वेकर एड्डी ने (सन् १८२१-१९११ ई०) ईसा को एक आध्यात्मिक चिकित्सक के रूप मे देखा। उनका मुख्य सिद्धात यह है कि पाप तथा बीमारी हमारी इद्रियो की माया ही है, जिसे मानसिक चिकित्सा (Mind Cure) द्वारा दूर किया जा सकता है। उन्होंने क्रिस्टियन साइस नामक सप्रदाय की स्थापना की जिसका अमरीका मे आजकल भी काफी प्रभाव है।

पेंतकोस्तल नामक अनेक सप्रदाय २०वी शताब्दी मे प्रारभ हुए हैं। कुल मिलाकर उनकी सदस्यता लगभग एक करोड बताई जाती है। पेंतकोस्त पर्व के नाम पर उन सप्रदायो का नाम रखा गया है (दे० पर्व)। भावुकता तथा पवित्र आत्मा के वरदानों का महत्व उन सप्रदायो की प्रधान विशेषता है।

स० ग्रं० — एम० जे० कोगार डिवाइड क्रिश्चियनिटी, लदन, १९३९, जे० डिलैनबेर्गेर क्रिश्चियनिटी, न्यूयार्क, १९५४, ई० जी० लिओनार्ड हिस्ट्वार डु प्रोटेस्टैंटिज्म। [का० बु०]

प्रोटोजोग्रा एसे प्राणियों का सघ है जिसके सभी प्राणी एककोशिक होते हैं। आकारिकी (morphology) और क्रिया की दृष्टि से इस सघ के प्राणी की कोशिका पूर्ण होती है, अर्थात् एककोशिका जनन, पाचन, श्वसन तथा उत्सर्जन इत्यादि सभी कार्य करती है। प्रोटोजोग्रा इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें नगी आँखो से देखना सभव नही है। समुद्री जल मे और बँधे हुए मीठे जल मे असख्य प्रोटोजोग्रा मिलते हैं। ये अकेले या निवह (समूह, colony) मे रहते हैं। प्रोटोजोग्राग्रो मे ऊतक नही होता। इनकी ऊतकहीनता ही निवह मे रहनेवाले कोशिका समुच्चय को मेटाजोग्रा (metazoa) से पृथक् करती है। अब तक लगभग ३०,००० किस्म के प्रोटोजोग्रा ज्ञात हैं।

प्रोटोजोग्रा मे अलैंगिक एव लैंगिक दोनो प्रकार से जनन क्रिया होती है। अलैंगिक जनन भी दो प्रकार से होता है (१) सरल द्विविभाजन (simple binary fission) और (२) बहुविभाजन (multiple fission) द्वारा।

(१) **सरल द्विविभाजन** — इसमे प्रोटोजोग्रा अनुप्रस्थ या अनुदैर्घ्य रूप मे दो भागों मे विभाजित हो जाता है। ये भाग न्यूनाधिक बराबर होते हैं।

(२) **बहुविभाजन** — इस विभाजन में दो या अधिक प्रोटोजोग्रा उत्पन्न होते हैं। जनक कोश के केंद्र का बारबार विभाजन होता है और विभक्त हुए खडो को कोशिकाद्रव घेर लेता है। जब कोशो का बनना पूर्ण हो जाता है, तो कोशिका द्रव फटकर अलग हो जाता है।

लैंगिक जनन भी दो तरह से होता है (१) सयुग्मन (conjugation) और (२) युग्मकसलयन (syngamy)

(१) **संयुग्मन** — इस प्रकार के जनन मे दो प्रोटोजोग्राग्रो का अस्थायी सयोग होता है। इस सयोग काल मे केंद्रकीय पदार्थ का विनिमय होता है। बाद मे दोनो प्रोटोजोग्रा पृथक् हो जाते हैं, प्रत्येक इस क्रिया द्वारा पुनर्यौवनित (rejuvenated) हो जाता है। सिलिएटा (ciliata) का जनन सयुग्मन का उदाहरण है (देखें चित्र १)।

(२) **युग्मकसंलयन** — इस क्रिया मे युग्मक (gamete) स्थायी रूप मे सयोग करते हैं और केंद्रकीय पदार्थ का सपूर्ण मिश्रण होता है। मिश्रण के परिणामस्वरूप युग्मनज (zygote) उत्पन्न होते हैं।

सगठन — प्रोटोजोग्रा के शरीर के मूल घटक केंद्रक (nucleus) और कोशिका द्रव्य (cytoplasm) हैं। यद्यपि प्रोटोजोग्रा की अधिकतर स्पीशीज मे एक केंद्रक होता है, फिर भी द्विकेंद्रकी एव बहुकेंद्रकी प्रोटोजोग्रा भी हैं। कोशिकाद्रव्य के दो भाग हैं, बाह्य भाग को बहि प्रद्रव्य (ectoplasm) और आतरिक भाग को अत प्रद्रव्य (endoplasm) कहते हैं। बहि प्रद्रव्य स्वच्छ एव समाग होता है, और यह रक्षात्मक, गमनात्मक एव सवेदात्मक कार्य करता है। बहि प्रद्रव्य द्वारा पादाभ (pseudopodium) का, कशाभिका (flagella) का तथा सिलिया (cilia) नामक चलन अगक (organelles) का, सकुचनशील रिक्तिका (contractile vacuole) नामक उत्सर्जन अग का, खाद्य रिक्तिका (food vacuole) नामक पाचन अग का (चित्र २) एव पुटी (cyst) नामक रक्षात्मक अग का निर्माण होता है।

अत प्रद्रव्य विषमाग एव कणिकामय होता है। इसका कार्य जनन और पोषण करना है। कोशिकाद्रव्य की सतही तह
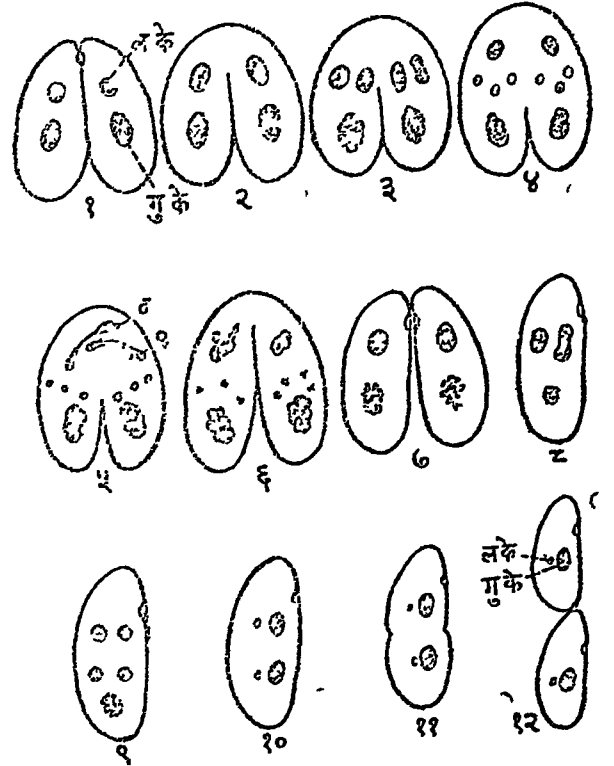
चित्र १. सिलिएटा के संयुग्मन की साधारण विधि

१ अक्ष से युग्मित दो प्राणी, जिनमे लघु केंद्रक सूत्री विभाजन (mitosis) की प्रारभिक अवस्था मे हैं, २ प्रथम, समकारी सूत्री विभाजन, ३. द्वितीय, ह्रास सूत्री विभाजन, ४ प्रत्येक जतु के केंद्रकों मे से एक का तृतीय विभाजन, जिससे युग्मकीय केंद्रक बनते हैं, ५ नर ♂ युग्मकीय केंद्रको का आदान प्रदान, ६ युग्मकीय केंद्रको का सायुज्य, जिससे सिनकेरियन (synkaryon) बनता है और द्विसख्यक अवस्था फिर आ जाती है, ७ सयुग्मी विलग हो जाते हैं तथा सिनकेरियन का प्रथम विभाजन होता है, ८ सिनकेरियन का द्वितीय विभाजन, ९ सिनकेरियन के दो विभाजनों से चार केंद्रक उत्पन्न होते हैं तथा पुरातन गुरु केंद्रक का खडन हो जाता है, १० चार केंद्रको मे से दो नए लघु केंद्रको मे तथा अन्य दो नए गुरु केंद्रको मे प्रस्फुटित हो जाते हैं तथा ११. और १२. पूर्व सयुग्मियों के प्रथम विखडन से प्रत्येक अनुजात कोशिका को एक लघु तथा एक गुरु केंद्रक प्राप्त होता है और इस प्रकार वर्धी अवस्था पुन स्थापित हो जाती है। ल० कें० = लघुकेंद्रक, गु० कें० = गुरु केंद्रक, ♂ = नर तथा ♀ मादा।

जीवद्रव्य कला (plasma membrane) कहलाती है। साकाडिना (Sarcodina) के अतिरिक्त अन्य प्रोटोजोग्रा की जीव-

द्रव्य-कला पर एक अन्य कला होती है जिसे तनुत्वक (Pellicle) कहते हैं।

फोरैमिनिफेरा (Foraminifera) नामक गण के प्रोटोज़ोआ सुरक्षा के लिये अपने ऊपर खोल बनाते हैं। असामान्य स्थिति मे कुछ प्रोटोजोआ सुरक्षा कला का निर्माण करते है जिसे पुटी (Cysts) कहते हैं। पुटी प्रोटोज़ोआ की प्रतिरोधक अवस्था है। इस अवस्था मे परजीवी प्रोटोज़ोआ भी अपने परपोषी के प्रति प्रभावहीन रहते हैं।

प्रोटोज़ोआ के कोशिका द्रव्य मे पाचन के लिये खाद्य रिक्तिका (food vacuole) और जल तथा अन्य तरल उत्सर्ग को वाहर निकालने के लिये सकुचनशील रिक्तका (contractile vacuole) होते हैं। जिन प्रोटोज़ोआओ मे क्लोरोफिल रहता है, उनमें क्लोरोफिल के लिये हरित लवक (chloroplast) या वर्णकी लवक रहता है
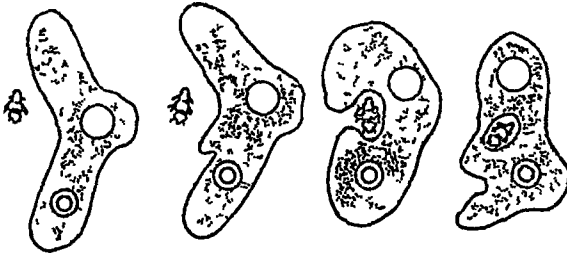
चित्र २ अमीवा का आहारग्रहण

सवसे वाएँ चित्र में अमीवा आहार के पास पहुंच गया है। वाद के दो चित्रो में अमीवा आहार को घेरता हुआ और अतिम चित्र में आहार को अपने भीतर लेकर पचाता हुआ दिखाया गया हैं।

(चित्र ३.)। कुछ प्रोटोजोआओ मे प्रकाशवोध के लिये हैमैटोक्रोम (haematochromes) अथवा विसरित या सघनित कैरोटिनाभ वर्णक (carotinoid pigment) कणिकाएँ मिलती हैं। प्रोटोजोआ में ग्लाइकोजन (glycogen), पैरामाइलोन (paramylon), वालूटिन (volutin) या मेटाक्रोमैटिक (metachromatic) कण तथा तैलबिंदुक (droplet) के रूप मे सुरक्षित खाद्य एकत्र रहता है।

केंद्रक — प्रोटोजोआ की कोशिका की महत्वपूर्ण सरचना केंद्रक है। यह जनन को नियमित तथा अन्य कार्यो को नियत्रित करता है। कोशिकाद्रव्य के अत प्रद्रव्य मे यह स्थिर रहता है और इसकी सरचना की सहायता से प्रोटोज़ोआ के जेनरा (genera) और स्पीशीज मे अतर करने मे सहायता मिलती है। प्रटोजोआ मे एक या अधिक केंद्रक होते है।

प्रोटोज़ोआ मे श्वसन सस्थान नही होता, किंतु ऑक्सीकरण द्वारा ये ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। उत्सर्जन सस्थान की उपस्थिति भी विवादास्पद है। जीवन के लगभग सभी कार्य इसके कोशिकाद्रव्य द्वारा होते हैं। अधिकाश प्रोटोजोआ आहार के लिये लघु पौधो, मल और दूसरे प्रोटोजोआओ पर निर्भर करते हैं। परजीवी प्रोटोजोआ परपोषी के ऊतकों पर रहते हैं। जिन प्रोटोज़ोआओ मे क्लोरोप्लास्ट (Chloroplast) होता है, वे पौधो की तरह प्रकाशसश्लेषण से अपना भोजन बनाते है। यूग्लीना (Euglena) और वॉलवॉक्स (volvox) इसके उदाहरण हैं (चित्र ३.)। कुछ प्रोटोज़ोआ अपने शरीर की
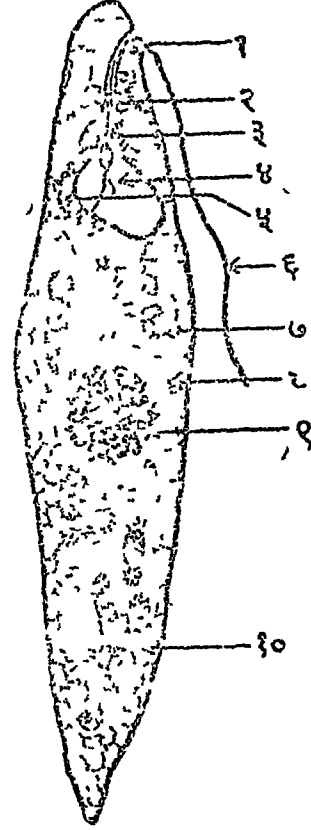
चित्र ३. यूग्लीना ऐजिलिस नामक हरित फ्लैजिलेट

१ कोशिकामुख, २ ग्रासनली, ३ नेत्र स्थान, ४ आगार, ५ सकुचनशील रिक्तका, ६. कशाभ, ७ प्रोभूजक (pyrenoid) ८. हरितलवक (chloroplast), ९. केंद्रक, तथा १०. कोशिका द्रव्य।

सतह द्वारा जल मे घुले आहार को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के पोषण को मृतजीवी पोषण (saprozoic nutrition) कहते हैं। कुछ प्रोटोज़ोआ परिस्थिति के अनुसार पादपसमभोजी (holophytic) और मृतजीवी मे वदलते रहते हैं, जैसे युग्लीना को, जो पादपसमभोजी है, यदि अधकार मे रख दिया जाय तो इसका क्लोरोफिल समाप्त हो जाता है और यह मृतजीवी हो जाता है। कुछ प्रोटोज़ोआ प्राणिसम भोजी (holozoic) होते हैं, जो प्रग्रहण (capture) तथा अनर्ग्रहण (injestin) द्वारा कार्वनिक पदार्थो को खाते हैं।

वर्गीकरण — प्रोटोज़ोआ को गमन करने के आधार पर निम्न-लिखित पाँच वर्गो मे वाँटा गया है (१) मैस्टिगोफोरा (Mastigophora) या कशाभिक (Flagellates) — इस वर्ग के प्रोटोज़ोआ मे चावुक सदृश एक या अधिक कशाभिका रहती है, जो तैरने मे सहायता करती है। इस वर्ग के प्रोटोज़ोआ परजीवी, प्राणिसमभोजी एव पादपसमभोजी होते हैं। (२) सार्कोडिना (Sarcodina) या राइज़ोपोडा (Rhizopoda) — ये पादाभ (pseudopodium) द्वारा गमन करते तथा भोजन करते हैं। (३) स्पोरोज़ोआ (Sporozoa)

—इसमें कोई भी चलन अंगक (locomotor organelles) नहीं रहते, क्योंकि इस वर्ग के प्राणी परजीवी जीवन व्यतीत करते हैं (देखे परजीवजन्य रोग)। ये पुटी के अंदर जनन करते है। (४) सिलिएटा (Ciliata) —ये सिलिया के द्वारा भोजन एव गमन करते हैं। सिलिएटा द्विकेंद्रकी होते हैं, जिनमें से एक दीर्घ केंद्रक तथा दूसरा लघु केंद्रक होता है। इसका सघटन बडा विकसित है। (५) सक्टोरिया (Suctoria) — ये शिशु अवस्था मे सिलिया द्वारा और वयस्क होने पर स्पर्शको (tentacles) द्वारा गमन करते हैं और इन्ही के द्वारा भोजन का अतर्ग्रहण प्रभावित होता है।

आर्थिक महत्व — प्रोटोज़ोआ का जैविक एव आर्थिक महत्व है। बहुत बडी सख्या मे प्रोटोज़ोआ पृथ्वी की सतह पर रहते हैं और ये पृथ्वी की उर्वरता के कारक समझे जाते हैं। समुद्र में रहने वाले प्रोटोज़ोआ समुद्री जीवो के खाने के काम में आते हैं। प्राणिसमभोजी प्रोटोज़ोआ जीवाणुओ का भक्षण कर उनकी सख्या वृद्धि को रोकते हैं। प्रोटोज़ोआ की कुछ जातियाँ पानी मे विशिष्ट प्रकार की गधो के कारक हैं। डिनोब्रियान (Dinobryon) पानी मे मछली की तरह की गध तथा सिन्यूर (Synura) पानी मे पके हुए खीरे या ककडी की तरह के गध के कारक हैं।

स० ग्र०—डा० एम० एल० प्रसाद ए टेक्स्ट बुक ऑव इन्वर्टिब्रेटा, इसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, इसाइक्लोपीडिया चैंबर।

[अ० ना० मे०]

प्रोबोसीडिया (Proboscidea) शुडधारी जतुओं का एक गण है। भारत तथा अफ्रीका मे पाए जानेवाले हाथी 'स्तनपायी' वर्ग के 'शुडी' गण के जतुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये जतु अपने शुड एव विशाल शरीर के कारण अन्य जीवित स्तनपायी जतुओ से भिन्न होते हैं। परतु इन्ही जतुओ के सदृश आकारवाले कई विलुप्त जतुओं के जीवाश्म पूर्व काल से ज्ञात हैं। उन प्राचीन जतुओ की तुलना अन्य स्तनपायी जतुओ से की जा सकती है। वर्तमान काल के हाथियों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

हाथी बहुत ही प्राचीन जतु है। इसकी विशेषताएँ अधिकाशत इसके दीर्घ आकार से सबधित हैं। अफ्रीका महादेश के हाथियों की ऊँचाई ११ से १३ फुट तक होती है। अभिलिखित, अधिकतम भार साढे छह टन है। अत अत्यधिक भार एव सरचना की विशालता मे ये सभी स्थलचर जीवित जतुओ में उत्कृष्ट हैं।

विशाल शरीर का भार वहन करने के लिये इनकी खभ सदृश भुजाएँ अधिक सुदृढ एव स्थूल होती है, जिनके ककाल की बनावट गठी हुई होती है। पैरो के तलवे का अधिकाश (अगुलियो के नीचे और पीछे) गद्दीदार होता है, जो इनके शरीर का अधिकाश भार झेलता है।

इनकी ग्रीवा छोटी होती है, विशाल मस्तक के दोनो पार्श्व मे दो बृहद् कर्ण पल्लव (pinna) तथा नीचे की ओर एक लबा शुड होता है। शुड नम्य तथा मासल नली के सदृश एक परिग्राही (prehensile) अग है, जो किसी भी दिशा मे घूम सकता है। इसके अग्र छोर पर अगुलियो के समान एक या दो रचनाएँ होती हैं, जो एक नए पैसे जैसी क्षुद्र वस्तु को भी सुगमता से उठा सकती हैं। शुड मुख (face) के सपूर्ण अग्रभाग, विशेषत नासा एव ओष्ठ का ही परिवर्तित रूप है। दोनो नासा छिद्र शुड के अग्र छोर पर होते हैं, जिनका सबध शुड के आधार पर स्थित घ्राणकोष्ठ (olfactory chamber) से दो लबी नलियो के द्वारा होता है।

अस्थियो के स्थूल एव छिद्रित होने के कारण हाथियो की करोटि (skull) अपेक्षया बहुत छोटे आकार की तथा हल्की होती है। करोटि की सरचना एक उत्तोलक (lever) के समान होती है, फलस्वरूप मस्तक का भार वहन करने के लिये लबी ग्रीवा की आवश्यकता नही होती।

हाथियो के चर्वण दत, डेन्टीन (dentine) की पतली पट्टियो से बने होते हैं, जो दतवल्कल (enamel) से घिरे तथा सीमेंट (cement) से जुटे होते हैं। ये पट्टियाँ पीसनेवाले धरातल के ऊपर उभरी होती हैं। ये दत तथा इनकी पट्टियाँ क्रमश प्रयोग मे आती हैं, फलस्वरूप पूर्ण दतपट्टियाँ एक साथ नहीं घिस पाती। दाँतो की अधिकतम सख्या २८ होती है, परतु ये इस प्रकार काम मे आते तथा घिसते है कि एक समय मे केवल ८ चर्वण दत ही प्रयोग में आ पाते हैं। इनके अतिरिक्त उत्तर कृतक दत (upper incisor teeth) या गज दत (tusk) दो छोटे दुग्ध दत (milk tusks) के टूटने के बाद ही प्रगट होते हैं। दतवल्कल के द्वारा बने अग्र छोर के अतिरिक्त गज दत के शेष भाग डेंटीन के बने होते हैं। इनकी वृद्धि आजीवन होती रहती है। वैज्ञानिको के अभिलेखको मे अफ्रीका के हाथियो के गज दत की अधिकतम लबाई १० फुट ३.४ इच तथा भार २३६ पाउड तक मिलता हैं।

हाथियों के मेरुदड (vertebral column) के ग्रीवा भाग मे छह छोटी छोटी कशेरुकाएँ (vertebrae) तथा पृष्ठ भाग मे १९ से २१ कशेरुकाएँ तक होती हैं। पृष्ठ भाग की अग्र कशेरुकाओ के तत्रिकीय कटक (neural spines) अधिक लबे होते हैं। कटि क्षेत्र (lumber region) में तीन या चार कशेरुकाएँ होती हैं, तथा सेक्रम (sacrum) चार कशेरुकाओं के एक साथ जुड जाने से बना होता है। पुच्छीय (caudal) कशेरुकाओं की सख्या तीस के निकट होती है। पसली की अस्थियाँ (ribs) अधिक लबी होती हैं, जिनसे विशाल वक्ष (thorax) घिरा रहता है। अस मेखला (shoulder girdle) एक त्रिकोणात्मक स्कधास्थि का बना होता है, जो वक्ष के पार्श्व मे उदग्र रूप से लगा रहता है। प्रगडिका (humerus), अग्र बाहु (fore arm) से अधिक लबी होती है, फलस्वरूप हाथियो की कुहनी (elbow) लबाई मे अश्वों की कलाई (wrist) के कुछ ही ऊपर रहती है। बहि प्रकोष्ठिका (radius) तथा अत प्रकोष्ठिका (ulna) की रचना विचित्र होती है। उनकी वे सतहें जो मणिबधिकाओ (carpels) से जुटती हैं, लगभग बराबर होती हैं, परतु बहि प्रकोष्ठिका का अग्र भाग अपेक्षया छोटा एव अत प्रकोष्ठिका के समुख होता है। ये दोनो अस्थियाँ एक दूसरे को काटती हुई पीछे की ओर आती हैं। मणिबधिका की रचना भी असमान होती है, क्योंकि मणिबधिकास्थियाँ जिनकी दो पक्तियाँ होती हैं, एक सीध मे न होकर एक दूसरे के अदर होती हैं। अगुलियो तथा पादागुलियों के अग्र छोर पर हाथी चलता है परतु हथेली और तलवे के मासल एव गद्देदार होने से विशाल शरीर का सपूर्ण भार अगुलियो के छोर पर नहीं आ पाता।

श्रोणि प्रदेश (pelvis) असाधारण रूप से चौडा होता है। श्रोणि (Ilia) चौडी होती है, जिसके पश्चभाग से मास पेशियाँ पैरो के साथ जुडी होती हैं तथा पार्श्व भाग से देहभित्ति की मासपेशियाँ जुडी रहती हैं। अग्रबाहु के सदृश पैरो के ऊपरी भाग की लबाई अधिक होती है। गुल्फ (tarsus) मे अनुगुल्फिका (astragalus) भार वहन करने के लिये चौडी होती है।

हाथियो के अन्य अगो की आतरिक रचना सामान्य होती है। नासा एव ओष्ठ के द्वारा बने हुए शुड के अतिरिक्त इनके अन्य अगो मे कोई विशेष परिवर्तन नही होता। फुप्फुसावरणी गुहा (pleural cavity) की अनुपस्थिति इन जतुग्रो की मुख्य विशेषता है। इनके उदरीय वृषण (abdominal testes), द्विशृ गी गर्भाशय (bicornuate uterus) तथा प्रादेशिक एव परानिकामय अपरा (jonary and desiduate placenta) विशेष उल्लेखनीय है, क्योकि साइरेनिया (sirenia) गण के जतुग्रो मे भी ये विशेषताएँ मिलती हैं। अनुमानत साइरेनिया गण की उत्पत्ति इन्ही प्राचीन शुडी जीवो से हुई है।

इनके मस्तिष्क की रचना प्राचीन कालीन है। अग्र मस्तिष्क, पश्च मस्तिष्क को पूर्ण रूपेण नही ढँक पाता है। आकार की विशालता तथा ऊपरी भाग के आवर्त इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। इनकी स्मरण शक्ति अद्भुत होती है। ये अपने शत्रु, मित्र, तथा अपने शरीर के क्षतो को शीघ्र नही भूलते। प्रिय फलो के परिपक्व होने का समय इन्हे ज्ञात रहता है। प्रशिक्षण के पश्चात् ये कठिन श्रम भी करते हैं। मुख्यत नर अधिक लजीले स्वभाव के होते हैं। इनकी दृष्टि क्षीण परतु घ्राण एव श्रवण शक्ति तीव्र होती है।

प्राचीन शुंडी — अर्वाचीन हाथी शारीरिक रचना में प्राचीन हाथियो से सर्वथा भिन्न हैं। परतु इनका आकार क्रमश कालातर मे विकसित हुआ है। इनके सबसे प्राचीन पूर्वज मोरीथीरियम (आद्य शुडी प्रजाति, Moeritherium) नामक जतु के अवशेष जीवाश्म के रूप मे मिस्र देश मे पाए गए हैं। ये उत्तर प्रादिनूतन (upper Eocene) के जीव आकार मे छोटे तथा अनुमानत शुड-रहित थे। इनके समुख के सभी दत वर्तमान थे, जिनमे ऊपर और नीचे के एक एक जोडे अधिक लबें थे। सभी चर्वण दत अति साधारण आकार के थे। इस प्रकार वाह्य रूप से सर्वथा भिन्न होने पर भी कई दृष्टि से ये जीव वर्तमान काल के हाथियो के आदि पूर्वज माने गए है।

'मोरीथीरियम' के अधिक विकसित रूप मैस्टोडॉन्स (Mastodons) या शंकुदत प्रजाति के जीवाश्म भी मिस्र देश मे पाए गए हैं। इनका वृद्धिकाल अल्पनूतन युग (Oligocene) से अत्यतनूतन युग (Pleistocene) के बीच का समय माना गया है। सभी प्राचीन मैस्टोडॉन्स के दोनो जबडो मे गजदत वर्तमान थे। ये गजदत सर्वप्रथम वक्र नही थे। जबडे अधिक बडे तथा अस्थिमय थे, तथा नासा नली लबी थी, परतु केवल अग्र भाग ही सभवत नम्य था।

इस प्रकार धीरे धीरे जबडे तथा नीचे के गजदत छोटे आकार के तथा ऊपर के गजदत अधिक वक्र तथा शुड अधिक नम्य होते गए। 'मैस्टोडॉन्स' के अग्राकृति तथा अर्वाचीन हाथियों के मस्तक क्रमश इसी प्रकार परिवर्तित एव विकसित हुए। प्रारभिक 'मेस्टोडॉन्स' के चर्वण दत आकार मे अति साधारण तथा निम्न शिखर-वाले (low crowned) थे। उनकी ऊपरी सतह अधिक उभरी हुई नही थी। परतु आकार की वृद्धि एव खाद्य पदार्थ मे भिन्नता आने से दतविन्यास मे अधिक परिवर्तन आए।

यद्यपि "मैस्टोडॉन्स" का उद्भव अफ्रीका महादेश मे हुआ, तथापि ये शीघ्र ही पृथ्वी के अन्य भागो मे प्रसृत हो गए। इस प्रकार मध्य नूतन (Miocene) एव अतिनूतन (Pliocene) युग मे ये सपूर्ण उत्तरी भूक्षेत्र मे तथा अत्यतनूतन युग मे दक्षिण अमरीका तक फैल गए। अत्यतनूतन युग के प्रारभ में ही प्राचीन भू क्षेत्र से इनका विनाश हो गया, परतु अमरीका मे वर्तमान युग के दस बीस हजार वर्ष पहले तक ये वर्तमान रहे। [का० च० वो०]

प्रोसिग्रॉन (Procyon) आकाशगगा के किनारे किनारे मियुन (Gemini) और मृग (Orion) तारामडलो के निकट कैनिस माइनर (Canis Minor) नामक तारासमूह का सबसे अधिक कातिमय तारा है। उपर्युक्त तारासमूह जनवरी से मई तक की रातो मे सबसे अच्छा दिखाई पडता है और प्रोसिग्रॉन तारा मार्च के आरभ मे ९ बजे रात के लगभग अपने याम्योत्तर पर रहता है। कैनिस मेजर (Canis Major) तारामडल के लुब्धक (Sirius) और मृग तारामडल के आर्द्रा (Betelgeuse) तारो के साथ प्रोसिग्रॉन एक विलक्षण त्रिकोण बनाता है, जो नाविको का पथप्रदर्शन करता है।

२० अधिकतम कातिमय तारो मे प्रोसिग्रॉन आठवाँ है। इसका दृष्ट कातिमान ० ५ है, जब कि अधिकतम कातिमय लुब्धक तारे का कातिमान — १ ५८ है। दृष्ट काति के वर्गीकरण मे तारो को ०, १, २, ३ आदि अक दिए जाते हैं। किसी विशिष्ट अक का तारा अपने अनुवर्ती तारे की अपेक्षा २ ५१२ गुना कातिमय होता है। प्रोसिग्रॉन ११ प्रकाशवर्ष (६६ लाख करोड मील) की दूरी पर स्थित है। इस तारे के विषुवाश (right ascension) का निर्देशाक ७ घटे ३७ मिनट २२ सेकड और क्राति (declination) + ५ अश १९ मिनट १६ सेकड है। तारो के वाह्य ताप और उनमे पाए जाने-वाले विभिन्न तत्वो के आधार पर स्पेक्ट्रमी वर्गीकरण मे प्रोसिग्रॉन की गणना एफ (F) वर्ग मे होती है। स्पेक्ट्रम में धात्विक तत्वो की उपस्थिति के कारण एफ वर्ग के तारो का रग सामान्यत कुछ पीलापन लिए श्वेत होता है। ऐसे तारो के स्पेक्ट्रम सूर्य के स्पेक्ट्रम से समानता रखते है। कैल्सियम के कारण स्पेक्ट्रम रेखाओ की तीव्रता विशेष रूप से प्रबल होती हैं। कैल्सियम रेखा की वर्धमान तीव्रता के आधार पर एफ वर्ग के तारो को एफ ० से एफ ९ वर्गो मे उपविभाजित किया गया है। इस उपविभाजन मे प्रोसिग्रॉन एफ ४ मे आता है, जिसका वाह्य ताप लगभग ७००० सें० है। यद्यपि प्रोसिग्रॉन सूर्य से समानता रखता है, फिर भी सूर्य से यह बहुत अधिक दीप्त है।

प्रोसिग्रॉन विशेष रूप से इस कारण रोचक है कि लुब्धक (Sirius) की तरह इसका भी एक सहचारी अदृश्य तारा १३वें कातिमान का भी है। लुब्धक और प्रोसिग्रॉन की गति मे अनियमितता के आधार पर प्रसिद्ध खगोलज्ञ बेसेल (Bessel) ने यह निष्कर्ष निकाला कि इनमे से प्रत्येक का एक अदृश्य सहचर अवश्य होना चाहिए जो एक दूसरे की परिक्रमा करते रहते हैं। प्रोसिग्रॉन की अनियमितता को वेसेल ने १८४० ई० मे प्रेक्षित किया और १८९६ ई०

मे लिक वेधशाला (Lick Observatary) मे शीवर्ल (Schaeberle) ने बृहत् अपवर्तक दूरदर्शी की सहायता से प्रोसिग्रॉन के वडी निम्न ज्योतिवाले सहचर को खोज निकाला और देखा। ये अदृश्य तारे, जो श्वेतवामन (white dwarfs) वर्ग मे रख गए हैं, खगोल विज्ञान की प्रगति और विकास मे युगातरकारी सिद्ध हुए हैं। सामान्य तारो की तुलना मे ये वहुत छोटे और अत्यत सघन हैं। ये इतने सघन हैं कि इनके मुट्ठी भर पदार्थ का भार कई टन होता है। [रा० ना० मु०]

प्रौढ़ शिक्षा प्रौढ शिक्षा या सयानो को शिक्षा देने का अर्थ है उन लोगो को शिक्षा देने की व्यवस्था करना जो साधारणत विद्यालय जाकर पढने की अवस्था मे सुविधा न मिलने के कारण या अन्य परिस्थितिवश बीच मे ही पढाई छोडकर घर का काम या कोई नौकरी या धधा करने के लिये बाध्य हुए हो या सामाजिक बधनो के कारण निरक्षर रह गए हो (जैसे भारत के कुछ प्रदेशो की कन्याएँ) या पढ लिख जाने पर भी जो अपना ज्ञान बढाने के लिये या मनोविनोद के लिये या आवश्यकतावश कोई दूसरी विद्या या कला सीखना चाहते हो। इस दृष्टि से प्रौढ शिक्षा प्राप्त करनेवालो की तीन श्रेणियाँ हो जाती हैं

१ — जिन्होंने किसी भी प्रकार की शिक्षा न तो विद्यालय ही मे पाई, न घर पर ही।

२ — जिन्होंने किसी श्रेणी तक पढकर छोड दिया है और पुन सुविधा पाने या आवश्यकता के कारण पुन उसके आगे पढना उचित समझते हैं।

३ — जो भली भाँति पढ लिखकर किसी एक प्रकार के सीखे हुए ज्ञान से जीविका कमा रहे हैं किंतु मनोविनोद, आवश्यकता, प्रेरणा, अध्ययन की इच्छा, अपने व्यवसाय मे अधिक कुशलता प्राप्त करने की भावना या दूसरी विद्या सीखकर उसके द्वारा धन कमाने की इच्छा से नई कला या विद्या सीखना चाहते हो जैसे कोई वैद्य मनोविनोद के लिये सगीत सीखना चाहे या कोई साहित्य का पडित अधिक ज्ञान बढाने के लिये नई भाषाएँ सीखना चाहे अथवा सगीत का कोई अध्यापक साहित्य का भी अध्ययन करना चाहे। तात्पर्य यह है कि प्रौढ शिक्षा का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इसके अतर्गत सब प्रकार का ज्ञान आ जाता है।

प्रौढ़ो को क्या सिखाया जाय — समाजशास्त्रियो का मत है कि किसी भी सभ्य राष्ट्र के प्रत्येक प्रौढ व्यक्ति मे पाँच प्रकार की योग्यता होनी ही चाहिए — (१) भाषा की योग्यता — अपनी भाषा मे बोलने, लिखने, बाँचने और समझने की योग्यता, (२) नागरिकता की योग्यता — अपने गाँव या नगर के राजकर्मचारियो से सबध और व्यवहार जानने, अपने अधिकार और कर्तव्य जानने, परिवार के सदस्यों तथा पास-पडोसवालो के प्रति जाति, धर्म अवस्था आदि का विचार छोडकर सद्भाव, सहनशीलता, सेवा तथा विनय का भाव बढाने, सडक, रेल, तार तथा डाक के साधारण नियमो से परिचय प्राप्त करने और विभिन्न वैधानिक सस्थाओ के लिये अपना उचित प्रतिनिधि चुनने की योग्यता, (३) स्वच्छता की योग्यता — अपने शरीर, घर और पास पडोस को स्वच्छ और स्वस्थ रखने, आकस्मिक चोट लगने या रोगाक्रात होने पर तात्कालिक चिकित्सा की व्यवस्था जानने, छूतहे या महामारी रोगो के फैलने पर उनके निराकरण की रीति जानने तथा मादक द्रव्यों के सेवन से दूर रहने की योग्यता, (४) व्यावसायिक योग्यता — अपने गाँव, नगर मे या आसपास के खेत तथा भूमि से उत्पन्न या तैयार होनेवाली वस्तुओं, उनके विक्रय स्थानों, उनके विक्रय से लाभ उठाने की सभावनाओं तथा रीतियों के ज्ञान के साथ अपने आयव्यय का लेखा रखने तथा आय से अधिक व्यय न करने की योग्यता, (५) देशभक्ति का भाव — अपने देश के मान अपमान को अपना मान अपमान समझना और कोई ऐसा काम न करना जिससे अपने देश का अपयश हो या देश की हानि हो।

सयानों की मनोवृत्ति — अशिक्षित प्रौढ को बालक या ज्ञानशून्य नही समझना चाहिए। वह अपने अनुभव तथा सामाजिक सपर्क से बहुत सा व्यावहारिक ज्ञान सचित कर चुका रहता है। उसकी बुद्धि परिपक्व, उसकी विचारधारा नियमित और उसके सस्कार दृढ हो चुके रहते हैं। अत उसकी बुद्धि, उसके विवेक, विचार और सस्कार को माँज देना भर ही प्रौढ शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। निरक्षर प्रौढ को अक्षरज्ञान करा देने पर ही उसकी मेधा और स्मृति स्वय आवश्यक सामग्री जुटा ले सकती है। निरक्षर, साक्षर या पढे लिखे प्रौढ को नया ज्ञान ऐसे ढग से देना चाहिए कि उसे पहले दिन से ही आत्मविश्वास होने लगे कि मैं इस विद्या को शीघ्र सीख लूँगा। प्रौढ होने के कारण उसका सामाजिक स्तर इतना ऊँचा हो गया रहता है कि उसे कक्षा मे बैठाकर बच्चों के समान नहीं पढाया जा सकता। अत ऐसे उपाय से उसे शिक्षा देनी चाहिए कि वह आत्मसमान के साथ वेग से सीख सके।

प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र — भारत जैसे देश में साक्षरता से लेकर उच्च शिक्षा तक सब कुछ प्रौढ शिक्षा के अतर्गत आ जाता है किंतु अमरीका और यूरोप जैसे समृद्ध देशों मे व्यावसायिक कुशलता और अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिये दूसरी विद्या सीख लेना भी प्रौढ शिक्षा का अग है। इसलिये वहाँ किसानों, श्रमिको तथा अन्य व्यावसायिक वर्गों के साथ साथ स्वय पूँजीपतियो ने भी सामान्य जनता को और अपने यहाँ काम करनेवाले श्रमिको को शिक्षित करने के लिये अनेक योजनाएँ बना रखी हैं। प्रौढ शिक्षा के अतर्गत लोगो की व्यक्तिगत कमियाँ पूरी करने के लिये भी शिक्षा दी जा सकती है जैसे ठीक वाचन न कर सकनेवाले को वाचन की शिक्षा, शुद्ध न लिख सकनेवाले को लेखन की शिक्षा, कला और खेल न जाननेवालो को कला और खेल की शिक्षा अथवा सामान्य जन समाज को आध्यात्मिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा। अमरीका में तो सफल मातापिता बनने की शिक्षा, गृहस्थी चलाने की शिक्षा, वैवाहिक जीवन सुखी रखने आदि की शिक्षा के लिये भी प्रौढ शिक्षाकेंद्र चलाए जा रहे हैं। नवीन समाजवादी प्रवृत्ति मे यह माना जाने लगा है कि समाज की कुशलता पर ही व्यक्ति की कुशलता निर्भर है, इसी कारण शत्रु के आक्रमण से बचने के लिये उत्पादन के माल की खपत के लिये जनता मे रुचि उत्पन्न करने की शिक्षा आदि सब प्रवृत्तियाँ प्रौढ शिक्षा के अतर्गत आ जाती हैं। यद्यपि प्रौढ शिक्षा से लोगो के व्यवहार को बदल देना भी सभव है तथापि मानव मात्र के व्यवहार को प्रभावित करनेवाले समस्त साधन प्रौढ शिक्षा की सीमा मे नही आते।

प्रौढ़ों को कैसे सिखाया जाय — साधारणत कोई प्रौढ उसी समय शिक्षा ग्रहण करता है जब वह कोई भौतिक आवश्यकता समझकर स्वय शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा करे या किसी प्रेरणा

से उसके मन में यह इच्छा जगाई जाय। अत, व्याख्यान, प्रवचन, कथा, कीर्तन, लोकगोष्ठी, अच्छे नाटक, पुस्तक, पत्रपत्रिका, रेडियो कार्यक्रम तथा ऐसे चलचित्रों के द्वारा प्रौढ को शिक्षा देने का आयोजन करना चाहिए जो वैज्ञानिक और ऐतिहासिक प्रामाणिकता के अनुसार सटीक हो। इस प्रकार रगमच और रेडियो से बोले हुए शब्दो से लेकर लिखे हुए शब्दो तक सभी सामग्री प्रौढ शिक्षा का माध्यम बनाई जा सकती है।

प्रौढ शिक्षा की संस्थाएँ — प्रौढ शिक्षा साधारणत दो प्रकार से दी जाती है,—प्रचार सस्थाओ द्वारा और स्थिर सस्थाओ द्वारा। प्रचार सस्थाओ के अतर्गत वे सभी व्यावसायिक, सामाजिक या राजकीय सघटन और समितियाँ हैं जो प्रौढो को शिक्षा देने के लिये ही व्यवस्थित कार्यक्रम बनाकर प्रचार करती हैं और प्रौढो को कुछ सीखने के लिये प्रेरित करती हैं। स्थिर सस्थाओ के अतर्गत सभी विद्यालय तथा पुस्तकालय आदि है जहाँ व्यक्ति स्वयं जाकर शिक्षा प्राप्त करता है, सस्था की ओर से प्रौढो मे प्रचार का कार्य नही होता। इस प्रकार औपचारिक, तथा अनौपचारिक धन कमानेवाली और पारमार्थिक, सार्वजनिक और व्यक्तिगत अनेक सस्थाएँ प्रौढ शिक्षा चला रही है। कुछ लेखको का मत है कि प्रौढ के लिये एक तो उपचारात्मक शिक्षा (रेमिडियल एजुकेशन) होती है जिसमे शिक्षा प्राप्त युवको की व्यक्तिगत या सामूहिक त्रुटियाँ और दोष सुधारे जाते हैं और दूसरी शुद्ध प्रौढ शिक्षा होती है जिसमे प्रौढो की आवश्यकताओ और योग्यताओ के अनुकूल शिक्षा दी जाती है। कुछ लेखक, व्यावसायिक शिक्षा को प्रौढ शिक्षा से भिन्न मानते हैं। इतने भेद होते हुए भी प्रौढ शिक्षा देनेवाली सस्थाओ के अतर्गत सार्वजनिक या व्यक्तिगत विद्यालय, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, प्रचारमडल, विद्यालयातिरिक्त, आयोजन, गोष्ठियाँ, समितियाँ सग्रहालय, पुस्तकालय, धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाएँ और राजनीतिक दल आदि भी आ जाते हैं।

स० ग्रं० — सीताराम चतुर्वेदी शिक्षा प्रणालियाँ और उनके प्रवर्तक, तथा शिक्षा के नए प्रयोग और विधान (नदकिशोर ऐंड ब्रदर्स, चौक, बनारस), 'अमरीकन एसोसिएशन फॉर ऐडल्ट ऐजुकेशन" द्वारा प्रकाशित ग्रथ, नैशनल ऐडल्ट ऐजुकेशन (यू० एस० ए०) के ऐडल्ट ऐजुकेशन डिपार्टमेट द्वारा प्रकाशित ग्रथ, एन० आर० हैरी एसाइक्लोपीडिया ऑव माडर्न एजुकेशन, न्यूयार्क की फिलोसॉफिकल लाइब्रेरी इक० द्वारा प्रकाशित। [सी० च०]

प्लवक (Plankton) वे सभी प्राणी या वनस्पति, जो जल मे जलतरगो या जलधारा द्वारा प्रवाहित होते रहते हैं, प्लवक कहलाते हैं। प्लवको मे गति के लिये चलन अग (locomotive organs) बहुत कम विकसित होते हैं, या उनका पूर्ण अभाव होता है। जल में गोता लगाने, या ऊपर उठने, की क्षमता उनमे अवश्य विद्यमान होती है। प्लवक सूक्ष्मदर्शी से देखे जानेवाले से लेकर बड़े बडे जेलीफिश के आकार तक के होते हैं। प्लवक जलचर तरणक मछली या ह्वेल से भिन्न होते हैं, क्योकि पिछले जीवो मे जलधारा के प्रतिकूल गति करने की क्षमता होती है। मछली इत्यादि के शिशु भी प्लवक ही हैं, क्योंकि ऐसी अवस्था मे उनकी भी गति जलधारा पर ही निर्भर करती है। प्लवको की निम्न विशेषताएँ होती हैं

प्लवको का शरीर न्यूनाधिक पारदर्शी होता है। ये प्राय. रंगविहीन, या पीत, बैंगनी, या गुलाबी रग के होते हैं, यद्यपि कुछ जेलीफिश बहुत भडकीले रंग के भी होते हैं। नियमत रग पर्यावरण (environment) से मिलता जुलता होता है। उनमे अपारदर्शी अस्थिरचनाओ का पूर्णत अभाव होता है। केवल कुछ मे मृदु कैल्सियमी या काचनुमा कवच होता है। साधारण प्लवक त्रिज्यात (radially) सममित होते है।

समुद्री प्लवकों का क्षैतिज प्रसार — यह समुद्र की धाराओ के कारण होता है और समुद्र की धाराएँ प्लवको को एक झुड मे रखती हैं। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, प्लवको मे गोता लगाने और ऊपर उठने की क्षमता होती है। प्लवक बुरे मौसम मे विपरीत परिस्थितियो से बचने और अँधेरे या शाति के लिये जल की गहराई मे गोता लगा लेते हैं। रात्रि मे, अथवा जब समुद्र शात होता है, सतह पर आ जाते हैं। इस प्रकार इनमे से अधिकाश दिन मे ५० से लेकर १५० फैदम तक की गहराई मे चले जाते है और शात रात्रि मे सतह पर उठ आते हैं।

प्लवक के अतर्गत प्राणी और वनस्पति दोनो ही होते है। अतएव प्राणियो को प्राणिप्लवक (zooplankton) और वनस्पतियो को पादपप्लवक (phytoplankton) कहते हैं।

सागरो मे पाए जानेवाले प्लवक समुद्री प्लवक या हैलोप्लैंक्टन (Haloplankton) कहलाते हैं। इनकी सख्या बहुत बडी है और ये नाना प्रकार के होते हैं। अलवण जल मे पाए जानेवाले प्लवक अलवण जलप्लवक या सरोवरप्लवक (Limnoplankton) कहलाते है। ये प्राय सभी झीलो और नदियो मे पाए जाते हैं।

प्लावक जीवो के अतर्गत प्रोटोजोआ श्रेणी के असख्य फोरैमिनिफेरा और रेडियोलेरियन तथा हाइड्रोज़ोआ श्रेणी के जेलीफिश और मेड्यूसी के झुड तथा वनस्पति मे डाइऐटम इत्यादि शात समुद्रो मे मिलते हैं। अनेक मोलस्क (mollusc), जैसे टेरोपॉड (Pteropods) या हेटरोपॉड (Heteropods), भी समिलित है, जो ह्वेलास्थि ह्वेल (whalebone whales) के मुख्य आहार होते है। इनके छोटे आकार के कारण ह्वेल इनका बहुताधिक सख्या मे भक्षण करते है।

सिधुपक (oozes) का अधिकाश फोरैमिनिफेरा, रेडियोलेरिया तथा टेरोपॉड के रिक्त कवचो एवम् डाइऐटम जैसे प्लवको का बना होता है। यह सिधुपक हजारो वर्ग मीलो मे समुद्रतल को आच्छादित किए हुए है। प्लवक पेट्रोलियम के जनक होते हैं। (देखिए **फोरैमिनिफेरा**)।

इस प्लवक जीव के मृत और मरते हुए अवशेष निरतर समुद्रतल की ओर अग्रसर होते रहते हैं। इनमे से बहुत से रास्ते मे ही समुद्र के गहरे तल मे निवास करनेवाले दूसरे प्लवको के आहार बन जाते हैं। अतएव प्राणिप्लवक केवल समुद्र की ऊपरी सतह मे ही सीमित नही होते, बल्कि गहरे तल मे भी पाए जाते है, किंतु पादपप्लवक सूर्य की रोशनी पर निर्भर रहते हैं, अत ये केवल सूर्य की रोशनी प्राप्त होनेवाली गहराई तक ही पाए जाते हैं और शेष समुद्र

तल पर वर्षा की बूंदो की भाँति निरतर समुद्री तल पर गिरते रहते हैं। ऊपर से मृत प्लवको की निरतर झडी को खाने के लिये समुद्र-तल के नाना भाँति के प्राणी भोजन को एकत्र करनेवाले उपकरणो से सज्जित होते हैं। ऐसे कुछ प्राणियो का शरीर पृथ्वी में गटा होता है, इनकी बाहु वृक्ष की शाखा या छाते जैसी फैली होती है और ये देखने में वनस्पति प्रतीत होते हैं। अनेक कवच प्राणियो (shell fishes) मे छलनी जैसी रचनाएँ होती हैं। समुद्र के सभी प्राणी इन्ही सूक्ष्म प्लवक वनस्पतियो पर निर्वाह करते हैं।

प्लवक जीव स्पष्ट 'मडल', या समुदायो, मे पाए जाते हैं, यद्यपि स्थैतिक (static) नहीं होते। मडल की प्रकृति और रचना निरतर बदलती रहती है। यह इसलिये नही कि इनमे तीव्र गति से वृद्धि अथवा कमी होती है, बल्कि ऋतुपरिवर्तन के अनुसार इनके वातावरण मे परिवर्तन होता रहता है और जीवो के बीच परस्पर जटिल परिक्रियाओ के कारण, शिकार और शिकारी का अनुपात विभिन्न भोजन शृ खला मे सर्वदा एक समान नहीं रहता। किसी किसी ऋतु मे प्लवक प्राय बहुत गहरे चले जाते हैं और ऊपरी सतह से अदृश्य हो जाते है। इनका स्थान दूसरे ले लेते हैं। एक निश्चित अवधि के बाद अनुकूल वातावरण होने पर वे पुन प्रकट होते हैं।

जे मूलर (Johannes Muller) ने जब समुद्र की सतह से प्लवको को प्रथम बार इकट्ठा किया था, तब से लेकर आज तक मूलर की सरल विधि मे कुछ परिवर्तन हो गया है। आजकल प्लवको को इकट्ठा करने के लिये दो अन्य यत्रो, 'प्लवक सूचक' (Plankton Indicator), और सतत प्लवक रेकार्डर (Continuous Plankton Recorder) का प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि कुछ वर्षों मे प्लवको का आर्थिक दृष्टि से महत्व अनुभव किया गया है, किंतु इनके व्यावहारिक अनुप्रयोग का विकास १९३० ई० से प्रारभ हुआ है। मछलियो और प्लवको का परस्पर सबध अटूट है, अतएव प्लवको की सख्या मे वृद्धि या न्यूनता पर मछलियो की जनसख्या भी निर्भर करती है।

प्राणिप्लवक तथा पादपप्लवक दोनो प्रकार के प्लवको का और भी विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

वास्तविक प्लवक (Real Plankton) — वे सभी प्लवक, जो जल की सतह पर जीवन के प्रारभ से मृत्यु पर्यंत प्लवक जीवन व्यतीत करते हैं, वास्तविक प्लवक कहलाते हैं। इनका वर्णन ऊपर हुआ है।

डिंभ प्लवक (Meroplankton) — इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग हेकेल (Haeckel) ने नितलीय जीवो (benthonic animals) के लिये किया था, जिनके बच्चो मे स्वतत्र रूप से तैरने की गति तो होती है, किंतु लार्वा अवस्था (larval stage) मे प्लवक होते हैं। डिंभ प्लवक नियमत बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। इनकी गति की शक्ति बहुत ही कम होती है और ये प्राय सूक्ष्म सूत्रो (cilia) द्वारा गति करते हैं। ऐसे प्लवकों की सख्या इतनी विशाल है कि समुद्र की ऊपरी सतह इनसे ठसाठस भरी होती है और ये आक्रमणकारी प्राणियो के आहार होते हैं। ये समुद्र मे बहुत बडी सख्या मे अल्प समय तक तैरते रहते हैं, तत्पश्चात् शीघ्र या देर मे समुद्रतल में चले जाते हैं। सयोग से ये यदि अनुकूल अधस्तर (substratum) पर गिर जाते हैं, तो नितलीय वयस्क (benthonic adult) मे विकसित हो जाते हैं, किंतु दुर्भाग्य से यदि प्रतिकूल तल पर, अथवा जिस स्थान पर भोजन की कमी होती है, वहाँ पहुँच गए तो वे नष्ट हो जाते हैं।

कूट प्लवक (Pseudoplankton) — यह पारिभाषिक शब्द उन जीवों, जैसे सारगैसम (Sargasum) या गल्फ सी वीड (Gulf Sea Weed), के लिये व्यवहृत होता है जो साधारणत या जीवन के प्रारभिक काल मे स्थावर और नितलीय जीव (benthonic organisms) होते है, किंतु बाद मे प्लवक हो जाते हैं। इस शब्द के अतर्गत ऐसे वनस्पति या प्राणिशैवाल (algae), हाइड्रॉएड्स (hydroids), या ब्रायोज़ोआँन (bryozoans) आते हैं जो स्वय दूसरे तैरनेवाले सारगैसम, क्रस्टेशिया (crustacea), मोलस्को या अन्य प्राणियों से चिपके होते हैं और स्थावर (sedentary) या विचरनेवाले नितल जीवसमूह (benthos) होते हैं।

स० ग्र० — आर. एस लल ऑर्गैनिक इवोल्यूशन; सर ऐलिस्टर हार्डी दि ओपेन सी। [भृ० ना० प्र०]

प्लांक (जन्म कील, २३ अप्रैल, १८५८, मृत्यु गार्टिंगेन, ४ अक्टूबर, १९४७) मैक्स कार्ल एर्न्स्ट लुडविक प्लांक (Plank) के पिता जूलियस विलहेल्म प्लांक सविधानीय कानून के प्रोफेसर थे। मैक्स प्लांक ने गणित तथा भौतिकी की शिक्षा, पहले म्यूनिख में और बाद में बर्लिन मे, किरखॉफ तथा हेल्महोल्ट्स से, प्राप्त की। कदाचित् किरखॉफ के प्रभाव के कारण ही प्लांक ने उष्मागतिकी का विशेष अध्ययन किया और इस विषय मे ही उन्हें पी-एच डी की डिग्री सन् १८७९ में मिली। सन् १८८० मे वे म्यूनिख मे लेक्चरर नियुक्त हुए। सन् १८८५ मे वे कील मे तथा सन् १८८९ मे, किरखॉफ के देहावसान के बाद उन्ही की जगह, बर्लिन मे प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् १९३० मे वे विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित कैसर विलहेल्म सस्था के प्रधान चुने गए। सन् १९१८ मे इन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया एव सन् १९२६ मे ये लदन की रॉयल सोसायटी के विदेशी सदस्य चुने गए।

इनका मुख्य कार्य, जिसके कारण वैज्ञानिक ससार मे इन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की, क्वाटम (quantum) का सिद्धात है, जिसे इन्होंने सन् १९०० मे प्रतिपादित किया। इसके अनुसार ऊर्जा छोटे छोटे कणो के रूप में प्रवाहित होती है। इस सिद्धात के विकास से भौतिकी का स्वरूप ही बदल गया है। प्लांक को पहाडो पर चढने तथा पियानो बजाने का शौक था। अक्सर आइन्स्टाइन के वायलिन के साथ वे पियानो बजाते थे।

सं० ग्र० — प्लांक साइंटिफिक ऑटोबायॉग्राफी, नेचर, १६१, १३, १९४८। [रा० नि० रा०]

प्लांचेट पान के पत्ते की आकृति का किंतु उससे बडे आकार का पतली और हलकी तथा चिकनी लकडी का बना हुआ एक ऐसा यत्र जिसमे नोक की ओर पेंसिल फँसाने के लिये एक गोल छेद और पीछे की ओर नीचे दो पहिए लगे होते हैं। पहियो के द्वारा यह यत्र ऊपर से थोडा सा दबाव और सहारा पाकर चलने लगता है और चलने से पेंसिल द्वारा उस कागज पर जिसके ऊपर वह यत्र चलता है

निशान वनते रहते हैं। सन् १८५३ मे इसका आविष्कार एक फ्रासीसी आत्मवादी ने किया था। जव कोई माध्यम (मीडियम) अपनी चेतना को शरीर से हटाकर किसी मृत प्राणी द्वारा अपने शरीर को क्रियावान् होने दे और प्लाचेट पर अपना हाथ अथवा उंगलियां रख दे तो मृत आत्मा उस हाथ के द्वारा प्लाचेट को चलाने लगती है और उसमे लगी हुई पेंसिल द्वारा जो लिखना चाहती है लिख देती है। माध्यम का शरीर और विशेषत हाथ अपनी आत्मा के नियत्रण मे न रहकर मृत आत्मा के नियत्रण मे कुछ काल के लिए आ जाता है और उसके द्वारा मृत आत्मा जो कुछ जीवित प्राणियो को कहना चाहती है कह देती है।

प्लाचेट हाथ रखने पर कुछ देर पीछे चलने लगता है। उसके द्वारा स्पष्ट अक्षरो मे कुछ न कुछ लिखा भी जाता है। प्रश्नो के उत्तर भी लिखे जाते है। पर लिखनेवाला वह माध्यम है जिसका हाथ उसपर रखा होता है अथवा उसके द्वारा कोई दूसरी आत्मा
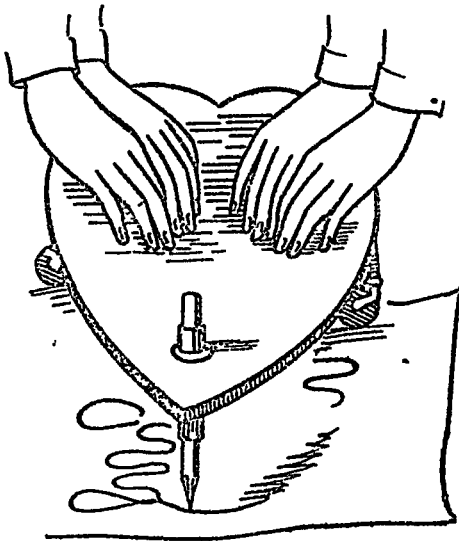
लिखती है—इसका निर्णय करना असभव नही तो कठिन जरूर है। जान बूझकर तो माध्यम लोग सदा धोखा नही देते। अज्ञात रीति से भले ही वे या उनका हाथ प्लाचेट को चलाता हो। पर इसका कोई प्रमाण नही हो सकता कि किसी दूसरी आत्मा द्वारा कुछ लिखा जा रहा है अथवा माध्यम के अचेतन मन अथवा मन के किसी उच्चस्तर द्वारा कुछ लिखा जा रहा है। कभी कभी ऐसी वातें भी लिखी जाती है जिनका ज्ञान माध्यम को अपने जीवन मे कभी भी नही हुआ। इस प्रकार का ज्ञान या तो मृत आत्मा के द्वारा व्यक्त होता है या यह भी सभव है कि माध्यम के अज्ञात मन ने ही अपनी अलौकिक और निहित शक्तियों द्वारा ज्ञान को प्राप्त करके किसी मृत आत्मा के वहाने से उसे लेख द्वारा व्यक्त कर दिया हो। अव यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के अज्ञात मन मे अनेक अलौकिक शक्तिया निहित हैं जो किसी किसी मानसिक अवस्था मे प्रकट हो जाती है। अतएव कुछ लोग यह मानते हैं कि प्लाचेट द्वारा वही ज्ञान हमको प्राप्त होता है जो माध्यम के आतरिक मन को प्राप्त हो गया है।

प्लाचेट पर कभी कभी इतिहास के महान् मृत व्यक्तियो द्वारा भी बहुत सी वातो का लिखा जाना अनुभव मे आया है। आश्चर्य होता है कि वे महान् आत्माएँ क्या प्रत्येक जीवित व्यक्ति के इतने समीप हैं और क्या उनको इतना समय मिलता है कि वे जहाँ तहाँ कभी कभी विना वुलाए भी पहुँच जाती हैं।

प्लाचेट पर भूत, वर्तमान और भविष्य की वातें लिखी जाती हैं। कभी कभी भविष्यवाणियाँ ठीक भी निकल जाती हैं। कभी कभी जो वात किसी पास वैठनेवालो और माध्यम को भी मालूम नही वे भी प्लाचेट पर लिखी जाती है। वास्तव मे प्लाचेट एक अद्भुत यत्र है।

[भी० ला० आ०]

प्लाइवुड परतदार लकडी या प्लाइवुड (plywood) उन पतले तख्तो या चादरो को कहते है जो लकड़ी की वहुत पतली तीन या अधिक परतो को सरेस आदि से चिपकाकर वनाई जाती हैं। इन परतो मे से एक या अधिक के रेशाकणो (grain) की दिशा अन्य परतो के रेशो मे साधारणत समकोण वनाती हुई रखी जाती है, जिसका उद्देश्य यह होता है कि लकडी की चादर को किसी दिशा मे फटने का डर न रहे। वाहरी परतों को मुखपृष्ठ (फेस) कहते हैं और भीतरी परत को क्रोड (core) कहते हैं। यदि मुखपृष्ठो के वीच एक से अधिक परतें रहती हैं तो उनको आडी परतें (cross bands) कहते हैं।

ठोस लकडी का गुण प्रत्येक दिशा मे एक समान नही होता। रेशे के अनुदैर्ध्य और अनुप्रस्थ दिशाओ मे लकडी के गुणो मे वडी भिन्नता होती है। इसलिये लकडी के सव कामो मे रेशे के ऊपर ध्यान रखना आवश्यक होता है, अन्यथा टिकाऊ और सुदृढ काम नही वन पाता। रेशे पर से लकडी के फटने की प्रवृत्ति से वचने के लिये, जहाँ कही भी सभव या सुविधाजनक होता है, प्लाइवुड का उपयोग किया जाता है।

ऐसा प्लाइवुड वन सकता है जिसमे प्रत्येक दिशा मे गुण और दृढता एक समान रहे। यह दृढता अवश्य ही लकडी की विशेष दिशा मे महत्तम दृढता से कम होती है। प्लाइवुड की काफी लवी चौडी चादरें वन सकती हैं।

साधारणतया दो तरह के प्लाइवुड का अधिक उपयोग होता है, एक तो सव पतली परतो से वना, दूसरा वह जिसमे वीच मे साधारण लकडी की मोटी परत होती है।

साधारण सरचनात्मक कामो के लिये, जिनमे प्रत्येक दिशा में महत्तम दृढता और नाप की स्थिरता की आवश्यकता होती है, केवल पतली परतो से वना प्लाइवुड अधिक वाछनीय होता है। उदाहरणत., ऐसा प्लाइवुड घरो में लगाने, दिलहा (panel) भरने, कुर्सियो के आसन वनाने और माल भेजने की पेटियाँ वनाने के लिये उपयोगी होता है। तीन परतवाले प्लाइवुड मे क्रोड (विचली परत) को मुखपृष्ठो से कुछ मोटा रखा जाता है, जिसमे सतुलित प्लाइवुड वने और दोनो दिशाओ मे दृढता समान हो।

साधारण लकडी के मोटे क्रोडवाले प्लाइवुड मे वीच की परत सस्ती लकडी की होती है और मोटी रहती है। इसपर पहले आडे रेशो की और उसके ऊपर मुखपृष्ठ परतें चिपकाई जाती हैं। क्रोड की लकडी स्वभावत वहुत चौडी नही मिल पाती। इसलिये क्रोड वस्तुत लकडी की सँकरी धज्जियो से वनाया जाता है। इस सरचना से चारो दिशाओ मे वैसी समान दृढता नही आ पाती जैसी केवल पतली परतो से वने प्लाइवुड मे, परतु फर्निचर वनाने के लिये मोटे क्रोडवाला प्लाइवुड उपयोगी होता है, क्योकि इसमे गुज्झे (dowels) ठोंके जा सकते हैं और वढईगीरी की अन्य क्रियाएँ भी सुगमता से हो सकती हैं।

विशेष कामों के लिये विशेष संरचना का प्लाइवुड भी बना लिया जा सकता है।

प्लाइवुड साधारण लकड़ी की अपेक्षा अधिक चोट सह सकता है, सुगमता से फटता नहीं और आवश्यकतानुसार टेढ़ी मेढ़ी आकृतियों का बनाया जा सकता है। इसमें काँटी ठोकी जा सकती है और पेंच जड़ा जा सकता है। रेगमाल (sandpaper) से रगड़कर यह चिकना किया जा सकता है और लकड़ी की तरह इसपर पॉलिश भी की जा सकती है।

प्लाइवुड बनाने के लिये लकड़ी की उचित ढंग की परतें बनाना आवश्यक है। इसके लिये पहले लकड़ी को पानी में उचित ताप और उचित समय तक गरम किया जाता है, या उसे भाप में गरम किया जाता है। इससे लकड़ी नरम हो जाती है और स्वच्छता से कटती है। परत बनाने की तीन प्रमुख रीतियाँ हैं घूमती हुई लकड़ी से परत तराशना, सपाट लकड़ी से परत तराशना और आरी से चीरना। इनमें से घूमती और सपाट लकड़ियों से परत तराशने की रीतियाँ ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। घूमती लकड़ी से परत तराशने के लिये लकड़ी के कुंदे को मशीन में घुमाया जाता है। मशीन में लंबी छुरी रहती है। न्यूनाधिक मात्रा में लकड़ी पर दबाव डालने के लिये चापदंड (pressure bar) भी रहता है। जैसे जैसे लकड़ी छिलती जाती है तैसे तैसे छुरी आगे बढ़ती जाती है। छुरी आगे बढ़ने की दर इच्छानुसार घटा बढ़ाकर मोटी या पतली परत निकाली जा सकती है। इस प्रकार लकड़ी के लट्ठे से अटूट बहुत लंबी परत निकलती है। कतरनी से फिर इस परत को इच्छानुसार छोटे टुकड़ों में विभक्त कर दिया जाता है।

सपाट तराशने में लकड़ी का चौरस कुंदा मशीन के चौके पर कस दिया जाता है और छुरी एक ओर से दूसरी ओर चलकर परत छील देती है। कुछ मशीनों में छुरी चलती है, कुछ में कुंदे वाला चौका। प्रत्येक काट में छुरी कितना नीचे उतरती है, इसके समंजन से परतों की मोटाई न्यूनाधिक की जा सकती है। आरे से चिरी हुई परतों का उपयोग बहुत कम होता है।

काटने के बाद परतों को सुखा लिया जाता है और तब उन्हें एक दूसरे से चिपकाया जाता है।

सुखाने के लिये आधुनिक कारखानों में यांत्रिक शुष्कक़ों (driers) का उपयोग किया जाता है। इनमें या तो परतों को गरम तवों पर से घसीटा जाता है, या उनके चारों ओर तप्त वायु परिचालित की जाती है।

सरेस से जोड़ने (glueing) का काम बहुत महत्वपूर्ण है। प्लाइवुड का बढ़िया या घटिया होना बहुत कुछ इसी क्रिया पर निर्भर है। बहुत काल तक दूध से निकले केसीन (casein) का सरेस ही प्रयुक्त होता था, परंतु कृत्रिम सरेसों के विकास से, उदाहरणतः यूरिया (urea), फिनोल (phenol), मेलामीन (melamine) तथा फॉरमैल्डिहाइड (formaldehyde) के आगमन से, केसीन का प्रयोग कम होता जा रहा है, विशेषकर इसलिये कि केसीन जल और सूक्ष्म जीवाणुओं के आक्रमण को अच्छी तरह सहन नहीं कर सकता।

कृत्रिम सरेसों के प्रयोग में साधारणतः अधिक ताप और एक समान दाब की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये प्लाइवुड के आधुनिक कारखानों में जलमचालित तप्त पट्ट (प्लैटेन) वाले दाबकों (प्रेसों) का उपयोग किया जाता है। साधारण कामों के लिये जहाँ प्लाइवुड आर्द्रता के संपर्क में बहुत नहीं आता, यूरिया रेज़िन पर्याप्त अच्छा है, परंतु जहाँ अधिक आर्द्रता सहनी पड़ती है वहाँ फिनोल, रिसॉर्सिनाल और मेलामीन सरेसों का उपयोग किया जाता है। प्लाइवुड कई मेल के बनाए जाते हैं, जैसे चाय की पेटियों के लिये, व्यवसाय, समुद्री काम और हवाई जहाजों के लिये। इन सब में परतों की उत्तमता और सरेस की जाति के कारण बड़ी भिन्नता रहती है।

मकान, फर्निचर, गाड़ी, रेलें, हवाई जहाज और माल भेजने की पेटियों के बनाने में प्लाइवुड की बड़ी खपत होती है। अन्य क्षेत्रों में भी इसकी खपत बढ़ रही है।

ऐसे भी प्लाइवुड बनते हैं जिनमें मुखपृष्ठ बहुत अच्छी लकड़ी का रहता है। इनमें रेशे इस प्रकार के रहते हैं कि देखने में सुंदर लगता है। ऐसे प्लाइवुड से बनी चीजें बड़ी सुंदर होती हैं। इस प्रकार के प्लाइवुड की माँग दिनोदिन बढ़ती जा रही है।

सं० ग्रं०—एस० पी० वेनराइट (Wainwright) मॉडर्न प्लाइवुड (१९२७), पेरी (Perry) मार्डन प्लाइवुड (१९४८), कैलेडियन वुड्स (१९५१), कालमैन (Kollmann) टेक्नोलोजी डेस होल्ज़ेस उन्ड डेर होल्ज़वर्कस्टोफे (१९५५)। [कृ० न० प्र०]

प्लाटा, रिओ डे ला (देखें, रिओ डे ला प्लाटा)।

प्लॉवडिफ (Plovdiv) स्थिति ४२° ८' उ० अ० तथा २४° ४४' पू० दे०। यह बल्गेरिया का दूसरे नंबर का शहर है। मशीन, वस्त्र और रासायनिक पदार्थों के उत्पादन का बहुत बड़ा केंद्र है। फिलिप्स नामक व्यक्ति द्वारा ३४१ ई० पू० में बनाए जाने के कारण प्राचीन समय में इसका नाम फिलिपॉपोलिस (Philippopolis) था। यहाँ बहुत से प्राचीन गिरजाघर तथा मस्जिदें वर्तमान हैं। एक विश्वविद्यालय भी है। इसकी जनसंख्या १,७१,३१६ (१९५६) है। [रा० व० सिं०]

प्लास्टिक (Plastic) के अंतर्गत हम उन सभी कृत्रिम रेज़िनों तथा कृत्रिम बहुलकों (synthetic polymers) को लेते हैं जो गरम करने पर सुनम्य हो जाते हैं और ठंढा होने पर कड़े ठोस का रूप ले लेते हैं, अथवा विशेष दशा में सुनम्य होते हैं तथा साँचे में ढाले जा सकते हैं। इनकी उत्पत्ति सरल कार्बनिक रसायनकों के बहुलकीकरण तथा सघनन की क्रिया से होती है। कार्बनिक पदार्थों में ये वृहद् बहुलकीकृत अपनी विशेष तनन क्षमता, नम्यता और कठोरपन के लिये अनोखे हैं और इनकी तुलना प्राकृतिक बहुलकों, जैसे रेशम, रुई, रबर, चपड़ा आदि से की जा सकती है। कृत्रिम उपायों से इन प्राकृतिक बहुलकों के सदृश पदार्थों का निर्माण संभव हो पाया है। अकार्बनिक क्षेत्र में हम कुछ ऐसे पदार्थों का उल्लेख कर सकते हैं जो प्लास्टिकों की भाँति व्यवहार करते हैं। काच गरम करने पर सुनम्य हो जाता है और साँचे में ढालकर तथा ठंढा कर उसे कोई भी स्थायी रूप दिया जा सकता है।

ये प्लास्टिक भौतिक गुणो मे अत्यधिक भिन्नता रखते हैं, चमकीले काले रग से लेकर काच की भाँति पारदर्शक तथा श्यान, कठोर या भगुर तक होते हैं, पर सभी सचककरण किए जाने की क्षमता रखते है। अपने अतुलनीय गुणो के कारण अधिकतर प्लास्टिको का प्रयोग रोधन (insulation) के लिये किया जाता है। पारदर्शक तथा रगहीन प्लास्टिको से लेंस (lens) और वायुयानों की खिडकियो के पर्दों का निर्माण होता है। ठोस प्लास्टिको का सिर्फ सचककरण ही नही किया जाता, वल्कि वे काटे और मोडे जा सकते हैं और उनपर पालिश भी की जा सकती है।

संक्षिप्त इतिहास — फ्रास, इग्लैड और जर्मनी मे १९वी शताब्दी के मध्य मे सेल्यूलोज़ नाइट्रेट बनाया गया। प्रायोगिक महत्व के प्लास्टिक का निर्माण एक अमरीकी नवयुवक, जॉन वेसली हाइयैट (John Wesley Hyatt) द्वारा हुआ (१८६९)। इसका नाम सेलुलॉइड (celluloid) पडा। यही पदार्थ प्लास्टिक उद्योग का आधार बना। विशेष और महत्वपूर्ण उपयोगों मे इसकी चादरो का बनाना था। इनका प्रयोग मोटर गाडियो की खिडकियो मे किया गया। नम्यता तथा प्रतिरोधकता इसके विशेष गुण है, पर प्रकाश से इसका रग नष्ट होने लगता है। वडी मात्रा मे इसका प्रयोग फोटोग्राफिक फिल्म, ऐनक, वटन, कघे, वुरुश, मुठियो, महिलाओ की जूतियों की एडियो तथा वहुत से शृगार सामानो के लिये किया गया। इसका महान अवगुण इसकी ज्वलनशीलता है।

सेलुलोस ऐसीटेट की श्रेणी के पहले प्लास्टिक का पेटेंट १९०३ ई० में आइशेनग्रुन और वेकर (A. Eichengrun and T Becker) द्वारा हुआ। १९२६ ई० मे यह तापसुनम्य (thermoplastic) प्लास्टिको का आधार बना। तब से इसका विस्तृत उपयोग मोटर-गाडी उद्योगो, मुठियों, स्विचो, सूक्ष्मयत्रो आदि के निर्माण के लिये किया गया। आघात सहिष्णुता, चीमडपन, हल्केपन तथा पारदर्शकता के कारण वायुयान उद्योगो मे इसका उपयोग अनिवार्य हो गया।

लाख और चपडा भारत और दक्षिणी एशिया मे सीमित मात्रा मे प्राप्त होता है और यह सदियो से मुहर करने, तथा वार्निश और प्रलाक्षारस (lacquers) इत्यादि बनाने के प्रयोग मे लाया जाता है। इसके प्रतिस्थापी की खोज मे डा० वेकलैंड (Dr Leo H. Bakeland) ने फिनोल फॉर्मेल्डिहाइड (phenol formaldehyde) रेज़िन का आविष्कार किया (१९०७ ई०)। इन्होने इस रेज़िन को वैकेलाइट (Bakelite) नाम दिया। इस महान सफलता के साथ ही आधुनिक प्लास्टिको का अध्याय आरभ होता है। १९२३ ई० मे फ्रिट्ज़ पोलक और कुर्ट रिपर (Fritz Pollock and Kurt Ripper) ने प्रथम यूरिया–फॉर्मेल्डिहाइड (urea formaldehyde) प्लास्टिक का आविष्कार किया। वहुत से अन्वेषण तथा प्रयोग इन भिन्न भिन्न प्लास्टिको के बनाने तथा इनके विविध उपयोगो पर किए गए और अब इनकी उपयोगिता का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि यदि आज का युग 'प्लास्टिक युग' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

प्लास्टिक का निर्माण — प्लास्टिको का वर्गीकरण मुख्यत दो भागो मे किया जाता है। प्रथम श्रेणी के वे तापदृढ (thermosetting) प्लास्टिक हैं, जो ताप और दाव से साँचे मे ढाले जाते हैं। ये तव तक उष्ण रखे जाते हैं जव तक कडे ठोस मे परिवर्तित नही हो जाते और तव ठढे किए जाते हैं। यह क्रिया अनुत्क्रमणीय (irreversible) होती है। दूसरी श्रेणी के तापसुनम्य (thermoplastic) प्लास्टिक हैं। ये भी ऊष्मा और दाव के ही प्रभाव से साँचे मे ढाले जाते है। ठढा करने पर इनमे दृढता आ जाती है। इसे शीतदृढीकरण (cold set) कहा जा सकता है। इनकी दृढता साधारण ताप पर स्थिर तथा स्थायी होती है। यदि इन्हे फिर गरम किया जाय, तो ये फिर सुनम्य हो जाते है और फिर से सांचे मे ढाले जा सकते हैं, अर्थात् तापदृढीकृत प्लास्टिक के विपरीत इनकी क्रिया उत्क्रमणीय है।

रेज़िन या प्लास्टिक शुद्ध रूप मे (१०० प्रति शत) साचे मे ढाले जा सकते हैं, पर प्रयोग मे वहुत से प्लास्टिको का किसी पूरक (fillers) के साथ सचककरण करते है। तापदृढीकृत प्लास्टिको मे विशेष रूप से पूरको, जैसे लकडी के महीन वुरादे, सेलुलोस, ऐस्वेस्टस, कार्वन, अभ्रक इत्यादि, का प्रयोग होता है।

तापदृढ प्लास्टिक (Thermosetting Plastics) — इस वर्ग के रेज़िनो का वहुलकीकरण तथा सघनन गरम साँचो के भीतर ही होता है और ताप की क्रिया से ही ये अविलेय तथा अगलनीय पदार्थ मे परिवर्तित हो जाते हैं। इस सचककृत ठोस को पुन ऊष्मा और दाव के प्रभाव से सचककृत नही किया जा सकता। इस वर्ग मे वैकेलाइट, यूरिया प्लास्टिक तथा ग्लिप्टल या ऐल्किड रेज़िन (alkyd resin) आते हैं।

ये तापदृढ प्लास्टिक पुन साँचे मे ढाले नही जा सकते। इनका विशेष गुण विलायको तथा ऊँचे ताप के प्रति अधिक प्रतिरोधकता है। इनका निर्माण दो चरणो मे सपन्न होता है, जिसमे दूसरा अर्थात् साचे मे ढालने का चरण तो कुछ पलो का ही होता है।

फिनोल-ऐल्डिहाइड या वेकेलाइट वर्ग के प्लास्टिक — आधुनिक प्लास्टिको मे इनका निर्माण सर्वप्रथम हुआ। इनकी प्राप्ति फिनोल और ऐल्डिहाइड के सघनन से होती है। प्राय फिनोल और फॉर्मेल्डिहाइड का प्रयोग होता है। द्रव फिनोल को ३० प्रति शत फॉर्मेल्डिहाइड जल विलयन के साथ वरावर मात्रा मे (भार से) ऐसी केतली मे रख देते हैं जिसमें गरम करने तथा प्रक्षोभ की सुविधा रहती है। अभिक्रिया प्रारभ होने तक केतली को गरम किया जाता है। प्राय एक घटे के वाद जव अभिक्रिया पूरी हो जाती है तव उसमें से ऊपरी तह के जल को निकालकर नीचे के पदार्थ को ठोस के रूप में जमा लेते हैं। ऐंवर रग का भगुर ठोस प्राप्त होता है, जो कार्वनिक विलायको में विलेय है। इसे 'नोवोलाक' (Novolac) कहते हैं। रासायनिक क्रिया इस प्रकार है

(वलय)ओहा + हाकाहाओ → (वलय)ओहा, काहा₂ओहा

$$C_6H_5OH + HCHO \rightarrow C_6H_4(OH)CH_2OH$$

फिनोल + फॉर्मेल्डिहाइड → हाइड्रॉक्सी वेंज़िल ऐलकोहल
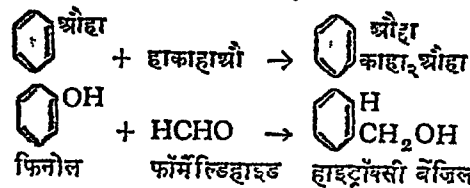
यह क्रिया प्रथम चरण में सपन्न होती है तथा ये 'नोवलाक' विलेय और गलनीय होते है।

दूसरे चरण में इस 'नोवोलाक' चूर्ण को कुछ पूरक, जैसे लकडी का महीन वुरादा, तथा रजक से मिश्रित करके दाव के साथ सांचे मे गरम

करते हैं जब हाइड्रॉक्सी बेंजिल ऐल्कोहल (hydroxy benzyl alcohol) का सघनन तथा बहुलकीकरण, ऋजुश्रृंखला के साथ साथ पार्श्वश्रृंखला में भी, होता है और कड़े पदार्थ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के एक सचककरण पदार्थ का संघटन निम्नलिखित है

रेज़िन या नोवोलाक	४८%	(भार से)
पूरक	४८%	
स्नेहक (lubricant)	१.५%	
त्वरक	१.०%	
रंजक	१.५%	

पूरकों में विशेष रूप से लकड़ी के महीन बुरादे तथा कार्बन का, और भूरे रंग के लिये लोह ऑक्साइड का, प्रयोग होता है। फिनोल-फॉर्मैल्डिहाइड प्लास्टिकों के सचककृत पदार्थों का उपयोग इतना विस्तृत है कि यहाँ पर पूर्ण उल्लेख करना संभव नहीं है। विशेष उल्लेखनीय इसके बने गियर चक्र हैं, जिनका प्रयोग सीमेंट, कागज तथा लोहे के कारखानों में होता है। यहाँ पर यह पानी से स्नेहन से काम करता है। यह सस्ता होता है तथा इसमें कोई ध्वनि नहीं होती। विद्युत् उद्योग में इसका बड़ा उपयोग है।
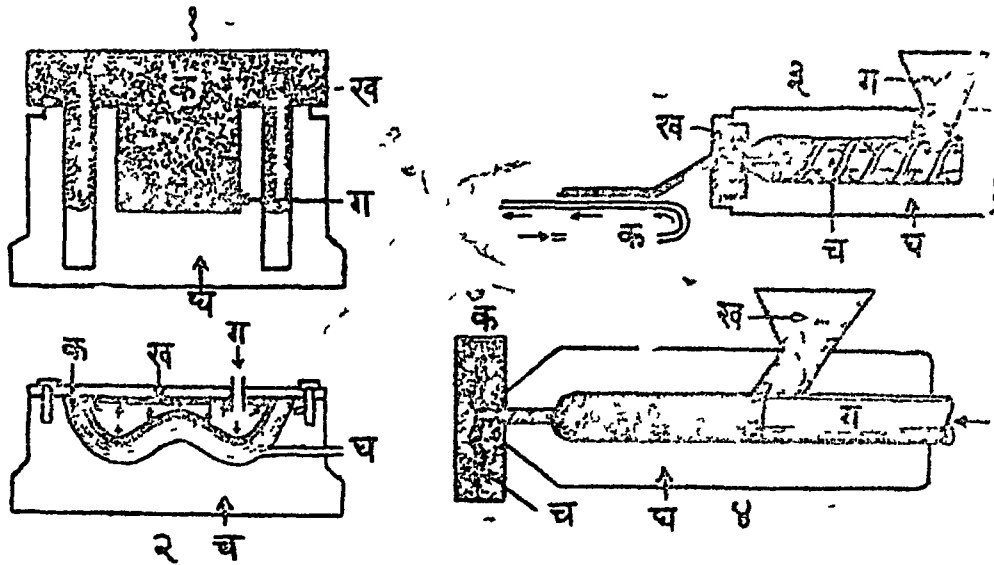
प्लास्टिकों की ढलाई की चार मुख्य विधियाँ

(१) तापस्थापित प्लास्टिक प्राय सपीडन साँचे में तैयार किए जाते हैं। ढलाईचूर्ण विवर में उँडेला जाता है और मूसल (plunger) द्वारा, जो भारी दावक का भाग होता है, चूर्ण को इच्छित आकार में लाने के लिये नीचे की ओर दबाया जाता है। क साँचे का मूसल, ख निर्देशक सुई, ग ढला हुआ प्लास्टिक तथा घ साँचे का विवर।

(२) तापस्थापित प्लास्टिक की चद्दरों को गरम दावक में इच्छित आकार दिया जा सकता है। प्लास्टिक की चद्दर को रबर के थैले के नीचे रखे, इच्छित वक्र आकार के जिग साँचे (Jig mould) पर रखा जाता है, जिसके नीचे एक छिद्र होता है। दावक को बंद कर थैले को तापक पदार्थ के प्रयोग से फैलने के लिये बाध्य किया जाता है। क चद्दर, ख रबर की थैली, ग भाप या गरम पानी, घ छिद्र तथा च ठोस जिग साँचा।

(३) तापप्लास्टिक की कुछ वस्तुएँ, जैसे नलिकाएँ, प्राय बहिर्वेधन (extrusion) दावक में बनाई जाती हैं। यौगिक दावक में प्रवेश करता है और उसे एक सूक्ष्मसमजिनी (endless screw) द्वारा दबाकर गरम कक्ष में ले जाते हैं, जहाँ वह पिघल जाता है। इसके बाद दबाकर वह ठप्पे के द्वार (die opening) से बाहर ढकेल दिया जाता है। इससे पिघले प्लास्टिक को इच्छित आकार प्राप्त हो जाता है। क वाहक, ख ठप्पा या डाइ, ग ढाला जानेवाला प्लास्टिक, घ तापक उपकरण तथा च यान्त्रिक सूक्ष्मसमजिनी।

(४) सश्लिष्ट तापप्लास्टिक को और सेलुलोजी प्लास्टिकों को अत क्षेपण (injection) साँचे से तैयार किया जा सकता है। ढलाईचूर्ण गरम कक्ष में प्रवेश कर, पिघल जाता है। इसे फिर मूसल द्वारा एक द्वार से साँचे में ले जाते हैं, जहाँ वह स्थापित हो जाता है। क साँचा, ख ढाला जानेवाला प्लास्टिक, ग मूसल, घ. तापक उपकरण तथा च ढला हुआ प्लास्टिक।

यूरिया-फॉर्मैल्डिहाइड, यूरिया ऐमिनोप्लास्टिक — यह यूरिया (१ अणुभार) और फार्मेल्डिहाइड (१–१.५ अणुभार) के सघनन से प्राप्त होता है, जो हेक्सामेथिलीन टेट्रामीन (hexamethyelne tetramine) की उपस्थिति मे होता है। अभिक्रिया धीरे धीरे गरम करके प्रारभ की जाती है और १२०° सें० पर तीव्र हो जाती है। पहले मोनो तथा डाइ मेथिलोल यूरिया का निर्माण होता है :

ना हा₂. का औ. ना हा₂ + हा का हा औ →
यूरिया   फॉर्मैल्डिहाइड
ना हा₂ का औ. नाहा काहा₂ औ हा
मोनो मेथिलोल यूरिया

$$[NH_2\ CO\ NH_2 + HC\ HO \rightarrow NH_2\ CO\ NH\ CH_2\ OH]$$

ना हा₂ का औ ना हा₂ + २ हा का हा औ →
का हा₂औ हा ना हा का औ ना हा. का हा₂ औ हा
डाइमेथिलोल यूरिया

$$[NH_2\ CO\ NH_2 + 2HC\ HO \rightarrow CH\ OH\ NH\ CO\ NH\ CH\ OH]$$
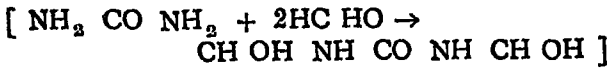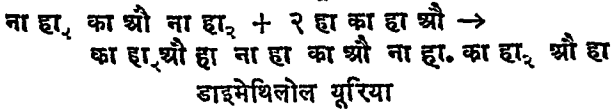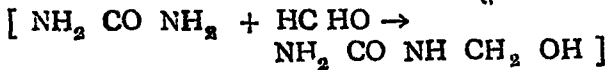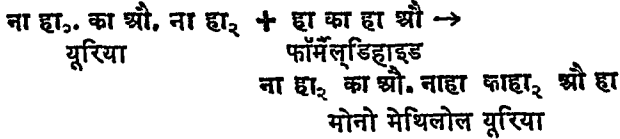
ये दोनो ही द्रव हैं। इनका सघनन होने लगता है और वहुलकीकरण की दशा प्राप्त होती है। उसी समय गरम करने की क्रिया रोककर इसे ठढा किया जाता है। इस प्राप्त रेजिन से जल निकाल लिया जाता है और शुद्ध सेलुलोस से मिश्रित किया जाता है। इस मिश्रण को न्यून ताप पर सुखाते हैं और रजक भी मिला देते हैं। अब अगला चरण साँचे के भीतर ताप और दाव से स्थापित करने का होता है। तव यूरिया रेजिन एक कडे और अनुत्क्रमणीय प्लास्टिक में दृढ हो जाता है। सेलुलोस पूरक के प्रयोग से पारभासक प्लास्टिक प्राप्त होता है। इसका प्रयोग विशेष रूप से प्रकाश के परावर्तको के लिये होता है। इसकी विशेपता यह है कि इसे कोई भी रग दिया जा सकता है। यूरिया प्लास्ठिक दिव्य काच की तरह तलवाले होते हैं और आघात सहने की क्षमता रखते हैं।

ग्लिप्टल या ऐल्किड रेजिन — कृत्रिम प्लास्टिक मे इनका भी एक वर्ग है। ग्लिसरोल के किसी अम्ल, जैसे थैलिक, आइसोथैलिक, टार्टरिक, सक्सिनिक, साइट्रिक इत्यादि के साथ सघनन की रीति से इसकी प्राप्ति होती है। यह चमडे की भाँति कडा होता है और काफी अवधि तक साँचे मे गरम करने के वाद कडे ठोस मे परिवर्तित होता है। यद्यपि यह भी तापदृढ प्लास्टिक है, पर इसका सचककरण के लिये वहुत कम प्रयोग होता है। इसका उपयोग वार्निश मे तथा ऐस्वेस्टस, अभ्रक इत्यादि के, जिनमे ऊँचे ताप सहने की क्षमता होती है, वधन और स्थिरीकरण मे होता है।

तापसुनम्य रेजिन — इस श्रेणी के प्लास्टिक कार्वनिक विलायको मे विलेय होते हैं। ये गरम करने पर सुनम्य हो जाते हैं और किसी भी रूप मे साँचे मे ढाले जा सकते हैं। वार वार गरम करके इनको भिन्न भिन्न आकृति दी जा सकती है। तुलना के लिये चपडा तथा मोम का उल्लेख किया जा सकता है।

सेलुलॉइड — सेलुलोस नाइट्रेट को कपूर के साथ मिलाकर गरम करने, या साधारण ताप पर भी गूथने से, सैलुलॉइड प्राप्त होता है। एक पुराना सूत्र निम्नलिखित है

कपूर या कपूर का तेल	२० भाग	(भार से)
रेंडी या अरासी तेल	४० भाग	"
सेलुलोस नाइट्रेट	४० भाग	"

गरम करने या गूथने के समय उसमे कुछ वर्णक, जैसे जिंक ऑक्साइड, मिला देते है। यह गरम पदार्थ आसानी से साँचे में ढाला जा सकता है और एक ठोस और कडी आकृति मे परिवर्तित हो जाता है। इसका प्रयोग वहुत से उपयोगी तथा सजावट के सामानो के निर्माण के लिये किया जाता है। यह ज्वलनशील है।

पाईरॉक्सिलिन (pyroxilin) एक विशेप सेलुलोस नाइट्रेट है। इसके और कपूर के मिश्रण से जो प्लास्टिक प्राप्त होता है, उसका मुख्य उपयोग फोटोग्राफिक फिल्मो के लिये होता है।

सेलुलोस ऐसीटेट — सेलुलोस ऐसीटेट का उपयोग साधारण प्लास्टिक के स्थान पर किया जाता है, क्योकि यह अज्वलनशील है। सेलुलोस के ऐसिटिलीकरण (acetylation) से सेलुलोस ऐसीटेट प्राप्त होता है। विलायको तथा सुनम्य कारको के सयोग से इससे प्लास्टिक प्राप्त होता है।

सेलुलोस ऐसीटेट को किसी सुनम्यकारक विलायक और रजक के साथ गरम करने पर एक सुनम्य पदार्थ प्राप्त होता है। वेलनो से दवा कर अधिक विलायको को निकाल देते हैं और चादरो के रूप मे प्लास्टिक प्राप्त हो जाता है। इसे सचककरण के लिये प्रयोग किया जाता है। सुनम्यकारको मे डाइमेथिल थैलेट, डाइएथिल थैलेट, ट्राइफेनिल फॉस्फेट इत्यादि का प्रयोग करते हैं। सेलुलोस ऐसीटेट प्लास्टिक स्वच्छ, रगहीन तथा सभी रगो मे, पारदर्शक और अपारदर्शक रूप मे प्राप्त किए जाते हैं।

मेथिल मेथाक्रिलेट (Methyl Methacrylate) — मेथिल मेथाक्रिलेट प्लास्टिको का द्वितीय विश्वयुद्ध मे प्लेक्सिग्लास (plexiglas) और लुसाइट (lucite) के नाम से वायुयानो मे प्रयोग हुआ। ये रगहीन, स्वच्छ, न टूटनेवाले तथा मजवूत होते हैं और कठिनाई से जलते हैं।

ऐसीटोन सायनहाइड्रिन को १००–११०° तक सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करके और फिर मेथिल ऐलकोहल की अभिक्रिया से मेथिल मेथाक्रिलेट द्रव रूप मे प्राप्त होता है। इसका वहुलकीकरण ताप, प्रकाश तथा सोडियम पेरॉक्साइड के प्रभाव से होता है और कडा दानेदार ठोस सचक के लिये तैयार हो जाता है।

इस प्रकार का एक प्लास्टिक, जिसे पर्सपेक्स (perspex) कहते हैं, अत्यत स्वच्छ, निम्न विशिष्ट गुरुत्व (१.१९) वाला होता है। और रचनात्मक (mechanical) तथा विद्युतीय गुणो के लिये उल्लेखनीय है। इसका उपयोग विजली के समान, टेलीफोन, कृत्रिम दाँतो, वायुयानो की सुरक्षित खिडकियो इत्यादि के निर्माण में किया जाता है। किसी भी निश्चित माप के लेंस तुरत ढाले जा सकते हैं और इसका प्रयोग प्रलाक्षारसो के लिये भी होता है।

वाइनिल क्लोराइड वहुलक (Vinyl Chloride Polymers) — ये अज्वलनशील तथा अधिक विद्युत् प्रतिरोधक होते हैं। इनका गलनाक साधारणत काफी ऊँचा होता है। इसलिये इन्हे किसी सुनम्यकारक के साथ गरम करते हैं। इनका उपयोग रासायनिक उद्योग, जल-प्रतिरोधक चादर तथा नम्य, रोधी तारो के लिये होता है।

वाइनिल ऐसीटेट (Vinyl acetate) — पारद लवण के उत्प्रेरण से यह ८०% उत्पाद मे ऐसेटिलीन और ऐसीटिक अम्ल के सयोग से प्राप्त होता है।

का हा$_3$ का ऑ ऑ हा + का हा ≡ का हा →
ऐसीटिक अम्ल ऐसेटिलीन
का हा$_3$ का ऑ ऑ का हा = का हा$_2$
वाइनिल ऐसीटट

$$[CH_3 COOH + CH \equiv CH \rightarrow CH_3 COOCH = CH_2]$$
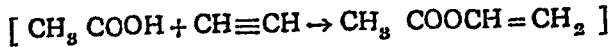
गरम करने पर यह एक स्वच्छ, रंगहीन, स्वादहीन तथा गंधहीन पदार्थ (विशिष्ट गुरुत्व १२) मे बहुलकीकृत हो जाता है। इसका श्रौसत श्रणुभार ५,००० से १०,००० तक रहता है। इसका गलनांक कुछ निम्न है । इसलिये इसका उपयोग प्रलाक्षारस तथा चिपकाने के काम मे होता है।

वाइनिल ऐसीटेट तथा वाइनिल क्लोराइड — इनके विविध श्रानुपातिक मिश्रण बहुलकीकरण पर भिन्न भिन्न गुणो के प्लास्टिक का सृजन करते हैं। ये गंधहीन, अज्वलनशील, कडे तथा जल प्रतिरोधक होते हैं।

स्टाइरिन (Styrene) — यह एथिलीन श्रौर बेंज़ीन मे प्राप्त किया जाता है श्रौर इसका बहुलकीकरण ताप से श्रथवा किसी त्वरक द्वारा होता है। यह बहुलक स्टाइरीन, जिसे डाइस्टीन भी कहते हैं, इनका होता है (विशिष्ट गुरुत्व १·०५) श्रौर ७०° से ९०° सें० पर ही सुनम्य हो जाता है। यह संरक्षणसह तथा श्राक्सीकारक प्रतिरोधक है। यह बहुत ही उच्च कोटि का रोधी है, जो पानी के भीतर डुबाने से भी नष्ट नही होता श्रौर इसीलिये इसका प्रमुख उपयोग विद्युत उद्योग मे होना है।

पॉलियीन (Polythene) — सर्वप्रथम इसका निर्माण इंपीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज़ ने किया, पर श्रव यह प्रचुर मात्रा मे श्रमरीका में भी निर्मित होता है, क्योकि वहाँ एथिलीन अधिक मात्रा में सुलभ है। एथिलीन गैस को १,००० वायुमडलीय दाब तथा २००° सें० ताप पर गरम करने से इसका बहुलकीकरण होता है। ०·०१ प्रति शत श्राक्सीजन का प्रयोग उत्प्रेरक की तरह होता है। इसका उपयोग बहुत विस्तृत है, क्योकि यह हलका तथा श्रनुपम रोधी है।

नाइलॉन (Nylon) — इसे '६६' के नाम से भी जाना जाता है। इसका सश्लेषण १९३५ ई० मे सपन्न हुआ, जिसका श्रेय श्रमरीका के कैरोथर्स (Carothers) तथा इनके सहवैज्ञानिको को है। यह हेक्सामेथिलीन डाइऐमीन श्रौर ऐडिपिक श्रम्ल के सघनन से प्राप्त होता है। सघनन की क्रिया किसी श्राटोक्लेव मे उत्प्रेरको की उपस्थिति मे गरम करने से होती है। नाइलॉन, हेक्सामेथिलीन ऐडिपैमाइड का बहुलक है श्रौर इसके सूत्र की इकाई – नाहा–(काहा$_2$)$_6$ नाहा का श्रौ (का हा$_2$)$_4$ का श्रौ – $[NH-(CH_2)_6 NH CO (CH_2)_4 CO-]$ है। यह यथार्थ रूप मे कृत्रिम रेशा है श्रौर इसका श्रौसनन श्रणु भार १०,००० के लगभग होता है। इसका गलनांक २६३° है। इसका गलनांक श्रधिक होने के कारण यह श्रासानी से धुलाया जा सकता है श्रौर इसपर लोहा किया जा सकता है। यह पानी तथा साधारण सार्दनिक विलायको मे श्रविलेय है।

रेशा बनाने की क्रिया २८५° सें० पर नाइट्रोजन के वायुमडल मे सपन्न की जाती है श्रौर नवनिर्मित रेशे को ठडे मे खीचकर उसकी लबाई को चार गुना श्रधिक लबा कर दिया जाता है। इस रेशे की विशेष तननक्षमता, नम्यता तथा द्युति होती है। यह प्राकृतिक रेशम के रेशे से भी पतला, मजबूत तथा श्रधिक प्रतिरोधक होता है। भिन्न भिन्न रूपो मे नाइलॉन का प्रयोग द्वितीय विश्वयुद्ध मे किया गया। ग्लाइडरो की उडान रस्सियो मे तथा पैराशूटो मे इसका उपयोग उल्लेखनीय है।

टेरिलीन (Terylene) — इसका श्राविष्कार डिक्सन तथा विनफील्ड (J. T. Dickson and J. R Whinfield) ने किया। इसका श्रौद्योगिक उपयोग कृत्रिम कपडो के बनाने मे होता है। यह एथिलीन ग्लाइकोल श्रौर टेरेथैलिक श्रम्ल के एस्टर का बहुलक है श्रौर इसके सूत्र की इकाई

श्रौ–श्रौका⬡काश्रौ श्रौ काहा$_2$ काहा$_2$ श्रौ काश्रौ⬡काश्रौ श्रौ

$$\left[O\text{-}OC \bigcirc CO\, O\, CH_2\, CH_2\, O\, CO \bigcirc CO\, O\right]$$ है।
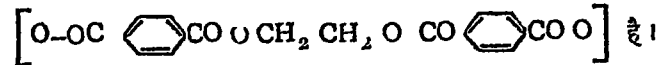
कार्ब-सिलिकोन बहुलक (Organo-Silicon-polymers) — नवनिर्मित, श्राधुनिक कार्ब-सिलिकोन प्लास्टिक श्रनुपम ऊष्मा प्रतिरोधक हैं श्रौर इस कारण उद्योगो में इनके सदुपयोग की बडी श्राशा है। ये बहुलक भी बहुत भिन्न भिन्न रूपो मे पाए जाते हैं।

इनका प्रयोग श्रभ्रक, काच के रेशो तथा ऐस्बेस्टस के श्रनुबधन के लिये विद्युद्रोधियो मे किया जाता है। ये भी तापदृढ प्लास्टिक हैं, जो एक बार दृढ होने पर ऊँचे ऊष्मा प्रतिरोधक होते हैं। इनका निर्माण सिलिकोन क्लोराइड, (का$_2$हा$_5$)$_2$ सि क्लो$_2$ $[(C_2H_5)_2 Si Cl_2]$ से होता है, जो जलविश्लेषण पर एथिल सिलेनडाग्रोल (Ethyl silanediol) देता है श्रौर सघनन की क्रिया से बहुलकीकरण होता है।

स० ग्र०—पी० डी० रिचिग केमिस्ट्री श्रॉव प्लास्टिक ऐंड हाइ-पॉलिमर, क्लेवर-ह्यूम प्रेस लि०, १९४९, एच० एम० रिचर्डसन ऐंड जे० डब्ल्यू० विलसन, मेक्ग्रॉ हिल बुक क०, न्यूयॉर्क, १९४६, सी० सी० वाइडिंग ऐंड श्रार० एल हाशे प्लैस्टिक थियोरी ऐंड प्रैक्टिस (मेक्ग्रॉ हिल बुक क०, न्यूयॉर्क, १९४८। [शि० मो० व०]

प्लास्टिक सर्जरी (Plastic Surgery) शल्यशास्त्र के श्राधुनिक उन्नतिकाल मे, विशेष शल्यक्रिया के पृथक् विशेषज्ञ होने लगे हैं। वक्ष-शल्य, हृदयशल्य, मस्तिष्कशल्य, विकलागशल्य (orthopedics) श्रादि की भाँति, प्लास्टिक शल्य भी शल्यशास्त्र के विशेष विभाग की वह शाखा है जिसमे प्राय जन्मकाल के विकृत श्रगो के, या जन्मोपरात उत्पन्न विकृत शरीर के श्रगो के, विकार श्रथवा विकृत रूप को शल्य द्वारा सुधारा जाता है, जैसे पैदा होनेपर तालु का विकार, या कटे श्रोठ, या मारपीट के कारण कटी नाक द्वारा कुरूप हुए चेहरे पर नाक बना देना, या त्वचा जल जाने के बाद वहाँ के केलायड को हटाकर उसके स्थान पर शरीर के दूसरे भाग से मुलायम त्वचा लगाकर कलमबदी करना, पुराने घाव या बुढापे की झुर्रियो के कारण मुख की विकृत श्राकृति को ठीक कर देना, जिससे पुन युवा श्राकृति हो जाय, श्रादि।

नाक बना देने की शल्यक्रिया की कला भारतवर्ष मे बहुत प्राचीन काल से विकसित मानी जाती है। श्राधुनिक महायुद्धो मे प्लास्टिक सर्जरी की उन्नति का श्रवसर बहुत श्रधिक मिलने के कारण यह शल्य-विद्या बहुत प्रगति कर गई। युद्धकाल मे गोली, बम तथा गिरते मकान श्रादि की चोट से बहुत मनुष्यो को, रूप विकृत हो जाने के कारण,

प्लास्टिक सर्जरी की शरण लेनी पडती रही, जिससे इस ज्ञान के अनुभव बढाने का प्रचुर अवसर मिलता रहा। साथ ही चमत्कारपूर्ण सफलता के दूसरे कारणो मे आधुनिक सवेदनहारी (anaesthetic), रुधिर सचरण (blood transfusion), प्रतिजैविक (antibiotic) साधनो आदि का इसके विकास मे विशेष स्थान रहा है। [उ० शा० प्र०]

प्लिनी प्राचीन इतिहास मे प्लिनी नाम के दो प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। बडे प्लिनी का जन्म कोमो नामक स्थान मे २३ ई० मे हुआ। वेस्पसियन तथा उसके पुत्र टाइटस के समय मे इसने रोम मे कई राजकीय पदो को सुशोभित किया। ७७ ई० मे टाइटस को उसने अपना महान् ग्रंथ समर्पित किया। दो वर्ष बाद विसूवियस पहाड से निकले लावे से हरक्यूलियन तथा पापिग्राइ को बडी क्षति पहुँची और इसी मे प्लिनी का भी देहात हो गया। यद्यपि प्लिनी मे स्वय मौलिकता का अभाव था, उसने बहुत से ग्रथो का अध्ययन किया था। उसके भतीजे और दत्तक पुत्र छोटे प्लिनी का कथन है कि वह हर समय पढा करता था, यहाँ तक कि भोजन करते समय भी कोई व्यक्ति उसे कोई न कोई ग्रथ पढकर सुनाता था। वह प्रत्येक ग्रथ से सामग्री एकत्रित करता था और फिर कोई पुस्तक लिखता था। उसने बहुत से ग्रथ लिखे। इनमे 'नेचुरल हिस्ट्री' अथवा 'प्राकृतिक इतिहास' ज्ञान का भडार है। इसमें भारत का भी कई स्थानो पर उल्लेख है और ऐसा विवरण भी दिया है जो और कही नही मिलता है। वह ३७ भागो मे है और इसके छठे भाग मे भारत के भूगोल का उल्लेख है जो मेगस्थनीज की 'इडिका' पर आधारित है।

प्लिनी ने अपने देशवासियो को चेतावनी दी कि भारत शृंगार की सामग्री देकर रोम से बहुत धन खीचे ले जा रहा है। प्लिनी के वृत्तात मे बहुत कुछ कल्पित गाथाएँ भी मिलती हैं। उसकी अन्य कृतियो में निम्न उल्लेखनीय हैं—'लाइफ ऑव पापिनियस', 'ड्रबियस लैंग्वेज' इत्यादि। [बै० पु०]

प्लिमथ (Plymouth) १ नगर, स्थिति ५०° २३' उ० अ० तथा ४° ९' प० दे०। यह इग्लैंड मे डेवनशिर की एक काउटी बरो तथा नगर है, जो लदन से २३१ मील दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम मे है। यह एक प्रसिद्ध बदरगाह तथा जलसेना का अड्डा भी है। यहाँ साबुन, तैरने के कपडे, बुरुश, सीमेट, रस्सी, तथा शराब का निर्माण होता है। काउटी की जनसख्या २,०९,९०० (१९६२) है।

२. नगर, स्थिति ४१° २०' उ० अ० तथा ८६° १९' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका, के इडियाना राज्य मे शिकागो नगर से ७५ मील दक्षिण-पूर्व यलो नदी के किनारे स्थित नगर है, जहाँ रेडियो, चीनी के बरतन तथा स्वचालित तापशामक यत्र बनते हैं।

३ नगर, स्थिति १६° ४३' उ० अ० तथा ६२° १३' प० दे०। यह ब्रिटिश वेस्ट इडीज मे मॉन्सेरैट द्वीप के दक्षिणी सिरे पर स्थित बदरगाह, राजधानी तथा सबसे बडा नगर है।

४ नगर, स्थिति ४१° १७' उ० अ० तथा ७६° ०' प० दे०। यह सयुक्त राज्य, अमरीका, मे पेंसिलवेनिया राज्य का नगर है, जहाँ कोयला खोदना तथा सूती कपडा बनाना प्रमुख उद्योग हैं। यातायात के लिये जमीन के अदर सुरगें बनाई गई हैं।

५ नगर, स्थिति ४१° ५८' उ० अ० तथा ७४° ४०' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका, मे बोस्टन से ३४ मील दक्षिण-पूर्व प्लिमथ खाडी पर स्थित, मैसाचूसेट्स राज्य का ऐतिहासिक नगर है, जहाँ रस्सी बनाना, मछली मारना तथा नाव बनाना प्रमुख उद्योग हैं।

इसी नाम के नगर सयुक्त राज्य, अमरीका, के विस्कॉन्सिन, उत्तरी मिशिगैन, ओहायो, न्यूहैंपशिर, मिनिसोटा, कॉनैक्टिकट राज्यो मे भी है। [रा० व० सिं०]

प्लीहा (Spleen) शरीर की सबसे बडी वाहिनीहीन ग्रथि (ductless gland) है, जो उदर के ऊपरी भाग मे बाईं ओर आमाशय के पीछे स्थित रहती है। इसकी आतरिक रचना योजी ऊतक (connective tissue) तथा स्वतत्र पेशियो से होती है। इसके अदर प्लीहावस्तु भरी रहती है, जिसमे बडी बडी प्लीहा कोशिकाएँ तथा जालक कोशिकाएँ रहती हैं। इनके अतिरिक्त रक्तकण तथा लसीका कोशिकाएँ भी मिलती हैं।

प्लीहा के कार्य — ये निम्नलिखित है·

१ यह गर्भ की प्रारभिक अवस्था मे रक्तकणो का निर्माण करती है, किंतु बाद मे यह कार्य अस्थिमज्जा द्वारा होने लगता है। तब यह मुख्यत कोशिका के रूप मे रहती है, जहाँ से रक्तकण सचित होकर रुधिर वाहिनियो मे जाते हैं।

२ यहाँ रुधिरकणो का विघटन भी होता है। इसीलिये प्लीहा मे लौह की मात्रा अधिक मिलती है।

३ यह प्रोटीन के उपापचय (metabolism) मे, विशेषत: यूरिक अम्ल के निर्माण मे, योग देती है।

४. यह पित्तरजको, पित्तारुण तथा पित्तहरित का निर्माण करती है।

५ यह पाचकनलिका, विशेषत रक्तवाहिनियो के कोश का कार्य करती है, क्योकि भोजन के पाचनकाल मे यह सकुचित होकर पाचन के हेतु रुधिर को बाहर भेजती है।

६ इसमे से एक अत स्राव निकलता है, जो आमाशय ग्रथियों को उत्तेजित करता है।

७ यह रक्तनिस्यदक के रूप मे भी कार्य करती है, जिसमे रुधिर में प्रविष्ट जीवाणु छनकर वही पृथक् हो जाते हैं और श्वेत कणो (W B. C) के जीवाणुभक्षण (phagocytosis) द्वारा अदर ही अदर नष्ट हो जाते हैं। [प्रि० कु० चौ०]

प्लूटोनियम सकेत, 'प्लू' Pu, परमाणु क्रमाक ९४, द्रव्यमान सख्या २३९, का आविष्कार परमाणु बम तैयार करने के समय १९४० ई० मे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की प्रयोगशालाओ मे हुआ था। प्लूटो नामक ग्रह के नाम पर इसका नाम प्लूटोनियम (Plutonium) पडा। प्लूटोनियम के कई समस्थानिक हैं। सभी सश्लेषण से प्राप्त हुए हैं और रेडियोऐक्टिव होते है। समस्थानिको की द्रव्यमान सख्या उनकी प्राप्ति की विधि पर निर्भर करती है। सबसे अधिक समस्थानिक की द्रव्यमान सख्या २३९ है। सबसे पहले जो समस्थानिक प्राप्त हुआ था उसकी द्रव्यमान सख्या २३८ थी। प्लूटोनियम आवर्तसारणी के उसी समूह मे आता है जिस समूह मे यूरेनियम और नेप्चूनियम हैं।

प्लूटोनियम के शुद्ध रासायनिक यौगिक की प्राप्ति १९४२ ई० मे हुई थी। यह पहला धात्विक तत्व है जो केवल सश्लेषण से पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त हुआ था। आज भी इसकी प्राप्ति नाभिकीय रिऐक्टर मे ही होती है। प्लूटोनियम बडी अल्प मात्रा मे यूरेनियम अयस्को, पिचब्लेंड और मोनेज़ाइट, मे पाया जाता है। यूरेनियम २३८ पर न्यूट्रॉन द्वारा बम वर्षा से न्यूट्रॉन का अवशोषण कर यह बनता है। ये न्यूट्रान यूरेनियम के स्वत विखटन मे उत्सर्जित होते हैं। यह क्रिया नाभिकीय रिऐक्टर मे सपन्न होती है। यूरेनियम २३८ कुछ न्यूट्रॉन का अवशोषण कर यूरेनियम २३९ बनता है। यह दो उत्तरोत्तर बीटाकणो के उत्सर्जन से प्लूटोनियम २३९ बनाता है। प्लूटोनियम २३९ के बनने पर इसे रासायनिक विधि से अन्य तत्वो से पृथक् करते हैं। यह इतनी अधिक मात्रा में प्राप्त हो गया है कि इसके यौगिको का विस्तार से अध्ययन हुआ है।

प्लूटोनियम के अनेक यौगिक प्राप्त हुए हैं। इसके तीन ऑक्साइड, प्लूटोनियम मोनोक्साइड, प्लूटोनिमय सेस्क्विऑक्साइड और प्लूटोनियम डाइऑक्साइड महत्व के हैं। इन ऑक्साइडो के सहयोग से ही प्लूटोनियम के हैलाइड और आक्सीहैलाइड प्राप्त हुए हैं। प्लूटोनियम ट्राइफ्लोराइड को छोडकर अन्य सब हैलाइड आर्द्रताग्राही होते हैं। प्लूटोनियम के कार्बाइड, नाइट्राइड, सिलिसाइड और सल्फाइड भी प्राप्त हुए हैं। ये बहुत ऊँचे ताप पर भी स्थायी होते हैं। प्लूटोनियम के यौगिकों की सख्या आज बहुत अधिक बढ गई है और इनके गुण का भी अध्ययन बडे विस्तार से हुआ है।

प्लूटोनियम के उपयोग — परमाणु ऊर्जा मे प्लूटोनियम २३९ काम आता है। नाभिक रिऐक्टर मे यह ईंधन का कार्य करता है। ऐसे रिऐक्टर यूरेनियम २३८ के साथ मिलकर ऊर्जा उत्पन्न करते हैं और साथ साथ न्यूट्रॉन के अवशोषण से प्लूटोनियम २३९ भी बनता है। प्लूटोनियम २३८ के विखटन से जो ऊर्जा प्राप्त होती है वह ऊर्जा पूर्ण विखडन मे प्रति पाउड १०,०००,००० किलोवाट घटा ऊष्मा ऊर्जा के बराबर होती है। उस ऊर्जा को ऊष्मा के रूप मे, या विद्युत् के रूप मे, परिणत कर सकते हैं। इसमे समस्त ऊर्जा के २० से ३० प्रति शत तक की उपलब्धि हो सकती है। ऊर्जा की उपलब्धि वस्तुत यत्र की दक्षता पर निर्भर करती है। [फू० स० व०]

प्लूरोन्युमोनिया (Pleuro-pneumonia) प्लूरोन्यूमोनिया, जिसे सामान्यतया फुफ्फुस ताऊन (Lung Plague) भी कहते हैं, ढोरों मे अधिक होनेवाला उग्र स्पर्शज रोग है, जो मुख्यतया फुफ्फुस तथा वक्ष की अस्तर कला (lining membrane) को आक्रात करता है। इसके फलस्वरूप एक विशेष प्रकार का खड एव खडशोथ (lobar and lobular pneumonia) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गोजातीय पशु (bovine animals) के अतिरिक्त यह रोग अन्य पशुओ मे नही प्रसारित होता।

यह रोग अनेक देशो मे, जैसे भारत, चीन, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोप के बहुत से देशों मे भी होता है। मनुष्यो को जब होता है तब शरीर-विकृति-विज्ञान (pathology) के अतर्गत होनेवाले मुख्य परिवर्तनो मे फुफ्फुस की आकृति सगमरमर के समान हो जाती है तथा फुफ्फुसावरण (pleura) मे फाइब्रिनस विक्षेप (fibrinous deposit) हो जाता है। कभी कभी वक्षगुहा (cavity of thorax) में अत्यधिक मात्रा मे तरल पदार्थों का भी सचय हो जाता है।

लक्षण — प्लूरोन्युमोनिया के प्रमुख लक्षणो मे रोगी को ज्वर आता है, क्षुधाहानि, विशेष प्रकार की खाँसी का रुक रुककर वेग, श्वास कष्ट (dyspnoea), नाडी एव श्वासगति मे तीव्रता, इत्यादि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सभी लक्षण दो या तीन सप्ताह से लेकर कई मास तक विद्यमान रहते हैं। ऐसी स्थिति में इन रोगियों की परीक्षा करने पर रोगी अत्यधिक कृप एव कमजोर दिखाई देता है। ओठ और हाथ पैरों मे नीलिमा (cynosis) दिखाई देती है। परिश्रवण (auscultation) परीक्षा मे फुफ्फुस के सभी स्थानो मे सीटी के समान ध्वनि राल्स (rales) सुनाई देती है तथा कुछ स्थानो पर श्वसनी श्वसन (bronchial breathing) मिलती है। रोगी को कष्ट के साथ पतला, गुलाबी तथा रक्तवर्ण बलगम निकलता है। यह अधिक चिपचिपा नही होता तथा सूक्ष्मदर्शक से परीक्षा करने पर इसमे प्लेग के कीडे (Past pestis) मिलते हैं।

जब रोगी को अत्यधिक कपन के साथ तीव्र ज्वर होता है तब उसकी मृत्यु की अधिक सभावना हो जाती है।

उपचार — इसकी उपयुक्त चिकित्सा प्लेग की चिकित्सा के समान होती है। [प्रि० कु० चौ०]

प्लेग ससार की सबसे पुरानी महामारियो मे है। इसे ताऊन, ब्लैक डेथ, पेस्ट आदि नाम भी दिए गए हैं। मुख्य रूप से यह कृतक (rodent) प्राणियो का रोग है, जो पास्चुरेला पेस्टिस नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है। आदमी को यह रोग प्रत्यक्ष ससर्ग अथवा पिस्सू के दश से लगता है। यह तीव्र गति से बढता है, बुखार तेज और लसीका ग्रथियाँ स्पर्शासह्य एव सूजी होती हैं, रक्तपूतिता की प्रवृत्ति होती है और कभी कभी यह न्यूमोनिया का रूप धारण करता है।

प्लेग महामारियों की कहानी — प्राचीन काल मे किसी भी महामारी को प्लेग कहते थे। यह रोग कितना पुराना है इसका अदाज इससे किया जा सकता है कि एफीरस के रूफुस ने, जो ट्रॉजन युग का चिकित्सक था, 'प्लेग के ब्यूबों' का जिक्र किया है और लिखा है कि यह घातक रोग मिस्र, लीबिया और सीरिया मे पाया जाता है। 'बुक ऑव सैमुअल' मे इसका उल्लेख है। ईसा पूर्व युग मे ४१ महामारियो के अभिलेख मिलते हैं। ईसा के समय से सन् १५०० तक १०९ बडी महामारियाँ हुई, जिनमे १४वी शताब्दी की 'ब्लैक डेथ' प्रसिद्ध है। सन् १५०० से १७२० तक विश्वव्यापी महामारियाँ (epidemics) फैली। फिर १८वी और १९वी शताब्दी मे शांति रही। सिर्फ एशिया में छिटफुट आक्रमण होते रहे। तब सन् १८९४ मे हागकाग मे इसने सिर उठाया और जापान, भारत, तुर्की होते हुए सन् १८९६ मे यह रोग रूस जा पहुँचा, सन् १८९८ मे अरब, फारस, ऑस्ट्रिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका और हवाई द्वीप तथा सन् १९०० मे इग्लैंड, अमरीका और ऑस्ट्रेलिया मे इसने ताडव किया। सन् १८९८ से १९१८ तक भारत मे इसने एक करोड प्राणो की बलि ली। अब पुन ससार मे शाति है, केवल छिटफुट आक्रमण के समाचार मिलते हैं।

प्लेग महामारियाँ के चक्र चलाते रहे हैं। छठी शताब्दी में पचास

वर्षों तक यूरोप में इसका एक दौर चला। समूचे रोमन साम्राज्य मे प्लेग बंदरगाहो से आरभ होकर दूरवर्ती नगरो की ओर फैला था। सातवी शताब्दी मे ६६४ से ६८० तक फैली महामारियाँ, जिनका उल्लेख बेडे ने किया है, शायद प्लेग ही थी। १४वी शताब्दी मे 'काली मौत' के नए दौर आरभ हुए, जिनमे मृत्युसख्या भयावह थी। प्रथम दौर में अनेक नगरो की दो तिहाई से तीन चौथाई आबादी तक साफ हो गई। कहते हैं, इस चक्र मे यूरोप मे ढाई करोड (अर्थात् कुल आबादी के चौथाई) व्यक्ति मर गए। १६६४-६५ मे इतिहासप्रसिद्ध 'ग्रेट प्लेग' का लदन नगर पर आक्रमण हुआ। लदन की आबादी साढ़े चार लाख थी, जिसमे से दो तिहाई लोग डरकर भाग गए और बचे लोगो मे से ६८,५९६ प्लेग का शिकार हो गए। कहते हैं, इसी के बाद हुए लदन के बृहत् अग्निकाड ने नगर से प्लेग को निकाल बाहर किया। पर सभवत यह चमत्कार सन् १७२० में लगाई गई कठोर क्वारंटीन का फल था। इसके बाद भी यूरोप मे प्लेग के आक्रमण होते रहे और अत मे सन् १७२० मे मार्सेई मे ८७,५०० प्राणो की बलि लेकर यह शात हुआ।

सन् १६७५ से १६८४ तक उत्तरी अफ्रीका, तुर्की, पोलैंड, हगरी, जर्मनी, आस्ट्रिया मे प्लेग का एक नया उत्तराभिमुख दौरा हुआ, जिसमे सन् १६७५ मे माल्टा मे ११,०००, सन् १६७९ मे विएना मे ७६,००० और सन् १६८१ मे प्राग में ८३,००० प्राणो की आहुति पडी। इस चक्र की भीषणता की कल्पना इससे की जा सकती है कि १०,००० की आबादीवाले ड्रेस्डेन नगर मे ४,३९७ नागरिक इसके शिकार हो गए।

सन् १८३३ से १८४५ तक मिस्र मे प्लेग का ताडव होता रहा। पर इसी समय यूरोप मे विज्ञान का सूर्योदय हो रहा था और मिस्र के प्लेग का प्रथम बार अध्ययन किया गया। फ्रेंच वैज्ञानिको ने बताया कि वास्तव मे जितना बताया जाता है यह उतना सक्रामक नही है। सन् १८७८ मे वोल्गा महामारी से यूरोप सशक हो उठा और सभी राज्यो ने जाँच आयोग भेजे, जो महामारी समाप्त होने के बाद घटनास्थल पर पहुंचे।

भारत मे प्लेग — एक पुरानी कहावत थी कि प्लेग सिंधु नद नही पार कर सकता। पर १९वी शताब्दी मे प्लेग ने भारत पर भी आक्रमण किया। सन् १८१५ मे तीन वर्ष के अकाल के बाद गुजरात, कच्छ और काठियावाड में इसने डेरा डाला, अगले वर्ष हैदराबाद (सिंध) और अहमदाबाद पर चढाई की, सन् १८३६ मे पाली (मारवाड) से चलकर यह मेवाड पहुंचा, पर रेगिस्तान की तप्त बालू में अधिक चल न पाया। सन् १८२३ में केदारनाथ (गढवाल) मे, सन् १८३४ से १८३६ तक उत्तरी भारत के अन्य स्थलो पर आक्रमण हुए और सन् १८४९ मे यह दक्षिण की ओर बढा। सन् १८५३ मे एक जाच कमीशन नियुक्त हुआ। सन् १८७६ में एक और आक्रमण हुआ और तब सन् १८९८ से अगले २० वर्षों तक इसने बबई और बगाल को हिला डाला।

प्लेग के स्थायी गढ अरब, मेसोपोटामिया, कुमाऊँ, हूनान (चीन) पूर्वी तथा मध्य अफ्रीका हैं। प्लेग की महामारियो की कहानी विश्व इतिहास के साथ पढने पर ज्ञात होता है कि इतिहास की धाराएँ मोडने में इस रोग ने कितना बडा भाग लिया है।

प्लेगकारक जीवाणु — बैसिलस पेस्टिस (पास्चुरेला पेस्टिस) की खोज सन् १८९४ में हागकाग में किटा साटो और यर्सिन ने की। आगे के अनुसधानो ने सिद्ध किया कि यह मुख्यत कृतक प्राणियो का रोग है। पहले चूहे मरते हैं तब आदमी को रोग लगता है। प्लेग के जीवाणु सरलता मे सवर्धनीय हैं और गिनीपिग (guinea pig) तथा अन्य प्रायोगिक पशुओ में रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

प्लेग भूमध्यरेखा के अत्यत उष्ण प्रदेश को छोडकर ससार के किसी भी प्रदेश में हो सकता है। कोई भी जाति, या आयु का नरनारी इससे बचा नही है। प्लेग हमारे देश में पहले मूस (Rattus norvegicus) को होता है। इससे चूहो (Rattus rattus) को लगता है। पिस्सू (जिनापसेल्ला चियोपिस) इन कृतको का रक्तपान करता है। जब चूहे मरते हैं तो प्लेग के जीवाणुओ से भरे पिस्सू चूहे को छोडकर आदमी की ओर दौडते हैं। जब आदमी को पिस्सू काटते हैं, तो दश मे अपने अदर भरा सक्रामक द्रव्य रक्त में उगल देते हैं। चूहो का मरना आरभ होने के दो तीन सप्ताह बाद मनुष्यो मे प्लेग फैलता है। न्युमोनिक प्लेग का सक्रमण श्वास से निकले जलकणो से लग जाता है और सबसे अधिक सक्रामक होता है। व्यापक अनुसधान से यह ज्ञात हो चुका है कि लगभग १८० जाति के कृतक, जिनमे मारमोट, गिलहरी, जरबीले, मूस, चूहे, आदि शामिल है, प्लेग से आक्रात होते हैं और १,४०० मे से ७० जातियो के पिस्सू प्लेग सवाहक होते हैं। प्लेग उन्मूलन की यही सबसे कठिन समस्या भी है कि यह जगली कृतको का रोग है और मध्य एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के घने जगलो मे छिपा बैठा है, जहाँ से इसे निकालना कठिन हो रहा है।

प्लेग विकृति — जहाँ पिस्सू काटता है उस स्थल की लसीका ग्रथि सूज आती है (प्राइमरी ब्यूबो)। तब शरीर की और लसीका ग्रथियाँ (गिल्टियाँ) सूजती हैं। कभी कभी जीवाणु रक्त मे पहुच जाते हैं और रक्तपूतिता हो जाती है। भीषण प्लेग मे गिल्टी निकलने का मौका ही नही आता। ये जीवाणु शरीर के प्रमुख अगो में प्रदाह करते हैं और आहत रक्तवाहनियो से रक्तस्राव होता है।

लक्षण — प्लेग का उद्भवकाल १ से १२ दिन है। जाडा देकर बुखार आता है और अनियमित ढग से घटता बढता है। मिचली, वमन, हृदयदौर्बल्य तथा अवसन्नता, तिल्ली बढना और रक्तस्रावी दाने निकलना, जिससे शरीर काला पड जाता है और रोग का काली मौत नाम सार्थक होता है। इस रोग के नौ रूप ज्ञात हैं (१) गिल्टीवाला प्लेग (ताऊन, ब्यूबोनिक प्लेग), जिसमे अगपीडा, सहसा आक्रमण, तीव्र ज्वर तथा त्वरित नाडी होती है, दो तीन दिन मे गिल्टी निकलती है और दो सप्ताह मे पक जाती है, (२) रक्तपूतित प्लेग घातक प्रकार है, जिसमे रक्त मे जीवाणु वर्तमान होते हैं, (३) न्यूमोनिक प्लेग, जिसमे रोग का आक्रमणकेंद्र फेफडा होता है। यह अत्यत घातक प्रकार है और तीन चार दिन मे प्राण हर लेता है, (४) आत्रिक प्लेग, (५) प्रमस्तिष्कीय प्लेग, (६) कोशिका त्वचीय प्लेग, जिसमे त्वचा पर कारबकल से फोडे निकल आते हैं, (७) स्फोटकीय प्लेग, जिसमे शरीर मे दाने निकलते हैं, (८) गुटिका प्लेग, जिनमें रोग कठ में होना है तथा (९) अवर्धित प्लेग तथा जो प्लेग का हल्का आक्रमण है और जिसमे केवल गिल्टी निकलती है।

उपचार और रोकथाम — नई ओषधियो के आगमन से पूर्व प्लेग का उपचार था, चूहो का विनाश और चूहे गिरने पर स्थान छोड़

देना। रोकथाम के लिये प्लेग का टीका आज सक्षम है। प्लेग की महामारी जीवाणु, पिस्सू और चूहे के त्रिकोण पर बैठकर चलती है और जीवावसादक से जीवाणु, कीटनाशक (१०% डी०डी० टी०) से पिस्सू, और चूहा विनाशक उपायों से चूहों को मारकर प्लेग का उन्मूलन संभव है। जीवावसादकों में स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा सल्फा ओषधियों में सल्फाडाइज़ीन और सल्फामेराज़ीन इनके विरुद्ध कारगर हैं। आधुनिक चिकित्सा ने प्लेग की घातकता नष्टप्राय कर दी है।

[भा० प्र० मे०]

प्लेटो दे० 'अफलातून।'

प्लेनटेबुल सर्वेक्षण (Planetable Survey) पटल सर्वेक्षण की बड़ी अनोखी विधि है। सर्वेक्षण की अन्य अधिकांश विधियों में पृथ्वी की सतह पर बिंदुओं की माप लेकर, उनका अलग से परिकलन एवं आलेखन (plotting) किया जाता है। सर्वेक्षण हेतु विस्तृत क्षेत्र में प्रत्येक वांछित बिंदु की माप लेकर आलेखन करना असाध्य परिश्रमवाला ही नहीं असंभव भी है। प्लेनटेबुल सर्वेक्षण में यही असाध्य अध्यवसाय अत्यंत साध्य बन गया है। प्लेनटेबुल सर्वेक्षण की क्रिया ऐसी है कि इसमें पृथ्वी की सतह पर बिना वास्तविक माप लिए बिंदुओं की सापेक्ष स्थितियों का सीधा और सही आलेखन हो सकता है। यही इसकी विशेषता है। इसके अतिरिक्त प्रयुक्त उपकरण सस्ते और सरल
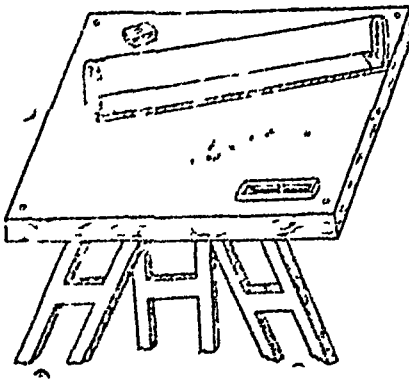
चित्र १. प्लेनटेबुल या पटल

एवं कार्यवाहक सामान्य शिक्षाप्राप्त सर्वेक्षक हो सकता है। इन आवश्यक गुणों के कारण सभी देशों में इस विधि का व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

इस कार्य में निम्नलिखित उपकरण प्रयुक्त होते हैं। (१) प्लेनटेबुल या पटल, (२) तिपाई (stand), (३) दर्शरेखी (sight rule), (४) स्पिरिट लेविल या तलमापी (spirit level) तथा (५) चुंबकीय दिक्सूचक (magnetic compass)।

उपकरणों का विवरण — प्लेनटेबुल बनाने के लिये भली प्रकार मौसम किए प्रकार से पकी लकड़ी १२ से १५ सेंमी० चौड़ी और दो से तीन सेंमी० मोटी पट्टियों को भली प्रकार जोड़कर ७५×६० या ६०×५० सेंमी० का आयताकार प्लेनटेबुल तख्ता तैयार किया जाता है। उसकी सतह भली प्रकार छीलकर और रेंदकर एकदम समान कर दी जाती है। दूसरी ओर प्लेनटेबुल के केंद्र पर धातु की एक चकती लगा दी जाती है, जिसमें तिपाई पर कसने के लिये चूड़ियाँ कटी रहती हैं।

तिपाई में तीन पैर पेचों द्वारा सिर से जुड़े रहते हैं। पेच ढीले करके पैर खिसकाए जा सकते हैं और तिपाई का सिर एकदम क्षैतिज किया जा सकता है। तिपाई के सिर के बीचोबीच बने छेद में प्लेनटेबुल कसा जा सकता है। पैरों को खिसकाकर प्लेनटेबुल को भी स्पिरिट लेविल से देखकर क्षैतिज किया जा सकता है। प्लेनटेबुल को कसनेवाले पेच को ढीला करके तख्ते को क्षैतिज तल में घुमाया जा सकता है और मनचाही स्थिति में कसकर स्थिर किया जा सकता है।

दर्शरेखी ६० या ७५ सेंमी० लंबी, एक सेंमी० मोटी और लगभग पाँच सेंमी० चौड़ी धातु या लकड़ी का बना होता है। इसके दोनों लंबे किनारे एकदम सीधे और एक ओर को ढालू होते हैं, जिससे सीधी और सही रेखा खींचना संभव हो सके। दर्शरेखी के दोनों सिरों पर दो दृश्य-वेधिकाएँ या पत्तियाँ (sight vanes) लगी रहती हैं। एक पत्ती के बीच में एक झिरी (slit) कटी होती है, जिसमें से झाँककर सर्वेक्षक अपने लक्ष्य को देखता है और दूसरी पत्ती के बीच एक धागा (thread) पिरोकर दोनों पत्तियों के सिरों पर तान देता है। एक पत्ती में कटी झिरी, दूसरे में पिरोया और पत्तियों के सिरों पर तना धागा इस प्रकार रखे जाते हैं कि वह एक ही समतल में पड़ें। जब दर्शरेखी क्षैतिज पटल पर रखा हो तो झिरी और धागा पटल के तल पर लंब होंगे। यदि झिरी से झाँककर धागे से कटता कोई भी दूर का बिंदु या वस्तु देखी जाए तो दर्शरेखी प्रेक्षक की स्थिति से उस बिंदु या वस्तु की दिशा बताएगा। यदि प्लेनटेबुल पर कागज मढ़ा हो और उसपर प्रेक्षक की स्थिति चिह्नित हो, तो उस समय दर्शरेखी का एकरेखी किनारा प्रेक्षक की कागज पर लगी स्थिति को स्पर्श करता हुआ रखा जाए और झिरी से होकर धागे पर कटती वस्तु या बिंदु देखकर दर्शरेखी के स्पर्शी किनारे पर रेखा खींच दी जाए तो वह प्रेक्षक की स्थिति से उस वस्तु या बिंदु की दिशारेखा होगी, जिसे किरण (ray) कहते हैं। यही क्रिया किसी दूसरी स्थिति से दोहराने पर एक ही बिंदु की दो स्थितियों से दो किरणें आपस में कटकर प्रतिच्छेद बिंदु (point of intersection) पर उसकी सही सापेक्ष स्थिति दे देंगी।

चुंबकीय दिक्सूचक एक आयताकार, काच के ढक्कनवाले, पीतल के बक्स में चुंबक की एक सुई को एक कीली पर आलंबित करके बनाते हैं। प्रयोग न होने पर सुई को आलंब से उठाकर स्थिर करने का उपाय भी रहता है। इससे प्लेनटेबुल को प्रत्येक स्थिति पर सही दिशाओं में रखने में सहायता मिलती है।

स्पिरिट लेविल — काच की नली में हलका द्रव भरकर दोनों ओर से ऐसे बंद किया जाता है कि उसके अंदर वायु का एक बुलबुला बना रहे। नली का आकार हलका वक्र लिए होता है। इसे धातु की एक चौकोर नली में ऐसे दृढ़ बंद करते हैं कि वक्र नली का उभरा भाग धातु की नली की एक सतह पर कटे छेद में दिखाई पड़ता रहे। इसे स्पिरिट लेविल या तलमापी कहते हैं। यदि स्पिरिट लेविल तिपाई पर कसे चित्रपटल पर रखा जाए और तिपाई के पैर ऐसे जमा दिए जाएँ कि तलमापी को किसी भी दो समकोण दिशाओं में प्लेनटेबुल पर रखने से उसका बुलबुला केंद्रित (centred) रहे

तो प्लेनटेबुल क्षैतिज हो जाता है। प्लेनटेबुल क्षैतिज न होने से विंदुओ की खीची गई किरणें प्रधानत वहुत ऊँचे या नीचे मे स्थित होने से गलत होंगी। अत. विंदुओ की सही सापेक्ष स्थितियाँ प्राप्त नही होगी।

कार्यविधि — वर्गांकित कागज पर सर्वेक्षण हेतु क्षेत्र मे स्थित, ऐसे विंदुओ का, जिनके नियामक ज्ञात हों, वाछित पैमाने पर आलेखन कर दिया जाता है। यह कागज प्लेनटेबुल पर मढ दिया जाता है। कागज मढने के कई तरीके है। यदि सर्वेक्षण कार्य वहुत थोडे समय का हो तो कागज वटन पिनो से तख्ते पर मढ दिया जाता है। यदि एक या दो सप्ताह का सर्वेक्षण हो, जिसमे कागज एकदम स्थिर रहना आवश्यक हो, तो कागज के चारो किनारो पर एक सवल पतले कागज की झालर या मगजी लगाकर, उस झालर के वढे भाग को पटल पर दृढता से चिपका देते हैं। लवी अवधि तक चलनेवाले सर्वेक्षण, या जिसमे कागज का पूर्णतया स्थिर रहना आवश्यक हो उसमे, कागज को पटल से लगभग १५ सेंमी० अधिक लवे और चौडे कपडे पर चिपका देते हैं। फिर कपडा प्लेनटेबुल की सतह पर दृढता से खीचकर चिपका दिया जाता है। जव कपडे पर चिपका कागज प्लेनटेबुल पर लगाते हैं तो कागज पर वर्गांकन और नियत्रण विंदुओ का आलेखन कागज को पटल पर मढने के वाद करते हैं।

तदुपरात जिस क्षेत्र मे सर्वेक्षण करना होता है, सर्वेक्षक उसमे स्थित एक ऐसे नियत्रण विंदु पर प्लेनटेबुल ले जाता है जो उसके कागज पर अकित हो। ऐसे विंदु को स्टेशन कहते हैं। स्टेशन के ऊपर तिपाई को उसके पैर फैलाकर लगभग क्षैतिज रखा जाता है और उसपर पटल कस दिया जाता है। उसपर तलमापी को दो क्रमानुगत समकोण स्थितियो मे रखकर तिपाई के पैरो को ऐसे जमाया जाता है कि वुलवुला केंद्रित रहे। इससे प्लेनटेबुल क्षैतिज हो जाता है। इसके वाद दिक्स्थापन किया जाता है।

दिक्स्थापन प्लेनटेबुल की उस दशा को कहते हैं जव प्लेनटेबुल के चित्र पर अकित नियत्रण विंदुओ को कागज पर जोडनेवाली रेखाएँ उन्ही विंदुओ को पृथ्वी पर जोडनेवाली रेखाओ के समानातर हो जाएँ। यह दशा प्राप्त करने के लिये सर्वेक्षक निम्न क्रिया करता है कल्पना करें, सर्वेक्षक भूमि पर वने आ (A) विंदु पर खडा है (देखें चित्र २), जिसकी कागज पर लगी अ (a) स्थिति है। इसी प्रकार एक दूसरे विंदु की भौमिक और आलेखित स्थितियाँ क्रमश ई (B) और इ (b) हो, तो सर्वेक्षक अपने दर्शरेखी का एक किनारा ऐसे रखता है कि (i) वह अ और इ पर स्पर्शी रहे, (ii) धागेवाली लक्ष्य-वेधिका इ (b) की ओर और झिरी वाली लक्ष्य-वेधिका अ (a) की ओर रहे। तव वह प्लेनटेबुल को तिपाई पर ऐसे घुमाता है कि दर्शरेखी की झिरी से ई (B) विंदु धागे पर कटता दिखाई दे। ऐसी दशा प्राप्त होने पर वह प्लेनटेबुल कस देता है। इस प्रकार पटलचित्र अपनी सही की दिशाओ मे स्थापित हो जाता है। इस दशा मे यदि दर्शरेखी निर्देशक (fiducial) धार सर्वेक्षक की स्थिति अ और किसी भी दूसरे आलेखित विंदु को स्पर्श करती रखी जाए तो झिरी से देखने पर देखे जानेवाले विंदु की भौमिक स्थिति धागे पर कटेगी। यह स्मरणीय है कि झिरी सदैव प्रेक्षक की ओर तथा धागेवाली दृश्यवेधिका देखे गए विंदु की ओर रहेगी।
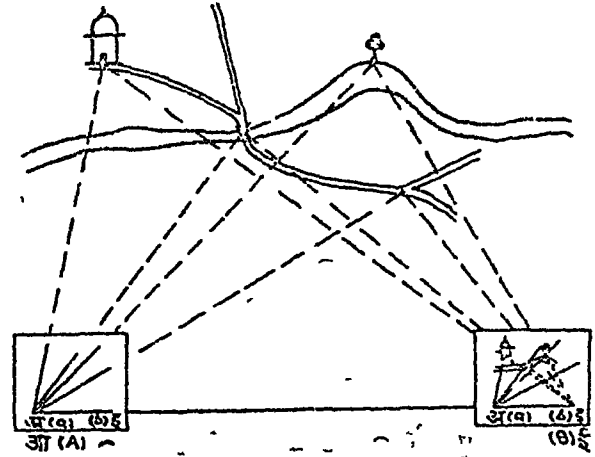
चित्र नं० २.

उपर्युक्त दशा मे पटलचित्र लाकर, सर्वेक्षक अपनी आलेखित स्थिति अ विंदु पर अपनी पेंसिल के सहारे दर्शरेखी की धार विंदु के स्पर्शी रखकर, अन्य विंदुओ को झिरी से आगेवाले झरोखे मे धागे पर कटता देखता है और उनकी ओर किरणें खीचता है। ऐसी किरणें वह उन सभी विंदुओ की ओर खीचता है जिन्हे वह मानचित्र पर दर्शाना चाहता है, जैसे गाँव, नदी, सडको आदि के मोड और सगम। मोड और सगम विंदु ही इसलिये लेता है कि ऋजु भाग तो वह विंदु मिलाती रेखाओ से भी वना सकता है। यही क्रिया वह दूसरे स्टेशनो पर दोहराता है। इससे किन्ही भी दो स्टेधनो से दी गई एक ही विंदु की किरणें आपस मे कटकर, प्रतिच्छेदन पर विंदु की सही सापेक्ष स्थिति दे देंगी। यह स्थितियाँ उसी पैमाने पर होगी जिसपर चाँदो का आलेखन होगा। यह पटलचित्रण की प्रतिच्छेद विधि (method of intersection) कहलाती है। यदि किरणें खीचकर, उन्ही विंदुओ की क्रमश दूरी नापकर, किरण पर पैमाने से काट ली जाए तो भी सही विंदु प्राप्त हो जाता है। इसे सर्वेक्षण की विकिरण (radiation) विधि कहते है। किसी नदी, नहर, मार्ग आदि रेखक चीजो के किनारे स्थित एक स्टेशन से दूर स्थित अदृश्य स्टेशन तक क्रमानुगत किरणें देकर दूरी नापकर, विंदु लगाते हुए उनका सर्वेक्षण हो तो उसे चक्रमण (traverse) सर्वेक्षण कहते हैं।

कटे विंदुओ को रेखाओ द्वारा मिलाकर सर्वेक्षक वस्तुओ की आकृतियाँ वना देता है। मानचित्र को देखकर भूमि पर और भूमि से मानचित्र पर वनी वस्तुओ को पहचानने के लिये साकेतिक चिह्नो का वह प्रयोग करता है, जिससे समान आकृतियों मे भी विभेदन हो सके। उदाहरणार्थ, नहर, सडक, रेलमार्ग आदि के स्थान पर केवल रेखाएँ वनेंगी, किंतु सर्वेक्षक उन्हें भिन्न रगो और ढगो से खीचकर दूसरो को समझाने मे समर्थ होता है।

विंदुओ के वीच की सापेक्ष ऊँचाइयाँ सर्वेक्षक समोच्च (contour) रेखाओ से प्रदर्शित करता है। इसके लिये पटलचित्रण की क्रिया सर्वोत्तम है। भूमि सामने है और मापन, आलेखन और चित्रण क्रियाएँ

साथ साथ चलती जाती हैं। सापेक्ष ऊंचाइयाँ निकालने के लिये नतिमापी (clinometer) का प्रयोग होता है। इस यंत्र से प्रेक्षक
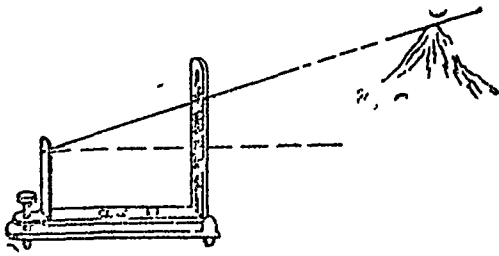
चित्र नं० ३.

अपनी स्थिति पर किसी भी दूसरे विंदु की ऊँचाई मे भिन्नता के कारण बने कोण ट (θ) का सीधा स्पर्शज्या (tangent) पढ सकता है। पटलचित्र से उस विंदु की अपने से दूरी द (d) निकाल सकता है और तब उस विंदु की सापेक्ष ऊँचाई द स्प ख (tan θ) निकाल लेता है। इस प्रकार सभी विंदुओ की सापेक्ष ऊँचाइयाँ ज्ञात कर लेता है। सर्वेक्षक की भिन्न भिन्न स्थितियो से निकाली सापेक्ष ऊँचाइयो मे एकरूपता रखने के लिये ऊँचाइयाँ किसी आधारतल से नापी जाती हैं। यह आधारतल सामान्यत ज्वार भाटे का ध्यान रखकर नापे गये समुद्र का औसत तल माना जाता है। इस तल से समान ऊँचाई पर स्थित विंदुओ को जोडती रेखा को समोच्च रेखा कहते हैं। इसे खीचकर सर्वेक्षक ऊँचाई का आभास कराता है। [गु० ना० दु०]

प्लैटिनम समूह आवर्त सारिणी के आठवें समूह में छह तत्वो का एक समूह है। इस समूह के तत्वो के भौतिक एव रासायनिक गुणों मे बहुत समानता है। इन तत्वो के नाम रुथेनियम (Ruthenium, रु॰, Ru), रोडियम (Rhodium, रो, Rh), पैलेडियम (Palladium, पै, Pd), ऑस्मियम (Osmiom, आ॰, Os), इरीडियम, (Iridium, इ, Ir) और प्लैटिनम, (Platinum, प्लै, Pt) हैं।

बहुत काल तक इन धातुओ के समूह को एक धातु समझकर प्लैटिनम ही कहा जाता रहा है, क्योकि यह नाम स्पेनी भाषा के प्लैटिनो (Platino) शब्द पर निर्भर है, जिसका अभिप्राय चाँदी है। १६वी शताव्दी मे एक ऐसे श्वेत तत्व का वर्णन किया गया है, जो मेक्सिको की खानो से लाया गया था और जो गलता न था। एक बार स्पेन की सरकार ने इस धातु को इस भय से फेंक देने की आज्ञा दी कि कही यह चाँदी में न मिलाया जाय। १८वी शताव्दी मे यूरोप के वैज्ञानिको का इस धातु की ओर ध्यान आकर्पित हुआ। सन् १७५२ मे शेफेयर (Scheffer) ने अपने अनुसधानो द्वारा ज्ञात किया कि यह तत्व नाइट्रिक अम्ल से अप्रभावित रहता है, परतु अम्लराज (aqua regia) मे विलीन हो जाता है।

१८०३-४ ई० मे कथित प्लैटिनम धातु मे अन्य मिश्रित धातुओ की खोज हुई। रोडियम और पैलेडियम की खोज वुलैस्टन (Wolla ston) ने १८०३ ई० मे की और १८०४ ई० मे ऑस्मियम (Os) और इरीडियम (Ir) की खोज टेनैंट (Tennant) ने की। रुथेनियम (Ru) अत्यत विरल होने के कारण उस समय न खोजा जा सका। उसको क्लाज (Klaus) नामक रूसी वैज्ञानिक ने १८४५ ई० मे खोजा।

उपस्थिति — प्रकृति में प्लैटिनम समूह के तत्व मिश्रित अवस्था मे मिलते हैं। उच्च गुण के होने के कारण बहुधा मुक्त अवस्था मे अन्य अयस्को के साथ मिले रहते हैं। आस्मियम और इरीडियम की मिश्रधातु आस्मिरीडियम अनेक स्थानो पर समुचित मात्रा मे मिलती है। प्लैटिनम-समूह-मिश्रणो मे प्लैटिनम धातु की मात्रा सबसे अधिक रहती है, परतु कैनाडा और दक्षिणी अमरीका के कुछ अयस्को मे प्लैटिनम और पैलेडियम की समान मात्रा भी पाई गई। कुछ स्थानो पर इन धातुओ के यौगिक भी मिलते हैं, जैसे स्पेरीलाइट (Sperrylite, $PtAs_2$) और ब्रेगाइट (Braggite PdS)। प्लैटिनम समूह के मिश्रणो मे ताम्र, स्वर्ण और लोह अशुद्धियाँ के रूप मे बहुधा उपस्थित रहते हैं। दक्षिण अमरीका, सोवियत संघ, कैनाडा, मेक्सिको और दक्षिणी अफ्रीका इन धातुओ के मुख्य स्रोत हैं।

पृथक्करण — प्लैटिनम समूह की धातुओ की निर्माणविधि की क्रियाएँ गोपनीय रखी जाती है। प्लैटिनम समूह की धातुओ के मुख्य रूप से दो स्रोत हैं अयस्क और निकल विशुद्ध करते समय बचे अवसाद। दोनो से ही समुचित मात्रा मे ये धातुएँ मिलती हैं और दोनो शुद्धि क्रियाओ की विधियाँ लगभग समान हैं। अयस्क को घनत्व पृथक्करण (gravity separation) विधि द्वारा सांद्रित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त समिश्रण अथवा निकल अवसाद को अम्लराज मे उबालते हैं, जिससे आस्मिरीडियम और कुछ रुथेनियम अविलेय अवस्था मे रह जाते है तथा प्लैटिनम, पैलेडियम, रोडियम और कुछ इरीडियम इस क्रिया द्वारा विलीन हो जाते है। विलयन मे दूधिया चूना (milk of lime) डालने से अपद्रव्य (विशेषकर लोह और ताँबा) तथा इरीडियम, रोडियम, रुथेनियम और कुछ पैलेडियम अवक्षेपित होगे। बचे विलयन को वाष्पित करने पर धातुओ के क्लोराइड यौगिक प्राप्त होगे। इन क्लोराइडो को तप्त करने पर अशुद्ध (कुछ पैलेडियम मिश्रित) प्लैटिनम धातु मिलेगी। इसे अम्लराज मे विलीन कर अमोनियम क्लोराइड डालने पर प्लैटिनम, क्लोरोप्लैटिनेट के रूप मे अवक्षेपित हो जाता है। बचे विलयन मे अमोनिया जल के डालने से पैलेडियम के यौगिक

$$\text{पै(ना हा}_3)_2\text{क्लो}_2\ [Pd(NH_3)_2Cl_2]$$
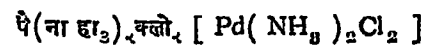
का अवक्षेप प्राप्त होता है।

विलयन में दूधिया चूना डालने पर प्राप्त हुए अवक्षेप से अपद्रव्य दूर कर अवक्षेप को अम्लराज मे विलीन करते है। विलयन को सांद्रित कर अमोनियम क्लोराइड डालने पर इरीडियम का सकीर्ण यौगिक अवक्षेपित हो जाता है। तत्पश्चात् अमोनिया जल डालने पर पैलेडियम प्राप्त होगा। बचे विलयन को वाष्पित कर तप्त करने से रोडियम रुथेनियम की मिश्रधातु मिलती है। इस मिश्रण को पोटैशियम बाइसलफेट से सगलित करने से रोडियम बाइसलफेट यौगिक बनता है और रुथेनियम धातु अप्रभावित रहती है।

सर्वप्रथम अम्लराज की क्रिया से बचे मिश्रण ऑस्मिरीडियम (ऑस्मियम-इरीडियम की मिश्रधातु) और रुथेनियम को एक ऐसी नलिका मे गरम करते है जिसके द्वारा ऑक्सीजन का प्रवाह हो रहा

हो। इस क्रिया में ऑस्मियम और रूथेनियम के वाष्पशील ऑक्साइड बनेंगे, जो वाष्पीकृत होकर ठंढे स्थानो मे जमा होगे। इरीडियम नलिका मे अप्रभावित रहेगा।

गुणधर्म — इन तत्वो के कुछ भौतिक गुणधर्म निम्नांकित हैं

सकेत	रूथेनियम Ru	रोडियम Rh	पैलेडियम Pd	ऑस्मियम Os	इरीडियम Ir	प्लैटिनम Pt
परमाणु सख्या	४४	४५	४६	७६	७७	७८
परमाणु भार	१०११	१०२·९	१०६४	१९०·२	१९२२	१९५·०९
गलनाक डिग्री सें०	२५००	१९६०	१५५२	२७००	२४४३	१७६९
क्वथनाक डिग्री सें०	४९००	४५००	४०००	५५००	५३००	४४१०
घनत्व	१२·४३	१२·५	१२·०	२२·४८	२२·४	२१·४५

इस समूह के तत्वो के गलनाक एवं क्वथनाक उच्च हैं। यह सब तत्व रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस समूह के सारे तत्वो मे उत्प्रेरकता (catalytic activity) का गुण वर्तमान है। प्लैटिनम और पैलेडियम अनेक रासायनिक उद्योगो मे उत्तम उत्प्रेरक सिद्ध हुए हैं।

रूथेनियम — यह श्वेत रग की कठोर और भगुर धातु है। इसका चूर्ण मटमैले रग का होता है, जो ऑक्सीजन मे जलकर डाइऑक्साइड (RuO_2) बनाता है। ऑक्सीजन की अनुपस्थिति मे यह निष्क्रिय रहता है और किसी भी अम्ल या अम्लराज से प्रभावित नही होता, परतु वायु की उपस्थिति मे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल भी रूथेनियम पर आक्रमण करता है। रूथेनियम का अम्लीय गुण ऊँची सयोजकता मे प्रधान हो जाता है। इसके कारण कॉस्टिक पोटाश और पोटैशियम नाइट्रेट के सगलित मिश्रण द्वारा पोटैशियम रूथेनेट (K_2RuO_4) बनता है। एक अन्य पररूथेनेट ($KRuO_4$) भी ज्ञात है। ऑक्सीजन की उपस्थिति मे अम्लराज के प्रभाव से रूथेनियम टेट्राऑक्साइड (RuO_4) बनाया जा सकता है, जो पीले रग का गलनीय (गलनाक २५.५ सें०) पदार्थ है। १००° सें० पर यह विघटित हो जाता है। रूथेनियम द्वारा अमोनिया साइनाइड, हैलोजन, कार्बन मोनोऑक्साइड आदि से बने अनेक सकर लवण ज्ञात हैं।

रूथेनियम अन्य प्लैटिनम धातुओ को कठोर करने के उपयोग मे आता है।

रोडियम — रोडियम श्वेत रग की तन्य धातु है। गलनाक के लगभग इसकी सतह पर ऑक्सीकरण हो जाता है। सघन धातु पर अम्लो का कोई प्रभाव नही पडता, परतु चूर्ण अवस्था मे यह सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल और अम्लराज मे घुलता है। लाल ताप पर रोडियम ऑक्सीजन से क्रिया कर ऑक्साइड (Rh_2O_3) बनाता है। इसी ताप पर क्लोरीन द्वारा क्लोराइड भी बनता है। पोटैशियम बाइसल्फेट के सगलन द्वारा विलेय रोडियम सल्फेट [$Rh_2(SO_4)_3$] बनता है। रूथेनियम की भाँति रोडियम भी सकीर्ण यौगिक बनाता है।

रोडियम-प्लैटिनम मिश्रधातु द्वारा उच्च गलनाकवाले तार बनाए जाते हैं, जिनका उपयोग भट्ठियो मे या उच्चताप ततुओ (high temperature filaments) मे होता है।

पैलेडियम — पैलेडियम, प्लैटिनम की भाँति श्वेत रग की धातु है, परतु प्लैटिनम समूह की अन्य धातुओ से कोमल होता है। पैलेडियम मे कुछ गैसो (विशेषकर हाइड्रोजन) के अधिधारण (occlusion) का गुण है। चूर्ण अवस्था मे यह अपने आयतन से ७०० गुने से अधिक हाइड्रोजन का अधिधारण कर लेता है। अधिधारित हाइड्रोजन अत्यत सक्रिय हो जाता है। इस कारण पैलेडियम मे उत्प्रेरक गुण वर्तमान है। पैलेडियम लाल ताप पर ऑक्सीजन के साथ ऑक्साइड (PdO), फ्लुओरीन से फ्लोराइड (PdF_2), क्लोरीन से क्लोराइड ($PdCl_2$) और गधक से सल्फाइड (PdS) बनाता है।

सान्द्र नाइट्रिक अम्ल पैलेडियम को शीघ्र विलीन कर पैलेडियम नाइट्रेट [$Pd(NO_3)_2$] बनाता है। अम्लराज मे पैलेडियम अति सरलता से विलेय होकर क्लोरो पैलेडेट ($PdCl_6^{''}$) आयन बनाता है।

पैलेडियम के अनेक सकर लवण ज्ञात हैं, जिनमे एमीन (amine) समूह [$Pd(NH_3)_4Cl_2$] मुख्य हैं। डाइमिथाइल ग्लाइ-ऑक्जीम (dimethyl glyoxime) के साथ यह पीले रग का जटिल अवक्षेप (complex precipitate) बनाता है। यह यौगिक पैलेडियम के विश्लेषण मे उपयोगी है।

पैलेडियम का उपयोग विद्युत् उद्योग मे हो रहा है इसके अतिरिक्त दत मिश्र धातु (dental alloy), निब के अग्रभाग तथा आभूषणो मे यह काम आता है। कुछ रासायनिक उद्योगो मे यह उत्प्रेरक का कार्य करता है। पैलेडियम लवण फोटोग्राफी तथा कार्बन मोनोऑक्साइड की पहचान मे भी काम आते है।

ऑस्मियम — ऑस्मियम सबसे गुरु तत्व है। सघन अवस्था मे यह हलका नीला श्वेत रग लिए रहता है, परतु चूर्ण धातु का रग गहरा नीला है। यह अत्यत कठोर, परतु भगुर तत्व है। कोई अन्य तत्व ऑस्मियम से उत्तम उत्प्रेरक नही है।

ऑस्मियम अत्यत सरलता से आक्सीजन से क्रिया कर टेट्रा-ऑक्साइड (OsO_4) बनाता है, जो वाष्पशील होता है। इस कारण चूर्ण धातु मे इस ऑक्साइड की गध सदैव आती रहती है। ऑस्मियम टेट्राऑक्साइड ग्रीज, धूल आदि से अपचयित (reduce) हो डाइऑक्साइड (OsO_2) मे परिणत हो जाता है। ऑस्मियम डाइऑक्साइड (OsO_2) काला पदार्थ है, जो वाष्पशील नही है। इस कारण ऑस्मियम की नलिका या बोतल की दीवारो तथा ढक्कन पर काली ऑक्साइड सदा जमी रहती है। ऑस्मियम पर अम्लराज की क्रिया द्वारा ऑस्मियम टेट्राऑक्साइड बनता है। सान्द्र नाइट्रिक एव सल्फ्यूरिक अम्ल चूर्ण ऑस्मियम का ऑक्सीकरण कर देते हैं। ऑस्मियम

अमोनिया, हैलोजन तथा अनेक कार्बनिक यौगिकों के साथ द्विगुण लवण तथा मकर लवण बनाता है। ऑस्मियम की मिश्रधातु आभूषणों में, उच्च कोटि की मशीनो के पुर्जो मे तथा निबो के अग्रभाग आदि मे काम आती हैं, क्योंकि यह धातु कठोर एव सक्षारण प्रतिरोधी होती है।

आस्मियम टेट्राऑक्साइड अनेक रासायनिक अभिक्रियाओ मे ऑक्सीकारक एव उत्प्रेरक का कार्य करता है। जीवविज्ञान मे इसका उपयोग ऊतकों को कठोर बनाने तथा रगने मे होता है।

इरीडियम — इरीडियम चमकदार श्वेत रग की अत्यत कठोर धातु है। नवन अवस्था मे यह अम्लराज मे भी नही घुलता, परतु चूर्ण धातु अम्लराज मे घुलकर क्लोराइड ($IrCl_4$) बनाती है। इरीडियम के ३ तथा ४ सयोजकता के यौगिक मिलते हैं। इरीडियम में कुछ अम्लीय गुणप्रधान यौगिक मिलते हैं, जैसे (K_2IrCl_6) इसके अनेक जटिल यौगिक भी ज्ञात हैं।

प्लैटिनम को कठोर करने मे इरीडियम का मुख्य उपयोग होता है। प्लैटिनम-इरीडियम मिश्रधातु के आदर्श मानक, बाट आदि बनाए जाते हैं। इरीडियम के कुछ यौगिक फोटोग्राफी उद्योग मे काम आते हैं।

प्लैटिनम — प्लैटिनम भूरे-श्वेत रग की धातु है। विशुद्ध अवस्था मे यह घातवर्ध्य तथा तन्य है। चूर्ण अवस्था में यह हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का अवशोषण करती है। प्लैटिनम मे उत्तम उत्प्रेरक गुण है। यह आक्सीजन तथा अम्लों से प्रभावित नही होता है। यह केवल अम्लराज मे घुलकर क्लोरोप्लैटिनिक अम्ल (H_2PtCl_6) बनाता है। क्षार पेराक्साइड (alkali peroxide) उच्च ताप पर प्लैटिनम से क्रिया करते है। २५०° सें० ताप पर इसकी क्लोरीन से प्रतिक्रिया द्वारा प्लैटिनम क्लोराइड ($PtCl_2$) का निर्माण होता है। इसी परिस्थिति में फ्लोरीन से (PtF_4) बनेगा। उच्च ताप पर गधक, सिलीनियम और टेल्यूरियम इसपर आक्रमण करते हैं।

यद्यपि प्लैटिनम अधिकतर तत्वो की तुलना में निष्क्रिय है, तथापि इसके अनेक यौगिक मिलते हैं। दो सयोजकतावाले यौगिक प्लैटिनस और चार सयोजकता के प्लैटिनिक कहलाते हैं। प्लैटिनम क्लोराइड ($PtCl_2$) तथा प्लैटिनिक क्लोराइड ($Pt\,Cl_4$) इसके उदाहरण हैं। प्लैटिनम के समस्त ऑक्सिजन यौगिक अस्थायी होते हैं।

प्लैटिनम के अनेक सहसयोजी (co-ordination) यौगिक ज्ञात हैं, जैसे क्लोरोप्लैटिनस अम्ल (H_2PtCl_4), क्लोरोप्लैटिनिक अम्ल ($H_2Pt\,Cl_6$)। क्लोरोप्लैटिनिक अम्ल के पोटैशियम लवण ($K_2\,Pt\,Cl_6$) की विलेयता अत्यत न्यून है। इस कारण यह पोटैशियम निक्षेपण के लिये उत्तम यौगिक सिद्ध हुआ है। बेरियम प्लैटिनोसायनाइड ($BaPt(CN)_4, 4H_2O$) पीले रग का चूर्ण है, जिसकी स्फुरदीप्ति के गुण के कारण इसे एक्स किरण के परदे (X-ray screens) बनाने के काम मे लाते हैं। प्लैटिनम अत्यत उपयोगी धातु है और अनेक वैज्ञानिक तथा औद्योगिक कार्यों में अपने उच्च गलनांक, न्यून क्रियाशीलता, उत्तम घातवर्ध्यता और तन्यता के कारण काम आता है। इनकी नलिकाएँ, वाल्व, रासायनिक क्रियाओं के उपकरण, विद्युदग्र, तश्तरियाँ, मूषाएँ, बाट आदि वैज्ञानिक कार्यों में प्रति दिन प्रयुक्त होते हैं। उत्प्रेरक के रूप मे प्लैटिनम का उपयोग सल्फ्यूरिक अम्ल उद्योग, अमोनिया से नाइट्रिक अम्ल बनाने में (हाबर विधि), कार्बनिक पदार्थों के हाइड्रोजनीकरण आदि मे हो रहा है।

दतचिकित्सा मे प्लैटिनम बहुत आवश्यक धातु है। इस कार्य के लिये विशुद्ध प्लैटिनम तथा मिश्रधातु दोनो काम आते हैं। अन्य शल्य-चिकित्सा यत्रों में भी प्लैटिनम का आवश्यक स्थान है। विद्युत् उद्योगो में प्लैटिनम यथार्थ प्रतिरोधक (accurate resistance), उच्च तापमापी स्विच, वोल्टता नियत्रक आदि बनाने में प्रयुक्त हो रहा है।

परतु समस्त प्लैटिनम की आधी मात्रा आभूषण व्यवसाय मे काम आती है। इसको तथा प्लैटिनम-इरीडियम मिश्रधातु को हीरे तथा अन्य रत्नो की जडाई के काम में लाते हैं। [र० च० क०]

प्लैंटेजनेट (Plantagenet) इग्लैंड के एक प्रसिद्ध राजवश का नाम है। इस राजवश ने सन् ११५४ से १३६६ तक राज्य किया। अजू वश के जौफरी नामक राजा को यह नाम दिया गया था क्योकि जौफरी प्लाटाजनिस्टा नाम के फूलो का गुच्छा अपनी टोपी में लगाया करता था। हेनरी द्वितीय से रिचर्ड तृतीय तक प्लैटेजनेट राजा कहलाए यद्यपि यार्क के ड्यूक रिचर्ड ने १४६० ई० में सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग किया था। सन् १४०० मे इस राजवश की दो शाखाएँ हुईं — एक वश का नाम लैंकास्टर हुआ और दूसरे वश का नाम यॉर्क वश हुआ। इन दोनो वशों को मिलाकर हेनरी सप्तम ने ट्यूटर वश की स्थापना की। [शु० ते०]

प्वाइंटर सर एडवर्ड, जान (१८३६-१९१९) अंग्रेजी चित्रकार जिसका जन्म पेरिस में हुआ। कलासाधना मे जुटे रहकर उसकी बहुमुखी प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। सज्जाकला मे उसने भित्तिचित्र सज्जा, पच्चीकारी, जडाव और रगीन काच, टाइल और पात्रों पर बारीक चित्राकन आदि कई किस्म की शिल्पसाधना की। १८८३ मे जलरगो मे कलाकारो की रायल सोसाइटी मे वह निर्वाचित हुआ। विज्ञान और कला विभाग के सचालक के रूप मे और साउथ कैंसिंगटन की राष्ट्रीय कला प्रशिक्षण सस्था मे प्वाइटर ने स्वय को एक जबर्दस्त और सफल प्रशासक सिद्ध किया। लदन की नेशनल गैलरी का वह डायरेक्टर नियुक्त हुआ। वहाँ आकर नेशनल गैलरी के सचित्र 'कैटलाग' का घोर परिश्रम और तल्लीनता से सपादन किया जिसमें सग्रहालय मे मौजूद हर कलाकृति को बडी ही खूबी से अनुकृत और चित्राकित किया गया।

१८९६ में रायल एकेडेमी का वह अध्यक्ष चुना गया और 'नाइट' की उपाधि से सम्मानित किया गया। १९०२ मे 'बोरोनेट' की विशेष उपाधि प्रदान की गई। कला के माध्यम से चिंतन और प्रौढता के शिखर पर पहुँचकर २६ जुलाई, १९१९ को लदन मे उसकी मृत्यु हुई। [श० रा० गु०]

प्वैंकारे, ऑंरी (Poincare, Henri, १८५४–१९१२ ई०) — फ्रासीसी गणितज्ञ का जन्म २९ अप्रैल, १८५४ ई० को नासी मे हुआ। १८७९ ई० मे इन्होंने पैरिस विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट प्राप्त की। तदुपरात वही पहले गणितीय भौतिक शास्त्र और फिर गणितीय खगोल शास्त्र एवं खगोलीय यंत्रविज्ञान के प्रोफेसर रहे। इन्होंने गणित, भौतिकी और दर्शन शास्त्र पर अनेक पुस्तकें और

१५०० से भी अधिक शोधपत्र प्रकाशित किए। विज्ञान के दर्शन पर इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 'ला सियास ए' लिपोथैस' (La science et l' hypothese) (१९०२ ई०), 'ला वालर द ला सियास' (La Valeur de la science) (१९०५ ई०) और 'सियास ए मेतोद' (Science et me'hode) (१९०८ ई०) हैं, जिनका अनुवाद अनेक भाषाओ मे हो चुका है। शुद्ध गणित की लगभग प्रत्येक शाखा से इनका कुछ न कुछ योग है, परतु अवकल समीकरणो एव फलनों के सिद्धात पर इनके आविष्कार और अनुकलो के सिद्धात मे स्वाविष्कृत फुक्सियाँ (Fuchsian) और थेटा फुक्सियाँ (theta Fuchsian) फलनो के अनुप्रयोग अत्यत महत्वपूर्ण हैं। १७ जुलाई, १९१२ ई० को पेरिस मे इनका स्वर्गवास हो गया। [रा० कु०]

प्वेर्ट रीको (Puerto Rico) स्थिति १८° १० उ० अ० तथा ६६° ३०' प० दे०। यह पश्चिमी द्वीपसमूह का पूर्व में स्थित द्वीप है। इसके उत्तर मे ऐटलैंटिक सागर, दक्षिण मे कैरिबिऐन सागर, पश्चिम में मोना पासेज (Monna Passage) तथा पूर्व में वर्जिन पासेज है। यह लगभग १०० मील लबा तथा ३५ से ४० मील चौडा है। इसका तीन चौथाई भाग पर्वतीय है। तटीय भाग मैदानी तथा नीचा है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ७० इच है। तूफान की पेटी मे आने के कारण जुलाई से अक्टूबर तक तूफान भी आते हैं। पहले यह सयुक्त राज्य, अमरीका के आधिपत्य में था, पर १९५२ ई० में स्वतत्र हो गया। इसकी जनसख्या २३,४९,५४४ (१९६३) है। यहाँ रोमन कैथोलिक धर्म के माननेवाले ज्यादा हैं। सैनजुआन (जनसख्या ४३,२,३००) इसकी राजधानी है। खनिज कम हैं तथा इनका उत्खनन भी कम हुआ है। सोना पहाडी क्षेत्र में निकाला जाता है। थोडी मात्रा में चाँदी, ताँबा, जिप्सम, चूने का पत्थर, केओलिन मिट्टी आदि भी मिलती हैं। कृषि इस देश की आर्थिक व्यवस्था का आधार है। चीनी, कहवा, तवाकू, दुग्ध से उत्पादित वस्तुओ एव फल तथा सब्जी का उत्पादन अधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ की शराव तथा हस्तकला की चीजें प्रसिद्ध है। [रा० व० सिं०]

फ़क़ीर साधारणत भिखारी, किंतु अरवी मे इसे ग़नी (सपन्न) के प्रतिकूल समझा जाता है। कुरान की आयत "तुम सव हो फुकरा (फ़क़ीर का वहुवचन) अल्लाह के, केवल अल्लाह ही गनी है" ने एव हज़रत मुहम्मद के कथन "फ़क़्र (दीनता) मेरा गौरव है" ने फ़क़ीर के महत्व को इस्लामी साहित्य एव सस्कृति मे अत्यधिक वढा दिया है। उत्कृष्ट सूफ़ी सत अपने लिये 'फ़क़ीर' का प्रयोग वडे गौरव से करते थे।

सं० ग्रं०—कुरान, सूरा ३५, आयत १६ [सै० अ० अ० रि०]

फख़्रुद्दीन देहलवी, शाह जन्म १७१४ ई० मे औरगावाद में हुआ। वे शाह कलीमुल्लाह देहलवी के प्रसिद्ध शिष्य शाह निज़ामुद्दीन के पुत्र थे। शिक्षा दीक्षा के उपरात उन्होने कुछ समय तक शाही सेना मे भी सेवा की किंतु वाद मे दिल्ली पहुँचकर पूरा समय ईश्वर के ध्यान एव शिक्षा दीक्षा मे व्यतीत करने लगे। निज़ामुल अक़ायद मरज़िया, तथा फख़्रुल हसन नामक ग्रथो की रचना की। दीनता, नम्रता एव सेवाभाव आपके जीवन का लक्ष्य था। आपके प्रभाव से १८वीं शती में चिश्तिया निज़ामिया सिलसिले को दिल्ली में वड़ी उन्नति प्राप्त हुई। उन्होंने जुमे की नमाज़ के खुतवे को हिंदी में पढने की सलाह दी। हिंदुओं तथा सिखो से भी वडे प्रेम से मिलते और उन्हें अपने उच्च स्वभाव से प्रभावित करने का प्रयत्न करते थे। ९ मई, १७८५ ई० को उनका देहावसान हुआ और वे ख्वाजा कुतुवुद्दीन वख्तियार काकी के मजार के पास दफन हुए।

सं० ग्रं० — (फारसी) नूरुद्दीन हुसेनी फख़्रुत्तालेवीन (हस्तलिखित) निज़ामुलमुल्क मनाकिवे फख़्रिया (हस्तलिखित) [सै० अ० अ० रि०]

फड़के, ना० सी० (जन्म १८९४–) कलासम्राट् फडके की शिक्षा पूना मे हुई। ये मेधावी विद्यार्थी थे। १९१७ ई० मे इनका पहला उपन्यास 'अल्ला हो अकवर' प्रकाशित हुआ जो मेरी कॉरेली के 'टेंपोरल पावर' उपन्यास के आधार पर रचा गया था। इसी समय इनको दादाभाई नौरोजी की जीवनी लिखने पर ववई विश्वविद्यालय की ओर से पुरस्कार दिया गया। कलापूर्ण वक्ता होने के कारण इनकी भाषाशैली प्रसादयुक्त है। एम० ए० होते ही ये पूना कालेज मे तर्कशास्त्र के प्राध्यापक वने और इन्होने अग्रेजी उपन्यास साहित्य का गहरा अध्ययन कर मराठी मे उपन्यासो की रचना करना प्रारभ किया। इनके अभी तक पचास उपन्यास प्रकाशित हुए और इधर पाँच वर्षों से ये प्रति वर्ष दो उपन्यासो की रचना करते है। इनके ४९ उपन्यासो मे निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं — जादूगर, दौलत, आशा, प्रवासी, समरभूमि, शाकुतल, झझावात, उद्धार, शोनान तूफान।

फडके के उपन्यास प्रणयप्रधान एव कलापूर्ण हैं। ललित भाषा, युवक युवतियो के मोहक चित्र, प्रेम का सुहावना चित्रण, कथानक का विन्यास और प्रकृति के मनोहर वर्णन से वे ओतप्रोत हैं। इनमे प्रणयपिपासु, सुखी, विलासी एव सौंदर्यपूर्ण जीवन के आकर्षक चित्र है। लगभग आठ दस उपन्यासो मे भारत के सामयिक राजनीतिक आदोलनो का चित्रण भी किया है। तीन उपन्यासो मे नेताजी सुभाषचद्र वोस के पराक्रमो का वर्णन है। यह सव होते हुए भी ये प्रधानतया कलावादी उपन्यासकार हैं।

इसके अतिरिक्त फडके सफल कहानीकार भी है। अभी तक इनके वीस कहानीसग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसी प्रकार ये निवधकार भी हैं और सफल जीवनीलेखक भी। इनकी लिखी अभी तक सात जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं जिनमे दादाभाई नौरोजी, डीवेलरा, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गाधी की जीवनियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके १२ प्रवधग्रथ प्रकाशित हुए जिनमे विशेष उल्लेखनीय, प्रतिभा-साधन, वाङ्मयविहार, साहित्य व ससार हैं। इन्होने चार समीक्षा ग्रथ भी लिखे हैं। इन्होने अपने साहित्यशास्त्रविषयक प्रवंधो मे 'कला के लिये कला' सिद्धात का तर्कपूर्ण प्रतिपादन किया है।

पश्चिमी साहित्य का मथन कर इन्होने कला एवं सौदर्यवाद की मराठी मे प्रभावकारी स्थापना की। उपन्यास तथा कहानी की मध्यवर्ती कल्पना, कथानक रचना, पात्र, कथोपकथन रहस्य, योगायोग, उलझन और सुलझाव तथा भाषाशैली इत्यादि पर इन्होने मौलिक तथा सूक्ष्म विचार प्रकट किए हैं जो 'प्रतिभा साधन' और 'लघुकथेचे तत्र व मत्र' दो मौलिक ग्रथो मे समाविष्ट हैं। [भी० गो० दे०]

फतहउल्ला खाँ बहादुर आलमगीरशाही वास्तविक नाम मुहम्मद सादिक। मुगल सम्राट् औरंगजेब के राज्य का एक सरदार। वीरता के लिये इसे फतहउल्ला खाँ की उपाधि मिली। 'सतारा' और 'परली' दुर्गों की विजय में इसका बहुत बडा भाग था। उसके प्रसाद स्वरूप सम्राट् ने इसे उचित पुरस्कार और समान दिया। परनाला दुर्ग की विजय में इसकी वीरता के लिये बहादुर की पदवी मिली। इसकी वीरता द्वारा जीते जाने के कारण दरर्दागढ का नाम सादिकगढ रखा गया। खेलना के युद्ध में इसके सिर और कमर में चोट लगी किंतु शाहजादा बेदारबख्त की सहायता से दुर्ग विजय हो गया और इसे आलमगीरशाही की उपाधि मिली।

कालांतर में काबुल प्रांत के लोहगढ का थानेदार नियुक्त हुआ। बादशाह के राज्य में कुछ दिन जीवित रहने पर इसकी मृत्यु हो गई।

फतहउल्ला शिराजी मीर भारतवर्ष आने के पूर्व ही अपने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के लिये प्रसिद्ध था। ईरान के एक लब्धप्रतिष्ठ परिवार से सबंधित था। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने उसे आमंत्रित किया और उसे वकील-ए-मुतलाक (मुख्यमंत्री) के पद पर नियुक्त किया। सुल्तान की मृत्यु हो जाने के पश्चात् अकबर के निमंत्रण पर वह १५८३ ई० में उसके पास चला आया। अकबर उसके पांडित्य से बहुत प्रभावित हुआ और उसे दीवान-ए-सदारत का विभाग सौंप दिया। १५८५ ई० में अमीनुल्मुल्क की पदवी के साथ उसे दीवान बना दिया गया जिसका कार्य था राजस्व लेखा का परीक्षण करना तथा चिरकाल के अस्तव्यस्त कार्य को व्यवस्थित करना। वह इस पद पर १५८८ ई० तक कार्य करता रहा। उसी वर्ष कश्मीर में उसकी मृत्यु हो गई।

मीर को ३००० का मनसब प्राप्त था। उसकी बौद्धिक एवं मानसिक विशेषताओं के कारण बादशाह एवं उसके सरदार उसका बड़ा समान करते थे। वह आयुर्वेद, गणित, फलित ज्योतिष तथा रसायन विद्या आदि विज्ञान की विविध शाखाओं में अनुपम पांडित्य रखते हुए भी अतीव विनीत था। शिक्षा के प्रसार में उसकी बडी आस्था थी और अवकाश के समय वह अपने सहचर सरदारों के बच्चों को पढाता था। इसके अतिरिक्त उसको एक ऐसे चक्र के आविष्कार का श्रेय प्राप्त है जिसकी गति से अल्प समय में ही १२ तोपों की सफाई की जा सकती थी। उसने एक ऐसे सग्गड का निर्माण किया जिसमें एक आटे की चक्की लगी थी जो सग्गड की गति के साथ साथ चलती थी। उसने एक ऐसे दर्पण का भी आविष्कार किया जिसके नजदीक और दूर होने से आकार में वैचित्र्य प्रतीत होता था। अबुलफजल निम्नलिखित शब्दों में उसकी प्रशंसा करता है।

"उसका पांडित्य इतना गंभीर था कि यदि प्राचीन ज्ञान भंडार की पुस्तकें लुप्त भी हो जाती तो भी वह इसकी चिंता किए बिना ज्ञान नवीन आधार की स्थापना कर सकता था।

सं० ग्रं०—अबुल फजल अकबरनामा, बेवरिज द्वारा संपादित, अबुल फजल आइन-ए-अकबरी, सर सैयद अहमद खाँ (दिल्ली) द्वारा संपादित, बदायुनी-मुन्तखबुत्तवारीख, खंड २, तारीख-ए-गुलशन-ए इब्राहीम, निजामुद्दीन, तबकात-ए-अकबरी, खंड २, शाहनवाज खाँ, मआसिरुल उमरा, खंड १; इब्न-ए-हसन, सेंट्रल स्ट्रक्चर ऑव द मुगल एम्पायर, आर० पी० त्रिपाठी सम ऐस्पेक्ट्स ऑव द मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद, १९५६, वी० स्मिथ, अकबर, द ग्रेट मुगल।

[इ० हु० सिं०]

फतह खाँ मुगल सम्राट् शाहजहाँ के राज्य का एक सरदार। यह मलिक अंबर हब्शी का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर निजामशाही का प्रबंधक बनकर फतह खाँ ने मुर्तजा निजामशाह से सारे अधिकार छीन लिए। मुर्तजा ने इसे जुनेर में कारावास में डाल दिया। परंतु यह कारावास से निकल भागा। पकडे जाने पर यह दौलताबाद में कैद किया गया। परिस्थिति से बाध्य होकर मुर्तजा निजामशाह ने इसे प्रधान मंत्री और सेनापति नियुक्त किया। फतह खाँ ने षड्यंत्र करके १६३८ में मुर्तजा को उन्मत घोषित कर पहले कैद में डाल दिया और बाद में उसे मार कर उसके दस वर्षीय पुत्र हुसैन को गद्दी पर आरूढ किया। इसी बीच बीजापुर नरेश आदिलशाह ने दौलताबाद पर अधिकार करने की योजना बनाई। फतह खाँ की अदूरदर्शिता से दौलताबाद दुर्ग आदिलशाह के अधिकार में चला गया। उस समय से इसका मानसिक संतुलन बिगड गया। इसलिये सम्राट् ने कुछ वृत्ति उसे देकर एकांतवास की अनुमति दे दी। यह लाहौर में रहने लगा और वहीं इसकी मृत्यु हुई।

फतेहपुर १ जिला, स्थिति २५° २६' से २६° १६' उ० अ० तथा ८०° २४' से ८१° २०' पू० दे०। यह दक्षिणी उत्तर प्रदेश में स्थित एक जिला है। इसके पश्चिम में कानपुर, पूर्व में इलाहाबाद, दक्षिण में बाँदा एवं उत्तर में उन्नाव तथा रायबरेली जिले स्थित हैं। इसका कुल क्षेत्रफल १,६२५ वर्ग मील है। इसकी उत्तरी सीमा गंगा और दक्षिणी सीमा यमुना नदी निर्धारित करती हैं। दोआब के दक्षिण-पूर्वी कोने में स्थित यह एक मैदानी भाग है। यहाँ पर ऊसर भूमि भी पर्याप्त पाई जाती है। गंगा और यमुना के किनारे बहुत खड्ड एवं नाले बन गए हैं जो चारो तरफ बहते हैं तथा भूमि को कृषि के अयोग्य बना देते हैं। पांडु नदी गंगा में तथा नन (Nun) नदी यमुना में गिरती है। यहाँ की जनसंख्या १०,७२,६४० (१९६१) है। जिले के मध्य भाग में कुछ उथली झीलें भी मिलती हैं जो जनवरी, फरवरी तक सूख जाती हैं। यहाँ की मिट्टी में कंकड मिलते हैं। महुआ शीशम, नीम, सिरिस, पीपल, इमली, बबूल तथा ढाक के पेड पाये जाते हैं। जलवायु उत्तम है तथा पश्चिमी हवाएँ यहाँ पहुंचती है लेकिन तेज गति से नहीं। यहाँ वार्षिक वर्षा का औसत ३४ इंच है, तथा प्रति वर्ष की वर्षा में बहुत असमानता रहती है। कृषि में गेहूँ, ज्वार, चना, जौ, धान तथा कपास आदि प्रमुख हैं। खनिजों का यहाँ अभाव है। कपडा बुनना, यहाँ का प्रमुख उद्योग है। बिंदकी प्रमुख व्यापारिक केंद्र है। बाहर से यहाँ धातुएँ, नमक आदि आता है तथा खाद्यान्न, कपास, को बाहर भेजा जाता है। जिले में यातायात का प्रबंध अच्छा है।

२ नगर, स्थिति २५° ५६' उ० अ० तथा ८०° ५०' पू० दे०। इलाहाबाद से ७३ मील दूर उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित नगर है। यहाँ पर गहनों आदि का काम अधिक होता तथा बाजार भी अच्छा लगता है। यहाँ की जनसंख्या २८३२३ (१९६१) है। यह जिले

के शासन का मुख्य केंद्र हैं। यहाँ नासिरुद्दीन हैदर का इमामबाड़ा, अकबर के समय की एक मस्जिद, नवाब अब्दुस्समद खाँ का मकबरा, नवाब बाकर अली खाँ की मस्जिद तथा मकबरा प्रसिद्ध इमारतें हैं।

३ स्थिति : २८° उ० अ० तथा ७४° ५८' पू० दे०। इसी नाम का एक नगर राजस्थान के सीकर जिले मे भी स्थित है। यहाँ बड़े बड़े धनिको के मकान हैं। यहाँ की जनसख्या २७०३६ (१९३१) है।
[र० च० दु०]

फतेहपुर सिकरी आगरा शहर से २३ मील पर स्थित ऐतिहासिक नगर। सन् १५२७ मे यहाँ बाबर से राणा सग्राम का युद्ध हुआ था। १५७० मे अकबर ने यहाँ अपनी राजधानी बनाई थी। यहाँ अनेक प्राचीन इमारतें आज भी विद्यमान हैं।

फरमान फरमान का वास्तविक अर्थ है 'आदेश'। इस शब्द का प्रयोग मुगल बादशाहों के हुक्म के लिये होता था। मुगलों के समय में बादशाह के हुक्म को मुशी लोग कागज पर लिख लेते थे। फिर उसका मसौदा बनाकर उसे साफ लिखकर दीवान के दफ्तर, मीर बख्शी के दफ्तर, वकील के दफ्तर, और खाने सामान के दफ्तरो के दस्तखत होने के लिये भेज दिया करते थे। अंत में मसौदा बादशाह के सामने पेश होता था। बादशाह के इच्छानुसार इसपर या तो "मोहरे उजुक" या "निशाने पजा" या स्वय बादशाह का हस्ताक्षर होता था। अकबर का केवल हस्ताक्षर मिलता है। जहागीर के स्वय लिखे हुए शेर (पक्तियाँ) और शाहजहाँ के अपने हाथो से लिखे हुए फ़रमान मिलते हैं।

फरमान पर जो मोहर लगती थी, वह पाँच प्रकार की होती थी। फरमान के महत्व के मुताबिक ये मोहरें लगाई जाती थी। इनमे से कुछ चौकोर थीं, कुछ गोल और कुछ तिकोनी। जो फरमान साधारण रूप से तनख्वाहों, मनसबों (पद सबधी) और दूसरे कामों के लिये जारी किए जाते थे उनको "फरमाने सबती" कहते थे। साधारण फ़रमानो को "फरमाने ब्याजी" की सज्ञा दी जाती थी। बहुत ही साधारण फरमान जिनपर शाही मोहर की आवश्यकता न होती, उनको "खाने सामान" और "मुशरिफे दीवान" की मोहर से जारी किया जाता था और "पर्वाना" के नाम से पुकारा जाता था।

फ़रमान को दोहरा मोड दिया जाता था और उसपर एक फीता लपेटकर मोहर लगा दी जाती थी। फरमानो को उनके महत्वानुसार अलग अलग अफसरो के सुपुर्द किया जाता था जो उनको निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाते थे। जिन फरमानों की बातो को गुप्त रखना आवश्यक होता, उनको इस प्रकार लपेटा जाता कि कोई पढ न सके। इसकी लिखाई किसी जिम्मेदार आदमी के सुपुर्द होती। ऐसे फरमान किसी विशेष दूत के हाथ सुरक्षित रूप से भेजे जाते थे।
[मु० अ० अ० अ०]

फ़रिश्ता का असली और पूरा नाम "अबुल कासिम, हिंदु शाह" था। उसका जन्म ९६० हिजरी अर्थात् १५५२–५३ ईसवी मे हुआ। उसका पिता, जिसका नाम गुलाम अली था, ईरान से हिंदुस्तान आया और अहमदनगर में बस गया। अहमदनगर दरबार मे उसको नौकरी भी मिल गई। वह शाही गारद का कप्तान नियुक्त हुआ। मुरतजा निजामशाह की हत्या के बाद वह अहमदनगर छोड़कर बीजापुर चला गया। यहाँ भी उसे एक महत्वपूर्ण पद प्राप्त हुआ। इब्राहीम आदिल शाह ने अपनी इच्छा प्रकट की कि वह इतिहास लिखे। इस प्रकार उसने इस हुक्म पर "गुलजारे इब्राहीमी"- नामक इतिहास सबधी पुस्तक लिखी जो १०१५ हिजरी अर्थात् १६०६-१६०७ ई० मे समाप्त हुई। इसमे दक्षिण के राज्यो का इतिहास है। इस पुस्तक में वह दूसरे स्थानों के बादशाहो का भी वर्णन करता हैं। ब्रिग्स (Briggs) ने इस पुस्तक का अनुवाद चार जिल्दों मे अग्रेजी भाषा मे किया है।
[मु० अ० अ० अ०]

फरीद (प्रथम) दे० 'फरीदुद्दीन मसऊद गजे शकर'।

२ फरीद सानी या द्वितीय (१४५०, ५७२ ई०) का असली नाम दीवान इब्राहीम साहब किबरा था। शेख फरीद, सलीम फरीद, शाह ब्रह्म आदि इनके उपाधि नाम थे। ये गुरुनानक के समकालीन और फरीद शकरगज की शिष्यपरपरा मे १२वीं पीढी में हुए हैं। मैकलिफ दि सिक्ख रिलिजन, भाग ६, पृ० ३५६-३५७ के अनुसार 'आदि ग्रथ' मे सगृहीत ४ पद और १३० सलोक इन्ही फरीद सानी के हैं। वर्तमान सिक्ख इतिहासकार पजाबी साहित्य को अधिक प्राचीन सिद्ध करने के लिये इन्हे फरीद प्रथम की वाणी मानते हैं। कुछ का कहना है कि भाषा और शैली की विभिन्नता से दोनों फरीद की वाणी को अलग अलग पहचाना जा सकता है। जो हो, फरीद के नाम से जो वाणी उपलब्ध है, उसका अपना साहित्यिक महत्व है। कविता सहज और स्वाभाविक है, भाषा ठेठ और सरल है, रूपक घरेलू वातावरण से लिए गए हैं,। छद अवश्य शिथिल हैं, किंतु उनका सगीत मधुर और प्रभावोत्पादक है। फरीद इस्लामी शरअ के पाबद रहते हुए भी उदार मानववादी फकीर थे।

स० ग्र०—सलोक फरीद, खालसा ट्रैक्ट सोसायटी, अमृतसर सलोक, फरीद, स० मुंशी जैशीराम, इसरार औलिया (मे वचन), सं० हजरत बदर दीवान, पाक पट्टन, राहत-उल-कलूब स० हजरत निजामुदीन, दिल्ली।
[ह० दे० बा०]

फरीद कोट १. तहसील, यह पजाब के भटिंडा जिले मे एक तहसील है जिसका क्षेत्रफल ५६२ वर्गमील तथा जनसख्या २,४२,१०७ (१९६१) थी। यहाँ का धरातल, जो पश्चिम मे बालुकामय तथा पूर्व मे अधिक उपजाऊ है, समतल है। यहाँ सरहिंद नहर से सिंचाई की सुविधा है।

२. नगर, स्थिति . ३०° ४०' उ० अ० तथा ७४° ४६' पू० दे०। यह उपर्युक्त तहसील मे फिरोजपुर से २० मील दक्षिण, रेलमार्ग के किनारे स्थित नगर है। यहाँ पर भज राजपूत राजा मोकुल्सी द्वारा ७५० वर्ष पूर्व निर्मित एक किला है। यह नगर प्रसिद्ध अनाज की मडी तथा व्यापारिक केंद्र है। नगर की जनसख्या २६,७३५ (१९६१) थी।
[सु० च० श०]

फरीदपुर १. जिला, स्थिति २२° ५१' से २३° ५५' उ० अ० ८९° १९' से ९०° ३७' पू० दे०। पूर्वी पाकिस्तान का एक जिला है।

पद्मा नदी के किनारे स्थित फरीदपुर नगर जिले का प्रमुख नगर है। इसका नाम फरीद शाह के नाम पर रखा गया है। अधिक वर्षा के कारण यहाँ दलदल रहते हैं। इसका क्षेत्रफल २,८२१ वर्ग मील है। प्रधान उपज धान है। गंगा (पद्मा) नदी यातायात का मुख्य साधन है। अप्रैल से सितंबर का औसत ताप २८° सें० से लेकर जनवरी का कम से कम ताप ११° सें० तक तथा वार्षिक वर्षा का औसत ६६ इंच रहता है।

२ नगर, स्थिति : २८° १३' उ० अ० तथा ७९° ३३' पू० दे०। भारत मे उत्तर प्रदेश राज्य के बरेली जिले का एक नगर है जो दिल्ली से बरेली जानेवाले मार्ग पर स्थित है। नगर की स्थापना एक कठेरिया राजपूत ने की थी, बाद मे शेख फरीद के नाम पर इसका नामकरण हुआ। फरीद ने रुहेला शासन के समय यहाँ एक किला बनवाया था। इसकी जनसंख्या १३,२७८ (१९६१) है।

[र० च० दु०]

फरीदाबाद स्थिति २८° २५' उ० अ० तथा ७७° २५' पू० दे०। यह भारत में पंजाब राज्य के गुड़गाँव जिले में दिल्ली से १६ मील दूर स्थित नगर है। इस नगर की स्थापना सन् १६०७ मे जहाँगीर के कोषाध्यक्ष शेख फरीद ने दिल्ली से आगरा जानेवाले मार्ग की रक्षा के लिए की थी। नगरपालिका की स्थापना सन् १८६७ में की गई। यहाँ शिक्षा के लिये भी प्रबंध किया गया है तथा अस्पताल आदि की भी सुविधा है। यहाँ एक बडी औद्योगिक बस्ती बसाई गई हैं जिसमे मोटर टायर, पुस्तक प्रकाशन आदि के कई बडे बडे कारखाने स्थापित किये गये हैं।

[सु० च० शा०]

फरीदुद्दीन अत्तार फरीदुद्दीन अबू हमीद मुहम्मद बिन इब्राहीम अत्तार (गंधी) के नाम से लोकप्रसिद्ध थे। जन्म नीशापुर मे स्थित कोकन (कदुकन) नामक ग्राम मे ५१३ हि० (१११९ ई०) मे हुआ था। उनकी जीवनी के संबध में जो थोडी सी सामग्री मिलती है उससे विदित होता है कि उन्होने १३ वर्ष मशहद्र मे तथा ३९ वर्ष महान् सूफियों की गद्य और पद्य रचनाओं को संगृहीत करने में बिताए थे। वह संगीतप्रेमी और ईश्वरभक्त थे। वह फारसी मे कविता भी करते थे। मौलाना जामी के मतानुसार फरीदुद्दीन अत्तार की मस्नवियों और गजलो मे एकेश्वरवाद संबंधी जिन रहस्यों और भक्ति के संकेत मिलते हैं वैसे समकालीन किसी सूफी कवि के यहाँ उपलब्ध नहीं हैं। वह महान् लेखक थे। अपने कथनानुसार उन्होने ४० रचनाएँ कीं जिनमे २०२,०६० शेर हैं। गद्य की रचनाओं मे तजकिरतुल औलिया है जिसमे सूफियों की जीवनियाँ हैं। यह पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है। निकलसन ने संपादित कर इसे प्रकाशित कर दिया है। इसी प्रकार उनका पद्यसंग्रह भी अन्य भाषाओं मे अनूदित हो चुका है। फ्रांसीसी भाषा मे 'पंदनामा को सील विस्टर देसे ने अनूदित करके १८१९ में प्रकाशित किया। मंतिक-अल-तैर को गार्सां द तासी ने १८५७ में संपादित करके फ्रांसीसी मे अनूदित किया। उनका 'कुल्लियात' (काव्यसंग्रह) लखनऊ से प्रकाशित हुआ। मंगोलों के हाथों उनकी हत्या हुई। उनके देहावसान की तिथि के संबंध मे लेखको मे मतभेद पाया जाता है। कहते हैं, मृत्यु के समय उनकी अवस्था ११४ वर्ष की थी।

सं० ग्रं० : दौलतशाह समरकंदी, तजकिरत-उल शोअरा (संपादित, ब्रौन १५७), मौलाना अब्दुर्रहमान जामी, नफहातुल, उंस (नवलकिशोर) ५४०-५४१, दारा शिकोह, सफीनतुल औलिया (उर्दू अनुवाद, कराची, १९६१) २२६; मौलाना गुलाम सर्वर, खजीनतुल आसफिया (नवलकिशोर १३२० २,२६२-६३ सईद नफीसी जुस्तजू दर अहवाल व आसारी फरीदुद्दीन अत्तारी नीशापूरी (तहरान, १३२०) Encyclopaedia of Islam (New edition, 1960) १, ७५२ व ७५५ अ ब्रौन—A Literary History of Persia (London 1928) २,५८१

[मु० उ०]

फरीदुद्दीन मसऊद गंजे शकर, शेख अथवा बाबा फरीद का जन्म ११७५ ई० के लगभग पंजाब मे हुआ। उनका वंशागत संबंध काबुल के बादशाह फर्रुखशाह से था। १८ वर्ष की अवस्था में वे मुल्तान पहुँचे और वहाँ ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के संपर्क में आए और चिश्ती सिलसिले में दीक्षा प्राप्त की। गुरु के साथ ही मुल्तान से देहली पहुँचे और ईश्वर के ध्यान मे समय व्यतीत करने लगे। गुरु के आदेशानुसार कई दिन के निरंतर रोजे के उपरांत भूख से व्याकुल होकर रोजा खोलते समय कुछ कंकड़ मुँह में रख लिए जो तुरंत शकर बन गए। गुरु ने यह सुनकर शुभकामना की कि शकर की भाँति तेरी वाणी मीठी हो जायगी। गंजे (चीनी की खान) उपाधि का यही कारण है। देहली मे शिक्षा दीक्षा पूरी करने के उपरांत बाबा फरीद ने १९-२० वर्ष तक हिसार जिले के हाँसी नामक कस्बे में निवास किया। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की मृत्यु के उपरांत उनके खलीफा नियुक्त हुए किंतु राजधानी का जीवन उनके शांत स्वभाव के अनुकूल न था अतः कुछ ही दिनों के पश्चात् वे पहले हाँसी, फिर खोतवाल और तदनंतर दीपालपुर से कोई २८ मील दक्षिण पश्चिम की ओर एकांत स्थान अजोधन (पाक पटन) मे निवास करने लगे। अपने जीवन के अंत तक वे यहीं रहे। अजोधन में निर्मित फरीद की समाधि हिंदुस्तान और खुरासान का पवित्र तीर्थस्थल है। यहाँ मुहर्रम की ५ तारीख को उनकी मृत्यु तिथि की स्मृति में एक मेला लगता है। वर्धा जिले में भी एक पहाडी जगह गिरड पर उनके नाम पर मेला लगता है।

वे योगियो के संपर्क में भी आए और संभवत: उनसे स्थानीय भाषा मे विचारों का आदान प्रदान होता था। कहा जाता है कि बाबा ने अपने चेलो के लिये हिंदी मे जिक्र (जाप) का भी अनुवाद किया। सियरुल औलिया के लेखक अमीर खुर्द ने बाबा द्वारा रचित मुल्तानी भाषा के एक दोहे का भी उल्लेख किया है। ग्रंथ साहब मे शेख फरीद के ११२ 'सलोक' उद्धृत हैं। यद्यपि विषय वही है जिनपर बाबा प्राय वार्तालाप किया करते थे, तथापि वे बाबा फरीद के किसी चेले की, जो बाबा नानक के संपर्क मे आया, रचना ज्ञात होते हैं। इसी प्रकार फवाउदुस्सालेकीन, असरारुल औलिया एवं राहतुल कुलूब नामक ग्रंथ भी बाबा फरीद की रचना नहीं। बाबा फरीद के शिष्यो मे निजामुद्दीन औलिया को अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई। वास्तव मे बाबा फरीद के

आध्यात्मिक एवं नैतिक प्रभाव के कारण उनके समकालीनो को इस्लाम के समझाने में बडी सुविधा हुई। उनका देहावसान १२६५ ई० में हुआ।

स० ग्र०—(फारसी) अमीर हसन सिजज़ी फुवाएदुल फुआद (लखनऊ, १८८४), सैय्यिद मुहम्मद बिन मुबारक किरमानी. अमीर खुर्द सियरुल औलिया (देहली, १८८५), शेख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी अख्वारुल अख्यारा (देहली, १८९१) [सै० अ० अ० रि०]

फर्ग्युसन, जेम्स (१८०८–१८६) डॉ० विलियम फर्ग्युसन के पुत्र जेम्स का जन्म २२ फरवरी, १८०८ को स्कॉटलैंड के आयर नामक स्थान मे हुआ था। इनके पिता सैनिक शल्यचिकित्सक थे। २७ वर्ष की उम्र मे नील व्यापार के सबध मे यह भारत आए और १० वर्ष तक इस व्यापार मे लगे रहे। इस काल मे इन्हे इतनी आय हो गई थी कि यह चैन से अपना जीवन निर्वाह कर सकते थे। किंतु फिर व्यापार मे कुछ घाटा हुआ और जेम्स को अपना कारोबार बद करना पडा। १८३५–४२ के बीच इन्होने भारत के विभिन्न प्राचीन स्थानो का भ्रमण किया और भारतीय वास्तुकला के अध्ययन में उनकी रुचि बढी।

१८४५ मे फर्ग्युसन भारत छोडकर चले गए और वहाँ व्यवसाय के अतिरिक्त उनका गहन अध्ययन आरभ हुआ। १८४० मे वे रॉयल एशियाटिक सोसायटी के सदस्य बने तथा बाद मे उपसभापति। व्यवसाय हेतु १८५६–५८ के काल मे यह क्रिस्टल पैलेस कपनी के प्रधान सचिव थे। १८५७ मे इग्लैंड के राजकीय सुरक्षा कमीशन की सदस्यता इन्हें प्राप्त हुई और १८६९ ई० मे निर्माण विभाग के आयुक्त बने। इस पद पर रहकर इन्होने प्राचीन इमारतो का पूर्णतया निरीक्षण किया। अपने ४० वर्ष के अध्ययन तथा निरीक्षण के फलस्वरूप इन्होने विश्व की स्थापत्यकला और उसके इतिहास सबधी गवेषणात्मक ग्र थो की रचना की। उन्होने अपने भारतीय तथा पूर्वी क्षेत्र के स्थापत्य अध्ययन के प्राक्कथन मे लिखा कि उनके निष्कर्ष अवशेषो को स्वय देखने और क्रमात्मक रूप मे प्रस्तुत करने पर आधारित हैं। १८६७ मे उनका 'हिस्ट्री ऑव इडियन ऐंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर' प्रकाशित हुआ। इसमें अपने विचारो की पुष्टि के लिये उन्होने बहुत से चित्र दिए है। लगभग ३०००' चित्रो का पूर्णतया अध्ययन कर उन स्थानो को देखकर, तथा विभिन्न कलाकृतियो की समानता दिखाते हुए उन्होने यह ग्र थ लिखा जिसके तीन प्रकाशन हो चुके हैं। कनिंघम यह पुरातत्व तथा स्थापत्य का अद्वितीय ग्र थ था। 'केव टेंपुल्स' युग में नामक दूसरा बडा ग थ हैं। फर्ग्युसन ने प्राचीन भारतीय विचारधाराओ को निश्चित रूप देकर उनका गूढ अध्ययन किया। उनका 'ट्री ऐंड सर्पेट वर्शिप (वृक्ष तथा नाग पूजा) भी अद्वितीय ग्र थ है। इसमे इस धार्मिक जन विचारधारा का प्रवाह विश्व के विभिन्न कोनो और देशो मे खोजा गया है। स्थापत्य कला पर जिन अन्य ग्र थो की उन्होने रचना की उनमे निम्न उल्लेखनीय है—'ए हैंडबुक आव आर्किटेक्चर,' 'ए हिस्ट्री ऑव मॉडर्न स्टाइल्स ऑव आर्किटेक्चर', 'ए हिस्ट्री ऑव आर्किटेक्चर इन ऑल कट्रीज' इत्यादि। इसाइक्लोपीडिया, ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स' मे भी इनके कई लेख प्रकाशित है, जिनमे मुख्यतया 'आव अजता' आर्किटेक्चर ऑव टेंपुल्स, फतहपुर सिकरी, मथुरा, जगन्नाथ, जामा मस्जिद, कुतुब मीनार, काचीपुरम्, तजोर इत्यादि हैं।

अपने अध्ययन तथा भारतीय कला के अन्वेषण के आधार पर इ ग्लैंड के इस्टीच्यूट ऑव ब्रिटिश आर्किटेक्ट्स की ओर से फर्ग्युसन को स्वर्णपदक देकर समानित किया गया। जनवरी ९, १८८६ मे ७८ वर्ष की उम्र में इनका लदन मे देहात हो गया।

स० ग्र० — डिक्शनरी ऑव इडियन बायोग्राफी। [बै० पु०]

फर्डिनंड प्रथम (जन्म १८६५, मृत्यु १९२७ ई०) रुमानिया का राजा। २४ अगस्त, १८६५ को सिगमैरिंजन (प्रशा) मे जन्म हुआ। यह हाहेनजॉलर्न के प्रिंस लियोपोल्ड का द्वितीय पुत्र था। १८८९ में यह रुमानिया के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी बनाया गया। एडिनबरा के ड्यूक की पुत्री और रानी विक्टोरिया की नतिनी सु दरी राजकुमारी मेरी से जून, १८९३ में इसका विवाह हुआ।

फर्डिनड ने अपने का रुमानियन घोषित किया। बाल्कन युद्ध (१९१३) में रुमानियन सेनापति रहा। सेना का पुनर्गठन किया। ११ अक्टूबर, १९१४ को विधिवत राज्याभिषेक हुआ। राष्ट्रीय एकता की रक्षा के लिये जर्मनी के विरुद्ध १९१६ में युद्ध की घोषणा की। महायुद्ध में पराजित हुआ। मोल्डाविया में शरण ली और लडाई जारी रखी। मारासेस्टी में जर्मनो का दृढ प्रतिरोध किया। ७ मई, १९१८ को शाति सधि हुई। बेसरबिया, बुकोविना और ट्रासिल्वेनिया रुमानिया को मिले। राजपरिवार मोल्डाविया से फिर लौट आया और १५ अक्टूबर, १९२२ को फर्डिनड का पुन राज्याभिषेक किया गया।

उसने अनेक शासनसुधार किए। बालिग मताधिकार जारी किया। बडी बडी जागीरे भग की। अपनी जायदाद अपने 'किसान सिपाहियों को दे दी। सेना का आधुनिकीकरण किया। रुमानियन यहूदियो को नागरिकता के अधिकार दिए। १९२५ मे अपने पुत्र केरोल को गद्दी के अधिकार से वचित किया और छह साल के अपने पोते माइकेल को अपना वारिस चुना। १९२७ मे २० जुलाई को इसका देहात हो गया।

फर्डिनड प्रथम महान् — (जन्म, लगभग १००० और मृत्यु, १०६५ ई०) कैस्टील और लेओन (स्पेन) का राजा साचो ३य का दूसरा पुत्र। १०२८ मे कैस्टील पर प्रभुत्व स्थापित किया। माता के उत्तराधिकारी होने से १०३५ में राजा बना। स्वतन्त्र राज्य स्थापित होने के दो साल बाद पत्नी साँचा के अधिकार से लेओन का राजा बना। पत्नी के भाई बरमूडो को लडाई में हराया और मारा, और अपने बडे भाई के मरने पर १०५४ मे राज्य का बडा भाग अपने राज्य मे मिला लिया। मूरो के विरुद्ध लडाई लडी। टोलेडो, जारागोजा और सेविल के सामतो ने अधीनता स्वीकार की। १०५६ मे इसने सम्राट् की उपाधि धारण की। स्पेन का यह पहला राजा था जिसने यह पद ग्रहण किया। पोप विक्टर द्वितीय और सम्राट् हेनरी चतुर्थ के विरोध की इसने परवाह न की। होली (पवित्र) रोमन साम्राज्य से स्पेन के पृथक् रहने से स्पेनिश जनता प्रसन्न हुई। १०६५ मे फर्डिनड मरा और उसका राज्य उसके तीनो पुत्रो मे विभक्त हो गया। दयालुता के लिये यह स्पेन के राजाओ मे प्रसिद्ध है।

[illegible] गया। उसने स्पेनिश अमरीकी राज्य की नींव डाली। उसका राज्य पाइरेनीज पर्वतमाला से जिब्राल्टर तक फैल गया। अपने बच्चों की शादियों द्वारा आस पास के राजाओं को मित्र बनाया।

फर्डिनेंड षष्ठ—(जन्म, १७१३; मृत्यु, १७५९ ई०) स्पेन का राजा 'एलसाबिओ' (विद्वान्) के नाम से प्रसिद्ध, फिलिप पंचम का द्वितीय पुत्र। पुर्तगाल की राजकुमारी बारबारा (ब्रगाजा की) से सन् १७२९ ई० में विवाह हुआ। १७४६ ई० में राज्यसिंहासन पर बैठा। ऐला शापेल की संधि पर १७४८ में हस्ताक्षर किए।

इसके मंत्री ज्ञानी और विद्वान् थे। साहित्य, कला व संस्कृति का पुनरुज्जीवन किया। सन् १७४४ में ललित कला अकादमी की स्थापना की। शांतिप्रिय था। आस्ट्रियन उत्तराधिकार की लड़ाई में शांति कराई। इंगलैंड और फ्रांस के अनुरोध करने पर भी सप्तवर्षीय युद्ध से तटस्थ रहा। १७५८ में इसकी पत्नी का देहांत हुआ। इसके बाद से यह बीमार रहने लगा और फिर कभी रोगमुक्त नहीं हुआ।

फर्डिनेंड सप्तम—(जन्म १७८४, मृत्यु १८३३ ई०) स्पेन का राजा। चार्ल्स चतुर्थ तथा मेरिया लुई पर्मा का ज्येष्ठ पुत्र। पिता के राजगद्दी त्यागने पर १९ मार्च १८०८ में स्पेन का राजा घोषित किया गया। कुछ समय बाद नेपोलियन बोनापार्ट प्रथम ने स्पेन पर आक्रमण किया और इसे सन् १८१३ ई० तक कैद में रखा। १८१४ में यह स्पेन लौटा।

प्रायद्वीपी युद्ध की समाप्ति पर यह पुन: गद्दी पर बैठा और वैधानिक ढाँचा कायम रखने का झूठा वचन दिया। यह निर्बल प्रवृत्ति का क्रूर और निरंकुश राजा था। स्पेनिश अमरीका गलती से खो दिया। सैनिक शासन देश में जारी किया। मरने से तीन मास पहले अपनी ज्येष्ठ पुत्री ईसाबेला द्वितीय को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

फर्डिनेंड प्रथम (जन्म, १५०३); मृत्यु, १५६४ ई०। जर्मन सम्राट् व होली रोमन सम्राट। फिलिप प्रथम का पुत्र और सम्राट् चार्ल्स पंचम का भाई। सन् १५२१ ई० में इसने बोहीमिया और हंगरी के राजा की पुत्री अन्ना से विवाह किया और अपने साले लुई के मरने पर १५२६ में बोहीमिया और हंगरी का राजा बना। १५३८ में क्रोटों ने भी इसको अपना राजा स्वीकार किया। आस्ट्रिया की रक्षा के लिए इसने तुर्कों से युद्ध किया। तुर्क नरेश सुलेमान द्वितीय से १५४१ में [illegible] विरामसंधि का निर्णय किया, और बोहीमिया और हंगरी की गद्दी के दावेदार अपने प्रतियोगी जॉन जापोलिया की [illegible] भी मार दी। चार्ल्स पंचम के बाद होली रोमन सम्राट् कहलाया (१५५८)।

प्रोटेस्टेंटों के प्रति इसकी नीति उदार थी। इसके पक्ष में सुधार करने का [illegible] किया पर विफल रहा। [illegible] में इसका [illegible] का भी प्रयत्न किया। फिलिप द्वितीय की अधीनता में [illegible] हुआ और इस नीति से स्पेनिश अमरीका का भी [illegible]। आस्ट्रिया हैप्सबर्ग का भी [illegible]। इसके बाद [illegible], आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग [illegible] हो गया। आस्ट्रिया के [illegible] हुआ।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १५७८, मृत्यु, १६३७ ई०) रोमन सम्राट् । लर्मव सम्राट् फर्डिनंड प्रथम का पौत्र । प्रोटेस्टेंटो का कट्टर विरोधी था क्योकि इसकी शिक्षा जेसुइट शिक्षको द्वारा हुई थी ।

इसका पिता स्टीरिया का आर्कडयूक चार्ल्स १५९० में मरा, १५९६ में यह स्टीरिया कैरिंथिया और कार्नियोला का शासक वना । १६१७ में वोहीमिया का और १६१८ में हगरी का राजा वना । प्रोटेस्टेंटो की दमन की नीति के कारण वोहीमिया में विद्रोह हो गया । उन्होने फर्डिनंड को राजगद्दी से हटाने और उसकी जगह फ्रेडरिक पचम को चुनने की घोषणा की । यूरोप में तीस वर्षीय युद्ध शुरू होने का एक कारण यह हुआ । २८ अगस्त, १६१९ को फ्राकफर्ट में फर्डिनंड होली रोमन सम्राट् चुना गया ।

ववेरिया के डयूक मैक्सिमिलियन प्रथम की सहायता से इसने कैथोलिक लीग से मैत्री की और इसकी सहायता से फ्रेडरिक को वोहीमिया से निकाल देने में समर्थ हुआ । इसके वाद प्रोटेस्टेंटों का अत करने का वीडा उठाया । १६२४ में फरमान निकाला कि कैथोलिक पादरी के सिवाय और किसी से पूजा न कराई जाय । १६२८ मे वोहीमिया से सव प्रोटेस्टेंट पादरी निकाल दिए गए । चर्च से १५५२ के बाद जो जमीनें छीनी गई थी वे सब उनको वापिस कर दी गई । आस्ट्रिया में विद्रोह का दमन किया ।

ववेरिया की सहायता से प्रतिक्राति का समर्थन किया । तीसवर्षीय युद्ध में स्वीडिश गुस्टावस एडाल्फस इसकी सफलता में वाधक हुआ । फर्डिनंड की सहमति से प्राग-शान्ति-सन्धि (१६३५) पर हस्ताक्षर हुए । प्रोटेस्टेंटो को कुचलने में यह सर्वथा विफल रहा । फ्रॉस के इस युद्ध में हस्ताक्षेप करने के कारण इसकी विजय पाने की आशा जाती रही ।

फर्डिनंड तृतीय—(जन्म, १६०८, मृत्यु १६५७ ई०) होली (पवित्र) रोमन सम्राट् । सम्राट् फर्डिनंड द्वितीय का ज्येष्ठ पुत्र । तीसवर्षीय युद्ध में भाग लिया । इसकी शिक्षा भी पिता के समान जेसुइट लोगों की देख रेख में हुई थी । प्रोटेस्टेंटो को धार्मिक स्वतत्रता देने का विरोधी था ।

फरवरी, १६३७ में पिता के मरने पर राज्यसिंहासन पर बैठा । इससे पहले १६२५ में हगरी का और १६२७ में वोहीमिया का राजा वन चुका था । १६३४ में वालस्टीन की हत्या हो जाने पर विशाल साम्राज्य की सेना का सेनापति होने का मनोरथ भी इसका पूर्ण हो गया ।

१६३९ में जर्मनो का राजा चुना गया । वेस्टफेलियासधि (१६४८) से लडाई वद हुई । इटली मे फ्रासीसियो से लडने के लिये अपनी सेना भेजी । १६५७ में पोलैंड से सधि की । यह विद्वान् और गीतों का रचयिता था ।

फर्डिनंड चतुर्थ—(जन्म, १७५१, मृत्यु १८२५ ई०) नेपल्स का राजा (दो सिसिलियो का प्रथम तथा सिसिली का तृतीय) । स्पेन नरेश चार्ल्स तृतीय का तीसरा लडका । १७६८ मे सम्राज्ञी मैरिया थेरेसा की पुत्री मैरिया कैरोलिना से विवाह । यह पत्नी-भक्त राजा था । १७५९ से १८०६ और १८१५ से १८२५ तक नेपल्स पर, और १७५९-१८२६ तक, फिर १८१६ से १८२५ तक, सिसिली पर राज्य किया । १८०६ से १८१५ तक नेपल्स पर नेपोलियन वोनापार्ट प्रथम के भाई जोसेफ वोनापार्ट ने शासन किया ।

फर्डिनंड को नेपोलिन प्रथम के समय फ्रासीसियो से लडना पडा और नेपल्स और सिसिली कई वार छोडना पडा । १७९९ ई० मे पार्थेनोपियन (Parthenopean) गणतत्र की स्थापना की गई थी । नेपोलियन प्रथम ने इसको भी जीता और अपने भाई जोसेफ वोनापार्ट को सौप दिया (१८०६ ई०) । विएना काग्रेस ने जोसेफ वोनापार्ट को नेपल्स का राजा मान लिया था । किंतु आस्ट्रिया ने विएना काग्रेस के निर्णय की अवहेलना की और अपनी सेना इटली भेजी । फ्रेंच सेना हारी । फर्डिनंड ने पुन अपना खोया राज्य पाया । किंतु जनता को दिया हुआ वचन भग किया । गणतत्र की जगह निरकुश राजतत्र की स्थापना की । यह निरकुश और अत्याचारी राजा था । शासन वस्तुत इसकी पत्नी करती थी ।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १८१०, मृत्यु, १८५९ ई०) "वॉम्वा" नाम से प्रसिद्ध दो सिसिलियो का राजा । फ्रासिस प्रथम का पुत्र । अयोग्य, निकम्मा, क्रूर था । सार्डिनिया के राजा एमैन्यूएल प्रथम की कन्या क्रिस्टिना से १८३२ मे विवाह किया और आस्ट्रिया के आर्क डयूक चार्ल्स की लडकी मेरिया थेरेसा से १८३६ मे । १८३० मे गद्दी पर बैठा । कुछ वैधानिक सुधार किए परतु यह ज्यादा दिन नही टिके । इसकी मान्यता थी कि उसकी इच्छा ही कानून है । विद्रोह हुए, क्रूरता से कुचल दिए गए । अपने ही राज्य के शहरों मे वमवर्षा करने मे सकोच नही किया । इस कारण इसका नाम ही वॉम्वा पड गया ।

फर्डिनंड तृतीय—(जन्म, १७६९, मृत्यु, १८२४ ई०) टस्कनी का ग्राड डयूक । सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय का कनिष्ठ पुत्र । पिता की सुधार की नीति को जारी रखा ।

फ्रेंच गणतत्र को स्वीकार करने के वाद पहली पराजय मिली । फ्लोरेंस पर फ्रेंचो का १७९९ मे अधिकार हो गया । किंतु इसी साल पुन इसको सिंहासन मिल गया । लूनेविले की सधि (१८०१) के अनुसार टस्कनी एट्ररिया के राज्य मे वदल गया । १८१४ मे पुन गद्दी पर बैठा । १८१५ मे कुछ समय के लिए गद्दी छोडनी पडी किंतु वाटरलू की लडाई के वाद टस्कनी मे इसका शासन निर्विघ्न रहा ।

फर्डिनंड प्रथम—(जन्म १८६१, मृत्यु १९४८ ई०), वलगेरिया का राजा वना १८८७ मे । १९०८ मे इसने वलगेरिया को स्वतत्र घोषित किया ।

यह अत्यत बुद्धिमान और नीतिनिपुण शासक था । जर्मनो का पक्षपाती होते हुए भी इसने रूस के जार की सहानुभूति प्राप्त की । इसने १९१२ के वॉलकन युद्ध मे भाग लिया ।

सर्विया, ग्रीस, मॉटीनीग्रो और वलगेरिया को मिलाकर इसने पहला वाल्कन सघ वनाया और तुर्की को पराजित किया किंतु, विजय की लूट मे कम भाग मिलने से ग्रीस और सर्विया असतुष्ट रहे । फलत दूसरा वाल्कन युद्ध प्रारभ हुआ और इसमे रूमानिया भी समिलित हुआ । वलगेरिया अकेला ही लडा । १० अगस्त १९१३ की बुखारेस्ट की सधि से वलगेरिया ने वह सब खो दिया, जो इसने

तुर्की से लड़ाई करके पाया था। बल्गेरिया के राष्ट्रवादी इससे बहुत असंतुष्ट और निराश हुए। प्रतिरोध की भावना उनमें जाग गई।

प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर बल्गेरिया पहले तटस्थ रहा। परंतु, ४ अक्टूबर, १९१५ को बुखारेस्ट संधि के प्रतिशोध के लिये जर्मन आस्ट्रिया की ओर से लड़ने को मैदान में आया। मैसीडोनिया और थ्रेस में विजयी रहा, पर सितंबर, १९१८ में इसकी सेना हार गई और विरामसंधि हुई। ४ अक्टूबर, १९१८ को इसने अपने पुत्र बोरिस के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया और कोबर्ग (जर्मनी) में शरण ली। वहीं इसका देहांत हुआ।

फर्डिनंड प्रथम—(जन्म, १७९३, मृत्यु, १८७५ ई०) आस्ट्रिया का सम्राट्, हंगरी का भी राजा (१८३०-१८४५)। फ्रांसिस प्रथम और नेपल्स की मेरिया थेरेसा का ज्येष्ठ पुत्र। बचपन से इसको मृगी के दौरे आते थे और इसका जीवन इस रोग से लड़ते हुए ही बीता

१८३५ में यह सिंहासन पर बैठा, पिता की नीति जारी रखी। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्रिंस मेटरनिख इसका प्रधान मंत्री था। छोटे-मोटे अनेक शासनसुधार किए पर जनता को संतोष नहीं हुआ। १८४८ में विएना में भी यूरोप के अन्य स्थानों के समान क्रांति की ज्वाला भड़की। फलत दिसंबर, १८४८ में सिंहासन त्यागने को बाध्य हुआ। फ्रांसिस जोसेफ को राज्य देकर यह प्राग चला गया और वहीं शेष जीवन बिताया।

फर्डिनंट प्रथम—(जन्म, १४२३, मृत्यु १४९४ ई०) १४५८ में नेपल्स का राजा बना। १४६० में विद्रोहियों द्वारा हराया गया। १४६४ में पुन राजसत्ता स्थापित की। १४८० में तुर्कों से पराजित हुआ किंतु १४८१ में इसके पुत्र अल्फांसो ने उनपर विजय प्राप्त की। १४८५ में एक राजविद्रोह दबाया और अपने वचन के विरुद्ध विद्रोहियों का धोखे से वध करा दिया।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १४६९, मृत्यु, १४९६ ई०) फर्डिनंड प्रथम का पोता। फ्रांस के चार्ल्स अष्टम से युद्ध करना पड़ा। स्पेनीय सेनानायक कार्डोवा की सहायता से विजय प्राप्त की किंतु थोड़े ही काल तक शासन कर पाया।

फर्डिनंड प्रथम—(जन्म, १३४५, मृत्यु, १३८३ ई०) पुर्तगाल का राजा। अपने पिता पेड्रो के देहांत के बाद १३६९ में केस्टील की गद्दी का एक दावेदार यह भी हुआ। १३७० से १३८२ तक ट्रास्टामारा के हेनरी के साथ लड़ाई चली जो इसके लिये अत्यंत घातक ठहरी। १३८३ की संधि से लड़ाई बंद हुई, किंतु उसके बाद यह अधिक नहीं जिया।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १८१६, मृत्यु, १८८५ ई०) पुर्तगाल का नाम मात्र का राजा। १८३६ में इसका विवाह पुर्तगाल की रानी से हुआ। रानी की मृत्यु के बाद १८५३ से १८५५ तक यह रीजेंट रहा। १८६९ में एक अमरीकी महिला से विवाह किया। यह कलाकार भी था।

फर्डिनंड—(जन्म, १५७७, मृत्यु, १६५० ई०) कोलोन का एलेक्टर। बवेरिया के ड्यूक विलियम पंचम का पुत्र। यह अपने बड़े भाई बवेरिया के ड्यूक मैक्सिमिलियन प्रथम का समर्थक और प्रोटेस्टेंटों के विरुद्ध उत्तरी जर्मनी में लड़ाई जारी रखने का पक्षपाती था। तीस वर्षीय युद्ध (१६१८-१६४८) में भाग लिया। लीज के नागरिकों

कर दिया। लगान वसूली का कार्य सरकारी अधिकारियो के स्थान पर सबसे ऊँची बोली बोलने वालो को दिया गया। यह प्रथा भूमिपतियो और उन सभी मध्यवर्तियो के लिये जिनका भूमि पर कुछ स्वामित्व था, विनाशकारिणी सिद्ध हुई। मनसबदारो को आर्थिक कठिनाइयाँ उठानी पडी।

जुलाई, १७१७ मे जान सरमन के नेतृत्व मे अंग्रेजी दूतावास ने फर्रुखसियर से एक फरमान प्राप्त किया जिसके अनुसार अंग्रेजो को प्रचलित प्रथानुसार तीन हजार रुपये वार्षिक देकर बगाल मे बिना करके आयात और निर्यात व्यापार करने का अधिकार मिला।

स० ग्रं० — १ खफी खान — मुतखबुललुबाब, २ कामराज बिन नयन सिंह — इबरत नामा, ३ शिवदास-शाहनामा मुनव्वर क्लाँ, ४ हादीखान कमवार — तज़किरात-उस-सलातीन चगतई, ५ मिर्जा मुहम्मद — इबरत नामा, ६ याह्याखान — तजकिरा-तुलमुल्क, — ८ रघुवीर सिंह — मालवा इन ट्राजीशन ९ सतीशचद्र — पार्टी पालिटिक्स ऐट द मुगल कोर्ट, १० सरदेसाई — ए न्यू हिस्ट्री आव द मराठा, भाग प्रथम। [ज० म०]

फर्रुखाबाद १ जिला, स्थिति २६° ४६′ से २७° ४३′ उ० अ० तथा ७९° ८′ से ८०° १′ पू० दे०। यह उत्तर प्रदेश मे मध्य तथा कुछ पश्चिम की ओर स्थित जिला है। इसके उत्तर मे शाहजहाँपुर एव हरदोई, दक्षिण मे इटावा एव मैनपुरी, पूर्व में कानपुर तथा पश्चिम मे एटा और बदायूँ जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल १,१४५ वर्ग मील तथा जनसंख्या १२,६५,०७१ (१९६१) है। इस जिले मे गगा, काली, ईसान तथा अरिंद आदि नदियाँ बहती है। दोआब के मध्य मे स्थित होने के कारण जिले की मिट्टी जलोढ है। उत्तरी भाग बागर है। यहाँ छोटी छोटी कई झीलें हैं तथा यहाँ की मिट्टी ककड एव रेह मिश्रित है। जलवायु शुष्क तथा दोआब मे सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद है। जिले का औसत ताप जनवरी में १५° सें० तथा जून में ३५° सें० रहता है एव वार्षिक वर्षा का औसत लगभग ३३ इच है। कृषिगत उपजो में गेहूँ, जौ, ज्वार, चना, धान, मक्का, अरहर, बाजरा तथा कपास आदि हैं। खरबूजो की कृषि विशेष रूप से की जाती है। नहरो की अपेक्षा कुओ से सिंचाई अधिक होती है। यहाँ से शोरा बनाकर बाहर भेजा जाता है। फर्रुखाबाद तथा कन्नौज में कपडे की छपाई का काम अधिक होता है। जरी का काम तथा धातु के बरतन बनाने का काम भी होता है। कन्नौज में इत्र बनाने का उद्योग विकसित है। छपे सूती कपडे, सुगधित द्रव्य, धातु के बरतन जिले के बाहर भेजे जाते हैं। कन्नौज यहाँ का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है।

२ नगर, स्थिति २७° २४′ उ० अ० तथा ७९° ३४′ पू० दे०। उपर्युक्त जिले में उत्तर की ओर, कानपुर से ८७ मील पश्चिम, गगा के किनारे स्थित नगर है। फतेहगढ तथा फर्रुखाबाद की एक सम्मिलित नगरपालिका है। फतेहगढ मे बदूक का कारखाना है तथा कपडे की छपाई, सुनहला गोटा, बरतन तथा तबू बनाए जाते हैं। मुसलमानो की सख्या यहाँ अधिक है। इस नगर की स्थापना १७१४ ई० मे नवाब मुहम्मद खाँ ने की थी, बाद में मुगल बादशाह फर्रुखसियर के नाम पर इसका नाम पडा। यहाँ नवाब के महल एव मकबरे के खडहर है। नगर की जनसख्या ९४,५४१ (१९६१) है।

फर्श भवन का एक मुख्य अग है। अच्छे फर्श से भवन की शोभा ही नही बढती वरन् उसे आसानी से साफ सुथरा रखा जा सकता है।

फर्श कई प्रकार के होते हैं तथा इनके निर्माण के मूल्य में भी बहुत अतर होता है, जैसे कच्चे फर्श और सगमरमर के फर्श के निर्माण-मूल्य में। निम्नलिखित प्रकार के फर्श भारत में अधिकतर उपयोग में आते है

(१) सीमेंट कक्रीट के फर्श, जिनमें सीमेंट टाइल तथा मोज़ैइक के फर्श भी शामिल है।

(२) काचित टाइल (glazed tiles) के फर्श,
(३) पत्थर के फर्श,
(४) सगमरमर के फर्श,
(५) लकडी के फर्श तथा
(६) ईंट और चूने की गिट्टी के फर्श।

फर्श भूमि से थोडी ऊँचाई पर, अर्थात् भवन की कुरसी की ऊँचाई पर, बनाए जाते हैं, जिससे भूमि की नमी से तथा वर्षा में पानी से बचाव हो। कुरसी में मिट्टी की भराई खूब ठोस होनी चाहिए, जिससे बाद में यह मिट्टी बोझ पाकर धँस न जाय, नही तो फर्श टूट जाएगा तथा उसमें दरारें पड जाएँगी।

सीमेंट कंक्रीट का फर्श — इस प्रकार के फर्श सबसे अधिक प्रचलित हैं तथा सुंदर, चिकने और स्वच्छ होते हैं तथा आसानी से धोए जा सकते है। रगीन सीमेंट तथा काली और सफेद सगमरमर की बजरी डालकर मोजैइक या टराजो (Mosaic or Terrazo) फर्श बनते हैं। रग तथा विभिन्न तरह की बजरी के सम्मिश्रण से बडे सुदर तथा कई अभिकल्प के फर्श बनाए जा सकते हैं, जिनपर पॉलिश कर देने से खूब चिकनाई तथा चमक आ जाती है। आजकल अच्छे मकानों में इस तरह के फर्शो का उपयोग बहुत बढ गया है।

सीमेंट का फर्श अधिकतर १ इच से १½ इच तक मोटा होता है और इसके नीचे ३ इच मोटी तह चूने की गिट्टी की दी जाती है, जिसे दुरमुट इत्यादि से भली भाँति कूटकर ठोस कर देना चाहिए। चूने की गिट्टी के नीचे भी अगर बालू या राख (cinder) की ६ इच मोटी तह बिछा दी जाय, तो यह नमी को रोकने में काफी सहायक होती है। जहाँ सीलन का बहुत भय हो वहाँ सीमेंट में उचित मात्रा में पडलो (Pudlo), चीको (Checko), अथवा अन्य नमी रोकनेवाले पेटेंट मसालो का प्रयोग किया जा सकता है।

सीमेंट का फर्श पूरे कमरे में एक साथ न डालकर लगभग ४ फुट × ४ फुट की पटियो के रूप मे डालने से कक्रीट सूखने के समय फर्श के फटने का भय नही रहता।

सीमेंट कक्रीट का पानी जब सूखता है, तब कक्रीट थोडा सा सिकुडता है, जिससे जगह जगह फर्श के फट जाने की आशका रहती है। अगर चार पाँच फुट पर फर्श में जोड (joints) दे दिए जायँ, तो इन जोडो में थोडी सी झिरी बढ जाएगी और टेढी मेढी दरारें नही पडेंगी।

फर्श को फटने से बचाने के लिये कक्रीट की पकाई (curing)

बहुत आवश्यक है। फर्श डालने के कुछ घंटे के बाद छोटी छोटी मेड़ें बनाकर फर्श के ऊपर पानी भर कर, कम से कम ८-१० दिन तक पकाई करनी चाहिए। अगर संभव हो तो पकाई १५ दिन तक करते रहना चाहिए।

फर्श में जो जोड़ बनाए जाते हैं, उनके बीच $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ इंच मोटी ऐल्युमिनियम या एबोनाइट की पट्टी फर्श की मोटाई के बराबर लगा देने से जोड़ बहुत साफ और सीधे बनते हैं।

मोज़ैइक या टरराज़ो के फर्श के बनाने में, चूने की गिट्टी की तीन इंच मोटी तह के ऊपर $\frac{3}{4}$ इंच या $1\frac{1}{2}$ इंच मोटी सीमेंट कंक्रीट की तह डालनी चाहिए, इसके ऊपर $\frac{1}{4}$ इंच से $\frac{1}{2}$ इंच मोटी १:३ सीमेंट तथा संगमरमर की बजरी की मिलावट के मसाले की तह समतल रूप से बिछाई जाती है। तीन दिन बाद फर्श की रगड़ाई कार्बोरंडम (carborundum) पत्थर की बटिया से की जाती है। घिसाई पूरी हो जाने के बाद बारीक कार्बोरंडम की बटिया से रगड़कर पालिश की जाती है। रंगीन फर्श के लिये बने बनाए रंगीन सीमेंट बाजार में मिलते हैं।

सीमेंट की टाइल बहुत सी फैक्टरियाँ बनाती हैं। यह अधिकतर ८ इंच × ८ इंच होती है। चूने की गिट्टीवाले फर्श पर टाइलों को सीमेंट के मसाले द्वारा जड़ दिया जाता है। फिर रगड़ाई और पालिश उसी प्रकार होती है, जैसे मोज़ैइक के फर्श पर।

काचित टाइल का फर्श — पोर्सिलेन (porcelain) मिट्टी को तेज आँच की भट्ठी में पकाकर फिर उसपर विशेष रासायनिक क्रिया द्वारा ग्लेज़ करने से इस प्रकार के टाइल बनते हैं। ये सफेद अथवा रंगीन अभिकल्प के भी होते हैं। सफेद टाइल अधिकतर स्नानागार इत्यादि में लगाए जाते हैं। मोज़ैइक का उपयोग बढ़ने से इस प्रकार के टाइलों का उपयोग कम होता जा रहा है।

संगमरमर के फर्श — संगमरमर प्राचीन काल से फर्श के लिये उपयोग में आ रहा है। मुख्यत: मुगल काल में फर्श तथा भवननिर्माण में इसका प्रयोग बहुत होने लगा था। इटली में भी इसका प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है।

संगमरमर की चौड़ी चौड़ी पटियों को विभिन्न नापों में तराशकर, जमीन में चूने या सीमेंट की गिट्टी के ऊपर जड़कर, फर्श बनाया जाता है। काले तथा सफेद संगमरमर की पट्टियाँ एक के बाद एक जड़कर, बड़े सुंदर नमूने के शतरंजी फर्श बनाए जाते हैं। बड़े बड़े महल, मूल्यवान् भवन तथा अस्पतालों के शल्यकक्षों में संगमरमर का विशेषकर उपयोग किया जाता है।

पत्थर का फर्श — बलुआ पत्थर (sandstone), ग्रैनाइट (granite) तथा स्लेट (slate) का उपयोग फर्श बनाने के लिये किया जाता है। बलुआ पत्थर का मुख्य उदाहरण आगरे का लाल पत्थर है जो आगरे, दिल्ली इत्यादि के किलों में मुगलकाल में, प्रचुर मात्रा में इस्तेमाल किया गया। इसपर अच्छा पॉलिश नहीं हो सकता। भारत के दक्षिणी प्रदेशों में ग्रैनाइट खूब मिलता है। यह बहुत कठोर पत्थर है तथा इसको तराशना कठिन और महँगा भी है। यदि ग्रैनाइट पर पालिश किया जाय तो यह खूब चिकना तथा चमकदार बनाया जा सकता है। ग्रैनाइट चितकबरा तथा भिन्न भिन्न रंगों का होता है। अत: दक्षिण भारत में अच्छे फर्श के लिये इसका उपयोग करते हैं। ग्रैनाइट की मजबूती तथा कठोरता के कारण भारी कारखानों में भी इसका उपयोग करते हैं, जहाँ सीमेंट इत्यादि के फर्श बहुत टिकाऊ नहीं होते। शाहाबादी पत्थर के चौकों का फर्श भी काफी प्रसिद्ध है।

ईंट तथा चूने की गिट्टी का फर्श — ईंट का प्रयोग सस्ता फर्श बनाने के लिये किया जाता है। ईंट की चपटी या खड़ी जुड़ाई की जाती है। ईंट का फर्श सीमेंट की तरह चिकना तथा सुन्दर और साफ नहीं होता है, पर काफी सस्ता होता है।

चूने की गिट्टी का फर्श पहले बहुत बनता था, पर जैसे जैसे सीमेंट का उपयोग बढ़ता गया, चूने की गिट्टी का फर्श बनाना कम होता गया। यह सीमेंट के फर्श की तरह चिकना तथा साफ नहीं होता और पानी भी काफी सोख सकता है, अत: इसमें फटने का भय कम होता है। इसलिये प्राय: इसका उपयोग खुली छत पर फर्श डालने के लिये किया जाता है।

लकड़ी का फर्श — लकड़ी के पटरों या तख्तों को लकड़ी की धरन या लोहे के गर्डर पर जड़कर लकड़ी का फर्श बनाया जाता है। ऐसे फर्श अधिकतर पहाड़ पर, या ऐसी जगहों पर बनाए जाते हैं जहाँ लकड़ी सस्ती और अधिक मिलती है। लकड़ी का फर्श सीमेंट या पत्थर इत्यादि के फर्श की तरह ठंढा नहीं होता, अत: इसका उपयोग शीतप्रधान स्थानों में अधिकता से होता है। ऐसे स्थान पर ठंढी जलवायु के कारण लकड़ी जल्दी सड़ती भी नहीं।

लकड़ी के फर्श के लिये यह आवश्यक है कि इसके नीचे मिट्टी न भरी हो, नहीं तो सीलन से लकड़ी शीघ्र ही सड़ जाएगी। धरन के नीचे की जमीन खाली रखी जाती है, जिसमें सूखी हवा का संवातन (ventilation) हो सके। लकड़ी को रंग करने, वार्निश या मोम का पालिश कर देने से लकड़ी के फर्श की आयु, सुंदरता तथा सफाई बढ़ जाती है।

पारकेट फर्श (parquet flooring) लकड़ी के ही फर्श की एक किस्म है, जो बहुत सुंदर लगती है। नाचघरों में लकड़ी के फर्श के नीचे लोहे के स्प्रिंग लगाकर फर्श को थोड़ा लचकदार बनाया जाता है। इस प्रकार के फर्श भी काफी महँगे पड़ते हैं।

कच्चे फर्श — गाँवों में जहाँ कच्चे मकान बनते हैं, अधिकांश फर्श भी कच्चे ही, अर्थात् मिट्टी के, होते हैं। कच्चे फर्श के बनाने में चिकनी मिट्टी, भूसा तथा गोबर का उपयोग किया जाता है।

कारखानों में फर्श — कारखानों के फर्श मामूली भवन के फर्श की अपेक्षा मजबूत बनाने पड़ते हैं। आवश्यकतानुसार सीमेंट कंक्रीट की तह को कम से कम $1\frac{1}{2}$ इंच से ३ इंच तक मोटा रखना पड़ता है। जहाँ फर्श पर बहुत भारी बोझ पड़े या भारी लोहे के पहियों की गाड़ियाँ चलें, वहाँ ग्रैनाइट के ब्लॉकों (block) का उपयोग भी किया जाता है, यद्यपि इनपर गाड़ी के चलने से खड़खड़ाहट तथा शोर बहुत बढ़ जाता है तथा फर्श की अच्छी सफाई भी नहीं हो पाती। जहाँ अधिक शोर हो वहाँ बिटूमेन (bitumen) का फर्श भी बनाया जा सकता है।

कुछ स्थानों में लिनोलियम का उपयोग भी फर्श के लिये किया जाता है, जैसे रसोई, गैलरी अथवा अन्य स्थानों में। इसके उपयोग से आवाज भी कम होती है। हमारे देश में रेलगाड़ियों के डिब्बों के फर्श बनाने में अधिकतर लिनोलियम का ही उपयोग होता है। [का० प्र०]

फलन (Function) शब्द का गणित मे अर्थ वह व्यजक (expression), नियम अथवा विधि आदेश (rule) है जिसके अनुसार एक चर (variable) द्वारा, जिसे स्वतत्र चर (independent variable or argument of the function) कहते है, ग्रहण किए हुए प्रत्येक मान के सगत एक दूसरे चर के, जिसे परतत्र (dependent) चर कहते है, एक या अधिक मान मिल जाते हैं। उदाहरणत, $2x^2-3x+1$ तथा $\sin x^3$ स्वतत्र चर x के फलन है। x के एक फलन की यह कहकर भी परिभाषा दी जा सकती है कि यदि x परिमेय (rational) है, तो फलन का मान शून्य है और यदि x अपरिमेय है तो फलन का मान १ है। स्वतत्र चर द्वारा ग्रहण किए हुए मानसमुदाय को फलन का प्रभावक्षेत्र (domain) और परतत्र चर के सगत मानसमुदाय को परास (range) कहते है। यदि प्रभावक्षेत्र के प्रत्येक मान के सगत परास का केवल एक ही मान हो, तो फलन को एकमान (one valued) कहते हैं, किंतु यदि प्रभावक्षेत्र के कुछ या सभी मानो मे से प्रत्येक के सगत परास के एक से अधिक मान हो, तो फलन को बहुमान फलन कहते है। आधुनिक शुद्ध गणित मे फलन की परिभाषा मे केवल एकमान फलनो का ही समावेश होता है जो इस प्रकार है दो समुदायो अथवा समुच्चयो (sets) A और B पर विचार कीजिए। A से B पर फलन f जिसे $f\ A \to B$ लिखते हैं वह सबध है, जिसके अनुसार सबध का प्रभावक्षेत्र सपूर्ण समुच्चय A है और A के एक या अधिक सदस्यो (या अवयवो) के सगत B का एक अद्वितीय सदस्य होता है। A से B का सबध R, जिसे A R B लिखते हैं A और B के कार्तीय गुणनफल का जिसे $A \times B$ लिखते हैं, एक उपसमुच्चय (subset) है। कार्तीय गुणनफल $A \times B$ उन सभी क्रमित युग्मो (ordered pair) (a, b) का समुच्चय है, जिसमे a, A का सदस्य है और b, B का सदस्य है। प्रतीक f (x) का प्रयोग B के उस सदस्य को सूचित करने के लिये किया जाता है जो A के सदस्य x का सगत है। इस प्रकार A के एक से अधिक सदस्यो का प्रतिबिंब (image) B का का एक ही सदस्य हो सकता है, किंतु ऐसा विलोमत नही होता, अर्थात् B के कई एक सदस्यो का प्रतिबिंब A का केवल एक सदस्य नही होता। प्रतिबिंब समुच्चय को, जो स्पष्टत B का उपसमुच्चय है, फलन का परास कहते हैं।

मैपिंग और सगतता शब्द भी फलन के समानार्थी हैं। A से B पर मैपिंग f तब ऑन्टू (onto) कहलाता है जब B का प्रत्येक सदस्य A के किसी एक अथवा कुछ सदस्यो का प्रतिबिंब हो और उसे $f\ A \xrightarrow{\text{ऑन्टू}} B$ लिखते हैं। A से B पर मैपिंग f यदि ऑन्टू न हो तो उसे इन्टू कहते हैं और $f\ A \xrightarrow{\text{इटू}} B$ लिखते हैं। A से B पर मैपिंग f को एक एक ऑन्टू तब कहते हैं जब A के प्रत्येक सदस्य का B मे प्रतिबिंब हो तथा B का प्रत्येक सदस्य A के किसी सदस्य का प्रतिबिंब हो और इसे $f\ A \xrightarrow[\text{ऑन्टू}]{1\text{-}1} B$ लिखते हैं। इसी प्रकार A से B पर मैपिंग f तब एक एक इटू कहलाता है जब A के प्रत्येक सदस्य का B मे प्रतिबिंब हो और इसे $f\ A \xrightarrow[\text{इटू}]{1\text{-}1} B$ लिखते हैं। शुद्ध गणित की कुछ पीठिकाओ में ऐसी परपरा है कि मैपिंग f को तब एकैक कहते हैं जब वह एक साथ एकैक और ऑन्टू हो। फलन की परिभाषा के इस सशोधन के बावजूद चिरप्रतिष्ठित परिभाषा को अब भी इस कारण स्वीकृत किया जाता है कि गणितीय अनुप्रयोगो में बहुमान फलन बहुत महत्वपूर्ण होते है।

फलनो के प्रकार

(१) **बहुपद** — यदि f (x) का रूप

$$a_0 x^n + a_1 x^{n-1} + \quad + a_{n-1} x + a_n$$

हो, जहाँ n कोई धनात्मक पूर्णांक है और $a_0, a_1, \quad, a_n$ अचर हैं तथा $a_0 \neq 0$, तो f (x) को x में बहुपद (polynomial), अथवा x का परिमेय पूर्णांकी फलन (rational integral function) कहते हैं।

(२) **परिमेय फलन** — यदि f (x) को दो बहुपदो के अनुपात के रूप मे व्यक्त किया जा सके, तो उसे परिमेय फलन कहते हैं, जैसे

$$\frac{x^3-7}{3x^4+x-9}$$

(३) **अपरिमेय फलन** — जिन फलनो मे करणिया (surds) होती हैं उन्हे अपरिमेय फलन कहते हैं, जैसे $\sqrt{(x^2+x+1)}+3x$

(४) **बीजीय फलन** — यदि $y=f(x)$ और x मे सबध निम्नलिखित रूप मे प्रकट किया जा सके

$$P_0(x)\,y^n + P_1(x)\,y^{n-1} + \quad + P_{n-1}(x)y + P_n(x) = 0,$$

जहाँ n कोई धनात्मक पूर्णांक है और $P_0(x)$, $P_1(x)$, $P(x)$ सभी x के बहुपद हैं, तो y को x का बीजीय फलन (algebraic function) कहते है।

(५) **बीजातीत फलन** — जो फलन बीजीय नही होते, अबीजीय फलन (Transcendental functions) कहलाते है, जैसे $\sin x$, $\log x$ इत्यादि। प्रारंभिक फलन अबीजीय फलनो के सरल उदाहरण हैं।

(६) **स्पष्ट और अस्पष्ट फलन** — यदि y और x के सबध को सरलता से $y=f(x)$ के रूप मे प्रकट किया जा सके, तो y को x का स्पष्ट फलन कहते है, अन्यथा y को x का अस्पष्ट फलन कहते हैं और तब x तथा y के सबध को $F(x, y) = 0$ के रूप में प्रकट करते हैं।

(७) **प्रारंभिक फलन** — जिस प्रकार के फलनो का ऊपर विवेचन किया गया है उनको दीर्घवृत्तीय (elliptic), बीटा (beta), गामा (gamma) आदि, उच्चतर अबीजीय फलनो से पृथक् करने के लिये, प्रारंभिक फलन (elementary function) कहते हैं।

यदि वह सबध, जो y को x के फलन रूप मे व्यक्त करता है, $y=f(x)$ हो, तो उस सबध को जो x को y के फलन रूप में व्यक्त करता है, f (x) का प्रतिलोम फलन (inverse function) कहते हैं। प्रतिलोम फलन को प्राय $x=f^{-1}(y)$ के रूप मे लिखते हैं। $y=x^2$, $x=\sqrt{y}$ एक प्रतिलोम फलनयुग्म का उदाहरण है।

यह बात ध्यान देने की है कि आधुनिक शुद्ध गणित में केवल एकैक मैपिंग में ही प्रतिलोम मैपिंग की संभावना रहती है।

अब तक कम से कम निरप्रतिष्ठित परिमापानुसार केवल एक वास्तविक चर के फलनों का विवेचन किया गया है। कई एक वास्तविक चरों के भी फलनों की कल्पना संभव है। फिर, कम से कम प्रारंभिक रूप के समिश्र चर (complex variable) के फलनों की भी कल्पना की जा सकती है। समिश्र चर को $x = u + i v$ के रूप में लिखने पर मान लें $f(x) = P(u, v) + i Q(u, v)$, जहाँ $P(u, v)$ तथा $Q(u, v)$ दो वास्तविक चरों u, v के फलन हैं। समिश्र फलनों के अनुप्रयोग बहुत हैं (देखें द्रव चलविज्ञान)।

फलन का ज्यामितीय निरूपण — एक चर के वास्तविक मानवाले फलन का आलेख इस प्रकार खींचा जा सकता है कि स्वतंत्र चर x को एक ऋजु रेखा के अनुदिश संख्या मापनी के अनुकूल अंकित कर लिया जाय और उसके लंब Y- अक्ष के अनुदिश परतंत्र चर y को अंकित किया जाय। किंतु समिश्र चर के फलनों के निरूपण मे दो समतलों की सगतता काम आती है, क्योंकि समिश्र संख्या सामान्यतया समतल के बिंदु द्वारा निरूपित की जाती है। इस कारण निरूपण इतना सुस्पष्ट नहीं हो पाता जितना वास्तविक मानवाले फलनों मे।

इतिहास — बहुत समय पहले, सन् १६३७ मे ही, देकार्त ने वैश्लेपिक ज्यामिति पर अपनी कृति प्रकाशित की और ऐसे भी व्यक्ति हैं जो इसमे से फलन सिद्धांत (Theory of Function) का विचारा प्रस्फुटित होते देखते हैं, किंतु फलन शब्द सवप्रथम सन् १६९४ मे लाइब्निट्स (Leibnitz) की रचनाओं मे प्रकट हुआ। लेनर्ड आइलर (L Euler) ने सन् १७३४ मे पहली बार प्रतीक $f(x)$ का प्रयोग किया। फलन के विकास का श्रेय बहुत कुछ लाग्रांज, फूर्ये (Fourier), डीरिक्ले (Dirichlet) आदि गणितज्ञों को है। बाद को फलन सिद्धात दृढ आधार पर स्थापित करने का श्रेय आगस्टिन लुई कौशी, जॉर्ज रीमा और कार्ल वायर्स्ट्रास (सन् १८१५–९७) आदि को है। इस सबंध मे जार्ज कैंटर (सन् १८४५-१९१८) का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होने समूह सिद्धांत (Theory of Aggregates) का प्रतिपादन किया और इसके आधार पर फलन सिद्धांत को और भी सुदृढता मिल सकी।

सीमा की सकल्पना — फलन $f(x)$ को, x के किसी मान c की ओर अग्रसर होने पर, सीमा (limit) L वाला तब कहा जाता है जब हरेक धन छोटी से छोटी संख्या ϵ के दिए रहने पर एक ऐसी धन संख्या δ का अस्तित्व हो कि यदि $|x - c| < \delta$ तो $|f(x) - L| < \epsilon$, इस तथ्य की सक्षेप लिपि के लिये संकेतन $\lim_{x \to c} f(x) = L$ प्रयुक्त किया जा सकता है। यह बात समझ लेनी चाहिए कि यदि c पर फलन का मान $f(c)$ है, तो इस मान का सीमा L के अस्तित्व, या स्वय उस सीमा मान से कुछ सबंध नहीं, उदाहरणतया, यदि $f(x) = x \sin(1/x)$, तो $f(0)$ अर्थहीन है, जबकि $\lim_{x \to 0} x \sin(1/x) = 0$।

सातत्य — फलन $f(x)$ को $x = c$ पर उस दशा मे सतत (continuous) कहा जाता है जब $\lim_{x \to c} f(x) = f(c)$। फलन जिस बिंदु पर सतत नहीं होता, वहाँ पर असतत कहलाता है। असातत्य निम्न रूपों मे उत्पन्न हो सकता है

(i) $\lim_{x \to c} f(x)$ अस्तित्वहीन है, (ii) $\lim_{x \to c} f(x)$ अस्तित्वमय है, किंतु उसका मान $f(c)$ के बराबर नहीं। (i) वाले असातत्य को अनपनेय (irremovable) असातत्य कहते हैं, जब कि (ii) को अपनेय (removable) असातत्य कहते हैं, क्योंकि इस स्थिति में विचारणीय बिंदु पर फलन को उपयुक्त मान देकर फलन को सतत बनाया जा सकता है।

अवकलन और समाकलन — फलन $f(x)$ के अवकलज या अवकलज $f'(x)$ की परिभाषा $\lim_{h \to 0} \{f(x+h) - f(x)\}/h$ से दी जाती है। किसी बिंदु c पर व्युत्पाद्य (derivable) होने के लिये आवश्यक है कि $f(x)$ बिंदु पर सतत हो, किंतु यह प्रतिबंध व्युत्पादन के लिये पर्याप्त नहीं है। वायर्स्ट्रास ने ऐसे फलन का उदाहरण दिया जो सभी बिंदुओं पर सतत है, किंतु कहीं भी व्युत्पाद्य, अर्थात् अवकलनीय (differentiable), नहीं। वह फलन $\sum_{n=0}^{\infty} a^n \cos b^n \pi x$ है, जहाँ b एक विषम संख्या है, $0 < a < 1$, जहाँ b एक विषम संख्या है, $0 < a < 1$ और $ab > 1 + \frac{3}{2}\pi$, यदि $g'(x) = f(x)$, तो फलन $g(x)$ को $f(x)$ का समाकल (integral) कहते हैं। समाकल को प्रतिअवकलज (antiderivative), अनिश्चित समाकल या पूर्वग (primitive) फलन भी कहते हैं। समाकलन को अवकलन की विपरीत क्रिया कहते हैं। अवकलन क्रिया समाकलन क्रिया के पहले होती प्रतीत होती है, किंतु बात उलटी है। कुछ विशिष्ट प्रकार की अनंत श्रेणियों के योग और किसी वक्र तथा दो कोटियों (ordinates) से परिसीमित क्षेत्र का क्षेत्रफल ज्ञात करने के प्रयास मे समाकलन की खोज हुई। वास्तविक चरवाले फलन के समाकल की रचनात्मक परिभाषा सबसे पहले रीमान (Riemann) ने दी। मान लें $f(x)$ अंतराल $a \leqslant x \leqslant b$ में परिभाषित है और इस अंतराल का कोई स्वेच्छ विभाजन परिमित खंडों मे, जिनमे दीर्घतम लंबाई L है, किया गया है। प्रत्येक खंड $\Delta_i x$ मे स्वेच्छया कोई बिंदु x_i चुनें और मान $f(x_i)$ को उस खंड की लंबाई से गुणा कर योगफल $\sum f(x_i) \Delta_i x$ लें, यहाँ खंड $\Delta_i x$ की लंबाई संकेत $\Delta_i x$ से ही प्रकट की गई है। यदि L के शून्य की ओर अग्रसर होने पर इस योग की परिमित सीमा I है, तो इस सीमा को $f(x)$ का निश्चित समाकल या रीमान समाकल कहते हैं और लिखते हैं

$$I = \int_a^b f(x)\, dx \quad ।$$

समिश्र चरों के फलनों का रेखासमाकल (line integral) होता है, जिसका मान कंटूर समाकलन (contour of integration) पर

निर्भर करता है। $\int_c f(x)dx$ कट्टर c के अनुदिश f(x) के समाकल का प्रतीक है।

संमिश्र चर का वैश्लेषिक फलन — समिश्र चर $z=(x+iy)$ का फलन f(z) विंदु z_0 पर तब सतत है जब z को z_0 के पर्याप्त समीप लेकर $|f(z)-f(z_0)|$ को कितनी भी लघु निर्दिष्ट घन सख्या ϵ से छोटा बनाया जा सके, अर्थात् ϵ के दिए रहने पर ऐसी सख्या δ चुनी जा सके कि $[f(z)-f(z_0)] < \epsilon$ जब कि $|z-z_0| < \delta|$ फलन f (z) विंदु z_0 पर तव अवकलनीय या वैश्लेषिक (analytic) है जब $\lim_{z\to z_0} \{f(z)-f(z_0)\}/(z-z_0)$ अस्तित्वमय और कोई परिमित सख्या (भले ही समिश्र) हो। यदि f (z) = u (x, y) + i v (x, y), जहाँ u और v दोनो x, y के वास्तविक फलन हैं, तो f (z) के अवकलनीय होने के लिये आवश्यक है कि

$$\frac{\partial u}{\partial x}=\frac{\partial v}{\partial y} \text{ और } \frac{\partial u}{\partial y} = -\frac{\partial v}{\partial x} ,$$

किंतु अवकलनीय होने का पर्याप्त प्रतिबध यह है कि इन सबधो के सतुष्ट होने के अतिरिक्त खडश अवकलज u_x, u_y v_x, v_y विंदु (x, y) पर सतत भी हो। जो फलन किसी प्रदेश (region) के प्रत्येक विंदु पर अवकलनीय होता है, उसे उस प्रदेश मे नियमित (regular), या कभी कभी वैश्लेषिक (analytic), कहा जाता है। यदि प्रदेश के कुछ वियुक्त (isolated) बिंदुओं को छोड फलन अन्यत्र वैश्लेषिक हो तो ऐसे फलन को विवैश्लेषिक (meromorphic) फलन कहते हैं। ऐसे फलन कट्टर समाकलन मे विशेष उपयोगी होते हैं।

स० ग्र० — इ० डब्लू० हॉब्सन द थ्योरी ऑव फक्शन ऑव ए रीयल वेरियेबिल ऐंड द थ्योरी ऑव फूरिये सिरीज, खड १, तीसरा सस्करण (१९२६), खड २, दूसरा सस्करण (१९२६), पी० फ्रैंकलिन ए ट्रीटिज ऑन ऐडवान्स्ड कैलकुलस (१९४०), शांतिनारायण ए कोर्स ऑव मैथमैटिकल ऐनलिसिस (एस चाँद ऐंड को, १९४५)।

[च० मो०]

फलानुमेयप्रामाण्यवाद (Pragmatism) अँगरेजी के 'प्रैगमैटिज्म' (Pragmatism) का समानार्थवाची शब्द है और प्रैगमैटिज्म शब्द यूनानी भाषा के 'Pragma' शब्द से, जिसका अर्थ 'क्रिया' या 'कर्म' होता है, वना है। तदनुसार 'फलानुमेय प्रामाण्यवाद' एक ऐसी विचारधारा है जो ज्ञान के सभी क्षेत्रो में उसके क्रियात्मक प्रभाव या फल को एक अत्यत ही महत्वपूर्ण स्थान देती है। इसके अनुसार हमारी सभी वस्तुविपयक धारणाएँ उनके सभव व्यावहारिक परिणामो की ही धारणाएँ होती है। अत किसी भी वात या विचार को सही सही समझने के लिये उसके व्यावहारिक परिणामो की परीक्षा करना आवश्यक है।

यों तो इस सिद्धात के कतिपय समर्थक इसे यूनानी विचारक प्रोटेगोरस (Protagoras) के 'मनुष्य सब वस्तुओ की माप है' (Man is the measure of all things) — इस कथन से सबधित करते हैं, और सुकरात एव अरस्तू आदि प्राचीन दार्शनिको को भी प्रैगमैटिक विधि के प्रयोक्ता वतलाते हैं, परतु वस्तुत यह एक आधुनिक विचारधारा है, और इसके प्रमुख प्रतिपादक हैं अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पडित विलियम जेम्स (१८४२-१९१०) और शिक्षाशास्त्री जॉन ड्युई (John Dewey, १८५९-१९५२) तथा ग्रेट ब्रिटेन के डाक्टर एफ० सी० एस० शिलर (Schiller, १८६४-१९२७)। डा० शिलर ने मानवीयतावाद (Humanism) नामक सिद्धात का प्रतिपादन किया है जिसे वास्तव में फलानुमेय प्रामाण्यवाद की एक शाखा ही समझना चाहिए। जेम्स की तो प्राय सभी कृतियाँ इस विचारधारा पर आधारित हैं। जेम्स प्राय अध्यात्मवाद के, विशेपतया हेगेलीय अध्यात्मवाद के, कट्टर विरोधी थे। उन्हे प्रयोगप्रिय एव वाह्यवस्तुवादी अमरीकी जनता का वैचारिक प्रतिनिधि कहना अनुचित न होगा। जब वह सत्य के एक ऐसे मापदड के विचार मे लगे थे जो अध्यात्मवादी मापदड से सर्वथा भिन्न हो, उन्होने जनवरी, सन् १८७८ ई० के 'पौप्यूलर साइंस' नामक एक अमरीकी मासिकपत्र में, चार्ल्स पीअर्स (Charles Pierce) लिखित 'हम अपने विचारो को स्पष्ट कैसे वनाएँ' (How to make our ideas clear) — लेख पढा, और उसमें आधुनिक फलानुमेय प्रामाण्यवाद की मूलभूत रूपरेखा पाकर उन्हे यह विश्वास हो गया कि सत्य या सत्यज्ञान की कसौटी यही है। पीअर्स को, जैसा स्वय उन्होने ही कहा है, फलानुमेयप्रामाण्यवाद का समानार्थवाची 'प्रैगमैटिज्म' शब्द और उसका भाव दोनो ही जर्मनी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक काट की कृतियो से मिले थे। परतु इस विचारधारा की प्राचीनता प्रदर्शित करते हुए भी जेम्स ने अपने को विशेष रूप से पीअर्स का ही आभारी माना है और उन्हें दर्शन-जगत् में आधुनिक फलानुमेयप्रामाण्यवाद का प्रवर्तक कहकर समानित किया है। जो भी हो, इस सिद्धात को वल एव प्रख्याति प्रदान करने में स्वय जेम्स का ही नाम सर्वोपरि उल्लेखनीय है। उनके लिखे हुए 'मनोविज्ञान के सिद्धात' (The Principles of Psychology), 'धार्मिक अनुभव के विविध रूप' (Varieties of Religious Experience), 'फलानुमेयप्रामाण्यवाद' (Pragmatism), 'सत्य का अर्थ' (The Meaning of Truth) और 'नानात्मक विश्व' (A Pluralistic Universe) आदि सभी प्रख्यात ग्रथ इस विचारधारा का समर्थन करते है। उनके न केवल तार्किक (सत्यासत्य सबधी) विचार ही किंतु मनोवैज्ञानिक एव तात्विक— सभी प्रकार के विचार फलानुमेयप्रामाण्यवादी प्रवृत्ति के सुस्पष्ट प्रतीक हैं।

जेम्स के अनुसार 'सत्य उन सब बातो का नाम है जो विश्वास के मार्ग में, तथा निश्चित निर्दिष्टव्य हेतुओ से भी, अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं'। सक्षेप में, 'सत्य विचार की प्रक्रिया का एक योग्य या उचित उपकरण मात्र होता है, ठीक वैसे ही जैसे 'शुभ' हमारे व्यावहारिक जीवन का एक सफल साधन मात्र, वह किसी भी प्रकार से लाभप्रद और, वस्तुत, अततोगत्वा तथा सब बातो को ध्यान में रखने पर लाभदायक है।' जेम्स सत्य को हमारी निजी धारणाओ का नकद मूल्य मानते हैं, वस्तुगत तथ्य नही। उनके अनुसार हम स्वय अपने सत्यो का निर्माण करते है। वे वाह्य वस्तुओ की प्रतिक्रिया मात्र नही, किंतु हमारे प्रयोजनो के साधक हमारे ही विश्वास होते हैं। हम उन विश्वासों को जो हमें भावात्मक तृप्ति या व्यावहारिक सफलता प्रदान करते हैं सत्य मानने लगते हैं, और इसके विपरीत परिणामवालों को असत्य। अत हमारे विश्वासो या विचारो का सत्यत्व (या असत्यत्व)

उनके फल या परिणाम द्वारा अनुमेय होता है। उनके स्थापित होने के लिये समय और अनुभव की आवश्यकता होती है। जैसे जैसे हमें किसी विश्वास से व्यवहार में सफलता मिलती जाती है वैसे ही वैसे उसका सत्यत्व भी बढ़ता जाता है। हमारे सीमित अनुभव द्वारा प्रमाणित हमारी किसी भी आस्था को पूर्णतया सत्य कहलाने का अधिकार नहीं, यहाँ तक कि विज्ञान के तथाकथित प्राकृतिक नियमों को भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं कहा जा सकता। हमें अधिक से अधिक यही कहने का अधिकार है कि जहाँ तक हमारे अब तक के अनुभवों का संबंध है, वे सत्य सिद्ध हुए हैं, परन्तु इससे उनकी शाश्वत सत्यता प्रमाणित नहीं होती। पूर्ण सत्य के लिये पूर्ण अनुभव, जिसका होना कभी संभव नहीं, अपेक्षित है। अतः मानव द्वारा प्रतिपादित कोई भी सत्य, चाहे वह वैज्ञानिक हो चाहे तार्किक, पूर्ण सत्य नहीं हो सकता। जिन्हें प्रायः मनुष्य सिद्ध-सत्य या सिद्धांत समझते हैं उन्हें फलानुमेयप्रामाण्यवादी केवल उपकल्पना (Hypothesis) ही मानते हैं। वे बुद्धिवादी तर्कशास्त्र की कटु आलोचना करते हैं और उनके न्यायवाक्य (Syllogism) आदि सिद्धांतों को दूषित ठहराते हैं। वे मानवीय विचारों को, बुद्धिवादी तर्कशास्त्रियों की मान्यता के विरुद्ध, सदैव प्रयोजनात्मक मानते हैं, निःस्वार्थ नहीं। ज्ञान के सत्यत्वासत्यत्व के परीक्षण की भारतीय न्यायदर्शन की 'प्रवृत्तिसामर्थ्य व प्रवृत्तिविसंवाद' नामक विधि, जिसके अनुसार कार्य में प्रवृत्त होने पर सफलता प्रदायक ज्ञान को यथार्थ तथा विफलताजनक ज्ञान को अयथार्थ या मिथ्या माना जाता है, इस फलानुमेयप्रामाण्यवादी विधि से मिलती जुलती मालूम होती है। परंतु, साथ ही साथ, 'तद्वति तत्प्रकारक ज्ञान यथार्थम्' एवं तदभाववति तत्प्रकारक ज्ञान भ्रम' कहनेवाला कट्टर वस्तुवादी न्यायदर्शन अनुरूपतावाद (Correspondence theory) का समर्थक प्रतीत होता है, जब कि जेम्स आदि पाश्चात्य फलानुमेयप्रामाण्यवादियों ने उसकी कटु आलोचना की है।

जिस प्रकार सत्यासत्य विवेचन में, उसी प्रकार मानसिक प्रक्रियाओं या विचारों की व्याख्या में भी फलानुमेयप्रामाण्यवादी हमारी प्रयोजनात्मक क्रियाओं को ही प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं। उनके अनुसार, हम न केवल अपने सत्यों का ही किंतु विविध अनुभवों का भी निर्माण करते हैं। हमारा प्राथमिक अथवा मूलभूत अनुभव एक अविच्छिन्न धारा जैसा होता है और हम स्वप्रयोजनों एवं स्वार्थों से प्रेरित होकर, विश्लेषण तथा चुनाव आदि करने की अपनी मानसिक क्रियाओं द्वारा, उसका विभाजन, विभिन्न पदार्थों तथा उनके पारस्परिक संबंधों के रूप में, कर लिया करते हैं। इस प्रकार, इनके मनोविज्ञान और लॉक आदि के परमाणुवादी मनोविज्ञान में, जिसके अनुसार हमारे विचार प्रारंभिक सरल प्रत्ययों के एक यांत्रिक ढंग से संग्रहीत अनुक्रम माने जाते हैं, मौलिक अंतर है। फलानुमेयप्रामाण्यवादियों की दृष्टि में परमाणुवादी मनोविज्ञान इसी नाम के भौतिक विज्ञान की नकल है जो वास्तविकता से दूर एवं भ्रामक है।

विश्वासों या विचारों के सत्यत्वासत्यत्व के परीक्षण में फलानुमेयप्रामाण्यवादी विधि स्वीकार करनेवालों में तत्वज्ञान संबंधी मतैक्य नहीं। फिर भी, यदि किसी तत्वज्ञान को इस विचारधारा का प्रतिरूप कहा जा सकता है तो वह है प्रो० ड्युई द्वारा समर्थित डा० शिलर का 'स्टडीज इन ह्यूमैनिज्म' नामक पुस्तक में प्रतिपादित तात्विक सिद्धांत। इसके अनुसार, हम स्वयं ही सदैव एवं बड़ी हद तक और सही अर्थ में वास्तविकता (Reality) का निर्माण करते रहते हैं, क्योंकि प्रत्येक तथाकथित यथार्थ वस्तु हमारे तत्संबंधी ज्ञान पर आश्रित रहती है। कोई भी ज्ञात पदार्थ ऐसा नहीं होता जिसका स्वरूप हमारे द्वारा उसके ज्ञात होने से, विशेष रूप से, निर्धारित एवं निमित न होता हो। पारमार्थिकता क्या है यह हम नहीं जानते, और न उसके विषय में, निश्चय रूप से, कुछ कहा ही जा सकता है। परंतु जहाँ तक ज्ञात वास्तविकता (या तथ्यों) का संबंध है यह निश्चय है कि उसका स्वरूप निर्माण, एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंश में, हमारे और हमारे उस ज्ञान के ऊपर निर्भर रहता है जिसपर हमारे प्रयोजनों और स्वार्थों की छाप अनिवार्यतः लगी रहती है। हमारे तथ्य वे ही होते हैं जिनमें उनकी निर्मापिका में हमारी इच्छाओं को तृप्त करने की शक्ति या योग्यता होती है। जिस प्रकार सत्य हमारे सफल विश्वास होते हैं उसी प्रकार तथ्य हमारी इच्छाओं को संतुष्टि प्रदान करनेवाले पदार्थ होते हैं। संक्षेप में हमारे व्यावहारिक जीवन में सफल क्रियात्मक प्रभावोत्पादकता को ही, इन विचारकों के अनुसार, तथ्यता या वास्तविकता का लक्षण समझना चाहिए। भारतीय बौद्ध दर्शन की सत् (पदार्थ) की परिभाषा भी, जिसके अनुसार 'सत् वह है जिसमें किसी कार्य को उत्पन्न करने की क्षमता हो', (अर्थ क्रियाकारित्वलक्षण सत्) फलानुमेयप्रामाण्यवादी विचारधारा के अनुकूल प्रतीत होती है, क्योंकि उसमें भी वस्तुओं के सत्त्वासत्त्व, अस्तित्व अनस्तित्व, के निर्धारण में उनके कार्यरूप फल को ही निर्णायक माना है। परंतु तत्वज्ञान संबंधी अनेक अन्य बातों में सभी बौद्ध दार्शनिक न तो आपस में सहमत हैं और न आधुनिक फलानुमेयप्रामाण्यवादियों के साथ। [रा० सि० नी०]

फलों की खेती साधारणतया लोगों का यह विचार है कि फलों का उत्पादन लाभप्रद नहीं होता। इस धारणा के कई कारण हैं (१) बाग लगाने से पूर्व प्रायः लोग इस बात का सोच विचार नहीं करते कि स्थानविशेष में, वहाँ की भूमि और जलवायु के अनुसार, फल की कौन सी किस्म के पेड़ लगाने चाहिए, (२) फलों के पौधों के लगाने की विधि भी उचित नहीं होती, बिना भूमि को सुधारे प्रायः फलों के पेड़ लगा दिए जाते हैं तथा पेड़ों का आपस का फासला भी आवश्यकता से कम रखा जाता है और (३) एक बार बाग लगा देने के उपरांत बाद में उसकी देखभाल पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। खाद और पानी की प्रायः कमी रहती है। इन सब कारणों से पेड़ों की फसल अच्छी नहीं होती और बाग से कोई लाभ नहीं होता। यदि उचित ढंग से बाग लगाया जाए और बाद में भी ठीक देखभाल हो, तो लाभ न होने का कोई कारण नहीं है।

फलों का बाग लगाने के लिये स्थान चुनते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए

१ सदा ऐसे स्थान को बाग लगाने के लिये चुनना चाहिए, जहाँ की भूमि उपजाऊ हो। कंकड़ पत्थरवाली और ऊँची नीची जमीन फल के पेड़ों के लिये उपयुक्त नहीं होती। क्षारवाली, जिसमें नोना हो, और रेतवाली भूमि भी फल के पेड़ों के लिये खराब होती है।

हलकी दुमट भूमि, जिसमें पानी का निकास अच्छा हो, सब प्रकार के फलो के पेडो के लिये उत्तम होती है।

२ पेडो की सिंचाई का भी सुप्रबध होना अत्यत आवश्यक है। केवल नहर के पानी के भरोसे बडा बाग लगा डालना उचित नही। आवश्यकता पडने पर यदि किसी कारण से नहर का पानी न मिले तो फसल को, या अन्य पेडो को, बहुत हानि पहुँचती है। बाग में कम से कम मीठे पानी का एक कूआँ होना अत्यत आवश्यक है। खारा पानी फल के पेडो को प्राय हानि पहुँचाता है। यदि १५ एकड का बाग लगाना हो और सिंचाई का प्रबध केवल छह एकड का हो, तो बाग पाँच पाँच एकड करके तीन या चार बार में लगाना चाहिए, क्योकि जब पेड बडे और पुराने हो जाते हैं, तब उनको बहुत अधिक सिंचाई की आवश्यकता नही होती।

३ बाग सदा पक्की सडक अथवा रेलवे स्टेशन के पास लगाना चाहिए, ताकि बाग की उपज सुविधापूर्वक और समय से बाजार या मडी में बिकने के लिये पहुँच सके।

शहर से बहुत दूर गाँव के अदर बाग लगाने से फसलो को मडी तक पहुँचाने में बहुत परेशानी होती है और खर्चा तथा समय भी बहुत लगता है। अधिक समय लगने के कारण फल बाजार तक पहुँचते पहुँचते खराब होने लगते हैं।

४ जहाँ तक हो, बाग किसी जगल के पास नही लगाना चाहिए। जगल के पास होने से प्राय नील गाय, सुअर, हिरन और चिडियो आदि से पेडो और फसल को बहुत हानि होती है और उनसे रक्षा करने में बडी परेशानी होती है तथा अधिक खर्चा होता है।

५ बाग लगाने से पहले एक बात और ध्यान में रखने की यह है कि स्थान ऐसा हो कि आवश्यकता पडने पर आसपास से उचित मजूरी पर मजदूर मिल सकें। कभी कभी जरूरत पडने पर मजदूर न मिलने से बाग की फसल मारी जाती है।

एक बार बाग के लिये भूमि का चुनाव कर लेने पर उसमें लगाए जानेवाले पेडो की किस्मो का चुनाव करना शेष रह जाता है। इसके लिये निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिए

(१) पेडो की किस्में हमेशा भूमि के अनुसार ही चुनना चाहिए। कम उपजाऊ भूमि में कलमी आम नही लगाना चाहिए। ऐसे स्थान में अमरूद आदि कठोर किस्में ही लगानी चाहिए। इसी प्रकार थोडी रेह वाली और खराब जमीन में लिसोडा, बेर, आँवला आदि के पेड ही लगाए जा सकते हैं। पानी ठरहनेवाले स्थान में तुरसीले फल के पेड, जैसे सतरा, माल्टा, नीबू आदि, नही लगाना चाहिए, क्योकि पानी से तुरसीले फल के पेडो की जडें गलकर खराब हो जाती हैं। ऐसी जगह अमरूद किसी हद तक लग सकता है। ककडवाली जमीन में आम नही लगाना चाहिए।

भूमि को देखकर, इन सब बातो का ध्यान रखे बिना यदि फल के पेडो की किस्मो का चुनाव किया गया, तो गलत किस्म के पेड लगने से सदा हानि होने की सभावना है।

(२) किस्मो का चुनाव उस स्थान की जलवायु के अनुसार ही करना चाहिए। ठढे प्रदेशो के पेड, जैसे सेब, खूबानी, नाशपाती आदि, यदि गरम मैदानी भाग में लगाए जायँ तो उनमें फल आने की आशा नही रखनी चाहिए। इसी प्रकार गरम जलवायुवाले फल, जैसे केला, पपीता आदि, पहाडी ठढे प्रदेशो में नही लग सकते। अधिक वर्षावाले स्थान में अगूर नही लगता। इसी प्रकार भिन्न किस्म के फल के पेड भिन्न प्रकार की जलवायु चाहते हैं और फलो के पेडो की किस्म हमेशा वहाँ की जलवायु के अनुसार ही चुनना चाहिए।

(३) एक बात का और ध्यान रखना चाहिए कि फल के पेडो की वे ही किस्मे लगाना लाभप्रद रहता है जिनके फलो की माँग बाजार मे काफी हो और जिन किस्मो के फलो के दाम बाजार मे अच्छे मिलने की उम्मीद हो। सस्ते रद्दी किस्म के फल के पेड लगाना लाभप्रद नही होता। किस्मो के चुनाव के लिये उद्यान विभाग के कर्मचारियो से राय लेकर बाग लगाना ठीक रहेगा।

जिस भूमि मे बाग लगाना है यदि उसमे पहले से खेती होती रही है, तो उसे ठीक करने मे अधिक कठिनाई नही होती। नीचे की भूमि कैसी है, यह जानने के लिये पूरी भूमि मे कई जगह पाँच या छह फुट गहरे गड्ढे खोद लेना चाहिए।

सर्वप्रथम भूमि के जगल की सफाई करना चाहिए। बबूल आदि के जगली पेडो और झाडियो को काटना चाहिए। केवल ऊपर से तना काट देने से झाडियाँ दोबारा बढ जाती हैं, इसलिये प्रत्येक पेड और झाडी को खोदकर जड सहित निकाल देना चाहिए। एक दो छायादार मौके का पेड ऐसे स्थान पर, जहाँ माली के रहने की झोपडी आदि डालनी है, छोड भी सकते हैं। बाद मे आवश्यकता न रहने पर वे काटे जा सकते हैं। जगल की सफाई के बाद भूमि की सतह एक करना आवश्यक है। यदि सतह ठीक नही होती तो सिंचाई करने में भी असुविधा होती है। सब पेडो में एक समान पानी नही पहुँचता। वर्षाकाल का पानी भी नीचे स्थान मे भर जाता है और पेडो को हानि पहुँचती है। सिंचाई की नालियो की सुविधा देखकर भूमि की सतह ठीक कर लेनी चाहिए। यदि पूरी भूमि को एक सा चौरस करना सभव न हो, तो उसको दो या अधिक भागो मे बाँटकर हर भाग को अलग अलग समतल कर लेना चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रो मे, जहाँ बडे चौरस मैदान नही होते, इसी प्रकार सीढीदार खेत बनाए जाते हैं। इसके बाद सभव हो तो पूरे खेत की एक गहरी जुताई कर देनी चाहिए। इससे जमीन भुरभुरी हो जाती है और वर्षा का पानी भी जमीन मे भली प्रकार पहुँचता है। सपाट जमीन मे अधिकतर वर्षा का पानी बह जाता है। यदि सभव हो तो पूरे खेत मे हरी खादवाली फसल, जैसे सनई आदि, बोकर जोत देने से भूमि को अच्छी खाद मिल जाती है। इसके बाद पूरी भूमि मे पेड लगाने के स्थानो मे चिह्न लगा देना चाहिए। भूमि पर चिह्न लगाने से पहले, यदि कागज पर उसका नक्शा बना लिया जाय, तो चिह्न लगाना आसान रहता है और कोई गलती नही होती है। रेखाकन (layout) की कई विधियाँ होती हैं, जैसे वर्गाकार, षट्भुजाकार, आयताकार आदि। वर्गाकार विधि सुगम और सबसे अधिक प्रचलित है। इस विधि मे पेड से पेड का फासला और लाइन से लाइन का फासला एक समान होता है और आस पास के चार पेडो को सीधी रेखा से मिलाने पर एक वर्ग बन जाता है।

चिह्न लगाना प्रारभ करने से पहले एक सीधी आधारभुजा डाल लेना आवश्यक होता है। यह आधारभुजा आस पास की

पक्की सड़क, अथवा इमारत या पास लगे हुए बाग, के समातर डाली जा सकती है, अथवा भूमि का आकार देखकर उसके अनुसार डाली जा सकती है। फिर रेखाकन उसी आधार पर आसानी से किया जा सकता है।

पेड़ो को उचित फासले पर लगाना अत्यत महत्वपूर्ण है। प्राय भूमि में अधिक से अधिक पेड लगाने के लालच मे लोग पेड पास पास लगा देते। पेड पास पास लगाने से उनको पूरा फैलने की जगह नहीं मिलती। बढने पर वे आपस मे मिल जाते हैं। घने बाग में धूप और हवा नही पहुंचती और पेडो में अच्छी फसल नही होती। केवल चोटीवाले भाग मे, जहाँ थोडी धूप तथा हवा पहुंचती है, थोडे फल लगते हैं, जिनकी रखवाली करना और तोडना दोनों कठिन होता है। इस कारण पेड सदा उचित फासले पर लगाना चाहिए। मुख्य फलो के पेडो के फासले निम्नलिखित हैं

देशी आम — ४०फुट
करामी आम — ३५ फुट
अमरूद — २५ फुट
नीबू — २० फुट
लीची — ३० फुट
लुकाठ — २५ फुट
पपीता — ८ फुट

पेड़ो को लगाने के निशान भूमि मे लगा लेने के बाद वहाँ तीन फुट चौडे तथा तीन फुट गहरे गोल गड्ढे खोद लेने चाहिए। गड्ढे खोदने का काम जून तक कर लेना चाहिए, ताकि वर्षा प्रारभ होने से पहले गड्ढो की मिट्टी को कम से कम १५ दिन धूप एव हवा लग जाए। गड्ढों की मिट्टी मे से ककड पत्थर आदि निकालकर उसमे लगभग ½ भाग सडे गोवर की खाद मिला देना चाहिए। फिर गड्ढे को इसी मिट्टी मे भर देना चाहिए। गड्ढो मे पानी भरने से मिट्टी बैठ जाती है, इसलिये गड्ढो को भरते समय मिट्टी की सतह जमीन से लगभग दो इच ऊँची रखनी चाहिए।

जब एक दो बार अच्छी वर्षा हो जाए, तब गड्ढो के बीचोबीच पेड लगा देना चाहिए। पेड लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पेड गड्ढे मे उसी गहराई तक लगे, जितना वह पहले क्यारी या गमले मे लगा था। अधिक गहरा लगा देने से पेड का तना मिट्टी मे दब जाता है और उसके सडने का अदेशा रहता है। इसी प्रकार उथला पेड लगाने मे उसकी जडे खुल जाती हैं और पेड को हानि पहुंचती है। यदि वर्षा न हो रही हो तो पेड लगाने के बाद तुरन्त उसमे पानी देना चाहिए।

पेड सदा किसी विश्वसनीय जगह से लेना चाहिए, चाहे उसका मूल्य कुछ अधिक ही देना पडे। यदि प्रारभ मे गलत किस्मो के पेड लग जाते हैं, तो बहुत नुकसान होने की सभावना है। फलने पर जब मालूम पडता है कि खराब और गलत किस्मो के पेड लग गए हैं, उस समय सिवा उन पेडो को निकालकर नए पेड लगाने के और कोई उपाय नहीं रहता। इस प्रकार काफी समय और रुपया बेकार जाता है। इसलिये काफी खोजबीन करके और ठीक किस्म के पेड ही लगाना चाहिए।

बाग की देखभाल मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिए

लू एवं पाले से बचाव — गरम हवाएँ सदा पश्चिम से और ठडी हवाएँ उत्तर से चलती हैं। इन तेज, गरम और ठडी हवाओं को रोकने के लिये बाग की उत्तर और पश्चिम दिशा मे ऊँचे बढनेवाले पेडो की घनी पक्ति लगा देनी चाहिए। इस पक्ति को विड ब्रेक (Wind Break) कहते हैं। विड ब्रेक के लिये शीशम, देशी आम, जामुन आदि लगाते हैं। पेडों का फासला लगभग १०-१५ फुट तक रखते है, जिससे वे घने होकर सीधे और लबे उठते हैं।

लू एव पाले से छोटे पेडों को बचाने के लिये ग्रीष्म और शीतकाल मे प्रत्येक पेड के चारो ओर फूस की छोटी टट्टी बाध देते है। टट्टी पूर्व दिशा मे खुली रहती है, जिससे पेड को धूप और हवा मिलती रहे। टट्टियाँ केवल पेडो की उन्हीं किस्मो मे बाँधते हैं जिनको लू एव पाले से मरने का अदेशा रहता है, जैसे आम, पपीता, लुकाठ आदि। गरमी और जाडो मे गहरी सिंचाई करने से भी लू और पाले से बचाव होता है।

जंगली जानवरों आदि से रक्षा — बाग मे जगली जानवर, चौपाए आदि को घुसने से रोकने के लिये बाग के चारो ओर बाड़ लगाना आवश्यक है। इसका एक तरीका यह है कि चारो ओर लगभग तीन फुट गहरी एक खाई खोदी जाए और उसकी मिट्टी बाग के अदर की ओर खाई के किनारे एक चौडी और ऊँची मेड के रूप मे जमा दी जाए। यह खाई और ऊँची मेड अच्छी रोक बना लेती है। यदि इस मेड के ऊपर थूहर अथवा नागफनी आदि लगा दी जाय तो और भी अधिक रक्षा रहेगी। बाग के चारों ओर काँटेदार घनी झाडी, जैसे करौंदा, खट्टा, बबूल आदि भी, लगा सकते हैं। आजकल काँटेदार तार लगाने का प्रचलन है। यदि छह फुट ऊँचे खभो मे काँटेदार तार की चार लड लगाकर बाग को घेर दिया जाए, तो भी बाग की रक्षा होती है।

फलो को हानि पहुंचानेवाले प्राणी, जैसे पक्षी एव बदर आदि, से रक्षा के लिये आदमी रखना पडता है, जो पटाखे, गुलेल आदि चलाकर फसल की रक्षा करता है।

पेड़ों की कटाई छँटाई — जाडे मे पत्ती गिरानेवाले कुछ पेडो, जैसे फालसा, अजीर, शहतूत आदि, की सालाना कटाई छँटाई करनी पडती है। इनकी छँटाई करने से नई शाखाएँ खूब फूटकर निकलती हैं और इनमे अच्छे और काफी फल लगते हैं। सालाना कटाई न करने से इनमे केवल गिनी चुनी शाखाएँ निकलती हैं, जिनमे केवल थोडे से फल लगते हैं। इनकी कटाई छँटाई उस समय करते हैं, जब जाडो मे ये पत्ती गिरा देते हैं।

पेड लगाने के बाद प्रारभ के दो तीन साल तक सभी पेडो को सु दर और सुदृढ बनाने के लिये कटाई, छँटाई की आवश्यकता होती है। भूमि से लगभग दो तीन फुट की ऊँचाई तक तने को साफ कर लेना चाहिए। तने के ऊपरी भाग मे तीन या चार मजबूत भिन्न भिन्न दिशाओ मे बढती हुई शाखाओ को चुन लेना चाहिए और केवल उनको ही बढने देना चाहिए। अन्य शाखाओं को तने के पास से काट देना चाहिए।

जैसे जैसे पेड बढते जाएँ, उनके थाले बढाते जाना चाहिए। प्रति वर्ष थालो की गोडाई करके उनमे खाद देनी चाहिए। यह कार्य अक्टूबर तथा नवबर के महीने मे करना अच्छा रहता है।

बाग की सफाई का सदा ध्यान रखना चाहिए। जगली घास फूस साफ करते रहना चाहिए।

उचित सिंचाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए, विशेषकर ग्रीष्म काल और फल लगने के बाद। किसी भी बीमारी अथवा कीडो के लगते ही उनको रोकने के लिये उचित दवा का छिडकाव करना चाहिए। [श्री० रा० शु०]

फल्मिनिक अम्ल (Fulminic Acid) सायेनिक अम्ल का समावयवी है। इसका सूत्र **हाऔना=का** [HON=C] है। फल्मिनिक अम्ल असयुक्त अवस्था में शुद्ध प्राप्य नही है। इसका ईथरीय विलयन, इसके सोडियम लवण के जलीय विलयन को सल्फ्यूरिक अम्ल अथवा ऑक्सैलिक अम्ल से अम्लीय बनाकर, ईथर से निष्कर्ष द्वारा प्राप्त किया जाता है। ईथरीय विलयन के ०° सें० पर आसवन करने से वह आसुत ईथर के साथ निकल जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि असयुक्त फल्मिनिक अम्ल साधारण ताप पर गैस या भाप की अवस्था में रहता है। जलीय तथा ईथरीय विलयनो में इस अम्ल का बहुलकीकरण भिन्न पदार्थों में सुगमता से हो जाता है। फल्मिनिक अम्ल की गध बहुत कुछ हाइड्रोसायनिक अम्ल के समान होती है। यह अम्ल एव इसके लवण बहुत विषैले होते हैं।

फल्मिनिक अम्ल के लवण व्यापारिक दृष्टि से महत्व के हैं। इसका पारद लवण **पा(औनाका)₂ हा₂औ**, $[Hg(ONC)_2H_2O]$ प्रारभिक विस्फोटक एव अन्य विस्फोटको के बनाने मे प्रयुक्त होता है। पारद का फलमिनेट आघात, घर्षण और ताप के प्रति अति सवेदी है, अत उसकी जगह लेड ऐज़ाइड को विस्फोटक के रूप मे उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ रही है। रजत का फल्मिनिक लवण पारद लवण से भी अधिक विस्फोटक होता है।

पारद फल्मिनेट की आधुनिक निर्माणपद्धति और हॉवर्ड ने जिस क्रिया से उसे सर्वप्रथम १८०० ई० में पाया था, इनमे विशेष भेद नही है। शवाल्ये (Chevalier) और चाडेलॉन (Chandelon), दोनो की निर्माणपद्धतियों में समान अभिक्रियाएँ होती हैं। पारद का नाइट्रिक अम्ल मे बनाया हुआ विलयन, उच्च या साधारण ताप पर, ऐल्कोहॉल के अधिक आयतन में मिलाया जाता है। अभिक्रिया समाप्त होने पर मिश्रण को ठढा करने के उपरात पारद फल्मिनेट छान लिया जाता है और जब तक अम्लीय अशुद्धि दूर नही होती, पानी से धोया जाता है। धोए हुए फल्मिनेट को सन की थैलियो मे पानी की सतह के नीचे सग्रहीत करते हैं। इस अवस्था मे इसका रखना-उठाना निरापद है। शुद्ध पारद फल्मिनेट के क्रिस्टल शुभ्र, रेशम की तरह चमकीले और सुई के आकार के होते हैं। ठढे पानी मे इनके विलयन बनाने की क्षमता अति सीमित होती है (१०० घन सेंमी० पानी मे ०.०७ ग्राम)। उबलते हुए पानी मे १ भाग फल्मिनेट १३० भाग जल मे विलेय है। फल्मिनेट का स्वाद मधुर धात्विक तथा इसका आपेक्षिक घनत्व ४.४२ है। फल्मिनेट एक अति विषैला पदार्थ है।

पारद फल्मिनेट का विस्फोट १८७° से २००° सें० पर होता है। उसके विस्फोट से कार्बन मोनॉक्साइड, नाइट्रोजन और पारद का वाष्प बनता है। यह प्रारभिक विस्फोटक के रूप मे दोनो प्रकार के, अर्थात् प्रणोदक (propellant) और विभगक (blasting or fracturing), विस्फोटको का विस्फोटन करने के लिये उपयोग मे लाया जाता है। यह आघात से, जैसे एक बदूक के कारतूस मे, या ताप पहुचाने से, जैसे विद्युत् सचालित विस्फोटक से, या दाहक फ्यूज से दागा जा सकता है। इसका विस्फोट इतना प्रचड होता है कि इसकी तीव्रता को घटाने के लिये पारद फल्मिनेट में पोटैशियम क्लोरेट या ऐंटीमनी सल्फाइड मिश्रित करते हैं।

[रा० ह० स०]

फॉकलैंड (Falkland) स्थिति ५२° ०' द० अ० तथा ६०° ०' प० दे०। यह दक्षिणी ऐटलैंटिक महासागर मे केप हॉर्न से ४०० मील उत्तर-पूर्व स्थित द्वीपो का समूह है। पूर्वी फॉकलैंड तथा पश्चिमी फॉकलैंड दो प्रमुख द्वीपो के अतिरिक्त २०० अन्य द्वीप शामिल हैं, जिनका क्षेत्रफल ४,७०० वर्ग मील तथा जनसख्या २,१३२ (१९६३) है। स्टैनली (१,०७४) यहाँ की राजधानी है। भेडें पालना तथा ह्वेल का शिकार करना प्रमुख उद्योग हैं। गैलेना (galena) तथा चाँदी धातु मिलती है।

फॉक्स, चार्ल्स जेम्स (१७४९–१८०६) अग्रेज राजनीतिज्ञ। राजनीतिक कौशल इसे अपने पिता हेनरी फॉक्स से विरासत मे मिला था। २० वर्ष की उम्र मे वह ससद का सदस्य बना। कुछ दिन वह प्रधानमत्री नार्थ के मत्रिमडल मे कनिष्ठ मत्री रहा, किंतु अमरीकी युद्ध के दौरान वह बर्क के प्रभाव मे आ गया। अगले कुछ वर्षों तक वह शाति और लोकतात्रिक सुधार आदोलन की अगुआई करता रहा। नार्थ सरकार के पतन के पश्चात् १७८२ मे रार्किघम ने इसे शेलबर्न के साथ मत्री नियुक्त किया। किंतु सम्राट् के सवैधानिक अधिकारो को लेकर शेलबर्न से उसके मतभेद बहुत बढ गए, और जब रार्किघम की मृत्यु के बाद सम्राट् ने शेलबर्न को प्रधान मत्री पद के लिये चुना, फॉक्स ने त्यागपत्र दे दिया। सम्राट् के अधिकारो पर अधिक नियत्रण के उद्देश्य से उसने नार्थ से सहयोग किया। नवबर, १७८३ मे, फॉक्स ने भारत सबधी 'बिल' पेश किया। इसका घोर विरोध हुआ और जार्ज तृतीय ने 'हाउस ऑव लार्ड्स' के सदस्यो को कहला भेजा कि जो कोई इसके पक्ष मे मतदान देगा वह राजा का शत्रु समझा जायगा। इसका परिणाम यह हुआ कि यह बिल पारित नही हुआ। १८०६ मे पिट की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय के लिये फॉक्स सत्तारूढ हुआ। उसने नेपोलियन से शाति सधि करनी चाही, लेकिन ऐसा नही हो पाया। ब्रिटेन मे दासव्यापार पर पूर्ण रोक उसकी उल्लेखनीय सफलता थी। इग्लैंड के 'लिबरल' नेताओ मे फॉक्स का स्थान बहुत ऊँचा है।

फातिमी खिलाफत इस्माइली शियाओ ने, जिनका विश्वास था कि दैवी आत्मा इमाम के, जो इमाम जफर सादिक के पुत्र इस्माइल के वश का था, रूप मे अवतरित हुई थी, अब्बासिस के रूढिवादी सुन्नी खलीफाओ के विरुद्ध 'फातिमी खिलाफत' के नाम से एक सगठन का निर्माण किया। किंतु अधिकतर मुस्लिम जनता सुन्नी थी, जिनका

विश्वास अत्यंत दृढ था, इसलिये फातिमी खलीफाओ—इस्माइली शिया वर्ग ने उदारता की नीति अपनाई।

९०९ हिजरी मे एक इस्माइली धर्मप्रचारक अबू अब्दुल्ला ने काइरवां (ट्रिपोली और ट्यूनिस) के अग़लाबी राजवंश को समाप्त कर दिया, और अपने स्वामी माह्दी उबैदुल्ला को राज्य नियंत्रित करने के लिये बुलवाया। उबैदुल्ला ने अपने को सच्चा इमाम घोषित कर दिया, किंतु इसी समय इसने अबू अब्दुल्ला की हत्या कर दी और शनै शनै अपने संप्रदाय के धर्मांध सिद्धातो का परित्याग करने लगा। उसे विशेष कठिनाई 'जिरामतियों' मे हुई जो फातिमियों को अपना इमाम मानते हुए भी संप्रदाय को हानि पहुंचा रहे थे। ९२९ हि० मे इन लोगो ने मक्का पर आक्रमण किया, तीर्थयात्रियों को मार डाला, पवित्र काला पत्थर उठा ले गए, और माह्दी के प्रकाशित आज्ञापत्र के बावजूद उसको मृत्यु के ७-८ वर्ष बाद तक उसे नहीं लौटाया। उसके पश्चात् क्रमश १३ उत्तराधिकारी हुए। प्रारंभिक फातिमियो की सफलता का मुख्य कारण, उनकी सुंदर शासनव्यवस्था थी।

चतुर्थ खलीफा 'मुइज' (९७३–९७५) के नेतृत्व मे फातिमियों ने संपूर्ण उत्तरी अफ्रीका पर अपना अधिकार जमा लिया। इदरीशिजियो से मोरक्को छीन लिया गया। फातिमी सेनापति 'जौहर' ने फुस्तात (प्राचीन काहिरा) पर अधिकार कर लिया और 'मुइज' ने अपनी नई राजधानी 'क़ाहिरा' का निर्माण किया, इसी के समीप अल अजहर नामकी प्रसिद्ध मस्जिद बनवाई। सीरिया सदैव फातिमी और अब्बासी खलीफाओ के मध्य विवाद का विषय रहा।

छठे खलीफा हकीम (९९६–१०२१) के असंगत कार्यों का कारण उसकी मानसिक विक्षिप्तता थी। उसने ईसाइयो और यहूदियो के पूजास्थानों को पूर्णतया नष्ट कर देने का आदेश दे दिया, किंतु उन्हे उच्च पदों पर नियुक्त करना भी जारी रखा, और कुछ समय पश्चात् उन पूजास्थानों के पुनर्निर्माण की स्वीकृति दे दी। उसने कुत्तो तथा कुछ सागो, जैसे प्याज और लहसुन, के समूलोच्छेदन का अभियान चलाया। उसने पहले, तीन प्रथम पवित्र सुन्नी खलीफाओं के विरुद्ध तिरस्कारपूर्ण शिलालेख खुदवाने की आज्ञा दी, किंतु बाद में उनको नष्ट करवा दिया। १०१६ की क्रांति मे किसी प्रकार उसने अपने को बचा लिया, और कुछ दिन संयत रूप मे व्यवहार किया। किंतु हकीम दूसरों को निर्दयता से पीड़ित करने मे आनंद प्राप्त करता था। १०२० मे उसने अपने सैनिकों को काहिरा को, जो उस समय अत्यंत समृद्ध और संपन्न नगर था, नष्ट करने की आज्ञा दी और हकीम की इस कार्य के लिये निषेधात्मक आज्ञा होने के पूर्व आधा नगर लूट लिया गया, तथा लगभग एक तिहाई भाग जल चुका था। तत्पश्चात् वह सभवत रात को अकेले गधे पर चढ़कर घूमते हुए, जैसी उसकी आदत थी, मार डाला गया। किंतु उसका शव प्राप्त न हो सका, इसलिये उसके अनुयायियों ने यह प्रचार किया कि यह पागल 'इमाम' ही नम्र अन्तर्धान हो गया।

[illegible] मुस्तांसिर (१०३५–१०९५) के लंबे शासनकाल के [illegible] हो गए। ट्रिपोली और ट्यूनिस के [illegible] ने अब्बासियो का पक्ष ग्रहण करने की घोषणा कर दी, और फातिमियो का साम्राज्य केवल मिस्र और सीरिया के कुछ भाग तक ही सीमित रह गया।

बाद के खलीफाओ के समय की राज्यक्रांतियो का विवरण यहाँ विस्तार से नही दिया जा सकता। दो फातिमी खलीफाओ की हत्या कर दी गई, और दूसरे मंत्रियो द्वारा बंदी बना लिए गए। अंत मे सीरिया के तुर्क शासक नूरुद्दीन ने अपने सेनापति शिरकूह तथा उसके भतीजे और अयूब के पुत्र सलाहुद्दीन को मिस्र विजय के लिये भेजा। फातिमी सेना हार गई और शिरकूह सारी शक्तियो के अधिकार के साथ मंत्री (वजीर) नियुक्त हुआ। दो महीने के पश्चात् शिरकूह मर गया, सलाहुद्दीन उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। दो वर्ष के पश्चात् नूरुद्दीन ने इस आशय का आदेश जारी किया कि 'जुमा' की प्रार्थनाएँ अब्बासी खलीफाओ के नाम से पढ़ी जानी चाहिए। अंतिम फातिमी खलीफा अल अदीद (११६०–११७१) शीघ्र ही मर गया। इस्माइलवाद के सारे प्रभाव देश से समाप्त हो गए। फातिमी खलीफाओ की वंशावली सदैव विवाद का विषय रही है और वर्तमान युग मे भी विवाद का समाधान नही हो सका है।

[मो० ह०]

फानी, शौकत अली खाँ का जन्म बदायूँ मे १३ दिसंबर, सन् १८७९ ई० को हुआ। आरंभिक शिक्षा इन्होंने बदायूँ मे प्राप्त की। बचपन से ही यह छिपकर शेर कहने लगे थे। इन्होंने गजलो के तीन दीवान प्रस्तुत किए थे, जिनमे एक फारसी का तथा दो उर्दू के थे। इन्होंने दो नाटक भी लिखे थे। परंतु यह इन रचनाओं की ओर से प्रकृत्या ऐसे बेपरवाह तथा उदासीन रहे कि सारा संग्रह नष्ट हो गया। जो कुछ गजलें इनके हितैषियो ने संग्रहीत कर रखी थी वे ही 'बाकेआते फानी' के नाम से छपी। इनकी मृत्यु पर एक संग्रह 'इर्फानियाते फानी' के नाम से छपा। फानी ने लखनऊ, आगरा तथा बदायूँ कई स्थानो मे वकालत की, पर कविता की ओर रुचि होने के कारण इनका मन किसी काम में नही लगता था। अंतिम काल मे यह हैदराबाद चले गए और वहीं सन् १९३० ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

फानी की कविता में वेदना तथा शोक ही का चित्रण है और उसे पढकर कोई भी प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। कुछ लोगों का कहना है कि फानी की कविता के पाठको के हृदयों पर निराशा का भाव छा जाता है। इसलिये इसे प्रतिक्रियावादी कहना चाहिए। इन्होंने जो कुछ लिखा है उसे अच्छी प्रकार अनुभूत करके इतने सुंदर ढंग से लिखा है कि उन्हे एक बड़ा कवि तथा उत्कृष्ट गजल गायक मानना पडता है। गालिब सी उच्चता तथा गंभीरता, मीर सी वेदना तथा चोट और मोमिन सी सरलता फानी की कविता में अच्छी प्रकार घुली मिली हैं। प्रेम तथा सूफी भाव इनकी एक विशेषता है।

[र० ज०]

फॉरमोसा (ताइवान) १ द्वीप, स्थिति २३° ३०' उ० अ० तथा १२१° ०' पू० दे०। यह पश्चिमी प्रशात महासागर मे पूर्वी एवं दक्षिणी चीन सागर के मध्य, चीन के फूक्येन प्रांत से फॉरमोसा जलडमरूमध्य द्वारा विभक्त, लगभग ९० मील चौड़ा तथा २२५ मील लंबा एवं महत्वपूर्ण द्वीप है। स्पेन के नाविकों ने इस द्वीप के सुंदर

दृश्यों को देखकर इसका नाम फॉरमोसा रखा, परतु जापान का आधिपत्य होने पर उन लोगो ने चीनी भाषा में इसका सरकारी नाम 'ताइवान' रखा। यह द्वीप एक बढ हुए अडे के रूप जैसा है, जो उत्तर-उत्तर-पूर्व से दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम की ओर फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल १३,८०८ वर्ग मील तथा जनसख्या १,१५,११,७२८ (१९६२) है। इस द्वीप के मध्य एव पूर्व में पर्वतश्रेणियाँ हैं।
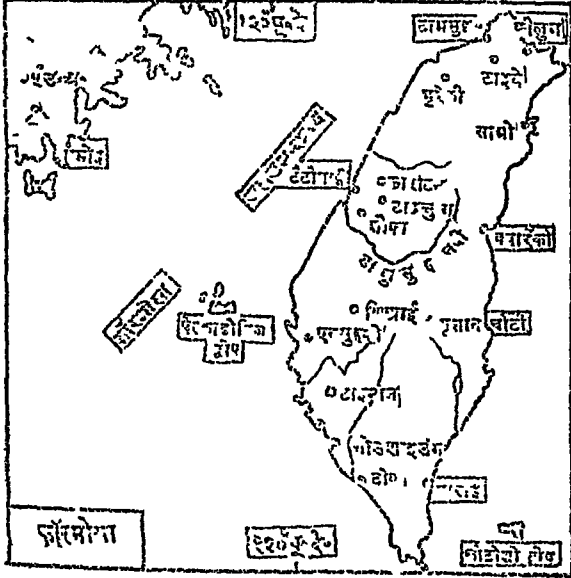
इन पर्वतों की ढाल धीरे धीरे पश्चिम की ओर कम होती चली गई है। पश्चिमी मैदानी भाग इस द्वीप का आर्थिक केंद्र है। यहाँ की जनसख्या भी अधिकतर पश्चिमी और उत्तरी मैदानो में वसी है।

यह द्वीप कर्क रेखा द्वारा दो भागो में विभक्त हो जाता है और जापान की दो जलधाराओ के बीच में होने से यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबधीय है। मैदानी भागो में २१° सें० से कम ताप केवल जनवरी के महीने में रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत अत्यधिक है तथा यह साल भर समान रूप से होती है, परतु दक्षिणी भाग जाडो में कुछ सूखा रहता है। विभिन्न प्रकार की धरातलीय अवस्था, गरमी तथा आर्द्रता के कारण यहाँ वनस्पति अधिक उगती है। १,००० फुट से नीचे की भूमि में अधिकतर अन्न तथा घास उत्पन्न होती है, परतु पहाडी भाग अधिकतर घने जगलो से ढके हुए हैं। वनो से भिन्न भिन्न उत्पादो की प्राप्ति होती है, परतु सबसे महत्वपूर्ण उत्पाद कपूर है। कृषि की प्रमुख उपजें धान, चाय, गन्ना, शकरकद, जूट, चीनी घास (ramie) एव हल्दी आदि हैं। इसके अलावा कुछ मात्रा मे मक्का, तवाकू, केला, अनन्नास, कपास तथा सोयाबीन भी उगाया जाता है। यहाँ गाय, घोडे, सूअर तथा मुर्गियाँ पाली जाती है।

आटा पीसने, शक्कर, तवाकू, तेल, स्पिरिट, लोह कर्म, काच, ईंटें तथा सावुन आदि से सवधित उद्योग एव ऐल्यूमिनियम, नमक, इस्पात, सीमेंट, कागज, लकडी, खाद आदि से सवधित कार्य होते हैं। खनिजो में सोना, पेट्रोलियम, गैस, अभ्रक, चाँदी, ताँवा तथा कोयले का स्थान प्रमुख है। यहाँ से शक्कर तथा धान का निर्यात किया जाता है। रेलो तथा सडको की काफी उन्नति हुई है तथा दो वायुमेवाएँ प्राप्त हैं। प्रमुख हवाई अड्डा सुगशान है। शिक्षा का यहाँ काफी प्रसार है तथा यहाँ के वहुत से विद्यार्थी संयुक्त राज्य, अमरीका में भी पढते हैं। यहाँ के मुख्य नगर ताइपे (Taipeh, राजधानी) ताइनान, ताइचुग एव कीलुग हैं। कीलुग यहाँ का मुख्य व्यापारिक केंद्र एव वदरगाह भी है। फॉरमोसा से लगभग डेढ सौ मील दूर लाल चीन की मुख्य भूमि से सटा हुआ क्वीमाय द्वीप भी इसी के अधिकार में है, जो पूर्णत एक सैनिक द्वीप है तथा इस द्वीप की जनसख्या ५१,००० है। यह एक उन्नतिशील द्वीप है।

२ राज्य, स्थिति २६° ५' द० अ० तथा ५८° १०' प० दे०। अर्जेंटीना के उत्तरी भाग में पैराग्वे राज्य की सीमा पर, मध्य चाको मे स्थित एक राज्य है। यहाँ का क्षेत्रफल २८,७७८ वर्ग मील तथा जनसख्या २,१२,३०० (१९६०) है। यहाँ की जलवायु उपोष्ण-कटिबधीय है और वर्षा की अवधि लवी है (अक्टूबर से जून तक)। गरमी का औसत ताप ३२° सें० तथा जाडो का औसत ताप १७ सें० रहता है। यहाँ पर खेती तथा पशुपालन धन के मुख्य स्रोत हैं, परतु ये दोनो सूखा और वाढ से वुरी तरह प्रभावित होते रहते हैं। केब्राचो के जगल कीमती लकडी के जगल हैं। फॉरमोसा नगर इस राज्य की राजधानी है। [सु० प्र० सि०]

ताइवान (चीन गणराज्य) — पश्चिमी प्रशात महासागर में २१° ४५' २५" से २५° ३७' ५३" अक्षाश और ११९° १८' १३" से १२२° १०' २५" देशातर रेखाओ के मध्य, चीन की मुख्य भूमि से लगभग १,००० मील दूर स्थित एक द्वीप। इसमें पेंगू समूह (Penghu Islands) के ६४ द्वीप और ताइवान समूह के १३ द्वीप भी समिलित है। ताइवान (फारमोसा) का क्षेत्रफल १३,८०८ वर्गमील है। इससे सवद्ध द्वीपो का क्षेत्रफल क्रमश २८९ वर्गमील और ४९ वर्गमील (पेंगू समूह) है। राजधानी ताइपी (Taipei) है।

१९६२ मे हुई गणना के अनुसार ताइवान की जनसख्या १,१५,११,७२८ है। आबादी का घनत्व ८३५ व्यक्ति प्रति वर्गमील है।

यहाँ के निवासी मूलत चीन के फ्यूकियन (Fukien) और क्वागतुग प्रदेशो से आकर वसे लोगो की सतान हैं। इनमे ताइवानी वे कहे जाते हैं, जो यहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व से वसे हुए हैं। ये ताइवानी लोग दक्षिण चीनी भाषाएँ जिनमे अमाय (Amoy), स्वातोव (Swatow) और हक्का (Hakka) समिलित हैं, वोलते है। मदारिन (Mandarin) राज्यकार्यों की भाषा है। ५० वर्षीय जापानी शासन के प्रभाव में लोगो ने जापानी भी सीखी है। आदि-वासी मलय पोलीनेशियाई समूह की वोलिया वोलते हैं।

इतिहास — चीन के प्राचीन इतिहास में ताइवान का उल्लेख वहुत कम मिलता है। फिर भी प्राप्त प्रमाणों के अनुसार यह ज्ञात होता है कि ताग राजवश (Tang Dynasty) (६१८–९०७) के समय में चीनी लोग मुख्य भूमि से निकलकर ताइवान में वसने लगे थे। कुवलई खाँ के शासनकाल (१२६३-९४) में निकट के पेस्काडोर्स (pescadores) द्वीपो पर नागरिक प्रशासन की पद्धति प्रारभ हो गई थी। ताइवान उस समय तक अवश्य मगोलो से अछूता रहा।

जिस समय चीन में सत्ता मिग वश (१३६८-१६४४ ई०) के हाथ में थी, कुछ जापानी जलदस्युओ तथा निर्वासित और शरणार्थी

चीनियो ने ताइवान के तटीय प्रदेशो पर, वहाँ के आदिवासियो को हटाकर बलात् अधिकार कर लिया। चीनी दक्षिणी पश्चिमी और जापानी उत्तरी इलाको में बस गए।

१५१७ में ताइवान में पुर्तगाली पहुँचे, और उसका नाम इला फारमोसा (Ilha Formosa) रक्खा। १६२२ में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा से प्रेरित होकर डचो (हालैंडवासियो) ने पेस्काडोर्स (Pescadores) पर अधिकार कर लिया। दो वर्ष पश्चात् चीनियो ने डच लोगो से सधि की, जिसके अनुसार डचो ने उन द्वीपो से हटकर अपना व्यापारकेंद्र ताइवान बनाया और ताइवान के दक्षिण पश्चिम भाग में फोर्ट ज़ीलाडिया (Fort Zeelandia) और फोर्ट प्राविडेंशिया (Fort Providentia) दो स्थान निर्मित किए। धीरे धीरे राजनीतिक दावँ पेंचों से उन्होंने सपूर्ण द्वीप पर अपना अधिकार कर लिया।

१७वी शताव्दी में चीन में मिंग वश का पतन हुआ, और माचू लोगो ने चिंग वश (१६४४-१६१२ ई०) की स्थापना की। सत्ताच्युत मिंग वशीय चेंग चेंग कुग (Cheng Cheng Kung) ने १६६१-६२ में डचो को हटाकर ताइवान में अपना राज्य स्थापित किया। १६८२ में माचुओ ने चेंग चेंग कुग (Cheng Cheng Kung) के उत्तराधिकारियो से ताइवान भी छीन लिया। सन् १८८३ से १८८६ तक ताइवान फ्यूकियन (Fukien) प्रदेश के प्रशासन में था। १८८६ में उसे एक प्रदेश के रूप में मान्यता मिल गई। प्रशासन की ओर भी चीनी सरकार अधिक ध्यान देने लगी।

१८९५ में चीन-जापान-युद्ध के बाद ताइवान पर जापानियो का झडा गड गया, किंतु द्वीपवासियो ने अपने को जापानियो द्वारा शासित नही माना और ताइवान गणराज्य के लिये सघर्ष करते रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापान ने वहाँ अपने प्रसार के लिये उद्योगीकरण की योजनाएँ चलानी आरभ की। इनको युद्ध की विभीपिका ने बहुत कुछ समाप्त कर दिया।

काहिरा (१९४३) और पोट्सडम (१९४५) की घोपणाओं के अनुसार सितबर १९४५ में ताइवान पर चीन का अधिकार फिर से मान लिया गया। लेकिन चीनी अधिकारियो के दुर्व्यवहारो से द्वीपवासियो में व्यापक क्षोभ उत्पन्न हुआ। विद्रोहो का दमन बडी नृशसता से किया गया। जनलाभ के लिये कुछ प्रशासनिक सुधार अवश्य लागू हुए।

इधर चीन में साम्यवादी आदोलन सफल हो रहा था। अततोगत्वा च्याग काई शेक (तत्कालीन राष्ट्रपति) को अपनी नेशनलिस्ट सेनाओ के साथ भागकर ताइवान जाना पडा। इस प्रकार ८ दिसबर, १९४९ को चीन की नेशनलिस्ट सरकार का स्थानातरण हुआ।

१९५१ की सैनफ्रासिस्को सधि के अतर्गत जापान ने ताइवान से अपने सारे स्वत्वो की समाप्ति की घोपणा कर दी। दूसरे ही वर्ष ताइपी (Taipei) में चीन-जापान-सधि-वार्ता हुई। किंतु किसी सधि में ताइवान पर चीन के नियत्रण का स्पष्ट सकेत नही किया गया। फलत अब भी ताइवान के वैधानिक अस्तित्व पर प्राय आपत्तियाँ होती रहती हैं।

अर्थनीति — द्वीप की अर्थव्यवस्था का मुख्य पहलू उद्योगीकरण है। कृपि में भी यत्रो तथा वैज्ञानिक तरीको से उत्पादन पर लाभकारी प्रभाव डाला गया है। कपूर, लकडी, पेट्रोलियम, अननास और शक्कर मुख्य उद्योग हैं। सपूर्ण भूमि मे २०% जगल होने के कारण प्राकृतिक वस्तुएँ और साधन यहाँ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं। सीमेंट, खनिज और कागज उद्योग भी द्वीप की व्यापारपद्धति पर प्रभाव डालते हैं।

चतुर्वर्षीय योजनाओ द्वारा सभी क्षेत्रों मे उन्नति के सफल प्रयास हो रहे हैं। तृतीय योजना (१९६१-६४) मे पूँजी विनियोग की दर उद्योगो मे ४५ ८%, कृपि मे १६ ६%, और यातायात साधनों मे १३ १% थी। इनमें निर्यात, शक्ति उत्पादक, कृपि सहायक और भारी उद्योगो को प्राथमिकता दी गई थी। देश की आय के स्रोत राष्ट्रीय बचत (३१%) मूल्यापकर्प नियोजन (Depreciation Provision) (२९%) विदेशी आर्थिक सहायता और व्यक्तिगत क्षेत्रों के विदेशी व्यापार (२६%) और सयुक्त राज्य अमेरिका के काउटरपार्ट फड्स (Counterpart Funds) (१४%) हैं।

फारस की खाड़ी स्थिति २७° ०' उ० अ० तथा ५०° ०' पू० दे०। यह अरब तथा ईरान के मध्य घिरा हुआ सागर है, जो दजला एव फरात के मुहाने से लगभग ५०० मील मुख्य स्थलखडों से ओमैन राज्य तक फैला है। खाडी का क्षेत्रफल ९७,००० वर्ग मील, औसत गहराई ४० से ५० फैदम तथा अधिकतम चौडाई २०० मील है। इस खाडी मे ज्वारभाटा करीब ९ फुट तक उठता है। यहाँ का जल हिंद महासागर से अधिक खारा है। फारस की खाडी मे दजला एव फरात नदियो का जल ही अधिकाशत गिरता है। इस खाडी में अच्छे बदरगाहो की कमी नही है। [सु० प्र० सि०]

फारसी भापा दे० 'ईरानी भापा'

फारसी साहित्य फारसी भापा और साहित्य अपनी मधुरता के लिये प्रसिद्ध है। फारसी ईरान देश की भापा है, परतु उसका नाम फारसी इस कारण पडा कि फारस के, जो वस्तुत ईरान के एक प्रात का नाम है, निवासियो ने सबसे पहले राजनीतिक उन्नति की। इस कारण लोग सब से पहले इसी प्रात के निवासियो के सपर्क मे आए अत उन्होने सारे देश का नाम पर्सिस रख दिया, जिससे आजकल यूरोपीय भापाओ मे ईरान का नाम पर्शिया, पेर्स, प्रेज़ियन आदि पड गया।

भापाओ के आर्य परिवार से फारसी भापा का सबध है, जिससे सस्कृत, यूनानी, लैटिन, अग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भी सबद्ध हैं। ईरान शब्द का वास्तविक रूप आर्याना था, जैसा यवन लेखक लिखते हैं। आर्याना से धीरे धीरे ईरान शब्द बन गया। यवन लेखको ने आर्याना शब्द का आधुनिक ईरान तथा अफगानिस्तान दोनो के लिये प्रयोग किया है। फारसी आर्य भापाओ की पूर्वी शाखाओं से सबध रखती है। इसके प्राचीनतम नमूने पारसियो की धार्मिक पुस्तक अवेस्ता की गाथाओ (मत्रो) में मिलते हैं। उससे कुछ कम प्राचीन भापा वह है जो ईरान के सम्राटो द्वारा पहाडो, चट्टानो पर खुदाए हुए लेखो मे मिलती है। परतु इन दोनो की भापाओं में विशेप अतर नही हैं। अफगानिस्तान की आधुनिक भापा अर्थात् पश्तो भी उसी समय की एक ईरानी भापा से निकली है। यह वह समय था जब ईरान और भारत को अलग हुए अधिक समय नही हुआ था। प्राचीन ईरानी भापा, जिसे यूरोपीय लेखक ज़ेंद कहते

हैं, और सस्कृत एक दूसरे से इतनी मिलती जुलती तथा समीप हैं कि अवेस्ता की गाथाओ का अनुवाद वैदिक सस्कृत में शब्द प्रति शब्द तथा छद प्रति छद हो सकता है। पढने में यह भाषा पूर्णरूपेण सस्कृत के समान ज्ञात होती है। उदाहरणार्थ ईरान के सम्राट् दारा प्रथम के एक शिलालेख के एक वाक्य में कहा गया है 'उता नाहम् उता गौरा फ्जानम्' अर्थात् मैंने शत्रु की नाक व कान दोनो कटवा दिए। इसी प्रकार एक वाक्य में कहता है कि 'अदम् कारम् पार्सम् उता मादम् फाइरायम् हय उप माम् आह' अर्थात् मैंने पारसी तथा मीडी सेनाएँ, जो मेरे पास थी, दोनो भेजी। अदम् वही शब्द है जो सस्कृत में अह है तथा जिसका अर्थ मैं है।

यह परिवार, जिसमें दारा प्रथम आदि थे, हखामनिशी कहलाता है और इसका राज्य सन् ५५९ पूर्वेसा के पहले स्थापित हुआ और सन् ३२६ पूर्वेसा सिकदर द्वारा नष्ट हुआ। यवनो का राज्य भी अधिक समय तक ईरान में स्थिर नही रह सका और शीघ्र ही एक जाति ने, जिसे पार्थियन कहते हैं, अपना अधिकार ईरान पर जमा लिया। इनको ईरानी भाषा, सस्कृति, धर्म आदि में कोई अभिरुचि नही थी प्रत्युत वे यूनानी भाषा तथा सस्कृति के प्रेमी थे। इनके समय में ईरानी धार्मिक पुस्तकें आदि बहुत सी नष्ट हो गई। इनके राज्य के अतिम काल में ईरानी राष्ट्र धर्म में इनकी कुछ रुचि दिखलाई दी और धार्मिक ग्रथो को एकत्रित करने का कुछ प्रयास हुआ पर इसी समय देश मे एक दूसरी क्राति उत्पन्न हो गई। एक दूसरे वश का, जिसे सासानी कहते हैं, सन् २२६-२८ ई० में देश पर अधिकार तथा राज्य हो गया। इस वश का राज्य सन् ६४२ ई० तक रहा और मुसलमानो द्वारा नष्ट कर दिया गया। इस युग की फारसी भाषा पहलवी कहलाती है, जो आजकल के फारसी के बहुत समीप है पर पूर्णत एक सी नही है। इस युग में पारसियो की धार्मिक पुस्तकें पुन एकत्रित की गईं तथा फारसी धर्म फिर जीवित हो उठा। उस युग की फारसी पहलवी नाम से विख्यात थी पर साथ ही साथ पहलवी एक प्रकार की लिपि का भी नाम है। इस लिपि पर सुरयानी अर्थात् प्राचीन सीरिया की भाषा का बडा प्रभाव था। बहुत से शब्द सुरयानी अक्षरों में लिखे जाते और फारसी में पढे जाते थे। उदाहरण के लिये सुरयानी अक्षरो में 'लखमा' लिखते थे और उसे फारसी नान अर्थात् रोटी पढते थे। जैसे अग्रेजी में एल० एस० डी० (L, S D) लिखते हैं और पाउड, शिलिंग, पेंस पढते हैं, क्योकि वे लैटिन भाषा के शब्द लिब्राई, सालिदी तथा देनारिई हैं। इस भाषा में जो साहित्यिक कार्य हुआ है उसका पर्याप्त भाग अभी तक प्राप्त है।

धार्मिक क्षेत्र मे अवेस्ता की टीका जेंद के नाम से लिखी गई है और फिर उस टीका की टीका की गई, जिसका नाम पजेंद है। अवेस्ता के और भी अनुवाद पहलवी मे हुए। इनके अतिरिक्त धार्मिक विषय पर 'दीनकर्त' नामक पुस्तक रची गई, जिसमे पारसियो की प्रथाओ, इतिहास, आदि पर बहुत कुछ लिखा हुआ है। 'बुदहिश्न' भी धार्मिक पुस्तक है जो १२वी शती ईसवी मे लिखी गई और जिसका अधिकाश काफी पुराना है। 'दातिस्ताने दीनिक' अथवा धार्मिक उपदेश तीसरा ग्रथ है, जिसके सबध मे वेस्ट नामक विद्वान् कहता है कि इसका अनुवाद बहुत कठिन है। 'श्किद गूमानिक वीजार' नवी शताब्दी ईसवी के अत मे लिखी गई। इसमें ईसाई, यहूदी, मुसलमान धर्मों ने जो आपत्तियाँ पारसी धर्म पर की हैं उनका उत्तर है। 'मैनोए खिरद' मे पारसी धर्म के बारे में ६२ प्रश्नो के उत्तर हैं। 'अर्दविराफ' नामक एक बडी आकर्षक पुस्तक है, जिसमे ग्रथकर्ता के बैकुठ, नरक आदि मे सैर करने का वर्णन है, जैसा मुसलमानो मे पैगबर साहब के आकाश पर स्वर्ग नरक का भ्रमण करने का विश्वास है। इटालियन मे दाते नामक कवि की इनफरनो तथा परडाइजो रचनाएँ हैं, जिनमे कवि वर्णन करता है कि किस प्रकार उसने आकाश पर जाकर स्वर्ग तथा नरक की सैर की है। 'मातिगाने गुजस्तक अबालिश' को फ्रासीसी विद्वान् ने परकजेंद, उसके पारसियो द्वारा किए गए फारसी अनुवाद तथा फ्रेंच अनुवाद के साथ सन् १८८३ ई० मे छापा है।

ये सब तो धार्मिक पुस्तकें थी। सासारिक विषयो पर लिखी प्रसिद्ध पुस्तको मे 'जामास्पनामक' का नाम लिया जा सकता है। इसमे प्राचीन ईरान के बादशाहो की कथाएँ आदि हैं। 'अदरजे खुसरवे कवातान' मे उन आदेशो की चर्चा है, जो ईरान के प्रसिद्ध सम्राट् नौशेरवाँ ने मरते समय दिए थे। 'खुदाई नामक' अर्थात् बादशाहो की किताब मुसलमानो के समय तक थी। इसका अनुवाद अरबी मे भी हुआ है। 'यात्कारे जरीरान' को 'शाहनामए गश्तास्प' भी कहते हैं। 'कारनामके अरतख्शत्रे पापकान' मे सासानी वश के सस्थापक अर्दशिर की कथाएँ हैं। खुसरवे कवातान और उसके गुलाम की कहानी पर भी एक पुस्तक है। यहाँ तक पहलवी साहित्य की विशिष्ट पुस्तको का उल्लेख हुआ। इनके अतिरिक्त कुछ और छोटी छोटी रचनाएँ हैं जिनका विवरण नही दिया जा रहा है।

मुसलमानो ने सन् ६४२ ई० मे ईरान विजय किया था और उसके २०० वर्ष बाद तक जो कवि या लेखक हुए वे सब अरबी में लिखते रहे, पर इसके अनतर राजनीतिक परिस्थिति बदली। ईरानियो की सहायता से अब्बासियो ने, जो पैगबर साहब के चाचा अब्बास की सतानो मे से थे, बनी उम्मिया को परास्त कर अपना राज्य स्थापित किया तो ईरानियो को पुन पनपने का अवसर मिला। आरभ मे अब्बासियो के मत्री ईरानी ही होते थे। अब्बासियो के छठे खलीफा मामूँ की माता ईरानी थी, जिससे स्वभावत उसे ईरान से प्रेम था और ईरानियो के प्रति सहानुभूति भी थी। उसने एक ईरानी को बुखारा, खुरासान आदि का प्राताध्यक्ष नियत किया। यही सामानी वश का सस्थापक हुआ। इन्ही सामानियो के काल मे फारसी भाषा तथा साहित्य को पुनर्जीवन मिला। एक ओर सामानी वश स्थापित हुआ और दूसरी ओर अरब शक्ति क्षीण होने लगी तथा ईरानी अपनी खोई हुई स्वतत्रता को प्राप्त करने का पुन प्रयत्न करने लगे। इनके साथ साथ फारसी भाषा तथा साहित्य की भी उन्नति होने लगी। सामानी युग से भी पहले कुछ कवि ईरान मे हुए पर उनकी कविताएँ बहुत कम प्राप्त हैं। इसलिये हम उन्हे छोडकर फारसी साहित्य का आरभ सामानी युग से ही मानेंगे। इस युग तक फारसी भाषा बहुत कुछ बदल चुकी थी तथा उसपर अरबी भाषा एव साहित्य का गभीर प्रभाव पड चुका था और फारसी अरबी लिपी में लिखी जाने लगी थी। जैसे जैसे ईरानी मुसलमान होते गए वैसे वैसे पुरानी भाषा छोडते गए। इसी फारसी को इसलाम के बाद की फारसी, इसलामोत्तर काल की फारसी, कहा जाता है और वास्तव मे यही वह फारसी है जो अपनी मधुरता तथा सौष्ठव के लिये प्रसिद्ध है।

सामानी युग (सन् ८७४-९९९ ई०) — यह युग फारसी भाषा के साहित्य की वास्तविक उन्नति का समय है। वस्तुत इसी युग मे फारसी के बडे बडे साहित्यकार उत्पन्न हुए, जिन्होने आनेवाली पीढियो के कवियो तथा लेखको के लिये मार्ग प्रशस्त किया था। अभी तक जो फारसी साहित्य था वह कविता अर्थात् पद्य तक सीमित था परतु इस युग मे फारसी गद्य ने भी उन्नति की।

सामानियो के समय का एक प्रसिद्ध कवि अबू शुकूर बलखी है। इसने रुबाई नामक छद निकाला, जिसने बाद में विशेष उन्नति की। किंतु इस काल का सर्वश्रेष्ठ कवि रूदकी या रूदगी है, जो ईरान का प्रथम महाकवि है। इसका नाम अबू अब्दुल्ला जाफर बिन मुहम्मद है। इसका उपनाम रूदकी है, जो उसके ग्राम के नाम से लिया गया है। कहा जाता है कि वह अधा था परतु इस दोष के रहते पर भी वह सामानी बादशाह नसर बिन अहमद को पसद था। उसकी शैली सरल तथा सुगम है, फिर भी कुछ सीमा तक उसमे 'तकल्लुफ' (सकोच, आडबर) पाया जाता है, जो बाद की फारसी कविता का विशिष्ट गुण हो गया। रूदकी गायन कला मे भी प्रवीणता रखता था। इसने गजलें तथा कसीदे लिखे है और वामिक एव अजरा नामक एक आख्यानक काव्य भी लिखा है, जिसका मूल पहलवी का है। रूदकी की मृत्यु सन् ९५४ ई० मे हुई। सामानी युग का एक अन्य उल्लेखनीय कवि 'दकीकी' है जिसके बारे मे कहा जाता है कि उसने पहले शाहनामा कवितावद्ध करना आरभ किया था किंतु उसे पूरा करने के पहले ही अपने दास के हाथो मारा गया। धर्म की दृष्टि से दकीकी जरथुस्त्री अर्थात् अग्निपूजक था। मदिरा तथा जरथुस्त्री धर्म की प्रशसा मे उसकी कविता प्रसिद्ध है।

गद्य मे लिखित पुस्तको में से कुछ का विवरण इस प्रकार है

किताब अजायबुल अल् बर्रो अल् बहर या अजायबुल् बुल्दान में ईरान् के विभिन्न प्रातो का मूल्यवान् विवरण प्राप्त है। किताब हुदूदुल् आलमरमिन अल्मशरिक् व अल्मगरिब के रचयिता का नाम ज्ञात नही, जैसा उसकी भूमिका से प्रकट है। यह सन् ३७२ हि० की रचना है। किताबुल्अबनिया अन हकायकुल् अदविया पुस्तक ओषधियों पर है। यह अबू मसूर मुवफ्फिक हरवी की रचना कही जाती है। तर्जुमा तारीख तबरी के मूल अरबी ग्रथ का लेखक मुहम्मद बिन जरीर तबरी है, जिसका अनुवाद फारसी में कई विद्वानो ने मसूर बिन नूह के आदेश से किया था। तर्जुमा तफसीर तबरी का भी मूल लेखक मुहम्मद बिन जरीर तबरी है और इसका भी फारसी अनुवाद मसूर बिन नूह के आदेश से कई विद्वानो ने मिलकर किया था।

गजनवी युग — सामानी वश का अत गजनवियो के द्वारा हुआ। गजनवी वश का सस्थापक अलपतगी नामक एक तुर्की दास था। उसके बाद उसका दास सुबुक्तगीन गद्दी पर बैठा। इसके बाद इसका बेटा महमूद गजनवी सिंहासन पर आरूढ हुआ। यह विद्या तथा साहित्य का आश्रयदाता था। इसके दरबार में बडे बडे कवि तथा विद्वान् एकत्र थे। इस काल में कसीदा कहने की प्रथा ने बडी उन्नति की। बादशाह के दरबारी कवियो में उन्सुरी, फर्रुखी तथा असुज्दी बहुत प्रसिद्ध हैं, जिन्हें कसीदा कहने में श्रेय प्राप्त है। सुलतान महमूद के ही समय मे फिरदौसी ने शाहनामा लिखा, जिसमें साठ सहस्र शेर हैं और जो ससार के बडे युद्धकाव्यो में परिगणित हैं।

इस युग में गद्य की भी बडी उन्नति हुई। इस काल के प्रसिद्ध विद्वान् अलबेरुनी ने 'अलतफहीम लावायेल सिनायतुत् तन्जीम' नामक फारसी ग्रथ ज्योतिष (नजूम) पर लिखा। इस ग्रथ की विशेषता यह है कि नजूम की सूक्तियाँ अरबी के बदले फारसी में हैं। प्रसिद्ध हकीम तथा तत्ववेत्ता हकीम इब्न सीना ने दानिशनामा अलाई या हिकमत अलाई फारसी मे लिखा और पूरा प्रयत्न किया कि आध्यात्मिक सिद्धात फारसी मे बनाएँ। इब्ने सीना की अन्य रचनाएँ भी हैं। इसी युग का प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल्-फज्ल बैहिकी है जिसकी प्रसिद्ध रचना तारीखे बैहीकी है। इसकी शैली सुगम तथा प्रसादपूर्ण है। फारसी गद्य की अच्छी से अच्छी रचनाओ में इसकी गिनती है। 'कशफुल् महजूब' फारसी मे सूफी मत की पहली पुस्तक है। इसका लेखक अली बिन उसमान हुज्वीरी गजनवी है, जिसे दाता गजबख्श भी कहते हैं। इनकी कब्र लाहौर मे है।

सुलतान महमूद सन् १०३० ई० मे मरा। इसके अनतर इसका पुत्र मसऊद गद्दी पर बैठा। इसके समय मे एक तुर्क कबीले ने, जिसका नाम सेल्जुक था, बादशाह को परास्त कर अपना शासन खुरासान तथा ईराक मे स्थापित किया और क्रमश बहुत उत्कर्ष को पहुँचा। अब इस काल मे गजनवी तथा सेलजुकी युग साथ साथ चले। फारसी भाषा तथा साहित्य की उन्नति बराबर होती रही, प्रत्युत गजनवियो तथा सेल्जुकियो की फारसी अन्य देशो मे भी फैलने लगी। इस युग के गद्यलेखको मे से निजामुल्मुल्क तूसी विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योकि यह दो सेलजुकी बादशाहो अल्पअर्सलाँ तथा मलिक शाह के ३० वर्ष तक मत्री रहे। सासतनाम इनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसकी भाषा तथा लेखनशैली सरल तथा सुगम है। इस युग का एक दूसरा गद्यलेखक उन्सुरुल मआली कैकाऊस है, जो तबरिस्तान का शाह था। इसने अपने पुत्र गीलानशाह के लिये एक पुस्तक प्रस्तुत की। बडे मनोरजक ढग से छोटी कहानियो द्वारा इसने सद्व्यवहार को समझाने का प्रयत्न किया है। एक अन्य उल्लेखनीय पुस्तक 'तजकिरतुल औलिया' है, जिसका प्रणेता प्रसिद्ध सूफी विद्वान् फरीदुद्दीन अत्तार है। यह पुस्तक जनसाधारण मे सूफी मत के प्रचार की दृष्टि से लिखी गई थी। इसमे प्रसिद्ध मुसलमान सूफियों के जीवनचरित्र तथा उनके उपदेश दिए गए है। स्थान स्थान पर कहानियाँ भी दी गई हैं। भाषा तथा लेखनशैली आकर्षक है। प्रसिद्ध पुस्तक 'कलील व दमन' का, जिसका मूल सस्कृत मे है, इसी काल मे अरबी से फारसी मे नसरुल्ला गजनवी ने अनुवाद किया, पर यह सरल एव सुबोध नही है। इस युग की एक श्रेष्ठ रचना 'चहार मकाला' है, जिसका रचयिता निजामी अरूज्ञे समरकदी है। यह सन् ५५१-५२ हि० की रचना है। भाषा तथा शैली अत्यत सरल है। इसमे हकीमों, कवियो, ज्योतिर्विदो तथा लेखको के लिये उपदेश हैं। ग्रथ के विषयो को किस्सो के द्वारा स्पष्ट किया गया है। इस काल की प्रसिद्ध साहित्यिक पुस्तक 'मुकामात हमीदी' है, जिसका लेखक काजी हमीदुद्दीन बलखी है। यह अरबी के दो विख्यात ग्रथो अर्थात् मुकामात अबुल्फज्ल हमदानी तथा मुकामात हरीरी की नकल है। भाषा अत्यत क्लिष्ट तथा दुरूह है। स्थान स्थान पर अरबी के शब्द तथा शेर अधिकता से आए हैं।

इस युग में पद्य की बडी उन्नति हुई किंतु आडबर अधिक बढ गया। कसीदो में विशेषकर क्लिष्टता तथा दुरूह कल्पनाएँ दृष्टिगोचर

होती हैं। कसीदा कहनेवाले कवियो में खाकानी का नाम ही काफी है, जिसकी मृत्यु सन् ४६४ हि० में हुई। इसके कसीदो में ओज तथा तडक भडक बहुत है पर साथ ही साथ क्लिष्टता तथा कल्पना का आडवर भी अधिक है। इसकी प्रसिद्ध रचना 'तुहफतुल्एराकीन' है। खाकानी के सिवा इस युग के प्रसिद्ध कसीदगी कवि अनवरी, मुइज्जी तथा फारयाबी है। इसी समय उमर खय्याम भी हुए जिनकी रुबाइयाँ प्रसिद्ध हैं और जिनका अनुवाद प्राय सभी भाषाओ में हो चुका है। उमर खय्याम कवि नही, प्रत्युत ज्योतिषी तथा गणितज्ञ था जो कभी कभी कविता कर लेता था। नासिर खुसरो इस युग का प्रसिद्ध साहित्यकार था, जिसने गद्य पद्य दोनो लिखा है और अच्छा लिखा है। धर्म की दृष्टि से यह इसमाइली था, जो शीओ की एक शाखा है। इसने अपनी साहित्यिक शक्ति को अपने धार्मिक विचारो का प्रचार करने मे विशेष लगाया। पद्य मे इसका दीवान रूशनाईनामा तथा सआदतनामा प्रसिद्ध हैं। गद्य में जादुल्मुसाफिरीन तथा सफरनामा ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। सेल्जुकी युग की प्रमुख विशेषता सूफी ढग की कविता का उत्कर्ष है। सूफी कवियो मे फरीदुद्दीन अत्तार का विशिष्ट स्थान है, जिनका उल्लेख गद्य लेखको मे पहले किया जा चुका है। उनकी पद्य रचनाओ मे मंतिकुल्तैर, इसरारनामा, मुसीबतनामा, इलाहीनामा आदि है। यह सन् ६२७ हि० के लगभग मुगलो द्वारा मारे गए। इस युग के ख्यातिलब्ध कवि निजामी गजवी हैं, जिन्होने सिकदरनामा नामक मसनवी प्रस्तुत की है। इसमे सिकदर की कल्पित तथा अवास्तविक कहानियाँ हैं। इन्होने पाँच मसनवियाँ खम्सा के नाम से लिखी हैं जिनके नाम मखज़नुल् इसरार, खुसरू व शीरी, लैली व मजनूँ, हफ्तपैकर या बहरामनामा हैं। निजामी को कहानियो को पद्यबद्ध करने में बडी निपुणता प्राप्त थी। इन्होने अनेक प्रकार की नई नई उपमाओ आदि का प्रयोग किया है। निजामी का परवर्ती काल के कवियों पर विशेष प्रभाव पडा, जिन्होने इनके समर्थन मे रचनाएँ की। निजामी की मृत्यु सन् १२०३ ई० मे हुई।

मुगल युग (मगोल युग) — चगेज खाँ तुर्किस्तान के सम्राट् जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ सिंध तक आया। उस समय हिंदुस्तान मे मुसलमानो का राज्य स्थापित हो चुका था। मुगल मुसलमान नही थे। हिंदुस्तान के मुसलमानी राज्य का सौभाग्य था कि हिरात नगर मे, जो आजकल अफगानिस्तान के अतर्गत है, विद्रोह मच गया और चगेज खाँ उसे दमन करने के लिये वहाँ चला गया। मुगलो (मगोलों) ने अत मे सन् १२५७ ई० मे बगदाद भी विजय कर लिया और अब्बासी खलीफो का राज्य समाप्त हो गया। हिंदुस्तान का मुसलमानी राज्य मुगलो के हत्याकाड से बचा हुआ था। इस कारण हर स्थान के कवि तथा विद्वान् हिंदुस्तान आकर शरण लेने लगे। इस प्रकार हिंदुस्तान फारसी भाषा तथा साहित्य का एक प्रभावशाली केंद्र बन गया। भारतीय फारसी साहित्य का अपना एक अलग इतिहास है। फारसी के हिंदुस्तानी कवियो मे से केवल अमीर खुसरो का नाम काफी है। गद्यलेखको मे काजी मिनहज सिराज ने तबकाते नासिरी लिखी, जो इतिहास का एक ग्रथ है। हिंदुस्तान मे लिखे गए लुबाबुलुलबाब ग्रथ का, जो फारसी के कवियो का महत्वपूर्ण तजकिरा (कवि चर्चा) है, रचयिता नूरुद्दीन मुहम्मद औफी यहाँ नासिरुद्दीन कुबाचा तथा उसके अनतर सुलतान शम्सुद्दीन एल्तुत्मिश के दरबार मे रहता था।

ईरान मे जो कवि तथा साहित्यकार हो गए है उनमे से कुछ प्रसिद्ध ये हैं अलाउद्दीन अल मलिक जुवीनी, जिसकी मृत्यु सन् ६८१ हि० मे हुई, इस युग का प्रसिद्ध लेखक है। इनकी पुस्तक तारीख जहाँकुशा विशद ग्रथ है। इसमे मुगलो के व्यवहार, स्वभाव, शासनपद्धति आदि पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इसमे भौगोलिक वृत्तात भी आया है पर इस ग्रथ की लेखनशैली मे आडबर भरा हुआ है। अरबी शब्दो, कहावतो तथा कुरान की आयतो का स्थान स्थान पर प्रयोग होने से जो लोग अरबी भाषा नही जानते वे इस पुस्तक को सरलता से पढ नही सकते और न इससे पूरा आनद प्राप्त कर सकते हैं। गुलिस्ताँ तथा बोस्ताँ के प्रणेता शेख सादी भी इसी युग मे हुए। इनकी लेखन शैली अत्यत सुगम तथा आकर्षक है। गुलिस्ताँ गद्य मे और बोस्ताँ पद्य मे है। गुलिस्ताँ के सिवा गद्य मे इनकी अन्य रचनाएँ भी हैं और पद्य मे बोस्ताँ के सिवा इनका दीवान भी है, जिसमे कसीदे, गजलें तथा अन्य प्रकार की कविताओ के नमूने भी हैं। शेख सादी की गणना अच्छे गजल कहनेवाले कवियो मे की जाती है। तारीख जहाँकुशा के समान एक अन्य पुस्तक तारीख वस्साफ है, जिसका लेखक शिहाबुद्दीन अब्दुल्ला है। यह सन् ६६३ हि० मे शीराज मे पैदा हुआ और आठवी शती हिजरी के मध्य तक जीवित रहा। तारीख वस्साफ की शैली आडबर तथा अत्युक्तियो से भरी है किंतु ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से अच्छी पुस्तक है। तारीखे जहाँकुशा के बाद की सभी घटनाएँ इसमे आ गई हैं। इस युग का दूसरा लेखक रशीदुद्दीन फजलुल्लाह जामेउत्तवारीख का ग्रथकर्ता है। इसकी मृत्यु सन् ७१८ हि० में हुई। हम्दुल्लाह मुस्तौफी कजवीनी इस युग का एक इतिहासकार है, इसकी पुस्तक का नाम नुज़हतुलकुलूब है। प्रसिद्ध सूफी कवि जलालुद्दीन रूमी ने भी गद्य मे पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से कुछ हैं—'किताब वजीया माफिया,' 'मजालिस' तथा 'मकतूबात'। नसीरुद्दीन तूसी इस काल का प्रसिद्ध विद्वान् तथा साहित्यकार है। इसकी श्रेष्ठ रचनाओ में तर्कशास्त्र सबंधी 'एसासुल् इक्तबास' हैं। 'मैयारुल् अशआर' छदशास्त्र पर है। इसकी विशिष्ट पुस्तक 'इख्लाके नासिरी' बहुत प्रसिद्ध है। इसकी लेखनशैली कठिन है।

इस युग में सूफियाना कविता की बडी वृद्धि हुई, जिसका कारण मुगलो के आक्रमणो से हर ओर फैली हुई बरबादी थी। इससे ससार की अस्थिरता सबके हृदयो पर जम गई। सूफी मत में ससार की नश्वरता पर बडा बल दिया जाता है। इस काल के सामाजिक जीवन में बहुत सी बुराइयाँ आ गई थी, जिनपर इस समय के कवियों ने बहुत लिखा है। इस काल के बडे कवियो में से जलालुद्दीन रूमी उल्लेख्य हैं। ये सन् १२०७ ई० में बल्ख मे पैदा हुए और सन् १२७३ ई० मे कौनैन मे, जो अब तुर्की मे है, मरे। इनकी प्रसिद्ध मसनवी की सूफी ससार मे बडी प्रतिष्ठा है और इसे फारसी का कुरान कहा जाता है। मसनवी के सिवा इनका दीवान भी है, जो 'दीवान शम्स तब्रेज' के नाम से प्रसिद्ध है।

इस युग का प्रसिद्ध हँसोड कवि उबैद जाकानी है। कविता की ओट मे अपने समय की सामाजिक कुरीतियो का अच्छा वर्णन इसने

किया है और तुर्कों तथा मुगलो के आक्रमणों से उत्पन्न बुराइयो का विवरण दिया है। सलमान सावजी इस युग का विख्यात कसीदा कहनेवाला कवि है, जो बगदाद के मुगल बादशाहों की प्रशंसा किया करता था। इस युग के सबसे बड़े तथा अंतिम कवि हाफिज हैं। हाफिज ने सूफी विचारों तथा प्रेम की अच्छी कल्पनाएँ की हैं। शब्द-चयन अत्यन्त पुष्ट तथा मधुर है।

तैमूरी युग — मुगलों (मंगोलों) के अनंतर तैमूर तथा उसके अनुयायी यद्यपि मुसलमान थे तथापि अत्याचार तथा नाश के कार्यों में मुगलों से कम नहीं थे। तैमूर का समय १८वीं शती ईसवी से आरंभ होता है और सफवी युग (सन् १८६६ ई०) के प्रारंभ तक चलता है। इस काल में तुर्की भाषा ने ईरान में प्रबलता प्राप्त की क्योंकि दरबार तथा सेना की भाषा तुर्की थी। फारसी की प्रतिष्ठा घटी तथा साहित्य का भी स्तर गिर गया। बगदाद के मुगलों के अधिकार में चले जाने से अब्बासी खलीफों का अंत हो गया और अरबी का बचा बचाया सम्मान भी समाप्त हो गया। फारसी भाषा में रचनाएँ होने लगीं। यह कार्य तैमूरी युग में होता रहा और इस दृष्टि से अवश्य फारसी की उन्नति हुई। इस युग के लेखकों ने इतिहासरचना पर विशेष बल दिया। हाफिज आबरू इस युग का प्रसिद्धतम इतिहासकार कहा जा सकता है। इन्होंने संसार के साधारण इतिहास पर 'जुब्दतुत्तवारीख' नामक एक बड़ा ग्रंथ लिखा है। इसी काल में दो अन्य इतिहासकार निजामी शामी तथा शरफुद्दीन अली यज्दी हैं। इन दोनों की किताब का नाम जफरनामा है। अब्दुर्रज्जाक ने मतलउल सादैन लिखा जिसमें सुलतान अबू सईद के समय में सन् १४७० ई० तक की घटनाएँ दी गई हैं। मीर खोंद ने रौजतुस्सफा लिखा। संसार के आरंभ से सुलतान अबू सईद की मृत्यु (सन् १४७० ई०) तक सारे इस्लामी संसार का इतिहास उसमें दिया गया है।

तैमूरी युग के कवियों में ये उल्लेखनीय हैं—कमाल खुजंदी, जिसकी मृत्यु सन् १४०० ई० में हुई, तथा मुल्ला मुहम्मद शीरीं मगरिबी तब्रेजी, कातिबी नैशापुरी, मुईनुद्दीन कासिम अनवर (जो संभवत सन् १८३४ ई० में मरा) इस युग के दो आकर्षक कवि अबू इसहाक तथा महमूद कारी हैं।

गद्य की दृष्टि से दौलतशाह समरकंदी की पुस्तक 'तजकिरतुश्शोअरा' महत्वपूर्ण है। लेखक ने यह ग्रंथ उस समय के प्रसिद्ध विद्याप्रेमी मंत्री मीर शेर अली नवाई के नाम से लिखा है। मीर शेर अली नवाई, स्वयं कवि था। तुर्की में उसने 'मजाजलिसुन्नफायस' नाम से कवियों का एक वृत्तसंग्रह लिखा है, जिसका फारसी में लतायफनामा के नाम से अनुवाद हुआ है। मीर शेर अली के आश्रितों में से हुसेन वाएज काशिफी है, जिसने प्रसिद्ध पुस्तक सुहेली लिखी है। उसकी नकल में हिंदुस्तान में शाहजहाँ के समय में 'बहारे दानिश' लिखी गई, जो बहुत समय तक मदरसों में चलती रही। इसी लेखक की एक और रचना 'इखलाके मुहसिनी' है, जिसकी लेखनशैली सरल तथा सादी है। वास्तव में यह पुस्तक, 'इखलाके जलाली' के आदर्श तथा ढंग पर लिखी गई है, जिसका लेखक मुहम्मद बिन असद दव्वानी है। दव्वानी सन् १४०६ ई० में मरा, इसमें इसका भी उल्लेख इसी काल के लेखकों में किया जा सकता है।

मीर शेर अली ने जिन्हें आश्रय दिया, उनमें मुल्ला अब्दुर्रहमान जामी थे, जो इस युग के सबसे बड़े कवि थे। यह खुरासान के जाम नामक ग्राम में सन् १४१४ ई० में पैदा हुए थे। इन्होंने तीन दीवान गजलों के प्रस्तुत किए हैं, जिनमें बहुत से हाफिज के ढंग पर हैं। निजामी के खमसा की चाल पर हफ्त औरंग नामक सात मसनवियाँ इन्होंने लिखी हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के विषय हैं जिनमें सदाचार, तसव्वुफ, प्रेम आदि पर तर्क वितर्क है। गद्य में इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में से 'नफहातुल उन्स' है, जिसमें मान्य सूफियों के वृत्त संगृहीत हैं। तसव्वुफ की महत्वपूर्ण पुस्तकों में से यह एक है। जामी की एक अन्य पुस्तक बहारिस्ताँ है, जो शेख सादी के गुलिस्ताँ के ढंग पर लिखी गई है। इन्होंने अरबी व्याकरण पर 'शरहे जामी' नामक पुस्तक भी लिखी है।

सफवी युग — तैमूर सन् १४०५ ई० में मरा और उसके बाद उसका विस्तृत साम्राज्य विभिन्न सर्दारों में बँट गया, जो आपस में युद्ध करते रहते थे। ऐसी परिस्थिति एक शती तक रही, जिसके अनंतर सफवी वंश का उदय हुआ। सफवियों ने पूरे ईरान पर शासन किया। इनसे पहले पूरे ईरान पर किसी वंश ने शासन नहीं किया था। इनके काल में ईरान ने बड़ी उन्नति की और इन्हीं के समय से शीआ धर्म ईरान में अब तक चला आता है।

इस युग के कवियों में हातिफी जामी है, जो प्रसिद्ध कवि जामी का भांजा था। उसने लैली व मजनूँ तथा खुसरू व शीरीं नामक मसनवियाँ तथा एक अन्य युद्ध काव्य तैमूरनामा भी लिखा है, जिसमें तैमूर की विजयों का वर्णन है। फिरदौसी की बहुतों ने नकल की है पर उन सब में तैमूरनामा को अच्छी सफलता मिली। हातिफी का समकालीन कवि फिगानी था। यह पहले सुलतान हुसेन के दरबार में था, पर द्वेषियों के कारण तब्रेज चला गया, जहाँ इसका सम्मान हुआ और इसे 'बाबाए शुअरा' (कवियों का पितामह) की पदवी मिली। फिगानी की विशेषता यह है कि इसने अपने शेरों में नई नई उपमाएँ तथा शैलियाँ प्रयुक्त कीं। गजल में भी अच्छी कुशलता रखता था, जिससे यह छोटा हाफिज कहलाता था। सन् १५१६ या १९ ई० में इसकी मृत्यु हुई।

जामी का शिष्य आसिफी अच्छा कसीदागो कवि था। इसके समसामयिक अहली शीराजी ने शाह इस्माइल सफवी की प्रशंसा में बड़े भव्य कसीदे कहे हैं। इसकी ख्याति का आधार मसनवी 'सेहरे जलाल' है। इसने एक मसनवी 'शमअ व परवाना' भी लिखी है, जिससे उसकी सूफी रुचि प्रकट होती है। अहली का समकालीन हिलाली था, जिसने एक दीवान, एक मसनवी 'शाहो गदा' और एक काव्य 'सिफातुल् आशिकीन' स्मारक रूप में छोड़ी है। सन् १५२२ ई० में यह उजबक तुर्क बादशाह के हाथों, जो शीआ धर्म का विरोधी था, मारा गया। इसी समय का दूसरा कवि कासिमी था, जिसने एक शाहनामा प्रस्तुत किया। इसमें इसने शाह इस्माइल की विजयों का वर्णन किया है। मुहतशिम काशी इस काल का सबसे बड़ा मर्सिया कहनेवाला कवि है।

शाह अब्बास प्रथम सफवी वंश का सबसे बड़ा शासक हुआ जो सन् १५८७ ई० में गद्दी पर बैठा। वह कवियों तथा साहित्यकारों का आश्रयदाता था। इनमें शानी तेहरानी था, जिसे उसने सोने से तौलवा दिया था। शाह अब्बास के हकीम 'शिफाई' ने मसनवियाँ

तथा कसीदे लिखे हैं। 'जुलाली ख्वानसारी' सन् १६१५ या १६ में मरा। यह शाह अव्वास के काल का प्रसिद्ध मसनवी रचयिता था। इसने सात मसनवियाँ लिखी, जिन्हे 'सुवअ सैयारा' (सात नक्षत्र) कहते हैं।

सफवी शाहो ने शीआ मत के प्रचार में वहुत ध्यान दिया था जिससे अन्य देशो के शीआ विद्वान् इनके समय मे ईरान आकर वस गए। इनमें वहाउद्दीन आमिली का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसने शाह अव्वास के आदेश पर शीआ नियमो पर 'जामए अव्वासी' नामक पुस्तक लिखी। शाह अव्वास की विजयो के वर्णन में 'कमाली सब्जवारी' ने एक शाहनामा लिखा। इसकदर वेग मुशी ने शाह अव्वास की जीवनी 'तारीखे जहाँआराए अव्वासी' मे लिखी है।

इस युग में हिंदुस्तान फारसी साहित्य का अच्छा केंद्र वन गया था। जव ईरान में सफवी वश शासन कर रहा था, हिंदुस्तान में मुगल वश का साम्राज्य था, जो विद्या तथा साहित्य का वडा आश्रयदाता था। मुगलो के पास जो ऐश्वर्य तथा धन था वह ईरान के सफविरो के पास नही था, इससे ईरान के वहुत से कवि अपना देश त्याग कर भारत चले आए। वावर ने प्रसिद्ध इतिहासकार मीर खोद के पौत्र खोद मीर को हिंदुस्तान वुलवाया, जहाँ इसने अपना प्रसिद्ध इतिहास 'हवीवुसियर' प्रस्तुत किया। इसमें प्राचीनतम काल से आरभ कर शाह इस्माइल की मृत्यु अर्थात् सन् १५२४ ई० तक का ससार का इतिहास दिया गया है। इसकी अन्य रचनाएँ 'खुलासतुल् अखवार', 'दस्तूहल् वजरार' तथा 'हुमायूँनामा' हैं।

अकवर की आज्ञा से 'तारीखे अलफी' लिखी गई, जिसमें इसलाम के पैगवर की मृत्यु के अनतर एक सहस्र वर्ष तक का इतिहास आया है। अकवर कवियो का वडा सत्कार करता था। सुश्फिकी बुखाराई, जो सन् १५८८ ई० में मरा, गजल का सुकवि था। हुसेन सनाई मशहदी मसनवी लेखक था। ये दोनो अकवर के दरवार में थे, किंतु अकवरी दरवार का सवसे वडा कवि जमालुद्दीन उर्फी था। यह शीराज में पैदा हुआ था पर हिंदुस्तान चला आया था। उर्फी के कसीदे प्रसिद्ध हैं, जिनमें कल्पना की समर्थ उडानें हैं। उर्फी सन् १५९० ई० मरा। फैजी ने निजामी के 'लैली व मजनूँ' की चाल पर एक हिंदी प्रेमगाथा को 'नलदमन' के नाम से कवितावद्ध किया है। नलदमन मूलत सस्कृत मे नलदयमती है। इसी काल मे जुहूरी तेहरानी ने हाफिज के ढग पर साकीनामा मसनवी लिखी है, जिसकी अच्छी प्रसिद्धि है।

अकवर का पुत्र जहाँगीर भी विद्वानो तथा गुणियो का आश्रयदाता था और इसने प्रसिद्ध ईरानी कवि कलीम आमिली को अपने दरवार का मलिकुश्शोअरा (कवियो का राजा) नियत किया था। तालिव की कविता का गुण 'नुजरते तश्वीह' तथा 'लुत्फे इस्तेआर' अर्थात् उपमा तथा उत्प्रेक्षा से प्रकट है। 'सायव' जो वस्तुत तव्रेजा के एक परिवार से सवधित था हिंदुस्तान तथा ईरान दोनो देशो के साहित्येतिहास से सवद्ध है। सायव, जामी के वाद ईरान का सर्वश्रेष्ठ कवि है। यह शाहजहाँ के दरवार का कवि था। हिंदुस्तान से लौटकर ईरान चला गया, जहाँ शाह अव्वास द्वितीय ने इसे मलिकुश्शुअरा की पदवी दी। सायव सार १६७७ ई० मे मरा। 'फैयाजी' उसका समकालीन था। उसने अपने कसीदो द्वारा शीआ इमामो की प्रशसा की और हजरत हसन व हुसेन का मरसिया कहा है। सफवी युग के अतकाल मे अवदुल् अल्नजात इस्फहानी हुआ है, जिसकी मृत्यु सन् १७१४ ई० मे हुई थी। इसकी लेखनशैली घटिया तथा वाजारू है परतु इसकी मसनवी 'गुले कुश्ती' इस दोष से मुक्त है और यह अत्यत लोकप्रिय हुई। प्राय इसी काल मे शेख अली हजी कवि हुए, जो ईरान से हिंदुस्तान चले आए थे। प्राचीन परिपाटी के समर्थ कवियो मे इनकी गणना है। इन्होने सात मसनवियाँ तथा चार दीवान लिखे और गद्य मे 'तजकिरतुल् मुआसिरीन' लिखी। इसमे अपने समय के कवियो तथा विद्वानो का वृत्त दिया है और इस कारण यह एक महत्वपूर्ण ग्रथ है। अपने व्यक्तिगत वृत्तात को 'तजकिरा-तुलअहवाल' मे लिखा है। यह वनारस मे सन् १७६६ ई० मे मरे।

सफवियो के युग की समाप्ति पर जव तक काचार वश का प्रभुत्व अच्छी प्रकार स्थापित नही हुआ, ईरान मे शासन की अस्थिरता का काल रहा। इस काल मे एक वडे साहित्यिक व्यक्तित्व का दर्शन होता है, जो लुत्फ अली आजर है। आजर तुर्की कवीला शामलू मे से थे और इस्फहान मे पैदा हुए। इनकी सवसे प्रसिद्ध रचना 'आतिशकदा' है, जो सन् १८६०-६६ ई० मे लिखी गई। इसमे आठ सौ से अधिक कवियो का वृत्त दिया गया है। आजर का एक दीवान भी है तथा एक मसनवी 'यूसुफो जुलेखा' भी इन्होने लिखी है।

काचार युग — सफवियो के अनतर अफशारो ने, जिनके राज्य का सस्थापक नादिरशाह अफशार था, तथा जिंद वश ने सन् १७६१ ई० तक राज्य किया। इनके वाद काचारियो का समय आया जो सन् १९२५ ई० तक रहे। फत्ह अली शाह काचार ने सन् १७९७ से सन् १८१६ ई० तक शासन किया। वह कवियो तथा साहित्यकारो का आश्रयदाता था। फत्ह अली 'सवा' उसका मलिकुश्शोअरा था, जिसने फिर्दौसी की शैली पर शहशाहनामा रचा। फत्ह अली शाह का मत्री खारज अव्दुल्वहाव निशात' अच्छा कवि था और उसने एक दीवान प्रस्तुत किया। निशात पत्रलेखन मे अत्यत कुशल था। इस युग का श्रेष्ठतम कवि मिर्जा हवीवुल्ला 'काआनी' था। इसने प्रशसात्मक कसीदे तथा हजोएँ अच्छी कही हैं।

काचारियो के युग मे शाह नासिरुद्दीन (सन् १८४८–१८९६ ई०) का विशेष महत्व है। यह स्वय कवि तथा गद्यलेखक था। इसका सफरनामा वहुत प्रसिद्ध है, जिसमे इसने अपनी यूरोप की यात्रा का वृत्तात तथा अनुभवो का विवरण दिया है। इसकी लेखन शैली सरल तथा रोचक है। नासिरुद्दीन के राज्यकाल का प्रसिद्ध साहित्यकार रिजाकुली खाँ लाल वाशी है, जो श्रेष्ठ कवि था। इसने 'मजमउल् फुसहा' और 'रियाजुलआरिफीन' नामक दो वृत्तसग्रह प्रस्तुत कर फारसी साहित्य की वहुमूल्य सेवा की है। इन दोनो सग्रहो में आरभ से लेकर अपने समय तक के कवियो के वृत्त सकलित किए गए हैं और इस दृष्टि से ये वडे महत्वपूर्ण है। रिजाकुली खाँ खीवा (तुर्किस्तान) मे अपने देश की ओर से राजदूत था और इसने अपने सफारतनामा नामक पुस्तक में खीवा की अपनी यात्रा का वर्णन किया है।

काचारियो के राज्यकाल मे यूरोपीय जातियो का आवागमन अच्छी प्रकार आरंभ हो गया था और यूरोप की सस्कृति का प्रभाव ईरान पर पडने लगा था। इस कारण शैवानी काशानी की कविता मे निराशावाद तथा पूर्ण यथार्थवाद का, जो उस समय के यूरोपीय साहित्यकारो मे विशेष प्रिय विषय हो रहे थे, पूरा प्रभाव है। इसी काल मे फारसी भाषा मे नाटक (ड्रामा) लिखने की प्रथा आरंभ हुई। मिर्जा जाफर कराच दागी ने तुर्की से कई नाटको का फारसी मे अनुवाद किया। नई शैली के नाटको के प्रचार के पहले ईरान मे एक प्रकार के धार्मिक खेल खेले जाते थे, जिन्हे ताजिश्रा कहते थे, जिसमे कर्बला के शहीदो के कष्टो का अभिनय किया जाता था। अब सुशिक्षित लोग इसे पसद नही करते।

उसी काल मे यूरोपीय शिक्षा के प्रचार से बादशाहो के शासन की निर्दयता के कारण वैधानिक शासन का आदोलन आरंभ हुआ। जनता में नए विचारो के प्रसार के लिये समाचारपत्रो का खूब प्रचार हुआ। कवियो ने जातीय तथा शासकीय कविताएँ लिखना आरंभ किया। इस काल में गद्य की बडी उन्नति हुई तथा इसकी लेखन शैली इतनी सरल हो गई कि जनता उसे सहज में समझ सके, यहा तक कि कविता की शैली भी बदल गई। उसमें आडबर तथा बनावट का स्थान सरलता ने ले लिया। जनता को शासन की बुराइयो से सावधान करने के लिये हाजी जैनुल् आबदीन ने एक कल्पित यात्रा-विवरण 'सियाहतनामा' 'इब्राहीम बेग' के नाम से लिखा, जो सन् १९१० में प्रकाशित हुआ। उसी साल में लेखक की मृत्यु हुई। इस काल के प्रसिद्ध कवि पूरे दाऊद, अशरफुद्दीन रश्ती, मलिकुश्शोअरा अली अकबर देहखुदा, इश्की आदि हैं। इस काल में महिलाओं ने भी कविता तथा साहित्य में बहुत भाग लिया, जिनमें परवीन, एतसामी, परीवश, दुनिया आदि को बडी ख्याति मिली।

पहलवी युग — यह युग सन् १९२५ ई० में आरंभ हुआ। पहलवी वश का सस्थापक रिज़ा खाँ था, जिसने बादशाह हो जाने पर रिज़ाशाह पहलवी की उपाधि ग्रहण की। यह काल ईरान मे जातीय अर्चना का है। यूरोपीय आचार विचार का प्रभाव बहुत बढ गया। कवियो ने कविता मे यूरोपीय शैली की नकल करने का प्रयत्न किया। सादगी की प्रबलता हुई। जातीय प्रेम के कारण फारसी से अरबी शब्दो को निकालने का प्रयत्न होने लगा, यहाँ तक कि अरबी लिपि त्यागने का आदोलन खडा हुआ पर वह अभी तक सफल नही हुआ। इस युग के कवियो मे पूर दाऊद, अली असगर हिकमत, रशीद यासिमी, आरिफ कज़वीनी, अब्दुल् अजीम आदि हैं, जिनमे जातीयता तथा सादगी का बल स्पष्ट है।

सं॰ ग्रं॰ — ई॰ जी॰ ब्राउन ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑव पर्शिया, ई॰ जी॰ ब्राउन प्रेस ऐंड पोएट्री ऑव मॉडर्न पर्शिया, लेवी पर्शिअन लिटरेचर, साइक्स ए हिस्ट्री ऑव पर्शिया, दो भाग, ब्राउन पर्शिअन रिवोल्यूशन, प्रोफेसर इसहाक सुखनवराने ईरान दर अस्ने हाज़िर, दो भाग।

[र॰ अ॰]

फार्म प्रबंध यह पूर्णत सत्य नही है कि भारत मे खेती केवल भरण पोषण के लिये ही की जाती है। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि खेती भी अन्य वाणिज्य व्यवसाय की तरह से है जिसमें किसान उत्पादन के सिद्धातो को अपनाता हुआ कुटुब से बचे हुए उत्पादन को बाजार मे ले जाकर बेचता है। इस प्रकार वस्तुओ की कीमतें, विपणन विकास तथा खेती करने के नए नए ढग, सभी किसान की समृद्धि को प्रभावित करते हैं। इसलिये यह सत्य है कि किसान की समृद्धि मुख्यत फार्म प्रबंध से इतनी जुटी हुई है कि यदि वह फार्म प्रबध के सिद्धातो से भली प्रकार परिचित नही है तथा उनका उपयोग दैनिक कृषिचर्या मे नही करता है तो वह कृषि उत्पादन बढाने मे सफल नही हो सकता।

फार्म प्रबंध का अर्थ — यद्यपि फार्म एक सामाजिक एवं आर्थिक सस्था है, जिसका विकास शताब्दियो मे हुआ है तथापि फार्म प्रबध विज्ञान का ज्ञान अपेक्षया नया है। इसी कारण इसकी प्रकृति, विस्तार तथा महत्व को यथोचित स्थान नही मिल सका है, और यही कारण है कि इसके अर्थ भी विभिन्न लगाए जाते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि फार्म प्रबध किसान की दैनिक कृषिचर्या की कला है जब कि दूसरे लोग इसे उत्पादन अर्थशास्त्र (Production Economics) या कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics) का नाम देते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि सरकारी फार्मों पर देखभाल करने के लिये नियुक्त क्षेत्र प्रबधक का कार्य ही फार्म प्रबध है। यद्यपि फार्म प्रबध की कोई एक ही परिभाषा अभी तक सर्वमान्य नही है, तथापि निम्नलिखित परिभाषा से लगभग सभी सहमत हैं

फार्म प्रबध वह विज्ञान है जिसमें कृषि उत्पादन कारक, जैसे भूमि, श्रम, पूँजी इत्यादि, के उचित समिलन एव प्रक्रियाओं को इस उद्देश्य से व्यावहारिक रूप दिया जाता है कि जिसमे छोटी से छोटी खेती की इकाई की प्रारभिक क्रिया से भी अधिक से अधिक उत्पादन करके लाभ उठाया जा सके। कृषि व्यवसाय के लिये, कौन कौन सी फसलें बोई जाएँ अथवा उनकी खेती के लिये कितना क्षेत्रफल हो, बोई जानेवाली फसलों मे कौन सी क्रियाएँ अधिक आर्थिक लाभ देंगी, इन सब विषयो का ज्ञान इसी विज्ञान के अतर्गत आता है। किसान अनाज की फसलें बोए या दूधवाले जानवर रखे, इसका निर्णय इसी विज्ञान के आधार पर किया जाता है।

फार्म प्रबध के प्रख्यात विद्वानो द्वारा दी गई कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

१ "प्रक्षेत्र प्रबध, कृषि मे व्यावसायिक सिद्धातो का अनुशीलन करना है। इसकी व्याख्या कृषि उद्योग में सगठन और प्रबध के विज्ञान के रूप मे अधिकतम सभव लाभ पाने के उद्देश्य से की जाती है।"—वारेन

२ "कृषि या किसी दूसरे व्यवसाय में प्रबध से तात्पर्य मुख्यत उचित समय पर सही निर्णय लेने से लिया जाता है और तब यह देखा जाता है कि निर्णयों का सफलतापूर्वक क्रियान्वन हुआ या नहीं"। —हुडेलसन

फार्म प्रबध तथा शुद्ध व्यावहारिक विज्ञान है। शुद्ध विज्ञान इसलिये है क्योकि इसमे सिद्धातो की खोज तथा तत्वो के एकत्रीकरण, विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण का अध्ययन किया जाता है और व्यावहारिक विज्ञान इसलिये है क्योकि कृषिक्षेत्र की समस्याओ का निराकरण तथा निर्धारण इसीके विस्तार के अतर्गत आता है।

फार्म प्रबध वह विज्ञान है जिसमे अर्थशास्त्र एव वाणिज्यशास्त्र के सिद्धात खेत को वाणिज्य इकाई मानकर प्रयुक्त किए जाते हैं।

इसलिये आधुनिक समय में जब प्रत्येक किसान खेत से अधिकतम उत्पादन करके तथा उसे बाजार में बेचकर अधिकतम शुद्ध लाभ उठाना चाहता है, तब यह आवश्यक है कि वह खेती मे अर्थशास्त्र के उन सब सिद्धातो का अधिक से अधिक उपयोग करे जिनसे कम से कम व्यय पर अधिक से अधिक आय हो सके।

फार्मों की फसल तथा उनके अतर्गत क्षेत्रफल, फसल को बाजार में बेचने का समय, खेती बैलो से की जाय या मशीनो से, फसलो को मिलाकर बोया जाय या शुद्ध, कौन कौन से पशु खेत पर रखे जाएँ, दूध, मक्खन या घी के लिये पशुपालन हो अथवा मास या ऊन के लिये, कृषि सबधित इन सभी विषयो का निर्धारण इसी विज्ञान के अतर्गत किया जाता है। फार्म प्रबध के निम्नलिखित सक्षिप्त उद्देश्य हैं

१ कृषि उत्पादन के विभिन्न साधनो की आनुपातिक कार्यक्षमता तथा लागत एव आय के पारस्परिक सबधो की खोज करना, इस विज्ञान का सर्वप्रथम उद्देश्य है।

२ अधिक से अधिक शुद्ध लाभ देनेवाली फसलो के उत्पादन तथा पशुपालन की वैज्ञानिक रीतियो के जानने के उद्देश्य से इस विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

३ प्रति एकड फसल उत्पादन की लागत इसी विज्ञान के अतर्गत मालूम की जाती है।

४ फार्म के साधन स्रोतो तथा भूमि का मूल्याकन करना भी इस विज्ञान का उद्देश्य है।

५ फार्म के विभिन्न उद्योगो का तुलनात्मक आर्थिक ज्ञान इसी विज्ञान के द्वारा सभव है।

६ फार्म के आकार के अनुसार भूमि के उपयोगो (land utilisation), फसल प्रतिमान (cropping pattern), पूँजी विनियोग (capital investment) तथा श्रम आदि का नियोजन (planning) एव निर्धारण फार्म प्रबध के अतर्गत किया जाता है।

फार्म उद्योग के उत्पादन एव शुद्ध लाभ पर नव तकनीकी परिवर्तनो (new technical changes) के प्रभावो का मूल्याकन फार्म प्रबध का मुख्य क्षेत्र है।

फार्म व्यवसाय की कार्यक्षमता बढाने के उपायो तथा साधनो की खोज करने के लिये फार्म के विभिन्न साधनो का अति उत्तम सयोजन तथा उपयोग, अथवा उनका पारस्परिक सबध, इसी विज्ञान के अध्ययन से निश्चित किया जाता है।

संक्षेप मे फार्म प्रबध अध्ययन का निश्चयात्मक उद्देश्य किसानो को यह बताना है कि वे किस प्रकार अपने सीमित साधनो से निम्नलिखित कार्य करें.

(१) अत्यधिक उत्पादन बढावें।

(२) उत्पादन का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करें।

(३) कृषि में अधिक से अधिक शुद्ध लाभ बढाने के लिये किस प्रकार साधनों का सयोजन करें कि प्रत्येक साधन से पूरा पूरा लाभ उठाया जा सके और कोई साधन बेकार न पडा रहे।

(४) प्रति एकड उत्पादन लागत न्यूनतम हो सके।

फार्म प्रबध के व्यावहारिक सिद्धांत — औद्योगिक प्रबध मे जिन आर्थिक सिद्धातो का उपयोग किया जाता है लगभग वे ही सिद्धात फार्म प्रबध मे भी लागू हैं, क्योकि दोनो व्यवसायो का आधारभूत उद्देश्य न्यूनतम व्यय करके अधिकतम आय प्राप्त करना है। फार्म प्रबध के निम्नलिखित प्रमुख सिद्धात हैं

१ **ह्रासमान प्रतिफल का नियम** (Law of Diminishing Returns) — यह नियम, फार्म के सगठन तथा सचालन दोनो पर लागू होता है। फार्म की प्रत्येक इकाई से अधिकतम सभावित लाभ पाने के लिये यह नियम मार्गदर्शक है। फसल उत्पादन की योजना बनाने, फसलो का चुनाव करने तथा पशु उद्योग वरण करने में इसकी सहायता आवश्यक है। फार्म का दक्षतापूर्वक सचालन करने मे भी यह नियम अत्यत सहायक है। किसी कृषि प्रक्रिया की इकाई पर कितनी मात्रा तक उर्वरक, श्रम, तथा यत्र आर्थिक लाभ देंगे, इसका निर्णय इसी नियम के आधार पर होता है। इस नियम के अनुसार श्रम और पूँजी की लगातार वृद्धि करते रहने पर भी एक ऐसी इकाई अवश्य आती है जहाँ अतिरिक्त उपज से आय, अतिरिक्त श्रम तथा पूँजी की लागत से, अवश्य ही कम होती है। यह इकाई इस बात की द्योतक है कि अब उर्वरक, श्रम, अथवा यत्र का प्रयोग लाभकारी नही है, इसीलिये इनका आगे प्रयोग नही करना चाहिए। इसी नियम के सहारे वैज्ञानिक फार्म प्रबन्धक, कृषि की किसी भी प्रक्रिया में उस इकाई के आगे जहाँ कि ह्रासमान प्रतिफल नियम लागू हो जाता है, कोई लागत लगाना उचित नही समझता, क्योकि इस व्यवसाय मे भूमि, जिसका विस्तार सभव नही है, सीमाकारी कारक (limiting factor) है तथा ह्रासमान प्रतिफल नियम अपेक्षया जल्दी लागू हो जाता है।

२ **तुलनात्मक लाभ का सिद्धात** (The Principle of Comparative Advantage)— इस नियम के अनुसार प्रत्येक फार्म, केवल उन्ही फसलो का उत्पादन तथा पशुओ का पालन करता है जिनसे उसे अपेक्षाकृत अधिक लाभ हो। पश्चिमी उत्तर प्रदेश का किसान, जिसके निकट गन्ने की मिल है, गेहूँ की अपेक्षा गन्ना अधिक बोएगा, क्योकि गेहूँ की अपेक्षा गन्ने मे लाभ अधिक है। इसी प्रकार शहरो के निकटवर्ती गाँव मे रहनेवाले किसान, खाद्य पदार्थ जैसे गेहूँ, जौ, चना आदि की खेती करना उतना उचित नही समझते जितना दूध के लिये गाय या भैंस पालना अथवा सब्जी की खेती करना, क्योकि वे निकटवर्ती शहर मे दूध एव सब्जी बेचकर, खाद्य पदार्थों की अपेक्षा अधिक लाभ उठा सकते हैं। देश के उन क्षेत्रो मे जहाँ रुई की मिलें हैं, किसान कपास की खेती तथा जहाँ वनस्पति तेल की मिलें हैं वहाँ मूँगफली की खेती केवल इसी नियम के अतर्गत करता है।

३ **प्रतिस्थापन का नियम** (Law of Substitution) — यह नियम किसान को फार्म प्रबध के उस विषय पर अति सहायक सिद्ध होता है जहाँ साधनो का इस प्रकार पारस्परिक सयोग किया जाय कि कृषि प्रक्रिया मे कम से कम लागत लगे।

यह निर्णय प्रक्रिया की लागत से आँकी जाती है। जैसे यदि किसी क्षेत्र मे श्रमिको की मजदूरी अथवा बैलो का पालन, ट्रैक्टर की लागत से अधिक है, तो फार्म प्रबधक अवश्य ही ट्रैक्टर से खेती करना पसद करेगा। इसके विपरीत यदि किसी किसान के कुटुंब मे चार मजदूर काम करनेवाले है, तो वह मशीनो का सहारा न लेकर खेती मजदूरों

मे ही करवाएगा, क्योंकि घर के मजदूरो पर उसे कोई मजदूरी खर्च नही करनी पडती। यदि किसी खेत की निराई गुडाई खुरपी से करने मे दस मजदूरो की आवश्यकता पडती है और इनका खर्चा लगभग १५ रूपए है तथा उसकी अपेक्षा यदि कल्टिवेटर से निराई गुडाई करने मे केवल तीन रूपए का खर्चा हो, तो अच्छा कृषि प्रबधक निराई गुडाई की प्रक्रिया कल्टिवेटर से करना पसद करेगा। इस नियम का सहारा लगभग सभी किसान अपनी खेती की प्रक्रिया मे लेते हैं। जो नही ले पाते है, उनकी अपनी कुछ व्यक्तिगत समस्याएँ अथवा कारण होते हैं।

४ न्यूनतम लागत संयोजन का सिद्धांत (Principle of Least Cost Combination) — इस सिद्धात के अनुसार विभिन्न क्षेत्रो के कृषक एक ही फसल का उत्पादन करने के लिये विभिन्न अनुपातो मे सहायक वस्तुओ का प्रयोग करते हैं। यह उपयोग प्रयुक्त वस्तु के मूल्य पर आधारित होता है। गेहूँ उत्पादन के लिये अमरीका और कैनाडा मे, जहाँ मानव श्रम का मूल्य बहुत अधिक है, मशीनो का प्रयोग किया जाता है, जबकि भारत मे, जहाँ कि मानव श्रममूल्य मशीनो की अपेक्षा सस्ता है, मानव श्रम का उपयोग किया जाता है।

५ समसीमात प्रतिफल नियम (Law of Equimarginal Return) — प्रत्येक किसान अपने सीमित साधनों का इस प्रकार विभाजन करना चाहता है कि फार्म व्यवसाय की सपूर्ण इकाई से अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इसलिये इस सिद्धात के अतर्गत किसी साधन का विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक उपयोग से प्राप्त सीमात आय बराबर हो, जैसे मान लें कि किसी किसान को तीन हजार रूपया तीन फसल, गन्ना, गेहूँ एव कपास, के उत्पादन पर व्यय करना है। इनमे से कपास की फसल ऐसी है जिसपर कम खर्च होगा और गन्ने की फसल ऐसी है जिसपर अधिक। यदि कपास से ६५० रुपए लाभ पाने के लिये ५०० रुपये लगाने पडते हो तथा गेहूँ एव गन्ना मे यही लाभ पाने के लिये क्रमश एक हजार रुपए एव १,५०० रुपए लगाने पडते हों, तो तीन हजार रूपए की लागत का विभाजन ६५० रुपया समसीमात लाभ पाने के लिये, कपास, गेहूँ तथा गन्ना के उत्पादन पर क्रमश ५०० रुपए, एक हजार रुपए तथा १,५०० रुपए होना चाहिए। विशिष्ट (specialized) अथवा विविध (diversified) खेती मे सम सीमात प्रतिफल नियम अधिकतर लागू होता है, जिसमे केवल वही व्यवसाय (enterprize) अपनाए जाते हैं जिनसे अत्यधिक लाभ प्राप्त हो। यही सिद्धात फसल उत्पादन के लिये आय-व्ययक बनाने मे कृषक का मार्गदर्शक होता है।

फार्म व्यवसाय को यदि सफल बनाना है और यदि उसे औद्योगिक व्यवसाय से टक्कर लेनी है, तो खेती को फार्म प्रबध के आधारभूत सिद्धातो पर चलाना पडेगा। इसमे प्रत्येक इकाई की लागत तथा उससे होनेवाली आय पर, पूरी दृष्टि रखनी होगी, क्योंकि इसी विज्ञान के ज्ञान के आधार पर फार्म मे उपलब्ध साधनो का उचित सयोजन तथा विभिन्न फसलो एव कृषि कार्यों का सतुलित सयोजन (combination) किया जा सकता है। इसलिये इस समय जब कि देश अन्न सकटकालीन स्थिति मे है तथा देश मे पूँजी की कमी है, आवश्यकता इस बात की है कि खेती फार्म प्रबध के ज्ञान के आधार पर की जाय।

स० ग्र० — टडन व ढौंडियाल कृषिक्षेत्र प्रबध के सिद्धात एव विधियाँ। [ज० प्र० ग०]

फार्म भवन कृषि-क्षेत्र-प्रबध की दृष्टि से ससार की कृषिपद्धतियों को दो वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं। प्रथम प्रणाली में कृषक तथा अन्य लोग निवासस्थान एक स्थान पर बनाकर रहते हैं तथा अपनी खेती आस पास के खेतो मे करते हैं। ये खेत अधिकतर छोटे छोटे टुकडों में फैले रहते हैं तथा कभी कभी एक चक मे भी होते हैं। इन एकत्रित निवासस्थानो को ग्राम कहते हैं तथा जिस भूमि पर एक कृषक खेती करता है उसे उसकी जोत कहते हैं। इस प्रकार की कृषि मे जोत पर मकान बनाने का प्रश्न नगण्य रहता है। यदि किसी कृषक के पास कुछ भूमि एक चक मे हुई, तो एक या दो कोठार तथा पशुओ के लिये एक छप्पर या कोठार, जिसे सार कहते हैं, तथा कुआँ निर्माण कर लिया जाता है। अधिकाश निवासस्थान, कोठार आदि, गाँव मे रहते हैं। भारत तथा बहुत से पूर्वी देशो में इसी प्रणाली से खेती की जाती है।

द्वितीय कृषिपद्धति मे कृषक के क्षेत्र एक चक में होते हैं, जिसे कृषिक्षेत्र या फार्म कहा जाता है। इस प्रणाली में अधिकाश कृषक निवासस्थान तथा अन्य आवश्यक भवन कृषिक्षेत्र पर ही होते हैं। एक प्रकार से यह प्रणाली प्रथम प्रणाली के विपरीत है, क्योंकि इसमें फार्म भवन बिखरे हुए होते हैं तथा कृषक के खेत एक चक में होते हैं। प्रत्येक पद्धति में कुछ लाभ तथा कुछ हानियाँ हैं। फार्म के प्रबध की दृष्टि से द्वितीय पद्धति अधिक सुविधाजनक है। प्रथम पद्धति मे, जैसा कहा जा चुका है, कृषिक्षेत्र मे भवननिर्माण का प्रश्न नगण्य है, परतु द्वितीय पद्धति मे यह आवश्यक अग है।

भवननिर्माण मे निम्नलिखित बातें विचारणीय है

स्थान का चुनाव — फार्म भवन बनाने के लिये ऐसा स्थान चुनना उपयुक्त होगा जहाँ पर पानी न भरता हो। यह स्थान फार्म के मध्य में रहने से खेतो तक आने जाने मे सुविधा रहती है, क्योंकि मध्य से खेतो तक आने जाने की दूरी कम रहती है, परतु यदि कोई पक्की सडक फार्म के पास हो तो अधिकतर मकानो के लिये उपयुक्त स्थान सडक की ओर ही रखे जाते हैं। यदि कुछ मकान, कुआँ आदि पहिले से बने हो, तो इसका भी ध्यान रखते हैं।

स्थान का चुनाव करने के पश्चात् मकानो की सख्या निर्धारित करते है। फार्म यदि व्यापारिक दृष्टि से बनाया गया है, तो केवल अति आवश्यक मकान ही बनाते हैं। शिक्षा, अनुसधान या प्रदर्शन के लिये बनाए गए फार्मों पर भवनो की सख्या अधिक होती है। सख्या निर्धारित हो जाने पर उनके आकार प्रकार का निर्णय करना पडता है। निवासस्थान, श्रमिको के लिये स्थान, आदि बनाने मे कितनी पूँजी लगेगी अथवा लगानी चाहिए, यह भी विचारणीय है, क्योंकि लगी हुई पूँजी के सूद, छीजन, मरम्मत आदि मे खर्च होनेवाले धन का प्रभाव फार्म के लाभ हानि पर पडता है। इसलिये यह निर्णय भी आवश्यक है कि कौन से भवन अधिक दृढ और व्ययशील हों तथा कौन से कम व्ययशील। उदाहरण के लिये यदि हो सके तो कोठार पक्का बने, परतु पशुशाला पर अधिक व्यय आवश्यक नहीं है।

जब भवन बहुत से बनाने हो तो विभिन्न प्रकार के भवनों को बहुत सटाकर नहीं बनाना चाहिए, जिससे उनके समुचित उपयोग करने मे असुविधा हो। यदि आवश्यक हो तो सुविधा के लिये कुछ

रिक्त स्थान रखना चाहिए। परतु प्रयत्न यह होना चाहिए कि यह स्थान आवश्यकता से अधिक न हो, जिसमें अधिक से अधिक भूमि खेती के लिये रहे।

भवनो के आकार प्रकार का निर्णय करने मे जलवायु का ध्यान भी आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यदि पछुवाँ हवा अधिक चलती है तो खिटकियाँ पूर्व पश्चिम रखने से सवातन अच्छा होगा, खलिहान ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ पर वायु ओसाई के लिये ठीक लग सके, घरो में वायु से कूडा आदि न आ सके तथा घरो मे आग आदि लगने का भी भय कम रहे, खाद के गड्ढे भी ऐसे स्थान पर हो जहां से दुर्गंध आदि निवासस्थान की ओर न आए, तथा कम से कम चौकीदारी मे फार्म की पूँजी सुरक्षित रखी जा सके। [दु० श० ना०]

फॉर्मिक अम्ल लाल चीटियो, शहद की मक्खियो, बिच्छू तथा बर्रों के डको मे पाया जाता है। इन कीडो के काटने या डक मारने पर थोडा अम्ल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है, जिससे वह स्थान फूल जाता है और दर्द करने लगता है। पहले पहल लाल चीटियो (लैटिन नाम 'फॉर्मिका') को पानी के साथ गरम करके, उनका सत खीचने पर उसमे फार्मिक अम्ल मिला पाया गया। इसीलिये अम्ल का नाम 'फॉर्मिक' पडा। यह एकक्षारकी वसा अम्लो की श्रेणी का प्रथम सदस्य है। दूसरे वसा-अम्लो के विपरीत फॉर्मिक अम्ल तथा फॉर्मेट तेज अपचायक होते हैं और अपचयन गुण मे ये ऐल्डिहाइड के समान होते हैं। यह रजत लवणो को रजत मे, फेह्लिंग विलयन को लाल क्यूप्रस ऑक्साइड मे तथा मरक्यूरिक क्लोराइड को मे मर्करी अपचयित कर देता है। इसका सूत्र हाकाओओहा (HCOOH) है। इसे मेथिल ऐल्कोहॉल या फॉर्मैल्डिहाइड के उपचयन द्वारा, ऑक्सैलिक अम्ल को शीघ्रता से गरम करके अथवा ऑक्सैलिक अम्ल को ग्लिसरीन के साथ १००°-११०° सें० तक गरम करके प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग रबड जमाने, रँगाई, चमडा कमाई तथा कार्बनिक सश्लेषण में होता है।

अजल फार्मिक अम्ल बनाने के लिये, लेड या ताम्र फॉर्मेट के ऊपर १३०° सें० पर हाइड्रोजन सल्फाइड प्रवाहित किया जाता है। साद्र फॉर्मिक अम्ल को सोडियम फार्मेट के (भार के) ६०% फार्मिक अम्ल मे बने विलयन को साद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ आसुत करके बनाया जाता है। यह तीव्र गधवाला रगहीन द्रव है। यह किसी भी अनुपात मे पानी, ऐल्कोहॉल तथा ईथर मे मिश्र्य है। इसका क्वथनाक १००.८° सें० है। त्वचा पर गिरने पर बहुत जलन होती है और फफोलें बन जाते हैं। [र० प्र० रा०]

फारवर्ड ब्लाक १९३९ के प्रारभ मे यह स्पष्ट हो गया था कि हिटलर के यूरोप विजय के स्वप्न के कारण विश्व महायुद्ध की सभावना निकट आती जा रही है। भारत मे सुभाषचद्र बोस, महात्मा गाधी तथा काग्रेस कार्यसमिति के अनेक सदस्यो के विरोध के बावजूद पुन काग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो गए। इसपर कार्यसमिति के सभी सदस्यों ने, जिनमे जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल भी थे, काग्रेस कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया।

त्रिपुरी अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण मे सुभाषचद्र ने बडी दूरदर्शिता के साथ घोषित किया कि यूरोप मे शीघ्र ही साम्राज्यवादी युद्ध आरभ हो जाएगा और इस अवसर पर अग्रेजो को छह मास का अल्टिमेटम दे देना चाहिए। उनके इस प्रस्ताव का वर्किंग कमेटी के पूर्वकालीन सदस्यो ने विरोध किया। सुभाष बाबू ने अनुभव किया कि प्रतिकूल परिस्थियो के कारण उनका काग्रेस अध्यक्ष के पद पर रहना बेमतलब है। अतएव उन्होने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और काग्रेस को जनता की स्वतत्र होने की इच्छा, लोकतत्र और क्राति का प्रतीक बनाने के लिये उन्होंने मई, १९३९ मे काग्रेस के भीतर फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की घोषणा की। सुभाष बाबू ने बतलाया कि फारवर्ड ब्लाक की स्थापना, एक ऐतिहासिक आवश्यकता —सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो के सगठन और अनिवार्य सघर्ष—की पूर्ति के लिये हुई है। उन्होने कहा कि अतरराष्ट्रीय सकट मे ग्रस्त हो जाने के पूर्व काग्रेस का आतरिक सकट समाप्त हो जाना चाहिए। वामपथियो का सगठन करना, काग्रेस मे बहुमत प्राप्त करना और राष्ट्रीय आदोलन को पुनर्जीवित करना— फारवर्ड ब्लाक के समुख ये तीन प्रश्न थे। फारवर्ड ब्लाक के प्रथम अखिल भारतीय अधिवेशन (बबई) मे पूर्ण स्वतत्रता और तत्पश्चात् समाजवादी राज्य की स्थापना का उद्देश्य स्वीकार किया गया। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यो में साम्राज्यविरोधी सघर्ष छेडने के लिये देशव्यापी स्तर पर तैयारियाँ करने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ, जिससे कि विश्व की परिस्थितियो और सकट का लाभ उठाकर अग्रेजो से सत्ता छीन ली जाए।

अगस्त, १९३९ मे सुभाष बाबू बगाल प्रातीय काग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से हटाए गए। साथ ही उन्हे तीन वर्षो के लिये निर्वाचन द्वारा किसी पद को ग्रहण करने से वचित कर दिया गया। उन्होने निर्विकार भाव से यह निर्णय स्वीकार कर लिया। सितबर, १९३९ मे हिटलर के पोलैंड पर आक्रमण और फ्रास तथा ब्रिटेन द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से सारे यूरोप मे युद्ध की ज्वाला भडक उठी। गवर्नर-जनरल, लार्ड लिनलिथगो ने एक अध्यादेश जारी करके भारत को 'युद्धरत देश' घोषित कर दिया और देश को उसके नेताओं तथा केद्रीय और प्रातीय विधायको से औपचारिक परामर्श के बिना ही, साम्राज्यवादी युद्ध मे झोक दिया। अक्टूबर, १९३९ मे सभी काग्रेस मत्रिमडलो ने पदत्याग कर दिया, किंतु काग्रेस नेतृत्व ने सघर्ष की कारवाई को और आगे नही बढाया। १९३९ के अक्टूबर मे ही नेताजी ने नागपुर मे साम्राज्यवाद विरोधी समेलन आयोजित किया, जिसमे उन्होने काग्रेस तथा सपूर्ण राष्ट्र को साम्राज्य विरोधी शक्तियो के सगठन का तथा साम्राज्यवादियो के अस्तित्व के उन्मूलन के सकल्प का स्मरण दिलाया। मार्च, १९४० मे फारवर्ड ब्लाक ने रामगढ मे समझौता विरोधी समेलन किया। उसमे तय किया गया कि ६ अप्रैल को, राष्ट्रीय सप्ताह के प्रथम दिन (जलियाँवाला बाग के शहीदो की स्मृति मे निश्चित) युद्धप्रयासो और अग्रेजी साम्राज्यवाद के कुटिल रूप के विरुद्ध देशव्यापी सत्याग्रह छेड दिया जाना चाहिए।

अप्रैल, १९४० मे फारवर्ड ब्लॉक ने जनता से साम्राज्यवादी युद्ध से असहयोग करने तथा अग्रेजी राज्य को कायम रखने के लिये भारतीय साधनो के शोषण के विरोध की अपील करते हुए राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह छेड दिया। सैंकडो व्यक्ति जेल मे डाले गए या पीटे गए और जनता को प्रचड दमन का शिकार होना पडा। दल के नागपुर अधिवेशन (१९४०) मे सुभाष बाबू ने पुन रामगढ़ प्रतिज्ञा पर बल

दिया और सघर्ष की तीव्रता के सदर्भ मे उसकी महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट की। नागपुर मे ही निश्चित किया गया कि फारवर्ड ब्लॉक भविष्य में मात्र एक मच न रहकर, एक दल के रूप में कार्य करेगा। ब्लाक द्वारा प्रस्तावित और आयोजित वामपथी सगठन समिति से काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (नैशनल फ्रट) और रैडिकल डेमाक्रेटिक पार्टी (मानवेंद्रनाथ राय) के अलग होने और यूरोप में बढती हुई युद्धस्थितियो तथा अन्य महाद्वीपो के भी युद्ध की लपेट में आ जाने की संभावनाओ को दृष्टि में रखकर ब्लॉक ने देश में 'कार्यनिर्वाही राष्ट्रीय सरकार, (Provisional National Government) की स्थापना और इसके अतर्गत विदेशी आक्रमण से समुचित सुरक्षा के लिये नेशनल डिफेंस फोर्स के अविलव निर्माण की माँग की। सपूर्ण राष्ट्र 'भारतीय जनता के हाथ मे सत्ता सौंपो' के उद्घोष के साथ अतिम विजय के लिये आगे बढ चला। सघर्ष और सत्ता के हस्तगत करने के सकल्प के साथ समेलन मे यह विचार भी प्रस्तुत किया गया *कि प्रत्येक गाँव और कारखाने को पचायत के माध्यम से स्वावलंबी* बनाया जाना चाहिए। ये पचायतें और स्वैच्छिक संगठन ही कार्यनिर्वाही राष्ट्रीय सरकार की माँग के आधार बनें, जिसे सारी सत्ता तुरत हस्तातरित कर दी जाय।

ब्लॉक ने दल के रूप मे कार्य करने के लिये तय किया कि वह बहुसख्यक सदस्यता के सहित काग्रेस के भीतर ही कार्य करेगा। ब्लॉक का उद्देश्य शीघ्रातिशीघ्र भारतीय जनता के सहयोग से राजनीतिक सत्ता पर अधिकार और समाजवादी आधार पर भारत की अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण घोषित किया गया।

नागपुर अधिवेशन के तुरत बाद सुभाषचद्र बोस जुलाई मे गिरफ्तार कर लिए गए। दिसबर मे उनके आमरण अनशन के कारण उन्हे रिहा किया गया।

उसी समय गाधी जी ने भी, सुभाष और फारवर्ड ब्लॉक के आवाहन पर जनता की अनुक्रिया देखकर, अपने विचारो मे परिवर्तन किया और अक्टूबर, १९४० मे उन्होने व्यक्तिगत' सत्याग्रह का नारा बुलद किया। व्यक्तिगत सत्याग्रहियो को जो शपथ लेनी पडती थी, वह अशत. ब्लाक की रामगढ़ घोषणा से मिलती जुलती थी।

जनवरी, १९४१ मे सुभाषचद्र बोस पुलिस और खुफिया विभाग की कडी निगरानी के बावजूद अचानक कलकत्ता स्थित अपने निवासस्थान से निकल गए और ३० महीने बाद दक्षिण पूर्व एशिया की युद्धग्रस्त धरती पर अवतरित हुए। वहाँ वे 'नेताजी' के सबोधन के साथ आजाद हिंद की कार्यनिर्वाही सरकार के अध्यक्ष तथा आजाद हिंद फौज के सर्वोच्च सेनापति हुए।

जून, १९४२ मे फारवर्ड ब्लॉक अवैध सगठन घोषित कर दिया गया। उसके सदस्य, केवल कुछ भूमिगत हो जानेवालो को छोडकर, कारागार मे डाल दिए गए। प्राय सभी काग्रेस नेता यूरोप मे युद्ध की स्थिति समाप्त हो जाने पर (मई, १९४५) रिहा कर दिए गए थे, किंतु ब्लॉक के सदस्य जापान के पतन (सितबर, १९४५) के पश्चात् ही मुक्त किए गए।

युद्ध के पश्चात् फारवर्ड ब्लॉक ने अपनी बिखरी हुई शक्तियो को एकत्रित करने का प्रयास किया, किंतु दल के भीतर मतभेद पनपने के कारण यह दो गुटों—सुभाषवादी फारवर्ड ब्लॉक और मार्क्सवादी फारवर्ड ब्लॉक — मे बँट गया। गुटबदी के पूर्व फारवर्ड ब्लाक ने भारतविभाजन का तीव्र विरोध किया था। भारतविभाजन को ब्लॉक ने अग्रेजो का भारत और पाकिस्तान को सदा के लिये शक्तिहीन कर देनेवाला षड्यत्र बताया। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् ब्लाक के दोनो गुट सत्तारूढ काग्रेस पार्टी का विरोध करते रहे।

१९५३ मे सरकार विरोधी शक्तियो को एकत्रित करने की दृष्टि से सुभाषवादी फारवर्ड ब्लाक ने प्रजासमाजवादी दल मे विलयन का निश्चय किया। मार्क्सवादी फारवर्ड ब्लाक ने अपना अलग अस्तित्व बनाए रखा। यह दल अत्यत छोटे रूप मे अब केवल पश्चिम बगाल मे सीमित रह गया है। [हृ० वि० का०]

फार्स्टर, एडवर्ड मॉर्गन (१८७९) — अग्रेजी उपन्यासकार और आलोचक। जन्मस्थान, लदन। शिक्षा कैंब्रिज विश्वविद्यालय मे। कैंब्रिज मे अपने ट्यूटर, नथेनियल वेड, के प्रभावदश प्राचीन ग्रीक और रोमन साहित्य और स्वय ग्रीस मे उनकी रुचि जाग्रत हुई। इसी कारण साहित्यरचना का श्रीगणेश उसने पौराणिक कथाओं की शैली मे लिखी हुई कहानियों द्वारा किया, जो बाद मे 'दि सेलेशल ऑम्नीबस' (१९११) और 'दि इटर्नल मोमेंट' (१९२८) नामक सग्रहो मे पुन प्रकाशित हुई। जब १९०३ मे उसके मित्र लोज डिकिंसन तथा वेड इत्यादि ने 'दि इडिपेंडेंट व्यू' की स्थापना की तो वह इसमें स्थायी रूप से लिखने लगा।

इसके उपरात एक वर्ष उसने इटली और ग्रीस मे बिताया। उसका प्रथम उपन्यास 'व्हेयर ऐंजेल्स फियर टु ट्रेड' (१९०५) इटली में ही लिखा गया। इसके बाद 'दि लागेस्ट जर्नी (१९०७) और 'ए रूम विद ए व्यू' (१९०८) प्रकाशित हुए। 'हावर्ड्स एड' (१९१०) मे उसकी प्रतिभा ने पूर्ण परिपक्वता प्राप्त की। अपने सभी उपन्यासो मे वह परपरा और रूढ़ि का आलोचक रहा है।

१९१२ और १९२२ मे उसने भारत की यात्रा की। इसी के फलस्वरूप १९२४ मे उसका सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'ए पैसेज टु इडिया' प्रकाशित हुआ। इससे उसकी ख्याति बहुत बढ़ी। राष्ट्रो, जातियों और व्यक्तियो के बीच जो कृत्रिम बाधाएँ खडी हो गई हैं उन्हें दूर करने के प्रयत्नो मे जो सफलता हाथ लगती है उसी का चित्रण इस उपन्यास मे अग्रेजो और भारतीयो के माध्यम से किया गया है। सामान्य ब्रिटिश जनता को भारतीयो के असतोष का ज्ञान कराने मे इस रचना ने बडी सहायता की।

१९२७ मे फार्स्टर कैंब्रिज मे 'फेलो' नियुक्त हुआ। इसी वर्ष उसने वहाँ 'ऐस्पेक्ट्स ऑव दि नॉवेल' पर भाषण दिए। उपन्यास कला के अध्ययन मे इस पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है।

उसकी कुछ अन्य पुस्तकें हैं—'एबिंजर हार्वेस्ट' (१९३६), 'रीडिंग ऐज यूजुअल' (१९३९), 'नार्डिक ट्वाइलाइट' (१९४०), टू चियर्स फॉर डेमोक्रेसी' (१९५१) जिसमें पहले अलग से प्रकाशित कई रचनाएँ सगृहीत हैं, तथा 'दि हिल ऑव देवी' (१९५३)।

१९३७ मे 'रायल सोसायटी ऑव लिटरेचर' ने उसे 'बेंसन पदक' प्रदान किया, और १९५३ मे 'कपैनियन आव ऑनर' की उपाधि प्रदान की गई। [ज० वि० मि०]

फा सिएन (फा हिएन) प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री, लेखक तथा अनुवादक। वह पिंगयाग का निवासी था जो वर्तमान शासी प्रदेश मे है। उसने छोटी उम्र मे ही सन्यास ले लिया था। उसने बौद्ध धर्म के सदविचारो के अनुपालन और सवर्धन मे अपना जीवन विताया। उसे प्रतीत हुआ कि विनयपिटक का प्राप्य अश अपूर्ण है, इसलिये उसने भारत जाकर अन्य धार्मिक ग्र थो की खोज करने का निश्चय किया।

लगभग ६५ वर्ष की उम्र मे कुछ अन्य बधुओ के साथ, फाहिएन ने सन् ३९९ ई० मे चीन से प्रस्थान किया। मध्य एशिया होते हुए सन् ४०२ मे वह उत्तर भारत में पहुँचा। यात्रा के समय उसने उड्डियान, गाधार, तक्षशिला, उच्छ, मथुरा, वाराणसी, गया आदि का परिदर्शन किया। पाटलिपुत्र मे तीन वर्ष तक अध्ययन करने के बाद दो वर्ष उसने ताम्रलिप्ति मे भी विताए। यहाँ वह धर्मसिद्धातो की तथा चित्रो की प्रतिलिपि तैयार करता रहा। यहाँ से उसने सिंहल की यात्रा की और दो वर्ष वहाँ भी विताए। फिर वह यवद्वीप (जावा) होते हुए ४१२ मे शातुग प्रायद्वीप के चिंगचाऊ स्थान मे उतरा। अत्यत वृद्ध हो जाने पर भी वह अपने पवित्र लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहा। चिएन काग (नैनकिंग) पहुँचकर वह बौद्ध धर्मग्र थो के अनुवाद के कार्य मे सलग्न हो गया। अन्य विद्वानो के साथ मिलकर उसने कई ग्र थो का अनुवाद किया, जिनमे से मुख्य हैं—परिनिर्वाण-सूत्र और महासगिका विनय के चीनी अनुवाद। 'फो-कुओ थी' अर्थात् 'बौद्ध देशो का वृत्तात' शीर्षक जो आत्मचरित् उसने लिखा है वह एशियाई देशो के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। विश्व की अनेक भाषाओ मे इसका अनुवाद किया जा चुका है।

स० ग्र०—फा सिएन फो-कुओ थी; हुई-चिआओ काओ-सेंग चु आँन (प्रमुख बौद्ध सन्यासियो का चरित्र), दि ट्रैवेल्स आँव फा सिएन, १९५६ मे पुनर्मुद्रित, लदन)। [ज० यू०]

फॉसिल या जीवाश्म विज्ञान भौमिकी की वह शाखा है जिसका सबध भौमिकीय युगो के उन प्राणियो और पादपो के अवशेषों से है जो अब भूपर्पटी के शैलो मे ही पाए जाते हैं। विज्ञान की इस शाखा के विकास के बहुत पहले से आदिमानव की जानकारी मे यह था कि कुछ प्रकार के शैलो मे एक विचित्र प्रकार के अवशेष पाए जाते हैं जो समुद्री जीवो के अनुरूप होते हैं। ज्ञान के अभाव में उसने पहले पहल इन अवशेषो को जैविक उत्पत्ति का न समझकर, प्रकृति के विनोद की सामग्री समझ रखा था, जो पृथ्वी के अदर किसी शक्ति के कारण बन गए। परतु शनै शनै ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ मनुष्य को इस दिशा में भी अपने विचारो को बदलना पडा और उसने यह पता लगा लिया कि शैलो में पाए जानेवाले अवशेषो के प्राणी किसी न किसी समय में जीवित जीव थे और वह स्थान जहाँ पर हम आज इन जीवाश्मो को पाते है, भौमिकीय युगो में समुद्र के गर्भ में था।

फॉसिल विज्ञान की शाखाएँ और उनका क्षेत्र — फॉसिल विज्ञान कई शाखाओ में विभक्त किया गया है। सुविधा की दृष्टि से अब यह नियम सा बन गया है कि जब हम फॉसिल विज्ञान शब्द का उपयोग करते हैं तब हमारा अभिप्राय केवल अकशेरुकी जीवो के फॉसिलो के अध्ययन से होता है, फॉसिल विज्ञान की जिस शाखा के अतर्गत कशेरुक फ़ासिलो का अध्ययन किया जाता है उसे कशेरुकी जीवाश्म विज्ञान कहते हैं, पादप फॉसिलो का अध्ययन एक भिन्न शाखा के अतर्गत किया जाता है जिसे पादपाश्म विज्ञान (Palaeobotany) कहते हैं। आधुनिक समय में फॉसिल विज्ञान की कुछ अन्य प्रमुख शाखाओ का भी विकास हुआ है, जिनके अध्ययन का क्षेत्र क्रमश अति लघु जीव और फॉसिल मानव हैं।

फॉसिल विज्ञान का क्षेत्र बडा व्यापक है और उसकी सीमा निश्चित रूप से निर्धारित नही की जा सकती। यदि सैद्धातिक दृष्टि से देखा जाए, तो फॉसिल विज्ञान का अभ्युदय पृथ्वी पर जीव के प्रादुर्भाव के साथ साथ प्रारभ हो जाता है, परतु भौमिकीय आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर सपूर्ण जीव के इतिहास के आधे, या उससे भी कम के, जीवो के अभिलेख हमे मिलते हैं। फॉसिल वैज्ञानिक अन्वेषणों का प्रारभकाल ऐसे प्राचीनतम प्राप्य फॉसिलो से किया जा सकता है जिनके जैविक गुण जैविकीय आधार पर बतलाए जा सकते हैं।

फॉसिल विज्ञान की दूसरी सीमा और भी अनिश्चित है, क्योकि यह निश्चित करना कि किस स्थान पर फॉसिल विज्ञान जैविकी से पृथक् किया जा सकता है, प्राय असभव सा है, परतु मोटे तौर से फॉसिल का अत और जैविकी का प्रारभ अत्यत-नूतन युग (pleistocene) और आधुनिक युग के सधिस्थान से ले सकते हैं। इस प्रकार से अनिश्चित और सदिग्ध कैंब्रियन-पूर्व महाकल्प प्राणी एव पादपजात तथा वर्तमान काल के निश्चित तथा अनेक प्रकार के जीवो और पादपो के बीच मे अनेक तथा विभिन्न प्रकार के जीव अवशेष मिलते हैं, जो जीव पर प्रकाश डालते हैं। भूपर्पटी के अवसादी शैलो मे मिलनेवाले ये फॉसिल ही, फॉसिल विज्ञान के अध्ययन के आधार हैं।

फॉसिल विज्ञान और भौमिकी — फॉसिल विज्ञान का भौमिकी, विशेषकर स्तरित-शैल-भौमिकी, से अति घनिष्ठ सबध है। अतीत काल के जीवो के अवशेष स्तरित शैलो मे पाए जाते हैं। इन शैलो के निर्माण के विषय मे और उनका अनुक्रम स्थापित करने मे उनमे पाए जानेवाले फॉसिल बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। वास्तव मे बिना फॉसिलो के स्तरित-शैल-भौमिकी का अध्ययन असभव सा है और यही कारण है कि बहुत सी बातो मे स्तरित-शैल-भौमिकी, एक प्रकार से, व्यावहारिक फॉसिल विज्ञान है।

फॉसिल विज्ञान और जैविकी — फॉसिल विज्ञान का जैविकी के साथ घनिष्ठ सबध है। जैविकी के अतर्गत वर्तमान जीवित प्राणियो और पादपो का अध्ययन किया जाता है, जब कि फॉसिल विज्ञान मे भौमिकीय युगो के उन जीवो और पादपो का अध्ययन किया जाता है जो कभी जीवित थे और अब फॉसिल के रूप मे ही प्राप्य हैं। लेकिन फॉसिल विज्ञान को जैविकी की एक शाखा नही माना जा सकता है, क्योकि फॉसिल विज्ञान के अध्ययन की सामग्री और उसके सग्रह का ढग जैविकी के अध्ययन की सामग्री और उसके सग्रह के ढग से सर्वथा भिन्न हैं।

फॉसिल विज्ञान और जातिवृत्त (Phylogeny) — जीवविज्ञानी फॉसिल विज्ञान में इसलिये अत्यधिक अभिरुचि रखते हैं कि इसका जीवविकास जैसे विषय से निकट सबध है। प्राणियो और पादपो की जातियो का इतिहास अथवा जातिवृत्त, स्तरित शैलो के अनुनमित

स्तरों से प्राप्त किए फॉसिलों के अध्ययन के आधार पर अधिक विश्वासपूर्वक अनुरेखित किया जा सकता है। परन्तु जीवों के अपूर्ण अभिलेख के कारण उनके जातिवृत्त के अनुरेखन में अत्यधिक बाधा पड़ती है, क्योंकि भौमिकीय युगों में पाए जानेवाले प्राणियों और पादपों में से कुछ ही, और उनमें से अधिकांश अपूर्ण दशा में, इन शैलों में परिरक्षित पाए जाते हैं। अभिलेख की इस अपूर्णता के बावजूद अनेक जीववर्ग में, जब उनका अनुरेखन शैलों के एक स्तर से दूसरे स्तर में किया जाता है तब, शनै शनै परिवर्तन होने लगते हैं। जब फॉसिलों के प्रतिरूप विभिन्न अनुक्रमित स्तरों में एकत्रित किए जाते हैं, तब प्रत्यक्ष रूप में दो भिन्न दिखाई पड़नेवाली जातियाँ बीच के फॉसिलों द्वारा सबंधित दिखाई पड़ती हैं और निम्नतम स्तर में पाई जानेवाली जाति से लेकर उच्चतम स्तर में मिलनेवाली जाति तक के बीचवाले स्तरों के फॉसिलों के जीवों में हुए परिवर्तनों को देखा जा सकता है।

फॉसिलों से जातिवृत्त का पता लगाने के लिये, स्तरीय रीति के अतिरिक्त शारीर तथा व्यक्तिवृत्त (ontogeny) की तुलनात्मक रीतियों का भी प्रयोग किया जा सकता है। अत फॉसिल विज्ञान इस धारणा की पुष्टि करता है कि जीवविकास शनै शनै तथा क्रमश होनेवाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप हुआ। इस बात के बताने का भी प्रमाण है कि जीव विकास नियतविकासीय (orthogenetic) था। कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ जीवों के वर्ग में जीवविकासीय परिवर्तन युग युगांतर तक किसी निश्चित दिशा में हुए और इसके अतिरिक्त ऐसे सबद्ध वर्ग जो एक ही पैतृक उत्पत्ति के हैं, एक दूसरे से तथा वाह्य दशाओं से बिना प्रभावित हुए, अपने विकास में समान अवस्थाओं अथवा उससे मिलती जुलती अवस्थाओं में से गुजरे, जिससे यह प्रकट हो जाता है कि जीवों के विभिन्न वर्गों में विकास की दिशा, सर्वसाधारण पूर्वज से पैतृक गुणों द्वारा निश्चित हो जाती है।

फॉसिल विज्ञान और औणिकी (Embryology) — जीवित पादपों और प्राणियों का एककोशिका अंडे से ले करके अंतिम दशा तक विकास की संपूर्ण अवस्थाओं का अनुरेखन करना, औणिकी और जीववृत्ति के अंतर्गत आता है। किसी वर्ग के पादपों और प्राणियों की जातियों का विकास, कम से कम अपनी प्रारंभिक अवस्थाओं में लगभग समान होता है और एक वर्ग के अंतर्गत आनेवाले संपूर्ण भ्रूणों में, किसी एक अवस्था तक एक दूसरे में, इतनी सदृश्यता होती है वे पृथक् नहीं किए जा सकते। इस तथ्य ने उन आकारों में अत्यधिक बधुत्व प्रगट किया है, जो प्रौढ़ावस्था में एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न होते हैं। इस बात की वास्तविकता कशेरुकियों में देखने को मिलती है, जिनके भ्रूण प्रारंभिक अवस्थाओं में अति कठिनाई के साथ एक दूसरे से अलग किए जा सकते हैं और जो बहुत धीरे धीरे अपने वर्ग अथवा गण की लाक्षणिक आकृतियों को धारण कर लेते हैं।

इन भ्रूणीय अन्वेषणों के परिणामों का फॉसिल विज्ञान के साथ विशेष सबध है। ऐसे अनेक फॉसिल जानकारी में हैं जो अपने से अपने से सबधित आधुनिक जीवों की तुलना में भ्रूणीय, अथवा कम से कम डिंभीय, अथवा किशोरावस्था के लक्षण दिखाते हैं। इस प्रकार के आदिम अथवा भ्रूणीय प्रकारों के उदाहरण कशेरुकों में विशेष करके देखने को मिलते हैं, क्योंकि इनमें कंकाल जीवन के अति प्रारंभिक काल ही में अश्मीभूत हो जाते हैं। अत आधुनिक जीवों की प्रौढ़ अवस्थाओं की तुलना सीधे प्रौढ़ फ़ॉसिल से की जा सकती है।

फॉसिल या जीवाश्म — जीवाश्म को अंग्रेजी में फॉसिल कहते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'फॉसिलस' से है, जिसका अर्थ 'खोदकर प्राप्त की गई वस्तु' होता है। सामान्यत जीवाश्म शब्द से अतीत काल के भौमिकीय युगों के उन जैव अवशेषों से तात्पर्य है जो पृथ्वी के अवसादी शैलों में पाए जाते हैं। ये जीवाश्म यह बतलाते हैं कि वे जैव उद्गम के हैं तथा अपने में जैविक प्रमाण रखते हैं।

प्राणियों और पादपों के जीवाश्म बनने के लिये दो बातों की आवश्यकता होती है। पहली आवश्यक बात यह है कि उनमें कंकाल, अथवा किसी प्रकार के कठोर अंग, का होना अति आवश्यक है, जो जीवाश्म के रूप में शैलों में परिरक्षित रह सकें। जीवों के कोमलांग अति शीघ्र विघटित हो जाने के कारण जीवाश्म दशा में परिरक्षित नहीं रह सकते। भौमिकीय युगों में पृथ्वी पर ऐसे अनेक जीवों के समुदाय रहते थे जिनके शरीर में कोई कठोर अंग अथवा कंकाल नहीं था। अत फॉसिल विज्ञानी ऐसे जीवों के समूहों के अध्ययन से वंचित रह जाते हैं, क्योंकि उनका कोई अंग जीवाश्म स्वरूप परिरक्षित नहीं पाया जाता, जिसका अध्ययन किया जा सके। अत जीवाश्म विज्ञान क्षेत्र उन्हीं प्राणियों तथा पादपों के वर्गों तक सीमित है जो फॉसिल बनने के योग्य थे। दूसरी आवश्यक बात यह है कि कंकालों अथवा कठोर अंगों को क्षय और विघटन से बचाने के लिये अवसादों में तुरंत ढक जाना चाहिए। थलवासी जीवों के स्थायी समाधिस्थ होने की संभावना अति विरल होती है,
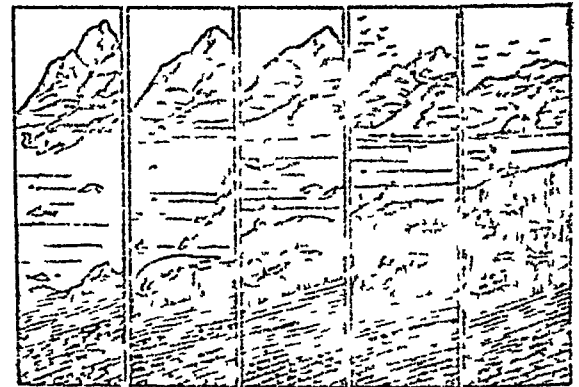
चित्र १

चित्र में क्रमश पृथ्वी का अपक्षरण तथा सागरतल पर मिट्टी के स्तरों का निक्षेप बनना दिखाया गया है। अत्यधिक तथा दीर्घकालीन दाब के कारण, ये निक्षेप शिला में परिवर्तित हो जाते हैं और इन शिलाओं में स्तरों के बनने के समय वर्तमान, प्रारंभिक जीवों के कंकाल, कवच आदि सुरक्षित रीति से बंद रह जाते हैं।

क्योंकि स्थल पर ऐसे बहुत कम स्थान होते हैं जहाँ पर अवसाद सतत बहुत बड़ी मात्रा में संचित होते रहते हों। बहुत ही कम

परिस्थितियो मे थलवासी जीवो के कठोर भाग बालूगिरि के बालू मे दबने से अथवा भूस्खलन मे दबने के कारण परिरक्षित पाए गए हो। जलवासी जीवो के फॉसिल होने की सभावना अत्यधिक अनुकूल इसलिये होती है कि अवसादन स्थल की अपेक्षा जल में ही बहुत अधिक होता है। इन जलीय अवसादो में भी, ऐसे जलीय अवसादो मे जिनका निर्माण समुद्र के गर्भ में होता है, बहुत बडी सख्या मे जीव अवशेष पाए जाते हैं, क्योकि समुद्र ही ऐसा स्थल है जहाँ पर अवसादन सबसे अधिक मात्रा में सतत होता रहता है।

विभिन्न वर्गों के जीवो और पादपो के कठोर भागो के आकार और रचना में बहुत भेद होता है। कीटो तथा हाइड्रा (hydra) वर्गों में कठोर भाग ऐसे पदार्थ के होते हैं जिसे काइटिन कहते हैं, अनेक स्पज और डायटम (diatom) बालू के बने होते हैं, कशेरुकी की अस्थियो में मुख्यत कैल्सियम कार्बोनेट और फॉस्फेट होते हैं, प्रवालो (coral), एकाइनोडर्माटा (Echinodermata), मोलस्का (mollusca) और अनेक अन्य प्राणियो में तथा कुछ पादपो में कैल्सियम कार्बोनेट होता है और अन्य पादपो में अधिकाशत काष्ठ ऊतक होते हैं। इन सब पदार्थों में से काइटिन बडी कठिनाई से घुलाया जा सकता है। बालू, जब उसे प्राणी उत्सर्जित करते हैं, तब बडा शीघ्र घुल जाता है। यही कारण है कि बालू के बने ककाल बडे शीघ्र घुल जाते हैं। कैल्सियमी ककालो में चूने का कार्बोनेट ऐसे जल में, जिसमें कार्बोनिक अम्ल होता है, अति शीघ्र घुल जाता है, परतु विलेयता की मात्रा चूने के कार्बोनेट की मात्रा के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। चूर्णीय ककाल कैल्साइट (calcite) अथवा ऐरेगोनाइट (aragonite) के बने होते हैं। इनमें से कैल्साइट के कवच ऐरेगोनाइट के कवचो की अपेक्षा अधिक दृढ और टिकाऊ होते हैं। अधिकाश प्राणियो के कवच कैल्साइट अथवा ऐरेगोनाइट के बने होते हैं।

अवसादी शैलो में परिरक्षित जीवाश्म निम्न प्रकार के होते हैं :

(१) संपूर्ण परिरक्षित प्राणी — ऐसा बहुत विरल होता है कि बिना किसी प्रकार के विघटन के किसी प्राणी का जीवाश्म प्राप्त हो, किंतु ऐसे परिरक्षित जीवाश्म के उदाहरण मैमथ और राइनोसिरस के जीवाश्म हैं, जो टुड्रा के हिम में जमे हुए पाए गए हैं।

(२) प्रायः अपरिवर्तित दशा में परिरक्षित पाए जानेवाले कंकाल — कभी कभी जब शैलो मे केवल ककाल ही परिरक्षित पाया जाता है तब यह देखा गया है कि वह अपनी पहले जैसी, तब की अवस्था में है जब वह समाधिस्थ हुआ था। परिवर्तन केवल इतना होता है कि फॉसिल दशा में ककाल से कार्बनिक द्रव्यो का लोप हो जाता है।

(३) कार्बनीकरण — कुछ पादपो और कुछ प्राणियो में, जैसे ग्रैप्टोलाइट (graptolite), जिनमें ककाल काइटिन का बना होता है, मूल द्रव्य कार्बनीकृत हो जाता है। जीव मे अपघटन होता है, जिसके फलस्वरूप ऑक्सीजन और नाइट्रोजन का लोप हो जाता है और कार्बन रह जाता है।

(४) कंकालों का साँचा — कभी कभी कंकाल या कवच विलीन हो जाते हैं और उनके स्थान पर उनका केवल साँचा रह जाता है। यह इस प्रकार होता है कि कवच के अवसाद से ढक जाने के उपरात, कवच का आतरिक भाग भी अवसादवाले द्रव्य से भर जाता है। इसके उपरात कार्बोनिक अम्ल मिश्रित जल, शैल में रिसता हुआ उस स्थान तक पहुँच जाता है जहाँ पर कवच गडा हुआ रहता है और उसे कैल्सियम के बाइकार्बोनेट के रूप में पूर्णत. विलीन कर देता है। इसके परिणामस्वरूप कवच के स्थान पर कवच के आतरिक और बाह्य आकार का केवल एक साँचा देखने को मिलता है। इन दोनो के बीच के स्थान में मूलत कवच था और यदि यह स्थान मोम से भर दिया जाए तो कवच का यथार्थ साँचा मिल जाता है।

(५) अश्मीभवन (Petrification) — कभी कभी फॉसिलो में उन जीवो के, जिनके ये फॉसिल हो गए हैं, सूक्ष्म आकार तक देखने को मिलते हैं। अतर केवल इतना होता है कि ककालो का मूल द्रव्य किसी खनिज द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है। इस क्रिया को अश्मीभवन कहते हैं। अश्मीभवन का अति उत्तम उदाहरण अश्मीभूत काष्ठ है, जो देखने में बिल्कुल वैसे ही दिखलाई पडते हैं जैसा जीवित पादपो का काष्ठ होता है (देखें फलक)। यह परिवर्तन इस प्रकार होता है कि जब आदिकाष्ठ का एक कण हटता है तब उसके स्थान पर तुरत बालू अथवा अन्य किसी खनिज का एक कण आ जाता है, जिससे काष्ठ का आदि आकार ज्यो का त्यो बना रहता है।

इस विधि से मूल द्रव्य को हटानेवाले मुख्य खनिज ये हैं (१) कैल्सियम का कार्बोनेट, (२) बालू, (३) लोहमाक्षिक, (४) लोह ऑक्साइड और (५) कभी कभी कैल्सियम का सल्फेट आदि।

(६) चिह्न — कभी कभी जीव जतुओ के पादचिह्न, बिल, छिद्र आदि शैलो में पाए जाते हैं। यद्यपि ये जीवजतुओ के कठोर अगो के कोई भाग नही है और इसलिये इनको फॉसिल नही कहा जा सकता, फिर भी ये उतने ही महत्व के समझे जाते हैं जितने फॉसिल।

जीवाश्मो के उपयोग निम्नलिखित हैं

(१) शैलों के सहसंबंध (correlation) में जीवाश्मों का उपयोग — वे जीव जो आज हमें जीवाश्म के रूप में मिलते हैं, किसी भौमिकीय युग के किसी निश्चित काल में अवश्य ही रहे होगे। अत. वे हमारे लिये बडे महत्व के हैं। विलियम स्मिथ और क्यूव्ये महोदय के, जो स्तरित भौमिकी के जन्मदाता हैं, समय से ही यह बात भली भाँति विदित है कि अवसादी शैलो में पाए जानेवाले जीवाश्मो और उनके भौमिकीय स्तभ (column) के स्थान में एक निश्चित सबध है। यह भली भाँति पता लग चुका है कि शैलें जितनी अल्पायु होगी उतना ही उनमें प्राप्त प्राणी विभिन्न प्रकार के और पादपसमुदाय जटिल होगा, और वे जितनी दीर्घायु होगी उतना ही सरल और साधारण उनका जीवाश्मसमुदाय होगा। अत शैलो का. स्तरीय स्थान निश्चय करने मे जीवाश्मो का प्रमुख स्थान है और वे बडे महत्व के सिद्ध हुए हैं।

कैंब्रियनपूर्व के प्राचीन शैलो में जीवाश्म नही पाए जाते। अत जीवाश्मो के अभाव में जीवाश्मो की सहायता से इन शैलो का सहसबध नही स्थापित किया जा सकता। इसके लिये अन्य विधियो का उपयोग किया जाता है। कैंब्रियन से लेकर आज तक के भौमिकीय स्तभ के समस्त मुख्य भागो के प्राणी और पादपो का पता लगा लिया गया है। अत पृथ्वी के किसी भी भाग में इन भागों के सम भागो का पता लगाना अब अपेक्षया सरल है।

(२) जीवाश्म प्राचीन काल के भूगोल के सूचक — पुराभूगोल के अंतर्गत, प्राचीन काल के स्थल और समुद्र का विस्तरण, उस काल की सरिताएँ, झील, मैदान, पर्वत आदि आते हैं। किसी विशेष वातावरण के अनुसार ही जीव अपने को स्थिति के अनुकूल कर लेते हैं, यह बात जितनी सच्ची आधुनिक समय में है उतनी ही सच्ची अतीत के भौमिकीय युगों में भी थी। अत जीवाश्मों की सहायता से हम यह पता लगा सकते हैं कि किस स्थान पर डेल्टा, पर्वत, नदी, समुद्रतट, छिछले अथवा गहरे समुद्र थे, क्योंकि स्थल में रहनेवाले जीव, जलवासी जीवों से और जल में रहनेवाले जीवों में अलवण जलवासी जीव लवण जलवासी जीवों से सर्वथा भिन्न होते हैं।

(३) जीवाश्म पुराजलवायु के सूचक — जीवाश्मों की सहायता से भौमिकीय युगों की जलवायु के विषय में भी किसी सीमा तक अनुमान लगाया जा सकता है। इस दिशा में स्थल पादपों द्वारा प्रदान किए गए प्रमाण विशेष महत्व के होते हैं, क्योंकि उनका विस्तरण समुद्री जीवों की अपेक्षा अधिकांशत ताप के अनुसार होता है और वे सरलतापूर्वक जलवायु के अनुसार भिन्न भिन्न भागों में पृथक् किए जा सकते हैं। समुद्री जीवों में कुछ का विस्तरण जलवायु की दशाओं के अनुसार होता है, जैसे प्रवाल, जो गरम जलवायु में रहते हैं।

(४) जीवाश्म जीवविकास के सूचक — जीवाश्मों ने जीवविकास के सिद्धांत पर बहुत प्रकाश डाला है और बिना जीवाश्मों की सहायता के जीवविकास का अनुरेखण करना असभव सा है।

जीवाश्म संग्रह का उद्देश्य — जीवाश्मों का सग्रह जीवाश्मीय तथा स्तरिक शैल विज्ञान दोनों की दृष्टि से किया जाता है। जीवाश्मों के सग्रह के समय निम्नलिखित बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिए

(१) यदि भौमिकीय रचना अल्पजीवाश्मीय हो तो सब जीवाश्मों का सग्रह करना चाहिए, चाहे वे पूर्ण हों अथवा खडमय। (२) यदि जीवाश्मों का निकालना असभव न हो तो कभी भी पूर्ण जीवाश्मों को छोड न देना चाहिए। उन्हें सुगमता से निकाल लेना चाहिए। (३) ऐसा खडमय जीवाश्म, जिसमें सविस्तार आकारकीय लक्षण मिलते हों उन अनेक पूर्ण जीवाश्मों से कहीं अधिक महत्व का है, जिनमें आकारकीय लक्षणों का अभाव हो। (४) कभी भी क्षेत्र में जीवाश्मों को पहचानने का प्रयत्न न करना चाहिए। (५) यदि जीवाश्मों का सग्रह स्तरिक-शैल-विज्ञान की दृष्टि से किया गया हो तो अलग अलग प्रत्येक रचना से जीवाश्मों का सग्रह आवश्यक है।

जीवाश्म के स्तरित शैलविज्ञानीय स्थान का महत्व — यह निश्चय करना बड़ा महत्वपूर्ण है कि जीवाश्म किस स्तर से सग्रहीत किए गए हैं, क्योंकि बिना यह मालूम किए जीवाश्मों का सग्रह प्राय अर्थहीन सा हो जाता है। उसका निश्चय सुगमता के साथ जीवाश्म-सग्रह के समय किया जा सकता है। जीवाश्मों के सग्रह के साथ साथ शैलीय रचनाओं के मुख्य मुख्य और विशिष्ट लक्षणों को भी लिख लेना चाहिए।

जीवाश्मसग्रह के विषय में कुछ प्रमुख बातें — जीवाश्मसग्रह में जीवाश्म विज्ञानी के लिये एक हलका हथौड़ा, छेनी, छोटी छोटी थैलियाँ और रद्दी कागज बड़े उपयोगी होते हैं।

यदि बड़े बड़े जीवाश्मों की खोज हो, तो सबसे पहले अनावरित स्तरों की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि जीवाश्म वहाँ नहीं दिखाई पड़ते, तो हाल ही में भग्न हुए आधार से पाए जाने की सभावना रहती है। यदि कोई जीवाश्म कठोर शैल में लगा हुआ दिखाई पड़े, तो एकाएक निकालने का प्रयास न करना चाहिए बल्कि उसके आसपास के स्थान में दरारों का पता लगा लेना चाहिए। इन दरारों से शैल के वह भाग आसानी से तोड़े जा सकते हैं जिनमें जीवाश्म लगे हुए हैं। इस प्रकार से जीवाश्मों के निकालते समय इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि शैल पर हथौड़ा, जीवाश्म से जितनी दूर सभव हो, चलाना चाहिए। ऐसा करने से जीवाश्म के टूटने की सभावना कम हो जाती है और शैल सहित जीवाश्म अलग हो जाता है।

यदि फोरैमिनीफेरा (Foraminifera) जैसे छोटे जीवाश्मों का संग्रह करना है, तो इनका एक एक करके सग्रह करना स्पष्टत असभव सा है। ऐसी दशा में असबद्ध शैलों, अथवा शैल नमूनों का ही सग्रह करना उचित होगा। इस प्रकार से लाई गई सामग्री बाद में प्रयोगशाला में सदलन की जाती है और उनको एक हस्त लेंस से देखने पर उनमें अनेक लघु जीवाश्म दिखाई पड़ते हैं, जिनको चलनियों की सहायता से आधार से अलग कर सकते हैं।

क्षेत्र में जीवाश्मों के संग्रह के उपरात प्रत्येक जीवाश्म के साथ एक लेबल (label) लगा देना चाहिए, जिसमें दो बातों का उल्लेख बड़ा आवश्यक होता है (१) वह यथार्थ स्तर, जिससे जीवाश्म लिया गया है और (२) स्थान का नाम, जहाँ से जीवाश्म का सग्रह किया गया है। ऐसा करने के उपरात जीवाश्म को रद्दी कागज में लपेटकर और डोरे से बाँधकर प्रयोगशाला में लाना चाहिए।

शैल आधार से जीवाश्म के पृथक्करण की विधि — शैल आधार से जीवाश्म निकालने की विधि एक प्रकार की कला है। इस विषय में कोई पक्के नियम नहीं बतलाए जा सकते, क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकार की समस्याएँ सामने आती हैं। किस विधि से और कैसे जीवाश्म को प्रस्तर से अलग किया जा सकता है, इसको एक अनुभवी जीवाश्म विज्ञानी जीवाश्म को देखकर समझ लेता है। जिन शैल आधारों में जीवाश्म सचित रहते हैं वे मृदु मृदा से लेकर सघन शैल तक होते हैं, जिनकी कठोरता इस्पात के बराबर हो सकती है। जीवाश्म की कठोरता की सीमा में इतना अधिक अतर नहीं होता। जीवाश्म निकालते समय जीवाश्म विज्ञानी का यह ध्येय होता है कि जीवाश्म को बिना किसी प्रकार क्षति पहुँचाए शैल से पृथक् कर दे।

यदि आधार जीवाश्म की अपेक्षा मृदु प्रकृति का है, तो उसे सुगमतापूर्वक एक ब्रुश की सहायता से हटा सकते हैं। यदि जीवाश्म असबद्ध चूनापत्थर में खनित पाए जाते हैं, तो उसे भी हम दाँत साफ करनेवाले ब्रुश की सहायता से अलग कर सकते हैं। यदि शैल आधार चाक प्रकृति का है तो इन उपकरणों में अमित ब्रुश की सहायता से उसे अलग कर सकते हैं।

अन्य अवसरों पर जब जीवाश्म भगुर हो और बड़ी दृढ़ता के साथ शैल के आधार में जुड़े हों तब हथौड़े मार मारकर जीवाश्मों का अलग करना कठिन होता है। ऐसी दशा में प्रस्तर को कई बार

गरम करके तुरत पानी में डाल देने से, जीवाश्मो का प्रस्तर से अलगाव सरलता से हो जाता है। बालू और अन्य चूनेदार शैलों से फोरैमिनीफेरा जैसे जीवाश्मो के निकालने मे, शैल को पहले तोड लेते हैं और फिर उसको कई प्रकार का चलनियों में छान लेते हैं। इससे जीवाश्म शैल भाग से अलग हो जाते हैं। जब शैल कठोर होते हैं तब दूसरा ढग उपयोग मे लाया जाता है। शैल को छोटे छोटे टुकडो मे तोड लेते हैं और फिर उनको इतना गरम करते हैं कि वे पूर्णत सूख जाएँ और फिर उनको इसी गरम अवस्था मे ही ठडे पानी मे डाल देते हैं। इस प्रकार से कठोर मृदा कीच मे अपविघटित हो जाती है और फिर अत में जीवाश्मो को प्रस्तर भाग से धो करके अलग कर लेते हैं।

जब यात्रिक रीतियो से जीवाश्मो का पृथक्करण सभव नही होता तब रासायनिक विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। इनमें सबसे सरलतम ऋतुक्षरण की विधि है, जो बहुत सी दशाओं में बिना जीवाश्मो को किसी प्रकार हानि पहुँचाए हुए शैल आधार को अपघटित कर देता है। बहुत ही तनु अम्ल के उपयोग में लाने से यह क्रिया शीघ्र हो जाती है। यहाँ यह बतला देना ठीक होगा कि अम्ल का प्रयोग बडी सावधानी के साथ करना चाहिए, क्योकि अधिकाश जीवाश्मो के पजर चूनेदार होते हैं और उनपर अम्ल का प्रभाव तुरत होता है।

साधारणत. कॉस्टिक पोटाश ठीक प्रकार का अभिकारक है, जिसका बिना किसी भय के उपयोग कर सकते हैं। इसके छोटे छोटे कणो को सूखी अवस्था में उस सारे शैल आधार पर डाल देते हैं जिसे हटाना होता है। चूँकि कॉस्टिक पोटाश प्रस्वेद्य (deliquescent) प्रकृति का होता है। अत यह आधार के अदर प्रविष्ट कर जाता है और उसको अपघटित कर देता है। यह एकिनोडर्मा (Echinoderma), अथवा मोलस्क, को कोई क्षति नही पहुँचाता। ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) में इसका उपयोग नही करना चाहिए, क्योकि यह इनके परतदार पजरो में सुगमतापूर्वक प्रविष्ट कर जाता है, जिसके कारण इनकी परतें अलग हो जाती है। अत में जीवाश्मो को अच्छी प्रकार जल से धो डालना चाहिए।

शेल (shale) जैसे शैलो मे परिरक्षित ग्रैप्टोलाइट (graptolite) और पादप जीवाश्म का पृथक्करण 'स्थानातरण विधि' से किया जाता है। इस पृथक्करण की मुख्य मुख्य बातें निम्नलिखित हैं

(१) नमूने का वह तल, जिसमे जीवाश्म है, नीचे करके कैनाडा बालसम की सहायता से काच की स्लाइड मे चिपका देते हैं।

(२) शेल का जितना भाग सुगमता से काटा या घिसा जा सकता हो उसे काट अथवा घिस लेते है।

(३) शेल तल को भिगो लेते हैं और फिर उसको पिघले हुए मोम मे डुबा देते है। मोम आर्द्र तल से सुगमता से पृथक् हो जाता है और काच पर कोई रासायनिक क्रिया नही होने देता।

(४) शेल युक्त सपूर्ण जीवाश्म को हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल के अम्लतापक (acid bath) में रख देते हैं। यह जीवाश्म को तनिक भी क्षति पहुँचाए बिना शेल भाग को गला देता है।

(५) धोने के उपरात पादप अथवा ग्रैप्टोलाइट जीवाश्म को कवर ग्लास से ढँक देना चाहिए।

इस प्रकार से निकाले गए ग्रैप्टोलाइट और कुछ पादप जैसे कोमल जीवाश्मो के आधुनिक जीवो की भाँति सूक्ष्मदर्शी की सहायता से परिच्छेद बनाए जा सकते हैं। कठोर जीवाश्मो के भी परिच्छेद घिस करके बनाए जा सकते हैं। इसमे घिसते समय नियमित अवधियों पर फोटो लेना पडता है। इस विधि मे सबसे बडा दोष यह है कि जिस जीवाश्म का परीक्षण इस विधि से किया जाता है वह नष्ट हो जाता है।

जीवाश्मो के पृथक्करण की उपर्युक्त विधियो के अतिरिक्त ब्रैकियोपोडा के बाहुकुतलो (brachial spiral) के अनुरेखन के लिये कुछ विशेष विधियाँ होती हैं। इन विधियो से ट्राइलोबाइटीज (Trilobites), ऐमोनाइटीज (Ammonites) और एकाइनोडरमीज मे सीवनरेखा का अनुरेखन भी अति महत्व का कार्य है। यह किसी प्रकार के अभिरजन की सहायता से विशिष्ट बनाया जा सकता है। भारतीय मसि इस कार्य के लिये उत्तम है।

नामपद्धति और वर्गीकरण — जीवाश्मो को निश्चित नाम देना जीवाश्म विज्ञानी के लिये इसलिये महत्व का है कि जीवाश्मो मे वह अधिक यथार्थ विभेद कर सके। जीवाश्मो का नामकरण सामान्यत उन्ही सिद्धातो पर आधारित है जिनपर प्राणियो का। प्राणिजगत् अनेक सघो मे विभक्त है और प्रत्येक सघ अनेक वर्गो, गणो, कुलो, वशो और जातियो मे विभक्त है (देखें प्राणिविज्ञान)।

जीवाश्मो के कई प्रकार के प्ररूप होते हैं। यदि अन्वेषक किसी जाति के जीवाश्म के एक प्रतिरूप के आधार पर उस सपूर्ण जाति का वर्णन करता है, तो वह जीवाश्म प्रतिरूप उस जाति का नाम प्ररूप (Holotype) कहलाता है।

यदि किसी एक जाति के नामप्ररूप का निश्चय करने मे अन्वेषक अन्य जीवाश्म नमूनो की सहायता लेता है, तो इन अतिरिक्त नमूनो को पैराटाइप (Paratype) कहते हैं।

यदि अन्वेषक बिना नामप्ररूप का निश्चय किए ही कई अन्य जीवाश्म नमूनो की सहायता लेता है, तो इन जीवाश्म नमूनो को सहप्ररूप (Cotype) कहते है।

यदि किसी जाति के जीवाश्म का सहप्ररूप उस जाति के प्रारभिक वर्णन के पश्चात् उस जाति का प्ररूप चुन जाता है, तो वह जीवाश्म प्ररूप लेक्टोटाइप (Lectotype) कहलाता है।

जिस प्रकार एक जाति के वर्णन के लिये जीवाश्म नमूने होते हैं उसी प्रकार एक वश के वर्णन के लिये प्ररूप जाति अथवा समजीनी (genotype) जीवाश्म होते है।

यदि कोई अन्वेषक किसी एक नए वश का वर्णन किसी एक विशेष जाति के आधार पर करता है, तो वह जाति उस वश के लिये जेनोहोलोटाइप (genoholotype) हो जाती है।

यदि अन्वेपक नए वश के वर्णन मे ऐसी जातियो की सूची दे देता है जिनको वह यह समझता है कि वे नए वश के अतर्गत आते हैं, तो इन सब जातियो को जेनोसिनटाइप कहते हैं।

बहुत से जेनोसिनटाइपो मे से बाद मे आदि अन्वेपक द्वारा अथवा बाद मे किसी अन्य अन्वेषक द्वारा ए० जेनोलेक्टोटाइप (genolectotype) छाँटा जा सकता है।

भौमिकीय काल पांच वृहत भागो में बँटा हुआ है। ये क्रमश आर्कियोजोइक महाकल्प (Archeozoic Era), प्राग्जीव महाकल्प- (Proterozoic Era), पुराजीवी महाकल्प (Paleozoic Era), मध्य-जीवी महाकल्प (Mesozoic Era) और नूतनजीव महाकल्प (Cenozoic Era) हैं, जिनमे आर्कियोज़ोइक महाकल्प सबसे प्राचीन है। भौमिकीय काल का इन पांच महाकल्पो मे विभाजन मुख्यत इन महाकल्पों मे मिलनेवाले प्राणियो और पादपो के जीवाश्मो पर ही आधारित है। इनमे से आर्कियोज़ोइक महाकल्प जीवशून्य था। इस महाकल्प मे न किसी प्रकार के जीवजतु और न पौधे ही थे। अत इस काल के शैलों मे हमको किसी भी प्रकार के जीवाश्म नही मिलते हैं। प्राग्जीव महाकल्प मे प्रोटोज़ोआ जैसे अति साधारण प्रकार के जीवजतु अस्तित्व में आए। परतु इन साधारण जीवो मे किसी भी प्रकार के कडे भाग के अभाव के कारण वे शैलो मे परिरक्षित न हो सके। अत प्राग्जीव महाकल्प के शैलो मे भी जीवाश्म नहीं मिलते। अन्य तीनों महाकल्प, अर्थात् पुराजीवी महाकल्प (Palaeozoic) मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic) और नूतनजीवी महाकल्प (Cenozoic) जीवाश्ममय हैं। इन महाकल्पो के अतर्गत आनेवाले जितने भी छोटे से लेकर बडे तक विभाजन हैं वे सब पूर्णत उस काल मे पाए जानेवाले जीवो के जीवाश्म पर ही आधारित हैं। अत हम देखते हैं कि स्तरित शैलविज्ञानी का काम बिना जीवाश्म विज्ञान की सहायता के नही चल सकता। यही कारण है कि जीवाश्म विज्ञान स्तरित शैलविज्ञान का मेरुदड कहलाता है।

मोटे तौर पर जीवाश्म विज्ञान के आधार पर निम्नलिखित चार मुख्य प्राणी तथा पादप जातीय महाकल्प स्थापित किए जा सकते हैं

(१) पूर्व पुराजीवी महाकल्प — इसके अतर्गत कैंब्रियन (cambrian), ऑर्डोविशन (ordovician) और सिल्यूरियन (silurian) कल्प आते हैं।

(२) उत्तर पुराजीवी महाकल्प — इसके अतर्गत डिवोनी (devonian), कार्बनी (carboniferous) और परमियन कल्प आते हैं।

(३) मध्यजीवी महाकल्प

(४) नूतनजीव महाकल्प — अभिनव काल भी इसके अतर्गत है।

१ पूर्व पुराजीवी महाकल्प के प्राणी — प्राय सब प्रमुख अकशेरुकी प्राणियो के प्रतिनिधि जीवाश्म कैंब्रियन स्तरो मे पाए जाते हैं और उनमे से ट्राइलोबाइट जैसे कुछ प्राणी आदिकैंब्रियन काल मे ही अपेक्षया अधिक विकसित हो चुके थे। अत यह धारणा कि कैंब्रियन स्तरो मे पाए जानेवाले सब वर्गों के पूर्वज कैंब्रियन पूर्व काल मे पाए जाते थे, बिलकुल उचित है, यद्यपि उनके अवशेष कैंब्रियन पूर्व शैलो मे नहीं मिलते। यह कल्पना की जा सकती है कि कैंब्रियन-पूर्व समुद्रों मे सब प्रकार के प्राणी रहते थे, परतु वे सब कोमलागी पूर्वज थे, जिन्होंने अपने अस्तित्व के विषय मे किसी भी प्रकार के चिह्न नहीं छोडे हैं। चूँकि सब प्रकार के प्राणी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पौधो पर निर्भर रहते हैं और पौधो मे ही केवल अकार्बनिक खाद्य पदार्थ के परिपाचन की शक्ति होती है, अत यह भी धारणा उचित प्रतीत होती है कि कैंब्रियन पूर्व काल मे पौधे अस्तित्व मे थे। परतु यह आश्चर्य की बात है कि पौधों के अवशेष पुराजीवी महाकल्प के स्तरो मे नही पाए गए हैं।

पूर्वपुराजीवी महाकल्प के प्राणीजगत् के मुख्य लक्षणो का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :

(क) पौधो का अभाव था।

(ख) कशेरुकियों का भी अधिकाश रूप में अभाव रहा। यह अकशेरुकियो का युग था।

(ग) आर्थ्रोपोडा — इसमें ट्राइलोबाइट की अति प्रचुरता थी। अधिकाशत ये उथले जलवासी थे और इनका उपयोग क्षेत्रीय जीवाश्म के रूप में किया जाता है। इनमें से कुछ गहरे जल के वासी थे, जो या तो बडी बडी आँखोंवाले थे, अथवा नेत्रविहीन थे। क्रस्टेशिया (crustacia) विरल थे, किंतु यूरिप्टेरिडा (eurypterida) का सिल्यूरियन कल्प मे बाहुल्य हो गया था।

(घ) मोलस्का (Mollusca) — इसमें गैस्ट्रोपोडा का बाहुल्य था, किंतु लैमलीब्रैंकिआ प्रारभिक प्ररूप में थे। सेफैलोपोडा का नॉटिलाइट के रूप में बाहुल्य था।

(च) ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) — इनका कैंब्रियन एव सिल्यूरियन कल्प मे बाहुल्य था। फॉस्फेटी कवचवाले प्राणी कैल्सियमी कवचवाले प्राणियों की अपेक्षा अधिक थे।

(छ) एकाइनोडर्मेटा (Echinodermata) — आदिम सिस्टिड और क्राइनॉइड्स (crinoids) महत्व के थे।

(ज) सीलेन्ट्रेटा (Coelenterata) — ग्रैपटोलाइटीज़ (Graptolites) अति महत्व के थे। वे अधिकाशत गहरे और शात जल के वासी थे।

(झ) पॉरिफेरा (Porifera) — स्पज महत्व के नहीं थे।

(ट) प्रोटोज़ोआ (Protozoa) — यद्यपि रेडियोलेरिया और फोरैमिनीफेरा अति सरल आकार के थे, तथापि वे पूर्व पुराजीव महाकल्प में महत्व के नही थे।

२ उत्तर पुराजीवी महाकल्प के प्राणी — यह मत्स्य और पर्णांग समान स्थल पादपो का, जिन्हे टेरिडोस्पर्म्स कहते हैं, युग था। इनके साथ गोनियोटाइट्स, स्पीरीफरिड बाहुपाद और रयूगोस प्रवाल पाए जाते थे।

(क) पादप — बीजपादप परतु पर्णांग समान टेरिडोस्पर्म्स, इस युग के मध्य कल्प में महत्व के हो गए थे।

(ख) कशेरुकी — उपर्युक्त महाकल्प डेवोनी कल्प मत्स्यो का कल्प था। अन्य पाए जानेवाले कशेरुकियों में कुछ उभयचर और सरीसृप (Reptile) हैं, जो उच्चतर स्तरो में मिलते हैं।

(ग) सधिपाद प्राणी (Arthropoda) — उपर्युक्त महाकल्प में ट्राइलोबाइट्स का पतन प्रारभ हुआ और कल्प के अत तक वे तथा यूरेप्टेरिडिस मृत हो गए, परतु कीटो की वृद्धि हुई।

(घ) मोलस्का — उत्तर पुराजीवीमहाकल्प गोनिएटाइटीज (goniatites) का कल्प था। ये इस काल में अति प्रचुर थे। इनके अतिरिक्त अन्य सीधे अथवा कुडलाकार ऐमोनाइटीज़ (Ammonites) भी बहुतायत में थे, जिनकी सीवनरेखा साधारण प्रकार की थी। नाटिलाइटीज़ का धीरे धीरे ह्रास प्रारभ हो गया था।

(च) ब्रैकियोपोडा — उपर्युक्त महाकल्प मे प्रोडक्टिड्स और स्पीरीफरिड्स कहलानेवाले ब्रैकियोपोडा अत्यधिक फूले फले।

(छ) एकाइनोडर्माटा — उत्तरपुराजीव महाकल्प ब्लास्टॉइड्स (Blastoids) का महाकल्प था, जिनके साथ आदिम एकाइनॉइड्स (Echinoids) पाए जाते हैं।

(ज) सीलेंटरेटा — उपर्युक्त महाकल्प मे ग्रैप्टोलाइट्स। मृत हो गए। प्रवालो मे रयूगोस प्रवाल अति महत्व के थे।

(झ) प्रोटोजोआ — रेडियोलेरिया और फोरैमिनीफेरा, दोनो पूर्व पुराजीव महाकल्प की अपेक्षा इस कल्प मे अधिक महत्व के हो गए थे।

३ **मध्यजीवी महाकल्प के प्राणी** — मध्यजीवी महाकल्प सरीसृपो और ऐमोनाइटीज़ का कल्प कहलाता है। इनके साथ बेलेम्नॉइटीज़ (Belemnites) ब्रैकियोपोडा में रिनकोनीलिड्स और प्रवालो की भी प्रधानता थी।

(क) पादप — उपर्युक्त महाकल्प साइकैड्स (cycads) और एकबीजपत्री पादपों का कल्प था। शकुवृक्ष (conifer) और फर्न (fern) भी मिलते हैं।

(ख) कशेरुकी — उपर्युक्त महाकल्प में सरीसृपो का अति बाहुल्य था। इस कल्प को सरीसृपो का कल्प कहा जाता है। सरीसृप वायु, जल और स्थलवासी थे। स्तनियो और पक्षियो का प्रादुर्भाव हो गया था, परतु सरीसृपो की तुलना मे वे नगण्य तथा अति छोटे आकार के थे और सख्या मे भी बहुत कम थे।

(ग) आर्थ्रोपोडा — ये महत्व के नही थे।

(घ) मोलस्का — लैम्लीब्रैकिया और गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda) का अत्यधिक विकास हुआ। ऐमोनाइटीज़ और बेलेम्नॉइटीज का मध्यजीवीमहाकल्प के प्राणी जगत् मे सबसे अधिक प्रधानता और बाहुल्य रहा। इनमे एमोनाइटीज अत्यधिक महत्व के थे। इनका उपयोग क्षेत्रीय जीवाश्म के रूप मे होना है। वास्तव मे यह कल्प इन्ही जीवो का कल्प कहलाता है।

(च) ब्रैकियोपोड — मध्यजीवी महाकल्प मे जिन ब्रैकियोपोडा की प्रधानता थी वे टेरीब्रैटुलिड्स और रिनकोनीलिड्स के अतर्गत आते हैं।

(छ) एकाइनोडर्माटा — मध्यजीवी महाकल्प मे सिस्टिड्स और ब्लैस्टाइड्स मृत हो गए।

(ज) सीलेंटरेटा (अतरगुहिका) — इनमे प्रवाल महत्व के थे।

(झ) पॉरिफेरा (porifera) — इनमे स्पज कभी कभी शैल-निर्माताओ के रूप में प्रसिद्ध थे।

(ट) प्रोटोज़ोआ — इनमे फोरैमिनीफेरा महत्व के थे।

चित्र २ आद्य विहंग (Archeornis) का जीवाश्म

सरीसृप तथा पक्षियो के बीच की कडी। इस प्राणी के ककाल के अवशेष सन् १८७७ में पत्थरो के भीतर प्राप्त हुए थे। (ब्रिटिश म्यूज़ियम से)

नूतनजीव महाकल्प के प्राणी — यह कल्प स्तनियो, पक्षियो, फोरैमिनीफेरो और आवृतबीजी (angiosperms) पादपो का काल था। प्राणी और पादपो के आधार पर हम नूतनजीव महाकल्प को आधुनिक समय से पृथक् नही रख सकते।

(क) पादप — नूतनजीवमहाकल्प मे वर्तमान समय मे पाए जानेवाले द्विबीजपत्री तथा एकबीजपत्री पादप, जिनमे ताड (palm) और उसी के समान अन्य पादप समिलित है, पाए जाते हैं।

(ख) कशेरुकी — मध्यजीवीमहाकल्प के विशाल और विख्यात सरीसृपो का अत्यधिक ह्रास और पतन हुआ और इनके बहुत से वर्ग और गण लुप्त हो गए। इनका स्थान स्तनियो ने ले लिया, जो इस नूतनजीव महाकल्प मे अपने विकास की चरम सीमा तक पहुचे और जिनकी इस कल्प मे प्रधानता थी।

(ग) आर्थ्रोपोडानूतनजीवमहावकल्प — मे वही आर्थ्रोपोडा मिलते हैं जो आजकल पाए जाते हैं।

(घ) ब्रैकियोपोडा — ये नूतनजीवमहाकल्प मे विरल थे।

(च) मोलस्का — दोनों गैस्ट्रोपोडा और लैम्लीब्रैंकिया नूतनजीवमहाकल्प में पाए जाते हैं।

(छ) एकाइनोडर्माटा — ये नूतनजीवमहाकल्प में विरल थे।

(ज) सीलेंटरेटा — नूतनजीवमहाकल्प में शैलमाला बनानेवाले मैड्रीपोरेरिया प्रवाल आजकल के समान उष्ण जल में अत्यधिक फूले फले।

(झ) पॉरिफेरा — ये महत्व के नहीं थे।

(ट) प्रोटोज़ोआ — नूतनजीवमहाकल्प में फोरैमिनीफेरा अत्यधिक महत्व के हैं, जिनमें न्यूम्यूलाइटीज़ की इस कल्प के आदि में और ग्लोबिजेराइना की वर्तमान समय में प्रधानता है।

जीवविकासीय प्रमाण — संपूर्ण शैलों के अनुक्रम का क्रम भली भाँति निश्चय हो जाने और उनमें पाए जानेवाले जीवाश्मों की पहचान हो जाने के उपरांत यह पता चला कि जीवों के विकास में शनैः शनैः प्रगति हुई। अति साधारण प्रकार के जीव सबसे पहले प्रकट हुए, जो सबसे प्राचीन अवसादी शैलों में पाए जाते हैं और इनके उपरांत जटिलतर जीव क्रमशः तरुणतर शैलों में आते गए। इस प्रकार संपूर्ण अकशेरुकी संघों के प्रतिनिधि, जो जीवाश्म रूप में परिरक्षण योग्य है, कैंब्रियन शैलों में मिलते हैं, परंतु प्रत्येक संघ के अंतर्गत पाए जानेवाले जीव अपनी रचना में प्रायः समान थे और बहुत कम परिवर्तन दिखाते थे। आकारीय आधार पर हम उन्हें अल्पविकसित वंश कह सकते हैं, परंतु बाद के युगों में पाए

चित्र ३. मनुष्य के पूर्वज का फासिल

क प्लायोसीन युग का मनुष्य, जिसकी ख खोपड़ी तथा ग टाँग की हड्डी जावा द्वीप में पाई गई और इनसे उसके आकार का अनुमान लगाया गया।

जानेवाले संघों में से प्रत्येक संघ में मिलनेवाले जीवों की रचना अधिक भिन्न थी और इस तथ्य की पुष्टि किसी सीमा तक वंशों की संख्या में वृद्धि से हो जाती है। कशेरुकियों में रचना के आधार पर आदिम वर्ग समझा जानेवाला ऑस्ट्रैकोडर्माटा वर्ग है, जिसका सबसे पहले प्रादुर्भाव हुआ और जिसके उपरांत क्रमशः मत्स्य, उभयचर, सरीसृप, पक्षी और स्तनी आए और ये वर्ग उसी क्रम से प्रकट होते गए जैसा उनकी रचना से आशा की जाती थी। अतः इस प्रकार से भौमिकीय युगों में जीवों की प्राप्ति का क्रम जीवविकास के सिद्धांत की सच्चाई प्रतिपादित करता है, क्योंकि जितने प्राचीनतर शैल होते हैं उतने ही सरल उनके जीव अवशेष होते हैं और जैसे जैसे भौमिकीय कालसारणी के अनुसार तरुणतम शैलों का अध्ययन किया जाता है वैसे वैसे जटिल उनके जीव अवशेष पाए जाते हैं।

जीवविकासीय सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिये घोड़े (अश्व) के विकास का अध्ययन अच्छा उदाहरण है। यह संपूर्ण सामग्री जिस पर घोड़े के विकास का इतिहास आधारित है, उत्तरी अमरीका के तृतीयक शैलों से प्राप्त की गई है। इसके विकास की मुख्य दिशाएँ ये हैं

(१) आकार में वृद्धि, (२) गति में वृद्धि, (३) सिर और ग्रीवा में वृद्धि।

घोड़े का सबसे प्राचीनतम जीवाश्म ईओहिपस (Eohippus) है, जो निम्न ईओसीन शैलों में पाया गया है और जो आकार में बिल्ली से लेकर लोमड़ी के बराबर था। मध्य ईओसीन का घोड़ा ओरोहिपस (Orohippus) के नाम से जाना जाता है, जो आकार में ईओहिपस से कुछ ही बड़ा था। उत्तर ईओसीन का घोड़ा एपिहिपस (Epihippus) कहलाता है, जिसके विषय में पूर्ण जानकारी नहीं है। मेसोहिपस (Mesohippus) के नाम से प्रचलित घोड़ा, निम्नतर और मध्य ओलिगोसीन शैलों में मिलता है। यह आकार में भेड़ के बराबर, या उससे कुछ छोटा, था। मायोहिपस (Miohippus), जो उत्तर ओलिगोसीन और निम्नतर मायोसीन युग में पाया जाता था, भेड़ से कुछ ही बड़े आकार का था। पैराहिपस (Parahippus) निम्न मायोसीन युग में अति प्रचुर था। मध्य मायोसीन का घोड़ा, मेरिकिपस (Merychippus) कहलाता था, जो पैराहिपस ही के समान था। प्लायोसीन युग का घोड़ा, प्लायोहिपस (Pliohippus) आकार में गधे के बराबर था, पर तृतीयक युग में मिलनेवाला घोड़ा वर्तमान काल में पाए जानेवाले घोड़े के बराबर था। इस प्रकार हम देखते हैं कि घोड़े के आकार में धीरे धीरे वृद्धि हुई।

इसी प्रकार घोड़े की बाहु और पादों की आंतरिक रचना में परिवर्तन से उसकी गति में वृद्धि हुई। इस परिवर्तन का मुख्य लक्षण पार्श्व भागों का ह्रास और मध्य अथवा अक्षीय भाग का विस्तार और वर्धन था, जिससे वह दौड़ते समय दृढ़ता के साथ बोझ सँभाल सके। इसी प्रकार कलाई के बीच की हड्डी को छोड़कर अन्य सबका ह्रास हो गया, जिससे कलाई दृढ़ हो गई। इसी प्रकार तीसरे अंगुल की वृद्धि हुई, आस पास के अन्य अंगुल लुप्त हो गए और अंत में केवल वही रह गया।

इसी प्रकार सिर और ग्रीवा में धीरे धीरे वृद्धि हुई, जिससे घोड़ा सुगमता से चर सके। [रा० ना०]

फासिस्टवाद (फ़ासिज़्म) इटली में बेनितो मुसोलिनी द्वारा संगठित 'फासिओ डि कंबैटिमेंटो' का राजनीतिक आंदोलन, मार्च, १९१९ में प्रारंभ हुआ। इसकी प्रेरणा और नाम सिसिली के १९वीं शती के क्रांतिकारियों—'फासेज़'— से ग्रहण किए गए। मूल रूप में यह आंदो-

लन समाजवाद या साम्यवाद के विरुद्ध नही, अपितु उदारतावाद के विरुद्ध था। इसका उद्भव १९१४ के पूर्व के समाजवादी आदोलन (सिंडिकैलिज्म) में ही, जो फ्रासीसी विचारक जार्जेज सारेल के दर्शन से प्रभावित था, हो चुका था। सिंडिकैलिस्ट पार्टी उस समय पूँजीवाद और ससदीय राज्य का विरोध कर रही थी। १९१९ में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पार्टी के एक सदस्य मुसोलिनी ने अपने कुछ क्रातिकारी साथियो के साथ एक नई क्राति की भूमिका बना डाली। अतरराष्ट्रीय स्तर पर इटली को समानित स्थान, गृहनीति में मजदूरो और सेना का समान तथा सभी लोकतात्रिक और ससदीय दलो तथा पद्धतियो का दमन आदि उसके घोषणापत्र के खास नुक्ते थे। प्रथम विश्वयुद्ध में इटली मित्रराष्ट्रों का पक्ष लेकर लडा, और उसमें उसने सैनिक तथा आर्थिक दृष्टियो से बडी हानि उठाई। युद्धोत्तर परिस्थितियो ने फासिस्टवादी आदोलन के लिये सुदृढ पृष्ठभूमि तैयार की। मुसोलिनी ने अपनी शक्ति बढाने के लिये रोसोनी की नेशनल सिंडिकैलिस्ट पार्टी को भी मिला लिया। क्राति और पुनरुत्थान के तीखे नारो ने निर्धन जनता को बहुत प्रभावित किया और बहुसख्यक कृषको तथा मजदूरो में फासिस्टवाद की जडें बडी गहराई तक फैल गईं। सिंडिकैलिस्ट पार्टी तब तक कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में उभर चुकी थी, उसे भी मुसोलिनी के क्रूर दमन का शिकार होना पडा।

कम्युनिस्टो से निपटने के दौरान अनेक भिन्न भिन्न मनोवृत्तियो के तत्व इस आदोलन में समिलित हुए, जिसके कारण फासिस्टो का कोई सतुलित राजनीतिक दर्शन नही बन पाया। कुछ व्यक्तियो की सनको और प्रतिक्रियावादी दुराग्रहो से ग्रस्त इस आदोलन को इटली की तत्कालीन अनिश्चय और अराजकता की परिस्थितियो से बहुत पोषण मिला। अततोगत्वा २० अक्टूबर, १९२२ को काली कमीज़ें पहने हुए फासिस्टो ने रोम को घेर लिया तो सम्राट् विक्टर इमैनुएल को विवश होकर मुसोलिनी को मत्रिमडल बनाने की स्वीकृति देनी पडी। फासिस्टो ने इटली के सविधान में अनेक परिवर्तन किए। ये परिवर्तन, पार्टी और राष्ट्र दोनो को मुसोलिनी के अधिनायकवाद में जकडते चले गए। फासिस्टो का यह निरकुशतत्र द्वितीय विश्वयुद्ध तक चला। इस बार मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली ने 'धुरी राष्ट्रो' का साथ दिया। जुलाई, १९४३ में 'मित्रराष्ट्रो' ने इटली पर आक्रमण कर दिया। फासिस्टो का भाग्यचक्र बडी तेजी से उलटकर घूम गया। पार्टी की सर्वोच्च समिति के आक्रोशपूर्ण आग्रह पर मुसोलिनी को त्यागपत्र देना पडा, और फासिस्ट सरकार का पतन हो गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अपने आरभिक दिनो में फासिस्टवादी आदोलन का ध्येय राष्ट्र की एकता और शक्ति में वृद्धि करना था। १९१९ और १९२२ के बीच इटली के कानून और व्यवस्था को चुनौती सिंडिकैलिस्ट, कम्युनिस्ट तथा अन्य वामपथी पार्टियो द्वारा दी जा रही थी। उस समय फासिस्टवाद एक प्रतिक्रियावादी और प्रतिक्रातिवादी आदोलन ही समझा जाता था। स्पेन, जर्मनी आदि में भी इसी प्रकृति के आदोलनो ने जन्म लिया और फासिस्टवाद, साम्यवाद के प्रतिपक्ष (एटीथीसिस) के अर्थ में लिया जाने लगा। १९३५ के पश्चात् हिटलर–मुसोलिनी-सधि से इसके अर्थ में अतिक्रमण और साम्राज्यवाद भी जुड गए। युद्ध के दौरान मित्रराष्ट्रो ने फासिज्म को अतरराष्ट्रीय स्तर पर बदनाम कर दिया।

मुसोलिनी की प्रिय उक्ति थी फासिज्म निर्यात की वस्तु नही है। फिर भी, अनेक देशो में, जहाँ समाजवाद और ससदीय लोकतत्र के विरुद्ध कुछ तत्व सक्रिय थे, यह आदर्श के रूप में ग्रहण किया गया। इग्लैंड में 'ब्रिटिश यूनियन आव फासिस्ट्स' और फ्रास में 'एक्शन फ्राकाइसे' द्वारा इसकी नीतियो का अनुकरण किया गया। जर्मनी (नात्सी), स्पेन (फैलगैलिज्म) और दक्षिण अमरीका में इसके सफल प्रयोग हुए। हिटलर तो फासिज्म का कृतज्ञ ही था। नात्सीवाद के अभ्युदय के पूर्व स्पेन के रिवेरा और आस्ट्रिया के डाल्फस को मुसोलिनी का पूरा सहयोग प्राप्त था। सितबर, १९३७ में 'बर्लिन–रोम–धुरी' बनने के बाद जर्मनी ने फासिस्टवादी आदोलन की गति को बहुत तेज किया। लेकिन १९४० के बाद अफ्रीका, रूस और बाल्कन राज्यो में इटली की लगातार सैनिक पराजय ने फासिस्टवादी राजनीति को खोखला सिद्ध कर दिया। जुलाई, १९४३ का सिसली पर ऐंग्लो–अमरीकी–आक्रमण फासिस्टवाद पर अतिम और अतकारी प्रहार था। [चा० त्रि०]

फॉस्फेट फास्फोरिक अम्ल तथा क्षारो की क्रिया से जो लवण बनते हैं, वे फॉस्फेट कहलाते हैं। यदि ऑर्थोफॉस्फोरिक अम्ल को सोडियम हाइड्रॉक्साइड के साथ मिलाया जाय, तो अम्ल और क्षार के अनुपातो के अनुसार तीन ऑर्थोफॉस्फेट बनेंगे, जो क्रमश मोनोसोडियम-डाइ-हाइड्रोजन-फॉस्फेट, डाइसोडियम-हाइड्रोजन-फॉस्फेट तथा ट्राइसोडियम फॉस्फेट कहलाते हैं। इन्हे प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक फॉस्फेट भी कहा जाता है। फॉस्फोरिक अम्ल के त्रिक्षारकी होने के कारण तीन प्रकार के लवण फॉस्फेट सभव है। इन तीनो प्रकारो मे सोडियम, पोटैशियम तथा अमोनियम के फॉस्फेटो को छोडकर प्राय अन्य सभी द्विक्षारकी तथा त्रिक्षारकी फॉस्फेट जल मे अविलेय हैं। सपूर्ण मोनोफास्फेट जल मे विलेय होते हैं। प्राय सभी फॉस्फेट सलफ्यूरिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल, फास्फोरिक अम्ल (सीसा, टिन, पारद तथा विस्मथ फॉस्फेटो के अतिरिक्त), तथा ऐसीटिक अम्ल (सीसा, ऐलुमिनियम तथा लौह फॉस्फेटो के अतिरिक्त) मे विलेय हैं। सभी त्रिक्षारकी फॉस्फेट अत्यत क्षारीय होते हैं, द्विक्षारकी कम क्षारीय तथा प्राथमिक फॉस्फेट अल्प अम्लीय होते है। ऑर्थोफॉस्फेटो को सबधित तत्वो के ऑक्साइड, हाइड्रॉक्साइड या कार्बोनेट तथा फॉस्फोरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त किया जाता है। अल्प विलेय फॉस्फेटो को उभय अपघटन से प्राप्त किया जा सकता है। गरम करने पर त्रिक्षारकी फॉस्फेट स्थायी रहते हैं तथा द्विक्षारकी पाइरोफॉस्फेट बनते हैं, जबकि प्राथमिक फॉस्फेटो को गरम करने पर जल की हानि होने से मेटाफॉस्फेट बनते हैं। पाइरो तथा मेटाफॉस्फेट पानी मे अल्प विलेय हैं। क्रिस्टलीय फॉस्फेटो मे ऑर्थोफॉस्फेट फा औ$_४^{-3}$ (PO_4^{-3}), पाइरोफॉस्फेट फा$_२$ औ$_७^{-४}$ ($P_2O_7^{-4}$) तथा ट्राइफॉस्फेट फा$_३$ औ$_{१०}^{-५}$ ($P_3O_{10}^{-5}$) प्रमुख है। इसके अतिरिक्त टेट्राफॉस्फेट तथा उच्चतर फॉस्फेटो की उपस्थिति भी बताई जाती है, किंतु एक्स-रे तथा रासायनिक विधियो से उनकी पुष्टि नही होती। अक्रिस्टली फॉस्फेटो मे काचीय फ्रॉस्फेट बडे महत्वपूर्ण है, जो मेटाफॉस्फेटो को उच्च ताप पर गलाकर फिर मद गति से ठडा करने पर प्राप्त होते है। इन्हे चक्रीय फॉस्फेट भी कहा जाता है। ये जलीय विद्युद्विश्लेषण पर ऋणायन उत्पन्न करते हैं।

क्षारों की उपस्थिति में मेटाफॉस्फेट श्रृंखलाएँ सरलता से टूट जाती हैं। ऑर्थोफॉस्फेटों का भी जलीय विघुद्विश्लेषण होता है।

ऑर्थोफास्फेट अमोनियम मालिब्डेट तथा नाइट्रिक अम्ल के साथ गरम किए जाने पर पीले रंग का अवक्षेप बनाते हैं। यह इनकी परीक्षा में सहायक होता है। सिलवर नाइट्रेट के साथ मेटाफॉस्फेट श्वेत अवक्षेपण बनाते हैं, जबकि ऑर्थोफास्फेट पीला। मैग्नीशियम सल्फेट को अमोनियम हाइड्रॉक्साइड के साथ क्षारीय बनाकर जब आर्थोफास्फेट के साथ मिश्रित करके गरम किया जाता है, तब एक श्वेत अवक्षेप बनता है, किंतु मेटाफॉस्फेट के साथ कोई अवक्षेप नहीं बनता।

फॉस्फेटों का सर्वाधिक प्रयोग फॉस्फेट उर्वरकों के निर्माण में होता है। प्रकृति में चट्टानीय-फास्फेटों में ट्राइकैल्सियम फॉस्फेट पाया जाता है, जिसपर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से सुपरफॉस्फेट बनाया जाता है। यह उर्वरक के रूप में प्रचुरता से प्रयुक्त होता है। फॉस्फोरिक अम्ल की क्रिया से त्रयगी फॉस्फेट बनता है जो अत्यंत सांद्र फॉस्फेट उर्वरक है। अस्थिनिर्माण तथा अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं में फास्फेट महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं। ठीक से बीज उत्पादन के लिये पौधों को फॉस्फेट की आवश्यकता पड़ती है। फॉस्फेटों को धातु-पालिशों के बनाने, चीनी के परिष्कार, किण्वीकरण तथा खमीर उत्पादन, पेय पदार्थों के निर्माण तथा पेट्रोल के शोधन के काम में लाया जाता है। सोडियम फॉस्फेट का सर्वाधिक प्रयोग ऊनी तथा सूती वस्त्रों से तेल तथा चिकनाई के दाग छुड़ाने में होता है। रँगाई में डाइसोडियम फॉस्फेट तथा फोटोग्राफी में सोडियम, पोटैशियम तथा चाँदी के फॉस्फेटों का प्रयोग होता है। ट्राइकैल्सियम फॉस्फेट को भोज्य पदार्थ (विशेषतया पावरोटी बनाने में), जल से फ्लोरीन दूर करने, खाने के लवण को शुष्क बनाने तथा चीनी मिट्टी के बरतन बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। ऐलुमिनियम मेटाफॉस्फेट का प्रयोग काच के निर्माण में भी होता है।

स० ग्र०—डब्लू० एच० वैगामान 'फॉस्फोरिक ऐसिड, फॉस्फेट तथा फास्फेटिक फर्टिलाइज़र (१६५२)। [शि० गो० मि०]

फॉस्फोरस एक तत्व है, जो आवर्त सारणी के पंचम समूह के अ उपवर्ग में आता है। इसका परमाणु भार ३१, परमाणु संख्या १५, संयोजकताएँ ३ तथा ५ और संकेत फा (P) है। इस तत्व की खोज सर्वप्रथम हैंबर्ग के निवासी ब्रैंड (Brand) ने १६६९ ई० में की। ब्रैंड ने मूत्र के वाष्पन तथा आसवन से इस तत्व की प्राप्ति की। इस तत्व का फॉस्फ़ोरस नाम पड़ने का कारण यह है कि ग्रीक भाषा में संयुक्त शब्द फ़ॉस्फोरस (फॉस = प्रकाश + फेरो = मैं वहन करता हूँ) का अर्थ होता है 'मैं प्रकाश वहन करता हूँ'। पहले तो यह नाम उन सभी पदार्थों के लिये प्रयुक्त होता था जो अंधकार में चमकते थे, किंतु बाद में यह तत्वविशेष के लिये ही प्रयुक्त होने लगा।

उपस्थिति — यद्यपि यह तत्व प्रकृति में अत्यंत विस्तीर्ण है, तथापि असंयुक्त रूप में कदाचित् ही पाया जाता है, क्योंकि इसकी बंधुता आक्सीजन के लिये विशेष होती है। यही कारण है कि फास्फोरस शीघ्र ही ऑक्सीकृत होकर ऑक्सीजन के यौगिकों के रूप में, विशेषतया खनिज फॉस्फेटों के रूप में, पाया जाता है। ये खनिज फॉस्फेट मुख्यतया कैलसियम फॉस्फेट यौगिक में बने होते हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टियों, नदियों या सागरों के जलों में भी अल्प मात्रा में फॉस्फोरस यौगिक रूप में वर्तमान रहता है। विभिन्न प्रकार के पौधों तथा सभी पशुओं में इसकी उपस्थिति वांछनीय है। प्रकृति में फॉस्फोरस का एक ऐसा संतुलित चक्र चलता रहता है, जिससे भूमि और पशु-पौधों में पारस्परिक आदान प्रदान बना रहता है। अच्छी फसलों के उत्पादन के लिये भूमि में फॉस्फोरस का होना नितांत आवश्यक है। भूमि की सतह में ०.११ % फास्फोरस वर्तमान है और उसमें पाए जानेवाले प्रमुख तत्वों की अनुसूची में इसका बारहवाँ स्थान है।

अपर रूप (Allotropic forms)—फॉस्फोरस चार अपर रूपों में वर्तमान रह सकता है पीत या श्वेत फ़ॉस्फोरस, लाल फ़ॉस्फोरस, बैंगनी फॉस्फोरस और श्याम फॉस्फोरस। किंतु इनमें से दो अपर रूप पीत और लाल ही महत्वपूर्ण हैं। जब फॉस्फ़ोरस के वाष्प को संघनित होने दिया जाता है तब पीत फॉस्फोरस बनता है, किंतु गलनांक तक यह अत्यंत अस्थायी रहता है। केवल लाल फ़ॉस्फ़ोरस ही स्थायी होता है। इसकी प्राप्ति पीत फॉस्फोरस को अधिक देर तक प्रकाश में रहने देने, या उसमें विद्युन्मोचन कराने, अथवा वायु की अनुपस्थिति में फॉस्फोरस को २५०° सें० ताप पर गरम करने से होती है। व्यापारिक स्तर पर लाल फॉस्फोरस का निर्माण पीत फ़ॉस्फ़ोरस को एक लौह बरतन में २४०° सें० पर गरम करके किया जाता है। लाल फास्फोरस को कुछ लोग अक्रिस्टली फ़ॉस्फोरस भी कहते हैं। इसकी खोज सर्वप्रथम १८४५ ई० में श्रोटर ने की। लाल फॉस्फोरस को ३६०° सें० ताप पर बंद नली में अधिक देर तक गरम करते रहने से श्याम फॉस्फ़ोरस बनता है। यह अत्यंत स्थायी रूप है।

पीत फॉस्फ़ोरस ठोस होता है, किंतु हवा में रखते ही उसपर श्वेत अपारदर्शी परत पट जाती है, जिससे यह रंगहीन अथवा श्वेत फॉस्फोरस कहलाता है। इसे अष्टफलकीय, सामान्य अथवा अधात्वीय फॉस्फोरस भी कहते हैं। यह मोम की भाँति कोमल होने के कारण सरलता से चाकू द्वारा काटा जा सकता है। प्रकाश में खुला रख देने पर लाल फ़ॉस्फोरस के बनने से इसका रंग बदल जाता है। इसका आपेक्षिक घनत्व १.८३, गलनांक ४४° सें० और क्वथनांक २८७° सें० है। सूखी तथा आर्द्र हवा में यह शीघ्र ही जल उठता है। ऐसे वातावरण में इसका ज्वलन ताप ३०° सें० है, किंतु शुष्क हवा में यह ताप ऊँचा होता है। इस निम्न ज्वलनताप के कारण शरीर की ऊष्मा से ही इसके ज्वलित हो जाने का भय रहता है। इस कारण इसे कभी भी हाथ से नहीं छूना चाहिए। इसी ज्वलनशीलता के कारण इसका संग्रह पानी के भीतर किया जाता है, जिसमें यह अविलेय है। कार्बन डाइ-सल्फाइड में यह पूर्ण रीति से विलेय है। इसके अतिरिक्त ऐल्कोहॉल, ईथर, बेंज़ीन, ग्लिसरीन, ऐसीटिक अम्ल, जाइलीन, मेथिल आयोडाइड, स्टियरिक अम्ल तथा तारपीन में भी यह विलेय है।

जब पीत फॉस्फोरस को अँधेरे में छोड़ दिया जाता है, तब उसमें से पीले हरे रंग का प्रकाश निकलता है। यह प्रकाश प्राचीन काल से साधारण जनों को आकर्षित करता रहा है। रात्रि के समय श्मशानों में प्राय ऐसा प्रकाश देखा जाता है। इस प्रकाश का कारण फॉस्फोरस हाइड्राइड (फास्फीन) का

निर्माण है, जो हवा में ऑक्सीजन के रहने से प्रज्वलित होता रहता है। कुछ लोगो का विचार है कि फॉस्फोरस हवा के ऑक्सीजन के सयोग से त्रि-ऑक्साइड बनाता है और साथ ही साथ ओज़ोन भी बनता है, जो फॉस्फोरस के दहन और प्रकाश में योग देते हैं। खुली हवा में आर्द्र फॉस्फोरस भी ऑक्सीकृत होता रहता है जिससे श्वेत धूम्र निकलता है, जो लहसुन की तरह महकता है। अधिक ताप पर यह तुरत अग्नि पकड लेता है और फॉस्फोरस पेंटॉक्साइड बनाता है। यह क्लोरीन, गधक, नाइट्रिक अम्ल तथा कॉस्टिक सोडा के साथ क्रिया करके विभिन्न यौगिक बनाता है। यह अत्यत विषैला होता है।

लाल फॉस्फोरस सिंदूरी लाल रग का होता है और इस रग के कारण ही उसका यह नामकरण हुआ है। यह पीले फॉस्फोरस की अपेक्षा कम सक्रिय और साधारण ताप पर अधिक स्थायी होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·३ तथा गलनाक ५६०° सें० (४३ वायु-मडल दाब पर) है। २००° सें० के नीचे इसका वाष्पन संभव नही है। अँधेरे मे खुला छोड देने पर न तो यह प्रदीप्त होता है और न इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता है। न तो यह विषैला होता है और न घर्पण से शीघ्र ही ज्वलित होनेवाला। हवा में २६०° सें० तक गरम करने पर ही यह आग पकडता है।

श्याम रग के कारण फॉस्फोरस का एक अपर रूप श्याम फॉस्फोरस कहलाता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·७ है, जो सभी अपर रूपो के आपेक्षिक घनत्व से अधिक है। इसका कोई व्यापारिक महत्व नही है।

बैगनी फॉस्फोरस का आपेक्षिक घनत्व २·३६, गलनाक ६००° सें० तथा ज्वलन ताप २६०° सें० है। यह विलायको मे अविलेय है।

पारस्परिक भिन्नताओ के होते हुए भी चारो अपर रूपो के अणुओ मे कोई भेद नही। सभी के समान भार लेकर जलाने पर समभार में फॉस्फोरस पेंटॉक्साइड बनता है।

निर्माण — पहले जानवरो की अस्थियो से फॉस्फोरस प्राप्त किया जाता था। इस विधि मे जिलेटिन रहित अथवा भूनी हुई अस्थियो को सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ एक बडे हौज मे अभिक्रिया कराने के पश्चात् तरल पदार्थ को छानकर उसे वाष्पीकृत किया जाता है। और जब इस तरल पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व १·४५ हो जाता है, तब इसमें २०% कोयला या जला हुआ पत्थर का कोयला (कोक) मिलाकर इसे छिछले कडाहो मे गरम किया जाता। जब इसमे छह प्रति शत आर्द्रता रह जाती है, तब इसे बद मुँह के बरतनो मे रखकर भट्ठी मे इतना गरम किया जाता है कि लाल हो जाय। इस प्रकार लगातार तीन चार दिनो तक गरम करते रहने से वर्तमान फॉस्फोरस आसुत होकर एक दूसरे बरतन मे पानी मे एकत्र होता रहता है, जहाँ से इसे निकालकर पुनरासुत किया जाता है, तब शुद्ध फॉस्फोरस मिलता है। किंतु यह अत्यत कष्टकारक विधि है। अधिक लागत पर भी इसमें फॉस्फोरस की अत्यत अल्प प्राप्ति हो पाती है, इसीलिये अब विद्युत् भट्ठियो एव वात्या-भट्ठियो का प्रयोग होने लगा है और फॉस्फोरस का व्यापारिक निर्माण भी सुगम एव सस्ता हो गया है। इस नवीन प्रणाली मे चट्टानीय फॉस्फेट, सिलिका तथा कार्बन (कोक) के मिश्रण को लेकर भट्ठी मे अपचायक वातावरण मे पिघलाया जाता है और फिर फॉस्फोरस के वाष्प को एकत्र कर उसे नाना प्रकार के यौगिको मे परिवर्तित किया जाता है। इस विधि मे सल्फ्यूरिक अम्ल की आवश्यकता नही पडती, साथ ही इससे अधिक फॉस्फोरस की प्राप्ति भी होती है।

फॉस्फोरस के उत्पादन का प्रवाहचित्र

क फॉस्फेट, ख कोक, ग बालू, घ धान कीप (hoppers), च अ थिकाकरण भट्ठी, छ तथा ज शुष्कीकारक, झ उपजात कार्बन मोनॉक्साइड गैस, जो ईंधन के काम आती है, ट विद्युदग्र, ठ विद्युद्भट्ठी; ड धातुमल तथा लोह फॉस्फोरस, ढ गैस शोधक, त सघनित्र, थ धूल तथा द फॉस्फोरस सग्रह टकी।

फॉस्फोरस के यौगिक—फॉस्फोरस, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, क्लोरीन, गधक तथा धातुओ के साथ मिलकर क्रमश ऑक्साइड, हाइड्राइड, क्लोराइड, सल्फाइड तथा फॉस्फाइड यौगिक बनाता है। ऑक्साइडों को पानी मे घुलाने से फास्फोरस के अम्लो की प्राप्ति होती है। ऑक्साइडो मे फॉस्फरस पेंटॉक्साइड, हाइड्राइड में फॉस्फीन फा हा$_3$ (PH_3), हेलाइडो मे फॉस्फोरस पेंटाक्लोराइड फा क्लो$_5$ (PCl_5) सल्फाइडो मे फॉस्फोरस पेंटासल्फाइड फा$_2$ गं$_5$ या फा$_4$ गं$_{10}$ (P_2S_5 or P_4S_{10}) अधिक महत्व के हैं।

फॉस्फाइड — फॉस्फोरस अनेक धातुओ के सयोग से फॉस्फाइड बनाता है, किंतु गधक की अपेक्षा धातुओं के लिये इसकी बधुता कम है। फॉस्फाइडो मे टिन और ताँबे के फॉस्फाइड केवल इन धातुओं और फॉस्फोरस के सयोग से ही बनते हैं। ये फॉस्फाइड पानी या अम्ल के साथ क्रिया करके फॉस्फीन या फॉस्फोनियम लवण बनाते हैं।

फॉस्फोरस के क्षार — रासायनिक दृष्टि से फॉस्फीन, अमोनिया के सदृश्य है और अमोनियम हाइड्रॉक्साइड की ही भाँति फॉस्फोनियम हाइड्रॉक्साइड नामक क्षार बनता है।

फॉस्फोरस के अम्ल — फॉस्फोरस के आठ अम्ल ज्ञात हैं, जिनमें से पाँच तो फॉस्फोरस ऑक्साइड तथा फॉस्फोरस पेंटॉक्साइड और जल के सयोग से बनते हैं। इसके नाम हैं मेटाफॉस्फ़ोरस, फॉस्फोरस, मेटाफॉस्फोरिक, पाइरोफॉस्फोरिक, तथा आर्थोफॉस्फोरिक

अम्ल। इनके अतिरिक्त हाइपोफॉस्फोरस, पाइरोफॉस्फोरस तथा हाइपोफास्फोरिक अम्ल हैं, जो फॉस्फोरस के ऑक्साइडों तथा जल की अभिक्रिया से नहीं प्राप्त होते। इन आठों अम्लों में आर्थोफ़ास्फोरिक अम्ल ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसका आण्विक सूत्र, हा$_3$ फा औ$_4$ (H_3PO_4) है। इसके दो अणुओं में से एक अणु जल की हानि होने पर पाइरोफास्फोरिक अम्ल हा$_4$ फा$_2$ औ$_7$ ($H_4P_2O_7$) तथा एक ही अणु में से एक अणु जल हानि से मेटाफॉस्फोरिक अम्ल हा फा औ$_3$ (HPO_3) बनते हैं। फॉस्फोरिक अम्ल त्रिक्षारकी होता है जिसके कारण तीन प्रकार के लवण, प्राथमिक, द्वितीयक तथा त्रितीयक, बनते हैं, जिन्हें फॉस्फेट कहते हैं (देखें फॉस्फेट)। इस अम्ल का सबसे अधिक उपयोग कृत्रिम खाद या उर्वरकों के निर्माण में होता है।

इसके अतिरिक्त फॉस्फोरस अनेक यौगिक बनाता है, जैसे हाइपोफॉस्फेट फॉस्फेट तथा फॉस्फोप्रोटीन आदि।

प्रयोग — फॉस्फोरस एक आवश्यक तत्व है, जो फास्फेट के रूप में मनुष्यों और पशुओं के अस्थिनिर्माण में सहायक होता है। स्वास्थ्यरक्षा के लिये आवश्यक है कि शरीर में फॉस्फोरस का संतुलन स्थिर रहे। यही नहीं, शरीर में होनेवाली अनेक प्रतिक्रियाओं में भी फ़ॉस्फोरस का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। फॉस्फेट के रूप में फॉस्फोरस का सर्वाधिक प्रयोग भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये उर्वरकों के रूप में होता है। अब तो फॉस्फोरस के समस्थानिक फा^{32} (P^{32}) के ज्ञात हो जाने के कारण उसका उपयोग भूमि से पौधों द्वारा फॉस्फेट उर्वरकों के अवशोषण अध्ययन में होने लगा है।

श्वेत अथवा पीत फॉस्फोरस का उपयोग फॉस्फोरस कास्य, फॉस्फोरस टिन, फास्फोरस तांबा, जैसी मिश्रधातुओं के निर्माण तथा चूहों एवं अन्य हानिकारक कीटाणुओं की रोकथाम के लिये विषैले पदार्थों के बनाने में होता है। युद्ध के समय विस्फोटकों एवं धूम्र आवरणों के उत्पादन के लिये भी फॉस्फोरस का उपयोग होता है। पीत फॉस्फोरस अत्यंत विषैला होता है और ०.१ ग्राम से भी मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। इसका धूम्र बड़ा घातक होता है। इससे नाक और जबड़े की अस्थियाँ सड़ जाती हैं। पहले पीत फॉस्फोरस का सर्वाधिक उपयोग दियासलाई के निर्माण में होता था और यही कारण है कि दियासलाई के कारखानों में काम करनेवाले कर्मचारी प्रायः उपर्युक्त रोग के शिकार हो जाते थे। जब से पीत फॉस्फोरस के स्थान पर लाल फॉस्फोरस का उपयोग दियासलाई के निर्माण में होने लगा, इस रोग का अंत हो गया है।

फॉस्फोरस के जिन यौगिकों का महत्वपूर्ण औद्योगिक उपयोग होता है, उनमें फॉस्फोरिक अम्ल तथा उसके व्युत्पन्नों को छोड़कर सल्फाइड तथा क्लोराइड विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। दियासलाई बनाने के लिये फॉस्फोरस सेस्क्वि सल्फाइड फा$_4$ गं$_3$ (P_4S_3) का बड़े पैमाने पर उपयोग होता है और फॉस्फोरस पेंटासल्फाइड फा$_4$ गं$_{10}$ (P_4S_{10}) का उपयोग कार्बनिक फॉस्फोरस-गंधक यौगिकों के निर्माण में होता है। ये यौगिक स्नेहक तैलों के गुणों में विशिष्टता लाने के लिये प्रयुक्त होते हैं। फॉस्फोरस पेंटाक्लोराइड के उपयोग से ऐल्कोहॉल और कार्बनिक अम्लों को उनके संगत क्लोराइडों में परिवर्तित किया जाता है। ऑक्सीक्लोराइड का उपयोग रंगों और दवाओं के लिये होता है। युद्ध तथा औद्योगिक उपयोग के अतिरिक्त लाल फॉस्फोरस का सर्वाधिक उपयोग दियासलाइयों के ऊपर की घर्षण सतह के निर्माण में होता है (देखें दियासलाई)।

सं० ग्रं० — जे० डब्लू० मेलर : कॉम्प्रीहेन्सिव ट्रिटीज़ ऑन इनऑर्गेनिक ऐंड थ्योरेटिकल केमिस्ट्री। [शि० गो० मि०]

फ़िक्टे, योहान गोट्लिब (१७६२—१८१०)—जर्मनी के प्रुशिया प्रांत के रामेनाऊ स्थान पर एक निर्धन कारीगर के परिवार में फिक्टे का जन्म हुआ था। उनकी प्रतिभा को देखकर एक धनी व्यक्ति ने उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। परंतु इस व्यक्ति की शीघ्र ही मृत्यु हो गई और फिक्टे के संघर्षपूर्ण जीवन का प्रारंभ हुआ।

१८ वर्ष की उम्र में फिक्टे जेना विश्वविद्यालय में भरती हुए। अर्थाभाव के कारण बीच बीच में उनको अपना अध्ययन रोक देना पड़ता था और गृहशिक्षक के रूप में कुछ अर्थसंचय करके वे पुनः अपनी पढ़ाई चालू कर देते थे। अध्ययन के प्रति उनकी अटूट लगन थी।

आरंभ में उनपर स्पिनोज़ा के दर्शन का काफ़ी प्रभाव पड़ा। बाद में लाइपज़िग नगर में उन्होंने कांट का अध्ययन और अध्यापन आरंभ किया। कांट के दर्शन, विशेषतः कांट की "आचारमूलक ज्ञान की परीक्षा" से वे अत्यधिक प्रभावित हुए। सन् १७९१ में कोनिग्जबर्ग जाकर उन्होंने कांट से साक्षात् संपर्क स्थापित किया। १७९२ में उनकी प्रथम रचना "श्रुति परीक्षा" (Critique of all Revelation) को देखकर कांट अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने फिक्टे की इस रचना के प्रकाशन की व्यवस्था कर दी तथा उन्हें अध्यापक का पद भी दिला दिया।

इसी काल में फिक्टे ने विवाह किया। उनकी पत्नी कर्मठ और कुशल महिला थी और वे आजीवन फिक्टे की सहगामिनी बनी रहीं। विवाह के दो वर्ष बाद फिक्टे जेना विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए। विभिन्न विषयों पर उनके कई बहुमूल्य निबंध प्रकाशित होते रहे। उन्होंने एक दार्शनिक पत्र का संपादन भी किया। इस पत्र में एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसपर फिक्टे की टिप्पणी भी थी। उक्त लेख और टिप्पणी को ईर्ष्यावश धर्मविरुद्ध घोषित किया गया। इस कांड को लेकर एक भारी आंदोलन मचा, फलस्वरूप फिक्टे को जेना विश्वविद्यालय छोड़ देना पड़ा।

इस बीच फिक्टे को पर्याप्त ख्याति मिल चुकी थी। उनकी विद्वत्ता से लोग प्रभावित थे। जेना से वे बर्लिन चले आए जहाँ उन्होंने विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये भरसक प्रयत्न किया। इसमें उन्हें सफलता मिली। यहाँ वे पहले दर्शन विभाग के अध्यक्ष और बाद में १८१० में विश्वविद्यालय के पहले 'रेक्टर' नियुक्त हुए।

फिक्टे का गेटे और दांते से भी अच्छा परिचय था। फिक्टे महान् चरित्रवान् दार्शनिक होने के साथ महान् वक्ता और देशभक्त भी थे। जब नेपोलियन की सेना जर्मनी को रौंद रही थी, तब फिक्टे ने अपनी शक्तिशालिनी लेखनी और वाणी द्वारा देशप्रेम की उत्कट भावना जगाई और जर्मनी के राष्ट्रत्व को जाग्रत रखा। अंततः फ्रांसीसी

सेना को पीछे हटना पडा। बार्लिन में २७ जनवरी, १८१४ को इस देशप्रेमी दार्शनिक का देहावसान हुआ।

फिक्टे ने कुछ प्रमुख ग्रथो की रचना की है

(१) श्रुतिपरीक्षा (Critique of all Revelation) (२) समस्त ज्ञान के मूलाधार (Foundation of the Whole Science of Knowledge) (३) आचार शास्त्र (Science of Ethics) (४) सुखमय जीवन का मार्ग (Tree of Blessed life),

फिक्टे अपने काल के प्रमुख दार्शनिक रहे हैं। उन्होने विज्ञानवाद की प्रतिष्ठा की। उनके दर्शन मे तीन मुख्य सिद्धात हैं। प्रथम, स्वप्रकाश परमात्मतत्व (Absolute Ego) ही एक मात्र सत् है और इसके प्रकाश का अर्थ है, इसकी चित् शक्ति या सकल्प शक्ति जो इसी का स्वरूप है। द्वितीय, अपनी चित् शक्ति के कारण यह परमात्मतत्व स्वय को परिच्छिन्न या सीमित करके एक ज्ञाता (Ego) के रूप मे और दूसरी ओर स्वय को ज्ञेय या अनात्म जगत् (Non Ego) के रूप मे प्रकट करता है। तृतीय, यह परमात्म तत्व ज्ञाता और ज्ञेय के भेद का अतिक्रमण करके जीव और जगत के समन्वयात्मक रूप मे प्रतीत होता है। परमतत्व की इस सकल्प शक्ति से फिक्टे ने त्रिसूत्रीय नियम निकाले हैं — तादात्म्य (Identity), विरोध (Contradiction), और पर्याप्त कारण (Sufficient Reason)। इनको ही क्रमश सत्ता (Reality), निषेध (Negation), और परिच्छेद या सीमा (Limitation or Determination) कहा जा सकता है।

जीवात्मा शुद्ध द्वैतरूप है, अनात्म जगत् द्वैतरूप है, और परमात्मा विशिष्टाद्वैत रूप है। यही तीनो क्रमश पक्ष (Thesis), प्रतिपक्ष (Antithesis), और समन्वय (Synthesis) है। वस्तुत ये तीनो — पक्ष, प्रतिपक्ष और समन्वय परमात्मा की सकल्पशक्ति के ही तीन विभिन्न रूप हैं।

इस प्रकार काट से हीगेल तक के सक्रमण काल मे फिक्टे और शेलिंग दो महत्वपूर्ण दार्शनिक कडियाँ हैं, जो काट और हीगेल की विचारधाराओ को समन्वयात्मक रूप प्रदान करती हैं। हीगेल के दर्शन पर फिक्टे के दार्शनिक विचारो की सुस्पष्ट छाप दिखाई पडती है।

स० ग्र० — सी०सी० एवरेट, फिक्टेज साइसेज ऑव नालेज, शिकागो, १८८४, आर० अडेमसन, फिक्टे, लदन, १८८१, [इनकी पुस्तक "डेवलमेट ऑव माडर्न फिलासफी, एडिनबर्ग ऐंड लदन, १९०८ भी देखें], एफ० सी ए० स्वीनगलर, हिस्ट्री ऑव फिलासफी, (अनुवाद और टिप्पणी सहित), जे० एच० स्टर्लिंग, एडिनबर्ग, १८६७, टी० कार्लाइल, आन हीरोज, भाषण, ए० लैसन, जे० जी० फिक्टे इन वर्हेल्टनिश जू किर्शे उड स्टाट, बर्लिन, १८६३, एफ जिमर, जे०जी० फिक्टेज रेलीजक्सफिलोसाफिक, बर्लिन, १८७८।

[मु० शु०]

फिज़ियोक्रेट्स १८वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे, फ्रास मे लुई १५वें के चिकित्सक डा० क्वेस्ने (१६६४-१७७४) के नेतृत्व मे सामाजिक विचारको का एक ऐसा दल सगठित हुआ जिसने आधुनिक अर्थशास्त्र की नीव डाली। विचारकों के इस दल की प्रमुख मान्यता यह थी कि सभी सामाजिक संबंध निश्चित नियमो से विनियमित होते हैं, समाज की आदर्श व्यवस्था 'प्राकृतिक व्यवस्था' है, एव आर्थिक उत्पादन मे राज्य का हस्तक्षेप 'प्राकृतिक व्यवस्था' को प्राप्त करने मे बाधक है। इन विचारको को, जो अपने को 'अर्थशास्त्री' कहना पसद करते थे और जिनके अन्य प्रमुख नेता मीराबो, मेर्सिए द ला रिविएर, दिपों द नेमूर, एबे वादो एव तुरगो हैं, समूह रूप मे फिज़ियोक्रेट्स कहा जाता है। व्युत्पत्ति के अनुसार यह शब्द ग्रीक भाषा के 'फिजिस' (= प्रकृति) और 'क्रेटीन' (= शासन करना) से मिलकर बना है। अत इसका अर्थ 'प्रकृति का शासन' हुआ। फिज़ियोक्रेट्स की इस 'प्राकृतिक व्यवस्था' को 'सामाजिक सविदा' के विचारको (हाब्स, लॉक, रूसो) की प्राकृतिक व्यवस्था से भिन्न समझना चाहिए। सविदावादी विचारको के अनुसार यह व्यवस्था मानव सभ्यता के पहले की व्यवस्था है, परतु फिज़ियोक्रेट्स के अनुसार 'प्राकृतिक व्यवस्था' वह दैवी एव आदर्श व्यवस्था है जिसे आतरिक अनुभूति के द्वारा केवल सुसस्कृत लोग ही समझ सकते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वत एव स्वतत्र रूप से आर्थिक स्वार्थों की उपलब्धि मे सतत लगा रहे तो 'प्राकृतिक व्यवस्था' प्राप्त हो सकती है, 'प्राकृतिक व्यवस्था' मे तथा व्यक्तिगत स्वार्थों मे सघर्ष नही हो सकता क्योकि दोनों मे ईश्वरीय निर्देश कार्य कर रहे हैं। व्यक्तिगत सपत्ति की सुरक्षा इस व्यवस्था का दूसरा प्रमुख आधार है। अत व्यक्तिगत सपत्ति को भी वे दैवी सस्था का स्थान देते हैं, — सर्वश्रेष्ठ राज्य वही है जो इस सस्था को सुरक्षित रखे, और इस कार्य मे केवल राजतत्र ही सफल हो सकता है। डा० क्वेस्ने समाज को तीन वर्गों मे बाँटते हैं (१) उत्पादक वर्ग, (२) अनुत्पादक वर्ग, (३) सपत्तिधारी वर्ग। कृषक उत्पादक वर्ग मे आते हैं, क्योकि, फिज़ियोक्रेट्स के अनुसार, केवल कृषि ही लागत पूँजी से अधिक पूँजी का उत्पादन कर सकती है। क्रय विक्रय से एव पदार्थों के स्वरूपपरिवर्तन से पूँजी की वृद्धि नही होती, अत व्यापारी एव निर्माता अनुत्पादक वर्ग हैं। तीसरा वर्ग भूस्वामियो तथा कुलीनो का है। कृषि उत्पादक है, अत कृषि सबधी सभी स्वतत्रताओ के वे कट्टर समर्थक हैं। कृषि-उपयोगी वस्तुओ एव कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओ के आवागमन एव व्यापार मे पूरी स्वतत्रता होनी चाहिए। परतु व्यापारियो (अनुत्पादको) के पूँजी एकाधिकार पर नियत्रण आवश्यक है क्योकि यह एकाधिकार कृषि मे पूँजी के विनियोजन मे बाधक बनता है। चूँकि फिज़ियोक्रेट्स कृषि को ही उत्पादक मानते हैं, अत भूस्वामियो पर प्रत्यक्ष कर ही उनके अनुसार राज्य की आय का उचित साधन है।

स्पष्ट है कि फिज़ियोक्रेट्स ने श्रम के आर्थिक मूल्य को नही समझा और नए उदित होनेवाले व्यापारी वर्ग के विरोध मे सामती व्यवस्था को तथा व्यक्तिगत सपत्ति को स्थिर रखने मे बहुत दूर चले गए (यह ध्यान रखने की बात है कि फिज़ियोक्रेट्स सपत्तिधारी थे तथा सामती व्यवस्था से सबधित थे)। फिर भी आर्थिक उत्पादन का, करो की व्यवस्था का तथा राज्य के अधिकारो का उन्होंने सूक्ष्म विवेचन किया, जिसका बाद के प्रमुख अर्थशास्त्रियों पर बडा गहरा प्रभाव पडा।

स० ग्र० — जीड एड रिस्ट ए हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक डॉक्ट्रीस।

[द० शं० व०]

फिटकरी को अंग्रेजी मे पोटैश ऐलम या केवल ऐलम भी कहते हैं। यह पोटैशियम सल्फेट और ऐलुमिनियम सल्फेट का द्विलवण है, इसके चतुर्फलकीय क्रिस्टल मे क्रिस्टलीय जल के २४ अणु रहते हैं। इसके क्रिस्टल अत्यत सरलता से बनते हैं। इसका सूत्र पो$_2$ ग औ$_4$ ऐ$_2$ (गं औ$_4$)$_3$ २४ हा$_2$ औ [$K_2SO_4 Al_2(SO_4)_3$ $24H_2O$] है।

पहले पहल फिटकरी ऐलम शेल (shale) से बनाई गई थी। यह बडी मात्रा मे ऐलुनाइट या फिटकरी पत्थर पो$_2$ गऔ$_4$ ऐ$_2$ (गंऔ$_4$)$_3$ ४ ऐ (औ हा)$_3$ [$K_2SO_4 Al_2(SO_4)_3$ 4 $Al(OH)_3$] के वायु मे भर्जन, निक्षालन (lixiviation) और क्रिस्टलीकरण से प्राप्त होती है। ऐलुनाइट से प्राप्त ऐलम को रोमन ऐलम भी कहते हैं। ऐलुमिनो फेरिक के विलयन पर पोटैशियम सल्फेट की क्रिया से भी फिटकरी प्राप्त हो सकती है। फेरिक ऑक्साइड के कारण इसका रग गुलावी होता है, यद्यपि विलेय लोहा इसमे बिल्कुल नही होता, या केवल लेश मात्र होता है।

पोटैश ऐलम ९२° सें० पर पिघलता है। २००° सें० पर इसका जल निकल जाता है जिससे यह सरध्र पुंज मे परिणत हो जाता है। इसे जली हुई फिटकरी कहते हैं। वायु मे इसके क्रिस्टल प्रस्फुटित होते हैं, जो वायु से अमोनिया का अवशोषण कर क्षारक लवण मे परिवर्तित हो जाते हैं।

फिटकरी का उपयोग कागज उद्योग, रगसाजी, छीट की छपाई, पेय जल के शोधन और चमडा कमाने मे होता है।

ऐलम शब्द जब बहुवचन मे प्रयुक्त होता है, तब उससे उन सभी यौगिको का बोध होता है, जो पोटैश ऐलम से सगठन में समानता रखते हैं। ऐसे यौगिको में पोटैश का स्थान लिथियम, सोडियम, अमोनियम, रूबीडीयम, सीज़ियम, टेल्यूरियम धातुएँ तथा हाइड्रॉक्सीलैमिन ना हा$_4$ औ (NH_4O) एव चतुर्वक नाइट्रोजन क्षारक ना (का हा$_3$)$_4$ [$N(CH_3)_4$] मूलक ले सकते हैं। ऐलुमिनियम का स्थान क्रोमियम (क्रोम ऐलम), लोहा (लौह ऐलम), मैंगनीज, इरीडियम, गैलियम, वैनेडियम, कोबल्ट इत्यादि ले सकते हैं। विरल मृद धातुएँ ऐलम नही बनती। कुछ यौगिको में ग औ$_4$ (SO_4) मूलक में सल्फर का स्थान सिलीनियम ले सकता है।

ऐलम सकर (Complex) यौगिक नही है। पानी मे घुलने पर विलयन मे इसके समस्त आयन अलग अलग रहते हैं। यह समरूपीय क्रिस्टल बनाता है। एक लवण के क्रिस्टल पर दूसरे लवण के क्रिस्टल बडी सरलता से बनते हैं। इसके मिश्रित क्रिस्टल भी बनते हैं और विभिन्न लवणों के स्तरो के क्रिस्टल भी बनते हैं। बहुत अधिक विलेय होने के कारण सोडियम ऐलम के क्रिस्टल बडी कठिनाई से प्राप्त होते हैं। [स० व०]

फ़िदाई ख़ाँ मुगल सम्राट् जहाँगीर का हिदायतउल्ला नामक एक सेवक। इसके अन्य तीन भाई भी जहाँगीर के कृपापात्र थे। हिदायतउल्ला प्रारंभ मे नाव बेडे का निरीक्षक नियुक्त हुआ। महाबत खाँ के विद्रोह मे इसने स्वामिभक्ति का सुदर उदाहरण रखा। झेलम नदी के तट पर इसने विद्रोहियों के दाँत खट्टे कर दिए।

कालातर मे यह बगाल का शासक इस शर्त पर नियुक्त हुआ, कि दस लाख रुपया प्रति वर्ष भेंट स्वरूप राजकोष में जमा करता रहे। शाहजहाँ के शासनकाल में इसकी प्रतिभा बढती रही। इसका मनसब चारहजारी–३००० सवार का था। इसे जौनपुर की जागीर मिली, और गोरखपुर का फौजदार नियुक्त हुआ। इसके बगाल के शासनकाल में कुछ लोगो ने इसके विरुद्ध सम्राट् से न्यायिक माँग की किंतु शाहजहाँ इसपर कृपालु ही रहा। इसकी वीरता और दूरदर्शिता के लिये, मुगल दरबार से इसे फिदाई खाँ और जान निसार खाँ की उपाधियाँ प्राप्त थी।

एक अन्य फिदाई खाँ को भी जिसका वास्तविक नाम मीरशरीफ था, और जो शाहजहाँ के सेवकों में से था, अच्छी सेवाओ के लिये एकहजारी–२०० सवारो का मसब और फिदाई खाँ की उपाधि प्राप्त हुई थी।

तीसरा फिदाई खाँ सम्राट् औरगजेब की सेवा मे था। इसका पूरा नाम फिदाई खाँ मोहम्मद सालह था। इसे भी फिदाई खाँ की उपाधि मिली थी। यह बरेली, ग्वालियर, आगरा और दरभगा मे फौजदार रहा था। इसका मसब तीन हजारी–२५०० का था।

फिनलैंड स्थिति ५९° ४८' से ७०° ५' उ० अ० तथा २०° ३३' से ३१° ३५' पू० दे०। यह यूरोप में रूस और स्वीडन के मध्य में स्थित एक देश है। सन् १९१७ मे रूसी क्राति के बाद यह स्वतत्र घोषित कर दिया गया था। इसके पश्चिम मे स्वीडन, उत्तर तथा पश्चिम-उत्तर मे नॉर्वे, उत्तर-पूर्व मे रूस, दक्षिण मे फिनलैंड की खाडी और पश्चिम में बोथेनिया की खाडी स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल ३,३७,००९ वर्ग किमी० है। यह १२ प्रातो मे बँटा है।

धरातल — फिनलैंड का दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग सागरतटीय मैदानो से युक्त है। इसके मध्य भाग मे हिमयुग में बनी लगभग ३५,५०० झीलें हैं। सैमा (Saima) सबसे बडी झील है। उत्तरी भाग ऊँचा तथा वनो से ढका है। समुद्री तट कटा फटा तथा छोटे छोटे ३०,००० से भी अधिक द्वीपो से युक्त है।

जलवायु — यहाँ की जलवायु सम है। शीत ऋतु में यहाँ का ताप हिमाक से नीचे रहता है, किंतु गल्फस्ट्रीम गरम धारा के कारण तट जमने नही पाता। यहाँ की वर्षा का औसत २१ इंच है, जो अधिकाशत बर्फ के रूप मे होती है।

जनसख्या एवं प्रमुख नगर — यहाँ की जनसख्या ४४,७६,९०० (१९६०) है। हेलसिंकी (Helsinki जनसख्या ४,६७,३७१) यहाँ की राजधानी है। हेलसिंकी के अलावा आबो, टमीफॉर्स तथा विवार्ग प्रमुख नगर हैं। फिन्नी और स्वीड यहाँ की प्रमुख भाषाएँ हैं।

कृषि — कृषि थोडी मात्रा में अधिकतर समुद्र तट, नदियो की घाटियो तथा झीलो के तटीय प्रदेशो में ही होती है। राई यहाँ की प्रमुख उपज है तथा जौ, आलू, जई, गेहूँ, चुकदर आदि का भी उत्पादन होता है।

वन — यहाँ की आधी से अधिक भूमि शकुधारी टैगा नामक वनो से ढकी है। यूरोप में सबसे अधिक इमारती लकडी यहाँ से प्राप्त होती है। चीड, स्प्रूस, भूर्ज प्रमुख वृक्ष हैं।

खनिज — यहाँ पर केवल एक ही स्थान पर थोडा लोहा पाया

जाता है। कुछ मात्रा में कोयला, पाइराइट, ताँबा, जिंक, निकल आदि मिलता है। जलशक्ति यहाँ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है।

उद्योग धंधे — यहाँ प्लाईवुड, कागज, लुग्दी, काष्ठमंड तथा लकडी की वस्तुओं का निर्माण होता है। लोहे एव इस्पात के उद्योग टैंपीयर के पास स्थित हैं। सूती तथा ऊनी कपडो का भी निर्माण होता है।

यातायात — कम तथा विखरी जनसख्या, असम धरातल तथा कठोर जलवायु के कारण यातायात मे कम उन्नति हो पाई है।

जलमार्गों द्वारा लकडी ढुलाई का काम अधिक होता है। केवल दक्षिणी भाग मे यातायात उन्नत है तथा बडे बडे नगर रेलो से जुडे हैं।

व्यापार — यहाँ का व्यापार वनो तथा पशुओ पर निर्भर है। मशीनें, वस्त्र, खाद्यान्न, खनिज तेल एव अन्य तेल, धातुओ रसायनको तथा दवाइयो का आयात होता है तथा टिंवर और इसके उत्पाद, दूध तथा मक्खन, दपती और कागज, लुग्दी, मशीनो आदि का निर्यात प्रमुख है।

जीवजंतु — यहाँ चरागाह अधिक होने से घोडे, गाएँ, भैंसें, भेडें, सूअर, मुर्गियाँ आदि पाली जाती हैं। झीलो मे मछलियो का शिकार भी किया जाता है। जंगली जानवरो मे समूरधारी जीव मिलते हैं। बारहसिंगा (elk), लोमडी एव बीवर प्रमुख जतु है।

फिनोल वस्तुत कार्वनिक यौगिको की एक श्रेणी का नाम है जिसका प्रथम सदस्य सामान्य फिनोल या कार्वोलिक अम्ल है। वेंजीन केंद्रक का एक या एक से अधिक हाइड्रोजन जव हाइड्रॉक्सिल समूह से विस्थापित होता है, तव उससे जो उत्पाद प्राप्त होते हैं उसे फिनोल कहते हैं। यदि केंद्रक में एक ही हाइड्रॉक्सिल रहे, तो उसे मोनोहाइ- ड्रिक फिनोल, दो हाइड्रॉक्सिल रहे तो उसे डाइ- हाँइड्रिक फिनोल और तीन हाइडॉक्सिल रहे, तो उसे ट्राइहाइड्रिक फिनोल कहते हैं। मोनोहाइड्रिक फिनोल कोयले और काठ के शुष्क आसवन से बनते हैं। इसी विधि से व्यापार का कार्वोलिक अम्ल प्राप्त होता है। कार्वोलिक अम्ल का आविष्कार पहले पहले रूगे (Runge) द्वारा १८३४ ई० मे हुआ था। १८४० ई० मे लाँरें (Laurent) को अलकतरे में इसकी उपस्थिति का पता लगा। इसका फिनोल नाम जेरार (Gerhardt) द्वारा १८४३ ई० में दिया गया था। १८६७ ई० में वुर्टस (Wurts) और केक्यूले (Kekule) द्वारा फिनोल वेंजीन से पहले पहल तैयार हुआ था।

फिनोल तैयार करने की अनेक विधियाँ मालूम हैं, पर आज फिनोल का व्यापारिक निर्माण अलकतरे या वेंजीन से होता है। अलकतरे के प्रभाजी आसवन से जो अश १७०° से २३०° सें० पर आसुत होता है उसे मध्य तेल या कार्वोलिक तेल कहते हैं। सामान्य फिनोल इसी मे नैपथेलीन के साथ मिला हुआ रहता है। दाहक क्षार के तनु विलयन से उपचारित करने से फिनोल विलयन मे घुलकर निकल जाता है और नैफ्थेलीन अविलेय रह जाता है। विलयन के सल्फ्यूरिक अम्ल या कार्वन डाइऑक्साइड द्वारा विघटित करने से फिनोल अवक्षिप्त होकर जल से पृथक् हो जाता है।

शुद्ध कार्वोलिक अम्ल सफेद, क्रिस्टलीय, सूच्याकार, ठोस होता है, पर, यह वायु मे रखे रहने से पानी का अवशोषण कर द्रव वन जाता है, जिसका रग पहले गुलाबी पीछे प्राय काला हो जाता है। इसके क्रिस्टल ४३०° सें० पर पिघलते हैं। यह जल मे कुछ विलेय होता है। इसका जलीय विलयन निस्सक्रामक होता है और घावो तथा सर्जरी के उपकरणो आदि के धोने मे प्रयुक्त होता है। फिनोल की गध विशिष्ट होती है। यह विषैला होता है। अम्लो के साथ यह एस्टर वनाता है। इसके वाष्प को तप्त (३६०° से ४५०° सें०) थोरियम पर ले जाने से फिनोल ईथर बनता है। फिनोल के ईथर सरल या मिश्रित दोनो प्रकार के हो सकते हैं। फॉस्फोरस पेंटाक्लोराइड के उपचार से यह क्लोरो वेंजीन वनता है। ब्रोमीन की क्रिया से यह ट्राइब्रोमो फिनोल बनता है। यह क्रिया मात्रात्मक होती है और फिनोल को अन्य पदार्थो से पृथक करने या फिनोल की मात्रा निर्धारित करने मे प्रयुक्त होती है। फिनोल सक्रिया यौगिक है। अनेक अभि- कर्मको के साथ यह यौगिक वनता है। अनेक पदार्थों के सपर्क मे आने से यह विशिष्ट रग देता है, जिससे यह पहचाना जाता है।

उपयोग — फिनोल से सैलिसिलिक अम्ल और उसके एस्टर सैलोल आदि वडे महत्व के व्यापारिक पदार्थ वनते हैं। इससे पिक्रिक अम्ल भी वनता है, जो एक समय वडे महत्व का विस्फोटक और रजक था। कृत्रिम रजको के निर्माण मे भी कार्वोलिक अम्ल प्रयुक्त होता है। यह वडे महत्व का निस्सक्रामक है। इससे अनेक जीवाणुनाशक,

था, परतु ४ जुलाई, १९४६ ई० को यह एक गणतत्र देश हो गया है।

धरातल — इस द्वीपसमूह के मध्य से रीढ की हड्डी की तरह एक पर्वतमाला फैली हुई है, जो एशिया की पर्तदार पर्वतमालाओ का एक अग मानी जाती है। यहाँ पर सुप्त एव जाग्रत

अवस्थाओ मे अनेक ज्वालामुखी पर्वत हैं। तटरेखा लगभग ११,५११ मील लबी है। यहाँ के बहुत से छोटे छोटे द्वीप मूँगे की चट्टानो के बने हैं। मिडानाओ, सामार तथा लूज़ॉन का पूर्वी समुद्रतट बहुत ऊबडखाबड, कटाफटा तथा पथरीला है। यह भाग उत्तर-पूर्वी मानसून के समय वर्षा तथा हवा के थपेडो से प्रभावित होता है। पालावान, पानाई, मिडोरो तथा मध्य लूज़ॉन का पश्चिमी किनारा भी उसी तरह ऊबडखावड है तथा दक्षिण-पश्चिमी मानसून से प्रभावित है।

जलवायु — द्वीपीय प्रदेश होने के कारण यहाँ की जलवायु मुख्यतया सम है। निचले प्रदेशों में उच्चताप तथा उच्च आर्द्रता वर्ष भर रहती है। कभी कभी स्थानीय प्रभावों से प्रभावित हो कर आर्द्रता कम हो जाती है। वार्षिक ताप का उतार चढाव कम होता है। कभी कभी एशिया से आई, ठढी हवाओ से प्रभावित होने पर यहाँ का ताप १८° सें० से भी कम हो जाता है। वर्षा पूर्वी समुद्रतट पर अधिक होती है, जबकि लगभग आधा पश्चिमी द्वीपसमूह शुष्क रहता है। यहाँ विनाशकारी टाइफून (typhoon) चला करते हैं। जलवायु के विचार से इसे तीन मुख्य भागो मे विभाजित किया जा सकता है (१) पूर्वी भाग जहाँ औसत वार्षिक वर्षा १०० इच से अधिक तथा अधिकाश वर्षा शीतकालीन मानसून द्वारा होती है। ग्रीष्मकालीन मानसून से भी यहाँ थोडी वर्षा हो जाती है। (२) पश्चिमी भाग जहाँ ग्रीष्मऋतु मे मुख्य वर्षा ९० इच से अधिक होती है तथा शीत एव वसत ऋतुएँ प्राय शुष्क होती हैं। (३) मध्यवर्ती भाग जहाँ वर्ष भर समान दशाएँ देखने मे आती हैं। कोई महीना बिल्कुल शुष्क और हल्की वर्षावाला होता है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ७५ इच से ८० इच के भीतर रहती है। इस देश की राजधानी मनीला इसी भाग मे स्थित है।

वन — दक्षिणी भागो मे कठोर लकडीवाले सदाबहार वन पाए जाते हैं। इन जगलो में बाँस, ईंधन एव इमारती लकडियाँ पाई जाती हैं।

कृषि — लगभग सपूर्ण जनसख्या में से ९० लाख लोग कृषि मे लगे हैं। अधिकाश कृषि लूज़ॉन, सेबू, नेग्रोस, लेटी एव मिडानाओ द्वीपो की नदी घाटियो मे होती है। यहाँ की सबसे प्रमुख उपज धान है। धान के बाद नारियल, मक्का तथा अबाका का स्थान आता है। वैसे तो गन्ना, अबाका, केला, चुकदर, तबाकू, कसावा एव रबर के बागान भी हैं पर इनका कोई विशिष्ट स्थान नहीं है। यहाँ के फलो मे केला और आम मुख्य हैं। अबाका एक विशिष्ट प्रकार की उपज है एव केले की जाति का है, इसके तने से प्राप्त रेशे से रस्सियाँ आदि बनाई जाती हैं। मक्का की खेती वर्ष भर में तीन बार होती है। गन्ना लावा द्वारा निर्मित मिट्टी पर बोया जाता है। रबर के बागान ५,००० एकड भूभाग पर लगाए गए हैं।

खनिज — यहाँ के खनिज पदार्थों में सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा क्रोमियम, सीसा तथा कोयला मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त जस्ता, यूरेनियम, जिप्सम, ऐसबेस्टस, सिलिका भी प्राप्त होते हैं। स्वर्ण-क्षेत्र लूज़ॉन के उत्तरी और दक्षिणी भागो में तथा मिडानाओ और मासबाटे द्वीपो में फैले हुए हैं। उत्तरी लूज़ॉन मे स्थित बेंगुइट जिला सोने का मुख्य उत्पादक क्षेत्र हैं।

उद्योग — औद्योगिक ईंधन की कमी के कारण यहाँ का औद्योगिक विकास नगण्य है तथा जो उद्योग हैं भी वे सभी कृषि पर आधारित हैं, जैसे धान कूटना, चीनी, रबर की वस्तुएँ, जूते बनाना तथा नारियल के सामान आदि। यहाँ चीनी बनाने के बडे छोटे लगभग ५२ कारखाने हैं तथा धान कूटने की लगभग ३,००० मिलें हैं, जो समस्त द्वीपों पर फैली हुई हैं। नारियल से तेल निकलने का काम भी होता है। उत्तरी लूज़ॉन में सिगार तथा सिगरेट बनाने का उद्योग प्रमुख हैं। अब इन द्वीपो की उन्नति के लिये नए नए कारखाने, जैसे सूती कपडा, काच, प्लाईवुड बनाना तथा सीमेट आदि उद्योग स्थापित किए जा रहे हैं।

यातायात — यहाँ पर अभी लगभग १,२०० किमी० लबे रेलमार्ग हैं, जो लूज़ॉन, पानाई तथा सेबू द्वीपो पर फैले हुए हैं। पक्की सडकों की लबाई लगभग ३०,००० किमी० है। मनीला नगर चारो ओर से सडक यातायात से सुव्यवस्थित रूप में जुडा हुआ है। मनीला नगर मे प्रसिद्ध हवाई अड्डा है, जहाँ से पूर्व एव पश्चिम देशो की ओर वायुयान जाते हैं।

जनसंख्या — यहाँ की जनसख्या २,७०,८७,६८५ (१९६०) है। पहाडी भागों मे बहुत कम जनसख्या निवास करती है। पश्चिमी लूज़ॉन, सेबू, बोहॉल तथा पानाई द्वीप अधिक जनसख्यावाले क्षेत्र हैं। यहाँ के निवासियों में भारतीय, चीनी, जापानी आदि हैं, पर अधिकतर

फलों की खेती (देखें पृष्ठ ...)

← अच्छी जाति का अंगूर चख कर पहचाना जाता है।

उत्तम पपीते →

← सिंगापुर का अनानास।

लुकाठ लगे डाली →

फिलाडेल्फ़िया (देखें पृष्ठ १०३)

स्वतन्त्रता का घंटा (Liberty Bell)

कॉण्टिनेंटल कांग्रेस द्वारा संयुक्त राज्य, अमरीका, की स्वतन्त्रता की घोषणा की जाने पर, यह घंटा सन् १७७६ में बजाया गया था। जुलाई १८३५, में संयुक्त राज्य के सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की मृत्यु पर जब यह बजाया गया, तो इसमें दरार पड़ गई।
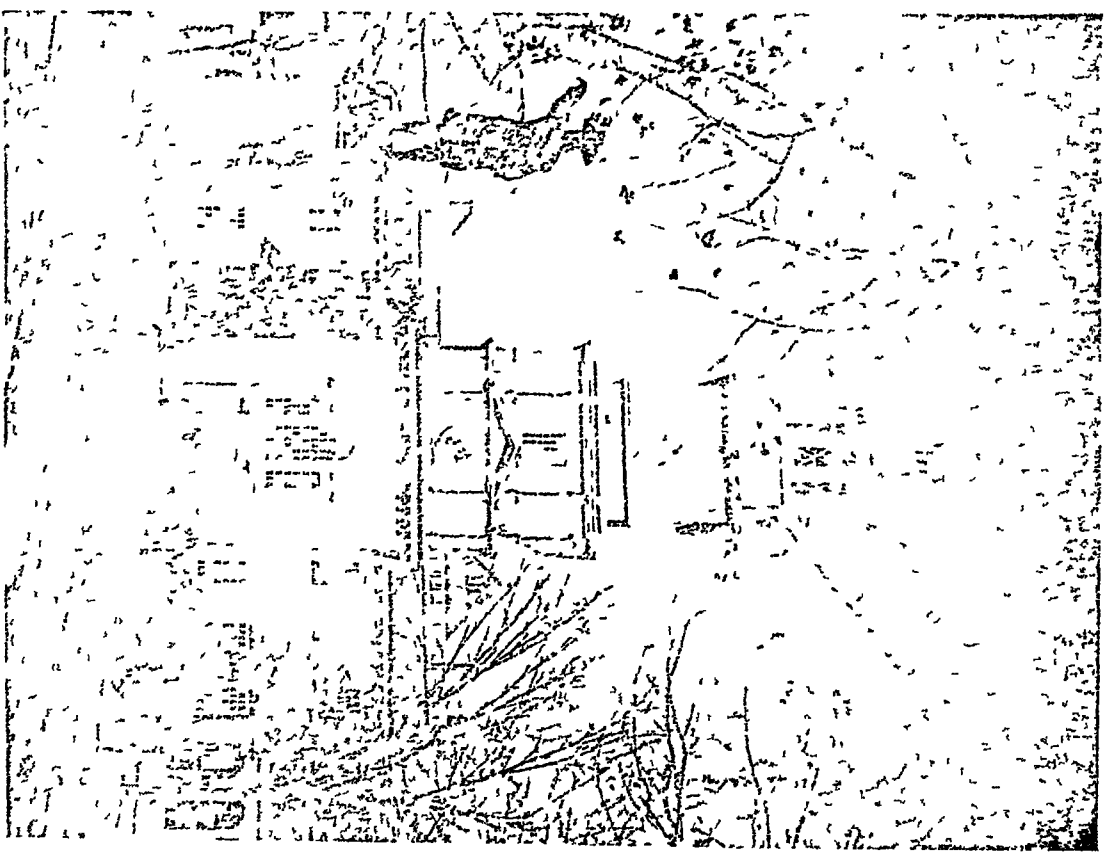
स्वतन्त्रता भवन (Independence Hall)

अमरीका की स्वतन्त्रता के इस मंदिर में स्वतन्त्रता का घंटा रखा है। क्रांति काल के एक नौ सैनिक अफसर, जॉन बैरी, की मूर्ति सम्मुख स्थापित है।

(यू० एस० इन्फॉर्मेशन एजेन्सी के सौजन्य से प्राप्त)

निवासी ईसाई मत को माननेवाले हैं। यहाँ की राष्ट्रीय भापा टगालौग (Tagalog) है, पर राज्यकाज मे अग्रेजी एव स्पेनिश भापाओ का प्रयोग होता है। शिक्षा सस्थाओ मे अग्रेजी भापा ही शिक्षा का माध्यम है। यहाँ के मूल निवासी 'एटसरा' नामक असभ्य जाति के लोग हैं, जो नवीन सभ्यता के कट्टर विरोधी हैं। अन्य आदिवासी मोरो, इग्रटे आदि छोटे छोटे नगरो मे अपनी वस्तुओ का क्रय विक्रय करने आते है।

व्यापार — यहाँ पर उपभोग की वस्तुओं का आयात कम तथा यन्त्रो एव कच्चे माल का आयात अधिक होता है। यहाँ से नारियल का तेल, गोला, मनीला हैंप, अबाका (abaca) टिन, ताँबा, रवर एव सूअर का मास बाहर जाता है। यन्त्रो, मोटरगाडियो, कपडा तथा मास आदि का आयात होता है। [वि० रा० सि०]

फिलो प्राचीन काल मे यहूदी धर्म एव दर्शन का प्रमुख प्रतिपादक और पाश्चात्य ससार का प्रमुख धर्म-दर्शन-शास्त्री। उसका जीवनकाल लगभग ३० ई० पू० से ४० ईसोपरात तक और निवास अलेग्ज़ैड्रिया मे था।

उसकी अनेक रचनाओ मे चार मुख्य थी — (१) सृष्टि और यहूदियो के मिस्र से गमन के विषय मे प्रश्नोत्तरी, (२) सृष्टिव्याख्या, जिसमे पूर्व इजील के सृष्टि विषयक भाग के पात्रों की आत्मा की अवस्थाओ के साध्यवसानात्मक प्रतीक प्रतिपादित किए गए हैं, (३) गैर यहूदियो के लिये मूसवी धर्म की व्याख्या, जिसमे सृष्टिप्रसग, एब्राहम, आइज़क तथा जोजेफ, तीन सतो के जीवनचरित्र द्वारा नीति-प्रतिपादन और एक नियमावली है, (४) मूसा का जीवनचरित्र।

फिलो पूर्व इजील के प्रथम पाँच ग्र थो को निरपेक्ष अधिकारयुक्त दैवी ग्रथ और सपूर्ण सत्य के कोश स्वरूप मानता था। उसका विचार था कि यूनानी दार्शनिक विचार मूसा से ही लिए गए होगे और उसने पचग्रथ की सरल कथाओ की साध्यवसानात्मक व्याख्या द्वारा इस विश्वास की पुष्टि का प्रयत्न किया।

वह ईश्वर को पूर्णतया निर्गुण मानता था — शरीर, आत्मा, किसी प्रकार के तत्व, द्रव्य अथवा सायौगिक गुण से परे, प्रकृति, आकृति, वुद्धि, विचार और भापा के परे तथा शिव एव सुदर से भी श्रेष्ठ, साथ ही असीम, नित्य, अपरिवर्तनीय, सरल, स्वतत्र तथा अपने में पर्याप्त भी। फिलो का कथन था कि ईश्वर के विपय में केवल यही कहा जा सकता है कि वह है, यह नही कहा जा सकता कि वह क्या है। मानव आत्मा ईश्वर तक चिंतन से नही, रहस्यपूर्ण आतरिक प्रकाशात्मक अपरोक्षानुभूति द्वारा ही पहुंच पाती है।

फिलो का विचार था कि ईश्वर स्वय ससार मे क्रियाशील होने से अपवित्र और ससीम हो जाता, अत कुछ मध्यस्थ आत्माएँ, दिव्य धारणाएँ अथवा शक्तियाँ उसके पार्षदो के रूप में जगत् का निर्माण एव नियमन करती हैं। यह सब विश्वनियता ईश्वरीय वुद्धि के अग स्वरूप हैं, ईश्वर के मन के विचारमात्र। फिर भी इनका ईश्वर से अलग अस्तित्व है। श्रेष्ठतम मध्यस्थ ईश्वरीय वुद्धि है, जिसे फिलो ने ईश्वर का प्रथम पुत्र, समस्त श्रुति का माध्यम, तथा ईश्वर के दरवार मे ससार का परमपुरोहित कहा है और सृष्टिग्रथ मे कथित ईश्वरीय सृजनात्मक शब्द से अभिन्न वताया है।

परतु फिलो के मतानुसार ईश्वर से जगत् की व्यवस्थात्मकता मात्र आती है। इसका भौतिक पदार्थ ईश्वर से उत्पन्न नही, द्वितीय स्वतन्त्र तत्व है। फिर भी उसने इसे रिक्त, निरस्तित्व, अजीव, गतिहीन एव आकृतिहीन कहा है।

फिलो का नीतिसिद्धात भी द्वैतवादी था। वह इद्रियजन्य पाप स्रोत शरीर को मनुष्य के ईश्वरीय अग आत्मा के लिये वदीगृह, कफन या कब्र कहता था और ऐंद्रिय प्रवृत्तियो के शमन को ही आदर्श व्यवहार समझता था। परतु उसके मतानुसार यह मनुष्य की अपनी शक्ति से नही, ईश्वर की सहायता से ही सभव है। उसी के फलस्वरूप आनदावस्था मे ईश्वर के दर्शन, व्यक्तिगत चेतना के दिव्य प्रकाश मे विलीनता और ऐंद्रिय शरीर से स्थायी मुक्ति की प्राप्ति होती है। जो जीवनकाल मे ऐंद्रिय पदार्थो से विरक्त नही हो पाते, वे मृत्यु के उपरात दूसरे शरीर मे जन्म लेते रहते हैं।

स० ग्र०—फिलो वर्क्स, अनुवादक कोलसन तथा व्हिटेकर, ६ भाग, वुल्फसन फिलो, २ भाग, गुडिनफ . ऐन इट्रोडक्शन टु फिलो; व्रिह्य ले ज़ीदे फिलोज़ोफीक ए रेलीजियन द फिलो दालेग्ज़ाद्री; ड्रमड फिलो जुडेअस, २ भाग, सीग्फ्रीड फिलो फौन अलेग्ज़ैड्रिया। [रा० नू०]

फ़िलोलाउस पाँचवी शती ईसवी के उत्तरार्ध मे प्राचीन यूनानी दार्शनिक पिथागोरास का रूमी अनुयायी। इतिहास मे पिथागोरियन विश्वास के अतिम अनुयायियो मे कई फिलोलाउस के ही शिष्य थे। कहा जाता है, फिलोलाउस को रोम मे निरकुश शासन स्थापित करने का प्रयत्न करने के लिये मृत्युदड दिया गया। उसे डोरिक भापा मे विश्वव्याख्या, आत्मव्याख्या, लय और छद तथा आनंद, इन चार ग्रथों का लेखक माना जाता है।

फिलोलाउस को पिथागोरास के सिद्धातो को पहले पहल लिपि-वद्ध करने का श्रेय प्राप्त है। यह भी विश्वास किया जाता है कि अफलातून ने फिलोलाउस के ग्र थो द्वारा ही पिथागोरास के सिद्धातो से परिचित एव प्रभावित होकर अपने ग्रथो मे भी उसके गणितात्मक रहस्यवाद से मिलते जुलते कुछ विचारो का समावेश किया था।

फिलोलाउस ने पिथागोरास के सख्यासिद्धात का प्रतिपादन ही नही किया, उसमे अपनी ओर से मौलिक वृद्धि भी की। उसने घन को ज्यामितिक सामजस्य कहा। इसी से पिथागोरास के अनुयायियो मे हरात्मक मध्यक की धारणा वनी क्योकि घन मे १२ कोर, ६ फलक और ८ कोण होते हैं, और आठ १२ और ६ के वीच का हरात्मक मध्यक है। उसने सख्या और शब्द के विपय मे प्रयोग भी किए और सगीत स्वर के गणितात्मक विभाजन का प्रयत्न भी किया।

पिथागोरास की विज्ञान सवधी रुचि की परपरा को चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में वटाते हुए फिलोलाउस ने शरीर पर दो पदार्थो का प्रभाव माना, एक उष्ण पदार्थ और दूसरा शीत पदार्थ। उसने व्यक्ति के स्वास्थ्य को इन दोनो मे उचित अनुपात की स्थापना पर निर्भर समझा। शरीर को मूलत केवल उष्ण तत्व से रचित और शीत को उसमे जन्म के उपरात श्वसन प्रक्रिया द्वारा वाह्य वायु से प्रवेश-प्राप्त कहा।

फिलोलाउस का कथन था कि आत्मा शरीर के पदार्थों के संतुलन का ही नाम है। देह के अंत के साथ आत्मा का भी अंत हो जाता है। अपने निश्वसिद्धांत में उसने अग्नि को विश्व के पवित्र केंद्र पर स्थित बताया और इसी में कर्ता ईश्वर द्वारा मूल अविनायकत्व स्थापित बताया। उसका सिद्धांत था कि संपूर्ण विश्व और उनकी प्रत्येक वस्तु में असीम और सीमक का मेल है। इसी से ज्ञान संभव होता है। असीम निराकार एवं संख्यारहित होगा। आकार और संख्या के बिना ज्ञान असंभव है। असीम और सीमक भिन्नस्वभाव एवं असंबद्ध होते हैं। इनका मेल सामंजस्य द्वारा संभव हो जाता है। पदार्थों का मूल स्वभाव नित्य है। प्रकृति का पूर्ण ज्ञान मानव बुद्धि से नहीं, दैवी बुद्धि से ही हो सकता है।

सं० ग्रं० — कैथलीन फ्रीमैन दि प्रीसौक्रेटिक फिलोसोफर्स ऐंसिला टु दि प्रीसौक्रेटिक फिलौसोफर्स [रा० लू०]

फिशर, एमिल (Fischer, Emil, सन् १८५२–१९१९) जर्मन रसायनज्ञ एवं नोबेल पुरस्कार विजेता। (१९०२ ई०) फिशर अपने समय के कार्बनिक रसायन के सबसे बड़े आचार्य एवं अनुसंधानकर्ता थे। इनका जन्म ९ अक्टूबर, १८५२ ई०, को बॉन के निकट यूस्किर्चेन (Euskirchen) में हुआ था। फिशर ने केकूले (Kekule) तथा बेयर (Baeyer) के अधीन रहकर रसायन विज्ञान का अध्ययन किया। १८९२ ई० में हॉफमैन के अवकाश ग्रहण करने पर फिशर बर्लिन में आचार्य पद पर नियुक्त हुए और मृत्यु पर्यंत यहीं रहे। १५ जुलाई, १९१९ ई०, को इनका देहावसान हो गया।

फिशर ने १८७४ ई० में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। १८७५ ई० में इन्होंने फेनिल हाइड्रेज़ीन का संश्लेषण किया। यह फेनिल हाइड्रेज़ीन शर्कराओं से संयुक्त होने की क्षमता रखता है और इस प्रकार के ओसाज़ोन बनाता है जिनसे शर्कराओं को पृथक् करने और उन्हें शुद्ध अवस्था में प्राप्त करने में फिशर को बहुत सहायता मिली। इन्होंने प्यूरिन यौगिकों पर कार्य कर यश का अर्जन किया। १९०२ ई० में शर्करा एवं प्यूरिन यौगिकों के महत्वपूर्ण कार्य पर इन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। इन्होंने कैफीन और थियोब्रोमिन पर कार्य किया। इन्होंने प्रोटीनों से ऐमिनो अम्लों को पृथक् किया, कई प्रकार से इन अम्लों को संश्लेषित किया और कई बहुपेप्टाइडों पर गवेषणा आरंभ की। ये बहुपेप्टाइड, या पॉलिपेप्टाइड, प्रोटीन से मिलते जुलते हैं। जीवन का रहस्य प्रोटीनों पर निर्भर है। इस प्रकार फिशर ने प्रोटीन पर कार्य कर जीवन संबंधी रहस्यों को समझने का एक नया मार्ग निर्देशित कर दिया। इनके बाद इन्होंने टैनिन पर कार्य आरंभ किया। टैनिन की संरचना तथा संश्लेषण का श्रेय फिशर को ही है। कार्बनिक रसायन में इन्होंने जो कार्य किया उससे इनका नाम रसायन वैज्ञानिकों में अमर हो गया है। [सत्य प्र०]

फीजी स्थिति १८° २०′ द० अ० तथा १७९° ०′ पू० दे०। यह प्रशांत महासागर में ब्रिटिश उपनिवेश है, जो ३२२ द्वीपों के मिलने से बना है। इसका क्षेत्रफल ७,०८३ वर्ग मील और जनसंख्या ४,१३,८७२ (१९६१) है। सूवा (Suva) यहाँ की राजधानी है, जिसकी जनसंख्या ३७,३७१ (१९५६) है। वीटि लेवू यहाँ का सबसे प्रमुख द्वीप है, जो ९८ मील लंबा, एवं ६७ मील चौड़ा है। इसके अतिरिक्त वानूआ लेवू टावेऊनी, कादावू, कोरो, न्गाऊ, ओवालाऊ द्वीप तथा यसावा द्वीपसमूह प्रमुख हैं। बड़े बड़े द्वीप ज्वालामुखी से बने हैं और पहाड़ी हैं। एक चोटी ५,००० फुट तक ऊँची है। द्वीप की औसत ऊँचाई ४,००० फुट है तथा धरातल ऊबड़ खाबड़ है। यहाँ पर उष्ण प्रदेशीय वनस्पति पाई जाती है तथा दक्षिणी द्वीप घने जंगलों से ढँके हुए हैं। इन जंगलों में मूल्यवान् लकड़ी पाई जाती है। द्वीपों का भीतरी भाग उपजाऊ तथा जल से परिपूर्ण है। उत्तर पश्चिमी भाग सूखा एवं गरम तथा दक्षिणी और पूर्वी भाग आर्द्र रहता है। फीजी के आर्द्र क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा का औसत १४४ इंच तक रहता है। बड़ी नदियों में नावों के द्वारा आवागमन होता है। ईख, कपास, कहवा, रबर, नारियल तथा केला बहुतायत से उत्पन्न किया जाता है। यहाँ एक उत्तम बंदरगाह है। यहाँ पर भारतीयों की संख्या अधिक है, जो यहाँ श्रमिकों के रूप में आए थे। [सु० प्र० सिं०]

फीताकृमि या पट्टकृमि (Tapeworm, टेपवर्म) प्लैटीहेल्मिंथीज़ संघ के सेस्टोडा (Cestoda) वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इनकी आकृति चिपटी पट्टिका की भाँति होती है। इसलिये इनको पट्टकृमि कहते हैं। सेस्टोडा वर्ग में कई पट्टकृमि संमिलित हैं। ये फीते के समान पतले होते हैं। इनकी लंबाई भी भिन्न भिन्न होती है। इनका शरीर कई खंडों से मिलकर बनता है। प्रत्येक खंड एक स्वतंत्र इकाई होता है, जिसमें नर एवं मादा दोनों के पूर्ण जनन अंग होते हैं। इनके नाम विभिन्न डिंभक परपोषी (larval host) के नामानुसार दिए गए हैं। इनका वर्गीकरण मुख्यत: दो भागों में कर सकते हैं (१) प्रौढ तथा कृमि, जो मनुष्यों की आँतों में रहता है तथा (२) वे कृमि, जिनके डिंभक मनुष्य के शरीर के विभिन्न भागों में रहते हैं। प्रथम भाग में निम्नलिखित कृमि आते हैं डाइफिलोबॉथ्रियम लेटम (Diphyllobothrium latum), टीनिया सोलियम (Taenia solium), टीनिया सैजिनाटा (Taenia saginata), टीनिया नाना (Taenia nana) तथा टीनिया डिमिन्यूटा (Taenia diminuta)। पट्टकृमि, जिनके डिंभक मनुष्य के शरीर के विभिन्न भागों में रहते हैं, निम्नलिखित हैं : टीनिया इकाइनोकॉकस (Taenia echinococcus), टीनिया सोलियम (Taenia solium) तथा टीनिया नाना (Taenia nana)।

ये कृमि मनुष्य के क्षुद्र आंत्र (small intestine) में अपने चूषक (sucker) तथा तुंडक (rostellum) की सहायता से अटके रहते हैं। ये अपने पूर्ण शरीर की सहायता से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इनके शरीर की रचना में निम्नलिखित तीन भाग होते हैं : १ शीर्ष, २ गर्दन तथा ३ शरीर की विभिन्न इकाइयाँ (खंड)।

१ शीर्ष (Scolex) — यह शरीर का अग्रिम भाग होता है, जो आँतों में अपने विभिन्न भागों की सहायता से चिपका रहता है। विभिन्न भाग निम्नलिखित है

(क) चूषक — शीर्ष के ऊपर ये आकार में गहरे कटोरे की, आकृति के होते हैं (देखें चित्र)।

फिलिपीन द्वीप समूह (देखें पृष्ठ १०३–१०५)
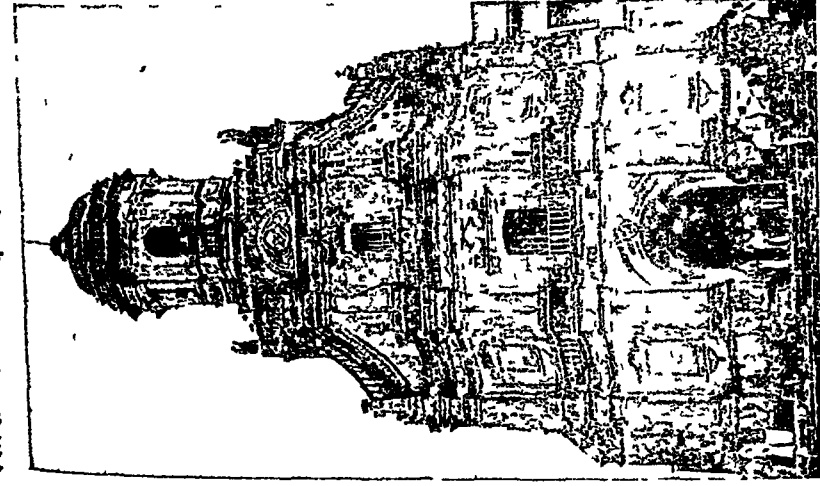
पैगसैजैन नदकदर का द्वार

मोरग नगर का गिरजाघर

मैगेलैन स्मारक, मैक्टैन द्वीप, सेबू

न्वेवा विस्काया का सैलिनास लवण सोता

(फिलिपीन राजदूतावास के सौजन्य से प्राप्त)

जैंबोआगा नगर मे पिलार नामक किला

फिलिपीन द्वीप समूह (देखें पृष्ठ १०३–१०५)
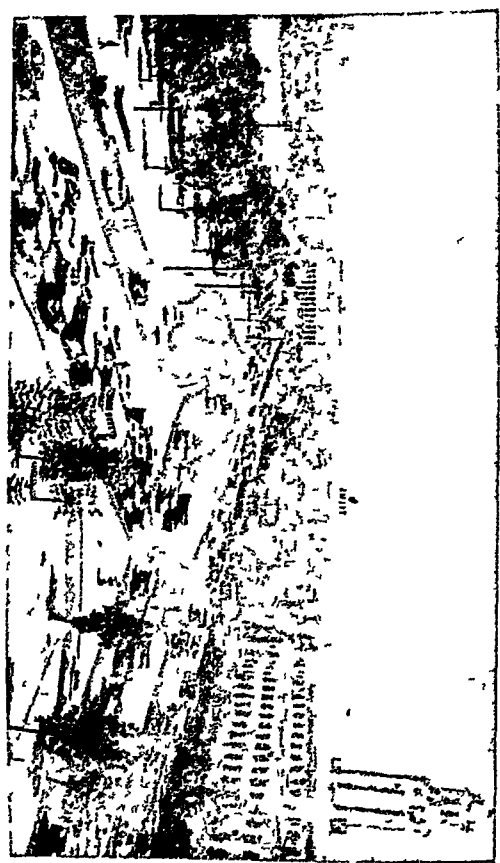
माउटेन नामक सूबे का बाग्यो (Baguio) नगर

मैनिला की टैफ्ट ऐवेन्यू नामक सडक
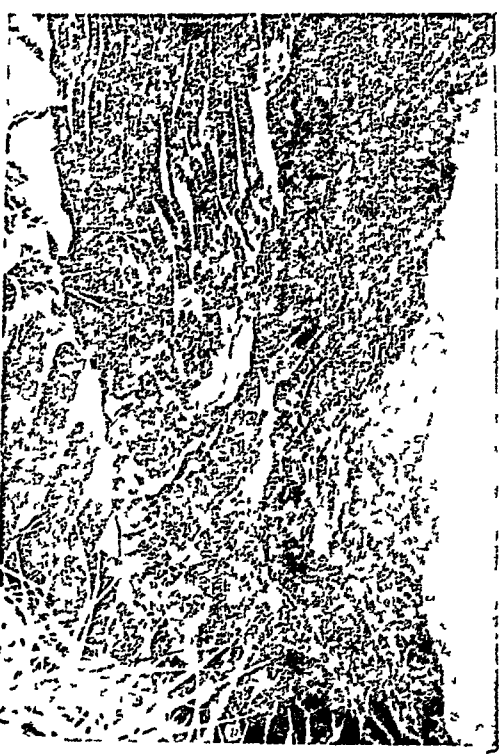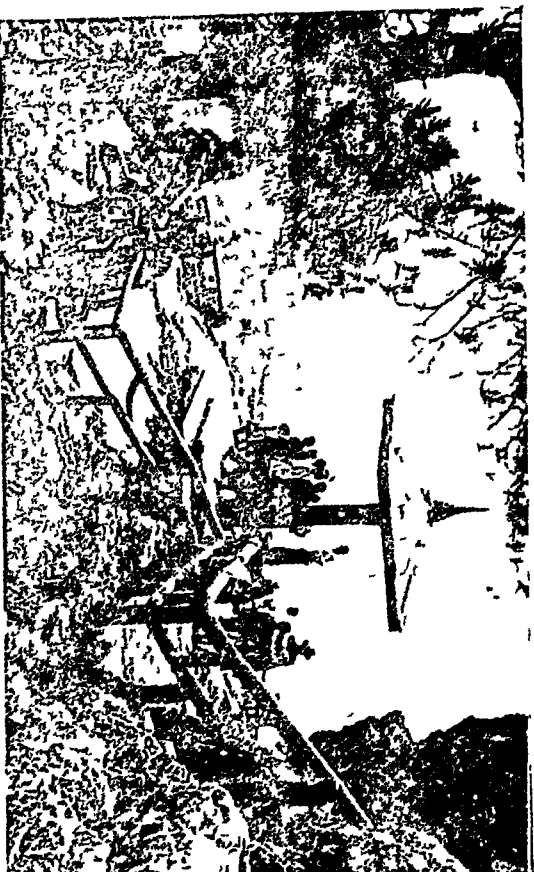
बाग्यो नगर का माइन्स विउ पार्क

माउटेन सूबे मे धान के सीढ़ीदार खेत

(फिलिपीन राजदूतावास के सौजन्य से प्राप्त)

(ख) तुंडक — यह शीर्ष के अग्र भाग मे चोंच की तरह होता है।

(ग) अंकुशिका (hooklets) — ये एक या दो कतार में तुंडक के ऊपर होते हैं।

२ गर्दन — यह एक छोटा सा सकीर्णन (constriction) है, जो शीर्ष के पीछे होता है।

३ देहखंड (proglottid) — ये बहुत से होते हैं। प्रत्येक कृमि मे इनकी सख्या भिन्न भिन्न होती है।

अंडा — इसके दो आवरण होते है एक भ्रूण (ovum) और दूसरा अंडकवच, जिसे भ्रूणधर (Embryophore) कहते हैं।

डिंभक निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं

१ पित्ताशय डिंभक — यह थैली (bladder) की तरह होता है और द्रव से भरा रहता है, इसकी भित्ति मे शीर्ष आदि बनता है। किसी किसी डिंभक मे सततिपित्ताशय (daughter cyst) होता है।

२ ठोस डिंभक (Solid larva) — यह ठोस होता है और किसी द्रव से भरा नही होता। प्रत्येक कृमि में कुछ असमानता रहती है। इसका विशेष उल्लेख निम्नलिखित सारणी मे दिया जा रहा है

सेस्टोडा वर्ग के विभिन्न कृमियो का अंतर

पट्टकृमि		टी० सेजिनाटा	टी० नाना	टी० सोलियम	टी० इकीनोकॉकस	डाइफिलोबॉथ्रियम लेटम
भौगोलिक स्थान		गोमासाहारी देश	भारत, अफ्रीका मिस्र एव यूरोप	शूकर मासाहारी देश	सभी देशो मे भारत मे भी यदाकदा	यूरोप, अमरीका एव जापान
शरीर के अंदर कृमि का स्थान		छोटी आत्र	छोटी आत्र	छोटी आत्र	छोटी आत्र	छोटी आत्र
शरीर के अंदर डिंभक का स्थान		चवरण पेशियाँ	आँतो का रोमाकुर (विलाई, villi)	जिह्वा, पेशियाँ यदाकदा मस्तिष्क एव चक्षु	जिगर, यदाकदा शरीर के अदर	साइक्लॉप्स (देहगुहा) मत्स्य (Fish) मे पेशियाँ एव आत्रयुज
पोषक	आवश्यक	मनुष्य	मनुष्य	मनुष्य	कुत्ता एव उसकी जाति के जानवर	मनुष्य एव बिल्ली
	अंत स्थ	गाय एव बैल	मनुष्य, यदाकदा मूपक	शूकर, यदाकदा मनुष्य	मनुष्य, गाय एव शूकर	पहला अत स्थ पोषक साइक्लोप्स, द्वितीय अत स्थ पोषक मत्स्य
कृमि की लंबाई (सेंटीमीटर मे)		३६० से १,२००	२ से ४	१५० से ६००	४ से ५ मिलीमीटर	३,००० से ४००
कृमि के खंडो की सख्या		१,२०० से २,०००	१७५ से २२५	८०० से ९००	३ से ५	३,००० से ४,०००
शीर्ष के विशेष भाग	चूषक	४	४	४	४	इसके सिर पर दो अनुदैर्घ्य चूषण खाचे होते हैं
	अंकुशिका	नही होती	२० से ३०, सब एक कतार मे	२६ से २८, दो कतारो मे।	३० से ४०, दो कतारो मे।	(two longitudinal suctorial grooves)

जीवनचक्र — इस वर्ग के कृमियो का जीवनचक्र विभिन्न परपोषियो मे पूर्ण होता है। डाइफिलाबॉथियम लेटम कृमि में तीन, टीनिया नाना मे एक एव अन्य सभी मे दो परपोषियो की आवश्यकता होती है। प्रौढ कृमि कशेरुकी की छोटी आँतो मे रहता है एव मध्यस्थ परपोषी (intermediate host) के शरीर मे परजीवी अपनी डिंभक अवस्था मे रहता है।

कशेरुकी की छोटी आत्र से कृमि के अडे एव शरीर के खड विष्ठा के साथ बाहर आ जाते है। इस विष्ठा को जब मध्यस्थ परपोषी खाता है, तब वह कृमि के अडे एव शरीर के खड उसके साथ निगल जाता है। पेट मे पाचनक्रिया द्वारा अडो के आवरण गल जाते हैं और भ्रूण स्वतत्र हो जाता है। पेट से ये भ्रूण आत्रो मे आ जाते हैं। ये बहुत ही सक्रिय होते है। भ्रूण अपनी अकुशिकाओं की सहायता से आत्रो मे घुस जाता है और वहाँ से रुधिर की नलिकाओ द्वारा शरीर के विभिन्न भागों मे पहुँच जाता है। भ्रूण निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर डिंभक अवस्था मे बढता है। इसकी अकुशिकाएँ समाप्त हो जाती हैं और वह अपने को चारो ओर से एक आवरण द्वारा ढक लेता है। इस अवस्था को पुटीभूत (encysted) कहते हैं। इस आवरण मे एक द्रव भरा रहता है, इसलिये इसका रूप ब्लैडर कृमि (bladder worm) की तरह का हो जाता है। इसका शीर्ष एव अन्य भाग कोष्ठ की भित्ति से बनते हैं। अब यह पुटीपुच्छक (cysticercus) कहलाता है। इसके पूर्ण डिंभक की अवस्था तक बढने में २ से ६ माह तक लगते हैं।

फीता कृमि

१ क कृमि के सिर मे चूपक, २ ख सिर का हुक, ३ पूर्ण कृमि, ४ कुत्ते मे पाया जानेवाला फीता कृमि, ५ वामन फीता कृमि तथा ६ डा० लेटम नामक कृमि का सिर।

जब मनुष्य पुटी-पुच्छक से सक्रमित (infected) कच्चा एव अधपका मास खाता है, तब मास के साथ पुटीपुच्छक भी पेट में चले जाते हैं। पेट मे पुच्छक की भित्ति गल जाती है और शीर्ष बाहर आ जाता है। शीर्ष बहिर्वर्तन (evagination) की विधि से आंतो की श्लेष्मकला (mucous membrane) में अपनी अकुशिका और चूपक की सहायता से चिपक जाता है। अब ब्लैडर गल जाता है, तत्पश्चात् शीर्ष से शरीर के विभिन्न खडो की उत्पत्ति होती है और शनै शनै कृमि प्रौढ अवस्था को प्राप्त करता है। कृमि का जीवन कुछ दिनसो से लेकर एक वर्ष तक का होता है।

लक्षण — बहुत से कृमि तो बिना किसी विकार के उत्पन्न किए हुए मनुष्य की आँतो मे रहते हैं। कभी कभी परपोषी उदर एव आँतो के विकार सबधी लक्षण बतलाता है, जैसे क्षुधा का कम लगना तथा पेट मे दर्द होना। यह दर्द यदाकदा शूल की भाँति तीव्र होता है। अन्यथा धीमा, मीठा मीठा सा दर्द होता है। कभी कभी दस्त भी होने लगता है। बच्चों मे सर दर्द एवं ऐंठन (convulsion) की शिकायत भी हो जाती है। पुरुषों में मन श्रांति (neurasthenia) के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। डाइफिलोबॉथियम कृमि से रक्तक्षीणता हो जाती है। जब डिंभक मनुष्य के विभिन्न भागो मे रहता है, तो उसके लक्षण उसी अग के विकार से उत्पन्न होते हैं, जैसे जिगर का बढ जाना एव फुफ्फुस और दिमाग मे विकार पैदा कर देना।

निदान — ऊपर लिखे हुए लक्षणों के रहने पर आँतों मे कृमि की उपस्थिति जानने के लिये निम्न परीक्षाएँ की जाती हैं

१ विष्ठा मे कृमि के अडो एव शरीर के विभिन्न खडो की जाँच,

२ एक्सरे द्वारा शरीर के विभिन्न भागो मे डिंभक की उपस्थिति की जाँच,

३ रुधिर मे इयोसिनोफिल (eosinophils) की वृद्धि की जाँच,

४ प्रतिरक्षात्मक अभिक्रिया (immunologic reaction) का प्रदर्शित होना।

उपचार — इसके उपचार मे कई ओषधियो को प्रयोग मे ला सकते हैं, परतु मुख्यत उपयोगी ओषधियाँ निम्नलिखित हैं

१ फिलिमिस मैस (Filicis mas) — इसके सेवन के दो दिन पूर्व, व्रत रखकर बहुत हल्का भोजन करते हैं और सेवन के दिन ३०-३० मिनिम (minim) की चार मात्रा २० मिनिट के अतर पर देते हैं। इसके पश्चात् जुलाब दिया जाता है और तत्पश्चात् विष्ठा की जाँच, विष्ठा को चलनी मे छानकर कृमि के अडे एव शरीर के खड के लिये की जाती है।

२ एटेब्रिन (Atebrin) — इसकी एक ग्राम मात्रा एक बार मे ही दी जाती है।

३ जब रक्तक्षीणता होती है तब यकृतनिष्कर्ष (liver extract) देते हैं।

४ अगर टी० इकाइनोकॉकस का डिंभक मनुष्य के शरीर में होता है, तो उस व्याधि को उदकोष्ठि या हाइडैटिड सिस्ट (hydatid cyst) कहते हैं और इसका उपचार शल्य चिकित्सा द्वारा होता है।

रोगनिरोधन (Prophylaxis) — फीता कृमि के विकार से बचने का उपाय है, कच्चे एव अधपके मास का उपयोग न करना। पालतू कुत्ता एव उसकी जाति के अन्य जानवरो से दूर ही रहा जाए तो अच्छा है। [हृ० वा० मा०]

फ़ीदो प्राचीन यूनानी दर्शन के इतिहास मे सुकरातवादियो के ईलियायी सप्रदाय का सस्थापक। वह पाँचवीं शती ई० पू० मे उत्पन्न हुआ था और एलिस नगर का निवासी था। स्पार्टा और एलिस के बीच ४०१-४०० ई० पू० मे हुए युद्ध मे वह दास बना लिया गया था और सुकरात ने उसे दासता से छुडाया था। कदाचित् वह बहुत तर्क-

प्रिय था और उसे नीतिशास्त्र मे विशेष रुचि थी। विश्वास किया जाता है कि उसने कुछ सवार्ताएँ लिखी थी परतु उनमे से कोई भी अब उपलब्ध नही। उसका मत नैतिक बुद्धिवाद कहा जाता है। सुकरात की भाँति उसने भी ज्ञान को ही सद्गुण माना एव दर्शन को बुद्धिसगत जीवन का सर्वश्रेष्ठ पथप्रदर्शक बताया। उस समय के बहुत से अन्य चितको की भाँति उसको भी अपने समय का समाज अति पतित अवस्था मे प्रतीत होता था और वह दर्शन का यह प्रकार्य समझता था कि समाज का नैतिक उत्थान सभव करे और उसे सच्ची स्वतत्रता के स्तर पर पहुँचाए।

सुकरात के शिष्यो मे फीदो के महत्व का इससे पता चलता है कि उसके गुरुभाई अफलातून ने अपने ग्रथ का नाम ही फीदो रखा था। इसमे अफलातून ने अपने अमरत्व सिद्धात का प्रतिपादन किया। आत्मा को शरीर से श्रेष्ठ एव स्वतत्र, जन्मजन्मातरो मे भी अक्षय, सदासम, अगोचर, शुद्ध, अपने मे ही सतुष्ट, शारीरिक विकारो से मुक्त, तथा नित्य अमूर्त के ध्यान मे रत, अत. सदा ही मरने अर्थात् देहत्याग मे लगी हुई बताया। यह विश्वास भी प्रकट किया कि मृत्यु के साथ आत्मा विद्या के दैवी, अमर, अदृश्य जगत् को प्रयाण कर त्रुटि, मूर्खता, भय, कामवासना आदि से मुक्त हो, सदा के लिये देवताओ के सग के अक्षुण्ण आनद का लाभ उठाती है और जीवन के शुद्ध सत्य प्रत्यय को प्राप्त हो जाती है। परतु प्राचीन यूनानी व्याकरण-शास्त्री रायेनेअस ने लिखा है कि फीदो स्वय अफलातून के इस ग्रथ मे उसके मुख से कहलाई गई वार्ताओ मे अपने मत का यथार्थ चित्रण नही मानता था। फीदो के एक अन्य समकालीन ऐस्किनेस ने भी फीदो शीर्षक से एक सवार्ता लिखी थी, परतु उसमे व्यक्त विचारो का कुछ पता नही चलता। [रा० लू०]

फीनिक्स (Phoenix) १ नगर, स्थिति ३३° ३०' उ० अ० तथा ११२° १०' प० दे०। ऐरिजोना (सयुक्त राज्य) राज्य के मध्य, राज्य का सबसे बडा वितरणकेंद्र एव नगर है। इसके समीपवर्ती सिंचित प्रदेश मे लबे रेशे की कपास, ऐल्फैल्फा घास, नीबू, जैतून, अगूर आदि की कृषि होती है। समुद्र से १,०८० फुट की ऊँचाई पर स्थित नगर १० वर्ग मील मे विस्तृत है तथा काउटी का प्रशासनिक नगर है। नगर की जनसख्या ४,३९,१७० (१९६०) थी।

२ द्वीप, स्थिति ३° ३०' द० अ० तथा १७१° ०' प० दे०। मध्य प्रशात महासागर मे १८ वर्ग मील क्षेत्रफल के आठ द्वीप हैं। गुआनो तथा नारियल प्रमुख उपजें हैं। [सु० प्र० सिं०]

फीनियन्स अग्रेजी शासन से आयरलैंड की मुक्ति के हेतु निर्मित एक सगठन (ब्रदरहुड)। जॉन ओ महोनी ने १८४८ मे न्यूयार्क मे इसकी नींव डाली। फीनियन ब्रदरहुड का उद्देश्य शस्त्रक्राति और सैनिक कार्रवाइयो द्वारा आयरलैंड को स्वतत्र करना था। १८६६ मे ब्रदरहुड ने कनाडा पर आक्रमण किया। फीनियन क्रातिकारी आयरलैंड भी गए और विद्रोह की आग भडकानी चाही। विद्रोह सफल नही हुआ। तब उन्होंने इग्लैंड की बस्तियो पर बमबारी आरभ की। १८६७ मे उन्होंने क्लर्कनवेल जेल पर धावा बोल दिया, और विस्फोट से उसकी दीवार तोड दी। इन उग्र गतिविधियो के बावजूद आदोलन अधिक दिनो तक जीवित न रह सका, फिर भी, आयरिश स्वतत्रता की चेतना जाग्रत करने मे इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही।

फीरोजशाह मेहता का जन्म सन् १८४६ मे हुआ था। फीरोजशाह मेरवानजी मेहता अपने समय के उन प्रमुख देशभक्तों मे थे जिन्होने अपनी शिक्षा की समाप्ति इग्लैंड मे की। जब आप वकालत के लिये पढ रहे थे, आप दादाभाई नौरोजी के सपर्क मे आए। ईस्ट इडिया ऐसोसिएशन और लदन इडियन सोसाइटी की सभाओ मे प्राप्त राजनीतिक जीवन के प्रशिक्षण के अवसरो को आपने अपने लिये उपयोगी बनाया।

फीरोजशाह के जीवन के अच्छे वर्ष बबई शहर की म्युनिसपल सरकार की सेवा मे व्यतीत हुए। कौंसिल मे जो उनका प्रभाव था और अपने सहयोगियो तथा जनता से जो श्रद्धा और आदर उन्हे मिला वह 'बबई का मुकुटहीन राजा' सबोधन मे प्रतिबिंबित होता है। यह कहने मे कोई अतिरजना नही कि बबई की म्युनिसपल कारपोरेशन का जो वर्तमान सविधान है और उसकी जो कीर्ति तथा मर्यादा स्थापित है वह आपके प्रयत्नो का ही परिणाम है। बबई विश्वविद्यालय सीनेट के निर्वाचित सदस्यो की प्रतिष्ठा के लिये आपका जो सघर्ष था वह विश्वविद्यालय के साथ आपके घनिष्ठ सबध को सदा याद दिलाता रहेगा।

१८८५ मे इडियन नेशनल काग्रेस मे प्रवेश करने के बाद फीरोजशाह ने भारत मे वही काम किया जो दादाभाई ने इग्लैंड मे किया था। बाल्यकाल मे आपको काग्रेस का 'शिशु हरक्यूलिज' कहा जाता था। १९०४ की काग्रेस की स्वागत कमेटी के चेयरमैन के नाते आपने दृढतापूर्वक ब्रिटिश न्याय के प्रति अपना विश्वास घोषित करते हुए कहा कि — 'मैं चिरस्थायी ढग का आशावादी हूँ। मैं ब्रिटिश शासन को स्वीकार करता हूँ जैसा कि रानाडे ने किया था। आश्चर्यजनक है कि एक छोटा द्वीप ससार के कोने में बसकर अपनी प्रभुता दूर के महाद्वीपो मेस्थापित किए है। इसे भगवदिच्छा की व्यवस्था मानकर स्वीकार न करना मूर्खता होगी।'

स्पष्टवादी, स्वतत्र और वाक्पटु फीरोजशाह १८८६ मे बबई के लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिये मनोनीत किए गए जहाँ आपने सबका ध्यान आकृष्ट किया। उन दिनो कौंसिल के सदस्यो द्वारा अपने विरोध को प्रकट करने के लिये सभा का बहिष्कार बहुत कम सुनाई पडता था। जब बबई का भूमि रेवन्यू बिल कौंसिल मे पेश किया गया, यह देखते हुए कि अनियत्रित शासको के असहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति आपका विरोध कोई विशेष फलदायी नही, आपने सभा का बहिष्कार करके महान् सवेदना उत्पन्न कर दी।

इपीरियल कौंसिल मे भी फीरोजशाह वाइसराय की कार्यकारिणी समिति के ब्रिटिश सदस्यो से टक्कर लेते थे। इनका विरोध आप दृढतापूर्वक अपने बुद्धिबल से. निंदापूर्ण कटुवचनो और जीतनेवाली हँसी दिल्लगी से करते थे। परतु अल्पमत में होने के कारण आप उन्हे पराजित न कर सके।

फीरोजशाह और बबई के राज्यपाल सर जार्ज क्लार्क के बीच सदैव मुठभेड चला करती थी। बाद मे जब लार्ड विलिंगटन बबई के राज्यपाल बने, ऐसा सघर्ष न रहा। कहाँ तक फीरोजशाह के मैत्री सबध और वार्ता ने विलिंगटन को प्रभावित किया और उन्होने किस हद तक आपके बहुत दिनो से रुके हुए राजनीतिक

सुधारों की प्रशसा की, यह नहीं कहा जा सकता। पर अगस्त, १९१७ की महत्वपूर्ण घोषणा के पश्चात् वह सभी कुछ जो कि जनता के लिये और जनता के माध्यम से माँगा गया था, व्यावहारिक रूप में स्वीकृत किया गया। लार्ड विलिंगटन ने फीरोजशाह के सुधार की माँगों का समर्थन जिस प्रकार पर्दे की ओट से किया, उस विषय में वे बड़े ही प्रसन्न थे। बबई विश्वविद्यालय के चासलर के नाते विलिंगटन ने आपको वाइसचासलर पद के लिये आमंत्रित किया। दुर्भाग्यवश विश्वविद्यालय के प्रति आपकी स्मरणीय सेवाओं की कद्र बहुत विलब से हुई क्योंकि अस्वस्थता के कारण आप वाइसचासलर के पद पर कार्य करने मे असमर्थ रहे। आप उस विशेष समावर्तन समारोह मे भी भाग ले न सके जो आपको 'डॉक्टर ऑव ला' की उपाधि से विभूषित करने के लिये आयोजित किया गया था। १९१५ की काग्रेस की रिसेप्शन कमेटी के सभासद के पद से आप अपने मित्र श्री एस० पी० सिन्हा को काग्रेस प्रेसिडेंट के रूप मे स्वागत करने की प्रतीक्षा मे थे, पर उस वर्ष की राष्ट्रीय काग्रेस के सत्रारभ की निश्चित तिथि के एक सप्ताह पूर्व ही आपका देहात हो गया। [रु० म०]

फ़ुंक कैसिमिर (Funk Casimir) पोलैंडवासी, जीवनरसायनज्ञ थे। इनका जन्म वारसा मे २३ फरवरी, १८८४ ई० को हुआ। इन्होंने स्विट्ज़रलैंड के बर्न विश्वविद्यालय, पैरिस के पैस्टर इंस्टिट्यूट और बर्लिन विश्वविद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की। जीवरसायनज्ञ के रूप मे इन्होंने अस्पतालो मे कार्य किया। ये सन् १९१५ मे अमरीका गए और इन्होंने वहाँ की कई अनुसधानशालाओ मे विभिन्न पदो पर कार्य किया।

विटामिन का अन्वेषण और उसकी उपयोगिता को सिद्ध करने के कारण इन्हे प्रसिद्धि मिली। इन्होने प्रथम विश्वयुद्ध में ऐड्रेनेलिन यौगिक का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन किया तथा मछली के तेल से व्यापारिक स्तर पर विटामिन निकालने की विधि निकाली। १९१७ से १९२३ ई० तक ये एच० ए० मेत्ज़ अनुसधानशाला के निर्देशक और न्यूयार्क मे कोलबिया के काय-शल्य-चिकित्सा कॉलेज मे प्रवक्ता रहे। १९३६ ई० में सयुक्त राज्य विटामिन कारपोरेशन के सलाहकार पद पर नियुक्त हुए। १९४७ ई० में इन्होंने न्यूयॉर्क मे फ़ुक फाउडेशन चिकित्सा अनुसधान की स्थापना की। [श्री० ना० दा०]

फ़ुँकनी धातु की नली होती है, जिसके द्वारा दहन की गति तीव्र करने के लिये कभी कभी वायु की धारा अग्नि या लैंप की ज्वाला मे केंद्रित करना आवश्यक होता है। घरो मे कोयले या लकड़ी की आग को तीव्र करने के लिये बाँस की खोखली नली, या पाइप के टुकड़े का प्रयोग करते हैं। धातुओ की जुड़ाई या टँकाई में या काच की वस्तु बनाने में फुँकनी का प्रयोग बहुत पुराने समय से होता चला आया है। रासायनिक विश्लेषण मे फुँकनी का प्रयोग क्रॉन्स्टेट (Cronstedt) तथा ऐंग्स्ट्रॉम (Angstrom) ने प्रारभ किया और बेगमैन (Bergman), बर्ज़ीलियस (Berzelius) तथा बुसेन (Bunsen) आदि ने फुँकनी मे अनेक सुधार किए।

सबसे प्राचीन तथा साधारण फुँकनी शक्वाकार पीतल की, लगभग ७ इच लबी तथा छोर की ओर समकोण मे मुड़ी होकर, एक छोटे गोल रध्र मे समाप्त होती हुई नली के रूप मे होती थी, जिसका रध्रवाला सिरा ज्वाला मे तथा लबा सिरा मुख मे लगाते थे। इससे फूँकने के लिये विशेष अभ्यास की आवश्यकता होती है।

फुँकनी की ज्वाला मे पदार्थ को रखने के लिये कोयले का टुकड़ा, पेरिस प्लास्टर, काच मे लगा प्लैटिनम का तार तथा पॉर्सिलेन काम मे लाए जाते हैं। अगलनीय तथा ताप का कुचालक होने के कारण कोयला विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है। इसके लिये कोयले के सपीडित चारकोल गुटके (compressed charcoal blocks) मिलते हैं, जिनमे पदार्थ रखकर फुँकनी का प्रयोग बहुत अच्छी तरह किया जा सकता है।

मुँह से फूँकनेवाली फुँकनी देर तक प्रयोग करने के लिये तथा तीव्र ज्वाला के लिये उपयुक्त नहीं होती है। इसके लिये वायु की धारा हाथ तथा पैर से चलानेवाली धौंकनियो से, या विद्युत् मोटर की सहायता से, प्राप्त करते हैं।

रासायनिक विश्लेषण मे शुष्क परीक्षण तथा पदार्थों को गरम करके गलाने में फुँकनी का विशेष महत्व है। [रा० दा ति०]

फ़ुकुओका (Fukuoka) स्थिति ३३° ३०' उ० अ० तथा १३०° ३०' पू० दे०। जापान के क्यूशू द्वीप का सबसे बड़ा नगर है। हकाता नगर भी इसी के अतर्गत आता है। गरमी मे औसत ताप लगभग २१° सें० तथा जाड़े का औसत ताप लगभग ७° सें० रहता है। वर्षा ६० इच से ८० इच के बीच होती है। इसके आसपासवाले क्षेत्र मे धान, तबाकू, शकरकद तथा रेशम उद्योग के लिये शहतूत उगाए जाते हैं। यहाँ जलयान भी बनाए जाते हैं। यह व्यापार का केंद्र बन गया है। इसकी जनसख्या ६,४७,११५ (१९६०) है। [प्र० व०]

फुज़ूली तुर्की का प्रसिद्ध कवि है। इसका वास्तविक नाम मुहम्मद था पर इसने अपने शेरों मे अपने आपको फुज़ूली कहा है और अब इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह बुगदाद के पास हिल्लत-या करबला मे पैदा हुआ था और इसे ईराक से बाहर जाने का कभी अवसर नहीं मिला। तब भी इसने अनेक विद्याओ मे योग्यता प्राप्त कर ली थी। फुज़ूली शीआ धर्म का अनुयायी था और नजफ मे हजरत अली की दरगाह का बहुत समय तक सज्जादनशीन (स्थविर) था, जहाँ से इसे कालयापन के लिये वृत्ति मिला करती थी, पर यह किसी अज्ञात कारण से बाद मे बद हो गई। इसी समय मे यह आर्थिक कष्ट मे पड़ गया। ईरान के सफवियो का ईराक पर अधिकार हो जाने के अनतर फुज़ूली शाह इस्माइल, अन्य सफवी मत्रियों तथा उच्च पदाधिकारियो की सेवा मे अपनी कविताएँ उपस्थित किया करता था। इसके अनतर बुगदाद पर उस्मानी तुर्कों का अधिकार होने पर इसने सुलतान सुलेमान आजम और दूसरे उच्च पदाधिकारियो की सेवा मे अपनी कविता उपस्थित करना आरभ कर दिया। किंतु इसकी आर्थिक परिस्थिति पहले ही जैसी बनी रही और जीवन के बचे हुए दिन दरिद्रता ही मे काटने पड़े।

फुज़ूली अरबी तथा फारसी भाषाओ का विद्वान् था और छोटी अवस्था ही से इसकी रुचि कविता की ओर हो गई थी। आरभ मे

यह फारसी तथा अरवी भाषाओ मे कविता किया करता था पर वाद मे तुर्की भाषा मे भी इसने कविता करना आरभ कर दिया। इसने इन तीनो भाषाओ मे अलग अलग अपने दीवान प्रस्तुत कर लिए थे। इसका सबध वैयात नामक तुर्की कबीले से था। सभवत इसी कारण इसकी तुर्की कविता की भाषा कुस्तुतुनिया की भाषा से कुछ भिन्न थी। इसने अपनी कविता मे तुर्की भाषा का 'आज़री लहज' (प्रेम का ढग) प्रयुक्त किया और इसकी कविता की शैली भी ईरानी है। इसने दीवान के सिवा एक मसनवी लैला मजनूँ भी लिखी है। इन दोनो रचनाओ ने तुर्की साहित्येतिहास मे इसके लिये एक विशेष स्थान वना दिया है। इसके शेरो मे विशेष कर लौकिक प्रेम के स्थान पर दैवी प्रेम अधिक है जो सभवत इसके सूफी विचारो की कृपा है। इसका फारसी, तुर्की तथा अरवी गद्य काफी सादा है परतु कसीदों मे इसने काव्यकौशल तथा वनावट से काम लिया है।

स० ग्र०—ई० जी० डब्ल्यू० गिब ए हिस्ट्री ऑव ओटोमन पोएट्री, एस० लेनपूल : तुर्की, एन० येसिरगिल फुज़ूली (इसतवोल, १९५२), ए० करवाल फुज़ूली (इसत वोल, १९४९) [अ० अ०]

फुटवाल का खेल गेंद को पैर से मारकर खेला जाता है। इस खेल मे दो दल होते हैं और प्रत्येक दल मे ग्यारह ग्यारह खिलाडी। प्रत्येक दल का एक कप्तान होता है। इस खेल का गेंद भी फुटवाल कहलाता है। इसका ऊपरी भाग अग्रेजी के अक्षर टी (T) की आकृति की १२ या १३ चमडे की पट्टियो का वना होता है। यह अदर से खोखला होता है। इस खोखले मे रवर का व्लैडर होता है, जिसमे हवा भरी जाती है। हवा भरे फुटवाल का भार १४ औस से १६ औंस तक होना चाहिए। फुटवाल की बाह्य परिधि २७ ५ से २८ ५ इच तक होती है। खेल का निर्णायक रेफरी होता है और इसकी सहायता के लिये दो लाइनमैन होते हैं। खेल में भाग लेनेवाले दोनो दलो के खिलाडियो की वरदी अलग अलग होती है और कमीज के सामने और पीछेवाले भाग पर सख्या पडी रहती है।

फुटवाल के खेल का इतिहास अति प्राचीन है। इस वात के प्रमाण मिलते हैं कि यह खेल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व स्पार्टा मे सर्वप्रथम खेला गया था। रोमवासी भी वर्तमान फुटवाल से मिलता जुलता खेल खेलते थे, जिसे वे हार्पेस्टम (Harpsatum) कहते थे। इग्लैंड मे फुटवाल का प्रचलन इतने वेग से वढा कि १३६५ ई० मे एडवर्ड तृतीय ने सेना के लोगो के लिये इसका खेलना निषिद्ध कर दिया, क्योंकि सैनिको की धनुष चलाने की योग्यता मे इस खेल के कारण ह्रास हो रहा था। यह प्रतिवध एलिजावेथ प्रथम के शासनकाल तक लागू रहा।

१९०६ ई० मे फुटवाल का खेल ओलिपिक खेलों मे समिलित किया गया और अव लगभग सभी देशो मे इसका प्रचार हो चुका है। ऑस्ट्रिया, इग्लैंड, स्पेन, पोलैंड एव नीदरलैंड की समति से एक अतरराष्ट्रीय फुटवाल फेडरेशन भी वनाया गया है।

भारत मे फुटवाल खेल आधिकारिक तौर पर १८८२ ई० के लगभग वगाल मे प्रारभ हुआ था। कलकत्ता क्लव, कुमार तुली, डलहौजी एव कलकत्ता टाउन क्लव आदि खेल सघटनो ने मिलकर इडियन फुटवाल ऐसोसिएशन (I F. A) नामक सस्था की स्थापना की। यह सस्था आज भी पश्चिमी वगाल मे फुटवाल के खेलो का आयोजन करती है। काफी वर्षो तक यह सस्था देश भर मे फुटवाल खेल के आयोजन तथा विकास का कार्य करती रही। १९३७ ई० मे अखिल भारतीय फुटवाल फेडरेशन की स्थापना हुई, जो आजकल देश भर मे आधिकारिक सघटन माना जाता है। भारत मे पेशेवर खेल की प्रथा नही है, इसलिये यह जूलेस रिमेट कप के खेल मे भाग नही लेता।

कलकत्ता मे फुटवाल खेल का प्रारभ होने के वावजूद देश की सवसे पुरानी फुटवाल प्रतियोगिता दिल्ली मे होती है। १८८८ ई० मे डूरड फुटवाल टूर्नामेंट के मैच प्रारभ हुए। आजकल इस टूर्नामेंट का आयोजन सेना का खेलकूद मडल करता है। एशियाई खेलो मे १९५१ तथा १९६२ ई० मे भारत ने फुटवाल मे स्वर्णपदक जीता।

विश्व तथा देश की कुछ प्रमुख फुटवाल प्रतियोगिताओ में विभिन्न वर्षो की विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं

विश्व फुटवाल कप (जूलेस रिमेट कप) — इस प्रतियोगिता का आयोजन प्रति ४ वर्ष पर होता है। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं १९३० यूराग्वे, १९३४ इटली, १९३८ इटली, (वीच मे मैच नही हुए), १९५० यूराग्वे, १९५४ जर्मनी, १९५८ व्राजील, १९६२ व्राज़ील, १९६६ इग्लैंड।

विश्व ओलपिक फुटवाल — इसका आयोजन प्रति चार वर्ष पर होता है। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं · १९३६ इटली, वीच मे दो वार ओलिपिक नही हुआ, १९४८ स्वीडेन, १९५२ हगरी, १९५६ सोवियत सघ, १९६० यूगोस्लाविया, १९६४ हगरी।

राष्ट्रीय फुटवाल चैंपियनशिप (सतोष ट्राफी) — भारत की राष्ट्रीय फुटवाल प्रतियोगिता १९४१ ई० मे प्रारभ हुई, जिसमे विभिन्न राज्यो की टीमे खेलती है। आई० एफ० ए० ने अपने एक अध्यक्ष राजा मनमथनाथ चौधरी (सतोष) की स्मृति मे १९५२ ई० मे एक शील्ड प्रदान की थी, जो सतोष ट्राफी के नाम से मशहूर है। इसके विजेता निम्नलिखित हैं

१९५२ मैसूर, १९५३ वगाल, १९५४ ववई, १९५५ वगाल, १९५६ हैदरावाद, १९५७ हैदरावाद, १९५८-५९ वगाल, १९६० सेना, १९६१ रेलवे, १९६२ वगाल, १९६३ महाराष्ट्र, १९६४ रेलवे तथा १९६५ आध्र।

डूरैंड फुटवाल कप — इसका प्रारभ १८८२ ई० मे हुआ। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं

१९५० हैदरावाद पुलिस, १९५१-५२ ईस्ट वगाल, १९५३ मोहन वगान, १९५४ हैदरावाद पुलिस, १९५५ मद्रास रेजिमेंटल सेंटर, १९५६ ईस्टवगाल, १९५७ हैदरावाद पुलिस, १९५८ मद्रास रेजिमेंटल सेंटर, १९५९ मोहन वगान, १९६० मोहनवगान ईस्ट वगाल (सयुक्त विजेता), १९६१ आध्र पुलिस, १९६२ मे चीनी आक्रमण के कारण खेल नही हुआ, १९६३ से ६५ मोहन वगान।

रोवर्स कप, ववई — इसका प्रारभ १८९१ ई० मे हुआ। इसकी विजेता टीमों के नाम निम्नलिखित हैं

१९५५ मोहन वगान, १९५६ मोहम्मडन स्पोर्टिंग, १९५७ हैदरावाद पुलिस, १९५८ काल्टैक्स क्लव, ववई, १९५९ मोहम्मडन स्पोर्टिंग, १९६० आध्र पुलिस, १९६१ ई० एम० ई० सेंटर, सिकदरावाद,

सुधारो की प्रशसा की, यह नही कहा जा सकता। पर अगस्त, १९१७ की महत्वपूर्ण घोषणा के पश्चात् वह सभी कुछ जो कि जनता के लिये और जनता के माध्यम से मांगा गया था, व्यावहारिक रूप में स्वीकृत किया गया। लार्ड विलिंगटन ने फीरोजशाह के सुधार की मांगो का समर्थन जिस प्रकार पर्दे की ओट से किया, उस विषय मे वे बडे ही प्रसन्न थे। बबई विश्वविद्यालय के चासलर के नाते विलिगटन ने आपको वाइसचासलर पद के लिये आमत्रित किया। दुर्भाग्यवश विश्वविद्यालय के प्रति आपकी स्मरणीय सेवाओं की कद्र बहुत विलंब से हुई क्योंकि अस्वस्थता के कारण आप वाइसचासलर के पद पर कार्य करने मे असमर्थ रहे। आप उन विशेष समावर्तन समारोह मे भी भाग ले न सके जो आपको 'डॉक्टर ऑव लॉ' की उपाधि से विभूषित करने के लिये आयोजित किया गया था। १९१५ की काग्रेस की रिसेप्शन कमेटी के सभासद के पद से आप अपने मित्र श्री एस० पी० सिन्हा को काग्रेस प्रेसिडेंट के रूप मे स्वागत करने की प्रतीक्षा मे थे, पर उस वर्ष की राष्ट्रीय काग्रेस के सत्रारभ की निश्चित तिथि के एक सप्ताह पूर्व ही आपका देहात हो गया।

[रु० म०]

फुंक कैसिमिर (Funk Casimir) पोलैंडवासी, जीवनरसायनज्ञ थे। इनका जन्म वारसा मे २३ फरवरी, १८८४ ई० को हुआ। इन्होंने स्विट्जरलैंड के बर्न विश्वविद्यालय, पैरिस के पैस्टर इंस्टिट्यूट और बर्लिन विश्वविद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की। जीवरसायनज्ञ के रूप मे इन्होंने अस्पतालों मे कार्य किया। ये सन् १९१५ मे अमरीका गए और इन्होंने वहाँ की कई अनुसधानशालाओं मे विभिन्न पदो पर कार्य किया।

विटामिन का अन्वेषण और उसकी उपयोगिता को सिद्ध करने के कारण इन्हे प्रसिद्धि मिली। इन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध मे ऐड्रीनेलिन यौगिक का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन किया तथा मछली के तेल से व्यापारिक स्तर पर विटामिन निकालने की विधि निकाली। १९१७ से १९२३ ई० तक ये एच० ए० मेत्ज अनुसधानशाला के निर्देशक और न्यूयार्क मे कोलबिया के काय-शल्य-चिकित्सा कालिज मे प्रवक्ता रहे। १९३६ ई० मे सयुक्त राज्य विटामिन कारपोरेशन के सलाहकार पद पर नियुक्त हुए। १९४७ ई० मे इन्होंने न्यूयॉर्क मे फुक फाउडेशन चिकित्सा अनुसधान की स्थापना की।

[श्री० ना० दा०]

फुँकनी धातु की नली होती है, जिसके द्वारा दहन की गति तीव्र करने के लिये कभी कभी वायु की धारा अग्नि या लैंप की ज्वाला मे केंद्रित करना आवश्यक होता है। घरो मे कोयले या लकडी की आग को तीव्र करने के लिये बाँस की खोखली नली, या पाइप के टुकडे का प्रयोग करते हैं। धातुओं की जुडाई या टँकाई मे या काच की वस्तु बनाने में फुँकनी का प्रयोग बहुत पुराने समय से होता चला आया है। रासायनिक विश्लेषण मे फुँकनी का प्रयोग क्रॉन्स्टेट (Cronstedt) तथा ऐंग्स्ट्रॉम (Angstrom) ने प्रारभ किया और बेर्गमैन (Bergman), बर्ज़ीलियस (Berzelius) तथा बुसेन (Bunsen) आदि ने फुंकनी मे अनेक सुधार किए।

सबसे प्राचीन तथा साधारण फुँकनी शक्वाकार पीतल की, लगभग ७ इच लबी तथा छोर की ओर समकोण मे मुडी होकर, एक छोटे गोल रध्र मे समाप्त होनी हुई नली के रूप मे होती थी, जिसका रध्रवाला सिरा ज्वाला मे तथा लबा सिरा मुख मे लगाते थे। इसमे फूँकने के लिये विशेष अभ्यास की आवश्यकता होती है।

फुँकनी की ज्वाला मे पदार्थ को रखने के लिये कोयले का टुकडा, पेरिस प्लास्टर, काच मे लगा प्लैटिनम का तार तथा पार्सिलेन काम मे लाए जाते हैं। अगलनीय तथा ताप का कुचालक होने के कारण कोयला विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है। इसके लिये कोयले के सपीडित चारकोल गुटके (compressed charcoal blocks) मिलते हैं, जिनमे पदार्थ रखकर फुंकनी का प्रयोग बहुत अच्छी तरह किया जा सकता है।

मुँह से फूँकनेवाली फुँकनी देर तक प्रयोग करने के लिये तथा तीव्र ज्वाला के लिये उपयुक्त नही होती है। इसके लिये वायु की धारा हाथ तथा पैर से चलानेवाली धौकनियो से, या विद्युत् मोटर की सहायता से, प्राप्त करते हैं।

रासायनिक विश्लेषण मे शुष्क परीक्षण तथा पदार्थों को गरम करके गलाने मे फुँकनी का विशेष महत्व है। [रा० दा ति०]

फुकुओका (Fukuoka) स्थिति ३३° ३०' उ० अ० तथा १३०° ३०' पू० दे०। जापान के क्यूशू द्वीप का सबसे बडा नगर है। हकाता नगर भी इसी के अतर्गत आता है। गरमी मे औसत ताप लगभग २१° सें० तथा जाडे का औसत ताप लगभग ७° सें० रहता है। वर्षा ६० इच से ८० इच के बीच होती है। इसके आसपास-वाले क्षेत्र मे धान, तबाकू, शकरकद तथा रेशम उद्योग के लिये शहतूत उगाए जाते हैं। यहाँ जलयान भी बनाए जाते हैं। यह व्यापार का केंद्र बन गया है। इसकी जनसख्या ६,४७,११५ (१९६०) है।

[प्र० च०]

फुज़ूली तुर्की का प्रसिद्ध कवि है। इसका वास्तविक नाम मुहम्मद था पर उसने अपने शेरों मे अपने आपको फुज़ूली कहा है और अब इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह बगदाद के पास हिल्लत या करबला मे पैदा हुआ था और इसे ईराक से बाहर जाने का कभी अवसर नही मिला। तब भी इसने अनेक विद्याओं मे योग्यता प्राप्त कर ली थी। फुज़ूली शीआ धर्म का अनुयायी था और नजफ मे हजरत अली की दरगाह का बहुत समय तक सज्जादनशीन (स्थविर) था, जहाँ से इसे कालयापन के लिये वृत्ति मिला करती थी, पर यह किसी अज्ञात कारण से बाद मे बद हो गई। इसी समय से यह आर्थिक कष्ट मे पड गया। ईरान के सफवियो का ईराक पर अधिकार हो जाने के अनतर फुज़ूली शाह इस्माइल, अन्य सफवी मत्रियो तथा उच्च पदाधिकारियो की सेवा मे अपनी कविताएँ उपस्थित किया करता था। इसके अनतर बगदाद पर उस्मानी तुर्कों का अधिकार होने पर इसने सुलतान सुलेमान आजम और दूसरे उच्च पदाधिकारियो की सेवा मे अपनी कविता उपस्थित करना आरभ कर दिया। किंतु इसकी आर्थिक परिस्थिति पहले ही जैसी बनी रही और जीवन के बचे हुए दिन दरिद्रता ही मे काटने पडे।

फुज़ूली अरबी तथा फारसी भाषाओं का विद्वान् था और छोटी अवस्था ही मे इसकी रुचि कविता की ओर हो गई थी। आरभ में

यह फारसी तथा अरबी भाषाओ मे कविता किया करता था पर बाद मे तुर्की भाषा मे भी इसने कविता करना आरभ कर दिया। इसने इन तीनो भाषाओ मे अलग अलग अपने दीवान प्रस्तुत कर लिए थे। इसका सबध बैयात नामक तुर्की कबीले से था। सभवत इसी कारण इसकी तुर्की कविता की भाषा कुस्तुतुनिया की भाषा से कुछ भिन्न थी। इसने अपनी कविता मे तुर्की भाषा का 'आज़री लहज' (प्रेम का ढग) प्रयुक्त किया और इसकी कविता की शैली भी ईरानी है। इसने दीवान के सिवा एक मसनवी लैला मजनूँ भी लिखी है। इन दोनो रचनाओ ने तुर्की साहित्येतिहास मे इसके लिये एक विशेष स्थान बना दिया है। इसके शेरो मे विशेष कर लौकिक प्रेम के स्थान पर दैवी प्रेम अधिक है जो सभवत इसके सूफी विचारो की कृपा है। इसका फारसी, तुर्की तथा अरबी गद्य काफी सादा है परतु कसीदो मे इसने काव्यकौशल तथा बनावट से काम लिया है।

सं० ग्र०—ई० जी० डब्ल्यू० गिब ए हिस्ट्री ऑव ओटोमन पोएट्री, एस० लेनपूल . तुर्की, एन० येसिरगिल फुज़ूली (इसतबोल, १९५२), ए० करबाल . फुज़ूली (इसत बोल, १९४६) [अ० अ०]

फुटबाल का खेल गेंद को पैर से मारकर खेला जाता है। इस खेल मे दो दल होते हैं और प्रत्येक दल मे ग्यारह ग्यारह खिलाडी। प्रत्येक दल का एक कप्तान होता है। इस खेल का गेंद भी फुटबाल कहलाता है। इसका ऊपरी भाग अंग्रेजी के अक्षर टी (T) की आकृति की १२ या १३ चमडे की पट्टियो का बना होता है। यह अदर से खोखला होता है। इस खोखले मे रबर का ब्लैडर होता है, जिसमे हवा भरी जाती है। हवा भरे फुटबाल का भार १४ औंस से १६ औंस तक होना चाहिए। फुटबाल की बाह्य परिधि २७ ५ से २८ ५ इच तक होती है। खेल का निर्णायक रेफरी होता है और इसकी सहायता के लिये दो लाइनमैन होते हैं। खेल में भाग लेनेवाले दोनो दलो के खिलाडियो की वरदी अलग अलग होती है और कमीज के सामने और पीछेवाले भाग पर सख्या पडी रहती है।

फुटबाल के खेल का इतिहास अति प्राचीन है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि यह खेल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व स्पार्टा मे सर्वप्रथम खेला गया था। रोमवासी भी वर्तमान फुटबाल से मिलता जुलता खेल खेलते थे, जिसे वे हार्पेस्टम (Harpsatum) कहते थे। इग्लैंड मे फुटबाल का प्रचलन इतने वेग से बढा कि १३६५ ई० मे एडवर्ड तृतीय ने सेना के लोगो के लिये इसका खेलना निषिद्ध कर दिया, क्योकि सैनिको की धनुष चलाने की योग्यता में इस खेल के कारण ह्रास हो रहा था। यह प्रतिबध एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल तक लागू रहा।

१९०६ ई० मे फुटबाल का खेल ओलिपिक खेलो मे समिलित किया गया और अब लगभग सभी देशो मे इसका प्रचार हो चुका है। ऑस्ट्रिया, इग्लैंड, स्पेन, पोलैंड एव नीदरलैंड की समति से एक अतरराष्ट्रीय फुटबाल फेडरेशन भी बनाया गया है।

भारत मे फुटबाल खेल आधिकारिक तौर पर १८८२ ई० के लगभग बगाल मे प्रारभ हुआ था। कलकत्ता क्लब, कुमार तुली, उत्साही एव कलकत्ता टाउन क्लब आदि खेल सघटनो ने मिलकर इडियन फुटबाल ऐसोसिएशन (I F. A) नामक सस्था की स्थापना की। यह सस्था आज भी पश्चिमी बगाल मे फुटबाल के खेलों का आयोजन करती है। काफी वर्षो तक यह सस्था देश भर मे फुटबाल खेल के आयोजन तथा विकास का कार्य करती रही। १९३७ ई० मे अखिल भारतीय फुटबाल फेडरेशन की स्थापना हुई, जो आजकल देश भर मे आधिकारिक सघटन माना जाता है। भारत मे पेशेवर खेल की प्रथा नही है, इसलिये यह ज़ूलेस रिमेट कप के खेल मे भाग नही लेता।

कलकत्ता मे फुटबाल खेल का प्रारभ होने के बावजूद देश की सबसे पुरानी फुटबाल प्रतियोगिता दिल्ली मे होती है। १८८८ ई० मे डूरड फुटबाल टूर्नामेंट के मैच प्रारभ हुए। आजकल इस टूर्नामेंट का आयोजन सेना का खेलकूद मडल करता है। एशियाई खेलो मे १९५१ तथा १९६२ ई० मे भारत ने फुटबाल में स्वर्णपदक जीता।

विश्व तथा देश की कुछ प्रमुख फुटबाल प्रतियोगिताओ में विभिन्न वर्षो की विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं

विश्व फुटबाल कप (ज़ूलेस रिमेट कप) — इस प्रतियोगिता का आयोजन प्रति ४ वर्ष पर होता है। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं १९३० यूराग्वे, १९३४ इटली, १९३८ इटली, (बीच मे मैच नही हुए), १९५० यूराग्वे, १९५४ जर्मनी, १९५८ ब्राज़ील, १९६२ ब्राज़ील, १९६६ इग्लैंड।

विश्व ओलंपिक फुटबाल — इसका आयोजन प्रति चार वर्ष पर होता है। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं . १९३६ इटली, बीच मे दो बार ओलिपिक नही हुआ, १९४८ स्वीडेन, १९५२ हगरी, १९५६ सोवियत सघ, १९६० यूगोस्लाविया, १९६४ हगरी।

राष्ट्रीय फुटबाल चैंपियनशिप (सतोष ट्राफी) — भारत की राष्ट्रीय फुटबाल प्रतियोगिता १९४१ ई० मे प्रारभ हुई, जिसमे विभिन्न राज्यो की टीमे खेलती है। आई० एफ० ए० ने अपने एक अध्यक्ष राजा मनमथनाथ चौधरी (सतोष) की स्मृति मे १९५२ ई० मे एक शील्ड प्रदान की थी, जो सतोष ट्राफी के नाम से मशहूर है। इसके विजेता निम्नलिखित है

१९५२ मैसूर, १९५३ बगाल, १९५४ बबई, १९५५ बगाल, १९५६ हैदराबाद, १९५७ हैदराबाद, १९५८-५९ बगाल, १९६० सेना, १९६१ रेलवे, १९६२ बगाल, १९६३ महाराष्ट्र, १९६४ रेलवे तथा १९६५ आध्र।

डूरैंड फुटबाल कप — इसका प्रारभ १८८२ ई० मे हुआ। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं

१९५० हैदराबाद पुलिस, १९५१-५२ ईस्ट बगाल, १९५३ मोहन बगान, १९५४ हैदराबाद पुलिस, १९५५ मद्रास रेजिमेंटल सेंटर, १९५६ ईस्टबगाल, १९५७ हैदराबाद पुलिस, १९५८ मद्रास रेजिमेंटल सेंटर, १९५९ मोहन बगान, १९६० मोहनबगान ईस्ट बगाल (सयुक्त विजेता), १९६१ आध्र पुलिस, १९६२ मे चीनी आक्रमण के कारण खेल नही हुआ, १९६३ से ६५ मोहन बगान।

रोवर्स कप, बबई — इसका प्रारभ १८९१ ई० में हुआ। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित है

१९५५ मोहन बगान, १९५६ मोहम्मडन स्पोर्टिंग, १९५७ हैदराबाद पुलिस, १९५८ कालटैक्स क्लब, बबई, १९५९ मोहम्मडन स्पोर्टिंग, १९६० आध्र पुलिस, १९६१ ई० एम० ई० सेंटर, सिकदराबाद,

१९६२ ईस्ट बगाल तथा हैदराबाद पुलिस (सयुक्त विजेता), १९६३ आध्र पुलिस, १९६४ बगाल नागपुर रेलवे, १९६५ मफतलाल ग्रुप, बबई ।

आई० एफ० ए० शील्ड, कलकत्ता — इसका प्रारभ १८९३ ई० मे हुआ । इसके विजेता टीमें निम्नलिखित हैं १९६० मोहन बगान, १९६१ मोहन बगान तथा ईस्ट बगाल (सयुक्त विजेता), १९६२ मोहन बगान, १९६३ बी० एन० आर०, १९६४ मोहन बगान तथा ईस्ट बगाल, १९६२ ईस्ट बगाल ।

अन्य टूर्नामेंट — दिल्ली मे १९४९ से दिल्ली क्लाथ मिल फुटवाल टूर्नामेंट हो रहा है । इसके अतिरिक्त देश भर के विश्वविद्यालयों की टीमो का फुटवाल टूर्नामेंट प्रति वर्ष सर आशुतोष मुखर्जी ट्राफी के लिये होता है । इसमे गत २५ वर्षों मे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने सबसे अधिक बार (आठ) और उस्मानिया विश्वविद्यालय ने ८ बार सर्वजेता पद प्राप्त किया है । स्कूली बच्चों की टीमो के लिये दिल्ली मे सुब्रत मुखर्जी कप फुटवाल टूर्नामेंट १९६२ ई० से चल रहा है ।

फुटवाल का मैदान

क एव य गोल रक्षक, ख एव म राइट बैक, ग एव भ लेफ्ट बैक, घ एव फ सेंटर हाफ, च एव ब राइट हाफ, छ एव प लेफ्ट हाफ, ज एव ध आउटसाइड राइट, झ एव द इनसाइड राइट, ठ एव त इनसाइड लेफ्ट, ड एव ढ आउटसाइड लेफ्ट तथा ट एव थ सेंटर फॉरवर्ड ।

फुटवाल का मैदान १०० गज से १३० गज तक लबा और ५० गज से १०० गज तक चौडा होता है, पर बडे मैच १२० गज लबे और ८० गज चौडे मैदान पर खेले जाते हैं । लबाई की रेखा को टच लाइन (touch line) तथा चौडाई की रेखा को गोल लाइन (goal line) कहते हैं । मैदान के बीच मे एक रेखा खींचकर इसे दो भागो में बाट दिया जाता है । इस रेखा को मध्य रेखा या हाफ वे लाइन (half way line) कहते हैं । हाफ वे लाइन के मध्य मे २० गज व्यास का एक वृत्त खीचा जाता है । मैदान के दोनों भागों मे एक समान, गोल लाइन के ठीक बीच मे, ८ गज की दूरी पर दो खभे, जिन्हे गोल पोस्ट कहते हैं, गाडे जाते हैं । प्रत्येक गोल पोस्ट (goal post) की मोटाई ५ इच तथा ऊँचाई ८ फुट होती है । इन दोनो पोस्टो पर एक क्षैतिज लकडी लगी रहती है । गोल के पीछे जाल लगाया जाता है, जिससे फुटवाल गोल हो जाने पर दूर न निकल जाए ।

गोल लाइन पर दोनो गोल पोस्टो से छह छह गज की दूरी पर समकोण बनाती हुई छह छह गज लबी दो रेखाएँ खीची जाती हैं और गोल लाइन के समातर २० गज लबी रेखा खीचकर इन्हे मिला देते हैं । इस क्षेत्र को गोल क्षेत्र कहते हैं । गोल पोस्टो से १८ गज की दूरी पर दोनो ओर १८ गज लबी रेखाएँ खींची जाती हैं और इन्हे गोल लाइन के समातर रेखा खीचकर मिला देते हैं । इस क्षेत्र को पेनैल्टी क्षेत्र कहते हैं । दोनो गोल पोस्टों के मध्य से १२ गज की दूरी पर एक चिह्न लगाते हैं । इस चिह्न को केंद्र मानकर १० गज अर्धव्यास से एक अर्धवृत्त खीचा जाता है, जो पेनैल्टी क्षेत्र की लबाई पर एक चाप बनाता है । इसे पेनैल्टी चाप कहते हैं । मैदान मे खीची गई प्रत्येक रेखा पाँच इच मोटी होती है । मैदान के चारों कोनो पर झडे गाडे जाते है, जिन्हे कॉर्नर फ्लैग (corner flag) कहते है । हाफ वे लाइन पर दोनों ओर टच लाइन से एक एक गज दूरी पर झडे गाडे जाते हैं । चारो कोनों पर एक गज अर्धव्यास के चौथाई वृत्त खींचे जाते है, जिन्हे कॉर्नर क्षेत्र कहते हैं । यहाँ खडे होकर कार्नर किक लगाई जाती है ।

खेल आरभ होने से पूर्व दोनो दल के कप्तान टॉस करते हैं । टॉस जीतनेवाले कप्तान को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह पहले किक लगाए, या जिस ओर के मैदान को चाहे ले ले । मैदान का चुनाव होते ही प्रत्येक दल के खिलाडी यथास्थान खडे हो जाते हैं । प्रत्येक दल मे एक एक गोल रक्षक, राइट बैक, राइट हाफ बैक, लेफ्ट बैक, लेफ्ट हाफ बैक, सेंटर फॉरवर्ड, सेंटर हाफ बैक, इनसाइड लेफ्ट, इनसाइड राइट, आउटसाइड लेफ्ट तथा आउटसाइड राइट होते हैं । इनका चुनाव कप्तान खेलने से पूर्व कर लेता है । गोलरक्षक गोल के सामने खडा होता है । राइट बैक एव लेफ्ट बैक पेनैल्टी क्षेत्र के पास खडे होते हैं । इनसे आगे हाफ वे लाइन की ओर सेंटर हाफ बैक, लेफ्ट हाफ बैक और राइट हाफ बैक खडे होते हैं । इनसे आगे इनसाइड लेफ्ट और इनसाइड राइट खडे होते हैं । हाफ वे लाइन के बिलकुल पास, बीच मे सेंटर फॉरवर्ड और दोनो तरफ आउटसाइड राइट और आउटसाइड लेफ्ट खडे होते हैं ।

सेंटर फॉरवर्ड, आउटसाइड लेफ्ट, इनसाइड लेफ्ट, आउटसाइड राइट और इनसाइड राइट आक्रमण करनेवाले खिलाडी हैं, जो विपक्षी के पाले मे जाकर गोल करते हैं । लेफ्ट हाफ बैक, सेंटर हाफ

बैक, लेफ्ट बैक और राइट बैक अपने पाले मे रहकर गेंद को गोल तक पहुचने से रोकते हैं। गोल रक्षक के अतिरिक्त अन्य कोई खिलाडी गेंद को हाथ से छू नही सकता। प्रत्येक खिलाडी को इस बात का ध्यान रखना पडता है कि फुटबाल टच लाइन से बाहर जाए।

फुटबाल का खेल साधारणतया मध्यातर के पूर्व ४५ मिनट तक और मध्यातर के बाद ४५ मिनट तक खेला जाता है। मध्यातर पाच मिनट का होता है। यदि पेनैल्टी किक देनी हो और समय समाप्त हो गया हो तो रेफरी पेनैल्टी किक देने तक खेल जारी रखता है। यदि किसी कारणवश कुछ समय नष्ट हुआ हो, तो रेफरी उतने समय तक खेल बढा देता है। यदि पहले दिन खेल का निर्णय नही होता, तो दूसरे दिन पुन खेल खेला जाता है, अथवा टॉस द्वारा भी निर्णय लिया जा सकता है।

हाफ वे लाइन पर बने वृत्त मे फुटबाल को बीचो बीच रख दिया जाता है और टॉस जीतनेवाला कप्तान विपक्षी दल के मैदान की ओर किक (kick) लगाता है। यदि किक लगाने पर फुटबाल वृत्त के बाहर नही जाता, तो विपक्षी दल का खिलाडी किक लगाएगा। जब तक फुटबाल को दूसरा खिलाडी छू न ले तब तक पहले किक लगानेवाला खिलाडी दुबारा किक नही लगा सकता। रेफरी द्वारा सीटी बजाने पर ही टॉस जीतनेवाला कप्तान किक करता है। खेल आरभ करते समय अथवा अन्य किसी प्रकार की किक लगाते समय अन्य खिलाडियो को फुटबाल से दस गज की दूरी पर रहना चाहिए।

मध्यातर के बाद दोनो दल अपना अपना पाला बदल लेते हैं। जिस दल के खिलाडी ने प्रारभ मे किक लगाकर खेल आरभ किया था, उसके विपक्षी दल का खिलाडी किक लगाकर मध्यातर के बाद खेल आरभ करता है। इस नियम को तोडने पर किक दुबारा लगाई जाती है। यदि किक लगानेवाला खिलाडी विपक्षी दल के खिलाडी के किक लगाने अथवा छूने से पहले पुन किक लगा देता है, तो विपक्षी दल का खिलाडी जिस स्थान पर नियम भग हुआ है उसी जगह खडा होकर किक लगाएगा। पहली किक लगाने के बाद सीधा गोल नही किया जा सकता है।

यदि किसी कारणवश खेल बीच मे ही रुक जाता है और गेंद टच लाइन या गोल लाइन के बाहर नही गई हो, तो उसे पुन आरभ करने के लिये रेफरी गेद को उसी जगह रख देता है जहाँ वह खेल रुकने के समय थी। जमीन छूते ही गेंद खेल मे समझी जाती है। यदि रेफरी गेद को जमीन पर डाले और इसके पहले कि गेंद जमीन को छूए, कोई खिलाडी गेंद को छू देता है, तो रेफरी को गेंद पुन उसी जगह डालनी होगी। जब तक गेंद जमीन को छू न ले, कोई खिलाडी इसे छू नही सकता।

गोल हो जाने पर जिस दल पर गोल हुआ है, उसका खिलाडी मध्य वृत्त मे गेंद रखकर विपक्षी दल के पाले की ओर रेफरी के सकेत पर किक लगाता है। यदि खिलाडी गेंद को हाथ से गोल मे फेंकता है, तो गोल नही माना जाता। जिस दल ने अधिक गोल किया हो वही विजेता होता है। यदि दोनो दलो ने बराबर गोल किए हों, अथवा कोई गोल न हुआ हो तो खेल हार जीत का फैसला हुए बिना समाप्त हो जायगा। ऐसे खेल को ड्रा (Draw) खेल कहते हैं।

यदि गेंद टच लाइन को पूरी तरह से पार कर जाए, चाहे गेंद नीची गई हो या ऊँची, प्रत्येक अवस्था मे इसे खेल से बाहर या आउट (out) समझा जाता है। गेंद टच लाइन से बाहर जिस दल के खिलाडी से गई है, उसके विपक्षी दल का खिलाडी टच लाइन से बाहर उसी जगह जहाँ से गेंद बाहर गई है, खडे होकर, गेंद को दोनो हाथो से पकडकर, सिर से ऊपर ले जाकर मैदान मे फेंकता है। इस क्रिया को थ्रो इन (Throw in) कहते हैं।

थ्रो इन करने के लिये खिलाडी को टच लाइन से चार पांच कदम दूर खडा होना चाहिए। गेंद को सिर के पीछे ले जाकर कमर काफी पीछे झुकाकर वेग के साथ एक दो कदम आगे बढकर अपने साथियो की तरफ फेंकना चाहिए। थ्रो इन के समय खिलाडी टच लाइन पर झुक सकता है, किंतु इसे छू नही सकता। यदि टच लाइन छू जाती है तो पुन थ्रो इन करना पडता है। थ्रो इन करनेवाला खिलाडी गेंद पर उस समय तक किक नही लगा सकता जब तक दूसरा खिलाडी उसे छू न ले। यदि वह नियम भग करता है तो विपक्षी दल का खिलाडी उसी स्थान से जहाँ नियम भग हुआ है, परोक्ष फ्री किक (indirect free kick) लगाएगा। परोक्ष फ्री किक वह किक है जिसके द्वारा खिलाडी सीधे गोल नही कर सकता है, बल्कि उसे गेंद को दूसरे खिलाडी को देना होता है। जब तक दूसरा खिलाडी उसपर किक न लगाए, गोल नही हो सकता। जब परोक्ष फ्री किक लगाई जाती है, तो विपक्षी दल के सभी खिलाडियो को गेंद से दस गज की दूरी पर रहना चाहिए। जब तक गेंद २७ या २८ इच तक नही लुढकेगी, खेल मे नही समझी जाएगी।

यदि हमला करनेवाले दल का कोई खिलाडी किक लगाए और गेंद, चाहे ऊँची हो या नीची, गोल पोस्ट के बीच के भाग को छोडकर गोल लाइन को पार कर जाती है, तो वह खेल के बाहर या आउट समझी जाती है। प्रतिरक्षा दल का खिलाडी उस स्थान पर जहाँ से गेंद लाइन को पार कर गई है खडे होकर इस प्रकार किक लगाएगा कि गेंद पेनैल्टी क्षेत्र को पार कर जाए। इस किक को गोल किक कहते हैं। यदि गेंद पेनैल्टी क्षेत्र को पार नही करती, तो किक पुन लगाई जाएगी। गोल किक से सीधा गोल नही किया जा सकता। जिस दल का खिलाडी गोल किक लगा रहा हो उसके विपक्षी दल के सब खिलाडी पेनैल्टी क्षेत्र के बाहर खड़े रहते हैं। किक लगानेवाला खिलाडी तब तक दुबारा किक नही लगाएगा जब तक कि दूसरा खिलाडी किक न लगा ले। यदि गोल किक लगानेवाला खिलाडी दूसरे खिलाडी के किक लगाने से पहले किक लगा देता है तो विपक्षी दल का खिलाडी, जहाँ नियम भग किया गया है उसी जगह पर खडे होकर, परोक्ष फ्री किक लगाता है। गोलरक्षक इस किक को नही लेगा और न हाथ मे लेकर गेंद पर किक लगाएगा।

यदि प्रतिरक्षा दल का कोई खिलाडी गोल पोस्टो के बीच के स्थान को छोडकर गेंद को किक लगाकर गोल लाइन के बाहर कर देता है, तो आक्रमण करनेवाले दल का खिलाडी कॉर्नर के चौथाई

वृत्त से कोने के पास खड़े होकर किक लगाना है। इसे कॉर्नर किक कहते हैं। इस किक से सीधा गोल किया जा सकता है। प्रतिरक्षा दल के सभी खिलाड़ी इस समय गेंद से दस गज की दूरी पर खड़े रहते हैं। प्रतिरक्षा दल के खिलाड़ी उस समय तक गेंद से १० गज की दूरी पर खड़े रहेंगे जब तक वह पूरा एक चक्कर न लगा ले, अथवा मैदान में २८ इंच तक लुढ़क न जाए। किक लगानेवाला खिलाड़ी तब तक दुबारा किक नहीं लगा सकता जब तक कोई दूसरा खिलाड़ी किक न लगा ले। यदि किक लगानेवाला खिलाड़ी नियम भंग करता है, तो उसके विपक्षी दल का खिलाड़ी उस स्थान पर, जहाँ पर नियम भंग किया जाता है, खड़े होकर परोक्ष फ्री किक लगाता है।

यदि हमला करनेवाले दल का खिलाड़ी गेंद से पहले गोल लाइन की ओर पहुँच जाता है तो उसे ऑफसाइड कहते हैं। इस नियम को जहाँ भंग किया जाता है उसी स्थान पर खड़े होकर प्रतिरक्षा दल का खिलाड़ी फ्री किक लगाता है। रेफरी के विचार में यदि आक्रामक खिलाड़ी ऑफसाइड होकर कोई लाभ न उठा रहा हो, किसी खिलाड़ी को अड़चन न डाल रहा हो, अथवा खेल में बाधा डाल रहा हो, तो उस खिलाड़ी को दंड नहीं दिया जाता।

यदि कोई खिलाड़ी निम्नलिखित गलतियाँ करेगा, तो उसे नियम-विरुद्ध या फाउल (foul) समझा जाता है और गलती करनेवाले खिलाड़ी के विपक्षी दल के खिलाड़ी को नियम भंग किए गए स्थान पर खड़े होकर फ्री किक लगाने का अधिकार होता है :

१ खिलाड़ी, विपक्षी खिलाड़ी को किक लगाए, या किक लगाने का प्रयत्न करे।

२ खिलाड़ी किसी दूसरे खिलाड़ी को अड़गा लगाकर गिराने का प्रयत्न करे, या उसकी टाँग पर अपनी टाँग मारे।

३ खिलाड़ी विपक्षी खिलाड़ी पर कूदे।

४ खिलाड़ी विपक्षी खिलाड़ी पर खतरनाक ढंग से आक्रमण करे, या धक्का दे।

५ खिलाड़ी विपक्षी खिलाड़ी को मारने पीटने का प्रयत्न करे।

६ खिलाड़ी विपक्षी खिलाड़ी को पीछे से धक्का देकर गिरा दे।

७ खिलाड़ी विपक्षी का हाथ पकड़कर रोक ले।

८ खिलाड़ी किसी विपक्षी खिलाड़ी को हाथ से धक्का दे।

९ गोलरक्षक को छोड़कर अन्य कोई खिलाड़ी गेंद को हाथ से फेंके या उठाए।

यदि उपर्युक्त गलतियाँ प्रतिरक्षा दल का खिलाड़ी जान बूझकर पेनेल्टी क्षेत्र में करता है तो पेनेल्टी किक की सजा दी जाती है। इसमें विपक्षी दल का खिलाड़ी प्रतिरक्षक दल के पेनेल्टी क्षेत्र में सीधा गोल किक लगाता है। इस समय किक लगानेवाला खिलाड़ी और प्रतिरक्षा दल के गोलरक्षक के अतिरिक्त अन्य सभी खिलाड़ी पेनेल्टी क्षेत्र से बाहर रहते हैं। गोलरक्षक अपनी गोल लाइन पर तब तक सीधा खड़ा रहेगा जब तक किक न लगाई गई हो। जिस खिलाड़ी की ओर किक लगाई गई हो वह आगे की ओर किक लगाएगा। जब तक गेंद को कोई दूसरा खिलाड़ी छू न ले, पहले किक लगानेवाला खिलाड़ी उसे छू नहीं सकता।

यदि गेंद ने किक के बाद एक चक्कर लगा लिया हो, तो उसे खेल में समझा जाएगा और उससे गोल किया जा सकता है। यदि गेंद गोल-रक्षक से टकराकर गोल में चली जाए तो गोल माना जाता है। यदि पेनेल्टी किक के लिये समय न रहे, तो जितनी देर तक पेनेल्टी किक लगाई जाती है उतनी देर तक खेल को बढ़ा दिया जाता है। यदि बचाव दल नियम भंग करता है और गोल नहीं होता, तो पेनेल्टी किक दुबारा लगाई जाएगी।

यदि कोई खिलाड़ी निम्नलिखित गलतियाँ करता है, तो उसके विपक्षी दल का खिलाड़ी जिस स्थान पर गलती की गई है वहाँ खड़े होकर फ्री किक लगाता है

१ गेंद गोलरक्षक के पास हो और आक्रमण करनेवाला खिलाड़ी इस प्रकार किक करने का प्रयास करे, जिसे रेफरी खतरनाक समझता हो।

२ गेंद काफी दूर रहते हुए भी यदि एक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी को कंधे से धक्का दे।

३ कोई खिलाड़ी, जिसके पास गेंद न हो, अपने विपक्षी दल के खिलाड़ी के सामने खड़े होकर, या अन्य किसी तरह उसके मार्ग में रुकावट डाले।

४ विपक्षी दल का खिलाड़ी गोलरक्षक पर हमला करे, या उसे धक्का दे। किंतु, यदि गोलरक्षक के हाथ में गेंद हो, या गोलरक्षक विपक्षी दल के खिलाड़ी के रास्ते में अड़चन डाल रहा हो, या गोल-रक्षक गोल क्षेत्र से बाहर निकल आया हो, तो उसे धक्का दिया जा सकता है।

यदि गोलरक्षक गेंद को हाथ में लेकर गोल से चार कदम से अधिक आगे बढ़ जाता है और गेंद को जमीन पर टप्पा नहीं खिलाता, तो विपक्षी दल को उस स्थान पर जहाँ नियम भंग किया गया है परोक्ष फ्री किक लगाने का अधिकार होता है।

खिलाड़ी को निम्नलिखित बातों पर चेतावनी दी जाती है :

१ यदि कोई खिलाड़ी बार बार नियम भंग करता है।

२ यदि खिलाड़ी रेफरी के निर्णयों को नहीं मानता है।

३ यदि खिलाड़ी का व्यवहार ठीक न हो।

४. यदि खिलाड़ी खेल आरंभ होने के बाद रेफरी की अनुमति के बिना और बिना खेल रुके खेलना आरंभ कर दे।

निम्नलिखित दशाओं में खिलाड़ी को मैदान के बाहर निकाला जा सकता है :

१ रेफरी द्वारा चेतावनी देने के बाद भी खिलाड़ी बार बार गलतियाँ करे।

२ खिलाड़ी गाली गलौज करे, या कोई बहुत बड़ी गलती करे, या रेफरी की राय में फाउल खेले।

किसी खिलाड़ी को मैदान से निकालने के कारण यदि खेल रुक गया हो, तो जिस स्थान पर नियम भंग किया गया है उसी जगह खड़े होकर विपक्षी दल का खिलाड़ी परोक्ष फ्री किक लगाकर खेल आरंभ करेगा।

खेल के आरंभ होने से लेकर अंत तक खेल के नियमों के पालन कराने का दायित्व रेफरी पर होता है। रेफरी के अधिकार एवं कर्तव्य निम्नलिखित हैं :

१. रेफरी को खेल के नियमो का पालन खिलाडियो से कराना पडता है। जिस बात पर कोई विवाद होता है, उसका निर्णय करना होता है। रेफरी का निर्णय अतिम होता है। खेल के आरभ से लेकर अत तक उसका निर्णय मान्य होता है।

२ खेल मे समय का ध्यान रेफरी रखता है और खेलनेवाले दोनो दलो के गोलो का वह आलेख रखता है। किसी दुर्घटना, अथवा अन्य किसी कारण, से खेल रुकने के कारण जितना समय नष्ट होता है रेफरी उतने अधिक समय तक खेल चालू रखता है।

३ दर्शको के दखल देने के कारण, या अन्य किसी कारण, से यदि रेफरी यह आवश्यक समझे कि खेल वद कर दिया जाए, तो उसे अधिकार है कि वह खेल वद कर दे। रेफरी को खेल वद करने की सूचना फुटवाल ऐसोसिएशन को देनी पडती है।

४ लाइनमैन के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति रेफरी की अनुमति के विना मैदान मे नही आ सकता।

५ यदि कोई खिलाडी रेफरी की राय में गभीर रूप मे घायल हो, तो वह खेल रोककर खिलाडी को मैदान से हटवा देगा और पुन खेल आरभ करवाएगा। यदि खिलाडी गभीर रूप से घायल नही होता, तो गोल या कार्नर होने तक खेल नही रोका जाएगा।

६ यदि कोई खिलाडी वहुत वडी गलती करता है, तो रेफरी को यह अधिकार है कि वह उस खिलाडी को खेल से वाहर कर दे। यदि वार वार चेतावनी देने पर भी खिलाडी नही मानता है, तो भी रेफरी उसे खेल से वाहर निकाल सकता है।

७ यदि किसी कारणवश खेल रुक गया हो, तो रेफरी को इशारा करके पुन खेल को आरभ करवाना होगा।

८ यदि खिलाडी के जूते नियमानुसार न हो, तो रेफरी खिलाडी को मैदान से वाहर निकाल सकता है।

रेफरी की सहायता के लिये दो लाइनमैन होते है। जिस क्लव के मैदान पर खेल खेला जाता है, वह क्लव इन लाइनमैनो को झडे देता है। इनके निम्नलिखित कर्तव्य है

१ यह वताना कि कव गेंद खेल के वाहर थी।

२ किस दल को कॉर्नर किक, या थ्रो इन करने, का अधिकार है

३ नियमो के पालन करवाने मे रेफरी की सहायता करना।

जव रेफरी किसी नियम भग के सवध मे अपना स्पष्ट निर्णय देने मे असमर्थ होता है, तव वह गेंद को हवा मे उछालकर फेंक देता है और दोनो ओर के एक एक खिलाडी को वुलाकर गेंद के एक या दो टिप्पा लेने के वाद खेलने के लिये कहता है। इस क्रिया को सामान्य गेंद या कामन वाल (Common ball) कहते हैं।

फुटवाल पर किक लगाने पर यदि गेद ऊँची न उछलकर जमीन पर तेजी से एक ओर चली जाए, तो इसे लो ड्राइव (Low drive) कहते हैं। इस तरह की किक से गेद को एक खिलाडी से दूसरे खिलाडी तक पहुँचाने में तथा गोल करने मे सहायता मिलती है। यदि किक लगाकर, गेंद को ऊँची उछाल कर, दूर तक पहुँचा दिया जाता है, तो इसे क्लियरेंस वॉली (Clearance volley) कहते हैं। विपक्षी खिलाडी के सामने आने पर इस किक द्वारा गेंद को दूर तक पहुँचाने में सहायता मिलती है।

गेंद को सिर से मारने को हेडिंग (Heading) कहते हैं। इसमे सिर को पीछे ले जाकर माथे को गेंद के ठीक सामने लाकर, सिर को इस तरह रखना चाहिए कि गेद टक्कर खाने पर ४५° का कोण बनाए। टक्कर ऊँचे उछलकर, या खडे होकर, लगानी चाहिए। यदि कोई गेंद ऊँची आ रही हो, तो खिलाडी उसे सिर से टक्कर मारकर नीचे कर देता है। इसे नीचे की ओर हेडिंग (Heading downward) कहते है। इससे खिलाडी गेद को नीची कर, अपने दूसरे साथी के पास पहुँचा देता है और गेद को पैर से खेलना सभव हो जाता है। [अ० ना० मे०]

फुफ्फुसावरणशोथ (Pleurisy) इसमे फुफ्फुसावरण में शोथ उत्पन्न हो जाता है। फुफ्फुसावरण शोथ के निम्नलिखित प्रकार है

(१) **शुष्क फुफ्फुसावरण शोथ** — इसमें केवल फुफ्फुसावरण शोथ होता है।

(२) **आर्द्र फुफ्फुसावरण शोथ** — इसमे फुफ्फुसावरण के दोनो स्तरो के शोथ के साथ साथ फुफ्फुसावरण गुहा में तरल पदार्थ का सचय हो जाता है।

(३) **एपाइमा** (Empyema) — इसमें फुफ्फुसावरण गुहा मे सचित तरल पदार्थ पूययुक्त हो जाता है।

रोग उत्पत्ति के कारण — यह रोग मुख्यत सर्दी लगने तथा टी० वी०, न्यूमोनिया, फुफ्फुस के अर्वुद, व्राकिऐक्टेसिस (bronchiactasis), आमवातिक (rhaumatic) उपसर्ग, आन्त्रिक ज्वर, फुफ्फुस विद्रधि (lung abscess) एव कोथ (gangrene) के कारण तथा वक्ष में किसी भी प्रकार का आघात लगने से होता है।

लक्षण — रोगी को एकाएक वक्ष के आक्रात भाग मे शूल होता है, जो श्वास की गति के साथ तथा खाँसी एव छीक से तीव्रतर हो जाता है। शुष्क फुफ्फुसावरण शोथ मे शूल फुफ्फुसावरण के दोनो शोथयुक्त स्तरो के आपस में रगड के कारण होता है। कभी कभी शूल शोथयुक्त पार्श्व के कधे, गर्दन, पीठ, पेट इत्यादि स्थानो पर भी होता है। इस रोग में सूखी, एव कष्टप्रद खाँसी आती है तथा वलगम वहुत कष्ट से निकलता है। ज्वर १०१° या १०२° फा० तक हो जाता है। वक्ष के विकृत पार्श्व की गति श्वास क्रिया के समय कम होती है तथा रोगी उसी भाग को दवाए उसी करवट पडा दिखाई देता है, साथ ही देखने मे वह भाग दूसरे की अपेक्षा शोथयुक्त प्रतीत होता है। जैसे जैसे रोग की उग्रता वढती है उसी के अनुसार रोगी का श्वासकष्ट भी वढता जाता है। परिताडन क्रिया (percussion) में शुष्क फुफ्फुसावरण शोथ के अदर विकृत पार्श्व अनुनादी रहता है तथा परिश्रवण (auscultation) से विकृत स्थान में वायु का सचार कम मिलता है। इसी प्रकार आर्द्र फुफ्फुसावरण शोथ मे परिताडन क्रिया से तरल पदार्थ के स्तर से ऊपर का भाग अनुनादी (resonant) रहता है तथा उसके नीचे तरल पदार्थ से युक्त स्थान मद (dull) रहता है। ठीक इसी प्रकार परिश्रवण मे तरल पदार्थ के ऊपर के भाग में श्वसनध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है, परतु नीचे के तरल भाग में नही सुनाई देती। एपाइमा के लक्षण आर्द्र फुफ्फुसावरण शोथ के समान ही होते हैं, केवल रोगी मे विषाक्तता के लक्षण

अधिक होते हैं। रुग्ण पार्श्व का भाग शोथयुक्त प्रतीत होता है तथा उक्त भाग की गर्दन की रक्तवाहिनियों में स्पदन मिलता है। हाथ की अँगुलियों के नाखून के पास का भाग शोथयुक्त होता है तथा बराबर दुर्गंधमय श्वास आती है।

उपचार — इसमें रोग के कारणों को दूर करते हैं तथा सूचीवेध द्वारा फुफ्फुसावरण से तरल पदार्थ एव पूय निकालते हैं।

[प्रि० कु० चौ०]

फूक्येन (Fukien) स्थिति २५° ५०' उ० अ० तथा ११८° ०' पू० दे०। यह चीन का समुद्रपारीय प्रात है, जिसके उत्तर में जजियाग (Chekiang) प्रात, पूर्व मे पूर्वी चीन सागर तथा फॉर्मोसा जलडमरूमध्य, दक्षिण में क्वाडुग (Kwangtung) तथा पश्चिम मे जियाग्सी (Kiangsi) प्रात स्थित है। इसका क्षेत्रफल ४५,८३३ वर्ग मील तथा जनसख्या अनुमानित १,४६,५०,००० (सन् १९६३) है। इसके समुद्री तट के किनारे लगभग ६०० द्वीप है। यहाँ की सबसे लबी नदी मिन है, जो ३६० मील लबी है। वर्षा ७५ इच होती, जो चीन में सर्वाधिक है। इस प्रात में मछली मारने का उद्योग प्रमुख है। सागर के किनारे चाय अधिक उगती है। फलो में केला, लीची, नारगी, टैंगराइन (Tangerines), एव अगूर प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त धान, शहतूत, गन्ना, गेहूँ, जौ, तथा कुछ सब्जियाँ भी उगाई जाती हैं। खनिजो में कोयले, लोहे, ताँबे, मोलिब्डेनम, चीनी मिट्टी तथा चाँदी एव सोने के भडार भी मिलते हैं। फूचोउ (Foochow) यहाँ की राजधानी है, जिसकी जनसख्या ६,२०,००० (सन् १९६३) है।

फूजी स्थिति ३५° २०' उ० अ० तथा १३८° ३०' पू० दे०। यह जापान के दक्षिण मध्य हॉशू का एक शात ज्वालामुखी पर्वत है। इसे फूजियामा या फुजिसान भी कहते हैं। इसमें सन् १७०७ मे अतिम विस्फोट हुआ था। फूजी जापान का उच्चतम शिखर (१२,३८९ फुट) है तथा यह पूर्ण शक्वाकार है। इसके मुख (crater) का व्यास २,००० फुट है और गहराई ७,००० फुट है। पर्वत के निचले ढलानो पर जगल तथा ६०० फुट से ऊपर लावा बिखरा हुआ है। शिखर लगभग पूरे वर्ष हिमाच्छादित रहता है। पर्वत के नीचे पाँच झीलें हैं। इसी कारण फूजी अपने सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध है और जापानी कला एव साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है। प्राचीन काल से यह दैवी स्थान भी माना जाता है और आज भी यह महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है। प्रति वर्ष जुलाई तथा अगस्त में बड़ी सख्या में तीर्थयात्री तथा पर्यटक यहाँ आते है।

[अ० च०]

फूत्कार बाण या ब्लो गन (Blow gun) घातक हथियार है जिसका उपयोग दक्षिण अमरीका, मलय प्रायद्वीप और मलय द्वीपसमूह के वनवासी पशुओं का शिकार करने मे करते हैं। इसके प्रयोग मे सफलता बहुत कुछ प्रयोक्ता के छिपे रहने पर निर्भर करती है। यह आठ से सात फुट लबी नली होती है। मुख पर इसके छेद का बाह्य व्यास एक इच होता है, जो घटते घटते तुंड पर १/३ इच का हो जाता है। नली इतनी पर दृढ़ लकड़ी की बनी होती है। ऐसी लकड़ी बहुतायत से मलाया और बोर्नियो में पाई जाती है। लकड़ी ऐसी चुनी जाती है जिसमे गाँठ न हो। लकड़ी की इस नली में लोहे के आठ फुट लबे छड से छेद करते हैं। छड के एक छोर पर काटनेवाला कोर होता है। लकड़ी की बल्ली को सीधा खड़ा रखते हैं। बल्ली पेड की शाखा के शिकजे में बँधी रहती है। छेद करने के लिये दो व्यक्तियो की आवश्यकता पड़ती है। एक व्यक्ति छेनी को बार बार बल्ली के केंद्र में रखकर धीरे धीरे घुमाता है, दूसरा व्यक्ति काठ की बल्ली में थोड़ा थोड़ा पानी देता रहता है। समस्त बल्ली में छेद करने मे आठ से लेकर दस घटे लगते हैं। यद्यपि छेनी से बना छेद पर्याप्त चिकना होता है, तथापि उसमे बेत या खजूर के तने से और पालिश करते है। बल्ली के बाह्य भाग को छीलकर आवश्यक मोटाई का और चिकना बना लेते हैं।

बोर्नियो मे फूत्कार बाण में एक छोटी बरछी भी बाँधते हैं। ऐसा आक्रात पशु के क्रोध से अपनी रक्षा के लिये करते हैं। बरछी की मार से बल्ली कुछ टेढ़ी हो जा सकती है, जिससे निशाना ठीक नही बैठ सकता। इस दोष के निराकरण के लिये अतिम छोर को कुछ टेढ़ा रखते हैं ताकि बरछे की मार से वह सीधी रहे।

बाण तालकाठ का तथा आठ से लेकर दस इच तक लबी चिप्पी का होता है। इसका अतिम छोर तेज धारवाला होता है। इस बाण को छीलकर धीरे धीरे कम करते हुए ऐसा बना देते है कि अंतिम छोर सिलाई की सूई सा पतला हो जाय। इसका हत्था (butt) शक्वाकार, कोमल पिथ का लगभग आधा इच लबा बना होता है। यह मूल पर उतने ही विस्तार का होता है जितना बल्ली का छेद होता है। नुकीले छोर पर थोड़ी थोड़ी दूर पर लगभग चौथाई इच कढ़ा हुआ रहता है ताकि वह सरलता से टूट जाय और विषैला अश आक्रात स्थान पर ही लगा रहे। बाण के दड को चीरकर उसमें धातु के किसी तेज त्रिकोण फल को रखकर बाँध देते हैं। इससे बाण अधिक प्रभावकारी हो जाता है।

बाण का विष स्ट्रिकनोस या ऐंटियेरिस (Antiaris) जाति के पौधों से प्राप्त होता है। बोर्नियो में इसे इपोह (Ipoh) नामक पेड के रस से प्राप्त करते हैं। यह रस पीले श्वेत रग का तथा कड़वे स्वाद का होता है। वायु में यह पाडुवर्ण का हो जाता है। विषैला अश ग्लाइकोसाइड होता है, जो हृदय, पेशी और केंद्रीय तत्रिका को आक्रात करता है। पेड की छाल को छेदकर रस प्राप्त करते और धीरे धीरे आग पर सुखाते है, जिससे वह काला और गाढ़ा हो जाता है। प्रयुक्त करते समय उसे गरम पानी से मुलायम बनाकर, बाणो पर लेप चढ़ाकर, फिर आग पर सुखा लेते हैं। पेड से रस निकालने पर प्राय दो मास तक इसकी विषाक्तता बनी रहती है।

फ्यूमैरिक और मलेइक अम्ल यह दोनो समावयवी अम्ल असतृप्त द्वि-कार्बाक्सिलिक अम्ल श्रेणी के सदस्य हैं। इनका सूत्र है का$_4$ हा$_4$ औ$_4$ ($C_4H_4O_4$)। उनके सघटन की विशेषता यह है कि इनमे दो कार्बन परमाणु युग्म बध से जुड़े हुए हैं और इसी कारण इनके घटक के सब परमाणु एक धरातल मे हो जाते है। फ्यूमैरिक और

मलेइक अम्लो के प्रकार की समावयवी व्यवस्था को ज्यामितीय समावयवता कहते हैं।

फ्यूमैरिक (Fumaric) अम्ल	मलेइक (Maleic) अम्ल
हा — का — का ओ ओ हा	हा — का — का ओ ओ हा
‖	‖
हा ओ ओ का — का — हा	हा — का — का ओ ओ हा
$\begin{bmatrix} H-C-COOH \\ \| \\ HOOC-C-H \end{bmatrix}$	$\begin{bmatrix} H-C-COOH \\ \| \\ H-C-COOH \end{bmatrix}$
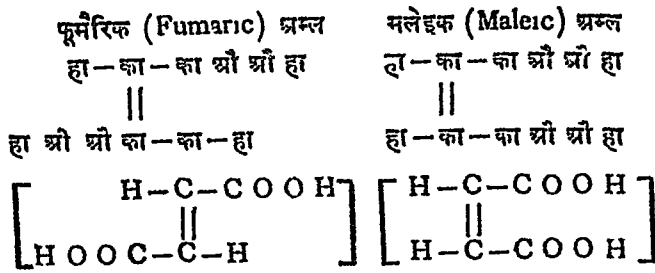
फ्यूमैरिक अम्ल का गलनाक २८७° सें० है। ऊष्मा की क्रिया से एव रासायनिक अभिक्रियाओ द्वारा यह मलेइक अम्ल या मलेइक ऐनहाइड्राइड मे बदला जा सकता है। फ्यूमैरिक अम्ल का निर्माण व्यापारिक स्तर पर सश्लेषण द्वारा अथवा किण्वन से किया जाता है। किण्वन विधि से उपयुक्त शर्करा का ६०-७० प्रति शत फ्यूमैरिक अम्ल मे बदला जा सकता है। राइज़ोपस निग्रिकैंस (Rhizopus nigricans), अथवा सजातीय फाइकोमाइसीटीज़ (Phycomycetes) नामक अन्य कवक और कम कार्बनवाली शर्कराएँ, जैसे द्राक्ष शर्करा, फल शर्करा, अपवृत्त शर्करा, यव शर्करा, आदि इस किण्वन मे प्रयुक्त होती हैं।

मलेइक अम्ल का निर्माण बेंज़ीन के वैनेडियम पेंटॉक्साइड के उत्प्रेरित ऑक्सीकरण द्वारा किया जाता है। यह फ्यूमैरिक अम्ल से भी रासायनिक अभिक्रिया द्वारा बनाया जा सकता है। ऊष्मा की क्रिया से फ्यूमैरिक अम्ल मलेइक ऐनहाइड्राइड मे परिवर्तित होता है, जो एक महत्वपूर्ण कार्बनिक रसायनक है।

मलेइक अम्ल का गलनाक १२५° सें० है। यह बडे पैमाने पर सश्लिष्ट रेज़ीन, रोगन, रगलेप, वार्निश और मुद्रण स्याही आदि के निर्माण का एक महत्वपूर्ण अग है। [रा० ह० स०]

फूर्ये, जोसेफ (Fourier, Joseph, १७६८–१८३० ई०) फ्रासीसी गणितज्ञ का जन्म ओक्सैर मे हुआ। आठ वर्ष की उम्र मे ही ये अनाथ हो गए थे, परतु सौभाग्यवश अपने हितैषियो की सहायता से इन्हे एक सैनिक स्कूल में प्रवेश मिल गया, जहाँ इन्होने गणित के अध्ययन में आशातीत सफलता प्राप्त की और शीघ्र ही एक सैनिक स्कूल में गणित के प्रोफेसर हो गए। फ्रास की क्राति में इन्होने सक्रिय भाग लिया और मिस्र पर आक्रमण में भी नेपोलियन के साथ गए। तदुपरात इन्होने पिंडो में ताप के विस्तार पर सफल शोध किए, जिनका वर्णन इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'ला थेओरि अनालितिक द ला शालर' (La Theorie Analytique de la Chaleur) में है। गणितीय भौतिक शास्त्र के निर्धारित सीमात के मानवाले निर्मेयो के (जिनमें आशिक अवकल समीकरण के अनुकलन की आवश्यकता हो) हल की आधुनिक विधियो के लिये, यह मूल पुस्तक है। इसमें प्रसिद्ध 'फूर्ये श्रेणी' का भी वर्णन है। 'सख्यात्मक समीकरण के विश्लेषण' पर भी इन्होने महत्वपूर्ण शोध किए।

स० ग्र० — अरागो जोसेफ फूर्ये (स्मिथसोनियन रिपोर्ट, १८७१)। [रा० कु०]

फूर्ये श्रेणी हम सबसे पहले निम्नलिखित अनत श्रेणी

$$\left.\begin{aligned} &\tfrac{1}{2}\text{क}_0 + \sum_{\text{न}=1}^{\infty}(\text{क}_\text{न}\ \text{कोज्या नय} + \text{ख}_\text{न}\ \text{ज्या नय}) \\ &\left[\tfrac{1}{2}a_0 + \sum_{n=1}^{\infty}(a_n \cos nx + b_n \sin nx)\right] \end{aligned}\right\} \quad (१)$$

पर विचार करेंगे, जिसमें सभी क (a) और ख (b) अचर हैं और य (x) चर है जो $-\infty$ और $+\infty$ के बीच का कोई भी मान ले सकता है। ऐसी श्रेणियो को त्रिकोणमितीय श्रेणियाँ कहते हैं। मान लीजिए, अब श्रेणी (१) य(x) के सब मानो के लिये अभिसृत होती है और इसका योग फ(य) [f (x)] है। चूँकि य (x) के बदले (य+२ π) [(x+2 π)] रखने पर श्रेणी मे कोई अतर नही आता, इसलिये फलन फ (य) [f (x)] आवर्त है, जिसका आवर्तनाक २π है। यदि हम समीकरण

$$\text{फ}(\text{य}) = \tfrac{1}{2}\text{क}_0 + \sum_{\text{न}=1}^{\infty}(\text{क}_\text{न}\ \text{कोज्या नय} + \text{ख}_\text{न}\ \text{ज्या नय})$$

$$\left[f(x) = \tfrac{1}{2}a_0 + \sum_{n=1}^{\infty}(a_n \cos nx + b_n \sin nx)\right]$$

के दोनो पक्षों को क्रमश कोज्या नय (cos n x) या ज्या नय (sin n x) से गुणा करें और फल का (०,२π) अतराल पर समाकल निकालें तो न (n) के सभी मानो के लिये हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है

$$\left.\begin{aligned} &\text{क}_\text{न} = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi}\text{फ}(\text{य})\ \text{कोज्या नय ता य}, \\ &\text{ख}_\text{न} = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi}\text{फ}(\text{य})\ \text{ज्या नय ता य} \\ &\left[a_n = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f(x)\cos nx\, dx,\right. \\ &\left. b_n = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f(x)\sin nx\, dx\right] \end{aligned}\right\} \quad (२)$$

समीकरण (२) फलन फ (य) [f (x)] के फूर्ये गुणाक कहलाते हैं और श्रेणी (१) फ (य) [f (x)] की फूर्ये श्रेणी कहलाती है।

यदि श्रेणी (१) एकरूपत अभिसृत हो, तो उपर्युक्त तर्क सत्य प्रमाणित हो जाता है। फ्रास के गणितज्ञ ज्याँ बातीस्त फूर्ये (Jean Baptiste Fourier) के नाम पर इन श्रेणी का नामकरण हुआ है। फूर्ये का "ताप की चाल का गणितीय सिद्धात" भी इन्ही श्रेणियो पर आधारित है। फूर्ये का अनुसधानपत्र "ऊष्मा का

श्लेषिक सिद्धांत" (Theorie Analytique De La Chaleur) सन् १८२२ में प्रकाशित हुआ था, परन्तु फूर्ये श्रेणी का आविष्कार अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कपमान डोरी के प्रश्न के साथ ही हो गया था। इस प्रकार फूर्ये श्रेणी का प्रारंभ गणितीय भौतिकी के प्रश्नों में हुआ और यह श्रेणी अब तक इसके लिये एक महत्वपूर्ण कड़ी बनी हुई है। वास्तव में फलन को ज्याओं (sines) और कोज्याओं (cosines) की श्रेणी में प्रसारित करके, समिश्र आतत फलनों का मान निकालने के लिये यह श्रेणी एक गणितीय युक्ति है, जिसके गुणांक प्रायः समाकलन करके परिकलित किए जाते हैं और इस प्रकार प्रसार निर्धारित होता है। ज्वार भाटे से सहचरित आवर्त फलनों के हल, वैद्युतीय धारा, वोल्टता, ताप या अवतरंग, संभाविता के सिद्धांत और आंशिक अवकल समीकरण, तरंगगति का सिद्धांत, (उदाहरणार्थ प्रकाश और ध्वनितरंगों की गतियों के सिद्धांत,) तथा दोलक यांत्रिक संहति, जैसे कपमान डोरी, और खगोलीय कक्षाओं आदि, में फूर्ये श्रेणी बहुधा प्रयुक्त होती है।

गणितीय विश्लेषण में भी फूर्ये श्रेणी का उतना ही महत्व है। त्रिकोणमितीय (और विशिष्ट रूप से फूर्ये) श्रेणियाँ वैश्लेषिक फलनों के सिद्धांत के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि ल = घ^{इय} [$Z=e^{ix}$] रखने पर घात श्रेणी

$$\left.\begin{matrix} \tfrac{1}{2}\text{क}_0+(\text{क}_1-\text{र ख}_1)\text{ल}+(\text{क}_2-\text{र ख}_2)\text{ल}^2+\ldots \\ [\tfrac{1}{2}a_0+(a_1-ib_1)z+(a_2-ib_2)z^2+\ldots] \end{matrix}\right\} (३)$$

का वास्तविक अंश ही श्रेणी (१) हो जाता है। इस प्रकार त्रिकोणमितीय श्रेणियां घात श्रेणियों की वास्तविक अंश हैं और इसलिये ये वास्तविक तथा समिश्र फलनों के बीच एक शृंखला का काम करती हैं। विविध गणितीय संकल्पनाओं के, जिनमें से कुछ काफी अमूर्त हैं, ऐतिहासिक विकास और स्पष्टीकरण में त्रिकोणमितीय श्रेणियों ने बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया है। नीचे कुछ उदाहरण दिए गए हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में ही फूर्ये श्रेणी के सिद्धांत ने गणितीय फलनों की संकल्पना के बारे में विवाद खड़ा कर दिया। साधारणतया उन दिनों फ(य) [f(x)] को फलन तभी कहा जाता था, जब फ(य) [f(x)] बहुपद, जैसे एक एकाकी वैश्लेषिक व्यंजक, एक घात श्रेणी या एक त्रिकोणमितीय श्रेणी के रूप में निरूपित हो सकता हो। यदि फ(य) [f (x)] का आलेख स्वच्छंद होता था, जैसे एक बहुपदीय रेखा, तो फ (य) [f(x)] को फलन नहीं मानते थे। इसलिये बहुतों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा, जब फूर्ये श्रेणी के आविष्कार ने सिद्ध कर दिया कि ऐसे बहुत से स्वेच्छ आलेख त्रिकोणमितीय श्रेणियों के द्वारा निरूपित हो सकते हैं और इसलिये इन्हें फलन स्वीकृत किया जाना चाहिए। बहुत काल के बाद ही इसका पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण हो पाया और डीरिश्ले (Dirichlet) द्वारा सन् १८३७ में प्रकाशित एक संस्मरण लेख में नए सर्वमान्य परिभाषा का सर्वप्रथम सूत्रपात हुआ, जिसमें फूर्ये श्रेणी का विवेचन किया गया था। त्रिकोणमितीय श्रेणी के प्रभाव का दूसरा उदाहरण के रूप में हम वायरस्ट्रास (Weierstrass) के फलनों का सिद्धांत ले सकते हैं। उन्होंने पहली बार एक त्रिकोणमितीय श्रेणी के रूप में एक ऐसे सतत फलन का उदाहरण दिया, जो किसी बिंदु पर भी अवकलनीय नहीं था। समाकलों की संकल्पना के इतिहास में फूर्ये श्रेणी का प्रभाव एक तीसरा महत्वपूर्ण उदाहरण है। समीकरण (२) के कारण फूर्ये श्रेणी के अध्ययन के लिये समाकलों का ज्ञान पहले से ही होना आवश्यक है। इस कारण यह ध्यान देने योग्य बात है कि रीमान (Riemann) द्वारा समाकल की शास्त्रोक्त परिभाषा सन् १८५४ में उसके मूल आलेख "किसी फलन की त्रिकोणमितीय श्रेणी द्वारा निरूपणशीलता" (Veber die Darstellbarkeit einer Funcktion durch eine Trigonometrische Reihe) में प्रतिपादित हुई। एक त्रिकोणमितीय श्रेणी के एक फलन के रूप में निरूपण की अद्वितीयता पर जार्ज कांटर (George Cantor) का एक फल भी इस आलेख द्वारा बहुत प्रभावित होता है।

फूर्ये श्रेणी की अभिसृति और अपसृति — मान लीजिए, श्रेणी (१) के प्रथम (न+१) [(n+1)] पदों का योग यो$_न$ (य) [$S_n(x)$] है। समीकरण (२) को प्रयोग में लाने से हमें फूर्ये श्रेणी के लिये आधारभूत सूत्र

$$\text{यो}_न(\text{य}) = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} \text{फ}(\text{य}+\text{ट})\,\frac{\text{ज्या}\,(\text{न}+\tfrac{1}{2})\,\text{ट}}{2\,\text{ज्या}\,\tfrac{1}{2}\,\text{ट}}\,\text{ता ट}$$

$$\left[S_n(x) = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f(x+t)\,\frac{\sin(n+\tfrac{1}{2})t}{2\sin\tfrac{1}{2}t}\,dt\right]$$

प्राप्त होता है। अब कुछ शर्तों के साथ यह सिद्ध किया जा सकता है कि यो$_न$(य) [$S_n(x)$], फ (य) [f (x)] की ओर प्रवृत्त होगा, यदि न (n) अनिश्चित रूप से बढ़े। ऐसे बिंदु य (x) पर, जहाँ फलन फ(य) [f (x)] असतत हो, फूर्ये श्रेणी अभिसृत होती है और उसका योग

$$\tfrac{1}{2}\,\text{फ}\,(\text{य}+0)+\text{फ}\,(\text{य}-0)$$

$$[\tfrac{1}{2}f(x+0)+f(x-0)]$$

होता है जिसमें फ (य ± ०) [f (x±0)], फलन फ (य) [f (x)] की क्रमशः दाएँ और बाएँ से बिंदु य (x) पर सीमाएँ हैं। फूर्ये श्रेणी का योग फ (य) [f (x)] की ओर अभिसृत होने के लिये एक दूसरी शर्त है समाकल

$$\int_0^{\pi}\left|\frac{\text{फ}(\text{य}+\text{ट})+\text{फ}(\text{य}-\text{ट})-2\text{फ}(\text{य})}{\text{ट}}\right|\text{ता ट}$$

$$\left[\int_0^{\pi}\left|\frac{f(x+t)+f(x-t)-2f(x)}{t}\right|dt\right]$$

का अभिसृत होना। यह शर्त प्रत्येक ऐसे बिंदु पर सत्य होगी, जहाँ फलन फ (य) [f (x)] अवकलनीय हो। ये शर्तें पर्याप्त मात्र हैं। सन् १८७२ में पाल द ब्वा-रेमाण्ड (Paul de Bois-Reymond) ने एक ऐसे सतत फलन की रचना की जिसकी फूर्ये श्रेणी कुछ बिंदुओं पर अपसृत होती है और इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि फूर्ये श्रेणी की अभिसृति के लिये फलन का सातत्यमात्र ही पर्याप्त नहीं है। सन् १९२६ में कॉल्मागोराफ (Kolmogoroff) ने ऐसे फलन

का अस्तित्व सिद्ध किया जो लेबेग (Lebesgue) अर्थ में समाकलनीय है, किंतु जिनकी फूर्ये श्रेणी सर्वत्र अपसृत होती है।

फूर्ये श्रेणी की संकलनीयता — सन् १९०० में फेयर (Fejer) ने सख्यात्मक मध्यको के द्वारा यह दिखाया कि एक सतत फलन फ (य) [f (x)] की फूर्ये श्रेणी का सकलन फल फ(य) [f(x)] है। यदि हम यो$_न$(य) [$S_n(x)$] का पूर्व परिभाषित अर्थ लें तो

$$\text{जो}_न(\text{य}) = \frac{\text{यो}_० (\text{य}) + \text{यो}_१ (\text{य}) + \ldots + \text{यो}_न(\text{य})}{न + १}$$

$$\left[\sigma_n (x) = \frac{S_0 (x) + S_1 (x) + \quad + S_n (x)}{n+1}\right]$$

फलन के प्रत्येक सातत्य विंदु पर फ (य) [f (x)] की ओर प्रवृत्त होगा। वाद में लेवेग ने सिद्ध किया कि प्रत्येक समाकलनीय फलन फ (य) [f (x)] के लिये व्यजक जो$_न$ (य) [$\sigma_n(x)$] प्राय सर्वत्र फ (य) [f (x)] की ओर प्रवृत्त होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि फूर्ये श्रेणी की सकलनीयता उसकी अभिसृति से अधिक महत्वपूर्ण है।

पार्सेवाल (Parseval) का सूत्र — यदि हम समीकरण

$$\text{फ} (\text{य}) = \frac{१}{२}\text{क}_० + \sum_{न=१}^{\infty} (\text{क}_न \text{ कोज्या न य} + \text{ख}_न \text{ ज्या नय})$$

$$\left[f (x) = \frac{1}{2} a_0 + \sum_{n=1}^{\infty} (a_n \cos nx + b_n \sin nx)\right]$$

के दोनो पक्षो का वर्ग करें और फल का ० ≤ य ≤ २π [$0 \leqslant x \leqslant 2\pi$] अतराल मे समाकल निकालें तो हमें पार्सेवाल का सूत्र

$$\frac{१}{\pi}\int_०^{२\pi} \text{फ}^२ (\text{य}) \text{ता य} = \tfrac{१}{२} \text{क}_०^२ + (\text{क}_१^२ + \text{ख}_१^२) + (\text{क}_२^२ + \text{ख}_२^२)$$

$$\left[\frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f^2 (x)\, d(x) = \tfrac{1}{2} a_0^2 + (a_1^2 + b_1^2) + (a_2^2 + b_2^2) + \cdot \quad\right]$$

प्राप्त हो जाता है। इस फल की परुप उपपत्ति से ज्ञात होता है कि यह सूत्र ऐसे सभी फलनो फ (य) [f (x)] के लिये सत्य है, यदि फ^२ (य) [f^2 (x)] समाकलनीय हो। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि फूर्ये गुणाक क$_०$, क$_१$, ख$_१$, [$a_0, a_1, b_1,$] ऐसे हैं कि $\sum$(क$_न^२$+ख$_न^२$) [$\sum(a_n^2 + b_n^2)$] सात हैं। रीज (Riesz) और फिशर (Fischer) के प्रमेय के अनुसार, यदि किन्हीं सख्याओं क$_०$, क$_१$, ख$_१$, का अनुक्रम दिया हो और श्रेणी $\sum$(क$_न^२$+ख$_न^२$) अभिसृत होती हो, तो सदैव एक ऐसा फलन फ (य) [f (x)] प्राप्त किया जा सकता है जिसके फूर्ये गुणाक, सख्याएँ क$_०$, क$_१$, ख$_१$, हों और फ^२ (य) [f^2 (x)] समाकलनीय हो। यह फलन अद्वितीय है।

फूर्ये के समाकल — फूर्ये श्रेणी का उपयोग आवर्त फलनों के निरूपण के लिये किया जाता है। अनावर्त फलन फ (य) [f (x)] के अध्ययन के लिये हम फूर्ये समाकल

$$\int_०^{\infty} \{ \text{क} (\text{उ}) \text{ कोज्या उय} + \text{ख}(\text{उ}) \text{ ज्या उय} \} \text{ ता उ}$$

$$\left[\int_0^{\infty} \{ a(u) \cos ux + b (u) \sin u x \}\, du\right]$$

का उपयोग करते हैं, जिसमे क(उ) [a(u)] और ख (उ) [b(u)] निम्नलिखित सूत्रो द्वारा परिभाषित होते हैं

$$\text{क} (\text{उ}) = \frac{१}{\pi}\int_{-\infty}^{\infty} \text{फ} (\text{ट}) \text{ कोज्या उट. ताट}$$

$$\text{ख} (\text{उ}) = \frac{१}{\pi}\int_{-\infty}^{\infty} \text{फ} (\text{ट}) \text{ ज्या उट ताट}$$

$$\left\{\begin{aligned} a (u) &= \frac{1}{\pi}\int_{-\infty}^{\infty} f (t) \cos ut \,.\, dt \\ b (n) &= \frac{1}{\pi}\int_{-\infty}^{\infty} f (t) \sin ut\, dt \end{aligned}\right\}$$

क (उ) और ख (उ), फ (उ) के फूर्ये रूपातर कहे जाते है।

[भ० दा० अ०]

फूल या पुष्प तने का एक विकसित अग है। जिस प्रकार तने पर पत्तियाँ पाई जाती हैं, उसी प्रकार पुष्पासन (Thalamus) के ऊपरी भाग पर पुष्प के अग रहते है। पुष्प मे चार अग होते हैं, जिनमे सवसे बाहर की ओर प्राय हरे रग की पखुडियाँ होती हैं, जिन्हे वाह्यदल (sepal) तथा उसके अदरवाली रगीन पखुडियो को दल या पखुडी (petal) कहते हैं। ये दोनो प्रकार के दल फूल के प्रजनन अगो को सुरक्षित रखते हैं तथा फूल को आकर्षक वनाते हैं, जिससे परागण (pollination) मे सुविधा होती है। रगीन पखुडियो के अदर की तरफ प्राय दो प्रकार के प्रजनन अग होते हैं। वाहरी भाग मे पाए जानेवाला अग परागकण (pollen grain) वनाता है और उसे
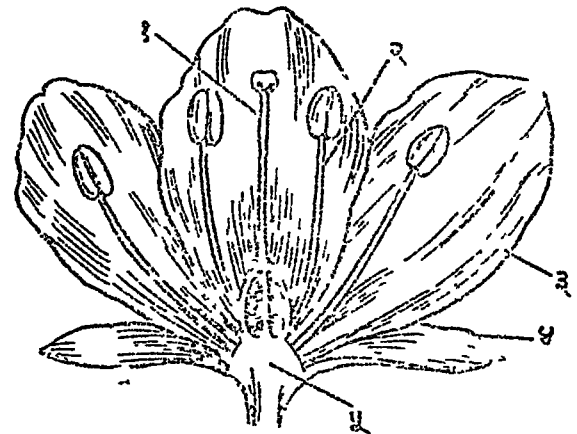
चित्र १ एक सपूर्ण पुष्प

१ अडप (मादा अग), २ पुकेसर (पुमंग), ३ पखुडी (दलपुज), ४ वाह्य दल (वाह्य दलपुज में) तथा ५ पुष्पासन।

पुकेसर (stamen) कहते हैं। फूल के सवसे भीतरी भाग मे पाए जानेवाले चौथे अग को स्त्रीकेसर कहते हैं। इसमे वीजाड (ovule) का निर्माण होता है। इन्ही दो अगो से फल तथा वीज वनता है। जिस फूल मे उपर्युक्त चारो प्रकार के अग पाए जाते हैं, उन्हें पूर्ण पुष्प तथा जिसमे एक भी अग का अभाव रहता है, उसे अपूर्ण पुष्प कहते हैं।

फूल का विकास — फूल का विकास हमारी पृथ्वी पर कब, कहाँ और किस प्रकार के वातावरण मे हुआ, इसका ठीक ठीक पता हमे अभी नही है, पर जो कुछ भी प्रमाण हमारे पास हैं उनसे हम यह कह सकते हैं कि आज से करीब १५ करोड वर्ष पूर्व मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era) मे पृथ्वी पर उष्णकटिबधीय प्रदेश मे सर्वप्रथम पुष्पधारी पौधो का विकास हुआ था। अभी विद्वानो मे इस बात पर भी मतभेद है कि प्रथम पुष्प मे चारो प्रकार के अग पाए जाते थे या, किसी अग का अभाव था। जो विद्वान् ऐसा सोचते हैं कि प्रथम पुष्प पूर्ण था, उनके मत से उभयलिंगी पुष्प, जैसे रैननकुलस (Ranunculus), चपा इत्यादि का विकास पहले हुआ और अपूर्ण पुष्प तथा एकलिंगी नगे फूल पूर्ण उभयलिंगी पुष्पो से कुछ भागो के लुप्त हो जाने के बाद बने हैं। अत इस मत के अनुयायी रेनेलीस वर्ग के पौधो को विकास की दृष्टि से आदिम तथा अपूर्ण नगे फूलवाले पौधो को अधिक विकसित मानते हैं। इस मत के विरुद्ध कुछ विद्वानो का मत है कि नगे अपूर्ण पुष्पधारी पौधों का विकास पहले हुआ। अत वे 'मेलिक्स' वर्ग के पौधो को आदिम मानते हैं। प्रथम पुष्प जैसा भी रहा हो उसकी बनावट मे काल की गति के साथ साथ अनेक प्रकार के परिवर्तन होते गए हैं। अब पुष्पधारी पौधो की करीब २,५०,००० जातियाँ पाई जाती हैं। इन पौधों का जातिकरण पुष्प के आकार पर आधारित है।

चित्र२ अपूर्ण पुष्प
मादा फूल।

पुष्प के भाग निम्नलिखित हैं

१ फूल की उत्पत्ति तने के शीर्षस्थ (apical), अथवा कक्षीय (axillary) कलिका, के स्थानो मे एक पत्ती के कक्ष से होती है। जिस पत्ती के कक्ष मे पुष्प निकलता है, उसे सहपत्र (Bract) कहते हैं। कुछ पुष्पो मे इस पत्ती के अलावा दो और छोटी छोटी पत्तियाँ पाई जाती हैं, जिन्हे सहपत्रिका (Bracteole) कहते हैं (चित्र ३)। प्राय ये पत्तियाँ हरी होती हैं। पर
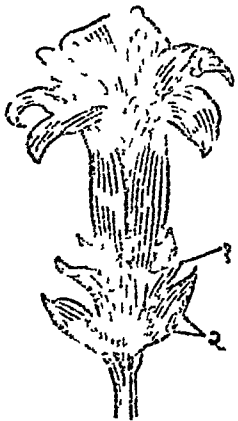
चित्र ३. फूल में सहपत्रिकाएँ
१ बाह्य दलपुज तथा २ सहपत्रिकाएँ।
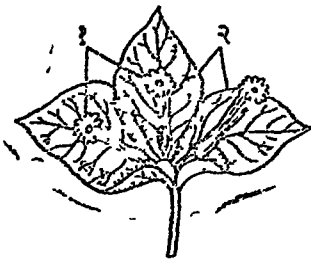
चित्र ४ फूल का सहपत्र
(बोगेनविलिया)
१ पुष्प तथा २ सहपत्र

किन्हीं किन्हीं फूलो में ये रगीन भी हो जाती हैं, जैसे बोगेनविलिया (Bougainvillea) मे (चित्र ४)। इन पत्तियो का मुख्य कार्य पुष्पकलिका को सुरक्षित रखना है। कभी कभी यह पत्ती वृहदाकार हो जाती है और पूर्ण पुष्पक्रम को ढँक लेती है तथा उसे सुरक्षित रखती है। ऐसी पत्तियो को स्पेथ (Spathe) कहते हैं, जैसे अरवी तथा ताड में (चित्र ५)।

चित्र ५ अरवी के पुष्पक्रम मे स्पेथ
१ स्पेथ (spathe)

पुष्पवृ त या वृ तक (Pedicel) — वह भाग है जिसके सिरे पर पुष्प के विभिन्न भाग पाए जाते हैं। पुष्पवृ त के जिस भाग से पखुडियाँ निकलती हैं वह पुष्पासन कहलाता है। पुष्पवृ त की आतरिक बनावट तने जैसी होती है। पुष्पासन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं

१. जायाधर पुष्पासन (Hypogynous thalamus)
२ परिजायागी पुष्पासन (Perigynous thalamus)
३ जायागोपरिक पुष्पासन (Epigynous thalamus)

चित्र ६. जायाधर पुष्पासन

चित्र ७ परिजायागी पुष्पासन
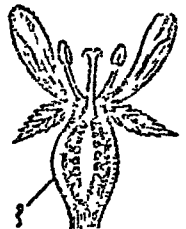
चित्र ८ जायागोपरिक पुष्पासन

कुछ फूलों मे पुष्पवृ त नही पाया जाता। पर पुष्पासन सभी फूलो में रहता है। अजीर, सेव, नासपाती मे तो यह भाग बढकर फल का मुख्य अंग बन जाता है।

३. पुष्प पखुडियाँ — ये प्राय निम्नलिखित दो प्रकार की होती हैं

(अ) सबसे बाहरी पखुडी प्राय हरी होती है, पर कभी कभी

ये रगीन भी होती हैं। इन पखुडियो को वाह्य दल (Sepals) और इनके चक्र को वाह्यदलपु ज (Calyx) कहते हैं। यह वाह्यदल फूल की अन्य पखुडियो को सुरक्षित रखता है, विशेपकर तब जब फूल कली की अवस्था मे रहता है। यह वाह्यदल प्राय अलग अलग एक
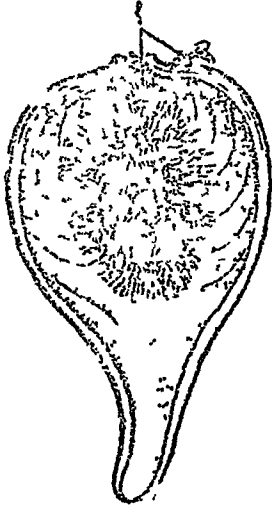
चित्र ९. अजीर का फल
१. ब्लैस्टोफागा नामक बर्रे।
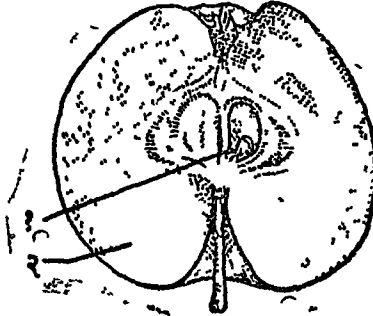
चित्र १०. सेब का फल
१ अडाशय तथा २ पुष्पासन।

ही दायरे मे पाया जाता है। ऐसी अवस्था में इस पुज को पृथक् वाह्य दली (Polysepalous) कहते हैं। पर किन्ही किन्ही फूलो मे वाह्यदल सभी एक दूसरे से मिले होते हैं और ऐसे दलपुज को सयुक्त वाह्यदली (Gamosepalous) कहते हैं। इन वाह्यदलो की सख्या एकबीजपत्री
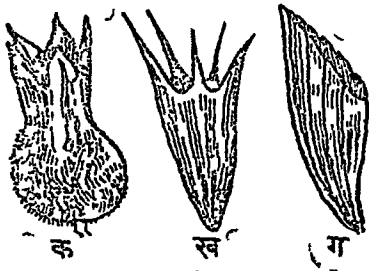
चित्र ११. संयुक्त वाह्यदल के विभिन्न स्वरूप
क कुभाकार (urceolate) ख तथा ग द्विओष्ठी (bilabiate)

वर्ग के पौधो मे प्राय पांच पाई जाती है। सयुक्त वाह्यदली अवस्था में ये वाह्यदल चित्र ११ मे दर्शाए प्रकारो मे पाए जाते हैं।

(ब) दूसरे चक्र मे पाई जानेवाली पखुडियाँ प्राय रगीन होती हैं। इन्हे दल (Petals) तथा इनके चक्र को दलपु ज (Corolla) कहते है। ये रगीन पखुडियाँ प्राय पुष्प को आकर्षक बनाती हैं, जिससे कीट इत्यादि परागण मे सहायक होते हैं। इन पखुडियो से गध तथा इनकी ग्रथियो से मीठा रस प्राप्त होता है, जिनके कारण पतिगे तथा शहद की मक्खियाँ फूल पर आती हैं और परागण क्रिया मे सहायक होती हैं। ये पखुडियाँ भी प्राय अलग अलग, अथवा एक दूसरे से मिली हुई अवस्था मे, पाई जाती हैं और इन्हे क्रमश पृथक्दली (Polypetalous) और सयुक्तदली (Gamopetalous) कहते हैं। इनकी सख्या भी प्रथम वर्ग की पखुडियो के समान एकबीजपत्री पौधो के पुष्प मे प्राय तीन तथा द्विबीजपत्री पौधों के पुष्प मे प्राय पाँच या इससे भी अधिक होती हैं।

सयुक्तदली अवस्था में ये पखुडियाँ चित्र १२ (देखें फलक) मे दिखाए गए रूपो मे पाई जाती हैं।

४. पुमंग (Androecium) — तीसरे चक्र मे पाया जानेवाला फूल का भाग पराग का निर्माण करता है, जिसे पुकेसर कहते हैं
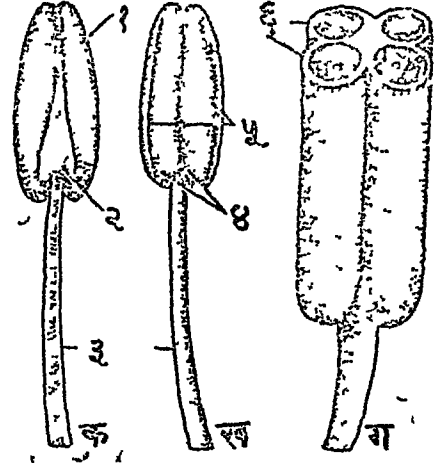
चित्र १३. पुंकेसर के भाग
क. पृष्ठीय दृश्य, ख. अधर दृश्य तथा ग. परागकोश की आडी काट का परिवर्तित दृश्य।
१. परागकोश, २ सयोजक, ३ तंतु, ४ परागकोश की पालि, ५ सीवन तथा ६ परागकक्ष।

और इसके समूह को पुमग कहते हैं। इनका पुततु (filament of anther) परागकोश (anther) को ऊपर की तरफ उठाए रखता है, जिससे पराग वितरण में सुविधा हो। परागकण परागकोश में बनते हैं। जब ये पूर्ण रूप से तैयार हो जाते
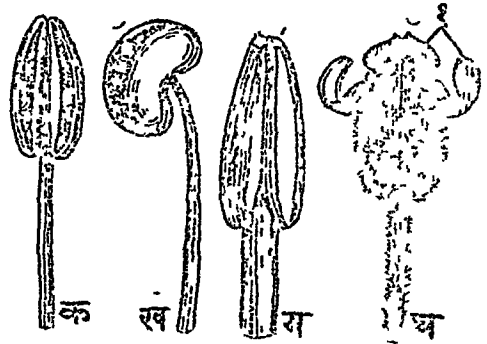
चित्र १४ परागकोश के फटने की विधि
क. अनुदैर्घ्य, ख अनुप्रस्थ, ग सरध्र तथा घ. कपाटीय विधि
१ कपाट।

हैं, तो परागकोश नियमित रूप से फट जाते हैं और पराग निकलने लगता है। यही पराग हवा अथवा कीटो के द्वारा दूसरे

फूलों तक वितरित हो जाता है। परागग्रंथि के फटने का तरीका चित्र १८ में दिखाया गया है।

पुंकेसरों की संख्या भी निश्चित होती है। एकबीजपत्री वर्ग के फूलों में तीन या छह और द्विबीजपत्री वर्ग के फूलों में दो, चार, पाँच, छह, या दस पुंकेसर होते हैं। ये अलग अलग अथवा आपस में मिले हुए पाए जाते हैं। कभी कभी पुंकेसर पुष्पासन पर से न निकलकर ऊपर से निकलते हैं और ऐसी अवस्था में इन्हें 'दललग्न' कहते हैं। प्राय एक फूल के सभी पुंकेसर एक ही प्रकार के होते हैं। किन्हीं किन्हीं फूलों में कुछ पुंकेसर छोटे बड़े होते हैं और कभी कभी तो कुछ में परागकण भी नहीं बनता, तब इन्हें वंध्य पुंकेसर (Staminode) कहते हैं।
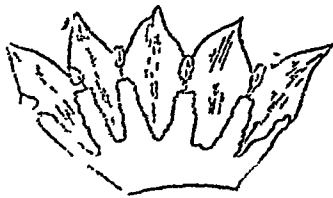
चित्र १५ दललग्न पुंकेसर   चित्र १६ वंध्य पुंकेसर

गुलाब अथवा कमल के फूलों में कभी कभी परागकोश रंगीन दलों पर पाए जाते हैं, जिससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि पुंकेसर की उत्पत्ति दल से हुई। पुंकेसर एक दूसरे से निम्नलिखित दो अवस्थाओं में मिलते हैं

(अ) पुंकेसर (stamen) आपस मे मिले रहते हैं। पर परागकोश अलग अलग रहते हैं। इस अवस्था को संघी कहते हैं। गुड़हल (Hibiscus rosasinensis) के फूल मे सभी पुंकेसर मिलकर एक नली बनाते हैं, जो पुंकेसरी नली कहलाती है। इस प्रकार की संघी को एकसंघी (Monadelphous) कहते हैं। नीबू के फूल में थोड़े थोड़े पुंकेसर मिलकर कई गुच्छे बनाते हैं। ऐसी अवस्था को बहुसंघी (Polyadelphous) कहते हैं।
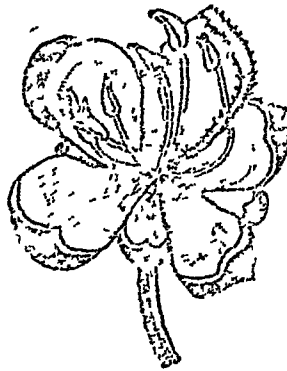
चित्र १७ पुंकेसर की नली (गुड़हल के फूल मे)   चित्र १८ बहुसंघी पुंकेसर (नीबू के फूल में)

(ब) परागकोश एक दूसरे से मिले होते हैं, पर पुंकेसर एक दूसरे से अलग अलग होते हैं। ऐसी अवस्था को युक्तकोशी (Syngenesious) कहते हैं। इस प्रकार के पुंकेसर सूर्यमुखी के फूल मे मिलते हैं।

चित्र १९. युक्तकोशी पुंकेसर (सूर्यमुखी का पुमंग)

(५) जायांग (Gynaeceum) — पुष्प के मध्यवर्ती भाग मे पाया जानेवाला चौथा अंग अंडप (Carpel) कहलाता है। एक से अधिक अंडप से जायांग बनता है। एकबीजपत्री वर्ग के पौधों में प्राय तीन अंडप मिलकर जायांग का निर्माण करते हैं। जायांग के अंदर बीजांड (ovule) रहता है, जिससे बीज बनता है। जायांग की बनावट सुराहीनुमा होती है। सब से ऊपरी भाग वर्तिकाग्र (stigma), मध्य का भाग वर्त्तिका (style) तथा सबसे नीचे का फूला हुआ भाग अंडाशय (ovary) कहलाता है।
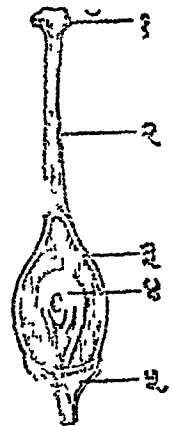
चित्र २०. जायांग के भाग
१ वर्तिकाग्र, २ वर्त्तिका, ३ अंडाशय, ४ बीजांड तथा ५ पुष्पासन।

वर्तिकाग्र कई प्रकार का होता है। कुछ फूलों में यह गोलाकार गेंद की तरह, कुछ में चिपटी तश्तरी की तरह और कुछ मे झाड़ीनुमा तथा रोएँदार होता है (फलक पर चित्र २१. देखें)।

वर्तिकाग्र पर परागकण जमा हो जाते हैं। वर्तिका तथा वर्तिकाग्र अंडाशय के ऊपर ही लगा हुआ दिखलाई पड़ता है। वर्तिकाग्र तथा वर्तिका दोनों ही भाग फल बनाते समय सूख जाते हैं। अंडाशय जायांग का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इसी भाग में बीजांड पाए जाते हैं। अंडाशय के भीतर एक अथवा कई बीजांड बीजांडासन के ऊपर लगे रहते हैं। एक फूल मे अंडप जब एक से अधिक रहते हैं, तो वे निम्नलिखित दो अवस्थाओं मे पाए जाते हैं .

(अ) हर एक अडप अलग अलग पुष्पासन पर लगा रहता है।
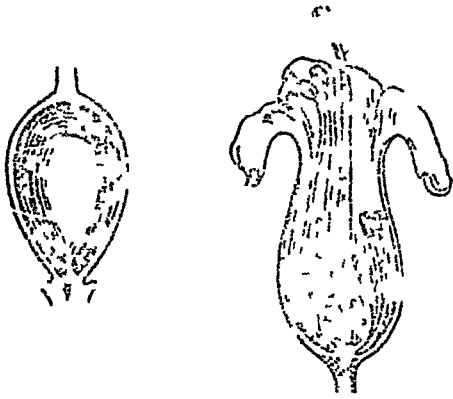
चित्र २२. अंडाशय के भीतरी भाग

ऐसी अवस्था मे जायाग वियुक्ताडपी (Apocarpous) कहलाता है। यह अवस्था हमे चपा के फूल मे मिलती है।

चित्र २३. वियुक्तांडपी जायांग

(ब) दो या अधिक अडप आपस मे जुडे रहते हैं। प्राय अडपो के वर्तिकाग्र, वर्तिकाएँ तथा अडाशय तीनो भाग आपस मे एक दूसरे से पूर्ण रूप से जुड जाते है और फूल मे एक सयुक्त जायाग वन जाता है, जिसे युक्ताडपी (Syncarpous) कहते हैं।
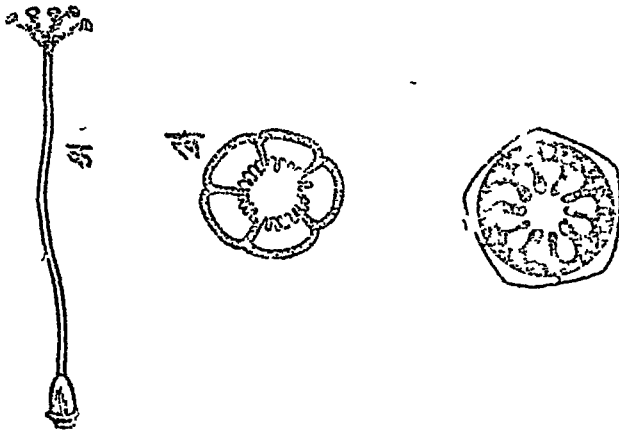
चित्र २४ क. युक्तांडपी, ख. पंचकोश अंडाशय

चित्र २५. युक्ताडपी, एककोशी अडाशय

कभी कभी अडाशय मे एक ही कोश पाया जाता है, पर प्राय कोश की सख्या उतनी ही पाई जाती है जितने अडप आपस मे जुडकर जायाग वनाते हैं। कुछ फूलो मे जायाग का केवल वर्तिकाग्र या वर्तिका वाला भाग आपस मे जुडा रहता है। पर अडाशय अलग रहते हैं, जैसे मदार के फूल मे।

जब पुष्पासन जायागाधर (hypogynous), अथवा परिजायागी (perigynous), अवस्था मे रहता है, तो जायाग उत्तम कहा जाता है। परतु जायागोपरिक (epigynous) अवस्था मे जायाग को निम्न कहते है (चित्र ६-८)।

चित्र २६. युक्ताडपी, मदार का जायाग

अडाशय से फल वनता है और उसके अदर वीज पाए जाते हैं। अत हम देखते हैं कि पुष्प मे केवल निम्नलिखित दो अग ही प्रजनन कार्य करते हैं

(१) पुकेसर के परागकोश मे परागकण वनते हैं। पराग वर्तिकाग्र पर गिरने के वाद अकुरित होकर नरयुग्मक (male gamete) वनता है। कुछ पुष्प मे केवल पुकेसर पाए जाते है। उन्हे पुलिंगी फूल कहते हैं। परतु अधिकतर फूलो मे पुकेसर और अडप दोनो ही पाए जाते हैं और ऐसे फूलो को उभयलिंगी पुष्प कहते है।

(२) दूसरे प्रकार के प्रजननवाले अग अडप कहलाते है और उनके अदर वीजाड वनता है। कुछ फूलो मे केवल अडप पाए जाते हैं और इन्हे मादा पुष्प कहते हैं। नर और मादा फूल मक्का तथा ताड के वृक्ष पर अलग अलग पाए जाते हैं (फलक पर देखें चित्र २७)।

कुछ पुष्पधारी पौधो मे पुष्प वहुत ही छोटे होते है और इन्हें देखने के लिये लेंस का उपयोग करना पडता है। इस प्रकार के फूल सूर्यमुखी तथा पीपल वर्ग के पौधो में पाए जाते हैं, परतु कुछ पौधों मे तो काफी वडे फूल पाए जाते हैं, जैसे रेफ्लीसिया के पौधो मे एक फूल लगभग एक मीटर व्यास तक का होता है।

चित्र २८ त्रिज्यातसमित पुष्प (गुलाव का फूल)

फूल के आकार— वाहर से देखने पर कुछ फूल सुडौल दिखाई पडते हैं और वे लववत् दो वरावर भागो मे किसी भी दिशा से काटे

जा सकते हैं। ऐसे फूलों को त्रिज्यासममित (Actinomorphic) कहते हैं, जैसे कमल या गुलाब के पुष्प।

दूसरे किस्म के फूल, जैसे मटर या डेलकोनियम का फूल केवल दो बराबर भागों में लववत् काटे जा सकते हैं। इन्हें एकव्याससममित (Zygomorphic) कहते हैं। तीसरे प्रकार के फूल, जैसे वैजयंती या हल्दी का फूल किसी भी तरह लववत् बराबर भागों में नहीं बाँटे जा सकते। अतः इन्हें बेडौल असममित पुष्प कहते हैं।
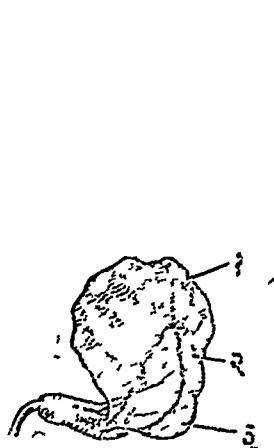
चित्र २९. एकव्याससममित पुष्प (मटर का फूल)

१ ध्वज (vexillum), २ पैली (alae) तथा ३ नौतल (carina)

चित्र ३०. असममित फूल (वैजयंती का फूल)
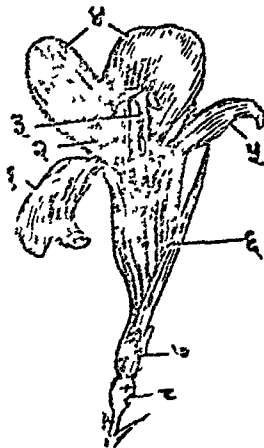
१ ओष्ठक वंध्यपुकेसर, २ पराग-कोश, ३ स्त्रीकेसर, ४ तथा ५ वंध्यपुकेसर, ६ दल, ७ वाह्यदल-पुंज एवं ८ अंडाशय।

फूल का वर्णन — ऐसे तो फूल का वर्णन उसके रूप, रंग तथा गंध से होता है पर वैज्ञानिक आधार पर हम पुष्पवर्णन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखते हैं

(क) सहपत्र — यदि फूल में सहपत्र है, तो उसे सहपत्री और यदि सहपत्र नहीं है तो सहपत्ररहित पुष्प कहेंगे।

(ख) वाह्य आकार — वर्णन किए हुए उपर्युक्त तीनों आकारों में से जो भी आकार हो उसका उल्लेख करेंगे।

(ग) लिंगभेद — नर, मादा अथवा उभयलिंगी जैसा भी पुष्प हो उसका उल्लेख करेंगे।

(घ) पुष्पवृंत — यदि फूल में वृंत है तो उसे वृंतसहित और नहीं है तो अवृंत कहेंगे।

(च) पुष्पासन — वर्णन किए हुए तीनों प्रकारों में से जो भी आकार हो उसका उल्लेख करेंगे।

(छ) वाह्यदलपुंज — वर्णन किए हुए प्रकारों में से जिस किस्म का हो उसका उल्लेख। कुछ पुष्पों में वाह्यदलपुंज के अलावा पुष्प के बाहरी भाग में इसी प्रकार की छोटी छोटी और भी पंखुड़ियाँ पाई जाती हैं। इन्हें एपिकैलिक्स (Epicalyx) कहते हैं, जैसे गुड़हल तथा कपास के फूल में। एपिकैलिक्स की संख्या तथा रंग को भी बताना चाहिए।

(ज) दलपुंज — जिस प्रकार वाह्यदलपुंज का वर्णन होता है उसी प्रकार दलपुंज का भी वर्णन होता है।

(झ) पुमंग — इसका उल्लेख उसी प्रकार होगा जैसा आगे वर्णन किया गया है।

(ट) जायांग — उसका वर्णन आगे किया गया है।

इस प्रकार पुष्पवर्णन के पश्चात् उसके नीचे पुष्पचित्र तथा पुष्पसूत्र लिखना चाहिए। पुष्पचित्र से हमें फूल के वाह्य आकार तथा सभी प्रकार की पंखुड़ियों का आपस में संबंध तथा स्थानभेद का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता है। पुष्पवर्णन पूरा तभी होता है, जब पुष्पचित्र के नीचे पुष्पसूत्र दे देते हैं। इसमें कुछ चिह्न तथा अंकों द्वारा ही पुष्प का वर्णन कर देते हैं। चिह्न निम्न प्रकार दर्शाए जाते हैं :

वाह्यदलपुंज — के० कैलिक्स

५ संख्या, ५ अलग अलग

५ संख्या, ५ आपस में मिले हुए

दलपुंज — क० करोला

५ संख्या, ५ अलग अलग

५ संख्या, ५ आपस में मिले हुए

पुमंग — ऐ० ऐंथर या स्टेमन्स

५ संख्या, ५ अलग अलग

५ संख्या, ५ आपस में मिले हुए,

९+१ संख्या ९ आपस में मिले हुए तथा १ अलग

५+५ दस पुंकेसर अलग अलग दो दायरे में

क० ए दललग्न पुंकेसर

जायांग — गा० अंडप

५ संख्या ५ अंडप, वियुक्तांडपी

(५) संख्या ५ अंडप, युक्तांडपी

(५) संख्या ५ अंडप, युक्तांडपी और निम्न जायांग

(५) संख्या ५ अंडप, उत्तम जायांग

अभी तक पुष्प के वाह्य रूप का वर्णन किया गया है। अब यह भी बताया जाएगा कि पुष्प में कहाँ और कैसे नर तथा मादा युग्मकों

फूल (देखें पृष्ठ १२१-१२३)
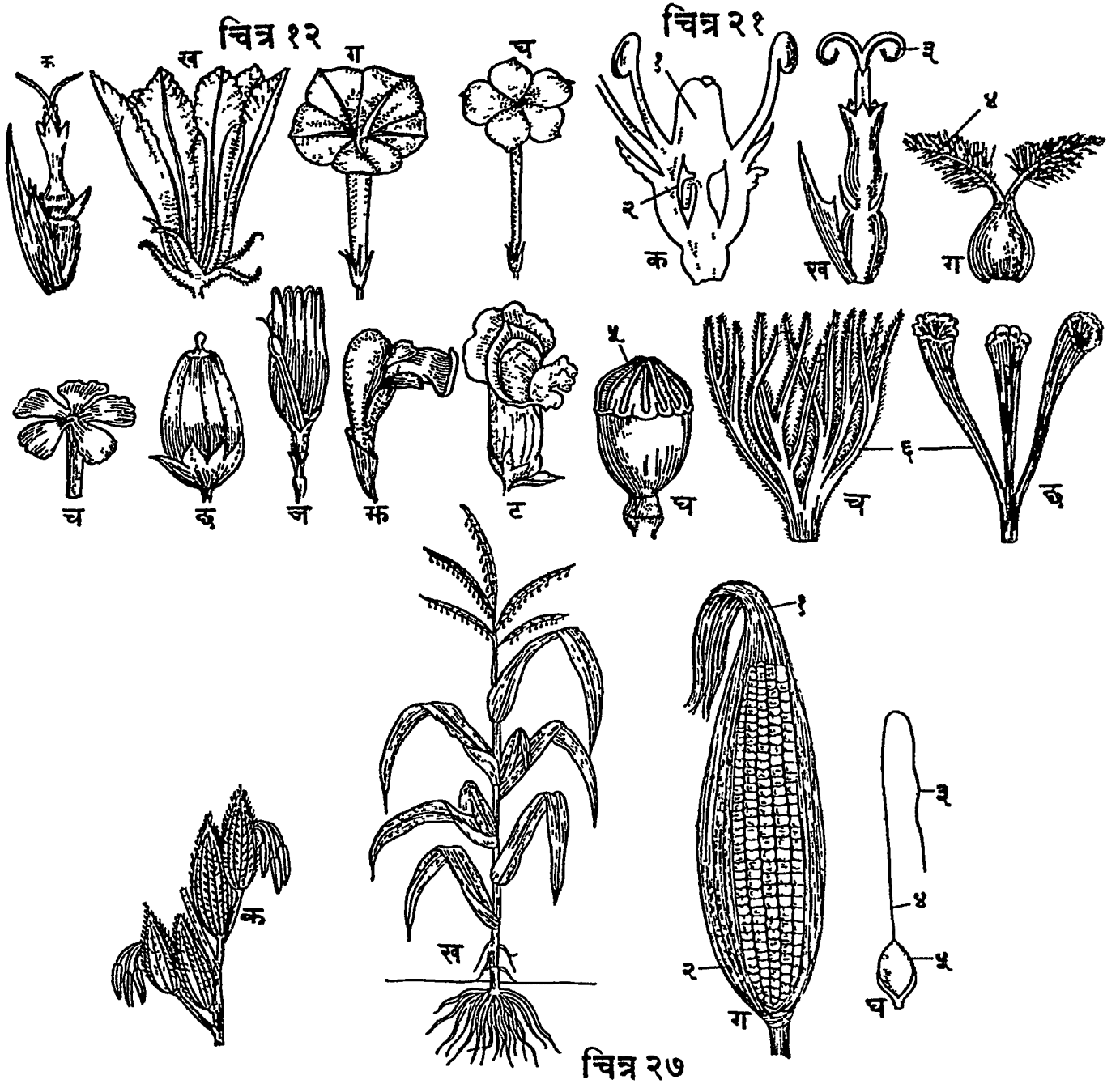
चित्र १२. (देखें पृष्ठ १२१) सयुक्तदली दलपुंज · क. सूर्यमुखी के बिंबपुष्पक मे नलिकाकार, ख. कुकरबिटा (Cucurbita) मे घंटाकार; ग आइपोमिया (Ipomea) में कीपाकार, घ विंका (Vinca) में अर्ध कटोराकार, च निक्टैंथीज (Nyctanthes) में चक्राकार; छ ब्रायोफिलम (Bryophyllum) मे कुंभाकार; ज गेंदे के अरपुष्पक मे जीभिकाकार, झ. ल्यूकस (Leucas) में द्विओष्ठी तथा ट स्नैपड्रैगन में मुँहबंद ।

चित्र २१. (देखें पृष्ठ १२२) विविध वर्तिकाग्र · क सैंब्यूकस निग्रा (Sambucus nigra) में अवृंत, ख सूर्यमुखी मे द्विशाखित; ग धान मे द्विशाखित तथा पिच्छयुक्त, घ पोस्ते मे रेखित तथा अवृंत; च बिगोनिया (Begonia) में अत्यधिक शाखित तथा छ केसर मे कीपाकार । १, ३, ४, ५ और ६. वर्तिकाग्र तथा २. अंडाशय ।

चित्र २७ (देखें पृष्ठ १२३) नर तथा मादा फूल (मक्का का पौधा) क युग्मित नर अनुशूकी; ख मक्का का पौधा, ग स्त्रीकेसरी पुष्पक्रम तथा घ मादा पुष्प । १ रेशम, २ स्पेथ, ३ वर्तिकाग्र, ४ वर्तिका और ५ अंडाशय ।

का निर्माण होता है और ये दोनो आपस मे कैसे सयोग कर फल और बीज बनाते हैं, जिनसे वश बढ़ता है।

परागकण तथा नरयुग्मक का बनना — नवजात पुकेसर मे जब परागकोश बनने लगता है, तब उन ग्रथियो के अदर दो प्रकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं (१) बाहर की तरफ छोटी कोशिकाएँ तथा (२) भीतर की तरफ कुछ बडी बडी कोशिकाएँ। जो कोशिकाएँ कुछ बडी होती हैं, उन्ही मे से हर एक मे चार चार परागकण बनते हैं। हर परागकण में दो केंद्रक और बाहर की तरफ दीवार बन जाती है। इसी अवस्था मे परागकोश फटते है और परागकण बाहर निकल आते है। ये हवा तथा कीटो द्वारा एक फूल से दूसरे फूल के वर्तिकाग्र तक पहुँच जाते हैं (फलक पर चित्र ३१. देखें)। यहाँ कुछ देर मे परागकण की दीवार को फाडकर एक परागनलिका (pollen tube) निकलती है, जो वर्तिका के अदर बढने लगती है और जब यह नलिका कुछ बडी हो जाती है, तब परागकेसर का एक केंद्रक विभाजित होकर दो नर युग्मक बनता है। अत हर एक परागकण से दो नर युग्मक बनते हैं (फलक पर चित्र ३२ देखें)।

भ्रूणकोश (Embryosac) का निर्माण — नवजात अडाशय में एक अथवा अनेक बीजाड पाए जाते हैं। हर एक बीजाड गोलाकार होता है। उसके बाहरी भाग में दो पर्त की दीवार रहती है, जिससे घिरा हुआ अदर की ओर बीजाडकाय होता है (फलक पर चित्र ३३ देखें)।

शुरू मे बीजाडकाय की सभी कोशिकाएँ एक प्रकार की होती है, परतु कुछ समय बाद प्राय एककोशिका बडी हो जाती है और यह चार कोशिकाओ मे विभाजित हो जाती है। इन्ही चारो मे से एक कोशिका बढने लगती है और बाकी तीन मर जाती हैं। यही बढती हुई कोशिका भ्रूणकोश बनाती है, जो एक थैले के आकार का हो जाता है। इसका केंद्रक तीन बार विभाजित होकर आठ केंद्रको को बनाता है, जिनमे से एक मादा युग्मक (female gamete) बनाता है (फलक पर चित्र ३४ देखें)।

मादा युग्मक चारो तरफ से बद अडाशय मे सुरक्षित रहता है, परतु परागकण परागकोशो से बाहर निकलकर कुछ समय के लिये फूल से एकदम अलग हो जाते हैं और वर्तिकाग्र पर पहुँचने के लिये ये वायु, कीटो अथवा मक्खियो पर आश्रित रहते हैं। परागकोशो के वर्तिकाग्र पर पहुँचने की क्रिया को परागण (Pollination) कहते हैं।

परागण — पुष्पो मे परागण कीटो, शहद की मक्खियो, चिडियो तथा जानवरो द्वारा होता है। परागकण इनके द्वारा एक फूल से दूसरे फूल के वर्तिकाग्र तक पहुँचते हैं। जब एक फूल का पराग उसी फूल के वर्तिकाग्र पर गिरता है, तो उसे स्वयपरागण (Self-pollination) कहते हैं। जब दूसरे फूल का पराग किसी और फूल के वर्तिकाग्र पर पडता है, तो उसे परपरागण (Cross-pollination) कहते है। एक ही जाति के परागकण उसी जाति के वर्तिकाग्र पर गिरने से परागनलिका तथा नरयुग्मक बनते हैं। हर एक किस्म के फूल का परागकण हर किस्म के वर्तिकाग्र पर परागनलिका नहीं बना पाता। ऐसा देखा गया है कि वर्तिकाग्र पर एक प्रकार का रस निकलता है, जो परागकणो को जागृत कर देता है और उनमे से परागनलिका तथा युग्मक बनने लगता है (देखें परागण)।

निषेचन (Fertilization) — जैसा ऊपर बताया गया है, हर एक परागकण से उसकी परागनलिका में दो नर युग्मक बनते है। परागनलिका वर्तिकाग्र से होती हुई अडाशय मे जाती है और उसमे स्थित बीजाड के बीजाडकाय मे से होती हुई भ्रूणकोश के
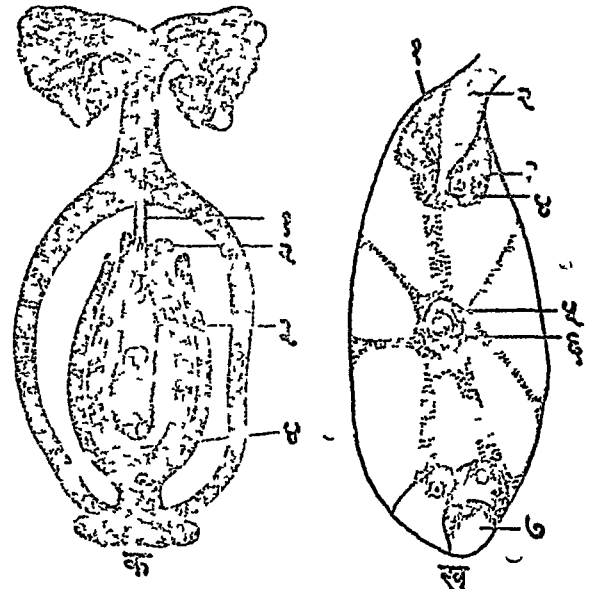
चित्र ३५. निषेचन

क अडद्वारी प्रवेश १ पराग नली, २ बीजाडद्वार, ३ भ्रूणकोश तथा ४ निभाग, ख निषेचन १ सहायक कोशिका २ परागनली, ३. तथा ५ युग्मक, ४ अड, ६ सयुक्त केंद्रक और ७ प्रतिमुख कोशिका।

अदर घुस जाती है। वहाँ पहुँचने पर नलिका का अग्रिम भाग फूट जाता है और दोनो नर युग्मक भ्रूणकोश मे निकल पडते हैं। इन दोनो मे से एक नर युग्मक मादा युग्मक से तथा दूसरा दो अन्य केंद्रको से घुल मिल जाता है। इस प्रकार नर तथा मादा युग्मक आपस मे एक दूसरे से मिलते हैं। इस क्रिया को ही निषेचन कहा जाता है।

अकुरोत्पत्ति तथा फल और बीज का बनना — पुष्प मे परागण के पश्चात् बाहरी पखुडियाँ तथा पुकेसर मुरझा जाते हैं। जायाग मे वर्तिकाग्र और वर्तिका भी परागनलिका के बाद सूखने लगती है, परतु पुष्पवृत, पुष्पासन और अडाशय बढने लगते हैं। अडाशय और पुष्पासन बढकर फल बन जाते हैं। अडाशय के अदर बीजाड निषेचन के उपरात बढ जाते है और बीज बनाते हैं।

बीजाड मे नर तथा मादा युग्मक के मिलने से युग्मनज बनता है जिससे भ्रूण का निर्माण होता है। दूसरा युग्मक जो बीजाड के दो और केंद्रको के साथ मिल जाता है उससे बीज के अदर भ्रूणपोष (endosperm) बनता है। भ्रूणपोष से भ्रूण अपना खाना प्राप्त करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुष्प एक ऐसा विकसित भाग है जहाँ नर तथा मादा युग्मक का निर्माण होता है और अनेक क्रियाओ के बाद फल और बीज बनता है।

पुष्प का बनना — पुष्प पौधो पर कब और किस अवस्था मे बनता है, इसका पूर्ण ज्ञान तो हमे अभी नही है, पर कुछ वैज्ञानिको

ने यह दिखलाया है कि पौधों की पूर्ण विकसित पत्तियों में एक प्रकार का हारमोन जिसे 'फ्लोरिजेन' कहते हैं, बनता है। यही पदार्थ तने के ऊपरी भाग की तरफ जाता है और कली को पुष्पकली में परिवर्तित करता है। यदि फ्लोरिजेन न बने, तो कलियों से शाखाएँ बन जाती हैं। यह भी कहा जाता है कि फ्लोरिजेन के बनने में पौधों की आयु तथा वातावरण का भारी प्रभाव पड़ता है। फ्लोरिजेन का बनना दिन की लंबाई पर निर्भर है। इसी से कुछ पौधे गरमी में तथा कुछ जाड़ों में फूलते हैं और उन्हें दीर्घ तथा क्षीण दिवसीय पौधे कहते हैं। कुछ पौधों के फूलों में दिवस की लंबाई का असर नहीं होता और वे साल भर फूलते रहते हैं, अतः उन्हें अनिर्धारित पौधे कहते हैं।

फ्लोरिजेन के अलावा दो, तीन, पाँच, त्रिइडोबेनजोइक अम्ल से पौधे को सींचने पर पुष्प बनने लगते हैं। कभी कभी तो फूल को नुमाइश में निर्धारित समय पर खिलाने के लिये इस अम्ल का प्रयोग भी करते हैं।

पुष्प का खिलना प्रकाश तथा ताप पर निर्भर करता है। कुछ पुष्प तो हमेशा एक ही समय पर और खास मौसम में खिलते हैं। घने विषुवतीय जंगलों में जहाँ बारहों महीने एक सा मौसम रहता है, कुछ पौधे ऐसे हैं जो हर साल एक विशेष महीने में खिलते हैं। वहाँ के निवासी उन फूलों को देखकर महीने का नाम बता देते हैं।

कुछ फूल केवल दिन को खिलते हैं, जैसे कमल आदि, और कुछ फूल रात को खिलते हैं, जैसे कुमुदिनी, तथा कुछ सुबह के समय खिलते हैं, जैसे घासपुष्पी और 'पार्टुलाका'। कुछ पौधों में उनके जीवनकाल में एक ही बार फूल लगता है, जैसे केला तथा बाँस में, और फूलने फलने के बाद वे मर जाते हैं। अतः फूल का खिलना वातावरण पर निर्भर करता है। किन्हीं किन्हीं फूलों का तो रंग भी क्षार परिवर्तन से सुबह से शाम तक बदलता रहता है।

पुष्पक्रम (Inflorescence) — यदि पुष्प तने की शीर्षस्थ कलिका के स्थान पर मिलता है, तो उसे शीर्षस्थ कहते हैं। पर जब पुष्प तने के कक्ष पर मिलता है, तो उसे कक्षीय कहते हैं। प्राय कई पुष्प एक ही पुष्पक्रमाक्ष पर पाए जाते हैं और उन्हें निम्नलिखित प्रकार वर्गीकृत किया जाता है

(१) पुष्प तने पर शीर्षस्थ कलिका के स्थान पर रहता है और तने का बढ़ाव कक्षीय कलिका से होता है। ऐसे पुष्पक्रम को ससीमाक्षी (Cymose) कहते हैं।

(२) पुष्प तने अथवा डंठल पर कक्षीय कलिका के स्थान पर रहता है और तने का बढ़ाव शीर्षस्थ कलिका द्वारा होता है। ऐसे पुष्पक्रम को असीमाक्षी (Racemose) कहते हैं।

(३) जब ऊपर बताए गए दोनों प्रकारों के मिले जुले पुष्पक्रम बनते हैं, तब उसे मिश्रित (Mixed) पुष्पक्रम कहते हैं। इन तीनों पुष्पक्रमों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है, जो चित्रों द्वारा भी दर्शाया गया है

१ ससीमाक्षी (क) पुष्प अकेला तथा शीर्षस्थ, (ख) पुष्प एक से अधिक तथा (ग) एक ही गुच्छ डंठल पर (फलक पर चित्र ३६ देखें)। और (अ) चक्राकार पुष्पवृंत लंबा, पुष्पवृंत संकुचित (फलक चित्र ३७ देखें)।

(ब) वृश्चिकी डंठल लंबा, डंठल संकुचित (फलक पर चित्र ३८ देखें)।

(स) द्विशाखि ससीमाक्ष डंठल लंबा, डंठल संकुचित, (फलक पर चित्र ३९ देखें)।

(द) सर्पिलाभ (फलक पर चित्र ४० देखें)।

२ असीमाक्षी (क) पुष्प अकेला तथा कक्षीय (फलक पर चित्र ४१ देखें।), (ख) अनेक पुष्प एक साथ असीमाक्ष समशिख (corymb) तथा पुष्पछत्र (umbel) [फलक पर चित्र ४२, ४३ तथा चित्र ४४ देखें]।

(ग) अनेक अवृंत पुष्प एक साथ लंबे अक्ष पुष्पक्रमाक्ष पर :

(अ) स्पाइक (spike, फलक पर चित्र ४५ देखें), कैटकिन (catkin, फलक पर चित्र ४६ देखें), स्पैडिक्स (spadix, फलक पर चित्र ४७ देखें)। (ब) मुंडकाकार (फलक पर चित्र ४८ देखें)।

(घ) बहुअसीमाक्षी (फलक पर चित्र ४९ देखें)

(अ) बहुस्पाइक (फलक पर चित्र ५० देखें), (ब) बहुस्पेडिक्स (फलक पर चित्र ५१ देखें) तथा (स) बहुछत्रक (फलक पर चित्र ५२ देखें)।

३ मिश्रित पैनिकिल (फलक पर चित्र ५३ देखें)।

फूल का उपयोग — वर्णसंकर पौधों को बनाने के लिये एक पुष्प के परागकण को लेकर दूसरे पुष्प के वर्तिकाग्र पर रखते हैं। इस प्रकार जो बीज बनता है, उससे हम अच्छे पौधे पाते हैं। इस प्रकार के द्वारा पौधों के कुछ उपयोगी गुणों को हम अपनी भलाई के लिए, एक से दूसरे पौधे में ला सकते हैं। इस प्रकार हम अच्छे बीज तथा फल और फूलवाले पौधों को बना सकते हैं।

पुष्प के प्राय सभी भाग खाद्य, ओषधि, रंग अथवा गंध बनाने के काम में लाए जाते हैं। बीज तथा फल से तेल निकाला जाता है, जो खाने तथा साबुन आदि बनाने के काम में आता है। महुआ के दलपुंज को सुखाकर लोग खाते हैं और उसे पानी में उठाकर शराब भी बनाते हैं। गोभी के फूल को खाते हैं। गुलाब की पंखुड़ियों का गुलकंद बनाया जाता है, जो कब्ज की दवा है। केसर और पलाश के फूलों से रंग निकलता है। इत्र इत्यादि अनेक फूलों से निकाले जाते हैं। यही नहीं, तो पुष्प की बड़े पैमाने पर खेती होती है और बेल्जियम तथा हॉलैंड में डैफोडिल के फूलों के व्यापार से काफी आमदनी है। हमारे देश में भी पुष्पों की भारी खपत देवपूजा और सजावट के कामों में होती है।

आदिकाल से ही पुष्प अपनी गंध तथा सुंदरता के कारण देवता तथा मनुष्य को प्रसन्न करने के हेतु उपयोग में लाया जाता है। अनेक राष्ट्रों ने पुष्प को राज्यचिह्न के रूप में मान्यता दी है।

आजकल पुष्प को चिरकाल तक रखने के लिये ऐसे मसालों तथा तरीकों का उपयोग करते हैं कि कोई भी पुष्प काफी समय तक अपने रंग रूप को बनाए रखता है। यदि ताजे पुष्प कागज के डब्बों में भरकर डीपफ्रीज में –१०° सें० पर रख दिए जाएँ, तो वे लगभग एक साल तक अपने रंगरूप को बनाए रखते हैं। ऐसे रखे हुए पुष्प ठंढ में जमे रहते हैं। जब भी उन्हें पानी में डाल दिया जाता है,
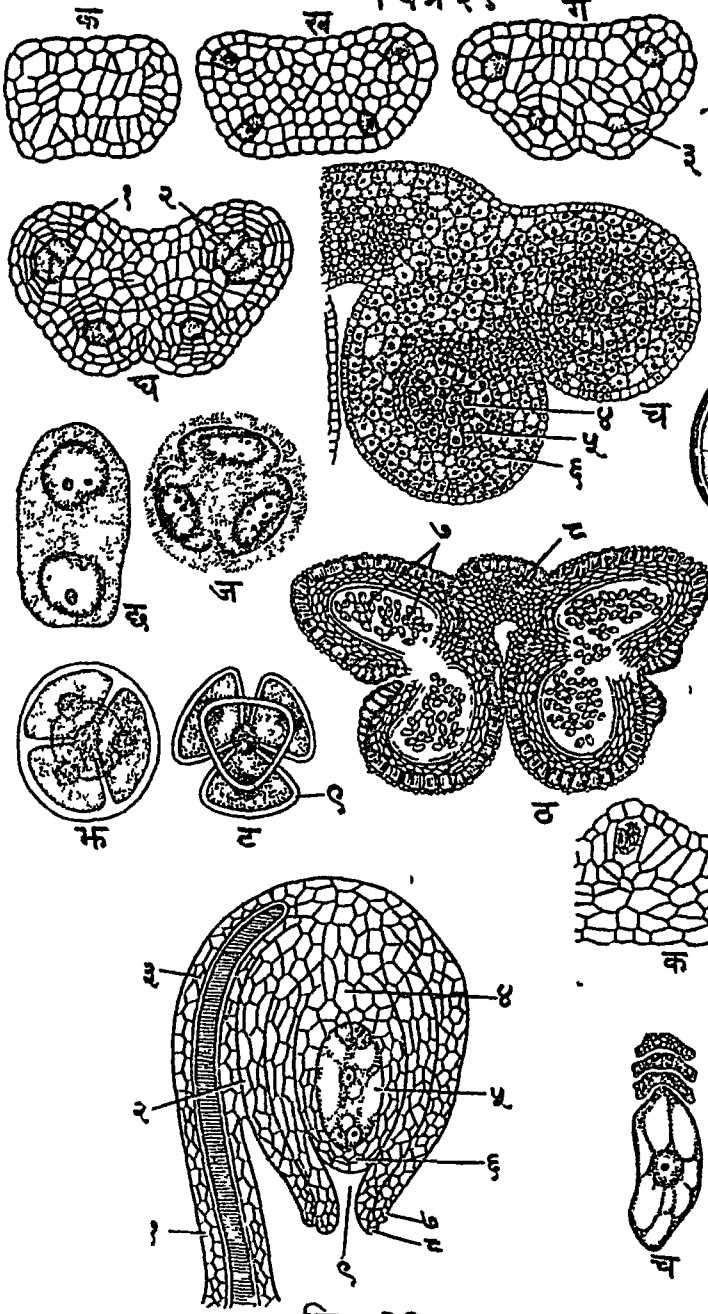
चित्र ३१. परागकोष का विकास तथा लघुबीजाणुजनन की अवस्थाएं : क. तरुण परागकोष्ठ की अनुप्रस्थ काट, ख. चार लघुबीजाणु-धानियो मे प्रप्रसु कोशिकाओ की चार पक्तियो का विभेदन (छायाकृत), ग प्राथमिक बीजाणुकोशिकाएँ (छायाकृत) तथा भित्तीय कोशिकाएँ (३), घ लघुबीजाणु, या परागजनक कोशिकाएँ, च. लघुबीजाणु-धानियाँ (पराग कक्ष), जिनमे पराग जनक कोशिकाएँ (४) तथा टेपीटम (५) दिखाए गए हैं, छ परागजनक कोशिकाओ मे अर्धसूची विभाजन की द्वयक अवस्था, ज चतुष्क अवस्था (चौथा केंद्रक पीछे की ओर है); झ. तथा ट. चतुष्फलकीय अवस्था तथा परागो का विकास [९ वाह्यचोल] और ठ. परिपक्व परागकोष की अनुप्रस्थ काट [७ पराग, ८ सयोजक] ।

चित्र ३२ नर युग्मकोद्भिद का विकास तथा शुक्रजनन क. द्विकेंद्रक अवस्था; ख परागनलिका के रूप मे जननछिद्र मे निकलता हुआ अत.चोल, ग. वाद की अवस्था मे परागनलिका का सिरा, घ शुक्रजनन, अथवा जननकोशिका का विभाजन होकर दो नर युग्मको का बनना, च अधिक विकसित परागनलिका, जिसमे दो नर युग्मक तथा नलिकाकेंद्रक दिखाए गए हैं। १, ४ तथा ७ जनन कोशिकाएँ, २, ५, ६ तथा ९ नलिका अथवा कायिक कोशिकाएँ तथा ८. नरयुग्मक हैं।

चित्र ३३ साधारण बीजाड की अनुदैर्घ्य काट १ बीजाड वृत, २ नाभिका, ३ रेफी (raphe), ४ निभाग (Chalaza), ५ भ्रूणकोष, ६ केंद्रक, ७ वाह्य अध्यावरण, ८ अत अध्यावरण तथा ९ बीजाड द्वार।

चित्र ३४. मादा युग्मक की विभिन्न अवस्थाएं।
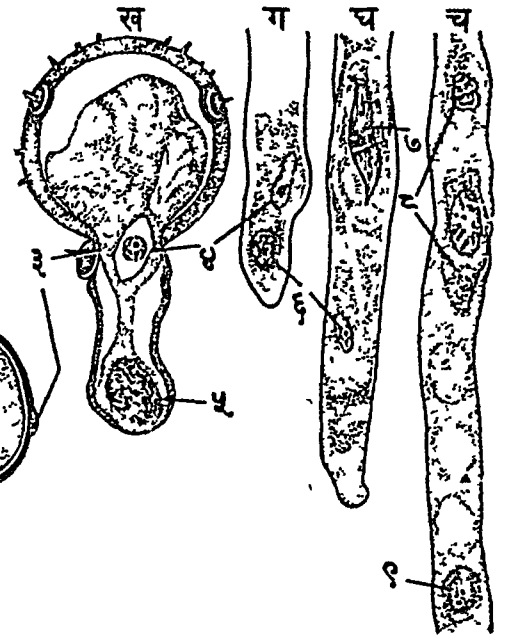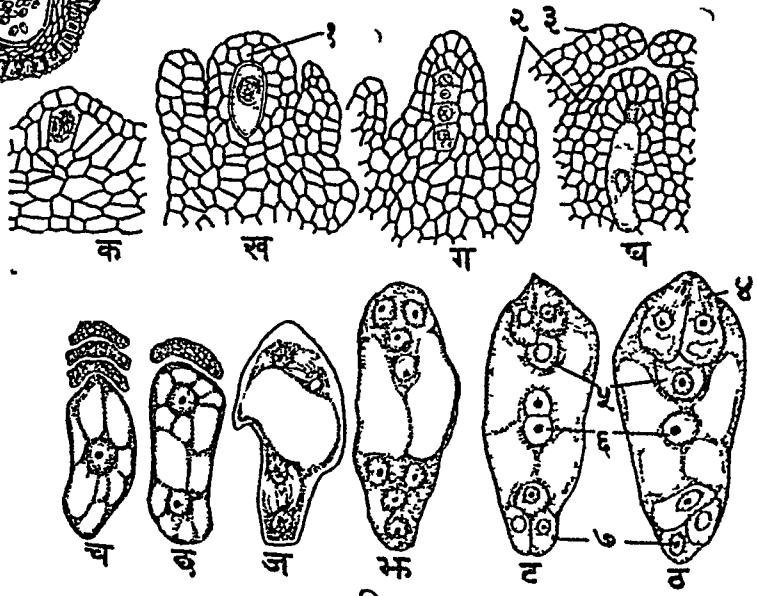
वे थोडे समय के लिये ताजे हो जाते हैं। पुष्पो को प्लास्टिक ब्लाक मे भी सील कर देने से बहुत समय तक ठीक हालत मे रखा जा सकता है। पुष्प को कागज से दबाकर सग्रहालयो मे रखते हैं। इस प्रकार भी उनका रग काफी समय तक बना रहता है। नीचे लिखे हुए तरीके से भी हम पुष्प तथा रगीन फलो को रख सकते हैं। फॉर्मेलिन (Formalin) के ४ % विलयन मे १० % साफ शक्कर मिलाकर उसमे फूल या फल रखें, अथवा नीचे लिखे विलयन को बना लें

आसुत पानी ४,००० घन सेंमी०
जिंक क्लोराइड २०० ग्राम
फॉर्मेलिन ४० % १०० घन सेंमी०
ग्लिसरीन १०० घन सेंमी०

जिंक क्लोराइड को गरम आसुत पानी मे घुलाना चाहिए और छानकर ठढा हो जाने पर ही उसमे फॉर्मेलिन तथा ग्लिसरीन डालना चाहिए। वनस्पति सग्रहालय (herbarium) मे रगीन फूलो को इन मोम के कागज मे दबाकर रखना चाहिए। इससे उसका रग अधिक समय तक बना रहता है। पहले तो लोग फूलो के रगीन चित्र भी बनाकर रखते थे, जिससे उनके रग रूप का भी आभास होता था। ये चित्र जल अथवा तैल रँगो से रँगे जाते थे और केवल कुछ ही लोग उन्हे बना पाते थे। अब तो रगीन फिल्म का उपयोग कर फोटोग्राफी द्वारा हम किसी भी पुष्प का चित्र खीचकर रख सकते हैं। ये चित्र फूल के रूप रग को भली प्रकार दर्शाते है। पुष्प पशुओ तथा मनुष्यो को आकर्षित करते हैं। [कै० च० मि०]

फूल और कसकुट मिश्र धातुएँ हैं, जो दो से अधिक धातुओ के मेल से बनती हैं। भारत, चीन, मिस्र और यूनान आदि देशो को इनका ज्ञान बहुत प्राचीन काल से है और प्राचीन खडहरो की खुदाई में इनके पात्र, हथियार और मूर्तियाँ पाई गई हैं। धातुओ की विभिन्न मात्राओ के कारण इनके रग और अन्य गुणो में विभिन्नता पाई जाती है। पाश्चात्य देशो में फूल से मिलती जुलती मिश्रधातु को प्यूटर (Peuter) कहते हैं। फूल वग और सीस की मिश्रधातु है, पर इसमें कभी कभी ताँबा या पीतल भी मिला रहता है। नीली आभा लिये यह सफेद होता है। प्राचीन काल में गिरजाघरो के घटे इसी के बनते थे। बाद में अन्य सामान भी बनने लगे। १७ वी और १८वी शताब्दी में तो इसका उपयोग बहुत व्यापक हो गया था और उस समय या उसके पूर्व के बने अनेक सादे या सु दर चित्रित प्याले, कलश, गिलास, सुराही, शमादान, मदिराचषक, थाल इत्यादि पाए गए हैं। एक समय फूल के पात्रो का उपयोग प्रतिष्ठासूचक समझा जाता था और इनका निर्माण अनेक देशो और नगरो में होता था।

भारत में फूल का अस्तित्व पीतल से पुराना है। यहाँ इसका उत्पादन व्यापक रूप से होता था, पर आज अकलुप इस्पात के बनने के कारण इसका उत्पादन बहुत कम हो गया है और दिन प्रति दिन कम हो रहा है। गाँवो में भी फूल के बरतनो का विशेष प्रचलन है और भारत के अनेक राज्यों, जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और बगाल मे इसका उत्पादन होता है।

फूल में ८० प्रति शत सीसा या ताँबा और २० प्रति शत वग रहता है। इनकी मात्रा में विभिन्नता के कारण फूल के रग में विभिन्नता होती है। इन धातुओ को मिलाकर, ग्रैफाइट की मूषा में गलाकर मिश्रधातु बनाते हैं, जिसे पिंडक (ingot) के रूप में ढाला जाता है। पिंडक को बेलन मिल मे रखकर वृत्ताकार बनाते हैं, जिसकी परिधि ८ इच से ४८ इच तक की होती है। सल्फ्यूरिक अम्ल के विलयन के साथ उपचारित कर उसकी सफाई करते हैं। पिंडो को काट काटकर कारीगर सामानो का निर्माण करता है। इसके लिये हाथ का प्रेस या स्वचालित प्रेस प्रयुक्त होता है। हाथ के औजारो से इसपर कार्य होता है। चादरो को पीट पाटकर आवश्यक रूप देते हैं। इस प्रकार बने अपरिष्कृत पात्र को हाथ से, या चरख (हाथ से खीची जानेवाली खराद) से, खुरचकर सु दर बनाते हैं। खुरचने का औजार उच्चगति इस्पात का बना होता है। साँचा ढलाई से भी फूल के बरतन बनते हैं। इसके लिये साँचा, फर्मा और पैटर्न प्रयुक्त होते हैं। ऐसे बने बरतन भारी होते हैं और छिलाई, ढलाई में कच्चे माल की अधिक हानि होती है। जहाँ बेलन मिल नही है वहाँ ढलाई के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नही है।

कसकुट, ताँबें और जस्ते की मिश्रधातु है (देखें काँसा)। कसकुट के सामान भी वैसे ही बनते हैं, जैसे फूल और पीतल के।

[शि० श० कुं०]

फूशुन स्थिति ४१° ५५' उ० अ० तथा १२३° ५५' पू० दे०। यह उत्तर-पूर्वी चीन के लिओओनिंग प्रदेश में मूकेडेन के पूर्व २० मील की दूरी पर स्थित पूर्वी मचूरिया का एक प्रमुख नगर है, जिसके विकास मे रूसियो एव जापानियो का काफी योगदान रहा है। यह चीन का द्वितीय सबसे बडा कोयला उत्पादक केंद्र है। इस कोयले से से मूकेडेन तथा आनशान के धातु एव अन्य उद्योगो की माँग की पूर्ति होती है। फूशुन स्वय प्रसिद्ध औद्योगिक केंद्र है, तथा सैनिक दृष्टि से चीन के पाँच नगरो में से एक है। इसके निकट ही खनिज तेल भी पाया जाता है। सन् १९५४ से चीनी सरकार ने इसके खनिज तेल के उत्पादन की वृद्धि के लिये अनेक सक्रिय कदम उठाए हैं। यहाँ की जनसख्या ९,८५,००० (१९५७) है। इसी नाम का एक नगर चीन के सचवान (Szechwan) प्रात में भी है।

[ले० रा० सिं०]

फूसान स्थिति ३५° १०' उ० अ० तथा १२९° ०' पू० दे०। यह दक्षिण-पूर्वी कोरिया का प्रसिद्ध नगर एव बदरगाह है। सन् १८७६ की सधि के द्वारा यह वस्तुत जापानी नगर बन गया था तथा इसका समस्त व्यापार जापानियो के हाथों मे चला गया था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इसे कोरिया की अस्थायी राजधानी भी बनाया गया था। गत वर्षो मे फूसान ने औद्योगिक एव व्यापारिक क्षेत्रों मे बहुत प्रगति की है। इसके प्रमुख निर्यात चावल, सोयाबीन, कपास, खाले आदि है तथा प्रमुख आयात मशीनरी, औद्योगिक सामान, पेट्रोल तथा नमक आदि है। यहाँ की जनसख्या ११,६३,६७१ (१९६०) है।

[ले० रा० सिं०]

फेडरैल डिस्ट्रिक्ट (Federal District) ऐसे जिले हैं, जो किसी देश की राष्ट्रीय सरकार द्वारा अन्य जिलों से पृथक् नियत कर दिए जाते हैं। ससार के सघीय राष्ट्रीय सरकारोंवाले देशो मे, केंद्रीय सरकार के तत्वावधान मे ऐसे जिले स्थापित किए जाते है एव इनमे सघीय राजधानी पृथक् स्थापित की जाती है। भारत में दिल्ली क्षेत्र

[illegible] फेडरल डिस्ट्रिक्ट ही है। विभिन्न फेडरल डिस्ट्रिक्टों का क्षेत्रफल तथा जनसंख्या इस प्रकार है

क्षेत्र का नाम	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या
ऑस्ट्रेलियन कैपिटल क्षेत्र (ऑस्ट्रेलिया)	९११	७३,४५९ (सन् १९६३)
डिस्ट्रिक्ट ऑव कोलंबिया (संयुक्त राज्य, अमरीका)	६१	७,६३,९५६ (सन् १९६३)
[illegible] फेडरल राजधानी ([illegible])		३,४०,१७२ (सन् १९६२)
फेडरल कैपिटल (ब्वेनस आयरिज) (अर्जेंटीना)	७५	३८,७५,७०० (सन् १९६०)
फेडरल डिस्ट्रिक्ट (ब्राज़ीलिया) (ब्राज़िल)	२,२६६	१,४१,७४२ (सन् १९६०)
स्पेशल डिस्ट्रिक्ट (बोगोटा) (कोलंबिया)	९,०३८	२१,२१,६८० (सन् १९६०)
फेडरल डिस्ट्रिक्ट (काराकास) (वेनेज़ुएला)	७४५	१२,५७,५१५ (सन् १९६०)
डिस्ट्रिक्टो फेडरल (मेक्सिको)	५७९	४८,७०,८७६ (सन् १९६०)
बर्न (स्विट्ज़रलैंड)	२,६५८	९,५२,३०४ (सन् १९६०)

[ते० न० सि०]

फेनिल पेय (Aerated water), अथवा कार्बोनेटेड जल, वस्तुत [illegible] पेय होते हैं, जिन्हें विभिन्न दाब पर कार्बोनिक गैस या कार्बन डाइऑक्साइड से कृत्रिम रूप में संतृप्त किया जाता है। [illegible] इन पदार्थों को जल, शर्करा तथा स्वादसार एवं सुगंध-[illegible] के विभिन्न परिमाण को मिश्रित करके बनाया जाता है। [illegible] सामान्य पेय पदार्थों दोनों [illegible]। फेनिल पेय को दो वर्गों में विभाजित किया [illegible] पदार्थ को सामान्य [illegible] पेय कहते हैं। [illegible] तथा अल्प मात्रा में [illegible] का सम्मिश्रण होता है। सामान्य [illegible] के नाम से [illegible] जाता है। इस वर्ग के [illegible] मीठा जल, या [illegible] पानी, [illegible] [illegible] के कारण इनमें [illegible] [illegible] पेय का निर्माण [illegible] से उत्पन्न करने के प्रयासों के [illegible] है। दूसरे वर्ग के फेनिल पेय को साधारण

भाषा में मिनरल जल, या मीठा पानी, अथवा मृदुपेय, कहा जाता है। इनमें कार्बोनेटेड जल के अतिरिक्त सुगंधकार एवं स्वादसार कारकों का विशेष रूप में प्रयोग होता है तथा अल्प मात्रा में शर्करा अथवा सैकरीन घुला होता है। इनके अतिरिक्त इस वर्ग के फेनिल पेय में प्राकृतिक स्वाद उत्पन्न करने के लिये फल, पुष्प, कंद, मूल एवं पत्तियों के रसों या सारों का प्रयोग होता है। आधुनिक काल में कृत्रिम स्वादसार कारकों का उपयोग अधिकाधिक होने लगा है।

फेनिल पेय को बोतलों में बंद करने के समय १०० से १२० पाउंड दाब का उपयोग किया जाता है, जिससे बोतल के अंदर ४५ से ५५ पाउंड तक दाब उत्पन्न होती है। इस प्रकार के फेनिल पेय की बोतलों के खोलने पर गैस की दाब के कारण बुदबुदन प्रारंभ हो जाता है और पेय से कार्बन डाइऑक्साइड गैस की अधिकांश मात्रा (जल में कुछ घुली हुई गैस को छोड़कर) निकल जाती है। इस क्रिया में अधिक समय नहीं लगता। अत ऐसे पेय पदार्थों की माँग बढ़ गई है जिनमें बुदबुदन की यह क्रिया अधिक समय तक होती रहे और फेनिल पेय के ऊपरी तल पर फेनयुक्त दशा अधिक समय तक बनी रहे। इस दशा को उत्पन्न करने में सैपोनिन नामक वानस्पतिक उत्पाद का प्रयोग किया जाता है। यह पदार्थ वनस्पति एवं पेड़ पौधों की छाल के निष्कर्ष से प्राप्त होता है तथा इसकी अल्प मात्रा फेनिल पेय में मिश्रित करने से पेय के ऊपरी तल पर फेनिल दशा अधिक समय तक बनी रहती है। सैपोनिन के ग्लूकोसाइड पदार्थों के कारण इसके उपयोग से हानिकर प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। अत इनका उपयोग सीमित मात्रा में ही होता है।

फेनिल पेय के कार्बोनेटीकरण की सामान्य रीति में भरे हुए जल में बल पंप की सहायता से कार्बन डाइऑक्साइड को संपीडित किया जाता है। इस रीति का प्रयोग सर्वप्रथम १७९० ई० में पॉल नामक वैज्ञानिक ने फेनिल पेय के व्यापारिक निर्माण के लिये जेनेवा में किया था। अत फेनिल पेय के निर्माण की इस रीति को जेनेवा-प्रक्रम भी कहा जाता है। निर्माण की यह रीति घान प्रक्रम पर आधारित होने के कारण अधिक सफल नहीं हो सकी और शीघ्र ही वैज्ञानिकों ने सततप्रक्रम को विकसित कर लिया। व्यापारिक आधार पर सतत प्रक्रम द्वारा फेनिल पेय के निर्माण की रीति की खोज निकालने का श्रेय हैमिल्टन नामक वैज्ञानिक को है। ब्राह्मा नामक वैज्ञानिक ने सततप्रक्रम में विशेष सुधार किया था। कम लागत तथा छोटे आधार पर फेनिल पेय के व्यापारिक निर्माण में अभी भी घान प्रक्रम का प्रयोग होता है, परन्तु बड़े पैमाने पर सतत प्रक्रम का ही प्रयोग होता है। सतत प्रक्रम की स्थापना से निर्माण खर्च में बहुत कमी हो जाती है। फेनिल पेय के निर्माण में कार्बन-डाइऑक्साइड की आवश्यकता होती है। यह गैस विशेष स्टील, अथवा अन्य धातुओं, के सिलिंडर में उपलब्ध होती है। कुछ उत्पादन यंत्रों में कार्बन डाइऑक्साइड के सिलिंडर के स्थान पर कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस जेनरेटर का उपयोग किया जाता है। इनमें कार्बोनेट अथवा बाइकार्बोनेट पर सल्फ्यूरिक अथवा अन्य अम्लों की क्रिया से कार्बन डाइऑक्साइड बनता है। घान प्रक्रम द्वारा फेनिल पेय के निर्माण में टिन धातु के अस्तर युक्त ताँबे के पात्र, अथवा सिलिंडर का उपयोग किया जाता है। एक साथ भ्राम दो पात्र अथवा दो सिलिंडरों का उपयोग श्रेयस्कर होता है, क्योंकि जब एक पात्र खाली

फूल (देखें पृष्ठ १२६)

पुष्पक्रम की व्यवस्थाएं

ससीमाक्षी चित्र ३६ वृश्चिकी, चित्र ३७ मपिनज, चित्र ३८ नागरण, चित्र ३९ युग्मशाल्यन तथा चित्र ४० बहुशाल्यन ।

ससीमाक्षी चित्र ४१ एकल पुष्प, चित्र ४२ साधारण चित्र ४३ समशिख, चित्र ४४ पुष्पगुच्छ चित्र ४५ स्पाइक चित्र ४६ कैट्किन तथा चित्र ४७ स्पैडिक्स ।

हो जाता है तब उतने समय मे दूसरा पात्र भरकर सपीडन क्रिया के लिये उपलब्ध हो जाता है। इस प्रक्रम मे प्रयुक्त होनेवाले पात्र मे द्रव तथा गैस को क्षुब्ध अवस्था मे बनाए रखने के लिये विशेष प्रकार के क्षुब्धक लगे रहते हैं। इस रीति से द्रव मे कार्बन डाइऑक्साइड का वितरण समान रूप से होता है। सतत प्रक्रम मे द्रव कार्बन डाइआक्साइड का प्रयोग होता हैं। अधिक दबाव मे कार्बन डाइऑक्साइड सिलिंडर मे द्रव के रूप मे उपलब्ध होता है। आजकल वडे पैमाने पर फेनिल पेय के उत्पादन में स्वचालित मशीनो का उपयोग होता है। इस प्रकार की बोतल भरण मशीन से हजारो की सख्या में बोतलो में बद फेनिल पेय प्रति घटा प्राप्त होता रहता है। फेनिल पेय के निर्माण एव उपभोग में आजकल आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। ग्रीष्म ऋतु में जल के स्थान पर फेनिल पेय के उपयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है तथा सामाजिक समारोहो में इसका अधिकाधिक उपयोग होने लगा है। सभवत इसका कारण यह हो सकता है कि फेनिल पेय के निर्माताओ ने विज्ञापनो द्वारा इसकी विक्री वढाई है। अत मृदुपेय का व्यवसाय उत्तरोत्तर वढ रहा है। अमरीका में मृदुपेय का उपयोग वहुत अधिक है। भारत में भी इसके उपयोग में बराबर वृद्धि हो रही है।

फेनिल पेय उद्योगो के विकास का इतिहास मनोरजक है। प्राचीन काल से ही अनेक वैज्ञानिको का प्रयास रहा है कि प्राकृतिक स्रोतो से प्राप्त स्वास्थ्यवर्धक बुदबुद जल का निर्माण कृत्रिम रूप में किया जाय। इन सोतो के जल में बुदबुदन को अधिक महत्व दिया जाता था। फॉन् हेलमॉएट (सन् १५७७–१६४४) ने पहले पहल पता लगाया कि ऐसे जल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस रहती है। ऐसे जल को वायुयुक्त (फेनिल) जल का नाम ग्रेवियेल केनेल ने दिया। जोसेफ ब्लैक नामक रासायनिक चिकित्सक ने सर्वप्रथम प्राकृतिक सोते के गैस अश के लिये "स्थिरवायु" शब्द का प्रयोग किया। इसपर अनुसधान के फलस्वरूप प्राकृतिक सोतो के विशेष गुणयुक्त जल का कृत्रिम निर्माण शुरू हो गया। फेनिल पेय के उद्योग का प्रारभ यही से होता है। १७७२ ई० में अग्रेज वैज्ञानिक प्रीस्टले ने "स्थिर वायु द्वारा जल प्राप्त करने की क्रिया" नामक लेख प्रकाशित किया, जिसके आधार पर लदन की रॉयल सोसाइटी ने उन्हे कौपली मेडल द्वारा समानित किया था। स्वीडन के वैज्ञानिक शोले तथा फ्रास के वैज्ञानिक लवाज्ये के सतत प्रयत्नो द्वारा यह ज्ञात हो गया कि प्रीस्टले की "स्थिर वायु" कार्बन एव ऑक्सीजन सयोजित गैस है। ऐसा मालूम होते ही जौन मेरविन नूथ नामक अग्रेज वैज्ञानिक ने १७७५ ई० में फेनिल पेय के अल्प मात्रा में निर्माण के लिये एक विशेष उपकरण तैयार करने में सफलता प्राप्त की। इस उपकरण में जीन हयासीथ ड मैगेलन के प्रयासो के कारण १७७७ ई० में विशेष सुधार सभव हो सका। १७८१–८३ ई० के बीच हेनरी नामक अग्रेज वैज्ञानिक ने व्यावसायिक आधार पर फेनिल पेय के उत्पादन की मशीन की योजना की रूपरेखा तैयार की। फिर यूरोप तथा इग्लैंड के अनेक नगरो में १७८९ ई० से १८२१ ई० के बीच व्यापारिक स्तर पर उत्पादन प्रारभ हो गया। अमरीका में सर्वप्रथम १८०७ ई० में फेनिल पेय का वोतल भरण कारखाना कनेक्टिकट के न्यू हेवेन नगर में प्रारभ हुआ। इस प्रकार का एक अन्य कारखाना हॉकिंस द्वारा फिलाडेल्फिया में १८०९ ई० में प्रारभ किया गया। इसके उपरात ससार के अनेक देशो में फेनिल पेय के वडे वडे कारखाने स्थापित हो गए और इसका उपयोग उत्तरोत्तर वढ रहा है। (अ० सि०)

फेयरी क्वीन 'फेयरी क्वीन' १६वी शताब्दी के प्रसिद्ध अग्रेजी कवि एडमड स्पेंसर की सर्वोत्तम रचना है। इस ग्रथ के प्रणयन मे उनका उद्देश्य रूपक के माध्यम से अरस्तू द्वारा वर्णित १२ नैतिक गुणो की महत्ता पर प्रकाश डालना था। पूरी पुस्तक १२ सर्गों मे होती, लेकिन वे केवल छह सर्ग ही पूरा कर पाए। जिन नैतिक गुणो की इन छह सर्गों मे चर्चा है वे क्रमश इस प्रकार हैं— धार्मिकता, सयम, सतीत्व या पवित्रता, मित्रता, न्याय और विनम्रता ७वें सर्ग के भी, जिसमे दृढता की महत्ता पर प्रकाश पडता, कुछ अश मिलते हैं।

स्पेंसर की कल्पना मे पुस्तक की योजना इस प्रकार थी— परीलोक की रानी ग्लोरियाना प्रति वर्ष अपने दरवार मे एक उत्सव करती है जिसमे रानी की सहायता के आकांक्षी उत्पीडित जीव तथा ऐसे लोगो की सहायता करने के इच्छुक एक साथ एकत्र होते हैं। यह उत्सव साधारणतया १२ दिन चलता है। प्रत्येक को किसी दुखी प्राणी की सहायता के लिये कहा जाता है और इस कार्य मे उसे वहुत सी कठिनाइयाँ झेलनी पडती हैं और साहसिक कार्य करने पडते हैं। 'फेयरी क्वीन' के छ सर्गों मे दी हुई रूपक कहानियाँ ग्लोरियाना के दरवार के एक ऐसे ही उत्सव से सवधित हैं।

स्पेंसर ने 'फेयरी क्वीन' की रचना आयरलैंड मे प्रारभ की और इसके प्रथम तीन सर्ग सन् १५९० मे इग्लैंड मे प्रकाशित हुए। उनका मतव्य रूपको के सहारे व्यापक ससार तथा प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे चल रहे सत् प्रवृत्तियो और कुप्रवृत्तियो के वीच के सघर्ष को प्रदर्शित करना था। जैसा कि उन्होने सर वाल्टर रैले के नाम अपने पत्र मे घोषित किया, इस पुस्तक का उद्देश्य पाठको को नैतिकता एव सदाचरण में शिक्षित करना था।

लेकिन 'फेयरी क्वीन' में रूपक का सहारा तत्कालीन राजनीति तथा शासन से सवधित व्यक्तियो की चर्चा के लिये भी लिया गया है। परीदेश की रानी ग्लोरियाना के नाम पर कवि महारानी एलिजावेथ की प्रशस्ति गाता है। इसी प्रकार फेयरी क्वीन के अन्य पात्र भी तत्कालीन राजनीतिक जीवन मे प्रमुख व्यक्तियो के प्रतीक हैं। [तु० ना० सि०]

फेरारा (Ferrara) १ प्रात, यह उत्तरी इटली का एक प्रात है। इसका क्षेत्रफल १,०१९ वर्ग मील है तथा इसमें २० कम्यून (विभाग) हैं। इसकी उत्तरी सीमा पर पो नदी तथा पूर्वी सीमा पर ऐड्रिऐटिक सागर है। यह निम्न, समतल एव दलदली भाग है तथा सागर तल से १५ फुट से अधिक ऊँचा नही है। यहाँ खाद्यान्न, चुकदर, अगूर तथा पटुवा की कृषि होती है।

२ नगर, स्थिति ४४° ५०' उ० अ० तथा ११° ३६' पू० दे०। यह इटली के उपर्युक्त प्रांत की राजधानी है जो बोलोन्या – वेनिस मार्ग पर स्थित है। यह ऐतिहासिक नगर है, जहाँ १६वीं शताब्दी के अनेक भवन हैं। यहाँ एक विश्वविद्यालय स्थित है जहाँ कानून, कला एवं विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। यहाँ की जनसंख्या १,५५,१८७ (१९६२) है। [ले० रा० सिं०]

फेरियर, सर डेविड (Ferrier, Sir David, सन् १८४३–१९२८) अंग्रेज तंत्रिकाविद् (Neurologist) थे। इनका जन्म १८४३ ई० में ऐबरडीन के समीप हुआ था। एडिनबरो (Edinburg) विश्वविद्यालय से १८७० ई० में इन्होंने एम० डी० की उपाधि प्राप्त की। १८७३ ई० में मस्तिष्क पर विद्युत् प्रभाव संबंधी प्रयोग कर इन्होंने सिद्ध किया कि कॉर्टेक्स के किसी विशिष्ट भाग को उत्तेजित करने से शरीर की कोई विशेष पेशी या पेशियों का समूह प्रभावित होता है और कॉर्टेक्स के उस भाग को शल्यक्रिया द्वारा निकाल देने पर उस भाग से संबंधित शरीर के अंगों में पक्षाघात हो जाता है। 'मस्तिष्क के कार्य' और 'प्रमस्तिष्कीय रोगों का स्थानीकरण' नामक पुस्तक में फेरियर ने उपर्युक्त प्रयोग का वर्णन किया है। १८८१ ई० में इंटरनैशनल मेडिकल कांग्रेस ने उपर्युक्त अनुसंधान को मान्यता प्रदान की। बाद में इस अनुसंधान के आधार पर अर्बुद की शल्यक्रिया सफलतापूर्वक की गई। ये १८९० ई० में रॉयल सोसाइटी के रॉयल पदक तथा १९११ ई० में सर की पदवी से सम्मानित हुए। [श्री० ना० दा०]

फेरेसीदिज़, सिरोस का (Pherecydes of Syros) ईसा पूर्व छठी अथवा सातवीं शताब्दी का एक यूनानी साइरौस द्वीपनिवासी दार्शनिक एवं धर्मशास्त्री, जिसे 'सप्तऋषियों' में भी गिना गया है और यूनान के दिव्य एवं स्वर्गलोकीय विषयों पर चिंतन करनेवाले प्रथम दार्शनिकों में तो माना ही जाता है। कहा जाता है, वह पिट्टेकस (Pittacus) का शिष्य तथा पाइथागोरस (Pythagoras) का गुरु था। फेरेसीदिज़ के जीवन के विषय में निश्चित रूप से बहुत कम बातें ज्ञात हैं। कहा जाता है, उसने फोनीसियों (Phonicions) के गुप्त ग्रंथों का अध्ययन किया था, सामोस (Samos), एफेसस (Ephesis), मेसेन (Messene), ओलिंपिया (Olympia), स्पार्टा (Sparta), तथा देल्फी (Delphi) में भ्रमण किया, और थेलिज़ के साथ पत्रव्यवहार भी किया था। वह एथेंस (Athens) में पाइसिस्ट्रेटस (Peisistratus) के दल में था और एक ओरफियासानुयायी रहस्यवादी समाज का संस्थापक भी था। उसे प्रथम यूनानी गद्यलेखक भी माना जाता है। उसने आयोनी लोकभाषा में देवताओं द्वारा विश्व की उत्पत्ति के विषय पर एक सप्तकक्षीय विश्व (Seven chambered cosmos) नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में आत्मा के अमरत्व एवं पुनर्जन्म के सिद्धांत का प्रथम पाश्चात्य प्रतिपादन है, और आकाश, अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वी को पंच मूलतत्व माननेवाले विज्ञान, रूपक तथा देवताओं की पौराणिक कथा के मिश्रण के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या है। फेरेसीदिज़ को देवताओं के नाम, जन्म, भाषा और जीवन को जानने का दावा था। उसके अनुसार आरंभ में केवल प्रथम कारण अस्तव्यस्तता (Choos) का अस्तित्व था। अमर देवी थोनी से विवाह के अवसर पर अमर देवता ज़ूस ने उसे एक बड़ा तथा सुंदर वस्त्र भेंट किया। इसपर उसने पृथ्वी, समुद्र और ओगेनोस (Ogenos) का महल काढ़ा हुआ था। जब ज़ूस सृजन करने लगा तब वह काम देवता में रूपांतरित हो गया और उसने विपरीतों को मिलाकर विश्व के सभी पदार्थों में प्रेम, समानता और एकता की उत्पत्ति की। इस कथा में ज़ूस को सृजनात्मक तत्व अग्नि, आकाश अथवा सूर्य समझा जाता है। ज़ूस के वीर्य अर्थात् कामदेव में से, जिसमें सब सृजित भूतों का वास है, नागदेव ओफियोनियस (Ophioneus) के नेतृत्व में टाइटन जाति का अर्थात् परस्पर विरोधी तत्व-अग्नि, प्राण, तथा जल का उदय बताया गया है। कालांतर में फेरेसीदिज़ की ख्याति पाइथागोरस की ख्याति से कुछ दब गई। फिर भी, उसके विरोधी तत्वों के रूपकात्मक वर्णन ने प्रसिद्ध दार्शनिक हेराक्लाइटस को विशेष रूप से प्रभावित किया। कदाचित् उसकी सप्तकक्षीय विश्व की धारणा से ही प्लातोन् को प्रसिद्ध गुफाओंवाला रूपक सूझा होगा। अरस्तू ने भी फेरेसिदिज़ को यह कह कर मान्यता दी कि वह केवल धर्मशास्त्री मात्र नहीं था और उसके द्वारा वर्णित ज़ूस सर्वोच्च शुभ का ही प्रतीक था। [रा० मू० लू०]

फेर्मा का अंतिम प्रमेय (Fermat's Last Theorem) — १६३७ ई० में पियरे फेर्मा ने बताया कि शून्य के अतिरिक्त य, र तथा ल ऐसी पूर्ण संख्याएँ नहीं होतीं जो समीकरण

$$य^न + र^न = ल^न \quad [x^n + y^n = z^n] \qquad (१)$$

को संतुष्ट करें, जब न (n) दो से बड़ी कोई पूर्णसंख्या है; किंतु फेर्मा ने इसकी उपपत्ति नहीं दी। बाद में न = ४ ($n = 4$) के लिये फेर्मा ने समीकरण (१) की उपपत्ति दी। १७७० ई० में लेनर्ड आइलर ने न = ३ ($n = 3$) के लिये समीकरण (१) की अपूर्ण उपपत्ति दी। इसके छूटे हुए चरणों को बाद के गणितज्ञों ने पूर्ण किया। १८२३ ई० में एड्रीन एम० लज़ाँद्र (Adrien M Legelndre) ने सिद्ध कर दिया कि समीकरण

$$य^क + र^क + ल^क = ० \quad [x^l + y^l + z^l = 0] \ldots \ldots (२)$$

में जब क (l) का मान विषम अभाज्य संख्या पाँच है शून्य के अतिरिक्त य (x), र (y) तथा ल (z) के पूर्णांक मान असंभव हैं। सच में यह प्रमाणित करना सरल नहीं कि समीकरण (१) की उपपत्ति के लिये समीकरण (२) को तीन से बड़ी किसी भी संख्या के लिए सिद्ध कर देना पर्याप्त है, और ऑगस्टिन एल० कोशी (Augustine L Cauchy) जैसे गणितज्ञों के प्रयास इस दिशा में असफल रहे। सत्य यह है कि ऐसे प्रयासों ने एनस्ट ई कुमर को आदर्श (ideal) संख्याओं की संकल्पना सुझा दी, जो गणितीय धारणाओं में अत्यंत शक्तिशाली और लाभदायक सिद्ध हुई। कुमर इसके आधार पर अत्यंत विस्तीर्ण संख्यात्मक परिकलन द्वारा १०० से कम सभी अभाज्य क (l) के लिये समीकरण (२) की असंभवता स्थापित करने में सफल हुए। १९२९ ई० और १९३९ ई० के बीच हैरी एस० वैंडिवर (Harry S Vandiver) ने कुमर द्वारा दी गई विधियों के विस्तार का उपयोग कर ऐसे परिणाम दिए जो क (l) के ६१९ से कम अभाज्यों के लिये समीकरण (२) की असंभवता स्थापित करने में समर्थ थे।

आगे चलकर इस दशा में समीकरण (२) की दो विशिष्ट स्थितियों पर विचार करने की दिशा में प्रयास हुआ पहली स्थिति, जब

फूल (देखें पृष्ठ १२६)

असीमाक्षी पुष्पक्रम
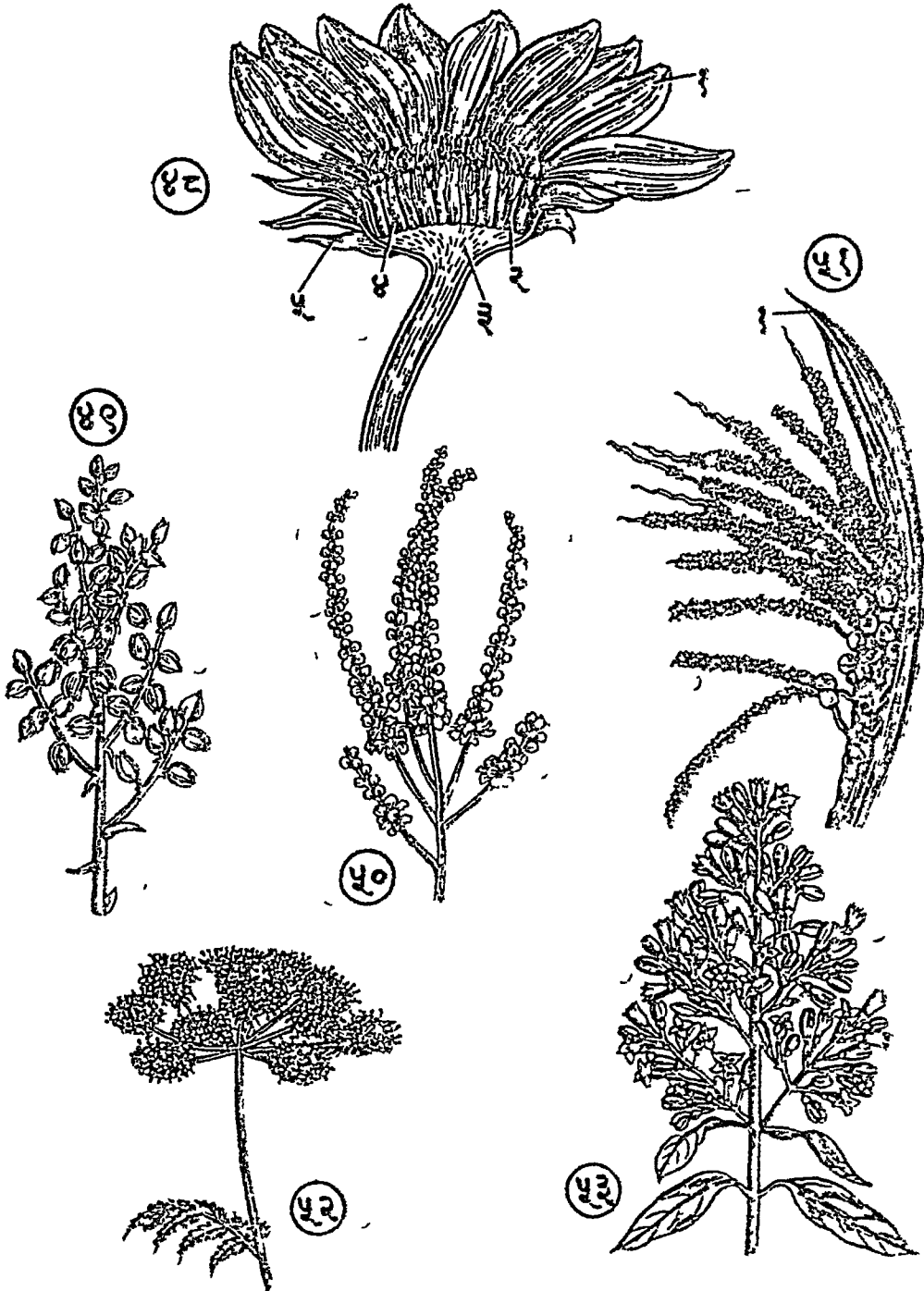
चित्र ४८. गेंदाकार (सूर्यमुखी का मुण्डक), चित्र ४९ बहुससीमाक्षी (युक्का फिलामेंटोस का पुष्पगुच्छ), चित्र ५० बहुस्पाइक (पेल्टोफोरम का पुष्पगुच्छ), चित्र ५१ बहुस्पैडिक्स (नारियल का संयुक्त स्पैडिक्स); चित्र ५२ बहुपुष्पछत्र (किरोफिलम टेमुलम का संयुक्त पुष्पछत्र) तथा चित्र ५३ मिश्रित पेनिकिल (लिगस्ट्रम वल्गेरी का)।

य, र, ल (x, y, z) परस्पर तथा क (l) के प्रति अभाज्य हैं और स्थिति दो जब य, र, ल (x, y, z) परस्पर अभाज्य हैं, किंतु उनमे से एक क (l) से विभाज्य है। स्थिति दो के बारे मे शोध नही के बराबर हुए हैं, किंतु सर्वांगसमता (congruence) और मॉड (mod) की कल्पनाओ का उपयोग कर स्थिति एक मे पर्याप्त शोध हुआ है। यद्यपि इस स्थिति मे भी पूर्ण रूप से फेर्मा की उक्ति स्थापित नही की जा सकी, तथापि अब तक की गवेषणाओ से फेर्मा के अंतिम प्रमेय की सत्यता प्रकट होती है।

स० ग्र०—एल० ई० डिक्सन हिस्ट्री ऑव द थ्योरी ऑव नवर्स, खड २ (१९२०), एल० जे० मोर्डेल द लेक्चर्स ऑन फेर्माल लास्ट थ्योरम (१९२१)। [च० मो०]

फेर्मा, पियरे द (Fermat, Pierre De) फ्रांसीसी गणितज्ञ थे। इनका जन्म १७ अगस्त, १६०१ ई० को बोमॉन्ट द लोमाग्ने मे हुआ था। फेर्मा अपने अंतिम प्रमेय के कारण अधिक प्रसिद्ध हो गए। इन्होने अंतिम प्रमेय मे बताया कि $य^n + र^n = ल^n$ ($x^n + y^n = z^n$) किसी भी घनात्मक पूर्णांक से संतुष्ट नही होता, यदि n>२ हो। यद्यपि फेर्मा ने लिखा है कि उन्होने उपर्युक्त समीकरण सिद्ध कर दिया था किंतु साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि उनकी उपपत्ति मे अशुद्धि है। अभी तक इस समीकरण की शुद्ध उपपत्ति प्राप्त नही हुई है, यद्यपि बहुत से गणितज्ञो ने इसे सिद्ध करने का प्रयास किया है। विश्लेषात्मक ज्यामिति (analytical geometry) एव प्रायिकता (probability) पर किए गए कार्य के कारण फेर्मा बहुत प्रसिद्ध हैं। १२ जनवरी, १६६५ ई० को इनका देहात हो गया। [अ० ना० मे०]

फेर्मि, एनरिको (Fermi, Enrico, सन् १९०१–१९५४) नोबेल पुरस्कार विजेता एव इटैलियन भौतिक विज्ञानी थे। फेर्मि का जन्म २९ सितबर, १९०१ को रोम शहर मे हुआ। शिक्षा-दीक्षा गटिंगेन एव लाइडेन मे हुई तथा तदुपरात रोम मे भौतिकी के प्राध्यापक नियुक्त हुए।

इन्होने भारी तत्वो के नाभिको को तोडने के सबध में महत्वपूर्ण शोध कार्य किया तथा सन् १९३४ में, न्यूट्रॉन की बमबारी द्वारा भारी तत्वो के नाभिको को तोडने में सफलता प्राप्त की। इस प्रकार फेर्मि ने तत्वातरण करने मे महत्वपूर्ण कार्य किया। कृत्रिम रेडियो ऐक्टिव पदार्थों का सृजन करने के उपलक्ष्य में, सन् १९३८ मे, इन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

ये सन् १९३९ में कोलबिया विश्वविद्यालय मे भौतिकी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् १९४२ में इन्हे प्रथम परमाणु भट्टी बनाने में सफलता मिली। नाभिकीय विज्ञान में आपका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। [अ० प्र० स०]

फेर्री लुइगी (१७२६-१७९५) इटालियन दार्शनिक, जो क्रमश फ्लोरेंस और रोम मे दर्शन का प्रमुख अध्यापक रहा। दर्शन के इतिहासकार के रूप में उसकी अधिक ख्याति है। जहाँ तक उसके स्वय के दर्शन का प्रश्न है, वह शिमान, सैमियट आदि के मनोविज्ञानवाद और रोमकिति और गियोवर्टी के आदर्शवाद का समिश्रण है। [श्री० स०]

फेल्सपार शिलानिर्माणकारी खनिजो का सबसे महत्वपूर्ण वर्ग है। सघटन की दृष्टि से ये खनिज पोटैशियम, सोडियम, कैलसियम, तथा बेरियम के ऐलुमिनोसिलिकेट हैं। इस वर्ग के मुख्य खनिज निम्नलिखित हैं, जिनमे प्रथम के क्रिस्टल एकनताक्ष तथा शेष के त्रिनताक्ष होते हैं

नाम	रासायनिक योग
ऑर्थोक्लेज	पो ऐ सि$_3$ औ$_८$ ($K\,Al\,Si_3O_8$)
माइक्रोक्लीन	पो ऐ सि$_3$ औ$_८$ ($K\,Al\,Si\,O_8$)
ऐल्बाइट	सो ऐ सि$_3$ औ$_८$ ($Na\,Al\,Si_3O_8$)
ऐनॉर्थाइट	कै ऐ$_2$ सि$_2$ औ$_८$ ($Ca\,Al_2\,Si_2O_8$)

ऐल्बाइट-ऐनॉर्थाइट सघटक एक खनिज माला का निर्माण करते हैं, जिसे प्लैजिओक्लेस (plagioclase) माला कहते हैं। इस माला के खनिज हैं ऑलिगोक्लेस (oligoclase), ऐडेज़िन (andesine) लैब्राडोराइट (labradorite) तथा बाइटोनाइट (bytownite)। इन खनिजो मे ऐल्बाइट और ऐनॉर्थाइट सघटको की भिन्न भिन्न मात्राएँ रहती हैं, उदाहरणार्थ लेब्रैडोराइट खनिज मे ऐल्बाइट सघटक की प्रति शत मात्रा ३० से ५० तथा ऐनॉर्थाइट सघटक की प्रति शत मात्रा तदनुसार ७० से ५० तक हो सकती है।

फेल्सपार खनिज भिन्न भिन्न रगो मे मिलते हैं। ऑर्थोक्लेज साधारणत सफेद या गुलाबी होता है, माइक्रोक्लीन सफेद या हरा तथा प्लैजिओक्लेस सफेद या भूरे रग के होते हैं तथा इनपर धारियाँ पडी रहती है। इनकी चमक काचोपम या मोतीसम होती है तथा इनमे दो दिशाओ मे विदलन सतह विद्यमान रहती है। इनकी कठोरता ६ से ६ ५ तथा आपेक्षिक घनत्व २ ६ से २ ८ तक है।

फेल्सपार वर्ग के भिन्न भिन्न खनिजो की उपस्थिति पर ही शिलाओ का विभाजन किया जाता है। क्वार्ट्ज ऑर्थोक्लेज, ऐल्बाइट-युक्त शिलाएँ अम्लीय तथा ऐनॉर्थाइट युक्त शिलाएँ क्षारीय शिलाएँ कहलाती हैं। ऑर्थोक्लेज, माइक्रोक्लीन और ऐल्बाइट के बहुत से आर्थिक उपयोग भी हैं। इनके सपूर्ण उत्पादन की दो तिहाई मात्रा काच तथा चीनी मिट्टी के उद्योगो मे काम आती है। उच्च श्रेणी का पोटाश फेल्सपार विद्युदवरोधी पदार्थ तथा बनावटी दाँत बनाने के काम आता है।

यद्यपि फेल्सपार सभी शिलाओ मे विद्यमान रहते हैं, तथापि इनके आर्थिक महत्व के निक्षेप पैगमैटाइट शिलाओ तथा धारियों मे मिलते हैं। [म० ना० मे०]

फेस (Fes) स्थिति ३४° ५′ उ० अ० तथा ४° ५५′ प० दे०। फेज या फेस उत्तर-मध्य मोरॉक्को में नदी के किनारे स्थित नगर एव देश की राजधानी है, जो कैसाब्लैका तथा माराकेश (Marrakesh) के पश्चात् तृतीय बडा नगर है। यह राबात से ९० मील पूर्व मे ऐटलैंटिक सागर के तट पर सेबू नदी की उपजाऊ घाटी मे स्थित है। यह मुस्लिम सस्कृति का प्रमुख केंद्र है। यहाँ वार्षिक वर्षा २३ इंच होती है तथा जलवायु उत्तम है। नगर तीन भागो में विभक्त है। नगर का यूरोपियन भाग आधुनिक तथा सुदर है। चमडे तथा धातु का काम, सूती वस्त्र, परदे तथा मिट्टी के बरतन बनाने का काम होता है। यहाँ स्थित फेंसू की केरावीन (Karaween)

मस्जिद अफ्रीका की सबसे बड़ी मस्जिद है। कैरावीन विश्वविद्यालय भी यहाँ है। यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर भी है तथा तुर्की टोपी का सवप्रथम निर्माण इसी नगर मे हुआ था। इसे मूले इदरीस ने सन् ८०० मे स्थापित किया था। यहाँ की जनसख्या २,१६,००० (१९६०) है। [ले० रा० सिं०]

फैज़ाबाद १ जिला, स्थिति २६° ९' से २६° ५०' उ० अ० तथा ८१° ४१' से ८३° ८' पू० दे०। यह पूर्वी उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित जिला है। इसके उत्तर में गोडा तथा बस्ती, पूर्व मे आजमगढ, दक्षिण में सुल्तानपुर एव जौनपुर तथा पश्चिम मे बाराबकी जिले हैं। इसकी उत्तरी सीमा पर घाघरा नदी बहती है। इसका क्षेत्रफल १,७०५ वर्ग मील तथा जनसख्या १६,३३,३५६ (१९६१) है। घाघरा नदी के अतिरिक्त मजहोई, तिर्वा, पिकिया, तोर्नी एव छोटी सरयू नदियाँ बहती हैं। जलवायु उत्तम है तथा वर्षा ४१ इच तक होती है। यह जिला, १ फैज़ाबाद, २ अकबरपुर, ३ बीकापुर, एव ४ टाँडा नामक चार तहसीलों मे बटा है। फैज़ाबाद या अयोध्या नगर भारत का प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है। कृषि योग्य मिट्टी होने के कारण धान, गेहूँ, चना, मटर, मसूर, जौ, अरहर तथा कोदो प्रमुख उपज हैं।

२ नगर, स्थिति २६° ४७' उ० अ० तथा ८२° १०' पू० दे०। यह जिले का प्रमुख नगर है। फैज़ाबाद अयोध्या का ही एक भाग है जो वाराणसी से लगभग १२५ मील उत्तर-पश्चिम मे घाघरा नदी के किनारे स्थित है। फैज़ाबाद की जनसख्या अयोध्या सहित ८८,२९६ (१९६१) है। अयोध्या मदिरो के लिये प्रसिद्ध है (देखें अयोध्या)। जब सआदत खाँ अवध का गवर्नर बना तो उसने अयोध्या से चार मील पश्चिम एक शिकारगाह की स्थापना की और बाद मे इसे प्रात का मुख्यालय बना दिया। अत मे सफदरजग ने इसे फैज़ाबाद नाम दिया। सन् १७६४ मे बक्सर के युद्ध मे हारने पर तृतीय नवाब शुजाउद्दौला ने लखनऊ छोडकर इसे ही अपना निवासस्थल बनाया था। यहाँ शुजाउद्दौला की पत्नी बहू बेगम का मकबरा, १७५ फुट लबा तथा १४० फुट चौडा, फैज़ाबाद की सबसे सुदर इमारत है। बहू बेगम के मकबरे से दूर शुजाउद्दौला का मकबरा है। इनके अतिरिक्त यहाँ इमामबाडा, पुस्तकालय, अस्पताल तथा कई मदिर है।

फ़ैज़ी (शेख अबुल फ़ैज़) शेख मुबारक नागौरी के पुत्र एव शेख अबुल फज़ल के अग्रज। इनका जन्म आगरा मे ९५४ हि० (१५४७ ई०) मे हुआ। पूरी शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की। शेख मुबारक सुन्नी, शिया, महदवी सबसे सहानुभूति रखते थे। फ़ैज़ी तथा अबुल फज़ल इसी दृष्टिकोण के कारण अकबर के राज्यकाल मे सुलह कुल (धार्मिक सहिष्णुता) की नीति को स्पष्ट रूप दे सके। हुमायूँ के पुन हिंदुस्तान का राज्य प्राप्त कर लेने पर ईरान के अनेक विद्वान भारत पहुँचे। वे शेख मुबारक के मदरसे, आगरा मे भी आए। फैज़ी को उनके विचारो से अवगत होने का अवसर मिला। ९७४ हि० (१५६७ ई०) मे फैज़ी शाही दरबार के कवि बने किंतु अभी तक धार्मिक विषयो पर अकबर ने स्वतत्र रूप से निर्णय लेना प्रारभ नही किया था अत दरबार के आलिमों के अत्याचार के कारण शेख मुबारक, फैज़ी तथा अबुल फज़ल को कुछ समय तक बडे कष्ट भोगने पडे। १५७४ ई० मे अबुल फज़ल भी दरबार मे पहुँचे। उस समय से फैज़ी की भी उन्नति होने लगी। १५७८ ई० मे अकबर ने अपने पुत्र शाहज़ादा मुराद की शिक्षा का भार उनको दिया। १५७९ ई० मे अकबर ने फतहपुर की जामा मस्जिद मे जो खुतबा पढ़ा उसकी रचना फैज़ी ने की थी। ११ फरवरी, १५८९ ई० को उन्हें मलिकुश्शुअरा (कविसम्राट्) की उपाधि प्रदान की गई। अगस्त, १५९१ ई० मे उन्हे खानदेश के राजा अली खा एव अहमदनगर के बुरहानुलमुल्क के पास राजदूत बनाकर भेजा गया। १ वर्ष ८ माह १४ दिन के बाद वह दरबार मे वापस पहुँचे। दक्षिण से जो पत्र उन्होने अकबर के पास भेजे उन्हें उसके भानजे नूरुद्दीन मुहम्मद अब्दुल्लाह ने लतायफे फैज़ी के नाम से सकलित कर दिया है। इन पत्रो से उस समय की सामाजिक एव सास्कृतिक दशा का बडा अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है तथा ईरान और तूरान के विद्वानो एव अकबर द्वारा विद्वानो के प्रोत्साहन पर प्रकाश पडता है। १५९४ ई० मे उसने निज़ामी गजवी के खम्से (पाँच मसनवियो का सग्रह) के समान पाँच मसनवियों की रचना की योजना बनाई जिसमें निज़ामी के मखज़ने असरार के समान मरकजे अदवार की और लैला मजनू के समान नल दमन (राजा नल तथा दमयन्ती की प्रेमकथा) की रचना समाप्त कर ली। नलदमन को उसने स्वय उसी वर्ष अकबर को समर्पित किया। सिकदरनामा के समान, अकबरनामा की रचना की योजना बनाई किंतु केवल गुजरात विजय पर कुछ शेर लिख सका। खुसरो और शीरी के समान सुलेमान और बिल्कीस तथा हफ्त पैकर के समान हफ्त किश्वर की रचना की भी उसने योजना बनाई थी किंतु उन्हें पूरा न कर सका। १००२ हि० (१५९३ई०) मे उसने कुरान की अरबी मे एक टीका लिखी जिसमे केवल ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिनके अक्षरो पर बिंदु नही है। फैज़ी की गज़लों का सग्रह (दीवान) भी बडा महत्वपूर्ण है। उसके शेरो का लोहा ईरानवाले भी मानते हैं। उत्साह एव स्वतत्र दार्शनिक विचार, उसके शेरो की मुख्य विशेषता हैं। उसे धार्मिक सकीर्णता से बहुत घृणा थी और वह दरवेशो, फकीरो तथा सतो से आदरपूर्वक व्यवहार करता था। उसका पुस्तकालय बडा विशाल था। १० सफर, १००४ हि० (१५ अक्तूबर, १५९५ई०) को उसकी मृत्यु हो गई।

स० ग्र०—(फारसी) अबुल फज़ल अकबरनामा, अब्दुल कादिर बदायूनी मुंतखबुत्तवारीख, फरीद भक्खरी ज़खीरतुल खवानीन, शाहनवाज खा मआसिरुल उमरा, (उर्दू) शिब्ली, शेरुल अजम। [स० अ० अ० रि०]

फैराडे, माइकेल अग्रेज भौतिक विज्ञानी एव रसायनज्ञ थे। इस महान् वैज्ञानिक का जन्म २२ सितबर, १७९१ ई० को हुआ। इनके पिता बहुत गरीब थे और लुहारी का कार्य करते थे। इन्होने अपना जीवन लदन मे जिल्दसाज की नौकरी से प्रारभ किया। समय मिलने पर रसायन एव विद्युत् भौतिकी पर पुस्तकें पढते रहते थे। सन् १८१३ ई० मे प्रसिद्ध रसायनज्ञ, सर हफ्री डेवी, के व्याख्यान सुनने का इन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन व्याख्यानो पर फैराडे ने टिप्पणियाँ लिखी और डेवी के पास भेजी। सर हफ्री डेवी इन टिप्पणियो से बडे प्रभावित हुए और अपनी अनुसधानशाला मे इन्हे अपना सहयोगी बना लिया। फैराडे ने लगन के साथ कार्य

फूल या पुष्प (देखें पृष्ठ ११६–१२७)

सर्वधित ऐस्टर (Astor)

नस्टर्शियम (Nasturtium)
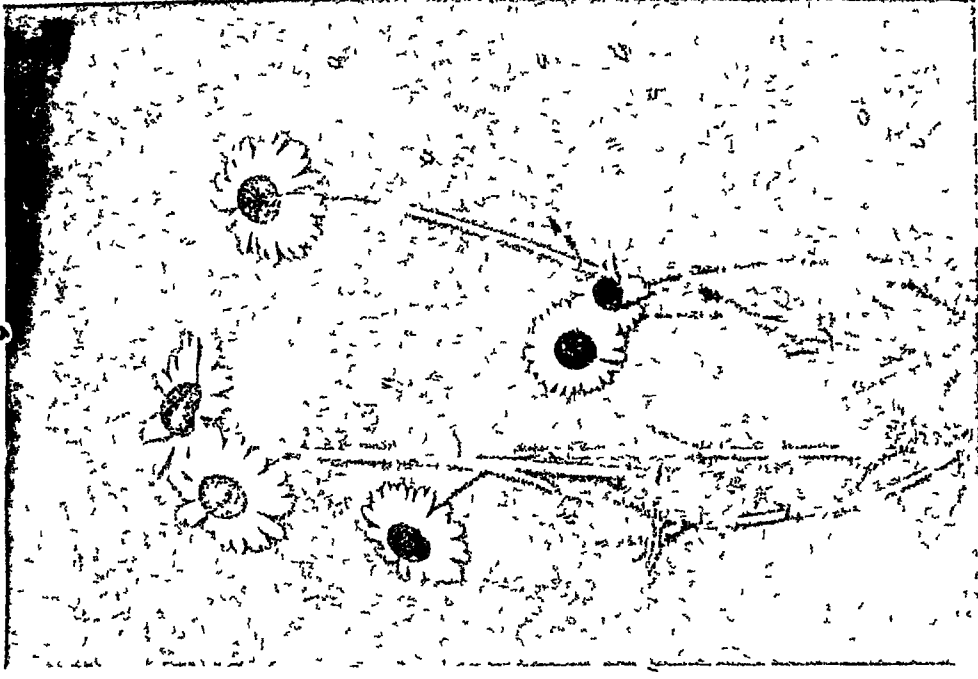
डेज़ी (Daisy)

(अमरीकन म्यूज़ियम ऑव नैचुरल हिस्ट्री के सौजन्य से प्राप्त)

फूल या पुष्प (देखें पृष्ठ ११६–१२७)

सागौन का पुष्पित वृक्ष

किया और निरतर प्रगति कर सन् १८३३ मे रॉयल इंस्टिट्यूट मे रसायन के प्राध्यापक हो गए।

अपने जीवनकाल मे फैराडे ने अनेक खोजें की। सन् १८३१ मे विद्युच्चुवकीय प्रेरण के सिद्धात की महत्वपूर्ण खोज की। चुबकीय क्षेत्र मे एक चालक को घुमाकर विद्युत्-वाहक-वल उत्पन्न किया। इस सिद्धात पर भविष्य मे जनित्र (generator) वना तथा आधुनिक विद्युत् इजीनियरी की नीव पडी। इन्होने विद्युद्विश्लेषण पर महत्वपूर्ण कार्य किए तथा विद्युद्विश्लेषण के नियमो की स्थापना की, जो फैराडे के नियम कहलाते है। विद्युद्विश्लेपण मे जिन तकनीकी शब्दो का उपयोग किया जाता है, उनका नामकरण भी फैराडे ने ही किया। क्लोरीन गैस का द्रवीकरण करने मे भी ये सफल हुए। परावैद्युताक, प्राणिविद्युत्, चुबकीय क्षेत्र मे रेखा ध्रुवित प्रकाश का घुमाव, आदि विषयो मे भी फैराडे ने योगदान किया। आपने अनेक पुस्तकें लिखी, जिनमे सवसे उपयोगी पुस्तक 'विद्युत् मे प्रायोगिक गवेषणाएँ' [Experimental Researches in Electricity] है।

फैराडे जीवन भर अपने कार्य मे रत रहे। ये इतने नम्र थे कि इन्होने कोई पदवी या उपाधि स्वीकार न की। रायल सोसायटी के अध्यक्ष पद को भी अस्वीकृत कर दिया। धुन एव लगन से कार्य कर, महान् वैज्ञानिक सफलता प्राप्त करने का इससे अच्छा उदाहरण वैज्ञानिक इतिहास मे न मिलेगा। सर हफ्री डेवी भी फैराडे को अपनी सवसे वडी खोज मानते थे।

इस महान वैज्ञानिक की मृत्यु २५ अगस्त, १८६७ ई० को हुई।

[अ० प्र० स०]

फोटोग्राफी या फोटोचित्रण की क्रिया इस तथ्य पर आधारित है कि रजत के अनेक लवण प्रकाश के प्रति अत्यत सुग्राही होते हैं। ऐसे किसी लवणमडित तल, यथा काच के प्लेट या सेलुलोस की फिल्म, पर प्रकाश पडने पर उस लवण के कणो मे परिवर्तन होता है, जो सामान्य दृष्टि से अलक्ष्य होने पर भी एक विशेप अपचायक विलयन (reducing solution) की क्रिया द्वारा रजत धातुकण मे परिणीत होकर स्पष्टतया दृश्य हो जाता है। ऐसे विलयनो को व्यक्तकारी (Developer) कहते हैं। इस विधि से अपचयित तल मे प्रकाश से प्रभावित क्षेत्र के रजतकण काले हो जाते है और शेप, अर्थात् अप्रभावित रजत लवण कण, अपने धूमिल रग मे यथावत् बने रहते हैं। इस प्रकार किसी प्रकाशित या प्रदीप्त वस्तु का प्रतिविव उस तल पर स्पष्ट रूप से मुखरित हो जाता है। इस विव मे वस्तु का प्रदीप्त अश घोर काला तथा अप्रदीप्त या अल्पप्रदीप्त अश उसकी तुलना मे कम काला दिखलाई पडता है। फोटोग्राफी के प्लेट का तल एक विशेप प्रकार के पायस (emulsion) की पतली परत से आच्छादित रहता है। इस परत मे सिल्वर हैलाइड के अत्यन्त सूक्ष्म कण जिलेटीन मे एक समान रूप से वितरित रहते हैं। यह परत प्राय $\frac{1}{1000}$ इच से भी अधिक पतली रहती है। ऐसे रजत लवणो मे सर्वाधिक सुग्राही लवण सिल्वर ब्रोमाइड होता है। इसमे थोडा सिल्वर आयोडाइड मिलाकर उपर्युक्त पायस की रचना मे प्रयुक्त किया जाता है। विलयन द्वारा अपचयित या व्यक्त प्लेट को एक अन्य विलयन मे डाला जाता है, जो अव्यक्त अथवा अनापचयित सिल्वर हैलाइड कणो को स्वय मे घुलाकर प्लेट से पृथक् कर देता है। इस विलयन को स्थायीकर (Fixer) तथा इस क्रिया को स्थायीकरण (Fixing) कहते है। इसके पश्चात् प्लेट को धोकर सुखा लिया जाता है। प्लेट पर प्राप्त प्रतिविव का जो रूप स्थायीकरण के पश्चात् प्राप्त होता है, उसे 'नेगेटिव' (Negative) कहते हैं, क्योकि प्राकाशिक दृष्टि से यह वस्तु के ठीक विपरीत होता है, अर्थात् वस्तु का प्रज्योत अश इसमे काला दिखलाई पडता है। इस प्लेट को चित्र प्रक्षेपी लालटेन (projection lantern) के समुख रखकर तथा उसके नीचे सिल्वर क्लोराइड या सिल्वर ब्रोमाइड का पतला लेप चढा कागज रखकर, प्लेट को ऊपर से तीव्र प्रकाश द्वारा आलोकित किया जाता है, जिससे नेगेटिव के विव भाग से तो प्रकाश रुक जाता है और शेप भाग से प्रकाश पार होकर कागज पर पडता है। इस कागज को प्लेट की ही भाँति व्यक्त एव स्थायी करने पर प्रकाशित भाग के रजत कण शेप रह जाते हैं और अप्रकाशित भाग के जिसपर प्लेट के विव द्वारा अवरुद्ध होने के कारण प्रकाश नही पड सका, रजत लवण के कण विलयन मे घुलकर कागज से पृथक् हो जाते है। इस प्रकार कागज पर प्राप्त प्रतिविव मे आकृति की कृष्णता या धवलता नेगेटिव के प्रतिकूल, अर्थात् मूलवस्तु के अनुकूल, होती है। कागज पर बने इस स्थायी प्रतिविव को 'पॉजिटिव' (Positive) कहते है और यही वस्तु की फोटो छाप (photo print) होती है।

फोटोग्राफी की पद्धति का विकास — सन् १७२७ मे जे० एच० शुल्ज़े (J H Schulze) ने यह पता लगाया कि सिल्वर नाइट्रेट प्रकाश द्वारा अत्यत विलक्षण रूप से प्रभावित होता है। कुछ समय पश्चात् डब्ल्यू० ल्यूइस (W Luwis) तथा के० डब्ल्यू० शेले (K W Scheele) ने प्रयोगो द्वारा इस निष्कर्ष की पुष्टि की। कालातर मे सिल्वर क्लोराइड के अपेक्षाकृत अधिक प्रकाश सुग्राही होने का पता चला। इसके कुछ ही वर्ष पूर्व वस्तु का स्पष्ट एव प्रज्योत विव प्राप्त करने के लिये दो तीन लेंसो के सयोग से कैमरे के एक लघु आदिम रूप का निर्माण हो चुका था। इस कैमरे से बननेवाले विव के स्थान पर सिल्वर क्लोराइड मडित कागज लगाकर नीप्से ने सन् १८१६ मे प्रथम फोटोग्राफ प्राप्त किया था, किंतु उसे स्थिर करके एक स्पष्ट 'नेगेटिव' प्राप्त कर सकने मे वे असमर्थ रहे। लगभग दस वर्षो के पश्चात् नीप्से के एक सहकर्मी, डैगरे (Daguerre) ने एक प्रयोग के क्रम मे अचानक यह पता लगाया कि सिल्वर आयोडाइड मडित कागज पर सघन पारद वाष्प की क्रिया कराकर उसपर कैमरे की सहायता से उत्पन्न प्रकाशीय प्रभाव को विव के रूप मे देखा जा सकता है। उनके इस आविष्कार को सन् १८३९ मे फ्रास का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। डैगरे विधि मे ताँवे के प्लेट पर चाँदी चढाकर तथा उसे आयोडीन के धूम मे रखकर आयोडीकृत (iodize) कर लिया जाता था। फिर उसे कैमरे पर आरोहित कर तथा वस्तु के समक्ष व्यक्त (expose) करके पारद वाष्प द्वारा विकसित किया जाता था। इस प्रकार स्थायी विव की सृष्टि होती थी। फोटो निर्माण की यह विधि उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक डैगरे की पद्धति (Daguerreotype) के नाम से अत्यधिक प्रचलित थी।

इसके कुछ समय पश्चात् ही इग्लैंड के फॉक्स टालवो (Fox Talbot) ने सिल्वर आयोडाइड और नाइट्रेट के मिश्रण से प्राप्त

पायस के लेप चढे हुए कागज पर कैमरे की सहायता से उत्पन्न प्रच्छन्न प्रकाशीय प्रभाव को गैलिक अम्ल द्वारा विकसित कर तथा सोडियम थायोसल्फेट द्वारा स्थायी कराकर स्थायी बिंब के रूप मे प्राप्त किया। इस बिंब के प्रकाशीय लक्षण वस्तु के लक्षणों के ठीक विपरीत थे। इसलिये हर्शेल ने इसे नेगेटिव की सज्ञा दी। कागज की पारदर्शिता मे वृद्धि करने के लिये उसपर तेल या चिकनाई (जैसे मोम) लगा दिया जाता था। वस्तुत आधुनिक फोटोग्राफी की दिशा मे टालबो की यह पद्धति ही प्रथम चरण थी। कुछ ही समय पश्चात् हर्शेल के परामर्श से काच के प्लेट पर एल्बुमेन चुपडकर तथा उसपर सिल्वर क्लोराइड या आयोडाइड लगाकर अधिक सुग्राही एव उपयोगी फोटोग्राफी प्लेट का निर्माण किया गया।

इसके पश्चात् स्कॉट आर्चर (Scott Archer) ने कोलोडियन विलयन का आविष्कार किया, जो पाइरॉक्सिलिन (pyroxyline) मे ईथर के विलयन मे विलेय आयोडाइड तथा किंचित् ब्रोमाइड के सयोग से बनता था। इस विलयन को काच के प्लेट पर लेपकर और तदुपरात उसे एक अँधेरे प्रकोष्ठ मे सिल्वर नाइट्रेट मे निमज्जित कर देने पर, कोलोडियन सिल्वर आयोडाइड (सिल्वर नाइट्रेट युक्त) मे मे परिणत होकर अत्यत प्रकाशसुग्राही बन जाता था। इस प्लेट को भीगी दशा मे कैमरे मे आरोहित करके व्यक्त किया जाता था और फिर उसमे से निकालकर पाइरोगैलॉल (pyrogallol) तथा ऐसीटिक अम्ल के मिश्रण द्वारा विकसित एव सोडियम थायोसल्फेट या पोटैशियम सायनाइड, द्वारा स्थायी किया जाता था। यह पद्धति, तीन चार वर्षों की अल्पावधि मे ही लोकप्रियता के शिखर तक पहुँच गई और अपनी पूर्ववर्ती सभी अन्य पद्धतियो को पीछे छोड गई। कालातर मे इसमे कुछ सुधार कर भीगे कोलोडियन के स्थान पर कोलोडियन पायस का व्यवहार किया जाने लगा, यद्यपि इससे सुग्राह्यता मे कोई वृद्धि नही हुई।

१८७१ ई० मे आर० एल० मैडॉक्स (R L Maddox) ने कोलोडियन पायस के स्थान पर जिलेटिन का प्रयोग किया और इसके कुछ समय पश्चात् ही अन्य प्रयोगकर्ताओ ने सिल्वर आयोडाइड और सिल्वर ब्रोमाइड के सयोग से उत्तम शुष्क प्लेटो का निर्माण किया। सन् १८७९ तक क्षिप्र शुष्क प्लेटो का निर्माण बडे पैमाने पर होने लगा था। सन् १९३० तक अनेक व्यापारिक प्रतिष्ठान अत्यत उत्कृष्ट पायसो की सहायता से अधिकाधिक द्रुत एव सुग्राही फोटोग्राफी प्लेटो का निर्माण करने लगे थे।

सिल्वर हैलाइडो के इन प्लेटो मे एक दुर्बलता थी कि ये स्पेक्ट्रम के केवल नीले, बैंगनी एव पराबैंगनी (ultraviolet) क्षेत्र के लिये ही सुग्राही थे। अन्य वर्ण क्षेत्रो के लिये इनकी सुग्राहिता नगण्य थी। वैज्ञानिको का ध्यान इन प्लेटों मे वर्ण सुग्राहिता (colour sensitivity) उत्पन्न करने की ओर भी आकृष्ट हुआ। इस प्रयोजन की सिद्धि के हेतु प्लेटो को कुछ विशेष प्रकार के रंजको (dyes) के विलयन मे डुबाने के सुझाव प्रस्तुत किए गए। जे० वाटरहाउस नामक वैज्ञानिक ने पता लगाया कि इओसीन (eosin) नामक रजक द्वारा कोलोडियन पायस अत्यत शीघ्रता एव सुगमतापूर्वक वर्णसुग्राही बन जाता है। कालातर मे यही परिणाम जिलेटिन के लिये भी प्राप्त हुआ। प्रयोगो के क्रम मे पता चला कि एरिथ्रोसिन (erythrosine) का प्रयोग इओसिन की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होता है। वर्ण सुग्राहिता इसमे इओसिन से अधिक होने के कारण काफी समय तक इसका प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता रहा। आगे चलकर एथिल रेड (ethyl red) और तदनतर पाइनासायनोल (pinacyanol) की खोज हुई जो लाल वर्णक्षेत्र मे अत्यत उत्कृष्ट सुग्राहक सिद्ध हुए। आधुनिक फोटोग्राफी के प्लेट साधारणतया पैंक्रोमेटिक (panchromatic) होते है, जो सपूर्ण वर्णविस्तार का फोटोग्राफ सरलता से ले लेते हैं। प्रथम पैंक्रोमेटिक प्लेट ईस्टमैन कोडक (Eastman Kodak) ने सन् १९१४ मे निर्मित किया था। इन प्लेटो को अधिकाधिक कार्यक्षम बनाने के प्रयास बडी तेजी से चलते रहे और सन् १९३० तक अत्यत उच्चकोटि के क्षिप्र पैंक्रोमेटिक प्लेटो का निर्माण होने लगा था।

काच की प्लेटों के भारीपन एव भंजनशीलता के कारण इनका व्यापक प्रयोग कर सकने मे बडी कठिनाई होती थी। इसके अतिरिक्त किसी दृश्यावलि का निरतर फोटोग्राफ इनके द्वारा प्राप्त कर सकना भी एक दु साध्य कार्य था। इसलिये लबी फिल्म पट्टिकाओं का निर्माण करने की दिशा मे भी अनेक वैज्ञानिक प्रवृत्त हुए। सबसे पहले, कागज पर पायस का आलेपन कर तथा उसे लपेट कर, रोल फिल्म (roll films) बनाए गए। इनमे सबसे प्रमुख दोष यह था कि दृश्याकन के क्रम मे इन्हे द्रुतगति से खोलने और लपेटने पर तनाव और ढील की प्रक्रियाओ मे ये अक्सर बीच मे टूट जाते थे। इसलिये रोल फिल्म बनाने के लिये लचीले पदार्थ की खोज होने लगी और अनेक पदार्थ इस हेतु प्रस्तावित किए गए, जिनमे सेलुलोस ऐसीटेट (cellulose acetate) सर्वाधिक उपयुक्त पदार्थ सिद्ध हुआ। आधुनिक सचल कैमरा तथा चलचित्रो मे प्रयुक्त होनेवाले फिल्म इसी पदार्थ से निर्मित होते हैं। एक्स किरणो की फोटोग्राफी के लिये इस फिल्म के दोनों पृष्ठो को पायस से आलेपित कर दिया जाता है, ताकि पायस की सघनता पर्याप्त रहे और एक्स किरणो के लिये पूर्णत पारदर्शी न रहे।

व्यक्तिकरण विलयनों की खोज — जैसा ऊपर कहा जा चुका है, टालबो अथवा कैलो प्रणाली मे विकास क्रिया हेतु गैलिक अम्ल का प्रयोग किया जाता था और उसके पश्चात् उसके स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक उत्तम एव तीक्ष्ण व्यक्तिकारी, पाइरोगैलॉल का प्रयोग किया जाने लगा था। इस उत्तरकथित व्यक्तिकारी का प्रयोग करने पर उद्भासन (exposure) काल अपेक्षाकृत कम रखना पडता था। सन् १८८४ तक क्षारीय पाइरोगैलॉल का प्रयोग अधिक प्रचलित था, क्योंकि वह जिलेटिन आलेपित प्लेटो के विकास के लिये भी उपयुक्त था। इसके पश्चात् इसका स्थान क्षारीय कार्बोनेटो ने ले लिया था। कालातर मे हाइड्रॉक्विनोन (hydroquinone) हाइड्रॉक्सिल ऐमीन (hydroxylamine), पैराफेनिलीन डाइऐमीन (paraphenylene diamine), पैराटॉलुईन डाइऐमीन (para-toluene diamine) जाइलिडीन डाइऐमीन (xylidine diamene) आदि के प्रयोग विकासक रूप मे होने लगे। सन् १८९१ मे सर्वोत्कृष्ट विकासक मोनोमिथाइल पैराएमिनोफीनॉल (monomethyl para-aminophenol) का, जो मेटॉल (metol) के उपनाम से प्रसिद्ध है, आविष्कार किया गया।

इसी प्रकार 'पाजिटिव' फोटोग्राफ प्राप्त करने के हेतु मुद्रण

(printing) क्रिया के विकासक्रम का भी एक पृथक् इतिहास है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि पहले पहल मुद्रण के हेतु एक कागज पर सिल्वर क्लोराइड तथा सिल्वर नाइट्रेट (अधिक मात्रा में) के सयोग का आलेपन करके उसके समक्ष प्रदीप्त नेगेटिव रख देने पर वह फोटो कागज पर उतर आता था। किंतु यह प्रिंट सर्वथा अस्पष्ट एव धूमिल होता था। उसे अधिक स्पष्ट करने के लिये उस कागज पर जिलैटिन और एल्ब्युमेन का भी आलेपन कर दिया जाता था। इसके पश्चात् मुद्रित फोटोग्राफ को अधिक कातिमान् बनाने के लिये उस कागज को क्षारीय स्वर्णकुडिका (alkaline gold bath), अथवा प्लैटिनम कुडिका, मे रख दिया जाता था और थोडी देर के पश्चात् उसे निकालकर सुखा लिया जाता था। यह क्रिया अधिक व्यय एव श्रमसाध्य होने के कारण विशेप लोकप्रिय नही हो सकी। अत मे सन् १८८३ मे जिलेटिनोक्लोराइड और क्लोरोब्रोमाइड पायस से आलेपित कागज का आविष्कार किया गया। आज भी इन्ही विविध विकसित रूपो का प्रयोग व्यक्तिकारी द्रव्य के रूप मे किया जाता है। सपर्क मुद्रण के लिये क्लोराइड प्रकार के और विवर्धन (enlargements) के लिये ब्रोमाइड प्रकार के कागज व्यवहृत किए जाते हैं।

फोटोग्राफी की विभिन्न शाखाएँ

(१) अव्यवसायी (Amateur) फोटोग्राफी — फोटोग्राफी के इस प्रकार के उपयोग का क्षेत्र अत्यत व्यापक है। अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिये व्यक्तियो एव दृश्यावलियों का फोटोग्राफ अव्यवसायी ढग पर लेनेवालो की सख्या बहुत बढ गई है। इसके लिये उपयुक्त 'बॉक्स' कैमरा का निर्माण सर्वप्रथम सन् १७०० मे किया गया था, जिसमे रोल फिल्म प्रयुक्त किया गया था। इस कैमरा का अभी तक इसके
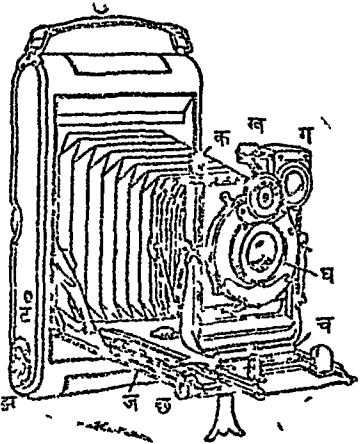
चित्र १ फिल्म के लिए फोल्डिंग कैमरा
क अग्र भाग को ऊपर उठानेवाला पेंच, ख स्पिरिट लेवल, ग दृश्यदर्शी, घ लेंस तथा शटर च अग्रभाग की आडी गति तथा छ फोकस करनेवाला पेंच, ज फोकस करने की मापनी, झ फिल्म लपेटने की चाभी तथा ट तिपाई पर रखने के लिए पेंच।

मूल रूप मे ही प्रयोग किया जाता है। अधिकतर ऐसे कैमरे धातु, फायर बोर्ड, या प्लास्टिक के बने होते हैं और उनमे एक रोल फिल्म मे २¼ × ३¼ इंच आकार के आठ चित्र उतारे जा सकते हैं। बॉक्स कैमरा मे ही कुछ सुधार कर तथा अधिक तीक्ष्ण फोकस समजित कर, स्पष्ट बिंब प्राप्त करने तथा उद्भासन काल नियत्रण व्यवस्था सपन्न फोल्डिंग कैमरो का निर्माण किया गया (देखें चित्र १)। अव्यवसायी फोटोग्राफी कैमरा मे प्रयुक्त होने वाले फिल्म भी आजकल विविध प्रकार के मिलने लगे हैं। मैदानी चित्रो के लिए आर्थोक्रोमैटिक (orthochromatic) फिल्मो का प्रयोग किया जाता है। कृत्रिम प्रकाश मे फोटो चित्राकन के लिए क्षिप्र पैंक्रोमैटिक फिल्म तथा पर्याप्त आवर्द्धनीय चित्रो के लिए सूक्ष्म कणो वाले (fine-grain) फिल्म मिलते हैं। इनके अतिरिक्त नेगेटिव तथा उत्क्रमण रगीन फिल्म भी मिलते हैं, जिनसे रगीन प्रिंट प्राप्त होते हैं। इतना ही नही, विकास एव मुद्रण
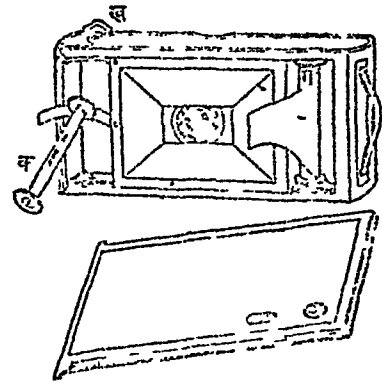
चित्र २ फिल्म को लपेटने की युक्ति
क. फिल्म के स्पूल का खोखा पास के खोडर मे रखकर ख चाभी मे फँसा दिया जाता है तब अनावृत्त फिल्म के स्पूल को विपरीत ओर के खोडर ग मे, जैसा दिखाया है, रखकर उसका सिरा क मे फँसा दिया जाता है तथा कैमरे का ढक्कन बद कर दिया जाता है।

के लिये अब व्यवसायी फोटोग्राफरो की कृपा पर निर्भर नही रहना पडता। विकास हेतु आवश्यक रासायनिक द्रव्य उपयुक्त मात्रा में पैकेटो मे मिलने लगे हैं और प्रिंटिंग के लिये ऐसे उत्कृष्ट कागज भी मिल जाते हैं जिनपर स्पष्ट आवर्द्धित प्रिंट बडी सुगमता से प्राप्त किए जा सकते हैं। आजकल अत्यत सुग्राही पैंक्रोमैटिक फिल्मो का निर्माण होने लगा है, जिनपर कृत्रिम प्रकाश द्वारा वस्तु को आलोकित कर, फोटो ले लिया जाता है। यह प्रकाश कैमरा मे ही लगी, सेल चालित विद्युत् व्यवस्था की सहायता से अत्यत तीव्र प्रकाश उत्पन्न करनेवाले क्षणदीप्ति सलग्नी या क्षणदीप्ति बल्वो (flash attachments या flash bulb) के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। ये बल्ब उतने ही क्षणो तक जलते हैं जितने क्षणो तक उद्भासन देना होता है। इसके बाद ही उनका जीवन समाप्त हो जाता है और साथ ही स्वयचालित द्वारक या शटर भी स्वक्रमेव बद हो जाता है।

(२) व्यावसायिक (Professional) फोटोग्राफी — फोटोग्राफी के विकास के इतिहास के निर्माण में व्यावसायिक स्तर पर उसका उपयोग कर सकने की चेष्टाओ की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। प्रारभ मे फोटोग्राफी का मुख्य प्रयोजन व्यक्तियो के फोटोग्राफ लेना था। विद्युत्

फूल या पुष्प (देखें पृष्ठ ११६–१२७)

इमली पुष्पित

पलाश के फूल

मौलसिरी की पुष्पकलिकाएँ

प्याज के फूल

फ़ैज़ाबाद (देखें पृष्ठ १२२)
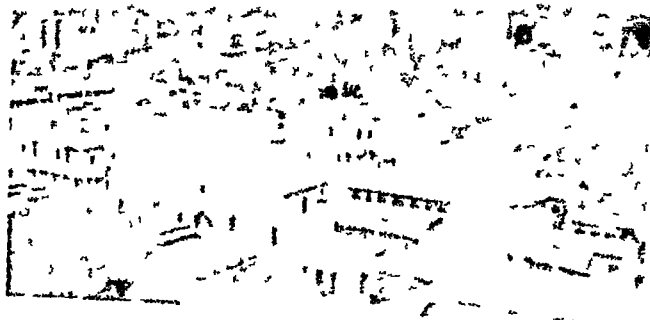
अयोध्या नगर
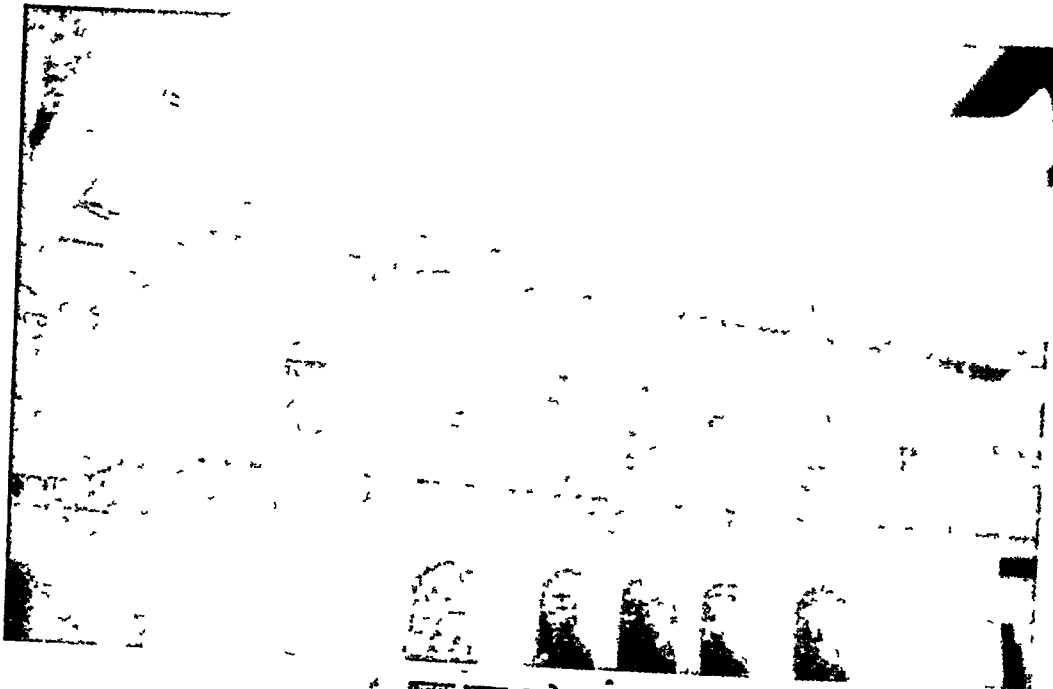
कनक भवन, अयोध्या

(सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, के सौजन्य से)

कला कृतियो (works of graphic art) की मीमासा करने के हेतु इस प्रकाश का प्रयोग अब व्यापकता की ओर अग्रसर हो रहा है।
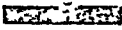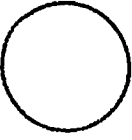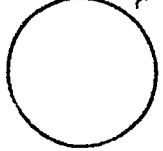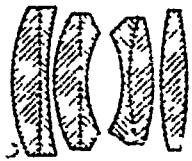
परावैंगनी — इसका प्रयोग भी बदले गए कागज पत्रो एव कृतियो, विरूपित अभिलेखों को पढने, नष्टप्राय कला को पुनरुत्पादित करने, अदृश्य लेखो एव अँगुलियो की छापो को पहचानने एव ऐसे ही अन्य प्रयोजनो मे, जो पदार्थों की प्रतिदीप्ति के गुणो पर अवलबित रहते हैं, किया जाता है। चिकित्सा एव भेपज विज्ञान मे भी इसका व्यवहार बढता जा रहा है।

प्रलेख फोटोग्राफी (Document Photography) — दुर्लभ अभिलेखो के तथा ऐसी पाडुलिपियो के, जिन्हें जर्जर हो जाने अथवा अन्य किसी कारण से अधिक समय तक सुरक्षित रख सकना कठिन होता है, फोटोग्राफ लेकर रख लिए जाते हैं। इस कार्य से निम्नलिखित लाभ होते है (१) इस प्रकार प्राप्त प्रतिलिपि मे किसी प्रकार की त्रुटि, छूट अथवा अन्य किसी प्रकार का दोष नही आने पाता, (२) इससे नष्टप्राय हो रहे अभिलेखो की जीवनरक्षा हो जाती है, (३) फोटोग्राफी द्वारा उन अभिलेखो की अनेक प्रतिलिपियाँ तैयार कर लेने से उनके खो जाने अथवा अन्य कारणो से विनष्ट हो जाने का भय दूर हो जाता है, (४) किसी के जीर्णशीर्ण एव नष्टप्राय हस्तलेखो को यथारूप सरक्षित करने मे सुविधा होती है और (५) अभिलेखो मे निहित नष्टप्राय अभिसूचनाओ के सुरक्षार्थ अत्यत शीघ्रता से पुनरुत्पादित कर सकने, या उनके यत्रतत्र बिखरकर नष्ट हो जाने से बचाने, की यह एक अत्यत उत्कृष्ट व्यवस्था है।

उच्च क्षिप्रता फोटोग्राफी (High Speed Photography) — अत्यत द्रुत गति से घटनेवाली भौतिक घटनाओं के क्रमो या क्षिप्र घटनाओ के किसी अश का फोटोग्राफ लेकर अवकाश मे उनका धीरतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। इस हेतु अत्यत तीक्ष्ण प्रकाश एव अत्यल्प उद्भासन काल देना पडता है, ताकि स्पष्ट चित्र प्राप्त हो सके।

लेंस के सामर्थ्य की व्याख्या

विभिन्न लेंसों के सापेक्ष आकार	लेंस की जाति	सापेक्ष आवश्यक अनावरण समय	सन्निकट सापेक्ष क्षिप्रता	लेंस के अवयव
	मेनिस्कस		१	
	डवलेट		१½	
	ऐनैस्टिग्मैट, f/८ ८		३	
	ऐनैस्टिग्मैट, f/६ ३		६	
	ऐनैस्टिग्मैट, f/४ ५		११	
	ऐनैस्टिग्मैट स्पेशल f/३ ५		१८	
	एक्टार, f/१९		६२	

क्षिप्र फोटोग्राफी निम्नलिखित विधियों से संपन्न की जा सकती है

(१) एक बार उद्भासन देकर तात्क्षणिक फोटोग्राफी की क्रिया — इस प्रक्रिया के लिये स्थिर प्रदीप्ति एवं क्षिप्र कपाट (shutter) उद्घाटन देने की आवश्यकता पड़ती है, जो सर्वोत्कृष्ट यांत्रिक कपाटों द्वारा भी संभव नहीं हो पाता। अतएव इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये चुंबकीय प्रकाशिकी, विद्युत् प्रकाशिकी, कपाटों का प्रयोग किया जाता है। इन्हें केर सेल (Kerr cells) भी कहते हैं। बंदूक से छूटी हुई गोली तथा अत्यंत वेगगामी वस्तुओं का फोटोग्राफ लेने के लिये छाया फोटोग्राफी की विधि का अनुसरण किया जाता है, जिसके लिये अत्यल्पावधिक तीव्र प्रकाश का फ्लैश (flash) उन वस्तुओं पर डालना पड़ता है। इसमें वस्तु की छाया कैमरा की फिल्म या प्लेट पर सीधे स्थापित हो जाती है। इस कार्य की पूर्ति के हेतु निकटस्थ वस्तु के लिये, सामान्य रूप से, विद्युत् स्फुलिंग ही सर्वाधिक उपयुक्त प्रकाशस्रोत होता है और उद्भासन की अवधि प्राय एक सेकंड के दस लाखवें भाग के बराबर होती है। दूरस्थ वस्तुओं के लिये स्फुलिंग और वस्तु के बीच में एक संघनित्र लेंस रख दिया जाता है। दूसरी विधि में, जिसे परावर्तित प्रकाश की विधि कहते हैं, एकल उद्भासन देने के लिये प्रकाशस्रोत के रूप में गैस विसर्जन लैंप का प्रयोग किया जाता है और उद्भासन अवधि प्राय एक सेकंड के पचास सहस्रवें अंश के बराबर होती है।

(२) उच्च क्षिप्रता के श्रेणीबद्ध फोटोग्राफ — ऐसे फोटोग्राफ चलचित्रों आदि में लिये जाते हैं। फोटोग्राफों के श्रेणी क्रम इस प्रकार सुनियोजित होते हैं कि घटना की निरंतरता अपनी पूर्ण स्वाभाविकता के साथ परिलक्षित हो सके। इस प्रक्रिया में बिंब की प्रगति की निरंतरता के प्रत्यर्थ कुछ विशेष प्रकार की प्रकाशीय युक्तियों (optical devices) की व्यवस्था करनी पड़ती है।

(३) अल्पावधिक फोटोग्राफ के अनुक्रम (sequence) — अत्यल्प समयांतरों में फ्लैश बल्बों (Flash bulbs), गैसीय विसर्जन लैंपों तथा क्रमानुसारेण चालित कैमरों के समूहों (groups) द्वारा ये तैयार किए जा सकते हैं। बेल (Bell) प्रयोगशाला द्वारा रिबन फ्रेम कैमरा नामक एक द्रुत चालित कैमरा का निर्माण मूलत रॉकेटों की उड़ान के प्रारंभिक काल में उनकी गति का अध्ययन करने के हेतु किया गया था।

(४) किसी अल्पकालिक स्वयं आलोकित तथा द्रुत गतिशील वस्तु, यथा विस्फोट आदि, का अध्ययन करने के लिये द्रुत अनुक्रम फोटोग्राफ अत्यंत सहायक होते हैं। इसके लिये व्यवहृत विधियों में एक अत्यंत द्रुत घूर्णनशील कपाट द्वारा किसी स्थिर या गतिमान् फिल्म पर अल्पकालिक उद्भासन दिया जाता है। ये फिल्में विस्फोट के मार्ग के अभिलंबवत् एक तल में स्थित होती हैं, या एक घूर्णनशील ढोल पर लपेटी रहती हैं। सचल फिल्मों के कैमरे में, पृथक् फोटोग्राफी की एक शृंखला प्राप्त करने के लिये, द्रुत घूर्णनशील दर्पणों का प्रयोग किया जाता है।

फोटोग्राफी की उपर्युक्त शाखाओं के अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रयोजनों में व्यवहृत विधाओं के और भी अनेक अंग हैं। ज्योतिषीय, या खगोलीय, फोटोग्राफी द्वारा खगोलीय पिंडों की संरचना, गति एवं अन्य विशेषताओं के संबंध में जानकारी प्राप्त की जाती है। विभिन्न निर्माणों (भवन, आदि) के अंदर प्रतिबलों (stresses) का अध्ययन करने के लिये उनकी पारदर्शी प्लास्टिक की प्रतिकृतियों (माडेल) के फोटोग्राफ लेकर, ध्रुवित एकवर्णी (monochromatic) अध्ययन किया जाता है। उन निर्माणों (structures) में से इस प्रकाश का वर्तन होने पर जो विभिन्न पट्टियाँ (bands) बनती हैं, उनका अध्ययन कर उनके अंदर प्रतिबलों के वितरण की गणना की जाती है। अंतर्जलीय (underwater) फोटोग्राफी की सहायता से सागर की गहराइयों में पाई जानेवाली वस्तुओं तथा प्राणियों का अध्ययन किया जाता है। इस कार्य के हेतु विशेष प्रकाश व्यवस्था एवं जल तथा दबाव रुद्ध कैमरे का प्रयोग किया जाता है।

एक्सकिरण फोटोग्राफी का व्यापक प्रयोग क्रिस्टलविज्ञान (crystallography) तथा चिकित्सा के क्षेत्रों में किया जाता है। फोटोग्राफी की इस शाखा को विकिरणचित्रण या रेडियोग्रैफी (Radiography) भी कहते हैं। गामा विकिरणचित्रण में ठोस पदार्थों के अंतराल का अध्ययन करने के लिये गामा किरणों का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि ये किरणें एक्सकिरणों की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र भेदक होती हैं और ठोस पदार्थों में काफी गहराई तक अंदर घुस जाती हैं। फोटोग्राफी की एक विशेष वैज्ञानिक उपशाखा सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफी (microphotography) है, जिसके अंतर्गत अत्यंत सूक्ष्म (microscopic) पदार्थों का अध्ययन परावर्तित या पारगमित प्रकाश में, अत्यंत लघु (miniature) कैमरे की सहायता से, किया जाता है। इन कैमरों में उच्च द्वारक (aperture) वाले अभिदृश्यकों एवं उच्च आवर्धन अभिनेत्रों का संयोजन होता है।

नाभिकीय कणों (nuclear particles) की फोटोग्राफी में विशेष प्रकार के पायसों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें सिल्वर ब्रोमाइड का अंश काफी अधिक होता है और अत्यंत लघु दाने या ग्रेन, न्यूनतम धुंध (fog) की संभाव्यता तथा इलेक्ट्रॉनों एवं अन्य उच्च गतिवाले आवेशित कणों के पथ चित्रांकित करने के लिये उपयुक्त क्षिप्रता आदि विशेषताएँ विद्यमान होती हैं। इस विधि से आवेशित कणों की पहचान तथा उनके गुणों का अध्ययन भली प्रकार किया जा सकता है और साथ ही नाभिकीय गणकों (nuclear counters) द्वारा प्राप्त परिणामों की यथार्थता का सत्यापन भी किया जा सकता है।

फोटोग्राफी की क्रिया का सिद्धांत — सामान्य फोटोग्राफी की क्रिया द्वारा प्राप्त बिंब सिल्वर के लघु दानों (grain) की एक विशाल सख्या द्वारा निर्मित होता है। ये दाने वस्तुत उद्भासन क्रिया द्वारा सिल्वर हैलाइड के कणों के अपचयन से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्राप्त बिंब को सुप्त प्रतिबिंब (latent image) कहते हैं, क्योंकि व्यक्तीकरण के पूर्व इनको नग्न नेत्रों से देखना संभव नहीं होता। उच्च शक्तिसंपन्न सूक्ष्मदर्शियों की सहायता से ही ये देखे जा सकते हैं। ऐसे बिंब की कृष्णता उद्भासन की मात्रा तथा व्यक्तीकरण के परिमाण पर निर्भर करती है। अत्यधिक उद्भासन से प्रकाशिक अपघटन (photolysis) के कारण, सिल्वर हैलाइडों का सिल्वर के दानों के रूप में अपचयन व्यक्तीकरण के बिना ही हो जाता है। इसे 'प्रिंट आउट प्रभाव' (Print-out Effect) कहते हैं और इसका उपयोग मुख्यत प्रोर्ट्रेट निर्माण क्रिया में प्रूफ प्रिंट तैयार करने तथा

कतिपय प्रत्यक्ष अनुरेखण (direct trace) अभिलेखी यन्त्रो मे किया जाता है ।

व्यक्तीकरण की क्रिया मे, एक उद्भासित दाना पहले अपने तल पर स्थित कुछ विंदुओ पर ही विकसित होता हुआ परिलक्षित होता है। स्पष्टत: यही वे विंदु है जो प्रकाश द्वारा विशेष रूप से प्रभावित हुए रहते हैं। इस प्रकार गुप्त बिंब कुछ विशेष विंदुओ पर ही सघनित होता है, जिन्हे मूल पायस के दानो के सुग्राह्यता केंद्र (Centres of sensitivity) कहते है। प्रमाणो से पता चलता है कि ये केंद्र वस्तुत क्रिस्टल के तल मे विद्यमान सिल्वर सल्फाइड के दाग (specks) होते हैं और गुप्त प्रतिविंब का निर्माण इन्ही दागो के चतुर्दिक एकत्र सिल्वर धातु के द्वारा होता है। प्रकाश चालन (Photoconductivity) तथा विद्युद्वैश्लेपिक चालन (electrolytic conductivity) के आधार पर इसकी व्याख्या सुगमता से की जा सकती है। जब प्रकाश सिल्वर हैलाइड द्वारा अवशोपित होता है, तब कुछ इलेक्ट्रॉन सुलभ हो जाते हैं और उस पदार्थ की विद्युच्चालकता मे वृद्धि कर देते हैं। ये इलेक्ट्रॉन स्वतत्रतापूर्वक भ्रमण करने मे सक्षम होने पर भी सिल्वर हैलाइडो के सुग्राह्यता केंद्रो पर फँस जाते हैं और वहाँ ऋणावेशो की सृष्टि करते हैं। दूसरी ओर, स्वतत्र सिल्वर आयन भी भ्रमण करने लगते हैं और इन इलेक्ट्रॉनो की ओर आकृष्ट होकर उनमे सयुक्त हो जाते हैं तथा उदासीन या अनावेशित (neutral) सिल्वर परमाणु की रचना करते हैं। इस प्रकार दागो की काया वृद्धि होती है और वे इतने विशाल हो जाते हैं कि व्यक्तीकरण क्रिया मे एक नाभिक का कार्य कर सकें।

व्यक्तीकरण (Development)— व्यक्तीकरण के हेतु प्राय दो प्रकार के विकासक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है

(१) भौतिक विकासक द्रव्य — इनके विलयन मे रासायनिक अपचायक एव सिल्वर यौगिक होते हैं, ये विकासक सिल्वर हैलाइडो को अपचयित नही करते, अपितु गुप्त प्रतिविंब पर सिल्वर जमा देते हैं। इस कारण ये व्ययसाध्य हो जाते हैं, अत व्यवहार मे इनका उपयोग बहुत कम किया जाता है।

(२) रासायनिक विकासक द्रव्य — इनमे कोई सिलवर यौगिक नही होता। ये सिलवर हैलाइडो को सिल्वर धातु मे अपचयित कर देते हैं। सिल्वर हैलाइडो के अपचयन की क्रिया सर्वप्रथम गुप्त प्रतिविंब के सुग्राह्यता केंद्रो से प्रारभ होती है, जहाँ से वह चतुर्दिक् वढती जाती है। इस प्रकार विकासक द्रव्य अकार्बनिक या कार्बनिक दोनो किस्म के यौगिक हो सकते हैं। अकार्बनिक मे फेरस ऑक्जैलेट तथा कार्बनिक में फिनॉल (Phenols) और ऐमिनो (amino) वर्ग के यौगिक होते हैं। सन् १९३१ मे ल्युमियर (Lumiere) एव ऐंडरसन (Anderson) ने विकासकों के सवध मे यह नियम प्रतिपादित किया कि इनमे कम से कम दो हाइड्रॉक्सिल वर्ग (hydroxyl group), या दो ऐमिनो वर्ग (amino group), या प्रत्येक का एक एक वर्ग बेंजीन केंद्रक (benzene nucleus) से एक दूसरे के पैरा-(para-) या ऑर्थो-(orthro) स्थितियो मे सलग्न होने चाहिए। कुछेक विकासक तो इस नियम का पालन नही करते, किंतु इस नियम का पालन करनेवालो मे से कुछ अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण तथा अधिकतर प्रयुक्त होनेवाले विकासको के नाम इस प्रकार हैं हाइड्रोक्विनोन (hydroquinone), मोनोमिथाईलपैरामिनोफिनॉल (monomethylparaminophenol) [उपनाम एलान, (elon) मीटॉल (metol)], ऐमिडोल (amidol, 2, 4 diaminophenol), पाइरॉगैलॉल (pyrogallol, 1, 2, 3-hydroxybenzne), और p-फेनिलीन डाइऐमीन (p-phenylenediamene)। सन् १९६१ मे इल्फोर्ड लिमिटेड ने फेनिडोन (phenidone, 1-phenyl-3pyrazolidone) नामक विकासक द्रव्य का निर्माण किया, जो अधिकतर व्यवहार्य अनेक मीटॉल-हाइड्रोक्विनोन विकासकों मे मीटाल (metol) के वडे अश को विस्थापित कर सकता है।

साधारणतया प्रयोग किए जानेवाले विकासको के मुख्य घटक निम्नलिखित होते हैं क्षार या ऐल्कैली (alkali), जो विकास क्रिया को त्वरित करता है। सामान्यत सोडियम कार्बोनेट, या सोडियम मेटाबोरेट तथा सोडियम टेट्राबोरेट, या बोरैक्स (borax) का प्रयोग किया जाता है। केवल ऐमिडोल (amidol) को ही क्रियाशील या प्रभावी होने के लिये किसी क्षार की आवश्यकता नही होती।

विकासक मे सल्फाइड भी एक अनिवार्य घटक होता है, जो विकासक को वायु मे विद्यमान ऑक्सीजन द्वारा ऑक्सीकृत होने से बचाता है। इसके अतिरिक्त यह सिल्वर हैलाइडो के अपचयन की क्रिया मे उत्पन्न होनेवाले ऑक्सीकृत उत्पादो से सयुक्त हो जाता है और उनके हस्तक्षेप से व्यक्तीकरण को कुप्रभावित होने से बचाता है।

लक्ष्य मे समानता होने पर भी विभिन्न व्यावहारिक विकासक अनेक अर्थो मे परस्पर भिन्न होते हैं। यह भिन्नता मुख्यत उनके अवयवो की सांद्रता तथा जिन उद्देश्यो के लिये उनका प्रयोग किया जाता है, उनकी विशेपताओ पर निर्भर करती है। व्यक्तीकरण की गति सामान्यत तापवृद्धि के साथ बढती है, किंतु यह गति विभिन्न विकासकों के लिये भिन्न भिन्न होती है।

जब किसी उद्भासित फिल्म या प्लेट का विकास या व्यक्तीकरण प्रारभ किया जाता है, तब सबसे पहले उनमे कोई परिवर्तन परिलक्षित नही होता। इस अवधि को प्रेरणावधि (Induction period) कहते हैं। इसके पश्चात् ही विकास बडी द्रुत गति से होने लगता है, जिसके कारण उद्भासित क्षेत्र की सघनता बडी तेजी से बढने लगती है, थोडी ही देर मे सघनता वृद्धि की यह गति कम होने लगती है और अत मे रुक जाती है। इसके बाद विकास क्षेत्र का धूमिल (fog) होना प्रारभ हो जाता है। यदि विकासक मे अधिक मात्रा मे मुक्त ब्रोमाइड न हो, तो धुँधलापन प्रारभ होने के पूर्व घनत्व एव विकास काल मे पारस्परिक सबध निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है

$$घ = घ_{\infty} (१ - e^{-कस})$$
$$[D = D_{\infty} (1 - e^{-kt})]$$

जहाँ घ (D) वह घनत्व है, जो स (t) समय तक मे व्यक्तीकरण से विकसित हो जाता है, $घ_{\infty}$ (D_{∞}) घनत्व की वह चरम सीमा है जो पूर्ण विकास मे प्राप्य है तथा क (k) एक स्थिराक है, जिसे विकास का वेग स्थिराक (Velocity Constant) कहते है।

विकासोत्तर क्रियाएँ — विकास के पश्चात् प्लेट को स्थायीकरण (fixing), प्रक्षालन, तथा शुष्कन (drying) और [illegible]

अपचयन अथवा तीव्रताकरण (reduction or intensification), रंग सस्कार (toning) आदि की क्रियाओ से गुजरना पडता है।

स्थायीकरण (fixing) — विकसित फिल्म या प्लेट को विकासक विलयन मे से निकालकर सोडियम थायोसल्फेट या हाइपो,
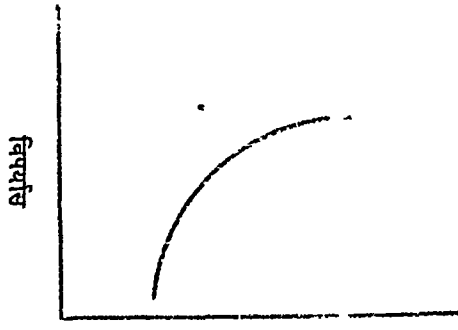
व्यक्तीकरण का समय
चित्र ३.
व्यक्तीकरण (development) के समय के साथ साथ विपर्यास (contrast) की वृद्धि दिखानेवाला वक्र ।

अथवा अमोनियम थायोसल्फेट या अमोनियम हाइपो, के जलीय विलयन मे डाल दिया जाता है, जिससे अपरिवर्तित सिल्वर हैलाइड घुलकर फिल्म से पृथक् हो जाता है। प्लेट के साथ चिपके हुए विकासक द्रव्य द्वारा हाइपो को ऑक्सीकृत होने से बचाने के लिये हाइपो मे कुछ सल्फाइट होना चाहिए और प्लेट के साथ हाइपो तक पहुंचनेवाले क्षार के कारण हाइपो मे भी प्लेट के विकास की क्रिया होती रहती है, जिसे रोकने के लिये हाइपो मे कुछ अम्ल देना चाहिए, जो क्षार को उदासीन बना दे। अम्ल के कारण हाइपो में सल्फर के निक्षेपित हो जाने के फलस्वरूप हाइपो की अस्थिरता का परिहार करने के लिये भी सल्फाइट का हाइपो मे होना नितांत आवश्यक है। इस प्रकार स्थायीकर विलयन मे थायोसल्फेट, सल्फाइट तथा ऐसीटिक अम्ल सदृश निर्बल अम्ल का समिश्रण रहता है। कुछ अधिक क्षार होने पर उसे विराम कुडिका (stop bath), या प्रक्षालन कुडिका (rinse bath) द्वारा स्थायीकरण के पहले ही पृथक् कर लिया जाता है। इस कार्य के लिये पानी या तनु ऐसीटिक अम्ल का प्रयोग किया जाता है।

जिलेटिन को नरम होने से रोकने के लिये स्थायीकारी द्रव्य मे कुछ अम्ल कठोरकारी (acid hardener) पदार्थ भी डाल दिए जाते हैं। साधारणत प्रयुक्त कठोरकारी पदार्थ पोटैशियम और क्रोम ऐलम इत्यादि हैं। उनकी अम्लीयता को बनाए रखने के लिये उनमे बोरिक अम्ल डाल दिया जाता है।

स्थायीकरण मुख्यत हाइपो की सांद्रता और उसके ताप पर निर्भर करता है। सर्वाधिक द्रुत स्थायीकरण लगभग २० से ४० प्रति शत सांद्रता पर होता है तथा अनुकूलतम ताप ६०° से ७०° फारेनहाइट (१५°—२२° सें०) के मध्य में है। साधारणतया फिल्म के स्पष्ट होने के उपरात भी उसे हाइपो मे उतने ही समय तक और रखना चाहिए जितनी देर उसे स्पष्ट होने मे लगी हो। प्रिंट को स्थायी (fix) करते समय तो और भी अधिक देर तक रखना चाहिए।

प्रक्षालन — स्थायीकरण के पश्चात् प्लेट या फिल्म को धोया जाता है, ताकि स्थायीकारी लवण तथा उनसे सिल्वर हैलाइडों के साथ बने हुए विलेय जटिल मिश्रण उसपर से दूर हो जाएँ। यदि उपर्युक्त लवण नही साफ किए जाते, तो प्लेट को कुछ दिन तक रख देने पर प्रतिबिंब का धीरे धीरे गधकीकरण (sulphurizing) होने लगेगा और यदि वे नही हटाए जाते, तो प्लेट के अनुद्भासित क्षेत्र पर धब्बे दृष्टिगोचर होने लगते हैं। प्लेट या फिल्म की धुलाई पानी की मंद धारा मे होनी चाहिए और ताप भी १५° से २२° सें० के बीच मे होना चाहिए। इस ताप से ऊपर जिलेटिन के नरम होने और प्लेट से पृथक् होने का भय उत्पन्न हो जाता है। प्रिंट की धुलाई अपेक्षाकृत अधिक शिथिल गति से होती है, क्योंकि कागज के रेशों मे से लवण के कणों को बहिर्गत होने में कठिनाई होती है। इसलिये प्रिंट की धुलाई के लिये हाइपो प्रतिकारी द्रव्यों का उपयोग वाछनीय है। ऐसे द्रव्यो मे अमोनिया और हाइड्रोजन परॉक्साइड प्रमुख हैं।

शुष्कन — धुली हुई फिल्मों या प्लेटो को स्वच्छ वायु की मद धारा मे सुखा लेना चाहिए। कागज के प्रिंटों को धातु की स्लेटों पर रखकर हलकी आँच दिखाकर सुखाना चाहिए। ऐसा करते समय कागज का पायसवाला पृष्ठ स्लेट की धातु से चिपकाने पर फोटोग्राफ मे चमक आ जाती है।

अपचयन एव सघनन या तीव्रताकरण — प्रतिबिंब का घनत्व रासायनिक विधि से कम किया जाता है। इसके लिये सिल्वर के अश को किसी ऑक्सीकारक की सहायता से घुलाकर पृथक् कर लिया जाता है। इस विधि से अपचयन का परिमाण प्रयुक्त ऑक्सीकारक पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, सघनन के लिये प्रतिबिंब पर सिल्वर, पारा या अन्य उपयुक्त यौगिक को रासायनिक विधि से जमाया जाता है।

सुग्राह्यतामापन (Sensitometry) — यद्यपि इस शब्द से फोटोग्राफी के पदार्थों की सुग्राह्यता के मापन का ही बोध होता है, तथापि अब व्यवहारत इसमें फोटोग्राफी के प्रतिबिंब निर्माण मे प्रयुक्त सभी अवयवों का मापन समाविष्ट हो गया है। हर्टर (Hurter) और ड्राइफील्ड (Driffield) ने फोटोग्राफी के प्लेट की सुग्राह्यता के मापनार्थ एक विशेष विधि का व्यवहार किया, जो आधुनिक सुग्राह्यतामापन विधियों का मूल आधार है। उन्होने उद्भासन, विकासन एव उससे प्रभूत सिल्वर निक्षेप (silver deposit) के पारस्परिक सबधो का अध्ययन किया और उसके आधार पर प्लेट पर पडनेवाले प्रकाश की तीव्रता ती (I) तथा प्लेट से पारगमित प्रकाश की तीव्रता ती' (I') के बीच निम्नलिखित सबध प्राप्त किए

$$\text{घ} = \text{लघु}\frac{\text{ती}}{\text{ती}'}, \text{ या घ} = -\text{लघु}\frac{\text{ती}'}{\text{ती}},$$

$$\left[D = \log\frac{I}{I'} \text{ or } D = -\log\frac{I'}{I} \right]$$

$$\text{पा} = \frac{\text{ती}'}{\text{ती}} \text{ तथा अ} = \frac{१}{\text{प}}$$

$$\left[T = \frac{I'}{I} \text{ तथा } O = \frac{1}{T} \right]$$

जहाँ (D) = घनत्व, अ (O) = अपारदर्शिता (opacity) और

या (T) प्लेट की पारदर्शिता (transparency) है। उपर्युक्त वैज्ञानिक युगल ने घनत्व एव उद्भासन के लघुगणक के सबधो को एक वक्र द्वारा प्रदर्शित किया, जिसे वे लक्षण वक्र (characteristic curve) की सज्ञा देते थे (देखें चित्र ४)। इस वक्र का भाग ब' स' सीधा होने के कारण उद्भासन और घनत्व मे सरल समानुपात व्यक्त करता है। इसे यथार्थ उद्भासन (correct exposure) कहते हैं। इस दृष्टि से अब' न्यूनउद्भासित (underexposed) या टो (toe) एव स'द' अतिउद्भासित (overexposed) या स्कध (shoulder)
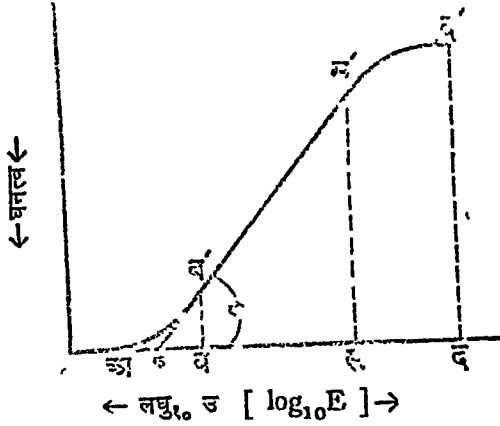
चित्र ४. इमल्शन का लाक्षणिक वक्र

भाग हैं। ऐसे लक्षण वक्रो का उपयोग मुख्यत फिल्म, प्लेट या कागज की सुग्राह्यता या क्षिप्रता (speed) ज्ञात करने के लिये किया जाता है। इसके अतिरिक्त विपर्यास (contrast), उद्भासन के विस्तार (latitude) और टोन (tone) के पुनरुत्पादन का ढग भी इसकी सहायता से ज्ञात किया जाता है। लक्षण वक्र प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उपसाधनो की आवश्यकता पडती है (१) ज्ञात तीव्रता एव स्पेक्ट्रमी गुण का विकिरण उत्पन्न करनेवाला प्रकाशस्रोत, (२) ज्ञात परिमाण के क्रमिक उद्भासनो की शृखला उत्पन्न कर सकनेवाला एक अधिमिश्रक (modulator), (३) मानक विकासन दशाएँ उत्पन्न करने के लिये व्यवस्था, (४) सटीक घनत्व मापन के लिये साधन, और (५) परिणामो की व्याख्या करने की विधि-व्यवस्था। अतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यवहार्य प्रकाशस्रोत टग्स्टन ततु विद्युत् लैंप (tungsten filament electric lamp) होता है, जो २,३६०° K वर्ण ताप (colour temperature) पर कार्य करता है। इसके साथ ही एक वर्ण निस्यदक (colour filter) सलग्न होता है, जिसकी सहायता से लगभग माध्य मध्याह्न सौर प्रकाश के सदृश स्पेक्ट्रमी गुणसपन्न प्रकाश (लगभग ५,४००°K) प्राप्त होता है। सुग्राह्यतामापी मे प्रकाशस्रोत एव उद्भासन अभिमिश्रक सयुक्त रहते हैं, जिससे सोपानवत् क्रमवृद्धि मे, या निरतर क्रम मे, उद्भासन प्रदान किया जा सकता है। सुग्राह्यतामापी या तो तीव्रता पैमाना, या काल पैमाना, यत्र होते हैं और इनमे से किसी का प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि तीव्रता या समय दोनो मे से कौन चर तत्व है। उत्तम सुग्राह्यतामापी निरतर उद्भासन तीव्रता पैमाना प्रकार का ही होता है।

घनत्व सघनतामापी (densitometer) द्वारा मापा जाता है, जिसमे प्रकाश की तीव्रता ध्रुवणकारक (polarising) युक्तियो द्वारा मापी जाती है, यथा मार्टेन का ज्योतिर्मापी (Marten's photometer)। कुछ सघनतामापी तो केवल तुलना करनेवाले यत्र (comparator) मात्र होते हैं, जिनमे परीक्षणीय सघनता को ज्ञात मान की मानक सघनताओ के साथ तुलना की जाती है। मापन की सुविधा के लिये अनेक नए प्रकार के सघनतामापियो मे नेत्रो के बदले प्रकाशविद्युत् सेलो का प्रयोग किया जाता है।

जब प्रकाश किसी नेगेटिव में से होकर गुजरता है, तब उसका कुछ भाग तो पार निकल जाता है और कुछ प्रकीर्ण अथवा विसरित हो जाता है। यदि पारगमित, प्रकीर्ण तथा विसरित प्रकाश अशो को एकत्र करके सघनता मापी जाय तो प्राप्त परिणाम को विसरित सघनता (diffused density) कहेगे। केवल पारगमित प्रकाश द्वारा यदि सघनता मापी जाय तो उसे चक्षु दृश्य (specular) सघनता कहेगे। विसरण सघनता का मान अधिक होता है और चक्षु दृश्य सघनता से वह कोलियर के Q गुणाक (Collier's Q factor) का अनुपात रखता है। कोलियर का यह गुणाक घनत्व के व्युत्क्रमानुपाती होता है और भिन्न भिन्न पायस के लिए इसका मान भी भिन्न भिन्न होता है। सर्वाधिक सतोपजनक एवं पुनरुत्पादनीय विसरक माध्यम एक समाकलन-गोला (integrating sphere) होता है। कागज पर ली हुई छापो (prints) मे सघनता परावर्तित प्रकाश द्वारा मापी जानी चाहिए। सामान्य दशाओ मे इस प्रकार प्राप्त सघनता निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त की जाती है

$$घ_{प} = लघु\ १/प \quad [\ D_R = \log 1/R\ ]$$

जहाँ $घ_{प}$ = परावर्तित प्रकाश से प्राप्त सघनता है

$$और\ प = लघु \left(\frac{कागज\ द्वारा\ परावर्तित\ प्रकाश}{बिंब\ द्वारा\ परावर्तित\ प्रकाश} \right)$$

टोन पुनरुत्पादन (Tone Reproduction) — इसका तात्पर्य उस मौलिक फोटोग्राफिक पुनरुत्पादन से होता है जो प्रेक्षक के मन मे वही सवेदनाएँ उत्पन्न करता है, जो मूल दृश्य को देखने से प्रेक्षक मे उत्पन्न होती हैं। यह ज्योतिर्मयता (luminance) और ज्योतिर्मयता अतर (luminance differences) तथा फोटोग्राफ मे सघनता और सघनतातरों पर निर्भर करता है। टोन पुनरुत्पादन की यह क्रिया कई बातो पर निर्भर करती है, यथा वस्तु से आगत प्रकाश की तीव्रता, कैमरा मे तीव्र अस्थिर प्रकाश (flare light), स्पेक्ट्रमी सुग्राह्यता, उद्भासन, व्यक्तीकरण, नेगेटिव के पदार्थ के लक्षण वक्र की आकृति, मुद्रक तथा आवर्द्धक (enlarger) के प्रकार तथा उनमे तीव्र अस्थिर प्रकाश, प्रिंट के उद्भासन, व्यक्तीकरण, प्रिंट के हेतु प्रयुक्त पदार्थ इत्यादि।

वर्ण फोटोग्राफी (Colour photography) — स्थानाभाव के कारण फोटोग्राफी की इस महत्वपूर्ण एव सर्वाधिक चित्ताकर्षी विधा पर अधिक विस्तार से लिखना तो सभव नही होगा, किंतु कुछ अपेक्षाकृत आवश्यक वृत्तात्मक विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

किसी दृश्यावलि का उसके सहज प्राकृतिक रगो मे ही फोटोचित्र प्राप्त करने की प्रक्रिया सामान्य विचार से अत्यत दुःसाध्य प्रतीत होती है, क्योंकि प्रकृति रगों की विविधता का भडार है और उन सबको

पुनरुत्पादित कर सकने की किसी भी प्रक्रिया में असंख्य रंजकों (dyes) की आवश्यकता पड़ सकती है, किंतु वस्तुत ऐसी बात नहीं है। किसी भी रंग का प्रकाश तीन प्राथमिक, यथा लाल, हरा और नीला, रंगों के प्रकाश के यथोचित अनुपात में संयोग द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। यद्यपि बहुधा इस प्रकार उत्पन्न रंग में प्राकृतिक रंग से पूर्ण सादृश्य नहीं हो पाता, फिर भी अवशिष्ट अंतर बहुत ही सूक्ष्म होता है। आधुनिक वर्ण फोटोग्राफी की कला पर्याप्त विकसित हो चुकी है। व्यावसायिक स्तर पर चलचित्रों में व्यवहृत टेक्निकलर प्रक्रिया अत्यंत उत्कृष्ट एवं समुन्नत वर्ण फोटोग्राफी का एक ज्वलंत प्रमाण है। इसकी सफलता इसी तथ्य से प्रगट हो जाती है कि प्रति वर्ष पाँच करोड़ फुट से भी अधिक लंबाई की फिल्में इस प्रक्रिया द्वारा तैयार की जाती हैं। इसमें एक ही लेंस से तीन पृथक् नेगेटिव लिए जाते हैं और वे एक ही पाज़िटिव फिल्म के रूप में परस्पर संयुक्त कर लिए जाते हैं और उसे सामान्य फिल्मों की ही भाँति प्रदर्शित किया जा सकता है।

वर्ण फोटोग्राफी की सर्वोत्कृष्ट प्रक्रिया कोडाक्रोम (Kodachrome) है, जिसका आविष्कार ईस्टमैन कोडैक लेबोरेटरीज ने किया है। यह प्रक्रिया वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तो बहुत जटिल है, किंतु व्यवहार में अत्यंत सुगम है। इसमें एक विशेष प्रकार की फिल्म का प्रयोग किया जाता है, जिसमें सेलुलोस नाइट्रेट या ऐसीटेट पर जिलेटिन और पायसों की पाँच अत्यंत पतली तहें एक दूसरी पर स्थापित होती हैं और इन सबकी मोटाई मिलाकर भी सामान्य फिल्म की मोटाई से अधिक नहीं हो पाती। इनका क्रम इस प्रकार होता है सेलुलोस पर अर्थात् सबसे नीचे, लाल वर्ण सुग्राही पायस की परत होती है और उसके ऊपर जिलेटिन की विशेष प्रकार की पतली परत होती है, जो केवल लाल रंग के प्रकाश को ही पार होने देती है। इसके ऊपर हरा वर्ण सुग्राही पायस की परत होती है, जिसमें से लाल प्रकाश पार हो जाता है, और उसके ऊपर जिलेटिन की ऐसी परत होती है, जो केवल हरे और लाल रंग के ही प्रकाश को पार होने देती है। सबसे ऊपर नीला वर्ण सुग्राही पायस होता है। फिल्म पर आपाती प्रकाश में विभिन्न वर्णों के प्रकाश की तीव्रता जैसी होती है, उसी के समानुपातिक संमिश्रण से प्रभावित हो कर फिल्म नेगेटिव का निर्माण होता है।

इस क्रिया में नेगेटिव निर्माण से कहीं अधिक जटिल कार्य उसका पॉज़िटिव रूप में विकास है। चार पृथक एवं क्रमानुसार नियोजित व्यक्तीकरण क्रियाओं एवं उनके बीच में अनेक रंजक क्रियाओं (dyeing processes) के अनंतर ही कहीं जाकर पॉज़िटिव बिंबों के तीन सेट एक ही फिल्म पर बनते हैं, जिनमें सबसे ऊपर पीला, बीच में मैजेंटा (magenta) और सबसे नीचे नील-हरा (blue green) होता है। ऐसे फिल्मों पर जब श्वेत प्रकाश डाला जाता है तो ये प्राथमिक रंग उचित अनुपातों में परस्पर मिलकर वस्तु के रंगों को पुनरुत्पादित करते हैं। [सु० च० गौ०]

फोटोग्राफी कला (Photographic Art) ललित कलाओं में चित्रकला का विशेष तथा प्रमुख स्थान है। संगीत श्रवण की इंद्रिय द्वारा तथा चित्रकला दृष्टि की इंद्रिय द्वारा हृदय की तंत्रियों को झंकृत कर आनंद का सृजन करती है। जिस प्रकार चित्रकला (तैलचित्र, रंगीन चित्रकारी, वाटर कलर छायाचित्र आदि) मनुष्य की रचनात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार फोटोग्राफी भी (कैमरा पोर्ट्रेट, रंगीन फोटो, प्रकाश-छाया से सजाए गए फोटो आदि के द्वारा) चित्रकला के समान ही, कला के रूप में विकसित हो चुकी है, क्योंकि इसके द्वारा भी मनुष्य की रचनात्मक योग्यताओं की अभिव्यक्ति की जाती है।

अब फोटोग्राफी कुछ सौभाग्यशालियों की ही कला नहीं रही, वरन् असंख्य लोगों की कला बन गई है। फोटोग्राफीय चित्रण (portraiture) ललित कलाओं की उस सर्वोत्तम विशिष्टता की श्रेणी में आता है जिसे मनुष्य की आविष्कारात्मक प्रवृत्ति ने जन्म दिया है।

इस कहावत के बावजूद कि 'फोटोग्राफ कभी झूठ नहीं बोलता', एक फोटोग्राफ की रेखाओं को बदल देने के लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। फोटोग्राफी में तीन-विमितीय (three dimensional) संसार को दो-विमितियों में प्रदर्शित करना पड़ता है। बिंब तथा वस्तु के आकारों का अनुपात लेंस की फोकस दूरी के अतिरिक्त लेंस से वस्तु की दूरी पर भी निर्भर करता है। चूँकि वस्तुओं को एक ही समय में दो आँखों से देखा जाता है, इस कारण हमें वस्तु की आँख से दूरी का अंदाज लगाने एवं आँख के पर्दे पर बने बिंब के आकार का अर्थ लगाने में, सहायता मिलती है। साथ ही वस्तु के ठोसपन (solidity in relief) का ज्ञान हो जाता है। फोटोग्राफ में सापेक्षिक आकार के अर्थ लगाने का ऐसा कोई आधार नहीं है, इसी लिये कैमरे को ऊपर की ओर बहुत अधिक टेढ़ा कर नीचे से किसी गगनचुंबी भवन का चित्र गिरता दिखता है। पर रेखाओं की यह अशुद्धि युग्म त्रिविम कैमरा (stereoscopic camera = आँखों के समरूप स्थित, दो लेंसोंवाला कैमरा) के द्वारा फोटो खींचने पर लोप हो जाती है। आँख के दृष्टिपटल पर बना बिंब न केवल विकृत अपितु उलटा भी होता है, तो भी अभ्यास के द्वारा हम लोगों ने इस त्रुटि पर ध्यान न देना सीख लिया है।

अपने चित्र को बनाते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दृश्य के एकाकी बिंदु से निरीक्षण तथा एकाकी चित्र से हमारा प्रयास परिसीमित हो जाता है। द्विनेत्रीय दर्शन से न देखी जा सकनेवाली रेखाओं की त्रुटियों को सदा दूर करना वाछनीय है।

फोटोग्राफ के सदर्श (perspective) को सुधारने के ढंग — ऊँचे भवनों के फोटोग्राफ में परिलक्षित त्रुटि को दूर करने के लिये प्लेट या फिल्म को भवन की ऊर्ध्वाधर रेखाओं के समांतर तथा लेंस के अक्ष के लंबवत् सेट कर देना चाहिए। इसके द्वारा लेंस अक्ष के लंबवत् एक तल दूसरे समांतर तल में प्रतिबिंबित हो जाता है, और इसी स्थिति के लिये आधुनिक लेंस बनाए भी जाते हैं। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए दो युक्तियाँ हैं एक तो कैमरे के सामने वाले ढाँचे को ऊपर या नीचे करने वाला उत्तोलक (lever) है। इसी ढाँचे में लेंस फँसा रहता है। इस प्रकार फिल्म लेंस-अक्ष के लंबवत् भी बनी रहती है तथा विषयवस्तु (subject) के अधिक ऊँचे या अधिक नीचे बिंदु दृश्य-क्षेत्र में लाए जा सकते हैं तथा इस प्रकार दृश्य क्षेत्र के किनारे के भागों पर प्रकाश की तीव्रता बढ़ाई घटाई जा सकती है। दूसरी युक्ति एक ऐसे उत्तोलक का उपयोग है, जिसके द्वारा फिल्म को एक क्षैतिज धुरी के चारों ओर घुमाया जा

सकता है, पर इसके फलस्वरूप फिल्म लेंस के अक्ष के लववत् नही रहने पाता तथा फोकस की शुद्धता नष्ट हो जाती है, जिसके कारण द्वारक घटाना पडता है ताकि विषयवस्तु की स्पष्टता वनी रहे, पर 'आलोक की तीव्रता' पर कोई प्रभाव नही पडे ।

कुछ अन्य उत्तोलक भी हो सकते हैं, जैसे सामने के ढाँचे को झुकानेवाला तथा पीछे के भाग को झुकाने वाला (swing back), दोनो ही मौजूद हो तो एक उभरता अग (rising front) के समतुल्य है। इसके द्वारा विषय वस्तु की ऊर्ध्वाधर रेखाओ पर नियंत्रण रखा जा सकता है तथा क्षैतिज रेखाओ पर नियत्रण के लिये एक अन्य ऐसा उत्तोलक होता है, जो लेंस अथवा फिल्म को एक ऊर्ध्वाधर अक्ष के चारो ओर घुमा सकता है, अथवा क्षैतिजवत् विस्थापित कर सकता है ।

लघु (miniature) कैमरो के द्वारा खीचे चित्रो के विकारो को, 'निगेटिव को विर्वधित करते समय 'प्रिंटिंग कागज' को फँसानेवाले फ्रेम को कुछ झुकाकर दूर किया जा सकता है, पर उचित स्पष्टता के लिये द्वारक छोटा रखना पडेगा । इस झुकाव का प्रभाव 'विपरीत' दिशा मे त्रुटि डालने के समान है। वैसे अधिक सरल उपाय यह होगा कि 'विवर्धक' (enlarger) मे पश्चझुलन तथा झुकानेवाले लीवर लगे हो ।

विवर्धन करने के लिये यदि चित्र को १६ इच की साधारण दूरी पर रखकर देखना हो, तो आवर्धन या विवर्धन निष्पत्ति (magnification or enlargement ratio) = 16/f, हो जहाँ f लेंस का फोकस है। यदि (लघु कैमरो मे) f = २ इंच हो, तो M = ८ गुणा होगा । यदि १$\frac{3}{8}$ = ११/८ इच फ्रेम की कुल लवाई हो, तो प्रिंट ११ इच लवा होगा । पर व्यावहारिक रूप मे विवर्धित चित्र दो परिचित आकारो ८ × १० इच अथवा ११ × १४ इच मे वनाना ही अधिमान्य (preferable) है, ताकि चित्र विषयवस्तु की अनुभूति उचित परिशुद्धता के साथ प्रदर्शित कर सके। इन आकारो की इतनी सर्वप्रियता का कारण यह है कि सुविधानुसार देखने पर यह वही दृष्टिकोण वनाते हैं जैसे कि अधिकतर कैमरे और इस प्रकार शुद्ध सदर्श की शर्त पूरी कर देते हैं ।

यदि विवर्धन ५ × ७ इच के प्रिंट पर होगा तो दृश्यक्षेत्र (तथा दृष्टि-कोण भी) छोटा हो जायगा । दूर के पर्वत अथवा ऊँचे भवनो का चित्र अपनी प्रभावशीलता खो देगा । पर कितावो के चित्र आदि मे यह त्रुटि नही रहेगी और उसके ५ × ७ इच, या इससे भी छोटे, चित्र वनाए जा सकते हैं। इसके लिये लवे फोकस वाले (फलस्वरूप छोटे कोण वाले भी) लेंस (f = ८५ या ९० मिमी०) उपयोग मे लाने चाहिए, जव लघु कैमरा २५ × ३६ मिमी० हो। वही प्रभाव चित्र के केवल कुछ भाग का उपयोग करके, तथा शेष को काटकर भी किया जा सकता है, ताकि वही दृष्टिकोण वने। पर वैसे लवे f, इस कारण छोटे दृष्टिकोण वाला लेंस, छोटे f, तथा इस कारण अधिक विवर्धन वाले, ताल की अपेक्षा अधिक अच्छे चित्र वनाएगा । छोटे f वाले लघु कैमरो मे लवे f वाले लेंस की तुलना मे । [illegible] तथा पायस की विभेदनक्षमता की सीमा कम होती है ।

दृश्यभूमि (landscape) फोटोग्राफी — अव तक यह वात मान ली गई थी कि विषयवस्तु का दिग्दर्शन उतनी शुद्धता से कराना है जितनी सभव हो, परतु सदा इसी वात की कामना नही होती। फोटोग्राफर का उद्देश्य यह भी हो सकता है कि विषयवस्तु का सच्चा सीधा वर्णन करने अथवा अर्थ समझाने की अपेक्षा वह स्वयं अपनी कहानी वताना चाहता हो। उदाहरण के रूप मे यदि पहाडो को सीधे-सच्चे रूप मे प्रदर्शित किया जाय, तो चित्र देखने वालो पर वास्तविक स्थिति का भावात्मक प्रभाव नही पडेगा, क्योंकि दृष्टिकोण छोटा है। ११ × १४ इच के प्रिंट के लिये आवश्यक फोकस वाले लेंस की अपेक्षा वडे फोकस वाला लेंस उपयोग मे लाकर पर्वत द्वारा वने दृष्टिकोण को विवर्धित किया जा सकता है तथा तुलना के लिये परिचित वस्तुएँ, जैसे वृक्ष, जानवर, मनुष्य आदि, को भी चित्र मे स्थान देकर प्रभाव को तीखा वनाया जा सकता है, ताकि पर्वत और अधिक ऊँचा दिखाई पडे। दूरस्थ पर्वत तथा निकटस्थ वस्तु के सापेक्षिक आकार पूर्णरूपेण फोटोग्राफर के नियत्रण मे हैं — पर्वत का आकार लेस के फोकस द्वारा तथा निकटस्थ वस्तु का आकार कैमरे से दूरी द्वारा निर्धारित होते हैं। उचित सदर्श का चयन परमावश्यक है। होटल, फैक्टरी या समेलन गृह का पर्याप्त छोटे सदर्श द्वारा प्रदर्शन, ताकि वह वास्तविकता से अधिक वडे या भव्य दिखाई दें, वाछनीय नही है।

एक अन्य वात भी है, जिसके विचार से भी त्रिविमीय ससार को द्विविम मे प्रदर्शित करने मे फोटोग्राफ के गुण पर प्रभाव पडता है। चूँकि कैमरे से विभिन्न दूरियो की वस्तुएँ लेंस के पीछे विभिन्न दूरियो पर विंव वनाती है, इस कारण एक तल पर स्थित वस्तुएँ तो साथ साथ फोकस की जा सकती हैं, पर इस तल से परे या पूर्व स्थित वस्तुएँ फोकस के वाहर तथा धुधली हो जाएँगी । इसी कारण एक त्रिविमीय ठोस वस्तु का चित्रण सतोषजनक नही होगा। यद्यपि आँख के द्वारा भी वैसा ही त्रुटिपूर्ण विंव वनता है, पर चूँकि आँख अपना फोकस वहुत शीघ्रता से वदल लेती है इसलिये यह कुछ क्षणो मे ही सारे दृश्य क्षेत्र का सर्वेक्षण कर लेती है और ठोस वस्तु का व्यौरा (details) जान लेती है। पर यदि वडे फोटो मे ऐसे समस्त व्यौरे न आ पाएँ तो उसे एक वडा दुर्गुण ही कहा जाएगा।

रूपचित्रण (Portraiture) — कुछ परिस्थितियो मे उपर्युक्त दुर्गुण भी एक लाभ सिद्ध होता है, जैसा कि रूप चित्र लेते समय। रूप चित्र लेते समय केवल सीमित दूरियो के परास को ही 'तीखे रूप से' चित्रित करने की आवश्यकता होती है तथा समस्त पृष्ठ-भूमि मे पडी सामग्री पूर्णरूपेण फोकस से वाहर फेंकी जा सकती है। ऐसा स्नैपशॉट (snap shot) लेते समय वडा द्वारक लेकर किया जा सकता है । पर दृश्यभूमि के चित्रण मे जहाँ पर व्यौरे प्राय अनवरत (continuously) फैले होते हैं, यह प्राय सभव नही होता कि अवाछनीय सामग्री को विना अन्य स्थानो में धुंधलापन लाये पूर्णतया फोकस से वाहर कर दिया जाय।

'फोकस' की गहराई उस दूरी की माप को वतानी है, जिससे यदि फिल्म को सही फोकस से विस्थापित कर दें, तव भी चित्र

साफ, तीखा दिखाई पडनेवाला प्रतिबिंब बनाएगा। इससे अधिक महत्वपूर्ण राशि 'क्षेत्र की गहराई' है जो उन दूरियों के परास के बराबर है, जिसके अंदर वस्तु स्थित करने से सदा समान तीखेपन का प्रतिबिंब बनेगा। एक लघु कैमरे के लिए 1/5 सेकंड तथा एक साधारण कैमरे के लिये 1/100 सेकंड के पर्दा उद्भासन काल (exposure time) की आवश्यकता पडेगी, ताकि समान दृश्यक्षेत्र की गहराई प्राप्त हो सके। एक लघु कैमरे से रूप चित्र खीचने के लिये ५ इंच फोकस-वाला लेंस श्रेष्ठ रहता है।

विषयवस्तु की व्यवस्था (Arrangement of subject material) — फोटोग्राफर को उस वस्तु या दृश्य का चित्र खीचना पडता है, जो उसके सामने आता है, परंतु उसे एक त्रिविमीय संसार को द्विविम में चित्रित करना पडता है। इस कारण उसको पर्याप्त अधिकार इस बात पर प्राप्त रहता है कि वह निर्णय कर सके कि उसका अंतिम चित्र क्या रूप ग्रहण करेगा। न केवल वह निकटस्थ या दूरस्थ वस्तुओं के सापेक्ष आकारो पर उचित फोकस के चुनाव के द्वारा नियंत्रण रख सकता है, अपितु वह अपने दृष्टिकोण के चुनाव के द्वारा अपनी कृति में विभिन्न वस्तुओं की सापेक्ष स्थिति का भी निर्धारण कर सकता है, विशेषकर निकटस्थ वस्तुओं तथा पृष्ठ-भूमि में स्थित वस्तुओं की स्थिति के बारे में। फोटोग्राफर के लिये उस उचित दृष्टिकोण का निर्णय करना कठिन कर्म है जिससे सर्वोत्तम चित्र प्रस्तुत हो सकता है, यद्यपि व्यक्ति को यह बोध वर्षों के अनुभव एवं अभ्यास से होता है, तो भी 'विषय को तरतीब' देने के कुछ 'गुर' कोई भी सीख सकता है।

एकता (Unity) — चित्र तभी प्रभावकारी हो सकता है, जब उसका कोई उद्देश्य हो, अथवा उसमें कोई संदेश निहित हो। पर कुछ व्यक्त करने के प्रयास में मुख्य विषय से असंबंधित बातो का बहुत अधिक वर्णन अवांछनीय है। चतुर फोटोग्राफर को उचित विषयो को चुनकर, निरर्थक ध्यान खीचने वाली बातो को दबा देना चाहिए। बहुत सी तरकीबो में से सबसे सरल यह है कि अवांछनीय सामग्री को किनारों से काट दिया जाय। यह उद्देश्य दृष्टिकोण को घटाकर प्राप्त किया जा सकता है। कुछ सर्वश्रेष्ठ चित्र इसी प्रकार छोटे कोणो के द्वारा प्राप्त किए गए हैं। इस कार्य के लिये लंबे फोकस वाले लेंस, अथवा परिवर्तनीय लेंसो के अकेले तत्व उपयोगी है। प्रतीति सदर्श के नियमो को त्यागकर, सामग्री को एक छोटे कोण में ऐसा फँसाए कि वह संपूर्ण चित्रस्थान को भर ले। कभी कभी तो किसी नेगेटिव के छोटे छोटे अंगो को, जिनमें चित्र जैसा महत्व अथवा प्रभाव हो, काटकर तथा परिवर्धित करके सुंदर चित्र बनाए जा सकते हैं।

विषयसामग्री की स्थिति — सुंदर फोटोग्राफ में केवल एक मुख्य भाव ही छाया रहना चाहिए। यह भाव प्राय कुछ विशेष वस्तुओ, अथवा प्रमुख आकर्षण के क्षेत्रो, के ऊपर ही केंद्रित रहता है। इन क्षेत्रों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ लोग कहेंगे कि प्रमुख वस्तु को चित्र के केंद्र में स्थित करना चाहिये, पर अनुभव यह सिद्ध कर देगा कि उससे प्रभावकारिता कम हो जायगी। केंद्र तथा किनारे-वाले, दोनो क्षेत्र अपेक्षाकृत कमजोर हैं और बहुत से अच्छे चित्रो के अध्ययन करने से सिद्ध हो जायगा कि चतुर कलाकार अपनी सबसे प्रमुख वस्तु को नीचे चित्र में दिखाए गए चार बिंदुओं में से एक में स्थित करना चाहेगा। ये बिंदु उन रेखाओं के कटान बिंदुओं पर पडते हैं जो समस्त चित्र को प्रत्येक दिशा में तीन समान पट्टियों में बाँट देती है। न केवल इन कटान बिंदुओं पर प्रमुख बिंदुओं को प्रभावोत्पादक ढंग से स्थित किया जा सकता है, अपितु चित्र के विभिन्न भागों के लिये स्थान बाँटने में इन रेखाओं को सीमारेखा के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में समुद्र का चित्र लेते समय आधा समुद्र एवं आधा आकाश को स्थान देने की अपेक्षा दो तिहाई समुद्र तथा एक तिहाई आकाश (या इसके विपरीत 2/3 आकाश व 1/3 समुद्र) को स्थान देना अधिक वांछनीय होगा। केवल एक रंगवाले (monochrome) चित्र में चरम उच्च प्रकाश (extreme high light) तथा चरम छायाएँ तुरंत ध्यान आकर्षित करती हैं। इसी कारण फोटोग्राफी का यह एक नियम है कि इन्हे संघटन कृति (composition) के प्रमुख भागो में ही पाया जाना चाहिए। इस काम के लिये सफेद एवं काले दोनों रंग प्रयुक्त हो सकते हैं।
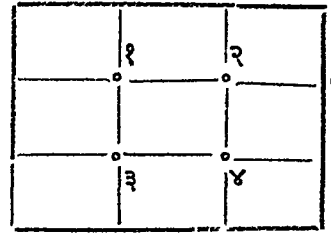
प्रमुख वस्तुओं को स्थित करने के लिये वरीय स्थान १, २, ३, ४

संतुलन — चित्र में प्रत्येक वस्तु का कुछ भार (weight) होता है, जो चित्र के आकार, टोन (tone) तथा संघटन के महत्व पर निर्भर करता है। इस भार को चित्र के वामार्ध (left half) तथा दक्षिणार्ध (right half) में समुचित रूप से बँटा रहना चाहिए, अन्यथा चित्र में 'संतुलन' न रहेगा। इसके लिये गुर या नियम नही बताए जा सकते, पर प्रत्येक फोटोग्राफर को अपने चित्र की इसी दृष्टिकोण से आलोचना करके त्रुटियाँ खोजनी चाहिए। प्राय चित्र में एक तरफ कुछ काट छाँटकर 'चित्रमय' सामग्री की 'मात्रा' का समुचित संतुलन कर, चित्र को सुंदर एवं हृदयग्राही बनाया जा सकता है, क्योकि प्राय 'अक्ष' या केंद्र से कुछ मिलीमीटर ही 'प्रमुख वस्तु' की मात्रा (mass) खिसका देने पर (एक तराजू के समान ही) उस चित्र की प्रभावोत्पादकता बढ जाती है। इस कार्य में प्रकाशमय तथा अंधकारमय मात्राओं की अक्ष से दूरियाँ प्रमुख कार्य करती हैं, पर साथ ही मनोवैज्ञानिक कारणो को भी न भुला देना चाहिए।

चित्र का सर्वेक्षण — चित्र का निरीक्षण करते समय 'उच्च प्रकाश' के स्थान सबसे पहले ध्यान खीचते हैं। यदि चित्र में समान महत्व के ऐसे बहुत स्थान हुए, तो 'उलझन' उत्पन्न हो जाएगी तथा चित्र बुरा लगेगा। अच्छे चित्रो के समान ही, आँख जब प्रमुख वस्तु पर खिंच जाय, तो चित्रकार को पूरा चित्र दिखाने के लिये सरल पथ [जैसे प्रकाश तथा छाया की 'सीढियों' के द्वारा, अथवा अधिक प्रत्यक्ष रूप में 'पथप्रदर्शक रेखाओ '(leading lines) के द्वारा] प्रदान करना चाहिए। पेड के तने, राजपथ, समुद्र के किनारे की रेखा, क्षितिज, या परछाईं का सिरा, चित्र की सैर कराने में आँख का पथप्रदर्शन कर सकते हैं। जब आँख घूमते घूमते किनारे पहुँच जाय तो उसे वापस लौटा लाने का एक रास्ता भी होना चाहिए, ताकि दृष्टि पर्याप्त समय तक चित्र मे ठहरी रह सके।

त्रिभुजाकार रचनाएँ (Triangular Compositions) — एक विधि यह है कि यदि रचना की प्रमुख रेखाएँ मोटे तौर पर एक त्रिभुज बनाती हो, जिसमे एक क्षैतिज (या लगभग क्षैतिज) आधार हो, तो आँख इन्ही रेखाओ के द्वारा विषय सामग्री पर घूमती रहेगी और उसके भटकने का डर न रहेगा। यह रचना रूपचित्रो मे प्रयुक्त होती है। इसमे मुख का कोई प्रमुख भाग त्रिभुज का शीर्ष बनाता है और इसे इतना आलोकित किया जाता है कि नजर तुरत इसपर खिच जाए।

सुरंग जैसी (tunnel or vista) रचना तथा सर्पिल रचना — चित्र के विषय को या तो अडाकार घेरे (ellipse) मे बनाया जाता है अथवा सपूर्ण सीमा की रेखाओ (margin) के वर्णों (tone) को इतना घटाया जाता है कि आँख के भटकने का डर ही न रहे। इस प्रकार की सुरग जैसी, या दूर सिमटती हुई, रेखाएँ (जैसे किसी निर्जन वनस्थली मे दूर सिमटती सडक की रेखाएँ) चित्र को एक 'गहराई' तथा 'नमनीयता' (plasticity) का भाव प्रदान कर देती हैं। इसी कारण इनका चित्रण मे विशेष महत्व है। कभी कभी सर्पिल रेखाएँ, जो किसी नदी के किनारो की हो सकती हैं, सर्पिल पथ के साथ घूमती तथा सीमा बनाती हुई चित्र मे सौंदर्य का सृजन कर सकती हे।

विकर्ण जैसी (diagonal) रचना तथा अभिसारी (converging) रेखाएँ — विकर्ण जैसी रचना कुछ कम सतोषप्रद, पर सभवत अधिक प्रयोग मे लाई जानेवाली रचना है। इस रचना मे पथप्रदर्शक रेखाएँ बाएँ हाथ के ऊपर के कोने से दाहिने हाथ के नीचे के कोने तक विकर्णवत् (diagonally) चलती है और प्राय बहुत कम नीचे के बाएँ कोने से ऊपर दाएँ कोने की ओर। यद्यपि ऐसी रचना मे आँख के बाहर चले जाने की सभावना रहती है, तथापि अन्य बिंदुओ की अपेक्षा कोने मे चित्र को छोड देना सभवत इस कारण इतना गभीर नही है कि चित्र के किनारे वापस लौटने का मार्ग प्रदान करते हैं। कारण जो भी हो, यह रचना फोटोग्राफरो मे बडी सर्वप्रिय प्रतीत होती है। प्राय विकर्ण मोटे तौर पर चित्र को आकाश तथा अग्रभूमि (foreground) सामग्री मे विभाजित कर देती है। एक अन्य रचना, जिसमे दृष्टि के बाहर चले जाने की सभावना बनी रहती है, अभिसारी रेखाओ की है। इसमे बहुत सी रेखाएँ एक आकर्षण केंद्र की ओर अभिसारित होती हैं और इस प्रकार दृष्टि को बाहर की अपेक्षा अदर की ओर इन रेखाओ के साथ चलने पर बाध्य कर देती हैं। यह युक्ति प्राय गलियो या सडको के दृश्यो मे उपयुक्त होती है।

धारण क्षमता — चित्र की प्रभावोत्पादकता कुछ अशो मे साधारण से अधिक अतर पर देखे जाने पर ध्यान खीचने की धारण क्षमता (carrying power) द्वारा आँकी जाती है। इस गुण की प्राप्ति के लिये रचना का मुख्य विषयचित्र बडा तथा प्रकाश एव छायावाले बडे बडे भागो के रेखाचित्रो से परिपूर्ण होना चाहिए। इसके लिये फोटोग्राफर को दिन के प्रथम अथवा अतिम भाग मे, जब लबी छायाएँ पडती हैं तथा छायाएँ व प्रकाश के बडे खड प्रदान कर देती हैं, तभी चित्र खीचना चाहिए, केवल उलझाने वाला (जटिल) नमूना, अथवा 'उच्च प्रकाश' के स्थानो की अधिकता ही पर्याप्त नही है। साथ ही उसे यह आदत भी बनानी चाहिए कि 'यथार्थ जीवन' मे निरर्थक, पर द्विविमितीय चित्रकारी मे 'छा' जानेवाले समस्त ब्यौरो का वह निरीक्षण कर सके।

उचित अपचायक के प्रयोग से धुले हुए प्रिंट से छायाओ की तुलना में 'उच्च प्रकाश' के स्थानो को अधिक शीघ्रता से दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार आलोक तीव्रता (intensification) की क्रिया द्वारा किसी 'अपूर्ण रूप से धुले' प्रिंट में सशोधन व सुधार लाया जा सकता है। इस कार्य के लिये सर्वोत्तम 'क्रोमियम आलोक तीव्रक' (chromium intensifier) है।

रग सस्कार (Toning) — साधारणतया सबसे अधिक चित्ताकर्षक एकरगी प्रिंट वह है, जिनका रग पूर्ण काला (neutral black), भूरा काला अथवा नीला काला होता है। सर्वाधिक चित्ताकर्षक कागज पर छपे प्रिंटो का रग बिलकुल सफेद से लेकर पाड रग (buff) तक जाता है। प्रिंट के रग का चुनाव मुख्यतया विषयवस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है — 'हिमदृश्य' के लिये सफेद कागज पर काले, अथवा नीले काले रग की आवश्यकता पडती है, जब कि भवन जैसी विषयवस्तु, अथवा रूपचित्र, के लिये पाडु (buff) रग पर कुछ 'गरम टोन' (warm tones) सुदर कार्य करेंगे। आजकल कागजो पर ब्रोमाइड तथा क्लोरोब्रोमाइड पायस उपलब्ध है, और वह भी विभिन्न टोन (tones) तथा कण रचना के। इन कागजो पर 'टोन की ऊष्मा' आशिक रूप में पायस पर तथा आशिक रूप मे 'डेवलपर' (developer) पर निर्भर करती है। सबसे नीले टोन ब्रोमाइड पेपर पर ऐमीडोल के प्रयोग द्वारा तथा सबसे 'गरम भूरे काले' टोन क्लोरो ब्रोमाइड पेपरो (जैसे kodalure) पर और D-52 जैसे 'डेवलपरो' के प्रयोग द्वारा प्राप्त होते हैं। और अधिक गाढे रग विशेष टोनिंग की विधियो (जैसे Gold thiocarbamide toner, Selenium toner, Sulphide toner आदि) के प्रयोग द्वारा इनमे से किसी भी 'पेपर' पर प्राप्त हो सकते हैं। गोल्ड थायो-कार्बेमाइड टोनर (Gold thiocarbamide toner) उचित क्लोरोब्रोमाइड पेपर पर काले नीले, स्याही के रग जैसे, चित्र प्रदान करता है, जो कि 'हिम के दृश्यो' तथा 'समुद्र' के दृश्यो, के लिये बडा उपयुक्त है। पर सिलीनियम टोनर (Selenium toner) भूरे काले से लेकर 'ठढे भूरे' (sepia) रगो का सुदर 'टोन' क्लोराइड तथा क्लोरो ब्रोमाइड पेपरो पर देता है।

इस सिलसिले मे प्रिंटों के लिये वर्णको की प्रक्रिया, जैसे कार्बन और कार्बो प्रक्रियाएँ, गम बाइक्रोमेट (gum bichromate) तथा ब्रोमॉयल का नाम जानना तथा क्रिया विधि सीखना भी वाछनीय है।

कार्टियर ब्रेसन (Cartier Bresson), जो स्वच्छ रूपचित्राकन का सुदक्ष माना जाता है, कहता है, "मैं खोलने का प्रयास करता हूँ, अर्थ निकालने का नही। मैं निरीक्षण करता हूँ, पर हस्तक्षेप नही"। वह रूपचित्रण को फोटोग्राफी का सबसे कठिन अग मानता है। फोटोग्राफर गण कार्टियर ब्रेसन के उपर्युक्त वचन से भी कुछ उपयोगी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं (देखें फोटोग्राफी)।

[ल० रा० श०]

फोटोग्रेव्योर (Photogravure) फोटो की सहायता से किसी तल पर उत्कीर्ण एवं खचित आकृति द्वारा छापने की रीति को कहते हैं। इस रीति से एक पट्ट या बेलन द्वारा, जिसकी सतह पर चित्र या नक्शा (डिजाइन, design) निक्षारित रहता है, छपे हुए चित्र प्राप्त होते हैं।

जिस विषय का चित्र छापना है उसका पहले फोटो ले लिया जाता है और रूलदार पर्दे से उसे जालदार (reticulated) बना लिया जाता है। उत्कीर्ण आकृति के गड्ढो की गहराई मूल के छाया-घनत्व के अनुसार बदलती है, अर्थात् घनी छाया के स्थान मध्य घनत्ववाले स्थानो से अधिक गहरे होते हैं और इनमे छापने की रोशनाई भी अधिक आती है। मूल के उज्वल श्वेत भागों के स्थानों पर केवल कागज रहता है। फोटोग्रेव्योर से छापे हुए चित्रो मे गहरी छायावाले स्थान मखमल के सदृश कोमल प्रतीत होते हैं तथा इनमें साटन के समान चमक पाई जाती है।

छापनेवाली सतह की तैयारी—जिस चित्र को छापना होता है, पहले उसका फोटो-नेगेटिव तैयार किया जाता है। सावधानी से इसका अनुशोधन (retouching) करने के पश्चात् इससे प्रतिवर्तित पॉज़िटिव तैयार करते हैं और यदि आवश्यक हुआ तो इसका भी अनुशोधन किया जाता है। तब पॉज़िटिव चित्रो को काच के एक पट्ट पर गोद लगे फीतो द्वारा उसी क्रम से लगा दिया जाता है जिसमें उन्हें छापना होता है।

अलग एक ताव कागज पर रंग (साधारणत लाल रंग) पटे हुए जेलाटिन के विलयन का लेप लगाते हैं। इसे पोटैसियम बाइक्रोमेट के विलयन में डुबाकर सुग्राही (sensitized) बना देते हैं। तब काच की एक चद्दर पर लगाकर तथा दबाकर इसे सुखा लेते हैं। इस प्रकार तैयार किए हुए कागज को कार्बन टिशू कहते हैं। पॉज़िटिव चित्रो से कुछ बडा कार्बन टिशू का एक टुकडा काट लिया जाता है और पाज़िटिव चित्रो के साथ सटाकर, विशेष प्रकार से बने एक वायवीय मुद्रण चौखटे (pneumatic printing frame) में इसे रख दिया जाता है तथा इसमें से हवा निकाल ली जाती है। इस प्रकार पॉज़िटिव चित्र तथा टिशू चिपककर सट जाते हैं। इनपर तब प्रकाश की क्रिया कराते हैं। फिर पाज़िटिव चित्रो को हटा देते हैं और विशेष प्रकार से रेखित पर्दे में से टिशू पर दूसरी बार प्रकाश की क्रिया कराते हैं। रेखित पर्दा फोटोग्राफ के छायाघनो (tones) को अलग अलग विभाजित कर देता है। इससे वह जाल सा बन जाता है, जिसके बिना छपाई हो ही नहीं सकती। इस पर्दे पर साधारणतया रेखाओ की सख्या १५० या १७५ प्रति वर्ग इंच होती है। इसके पश्चात् पूर्वोक्त कार्बन टिशू को पानी मे भिगो देते हैं और तब रासायनिक प्रकार से स्वच्छ किए तथा चिकनाई रहित ताम्रपट्ट या बेलन पर इसे रख देते हैं। फिर टिशू और छापनेवाली सतह के बीच मे से सब नमी और हवा निकालने के लिये उसे रबर के बेलन से दबाया जाता है और तब सुखा लिया जाता है।

व्यक्तीकरण (Developing)—इसके लिये उस पट्ट या बेलन को, जिसपर कार्बन टिशू को चपका दिया गया है, पानी की टंकी मे रखकर, लगभग ४०° सें० तक गरम करते है तथा साथ साथ पानी को हिलाते जाते हैं, यहाँ तक कि कागज तथा जेलाटिन की परत के विलेय भाग घुलकर निकल जाते हैं। पॉज़िटिव चित्र को पारकर जहाँ प्रकाश कार्बन टिशू पर पूर्ण रूप से गिरा है, वे भाग कडे तथा अविलेय हो जाते हैं तथा वे भाग, जहाँ प्रकाश भिन्न भिन्न छायाघनों के कारण अधिक या अल्प पडा है, अधिक या अल्प विलेय होते हैं।

जब व्यक्तीकरण पूर्ण हो जाता है तब ताम्रपट्ट, या बेलन, को जेलेटिन पटल (फिल्म, film) के शेष अंश सहित जल से निकालकर पूरी तरह सुखा लेते हैं। यह जेलेटिन पटल, या फिल्म, स्थापक (mordant) का प्रतिरोधक होता है। छापने मे काम आनेवाली सतह के वे भाग जिनको निक्षारित कर निकाल नहीं देना है, अम्लप्रतिरोधक द्रव्य द्वारा सुरक्षित कर दिए जाते हैं। इस द्रव्य को हाथ से लेप देते हैं।

निक्षारण — इस क्रिया के लिये छापनेवाले बेलन को ४५° से ३७° बोमे सांद्रणवाले फेरिक क्लोराइड के विलयन मे रख दिया जाता है। कटी हो गई जिलेटिनवाले अम्ल प्रतिरोधक के पतले भागो पर स्थापक का आक्रमण प्रथम होता है तथा मोटे भागों को इनके विलयनो से फिर निक्षारित करना पडता है।

छापने की मशीनें — फोटोग्रेव्योर के लिये जब चौरस पट्ट काम में लाया जाता है तब छापने की मशीन भी साधारणत सपाट तल की होती है। उसपर पट्ट चढा दिया जाता है तथा उसपर रोशनाई लगा दी जाती है। एक प्रकार की खुरचनी अनावश्यक रोशनाई को पोंछकर हटा देती है और तब छापने की क्रिया होती है। मशीन में कागज चाहे एक बार में एक ताव दिया जाता है, या वह रील के रूप में भी रह सकता है।

साधारणत चौरस पट्ट का प्रयोग न कर बेलन का उपयोग किया जाता है। छापने का काम तब घूर्णन (rotary) मशीनों से लिया जाता है। बेलन रोशनाई की नाँद (trough) में से होकर घूमता है, उसपर की अनावश्यक रोशनाई खुरचनी द्वारा पुँछ जाने के पश्चात्
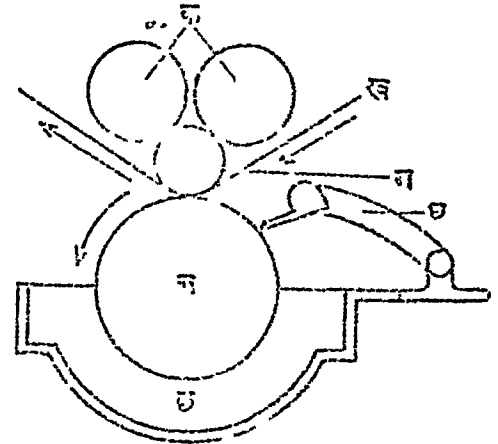
फोटोग्रेव्योर छपाई की मशीन

क दाब डालनेवाले इस्पात के बेलन, ख. कागज, ग मुद्रित करने वाला रबर का बेलन,, घ उपयोजक खुरचनी, च ताँबे की सतह- वाला निक्षारित बेलन तथा छ रोशनाई की नाँद।

रील पर लगा हुआ कागज निक्षारित वेलन और मुद्रण वेलन के बीच से होकर जाता है। इस प्रकार निक्षारित चित्र की छाप कागज़ पर पड जाती है। इस रीति से चित्र तथा अक्षर दोनो ही छापे जा सकते है। [भ० दा० व०]

फोरम (Forum, लैटिन भाषा का शब्द) व्यापार न्यायालय,या राजनीतिक विचार सबधी या विहार और भ्रमण के लिये बनाए हुए स्थान भी फोरम कहलाते थे। रोम में ऐसी अनेक खुली जगहे थी जो इस प्रकार के सार्वजनिक कार्य के लिए बनाई गई थी। रोमन लोगो का विशेष ख्यातिप्राप्त फोरम वैलेटाईन तथा कैपिटोलाइन पहाडो के बीच की खुली जगह पर स्थित था। यही रोम का राजनीतिक एव व्यापारिक केंद्र था। इसके इर्द गिर्द सुविख्यात शनिदेव का मदिर, १८४ ई० पू० का बना हुआ वैसिलिकापोसिया का प्राचीन न्यायालय तथा अन्य महत्वपूर्ण सार्वजनिक भवन थे। कानूनी भाषा मे फोरम शब्द न्यायालय का द्योतक हैं। कालातर से फोरम शब्द के प्रयोग मे अर्थ की भिन्नता दिखलाई देती हैं। आजकल इस शब्द का प्रयोग विचारगोष्ठी या विचारविनिमय के अर्थ मे होने लगा है। जब विषयवस्तु पर वैज्ञानिक क्रमानुसार विचार होता है, फोरम शब्द का प्रयोग होता है। इसका प्रचलित अर्थ विचारो के तार्किक अनुसधान का खुला मच है। [शु० तै०]

फ़ोरैमिनीफ़ेरा (Foraminifera) अथवा पेट्रोलियम उद्योग का तेल मत्कुण (oil bug), प्रोटोज़ोआ, सघ के वर्ग सार्कोडिन के उपवर्ग राइज़ोपोडा का एक गण है। इस गण के अधिकाश प्राणी प्राय. सभी महासागरो और समुद्र में सभी गहराइयो में पाए जाते हैं। इस गण की कुछ जातियाँ अलवण जल मे और बहुत कम जातियाँ नम मिट्टी में पाई जाती है। अधिकाश फोरैमिनीफ़ेरा के शरीर पर एक आवरण होता है, जिसे चोल या कवच (test or shell) कहते हैं। ये कवच कैल्सीभूत, सिलिकामय, जिलेटिनी अथवा काइटिनी (chitinous) होते हैं, या बालू के कणो, स्पज कटिकाओ (sponge-spicules), त्यक्त कवचो, या अन्य मलबो (debris) के बने होते हैं। कवच का व्यास ०१ मिमी० से लेकर १६० मिमी० तक होता है तथा वे गेंदाकार, अडाकार, शक्वाकार, नलीदार, सर्पिल (spiral), या अन्य आकार के होते हैं।

कवच के अदर जीवद्रव्यी पिंड (protoplasmic mass) होता है, जिसमे एक या अनेक केंद्रक होते हैं। कवच एककोष्ठी (unilocular or monothalamus), अथवा श्रेणीबद्ध बहुकोष्ठी (multilocular or polythalmus) और किसी किसी मे द्विरूपी (dimorphic) होते हैं। कवच मे अनेक सूक्ष्म रध्रो के अतिरिक्त बडे रध्र, जिन्हे फोरैमिना (Foramina) कहते हैं, पाए जाते हैं। इन्ही फोरैमिना के कारण इस गण का नाम फोरैमिनीफ़ेरा (Foraminifera) पडा है। फोरैमिनीफ़ेरा प्राणी की जीवित अवस्था मे फोरैमिना से होकर लबे धागे के सदृश पतले और बहुत ही कोमल पादाभ (pseudopoda), जो कभी कभी शाखावत और प्राय जाल या झिल्ली (web) के समान उलझे होते हैं, बाहर निकलते हैं।

वेलापवर्ती (pelagic) फोरैमिनीफ़ेरा के कवच समुद्रतल मे जाकर एकत्र हो जाते हैं और हरितकीचड की परत, जिसे सिंधुपक (ooze) कहते हैं, बन जाती है। वर्तमान समुद्री तल का ४,८०,००,००० वर्ग मील क्षेत्र सिंधुपक से आच्छादित है। बाली द्वीप के सानोर (Sanoer) नामक स्थान मे बडे किस्म के फोरैमिनीफ़ेरा के कवच पगडडियो और सडको पर बिछाने के काम आते हैं।

भूवैज्ञानिक महत्व —- अधिकतर खडिया, चूनापत्थर और सगमरमर फोरैमिनीफ़ेरा के सपूर्ण कवच, अथवा उससे उत्पादित कैल्सियम कार्बोनेट से निर्मित होता है।

कैंब्रियन-पूर्व समुद्रो के तलछटो में फोरैमिनीफ़ेरा का विद्यमान रहना पाया जाता है, किंतु कोयला (coalage), या पेंसिलवेनिअन (Pennsylvanian) युग के पूर्व इनका कोई महत्व नही था। आदिनूतन (Eocene) युग में फोरैमिनीफ़ेरा गण आकार, रचना की जटिलता, निक्षेप की मोटाई तथा वितरण में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। हिमालय में एवरेस्ट पर्वत की २२,००० फुट ऊँचाई पर २०० फुट मोटा फोरैमिनीफ़ेरीय चूना पत्थर का शैलस्तर वर्तमान है।

सपूर्ण भूक्षेत्र के २/३ भाग में समुद्री तलछट स्थित है और उसमें फोरैमिनीफ़ेरा के जीवाश्म (fossil) पाए जाते हैं। कालपरिवर्तन के साथ साथ फोरैमिनीफ़ेरा की नई जातियो का आविर्भाव हुआ और कुछ पुरानी जातियाँ विलुप्त हो गईं। अतएव किसी अलग हुए क्षेत्र के अलग होने और उसके निर्माण काल में भूवैज्ञानिक समन्वय स्थापित करने में फोरैमिनीफ़ेरा बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

पेट्रोलियम भूविज्ञान में फोरैमिनीफ़ेरा का स्थान महत्वपूर्ण है। पेट्रोलियम के लिये क्षेत्र का वेधन (drilling) करते समय विभिन्न स्तरो से प्राप्त पदार्थो को एकत्र कर प्रयोगशाला में उनकी जांच की जाती है। यदि जाँच में किसी विशेष प्रकार के फोरैमिनीफ़ेरा के जीवाश्म मिलते हैं, तो उससे यह अनुमान हो जाता है कि वेधन क्षेत्र में पेट्रोलियम विद्यमान है अथवा नही।

कवच की आकारिकी (morphology) — फोरैमिनीफ़ेरा का कवच छोटे बिंदु के आकार से लेकर अनेक इचो के व्यास का हो सकता है। कुछ सीमित समूह के अतर्गत ऐसे स्पीशीज़ (species) हैं जो समुद्री अमीबो से बडे होते हैं और काइटिनी झिल्ली या असस्कृत (primitive) कवच से रक्षित रहते हैं। इस सरल रचना से प्रारभ कर ऐसे स्पीशीज़ विकसित हुए हैं जिनमें असस्कृत कवच के बालू अभ्रक, स्पज कटिका, अथवा अन्य तलछट पदार्थों से ढकने से, या कैल्सियम कार्बोनेट के घने जमाव के कारण गोलाकार (globular) आकृति बन गई।

ये गोलाकार कवच प्रारभिक कोष्ठो (chambers), अथवा साधारण बहुखडीय प्रोलॉकुलस (Proloculus) के सदृश हैं। ऐसे सरल कवच में एक विसर्पी (meandering), या घुमावदार कोष्ठ बाहर से जुड गया, या कुछ कोष्ठ इस प्रकार व्यवस्थित हो गए कि एक लपेटदार शुरूआत (coiled beginning) हो सके और अनेक वलयी (annular) कोष्ठ जुड सकें। कवच की ये ही आधारभूत रचनाएँ थी और इन्ही से अनेक स्पीशीज़ के चोलो (tests) का प्रादुर्भाव हुआ। किसी कवच में कोष्ठो की सख्या एक या कई सौ हो सकती है। प्राय अतस्थ कोष्ठ (terminal chamber) में एक या अनेक रध्र होते हैं और जब नया कोष्ठ जुड़ता है तब इन रध्रो से

(foramina) कोष्ठ के बीच आवागमन का मार्ग बन जाता है। एक बृहद समूह के अधिकाश कोष्ठो की दीवारो मे सूक्ष्म पादाभीय रंध्र
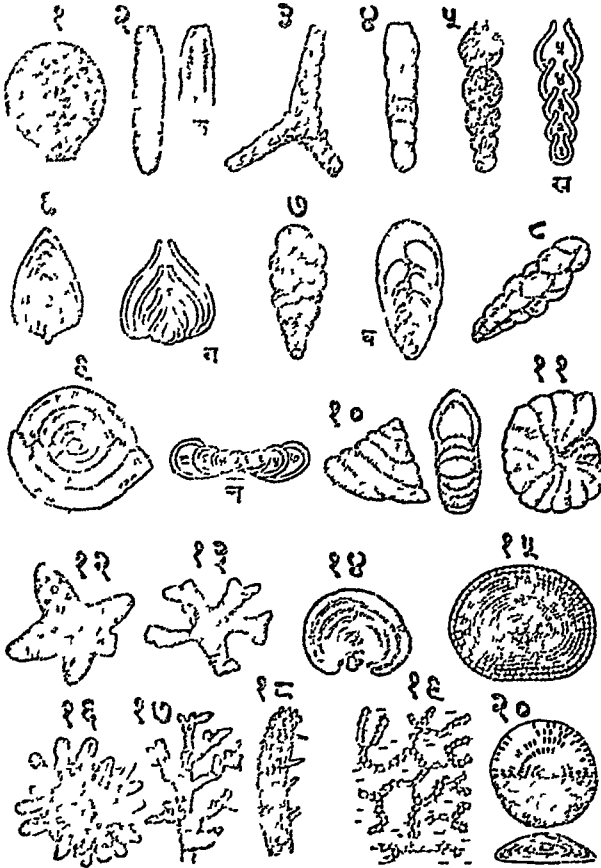
चित्र १ फोरैमिनीफरा के कवचो के विविध रूप

१ सैकैमिना (Saccamina), २ बैथीसाइफन (Bathysiphon) क-अनावृत अग्रसिरा, ३ रैब्डैमिना (Rhabdammina), ४ हाइपरैमिना (Hyperammina), ५ नोडोसेरिया (Nodosaria), ख इसी की काट, ६ फ्रॉण्टिकुलेरिया (Frondicularia), ग इसकी काट, ७ टेक्सटुलेरिया (Textularia), घ. इसकी काट, ८ वेरनिउलिना (Verneullina), ९ स्पाइरोलॉकुलिना (Spiroloculina), च इसकी काट, १० टर्र्यूरिस्पाइरिलिना (Turrispirillina), ११ साइक्लेमिना (Cyclammina), १२ सिउडैस्ट्रॉरिज़ा (Pseudastrorhiza), ऐस्ट्रोरिज़ा (Astrorhiza), १४ पैवोनिना (Pavonina), १५ डिस्कोस्पाइरुलिना (Discospirulina), १६ कैल्केरिना (Calcarina),, १७ डेंडोफ्रिया (Dendophrya), १८ सैकोरिज़ा (Saccorhiza), १९ रिज़ोनुबेकुला (Rhizonubecula) तथा २० नमुलाइट (Nummulite)।

पाए जाते है और कुछ ऐसे समूह हैं जिनमे कवच की दीवारो मे विस्तृत नहर प्रणाली रहती है।

बहुत सी स्पीशीज़ का कवच कूटकों (ridges), शूलो (spines), या वृत्तस्कधो (bosses) से अलकृत रहता है। इस सुदरता और जटिलता के कारण फोरैमिनीफेरा का अध्ययन बहुत दिनो से हो रहा है। कवचों की, आकृति और सरचना के आधार पर, निम्नलिखित चार समुदायो मे विभाजित किया जा सकता है

(१) काइटिनी — ये केवल प्राणी सीमेंट (animal cement) के होते हैं।

(२) ऐरेनैशस (Aranaceous) — ये अजैव मलबे (inorganic debris) और सीमेंट युक्त होते है।

(३) छिद्री या परफोरेटा (Perforata) — ये कैल्सियम कार्बोनेट के बने होते हैं तथा रध्र से युक्त होते हैं।

(४) अछिद्री या एपरफोरेटा (Aperforata) — ये कैल्सियम कार्बोनेट के बने होते हैं और इनमे रध्र नही होते।

जीवित फोरैमिनीफेरा — अधिकतर जीवित फोरैमिनीफेरा कीचड़, या वालुकामय तलो, या छोटे छोटे पौधो पर रहते हैं। कुछ थोड़े समूह वेलापवर्ती (pelagic) होते हैं और साधारण गहराई मे खुले समुद्र मे पाए जाते हैं। तलीय फोरैमिनीफेरा मे इतनी और इस प्रकार की गति होती है कि अधिकाश फोरमिनीफेरा कुछ इंच के अंदर ही जन्म से मृत्युपर्यंत गति कर पाते हैं।

जिन स्पीशीज़ मे वृहद छिद्र होता है उनके कवच के जीवद्रव्य (protoplasm) मे जीवाणु, कशाभिक प्रोटोज़ोआ, शैवाल के बीजाणु (spores of algae), डायटम (diatoms) तथा जैविक अपरद (detritus) पाए जाते हैं। जब छिद्र इतना लघु होता है कि उनसे होकर बड़े बड़े खाद्यकण प्रवेश न कर सकें, तब उनका पाचन पादाभो मे विद्यमान किण्वो (ferments) द्वारा होता है

पादाभ कवच के छिद्र के समीपस्थ जीवद्रव्य मे, अथवा पादाभ रध्रों से निकलते हैं और क्षीण हो जाते हैं। जहाँ अनेको पादाभ निकलते हैं वे एकाकार हो जाते हैं, अथवा शाखामिलन (anastomese) होता है। जीवद्रव्य से निर्मित इन ततुओं (filaments) मे निरतर प्रवाह के कारण गति होती रहती है और इस प्रवाह द्वारा खाद्य को पकड़ने और उसके पाचन का कार्य होता है तथा ठोस या तरल उत्सर्ग का उत्सर्जन (excretion) होता है। यही नही, वल्कि कवच के बाहर आच्छादित जीवद्रव्य के सहयोग से श्वसन का कार्य भी होता है। कवच के अदर जीवद्रव्य के प्रवाह के कारण परिसचरण (circulation) होता है और सभी कोष्ठों में भोजन इत्यादि पहुँचता रहता है।

फोरैमिनीफेरा का रग उसके कवच के रग, घनत्व और, कुछ अश तक, कवच की रचना पर निर्भर करता है। जब कवच की दीवार पारभामी (translucent) होती है तब जीवद्रव्य का हरा, भूरा या लाल रग उसके अतर्वेश (inclusion) कवच के रग का प्रमुख कारण होता है। काइटिन (chitin) भूरा होता है और प्राय कवच को भूरापन प्रदान करता है, अन्यथा वह श्वेत होता है। प्रवालभित्ति (coral reefs) के इर्द गिर्द विविध रगो, जैसे चीनाश्वेत, नारगी, लाल, भूरे और हरे रग से लेकर लैवेंडर और नीले रग, के चमकीले स्पीशीज़ पाए जाते हैं। लैवेंडर और नीले रग अपवर्तन के

कारण होते हैं। गहरे जल मे जो स्पीशीज़ आंशिक रूप से पारभासी कवचों के साथ पाए जाते है, वे हरे होते हैं और ऐरेनेसस कवच खोल पदार्थ का रंग ग्रहण कर लेते हैं, अथवा कणों को जोडनेवाले सीमेंट मे विद्यमान लौह लवणों के कारण लाल या भूरे दिखाई पडते हैं, जब कि अनेक स्पीशीज़ के चूनेदार कवच श्वेत पोर्सिलेन सदृश होते हैं। उष्ण समुद्र के छिछले जलवासी फोरैमिनीफेरा के जीवद्रव्य के अंदर ज़ोओज़ैथेली (Zooxanthellae), जो सहजीवी शैवाल हैं, पाए जाते हैं, किंतु उनके स्वर्णिम रग का प्रभाव फोरैमिनीफेरा के रग पर बहुत ही कम पडता है।

जीवनचक्र (Life-cycle) — अधिकाश फोरैमिनीफेरा के जीवन मे लैंगिक (sexual) और अलैंगिक (asexual) चक्रीय पीढियाँ होती है, जिनसे दो प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं।

लैंगिक अवस्था मे कशाभिक (flagellated) युग्मक (gametes) जोडे आपस मे मिलते हैं और समागम करते है और इसके फलस्वरूप
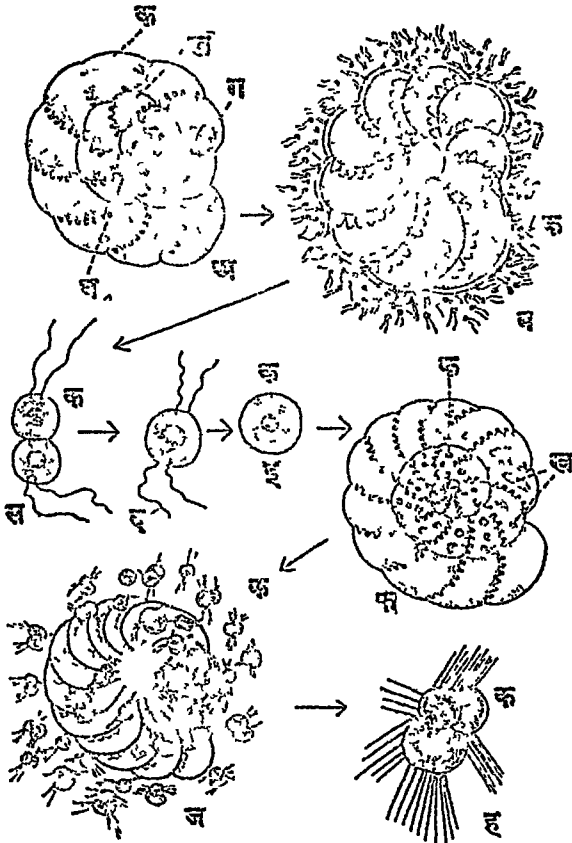
चित्र २ एल्फिडियम (पॉलिस्टोमेला) का जीवनचक्र

अ दीर्घ गोलक रूप . क वाह्यचक्र, ख अतश्चक्र, ग केंद्रक तथा घ प्रथम कक्ष, ब मे क. युग्मक, स मे क युग्मक, इ मे क युग्मनज, फ सूक्ष्मगोलक रूप क प्रथम कक्ष तथा ख केंद्रक, ज में क लघु अमीबा (amoebulae) तथा ह में क वाल दीर्घगोलक रूप (तीन कक्ष)।

युग्मनज (zygote), अथवा निषेचन अमीबा (fertilization amaeba) एक गोलाकार कवच मे परिवर्तित हो जाता है। लैंगिक विधि से उत्पन्न प्राणी में कवच का प्रारंभिक कोष्ठ बहुत ही सूक्ष्म होता है। अतएव वे सूक्ष्मगोलीय कवच (microspheric tests) कहलाते हैं।

अलैंगिक अवस्था (Asexual phase) — उपर्युक्त सूक्ष्मगोलीय प्राणी अलैंगिक विधि से प्रजनन करता है। अलैंगिक विधि से केंद्रक का क्रमिक विभाजन होता है और उनकी संख्या पूर्वविद्यमान केंद्रक की चार गुनी हो जाती है। तत्पश्चात् प्रत्येक केंद्रक के चारो तरफ का
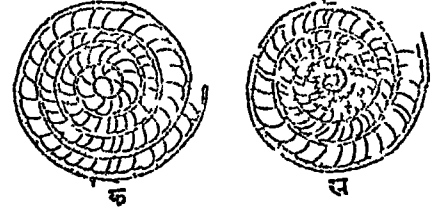
चित्र ३. नमुलाइट लीविगेटस की द्विरूपता (Nummulites laevigatus)

क सपूर्ण दीर्घगोलक रूप की काट (× ९) तथा ख सूक्ष्मगोलक रूप की काट के अश (× ९)।

जीवद्रव्य साधारण पिंड (common mass) से अलग हो जाता है और एककेंद्रक (mononucleate) अमीबा बनाता है। इस प्रकार उत्पन्न अमीबा के प्रारंभिक कोष्ठ बृहत् होते हैं। अतएव ये दीर्घगोलीय कवच (megaspheric tests) कहलाते है।

जीवनचक्र के लैंगिक अथवा अलैंगिक दोनो ही अवस्थाओं में अधिकाश स्पीशीज में प्रजनन की गतिविधि के लिये दो तीन दिनो की आवश्यकता होती है। नए कोष्ठ के जुडने के लिये एक दिन की आवश्यकता होती है और उसके अनेक दिनो बाद दूसरा कोष्ठ जुडता है। इन प्रोटोज़ोआ की आयु कुछ सप्ताह से लेकर एक साल या अधिक की होती है। यह स्पीशीज़ और ऋतु (season) पर निर्भर करती है और लैंगिक तथा अलैंगिक पीढियो को मिलाकर जीवनचक्र के लिये अनेक सप्ताहो से लेकर दो या अधिक साल तक की आवश्यकता होती है।

पारिस्थितिक संबंध (Ecological relationship) — एक विद्यमान फोरैमिनीफेरा की बहुत सी वे जातिया जो एक विशेष गहराई में पाई जाती हैं, सर्वत्र उसी गहराई मे मिलती हैं। पृथ्वी के इतिहास में अन्यकाल में भी इसी प्रकार की स्थितियाँ रही हैं। छिछले जल मे रहने वाली जातियो का वितरण जल के ताप के कारण प्राय सीमित होता है। अन्य जातियाँ, ताप के अतिरिक्त अन्य बातो पर, जैसे जल की लवणता, अध स्तर (substratum) की प्रकृति, भोजन की उपलब्धि इत्यादि, पर निर्भर करती हैं और ये बातें स्वय जल की गहराई से प्रभावित होती हैं। इस समूह में वृद्धि और प्रजनन उपयुक्त भोज्य जीवाणुओं पर बहुत अधिक निर्भर करता है। फोरैमिनीफेरा की बहुत सी जातियाँ तृण तथा घास से आच्छादित क्षेत्रो मे ही सीमित होती हैं और जिस गहराई तक ये पौधे उगते हैं वह तल की प्रकृति और सूर्य विकिरण (solar radiation), जो जल के गँदलापन तथा अक्षांश (latitude) के अनुसार बदलता है, निर्भर करती है।

गहरे जल मे जीवित फोरैमिनीफेरा की संख्या प्रति इकाई क्षेत्र

में कम होती है, किंतु छिछले जल मे उनकी सख्या प्रत्येक वर्ग फुट मे सैकडों से लेकर हजारों तक होती है।

फोर्रमिनीफ़ेरा के कुछ वश निम्नलिखित हैं

पॉलिस्टोमेला (Polystomella) — यह समुद्र मे पाए जानेवाले फ़ोरैमिनीफेरा का एक अच्छा उदाहरण है। यह समुद्र के किनारे तल मे पाया जाता है। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर यह एक छोटे घोंघे के
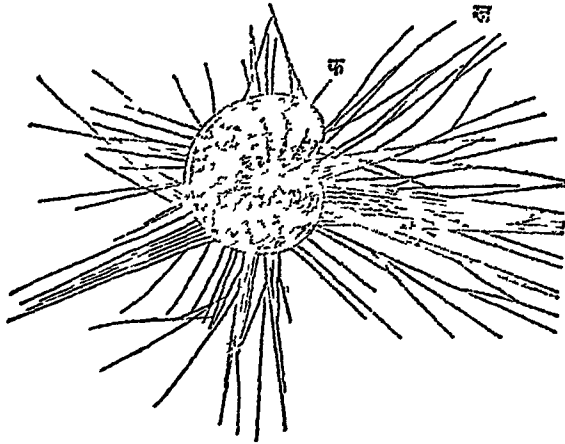
चित्र ४. एल्फिडियम (पॉलिस्टोमेला)
क कवच तथा ख पादाभ।

छिलके जैसा दिखाई पडता है। इसका कवच कडा, अर्धपारदर्शी और कैल्सियमी होता है। इसमे ७ आकृति के प्रकोष्ठ बने होते हैं। ये प्रकोष्ठ समीपवर्ती, चिपटे और सर्पिल होते हैं। अन्य प्रोटोज़ोआ और डायटम (diatoms) इसके भोजन हैं, जिन्हें यह कवच छिद्र मे निकले, बाह्य जीवद्रव्य स्तर से उत्पन्न, लबे, पतले, शाखावत् और उलझे पादाभ द्वारा पकड कर लगभग कवच से बाहर ही पचा लेता है।

पॉलिस्टोमेला के जीवनचक्र मे निरतर पीढी परिवर्तन होता है और उनमें केंद्रीय कोष्ठ के आकार में द्विरूपता (dimorphism)
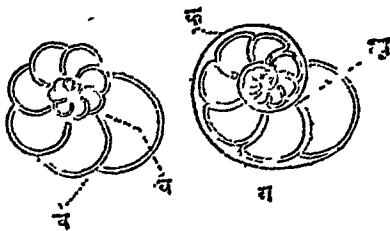
चित्र ५. फोरैमिनीफेरा की रचना (काट चित्र)
क बहिर्कंकाल, ख तथा घ अतिम कक्ष, ग दो पटलिकाओं के पट तथा च एक पटलिका का पट।

पाई जाती है।

ग्लोबिजराइना (Globigerina) — फोरैमिनीफेरा का यह वश बहुत ही व्यापक है। ग्लोबिजराइना बुलायड्स (G bulloids) विश्वव्यापी समुद्र के छिछले जलवासी स्पीशीज हैं, जो समुद्र के तल की कीचडों मे, ३,००० फैदम की गहराई में पाए जाते हैं। मृत प्राणियो के कवच समुद्रतल में बहुत अधिक मात्रा मे इकट्ठा होकर एक प्रकार के पक, जिसे सिधुपक या ग्लोबिजराइना सिंधु पक (Globigerina ooze) कहते हैं, बना देते हैं। विद्यमान महासागरो का एक तिहाई तल इसी ग्लोबिजराइना सिंधुपक से आच्छादित है। इनका कवच प्राकृतिक खडिया का एक प्रमुख सघटक होता है।

माइक्रोग्रोमिया (Microgromia) — सरल रचनावाले फोरैमिनीफ़ेरा मे से माइक्रोग्रोमिया भी एक है। जीवद्रव्य पिंड के अदर केवल एक केंद्रक (nucleus) और एक सकुचनशील रिक्तिका (vacuole) होती है, जो एक साधारण अडाकार और काइटेनीय कवच (chitinoid shell) से घिरे होते हैं। इस कवच (shell) के चौडे मुख से जीवद्रव्य निकला होता है, जो लबे, मृदुल सूक्ष्म और विकीर्णक
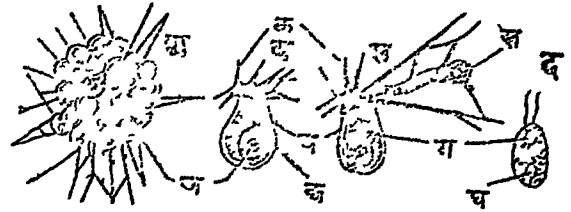
चित्र ६. माइक्रोग्रॉमिया सोशियैलिस
(Microgromia socialis)
अ सपूर्ण निवह, ब एकल जीवक, स, द्विविभजन, द लघुकशाभिका, क जालिकापाद, ख सततिजीव ग तथा ज केंद्रक, घ तथा छ सकुचनशील रिक्तिका और च कवच।

रेटीकुलो पाडो (radiating reticulopods) का निर्माण करता है। इसमे दो कशाभिकाएँ (flagella) होती हैं, जिनकी सहायता से यह जल मे तैरता है।

क्लैमिडोफ्रिस (Chlamydophrys) — इसकी रचना माइक्रोग्रोमिया के सदृश होती है, किंतु यह हानिकारक परोपजीवी के रूप मे
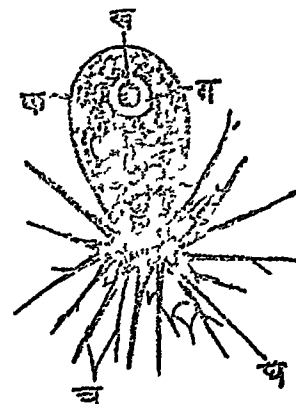
चित्र ७. क्लैमिडोफ्रिस स्टरकोरिया
(Chlamydophrys stercorea)
क कवच, ख अत काय, ग केंद्रक, घ जीवद्रव्य तथा च जालिका पाद।

मनुष्य, अथवा अन्यस्तनपोपी, की अँतडियो मे पाया जाता है। इसका कवच नाशपाती की आकृति का और काइटिनायी होता है। कवच के एक छोर पर एक सकीर्ण छिद्र होता है, जिससे होकर जीवद्रव्य निकला होता है और शाखामिलनी रेटिकुलोपोडिया का निर्माण करता है। इसमे अलैंगिक प्रजनन द्विभाजन (binary fission) की विधि से और लैंगिक प्रजनन बहुविभाजन की विधि से होता है।

ऐलोग्रोमिया (Allogromia) — इसमे छोरीय कवचछिद्र से निकला हुआ जीवद्रव्य कवच के चारो तरफ प्रवाहित होता रहता है,
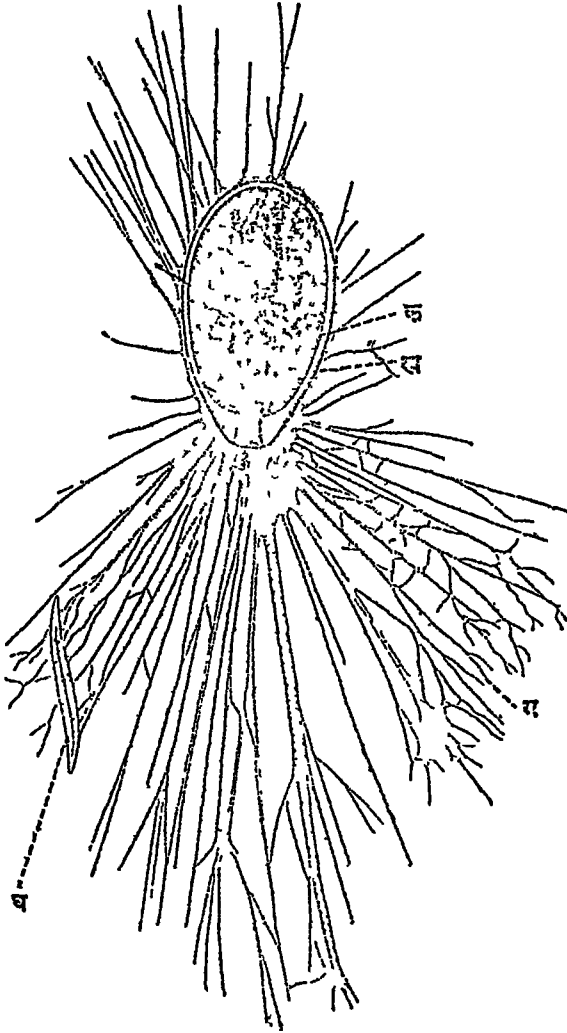
चित्र ८ ऐलोग्रोमिया ओविर्फॉमिस (×२३०)

इसके पादाभ स्वाभाविक, आनुपातिक लबाई से तिहाई छोटे दिखाए गए है ।

क कवच, ख कवच के चतुर्दिक् जीवद्रव्य, ग पादाभ तथा घ पादाभ द्वारा पाशित डायटम ।

जिससे कवच जीवद्रव्य के अदर आ जाता है। पादाभ (pseudopodia) विलक्षण रूप से लबे, उलझे हुए और जालिकारूपी (reticulate) होते हैं और शिकार को पकडने और उनका पाचन करने का कार्य करते हैं।

स० ग्र०—(१) एंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (२) बोराडेल, ईस्टहेम, पॉट्स, साडर्स और जी० ए० करकुट दि इन्वर्टिब्रेटा (३) आर० एल० कोटपाल प्रोटोज़ोआ। (भृ० ना० प्र०)

फोर्ड, हेनरी (१८६३-१६४७ ई०), अमरीकी मोटर निर्माता, का जन्म मिशिगैन (Michigan) राज्य के डीयरबॉर्न नामक नगर मे हुआ था। इनके पिता आयरलैंडवासी थे, किंतु अपने माता पिता तथा अन्य सबधियो के साथ अमरीका आकर डीयरबॉर्न के आस पास सन् १८४७ मे बस गए और खेती करने लगे। हेनरी फोर्ड ने १५ वर्ष की उम्र तक स्कूल मे शिक्षा पाई और वे खेत पर भी काम करते रहे, किंतु इन्हे आरभ से ही सब प्रकार के यत्रो के प्रति कुतूहल और आकर्षण रहा। पिता के मना करने पर भी रात मे गुप्त रूप से ये पडोसियो तथा अन्य लोगो की घडियाँ या अन्य यत्र लाकर मुफ्त मरम्मत करने मे लगे रहते थे।

१६ वर्ष की उम्र मे ये घर छोडकर डिट्रॉइट चले गए। यहाँ कई कारखानो मे काम करके इन्होने यात्रिक विद्या का ज्ञान प्राप्त किया। सन् १८८६ मे ये घर वापस आए, पिता की दी हुई ८० एकड भूमि पर बस गए और वही मशीन मरम्मत करने का एक कारखाना खोला। सन् १८८७ मे इनका विवाह हुआ तथा इसी वर्ष इन्होने गैस इजिन और खेतो पर भारी काम करनेवाली मशीन बनाने की एक योजना बनाई, किंतु यत्रो की ओर विशेष आकर्षण के कारण ये घर पर न टिक सके और फिर डिट्रॉइट चले आए।

सन् १८६० मे इन्होने डिट्रॉइट एडिसन इलेक्ट्रिक कपनी मे काम करना आरभ किया और सन् १८६३ मे पेट्रोल से चलनेवाली पहली गाडी बनाई, जिसमे चार अश्वशक्ति तक उत्पन्न होती थी और जिसकी गति २५ मील प्रति घटा थी। सन् १८६३ मे इन्होने दूसरी गाडी बनानी प्रारभ की तथा सन् १८६६ मे इलेक्ट्रिक कपनी की नौकरी छोडकर डिट्रॉइट ऑटोमोबाइल कपनी की स्थापना की। फिर इस कपनी को छोडकर ये दौड मे भाग लेनेवाली गाडियाँ बनाने लगे। इन गाडियो ने कई दौडो मे सफलता पाई, जिससे इनका बडा नाम हुआ। इस प्रसिद्धि के कारण ये सन् १६०३ मे फोर्ड मोटर कपनी स्थापित करने मे सफल हुए।

प्रथम वर्ष मे फोर्ट मोटर कपनी ने दो सिलिंडर तथा आठ अश्वशक्तिवाली १,७०८ गाडियाँ बनाई। इनकी बिक्री से कपनी को शत प्रति शत लाभ हुआ। दूसरे वर्ष ५,००० गाडियाँ बिकी। फोर्ड इस कपनी के अध्यक्ष हो गए और अत मे अन्य हिस्सेदारो को हटाकर अपने एकमात्र पुत्र, एडसेल ब्रायट फोर्ड (Edsel Bryant Ford), के सहित सपूर्ण कंपनी के मालिक हो गए। इनका उद्देश्य हलकी, तीव्रगामी, दृढ किंतु, सस्ती मोटर गाडियो का निर्माण करना था। इसमे सफलता प्राप्त करने के लिये इन्होने मशीन के अगो के मानकीकरण, प्रगामी सयोजन, व्यापक बिक्री तथा ऊँची मजदूरी देने के सिद्धातो को अपनाया। इन्होने खेती के लिये ट्रैक्टर भी बनाए। सन् १६२४ तक इनकी कपनी ने २० लाख गाडियाँ, ट्रक और ट्रैक्टर बनाए थे, किंतु सन् १६३१ तक इनके सब कारखानो मे निर्मित गाडियो की सख्या दो करोड तक पहुँच गई।

फोर्ड मे आदर्शवादिता तथा कट्टरपन का विचित्र समिश्रण था। ये पुजोत्पादन के पक्षपाती थे, किंतु इनका यह भी विचार था कि

उद्योग को इस प्रकार विकेंद्रित करना चाहिए कि खेती के साथ साथ कारखानो का काम भी चले। ये ऊँची मजदूरी देने के पक्ष मे थे, किंतु मजदूर सघो के घोर विरोधी थे, यहाँ तक कि अपने कारखानो मे सघो को पनपने न देने के विचार से ये भेदियों तथा सशस्त्र पुलिस से काम लेते थे। शांति के ये कट्टर पक्षपाती थे, किंतु नात्सियों की भाँति ये यहूदी विरोधी थे। बको और महाजनो से भी इनकी नही पटती थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय इन्होने कुछ प्रभावशाली लोगो को एकत्रित कर "ऑस्कर द्वितीय" नामक शांति पोत पर यूरोप की यात्रा इस विश्वास से की कि यह अभियान युद्ध बद कराने मे समर्थ होगा। यह सब होते हुए भी देहाती जीवन के प्रति पक्षपात तथा अमरीका की विगत रीतियो तथा स्मृतिचिह्नो के प्रति अटूट श्रद्धा रखने के कारण इन्होने बडी लोकप्रियता प्राप्त की थी।

इनकी गणना संसार के सर्वप्रधान धनपतियो में थी। इन्होने डीयरबॉर्न मे एक औद्योगिक सग्रहालय तथा एडिसन इस्टिट्यूट ऑव टेक्नॉलोजी की स्थापना की। मृत्यु के पूर्व इन्होने अपनी सपत्ति का अधिकाश अपने नाम पर स्थापित जनहितैषी सस्था को दे दिया। यह सस्था समार की लोकोपकारक सस्थाओ मे सबसे धनी है। सन् १९४७ मे इनकी मृत्यु हुई। अपनी मृत्यु से दो वर्ष पूर्व ही इन्होने अपने पोते, हेनरी फोर्ड द्वितीय, को कपनी का अध्यक्ष बना दिया था। [भ० दा० व०]

फौजी कानून फौजी कानून का अर्थ एक ओर तो शासनाधिकारियों की यह स्वीकारोक्ति होती है कि देश या क्षेत्रविशेष मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जब ताकत का सामना ताकत से करना आवश्यक है, अत उनके हाथ मे ऐसे असामान्य अधिकार होने चाहिए जिनका उपयोग सकट काल की अवधि तक देश के आतरिक अचल मे किया जा सके, इस स्थिति मे न्यायालयों की प्रक्रिया के स्थान पर कार्यपालिका अथवा सैनिक प्रशासक के आदेशों को ही सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। दूसरी ओर फौजी कानून एक कानूनी प्रत्यय या विचार है, जिसके द्वारा नागरिक न्यायालयो ने उन असाधारण अधिकारो के नियत्रण का प्रयत्न किया है जो कार्यपालिका द्वारा राज्य के नागरिको पर लागू करने के लिये अधिगृहीत किए जाते हैं।

इस प्रकार फौजी कानून सैनिक कानून (मिलिटरी ला) से, जो सशस्त्र सैन्यदल के नियत्रण का विशेष कानून होता है, भिन्न है। नागरिक अधिकार के प्रयोग के हेतु जब सशस्त्र सेना से काम लिया जाता है तब सेना नागरिक अधिकारियो के नियत्रण मे ही अपना कार्य करती है और अपराधियो पर साधारण न्यायालयों में विचार होता है। किंतु फौजी कानून मे नागरिक अधिकारियो और न्यायालयो के अधिकार स्थगित कर दिए जाते हैं और अपराधियो पर सैनिक आयोग के समक्ष मुकदमा चलाया जाता है।

इग्लैंड में सम्राट् को सकटकाल घोषित करने का अधिकार नही है, किंतु युद्ध के समय कार्यपालिका को ससदीय विधान के अतर्गत तथा तदनुरूप अधिनियमो के अतर्गत अनेक व्यवस्थाएँ तथा आदेश प्रसारित करने के व्यापकाधिकार प्राप्त हो जाते हैं। फिर भी, उन अधिकारो का प्रयोग विधानमडल और न्यायालय के दोहरे नियत्रण में सपन्न होता है।

अमरीकी विधि मे राष्ट्रपति को, काग्रेसीय कार्रवाई से स्वतत्र, फौजी कानून घोषित करने का कहाँ तक अधिकार है और उस स्थिति मे विधायिका तथा न्यायालयों द्वारा कहाँ तक नियत्रण किया जा सकता है, यह अब भी विवाद का विषय है तथा इस मामले में कानूनी स्थिति अब भी स्पष्ट नही है।

भारत में भी स्पष्ट सावैधानिक निर्देश के अभाव मे यह विवादास्पद है कि फौजी कानून की घोषणा का अधिकारी कौन है। फौजी कानून सबधी उल्लेख केवल ३४ वी धारा मे है, जो किसी विशेष क्षेत्र मे फौजी कानून उठा लिए जाने के बाद क्षतिपूर्ति अधिनियम (ऐक्ट आव इडेम्निटी) की व्यवस्था करती है।

किंतु फौजी कानून से मिलता जुलता ही धारा ३५९ (१) के अतर्गत राष्ट्रपति का वह अधिकार होता है जिससे वह धारा २१ और २२ के अतर्गत अधिकारो का न्यायिक निष्पादन स्थगित कर दे सकता है। यह समझा जाता है कि यह मूलत फौजी कानून का ही रूप है, किंतु प्रतीत होता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इसे विवाद के लिये छोड दिया है (ए आइ आर १९६४) जो हो, इस सबध में कोई भी मत अपनाया जाय, सविधान की धारा ३५२ के अतर्गत सकटकाल की घोषणा का मौलिक अधिकारों पर प्रभाव न्यूनाधिक मात्रा मे फौजी कानून जैसा ही है।

इस प्रकार धारा ३५८ के अतर्गत जब तक सकटकालीन स्थिति कायम रहती है, कार्यपालिका को धारा १९ की व्यवस्थाओ के उल्लघन का अधिकार रहता है। राष्ट्रपति द्वारा धारा ३५९ (१) के अतर्गत सकटकालीन अवधि तक या आदेश मे उल्लिखित अवधि तक के लिये दूसरे मौलिक अधिकार भी स्थगित किए जा सकते हैं।

राष्ट्रपति के अधिकार पर केवल इतना ही नियत्रण होता है कि सकटकाल की घोषणा स्वीकृति के लिये ससद के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए। इस घोषणा को ससद के समक्ष प्रस्तुत करने की कोई निश्चित अवधि नहीं होती, और न प्रस्तुत किए जाने पर किसी प्रकार के दड का प्रावधान ही है, किंतु घोषणा के प्रसारित होने के दो मास पश्चात् वह स्वत समाप्त हो जाती है। एक घोषणा के समाप्त होने पर फिर दूसरी घोषणा जारी करने में राष्ट्रपति पर कोई प्रतिबध नही है। धारा ३५९ (१) के अतर्गत जारी किया गया राष्ट्रपति का आदेश ससद के समक्ष यथाशीघ्र प्रस्तुत होना चाहिए। इस प्रस्तुतीकरण के समय का निर्णय करना कार्यपालिका पर छोड दिया गया है क्योकि यदि राष्ट्रपति का आदेश ससद के समक्ष प्रस्तुत नही किया जाता तो भी इसका प्रभाव कम नही होता, और न ही प्रस्तुत करने के अभाव मे कोई वैधानिक कार्रवाई की व्यवस्था है।

कुछ समय पूर्व, १९६२ के चीनी आक्रमण के दौरान, राष्ट्रपति ने सविधान की १४, २१ और २२ धाराओ का निष्पादन स्थगित करके सकटकालीन स्थिति की घोषणा की थी। हालात बहुत कुछ सामान्य हो जाने के बाद भी घोषणा को रद करने मे अत्यधिक विलब किए जाने पर सार्वजनिक रूप से बडी आलोचना हुई थी। इस तथ्य ने सकटकालीन अधिकारो के सबध मे कुछ और सरक्षण लगाने की आवश्यकता प्रगट कर दी है, क्योकि ऐसा न होने पर कोई भी अविवेकी कार्याधिकारी अपनी सुविधा के लिये सविधान का उन्मूलन

करके फौजी कानून को स्थायी कर दे सकता है। जर्मनी के उस वाइमर सविधान को हम अभी भूले नही हैं, जिसके अनुसार कानूनी शासन को स्थायी न बनने देने के लिये तरह तरह की युक्तियो का सहारा लिया गया था। भारत में भी इस प्रकार की सभावनाओ के प्रति उदासीन रहना उचित न होगा। [ए० च०]

फौलाद मिर्जा मुगल सम्राट् अकबर का एक सेवक सरदार। अकबर ने सर्वप्रथम इसे तूरान का राजदूत बनाकर भेजा। यह सुन्नी मत के सबध मे कट्टर दुराग्रही था। इस धार्मिक द्वेष के कारण उसने तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् मुल्ला अहमद ठट्टवी की हत्या कर दी। इससे क्षुब्ध होकर सम्राट् ने दड स्वरूप इसकी भी हत्या करवा दी।

फ्रमजी कोवासजी वानाजी पारसी समुदाय के नेता फ्रमजी कोवासजी वानाजी का जन्म १७६७ मे हुआ था।

वे समृद्ध व्यापारी और अपने समय के जहाजो के सबसे बड़े ठेकेदार थे। जनकल्याणार्थ अनेक सस्थाओ के उत्थान के लिये आपने खुले दिल से सहायता दी। आप ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होने जी० आई० पी० रेलवे कपनी (अब जो सेंट्रल रेलवे के नाम से जानी जाती है) का हिस्सा खरीदा। आप कॉटन वीविंग ऐंड स्पिनिंग इडस्ट्रीज और बीमा कपनियों आदि मे हिस्सा लेनेवालो मे अग्रणी थे। आप बबई की चेंबर ऑव कॉमर्स के भी सदस्य थे।

इन सब मे महत्वपूर्ण है फ्रमजी का देश की आर्थिक उन्नति मे रुचि लेना जिसके फलस्वरूप आपने कृषि और वागवानी के सुधार मे तत्परता दिखलाई। बबई की पोवाई एस्टेट का अधिकारी होने का गर्व आपको ही प्राप्त था। यह कई ग्रामो का समिलित रूप था जिसकी उन्नति मे आपकी वैयक्तिक रुचि थी। बबई के राज्यपाल जॉन मैलकॉम ने अत्यत प्रसन्नता के साथ आपके उन सुधारो की चर्चा की थी जो आपने उस एस्टेट के लिये किए थे। इस स्थान को उपयोगी और वैभिन्यपूर्ण बनाने के लिये आपने बहुत अधिक पैसा लगाया। अनेक कुएँ खुदवाए, अनेक मकान तथा उत्तम सडको का निर्माण करवाया, शहतूत और नील के पौधे रेशम के कीड़ों के लिये लगवाए। इसके अतिरिक्त चीनी की एक उत्तम मिल बनवाई और नील बनाने के लिये आवश्यक भवनो का भी निर्माण करवाया था। आपके जातिगत और विजातीय दोनो ही दान स्मरणीय हैं जिनमे प्रमुख हैं पूजा के स्थानो का निर्माण, कुएँ खुदवाना, गरीब और अकालग्रस्तो की रक्षा, शिक्षण सस्थाओ को अनुदान आदि। जब ८५ वर्ष की आयु मे आपका देहात हो गया, आपको श्रद्धाजलि अर्पित करने के के हेतु सर्वसाधारण की सभा की गई। सर्वसमति से यह निश्चित किया गया कि आपके नाम से 'फ्रमजी कावासजी सस्था' नामक सस्था स्थापित की जाय जो नागरिकता के क्रियाकलापों के केंद्र रूप मे कार्य करेगी। [ह० म०]

फ्रांस (France) स्थिति ४०° २१' उ० अ० से ५१° ५' उ० अ० तथा ४° ५२' प० दे० से ७° ३९' पू० दे०। यह यूरोप महाद्वीप का सबसे बडा देश है, जो उत्तर मे बेल्जियम, लक्सेंबर्ग, पूर्व मे जर्मनी, स्विट्सरलैंड, इटली, दक्षिण-पश्चिम मे स्पेन, पश्चिम मे ऐटलैंटिक सागर, दक्षिण मे भूमध्यसागर तथा उत्तर पश्चिम मे इगलिश चैनल द्वारा घिरा है। इस प्रकार यह तीन ओर सागरो से घिरा है। सुरक्षा की दृष्टि से इसकी स्थिति उत्तम नही है। इसका कुल क्षेत्रफल कॉर्सिका (देखें, कॉर्सिका) आदि द्वीपो सहित २,१२,६८१ वर्ग मील है।

धरातल — यह देश समतल एव साथ साथ पहाडी भी है। उत्तर मे स्थित पैरिस तथा ऐक्विटेन बेसिन बृहद् मैदान के ही भाग हैं। पश्चिम की ओर ब्रिटैनी, यूरोप की उत्तर-पश्चिमी, उच्च पेटीवाली भूमि से सबधित है। पूर्व की ओर प्राचीन चट्टानो के भूखडो का क्रम मिलता है, जैसे मध्य का पठार तथा आर्डेन (Ardennes) पर्वत। इस देश के दक्षिण मे पिरेनीज तथा ऐल्प्स-जूरा पर्वतो का समूह
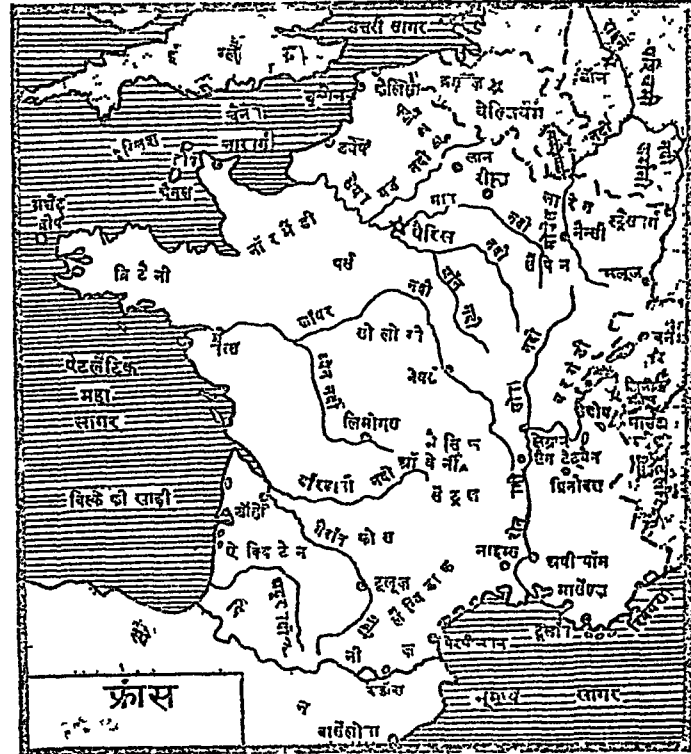
पाया जाता है। इसका दक्षिण-पूर्वी भाग पहाडी व ऊबड खाबड है जो ६,००० फुट से भी अधिक ऊँचा है। प्राकृतिक आधार पर इसे आठ भागों मे बाँट सकते हैं।

१ पैरिस बेसिन — यह देश का अति महत्वपूर्ण भाग है, जो यातायात साधनो द्वारा देश के हर भाग से जुडा है। यह बेसिन एक कटोरी के रूप मे है, जो बीच मे गहरा तथा चारो ओर ऊँचा होता गया है। इस भाग को पुन (१) मध्य का बेसिन, (२) शैंपेन एव बरगडी के कगार, (३) लोरेन के कगार, (४) पूर्वी प्रदेश तथा रोन घाटी और (५) ल्वार (Loir) प्रदेश तथा नॉरमैंडी, भागो मे विभाजित किया गया है।

२ उत्तर-पश्चिमी प्रदेश — यह एक समतल भाग है। यहाँ पर नॉरमैंडी तथा ब्रिटैनी पहाडियाँ अवश्य कुछ ऊँचा नीचा धरातल प्रस्तुत करती हैं। यहाँ दो समानातर श्रेणियाँ दक्षिण-पश्चिम में दाउनिनैज खाडी के उत्तर-दक्षिण मे फैली हैं। उत्तरी श्रेणी मॉट्स

डे आरी कहलाती है, जिसका सर्वोच्च शिखर सेंट माईकेल (१,२८५ फुट) है। यही ब्रिटेनी का सबसे ऊँचा भाग है।

३ ऐक्विटेन बेसिन — यह त्रिभुजाकार निम्न भूमि है। इसके सागरतटीय भाग मे रेत के टीले मिलते हैं। इसका आतरिक प्रदेश लैंडीज कहलाता है, जो प्राय बजर सा है।

४ मध्य का पठार — इस भाग की औसत ऊँचाई २,५०० फुट से भी अधिक है। इसकी ऊँचाई दक्षिण-पूर्व को उठती जाती है और रोन की घाटी में समाप्त हो जाती है। इसकी पूर्वी सीमा पर सेवेन (Cevennes) पर्वत स्थित है। यहाँ क्लेयरमॉन्ट के निकटवर्ती क्षेत्र मे अब भी शकु के आकार की ७० पहाड़ियाँ हैं, जिनका उद्गार प्राचीन समय में हुआ था। पुएज डी डोम ज्वालामुखी चोटी सागरतल से ४,८०५ फुट ऊँची है।

५ पूर्वी सीमाप्रदेश — इस प्रदेश मे वोज तथा आर्डेन पर्वतों का क्रम फैला है। दोनों के बीच मे राइन घाटी स्थित है। वोज पर्वत १७५ मील की लबाई मे श्रेणी के रूप मे फैला है। यहाँ की वर्षा का पानी जमीन के अदर चला जाता है तथा जमीन के ऊपर धाराएँ कम दिखाई देती हैं।

६ रोन सेग्रॉन घाटी — यह मध्य के पठार तथा ऐल्प्स-जूरा-श्रेणियों के मध्य में स्थित है। यह मॉन्टेग्निज डेला कोटि ट ओर, सेग्रान तथा ल्वार के खड्ड से प्रारभ होती है और सीन नदी के उद्गम स्थान तक चली जाती है।

७ भूमध्य सागरीय प्रदेश — राइन डेल्टा के पूर्वी भाग में सीधी खड़ी चट्टानें सागरतट के पास तक आ गई हैं। मार्सेई के पश्चिम मे अनेक दलदल मिलते हैं। राइन डेल्टा के पश्चिमी तट पर पिरेनीज तक तथा पश्चिम की ओर गैरोनि तक लैंग्विडॉक का प्रसिद्ध क्षेत्र पाया जाता है। इस क्षेत्र को सेवेन की श्रेणी काटती है। इसका तट निम्न तथा रेतीला है।

८ पश्चिमी ऐल्प्स तथा जूरा प्रदेश — फ्रास की दक्षिण-पश्चिमी सीमाएँ पिनाइन, ग्रेनाइन, कोटियान तथा मैरिटाइम ऐल्प्स द्वारा बनी हैं। सवाय पर १५,७७५ फुट ऊँचा माउट ब्लैक स्थित है। समुद्र की ओर औसत ऊँचाई बराबर घटती जाती है। इस भाग मे कई प्रमुख दर्रे हैं। जूरा पर्वत फ्रास में सबसे ऊँचा है। इसकी प्रमुख चोटियाँ क्रेट डिला नीगे (Cret de La Neige) ५,५०० फुट तथा मान्ट डि ओर (Mont de Or) ५,६६० फुट हैं।

जलवायु — यहाँ की जलवायु समुद्री है, जिसका प्रभाव सागर से दूर जाने पर कम होता जाता है। यूरोपीय विचार मे पश्चिमी तटीय भाग मे निम्न ताप, पर्याप्त वर्षा, शीतल गरमियाँ तथा ठढी सर्दियाँ जलवायु की विशेषताएँ हैं। पूर्वी तथा मध्य के भाग मे महाद्वीपीय जलवायु मिलती है, जहाँ ग्रीष्म मे गर्मी, पर्याप्त वर्षा एव सर्दियो मे कड़ी सर्दी पड़ती है। दक्षिणी फ्रास मे, पर्वतीय भागों को छोड़कर शेष मे, भूमध्य सागरीय जलवायु मिलती है, जहाँ ठढी सर्दियाँ, गरम गरमियाँ तथा कम वर्षा होती है। पैरिस का औसत ताप १०° सें० तथा वर्षा २२ इंच है। वर्षा ब्रिटेनी, उत्तरी तटीय भाग तथा पहाड़ी भागों मे अधिक होती है।

कृषि — यहाँ कृषि प्रमुख उद्योग है। यूरोप मे कृषिगत वस्तुओ के निर्यात मे नीदरलैंड्स के बाद इसका ही स्थान है। कृषि योग्य क्षेत्र अधिकाश उत्तरी भाग मे स्थित हैं। कृषि में गेहूँ, जौ, जई, चुकदर, पटुआ, आलू तथा अंगूर का स्थान प्रमुख है।

खनिज — कोयला, लोरेन तथा मध्यवर्ती जिलो मे मिलता है। कोयला कम होते हुए भी फ्रास को कोयले मे विश्व मे तीसरा स्थान प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यहाँ ऐंटिमनी, बॉक्साइट, मैग्नीशियम, पाइराइट तथा टग्स्टन, नमक, पोटैश, फ्लोरस्पार भी मिलता है।

उद्योग — लोरेन तथा मध्यवर्तीय भाग मे स्थित लौह इस्पात उद्योग सबसे प्रमुख उद्योग है। उद्योगों के लिये पिरेनीज तथा ऐल्प्स से पर्याप्त विद्युत् प्राप्त हो जाती है। लील (Lille), ऐरास तथा नारमँडी मे बाहर से रुई मँगाकर सूती कपड़े बनाए जाते हैं। ऊनी वस्त्रों के लिये रूबे (Roubaix) तथा टूरक्वें (Tourcoing) प्रमुख जिले हैं। लेयॉन मे रेशमी कपड़ा बनता है। इसके अलावा जलयान निर्माण, स्वचालित यत्र, चित्रमय परदे, सुगधित द्रव्य, चीनी मिट्टी के बरतन, शराब, आभूषण, शृगार की वस्तुओं, फीते, लकड़ी की वस्तुओं, आदि का निर्माण होता है। शराब, इत्र तथा शृगार की वस्तुओं के उत्पादन में तो फ्रास ने विश्व के अन्य देशों को पीछे छोड़ दिया है।

जनसंख्या — यहाँ की जनसख्या ४,६५,२०,२७१ (१९६२) है। पैरिस यहाँ का प्रमुख नगर तथा राजधानी है। इसके अतिरिक्त मार्सेई, टूलूज, बॉर्डो, नैन्स, नैन्सी, लील, रूबे आदि प्रमुख नगर हैं। यहाँ की मुख्य भाषा फ्रासीसी है। अधिकाश लोग रोमन कैथोलिक धर्म को मानते हैं।

वनस्पति — मध्य तथा उत्तरी फ्रास में बीच, ओक, चीड (बर्च), भूर्ज तथा पोपलर के जगल मिलते हैं। भूमध्य सागरीय क्षेत्र में अगूर, बेरी तथा अजीर मिलते हैं।

यातायात — फ्रास मे यातायात की उन्नति बहुत अधिक हुई है। यहाँ ५०,००० मील लबे प्रथम श्रेणी के १,६०,००० मील द्वितीय श्रेणी के मार्ग तथा १,६०,००० मील लबी सड़कें हैं। फ्रास के उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वीय भाग मे नहरों तथा नदियो का यातायात मे प्रमुख स्थान है। यहाँ से हवाई मार्ग विश्व के प्रत्येक बड़े नगर को जाते हैं तथा चार गैर सरकारी हवाई मार्ग भी हैं। रेडियो, टेलीविजन, डाक सेवा, टेलीफोन तथा टेलीग्राफ की उत्तम सेवाएँ प्राप्त हैं।

व्यापार — फ्रास खाद्य पदार्थ, खनिज तेल, कोयला, ऊन, फल, कपास, थोरियम, यूरेनियम का आयात एव लौह इस्पात की छड़ें, स्वचालित यत्र, पेट्रोलियम उत्पाद, सूती कपड़े तथा हवाई जहाजों का निर्यात करता है।

शिक्षा — ६ से १६ वर्ष के बच्चो के लिये पढना अनिवार्य है तथा उच्चतर शिक्षा तक नि शुल्क शिक्षा दी जाती है। पैरिस, मार्सेई, बजॉन्सान, बॉर्डो, का, क्लेरमॉन्ट फेराड, दीजॉन, ग्रिनोबिल, लील, लेग्रॉन, टूलूज आदि स्थानो पर प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हैं।

[उ० सिं०]

इतिहास — इसका प्राचीन नाम गॉल था। यहाँ अनेक जगली जनजातियों के लोग मुख्य रूप से केल्टिक लोग, निवास करते थे। सन् ५७-५१ ई० पू० में जूलियस सीजर ने उन्हें परास्त कर रोमन साम्राज्य में मिला लिया। वहाँ शीघ्र ही रोमन सभ्यता का प्रसार हो गया। प्रथम शताब्दी के बाद कुछ ही वर्षो में ईसाई धर्म का प्रचार तेजी से आरभ हो गया और केल्टिक बोलियो का स्थान लातीनी

फ्रांस (देखें पृष्ठ १५३)
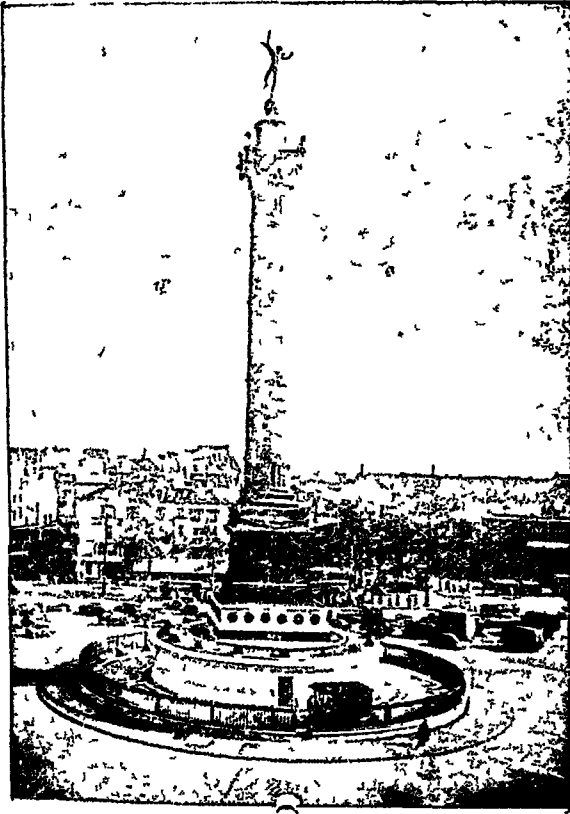
दि प्लेस ड ला वैस्टील
फ्रास की क्राति का प्रारभ स्थान ।
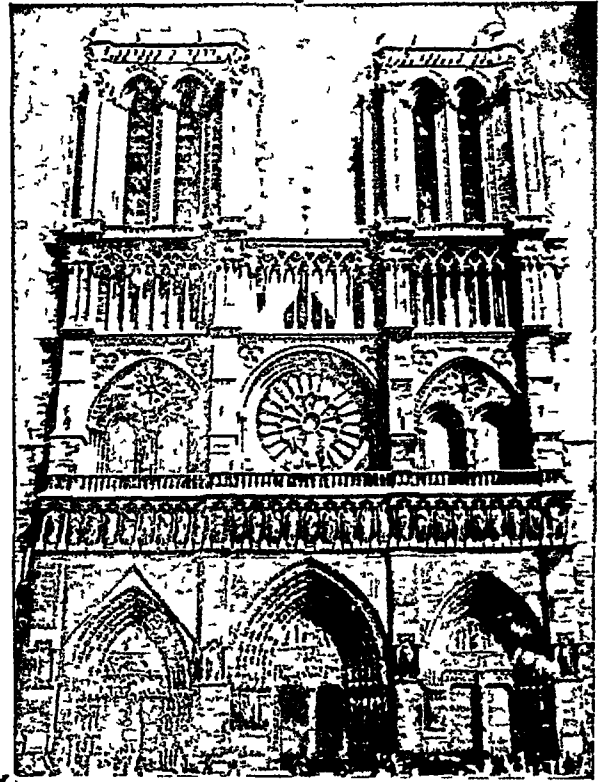
नॉत्र डेम ड पैरिस (Notre Dame de Paris)
१२वी सदी मे निर्मित विश्वप्रसिद्ध गिरजाघर ।
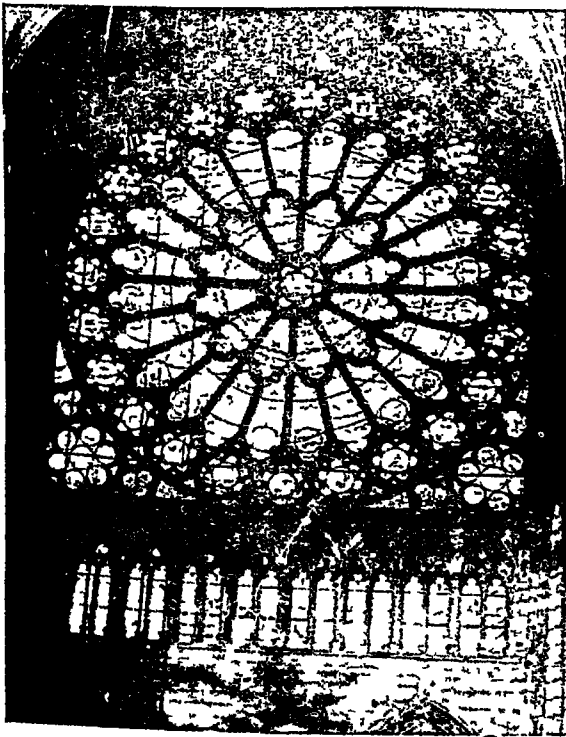
तीस फुट ऊंची, रगीन शीशों से चित्रित, खिडकी
सेंट डेनिस कैथेड्रल, जहाँ फ्रास के अनेक राजा और रानियाँ
दफनाई गई हैं ।
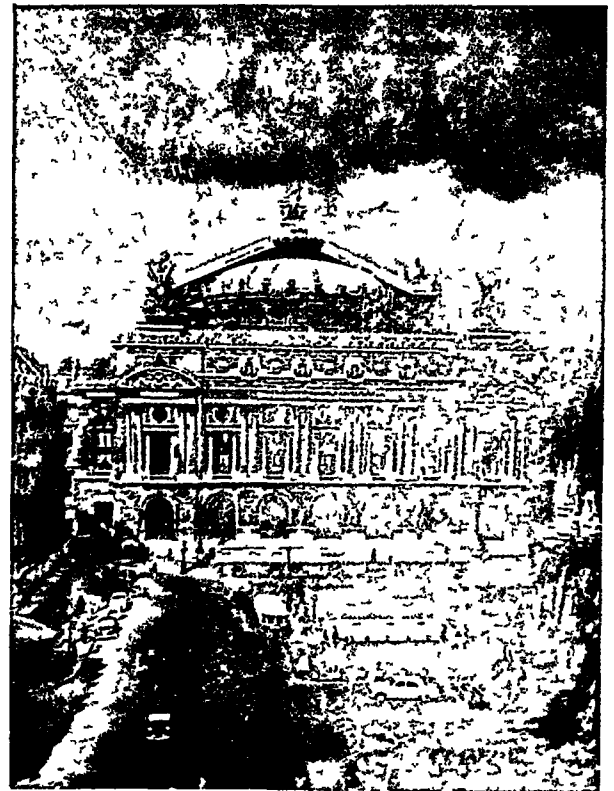
ऑपेरा हाउस, पैरिस
सम्मुख की सडक का दृश्य ।
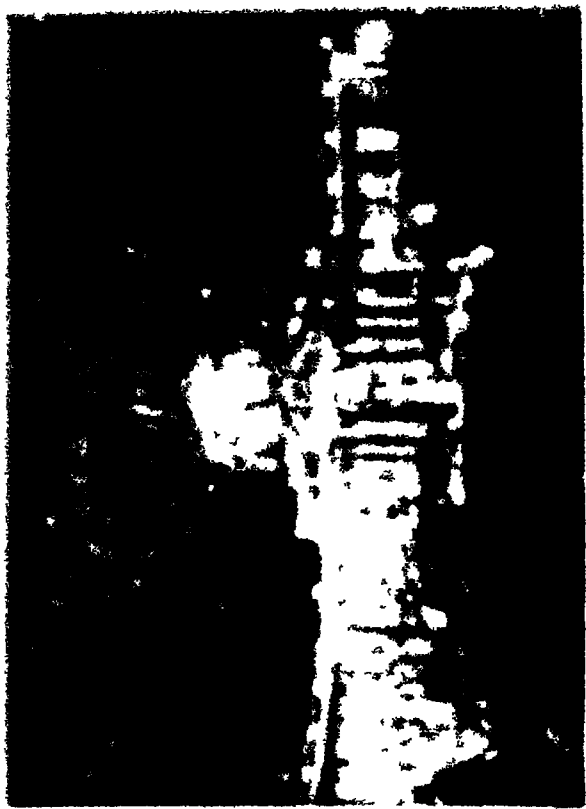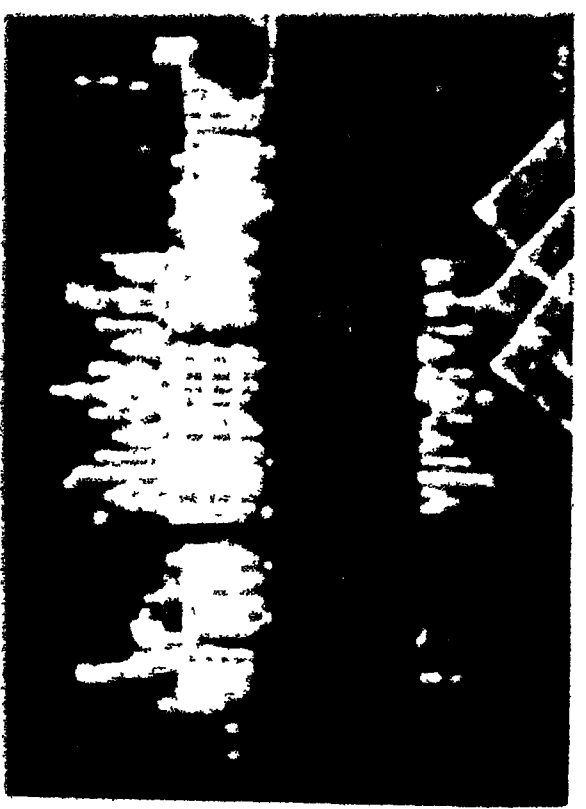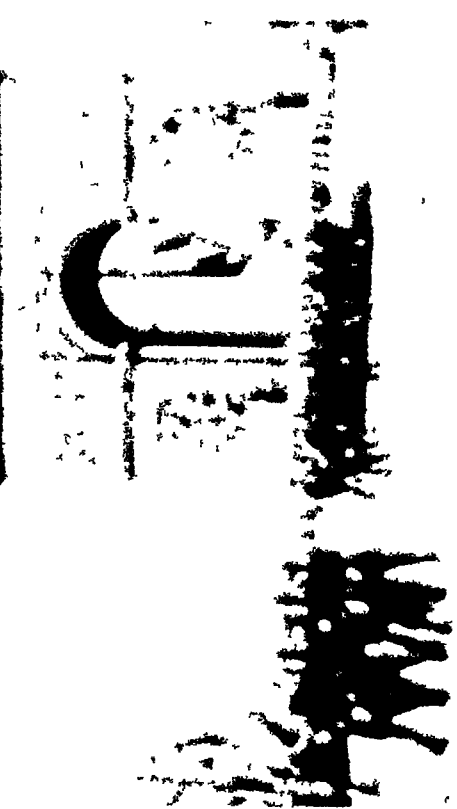
गाया ने ले लिया। पाँचवी शती में जर्मन जातियों ने उसपर आक्रमण किया। उत्तर में फ्रैंक लोग बस गए। इन्ही का एक नेता क्लोविस था जिसने सन् ४८६ में अन्य लोगो को हरा कर अपना राज्य स्थापित किया और ४९६ ई० में खृष्टीय धर्म में अभिषिक्त हो गया। उसके उत्तराधिकारियो के समय देश में पुन अराजकता फैल गई। तब सन् ७३२ में चार्ल्स मार्टेल ने विद्रोहियों का दमन कर शाति और एकता स्थापित की। उसके उत्तराधिकारी पेपिन की मृत्यु (७६८ ई० में) होने के बाद पेपिन का पुत्र शार्लमान गद्दी पर बैठा। उसने आसपास के क्षेत्रो को जीतकर राज्य का विस्तार बहुत बढा दिया, यहाँ तक कि सन् ८०० ई० में पोप ने उसे पश्चिमी राज्यो का सम्राट् घोषित किया।

शार्लमान के उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुए जिससे साम्राज्य विखडित होने लगा और उत्तर से नार्समैन लोगो के हमले शुरू हो गए। ये लोग नार्मंडी में बस गए। सन् ९८७ में शासनसूत्र ह्यू कैपेट के हाथ में आया किंतु कुछ समय तक उसका राज्य पेरिस नगर के आस पास के क्षेत्र तक ही सीमित रहा। इधर उधर कई सामतो का बोलबाला था जो यथेष्ट शक्तिशाली थे। १३वी शताब्दी तक राजा की शक्ति में क्रमश वृद्धि होती गई किंतु इस बीच शतवर्षीय युद्ध (१३३७–१४५३) के कारण इसमे समय समय पर बाधाएँ भी उपस्थित होती रही। जोन ऑफ आर्क नामक देशभक्त महिला ने राजा और उसके सैनिको मे जो उत्साह और स्फूर्ति भर दी थी, उससे सातवें चार्ल्स की मृत्यु (१४६१) तक फ्रास की भूमि पर से अंग्रेजी आधिपत्य समाप्त हो गया। फिर लूई ११वें के शासनकाल मे (१४६१–८३ ई०) सामतो का भी दमन कर दिया गया और बर्गंडी फ्रास मे मिला लिया गया।

आठवें चार्ल्स (१४८३–८९) तथा १२वें लूई (१४८९–१५१५) के शासनकाल मे इटली के विरुद्ध कई लडाइयाँ लडी गईं जिनका सिलसिला आगे भी जारी रहा। परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप मे शक्तिवृद्धि के लिये स्पेन के साथ कशमकश आरभ हो गई। जब फ्रास मे प्रोटेस्टैंट धर्म का जोर बढने लगा कई फ्रेंच सरदारो ने राजनीतिक उद्देश्य से उसे अपना लिया जिससे गृहयुद्ध की आग भडक उठी। फ्रेंच राजतत्र स्वदेश मे तो सामान्यत प्रोटेस्टैंट विचारो का दमन करना चाहता था किंतु बाहर स्पेन की ताकत न बढने देने के उद्देश्य से प्रोटेस्टैंटों का समर्थन करता था। नवें चार्ल्स (१५६०–७४) तथा तृतीय हेनरी (१५७४–८९) के राज्यकाल मे गृहयुद्धो के कारण फ्रास को बडी क्षति पहुँची। पेरिस कैथालिक मत का गढ बना रहा। सन् १५७२ मे हजारों प्रोटेस्टैंट सेंट बार्थोलोम्यू मे मार डाले गए। निदान चतुर्थ हेनरी (१५८९–१६१०) ने देश मे शाति स्थापित की, धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा की और राजा की स्थिति सुदृढ बना दी। एक कैथालिक द्वारा उसकी हत्या हो जाने पर उसका पुत्र १३वाँ लूई गद्दी पर बैठा। उसके मत्री रीशल्यू ने राजा की और राज्य की शक्ति बढाने का काम जारी रखा। तीस वर्षीय युद्ध मे शरीक होकर उसने फ्रास के लिये अलसेस का क्षेत्र प्राप्त किया और उसे यूरोप का प्रमुख राज्य बना दिया। १३वें लूई की मृत्यु के बाद उसका पुत्र १४वाँ लूई (१६३८–१७१५) पाँच वर्ष की अवस्था मे फ्रास का शासक बना (१६४३)। उसका शासन वस्तुत बालिग होने पर १६६१ ई० मे प्रारभ हुआ। शुरू मे उसने ऊपरी टीमटाम मे बहुत रुपया फूँक दिया, जब उसने वर्साय के प्रसिद्ध राजप्रासाद का निर्माण कराया। वृद्धावस्था मे उसका स्वेच्छाचार बढता गया। उसने विदेशो से युद्ध छेडते रहने की नीति अपनाई जिससे देश की सैनिक शक्ति और आर्थिक स्थिति को क्षति पहुँची तथा विदेशी उपनिवेश भी उससे छिन गए। उसके उत्तराधिकारियो १५वें लूई (१७१५-७४) तथा १६वे लूई (१७७४-९३) के समय मे भी राजकोप का अपव्यय बढता गया। जनता मे असतोप फैलने लगा जिसे वालटेयर तथा रूसो की रचनाओ से प्रोत्साहन मिला।

जब राष्ट्रीय ऋण बहुत बढ गया तब लूई १६वें को विवश होकर स्टेट्स जनरल की बैठक बुलानी पडी। सामान्य जनता के प्रतिनिधियो ने अपनी सभा अलग बुलाई और उसे ही राष्ट्रसभा घोषित किया। यही से फ्रासीसी क्राति की शुरुआत हुई। सितबर, १७९२ मे प्रथम फ्रेंच गणतत्र उद्घोषित हुआ और २१ जनवरी, १७९३, को लूई १६वें को फाँसी दे दी गई। बाहरी राज्यो के हस्तक्षेप के कारण फ्रास को युद्धसलग्न होना पड़ा। अत मे सत्ता नैपोलियन के हाथ मे आई, जिसने कुछ समय बाद १८०४ मे अपने को फ्रास का सम्राट् घोषित किया। वाटरलू की लडाई (१८१५ ई०) के बाद शासन फिर बूरबो राजवश के हाथ में आ गया। दसवें चार्ल्स ने जब १८३० ई० मे नियन्त्रित राजतत्र के स्थान मे निरकुश शासन स्थापित करने की चेष्टा की, तो तीन दिन की क्राति के बाद उसे हटाकर लूई फिलिप के हाथ मे शासन दे दिया गया। सन् १८४८ में वह भी सिंहासनच्युत कर दिया गया और फ्रास में द्वितीय गणतत्र की स्थापना हुई। यह गणतत्र अल्पस्थायी ही हुआ। उसके अध्यक्ष लूई नैपोलियन ने १८५२ में राज्यविप्लव द्वारा अपने आपको तृतीय नैपोलियन के रूप में सम्राट् घोषित करने में सफलता प्राप्त कर ली। उसकी आक्रामक नीति के परिणामस्वरूप प्रशा से युद्ध छिड गया (१८७०–७१), जिसमें फ्रास को गहरी शिकस्त उठानी पडी। तृतीय नैपोलियन का पतन हो गया और तीसरे गणतत्र की स्थापना की बुनियाद पडी।

तृतीय गणतत्र का सविधान सन् १८७५ में स्वीकृत हुआ। इसने राज्य को चर्च के प्रभाव से पृथक् रखने का वचन दिया और सार्वजनिक पुरुष मताधिकार के आधार पर चुनाव कराया। सविधान का एक बडा दोष यह था कि राष्ट्रपति मात्र कठपुतली जैसा था और कार्यपालिका भी शक्तिहीन थी। इसी से एक मत्रिमडल के बाद दूसरा मत्रिमडल बनता था और अत्यत प्रभावशाली अवर सदन द्वारा पृथक् कर दिया जाता था। फिर भी गणतत्र ने दृढतापूर्वक उस स्थिति का सामना किया जो वामपथियो और दक्षिणपथियो के पारस्परिक झगडो के कारण उत्पन्न होती जा रही थी। इस समय तक एशिया तथा अफ्रीका के कतिपय क्षेत्रो पर फ्रास का आधिपत्य स्थापित हो चुका था और प्रभाव तथा राज्यविस्तार की दृष्टि से उसका स्थान ब्रिटेन के बाद दूसरा था।

प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) में फ्रास को ब्रिटेन तथा अमरीका के साथ मिलकर जर्मनी, आस्ट्रिया तथा तुर्की से युद्ध में सलग्न होना पडा। विजय के परिणामस्वरूप यद्यपि अलसेस तथा लोरेन का औद्योगिक क्षेत्र पुन फ्रास को मिल गया, फिर भी लडाई मुख्यत फ्रेंच भूमि पर ही लडी गई थी, इसलिये उसकी इतनी अधिक बर्बादी हुई कि वर्षों तक उसकी आर्थिक अवस्था सुधर न सकी। फरवरी, १९३४ में दक्षिण-

जाती थी। उसके खर्चीलेपन पर कोई नियंत्रण न था और अपनी प्रेमिकाओं तथा कृपापात्रो को उपहार तथा पेंशन आदि देकर वह मनमाना द्रव्य उडाया करता था जिससे प्रजा पर शासन का भार बढता जाता था। वह साहित्यप्रेमी अवश्य था और विद्वानो का आदर करता था जिनमें उसके प्रशसको की कमी न थी।

फ्रासिस द्वितीय (१७६८–१८३५) पवित्र रोमन साम्राज्य का अतिम शासक, जो लिओपोल द्वितीय का लडका था। पिता की मृत्यु के बाद सन् १७९२ में गद्दी पर बैठा। शासन के प्रारभ में ही उसे फ्रास के साथ युद्ध में सलग्न होना पडा जिसमें उसकी हार हुई और उसे नेदरलैड्स तथा लोवार्डी का क्षेत्र खाली कर देना पडा। शीघ्र ही उसे दूसरी बार फ्रास से युद्ध करना पडा। इसमें भी उसकी पराजय हुई और उसे राइन नदी के तटवर्ती इलाके से हट जाना पडा। तीसरी बार के युद्ध मे भी उसे कुछ और भूभाग से हाथ धोना पडा। अब उसने पवित्र रोम साम्राज्य के शासक की उपाधि छोड दी और अपने आप को फ्रासिस प्रथम के नाम से आस्ट्रिया का सम्राट् घोषित किया। सन् १८१० मे उसने नेपोलियन के साथ अपनी लडकी मेरी लूई का विवाह करना स्वीकार कर लिया, जिससे कुछ समय के लिये उसे लडाइयो और सघर्षों से कुछ अवकाश मिल गया। फिर भी १८१३ में उसने फिर उन देशो का साथ दिया जो नेपोलियन का विरोध कर रहे थे। १८१५ मे हुई सधियो के परिणामस्वरूप उसे खोए हुए राज्य का बहुत सा भाग वापस मिल गया। इसके बाद मृत्यु पर्यंत वह शातिपूर्वक शासन करता रहा।

फ्रांसिस, असीसी के संत (सन् ११८२-१२२६ ई०) इटली के असीसी नामक नगर के एक धनी व्यापारी के पुत्र थे। असीसी के युवको के नेता के रूप मे, आमोद प्रमोद मे अपनी युवावस्था विताकर वह अपने पूर्व जीवन की निस्सारता समझ गए और अध्यात्म की ओर अभिमुख होकर ईसा का अनुकरण करने लगे। उन्होने अपनी समस्त सपत्ति गरीबो को बाँट दी और अत्यत निर्धनतापूर्वक इस पृथ्वी की वस्तुओ के प्रति परम अनासक्ति मे साधना करने लगे। शीघ्र ही कुछ युवक उनके शिष्य बन गए। सन् १२०९ ई० मे सत फ्रासिस उनके साथ रोम गए जहाँ उनको पोप इन्नोसेंसियस (इनोसेंट) तृतीय से एक नया धर्मसघ चलाने की अनुमति मिली (दे० फ्रासिस्की धर्मसघ)।

सत फ्रासिस का प्रकृतिप्रेम इतना विख्यात है और उनकी इस विशेषता को इतना महत्व दिया जाता है कि बहुत से लोग उनके गभीर रहस्यवाद तथा अत्यत कठिन तपश्चर्या से अनभिज्ञ रह जाते हैं। इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक सिद्धि की पराकाष्ठा पर पहुँच कर सत फ्रासिस ने ईश्वर की सृष्टि का आनदविभोर कवि बना रहना चाहा है। अपने जीवन के अत मे वह अनेक बीमारियो से आक्रात थे और अपने सघ का सचालन दूसरो के हाथ मे देने के लिये विवश हो गए थे, फिर भी उन्होने इस दशा मे इस सुदर पृथ्वी के सृष्टिकर्ता की प्रशसा मे अपने अमर सूर्यस्तव (Canticle of the sun) की रचना की थी। मध्यकालीन समाज पर उनके मनोभाव का अत्यधिक प्रभाव पडा और वह प्रभाव आजतक ईसाइयो तथा गैर ईसाइयो पर बना हुआ है।

स० ग्र० — जी० के० चेस्टर्टन सेंट फ्रासिस ऑव आसीसी, लदन, १९२३। [का० बु०]

फ्रांसिस ज़ेवियर का जन्म ७ अप्रैल, १५०६ ई० को स्पेन मे हुआ था। पुर्तगाल के राजा जॉन तृतीय तथा पोप की सहायता से वे जेसुइट मिशनरी बनाकर ७ अप्रैल, १५४१ ई० को भारत भेजे गए और और ६ मार्च, १५८२ ई० को गोवा पहुँचे जो पुर्तगाल के राजा के अधिकार मे था।

गोवा मे मिशनरी कार्य करने के बाद वे मद्रास तथा त्रावणकोर गए। यहाँ मिशनरी कार्य करने के उपरात वे १५४५ ई० मे मलाया प्रायद्वीप मे ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये रवाना हो गए। उन्होने तीन वर्ष तक मिशनरी कार्य किया।

मलाया प्रायद्वीप में एक जापानी युवक से जिसका नाम हजीरो था, उनकी मुलाकात हुई। सेंट जेवियर के उपदेश से यह युवक प्रभावित हुआ। १५४९ ई० में सेंट ज़ेवियर इस युवक के साथ पहुचे। जापानी भाषा न जानते हुए भी उन्होने हजीरों की सहायता से ढाई वर्ष तक प्रचार किया और बहुतो को ख्रिष्टीय धर्म का अनुयायी बनाया।

जापान से वे १५५२ ई० मे गोवा लौटे और कुछ समय के उपरात चीन पहुचे। वहाँ दक्षिणी पूर्वी भाग के एक द्वीप में जो मकाओ के समीप है बुखार के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

मिशनरी समाज उनको काफी महत्व का स्थान देता और उन्हे आदर तथा समान का पात्र समझता, है क्योंकि वे भक्तिभावपूर्ण और धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे। वे सच्चे मिशनरी थे।

सत जेवियर ने केवल दस वर्ष के अल्प मिशनरी समय में ५२ भिन्न भिन्न राज्यो मे यीशु मसीह का प्रचार किया। कहा जाता है, उन्होने नौ हजार मील के क्षेत्र में घूम घूमकर प्रचार किया और लाखो लोगो को यीशु मसीह का शिष्य बनाया। [मि० च०]

फ्रांसिस जोज़ेफ प्रथम (आस्ट्रिया) (जन्म, १८३०, मृत्यु १९१६ ई०) फ्रासिस जोजेफ के पिता का नाम फ्रासिस चार्ल्स था। उसकी शिक्षा धार्मिक वातावरण मे बडी कठोरता से हुई। १८४८ ई० की यूरोपीय क्राति के समय उसने रेडेट्ज़्की के नेतृत्व मे इटली मे सैनिक सेवा की। जब इस क्राति का दमन कर दिया गया तो श्वार्जेन-बर्ग के नेतृत्व मे एक प्रतिक्रियावादी मत्रिमडल बना। उसने फर्डिनड प्रथम को सिंहासन छोडने का परामर्श दिया और उसके भतीजे फ्रासिस जोज़ेफ को सम्राट् बनाया (२ दिसबर, १८४८ ई०)। इस मत्रिमडल ने जर्मनी, इटली और हगरी मे, जो साम्राज्य के भाग थे, दमन का चक्र चलाया और आस्ट्रिया की मसद के अधिकार भी छीन लिये। फ्रासिस जोज़ेफ ने सारी राजसत्ता अपने हाथ मे ले ली।

असतोष को दूर करने के लिये उसने १८६० ई० मे प्रातीय विधानमडलों को कुछ अधिकार दिए। १८६१ मे उसने केंद्रीय ससद् की स्थापना की जिसको सभी प्रातो से पारित कानूनो को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार दिया। १८६६ ई० मे प्रशा ने आस्ट्रिया को पराजित कर दिया। इसके फलस्वरूप प्राय सभी जर्मन प्रात आस्ट्रिया के साम्राज्य से अलग हो गए और स्लैव जाति ने सघीय शासन की स्थापना की माग की। ऐसी दशा मे फ्रासिस जोजेफ ने १८६७ मे हगरी से समझौता किया जिससे उसे आतरिक मामलो मे बहुत अधिकार मिल गए।

जब १८७८ ई० मे रूस ने टर्की पर अपना आधिपत्य जमाना चाहा तो ब्रिटेन के साथ फ्रांसिस जोजेफ ने भी इसका विरोध किया क्योंकि उसे भय था कि यदि स्लैव जाति को इस प्रकार प्रोत्साहन मिला तो उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जायगा। बर्लिन समेलन मे आस्ट्रिया को टर्की के तीन प्रदेश प्रबंध करने के लिये मिले। १९०८ ई० मे आस्ट्रिया ने इनमे से दो बोलिविया और हर्जिगोविना को अपने साम्राज्य मे मिला लिया।

१८८० ई० के बीच साम्राज्य के अनेक प्रांतो ने स्वायत्त शासन की माँग की किंतु फ्रासिस जोजेफ ने उनकी इस माग को स्वीकार न किया। सवैधानिक शासन मे उसकी बिलकुल आस्था न थी। साम्राज्य की जातियो को सगठित रखना वह अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता था। उसी के भतीजे आर्कड्यूक फ्रासिस फर्डिनड की १९१४ मे हत्या के फलस्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध प्रारभ हुआ। वह जर्मन जाति से पूर्ण सहानुभूति रखता था, अत उसने विश्वयुद्ध मे जर्मनी की पूर्ण सहायता की। [ओं० प्र०]

फ्रांसिस यंगहस्बैंड एक प्रसिद्ध प्रशासक, पर्यटक तथा लेखक। उनका जन्म ३१ मई, १८६३ मे अविभक्त भारत के मरी नामक स्थान मे हुआ। उन्हे क्लिफटन और सैंडहर्स्ट मे शिक्षा प्राप्त हुई और वे १८८२ मे सेना मे भरती हुए। १८८६ में वे मुज़टग पहाडी पार करके एशिया के उस पार पहुँचे। वे १८९० मे भारतीय राजनीतिक विभाग में भेजे गए, जहाँ से वे १९०२ मे ब्रिटिश मिशन में भेजे गए, जिसका उद्देश्य दलाई लामा पर रूसी प्रभाव समाप्त करना था। उस मिशन के फलस्वरूप ७ सितबर, १९०४ को एक सधिपत्र प्रस्तुत हुआ। उन्होने ल्हासा की भौगोलिक स्थिति के सबध मे सही जानकारी दी और यह प्रमाणित किया कि तिब्बती पठार के पश्चिम मे मुज़टग ही सही जलविभाजन क्षेत्र है। वे मचूरिया, चीन, तुर्किस्तान आदि स्थानो मे खूब पर्यटन करते रहे। भ्रमण पर उन्होने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। [म० गु०]

फ्रांसिस हचेसन (१६९४-१७४६ ई०) अंग्रेजी नीतिदर्शन, प्राचीन साहित्य एव धर्मशास्त्र का पडित। उसने पहले डब्लिन मे निजी शिक्षाकेंद्र चलाया और फिर ग्लासगो विश्वविद्यालय में नीतिदर्शन का आचार्य रहा। शैफ्ट्सबरी द्वारा प्रतिपादित नैतिक इद्रिय की धारणा तथा तत्सबधी सौंदर्यात्मक अपरोक्षानुभववाद के परिवर्धन के लिये विख्यात हुआ। उसने मन में सकल्प से स्वतत्र किसी विचारनिर्धारण तथा सुख दु ख प्रत्यक्ष को इद्रिय माना और इद्रियो में पाँच बाह्य इद्रियो के अतिरिक्त मन प्रत्यक्ष इद्रिय चेतना, सौंदर्य इद्रिय, औरो के सुख पर सुखी तथा औरो के दु ख पर दु खी रहनेवाली जनेंद्रिय (जन इद्रिय), अपने अथवा दूसरो में सद्गुण अथवा अवगुण का प्रत्यक्ष करनेवाली नैतिक इंद्रिय, यश की इद्रिय, तथा हास्येंद्रिय की गणना की। उसने नैतिक इद्रिय की सौंदर्य इद्रिय से उपमा देते हुए कहा कि नैतिक इद्रिय कर्मो के तथ्यात्मक गुणो से उसी प्रकार प्रभावित होती है जैसे सौंदर्य इद्रिय पदार्थों के सौदर्य से, इसलिये उसने उसे नैतिक प्रत्यक्ष, नैतिक रस, नैतिक मूल प्रवृत्ति, नैतिक विवेक, तथा आज्ञारूपी नैतिक अनुमोदन अननुमोदन भी कहा। उसे वास्तविक सद्गुण के ध्यान से सुख की प्राप्ति तथा विस्तृत अनुभव से नैतिक इद्रिय के विकास में विश्वास था। हचेसन नैतिक इद्रिय के अतिरिक्त आत्मप्रेम तथा परहित भावना को भी मूल कर्म प्रेरक स्वीकार करता था। परतु आत्मप्रेम को समाज की स्थिति के लिये आवश्यक मानते हुए भी अनुमोदन अथवा अननुमोदन दोनो के अयोग्य समझता था। वह केवल परहित भावना को ही अनुमोदनीय कर्म का उद्गम मानता था। पूर्णतया विकसित नैतिक इद्रिय का स्वरूप और दैवी लक्ष्य ही आत्मा से जन सुख का दृढ निश्चय कराना बताता था। हचेसन का यह भी कथन था कि आत्मप्रेम तथा परहितभावना का समन्वय प्रकृति मे हो जाता है परंतु आत्मप्रेम, परहितभावना तथा नैतिक इद्रिय इन तीनों का समन्वय केवल धर्म में होता है।

हचेसन आत्म, सख्या, अवधि (duration), तथा अस्तित्व के प्रत्ययो को अन्य प्रत्येक विचार के साथ विद्यमान कहता था। बाह्य पदार्थों के अस्तित्व में विश्वास स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति समझता था, और विचार को उसकी भाषात्मक अभिव्यक्ति से भिन्न मानता था। उसका मत था कि सौंदर्य इद्रिय प्रतिवर्त है और सौंदर्य का सामान्य सत्यो, सामान्य कारणो, तथा नैतिक सिद्धातो एव कर्मो मे भी प्रत्यक्षानुभव किया जा सकता है।

स० ग्र० — फ्रासिस हचेसन एन्क्वायरी कसनिंग ब्यूटी, आर्डर हारमैनी ऐंड डिजाइन, एन्क्वायरी कसनिंग मॉरल गुड ऐंड ईविल, एसे ऑव द नेचर ऐंड कडक्ट ऑव द पैशस ऐंड अफेक्शस।

[रा० मू० लू०]

फ्रांसिस्की धर्मसंघ १३वी शताब्दी ई० के प्रारभ मे असीसी के सत फ्रासिस ने इस धर्मसघ की स्थापना की थी। सस्थापक के मनोभाव के अनुसार इस सघ मे विशेष रूप से निर्धनता पर बल दिया जाता है। इसके सदस्य अपने मठो में ध्यान, प्रार्थना तथा तपश्चर्या का जीवन बिताते हैं, इसके अतिरिक्त वे उपदेश आदि द्वारा अन्य पुरोहितो के काम मे हाथ बँटाते हैं। धर्मप्रचार के क्षेत्र मे भी उन्होने महत्वपूर्ण सहयोग दिया है और आजकल भी वे ऐसा ही करते हैं। यह रोमन कॉथलिक चर्च का सबसे महत्वपूर्ण धर्मसघ है (दे० धर्मसघ)। आजकल इसके सदस्यो की कुल सख्या लगभग ४५,००० है ये तीन शाखाओ मे विभक्त हैं — फ्रायर्स माइनर २६,५००, कवेंचुअल्स (३५००) और कैपुचिंस (१५,०००)। [का० बु०]

फ्रांसीसी जर्मन युद्ध फ्रास और जर्मनी के बीच लगभग १३ महीने तक चलनेवाली लडाई (१८७०–१८७१), जिसके परिणाम फ्रांस की पराजय, नेपोलियन राजवश की सत्ता का अत तथा तृतीय गणतत्र की स्थापना और प्रशा के नेतृत्व मे एकीकृत जर्मन राज्य के उदय के रूप मे हुए।

लबे काल से फ्रास और प्रशा के सबध तनावपूर्ण चले आ रहे थे किंतु जब प्रशा १८६६ मे आस्ट्रिया को जीतकर सारे जर्मनी का नेता बन बैठा तो फ्रास को उसकी शक्ति से बहुत खतरा महसूस हुआ। युद्ध की स्थिति उस समय उत्पन्न हो गई, जब स्पेन की रानी इज़ाबेला के राजच्युत होने के बाद जनरल प्रिम ने प्रशा के एक राजकुमार ल्योपोल्ड को स्पेन की गद्दी पर बैठने के लिये आमत्रित किया। फ्रास को प्रशा के राजकुमार का स्पेन का राजा बनना,

अपनी सुरक्षा के लिये बहुत खतरनाक लगा। नेपोलियन तृतीय ने प्रशा के राजा से आग्रह किया कि वह स्पेन के मामले से दूर रहे। प्रशा के राजकुमार ने स्पेन की गद्दी से अपना नाम तो वापस ले लिया, किंतु फ्रासीसी राजदूत का यह आग्रह कि प्रशा का सम्राट् विधिवत् आश्वासन दे कि उसके वश का कोई व्यक्ति स्पेन का राज्याधिकारी नही बनेगा, अस्वीकार कर दिया गया। इसपर जुलाई, १८७० मे फ्रास ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोपणा कर दी और सेनाएँ जर्मन सीमा की ओर बढा दी। दूसरी ओर यह चुनौती न केवल प्रशा द्वारा वरन् सभी जर्मन राज्यो द्वारा स्वीकार की गई और जर्मन सेनाएँ युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गईं।

युद्ध के आरभ मे फ्रासीसी सेनाओ ने नेपोलियन तृतीय के नेतृत्व मे जर्मन सेना के प्रथम भाग को पीछे हटने के लिये बाध्य कर दिया, किंतु उसके बाद जर्मन सेनाओं ने फ्रास की एक के बाद एक स्थितियो पर अधिकार करना आरभ किया। *अत मे नेपोलियन तृतीय भी* बदी हो गया। लगातार होनेवाली पराजय से फ्रास की जनता क्षुब्ध हो उठी, और उसने नेपोलियन को सत्ताच्युत करने की माँग की। ४ सितबर को फ्रास गणतत्र घोपित हुआ। १९ सितबर को जर्मन सेनाओ ने पेरिस घेर लिया।

जर्मनो ने बहुत दिनो तक पेरिस पर घेरा कायम रखा। नगर भुखमरी की सीमा तक पहुँच गया। नगर पर तीन सप्ताह की लगातार बमबारी ने फ्रासीसी सरकार को आत्मसमर्पण के लिये विवश कर दिया। २८ जनवरी को अस्थायी सधि हुई। उसमे फ्रास ने पेरिस के निकटवर्ती सभी किले जर्मनी को सौंप दिए। २० करोड फ्राक हर्जाने के बतौर भी देने पडे। इसके बाद फ्रास की असेंबली का चुनाव हुआ और थियेर नवगठित सरकार के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उन्होने वार्साई मे जर्मनी के साथ शातिसधि मे भाग लिया। युद्धविराम के तीन बार बढाए जाने के बाद २६ फरवरी, १८७१ को वार्साई मे शातिसधि पर हस्ताक्षर किए गए। सधि मे फ्रास पर तीन शर्तें लादी गईं — (१) फ्रास लोराइन प्रदेश का पाँचवाँ भाग जर्मनी के आधिपत्य मे सौंप दे। (२) फ्रास पाँच अरब फ्राक की राशि जर्मनी को युद्ध के हर्जाने के बतौर दे। । (३) फ्रास के कुछ विभागों पर जर्मनी का तब तक अधिकार रहेगा जब तक फ्रास उपर्युक्त राशि जर्मनी को चुकता न करे। फ्रास की असेंबली ने १ मार्च को इन शर्तों को मान लिया, और उसी दिन जर्मन सेनाओ ने पेरिस मे प्रवेश किया। युद्ध के हर्जाने की अतिम किश्त ५ सितबर, १८७३ को अदा हुई। १३ सितबर तक जर्मनी ने फ्रास का सारा क्षेत्र खाली कर दिया।

फ्रांसेज डाब्ले (१७५२–१८४०) मैडम डाब्ले, जो कुमारी फैनी बर्नी के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, नॉरफोक के किंग्सलिन नामक स्थान मे सन् १७५२ मे पैदा हुई थी। इनके पिता डॉ० बर्नी सगीत के लब्धप्रतिष्ठ मर्मज्ञ थे और फैनी के बचपन ही मे लदन में आकर रहने लगे थे। उनका सपर्क डॉ० जॉन्सन, कर्क तथा रेनॉल्ड्स जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियो से था और कालातर में कुमारी बर्नी भी उसी विशिष्ट गोष्ठी मे सबधित हो गईं। लिखने का प्रेम इनमें बाल्यकाल ही में उदय हुआ परतु विमाता के विरोध के कारण उन्हे प्रोत्साहन न मिल सका। किंतु आगे चलकर स्वाभाविक प्रवृत्ति की विजय हुई और सन् १७७८ ई० में उन्होने अपना प्रथम उपन्यास 'इवेलिन, ऑर दि हिस्ट्री ऑव ए यग लेडीज़ इट्रेंस इ टु दि वर्ल्ड' प्रकाशित किया परतु अपने नाम तथा व्यक्तित्व को गुप्त ही रखा। इस उपन्यास की लोकप्रियता से प्रोत्साहित होकर चार वर्ष पश्चात् उन्होने 'सिसीलिया, ऑर दि मेम्वार्यर्स ऑव ऐन येग्ररेस' का प्रकाशन किया। सन् १७८६ में वे साम्राज्ञी चार्लाट के अधीन एक समानित पद पर नियुक्त हुईं और अपने चार वर्षों के अनुभवो को अपनी रोचक डायरी मे लेखबद्ध करती रही। १७९३ मे उन्होंने जेनरल डाब्ले नामक फ्रासीसी शरणार्थी से विवाह किया और १८०२ से १८१२ तक फ्रास मे कालयापन किया। उनके दो अन्य उपन्यास 'कोमिला' और 'दि वाडरर' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मैडम डाब्ले का सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'इवेलिन' है, क्योकि इसमे उनकी प्रतिभा का विशिष्ट रूप पाठको के सामने आता है। *इसकी नायिका एक उच्च कुल की साधनहीन नवयुवती* है जो परिस्थितियो से विवश होकर लदन के अपरिचित समाज मे प्रवेश करती है और भिन्न भिन्न लोगो के विचित्र रहन सहन, क्रियाकलाप, वेशभूषा तथा आचार विचारो का रोचक चित्र अपने पत्रो मे अकित करती है। उपन्यास की पत्र शैली रिचर्डसन की है परतु नायिका बहिर्मुखी है और अपने व्यक्तित्व को पृष्ठभूमि मे रखती हुई वह अपने चतुर्दिक् बाह्य समाज का स्वरूप चित्रित करती है। उपन्यास-लेखिका का मुख्य उद्देश्य था एक रोचक कहानी का निर्माण करना। दूसरा विशिष्ट गुण जो इस उपन्यास मे प्रतिबिंबित है वह है लेखिका की तीव्र निरीक्षण शक्ति जिसमे घटनाएँ तथा पात्र सजीव हो उठे हैं। इसके अतिरिक्त, उपन्यास मे लेखिका की उस पैनी दृष्टि का भी प्रदर्शन है जो मनुष्यो की त्रुटियो तथा हास्यास्पद विचित्रताओ को सहज ही लक्ष्य कर लेती थी और उनकी लेखनी कुशल चित्रकार की तूलिका के समान उनका समन्वय करके मनोरजक चित्रो का सृजन करती थी। इस तरह के व्यग्यात्मक चित्र उसके उपन्यासो मे भरे पडे हैं। उनके दूसरे उपन्यास 'सिसीलिया' मे भी इन्ही गुणो की अभिव्यक्ति हुई है और कथावस्तु भी अनुरूप ही है परतु सफलता उतनी सर्वांगीण नही है। शेप दो उपन्यासो मे उन्होने अपने अनुभवक्षेत्र के बाहर बढने का प्रयास किया और डॉ० जॉन्सन की गभीर तथा बोझिल शैली को अपनाया, जिसके फलस्वरूप उन्हे सफलता से वचित होना पडा। मैडम डाब्ले के उपन्यासो का महत्व ऐतिहासिक है क्योकि उनमे स्त्रियो के स्वतत्र दृष्टिकोण का समावेश है और घरेलू जीवन ही उनका केंद्रबिंदु है। इस तरह से उन्होने उस परपरा का श्रीगणेश किया जिसकी पराकाष्ठा जेन आस्टिन की परिपक्व कृतियो मे पाई जाती है।

स० ग्र०—ए डॉब्सन फैनी बर्नी १९०३, लार्ड मैकाले मैडेम डाब्ले हिस्टॉरिकल एसेज, द्वितीय भाग, १८५४, राल्फ वी० सीले फैनी बर्नी ऐंड हर फ्रेंड्स, १८९०। [वि० रा०]

फ्रॉइसार जाँ (लगभग १३३८–१४१० ई०) आरभ मे वह एक व्यापारी के यहाँ नौकरी किया करता था। बाद मे ज्ञान प्राप्त करने की लगन पैदा हुई और उसने नौकरी छोड दी। पढे लिखो के बीच उसका उठना बैठना आरभ हो गया। कविता से प्रेम उसे शुरू ही से था, यहाँ बढावा मिला और वह कविता करने लगा। दुनिया घूमने

$$\text{का}_६ \text{हा}_६ + \text{का}_६ \text{हा}_५ \text{काओक्लो} \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_६ \text{हा}_५ \text{ का ओ } \text{का}_६ \text{हा}_५ + \text{हाक्लो}$$

$$\left[C_6 H_6 + C_6 H_5 COCl \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6 H_5 \; CO \cdot C_6 H_5 + HCl \right]$$
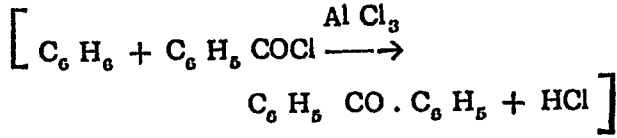
$$२\ \text{का}_६ \text{हा}_६ + \text{काओक्लो}_२ \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_६ \text{हा}_५ \text{ का ओ } \text{का}_६ \text{हा}_५ + २\ \text{हाक्लो}$$

$$\left[2\,C_6 H_6 + COCl_2 \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_5 CO C_6 H_5 + 2\ HCl \right]$$

(ङ) अम्लो के सश्लेषण मे

$$\text{का}_६ \text{हा}_६ + \text{का ओ क्लो}_२ \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_६ \text{हा}_५ \text{का ओ क्लो} \xrightarrow{\text{हाओहा}} \text{का}_६ \text{हा}_५ \text{ का ओ ओ हा}$$

$$\left[C_6 H_6 + COCl_2 \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_5\,COCl \xrightarrow{HOH} C_6 H_5\,COOH \right]$$

(च) चक्रीय यौगिको के सश्लेषण मे

[illegible]
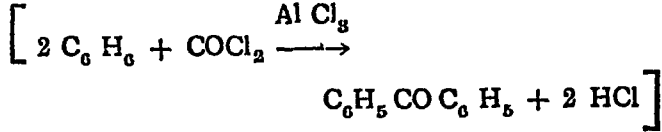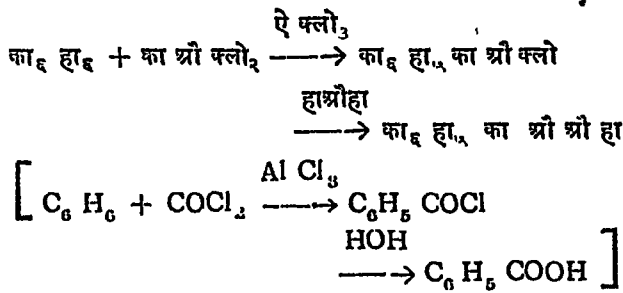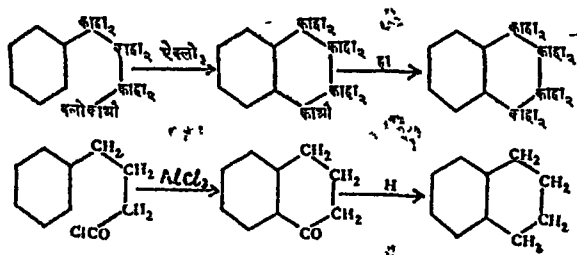
(छ) क्विनोनो (quinones) के सश्लेषण मे

[illegible]
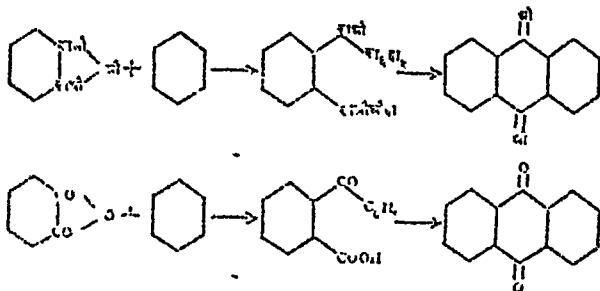
इस अभिक्रिया की विशेषताएँ

(१) क्रियाफल उत्प्रेरक पर निर्भर है।

$$\text{का}_६ \text{हा}_५ \text{का हा}_3 + \text{का हा}_3 \text{क्लो} \xrightarrow{\text{ऐक्लो}_3} \text{का}_६ \text{हा}_४ (\text{का हा}_3)_२ \ (\text{मेटा})$$

$$\left[C_6 H_5 CH_3 + CH_3\,Cl \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6 H_4 (CH_3)_2 \right] \ (\text{meta})$$

$$\text{का}_६ \text{हा}_५ \text{का हा}_3 + \text{का हा}_3 \text{क्लो} \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_६ \text{हा}_४ (\text{का हा}_3)_२ \ (\text{पैरा})$$

$$\left[C_6H_5\,CH_3 + CH_3Cl \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6\,H_4(CH_3)_2 \right] \ (\text{Para})$$
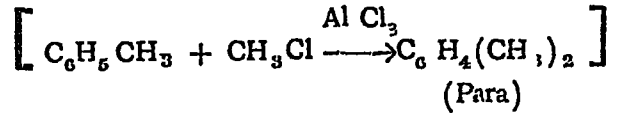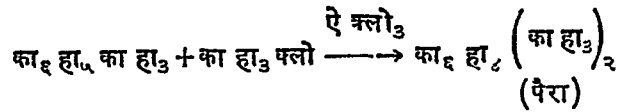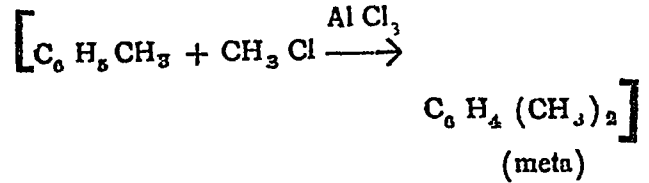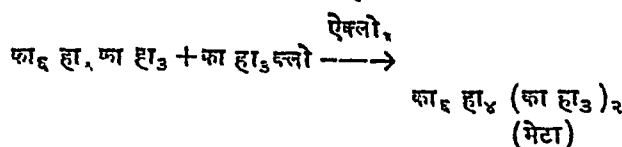
(२) ऐल्किल हैलाइड — इनकी क्रियाशीलता इस प्रकार है।

फ्लोराइड > क्लोराइड > ब्रोमाइड > आयोडाइड

साथ ही

तृतीयक हैलाइड > द्वितीयक हैलाइड > प्राथमिक हैलाइड

(३) विलायक — यदि अभिकारक द्रव रूप मे है, तो विलायक की आवश्यकता नही पडती, परतु ठोस रूप के यौगिको (जैसे नैफ्थेलीन) के साथ प्रयोग करने के लिये विलायक की आवश्यकता होती है। नाइट्रोबेंजीन, कार्बन डाइसल्फाइड, पेट्रोलियम ईथर अच्छे विलायक है।

(४) ऐल्किल समूहो का समावयवीकरण — इस क्रिया के अतर्गत प्राथमिक ऐल्किल हैलाइड द्वितीयक मे तथा द्वितीयक तृतीयक मे परिवर्तित हो जाते हैं, अत चाहे प्रोपाइल क्लोराइड लें या आइसो-प्रोपाइल क्लोराइड, इन क्रियाओ के फलस्वरूप आइसोप्रोपाइल बेंज़ीन ही प्राप्त होगा।

$$\text{का}_६\text{हा}_६ + \text{का हा}_3 \text{ का हा}_२ \text{ काहा}_२ \text{ क्लो} \longrightarrow \text{का}_६ \text{हा}_५ \text{ का हा(का हा}_3\text{) का हा}_3$$

$$[C_6 H_6 + CH_3 CH_2 CH_2 Cl \longrightarrow C_6 H_5\ CH(CH_3)\ CH_3]$$

$$\text{का}_६ \text{हा}_६ + \text{काहा}_3 \text{ का हा(क्लो) काहा}_3 \rightarrow \text{का}_६ \text{हा}_५ \text{ का हा(का हा}_3\text{) का हा}_3$$

$$[C_6 H_6 + CH_3\,CH(Cl)\,CH_3 \rightarrow C_6 H_5\,CH(CH)\,CH_3]$$
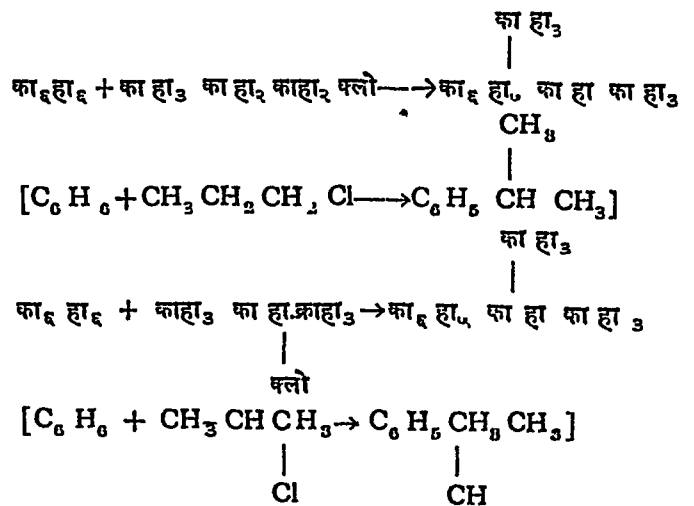
(५) बेंजीन चक्र मे ऑर्थो या पैरा अभिस्थापन करानेवाले समूहो की उपस्थिति मे अभिक्रिया अधिक अच्छे प्रकार से होती है तथा मेटा अभिस्थापन करानेवाले समूहो की उपस्थिति मे यह कम वेग से होती है, या बिलकुल ही अवरुद्ध हो जाती है।

अभिक्रिया का प्रक्रम—

(क) ऐल्किल हेलाइड से .

कई वार ठन जाया करती थी। स्वार्ट्ज का प्रभाव मुसलमान राजाओ पर वहुत गहरा था, अग्रेजों ने उन्हें अपना राजदूत ठहराया जो कठिनाई के समय राजाओ से सधि और समझौता कराने मे अगुवाई करते थे। एक वार हैदर अली ने वगावत कर दी और किसी शर्त पर सधि करने को तैयार न था। उसने कहा 'मैं अग्रेजो पर भरोसा नही करता। फ्रीड्रिख स्वार्ट्ज को मेरे पास लाओ। वह मुझे हर्गिज धोखा नही देगा।' इस प्रकार वह देशी राज्यों मे विदेशी राजदूत और मैजिस्ट्रेट का सा काम करते थे।

१७६७ तक वे डेनिश हेली मिशन के मातहत काम करते रहे और वहीं से आर्थिक सहायता ग्रहण करते रहे। उसके वाद उनका मुख्य कार्यालय त्राकोवार के वदले त्रिचनापल्ली मे हो गया जो अग्रेजी सैनिक अड्डा था। कुछ काल के वाद वे तजोर चले गए। तजोर अग्रेजो के अधिकार मे था। अव उनकी आर्थिक सहायता एस० पी० सी० के० मिशन से आने लगी। दूसरे लोग भी उनकी सहायता किया करते थे जिससे उन्होने त्रिचनापल्ली का गिर्जाघर वनवाया। उनका असली काम तजोर मे हुआ जहाँ अनाथालय आरभ किया गया जो हेली मिशन का मुख्य आधार था।

तजोर के राजा से उनका वहुत घनिष्ठ सवध था और वे राजा के वडे विश्वासपात्र थे। राजा की मृत्यु के वाद उनके नावालिग पुत्र सर्फोजी के रक्षक की जिम्मेवारी इन्ही को सौंपी गई और इन्होने पिता की तरह उसका लालन पालन कर उत्तम से उत्तम शिक्षा देकर जीवन के लिये तैयार किया। सर्फोजी के काका सपत्ति और राजकाज की देखरेख के लिये उत्तरदायी ठहराए गए जो लालच मे पडकर राज्य को खुद ही हडपने की कोशिश करने लगे। अतएव फ्रीड्रिख स्वार्ट्ज निरीक्षक ठहराए गए ताकि काका साहव किसी प्रकार की चालाकी न कर सकें। तजोर मे उन्होने अपने ही धन से जो गिर्जाघर वनवाया वह आज तक ऐंग्लिकन लोगो द्वारा काम मे लाया जाता है। जो कुछ सहायता उन्हे प्राप्त होती उसका वहुत थोडा अश वे अपनी सादी रहन सहन एव खानपान मे लगाते और वाकी सव गिर्जे वनाने, स्कूल चलाने तथा मिशन के दूसरे कामो मे लगा देते थे, यहाँ तक कि उन्होने अपनी निजी सपत्ति, जिसकें वे वारिस थे, अपनी मृत्यु के वाद मिशन को दे दी।

तजोर के वाद वे तिन्नेव्हेली गए जो दक्षिण भारत के दक्षिणी हिस्से मे है। वहाँ उन्होने प्रचार किया। कोवार मिशन ने इस क्षेत्र की देखरेख करने से इनकार कर दिया। इन्होने स्वय अपने खर्च से एक स्कूल खोला और एक प्रचारक रख दिया जो प्रचार करता और विश्वासियो की सहायता करता था।

७ अगस्त, १७६८ को ४८ साल की अथक सेवा के वाद स्वार्ट्ज की मृत्यु हुई।

इसके वाद सन् १८०७ मे ईस्ट इडिया कपनी ने मद्रास के किला-गिर्जाघर (सेंट मेरी के गिर्जाघर) मे एक वहुमूल्य पत्थर पर स्मरण वाक्य लिखकर टाँग दिया

'वे सवके प्रिय थे और सव उनके प्रिय थे। वे कभी किसी को तुच्छ नही समझते थे। यही कारण था कि वे जीवन मे वडे सफल रहे।' [मि० च०]

फ्रूंजे १ प्रदेश, यह रूस मे पश्चिम तथा उत्तर मे जाबूल (Dzhambul), आलमाआटा (Alma Ata), पूर्व मे इसिकुल (Issykkul), दक्षिण में टिएनशान (Tien-Shan) प्रदेशो से घिरा प्रदेश है। किरगीज़ नामक जाति यहाँ निवास करती है। रेशेदार पौधे, गेहूँ, कपास, चुकदर तथा तवाकू की कृषि होती है। पशुपालन के अतर्गत भेड पालने का कार्य काफी विकसित है।

२ नगर, स्थिति ४२° ५५′ उ० अ० तथा ७२° ४७′ पू० दे०। यह रूस के किरगीज़िया राज्य की राजधानी है, जो ताशकद के ३०० मील पूर्व-उत्तर-पूर्व तथा इसिककुल झील के ८८ मील उत्तर-पूर्व, सागरतल से २,०१७ फुट की ऊँचाई पर, ऊपरी चू नदी की एक सहायक नदी के किनारे स्थित है। यहाँ सूती वस्त्र, आटा, चुकदर, तवाकू, रेशम, ऊन, खाल तथा मास से सवधित उद्योग हैं। नगर का शिलान्यास सन् १८७३ में एक रूसी दुर्ग के साथ हुआ था तथा इनका नाम पिशपेक रखा गया था। वाद में वोलशेविक जनरल एम० पी० फ्रूंजे के नाम पर इसका नाम फ्रूंजे रखा गया। सन् १६५१ में एक विश्वविद्यालय तथा सन् १६५४ में किरगिज़िया विज्ञान अकादमी की स्थापना की गई थी। यहाँ की जनसख्या ३,२६,००० (१६६३) है। [लि० रा० सि०]

फ्रेंच गिआना स्थिति ४° ०′ उ० अ० तथा ५३° ०′ प० दे०। यह दक्षिणी अमरीका के उत्तर-पूर्वी समुद्री तट पर स्थित फ्रास के अधिकार मे एक समुद्रपारीय क्षेत्र है। इसके पश्चिम मे डच गिआना तथा पूर्व एव दक्षिण मे व्राजिल है। इसका क्षेत्रफल २३,००० वर्ग मील तथा जनसख्या ३५,००० (१६६३) है। इसकी राजधानी काइएन (Cayenne जनसख्या, १८,५००) है। कृषि मे धान, मक्का, मेनिओक, कोकोआ, केला, गन्ना तथा अनन्नास की पैदावार अधिक होती है। सोना खोदना तथा मत्स्य उद्योग प्रमुख उद्योग है। जगलो से लकडी प्राप्त होती है। यहाँ की ८० प्रति शत जनता रोमन कैथोलिक धर्म को मानती है (देखें, गिआना)। [रा० प्र० सि०]

फ्रेंच गिनी स्थिति १०° २०′ उ० अ० तथा १२° ०′ प० दे०। पहले यह अफ्रीका महाद्वीप के पश्चिमी तट पर, फ्रास के अधिकार मे फ्रेंच कॉलोनी के रूप मे था। २ अक्टूवर, १६५८ को यह स्वतत्र घोपित कर दिया गया तथा अव इसका नया नाम केवल 'गिनी' रह गया है (देखें, गिनी)।

फ्रेंच वेस्ट इडीज कैरिवीऐन सागर मे स्थित, फ्रास द्वारा शासित ग्वादलूप (Guadeloupe), मार्टनीक (Martinique), तथा लैसर ऐंटिल्ज द्वीपसमूह को कहते हैं। इसके अतर्गत दो वडे वडे द्वीप ही प्रमुख हैं।

१. ग्वादलूप — इसका क्षेत्रफल १,५०६ वर्ग किमी० तथा आश्रित प्रदेशों (dependencies) सहित जनसंख्या २,८३,२२३ (१६६१) है। इसमे भी दो द्वीप शामिल हैं, जो एक दूसरे से एक चैनल द्वारा विभक्त हैं। पश्चिमी द्वीप को मुख्य ग्वादलूप कहते हैं, इनका प्रमुख नगर वास टेयर (Basse Terre) है। पूर्वी द्वीप को ग्राउंटेयर कहते हैं तथा इसका प्रमुख नगर प्वैंटा पीटर है। इनके अतिरिक्त इन द्वीप मे पांच अन्य अधीन राज्य भी शामिल हैं। यहाँ के निवासी पिछडे हुए हैं तथा यहाँ के प्रमुख उत्पाद केला, शक्कर, रम (शराब),

कॉफी, तथा ककोआ हैं। हवाई यातायात द्वारा यह फ्रास आदि देशों से जुडा है।

२ मार्टनीक — इसका क्षेत्रफल १,१०० वर्ग किमी० तथा जनसख्या ३,१०,००० (१९६४) है। यह ३४ कम्यूनो मे विभक्त है। फॉर द फ्रास यहाँ की राजधानी है, जो प्रमुख व्यापारिक केंद्र भी है। इस नगर की जनसख्या ६०,६४८ (१९६०) है। यहाँ केला, गन्ना, ककोआ, अनन्नास तथा कॉफी उगाई जाती है। पशुओ मे भेड, वकरी, सूअर, घोडे, खच्चर प्रमुख हैं। यहाँ शक्कर तथा रम वनाने एव अनन्नास से सवधित उद्योग हैं। जलयातायात तथा वायुयातायात से अन्य देशो से जुडा है।

फ्रेंच वेस्टइडीज मे नववर से जून तक शुष्क एव जुलाई से अक्टूबर तक नम मौसम रहता है। नववर से मार्च तक व्यापारिक हवाएँ चलती हैं। मार्टनीक की औसत वार्षिक वर्षा २२०·९८ सेंमी० तथा ग्वादलूप की २१८ ४४ सेंमी० है। मार्टनीक का औसत वार्षिक ताप २५° सें० रहता है। [रा० प्र० सिं०]

फ्रेंच सूडान देखें माली गणतत्र।

फ्रेंच सोमालीलैंड स्थिति ११° ३०′ उ० अ० तथा ४२° १५′ पू० दे०। यह फ्रास के अधिकार मे, लाल सागर के प्रवेशद्वार के पास लाल सागर के पश्चिम मे, इथिओपिया एव सोमालिया के बीच स्थित समुद्रपारीय क्षेत्र (overseas territory) है, जिसका क्षेत्रफल २३,००० वर्ग किमी० एव जनसख्या ८२,००० (१९६४) है। जिबूटी (Djibouti, जनसख्या ४३,०००) यहाँ की राजधानी तथा बदरगाह है। उपजाऊ जमीन होते हुए भी पानी की कमी के कारण यहाँ कृषि मे विशेष उन्नति नही हो पाई है। कुछ सब्जियाँ एव खजूर ही यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। भड, वकरी, ऊँट एव गधे प्रमुख पशु हैं। जलयान निर्माण तथा नमक वनाना इस क्षेत्र के प्रमुख उद्योग हैं। यहाँ के अधिकाश लोग मुसलमान हैं। [रा० प्र० सिं०]

फ्रेडरिक प्रथम (११२३-११९०) रोमन सम्राट्, सुआविया के ड्यूक फ्रेडरिक का पुत्र था। ११५२ मे अपने चाचा कॉनरैड तृतीय के उत्तराधिकारी के रूप मे गद्दी पर वैठा। राज्य की स्वतत्रता और अततोगत्वा सपूर्ण इटली पर प्रभुत्व स्थापित करना उसकी महत्वाकाक्षाएँ थी। ११५४ मे उसने इटली पर पहला आक्रमण किया। ११५५ मे रोम मे पोप आद्रियाँ द्वारा सम्राट् के रूप मे अपना अभिषेक करा लिया। ११५८ के दूसरे आक्रमण में उसने ब्रेसिया और मिलाँ पर अधिकार कर लिया। जर्मनी लौटकर उसने वोहेमिया हथिया लिया और पोलैंड से कर वसूल करने लगा। पोप आद्रियाँ की मृत्यु के पश्चात् उसने अलेक्जेंडर तृतीय के विरुद्ध क्रमश तीन पोपो को अनधिकारिक रूप से निर्वाचित कराया। इसपर अलेक्जेंडर तृतीय ने उसे और उसके पोप विक्टर को धर्मच्युत कर दिया। ११६२ मे मिलाँ को उजाड दिया, इसके वाद तो लबार्डी के सभी नगरो ने उसके सामने हथियार डाल दिए। ११७६ में कोमों में मिलाँ की सेनाओं से बुरी तरह पराजित हुआ। ११८३ मे उसने पोप और लवार्डी के नगरो से सधियाँ की। ग्रीम की ओर उसके वढ़ते हुए कदम रोक दिए गए। फिर वह एशिया माइनर की ओर मुडा। इसी अभियान मे नदी मे डूबने से उसकी मृत्यु हो गई।

फ्रेडरिक द्वितीय (११९४-१२५०) रोमन सम्राट्। फ्रेडरिक ने १२२० मे रोम का शाही ताज धारण किया। १२२५ मे उसने येरुसेलम के राजा की कन्या से विवाह किया। १२२८ मे मिस्र के सुलतान से सधि करके येरुसेलम पर अधिकार कर लिया। यूरोप लौटकर उसने पोप से सधि कर ली और अपने पुत्र हेनरी के विद्रोह का दमन किया। १२३५ में फ्रेडरिक ने लवार्डी के नगरो से युद्ध छेड दिया और अनेक नगर जीत लिए। उसने पोप इनोसेंट चतुर्थ से सधि की, किंतु इनोसेंट ने एक प्रतिद्वदी धर्मसम्मत सम्राट् की घोषणा कर दी। इटली में युद्ध जारी रहा जिसमें फ्रेडरिक को पराजित होना पडा। फ्रेडरिक मध्ययुग का एक बुद्धिमान और कुशल शासक था लेकिन उसके इटली प्रेम और समूचे इटली को महान् साम्राज्य के रूप में देखने के आग्रह से जर्मन जनता को अनेक युद्धों का कष्ट झेलना पडा।

फ्रेडरिक विलियम (१६२०-१६८८) ब्रैडेनवर्ग का महान् इलेक्टर (Elector)। १६४० मे गद्दी पर वैठा। पोलैंड और स्वीडन के युद्ध मे उसने वारी वारी से दोनो का समर्थन किया और प्रशा को पोलैंड की अधीनता से मुक्त करा लिया। इस प्रकार उसने ब्रैडेनवर्ग प्रशा को जर्मनी का द्वितीय राज्य वना दिया। कुछ दिनो वाद उसे प्रशा के उन सामतो का दमन करना पडा जो प्रशा को पुन पोलैंड मे मिलाने का षड्यत्र कर रहे थे। फिर भी उसने उनका महत्व और प्राधान्य रहने दिया।

फ्रास के शासक १४वें लूई से सशक होकर १६७२ मे उसने डच प्रजातत्र से सधि कर ली। अगले वर्ष फ्रास के साथ उसकी सधि हो गई जिससे फ्रास ने वेस्टफेलिया खाली कर देना स्वीकार किया और फ्रेडरिक ने फ्रास के विरोधियो की सहायता न करने का वचन दिया। सन् १६८५ मे उसने हालैंड से पुन मेल मिलाप वढाना शुरु किया और फ्रास से भागे हुए १४ हजार प्रोटेस्टैंटों को अपने यहाँ शरण दी। उसके वाद दोनो मे फिर तनाव शुरू हो गया जिससे फ्रेडरिक ने आस्ट्रिया से मित्रता वढा ली। उसने कृषि की उन्नति करने, नहर वनवाने तथा शिक्षा के प्रसार का विशेष प्रयत्न किया।

फ्रेडरिक विलियम प्रथम (१६८८-१७४०) प्रशा का सम्राट् जो १७१३ में राज्यारूढ हुआ। सात वर्ष तक वह लगातार पोमेरैनिया के मामले पर स्वीडेन से युद्ध में उलझा रहा। १७२० में स्टॉकहोम सधि के अनुसार पोमरैनिया का वडा भाग फ्रेडरिक को प्राप्त हो गया। युद्ध के पश्चात् उसने राज्य के आतरिक सुधारो की ओर ध्यान दिया, आर्थिक प्रशासन को सुदृढ करने के लिये उसकी सामयिक योजनाओ ने राज्य को बहुत लाभ पहुँचाया। वह परिष्कृत सैनिक रुचियो का व्यक्ति था। उसने सेना मे अनुशासन वढाने की ओर विशेष ध्यान दिया। उसकी मृत्यु के समय प्रशा के राजकोष मे प्रचुर धनराशि थी और सेना मे ८३,००० सैनिक थे।

फ्रेडरिक द्वितीय महान् (जन्म, १७१२, मृत्यु, १७८६ ई०) प्रशा का राजा। फ्रेडरिक विलियम प्रथम का पुत्र था। प्रारभ मे उसके पिता ने उसे केवल सैन्य शिक्षा दिलाने का प्रवध किया, किंतु वह अपने शिक्षको के प्रभाव से सगीत और काव्य मे रुचि लेता था। वस्तुत उसे जर्मन साहित्य से प्रेम नही था, अपितु

वह फ्रांसीसी जीवनदर्शन और साहित्य से अधिक रस ग्रहण करता था। स्वभावभिन्नता के कारण फ्रेडरिक विलियम अपने पुत्र फ्रेडरिक पर बहुत रुष्ट रहता था और अनेक प्रकार की यातनाएँ देता था। एक बार वह इग्लैंड भाग जाने के प्रयत्न में पकडा गया और कारागार मे डाल दिया गया। भागने मे साथ देनेवाले उसके एक मित्र को उसके पिता ने मृत्युदड दिया। १७४० मे वह गद्दी पर बैठा। रोमन सम्राट् चार्ल्स पष्ठ की मृत्यु (१७४०) के पश्चात् फ्रेडरिक ने साइलेसिया पर १७४१ मे आक्रमण कर मॉलविट्ज, शोतूसित्ज़, ब्रेसलाउ, तथा अपर और लोअर साइलेसिया पर अधिकार कर लिया। १७४४ मे उसने बोहेमिया पर आक्रमण कर प्राग पर अधिकार कर लिया। १७४५ मे ड्रेसडेन के शाति समझौते पर हस्ताक्षर किए, और इस प्रकार वह सारी साइलेसियाई भूमि का मालिक बन बैठा।

फ्रेडरिक ने समाजसुधार, कृषि और उद्योगो की उन्नति की ओर बहुत ध्यान दिया। विज्ञान अकादमी की पुन स्थापना और समृद्धि के लिये उसने विशेष यत्न किए। सैन्य शक्ति बढा ली और सेना को अच्छे उपकरणो से सज्जित किया। इस काल मे उसने लेखनकार्य भी जारी रखा—जिनमे मेमॉयर्स ऑव द हाउस ऑव ब्रैंडेनबर्ग' उल्लेखनीय है। वाल्तेयर से उसकी गाढी मित्रता थी, किंतु बाद मे दोनों मे अनबन हो गई। सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६–१७६३) मे उसने अनेक स्थानो पर विजय प्राप्त की। ह्यूबर्ट्सबर्ग की सधि (१७६३) के अनुसार उसकी शक्ति मे वृद्धि हुई। १७६४ मे उसने रूस से सधि की। पोलड के विभाजन (१७७१) मे फ्रेडरिक ने पोलैंड का एक बडा भाग हथिया लिया। बवेरिया के इलेक्टर मैक्सिमिलियन जोसेफ तृतीय की मृत्यु (१७७७) के पश्चात् जब बवेरिया मे उत्तराधिकार का सघर्ष छिडा, उसी समय १७७८ मे फ्रेडरिक ने बोहेमिया पर पुन आक्रमण कर दिया और तेशेन (Teschen) की सधि (१७७९) के अनुसार फ्राकोनिया के कई इलाके ले लिए। १७८५ मे उसने सैक्सोनी और हनोवर के साथ आस्ट्रिया के विरुद्ध जर्मन राज्यों का एक महासघ निर्मित किया। १७ अगस्त, १७८६ को पोत्सदाम मे उसकी मृत्यु हुई।

फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) १ नगर, स्थिति ५०° ८' उ० अ० तथा १४° ३०' पू० दे०। यह पश्चिमी जर्मनी के हेसी नैसॉ (Hesse Nassau) प्रात मे, माइन तथा राइन नदियो के सगमस्थल से २५ मील ऊपर, माइन नदी के उत्तरी किनारे पर, कॉलोन से १०० मील दक्षिण-पूर्व तथा स्टटगार्ट से ६० मील उत्तर, उपजाऊ, समतल तथा चौडी घाटी मे स्थित, जर्मनी का व्यापारिक तथा औद्योगिक नगर है। यह गेटे नामक प्रसिद्ध कवि का जन्मस्थान है। उद्योगो मे भारी एव हलके यत्र, वस्त्र निर्माण, विद्युत् यत्र, रसायनक एव दवाओ का निर्माण उल्लेखनीय है। इस प्राचीन नगर मे गॉथिक शैली के भवनो मे रोमर नामक नगरभवन, बार्थोलोम्यू कैथेड्रल, सेंट पाल गिरजाघर, गेटे भवन, सग्रहालय, पुस्तकालय तथा आधुनिक भवनो मे फ्रैंकफर्ट हाफ होटल, प्रदर्शन मैदान, थोक बाजार हाल एव ए० ई० जी० (A E G.) बिजली कपनी का कार्यालय उल्लेखनीय हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध काल मे नगर का अधिकाश ध्वस्त हो गया था। आधुनिक ढग पर नए नगर का पुनर्निर्माण किया गया है। यहाँ चिकित्सालय, वानस्पतिक सस्थान, कलासस्थान, रसायन एव शरीर-रचना-विज्ञान की प्रयोगशालाएँ, चित्र गैलरी एव कई सग्रहालय तथा महाविद्यालय भी हैं। पामेनगार्डेन मे ससार के सभी भागो से लाकर फूल लगाए गए हैं। यहाँ का हवाई अड्डा ससार की वायुसेवाओ का बहुत ही महत्वपूर्ण केंद्र है। फ्रैंकफर्ट की जनसख्या ६,८८,४८२ (१९६१) है।

२ नगर, स्थिति ५२° २१' उ० अ० तथा १४° ३३' पू० दे०। पूर्वी जर्मनी मे भी इस नाम का नगर है, जो ओडर नदी के बाएँ किनारे पर बर्लिन के ५० मील पूर्व-दक्षिण-पूर्व स्थित है। यहाँ रेलगाडी, चीनी, यत्र, वस्त्र, जूता, साबुन, सिगार, साजसज्जा, रसायनक, कागज और धातु की चीजो का निर्माण होता है। साल में तीन अंतरराष्ट्रीय महत्व के मेले लगते हैं जिनसे अनाज, पशु और शराब के व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिलता है। राथौस गिरजाघर एव विश्वविद्यालय प्रसिद्ध है। इसकी जनसख्या ६,६१,०६२ (१९६२) है। [रा० प्र० सिं०]

फ्रैंकलिन, बेंजैमिन (Franklin, Benjamin, १७०६ ई०–१७९० ई०) अमरीकी वैज्ञानिक एव राजनीतिज्ञ थे। इनका जन्म १७ जनवरी, १७०६ को बोस्टन मे हुआ। शिक्षा दीक्षा भी बोस्टन मे हुई। फ्रैंकलिन ने मुद्रण उद्योग से कार्य आरभ किया एव धीरे धीरे प्रकाशक बन गए। सन् १७४६ मे विद्युद्विज्ञान के प्रति रुचि जागृत हुई। मेघगर्जन एव तडित् विद्युत् पर अनेक प्रयोग किए। मेघगर्जन के समय पतग उडाने के इनके प्रयोग प्रसिद्ध हैं। पतग के प्रयोगो पर इनके पडोसी इनका मजाक उडाया करते थे। इनकी पतग पर एक नुकीला तार निकला रहता था। पतग की डोर रेशम की थी। दूसरी ओर पृथ्वी पर एक ताली लटकी रहती थी। ताली की सहायता से इन्होने लीडन जार को आवेशित किया। इस प्रकार इन्होने तडित् विद्युत् की जानकारी प्राप्त की एव तडित चालक का आविष्कार किया। तडित् चालक के प्रयोग से अनेक इमारतें तडित् विद्युत् प्रभाव से धराशायी होने से बच गई। [अ० प्र० स०]

फ्रैंकलिन, सर जॉन (सन् १७८६-१८४७), उत्तर ध्रुवीय प्रदेश के ब्रिटिश, अन्वेषक, का जन्म इग्लैंड के लिंकनशिर काउटी के स्पिल्स्बी नामक ग्राम मे हुआ था। इनकी शिक्षा सेंट आइव्ज तथा लाउथ के ग्रामर स्कूलो मे हुई थी।

इन्होने मिडशिपमैन के पद से नौसैनिक जीवन आरभ किया। सन् १८०१ में हुए कोपेनहेगेन के युद्ध मे ये उपस्थित थे। इनके पश्चात् ऑस्ट्रेलिया के सागरतट के सर्वेक्षण मे इन्होने सहायता दी। सन् १८१८ मे एच० एम० एस० ट्रेंट नामक पोत के कमाडर के पद पर नियुक्त होकर, इन्होने उत्तरी अमरीका के उत्तर मे कापरमाइन नदी से लेकर तर्नागेन अतरीप तक, तथा सन् १८२५ मे इसी नदी से मैकेंजी नदी तक के सागरतट का अन्वेषण किया। सन् १८४५ मे ये रियर ऐडमिरल के पद पर नियुक्त हुए तथा एरेबस और टेरर नामक पोतो को लेकर बेरिंग जलसयोजी की दिशा मे अन्वेषण के लिये गए, जहाँ इनके दल का विनाश हो गया। सन् १८५९ मे खोज के लिये भेजे हुए एक दल ने पाया कि उत्तर पश्चिमी मार्ग का पता

लगाने मे तो यह अभियान सफल हुआ था, किंतु सर फ्रैंकलिन की सन् १८४७ में वही मृत्यु हो गई।

इन्होंने अन्वेषण से सबधित अपनी यात्राओ के वर्णन की दो पुस्तकें भी लिखी थी। [भ० दा० व०]

फ्लॉक्स (Phlox) पॉलिमोनियेसी (Polemoniaceae) कुल का एक छोटा सा पौधा है, जिसकी करीब ६० जातियाँ हैं। नीले, गुलाबी, लाल और सफेद रग के सुदर फूल के कारण यह वाटिकाओ में लगाया जाता है। फूल दीपिकाकार होते है और गुच्छो मे निकलते हैं। इसके उगने के लिये अच्छी प्रकार की मिट्टी एव ठढे आर्द्र स्थान की आवश्यकता होती है। वाटिकाओ मे बहुधा फ्लॉक्स ड्रमाडाइ (phlox drummondii) लगाया जाता है। शैल उद्यान तथा क्यारियो के किनारे छोटी जातिवाले फ्लॉक्स सुबुलेटा (Phlox subulata), जिसे 'मॉस पिंक' (Moss pink), अथवा ग्राउड फ्लॉक्स (Ground phlox) कहते हैं, लगाया जाता है। इस पौधे की अधिकाश जातियाँ एकवर्षी होती हैं, पर फ्लॉक्स पैनीकुलेटा (Phlox paniculata) वर्षानुवर्षी फ्लॉक्स है, जो चार फुट तक ऊँचा होता है। इसमे सफेद अथवा गुलाबी रग के सुदर फूल लगते हैं। [रा० श्या० अ०]

फ्लॉरिडा स्थिति २४° ३०' से ३१° ०' उ० अ० तथा ७९° ४८' से ८७° ३८' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका का एक प्रात है। इसके उत्तर मे जॉर्जिया, ऐलबैमा (Alabama), पूर्व मे ऐटलैंटिक महासागर तथा पश्चिम मे मेक्सिको की खाडी स्थित है। इसका क्षेत्रफल ५८,५६० वर्ग मील तथा जनसख्या ४९,५१,५६० (१९६०) है। मियामी यहाँ का सबसे बडा नगर (जनसख्या २,९१,६८८) है। अगूर, सतरे, तबाकू, गन्ना तथा मक्का अधिक उत्पन्न की जाती है। मछली उद्योग में इसका विशेष स्थान है। यहाँ से प्राप्त होनेवाले खनिजो में फॉस्फेट प्रमुख है तथा चूना पत्थर, पेट्रोल, कियोलिन आदि खनिज भी मिलते हैं। उद्योगो में धातुकर्म, लकडी से सबधित उद्योग, रसायनक, लुगदी, भोजननिर्माण सबधी उद्योग, काफी उन्नति कर गए हैं। शिक्षा के लिये यहाँ पर चार विश्वविद्यालय हैं। इस प्रात को १५१३ ई० में पोस द लेआँन नामक स्पेन निवासी ने खोजा था। इसकी राजधानी टैलाहैसी (Tallahassee) है। यह ६७ काउटियों में विभक्त है। सुवॉनी (Suwannee) यहाँ की प्रमुख नदी है। राज्य की सबसे बडी झील ओकी चोबी है, जो ४० मील लबी एव ३० मील चौडी है। यहाँ का जलवायु समशीतोष्ण है तथा महत्तम औसत ताप २७° सें० एव औसत वार्षिक वर्षा ५२ ८ इच रहती है। यहाँ अनेक नगर एव दर्शनीय स्थल हैं।

फ्लीट स्ट्रीट पत्रकारो का मक्का और स्ट्रीट ऑव् इक (स्याही की स्ट्रीट) के नाम से प्रसिद्ध फ्लीट स्ट्रीट लदन के पत्रकारो का गढ़ है। वस्तुत यह केवल लदन ही नही वरन् विश्व के बृहत्तम समाचारपत्रो का केंद्रस्थान है। ब्रिटेन के प्राय सभी समाचारपत्रो के कार्यालय इसी स्ट्रीट मे या इसी के आसपास की स्ट्रीटों मे करीब आधे वर्गमील के घेरे में बसे हुए हैं। इसके साथ ही साथ विदेशो के अधिकाश समाचारपत्रों के स्थानीय कार्यालय भी इसी स्ट्रीट मे हैं,

ब्रिटिश पत्रकारिता की आत्मा फ्लीट स्ट्रीट मे बसती है और प्रेस की स्याही फ्लीट स्ट्रीट का खून है। यदि प्रेस की स्याही मिलना बद हो जाए तो फ्लीट स्ट्रीट का सारा कारबार ठप हो जाए। शायद यही कारण है कि इस स्ट्रीट को 'स्याही की स्ट्रीट' कहा जाता है।

फ्लीट स्ट्रीट का यह नाम आधुनिक काल की देन नहीं। यह स्ट्रीट १५वीं शताब्दी से ही स्याही की स्ट्रीट के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्ट्रीट का वास्तविक इतिहास भी १५वी सदी से प्रारभ होता है।

१५वी सदी के मध्य मे जर्मनी मे गुटनबर्ग ने आधुनिक मुद्रणकला का आविष्कार किया था। उसके बाद धीरे धीरे यूरोप के अन्य देशो मे भी इस कला का प्रसार हुआ।

इग्लैंड में छापाखाने का जन्म कैक्सटन से हुआ। उसने अपना प्रेस फ्लीट स्ट्रीट के पास वेस्टमिस्टर मे खोला था। इसके कुछ ही समय बाद कैक्सटन के एक सहयोगी विकिन डि वार्डे ने यहीं पर प्रेस के काम में आनेवाले सामानो की दूकान खोली थी। यहीं से इसने सर्वप्रथम पुस्तकों के सस्ते सस्करण, पहेलियों की पुस्तकें, राजा रानी तथा परियो की कहानियाँ, स्कूलो की पाठय पुस्तकें और इसी प्रकार की अन्य पुस्तको का प्रकाशन आरभ किया था। विकिन डि वार्डे की सफलता से प्रभावित होकर धीरे धीरे अन्य लोगों ने भी अन्य स्थानो मे जमा हुआ अपना कारबार हटाकर फ्लीट स्ट्रीट मे जमाया और देखते ही देखते यहाँ कई प्रेस खुल गए।

१७वी सदी मे लदन मे जो भयकर आग लगी थी, उसके पहले फ्लीट स्ट्रीट मे पुस्तकविक्रेताओ तथा प्रकाशकों की सख्या अधिक नही थी। उस समय अधिकाश प्रकाशक तथा पुस्तकविक्रेता सेंट पाल गिरजाघर के आसपास बसे हुए थे। आग के परिणामस्वरूप उन्हें वहाँ से हटना पडा और वे भागकर सबसे निकट के स्थान फ्लीट स्ट्रीट मे ही आ बसे। १९४०-४१ मे भी जब लदन मे आग लगी तब बहुत से प्रकाशक एव मुद्रक अन्य स्थानो से भागकर फ्लीट स्ट्रीट मे ही आए थे। इस प्रकार फ्लीट स्ट्रीट प्रकाशको एव मुद्रकों का गढ बन गया और इसका पहले से ही प्रसिद्ध नाम 'स्याही की स्ट्रीट' और भी अधिक सार्थक हो गया। आजकल प्रेस की जितनी अधिक स्याही का उपयोग फ्लीट स्ट्रीट मे प्रतिदिन होता है, उतनी स्याही ससार के किसी भी देश मे किसी एक स्थान पर प्रयुक्त नही की जाती।

इस स्ट्रीट का नाम फ्लीट नदी के नाम पर पडा। यह नदी आज कल भी है पर दो तीन सदी पूर्व की तुलना मे उसका अब नाम मात्र ही शेष रह गया है।

अपने आरभिक काल मे फ्लीट स्ट्रीट एक छोटी सी गली थी जिसका कोई नाम भी नही जानता था। १३वी सदी के पहले का तो इसका कोई इतिहास भी प्राप्य नही है। वेस्टमिस्टर का गिरजाघर फ्लीट स्ट्रीट से अधिक दूर नही है। सभवत इसी कारण १३वी सदी के बाद से पादरियों तथा चर्च के अन्य अधिकारियो ने इसके आसपास बसना शुरू किया। उस समय इस स्थान पर पादरियो तथा अन्य लोगो के जो महल थे वे तत्कालीन सरायो तथा धर्मशालाओ का काम देते थे। पादरियो का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वे यात्रियो को अपने घरो मे जगह दें तथा उनका यथायोग्य आदर सत्कार करें।

इसका परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही यह स्थान लुच्चे लफगो और बदमाशों के अड्डो के लिये प्रसिद्ध हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि उस समय के एक कानून के अनुसार पादरियो के घरो मे ठहरे किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार नही किया जा सकता था। अत. अपराधी लोग जान बूझकर पादरियो के घरो मे ही ठहरते थे। जब तक पादरियो के इन मठो का अस्तित्व समाप्त नही हो गया तब तक उक्त कानून मे भी परिवर्तन नही हुआ। जिस स्थान पर उस समय पादरियो के निवासस्थान थे वहाँ आजकल 'डेली मेल', 'ईवनिंग न्यूज़' तथा अन्य समाचारपत्रो के कार्यालय हैं।

'फ्लीट स्ट्रीट'—इन दो शब्दो के अतर्गत आसपास की छोटी छोटी स्ट्रीटें भी शामिल हो जाती हैं जो सब मिलकर करीब आधा वर्गमील का क्षेत्र बनाती हैं। फ्लीट स्ट्रीट के ही एक भाग टयूटर स्ट्रीट से 'डेली मेल' तथा 'आब्जर्वर' का प्रकाशन होता है। बोवेरी स्ट्रीट अत्यत ही सँकरी छोटी सी गली है जहाँ दो कारें भी आसानी से आ जा नही सकती, पर इसी स्ट्रीट से ससार में सर्वाधिक सर्क्युलेशन-वाले रविवासरीय समाचारपत्र 'न्यूज ऑव दी वर्ल्ड' का प्रकाशन होता है। आजकल इस पत्र का औसत सर्क्युलेशन करीब ६५ लाख है।

फ्लीट स्ट्रीट स्थित एक एक पत्र के कार्यालय मे करोडो रुपए की पूँजी लगी हुई है। यद्यपि स्थान की कमी के कारण कुछ समाचार-पत्रो के कार्यालय फ्लीट स्ट्रीट मे नही हैं, तथापि अधिकाश के कार्यालय फ्लीट स्ट्रीट या इसके आसपास ही है। इसी का यह परिणाम है कि विदेशी समाचारपत्रो के स्थानीय प्रतिनिधियो को किसी भी विषय पर ब्रिटेन के समाचारपत्रो की राय शीघ्र ही मालूम हो जाती है। और आज शाम का कोई समाचार कल सुबह तक ससार के प्राय सभी देशो के समाचार पत्रो मे ब्रिटेन के समाचारपत्रो की टिप्पणी के साथ प्रकाशित हो जाता है।

फ्लीट स्ट्रीट से केवल समाचारपत्र ही प्रकाशित नही होते। लदन से प्रकाशित होनेवाली सैकडो साप्ताहिक एव मासिक पत्रिकाओ का प्रकाशन एव मुद्रण स्थान भी फ्लीट स्ट्रीट ही है। विश्वप्रसिद्ध हास्य साप्ताहिक 'पच' का कार्यालय भी यही है। लदन से प्रकाशित होनेवाली प्राय सभी महिलोपयोगी पत्रिकाओ के कार्यालय भी यही हैं।

किसी भी पत्रकार के लिये फ्लीट स्ट्रीट का महत्व मक्का से कम नही। जिस प्रकार प्रत्येक मुसलमान अपने जीवन मे कम से कम एक बार मक्का जाने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार ससार के प्राय प्रत्येक देश के छोटे बडे पत्रकार की भी यह इच्छा रहती है कि वह अपने जीवन का कुछ समय फ्लीट स्ट्रीट मे बिताए। वस्तुत फ्लीट से ही आधुनिक पत्रकारिता का जन्म हुआ है। पत्रकारिता के क्षेत्र मे समय समय पर जो नए प्रयोग होते हैं उनमे से अधिकाश का आरभ फ्लीट स्ट्रीट से ही होता है।

इस रहस्य का पता लगाना बडा मुश्किल होगा कि आखिर लदन के अधिकाश समाचारपत्र फ्लीट स्ट्रीट से ही क्यो चिपके हुए हैं। लदन के अन्य क्षेत्रो मे भी बडे बडे और आधुनिकतम प्रेस हैं, स्थान की भी वहाँ ऐसी कमी नही है, फिर भी पत्रपत्रिकाओ के सचालक वहाँ न जाकर फ्लीट स्ट्रीट मे ही आना पसद करते हैं। वैसे तो इसके कई कारण बताए जा सकते हैं पर एक प्रमुख कारण यह जान पडता है कि फ्लीट स्ट्रीट वेस्टमिंस्टर के पास है। वेस्टमिंस्टर मे ही संसद भवन हैं। अत राजनीति के केंद्र के पास समाचारपत्रो के कार्यालयो का होना स्वाभाविक ही है।

१५वी सदी से ही फ्लीट स्ट्रीट लेखको एव साहित्यकारो को भी आकर्षित करती रही। प्रसिद्ध अग्रेज कवि मिल्टन, लेखक डा० जानसन, चार्ल्स डिकेंस, आलिवर गोल्डस्मिथ, ड्राइडन आदि अनेक साहित्यकारो का फ्लीट स्ट्रीट से कुछ न कुछ सबध रहा है।

[म० रा० जै०]

फ्लुओरीन (Fluorine) आवर्त सारणी (periodic table) के सप्तसमूह का प्रथम तत्व है, जिसमे सर्वाधिक अधातु गुण वर्तमान हैं। इसका एक स्थिर समस्थानिक (भारसख्या १९) प्राप्त है और तीन रेडियोऐक्टिव समस्थानिक (भारसख्या १७, १८ और २०) कृत्रिम साधनो से बनाए गए हैं। इस तत्व को १८८६ ई० में मॉयसाँ ने पृथक् किया। अत्यत क्रियाशील तत्व होने के कारण इसको मुक्त अवस्था मे बनाना अत्यत कठिन कार्य था। मॉयसाँ ने विशुद्ध हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा पोटैशियम फ्लुओराइड के मिश्रण के वैद्युत् अपघटन द्वारा यह तत्व प्राप्त किया था।

फ्लुओरीन मुक्त अवस्था मे नही पाया जाता। इसके यौगिक कैल्सियम फ्लुओराइड, कैफ्लु$_2$ (CaF_2), और क्रायोलाइड, सो$_3$ ऐ फ्लु$_6$ ($Na_3 Al F_6$) अनेक स्थानो पर मिलते हैं।

फ्लुओरीन का निर्माण मॉयसाँ विधि द्वारा किया जाता है। प्लैटिनम इरीडियम मिश्रधातु का बना यू (U) के आकार का विद्युत् अपघटनी सेल (cell) लिया जाता है, जिसके विद्युदग्र भी इसी मिश्रधातु के बने रहते हैं। हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल मे पोटैशियम फ्लुओराइड विलयित कर – २३° सें० पर सेल मे अपघटन करने से धनाग्र पर फ्लुओरीन मुक्त होगी। मुक्त फ्लुओरीन को विशुद्ध करने के हेतु प्लैटिनम के ठढे बरतन तथा सोडियम फ्लुओराइड की नलिकाओ द्वारा प्रवाहित किया जाता है।

फ्लुओरीन के कुछ भौतिक गुण निम्नाकित हैं

सकेत	फ्लु (F)
परमाणुसख्या	९
परमाणुभार	१९
गलनाक	–२२३° सें०
क्वथनाक	–१८८° सें०
आपेक्षिक घनत्व	–१.२६५
परमाणु व्यास	१ ३६ ऐंगस्ट्रॉम

फ्लुओरीन समस्त तत्वों में अपेक्षाकृत सर्वाधिक क्रियाशील पदार्थ है। हाइड्रोजन के साथ यह न्यून ताप पर भी विस्फोट के साथ सयुक्त हो जाता है।

हाइड्रोफ्लुओरिक अम्ल अथवा हाइड्रोजन फ्लुओराइड हाफ्लु (H F) अथवा हा$_2$फ्लु$_2$ ($H_2 F_2$) अत्यत विषैला पदार्थ है। इसका विशुद्ध यौगिक विद्युत् का कुचालक है। इसका जलीय विलयन तीव्र आम्लिक गुण युक्त होता है। यह काच पर क्रिया कर सिलिकन फ्लुओराइड बनाता है। इस गुण के कारण इसका उपयोग काच पर

निशान बनाने मे होता है। हाइड्रोफ्लुओरिक अम्ल के लवण फ्लुओराइड कहलाते हैं। कुछ फ्लुओराइड जल मे विलेय होते हैं।

फ्लुओरीन का उपयोग कीटमारक के रूप मे होता है। इसके कुछ यौगिक, जैसे यूरेनियम फ्लुओराइड, परमाणु ऊर्जा प्रयोगो मे प्रयुक्त होते हैं। फ्लुओरीन के अनेक कार्बनिक यौगिक प्रशीतन उद्योग तथा प्लास्टिक उद्योग मे काम आते हैं। [र० च० क०]

फ्लेचर गाइल्स १ (१५४९–१६११) अंग्रेज कवि, जन्मस्थान वैटफोर्ड। एटन मे प्रारंभिक शिक्षा, कैंब्रिज विश्वविद्यालय से स्नातक। १५८५ मे फ्लेचर ससद् सदस्य बने। कूटनीतिक मडल के सदस्य के रूप मे उन्होने स्कॉटलैंड, जर्मनी, रूस आदि स्थानो का भ्रमण किया। १६०१ मे एसेक्स को अपमानित करने का दोष रैले पर लगाने के कारण उन्हें कारावास मिला।

फ्लेचर ने रूस के सबध मे अपने अनुभवो का सकलन शलन 'ऑव दि एसे ऑन कॉमनवेल्थ' पुस्तक मे किया जिसमे वहाँ की भौगोलिक स्थिति, सरकार, कानून, युद्धकला, धर्म तथा समाज का विशद वर्णन किया गया है। इनकी ख्याति 'लिसिया पोयमस' ऑव लव' १५९३ नामक पुस्तक से विशेष रूप से हुई। [गि० ना० श०]

२ फ्लेचर गाइल्स (१५८४–१६२३) फ्लेचर प्रथम का पुत्र तथा अंग्रेज कवि। वेस्टमिंस्टर तथा ट्रिनिटी कॉलेज कैंब्रिज मे शिक्षा। महारानी एलिजबेथ की मृत्यु पर 'सारोज ज्वाय' १६०३ मे लिखी। इनमे वक्तृता की अद्भुत क्षमता थी। सेंट मेरी गिरजा में उनका उपदेश विशेष प्रसिद्ध था। कहा जाता है, बेकन ने उन्हे 'एल्डर्टन' का पादरी बनाया। उनकी अंतिम धार्मिक पुस्तक 'दि रिवार्ड ऑव दि फेथफुल' १६२३ में प्रकाशित हुई। जिस पुस्तक ने उनकी ख्याति में विशेष योगदान दिया वह 'काइस्ट्स विक्ट्री इन हेवन इन अर्थ ओवर ऐंड आफ्टर डेथ' १६१० में प्रकाशित हुई। इनकी कविता के माधुर्य से मिल्टन इतना प्रभावित हुआ कि अपने पैराडाइज़ रिगेंड में उसका अनुकरण किया। यह कविता सुदरता, ध्वनि, और माधुर्य के साथ ही साथ उपदेशात्मक होने के कारण विशेष लोकप्रिय न हो सकी। वे ग्रीक भाषा के विद्वान् थे और अंग्रेज कवि स्पेंसर के पूर्ण भक्त। 'फेयरी क्वीन' के आधार पर लिखित यह पुस्तक चार भागो में विभक्त है। पहले में न्याय और दया, दूसरे में 'पेन ग्लो रैंटो' तीसरे में ईसा की फाँसी और चौथे में स्वर्ग का वर्णन है। समृद्ध कल्पना, भाषा की सजावट तथा माधुर्य का इसमें पूर्ण समिश्रण है। 'प्री रेफ़ेलाइट मूवमेंट' से प्रभावित होने के कारण प्राकृतिक सौंदर्य तथा शब्दसगीत का प्राचुर्य है। धार्मिक तत्वो पर रूपक लिखनेवाले कवियों मे यह प्रथम श्रेणी मे आते हैं। [गि० ना० श०]

फ्लेमिंग, सर जान एंब्रोस (१८४९–१९४५ ई०) अंग्रेज भौतिक विज्ञानी थे। इनका जन्म २९ नवबर, १८४९ को लैंकैस्टर मे हुआ था। शिक्षा दीक्षा लदन एव कैंब्रिज मे हुई।

ये १८८५ से १९२६ ई० तक लदन मे विद्युत् इजीनियरी के प्राध्यापक रहे। ड्यूअर (Dewar) के सहयोग से इन्होने कम ताप पर विद्युत् प्रतिरोध का अध्ययन किया। विद्युत् लट्टू एव विद्युत् प्रकाश पर महत्वपूर्ण खोजें की। तापायनिक वाल्व का आविष्कार इनकी सबसे महत्वपूर्ण देन है। इस खोज ने इलेक्ट्रॉनिक भौतिकी मे क्रांति मचा दी। विद्युत् पर इन्होने अनेको पुस्तकें लिखीं। इनकी मृत्यु सन् १९४५ मे हुई। [अ० प्र० न०]

फ्लेम्स्टीड (Flamsteed), **जॉन** (सन् १६४६–१७१९), इंग्लैंड के इस प्रथम राज ज्योतिषी का जन्म डर्बी नगर के निकट हुआ था। बुरे स्वास्थ्य के कारण इन्हें पाठशाला की पढाई छोड़नी पड़ी, किंतु रुग्णावस्था मे ही इन्होने गणित ज्योतिष का अध्ययन आरभ किया। जो भी पुस्तकें इन्हे मिली, इन्होने पढ डाली तथा निरीक्षण और मापयत्रो का निर्माण भी आरभ कर दिया। सन् १६७० मे चद्रमा से तारो की युति (conjunction), की गणना सबधी आपके लेख के प्रकाशन से वैज्ञानिको मे आपको मान मिला।

इसी वर्ष इन्होने जीजस कालेज मे नाम लिखाया तथा आइज़क न्यूटन से इनका परिचय हुआ। चार वर्ष मे इन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। ग्रहो के वास्तविक तथा आभासी व्यासों पर सन् १६७३ मे इनके लिखे लेख से न्यूटन को अपने प्रसिद्ध ग्रथ प्रिंसिपिया के तृतीय खड के लिये तथ्य मिले तथा हॉरक के चद्रमा सबधी मत के लिये इन्होने गणितीय आधार दिए। समुद्र मे जहाजों पर भोगांश ज्ञात करने की प्रस्तावित पद्धति पर विचार करने का कार्य सौंपे जाने पर, फ्लेम्स्टीड ने मत दिया कि प्रणाली सिद्धांतत. तो ठीक है, किंतु तारो और चद्रमा की स्थितियो का पर्याप्त यथार्थता से ज्ञान न होने के कारण फल ठीक नही निकलने। फलत: ग्रीनिच मे राजकीय वेधशाला की सन् १६७५ में स्थापना हुई और फ्लेम्स्टीड कुल सौ पाउड वार्षिक वृत्ति पर प्रथम राजकीय ज्योतिषी नियुक्त हुए।

निरुत्साहित करनेवाली परिस्थितियो से घिरे रहने पर भी इन्होंने ४४ वर्ष तक अत्यत अध्यवसाय और परिश्रम से इस वेधशाला में कार्य किया। निरीक्षण और मापन की इन्होने अनेक उन्नत रीतियाँ निकाली। ये छोटी से छोटी बातो पर सतर्कतापूर्वक ध्यान देते थे। हिस्टोरिया सीलेस्टिस ब्रिटैनिका (३ खड), जिनमें इनके प्रेक्षणफल दिए हैं, और इनकी लिखी ३,००० तारो की महत् सारणी इनके सहायक, ऐब्रैहम शार्प, ने इनकी मृत्यु के पश्चात् पूरी की। चार वर्ष बाद ऐटलैस सीलेस्टिस नामक उच्च कोटि का इनका अन्य ग्रथ प्रकाशित हुआ। [भ० दा० व०]

फ्लोबेर गुस्ताव फ्रेंच उपन्यास लेखक गुस्ताव फ्लोबेर (१८२१–८०) का जन्म रूआँ में १२ दिसबर, सन् १८२१ को हुआ था। आपके पिता सर्जन थे। ११ वर्ष की अवस्था में आप साहित्य की ओर प्रवृत्त हुए। आप पेरिस में कानून का अध्ययन करने लगे, किंतु सन् १८४५ में पिता की मृत्यु के पश्चात् रूआँ लौट आए और अपने पैतृक निवास-स्थान पर रहने लगे जहाँ ८ मई, सन् १८८० को आपका शरीरात हुआ। दो या तीन प्रेमव्यापार, पिरेनीज़, कार्सिका, ब्रिटेन, यूनान, मिस्र तथा फिलिस्तीन की यात्राएँ, और पैरिस के सक्षिप्त अनेक अवलोकन आपके जीवन की बाह्य घटनाएँ थी। साहित्यसेवा के लिये ही उनका जीवन था। वे लज्जाशील, स्पर्शकातर, स्वाभिमानी साहित्यसेवी थे।

यथार्थवाद के ह्रासकाल में भी फ्रेंच यथार्थवादी सप्रदाय के नेता के रूप में फ्लोबेर की प्रतिष्ठा थी। आप गोतिये के शिष्य और ह्यूगो के प्रशसक थे। गाकर बधु, जोला, दादे और मोपासाँ आपके

शिष्य थे। आप स्वच्छदतावादी (रोमैंटिस्ट) तथा यथार्थवादी थे। कल्पना की अधिकता, प्राच्य, विदेशी, भयानक तथा अतीत के प्रति आकर्षण एव मध्यवर्ग के प्रति घृणा के कारण आप स्वच्छदतावादी, और व्यक्तित्वशून्यता, स्वानुभूतिव्यजना, प्रामाणिकतानुराग के आग्रह के कारण यथार्थवादी थे। आपकी कला सयत थी। आप स्वच्छदतावादियो की अत्यधिक निजी पूर्वधारणा से मुक्त थे।

आपके उपन्यास शैली के आदर्श हैं। उनमें प्रतिपाद्य विषय एव उसके स्वरूप में पूर्ण एकरूपता है जो शेक्सपीयर में भी सदैव नही रही। फ्लोवेर ने मूर्तिमत्ता, शब्दौचित्य और एकरूपता के लिये कठिन परिश्रम किया। आप 'कला के लिये कला' सिद्धात के प्रवर्तक थे। आपके मतानुसार कला जीवन की सार्थकता है और कला से इतर वस्तुएँ मृगमरीचिका मात्र हैं। आपकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'मादाम वोवारी' (१८५७) है। 'सालामवो' (१८६२) मे कार्थेज के सुदर पुनर्निर्माण एव उसकी सभ्यता का चित्रण है। यह एक व्यक्तित्वशून्य सिनेमा फिल्म है। 'लेदुकाशिओं सानतिमाताल' (१८७३) आपकी युवावस्था की स्मृतियो एव राजनीतिक प्रश्न सबधी चिंताओ पर आधारित है। 'ला ताताशिआदसे आत्वान' के तीन सशोधित एव परिवर्धित सस्करण क्रमश सन् १८४६, १८५६ और १८७२ में प्रकाशित हुए। यह आपके कलात्मक विकास एव चिंतनशीलता का परिचायक है। 'अ कॉंत सिंप्ल्' सरल हृदय की छोटी सी कहानी है, 'बुव्हार ए पेकुशे' आपके निधनोपरात प्रकाशित अपूर्ण उपन्यास है।

[मु० मु० दे०]

फ्लोरस्पार (Fluorspar) या फ्लोराइट (CaF_2) हलके हरे, पीले या बैंगनी रग मे तथा अधिकतर घन आकृति में मिलता है। इसकी चमक काच के समान होती है। कठोरता ४ तथा आपेक्षिक घनत्व ३ २ है। इस खनिज का विशेष गुण है प्रतिदीप्ति (Fluorescence)।

कम ताप पर पिघलने के कारण इस खनिज का उपयोग लोह उद्योग में मल को बहाकर निकालने के लिये होता है। विश्व का लगभग तीन प्रति शत फ्लोराइट चीनी मिट्टी उद्योग में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त फ्लोराइट का उपयोग बहुत से रासायनिक पदार्थ, जैसे हाइड्रोफ्लोरिक एसिड आदि बनाने के काम में होता है।

यद्यपि यह खनिज अल्प मात्रा में बिहार, राजस्थान आदि प्रदेशो की शिलाओ में विद्यमान है, तथापि इसके आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण निक्षेप मध्य प्रदेश में डोंगरगढ से १४ मील की दूरी पर है। यहाँ ६० फुट की गहराई तक इस खनिज का भडार एक लाख टन से अधिक अनुमानित किया गया है। [म० ना० मे०]

बंकिमचद्र चट्टोपाध्याय (१८३८-१८६४) वगला के प्रख्यात उपन्यासकार और गद्यकार। रवींद्रनाथ ठाकुर के पूर्ववर्ती साहित्यकारो मे अन्यतम स्थान है। प्रेसीडेंसी कालेज से बी० ए० की उपाधि लेनेवालो मे पहले भारतीय थे। शिक्षासमाप्ति के तुरत बाद डिप्टी मजिस्ट्रेट पद पर इनकी नियुक्ति हो गई। कुछ काल तक वगाल सरकार के सचिव पद पर भी रहे। रायबहादुर और सी० आई० ई० की उपाधियाँ पाई।

इनका पहला उपन्यास 'राजमोहन की पत्नी' (राजमोहन्ज वाइफ) अग्रेजी मे प्रकाशित हुआ (१८६४)। १८६५ में पहला बँगला उपन्यास 'दुर्गेशनदिनी' छपा, जो वगाल मे मुगल विजय के काल की रोमास कथा है। इसके बाद इन्होने दर्जनो ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासो का सृजन किया, जिनमे 'राजसिंह', 'सीताराम' और 'चद्रशेखर' (ऐतिहासिक) तथा 'विषवृक्ष' और 'कृष्णकातेर विल' (सामाजिक) विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कपालकुडला' रोमास और कल्पना की दृष्टि से अनूठी कृति है। 'आनदमठ' मे राष्ट्रीय चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति है, जिसका गीत 'वदेमातरम्' भारत का राष्ट्रीय गीत माना गया। १८७२ मे उन्होने 'वगदर्शन' नामक एक पत्र का प्रकाशन प्रारभ किया, जो चार वर्ष तक चला। इस पत्र ने बँगला साहित्य को एक नई दिशा देने का काम किया।

अपनी सशक्त औपन्यासिक कृतियो के माध्यम से वकिम वावू ने जनसाधारण को इतिहास का रूमानी चित्र खीचकर चमत्कृत किया। भारतीय राष्ट्रीय चेतना के जागरण मे इनकी लेखनी का योगदान स्तुत्य है। उनकी कृतियो का देश की प्राय सभी भाषाओ मे अनुवाद हुआ है।

बँगला भाषा तथा साहित्य भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओ की तरह बँगला भाषा का भी उत्पत्तिकाल सन् १,००० ई० के आस पास माना जा सकता है। अपभ्र श से या मगध की भाषा से पृथक् रूप ग्रहण करने के बाद से ही उसमे गीतो और पदो की रचना होने लगी थी। जैसे जैसे वह जनता के भावो और विचारो को अभिव्यक्त करने का साधन बनती गई, उसमे विविध रचनाओ, काव्यग्रथो तथा दर्शन, धर्म आदि विषयक कृतियो का समावेश होता गया, यहाँ तक कि आज भारतीय भाषाओ मे उसे यथेष्ट ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया है।

बँगला लिपि नागरी लिपि से कुछ कुछ भिन्न होती हुई भी दोनो मे थोडा बहुत साम्य भी है। हिंदी की तरह उसमे भी १४ स्वर तथा ३३ व्यजन हैं। बँगला मे 'व' का उच्चारण प्राय 'व' की तरह (कभी कभी 'उ' की तरह या 'भ' की तरह) किया जाता है और आत्मा, लक्ष्मी, महाशय आदि शब्द आत्ताँ, लक्खी, मोशाय जैसे उच्चरित होते हैं।

साहित्य

बँगला भाषा का साहित्य स्थूल रूप से तीन भागो मे बाँटा जा सकता है — १ प्राचीन (६५०-१,२०० ई०), २ मध्य कालीन (१,२००-१,८०० ई०) तथा ३ आधुनिक—(१,८०० के बाद)। प्रारभिक साहित्य वगाल के जीवन तथा उसके गुण-दोष-विवेचन की दृष्टि से ही अधिक महत्वपूर्ण है। चडीदास, कृत्तिवास, मालाधर, पिपलाई, लोचनदास, ज्ञानदास, कविकंकण, मुकुदराम, कृष्णदास, काशीराम दास, भारतचदराय, गुणाकर आदि कवि इसी काल मे हुए हैं।

१ प्राचीन बँगला साहित्य (६५० से १२०० ई० तक)

भारत के अन्य विद्वानो की तरह वगाल के भी विद्वान् सस्कृत की रचनाओ को ही विशेष महत्व देते थे। उनकी दृष्टि मे वही "अमर भारती" का पद सुशोभित कर सकती थी। बोलचाल की भाषा को वे परिवर्तनशील और अस्थायी मानते थे। किंतु जनसाधारण तो

अपने विचारो और भावो को प्रकट करने के लिये उसी भाषा को पसद कर सकते थे जो उनके हृदय के अधिक निकट हो। उसी भाषा मे वे उपदेश और शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। पुरातन बगाल में इस तरह की दो भाषाएँ प्रचलित थी—एक तो स्थानीय भाषा, जिसे हम प्राचीन बँगला कह सकते हैं, दूसरी अखिल भारतीय जन साहित्यिक भाषा, जो सामान्यत समूचे उत्तर भारत मे समझी जा सकती थी। इसे नागर या शौरसेनी अपभ्र श कह सकते हैं जो मोटे तौर से पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी पजाब तथा राजस्थान की भाषा थी। सामान्य जनता के लिये इन दोनो भाषाओं में थोड़ा सा साहित्य विद्यमान था। प्रेम और भक्ति के गीत, कहावतें और लोकगीत मातृभाषा मे पाए जाते थे। बौद्ध तथा हिंदू धर्म के उपदेशक जनता मे प्रचार करने के लिये जो रचनाएँ तैयार करते थे वे प्राय पुरानी बँगला तथा नागर अपभ्र श, दोनो मे होती थी।

पुरातन बँगला की उपलब्ध रचनाओ मे ४७ चर्यापद विशेष महत्व के हैं। ये प्राय आठ (या कुछ अधिक) पक्तियो के रहस्यमय गीत हैं जिनका सबध महायान बौद्धधर्म तथा नाथपथ, दोनो से सबद्ध गुप्त सप्रदाय से है। इनका सामान्य बाहरी अर्थ तो प्राय यो ही समझ मे आ जाता है और गूढ अर्थ भी साथ की सस्कृत टीका की सहायता से, जो इस सग्रह के साथ ही श्री हरप्रसाद शास्त्री को प्राप्त हुई थी, समझा जा सकता है। इन गीतो या पद्यो में 'कविता' नाम की चीज तो नही है किंतु जीवन की एकाध झलक अवश्य किसी किसी मे देख पड़ती है। इससे मिलती जुलती कुछ अन्य पद्यात्मक रचानाएँ नेपाल से भी डा० प्रबोधचद्र बागची तथा राहुल साकृत्यायन आदि को प्राप्त हुई थी'।

१२वी शताब्दी के अत तक पुरातन बँगला मे यथेष्ट साहित्य तैयार हो चुका था जिससे उस समय के एक बगाली कवि ने यह गर्वोक्ति की थी "लोग जैसे गगा मे स्नान करने से पवित्र हो जाते हैं, वैसे ही वे 'बगाल वाणी' मे स्नात होकर हो सकते हैं।" किंतु दुर्भाग्यवश उक्त ४७ चर्यापदो तथा थोडे से गीतो या पदो के सिवा उस काल की अन्य बहुत ही कम रचनाएँ आज उपलब्ध हैं।

गीतगोविंद के रचयिता जयदेव बगाल के हिंदू राजा लक्ष्मण सेन (लगभग ११८० ई०) के शासनकाल मे विद्यमान थे। राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करनेवाले इस सुदर काव्य मे २४ गीत हैं जो अतुकात न होकर, सबके सब तुकात हैं। सस्कृत मे प्राय तुकात नही मिलता। यह तो अपभ्र श या नवोदित भारतीय आर्य भाषाओं की विशेषता है। कुछ विद्वानो का मत है कि इन पदो की रचना मूलत पुरानी बँगला मे या अपभ्र श में की गई थी और फिर उनमे थोडा परिवर्तन कर सस्कृत के अनुरूप बना दिया गया। इस तरह जयदेव पुरातन बगाल के प्रसिद्ध कवि माने जा सकते हैं जिन्होने सस्कृत के अतिरिक्त सभवत पुरानी बँगला मे भी रचना की। जो हो, बगाल के कितने ही परगामी कवियो को उनसे प्रेरणा मिली, इसमे सदेह नही।

२. मध्यकालीन बँगला साहित्य (१,२०० से १,८०० ई० तक) पुरानी बँगला मे कोई बडा प्रबध काव्य रचा गया हो, इसका कोई प्रमाण नही मिलता। उस समय ऐसी रचनाएँ बगाल मे भी प्राय अपभ्र श में ही होती थी। जो हो, मिथिला (बिहार) के प्रसिद्ध कवि विद्यापति ने जब प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य (कीर्तिलता) की रचना की (लगभग १,४१० ई०) तब उन्होने भी इसका प्रणयन अपनी मातृभाषा मैथिली में न कर अपभ्र श मे ही किया, यद्यपि बीच बीच मे इसमे मैथिल शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। १५वीं शती तथा विशेष रूप से १६वीं शती में ही बड़े प्रबध काव्यों एव वर्णनात्मक रचनाओ का निर्माण प्रारभ हुआ, उदाहरणार्थ आदर्श नारी बिहुला और उसके पति लखीधर की कथा, कालकेतु और फुल्लरा का कथानक, इत्यादि।

सन् १२०३ मे पश्चिमी बगाल पर तुर्कों का आक्रमण हुआ। व्यापक लूटमार, अपहरण, हत्याकाड, महलो तथा पुस्तकालयों के विनाश तथा बलात् धर्मपरिवर्तन की बाढ सी आ गई। ऐसा समय साहित्यिक विकास के अनुकूल हो ही कैसे सकता था। उदार रुख अपनानेवाले सूफी प्रचारकों के आगमन मे अभी देर थी।

(क) सक्रमणकालीन साहित्य (१२००–१३५०) —इस समय की साहित्यिक रचनाओ के कोई विशिष्ट प्रामाणिक ग्रथ नही बताए जा सकते। पुराने गायको और लोकगीतकारो मे बिहुला आदि की जो कथाएँ प्रचलित थी, उन्ही के आधार पर कुछ अज्ञात कवियो ने रचनाएँ प्रस्तुत की जिन्हे बँगला के प्रारभिक प्रबध काव्य की सज्ञा दी जा सकती है। इसी अवधि मे बँगला भाषी मुसलिम आबादी का उद्भव हुआ और उसमे क्रमश वृद्धि होती गई। तुर्क आक्रमणकारियो मे से बहुतो ने बँगाल की स्त्रियो से ही विवाह कर लिया और धीरे धीरे 'वहाँ की भाषा, रहन सहन आदि को' अपना लिया। तुर्की को वे भूल ही गए और अरबी केवल धर्म कर्म की भाषा रह गई। बगाल मे हिंदू जमींदारों और सामतो की ही व्यवस्था अभी प्रचलित थी, फलत मुसलिम विचारो और पद्धतियो का जनजीवन पर अभी दृष्टिगोचर होने योग्य विशेष प्रभाव नही पडने पाया था।

(ख) प्रारभ का मध्यकालीन साहित्य (१३५० से १६०० तक) कुछ काल के अनतर बगाल मे शाति स्थापित होने पर जब फिर सस्कृत के अध्ययन, प्रचार आदि की सुविधा प्राप्त हुई तब शिक्षा और साहित्य का मानो प्राथमिक पुनर्जागरण प्रारभ हुआ जो बाद मे भक्तिसाधना के प्रभाव से अधिक परिपुष्ट हुआ। माध्यमिक बँगला के प्रथम महाकवि, जिनके सबध मे हमे कुछ जानकारी है, सभवत कृत्तिवास ओझा थे (जन्म लगभग १३९९ ई०)। सस्कृत रामायण को बँगला मे प्रस्तुत करनेवाले (लगभग १४१८ ई०) वे पहले लोकप्रिय कवि थे जिन्होने राम का चित्रण वाल्मीकि की तरह शुद्ध मानव और वीर पुरुष के रूप मे न कर भगवान् के करुणामय अवतार के रूप मे किया जिसकी और सीधी सादी भक्तिमय जनता का हृदय सहज भाव से आकर्षित हो सकता था। इसी तरह कृष्णगाथा का वर्णन उसी शताब्दी मे (१४७५ ई०) मालाधर बसु ने किया। यह भागवत पुराण पर आधारित है।

बिहुला की कथा, जो विवाह की प्रथम रात्रि मे ही मनसा देवी द्वारा प्रेषित सर्प के द्वारा पति के डसे जाने पर विधवा हो गई थी और जिसने बडी बडी कठिनाइयाँ झेलकर देवताओ को तथा मनसा देवी को भी प्रसन्न कर पति को पुन जीवित करा लेने मे सफलता प्राप्त की थी, पतिव्रता नारी के प्रेम और साहस की वह अपूर्व परिकल्पना

है जिसका आविर्भाव कभी किसी भारतीय मस्तिष्क मे हुआ हो। यह कथा शायद मुसलमानो के आगमन के पहले से ही प्रचलित थी किंतु उसपर आधारित प्रथम कथाकाव्य बँगला मे १५वी शती मे रचे गए। इनमे से एक के रचयिता विजयगुप्त और दूसरी के विप्रदास पिपलाई माने जाते हैं।

पूर्वमाध्यमिक बँगला के एक प्रसिद्ध कवि चडीदास माने जाते हैं। इनके नाम से कोई १२०० पद या कविताएँ प्रचलित हैं। उनकी भाषा, शैली आदि मे इतना अतर है कि वे एक ही व्यक्ति द्वारा रचित नही जान पडती। ऐसा प्रतीत होता है कि माध्यमिक बँगला मे इस नाम के कम से कम तीन कवि हुए। पहले चडीदास (अनत बडु चडीदास) श्रीकृष्णकीतन के प्रणेता थे जो चैतन्य के पहले, लगभग १४०० ई० मे, विद्यमान थे। दूसरे चडीदास द्विज चडीदास थे जो चैतन्य के बाद मे या उत्तर काल मे हुए। इन्होने ही राधा कृष्ण के प्रेमविषयक उन अधिकाश गीतो की रचना की जिनसे चडीदास को इतनी लोकप्रसिद्धि प्राप्त हुई। तीसरे चडीदास दीन चडीदास हुए जो सग्रह के तीन चौथाई भाग के रचयिता प्रतीत होते हैं। चडीदास की कीर्ति के मुख्य आधार प्रथम दो चडीदास ही थे, इसमे सदेह नही जान पडता।

१५वी शताब्दी मे बगाल पर तुर्क तथा पठान सुलतानो का शासन था पर उनमे यथेष्ट बगालीपन आ गया था और वे बँगला साहित्य के समर्थक बन गए थे। ऐसा एक शासक हुसेनशाह था (१४९३-१५१९)। उसने चटगाँव के अपने सूबेदारो और पुत्र नासिरुद्दीन नसरत के द्वारा महाभारत का अनुवाद बँगला मे करवाया। यह रचना 'पाडवविजय' के नाम से कवीद्र द्वारा प्रस्तुत की गई थी।

इसी समय प्रसिद्ध वैष्णव कवि चैतन्य का आविर्भाव हुआ (१४८६-१५३३)। समसामयिक कवियो और विचारको पर उनका गहरा प्रभाव पडा। उनके आविर्भाव और मृत्यु के उपरात सतो तथा भक्तो के जीवनचरित्रो के निर्माण की परपरा चल पडी। इनमे से कुछ ये है— वृदावनदास कृत चैतन्यभागवत (लग० १५७३), लोचनदास कृत चैतन्यमगल, जयानद का चैतन्यमगल तथा कृष्णदास कविरत्न का चैतन्यचरितामृत (लग० १५८१)। कृष्ण और राधा के दिव्य प्रेम सबधी बहुत से गीत और पद भी इस समय रचे गए। बगाल के इस वैष्णव गीत साहित्य पर मिथिला के विद्यापति का भी यथेष्ट प्रभाव पडा जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

इसी समय के लगभग बँगला पर 'ब्रजबुलि' का भी प्रभाव पडा। मिथिला का राज्य मुसलिम आक्रमणो से प्राय अछूता रहा। बगाल के कितने ही शिक्षार्थी स्मृति, न्याय, दर्शन आदि का अध्ययन करने वहाँ जाया करते थे। मिथिला के सस्कृत के विद्वान् अपनी मातृभाषा मे भी रचना करते थे। स्वय विद्यापति ने सस्कृत मे ग्रथरचना की किंतु मैथिली मे भी उन्होने बहुत सुदर प्रेमगीतो का निर्माण किया। उनके ये गीत बगाल मे बडे लोकप्रिय हुए और उनके अनुकरण मे यहाँ भी रचना होने लगी। बकिमचद्र तथा रवीद्रनाथ ठाकुर तक ने इन तरह के गीतो की रचना की।

वैष्णव प्रेमगीतकार के रूप मे जयदेव कवि की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। उनके बाद बडुचडीदास तथा चैतन्य के अनुयायी आते हैं। इनमे उडीसा के एक क्षत्रप रामानद थे जिन्होंने सस्कृत मे भी रचना की। गोविंददास कविराज (१५१२-१) ने ब्रजबुलि मे कितने ही सुदर गीत प्रस्तुत किये। बर्दवान जिले के कविरजन विद्यापति ने भी ब्रजबुलि मे प्रेमगीत लिखे जिनके कारण वे 'छोटे विद्यापति' के नाम से प्रसिद्ध हुए। १६वी शती के दो कवियो ने कालकेतु और उसकी स्त्री फुल्लरा तथा धनपति और उसके पुत्र श्रीमत के आख्यान की रचना की जिसमे चडी या दुर्गादेवी की महिमा वर्णित की गई। कविककण मुकुददास चक्रवर्ती ने चडीकाव्य बनाया जो आज भी लोकप्रिय है। इसमे तत्कालीन बँगला जीवन की अच्छी झलक देख पडती है। पद्यलेखक होते हुए भी वे एक तरह से बकिमचद्र तथा शरच्चद्र चटर्जी के पूर्वग माने जा सकते हैं।

(ग) उत्तरकालीन माध्यमिक बँगला साहित्य (१६००-१८००)— वैष्णव गीतकारो तथा जीवनी लेखको की परपरा १७वी शती मे चलती रही। जीवनीलेखको मे ईशान नागर (१५६४) और नित्यानद (१६०० ई०) के बाद यदुनदनदास (कर्णानद के लेखक, १६०७), राजवल्लभ (कृति मुरलीविलास), मनोहरदास (१६५२, कृति 'अनुरागवल्ली') तथा घनश्याम चक्रवर्ती (कृति, भक्तिरत्नाकर तथा नरोत्तमविलास) का नाम लिया जा सकता है। गीतलेखकों की सख्या २०० से अधिक है। वैष्णव विद्वानों तथा कवियो ने इनके कई संग्रह तैयार किए थे जिनमे से वैष्णवदास (१७७० ई०) का 'पदकल्पतरु' विशेष प्रसिद्ध है। इसमे १७० कवियों द्वारा रचित ३१०१ पद आए हैं।

इसी समय कुछ धार्मिक ढग की कथाएँ भी लिखी गईं। इनमे रूपराम कृत धर्ममगल विशेष प्रसिद्ध है जिसमे लाऊसेन के माहनिक कार्यों का वर्णन है। इस कथा के ढग पर मानिक गागुलि तथा घनराम चक्रवर्ती ने भी रचनाएँ प्रस्तुत की। एक और कथानक जिसके आधार पर १७वी, १८वी शती मे रचनाएँ प्रस्तुत की गईं, राजा गोपीचद का है। वे राजा मानिकचद्र के पुत्र थे। जब वे गद्दी पर बैठे तो उनकी माता मयनामती को पता चला कि उनके पुत्र को राजपाट तथा स्त्री का परित्याग कर योगी बन जाना चाहिए, नही तो उनकी अकालमृत्यु की सभावना है। अत माता के आदेश से उन्हे ऐसा ही करना पडा। भवानीदासकृत 'मयनामतिर गान' तथा दुर्लभ मलिक की रचना 'गोविंदचद्र गीत' इसी कथानक पर आधारित हैं।

बिहुला की कथा पर १८वी शती मे भी प्रबध काव्य यशीदास, केतकादासतथा क्षेमानद इत्यादि द्वारा—रचे गए। आल्हा के ढग पर कुछ वीरकाव्य या गाथाकाव्य भी १७वी शती मे रचे गए। इनका एक सग्रह अग्रेजी अनुवाद सहित दिनेशचद्र सेन ने तैयार किया जो कलकत्ता वि० विद्यालय द्वारा प्रकाशित किया गया। इसी समय बगाली मुसलमान लेखकों ने अरबी और फारसी की प्रेम तथा धर्म कथाएँ बगला मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न आरभ किया। इन कवियों ने उस समय के उपलब्ध बँगला साहित्य का ही अध्ययन नहीं किया वरन् सस्कृत, अरबी तथा फारसी के ग्रथो का भी अनुशीलन किया। उन्होने अवधी या कोशली से मिलती जुलती एक और भाषा—गोहारी या गोआरी—भी सीखी। इसी तरह पूर्वी हिंदी के क्षेत्र से जो सूफी

मुसलमान पूर्वी बंगाल पहुँचे, वे अपने साथ नागरी वर्णमाला भी लेते गए। सिलहट के मुसलमान कवि बहुत दिनो तक इसी सिलेट नागरी' लिपि मे बँगला लिखते रहे। उस समय के कुछ मुसलमान कवि ये है—दौलत काज़ी, जिसने 'लोरचदा' या 'सती मैना' शीर्षक प्रेमकाव्य लिखा, कुरैशी मागन ठाकुर जिसने 'चद्रावती' की रचना की, मुहम्मद खाँ, जिसकी दो रचनाएँ (मौतुलहुसेन तथा केयामतनामा) प्रसिद्ध हैं, तथा अब्दुल नबी जिसने बडी सुदर शैली मे 'आमीर हामजा' का प्रणयन किया। इनके सिवा १७वी शती के एक और प्रसिद्ध मुसलिम कवि आला ओल है जिनकी कृति 'पद्मावती' (१६५१) यथेष्ट लोकप्रिय रही। यह हिंदी कवि मलिक मुहम्मद जायसी की इसी नाम की रचना का रूपातर है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—सफुल मुल्क बदीउज्जमाँ (महम्मरजनीचरित्र के आधार पर रचित प्रेमकाव्य), हफ्त पैकार, सिकदरनामा तथा तोहफा।

१७वीं शती के तीन हिंदू कवियो — काशीरामदास, जिन्होने महाभारत का अनुवाद बँगला पद्य मे किया, उनके बडे भाई कृष्णकिंकर, जिन्होने श्रीकृष्णविलास बनाया, तथा जगन्नाथमगल के लेखक गदाधर।

१८वी शती के कुछ प्रसिद्ध कवि ये हैं — रामप्रसाद सेन (मृत्यु १७७५) जिनके दुर्गा सबधी गीत आज भी लोकप्रिय हैं, भारतचद्र, जिनका 'अन्नदामगल' (या कालिकामगल) काव्य बँगला की एक परिष्कृत रचना है, राजा जयनारायण, जिन्होने पद्मपुराण के काशीखड का बँगला मे अनुवाद किया और उस समय के बनारस का बहुत ही मनोरजक विवरण उसमे समाविष्ट कर दिया। इस काल मे हलके फुलके गीतो तथा समस्यापूर्ति के रूप मे लिखे गए सद्य प्रस्तुत पद्यो का काफी जोर रहा। कुछ मुसलमान कवियो ने मुहर्रम तथा कर्बला के सबध मे रचनाएँ प्रस्तुत की (मुहर्रम पर्व या जगनामा हायत मुहम्मद, नसरुल्ला खाँ तथा याकूब अली द्वारा रचित)। लैला मजनू पर दौलत वजीर बहराम ने लिखा और मुहम्मद साहब के जीवन पर भी ग्रथ प्रस्तुत किए गए।

बँगला गद्य के कुछ नमूने सन् १५५० के बाद पत्रो तथा दस्तावेजो के रूप मे उपलब्ध हैं। कैथलिक धर्म सबधी कई रचनाएँ पोर्तगाली तथा अन्य पादरियो द्वारा प्रस्तुत की गई और १७७८ मे नथेनियल ब्रासी हलहद ने बगला व्याकरण तैयार कर प्रकाशित किया। १७९९ मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के बाद बाइबिल के अनुवाद तथा बँगला गद्य मे अन्य ग्रथ तैयार कराने का उपक्रम किया गया।

(३) आधुनिक बँगला साहित्य (१८०० से १९५० तक)।

१९वी सदी मे अंग्रेजी भाषा के प्रसार और सस्कृत के नवीन अध्ययन से बँगला के लेखको मे नए जागरण और उत्साह की लहर सी दौड गई। एक ओर जहा कपनी सरकार के अधिकारी बँगला सीखने के इच्छुक अग्रेज कर्मचारियो के लिये बँगला की पाठ्य पुस्तकें तैयार करा रहे थे और बैपतिस्त मिशन के पादरी कृत्तिवासीय रामायण का प्रकाशन तथा बाइबिल आदि का बँगला अनुवाद प्रस्तुत कराने का प्रयत्न कर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर बगाली लेखक भी गद्य-ग्रथ-लेखन की ओर ध्यान देने लगे थे। रामराम बसु ने राजा प्रतापादित्य की जीवनी लिखी और मृत्युजय विद्यालकार ने बँगला मे 'पुरुषपरीक्षा' लिखी। १८१८ मे 'समाचारदर्पण' नामक साप्ताहिक के प्रकाशन से बँगला पत्रकारता की भी नीव पडी।

राजा राममोहन राय ने भारतीयो के 'आधुनिक' बनने पर बल दिया। उन्होने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। उन्होने कतिपय उपनिषदो का बँगला अनुवाद तैयार किया। अंग्रेजी मे बँगला व्याकरण (१८२६) लिखा और अपने धार्मिक तथा सामाजिक विचारो के प्रचारार्थ बँगला और अंग्रेजी, दोनो मे छोटी छोटी पुस्तिकाएँ लिखी। इसी समय राजा राधाकात देव ने 'शब्दकल्पद्रुम' नामक सस्कृत कोष तैयार किया और भवानीचरण बनर्जी ने कलकतिया समाज पर व्यग्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की।

प्रारभिक गद्यलेखको की भाषा, प्रचलित सस्कृत शब्दो के प्रयोग के कारण, कुछ कठिन थी किंतु १८५० के लगभग अधिक सरल और प्रभावपूर्ण शैली का प्रचलन आरभ हो गया। ईश्वरचद्र विद्यासागर, प्यारीचद मित्र आदि का इसमे विशेष हाथ था। विद्यासागर ने अंग्रेजी तथा सस्कृत ग्रथो का अनुवाद बँगला मे किया और गद्य की सुदर, सरल शैली का विकास किया। प्यारीचद मित्र ने 'आलालेर घरेर दुलाल' नामक सामाजिक उपन्यास लिखा (१८५८)। अक्षयकुमार दत्त ने विविध विषयो पर कई निबध लिखे। अन्य गद्यलेखक थे — राजनारायण बसु, ताराशकर तर्करत्न (जिन्होने 'कादबरी' का सक्षिप्त रूपातर बँगला मे प्रस्तुत किया) तथा तारकनाथ गागुलि (जिन्होने प्रथम यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास 'स्वर्णलता' प्रकाशित किया)।

माइकेल मधुसूदन दत्त को हम उस समय के 'युवक बगाल' का प्रतिनिधि मान सकते हैं जिसके हृदय मे अन्य युवको की तरह आत्मविकास तथा आत्माभिव्यक्ति का बहुत सीमित अवकाश ही हिंदू समाज में मिलने के कारण एक प्रकार का असतोष सा व्याप्त हो उठा था। इसका एक विशेष कारण उनका अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी साहित्य के सपर्क मे आना था। ईसाई धर्म मे अभिषिक्त होने के बाद मधुसूदन ने पहले अंग्रेजी मे, फिर बँगला मे लिखना आरभ किया। उन्होने भारतीय विषयो पर ही लेखनी चलाई पर उन्हे युरोपीय ढग पर सँवारा, सजाया। उनकी मुख्य रचनाएँ हैं — मेघनादवध काव्य, वीरागना काव्य तथा व्रजागना काव्य। उन्होने बँगला मे अनुप्रासहीन कविता का प्रचलन किया और इटैलियन सोनेट की तरह चतुर्दशपदियो की भी रचना की।

बकिमचद्र चट्टोपाध्याय रवींद्रनाथ ठाकुर के आगमन के पूर्व बँगला के सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते है। उनका साहित्यिक जीवन अंग्रेजी मे लिखित 'राजमोहन की स्त्री' नामक उपन्यास (१८६४) से आरभ होता है। बँगला मे पहला उपन्यास उन्होने दुर्गेशनदिनी (१८६५) के नाम से लिखा। इसके बाद उन्होने एक दर्जन से अधिक सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इनके कारण बँगला साहित्य मे उन्हे स्थायी स्थान प्राप्त हो गया और आधुनिक भारत के विचारशील लेखको तथा चितकों मे उनकी गणना होने लगी। १८७२ मे उन्होने 'बगदर्शन' नामक साहित्यिक पत्र निकाला जिसने बँगला साहित्य को नया मोड दिया। उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे राजसिंह, सीताराम, तथा चद्रशेखर मुख्य हैं। सामा-

जिक उपन्यासो मे 'विषवृक्ष' तथा 'कृष्णकातेर विल का स्थान ऊँचा है। उनका 'कपालकुडला' शुद्ध प्रेम और कल्पना का उत्कृष्ट नमूना माना जा सकता है। 'ग्रानदमठ' प्रसिद्ध राजनीतिक उपन्यास है जिसका 'वदेमातरम्' गीत चिरकाल तक भारत का राष्ट्रीयगान माना जाता रहा और ग्राज भी इस रूप मे इसका समादर है। उनके उपन्यासो तथा अन्य रचनाग्रो का भारत की प्राय सभी भाषाग्रो में अनुवाद हो चुका है।

एक और प्रसिद्ध व्यक्ति जिसे भारत के पुनर्जागरण मे मुख्य स्थान प्राप्त है, स्वामी विवेकानद हैं। भारत की गरीब जनता ('दरिद्र-नारायण') की सेवा ही उनका लक्ष्य था। उन्होने अमरीका और यूरोप जाकर अपने प्रभावकारी भाषणो द्वारा हिंदू धर्म का ऐसा विशद विवेचन उपस्थित किया कि उसे पश्चिमी देशो मे अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई। वंगला तथा अग्रेजी, दोनो के वे प्रभावशील लेखक थे। रगलाल वद्योपाध्याय ने राजपूतो की वीरगाथाग्रो के ग्राधार पर 'पद्मिनी' (१८५८), कर्मदेवी (१८६२) तथा सूरसुदरी (१८६८) की रचना की। कालिदास के 'कुमारसभव' का वंगला अनुवाद भी उन्होने प्रस्तुत किया।

वँगला नाटको का उदय १८७० के आसपास माना जा सकता हैं, यद्यपि इसके पहले भी इस दिशा मे कुछ प्रयास किया जा चुका था। बगाल मे पहले एक तरह के धार्मिक नाटक प्रचलित थे जिन्हे 'यात्रा' नाटक कहते थे। इनमे दृश्य और परदे नही होते थे, गायन और वाद्य की प्रधानता होती थी। एक रूसी नागरिक जेरासिम लेवेडेव ने १७६५ मे कलकत्ता आकर वँगला की प्रथम नाट्यशाला स्थापित की, जो चली नही। सस्कृत नाटको के सिवा अग्रेजी नाटकों तथा कलकत्ते मे स्थापित अग्रेजी रगमच से वँगला लेखको को प्रेरणा मिली। दीनवधु मित्र ने कई सुखात नाटक लिखे। उनके एक नाटक नीलदर्पण (१८६०) मे निलहे गोरो के उत्पीडन का मार्मिक चित्रण हुआ था जिससे इस प्रथा की बुराइयाँ दूर करने मे सहायता मिली।

राजा राजेंद्रलाल मित्र (१८२२–६१) इतिहासलेखक और प्रथम वगाली पुरातत्वज्ञ थे। भूदेव मुखोपाध्याय (१८२५–६४) शिक्षाशास्त्री, गद्यलेखक और पत्रकार थे। समाज और सस्कृति के सरक्षण तथा पुनरुद्धार सवधी उनके लेखो का ग्राज भी यथेष्ट महत्व है। कालीप्रसन्न सिंह कट्टर हिंदू समाज के एक और प्रगतिशील लेखक थे। उन्होने महाभारत का वँगला गद्य मे तथा सस्कृत के दो नाटको का भी अनुवाद किया। उन्होंने कलकत्ते की बोलचाल की वँगला मे 'हुतोम पेंचार नक्शा' नामक रचना प्रस्तुत की जिसमे उस समय के कलकतिया समाज का अच्छा चित्रण किया गया था। वँगला के प्रतिष्ठित साहित्य मे इसकी गणना है। हेमचद्र वद्योपाध्याय (१८३८–१९०३) ने शेक्सपियर के दो नाटको रोमियो और जूलियट तथा टेंपेस्ट का वँगला मे अनुवाद किया। मेघनादवध से प्रोत्साहित होकर उन्होने 'वृत्तसहार' नामक महाकाव्य की रचना की। नवीनचद्र सेन (१८४७–१९०९) ने कुरुक्षेत्र, रैवतक तथा प्रभास नाटक बनाए तथा बुद्ध, ईसा और चैतन्य के जीवन पर अमिताभ, खीष्ट तथा अमृताभ नामक लबी कविताएँ लिखी। पलासीर युद्ध तथा रगमती और भानुमती के भी लेखक वही थे। पांच खडो मे अपनी जीवनी "आमार जीवन" भी उन्होने लिखी।

रवींद्रनाथ ठाकुर के सबसे बडे भाई द्विजेंद्रनाथ ठाकुर (१८४०–१९२६) कवि, सगीतज्ञ तथा दर्शनशास्त्री थे। उनकी प्रसिद्ध रचना 'स्वप्नप्रयाण' है। रवींद्रनाथ के एक और बडे भाई ज्योतींद्रनाथ ठाकुर थे। उनके लिखे चार नाटक बडे लोकप्रिय थे — पुरुविक्रम, सरोजिनी, अाशुमती तथा स्वप्नमयी। उन्होंने फ्रेंच भाषा, अग्रेजी तथा मराठी से भी कई ग्रथो का अनुवाद किया।

रमेशचद्र दत्त ने ऋग्वेद का वँगला अनुवाद किया। भारतीय अर्थ शास्त्र के भी वे लेखक थे और उन्होने कई उपन्यास भी लिखे — १ राजपूत जीवनसध्या, २ महाराष्ट्र जीवनसध्या, ३ माधवी ककण, ४ ससार, तथा ५ समाज। इनके समसामयिक गिरीशचद्र घोष वँगला के महान् नाटककार थे। उन्होने ९० नाटक, प्रहसन आदि लिखे, जिनमे से कुछ ये है — बिल्वमगल, प्रफुल्ल, पाडव गौरव, बुद्धदेवचरित, चैतन्य लीला, सिराजुद्दौला, अशोक, हारानिधि, शकराचार्य, शास्ति की शाति। शेक्सपियर के मेकवेथ नाटक का वँगला अनुवाद भी उन्होने किया। अमृतलाल वसु भी गिरीश-चद्र घोष की तरह अभिनेता नाटककार थे। हास्य रस से पूर्ण उनके नाटक तथा प्रहसन वँगला भाषियो मे काफी लोकप्रिय हैं। वे वगाल के मोलिए कहलाते थे, जिस तरह गिरीशचद्र वगाली शेक्सपियर माने जाते थे।

हास्यरस के दो और वँगला लेखक इस समय हुए — त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय (१८४७–१९१९), उपन्यासकार तथा लघुकथा लेखक और इद्रनाथ वदोपाध्याय (१८४९–१९११), निवधलेखक तथा व्यग्यकार।

सस्कृत और इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् हरप्रसाद शास्त्री (१८५३–१९३१) का उल्लेख पहले ४७ चर्यापद के सिलसिले मे किया जा चुका है। वे उपन्यासकार और अच्छे निवधलेखक भी थे। उनके दो उपन्यास हैं—'वेणेर मेये' तथा 'काचनमाला'। भारतीय साहित्य, धर्म तथा सभ्यता के सवध मे उनके लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनका लिखा 'वाल्मीकिर जय' नामक गद्यकाव्य वडी सुदर और प्रभावोत्पादक वँगला मे लिखा गया है।

राष्ट्रीय आदोलन की शुरुआत १८५७ के आसपास हो चुकी थी। १८८५ मे राष्ट्रीय महासभा की स्थापना से इसे वल मिला और १९०५ मे लार्ड कर्जन द्वारा किए गए वगाल के विभाजन ने इसमे आग फूँक दी। स्वदेशी का जोर वढा और भाषा तथा साहित्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पडा। सन् १९१३ मे रवींद्रनाथ ठाकुर को नोवेल पुरस्कार मिलने से वगाल तथा भारत मे राष्ट्रीय भावना की प्रवलता वढ गई और वँगला साहित्य मे एक नए युग का आरभ हुआ जिसे हम 'रवींद्रनाथ युग' की सज्ञा दे सकते हैं।

रवींद्रनाथ ठाकुर (१८६१–१९४१) मे महान् लेखक होने के लक्षण शुरू से ही देख पडने लगे थे। क्या कविता और क्या नाटक, उपन्यास और लघु कथा, निवध और आलोचना, सभी मे उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने नया चमत्कार उत्पन्न कर दिया। उनके विचारो और शैली ने वँगला साहित्य को मानो नया मोड दे दिया। व्यापक दृष्टि और गहरी भावना से सपृक्त उत्कृष्ट सौंदर्य तथा अज्ञात की रहस्यमय अनुभूति उनकी रचनाग्रो मे स्थान स्थान पर अभिव्यक्त होती देख पडती है। गीत रचनाकार के रूप मे वे अद्वितीय

हैं। प्रेम, प्रकृति, ईश्वर और मानव पर लिखे गए उनके गीतो की सख्या २०० से ऊपर है। ये गीत परमात्मा और आधिदैविक शक्ति की रहस्यमय भावना से ओतप्रोत हैं, इस कारण ससार के महान् रहस्यवादी लेखको मे उनकी गणना की जाती है। उनके निबध स्वस्थ चिंतन एव सुस्पष्ट विवेचन के लिये प्रसिद्ध हैं। वे बुद्धिपरक भी है तथा कल्पनाप्रवान भी, याथार्थिक भी है और काव्यमय भी। उनके उपन्यास तथा लघुकथाएँ तथ्यात्मक, नाटकीयता पूर्ण एव अतर्दृष्टि प्रेरक है। वे अतरराष्ट्रीयता एव मानव एकता के बराबर समर्थक रहे हैं। उन्होने अथक रूप से इस बात का प्रयत्न किया कि भारत अपनी गौरवपूर्ण प्राचीन बातो की रक्षा करते हुए भी विश्व के अन्य देशो से एकता स्थापित करने के लिये तत्पर रहे।

रवींद्रनाथ के समसामयिक लेखको मे कितने ही विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके नाम हैं—१ गोविंदचद्रदास, कवि, २ देवेंद्रनाथ सेन, कवि, ३ अक्षयकुमार बडाल, कवि, ४ श्रीमती कामिनी राय, कवयित्री, ५ श्रीमती सुवर्णकुमारी देवी, कवयित्री, ६ अक्षयकुमार मैत्रेय, इतिहासलेखक, ७ रामेंद्रसु दर त्रिवेदी, निबधलेखक, वैज्ञानिक एव दर्शनशास्त्री, ८ प्रभातकुमार मुखर्जी, उपन्यासकार तथा लघुकथा लेखक, ९ द्विजेंद्रलाल राय, कवि तथा नाटककार (दे० द्विजेंद्रलाल राय), १० क्षीरोदचद्र विद्याविनोद, लगभग ५० नाटको के प्रणेता, ११ राखालदास बद्योपाध्याय, इतिहासकार और ऐतिहासिक उपन्यासो के लेखक, १२ रामानद चटर्जी, सुप्रसिद्ध पत्रकार जिन्होने ४० वर्ष तक माडर्न रिव्यू तथा बँगला प्रवासी का सपादन किया, १३ जलधर सेन, उपन्यासलेखक तथा पत्रकार, १४ श्रीमती निरुपमा देवी तथा १५ श्रीमती अनुरूपा देवी, सामाजिक उपन्यासो की लेखिका।

आधुनिक बँगला के सर्वप्रसिद्ध उपन्यासकार शरच्चद्र चटर्जी (१८७६–१९३८) माने जाते हैं। सरल और सुदर भाषा मे लिखे गए इनके कुछ उपन्यास ये है—श्रीकात, गृहदाह, पल्ली समाज, देना पावना, देवदास, चद्रनाथ, चरित्रहीन, शेष प्रश्न आदि (दे० शरच्चद्र)।

यद्यपि समस्त बँगाल प्रदेश मे परिनिष्ठ बँगला का ही साहित्य मे विशेष प्रयोग होता है, फिर भी बहुत से ग्रथ कलकत्ता तथा आस पास की बोलचाल की भाषा मे लिखे गए हैं तथा लिखे जा रहे हैं। उपन्यासो मे, रगमच पर तथा रेडियो और सिनेमा मे उसका प्रयोग बहुलता से होता है। पिछले ३०–३५ वर्ष मे, रवींद्रयुग की प्रधानता होते हुए भी, कितने ही युवक लेखको ने नग्न यथार्थवाद के पथ पर चलने का प्रयत्न किया, यद्यपि इसमे अब यथेष्ट शिथिलता आ गई है। इसके बाद कुछ लेखको में समाजवाद तथा साम्यवाद (कम्यूनिज्म) की भी प्रवृत्ति देख पडी। इसी तरह अग्रेजी तथा रूसी साहित्य का भी बहुत कुछ प्रभाव बँगला लेखको पर पडा। किंतु वर्तमान बँगला साहित्य मे कथासाहित्य की ही विशेष प्रधानता है, जिसका लक्ष्य मानव जीवन और मानव स्वभाव का सम्यग् रूप से चित्रण करना ही है। कितने ही लेखक रवींद्र तथा शरद् बाबू की परपरा पर चलने का प्रयत्न कर रहे है। कुछ के नाम ये हैं—(कवियो मे) जतींद्रमोहन बागची, करुणानिधान बद्योपाध्याय, कुमुदरजन मलिक, कालिदास राय, मोहितलाल मजूमदार, श्रीमती राधारानी देवी, अमिय चक्रवर्ती प्रेमेंद्र मित्र, सुधींद्रनाथ दत्त, विमलचद्र घोष, विष्णु दे, इत्यादि। गद्यलेखको मे इनके नाम लिए जा सकते हैं—ताराशकर बैनर्जी, विभूतिभूषण बैनर्जी (पथेर पाचाली, आरण्यक के लेखक जिन्होने बगाल के ग्राम्य जीवन का चित्रण किया है), राजशेखर बसु (हास्य कथालेखक), अन्नदाशकर राय, डा० बलाईचाँद मुकर्जी, सतीनाथ भादुडी, मानिक बैनर्जी, शैलजानद मुखर्जी, प्रमथनाथ बसु, नरेंद्र मित्र, गौरीशकर भट्टाचार्य, समरेश बसु, वाजिद अली, बुद्धदेव, काजी अब्दुल वदूद, नरेंद्रदेव, डा० सुकुमार सेन, गोपाल हालदार, श्रीमती शातादेवी, सीतादेवी, अवधूत, इत्यादि।

यहाँ श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर (१८७१–१९५१) का भी उल्लेख कर देना चाहिए। उन्होने कितनी ही पुस्तकें बालको की दृष्टि से लिखी और उनकी चित्रसज्जा स्वय प्रस्तुत की। ये पुस्तकें कलात्मक साहित्य के अन्य प्रेमियो के लिये भी अत्यत रोचक हैं। उन्होंने कुछ छोटे छोटे नाटक भी लिखे और कला पर कुछ गभीर निबध भी प्रकाशित किए। इसी तरह योगी अरविंद घोष का भी नाम यहाँ लिया जाना चाहिए जिनकी महत्वपूर्ण रचनाओं से बँगला साहित्य की श्रीवृद्धि मे सहायता मिली।

यद्यपि विभाजन के पूर्व कुछ मुसलिम राजनीतिज्ञो की राय थी कि बँगला मे मुसलिम भावनाओं से प्रेरित स्वतत्र मुसलिम साहित्य का विकास होना चाहिए किंतु श्रेष्ठ मुसलिम लेखकों ने भाषा मे इस तरह के पार्थक्य की कभी कल्पना नहीं की, भले ही कुछ लेखको ने अपनी कृतियो मे हिंदुओं की अपेक्षा अधिक अरबी फारसी शब्दो का प्रयोग करना शुरू कर दिया। पुराने मुसलिम कवियों मे कैकोबाद अधिक प्रसिद्ध है और उपन्यासलेखकों में मशरफ हुसेन का नाम लिया जा सकता है जिनके जगनामा की तर्ज पर लिखित 'विषाद सिंधु' के एक दर्जन से अधिक सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। शिक्षित मुसलिम समाज मे कितने ही लेखक उपन्यास, कहानी, आलोचना तथा निबध लिखने मे ख्याति प्राप्त कर रहे है। उपन्यासकार काजी अब्दुल वदूद का नाम ऊपर लिया जा चुका है। उन्होंने रवींद्र साहित्य पर विवेचनात्मक पुस्तक लिखने के बाद गेटे पर भी एक ग्रथ दो खडो मे प्रकाशित किया। केंद्रीय सरकार के पूर्वकालीन वैज्ञानिक अनुसधान मत्री हुमायूँ कबीर बँगला के प्रतिभावान् कवि तथा अच्छे गद्यलेखक हैं। कुछ अन्य मुसलिम लेखकों के नाम ये हैं—(कवि) गुलाम मुस्तफा, अब्दुल कादिर, बदे अली, फारुख अहमद, एहसान हबीब आदि, (गद्यलेखक) डा० मुहम्मद शहीदुल्ला, अबू सैयिद अयूब, मुताहर हुसेन चौधरी, श्रीमती शमसुन नहर, अबुल मसूर अहमद, अबुल फजल, महबूबुल आलम। विभाजन के बाद यद्यपि पाकिस्तान सरकार ने प्रयत्न किया कि पूर्वी बगाल के मुसलमान अपनी भाषा अरबी लिपि मे लिखने लगें, पर इसमे सफलता नही मिली। मुसलिम छात्रो तथा अन्य लोगो ने इस प्रयत्न का तथा बगालियो पर उर्दू लादने का जोरदार विरोध किया। बँगला की उन्नति पर यहाँ इसका क्या प्रभाव पडेगा, इसका उत्तर भविष्य ही देगा। अभी इस सबध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

[सु० कु० चा०]

बगाल के नवाब १७०७ मे औरगजेब के देहात के बाद केंद्रीय मुगल सत्ता का क्रमश ह्रास होने लगा। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य के विभिन्न भागो मे केंद्र से पृथक् हो जाने की प्रवृति प्रकट होने लगी और बाद के मुगल बादशाह नाम के

शासक रह गए। प्रातीय सूबेदार वस्तुत उनसे स्वतन्त्र हो गए और मुगल बादशाहो के प्रति उनकी निष्ठा मात्र सैद्धातिक रह गई। तभी से बगाल के नवाब भी सभी व्यावहारिक कार्यो के लिये अपने को स्वतन्त्र समझने लगे।

मुर्शिद कुली जफर खाँ, जिसे औरगजेब ने १७०० मे बगाल का दीवान नियुक्त किया था, १७१३ मे बगाल का नायब सूबेदार और १७१७ मे सूबेदार बन बैठा। वह बगाल की राजधानी ढाका से मुर्शिदाबाद हटा ले गया। वह शक्तिशाली और योग्य प्रशासक था। उसने आदेशो का पालन सख्ती से कराया। जमीदारो से लगान वसूली के लिये उसने कडी कार्रवाई की और अग्रेज व्यापारियो को भी चुगी की वही रकम अदा करने के लिये मजबूर कर दिया जो भारतीय व्यापारी देते थे। उसके शासन के समय "बगाल की जनता ने राहत की साँस ली और उसे सुख समृद्धि का अवसर मिला।"

१७२७ मे मुर्शिदकुली के देहात के बाद उसका दामाद शुजाउद्दीन मुहम्मद खाँ बगाल का नवाब हुआ। उसके शासनकाल मे बिहार का सूबा, जिसकी पूर्वी सीमा ईस्टर्न रेलवे लूप पर स्थित साहबगज के निकटस्थ तेलियागढी तक पहुँच चुकी थी, शाहशाह मुहम्मद शाह द्वारा १७३३ मे बगाल के सूबा से जोड दिया गया और अलीवर्दी को बिहार का डिप्टी गवर्नर बनाकर भेजा गया। उसने यूरोपीय व्यापारियो पर अपना शासन कडाई से लागू किया। १८वी शताब्दी के कुछ भारतीय लेखको के अनुसार उसके शासनकाल मे बगाल मे शाति और समृद्धि व्याप्त थी। १३ मार्च, १७३९ को उसके देहात के बाद उसका लडका सरफराज बगाल का मसनददार बना। सरफराज मे न तो वह योग्यता थी और न वह चरित्रबल ही था जिससे किसी राज्य का शासन कर पाना सभव होता है। उसे अपनी अयोग्यता की भारी कीमत चुकानी पडी। उसे गद्दी तो छोडनी ही पडी अपने प्राणो से भी हाथ धोना पडा।

उसकी नालायकी का फायदा उठाकर और उसके भाई हाजी अहमद का प्रोत्साहन पाकर बिहार के डिप्टी गवर्नर अलीवर्दी ने एक बडी फौज के साथ बगाल के लिये कूच कर दिया और १० अप्रैल, १७४० को राजमहल के निकटवर्ती गिरिया मे हुई पहली ही लडाई मे उसे हराकर बगाल, बिहार और उडीसा की मसनद पर कब्जा कर लिया। शैशव मे ही अनेक विपत्तियाँ झेल लेने के कारण अलीवर्दी का चरित्र इतना पक्का बन चुका था कि वह अपने वैयक्तिक जीवन मे बुराइयो से मुक्त रहा और उसमे एक अच्छे शासक के गुण विकसित हो गए। गुलाम हुसेन नामक एक समसामयिक इतिहासकार ने उसके बारे मे लिखा है कि 'वह एक बुद्धिमान, कुशाग्रबुद्धि और दिलेर सिपाही था। शायद ही कोई ऐसे गुण हो जो उसमे न रहे हो।' उसने प्रात के यूरोपीय व्यापारियों पर प्रभावकारी नियन्त्रण कायम रखने के लिये भरसक कुछ भी उठा न रखा। उसने उनके व्यापार को प्रोत्साहन दिया और उनके प्रति उसकी कोई दमनात्मक प्रवृत्ति भी नही थी, फिर भी कभी परिस्थितियो से बाध्य होकर उसे उनसे धन वसूल करना पडता था। उसे अपने अधिकाश शासनकाल मे विश्राति और शाति नही मिल सकी क्योकि १७४२ मे ही बगाल, बिहार और उडीसा पर मराठा आक्रमण का सिलसिला बराबर जारी रहा और उसके दो अफगान सेनापतियों ने भी उसके खिलाफ बगावत कर दी थी। अत मे उसने मई या जून, १७५१ मे मराठो से सधि कर ली जिसके अनुसार उसने बगाल से १२ लाख रुपया चौथ देना स्वीकार कर लिया और उडीसा के एक भाग का लगान वसूल करने का अधिकार भी उन्हे दे दिया। बगाल की सीमा जालेश्वर के निकट स्वर्णरेखा नदी तक निर्धारित कर दी गई और मराठो से यह समझौता हो गया कि वे भविष्य मे इसका उल्लघन न करेंगे।

अलीवर्दी ९ (अथवा १०) अप्रैल, १७५६ को इस ससार से विदा हो गया और उसके प्रिय पौत्र तथा उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला ने शासन का भार सँभाला। उसने शीघ्र ही शहमतजग की पत्नी घसीटी बेगम और पूर्णिया के गवर्नर शौकतजग जैसे अपने प्रतिद्वद्वी रिश्तेदारो की मक्कार हरकतो और साजिशो को नाकामयाब कर दिया। उसने घसीटी बेगम को शीघ्रता और शाति के साथ अपने राजमहल मे बुला लिया और उसकी सपत्ति पर कब्जा कर लिया। शौकत जग अक्टूबर, १७५६ में मनिहारी मे हुई लडाई मे सिराजुद्दौला द्वारा परास्त कर दिया गया और मारा गया।

किंतु इसी बीच अग्रेजो के साथ उसके सबध शत्रुतापूर्ण हो गए। इसके मूल मे दोनों के स्वार्थों की टक्कर थी। सिराजुद्दौला ने अग्रेजो की कुछ हरकतों को प्रात के शासक के रूप मे अपनी प्रभुसत्ता के लिये हानिकारक समझा और इनके विरुद्ध प्रतिवाद किया। उसने अग्रेजो पर तीन विशेष आरोप किए। (१) उन्होने बिना उसकी अनुमति के कलकत्ता मे किलेबदी शुरू की है और उसको मजबूत बनाया है, (२) दस्तको के अधिकार का दुरुपयोग किया है अर्थात् कपनी के मुक्त व्यापार का उपयोग अपने निजी व्यापार के लिये किया है, और (३) नवाब के विरुद्ध आचरण करनेवाले उसके अधिकारियो को आश्रय दिया है। समसामयिक दस्तावेजो की सतर्क परीक्षा से यह सिद्ध हो गया है कि इन तीनो अभियोगो मे से कोई भी अभियोग निराधार नही था।

दोनो मे अनिवार्य सघर्ष शीघ्र ही शुरू हो गया। ४ जून, १७५६ को सिराजुद्दौला के सिपाहियो ने मुर्शिदाबाद के निकट कासिमबाजार स्थित अग्रेजी फैक्टरी पर कब्जा कर लिया। इसके बाद २० जून को नवाब ने कलकत्ता पर भी अधिकार कर लिया। नवाब की फौजो ने जिस समय कलकत्ता पर घेरा डाल रखा था कुछ अग्रेज सिपाही गिरफ्तार कर लिए गए और यह भी सभव है कि कुछ लोग हताहत भी हुए हो किंतु कालकोठरी (ब्लैक होल) के सबध मे प्रचलित हॉलवेल की उस कहानी पर, जिसके अनुसार बहुसख्यक अग्रेज मार डाले गए थे, आधुनिक लेखको ने ठोस आधार पर सदेह व्यक्त किया है। जनवरी, १७५७ मे मद्रास से ऐडमिरल वाटसन और कर्नल क्लाइव के नेतृत्व मे पर्याप्त कुमक आ जाने के बाद अग्रेजो ने पुन कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। ९ फरवरी, १७५५ को नवाब ने अग्रेजो से एक सधि की जिसकी शर्ते कपनी के लिये समानजनक तो थी ही, लाभदायक भी थी।

कुछ ही महीनो मे नवाब को क्रूर नियति का शिकार बनना पडा। मार्च, १७५७ मे अग्रेजों ने चन्द्रनगर स्थित फ्रासीसी फैक्टरी पर कब्जा कर लेने के बाद फ्रासीसियो को, जो अग्रेजो के खिलाफ नवाब के सहज मित्र थे, बगाल से निकाल बाहर किया और प्रधान सेनापति

मीर जाफर तथा दुर्लभराम जैसे नवाब के प्रमुख सैनिक और नागरिक प्रशासनाधिकारी, प्रांत के प्रमुख महाजन जगत सेठ तथा कुछ अन्य लोगों ने उसके विरुद्ध अंग्रेजों से मिलकर एक षड्यंत्र रचा जिसे २० जून को अंतिम रूप दे दिया गया। उन्होंने सिराजुद्दौला को हटाकर बंगाल की गद्दी पर मीर जाफर को बैठाने का निश्चय किया। क्लाइव ने शीघ्र ही नवाब के विरुद्ध अभियान शुरू कर दिया और २२ जून की मध्यरात्रि में भागीरथी के तट पर स्थित प्लासी की अमराई में अपनी फौजों के साथ आ धमका। उस समय सिराजुद्दौला भी वहीं डेरा डाले हुए था। इसी स्थान पर २३ जून को जो लड़ाई हुई उसका निर्णय पूरी तरह अंग्रेजों के पक्ष में चला गया क्योंकि इस लड़ाई में नवाब को उन्हीं लोगों ने बुरी तरह धोखा दे दिया जिनसे निष्ठा पाने का वह दावेदार था। जिस समय नवाब दोस्तों और सहायकों की खोज में बिहार की ओर भागा जा रहा था राजमहल के पास रास्ते में ही उसे एक मुसलमान फकीर ने पहचान लिया। फकीर की उससे पुरानी अदावत थी। उसने नवाब का पता उसके दुश्मनों को दे दिया। नवाब को मुर्शिदाबाद घसीट लाया गया जहाँ २ या ३ जुलाई, १७५५ को उसकी नृशंस हत्या कर दी गई।

मीर जाफर को शीघ्र ही बंगाल का मसनद दे दिया गया किंतु वह प्रशासन के लिये सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ। उसने अंग्रेजों का विश्वास खो दिया। उन्होंने १७६० में उसे गद्दी से हटा दिया और उसके स्थान पर उसके दामाद मीर कासिम को बैठा दिया। मीर कासिम योग्य शासक था किंतु बंगाल के आंतरिक व्यापार के नियमन और अपने प्रभुत्व को प्रभावकर ढंग से क्रियान्वित करने के लिये उसने जो प्रयत्न किए उससे अंग्रेजों के साथ उसका संघर्ष छिड़ गया। उसे कई मुठभेड़ों में मात खानी पड़ी। अंत में १७६३ में उसने बिहार छोड़ दिया। इसके बाद उसने दिल्ली के सम्राट् शाह आलम द्वितीय तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला के सहयोग से अपनी खोई हुई शक्ति को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया किंतु उसका यह प्रयत्न भी विफल हो गया क्योंकि २३ अक्टूबर, १७६४ को बक्सर की लड़ाई में उसके मित्रों की सम्मिलित शक्ति पूरी तरह परास्त हो गई। बक्सर युद्ध भारतीय इतिहास का एक निर्णायक युद्ध है क्योंकि इसने प्लासी युद्ध के परिणामों की पूर्ति करके अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का वास्तविक प्रभु बना दिया। अगस्त, १७६५ में सम्राट् शाह आलम ने उन्हें जो दीवानी प्रदान की उसमें उनकी इस वास्तविक स्थिति को कानूनी मान्यता भी प्राप्त हो गई। इस दीवानी से अंग्रेजों को लगान वसूली और नागरिक न्याय करने के अधिकार हासिल हो गए। मीर जाफर के लड़के और उत्तराधिकारी नजीम-उद्दौला ने २० फरवरी, १७६५ को ही अंग्रेजों से एक ऐसा समझौता कर लिया था जिससे पूरी तरह से उसके हाथ कट चुके थे और गद्दी पर उसका किसी तरह का कोई अधिकार नहीं रह गया था। इसके बाद बंगाल के नवाब, प्रशासकीय अधिकार के समस्त लक्षणों से वंचित होकर अंग्रेजों के अधीन हो गए और वस्तुत उनके बंदियों जैसा जीवन बिताने लगे। [का० कि० द०]

बंदरगाह समुद्रतट पर जलयानों को आश्रय देनेवाले स्थलों को, जहाँ जलयान रुक सकें, नवीन जलयानों का निर्माण और मरम्मत हो सके, जलयान झंझावातों से सुरक्षित रखे जा सकें तथा जहाँ अंतर्देशीय तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक जलयान विभिन्न सामग्रियों का आदान प्रदान कर सकें, बंदरगाह कहते हैं। ये देश के लिये बाहरी द्वार का भी काम देते हैं।

जल यातायात की प्रगति के साथ साथ व्यापार तथा पोत सुरक्षा के लिये बंदरगाह बराबर विकसित होते गए। अत बंदरगाहों का इतिहास जल यातायात के उत्थान और पतन के साथ संबद्ध है। प्राचीन काल में टायर, सिकंदरिया तथा रोडेश प्रमुख भूमध्यसागरीय बंदरगाह थे। रोम तथा यूनान के ऐतिहासिक युग में उद्योग एवं सुरक्षा के दृष्टिकोण से बंदरगाहों की उन्नति हुई, क्योंकि नाविकों की विचरणशीलता की दृष्टि से यह युग प्रमुख था। यूरोप में प्राचीन काल से ही अनेक प्राकृतिक बंदरगाह थे जिनका बड़े, चौड़े तथा अधिक भारवाले जलयानों एवं मालवाही पोतों के आविष्कार के साथ साथ समयानुकूल नवीनीकरण होता गया। बंदरगाहों को नया स्वरूप देने का सर्वप्रथम प्रयास इंग्लैंड में किया गया जो १८ वीं शताब्दी में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। बनावट के अनुसार बंदरगाह दो प्रकार के होते हैं १ प्राकृतिक तथा २ कृत्रिम।

प्राकृतिक बंदरगाह — प्राकृतिक बंदरगाह प्राय. खाड़ियों, ज्वारनद मुख, पश्चजल तथा परिवेष्ठित खाड़ियों पर निर्मित होते हैं। यहाँ बिना किसी बाह्य बनावट या उपलब्धियों के ही जलयानों का गमनागमन सुलभ होता है। प्राचीन काल के प्राय सभी बंदरगाह इसी श्रेणी के हुआ करते थे। अब इस युग में इसके अंतर्गत कुछ नई सुविधाएँ भी जैसे तलेटी की सफाई, गोदी निर्माण आदि अंतर्निहित हैं। इस प्रकार के प्रमुख बंदरगाह कराची, बंबई, हांगकांग, पोर्टस्मथ, सिडनी, सैनफ्रैंसिस्को, न्यूयार्क, मिलफोर्ड, वेल्स आदि हैं। इनमें से न्यूयार्क सर्वप्रमुख बंदरगाह है। इसकी विशेषताएँ अधिक पानी की गहराई तथा फैलाव, आवागमन सुलभता एवं सुरक्षा है। प्राकृतिक ज्वारनदमुख पर बसे टेम्स, मरसे तथा यागटीसी बंदरगाह उल्लेखनीय हैं। ऐसे भी बंदरगाह हैं, जो प्राकृतिक एवं मानवनिर्मित प्रयासों के सम्मिश्रण से बने हैं, जैसे प्लाइमथ एवं टेबुल बे बंदरगाह।

कृत्रिम बंदरगाह — कृत्रिम बंदरगाह वे हैं जो समुद्रतट पर तंग अवरोध प्रणाली के अंतर्गत कृत्रिम खाड़ी, पश्चजल या घाट का निर्माण कर बनाए जाते हैं। ये पूर्ण रूप से बनावटी होते हैं तथा
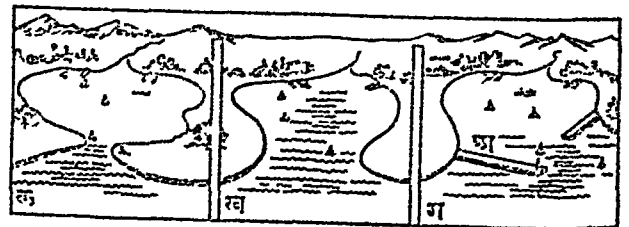
तीन प्रकार के बंदरगाह

क भूमि से घिरा, ख असुरक्षित तथा ग कृत्रिम।

खुले समुद्र में बनाए जाते हैं। इनके अंतर्गत नए नए उपकरणों, यंत्रों एवं इंजीनियरिंग द्वारा अच्छे तंग अवरोध बनाए जाते हैं, जैसे मद्रास बंदरगाह में। पश्च जल उस झील को कहते हैं, जो एक पतले

गहरे जलमार्ग द्वारा समुद्र से मिला होता है। इसके द्वारा निर्मित प्रमुख कृत्रिम बदरगाह लॉस ऐंजेलेस है। लॉस ऐंजेलेस तथा उससे सबधित सैन पेड्रो एव लाग बीच को मिलाकर एक प्रमुख तरगरोध बदरगाह का निर्माण किया गया है, जो छोटे ज्वारो एव झझावातो मे समुद्र तक सुरक्षित रहता है।

प्राकृतिक सरचना के अनुसार भी बदरगाहो का विभाजन किया जा सकता है, जैसे १ पश्चजल द्वारा निर्मित, २ घाट या जेटी द्वारा निर्मित, ३ ज्वार नदमुख द्वारा निर्मित, ४ परिवेष्टित खाड़ी द्वारा निर्मित, ५ तरगरोध द्वारा निर्मित (अ) जो समुद्रतट से समुद्र के भीतर तक बनाए गए हो, (ब) जो समुद्रतट के समांतर बनाए गए हो, (स) जो खाडियो के एक या दो निकले हुए भागो से लगा बना हो। ६ पूर्व विरचित बदरगाह, ७ जहाँ क्रम से फैले हुए अनेक द्वीप तरगरोध का कार्य करें।

कार्यानुसार भी बदरगाह कई प्रकार के होते हैं, जैसे १ व्यापारिक बदरगाह, २ नौसेना के बदरगाह, ३ मत्स्य उद्योग के लिये बने बदरगाह तथा ४ जलयानो के आश्रय हेतु बने बदरगाह।

व्यापारिक बदरगाहो के कार्यकलाप तीन प्रकार के होते हैं

क टर्मिनल (terminal) बदरगाह — इस तरह के बदरगाह व्यापारिक जलमार्गो के अत मे स्थित होते हैं, यहाँ जलयान उस विशेष बदरगाह की तथा वहाँ के पृष्ठ प्रदेशो की ही सामग्री चढाता या उतारता है, जैसे अमरीका मे स्थित न्यूयार्क बदरगाह।

ख ऐंट्रेपॉट (entrepot) बंदरगाह — बहुत से बदरगाह ऐसे हैं जिनका कार्य अन्य बदरगाहो के बीच मध्यस्थ जैसा होता है, इसे मध्यस्थ बदरगाह कहते हैं। यहाँ माल को उतारकर दूसरे जलयानो मे चढाना, मालखाने मे सामान जमा करना अथवा उस माल के परिवर्तित होने पर बाहर भेजना आदि कार्य होते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया मे सिंगापुर एक महत्वपूर्ण ऐंट्रेपॉट बदरगाह है, जो विश्व को कच्चे पदार्थों का निर्यात करता है। हागकाग बदरगाह के कार्य भी इसी प्रकार के हैं। द्वितीय विश्वमहायुद्ध के समय लदन बदरगाह का भी इसी प्रकार का कार्यकलाप हो गया था। इस दरगाह मे विश्व के हर कोने से सामान आते थे, जो बाद मे दूसरे जलयानो द्वारा छोटी छोटी सख्या मे उत्तर पश्चिमी यूरोप के देशो को निर्यात किए जाते थे, उस समय लदन बदरगाह भी एक ऐंट्रेपॉट बदरगाह के समान था।

स मुक्त बदरगाह — इसके अतर्गत जलयान अपने सामान एक निश्चित चहारदीवारी के भीतर उतार सकते हैं जिसे मुक्त क्षेत्र (freezone) कहते है। यहाँ पर सामान भडार गृहो मे नि शुल्क रखे जाते हैं। माल का स्वरूप बदला जाता है या नए रूप मे लाया जाता है। अब माल का विक्रय होता है अथवा विदेशो को दूसरे जलयानो द्वारा निर्यात किया जाता है। इन वस्तुओ के ऊपर किसी प्रकार का कर उसी समय लगता है, जब सामान मुक्त क्षेत्र की चहारदीवारी से निकलकर किसी नगर को जाते हैं। यहाँ की विशेषता यह है कि मुफ्त मे ही तथा बिना किसी प्रकार का कर चुकाए ही मध्यस्थ विनिमय हो जाता है और कर आदि केवल एक बार ही मुक्त क्षेत्र से निकलने पर लगता है। अदन, हागकाग, काडला ऐसे ही बदरगाह हैं।

बदरगाहो के उद्भव और विकास — बदरगाह अतरदेशीय व्यापार-मार्गो का एक सगमस्थल है, जहाँ स्वदेशी एव विदेशी वस्तुओ का आदान प्रदान होता है। इस व्यापार की अधिकता या कमी उस बदरगाह की विशेषताओ के ऊपर निर्भर करती है। अत एक सुरक्षित तथा अच्छे बदरगाह की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं

१ समुद्रतट की गहराई अधिक हो जिससे बडे बड़े जहाज समुद्रतट तक पहुँच सकें, अन्यथा जहाजो को दूर समुद्र मे ही रुकना पडेगा और वहाँ से छोटे छोटे स्टीमरो द्वारा व्यापारिक वस्तुओ का आदान प्रदान करना पडेगा। इससे व्यय बढ जाएगा और अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाएँगी।

२ तट से समुद्र मे फैला तरगरोध हो जो बदरगाह के निमित्त काफी लबी चौडी खाडी का निर्माण करे, जिससे वहाँ कई जहाज एक साथ ठहर सकें तथा माल चढाया और उतारा जा सके। इससे यह भी लाभ होगा कि झझावातो, चक्रवातों एव आँधियो से, यहाँ खडे जलयानो की सुरक्षा हो सकेगी।

३ ज्वारनदमुख द्वारा बने बदरगाह पर ज्वार भाटा का काफी तेज होना आवश्यक है, जिससे बडे बडे जहाज भीतर तक जा सकें और निकल सकें तथा साथ ही साथ नदियो द्वारा जमा की गई बालू तथा मिट्टी की सफाई होती रहे, अन्यथा पेटा को बराबर साफ करने के लिये यत्रो आदि का उपयोग करना होगा।

४ बदरगाह का अथवा आस पास की जलवायु इतनी ठढी न हो कि तटवर्ती समुद्र जम जाता हो अथवा पास के प्रदेशो से प्राय हिमखड बहकर बदरगाह के मार्ग को असुरक्षित करते हो।

५ बदरगाह का पृष्ठ प्रदेश उपजाऊ तथा सघन जनसख्यावाला होना चाहिए। बदरगाह पृष्ठ प्रदेश के नगरो से रेलो तथा पक्की सडको के जाल द्वारा सबधित हो ताकि आयात एव निर्यात की वस्तुओ को सुगमता पूर्वक बाँटा और इकट्ठा किया जा सके। पृष्ठ प्रदेश जितना ही विस्तृत, उत्पादक तथा सघन होगा, बदरगाह उतना ही समृद्धशाली एव वृहद् होगा।

६. बदरगाह अगर किसी मुख्य व्यापारिक जलमार्ग पर स्थित हो तो उसका विकास तेजी के साथ होता है।

विश्व मे ऐसे अनेक प्राकृतिक बदरगाह हैं जिनकी उन्नति उपर्युक्त सुविधाओ के अभाव मे नही हो सकी है, जैसे पश्चिमी कैनाडा, ऐलैस्का, नार्वे तथा दक्षिणी चिली मे स्थित अनेक बदरगाह जिनका पृष्ठ प्रदेश मुख्य रूप से अनुपजाऊ तथा कम जनसख्यावाला है और जलवायु ठढा है जिससे बदरगाह वर्ष भर व्यापार के लिये खुले नही रहते तथा वस्तुओ की माग की कमी के कारण आयात और निर्यात की वस्तुएँ कम होती हैं।

तरंगरोध — तरगरोध तेज जल के वेग को तथा समुद्र मे उत्पन्न झझावातो को रोकने का कार्य करता है और इस प्रकार यह एक बनावटी चट्टान का कार्य करता है। इसका उपयोग समुद्र की जलतरग, नदियों की तलैटी मे जमा हो रहे गाद (silt) और समुद्रतट पर जमा हो रहे, बालू के ढेर को रोकने के लिये किया जाता है। तरगरोध का निर्माण इस प्रकार से होना चाहिए जिससे उसके द्वारा अधिकतम प्रलयकारी जलप्रवाहो को अवरुद्ध किया जा सके। इसके साथ ही साथ वहाँ समुद्रतल गहरा रहे तथा जल, वायु

एव ज्वार भाटा द्वारा अधिकतम लाभ हो सके। जलतरंगो का अध्ययन आवश्यक है, क्योकि वायु के समुद्रतट पर तेज या मध्यम गतिवाली जलतरंगें पैदा होती हैं। यही नही, वल्कि जल तरंगो का अधिक विस्तृत या सकुचित होना इस वात पर निर्भर करता है कि वहाँ वायु की गति क्या है, वह कितना रास्ता तय करके आ रही है तथा उस हवा की दिशा किस ओर है। अधिक प्रभावशाली जल प्रवाह में तारतम्य होता है। जलप्रवाह की अत्यधिक ऊँचाई समुद्रतट से दूरी के ऊपर आश्रित है। तरगरोध तीन प्रकार के होते हैं १ अनगढे पत्थर के टीले, २ ऊर्ध्वाधर टीले, तथा ३ मिश्रित टीले।

१ अनगढ़े पत्थर के टीले — ये टीले छोटे वडे पत्थरो के टुकडो को तल के ऊपर एक जमाकर वनाए जाते हैं तथा इनकी ऊपरी सतह पर वहुत वडे वडे पत्थर के टुकडे होते हैं, जो जलधाराओ द्वारा नहीं वहाए जा सकते। ऐसे टीले का उपयोग उन स्थलो पर होता है, जहाँ पर समुद्र का तल समान तथा सुदृढ नही होता तथा जहाँ समुद्र का पानी छिछला होता है। प्राकृतिक तथा उपयुक्त पत्थरो के न होने के कारण ऊपरी पट्टी कक्रीट द्वारा वनाई जाती है। एव उपयुक्त रेखाकन के अतर्गत तरगरोध के चारो ओर स्थायी तथा खडी ढाल एव ऊपर वडे वडे पत्थर के ढेर टोपीनुमा जमाकर दिए जाते हैं जो जलतरगो द्वारा नही हटाए जा सकते।

२ ऊर्ध्वाधर टीले — ये टीले तरगरोध के लिये वहाँ प्रयुक्त होते हैं, जहाँ पर साधारणतया समुद्र की गहराई अधिक होती है तथा जहाँ समुद्रतल सुदृढ होता है। इसका निर्माण चाहे ईंटो अथवा कक्रीट या प्रवलित कायर्सो (reinforced caissions) द्वारा, जो वालू अथवा वजरी से भरे होते हैं, किया जाता है। कभी कभी ये इस्पात, लकडी या कक्रीट द्वारा भी वनाए जाते हैं।

३ मिश्रित टीले — जहाँ तट के समुद्रतल की वनावट मे दृढ तथा कमजोर दोना प्रकार के अविकसित समुद्रतल का सम्मिश्रण होता है, वहाँ किसी एक प्रकार के तरगरोध का उपयोग नहीं किया जा सकता, वल्कि दोनो तरह की सरचनाओ को मिलाकर तरगरोध का निर्माण किया जाता है, जिसको मिश्रित टीले के नाम से पुकारा जाता है।

जलयान गोदी — गोदी वह स्थान है जहाँ पर जलयान आकर आश्रय पाते हैं और जहाँ पर जहाजो का निर्माण, सफाई, मरम्मत आदि की जाती है। ये दो प्रकार की होती हैं — अ सूखी गोदी तथा ब मजल गोदी।

अ सूखी गोदी — यह अधिकतर जहाजो के निर्माण, मरम्मत तथा अन्य प्रकार के निर्माण हेतु काम मे लाई जाती है। यह भी दो प्रकार की होती है— १ शुष्क गोदी तथा २ तिरती गोदी।

१ शुष्क गोदी वेसिन के आकार की होती है जिसके भीतर से पानी सरलता से वाहर किया जा सकता है और इस प्रकार जहाजो का निर्माण, मरम्मत आदि शुष्क समुद्र गोदी में किया जा सकता है।

प्राचीन काल मे समुद्रतट पर वेसिन की तरह खुदाई की जाती थी, फिर उसमे जहाज को लाया जाता था, मुहाने पर ऊँची दीवार वना दी जाती थी और फिर उसके अदर का पानी पंप द्वारा वाहर निकाल दिया जाता था। इसी से शायद प्राचीन नाविकों ने इसे शुष्क गोदी कहा है। १९वीं तथा २०वीं शताब्दी मे इसमे महान् परिवर्तन हुए और अव आधुनिक तरह की शुष्क गोदियाँ हैं जिनमे पानी भरने और निकालने का नवीनतम प्रयोग हो रहा है। साथ ही इन यत्रो की क्षमता, जल्द मरम्मत, क्रेन तथा यंत्रचालित प्रवेशद्वार की वजह से कम समय मे अधिकतम कार्य किया जा रहा है। इनका निर्माण समुद्रतट की स्थिति, मिट्टी एव वहाँ प्राप्त होनेवाली वस्तुओं के ऊपर निर्भर करता है, इसके लिये निम्न वातें होनी आवश्यक हैं (क) शुष्क गोदी की लवाई चौडाई तथा गहराई अधिक होनी चाहिए जिससे उसके अतर्गत वडे से वडा जहाज सुगमतापूर्वक आ जा सके, (ख) गोदी सुदृढ हो जो जहाज के भार को वहन कर सके, (ग) चारो ओर इतना स्थान हो जिससे सुगमतापूर्वक जहाज से माल उतारा एव चढाया जा सके तथा (घ) जल का दवाव अधिक न हो, या उसे वहन करने के लिये समुद्र की तलेटी को सुदृढ वनाया जा सकता हो। १९वी शताव्दी के आरंभ काल मे इस प्रकार के निर्माण मे कई वर्ष लग जाते थे, अत्यधिक धन व्यय होता था, इस तरह से यह एक वहुत वडा निर्माण कार्य होता था। धीरे धीरे समय के अनुसार एव आवश्यकता की तीव्रता ने नए नए आविष्कारों को जन्म दिया और २०वी शताव्दी मे इनका वनाया जाना सरल कार्य हो गया। दूसरे महायुद्ध के समय मे अमरीका ने दो शुष्क गोदियो का निर्माण किया जिनकी लवाई १,१०० फुट, चौडाई १३४ फुट तथा गहराई ३८ फुट थी।

२ तिरती गोदी के अतर्गत ऐसा प्रवध होता है कि मरमत, सफाई आदि के लिये जहाज को पूर्ण रूप से हवा मे क्रेनों द्वारा उठा लिया जाता है। तिरती गोदी की आकृति यू (U) आकार की होती है, समय पडने पर भीतरी दवाव द्वारा गोदी मे पानी भर दिया जाता है और आवश्यक्ता समाप्त होने पर पप द्वारा पानी वाहर निकाल दिया जाता है। इसके अदर सर्वप्रथम छोटे छोटे जलयान ही लाए जाते थे पर अव हर तरह के जलयानो के लिये विशेष रूप की गोदियाँ हैं। १९ वी शताव्दी मे लकडी द्वारा निर्मित तिरती गोदी का आविष्कार किया गया और ये इतनी अधिक प्रचलन मे आईं कि अव इनका उपयोग अमरीका मे व्यापारिक जलयानो के लिये किया जाता है। जैसे जैसे अच्छी लकडियाँ दुर्लभ होती गईं, आविष्कार होते गए और अव उनकी जगह इस्पात तथा काक्रीट ने ले ली है। द्वितीय विश्वमहायुद्ध के समय मे तिरती गोदी का प्रचार वडी तेजी से हुआ, क्योकि इनके द्वारा यह सरल था कि कम से कम समय मे जहाजो की मरमत आदि के अधिक से अधिक कार्य, हो जाते थे।

ब मजल गोदी समुद्र मे तैरती रहती है और जहाजो के आगमन के साथ ही तुरत काम मे लाई जाती है जिससे जहाजो मे माल उतारने और चढाने का कार्य सुगम हो जाता है। यह गोदी दो प्रकार की होती है, (१) खुली तथा (२) वद। इनका प्रयोग वहाँ अधिक होता है, जहाँ ज्वार भाटा मे अधिक अतर होता है।

खुली प्रकार की गोदी का निर्माण तथा उपयोग सरल है और इनका उपयोग मुख्यतया अमरीका मे होता है, जैसे न्यूयार्क तथा सैनफ्रांसिस्को मे। यूरोप तथा इग्लैंड में अनेक मजल गोदियाँ हैं,

जिन्हे अनेक जलपाशों द्वारा विभक्त कर दिया गया है और जिनमे पानी का चढाव या उतार समयानुकूल बदला जा सकता है। इस तरह की गोदी को बद या बेसिन गोदी कहते हैं। इसमें प्रवेशद्वार के फाटक द्वारा भीतर और बाहर के जल की सतह को समान ऊँचाई पर लाया जाता है। ब्रसल्ज एव साउथैंप्टन बदरगाहों मे इसी प्रकार की गोदियाँ हैं।

सजल गोदी की सरचना दो प्रकार की होती है १ वे सरचनाएँ जिनका निर्माण समुद्रतट के समातर किया जाता है, उन्हे उपात या घाट कहते हैं तथा २. वे सरचनाएँ जो समुद्र के भीतर निकली हुई बनाई जाती हैं, उन्हें स्तभ कहते हैं।

भारत के बंदरगाह — हमारे देश के ६,४०० किलोमीटर लबे समुद्रतट पर लगभग २०० बदरगाह हैं। इनमे से छह प्रथम श्रेणी के, २२ मध्यम श्रेणी के तथा १४३ छोटे और शेष अनुपयुक्त बदरगाह है। समुद्रतट के कम कटे फटे होने के कारण हमारे यहाँ अच्छे बदरगाहो की कमी है। कलकत्ता, बबई, मद्रास तथा कोचीन बदरगाह प्राचीन काल से ही विश्वव्यापार मे अपना स्थान बना चुके हैं। भारतीय व्यापार की प्रगति एव उन्नति के साथ साथ कुछ नए बदरगाहो का उदय हुआ जिसमे पूर्वी तट पर विशाखापत्तनम् एव पश्चिमी तट पर काडला प्रमुख है। काडला बदरगाह के बन जाने से, कराची बदरगाह, के पाकिस्तान मे चले जाने के कारण हुई कमी की पूर्ति हो गई। इसके अतिरिक्त कोकनाडा, कालीकट, कोभीकोड, मगलुरु, पाडेचेरी, मछलीपत्तनम् (मसली पत्तनम्), तूतीकोरीन, नागा पत्तनम्, कारीकल, भावनगर, ओखा, सूरयु, पोरबदर तथा मर्मागोवा मुख्य बदरगाह हैं। भारत का मुख्य व्यापार कलकत्ता, कोचीन, काडला, मद्रास तथा विशाखापत्तनम् द्वारा होता है। बबई सर्वप्रमुख बदरगाह है जो सबसे अधिक आयात की गई सामग्रियो तथा आने जानेवाले यात्रियो का अधिकतम भार वहन करता है। आयात की तुलना मे यहाँ से निर्यात कम होता है। कलकत्ता मे आयात और निर्यात समान हैं परतु यात्रियो के दृष्टिकोण से यह कम महत्वपूर्ण है जिससे भारत मे इसका द्वितीय स्थान है। बबई प्रति वर्ष सबसे अधिक जलयानो को आश्रय प्रदान करता है। यात्रियो के गमनागमन मे काडला का दूसरा स्थान है।

बबई भारत का एक प्रसिद्ध प्राकृतिक बदरगाह है, जहाँ पर झझावातो से जलयानो की सुरक्षा, गहरा समुद्रतट तथा अत्यत समृद्धिशाली पृष्ठप्रदेश है। यह बदरगाह तीन ओर से स्थल द्वारा घिरा हुआ है। यहाँ का पोताश्रय १५ मील लबा तथा ५ मील चौडा है। यहाँ जलविद्युत् की सुलभता ने कोयले की कमी को समाप्त कर दिया है अत बबई से लगभग ७० मील दूर तक सभी रेलगाडियाँ विद्युत् द्वारा चलाई जाती हैं। यहाँ का मुख्य आयात खाद्यान्न, सूती कपडे, मशीन, लोहा, इस्पात, मिट्टी का तेल एव रग है। यहाँ का मुख्य निर्यात रुई, तिलहन, ऊन, चमडा तथा मैंगनीज है।

कलकत्ता भारत के पूर्वी तट का एक महत्वपूर्ण बदरगाह है, जो हुगली नदी पर, उत्तर मे रामपुर तथा दक्षिण मे बजबज तक फैला हुआ है। इस विस्तार मे अनेक जेटी, गोदाम तथा शुष्क गोदी हैं। नदी पर स्थित होने के कारण इसकी सतह मे निरतर रेत तथा कीचड़ जमा होता रहता है जिसको हटाने के लिये यत्रो का उपयोग किया जाता है। बडे बडे जलयान ज्वार के समय ही बदरगाह तक पहुंच पाते हैं। उपर्युक्त असुविधाओ के अतिरिक्त वहाँ पर अच्छे बदरगाह की सभी विशेषताएँ निहित हैं। यहाँ से लगभग ३६० लाख टन वस्तुओ का आयात एव निर्यात होता है। आयात होनेवाली वस्तुओ मे खाद्यान्न, लोहा, इस्पात, पेट्रोल, मशीनें एव सीमेंट हैं। निर्यात होनेवाली वस्तुओ मे कोयला, चाय, तथा लोहा मुख्य हैं।

विशाखापत्तनम्, भारत का द्वितीय प्राकृतिक तथा जलयान निर्माण का एकमात्र बदरगाह है। यह एक नवीन बदरगाह है, जो कलकत्ता एव मद्रास बदरगाहो के लगभग मध्य मे स्थित है तथा जिसकी स्थापना का मुख्य कारण पृष्ठप्रदेश मे मैंगनीज की प्राप्ति है। यहाँ जलयानो के निर्माण के लिये सुरक्षित एव सुलभ गोदी की बहुलता है। यो तो इसका पृष्ठप्रदेश अर्धविकसित है फिर भी यह बडा महत्वपूर्ण बदरगाह है, तथा गोदीबाडे की स्थापना से इसकी महत्ता और भी बढ गई है। देश के महत्वपूर्ण बदरगाहो मे इसका पाँचवा स्थान है। यहाँ से मैंगनीज, चमडा, तिलहन तथा खली बाहर भेजी जाती है तथा सूती कपडे, लोहे का सामान, लकडी, मशीन एव दवाएँ आयात की जाती हैं।

मद्रास एक कृत्रिम बदरगाह है। यहाँ समुद्र को दो ओर से पक्के बाँधो द्वारा बाँधकर लगभग २०० एकड क्षेत्रफल का एक घेरा बना दिया गया है, जहाँ जल की गहराई लगभग ३० फुट तक रहती है। इसमे १५ जलयान एक साथ ठहर सकते है। यहाँ से रुई, तबाकू, कच्चा लोहा, चमडा निर्यात किया जाता है। पेट्रोल, कागज, रसायनक एव काच का आयात होता है। समुद्रतट के छिछले होने के कारण तथा पृष्ठप्रदेश मे औद्योगिक विकास की शून्यता के कारण यह एक अच्छा एव प्रसिद्ध बदरगाह नही हो पाया है। धीरे धीरे यह पत्तन भी उन्नति की ओर प्रगति कर रहा है।

कोचीन एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक बदरगाह है। यहाँ पर समुद्र तट के समातर प्राकृतिक तरगरोध की सुविधा है। इसकी विशेषता यह भी है कि यह अदन से बबई की अपेक्षा ३०० मील निकट पडता है, अत पूर्व जानेवाले जलयान बबई की अपेक्षा यहाँ आना अधिक पसद करते हैं। प्रतिवर्ष यहाँ आने वाले जलयानो की सख्या मे निरतर वृद्धि होती जा रही है। यहाँ से रबर, चाय, कहवा, नारियल, काजू तथा गरम मसाले बाहर भेजे जाते हैं तथा चावल, गेहूँ, मशीन, रसायनक और सूती कपडे आदि बाहर से मगाएँ जाते हैं।

काडला बदरगाह का निर्माण देश विभाजन के फलस्वरूप १६४७ ई० मे हुआ जब कराची बदरगाह, पश्चिमी पाकिस्तान मे चला गया। भौगोलिक स्थिति की विशेषता के कारण इसने कराची की कमी को पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया। काडला बदरगाह वर्तमान युग का नवीनतम साज सज्जाओ से युक्त एक उन्नतिशील आधुनिक बदरगाह है। यहाँ की सबसे बडी असुविधा यह है कि यह बदरगाह भूचाल की पेटी मे पडता है। अत इस असुविधा को समाप्त करने के लिये भूकप प्रभाव से रहित भवनो का निर्माण किया जा रहा है जिससे भूकप का प्रकोप कम हो सके। [वि० रा० सि०]

बंदा (सिंह) बहादुर बंदा वैरागी का जन्म कश्मीर के पुछ जिले के रजौरी क्षेत्र मे १६७० ई०, विक्रम सवत् १७२७, कार्तिक शुक्ल १३ को हुआ था। वह राजपूतों के भरद्वाज गोत्र से सबद्ध था और उसका

नाम लक्ष्मणदेव था। १५ वर्ष की उम्र मे वह जानकीप्रसाद नाम के एक वैरागी का शिष्य हुआ और उसका नाम माधोदास पडा। अनतर वह रामदास वैरागी का शिष्य हुआ और कुछ समय तक पचवटी (नासिक) मे रहा। यहाँ एक औघडनाथ से योग की शिक्षा प्राप्त कर वह पूर्व की ओर दक्षिण के नदेर क्षेत्र को चला गया जहाँ गोदावरी के तट पर उसने एक आश्रम की स्थापना की।

३ सितबर, १७०८ ई० को नदेर मे सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोविंदसिंह ने इस आश्रम को देखा और उसे सिक्ख बनाकर उसका नाम बदासिंह रख दिया। पजाब मे सिक्खो की दारुण यातना तथा गुरु गोविंदसिंह के सात और नौ वर्ष के शिशुओ की नृशस हत्या ने उसे अत्यत विचलित कर दिया। गुरु गोविंदसिंह के आदेश से ही वह पजाब आया और सिक्खो के सहयोग से मुगल अधिकारियो को पराजित करने मे सफल हुआ। मई, १७१० मे उसने सरहिंद को जीत लिया और सतलज नदी के दक्षिण मे सिक्ख राज्य की स्थापना की। उसने खालसा के नाम से शासन किया और गुरुओ के नाम के सिक्के चलवाए।

बदासिंह के नेतृत्व मे, सिक्खो के इस नवीन राज्य मे व्यक्ति व्यक्ति मे भेदभाव न रहा और निम्न से निम्न वर्ग का व्यक्ति शासन मे उच्च पद का अधिकारी बना। परतु उसका राज्य थोडे दिनो तक ही रहा। बादशाह बहादुरशाह ने स्वय चढाई कर इसे परास्त किया और १० दिसबर, १७१० ई० को सिक्खो के कत्लआम का आदेश दिया।

बदासिंह ने अपने राज्य के एक बडे भाग पर फिर से अधिकार कर लिया और इसे उत्तरपूर्व तथा पहाडी क्षेत्रो की ओर लाहौर और अमृतसर की सीमा तक विस्तृत कर लिया। १७१५ ई० के प्रारभ मे बादशाह फर्रुखसियर की शाही फौज ने अब्दुस् समद खाँ के नेतृत्व मे उसे गुरुदासपुर जिले के धारीवाल क्षेत्र के निकट गुरुदासनगल गाव मे कई मास तक घेर रखा। खाद्य सामग्री के अभाव के कारण उसने ७ दिसबर को आत्मसमर्पण कर दिया। फरवरी १७१६ को ७९४ सिक्खो के साथ वह दिल्ली लाया गया जहाँ ५ मार्च से १३ मार्च तक प्रति दिन १०० की सख्या मे सिक्खो को फाँसी दी गई। १६ जून को बादशाह फर्रुखसियर के आदेश से बदासिंह तथा उसके मुख्य अधिकारियो के काटकर टुकडे टुकडे कर दिए गए।

उसने अति प्राचीन जमीदारी प्रथा का अत कर दिया था तथा कृषको को बडे बडे जागीरदारो और जमीदारो की दासता से मुक्त कर दिया था। वह साप्रदायिकता की सकीर्ण भावनाओ से परे था। मुसलमानो को राज्य मे पूर्ण धार्मिक स्वातत्र्य दिया गया था। पाँच हजार मुसलमान भी उसकी सेना मे थे। बदासिंह ने यह घोषणा कर दी थी कि वह किसी प्रकार भी मुसलमानो को क्षति नही पहुँचाएगा और वे सिक्ख सेना मे अपनी नमाज और खुतबा पढने मे स्वतत्र होगे। [ग० सिं०]

बंधक किसी ऋण के भुगतान अथवा किसी वादे की पूर्ति के लिये प्रतिभूति (सिक्योरिटी) स्वरूप जब किसी वस्तु का उपनिधान (बेलमेंट) किया जाता है तब उसे बधक कहते हैं। आधि अथवा प्राधि भी बधक के ही पर्याय हैं। बधक उपनिधान मे उपनिधाता को आधायक अथवा बधककर्ता तथा उपनिहिती को अधिमान अथवा बधक रखनेवाला कहा जाता है। बधक मे वस्तु का हस्तांतरण आवश्यक है। किसी सपत्ति को गिरवी रखने के लिये अथवा धारणाधिकार (लियन) के लिये वस्तु का हस्तातरण आवश्यक नही होता। लेकिन यह हस्तातरण वास्तविक ही हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रलक्षित हस्तातरण भी पर्याप्त है।

बधक रखी जानेवाली वस्तु का स्वामी तो उस वस्तु को बंधक रख ही सकता है, उसके अतिरिक्त व्यापारी अभिकर्ता भी यदि उसके पास स्वामी की रजामदी से वह वस्तु अथवा उस वस्तु के कागजात हो वह अपने सामान्य व्यापारिक अधिकार क्षेत्र मे उस वस्तु अथवा कागजात को उसी प्रकार बधक रख सकता है मानो उस वस्तु के स्वामी ने उसे यह अधिकार दिया हो। अधिकर्ता (मर्कैंटाइल एजेंट) तथा कागजात (डाकूमेंट्स ऑव टाइटिल) का अर्थ भारतीय वस्तु-विक्रय-विधि, १९३० के अनुसार ही लिया जायगा।

इसी प्रकार यदि आधायक या बधककर्ता के पास किसी की वस्तु किसी विवर्ज्य सविदा (वायडेबिल कट्रैक्ट) के अधीन उपलब्ध है और भारतीय सविदा विधि की धारा १९ अ के अतर्गत वह सविदा रद नही की गई है तब भी उस वस्तु का बधक रखना वैध माना जाता है।

आधिमान अथवा बधक रखनेवाले को उस बधक वस्तु को केवल ऋण की अदायगी अथवा वादे की पूर्ति तक ही रखने का अधिकार नही है वरन् उस ऋण पर जमा हुए ब्याज तथा उस वस्तु को सुरक्षित रखने के लिये किए गए व्यय तथा अप्रत्याशित व्यय की अदायगी के लिये भी रखे रहने का अधिकार होता है। बधककर्ता यदि ऋण की अदायगी अथवा वादे की पूर्ति निश्चित समय के भीतर नही करता तो बधक रखनेवाले को दो अधिकार उपलब्ध हो जाते हैं। वह ऋण की अदायगी अथवा वादे की पूर्ति के लिये दावा करने के साथ उस वस्तु को अतिरिक्त सुरक्षा के रूप में रखे रह सकता है। या वह उस वस्तु को, बधककर्त्ता को उपयुक्त सूचना देने के बाद बेचकर अपने ऋण का भुगतान कर सकता है। यदि वस्तु का मूल्य कम है तो बकाये की अदायगी का भार बधककर्ता पर कायम रहता है और यदि वस्तु का मूल्य अधिक प्राप्त होता है तो वह अतिरिक्त धन बधककर्त्ता को अदा कर दिया जाता है।

बधक रखी वस्तु को यदि कोई तीसरा पक्ष कोई क्षति पहुँचाता है तो बधक रखनेवाला व्यक्ति उस तीसरे पक्ष के विरुद्ध उसी प्रकार कार्यवाही कर सकता है जिस प्रकार वस्तु का वास्तविक स्वामी कर सकता है। [गो० कृ० अ०]

बंबई स्थिति १८° ५५' उ० अ० तथा ७२° ५४' पू० दे०। ब्रिटिश राज्यकाल मे बबई भारत का एक प्रात था जिसके अतर्गत आज के महाराष्ट्र और गुजरात राज्यो के कुछ जिले थे। भारत के स्वतत्र होने पर बबई राज्य बना और उसकी राजधानी बबई रही। सन् १९६० मे बबई राज्य को महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यो मे बाँट दिया गया। अब बबई महाराष्ट्र की राजधानी है। यह कलकत्ते के बाद भारत का सबसे बडा नगर है, जो पश्चिमी घाट पहाड की ढाल के पास कई छोटे छोटे द्वीपो से निर्मित प्रायद्वीप पर स्थित है। इसके तीन ओर समुद्र है। इसकी जनसख्या ४१,५२,०५६ (१९६१) है। यहाँ मराठी, हिंदी,

बंदरगाह (देखें पृष्ठ १७६)
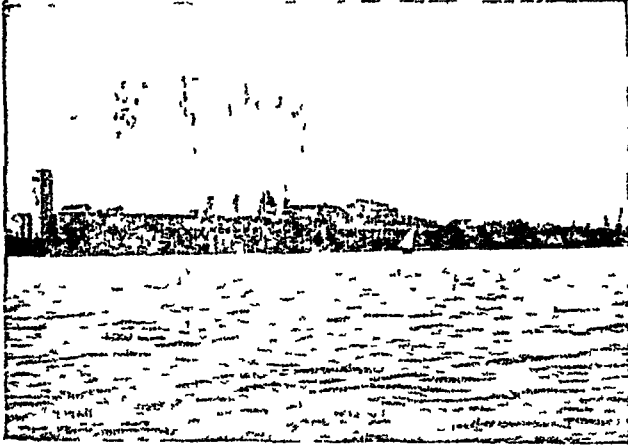
बबई का बंदरगाह
भारत का पश्चिमी मुख्य जलद्वार।
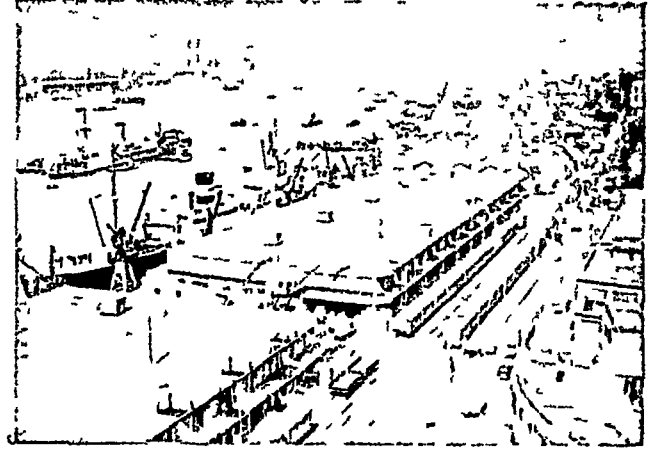
कलकत्ता का बदरगाह
पृष्ठ मे २,१५० फुट लबा हावडा पुल दो खभो पर टिका है।

विशाखपत्तनम् की शुष्क गोदी बेसिन
पश्चजल द्वारा जलयान प्रविष्ट होता दिखाई पड रहा है।
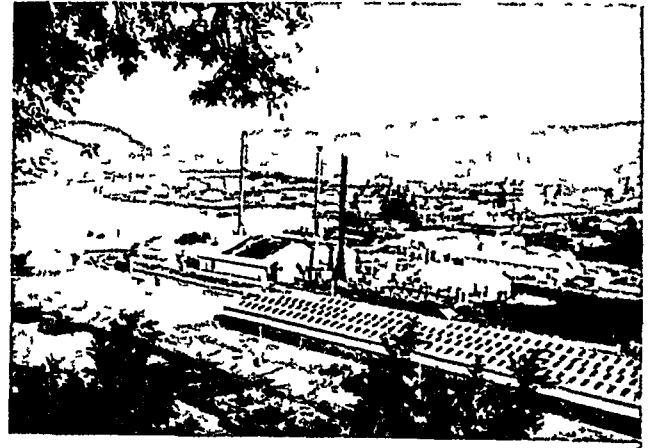
विशाखपत्तनम् का विहगम दृश्य
भारत का यह नवीन प्राकृतिक बंदरगाह है।

बंबई (देखें पृष्ठ १८०)

(देखें पृष्ठ १८०)
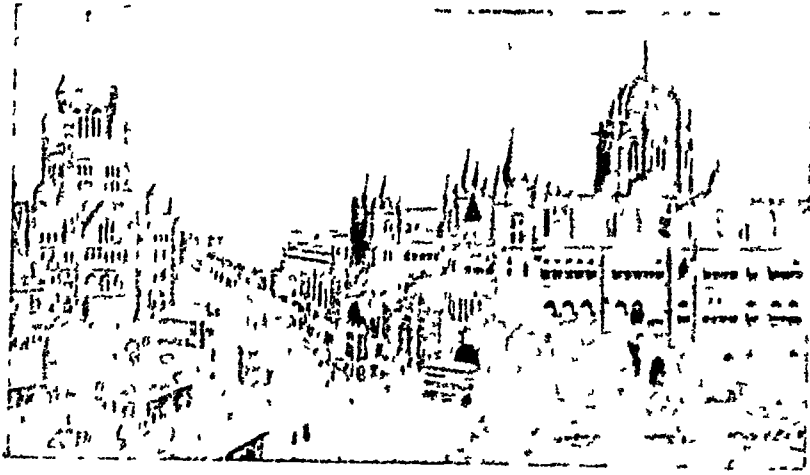
बंबई नगर महापालिका भवन तथा विक्टोरिया टर्मिनस
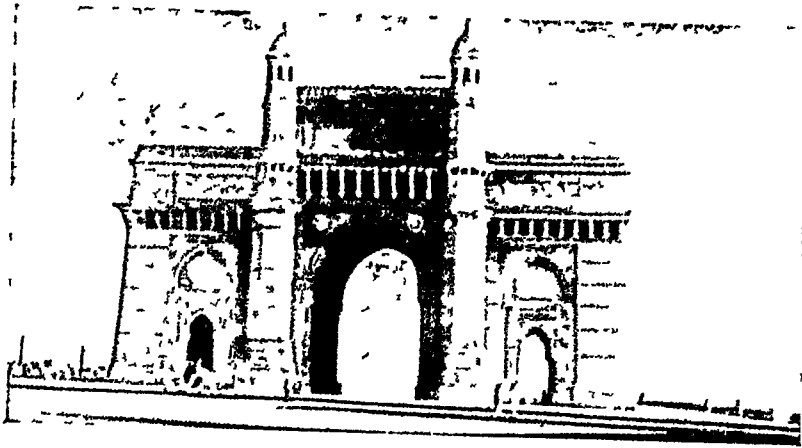
भारत का द्वार (The Gateway of India)
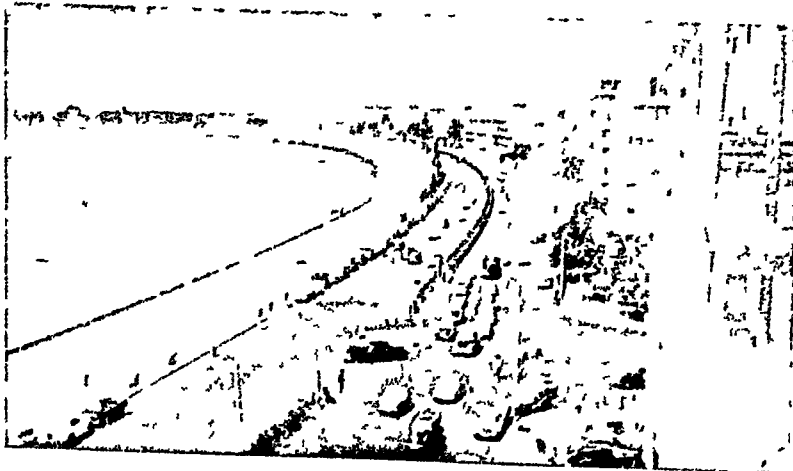
सागर तट की सड़क (Marine Drive)

गुजराती, उर्दू तथा ५० अन्य भाषाएँ बोली जाती है। सभी द्वीप पुलो द्वारा आपस मे सबद्ध हैं। बबई का वार्षिक औसत ताप लगभग २६° सें० रहता है। मई माह सबसे गरम तथा जनवरी माह सबसे ठढा रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग १२५ इच रहता है जो अधिकाश जून से सितबर तक होती है। जनसख्या तथा व्यापार मे कलकत्ते के बाद भारत मे इसका दूसरा स्थान है। यह वृहत्, स्वच्छ एव आधुनिक नगर है, जहाँ चौडी सडकें, सुदर पार्क, शानदार इमारतें एव सग्रहालय हैं। यहाँ एल्फिस्टेन कालेज, बबई विश्वविद्यालय, ग्राट मेडिकल कालेज, इस्टिट्यूट ऑव साइस, विक्टोरिया जुबली टेक्नीकल इस्टिट्यूट, जी० एस० मेडिकल कालेज प्रसिद्ध हैं। सेंट्रल रेलवे टर्मिनल तथा ताजमहल होटल दर्शनीय इमारतें हैं। यहाँ बस एव ट्राम की उन्नत व्यवस्था है। शाताक्रूज एक आधुनिक तथा अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। बबई दो लबे तथा पतले प्रायद्वीपो पर बसा है, जिनमे से एक फोर्ट प्रायद्वीप है जो कोलाबा प्वाइट पर समाप्त होता है और दूसरा पश्चिमी या मालाबार प्रायद्वीप है जहाँ सुदर भवन, बगीचे तथा बैक बे एव बीच कैंडी नामक दो सुदर समुद्र टत हैं। मालाबार हिल के ऊपर पारसियो का साइलेंस मदिर तथा सुदर हैंगिग गार्डेन हैं। बबई का उद्योग मे भी प्रमुख स्थान है। भारत मे फिल्म निर्माण का यह सबसे बडा केंद्र है। यहाँ सूती कपडे की मिलें, रेलवे वर्कशॉप, तेलशोधक कारखानें, भेपजीय फैक्टरियाँ, गोदाम, मुद्रणालय, चमडे तथा ऊनी कपडे की मिलें तथा गोदी बाडा आदि है। नगर की जलपूर्ति नगर से ६५ मील दूर स्थित तसा (Tansa) तथा एक अन्य जलभडार द्वारा की जाती है। पश्चिमी घाट पहाड से बहनेवाली छोटी छोटी नदियो से पर्याप्त जलविद्युत् प्राप्त हो जाती है। यहाँ के बदरगाह ने बबई की उन्नति में अधिक योग दिया है। यह बदरगाह लगभग १५ मील लबा और नौ मील चौडा है। नगर के आसपास की भूमि बडी उपजाऊ होने के कारण कपास के उत्पादन के लिये सर्वोत्तम है अत कपास की कृषि बडे परिमाण मे होती है। इस नगर को अनेक ऐतिहासिक घटनाओ से भी अपनी वृद्धि मे सहायता मिली है। व्यापारिक केंद्र के साथ साथ इसके बदरगाह की युद्ध की सामग्री के यातायात से बहुत अधिक वृद्धि हुई है। बबई बदरगाह से पूर्व की ओर छह मील पर एलिफेंटा नामक टापू है। टापू की प्रसिद्धि लावा चट्टानो मे काटे गए गुफा मदिर के कारण है (देखें एलिफैंटा)।

इतिहास — ऐसा कहा जाता है कि बबई की स्थापना १३वी शताब्दी मे हुई, जब आग्रजक आकर यहाँ बसे थे। उस समय के स्वतत्र शासक राजा बिब ने आग्रजको को बसाने मे उत्साह दिखाया था। १३४८ ई० मे गुजरात के मुसलमानो ने इसपर अधिकार कर लिया था। १५३४ ई० मे बबई के द्वीप पुर्तगाल के अधीन चले गए थे। १६६२ ई० मे जब पुर्तगाल की राजकुमारी का विवाह इग्लैंड के चार्ल्स द्वितीय के साथ हुआ तब पुर्तगाल के अधीन बबई का व्यापारिक केंद्र तथा समीप के दो द्वीप अग्रेजो को दहेज मे दे दिए गए। अग्रेज शासको से ईस्ट इडिया कपनी ने १० पाउड वार्षिक कर पर इन द्वीपो को ले लिया। उसी व्यापारिक केंद्र पर आधुनिक बबई नगर बसा, और तब से बराबर उन्नति करता हुआ अपनी इस स्थिति मे आ गया है।

बक्सर स्थिति २५° ३४' उ० अ० तथा ८३° ५८' पू० दे०। यह भारत मे बिहार राज्य के शाहाबाद नामक जिले मे गगा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित एक नगर और प्रखड है। पटने से लगभग ७५ मील पश्चिम और मुगलसराय से ६० मील पूर्व मे पूर्वी रेलवे लाइन के किनारे स्थित है। यह एक व्यापारिक नगर भी है। यहाँ बिहार का एक प्रमुख कारागृह है जिसमे अपराधी लोग कपडा आदि बुनते और अन्य उद्योगो मे लगे रहते हैं। सुप्रसिद्ध बक्सर की लडाई शुजाउद्दौला और कासिम अली खाँ की तथा अग्रेज मेजर मुनरो की सेनाओ के बीच यहाँ ही १७६४ ई० मे लडी गई थी जिसमे अग्रेजो की विजय हुई। इस युद्ध मे शुजाउद्दौला और कासिम अली खाँ के लगभग २,००० सैनिक डूब गए या मारे गए थे। कार्तिक पूर्णिमा को यहाँ बडा मेला लगता है, जिसमे लाखो व्यक्ति इकट्ठे होते है। इसकी जनसख्या २३,०६८ (१९६१) है।

बगदाद (*Baghdad*) *स्थिति ३३° २०' उ० अ० तथा ४४° २५'* पू० दे०। इराक मे फारस की खाडी से २५० मील दूर, दजला नदी के किनारे, सागरतल से १२० फुट की ऊँचाई पर स्थित, इराक की राजधानी एव सबसे बडा नगर है। यह नगर ४,००० वर्ष पहले पश्चिमी यूरोप और सुदूर पूर्व के देशो के बीच, समुद्री मार्ग के आविष्कार के पहले कारवाँ मार्ग का प्रसिद्ध केंद्र था तथा नदी के किनारे इसकी स्थिति व्यापारिक महत्व रखती थी। मेसोपोटेमिया के उपजाऊ भाग मे स्थित बगदाद वास्तव मे शाति और समृद्धि का केंद्र था। ९वी शताब्दी के प्रारभिक वर्षो मे यह अपने चरमोत्कर्ष पर था। उस समय यहाँ प्रबुद्ध खलीफा की छत्रछाया मे धनी व्यापारी एव विद्वान लोग फले फूले। रेशमी वस्त्र एव विशाल सगमर्मर के भवनो के लिये प्रसिद्ध बगदाद इस्लाम धर्म का केंद्र रहा है। यहाँ का औसत ताप लगभग २३° सें० तथा वार्षिक वर्षा सात इच है, अत यहाँ खजूर तथा झाडियो के कुज अधिक मिलते है।

बगदाद का वास्तविक पतन १२५८ ई० मे शुरू होता है, जब हलाकू नामक मगोल ने मेसोपोटेमिया पर अधिकार कर इस्लामी सभ्यता को नष्ट कर दिया। इसने धीरे धीरे सिंचाई प्रणाली को भी छिन्न भिन्न करके उपजाऊ कृषिक्षेत्र को स्टेप्स या घास के मैदान मे परिवर्तित कर दिया। इस काल से लेकर प्रारभिक २०वी शताब्दी तक के कुछ समय को छोडकर बगदाद कभी भी स्वतत्र राजधानी नही रहा है।

यहाँ हिनैदी मे एक बहुत बडा हवाई अड्डा बनाया गया जिससे काहिरा एव बसरा सबद्ध थे। बाद मे इसका इग्लैंड, भारत और सुदूर पूर्व से भी वायुसबध हो गया। वर्तमान समय मे ससार की सभी प्रमुख वायुसेवाएँ यहाँ से होकर जाती हैं। तुर्की तक रेलमार्ग बन जाने से इसका सपर्क सीधे भूमध्यसागर से हो गया। इस प्रकार आवागमन के साधनो के विकास के कारण २० वी शताब्दी मे बगदाद पुन अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कर मध्य पूर्व का प्रसिद्ध नगर हो गया। यहाँ से दरियो, ऊन, गोंद, खजूर और पशुचर्म का निर्यात तथा कपास और चाय का आयात करके पुनर्निर्यात करते है।

यहाँ चिकित्सा, कला, कानून, इजीनियरिंग, धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा का उचित प्रबध है। यहाँ प्रसिद्ध पुरातत्व सग्रहालय है। नगर की

जनसंख्या १०,८६,००० (१६५७) है। नगर के पुराने भाग में मिट्टी के मकान, पतली तथा धूल भरी सड़कें देखने को मिलती हैं। आधुनिक भाग दर्शनीय है। यहाँ सुंदर सुंदर मसजिदें एवं बाजार हैं। [रा० प्र० सिं०]

वच्छनाभ या ऐकोनाइट (Aconite) रैननकुलेसी (Ranunculaceae) या बटरकप (Buttercup) कुल का पौधा है। यह उत्तरी गोलार्ध का देशज है। इसकी लगभग १०० जातियाँ ज्ञात हैं। भारत में भी इसकी कुछ जातियाँ पाई जाती हैं। ऐकोनाइट बहुत ही विषैला होता है। इसकी जड़ों, पत्ता, बीजों और कभी कभी फूलों में भी विष रहता है। इसके फूलों का रंग बैंगनी-नीला से लेकर पीला और सफेद तक होता है, कुछ फूल द्विरंगी भी होते हैं। फूलों की सुंदर और टोप के आकार के होने के कारण वच्छनाभ के पेड़ उद्यानों की शोभा बढ़ाने के लिये लगाए जाते हैं।

वच्छनाभ का व्यवहार ओषधियों में भी होता है। इसका लेप तंत्रिका शूल (Neuralgia) और आमवात (rhumatic pain) में प्रयुक्त होता है। अत यह पीड़ाहारी होता है। मुखसेवन से यह स्वेदनकारी होता है। अत ज्वर में शरीर के ताप को कम

वच्छनाभ (×⅓)

करता है, पर इसकी मात्रा बड़ी अल्प रहती है, अन्यथा यह घातक हो सकता है। इसकी जड़ों से टिंचर तैयार होता है और उस टिंचर का एक बार में पाँच बूंद से अधिक का व्यवहार नहीं किया जाता। अति विषाक्त होने के कारण इसके व्यवहार में बड़ी सावधानी बरती जाती है। डाक्टर की अनुमति के बिना इसका व्यवहार नहीं करना चाहिए। जो ऐकोनाइट ओषधि के लिये व्यवहृत होता है वह ऐकोनाइट नैपेलस (Aconite napellus) कहलाता है।

इसके विष का कारण एक ऐल्कलॉयड है, जिसका नाम एकोनिटिन (aconitin) दिया गया है। यह शुद्धावस्था में प्राप्त किया गया है और इसकी संरचना भी मालूम कर ली गई है।

बटाला स्थिति ३०° ४९' उ० अ० तथा ७५° १२' पू० दे०। यह भारत में पंजाब राज्य के गुरदासपुर नामक जिले में, गुरदासपुर नगर से २० मील दूर स्थित नगर है। यहाँ की जनसंख्या ५१,३०० (१९६१) है। १४६५ ई० में लाहौर के गवर्नर तातार खाँ के द्वारा प्रदत्त भूमि पर भट्टी राजपूत, राय रामदेव ने इसकी स्थापना की थी। यहाँ एक प्रसिद्ध तालाब, शमशेर खाँ का मकबरा तथा रणजीतसिंह के पुत्र शेरसिंह के द्वारा बनवाई 'अनारकली' इमारत काफी प्रसिद्ध हैं। नगर का मध्य भाग आस पास की भूमि से ऊँचा है। यहाँ कपास, रेशम, साबुन, चमड़े और पीतल से सामान बनाए जाते हैं। गलीचे एवं ऊनी कंबल, शाल आदि भी बुने जाते हैं। अनाज एवं चीनी का व्यापार होता है।

बड़ौदा या बडोदरा १ जिला, यह भारत के गुजरात राज्य का जिला है, जिसका क्षेत्रफल ३,६६१ वर्ग मील तथा जनसंख्या १५,२७,३२६ (१९६१) है। इसके उत्तर में पंचमहाल, दक्षिण तथा पश्चिम में भरुच, पूर्व में झाबुआ, दक्षिण पूर्व में धुलिया एवं उत्तर पश्चिम में खेड़ा जिले स्थित हैं। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व यह एक देशी रियासत थी। मानसूनी, गरम एवं नम जलवायु के अंतर्गत होते हुए भी समुद्री प्रभाव के कारण यह सम दशा में रहता है। कृषि में ज्वार, बाजरा, कपास, तिलहन आदि उगाए जाते हैं। खनिजों में लोहा तथा मैंगनीज मिलते हैं।

२ नगर, स्थिति २२° ०' उ० अ० तथा ७३° १६' पू० दे०। बड़ौदा जिले में बंबई से २४५ मील उत्तर, विश्वामित्री नदी पर एक औद्योगिक तथा व्यापारिक नगर है। अहमदाबाद यहाँ से ६२ मील दूर है। यह सूती वस्त्र, रसायनक और चीनी मिट्टी के बरतनों के अतिरिक्त दुग्ध उद्योग के लिये भी प्रसिद्ध है। यहाँ कपड़े की अनेक मिलें हैं। इनकी जनसंख्या २,९८,३९८ (१९६१) है। इसी नाम का एक नगर भारत में मध्यप्रदेश राज्य के मुरैना जिले में दक्षिण-पश्चिम कोने पर स्थित है। [रा० स० ख०]

बढ़ई (Carpenter) भारत में वर्णव्यवस्था बहुत प्राचीन काल से चल रही है। अपने कार्य के अनुसार ही जातियों की उत्पत्ति हुई है। लोहे के काम करनेवाले लोहार तथा लकड़ी के काम करने वाले बढ़ई कहलाए। ये प्राचीन काल से समाज के प्रमुख अंग रहे हैं। घर की आवश्यक काष्ठ की वस्तुएँ बढ़ई द्वारा बनाई जाती हैं। इन वस्तुओं में चारपाई, तख्त, पीढ़ा, कुर्सी, मचिया, आलमारी, हल, चौकठ, बाजू, खिड़की, दरवाजे तथा घर में लगनेवाली कड़ियाँ इत्यादि सम्मिलित हैं। प्राचीन व्यवस्था के अनुसार बढ़ई जीवननिर्वाह के लिये वार्षिक वृत्ति पाते थे। इनको मजदूरी के रूप में विभिन्न त्योहारों पर भोजन, फसल कटने पर अनाज तथा विशेष अवसरों पर कपड़े तथा अन्य सहायता दी जाती थी। इनका परिवार काम करानेवाले घराने से आजन्म संबंधित रहता था। आवश्यकता पड़ने पर इनके अतिरिक्त कोई और व्यक्ति काम नहीं कर सकता था। पर अब नकद मजदूरी देकर कार्य कराने की प्रथा चल पड़ी है।

ये लोग विश्वकर्मा भगवान् की पूजा करते हैं। इस सुअवसर पर ये अपने सभी यंत्र, औजार तथा मशीन साफ करके रखते हैं। घर की सफाई करते हैं। हवन इत्यादि करते हैं। कहते हैं, ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की तथा विश्वकर्मा ने शिल्पों की। प्राचीन काल में उड़न खटोला, पुष्पक विमान, उड़नेवाला घोड़ा, बाण तथा

तरकस और विभिन्न प्रकार के रथ इत्यादि का विवरण मिलता है जिससे पता चलता है कि काष्ठ के कार्य करनेवाले अत्यत निपुण थे। इनकी कार्यकुशलता वर्तमान समय के शिल्पियो से ऊँची थी। पटना के निकट बुलदी बाग में मौर्य काल के बने खभे दरवाजे अच्छी हालत मे मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि प्राचीन काल मे काष्ठ शुष्कन तथा काष्ठ परिरक्षण निपुणता से किया जाता था। भारत के विभिन्न स्थानो पर जैसे वाराणसी मे लकडी की खरादी, हुई वस्तुएँ, बरेली मे लकडी के घरेलू सामान तथा मेज, कुर्सी, आलमारी इत्यादि सहारनपुर मे चित्रकारीयुक्त वस्तुएँ, मेरठ तथा देहरादून मे खेल के सामान, श्रीनगर मे क्रिकेट के बल्ले तथा अन्य खेल के सामान, मैनपुरी मे तारकशी का काम, नगीना तथा घामपुर मे नक्काशी का काम, रुडकी मे ज्यामितीय यन्त्र तथा लखनऊ मे विभिन्न खिलौने बनते तथा हाथीदाँत का काम होता है।

वर्तमान समय मे बढईगीरी की शिक्षा आधुनिक ढग से देने के लिये बरेली तथा इलाहाबाद मे बडे बडे विद्यालय हैं, जहाँ इससे सबधित विभिन्न शिल्पो की शिक्षा दी जाती हैं। बढई आधुनिक यन्त्रो के उपयोग से लाभ उठा सकें, इसके लिये गाँव गाँव में सचल विद्यालय भी खोले गए हैं। [अ० उ०]

बढ़ईगीरी (Carpentry) सभ्यता के विकास मे काष्ठ का महत्वपूर्ण योग रहा है। प्राचीन काल से ही काष्ठ का उपयोग किसी न किसी प्रकार होता रहा। जैसे जैसे सभ्यता बढती गई काष्ठ का उपयोग भी बढता गया। यहाँ तक कि पिछले दो महायुद्धो मे काष्ठ सबधित अनेक उद्योग स्थापित हो गए और लोहे तथा धातुओ के स्थान पर काष्ठ का ही उपयोग होने लगा।

ससार में लगभग ३१५ करोड एकड भूमि पर जगल है। भारत में अपेक्षाकृत जगलो की कमी है। हमारे देश मे उपलब्ध ८० प्रति शत से अधिक लकडी जलाने के काम आती है। भारत मे लगभग २,७५० आरा मशीनें हैं जिनसे ८० करोड घनफुट लकडी चीरी जाती है। दियासलाई बनाने के लगभग १३८ कारखाने हैं जिनमे छह करोड घनफुट कोमल लकडियो की खपत होती है। लगभग ६६ प्लाइवुड बनाने के कारखाने हैं जिनकी वार्षिक उत्पत्ति २४० करोड वर्ग फुट है। पेंसिल बनाने के १७ कारखाने हैं जिनमे ४५ लाख ग्रोस पेंसिल बनाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त कत्था तथा गोद बनाने के कारखाने भी हैं।

इस प्रकार बढईगिरी का काम विभिन्न प्रकार के कारखानो मे किया जाता है, इस कार्य के लिये मुख्य सामग्री काष्ठ है। भारत मे काष्ठ की कमी के कारण इस कार्य के विस्तार मे बाधा पहुँच रही है।

काष्ठ दो प्रकार का होता है पहला कठोर काष्ठ तथा दूसरा कोमल काष्ठ। कठोर काष्ठ सुदृढ होता है, कोमल काष्ठ साधारण उपयोग मे आता है। कठोर काष्ठवाले वृक्षो का विवरण निम्नलिखित है

शीशम — यह हमारे देश का प्रसिद्ध काष्ठ है जो सभी प्रकार की काष्ठ की सामग्री बनाने के काम आता है। प्रायः मैदानी भागो के सभी स्थानों पर मिलता है। इसका प्रति घनफुट भार २५ सेर के लगभग होता है। इसपर पॉलिश का काम भी अच्छा होता है।

सागौन — यह प्रत्येक भाँति के घरेलू सामान, रेल के डिब्बे एवं पानी के जहाज मे तथा अन्य उपयोगो मे आता है। पानी पडने से इसकी लकडी खराब नही होती। इसपर पॉलिश भी बहुत अच्छा चटता है। इसका प्रति घनफुट भार २४ सेर के लगभग होता है।

हल्दू — इसका रग हल्दी की भाँति होता है। खराद के काम तथा काष्ठ सामग्री के भीतरी भागो मे इसका उपयोग करते हैं। पालिश का काम भी इसपर अच्छा होता है। इसका प्रति घनफुट भार लगभग २१ सेर होता है।

देवदार — इसमे गध होती है जिससे कीडे तथा दीमक इत्यादि नही लगती। इसके बने रेलवे स्लीपर अच्छे होते हैं।

आम — प्राय हमारे देश के सभी स्थानो मे पाया जाता है। दरवाजे, खिडकी, तख्त तथा काष्ठ की साधारण वस्तुएँ इससे बनाई जाती हैं।

अखरोट — यह बहुत अच्छी लकडी है। इसके बंदूक के कुदे बनाए जाते हैं।

कोमल काष्ठ की लकडियाँ चीड, कैल, सेमल, तुन तथा बोरग इत्यादि हैं। कोमल लकडियो से खिलौने, सामान भेजने की पेटियाँ इत्यादि बनाई जाती हैं।

विदेशी काष्ठ मे पाइन, पीली पाइन, पिच पाइन, स्प्रुस फर, हेमलाक, लार्च, लाल सेडार अल्डर तथा पेपिल हैं। ऐश, बाल्सा, बेबुड बासवुड, बीचवुड, बर्च, ब्लैकवुड, बॉक्सवुड, सेडार, चेरी, चेस्टनट, इबोनी, पदूक, गाबून, ग्रीन हर्ट, हिकोरी, होले हासे, जरारू, लेरूल, लाइम, महोगनी, मैपिल, ओक, ओलिव, पिपर, प्लम, बालनट, रोजवुड, सपेले, सटिनवुड, सेकामैर तथा बीलौवुड इत्यादि काष्ठ शिल्प मे प्रयुक्त होते हैं। इनसे विभिन्न प्रकार की काष्ठ सामग्री तथा खेल के सामान इत्यादि बनाए जाते हैं।

काष्ठ प्राय लट्ठे की आकृति मे मिलता है। लट्ठे को तख्ते के रूप मे परिवर्तित करते हैं। तख्तो को छोटे छोटे टुकडो मे काटकर उपयोग के योग्य बनाते हैं। लट्ठे से तख्ते निकालने मे ३० से ४० प्रति शत लकडी नष्ट होती है। तख्ते से छोटे छोटे टुकडे निकालने में ६ से ३० प्रति शत तक लकडी नष्ट होती है। रदा तथा आरों से काष्ठ सामग्री बनाते समय २ से ५ प्रति शत तक लकडी नष्ट होती है। इस प्रकार लट्ठे से सामग्री तैयार होने पर आधी ही लकडी उपयोग मे रह जाती है। लट्ठे से तख्ते निकालते समय लकडी के खोखले, गाँठ, फटे तथा सडे गले भागो को भी अलग कर लेते हैं। लट्ठे से तख्ते निकालने मे भी विभिन्न रीतियाँ अपनाई जाती हैं, जिनमे साधारण चिरान, जिसमे तख्ते एक दूसरे के समानातर होते हैं, विशेष उल्लेखनीय है। सु दर तथा अलकृत रेशेवाले तख्ते निकालने के लिये चौथाई लट्ठे के मध्य भाग से स्पर्शरेखा बनाते हुए चीरते हैं। लकडी की दृढता चिरान पर निर्भर करती है।

चीरने के पश्चात् काष्ठ को सुखाकर उपयोग मे लाते हैं। लकडी के सुखाने के लिये दो रीतियो का उपयोग करते हैं पहली प्राकृतिक तथा दूसरी कृत्रिम। प्राकृतिक रीति मे हवा द्वारा लकडी सुखाते हैं। इसके लिये उचित स्थान तथा चट्टा बनाने की आवश्यकता होती है। तख्ते। टेढ़े न हो इसका तथा वायुवहन का पूरा पूरा घ्यान रखते हैं। कृत्रिम

रीति मे वद कमरे मे भाप की गरमी तथा वायुवहन का प्रवध करते है। यह प्रवध विजली द्वारा करते हैं। इस ढग से इच्छानुसार गरमी तथा नमी तख्तो पर छोडी जा सकती है तथा तख्ते शीघ्र सूखते हैं। हवा द्वारा लकडी सुखाने मे व्यय कम पडता है, परतु कृत्रिम रीति से व्यय अधिक पडता है और इसके लिये मशीन से पत्र लगाने की आवश्यकता पडती है। इन दोनो रीतियो से तख्ते सुखाने मे विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। शुष्कन के समय चट्टा लगाने के ढग की जाँच तथा विभिन्न खराबियो से रक्षा करने मे सावधानी करनी चाहिए। १० से १५ प्रति शत तक नमी रह जाने पर लकडी को सूखी हुई समझना चाहिए।

सूख जाने पर तख्तो पर काष्ठ परिरक्षी लगा देना चाहिए। इससे तख्ते के भीतर के कीडे मर जाते हैं तथा भविष्य मे कीडो का आक्रमण भी नही होता। परिक्षण कई ढग से किया जाता है। इसके लिये तख्तो पर ब्रुश से जहरीले रासायनिक पदार्थो का लेप करते हैं या परिरक्षी से भरी टकी मे तख्तो को डुवा देते है जिससे काष्ठ परिरक्षी लकडी के भीतर पहुँच जाय। विभिन्न स्थानो पर विभिन्न प्रकार के काष्ठ परिरक्षी का उपयोग करते हैं। लकडी की कमी के कारण काष्ठ परिरक्षण का विशेष महत्व है। हमारे देश में प्राचीन काल से काष्ठ का उपचार रासायनिक पदार्थो द्वारा किया जा रहा है। पटना के निकट वुलदी वाग के क्षेत्र मे खुदाई से प्राप्त वरामदो, चौक वाजू तथा दरवाजो को देखने से पता चलता है कि ये मौर्यकाल के वने हुए हैं। इनपर दीमक तथा कीडे लगने और सडने गलने के चिह्न भी नही हैं। इससे पता चलता है कि प्राचीन काल मे काष्ठ परिरक्षण वडी सावधानी से किया जाता था।

परिरक्षण के पश्चात् काष्ठ उपयोग के योग्य हो जाता है। इसके लिये निम्नाकित औजारो की आवश्यकता होती है

सीधे रेशे मे काटनेवाली वडी आरी (Rip saw) — यह आरी चार इच तक मोटी लकडी काट सकती है।

सीधे रेशे मे काटनेवाली छोटी आरी (Panel saw) — यह आरी प्राय मोटे तख्ते काट सकती है।

रेशे के विरुद्ध काटनेवाली आरी (Cross cut saw) — इससे तख्तो को रेशे के विरुद्ध काटते हैं।

विभिन्न प्रकार की आरियाँ — इसके अन्तर्गत चूल काटने की आरी, जोड वनानेवाली तथा गोलाई मे काटनेवाली आरियाँ आती हैं।

रँदा — लकडी को रदा करने के लिये सवसे पहले वडा रदा (jack plane) उपयोग मे लाते है। इसके पश्चात् चिकना करने के लिये छोटा रदा (smoothing plane) प्रयुक्त करते हैं। गोलाई मे रदा करने, झिरी निकालने तथा गोलागल्ता वनाने के लिये अलग अलग प्रकार के रदे प्रयुक्त किए जाते है।

लकडी की जाँच — इसके लिये गुनिया, स्केल, सीधी लकडी तथा खतकश इत्यादि उपयोग मे आते हैं।

छिद्रकरना — इसके लिये कई प्रकार के वरमे उपयोग मे आते हैं जिनको व्रेग तथा छोटा वरमा (Handdril) कहते हैं। इनमे कई प्रकार के तथा विभिन्न नाप के वरमे के फल वाँधकर प्रयुक्त कर सकते हैं।

लकडी छीलना — इसके लिये कई प्रकार की रुखानियाँ (chisels) होती हैं। गोलाई की रुखानियाँ गोलाई मे काटती है। काष्ठ कलाकृति मे पतली पतली तथा कई आकृतियो की रुखानियाँ प्रयुक्त होती हैं।

अन्य औजार तथा यत्र — चोट देने के लिये मुँगरी तथा हथौडे का उपयोग करते हे। पेचकश से पेंच कसते हैं। जोडो को कसने के लिये शिकजो का उपयोग होता है। ये कई नाप तथा आकृति के होते हैं। उपयोग के अनुसार इनको विभिन्न स्थानो पर काम मे लाते है। औजारो को तेज करने के लिये कई प्रकार के शाण होते हैं। इसपर तेज करने के वाद औजार को सिल्ली पर तेज करते हैं। इन औजारो के अतिरिक्त रदा करने के लिये वेंच हुक तथा गोल लकडी वनाने के लिये लकडी के ठीहे होते हैं। ऊपर वताए गए औजार हाथ द्वारा प्रयुक्त किए जाते हैं। इनके अतिरिक्त लट्ठे से तख्ता चीरने, रदा करने छेद करने तथा जोड वनाने की मशीनें भी होती हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है

वडा आरा (Band saw) — आकृति काटने तथा लट्ठा चिरने के काम आता है।

वृत्ताकार आरा (Circular saw) — वरावर चौडाई के टुकडे काटने के काम आता है।

रदा मशीन (Planing machine) — इस मशीन पर रदा करते हैं।

छेद करने की मशीन (Boring machine) — इसपर चूल के लिये छेद करते हैं।

चूल वनाने की मशीन (Tenoning machine) — इससे चूल वनाते हैं।

गोला गल्ता वनाने की मशीन (Moulding machine) — इससे गोला गल्ता वनाते हैं।

खराद मशीन (Lathe) — इसपर खराद का काम करते हैं।

लट्ठा चीरने की मशीन (Log saw) — इस मशीन से एक ही वार मे लट्ठे से अलग अलग मोटाई के तख्ते निकाल सकते हैं।

इसी प्रकार रेगमाल करने की मशीन, छेद करने की मशीन इत्यादि भी होती हैं। इनके उपयोग से उत्पादन अधिक हो सकता है।

जोड — काष्ठ कला मे विभिन्न प्रकार के जोडो का भी उपयोग होता है जिनमे अर्ध चट जोड, चूल तथा छिद्र जोड, डमरुआ जोड, तथा लवाई वढानेवाले जोड प्रमुख है। ये जोड विभिन्न प्रकार के होते हैं आवश्यकतानुसार इनका उपयोग विभिन्न स्थानो पर करते हैं। इन जोडो के उपयोग से काष्ठ सामग्री टिकाऊ रहती है।

काष्ठ सामग्री वनाते समय उनकी उपयोगिता पर विशेष ध्यान देते हैं। मनुष्य के उपयोग की सामग्री मनुष्य की नाप के अनुसार होती है। अत ऐसी सामग्री की औसत माप नियत कर दी जाती हैं। अभिकल्प के अनुसार सामग्री की माप घटा वढा सकते है। कुछ आवश्यक सामग्रियो की औसत मापें नीचे दी जा रही है

काष्ठ सामग्रियों की औसत मापें

	खाना खाने की कुर्सी	सोनेवाले कमरे की कुर्सी	आराम कुर्सी
वैठक की ऊँचाई	१८"	१६"—१७"	१४"—१८"
पिछले पाए की ऊँचाई	३२"—३८"	३१"—३६"	३१"—३६"
सामना	१८"—२२"	१७"—१९"	१८"—२२"
पीछा	१५"—१७"	१४"—१६"	१७"—१९"
वैठक की गहराई	१५"—२०"	१४"—१६"	१९"—२४"

	लवाई	चौडाई	ऊँचाई
लिखने की मेज	३६"–६०"	१८"–३३"	२८"–३०"
चाय मेज	१८"–२७"	१२"–१८"	१४"–२२"
शृगार मेज	२४"–५४"	१७"–२१"	२४"–३२"
खाना खाने की मेज	३६"–७२"	३३"–४२"	२९"–३०"
विभिन्न प्रयोजन की मेज	१८"–२७"	१२"–१८"	२१"–१८"

	ऊँचाई	लवाई	गहराई
कपडा रखने की ग्रालमारी	७२"–७६"	३०"–६०"	१७"–२२"
कपडा रखने की छोटी ग्रालमारी	३०"–४२"	२४"–३६"	१६"–१८"

काष्ठ सामग्री की विभिन्न नाप रखते समय इस वात का विशेष ध्यान रखते हैं कि प्रत्येक भाग का ग्रनुपात ठीक हो, जिससे वस्तु देखने मे ग्रच्छी मालूम हो। इसी प्रकार तकिएदार चारपाई की माप नीचे दी जा रही है -

	लवाई	चौडाई	सिरहाने तकिए की ऊँचाई	पैताने तकिए की ऊँचाई
माप 'ग्र'–	६'–६"	३'–०"	३'–०"	२'–९"
माप 'व'–	६'–६"	३'–३"	३'–३"	३'–०'
माप 'स'–	६'–६"	३'–६"	३'–६"	३'–३"
माप 'द'–	६'–६"	३'–९"	३'–६"	३'–०"
माप 'य'–	६'–६"	४'–०"	३'–६"	३'–३"

मनुष्य की ग्रौसत लवाई ६'–६" रखकर उपर्युक्त मापें निर्धारित की गई हैं। इसी प्रकार कागज रखने के पात्र निम्नाकित माप के हो सकते हैं

लवाई	चौडाई (भीतर की माप)	
२४"	२०"	गहराई ३" से ५" तक
२२"	१८"	
२०"	१६"	
१८"	२४"	

इमी प्रकार विभिन्न ग्रवस्था के वच्चो के उपयोग के लिये ढालूदार मेज की माप नीचे दी जा रही है

ढालूदार मेज (School desk)

	लवाई	चौडाई	पीछे की ऊँचाई	सामने की ऊँचाई
माप 'ग्र –	२'–०"	१'–५½"	२'–७"	२'–४½"
माप 'व'–	२'–०"	१'–५½"	२'–५¾"	२'–३½"
माप 'स'	१'–११"	१'–५½"	२'–५"	२'–२½"
माप 'द'–	१'–१०"	१'–५½"	२'–४"	२'–२½"

विभिन्न उम्र के वच्चो के उपयोग के लिये मेज की ऊँचाई मे विशेप ग्रतर हो जाता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की वस्तुग्रो का ग्रभिकल्प वनाते समय कुछ प्रमुख वातो को ध्यान मे रखते हैं।

वस्तुग्रो को वनाते समय उनमे यथोचित जोड, सरेस तथा धातु सामग्री के उपयोग का विशेप ध्यान देते है। इन धातुग्रो मे कील, पेंच, कब्जे, इमिलिया, कुडा, दरवाजे तथा दराज मे लगनेवाले विभिन्न प्रकार के ताले, वोल्ट तथा हत्थे इत्यादि होते है। इनका ग्रभिकल्पन तथा धातु का निर्वाचन वस्तु, जिसमे लगाना है, उसके ग्रनुसार किया जाता है।

काष्ठ सामगी के तैयार हो जाने पर उस पर उचित रग लगाने की भी ग्रावश्यकता पडती है। ग्रच्छी लकडियो के वने हुए सामान पर सादा रग चढाते हैं। इससे काष्ठ के प्राकृतिक रेशे चमकने लगते हैं। यह रग स्पिरिट तथा चपडा डालकर मिलाते हैं। एक वोतल स्पिरिट मे ग्राधा पाव चपडा डालते हैं। मिश्रण को थोडी देर धूप मे रखने से चपडा गल जाता है। यह रग तैयार हो गया। काष्ठ सामग्री को रेगमाल से ग्रच्छी प्रकार सफाई करके रेशे भरने के लिये चाक मिट्टी मे थोडा सरेस डालकर लगा देते हैं। जव मिट्टी सूख जाय तव रेगमाल से इसे साफ कर देते हैं। इसके पश्चात् यह रग लगाने के लिये तैयार हो जाता है। वने हुए रग को कपडे के ग्रदर रूई रखकर वनाई गई कपडे की पोटली से लगाते हैं। वार वार रग सूखने पर रेगमाल से घिसते जाते हैं। इस प्रकार तीन चार वार रग लगाते है जिससे धरातल पर चमक ग्रा जाती है। यदि किसी विशेप रग मे रगना हो तो वैसा ही रग स्पिरिट मे मिला देते हैं।

ग्राम, चीड, देवदार तथा ग्रन्य सस्ती लकडियो पर वार्निश या पेंट लगाते हैं। इनसे धरातल पर रग की सतह जम जाती है। रग करने से धरातल चिकना तथा चमकीला हो जाता है तथा कीडो का प्रकोप नही होता। काष्ठ के छिद्र वद हो जाने के कारण उसपर गरमी तथा नमी का प्रभाव कम पडता है तथा वस्तु के जीवन मे वृद्धि हो जाती है।

वनी हुई काष्ठ सामग्री को वर्प मे एक वार रग कर लेने से उसकी चमक नई हो जाती है तथा कीडो या ग्रन्य खराबियो से रक्षा हो जाती है। इसके लिये सितवर या ग्रक्तूवर का महीना ग्रच्छा रहेगा।

देश के वर्तमान काष्ठशिल्प पर विदेशियों का प्रभाव ग्रधिक है। सवसे पहले डच तथा पुर्तगालियो का प्रभाव पडा। सन् १६०० मे

अंग्रेजी काल की छाप पड़ी। मुगलकाल १५०५ ई० से १७८६ ई० तक रहा। इस समय की बनी हुई वस्तुएँ भी मिश्रित अभिकरण की हैं।

प्राचीन काल की बहुत सी वस्तुएँ विभिन्न संग्रहालयों में रखी हुई हैं जिनको देखकर पता चलता है कि भारत की शिल्पकला और देश में [illegible] उन्नति पर थी तथा यहाँ के कारीगर निपुण थे। विभिन्न प्रकार के कार्य करने के लिये विभिन्न प्रकार के उपकरण भी बने हैं। बड़ौदा [illegible] की शिक्षा के भी विभिन्न केंद्र स्थापित हैं, जिन्हें देखकर कहा जा सकता है कि इस कला का भविष्य उज्वल है। [भ० रा०]

बदरीनाथ स्थिति ३०° ४४' उ० अ० तथा ७९° २०' पू० दे०। यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित चमोली जिले का नगर एवं हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। इस नाम की मध्य हिमालय में एक चोटी भी है, जो सागरतल से २३,२१० फुट ऊँची है। इसी के समीप स्थित हिमनदों से अलकनंदा एवं अन्य कई छोटी छोटी धाराएँ निकलती हैं। अलकनंदा के दाहिने किनारे पर बदरीनाथ की बस्ती है। बस्ती में केवल कुछ मकान ही हैं, जिनमें अधिकतर धर्मशालाएँ हैं। दूकानों में कपड़ा, बरतन, मेवे, मसाले, पूड़ियाँ, मिठाइयाँ, अनाज, साग, चीनी, मिश्री एवं कई पहाड़ी वस्तुएँ बिकती हैं। यहाँ हजारों यात्री प्रति वर्ष आते हैं। यहाँ पर कई बड़े बड़े झरने, कारखाने एवं राजाओं के सदावर्त हैं।

जाड़ों में चारों तरफ पर्वत पर ऊपर बर्फ जमी रहती है। इसके पूर्व और पश्चिमवाले पहाड़ों को लोग जय और विजय कहते हैं। पर्वतों के बीच में सागरतल से १०,४०० फुट ऊँचा एवं उत्तर से दक्षिण को ढालू एक मैदान है। इसी मैदान पर अलकनंदा बहती है तथा बदरीनाथ की बस्ती है। बस्ती के उत्तर में अलकनंदा नदी के दाएँ किनारे पर बदरीनाथ जी का पत्थर का बना ४५ फुट ऊँचा मंदिर है, जिसके आगे और सीढ़ी तीन द्वार हैं। मंदिर पर सुनहला कलश है। मंदिर में एक हाथ ऊँची बदरीनाथ (विष्णु) जी की चतुर्भुज श्यामल मूर्ति स्थापित है। इसके पास ही लक्ष्मी जी, नर नारायण, नारद, गणेश, कुबेर, गरुड़ और नारी के उद्धव हैं। कहा जाता है, बदरीनारायण यहीं कुंड में थे, नदी में से बदरीनारायण की मूर्ति को शंकराचार्य ने नारद कुंड से पाया था, उन्हीं ने मंदिर बनाकर उसमें मूर्ति को स्थापित किया था। यहाँ का फाटक निश्चित समय पर दिन रात में तीन बार खुलता है। फाटक के आगे तप्त कुंड और अलकनंदा है तथा पास ही में लक्ष्मी जी का मंदिर बना है।

बदरिकाश्रम में ऋषिगंगा, कूर्मधारा, प्रह्लादधारा, तप्तकुंड और नारदकुंड से मिलकर बना एक पंचतीर्थ है। ऋषिगंगा मंदिर से डेढ़ मील दूर है। मंदिर से कुछ दक्षिण की ओर दीवार पर कूर्म का मुँह बना है जिससे होकर तीन हाथ लंबे और दो हाथ चौड़े एक हौज में पानी गिरता है जो कूर्मधारा कहलाती है। तप्तकुंड का पानी गरम होने से उसे तप्तकुंड कहते हैं। यहाँ स्थित नारदशिला, वाराहशिला, मार्कंडेयशिला, नृसिंहशिला और गरुड़शिला को पंचशिला कहते हैं। बदरीनाथ के मंदिर से लगभग ४०० गज उत्तर की ओर अलकनंदा के दाहिने किनारे पर ब्रह्मकपाली चट्टान है जिसपर बैठकर यात्रीगण पितरों को पिंडदान करते हैं।

बदरीनाथ भट्ट का जन्म आगरे के गोकुलपुरा नामक मुहल्ले में संवत् १९४८ वि० की पौष कृष्ण चतुर्दशी को हुआ था। आपके पिता पं० रामेश्वर भट्ट हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। घर पर अध्ययन करने के पश्चात् आगरा कालेज में शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन के अतिरिक्त आप फुटबाल तथा क्रिकेट के भी अच्छे खिलाड़ी थे।

[illegible] का भट्ट जी पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह साहित्य की ओर उन्मुख हो गए। सन् १९११ ई० में इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की। [illegible] हिंदी में [illegible] आपने 'सरस्वती' में लिखना प्रारंभ किया। 'सरस्वती' में भट्ट जी के साहित्यिक लेख तथा 'मर्यादा' और 'प्रताप' में [illegible] प्रकाशित होते थे। आपका हास्य और व्यंग्य [illegible]। 'प्रताप' में [illegible] प्रकाशित होती रहीं। 'अधिक' में [illegible] व्यंग्य किया गया है।

संगीतकला और नाट्य विधा [illegible] भी इन्होंने [illegible] थी। [illegible] ब्रजभाषा के प्रेमी। इसी समय इनकी संगीत में रुचि हुई। इन्होंने आगरे के प्रसिद्ध गायक [illegible] से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। संगीत की शिक्षा [illegible] हिंदी में [illegible] किया है। भट्ट जी के समय में पारसी थियेट्रिकल कंपनियों का बोलबाला था। पारसी रंगमंच के लिये लिखे गए नाटकों का स्तर बहुत ही नीचा था। [illegible] इन्होंने शुद्ध हिंदी में कुरुवन-दहन नामक नाटक (रामप्रसाद प्रेस, आगरा से प्रकाशित) का निर्माण किया। इस नाटक का हिंदी जगत् में स्वागत हुआ। उत्साहित होकर भट्ट जी ने अन्य नाटकों एवं प्रहसनों की रचना की। सन् १९१६ ई० में द्विवेदी जी की आज्ञा से आप इंडियन प्रेस, प्रयाग में कार्य करने के लिये चले गए। इंडियन प्रेस में रहकर भट्ट जी ने वहाँ के हिंदी विभाग में अनेक सुधार किए और बालकों के लिये एक सचित्र मासिक 'बालसखा' का संपादन करवाया। बाल साहित्य संबंधी यह पत्रिका हिंदी जगत् में महत्वपूर्ण है। १९१८ ई० में प्रयाग में कुंभ पड़ा। इस अवसर पर भट्ट जी की भेंट साधु संतों से हुई और इसका इनके जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इनके रहन सहन में सरलता आ गई और वेदांत के अध्ययन की ओर इनकी अभिरुचि हुई। अस्वस्थ रहने और नेत्रकष्ट के कारण १९१९ में इन्होंने इंडियन प्रेस का कार्य छोड़ दिया। प्रयाग से नौकरी छोड़ आपने देशाटन किया। आगरे आकर 'सुधारक' पत्र का संपादन किया।

सन् १९२२ में लखनऊ विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और भट्ट जी हिंदी के प्रथम प्राध्यापक होकर लखनऊ आए। लखनऊ में ही उनका शेष जीवन व्यतीत हुआ। लखनऊ में भट्ट जी का संपर्क

'माधुरी' संपादक मुंशी प्रेमचंद, पं० कृष्णबिहारी मिश्र तथा पं० रूपनारायण पांडेय से हुआ। माधुरी में प्राय आपकी समालोचनाएँ छपती थीं। १ मई, सन् १९३४ ई० को आपका स्वर्गवास हो गया। भट्ट जी का जीवन दृढ संकल्प तथा आत्मसमान के भाव से ओतप्रोत था। वह मनुष्य पहले थे, कवि नाटककार और आलोचक बाद में। [गि० च० त्रि०]

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन' भारतेंदु मंडल के उज्वलतम नक्षत्र 'प्रेमघन' जी पं० गुरुचरणलाल उपाध्याय के पुत्र थे। गुरुचरणलाल उपाध्याय, कर्मनिष्ठ तथा विद्यानुरागी ब्राह्मण थे। संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार में आपने तन-मन-धन से योगदान किया। इस तपस्वी एवं विद्याप्रेमी ब्राह्मण के उपाध्याय जी ज्येष्ठ पुत्र थे। आप सरयूपारीण ब्राह्मण कुलोद्भूत भारद्वाज गोत्रीय खोरिया उपाध्याय थे। आपका जन्म भाद्र कृष्णा षष्ठी, संवत् १९१२ को दात्तापुर नामक ग्राम में हुआ था। इनकी माता ने मीरजापुर में हिंदी अक्षरों का ज्ञान कराया। फारसी की शिक्षा का आरंभ भी घर पर करा दिया गया। अंग्रेजी शिक्षा के लिये आप गोंडा (अवध) भेजे गए। यहाँ आपका संपर्क अयोध्यानरेश महाराज सर प्रतापनारायण सिंह (ददुआ साहेब), महाराज उदयनारायण सिंह, लाला त्रिलोकी नाथ प्रभृत ताल्लुकेदारों से हुआ। इस संसर्गज गुण से आपको मृगया, गजसंचालन, निशानेबाजी, घोडसवारी आदि ताल्लुकदारी शौकों में रुचि हुई। उच्च शिक्षा पाने के लिये संवत् १९२४ में फैजाबाद चले आए। पैत्रिक व्यवसाय और रियासत के प्रबंध के लिये मीरजापुर आ जाना पडा।

चौधरी गुरुचरणलाल विद्याव्यसनी थे। उन्होंने अंग्रेजी हिंदी और फारसी के साथ ही साथ संस्कृत की शिक्षा की व्यवस्था की तथा पं० रामानंद पाठक को अभिभावक शिक्षक नियुक्त किया। पाठक जी काव्यमर्मी एवं रसज्ञ थे। इनके साहचर्य से कविता में रुचि हुई। इन्ही के उत्साह और प्रेरणा से पद्यरचना करने लगे। संपन्नता और यौवन के संधिकाल में आपका झुकाव संगीत की ओर हुआ और ताल, लय, राग, रागिनी का आपको परिज्ञान हो गया विशेषत इसलिये कि वे रसिक व्यक्ति थे और रागरंग में अपने को लिप्त कर सके थे। संवत् १९२८ में कलकत्ते से अस्वस्थ होकर आए और लंबी बीमारी में फँस गए। इसी बीमारी के दौरान में आपकी पं० इंद्र नारायण सांगलू से मैत्री हुई। सांगलू जी शायरी करते थे और अपने मित्रों को शायरी करने के लिये प्रेरित भी करते। इस संगत से नज्मों और गजलों की ओर रुचि हुई। उर्दू फारसी का आपको गहरा ज्ञान था ही। अस्तु, इन रचनाओं के लिये 'अब्र' (तखल्लुस) उपनाम रखकर गजल, नज्म, और शेरों की रचना करने लगे। सांगलू के माध्यम से आपकी भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से मैत्री का सूत्रपात हुआ। धीरे धीरे यह मैत्री इतनी प्रगाढ हुई कि भारतेंदु जी के रंग में प्रेमघन जी पूर्णतया पग गए, यहाँ तक कि रचनाशक्ति, जीवनपद्धति और वेशभूषा से भी भारतेंदु जीवन अपना लिया।

वि० सं० १९३० में प्रेमघन जी ने 'सद्धर्म सभा' तथा १९३१ वि० सं० 'रसिक समाज' की मीरजापुर में स्थापना की। संवत् १९३३ वि० में 'कवि-वचन-सुधा' प्रकाशित हुई जिसमें इनकी कृतियों का प्रकाशन होता। उसका स्मरण चौधरी जी की मीरजापुर की कोठी का धूलिधूसरित नृत्यकक्ष आज भी कराता है। अपने प्रकाशनों की सुविधा के लिये इसी कोठी में आनंदकादंबिनी मुद्रणालय खोला गया। संवत् १९३८ में 'आनंदकादंबिनी' नामक मासिक पत्रिका की प्रथम माला प्रकाशित हुई। संवत् १९४६ में नागरी नीरद नामक साप्ताहिक का संपादन और प्रकाशन आरंभ किया। प्रेमघन जी के साथ आचार्य रामचंद्र शुक्ल का पारिवारिक-सा संबंध था। शुक्ल जी शहर के रमईपट्टी मुहल्ले में रहते थे और लंडन मिशन स्कूल में ड्राइंग मास्टर थे। आनंद कादंबिनी प्रेस में छपाई भी देख लेते थे। चौधरी बंधुओं की सत्प्रेरणा और साहचर्य से अयोध्यानरेश ने युगप्रसिद्ध छंदशास्त्र और रसग्रंथ रसकुसुमाकर की रचना करवाई। रसकुसुमाकर की व्याख्याशैली, संकलन, भाव, भाषा, चित्र चित्रण में आज तक इस बेजोड ग्रंथ को चुनौती देने में कोई रचना समर्थ नहीं हो सकी है यद्यपि यह ग्रंथ निजी व्यय पर निजी प्रमारण के लिये मुद्रित हुआ था। भारतेंदु जी की आयु ३४ वर्ष की थी। मित्र प्रेमघन जी ने इससे पूरी दूनी आयु पाई यानी ६८ वर्ष की अवस्था में फाल्गुन शुक्ल १४, संवत् १९७८ को आपकी इहलीला समाप्त हो गई।

प्रेमघन जी आधुनिक हिंदी के आविर्भाव काल में उत्पन्न हुए थे। उनके अनेक सममामयिक थे जिन्होंने हिंदी को हिंदी का रूप देने में संपूर्ण योगदान किया। इनमें प्रमुख प्रतापनारायण मिश्र, पंडित अंबिकादत्त व्यास, पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० गोविंद नारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू राधाकृष्णदास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी तथा रामकृष्ण वर्मा प्रभृत साहित्यिक थे।

कृतित्व — प्रेमघन की रचनाओं का क्रमश तीन खंडों में विभाजन किया जाता है १ प्रबंध काव्य २ संगीत काव्य ३ स्फुट निबंध। वे कवि ही नहीं उच्च कोटि के गद्यलेखक और नाटककार भी थे। गद्य में निबंध, आलोचना, नाटक, प्रहसन, लिखकर अपनी साहित्यिक प्रतिभा का बडी पटुता से निर्वाह किया है। आपकी गद्य रचनाओं में हास परिहास का पुटपाक होता था। कथोपकथन शैली का आपके 'दिल्ली दरबार में मित्रमंडली के यार' में देहलवी उर्दू का फारसी शब्दों से संयुक्त चुस्त मुहावरेदार भाषा का अच्छा नमूना है। गद्य में खडी बोली के शब्दों का प्रयोग (संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्द) आलंकारिक योजना के साथ प्रयुक्त हुआ। प्रेमघन की गद्यशैली की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि खडी बोली गद्य के वे प्रथम आचार्य थे। समालोच्य पुस्तक के विषयों का अच्छी तरह विवेचन करके उसके विस्तृत निरूपण की चाल उन्होंने चलाई (रामचंद्र शुक्ल)।

उन्होंने कई नाटक लिखे हैं जिनमें 'भारत सौभाग्य' १८८८ में कांग्रेस महाधिवेशन के अवसर पर खेले जाने के लिये लिखा गया था।

प्रेमघन का काव्यक्षेत्र विस्तृत था। वे ब्रजभाषा को कविता की भाषा मानते थे। प्रेमघन ने जिस प्रकार खडी बोली का परिमार्जन किया उनके काव्य से स्पष्ट है। 'बेसुरी तान' शीर्षक लेख में आपने भारतेंदु की आलोचना करने में भी चूक न की। प्रेमघन की

कृतियो का सकलन उनके पौत्र दिनेशनारायण उपाध्याय ने किया है जिसका 'प्रेमघन सर्वस्व' नाम से हिंदी साहित्य समेलन ने दो भागो मे प्रकाशन किया है। प्रेमघन हिंदी साहित्य समेलन के तृतीय कलकत्ता अधिवेशन के सभापति (स० १९१२) मनोनीत हुए थे।

कृतियाँ — (१) भारत सौभाग्य (२) प्रयाग रामागमन, सगीत सुधासरोवर, भारत भाग्योदय काव्य।

गद्य पद्य के अलावा आपने लोकगीतात्मक कजली, होली, चैता आदि की रचना भी की है जो ठेठ भावप्रवण मीरजापुरी भाषा के अच्छे नमूने हैं और सभवत आज तक वेजोड भी। कजली कादविनी मे कजलियो का सग्रह है। प्रेमघन जी का स्मरण हिंदी साहित्य के प्रथम उत्थान का स्मरण है। [श्री० च० पा०]

वदायूँ १ जिला, स्थिति २७° ४०' से २८° २६' उ० प्र० तथा ७८° १६' से ७९° ३१' पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे स्थित जिला है। इसका क्षेत्रफल १,९९८ वर्ग मील तथा जनसंख्या १४,११,६५७ (१९६१) है। इसके दक्षिण मे एटा तथा अलीगढ, पश्चिम मे बुलदशहर, पश्चिमोत्तर मे मुरादाबाद, उत्तर मे बरेली तथा पूर्व मे शाहजहाँपुर एव फर्रुखाबाद जिले हैं। यह एक निम्न, समतल तथा उपजाऊ प्रदेश है। लगभग चार से पाँच मील चौडी बालू की रिज (ridge) उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर फैली है। सोत, महावा, गगा, रामगगा आदि नदियाँ बहती हैं। यहाँ का जलवायु ठढा तथा नम रहता है। वार्षिक वर्षा का औसत ३४ इच है। अति उपजाऊ तथा सिंचाई की आवश्यकता कम होने के कारण कृषि अच्छी होती है। गेहूँ, ज्वार मुख्य फसलो के अलावा गन्ना, धान, जौ, बाजरा भी अधिक पैदा होता है। शक्कर के शोधन के कार्य के अतिरिक्त सूती कपडा बुनना, बढईगीरी, पीतल का काम, बरतन बनाने का काम भी किया जाता है। कृषि उत्पाद, जैसे शक्कर, अनाज आदि को बाहर भेजा जाता तथा कपडा, नमक एव धातु को मँगाया जाता है। पहले यहाँ नील का कार्य अधिक किया जाता था।

२ नगर, स्थिति २८° २' उ० अ० तथा ७९° ७' पू० दे०। उपर्युक्त जिले के मध्य पूर्वी भाग में सोत (Sot) नदी से एक मील पूर्व, बरेली से मथुरा जानेवाले मार्ग पर स्थित नगर है। इसकी जनसंख्या ५८,७७० (१९६१) है। नगर नए एव पुराने दो भागो मे बँटा है। यहाँ पर एक बहुत ही मजबूत किले के खडहर मिलते है तथा शमशुद्दीन इल्तुतमिश द्वारा बनवाई एक गुबद के आकार वाली जामा मस्जिद भी है, जो वहाँ के एक बडे हिंदू मदिर को तोडकर उसी से प्राप्त सामग्री से बनाई गई थी। यह प्रसिद्ध इतिहासकार अब्दुलकादिर वदायूँनी का जन्म स्थान भी है।

वद्धांत्र (Intestinal obstructions) अन्नमार्ग लगभग २५ फुट लबी एक नली है जिसका कार्य खाद्यपदार्थ को इकट्ठा करना, पचाना, सूक्ष्म रूपो मे विभाजित कर रक्त तक पहुँचा देना एव निरर्थक अश को निष्कासित करना है। बद्धात्र वह दशा है जब किसी कारणवश अन्नमार्ग मे रुकावट आ जाती है। इससे उदर शूल, वमन तथा कब्ज आदि लक्षण प्रकट होते हैं। उचित चिकित्सा के अभाव मे यह रोग घातक सिद्ध हो सकता है।

कारण — (१) सिकुडन (stricture) — दो प्रकार का होता है जन्मजात और अर्जित। जन्मजात — गर्भावस्था मे ही जब आत्र का कुछ हिस्सा बद रह जाय या अतिम भाग मे छिद्र

अ सिकुडन ब बाह्य पदार्थ स बाहरी दबाव
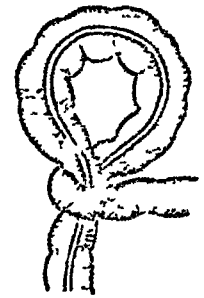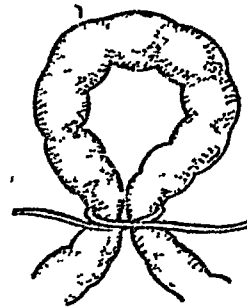
द आगजक बध इ अपनी आँत योजनी के अक्ष पर ऐंठी हुई आत्र

चित्र १

का अभाव हो। अर्जित — चोट, शोथ, अर्बुद, अम्ल अथवा क्षय रोग के कारण जब आत्र मार्ग मे सिकुडन हो जाय (चित्र १ अ)।

(२) बाह्य पदार्थ — आत्रमार्ग मे जब मल जम जाने या पित्त की थैली की अश्मरी (stone) के कारण रुकावट हो (चित्र १ ब)।

(३) बाहरी दबाव — उदर के भीतर जब किसी अर्बुद के दबाव के कारण आत्रमार्ग अवरुद्ध हो जाय (चित्र १ स)।

(४) आसजक बध — इसमे बध शल्यक्रिया अथवा उडुक, पित्ताशय आदि के प्रदाह के कारण उत्पन्न होते हैं (चित्र १ द)।

(५) हर्निया या आँत उतरना — इसमे आत्र का कुछ हिस्सा वक्षण, आत्र योजनी, मध्यच्छद या किसी अन्य छिद्र द्वारा बाहर आ जाता है तथा छिद्र की कसावट के कारण वापस नहीं जा पाता।

(६) ऐंठन — आत्र का कुछ हिस्सा जब अपनी आत्रयोजनी पर ही ऐंठ जाय तथा आत्रमार्ग अवरुद्ध हो जाय। इसे वालवुलस (volvulus) कहते हैं (चित्र १ इ)।

(७) अतराधान (Intussusception) — जब छोटी आत्र का एक हिस्सा किसी कारणवश अपने पास के हिस्से के भीतर घुस जाय (देखें चित्र २)।

(८) अन्य कारण — उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त भी कुछ जन्मजात या अर्जित कारण बद्धांत्र उत्पन्न कर सकते है।
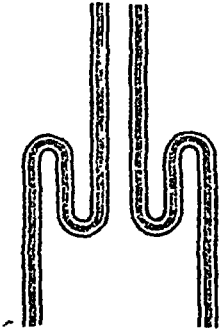
चित्र २ आंत्र का अंतरावान

(९) इलियस (Ileus) — इस दशा मे किसी स्नायुरोग अथवा लवण असतुलन, जैसे पोटैशियम क्लोराइड या सोडियम की कमी के कारण आत्र की गति रुक जाती है।

(१०) रक्तसचार मे रुकावट — आत्रशिरा अथवा धमनी मे रक्त जम जाने से आत्र कार्य करना बद कर देता है।

लक्षण तथा चिह्न — बद्धात्र के लक्षण एव चिह्न रुकावट के कारणो, स्थान और समय पर निर्भर करते हैं। यदि इस रुकावट के साथ ही रक्तसचार भी रुक गया है, तो उसे स्ट्रैंगुलेटेड या रक्तावरोध बद्धात्र कहते हैं।

सर्वप्रथम पेट मे रुक रुक कर शूल होता है। पेट मे गुडगुडाहट सुनाई पड सकती है। आत्र ध्वनि तीव्र हो जाती है। ऊपरी आत्र की रुकावट मे वमन जल्दी प्रारभ होता है, निचले भाग की रुकावट मे बाद मे। अधिक वमन होने से रक्त से जल तथा लवण निकल जाते हैं जिससे जिह्वा सूखती है, आँखें धँस जाती हैं, नाडी की गति तीव्र हो जाती है, तथा स्पर्श मुश्किल से महसूस होता है, त्वचा की सकुचनशीलता कम हो जाती है।

निचली आत्र की रुकावट मे पेट का फूलना अधिक होता है, क्योकि वायु तथा जल वमन द्वारा नही निकल पाते। पेट पर अँगुली रखकर दूसरे हाथ की अँगुली से ठोकने से वायु का पता लगता है। ऐक्स-रे द्वारा भी आत्र की रुकावट का पता लग सकता है।

कब्जियत बद्धात्र का विशेष लक्षण है, ऐसी कब्जियत जिसमे अपान वायु तक न निकले।

रक्तावरोध होने पर ठढी चिपचिपी त्वचा, तीव्र किंतु हल्की नाडी, सूखी गदी जिह्वा, रक्तभार मे कमी, लगातार दर्द आदि लक्षण भी मिलते हैं। अधिक देर तक रक्तावरोध होने से आत्र का उतना हिस्सा निर्जीव हो जाता है। उदर के स्पर्श से अत्यत पीडा होती है।

चिकित्सा — चिकित्सा प्रारभ करने के पूर्व तीन बातो का उत्तर पा लेना आवश्यक है (१) क्या बद्धात्र है? (२) क्या रक्तावरोध भी है? तथा (३) रुकावट किस स्थान पर है?

चिकित्सा का उद्देश्य रुकावट दूर कर आत्रमार्ग को बनाए रखना है। इसके लिये शल्यक्रिया की आवश्यकता पडती है, किंतु जब अत्यधिक वमन के कारण शरीर से जल तथा लवण निकल जाते हैं तब पहले शिरा मे नमकयुक्त जल पर्याप्त मात्रा मे इंजेक्शन द्वारा पहुँचाना आवश्यक है।

वमन तथा पेट फूलना रोकने के लिये रबर की लबी नली, जैसे राइल्स ट्यूब, नाक या मुँह द्वारा आमाशय के भीतर पहुचा दी जाती है तथा इसमे से पिचकारी द्वारा द्रव खीचकर बाहर निकालते हैं।

पहले बद्धात्र की चिकित्सा के लिये लबी रबर की नली मुँह द्वारा आमाशय तथा उसके आगे क्षुद्रात्र में डाली जाती थी और उसमें से वायु तथा द्रव पदार्थ बाहर निकाले जाते थे। किंतु इसमें कई घटे लग जाते हैं तथा सफलता निश्चित नही होती।

शल्यक्रिया द्वारा रोगी को बेहोश करने के बाद उदर खोला जाता है तथा वहाँ रुकावट का जो कारण मिलता है, उसे दूर किया जाता है। ऐंठन ठीक की जाती है, आसजक बध काटा जाता है। यदि रक्तावरोध के कारण आत्र का कुछ हिस्सा निर्जीव हो जाता है, तो उसे भी काटकर बाहर निकालना पडता है तथा दोनो सिरो को जोड दिया जाता है। शिरा मे आवश्यकता पडने पर अतिरिक्त रक्त भी दूसरे स्वस्थ व्यक्ति से लेकर पहुँचाया जाता है। [गो० दा० अ०]

बद्रीनाथ प्रसाद सुप्रसिद्ध गणितज्ञ, का जन्म १२ जनवरी, १८९९ ई० को जिला आजमगढ के मुहम्मदाबाद गोहना ग्राम के एक समृद्ध परिवार मे हुआ था। इनकी पढाई अपने ग्राम मुहम्मदाबाद, सीवान (सारन), पटना और वाराणसी मे हुई। पटना विश्वविद्यालय से सन् १९१९ मे बी० एस-सी० उत्तीर्ण कर इन्होने काशी हिंदू विश्वविद्यालय मे एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। लिवरपूल विश्वविद्यालय से १९३१ ई० मे पी-एच० डी० की और १९३२ ई० मे पैरिस विश्वविद्यालय से स्टेट डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। लिवरपूल और पैरिस विश्वविद्यालयो मे सुप्रसिद्ध गणितज्ञो के अधीन इन्होने अध्ययन और अनुसधान कार्य सपन्न किया था। ये हिंदू विश्वविद्यालय मे सुप्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ डा० गणेश प्रसाद के प्रिय शिष्यो मे से थे और उनके अधीन इन्होने वास्तविक चरवाले फलनो के सिद्धातो तथा श्रेणियो, विशेषतया फूर्ये श्रेणी, तथा उनसे सबद्ध अन्य श्रेणियो की, आकलनीयता पर गवेषणा की। इग्लैंड मे अपने एक प्रोफेसर के साथ आबेल आकलनीयता की निरपेक्ष विधि ज्ञात करने तथा उपयोग करने का समान बँटाने का श्रेय प्राप्त किया। दो वर्ष (१९२२-२४) तक हिंदू विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक रहने के पश्चात् ये जुलाई, १९२४ ई० मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय चले गए, जहाँ लेक्चरर, रीडर, प्रोफेसर तथा गणित विभाग के अध्यक्ष पद पर रहे। बीच मे दो वर्षो के लिये ये पटना कालेज मे भी गणित के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष पद पर चले गए थे। इन्होने भारत के बाहर अनेक देशो की यात्रा की थी। विज्ञान के नैशनल इस्टिट्यूट तथा नैशनल एकेडेमी के ये पुराने फेलो थे। इडियन मैथेमैटिकल सोसायटी और विज्ञान परिषद के अध्यक्ष थे। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के पुराने सदस्य और उत्साही कार्यकर्ता थे। १९४५ ई० मे गणित तथा सांख्यिकी अनुभाग की अध्यक्षता भी आपने की थी। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन (१९६५) के प्रधान अध्यक्ष रहे। भारत सरकार ने इन्हे पद्मभूषण की उपाधि से १९६३ ई० मे विभूषित किया था और १९६४ ई० मे

संसद् राज्य सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। १८ जनवरी, १९६६ ई० को हृदयगति बंद हो जाने से आपकी सहसा मृत्यु हो गई।

[फू० स० व०]

बन्यन, जॉन (१६२८-१६८८) का जीवन एक ऐसे विनम्र एवं कृतसंकल्प व्यक्ति की कहानी है जिसने अपनी आत्मा के अधिदेशन का अनुसरण किया, परंतु कठोर संसार में जहाँ व्यवहारवाद एवं विधान धार्मिक जीवन तथा आचार का निर्धारण करते हैं, यातनाएँ झेली। व्यवसाय से ठठेर तथा एक पीतल के व्यवसायी के पुत्र बन्यन का जन्म बेडफोर्ड के निकट एलेस्टो में नवंबर, १६२८ में हुआ। उन्हें गाँव के विद्यालय में थोडी शिक्षा मिली तथा १६ वर्ष की अल्पावस्था में इंग्लैंड में राजपक्ष तथा संसदीयपक्ष के बीच होनेवाले गृहयुद्ध में भाग लेना पड़ा। वह संसदीय दल में संमिलित हुए तथा तीन वर्ष तक (१६४४-१६४७) न्यूपोर्ट पैग्नाल में सेवारत रहे। १६५३ में बेडफोर्ड में वे एक स्थानीय नान-कन्फर्मिस्ट दल (विरोधीदल) में संमिलित हुए तथा आजीवन एक विरोधी तथा निर्भय धर्मोपदेशक रहे। संसद् के विभिन्न अधिनियम, अनुज्ञप्ति तथा प्रचलित धर्म के उपदेशों तथा सिद्धांतों से समनुरूपता के बिना धर्मोपदेश का निषेध करते थे। बन्यन ने इन दोनों निषेधाज्ञाओं का उल्लंघन किया तथा उन्हें १६६० में बेटफोर्ड के बंदीगृह में १२ वर्ष के दीर्घ कारावास का दंड मिला। १६७२ में क्षमादान द्वारा मुक्त होने पर उन्हें धर्मोपदेश की अनुज्ञप्ति मिली तथा वे बेडफोर्ड के गिरजाघर में पादरी हो गए। १६७५ में शासन में परिवर्तन के कारण वे पुन अपने धार्मिक विचारों के लिये बंदी किए गए तथा छह मास हेतु कारावासित किए गए। बेटफोर्ड बंदीगृह में ही उन्होंने अपने महान् ग्रंथ 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का प्रथम भाग लिखा जो मुक्ति के अन्वेषक ईसा के एक अनुयायी की कहानी है। परीक्षा, यातना तथा पिलग्रिम्स प्रोग्रेस के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के महत्वपूर्ण लेखकत्व के जीवन के उपरांत अगस्त, १६८८ में लंदन में उनका निधन हुआ।

उनके साहित्यिक ग्रंथ उनके जीवन तथा आत्मा की अनश्वर प्रतिमूर्ति हैं। १६६६ में अपना आध्यात्मिक आत्मचरित् 'ग्रेस एबाउन्डिंग' (पूर्ण शीर्षक है ग्रेस एबाउन्डिंग टु दि चीफ ऑव सिनर्स) यह पुस्तक उनके अपवित्र यौवन, उनके पाप तथा नैराश्य एवं उनके उद्धार में प्रभु की दया का मुक्त अंकन है। कॉल्विनवादीय अथवा असमनुरूप सिद्धांतों से मिश्रित मनोवैज्ञानिक अनुभवों से प्राय उनका प्रत्येक ग्रंथ प्रतिवेधित है। उन्होंने दि होली सिटी (१६६५), ग्रेस एबाउन्डिंग (१६६६), दि पिलग्रिम्स प्रोग्रेस भाग १, १६७८ में तथा भाग २, १६८४ में प्रकाशित, दि लाइफ ऐंड डेथ ऑव मिस्टर बैडमैन (१६८०), दि होली वार (१६८२) तथा दि हेवेनली फुटमैन, मरणोत्तर प्रकाशित (१६९२) लिखा। जॉन बन्यन की कृतियों का संकलन तथा संपादन एच० स्टर्लिंग द्वारा १८५९ में हुआ तथा १९३२ में एफ० एम० हैरिसन ने जॉन बन्यन के ग्रंथों की अनुक्रमणिका संपादित की।

जॉन बन्यन की प्रमुख कृतियाँ स्वरूप में प्रतीकात्मक एवं रूढिवादी प्यूरिटन परंपरानुरूप हैं। उनमें क्रिश्चियन, मिस्टर वर्ल्डली वाइज़ मैन, मिसेज डिफिडेंस, जायंट डिसपेयर, मैडम बैटन, माई लार्ड हेट गुड तथा मिस्टर स्टैंडफास्ट' सदृश पात्र हैं। इन पात्रों का चित्रण नाटकीय सजीवता के साथ हुआ है तथा वे समकालीन इंग्लैंड के वस्तुजगत् में विचरण करते हैं। सुपरिचित स्थानीय संस्थापनों में वे अपने साहसिक कार्यों में जीते जागते से प्रतीत होते है तथा बोलचाल की भाषा में संभाषण करते हैं। यथानय, पात्र तथा कथोपकथन ऐसी शैली में गुंफित हैं जो उपन्यास के स्वरूप के अति निकट पहुँचती है। गद्य शैली दैनिक जीवन के ओजपूर्ण, सहज शब्दभंडार से युक्त बाइबिल के प्रकार की है। यह सरल गद्य का सुपरिचित उदाहरण है जो स्पष्टता में ड्राइडेन की शैली के निकट है। कलात्मक चयन तथा परिचित चित्रों द्वारा वह अपनी आवेगजन्य अवस्थितियों तथा धार्मिक अनुभवों को पाठक की चेतना में बलात् प्रविष्ट करने में सफलता प्राप्त करता है।

बन्यन बुद्धिवादी नहीं थे। वे महान् आस्था तथा वैयक्तिक प्रज्ञा के साथ परंपरागत प्यूरिटन शैली में लिखते थे यथा आर्थर डेंट के 'प्लेनमैन्स पाथवे टु हेवेन' (१६११) तथा रिचर्ड बर्नार्ड की प्रतीकात्मक गद्य कृति 'दि आइल ऑव मैन' (१६२६) में है। वह अपने परिवलेशन तथा सिद्धांत सद्भाव एवं प्राकृत सारल्य के साथ संसूचित करते हैं। वे अध्यात्मवादी के उच्च स्तर तथा उद्धरणकर्ता के निम्न तल में विचरण कर सकते थे परंतु वे बीच की शैली — अथवा ई० एम० डब्ल्यू० टिल्यार्ड के शब्दों में 'वैयक्तिक धार्मिक अनुभव तथा आसपास दिखाई पड़नेवाली सुपरिचित वस्तुओं के बीच की मध्यभूमि'--में नहीं लिख सकते थे। एकमात्र पुस्तक जिसमें वह इन मध्यभूमि पर पादस्थापन कर सके हैं 'दि होली वार' (१६८२) है तथा पिलग्रिम्स प्रोग्रेस के कुछ अंश।

[ए० पी० ओ०]

बपतिस्मा बाइबिल में लिखा है कि ईसा ने अपने स्वर्गारोहण के पूर्व अपने शिष्यों से कहा था — मुझे स्वर्ग और पृथ्वी का पूरा अधिकार दिया गया है। इसलिये जाओ, सब मनुष्यों को शिष्य बनाकर उन्हें पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम पर बपतिस्मा दो (मत्ती २८,१८—१९)। इसके आधार पर क्वेकर्स (Quakers) तथा मुक्तिसेना को छोडकर सभी ईसाई संप्रदायों में बपतिस्मा अर्थात् दीक्षास्नान का संस्कार प्रचलित है। प्रारंभ ही से ईसा के शिष्यों ने विश्वासियों को बपतिस्मा द्वारा आदिपाप तथा सभी स्वीकृत पापों से छुटकारा दिलाया है। मनुष्य चर्च का सदस्य बनकर ईसा के साथ रहस्यात्मक ढंग से संयुक्त हो जाता है और उसमें एक आध्यात्मिक नवजीवन (सैंक्टिफाइंग ग्रेस, पवित्रकारी कृपा) का संचार हो जाता है। यदि बपतिस्मा उचित रीति से दिया गया है तो उसे नहीं दुहराया जा सकता। पुरोहित ही प्राय यह संस्कार कराता है किंतु आवश्यकता पड़ने पर कोई भी उसे संपन्न कर सकता है। मान्यता की तीन शर्तें हैं (१) बपतिस्मा पानेवाले के सिर पर पानी उँडेलना अथवा उसका सारा शरीर पानी में डुबाना (कुछ प्रोटेस्टैंट संप्रदायों में जल छिड़क दिया जाता है, चर्च के प्रारंभ में पूरा शरीर डुबोने की प्रथा अधिक प्रचलित थी), (२) बपतिस्मा के शब्दों का उच्चारण (मैं तुमको पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम पर बपतिस्मा देता हूँ), (३) संस्कार संपन्न करनेवाले का अभिप्राय कि मैं ईसा के इच्छानुसार बपतिस्मा देना चाहता हूँ और जो ग्रहण करनेवाला वयस्क हो उसे ईसा पर विश्वास, अपने पापों पर पश्चात्ताप तथा संस्कार ग्रहण करने

का अभिप्राय होना चाहिए। वेप्टिस्ट तथा मेनोनाइट सप्रदायों मे बच्चों को दिया हुआ वपतिस्मा मान्य नही होता। (दे० बैप्टिस्ट चर्च)। [का० बु०]

वप्पा रावल वप्पा या वापा वास्तव मे व्यक्तिवाचक शब्द नही है, अपितु जिस तरह 'वापू' शब्द महात्मा गाधी के लिये रूढ हो चुका है, उसी तरह आदरसूचक 'वापा' शब्द भी मेवाड के एक नृपविशेष के लिये प्रयुक्त होता रहा है। गुहिल वशी राजा कालभोज का ही दूसरा नाम वापा मानने मे कुछ ऐतिहासिक असगति नही होती। इसके प्रजासरक्षण, देशरक्षण आदि कामो से प्रभावित होकर ही सभवत जनता ने इसे वापा पदवी से विभूपित किया था। महाराणा कुभा के समय मे रचित एकलिंग माहात्म्य मे किसी प्राचीन ग्रथ या प्रशस्ति के आधार पर वापा का समय सवत् ८१० (सन् ७५३) ई० दिया है। एक दूसरे एकलिंग माहात्म्य से सिद्ध है कि यह वापा के राज्यत्याग का समय था। यदि वापा का राज्यकाल ३० साल का रखा जाय तो वह सन् ७२३ के लगभग गद्दी पर बैठा होगा। उससे पहले भी उसके वश के कुछ प्रतापी राजा मेवाड मे हो चुके थे, किंतु वापा का व्यक्तित्व उन सबसे बढकर था। चित्तौड का मजबूत दुर्ग उस समय तक मोरी वश के राजाओ के हाथ मे था। परपरा से यह प्रसिद्ध है कि हारीत ऋषि की कृपा से वापा ने मानमोरी को मारकर इस दुर्ग को हस्तगत किया। टॉड को यही राजा मानका वि० स० ७७० (सन् ७१३ ई०) का एक शिलालेख मिला था जो सिद्ध करता है कि वापा और मानमोरी के समय मे विशेष अतर नही है।

चित्तौड पर अधिकार करना कोई आसान काम न था, किंतु हमारा अनुमान है कि वापा की विशेप प्रसिद्धि अरवो से सफल युद्ध करने के कारण हुई। सन् ७१२ ई० मे मुहम्मद कासिम से सिंध को जीता। उसके वाद अरवो ने चारो ओर धावे करने शुरू किए। उन्होने चावडो, मौर्यों, सैंधवो, कच्छेल्लो और गूर्जरों को हराया। मारवाड, मालवा, मेवाड, गुजरात आदि सब भूभागो मे उनकी सेनाएँ छा गई। इस भयकर कालाग्नि से बचाने के लिये ईश्वर ने राजस्थान को कुछ महान् व्यक्ति दिए जिनमे विशेप रूप से प्रतिहार सम्राट् नागभट प्रथम और वापा रावल के नाम उल्लेख्य है। नागभट प्रथम ने अरवो को पश्चिमी राजस्थान और मालवे से मार भगाया। वापा ने यही कार्य मेवाड और उसके आसपास के प्रदेश के लिये किया। मौर्य (मोरी) शायद इसी अरब आक्रमण से जर्जर हो गए हो। वापा ने वह कार्य किया जो मोरी करने मे असमर्थ थे, और साथ ही चित्तौड पर भी अधिकार कर लिया। वापा रावल के मुस्लिम देशो पर विजय की अनेक दतकथाएँ अरवो की पराजय की इस सच्ची घटना से उत्पन्न हुई होंगी।

डा० गौरीशकर हीराचद ओझा ने अजमेर के सोने के सिक्के को वापा रावल का माना है। इसका तोल ११५ ग्रेन (६५$\frac{3}{4}$ रत्ती) है। इस सिक्के मे सामने की ओर ऊपर के हिस्से मे माला के नीचे श्री वोप्प लेख है। वाईं ओर त्रिशूल है, और उसकी दाहिनी तरफ वेदी पर शिवलिंग बना है। इसके दाहिनी ओर नदी शिवलिंग की ओर मुख किए बैठा है। शिवलिंग और नदी के नीचे दडवत् करते हुए एक पुरुष की आकृति है। पीछे की तरफ चमर, सूर्य, और छत्र के चिह्न हैं। इन सबके नीचे दाहिनी ओर मुख किए एक गौ खडी है और उसी के पास दूध पीता हुआ बछडा है। ये सब चिह्न वापा रावल की शिवभक्ति और उसके जीवन की कुछ घटनाओ से सबद्ध हैं।

स० ग्र० — गौरीशकर हीराचद ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द, जी० सी० रायचौधरी हिस्ट्री ऑव मेवाड। [द० श०]

वफालो (Buffalo) १ स्थिति ४२° ५३' उ० अ० तथा ७८° ५५' प० दे०। यह सयुक्त राज्य, अमरीका के न्यूयॉर्क राज्य की इयरी काउटी मे जनसख्या की दृष्टि से राज्य का द्वितीय वडा नगर है, जो इयरी झील के पूर्वी तट पर, न्यूयॉर्क से रेल द्वारा ३९६ मील दूर स्थित है। सर्वप्रथम फ्रासीसी व्यापारी सी० जानकेयर (C Joncair) ने १७५८ ई० मे इयरी झील और वफालो नाले के सगम पर व्यापारिक वस्तियाँ स्थापित की थी। यहाँ कई प्रसिद्ध भवन हैं। जोजेफ इलिकॉट ने वाशिंगटन डी० सी० के ढग पर नगर की योजना बनाई। इसकी जनसख्या ५,३२,७५९ (१९६०) है। १८२५ ई० मे इयरी नहर के खुलने से लोह एव इस्पात, रसायनक, ओपधियाँ, मोटर, मशीन, खाद्यवस्तुएँ, वस्त्र, विद्युत्सामग्री तथा वायुयाननिर्माण उद्योगो की तीव्र प्रगति हुई। यहाँ ११ प्रमुख रेल लाइनें आकर मिलती हैं।

२ स्थिति ४४° २५' उ० अ० तथा १०६° ५०' प० दे०।

वायोमिंग (सयुक्तराज्य) मे वफालो वायोमिंग रेल लाइन पर पशुपालन और ऊन का केंद्र है। इसी नाम के नगर सयुक्त राज्य, अमरीका के मिनिसोटा, मोटाना मे भी हैं। [भै० ना० मि०]

वभ्रुवाहन चित्रवाहन की पुत्री चित्रागदा से उत्पन्न अर्जुन के पुत्र जो अपने नाना की मृत्यु के वाद मणिपुर के राजा बने। युधिष्ठिर के अश्वमेध अश्व को पकड लेने पर अर्जुन से इनका घोर युद्ध हुआ जिसमे यह विजयी हुए। किंतु माता के आग्रह पर इन्होंने मृतसजीवक मणि द्वारा समरभूमि मे अचेत पडे अर्जुन को चैतन्य किया और अश्व को उन्हे लौटाते हुए यह अपनी माताओ—चित्रागदा और उलूपी के साथ युधिष्ठिर के यज्ञ मे समिलित हुए (जैमि०, अश्व०, ३७, २१-४०, महा०, आश्व०, ७९-९०)। [श्या० ति०]

वरखुरदार, खान आलम मिर्जा मुगलसम्राट् अकवर के दरवार मे एक छोटा मसवदार। इसके पूर्वज तैमूरवश के पुराने सेवक थे। राजकुमार सलीम के विशेप स्नेह के कारण यह कोरावेगी पद पर नियुक्त हुआ। सलीम जब जहाँगीर होकर सम्राट् हुआ, इसे खान आलम की प्रतिष्ठित उपाधि मिली। यह राजदूत के रूप मे ईरान भेजा गया। ईरान का शाह अब्बास सफवी इसके व्यक्तिगत गुणो से इसको बहुत स्नेह की दृष्टि से देखता था। मिर्जा को इसने लगभग व्यक्तिगत सहयोगी और अंतरग का स्थान दे रखा था। जब ईरान से लौटकर यह जहाँगीर से मिला तो सफल राजदूत होने के पुरस्कार में इसे पाँच हजारी ३००० सवार का मसब मिला।

शाहजहाँ के शासनकाल मे छह हजारी ५००० सवार के मसब के साथ विहार का सूबेदार नियुक्त हुआ। १६३२ के लगभग वह इस सेवा से निवृत्त हुआ। अफीम के व्यसन के कारण सम्राट ने इसे अवकाश प्रदान किया। आगरे मे कुछ दिन के निवास के बाद यह मर गया।

वरगंडी (Burgundy) स्थिति ४७° ०' उ० अ० तथा ४° ४०' पू० दे० । यह पूर्व मध्यवर्ती फ्रास का क्षेत्र है, जिसके अतर्गत कोट-डी-ग्रॉर, सेग्रॉन एट ल्वायॉर, न, एव ऐन 'डिपार्टमेट (विभाग) आते हैं। ग्रोडर और विस्चुला नदियो की घाटियो मे रहनेवाली जर्मन जनजाति ने (वरगडियन) ४० ई० मे अलमन्नी लोगो से युद्ध के कारण दक्षिणी फ्रास के गौल मे शरण ली और ४११ ई० मे वरगडी राज्य की नीव डाली थी। इसका वर्तमान क्षेत्रफल ६,००० वर्ग मील है। अगूर उत्पादन मुख्य उद्यम है। मास, दुग्धसामग्री एव मछली और घोघा पकडना अन्य उद्योग हैं। यहाँ वननेवाली मदिरा शताब्दियो से विश्वविख्यात है। [भे० ना० सि०]

वरगद, वर, वट या वट मोरेमी (Moraceae) या शहतूत कुल का पेड है। इसका वैज्ञानिक नाम 'फिकस वेनगैलेंसिस (Ficus bengalensis) और अग्रेजी नाम वेनियन ट्री (Banyan tree) है। वेनियन इसलिये नाम पडा कि जब अग्रेज इधर आए तो उन्होने देखा कि इस पेड के नीचे बैठकर वनिए अपना कारवार करते थे। हिंदू लोग इस वृक्ष को पूजनीय मानते हैं। इसके दर्शन स्पर्श तथा सेवा करने से पाप दूर होता तथा दु ख और व्याधि नष्ट होती है, अत इस वृक्ष के रोपण और ग्रीष्म काल में इसकी जड मे पानी देने मे पुण्यसचय होता है, ऐसा मानते हैं।

उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत मे वट वृक्ष उत्पन्न होते देखा जाता है। इसकी शाखाओं से वरोह निकलकर जमीन पर

वरगद का पत्ता और फल

पहुँचकर स्तम का रूप ले लेती हैं। इससे पेड का विस्तार वहुत जल्द वढ जाता है। भारत में वरगद के दो सबसे वडे पेड कलकत्ते के निकट शिवपुर के राजकीय उपवन मे और महाराष्ट्र के सतारा उपवन मे हैं। शिवपुर के वटवृक्ष की मूल जड का घेरा ४२ फुट और अन्य छोटे छोटे २३० स्तभ हैं। इनकी शाखा प्रशाखाओ की छाया लगभग १००० फुट की परिधि मे फैली हुई है। सतारा के वट वृक्ष, 'कवीर वट', की परिधि १,५८७ फुट और उत्तर दक्षिण ५६५ फुट और पूरव पश्चिम ४४० फुट है। लका में एक वट वृक्ष है, जिसमे ३५० वडे और ३,००० छोटे छोटे स्तभ हैं।

वरगद की छाया घनी, वडी शीतल और ग्रीष्म काल मे आनद-प्रद होती है। इसकी छाया में सैकडो, हजारो व्यक्ति एक साथ वैठ सकते हैं। वरगद के फल पीपल के फल सदृश छोटे छोटे होते हैं। साधारणतया ये फल खाए नही जाते पर दुर्भिक्ष के समय इसके फल पर लोग निर्वाह कर सकते हैं। इसकी लकडी कोमल और मरम्र होती है। अत केवल जलावन के काम में आती है। इसके पेड से सफेद रस निकलता है जिससे एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ तैयार होता है जिसका उपयोग वहेलिये चिडियो के फँसाने मे करते हैं। इसके रस (आक्षीर), छाल, और पत्तो का उपयोग आयुर्वेदीय ओषधियो मे अनेक रोगो के निवारण मे होता है। इसके पत्तो को जानवर, विशेषत वकरियाँ, वडी रुचि से खाती हैं। वृक्ष पर लाख के कीड़े वैठाए जा सकते हैं जिससे लाख प्राप्त हो सकती है।

वरतॉले, क्लॉड लुई (Berthollet, Claude Louis) का जन्म १७४८ ई० मे इटली के सॉवाइ क्षेत्र मे हुआ और ट्यूरिन में इन्होने ओषध विज्ञान की शिक्षा पाई। १७७२ ई० मे इन्होंने पैरिस मे रसायन शास्त्र का अध्ययन आरभ किया। इन दिनों १७६४ ई० में इकोल पॉलिटेकनिक में ये प्रोफेसर हो गए। इनके व्याख्यान दुर्वोध होते थे, १७९८ ई० मे ये नेपोलियन के साथ मिस्र गए, जहाँ इन्होंने नील नदी के मुहाने पर सोडियम कार्वोनेट का सग्रह देखा। विचार करने पर इन्हें विश्वास हो गया कि समुद्र लवणीय जल (सोडियम क्लोराइड) और चूने के पत्थर (कैल्सियम कार्वोनेट) की निरतर क्रिया से यह वना होगा। इस प्रकार की क्रियाओ के सवध में इन्होंने 'द्रव्य अनुपाती क्रिया का नियम' (law of mass action) प्रतिपादित किया, जो रसायन विज्ञान का महत्वपूर्ण नियम है। इन्होने अपने इन विचारो को 'स्टैटिक किमिक (Statique chimique) नामक ग्रथ के दो खडो मे प्रकाशित किया। वरतॉले रसायन विज्ञान में मान्य स्थिर अनुपात के नियम को नही मानते थे।

वरतॉले ने अमोनिया के सगठन पर १७८५ ई० में क्लोरिन, हाइपोक्लोराइट और क्लोरेट पर १७८५-८७ ई० मे एव क्लोरीन के विरजक प्रभाव पर काम किया। इन्होने १७८७ ई० मे यह प्रदर्शित किया कि प्रूसिक अम्ल के यौगिक मे हाइड्रोजन, कार्वन और नाइट्रोजन तो हैं, पर ऑक्सीजन नही है। इसी वर्ष इन्होंने साइऐनोजन क्लोराइड पर भी काम किया। वरतॉले ने प्रदर्शित किया कि हाइड्रोजन सल्फाइड में अम्लीय गुण हैं। इन्होने १७९६ ई० में हाइड्रोजन परसल्फाइड की सरचना पर काम किया। प्रूसिक अम्ल और हाइड्रोजन सल्फाइड के अम्लीय गुणो को प्रदर्शित करके वरतॉले ने सिद्ध कर दिया कि अम्लो मे ऑक्सीजन का होना आवश्यक नही है। वरतॉले ने अपने युग मे रसायन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया।

फ्रास की राज्यक्राति के अवसर पर गोलावारूद के लिये शोरे की आवश्यकता थी। इसे प्राप्त करने की विधियो में सुधार करने

के निमित्त जो कमीशन बना था उसके वरतॉले अध्यक्ष थे। वरतॉले ने ही सर्वप्रथम पोटैसियम क्लोरेट नामक यौगिक की खोज की। लोहे को अयस्कों मे से तैयार करने की विधियो के कमीशन के भी वे सदस्य रहे। १७९२ ई० में वे फ्रास की टकसाल के निदेशक बनाए गए। कृषि और कला की ससदो मे भी वे १७९४ ई० में पार्षद रहे। पैरिस पॉलिटेक्निक और नॉर्मल स्कूल में वे रसायन अध्यापक थे ही। वरतॉले की मृत्यु कष्टदायक रोग से पैरिस मे ६ नवबर, १८२२ ई० को हुई। [सत्य० प्र०]

वरनी (जियाउद्दीन) का जन्म सुल्तान बलबन के राज्यकाल मे १२८५-८६ ई० मे हुआ। उसका नाना, सिपहसालार हुसामुद्दीन, बलबन का बहुत वडा विश्वासपात्र था। उसके पिता मुईद्दुलमुल्क तथा उसके चाचा अलाउलमुल्क को सुल्तान जलालुद्दीन खलजी तथा सुल्तान अलाउद्दीन खलजी के राज्यकाल मे बडा समान प्राप्त था। जियाउद्दीन बरनी ने अपनी बाल्यावस्था मे अपने समकालीन बडे बडे विद्वानो से शिक्षा प्राप्त की थी। वह शेख निजामुद्दीन औलिया का भक्त था। अमीर खुसरो का बडा घनिष्ठ मित्र था। अन्य समकालीन विद्वानो एव कलाकारो से भी वह भली भाँति परिचित था। सुल्तान फीरोज तुगलक के राज्यकाल मे उसे अपने शत्रुओ के कारण बडे कष्ट भोगने पडे। वह बडी ही दीनावस्था को प्राप्त हो गया। कुछ समय तक उसने बदीगृह के भी कष्ट भोगे। उसने अपने समस्त ग्रथो की रचना सुल्तान फीरोज के राज्यकाल मे ही की, किंतु उसे कोई भी प्रोत्साहन न मिला और बडी ही शोचनीय दशा मे, ७० वर्ष की अवस्था मे उसकी मृत्यु हुई। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के राज्यकाल मे उसकी बडी उन्नति हुई। सभवत वह सुल्तान का नदीम (सहचर) था। आलिमो तथा सूफियो से सपर्क स्थापित करने मे उसकी सेवाओ से बडा लाभ उठाया जाता होगा। बडे बडे अमीर एव पदाधिकारी उसके द्वारा अपने प्रार्थनापत्र सुल्तान की सेवा मे प्रस्तुत करते थे। देवगिरि की विजय की बधाई फीरोज शाह, मलिक कबीर तथा अहमद अयाज ने उसी के द्वारा सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की सेवा मे प्रेषित की।

उसकी रचनाओ मे तारीखे फीरोजशाही का बडा महत्व है। इसकी प्रस्तावना मे उसने इतिहास की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए इतिहासकार के कर्तव्य का भी उल्लेख किया है। इस इतिहास मे उसने सुल्तान बलबन के राज्यकाल से लेकर सुल्तान फीरोज के राज्यकाल के प्रथम छह वर्षो तक का इतिहास लिखा है। बरनी अपने इतिहास द्वारा अपने समकालीन उच्च वर्ग का पथप्रदर्शन करना तथा अपने समकालीन सुल्तान फीरोज शाह के समक्ष एक आदर्श रखना चाहता था। यद्यपि उसकी जानकारी के साधन बडे ही महत्वपूर्ण थे तथापि उसके इतिहास से लाभ उठाने के लिये तथा बलबन, सुल्तान जलालुद्दीन खलजी, सुल्तान अलाउद्दीन खलजी एव सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के विचार जो उसने उद्धृत किए हैं, भली भाँति समझने के लिये बरनी की धार्मिक कट्टरता एव उसके राजनीतिक सिद्धातो को सामने रखना परमावश्यक है। फतावाये जहाँदारी नामक ग्रथ मे, जो अभी तक प्रकाशित नही हुआ है, उसके राजनीतिक सिद्धातो पर बडा ही विशद प्रकाश पडता है। सहीफये नाते मुहम्मदी की भी, जिसमे हजरत मुहम्मद की जीवनी एवं उनके गुणो का उल्लेख है, केवल एक ही प्रति प्राप्त है। प्रारभिक अब्बासी खलीफाओ के प्रसिद्ध वजीरो का भी इतिहास उसने लिखा है जो प्रकाशित हो चुका है।

स ग्र — उसकी रचनाओ के अतिरिक्त रिजवी, मै० अ० अ०, आदि तुर्ककालीन भारत, खलजी कालीन भारत, तुगलक कालीन भारत भाग १, २ (अलीगढ यूनीवर्सिटी) [सै० अ० अ० रि०]

वरवैंक ल्यूथर (Burbank Luther, सन् १८४९-१९२६) प्रसिद्ध अमरीकी पादप प्रजनक का जन्म मैसैचुसेट्स राज्य के लैंकेस्टर नामक नगर मे हुआ था। इन्होने पब्लिक स्कूल और लैंकेस्टर एकैडमी मे शिक्षा पाई तथा कृषिफार्म पर वनस्पतियो के सबध मे विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया। जतुओ के विनयन (domestication) तथा पादपों के दमन से उनमे विविधता उत्पन्न करने के सबध मे डार्विन के विचारो ने इनके जीवन को एक नया मोड दे दिया और ये पादप प्रजनन के कार्य मे जुट गए।

सर्वप्रथम इन्होने एक नए प्रकार के आलू का विकास किया, जो इन्ही के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। सन् १८७५ तक लूनेनबर्ग (मैसैचुसेट्स) के फार्म पर अनुसधानो मे लगे रहने के बाद ये कैलिफॉर्निया राज्य के सैंटारोजा नामक स्थान मे बस गए, जहाँ ये ५० वर्षो तक निरतर फलो, फूलो, शाको, अन्नो और घासो की विविध नई जातियो के उत्पादन मे लगे रहे। इन्होने अपने प्रयोगो के सिलसिले मे लाखो पौधे उगाए। इनका उद्देश्य वैज्ञानिक खोज न था। वे केवल अधिक उपयोगी फल और सुदर फूल उत्पन्न करना चाहते थे, जिसमे उन्हे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। लोग इन्हे वनस्पतियो का जादूगर कहते थे।

आगे चलकर स्टैन्फोर्ड विश्वविद्यालय मे ये विकासवाद के लेक्चरर नियुक्त हुए। इन्होंने अपने कार्य से सबधित दो ग्रथ तथा उत्पादित नई जातियो की वनस्पतियो की वर्णनात्मक सूची भी प्रकाशित की थी, जो बडे काम की है। [भ० दा० व०]

वरम्यूडा (Bermuda) या सोमर्स द्वीपसमूह, स्थिति ३२° ४५' उ० अ० तथा ६५° ०' प० दे। उत्तरी ऐटलैंटिक सागर मे नॉर्थ कैरोलिना के केप हैटरैस से ५७० मील पूर्व स्थित, ब्रिटेन अधिकृत लगभग ३०० द्वीपो का समूह है, जो २२ मील लबे चद्राकार में फैला है। इन द्वीपो का क्षेत्रफल २१ वर्ग मील है। सबसे प्रमुख द्वीप ग्रेट वरम्यूडा है, जो १४ मील लंबा है तथा यहाँ की राजधानी, हैमिल्टन इसी पर स्थित है। यहाँ का अधिक से अधिक ताप ३४ ४° सें० तथा कम से कम ताप लगभग ७° सें० एव औसत वर्षा ५८ इच है। स्पेन निवासी जुआन बरम्यू डेज ने १३०३ ई० मे इसका पता लगाया और इसका नामकरण किया। समूह के २० द्वीपो पर मनुष्य रहते हैं, जिनकी सख्या ३७, ४०३ (१९५०) है। [भै० ना० सिं०]

वराज नदी के जलस्तर को ऊँचा उठाकर उसकी धारा को नहर की ओर आकृष्ट करने के लिये जो अवरोध बनाए जाते हैं उनमे से कुछ वराज भी कहलाते हैं। यह शब्द मूलत अंग्रेजी शब्द बार (bar) यानी रोक पर आधारित है।

वराज ऐसे अवरोध कहलाते हैं जिनके जलप्लावन का स्तर

लगभग नदी की तली पर होता है। पानी को ऊँचा उठाने तथा पलटने के लिये नदी की पूरी चौडाई मे पाए और फाटक लगे रहते हैं और उनके सचालन के लिये बहुधा एक पुल भी बना रहता है।

बाढ के समय फाटको को जलतल से ऊपर यानी बाढ के स्तर से भी ऊँचा उठाया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि (१) वराज बनाने से बाढ के स्तर मे कोई विशेष अतर नही पडता और बाढ का पानी नदी से सामान्य रूप से निकल जाता है, (२) फाटकों के सुचारु रूप से सचालन द्वारा वराज के नदी के भाग को बहुत कुछ नियत्रण मे रखा जा सकता है तथा (३) रेत के टापू बनना तथा आडी धाराएँ उत्पन्न होना रोका जा सकता है, जिनसे नहरों मे पानी प्रविष्ट करने मे बहुधा कठिनाई होती रहती है।

बहुधा वराज नदी के बहाव से समकोण पर बनाए जाते हैं। पूरी चौडाई मे पाए तथा फाटक होने के कारण वराज के ऊपर होकर सडक, अथवा रेल के पुल भी, कुछ ही अतिरिक्त व्यय से बनाए जा सकते है। जहाँ वराज के ये लाभ हैं, वहाँ असुविधा यह है कि अन्य प्रकार के अवरोधो से लागत मे वराज महँगे होते हैं।

वर्ष के जिस भाग मे नदी मे जल की मात्रा नहर के लिये आवश्यक निस्सार से भी कम होती है उसमे वराज के सारे फाटक वद कर दिए जाते है। इस प्रकार पानी जमा होकर तालाब जैसा बन जाता है और जल का स्तर सरोवर स्तर (pond level) तक हो जाने पर पानी नहर में चलने लगता है।

वराज की एक प्रतिरूपी आडी काट चित्र १ मे दी गई है।
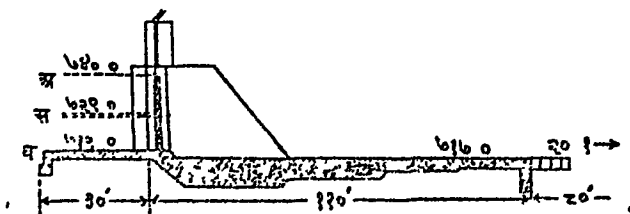
चित्र १. बनवसा वराज, उत्तर प्रदेश, की प्रतिरूपी आडी काट अ अधिकतम बाढ स्तर, ब वराज फर्श, स्तर तथा स सरोवर स्तर

यह आडी काट उत्तर प्रदेश मे स्थित बनवसा वराज की है, जिसमें फर्श के ऊपर कोई टक्कर (crest) नही है। वैसे वराज मे जहाँ तहाँ छोटी टक्करें भी दी जाती हैं।

निर्माण की दृष्टि से वराज के विशेष भाग और उनका विवरण निम्नलिखित है

(१) वराज फर्श (Barrage Floor) — सामान्यत वराज के ऊपर व नीचे की ओर के जलस्तर मे कुछ अतर होता है, जिसके कारण फर्श की नीव के नीचे प्रवाह होना सभव है। रेतीली मिट्टी पर बने वराजो मे यह प्रवाह कभी इतना तेज हो सकता है कि जल के साथ मिट्टी के कण भी चलायमान होकर निकलने लगें और नीव खोखली होकर फर्श बैठ जाए। फर्श की लबाई इस तथ्य को ध्यान मे रखकर अभिकल्पित की जाती है। इसके अतिरिक्त फर्श की मोटाई भी पानी के ऊपर की ओर दाब के लिये पर्याप्त होनी आवश्यक है।

रेतीली मिट्टी पर वराज के अभिकल्प का मूल सिद्धात यह है कि निकासी छोर पर पानी के रिसन का वेग इतना न हो कि उसके साथ बालू के कण वह निकलें। इस समस्या के समाधान के लिये पहले ब्लाइ (Bligh) तथा लेन (Lane) के सिद्धातों का प्रयोग किया जाता था और अब खोसला का सिद्धात, जो भारत में बने बहुत से वराजो तथा बाँधो की असफलताओ के कारणों की खोज करके निकाला गया है, प्रयोग मे आता है। रूस और अमरीका मे भी इस सबध मे काफी अनुसधान हुए हैं और हो रहे हैं।

बाढ द्वारा फर्श के ऊपर और नीचे की ओर उत्पन्न होनेवाले गड्ढो (scour holes) से बचाने के लिये फर्श मे ऊपर तथा नीचे की ओर कक्रीट के ब्लॉक, अथवा बडे बडे पत्थर, बिछा दिए जाते हैं, जिनका हर साल निरीक्षण तथा पूर्ति करना आवश्यक है।

२ वराज दर (Barrage Bays) — वराज मे एक छोर से दूसरे तक थोडी थोडी दूर पर पाए बनकर उनके बीच मे लोहे के फाटक लगा दिए जाते हैं। पायों के बीच के इन दरो मे से नहर की ओरवाले कुछ दरो को छोडकर शेष वराज दर कहलाते हैं। वराज दरों मे फर्श या टक्कर का स्तर लगभग नदी की तली के औसत स्तर पर ही होता है।

३ वराज फाटक (Barrage gates) — वराज के फाटको के लिये आवश्यक है कि उनके द्वारा नहर मे निस्सार का नियत्रण ठीक तौर से हो सके और बाढ के समय वे जल्दी से उठाए जा सकें। फाटक की चौडाई ४० से ६० फुट तक की होती है और वह निम्नलिखित बातो पर निर्भर रहती है

क पायों, फाटको, फाटक सचालन यत्रो तथा पुल इत्यादि की कुल लागत कम से कम हो।

ख बाढ मे बहकर आनेवाले पेड इत्यादि आसानी से निकल जाएँ। बहुधा वराज के फाटक इस्पात के बनाए जाते हैं और टक्कर से पूर्ण सरोवर स्तर तक ऊँचे होते हैं।

पायो मे बने इस्पात के खाँचे मे ये फाटक लगाए जाते हैं। सबसे निचला भाग पानी की पूरी गहराई के बराबर के दबाव के लिये अभिकल्पित किया जाता है। यह दबाव पानी की गहराई कम होने के साथ साथ ऊपरी भाग के लिये कम होता जाता है।

फाटक इस्पात की चादर का होता है, जिसके पीछे गर्डर रिविट द्वारा, या वैल्डिंग द्वारा, जुडे होते है। पायो की ओर वाले किनारों पर पहिये लगे होते है और रबर की विशेष सील होती हैं ताकि पानी चूकर निकल न सके। फाटक के नीचेवाले किनारे पर भी रबर सील होती है, ताकि जिस समय फाटक बद हो तब भी पानी न चू सके।

फाटक उठाने और गिराने के लिये ऊपर यत्र लगा होता है और रस्से के दूसरे छोर पर सतुलित करने के लिये एक प्रतितोलक भार (counterweight) लगा होता है। इस प्रकार भारी से भारी फाटक को उठाने के लिये यत्र को केवल दो आदमी चला सकते हैं।

४ तलकपाट दर (Undersluice Bays) — नहर की ओरवाले कुछ दर, जिनके फर्श या टक्कर (crest) का स्तर लगभग नदी के सबसे गहरे भाग के बराबर होता है, तलकपाट दर कहलाते हैं।

बराज के इस भाग के सामने गाद जमा हो जाने से नहर मे पूरा निस्सार भेज सकना यदा कदा असभव हो जाता है। इसलिये तलकपाट के फाटक खोलकर जमी हुई गाद को बहाते रहना आवश्यक है। तलकपाट दर निम्नलिखित उद्देश्यो की पूर्ति करते हैं

(क) नहर शीर्ष के पास नदी की सुव्यवस्थित धारा बनाए रखते हैं, जिससे नदी मे न्यूनतम निस्सार के समय भी नहर की ओर धारा पलटने मे कठिनाई नही होती।

(ख) नहर शीर्ष के सामने जमनेवाली गाद बहाई जा सकती है।

५ मत्स्यसोपान (Fish Ladder) — बडी नदियो मे भिन्न भिन्न प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं, जिनमे से कुछ प्रवासी भी होती हैं। प्रवासी मछलियाँ ऋतुओ के अनुसार नदी के एक भाग से दूसरे भाग की ओर आती जाती रहती हैं। भारत मे सामान्यत प्रवासी मछलियाँ जाडा आरभ होने पर पहाड से मैदान की ओर आती हैं और वर्षा आरभ होने से पहले लौटने लगती हैं।

मछलियों के इस आवागमन के लिये बराज मे मत्स्य सोपान बनाना आवश्यक है, अन्यथा बडी सख्या मे ये मछलियाँ नष्ट हो सकती हैं।

मछलियाँ १० – १२ फुट प्रति सेकड के वेग से बहनेवाली धारा की विपरीत दिशा मे सुगमता से तैर सकती है, इसलिये मत्स्य सोपान के अभिकल्प मे इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि धारा का वेग इससे अधिक न हो। मत्स्यसोपान सामान्यत बराज दरो तथा तलकपाट दरो के बीच मे बनाए जाते हैं, क्योकि तलकपाट दरो के पास ही नदी की गहरी धारा बहती है।

६ विभाजक दीवारे (Divide Walls) — तलकपाट दरो और बराज दरों को अलग करने के लिये, तथा यदि बराज अधिक चौडा हो तो, बराज दरो के बीच बीच मे भी लबी विभाजक दीवारें या पुश्ते बना दिए जाते हैं। बराज से ऊपर की ओर ये दीवारें नहर शीर्ष से कुछ आगे तक जाती हैं और नीचे की ओर पक्के फर्श के आगे पडनेवाले ब्लॉको आदि के अत तक। विभाजक दीवार बनाने के निम्नलिखित उद्देश्य हैं

(क) बराज दरो तथा तलकपाट दरो के फर्श स्तरो मे असमानता होने के कारण यह उन्हें अलग करने मे सहायक होती है।

(ख) आडे बहावों को बराज से दूर रखने मे सहायक होती है।

(ग) नहर शीर्ष के समीप एक शात सरोवर स्वरूप जल सचय नदी की धारा से अलग बनाती है, ताकि गाद को वहाँ छोडकर स्वच्छ जल नहर मे प्रवेश कर सके।

(घ) तलकपाट खोलने पर यह बहाव को थोडी ही चौडाई मे सीमित करती है ताकि गाद बहने योग्य तीव्र गति उत्पन्न हो सके।

विभाजक दीवारें सामान्यत कक्रीट अथवा चिनाई की बनाई जाती हैं ये ऊपर से पाँच सात फुट चौडी होती हैं और नीचे की ओर आवश्यकतानुसार चौडी की जाती हैं। अभिकल्प के समय निम्नलिखित दो दशाओ को ध्यान में रखना आवश्यक है :

(क) तलकपाट की ओर पूर्ण सरोवर स्तर (full pond level) तक गाद भरी है और नदी मे जल निम्न स्तर पर है या नही।

(ख) बाढ़ के समय विभाजक दीवार के दोनो ओर के जलस्तर मे तीन फुट का अतर हो।

७ नहर-शीर्ष-नियामक (Canal Head Regulator) — आवश्यकतानुसार नहर मे निस्सार को नियन्त्रित करना, बाढ के समय नहर को बद करना तथा नहर मे जानेवाले जल मे गाद की मात्रा पर नियत्रण करना — मुख्यत इन उद्देश्यो के लिये नहर-शीर्ष-नियामक का अभिकल्प किया जाता है।

गाद पर नियत्रण रखने के लिये नहर शीर्ष की टक्कर तलकपाट की टक्कर से कम से कम चार फुट ऊँची होनी चाहिए और यदि बराज मे गाद अपवर्जक (silt excluder) भी बनाना हो, तो छह सात फुट ऊँची होनी चाहिए।

नहर शीर्ष की टक्कर तथा बराज के सरोवरस्तर के अतर से प्रति फुट जलमार्ग के लिये निस्सार का हिसाब लगाया जा सकता है और नहर के पूर्ण निस्सार (full discharge) के लिये आवश्यक जलमार्ग की चौडाई निकाली जा सकती है। यह कही कही नहर
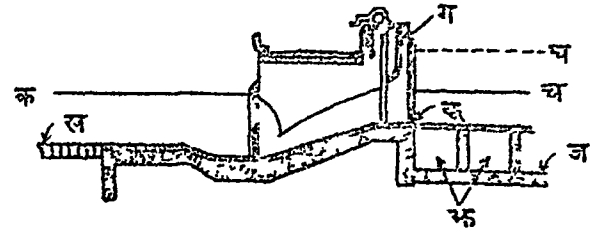
चित्र २. नहर-शीर्ष-नियामक की प्रतिरूपी आकृति

क नहर का पूर्ण विस्तार, ख नहर की तली, ग वक्ष दीवार, घ अधिकतम बाढ स्तर, च. सरोवर-स्तर, छ टक्कर, ज तलकपाट-फर्श तथा झ गाद अपवर्जक सुरगें।

की चौडाई से अधिक भी हो सकता है, जिसको नहर की सामान्य चौडाई से पुश्तो द्वारा मिलाया जाता हैं।

निस्सार नियत्रण करने के लिये इसमे २०–२५ फुट तक चौडे दर बनाकर फाटक लगाए जाते हैं। नहर-शीर्ष-नियामक की एक प्रतिरूपी आकृति चित्र २. मे दी गई है।

८ उफान बाँध (Afflux Bunds) — बराज के ऊपर व नीचे की ओर, बाढ के अधिकतम स्तर से लगभग चार छह फुट ऊँचे, उफान बाँध दोनो किनारो पर बनाए जाते हैं, जो नदी के किनारे किनारे इतनी दूर तक ले जाए जाते हैं कि बराज के आस पास की आबादी और भूमि जलमग्न न हो और बराज को छोड कर दूसरे मार्ग पर नदी के बहने की सभावना न हो। ये बाँध स्थानीय मिट्टी के ही बनाए जाते हैं और मजबूती के लिये ऊपर से आवश्यकतानुसार पत्थर जड दिए जाते हैं।

९ पुल (Bridges) — बराज के पायो पर कम से कम एक पुल तो अवश्य ही होता है, जिसपर से फाटको को उठानेवाले यत्रो को चलाने के लिये आया जाया जा सकता है। यदि बराज के पास से कोई महत्वपूर्ण सडक अथवा रेलवे लाइन जाती हो और आवश्यक हो, तो इसके पायो को थोडा और बढाकर सडक अथवा रेल का पुल भी बनाया जा सकता है।

१० नदी नियन्त्रण संबंधी कार्य (River Training Work) — बराज के ऊपर तथा नीचे नदी सीधी ही बहती रहे और घूम कर बराज से हट कर न बहने लगे, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये नियामक बाँध (guide bunds) बनाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त बराज के ऊपर की ओर सीमांत बाँध (marginal bunds) बनाए जाते हैं। ये सीमांत बाँध वहा तक बनाने आवश्यक हैं जहाँ तक नये बाढ़-स्तर का असर जाता है और तटों का स्तर काफी ऊँचा मिल जाता है। इन सीमांत बाँधों के बचाव के लिये छोटे छोटे बाँध या ठोकर (spurs) सीमांत बाँधों से नदी की ओर निकाले जाते हैं, जिनसे नदी का प्रवाह सीमांत बाँधों से दूर नदी के बीच में ही रहे।

संसार में बहुत से देशों में भिन्न भिन्न आकार तथा अभिकल्प के बराज बने हुए हैं। भारत में विभाजन के पूर्व सिंध में सक्कर बराज का निर्माण हुआ। उत्तर प्रदेश में शारदा नदी पर बनबसा पर एक बड़ा बराज प्रथम महायुद्ध के बाद बनाया गया, जहाँ से शारदा नहर निकलती है। बाद में इस नहर पर पनबिजलीघर भी बनाया गया है।

इधर पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत बहुत से बराज भारत के भिन्न भिन्न भागों में बनाए जा रहे हैं, जैसे बिहार प्रदेश में सोन
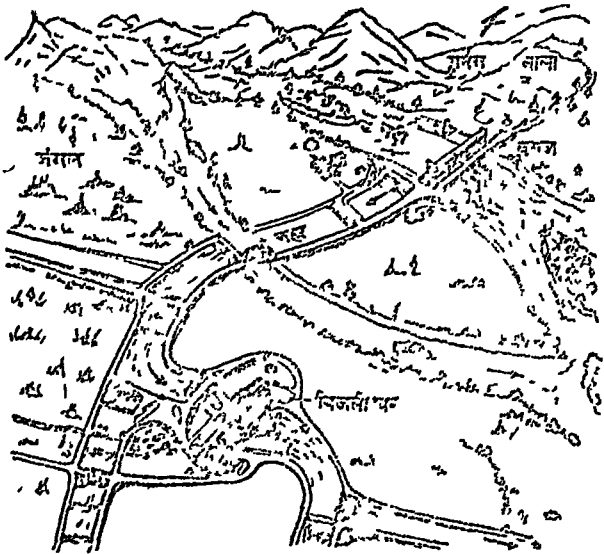
चित्र ३. शारदा बराज का विहंगम दृश्य

नदी पर पुराने वीयर की जगह नए बराज का निर्माण हुआ है। बंगाल में फराका पर गंगा नदी पर एक महान् बराज बन रहा है। दामोदर घाटी योजना के अंतर्गत दुर्गापुर के समीप बड़ा बराज बना है। यमुना पर डाकपत्थर (देहरादून) में एक बराज का निर्माण पनबिजलीघरों के संचालन के हेतु हुआ है।

इनके अतिरिक्त छोटे बड़े बहुत से बराज बने हुए हैं, अथवा बन रहे हैं। यह स्पष्ट है कि विकास के लिये नदी में स्थित अवरोधों को बराज में बदल देना सही कदम है। इसी कारण पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत नदी नियमन के इस सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया गया है और इतनी प्रगति हुई है। [वा० ना०]

बरुंडी (Burundi) मध्य अफ्रीका में, भूमध्यरेखा के कुछ दक्षिण में टैंगैन्यिका झील के किनारे स्थित एक स्वतंत्र राष्ट्र है। इसके उत्तर में रुआंडा, दक्षिण एवं पूर्व में टैंगैन्यिका तथा पश्चिम में कांगो है। इसका क्षेत्रफल १०,७४७ वर्ग मील तथा जनसंख्या २३,९३,७२४ (१९६१) थी। यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय है। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ फ्रेंच तथा किरुंडी है। यहाँ की राजधानी ऊसुंबरा है। सन् १९६२ में स्वतंत्रताप्राप्ति के पहले यह रुआंडा ऊरुंटी के बेल्जियन यू० एन० ट्रस्ट टेरिटरी का भाग था। कृषि प्रमुख उद्योग है। इसके अंतर्गत कॉफी तथा कपास उगाया जाता है। उद्योगों तथा रेलों की कम उन्नति हुई है। यहाँ सड़कें तथा एक अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। शिक्षा निःशुल्क है।

बरेलवी, सैय्यद अहमद शहीद जन्म रायबरेली जिले में १२०१ हि० (१७८६ ई०) में हुआ। पढ़ने लिखने से उन्हें रुचि न थी। युवावस्था में पिता की मृत्यु के कारण वह लखनऊ और वहाँ से दिल्ली पहुँचे। वहाँ वह शाह वलीउल्लाह के पुत्र शाह अब्दुल अजीज तथा शाह अब्दुल कादिर के शिष्य हो गए। दो साल वहाँ रहकर लगभग २२ वर्ष की अवस्था में वह रायबरेली लौट आए किंतु दो वर्ष बाद मालवा पहुँचकर अमीर खाँ पिंडारी की सेना के सवारों में भरती हो गए और गोरिल्ला युद्ध की कला सीखी। १८१७ ई० में अमीर खाँ द्वारा अंग्रेजों से संधि करने तथा टोंक का नवाब बन जाने के कारण वह दिल्ली लौट आए। शाह अब्दुल अजीज ने अपने भतीजे शाह इस्माईल शहीद और अपने जामाता मौलवी अब्दुल हयी को इनका शिष्य बना दिया। वह हिंदुस्तान के सुन्नियों के उन धार्मिक एवं सामाजिक दोषों को दूर करने पर कटिबद्ध हुए जो उनके विचार से हिंदुओं एवं ईरानियों के कुप्रभाव के परिणामस्वरूप थे। विधवाओं के विवाह पर उन्होंने बड़ा जोर दिया। मुहर्रम, ताजिया और सूफी संतों की कब्रों के आदर-सम्मान से, उनकी राय में, इस्लाम तबाह हो रहा था। वे इन खराबियों के विरुद्ध जिहाद करने के लिए खड़े हो गए। बहुत से सुन्नी मुसलमान जिनकी आर्थिक दशा अंग्रेजों के शासन काल में बिगड़ गई थी, धर्म सँभालने के उद्देश्य से इनके सहायक हो गए। १८२१ ई० में वह कलकत्ता होते हुए १८२२ ई० में मक्का पहुँचे। वहाँ उनका वहाबी नेताओं से भी संपर्क हुआ। सूफी मत का अब्दुल वह्हाब खंडन कर चुके थे, सैय्यद उसे किसी भी दशा में छोड़ नहीं सकते थे। अतः जिन सुधारों के लिये वह कमर कस चुके थे, उन्हें आगे बढ़ाने के अतिरिक्त वह वहाबियों से अधिक न सीख सके। किंतु वहाबियों के कताल (हिंसा द्वारा शरीअत के शुद्धतम रूप का प्रचार) के समान जेहाद का झंडा हिंदुस्तान आकर ऊँचा किया। १८२४ ई० में वह हिंदुस्तान लौट आए। शाह अब्दुल अजीज भारतवर्ष को दारुल हर्ब अथवा वह स्थान घोषित कर चुके थे जिसमें मुसलमानों के लिये कोई शांति नहीं। इसकी व्याख्या सैयद ने अपने एक पत्र में इस प्रकार की है — 'हिंद तथा फिरंग के काफिरों ने हिंदुस्तान पर अधिकार जमा लिया है। अतः इसे उन लोगों के हाथ से छुड़ाना सभी मुसलमानों के लिये अनिवार्य है।' उनके शिष्य मौलाना इस्माईल शहीद ने अमीर खाँ के उत्तराधिकारी वजीरुद्दौला को फटकारते हुए लिखा —

'यह न समझना चाहिए कि हमारे गुरु इतनी ही सेना से लाहौर से कलकत्ता तक विजय कर लेंगे अपितु उनकी सेना मे नित्य प्रति वृद्धि होती रहेगी। उदाहरण के लिये नादिरशाह ने एक साधारण स्थिति से उन्नति करके किस प्रकार हिंदुस्तान पर अधिकार जमा लिया था।

जनवरी, १८२६ ई० मे वह हिंदुस्तान से सिखो तथा फिरगियो की सत्ता समाप्त करने के लिये हिंदुस्तानी मुसलमानो की एक सेना लेकर भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा की ओर चल खडे हुए। दिसबर, १८२६ ई० मे नवशहरा पहुँचकर राजा रणजीत सिंह को चुनौती दी। जनवरी, १८२७ ई० को इस्लाम का शुद्धतम रूप स्थापित करने के लिये इमाम की उपाधि धारण कर ली। हिरात, बुखारा तथा आसपास के शासको के कान खडे हुए। कबीलो मे विधवा विवाह के प्रचार तथा उनके उत्साही हिंदुस्तानी मुसलमानो का विरोध होने लगा। पेशावर के यारमुहम्मद ने रणजीतसिंह से मिलकर मुजाहिदो का मुकाबला किया। कबीलो तथा सैयद साहब के सहायको मे छोटी मोटी अनेक झडपें हुईं। ६ मई, १८३१ ई० को बालाकोट के युद्ध मे शेर सिंह की सेना ने सैय्यद के जिहाद आदोलन को बुरी तरह कुचल कर उनकी हत्या कर दी। उनके शव को जला डाला। शाह ईस्माईल भी इसी युद्ध मे मारे गए और इस आदोलन का एक रूप समाप्त हो गया।

स० ग्र०—(फारसी) सैयद अहमद शहीद के पत्र (ब्रिटिश म्यूजियम), मखजने अहमदी (ब्रि० म्यू०), फतावाए शाह अब्दुल अजीज, (उर्दू) सैयद अबुल हसन अली नदवी सिराते मुस्तकीम, सैयद साहब की रचनाओ तथा अन्य ग्रथों की सूची के लिये देखिए, गुलाम रसूल मेहर, सैयद अहमद शहीद। [सै० अ० अ० रि०]

बरेली १ जिला, स्थिति २८° १' से २८° ५४' उ० अ० तथा ७८° ५८' से ७९° ४७' पू०दे०। यह उत्तर प्रदेश का जिला है जो उत्तर मे नैनीताल, पूर्व मे पीलीभीत और शाहजहाँपुर, दक्षिण मे शाहजहाँपुर, और बदायूँ तथा पश्चिम मे बदायूँ से घिरा हुआ है। यहाँ की जमीन मे जलसतह काफी ऊपर है। रामगगा प्रमुख नदी है। बाँस के कुज गाँवो मे अधिक मिलते हैं। यहाँ का जलवायु अस्वास्थ्यकर है। वार्षिक वर्षा ४४" है। यहाँ की जनसख्या १४,७८,४६० (१९६१) तथा क्षेत्रफल १,५९१ वर्ग मील है। कृषि दक्षिणी भाग मे अधिक होती है, जिसमे धान गेहूँ, चना, बाजरा, मक्का, गन्ना आदि पैदा होते हैं।

२ नगर, स्थिति २८° २२' उ० अ० तथा ७९° २४' पू० दे०। पहले इसे बाँसबरेली कहा जाता था। यहाँ के निवासियो द्वारा अब भी यह इसी नाम से पुकारा जाता है। यह उस पठार पर स्थित है जो रामगगा की ओर क्रमश ऊँचा होता जाता है। नगर के समीप आइजटनगर का तथा रबर और दियासलाई के कारखानें हैं। पक्के मकान तथा चित्रकारीयुक्त मकान, हफीज रहमत खाँ का मकबरा, डफरिन अस्पताल, कारागृह आदि यहाँ की विशेषताएँ हैं। उद्योगो मे काष्ठ, बेंत तथा चीनी उद्योग मुख्य हैं। यहाँ की जनसख्या २,५४,४०९ (१९६१) थी।

बरोक (Baroque) बरोक एक पारिभाषिक शब्द है जिसका प्रयोग यूरोप की उस व्यापक कलाप्रवृत्ति को प्रदर्शित करने के लिये किया जाता है जो १६वी, १७वी तथा १८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक वहाँ के कलाजगत् मे प्रतिष्ठित रही। इस शब्द की व्युत्पत्ति स्पेनी भाषा के 'बैरुको' शब्द से है जिसका अर्थ होता है—एक बडा और बेडौल मोती। बरोक वस्तुत एक प्रतीक है, उस कला-प्रवृत्ति का जो अपने रूप मे विशाल तथा सिद्धात मे स्वच्छद और बधनमुक्त है। बरोक कला प्रकृति की अनगढता की अनुगामिनी है। १८वी शताब्दी मे चलकर इसे 'रोकाको' की सज्ञा प्रदान की गई।

स्थापत्य सबधी बरोक कलाकारो मे लोरेंजो, बरनीनी (१५९८—१६८०) तथा फ्रासिस्को बोरोमिनी की गणना है, मूर्तिकारो मे लोरेंजो बरनीनी, चित्रकारो मे पिएट्रो बर्टीनी दी कोर्टोना (१५९६—१६६९) की। [शु० त्रि०]

बरौनी कुछ वर्ष पूर्व तक बरौनी पूर्वोत्तर रेलवे का एक सामान्य जकशन स्टेशन मात्र था, पर आज यहाँ एक बहुत बडा औद्योगिक नगर बस गया है। इस नगर के बसने का कारण पेट्रोलियम तेल के शोध करने का कारखाना है। इस कारखाने का पहला क्रम ४२ करोड रुपए लागत से बन चुका है और जुलाई, १९६४, से चालू भी हो गया है। इसके लिये कच्चा तेल नहरकटिया और मोरेन से आता है। सार्वजनिक क्षेत्र मे यह दूसरी परिष्करणशाला है। पहला शोध कारखाना असम के नूनमाट्टी मे है, जिसकी धारिता ७,५०,००० टन है और जो १९६२ ई० की पहली जनवरी को चालू हो गया था। बरौनी सयत्र मे दस लाख टन तेल का परिष्कार हो सकता है। पेट्रोलियम की माँग इधर बहुत बढ गई है और दिन दिन बढ रही है। १९६२ ई० मे ७६ करोड, १९६३ ई० मे लगभग ८८ करोड और १९६४ ई० मे १०४५ करोड रुपए का कच्चा तेल और अन्य उत्पाद बाहर से भारत मे आए। कच्चा तेल नहरकटिया और मोरान मे निकाला जाता है। वहाँ से १६ इंच व्यास के नल द्वारा २७० मील चलकर गवहाटी आता है और गवहाटी से १४ इच व्यास के नल द्वारा ४५० मील चलकर बरौनी पहुँचता है। इस कारखाने की स्थापना मे रूस ने सहायता दी है। इसके लिये १९५९ ई० में भारत और रूस के बीच सधि हुई थी और इसका अतिम रूप १९६१ ई० मे निश्चित हुआ था। रूस ने मशीनो और विशेषज्ञो से सहायता दी। इसके लिये सोवियत सरकार ने १३५० करोड रुपए का ऋण दिया है। ऋण को १२ वर्ष मे बराबर किश्तो मे अदा करना है। इस कारखाने का विस्तार भी हो रहा है। यह कारखाना लगभग ८३० एकड भूमि मे फैला हुआ है। इसमे २० लाख टन तेल का शोधन प्रति वर्ष हो सकता है। तेल के अतिरिक्त वायुयान के लिये पेट्रोल, पेट्रोलियम गैस, स्नेहक, बिटुमिन और कोक भी उत्पाद के रूप मे प्राप्त होते हैं। यहाँ वायुमडलीय दबाव और निर्वात दोनो अवस्थाओ मे कच्चे तेल का आसवन होता है और उससे प्राप्त उत्पादो के परिष्कार की पूर्ण व्यवस्था है। कच्चे और परिष्कृत तेलो के रखने के लिये बहुत बडी बडी टकियाँ बनी हुई हैं, जिनमे एक मास तक उत्पाद रखे जा सकते हैं। इसके साथ साथ अनेक दूसरे कारखाने भी यहाँ खुल रहे हैं, जिनमे से एक कारखाना उर्वरक तैयार करने का और दूसरा पेट्रो-केमिकल्स तैयार करने का है।

वर्कले, जार्ज (१६८५–१७५३) वर्कले का जन्म १२ मार्च, १६८५ को डाइसर्ट, फिलकैनी (आयरलैंड) में हुआ था। ११ वर्ष की उम्र मे इन्होंने फिलकैनी स्कूल मे प्रवेश किया और चार वर्ष उपरात ये ट्रिनिटी कालेज (डबलिन) चले गए। वहाँ अडरग्रे जुएट, ग्रे जुएट, फेलो और टयूटर रहे। सन् १७१३ मे लदन चले गए। वहाँ स्विफ्ट, स्टील, एडीसन और पोप से उनका परिचय हुआ। उन्होने आठ वर्ष इग्लैंड और यूरोप का भ्रमण करने मे व्यतीत किए। भ्रमण से लौटने पर वह पहले ड्रोमोर और फिर डेरी के डीन पद पर प्रतिष्ठित हुए। सेवा और परोपकार की भावना से प्रेरित होकर उन्होने त्यागपत्र दे दिया और अमरीका चले गए। किंतु इग्लैंड की सरकार से स्वीकृत धन भी न मिलने पर वह निराश होकर अपने देश लौट आए। १७३४ मे उन्होने क्लोन का विशप वनना स्वीकार कर लिया और उसी साधारण पद पर रहकर दार्शनिक चिंतन करते रहे। समय समय पर उन्होने लेख और पुस्तकें लिखीं और उन्हें प्रकाशित कराया। वृद्धावस्था मे वर्कले विश्राम हेतु आक्सफोर्ड चले गए और कुछ महीनो वाद वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

वर्कले ने अपनी मुख्य रचनाएँ जीवन के प्रारंभिक काल मे ही की थीं। 'ऐन एसे टुवर्ड्स ए न्यू थ्योरी आव विजन' (१७०९), 'ट्रीटीज कन्सर्निंग दि प्रिंसिपल्स ऑव ह्यूमन नॉलेज' (१७१०), 'थ्री डायलॉग्स विटवीन हेलस ऐंड फिलोनस' (१७१३), 'डी मोटू' (१७२०) 'अल्सीफ्रोन' अथवा 'मायनूट फिलासफर' (१७३२) और सीरिस 'ए चेन ऑव फिलासोफिकल रिफ्लेक्शस' (१७४४) नामक ग्र थ लिखे।

ज्ञानमीमासा पर विचार करते हुए वर्कले इस निर्णय पर पहुचे कि अमूर्त प्रत्यय का कोई अस्तित्व नही है। अनुभव मे आनेवाली वस्तुओ के सामान्य गुणो का सकेत करनेवाले शब्द केवल नाम हैं। उनसे किसी वास्तविक सत्ता का वोध नही होता है। हमारे अनुभव में जो ज्ञान आता है वह विशेष का ही होता है। शब्द तो प्रत्ययों के प्रतीक मात्र हैं। शब्द को ही प्रत्यय मान लेना भारी भूल है। वर्कले के मत में अमूर्त प्रत्यय या सामान्य केवल नाम हैं (दे० 'ज्ञानमीमासा')।

वर्कले ने अपने पूर्वगामी दार्शनिक जॉन लॉक के अनुभववाद को अधिक प्रकर्ष प्रदान किया। लॉक ने एक ऐसे आधार की सत्ता मानी थी जिसमें भौतिक वस्तुओ के गुण अवस्थित रहते हैं। उसका प्रत्यक्ष अनुभव नही होता, फिर भी उसका अस्तित्व अवश्य है। वर्कले ने इसे स्वीकार नहीं किया। लॉक का विश्वास था कि मूल या मुख्य गुणो की सत्ता द्रष्टा से स्वतत्र और भिन्न है, इसलिये उन गुणों का अवलव द्रव भी वाहर होना चाहिए। वर्कले ने युक्ति द्वारा प्राथमिक और द्वितीयक गुणों के भेद का खडन किया और सभी गुणो को मनस्-अवलवित सिद्ध करने का प्रयत्न किया। अत उन्होने पदार्थ या वस्तु का भी स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार नही किया।

वर्कले का यह कथन प्रसिद्ध है कि 'अस्तित्व का अर्थ है प्रतीति का विषय होना।' कोई वस्तु है, इसका यही आशय है कि कोई व्यक्ति (आत्मा या परमात्मा) उसे देखता, सुनता या अन्य रूप से उसका अनुभव करता है। जो वस्तु अनुभव मे नही आती उसकी सत्ता का कोई प्रमाण नहीं है। यदि अनुभव का परीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि हमारे प्रत्यय ही अनुभव के विषय हैं। इसलिये प्रत्यय और प्रत्यय का अधिष्ठान दो का ही अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है। लॉक के विपरीत वर्कले प्रत्यय को वस्तु जगत् की प्रतिलिपि नही मानते हैं।

निष्क्रिय प्रत्ययों के अतिरिक्त वर्कले एक क्रियाशील पदार्थ अर्थात् आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं। आत्मा के द्वारा अनुभव ग्रहण किए जाते हैं और वेदनाओं की प्रतीति होती है। आत्मा का विशेष प्रकार से अतर्वोध प्राप्त होना है।

यद्यपि ससार की वस्तुओ की भाँति ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव नही होता है तथापि विशेष होने के नाते वर्कले ईश्वर की सत्ता मानते हैं। हमारे मनस् ने प्रत्ययों का एक विशेष क्रम से उत्पन्न होने का कारण ईश्वर ही है। ईश्वर आत्मरूप है। वह हमारी आत्मा मे प्रत्यय उत्पन्न करता है। ईश्वर की सत्ता को मानकर वर्कले ने अपनी दार्शनिक पद्धति को सर्वाहवाद के गड्ढे मे गिरने मे वचा लिया है। [हृ० ना० मि०]

वर्केनहेड, लॉर्ड —— प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ इसका पूरा नाम फ्रेडरिक एडविन स्मिथ था। इसका जन्म १२ जुलाई, सन् १८७२ को वर्केनहेड मे हुआ था और मृत्यु ३० सितंवर, १९३० को हुई। अपने जीवनयापन के लिये फ्रेडरिक ने सन् १८९९ मे वकालत आरभ की। कुछ दिन 'ग्रेज इन' मे कार्य करने के वाद सन् १९०६ में वह वॉल्टन से पार्लमेंट का सदस्य चुना गया। वर्केनहेड की ख्याति वढती ही जा रही थी। उसकी योग्यता के पुरस्कार स्वरूप सन् १९११ मे उसे प्रिवी काउंसिल का सदस्य चुना गया। सन् १९१९ मे उसे लॉर्ड चासलर वनने का अवसर प्राप्त हुआ। उसे अनुदारवादियो की 'शैडो कैविनेट' का सदस्य स्वीकार कर लिया गया था।

इस समय आयरलैंड मे वडी अशाति फैली थी। वहाँ के मामलो की देखभाल करने के लिये एडवर्ड कारसन को नियुक्त किया गया। वर्केनहेड कारसन का प्रमुख सहकारी था। अल्सटर मे अशाति दवाने के सवध मे वर्केनहेड ने कारसन की काफी सहायता की। प्रथम महायुद्ध का आरभ होते ही आयरलैंड का प्रश्न ठढा पड गया।

इसके वाद वर्केनहेड ने 'प्रेस व्यूरो' को सँभालने का कार्य स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वह भारतीय सेनाओं के साथ फ्रास चला गया और वहाँ सैनिक कानून के अतर्गत प्रशासन चलाने मे उसने अपूर्व योग्यता दिखाई। सन् १९१५ मे यह फ्रास से वापस वुलाकर 'सॉलिसिटर जनरल' वना दिया गया। उसके वाद कारसन के पद की अवधि समाप्त होने पर वह 'एटॉर्नी जनरल' वना दिया गया। इसी वर्ष (१९१५) उसे 'नाइट' की उपाधि दी गई। सन् १९१८ के चुनाव के वाद वह लॉर्ड चासलर वना दिया गया तथा उसे 'वाईकाउट वर्केनहेड' की उपाधि दी गई। यह सम्मान प्राप्त होने के कुछ समय पश्चात् उसे 'अर्ल' वना दिया गया और वह 'लॉर्ड वर्केनहेड' हो गया। [मि० च० पा०]

वर्गसाँ, हेनरी (१८५९–१९४१) फ्रास का प्रतिभावान् यहूदी दार्शनिक, अध्यापक, लेखक तथा वक्ता। वह पेरिस के 'रूये लामार्तिन' नामक स्थान पर, १८ अक्टूवर, १८५९ ई० को पैदा हुआ था।

नौ वर्ष की उम्र मे, अपने घर के समीप, 'लिकी कार्दाचेंत' नामक विद्यालय मे पढने गया। १८ वर्ष की उम्र तक वहाँ उसने विज्ञान, गणित और साहित्य का अध्ययन कर 'बचलर' की उपाधि प्राप्त की। उसकी प्रतिभा के लक्षण यहीं से प्रकट होने लगे थे। विद्यालय छोड़ने के वर्ष उसने गणित प्रतियोगिता मे भाग लेकर, किसी समस्या का इतना अच्छा हल दिया था कि उसके अध्यापकों ने उसे 'एनल्स द मैथमेतिक' मे प्रकाशित किया।

उक्त विद्यालय छोडने पर, वह उच्चस्तरीय अध्ययन के लिये, 'इकोले नार्मेल सुपीरियोर' मे भर्ती हुआ। साहित्य और विज्ञान मे समान रुचि के कारण, वहाँ उसने दर्शन विषय लिया। इससे उसे फ्रास के तीन जाने माने दार्शनिको से शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग मिला। ये दर्शन के इतिहास मे प्रसिद्ध आदर्शवादी रैवायजाँ, बोत्रो तथा जूल्स लैकेलिए थे। इनके सपर्क से उसे पदार्थवाद के विरुद्ध आदर्शवादी, अथवा प्रत्ययवादी तर्कों का ज्ञान हुआ। इसी समय उसने यूनानी दार्शनिको का अध्ययन किया, जिससे उसे पता चला कि दर्शन का द्वद्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। हेराक्लाइटस (५३५–४७५ ई० पू०) तथा जीनो (जन्म, ४८९ ई० पू०) ने उसका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। हैराक्लाइटस गति को ससार का मौलिक नियम मानता था। जीनो वही स्थान स्थिरता को देता है। हेराक्लाइटस की नदी निरतर बहती रहती है, उसमे कोई दो बार पैर नही डाल सकता। जीनो के लिये, उसके गुरु पार्मेनाइडीज की बताई हुई सत्ता एक सी रहती है, न कुछ बदलता है, न पैदा होता है, न नष्ट होता है। यही से हेनरी बर्गसाँ का माथा ठनका और उसने दर्शन तथा विज्ञान का गहन अध्ययन जारी रखने का सकल्प किया।

अपने इसी सकल्प के अनुरूप, 'इकोले नार्मेल' की शिक्षा समाप्त कर, वह अध्यापक के रूप में, 'लिकी ऐंजर्स' गया, जहाँ वह दो वर्ष रहा। फिर 'क्लेयरमाट' में अध्यापनकार्य करने चला गया। अब उसके विचारो मे प्रौढता आने लगी थी और 'क्लेयरमाट' के विद्यार्थी उसके सुबोध एव सरस व्याख्यानो से बहुत प्रभावित थे। हँसने के कारणो पर उसका वह सार्वजनिक भाषण, जो १९०० मे 'हास्य' (ले रायर) शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ, 'क्लेयरमाट' के अध्यापनकाल मे ही दिया गया था। यही उसने ल्यूक्रेटियस के ग्रथ का सपादन करते हुए, भूमिका मे काव्य और दर्शन के सबधो पर समुचित विचार प्रस्तुत कर यह स्पष्ट कर दिया था कि वह केवल कक्षा के दायरे मे घिरा हुआ दार्शनिक न था।

सन् १८८९ मे, उसने अपना शोध लेख 'लेस दॉन्नीज इमीजिएत्स् दे ला काशियस' प्रस्तुत किया और 'दॉक्तियर-एस्-लेतर्स' की उपाधि प्राप्त की। ग्रथ के रूप मे, उसका उक्त लेख, १८९६ में प्रकाशित हुआ। १९१० मे 'टाइम ऐंड फ्री विल' नाम से प्रकाशित पुस्तक इसी का अनुवाद है। इसी ग्रथ से बर्गसाँ का दृष्टिकोण दर्शन जिज्ञासुओ एव सामान्य पाठको के सामने आने लगा। उसने अनेकता (मल्टिप्लिसिटी), सत्ताकाल (ड्यूरेशन) तथा चेतना (काशसनेस) के दो दो पहलू प्रस्तुत किए। सामान्यत, अनेकता सख्यात्मक प्रतीत होती है, किंतु बर्गसाँ ने बताया कि आतरिक अनुभवो की अनेकता सख्यात्मक या परिमाणात्मक न होकर गुणात्मक ही हो सकती है। इसी प्रकार, सत्ताकाल अथवा वह समय जिसमें घटनाएँ घटित होती हैं निरवयव, अथवा एकरस (होमोजीनियस) मालूम होता है, किंतु वह सावयव है। प्रतीत निरवयवता का कारण बुद्धि है,जो घुले मिले अवयवो को अलग करके देखती है। चेतना की व्याख्या करते हुए उसने कहा कि वह चेतना, जो पृथक् अवस्थाओ मे विभाजित रहती है, सतही चेतना है। सत्य चेतना उससे नीचे रहती है। उसे क्षणो मे नही बाँटा जा सकता।

उक्त ग्रंथ के प्रकाशन से, हेनरी बर्गसाँ की ओर तत्कालीन विचारको का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्हे लगा कि काट के बाद, वह दर्शन की मौलिक समस्याओ पर एक नवीन दृष्टि डालने जा रहा था। इसी प्रभाव के फलस्वरूप, १८९८ मे उसे 'इकोले नार्मेल' मे स्थान मिला। उसी वर्ष, 'मैतियर एत मेम्वायर' प्रकाशित कर उसने अपनी नियुक्ति को उचित सिद्ध किया। बर्गसाँ का यह ग्रथ १९११ में 'मैटर ऐंड मेमोरी' नाम से अग्रेजी मे छपा। इसमे स्मृतिदोषो के अध्ययन के आधार पर, उसने 'मन और पदार्थ' के द्वैत की समस्या सरल करने का प्रयत्न किया। आधुनिक दर्शन की यह गहन समस्या थी। रीने द कार्ते (१५९६-१६५०) से लेकर इमैनुएल काट (१७२४-१८०४) तक सभी दार्शनिक माथापच्ची करते चले आ रहे थे, किंतु विवाद का अत काट के इस कथन से हुआ था कि मन और पदार्थ, अथवा प्रकृति मे ज्ञाता ज्ञेय सबध है, किंतु मन बुद्धि के द्वारा जानता है और बुद्धि के जानने के कुछ बँधे हुए तरीके हैं। इसलिये, वह अपनी ज्ञेय वस्तुओ को विद्रूप कर देती है। इससे व्यवहार और परमार्थ का भेद बराबर बना रहता है।

बर्गसाँ ने काट के मत को आशिक रूप से स्वीकार किया। उसने यह माना कि बुद्धि आतरिक सत्य को देश में रखकर ही जानती है। वह वस्तुओं का चारों ओर से निरीक्षण करती है और उनके विविध पक्षो का, एक एक कर परिगणन करती है। तब, सभी पक्षों को मिलाकर पूर्ण का चित्र बनाना चाहती है। ज्ञान की यह विधि पर्याप्त नही है, क्योकि प्रकृति का सत्य स्थिर नही, प्रवहमान सत्य है। वह एक निरतर परिवर्तन है, जो प्रति क्षण नवीनताएँ उद्घाटित करता रहता है। प्रकृति निर्जीव पदार्थ नही, वह जीवन से ओतप्रोत है। पदार्थ वह लावा है, जिसे उफनाती हुई जीवनशक्ति बाहर फेंक देती है। प्रकृति का सार यही जीवनशक्ति है, जो एक निरतरता है। स्मृति के छिछले अध्ययन से भूत और वर्तमान का अतर सिद्ध होता है, किंतु सूक्ष्म अध्ययन से मालूम होता है कि स्मृति भूत के केवल उन अशो को ही प्रस्तुत करती है, जो वर्तमान क्रिया के लिये आवश्यक हैं। सपूर्ण सत्य का ज्ञान अतर्दृष्टि से होता है, जो जीवन की धारा की ही भाँति प्रवहमान अनुभव है, अपरोक्षानुभूति है, सहानुभूतिक ज्ञान है।

बर्गसाँ की ख्याति और बढी। काट के मत से उत्पन्न अज्ञेयता को उसने अवास्तविक सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। सन् १९०० ई० मे, उसे 'कालेज द फ्रास' मे यूनानी दर्शन का अध्यापक नियुक्त किया गया। वही कुछ समय बाद, वह प्रसिद्ध दार्शनिक एव समाजशास्त्री, टार्डी के स्थान पर, आधुनिक दर्शन का अध्यापक हुआ। अब, वह एक नवीन जीवनदर्शन का प्रणेता समझा जाने लगा था। उसके दार्शनिक लेख फ्रास से बाहर भी छप रहे थे। पूरे यूरोप की शिक्षित जनता उन्हें पढ़ रही थी।

सात वर्ष बाद, १९०७ मे वर्गसाँ की अति प्रसिद्ध पुस्तक 'एल एवोल्यूशन क्रियेत्रिस' छपी। इसका अंग्रेजी अनुवाद, 'क्रिएटिव एवोल्यूशन' १९११ मे प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक मे, उसने उसी दर्शन को, जिसे वह समय एव स्मृति सबधी समस्याओ के विवेचन से पिछले ग्रथो मे प्रतिपादित कर चुका था, जैविक विकास के विस्तृत अध्ययन के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। निष्कर्ष नवीन न होने पर भी, पुस्तक बहुत रुचिकर है, जीव जतुओ के प्रचुर उदाहरण पुस्तक को मानव मन के बहुत समीप ला देते हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद, १४ वर्ष वर्गसाँ अध्यापन के अतिरिक्त, यूरोप और अमरीका के विभिन्न नगरो मे, समय समय पर, भाषण देता रहा। सन् १९२१ मे, उसने कालेज से इस्तीफा दे दिया। किंतु 'आनरेरी अध्यापक के रूप मे कालेज से उसका संबध सन् १९४० तक बना रहा। वह अब सार्वजनिकहित के कार्यो मे अधिक रुचि लेने लगा था। कई अतरराष्ट्रीय सहयोग समितियो मे उसने काम किया। सन् १९२७ मे उसे साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। किंतु इसके बाद, कुछ वर्षों तक वह ऐसी चुप्पी साध गया कि लोगो ने समझा वह अपना काम समाप्त कर चुका था।

एकाएक, सन् १९३२ मे, 'लेस् दिअक्स् सोर्सेज द ला मोरेल एत द ला रेलीजन' पुस्तक प्रकाशित हुई और तब पता चला कि वह मौन साध कर धर्म और नैतिकता की समस्याओ पर विचार कर रहा था। इस प्रसग मे भी उसने अपनी दर्शनवाली नीति से काम लिया। उसने दिखाया कि दो तरह के धर्म हैं, दो तरह की नैतिकता है। 'बद' समाजो मे धर्म और नैतिकता एक बाहरी दबाव है, किंतु 'खुले' समाजों में, वह स्वतत्र मानव का आचरण है, रचनात्मक सहजता है।

लगभग सन् १९३३ से वर्गसाँ का कैथलिक धर्म की ओर झुकाव जाहिर होने लगा था। फ्रास के धर्माधिकारी इसे हेय दृष्टि से देखते थे। फ्रास की सरकार यहूदियो के प्रति द्वेषपूर्ण नीति से काम लेने लगी थी। वर्गसाँ चाहता तो वह फ्रासीसी-यहूदी समस्या से अलग बना रहता, क्योकि उसके समान के अनुरूप, सरकार उसके प्रति अपनी नीति शिथिल करने के लिये तैयार थी। किंतु वर्गसाँ ने अत्याचारियो का साथ देने के बजाय उत्पीडितो में रहना पसद किया। सन् १९४० मे जब 'विशी' सरकार ने यहूदियो को अपने पद त्याग देने का आदेश दिया, तो वर्गसाँ ने भी 'कालेज द फ्रास' से अपने नाममात्र के सबध को तोड लिया। फिर उसी वर्ष, दिसबर मे, जब यहूदियों को अपने नाम पजीकृत कराने का आदेश दिया गया, तो वह भी, एक साधारण यहूदी की भाँति, रजिस्ट्रेशन आफिस के सामने कई घटे तक अपनी पारी आने की प्रतीक्षा करता रहा। वर्गसाँ की आयु इस समय ८१ वर्ष थी। वह दिसबर की कडी सर्दी बर्दाश्त न कर सका। कई दिन तक वह चारपाई पर पडा रहा और ४ जनवरी, सन् १९४१ को उसका देहावसान हो गया। किंतु उसका दर्शन यूरोपीय कहानियो और उपन्यासो मे अब भी जीवित है और अंग्रेज़ी के माध्यम मे उसे हम भी जानते है।

वह किसी नवीन सप्रदाय का जन्मदाता न था। पर प्रचलित व्याख्याओं को एकागी और अपर्याप्त दिखाकर उसने भावी चिंतन का मार्ग प्रशस्त करने की चेष्टा कर बहुत बडा काम किया था। बुद्धिवादियो को उसने बताया कि उनके विश्लेषण मात्र व्यावहारिक एव सतही थे। उन्हे अपरोक्षानुभव, अतर्दृष्टि, अथवा महानुभूतिक ज्ञान से काम लेने की आवश्यकता थी। यथार्थवादियो को बताया कि उन्हे बाह्य पदार्थ ही नहीं, प्रकृति की जीवनीशक्ति या अपने आतरिक अनुभवो को भी महत्व देना चाहिए और अधिक महत्व देना चाहिए। हेराक्लाइटस् और विलियम जेम्स को एक साथ रखकर, उसने बाह्य और आतरिक प्रवाह की एकता स्थापित करते हुए अपने निरतरता के सिद्धात से, जीवनधारा या चेतना की धारा के क्षणों को विलग होने से बचा लिया। सचमुच उसने इतना ही कहा कि एक जीवन क्षण निरतर नवीन होता रहता है और इसे हम आतरिक अनुभव मे पा सकते हैं। उसके दर्शन का सार 'इट्रोडक्शन टु मेटाफिजिक्स' से ग्रहण किया जा सकता है। यह उसके एक लेख का अनुवाद है, जो १९०३ मे 'रिव्यू द मेताफिजिक' में छपा था।

[शि० म०]

वर्ज़ीलियस, जॉन्स जैकब (Berzelius, Jons Jacob, Baron, सन् १७७९–१८४८) स्वीडन निवासी रसायनज्ञ थे। इनका जन्म वैफवरसु डा (Valversunda) स्थान पर हुआ था। इन्होंने उपसाला विश्वविद्यालय मे अध्ययन किया। १८०२ ई० मे स्टॉकहोम विश्वविद्यालय मे औषध रसायन और वनस्पति विज्ञान के सहायक अध्यापक तथा १८०७ ई० मे इन विषयो के प्रोफेसर नियुक्त हुए। स्टॉकहोम के चिरुगिको मेडिकल इन्स्टिटयूट (Chirugico Medical Institute) में ये रसायन विज्ञान के प्रोफेसर हो गए। यहाँ इन्होने अपनी एक छोटी सी प्रयोगशाला खोल रखी थी, जिसमे इन्होंने अपना अनुसधान कार्य आरभ किया और शिष्यो को प्रोत्साहित करने लगे। १८१८ ई० मे ये स्टॉकहोम अकादमी के स्थायी सचिव नियुक्त हुए। १८३२ ई० मे इन्होने अवकाश ग्रहणकर ग्रथलेखन प्रारभ किया। १८३५ ई० मे राजा चार्ल्स चतुर्दश ने इन्हे बैरन की उपाधि दी।

वर्ज़ीलियस का कार्य विविध क्षेत्रो मे है। इनकी हार्दिक आकाक्षा परमाणुवाद की सस्थापना थी। वे चाहते थे कि रसायन शास्त्र की प्रत्येक शाखा मे द्वैत भाव प्रचलित हो जाय। इन्होने सयोजी भार निकालने के यथार्थ प्रयत्न किए तथा रसायनशास्त्र की विश्लेषण और परीक्षण पद्धतियो में सुधार किए। इन्होंने प्रदर्शित किया कि रासायनिक अनुपातो के नियम कार्बनिक पदार्थो और खनिजो मे भी लागू होते हैं। इन्होने १८०३ ई० मे सीरिया और सीरियम की, १८१७ ई० मे सेलीनियम की एव १८२८ ई० मे थोरियम की खोज की। १८१० ई० मे सिलिकन, १८२४ ई० मे जिर्कोनियम और १८२५ ई० मे टाइटेनियम, तत्वावस्था में प्राप्त किए। टाइटेनियम, जिर्कोनियम, थोरियम, क्रोमियम, मॉलिब्डेनम, टग्सटन, यूरेनियम, वैनेडियम आदि दुर्लभ धातुओ के यौगिकों पर बर्ज़ीलियस ने विस्तृत कार्य किया। १८११ ई० मे बर्ज़ीलियस ने कार्बनिक यौगिको के नामकरण एव सकेतसूत्रो की पद्धति प्रचलित की, जो बहुत कुछ अब भी मान्य है। १८१२ ई० मे इन्होने अपना विद्युत् रासायनिक सिद्धात (द्वैत सिद्धात) प्रतिपादित किया। इसके अनुसार प्रत्येक लवण या यौगिक के दो भाग होते हैं, एक ऋणात्मक और दूसरा धनात्मक

अथवा एक गम्लीय और दूसरा क्षारीय भाग। १८१७ ई० मे बर्ज़ीलियस ने तत्वो के यथार्थ परमाणुभारो की एक तालिका तैयार की, जिसमे १८२६ ई० मे इन्होंने कुछ और सुधार किए।

१८०७ ई० मे बर्ज़ीलियस ने सैरकोलैक्टिक अम्ल की, १८३२ ई० मे रैसेमिक अम्ल की और १८३५ ई० मे पाइरूविक अम्ल की खोज की। अन्य अनेक कार्बनिक यौगिको पर भी उन्होने कार्य किया। १८३१ ई० मे इन्होने समावयवता, बहुअवयवता और मितावयवता के भेदो को प्रदर्शित किया। १८३४ ई० मे किण्वन क्रिया के सबध मे सपर्क सिद्धात प्रस्तुत किया। बर्ज़ीलियस ने रसायनशालाओ के उपकरणो मे भी सुधार किया। रबर की नलियों, जल-ऊष्मको, और भारात्मक निस्यद पत्रो (फिल्टर पेपरो) का प्रचलन इन्होंने ही किया। विश्लेषण विधियो मे सुहागा परीक्षण, कोबॉल्ट परीक्षण और धमनी या ब्लोपाइप वाले परीक्षणो के लिये भी हम बर्ज़ीलियस के ऋणी हैं। जब तक वह जीवित रहे रसायनशास्त्र के क्षेत्र मे उनका नेतृत्व बराबर माना जाता रहा। [सत्य० प्र०]

वर्टन, रिचर्ड फ्रांसिस, सर (Burton, Richard Francis, Sir, सन् १८२१-१८९०) ब्रिटेन के प्रसिद्ध समन्वेषक तथा पौर्वात्यविद्या शास्त्री का जन्म बर्हम हाउस, हर्टफोर्डशिर, इग्लैंड मे हुआ था। इनकी शिक्षा दीक्षा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे हुई। १८४२ ई० मे वे सर चार्ल्स नेपियर के अधीन ईस्ट इडिया कपनी की सेना मे भर्ती हो गए और उन्हे भारत भेज दिया गया।

सन् १८५३ मे पठान के वेष मे उन्होंने अरब का भ्रमण किया, जिसका वृत्तात उन्होने अपनी पुस्तक 'एल मदीना तथा मक्का की धार्मिक यात्रा का व्यक्तिगत निबंध' (सन् १८५५) मे दिया है। जॉन हैनिंग स्पेक के साथ वे सोमालीलैंड गए। हरर नगर मे पहुंचनेवाले वे प्रथम श्वेत आदमी थे। सन् १८५६ में वे अफ्रीका लौटे और स्पेक के साथ नील नदी के स्रोत तथा टागान्यिका झील का पता लगाने के लिये यात्रा की, जिसका वर्णन 'भूमध्यरेखीय अफ्रीका के झील प्रदेश' (सन् १८६२) में उन्होने किया है। पश्चिमी अफ्रीका मे जब वे ब्रिटिश राजदूत थे (सन् १८६१-६५) उन्होने वियाफ्रा की खाडी (Bight of Biafra), कैमरून्स तथा डहोमी क्षेत्रो की खोज की। तदनतर ब्राज़ील, दमिश्क आयरलैंड, ट्रिएस्ट आदि क्षेत्रो एव स्थानो पर रहकर भ्रमण एव अन्वेषण सबधी प्रचुर अनुभव प्राप्त किए। इन्होने लगभग ५० पुस्तकें लिखी हैं। इनकी पुस्तक 'अरब की हजार रातें और एक रात' (सन् १८८५-१८८८) अलिफ लैला का अविकल अँगरेजी अनुवाद है। [का० ना० सिं०]

वर्टलो, पी० ई० एम० (Berthelot, P E M १८२७-१९०७ ई०) फ्रांसीसी रसायनज्ञ थे। इनका जन्म पैरिस मे हुआ था। इन्होने पहले इतिहास और दर्शन का अध्ययन किया, फिर विज्ञान की ओर इनकी रुचि बढी। सन् १८५१ में अध्यापक हो गए और शोधकार्य करते रहे। सन् १८५४ मे इन्होने डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। सन् १८५९ मे कार्बनिक रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए और इसके छह वर्ष बाद कॉलेज ऑव फ्रास के अध्यक्ष भी हो गए। पैस्टर की मृत्यु के अनतर ये ऐकैडमी ऑव सायसेज़ के स्थायी सचिव बने रहे।

वर्टलो ने कार्बनिक यौगिकों के सश्लेषण के सबध में अत्यत महत्व पूर्ण कार्य किए। इनके पहले वैज्ञानिको की यह धारणा थी कि प्रयोगशाला मे कार्बनिक यौगिको का निर्माण बिना जैवक्रिया (vital activity) के असभव है, किंतु इन्होंने हाइड्रोकार्बन, वसा, शर्करा तथा अन्य यौगिक बनाकर यह सिद्ध कर दिया कि ये सामान्य विधियो से तैयार किए जा सकते हैं। कार्बनिक यौगिको से सबधित इनके अनेक शोधपत्र प्रकाशित हुए।

इन्होने कुछ समय तक विस्फोटको पर भी कार्य किया। सन् १८७०-७१ मे ये फ्रास की वैज्ञानिक सुरक्षा समिति के अध्यक्ष भी रहे।

इन्होने अपने जीवन के अतिम वर्ष रसायन शास्त्र के इतिहास लिखने मे व्यतीत किये। इन्होंने कीमियागरी (alchemy) पर पाई जानेवाली प्राचीन ग्रीक तथा अरबी की पुस्तको का अनुवाद भी कराया और उन्हें कलेक्शन ऑव एशेंट ग्रीक केमिस्ट्स (Collection of Ancient Greek Chemists) नाम से सन् १८८७-८८ मे प्रकाशित किया। इन्होने और भी पुस्तकें लिखीं, जिनमे सायस एट फिलॉसोफी (Science et Philosophie) सन् १८८६ मे तथा ला रिवोल्यूशन शिमिक लेवॉज़ये (La Revolution Chimique Lavoisier) सन् १८९० मे लिखी गईं, अत्यत प्रसिद्ध हैं। [शि० गो० मि०]

वर्द्धमान १ जिला, स्थिति - २२° ५६' से २३° ५३' उ० अ० तथा ८६° ४८' से ८८° २५' पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी बगाल राज्य मे स्थित एक जिला एव उपमडल हैं। इसका क्षेत्रफल २,७१६ वर्ग मील तथा जनसख्या ३०,८२,८४६ (१९६१) है। इसके पूर्व मे नदिया, दक्षिण मे हुगली, पश्चिम मे बाँकुडा, और उत्तर मे बीरभूम जिले स्थित हैं। जिले का लगभग आधा भाग मैदान रूप मे है। भागीरथी नदी के पूर्वी भाग की मिट्टी दलदली है। रानीगज की कोयले की खानें इसी जिले मे स्थित हैं। कोयलेवाला क्षेत्र बगाल का प्रसिद्ध औद्योगिक क्षेत्र है। यहाँ की मुख्य नदियाँ दामोदर, द्वारकेश्वर, खरी, अजय आदि हैं, जो भागीरथी नदी मे मिलती हैं। वार्षिक वर्षा का औसत ५४ इच है। दामोदर नदी की बाढ से कई बार यहाँ जन, धन की क्षति हो चुकी है। मिट्टी अति उपजाऊ होने से मुख्य फसल धान के अतिरिक्त मक्का, आलू, गन्ना, तिलहन, दलहन आदि भी पैदा होते हैं। सिंचाई का उत्तम प्रबंध है। खनिजों मे चीनी मिट्टी और कोयला प्रमुख हैं तथा रानीगज के उत्तर मे बारुल के पास लोहा बहुत बडी मात्रा में निकाला जाता है। इस जिले मे रेशमी कपडा तथा खनिजों से सबधित विस्तृत उद्योग हैं। इस जिले के मुख्य नगर वर्द्धमान, रानीगज, आसनसोल, कालना एव काटवा आदि हैं।

२ नगर, स्थिति २३°१४' उ० अ० तथा ८७°५१' पू० दे०। उपर्युक्त जिले मे बाँका नदी के किनारे स्थित एक नगर है। यहाँ की जनसख्या १,०८,२२४ (१९६१) है। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यकर नही है। यह जिले का केंद्र है। छुरी, काँटे बनाने तथा

तेल पेरने के कारखाने हैं। इतिहास मे इसका स्थान प्रमुख रहा है। शिक्षा के क्षेत्र मे इस नगर ने काफी प्रगति की है।

बर्न (Bern) १ प्रांत, स्थिति ४६° ५१' उ० अ० तथा ७° ३५' पू० दे०। यह स्विट्जरलैंड का, जनसंख्या की दृष्टि से, द्वितीय बडा कैंटन (प्रांत) है। इसका क्षेत्रफल २,६५७ वर्ग मील है, जिसमे १०० वर्ग मील पर हिमनद हैं। जनसंख्या ८,८९,५२३ (१९६०) थी। कैंटन के मध्यवर्ती भाग में ऐल्प्स की पाद पहाडियाँ हैं, जो दक्षिण मे फैले हुए उत्तुंग शिखरोंवाले बर्नीज़ ऐल्प्स की अपेक्षा समतल हैं। बर्न राजधानी के अतिरिक्त बीने (Bienne), बुर्गडॉर्फ, डैरसबर्ग आदि यहाँ के प्रमुख नगर हैं। प्रशासकीय दृष्टि से यह ३० जिलों मे विभक्त है। पशु चराना, मक्खन बनाना, शराब बनाना, लकडी का काम, घडियाँ तथा मिट्टी के बरतन बनाना प्रमुख उद्योग है।

२ नगर, बर्न कैंटन मे, सागरतल से १,८०० फुट की ऊँचाई पर एक प्रायद्वीप पर आर नदी के पास स्थित एक नगर है। इसकी जनसंख्या १,६६,१०० (१९६१) थी। यहाँ के पुस्तकालय, पुरातत्व संग्रहालय, विश्वविद्यालय प्रसिद्ध हैं। यह स्विट्जरलैंड की राजधानी तथा राजनीतिक केंद्र है। यहाँ मशीनों तथा चॉकलेटो का निर्माण होता है। [हु० श० गु०]

बर्न्स, रॉबर्ट स्कॉटलैंड के कवियों में सबसे महान् रॉबर्ट बर्न्स का जन्म २५ जनवरी, सन् १७५९ को एल्लोवे नामक स्थान पर हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा बिल्कुल अल्प एवं अनियमित थी, किंतु पुस्तकें पढने मे वह बहुत तन्मय रहते थे और १६ वर्ष की अवस्था मे ही उस समय प्रचलित ललित शिक्षा के अनेक तत्वों को वह ग्रहण कर चुके थे। उनके ऊपर पडे प्रारंभिक प्रभावों के अंतर्गत कहानियों, किस्सों और गीतों का नाम लिया जा सकता है। सन् १७८१ मे बर्न्स ने अपने भाई के साथ एक छोटे फार्म की व्यवस्था की किंतु उसका परिणाम अत्यंत दुःखद सिद्ध हुआ और अपनी असफलता का कटु अनुभव कर अपनी मातृभूमि छोड वह जमैका जाने के लिये उद्यत हुए। किंतु यात्रा के लिये उनके पास धन नहीं था, एतदर्थ उन्होंने १७८६ ई० मे अपनी कविताओं का प्रसिद्ध और अमूल्य किलमार्नाक संस्करण प्रकाशित कराया जिससे उनकी प्रशंसा बहुत बढ गई। दूसरे संस्करण के प्रकाशनार्थ वह एडिनबरा गए जहाँ साहित्यिक क्षेत्रों के प्रवर विद्वानों ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। उनके इस दूसरे संस्करण से उन्हें धन की अच्छी प्राप्ति हुई, फलत उन्होंने एलिसलैंड का फार्म हस्तगत कर लिया, जहाँ वे अपनी पत्नी जीन आर्मर के साथ सन् १७८८ से रहने लगे। सन् १७८९ मे उनकी नियुक्ति आबकारी विभाग के कार्यकर्ता के पद पर हुई। किंतु दूसरी बार भी कृषि मे असफलता मिलने पर वह डमफ्रीज़ चले गए जहाँ उन्होंने अपने आबकारी वेतन पर ही जीवनयापन करना निश्चय किया। उनका वेतन ७० पौंड वार्षिक से अधिक न हो सका। युवावस्था के प्रारंभ मे ही वह नारीसौंदर्य के प्रति जागरूक थे। स्वास्थ्य और सौभाग्य मे पूर्णत क्षीण रॉबर्ट बर्न्स का जीवन ३७ वर्ष तक बहुत अस्तव्यस्त रहा। गठिया ज्वर के कारण २१ जुलाई, १७९६ को उनकी मृत्यु हो गई।

बर्न्स की काव्यकृतियों मे 'टैम ओ' शांटर' शीर्षक एक कथा, 'दी काटर्स सैटर्डे नाइट' नामक एक वर्णनात्मक बृहद् कविता, दो सौ से अधिक ही अनेक प्रकार के गीत और विपुल संख्या मे लिखे उनके छोटे काव्यपत्र, व्यंग्यात्मक कविताएँ, चुटकुले, शोकगीत तथा अन्य प्रकार के विविध पद्य संमिलित हैं। 'टैम ओ' शांटर, जैसा बर्न्स ने स्वयं कहा है, उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। कविता अलंकृत भाषा मे लिखी हुई अत्यंत सुंदर प्रेमकथा है। यह हास्य और मानवता के तत्वों से ओतप्रोत है। उनकी सबसे लोकप्रिय रचना 'दी काटर्स सैटर्डे नाइट' उनके पिता विलियम बर्न्स का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करती है। किस प्रकार एक सच्चरित्र व्यक्ति अपना गार्हस्थ्य जीवन परम आनंद और प्रतिष्ठा से व्यतीत करता है—यही इस कविता की विषयवस्तु है। इसमे स्कॉटलैंड के कृषकों और उनके जीवन का चित्रण प्रभावोत्पादक हुआ है। उनका सबसे महत्वपूर्ण पत्र 'ऐड्रेस टु दि डेविल' है, जिसमे सैटन का संबंध बंधुत्व तथा मानवता के अविच्छिन्न सौहार्द से है। बायरन के सदृश बर्न्स दो महान् रोमांटिक व्यंग्य कवियों में एक हैं। उनकी सबसे श्रेष्ठ व्यंग्यात्मक कविताएँ 'दि होली फेयर' तथा 'होली विलीज़ प्रेयर' हैं जिनमें प्रथम व्यक्तिगत और सामाजिक व्यंग्य पर आधारित श्रेष्ठ कृति है और दूसरी एक तीक्ष्ण एवं मर्मांतक व्यंग्य कलाकृति है जिसमे धार्मिक पाखंड पर प्रहार किया गया है। 'दि जॉली बेगर्स' उनकी अति नाटकीय एवं कल्पनाप्रधान रचना है जिसमें निरुद्देश्य घुमक्कडों का वर्णन है। आर्नल्ड के मतानुसार इस कविता में गंभीरता, सत्य तथा ओज का वह प्रदर्शन है जिसका उदाहरण केवल शेक्सपीयर और अरिस्तोफानिज़ की कृतियों मे ही उपलब्ध हो सकता है।

स्वाभाविक एवं प्रवाहयुक्त गीतकार के रूप मे बर्न्स का स्थान स्काटलैंड, इंग्लैंड अथवा यूरोप मे अद्वितीय है। उनका 'ए मैंस ए मैन फार ए दैट' मानवता का गान है। इसमे स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व की विप्लवात्मक पुकार है।

बर्न्स के अधिकांश पत्र कभी कभी समयानुसार भाषा की कृत्रिमता को प्रदर्शित करते हुए भी ओजपूर्ण एवं गठित हैं और प्रारंभ से लेकर अंत तक सौष्ठव तथा मानवीय तत्वों के अनूठे गुणों से परिपूर्ण हैं। [वृ० मो० सा०]

बर्फ जल के ठोस रूप को कहा जाता है। बर्फ जल के समान रंगरहित, रवेदार ठोस है, जो ०° सें० ताप के ऊपर पिघलकर जल में परिणत हो जाती है। जल के समान ही गहराई पाने पर ठोस बर्फ का रंग नीला, अथवा हरापन लिए हुए नीला, होता है, जैसी बर्फ की शिलाएँ (iceberg) तथा बर्फ से ढकी हुई पर्वतमालाएँ दिखाई देती है। बर्फ का घनत्व ० ९१७ ग्राम प्रति घन सेंमी० होता है। इस हलकेपन के कारण ही समुद्र मे तैरती हुई बर्फ की शिलाओं का १/१० भाग जल की सतह के ऊपर दिखाई देता है तथा ९/१० भाग जल की सतह के अंदर छिपा रहता है।

बर्फ प्राय कई रूपों मे मिलती है, जैसे प्रशीतन (refrigeration) क्रिया की सहायता से जमाई गई बर्फ, पहाडों पर वर्षा के रूप मे गिरनेवाली बर्फ, शीत प्रदेशों मे समुद्र की सतह पर जमी हुई बर्फ तथा बर्फ की शिलाओं, अर्थात् ग्लेशियर के रूप मे। ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी पर लगभग २,२०,००,००० घन किलोमीटर

वर्फ मिलती है, जो यदि किसी तरह पिघल जाय तो ससार के महासागरो की सतह ५० मीटर ऊँची उठ जाय। सौभाग्य से ऐसी स्थिति आने की कोई आशका नही दिखाई देती। इस वर्फ की मात्रा का ८७ प्रति शत ऐंटार्कटिक महाद्वीप पर, १२ प्रति शत उत्तरी आर्कटिक क्षेत्र मे तथा शेप १ प्रति शत भाग पृथ्वी के अन्य भागो मे पहाडो पर जमी हुई वर्फ के रूप मे पाया जाता है।

वर्फ के अदर हवा के बुलबुले रह जाने के कारण उसका रग सफेद दिखाई देने लगता है। वर्फ का एक विशेप गुण यह है कि दवाव वढने पर इसका गलनाक (melting point) कम होता जाता है। १३४ वायुमडलीय दवाव पर बरफ – १° सें० तापमान पर पिघल जाती है। इस गुण के कारण ही वर्फ की शिला स्वय अपने भार के कारण नीचे पेंदे मे निरतर पिघलती जाती है। यदि एक तार को वर्फ के टुकडे पर दवाया जाय, तो तार वर्फ के टुकडे से पार हो जायगा किंतु टुकडा कटेगा नही। क्योकि भार जैसे ही हट जाता है, पिघलती हुई वर्फ स्वय पुन जम जाती है। १ वायुमडल दवाव, अर्थात् १५ पौड प्रति वर्ग फुट के दवाव से वर्फ का गलनाक ० ००७५° सें० कम होता जाता है।

साधारणत वर्फ का एक ही रवेदार रूप पाया जाता है, जो छह पहला होता है। अत्यधिक दवाव (२,००० वायुमडल दवाव से ऊपर) पर इसके कई रवेदार रूप मिलते हैं। वेरवेदार (amorphous) रूप भी पाया जाता है। इन असाधारण रवेदार रूपो मे वर्फ का घनत्व भी १ ग्राम प्रति घन सेंमी० से अधिक होता है। वर्फ की गलन ऊष्मा (heat of fusion) ७९ ८ कैलोरी प्रति ग्राम होती है।

प्रकृति एव उद्योग दोनो मे ही वर्फ के अनेक उपयोग हैं। प्राकृतिक वर्फ से ही नदियो को जल मिलता है। पहाडो की शिलाएँ टूट टूटकर उपजाऊ वारीक मिट्टी मे परिणत होती रहती हैं। समुद्र के जल की सतह मौसम वदलने के साथ साथ कम अथवा अधिक नही हो पाती। औद्योगिक उपयोग के लिये जल को प्रशीतनक्रिया द्वारा जमाकर वर्फ वनाई जाती है। इस प्रकार तैयार की गई वर्फ का प्रयोग ठढे पेय वनाने मे, दूध या मलाई की वर्फ जमाने मे तथा खाद्य पदार्थों के परिरक्षण के लिये किया जाता है। वर्फ के ताप, अर्थात् ०° सें०, पर फल, तरकारियाँ, मास, मछली, अडा तथा अन्य इसी प्रकार सडनेवाले खाद्य पदार्थ पर्याप्त लवे समय तक सुरक्षित ताजे रखे जा सकते हैं। अस्पतालो मे भी वर्फ का उपयोग वहुत होता है।

प्रयोगशाला मे तरल पदार्थों को जमाने के लिये वर्फ को नमक या शोरे के साथ मिलाकर प्रशीतन मिश्रण (freezing mixture) के रूप मे प्रयोग किया जाता है। वर्फ के साथ नमक मिलाने पर इस मिश्रण का ताप – १०° सें० हो जाता है, और शोरा मिलाने पर यह ताप –३०° सें० तक गिर जाता है।

ठोस कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को 'शुष्क वर्फ' (dry ice) कहते हैं। इस शुष्क वर्फ मे जल तनिक भी नही रहता, केवल कार्बन डाइऑक्साइड रहता है। इसका ताप – ६०° सें० होता है, जिसका उपयोग प्रयोगशालाओ मे रासायनिक क्रियाओ मे किया जाता है।

वायुमडल मे जल के वाष्प को वर्फ के रूप मे परिणत कर कृत्रिम वर्षा कराने के लिये कुछ ऐसे रासायनिक वाष्प कणो का उपयोग किया जाता है जिनपर वाष्पकण शीघ्र वर्फ के रूप मे जमकर भारी होने के कारण आकाश की ऊपरी सतह से नीचे गिरने लगते हैं और पृथ्वी की सतह के पास आते आते जल की वूँदो मे वदल जाते हैं। इस प्रकार 'कृत्रिम वर्षा' होने लगती है। इस क्रिया के लिये सिल्वर आयोडाइड (silver iodide) के वाष्प का उपयोग किया जाता है।
[न० द० मि०]

वर्वरा, संत एक प्राचीन परपरा के अनुसार सत वर्वरा के विधर्मी पिता ने उन्हें एक बुर्ज मे कैद कर दिया था जिससे वह सन् ३०६ ई० मे शहीद वन गईं। वह शिल्पियो की सरक्षिका है और उनका पर्व ४ दिसवर को मनाया जाता है।
[का० बु०]

वर्मा स्थिति ९° ५५' से २८° ३०' उ० अ० तथा ९२° १०' से १०१° ९' पू० दे०। यह दक्षिण-पूर्वी एशिया का एक देश है। इसके उत्तर मे भारत एव चीन, पूर्व मे थाईलैंड (स्याम), लाओस, चीन और पश्चिम मे भारत, पूर्वी पाकिस्तान तथा वगाल की खाडी है। इसके सागरतट की लवाई १,२०० मील है। इसका क्षेत्रफल २,६१,७८९ वर्ग मील है।

धरातल — धरातल के आधार पर इसे चार भागो मे वाँटा जा
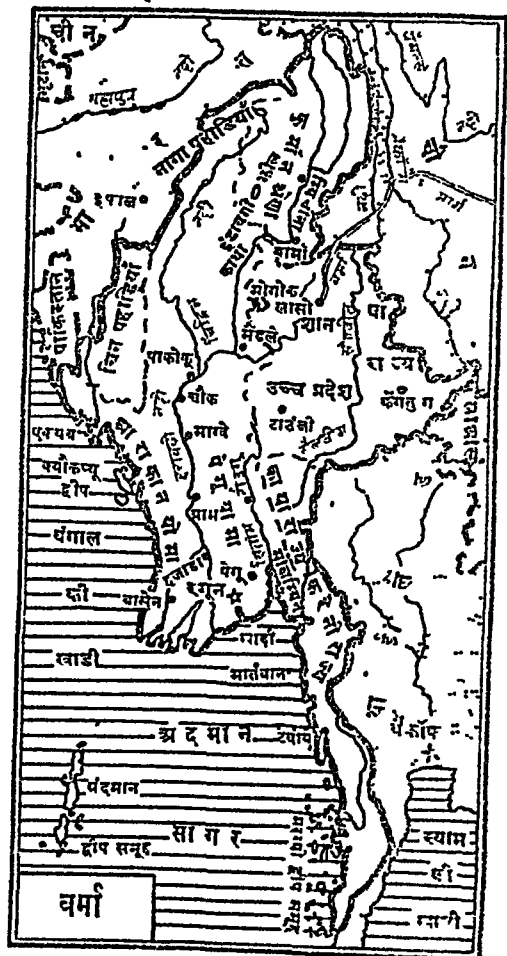
सकता है - १ उत्तरी तथा पश्चिमी पहाडी क्षेत्र — यह ६,००० से २०,००० फुट तक ऊँचा है। इसमें वगाल की खाडी तथा आराकान

योमा पर्वत के मध्य की आराकान पट्टी भी शामिल है। २ पूर्व का शान उच्च प्रदेश — यह लगभग ३,००० फुट तक ऊँचा एक पठार है जो दक्षिण में टेनैसरिम योमा तक फैला है। ३ मध्य वर्मा — यह देश का मुख्य कृषिप्रदेश है जो पूर्व में सैलवीन तथा पश्चिम में इरावदी तथा इसकी सहायक चिंद्विन आदि नदियों से घिरा है। ४ दक्षिण में इरावदी तथा सितांग नदियों का डेल्टा प्रदेश — इरावदी तथा सितांग की निम्न घाटी काफी उपजाऊ है। डेल्टा प्रदेश लगभग १०,००० वर्ग मील में फैला है। यह विश्व के बड़े धान उत्पादक क्षेत्रों में से एक है तथा यहाँ कई प्रसिद्ध बंदरगाह भी स्थित हैं। इरावदी नदी मैदान के पश्चिमी भाग से बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

जलवायु — यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय है जिसमें तीन ऋतुएँ होती हैं प्रथम, वर्षा ऋतु, जो मध्य मई से मध्य अक्टूबर तक रहती है, द्वितीय, ग्रीष्म ऋतु, जो अप्रैल से मई तथा अक्टूबर से नवंबर तक रहती है। तृतीय, जाड़े की ऋतु, जो दिसंबर से मार्च तक रहती है। मानसून के मौसम में ऊपरी वर्मा में २०० इंच तथा दक्षिण में स्थित रंगून में १०० इंच तक वर्षा होती है। मध्य के शुष्क भाग में २५ से ३५ इंच वर्षा होती है। निम्न वर्मा का जाड़े का ताप १५.५° सें० तथा गरमी का ताप ३८° सें० तक रहता है। मध्य वर्मा में गरमी का ताप निम्न वर्मा के जाड़े के ताप से अधिक तथा गरमी के ताप से कम हो जाता है।

वनस्पति — यहाँ २,००० प्रकार के जंगली वृक्ष एवं ६,००० प्रकार के अन्य पौधे मिलते हैं। सदावहार जंगलों में महोगनी, गटापार्चा, बाँस तथा पतझड़वाले जंगलों में सागौन, साल, आबनूस, आम, तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में कटीले वृक्ष एवं झाड़ियाँ मिलती हैं। डेल्टाई क्षेत्र में मैनग्रोव वन एवं पहाड़ी प्रदेशों में ऊँचाई के अनुसार सदावहार, पतझड़वाले, मिश्रित तथा कोणधारी वन पाए जाते हैं।

जीवजंतु — यहाँ पाए जानेवाले जीवजंतु असम के समकक्ष हैं। घने जंगलों में हाथी, जंगली भैंसे, शेर, चीता, गैंडा, भालू, हरिण तथा बंदर पाए जाते हैं। इनके अलावा मगरमच्छ, नाग तथा २०० प्रकार के पक्षी पाए जाते है। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंसे, बकरियाँ, सूअर तथा भेंड़ें प्रमुख हैं।

कृषि — इरावदी, चिंद्विन, तथा सितांग नदियों की घाटियाँ मुख्य कृषि क्षेत्र हैं। लगभग २/३ भाग में धान एवं शेष में तिल, दलहन, मटर, ज्वार बाजरा, कपास, जूट, तंबाकू एवं ईख की खेती होती है।

खनिज—इरावदी घाटी के पेगूयोमा क्षेत्र में खनिज तेल मिलता है जिसकी सफाई रंगून के तेलशोधक केंद्रों पर की जाती है। अन्य खनिजों में सोना, सीसा, ताँबा, जस्ता, चाँदी, कोबाल्ट, टंगस्टन एवं चूने का पत्थर और नीलम प्रमुख हैं।

उद्योग धंधे — यहाँ के मुख्य उद्योग कृषि, वन एवं खनिजों पर आधारित हैं जिसमें धान कूटना, मछली पकड़ना, लकड़ी काटना, रेशमी वस्त्र उद्योग प्रमुख हैं। अन्य उद्योगों में सूती वस्त्र, सीमेंट, चीनी, चाय, इस्पात एवं वस्त्र उद्योग आदि आते है। निजी क्षेत्र के उद्योगों में सिगरेट बनाना, आटा पीसना, संघनित दुग्ध, बिस्कुट एवं मिठाइयाँ बनाना, तेल पेरना, तंबाकू संबंधी काम करना, गलीचे तथा, कपड़ा बुनना, तथा रँगना, होजरी का सामान बनाना, छाता, दियासलाई, साबुन, बरतन, प्लास्टिक के सामान बनाना प्रमुख है।

जनसंख्या — यहाँ की जनसंख्या २,१०,००,००० (अनुमानित १९६३) है। यहाँ की प्रमुख भाषा वर्मी है। अँग्रेजी का प्रयोग भी होता है। रंगून, मँडले तथा मोलम्यिन यहाँ के प्रमुख नगर हैं। रंगून वर्मा की राजधानी शैक्षिक एवं व्यापारिक केंद्र है। बौद्ध धर्म यहाँ का प्रधान धर्म है। इनके अतिरिक्त ईसाई, हिंदू एवं मुसलमान भी रहते हैं।

शिक्षा — स्वतंत्रता के उपरांत यहाँ की शिक्षाप्रणाली में विकास हुआ है। स्कूल शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम वर्मी भाषा है। रंगून एवं मँडले विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती है जिसमें कृषि विज्ञान, चिकित्सा, वनशिक्षा भी सम्मिलित हैं। इनके अलावा यहाँ अनेकों महाविद्यालय हैं।

यातायात — यहाँ रेलमार्गों, सड़कों का काफी विकास हुआ है। इरावदी तथा चिंद्विन नदियों में ९०० और ३९० मील के अलावा ६० मील लंबी नौका-संचालन-योग्य नहरें हैं। रंगून से हांगकांग, कलकत्ता, जकार्ता, सिंगापुर आदि के लिये हवाई मार्ग हैं।

व्यापार — यहाँ का मुख्य निर्यात चावल, पेट्रोल, सागौन, कपास आदि हैं जिनके बदले विदेशों से कपड़ा, मशीनें, कोयला, लोहा, दवा आदि का आयात होता है। रंगून व्यापारिक केंद्र है।

इतिहास — वर्मा का क्रमबद्ध इतिहास सन् १०४४ ई० में मध्य वर्मा के 'मियन वंश' के अनावराहता के शासनकाल से प्रारंभ होता है जो मार्कोपोलो के यात्रासंस्मरण में भी उल्लिखित है। सन् १२८७ में कुबला खाँ के आक्रमण के फलस्वरूप वंश का विनाश हो गया। ५०० वर्षों तक राज्य छोटे छोटे टुकड़ों में बँटा रहा। सन् १७५४ ई० में अलोंगपाया (अलोंपरा) ने शान एवं मॉन साम्राज्यों को जीतकर 'वर्मी वंश' की स्थापना की जो १९वीं शताब्दी तक रहा।

वर्मा में ब्रिटिश शासन स्थापना की तीन अवस्थाएँ हैं। सन् १८२६ ई० में प्रथम वर्मायुद्ध में अँग्रेजों ने आराकान तथा टेनैसरिम पर अधिकार प्राप्त किया। सन् १८५२ ई० में दूसरे युद्ध के फलस्वरूप वर्मा का दक्षिणी भाग इनके अधीन हो गया तथा १८८६ ई० में संपूर्ण वर्मा पर इनका अधिकार हो गया और इसे ब्रिटिश भारतीय शासनांतर्गत रखा गया।

तदुपरांत सन् १९४८ ई० तक का इतिहास स्वतंत्रता संग्राम का है। सन् १९३७ ई० में इसने स्वतंत्रता प्राप्त की तथा १७ अक्टूबर १९४७ के संधिपत्र के अनुसार ४ जनवरी, १९४८ को गणराज्य घोषित किया गया। [सु० न० प्र०]

वर्मिघैम (Birmingham) स्थिति ५२° ३०' उ० अ० तथा १° ५५' प० दे०। यह इंग्लैंड के वारविकशिर में उत्तर-पश्चिम में, लंदन से रेल द्वारा ११३ मील दूर उत्तर-पश्चिम, स्थित काउंटी, बरो तथा इंग्लैंड के मुख्य औद्योगिक नगरों में से एक है। इस काउंटी का क्षेत्रफल ७९९ वर्ग मील है तथा जनसंख्या ११,०५,६५१ (१९६१) है। १८वीं शताब्दी में यह नगर पूर्णत औद्योगिक नगर में परिवर्तित हो गया। इस नगर के निकटवर्ती भाग में कोयले तथा लोहे की खानों का भंडार

है जिससे इसको औद्योगिक नगर बनने मे सुविधा मिली है। यह नगर मोटर साइकिल, बिजली के सामान, तांबे और ऐलुमिनियम के पाईप, चॉकलेट, रसायन, काच तथा प्लास्टिक के सामान, पिन, स्क्रू तथा रबर के समान बनाने का मुख्य केंद्र है। [दी० ना० व०]

२. स्थिति ३३° ४०' उ०अ० तथा ८६° ५०' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका के ऐलबैमा राज्य का सबसे बडा नगर है। यह जेफरसन काउटी की काउटी सीट भी है। इसकी जनसख्या ३,४०, ८८७ (१९६०) है। यह एक प्रमुख औद्योगिक नगर है। यहाँ खनिजो से सबधित उद्योग अधिक होते हैं। इस्पात उद्योग अधिक उन्नत है। रेल की पटरियाँ, तार, कारें, स्टोव, कोयले की खानो मे प्रयुक्त मशीनें, ईंट, सीमेंट, लकडी तथा सूती सामान, रबर के टायर, रसायन आदि के उद्योग भी होते हैं।

वर्मी भाषा और साहित्य वर्मी भाषा एक स्वतत्र भाषा है जो आर्य एव चीनी भाषा परिवार के बीच मे तिव्वती-ब्राह्मी नाम से प्रसिद्ध है। तिव्वती-ब्राह्मी भाषापरिवार मे भी वर्मी शाखा एव तिव्वती शाखा — ये प्रकार हैं। वर्मी भाषा मे चीनी भाषा की तरह कुछ शब्द अयोगात्मक होते है तथा आर्यभाषाओ की तरह उसमे कुछ शब्द योगात्मक भी होते हैं। आजकल की वर्मी भाषा मे पालि भाषा के प्रभाव से ३३ व्यजन और १२ स्वर माने जाते हैं। वस्तुत वर्मी बोली मे वर्ग के चतुर्थ अक्षर तथा सपूर्ण दत्य वर्ग नही होता, इसीलिये प्राय वर्मी मे वर्ग के तृतीय एव चतुर्थ अक्षरो का समान उच्चारण तथा मूर्धन्य एव दत्य वर्गों के अक्षरो का भी समान रूप से उच्चारण होता है। वैदिक सस्कृत एव पालि मे प्रयुक्त 'ळ' का वर्मी साहित्य मे प्रयोग किए जाने पर भी वह बोली मे नही होता। वर्मी भाषा मे जो ६४ स्वर होते हैं उन्हे ६४ 'कारात' भी कहते हैं। इन स्वरो के बल पर ही ससार की भाषाओ का उच्चारण वर्मी भाषा मे लिखा जा सकता है।

वर्मी भाषा स्वतत्र वर्मा की राज्यभाषा है। यह मुख्य रूप से ब्रह्मदेश मे बोली जाती है। असम, मणिपुर एव अडमान निकोबार द्वीपों मे भी कुछ लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं।

अन्य देशो की भाँति वर्मा का भी अपना साहित्य है जो अपने मे पूर्ण एव समृद्ध है। वर्मी साहित्य का अभ्युदय प्राय काव्यकला को प्रोत्साहन देनेवाले राजाओं के दरबार मे हुआ है इसलिये वर्मी साहित्य के मानवी कवियो का सबध वैभवशाली महीपालों के साथ स्थापित है। राजसी वातावरण मे अभ्युदय एव प्रसार पाने के कारण वर्मी साहित्य अत्यत सुश्लिष्ट तथा प्रभावशाली हो गया है।

वर्मी साहित्य के अतर्गत बुद्धवचन (त्रिपिटक), अट्ठकथा तथा टीका ग्रथो के अनुवाद समिलित हैं। वर्मी भाषा मे गद्य और पद्य दोनो प्रकार की साहित्यविधाएँ मौलिक रूप से मिलती हैं। इसमे आयुर्वेदिक ग्रथो के अनुवाद भी हैं। पालि साहित्य के प्रभाव से इसकी शैली भारतीय है तथा बोली अपनी है। पालि के पारिभाषिक तथा मौलिक शब्द इस भाषा में वर्मीकृत रूप में पाए जाते हैं। रस, छद और अलकारो की योजना पालि एव सस्कृत से प्रभावित है।

वर्मी साहित्य के विकास को दृष्टि मे रखकर विद्वानो ने इसे नौ कालो मे विभाजित किया हैं, जिसमें प्रत्येक युग के साहित्य की अपनी विशेषता है।

(१) पगन युग (ई०११००-१२९७) इस युग के साहित्य का ज्ञान शिलालेखो द्वारा होता है, जिनकी रचना सरल तथा अलकारविहीन है। उस काल मे मिलनेवाला सबमे प्राचीन शिलालेख म्यजेदी है जिसको १११२ ई० मे राजकुमार नामक एक राजकुमार ने खुदवाया था। उसमे वर्मी भाषा के अतिरिक्त पालि, मून, प्यू, इन तीन भाषाओ का प्रयोग भी मिलता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि उस काल में उन भाषाओ का भी प्रचलन था। उसके बाद १२२४ ई० का भी एक शिलालेख मिलता है जिसको अनतसूरिय (अनतसूर्य) दपति ने खुदवाया था। इसको शिन् पिन् वोधि शिलालेख कहते है। तदनतर राजकुमारी थिगयू का मिन वैन् लेख, तथा महारानी फ्वासो का शिलालेख भी उल्लेखनीय है। भाषा और भाव की दृष्टि से पहले शिलालेखो की अपेक्षा पीछे के शिलालेख अच्छे हैं।

यद्यपि इस युग मे गद्यपद्यात्मक साहित्य शास्त्र की उपलब्धि नही होती. फिर भी इनका निर्माण अवश्य होने लगा था, क्योंकि अनतसूर्य का काव्य आज भी वर्मा मे प्रचलित है। वर्मी राजाओ द्वारा त्रिपिटक का अधिक अध्ययन होने से वर्मी साहित्य पर पालि का अत्यधिक प्रभाव पडने लगा।

(२) पिय युग (१२९८-१३६४ ई०) इस युग मे वर्मी साहित्य की उन्नति पगन् युग से अधिक हुई। त्रिपिटक का अध्ययन अधिक होने से वर्मी साहित्य मे रस, अलकार आदि पालि से सीधे प्रविष्ट होने लगे। दर्शन का विवेचन होने से साहित्य मे गभीरता भी आने लगी। इस युग मे चतुरगवल नामक मत्री का काव्य अलकार और रस दोनो ही दृष्टियो मे पगन् युग से अधिक उन्नत है।

इस युग में भी शिलालेख मिलते हैं जो पगन् युग के शिलालेखो की अपेक्षा भाषा की दृष्टि से अधिक समृद्ध हैं।

(३) अव युग (१३६४—१५३८) इस युग को वर्मी साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाता है। जिस प्रकार कालिदास आदि सस्कृत के कवियो ने अपनी रचना का आधार रामायण और महाभारत आदि को बनाया, उसी प्रकार वर्मी साहित्यकारो ने अपनी काव्यरचनाओ का आधार पालि साहित्य को बनाया। इसी समय महाकाव्य, खडकाव्य एव नाटक आदि अनेक नवीन साहित्यविधाओ का निर्माण हुआ। इनका साहित्य हृदय की अनुभूतियो का प्रतीक है तथा भाव की गरिमा के कारण पद मे भी लालित्य एव मधुरिमा आ गई है। इस युग के साहित्यकारो मे भिक्षु ही अधिक हैं। हिंदी साहित्य मे सत कवियो की तरह भिक्षुओं ने वर्मी साहित्य पर आधिपत्य कर लिया है। भिक्षु कवियो में शिन् महासीलवश, शिन् उत्तमजी, शिन् तेजोमार एव शिन् महारट्ठसार आदि प्रसिद्ध हैं।

(४) केतुमती युग (१५३०-१५९७) यह वर्मी साहित्य के विस्तार और प्रसार का युग है। इस समय युद्ध का वातावरण रहने के कारण अभियान गीतो की प्रचुर मात्रा मे रचना हुई है। नवदे, वलावल और नतायित आदि इस युग के प्रसिद्ध कवि हैं। केतुमती की विजय एव अव की पराजय हो जाने से सभी कवि केतुमती मे ही पाए जाते हैं।

(५) द्वितीय अवयुग (१५६७-१७५०) इस काल मे पालि जातको के आधार पर महाकाव्यो एव खडकाव्यो के साथ ही सवाद आदि का भी निर्माण हुआ । सब रचनाएँ बौद्ध धर्म सबधी ही हुई । इस युग के वरामिमघनाथ का 'मणिकुडल' नामक कथासाहित्य बर्मी कथाग्रथो मे सबसे अच्छा माना जाता है । यह कथा सस्कृत की कादबरी की तरह समासबहुल और अलकारयुक्त है । समास का आधिक्य होने पर भी प्रचलित शब्दो का ही यथास्थान प्रयोग किए जाने से वह साधारण व्यक्तियों के लिये भी सुबोध है।' इस युग मे पद्यात्मक रचनाओ के अतिरिक्त बौद्ध धर्मशास्त्रों का प्रणयन एव मनुसार नाम से मनुस्मृति का अनुवाद भी हुआ । इस युग मे पदेश-राजा नामक राज्यमत्री का साहित्य अत्यत प्रसिद्ध है ।

(६) रत्नासिंघ युग (१७५१-१८८५) (कुंमो) इस युग मे भिक्षु कवियो का अभाव सा है, इस कारण इसमे नई साहित्य शैली विकसित हुई और उसमे भाव की अपेक्षा रस को अधिक महत्व दिया जाने लगा । राजाओं की स्तुति प्रचुर मात्रा में हुई । रतु (ऋतु) नामक नए काव्यों का प्रादुर्भाव हुआ । उसमें प्राय प्रकृतिवर्णन का ही आधिक्य होता है । इस युग में 'ऊ ओ' एक प्रसिद्ध कवि हुए जो १५ वर्ष की अवस्था मे ही साहित्य का निर्माण करने लगे । मिहलूर, नदमूर, और लैवे सुदर का रतु अत्यत लोकप्रिय हुआ । उसमें प्रकृति का चित्रण बहुत सफलता से किया गया है ।

(७) अमरपूर युग (१८८६-१६००) इस युग मे बडे बडे कवि उत्पन्न हुए है । इनमे 'ऊ तो' का नाम उल्लेखनीय है । उन्होंने 'रामरकन्' की रचना की है । इस समय बर्मा मे पाँच राम के आधार पर पाँच प्रकार की रामायण मिलती है, यथा हिंदू राम, जातक राम, समत्रा राम, श्याम राम और बर्मी राम । इनमें से जातक राम बोधिसत्व राम हैं और राम सस्कृत के रामायण से लिए गए राम हैं । यहाँ ऊ तो ने अपने रामरकन् का निर्माण सुमात्रा और श्याम राम के रामायण के आधार पर किया । इस रामरकन् का आज तक बर्मी साहित्य मे एक प्रसिद्ध रचना के रूप मे पठन पाठन किया जाता है । इस युग मे ऊ जा, ऊ ओमाग और ऊ सा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । स्त्री साहित्यकारो की बहुलता भी इसमे है ।

(८) मडले युग (१६००-१६४०) इस युग का साहित्य भी राजाओ से सबधित है । अनेक भाषाओं से अनुवाद भी इस युग में हुए । कवियो मे ऊ पुण्य का नाम बहुत आदर से लिया जाता है । उन्होंने अपनी बहुमुखी लेखनी से अनेक प्रकार के साहित्य का सृजन किया । उनके नाटक लोकप्रिय हैं । भाषा, शैली, भाव आदि की दृष्टि से उनका साहित्य अत्यत ऊँचा माना जाता है । इसलिये आधुनिक आलोचको ने उन्हें बर्मी कालिदास एव शेक्सपीयर का नाम दिया है ।

(६) आधुनिक युग (१६४१–) । इस युग मे अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से नवीन कथासाहित्य का निर्माण होने लगा जो प्राचीन धर्मकथाओ से भिन्न है । कविताओ मे भी क्रातिकारी भावनाएँ आ गई । जैसे जैसे मानव का विचार परिवर्तित होता जा रहा है, वैसे वैसे ही कवियो की शैली मे परिवर्तन होना स्वाभाविक है । इस युग में मिन् थुवन् (मिन् टवणं) ने छदमुक्त कविता का निर्माण किया है । उन्हें आरभ में अनेक आलोचको का सामना करना पड़ा किंतु बाद में सभी उनका अनुकरण करने लगे । इस युग में जोजी, दुवेतायी, नुरिन्, वमो वीन्, तिन्ते, तैतो, जेय, यन् ओ आदि कवि, कथाशिल्पी एव साहित्यकार उल्लेखनीय हैं । [म० रे० ध०]

बर्मी युद्ध बर्मा पर अधिकार स्थापित करने के लिये अंग्रेजों ने तीन युद्ध किए । पहला युद्ध लार्ड एमर्स्ट के शासनकाल मे हुआ । इसके प्रमुख कारण थे बगाल की पूर्वी सीमा पर बर्मी साम्राज्य विस्तार, प्रवासियों द्वारा अराकान मे लूट मार तथा आसाम और मणिपुर वापस लेने के प्रयत्न, सीमा सबधी झगड़े, तथा कछार मे बर्मी सेना का प्रवेश । युद्ध की घोषणा करने मे बगाल की सरकार के उद्देश्य थे —(१) बर्मा के भय से बगाल को सुरक्षित करना (२) बर्मा की शक्ति क्षीण करके उसे नीचा दिखाना, (३) व्यापक व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना तथा (४) ब्रिटिश साम्राज्य का प्रसार करना । यह युद्ध १८२४ से १८२६ तक चला । तीन सेनाएं स्थल मार्ग से आसाम, कछार, मणिपुर तथा अराकान की ओर और एक जलमार्ग द्वारा रगून की ओर भेजी गई ।

प्रारभ में अराकान को छोड़कर सभी क्षेत्रों में युद्ध सफलता मिली, पर वर्षा ऋतु मे अनेक कठिनाइयो तथा असफलताओ का सामना करना पड़ा । १८२५ के अत तक आसाम, मणिपुर तथा अराकान से बर्मी सेनाएँ खदेड दी गई, पीगू और तेनासरिम पर अधिकार कर लिया गया तथा बर्मी सेनापति महाबदुला मारा गया । फरवरी १८२६ तक ब्रिटिश सेना राजधानी आवा के निकट तक पहुँच गई । विवश होकर बर्मा के सम्राट् को यादाबू पर अपमानजनक सधि करनी पडी । परिणामत आसाम, अराकान, और तेनासरिम ब्रिटिश साम्राज्य में मिले, मणिपुर स्वतत्र राज्य बना, अंग्रेजो को एक करोड रुपया हर्जाना मिला, आवा में ब्रिटिश रेजिडेंट रहने लगा, तथा रत्नपुर की सधि द्वारा विशेष व्यापारिक सुविधाएँ मिलीं । इस युद्ध की हानियों तथा अव्यवस्था के कारण एमर्स्ट की कटु आलोचना हुई ।

यादाबू की सधि की शर्तों का पालन न होने के कारण १८४० मे अंग्रेजो को बर्मा मे अपनी रेजिडेंसी हटा लेनी पडी । उनके व्यापार मे भी यथेष्ट वृद्धि न हो सकी । इसपर रगून के असतुष्ट अंग्रेज व्यापारियों ने लार्ड डलहौजी के पास बर्मी सरकार के विरुद्ध अतिरजित शिकायतें भेजी । डलहौजी ने इन्हें सच मानकर समुद्री सैनिक अफसर लैंबर्ट को रगून भेजा । उसने अपने अभिमान और हठ से समस्या को सुलझाने की अपेक्षा अधिक पेचीदा बना दिया । बर्मी गवर्नर के व्यवहार से असतुष्ट होकर उसने बदरगाह पर गोलाबारी कर दी और कलकत्ते वापस आकर डलहौजी को युद्ध करने की सलाह दी । पीगू प्रात तथा रगून के बदरगाह पर अंग्रेजो की दृष्टि पहले से ही थी । इसलिये गवर्नर जनरल ने अल्टिमेटम देकर बिना युद्ध की घोषणा किए ही १८५२ मे युद्ध छेड दिया और बिना सधि किए केवल एक घोषणा द्वारा धमकी देकर बर्मा के सबसे अधिक समृद्धिशाली प्रात पीगू को ब्रिटिश साम्राज्य मे मिला लिया । यह द्वितीय बर्मी युद्ध अनुचित और अन्यायपूर्ण था । इससे बर्मा एक स्थलीय राज्य रह

गया। उसके वैदेशिक सबध अंग्रेजो की इच्छा पर अवलवित हो गए। आतरिक क्राति द्वारा पैगन को हटाकर मिडन सम्राट् वना।

३३ वर्ष वाद १८८५ मे लार्ड डफरिन के शासनकाल मे तृतीय वर्मी युद्ध हुआ। इसके उद्देश्य थे (१) उत्तरी वर्मा पर वढते हुए फासीसी प्रभाव को हटाना, (२) सारे वर्मा को व्रिटिश साम्राज्य मे मिलाकर दक्षिण चीन से सपर्क स्थापित करना तथा (३) वर्मा के व्यापार और तेल पर अधिकार करना। वावे-वर्मा ट्रेडिंग कारपोरेशन की समस्याओ को सुलझाने के वहाने युद्ध छेड दिया गया। सम्राट् थीवो को वदी वनाकर अग्रेजो ने स्वतत्र वर्मा का अस्तित्व मिटा दिया। विजित प्रदेशो को नियत्रण मे लाने मे पाँच वर्ष लगे। इस प्रकार वर्मा भारत का एक प्रात वन गया।

[ही० ला० गु०]

बर्लिन स्थिति ५२° ३२' उ० अ० तथा १३° २४' पू० दे०। सन् १८७१ से लेकर १९४५ ई० तक जर्मनी की राजधानी था। इसके पहले यह होएत्सॉलर्न (Hohenzollern) का प्रमुख स्थान रहा। यह उत्तर-पूर्वी जर्मनी मे वाल्टिक सागर के तट से ११० मील अदर की ओर एल्व और ओडर नदियो के वीच स्प्री नदी के दोनो किनारो पर वसा हुआ है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व वर्लिन एक वडा समृद्धि-शाली और सब प्रकार से उन्नत नगर था। यूरोप मे लदन और पैरिस के वाद इसी का स्थान था। पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय (१९४५ ई०) नगर मे इतना अधिक परिवर्तन हुआ कि इसका सारा ढाँचा ही वदल गया। यह मुख्यत दो भागो मे विभाजित हो गया है—एक पश्चिमी वर्लिन और दूसरा पूर्वी वर्लिन। पश्चिमी वर्लिन वस्तुत पश्चिमी जर्मनी के फेडरैल रिपब्लिक की राजधानी के रूप मे है और इसपर सयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेटव्रिटेन तथा फ्रास का सयुक्त अधिकार है। पूर्वी वर्लिन पूर्णतया पूर्वी जर्मनी के डेमोक्रेटिक रिपब्लिक के अतर्गत हो गया है तथा वास्तव मे यह रूस की सरक्षकता मे है।

यूरोपीय स्तर पर वर्लिन एक नया नगर माना जाता है। इसका विकास प्रारभ मे काल्न (Kalln) और वर्लिन (Berlin) नामक दो गाँवो से शुरु हुआ। वर्लिन स्प्री नदी के दक्षिण मे तथा काल्न उत्तर मे नदी की दोनो भुजाओ द्वारा निर्मित टापू पर विकसित हुआ। इन दोनो नगरो के नियम एव प्रशासन पहले विलकुल अलग अलग थे, फिर भी दोनो सन् १३०७ से सामान्य कार्यपालिका के अतर्गत रहे। आगे चलकर सन् १७०९ ई० मे ये दोनो पूरी तरह सयुक्त हो गए।

थोडे समय वाद पूर्व एव उत्तर-पूर्व के व्यापार के लिये इन दोनो नगरो की स्थिति अत्यत महत्वपूर्ण प्रतीत हुई और इस दृष्टि से इनकी वडी उन्नति हुई। सामरिक दृष्टि से भी इसका स्थान अद्वितीय समझा गया। इस प्रकार तीव्र व्यापारिक उन्नति के कारण जर्मनी के प्रगतिशील उत्तरी नगरो से इसका सबध होना आवश्यक हो गया और अत मे अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिये यह हैंसियाटिक लीग (Hanseatic league) मे समिलित हो गया। फिर तो विभिन्न वातावरण एव परिस्थितियो मे वर्लिन शनै शनै विकसित होता रहा।

१९वी शताब्दी के प्रारंभ मे वर्लिन मे वहुत सी आतरिक एवं वाह्य गडवडियाँ हुई जिनके कारण इस नगर की उन्नति मे वाधाएँ उत्पन्न हुई। आगे चलकर फिर वह उपयुक्त अवसर आया जव नगर की उन्नति भली प्रकार हुई। सन् १८६० से लेकर सन् १९२० तक वर्लिन की सीमा मे कोई परिवर्तन नही हुआ, यद्यपि सन् १९१२ ई० मे प्रमुख नगर एव उसके आस पास के क्षेत्रो की एक सस्था का निर्माण हुआ और इसमे समिलित सपूर्ण क्षेत्रो को विशाल वर्लिन के नाम से सवोधित किया गया। इस सस्था का उद्देश्य सडको, रेलो तथा भवन योजनाओ पर सामान्य नियत्रण रखना, आतरिक सुरक्षा कायम करना एव जगलो तथा भवननिर्माण के लिये जमीन उपलब्ध करना था। इसके शीघ्र ही पश्चात् फिर कुछ सुधार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। सन् १९२० मे वर्लिन मे एक नई नगर-पालिका स्थापित की गई जिसमे सभी पडोसी क्षेत्रो को प्रभावकारी उन्नति की दृष्टि से एक प्रशासन के अतर्गत रखा गया। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व जर्मनी के इतिहास मे वर्लिन का विकास चरमोत्कर्ष पर रहा।

सन् १९४५ के पहले नगर की अवस्था को दृष्टिगत करते हुए यह देखा गया कि नगर के पश्चिमी भाग की ओर रहने के लिये मकान वसाए गए थे अर्थात् इसी भाग मे लोग वसे। उत्तर-पश्चिमी भाग मे शैक्षणिक, वैज्ञानिक, एव मिलिटरी (सैनिक) सस्थाओ का विकास हुआ। उत्तरी भाग मे यत्रो के कार्य उन्नत हुए। उत्तर-पूर्वी भाग ऊनी सामान के निर्माण के लिये प्रसिद्ध हुआ। पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी भाग मे रँगाई, फर्नीचर, धातु आदि के उद्योग पनपे और दक्षिणी भाग रेल के उद्योग के लिये प्रसिद्ध हुआ। राजधानी का सामाजिक कार्यालय सवधी जीवन रॉयल पैलेस से लेकर व्रैडेनवर्गर टॉर तक अटरडेन लिंडेन पर केंद्रित हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय वर्लिन की दशा विलकुल खराव हो गई और यह वुरी तरह तहस नहस हो गया। जैसा ऊपर कहा गया है, यह कई भागो मे विभाजित हो गया और विभिन्न शक्तियो ने इसपर अपना प्रभुत्व जमा लिया। वास्तव मे इस समय यह नगर राजनीतिक खीचा तानी का विषय वन गया था। फिर भी द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के वाद से विभिन्न खडो मे होते हुए भी वर्लिन ने फिर उन्नति करना प्रारभ किया परतु वह अपनी पुरानी स्थिति मे अव भी नहीं आ सका है।

वर्लिन मे यातायात तथा सदेशवाहन को देखने से पता चलता है कि पश्चिमी वर्लिन मे वायुयान द्वारा आना जाना वहुत अधिक होता है। घेरे के वाद अधिकतर विदेशी भ्रमणकारी वायुयानो द्वारा यहाँ आते जाते रहे है। यहाँ के स्थानीय उद्योग धधो की निर्मित वस्तुएँ वायुयानो द्वारा ही वाहर भेजी जाती रही हैं। वैसे सामान्यत रेल द्वारा भी यातायात प्रचलित है। कभी कभी सोवियत सरकार द्वारा कुछ वातो को लेकर वीच वीच मे विघ्न वाधाएँ उत्पन्न हो जाया करती हैं। पूर्वी क्षेत्र ने द्रुतगामी रेलें पूर्वी जर्मनी तथा मध्य यूरोप के अन्य भागो मे पूर्व, पश्चिम रेल यातायात के अतर्गत, खूव प्रचलित हैं। जो भी हो, इतना अवश्य है कि विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियो के कारण वर्लिन मे यातायात वहुत वाधापूर्ण रहा है। वर्लिन मे एक भाग से दूसरे भाग

के बीच यातायात सेवा प्रचलित है परतु विभागीय सीमाओं पर रेलगाडियाँ वदलनी पडती हैं। नित्य पूर्वी वर्लिन के लोग पश्चिम वर्लिन मे दूकानदारी आदि कार्य करने के लिये जाते रहते हैं। वास्तव मे देखा जाय तो पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मनी की समस्या ने वर्लिन के व्यापारिक महत्व को कम कर दिया है, विशेषकर जलयातायात के मामले मे।

सन् १९४५ के पहले वर्लिन नगर जर्मनी का प्रसिद्ध व्यापारिक, इश्योरेंस, वैंकिंग एव ब्रोकरेज केंद्र रहा। साथ ही असख्य विशाल भवनो के कार्यालय भी रहे। उद्योग धधो के मामलो मे भी यह नगर वेजोड रहा और हर प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण, बिजली के सामान, मशीनें, मोटरें, वस्त्र, वायुयान, मशीनो के औजार, टर्वाइन, ट्रैक्टर, लेंस आदि वनाने मे यूरोप मे इसका प्रमुख स्थान रहा। सन् १९४५ के वाद से वर्लिन ने अपनी आर्थिक क्षमता को फिर से कायम करने की कोशिश की परतु यहाँ की विचित्र कठिन राजनीतिक परिस्थितियो ने पश्चिम वर्लिन को काफी पगु वना दिया जिससे वेरोजगारी की समस्या काफी वढ गई। फिर भी आजकल की स्थिति को देखते हुए वर्लिन ने काफी हद तक अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत किया है।

जनसख्या की दृष्टि से पूर्वी वर्लिन एव पश्चिमी वर्लिन की जनसख्या मे काफी परिवर्तन हुआ है। सन् १९३९ मे वर्लिन की जनसख्या ४३,३२,२४२ थी जो १९४६ ई० मे ३१,८०,३०३ हो गई। १९४५ ई० के वाद पूर्वी वर्लिन से कम से कम १० लाख व्यक्ति पश्चिम वर्लिन मे आए। पश्चिम वर्लिन की अनुमानित जनसख्या २१,९८,००० और पूर्वी वर्लिन की ११,२०,२,००० (१९७३) है। [रा० स० स०]

वलदेव उपनाम 'द्विज वलदेव'। ज० कार्तिक वदी १२, स० १८९७ वि०, ग्राम सानूपुर जिला सीतापुर। पिता व्रजलाल अवस्थी कृषिकर्मी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। 'द्विज वलदेव' ने प्रारभ मे ज्योतिष, कर्मकाड, और व्याकरण की शिक्षा ली किंतु काव्यरचना मे प्रवृत्त होने के कारण काशी के स्वामी निजानद सरस्वती से ३२ वर्ष की उम्र मे काव्यशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। रामपुर, मथुरा (जि० सीतापुर) तथा इटौंजा (जि० लखनऊ) के राजा इनके आश्रयदाता थे जिनके नाम पर इन्होने ग्रथो की रचनाएँ कीं। इन राजाओ से इन्हे पर्याप्त भूमि, धन और वाहन की प्राप्ति हुई। कविता ही इनकी जीवनवृत्ति थी। इनके पुत्र गगाधर, 'द्विजगग' भी अच्छी कविता करते थे। 'द्विज वलदेव' मे प्रखर कवित्वप्रतिभा थी। अपने समृद्ध आशुकवित्व के वल पर समस्यापूर्तियाँ वडी जल्दी और अच्छी करते थे। इसीलिये समस्यापूर्ति के सबध मे 'द्विज वलदेव' की गर्वोक्ति थी—'देहि जो समस्या तापै कवित वनाऊँ चट, कलम रुकै तो कर कलम कराइए'।

रचनाएँ—'प्रतापविनोद' (र० का० स० १९२६), 'शृगारसुधाकर' (स० १९३०), 'मुक्तमाल', 'रागाष्टयाम' और 'समस्याप्रकाश' (स० १९३१-३२), 'शृगार-सरोज' (स० १९५०), 'हीरा जुविली और चद्रकला काव्य' (स० १९५३), 'प्रेमतरग' (स० १९५८), 'वलदेव विचारार्क' (स० १९६२)। अतिम ग्रथ का अधिकाश गद्य मे है जिसमे कवि ने विविध विषयो पर अपने विचार प्रकट किए हैं। [रा० फे० त्रि०]

वलदेव विद्याभूषण उडीसा के अतर्गत वालेश्वर जिला के रेमुना के पास एक ग्राम मे इनका जन्म हुआ। चिल्का झील के तटस्थ एक वस्ती मे इन्होने शिक्षा प्राप्त की तथा वेदाध्ययन के लिये महीशुर गए। इसी समय इन्होने माध्व सप्रदाय में दीक्षा ली। इसके अनतर सन्यास ग्रहण कर पुरी गए और वहाँ के पडितसमाज को परास्त किया। रसिकानद प्रभु के प्रशिष्य श्री राधादामोदर से षट्सदर्भ पढ़कर उन्हीं के शिष्य हो गए। विरक्त वैष्णव होने पर गोविंददास नाम हुआ। पुरी से नवद्वीप होते हुए यह वृदावन चले आए और यहाँ भक्ति-रसतत्व की शिक्षा ली। उस समय वृदावन जयपुर नरेश जयसिंह द्वितीय के प्रभावक्षेत्र मे था, जिन्हें गौडीय सप्रदाय के विरुद्ध यह कहकर भडका दिया गया कि यह मत अवैदिक था। उसपर जयपुर मे वैष्णव समाज बुलाया गया। इन्होने स्वसप्रदाय तथा परकीयावाद को वेदानुकूल प्रतिपादित किया और ब्रह्मसूत्र पर गोविंद भाष्य प्रस्तुत किया। गलता में गोपाल विग्रह प्रतिष्ठापित किया, जो मदिर अद्यापि वर्तमान है। इन्होंने बहुत सी टीकाएँ तथा मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत कर चैतन्यसाहित्य की विशेष सेवा की है। इनका समय स० १७५० से स० १८४० के मध्य है।

[व्र० र० दा०]

वलवन, गयासुद्दीन जाति से इलवारी तुर्क था। उसकी जन्मतिथि का पता नहीं। उसका पिता उच्च श्रेणी का सरदार था। वाल्यकाल मे ही मगोलो ने उसे पकडकर वगदाद के वाजार मे दास के रूप में वेच दिया। भाग्यचक्र उसको भारतवर्ष लाया। सुल्तान इलतुतमिश नें उसपर दया करके उसे मोल ले लिया। स्वामिभक्ति और सेवाभाव के फलस्वरूप वह निरतर उन्नति करता गया, यहाँ तक कि सुलतान ने उसे चेहलगान के दल मे सम्मिलित कर लिया। रजिया के राज्यकाल मे उसकी नियुक्ति अमीरे शिकार के पद पर हुई। वहराम ने उसको रेवाडी तथा हासी के क्षेत्र प्रदान किए। स० १२४५ ई० मे मगोलों से लोहा लेकर अपने सामरिक गुण का प्रमाण दिया। आगामी वर्ष जब नासिरुद्दीन महमूद सिहासनारूढ हुआ तो उसने वलवन को मुख्य मत्री के पद पर आसीन किया। २० वर्ष तक उसने इस उत्तरदायित्व को निवाहा। इस अवधि मे उसके समक्ष जटिल समस्याएँ प्रस्तुत हुईं तथा एक अवसर पर उसे अपमानित भी होना पडा, परतु उसने न तो साहस ही छोडा और न दृढ सकल्प। वह निरतर उन्नति की दिशा मे ही अग्रसर रहा। उसने आतरिक विद्रोहों का दमन किया और वाह्य आक्रमणो को असफल। सं० १२४६ मे दुआवे के हिंदू जमीदारों की उद्दडता का दमन किया। तत्पश्चात् कालिंजर व कडा के प्रदेशो पर अधिकार जमाया। प्रसन्न होकर स० १२४९ ई० मे सुल्तान ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ किया और उसको नायव सुल्तान की उपाधि प्रदान की। स० १२५२ ई० मे उसने ग्वालियर, चदेरी और मालवा पर अभियान किए। प्रतिद्वद्वियो की ईर्ष्या और द्वेष के कारण एक वर्ष तक वह पदच्युत रहा परतु शासन व्यवस्था को विगडती देखकर सुल्तान ने विवश होकर उसे वहाल कर दिया। दुवारा कार्यभार सँभालने के पश्चात् उसने उद्दड अमीरो को नियत्रित करने का प्रयास किया। सं० १२५५ ई० में सुल्तान के सौतेले पिता कतलुग खाँ के विद्रोह को दवाया। स० १२५७ ई० मे मगोलो के आक्रमण को रोका। स० १२५९ ई०

ने मेवात क्षेत्र के बागियों का नाश किया। १२६० ई० से लेकर १२६६ ई० तक की उसकी कृतियों का इतिहास प्राप्त नही।

नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु के पश्चात् बिना किसी विरोध के बलबन ने मुकुट धारण कर लिया। उसने २० वर्ष तक राज्य किया। सुल्तान के रूप मे उसने जिस बुद्धिमत्ता, कार्यकुशलता तथा निर्भीकता का परिचय दिया, इतिहासकारो ने उसकी भूरि भूरि प्रशसा की है। शासनपद्धति को उसने नवीन साँचे मे ढाला और उसको मूलत लौकिक बनाने का प्रयास किया। वह मुसलमान विद्वानो का आदर तो करता था लेकिन राजकीय कार्यों मे उनको हस्तक्षेप नही करने देता था। उसका न्याय पक्षपात रहित और उसका दड अत्यत कठोर था, इसी कारण उसकी शासनव्यवस्था को लोह रक्त की व्यवस्था कहकर सबोधित किया जाता है। वास्तव मे इस समय ऐसी ही व्यवस्था की आवश्यकता थी।

बलबन ने मगोलो के आक्रमणो की रोकथाम करने के उद्देश्य से सीमात क्षेत्र मे सुदृढ दुर्गों का निर्माण किया और इन दुर्गों मे साहसी योद्धाओ को नियुक्त किया। उसने मेवात, दोआब और कटेहर के विद्रोहियो को आतकित किया। जब तुगरिल ने बगाल मे स्वतत्रता की घोषणा कर दी तब सुलतान ने स्वय वहाँ पहुँचकर निर्दयता से इस विद्रोह का दमन किया। साम्राज्यविस्तार करने की उसकी नीति न थी, इसके विपरीत उसका अडिग विश्वास साम्राज्य के सगठन मे था। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु के उसने उमराव वर्ग को अपने नियत्रण मे रखा एव सुलतान के पद और प्रतिष्ठा को गौरवमय बनाया। उसका कहना था कि 'सुलतान का हृदय दैवी अनुकपा की एक विशेष निधि है, इस कारण उसका अस्तित्व अद्वितीय है।' उसने सिजदा एव पायबोस की पद्धति को चलाया। उसका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उसको देखते ही लोग सज्ञाहीन हो जाते थे। उसका भय व्यापक था। उसने सेना का भी सुधार किया, दुर्बल और वृद्ध सेनानायको को हटाकर उनकी जगह वीर एव साहसी जवानो को नियुक्त किया। वह तुर्क जाति के एकाधिकार का प्रतिपालक था, अत उच्च पदो से अतुर्क लोगो को उसने हटा दिया। कीर्ति और यश प्राप्त कर वह स० १२८७ ई० के मध्य परलोक सिधारा।

[ब० प्र० स०]

बलभद्र (बलराम) पाचरात्र शास्त्रो के अनुसार बलराम भगवान् वासुदेव के व्यूह या स्वरूप हैं। उनका कृष्ण के अग्रज और शेष का अवतार होना ब्राह्मण धर्म को अभिमत है। जैनों के मत मे उनका सबध तीर्थंकर नेमिनाथ से है। बलराम या सकर्पण का पूजन बहुत पहले से चला आ रहा था, पर इनकी सर्वप्राचीन मूर्तियाँ मथुरा और ग्वालियर के क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। ये शुगकालीन हैं। कुषाणकालीन बलराम की मूर्तियो मे कुछ व्यूह मूर्तियाँ अर्थात् विष्णु के समान चतुर्भुज प्रतिमायें है, और कुछ उनके शेष से सबधित होने की पृष्ठभूमि पर बनाई गई हैं। ऐसी मूर्तियो मे वे द्विभुज हैं और उनका मस्तक मगलचिह्नो से शोभित सर्पफणो से अलकृत है। बलराम का दाहिना हाथ अभयमुद्रा मे उठा हुआ है और बाएँ मे मदिरा का चपक है। बहुधा मूर्तियो के पीछे की ओर सर्प का आभोग दिखलाया गया है। कुषाण काल के मध्य मे ही व्यूहमूर्तियो का और अवतारमूर्तियो का भेद समाप्तप्राय हो गया था, परिणामत बलराम की ऐसी मूर्तियाँ भी बनने लगी जिनमें नागफणाओ के साथ ही उन्हें हल मूसल से युक्त दिखलाया जाने लगा। गुप्तकाल मे बलराम की मूर्तियो मे विशेष परिवर्तन नही हुआ। उनके द्विभुज और चतुर्भुज दोनो रूप चलते थे। कभी कभी उनका एक ही कुडल पहने रहना 'बृहत्सहिता' से अनुमोदित था। स्वतत्र रूप के अतिरिक्त बलराम तीर्थंकर नेमिनाथ के साथ, देवी एकानशा के साथ, कभी दशावतारो की पक्ति मे दिखलाई पडते हैं।

कुषाण और गुप्तकाल की कुछ मूर्तियो मे बलराम को सिहशीर्ष से युक्त हल पकडे हुए अथवा सिहकुडल पहिने हुए दिखलाया गया है। इनका सिह से सबध कदाचित् जैन परपरा पर आधारित है।

मध्यकाल में पहुँचते पहुँचते ब्रज क्षेत्र के अतिरिक्त — जहाँ कुषाणकालीन मदिरा पीने वाले द्विभुज बलराम मूर्तियों की परपरा ही चलती रही — बलराम की प्रतिमा का स्वरूप बहुत कुछ स्थिर हो गया। हल, मूसल तथा मद्यपात्र धारण करनेवाले सर्पफणाओ से सुशोभित बलदेव बहुधा समपद स्थिति मे अथवा कभी एक घुटने को किंचित झुकाकर खडे दिखलाई पडते हैं। कभी कभी रेवती भी साथ मे रहती हैं।

[नी० पु० जो०]

बलभद्र या बलराम श्रीकृष्ण के सौतेले बडे भाई थे जो रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बलराम, हलधर, हलायुध, सकर्पण आदि इनके अनेक नाम हैं। बलभद्र के सगे सात भाई और एक बहन सुभद्रा थी जिन्हें चित्रा भी कहते हैं। इनका ब्याह रैवत की कन्या रेवती से हुआ था। दे० 'रेवती'। कहते हैं, रेवती २१ हाथ लबी थी और बलभद्र जी ने अपने हल से खीचकर इन्हे छोटी किया था।

इन्हें नागराज अनत का अश कहा जाता है और इनके पराक्रम की अनेक कथाएँ पुराणो मे वर्णित हैं। ये गदायुद्ध मे विशेष प्रवीण थे। दुर्योधन इनका ही शिष्य था। इसी से कई बार इन्होने जरासध को पराजित किया था। श्रीकृष्ण के पुत्र शाब जब दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा का हरण करते समय कौरव सेना द्वारा बदी कर लिए गए तो बलभद्र ने ही उन्हे छुडाया था। स्यमतक मणि लाने के समय भी ये श्रीकृष्ण के साथ गए थे। मृत्यु के समय इनके मुँह से एक बडा साँप निकला और प्रभास के समुद्र में प्रवेश कर गया था। [रा० द्वि०]

बलरामपुर स्थिति: २७° २६' उ० अ० तथा ८२° ११' पू० दे०। भारत मे उत्तर प्रदेश राज्य के गोंडा जिले मे, राप्ती नदी के दो मील दक्षिण स्थित एक नगर है। यह पुरानी बलरामपुर रियासत की राजधानी भी रह चुका है। प्रधान बस्ती के दक्षिण में सुवावान नदी बहती है। नगर का नाम यहाँ के एक पुराने ताल्लुकेदार राजा बलरामदास के नाम पर है। नगर अधिक पुराना नही है। महाराजा दिग्विजय सिंह के समय मे इसने काफी उन्नति की। रेलवे स्टेशन से महाविद्यालय तक सडक के किनारे की इमारतें नियोजित ढग से बनी हैं। राजा साहब का पुराना महल (सिटी पैलेस), महाविद्यालय तथा उसमे स्थापित महाराजा दिग्विजय सिंह एव पाटेश्वरीप्रसाद की मूर्तियाँ, नीलबाग महल, राज अतिथिगृह आदि दर्शनीय हैं। अस्पताल तथा उपजिलाधीश आदि के कार्यालय हैं। यह

औद्योगिक तथा व्यापारिक नगर है, जहाँ गल्ले की मंडी, बिजलीघर और चीनी का कारखाना है। इसकी जनसंख्या ३१,७७६ (१९६१) है। [मु० च० मा०]

बलविज्ञान पिंडों की गति, गत्युत्पादक बलों और विरामावस्थावाले पिंड पर लगे हुए बलों के संतुलन का विवरण देता है। इसका अंग्रेजी समानार्थी शब्द मिकैनिक्स (Mechanics) मशीन शब्द से संबद्ध है, जिसका अर्थ यंत्र है। इसलिये कुछ लेखक बलविज्ञान को यांत्रिकी भी कह देते हैं, किंतु सामान्यतया यांत्रिकी को अनुप्रयुक्त बलविज्ञान कहा जाता है और इसमें प्रत्यास्थता, द्रवयांत्रिकी, वायुगतिविज्ञान, क्षेपणविज्ञान, यंत्रकला, पदार्थ सामर्थ्य आदि का समावेश होता है।

सैद्धांतिक बलविज्ञान के दो संबद्ध अंग हैं गतिविज्ञान और स्थितिविज्ञान। गतिविज्ञान का अंग्रेजी पर्यायवाची 'डाइनैमिक्स' है। ग्रीक भाषा में डाइनैमिक्स का अर्थ शक्ति है, इस कारण गतिविज्ञान में पिंडों की उस गति का विवेचन होता है जो उनपर लगे हुए बलों के कारण होती है, और इस रूप में इसे बलगतिविज्ञान (Kinetics) कहते हैं। गति के परिमाण और विवरणवाले विषय को शुद्ध गतिविज्ञान (Kinematics) कहते हैं। स्थितिविज्ञान में विरामावस्थावाले पिंडों पर लगे हुए संतुलित बलों का विवेचन होता है। यह विवेचन अब गतिविज्ञान के नियमों के आधार पर किया जाता है, यद्यपि ऐसा करना अनिवार्य नहीं है।

गतिविज्ञान के दो आधार हो सकते हैं (१) प्रयोगात्मक तथा (२) स्वयंसिद्ध (axiomatic)। यूक्लिडीय रेखागणित में स्वयंतथ्यों की भाँति गतिविज्ञान में 'गति के नियम' हैं (देखें, गति के नियम)। ऐसा माना जाता है कि ये नियम प्रयोग द्वारा सिद्ध किए जा सकते हैं। वैसे तो किसी भी सैद्धांतिक 'नियम' के यथार्थ सत्यापन में क्रियात्मक बाधाओं के कारण कठिनाइयाँ होती हैं, किंतु गतिविज्ञान के नियमों का सत्यापन तो 'चक्रक युक्तिवाद' के समान है, क्योंकि यदि उदाहरणत इस नियम का कि 'किसी बल के न लगे रहने पर पिंड ऋजु रेखा में समान वेग से चलता रहता है' सत्यापन किया जाय, तो ऐसे पिंड का निर्धारण करना ही जिसपर कोई बल न लगा हो, प्राय असंभव है। ऐटवुड यंत्र में चिकनी घिरनी पर से जाती हुई भारहीन डोर के सिरे पर दो समान भार के पिंड बँधे रहते हैं। यदि एक पिंड को डोर की दिशा में चला दिया जाता है, तो दूसरा पिंड समान वेग से डोर की दिशा में चलता दिखाई देता है। वास्तव में वेग का थोड़ा मंदन अवश्य होता है। यदि मंदन का कारण घर्षण मान भी लें, तो भी यह प्रयोग नियम का सत्यापन नहीं करता, क्योंकि पिंड नितांत रूप से बलमुक्त नहीं है, दो बल तो उसपर लगे ही हैं और गति के नियमों का उपयोग कर के ही इन बलों को 'संतुलित' माना जाता है।

सत्यापन की कठिनाई से बचने के लिये गति के नियमों को स्वयंसिद्ध माना जाता है, जिन्हें न तो सिद्ध करना आवश्यक है, न ऐसा करना संभव ही है। इन सब नियमों के आधार पर जो परिणाम मिलते हैं, उनकी हम वास्तविक पिंडों की गति से तुलना कर सकते हैं। यदि इस प्रकार सत्यापन नहीं होता, तो सभी नियम इकट्ठा त्याज्य होंगे, नियमों की अलग अलग परीक्षा नहीं की जा सकती। इस कसौटी पर न्यूटन के नियम बड़े अंश तक सत्य हैं। इनकी महत्ता यह भी है कि विश्व में पिंडों की गति का वर्णन (न कि व्याख्या) ये अत्यंत ही सरल रूप में करते हैं। इनसे पूर्व कोपरनिकस ने सूर्य के सापेक्ष ग्रहों की गति का वर्णन टालिमी के पृथ्वी सापेक्ष वर्णन की तुलना से निश्चित रूप से अधिक सरल कर दिया था।

शुद्ध गतिविज्ञान

चाल — मोटर कार, रेलगाड़ी आदि की चाल की संकल्पना से हम दैनिक जीवन से परिचित हैं। समय के सापेक्ष दूरी बदलने की दर को चाल कहते हैं। जब कहा जाता है कि गाड़ी की चाल ३० मील प्रति घंटा है, तब इसका अर्थ यह है कि गाड़ी इस तेजी से चल रही है कि यदि इसी प्रकार चलती रही तो वह १ घंटे में ३० मील, १ मिनट में ½ मील और १ सेकंड में ४४ फुट की दूरी तय करेगी। यदि चाल अचर नहीं है, तो हम केवल यह कह सकते हैं कि गाड़ी १ घंटे में स्थूल रूप से ३० मील और १ सेकंड में सन्निकटत ४४ फुट चलेगी। इस प्रकार जितना ही लघु समय का अंतराल (स घंटे) होगा उतना ही सन्निकट मान इस अंतराल में तय की हुई दूरी (द मील) का मिलेगा। इस प्रकार यदि किसी क्षण चाल च मील प्रति घंटा है, तो सूत्र

$$\text{द} = \text{च स, अर्थात् च} = \text{द}/\text{स}$$

उतना ही सन्निकटत सत्य होगा जितना छोटा स है। अवकल गणित की भाषा में

$$\text{च} = \text{ता द}/\text{ता स} \quad (१)$$

अर्थात् चाल च तय की हुई दूरी द का स के सापेक्ष अवकलज है।

दूरी समय रेखाचित्र — प्राय सभी मोटरगाड़ियों और रेलगाड़ियों में एक उपकरणिका ऐसी लगी रहती है जिससे चली हुई दूरी किसी भी क्षण पढ़ी जा सकती है। यदि दूरी के साथ समय भी पढ़ लिया जाय, तो रेखाचित्रीय निरूपण के सिद्धांतों के अनुसार हम ऐसे बिंदु अंकित कर सकते हैं जो स और द के संगत मानों को प्रकट करते हैं। यदि ऐसे बहुत से बिंदु अंकित किए जायँ और उन्हें एक सतत वक्र से मिला दिया जाय, तो यह वक्र पूरे प्रेक्षणकाल के लिये स और द का संबंध निरूपित करता है। ऐसे वक्र को समय-दूरी, अर्थात् स-द, रेखाचित्र कहते हैं।

चित्र १.

यदि वक्र पर ब कोई बिंदु है, और बल स अक्ष पर लंब है, तो दूरी अ ल से निरूपित समय पर गाड़ी ल ब से निरूपित दूरी पर होगी। इसी प्रकार वक्र पर एक अन्य बिंदु म से स अक्ष पर लंब म र है तो समय ल र में गाड़ी की औसत चाल

$$\frac{\text{दूरी कप अथवा मग}}{\text{समय लर अथवा बग}}$$

अर्थात् चाल रेखा बम की प्रवणता से मापी जाती है।

यदि चाल अचर है, तो वक्र के प्रत्येक खंड की प्रवणता अचर होगी। इसलिये वक्र ऋजुरेखीय होगा। यदि चाल चर है, तो म बिंदु ब के जितने अधिक समीप होगा उतना ही अधिक सन्निकट चाल का मान
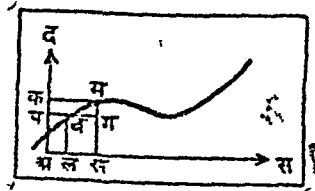
प्रवणता से मिलेगा। सीमावस्था मे बम बिंदु ब पर वक्र का स्पर्शी होगा। इस प्रकार चाल की माप स—द लेखाचित्र की प्रवणता से प्राप्त होती है। यदि स के फलन रूप मे द के ज्ञात न होने के कारण सूत्र (१) का उपयोग न किया जा सकता हो, तो लेखाचित्रीय विधियों से चाल का अनुमान लगाया जा सकता है।

सूत्र (१) का अर्थ है कि $द = \int च \, तास$

अर्थात् दूरी द चाल च का स के सापेक्ष समाकलन कर, दूरी द प्राप्त की जा सकती है।

यदि च (स का) ऐसा फलन न हो जिसका समाकलन ज्ञात फलनो के पदो मे सभव हो, तो लेखाचित्रीय विधि से सनिकट समाकलन किया जा सकता है (देखें समाकलन)। वस्तुत स—द लेखाचित्र मे वक्र के 'नीचे' का क्षेत्रफल, समुचित माप सबध के अनुसार, दूरी द का द्योतक है।

त्वरण — जब चाल बदलती है तब समय के सापेक्ष उसकी वृद्धि की दर को त्वरण कहते हैं। उदाहरणत, यदि ५ सेकड के कालातर मे गाडी की चाल ३० फुट प्रति सेकड से बढकर ४० फुट प्रति सेकड हो जाती है, तो इस काल मे चाल मे वृद्धि १० फुट प्रति सेकड है और औसत चालवृद्धि की दर, अर्थात् त्वरण १०—५, अर्थात् २ फुट प्रति सेकड है। यदि कालातर स मे चाल मे वृद्धि च होती है, तो औसत त्वरण = च/स। ज्यो ज्यो स लघु होता जाता है, यह भिन्न त्वरण का उत्तरोत्तर सनिकटतर मान देता है। अवकलन गणित की भाषा मे

$त्वरण \; त = ता \, च/ता \, स = ता^2 \, द/ता \, स^2$।

और $च = \int त \, ता \, स$।

इस प्रकार च—स के लेखाचित्र मे समुचित माप सबध के अनुसार किसी बिंदु पर त्वरण उस बिंदु पर स्पर्शी की प्रवणता से निरूपित होता है और किसी कालातर में चाल मे वृद्धि उस लेखाचित्र के नीचेवाले क्षेत्रफल से।

वेग — चाल और त्वरण की विवेचना मे हमने गाडी के पथ पर ध्यान नही दिया है। समय स में जो दूरी द गाडी ने तय की वह पथ के किसी स्थिर बिंदु से नापी गई दूरी है। यदि पथ कोई वक्र बद है, तो जब गाडी प्रस्थान स्थिति के समीप आ जाएगी तब उसकी दूरी वही मानी जाएगी जो उसने तय की है। इस प्रकार चाल और त्वरण की परिभाषाओ मे पथ के निर्दिष्ट होने के कारण दिशा पर ध्यान नही दिया गया। किंतु यदि पथ अकित न हो, जैसे समुद्र पर जहाज का पथ, तो निर्देशाक ज्यामिति की भाँति किसी क्षण पर जहाज की स्थिति बताने के लिये दो निर्देशाक्ष चुनने होगें। मान लीजिए ये किसी स्थिर बिंदु अ से उत्तर और पूर्व दिशा मे खीची गई रेखाएँ अउ और अप हैं। यदि पथ वक्र मय है, व इस पर कोई बिंदु है, व ल अक्ष अ प पर लब है और व की स्थिति (य, र) है जहाँ य = अल और र = लव (देखें चित्र २.)
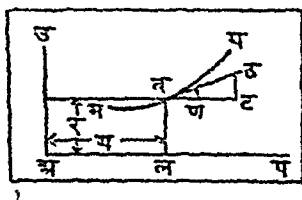
चित्र २.

तो पूर्व दिशा मे बिंदु का वेग $व_1 = य$ की वृद्धि की दर और उत्तर दिशा मे बिंदु का वेग $व_2 = र$ के वृद्धि की दर।

$$(१) \text{ के अनुसार } व_1 = \frac{ताय}{तास}, \; व_2 = \frac{तार}{तास} \quad . \quad (२)$$

ब पर (जहाज की) गति की वास्तविक दिशा स्पर्शी बठ के अनुदिश है और ब पर जहाज की चाल को दिशा बठ मे जहाज का वेग कहते हैं। वस्तुत वेग चाल के प्रकार की एक राशि है, किंतु इसमे दिशा भी बताई जाती है। समीकरण (२) मे $व_1$ को पूरब दिशा का वेग और $व_2$ को उत्तर दिशा का वेग कहा जाता है।

वेगों का सघटन और विघटन — बिंदु ब पर जहाज का वेग दो वेगो $व_1$ और $व_2$ के सयोजन से बना है और यदि $व_1$ तथा $व_2$ ज्ञात हैं, तो वास्तविक वेग की दिशा तथा माप दोनों निर्धारित हो जाती हैं। अभीष्ट सबध ज्ञात करने के लिये मान लें कि जहाज ब से आगे उसी चर वेग से चलता है जो उसका ब पर था, तो जहाज का पथ ऋजुरेखीय होगा और समय स मे वह बिंदु ठ पर पहुंचेगा, जहाँ

$$ब ठ = स \, व$$

पूर्व दिशा में वेग $व_1$ से समय स मे जहाज दूरी $बट = सव_1$ तय करता है, इसी प्रकार उत्तर दिशा में दूरी $टठ = स \, व_2$। इसलिये

$$\frac{व_1}{व} = \frac{बट}{बठ} = \text{कोज्या } ण, \quad \frac{व_2}{व} = \frac{टठ}{बठ} = \text{ज्या } ण,$$

अर्थात् $\quad व_1 = व \text{ कोज्या } ण, \; व_2 = व \text{ ज्या } ण \quad . \quad . \quad (३)$

७. समातर चतुर्भुज नियम — $व_1$ तथा $व_2$ वेग व के वियोजित अंश कहलाते हैं, $व_1$ पूरब दिशा का और $व_2$ उत्तर दिशा का। वेग व को वेगो $व_1$ और $व_2$ का परिणामी कहते हैं। समुचित माप सबध पर $व_1$ और $व_2$ को आयत की भुजाओं से निरूपित करने पर परिणामी वेग व आयत के विकर्ण से निरूपित होता है (देखें चित्र ३.) यदि वेग $व_1$ और $व_2$ लब दिशाओं मे न हों, तो उनका परिणामी दिशा तथा परिमाण मे उस समातर चतुर्भुज के विकर्ण से निरूपित होता है जिसकी भुजाएँ दिए हुए वेगो को निरूपित करती हैं। यह वेगो का समान्तर चतुर्भुज नियम है। यदि दो वेगो $व_1$ तथा $व_2$ के बीच कोण ण है और उनके परिणामी व तथा $व_1$ के बीच कोण ल है तो त्रिकोणमिति से स्पष्ट है (देखें चित्र ४.) कि
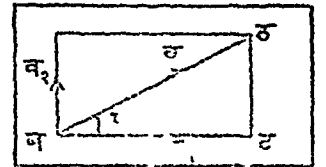
चित्र ३.

$$व = \sqrt{(व_1^2 + व_2^2 + २व_1 \, व_2 \text{ कोज्या } ण)}$$

$$\text{ज्या } ल = व \text{ ज्या } ण \, / \, (व_1 + व_2 \text{ कोज्या } ण)$$

इन सूत्रो से परिणामी वेग व की माप तथा दिशा दोनो ज्ञात हो जाती हैं। $व_1$, $व_2$ वेग व के घटक कहलाते हैं। वेग व घटको $व_1$, $व_2$ और कोणो ण तथा ल मे निम्नलिखित सबध हैं

$$\frac{व}{\text{ज्या } ण} = \frac{व_1}{\text{ज्या }(ण - ल)} = \frac{व_2}{\text{ज्या } ल}$$

इन समीकरणों से राशियों व, $व_1$, $व_2$, ग तथा ल में से तीन के ज्ञात होने पर शेष दो निर्धारित किए जा सकते हैं।

त्वरणों के संयोजन के लिये भी इसी प्रकार का समांतर चतुर्भुज नियम है। ऊपर के सूत्रों में व को त्वरण और $व_1$ तथा $व_2$ को घटक त्वरण मानना होगा।

चित्र ४.

समतल पर गतिमान बिंदु का वेग दो निर्दिष्ट दिशाओं के घटकों में निर्धारित हो जाता है, किंतु त्रिविमितीय आकाश में गतिमान पिंड (जैसे वायुयान) का वेग तीन दिशाओं में उसके घटक दिए रहने पर निर्धारित होता है। दिशा और माप में परिणामी, उस समांतर फलकी के विकर्ण से निरूपित होता है जिसकी भुजाएँ दिए हुए घटकों को माप तथा दिशा में निरूपित करती हैं। विकर्ण तथा भुजाएँ विचाराधीन बिंदु से होकर जानी चाहिए। यह समांतर चतुर्भुज नियम का त्रिविमितीयकरण है और सदिश नियम के नाम से प्रसिद्ध है।
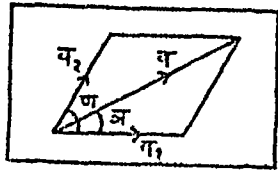
गतिविज्ञान

गतिविज्ञान का मुख्य रूप से ध्येय परस्पर क्रिया से प्रभावित दो या अधिक पिंडों की अधिक गति का शोध करना है। यह परस्पर क्रिया उनके संघट्ट के कारण, जैसे दो बिलियर्ड की गेंदों के, अथवा उनके परस्पर आकर्षण के कारण, जैसे सूर्य और पृथ्वी के बीच, हो सकती है। न्यूटन का अनुसरण करते हुए हम इस क्रिया को बल कहते हैं। हरेक पिंड दूसरे पिंड पर बल लगाता है। एक पिंड पर बल आरोपित मानने से दूसरे पिंड की उपेक्षा की जा सकती है। इस प्रकार बल की संकल्पना अत्यंत सुविधाजनक है, क्योंकि हमें सदा ही पिंडों की सापेक्ष गति जाननी होती है। उदाहरणत, यदि पृथ्वी पर फेंके हुए पिंड की गति ज्ञात करना अभीष्ट है, तो पृथ्वी और पिंड की परस्पर क्रिया के स्थान में पृथ्वी के आकर्षण-बल की संकल्पना के फलस्वरूप पिंड पर ऊर्ध्वाधर अधोमुखी त्वरण ग मानकर गति ज्ञात की जा सकती है। किंतु बल की संकल्पना अनिवार्य नहीं, इसके बिना भी गतिशोध किया जा सकता है।

न्यूटन के गतिनियमों बलों और उनके प्रभावों के बीच गृहीत संबंध हैं, जिनमें कोई असामंजस्य नहीं है और इनका विशेष गुण यह है कि ये आकाशीय पिंडों की गति की व्याख्या करते हैं (देखें गति के नियम)।

न्यूटन का प्रथम नियम — प्रथम नियम इस प्रश्न का उत्तर देता है कि बिना बल लगे पिंड की क्या गति होगी। नियम यह है कि बाहर से लगे हुए किसी बल द्वारा प्रेरित होने पर ही कोई पिंड विरामावस्था को, या सीधी रेखा में अचर वेग से चलने की अवस्था को, छोड़ता है, अन्यथा वह या तो विरामावस्था में पड़ा रहता है, या सीधी रेखा में अचर वेग से चलता रहता है। इस नियम को जड़ता नियम भी कहते हैं। इसे सर्वप्रथम गैलिलियो ने न्यूटन की प्रिंसिपिया नामक पुस्तक प्रकाशित होने से ५० वर्ष पूर्व, १६३८ में, प्रस्तुत किया। विरामावस्था से अर्थ यह है कि अवकाश में तीन स्थिर अक्षों — अ य, अ र, अ ल — के सापेक्ष स्थित पिंड के निर्देशांकों य, र, ल, में कालांतर में कोई भी नहीं बदलता। लेकिन स्थिर अक्ष क्या है, यह न बता सकने की कठिनाई न्यूटनीय मीमांसा में अवश्य है। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से किन्हीं स्थिर अक्षों की कल्पना कर गतिविज्ञान का प्रतिपादन किया जा सकता है और क्रियात्मक रूप से यदि स्थिर तारों के सापेक्ष अस्थिर अक्ष मान लिए जायँ, तो वास्तविक गतियों के निर्धारण में कोई अनुमाननीय त्रुटि नहीं आती।

प्राय देखा जाता है कि मोटर गाड़ी आदि को ऋजु रेखा में अचर वेग से चलाने के लिये भी बल लगाना पड़ता है। यह बात प्रथम गति नियम की विरोधी है, पर इसका कारण यह है कि पिंड जिस माध्यम (समतल, वायु आदि) में चलता है उसके द्वारा अवश्य ही कुछ न कुछ बल घर्षण के रूप में लगा रहता है और इस प्रतिरोधी बल के निराकरण के लिये ही बाह्य बल की आवश्यकता पड़ती है।

न्यूटन का द्वितीय नियम — दूसरा नियम यह बताता है कि बल लगाने पर पिंड का वेग किस प्रकार बदलता है। नियम यह है कि गतिपरिवर्तन आरोपित बल के समानुपात में और उसी दिशा में होता है जिसमें आरोपित बल लगा है। गतिपरिवर्तन का अर्थ हमारी भाषा में त्वरण से है। गतिपरिवर्तन के स्थान में आज कल 'संवेग वृद्धि की दर' कहकर नियम को स्पष्ट कर दिया गया है। संवेग पिंड के द्रव्यमान और वेग के गुणनफल को कहते हैं। इस नियम के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि

$$ब = द्र\ त \quad \ldots \quad (४)$$

जहाँ ब = बल, द्र = पिंड का द्रव्यमान और त = पिंड का त्वरण है। इस नियम के साथ एक आधारभूत नियम, बलों का स्वातंत्र्य, जोड़ने पर यह निष्कर्ष मिलता है कि यदि पिंड पर कई एक बल लगे हों, तो प्रत्येक अपनी दिशा में, अपनी माप के समानुपात में, पिंड में त्वरण उत्पन्न करेगा। इन सब त्वरणों का परिणामी त्वरण वही होगा जो बलों का परिणामी बल पिंड में उत्पन्न करता। दूसरे शब्दों में, बलों का परिणामी बल भी सदिश नियम से प्राप्त किया जा सकता है। पिंड के द्रव्यमान को उसकी जड़ता की माप भी मानते हैं।

न्यूटन का तृतीय नियम — जैसा पहले बताया जा चुका है, बल दो पिंडों की परस्पर क्रिया का एक पहलू है। यदि पिंड ड की क्रिया के कारण पिंड क पर कोई बल ब लगता है, तो इसी क्रिया के कारण पिंड ड पर भी यही बल लगेगा। न्यूटन का तृतीय नियम यह है कि प्रत्येक क्रिया के लिये ठीक उसी के बराबर और प्रतिकूल दिशा में प्रतिक्रिया विद्यमान रहती है। इन तीन नियमों में साथ गुरुत्व नियम (यह कि दूर स्थित दो पिंडों के बीच एक आकर्षण बल रहता है) मिला देने पर न्यूटनीय गतिविज्ञान का निर्माण होता है।

माप एकक — समीकरण (४) से बल मापने का एकक मिलता है। यदि द्र और त एकक माप के हैं, तो पिंड पर लगा बल भी एकक माप का होगा। फु० पा० से० पद्धति में द्रव्यमान का एकक १ पाउंड, त्वरण का १ फुट प्रति सेकंड प्रति सेकंड है और बल का एकक १ पाउंडल है, अर्थात् १ पाउंडल वह बल है जो १ पाउंड द्रव्यमानवाले पिंड में १ फुट प्रति सेकंड का त्वरण उत्पन्न करता है। सें० ग्रा० से० पद्धति में १ डाइन बल का एकक है, अर्थात् १ डाइन वह बल है जो १ ग्राम द्रव्यमानवाले पिंड में १ सेंटीमीटर प्रति सेकंड

प्रति सेकंड का त्वरण उत्पन्न करता है। डाइन और पाउंडल बल के परम एकक हैं, क्योंकि ये समय और स्थान के अनुसार नहीं बदलते। प्रत्युत वह बल जो १ पाउंड द्रव्यमानवाले पिंड में गुरुत्वीय त्वरण ग (जो लगभग ३२.२ फुट प्रति सेकंड प्रति सेकंड है) उत्पन्न करता है, १ पाउंड भार कहलाता है। इस प्रकार

१ पाउंड भार = ग पाउंडल

सें० ग्रा० से० पद्धति में गुरुत्वीय त्वरण का मान लगभग ९८१ सेंटिमीटर प्रति सेकंड है। इसलिये

१ ग्राम भार = लगभग ९८१ डाइन।

वैज्ञानिक कार्य में परम एकक पाउंडल और डाइन का उपयोग किया जाता है, किंतु इंजीनियरी आदि में पाउंड भार आदि का उपयोग होता है। ध्यान रखना चाहिए कि पाउंड भार ऊँचाई के अनुसार कम होता जाता है।

गतिनियमों के परिणाम

आवेग और संवेग — द्वितीय नियम से यह संबंध मिलता है कि

$$ब = \frac{ता\,(द्र व)}{ता\,स} \quad अर्थात् \quad \int ब\, ता\, स = द्र व,$$

जहाँ द्र द्रव्यमान के किसी पिंड पर लगा हुआ बल ब है और पिंड का वेग व है। यदि बल के समय $स_1$ तक लगने के कारण संवेग $(द्र\, व)_0$ से बदलकर $(द्र\, व)_1$ हो जाता है, तो

$$\int_0^{स_1} ब\, ता\, स = (द्र\, व)_1 - (द्र\, व)_0 \qquad (५)$$

इस संबंध में बाएँ पक्षवाले समाकल को बल का, समय $स_1$ तक का, आवेग कहते हैं। इस प्रकार बल का आवेग संवेग वृद्धि से मापा जाता है। यदि बल अचर है, अथवा समय $स_0$ लघु है, तो समाकल का मान = ब $स_0$। तदनुसार ऐसे बल को आवेगी बल कहते हैं जो माप में बड़ा हो और थोड़े समय के लिये लगा हो, जिससे गुणनफल ब $स_0$ परिमित माप का हो।

यदि किसी बल ब के (अक्षों के अनुदिश) विघटित अंश $ब_1$, $ब_2$ तथा $ब_3$ हैं और यह द्रव्यमान द्र वाले पिंड पर, जिसके वेग व के विघटित अंश $व_1$, $व_2$ तथा $व_3$ हैं, लगा है तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि विघटित अंश $ब_1$ का आवेग य अक्ष के अनुदिश संवेग द्र$व_1$ के परिवर्तन के बराबर है। इस प्रकार वेग की भाँति संवेग, सदिश-नियम के अनुसार, संयोजित और विघटित किया जा सकता है। समीकरण (५) जैसा समीकरण एक दूसरे पिंड के लिये

$$\int_0^{स_1} ब'\, ता\, स = (द्र'\, व')_1 - (द्र'\, व')_0$$

है। इसे समीकरण (५) में जोड़ने पर दो पिंडों पर लगे संपूर्ण बल ब + ब' के आवेग से उत्पन्न संवेगपरिवर्तन की मात्रा मिलती है। यदि ब और ब' दो पिंडों की परस्पर क्रियाएँ हैं, तो न्यूटन के तृतीय नियम से ब + ब' = ०, इसलिये संवेगपरिवर्तन शून्य है। यह संघट्ट का एक नियम है। दूसरा नियम कि 'संघट्ट से पूर्व एक पिंड का दूसरे के सापेक्ष संघट्ट की दिशा में वेग, संघट्ट के बादवाले सापेक्ष वेग से विपरीत दिशा में और एक निश्चित अनुपात में, होता है, प्रयोग से प्राप्त किया गया है।

यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि किसी भी दिशा में द्रव्य संहति के संपूर्ण संवेग पर इनके संघट्ट द्रव्यमानों की परस्पर क्रियाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह रैखीय संवेग की अविनाशिता का नियम है। द्रव्यमान के संपूर्ण संवेग में किसी दिशा में परिवर्तन उसपर लगे हुए बलों के आवेग के बराबर होता है। यह रैखीय संवेग का नियम है।

इस बात के आधार पर कि किसी पिंड के कणों की परस्पर क्रियाओं का (बीजीय) योग शून्य है, यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी पिंड (अथवा पिंडसमूह) के द्रव्यमान केंद्र की गति के लिये समीकरण उस कण की गति के समीकरण जैसे होते हैं, जो उस केंद्र पर स्थित है, पिंड के बराबर द्रव्यमान का है और जिसपर वे ही बल लगे हैं, जो पिंड पर बाहर से लगे हैं।

कार्य और ऊर्जा — चूँकि य अक्ष के अनुदिश त्वरण

$$त_1 = \frac{ता\, व_1}{ता\, स} = \frac{ता\, व_1}{ता\, य} \times \frac{ता\, य}{ता\, स} = व_1 \frac{ता\, व_1}{ता\, स}$$

इसलिये य अक्ष के अनुदिश गति समीकरण का निम्न रूप मिलता है

$$ब_1 = म\, त_1 = म\, व_1 \frac{ता\, व_1}{ता\, स}$$

$$अर्थात् \int_0^{*} ब_1\, ताय = \int_0^{*} म\, व_1\, ताव_1$$

$$= \left[\frac{१}{२} म\, व_1^2\right]_* - \left[\frac{१}{२} म\, व_1^2\right]_0 \quad (६)$$

जहाँ ० तथा * क्रमानुसार विस्थापन के आरंभ तथा अंत के द्योतक हैं और यह मान लिया गया कि द्रव्यमान म अचर है। राशि १/२ म $व^2$ को पिंड की गतिज ऊर्जा कहते हैं। र और ल अक्षों के अनुदिश-वाले समीकरण जोड़ने पर हम देखेंगे कि

$$\int_0^{*} (ब_1\, ताय + ब_2\, तार + ब_3\, ताल)$$

$$= \left[\frac{१}{२} म\, व^2\right]_* - \left[\frac{१}{२} म\, व^2\right]_0 \qquad (७)$$

यदि हम केवल य अक्ष के ही अनुदिश गति तक सीमित रहें और $ब_1$ को अचर मानें, तो समीकरण (६) यह बताता है कि विस्थापन में गतिज ऊर्जा की वृद्धि $ब_1$ $(य_* - य_0)$, अर्थात् बल द्वारा किए गए कार्य, के बराबर होती है। जब बल सदा विस्थापन की दिशा में नहीं लगा रहता है, तो जैसा नीचे समझाया गया है, समीकरण (७) के बाएँ पक्ष का समाकलन बल द्वारा किए गए कार्य का द्योतक है और बल द्वारा किया गया कार्य गतिज ऊर्जा की वृद्धि के बराबर है।

मान लें क, ख पिंड की दो समीप की स्थितियाँ हैं, तो कख के लघु होने के कारण हम पिंड पर लगे बल ब को अचर मान सकते हैं। यदि बल की दिशा क ख (अर्थात् क पर के स्पर्शी) से कोण ग बनाती है, तो बल ब का विघटित अंश क ख के अनुदिश ब कोज्या ग है और यह दूरी कख तक विस्थापित होने पर कख, ब कोज्या ग
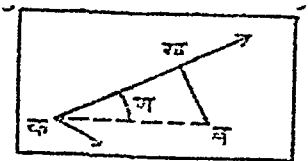
चित्र ५

के बराबर कार्य करेगा। दूसरा विघटित अंश कण से लंब दिशा में होने के कारण कुछ भी कार्य नहीं करेगा। साथ ही यदि अक्षों के अनुदिश कण के विघटित अंश ताय, तार, ताल, हैं और ब के ब$_1$, ब$_2$, ब$_3$ हैं, तो अवकलन ज्यामिति से

कण ब कोज्या ण = ब$_1$ ताय + ब$_2$ तार + ब$_3$ ताल।

इस राशि के समाकलन से अभीष्ट कार्य की मात्रा मिल जाती है।

संवेगघूर्ण — निर्दिष्ट अक्ष के परित किसी पिंड का संवेगघूर्ण (moment of momentum) उसके संवेग और उस न्यूनतम दूरी का गुणनफल है जो अक्ष और पिंड की परिणामी गति की रेखा के बीच है (यह न्यूनतम दूरी अक्ष और गतिरेखा दोनों पर लंब है)। यदि गतिरेखा अक्ष से लंब दिशा में है, तो यह दूरी गतिरेखा की उस बिंदु से लंबवत् दूरी है जिसमें अक्ष गतिरेखा से जानेवाले और अक्ष पर लंब समतल को काटता है। अन्य शब्दों में, किसी पिंड का एक बिंदु के परित संवेगघूर्ण पिंड के संवेग और गतिरेखा पर उस बिंदु से खींचे गए लंब का गुणनफल है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी अक्ष के परित द्रव्यमान के संवेगघूर्ण पर उसके संघटक द्रव्यमानों की परस्पर क्रियाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता (संवेगघूर्ण अविनाशिता नियम) और संवेगघूर्ण में परिवर्तन पिंड पर लगे हुए बलों के उस अक्ष के परित समिलित आघूर्ण के बराबर है (संवेगघूर्ण नियम)।

दृढ़ पिंड के लिये गतिसमीकरण — ऐसे पिंड को दृढ़ कहते हैं जिसके घटक कणों के बीच की दूरी सदा अपरिवर्तित रहती है। अवकाश में बलों से प्रेरित पिंड की गति के ६ समीकरण होते हैं — तीन निर्देशाक्षों की दिशाओं में संवेग-नियम से और तीन इन अक्षों के परित आघूर्ण लेने पर संवेगघूर्ण नियम से प्राप्त होते हैं। इनके हल से पिंड की हर क्षण पर गति ज्ञात हो जाती है।

बलकेंद्र के परितः पथ

पृथ्वी के सापेक्ष आकाशीय पिंडों की गति की व्याख्या करने के हेतु न्यूटन ने अपनी गतिविज्ञान पद्धति का विकास किया। उसकी व्याख्या का आधार गुरुत्वाकर्षण की कल्पना है। दो पिंडों के बीच आकर्षण एक दूसरे पर विपरीत दिशाओं में क्रिया करता है, इसलिये उनका द्रव्यमान-केंद्र (centre of mass) परस्पर आकर्षण के होते हुए भी, अन्य किसी बल की अनुपस्थिति में, ऋजु रेखा में अचर वेग से चलेगा। यह द्रव्यमान-केंद्र दोनों पिंडों को मिलानेवाली ऋजु रेखा पर स्थित रहता है। इसलिये द्रव्यमान-केंद्र के सापेक्ष गतिशोध में दूसरे पिंड पर ध्यान न देकर केवल केंद्र की ओर आकर्षणबल को मान लेना काफी है। द्रव्यमान-केंद्र को आकर्षण केंद्र मानने में सुविधा रहती है। पिंड पर केवल आकर्षण बल लगने के कारण आकर्षण केंद्र के परित उसके संवेग का आघूर्ण और उसकी गतिज ऊर्जा तथा आकर्षण द्वारा किए गए कार्य का योग, दोनों सदा अचर रहते हैं। आकर्षण बल दूरी के वर्ग के प्रतिलोमानुपात में होने पर पिंड के पथ का दीर्घवृत्त, परवलय अथवा अतिपरवलय होना इस बात पर निर्भर है कि किसी बिंदु पर पिंड का वेग $\sqrt{(२क/त्र)}$ से कम है, या इसके बराबर है, या इससे अधिक है। यहाँ त्र पिंड की आकर्षण केंद्र से दूरी है और क आकर्षण बल की माप क/त्र^2 का नियतांक है। इन पथों की एक नाभि आकर्षण केंद्र पर स्थित रहती है।

यद्यपि आकर्षण बल दूर की कणों में होता है, किंतु आकर्षण सिद्धांत के महत्वपूर्ण परिणाम हैं कि ऐसे ठोस या रिक्त गोलों में जिनमें प्रत्येक का घनत्व केंद्र से निश्चित दूरी पर एकसा है, आकर्षण वही होता है जो द्रव्यमानों में उनके बराबर और केंद्रों पर स्थित कणों में, जब आकर्षण नियम दूरी-वर्ग के प्रतिलोमानुपात का है। सूर्य का द्रव्यमान पृथ्वी या अन्य ग्रहों की अपेक्षा इतना अधिक है कि किसी भी ग्रह की गतिशोध में सूर्य और ग्रह के द्रव्यमान-केंद्र का सूर्य में ही स्थित मानने से त्रुटि उपेक्षणीय होती है। यदि ग्रहों के परस्पर आकर्षण बलों को भी गणना में सम्मिलित किया जाय, तो ग्रहों की गति और अधिक यथार्थता से ज्ञात हो जाती है।

स्थितिविज्ञान

स्थितिविज्ञान में उन बलों का विवेचन होता है जिनके रहने पर भी पिंड विरामावस्था में रहता है। विरामावस्था में पिंड का किसी भी दिशा में परिणामी त्वरण शून्य है। चूंकि द्रव्यमान द्र में प्रत्येक त्वरण त, न्यूटन के द्वितीय नियम के अनुसार बल द्रत के कारण है, इन बलों का परिणामी बल शून्य है। अतएव स्थितिविज्ञान में संतुलित बलों का विवेचन होता है। यह भी स्पष्ट है कि त्वरणों की भांति बलों में भी सदिश नियम, विशिष्टत समांतर चतुर्भुज नियम, लागू है।

१६. बल बहुभुज — बल बहुभुज नियम यह है कि यदि किसी कण पर लगे बल दिशा और माप में क्रमानुसार किसी (बद्ध) बहुभुज की भुजाओं से निरूपित हो सकें, तो कण संतुलित होगा। मान लें कण अ पर लगे बल दिशा और माप में अब$_1$, अब$_2$, ... से निरूपित होते हैं। समांतर चतुर्भुज नियम से माप तथा दिशा में बलों अब$_1$ और अब$_2$ का परिणामी अप$_1$ से निरूपित होगा, जहां अ ब$_1$ प$_1$ ब$_2$ एक समांतर चतुर्भुज है, अर्थात् सदिश संकेतन में, अब$_1$ + अब$_2$ = अप$_1$। इस प्रकार पहले बल को निरूपित करने के लिये अब$_1$ और दूसरे बल के निरूपण हेतु ब$_1$ प$_1$ खींचने से बिंदु प$_1$ मिल जाता है। अब यदि तीसरा बल अब$_3$ कण पर लगा है, तो तीनों बलों का
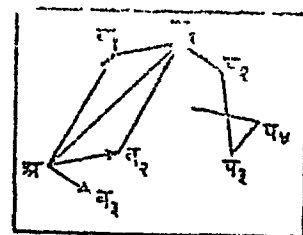
चित्र ६.

परिणामी अप$_1$ और अ ब$_3$ का परिणामी होगा। पूर्वोक्ति अनुसार यह परिणामी अ प$_2$ है, जहां प$_1$ प$_2$ (अब$_3$ के बराबर और समांतर) तीसरे बल का निरूपण करती हुई खींची गई है। यह क्रम कितने ही बलों के लिये दोहराया जा सकता है। हमें प$_1$, प$_2$, आदि बिंदु मिलते हैं और क्रमिक परिणामी अप$_1$, अप$_2$, आदि से निरूपित

होते हैं। संतुलन के लिये सब बलो का परिणामी शून्य होगा। इसलिये इस प्रकार अंत में प्राप्त बिंदु अ से संपाती होना चाहिए, अर्थात् यदि किसी संतुलित अवस्था में कण पर लगे बलो का निरूपण अ ब₁, ब₁ प₁, प₁ प₂, द्वारा करें तो ये एक बंद बहुभुज की भुजाएँ होंगी। यही बल बहुभुज नियम है। आवश्यक नहीं कि बहुभुज एक समतल में स्थित हो, और बल किसी भी क्रम मे लिए जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि दो बल तभी संतुलित होंगे जब वे बराबर और एक ही ऋजुरेखा मे, किंतु विपरीत दिशाओ मे लगे हों।

बल त्रिभुज — तीन बलो के लिये बल बहुभुज नियम का यह रूप हो जाता है यदि किसी कण पर लगे तीन बल एक त्रिभुज की भुजाओ से दिशा तथा माप मे निरूपित होते हैं, तो बल संतुलित हैं। यदि कण पर लगे तीन बल त्रिभुज अ ब₁ प₁ की भुजाओ से निरूपित हैं, तो बल अ ब₁, अ ब₂ तथा अ ब₃ संतुलित होंगे, जहाँ अ ब₂, ब₁ प₁ के समांतर तथा बराबर है और अ रेखा प₁ ब₃ का मध्यबिंदु है। बल त्रिभुज नियम से ये बल संतुलित हैं। साथ ही △अब₁ प₁ से (देखें चित्र ७)
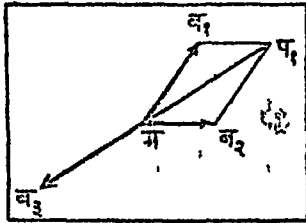
चित्र ७.

अब₁ ब₁प₁ प₁ अ
= ज्या अप₁ब₁ ज्या ब₁अप₁ . ज्या अब₁प₁

= ज्या प₁ अ ब₂ ज्या अ प₁ ब₂ ज्या अ प₁ ब₂

$$\text{अर्थात्}\quad \frac{\text{ब}_1}{\text{ज्या ब}_2\text{ अ ब}_3} = \frac{\text{ब}_2}{\text{ज्या ब}_3\text{ अ ब}_1} = \frac{\text{ब}_3}{\text{ज्या ब}_1\text{ अ ब}_2}$$

इस प्रकार प्रत्येक बल शेष दो बलो के बीच के कोण की ज्या का समानुपाती है। यह परिणाम लामी (Lamy) के प्रमेय के नाम से विख्यात है।

बल-संचरणशीलता — यदि एक दृढ पिंड के किसी बिंदु पर कोई बल लगा है, तो हम उस बल की क्रियारेखा मे किसी भी अन्य बिंदु पर उस बल को लगा हुआ मान सकते हैं, यह बल संचरणशीलता का नियम है। इसके तुल्य दूसरा नियम यह है कि एक ही क्रियारेखावाले ऐसे दो बल जो माप मे समान, किंतु दिशा मे विपरीत हो, एक दूसरे को निष्क्रिय अर्थात् संतुलित कर देते हैं। इन नियमो मे एक को स्वयंसिद्ध मान दूसरे को सिद्ध किया जा सकता है। बल संचरणशीलता के कारण बल की क्रियारेखा और उसकी माप तथा दिशा का जानना काफी है, क्रियाबिंदु को जानने की आवश्यकता नही है। इस कारण किसी दृढ पिंड के संतुलन पर विचार करने के लिये बलो के क्रियाबिंदु का महत्व नही रहता और केवल बलो के संतुलन की परीक्षा करना पर्याप्त है।

समांतर बल — दो समांतर बलो का परिणामी बल ज्ञात करने के लिये सदिश नियम अनुपयोगी है। बलसंचरणशीलता और समांतर-चतुर्भुज नियमो के द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि दो एकदिश (अर्थात् एक ही दिशा मे लगे) समांतर बलो ब₁ और ब₂ का परिणामी बल उनके एकदिश और समांतर ब₁ + ब₂ माप का बल है, जिसकी क्रियारेखा इन बलो की (समांतर) क्रियारेखाओ के बीच किसी भी तिर्यक रेखा को ब₂ ब₁ के अनुपात मे विभाजित करती है (चित्र ८ मे कद दख = ब₂ · ब₁)। यदि बल असमान तथा एकदिश नही हैं अर्थात विपरीत हैं (मान लें, उनमें ब₂ बडा है), तो परिणामी बल उनके समांतर और बडे के एकदिश ब₂ — ब₁ माप का बल है, जिसकी क्रियारेखा दिए हुए बलो की (समांतर) क्रियारेखाओ के बीच किसी भी तिर्यकरेखा को बाह्यत ब₂ ब₁ के अनुपात मे काटती है
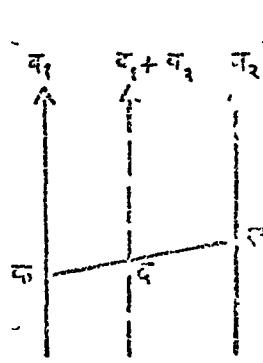
चित्र ८ चित्र ९.
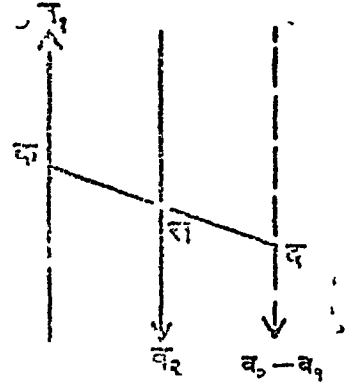
(चित्र ९ मे कद खद = ब₂ ब₁)। यदि बल समांतर, और माप मे समान हैं किंतु विपरीत दिशा मे, तो बलो का परिणामी कोई बल नही होता, वे मिलकर एक बलयुग्म (couple) बनाते हैं, जिसका आघूर्ण उन बलो की क्रियारेखाओ के बीच की दूरी को बल की माप से गुणा करने पर प्राप्त होता है। चित्र १०° मे बलयुग्म का आघूर्ण = ब × द। संवेग के आघूर्ण जैसी परिभाषा बल के आघूर्ण की भी है। बिंदु प के प्रति बल ब का आघूर्ण = ब × पल (देखें चित्र ११), जहाँ प ल बिंदु प से बल की क्रियारेखा पर खींचा गया लंब है। चित्र ११. मे बल प के परित वामावर्त दिशा मे घुमाने की चेष्टा करता है, इसलिये उसका आघूर्ण धनात्मक है। इसी प्रकार चित्र १० वाले बलयुग्म का आघूर्ण ऋणात्मक है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि समतलीय बलो का उनके समतल
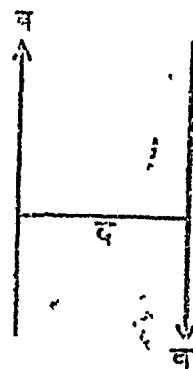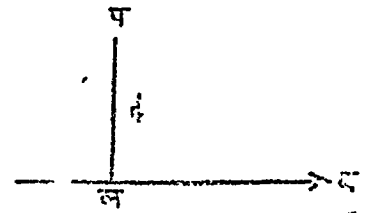
चित्र १० चित्र ११.

मे स्थित किसी बिंदु के परित संमिलित आघूर्ण वही है जो अकेले उनके परिणामी का (बलयुग्म के बलो का उसके समतल मे स्थित किसी भी बिंदु के परित आघूर्ण सदा वही रहता है जो बलयुग्म का)।

गुरुत्वकेंद्र — किसी पिंड का भार वह बल है जिससे पृथ्वी उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। यह भार उन सब बलो का परिणामी है जिन्हे पृथ्वी उस पिंड के प्रत्येक कण पर अलग अलग लगाती है। यदि पिंड बहुत बडा नहीं है, तो ये बल प्राय समांतर हैं

और उनका परिणामी बल पिंड के एक विशेष बिंदु से होकर जाता है, चाहे पिंड को किसी भी स्थिति में रखा जाय। इस बिंदु को पिंड का गुरुत्वकेंद्र कहते हैं। कारण यह है कि यदि दो समांतर बल $ब_1$ और $ब_2$ क्रमानुसार बिंदु क और ख पर लगे हैं (देखें चित्र ८), तो उनका परिणामी बिंदु द से होकर जायगा। बलों और क ख के बीच के कोण का बिंदु द की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क और ख पर लगे बलों का बलकेंद्र द है। अब द पर बल $ब_1+ब_2$ और तीसरे किसी बिंदु ग पर एकदिश समांतर बल $ब_3$ का बलकेंद्र एक निश्चित बिंदु घ होगा। इस प्रकार एक एक करके गणना करने पर सभी कणों के भारों का संमिलित बलकेंद्र ज्ञात हो जायगा।

बिंदुओं $य_न$, $र_न$, $ल_न$ पर (न = १, २, , प) स्थित भार $द्र_न$ के कणों का गुरुत्व केंद्र $\bar{य}$, $\bar{र}$, $\bar{ल}$, है, जहाँ

$\bar{य}$ ($द्र_1+द्र_2+ \quad +द्र_प$) $= य_1 द्र_1+य_2 द्र_2+ . . +य_प द्र_प$,

इत्यादि और यदि $द्र_न$ कणों के द्रव्यमान हैं तो $\bar{य}$, $\bar{र}$, $\bar{ल}$ कणों का द्रव्यमान केंद्र अथवा द्रव्यकेंद्र कहलाता है। चूँकि पिंड के विभिन्न कणों पर गुरुत्वत्वरण लगभग समान ही है, द्रव्यमान केंद्र सामान्यतया वही होता है जो गुरुत्वकेंद्र।

बलों का संतुलन — अवकाश में किसी दृढ पिंड की गति के छह समीकरणों के संगत पिंड के संतुलन के लिये भी छह समीकरण हैं, जो गति समीकरणों में त्वरणों को शून्य रखने पर प्राप्त होते हैं। यदि सभी बल एक समतल में है, तो केवल तीन समीकरण रह जाते हैं — बलों का किन्ही दो दिशाओं में संमिलित विघटित अंशों का और एक बिंदु के परित संमिलित आघूर्ण का अलग अलग शून्य होना। यदि पिंड पर केवल तीन बल लगे हैं, तो संतुलन के लिये इनकी क्रियारेखाओं का एक ही समतल में तथा एक बिंदुगामी होना और लामी के प्रमेय को संतुष्ट करना आवश्यक एवं पर्याप्त है।

गुरुत्वकेंद्र की संकल्पना से दृढ पिंडों के संतुलन की परीक्षा करने में विशेष सहायता मिलती है। उदाहरणत., यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि एक समान घनत्व (अर्थात् समांग) त्रिभुजीय पटल के शीर्षों को तीन व्यक्ति अपने अपने कंधों पर रखे हों, तो तीनों पर बराबर दबाव पड़ेगा, यदि समांग डोर दो बिंदुओं से लटकी हो तो वह रज्जुवक्र का रूप धारण करेगी, यदि डोर का घनत्व इस प्रकार है कि उसके वे टुकड़े बराबर भार के हैं जिनका किसी क्षैतिज समतल पर प्रक्षेप एक ही लंबाई का है, तो डोर परवलय का रूप धारण करेगी। घर्षण नियमों के अनुसार (देखें घर्षण) यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि सीढ़ी रुक्ष फर्श पर चिक्कण दीवार से लगी सीमांत संतुलन में खड़ी है, तो कोई व्यक्ति उसपर आधी ऊँचाई से ऊपर बिना टेक लगाए नहीं चढ सकता। अंत में, चलते हुए व्यक्ति के चरणों पर घर्षण के क्रिया करने की दिशा, जैसा कि गोल समांतर पेंसिलों पर रखे हुए पटरे पर चलकर देखा जा सकता है, पिछले पैर पर आगे की ओर और अगले पैर पर पीछे की ओर होती है।

गतिशील में स्थितिविज्ञान — डि एलेंबर्ट ने १७४३ ई० में अपनी पुस्तक 'ट्रेट डि डाइनैमीक' में यह नियम बताया कि किसी गतिमान पिंड पर कार्यकारी बल निकाय उसपर लगे बाह्य बल निकाय के तुल्य है। यदि पिंड में द्रव्यमान द्र के किसी कण का त्वरण त है, तो त्वरण की दिशा में उसपर लगे एक कार्यकारी बल द्रत की कल्पना की जा सकती है। पिंड के सभी कणों पर ऐसे कार्यकारी बलों के विपरीत बल और बाह्य बल संतुलन में
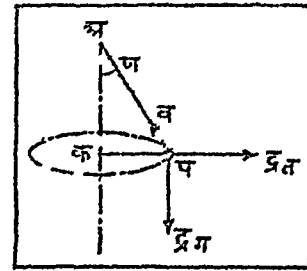
चित्र १२.

रहते हैं। इस संतुलन की परीक्षा स्थितिविज्ञान के नियमों द्वारा की जा सकती है। उदाहरणत, मान लें कि भारहीन डोर के एक सिरे पर द्रव्यमान द्र का पिंड बँधा है, दूसरा सिरा एक स्थिर बिंदु अ से बँधा है और डोर अचर कोणीय वेग से घुमाई जा रही है। यदि पिंड के केंद्र क की ओर त्वरण त है, तो उसपर कार्यकारी बल के विपरीत बल द्रत दिशा क प में है और तीन बल ब, द्र', $द्र_ग$, संतुलन में हैं, जहाँ ब डोर का तनाव और द्रग पिंड का भार है। यदि ∠क अ प = ण, तो लामी प्रमेय से

ब = द्र ग/ज्या (९०°+ण) = द्रत/ ज्या (१८०° − ण)

अर्थात् ब = द्र ग व्युक्रो ण, त = ग स्प ण।

यदि पिंड त्रिज्या त्र के वृत्त में च चक्कर प्रति सेकंड लगा रहा है, तो त = त्र $(२\pi च)^2$ और ण = $स्प^{-1}$ ($४\pi^2 च^2$ त्र/ग)।

सं० ग्रं० — ए ई एच लव 'थिओरेटिकल मिकैनिक्स', एच लैंब 'स्टैटिक्स, डाइनैमिक्स ऐंड हायर मिकैनिक्स, तथा गोरखप्रसाद और हरिश्चद्र गुप्त 'गतिविज्ञान', 'स्थिति विज्ञान', पोथीशाला, इलाहाबाद। [ह० च० गु०]

बलि इसके दो रूप हैं। वैदिक पंचमहायज्ञ के अंतर्गत जो भूतयज्ञ है, वे धर्मशास्त्र में बलि या बलिहरण या भूतबलि शब्द से अभिहित होते हैं। दूसरा पशु आदि का बलिदान है। वैश्वदेव' कर्म करने के समय जो अन्नभाग अलग रख लिया जाता है, वह प्रथमोक्त बलि है। यह अन्न भाग देवयज्ञ के लक्ष्यभूत देव के प्रति एवं जल, वृक्ष, गृहपशु तथा इंद्र आदि देवताओं के प्रति उत्सृष्ट (समर्पित) होता है। गृह्यसूत्रों में इस कर्म का सविस्तार प्रतिपादन है। बलि रूप अन्नभाग अग्नि में छोड़ा नहीं जाता, बल्कि भूमि में फेंक दिया जाता है। इस प्रक्षेप क्रिया के विषय में मतभेद है।

स्मार्त पूजा में पूजोपकरण (जिससे देवता की पूजा की जाती है) भी बलि कहलाता है (बलि पूजोपहार स्यात्)। यह बलि भी देव के प्रति उत्सृष्ट होती है।

देवता के उद्देश्य में छाग आदि पशुओं का जो हनन किया जाता है वह 'बलिदान' कहलाता है (बलि = एतादृश उत्सर्ग योग्य पशु)। तंत्र आदि में महिष, छाग, गोधिका, शूकर, कृष्ण-

सार, शरभ, हरि (वानर) आदि अनेक पशुओ को 'वलि' के रूप मे माना गया है। इक्षु, कूष्माड आदि नानाविध उद्भिद् और फल भी वलिदानार्ह माने गए हैं।

वलि के विषय मे अनेक विधिनिषेध हैं। वलि को वलिदानकाल में पूर्वाभिमुख रखना चाहिए और खड्गधारी वलिदानकारी उत्तराभिमुख रहेगा — यह प्रसिद्ध नियम है। वलि योग्य पशु के भी अनेक स्वरूप लक्षण कहे गए हैं।

पचमहायज्ञ के अतर्गत वलि के कई अवातर भेद कहे गए हैं — आवश्यक वलि, काम्यवलि आदि इस प्रसग मे ज्ञातव्य है। कई आचार्यों ने छागादि पशुओ के हनन को तामसपक्षीय कर्म माना है, यद्यपि तत्र में ऐसे वचन भी हैं जिनसे पशुवलिदान को सात्विक भी माना गया है (दे० गायत्रीतत्र)। कुछ ऐसी पूजाएँ हैं जिनमे पशुवलिदान अवश्य अनुष्ठेय होता है।

वीरतत्र, भावचूडामणि, यामल, तत्रचूडामणि, प्राणतोपणी, महानिर्वाणतत्र, मातृकाभेदतत्र, वैष्णवीतत्र, कृत्यमहार्णव, वृहन्नीलतत्र, आदि ग्रथो मे वलिदान (विशेषकर पशुवलिदान) सवधी चर्चा है। (दे० 'यज्ञ') [रा० श० भ०]

वलि — (१) सप्तचिरजीवियो मे से एक, पुराणप्रसिद्ध विष्णुभक्त, दानवीर, महान् योद्धा, विरोचनपुत्र दैत्यराज वलि वैरोचन जिसकी राजधानी महावलिपुर थी। इसके छलपूर्वक परास्त करने के लिये विष्णु का वामनावतार हुआ था (दे० वामन)। इसने दैत्यगुरु शुक्राचार्य की प्रेरणा से देवो को विजित कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया और वहाँ धर्मशासन स्थापित किया। समुद्रमथन से प्राप्त रत्नो के लिये जब देवासुर सग्राम छिडा और इद्र द्वारा वज्राहत होने पर भी वलि शुक्राचार्य के मत्रवल से पुन जीवित हुआ तव इसने विश्वजित् और शत अश्वमेध यज्ञो का सपादन कर समस्त स्वर्ग पर अधिकार जमा लिया। कालातर मे जब यह अतिम अश्वमेध यज्ञ का समापन कर रहा था, तव दान के लिये वामन रूप मे ब्राह्मण वेशधारी विष्णु उपस्थित हुए। शुक्राचार्य के सावधान करने पर भी वलि दान से विमुख न हुआ। वामन ने तीन पग भूमि दान मे माँगी और सकल्प पूरा होते ही विशाल रूप धारण कर प्रथम दो पगो मे पृथ्वी और स्वर्ग को नाप लिया। शेष दान के लिये वलि ने अपना मस्तक नपवा दिया

(२) वलि वैरोचन के अतिरिक्त वलिनामधारी अनेक पौराणिक व्यक्तियो मे कुछ ये हैं—युधिष्ठिर की राजसभा का एक विद्वान् ऋषि, आनवशीय राजा, शिवावतारो मे से एक अवतार, सुनपसपुत्र जो आनवदेश का राजा था। [श्या० ति०]

वलिया १ जिला, स्थिति २५° ४६' उ० अ० तथा ८४° १२' पू० दे०। यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के सुदूर पूर्व मे स्थित जिला है। इसका सपूर्ण क्षेत्रफल १,१८३ वर्ग मील है। यहाँ पर गगा, छोटी सरयू एव घाघरा नदियाँ वहती हैं। जलवायु उत्तम है एव गरमियाँ गरम तथा सर्दियाँ ठढी हुआ करती हैं। वर्षा का औसत ४० से ५० इच तक रहता है। वसत तथा पतझड का मौसम गरम तथा नम रहता है। यह कृषिप्रधान क्षेत्र है। धान, जौ, चना एव गेहूँ मुख्य रूप से उगाए जाते हैं। कुछ मात्रा मे ईख, सरसो राई, मक्का एव शाक भाजी की कृषि भी की जाती है। इस जिले की जनसख्या १३,३५,८६३ (१९६१) है।

२ नगर, स्थिति २५° ४४' उ० अ० तथा ८४° १०' पू० दे०। यह वलिया जिले के दक्षिण मे गगा के उत्तरी किनारे पर, जहाँ घाघरा नदी आकर गगा से मिलती है, उसके ठीक १४ मील पश्चिम की ओर स्थित नगर है। यह जिले का मुख्य नगर एव शासन सवधी कार्यों का केंद्र है। यहाँ वाजार की सुविधा भी है। चीनी वनाने एव स्थानीय कृपियओ से सवधित उद्योग होते हैं। कुक्कुट पालन भी होता है। इस नगर की जनसख्या ३८,२१६ (१९६१) है। यहाँ से घी एव तिलहन बाहर भेजा जाता तथा वाहर से चावल, धातुएँ, नमक आदि मँगाए जाते हैं।

वलुआ पत्थर ऐसी दृढ शिला है जो मुख्यतया वालू के कणो का दवाव पाकर जम जाने से वनती है और किसी योजक पदार्थ से जुडी होती है। वालू के समान इसकी रचना मे भी अनेक पदार्थ विभिन्न मात्रा मे हो सकते हैं, किंतु इसमें अधिकाश स्फटिक ही होता है। जिस शिला मे वालू के वहुत वडे वडे दाने मिलते हैं, उसे मिश्रपिडाश्म, और जिसमे छोटे छोटे दाने होते हैं उसे वालुमय शैल या मृएमय शैल कहते हैं।

वलुआ पत्थर मे वे ही धात्विक तत्व होते हैं, जो वालू मे। स्फटिक की वहुतायत होती है, जिसके साथ प्राय फेल्सपार तथा कभी कभी श्वेत अभ्रक भी होता है। कभी कभी पत्थर की विभिन्न परतो के वीच मे अभ्रक की तह सी जमी हुई मालूम पडती है। खान से पत्थर निकालने मे इस तह का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी के कारण पत्थर की पतली परतें निकाली जा सकती हैं, जो फर्श वनाने के काम आती हैं। योजक पदार्थ प्राय वारीक कैल्सिडोनी सिलिका होता है, किंतु कभी कभी मूल स्फटिक भी योजक का काम करता है। ऐसी दशा मे शिला स्फटिक जैसी तैयार होती है। कैलसाइट, ग्लॉकोनाइट, लोह ऑक्साइड, कार्वनीय पदार्थ और अन्य अनेक प्रकार के पदार्थ भी जोडने का काम करते हैं, तथा अपना अपना विशिष्ट रग प्रदान करते हैं, जैसे ग्लॉकोनाइट (glauconite) वाली शिलाएँ हरी, और लोहेवाली लाल, भूरी या धूसर होती हैं। जव योजक पदार्थ चिकनी मिट्टी होता है, तव शिला प्राय श्वेत या धूसर वर्ण की होती है और अत्यत दृढता से जमी हुई होती है।

शुद्ध वलुआ पत्थर में ९९ % तक सिलिका हो सकता है। मुलायम पत्थर पीसकर वालू वनाने के काम आता है, किंतु जो वहुत दृढता से पत्थर जमा होता है, उसकी ईंटें बना ली जाती हैं। यह भट्टियो तथा अँगीठियो मे अस्तर लगाने के काम आती हैं, क्योकि सिलिका अत्यत तापसह होता है। गैनिस्टर (*ganister*) शिला इसी प्रकार की होती है। अत्यत दृढतापूर्वक जमे कुछ कम शुद्ध पत्थर सिल, वट्टे और चक्कियाँ वनाने के काम आते हैं।

वलुआ पत्थर दानेदार और छिद्रल होता है, इसलिये इसपर अच्छी पॉलिश नही की जा सकती और न वारीक काम हो सकता है, पर मोटी गढाई तथा कटाई साफ और सच्ची हो सकती है। इसलिये

इमारतों में इसका बहुविध उपयोग होता है। आगरे का लाल पत्थर मुसलमानों के जमाने से ही महत्वपूर्ण इमारतों में लगाने के लिये दूर दूर तक भेजा जाता है। अब भी संगीन चिनाई में सफेद और लाल बलुआ पत्थर ही मुख्यतया प्रयुक्त होते हैं। ये प्राय खानों से खोदकर और कभी कभी सुरंग लगाकर निकाले जाते हैं। पन्ना का सफेद पत्थर फर्शी चौकों के रूप में दूर दूर तक भेजा जाता है। इसके १०,१०, १२,१२ फुट तक के चौके निकाले जा सकते हैं। पतले चौके छत पर खपरैल की भाँति छाए जाते हैं। १० से १२ फुट पाट तक की छतों में इसकी धरनें भी रखी जाती हैं, किंतु छतों पर इस प्रकार इसका उपयोग, ढुलाई मँहगी होने के कारण, निकटस्थ प्रदेशों तक ही सीमित है। जहाँ दूसरा अधिक कठोर पत्थर सुविधापूर्वक नही मिलता, वहाँ सड़कों के लिये और कंक्रीट के लिये इसकी गिट्टी भी बनाई जाती है।

छिद्रल होने से इसकी परतों में भूमिगत जल एकत्र हो जाता है, अत ये महत्वपूर्ण जलस्रोत होती हैं। [वि० प्र० गु०]

बलूचिस्तान स्थिति २७° ३०' उ० अ० तथा ६५° ०' पू० दे०। यह पश्चिमी पाकिस्तान का एक भाग है जिसकी सीमाएँ ईरान तथा अफगानिस्तान से मिलती हैं। इसका क्षेत्रफल १,३४,००२ वर्ग मील तथा जनसंख्या ११,५४,१६७ (१९५१) है। इसमें कलात, लास बेला, खरान और मकरान राज्य शामिल हैं। क्वेटा यहाँ की राजधानी है। यह भाग प्राय शुष्क और पहाड़ी है। उत्तरी भाग में सुलैमान पर्वतश्रेणी १२,००० फुट तक ऊँची है जो उत्तर से दक्षिण को चली गई है। बोलन दर्रा क्वेटा के लिये तथा मूला दर्रा कलात के लिये दरवाजे का काम करता है। यहाँ सैकड़ों मील लंबा रेगिस्तान फैला है। गरमी में तट के पास मरुस्थल का ताप बहुत अधिक रहता है। ऊँट, भेड़, बकरियाँ पाली जाती हैं। जहाँ पानी मिल जाता है वहाँ धान, छुहारा, अंगूर, नाशपाती तथा शफ्तालू आदि उगाया जाता है। ऊँचे भागों में गेहूँ, जौ, मक्का और घास उगती है। पठारी भाग में कोयला, क्रोमाइट तथा जिप्सम खनिज मिलते हैं। यहाँ की बलूची जाति के नाम पर ही इसका नाम पड़ा है। [शि० मं० सिं०]

बलोच भाषा और साहित्य बलोच भाषा पाकिस्तान की ग्रामीण (इलाकाई) भाषा है, जो बलोचिस्तान के सिवा सिंध, पंजाब, ईरान तथा अफगानिस्तान के भी कुछ भागों में बोली जाती है। इसकी दो शाखाएँ हैं, एक मकरानी है जो पश्चिमी तथा दक्षिण-पश्चिम में ईरान की ओर की बोलचाल की भाषा है और दूसरी सुलेमानी है, जो उत्तर और उत्तर-पूर्व अर्थात् सिंध तथा पंजाब के ग्रामों में बोली जाती है। बलोच भाषा नई फारसी से बहुत मिलती जुलती है। इसके लगभग आधे शब्द ऐसे हैं जो फारसी भाषा के शब्दों के बिगड़े हुए रूप हैं या साहित्यिक फारसी के शब्दों के अनुसार हैं। भाषाविज्ञों का यह भी कथन है कि बलोच भाषा फारसी से निकली हुई नही, प्रत्युत एक अलग प्राचीन भाषा है, जो अनेक रूपों में पुरानी फारसी के स्थान पर ज़ेंद या पुरानी बाख्त्री से विशेष मिलती है। इस भाषा में इस समय फारसी के सिवा सिंधी, अरबी तथा अंग्रेजी ही नही उर्दू भाषा के भी शब्द मिलते हैं।

बलोच भाषा का गद्य साहित्य इस समय केवल किस्से कहानियों ही तक सीमित है पर इसका पद्य साहित्य अधिक विस्तृत तथा उन्नत है। बलोच कविता में आरंभिक काल में केवल लोकगीत थे। परंतु बलोच इतिहास में सबसे बड़े व्यक्तित्ववाले मीर चाकर खाँ 'रिंद' ने सन् १४८७ ई० में गद्दी पर बैठने के अनंतर बलोच इतिहास में युद्ध विषयक गीतों का आरंभ किया और मीर गवाहराम, लाशारी, नौद बन्दग, रेहान, शह मुरीद, हानी, शाहदाद, माहनाज, उमरगो सोहानी, बालाच और दूदा आदि ने भी युद्धीय कविताएँ लिखीं तथा बलोच साहित्य उन्नत कर बलोच साहित्य को उत्कर्ष पर पहुँचाया। इन युद्धीय कविताओं की रचना की प्रेरक बलोच जाति के इतिहास की वही घटनाएँ थीं जो उस काल में घटित हुई थीं, जैसे, रिंद तथा लाशारी कबीलों का ३० वर्षीय संघर्ष, हानी-शह मुरीद के अमर प्रेम की विकट कहानी, चेवर्ग तथा निगाहाद का आख्यान, शाहदाद तथा माहनाज की विरहकथा, हुमायूँ की सहायता के कारण पानीपत के युद्ध में शाहदाद तथा उसके अनुयायियों की वीरता का आख्यान, दूदा तथा गहूर बालाच की प्रतिशोधता (गमी) के लिये बेवर्ग गुरग के विरुद्ध युद्ध तथा इसी प्रकार की अन्य घटनाओं ने ऐसी उच्च कोटि की युद्धीय कविता को जन्म दिया, जो फारसी के शाहनामा (फिरदौसी) की कविताओं के सानी हैं पर वेदना, उत्साह तथा प्रभावोत्पादकता में अनुपम हैं। अब तक ये मेलों तथा महफिलों में बड़ी रुचि के साथ पढ़ी तथा सुनी जाती हैं।

१८वीं शती ईसवी में बलोच भाषा में ऐसी प्रेमकविता का प्रचार हुआ, जिसमें सौंदर्य तथा प्रेम भरा है तथा वियोग, व्यथा और दर्द की गाथा है। इस काल की कविता सौंदर्य की स्वच्छंद अनुभूति तथा प्रेमिका से दूर रहनेवाले दुःखी हृदय की कहानी है जो बलोच प्रकृति के भावों का आदर्श भी है। प्रेमगीतों का सबसे प्रसिद्ध कवि जाम दुरक माना जाता है जो मीर नसीर खाँ नूरी का समकालीन था और बलोच शासक ने इसे 'शाइरों का शाइर' (कवियों का कवि) की उपाधि दी थी। इसने स्वयं जितने गीतों और कविताओं की रचना की उन सबमें सुंदर मुखों, काले केशों, मेंहदी लगी लाल उँगलियों, मुक्तावली से दाँतों, कटार सी भौंहों, रंग बिरंग के आँचलों तथा सुगंधित पल्लों के ही उल्लेख मिलते हैं। पर इस काल के सभी कवि लौकिक प्रेमिका की खोज में व्यस्त नहीं हैं। यह अवश्य है कि ये एक चलती फिरती तथा दिखाई देनेवाली प्रेमिका की खोज में निकलते हैं पर ऐसा भी होता है कि ये ऐसी लौकिक प्रेमिका की खोज करते हुए वास्तविक (हकीकी) प्रेमिका को पा लेते हैं। जब कभी ऐसा होता है, सांसारिक कविता सूफी कविता की सीमाओं को छूती हुई दिखलाई पड़ती है। इस काल के प्रसिद्ध कवियों में तवक्कुली, मुल्ला फाजिल सीमक, मुल्ला करीमदाद, इज्जत पजगोरी, मुल्ला बहराम, मुल्ला कासिम तथा मलिक दीनार के नाम अग्रगण्य हैं।

१९वीं शती ईसवी के अंत में तथा २०वीं शती के आरंभ में अंग्रेज बलोचिस्तान में अपने साथ केवल नई शासनविधि ही नही ले गए प्रत्युत उन्होंने पर्वतों, रेगिस्तानों तथा घाटियों की भूमि में एक नई सभ्यता की नींव डाली। इनकी विद्याओं तथा कलाओं के प्रदर्शन से बलोच साहित्य का स्वरूप भी प्रभावित हुआ। बलोच

कवियो ने कल्पना के नए रूप अपनाए। जैसूर ने ऐसी कविताएँ लिखी जिनमें नए शब्द तथा नई योजना थी। आजाद जमालदीनी ने अंग्रेजो की शक्ति मे जाति तथा देश की अवनति समझी। मुहम्मद हुसेन उनका ने मोटरो तथा कारो के पहियो के नीचे दरिद्रो की इच्छाओ का खून होते देखा। जवाँ साल ने अधार्मिक विचारो के प्रकाशन की रोक थाम के लिये प्रशसात्मक तथा व्यावहारिक कविताएँ प्रस्तुत की। रहम अली वज्जाज भी अंग्रेजो के बलोचिस्तान मे आगमन से भविष्य मे होने वाले प्रभाव से अपरिचित न रह सके और उनकी शैली तथा भाषा मे विशेष परिवर्तन हो गया। अब ऐसी कविताएँ की जाने लगी जिनमे बलोचो को उनके बीते गौरव का स्मरण दिलाया गया, स्वतत्रता देवी की प्रशसा मे गीत कहे गए और जनसाधारण को स्वातत्र्य युद्ध के लिये तैयार किया गया। निरतर युद्ध के अनतर सन् १९४७ ई० मे जब स्वतत्रता मिली पाकिस्तान की दूसरी प्रातीय भाषाओ के समान बलोच भाषा की भी उन्नति हुई। रेडियो पाकिस्तान क्वेटा के स्थापित होने से बलोची कवियो तथा गद्य लेखको का उत्साह बढा और नए लेखकों का एक पूरा मडल मैदान मे आ उतरा।

इस समय मुहम्मद हुसेन उनका, आजाद जमालदीनी और गुल खाँ नसीर यद्यपि पुराने लेखक हैं, तथापि वे विचारो तथा अभिव्यजना की दृष्टि से नए लेखको मे आ मिलते हैं। नए लेखको मे मुराद साहिर, इसहाक शमीम, अब्दुर्रहीम साबिर, अहमद जाहीर, जहूर शाह हाशिमी, अनवर कहतानी, मलिक सईद, अहमद जिगर, शौकत हसरत, अकवर बलोच, नागुमान, दोस्तमुहम्मद वेकस, आजिज, रौनक बलोच तथा अताशाद उल्लेखनीय हैं जो नए वास्तविक (नफ्सियाती) ढग को अपनाने और विद्या सबधी नए अनुभव करने मे निर्भीक हैं।

स० ग्र० — एच राम कृत बलूचीनामा, लाहौर, सन् १८८१ ई०; जी० डब्ल्यू० गिलवर्ट सन दि बलोची लैंग्वेज, हर्फोर्ड, सन् १९२६ ई०। [न० अ० अ०]

बल्गेरिया स्थिति ४४° १३' से ४१° १४' उ० अ० तथा २२° २२' से २८° ३७' पू० दे। यह यूरोप महाद्वीप का एक स्वतत्र राष्ट्र है। इसका क्षेत्रफल ४२, ८१८ वर्ग मील है। २३६ मील तक काला सागर इसकी सीमा बनाता है। इसके उत्तर मे रोमानिया, दक्षिण-पूर्व मे टर्की, दक्षिण-पश्चिम मे ग्रीस तथा पश्चिम में यूगोस्लाविया देश है। इसके मध्य बाल्कन श्रेणी फैली है। यहाँ की जनसख्या ८०,४६,००० (१९६२) है। सोफिया जनसख्या (६,९८,४९४) यहाँ की राजधानी व प्रमुख नगर है। यहाँ के निम्न भागो मे जनवरी का ताप ०° सें० से २° सें० के बीच तथा जुलाई का ताप २२° सें० से २४° सें० के बीच रहता है, किंतु पर्वतो पर ठढ कुछ अधिक पडती है। यहाँ की औसत वर्षा २५ इच है। कुल भूमि की ८६ १ प्रति शत भूमि कृषि योग्य है। तवाकू, सूर्यमुखी, कपास, चुकदर, सोयाबीन प्रमुख फसलें है। इसके अतिरिक्त सब्जियाँ, फल, अगूर तथा खाद्यान्न भी उगाए जाते हैं। काले सागर मे मत्स्य उद्योग भी होता है। यहाँ का गुलाब विश्वप्रसिद्ध है।

खनिजो मे कोयले का स्थान महत्वपूर्ण है। अन्य खनिजो मे पैट्रोलियम, लोहा, ताँबा, सीसा, जस्ता, मैंगनीज, क्रोम, पाइराइट तथा सोना प्रमुख है। उद्योगों मे खाद्य वस्तुओ सबधी उद्योग के अतिरिक्त सूती कपडा, इस्पात मशीनें, रसायनक बनाना तथा धातुकर्म आदि प्रमुख उद्योग हैं। यहाँ से डिब्बाबद फल,
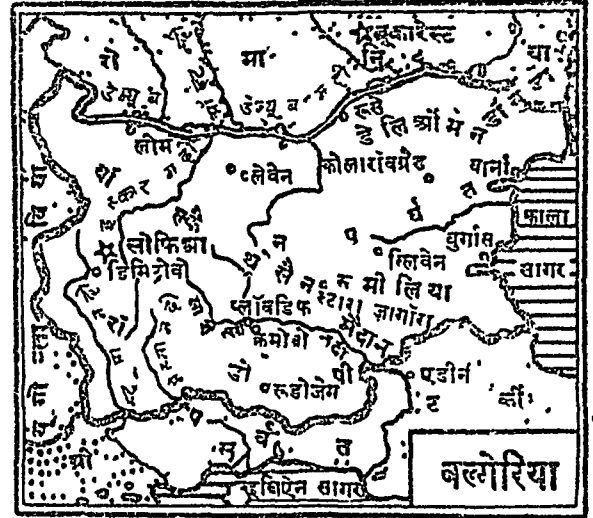
तवाकू एव कृषि सबधी उत्पादो का निर्यात तथा कच्चा सामान, पैट्रोलियम, ट्रैक्टर, अन्य कृषि सबधी मशीनो एव बिजली के सामानो का आयात होता है। शिक्षा का काफी प्रसार हो रहा है। बल्गेरियन प्रमुख भाषा है। यहाँ की अधिकाश जनता ईसाई (बल्गेरियन ऑर्थोडोक्स चर्च) धर्म को मानती है। इनके अलावा मुसलमान तथा यहूदी भी रहते हैं। यहाँ सडको, रेलो, हवाई मार्गो की भी काफी प्रगति हुई है। सोफिया के अतिरिक्त बुर्गास, वार्ना, प्लॉवडिफ, प्लेवेन, रूसे, स्लिवेन तथा स्टाराज़ागोरा आदि प्रमुख नगर हैं। [दी० ना० व०]

बल्लारि (Bellary) १ जिला, स्थिति १४° २८' से १५° ५८' उ० अ० तथा ७५° ४०' से ७७° ३८' पू० दे०। यह भारत के मैसूर राज्य मे स्थित एक जिला है। इसके पूर्व मे कर्नूल, दक्षिण-पूर्व मे अनतपुर, दक्षिण में चित्रदुर्ग, पश्चिम मे धारवाड तथा उत्तर मे रायचूर जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल ३,८२५ वर्ग मील तथा जनसख्या ९,१५,२६१ (१९६१) है। यह सागर तल से १,००० से २,००० फुट तक ऊँचा है। इसकी उत्तरी सीमा पर तुगभद्रा नदी वहती है। जिले की उत्तरी सीमा पर ही तुगभद्रा बाँध बनाया गया है। यहाँ की काली मिट्टी मे कपास अधिक उगाई जाती है। इसके अतिरिक्त चोलम (cholam), गन्ना, धान, तथा कोरा (korra) प्रमुख फस्लें हैं।

२ नगर, स्थिति १५° ९' उ० अ० तथा ७६° ५१' पू० दे०। उपर्युक्त जिले मे स्थित प्रसिद्ध नगर है। यह एक फौजी छावनी भी है। जलवायु गरम, शुष्क किंतु स्वास्थ्यकर है। मद्रास रेल द्वारा यहाँ से ३०५ मील दूर है। यहाँ फेस हिल, फोर्ट हिल पहाडियाँ तथा एक प्रसिद्ध दुर्ग है। यहाँ की जनसख्या ८५,६७३ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बवेरिया (Bavaria) स्थिति ४९° ५' उ० अ० तथा ११° ३०' पू० दे०। यह जर्मन (पश्चिमी) फेडरैल रिपब्लिक का एक राज्य

(lander) है जो उत्तर-पूर्व मे चेकोस्लोवाकिया, दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण मे ऑस्ट्रिया, पश्चिम मे वूरटेमवेर्ग और वादेन उत्तर-पश्चिम मे हेजी तथा उत्तर मे थुरिंजिया एव सैक्सोनी मे घिरा है। इसका क्षेत्रफल २७,११९ वर्ग मील तथा जनसख्या ९५,९२,१०० (१९६१) है। इसमे सात जिले शामिल हैं। मेन तथा डैन्यूब यहाँ की प्रमुख नदियाँ हैं। दोनो नदियाँ लुटविग नहर द्वारा आपस मे मिली हैं। यहाँ की त्सूकस्पित्से (Zugspitze) ९,७२१ फुट ऊँची चोटी है, जो यहाँ की सर्वोच्च चोटी है। चेकोस्लोवाकिया की सीमा की ओर प्रसिद्ध वोहेमियन जगल मिलते हैं। उद्योग की अपेक्षा कृषि अधिक उन्नतिशील है। खाद्यान्न, आलू, फल तथा हॉप (hop) एक प्रकार की लता) प्रमुख उपजें हैं। पर्वतीय भाग मे पशुपालन होता है तथा वनो मे भी काफी जनसख्या व्यस्त है। खनिजो मे लिगनाइट, ग्रेफाइट, नमक तथा कच्चा लोहा मिलता है। कुछ मात्रा मे चीनी मिट्टी, चिकनी मिट्टी, पारा, ताँवा, मैंगनीज, सगमरमर, कोबाल्ट एवं जिप्सम के भडार भी हैं। यहाँ के प्रमुख उद्योग लोह इस्पात, सूती कपडा, चश्मे, वैज्ञानिक उपकरण, खिलौने, काच के सामान, रसायनक, सिगार, कागज तथा फर्नीचर से सबन्धित हैं। यूरोप का सबसे बडा वालवेयरिंग का कारखाना यहीं पर है। रेलो का अच्छा प्रबध है। यहाँ के कई नगरो मे अनेक विश्वविद्यालय हैं। [उ० कु० सि०]

वसई (वेसीन) की संधि मराठा प्रदेश के राजाओ के आपस मे जो सघर्ष चल रहे थे उनमे पूना के निकट हृदप्सर स्थान पर वाजीराव द्वितीय को यशवतराव होल्कर ने पराजित किया। पेशवा वाजीराव भाग कर वसई पहुँचे और ब्रिटिश सत्ता से शरण माँगी। पेशवा को शरण देना ब्रिटिश सत्ता ने सहर्ष स्वीकार किया परतु इसके लिये वाजीराव को अपमानजनक शर्तों पर सधि करनी पडी। यह सधि ३१ दिसवर, १८०२ को हुई। इसके अनुसार पेशवा को अपने यहाँ ब्रिटिश सेना की एक टुकडी रखने और खर्चे के लिये २६ लाख रुपए की वार्षिक आय का अपना इलाका ईस्ट इडिया कपनी को सौंप देने पर सहमत होना पडा।

सधि की एक शर्त यह भी थी कि अन्य राज्य से अपने सबधों और व्यवहार के मामलो मे पेशवा ईस्ट इडिया कपनी के आदेशानुसार काम करेंगे। इस प्रकार मराठा स्वतत्रता इस सधि के परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश सत्ता के हाथो विक गई। [पी० एम० जे०]

वसरा स्थिति ३०° ३०' उ० अ० तथा ४७° ५०' पू० दे०। यह इराक का तीसरा सबसे वडा नगर एव महत्वपूर्ण वदरगाह है। यह वसरा राज्य की राजधानी भी है। फारस की खाडी से ७५ मील दूर तथा वगदाद से २८० मील दूर दक्षिण-पूर्वी भाग मे दजला और फरात नदियों के मुहाने पर वसा हुआ है। ६३६ ईसा वाद इस शहर को सर्वप्रथम खलीफा उमर ने वसाया था। "अरेवियन नाइट्स" नामक पुस्तक मे इसकी सस्कृति, कला, तथा वाणिज्य के विषय मे वडा सुदर वर्णन किया गया है। सन् १८६८ मे तुर्कों के अधिकार करने पर इस नगर की अवनति होती गई। लेकिन ब्रिटेन का अधिकार जब प्रथम विश्वयुद्ध मे हुआ उस समय उन्होंने इसको एक अच्छा वदरगाह वनाया और कुछ ही समय मे यह इराक का एक महत्वपूर्ण वदरगाह वन गया। यहाँ ज्वार के समय २६ फुट ऊपर तक पानी चढता है। वसरा से देश की ९० प्रति शत वस्तुओ का निर्यात किया जाता है। यहाँ से ऊन, कपास, खजूर, तेल, गोंद, गलीचे तथा जानवर निर्यात किए जाते हैं। जनसख्या मे अधिकाश अरव, यहूदी, अमरीकी, ईरानी तथा भारतीय हैं। जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसख्या २,३५,२०९ (१९६१) है। [द्वी० ना० व०]

वसोपिएर फ्रांस्वाद (१५७९-१६४६) फ्रास के राजा हेनरी चतुर्थ का यह एक दरवारी और अतरग मित्र था। यह बहुत जल्दी राजदरवार की विलासिता में निमग्न हो गया। १६०० मे सेवॉय के तथा १६०३ मे तुर्कों के विरुद्ध हगरी मे इसने युद्ध मे भाग लिया। ह्यूगोनोट के विप्लव मे उनके दमनकार्य मे इसने विशेष शौर्य का परिचय दिया। लंदन, स्पेन, स्विटजरलैंड आदि मे यह दूत वना कर भेजा गया था। परतु सभी जगह यह असफल राजदूत घोषित हुआ। रिशलू की शक्ति के सहार के लिये एक षड्यत्र फ्रास मे रचा गया था। उसमे वसोपिएर अकारण ही फँस गया। अत रिशलू के द्वारा यह वैस्टीन के किले मे (१६३१-१६४३) वद रहा। वहाँ पर इसने अपनी आत्मकथा और सस्मरण लिखे। यह उस काल के इतिहास के लिये अमूल्य स्रोत है। [शु० ते०]

वस्तर स्थिति १७° ४६' से २०° १८' उ० अ० तथा ८०° १५' से ८२° १५' पू० दे०। यह भारत के मध्य प्रदेश राज्य मे स्थित एक दक्षिणी जिला है जिसका क्षेत्रफल १५,१२४ वर्ग मील तथा जनसख्या ११,६७,५०१ (१९६१) है। इसके उत्तर मे दुर्ग, उत्तर-पूर्व मे रायपुर, पश्चिम मे चादा, पूर्व मे कोरापुट तथा दक्षिण मे पूर्वी गोदावरी जिले है। यह पहले एक देशी रियासत था। इसका अधिकाश भाग कृषि के अयोग्य है। यहाँ जगल अधिक हैं जिनमे गोंड एव अन्य आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। जगलो मे टीक तथा साल के पेड प्रमुख हैं। यहाँ की स्थानातरित कृषि मे धान तथा कुछ मात्रा में ज्वार, वाजरा पैदा कर लिया जाता है। इद्रावती यहाँ की प्रमुख नदी है। चित्राकूट मे कई झरने भी हैं। जगदलपुर, वीजापुर, काकेर, कोंडागाँव, भानुप्रतापपुर आदि प्रमुख नगर हैं। यहाँ के आदिवासी जगलो से लकडियाँ, लाख, मोम, शहद, चमडा साफ करने तथा रँगने के पदार्थ आदि इकट्ठे करते रहते हैं। खनिज पदार्थो मे लोहा, अभ्रक महत्वपूर्ण हैं। [रा० स० स०]

वस्ती १ जिला, स्थिति २६° ५२' उ० अ० तथा ८२° ५५' पू० दे०। यह भारत मे पूर्वी उत्तर प्रदेश राज्य का एक जिला है। इसके पूर्व मे गोरखपुर, दक्षिण मे फैजावाद, पश्चिम मे गोंडा एव उत्तर मे नेपाल की दक्षिणी सीमा पडती है। इसका सपूर्ण क्षेत्रफल २,८२१ वर्ग मील तथा जनसख्या २६,२७,०६१ (१९६१) है। यहाँ पर राप्ती, कुआनो, वान, मनोरामा, आमी (अनोमा) आदि नदियाँ वहती हैं। यहाँ की ढाल या नदियो का वहाव दक्षिण-पूर्व की ओर है। नेपाल की सीमा से राप्ती तक के भाग मे शेष जिले से अधिक वर्षा होती है। यहाँ वखिरा, चदो, पथरा आदि कई झीलें हैं। इसके उत्तरी एव मध्यवर्ती भाग मे जगल पाए जाते हैं, जिनमें जगली सूअर, नीलगाय, भेडिये आदि जानवर मिलते हैं। यहाँ का जलवायु नम तथा केवल वर्षाऋतु के अतिम

बदरीनाथ (देखे पृष्ठ १८६)
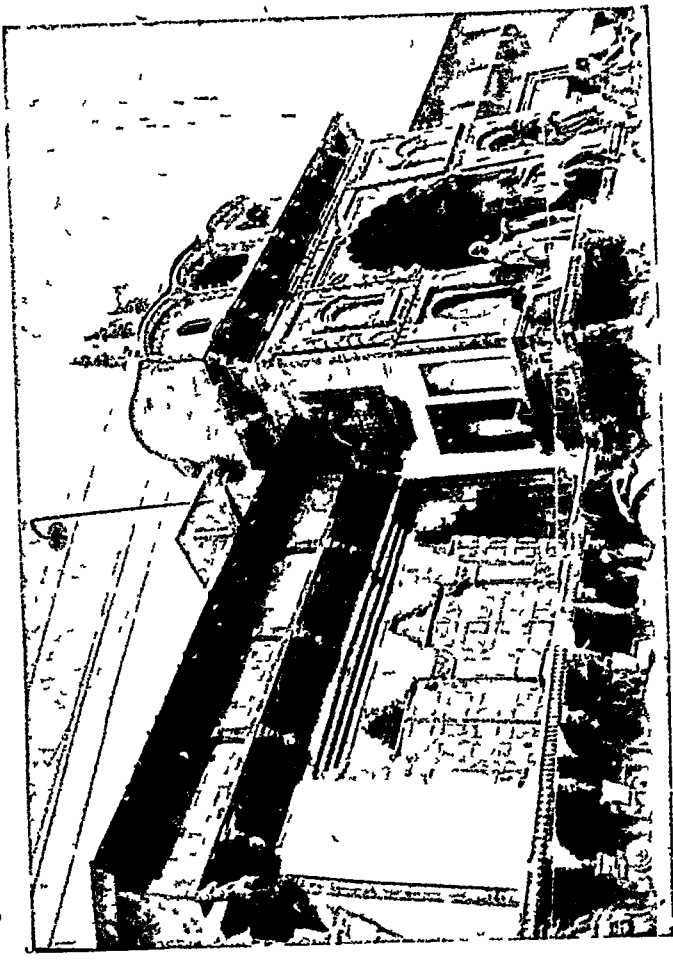
बदरीनाथ से हिमालय की गिरिमाला का दर्शन
[फोटो चद्रधर त्रिपाठी, आई० ए० एस०, डिब्रुगढ, असम]

बदरीनाथ का मंदिर

बराज (देखें पृष्ठ १९३)

कृष्णा बराज
यह बराज विजयवाडा, कृष्णा जिला (आंध्र प्रदेश) मे स्थित है।

बल्गेरिया (देखें पृष्ठ २१९)
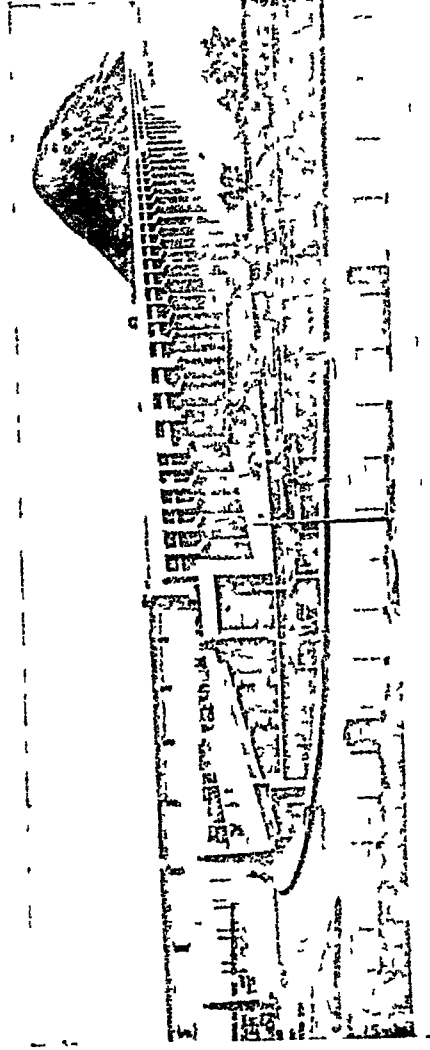
लोक गीत गान
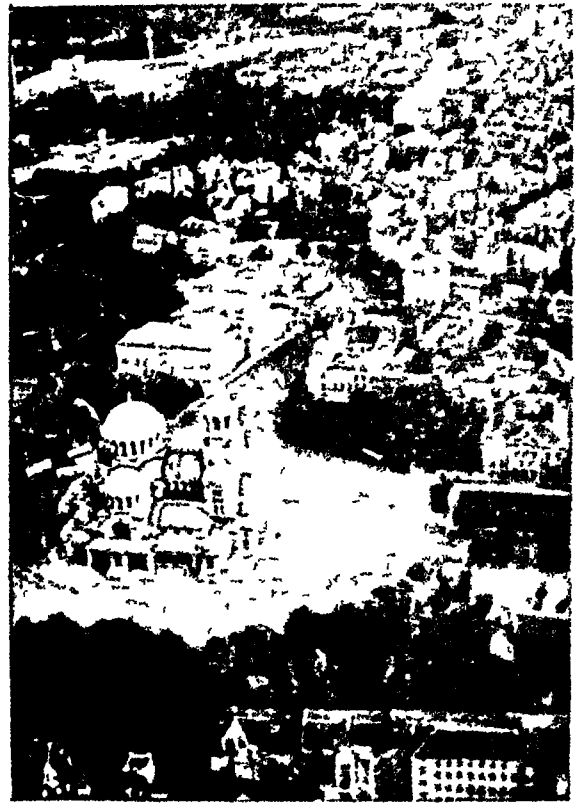
सोफिया का ऐलेक्जेंडर नेव्स्की स्क्वायर

समुद्रतट का मानव
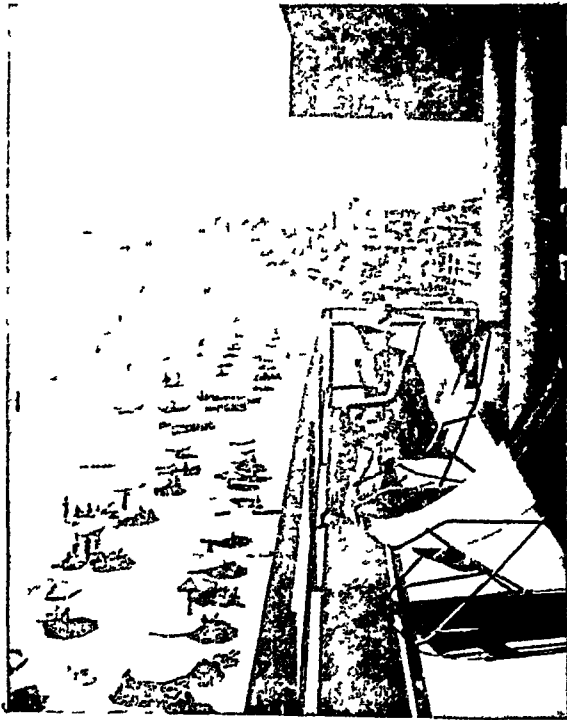
जल क्रीड़ा मग्न

समय को छोडकर साल भर स्वास्थ्यप्रद रहता है। वार्षिक वर्षा ४६ इच होती है। उपजाऊ भूमि तथा अच्छी जलवायु के कारण गन्ना, धान, गेहूँ तथा जौ अधिक उगाया जाता है। उद्योगो मे करघा उद्योग तथा चीनी का परिष्करण प्रमुख है। मोटा सूती कपडा, पीतल के वरतन एव छीट का कपडा वनाने का काम भी होता है। यहाँ से चावल, चीनी, तिलहन तथा चमडा वाहर भेजा जाता तथा कपडा, धातुएँ, नमक, कपास एव तवाकू मँगाया जाता है। डुमरियागज, वाँसी, हरैया, वस्ती, शोहरतगढ, वानी, मेहदावल आदि यहाँ के प्रमुख नगर हैं।

२. नगर, स्थिति २६° ४७' उ० अ० तथा ८२° ४३' पू० दे। यह जिले के मध्य मे कुछ दक्षिण की ओर गोरखपुर – फैजावाद उत्तर-पूर्वी रेलमार्ग पर स्थित नगर है। इसके पास ही कुआनो नदी वहती है। जिले का यह प्रमुख नगर, वाजार एव शासनकेंद्र है। यहाँ कुछ व्यापार भी किया जाता है। इसकी जनसख्या ३८,४०३ (१९६१) है। [सु० च० श०]

वहमनी राजवंश दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद विन तुगलक के विरुद्ध दक्खिनी अमीरो के सफल विद्रोह के पश्चात् दक्खिन मे इस वश के १८ सुल्तानो ने १३४७ से १५३६ तक शासन किया। इनमे से आठ ने अपनी राजधानी गुलवर्गा रखी और शेप ने वीदर। इनके इतिहास की अधिकाश अवधि मे इनका राज्य दक्खिन के पठारी प्रदेश तक सीमित था। इनका आधिपत्य पश्चिमी समुद्री तट के दावल और चाउल नामक वदरगाहो पर रहा, किंतु गोवा को इन्हें अनेक वार जीतना पडा। कृष्णा और तु गभद्रा का उपजाऊ दोआव वहमनी और विजयनगर के मध्य वैसे ही झगडे का कारण वना रहा जैसे यह पश्चिमी चालुक्यो और राष्ट्रकूटो तथा यादवो और होयसलो के मध्य रहा था। यह सघर्प अधिकतर अनवरत रूप से चलता रहा तथा दोनो सेनाएँ सर्वदा आमने सामने सघर्ष करती रही। उत्तर मे मालवा के सुल्तान की राजधानी मध्य प्रदेश स्थित शादियावाद—माडू के साथ लगातार सघर्प चलता रहा। १४६१-६२ मे मालवा के महमूद खिलजी, उडीसा के गजपतिराज कपिलेंद्र या कपिलेश्वर के साथ सीधे वीदर तक आगे वढे। नवयुवक राजा निजामुद्दीन अहमद तृतीय को भागकर फिरोजावाद मे शरण लेनी पडी। आजकल इस नगर के खडहर भीमा नदी के तट पर विद्यमान हैं। महमूद गावा की कूटनीति से गुजरात के सुल्तान ने हस्तक्षेप किया जिसमे वहमनी राज्य की रक्षा हुई।

यद्यपि अलाउद्दीन हसन वहमनशाह इस राजवश का सस्थापक था, फिर भी इसका सगठन उसके पुत्र मुहम्मद प्रथम ने किया था। केंद्रीय सरकार का विभाजन नागरिक (असैनिक), सैनिक और न्याय विभागो मे किया गया था। नागरिक सरकार के प्रधान अधिकारी वकील या प्रधानमत्री, वजीर या मत्री तथा दवीर या सचिव थे। न्याय विभाग के पदाधिकारी, काजी या न्यायाधीश और मुफ्ती या इस्लाम के धर्मशास्त्री होते थे। नगरो की शाति और सुरक्षा की सुव्यवस्था कोतवाल या पुलिस कमिश्नर तथा मुहतासिव या जन सदाचार अधिकारी करते थे। साम्राज्य, चार अतराफो या राज्यो मे विभाजित किया गया था। इन चारो राज्यो के केंद्र गुलवर्गा, दौलतावाद, वरार और वीदर थे। (जिलो या जनपदो के नागरिक और सैनिक प्रशासन के लिये तरफदार या राज्यपाल मौलिक रूप से उत्तरदायी थे।

महमूद गावाँ के मत्रित्वकाल मे साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ यह आवश्यक हो गया कि इसका पुर्नविभाजन उतने प्रदेशों मे किया जाए जितने से उचित प्रशासनिक व्यवस्था लागू की जा सके। इसलिये महमूद गावा ने पुराने चार राज्यो मे से गुलवर्गा, वीजापुर, दौलतावाद, जुनेर, गाविल, महुर, वारगल, और राजमुद्री नामक आठ प्रदेशो का निर्माण किया। तरफदारो का प्रभुत्व वहुत कम कर दिया गया और प्रत्येक तरफ के अतर्गत किलेदारों अथवा दुर्गो के सैनिक अधिकारियो को सीधे राजा के प्रति उत्तरदायी कर दिया गया। इसके अतिरिक्त मनसवदार होते थे जो भिन्न भिन्न सैनिक छावनियों में रहनेवाले सेनिको को वेतन देने के अधिकारी होते थे। इन्हें अपनी जागीरो से प्राप्त होनेवाली धनराशि के आय और व्यय का विवरण प्रस्तुत करना पडता था। महमूद गावा ने प्रत्येक प्रदेश मे एक वडा भूभाग शाही रियासत के रूप मे निर्दिष्ट कर दिया। दक्षिण मे मुख्य रूप से फारस वासियो तथा फारसी वोलनेवाले मध्य एशिया वासी अफाकियो के आक्रमण के साथ साथ एक समस्या उठ खडी हुई जिसने तनाव और वर्ग सघर्प का वीज वपन किया। तुगलक साम्राज्य से दक्खिन के पृथक होने के साथ साथ यहाँ इस्लाम धर्म सवधी आख्यानो के मर्मज्ञो, समुद्र पार से आए व्यापारियो, विभिन्न कलाकारो एव शिल्पियो, कवियो और साहित्यकारो का अतरागम हुआ। खिलजी और तुगलक कालीन विजयो के पश्चात् अनेक लोग उत्तर से आकर दक्खिन मे वस गए। सन् १४२४ मे राजधानी गुलवर्गा से वीदर स्थानातरित हुई। इसके पहले ही सामतवादी प्रशासन के दो वर्गो मे सघर्प छिड गया था। सघर्प के अनेक परिणामो मे से एक यह था कि महमूद गावा के विरुद्ध अवैध षडयत्र रचा गया तथा अप्रैल १४८१ मे खुले दरवार मे उसका छलपूर्ण वध हुआ।

महमूद गावा के वध के साथ साथ उसके द्वारा आरभ किए गए सुधारों का अत हो गया। एक प्रतिक्रिया हुई और तरफदार पहले की अपेक्षा अधिक अधिकार तथा प्रभुत्व का उपभोग करने लगे। वडे तरफदारो मे एक प्रकार का गृहयुद्ध आरभ हो गया, जिनका परिणाम यह हुआ कि १५वी शताव्दी का अत होते होते स्वायत्तशासन सपन्न राज्यपालो द्वारा प्रशासित अहमदनगर, वीजापुर, वरार, वीदर और गोलकुडा नामक पाँच प्रदेशो की स्थापना हुई। वहमनी वश के ह्रास तथा अतिम विलोपन के साथ ये राज्य स्वतत्र हो गए और इन्होने अपनी स्वतत्रता एव सस्कृति को तव तक सुरक्षित रखा जव तक वे पूर्ण रूप से मुगल साम्राज्य द्वारा हडप नही लिए गए। दक्खिन मे वहमनी शासन द्वारा जीवन के विभिन्न पक्षो मे अनेक महत्वपूर्ण नवीनताओ और परिवर्तनो की स्थापना की गई। अदोनी के घेरे के समय १३६६ ई० मे ही वदूको और वारूदो द्वारा सचालित अनेक आग्नेयास्त्रो का प्रयोग किया गया। इसके कारण सुरक्षा और किलेवदी की सपूर्ण परिकल्पना मे क्रातिकारी परिवर्तन हुआ। विदेशी शत्रुओ के आक्रमणों से वचने के लिये साम्राज्य के चारों ओर किलेवदी की गई। इसके अतर्निहित महत्व के अतिरिक्त गुलवर्गा का किला वहाँ की अनुपम जामा मस्जिद के लिये प्रसिद्ध है। इस मस्जिद का निर्माण १३६७ मे हुआ और इसका सपूर्ण छतदार क्षेत्रफल २१६ × १७६ फुट है। ढालुआँ दीवालोवाली तुगलकी शैली के स्थान पर

धीरे धीरे पर्शियन शैली का आगमन हुआ। बीदर के किले में हमें पारसी मटचिनिया लपटे की सजावट उपलब्ध है तथा सिंह और उदय होते हुए सूर्य की पर्शियन चिह्नोंवाली सजावट तख्तमहल में मिलती है। बीदर के स्वाभिमान का प्रतीक महमूद गावाँ का महान् मदरसा है, जिसकी अवशिष्ट ऊँची मीनार, बहुत बड़े हाल, पुस्तकालय, लपटे की सजावट और मस्जिद आदि वस्तुएँ महामंत्री की ज्ञानप्रियता के स्मारक हैं।

बहमनी शासकों की सांस्कृतिक उपलब्धियों का सरसरी विवरण भी महान् सूफियों द्वारा जनजीवन पर डाले गए प्रभाव के उल्लेख के बिना पूरा नहीं हो सकता। तुगलक साम्राज्य की द्वितीय राजधानी दौलताबाद में स्थापित होने के पश्चात् इस नगर ने अनेक सूफियों को आकृष्ट किया था जिनकी कब्रें इस बड़े चट्टानी किले की दीवारों के आस पास बिखरी हुई हैं। शेख सिराजुद्दीन जुनैदी अलाउद्दीन हसन बहमन शाह का शिक्षक था। यह कहा जाता है, मुहम्मद प्रथम के राज्यारोहण के अवसर पर शेख ने कुछ मोटा कपड़ा मँगवाया और उसी कपड़े की एक कमीज, एक पगड़ी और एक कमरबंद बनवाए। उसी समय से भविष्य में यही बहमनी वंश के राज्यतिलक के अवसर की पोशाक बन गई। बहमनी दक्खिन का सबसे प्रसिद्ध सूफी संत हज़रत गेसू दराज़ बंदानवाज था। वह दिल्ली से गुलबर्गा ९० चांद्र वर्ष की उतरती अवस्था में १४१३ में आया था। वह दक्खिन के रहस्यवादी जीवन का केंद्र था, और जब कुछ वर्षों के पश्चात् वह मरा तो उसका मकबरा न केवल मुसलमानों के लिये, बल्कि हिंदुओं के लिये भी उपासना और शक्ति संबंधी क्रियाकलापों का केंद्र हो गया। दक्खिनी वास्तुकला के इस अनुपम निदर्शन का विकास फीरोजशाह बहमनी के शासनकाल में हुआ था। दक्खिन के सभी समुदायों के लोग उसकी जयंती आज भी मनाते हैं।

इन सूफी संतों के खानकाह विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के मिलनस्थल हो गए। यह बड़ी रोचक बात है कि प्रारंभ में दक्खिनी कही जानेवाली नई सपकभाषा का प्रथम आभास हम सूफी पुस्तिकाओं जैसे मिराजुल आशिकीन सक्कीनामाह, शिकारनामाह इत्यादि के साहित्यिक वेश में पाते हैं। [ए० के० मे०]

बहराइच १ जिला, स्थिति २७° ३८' उ० अ० तथा ८१° ५०' पू० दे०। यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में उत्तर-पूर्व की ओर स्थित जिला है। इसके उत्तर में नेपाल देश, पूर्व में गोंडा, दक्षिण में सीतापुर एवं बाराबंकी, पश्चिम में लखीमपुर खीरी जिले स्थित हैं। इसकी पश्चिमी सीमा घाघरा नदी द्वारा निर्धारित होती है। इसका क्षेत्रफल २,६२० वर्ग मील है। इसको तीन भागों में बाँटा जा सकता है १ मध्य का उच्च पठार २. पश्चिम का बड़ा घाघरा का मैदान जो कि पठार से लगभग ४०० फुट नीचा है। ३. पूर्व की ओर राप्ती का छोटा मैदान। उत्तर की ओर हिमालय की ढालें वनों से ढँकी हैं। दक्षिण की ओर शुष्कता बढ़ती जाती व जलधाराएँ भी समाप्त हो जाती हैं और अंत में यह भाग गंगा के मैदान के रूप में बदल जाता है। राप्ती, घाघरा आदि नदियाँ बहती हैं। यह कृषिप्रधान जिला है तथा लकड़ी (टिंबर) में धनी है। इसकी जनसंख्या १४,९९,६२९ (१९६१) है।

२. नगर, स्थिति २७° ३४' उ० अ० तथा ८१° ३६' पू० दे०। यह बहराइच जिले के मध्य भाग में स्थित है। इसके किनारे सरजू नदी बहती है। यह मुसलमानों का तीर्थस्थान है। सैयद सालार मसऊद का मकबरा भी यहीं है जो मसऊद की मृत्यु के दो शताब्दी बाद, सूर्यमंदिर की जगह पर ही बनाया गया था। इसकी जनसंख्या ५६,०३३ (१९६१) है। यहाँ से नेपाल को आने का मार्ग होने के कारण व्यापार में काफी उन्नति हो गई है। अनाज, चीनी, लकड़ी, तंबाकू आदि का व्यापार होता है। यहाँ एक छोटी सी औद्योगिक पट्टी भी है, जहाँ पर अधिकांश उद्योग स्थापित हैं।

बहरुल उलूम मुल्ला अब्दुल अली (पुत्र) मुल्ला निजामुद्दीन (पुत्र) कुतुबुद्दीन सिहालवी। (जन्म–१७३१ ई०) फिरंगी महल लखनऊ के उत्कृष्ट विद्वान् थे। रामपुर, बुहार (बर्दवान, बंगाल) तथा कर्नाटक के नवाब मुहम्मद अली खाँ की सेवा में रहे। बहरुल उलूम (विद्यासागर) की उपाधि वहीं से प्राप्त की। १२ अगस्त, १८१० ई० को मद्रास में देहावसान हुआ। ये इब्ने अरबी की शिक्षा से बड़े प्रभावित थे। उनकी रचनाओं में मौलाना रूमी की मसनवी की टीका (लखनऊ १८७३, तीन जिल्द, फारसी) सर्वश्रेष्ठ है। दर्शनशास्त्र एवं धर्मशास्त्र संबंधी अनेक ग्रंथों की फारसी तथा अरबी में मौलाना ने रचना की।

सं० ग्रं० — रहमान अली तज़किरए उलमाए हिंद (लखनऊ, १९१४ फारसी)। [स० अ० अ० रि०]

बहलोल दे० लोदी वंश।

बहाउद्दीन, कुतुब आलम मख्दूम जहानियाँ सैयद जलालुद्दीन के पौत्र थे। वह तथा उनके पुत्र मंझन, शाह आलम गुजरात के बड़े प्रसिद्ध सूफी संत समझे जाते हैं। उनकी मृत्यु दिसंबर, १४५३ ई० में हुई थी। उनका मकबरा अहमदाबाद से तीन कोस पर तबवा में है।

सं० ग्रं०—अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी अख्बारुल अख्यार (देहली, १९१४, फारसी)। [स० अ० अ० रि०]

बहाउद्दीन ज़करिया (जन्म लगभग ११८२–८३ ई० मुलतान के निकट कोट करोर) भारतवर्ष में सुहरवर्दी सिलसिले के संस्थापक शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी (मृत्यु – लगभग १२३४ ई०) के प्रसिद्ध शिष्य थे। १२०० ई० के लगभग शेख बहाउद्दीन ने मुल्तान में खानकाह की स्थापना कर, शिक्षा दीक्षा प्रारंभ कर दी। सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, जिसने उन्हें शेखुल इस्लाम की उपाधि प्रदान की, इनका बहुत बड़ा भक्त था। उच्च कोटि के सूफी होने के बावजूद वे बड़े वैभव से जीवन व्यतीत करते और समकालीन सुल्तानों की सहायता करते रहते थे। नुजहतुल अरवाह के लेखक मीर हुसैनी सादात और लमआत के रचयिता फखरुद्दीन एराकी जिन्होंने सूफी मत की बड़ी उदार व्याख्या की, इनके शिष्य थे। उनका निधन २१ दिसंबर, १२६२ ई० को मुल्तान में हुआ। उनका मकबरा वहाँ भव्य है।

सं० ग्रं०— जमाली कंबोह सियरुल आरेफीन (देहली, १८९३ ई०, फारसी)। [सं० अ० अ० रि०]

बहाउद्दीन जुहैर, अबुलफजल प्रख्यात अरबी कवि। १७ फरवरी, ११८६ को मक्का में उत्पन्न हुआ। युवावस्था में कूस (उत्तरी मिस्र) जाकर कुरान का अध्ययन किया। १२२७ के आसपास वह काहिरा में

सुलतान-अल-कामिल के पुत्र अल-सालीह अय्यूब की सेवा में नियुक्त हुआ, और सीरिया तथा उत्तरी मेसोपोटामिया पर आक्रमण के समय (१२३२) उसके साथ रहा। अल-कामिल की मृत्यु के पश्चात् अल-नामिर दाउद नाम के एक सबधी ने षड्यंत्र करके अल-सालीह को कारागार मे डाल दिया (१२३९)। जुहैर ने स्वामी की सकटापन्न स्थिति में उसका साथ दिया। अल-सालीह ने मिस्र का शासन सँभालते ही जुहैर को अपना मत्री नियुक्त किया। काहिरा मे ही १२५८ मे इसकी मृत्यु हो गई। इसका 'दीवान' उपलब्ध है। पामर ने परिष्कृत सस्करण मे 'दीवान' का अग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है। सगीतपूर्ण कोमल-कात पदावली उसकी कविता की प्रमुख विशेषता है। सपूर्ण काव्य मे उत्कृष्ट भावभूमि, शब्दविन्यास, शैली और अलकार एक प्रतिभासपन्न कलाकार का परिचय देते हैं।

वहाउद्दीन, नक्शवंद इस नाम पर तुर्किस्तान के प्रसिद्ध सूफी सिलसिले, सिलसलए ख्वाजगान का नाम नक्शवदी सिलसिला पडा। उनका जन्म मार्च-अप्रैल, १३१७ ई० में बुखारा के समीप एक गाँव में हुआ। बाबा कुलाल एव ख्वाजा अब्दुल खालिक गुजदवानी से सूफी मत की दीक्षा ली। तत्कालीन मध्य एशिया की राजनीतिक एव सास्कृतिक उथल पुथल के कारण उनकी शिक्षा में पर्याप्त कट्टरपन पाया जाता है। उन्होने समा (सूफियो का सगीत एव नृत्य) का उत्साहपूर्वक विरोध किया। मुगलो में तीमूर नक्शबदी सिलसिले की शिक्षा से बडा प्रभावित था। इसी कारण भारतवर्ष में बाबर के समय से नक्शबदी सिलसिले की बडी उन्नति हुई।

स० ग्र०—फख्रुद्दीन अली बिन हुसेन वाइज काशीफी रशहाते ऐनुल हयात (लखनऊ, १८९०, फारसी), सैयद अतहर अब्बास रिजवी मुसलिम रिवाइवलिस्ट मूवमेंट्स इन नार्दर्न इडिया इन द सिक्सटीथ ऐंड सेवेंटीथ सेंचुरीज़ (आगरा, १९६५)।

[सै० अ० अ० रि०]

वहादुरशाह (१७७५-१८६२) दिल्ली के अतिम मुगल सम्राट्। पिता अकबर शाह की मृत्यु के बाद १८३७ ई० में सिंहासन पर बैठे ये नाम मात्र के ही शासक थे। वास्तविक राज्याधिकार अंग्रेजो के हाथ मे था तथा दक्षिण में मरहटो की शक्ति बढती जा रही थी। ये फारसी के अच्छे विद्वान् थे और उर्दू में प्रभावोत्पादक कविता भी करते थे। इनके रचित कई 'दीवान' उपलब्ध हैं। कविता की ओर अधिक झुकाव होने के कारण राजकार्यो की ओर यथेष्ट ध्यान नही देते थे। सन् १८५७ के स्वातत्र्ययुद्ध मे इन्होने नेतृत्व ग्रहण किया, इसलिये युद्धसमाप्ति पर अग्रेज शासकों ने इन्हे कैद कर लिया और जहाज में बैठाकर परिवार सहित रगून को भेज दिया। वही अग्रेजों की नजरबदी में सन् १८६२ में इनका देहात हो गया।

वहादुरशाह गुजरात का (१५०६-१५३७) १४०४ ई० मे गुजरात के गवर्नर जफर खाँ ने मुजफ्फर शाह की उपाधि धारण की तथा यहाँ एक स्वतत्र राज्य स्थापित किया। १५११ ई० मे मुजफ्फर शाह द्वितीय वहाँ का शासक हुआ। इसके आठ पुत्र थे, जिनमे बहादुर सबसे योग्य तथा महत्वाकाक्षी था। १५२६ ई० मे मुजफ्फर शाह की मृत्यु हो गई। इस समय बहादुर दिल्ली मे था। वहाँ भी वह अफगानो मे जनप्रिय हो गया था तथा कुछ उमरा इब्राहिम लोदी के स्थान पर उसे उद्दी पर बैठाना चाहते थे। पानीपत के प्रथम युद्ध को उसने दूर से देखा था। मुगलो की सफलता ने उसे इतना भयभीत कर दिया कि मुगलो से युद्ध करने का उसे कभी साहस नही हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् बडा भाई सिकदर गद्दी पर बैठा किंतु कुछ ही दिनो मे वह मार डाला गया। उमराओ के निमत्रण पर बहादुर गुजरात आया और बिना किसी कठिनाई के जुलाई, १५२६ ई० मे गुजरात का शासक बन गया।

बहादुरशाह लगभग ११ वर्ष गुजरात का शासक रहा (जुलाई १५२६ से फरवरी १५३७ ई० तक)। इस बीच अपनी योग्यता तथा शासन प्रबध से उसने इतना यश प्राप्त कर लिया कि आज भी गुजरात के प्रमुख शासको मे उसकी गणना होती है। उसने एक शक्तिशाली सेना—विशेषतया तोपखाना—सगठित किया। हिंदुओ के साथ उसका बर्ताव अच्छा था। उसने अपने महल, हाथियो इत्यादि के सस्कृत नाम दिए। वह सस्कृत और कला का भी पोषक था। उसका शासन सगठित था।

बहादुर महत्वाकाक्षी था। उसने शीघ्र ही चदेरी, भीलसा तथा रायसीन पर अधिकार कर लिया। १५३२-३३ मे उसने राजपुताने मे प्रवेश किया तथा चित्तौड का घेरा डाला। इसी समय हुमायूँ के ग्वालियर आने से उसने चित्तौड से सधि कर ली। बहादुरशाह की दृष्टि दिल्ली पर थी। उसकी सेना तथा विशेषतया तोपखाना शक्तिशाली था। गुजरात के शासको का कोष अपार था। बहादुर ने दिल्ली पर अधिकार करने की योजना बनाई। उसने ऐसे लोगो को जो मुगल दरबार से असतुष्ट थे शरण दी। इनमे सुल्तान आलम खाँ अलाउद्दीन लोदी, तातार खाँ तथा मुहम्मद ज़मान मिर्जा प्रमुख थे। शरणार्थियो के प्रश्नपर हूमायूँ तथा बहादुर शाह मे पत्रव्यवहार हुआ किंतु बहादुर शाह उन्हे वापिस करने को तैयार नही हुआ। इनके नेतृत्व मे बहादुर शाह ने मुगल साम्राज्य पर तीन तरफ से आक्रमण करने की एक महान् योजना बनाई। किंतु इसमे सफलता नही मिली।

जिस समय बहादुरशाह चित्तौड को घेरे हुए था उसी समय हुमायूँ ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया। बहादुर चित्तौड विजय कर गुजरात की तरफ रवाना हुआ, मार्ग मे मन्दसौर के निकट दोनो सेनाएँ एक दूसरे के सामने डटी रहीं। बहादुर शाह को सदेह हुआ कि उसके प्रमुख सेना नायक मुगलो से मिले हैं। रात को वह मदसौर से भाग कर माडू चला गया। मुगलों के वहाँ पहुँचने के पश्चात् वहाँ से भागकर चपानीर और वहाँ से डियू चला गया। पूरे गुजरात पर मुगलो का अधिकार हो गया। बहादुर शाह ने मुगलो की सेना का खुलकर एक स्थान पर भी सामना नही किया। इसका प्रमुख कारण कदाचित् पानीपत के प्रथम युद्ध मे प्रदर्शित मुगलो की योग्यता थी।

मुगल गुजरात पर शासन न कर सके। मुगल राजकुमार अस्करी की मूर्खता तथा बहादुरशाह की जनप्रियता से गुजरात की जनता ने विद्रोह कर दिया और मुगलों को गुजरात से भाग जाना पडा। इस विद्रोह मे हिंदू तथा मुसलमान सभी ने सहयोग दिया। डियू से लौटकर बहादुरशाह ने गुजरात पर अधिकार कर लिया।

जब तक शक्ति हाथ में थी बहादुरशाह ने पुर्तगालियों को दूर रखा। अपने निष्कासन के समय अपनी विवशता से उसे उनसे संधि करनी पड़ी। फरवरी, १५३७ ई० में बिना पूर्वसूचना के तथा बिना सुरक्षा के प्रबंध के अपने उमराओं के मना करने पर भी बहादुर पुर्तगाली गवर्नर से मिलने गया। वहाँ उसे धोखा देकर पुर्तगालियों ने मार डाला और उसकी लाश समुद्र में फेंक दी। बहुत दिनों तक लोगों को उसकी मृत्यु पर विश्वास नहीं हुआ तथा कई वर्ष तक उसके प्रकट होने की सूचनाएँ मिलती रहीं।

बहादुरशाह ऐसे जनप्रिय शासक मध्ययुग में नहीं हुए हैं। गद्दी पर बैठने के समय उसकी अवस्था २० वर्ष की थी और मृत्यु के समय वह ३१ वर्ष का था। इस बीच इतिहास में उसने जो स्थान बना लिया वैसा सौभाग्य कम लोगों को प्राप्त होता है।

[हु० भ० श्री०]

बहामा द्वीपसमूह स्थिति २४° ४०' उ० अ० तथा ७४° ०' प० दे०। संयुक्त राज्य, अमरीका के फ्लोरिडा प्रायद्वीप से लेकर दक्षिण-पूर्व में हेटी तक फैले द्वीपों का एक समूह है। इस द्वीपसमूह के अंतर्गत कुल २९ द्वीप, ६६१ नीची सतह या मूँगे के द्वीप और २,३८७ चट्टानी द्वीप आते हैं। द्वीपसमूह का क्षेत्रफल लगभग ४,४०४ वर्ग मील है। यह द्वीपसमूह समशीतोष्ण कटिबंध में पड़ता है। औसत वार्षिक वर्षा लगभग ३८ इंच है। जाड़े का औसत ताप लगभग २२° सें० तथा गरमी का औसत ताप ३०° सें० है। गल्फस्ट्रीम धारा के प्रभाव के कारण अक्सर कोहरा छा जाया करता है। यहाँ का अधिकांश भू भाग चूने के पत्थर से बना है। कैट द्वीप पर सबसे ऊँची चोटी (४०० फुट) है। गहरे समुद्र में मछली मारने का काम अधिक होता है। इस द्वीपसमूह के मुख्य निर्यात मछली, टमाटर, नमक, लुगदी तथा सीसल (sisal) हैं। मुख्य आय के स्रोत विदेशी पर्यटक हैं। इंग्लैंड के लोग सर्वप्रथम १६०० ई० के लगभग न्यू प्राविडेंस द्वीप पर आकर बसे थे। इस द्वीपसमूह का मुख्य द्वीप न्यू प्राविडेंस है। अन्य मुख्य द्वीप ग्रैंड बहामा, बड़ा ऐबाको, छोटा ऐबाको ऐंड्रॉस, एलूथेरा, सैन सैल्वाडॉर हैं। नैसॉ इस द्वीपसमूह की राजधानी है। इस द्वीपसमूह की कुल जनसंख्या १,०६,६७० (१९६१), है, जिसमें ८० प्रति शत लोग भारतीय तथा हब्शी हैं। [उ० कु० सिं०]

बहावलपुर स्थिति नगर, २९° ५५' उ० अ० तथा ७१° ३०' पू० दे०। यह एक डिवीजन तथा नगर है जो पश्चिमी पाकिस्तान में सतलुज नदी के बाएँ ओर प्राचीन पंजाब तथा सिंध के मध्य में स्थित है। इस डिविजन का क्षेत्रफल ३२,४४३ वर्ग मील तथा जनसंख्या ३२,०५,००० (१९६१) है। बहावलपुर शहर इस राज्य की राजधानी है जो सतलुज नदी के बाएँ किनारे पर स्थित है। १८ वीं शताब्दी में यह स्वतंत्र राज्य था। दोनों महायुद्धों में इस राज्य का सहयोग काफी रहा है। इस राज्य में नदी के किनारे के भाग को छोड़कर पहले सारा भूभाग उजाड़ था परंतु सिंचाई का प्रबंध हो जाने के कारण खेती का विस्तार लगभग पूरे प्रदेश में हो गया है।

[उ० कु० सिं०]

बहुछिद्रिल फोड़ा (कारबंकल, Carbuncle) वास्तव में अवस्त्वक ऊतक का कोथ होता है, किंतु ऊपर से इसकी आकृति एक विस्तृत विद्रधि या फोड़े के समान होती है, जिसके चर्म में बहुत से छिद्र होते हैं। इन छिद्रों से गाढ़े पूय की बूँदें निकलती रहती हैं। इसका कारण स्टैफिलोकोकस ऑरियस (Staphylococcus aureus) जीवाणु होता है, जो चर्म के नीचे के ऊतकों में शोथ उत्पन्न कर देता है। ऊतक मरने पर पूतिमांस (slough) के स्तर प्रकट होते हैं, जिन्हें काटकर निकालना पड़ता है। धीरे धीरे मृत ऊतकों के ये स्तर पूय में परिवर्तित हो जाते हैं।

चिकित्सा — पेनिसिलिन के इंजेक्शनों से प्रायः रोग दब जाता है। अधिक पूतिमांस के बन जाने पर क्रूस (×) के आकार का छेदन करके, चर्म भागों को सिमटी से उठाकर, उनके नीचे से पूतिमांस को काटकर निकाल दिया जाता है और मैग्नीसियम सल्फेट ४५, ग्लिसरीन ५५ और कार्बोलिक ऐसिड ०.५ भाग के मरहम का लेप लगाने से व्रण स्वच्छ हो जाता है। इसके पश्चात् इसका साधारण व्रण की भाँति उपचार किया जाता है।

सं० ग्रं० — स्टार्लिंग : शरीर क्रिया विज्ञान, हॉवेल : शरीर क्रिया विज्ञान।

[मु० स्व० व०]

बहुत्ववाद (Pluralism) यह पद उस दार्शनिक विचारधारा का द्योतक है जो विश्व को अनेक स्वतंत्र इकाइयों से निर्मित मानती है तथा समस्त सत्ता को एक अथवा दो अंतिम तत्वों में घटाने के प्रयास को निरर्थक समझती है। महत्वपूर्ण होने के कारण सत्ता का प्रश्न सत्ताशास्त्रीय सिद्धांतों को एकत्ववादी तथा अनेकत्ववादी श्रेणियों में विभाजित करता है। अनेक दार्शनिक सत्ता को मूलतया एक इकाई अथवा प्रकृति मानते हैं परंतु अन्य स्वतंत्रतया दृष्टिगोचर होनेवाले विविध एवं अगणित गुणों के धारक तत्वों की बहुलता में विश्वास करते हैं।

यद्यपि बहुत्ववाद का अर्थनिर्धारण दुष्कर है तथापि इसका प्रचलित अर्थ शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुकूल है और प्राय निश्चित सा है। गुणात्मक अर्थ में बहुत्ववाद सत्ता को अनेक गुणयुक्त पदार्थों से निर्मित मानता है तथा परिमाणात्मक अर्थ में इससे अनेकत्व स्वतंत्र, पदार्थयुक्त स्व-स्थित इकाइयों की सत्ता माननेवाले सिद्धांतों का बोध होता है जिनके अनुसार वस्तुएँ विशेषण न होकर पदार्थमय अस्तित्व वाली हैं। सत्ता के अनेक घटकों की प्रकृति को न तो भौतिक और न आध्यात्मिक माननेवाला सिद्धांत 'उदासीन बहुत्ववाद' है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में कणाद का वैशेषिक परमाणुवाद सर्वोत्कृष्ट है। यह 'अणुवादी बहुत्ववाद' पृथ्वी, जल, वायु तथा तेज के नित्य, अपरिवर्तनशील तथा अविभाज्य परमाणुओं का आकाश के साथ मिलकर विश्व का निर्माण करना मानता है। प्रकार-भेद युक्त ये परमाणु प्राथमिक तथा द्वैयतिक गुणों एवं कर्मों के आश्रय हैं। अदृष्ट शक्ति से प्रेरित गतिहीन परमाणु आत्माओं के धर्माधर्म फलभोग हेतु सृजन में रत होकर अनित्य संघात प्रस्तुत करते हैं जो प्रयोजन सिद्धि के पश्चात् प्रलय में वियोजित होकर निष्क्रिय हो जाते हैं।

'परमाणुवादी अणुवाद' का अन्य उदाहरण जैन दर्शन प्रस्तुत करता है जो परमाणुओं में प्रकारभेद नहीं मानता। मात्रा-भेद-युक्त अविभाज्य एवं शाश्वत परमाणु अनित्य गुणों से युक्त विविध

पदार्थों का निर्माण करते हैं। चार्वाक दर्शन भी पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि सदृश प्रत्यक्ष भूतो से विश्वनिर्माण मानकर जडवादी अनेकत्ववाद प्रस्तुत करता है।

परतु अनेक निष्क्रिय परमाणु असत् कार्यवादी सिद्धात के अनुसार प्रपच का निर्माण नही कर सकते अत ये मत समीचीन नही हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक जगत् मे एपीडाक्लिस, डिमाक्रिटस तथा प्लेटो विशेष उल्लेखनीय हैं। 'भौतिक बहुत्ववाद के प्रवर्तक डिमाक्रिटस शून्य मे निष्प्रयोजन भ्रमण करते हुए असख्य गतिशील परमाणुओ के प्रकृति के नियमानुसार आकस्मिक मिलन को सृष्टि का हेतु मानते हैं। प्रेरणाहीन सूक्ष्म परमाणुओ की यान्त्रिक प्रक्रिया मनस् की भी व्याख्या करती है अत यह 'नास्तिक बहुतत्व-वाद है।'

स्वतत्र, स्वस्थित एव प्रयोजनरहित असख्य परमाणु सहयोग, समायोजन, सामजस्य, सौंदर्य तथा सकल्पस्वातत्र्य को नही समझा सकते। अत विविधता एव अनेकत्व को अक्षुण्ण रखकर सृष्टि सृजन, क्रम व्यवस्था इत्यादि की नैतिक एव आध्यात्मिक व्याख्या लाइब्नित्ज बर्कले तथा मैकटेगार्ट ने की। भौतिक परमाणुओ मे ईश्वर द्वारा व्यवस्था आस्तिक बहुत्ववादियो ने स्वीकार की।

लाइब्नित्ज ने अनेक आध्यात्मिक, स्वयक्रियाशील, अप्रसरित, गवाक्षहीन, व्यक्तिगत अद्वितीयतायुक्त, अतिम, विभिन्न चेतनायुक्त तथा अत आध्यात्मिक चिद्-विंदु शक्तिप्रयोग के कारण बाह्य दर्शक को प्रसरित जगत् की प्रतीति कराते हैं। प्रमुख चिद् विंदु द्वारा 'पूर्व स्थापित सामजस्य' की परिकल्पना स्वकेंद्रित चिद्-विंदुओ मे सामजस्य की व्याख्या करती है।

प्राचीन बहुत्ववाद विश्व को सामजस्यपूर्ण तथा स्वस्थित इकाई तो मानता ही था परतु वैज्ञानिक खोजो से अभिभूत नव्य बहुत्ववाद विश्व की अनेकानेक भिन्नताओ, विविधताओं, विरोधो तथा बेसुरेपनों, पर मुग्ध है। विलियम जेम्स 'बहुत्ववादी जगत्' मे वस्तुओ की पृथक्ता, भिन्नता, स्वस्थिरता, स्वतत्रता, विचित्रता, अनिश्चितता, स्वच्छदता, अनेकता एव अस्तव्यस्तता पर बल देता है। नव्य वस्तुवाद अनेक भौतिक तथा मानसिक वस्तुओ के साथ सबधो, सिद्धातो, न्याय, सौदर्य जैसी देश-काल से परे वस्तुओं के अस्तित्व को स्वीकार करता है। इस वस्तुवादी-बहुत्ववाद ने पुद्गल जनित एव विकासवादी कठिनाइयो से भी मुक्त किया है तथा सकल्पस्वातत्र्य, प्रयोजन, रचनात्मक मूल्य एव ईश्वर का भी अस्तित्व स्वीकार किया है, यद्यपि यह चेतना की उचित व्याख्या नही कर पाया है और न रचनात्मक सश्लेषण के उद्गम का 'स्वरूप' ही निर्धारित कर पाया है। [रा० भ० क०]

बहुदेववाद ईश्वरीय सत्ता मे विश्वास रखनेवाले एकदेववादी या बहुदेववादी हो सकते हैं। एक ईश्वर मे निष्ठा रखने वाले एक देववादियो के विपरीत बहुदेववादी अनेक देवताओ की सत्ता मे विश्वास रखते हैं तथा उनकी पूजा करते हैं। इन दोनो के बीच की एक समन्वयात्मक स्थिति भी हो सकती है। अनेक देवताओ की सत्ता मे विश्वास रखते हुए भी उन्हे एक ही परम शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ माना जा सकता है।

हिंदू धर्म के इतिहास में इन तीनो प्रकार की मान्यताओ के उदाहरण मिलते हैं। वैदिक युग के प्रारभ मे अनेक देवताओ की उपासना करने का प्रचलन था। ऋग्वेद मे अनेक देवो की भव्य स्तुतियो का बाहुल्य है। देव का अर्थ है द्युतिमान्। देव प्रकृति की विशाल शक्तियो को द्युतिमान् या प्रकाशित करते हैं। सभवत चमत्कारपूर्ण और विस्मयजनक प्रकृति के दृश्य और घटनाएँ देखकर वैदिक युग के ऋषियो ने उन्हे 'देव' का अभिधान प्रदान किया। ये देव तीन प्रकार के — आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक हैं। वेदो मे इन तीनो प्रकार के देवों की उपासना की गई है। अग्नि, मरुत, इद्र, सविता आदि प्रधान देवता हैं। वैदिक युग के उत्तर काल मे इन सब देवो के पीछे निहित एक परम शक्ति की उद्भावना कर ली गई थी।

> इद्र मित्रं वरुणमग्नि माहु
> रथो दिव्य स सुपर्णो गुरुत्वात्
> एक सद्विप्रा बहुधा वदति
> अग्नि यम मातरिश्वानमाहु
> —ऋ० १। १६४। ४६

उपनिषदो की रचना के पूर्व ऋषियो ने एक परम शक्ति की प्रधानता स्वीकार कर ली थी किंतु प्रचलन बहुदेववाद का ही था। उपनिषत्काल मे विभिन्न देवताओ का गौरव कम हो गया। ऋषि उनकी उपासना से पराड्मुख हो गए। अनेक देवताओ की सत्ता का खडन करके यज्ञ करने की परपरा का उच्छेद नही किया किंतु ब्रह्म-चिंतन को उन्होने सर्वोपरि अवश्य माना और ब्रह्मविद्या का प्रचार किया अत यह स्पष्ट रूप से एकदेववादी युग कहा जा सकता है।

पौराणिक युग मे स्थिति कुछ भिन्न हो जाती है। स्कद पुराण मे अठारह पुराणो के नाम आते हैं। इन सब मे भिन्न भिन्न देवताओं की प्रधानता प्रतिपादित की गई है। जिस पुराण मे विष्णु को सर्वोपरि देव कहा गया है उसमे अन्य देवताओ को विष्णु के आराधक रूप में प्रस्तुत किया गया है। शिवपुराण मे शिव ही सर्वोच्च देवता हो जाते हैं और अन्य सब देवता उन्ही की उपासना करते हैं। इस प्रकार पुराण युग मे अनेक देवताओ की मान्यता रहते हुए भी उनमे से किसी एक देवता को प्रधान मान कर उपासना करने की पद्धति रही है। अत यह भी एक प्रकार का बहुदेववाद ही है।

यही स्थिति थोडे बहुत हेर फेर से तुलसी, सूर, चैतन्य, रामकृष्ण आदि के प्रतिपादित धर्मों मे भी रही है। यह पौराणिक युग के बहुदेववाद का ही परिमार्जित रूप था। अब भी हिंदू समाज के सास्कृतिक कार्यक्रमो मे बहुदेववाद की मान्यता प्रचलित है। केवल तार्किक ज्ञान की गहनता मे जानेवाले लोग ही एकदेववाद या अद्वैत-वाद की भावभूमि पर पहुँचते हैं।

भारतेतर देशो मे भी बहुदेववाद का प्रचलन रहा है। ईसाई धर्म मे ट्रिनिटी का विश्वास बहुदेववाद का ही एक रूप है। प्राचीन यूनान मे भी अनेक देवताओ की उपासना की जाती थी। सुकरात पर आरोप लगाए गए थे कि वह राष्ट्र के देवताओ की सत्ता

अस्वीकार करता है, अपने नए देवताओ की स्थापना करता है और अपने क्रातिकारी विचारो से नवयुवको को पथभ्रष्ट करता है। सुकरात के पहले भी देवताओं का विरोध किया जा रहा था। इससे यह निष्कर्ष स्पष्टत निकाला जा सकता है कि वहाँ वहुदेववाद प्रचलित था।

इस वात पर विवाद हो सकता है कि पहले वहुदेववाद की अवधारणा उत्पन्न हुई या एकदेववाद की। प्राय विद्वानो का विचार है कि मनुष्य को आदिकाल में अपने आसपास अपने से प्रवल एक अनिश्चित शक्ति का आभास मिला होगा। उस समय अभिव्यजना शक्ति पर्याप्त समर्थ न हो सकने के कारण उसका कोई नामनिर्देश न किया जा सका। उस समय एकदेववाद या वहुदेववाद का प्रश्न नही था। किंतु जीवन के सुख दु खो, अनूकूल प्रतिकूल वातावरण और प्रकृति के कोप एव वरदानो ने उन शक्तियो के सामने श्रद्धावनत कर दिया जिनपर उसका जीवन अवलवित था। उस काल मे मनुष्य की अभिव्यजना की असमर्थता के कारण किसी अनिर्दिष्ट शक्ति को तो नाम न दिया जा सका किंतु सूर्य, चद्र, वादल, विजली, सागर, सरिता आदि रूप और आकार मे दिखाई देनेवाली शक्तियो को नाम देना पडा और इस प्रकार वहुदेववाद की स्थापना हो गई।

जो लोग एकदेववाद के पूर्व वहुदेववाद का प्रचलन मानते हैं, उनका तर्क है कि आदिकाल में मनुष्य प्रकृति के रहस्य नही समझता था। उसे प्रकृति के मूल तत्वो के गुण ज्ञात नही थे। अत वह स्वभाव से अपने व्यक्तित्व की ही भाँति प्रकृति की विशाल वस्तुओ को सचेतन सत्ता मानने लगा। अपने से अधिक शक्तिशाली प्रकृति की शक्तियो के सामने वह श्रद्धानत होकर उनकी अभ्यर्थना करने लगा। इस प्रकार वहुदेववाद आदिकाल से ही प्रचलित हो चला था।

इसके अतिरिक्त कुछ लोगों का यह विचार है कि प्रारभ में अनेक आत्माओं की मान्यता स्वीकार की गई। कुछ लोग उन आत्माओं की पूजा करते रहे और कुछ उनकी उपेक्षा करते रहे। वैयक्तिक और अनिश्चित आत्माओं के वजाय अवैयक्तिक और निश्चित नामरूपवाले देवताओ की अवधारणा अधिक सुगम होने के कारण लोगो का झुकाव देवताओं की ओर सहज ही हो गया। इस प्रकार वहुआत्मवाद के वाद वहुदेववाद का प्रचलन हो गया। यह विकास कालक्रम मे भले ही न हुआ हो, किंतु तार्किक चिंतन की प्रक्रिया मे अवश्य ही हुआ होगा।

विलियम जेम्स का कथन है कि वहुदेववाद साधारण लोगो का धर्म सदा से रहा है, और अव भी है। इसे धर्मविरुद्ध तो नही कहा जा सकता, क्योकि धार्मिक भावना के उदय होने में यह एक आवश्यक स्थिति होती है, किंतु अनेक देवताओं की सत्ता आधुनिक वस्तुवादियो द्वारा जव तक आवश्यक सिद्ध नही की जाती वहुदेववाद की जड मजवूत नही हो सकती। विचारगाभीर्य वढते ही इसने अपना स्थान खो दिया। पश्चिम मे ईसाई मत ने शिक्षित लोगो को ईश्वर की हिब्रू अवधारणा मानने को राजी कर लिया, परिणामत वहुदेववादी विचार की मान्यता कम होती गई। यूनान मे भी यही हुआ। भारत मे भी वेदात के सामने वहुदेववादी सिद्धात दुर्बल हो गया। वहुदेववाद का खडन भले ही न किया गया हो किंतु वह पिछ्ड गया। दर्शन और धर्म के तार्किक चितको ने इसका समर्थन नहीं किया।

[ह० ना० मि०]

वहुपद (Polynomial) प्रारभिक वीजगणित में + और − चिह्नो से सवद्ध कई एक पदो के व्यजक (expression) को कहते हैं, यथा

३क + २ख − ५ग $(3a + 2b - 5c)$

पदो की सख्या के अनुसार इसके विशिष्ट उपनाम एकपद (monomial), द्विपद (binomial), आदि होते हैं। उच्चतर गणित मे वहुपद का विशिष्ट उपयोग ऐसे व्यजक के लिये होता है जिसके पदो में किसी एक चर राशि, या एक से अधिक चर राशियो, के शून्य अथवा धन पूर्णांक घात आरोह या अवरोह क्रम मे हो, यथा

३ य + √२ य² − ¼ य⁴ $(3x + \sqrt{2}\, x^2 - \frac{1}{4} x^4)$. (१)

−६ य⁶र + ५π य²र² − फय $(-6x^6 y + 5\pi x^2 y^2 - a\, x)$ (२)

व्यजक (१) य [x] का वहुपद है और (२) य, र [x, y] का तथा फ [a] उसमे अचर (constant) है। यदि य [x] के स्थान मे सर्वत्र कोई अन्य व्यजक, मान लें, लघु य [log x] रख दिया जाय, तो नया व्यजक लघु य [log x] का व्यजक कहलाएगा। पदो के घातो मे से महत्तम को वहुपद का घात (डिग्री) कहते हैं। यदि एक से अधिक चर राशियाँ हो, तो विभिन्न पदो मे चर राशियों के घातो के योगफलो मे से महत्तम को वहुपद का घात कहते हैं। इस प्रकार वहुपद (१) का घात ४ है और (२) का ७। ऐसा भी कहा जाता है कि वहुपद (२) य [x] मे छठे घात का और र [y] में द्वितीय घात का है।

दो वहुपदो का योगफल, अतर और गुणनफल वहुपद ही होता है, किंतु उनका भागफल वहुपद नही होता। दो वहुपदों के भागफल को, जिनमे एक सख्या मात्र भी हो सकता है, परिमेय फलन (rational function) कहते हैं। चर य [x] मे घात म (m) का व्यापक वहुपद यह है

क₀ यᵐ + क₁ यᵐ⁻¹ + ... + कₘ, क₀ ≠ ०

$$[a_0 x^m + a_1 x^{m-1} + \dots + a_m,\ a_0 \neq 0]$$

वीजगणित का एक मौलिक प्रमेय यह है कि यदि फ (य) चर राशि य मे घात म का वहुपद है, तो वहुपद समीकरण फ (य) = ० के सदा म मूल होते हैं। ये मूल समिश्र (complex) भी हो सकते हैं और सपाती (coincident) भी।

यदि फ (य) = ० का कोई मूल क₁ है तो वहुपद फ (य) मे य − क₁ का भाग पूरा चला जाता है और भागफल मे एक वहुपद फ₁(य) घात म − १ का प्राप्त होता है। अव वहुपद समीकरण फ₁(य) = ० के म − १ मूल होंगे और यदि इसका एक मूल य − क₂ है (यह भी सभव है कि क₂ = क₁), तो फिर फ₁ (य) मे य − क₂ का भाग पूरा चला जायगा। इस प्रकार यदि क₁, क₂, ... कᵣ विभिन्न मूल हैं, तो

फ(य) = फ₀ (य−क₁)^व₁ (य−क₂)^व₂ ... (य−कᵣ)^वᵣ

$$[F(x) = a_0 (x - a_1)^{b_1} (x - a_2)^{b_2} \dots (x - a_r)^{b_r}] \quad (३)$$

जहाँ व₁ मूल क₁ की वहुलता है, इत्यादि और व₁ + व₂ + ... + वᵣ = म। यह एक महत्वपूर्ण प्रमेय है कि फ (य) का गुणनखडन (३) अद्वितीय होता हैं।

यदि हम फ (य) के गुणाको और गुणनखडो मे प्रयुक्त सख्याओ पर यह प्रतिवध लगा दें कि वे किसी अमुक क्षेत्र की होंगी, तो मूलो

का अस्तित्व अवश्यम्भावी नहीं रहता (देखें बीजगणित)। इतना अवश्य है कि यदि बहुपद का गुणनखंडन हो सकेगा, तो गुणनखंड अद्वितीय होंगे।

विभिन्न शाखाओं में बहुपद का उपयोग — त्रिकोणमिति का एक महत्वपूर्ण प्रमेय यह है कि यदि म कोई धनात्मक पूर्णांक है, तो कोज्या मय की अभिव्यक्ति कोज्या य के म घातवाले बहुपद के रूप में की जा सकती है, यथा

कोज्या २य = २ कोज्या^{2}य–१, कोज्या ३य = ४ कोज्या^{3}य–३ कोज्या य

ज्या मय के बारे में प्रमेय यह है कि यदि म विषम है तो ज्या मय की अभिव्यक्ति ज्या य के म वें घात के बहुपद के रूप में की जा सकती है और यदि म सम है तो ज्या म य/कोज्या य की अभिव्यक्ति ज्या य के म – १ वें घात के बहुपद के रूप में होगी, यथा

ज्या ३य = ३ ज्या य — ४ ज्या^{3} य,

ज्या ४ य = ४ कोज्या य (ज्या य – २ ज्या ^{3} य)।

वैश्लेपिक ज्यामिति में वक्रों का अध्ययन उन्हें दो चरों के बहुपद समीकरण द्वारा निरूपित कर किया जाता है। इसी प्रकार तलों के अध्ययन के लिये तीन चरवाले बहुपद समीकरणों की सहायता ली जाती है [देखें विश्लेषणीय ज्यामिति]। स्वेच्छ घात के बहुपद समीकरणों से निरूपित वक्रों और तलों का अध्ययन बीजीय ज्यामिति में किया जाता है।

दो या अधिक चरों के ऐसे बहुपद को, जिसके प्रत्येक पद में चरों के घातों का योगफल समान हो, समघात बहुपद, या केवल समघात, कहते हैं, उदाहरणत

क य$_१^२$ + ख य$_२^२$ + ग य$_३^२$ + २ च य$_२$ य$_३$ + २ छ य$_३$य$_१$ + २ ज य$_१$ य$_२$ चर य$_१$, य$_२$, य$_३$ में द्विघात है। आधुनिक बीजगणित में इन समघातों के रूपांतरण का और इन रूपांतरणों से संबंधित निश्चर (invariant) और सहपरिवर्त (covariant) के सिद्धांतों का प्रमुख स्थान है और इनके अनेकों उपयोग हैं।

कलन में एक चरवाले बहुपद अत्यंत सरल वर्ग के फलन हैं, क्योंकि इनके अवकलन तथा समाकलन के नियम विशेष रूप से सरल हैं और हर स्थिति में फल एक बहुपद होता है। आधुनिक फलन सिद्धांत में प्रत्येक बहुपद अपने चरों का एक सतत और वैश्लेपिक फलन होता है। इस सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण प्रमेय यह है कि यदि समिश्र चर का कोई फलन चर के प्रत्येक परिमित मान के लिये वैश्लेपिक है, तो वह एक बहुपद ही होगा और यदि चर के अपरिमित होने पर भी फलन परिमित रहता है, तो वह केवल एक अचर है।

अन्य उपयोग — बहुपदों का उपयोग संनिकटन के लिये भी होता है। प्रारंभिक विश्लेषण के मानक फलन, मैकलॉरिन अथवा टेलर प्रमेय के अनुसार, घात श्रेणी द्वारा निरूपित किए जा सकते हैं। कार्ल वायर्स्ट्रास ने १८८५ ई० में सिद्ध किया था कि कोई भी सतत फलन किसी भी कोटि की यथार्थता तक एक समान संनिकटन के साथ बहुपद द्वारा निरूपित किया जा सकता है।

विशिष्ट बहुपद — किसी फलन को व्यक्त करने के लिये य, य^२, के अतिरिक्त अन्य बहुपद समुदाय भी हैं। उदाहरणत, जब (१ – २ तय + य^२)$^{-१/२}$ का प्रसार त की घात श्रेणी में किया जाता है तो त^म का गुणक (जो घात म का बहुपद है) कोटि म वाला लजाड़ (Legendre) बहुपद कहलाता है। किन्हीं दो विभिन्न कोटियों के लजाड़ बहुपदों के गुणनफल का समाकल –१ से १ तक शून्य होता है। इन बहुपदों का उपयोग अनुप्रयुक्त गणित में बहुलता से होता है। इसी प्रकार हर्माइट बहुपदों का, जो ई$^{-½ य^2}$ के अवकललों से प्राप्त होते हैं, सांख्यिकी में उपयोग होता है।

अंतर्वेशन समूचा ही बहुपद द्वारा संनिकटीकरण पर आधारित है। म (m) दिए हुए मानों का उपयोग करनेवाले अंतर्वेशन सूत्र के आधार में इन मानों को ग्रहण करनेवाले म – १ घात के बहुपद की कल्पना निहित होती है। [देखें अंतर्वेशन]।

सं० ग्रं० — एर्डेली, मेगनस हायर ट्रासडेंटन फक्शंस (१९५३), तथा टी एम. मैक्रॉबर्ट फंक्शंस ऑव ए कॉम्प्लेक्स वेरिएबिल (१९५४)। [ह० च० गु०]

बहुभुज (Polygon) किसी समतल में न > २ (n > 2) बिंदुओं को जोड़नेवाली न (n) रेखाओं से बनी बंद आकृति को कहते हैं। बिंदुओं को शीर्ष और रेखाओं को बहुभुज की भुजाएँ कहते हैं। तीन रेखाएँ (और तीन अंतःकोण) होने पर इसे त्रिभुज, चार रेखाएँ (और चार अंतःकोण) होने पर चतुर्भुज, और इसी प्रकार इससे अधिक रेखाएँ और अंतःकोण होने पर पंचभुज, षड्भुज, सप्तभुज, अष्टभुज इत्यादि कहते हैं। जब एक बहुभुज के कोण दूसरे के कोणों के बराबर और भुजाएँ दूसरे की भुजाओं की समानुपाती हों, तो बहुभुज समरूप बहुभुज कहलाते हैं। यदि केवल कोण ही बराबर हों, तो समान कोणिक कहलाते हैं। जब किसी बहुभुज की सब भुजाएँ और सब अंतःकोण परस्पर समान हों, तो उसे समबहुभुज कहते हैं। प्रत्येक समबहुभुज का एक परिवृत्त और एक अंतर्वृत्त खींचा जा सकता है। इसका विलोम कि यदि किसी षड्भुज का परिवृत्त या अंतर्वृत्त हो तो वह समबहुभुज है, सत्य नहीं है, क्योंकि किसी वृत्त पर कई बिंदुओं को मिलाने से बहुभुज बनता है, जो समबहुभुज नहीं है। इसी प्रकार यदि किसी वृत्त की कई स्पर्शरेखाएँ खींची जाएँ, तो वे भी बहुभुज बनाती हैं, परंतु यह समबहुभुज नहीं होगा। यदि कोई रेखा बहुभुज को दो बिंदुओं पर काट सके, तो उसे उत्तल कहा जाता है और यदि कोई रेखा बहुभुज को चार या अधिक बिंदुओं पर काट सके तो उसे अवतल कहते हैं।

उत्तल बहुभुज में प्रत्येक अंतःकोण दो समकोण से छोटा होता है, परंतु अवतल में कोई कोण दो समकोण से बड़ा हो सकता है। न (n) भुजाओं के उत्तल बहुभुज के सब अंतःकोणों का योग २ न – ४ (2n – 4) समकोण होता है। यदि उसकी भुजाएँ क्रमशः बढ़ाई जाएँ, तो बहिष्कोणों का योग ४ समकोण होता है। अवतल बहुभुज के विषय में कोई ऐसी बात नहीं कही जा सकती। यदि समबहुभुज की भुजा की लंबाई स (s) हो, तो अंतर्वृत्त की त्रिज्या स/२ कोस्प १८०°/न (s/2 cot 180°/n) होगी और परिवृत्त की त्रिज्या स/२ व्युज्या १८०°/न (s/2 cosec 108 /n होगी। समबहुभुज में दो भुजाओं के बीच का कोण π (न–२)/न [π (n–2)/n] रेडियन का होता है।

यदि किसी बहुभुज के केंद्र से उसकी भुजाओं की दूरी त (a) हो, तो उसकी परिमिति २तन स्प १८०°/न (2an tan 180 /n),

अस्वीकार करता है, अपने नए देवताओं की स्थापना करता है और अपने क्रांतिकारी विचारों से नवयुवकों को पथभ्रष्ट करता है। सुकरात के पहले भी देवताओं का विरोध किया जा रहा था। इससे यह निष्कर्ष स्पष्टत निकाला जा सकता है कि वहाँ बहुदेववाद प्रचलित था।

इस बात पर विवाद हो सकता है कि पहले बहुदेववाद की अवधारणा उत्पन्न हुई या एकदेववाद की। प्राय विद्वानों का विचार है कि मनुष्य को आदिकाल में अपने आसपास अपने से प्रबल एक अनिश्चित शक्ति का आभास मिला होगा। उस समय अभिव्यंजना शक्ति पर्याप्त समर्थ न हो सकने के कारण उसका कोई नामकरण न किया जा सका। उस समय एकदेववाद या बहुदेववाद का प्रश्न नहीं था। किंतु जीवन के सुख दुखों, अनुकूल प्रतिकूल वातावरण और प्रकृति के कोप एवं वरदानों ने उन शक्तियों के सामने श्रद्धानत कर दिया जिनपर उसका जीवन अवलंबित था। उस काल में मनुष्य की अभिव्यंजना की असमर्थता के कारण किसी अनिर्दिष्ट शक्ति को तो नाम न दिया जा सका किंतु सूर्य, चंद्र, बादल, बिजली, सागर, अग्नि आदि रूप और आकार में दिखाई देनेवाली शक्तियों को नाम देना पड़ा और इस प्रकार बहुदेववाद की स्थापना हो गई।

जो लोग एकदेववाद के पूर्व बहुदेववाद का प्रचलन मानते हैं, उनका तर्क है कि आदिकाल में मनुष्य प्रकृति के रहस्य नहीं समझता था। उसे प्रकृति के मूल तत्वों के गुण ज्ञात नहीं थे। अत वह स्वभाव से अपने व्यक्तित्व की ही भाँति प्रकृति की विशाल वस्तुओं को सचेतन सत्ता मानने लगा। अपने से अधिक शक्तिशाली प्रकृति की शक्तियों के सामने वह श्रद्धानत होकर उनकी अभ्यर्थना करने लगा। इस प्रकार बहुदेववाद आदिकाल से ही प्रचलित हो चला था।

इसके अतिरिक्त कुछ लोगों का यह विचार है कि प्रारंभ में अनेक आत्माओं की मान्यता स्वीकार की गई। कुछ लोग इन आत्माओं की पूजा करते रहे और कुछ उनकी उपेक्षा करते रहे। वैयक्तिक और अनिश्चित आत्माओं के बजाय अवैयक्तिक और निश्चित नामरूपवाले देवताओं की अवधारणा अधिक सुगम होने के कारण लोगों का झुकाव देवताओं की ओर सहज ही हो गया। इस प्रकार बहुआत्मवाद के बाद बहुदेववाद का प्रचलन हो गया। यह विकास कालक्रम में भले ही न हुआ हो, किंतु तार्किक चिंतन की प्रक्रिया में अवश्य ही हुआ होगा।

विलियम जेम्स का कथन है कि बहुदेववाद साधारण लोगों का धर्म सदा से रहा है, और अब भी है। इसे धर्मविरुद्ध तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि धार्मिक भावना के उदय होने में यह एक आवश्यक स्थिति होती है, किंतु अनेक देवताओं की सत्ता आधुनिक वस्तुवादियों द्वारा जब तक आवश्यक सिद्ध नहीं की जाती बहुदेववाद की जड़ मजबूत नहीं हो सकती। विचारगांभीर्य बढ़ते ही इसने अपना स्थान खो दिया। पश्चिम में ईसाई मत ने शिक्षित लोगों को ईश्वर की हिब्रू अवधारणा मानने को राजी कर लिया, परिणामत बहुदेववादी विचार की मान्यता कम होती गई। यूनान में भी यही हुआ। भारत में भी वेदांत के सामने बहुदेववादी सिद्धांत दुर्बल हो गया। बहुदेववाद का खंडन भले ही न किया गया हो किंतु यह पिछड़ गया। दर्शन और धर्म के तार्किक चिंतकों ने इसका समर्थन नहीं किया।

[ह० ना० मि०]

बहुपद (Polynomial) प्रारंभिक बीजगणित में + और − चिह्नों से संबद्ध कई एक पदों के व्यंजक (expression) को कहते हैं, यथा

$$3\text{क} + 2\text{ख} - 5\text{ग} \quad (3a + 2b - 5c)$$

पदों की संख्या के अनुसार इनके विशिष्ट उपनाम एकपद (monomial), द्विपद (binomial), आदि होते हैं। उच्चतर गणित में बहुपद का विशिष्ट उपयोग ऐसे व्यंजक के लिये होता है जिसके पदों में किसी एक चर राशि, या एक से अधिक चर राशियों, के शून्य अथवा धन पूर्णांक घात आरोही या अवरोही क्रम में हों, यथा

$$3\text{य} + \sqrt{2}\,\text{य}^3 - \tfrac{1}{2}\text{य}^4 \quad (3x + \sqrt{2}\,x^3 - \tfrac{1}{2}x^4) \quad \ldots (1)$$

$$-6\text{य}^5\text{र} + 5\pi\,\text{य}^2\text{र}^2 - \text{कय} \quad (-6x^5y + 5\pi x^2 y^2 - ax) \quad (2)$$

व्यंजक (१) य [x] का बहुपद है और (२) य, र [x, y] का तथा क [a] उसमें अचर (constant) है। यदि य [x] के स्थान में उसका कोई फलन रख दिया जाए, मान लें, लघु य [log x] रख दिया जाए, तो नया व्यंजक लघु य [log x] का बहुपद कहलाएगा। पदों के घातों में से महत्तम को बहुपद का घात (degree) कहते हैं। यदि एक से अधिक चर राशियाँ हों, तो विभिन्न पदों में चर राशियों के घातों के योगफलों में से महत्तम को बहुपद का घात कहते हैं। इस प्रकार बहुपद (१) का घात ४ है और (२) का ७। ऐसा भी कहा जाता है कि बहुपद (२) य [x] में छठे घात का और र [y] में द्वितीय घात का है।

दो बहुपदों का योगफल, अंतर और गुणनफल बहुपद ही होता है, किंतु उनका भागफल बहुपद नहीं होता। दो बहुपदों के भागफल को, जिनमें एक संख्या मात्र भी हो सकता है, परिमेय फलन (rational function) कहते हैं। चर य [x] में घात म (m) का व्यापक बहुपद यह है

$$\text{क}_0\text{य}^m + \text{क}_1\text{य}^{m-1} + \ldots + \text{क}_m,\ \text{क}_0 \neq 0$$

$$[a_0 x^m + a_1 x^{m-1} + \ldots + a_m,\ a_0 \neq 0]$$

बीजगणित का एक मौलिक प्रमेय यह है कि यदि फ (य) चर राशि य में घात म का बहुपद है, तो बहुपद समीकरण फ (य) = ० के सदा म मूल होते हैं। ये मूल सम्मिश्र (complex) भी हो सकते हैं और संपाती (coincident) भी।

यदि फ (य) = ० का कोई मूल क_1 है तो बहुपद फ (य) में य − क_1 का भाग पूरा चला जाता है और भागफल में एक बहुपद फ_1(य) घात म − १ का प्राप्त होता है। अब बहुपद समीकरण फ_1(य) = ० के म − १ मूल होंगे और यदि इसका एक मूल य − क_2 है (यह भी संभव है कि $\text{क}_2 = \text{क}_1$), तो फिर फ_1 (य) में य − क_2 का भाग पूरा चला जायगा। इस प्रकार यदि $\text{क}_1, \text{क}_2, \cdots \text{क}_r$ विभिन्न मूल हैं, तो

$$\left.\begin{array}{l} \text{फ}(\text{य}) = \text{क}_0\,(\text{य}-\text{क}_1)^{\text{ब}_1}\,(\text{य}-\text{क}_2)^{\text{ब}_2} \cdots (\text{य}-\text{क}_r)^{\text{ब}_r} \\ {[F(x) = a_0\,(x-a_1)^{b_1}\,(x-a_2)^{b_2} \cdots (x-a_r)^{b_r}]} \end{array}\right\} (3)$$

जहाँ ब_1 मूल क_1 की बहुलता है, इत्यादि और $\text{ब}_1 + \text{ब}_2 + \cdots + \text{ब}_r = \text{म}$। यह एक महत्वपूर्ण प्रमेय है कि फ (य) का गुणनखंडन (३) अद्वितीय होता है।

यदि हम फ (य) के गुणांकों और गुणनखंडों में प्रयुक्त संख्याओं पर यह प्रतिबंध लगा दें कि वे किसी अमुक क्षेत्र की होंगी, तो मूलों

का अस्तित्व अवश्यंभावी नही रहता (देखें बीजगणित)। इतना अवश्य है कि यदि बहुपद का गुणनखडन हो सकेगा, तो गुणनखड अद्वितीय होगे।

विभिन्न शाखाओ मे बहुपद का उपयोग — त्रिकोणमिति का एक महत्वपूर्ण प्रमेय यह है कि यदि म कोई धनात्मक पूर्णांक है, तो कोज्या मय की अभिव्यक्ति कोज्या य के म घातवाले बहुपद के रूप मे की जा सकती है, यथा

कोज्या २य = २ कोज्या^{2}य–१, कोज्या ३य = ४ कोज्या^{3}य–३ कोज्या य

ज्या मय के बारे मे प्रमेय यह है कि यदि म विषम है तो ज्या मय की अभिव्यक्ति ज्या य के म वें घात के बहुपद के रूप मे की जा सकती है और यदि म सम है तो ज्या म य/कोज्या य की अभिव्यक्ति ज्या य के म – १ वें घात के बहुपद के रूप मे होगी, यथा

ज्या ३य = ३ ज्या य — ४ ज्या^{3} य,

ज्या ४ य = ४ कोज्या य (ज्या य – २ ज्या ^{3} य)।

वैश्लेपिक ज्यामिति मे वक्रो का अध्ययन उन्हे दो चरो के बहुपद समीकरण द्वारा निरूपित कर किया जाता है। इसी प्रकार तलो के अध्ययन के लिये तीन चरवाले बहुपद समीकरणो की सहायता ली जाती है [देखें विश्लेषणीय ज्यामिति]। स्वेच्छ घात के बहुपद समीकरणो से निरुपित वक्रो और तलो का अध्ययन बीजीय ज्यामिति मे किया जाता है।

दो या अधिक चरो के ऐसे बहुपद को, जिसके प्रत्येक पद मे चरो के घातो का योगफल समान हो, समघात बहुपद, या केवल समघात, कहते हैं, उदाहरणत

क य$_1^2$ + ख य$_2^2$ + ग य$_3^2$ + २ च य$_2$ य$_3$ + २ छ य$_3$य$_1$ + २ ज य$_1$ य$_2$ चर य$_1$, य$_2$, य$_3$ मे द्विघात है। आधुनिक बीजगणित मे इन समघातो के रूपातरण का और इन रूपातरणों से सबधित निश्चर (invariant) और सहपरिवर्त (covariant) के सिद्धातो का प्रमुख स्थान है और इनके अनेको उपयोग हैं।

कलन मे एक चरवाले बहुपद अत्यत सरल वर्ग के फलन हैं, क्योकि इनके अवकलन तथा समाकलन के नियम विशेप रूप से सरल हैं और हर स्थिति मे फल एक बहुपद होता है। आधुनिक फलन सिद्धात मे प्रत्येक बहुपद अपने चरो का एक सतत और वैश्लेपिक फलन होता है। इस सिद्धात में एक महत्वपूर्ण प्रमेय यह है कि यदि समिश्र चर का कोई फलन चर के प्रत्येक परिमित मान के लिये वैश्लेपिक है, तो वह एक बहुपद ही होगा और यदि चर के अपरिमित होने पर भी फलन परिमित रहता है, तो वह केवल एक अचर है।

अन्य उपयोग — बहुपदो का उपयोग सनिकटन के लिये भी होता है। प्रारभिक विश्लेपण के मानक फलन, मैकलॉरिन अथवा टेलर प्रमेय के अनुसार, घात श्रेणी द्वारा निरुपित किए जा सकते हैं। कार्ल वायर्स्ट्रास ने १८८५ ई० मे सिद्ध किया था कि कोई भी सतत फलन किसी भी कोटि की यथार्थता तक एक समान सनिकटन के साथ बहुपद द्वारा निरूपित किया जा सकता है।

विशिष्ट बहुपद — किसी फलन को व्यक्त करने के लिये य, य^2, के अतिरिक्त अन्य बहुपद समुदाय भी है। उदाहरणत, जब (१ – २ तय + य^2)$^{-1/2}$ का प्रसार त की घात श्रेणी मे किया जाता है तो त^म का गुणक (जो घात म का बहुपद है) कोटि म वाला लजाड्र (Legendre) बहुपद कहलाता है। किन्ही दो विभिन्न कोटियो के लजाड्र बहुपदो के गुणनफल का समाकलन – १ से १ तक शून्य होता है। इन बहुपदो का उपयोग अनुप्रयुक्त गणित मे बहुलता से होता है। इसी प्रकार हर्माइट बहुपदों का, जो ई$^{-\frac{1}{2}य^2}$ के अवकलजो से प्राप्त होते हैं, सांख्यिकी मे उपयोग होता है।

अतर्वेशन समूचा ही बहुपद द्वारा सनिकटीकरण पर आधारित है। म (m) दिए हुए मानो का उपयोग करनेवाले अतर्वेशन सूत्र के आधार मे इन मानों को ग्रहण करनेवाले म – १ घात के बहुपद की कल्पना निहित होती है। [देखें अतर्वेशन]।

स० ग्र० — एर्डली, मेगनस हायर ट्रासडेंटल फक्शस (१९५३), तथा टी एम मैक्रॉबर्ट फक्शस ऑव ए कॉम्प्लेक्स वेरिएबिल (१९५४)।

[हृ० च० गु०]

बहुभुज (Polygon) किसी समतल मे न > २ (n > 2) विंदुओ को जोडनेवाली न (n) रेखाओ से बनी बद आकृति को कहते है। विंदुओ को शीर्ष और रेखाओ को बहुभुज की भुजाएँ कहते हैं। तीन रेखाएँ (और तीन अतष्कोण) होने पर इसे त्रिभुज, चार रेखाएँ (और चार अतष्कोण) होने पर चतुर्भुज, और इसी प्रकार इससे अधिक रेखाएँ और अतष्कोण होने पर पचभुज, षड्भुज, सप्तभुज, अष्टभुज इत्यादि कहते हैं। जब एक बहुभुज के कोण दूसरे के कोणों के बराबर और भुजाएँ दूसरे की भुजाओ की समानुपाती हो, तो बहुभुज समरूप बहुभुज कहलाते है। यदि केवल कोण ही बराबर हो, तो समान कोणिक कहलाते हैं। जब किसी बहुभुज की सब भुजाएँ और सब अतष्कोण परस्पर समान हो, तो उसे समबहुभुज कहते हैं। प्रत्येक समबहुभुज का एक परिवृत्त और एक अतर्वृत्त खीचा जा सकता है। इसका विलोम कि यदि किसी षड्भुज का परिवृत्त या अतर्वृत्त हो तो वह समबहुभुज है, सत्य नही है, क्योकि किसी वृत्त पर कई विंदुओ को मिलाने मे बहुभुज बनता है, जो समबहुभुज नही है। इसी प्रकार यदि किसी वृत्त की कई स्पर्शरेखाएँ खीची जाएँ, तो वे भी बहुभुज बनाती हैं, परतु यह समबहुभुज नही होगा। यदि कोई रेखा बहुभुज को दो विंदुओ पर काट सके, तो उसे उत्तल कहा जाता है और यदि कोई रेखा बहुभुज को चार या अधिक विंदुओ पर काट सके तो उसे अवतल कहते है।

उत्तल बहुभुज मे प्रत्येक अतष्कोण दो समकोण से छोटा होता है, परतु अवतल मे कोई कोण दो समकोण से बडा हो सकता है। न (n) भुजाओ के उत्तल बहुभुज के सब अतष्कोणो का योग २ न – ४ (2n – 4) समकोण होता है। यदि उनकी भुजाएँ क्रमश बढाई जाएँ तो बहिष्कोणो का योग ४ समकोण होता है। अवतल बहुभुज के विषय मे कोई ऐसी बात नही कही जा सकती। यदि समबहुभुज की भुजा की लबाई स (s) हो, तो अतर्वृत्त की त्रिज्या स/२ कोस्प १८०°/न (s/2 cot 180°/n) होगी और परिवृत्त की त्रिज्या स/२ व्युज्या १८०°/न (s/2 cosec 108 /n होगी। समबहुभुज में दो भुजाओ के बीच का कोण π (न–२)/न [π (n–2)/n] रेडियन का होता है।

यदि किसी बहुभुज के केंद्र से उसकी भुजाओ की दूरी स (a) हो, तो उसकी परिमिति २सन स्प १८०°/न (2an tan 180 /n),

उसका क्षेत्रफल ½ तनस (1/2 ans) तथा विकर्णों की संख्या न (न-३)/२ [n (n-3)/२] होती है।

ऐसे समबहुभुज जिनका उपयोग किसी समतल को पूरा पूरा ढकने के लिये हो सकता है, वे हैं समबाहुत्रिभुज, वर्ग, और समषड्भुज, क्योंकि इनके अंतःकोण ४ समकोणों को पूरा पूरा बाँट देते हैं।

गणितीय विश्लेषण में किसी सतत वक्र की लंबाई उस बद्ध या खुले बहुभुज की भुजाओं के योग के सीमांत मान के बराबर होती है जो वक्र पर बिंदुओं को मिलाने से बनता है। इसी प्रकार किसी वक्र से सीमित क्षेत्रफल भी उससे बनाए हुए बहुभुज के क्षेत्रफल की ऊपरी सीमा होती है, या निचली, जबकि वक्र बहुभुज के अंदर हो।

[भ० सा० प०]

बहुरूपदर्शक (Kaleidoscope) यह उपकरण प्रकाश के परावर्तन सिद्धांत पर बना हुआ है और खिलौने के रूप में प्रचलित है। डेविड ब्रूस्टर (David Brewster) ने १८१५ ई० में इसे आधुनिक रूप में बनाया था। ब्रूस्टर से लगभग १०० वर्ष पूर्व आर० ब्रैडले (R Bradley) ने एक ऐसा ही यंत्र बनाया था, जिसे अभिकल्प बनानेवाले काम में लाया करते थे।

यदि दो समतल दर्पण एक दूसरे से क° का कोण बना रहे हों, तो उनके सम्मुख रखी हुई किसी वस्तु के (३६०/क-१) प्रतिबिंब बनते हैं। इसी सिद्धांत का उपयोग करके बहुरूपदर्शक बनाए जाते हैं। साधारण बहुरूपदर्शक १½ इंच व्यासवाली लगभग ८ इंच लंबी खोखली नली का बना होता है। नली के भीतर काच के ८ इंच लंबे तीन पतले प्लेट इस प्रकार रखे रहते हैं कि वे एक दूसरे से ६०° का कोण बनाते रहें। नली का एक सिरा काच की दो गोल चकतियों से बंद रहता है और दूसरे सिरे पर केवल छोटा-सा छिद्र होता है। ये चकतियाँ एक दूसरी से लगभग ⅛ इंच दूर होती हैं। बाहरी चकती अल्प-पारदर्शक तथा भीतरी पूर्णतः पारदर्शक होती है। इनके बीच में रंगीन काच के कुछ छोटे छोटे टुकड़े डाल दिए जाते हैं। दूसरे सिरे के गोल छेद से देखने पर इन रंगीन टुकड़ों के प्रतिबिंबों से बनी हुई सुंदर आकृति (pattern) दिखाई देती है। नली को गोलाई में घुमाने से टुकड़ों की स्थिति बदलती जाती है और उससे नई नई आकृतियाँ दिखाई पड़ती हैं।
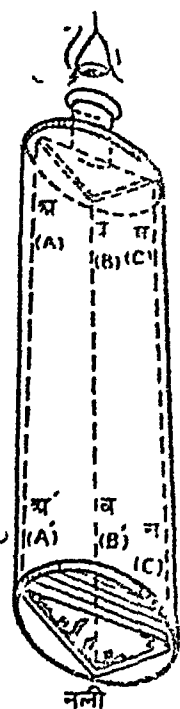
चित्र १ बहुरूपदर्शक

ब्रूस्टर का बहुरूपदर्शक साधारण बहुरूपदर्शक से कुछ भिन्न होता है। इसमें तीन लंबे प्लेट के स्थान पर तीन लंबे दर्पण लिए जाते हैं और छिद्र के स्थान पर एक लेंस लगाया जाता है, जिसे नेत्रिका
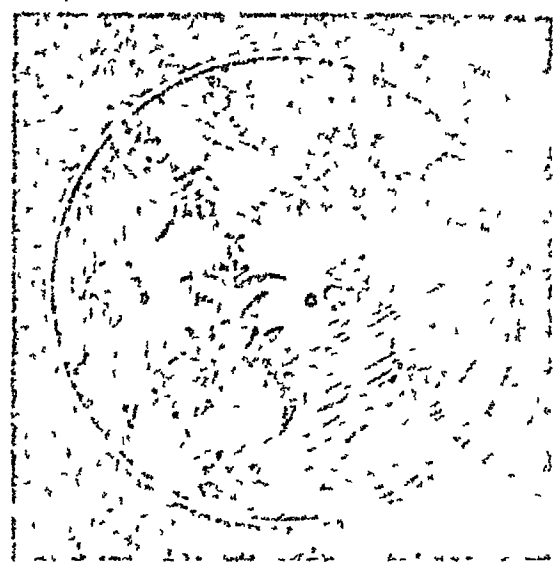
चित्र २. बहुरूपदर्शक में बनी डिजाइन

(eyepiece) कहते हैं। नेत्र और रंगीन टुकड़ों के बीच की दूरी इतनी रखी जाती है कि उनका प्रतिबिंब स्पष्ट दृष्टि (distinct vision) की न्यूनतम दूरी पर बने। यह दूरी लगभग २५ सेंमी० होती है। यद्यपि बहुरूपदर्शक में दो नलियाँ एक दूसरी के भीतर इस प्रकार लगी रहती हैं कि उन्हें सरकाकर नेत्रिका और टुकड़ों के बीच की दूरी ठीक की जा सके।

बहुरूपदर्शक में तीनों दर्पणों का पारस्परिक झुकाव तीनों कोनों पर ६०° होता है, अतः रंगीन टुकड़ों के पुंज १५ प्रतिबिंब तीन कोनों पर, पाँच पाँच के समूह में बनते हैं। इनसे बना हुआ अभिकल्प (design) बड़ा सुंदर होता है। आजकल बहुकोणीय बहुरूपदर्शक भी बनने लगे हैं। इनमें तीन से अधिक दर्पण प्रयुक्त होते हैं।

[अ० कु० शि०]

बहुलकीकरण (Polymerisation) कार्बनिक रसायन में प्रायः ने ही उस विधि को जिसमें यौगिक पदार्थ के दो या अधिक अणु मिलकर एक दूसरा ऐसा अणु या बहुलक (polymer) बनाएँ जिसका प्रति शत संगठन वही हो जो मूल पदार्थ एकलक (monomer) का था, तथा उसका अणुभार एकलक के अणुभार का बहुगुण हो, बहुलकीकरण कहते हैं।

अनेक द्विबंध या त्रिबंधवाले कार्बनिक यौगिक में गरम करने या केवल रखने पर ही योगशील बहुलकीकरण (addition polymerisation) हो जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा मूल वाष्पशील पदार्थ कम वाष्पशील द्रव या ठोस के रूप में बदले जा सकते हैं। कुछ बहुलकों में एकलक के केवल दो या तीन ही अणु होते हैं, परंतु अधिकांश में इनकी संख्या बहुत अधिक होती है। कुछ एकलक एक से अधिक प्रकार के बहुलक बनाते हैं तथा कुछ बहुलक गरम करने पर एकलकों में परिवर्तित हो जाते हैं।

एथिलीन तथा उसके व्युत्पन्नो का बहुलकीकरण योगशील बहुलकीकरण का उदाहरण है तथा बहुत ही प्राविधिक महत्व रखता है। एथिलीन एक गैस है पर इसके अनेक अणुओ के सयुक्त होने से पॉलिएथिलीन (polyethylene) नामक बहुलक प्राप्त होता है, जो एक बहुत ही उपयोगी पदार्थ है। इसी प्रकार स्टाइरीन (styrene) एक रगहीन तीव्र गधवाला द्रव है। कुछ दिन रखने या १००° सें० तक गरम करने पर, इसका बहुलकीकरण हो जाता है। पहले एक गाढा द्रव प्राप्त होता है और अत मे एक स्वच्छ गंधहीन, चमकदार, ठोस पदार्थ प्राप्त हो जाता है, जिसे पॉलीस्टाइरीन (polystyrene) कहते है। इसे (का- हा० का हा = काहा०)$_n$ [$(C_6H_5CH = CH_2)_n$] सूत्र द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं, जहाँ पर न (n) की सख्या हजारो में है। कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जिनकी उपस्थिति में बहुलकीकरण क्रिया केवल कुछ मिनटो मे ही सपन्न हो जाती है। ऐसे पदार्थों को प्रारभक (initiator) कहते हैं। इस प्रकार स्टाइरीन के बहुलकीकरण मे एक प्रति शत से भी कम मात्रा मे बेंज्यायल परॉक्साइड (benzoyl peroxide) मिला देने से कुछ मिनटो के अदर ही पॉलीस्टाइरीन प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार की अभिक्रियाएँ शृखला अभिक्रियायो (chain reactions) द्वारा सपन्न होती हैं और इनमे मुक्त मूलक (free radical), जो प्रारभक के विघटन से बनते हैं, क्रिया को पूरा करते हैं। इस प्रकार यदि प्रारभक के विघटन से मू (R) मुक्त मूलक बने, तो वह द्विबध से योग करके एक बडा अणु बनाता है, जिसमे भी स्वतत्र बध होते हैं।

मू – + काहा$_2$ = काहा का$_6$ हा$_5$ ⟶ मू – काहा$_2$ – काहा – का$_6$ हा$_5$

$$[R- + CH_2 = CH\ C_6H_5 \longrightarrow R-CH_2-\overset{|}{\underset{|}{C}}H-C_6H_5]$$
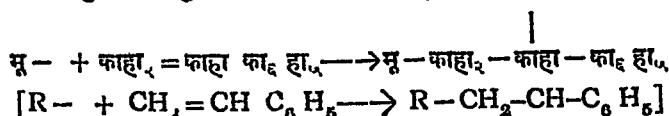
मुक्तमूलक स्टाइरीन बडा अणु

यह क्रिया फिर आगे चलती है और अणु का आकार क्रमश बढता जाता है।

यदि दो एकलको का बहुलकीकरण एक साथ मिला कर किया जाय, तो बहुलक के प्रत्येक अणु मे दोनो एकलक भी उपस्थित हो सकते हैं। इस प्रकार से प्राप्त बहुलक को सहबहुलक (copolymer) कहते हैं। बहुलकीकरण उद्योग से प्राप्त अधिकाश बहुलक सहबहुलक ही होते है।

आइसोप्रीन (isoprene), आइसोब्यूटिलीन (isobutylene), मैथिलमेथैक्रिलेट (methylmethacrylate), विनिल क्लोराइड (vinyl chloride), विनिल ऐसीटेट (vinyl acetate), ऐक्राइलो नाइट्राइल (acrylonitrile) आदि एकलक, अनेक प्रकार के कपडे, रबर आदि बनाने मे काम आते हैं।

सघनन बहुलकीकरण (condensation polymerisation) विधि द्वारा भी उच्च अणुभारवाले बहुलक बनाए जाते हैं, जिनके बनने की क्रिया मे जल, या अन्य साधारण अणु, निकलते भी हैं। इस विधि द्वारा पॉलिएस्टर (polyester), या पॉलिऐमाइड (polyamide) प्रकार के बहुलक बनते हैं जिनमे

–काओ–ओ ($-CO-O$), या –काओनाहा– ($-CONH-$) की पुनरावर्तित इकाइयाँ (repeating units) होती हैं। इस प्रकार एडिपिक अम्ल (adipic acid) तथा हेक्सामेथिलीन टेट्राऐमीन (hexamethylene tetramine) को २००° सें० तक गरम करने से नाइलोन (nylon) बहुलक बनता है जिसमे

– का ओ – (का हा$_2$)$_4$ – का ओ – ना हा (का हा$_2$)$_6$ – ना हा –

$$[-CO-(CH_2)_4-CO-NH(CH_2)_6-NH-]$$
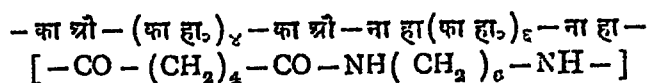
की पुनरावर्तित इकाइयाँ रहती है। [रा० दा० ति०]

बहुवाद (राजनीति) राज्य की कल्पना ने अनत वाद विवाद को जन्म दिया है, और यह अस्वाभाविक नही है, क्योकि जब तक 'एक विश्व' की कल्पना सिद्ध नही होती तब तक राज्य ही मनुष्य द्वारा उद्भूत सर्वाधिक सविलयक, सर्वाधिक व्यापक और सबसे शक्तिशाली ढग का सामाजिक सगठन है। राज्य का विशिष्ट गुण उसकी प्रभुसत्ता है जो व्याख्या के अनुसार, निरकुश और निरपेक्ष है तथा विलक्षण और सपूर्ण रूप से अपने भूभाग तथा नागरिको पर छाई रहती है। इस प्रकार बोदिन, ग्रोटियस, हॉब्स और ऑस्टिन आदि विचारको तथा विधिविशारदो ने राज्य को एक आधार पर स्थित किया है और इस बात पर जोर दिया है कि विधिनिर्माण करनेवाला और उसके अतिक्रमण को दड देनेवाला राज्य, नैतिक और क्रियात्मक रूप से, अपनी सीमा के अतर्गत सब लोगो से सपूर्ण निष्ठा का दावा करता है और उसे प्राप्त करता है। अधिकारो का एकमात्र और पूर्ण प्रभुत्वयुक्त आधार होने के नाते राज्य के इस अनोखे स्वरूप से स्पष्ट हो जाता है कि विधिविशारदो ने क्यो राज्य के एकवादी सिद्धात का प्रतिपादन किया।

इस एकवाद के विपरीत अपेक्षाकृत आधुनिक काल मे बहुवाद के विचार का उद्गम हुआ है। यह शब्द उन मतो पर लागू किया जाता है जो सभवत विभिन्न रीतियो से राज्य की प्रभुसत्ता की परपरागत कल्पना का विरोध करते हैं। जर्मनी मे ओटो फान गियर्के, फ्रास मे दुगुई और दुर्खीम, इग्लैड मे फिगिस, लास्की और जी० डी० एच० कोल के बीच अपनी अपनी धारणाओ को लेकर कुछ मतभेद है किंतु राज्य के परपरागत विचार मे कुछ न्यूनताएँ और त्रुटियाँ है, इस सबध मे वे एकमत हैं। उनकी दृष्टि से विधिविहित प्रभुसत्ता की कल्पना बिलकुल औपचारिक तथा प्राविधिक है और राजनीतिक दर्शन के हेतु बहुत ही "अनुर्वर" एव "अपरिणामोत्पादक" है। वे इस बात पर जोर देते हैं कि राज्य के अतर्गत अनेक छोटे-छोटे तथा अधिक विशिष्ट सगठन हैं जो अधिकारो, हितो, और जनजीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उन्हे राज्य के अधीन और आश्रित मात्र नही सोचा जा सकता और न सोचना चाहिए। बहुवादी लोग वे हैं जो अतिशय केंद्रीयकरण के सिद्धात और पद्धति के विरुद्ध होनेवाले विद्रोह का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी सीमा तक वे उस सुविवेचित परिकल्पना का द्योतन करते हैं जो विकेंद्रीकरण की दिशा मे प्रवृत्त आधुनिक विचारधाराओ का समर्थन करती है। नैतिक स्तर पर भी वे व्यक्ति के सबध मे यह आशका व्यक्त करते हैं कि वह राज्यचक्र के नीचे दबा या ध्वस्त न कर दिया जाय।

विधि और न्यायालयो के कार्यों के सबध में दुगुई गभीरतापूर्वक चिंतित था और उसने उनके लिये राज्य मे स्वतत्र स्थिति का प्रतिपादन किया। फिगिस ने चर्चों के और सगठित पटोंभी सप्रदायो के अधिकारो

के संदर्भ में अधिक विचार किया, दुर्खीम ने यह बात स्पष्ट की कि आधुनिक औद्योगिक समाज किस प्रकार अत्यंत जटिल हो गया है और बड़े बड़े धंधे और औद्योगिक समूह कुछ दशाओं में उन स्थानीय क्षेत्र समूहों से अधिक महत्वपूर्ण हैं जिनके आधार पर राज्य का ढाँचा खड़ा हुआ है। मेटलैंड ने गियर्के के संघों के विधिमूलक इतिहास पर दिए विचारों की व्याख्या की। प्रत्येक संघ की सामूहिक इच्छा रहती है जो उसके व्यक्तिगत सदस्यों में स्पष्टत विशिष्ट होती है और अखंड समूहों की भाँति उनके अधिकार और कर्तव्य रहते हैं जिनका महत्व राज्य कम नहीं कर सकता। ब्रिटिश बहुवादियों ने सामान्यत इस बात पर जोर दिया है कि चर्च, पेशेवर संगठन, ट्रेड यूनियन, संचालकों के संगठन, स्थानीय समुदाय, आदि किसी भी समाज में समान और महत्वपूर्ण समूह होते हैं, जब कि राज्य का कार्य उन्हें संगठित करना और उनमें समन्वय स्थापित करना रहता है, न कि उनपर प्रभुता जमाना और उन्हें आदेश देना। कानून जब स्वतंत्र संघटन का अधिकार स्वीकार करता है और इस प्रकार के संघटनों के विशेषाधिकारों और कार्याधिकारों को मान्यता देता है, तो ऐसी दशा में उस सीमा तक राज्य अपनी प्रभुसत्ता खो देता है। कभी कभी एकवादी सिद्धांत पर आक्षेप अधिक व्यापक और जोरदार हो जाता है। ट्रेड यूनियन के अधिकारों में अपनी विशेष रुचि के कारण लास्की कभी कभी ऐसी स्थिति का तर्क उपस्थित करता है जहाँ यह लगता है कि व्यक्ति का अपना अंत करण ही एकमात्र न्यायसंमत प्रभुसत्ताधारी और कानून का वास्तविक स्रोत हो सकता है।

बहुवादी लोगों की स्थिति में यह कमजोरी है कि कोई चाहे या न चाहे, राज्य "सामाजिक जीवन का अत्यंतिक सर्वसंश्लिष्ट प्रकार" रहता है। उपर्युक्त समूह वास्तव में राज्य से स्वतंत्र नहीं रह सकते। संघटनों के एक दूसरे से और उनके अपने सदस्यों से संबंधों को समंजित करने और समन्वित करने की आवश्यकता होती है। न्याय के समक्ष सबकी समानता की गारंटी देनी होगी और समूह द्वारा व्यक्ति पर संभावित अत्याचार के विरुद्ध व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार के कार्य केवल राज्य द्वारा किए जा सकते हैं। संस्थाओं की सुव्यवस्था के लिये राज्य को प्राय क्रियाशील रहना होगा। राज्य के अधिकार मूलभूत और सुरक्षित मात्र नहीं होते, उन्हें प्राय अत्यंत प्रत्यक्ष, तात्कालिक और प्रभावपूर्ण होना पड़ता है। किंतु अधिकारों के अतिकेंद्रीकरण के विरुद्ध सावधान कर देने के लिये बहुवादी प्रशंसा के पात्र हैं। व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं के बीच सुखद साम्य बनाए रखने के लिये न तो शुद्ध एकवाद और न शुद्ध बहुवाद, बल्कि दोनों का संतुलन आवश्यक है। [ही० ना० मु०]

बहुला देवासुर संग्राम में कार्तिकेय की एक सहचरी जिसकी गणना कल्याणकारिणी मातृकाओं में है। इनका वर्णन महाभारत में है। २– मानस पर्वत पर रहनेवाली एक देवी जिसके पास मुनि मेधातिथि ने ब्रह्मा के परामर्श से अपनी कन्या अरुंधती को शिक्षा ग्रहण करने के लिये रखा था। ३–मद्रदेश के शाकल नगर निवासी सोमशर्मा नामक वणिक् की माता जिसकी कथा वामनपुराण में है। ४– बभ्रु की कन्या जिसका विवाह राजा उत्तानपाद के पुत्र उत्तम से हुआ था और जिसकी कथा मार्कंडेय पुराण में दी है। ५– प्रसिद्ध गऊ जो वृंदावन के बहुला वन में रहती थी और जिसके सिंह के साथ सत्यपालन की कथा पुराणों में आई है। इसी गाय के नाम पर भादों तथा माघ बदी चौथ को व्रत किया जाता है और इन दोनों दिनों को बहुला चौथ कहते हैं। [रा० द्वि०]

बहुलाश्व जनकवंशीय राजा धृति के पुत्र। ये कृति के पिता थे जो महात्मा जनक के वंश के अंतिम राजा हुए। इस नाम के सूर्यवंशी राजा निकुंभ के एक पुत्र भी हुए हैं जो कृशाश्व के पिता थे। मिथिलापति बहुलाश्व के अनुरोध पर नारद जी ने उन्हें श्रीकृष्ण लीला एवं माहात्म्य का कीर्तन सुनाया था। इनकी कथा बृहद्-धर्मपुराण तथा श्रीमद्भागवत में दी गई है। [रा० द्वि०]

बाँकुड़ा १ जिला, स्थिति २२° ३८' से २३° ३८' उ० अ० तथा ८६° ३६' से ८७° ४६' पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी बंगाल राज्य का जिला है। इसका क्षेत्रफल २,६५३ वर्ग मील तथा जनसंख्या १६,६४,५१३ (१९६१) है। इसके पश्चिम में पुरुलिया, दक्षिण में मेदनीपुर, पूर्व एवं पूर्वोत्तर में हुगली एवं वर्द्धमान जिले स्थित हैं। छोटा नागपुर पठार की पूर्वी श्रेणी यहाँ फैली है। यहाँ की प्रमुख नदी दामोदर उत्तरी सीमा बनाती है। निम्न वार्षिक ताप लगभग २७° सें० तथा वार्षिक वर्षा का औसत ५६ इंच रहता है। पूर्व में जलोढ मिट्टी होने से भूमि उपजाऊ है। धान मुख्य फसल के अतिरिक्त ईख, मक्का, तिलहन, दलहन, गेहूँ, पाट, कपास, आदि पैदा किए जाते हैं। रेशम कातना, रेशमी एवं सूती कपड़े बुनना, ताँबे का काम एवं लाख के उद्योग प्रमुख हैं। बाँकुड़ा, विष्णुपुर, एवं वीरसिंहपुर में टसर रेशम बनाया जाता है। आयात में चावल, पीतल का सामान, रेशमी सामान आदि तथा बाहर जानेवाली चीजों में तबाकू, नमक, कपास आदि प्रमुख हैं। यहाँ के प्रमुख नगर बाँकुड़ा, विष्णुपुर, वीरसिंहपुर, बरजोरा, राजग्राम, सोनामुखी आदि हैं।

२ नगर, स्थिति २३° १४' उ० अ० तथा ८७° ४' पू० दे०। यह बाँकुड़ा जिले में धालकिशोर नदी के उत्तरी किनारे पर बसा है। यहाँ की जनसंख्या ६२,८३३ (१९६१) है। ऐसा कहा जाता है कि इसका नाम यहाँ के प्राचीन निवासी बंकू राय के नाम पर पड़ा। यहाँ की जलवायु शुष्क एवं स्वास्थ्यप्रद है। यह ग्रैंड ट्रंक मार्ग पर स्थित है। व्यापार में इसका स्थान प्रमुख है। उद्योगों में तेल पेरना, ईंटें बनाना, दरी एवं कपड़ा बुनना, बाँस एवं बेंत का काम करना प्रमुख हैं। [मु० च० श०]

बाँज (Oak) फागेसिई (Fagaceae) कुल के क्वेर्कस (quercus) गण का एक पेड़ है। इसकी लगभग २०० किस्में ज्ञात हैं, जिनमें कुछ की लकड़ियाँ बड़ी मजबूत और रेशे सघन होते हैं। इस कारण ऐसी लकड़ियाँ निर्माणकाष्ठ के रूप में बहुत अधिक व्यवहृत होती हैं। यह पेड़ अनेक देशों, पूरब में मलयेशिया और चीन से लेकर हिमालय और काकेशस क्षेत्र होते हुए, सिसिली से लेकर उत्तर ध्रुवीय क्षेत्र तक में पाया जाता है। उत्तरी अमरीका में भी यह उपजता है। शोभा के लिये इसके पेड़ उद्यानों और सड़कों पर लगाए जाते हैं। पेड़ की पहचान इसके पत्तों और फलों से होती है। इसके पत्ते खाँचेदार होते हैं। इसका फल सामान्यत गोलाकार और ऊपर की ओर नुकीला होता है। नीचे प्याले के ऐसे अनेक सहचक्र (involucral) शल्क (scale)

लगे रहते हैं। इनके फल को बांज फल (acorn) कहते हैं। कुछ बांज फल मीठे होते हैं और कुछ कडए। कुछ बांज फल खाए जाते
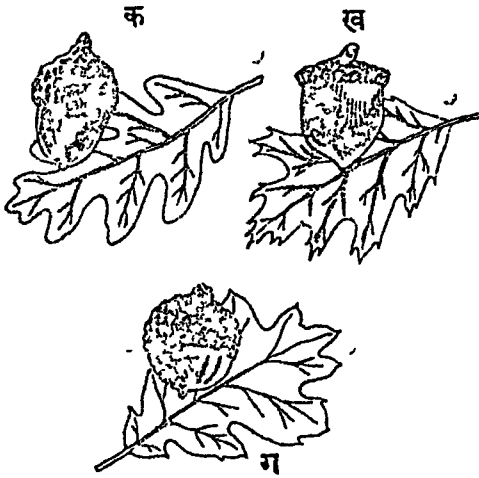
बाज (Oak)
क सफेद बांज, ख लाल बांज तथा ग काले बांज का फल और पत्तियाँ

हैं और कुछ से टैनिन प्राप्त होता है, जो चमडा पकाने मे काम आता है। बांज के फल सूअरो को भी खिलाए जाते हैं। खाने के लिये फलो को उबालकर, सुखाकर और आटा बनाकर केक बनाते हैं। उबालने से टैनिन निकल जाता है।

बांज का पेड धीरे धीरे बढता है। प्राय २० वर्ष पुराना होने पर उसमे फल लगते है। पेड दो से तीन सौ वर्षों तक जीवित रहता है। इसकी ऊँचाई साधारणतया १०० से १५० फुट और घेरा ३ से ८ फुट तक होता है। कुछ बांज सफेद होते हैं, कुछ लाल या काले। कुछ बांजो से कॉर्क भी प्राप्त होता है। सफेद और लाल दोनो बांज अमरीका मे उपजते हैं। भारत के हिमालय मे केवल लाल या कृष्ण बांज उपजता है। बांज का काष्ठ ६०० वर्षों तक अच्छी स्थिति मे पाया गया है। काष्ठ सुदर होता है और उससे बने फर्नीचर उत्कृष्ट कोटि के होते है। एक समय जहाजो के बनाने मे बांज का काष्ठ ही प्रयुक्त होता था। अब तो उसके स्थान मे इस्पात प्रयुक्त होने लगा है। [फू० स० व०]

बांदा १ जिला, स्थिति २५° ३०' उ०अ० तथा ८०° २६' पू०दे०। यह भारत के दक्षिणी उत्तर प्रदेश राज्य मे स्थित जिला है। इसके उत्तर मे फतेहपुर, पश्चिम मे हमीरपुर, दक्षिण में मध्यप्रदेश एव पूर्व में इलाहाबाद जिले स्थित है। इसका क्षेत्रफल २,९५० वर्ग मील है। यहाँ की भूमि ऊँची नीची है जिसमे वर्षा ऋतु मे दलदल बन जाते हैं। दक्षिण-पूर्व की ओर विंध्य पर्वत की शृखला शुरू हो जाती है जो ५०० फुट से ऊँची नही है। काली मिट्टी मे गेहूँ, ज्वार, बाजरा, दलहन, धान, कपास, तिलहन के अलावा अन्य खाद्यान्न भी पैदा होते हैं। जलवायु शुष्क है तथा वर्षा कम होती है। यहाँ की जनसख्या ६,५३,७३१ (१९६१) है। कर्वी, मानिकपुर एव बांदा मुख्य नगर हैं।

२ नगर, स्थिति २५° २८' उ० अ० तथा ८०° २०' पू० दे०। यह बांदा जिले मे ठीक पश्चिम की ओर फतेहपुर-सागर मार्ग पर स्थित है। इसके पश्चिम मे केन नदी बहती है। यहाँ की जनसख्या ३७,७४४ (१९६१) है। यह जिले का सबसे बडा नगर तथा शासन का केंद्र है। कपास से सबधित कार्य अधिक होता है। यहाँ पर अतिम नवाब अली बहादुर की बनवाई प्रसिद्ध मस्जिद है। बांदा से एक मील दूर भूरागढ मे किले के खडहर अब भी विद्यमान हैं। यहाँ सुलेमानी पत्थर से कई प्रकार की वस्तुएँ बनती हैं।

बांडुंग स्थिति ६° ३६' द० अ० तथा १०७° ४८' पू० दे०। हिंदेशिया के पश्चिमी जावा मे स्थित प्राइऐंगन (Priangan) रेजिडेंसी की राजधानी है, जो एक पठार के उत्तरी किनारे पर समुद्रतल से २,३४६ फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ की चौडी सडकें और पश्चिमी ढग के बने भवन नगर की आधुनिकता का परिचय देते है। मरदेका और द्विवर्ना यहाँ के दो मुख्य सार्वजनिक भवन हैं, जहाँ सन् १९५५ मे हुए एशियाई अफ्रीकी समेलन मे अफ्रीका और एशिया के २० से अधिक राष्ट्रों ने भाग लिया था। यहाँ की जनसख्या ९,७२,६०० (१९६१) है। कपडा बुनना यहाँ का मुख्य उद्योग है। यहाँ पर कुनैन बनाने का एक बृहद् कारखाना है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले ससार का ८० प्रति शत कुनैन बनाता था। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद एव ठढी है। बिजली एव टेलीफोन का उत्तम प्रबध है। कई गिरजाघर, सुदर होटल, अस्पताल, बाजार, पार्क आदि हैं। इसके पास ही पहाडी दृश्य एव कई झरने देखने को मिलते है। [ओ० सिं०]

बांध (Dam) सामान्यत उन रोधो को कहते हैं जो नदियो के प्रवाह को मोडने, उनके जल का सचय करने, अथवा पनबिजली उत्पादन के लिये बनाए जाते हैं।

बांधों द्वारा जल का सचय बहुत से उद्देश्यो की पूर्ति के लिये किया जाता है। उनमे से कुछ निम्नलिखित हैं

१ आमोद प्रमोद, अथवा अन्य उपयोगो के निमित्त जलाशय बनाने के लिये।

२ नदियो का प्रवाह कम या बद हो जाने पर सिंचाई तथा अन्य उपयोगो के लिये।

३ बाढ के समय जलसचय करके बाढ की विनाशकता को कम करने के लिये।

प्राचीन समय से ही सिंचाई तथा अन्य उपयोगो के निमित्त जल एकत्रित करने के लिये मिट्टी एव चिनाई के बांध बनाए जाते रहे हैं। इनके द्वारा वर्षा ऋतु मे जल एकत्रित करके वर्ष के शेष भाग में नियमित परिमाण मे जल उपलब्ध हो सकता है। प्राचीन बांधो के उदाहरण भारत, मिस्र, इटली, उत्तरी अफ्रीका आदि देशो मे बडी सख्या मे मिलते हैं।

अधिकतर सिंचाई के लिये तथा पनबिजली के उत्पादन हेतु भी उन सभी देशो मे जहाँ बांध के निर्माण के लिये आवश्यक साधन तथा परिस्थिति उपलब्ध हैं, २०वी शताब्दी मे बडे बडे बांध बनाए गए है।

प्राचीन बांधो के निर्माण मे व्यय का विचार नही रखा जाता था। नए बांधों के अभिकल्प तथा निर्माण मे बहुत प्रगति हुई है

और कम से कम व्यय द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाने के उद्देश्य से कितने ही प्रकार के नए तरीके निकाले गए हैं तथा अनेक गवेषणाएँ की जा रही हैं।

बाँधों के आकल्प मुख्यत निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं

१ मिट्टी के बांध, २ पत्थर के बांध, ३ चिनाई के ठोस बाँध, ४ चिनाई के खोखले बाँध, ५ इस्पाती बांध, ६ काष्ठ बांध, तथा ७ मेहराबी बाँध।

[illegible] प्राचीन काल से प्रचलित है। [illegible] का प्रचलन १९वीं [illegible] शताब्दी में हुआ है। किस स्थान पर, किस प्रकार का, कितना ऊँचा बाँध बनाया जाए, यह उस स्थान की प्रकृति एवं [illegible], सामग्री की उपलब्धता तथा अनुमानित व्यय पर निर्भर करता है।

काष्ठ तथा इस्पाती बाँधों को छोडकर अन्य सभी प्रकार के बाँध यदि ठीक से बनाए जाएँ, तो वे स्थायी होते हैं। विभिन्न बाँधों का वर्णन निम्नलिखित है

मिट्टी के बाँध — ऐसे बाँध वे हैं जो मिट्टी के भराव के होते हैं। इनको उन स्थानों पर बनाना उपयुक्त है, जहाँ मिट्टी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो और बाढ का पानी निकालने के लिये पक्की ढाल बनाने की सुगमता हो। ऐसे स्थानों पर जहाँ चिनाई के ऊँचे बाँधों की नींव के लिये भूमि उपयुक्त न हो, मिट्टी के बाँध विशेष रूप से उपयोगी होते हैं।

मिट्टी के बाँधों की दृढता तथा सुरक्षा निम्नलिखित बातों पर निर्भर होती है -

१ बाढ के पानी के निकास के लिये पर्याप्त क्षमता की पक्की ढाल होनी चाहिए, अन्यथा बाँध के ऊपर से जल बहने पर मिट्टी कट जाती है और बाँध के टूटने का भय हो जाता है।

भारत के कुछ बाँधों की तालिका

बाँध का नाम	प्रांत या राज्य	बाँधों की किस्म	अधिकतम ऊँचाई (फुट)	लंबाई (फुट)	जलसंचय मात्रा (लाख एकड-फुट)	बिजली उत्पादन (हजार कि० वा०)	सिंचित क्षेत्र (लाख एकड)
कोयना	महाराष्ट्र	कंक्रीट	२८०	२,८००	२२ ५०	६००	—
गांधी सागर	मध्यप्रदेश	पत्थर की चिनाई	२०४	१,६८५	६२ ८०	९२	११ ००
तुंगभद्रा	मैसूर	चिनाई तथा कंक्रीट	१६२	८,०३४	३० ५९	१२६	२ ६८
नागार्जुन सागर	आंध्र प्रदेश	चिनाई	४०६	४,७५६	९१ ८०	—	२० ००
		मिट्टी	८५	१०,५७०			
भाखड़ा	पंजाब	कंक्रीट	७४०	१,७००	८० ००	१,२०४	३० ३०
मयूराक्षी	प० बंगाल	चिनाई	१५५	२,०१०	५ ००	४	६ १०
मेट्टूर	मद्रास	,,	२१४	५,३००	—	२००	—
राणाप्रताप सागर	राजस्थान	,,	१५०	३,७५०	२३ ५०	१२८	३ ००
रिहंद	उत्तरप्रदेश	कंक्रीट	३०५	३,६००	८० ००	३००	—
[illegible]	मैसूर	चिनाई	२०१	९,०२०	३५ ८०	८९१	—
हीराकुड	उड़ीसा	चिनाई तथा कंक्रीट	२००	३,७६८	६६ ००	४२७	६'००
		मिट्टी	१९५	११,९८०			

चित्र १.
मिट्टी के बाध की एक आडी काट

चित्र २.
चिनाई बाध की एक आडी काट

चित्र ३

बाँध (देखें पृष्ठ २३१)

←—बहुप्रयोजनीय हीराकुड बाँध, सम्बलपुर।

←—नागार्जुन सागर बाँध (निर्माण काल में) नलगोंडा (आन्ध्र प्रदेश)
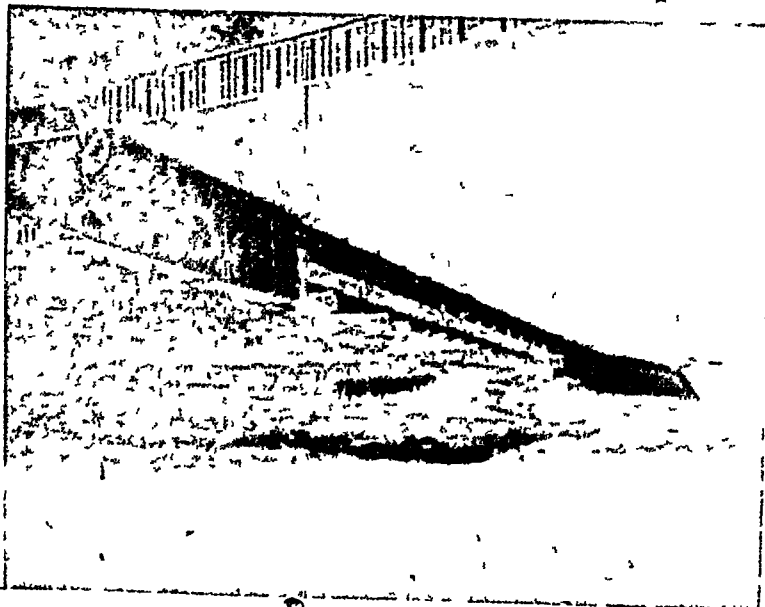
←—मध्य पेन्नार योजना, अनंतपुर (आन्ध्र प्रदेश)

२ बाँध के नीचे से या बीच से रिसाव इतना कम हो कि वह उन मिट्टी के कणो को चलायमान न कर सके जिनके ऊपर बाँध आधारित है, अथवा जो उसके भराव मे स्थित हैं। रिसाव कम करने के लिये अविच्छिन्न, अपारगम्य मिट्टी का क्रोड (continuous impervious earth core) बाँध के अतर्गत बना दिया जाता है। रिसाव को हानिरहित तरीके से निकालने के लिये बाँध के निचले भाग में छोटे बडे पत्थरो के छन्ना आवरण (filter blanket) से भरी नालियाँ बना दी जाती हैं, या अन्य तरीके काम मे लाए जाते हैं।

३ बाँध की ढाल ऐसी होनी चाहिए कि नीव की मिट्टी अधिकतम भार को सहन कर सके तथा गीली होने पर बैठने न लगे। ढाल निर्माण मे प्रयुक्त होनेवाली मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर होती है। कमजोर मिट्टी के लिये अधिक ढाल की आवश्यकता पडती है।

४ बाँध की दोनो ढालो का वर्षा के पानी तथा लहरो द्वारा होनेवाली क्षति से सुरक्षित होना आवश्यक है। जलाशय की ओरवाली, अथवा ऊर्ध्व प्रवाह की, ढाल पर पत्थर के टुकडे आदि से तथा दूसरी ओरवाली, अथवा अधोप्रवाह की ढाल पर, घास अथवा छोटे पत्थरो को लगाकर बाँध को दृढता प्रदान की जाती है।

बाँध बनाने के लिये मिट्टी की तहे डाली जाती हैं और उनको विशेष प्रकार के बेलनो द्वारा कूटकर ठोस बनाया जाता है। किसी किसी स्थान पर मिट्टी को पानी में घुलाकर नलको द्वारा डाला जाता है। मिट्टी बैठ जाने पर पानी नियारकर निकाल दिया जाता है (देखें फलक)।

पत्थर के बाँध (Rock fill Dams) — ये बाँध पत्थर के छोटे तथा बडे टुकडो के भराव से बनते हैं। खदान मे चट्टानो को उतने बडे टुकडो मे तोडा जाता है जितने बडे आसानी से उठाकर ले जाए जा सकते हो। पत्थरो को बाँध मे भरते समय पर्याप्त मात्रा मे पानी भी डाला जाता है, ताकि जितने पत्थर बैठने हैं, पहले ही बैठ जाएँ।

मिट्टी के बाँधो के समान इस प्रकार के बाँधो मे भी पक्की-ढाल अलग से बनाई जाती है। आम तौर पर बाढ का पानी निकालने के लिये चट्टान काटकर ही एक निकास बना दिया जाता है। ऐसे बाँध वही पर बन सकते हैं जहाँ पत्थर समुचित मात्रा मे उपलब्ध हो।

अपारगम्यता सपन्न करने के लिये मिट्टी का एक पतला क्रोड (core), या ऊर्ध्व प्रवाह ढाल पर मिट्टी की तह या कक्रीट की पटिया, डाल दी जाती है। कक्रीट की पटिया डालते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वह पत्थरो के बैठने से न टूटे।

मिट्टी के बाँध की तुलना में पत्थर के बाँधो की ढाल अधिक खडी होती है।

ठोस चिनाई के बाँध — ये बाँध कक्रीट की चिनाई से और इस्पात की छडो के प्रबलन से रहित बनाए जाते हैं। इन बाँधो की ऊर्ध्व प्रवाह की ढाल सीधी खडी, अथवा थोडी सी तिरछी, होती है। बाँध को विचलित करने मे बहुधा निम्नलिखित कारक प्रबल कारण होते हैं :

(१) पानी की दाब, (२) गाद की दाब, (३) पानी के तल पर जमे हिम की दाब, (४) भूकप बल (५) बाँध तथा उसकी नीव के अदर रिसनेवाले पानी का उत्प्लावक (upthrust) दबाव।

बाँध का तथा उसके ऊपर आए हुए जल का भार ही बाँध को स्थायित्व प्रदान करता है और इसी भार के कारण यह उलटने या खिसकने से बचता है। नीव की दृढता तथा उसका खुरदरापन भी बाँध के स्थायित्व में सहायक होते हैं। अत्यधिक ऊँचे बाँधो के पेंदे काफी चौडे बनाए जाते है, ताकि सपीडक प्रतिबल (compressive stress) स्थिरता की सीमा मे ही रहे।

यद्यपि ठोस चिनाई के बाँध सहस्रो वर्षों से बनाए जाते रहे हैं, तथापि इनका वैज्ञानिक अभिकल्प १९ वी शताब्दी मे श्री डब्ल्यू० जे० एम० रैंकिन तथा अन्य वैज्ञानिको ने ही बनाया, जिसके द्वारा बाँध के पेंदे की चौडाई तथा ऊँचाई का अनुपात ३ व ४ से घटाकर १ से भी कम किया जा सका है।

इस प्रकार के बाँध लगभग सभी स्थानो के लिये उपयुक्त हैं, परतु ६५ फुट से अधिक ऊँचाई होने पर नीव के लिये चट्टान होना आवश्यक है।

अधिक ऊँचे बाँधो मे रिसाव की मात्रा कम करने के लिये नीव मे छेद करके उसमे सीमेट के घोल अथवा अन्य कोई सामग्री गच कर, एक ग्राउट का पर्दा बना दिया जाता है। इसके उपरात नीव पर पानी का उत्प्लावक दबाव कम करने के लिये, नीव मे छेदो की एक लाइन और बनाई जाती है, ताकि उसमे से जल का निकास होता रहे। ये जल निकास छिद्र ग्राउट पर्दे के अधोप्रवाह होते हैं (देखे फलक)।

ऐसे बाँधो का स्थायित्व निम्नलिखित बातो पर निर्भर है :

१. किसी भी क्षैतिज समतल पर तनाव (tension) नही होना चाहिए। यह तब होता है जब फलित बल उस क्षैतिज समतल के बीचवाले तिहाई भाग से पार होता है।

२. घर्षण एव अपरूपण (shear) प्रतिरोध बाँध को खिसकने से रोकने के लिये पर्याप्त होने चाहिए।

३ सपीडक प्रतिबल स्थिरता की सीमा मे होना चाहिए। सीमेट कक्रीट के बहुत बडे बडे बाँधो को बनाते समय इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कक्रीट का ताप कम होने पर सिकुडन के कारण जो दरारें पडती है, वे कम से कम हो। आज के युग मे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निम्नलिखित तरीके काम मे लाए जाते हैं

(१) आवश्यक बल प्रदान करने के लिये कक्रीट मे कम से कम सीमेट का उपयोग किया जाए।

(२) कक्रीट ४ से ५ फुट तक की परतो मे डाली जाए।

(३) कक्रीट को बाँध में भरने के बाद उसका ताप कम करने के लिये ठढा करने का प्रबध किया जाए, जैसा भाखडा बाँध (पजाब) मे किया गया था। कक्रीट को डालने के पहले भी ठढा किया जा सकता है, जैसा रिहद बाँध (उत्तर प्रदेश) पर किया गया था।

ऐसे बाँधो मे बाढ का पानी निकालने के लिये पक्की ढाल बाँध

के साथ ही होती है। ढाल बाँध से कुछ नीची रखी जाती है और इसकी ढालवाँ सतह ऐसी बनाई जाती है कि पानी कम से कम उथल-पुथलकर निकल जाए।

पक्की ढाल के नीचे की ओर पानी द्वारा कटाव रोकने के लिये अधिकांश बाँधों में पानी को शांत करनेवाला थाला (stilling basin) बनाया जाता है।

चिनाई के खोखले बाँध — इस प्रकार के बाँधों में कंक्रीट या पत्थर की चिनाई के बहुत से पुश्ते होते हैं, जिनके ऊपर से सबलन कंक्रीट का फर्श, या मेहराबवाला फर्श, ढाल में डाला जाता है। पानी का भार इसी फर्श द्वारा पुश्ते पर आता है। ऐसे बाँध की पक्की ढाल में अधोप्रवाह की ओर भी पुश्तों पर एक फर्श डाला जाता है जिसके ऊपर से होकर बाढ़ का पानी बहता है। इस प्रकार का बाँध महँगा पड़ता है, क्योंकि इसमें सबलन के लिये लोहा तथा कंक्रीट के लिये फर्मे लगाने का खर्च अधिक होता है। ये बाँध ऐसे स्थानों के लिये उपयुक्त होते हैं जहाँ कंक्रीट बनाने की सामग्री महँगी पड़ती हो और फर्मे सस्ते बनते हों।

काष्ठ तथा इस्पाती बाँध — बाँधों के ये प्रकार कम महत्व के हैं। इनका अभिकल्प खोखले बाँधों के समान ही होता है। काष्ठ के बाँधों में काष्ठ के ढाँचे बनाकर उनमें पत्थर भर दिए जाते हैं। ये छोटे छोटे बाँधों के लिये ही उपयुक्त हैं और कॉफर-डैम के लिये उपयोग में आते हैं।

मेहराबी बाँध — ऐसे बाँध पानी के अधिकतर भार को दोनों ओर के पायों पर स्थानांतरित कर देते हैं। इसके साथ ही साथ बाँध के पेंदे पर भी कुछ भार आता है। इस प्रकार के बाँधों के अभिकल्प बहुत पेचीदा होते हैं। इस प्रकार के बाँध बहुत कम बने हैं, क्योंकि ये ऐसे स्थानों के ही लिये उपयुक्त हैं, जहाँ घाटी की चौड़ाई बाँध की ऊँचाई से भी कम हो।

बाँधों का अभिकल्प तथा निर्माण आज के विकासयुग में बड़ा महत्वपूर्ण विषय है। बड़े बाँधों के संबंध में संसार के विभिन्न भागों में बड़ी खोजबीन हो रही है।

बड़े बाँध के संबंध में एक अंतरराष्ट्रीय संघ भी है। इसकी एक महत्वपूर्ण सभा भारत में १९५१ ई० में हुई थी। उसके बाद ही भारत में बाँध निर्माण में बड़ी प्रगति हुई है।

भारत में बड़े बाँधों की गणना में भाखड़ा, नागार्जुन सागर, तुंगभद्रा, हीराकुड, कोयना, रिहंद, मयूराक्षी आदि आ जाते हैं। इनका निर्माण आधुनिक प्रणालियों से ही हुआ है और भारत के नवविकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। दामोदर घाटी योजना के अंतर्गत बाँधों की एक शृंखला है, जिसके द्वारा बाढ़ की रोकथाम के अतिरिक्त बहुमुखी विकास की बड़ी बड़ी योजनाएँ उस क्षेत्र में चलाई जा रही हैं। आधुनिक युग में बाँधों के ऊपर किसी राष्ट्र या देश की आर्थिक व्यवस्था बहुत कुछ निर्भर हो जाती है। इस दिशा में संसार के विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी प्रगति हो रही है।

कभी कभी बाँधों के टूट जाने से बड़ी क्षति भी हुई है। दुर्घटना तो सभी क्षेत्रों में हो सकती है, किंतु बाँध बन जाने से नदियों के प्राकृतिक चलन में जो परिवर्तन हो जाता है, उसके दुष्परिणामों को दूर करने के लिये भी बहुत कुछ काम करना पड़ता है। बाँधों द्वारा जलसंचय करना विकासशील क्षेत्रों के लिये अनिवार्य सा हो गया है। [बा० ना०]

बाँस ग्रामिनीई (Gramineae) कुल की एक अत्यंत उपयोगी घास है, जो भारत के प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है। बाँस एक सामूहिक शब्द है, जिसमें अनेक जातियाँ सम्मिलित हैं। मुख्य जातियाँ, बैंब्यूसा (Bambusa), डेंड्रोकैलैमस (नर बाँस) (Dendrocalamus) आदि हैं। बैंब्यूसा शब्द मराठी नाम का लैटिन नाम है। इसके लगभग २४ वंश भारत में पाए जाते हैं।

भारत में पाए जानेवाले विभिन्न प्रकार के बाँसों का वर्गीकरण डा० ब्रैडिस ने प्रकंद के अनुसार इस प्रकार किया है

(अ) कुछ में भूमिगत प्रकंद (rhizome) छोटा और मोटा होता है। शाखाएँ सामूहिक रूप से निकलती हैं। उपर्युक्त प्रकंदवाले बाँस निम्नलिखित हैं

१. बैंब्यूसा अरंडिनेसी (Bambusa arundinacea) — हिंदी में इसे वेदुर बाँस कहते हैं। यह मध्य तथा दक्षिण-पश्चिम भारत एवं बर्मा में बहुतायत से पाया जानेवाला काँटेदार बाँस है। ३० से ५० फुट तक ऊँची शाखाएँ ३० से १०० के समूह में पाई जाती हैं। बौद्ध लेखों तथा भारतीय ओषधि ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है।

२. बैंब्यूसा स्पायनोसा — बंगाल, असम तथा बर्मा का काँटेदार बाँस है, जिसकी खेती उत्तरी पश्चिमी भारत में की जाती है। हिंदी में इसे बिहार बाँस कहते हैं।

३ बैंब्यूसा टुल्डा — बंगाल का मुख्य बाँस है, जिसे हिंदी में पेका बाँस कहते हैं।

४ बैंब्यूसा वलगेरिस (Bambusa vulgaris) — पीली एवं हरी धारीवाला बाँस है, जो पूरे भारत में पाया जाता है।

५. डेंड्रोकैलैमस के अनेक वंश, जो शिवालिक पहाड़ियों तथा हिमालय के उत्तर-पश्चिमी भागों और पश्चिमी घाट पर बहुतायत से पाए जाते हैं।

(ब) कुछ बाँसों में प्रकंद भूमि के नीचे ही फैलता है। यह लंबा और पतला होता है तथा इसमें एक एक करके शाखाएँ निकलती हैं। ऐसे प्रकंदवाले बाँस निम्नलिखित हैं

(१) बैंब्यूसा नूटैंस (Babusa nutans) — यह बाँस ५,००० से ७,००० फुट की ऊँचाई पर, नेपाल, सिक्किम, असम तथा भूटान में होता है। इसकी लकड़ी बहुत उपयोगी होती है।

(२) मैलोकेना (Melocanna) — यह बाँस पूर्वी बंगाल एवं बर्मा में बहुतायत से पाया जाता है।

तना — बाँस का सबसे उपयोगी भाग तना है। उष्ण कटिबंध में बाँस बड़े बड़े समूहों में पाया जाता है। बाँस के तने से नई नई शाखाएँ निरंतर बाहर की ओर निकलकर इसके घेरे को बढ़ाती हैं, किंतु समशीतोष्ण एवं शीतकटिबंध में यह समूह अपेक्षाकृत छोटा होता है तथा तनों की लंबाई ही बढ़ती है। तनों की लंबाई ३० से १५० फुट तक एवं चौड़ाई १/४ इंच से लेकर एक फुट तक होती है। तना में पर्व (internode), पर्वसंधि (node) से जुड़ा रहता है। किसी किसी में पूरा तना ठोस ही रहता है। नीचे के दो तिहाई भाग में

कोई टहनी नही होती। नई शाखाओ के ऊपर पत्तियो की सरचना देखकर ही विभिन्न बांसो की पहचान होती है। पहले तीन माह मे शाखाएँ औसत रूप से तीन इच प्रति दिन बढती हैं, इसके बाद इनमे नीचे से ऊपर की ओर लगभग १० से ५० इच तक तना बनता है।

तने की मजबूती उसमे एकत्रित सिलिका तथा उसकी मोटाई पर निर्भर है। पानी मे बहुत दिन तक बांस खराब नही होते और कीडो के कारण नष्ट होने की सभावना रहती है।

बांस के फूल एव फल — बाँस का जीवन १ से ५० वर्ष तक होता है, जब तक कि फूल नही खिलते। फूल बहुत ही छोटे, रगहीन, बिना डठल के, छोटे छोटे गुच्छो मे पाए जाते हैं। सबसे पहले एक फूल मे तीन चार, छोटे, सूखे तुष (glume) पाए जाते है। इनके बाद नाव के आकार का अतपुष्पकवच (palea) होता है। छह पुकेसर (stamens) होते है। अडाशय (ovary) के ऊपरी भाग पर बहुत छोटे छोटे बाल होते हैं। इसमे एक ही दाना बनता है। साधारणत बाँस तभी फूलता है जब सूखे के कारण
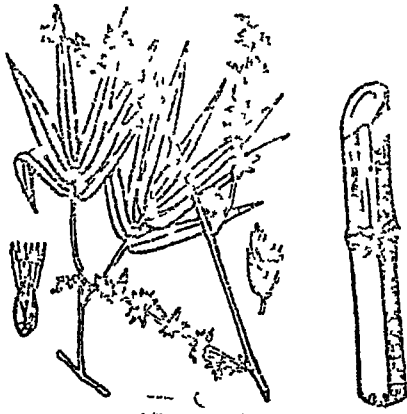
भारतीय बाँस

सकीर्ण पत्तियो सहित टहनी, पुष्पक्रम तथा तना

खेती मारी जाती है और दुर्भिक्ष पडता है। शुष्क एव गरम हवा के कारण पत्तियो के स्थान पर कलियाँ खिलती है। फूल खिलने पर पत्तियाँ झड जाती हैं। बहुत से बाँस एक वर्ष मे फूलते हैं। ऐसे कुछ बाँस नीलगिरि की पहाडियो पर मिलते हैं। भारत मे अधिकाश बाँस सामूहिक तथा सामयिक रूप से फूलते हैं। इसके बाद ही बाँस का जीवन समाप्त हो जाता है। सूखे तने गिरकर रास्ता बद कर देते हैं। अगले वर्ष वर्षा के बाद बीजो से नई कलमें फूट पडती हैं और जगल फिर हरा हो जाता है। यदि फूल खिलने का समय ज्ञात हो, तो काट छाँटकर खिलना रोका जा सकता है। प्रत्येक बाँस मे ४ से २० सेर तक जौ या चावल के समान फल लगते हैं। जब भी ये लगते हैं, चावल की अपेक्षा सस्ते बिकते हैं। १८१२ ई० के उडीसा दुर्भिक्ष मे ये गरीब जनता का आहार तथा जीवन रक्षक रहे।

बाँस की खेती — बाँस बीजो से धीरे धीरे उगता है। मिट्टी मे डालने के प्रथम सप्ताह मे ही बीज उगना आरभ कर देता है। कुछ बाँसो मे वृक्ष पर दो छोटे छोटे अकुर निकलते है। १० से १२ वर्षों के बाद काम लायक बाँस तैयार होते हैं। भारत मे दाब कलम के द्वारा इनकी उपज की जाती है। अधपके तनो का निचला भाग, तीन इच लबाई मे, थोडा पर्वसधि (node) के नीचे काटकर, वर्षा शुरू होने के बाद लगा देते हैं। यदि इसमे प्रकद का भी अश हो तो अति उत्तम है। इसके निचले भाग से नई नई जडे निकलती है।

बाँस का कागज — कागज बनाने के लिये बाँस उपयोगी साधन है, जिससे बहुत ही कम देखभाल के साथ साथ बहुत अधिक मात्रा मे कागज बनाया जा सकता है। इस क्रिया मे बहुत सी कठिनाइयाँ झेलनी पडती हैं। फिर भी बाँस का कागज बनाना चीन एव भारत का प्राचीन उद्योग है। चीन में बाँस के छोटे बडे सभी भागो से कागज बनाया जाता है। इसके लिये पत्तियो को छाँटकर, तने को छोटे छोटे टुकडो मे काटकर, पानी से भरे पोखरो मे चूने के सग तीन चार माह सडाया जाता है, जिसके बाद उसे बडी बडी घूमती हुई ओखलियो मे गूँधकर, साफ किया जाता है। इस लुग्दी को आवश्यकतानुसार रसायनक डालकर सफेद या रगीन बना लेते हैं और फिर गरम तवो पर दबाते तथा सुखाते हैं।

वशलोचन — विशेषत बैब्यूसा अरन्डिनेसी के पर्व मे पाई जानेवाली, यह पथरीली वस्तु सफेद या हलके नीले रग की होती है। अरबी मे इसे तबाशीर कहते है। यूनानी ग्रथो मे इसका उल्लेख मिलता है। भारतवासी प्राचीन काल से दवा की तरह इसका उपयोग करते रहे हैं। यह ठढा तथा बलवर्धक होता है। वायुदोष तथा दिल एव फेफडे की तरह तरह की बीमारियो मे इसका प्रयोग होता है। बुखार मे इससे प्यास दूर होती है। बाँस की नई शाखाओ मे रस एकत्रित होने पर वशलोचन बनता है और तब इससे सुगध निकलती है।

वशलोचन से एक चूर्ण भी बनता है, जो मदाग्नि के लिये विशेष उपयोगी है। इसमे ८ भाग वशलोचन, १० भाग पीपर, १० भाग रूमी मस्तगी तथा १२ भाग छोटी इलायची रहती है। चूर्ण को शहद के साथ मिलाकर खाने और दूध पीने से बहुत शीघ्र स्वास्थ्यलाभ होता है।

बाँस के अन्य उपयोग — छोटी छोटी टहनियो तथा पत्तियो को डालकर उबाला गया पानी, बच्चा होने के बाद पेट की सफाई के लिये जानवरो को दिया जाता है। जहा पर डाक्टरी औजार उपलब्ध नहीं होते, बाँस के तनो एव पत्तियो को काट छाँटकर सफाई करके खपच्चियो का उपयोग किया जाता है। बाँस का खोखला तना अपग लोगो का सहारा है। इसके घुने भाग मे पैर टिका दिया जाता है। बाँस की खपच्चियो को तरह तरह की चटाइयाँ, कुर्सी, टेबुल, चारपाई एव अन्य वस्तुएँ बिनने के काम मे लाया जाता है। मछली पकडने का काँटा, डलिया आदि बाँस से ही बनाए जाते हैं। मकान बनाने तथा पुल बाँधने के लिये यह अत्यत उपयोगी है। इससे तरह तरह की वस्तुएँ बनाई जाती हैं, जैसे चम्मच, चाकू, चावल पकाने का बरतन। नागा लोगों मे पूजा के अवसर पर इसी का बरतन काम मे लाया जाता है। उससे खेती के औजार, ऊन तथा सूत कातने की तकली बनाई जाती है। छोटी छोटी तख्तियाँ पानी मे बहाकर, उनसे मछली पकडने का काम लिया जाता है। बाँस से तीर, धनुष, भाले आदि लडाई के सामान तैयार किए जाते थे। पुराने समय मे बाँस की काँटेदार झाडियो से किलो की रक्षा की जाती थी। पैनजिस नामक एक तेज धारवाली

बाइबिल उनके विषय मे शायद ही कोई निर्देश देना चाहती है। मानव जाति के इतिहास की ईश्वरीय व्याख्या प्रस्तुत करना और धर्म एवं मुक्ति को समझना, यही बाइबिल का प्रधान उद्देश्य है, बाइबिल की तत्संबंधी शिक्षा मे कोई भ्रांति नही हो सकती। उसमे अनेक स्थलो पर मनुष्यो के पापाचरण का भी वर्णन मिलता है। ऐसा आचरण अनुकरणीय आदर्श के रूप मे नही प्रस्तुत हुआ है किंतु उसके द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य कितने कलुपित हैं और उनको ईश्वर की मुक्ति की कितनी आवश्यकता है।

विषयसूची बाइबिल कुल मिलाकर ७२ ग्रथो का सकलन है — पूर्वविधान मे ४५ तथा नवविधान मे २७ ग्रथ हैं। पूर्वविधान की सामग्री इस प्रकार है — (१) ऐतिहासिक ग्रथ पेंतातुख, जोसुए अथवा यहोशू, न्यायाधीश, रूथ, सामुएल, राजा, पुरावृत्त (पैरालियोमेनोन), एज्रा (एस्द्रास), नेहेमिया, एस्तर, तोवियास, यूदिथ, मकावी (दे० पेंतातुख, उत्पत्तिग्रथ, सामुएल, एज्रा, एस्तेर)। (२) शिक्षाप्रधान ग्रथ — इययोव (दे० इय्योव), भजनसहिता (दे० दाऊद,) नीतिवचन, उपदेशक (एल्केसिआस्तेस श्रेष्ठगीत (दे० सुलेमान), प्रज्ञा, एल्केसियास्तिकस अथवा सिराह। (३) नवियो के ग्रथ यशयाह, जेरेमिया, विलापगीत, बारूह, एजेकिएल, अथवा यहेजकेल, दानिएल और बारह गौण नवी अर्थात् ओसेआ अथवा होशे, जोएल, योएल आमोस, ओवद्याह, योना, मिकेयाह, नाहूम, हाबाकुक, सोफोनिया, हग्गै, जाकारिआ, मलाकी (दे० नवी, एलियाह, यशयाह, जेरेमिया, आमोस, नाहूम, ओवद्याह) नवविधान के प्रथम पाँच ग्रथ ऐतिहासिक है अर्थात् चारो सुसमाचार (गास्पैल, दे० सुसमाचार) तथा ऐक्ट्स आव दि एपोसल्स (ईसा के पट्ट शिष्यो के कार्य। अंतिम ग्रथ एपोकालिप्स (Apocalypse) (प्रकाशना) कहलाता है। इसमे सुसमाचार लेखक सत योहन प्रतीकात्मक शैली मे चर्च के भविष्य तथा मुक्तिविधान की परिणति का चित्र अकित करते हैं। नवविधान के शेष २१ ग्रथ शिक्षा प्रधान हैं, अर्थात् सत पाल के १४ पत्र (दे० सत पाल), सतपीटर के दो पत्र, सुसमाचार लेखक सत योहन के तीन पत्र, सत याकूब (दे० याकूब) और सत जूद का एक एक पत्र। सत पाल के पत्र या तो किसी स्थानविशेष के निवासियों के लिये लिखे गए है (कोरिंथियो तथा थेस्सालुनीकियो के नाम दो दो पत्र, रोमियो, एफिसियो, फिलिपियो और कुलिसियो के नाम एक एक पत्र) या किसी व्यक्तिविशेप को (तिमोथी के नाम दो और तितुस तथा फिलेमोन के नाम एक एक पत्र)। इब्रानियो के नाम जो पत्र बाइबिल मे समिलित हैं, इनकी प्रामाणिकता के विषय मे सदेह नही है किंतु सत पाल के विचारो से प्रभावित होते हुए भी इनका लेखक कोई दूसरा ही होगा।

बाइबिल के प्रामाणिक ग्रथो की उपर्युक्त सूची मे से पूर्वविधान के कुछ ग्रथ इब्रानी बाइबिल मे समिलित नही थे, अर्थात् तोवियास, यूदिथ, मकावी, प्रज्ञा सिराह और दानिएल एव एस्तेर के कुछ अश। यहूदी और बहुत से प्रोटेस्टैंट सप्रदाय इन ग्रथो को अप्रमाणित मानकर अपनी बाइबिल मे स्थान नही देते।

भाषा और रचनाकाल प्राय समस्त पूर्वविधान की मूल भाषा इब्रानी है (दे० इब्रानी भाषा और साहित्य)। अनेक ग्रथ यूनानी भाषा मे तथा थोडे से अश अरामेयिक (इब्रानी बोलचाल) मे लिखे गए हैं। समस्त नवविधान की भाषा कोइने नामक यूनानी बोलचाल है।

बाइबिल का रचनाकाल १४०० ई० पू० से सन् १०० ई० तक माना जाता है। इसके बहुसख्यक लेखको मे से मूसा सबसे प्राचीन हैं, उन्होने लगभग १४०० ई० पू० मे पूर्वविधान का कुछ अश लिखा था (दे० मूसा)। पूर्वविधान की अधिकाश रचनाएँ ६०० ई० पू० और १०० ई० पू० के बीच की हैं। समस्त नवविधान ५० वर्ष की अवधि मे लिखा गया है अर्थात् सन् ५० ई० से सन् १०० ई० तक।

बाइबिल मे जो ग्रथ समिलित किए गए हैं वे एक ही शैली मे नही, अनेक शैलियो मे लिखे गए हैं— इसमे लोककथाएँ, काव्य और भजन, उपदेश और नीतिकथाएँ आदि अनेक प्रकार के साहित्यिक रूप पाए जाते हैं। अध्ययन तथा व्याख्यान करते समय प्रत्येक अश की अपनी शैली का ध्यान रखना अत्यत आवश्यक है।

अनुवाद — शताब्दियो से बाइबिल के अनुवाद का कार्य चला आ रहा है। इसराएली लोग इब्रानी बाइबिल का छायानुवाद अरामेयिक बोलचाल मे किया करते थे। सिकदरिया के यहूदियो ने दूसरी शताब्दी ई० पू० मे इब्रानी बाइबिल का यूनानी अनुवाद किया था जो सेप्टुआजिंट (सप्तति) के नाम से विख्यात है। लगभग सन् ४०० ई० मे सत जेरोम ने समस्त बाइबिल का लैटिन अनुवाद प्रस्तुत किया था जो वुलगाता (प्रचलित पाठ) कहलाता है और शताब्दियो तक बाइबिल का सर्वाधिक प्रचलित रूप रहा है। आधुनिक काल मे इब्रानी तथा यूनानी मूल के आधार पर सहस्र से भी अधिक भाषाओ मे बाइबिल का अनुवाद हुआ है। पूर्वविधान का सर्वोत्तम प्रामाणिक इब्रानी पाठ किट्टल द्वारा (सन् १९३७ ई०) तथा यूनानी पाठ राल्फस द्वारा (१९१४ ई०) प्रस्तुत किया गया है। नव विधान के अनेक उत्तम प्रामाणिक यूनानी पाठ मिलते हैं, जैसे टिशनडार्फ, वेस्टकोट होर्ट, नेस्टले, वोगेल्स, मेर्क और सोटर के सस्करण।

यूनानी बाइबिल की प्राचीन हस्तलिपियो का विवरण इस प्रकार है — (१) वाटिकानुस (चौथी श० ई०, रोम मे सुरक्षित), (२) सिनाइटिकुस (चौथी श० ई०, ब्रिटिश म्युजियम), (३) एलेक्सेंड्रिकुस (पाँचवी श० ई०, ब्रिटिश म्युजियम), (४) एफ्राएम (पाँचवी श० ई०, पेरिस का लूव्र म्युजियम)। इनके अतिरिक्त १५ सपूर्ण तथा ४००० से अधिक आंशिक नवविधान की यूनानी हस्तलिपियाँ प्राप्त हैं जिनका लिपिकाल सन् २०० ई० तथा ७०० ई० के बीच है। नवविधान की प्राचीनतम हस्तलिपि सन् २१४ ई० का पैपीरस चेस्टर बीटी है। अग्रेजी भाषा के निम्नलिखित अनुवाद सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं— ऑथॉराइज्ड वर्शन अथवा किंग जेम्स बाइबिल (सन् १६११ ई०), डुए वर्शन (१६०९ ई०), कान्फ्राटर्निटी वर्शन (१९४१ ई०) आर० एस० नौक्स बाइबिल (१९४४ ई०), न्यू इंग्लिश बाइबिल (१९६१ ई०)। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ मे प्रोटेस्टैंट मिशनरी कैरे ने बाइबिल का हिंदी अनुवाद तैयार किया था, 'धर्मशास्त्र' के नाम से इसके बहुत से सस्करण छप चुके हैं और उसमे सशोधन भी होता रहा है (बाइबिल सोसायटी, इलाहाबाद)। रोमन काथलिक ईसाइयो की ओर से बाइबिल का सपूर्ण हिंदी अनुवाद हाल मे छपा है (धर्मग्रथ, इलाहाबाद, १९६४ ई०)

व्याख्या बाइबिल ईश्वर प्रेरित भी है और साधारण मनुष्यों की रचना भी है, अत इसकी व्याख्या मे इस दोहरे कर्तृत्व का ध्यान रखना आवश्यक है।

मनुष्य की कृति होने के कारण अन्य लौकिक साहित्य की तरह बाइबिल का अध्ययन किया जाना चाहिए, अत (१) पाठानुसधान के नियमो के अनुसार शुद्ध पाठ का निर्धारण करना है, (२) परोक्ष एव प्रत्यक्ष सदर्भ के अनुसार शब्दो तथा वाक्यो का अर्थ लगाना है, (३) इस कार्य मे समानातर रचनाओ, प्राचीन अनुवादो तथा प्रामाणिक व्याख्याओं का सहारा लेना है, और (४) विभिन्न लेखकों के समय, स्थान, शैली तथा उद्देश्य का ध्यान रखना है। इसमे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाइबिल के व्याख्याता के लिये बाइबिल मे उल्लिखित देशो की विस्तृत जानकारी के अतिरिक्त भाषाविज्ञान, इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन जैसी अनेक सहायक विद्याएँ अत्यत आवश्यक है।

बाइबिल ईश्वर की प्रेरणा से लिखी गई है, अत इसकी व्याख्या करते समय (१) इसके धार्मिक उद्देश्य की रक्षा होनी चाहिए (२) इसकी शिक्षा निर्भ्रांत सिद्ध हो जानी चाहिए क्योकि ईश्वर भ्राति नही सिखला सकता, (३) धर्म तथा नैतिकता के प्रश्नो के विषय मे ईसा (ईश्वर) द्वारा स्थापित चर्च की आधिकारिक व्याख्या दी जानी चाहिए। (४) प्रत्येक व्याख्या को ईसाई धर्म के सामूहिक सत्य के साथ सामजस्य रखना चाहिए।

उपर्युक्त नियमो के दोहरे पक्ष का सतुलन रखना आवश्यक है। चर्च की परपरा के अनुसार ही बाइबिल की वैज्ञानिक व्याख्या सार्थक हो सकती है।

स० ग्र० — एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव दि बाइबिल, न्यूयार्क, १९६३। [आ० बे०]

बाइबिल, अंग्रेजी साहित्य मे—भौगोलिक दृष्टि से बाइबिल का प्रभाव बहुत ही विस्तृत है। शायद यह एक आकस्मिकता हो। मूलत एक दमित जनता के धर्म के रूप मे ईसाइयत अनेक परीक्षणो के पश्चात् अपने विजितो का धर्म बनी।

बाइबिल का प्राचीन धर्मनियम (टेस्टामेट) आध्यात्मिकता की दृष्टि से कुरान और इस्लाम से सबद्ध है और एक चुने हुए विशिष्ट जनसमूह से सबद्ध है। मूसा अथवा ईसा, अब्राहम या सुलेमान मुस्लिमो मे श्रद्धेय नाम हैं। बाइबिल इससे भिन्न है। यह कई ग्रथो का निचोड है। यह यहूदी जनता की समूची कहानी है, और शायद प्राचीन लोगो मे यहूदियों के अनुभव सर्वाधिक वैविध्यपूर्ण हैं। यह ऐसी जाति थी जो खूँखार कबीलो से घिरी थी और जो स्वय भी कम खूँखार न थी। कभी कभी उन्हें नीचा दिखाया गया, विजित किया गया और गुलाम भी बनाया गया। इस जाति ने कभी अपने शत्रुओ को विजित किया तथा उनकी शक्ति आजमाई, फिर भूमिसात् कर डाला (सैमुअल परिच्छेद ८ २)।

यह एक ऐसी ही जनता की आकाक्षा और प्रेरणा तथा जय और पराजय है जिसका वर्णन बाइबिल मे अद्भुत सजीवता के साथ किया गया है। उसने हमे अपने अब्राहम और मूसा जैसे महान् नेताओं, दाऊद और सुलेमान जैसे महान् राजाओ तथा महान् अवतारो के विषय मे ज्ञान कराया है जिन्होंने समय समय पर उत्पन्न होकर अपने रुद्ध वचनो द्वारा अनुचित मार्ग पर आरूढ जनता को टोका। सेवानोरोला तक तो यही क्रम रहा है। उन्होंने उनकी हिंसापरायण वृत्ति को स्वय भोग लिया, आलस्य और क्रूरता की निंदा की जिसकी ओर जनता स्वभावत अभिमुख थी। बाइबिल (प्राचीन धर्मनियम) ने अब्राहम सरीखे रक्तपिपासु, भयकर हिंसक राजाओं और असभ्य रानियो के विषय मे भी दर्शाया है। यह जनता की ऐतिहासिक घटनाओ और तिथियों की महिमा है। किसी ग्रथ की अपरिहार्य लघु सीमाओं मे यह वस्तुत. एक जातीय इतिहास होते हुए भी आश्चर्यचकित कर देनेवाले सत्यों से परिपूर्ण हैं।

प्राचीन धर्मनियम की समाप्ति के साथ उसमे एक आकस्मिक परिवर्तन होता दिखाई देता है। इतिहास वही रहता है किंतु उसकी प्रकृति बदल जाती है। यहूदियो का भयकर ईश्वर हटा दिया जाता है और कल्पना मे भारतीय ढग का एक स्नेही ईश्वर उभड आता है। कदाचित् एक ऐसी ही प्रवृत्ति के प्रथम धुँधले चित्र स्वय प्राचीन धर्मनियम के हृदयदेश के मध्य कुछ अवतारो मे, विशेषकर इसैयाह आदि मे पाए जाते हैं।

किंतु ईश्वर के सबध मे यह इस्रानियो की कोई आनुपातिक कल्पना नही है। उनकी भावना नेत्र के लिये नेत्र की थी। लेकिन जब ईसा ने उनसे कहा कि वे उनके दाएँ गाल पर थप्पड जमानेवाले के सामने अपना बायाँ गाल भी फेर दें, वे ऐसे क्रातिकारी दर्शन और हिंसा के निपट अस्वीकार की बातें न समझ सके। इस प्रकार उन्होंने इस नवीन धार्मिक धारणा के लेखक को अमान्य घोषित कर दिया और अतत उन्हें शूली दे दी। किंतु उस दिन गलगोथा नामक स्थान पर क्रॉस से प्रवाहित रक्तबिंदुओ की धारा ने एक नए धर्म को जन्म दिया। ईसाई जन उसको अपने लिये जैसे एक प्रतीक रूप मे देखते हैं और ईसा के वचनों का उपदेश देते हैं। इस प्रकार, बुनियादी तौर पर धैर्य और प्रेम ने त्वरा और घृणा पर विजय प्राप्त की। कोई नही सोचता था कि रोम के अदर गुप्त तथा सुसज्जित कदराओ या कुटियो मे मिले समवेत रूप से मद उच्चारित गायन मे सम्मिलित होनेवाले लोग, जो पहले भयकर रोमन पर्वों की जमातो के प्रसन्नार्थ ही उपयुक्त थे, एक न एक दिन केवल रोम की राजकीय शक्ति को ही नही हिला देंगे, अपितु आगामी दिनो मे एक महत्तर और अधिक गौरवशाली रोम जैसे सनातन नगर का निर्माण करेंगे।

फिर ईसाई लोग क्रॉस रूपी शस्त्र से सुसज्जित होकर तमाम रोम मे फैल गए। यद्यपि वहाँ वह रोमन सैन्यदल नहीं था बल्कि तालपत्रो से युक्त पादरी और भिक्षापात्र लिए सत थे, जो हजारो की सख्या मे हँसते हँसते मृत्यु की भेंट चढ गए, उन्होने यूरोप के विकराल और असभ्य जनो के बीच बाइबिल के सदेशो का प्रचार किया। बाइबिल (नवीन धर्मनियम) के शब्दो ने उन असभ्यो को आशिक रूप से सभ्य बनाया।

इस प्रकार चर्च या ईसाई धर्म सस्थान कम से कम हजार वर्षों तक, अपनी सपूर्ण व्याप्ति के साथ यूरोप के मन पर अधिकार किए रहा। यहाँ तक कि साधारण से साधारण आचार अथवा विचार-कल्पना पर भी ईसाइयत की छाप रखनी पडती थी। किंतु वही चर्च

जो मूलत अत्याचार और दमन के विरुद्ध सघर्ष करने के लिये विकसित हुआ था, अब स्वय जुल्म और निरकुशता का सबसे बडा वाहक यत्र बन गया।

पुन' वाइविल जनता को सकटमुक्त करने के लिये आगे आई। यह अपने आप मे एक विरोधाभास है। जब चर्च अपनी असीम शक्ति के कारण मान्य हो गया था और पादरियो ने क्रॉस को विस्मृत कर दिया तथा महथ लोग अनुचित लाभ उठाने लगे थे जनता बेदाँव होकर पुन ईश्वरी वचनो को ढूँढने लगी।

मूल रूप से इब्रानी और अरामेइक मे (जिसमे सभवत नवीन धर्म नियम के कुछ अश ग्रीक मे लिखे गये थे) लिखी जाकर यह ४०० ई० मे सेंट जेरोम सी द्वारा लैटिन मे अनूदित हुई और यह प्रामाणिक अनुवाद रोमन कैथोलिक गिरजाघरो द्वारा उपयोग मे लाया गया। किंतु लैटिन सर्वसामान्य लोगो की भाषा न थी, दूसरे ईसाई धर्मगुरु भाषाओ या फूहड वोलियों मे हुए वाइविल के अनुवादो से बहुत चिढते थे।

यह केवल इसीलिये ही नही कि ईसाई धर्मगुरु अपने विशेषधिकार की स्थिति बनाए रखना चाहते थे, यद्यपि वहाँ इसकी अधिकता थी वे डरते यह थे कि कही बोलचाल की भाषा मे अनूदित होने से उसके वचन ईश्वरीय वचनो की शक्ति और आशय न खो दें। केवल एक चिरपरिचित मुहावरा पूज्य भाव और भक्ति को उत्तेजित करनेवाला अत्युत्तम माध्यम नही है अथवा अनिवार्य रूप से गहन सत्यों का सर्वोपरि सप्रेषक नही है।

किसी न किसी प्रकार चर्च के दुराचरण से ही धर्म और धार्मिक सस्थान में नया सघर्ष आरभ हो गया। इस अवधि मे, साथ ही साथ भूमध्यसागर के पूर्वी तटो पर एक नई शक्ति का उदय हो रहा था, और इस्लाम के उमडते ज्वार के पूर्व अनेक ईसाई मतावलबी पश्चिम की ओर वढ चढ आए थे। यद्यपि वास्तविक पुनर्जागरण कई दशकों बाद आया तथापि ईसाई धर्म के ये विद्वान् और उपासक उसके अग्रदूत थे। उन्होने लोगो को अनिर्दिष्ट उत्तेजनाओ से भर दिया।

इग्लैंड मे पहले पहल अपनी आवाज बुलद करनेवाले 'लोलार्ड' थे। यह एक सप्रदाय था जो जनता मे ईसा मसीह के उपदेशो की शिक्षा देता था और चर्च तथा मठ के विचार का विरोध करता था। उनका नेता विक्लिफ अद्भुत साहस और पाडित्यसपन्न व्यक्ति था। उसने अनुभव किया कि विचारपरिवर्तन के लिये लोगो को ईसा के उपदेशवचनो की जानकारी आवश्यक है। इसके लिये जनभाषा में वाइविल का अनुवाद आवश्यक हो गया। इस प्रकार उस काल की नवीन चेतना विक्लिफ की आवाज मे ध्वनित हुई।

विक्लिफ उस समय हुआ था जब अँग्रेजी गद्य मे वाइविल के पूर्ण ऐश्वर्य और सौंदर्य को अभिव्यक्त करने की बहुत ही कम शक्ति थी। इसका अपना अनुवाद बहुत ही रुक्ष है। शायद अँग्रेजी बोलचाल के सगीत के लिये उसके पास कान ही नही था। इब्रानी पद्य की कुछ अपनी निजी विशेषताओ के कारण उसके मूल सस्करण मे एक ऐसी भव्यता भी थी और प्रयोग से कही अधिक महत्व हिब्रूवाली वाइविल के शब्दसौंदर्य का था जो कुछ प्राचीन अनुवादो मे सहज ही खो गया था। वाक्यखड मे सज्ञा का एक विशेष स्थान होता है और विभक्तियो की आज जैसी अनिवार्यता उस समय थी भी नही, क्योकि यह एक महान् वास्तविक कल्पना थी जो यहूदियो की अपनी थी तथा शब्दो के प्रति उनका सवेदन मर्मस्पर्शी था।

इस प्रकार कुछ शब्दो मे ही सामर्थ्य और तीव्रता होती थी क्योकि वे शब्द लागू न होकर बीज रूप मे होते थे। इसके अतिरिक्त प्राचीन धर्मनियम की विषयवस्तु व्यापक रूप से सुगम है। विषयवस्तु के रुचिकर होने और अल्प-समय-साध्य होने के गुणो के कारण इसकी गाथाएँ, वर्णन, नाट्यगीतियाँ (जाव की पुस्तक) भविष्यवाणियाँ, सूक्तियाँ, लघु कथाएँ (रूथ के अध्ययन की कथा) सभी ने मिलकर एक सावयव आकार-प्रकार धारण कर लिया था। अत मे नवीन धर्म नियम (न्यू टेस्टामेट) मे ईसा के वचन हैं। अत उन्हे समझने मे थोडी भी चूक अथवा भ्रम हो जाने पर न केवल उलझन ही वढ जाती है वल्कि सपूर्ण आशय ही भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये इसमे आश्चर्य नही कि गिरजाघरो ने अनुवादो को उचित नही समझा।

फिर भी विलियम टिंडेल ने वाइविल के अँग्रेजी अनुवाद का प्रथम प्रामाणिक प्रयास किया। उसने मूल इतालीय (इटैलियन) सस्करण का उपयोग किया जो पद्रहवी शताव्दी मे इटली मे तैयार किया गया था तथा चौदहवी शताव्दी मे किए गए विक्लिफ के अनुवाद का सहारा भी लिया था। अनुवाद के लिये उसने सरलतम आग्ल शब्दो को चुना और इस प्रकार जनसाधारण की भाषा से नैकट्य स्थापित करते हुए अपना अनुवाद प्रस्तुत किया (१५२५)। टिंडेल ने इरैस्मस और लूथर (१५२२-३२) और ज्विग्ली (१५२४-२९) के ज़ूरिख सस्करण का भी उपयोग किया था। फिर भी टिंडेल की सहजता कही कही अटपटे प्रयोगों से सवद्ध थी। किंतु टिंडेल की वाइविल के निकट होकर ही कवरडेल एक महान् धर्मोपदेशक था। वह टिंडेल की स्पष्टता को निवाहने में सफल हुआ है किंतु उसने उसे वाग्मीयता से भर दिया है। इसी नाते वह गद्य का असाधारण शिल्पी सिद्ध हो जाता है।

कवरडेल के पश्चात् सन् १६११ तक इस दिशा म कई प्रयास किए गए। सात वर्षों के अथक परिश्रम मे प्रामाणिक सस्करण प्रस्तुत हुआ। ४७ विद्वानो, विशपो ने लैंसलॉट ऐंड्रूज की अध्यक्षता मे, वेस्टमिंस्टर के दो विश्वविद्यालयो मे, इस कार्य को तीन खडो मे पूरा किया।

विद्वानो ने बुद्धिमत्तापूर्वक टिंडेल की स्पष्टता और कवरडेल की लयात्मक वाक्पटुता को काफी हद तक छोड दिया। उन्होने अन्य अनुवादों से भी सहायता ली और इस प्रकार अपने प्रामाणिक अनुवाद को एक सुव्यवस्थित सौंदर्य तथा सगीतात्मक स्वर माधुरी प्रदान की जिसका अँग्रेजी भाषा मे दुबारा पाया जाना सभव नहीं है। इससे केवल यही भर नही हुआ कि उसमे इब्रानी का सहज सौंदर्य और तात्विक शक्ति अक्षुण्ण रही वल्कि उचित शब्दों मे, उसे एक 'चित्रात्मक' और गीतात्मक गुण प्राप्त हो गया जो अत्युत्तम अँग्रेजी प्रतिभा का परिणाम है। यह जनता की बोली मे घुलमिल गया है। विद्वानो का कहना है कि उसके ९३ % शब्द अँग्रेजी के हैं। उसका शब्द कभी भी प्राप्त या सीखा हुआ नही है तथा अनुवाद में गृहीत शब्द बिलकुल ही नही है।

आशय का स्पष्ट होना जरूरी भी था क्योकि ईश्वरी पुस्तक माने

जाने वाले ग्रंथ में दुरूहता की कोई गुंजायश नहीं होनी चाहिए थी। यद्यपि शैली बोलचाल की ही होनी आवश्यक थी ताकि लोग समझ सकें, तथापि गँवारपन के लिये बिलकुल ही स्थान न था। फिर, शब्दों का सरल होना भी जरूरी था और यथाअवसर सौंदर्य तथा संयम भी अपेक्षित था। प्रामाणिक अनुवाद में इन सभी गुणों का प्राचुर्य था। [र० ना० दे०]

बाइसिकिल गरीब आदमियों का घोड़ा समझी जाती है। यूरोपीय देशों में बाइसिकिल के प्रयोग का विचार लोगों के दिमाग में १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही आ चुका था, लेकिन इसे मूर्त्तरूप पैरिस नगर के एक कारीगर ने सन् १८१६ में सर्वप्रथम दिया। उस यंत्र को हॉबी हॉर्स, अर्थात् काठ का घोड़ा, कहते थे। पैर से घुमाए जानेवाले क्रैंको (पैडल) युक्त पहिए का आविष्कार सन् १८६५ ई० में पैरिस निवासी लालेमें (Lallement) ने किया। इस यंत्र को वेलॉसिपीड (velociped) कहते थे (चित्र १)। इसपर चढ़नेवाले को बेहद थकावट हो जाती थी। अत. इसे हाड़तोड़
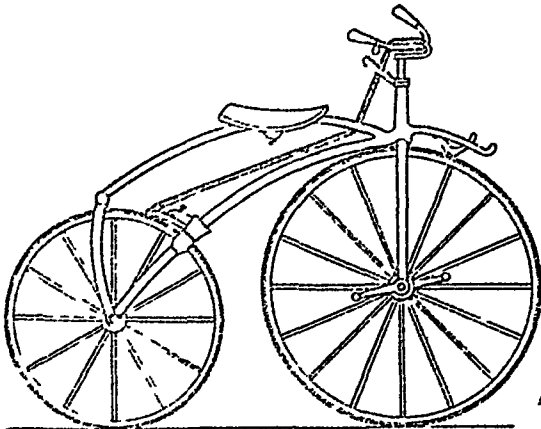
चित्र १

(bone shaker) भी कहने लगे। इसकी सवारी, लोकप्रिय हो जाने के कारण, उसकी बढ़ती माँग को देखकर इंग्लैंड, फ्रांस और
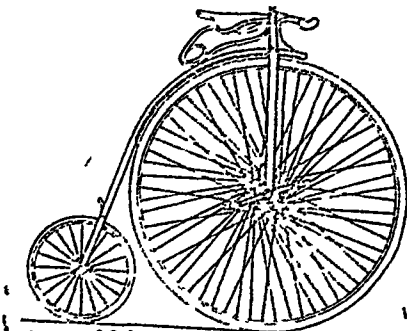
चित्र २

अमरीका के याननिर्माताओं ने इसमें अनेक महत्वपूर्ण सुधार कर सन् १८७२ में एक सुंदर रूप दे दिया, जिसमें लोहे की पतली पट्टी के तानयुक्त पहिए लगाए गए थे (चित्र २)। इसमें आगे का पहिया ३० इंच से लेकर ६४ इंच व्यास तक और पीछे का पहिया लगभग १२ इंच व्यास का होता था। इनमें क्रैंकों के अतिरिक्त गोली के बेयरिंग और ब्रेक भी लगाए गए थे।

चित्र ३. में आधुनिक बाइसिकिल का एक नमूना दिखाया है। आजकल सभी देशों तथा भारत में भी जो बाइसिकिलें बनाई
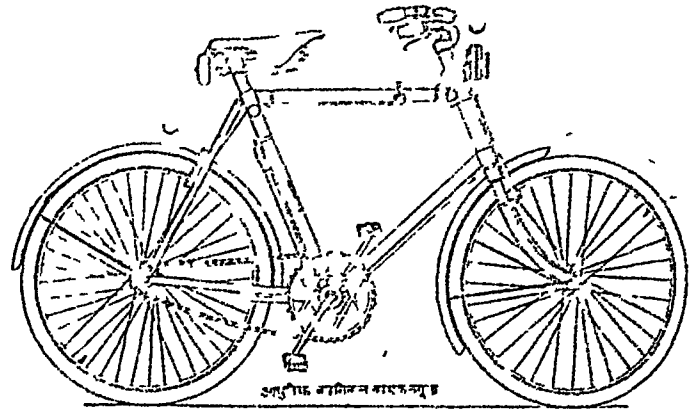
चित्र ३

जाती हैं, वे सब मानक विशिष्टियों (standard specifications) के अनुसार ही होती हैं। बाइसिकिल के विभिन्न भाग निम्नलिखित हैं

फ्रेम — बाइसिकिल का सबसे महत्वपूर्ण अंग उसका फ्रेम है। फ्रेम की बनावट ऐसी होनी चाहिए कि उसपर लगनेवाले पुर्जे अपना काम कुशलतापूर्वक कर सकें। बाइसिकिल की तिकोनी फ्रेम और आगे तथा पीछे के चिमटे खोखली, गोल नलियों से बनाए जाते हैं। फिर उन्हें फ्रेम के कोनों पर उचित प्रकार के ब्रैकेटों में फँसाकर झाल दिया जाता है। तिकोनी फ्रेम के बनाने में ध्यान रखा जाता है कि उसकी नलियों की मध्य रेखाएँ एक ही समतल में रहें। फ्रेम में लगा आगे का स्टियरिंग सिरा (steering head), उसपर लगनेवाले हैंडिल का डंठल और आगे के चिमटे के डंठल की मध्य रेखाएँ एक दूसरी पर संपाती (coincident) होनी चाहिए। दोनों तरफ के चिमटों की भुजाएँ भी उनकी मध्य रेखा से सममित तथा समांतर होनी चाहिए। चक्कों की मध्य रेखा चिमटों की मध्य रेखा पर संपाती होनी चाहिए, अन्यथा बाइसिकिल संतुलित रहकर सीधी नहीं चल सकेगी।

पहिया — पहियों में आजकल नाभि (hub) की स्पर्शीय दिशा में अरे लगाने का रिवाज है। स्पर्शीय अरे, पहिए के घेरे (rim) पर भ्रामक बल भली प्रकार से डाल सकते हैं। प्रत्येक दो आसन्न अरे कैंचीनुमा लगकर, हब की फ्लैंज (flange) से स्पर्शीय दिशा में झुके रहते हैं। चित्र ४ और ५ में क्रम से. पीछे और आगे के पहियों में अरे लगाने का क्रम समझाया है। पीछे के पहिए में ४० और अगले में ३२ अरे लगते हैं, अत उसी के अनुसार उनके घेरों में छेद बनाए जाते हैं और हबों की प्रत्येक फ्लैंज में घेरे की आधी संख्या में छेद बनाए जाते हैं। चित्र में भीतर से बाहर की तरफ पिरोए जानेवाले

अरे को का$_1$, का$_2$, आदि अक्षरो से और बाहर से भीतर की तरफ पिरोए जानेवाले अरो को क$_1$, क$_2$ आदि से चिह्नित किया गया है।
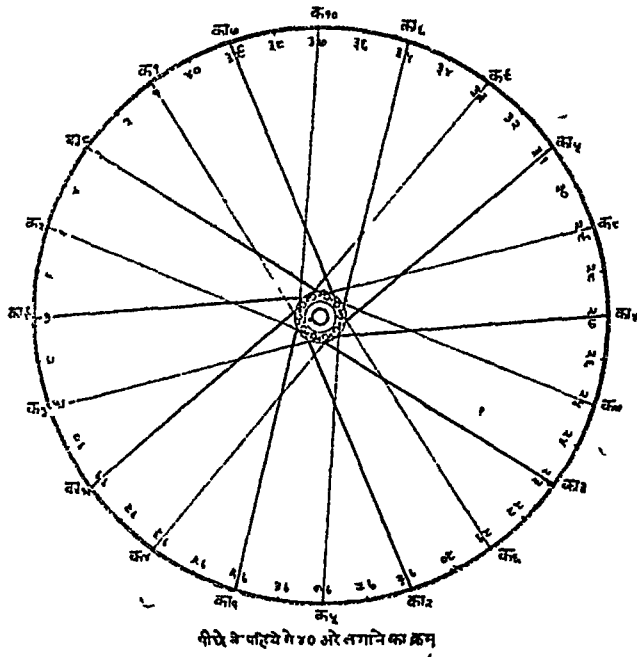
चित्र ४.

चित्रो को देखने से पता चलेगा कि क$_1$ और का$_1$ चिह्नित अरो के पारस्परिक झुकाव मे, घेरे पर कितने छेदो का अतर रहता है। चक्का तैयार करते समय व्यासाभिमुख आठ अरो को पहले लगाकर
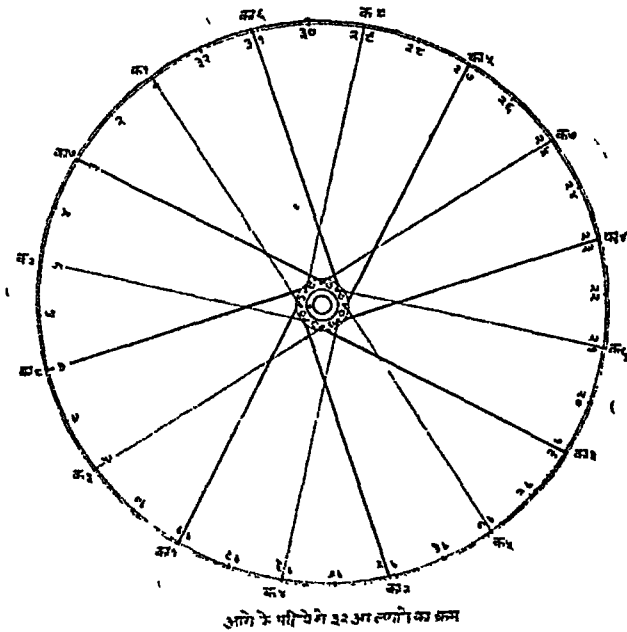
चित्र ५.

सही कर लेते है, फिर शेष अरो को उसी क्रम से भरते जाते हैं। चित्रो मे हब की बाई तरफ की फ्लैंज मे ही अरे लगाकर दिखाए गए हैं, जो क्रम से घेरे पर विषम सख्याकित छेदो मे ही बैठे हैं। सम सख्याकित छेदो मे दाहिनी तरफ की फ्लैंज के अरे बैठेंगे, अत उनके स्थानो को खाली दिखाया गया है।

तार से बने अरे सदैव तनाव की स्थिति मे रहने के कारण तान कहलाते हैं। प्रयोग करते समय भी पहियो के अरो की समय समय पर परीक्षा करते रहना चाहिए, कोई अरा ढीला और कोई अधिक तनाव मे नही होना चाहिए। उँगली से बजाकर सबको देखा जाए तो उनमे एक सी आवाज निकलनी चाहिए, अन्यथा पहिए टेढे होकर अरे टूटने लगेंगे। उन्हे कसने का काम घेरे पर लगी निपलो को उचित दिशा मे घुमाकर किया जा सकता है।

बॉलबेयरिंग — बाइसिकिल के अच्छी प्रकार काम कर सकने के लिये उसके बॉल बेयरिंगो की तरफ ध्यान देते रहना आवश्यक है। यदि किसी बेयरिंग मे से जरा भी आवाज निकलती हो तो अवश्य ही उसमे कोई खराबी है। उसे खोलकर उसके दोनो तरफ की गोलियो की गिनती कर, कपडे से पोछकर साफ चमका लीजिए। यदि कोई गोली टूटी, चटखी या घिस गई हो तो उसे बदल दीजिए, फिर उसकी कटोरी (ball-race) के वलयाकार खाँचे तथा कोनो
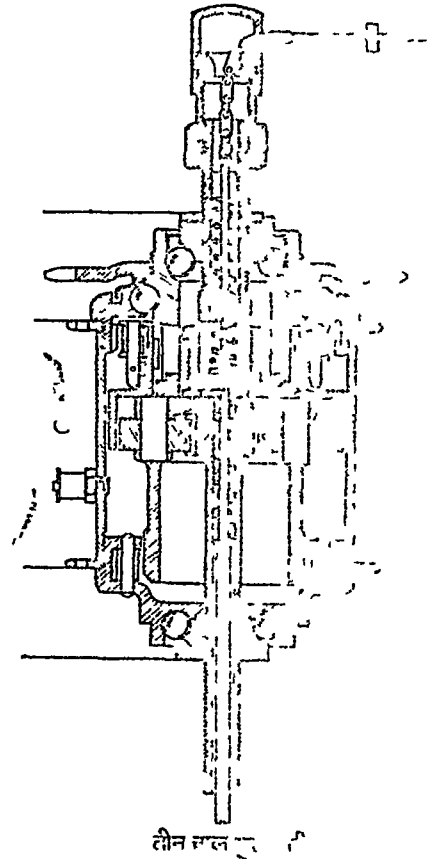
चित्र ६.

को देखिए। वे घिसे, कटे, या खुरदरे न हो। यदि खराब हो, तो उन्हे भी बदल दीजिए। यदि उपर्युक्त कोई ऐब न हो तथा गोलियाँ भी एक ही सख्या में तथा समान नाप की हो, तो उसमे तेल की कमी

समझनी चाहिए। वेयरिंग के किसी भी भाग मे किसी भी प्रकार का कचरा या कीचड तो होना ही नही चाहिए।

बहुचाल युक्त गीअर नाभि (hub) — यह पिछले पहिए मे लगाई जाती है, जिसके द्वारा सवार अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार वाइसिकिल की चाल के अनुपात को वदल सके। आजकल
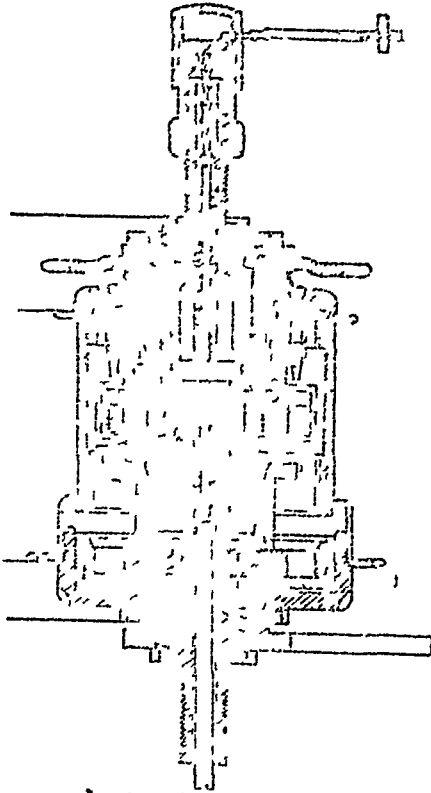
चित्र ७

तीन चाल देनेवाले गीअर हवो का अधिक प्रचार है। ऐसी गीअर नाभि भी वनाई जाती है कि पीछे को, अर्थात् उलटा, पैडल चलाने मे ब्रेक लग जाता है। चित्र ६. और ७ मे स्टरमी आर्चर गिअर्स
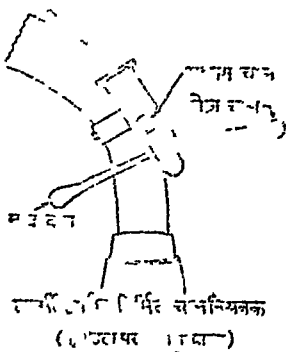
चित्र ८

लि० (Sturmey Archer Gears Ltd.) द्वारा वनाई तीन चालयुक्त और पैडल ब्रेकयुक्त गीअर नाभियों की वनावट काट चित्रो द्वारा क्रमश दिखाई गई है। चाल वदलने के लिये जजीर चक्र और नाभि के वीच की चाल के अनुपात को, नाभि की धुरी के मध्य

चित्र ६
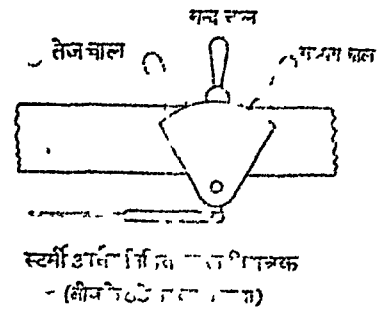
लगी वारीक कडियोवाली एक जजीर को खीचकर वदल दिया जाता है। इसे खीचने मे नाभि के भीतर लगे गिअरो (gears) की स्थिति वदल जाती है। जजीर को खीचने का काम तो सवार अपने लिवरो द्वारा जोर लगाकर करता है, लेकिन वापस लौटाने की क्रिया नाभि के भीतर लगी कमानी द्वारा स्वत ही हो जाती है। चित्र ८ और ६. मे क्रमश हैंडिल पर लगनेवाले और वीच के डडे पर लगनेवाले लिवरो का विन्यास दिखाया गया है। चित्र ७ को देखने से मालूम होगा कि उसकी नाभि मे कुछ और पुर्जे जोड देने से पैडल मे ब्रेक लगाने का भी प्रवध हो जाता है। चित्रो मे वाईं तरफ लगे कोन का समायोजन करने से भीतर के अन्य सव वेयरिंग स्वत ही समायोजित हो जाते हैं। नाभि के पुर्जे खोलने के लिये, पहले वाएँ हाथ का कोन खोलकर, फिर दाहिने हाथ की तरफ लगी गोलियो की रिंग खोलनी चाहिए।

मुक्त चक्र (Free wheel) — पीछे के चक्के पर इसके लगा देने से सवार जव चाहे पैर चलाना वद कर सकता है, फिर भी वह पहिया आजादी से घूमता रह सकता है। यह दो प्रकार का होता है,
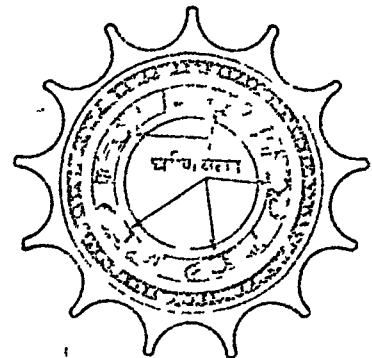
घर्षण वेलन युक्त मुक्त चक्र

चित्र १०

एक तो घर्षण वेलन युक्त (चित्र १०) और दूसरा रैचेट दाँत युक्त (चित्र ११.)। प्रत्येक मुक्त चक्र मे यह गुण होना चाहिए कि भीतरी पुर्जों के अटक जाने से पैडल की जजीर पर खिंचाव न पैदा हो और दुवारा जव पैडल चलाए जाएँ तव भीतरी पुर्जे एक दम आपस मे जुटकर काम करने लगें और फिसलें नही। साथ ही चक्र की वनावट धूल और पानी के लिये अभेद्य होनी चाहिए। आज-

कल रैचेट दाँत युक्त मुक्त चक्र का ही अधिक प्रचलन है (चित्र ११)। इसके घेरे की भीतरी परिधि पर रैचेट के दाँत कटे है, जिनमे यथास्थान लगाए कुत्ते (pawls) अटककर, पैडल की जंजीर के माध्यम से सवार द्वारा दिए हुए खिंचाव को पहिए की नाभि पर
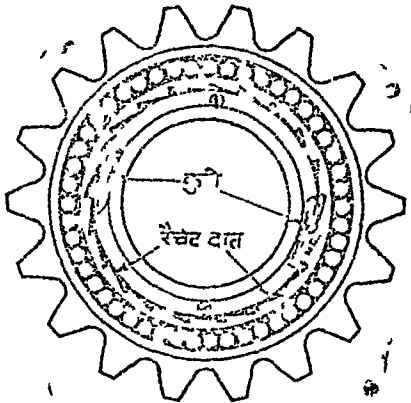
कुत्ते और रैचेट दात युक्त मुक्त चक्र

चित्र ११

पारेषित कर देते है। पैडल चलाना बद होते ही जजीर ठहर जाती है तथा वे कुत्ते कमानी के जोर से रैचट के दाँतो मे बारी बारी से गिरते हैं, जिससे 'कटकट' की आवाज होती है।

यदि दुबारा चलाने पर मुक्त चक्र फिसलने लगे, अथवा जाम हो जाए, तो उसे ठीक करने की पहली तरकीब यह है कि उसमे मिट्टी का तेल खूब भरकर पहिए को खाली घुमाया जाए, जब वह सब तेल निकल चुके तब उसमे स्नेहन तेल दे दिया जाए। यदि ऐब दूर न हो, तो चक्र के ढक्कन को खोल कर देखना चाहिए कि कही कुत्ते घिस तो नही गए हैं, अथवा उनकी कमानियाँ ही टूट गई हो। फिर उसे भीतर से बिलकुल साफ कर टूटे पुर्जे या गोलियाँ नई बदलकर, ढक्कन की चूडियाँ सावधानी से सीधी कस देनी चाहिए।

हवाई टायर — टायर को पहिए के घेरे पर जमाए रखने के लिये इसके दोनो किनारो पर या तो इस्पात के तारयुक्त, अथवा रबर की ही, कठोर गोठ बना दी जाती है, जो चक्के के घेरे के मुडे हुए
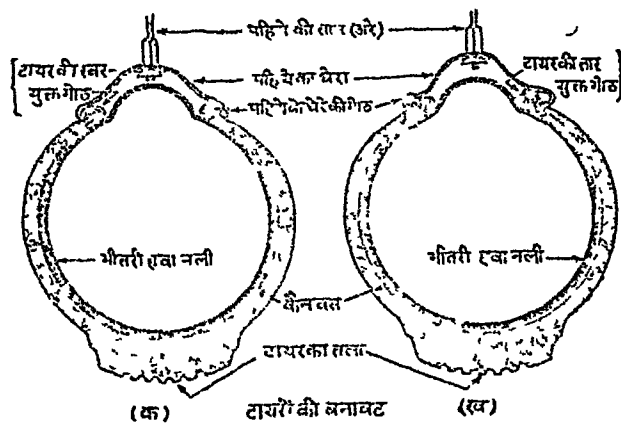
चित्र १२

किनारे के नीचे दबकर अटकी रहती हैं (चित्र १२ क तथा ख) और भीतरी रबर नली मे हवा भर देने से टायर तनकर यथास्थान बैठ जाता है।

भीतरी नली मे इतनी ही दाब से हवा भरनी चाहिए जिससे टायर सवार का बोझा सह ले और पहिए का घेरा सडक के कंकड पत्थरो से नही टकराए, अन्यथा नली के कुचले जाने और टायर के कट जाने का डर रहेगा। आवश्यकता से अधिक हवा भर देने से टायर का लचीलापन कम होकर बाइसिकल सडक पर उछलती हुई चलती है, लेकिन आवश्यक मात्रा मे कसकर हवा भर देने मे पहिए का व्यास अपनी सीमा तक बढ जाता है, और अच्छी सडक पर चलते समय पैडल से कम मात्रा मे शक्ति लगानी पडती है।

वाल्व — भीतरी नली मे हवा भरने के लिये वुड के हवा वाल्व का बहुधा प्रयोग होता है, जिसकी बनावट चित्र १३ मे स्पष्ट दिखाई गई है। रबर का वाल्व ट्यूब फटा, कुचला और सडा गला
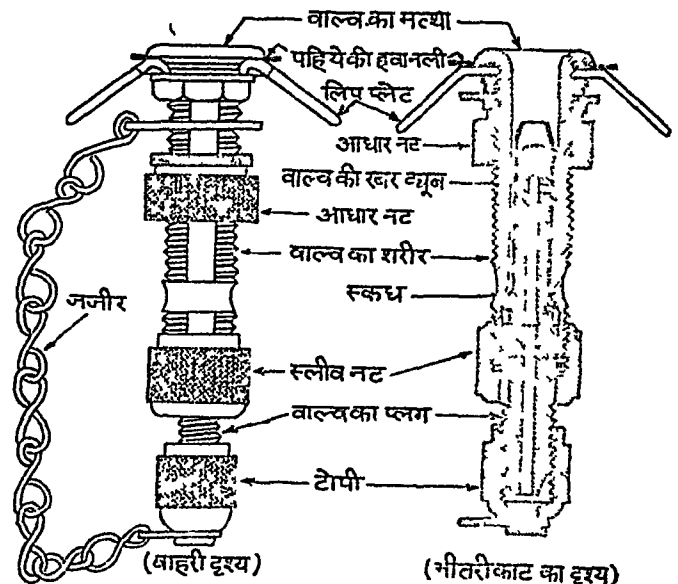
बुड का हवा वाल्व

चित्र १३

नही होना चाहिए। वाल्व के प्लग के ऊपरी सिरे पर लगनेवाली टोपी सदैव लगी रहनी चाहिए। वाल्व का आधार नट घेरे पर सख्ती से कसा रहना चाहिए। वाल्व का प्लग, रबर के वाल्व ट्यूब सहित विना रुकावट के प्रविष्ट होकर, खाँचो मे बैठ जाना चाहिए।

पैडल क्रैंक — पैडल क्रैंको को उनकी धुरी मे कॉटरो (cotters) द्वारा ही जोडा जाता है। बाइसिकिल के गिरने, अथवा दुर्घटना के कारण, यदि क्रैंक या धुरी टेढी हो जाएँ, तो क्रैंको को जुदा करने के लिये, उनपर लगे कॉटर के नट को खोलकर, कॉटर के चूडीदार सिरे को हथौडे से ठोक कर कॉटर को निकाल लेना चाहिए, लेकिन ध्यान रहे कि चूडियाँ खराब न हो जाएँ। क्रैंक के वक्ष (boss) के नीचे लोहे की कोई लाग लगाकर ही कॉटर ठोकना चाहिए, अन्यथा क्रैंक धुरी या बॉल बेयरिंग पर झटका पहुँचेगा। खराबी के कारण यदि दोनो क्रैंक एक सीध मे न हो, तो कॉटर के चपटे भाग को रेतकर, या पलटकर, समजित कर देना चाहिए। यदि क्रैंक अपनी धुरी

पर ढीला हो, तो कॉटर को अधिक गहराई तक ठोकने से भी काम बन जाता है। बहुत दिनों तक ढीले कॉटर में ही बाइसिकिल चलाते रहने में कॉटर और क्रैंक का छेद, दोनों ही, कट जाते हैं तथा धुरी का साँचा भी बिगड़ जाता है। अत नया कॉटर बदलना ही अच्छा रहता है। बाइसिकिल के गिरने में अक्सर पैडल पिन भी टेढी हो जाती है। ऐसी हालत में पैडल के बाहर की तरफ वाले बेयरिंग की टोपी उतारकर, उसका समजक कोन निकालकर गोलियाँ हाथ में ले लेनी चाहिए। फिर पैडल की फ्रेम को सरकाकर, भीतरवाले बेयरिंग की गोलियाँ भी सम्हालकर ले लेनी चाहिए, ऐसा करने पर पैडल निकल आएगा और पैडलपिन ही क्रैंक में लगी रह जाएगी। उसका निरीक्षण कर तथा गुनियाँ में सीधा कर, पैडल को यथापूर्व बाँध देना चाहिए।

चालक जजीर — यह जजीर छोटी छोटी पत्तीनुमा कड़ियों, बेलनों और रिवटों (revets) द्वारा बनाई जाती है। इसे साफ कर, तेल की चिकनाई देकर और उसके खिंचाव को समजित कर ठीक हालत में रखना चाहिए। जजीर के रिवटीय जोड़ों के ढीले होने तथा बेलनों के घिस जाने से उसकी समग्र लबाई बढ जाया करती है। पैडल के दतचक्र के दाँतों का पिच (pitch) तो बदलता नहीं, अत जजीर चक्र से उतर कर तकलीफ देती है। इसकी पहिचान यह है कि चक्र पर चढी हुई जजीर के स्पर्शचाप (arc of contact) के बीच में, उसे अँगूठे और तर्जनी से पकड़कर बाहर की तरफ खींचा जाए। यदि जजीर लगभग ⅛ इंच ही खिचती है, तब तो ठीक है और यदि ¼ इंच तक खिच जाती है तो अवश्य ही घिसकर ढीली हो गई होगी। अत बदल देनी चाहिए।

हाथ के ब्रेक — पहियों के घेरों पर दबाव डालनेवाले हस्तचालित ब्रेकों की कार्यप्रणाली लीवर और डंडों के सबध पर आधारित होती है। बाऊडन (Bowden) के ब्रेक, इस्पात की लचीली नली में लगे एक अपीड्य तार के खिंचाव पर आधारित होते हैं। ब्रेकों को छुड़ाने के लिये कमानी काम करती है। ब्रेक, सुरक्षा का प्रधान उपकरण है, अत ब्रेक के डंडे सुसमजित रहने चाहिए, अर्थात् ऐसे रहने चाहिए कि वे अगे या टायरों में न अटकें। डडे मजबूत होने के साथ साथ सरलता से जोड़ों पर घूमनेवाले होने चाहिए। देखने में अच्छे और पुर्जे साफ सुथरे भी रहने चाहिए।

स० ग्र० — स्टोरी ऑव इन्वेंशन्स। [ओ० ना० श०]

वाउट्स डियेरिक (१४१५-७५) नेदरलैंड का प्रसिद्ध चित्रकार। हार्लेम नामक नगर में उत्पन्न हुआ था पर लोवें को उसने अपना कार्यक्षेत्र बनाया। उसकी कला रोजर वाँ देर वीदें की कला से अत्यंत प्रभावित थी। उसके बनाए बहुत कम चित्र प्राप्त हैं जिनमें 'फाउंव मिस्टिक मील्स' तथा 'जस्टिस ऑव दि एंपरर ओटो' अति प्रसिद्ध हैं। उसके चित्रों में चित्रित पात्र भावशून्य लगते हैं लेकिन उनके पीछे चित्रित प्राकृतिक दृश्य बड़े ही प्रभावशाली हैं। पेड़, पत्ती तथा प्रकाशचित्रण में उसे विशेष दक्षता प्राप्त थी। वह बड़ी बारीकी से अपने चित्रों में रग रेखाएँ उभारता था। उसकी व्यजनाशक्ति भी अद्वितीय थी। [रा० च० शु०]

वाउमैन, सर विलियम (सन् १७८५-१८५३) अमरीकन शरीरक्रियावैज्ञानिक थे। इनका जन्म कृषक परिवार में हुआ था। यह कुशाग्रबुद्धि बालक आगे चलकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ। चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा इन्होंने वैयक्तिक रूप से एक चिकित्सक से पाई और वरमांट राज्य की तृतीय मेडिकल सोसायटी से चिकित्सावृत्ति का लाइसेंस प्राप्त किया। बाद में ये अमरीकी सेना में सर्जन पद पर नियुक्त हो गए।

शरीररचना और उसके कार्य से सबधित अनेक बातें उन दिनों अज्ञात थीं। वाउमैन ने अनुसधान किया और बताया कि आमाशय के पाचक रस क्या कार्य करते हैं और कब तथा किन अवस्थाओं में यह रस नहीं बनता। वाउमैन ने पाचन के रासायनिक रूप की सुप्रमाण स्थापना की। इन कार्यों की उनके शोधप्रबंध "एक्सपेरिमेंट्स ऐंड आब्जरवेशंस" में विस्तार से चर्चा है। शरीर-क्रिया-विज्ञान में वाउमैन का अनुदान महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने प्रयोग और अवलोकन को नई दिशा प्रदान की। [भा० श० मे०]

बाकी (सन् १५२६-१६०० ई०) सोलहवीं शती का एक प्रसिद्ध तुर्क कवि। इसका पूरा नाम महमूद अब्दुल् बाकी था और इसका जन्मस्थान कुस्तुतुनिया (इस्तांबोल) है। यह दरिद्र घराने का व्यक्ति था किंतु इसको उस समय के प्रसिद्ध विद्वानों से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिला और तुर्की के उच्च कोटि के साहित्यकारों एव कवियों का सत्सग भी। १८-१९ वर्ष ही की अवस्था में इस्तांबोल के प्रसिद्ध कवियों में इसकी गणना होने लगी। सन् १५५५ ई० में जब सुलतान सुलेमान आज़म ईरान की चढाई से लौट आया, बाकी ने उसके ऐश्वर्य पर बड़ा उल्लासपूर्ण एक प्रशसात्मक कसीदा उसके समक्ष उपस्थित किया। सुलतान इसे सुनकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने बाकी से अपनी कविताओं पर 'नज़ीरिए' लिखने का आदेश दिया। इस प्रकार इसकी पहुँच दरबार तथा उच्च कोटि के समाज तक सहज में हो गई। सुलतान की इस कृपा से स्वय इसके मित्रगण भी जलने लगे परतु यह तुर्की का सबसे बड़ा कवि माना जाने लगा और इसकी प्रसिद्धि बड़ी शीघ्रता से पूरे राज्य ही में नहीं, प्रत्युत हिंदुस्तान तक फैल गई।

सुलतान सुलेमान की विशेष कृपा से बाकी को उसकी निकट पार्श्ववर्तिता प्राप्त हो गई थी। इस कारण सुलतान की मृत्यु का इसपर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसी प्रभाव के कारण इसने सुलतान की स्मृति में एक मरसिया लिखा, जो इसकी श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। बाकी अरबी तथा फारसी का भी विद्वान् था। इसने अरबी की बहुत सी पुस्तकों का तुर्की में अनुवाद भी किया है और फारसी भाषा में कविता भी की है। परतु इसकी सर्वाधिक जनप्रियता तुर्की की कविता ही के कारण हुई है और इसको उस युग के कवियों की प्रथम श्रेणी ही में स्थान नहीं दिया गया है, प्रत्युत तुर्की के गज़ल गायकों का सिरताज भी कहा गया है। गजलों के सिवा इसके कसीदे तथा मरसिए भी काव्यदृष्टि से पूर्णता तक पहुँचे हुए हैं। यद्यपि इसने अपने अनेक पूर्ववर्तियों की कविता से लाभ उठाया है तथापि अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को भी बनाए रखा है।

स० ग्र० — ई जे डब्ल्यू गिब्ब ए हिस्ट्री ऑव ओटोमन पोएट्री, एल येमिरगिल बाकी (इस्तांबोल, १९५३), आर, ड्रेरक बाकी का दीवान (लाइडेन, १९११)। [अ० अ०]

बाक़ी बिल्लाह ख्वाजा अब्दुल बाकी का जन्म काबुल मे १५६३-६४ ई० मे हुआ। काबुल मे शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे लाहौर गए और फिर कश्मीर मे शेख बाबा वाली (मृ० १५६२ ई०) की सेवा मे रहे। वहाँ से समरकद के अमकना नामक ग्राम मे मौलाना ख्वाजगी से नक्शबदी सिलसिले मे दीक्षा प्राप्त की। थोडे दिन बाद लाहौर और फिर देहली पहुँचे। ३० नवबर, १६०३ ई० को देहली मे इनकी मृत्यु हो गई। उनके आगमन के पूर्व नक्शबदी सिलसिले की भारत मे पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। उनके शिष्यो मे ख्वाजा हुसामुद्दीन, शेख ताजुद्दीन सभली एव शेख अलहदाद अपनी उदारता के लिये बडे प्रसिद्ध थे किंतु उनके शिष्य शेख अहमद सरहिंदी ने इस्लाम की शिक्षाओं का बडा सकीर्ण रूप प्रस्तुत किया। ख्वाजा बाकी बिल्लाह के पुत्र ख्वाजा कलाँ एव ख्वाजा खुर्द, जो क्रमश शाहजहाँ एव औरगजेब के राज्यकाल मे बडे प्रसिद्ध हुए, उदारता के ही प्रतीक रहे।

स० ग्र० — मुहम्मद हाशिम बदख्शानी जुबदतुल मकामात (लखनऊ, १८८५, फारसी); बद्रुद्दीन सरहिंदी हज़रातुल कुदस (ह० लि०, रामपुर, रजा पुस्तकालय, फारसी), मुस्लिम रिवाइवलिस्ट मूवमेंट्स इन नार्दर्न इडिया इन द सिक्सटीथ ऐंड सेवेंटीथ सेंचुरीज (आगरा, १९६५)। [सै० अ० अ० रि०]

बाकूनिन, मिखाइल अलेक्जेंद्रोविच (१८१४-१८७६) रूसी अराज्यवादी (अराजकतावादी) विचारक। प्रारभिक शिक्षा सत पीतर्सबर्ग सैनिक विद्यालय मे हुई। १८३२ से १८३८ तक वह शाही सेना में रहा। बाद मे उसने सेना से त्यागपत्र दे दिया और मास्को तथा बर्लिन विश्वविद्यालयो मे दर्शन का अध्ययन किया। १८४३ मे वह पेरिस गया, जहाँ उसने पोलैंड के क्रातिकारियों से सपर्क स्थापित किया। स्विटजरलैंड मे भी वह साम्यवादी और समाजवादी आदोलनो मे सक्रिय रहा। १८४७ मे ज़ार के आदेश पर रूस न लौटने के कारण राजाज्ञा द्वारा उसकी सपत्ति जब्त कर ली गई। उसी वर्ष उसकी पोलिश और रूसी जनता द्वारा मिलकर रूसी सरकार समाप्त करने की अपील पर जार ने फ्रास सरकार से बाकूनिन के फ्रास से निकाल देने की माँग की। अगले दो वर्षो तक वह बर्लिन, प्राग और ड्रेसडेन मे क्रातिकारी आदोलनो मे भाग लेता रहा। इन क्रातिकारी गतिविधियो के कारण उसे मृत्युदड देने की घोषणा की गई। १८५१ मे वह गिरफ्तार करके रूस के हाथो सौंप दिया गया।

ज़ार ने बाद मे उसके मृत्युदड को आजीवन कारावास मे परिवर्तित कर दिया और १८५५ मे उसे साइबेरिया मे नजरबद किया गया। १८६० में वह एक अमरीकी जहाज द्वारा जापान भाग गया, और वहाँ से अमरीका होते हुए १८६१ मे लदन पहुँचा। मार्क्स और एजेल्स से मिलकर १८६९ मे 'सोशलिस्ट डेमाक्रेटिक एलाएस' की स्थापना की, बाद मे वह सस्था इटरनेशनल वर्किंगमेस एसोसिएशन' मे समिलित हो गई। १८७२ मे वह अपने अत्यधिक उग्र विचारों के कारण फर्स्ट इटरनेशनल से निकाल दिया गया।

बाकूनिन अपने राजनीतिक दर्शन मे पूर्णतया अराज्यवादी था। राज्य का उन्मूलन और व्यक्तिगत स्वतत्रता उसके समग्र चिंतन के प्रबल पक्ष थे। इटली और स्पेन में उसका मत बहुत फैला। रूस मे उसका प्रभाव निहिलिज्म के नाम से प्रसरित हुआ। 'गॉड ऐंड द स्टेट' उनकी महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध कृति है। १८७३ मे सक्रिय जीवन से सन्यास लेकर वह स्विट्ज़रलैंड चला गया और मृत्यु पर्यंत वही रहा।

बाकू स्थिति ४१° २१' उ० अ० तथा ४९° ४१' पू० दे०। यह रूस के आजर बाइजान प्रजातत्र की राजधानी तथा इस देश मे पेट्रोलियम के उद्योग का प्रमुख केंद्र है। यह अप्सेरॉन प्रायद्वीप मे दक्षिणी कैस्पिएन सागर की एक अर्धचद्राकार खाडी के सिरे पर स्थित है। इस प्रदेश के तेल क्षेत्रो के कारण ही रूस को विश्व के प्रमुख खनिज तेल उत्पादक देशो मे विशेष स्थान प्राप्त है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से द्वितीय बाकू नामक खनिज तेल उत्पादक क्षत्र मे बाकू से अधिक खनिज तेल की उत्पत्ति हो रही है। द्वितीय बाकू की स्थिति वॉल्गा नदी और यूरैल पर्वत के बीच मे है। तेल शोधन के अतिरिक्त यहाँ सूती एव इस्पात 'मिलें, रसायनक एव जलयान के कारखाने भी हैं। पारसी लोगो का यह तीर्थस्थान है। इसकी जनसख्या १०,६७,००० (१९६२) है। [वि० कु० अ०]

बॉक्सिंग या मुक्केबाजी भारत मे आदिकाल से विभिन्न रूपों में प्रचलित है और यह प्रतिद्वद्विता की सर्वाधिक प्राचीन परपराओ मे से एक समझी जाती है। जबरदस्त घूँसो द्वारा एक दूसरे को पराजित करने की इस शैली का प्रादुर्भाव तब से हुआ था, जब मनुष्य के पास सघर्ष के साधन नही थे।

घूंसेबाजी (बॉक्सिग) का स्वरूप खेल कूद के रूप मे १९वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे प्रकट हुआ, यद्यपि प्राचीन रोमन साम्राज्य मे मुक्केबाजी मनोरजन का साधन माना जाता था। उस समय के मुक्केबाज हाथ मे धातु से बने दस्ताने पहनकर लडते थे और साम्राज्य की ओर से उन्हें यथाविधि पुरस्कार एव धन दिया जाता था। साम्राज्य के पतन के साथ साथ इस ढग का खेल भी विलीन हो गया।

१८वी शताब्दी मे इग्लैंड मे भी मुक्केबाजी का प्रचलन था और प्रतिद्वद्वी हाथ मे बिना दस्ताना पहने लडते थे। इन प्रतिद्वद्विताओ पर शर्तें लगती थी और भारी धनराशि पुरस्कार मे विजेता को प्राप्त होती थी। इस प्रकार की घूंसेबाजी के सर्वप्रथम सर्वजेता (चैंपियन) इग्लैंड के जेम्स फिग माने जाते हैं।

सन् १८६५ मे क्वीसबरी के डगलस (अष्टम) ने बाक्सिग के नियम तैयार कराए जिन्हें सपूर्ण ब्रिटेन मे १८८९ ई० के लगभग पूर्ण मान्यता प्राप्त हुई। ये नियम ही वर्तमान बॉक्सिग के आधार है। बाद मे समयपरिवर्तन के साथ साथ नियमो का विकास होता गया। "क्वीसबरी" नियमो के कारण घूंसेबाजी का खतरनाक स्वरूप समाप्त हो गया और हाथ मे दस्ताना पहनकर तीन तीन मिनट के चक्र (राउड) मे लडने की प्रणाली और अखाडे मे एक प्रतिद्वद्वी के धराशायी होने पर एक से १० तक की गिनती गिनने तक न उठने पर उसे पराजित घोषित करने के नियम से बॉक्सिग को सयत खेल की दिशा प्राप्त हुई। फिर भी अनेक वर्षो तक धनलोभ के कारण घूंसेबाजी मे भयकर द्वद्व की प्रथा विराजमान रही। इन्ही कारणो से घूंसेबाजी में लोग बराबर मरते रहे। २४ अप्रैल, १९०१ को इग्लैंड के नैशनल स्पोर्टिंग क्लब द्वारा आयोजित एक बॉक्सिग मे जैक राबर्ट्स ने बिल स्मिथ को इतना मारा कि स्मिथ की मृत्यु हो गई।

इसके बाद ब्रिटेन मे पहली बार पेशेवर घूँसेबाजी के साथ साथ शौकिया घूँसेबाजी (अमेच्योर बॉक्सिग) की प्रथा का प्रारंभ हुआ।

उधर अमरीका मे बॉक्सिग को कई वर्षों तक गैरकानूनी घोषित किया गया था, किंतु १८९६ ई० मे न्यूयॉर्क राज्य ने घूँसेबाजी के नियमो का प्रचलन किया। सन् १९३० मे अमरीका मे भी शौकिया घूँसेबाजी की प्रथा शुरू हुई, यद्यपि आज भी धनलोभ से अमरीका मे पेशेवर घूँसेबाजी सर्वाधिक लोकप्रिय बनी हुई है।

बॉक्सिग के मूल नियमो के कारण प्रतिद्वंद्वियो के स्तर निश्चित किए गए और प्रत्येक को अपने वजन के अनुरूप घूँसेबाज मे ही लडने की सुविधा प्राप्त हुई। पेशेवर बाक्सिग मे आज भी हेवी वेट कहलानेवाली घूसेबाजी मे इस नियम का कोई पालन नही होता और अपने को विश्व का सर्वश्रेष्ठ घूँसेबाज साबित करने के लिये तथा साथ ही धन से मालामाल होने के लालच मे घूँसेबाज वजन का बधन न मानकर लडता है।

२०वी शताब्दी मे जब शौकिया बॉक्सिग की प्रथा प्रचलन मे आई तो इसमे क्वीन्सबरी के वजनो के आठ वर्गों के स्थान पर १० वर्ग रखे गए फ्लाई (११२ पाउड), बैंटम (११९ पा०), फेदर (१२६ पा०), लाइट वेल्टर (१४० पा०), वेल्टर (१४८ पा०) लाइट मिडिल (१५६ पा०), मिडिल (१६५ पा०), लाइट हेवी (१७८ पाउड तक), हैवी (१७८ पाउड से ऊपर)। शौकिया बॉक्सिग मे दो वजन वर्ग की सख्या बढाने का मुख्य उद्देश्य घूँसेबाजी तथा उदीयमान प्रतिद्वंद्वियो को प्रोत्साहन देना था।

विश्व ओलपिक खेलो मे बॉक्सिग पहली बार (सेंट लुईस, अमरीका) १९०४ ई० मे शामिल की गई। इसके नियम वही थे जो शौकिया घूँसेबाजी के लिये प्रचलित थे।

बीच में एक गद्देदार अखाडा होता है, जो १२ से २० फुट तक की लबाई चौडाई के चौकोर रूप में बना होता है। अखाडे के चारो ओर रस्सी से घेरा कर दिया जाता है। यह घेरा दो या तीन रस्से से बनाया जाता है। घेरे का ऊपरी भाग गद्दे से चार या पाँच फुट से अधिक ऊँचा नही होता। इस घेरे के दो विपरीत कोनो पर कुछ गद्दे देकर घूँसेबाजो को आराम से खडे होने का स्थान रखा जाता है। आधुनिक बॉक्सिग के अखाडे ऊपर से ढँके रहते हैं और बिजली के प्रकाश से अखाडा जगमग कर दिया जाता है।

घूँसेबाज के हाथो मे जो दस्ताने होते हैं उनमे से प्रत्येक का वजन छह औंस से अधिक नही होना चाहिए। घूँसेबाज का मुख्य वार हमेशा प्रतिस्पर्धी के चेहरे पर ही, खासकर कनपटी या आँख के बगल मे, होता है, जिससे प्रतिस्पर्धी को धराशायी होने मे विलब नही लगता।

जब कोई घूँसेबाज वार के बाद अखाडे मे गिर पडता है, तो निर्णायक गिनती शुरू करता है और उस समय दूसरा घूँसेबाज बिना कोई हलचल किए दूर रस्से के पास खडा रहता है। १० की गिनती (लगभग १० सेकेंड) के बाद भी यदि गिरा हुआ घूँसेबाज उठकर खडा नही हो जाता, तो उसे पराजित घोषित कर दिया जाता है।

घूँसेबाजी मे तीन तीन मिनट के राउंड होते हैं। तीन मिनट तक घूँसेबाजी के बावजूद यदि कोई परास्त न हो, तो एक मिनट विश्राम का समय देकर पुन तीन मिनट का चक्र प्रारभ होता है। इस तरह दोनो म से किसी एक घूँसेबाज के धराशायी होने तक चक्र का क्रम चालू रहता है। पेशेवर तथा शौकिया खिलाडियों के लिये इन चक्रो की सीमा अलग अलग बाँध दी गई है। आम तौर पर १५ चक्र से अधिक लडाई नही होती और तब तक यदि कोई घूँसेबाज परास्त नही होता तो भिडत को अनिर्णीत घोषित किया जाता है।

अमरीका मे जो पेशेवर घूँसेबाजी होती है, उसके लिये चक्र आदि के अन्य नियम तो अलग हैं, पर घूँसेबाजी के मूल नियम वही हैं।

विश्व मे पेशेवर घूँसेबाजी का सर्वाधिक प्रचलन हेवी वेट शाखा का है। इस वर्ग मे जो घूँसेबाज विजेता होता है, उसे ही घूँसेबाज विश्वजेता (बॉक्सिग चैंपियन) की पदवी से विभूषित किया जाता है। इस वर्ग मे सर्वप्रथम हेवी वेट चैंपियन जेम्स जे० कॉरबेट (१८०२ से १८९७ ई०) थे। इनसे पूर्व बिना दस्ताना पहने जो घूँसेबाजी होती थी, उसमे जॉन एल० सुलिवैन १८८२ से १८९२ ई० तक विश्वजेता रहे।

आधुनिक पेशेवर घूँसेबाजी मे सबसे अधिक वर्षों तक विश्वजेता होने का समान अमरीका के जियो लुइस (Jeo Louis) को प्राप्त है। आप १९३७ से १९४९ ई० तक हेवी वेट के विश्वविजेता घूँसेबाज (पेशेवर) थे। सन् १९५१ से हेवी वेट के विश्व विजेता घूँसेबाज इस प्रकार हैं जियो वालकट (सन् १९५१-५२), रॉकी मारसियानो (सन् १९५२-५६), फ्लॉयड पैटरसन (सन् १९५६-५९) और बाद मे सन् १९६० से ६२ तक भी, इनगेमर जॉनसन (सन् १९५९ से ६०), सोनी लिस्टन (सन् १९६२), कैसियस क्ले (सन् १९६२ से)।

एक विश्वविजेता से उपाधि छीनने के लिये घूँसेबाज को उसे दो बार परास्त करना पडता है और तभी उसे विश्व चैंपियन की उपाधि मिलती है। सन् १९६२ के विश्व हेवी वेट सर्वजेता सोनी लिस्टन को क्ले ने तीन बार हराया, फिर क्ले ने चुनौती देनेवाले पैटरसन, बॉब मूर, ब्रायन लडन आदि घूँसेबाजों को एक एक कर परास्त किया और १९६६ ई० तक अपनी उपाधि कायम रखी।

घूँसेबाजी के हर प्रकार के नियम के बावजूद १९६२ ई० मे अमरीका मे एक भिडत मे ग्रिफिथ नामक घूँसेबाज ने इतना भयानक प्रहार किया था कि उसके नीग्रो प्रतिद्वंद्वी बेनी किड पैरट की मृत्यु १३ दिनो तक बेहोश रहने के बाद हो गई। उसके बाद पेशेवर घूँसेबाजी पर प्रतिबध लगाने की चतुर्दिक् माँग हुई, परतु धनलोलुप अमरीका मे पेशेवर घूँसेबाजी की धूम आज भी मची हुई है।

१९६४ ई० मे टोकियो विश्व ओलिंपिक मे जो घूँसेबाजी की प्रतियोगिता हुई थी उसमे स्वर्णपदक इस प्रकार जीते गए थे सोवियत रूस ३, पोलैंड ३, इटली २, जापान १, अमरीका १।

भारत और बॉक्सिग — यह सतोष की बात है कि भारत में घूँसेबाजी की पेशेवर प्रथा अभी नही आई है। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भारत में भी बॉक्सिग के प्रोत्साहन के लिये कार्यक्रम प्रारभ किए गए। घूँसेबाजी को सर्वाधिक सरक्षण सेना की ओर से प्राप्त

बाँध (देखें पृष्ठ २३१)

रिहद बाँध, मिर्जापुर।

माताटीला बाँध, झाँसी।

(देख पृष्ठ २३५)

चोट बचाने मे जीन फुलमर रस्सियो के बाहर
इस मुठभेड मे विश्व का मिडिलवेट चैंपियन, डिक टाइगर, जीता।
(लास वेगास, नेवादा; अक्तूबर, १९६२)
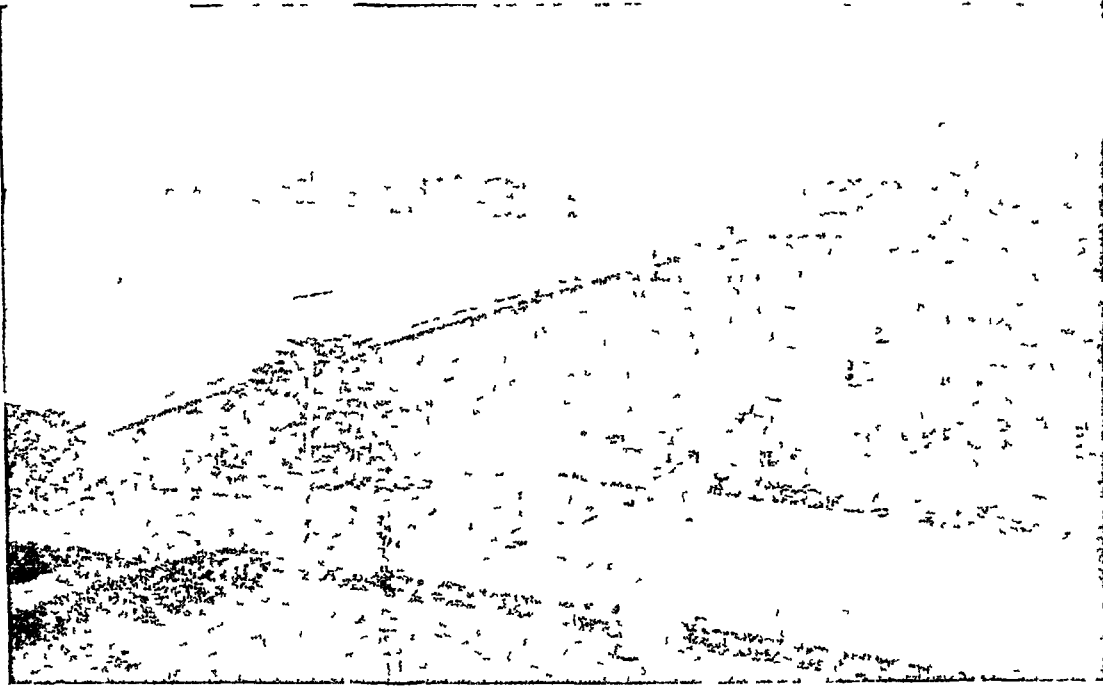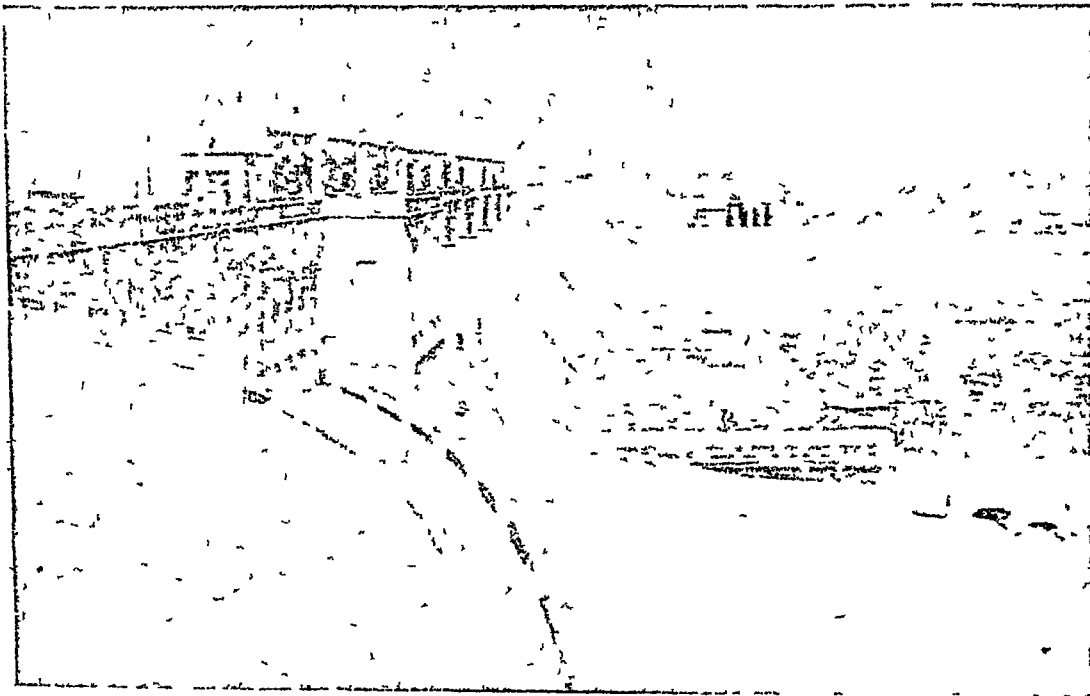
सॉनी लिस्टन और जोरा फोली
तीसरी पारी मे लिस्टन ने फोली को २८ सेकड मे हराया
(डेनवर, कॉलैरेडो, जुलाई, १९६०)।
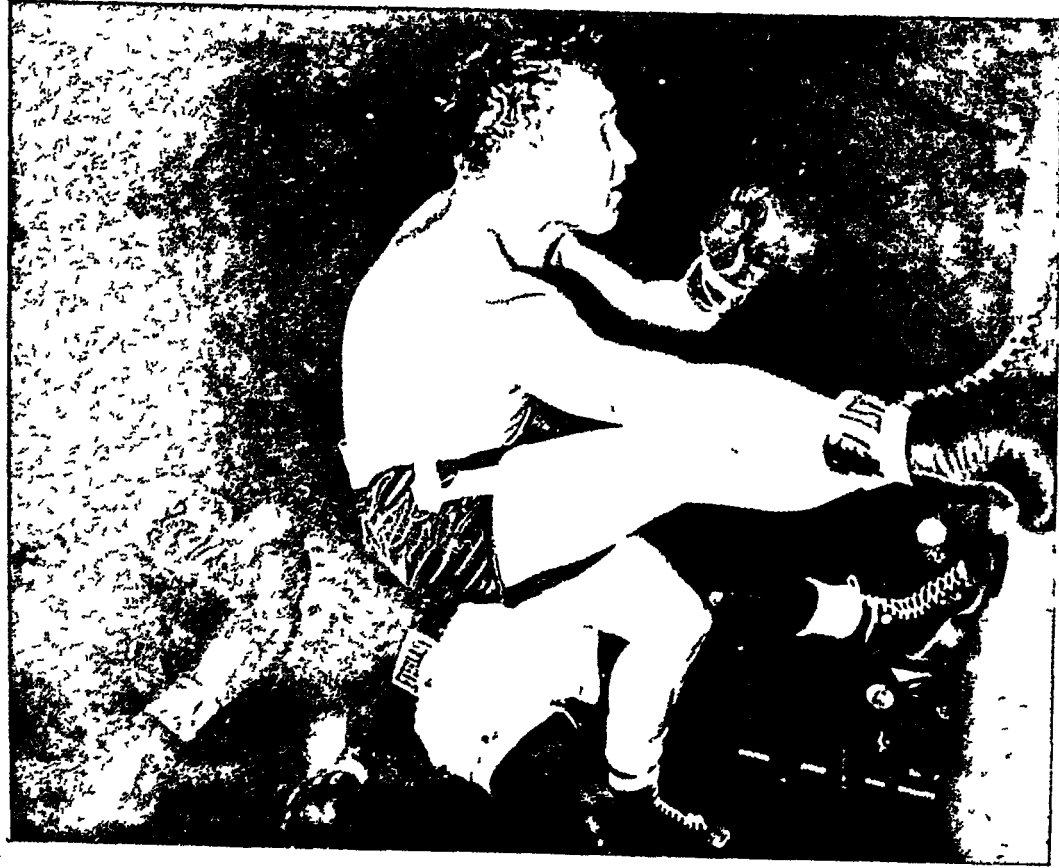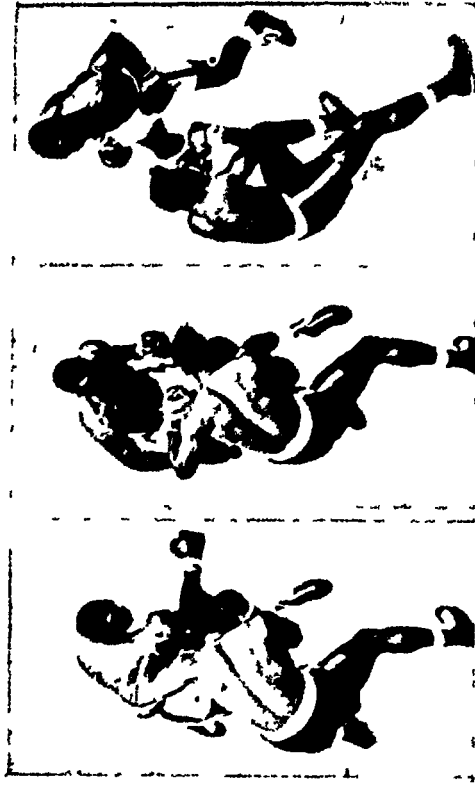
फ्लॉयड पैटर्सन की हार के तीन दृश्य
दाहिने मुक्के से फ्लॉयड को डगमगा कर, हेवीवेट चैंपियन, सॉनी लिस्टन,
ने तुरत बाएँ की मार से फ्लॉयड को गिरा दिया।
(लास वेगास, जुलाई, १९६३)।

हुआ। सेना मे ही पहली बार शौकिया घूँसेबाजी के नियमो द्वारा प्रतियोगिता होने लगी।

बाद मे इडियन ऐमैचर बॉक्सिग फेडरेशन तथा विभिन्न राज्यों मे घूँसेबाजी सघो की स्थापना के बाद भारत मे बॉक्सिग टूर्नामेंट का सिलसिला प्रारभ हुआ। सन् १९६६ ई० में १३वी राष्ट्रीय घूँसेबाजी प्रतियोगिता (National Boxing Championship) आसनसोल में हुई है। इसके पूर्व जो १२ राष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ हुई थी, उन सभी में सेना के घूँसेबाजों ने कमाल दिखाए थे और सेना को सर्वजेता होने का श्रेय प्राप्त होता आ रहा है।

अतरराष्ट्रीय क्षेत्र मे भारत को बॉक्सिग मे सर्वप्रथम सफलता सन् १९६२ के चतुर्थ एशियाई खेलो में (जकार्ता मे) प्राप्त हुई, जब हेवी वेट के शौकिया घूँसेबाज, पद्मबहादुर मल, ने अपने वजन की प्रतियोगिता में स्वर्णपदक ही प्राप्त नही किया, अपितु सर्वोत्तम घूँसेबाज होने का एक और स्वर्णपदक भी जीता। [म० खा०]

बाघ (Tiger) पैंथरा टाइग्रिस (Panthera tigris) फेलिडी कुल (Family Felidae) का प्रसिद्ध, मासभक्षी, स्तनपायी जीव है। यह जगल का राजा कहा जाता है। सिंह को छोडकर यह सब जानवरो से अधिक बलवान् और खूँखार होता है। चेहरा बिल्लियो जैसा गोल, नाक से पूँछ के सिरे तक औसत लबाई १० फुट, मादा कुछ छोटी, शरीर का ऊपरी भाग बादामी, जिसपर खडी, काली धारियाँ होती हैं तथा प्रत्येक की धारियो मे अतर होता है। पेट और टाँगो के भीतर का हिस्सा तथा गाल और आँखो के ऊपर की चित्तियाँ सफेद होती हैं।

यह एशिया के घने जगलो का निवासी है। उत्तर मे आमूर, दक्षिण मे सुमात्रा और जावा, पश्चिम मे जॉर्जिया और पूर्व मे सखालीन तक, तथा यूरोप के दक्षिणी भागो के जगलो मे भी, यह पाया जाता है।

इसका मुख्य भोजन गाय, बैल, हिरन, सूअर और मोर हैं। कुछ बाघ नरभक्षी भी होते हैं। मादा दो से छह तक, लेकिन प्राय दो से तीन तक बच्चे जनती है। यह बच्चो को बहुत प्यार करती है और उन्हे शिकार खेलना सिखाती है। [सु० सिं०]

बॉज़निया एवं हर्ट्सेगोवीना (Bosnia and Herzegovina) स्थिति ४४° ४०′ उ० अ० तथा १७° ०′ पू० दे०। यह यूगोस्लाविया के मध्य मे स्थित सघीय इकाई (Federal unit) है। इसका क्षेत्रफल ५१,१२९ वर्ग मील तथा जनसख्या ३२,७७,९४८ (१९६१) है। पहले यह हगरी तथा ऑस्ट्रिया का एक प्रात भी रह चुका है। सारायेवो (Sarajevo) यहाँ की राजधानी है। [वि० कु० अ०]

बाज़बहादुर शेरशाह सूर द्वारा नियुक्त मालवा के सूबेदार शुजाअत खाँ अथवा सजावल खाँ का ज्येष्ठ पुत्र। उसका असली नाम बयाजीद था। सन् १५५५ ई० मे अपने पिता की मृत्यु होने पर वह 'बाज़-बहादुर' नाम से मालवा की राजगद्दी पर बैठा और मालवा प्रदेश के सभी भागों पर अधिकार कर तथा स्वय को मालवा का सुलतान घोषित कर उसने अपने नाम से खुतबा भी पढवाया। तब गढा प्रदेश को भी जीतकर अपने राज्य मे मिलाने के उद्देश्य से उसने गढा पर चढाई की, परंतु वहाँ की रानी दुर्गावती से उसे परास्त होना पडा। इस प्रकार पराजित होकर जब बाज़बहादुर मालवा लौटा तो उसने अपना सारा ध्यान मदिरापान और गायन वादन मे ही लगा दिया। तब मालवा मे गायन वादन कलाओ का बहुत प्रचार था और उनकी विशेष उन्नति हो रही थी। बाज़बहादुर स्वय भी इन कलाओ मे पूर्ण पारगत था। अत अनेकानेक गायक नर्तकियो को एकत्र कर उन्हे वह उनकी शिक्षा देने लगा। इसी समय रूपमती के प्रति बाज़बहादुर का अत्यत प्रेम हो गया। रूपमती स्वय भी बहुत ही सुदर और गायन वादन कला मे पूर्णतया प्रवीण थी। एक दूसरे के प्रेम मे लीन दोनो हिंदी प्रेमकाव्य की रचना करते और उन्हे गाते थे। उनके कई गीत तथा दोनो के सौदर्य और प्रेम की अनेक कहानियाँ अब तक मालवा निवासियो मे प्रचलित हैं।

उधर दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ अकबर ने मालवा को जीतने के लिये सन् १५६१ ई० मे अहमद खाँ कोका के सेनापतित्व मे मुगल सेना भेजी। बाज़बहादुर तब सारगपुर मे ही था और मुगल सेना के बहुत पास पहुँच जाने पर ही उसे मुगल चढाई का पता लगा। बाज़बहादुर ने डटकर मुगल सेना का सामना किया। मार्च २९, १५६१ ई० को लडाई हुई, जिसमे मुगल सेना विजयी हुई। बाज़-बहादुर खानदेश भाग गया और मालवा पर मुगलो का अधिकार हो गया। अहमद खाँ रूपमती को अपनाने को तत्पर हुआ, परतु जब रूपमती को यह बात मालूम हुई तब प्रेम के कारण रूपमती ने विष खाकर बाज़बहादुर के नाम पर जान दे दी।

बाज़बहादुर अब खानदेश और मालवा के बीच घूमने लगा। उधर अकबर ने पीर मुहम्मद खाँ शेरवानी को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। बाज़बहादुर ने मालवा पर आक्रमण किया परतु एक बार वह विफल रहा। तब उसने खानदेश के सुलतान मीरान मुबारक शाह की सहायता प्राप्त कर बुरहानपुर लूटकर वापस लौटते हुए पीर मुहम्मद पर आक्रमण किया। नर्मदा के दक्षिणी तट पर हुए इस युद्ध मे पराजित होकर पीर मुहम्मद को भागना पडा। राह मे घोडे पर नर्मदा नदी पार करते समय पीर मुहम्मद गिरकर नदी मे डूब गया। तब अन्य सारे मुगल सेनानायक अपनी अपनी सेनाओ के साथ वापस आगरा लौट गए और सन् १५६२ ई० मे मालवा पर पुन बाज़-बहादुर का अधिकार हो गया।

परतु कुछ ही समय बाद अकबर ने अब्दुल्ला खाँ उजबक के नेतृत्व में मुगल सेना मालवा भेजी। तब बाज़बहादुर स्वय ही मालवा छोडकर दक्षिण की ओर भाग गया। पहाडी घाटियो मे यत्र-तत्र भटकते रहने के बाद वह कुछ समय तक बगलाना के जमीदार भेरजी के पास रहा। वहाँ से वह चगेज खाँ और शेर खाँ गुजराती की शरण मे गुजरात गया। उसने कुछ समय दक्षिण में निज़ाम-उल्-मुल्क के पास भी बिताया। तदनतर वह मेवाड के राणा उदयसिंह की शरण मे चला गया।

अकबर चाहता था कि बाज़बहादुर उसके दरबार मे चला आए अत उसे अपने पास लिवा लाने के लिये अकबर ने हसन खाँ खजानची को दो बार बाज़बहादुर के पास भेजा और अत मे सन् १५७० ई० में बाज़बहादुर अकबर के शाही दरबार मे जा पहुँचा। प्रारभ मे उसे एक हजारी जात व सवार का मनसब मिला, जो आगे

बढ़ते बढ़ते दो हजारी जात और सवार का हो गया था। बाजबहादुर की गणना अकबर के मनसबदारों तथा गायकों दोनों में ही होती थी। बाजबहादुर की मृत्यु का ठीक सन् संवत् ज्ञात नहीं, परंतु सन् १५९२ ई० से पहिले अवश्य ही उसकी मृत्यु हो गई थी। बाजबहादुर और रूपमती के मकबरे के अवशेष सारंगपुर के तालाब के बीच में आज भी विद्यमान हैं।

माडू में बाजबहादुर ने रेवाकुंड और रूपमती का महल बनवाए थे तथा पुराने राजप्रासाद को सुधारकर बढ़ाया और सुशोभित किया था, जो तब से बाजबहादुर का महल कहलाता है।

सं० ग्रं० — ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद कृत तबकात -इ- अकबरी, भाग २ – ३, बदायूनी कृत मुंतखब – उत् – तवारीख, भाग २, अबुल फजल कृत अकबरनामा, अबुल फजल कृत आईन –इ– अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, संशोधित संस्करण, भाग १, तारीख-इ– फरिश्ता, मासिर – उल् – उमरा; याज़दानी कृत माडू। [र० मि०]

बाजीप्रभु देशपांडे मराठों के इतिहास में बाजी प्रभु का महत्वपूर्ण स्थान है। ये एक नामी वीर थे। बाजी के पिताजी, हिरडस, मावल के देश कुलकर्णी थे। बाजी की वीरता को देखकर ही महाराज शिवाजी ने उनको अपनी युद्धसेना में उच्चपद पर रखा। ई० स० १६४८ से १६४९ तक उन्होंने शिवाजी के साथ रहकर पुरंदर, कोंडाणा और राजापुर के किले जीतने में भरसक मदद की। बाजी प्रभु ने रोहिडा किले को मजबूत किया और आसपास के किलों को भी सुदृढ किया। इससे वीर बाजी ही मावलों का जबरदस्त कार्यकर्ता समझा जाने लगा। इस प्रांत में उसका प्रभुत्व हो गया और लोग उसका सम्मान करने लगे। ई० सन् १६५५ में जावली के मोर्चे में और इसके बाद डेढ दो वर्षों में मावला के किले को जीतने में तथा किलों की मरम्मत करने में बाजी ने खूब परिश्रम किया। ई० सन् १६५९ के नवंबर की दस तारीख को अफजलखाँ की मृत्यु होने के बाद पार नामक वन में आदिलशाही छावनी का नाश भी बाजी ने बड़ी कौशल से किया और स्वराज्य का विस्तार करने में शिवाजी की सहायता की। ई० सन् १६६० में मोगल, आदिलशाह और सिद्दीकी इत्यादि ने शिवाजी को चारों तरफ से घेरने का प्रयत्न किया। पन्हाला किला से निकल भागना शिवाजी के लिये अत्यंत कठिन हो गया। इस समय बाजीप्रभु ने उनकी सहायता की। शिवाजी को आधी सेना देकर स्वयं बाजी घोड की घाटी के दरवाजे में डटा रहा। तीन चार घंटों तक घनघोर युद्ध हुआ। बाजी प्रभु ने बड़ी वीरता दिखाई। उसका बड़ा भाई फुलाजी इस युद्ध में मारा गया। बहुत सी सेना भी मारी गई। घायल होकर भी बाजी अपनी सेना को प्रोत्साहित करता रहा। जब शिवाजी रांगणा पहुँचे तो उन्होंने तोप की आवाज से बाजी प्रभु को गढ में अपने सकुशल प्रवेश की सूचना दी। तोप की आवाज सुनकर स्वामी के कर्तव्य को पूरा करने के साथ १४ जुलाई, १६६० ई० को इस महान् वीर ने मृत्यु की गोद में सदा के लिये शरण ली [भी० गो० दे०]

बाजीराव—दे० पेशवा।

बॉटलिंक, आटो फॉन (१८१५-१९०४) बॉटलिंक १९वीं शताब्दी के प्रकांड पंडित थे जिन्होंने संस्कृत साहित्य का विधिपूर्वक अध्ययन करके, वर्षों के परिश्रम के पश्चात् एक विशाल शब्दकोश सात भागों में प्रकाशित किया। यह आज भी अद्वितीय ग्रंथ है। ३० मई, १८१५ को इनका जन्म रूस के सेंटपीटर्सबर्ग नगर में हुआ था। बर्लिन तथा बॉन में उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। बॉन उस समय यूरोप में संस्कृत का बड़ा केंद्र था। बर्लिन में फ्रांसिस बॉप नामक संस्कृत विद्वान् भी इनके गुरु थे। विद्वानों के साथ संपर्क तथा वातावरण के प्रभाव ने इनके अध्ययन को नया मोड़ दिया।

यद्यपि प्रारंभ में विश्वविद्यालय में इनका विषय अरबी तथा फारसी था, तथापि यह संस्कृत की ओर झुके और आगे चलकर इसी विषय को लेकर इन्होंने विश्वख्याति पाई। १८४० में इन्होंने 'ग्रामर संस्कृत' नामक ग्रंथ लिखा जो पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' पर आधारित था। १८४३ में इसी विषय को लेकर इनका विस्तृत ग्रंथ 'पाणिनि ग्रामेटिक' प्रकाशित हुआ जिसमें सूत्रों पर सरल जर्मन भाषा में टीका की गई है। इनका एक ग्रंथ क्रोमेस्टो में 'क्रिस्टोमैथी सर ला एंशेंट संस्कृत' नाम से प्रकाशित हुआ, और फिर जर्मन में कालिदास के शाकुंतल का अनुवाद मूल सहित निकला। १८११ में 'क्रिस्टोमैथिए संस्कृत' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इनका संस्कृत वार्टरबुख १८५२ से ७५ तक के कठिन परिश्रम का प्रमाण है। इसमें इनका हाथ रॉथ तथा वेबर ने बँटाया था। इस ग्रंथ में प्रत्येक शब्द की पूर्ण रूप से व्याख्या की गई है तथा संपूर्ण संस्कृत साहित्य में जहाँ भी उसका उल्लेख है, अंकित कर दिया गया है। इससे मूल ग्रंथों में उनको सरलता से ढूँढ़ा जा सकता है। सन् १९०४ में जर्मनी के लाइपजिग नगर में इस विद्वान् का देहांत हो गया।

सं० ग्रं० — बकलैंड डिक्शनरी ऑव इंडियन बायोग्राफी; इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका। [बै० पु०]

बाटेविया १ यूरोप में इस नाम का एक देश था जहाँ प्राचीन बाटवी जाति के लोग रहते थे। सन् १७९५ से लेकर १८०६ ई० तक इसका बाटेविया नाम रहा, बाद में लातीनी भाषा में इसका नाम हॉलैंड कर दिया गया, जो बदलकर अब नीदरलैंड्स कर दिया गया। (देखें नीदरलैंड्स)। २ हिंदेशिया की राजधानी जकार्ता का पुराना नाम है। ३ संयुक्त राज्य, अमरीका, का एक नगर है, जो शिकागो से ३५ मील पूर्व में है। ४ न्यूयॉर्क (संयुक्त राज्य, अमरीका) का नगर है, जो रोचेस्टर से ३३ मील दक्षिण-पश्चिम में है।

बाड़मेर १ जिला, यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर में जैसलमेर, उत्तर-पूर्व में जोधपुर, दक्षिण में जालोर तथा पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान स्थित है। इसका क्षेत्रफल १०,१७० वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,४९,९७४ (सन् १९६१) है।

२ नगर, स्थिति २५° ४५' उ० अ० तथा ७१° २३' पू० दे०। उपर्युक्त जिले का एक प्रमुख नगर है। इसकी स्थापना राजा बाहद ने की थी। अत पहले इसका नाम बाहदमेर था जो बाद में बाडमेर हो गया। इसकी जनसंख्या २७,६०० (१९६३) है।

बाढ़ तथा बाढ़ नियंत्रण किसी नदी की सामान्य जल अवधि के बाहर जब पानी बहने लगता है तो कहते हैं नदी में बाढ आई। इस

कथन का आशय स्पष्ट है कि सामान्य मात्रा से अधिक जल जब नदी या नाले मे वहता है तब उससे नदी के तटों पर स्थित तथा आस-पास की नीची भूमि जलमग्न हो जाती है, जिससे धन तथा जीवन दोनो की हानि होती है।

ज्यो ज्यो मनुष्य अपनी विस्तारक चेष्टाओ के अतर्गत नदियो के सामान्य वहावक्षेत्र मे हस्तक्षेप करता है, त्यो त्यो उसको वाढ निवारण हेतु यथानुकूल आयोजन करना आवश्यक हो जाता है। अत इस विकासयुग मे जब मानव की जनसख्या दिन प्रति दिन वढ रही है, वाढ तथा वाढ नियत्रण का विषय प्राय सभी देशो मे मानव बुद्धि तथा सतर्कता को एक चुनौती देता दीखता है।

भारत नदियों का देश है। नदियो से जहाँ अनेक लाभ हैं वहाँ इनमे जव वाढ आ जाती है तव भयकर विनाश भी होता है, और कई वार प्रलयकारी दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। भारत मे वाढो द्वारा जो क्षति प्रति वर्ष होती है, उसका सन् १६५३ से १६६३ के आँकडो से निकाला गया अनुमानत मूल्याकन भिन्न राज्यो मे इस प्रकार है

राज्य	वार्षिक औसत हानि (हजार रुपया)
१ आध्र प्रदेश	४,७७७
२ असम	४६,२५२
३ विहार	१,१६,४१८
४ महाराष्ट्र तथा गुजरात	८,६६४
५ जम्मू कश्मीर	७१७
६ केरल	६३६
७ मध्य प्रदेश	२५१
८ मद्रास	१,१५६
९ मैसूर	४३८
१० उडीसा	४६,१०६
११ पजाव	१,१२,७७६
१२ राजस्थान	६,१३५
१३ उत्तर प्रदेश	१,६२,६१०
१४ पश्चिमी वगाल	७३,१०२
१५ देहली	२,७६७
१६ हिमाचल प्रदेश	३,३७६
१७ मनीपुर	३१६
१८ त्रिपुरा	६१५

वाढ निवारण की समस्या वडी ही जटिल है। यथार्थ मे पूर्ण वाढ निवारण तो सभव नहीं, केवल वाढो का नियत्रण ही हो सकता है। वाढवाले क्षेत्रो मे विविध प्रकार की समस्याएँ सामने आती है। कही तो नदियाँ अपने तटो को लाँघकर तटीय क्षेत्रो को जलमग्न कर देती हैं, जिससे सपत्ति की क्षति ही नही होती, वरन् उससे भी अधिक चिंताजनक वात, समाज के सामान्य जीवन मे उथल पुथल, हो जाती है तथा कृषिक्षेत्रो मे अधिक पानी भर जाने के कारण उत्पादन कम हो जाता है।

कही ऐसा होता है कि नदी में पानी वढ जाने के कारण निकट-वर्ती क्षेत्रो में दूर दूर तक पानी की निकासी रुक जाती है और वे क्षेत्र तव तक जलमग्न रहते हैं, जब तक नदी का जलस्तर नीचा नही हो जाता। यदि साथ ही वर्षा भी भारी हुई, तो उन क्षेत्रो मे पानी के रुकने के कारण वडी हानि हो जाती है। कई स्थानों पर वाढ के समय नदियाँ अपने किनारो का कटाव करती हैं, जिसके कारण अच्छी उपजाऊ भूमि वेकार हो जाती है, अथवा कुछ आवादी के क्षेत्र भी कटाव के कारण नष्ट हो जाते हैं।

समुद्रतटीय क्षेत्रो मे वाढ का प्रकोप वहुधा समुद्र के ज्वारभाटे के वेग से, अथवा तूफान आदि से, होता है। कुछ क्षेत्रो मे नदियो की धारा मे रेत जम जाने से, अथवा अन्य कारणो से, जलमार्ग सकुचित हो जाने पर वाढ का प्रकोप वढ जाता है और समीपस्थ क्षेत्रो मे उसके कारण वडी क्षति होती है।

वाढो की समस्या के समाधान मे वाढ से सवधित आँकडों का अध्ययन तो अनिवार्य है ही, साथ ही आवश्यकता इस वात की भी है कि वाढ से सवधित निर्माण का कार्य ठीक से किया जाए, अथवा उसकी देखभाल उचित रूप से हो। थोडी ढीलढाल से भी काम विगड सकता है, जिसके परिणाम जीवनघातक ही नही वरन आर्थिक दृष्टि से भी वहुत ही असह्य हो सकते है। अत यह आवश्यक है कि वाढ सवधी योजनाएँ वनाने का तथा उनसे सवधित कार्यो का सपादन वडी सतर्कता और सावधानी से हो।

शताब्दियो से होती आई विनाशकारी लीलाओं का निर्मूलन थोडे ही समय मे सभव नही है। इसके अतिरिक्त वाढ नियत्रण के लिये दिए गए सुझाव भी सदैव पूर्ण रूप से सार्थक सिद्ध नहीं हो पाते। प्रकृति साधारणतया ऐसी असख्य परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देती है जिनके विषय मे पहले से कुछ कहा नही जा सकता। अतएव वाढ नियत्रण योजनाओ से जो कुछ भी हम प्राप्त कर सकते हैं, वह है केवल हानियो और क्षतियो मे कमी। वाढप्रदत्त समस्याओ का सर्वथा निर्मूलन नही हो सकता।

चार क्षेत्र — भारत की वाढ सवधी समस्याओ के अध्ययन हेतु देश को निम्नलिखित चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है

(१) उत्तर-पश्चिम की नदियो का क्षेत्र, (२) गगा नदी का क्षेत्र, (३) ब्रह्मपुत्र नदी का क्षेत्र और (४) दक्षिणी पठार का क्षेत्र।

इन क्षेत्रो की प्राकृतिक वनावट एक दूसरे से भिन्न है। उत्तर पश्चिम क्षेत्र की नदियाँ हिमालय से, अथवा अपने अतरग क्षेत्र से, निकलकर अरव सागर की ओर वहती हैं। इन क्षेत्रो मे वर्षा अधिक नही होती, फिर भी यदा कदा वहुत से क्षेत्र वाढ से ग्रस्त हो जाते हैं। इसका एक विशेष कारण यह है कि इन क्षेत्रो मे कम वर्षा होने के कारण नदियो मे जल निकासी का मार्ग सकुचित हो जाता है तथा भूतल मे ढाल भी कम होती है। अतएव एकाएक पानी पडने पर कभी कभी भारी वाढ आ जाती है।

गगा नदी का क्षेत्र वहुत विस्तृत है और वहुत सी सहायक नदियाँ इसके साथ मिलकर वहुत वडे कृषि योग्य क्षेत्र को जलप्लावित करती हैं। कुछ नदियाँ हिमालय से निकलती हैं और कुछ मध्य भारत स्थित पर्वतश्रेणियो से निकलती हैं। गगा नदी के क्षेत्र मे वाढो का प्रकोप विशेषकर हिमालय से लगी तराई और उससे लगे दक्षिण के उपजाऊ मैदानों मे वहुधा होता रहता है।

तीसरा क्षेत्र ब्रह्मपुत्र नदी का है। इस क्षेत्र मे प्राय हर वर्ष नदी के तटो को पार करके पानी बहुत फैल जाता है। यहाँ की कृषि का ढग तथा साधारण जीवनयापन इन परिस्थितियो के अनुसार ही ढला है। दक्षिणी क्षेत्र मे नदियाँ विशेषकर वर्षा के जल से ही बाढ़ग्रस्त होती हैं। इस क्षेत्र मे यदा कदा बाढ आती रहती है और 'डेल्टा' मे पानी का फैलाव बहुधा होता ही रहता है। यहाँ भी कृषि-प्रणाली भी इसके ऊपर ही आधारित है।

आँकडों का संकलन — *बाढ नियंत्रण योजनाएँ आर्थिक तथा* इजीनियरी दृष्टि से तभी सफल हो सकती हैं जब बाढपीडित क्षेत्रो की नदियों की जलविज्ञान तथा स्थलाकृति विज्ञान सबधी जाँच (hydrology and topography) का गहन अध्ययन किया जाए। इस विषय मे सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि नदी के विशेष प्रवेश्य स्थानो पर बाढ के बहाव का सही अनुमान लगाया जाए। इसके अतिरिक्त स्थल से सबधित ऐसे आँकडो का भी एकत्र करना आवश्यक है जिनका उपयोग विस्तृत क्षेत्रो मे बाढ़ के बहाव का अनुमान लगाने मे किया जा सके।

भारत के अधिकतर क्षेत्रो के ऐसे आँकडे प्राप्य नहीं हैं। इस ओर कुछ प्रगति हुई है, लेकिन इन आँकडो को इकट्ठा करने मे वर्षों लगेंगे, तभी आशकित बाढो के विषय मे निश्चित रूप से उनकी मात्रा और समयातर का सकेत मिल सकेगा। ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिये किसी केंद्रीय व्यवस्था पर ही उत्तरदायित्व होना चाहिए, जो इन आँकडों को आधुनिक प्रणाली से संकलित कर सके। सकलन के बाद इन आँकडो का एकीकरण तथा विश्लेषण भी समुचित रूप से होना आवश्यक है।

जलविज्ञान सबधी अध्ययन में भिन्न भिन्न प्रदेशों और समीपवर्ती देशों की सहायता अथवा सहयोग की आवश्यकता होती है, विशेषकर उन क्षेत्रों की जिनमें होकर हमारी नदियाँ बहती हैं। इसी कारण अपने देश मे राज्यो के सहयोग से नदीनिस्सरण आकडो को इकट्ठा करने का कार्य बडा महत्वपूर्ण समझा गया है। केवल बाढ नियत्रण की दृष्टि से ही नहीं, वरन् समस्त प्राप्त जल साधनो के पूर्णरूपेण उपयोग के विचार से भी यह कार्य अनिवार्य है।

उदाहरणार्थ, भूटान के समीपवर्ती कतिपय क्षेत्रो मे हिमालय की कुछ नदियों के लिये निस्सरणद्योतक यत्र तथा वायु निरीक्षण केंद्र बना दिए गए हैं। इस वायुजलमापक यत्रकेंद्र के सस्थापन का कार्य भूटान सरकार के सहयोग से हुआ है। वहाँ पर बेतार के तार के केंद्र हैं, जिनसे असम और पश्चिमी बगाल में बाढ नियत्रण अधिकारियों को सूचना दे दी जाती है। इस प्रकार की सूचना का प्रबध देश के अन्य बाढग्रस्त क्षेत्रो मे भी किया जा रहा है। ऐसी सूचनाओं द्वारा बाढनियत्रण, अथवा बाढ-निवारण, तो नहीं हो सकेगा, किंतु बाढो द्वारा होनेवाली क्षति मे कमी अवश्य की जा सकेगी।

इस सबध मे मैदानो, खेतो, जगलो और बेकार भूमि की भिन्न-भिन्न सामाजिक, आर्थिक स्थितियों और विकास कार्यों पर विचार करना भी आवश्यक है। जैसे-जैसे भूमि का विकास होता जाता है, वैसे वैसे क्षेत्रो की शकल बदल जाती है। जो क्षेत्र आज बाढों के रोकने मे सहायक होते हैं वे ही कुछ समय बाद बाढ के बढाव मे योग देते हैं।

इसलिये यह स्पष्ट है कि प्रगतिशील देश मे बाढ़ों का अनुमान एक भिन्न दृष्टिकोण से ही लगाया जा सकता है। हमें अपनी खोजबीन द्वारा यह जानना होगा कि आगामी वर्षों मे क्षेत्रो के विकसित हो जाने के पश्चात् वर्षा से गिरे पानी के बहाव मे किस मात्रा मे बढ़ोतरी होगी। इसी दृष्टि मे रखते हुए ही हम बाढ नियत्रण के हेतु किए जानेवाले कार्यों की उचित योजना बना सकते हैं।

क्षेत्रीय आयोग और नियंत्रण बोर्ड — राजकीय और अतर्राष्ट्रीय सीमाएँ भी यदाकदा नदी सबधी योजनाओं मे बाधा उपस्थित करती हैं। ब्रह्मपुत्र, गगा, उत्तर-पश्चिमी नदी, तथा मध्य भारत मे क्षेत्रीय आयोग बनाए गए हैं। ये क्षेत्रीय आयोग भिन्न भिन्न बाढ नियत्रण बोर्डों से परामर्श करके बाढ सबधी सारी समस्याओं का समाधान करते हैं।

बहुधा ऐसा होता है कि बाढ़ सबधी समस्याएँ बाढ के समय, या उसके तत्काल बाद, ही उग्र रूप से सामने आती हैं। जब बाढ की बला टल जाती है तब अन्य बडी योजनाओ के अतर्गत बाढ की समस्याएँ भी समा जाती हैं और उनकी ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया जाता। अतएव जहाँ बाढ़ो द्वारा जान और माल की क्षति प्रति वर्ष होती रहती है वहाँ की समस्याओ का समाधान क्षेत्रीय आयोग तथा बाढ नियत्रण बोर्डों की देखरेख मे ही होना चाहिए।

भूमिसरक्षण — *बहुधा यह कहा जाता है कि भूमिसरक्षण यदि* उचित रूप से किया जाए, तो बाढो की मात्रा और प्रवेग में कमी हो सकती है। ऐसा कहना साधारण बाढ़ो के सबध में उपयुक्त हो सकता है, किंतु जहाँ बडी बाढें आ जाती हैं वहाँ छोटी मोटी भूमिसरक्षण योजनाएँ काम नहीं कर सकतीं। फिर भी भूमिसरक्षण एक बडा महत्वपूर्ण कार्य है और हमारे देश में यह किया जाना आवश्यक है। इस दिशा में ऐसे नियम बनने चाहिए जिनसे भूमिसरक्षण योजनाओं का सहयोग बाढ़ निवारण योजनाओं को यथानुकूल मिल सके।

यद्यपि बाढ सबधी योजनाएँ बहुधा अनुभवी अधिकारियों के समक्ष रखी जाती हैं और काफी सोचने विचारने के बाद उनका निर्माण किया जाता है, फिर भी नदी घाटियों में बहुत सी ऐसी अज्ञात बातें सामने आती हैं, जिनका समाधान गणित और अनुभव से नहीं हो पाता। अतएव यह आवश्यक होता है कि बाढ सबधी समस्याएँ नदी घाटियो के छोटे या बडे माडल बनाकर, अध्ययन हेतु गवेषणा केंद्रों के सुपुर्द की जाएँ।

पश्चिमी देशो मे तथा हमारे देश मे भी माडल से अध्ययन करने का चलन है। ऐसा करने से कभी कभी लाखो रुपए की बचत हो जाती है। साथ ही योजना सबधी कार्य भी सुचारु रूप से सपन्न हो जाते हैं। हमारे देश में ऐसे गवेषणाकेंद्र प्राय सभी प्रातों में हैं। एक केंद्रीय गवेषणाकेंद्र पूना के समीप खडकवासला मे है। इस केंद्र पर ब्रह्मपुत्र नदी का बडा मॉडल बनाया गया था। उसपर अध्ययन किए जाने के पश्चात ही उस घाटी में अनेक शहरो के बचाव के लिये बाढ से सबधित कार्य किए गए हैं।

जनता का सहयोग — अन्य सार्वजनिक कार्यों की अपेक्षा बाढ सबधी योजनाओ मे जनता के सहयोग की आवश्यकता अधिक होती है। यदि थोडा थोडा करके भी प्रत्येक व्यक्ति बाढ़ निवारण

हेतु अपने खेत, खलिहान, गाँव तथा कस्बो मे काम करे तो इस काम को मात्रा बहुत हो जाती है, किंतु ऐसा होता नही है।

इसके विपरीत बहुत सी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं, जहाँ सार्वजनिक कार्य बाढो को बढावा देते हैं। ऐसी स्थितियो मे बाढ निवारण योजनाओ का समन्वय अन्य योजनाओ के साथ इस रूप से होना चाहिए कि उनकी पूर्ति बाढो मे वृद्धि न करे और यदि वृद्धि हो भी तो उससे मुक्ति का मार्ग साथ साथ ही निकल सके। बाढ सबधित योजनाएँ सिंचाई, यातायात, रेलवे तथा जलप्रदाय आदि जितने भी कार्य है, उन सबसे कही न कही सबधित होती हैं।

यह सब होते हुए भी हमे इस बात से सतर्क रहना है कि नियत्रण तथा निवारण के कार्य मे प्रकृति के साथ हमारा सदा द्वद्व रहेगा। प्रकृति से मोर्चा लेना साधारण काम नही है। अतएव यह स्पष्ट है कि बाढ निवारण तथा नियत्रण के हेतु व्यय करने मे हमे सकोच नही करना चाहिए। वैसे तो जल का उचित मात्रा मे सवरण तथा उसका सदुपयोग हमारे देश के विकास के लिये अति आवश्यक है। ऐसे सवरण द्वारा भूमिसरक्षण भी हो जाता है।

बाढ सबधी योजनाओ के अतर्गत सिंचाई तथा पनबिजली योजनाएँ भी आती हैं। इसी कारण बाढ निवारण तथा नियत्रण योजनाएँ बहुधा बहुमुखी होती हैं और उनमे धन भी बडी मात्रा मे व्यय होता है। इसके अतिरिक्त इन योजनाओ के सपन्न होने मे समय भी लगता है और जल्दबाजी करने मे तो कभी कभी लाभ के बजाय हानि हो जाती है।

बाढ तथा बाढ नियत्रण का विषय कृषि के विकास, जलसाधनो के उपयोग, यातायात, स्वास्थ्य तथा बहुत से अन्य सामाजिक विषयो से उलझा रहता है। उदाहरणार्थ, बाढ निकल जाने के बाद, बहुधा बाढ-ग्रस्त क्षेत्र मे बहुत-सी बीमारियाँ फैलने लगती हैं। प्रशासन के ऊपर उस समय भारी उत्तरदायित्व यह आ पडता है कि बीमारियो की रोकथाम यथासमय हो जाय।

इसके अतिरिक्त बाढो द्वारा बहुधा सडक, रेल, तार आदि, यातायात के साधनो मे भी रुकावट पड जाती है। उनके पुन सचालन का कार्य भी प्रशासन को करना पडता है। कृषि योग्य भूमि के जलमग्न रहने से कृषि की तो हानि होती ही है, प्रशासन को भी इस दिशा मे बडा काम करना पडता है, जिससे कृषको की कठिनाइयाँ कम हो सकें।

बाढ निवारण हेतु बहुत से क्षेत्रो मे अतिरिक्त नालो का तथा कही कही बाँधो का प्रबध भी किया जाता है, किंतु इन दोनो साधनो के कारण प्रकृति की स्थायी रूपरेखा मे परिवर्तन होता है और इसके परिणामो को दूर करने के लिये समुचित साधन जुटाने पडते हैं। अमरीका जैसे देश मे भी बाढ तथा बाढ नियत्रण की समस्या का स्थायी हल अभी तक नही निकल पाया है।

यह समस्या सदा से जटिल रही है और जटिल रहेगी। सभवतया मनुष्य को बाढो के साथ साथ रहना सीखना पडेगा, जैसा युग युगातरो से मानव करता आया है। वास्तव मे तो ससार, मे बहुत सी उर्वर भूमि बाढो की ही देन है। बाढो से भूमि की उर्वरता का सरक्षण भी होता है। अत, बाढ तथा बाढ नियत्रण की समस्या का समाधान इस दृष्टि से करना होता है कि लाभ और हानि दोनो को मिलाकर लाभ शेष रह जाय। इसके अतिरिक्त और कोई उपचार मानव के लिये कल्याणकारी सिद्ध नही हो सकता। [बा० ना०]

बाणासुर अशना से उत्पन्न, असुरराज बलि वैरोचन के सौ पुत्रो मे सबसे ज्येष्ठ, शिवपार्षद, परमपराक्रमी योद्धा और पताललोक का प्रसिद्ध असुरराज जिसे महाकाल, सहस्रबाहु तथा भूतराज भी कहा गया है। शोणपुरी, शोणितपुर अथवा लोहितपुर इसकी राजधानी थी। असुरो के उत्पात से त्रस्त ऋषियो की रक्षा के क्रम से शकर ने अपने तीन फलवाले बाण से असुरो की विख्यात तीनो पुरियो को वेध दिया तथा अग्निदेव ने उन्हे भस्म करना आरभ किया तो इसने पूजा से शकर को अनुकूल कर अपनी राजधानी बचा ली थी (मत्स्य०, १८७-८८, ह० पु०, २।११६-२८, पद्म०, स्व०, १४-१५)। फिर इसने शकरपुत्र बनने की इच्छा से घोर तपस्या की। प्रसन्न होकर शिव ने इसे कार्तिकेय के जन्मस्थान का अधिपति बनाया था (ह० पु० २।११६-२२)। शिव के ताडवनृत्य मे भाग लेने से शकर ने प्रसन्न होकर इसकी रक्षा का बीडा उठाया था।

उषा अनिरुद्ध की पुराणप्रसिद्ध प्रेमकथा की नायिका इसी की कन्या थी। स्वप्नदर्शन द्वारा कृष्णपुत्र अनिरुद्ध के प्रति पूर्वराग उत्पन्न होने पर इसने चित्रलेखा (दे० 'चित्रलेखा') की सहायता से उसे अपने महल मे उठवा मँगाया और दोनो एक साथ छिपकर रहने लगे। किंतु भेद खुल जाने पर दोनों बाण के बदी हुए। इधर कृष्ण को इसका पता चला तो उन्होने बाण पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध हुआ, यहाँ तक कि इसी मे एक दाँत टूट जाने से गणेश 'एकदत' हो गए। अत मे कृष्ण ने बाण को मार डालने के लिये सुदर्शन चक्र उठाया किंतु पार्वती के हस्तक्षेप तथा आग्रह पर केवल अहकार चूर करने के निमित्त इसके हाथो मे से दो (पद्म०, ३।२।५०) अथवा चार (भाग० पु०, १०।६३।४९) को छोडकर शेष सभी काट डाले। फिर उन्होने उषा अनिरुद्ध का विवाह समानपूर्वक द्वारका मे सपन्न कराया (दे० 'अनिरुद्ध')। [श्या० ति०]

बातिक (देखें छींट छपाई)

बादशाह कुली खाँ मुगल सम्राट् औरंगजेब के राज्य का योग्य सरदार और सैनिक, जो तहव्वुर खाँ के नाम से प्रसिद्ध था। औरगजेब ने इसे अजमेर का फौजदार नियुक्त किया। राजपूतों के विद्रोह के समय तहव्वुर ने अपनी वीरता का परिचय दिया। राजपूतो के माडल दुर्ग पर अधिकार करने के प्रसादस्वरूप इसे बादशाह कुली खाँ की उपाधि दी गई। राजपूतो ने राजकुमार मुहम्मद अकबर और बादशाह कुली खाँ को अपने पक्ष मे मिलाकर विद्रोह के लिये उत्साहित किया। इस विद्रोह मे पहले तो बादशाह कुली खाँ सम्मिलित हुआ किंतु बाद मे वह स्वय औरगजेब से मिलने गया, और वहीं इसकी हत्या कर दी गई।

बादाम का पेड होता है और इसके बीज या नट (nut) को भी बादाम कहते हैं। बादाम पश्चिम एशिया, बारबरी और मोरक्को का देशज हैं। पर अब यह अनेक देशो, जैसे फ्रास, इटली, स्पेन, पोर्चुगाल,

उत्तरी अफ्रीका, अमरीका के कैलिफॉर्निया, तुर्किस्तान और भूमध्य-सागरीय देशों में उपजाया जाता है। कश्मीर, पंजाब के पहाड़ी भागों और अफगानिस्तान में भी बादाम पैदा होता है। भारत का बादाम अच्छे किस्म का नहीं होता।

बादाम दो प्रकार का होता है। एक मीठा और दूसरा कड़वा। मीठे बादाम का लैटिन नाम प्रूनस ऐमिग्डैलस (Prunus amygdalus) डलसिस और कड़वे बादाम का लैटिन नाम प्रूनस ऐमिग्डैलस ऐमारा है। यह रोजेसीई (Rosaceae) या ऐमिग्डेली (Amygdalae) कुल का पौधा है। कड़वा बादाम मोरक्को, ऐल्जीरिया और कैलिफॉर्निया में अधिकता से होता है। मीठे बादाम के फूल का रंग सुंदर, लाल गुलाबी होता है और कड़वे बादाम का

बादाम के पत्ते, फूल, फल तथा बीज

फूल सफेद होता है। इन दोनों के वृक्ष मध्यम कद के होते हैं। कोई कोई २५ से ३० फुट तक ऊँचा होता है। रूस में एक बौने किस्म का बादाम उपजता है, जिसका पौधा केवल ४ फुट के लगभग होता है। पत्ते भूरे रंग के होते हैं। फागुन तथा चैत्र मासों में पेड़ फूल देते हैं। फूलों की सुंदरता के कारण वृक्ष बहुधा बगीचों में लगाए जाते हैं। इसका फल लंबा चिपटा दो दालोंवाला होता है, जो पतले भूरे रंग के आवरण से ढँका रहता है। फल के पक जाने पर दो ऊपरी सतह, जिन्हें वाह्यफलभित्ति (epicarp) और मध्यफलभित्ति (mesocarp) कहते हैं, फटकर अलग हो जाते हैं, किंतु अंतःफलभित्ति (endocarp) तिकोना भूरे रंग का कड़ा छिलका बन जाता है, जिसके अंदर बीज ढँका रहता है। मीठे बादाम में यह छिलका कड़ा और मोटा होता है, पर कड़वे बादाम में यह पतला या शीघ्र टूटनेवाला होता है।

मीठे बादाम की गिरी भोज्य पदार्थ है। कच्ची या नमक के साथ यह भूनकर खाई जाती है और मिठाई, पेस्ट्री इत्यादि बनाने के काम में आती है। इसमें तेल होता है। तेल दो प्रकार का होता है। एक स्थिर तेल, जो दोनों प्रकार के बादामों में होता है और दूसरा वाष्पशील तेल, जो केवल कड़वे बादाम से प्राप्त होता है। तेल के अतिरिक्त बादाम में प्रोटीन और खनिज लवण होते हैं, जो पोषण की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं।

बादाम का औसत संघटन इस प्रकार है

घटक	प्रति शत मात्रा
तेल	४१ ०१
पानी	२७ ७२
प्रोटीन	१६ ५०
नाइट्रोजन रहित	१० ७०
कार्बनिक पदार्थ	२ ८०
राख	१ ७७
योग	१०० ००

राख में कैल्सियम, पोटैसियम, लोहा, फास्फेट आदि रहते हैं। विटामिन ए और बी भी फल में पाए गए हैं। भोज्य पदार्थों में बादाम का महत्व प्रोटीन के कारण होता है। मांस और मछलियों से भी अधिक प्रोटीन इसमें रहता है। वानस्पतिक और अन्य प्रोटीनों से इसका प्रोटीन अधिक सुपाच्य होता है। [स० जा०]

बादाम का तेल इस तेल को ब्रिटिश फार्माकोपिया में ओलियम ऐमिग्डेली (Oleum amygdalae) कहते हैं। यह बादाम की गिरी से प्राप्त होता है। गिरी को कोल्हू में पेरकर, अथवा विलायकों द्वारा, तेल को अलग करते हैं। तेल की मात्रा मीठे बादाम में ४४½% से ५५ % और कड़वे बादाम में ३८ % से ४८ % हो सकती है। बादाम का तेल अशुष्कनीय स्थिर तेल है। यह हलके पीले रंग का होता है। इसकी गंध विशेष प्रकार की होती है। विलायकों द्वारा प्राप्त तेल कुछ मैले रंग का होता है। इस तेल के विशिष्ट गुण इस प्रकार हैं :

आपेक्षिक घनत्व (१५°/१५° सें०)	० ९१४-० ९२१
हिमांक	−१५° से −२०° सें०
साबुनीकरण मान	१८३ ३ — २०७ ६
आयोडीन मान	० ५ — ३ ५
राइक्ट माइसैल मान	० ५

यह जल में अविलेय, ऐल्कोहॉल में अल्प विलेय और ईथर, क्लोरोफार्म तथा बेंजीन में सहज विलेय है। इसमें मुख्यतः ओलिइक, लिनोलिइक (५ ९७ %) के अतिरिक्त, संतृप्त अम्लों में मिरिस्टिक और पामिटिक अम्ल कुछ रहते हैं। सूक्ष्म मशीनों के लिये स्नेहक तेल के निर्माण, ओषधियों, चेहरे की क्रीमों तथा बिस्कुट या अन्य मिठाइयों के बनाने में यह प्रयुक्त होता है।

कड़ुए बादाम से स्थिर तेल के अतिरिक्त ० ५ % से ७ % तक वाष्पशील तेल भी प्राप्त होता है। स्थिर तेल निकाल लेने पर जो अवशिष्ट अंश बच जाता है उसका पानी के साथ संपेषण करते हैं। अवशिष्ट अंश में एमिग्डैलिन नामक ग्लूकोसाइड रहता है और उसमें एक एंजाइम इमल्सिन रहता है। जल की उपस्थिति में इमल्सिन एमिग्डैलिन का विघटन कर ग्लूकोज, बेंजल्डीहाइड और हाइड्रोसायनिक अम्ल मुक्त करता है। इस प्रकार से प्राप्त उत्पाद के आसवन से वाष्पशील तेल प्राप्त होता है, जिसमें बेंजल्डीहाइड और हाइड्रोसायनिक अम्ल दोनों रहते हैं। आसुत को चूने और फेरस सल्फेट के साथ उपचारित करने से हाइड्रोसायनिक अम्ल निकाला जा सकता है। बेंजल्डीहाइड के कारण आसुत में विशेष गंध होती है। इस गंध के कारण ही सगंध तेल के रूप में इसका व्यवहार होता है। ऐसे तेल के विशेष गुण निम्नलिखित हैं

गुण	हाइड्रोसायनिक अम्ल सहित तेल	हाइड्रोसायनिक अम्ल रहित तेल
रग	बिना रग का, पर रखने पर धीरे धीरे पीला हो जाता है	बिना रग का, पर रखने पर धीरे धीरे पीला हो जाता है।
आ० घ०(१५° सें०)	१ ०४५ – १ ०७०	१ ०५० — १ ०५५
ध्रुवण घूर्णकता (optical activity)	कभी कभी थोडा दक्षिणावर्त ० ६ पर	निष्क्रिय
अम्ल मात्रा	२%, ४%, तथा अधिकतम ११%	०–० ५%
ऐल्कोहल मे विलेयता	७०% मे, बराबर या दूनी मात्रा ६०% मे ढाई गुना	दूना तथा अधिक भी ६०% मे
अपवर्तनाक	१ ५३३—१ ५४४	१ ५४२—१ ५४६
ऑक्सीकरण	कम	शीघ्र होता है
उपयोग	ओपधियो मे	वासक के रूप मे

[ल० श० शु०]

बॉन स्थिति ५०° ४३′ उ० अ० तथा ७° ६′ पू० दे०। यह पश्चिमी जर्मन गणतत्र राज्य की राजधानी है, जो कोलोन से १७ मील दक्षिण मे स्थित है। सन् १८०१ मे यह नगर फ्रास के अधिकार मे था और सन् १८१५ मे प्रशा के अधीन रहा। यहाँ १३वी शती का बना मुन्स्टर गिरजाघर है। अन्य इमारतो मे वेधशाला, प्राचीन वस्तुओ का सग्रहालय तथा सन् १८१८ मे स्थापित विश्वविद्यालय है। यहाँ चीनी मिट्टी, रसायनक, सूती वस्त्र तथा चमडे इत्यादि का सामान तैयार करने के कारखाने हैं। इसकी जनसख्या १,४३,८८३ (सन् १९६१) है।

बाबर नाम, जहिरुद्दीन मुहम्मद, उपनाम, बाबर। इसका जन्म शुक्रवार १४ फरवरी, सन् १४८३ ई० को मध्य एशिया स्थित फरगना राज्य मे हुआ। यह प्रसिद्ध विजेता तैमूर का वशज था। अपने पिता उमर शेख मिर्जा के अकस्मात् देहावसान के उपरात १२ वर्ष की अल्पावस्था मे ही वह सिहासनारूढ हुआ और उसके जीवन के अगले ३६ वर्ष कठिनाइयो से ही सघर्ष करते बीते। परतु विषम से विषम परिस्थिति मे भी उसने कभी न तो धैर्य का ही त्याग किया और न आत्मबल का। वह वीर योद्धा ही न था बल्कि तेजस्वी कवि भी था। प्रकृति के इस अनुपम पुजारी ने अपनी भावनाओ को अपनी आत्मकथा तुजुके बाबरी मे बहुत ही हृदयस्पर्शी शब्दो मे अभिव्यक्त किया है।

सत्तारूढ होने के पश्चात् लगभग १० वर्ष तक वह स्वदेश मे ही अपने भाग्य की परीक्षा करता रहा। महत्वाकाक्षा उसमे कूट कूटकर भरी थी। तैमूर उसके जीवन का आदर्श था जिसको कार्यान्वित करने के उद्देश्य से उसने दो बार समरकद पर अधिकार किया। परतु प्रतिकूल वातावरण के कारण वहाँ उसका अस्तित्व स्थायी रूप ग्रहण न कर सका। अत मे अपने रौद्र शत्रु शैबानी खाँ उजबेक द्वारा पराजित होकर उसे अपने देश को त्यागना पडा और अपनी सुरक्षा के लिये विजेता से सौदा करना पडा। अत उसने अपनी बहन खानजादा बेगम का विवाह अपने शत्रु के साथ कर दिया। बाबर ने इस अपमानजनक घटना का अपनी आत्मकथा मे सकेत नही किया है।

समरकद से बहिर्गमन के पश्चात् उसके जीवन का द्वितीय अध्याय प्रारभ हुआ। उसके आगामी २० वर्ष काबुल प्रदेश मे व्यतीत हुए। इस अवधि मे सचित अनुभव एव अनुकूल परिस्थितियो ने उसके अस्तित्व को दृढता प्रदान की। अब वह एक घुमक्कड योद्धा न रहा। वह एक राज्य का स्वामी बन गया था। ईरान के शाह के सदेश से प्रोत्साहित होकर उसने सन् १५११ मे समरकद अधिकृत करने की अपनी इच्छा को अतिम बार पूरा किया। परतु पूर्व ही के समान अबकी बार भी उसकी सफलता अस्थायी ही रही। यद्यपि स्वदेशविजय की लालसा उसे आजीवन व्याकुल करती रही, तथापि इसका वास्तविक रूप स्वप्न के स्तर से आगे न बढ सका। विवश होकर उसने काबुल के निकटवर्ती स्थानो पर ही अपनी सत्ता प्रसारित करने मे अपना हित देखा। उसने इसी बीच कई बार भारत की सीमा पर भी प्रयाण किया परतु काबुल के राज्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना है बाबर का अरगूनो को हटाकर काधार पर (सन् १५२२ मे) अधिकार करना। इसके फलस्वरूप यद्यपि मुगल-ईरान के द्वद की जड तो पडी, परतु मध्य एशिया मे बाबर की धाक जम गई।

काबुल की समस्याओ मे व्यस्त रहते हुए भी बाबर निकटवर्ती राज्यो की राजनीतिक परिस्थितियो के प्रति सतर्क रहता था। साम्राज्य प्रसार उसकी जन्मजात अभिलाषा थी। काबुल जैसे लघु राज्य से उसकी तुष्टि असभव थी। अत सन् १५१९ मे उसने दो बार भारत की सीमा तक प्रयाण किया। इसी वर्ष उसने अपने प्रतिनिधि मुल्ला मुर्शिद को पजाब प्रात की माँग लेकर लोदी सुलतान इब्राहीम के पास भेजा। परतु इसको रास्ते मे ही रोक लिया गया। सन् १५२० ई० मे उसने तीसरी बार भारत की ओर प्रयाण किया और भेरा होता हुआ वह सियालकोट तक पहुँच गया। यद्यपि इस अवसर पर उनका लक्ष्य लाहौर था परतु अरगूनों के उत्पात की सूचना पाकर वह अपनी योजना अधूरी छोड़कर काबुल लौट गया।

शीघ्र ही भारत में लोदी साम्राज्य की नींव डगमगाने लगी। उद्दंड और दंभी अमीर सुलतान की नियंत्रात्मक कार्रवाइयों से ऊब उठे। कुछ ने तो देश के अंदर ही उपद्रव आरंभ कर दिया और अन्य ने अपना पक्ष दृढ करने के उद्देश्य से बाहर से सहायता प्राप्त करने की योजना बनाई। इनमें से दो के नाम उल्लेखनीय हैं, सुलतान इब्राहीम का चचा आलम खाँ और पंजाब का राज्याध्यक्ष दौलत खाँ। दोनों ने बाबर को आमंत्रित किया। बाबर तो ऐसे अवसर की बाट ही जोह रहा था। अत १५२४ ई० में उसने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। खैबर के दर्रे से निकलकर वह झेलम और चिनाब को पार करता हुआ लाहौर के सन्निकट आ पहुँचा। यहाँ जब वह शाही सेना को पराजित कर चुका तब दौलत खाँ ने आकर उससे भेंट की। आपस में मतभेद हो जाने के कारण बाबर ने दौलत खाँ और उसके पुत्र गाजी खाँ को बंदी बना लिया, अत उनकी जागीरें को दिलावर खाँ को देकर वह काबुल लौट गया।

बाबर को अब भारत की परिस्थिति का पूरा ज्ञान हो गया था, अत पूरी तैयारी करके अब वह विजयश्री प्राप्ति के ध्येय से अंतिम बार आया। इस अवसर पर उसे मेवाड नरेश राणा संग्राम सिंह की ओर से भी निमंत्रण मिला था। सन् १५२५ में पानीपत के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। अपने तोपखाने एवं बंदूकधारी सैनिकों की सहायता से उसने इब्राहीम लोदी की विशाल सेना को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस अपूर्व विजय ने उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। अब वह एक विशाल राज्य का स्वामी बन गया। फिर भी उसे अभी अनेक विरोधियों का सामना करना था।

संग्राम सिंह की यह धारणा कि इब्राहीम लोदी को परास्त करके बाबर पुन काबुल वापस चला जाएगा भ्रामक सिद्ध हुई। अत अब राणा अत्यंत विक्षुब्ध हो उठा और मैदान में आ डटा। राजपूतों की वीरता और युद्ध-कौशल-गाथाओं ने बाबर के सैनिकों को हतोत्साह कर दिया था मगर वह अपने संकल्प में अविचल रहा। सैनिकों को उत्तेजित करने के लिये उसने धर्म की दुहाई दी और स्वयं मदिरापान त्याग की शपथ ली। फरवरी, १५२७ ई० में कन्वाहा के मैदान में उसने अपनी सेना के व्यूह की रचना उसी प्रकार की जैसी पानीपत के युद्ध के समय की थी। अनेक राजपूत वीर मारे गए और संग्राम घायल होकर मैदान से चला गया। बाबर की विजय हुई। राजपूतों की प्रतिष्ठा को गहन क्षति हुई। ग्रीष्म ऋतु के आगमन के कारण विजयी मुगल सम्राट् मेवात अधिकृत करने के पश्चात् आगरा लौट आया।

सुअवसर पाते ही बाबर ने उन अफगान सरदारों से संघर्ष किया जो गंगा के किनारे कन्नौज के निकट उपद्रव की योजना बना रहे थे। सन् १५२८ में यह शत्रुदल भाग निकला। बंगाल नरेश की सहायता प्राप्त करके उन शत्रुओं ने पुन सिर उठाया। सन् १५२९ में बाबर ने गंगा और घाघरा के संगम पर इनका मुकाबला किया एवं बंगाल अफगान संयुक्त सेना को पराजित किया।

अथक परिश्रम के फलस्वरूप मुगल सम्राट् का स्वास्थ्य बिगडने लगा। जब उसके ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ को इसकी सूचना प्राप्त हुई तब वह बदख्शाँ से चलकर तीव्र गति से आगरा पहुँचा। सम्राट् का स्वास्थ्य सुधरने लगा था और चिंता की कोई बात न रह गई थी। यह देखकर हुमायूँ ने संभल की ओर प्रस्थान किया परंतु रास्ते में ही वह रोगग्रस्त हो गया। उसकी दशा संशययुक्त हो गई और उसको दिल्ली आगरा लाया गया। इस अवसर पर उसके पिता ने अद्भुत बलिदान देकर अपने जीवन की बाजी लगा दी। परंतु यह किंवदंती पूर्णरूपेण भ्रमात्मक है कि हुमायूँ के स्वस्थ होते ही बाबर के जीवन का अंत हो गया और पुत्र के रोग को पिता ने ग्रहण कर लिया। उसका स्वास्थ्य तो पहले से ही गिर रहा था अत २६ दिसंबर, १५३० को उसका देहावसान हो गया। भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालने और राजनीति को एक नया मोड देने का उसको श्रेय प्राप्त है। १६वीं शताब्दी का वह अनुपम विजेता कहलाता है। उसका स्मारक काबुल में है।

बाबर ने नौ विवाह किए जिनसे उसके १८ संतानें उत्पन्न हुईं। हुमायूँ की माँ माहम बेगम ही उसके अधिक प्रेम की पात्री थी।

[ब० प्र० स०]

बाबा कर्तारसिंह (सन् १८८६-१९६१) भारतीय रसायनज्ञ का जन्म पंजाब के अमृतसर जिले के वैरोवाल नामक स्थान में हुआ था। आप सिखों के तीसरे गुरु अमरदास जी के वंशज थे। आपके पिता का नाम कर्नल बाबा श्री जीवनसिंह तथा माता का श्रीमती प्रेमकौर था। बाबा कर्तारसिंह ने पहले केंब्रिज विश्वविद्यालय के डाउनिंग कालेज में तथा बाद में सेंट ऐंड्रूज तथा केंब्रिज में शिक्षा पाई। आपको सन् १९२१ में डब्लिन विश्वविद्यालय से तथा सन् १९४१ में केंब्रिज से डॉक्टरेट की उपाधियाँ मिलीं।

आप सन् १९१० में ढाका कॉलेज, ढाका, में रसायन के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए और सन् १९१८ तक इस पद पर रहे। इसी वर्ष आपका चुनाव इंडियन एडुकेशनल सर्विस के लिये हो गया और आपकी नियुक्ति गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर, में हुई। वहाँ से सन् १९२१ में आप पटना कॉलेज में आए तथा बाद में सन् १९२१ से ३६ तक रैवेनशॉ कॉलेज, कटक सन् १९३६ से १९४० तक सायन्स कॉलेज, पटना, तथा सन् १९४० से सेवानिवृत्त होने तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन के प्रोफेसर और उस विभाग के अध्यक्ष रहे। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् आपने कई वर्षों तक बनारस हिंदू युनिवर्सिटी में नि शुल्क सेवा की।

त्रिविम रसायन (Sterochemistry), वानस्पतिक उत्पादों के रसायन तथा कार्बनिक रसायन के अनेक विषयों पर अनुसंधान कर आपने लगभग अस्सी मौलिक गवेषणापत्र प्रकाशित किए, जिससे आपको देश और विदेश की अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं, जैसे इंग्लैंड की केमिकल सोसायटी, फैरैडे सोसायटी आदि, ने सम्मानित कर अपना सदस्य निर्वाचित किया। सन् १९३१ और १९३२ में आप इंडियन केमिकल सोसायटी के प्रेसिडेंट, सन् १९३४ से १९४१ तक इंडियन ऐकैडेमी ऑव सायंसेज, बैंगेलोर, तथा सन् १९१९–२० में लाहौर फिलासॉफिकल सोसायटी के प्रेसिडेंट रहे। सन् १९२० के इंडियन सायंस कांग्रेस की रसायन परिषद् के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे।

विज्ञान के सिवाय सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में भी आपने महत्व की सेवाएँ कीं। सन् १९३६ से ४१ तक आप सिख धर्म संस्थान, तख्त हरमंदिर जी, पटना, की निरीक्षक समिति के अध्यक्ष रहे।

[भ० दा० व०]

बाबा ताहिर ११वीं शती ई० के मध्य में हुए फारसी के उत्कृष्ट कवि, बाबा ताहिर के निवासस्थान एवं जीवनकाल की घटनाओं के विषय में बड़ा मतभेद है, किंतु वे संभवत अधिकतर हमदान एवं लुरिस्तान में निवास करते रहे। उनकी रचनाओं में रुबाइयाँ, जिनमें उनके स्वच्छंद जीवन की झाँकी प्राप्त होती है, बड़ी प्रसिद्ध हैं। उनकी लोकोक्तियाँ गूढ दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण हैं

सं० ग्रं० — बाबा ताहिर रुबाइयाँ। [मै० अ० अ० रि०]

बामियाँ काबुल से उत्तर पश्चिम में प्राचीन तक्षशिला-बैक्ट्रिया मार्ग पर बामियाँ के भग्नावशेष आज भी अपने गौरव के प्रतीक हैं। युवान् च्वाङ् ने फन-येन-न (बामियाँ) राज्य का उल्लेख किया है। उसके अनुसार इसका क्षेत्र पश्चिम से पूर्व २००० ली (लगभग ३३४ मी०) और उत्तर से दक्षिण ३०० ली (५० मी०) था। इसकी राजधानी छह-सात ली अथवा एक मील के घेरे में थी। यहाँ के निवासियों की रहन सहन तुषार देशवासियों जैसी थी। उनकी रुचि मुख्यतया बौद्ध धर्म में थी। यहाँ पर कोई १० विहार थे जिनमें १०० भिक्षु रहते थे जो लोकोत्तरवादी संप्रदाय से संबंधित थे। नगर के उत्तर-पूर्व में पहाड़ी की ढाल पर कोई १४०-१५० फी० ऊँची बुद्धप्रतिमा थी। वहाँ से दो मील की दूरी पर एक विहार में बुद्ध की महापरिनिर्वाण दशा में एक बड़ी मूर्ति थी। युवान् च्वाङ् के कथनानुसार दक्षिण पश्चिम में ३४ मील की दूरी पर एक बौद्ध संघाराम था जहाँ बुद्ध का एक दाँत सुरक्षित रखा था।

इस वृत्तांत की पुष्टि अफगानिस्तान में हिंदूकुश पहाड़ी तथा बामियाँ एवं वहाँ की विशाल मूर्तियों से होती है। एक मील की लंबाई में चट्टान के दोनों छोर पर क्रमश १२० तथा ११५ फी० ऊँची बुद्ध की मूर्तियाँ हैं। छोटी मूर्ति गंधार कला की प्रतीत होती है। वेशभूषा के आधार पर इसकी तिथि ईसवी की दूसरी तीसरी शताब्दी मानी जा सकती है। बड़ी मूर्ति का निर्माण लगभग १०० वर्ष बाद हुआ। इनके पीछे आलों की छतों में चित्रकला के भी अंश मिले हैं। इनको ससानी, भारतीय तथा मध्य एशिया से संबंधित वर्गों में रखा गया है। बामियाँ के चित्र अजंता की ६वीं तथा १०वीं गुफाओं के चित्रों तथा मीरन (मध्य-एशिया) की कला से मिलते जुलते हैं।

यद्यपि चिंगेज खाँ ने बामियाँ और वहाँ के निवासियों का पूर्णतया अंत कर दिया तथापि बुद्ध की इन प्रतिमाओं का उल्लेख 'आईन ए अकबरी' में भी मिलता है। कहा जाता है, प्रथम अफगान युद्ध के अंग्रेज बंदी सैनिकों को यहाँ रखा गया था।

सं० ग्रं० — हाकिन आँतिक्यूरे बुद्धिक बदामियाँ, ए गाइड डु विजितयों सिटी आर्कियोलाजिक द बामियाँ (दोनों फ्रासीसी में), बील बुद्धिस्ट रेकार्ड्स ऑव दी वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग १, इसाइक्लोपीडिया ऑव आर्ट। [बै० पु०]

बायरन, जॉर्ज गॉर्डन प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि। उनका जन्म २२ जनवरी, सन् १७८८ ई० को लंदन में हुआ। उनके पिता जॉन बायरन सेना के कप्तान और बहुत ही दुराचारी थे। उनकी माता कैथरीन गोर्डन ऐबर्डीनशायर की उत्तराधिकारिणी थीं। उनके पिता ने उनकी माता की सारी संपत्ति दुराचार में लुटा दी, यद्यपि उनकी अपनी संपत्ति कुछ भी नहीं थी, और उनके पिता के चाचा ने, जिनके वह उत्तराधिकारी थे, परिवार की सब जायदाद बुरे कामों में नष्ट कर दी। बेचारे बायरन के हाथ कुछ न लगा। उनकी शिक्षा सार्वजनिक विद्यालय हैरो तथा कैंब्रिज विश्वविद्यालय में हुई।

सन् १८०७ में, जब बायरन की अवस्था केवल २० वर्ष की थी, उनका एक निरर्थक काव्यग्रंथ 'आँवर्स ऑव आइडिलनेस' प्रकाशित हुआ। 'एडिनबरा रिव्यू' ने इसका बहुत मजाक उड़ाया और बड़ी कड़ी आलोचना की। किंतु बायरन चुप रहनेवाले व्यक्ति नहीं थे, उन्होंने अपने व्यंग्यात्मक काव्य 'इंग्लिश बार्ड्स ऐंड स्कॉच रिव्यूअर्स' में, जो सन् १८०९ में प्रकाशित हुआ, इस कटु आलोचना का मुँहतोड़ जवाब दिया। इसके बाद वह भूमध्यसागरीय प्रदेशों का पर्यटन करने चले गए और १८११ ई० में घर लौटने पर अपने साथ 'चाइल्ड हैरोल्ड' के प्रथम दो सर्ग लाए जो सन् १८१२ में प्रकाशित हुए। ये सर्ग इतने लोकप्रिय हुए कि बायरन का नाम समाज और साहित्य में सब जगह फैल गया और सब लोगों के हृदय में उनके प्रति अत्यंत प्रशंसा तथा आदर का भाव उमड़ पड़ा। १८१३ ई० से लेकर १८१५ ई० तक उनकी कथात्मक काव्यरचनाएँ 'दि ब्राइड ऑव एबीडौस,' 'दि कौर्सेयर', 'लारा,' 'दि सीज ऑव कॉरिंथ', और 'पैरिज़िना' — प्रकाशित हुईं।

१८१५ ई० में बायरन का विवाह ऐन इज़ाबेल्ला मिल्कबैंक से हुआ जो एक सुप्रसिद्ध और धनाढ्य परिवार की महिला थी। किंतु एक वर्ष उपरांत बायरन के चरित्रहीन व्यवहार के कारण वे उन्हें छोड़कर सदैव के लिये अपने मायके चली गईं। इस दुर्घटना के कारण सारा इंग्लैंड बायरन के प्रति क्रोध और घृणा के भाव से क्षुब्ध हो उठा। इससे वह स्वदेश छोड़कर स्विट्ज़रलैंड चले गए जहाँ वह शैली परिवार में कुछ समय रहे। वहाँ से वह वेनिस चले गए और लगभग दो वर्ष तक वहीं रहे। वेनिस में काउंटेस ग्विचोली से उनका प्रेम हो गया। तदुपरांत वे पीसा तथा जेनिवा गए और १८२४ ई० में वह यूनानियों के स्वतंत्रता युद्ध में यथाशक्ति सहायता करने के हेतु मिसोलोंगी पहुँचे। यूनानियों ने उनका एक राजा के समान स्वागत किया। उन्होंने भी तन, मन, धन से उनकी सहायता की किंतु उसी वर्ष उनका देहांत हो गया।

१८१५ ई० से लेकर १८२४ ई० तक बायरन ने अनेक प्रकार की काव्यरचनाएँ कीं — छोटी छोटी गीतात्मक कविताएँ जो १८१५ में 'हिब्रू मेलोडीज' के नाम से प्रकाशित हुईं, 'चाइल्ड हैरोल्ड' के अंतिम दो सर्ग, जो पहले दो सर्गों से भी अधिक उत्तम हुए, बहुत से नाटक जिनमें से 'मैन्फ्रीड' तथा 'सार्डेनाप्लस' सबमें उत्कृष्ट हैं। किंतु उनका कोई नाटक रंगमंच के उपयुक्त नहीं है, यद्यपि उनकी काव्यशैली पर्याप्त ओजस्विनी है, दो गीतकाव्य 'दि ड्रीम' तथा 'डार्कनेस' उनकी गीतात्मक कविताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी अंतिम और सबसे अच्छी कथात्मक रचना 'मेजप्पा' है।

यद्यपि सभी प्रकार के काव्य में बायरन का अपना स्थान है, तथापि उनकी प्रतिभा मुख्यत. वर्णनात्मक, कथात्मक तथा उपहासात्मक थी। उनकी कथात्मक कविताएँ इतनी लोकप्रिय हुईं कि सर वाल्टर स्कॉट ने कविता में कहानियाँ लिखना बंद कर दिया और

उपन्यासों की सृष्टि करने लगे। उनके ऐतिहासिक स्थानों अथवा घटनाओं और पात्रों के वर्णन अद्वितीय हैं। इसी कारण उनके 'चाइल्ड हैरोल्ड' नामक काव्यग्रंथ की अत्यंत ख्याति हुई और उनका प्रभाव संपूर्ण यूरोप के कवियों पर पड़ा। बायरन की उपहासात्मक प्रतिभा विलक्षण थी और उन्होंने विविध उपहास-कृतियों की रचना की जिनमें सबसे महत्वपूर्ण 'डान जुअन' है। यह ग्रंथ उपहासात्मक महाकाव्य है, किंतु कदाचित् शांत रस के अतिरिक्त कोई भी ऐसा रस नहीं है जो इसमें विद्यमान न हो। अंग्रेजी काव्य में जो भी उपहासात्मक रचनाएँ हैं उनमें इसका स्थान सबसे ऊँचा है। शुद्ध काव्यदृष्टि से बायरन बहुत बड़े कवि नहीं हैं और उनमें विचारशक्ति की न्यूनता भी खटकती है, किंतु समवेदना तथा अपने वासनामय उद्‌गारों और हार्दिक भावनाओं को व्यक्त करने में वे अनुपम हैं और संसार के स्वतंत्रतावादी कवियों में उनका ऊँचा स्थान है। [ग्र० मो० सा०]

बॉयलर यूरोप के इतिहास में बायलरों का उल्लेख यूनान और रोम के साम्राज्यों के समय से ही देखने में आ रहा है, लेकिन उनका आधुनिक रूप में विकास बहुत धीरे धीरे हुआ है। शक्ति उत्पादन करने के लिये वाष्प का उपयोग १९वीं शताब्दी से आरंभ हुआ, लेकिन जब ट्रेविथिक (Trevithick) ने उच्च दाब के वाष्प का उपयोग अपने इंजनों में किया, इससे पहले बॉयलर का कौन सा अंग कितना मजबूत और किस धातु का हो इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। आज से २०० वर्ष पहले जो लोग किसी भी काम के लिये बायलर बनाते थे, वे या तो अपने उपलब्ध साधनों और सुविधा के अनुसार, अथवा जहाँ उसे बैठाना है उस जगह के अनुसार, उसकी आकृति बना लेते थे। आरंभ में बॉयलर ताँबे की चादरों से और बाद में पिटवें लोहे से बनाने लगे।

मजबूती और दाब सहन करने की दृष्टि से बॉयलर की सर्वोत्तम आकृति गोल ही होनी चाहिए, लेकिन इसे बिलकुल सही बनाने, स्थिरतापूर्वक टिकाकर बैठाने और आग की गरमी को अधिक से अधिक मात्रा में पानी तक पहुँचाकर पानी को वाष्प बनाने में बड़ी झंझटें और कठिनाइयाँ पड़ती हैं। मजबूती की दृष्टि से गोलाकार के बाद दूसरी सबसे उत्तम आकृति बेलन है। अत जब से वाष्प का उपयोग शक्ति उत्पादन के लिये होने लगा तब से बायलर बेलनाकार ही बनाए जाते हैं, चाहे वे अकेले एक ही ढोल के रूप में हों अथवा अनेक ढोलों के संयुक्त रूप में, अथवा ढोलों और अनेक नलियों के संयुक्त रूप में। बॉयलरों के बनाने और संचालन के निमित्त, जनता की सुरक्षा और बॉयलरों की कार्यक्षमता की दृष्टि से एक अलग शास्त्र ही बन गया है, जिसके कुछ आवश्यक वैज्ञानिक नियम राज्यों के विधान में भी आ गए हैं। इनका पालन करने के लिये बॉयलरों का प्रत्येक प्रयोगकर्ता बाध्य है।

अग्नि-नलिका बॉयलर (Firetube Boiler) — बॉयलरों को उनकी बनावट के अनुसार दो मुख्य वर्गों में बाँटा जाता है: (१) अग्नि-नलिका ढोलाकार बॉयलर तथा (२) जल-नलिका बायलर। अग्नि-नलिका बॉयलरों में कॉर्निश बायलर सबसे पुराने प्रकार का है। इसकी बनावट बहुत ही सरल होती है, जिसके कारण यह आजकल भी काम में आता है। इसमें एक ही धूम्रवाहिनी नलिका होती है, जिसके आगे के भाग में भट्ठी बनी होती है। आजकल यह बॉयलर छोटी बड़ी कई मापों में बनाया जाता है। इसकी छोटी से छोटी माप व्यास में चार फुट और लंबाई में १० फुट होती है
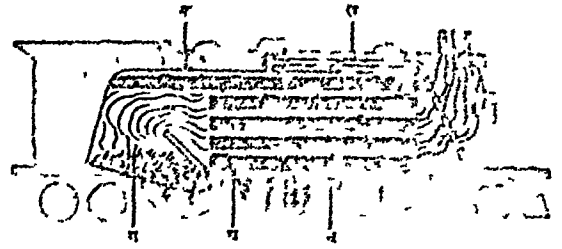
चित्र १. रेल के इंजिन का अग्नि-नलिका बॉयलर

क. भाप, ख भाप नली, ग अग्नि, घ जल तथा च अग्निनलिका।

और बड़ी से बड़ी माप ६ फुट ६ इंच व्यास में तथा लंबाई में २४ फुट होती है। इसमें एक ही भट्ठी और धूम्रवाहिनी होती है, अत बड़ी माप के बॉयलर में कोयला ठीक प्रकार से नहीं जल पाता और उसके बृहद् आकार के अनुपात से उसका तप्त धरातल भी कम रहता है। इसलिये कॉर्निश प्रकार के बॉयलर में दो भट्ठियाँ बराबर बराबर बना देने से वही लैंकाशायर बॉयलर कहलाने लगता है। इनकी अन्य बनावटें एक सी ही होती हैं। छोटे से छोटे लकाशायर बॉयलर का व्यास ५ फुट, ६ इंच और लंबाई १६ फुट होती है, तथा बड़े से बड़े का व्यास १० फुट और लंबाई ३० फुट होती है। अनेक बार इसमें तीन भट्ठियाँ भी बना दी जाती हैं। कॉर्निश और लैंकाशायर बॉयलरों में साधारणतया वाष्प की दाब १८० पाउंड प्रति वर्ग इंच तक होती है। इन दोनों प्रकार के बॉयलरों को अत प्रज्वलित बॉयलर भी कह सकते हैं, वैसे तो इनमें अग्नि की ज्वालाएँ भट्ठी के पीछे की तरफ से घूमकर बॉयलर को बाहर की तरफ से भी तपाती हैं।

बहुनलिका बॉयलर (Multitubular boiler) — कॉर्निश और लैंकाशायर बॉयलरों में एक से अधिक भट्ठी और बड़े बड़े व्यास की धूम्रवाहिनी लगा देने पर भी उनका तप्त धरातल इच्छानुसार नहीं बढ़ने पाता। अत इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कई प्रकार के बॉयलरों में बड़ी अग्निनलिकाएँ लगाने के बदले छोटे व्यास की अनेक धूम्रनलिकाएँ लगा दी जाती हैं, जिनके कारण बॉयलर बहुनलिका बॉयलर कहलाते हैं। यह बाह्यत प्रज्वलित (externally fired) और अत प्रज्वलित (internally fired), दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। बाह्यत प्रज्वलित बॉयलर उन वन्य प्रधान क्षेत्रों में काम में लाए जाते हैं जहाँ जंगलों में ही लकड़ी चीरने की आरा मशीनें बैठाई जाती हैं। ये आकार में काफी छोटे और हलके होने के कारण सुवाह्य होते हैं। इस कारण इन्हें ले जाकर ईंटों की बुनियादी भट्ठी पर रख कर काम चलाया जा सकता है। अत प्रज्वलित बॉयलरों के ढोल के भीतर ही एक अथवा दो अग्नि-नलिकाकार भट्ठी बनाकर और उनका प्रज्वलन कक्ष ईंटों की बुनियाद में बनाकर, पीछे की तरफ से गरम गैसों को धूम्र-नलिकाओं में से आगे की तरफ लौटा कर चिमनी में से निकाल दिया जाता है। यह बॉयलर ड्राईबैक नाम से प्रसिद्ध है। बायलरों में से "एलिफैंट", अथवा "टिस्चबीन" (Tischbein) नामक बायलर का

यूरोप मे अधिक उपयोग होता है। इसमे दो अथवा अधिक ढोल एक दूसरे के ऊपर नीचे लगे रहते हैं और उनका परस्पर सवध वडे व्यास के छोटे नलो द्वारा होता है। ऊपरवाले ढोल मे पतली नलिकाएँ चाहे लगी हो या नही, लेकिन नीचेवाले ढोल मे अवश्य ही भट्ठी और पतली पतली धूमनलिकाएँ होती हैं। इसी प्रकार के बॉयलर का परिष्कृत रूप जहाजी कामो के लिये भी वनाया गया है, जिसे स्कॉच बॉयलर कहते हैं। इसमे उपर्युक्त बॉयलरो के सव गुणो का समावेश हो गया है। लेकिन इसका प्रज्वलनकक्ष पूर्णतया बॉयलर के भीतर ही है, अत इसमे किसी प्रकार की ईंटों की चिनाई नही करनी पडती। पप आदि चलाने के छोटे कामो के लिये जो अत प्रज्वलित बॉयलर वनाए जाते हैं, वे वहुधा खडे बॉयलर होते हैं। इन्हें कॉकटन बॉयलर कहते हैं। ऐसे खडे बॉयलर में मोटी मोटी दो जलनलियाँ लगी होती हैं, जिन्हें गैलोवे ट्यूव कहते हैं। जलनलियो के लाभो का वर्णन आगे किया गया है। रेल इजन का वायलर अत प्रज्वलित अग्निनालयुक्त ही है, लेकिन इसकी भट्ठी मे आजकल २-४ जलनलिकाएँ लगाने का भी रिवाज हो गया है।

जलनलिका बॉयलर (Water-tube Boiler) — इस प्रकार के बॉयलरो मे छोटे आकार के खडे बॉयलरो को छोड कर, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, अन्य सब जलनलिका बॉयलर वाह्यत प्रज्वलित होते हैं। इन्हे वहुधा तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जाता है (१) जिनमे जलप्रवाही नलिकाएँ क्षितिज तल से झुकी हुई रहती हैं, (२) जिनमे जलनलिकाएँ ऊर्ध्वाधर तल से झुकी रहती हैं और (३) वलात् प्रवाही नलिकाएँ, जिनमें किसी भी दिशा मे लगाई जा सकती हैं। प्रथम दो श्रेणियो मे तो जल का प्रवाह स्वत ही गरमी की परिवहनक्रिया द्वारा होता रहता है, लेकिन तृतीय श्रेणी के बॉयलरो मे किसी पप की सहायता से बलपूर्वक प्रवाह चालू रखा जाता है। सभी जलनलिकायुक्त, वाह्यत प्रज्वलित बॉयलरो मे ऊपर
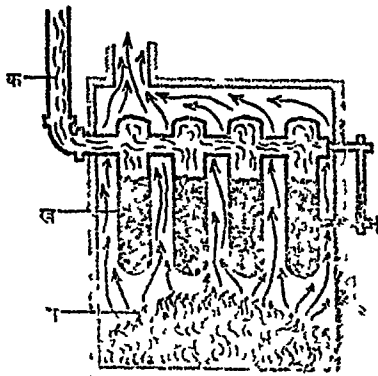
चित्र २ जलनलिका बॉयलर
क भाप, ख जलनलिका तथा ग अग्नि।

और नीचे क्रमश वाष्प और पानी के ढोल रहते है, जिन्हें परस्पर छोटी अथवा वडी व्यास की जलनलिकाओ से सवधित कर एक अथवा अधिक सख्या मे लगा दिया जाता हैं। ऊपरवाले ढोलो मे वाष्प, अथवा पानी और वाष्प, दोनो का मिश्रण रहता है और नीचेवाले ढोल मे केवल पानी, और कभी कभी गाढा पानी और कीचड भी रहता है। इस ढोल को मड ड्रम (mud drum) भी कहते हैं। विभिन्न ढोलो की नलिकाओ के पारस्परिक सवध मे विविधता रहने के कारण इन बॉयलरो के कई वर्ग वन जाते हैं।

आड़ी जलनलिकायुक्त बॉयलरो मे वैवकॉक-विलकॉक्स बॉयलर सर्वोत्तम समझा जाता है। इसमे चार इच व्यास की नलिकाओ की श्रेणियाँ हेडरो (headers) मे दोनो तरफ से लगाकर, उनके सिरों को फुला दिया जाता है और फिर इन हेडरो के ऊपर की तरफ लगी चार इच व्यास की ही, लेकिन कम लवाई की, नालियो को उसी प्रकार से वैठ कर, उनके ऊपरी सिरों को वाष्प ढोल मे वैठाकर, नीचे की नलिकाश्रेणियो के पूरे जाल को ढोल से आगे और पीछे की ओर से सवधित कर दिया जाता है। पीछेवाले हेडरो का सवध, नीचे की ओर से पकसग्राहक (mudbox) से कर दिया जाता है, जिसमे बॉयलर के काम करते समय कीचड और वहुत गाढा पानी इकट्ठा हो जाता है जो सुविधानुसार वाहर निकाल दिया जाता है। स्थलीय बॉयलरो में वाष्प पानी के ढोल को नलियो की लवाई की दिशा मे रखा जाता है और जहाजी बॉयलरो मे आडा भी रख सकते हैं।

निक्लाउज़ी (Niclausee) बॉयलर — पूर्ववर्णित जलनलिका बॉयलर से इसमे दो भिन्नताएँ हैं। इस बॉयलर की नलियो का वाहरी व्यास लगभग २$\frac{3}{4}$ इच होता है और वे छह छह इचो के अतर पर हेडरो से एक ही ओर से जुडी हैं और उनका मुडा हुआ भाग अधर मे लटकता रहता है, जिस कारण पानी का प्रवाह एक ही दिशा मे होता है। इन पतली पतली नलियो के वीच एक क्षेत्रीय नली (field tube) और होती है, जिससे नलियो की एक श्रेणी में से वहकर आया हुआ पानी क्षेत्रीय नली मे जाकर, फिर दूसरी श्रेणी में प्रविष्ट हो जाता है। इस बॉयलर का उपयोग कारखानो के अलावा जहाजी कामो में अधिक होता है। फ्रांस के जहाजी वेडों मे इसका अधिक प्रचार है। जर्मनी में भी जहाजी कामों के लिये इसी से मिलता जुलता एक बॉयलर वनाया गया था, जिसे दुर्र (Durr) बॉयलर कहते हैं।

स्टर्लिंग (Stirling) बॉयलर — इस बॉयलर मे दो अथवा तीन वाष्पढोल ऊपर की तरफ और दो अथवा एक पानी का ढोल नीचे लगाकर उन्हें मुडी हुई जलनलिकाओ द्वारा जोड दिया जाता है। जव ऊपर और नीचे के समान सख्यावाले ढोलो को सीधी जलनलिकाओ द्वारा जोडा जाता है तव उसे ऐल्फा (Alpha) बॉयलर कहते हैं। सीधी जलनलिकाएँ लगाने से कई लाभ होते हैं। प्रथम तो वायु का व्यारोध (baffle) वडी सरलता से किया जा सकता है, दूसरे सीधी नलिकाओ को आवश्यकतानुसार जिस लवाई की भी चाहें काटकर लगाया जा सकता है, अत स्टॉक मे फालतू नलियाँ नही रखनी पडती, तीसरे परीक्षा करते समय नलियो की परीक्षा ढोल के भीतर घुसकर सरलता से की जा सकती है और उन्हे वदला भी जा सकता है।

यारो और थॉर्नक्राफ्ट (Yarrow and Thorncraft) — इन बॉयलरों की गिनती जहाजी बॉयलरो मे होती है, जो ऊर्ध्वाधर नलियो

के लिये प्रसिद्ध हैं। इसकी सब जलनलिकाएँ सीधी ही हैं और नीचे के ढोल बेलनाकार होने के बदले डी (D) आकार के हैं। थॉर्नक्रॉफ्ट बॉयलर मे बाहर की तरफ रहनेवाली नलिकाश्रेणी कुछ धनुषाकार मुडी होती है।

उच्चदाब वाष्पजनित्र (High Pressure Steam Generators) — आजकल औद्योगिक क्षेत्र मे इजनों, टरबाइनो तथा अन्य प्रकार के यत्रो और प्रक्रियाओ में वाष्प का खर्चा इतना अधिक होता है कि साधारण बॉयलर उस आवश्यकता को पूरी करने मे असमर्थ रहते हैं। यारो और स्टर्लिंग बॉयलर, जिनका हमने ऊपर वर्णन किया है, थोडे बहुत परिवर्तनों के साथ बडे कारखानो और बिजली घरो के लिये कुछ अधिक उपयोगी तो हो गए, क्योंकि सुधार करने से उनमे कोयले की बुकनी, तेल और लोहा गलाने की भट्ठियो से खारिज होनेवाली गैसें भी जलाई जाने लगीं। फिर भी वे आधुनिक क्षेत्रो मे पिछड गए, क्योंकि जहाजी कामो के लिये तो ५७५ पाउड प्रति वर्ग इच दाब का वाष्प, जिसका ऊँचा ताप ३६६° सें० हो, काफी समझा जाता है। यदि यारो और स्टर्लिंग बॉयलरो में दो लाख पाउड वाष्प उक्त दाब और ताप पर प्रति घटा भी बना दें, तो इसे काफी समझा जाता है, लेकिन स्थलीय कारखानो और बिजली घरो मे १,००० पाउड प्रति वर्ग इच और कभी कभी इससे ऊँचे दाब का वाष्प भी पाँच लाख पाउड प्रति घटा से भी अधिक मात्रा में खर्च हो जाता है। अत ढोल और जलनलिकायुक्त बॉयलरो के बदले अधिकतर जलनलिकायुक्त कुछ ऐसे उपकरण बनाए जाने लगे हैं, जिनमें ढोल तो नाममात्र के लिये वाष्प सचित करने के निमित्त ही लगाया जाता है। इनकी और पुराने बॉयलरों की आकृति में अब कोई समानता नहीं रही, अत इन्हें भापजनित्र (Steam Generator) ही कहते हैं। भापजनित्र में विशुद्ध आसुत जल का पपों के बल से पतली पतली नलियों में परिवहन और उन्हीं में वाष्पीकरण भी होता है। इस प्रकार के बॉयलरों का प्रज्वलनकक्ष एक बडी कोठरी के रूप मे बनाया जाता है, जिसकी दीवारें अग्निसह ईंटों की बनाकर उनके सहारे भीतर की तरफ जलनलिकाओं का अस्तर (lining) लगा दिया जाता है जो भट्ठी की ज्वालाओं में से विकिरण द्वारा आई हुई गरमी के एक बहुत बडे अश को सोख लेता है और शेप गरमी यथापूर्व तिरछी जलनलिकाओ और बॉयलर के ढोलो द्वारा अवशोपित होती है।

इसी प्रकार के वुड वाष्पजनित्र नामक एक भीमकर्मा वाष्पजनित्र मे कोयले की बुकनी जलाई जाती है। इसकी रचना और निर्माण न्यूयॉर्क की कावश्चन इजीनियरिंग कॉर्पोरेशन और लदन की कावश्चन जेनरेटर कपनियो ने मिलकर किया है। यह ८०० पाउड प्रति वर्ग इच की दाब पर ७५ हजार पाउड से लेकर चार लाख पाउड प्रति घटा वाष्प का उत्पादन करनेवाला बनाया जा सकता है। इसकी भट्ठी कोठरीनुमा होती है, जिसकी दीवारों के चारो ओर अनाच्छादित जलनलिकाओं की एक परत लगी रहती है। इस प्रज्वलनकक्ष के चारो कोनो पर, नीचे की ओर, कोयले की बुकनी सपीडित गरम हवा से मिश्रित कर, बलपूर्वक फुहारों द्वारा छोडी जाती है। एकदम प्रज्वलित होकर बडी भीषण अग्नि के बवडर के रूप में जलती हुई गैस ऊपर को उठती है और उस प्रज्वलन कक्ष की छत के समीप नलियो के मध्य में से होती हुई प्राथमिक अतितापक (primary superheater) के क्षेत्र में प्रवेश कर और वहाँ से परावर्तित होकर, अवमदक द्वार (damper door) में से होती हुई अतितापक में प्रवेश करती है, जिसमें से नीचे की दिशा में बहती हुई गैस वायुतापक में घूमकर ऊपर उठती है। यदि मितोपयोजक (economiser) लगा हो, तो गैस उसमे से होती हुई चिमनी में से बाहर निकल जाती है।

बलकृत संचालित वाष्पजनित्र (Forced Circulation Steam Generators) — इस प्रकार के वाष्पजनित्र कम से कम जगह घेरते हैं, किंतु अधिक से अधिक शक्तिशाली वाष्प का उत्पादन कर सकते हैं। इनमे एटमास् (Atmos), बेनसन् (Benson), लामॉण्ट (La mont), लॉफलर (Loffler), सुल्जर मोनोट्यूब (Sulzer monotube) और विलॉक्स (Velox) प्रसिद्ध है। इन्हें भी दो श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है।

लॉफलर, लामॉण्ट और विलोक्स की गिनती एक श्रेणी मे होती है और बेन्सन तथा सुल्जर मोनोट्यूब की गिनती दूसरी श्रेणी मे होती है।

लामॉण्ट वाष्पजनित्र इग्लैंड के वुल्वर हैंपटन की जॉन टॉम्सन कपनी ने परा उच्चदाब (ultra high pressure) का वाष्प तैयार करने के लिये बनाया है, जो इग्लैंड के ही कई बिजली घरो मे १,००० पाउड प्रति वर्ग इच दाब का वाष्प तैयार करता है, लेकिन इसकी बनावट मे ऐसी कोई बात नही जिसके कारण उसमें निम्नदाब का वाष्प पैदा कर उपयोग मे न लाया जा सके। इस वाष्पजनित्र मे कोयले की बुकनी अथवा तेल ईंधन का उपयोग किया जा सकता है। वाष्पजनित्र का मुख्य भाग वाष्प और जलसग्राहक ढोल है, जिसमें से पानी अपने गुरुत्व के कारण नीचे लगे पपो में जाता है। यह पप इस पानी को मुलायम इस्पात की बनी जलवितरक शीर्पिकाओं मे मुख्य ढोलक की दाब से लगभग ३५ पाउड प्रति वर्ग इच की अतिरिक्त दाब पर, भेज देते हैं। इन शीर्पिकाओं की सख्या वाष्पजनित्र की रचना और सामर्थ्य के अनुसार कम या ज्यादा भी हो सकती है। यदि वाष्पजनित्र निम्न कोटि की दाब पर काम करता है, तब तो शीर्पिकाओं की काट आयताकार बनाई जाती हैं और यदि उच्च दाब पर काम करता है तो शीर्पिकाओ की काट गोल बनाई जाती है। शीर्पिकाओं मे पहुँचने पर पानी वाष्पीकरण नलिकाओ मे जाता है, जिनका मुँह शीर्पिकाओं के भीतर छुच्छियो के रूप में इस प्रकार ठीक हिसाब से बनाया जाता है कि उनमे उतना ही पानी प्रविष्ट हो सके जितनी मात्रा मे वह नली गरमी का शोषण कर सकती है। प्रत्येक छुच्छी मे कई छोटे छोटे छेद होते हैं, जिनमे से छनकर पानी जाता है। छुच्छियों में जो भी पानी जाता है उसे पहले रासायनिक रीति से मृदु और वायुरहित कर दिया जाता है, जिससे नलियों में से गुजरते समय उसका वाष्प बनता ही जाता है। वाष्प की दाब ऊँची होने के कारण विशिष्ट आयतन भी कम होता है और उस तरल का वेग भी बहुत ऊँचा होता है, अत अन्य साधारण बायलरों के समान बुलबुले नही उठते और इस वाष्प तथा पानी का घनीभूत मिश्रण बनकर ढोल मे वापस लौट आता है।

ढोल मे जाकर, पानी का भाग तो नीचे की ओर इकट्ठा होकर फिर पप मे पहुँचता है और वाष्प ऊपरी भाग मे इकट्ठा हो, उसके ऊपर की ओर से दूसरी नली मे होकर अतितापक (superheater) में पहुँचता है। अतितापक में वाष्प अधिक गरम

हो जाता है, जहाँ से उपयोग के लिये वह निष्कासन वाल्व द्वारा निकाल लिया जाता है। जितना वाष्प खर्च होता है, उसके बराबर के पानी की कमी पूरी करने के लिये एक दूसरा पप मितोपयोजक के माध्यम से ढोल मे ताजा भरणजल पहुचाता रहता है। नलियो में पानी की जो मात्रा पप के द्वारा चक्कर खाती रहती है, उसका बहुत थोडा सा ही अश भरणजल के रूप मे आता है। अत उस पप के ऊपर पडनेवाले भार मे कोई अतर नही पडता और सदा वह एक सी गति से ही चलता रहता है। इस पप के चलाने में वाष्पजनित्र द्वारा उत्पन्न शक्ति की लगभग ० ५ % शक्ति ही खर्च होती है। यह पप पखुडी चक्रयुक्त अपकेंद्रिक ही होता है और इसकी बनावट इतनी मजबूत होती है कि यह जनित्र की पूरी दाब सह सकता है। अत जलपरिभ्रमण के लिये एक ही पप काफी होता है, लेकिन अधिक सावधानी बरतने के लिये दो पप लगा दिए जाते हैं। प्रथम पप तो बिजली से चलाया जाता है और दूसरा वाष्प टरबाइन द्वारा। जब प्रथम पप खराब हो जाता है तब नलो में जो दाबभिन्नता उत्पन्न होती है वह गेज से मालूम हो जाती है। इस समय इन नलो से सबधित भिन्नक दाब रिले (differential pressure relay) स्वय चैतन्य होकर, टरबाइन के वाष्प वाल्व को खोल देता है, जिससे दूसरा पप भी स्वय चल पडता है।

रेल इजनो के वाष्पजनित्र मे पराउच्च दाब का प्रयोग पिछले ३० वर्षों से हो रहा है। इनमे शिमट (Schmidt) प्रकार का वाष्पित्र होता है, जिसमे परकिंस के आवृत्त चक्र के अनुसार वाष्प बनाया जाता है। कुछ वाष्पित्र लोफलर श्वार्टजकॉफ (Loffler-schwartzkopff) के सिद्धातानुसार काम करते हैं।

बॉयलर संबंधी अन्य बाते

भरणजल (Feed Water) — वाष्पोत्पादन के लिये प्रयुक्त होनेवाला जल मृदु और शुद्ध होना चाहिए, अन्यथा बॉयलर की कुशलता और जीवन कम हो जाता है। भरणजल का ताप २०° सें०, या ४०° सें०, या इसके ऊपर भी रह सकता है।

छोटे बॉयलर से अधिक वाष्प प्राप्त करने के लिये जल का अतितापन (superheating) किया जा सकता है। अतितापन के और भी लाभ हैं।

ईंधन — बॉयलर मे कोई भी ईंधन ठोस, द्रव और गैसीय, जो सुविधा से प्राप्त हो, उपयुक्त हो सकता है, यद्यपि इनके ऊष्मीय मान विभिन्न होते हैं। साधारणतया कोयला, पेट्रोलियम, लकडी तथा गैसें प्रयुक्त होती है (देखें ईंधन)।

बॉयलरों की भट्ठियां — भिन्न भिन्न ईंधनो के विचार से भट्ठियाँ भिन्न भिन्न किस्म, आकार और विस्तार की होती हैं। भट्ठियो मे ईंधन के प्रवेश के पूर्व ईंधन के तप्त करने का भी प्रबध रहता है। इससे भट्ठियो की कुशलता बढ जाती है। छोटी छोटी भट्ठियो मे ईंधन हाथ से डाला जाता है, पर बडी बडी भट्ठियो में ईंधन डालने की यांत्रिक युक्तियाँ रहती हैं।

स० ग्र० — लॉफलर एज ऑव हाई प्रेशर स्टीम।

[ओ० ना० श०]

बॉयल, रॉबर्ट (Robert Boyle १६२७-१६९१ ई०) आधुनिक रसायनशास्त्र का प्रवर्तक, अपने युग के महान् वैज्ञानिको मे से एक, लदन की प्रसिद्ध रॉयल सोसायटी का सस्थापक तथा कॉर्क के अर्ल की १४वीं सतान था। बॉयल का जन्म आयरलैंड के मुस्टर प्रदेश के लिमोर कासेल मे हुआ था। घर पर इन्होने लैटिन और फ्रेंच भाषाएँ सीखी और ईटन मे तीन वर्ष अध्ययन किया। १६३८ ई० मे इन्होने फ्रास की यात्रा की और लगभग एक वर्ष जेनेवा मे भी अध्ययन किया। फ्लोरेंस मे इन्होने गैलिलिओ के ग्रथो का अध्ययन किया। १६४४ ई० मे जब ये इग्लैंड पहुँचे, तो इनकी मित्रता कई वैज्ञानिको मे हो गई। ये लोग एक छोटी सी गोष्ठी के रूप में, और बाद को ऑक्सफोर्ड मे, विचार विनिमय किया करते थे। यह गोष्ठी ही आज की जगत्प्रसिद्ध रॉयल सोसायटी है। १६४६ ई० से बॉयल का सारा समय वैज्ञानिक प्रयोगो में बीतने लगा। १६५४ ई० के बाद ये ऑक्सफोर्ड मे रहे और यहाँ इनका परिचय अनेक विचारको एव विद्वानो से हुआ। १४ वर्ष ऑक्सफोर्ड में रहकर, इन्होने वायु पपो पर विविध प्रयोग किए और वायु के गुणो का अच्छा अध्ययन किया। वायु मे ध्वनि की गति पर भी काम किया। बॉयल के लेखो मे इन प्रयोगो का विस्तृत वर्णन है। धर्मसाहित्य में भी इनकी रुचि थी और इस सबध मे भी इन्होने लेख लिखे। इन्होने अपने खर्च से कई भाषाओ मे बाइबिल का अनुवाद कराया और ईसाई मत के प्रसार के लिये बहुत सा धन भी दिया।

रॉबर्ट बॉयल की सर्वप्रथम प्रकाशित वैज्ञानिक पुस्तक "न्यू एक्सपेरिमेट्स, फिज़िको मिकैनिकल, टचिंग द स्प्रिंग ऑव एयर ऐंड इट्स एफेक्ट्स", वायु के सकोच और प्रसार के सबध मे है। १६६३ ई० में रॉयल सोसायटी की विधिपूर्वक स्थापना हुई। बॉयल इस समय इस सस्था के सदस्य मात्र थे। बॉयल ने इस सस्था से प्रकाशित शोधपत्रिका "फिलोसॉफिकल ट्रैंजैक्शन्स" मे अनेक लेख लिखे और १६८० ई० मे ये इस सस्था के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। पर शपथसबधी कुछ मतभेद के कारण इन्होने यह पद ग्रहण करना अस्वीकार किया। कुछ दिनो बॉयल की रुचि कीमियागिरी मे भी रही और अधम धातुओ को उत्तम धातुओं मे परिवर्तित करने के सबध मे भी इन्होंने कुछ प्रयोग किए। चतुर्थ हेनरी ने कीमियागिरी के विरुद्ध कुछ कानून बना रखे थे। बॉयल के यत्न से ये कानून १६८९ ई० में उठा लिए गए।

बॉयल ने तत्वों की प्रथम वैज्ञानिक परिभाषा दी और बताया कि अरस्तू के बताए गए तत्वों, अथवा कीमियाईगरों के तत्वो (पारा, गधक और लवण) मे से कोई भी वस्तु तत्व नही है, क्योकि जिन पिंडो में (जैसे धातुओ में) इनका होना बताया जाता है उनमें से ये निकाले नही जा सकते। तत्वों के सबध में १६६१ ई० में बॉयल ने एक महत्वपूर्ण पुस्तिका लिखी "दी स्केप्टिकल केमिस्ट"। रसायन प्रयोगशाला में प्रचलित कई विधियों का बॉयल ने आविष्कार किया, जैसे कम दाब पर आसवन। बॉयल के गैस संबंधी नियम, उसके दहन सबधी प्रयोग, हवा में धातुओ के जलने पर प्रयोग, पदार्थों पर ऊष्मा का प्रभाव, अम्ल और क्षारो के लक्षण और उनके सबध में प्रयोग, ये सब युगप्रवर्तक प्रयोग थे जिन्होने आधुनिक रसायन को जन्म दिया। बॉयल ने द्रव्य के कणवाद का प्रचलन किया, जिसकी अभिव्यक्ति डाल्टन के परमाणुवाद मे हुई। उनके अन्य कार्य मिश्रधातु, फॉस्फोरस, मेथिल ऐलकोहल

(बुड सिरिट), फ़ास्फोरिक अम्ल, चाँदी के लवणों पर प्रकाश का प्रभाव आदि विषयक हैं।

बॉयल जीवन भर अविवाहित रहे। बेकन के तत्वदर्शन से उन्हें बड़ी आस्था थी। अमर वैज्ञानिकों में उनकी आज तक गणना होती है। १६९० ई० के बाद से उनका स्वास्थ्य गिरने लगा, किंतु रसायन संबंधी कार्य इस समय भी बंद न हुआ। १६९१ ई० में इनका देहांत हो गया। [सत्य० प्र०]

बारकपुर स्थिति २२° ४६' उ० अ० तथा ८८° २१' पू० दे०। यह भारत मे पश्चिमी बंगाल के २४ परगना जिले में हुगली नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित नगर है। इसकी जनसंख्या ६३,७७८ (१९६१) है। यह उत्तरी एवं दक्षिणी दो भागों में बँटा है। सेना की टुकड़ियों के निवास के कारण इसका नाम बारकपुर पड़ा। यहाँ के आदि निवासी इसे चानक (Chanak) कहते हैं। प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का, जिसे अंग्रेज इंडियन म्यूटिनी कहते हैं, सूत्रपात इसी स्थान से हुआ था, जब मंगल पांडेय नामक सैनिक ने गाय और सूअर की चर्बी लगे कारतूसों के प्रयोग के विरोध में अंग्रेज अफसरों पर २९ मार्च, १८५७ ई० को गोली चलाई। यहाँ इस समय भी एक राइफल फैक्ट्री है।

बारथलम्यू जिगेनबल्ग का जन्म १७ जून, १६८३ ई० को पुल्सनित्ज, इग्लैंड मे हुआ था। उच्च शिक्षा के लिये वे हेली विश्वविद्यालय भेजे गए।

बारथलम्यू और उनके साथी हेनरी प्लुत्शो को धर्मप्रचार के लिये भारत जाने की आज्ञा दी गई। कई मास की कठिन यात्रा के बाद १७०५ के अंत में वे त्राकोबार पहुँचे। उन्होंने वहाँ के गवर्नर से भेंट करने की इजाजत माँगी। जिगेनबल्ग को किसी प्रकार टिकने की आज्ञा मिल गई परंतु प्लुत्शो को इजाजत नहीं मिली। उन्हें दूसरी जगह जाना पड़ा। यह दोनों डेनिश हेली मिशन के मिशनरी थे जिन्होंने धर्मप्रचार का कार्य भारत में आरंभ किया।

अब जिगेनबल्ग के लिये भारतीय भाषा सीखना आवश्यक था। उन्होंने एक प्राइमरी शाला के शिक्षक से दोस्ती की जिसमें बालकों की पहली कक्षा उनके कमरे में बैठने लगी। जिगेनबल्ग भी विद्यार्थियों के साथ बैठ जाते और जब बालक रेत पर अँगुली से अक्षर लिखते वे भी उनकी नकल करते और उसी प्रकार का रूप बनाते थे। इस प्रकार कुछ समय में उन्होंने वर्णमाला के सब अक्षर सीख लिए। इसके बाद उन्होंने एक ब्राह्मण से मित्रता की जो थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी जानते थे। उन ब्राह्मण महाशय की सहायता से उन्होंने आठ माह में तमिल भाषा का यथोचित ज्ञान प्राप्त कर लिया।

उन दिनों गुलामी की प्रथा वर्तमान थी। कुछ यूरोपीय लोग भी गुलाम रखते थे। जिगेनबल्ग ने उन्हें प्रति दिन दो घंटे सिखाने का काम शुरू किया। एक साल के अंदर ही पाँच व्यक्तियों ने विश्वास किया और बपतिस्मा पाया।

जिगेनबल्ग ने अपने ही पैसे से एक गिर्जाघर बनवाया और उसके अर्पण के समय तमिल और पोर्तुगीज भाषा में उपदेश दिए। अब वे दौरा कर व्यक्तिगत प्रचार करने लगे।

दो वर्ष में ही वे तमिल भाषा उतनी सरलता और स्वाभाविकता से बोल सकते थे जितनी निज जर्मन भाषा। उन्होंने तमिल भाषा का व्याकरण तैयार किया और गद्य तथा पद्य में दो अलग अलग किताबें लिखीं। उन्होंने कई किताबों का तमिल पद्य में अनुवाद भी किया। सन् १७११ में उन्होंने नए नियम (न्यू टेस्टामेंट) का गद्य पद्य में अलग अलग अनुवाद किया। भारतीय भाषा में बाइबिल का यह सर्वप्रथम अनुवाद था। उन्होंने कई अन्य पुस्तकें भी लिखीं।

१७१५ ई० में शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे स्वदेश लौट गए। चार वर्ष बाद वे पुन भारत आए और अपने क्षेत्र में कार्य करने लगे परंतु उनका स्वास्थ्य पुन खराब हो गया और ६ मई, १७४१ ई० को भारत में ही उनका प्राणांत हो गया। [मि० च०]

बारबेडोज स्थिति १३° ०' ३० अ० तथा ५९° ३०' प० दे०। यह पश्चिमी द्वीपसमूह (वेस्ट इंडीज) का पूर्वी द्वीप है जो ३० नवंबर १९६६ ई० को स्वतंत्र घोषित कर दिया गया है। यह त्रिकोणाकार द्वीप २१ मील लंबा तथा १४½ मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल १६६ वर्ग मील है। कार्लाइल की खाड़ी पर स्थित ब्रिजटाउन नगर यहाँ की राजधानी है। यह द्वीप प्रवालभित्तियों से घिरा है। यहाँ की सबसे ऊँची चोटी हिलेबी १,१०४ फुट ऊँची है। वार्षिक वर्षा ६१ इंच होती है तथा ताप ३०° सें० एवं जलवायु उत्तम है। कृषि में गन्ना और कपास प्रमुख उपजें हैं। यहाँ जटाधारी बरगद के पेड़ अधिक होने से इसे जटाधारी द्वीप (बारबेडोज) कहते हैं। इसकी जनसंख्या २,४१,७०६ (सन् १९६१) है। चारों ओर अच्छे यातायात के साधनों से यह अन्य भागों द्वारा जुड़ा है। [श्री कृ० च० स०]

बारमूला १ जिला, यह भारत के जम्मू कश्मीर का एक जिला है। इसकी जनसंख्या ६,०४,६५९ (१९६१) है। इसके उत्तर में मुजफ्फराबाद, वजारत, गिलगत, पूर्व में लद्दाख, दक्षिण में श्रीनगर तथा पश्चिम में मुजफ्फराबाद एवं पुंछ जिले स्थित हैं।

२. नगर, स्थिति ३४° १३' उ० अ० तथा ७४° २३' पू० दे०। यह जम्मू कश्मीर राज्य में एक प्रसिद्ध नगर है। नगर की जनसंख्या १९,८५४ (१९६१) है। कश्मीर में यह एक नदी के किनारे स्थित होने के कारण व्यापार में थोड़ी उन्नति कर गया है। यहाँ से श्रीनगर को एक सड़क जाती है। नगर के पूर्वी सिरे पर उत्तम पुल बना है। अधिकांश निवासी दूकानदार तथा व्यापारी हैं। यहाँ भूचाल अधिक आया करते हैं। जेहलम नदी के दाहिने किनारे पर बने पुराने नगर बारहमूला के नाम पर ही इसका नाम 'बारमूला' पड़ा है।

बाराबंकी १ जिला, स्थिति २६° ५५' उ० अ० तथा ८१° २०' पू० दे०। भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के मध्य में घाघरा नदी के दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित है। इसके पूर्व में फैजाबाद, दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम में रायबरेली एवं लखनऊ, उत्तर में गोंडा, बहराइच एवं उत्तर-पश्चिम में सीतापुर जिले हैं। इसकी उत्तरी सीमा घाघरा नदी द्वारा निर्धारित है। यहाँ का कुल क्षेत्रफल १,७१८ वर्ग मील तथा जनसंख्या १४,१४,५४७ (१९६१) है। इसकी ढाल उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर है। जिले के ऊपरी भाग की मिट्टी रेतीली एवं दक्षिणी

भाग की चिकनी एव उपजाऊ है। सिंचाई का उत्तम प्रबंध है। यहाँ की वार्षिक वर्षा का औसत ४० इंच है। चौका के पश्चिम तथा घाघरा के दक्षिण मे जलोढ मिट्टी होने से वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य समय मे भी अच्छी कृषि हो जाती है। जिले का मध्य भाग या कल्याणी नदी की घाटी कृषि के लिये सर्वोत्तम है। धान, चना, गेहूँ, दलहन, कोदो, ज्वार, बाजरा, जौ, मटर, मसूर, गन्ना, आदि का कृषि मे प्रमुख स्थान है। उद्योगो मे सूती कपडा सूती कंबल बनाना तथा कपडे की छपाई का काम प्रसिद्ध है। शक्कर, पीतल के बरतन, धातु की अन्य वस्तुएँ जैसे ताले, सरौते तथा फर्नीचर का काम भी होता है। नवाबगंज, बहरामघाट, तथा बारावकी प्रमुख नगर हैं।

२ नगर, स्थिति २६° ५६' उ० अ० तथा ८१° १२' पू० दे०। यह जिले के मध्य मे, कुछ पूर्व की ओर, लखनऊ-फैजाबाद मार्ग पर स्थित है। जिले के शासन का मुख्य केंद्र है। हाथकरघा यहाँ का मुख्य उद्योग है। चीनी एव कपास का व्यापार भी होता है। यहाँ की जनसंख्या ३४,३३४ (१९६१) है।

बारी १ प्रांत, स्थिति ४१° ६' उ० अ० तथा १६° ५२' पू० दे०। यह इटली का एक प्रांत है। इसमे ४७ कम्यून (विभाग) हैं तथा इसका क्षेत्रफल १,९८० वर्ग मील और जनसंख्या १०,००,००० (१९५१) है। ऑफाटो यहाँ की प्रमुख नदी है। वर्षा का औसत २० से ३२ इंच तक रहता है। जनसंख्या सघन है। कृषि यहाँ का प्रमुख उद्योग है। इटली के बादाम उत्पादन मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है। मर्जियन पहाडियो पर चरागाह एव जंगल है तथा कुछ खाद्यान्न भी उगाए जाते हैं। जैतून, अंगूर तथा बादाम के पेड सर्वत्र मिलते हैं। जैतून का तेल निकालना, शराब बनाना तथा फलो की डिब्बाबंदी करना प्रमुख उद्योग हैं। बारी, बारलेटा, मॉलफेटा, बिशेल्ये, एड्रिया एव कोराटो प्रमुख नगर हैं।

२ नगर, स्थिति ४१° ८' उ० अ० तथा १६° ५२' पू० दे०। बारी प्रांत मे, ब्रिंडिजी नगर से ६९ मील उत्तर-पश्चिम स्थित अपूलिया क्षेत्र का प्रसिद्ध बंदरगाह है। यह बारी प्रांत की राजधानी तथा व्यापारिक नगर है। इटली का अधिकांश सागरीय व्यापार इसी बंदरगाह से होता है। नगर का उत्तरी भाग नया तथा दक्षिणी भाग पुराना है। यहाँ खाद्य पदार्थ बनाने एव अन्य कई प्रकार के कारखाने हैं। नार्मन किला, गिरजाघर तथा विश्वविद्यालय दर्शनीय हैं। जनसंख्या २,७१,००० (१९५१) है। [श्री ना० सिं०]

बारीन (Bahrein) स्थिति २६° ०' उ० अ० तथा ५०° ३५' पू० दे०। यह फारस की खाडी मे, कॉतॉर के पश्चिमी तट की ओर स्थित द्वीपो का समूह तथा ब्रिटेन की सुरक्षा के अंतर्गत एक स्वतंत्र राष्ट्र है। इन द्वीपों का कुल क्षेत्रफल २३१ वर्ग मील है। बारीन द्वीप, सबसे बडा, ३० मील लंबा एव १० मील चौडा है। इस द्वीप के उत्तर-पूर्व मे चार मील लंबा मुहर्रक द्वीप है जो मोटर मार्ग द्वारा बारीन द्वीप से जुडा है। अन्य द्वीपों मे कोई भी द्वीप चार मील से अधिक लंबा नही है। यहाँ की कुल जनसंख्या १,४१,००० (१९६१) है। मैनैमा (६२,०००) यहाँ की राजधानी है तथा इनके अतिरिक्त मुहर्रक (३२,२७९) और रीफा प्रमुख नगर हैं। अधिकांश लोग मुसलमान हैं। यहाँ ऊनी कपडे बनाना, मोती निकालना, नावें तथा चटाइयाँ बनाना प्रमुख उद्योग हैं। जमीन अनुपजाऊ तथा जलवायु शुष्क होने से कृषि अधिक उन्नत नही हो पाई है। कुछ तरकारियाँ, छुहारा तथा नींबू आदि फल उगा लिए जाते हैं। यहाँ का सबसे बडा उद्योग पेट्रोलियम निकालना है। तेल उत्पादन के लिये यह विश्वप्रसिद्ध है। मध्य पूर्व एशिया का दूसरा सबसे बडा तेलशोधक कारखाना यहीं है। साउदी अरब से पाइपो द्वारा तेल शोधन के लिये यहाँ लाया जाता है। खजूर प्रमुख पेड तथा ऊँट प्रमुख पशु है। यह अंतर्राष्ट्रीय हवाई मार्ग का केंद्र है। सभी राष्ट्रों की कंपनियो के जहाज यहाँ से होकर गुजरते हैं। [श्री ना० सिं०]

बारूद अर्थात् गन पाउडर को काला बारूद (black powder) भी कहते हैं। इसका आविष्कार कब हुआ, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता, पर ऐसा मालूम होता है कि ईसा के पूर्व काल मे चीनियो को बारूद की जानकारी थी। रोजर बेकन (सन् १२१४–१२९४) के लेखो मे बारूद का उल्लेख मिलता है, पर प्रतीत होता है कि बारूद के प्रणोदक गुणो का उनको पता नही था। बेकन के समय तक बारूद का एक आवश्यक अवयव शोरा शुद्ध रूप मे प्राप्य नही था। १३वी शताब्दी के उत्तरार्ध के शस्त्रों मे प्रक्षेप्य फेंकने मे इसके प्रयोग का पता लगता है। बेकन ने जिस बारूद का उल्लेख किया है उसमे शोरा ४१ २ और कोयला तथा गंधक प्रत्येक २९ ४ प्रति शत मात्रा मे रहते थे। ऐसे बारूद की प्रबलता निकृष्ट कोटि की होती थी। पीछे बारूद के अवयवो मे शोरा, कोयला और गंधक का अनुपात क्रमश ७४ ६४,१३ ५१ और ११ ८५ प्रति शत कर दिया गया।

बारूद मे इन तीनो अवयवो का चूर्ण रहता है। यह चूर्ण प्रारंभ मे हाथ से पीसकर बनाया जाता था, पर बाद मे दलनेवाली मशीन का प्रयोग शुरू हुआ। ये मशीनें घोडो या पानी से चलती थी। इनके स्थान पर बाद मे स्टैंपिंग मशीन का उपयोग शुरू हुआ, पर यह निरापद नहीं था। पहले जो चूर्ण बनते थे वे तीनों अवयवो के चूर्णों को मिलाकर बनते थे। ऐसे चूरे को तोपो मे भली भाँति न तो बहुत कसा जा सकता था और न ढीला ही छोडा जा सकता था। इस कठिनता को दूर करने के लिये १५वी शताब्दी में चूरे को दानेदार रूप में प्राप्त करने का प्रयत्न हुआ। चूरे मे ऐलकोहल, या मूत्र, मिलाकर उसे दानेदार बनाया जाता था। मद्यसेवी का मूत्र इसके लिये सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। इससे बने दाने अधिक शक्तिशाली होते थे। दाने विभिन्न आकार के होते थे और चालकर उन्हें अलग अलग किया जाता था। बडे दाने तोपो मे और छोटे दाने बंदूकों मे इस्तेमाल होते थे।

पीछे अवयवो को शुद्ध रूप मे प्राप्त कर उनसे बारूद बनाने मे और उन्हें दानेदार बनाने मे विशेष सुधार हुआ। अच्छा कोयला भी अब बनने लगा था। उसे भूरा या कोको कोयला कहते थे और यह राई (rye) नामक अनाज के पुआल से बनाया जाता था। पर एतदर्थ पुआल को पूरा पूरा तपाते नहीं थे। सामान्य बारूद मे अवयवों का अनुपात निम्नलिखित रखते थे। शोरा ७५ प्रति शत, कोयला १५ प्रति शत और गंधक १० प्रति शत। नए मिश्रण मे इनकी आपेक्षिक मात्रा क्रमश. ८०, १६, ३ रहती थी तथा एक भाग जल का भी रहता था। ऐसा बारूद बहुत सफल सिद्ध हुआ।

स्टैंपिंग मशीन के उपयोग में, जैसा ऊपर कहा गया है, खतरे का भय था। इसके स्थान में चक्र या ह्वील मिल (Wheel Mill) का प्रयोग शुरू हुआ। आजकल भी चक्र या ह्वील मिल का उन्नत रूप ही प्रयुक्त होता है। इसमें एक क्षैतिज ईषा (shaft) रहती है, जो ऊर्ध्वाधर स्पिंडल (spindle) के घूमने से घूमती है। स्पिंडल में लोहे के दो भारी चक्र जुटे रहते हैं, जिनका भार १० से १२ टन तक और व्यास छह फुट होता है। एक बार में लगभग ३०० पाउंड द्रव्य पीसा जाता है। पानी डालकर उसे गीला रखते हैं। पिसाई चार से लेकर पाँच घंटे में संपन्न होती है। फिर वह दबाया जाता है। प्रति वर्ग इंच पर ३,००० से ४,००० पाउंड दबाव रहता है। ऐसे उत्पाद का घनत्व १.७४ से १.८० तक होता है। इसे फिर तोड़कर विभिन्न विस्तार के दाने प्राप्त करते हैं। इस विधि में समय कुछ अधिक लगता था। अत अब इसमें कुछ और सुधार किया गया है। दो लोहे के कक्ष, ड्रम के आकार के रहते हैं। एक में शोरा गंधक और दूसरे में कोयला गंधक काँसे की गेंदों के द्वारा पीसा जाता है। चार घंटे में विभिन्न अवयव पूर्ण रूप से चूर्ण हो जाते हैं। दोनों कक्षों से चूर्ण को निकालकर, तीसरे ताँबे के ड्रम में रखकर, काठ की गेंदों से दो घंटे तक पीसते हैं, जिससे एकसम चूर्ण बन जाता है। इस विधि को बेलननाद (rolling barrel) विधि कहते हैं। [स० व०]

बॉर्डो (Bordeaux) स्थिति ४४° ५०' उ० अ० तथा ०' ३६" प० दे०। दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस का चौथा सबसे बड़ा, प्रसिद्ध नगर, बंदरगाह एवं जिरोंद (Gironde) प्रशासकीय विभाग की राजधानी है जो गरॉन नदी के बाएँ किनारे पर, पैरिस से ३५९ मील दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम तथा तूलूज से १५९ मील उत्तर-पश्चिम ऐटलैंटिक महासागर से ६० मील दूर, स्थित है। नगर के समीप अनाज, तंबाकू, तरकारी, फल तथा अंगूर की उपज होती है। अंगूर से उच्च कोटि की बॉर्डो नामक शराब के लिये यह नगर प्रसिद्ध है। बॉर्डो में जलयान, युद्धपोत, रेलगाड़ी के डिब्बे, इंजीनियरी यंत्र, प्रशीतन यंत्र, विद्युत् एवं सूक्ष्म यंत्र, जूते, शराब निर्माण से संबंधित वस्तुओं, जैसे बोतल, कार्क एवं डिब्बे तथा बहुत से रसायनकों का निर्माण होता है। इनके अतिरिक्त लोहा और ताँबा की ढलाई, तंबाकू रूपांतरण एवं फल और सब्जियों को डिब्बों में बंद करने का काम होता है। तेलशोधन कारखाना भी यहाँ है।

यहाँ विश्वविद्यालय, व्यापारिक एवं तकनीकी विद्यालय, जलविज्ञान संस्थान, वेधशाला, वायुसेना कार्यालय तथा ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य अमरीका के वाणिज्य दूतावास हैं। यहाँ में बहुत से संग्रहालय, प्रमुख गिरिजाघर, बड़े पादरी का आवास, वानस्पतिक उपवन, न्यायालय, चैंबर आव कामर्स, प्रसारण केंद्र एवं कई चिकित्सालय हैं। यह रेल, सड़क, वायुमार्ग, जलमार्ग आदि का केंद्र है। यहाँ का बंदरगाह आठ मील लंबा और औसतन ५५० गज चौड़ा है। व्यापार में भी इसका प्रमुख स्थान है। नगर की जनसंख्या २,५४,१२२ (१९६२) है। [रा० प्र० सिं०]

बार्नाबास, संत साइप्रेस का एक लेवाइट यहूदी, जो चर्च के प्रारंभिक काल में येरुसलेम में बड़ा क्रियाशील था (दे० ऐक्ट्स ऑव दि एपोसल्स, अध्याय ४)। संत पाल के धर्मपरिवर्तन के बाद संत बार्नाबास ने येरुसलेम के ईसाइयों से उनका परिचय करा दिया। बाद में उन्होंने संत पाल को अंतिओक में बुलाया और वह संत पाल की प्रथम मिशनरी यात्रा में उनका साथी रहा।

सं० ग्रं० — एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव दि बाइबिल, न्यूयार्क, १९६३। [आ० वे०]

बार्नेट, एल० डी० (१८७२–१९६०) प्राचीन भारत के इतिहासज्ञ तथा अभिलेख विशेषज्ञ। बार्नेट का जन्म २१ अक्टूबर, १८७२ को लिवरपूल में हुआ था। शिक्षा मैनचेस्टर, लिवरपूल तथा कैंब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में हुई। वह प्रथम श्रेणी में ट्राइपस में उत्तीर्ण हुए तथा कुलपति स्वर्णपदक प्राप्त किया। इसके बाद दो वर्ष तक उन्होंने हले तथा बर्लिन में शिक्षा प्राप्त की। १८९९ में इंग्लैंड लौटने पर कैंब्रिज ने एम० ए तथा एक वर्ष बाद 'डाक्टर आव लेटर्स' की डिग्री प्रदान की। १८९९ से लगभग ६० वर्ष तक उनका संस्कृत भाषा, तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति ही अध्ययन अध्यापन का क्षेत्र रहा। ब्रिटिश संग्रहालय में वह सर्वप्रथम संयुक्त रक्षक के पद पर नियुक्त हुए। यहाँ उनका कार्य प्राचीन भारतीय प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रंथों की सूची बनाना था। इसके पश्चात् १९०८ में वह वहीं पर रक्षक के पद पर नियुक्त हुए। १९१७ से वह स्कूल ऑव ओरिएंटल स्टडीज में अल्प समय के लिये संस्कृत, भारतीय इतिहास तथा प्राचीन अभिलेख के अध्यापक नियुक्त हुए, और ७६ वर्ष की उम्र तक इसी पद पर काम करते रहे। ब्रिटिश संग्रहालय से इनका मृत्युकाल तक संपर्क बना रहा। १९५९ में वहाँ इनकी हीरक जयंती मनाई गई जो उनकी संग्रहालय की ६० वर्ष की सेवा की प्रतीक थी। २८ जनवरी, १९६० को उनका लंडन में देहांत हो गया। इनके प्रकाशित ग्रंथों में संग्रहालय की संस्कृत, पालि, तथा प्राकृत की ग्रंथसूची (१९०८), 'एंटीक्विटीज़ आव इंडिया' (१९०३) तथा 'एपीग्राफिया इंडिका' में लगभग १०० लेख हैं। [बै० पु०]

बार्बिट्यूरिक अम्ल और बार्बिट्यूरेट बार्बिट्यूरिक अम्ल वस्तुतः मैलोनिक अम्ल का यूरीड है। साधारणतया यह मैलोनिक क्लोराइड या मैलोनिक एस्टर, के यूरिया के साथ संघनन से प्राप्त होता है

$$\begin{array}{lclcl} \text{नाहा}_2 & & \text{काओओका}_2\text{हा}_5 & & \text{नाहा — काओ} \\ | & & | & & |\qquad\quad | \\ \text{काओ} & + & \text{काहा}_2 & \text{— का}_2\text{हा}_5\text{ओहा} \longrightarrow & \text{काओ}\qquad \text{काहा}_2 \\ | & & | & & |\qquad\quad | \\ \text{नाहा}_2 & & \text{काओओका}_2\text{हा}_5 & & \text{नाहा — काओ} \\ \text{यूरिया} & & \text{मैलोनिक एस्टर} & & \text{बार्बिट्यूरिक अम्ल} \end{array}$$

$$\begin{array}{lclcl} NH_2 & & COOC_2H_5 & & NH - CO \\ | & & | & & |\qquad\quad | \\ CO & + & CH_2 & - C_2H_5OH \longrightarrow & CO\qquad CH_2 \\ | & & | & & |\qquad\quad | \\ NH_2 & & COOC_2H_5 & & NH - CO \end{array}$$
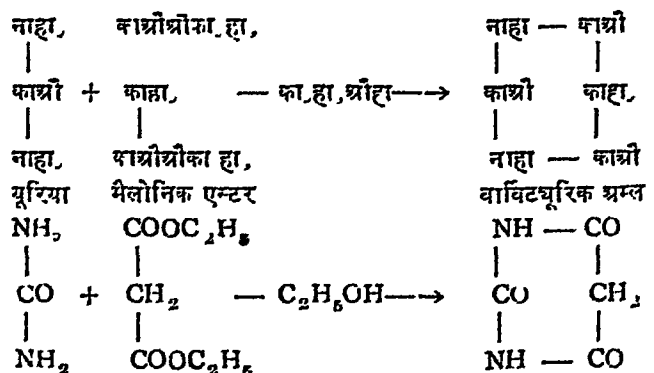
बार्बिट्यूरिक अम्ल के सुंदर क्रिस्टल बनते हैं तथा यह जल में विलेय होता है। इसका जलीय विलयन प्रबल अम्लीय होता है। इस यौगिक में मैलोनिक अम्ल के मेथिलीन समूह का हाइड्रोजन बड़ी सरलता से विस्थापित होकर अनेक यौगिक बनाता है, जो सैद्धांतिक

और व्यावहारिक, दोनो दृष्टियो से महत्व के हैं। नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से यह नाइट्रोबार्बिट्यूरिक अम्ल (Uramil) हो जाता है। इससे स्यूडोयूरिक अम्ल प्राप्त होता है, जिसका उपयोग यूरिया के सश्लेषण मे हुआ है। इसके ऐल्किल सजात बडे प्रभावशाली शामक (sedative) या विद्रापक (hypnotic) हैं, जिनका व्यवहार आज व्यापक रूप से ओषधियो मे होता है। ऐसी ओषधियाँ विरोनल, प्रोपोनल, डायल, लूमिनल इत्यादि क्रमश डाइएथिल बार्बिट्यूरिक अम्ल, डाइप्रोपिल बार्बिट्यूरिक अम्ल, डाइएलिल बार्बिट्यूरिक अम्ल, फेनिल-एथिल बार्बिट्यूरिक अम्ल इत्यादि हैं
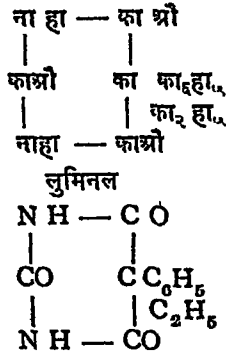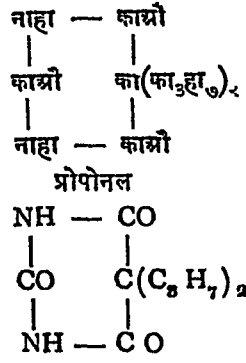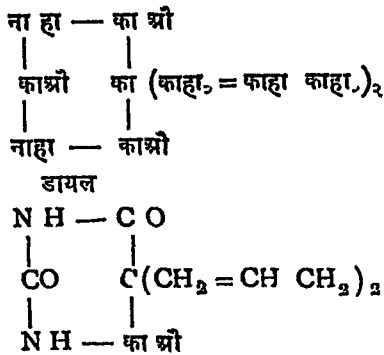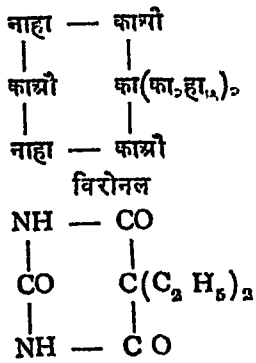
[स० व०]

बार्लो, सर जार्ज आपकी नियुक्ति सन् १७७८ ई० मे हुई तथा सन् १७७९ मे आप कलकत्ते आए। आते ही आपको गया के कलेक्टर श्री ला का सहायक होकर कार्य करना पडा। आपकी सहायता से गया शीघ्र ही बगाल का समृद्ध भाग बन गया। सन् १७८७ मे लार्ड कार्नवालिस ने आपको बनारस की व्यापारिक स्थिति की जाँच करने के लिये भेजा था। अगले साल आप राजस्व विभाग में उपसचिव बनाए गए जहाँ से आपने बगाल के स्थायी प्रबध को पूरा कराया। इससे आप सर जान शोर तथा लार्ड कार्नवालिस के अत्यत निकट हो गए। गवर्नरजनरल बनने पर सर जान शोर ने आपको प्रधान सचिव बना दिया। लार्ड वेलेजली के समय मे भी आप सन् १८०१ ईसवी तक इसी पद पर रहे। सन १८०१ मे आप सुप्रीम कौंसिल के सदस्य बने। इस पद पर रहकर आपने लार्ड वेलेजली की विदेशी नीति का जोरदार समर्थन किया। अक्तूबर, १८०५ मे लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु पर आप गवर्नरजनरल बने परतु आपने लार्ड वेलेजली की विस्तारवादी नीति का अनुसरण नही किया। लार्ड मेटकाफ के शब्दो मे आप बडे सकीर्ण और संकुचित विचारो के व्यक्ति थे। सन् १८०७ मे आपको मद्रास का गवर्नर बनाया गया। आपने यहाँ की प्रसिद्ध रैयतवारी प्रथा को हटाकर एक प्रकार की जमीदारी प्रथा चलाई। परतु आपने अपने दुर्व्यवहार के कारण सेना तथा अन्य अफसरो को कुपित कर दिया जिसके फलस्वरूप सेना मे बहुत बडा विद्रोह हो गया जो बडी कठिनाई से शात किया जा सका। सन् १८१२ ईस्वी मे आपको वापस बुला लिया गया और सन् १८४७ मे आपकी मृत्यु हुई। आप बडे योग्य आफिसर थे पर सकट की घडियो पर काबू पाना आपके सामर्थ्य के बाहर था। [जि० ना० वा०]

बार्सेलोना (Barcelona) १ प्रात, यह स्पेन का एक प्रात है। इसके पूर्व मे हैरोना प्रात, पश्चिम मे लेरिदा एव टेरागोना, उत्तर की ओर सिएरा डेल केडी स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,९८२ वर्ग मील तथा जनसख्या २८,७७,९६६ (१९६१) है। लोब्रीगेट (Llobregat) यहाँ की प्रमुख नदी है। श्रेणियो के मध्य तथा नदियो की घाटियो मे खाद्यान्न, अगूर, फल एव सब्जियाँ आदि उगाई जाती हैं। सागरतटीय मैदानो मे विशेष रूप से खट्टे फल उगाए जाते हैं। स्पेन का यह प्रमुख औद्योगिक प्रात है। यह प्रात अच्छी सडको तथा रेल मार्गों से पूर्ण है। बार्सेलोना के अतिरिक्त अन्य कई उत्तम बदरगाह भी हैं।

२ नगर, स्थिति ४१° ३०' उ० अ० तथा २° १०' पू० दे०। मैड्रिड से ३३० मील उत्तर-पूर्व, भूमध्यसागर के किनारे बार्सेलोना प्रात मे स्थित स्पेन का द्वितीय सबसे बडा नगर एव बार्सेलोना प्रात की राजधानी, बदरगाह तथा व्यापारिक एव औद्योगिक केंद्र है। यहाँ की जलवायु भूमध्यसागरीय है। बसत ऋतु मे औसत वर्षा २२ इच तक होती है। धातु सबधी उद्योग, ऊनी एव रेशमी कपडे, रसायनक, कागज, छपाई, एव मशीनो आदि से सबधित उद्योग होते हैं। रेलो तथा सडको का जाल सा बिछा है। इसका नाम हामिलकार बार्सा के नाम पर पडा। यहाँ १३वी शती का गिरजाघर, महल, पुस्तकालय तथा विश्वविद्यालय दर्शनीय हैं। इस नगर की जनसख्या १५,५७,८६३ (१९६१) है।

३ दक्षिणी अमरीका के वेनिजवीला देश मे नेवेरी नदी के किनारे समुद्र से तीन मील की दूरी पर एक बदरगाह है। इसके पडोस मे कोयले एव नमक की खानें हैं। कुछ व्यापार भी होता है।

[श्री कृ० च० ख०]

बाल स्तनधारी प्राणियो के बाह्य चर्म का उद्वर्ध (outer growth) है। कीटो के शरीर पर जो ततुमय उद्वर्ध होते हैं, उन्हे भी बाल कहते हैं। बाल कोमल से लेकर रूखडा, कडा (जैसे सूअर का) और नुकीला तक (जैसे साहिल का) होता है। बाल की बनावट पक्षियो के परो या सरीसृप के शल्को से बिलकुल भिन्न होती है। स्तनधारियों मे ह्वेल के शरीर पर सबसे कम बाल होता है। कुछ वयस्क ह्वेल के शरीर पर तो बाल बिल्कुल होता ही नही। मनुष्यो मे सबसे घना बाल सिर पर होता है। बाल शरीर को सर्दी और गरमी से बचाता है। शरीर के अन्य भागो पर बडे सूक्ष्म छोटे छोटे रोएँ होते है। पलको, हथेली, तलवे तथा अँगुलियों और अँगूठो के नीचे के भाग पर बाल नही होते। प्रागैतिहासिक काल मे मनुष्यो का शरीर भवरे बालो से ढँका रहता था। पर सभ्य मनुष्य के शरीर पर भवरे बाल नही होते। इसलिये वह वस्त्र धारण कर अपने शरीर की सर्दी और गरमी से रक्षा करता है। मनुष्य के कुछ भागो मे, हारमोन

के स्राव बनने पर ही वाल उगते हैं, जैसे ओठो पर, कांखों मे, लिंगोपरि भागों में इत्यादि।

मनुष्यो के लिये वालो के अनेक उपयोग हैं। घोडो और बैलो के बाल गद्दो मे भरे जाते हैं। कुछ वालो से वार्निश लेपने के बुरुश, दाँत साफ करने के बुरुश तथा चित्रकारी के बुरुश वनते हैं। छोटे छोटे वाल सीमेंट मे मिलाकर गृहनिर्माण मे प्रयुक्त होते हैं। लवे लवे वालो से कपडे बुने जाते हैं। ऐसे कपडे कोट वनाने मे लाइनिंग के रूप मे काम आते हैं। भेडो और कुछ बकरियो मे ऊन प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग कबलो और ऊनी वस्त्रो के निर्माण मे होता है। ऊँटो और कुछ किस्म के खरगोशो के वाल से भी कपडे बुने जाते हैं। कुछ पशुओ के वाल वडे कोमल होते हैं और समूर (फर) के रूप मे व्यवहृत होते हैं।

वाल की सरचना — चमडे के वाहर वाल का जो अश रहता है, उसे काड (shaft) कहते हैं। काड के तीन भाग होते हैं सबसे वाहर रहनेवाले भाग को क्यूटिकल (cuticle) कहते हैं। क्यूटिकल के नीचे एक कडा अस्तर रहता है, जिसे वल्कुट (cortex) कहते हैं तथा वल्कुट के नीचे के मध्य के भाग को मध्याश (medulla) कहते हैं। चमडे के अदर रहनेवाले वाल के भाग को मूल (root) कहते हैं। वाल के वढने से मूल धीरे धीरे काड मे वदलता जाता है। भिन्न भिन्न जतुओ मे वाल की वृद्धि भिन्न भिन्न दर से होती है। साधारणत
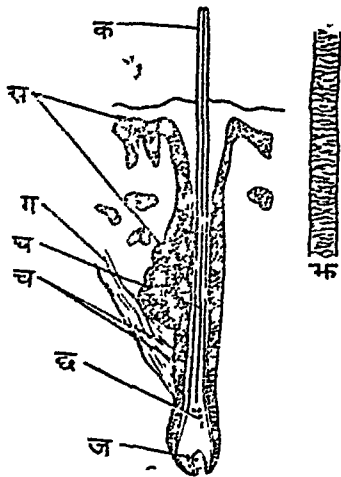
रोमपुटक की अनुदैर्घ्य काट

क रोमकाड, ख वाह्य त्वचा का मैलपीगी स्तर, ग ऊर्ध्व पीली (pili) घ मध्याश, च वाह्य तथा आतरिक मूलाच्छद, छ मूल अथवा रोमघुडी तथा ज पैपिला (papilla)।

कहा जा सकता है कि एक मास मे वाल आधा इच, या एक वर्ष मे पाच से छह इच बढता है। मूल एक गड्ढे मे होता है, जिसे पुटक (follicle) कहते हैं। पुटक मे ही वाल निकलता है। एक पुटक से एक वाल, या एक से अधिक वाल, निकल सकते हैं। पुटक नासपाती के आकार की पैपिला मे बना होता है। यह पैपिला चर्म का होता है। पैपिला और पुटक के सगम पर ही वाल बनता है। पैपिला रुधिरवाहिनी से सबद्ध होता है। इसी से मूल को वे सब वस्तुएँ प्राप्त होती हैं जिनसे वाल का निर्माण और उसकी वृद्धि होती है। जब तक पैपिला और पुटक नष्ट नही होते वाल वढता रहता है। खोपडी के वाल दो से छह वर्षो तक जीवित रहते हैं। इसके बाद वे झड जाते हैं और उनके स्थान पर नए वाल जमते हैं। यह क्रम वयस्क काल तक चलता रहता है। वाल क्यों झड जाता है और उसके स्थान पर नया वाल क्यो नही उगता, इसका कारण अभी तक ठीक समझ मे नहीं आया है। कुछ लोग तो खोपडी के रोगो के कारण गजे हो जाते हैं।

किरणन द्वारा भी कुछ लोग वहुवा अस्थायी रूप से गजे हो जाते हैं। अत स्रावी ग्रथियो के स्राव की कमी, वशागत कारणो तथा जीर्णन से भी वाल झड जाते हैं। अपौष्टिक आहार के अभाव मे वाल शुष्क और द्युतिहीन (dull) होकर कुछ झड सकते हैं, पर सामान्य गजेपन का यह कारण नही है।

वाल का रग — वर्णकों के कारण वाल काला, भूरा, या लाल हो सकता है। यह वर्णक वल्कुट की कोशिकाओ मे निक्षिप्त होता है। वाल क्यो सफेद हो जाता है, इसका कारण ज्ञात नहीं है। यह सभव है कि उम्र के वढने, रुग्णता, चिंता, शोक, आघात, और कुछ विटामिनों की कमी से ऐसा होता हो। डाक्टरो का मत है वाल का सफेद होना वशागत होता है।

वाल प्रधानत निम्नलिखित चार प्रकार के होते हैं

१ आदिवासियो (ऑस्ट्रेलिया और भारत के आदिवासी अपवाद हैं) और हवशियो के वाल छोटे छोटे, कुचित और घुंघराले होते हैं। इन्हें ऊनी वालवाले भी कहते हैं। इन वालो के अनुप्रस्थ परिच्छेद दीर्घवृत्तीय, या वृक्क के आकार के होते हैं। इन वालो का रग सदा ही काला स्याह होता है। ऐसे वाल दो प्रकार के होते हैं। मेलानीशियाई और अधिकाश हवशियो के वाल अपेक्षया लवे और उनके घूंघर वडे होते हैं। कुछ आदिवासियो और हवशियो के वाल छोटे और उनके घुंघर छोटे होते हैं।

२ पीत जातियो (चीनियो, मगोलो) और अमरीकी इडियनों के वाल सीधे, लवे, अकुचित और रुखडे होते हैं। इनके वालो के अनुप्रस्थ परिच्छेद गोलाकार होते हैं और उनके मध्याश या मज्जा का विभेद सरलता से किया जा सकता है। इन वालो का रग भी विना अपवाद के काला होता है।

३ यूरोपवालो के वाल लहरदार, घुंघराले, चिकने और रेशम से मुलायम होते हैं। वाल का अनुप्रस्थ परिच्छेद अडाभ होता है। इनमे मध्याश नलाकार होता है। इनका रग काला, भूरा, लाल, अथवा सन के रेशे सा होता है। भारतीयो के वालों के रग भी इसी के अतर्गत आते हैं।

४ कुछ लोगो के वाल घुंघराले, हवशियो के वालो से मिलते जुलते होते हैं। इन्हें अग्रेजी मे फ्रिजी (frizzy) वालवाले कहते हैं। ऐसे वाल ऑस्ट्रेलियन, आदिवासी न्यूबियन और मुलाट्टो (mulatto) लोगों के होते हैं।

उत्तर यूरोपवालो के वालों के रग हल्के होते हैं और दक्षिण यूरोपवालो के गाढे। साधारणतया सीधा वाल अधिक लवा होता है और ऊनवाला वाल सबसे कम लवा होता है। लहरदार वालो

का स्थान मध्यम है। आस्ट्रेलियन और टैसमेनियनो के शरीर पर सबसे अधिक बाल होते हैं। पीत जातियो के शरीर पर सबसे कम बाल होते हैं। कुछ पीत जाति के लोगो को तो दाढी कदाचित् ही होती है।

बालो की सुदरता बहुत कुछ व्यक्ति के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। शिरोवल्क (scalp) की स्वच्छता रुधिर परिसचारण पर निर्भर करती है। यदि रुधिर परिसचारण मे कोई बाधा पहुँचती है तो बालो को पोषण नहीं मिलता। इससे बाल कमजोर और आभाहीन हो जाते हैं। स्वस्थ रहन सहन, बाह्य कसरत, उपयुक्त आहार तथा मानसिक सुखशाति का बालो के सौदर्य और स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव पडता है। शिरोवल्क को प्रति दिन कम से कम एक बार थपथपाकर मालिश करना अच्छा है। सिर मे कघी करने, या बुरुश से झाडने से भी सिर की मालिश हो जाती है। इससे शिरोवल्क मे रुधिर परिसचारण होने से बाल मुलायम और चमकदार हो जाते हैं।

बालो का, विशेषत महिलाओं के बालो का, सजाना एक कला है। कुछ जातियाँ इस कला मे बडी निपुण हैं। सब देशो की महिलाएँ अपने अपने ढग से अपने बालो को सजाती है। [फू० स० व०]

बालकृष्ण भट्ट जन्म प्रयाग के अहियापुर मुहल्ले मे गौतम गोत्रीय मालवीय ब्राह्मण परिवार मे ३ जून, १८४४ ई० (आषाढ कृष्ण द्वितीया, सं० १९०१ वि०) को हुआ। पिता वेनीप्रसाद भट्ट व्यवसायी थे। माता पार्वतीदेवी पढी लिखी धर्मपरायणा महिला थीं। प्रारभिक शिक्षा यमुना मिशन स्कूल, प्रयाग मे हुई। लालन पालन ननिहाल मे हुआ। वही रहकर भट्ट जी ने शिक्षा प्राप्त की। भट्ट जी की प्रखर बुद्धि और जिज्ञासु प्रवृत्ति देखकर विद्यालय के एक अध्यापक पादरी डेविड इनको बहुत चाहते और इनकी सहायता करते थे। पर आप तिलक लगाकर विद्यालय जाते थे इसलिये पादरी खीझते भी थे। स्कूली शिक्षा सन् १८६७-६८ मे समाप्त कर घर मे ही स्वतत्र रूप से हिंदी, अग्रेजी, बँगला, फारसी आदि भाषाओ का अध्ययन किया। बाद मे डेविड पादरी के अनुरोध से मिशन स्कूल मे सन् १८६९ से २५ रुपए मासिक पर अध्यापकी करने लगे। पर वहाँ धार्मिक विवाद के कारण नौकरी छोड दी।

यद्यपि विवाह सन् १८५६ मे ही हो गया था तथापि इनकी पत्नी (रमा देवी) नए घर मे सन् १८६४ मे आई। २५ रु० मासिक पानेवाले भट्ट जी निखट्टू समझ लिए गए थे। मिशन स्कूल से त्यागपत्र के बाद आर्थिक कष्ट ने और भी आ घेरा। इसी बीच सितबर १८७७ ई० से 'हिंदी प्रदीप' का सपादन सचालन भी आपने शुरू किया। आपने कायस्थ पाठशाला के सस्कृत प्रधानाध्यापक पद पर २० वर्ष तक अध्यापन के बाद सन् १९०८ मे अपनी निर्भीक राष्ट्रीयता के कारण विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। फिर आपने कालाकाँकर से निकलनेवाले 'सम्राट्' साप्ताहिक पत्र का सपादन आरभ किया। चार महीने बाद मतवैभिन्य के कारण आप छोडकर चले आए। सन् १९१० मे काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आमत्रण पर आपने सभा से तैयार हो रहे हिंदी शब्दसागर के सहायक सपादक का कार्यभार स्वीकार किया। कुछ समय तक काशी मे कोश विभाग मे कार्य करने के बाद प्रधान सपादक बाबू श्यामसुदर दास से कुछ अनबन हो जाने के कारण सन् १९१३ मे कोश विभाग से त्यागपत्र दे दिया। अप्रैल, १९१४ मे बीमार पडे और २० जुलाई, १९१४ (श्रावण कृष्ण १३, स० १९७१) को प्रयाग मे उनकी मृत्यु हुई।

भट्ट जी मूलत पत्रकार थे। 'हिंदी प्रदीप' इनका जीवनसर्वस्व था। सितबर १८७७ मे 'हिंदी प्रदीप' का प्रकाशन हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रातिकारी कदम था। भट्ट जी की कुशल सपादनकला, निर्भीक राष्ट्रीयता, प्रखर बौद्धिकता और सबसे बढकर उनकी हिंदी-सेवा तथा जनमतनिर्माण का आदोलन 'हिंदी प्रदीप' का सारतत्व है। अनेक प्रत्यक्ष एव परोक्ष कठिनाइयो का सामना करते हुए 'हिंदी प्रदीप' ब्रिटिश सरकार की नीति, असामाजिक तत्वों, अज्ञानता, दरिद्रता और सामाजिक कुरीतियो के साथ ३३ वर्षों तक अनवरत लोहा लेता रहा। भट्ट जी ने अनेक शैलियो मे अनेक प्रकार के रोचक ललित निबध लिखे हैं। भट्ट जी के पाँच निबधसग्रह प्राप्त हैं — साहित्य सुमन, भट्ट निबधावली भाग — १ और २ तथा भट्ट निबध माला भाग — १ और २।

भट्ट जी के कुल आठ उपन्यास प्राप्त हैं — १ रहस्यकथा, २ गुप्त वैरी, ३ उचित दक्षिणा, ४ नूतन ब्रह्मचारी, ५ सद्भाव का अभाव, ६. सौ अजान एक सुजान, ७ हमारी घडी, तथा ८ रसातल यात्रा। इनका एक अनूदित उपन्यास 'बृहत्कथा' भी है।

भट्ट जी ने कुल १९ नाटको और प्रहसनो का प्रणयन किया है — विषयानुसार उनकी नाट्य रचनाएँ निम्नाकित हैं — (क) राजनीतिक— (१) भारतवर्ष और कलि, (२) इग्लैंडेश्वरी और भारत जननी, (३) दो दूरदेशी, (४) हिंदुस्तान और अफगानिस्तान और (५) एक रोगी और वैद्य। (ख) सामाजिक — (१) शिक्षादान, (२) नई रोशनी का विष, (३) पतित पचम, (४) आचार विडवन, (५) कट्टर सूम की नकल। (ग) पौराणिक — (१) बृहन्नला, (२) सीता वनवास, (३) दमयती स्वयवर, (४) मेघनादवध, (५) किरातार्जुनीय। (घ) ऐतिहासिक — चद्रसेन, पद्मावती (अनूदित)।

भट्ट जी हिंदी गद्य साहित्य की बहुत समर्थ शैली के प्रतिष्ठापक थे। इन्होने विविध शैलियों मे निबधो की रचना की है जिससे हिंदी की शैली का रूप विकसित हुआ। [म० भ०]

बालकल्याण के अतर्गत बालोपकारी उन सभी कार्यों का समावेश होता है जो भ्रूणकाल से लेकर प्राक्शिक्षावय तक के बालको के सर्वागपूर्ण विकास तथा वृद्धि मे सहायक होते हैं और शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे उनके व्यक्तित्व के इष्टतम विकास के सभी सभव साधन उपलब्ध कराकर, उनके जीवन मे उत्साह, आनद और आशा का सचार करते हैं। इसमे बालक के माता पिता, शिक्षक, चिकित्सक, मनोविज्ञानी, समाज-सुधारक, विचारक आदि, समाज के सभी वर्गो के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

बालक देश की अमूल्य निधि हैं। उसकी प्रतिभा का उपयुक्त समय पर देशहित में सदुपयोग करना तभी सभव है जब उचित

लालन पालन और भरण पोषण से नवजात शिशु को पूर्ण समर्थ बनाया जाय। निर्धन, अशिक्षित और साधनहीन माता पिता वालकल्याण का भार वहन नही कर सकते। इस कारण सभी वालकों के व्यापक हित के लिये समाज तथा सरकार का निरतर क्रियाशील रहना आवश्यक है।

अतरराष्ट्रीय वालकल्याण सघ द्वारा जिनेवा मे की गई "वालको के अधिकार" सबधी घोषणा इस प्रकार है

"सभी राष्ट्रो के पुरुष तथा स्त्रियाँ, यह जानते हुए कि मानव अपने सर्वोत्तम देश के लिये वालक का चिर ऋणी है, यह घोषित करते हैं और सब प्रकार से अपना दायित्व पूर्ण करने का कर्तव्य स्वीकार करते हैं कि

१ जातीय, राष्ट्रीय तथा धार्मिक मान्यताओं से परे वालक का सरक्षण होना चाहिए।

२ परिवार के अस्तित्व के लिये वालक की देखरेख आवश्यक है।

३ भौतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के आवश्यक साधन वालक को प्राप्त होने चाहिए।

४ भूखे वालक के भोजन, रोगी की उपचर्या, शारीरिक तथा मानसिक विवशता युक्त (handicapped) की सहायता, दुर्समजित (maladjusted) के पुन शिक्षण तथा अनाथ और अनाश्रित के लिये आश्रय तथा भरण पोषण की व्यवस्था होनी चाहिए।

५ सकट काल मे वालक को सर्वप्रथम सहायता मिलनी चाहिए।

६ समाजकल्याण तथा समाज-सुरक्षा-योजना के सभी लाभ वालक को उपलब्ध होने चाहिए। उसे ऐसी सुशिक्षा मिलनी चाहिए जिससे वह उपयुक्त समय पर जीविकोपार्जन के लिये समर्थ हो सके। उसे सभी प्रकार के शोषणो से सुरक्षित कर देना चाहिए।

७ वालक का लालन पालन इस धारणा से हो कि उसकी प्रतिभा जनता के सेवार्थ प्रयुक्त होगी।

भारत को भी वालको के उपर्युक्त अधिकार पूर्णत मान्य हैं और भारतीय सविधान मे शिशुओ और किशोरो के शोषण तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से सरक्षण की व्यवस्था है। इन अधिकारो के लिये वालको की न्यूनतम माँगो का स्पष्टीकरण इस प्रकार करना ठीक होगा

१ आनुवशिकता (heredity) — माता तथा पिता दोनों के पूर्वजों मे वशागत शारीरिक तथा मानसिक असामान्यता (abnormality) का अभाव तथा उनमे श्रेष्ठ गुणों की प्रधानता हो।

२ जन्मपूर्व — स्वस्थ माता हो, जिसे अनुकूलतम आहार मिलता रहा हो और जिसमे श्रम, विश्राम तथा मानसिक शाति का समीचीन सतुलन हो।

३ जन्मकाल — दुर्घटनारहित सामान्य (normal) प्रसव हो, जिसमे अत्यधिक सज्ञाहारी उपचार (sedation) तथा शीघ्र, अथवा विलवित प्रसव के बुद्धिहीन प्रयासो का अभाव हो।

४ पोषण — स्तनपान और पर्याप्त मात्रा मे कैल्सियम, विटामिन तथा उपयुक्त प्रोटीनयुक्त सतुलित और स्वास्थ्यप्रद आहार हो, जिसमे आवश्यकतानुसार सी तथा डी विटामिनो का आधिक्य हो।

५ अत स्रावी हारमोन — सभी अत स्रावी ग्रथियो का सामान्य व्यापार हो।

६. पारिवारिक जीवन — दायित्वपूर्ण तथा विवेकशील माता पिता का प्रचुर मात्रा मे वात्सल्य प्रेम, सरक्षण द्वारा अभयदान और उत्साहवर्धक समर्थन निरतर प्राप्त हो। वालक के मन मे अपने प्रति परिवार का स्नेहपात्र, सतुष्ट, उपयोगी और मान्य सदस्य होने की तीव्र भावना हो। सद्भाव और ममतापूर्ण वातावरण हो।

७ चरित्र तथा नैतिक प्रशिक्षण — वालक के अनुकरण योग्य सत्यता, ममता, विश्वासपात्रता, दायित्व तथा उदारतापूर्ण परस्पर व्यवहार का परिवार मे चलन हो।

८ शिक्षण — वालक की भावी आवश्यकताओ की पूर्तिकारक तथा उसकी अभिरुचि और क्षमता के अनुकूल शिक्षा की सुविधा हो।

वालकल्याण का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य वालकों का स्वास्थ्य सवर्धन तथा स्वास्थ्य सरक्षण है। रोग का अभाव मात्र ही पूर्ण स्वास्थ्य का लक्षण नही है। चिकित्सालयों मे बालरोगों के निदान की तथा चिकित्सा सबधी सुविधाएँ बढाई जा रही हैं। यह कार्य उचित अवश्य है, किंतु वाल-स्वास्थ्य-सवर्धन एव सरक्षण के अभाव मे केवल चिकित्सा द्वारा ही समस्या दूर नही की जा सकती। निरोधसाध्य रोगो की रोकथाम रोगोपचार से अधिक श्रेयस्कर है। केवल रोगी वालक की ही नहीं, किंतु नीरोग वालकों की भी उचित देखरेख द्वारा उनके सामान्य स्वास्थ्य में स्वल्प विकार उत्पन्न होते ही भावी रोग की सभावना का विचार कर, रोगकारक स्थिति में तत्काल सुधार कर, रोगरोधन की व्यवस्था आवश्यक है। ऐसा न करने से निरोधसाध्य रोग बढकर व्ययसाध्य, कष्टसाध्य और कभी कभी असाध्य हो जाता है।

वालक के लिये अपार कष्ट सहना मातृत्व का अपूर्व गौरव है। वालक के लालन पालन तथा भरण पोषण मे माता को जो त्याग और तपस्या करनी पडती है, उसका दुष्प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर अवश्य पडता है और अत मे बालक की भी स्वास्थ्यहानि होती है। इस कारण स्वास्थ्य की दृष्टि से मातृकल्याण और वालकल्याण एक ही समस्या के दो अन्योन्याश्रित रूप हैं। मातृस्वास्थ्य के लिये जो सगठन आवश्यक है, प्राय वही वालस्वास्थ्य का कार्य करता है। केवल रोग चिकित्सा के क्षेत्र मे बडे बडे चिकित्सालयों मे बालरोग तथा स्त्रीरोग के लिये अलग अलग विशेषज्ञों की आवश्यकता पडती है।

वालकल्याण का कार्य मुख्यत नगरो मे ही होता है, पर इसे अब ग्रामो में भी बढाया जा रहा है। ग्रामो के हजारों प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों मे कई हजार मातृत्व तथा वालकल्याण केंद्र स्थापित किए गए हैं, जिनमे प्रशिक्षित स्वास्थ्यचर (Health Visitor), धातृ अथवा प्रसवसेविका (Midwives), लोक-स्वास्थ्य-उपचारिका (Public Health Nurses), समाजसेवक आदि की सहायता से प्रसवपूर्व, प्रसवकालिक तथा प्रसवोत्तर अवस्था मे गर्भिणी, गर्भ नवजात शिशु, वर्धनशील वालक तथा जच्चा की विशेष देखरेख और आवश्यक चिकित्सा की व्यवस्था की जाती है। गर्भिणी को रहन सहन, आहार, परिश्रम, व्यायाम, विश्राम, निद्रा और स्वच्छता

विषयक जानकारी कराई जाती है। प्रसव की चिंता, भय, विडवना आदि से उत्पन्न मानसिक अशांति को यथासभव दूर कर, गर्भिणी को आश्वस्त किया जाता है। दुर्बलता, रक्तक्षीणता, रक्तविपाक्तता तथा अन्य विकारों को दूर करने के उपाय किए जाते हैं। खनिज विटामिन और मूल्यवान प्रोटीनयुक्त, पोषक आहार का प्रबंध किया जाता है। निर्धन स्त्रियो को दूध तथा अन्य आवश्यक सामग्री बाँटी जाती है। इस प्रकार गर्भिणी के स्वास्थ्यसुधार से गर्भस्थित बालक के उपयुक्त भरण पोषण की सभावना दृढ की जाती है। गर्भपात, अपरिणत प्रसव (premature delivery) तथा प्रसव-कालिक दुर्घटनाओं की रोकथाम कर, जच्चा तथा नवजात के लिये स्वास्थ्योचित सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। परिवारनियोजन भी परोक्ष रूप से इस कार्य मे सहायक है।

चिकित्सको, चिकित्सालयो और स्वास्थ्याधिकारियो से बालकल्याण केंद्र का घनिष्ट सपर्क स्थापित किया जाता है, जिससे आवश्यकता पडने पर रोग का उपचार हो सके और सक्रामक रोगो से बालक की रक्षा की जा सके। अशिक्षित दाइयो को शिक्षा दी जाती है और उनके द्वारा किया जानेवाला प्रसवकर्म यथासभव दोषरहित कराया जाता है।

वृद्धिगत बालक की समय समय पर स्वास्थ्यपरीक्षा की जाती है। देह की वृद्धि, आहार, पुष्टि, शिक्षण, स्वभाव, निद्रा, शौच, स्नान, वस्त्रधारण, खेलकूद, आमोदप्रमोद, बुद्धिविकास, स्वच्छता, आदि की स्वास्थ्यचरो द्वारा व्यवस्था की जाती है और माता पिताओ को उचित परामर्श देकर बालक की वृद्धि तथा विकास सतोषजनक रीति से कराया जाता है। औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिक माताओ की सतानो की प्रशिक्षित उपचारिका द्वारा देख रेख के लिये शिशु पोषणशालाएँ (creche) स्थापित की जाती हैं। उपचारक पाठशालाओ (nursery schools) का प्रबंध किया जाता है, जहाँ छोटे छोटे बालको को मनोरजन सहित शील और सदाचारयुक्त शिक्षण दिया जाता है। यदि उम्र के अनुसार बालक की आहार संबंधी स्वास्थ्यानुकूल प्रवृत्ति बढ़ती जाती है, शौचादि के सबध मे स्वच्छता की ओर रुझान होने लगता है, स्वास्थ्योचित कार्य वह स्वभावत करने लगता है तथा हँसता खेलता, प्रसन्नचित्त और सतुष्ट रहता है, तो समझना चाहिए कि बालक का ऐसा जीवन बीमा हो गया जो ऊँची दर से बीमा किस्त देने पर भी सभव नही।

अनाथ और निराश्रित बालको के लिये अनाथालय का प्रबंध किया जाता है, किंतु ममतापूर्ण कौटुबिक वातावरण के अभाव मे वहाँ बालको का लालन पालन सतोषजनक रीति से नही हो सकता। उन्हें पोष्य पुत्रों की तरह पालने के लिये परिवारो मे देने का प्रयास करना चाहिए। अध, बधिर, मूक, अपाग, विकलाग, विक्षिप्त, जडमूर्ख, और रोगी बालको की समस्या अत्यत कठिन है। उनके लिये उपचार, पुन शिक्षण अथवा पुनर्वास का प्रबध करना आवश्यक है। उनको निस्सहाय नही छोडा जा सकता। समाजसेवको को सरकार की सहायता से कुमार्गी और दुराचारी बालको का उद्धार करने का प्रयास करना चाहिए। सततिनिरोध द्वारा इस प्रकार के बालको को उत्पन्न करने का का कोई समाजस्वीकृत ढग अपनाना वाछनीय प्रतीत होता है।

बालकल्याण के क्षेत्र मे अनेक प्रतिष्ठित सस्थाएँ कार्य कर रही है। भारतीय रेडक्रॉस सोसायटी, भारतीय बालकल्याण परिषद् (मई, १९५२ से), कस्तूरबा गाधी स्मारक निधि, केंद्रीय समाजकल्याण बोर्ड (अगस्त, १९५३ से) और प्रदेशो मे उनकी अनेक शाखाएँ सघटित रूप मे इस कार्य मे सलग्न हैं। अतरराष्ट्रीय बालकल्याण सघ और सयुक्त राष्ट्र की अतरराष्ट्रीय आपातिक निधि तथा विश्वस्वास्थ्य सघ से भी यथेष्ट सहायता मिलती है, जिसके फलस्वरूप बालको की अस्वस्थता तथा मृत्युदर में आशाप्रद सुधार हो रहा है। भारत मे सन् १९२० मे प्रति सहस्र जीवित जात बालको मे मे एक वर्ष की उम्र प्राप्त करने के पूर्व १९५ की मृत्यु हुई थी। यह बाल-मृत्यु-दर सन् १९३५ मे १६४, सन् १९४५ मे १५२ तथा सन् १९५५ मे ११० तक घट गई थी। यह सुधार सतोषजनक नही कहा जा सकता, क्योकि उन्नत देशो की अपेक्षा यह अनुपात अत्यधिक है।

बालक देश की वास्तविक दशा का साकार रूप हैं। उनकी वर्तमान दुरवस्था देश के लिये कलक रूप है। भावी जनशक्ति का सचारकेंद्र होने के कारण बालको के इष्टतम कल्याण के लिये भरसक प्रयत्न करने में ही राष्ट्र का परम कल्याण है। प्रत्येक वर्ष जनमन जाग्रत करने लिये भूतपूर्व प्रधानमत्री श्री नेहरू की जन्मतिथि (१४ नवबर) को बालदिवस मनाया जाता है, जिससे इस कार्य म प्रगति होती है। सामाजिक न्याय तथा मानवता के आग्रह के अनुसार प्रत्येक बालक अपने कल्याण के लिये सरक्षण एव स्वास्थ्य रूपी पैतृक धरोहर का अधिकारी है और सभी से वात्सल्यपूर्ण सद्व्यवहार की मौन याचना करता है। असमर्थ बालक को पूर्णत समर्थ कर अपने परपरागत दायित्व का भार उतारना प्रत्येक का कर्तव्य ही नही वरन् जातिप्रजायन (race propagation) से सबद्ध जीवन का लक्ष्य है। बालक के लालन पालन, भरण पोषण, शिक्षण, आदि के लिये असमर्थ या अयोग्य दपतियो द्वारा सतानोत्पत्ति करना, केवल विवेकहीन और दायित्वरहित कुकर्म ही नही है. वरन् जैविक दृष्टि से यह मूलत मद विपाकतन द्वारा बालहत्या का अनैतिक प्रयास है।

स० ग्र० — पब्लिकेशस ऑव् यूनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रेन्स इमर्जेन्सी फड,
" " " वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन,
" " चाइल्ड वेलफेयर एक्सपर्ट कमेटी।

[भ० या० या०]

बालमनोविज्ञान और बालविकास मनोविज्ञान की वह शाखा बालमनोविज्ञान है, जिसमे गर्भावस्था से लेकर प्रौढावस्था तक के मनुष्य के मानसिक विकास का अध्ययन किया जाता है। जहाँ सामान्य मनोविज्ञान प्रौढ व्यक्तियो की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता और उनको वैज्ञानिक ढग से समझाने की चेष्टा करता है, वहाँ बालमनोविज्ञान, बालको की मानसिक क्रियाओ का वर्णन करता और उन्हें समझाने का प्रयत्न करता है। बालमनोविज्ञान एक नवीनतम विद्या है। यद्यपि १९वी शताब्दी मे भी बालको के भली प्रकार से लालन पालन और शिक्षण के लिये बालमनोविज्ञान की आवश्यकता ससार के प्रमुख विद्वानो ने अनुभव की थी, तथापि इसका अधिक विकास २०वी शताब्दी मे ही, बालशिक्षण के महत्व के साथ साथ, हुआ है। हरबर्ट स्पेन्सर ने इस बात पर जोर दिया है कि प्रत्येक नागरिक की शिक्षा में बालमनोविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य होनी

चाहिए। बालमनोविज्ञान के ज्ञान के बिना सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत नही किया जा सकता। इसके पूर्व रूसो ने भी १८वी शताब्दी मे बालक की योग्य शिक्षा के लिये बालमनोविज्ञान की आवश्यकता बताई थी और कुछ अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बालक के मनोविकास के सबध मे अपनी 'एमील' नामक पुस्तक मे लिखा है, परतु रूसो जैसे विद्वानो के विचार वैज्ञानिक प्रयोगो पर आधारित नही थे। बालको के शारीरिक और मानसिक विकास का वैज्ञानिक ढग से अध्ययन पिछले ८० वर्षों से ही हो रहा है।

बालमनोविज्ञान का प्रारभिक अध्ययन फ्रास मे हुआ। पेरिस के पीकार्ट महाशय ने बालमनोविज्ञान के लिये 'थॉट ऐंड लैंगुएज ऑव दी चाइल्ड' नामक पुस्तक के रूप मे अपनी मौलिक देन दी। इसी समय मदबुद्धि बच्चों की परख करने के लिये डा० बिने ने बुद्धिमापक परीक्षाएँ निकाली। बिने ने जिस काम की शुरुआत की वह बालमनोविज्ञान और शिक्षा के विकास के लिये बडा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। बुद्धिमापक परीक्षाओ का अनेक प्रकार का विकास ससार के भिन्न भिन्न देशो मे हुआ और इनका उपयोग अब ससार के प्राय सभी देशों मे होने लगा है।

जर्मनी के विद्वानो ने बालक के सीखने की प्रक्रियाओ पर अनेक प्रयोग किए और सीखने की क्रिया के गूढ रहस्य को समझाने के मौलिक सिद्धातो का अन्वेषण किया। इन विद्वानो ने बालमन और पशुमन की सीखने की प्रणाली में समानता दिखलाने की चेष्टा की है और यह बताने का प्रयास किया है कि जो मानसिक विकास बदर और वनमानुष से प्रारभ होता है, वह मानव जीवन मे जारी रहता है।

यूरोप के विद्वानो की अधिकतर खोजो का उपयोग इग्लैंड की शिक्षा के क्षेत्र मे किया गया है। यहाँ बुद्धिमापक परीक्षाओं का विशेष विकास हुआ। बालक की भिन्न भिन्न योग्यताओ मे आपसी सबध क्या है, यह जानने की चेष्टा की गई। इस दिशा में स्पीयरमैन और टामसन के प्रयोग अत्यत महत्व के है। इसके अतिरिक्त असाधारण बालको के विषय मे जानकारी की गई और उनकी उचित शिक्षा तथा सुधार के लिये महत्व के सिद्धात निर्धारित किए गए। डा० सिरिल बर्ट का अपराधी बालको का अध्ययन महत्व की देन है। डा० होमरलेन के अपराधी बालको के सुधार सबधी प्रयोग भी महत्व के हैं।

बालमनोविज्ञान सबधी व्यापक कार्य अमरीका के विद्वानो के प्रयास से हुआ है। जो काम सीमित रूप मे दूसरे देशों मे किया गया, वह सुसगठित और विस्तृत ढग से अमरीका मे हुआ है। अमरीका में आज भी सैकडो विद्वान् बालक के विकास की भिन्न भिन्न दशाओ का अध्ययन अनेक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे कर रहे हैं। डा० स्टैनले हाल ने किशोर बालकों का जैसा अध्ययन किया है, वैसा ससार मे दूसरी जगह नही हुआ। उनकी 'ऐडोलेसेंस' नामक पुस्तक बालमनोविज्ञान के लिये महत्व की देन है। आज मैकार्थी, गुडएनफ, आदि विद्वान् बच्चो के क्रियाकलापो पर अनेक प्रकार के अध्ययन कर रहे हैं।

बालमनोविज्ञान की विधियाँ — बालमनोविज्ञान की प्राय वे ही विधियाँ हैं, जो सामान्य मनोविज्ञान की हैं। बालमनोविज्ञान में बाहरी निरीक्षण को अधिक महत्व दिया जाता है। बालको के व्यवहार का एक निरीक्षण अनायास ढग से किया जाता है और दूसरा विशेष नियमों के अनुसार। बालमनोविज्ञान के दत्तो (data) को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उपायो को काम मे लाया जाता है: सुव्यवस्थित वैज्ञानिक निरीक्षण, प्रयोग, जीवनियो का अध्ययन, डायरी लेखन, प्रश्नावली, मनोदर्शन और मनोविश्लेषण। बालकों के व्यवहार से सबधित बातें कई स्थानों से प्राप्त होती हैं — माता पिता और शिक्षक बालको के व्यवहारो को प्रति दिन देखते हैं, अतएव इनसे उनके विकास के बारे मे बहुत कुछ जाना जा सकता है। यदि इन्हें बालव्यवहार के निरीक्षण की ट्रेनिंग दे दी जाय, तो इनका कथन बहुत उपयोगी हो जाता है। बालमनोविज्ञान के विशेषज्ञ अपने बच्चो के व्यवहारो की बचपन से दिनचर्या लिखते रहते हैं। इनकी ये डायरियाँ बडी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। कुछ महापुरुषों ने अपने बालकाल सबधी अनुभव अपनी जीवनियों में लिखे हैं और कुछ लोगो के बचपन की बातें उनके मित्रो ने, अथवा इनपर श्रद्धा या स्नेह करनेवालों ने, लिखी हैं। इन जीवनियो से भी अच्छी सामग्री इकट्ठी हो जाती है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने प्रश्नावलियाँ बनाकर माता पिता तथा शिक्षकों से उपयोगी जानकारी प्राप्त की है। बहुत सी बातें बालकों से प्रश्न पूछकर भी ज्ञात की जाती हैं। इसके अतिरिक्त विशेष मनोवैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा महत्व के दत्त इकट्ठा किए जाते हैं। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो के लिये विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय मे बालकों की सीखने की प्रक्रिया, उनकी स्मरणशक्ति और बुद्धि के विकास पर अनेक महत्व के प्रयोग हो रहे हैं। बालव्यवहार और बालविकास सबधी अनेक उपयोगी बातें बच्चो के डाक्टरो से तथा बाल सुधार गृहो से भी मिलती हैं। बच्चों के शारीरिक विकास की बातें विशेषकर डाक्टरो से ही ज्ञात होती हैं।

यह स्पष्ट है कि बालमनोविज्ञान के निर्माण मे शिक्षको, डाक्टरो, समाजशास्त्रियो द्वारा, सभी की सहायता की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिकों ने बालकों की योग्यताओं, रुचियों, जीवन के मूल्यों तथा सामाजिकता की बातों की जानकारी करने के लिये विशेष प्रकार के परीक्षण बनाए हैं। बालको के क्रियाकलापो का विशेष निरीक्षण करने के लिये एक ऐसे कमरे का भी उपयोग किया जाता है जिसमे पारदर्शकता केवल एक ओर होती है। उसमे मनोवैज्ञानिक बालक की क्रियाओ को बालक की जानकारी के बिना देखता रहता है। इस प्रकार का देखना बालक के स्वाभाविक व्यवहार के अध्ययन के लिये आवश्यक होता है। बालव्यवहार और उसके भाषाविकास के अध्ययन के लिये चलचित्रो, और टेप रिकार्डो का भी उपयोग किया जाता है। इनसे मनोवैज्ञानिक बालक की एक बार की हुई क्रियाओ को, अथवा एक समय की बातचीत को, अपनी फुरसत मे अध्ययन कर लेता है। इन प्रयुक्तियो के कारण याददाश्त की सामान्य भूलें नही होतीं।

बालमनोविज्ञान मे बालको का अध्ययन दो प्रकार से होता है। एक व्यक्तिगत बालको का, शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक विभिन्न परिस्थितियो मे, और दूसरा कई बालको का एक ही परिस्थिति मे विभिन्न समय में निरीक्षण करके। पहले प्रकार का अध्ययन अक्षाश अध्ययन कहा जाता है और दूसरा देशाश। पहले प्रकार के अध्ययन मे जो दत्त इकट्ठा किए जाते हैं, वे अधिक विश्वसनीय होते हैं, परतु अनेक बालको के विकासमय जीवन की बातो की व्यक्तिगत

जानकारी करना अत्यंत कठिन होता है। जिन बालको का अध्ययन किया जाता है, उनका स्थानपरिवर्तन प्राय हो जाता है, अतएव इस प्रकार दत्त इकठ्ठा करना कठिन होता है। अतएव दूसरे प्रकार से ही अध्ययन करके मनोविज्ञान की विशेष प्रगति हुई है। अनेक प्रकार के प्रयोग कई बालको को एक ही जगह पर लेकर किए जाते हैं। विभिन्न अवस्थाओ मे बालको का निरीक्षण तथा उनपर प्रयोग करके वैज्ञानिक दत्त इकठ्ठे किए जाते है। इस प्रकार सपूर्ण बालविकास का चित्र हमारे सामने आता है। कुछ अधूरी बातो की पूर्ति कल्पना से कर ली जाती है।

बालविकास — बालविकास के अध्ययन के लिये बालजीवन निम्न-लिखित सात विभागो मे विभक्त कर लिया जाता है (१) गर्भवासी, (२) नवजात शिशु, (३) एक वर्षीय शिशु, (४) डगमगाकर चलने-वाला, (५) पाठशालारोही, (६) कैशोरोन्मुख तथा (७) किशोर। रूसो महोदय ने बालको की तीन अवस्थाओ की कल्पना की थी शैशवावस्था, जो एक वर्ष से पाँच वर्ष तक रहती है, बाल्यावस्था जो पाँच वर्ष से १२ वर्ष तक रहती है और किशोरावस्था जो १२ वर्ष से २० वर्ष तक रहती है। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान के विशेषज्ञो ने रूसो की उक्त कल्पना का समर्थन बालक की काम-वासना के विकास के आधार पर किया है। मनोविश्लेषण वैज्ञानिक बालक के मानसिक विकास मे उसकी ज्ञानात्मक शक्तियो की प्रधानता न मानकर भावो की ही प्रधानता मानते हैं। मनुष्य के भावो के विकास के साथ ही उसकी अन्य मानसिक शक्तियो का विकास होता है। भाव वासना का सहगामी तत्व है। मनुष्य की मूल अथवा मुख्य वासना कामवासना है। अतएव जैसे जैसे उसका विकास होता है वैसे वैसे बालक का मानसिक विकास होता है।

मनोविश्लेषको के कथनानुसार बालक का वासनात्मक विकास पाच वर्ष की अवस्था मे ही हो जाता है। इसके बाद उसकी काम वासना अतर्हित हो जाती है। वह तेरह वर्ष मे फिर से जाग्रत होती है और इस बार जाग्रत होकर सदा बढती ही रहती है। इसके कारण बालक का किशोर जीवन बडे महत्व का होता है। इसके पूर्व के जीवन मे बालक का भावात्मक विकास रुक जाता है, परतु उसका शारीरिक और बौद्धिक विकास जारी रहता है। किशोरावस्था मे बालक का सभी प्रकार का विकास पूर्णरूपेण होता है।

उपर्युक्त बालमनोविकास की कल्पना एकागी दिखाई देती है। अतएव बालमनोविज्ञान मे विशेष रुचि रखने वाले मनोवैज्ञानिकों ने बालको का सीधा निरीक्षण करके और उनके व्यवहारो के विषय में प्रयोग करके, जो निष्कर्ष निकाले वे अधिक महत्व के हैं। उन्होने अपने दत्त उपर्युक्त सात विभागो मे रखना अधिक उचित समझा है।

गर्भवासी बालक — सभी प्राणियो का शारीरिक विकास उनकी गर्भावस्था से ही होता है। इस विकास मे दो प्रमुख बातें काम करती हैं, एक प्राकृतिक परिपक्वता और दूसरी सीखने की सहज वृत्ति। अतर केवल इतना ही है कि जहाँ दूसरे प्राणियो के जीवनविकास मे प्राकृतिक परिपक्वता का अधिक महत्व रहता है, वहाँ बालक के विकास मे सीखने की प्रधानता रहती है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से यह सिद्ध हो गया है कि जब बालक माँ के गर्भ मे दो ही महीने का रहता है तभी से सीखने लगता है। पर उसके सीखने की जानकारी इस समय करना कठिन होता है।

गर्भावस्था में बालक के सीखने की क्रिया की जानकारी के लिये मनोवैज्ञानिको ने विशेष प्रकार के यत्रो का आविष्कार किया है। उसके क्रियाकलापो को जानने के लिये एक्स किरण का उपयोग किया जाता है। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह तोड़ने की क्रिया जब वह गर्भ मे था, तभी सीख ली थी। वह चक्रव्यूह को वहीं तक तोड सका जहाँ तक उसने गर्भ मे तोडना सीखा था। जिस बालक की माँ को गर्भावस्था मे सदा भयभीत रखा जाता है, वह बालक डरपोक होता है। ससार के लडाकू लोग ऐसी माताओ की सतान थे जिन्हे गर्भावस्था मे युद्ध का जीवन व्यतीत करना पडा था। नेपोलियन और शिवा जी की माताओं का जीवन ऐसा ही था। इसी तरह रेलवे क्वार्टर मे रहनेवाले कर्मचारियो के बच्चे गर्भस्थ अवस्था से ही रेल की गडगडाहट, सीटी आदि सुनने के आदी हो जाते हैं।

नवजात शिशु — नवजात शिशु जन्म लेते ही रोता है। यह शुभ सूचक है। यदि बच्चा अस्वस्थ है, तो उसके मुँह से रोने की आवाज नही निकलती। पैदा होने के कुछ ही घटो बाद उसे भूख लगती है। यदि इस बच्चे के मुँह मे माँ का स्तन दे दिया जाय, तो वह दूध खीचने लगता है। यदि बच्चे को दो तीन दिन तक माँ के स्तन से दूध न पिलाया जाय, तो वह माँ के स्तन से दूध खीचना ही भूल जाता है। माँ का दूध भी स्तन को बालक के मुह मे डाले बिना नही निकलता।

नवजात शिशु को दु ख सुख की अनुभूति दो तीन वर्ष के बालक जैसी नही होती। नवजात शिशु एक साल तक काफी रोता है, परतु उसकी आँख से आँसू नही निकलता। नवजात शिशु की बहुत थोडी सवेदनाएँ होती हैं। जोर की आवाज उसे चौंकाती है और तेज प्रकाश भी सवेदना उत्पन्न करता है, परतु रग के विषय मे उसकी सवेदना स्पष्ट नही होती। नवजात शिशु की भावात्मक अनुभूतियाँ भी सीमित होती हैं। वह मुस्कुराता तो है, परतु यह नही कहा जा सकता कि आनद की अनुभूतियो के कारण वह मुस्कराता है। वह २० घटे तक सोता रहता है। उसका अधिक सोना ही स्वास्थ्यवर्धक है। नवजात शिशु अधिकतर सहज क्रियाएँ ही करता है।

एक साल का बालक — एक साल का बालक अपने और बाहरी वातावरण मे भेद करना सीख लेता है। वह अपना हाथ पैर और सिर आवश्यकता के अनुसार इधर उधर चलाता है। वह खडे होने की चेष्टा करता है और यदि कोई हाथ पकडकर उसे चलाए, तो वह चलने की भी चेष्टा करता है। बालक के अदर हर एक पदार्थ को छूने की, उठाने की एव मुँह तक ले जाने की बाध्य प्रेरणा रहती है। वह स्वावलबी बनने की चेष्टा करता है। वह स्वार्थी रहता है। यदि कोई चीज उसे दी जाय, तो वह प्रसन्नता प्रदर्शित करता है और यदि उसे छीन लिया जाय तो वह रोने लगता है। एक और दो वर्ष के बीच बच्चा भाषा का ज्ञान प्राप्त करना प्रारभ कर देता है। वह एक दो शब्द भी सीख जाता है।

दो वर्षीय बालक—दो वर्ष का बालक अपने वातावरण मे सदा खोज करता रहता है। वह इधर उधर दौडता, कूदता फांदता, गिरता रहता है। वह सीढियो पर चढने की चेष्टा करता है। सीढियाँ चढ़ लेता है, लेकिन उतरने में लुढ़क जाता है। वह अब

कप से दूध पी लेता है और चम्मच को काम में ला सकता है। जब उसे कपड़े पहनाए जाते हैं, तब वह कपड़े पहनाने मे बड़ों की मदद करता है। तस्वीर देखकर वह वस्तुओं का नाम बताता है और दो चार शब्द की कविता कह लेता है। दो से चार वर्ष की अवस्था मे बच्चे का शब्दकोश ३०० शब्दो का हो जाता है। तीन वर्ष तक का बालक अपने आपके बारे मे संज्ञा शब्द से ही बोध करता है, सर्वनाम से नही। वह अपना नाम जानता है। वह यह भी बता सकता है कि वह लड़का है या लड़की। शब्दो का उच्चारण बड़ा ही फूहड़ रहता है। इन बच्चो की शब्दावली विलक्षण प्रकार की होती है। जिन शब्दो का वे उच्चारण नही कर सकते, उनके बदले मे वे दूसरे शब्द काम मे ले आते हैं। पानी के लिये मम्मा कहते है, चिड़िया को चू चू और कुत्ते को तू तू कहते हैं। उन्हे अपने भावों को सँभालने की शक्ति नही रहती। वे सभी चीजें अपने ही लिये चाहते हैं। यदि कोई व्यक्ति उनसे कोई वस्तु छीन ले, तो वे बहुत ही क्रुद्ध हो जाते हैं। दो से पाँच वर्ष का शिशु सभी बातें सीखता है। यह १० घंटे प्रति दिन चलता रहता है। ऐसा बालक सामाजिकता प्रदर्शित नही करता और बच्चो मे रुचि न दिखाकर बड़ों मे रुचि दिखाता है। बच्चों के साथ खेलने मे वह सहयोग नही दिखाता, वरन् उनका अनुकरण मात्र करता है। वह व्यक्तियों मे रुचि न रखकर वस्तुओ से रुचि रखता है और अच्छी लगनेवाली वस्तु दूसरों से छीन लेता है।

इस उम्र के बच्चों की भावात्मक अनुभूतियाँ पर्याप्त रहती है। वह दु ख पाने पर तेजी से रोता है और कभी कभी बड़ा ही तूफान मचाता है, जैसे पैर पटकना और सिर पीटना। उसमें दूसरो के भावों को समझने की शक्ति नहीं रहती और न उनके प्रति वह सहानुभूति ही दिखाता है। यदि वह किसी बच्चे को रोते हुए देखता है, तो वह परेशानी की मुद्रा मे उसे देखता रहता है, स्वय नही रोने लगता। शिशु के भय बहुत थोड़े होते हैं। तीक्ष्ण आवाज तथा नीचे गिरने से वह डरता है। इसी प्रकार आगतुको से और नई चीजो से वह डरता है, परतु वह बहुत से डरावने जानवरो से नही डरता। यदि उसे सर्प से डरवाया न जाय, तो वह उसे पकड़ने दौड़ेगा। शिशु को अनेक डर कुशिक्षा के द्वारा प्राप्त होते हैं।

छह वर्ष का बालक — जन्म से लेकर पाँच वर्ष तक की अवस्था शैशव अवस्था कही जाती है। छह वर्ष की अवस्था से ही बाल्यकाल माना गया है। बाल्यकाल स्कूल जाने की अवस्था है। यह काल १०, ११ वर्ष तक माना गया है। बाल्यकाल मे बालक अपने शरीर की परवाह ठीक प्रकार से कर सकता है और दूसरो के साथ ठीक व्यवहार कर लेता है। वह चलते चलते अचानक गिर नही पड़ता। ऊँची जगहों पर चढ जाता है और वहाँ से उतर आता है। इस काल मे बालकों को कूदना, फाँदना, दौड़ना, सभी बातो मे मजा आता है। जहाँ शिशु अपनी उँगलियो का ठीक से उपयोग नही कर पाता, वहाँ बालक उनसे बहुत कुछ काम ले सकता है। वह अपने कपड़े, जूते स्वय पहन सकता है। बालो में कघी कर सकता है और स्वय स्नान कर सकता है। इन सब कामो को वह बड़े लोगो से सदा सीखता रहता है।

पाँच वर्ष के शिशु मे खेलने की प्रवृत्ति होती है। वह अनेक प्रकार की वस्तुएँ खेल के लिये चाहता है। ऐसे बच्चों के लिये मैकिनो, और प्लैस्टिसीन अथवा गीली मिट्टी बहुत उपयोगी होती है। वह अनेक प्रकार की चित्रकारी करता है। अब वह जो चित्र बनाता है, वे प्राय सार्थक होते हैं।

छह वर्ष की उम्र तक बच्चे का बौद्धिक विकास काफी हो जाता है। वह गिनती का अर्थ समझने लगता है। २० तक गिनती सरलता से गिन लेता है और २० पदार्थों को गिन भी सकता है। पाँच वर्ष की अवस्था तक बच्चे को पहाड़े का ज्ञान नहीं आता। जो भी उसे रटाया जाय वह रट लेता है। इस समय बच्चा पुस्तक पढ़ने की चेष्टा करता है, परन्तु उसका बहुत कुछ पढ़ना सार्थक नहीं होता। उसका शब्दकोश २,५०० शब्दों का हो जाता है। उसकी भाषा में केवल सरल वाक्य नहीं रहते, वरन् मिश्रित और जटिल वाक्य भी रहते हैं। भाषा के विकास के साथ साथ उसके विचारों में भी पर्याप्त विकास होता है। इस उम्र का बालक काल्पनिक इच्छाओं को ठीक से काम में लाता है। उसका कार्य कारण के आधार पर सोचना अभी विकसित नहीं होता।

इस उम्र मे बालक की भावनाएँ काफी विकसित हो जाती हैं। वह प्रसन्नता, क्रोध, भय, निराशा आदि भावों को स्पष्ट रूप से और प्राय ठीक ढग से व्यक्त करता है। यदि कोई उसे चिढ़ा दे, या कोई उसकी चीज छीन ले, तो वह उसे मारने की चेष्टा करता है। बालक के इस काल के भय उसके जीवन में बड़ा महत्त्व रखते हैं। यदि किसी बालक का पिता क्रोधी हुआ और वह बात बात मे बच्चे को डाँटता रहा, तो बालक सदा के लिये डरपोक बन जाता है। और यदि बालक मे कोई प्रतिभा हुई, तो उसके मन मे पिता के प्रति और भी मानसिक ग्रंथि बन जाती है।

बाल्यकाल आदतों के डालने का काल है। पाँच और दस वर्ष के बीच बालक मे अनेक प्रकार की भली और बुरी आदतें पड़ जाती हैं। अभिभावकों पर ही इन आदतों के डालने की जिम्मेदारी रहती है। जैसा वे उसे बनाते हैं, वैसा वह बन जाता है। यदि किसी बालक को भूत प्रेत की कहानियाँ इस समय सुनाई जाएँ, तो वह जीवन भर के लिये डरपोक बन जाता है।

बाल्यकाल मे बच्चे को भयभीत करनेवाली वस्तुओं की संख्या बढ़ जाती है। अब वह अचानक तेज आवाज सुनकर तथा ऊँचे स्थानों पर जाने से तो नहीं डरता, परतु अधकार मे जाने से तथा अकेले रहने से, बड़े बड़े जानवरो से तथा नवागतुको से डरने लगता है। इसके कल्पित डर बहुत से हो जाते हैं। वह भूत प्रेत से तो डरता ही है। वह डाकुओं और चोरो के नाम से भी डरता है।

बाल्यकाल में बच्चे को आत्मप्रकाशन की उतनी स्वतत्रता नही रहती जितनी उसे पहले रहती है। उसे स्कूल जाना पड़ता है और मास्टर की निगरानी मे रहना पड़ता है। वहाँ उसे शीलवान बनना पड़ता है। यह शील दिखाऊ होता है। इसका बदला वह घर पर चुकाता है। स्कूल से लौटकर वह माँ के सामने बहुत सी शैतानी करता है।

छह से दस वर्ष के बीच के बालक के सामाजिक भाव काफी विकसित हो जाते हैं। वह लड़के और लड़की दोनो से मिलता जुलता है, परतु उसके अधिक मित्र अपने ही समानलिंग के बालकों

में होते हैं। लडके लडकियों को प्राय. मूर्ख समझते हैं और लडकियाँ लडको को उद्दड तथा फूहड समझती हैं। लडके और लडकियो के खेलो मे अब भिन्नता आ जाती है। लडकियाँ गुडियो, चूल्हे चक्की आदि से खेलती हैं और लडके नाव, गेंद, तीर कमान, पैरगाडी आदि से खेलते हैं।

इस काल मे वालक के चुने हुए मित्र रहते हैं। वह इन्ही के पास रहना अधिक पसद करता है। यदि उन्हे कोई मारे पीटे तो वह उन्हें बचाने की कोशिश करता है। वह उन्हें अपने खाने पीने की चीजें भी देता हैं, परतु यह मित्रता सदा बदलती रहती है। इस प्रकार बालक का अनेक लोगो से प्यार करने का अभ्यास हो जाता हैं। उसके सामाजिक भावो का प्रसार भी इसी मित्रता के भावो के प्रसार के साथ होता रहता है।

छह से दस वर्ष के बालक मे भले और बुरे का विवेक उत्पन्न हो जाता है। उसमे साधारणत आत्मनियत्रण की शक्ति का उदय हो जाता है। बडों के द्वारा प्रोत्साहित होने पर बालक मे आत्म नियत्रण की शक्ति बढती जाती है। यही समय है जब कि बालक मे नैतिक आचरण का बीजारोपण होता है। अत्यत लाड मे रहनेवाले बालक की नैतिक वृद्धि सुप्त बनी रहती है, अथवा वह प्रारभ से ही विकृत हो जाती है। इसी प्रकार अधिक ताडना में रखे गए बालक मे झूठा शिष्टाचार आ जाता है। उसमे भले बुरे को पहचानने की क्षमता ही नही रहती। आदतो के वशीभूत होकर ऐसे बालक भला आचरण करना सीख लेते हैं, पर इन आदतों का आधार भय रहता है।

किशोरपूर्वावस्था — यह अवस्था १० से १३ वर्ष की अवस्था है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार यह अवस्था भावों के अर्तहित होने की अवस्था कहलाती है। इस काल में बालक अपनी शारीरिक और बौद्धिक प्रगति तो करता है, परतु भावो की दृष्टि से उसका अधिक विकास नही होता। इस अवस्था मे लडको की अपेक्षा लडकियाँ अधिक तीव्रता से बढती हैं। उनका भाषाज्ञान अधिक हो जाता है। उनकी शारीरिक वृद्धि भी लडकों की अपेक्षा अधिक होती है। अब लडके और लडकियो का भेद सभी बातो में स्पष्ट होने लगता है।

बालक इस काल मे दूसरों के प्रति पहले जैसी सहानुभूति नही दिखाता। वह दूसरो को चिढाने तथा तग करने में आनद का अनुभव करता है। उसे अब साहस के काम की कहानियाँ अधिक पसद आती हैं। वह कल्पना मे विचरण करना आरभ कर देता है।

इस समय बच्चे गरोह मे रहना पसद करते हैं। लडके और लडकियों के खेल भिन्न भिन्न हो जाते हैं और उनके आचरण के नियमो में भी भेद हो जाता है। इनके खेलो मे शारीरिक क्रियाएँ अधिक होती हैं। लडके बाइसिकिल चलाना, बढईगीरी करना, कूदना, उछलना और तैरना सीखना चाहते हैं और लडकियाँ रस्सी कूदना, नाचना, गाना, हारमोनियम बजाना और रेडियो सुनना पसद करती हैं।

इस काल में बच्चो की नैतिक बुद्धि जाग्रत नही रहती। वे बहुत से अनुचित व्यवहार भी कर डालते हैं। कुछ बालको मे चोरी की आदतें लग जाती हैं, परतु अभिभावको को इससे डरना नही चाहिए। बालको की नैतिक धारणाओ को ठीक करने के लिये उन्हें उचित वातावरण उपस्थित करना चाहिए। इस काल में बालक के सबसे महत्व के शिक्षक उसके माता पिता नही, वरन् समवयस्क बालक रहते हैं। वह गिरोह मे रहना पसद करता है। उसे गरोह से अलग तो करना नही चाहिए, पर गरोह के बालको के बारे मे उसके अभिभावको को जानकारी रखनी चाहिए। मनुष्य की नैतिकता का विकास उसकी सामाजिकता के साथ साथ होता है और उसके सामाजिक भाव ही उसे अनेक कामो मे लगाते हैं।

इस काल मे बालक का पर्याप्त बौद्धिक विकास होता है। उसका शब्दकोश काफी बढ जाता है। इसमे आठ दस हजार शब्द आ जाते हैं। उसके वाक्य भी अब अधिक लबे होते हैं। इनमे छह शब्द तक रहते हैं। इस काल मे बालक बहादुरी के कारनामो वाली, जादू की और दूसरे देशो के बच्चो के वृत्तातवाली पुस्तकें पढना चाहता है। वह जानना चाहता है कि दूसरे देश के लोग कैसे रहते हैं और क्या करते हैं। अतएव इस काल मे बच्चों को ऐतिहासिक तथा भौगोलिक कहानियाँ सुनाना, उनके मानसिक विकास के लिये उपयुक्त होता है। इस समय बच्चे लिखना सीखने लगते है, परतु उनके लिखने मे गलतियाँ बहुत होती हैं। उनके अक्षर सुदर नही होते और विराम चिह्न आदि का लिखते समय उन्हे ज्ञान नही रहता। लिखने मे सुधार करना इस समय नितात आवश्यक है। जो पाठशालाएँ इस काल मे बालको की लेखनशैली पर ध्यान नही देतीं वे जीवन भर के लिये बालक को इस दिशा मे निकम्मा बना देती हैं। लेखनशैली और अक्षरो को सुदर बनाने की बालक मे रुचि इसी काल में पैदा की जा सकती है। मनुष्य की लेखनशैली का उसके चरित्र पर गहरा प्रभाव पडता है। लेखन की सावधानी चरित्र की सावधानी बन जाती है। अतएव इस काल मे बालको की लेखनशैली पर ध्यान रखना नितात आवश्यक है।

किशोरावस्था — किशोरावस्था मनुष्य के जीवन का वसतकाल माना गया है। यह काल बारह से उन्नीस वर्ष तक रहता है, परतु किसी किसी व्यक्ति मे यह बाईस वर्ष तक चला जाता है। यह काल भी सभी प्रकार की मानसिक शक्तियो के विकास का समय है। भावो के विकास के साथ साथ बालक की कल्पना का विकास होता है। उसमे सभी प्रकार के सौंदर्य की रुचि उत्पन्न होती है और बालक इसी समय नए नए और ऊँचे ऊँचे आदर्शों को अपनाता है। बालक भविष्य मे जो कुछ होता है, उसकी पूरी रूपरेखा उसकी किशोरावस्था मे बन जाती है। जिस बालक ने धन कमाने का स्वप्न देखा, वह अपने जीवन मे धन कमाने मे लगता है। इसी प्रकार जिस बालक के मन मे कविता और कला के प्रति लगन हो जाती है, वह इन्ही मे महानता प्राप्त करने की चेष्टा करता और इनमे सफलता प्राप्त करना ही वह जीवन की सफलता मानता है। जो बालक किशोरावस्था में समाज सुधारक और नेतागिरी के स्वप्न देखते हैं, वे आगे चलकर इन बातों मे आगे बढते है।

पश्चिम में किशोर अवस्था का विशेष अध्ययन कई मनोवैज्ञानिकों ने किया है। किशोर अवस्था काम भावना के विकास की अवस्था है। कामवासना के कारण ही बालक अपने मे नवशक्ति का अनुभव करता है। वह सौंदर्य का उपासक तथा महानता का पुजारी बनता है। उसी से उसे बहादुरी के काम करने की प्रेरणा मिलती है।

किशोर अवस्था शारीरिक परिपक्वता की अवस्था है। इस अवस्था मे बच्चे की हड्डियो में दृढ़ता आती है; भूख काफी लगती है। कामुकता की अनुभूति बालक को १३ वर्ष से ही होने लगती है। इसका कारण उसके शरीर मे स्थित ग्रंथियो का स्राव होता है। अतएव बहुत से किशोर बालक अनेक प्रकार की कामुक क्रियाएँ अनायास ही करने लगते हैं। जब पहले पहल बड़े लोगो को इसकी जानकारी होती है तो वे चौंक से जाते हैं। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान ने बालक की किशोर अवस्था की कामचेष्टा को स्वाभाविक बताकर, अभिभावकों के अकारण भय का निराकरण किया है। ये चेष्टाएँ बालक के शारीरिक विकास के सहज परिणाम हैं। किशोरावस्था की स्वार्थपरता कभी कभी प्रौढ अवस्था तक बनी रह जाती है। किशोरावस्था का विकास होते समय, किशोर को अपने ही समान लिंग के बालक से विशेष प्रेम होता है। यह जब अधिक प्रबल होता है, तो समलिंगी कामक्रियाएँ भी होने लगती है। बालक की समलिंगी कामक्रियाएँ सामाजिक भावना के प्रतिकूल होती हैं, इसलिये वह आत्मग्लानि का अनुभव करता है। अत: वह समाज के सामने निर्भीक होकर नही आता। समलिंगी प्रेम के दमन के कारण मानसिक ग्रंथि मनुष्य में पैरानोइया नामक पागलपन उत्पन्न करती है। उस पागलपन मे मनुष्य एक ओर अपने आपको अत्यत महान् व्यक्ति मानने लगता है और दूसरी ओर अपने ही साथियो को शत्रु रूप मे देखने लगता है। ऐसी ग्रंथियाँ हिटलर और उसके साथियो मे थी, जिसके कारण वे दूसरे राष्ट्रों की उन्नति नही देख सकते थे। इसी के परिणामस्वरूप द्वितीय विश्वयुद्ध छिडा।

किशोर बालक उपर्युक्त मन स्थितियों को पार करके, विषमलिंगी प्रेम अपने मे विकसित करता है और फिर प्रौढ अवस्था आने पर एक विषमलिंगी व्यक्ति को अपना प्रेमकेंद्र बना लेता है, जिसके साथ वह अपना जीवन व्यतीत करता है।

कामवासना के विकास के साथ साथ मनुष्य के भावों का विकास भी होता है। किशोर बालक के भावोद्वेग बहुत तीव्र होते हैं। वह अपने प्रेम अथवा श्रद्धा की वस्तु के लिये सभी कुछ त्याग करने को तैयार हो जाता है। इस काल मे किशोर बालकों को कला और कविता मे लगाना लाभप्रद होता है। ये काम बालक को समाजोपयोगी बनाते हैं।

किशोर बालक सदा असाधारण काम करना चाहता है। वह दूसरो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। जब तक वह इस कार्य मे सफल होता है, अपने जीवन को सार्थक मानता है और जब इसमे वह असफल हो जाता है तो वह अपने जीवन को नीरस एव अर्थहीन मानने लगता है। किशोर बालक मे डीग मारने की प्रवृत्ति भी अत्यधिक होती है। वह सदा नए नए प्रयोग करना चाहता है। इसके लिये दूर दूर तक घूमने में उसकी बड़ी रुचि रहती है।

किशोर बालक का बौद्धिक विकास पर्याप्त होता है। उसकी चिंतन शक्ति अच्छी होती है। इसके कारण उसे पर्याप्त बौद्धिक कार्य देना आवश्यक होता है। किशोर बालक मे अभिनय करने, भाषण देने तथा लेख लिखने की सहज रुचि होती है। अतएव कुशल शिक्षक इन साधनों द्वारा किशोर का बौद्धिक विकास करते हैं।

किशोर बालक की सामाजिक भावना प्रबल होती है। वह समाज मे सम्मानित रहकर ही जीना चाहता है। वह अपने अभिभावकों से भी सम्मान की आशा करता है। इसके साथ १०, १२ वर्ष के बालकों जैसा व्यवहार करने से, उसमे द्वेष की मानसिक ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे उसकी शक्ति दुर्बल हो जाती है और अनेक प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

बालक का जीवन दो नियमो के अनुसार विकसित होता है, एक सहज परिपक्वता का नियम और दूसरा सीखने का नियम। बालक के समुचित विकास के लिये, हमे उसे जल्दी जल्दी कुछ भी न सिखाना चाहिए। सीखने का कार्य अच्छा तभी होता है जब वह सहज रूप से होता है। बालक जब सहज रूप से अपनी सभी मानसिक अवस्थाएँ पार करता है तभी वह स्वस्थ और योग्य नागरिक बनता है। कोई भी व्यक्ति न तो एकाएक बुद्धिमान होता है और न परोपकारी बनता है। उसकी बुद्धि अनुभव की वृद्धि के साथ विकसित होती है और उसमे परोपकार, दयालुता तथा बहादुरी के गुण धीरे धीरे ही आते हैं। उसकी इच्छाओं का विकास क्रमिक होता है। पहले उसकी न्यून कोटि की इच्छाएँ जाग्रत होती हैं और जब इनकी समुचित रूप से तृप्ति होती है तभी उच्च कोटि की इच्छाओं का आविर्भाव होता है। यह मानसिक परिपक्वता के नियम के अनुसार है। ऐसे ही व्यक्ति के चरित्र मे स्थायी सद्गुणों का विकास होता है और ऐसा ही व्यक्ति अपने कार्यों से समाज को स्थायी लाभ पहुँचाता है। [ला० रा० गु०]

बालमुकुंद गुप्त, जन्म गुडियानी गाँव, रोहतक मे १८६५ ई०(कार्तिक शुक्ल ४, स० १९२२ वि०) मे हुआ। पिता का नाम था पूरनमल। गाँव मे उर्दू और फारसी की प्रारंभिक शिक्षा के बाद १८८६ ई० मे पजाब विश्वविद्यालय से मिडिल परीक्षा प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप मे उत्तीर्ण। विद्यार्थी जीवन से ही उर्दू पत्रो में लेख लिखने लगे। झज्झर (जिला रोहतक) के 'रिफाहे आम' अखबार और मथुरा के 'मथुरा समाचार' उर्दू मासिकों मे प० दीनदयालु शर्मा के सहयोगी रहने के बाद १८८६ ई० मे चुनार के उर्दू अखबार 'अखबारे चुनार' के दो वर्ष सपादक रहे। १८८८ से १८८९ तक लाहौर के उर्दू पत्र 'कोहेनूर' का सपादन किया। उर्दू के नामी लेखकों मे आपकी गणना होने लगी। १८८९ ई० मे महामना मालवीय जी के अनुरोध पर पर कालाकाँकर (अवध) के हिंदी दैनिक 'हिंदोस्थान' के सहकारी सपादक हुए जहाँ तीन वर्ष रहे। यहाँ प० प्रतापनारायण मिश्र के सपर्क से हिंदी के पुराने साहित्य का अध्ययन किया और उन्हें अपना काव्यगुरु स्वीकार किया। 'गवर्नमेंट के विरुद्ध कडा' लिखने पर वहाँ से हटा दिए गए। अपने घर गुडियानी में रहकर मुरादाबाद के 'भारत प्रताप' उर्दू मासिक का सपादन किया और कुछ हिंदी तथा बँगला पुस्तकों का उर्दू मे अनुवाद किया। अंग्रेजी का इसी बीच अध्ययन करते रहे। १८९३ मे 'हिंदी बगवासी' के सहायक सपादक होकर कलकत्ता गए और छह वर्ष तक काम करके नीति सबधी मतभेद के कारण इस्तीफा दे दिया। १८९९ मे 'भारतमित्र' कलकत्ता के सपादक हुए और मृत्यु पर्यंत इस पद पर रहे। मृत्यु १८ सितबर, १९०७ ई० को दिल्ली मे हुई। 'भारतमित्र' मे आपके प्रौढ सपादकीय जीवन का निखार हुआ। भाषा, साहित्य और राजनीति के सजग प्रहरी रहे। देशभक्ति की

भावना इनमे सर्वोपरि थी। भाषा के प्रश्न पर 'सरस्वती' संपादक, प० महावीर प्रसाद द्विवेदी से इनकी नोंक झोंक, लार्ड कर्जन की शासन नीति की व्यग्यपूर्ण और चुटीली आलोचनायुक्त 'शिवशभु के चिट्ठे' और उर्दूवालो के हिंदी विरोध के प्रत्युत्तर मे 'उर्दू बीबी के नाम चिट्ठी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लेखनशैली सरल, व्यग्यपूर्ण, मुहावरेदार और हृदयग्राही होती थी। पैनी राजनीतिक सूझ और पत्रकार की निर्भीकता तथा तेजस्विता इनमे कूट कूट कर भरी थी। उर्दू और हिंदी अखबारो का इतिहास लिखने के अतिरिक्त विभिन्न विषयो पर आपकी आठ मौलिक और अनुवादित पुस्तकें हैं।

[व० प्र० मि०]

बालरोग विज्ञान (Pediatrics) या कौमारभृत्य को भारतीय चिकित्सक ईसा से ६०० वर्ष पूर्व आयुर्वेद के अष्टागो मे एक महत्वपूर्ण अग के रूप मे मानते थे। कौमारभृत्य के अतर्गत प्रसूतितत्र, स्त्रीरोगविज्ञान तथा बालरोग विज्ञान आते थे। इस वैज्ञानिक युग मे विज्ञान मे क्रांतिकारी प्रगति के साथ साथ चिकित्साशास्त्र के ज्ञानभडार के अतिवर्धित होने से ये तीनो शास्त्र पृथक् पृथक् महत्वपूर्ण हो गए हैं। कौमारभृत्य विषय पर स्वतत्र आर्ष ग्रथ केवल काश्यपसहिता ही उपलब्ध हुआ है। इस ग्रथ का प्रतिसस्कर्ता वृद्धिजीवक, जो कौमारतत्र का विशेषज्ञ माना जाता था, शल्य विशेषज्ञ जीवक से नितात भिन्न है। कौमारभृत्य के अतर्गत कुमार का पोषण, रक्षण, उसकी परिचारिका या धात्री, दुग्ध या आहार जन्य विकार, शारीरिक विकृतियाँ, गृहजन्य बाधा एव औपसर्गिक रोग तथा आगतुक रोगों का विवरण एव चिकित्सा वर्णित हैं। इसी के अतर्गत बालस्वास्थ्य का वर्णन उपलब्ध होता है।

यदि आधुनिक चिकित्सापद्धति के इतिहास का अवलोकन किया जाय, तो ज्ञात होता है कि बालरोग विज्ञान नामक कोई स्वतत्र शास्त्र १९वीं शताब्दी के अत तक नहीं था तथा बालक युवक का ही लघुरूप माना जाता था। सर्वप्रथम १८९६ ई० मे किंग्स कालेज चिकित्सालय, लदन, मे बालरोग विशेषज्ञ पृथक् रखा गया। इस समय शिशुओ की मृत्यु दर २०% से ४०% तक पहुँच चुकी थी। २०वीं शताब्दी मे क्रांतिकारी अनुसधानो, पर्याप्त अध्ययन एव जनस्वास्थ्य के सिद्धातो की सहायता से शिशु-मृत्यु-दर पहले से १० प्रति शत कम होने लगी। इसके पश्चात् भी वैज्ञानिको को सतोष नही हुआ है और वे मृत्यु दर को कम करने के उपायो के अनुसधान मे लगे हुए हैं। आधुनिक चिकित्सक बालक की वृद्धि एव विकास को एक युवा पुरुष से भिन्न मानते हैं और कुमार को शरीररचना विज्ञान, शरीरक्रिया विज्ञान, मानस विज्ञान एव रोग क्षमता के दृष्टिकोण से युवा से भिन्न मानते हैं। बालक की शरीरक्रिया मे बराबर परिवर्तन होते रहते हैं, जो उसके स्वास्थ्य के लिये अत्यत अनुकूल एव आवश्यक हैं। इसके साथ साथ स्वास्थ्य विज्ञान, पोषण विज्ञान, रोगक्षमता विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, सूक्ष्मजीव विज्ञान, महामारी विज्ञान एव स्वच्छता विज्ञान के सबध मे हो रहे अनुसधानो से चिकित्साक्षेत्र मे बडी उन्नति हुई है। नवीन औषधियो की खोज से, निदान के तरीको मे हुए परिवर्तनो से, रसचिकित्सा तथा कुमार शल्यविज्ञान के द्वारा व्याधियो पर पर्याप्त विजय प्राप्त कर ली गई है। इन समस्त कारणो से कौमारभृत्य, या कौमारतत्र, आजकल एक विशेष विज्ञान माना जाने लगा है।

शिशुओ, बालको और कुमारो मे जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हे कारण के अनुसार, अथवा जिस सस्थान विशेष का आश्रय ग्रहण कर उत्पन्न होते हैं तदनुसार, वर्गीकृत किया जाता है। ये रोग बालको की वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं। अत उन कारणो का जो गर्भाधान से लेकर पूर्ण अभिवृद्धि तक प्रभावशील होते हैं, अध्ययन इस शास्त्र के अतर्गत आता है; उदाहरणार्थ, आनुवशिकता, गर्भिणी रोग एव पोषण तथा प्रसवजन्य रोग।

बालरोगो का वर्गीकरण एव विवरण निम्नलिखित है :

(१) आनुवशिक — (क) पैतृक और मातृक, (ख) प्रसवपूर्व तथा (ग) प्रसवज।

उपर्युक्त कारणो से उत्पन्न होनेवाले मुख्य रोग निम्नलिखित हैं

(अ) हीमोफिलिया (haemophilia) (ब) गर्भज रक्तनाल कोशिकाप्रसु रोग, (स) पारिवारिक सावधिक अगघात तथा मस्तिष्क विकार एव ऐलर्जी रोग, जैसे एक्जीमा और श्वसनीगत श्वास रोग आदि हैं।

(२) सहज रोग — बालक माता के गर्भ मे रहते हुए माता पिता के रोगो से ग्रसित हो जाता है, जैसे फिरग। इतना ही नहीं, व्याधियो से गर्भ की ठीक वृद्धि नही होती और कुछ विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं जैसे

(क) सहज मोतियाबिंद, (ख) हृत्विकृत रचना तथा (ग) विकलागता।

(३) प्रसवकाल मे होनेवाले मुख्य रोग — (क) श्वासावरोध, (ख) मस्तिष्क रक्तस्राव, (ग) मृदुअस्थिभग्न तथा (घ) पेशीघात हैं। ये रोग प्रसवकाल मे शिशु के लिये घातक हो जाते हैं या निम्नलिखित उपद्रवो को पैदा करते हैं। (अ) अवरुद्ध मानसिक वृद्धि, (ब) मिर्गी तथा (स) मस्तिष्क घात।

इनके अतिरिक्त बालमृत्यु, दुर्घटनाओं और विषाक्त भोजन एव सर्पदंश से होती है। इनका कारण शिक्षा की कमी, लापरवाही आदि है। अत ऐसी मृत्यु को रोका जा सकता है।

बच्चो की वृद्धि के लिये एव स्वच्छता के लिये पोषक आहार अत्यत आवश्यक है। यह बालक की लबाई, आकार, वजन तथा वय पर निर्भर करता है। पोषक आहार मे (१) प्रोटीन, (२) आवश्यक ऐमीनो ऐसिड, (३) वसा, (४) कार्बोहाइड्रेट, (५) विटामिन, (६) जल तथा (७) खनिज द्रव्य अत्यत आवश्यक हैं।

इसके पश्चात् अपोषणज रोग तथा आतरिक रोग आते हैं

(४) अपोषणज रोग — प्रोटीन की कमी से शरीर की वृद्धि, रक्त प्रोटीन का निर्माण तथा नई वस्तुओं का निर्माण रुक जाता है। कार्बोहाइड्रेट की कमी से शरीर मे काम करने की शक्ति घट जाती है। खनिज द्रव्यो की कमी से अस्थि का निर्माण, हार्मोनों का निर्माण, एजाइमो का निर्माण, शरीरवृद्धि, रक्तरजन तथा अन्य रासायनिक क्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती है। रक्त तथा शरीर के द्रवों या क्षार-अम्ल-सतुलन बिगडने से अतिसार, वृक्क रोग, वमन रोग, वमन एव कमजोरी आदि रोग

होते हैं। इस प्रकार विटामिन ए की कमी से रतौंधी, नेत्रशुष्कता, रात्र्यंधता होती है। विटामिन बी की कमी से कई रोग होते हैं। विटामिन बी के कई प्रभेद हैं। थायमीन की कमी से बेरी बेरी रोग, राइबोफ्लेविन की कमी से मुंह और आंतों में व्रण तथा निकोटिनिक अम्ल की कमी से रक्तवाहिनियों के रोग होते हैं। पाइरिडॉक्सीन वमन रोकता है। कैल्सियम पैंटोथिनेट की कमी से हाथ, पैर में जलन होती है तथा नियासीन की कमी से पेलैग्रा रोग होता है। विटामिन डी की कमी से रिकेट होता है। विटामिन सी की कमी से स्कर्वी रोग होता है। विटामिन के की कमी से रक्तस्रावी रोग हो जाता है (देखें, विटामिन)। यदि भोजन में दूध, मांस, अंडे, मछली, फलरस, हरी सब्जियाँ तथा लवण हों एवं पाचनहीनता न हो, तो विटामिन की कमी से होनेवाले रोग नहीं होते। जल पर्याप्त मात्रा में मिलने पर रक्त शुष्कता, प्यास, मलावरोधों की उत्पत्ति में अवरोध तथा रक्तपरिसंचरण में बाधा नहीं हो पाती।

इनके अतिरिक्त कुछ वैकारिक जीवाणु तथा परजीवी कृमियों के कारण भी रोग उत्पन्न होते हैं, जिन्हें औपसर्गिक रोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं :

(५) औपसर्गिक रोग — क जीवाणुजन्य रोग, ख विषाणुजन्य रोग, ग. रिकेट्सियल (rickesial) रोग, घ माइकोटिक रोग तथा च परजीवीजन्य रोग।

मुख्यत संक्रामक रोगों में मसूरिका, कर्णफेर, कुकुरखाँसी, रोहिणी, स्कार्लेट ज्वर, शैशविक अंगघात, चेचक, चिकन पॉक्स, और दुखना, कान बहना आदि आते हैं। इनमें कुछ जीवाणुओं से तथा कुछ विषाणुओं से उत्पन्न होते हैं। टिटैनस, न्यूमोनिया तथा कुछ रोगों को, जैसे डिफ्थीरिया या रोहिणी (C. diphtheria), हूपिंग कफ (H pertusis), स्माल पॉक्स आदि को टीके द्वारा रोका जा सकता है। इन रोगों की चिकित्सा इनके प्रतिजीवविष (anti-toxin), प्रतिजैविकों (antibiotics), टॉक्सॉइड्स (toxoids), मानविक गामा ग्लोबिन आदि से की जाती है। टिटैनस प्रतिजीवविष से रोका जा सकता है।

बाल्यावस्था में श्वसन संस्थान में होनेवाले रोग निम्नलिखित होते हैं (क) सर्दी जुकाम, (ख) शैशविक विषाणुज न्यूमोनिया, (ग) इन्फ्लूएंजा तथा (घ) एटिपिकल न्यूमोनिया। ये सब रोग विशेष वाइरस से उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त (अ) बैक्टीरियल न्यूमोनिया भयानक बालरोग है, परंतु आधुनिक सल्फा ओषधियों तथा प्रतिजैविकों (पेनिसीलीन, टेरामाइसीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन) से पराजित कर लिया गया है, (ब) बालकों में यक्ष्मा (tuberculosis) भी होता है। यह बी० सी० जी० के टीके एवं अच्छे पोषण तथा शुद्ध वातावरण में रोका जा सकता है। स्ट्रेप्टोमाइसीन, पैराऐमाइनो सैलिसिलिक अम्ल, तथा आइसो निकोटिनिक ऐसिड हाइड्रेज़ाइड से यक्ष्मा रोग से मुक्त किया जा सकता है। इन ओषधियों के साथ साथ कैल्सियम, विटामिन डी आदि भी दिया जाता है।

बालकों में सिफलिस रोग न हो, इसके लिये बालक उत्पन्न होने से पहले ही रोगी माता को पेनिसिलीन पर्याप्त मात्रा में देकर इस रोग को रोका जा सकता है।

इसी प्रकार बच्चों में होनेवाले कुछ और रोग भी हैं, जिन्हें पेनिसिलीन स्ट्रेप्टोमाइसीन, टेरामाइसीन, क्लोरोमाइसिटीन, के द्वारा रोका जा सकता है। कुछ रोग, जैसे (क) मस्तिष्कावरण शोथ (meningitis) (ख) लसपर्वशोथ (lymph adenitis), स्टेफिलोकोकस, न्यूमोकोकस, स्ट्रेप्टोकोकस आदि, जीवाणुओं के संक्रमण से होते हैं। टाइफाइड तथा पैराटाइफाइड भी क्लोरोमाइसीन, पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन आदि, से अच्छे होते हैं। मलेरिया क्विनाइन, पेल्यूड्रीन, निवाक्विन आदि से अच्छा होता है।

कुछ रोगों को, जैसे हृदय की रक्तवाहिनियों के और मलवह संस्थान के रोगों को, तथा मस्तिष्क, मलद्वार तथा पैर इत्यादि की जन्मजात विकृतियों को शल्य चिकित्सा से ठीक किया जा सकता है।

कुमारों में रूमैटिक ज्वर भी पाया जाता है। इसका ठीक कारण अभी अज्ञात है, परन्तु इसे सैलिसिलेट्स, ए० सी० टी० एच० और कॉर्टिसोन से ठीक किया जाता है।

चिकित्सा जगत् में हार्मोन चिकित्सा द्वारा एतत्कालीन अधिक रोगों का उन्मूलन किया जाता है। एतत्कालीन अधिक रोग निम्नलिखित हैं (क) डायाबीटिज मेलाइटस, (ख) एड्रीनल होनेवाली अल्पहीनता, (ग) डायाबीटिज इंसिपिडस, (घ) पैराथाइरॉइडजन्य टिटैनी, (ङ) थाइरॉयडजन्य रोग, (च) अति एड्रिनलजन्य रोग, (छ) पिट्यूटरी हीनता जन्य रोग, (ज) गोनेडस हीनताजन्य रोग तथा (झ) यौन ग्रंथिज रोग।

बालकों में मानसिक, भावुकतापूर्ण, तथा सामाजिक विषयक असंतुलित अवस्थाओं में होनेवाले रोगों का महत्व दैहिक व्याधियों से कम नहीं है। इसके लिये मानसिक स्वस्थता और मन शामक चिकित्सा की सहायता द्वारा बालकों के मानसिक विकास की अभिवृद्धि की जा सकती है। बालकों के घातक रोगों में टिटैनस, डिफ्थीरिया, यक्ष्मा, मेनेन्जाइटिस, एन्सेफ़लाइटिस, न्यूमोनिया, श्वास नलिकाशोथ आदि हैं।

[न० ना० सि० तथा भ० सि०]

बालश्रम और बालश्रमिक का अस्तित्व संसार में प्राचीन काल से ही रहा है। जो माता पिता अपने बाल बच्चों का पालन पोषण नहीं कर पाते, उन्हें बच्चों को किसी धनी परिवार में नौकर बना देना पड़ता है। देहात में बहुत से गरीब बच्चे पशु चराने का काम प्राचीन काल से करते आए हैं। उन दिनों जब एक गिरोह दूसरे गिरोह पर आक्रमण करता था, तब जीतनेवाला गिरोह पराजित गिरोह की स्त्रियों और बच्चों को लूट लिया करता था। फिर ये स्त्रियाँ सेविकाएँ और बच्चे गुलाम बना लिए जाते थे। यूनान देश में यह गुलाम प्रथा प्रचलित थी। मुसलमान धर्म के साथ साथ गुलामी की प्रथा भी बढ़ी। गुलामों से सभी प्रकार के काम कराए जाते थे। किसी प्रकार का अपराध हो जाने पर, मालिक द्वारा उन्हें मृत्यु दंड तक दे दिया जाता था। इसे कोई भी सभ्य व्यक्ति बुरा नहीं समझता था।

सभ्यता के विकास के साथ गुलाम बच्चों का भी जीवन सुधरता गया। उदार मनोवृत्ति के लोग अपने घर के श्रमिक बालकों के प्रति भला व्यवहार करने लगे। कभी कभी वे गुलाम बालक को अपनी संपत्ति का भी स्वामी बना देते थे, या अपनी बेटी की शादी उससे कर देते थे। साधारणत, देहात के लोग बालश्रमिकों पर अत्याचार

नही करते थे। यदि कोई पिता अपने पुत्र को किसी कारीगर के यहाँ काम सीखने के लिये रख देता, तो ये कारीगर प्राय ध्यान से उन्हें कारीगरी की बातें सिखाते थे। अत. बालश्रमिकों के जीवन के सुधार के विषय पर शिक्षित जनता का ध्यान नही गया, परतु जब आधुनिक सभ्यता के विकास मे मशीन युग आया तथा मशीनों के द्वारा सचालित बडे बडे कारखाने चलने लगे, तो बालश्रमिको पर होनेवाले अत्याचारो की ओर शिक्षित समाज का विशेष ध्यान गया।

मशीन युग मे बालश्रम — मशीन युग हृदयहीन है। मशीन का मालिक थोडे समय मे अधिक सामान तैयार कराना चाहता है। वह चाहता है कि उसकी मशीन खाली न रहे और जिस प्रकार तेजी के साथ मशीन काम करती है उसी प्रकार मनुष्य भी बिना रुकावट के काम करता रहे। कारखाना मनुष्य को भी मशीन बना देता है। यहाँ मानवता को स्थान नही रहता। उम्र का कोई विचार नही रखा जाता। यदि कोई बच्चा कारखाने का कोई भी कार्य कर सकता है, तो उसे वह काम दे दिया जाता है। कारखाने के बहुत से कार्यों मे बुद्धि की आवश्यकता ही नही पडती, अतएव ऐसे काम बच्चो से कराए जाते हैं। केवल उनको इतनी शिक्षा दे दी जाती है कि वे उसकी देखभाल कर सकें। कुछ सहृदय मालिक इन बच्चों को भी प्रशिक्षण दे देते हैं, जिससे वे सावधानी-वाले कार्य भी कर सकें। परतु इस प्रकार के मालिक कम ही होते हैं। इसलिये कारखानो के युग मे बच्चो के साथ सहृदयता का व्यवहार हो, इसकी आवश्यकता का अनुभव समाज सुधारको ने किया।

बालश्रम कानून — बालश्रमिको के जीवन के सुधार की माँग पहले पहल इग्लैंड में हुई। इग्लैंड ही पहला यूरोपीय देश है जिसमे कल कारखानो का विकास हुआ और जहाँ बालश्रमिको का अधिक से अधिक उपयोग होता रहा। बालश्रम सबधी कानून बनने के पूर्व आठ से बारह वर्ष तक के बच्चो से भी आठ दस घटे तक काम कराया जाता था। बालश्रम सबधी पहला कानून इंग्लैंड मे सन् १८०२ मे बना। इसका उद्देश्य सूती मिलो मे बालकों से अति श्रम कराने मे रुकावट डालना था। किंतु कानून बनने से ही किसी वर्ग पर अत्याचार होना नही बद हो जाता। इसके लिये पर्याप्त जनशिक्षा तथा प्रबल जनमत की आवश्यकता होती है। यह जनमत बीस वर्षों मे तैयार हुआ। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १८१९ मे एक कानून पास किया, जिसके अनुसार सूती मिलो मे कार्य करनेवाले बालको की उम्र कम से कम नौ वर्ष निर्धारित की गई। किंतु नियम का पालन कराने के लिये यथोचित व्यवस्था न होने के कारण, वह ठीक से कारखानो पर लागू न हो सका। अतएव सन् १८३३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने फिर बालश्रम शोषण को रोकने के लिये एक फैक्ट्री ऐक्ट पास किया। इस फैक्ट्री ऐक्ट के अनुसार बालश्रमिक को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी गई और कानून का पालन कराने के लिये निरीक्षण की व्यवस्था की गई। धीरे धीरे श्रमजीवी बच्चों के जीवन मे अधिकाधिक सुधार होता गया। जिस प्रकार का कार्य बालश्रमिक का जीवन सुधारने के लिये इग्लैंड मे हुआ, उसी प्रकार का कार्य यूरोप के अन्य कल कारखानेवाले देशो मे भी हुआ।

अतरराष्ट्रीय बालश्रम — १९वीं शताब्दी के मध्यकाल तक यूरोप के प्राय सभी देश कल कारखानो से सपन्न हो गए। अतएव बालश्रमिक की रक्षा का प्रश्न सपूर्ण यूरोप के लिये महत्वपूर्ण बन गया। सन् १८९० मे अतरराष्ट्रीय श्रम समेलन जर्मन सरकार के आमंत्रण पर बर्लिन मे हुआ। इसमे यूरोप की चौदह सरकारो ने अपने प्रतिनिधि भेजे। इस समेलन मे बालश्रम सबधी अनेक बातो पर विचार विमर्श हुआ। किंतु विभिन्न देशो के प्रतिनिधि एक मत न हो सके। सन् १९०० मे श्रम कानून बनवाने के लिये एक अतरराष्ट्रीय सघ निर्मित हुआ। इसका मुख्य केंद्र स्विट्सरलैंड के बासले नगर मे स्थापित हुआ तथा यूरोप के १६ देशो मे इसकी शाखाएँ फैली। इस सस्था ने लगभग २० वर्ष तक बालश्रम सबधी कानून बनने की आवश्यकता का प्रचार अपने समेलनो, लेखो और पुस्तिकाओ द्वारा किया। प्रथम विश्वयुद्ध का अत होने पर १९१९ ई० की सधि मे सस्था यह व्यवस्था करवाने मे सफल हुई कि बालको का अनुचित शोषण न हो। इसके कुछ ही समय बाद अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना हुई, जो राष्ट्रसघ के अतगत २० वर्ष तक काम करता रहा।

अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन ने १९१९ ई० मे बालश्रमिक की उम्र कम से कम १४ वर्ष हो, इस आशय का कानून बनाने पर जोर दिया। बाद मे १९३७ ई० मे यूरोपीय बालको के लिये १५ साल, जापान के बालको के लिये १४ साल तथा भारतीय बालको के लिये १३ साल का नियम बनाया गया। इस सस्था की भिन्न भिन्न सभाओ मे कल कारखानों के अतिरिक्त दूसरे सस्थानो मे कार्य करनेवाले बालको की उम्र १४ वर्ष रखी गई, जो आगे चलकर १५ वर्ष कर दी गई। इसी अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन ने बालको को खतरनाक तथा अस्वास्थ्यकर कामो से, तथा रात मे काम करने से रोकने के लिये नियम बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया और इसमे सफलता भी प्राप्त की। अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन सभी कल कारखानो मे काम करनेवाले लोगो की सुविधा के लिये यूरोप की विभिन्न सरकारो द्वारा नियम बनवाता रहता है। सन् १९३९ तक यूरोप की १५ सरकारो ने कारखानो मे काम करनेवालो की उम्र कम से कम १४ वर्ष कर दी। परतु प्रथम विश्वयुद्ध के कारण कुछ समय तक बालश्रम सबधी नियमो का पालन न हो सका। विश्वयुद्ध के बाद सभी क्षेत्रो मे बालश्रमिक के जीवन मे सुधार हुआ।

अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन ने ऐसे अनेक नियम विभिन्न देशों की सरकारो से बनवाए जो बच्चो का खतरनाक, अस्वास्थ्यकर अथवा अनैतिक कार्यों मे उपयोग करने से रोकते हैं। जो लडके पढने की क्षमता रखते थे, उनको कारखानो मे कार्य करने से रोकने के लिये भी नियम बनवाए गए। कितने ही देशों की सरकारो ने १८ वर्ष से कम उम्र के बालको का रात मे काम करना गैरकानूनी घोषित कर दिया। इन कानूनो की देखभाल के लिये निरीक्षक नियुक्त किए। निरीक्षण का कार्य सरल करने के लिये कारखानो के मालिको को आज्ञा दी जाती है कि वे १६ वर्ष तथा १८ वर्ष के सभी बालकों की पजिका रखें और इसमे उनकी जन्मतिथि स्पष्टत दिखाई जाय यह भी दिखाया जाय कि वे किस प्रकार के काम मे लगे हैं। अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन ने कृषि मे काम करनेवाले बालकों के

रक्षार्थ भी अनेक प्रकार के नियम बनवाने की चेष्टा की। इन व्यवसायों में १४ वर्ष से कम के बालकों को काम करने से रोका गया है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने न केवल बालश्रम शोषण को ही अनेक प्रकार से रोका वरन् उसने अल्प वयस्कों में उच्च स्तर के कार्य करने के लिये बालकों की औद्योगिक शिक्षा का भी प्रबंध कराया। इसलिये इस संस्था का कार्य नकारात्मक ही न होकर विधेयात्मक भी है। एक सामान्य योग्यता के बालक को यदि नित्य-प्रति अच्छे और जटिल कार्य करने की शिक्षा मिलती जाय, तो वह सामान्य श्रमिक की श्रेणी से उठकर कुशल कारीगर या मिस्त्री बन सकता है, परन्तु इसके लिये देश की सरकारों का नियम बनाना होता है कि कारखानों में कार्य करनेवाले होनहार बालकों को उचित व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा दी जाय और उनसे केवल कुली की तरह काम न लिया जाय।

सोवियत रूस का प्रयोग — बालश्रमिक का जीवनस्तर ऊँचा उठाने के लिये रूस ने नया प्रयोग किया। रूस की शिक्षाप्रणाली ने पाठशाला जानेवाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिये किसी न किसी प्रकार के श्रम में भाग लेना अनिवार्य कर दिया, चाहे वह कारखाने का हो या घर का। उसके पाठ्यक्रम में श्रम को उतना ही महत्व दिया गया जितना बौद्धिक विज्ञान और लौकिक सेवा को। इस प्रकार के कार्य करने की आदत बच्चों में प्रारंभ से ही पड़ जाती है, वही कार्य उन्हें रोचक बन जाता है और वे उसे जीवन भर आनन्द के साथ करते हैं। रूस का सारा राज्यविधान श्रमनीति पर आधारित ही बना है। रूस विभिन्न प्रकार के वर्गों का अस्तित्व ही मिटा देता है। अतः बालश्रमिक का वहाँ पर समान का स्थान है। प्रत्येक बालक को अपने योग्यतानुसार कार्य दिया जाता है। बालकों की शिक्षा और उन्हें काम देने का भार सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है। अतएव वहाँ बालश्रमिक पर उतने अत्याचार नहीं होते जितने दूसरे कल कारखानोंवाले देशों में होते रहे हैं।

सभ्यता का विकास समाज से सभी प्रकार के शोषणों को समाप्त करने की दिशा में होता रहा है। समाज के कल्याणकर्ता ही सोचते हैं कि एक समय धनी और गरीब का, श्रमिक और मालिक का, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी का सभी प्रकार का भेदभाव मिट जाएगा। यह भेदभाव उचित बालशिक्षा के द्वारा मिटाया जा सकता है। अतः, अब संसार की प्रगतिशील शिक्षाप्रणालियों में प्रारंभ से ही सभी वर्गों के बच्चों से श्रम कराया जाता है। महात्मा गांधी द्वारा निर्मित भारत की प्राथमिक शिक्षाप्रणाली के आलोचकों ने इसपर केवल यही आपत्ति निकाली कि इसके द्वारा बालश्रमिकों का शोषण होता है। परन्तु यदि इस प्रणाली के संबंध में भली भाँति विचार किया जाय तो पता चलेगा कि इसका उद्देश्य सभी प्रकार के श्रम को समाज में सम्मानित बनाना तथा बालश्रम का शोषण न होने देकर उसे आनंददायक रूप प्रदान करना है। श्रम के द्वारा शिक्षा, यही प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य है। श्रम का रूप देश काल के अनुसार बदलता रहेगा, किंतु श्रम और शिक्षा का भेद जितना ही मिटेगा बालश्रम का उतना ही कम शोषण होगा।

[ला० रा० शु०]

भारत में बालश्रमिक — अन्य देशों की तरह भारत में भी बालकों से श्रम कराने का रिवाज किसी न किसी रूप में लंबे समय से चला आ रहा है। प्राचीन काल में ये बालक कृषिकार्य में माता पिता और उनके निजी व्यवसायों में सहायक हुआ करते थे। आधुनिक युग में औद्योगीकरण होने से जब नगरों और औद्योगिक क्षेत्रों में फैक्टरियाँ खड़ी हुईं, तो उनमें बालक भी काम करने लगे।

आधुनिक औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप तथा कठिन आर्थिक दशाओं की वृद्धि से अनेक देशों की तरह भारत में भी बाल श्रमिकों की संख्या तेजी से बढ़ी है। सन् १९३१ में श्रम आयोग की जाँच के अनुसार यहाँ के कारखानों में बाल मजदूरों की संख्या ६६४६ थी, जिनमें आसाम, बिहार, मद्रास और पश्चिमी भारत में इनकी संख्या अन्य प्रदेशों से अधिक थी। ये बालक [illegible], पत्थर, तंबाकू, [illegible] तथा कपड़ा उद्योगों में कार्य करते थे।

भारत में बाल मजदूरों की रक्षा के लिये सन् १८८१ में नियम बना था किंतु यह उन्हीं कारखानों पर लागू होता था जिनमें कर्मचारियों की संख्या १०० या उससे अधिक थी। इसके अतिरिक्त सन् १९३३ का 'बाल (श्रम बंधक) अधिनियम' तथा सन् १९३८ का 'बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम' भी है जिनके द्वारा बालकों के ऊपर अधिक बोझ को रोकने तथा उनकी सुरक्षा की व्यवस्था की गई है।

फैक्टरी अधिनियम के अंतर्गत बालक की नौकरी के लिये न्यूनतम अवस्था १४ वर्ष, खान अधिनियम के अंतर्गत १५ वर्ष और बागान श्रमिक अधिनियम में न्यूनतम १२ वर्ष है। १८ वर्ष से कम उम्र के बालकों को फैक्टरियों, खानों तथा बागान आदि में तब तक नौकरी नहीं मिल सकती जब तक उनके पास स्वस्थ होने का डाक्टरी प्रमाणपत्र न हो। 'बाल नौकरी अधिनियम' (एम्प्लॉयमेंट ऑव चिल्ड्रेन ऐक्ट) के अनुसार, कोई भी बालक, जिसकी उम्र १५ वर्ष से कम है, उन धंधों में नहीं लगाया जा सकता जिनका संबंध रेल द्वारा यात्री, माल या डाक ले जाने से हो, अथवा जिनका संबंध बंदरगाहों में माल लादने उतारने से हो। बीड़ी बनाने, कालीन बुनने, सीमेंट, कपड़ा और दियासलाई आदि के कारखानों में १४ वर्ष से कम उम्र के बालकों को काम पर नहीं लगाया जा सकता। राज्यों द्वारा भी कानून लागू किए गए हैं जिनके अंतर्गत १२ से १४ वर्ष की उम्र के बालकों को नौकर रखना वर्जित है।

फैक्टरी तथा खान अधिनियमों द्वारा बालकों को ४½ घंटे प्रतिदिन काम करने की छूट मिली है। 'बागान श्रमिक अधिनियम' के अंतर्गत ४० घंटे प्रति सप्ताह काम करने की व्यवस्था है। रात में बालकों से काम लेना मना है।

फैक्टरियों और चाय आदि के बागों में बालकों को १२ महीने की नौकरी में प्रति १५ दिन के बाद एक दिन की सवेतन छुट्टी का अधिकार हो जाता है, जबकि वयस्क प्रति २० दिन की नौकरी के बाद एक दिन की सवेतन छुट्टी प्राप्त करने का अधिकारी होता है। १९३३ के बाल अधिनियम के अंतर्गत लिखित या मौखिक, स्पष्ट या अंतर्भुक्त ऐसा कोई भी करार रद्द माना जाएगा जिसके द्वारा १५ वर्ष की उम्र से कम बालक के श्रम को किसी लाभ या धनराशि के बदले में बंधक रखा जाता है। केवल ऐसे करार जिससे बालक को

हानि न पहुँचे तथा उसकी सेवा के योग्य उसे उचित मजदूरी मिल जाए और एक सप्ताह की पूर्वसूचना पर उसे समाप्त किया जा सके तो उसे गैरकानूनी नही माना जाएगा। [पु० वा०]

बालसंस्तंभ (Infantile Paralysis), या बालपक्षाघात, जिसे पोलियो (Poliomyelitis) तथा पोलियो एसेफलाइटिस (Polioencephalitis) भी कहते हैं, एक उग्र स्वरूप का बच्चो में होनेवाला रोग है, जिसमे मेरुरज्जु (spinal cord) के अग्रश्रृंग (anterior horn) तथा उसके अदर स्थित धूसर वस्तु मे अपभ्रंशन (degenaration) हो जाता है और इसके कारण चालकपक्षाघात (motor paralysis) हो जाता है।

कारण — इस रोग का औपसर्गिक कारण एक प्रकार का विषाणु (virus) होता है, जो कफ, मल, मूत्र, दूषित जल तथा खाद्य पदार्थों मे विद्यमान रहता है, मक्खियों एवं वायु द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रसारित होता है तथा दो से पाँच वर्ष की उम्र के बालको को ही आक्रात करता है। लडकियो से अधिक यह लडको मे हुआ करता है तथा वसत एव ग्रीष्मऋतु मे इसकी बहुलता हो जाती है। जिन बालको को कम अवस्था में ही टॉसिल का शल्यकर्म कराना पड जाता है उन्हे यह रोग होने की सभावना और अधिक होती है।

इस रोग का उपसर्ग होने के ४ से १२ दिन के पश्चात् लक्षण प्रकट हुआ करते है। सर्वप्रथम बच्चों मे शिरशूल, वमन, ज्वर, अनिद्रा, चिडचिडापन, सर और गर्दन पर तनाव तथा गले मे घाव के लक्षण दिखाई देते हैं। इन लक्षणो के प्रकटन के दो दिनो के पश्चात् इस रोग के सर्वव्यापी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें दो वर्गो मे विभाजित किया जाता है, (१) पक्षाघातीय (Paralytic) (२) अपक्षाघातीय (Non-paralytic)

अपक्षाघातीय अवस्था — यह अवस्था तभी उत्पन्न होती है जब इसका उपसर्ग अग्रश्रृंग कोशिकाओ (horn cells) तक ही पहुँचकर रुक जाता है। इसके प्रमुख लक्षण मे रोगी एकाएक सर, गरदन, हाथ पैर तथा पीठ मे दर्द बताता है। उसको वमन, विरेचन तथा मासपेशियो मे आक्षेप होता है। ज्वर १०३° तक हो जाता है तथा मस्तिष्क आवरण मे तानिका क्षोभ (meningeal irritation) होता है।

पक्षाघातीय अवस्था—यह अवस्था अपक्षाघातीय अवस्था के तत्काल बाद ही आरभ हो जाती है, जिसके अतर्गत ऐच्छिक मासपेशियाँ पक्षाघातग्रस्त हो जाती हैं। इसमे मुख्यत पैर आक्रात होते हैं। इसको लोअर मोटर न्यूरॉन पक्षाघात (Lower Motor Neurone Paralysis) कहते है, जो आगे चलकर स्तब्धसक्थि सस्तभ (spastic paraplegia) का रूप ग्रहण कर लेता है। कभी कभी एक पैर और एक हाथ आक्रात हो जाता है। गरदन एव पीठ की मासपेशियो मे ऐंठन (spasm) होती है, तथा रोगी को कोष्ठबद्धता रहती है। वैसे तो शरीर की समस्त मासपेशियो को छूने, अथवा सधियो में हलचल पैदा होने, के कारण तीव्र वेदना होती है।

प्रकार — उपर्युक्त स्पाइनल तन्त्रिका किस्म (spinal nerve type) के अतिरिक्त इस रोग के और भी प्रकार होते हैं .

(क) मस्तिष्क वृत (Brain Stem) किस्म — इसमे मस्तिष्क की सातवी, छठी और तीसरी तन्त्रिका मुख्य रूप मे आक्रान होती हैं, जिसके फलस्वरूप रोगी को भोजन निगलने तथा साँस लेने मे कष्ट होता है एव हृदय की गति की अनियमितता हो जाती है।

(ख) न्यूराइटी (Neuritic) किस्म — इसके अतर्गत हाथ और पैर मे उग्र स्वरूप का दर्द होता है। इसमे कुछ घंटो मे श्वासगत मासपेशी का पक्षाघात होता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है।

(ग) अनुमस्तिष्क (Cerebellar) किस्म — इसमे रोगी को अत्यत तीव्र शिरशूल, भ्रमि (vertigo) वमन तथा वाणी सबधी विकार हो जाता है।

(घ) सेरेब्रल (Cerebral) किस्म — इसका प्रारभ सर्वांग आक्षेप के रूप मे होता है, जो कई घटो तक रहता है और अत मे इसके कारण अर्धांग पक्षाघात (hemiplegia) तथा सक्थि सस्तभ (paraplegia) होता है। साथ ही साथ अनेक प्रकार के मानसिक विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं।

उपद्रव — इसमे आक्रात मासपेशियाँ स्थायी रूप से पक्षाघातग्रस्त हो जाती है। इस रोग के मृदु आक्रमण के अतर्गत रीढ की हड्डी से या तो एक तरफ शरीर का झुकाव हो जाता है, जिसे स्कोलियोसिस (Scoliosis), कहते है, अथवा आगे की तरफ झुकाव हो जाता है, जिसे काइफोसिस (kyphosis) कहते हैं। आक्रात भाग की हड्डियाँ सुचारु रूप से नहीं बढती तथा हाथ पैर की हड्डियाँ टेढी हो जाती हैं। मासपेशियाँ अत मे अत्यधिक कमजोर हो जाती हैं।

उपचार — डा० शाक ने इसके प्रतिरोधात्मक उपचार के निमित्त एक प्रकार की वैक्सीन (vaccine) का आविष्कार किया है, जिसका अत पेशी इजेक्शन के रूप मे प्रयोग करते हैं। अन्य उपचार के अतर्गत खाद्य एव पेय पदार्थों को मक्खियो एव इसी प्रकार के अन्य जीवो से दूर रखना चाहिए और इसके लिये डी० डी० टी० का प्रयोग अत्यत लाभकारी है। स्कूल मे तथा बोर्डिंग हाउस मे अधिकतर बच्चे आक्रात होते हैं, इसके लिये उनका किसी भी प्रकार से पृथक्करण आवश्यक है। रोगग्रस्त बालक को ज्वर उतरने के बाद कम से कम तीन सप्ताह तक अलग रखना चाहिए। उसके मल मूत्र तथा शरीर से निकले अन्य उपसर्ग की सफाई रखना चाहिए। अन्य ओषधिजन्य उपचार के लिये किसी योग्य चिकित्सक की राय लेना उत्तम है। [प्रि० कु० चौ०]

बालाघाट १ जिला, स्थिति २१° १९' से २२° २४' उ० अ० तथा ७९° ३९' से ८१° ३' पू० दे०। यह भारत के मध्य प्रदेश राज्य मे एक जिला है। इसका क्षेत्रफल ३,५७३ वर्ग मील तथा जनसख्या ८,०६,७०२ (१९६१) है। इसके उत्तर मे मडला, पूर्व मे दुर्ग, दक्षिण मे भडारा, तथा पश्चिम मे सिवनी जिले स्थित हैं। सतपुडा पठार का पूर्वी भाग इस जिले मे पडता है। इसे छत्तीसगढ के मैदान से मैकाल पर्वतश्रेणी अलग करती है। लगभग २/३ भाग पहाड़ियों से भरा है। रायगढ का पठार लगभग २,००० फुट ऊँचा है।

मानसून के समय वातावरण मे नमी आ जाती है। वैहर प्रदेश मे वर्षा घनघोर होती है। वैसे, जिले की औसत वर्षा ६२ इंच रहती है। यहाँ की प्रमुख उपज धान है। इसके अलावा कोदो, कुटकी, गेहूँ,

उड़द, चना, आदि भी उगाए जाते हैं। यहाँ सूती कपड़े, चूड़ियाँ, पीतल के बरतन तथा मिट्टी के तेल के कनस्तरों से चलनी आदि वस्तुओं को बनाने का काम होता है। यातायात तथा शिक्षा में भी बालाघाट का नाम प्रमुख है।

२ नगर, स्थिति २१° ४८' उ० अ० तथा ८०° १२' पू० दे०। बालाघाट जिले में स्थित एक नगर है, जो रेलवे मार्ग के किनारे बसा हुआ है। यह बबई से ६२६ मील तथा गोंदिया रेलवे जंक्शन से २५ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ से वेनगंगा नदी की दूरी दो मील है। नगर के पास ही एक मैंगनीज की खान है। वस्तु उत्पादन में इसका विशेष महत्व नहीं है, किंतु कुछ व्यापार होता है। जनसंख्या १८,६६० (१९६१) है।

३ पर्वत, यह आंध्रप्रदेश में हैदराबाद के पश्चिम में स्थित एक पर्वतश्रेणी है जिसकी लंबाई २०० मील तथा चौड़ाई तीन से छह मील तक है। वाहुकूटों द्वारा यह टुकड़ों में बँट गया है। [र० च० दु०]

बालाजी आवजी चिटनवीस बालाजी के पिताजी आवाजी हरी मजुमदार उपनाम चित्रे ग्यारह वर्षों तक जजीरा में बाबजी खाँ हब्शी के मुख्य कारबारी थे। बावजी खाँ की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों ने आवाजी को मारकर समुद्र में फेंक दिया। आवाजी के बालाजी आदि चार पुत्र थे। उनकी माता ने उनका लालन पालन किया।

सन् १६४७-१६४८ के लगभग जब शिवाजी ने स्वराज्य स्थापना की क्रांति की धूम मचाई तो बालाजी ने उसमें संमिलित होने का अपना निश्चय शिवाजी को एक पत्र लिखकर प्रकट किया। उसके सुंदर अक्षर, लेखनकौशल और विशेषत उसमें जो स्वराज निष्ठा प्रदर्शित हुई थी उसको पढ़कर शिवाजी बालाजी और उसके भाई तथा मानाजी को अपने साथ ले गए। बालाजी की सेवा देखकर शिवाजी ने ता० १६ अगस्त, सन् १६६२ को चिटनीस का कार्यभार उन्हें सौंपा। बालाजी को हमेशा शिवाजी के साथ रहना पड़ता था। जब सन् १६६६ ई० में शिवाजी आगरा में कैद हुए तो उनको मुक्त कराने की बालाजी ने भरसक चेष्टा की। राजकीय दफ्तर का काम तो बालाजी करते ही थे किंतु वकालत का काम भी वे बड़ी सफाई के साथ करते थे। जजीरा के सिद्दी के प्रकरण में बालाजी की स्पष्टता तथा एकनिष्ठा प्रशंसनीय थी। ता० १३ अक्टूबर, सन् १६४७ को बालाजी को पालकी का सम्मान मिला। बालाजी की लेखनशैली सरल तथा स्पष्ट थी जिससे राजकीय मामलों में कभी गड़बड़ी नहीं होती थी। वे सच्चे स्वामीसेवक थे। बालाजी की स्मृति अत्यंत तीव्र थी। वे एक सफल राजनीतिज्ञ थे। मराठों के इतिहास में बालाजी एकनिष्ठता के प्रतीक हैं। मोडी लिपि को सरल, स्पष्ट करने में भी वे अग्रगण्य हैं। महाराज शिवाजी की दुःखद मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र संभाजी ने अकारण आशंकित होकर इस एकनिष्ठ राजसेवक को बड़ी क्रूरता से मरवा दिया। [भी० गो० दे०]

बालाजी बाजीराव दे० 'पेशवा'।

बालाजी विश्वनाथ राव दे० 'पेशवा'।

बालि वाराह कल्प के तेरहवें द्वापर में महादेव जी वालि नाम से गंधमादन पर्वत के वालखिल्याश्रम में अवतीर्ण हुए थे। यह कथा वायु पुराण आदि कई ग्रंथों में है। दूसरे बालि तारा के पति किष्किंधा के राजा थे जिनका वध रामचंद्र जी ने किया। इनके पिता ऋक्षराज का जन्म ब्रह्मा की अश्रुधारा से हुआ था और इनका पुत्र अंगद था जिसने लंका में अपने पराक्रम का प्रदर्शन किया। तारा वानरराज सुषेण की कन्या थी। संभवत इसी कारण मायावी नामक राक्षस से बालि का वैर बढ़ा था। [रा० द्वि०]

बाली १ द्वीप, स्थिति ८° २०' उ० अ० तथा ११५° ०' पू० दे०। यह इंडोनेशिया का एक द्वीप एवं प्रांत है जो पश्चिम में बाली जलसंयोजक द्वारा जावा से तथा लाम्बोक जलसंयोजक द्वारा लॉम्बोक से विभक्त है। सन् १५६७ में एक डच नाविक ने इसका पता लगाया था। यह सब द्वीप के पूर्व में बाली सागर तथा हिंद महासागर के बीच में स्थित है। यह लगभग ९३ मील लंबा तथा ५० मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल २,९०५ वर्ग मील है। इस द्वीप के मध्यवर्ती भाग में ज्वालामुखी पर्वतों से संबंधित बहुत सी झीलें तथा पर्वतों की चोटियाँ हैं। इसके उत्तरी तथा दक्षिणी निचले भागों में उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है। बाली द्वीप के पश्चिमी भाग में जनसंख्या कम है। तटरेखा अच्छी न होने के कारण यहाँ पर अच्छे बंदरगाह नहीं हैं। लोगों का मुख्य उद्यम मछली पकड़ना तथा कृषि करना है। धान, नारियल, कहवा तथा तंबाकू यहाँ की मुख्य फसलें हैं। किसी समय हिंदू संस्कृति यहाँ पर पूर्ण उन्नति पर थी। अब भी जनता रामलीला पूर्ण उत्साह के साथ करती है। यहाँ की राजधानी तथा मुख्य नगर सिंगाराजा (Singaradja) जनसंख्या १२,३४७) है।
[शि० म० सिं०]

२ नगर, स्थिति २२° ३६' उ० अ० तथा ८८° २१' पू० दे०। यह भारत में पश्चिमी बंगाल के हावड़ा जिले में हुगली नदी के दाएँ किनारे पर, कलकत्ता से लगभग तीन मील उत्तर, स्थित एक प्रसिद्ध एवं घनी नगर है। यह विलिंगटन पुल के पश्चिमी सिरे के पास स्थित है जो हुगली को पार करता है। यह एक औद्योगिक नगर है जहाँ कई वर्कशॉप तथा छोटे छोटे कारखाने हैं, जिनमें कागज बनाना प्रमुख है। द्वितीय विश्व महायुद्ध में दक्षिण-पूर्व एशिया कमान का फोटो टोह केंद्र तथा संयुक्त राज्य का वायु कोर (Air Corps) का आठवाँ फोटोग्रुप स्टेशन यहीं था। इसकी जनसंख्या १,३०,८६६ (१९६१) है। रेलों एवं सड़कों से इसने काफी उन्नति कर ली है।

बालू चट्टानें और अन्य धात्विक पदार्थ विविध प्राकृतिक और अप्राकृतिक साधनों से टूट फूटकर बजरी, बालू, गाद या चिकनी मिट्टी का रूप ले लेते हैं। यदि टुकड़े बड़े हुए तो बजरी, और यदि छोटे हुए तो कणों, के विस्तार के हिसाब से उन्हें क्रमश बालू, गाद या चिकनी मिट्टी कहते हैं। अमरीका में ०·०६ से २ मिमी० तक के और यूरोप में ०.०२ से २ मिमी० तक के कण बालू कहलाते हैं। भारतीय मानकों के अनुसार भारतीय मानक छननी सं० ४८० (०.२ इंच) से गुजर जानेवाले कण बालू में हो सकते हैं। इस सीमा के अंदर छोटे बड़े सभी प्रकार के कण उसमें होने चाहिए। इंजीनियरी में ऐसा बालू महत्वपूर्ण है। छोटे बड़े कणों का अनुमान सूक्ष्मता मापांक द्वारा लगाया जाता है। बालू की एक निश्चित तोल भारतीय मानक छननी सं० ४८०, २७०, १२०, ६०, ३० और १५ (अर्थात् ब्रिटिश

मानक छननी ० २ इच, और स० ७, १४, २५, ५२ १००) में से छानी जाती है। प्रत्येक छननी से न निकल सकनेवाला अंश जोड लिया जाता है, जो सूक्ष्मता मापाक कहलाता है। महीन वालू का सूक्ष्मता मापाक १० से २५ के बीच होना चाहिए। इससे अधिक हो तो वह मोटा वालू कहलाता है।

यद्यपि पृथ्वी की पपडी मे पाए जानेवाले सभी प्रकार के पदार्थ, जिनसे चट्टानें बना करती हैं, वालू मे पाए जाते हैं, किंतु प्राय. उनमें से थोडे पदार्थों की ही बहुलता वालू मे रहती है। अत्यत व्यापक रूप से मिलनेवाला पदार्थ स्फटिक है, क्योंकि यह चट्टानो मे बहुत होता है और अत्यत कठोर एव विदरणरहित होता है, जिससे इसके कण सरलता से पिसकर बहुत बारीक नही हो पाते। इसके अतिरिक्त यह पानी मे घुलता नही, न विघटित ही होता है। कही कही वालू मे अन्य अनेक पदार्थों के साथ फेल्स्पार, चूनेदार पदार्थ, खनिज लौह और ज्वालामुखी काच आदि भी बहुतायत से पाए जाते हैं। अधिकाश स्फटिक-वालू मे थोडा बहुत फेल्स्पार तो होता ही है। श्वेत अभ्रक के छोटे छोटे टुकडे भी प्राय वालू मे मिलते हैं, क्योकि यह नरम तथा भगुर होते हुए भी बहुत धीरे धीरे विघटित होता है।

इन सामान्य पदार्थों के अतिरिक्त कुछ भारी पदार्थ भी, जिनसे चट्टानें बना करती हैं, जैसे तामडा, टूरमैलिन, ज़र्कन, रूटाइल, पुखराज, पाइरॉक्सीन और ऐंफिवोल आदि थोडी बहुत मात्रा मे सभी प्रकार की वालू मे रहते हैं। कही कही समुद्रतट पर, या नदियो मे, धारा-प्रवाह के कारण हलके पदार्थ बह जाते हैं और ये भारी पदार्थ अधिक मात्रा मे एकत्र हो जाते है। ये आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण निक्षेप कहलाते हैं। इन्ही मे नियारिये तथा हीरे या अन्य मणियाँ सोना, प्लैटिनम, राँगा, मोनजाइट या अन्य खनिज जिनके मिलने की सभावना होती है, खोजा करते हैं।

मृद्भाड — कॉच और सिलिकेट उद्योग मे सिलिका के रूप मे अत्यत शुद्ध स्फटिक-वालू की वडी मात्रा में आवश्यकता होती है। विविध प्रकार की भट्ठियो मे अस्तर करने के लिये भी ऐसा ही वालू लगता है। ढलाई के कारखानो मे जिस मिट्टी से साँचे वनाये जाते हैं, उसमे भी यही वालू मिला रहता है और इसके कण चिकनी मिट्टी द्वारा परस्पर बँधे रहते हैं।

स्फटिक कण कठोर और विदरण रहित होते हैं। अत स्फटिक-वालू अपघर्षक वनाने के लिये भी बहुत काम आता है। तामडा वालू भी इस काम के लिये अत्यत उपयुक्त है, यद्यपि यह बहुत अधिक नही पाया जाता।

साधारण वालू के और भी अनेक उपयोग हैं, जिनमे मुख्यतया चिनाई का मसाला और कक्रीट के उपादान के रूप मे इसका उपयोग उल्लेखनीय है। चूना या सीमेंट वालू के कणो को परस्पर जोडकर, एक कठोर सहति वना देते हैं, जिसपर मसाला या कक्रीट की सामर्थ्य बहुत अशो तक निर्भर होती है। निर्माण सामग्री के रूप मे वालू का और भी उपयोग है, जैसे फर्शों या नीवों के नीचे विछाना, छत पर चूना कक्रीट के नीचे अलगाव परत के रूप मे विछाना तथा सडको पर छाना देना आदि। ईंटें बनाने के लिये भी मिट्टी मे वारीक वा लूहोना चाहिए।

धरती की पपडी मे वालू की परतें एक और दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। अतभौंम जल इन्ही परतो मे भरा रहता है, जो कुएँ खोदने पर, या नलकूप गलाने पर, उपलब्ध होता है और हमारी जल सभरण समस्या का समाधान सभव वनाता है। मिट्टी के साथ मिला हुआ वालू ही उसकी जल शोषण क्षमता का आधार है, क्योंकि चिकनी मिट्टी की परत पानी नही धारण कर सकती। खेतो मे थोड़ी ही गहराई पर चिकनी मिट्टी होने से भूमि ऊसर हो जाती है। कुछ परिमाण मे वालू मिश्रित मिट्टी, जो दुमट कहलाती है, खेती के लिये अच्छी होती है। [वि० प्र० गु०]

वालूमाक्षिका ज्वर (Sandfly Fever) इसे फिलवॉटोमस ज्वर या पापाटेसाइ ज्वर भी कहते हैं। यह रोग अत्यत सूक्ष्म विषाणु द्वारा होता है, जो फिल्टर के पार जा सकता है। यह तीव्र ज्वर सक्रामक होता है तथा अत्यत दौर्वल्य छोड जाता है। फिलवॉटोमस पापाटेसाइ (Phlebotomus papatascii) नामक वालू की मादा मक्खी इसके विषाणु के वाहन का कार्य करती है।

यह ज्वर पूर्वी गोलार्ध के नम प्रदेशो, विशेषकर भूमध्यसागर के आसपास, भारत के कुछ हिस्सो आदि, मे विशेष रूप से फैला है। इस मक्खी की प्रजनन ऋतु के वाद ग्रीष्म मे यह रोग अधिक फैलता है।

मादा वालूमक्खी जव इस रोग से पीडित व्यक्ति का रक्तपान करती है, तव इस ज्वर के विषाणु रक्त के साथ मक्खी के उदर मे प्रविष्ट हो जाते हैं, जहाँ सात से दस दिनो के अंदर इनका उद्भवन होता है तथा इसके बाद वह वालूमक्खी जीवन पर्यंत रोगवाहिनी वनी रहती है। रोगी के रक्त में ये विषाणु सदैव नही रहते। केवल रोग के लक्षण प्रकट होने के ४८ घटे पूर्व से २४ घटे वाद तक रहते हैं।

यह रोगवाहक मक्खी, जव किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तव इन विषाणुओ का एक समूह उसकी त्वचा के भीतर प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ ये विषाणु शरीर की रक्षक सेना से लडते हैं तथा अपनी सख्यावृद्धि करते हैं। लगभग ढाई से पाँच दिनो के पश्चात् व्यक्ति को यकायक सुस्ती, दौर्वल्य, चक्कर आना तथा उदर मे कष्ट वोध होने लगता है। दूसरे दिन ठढक के साथ ज्वर तीव्रता से १०२° से १०५° फारेनहाइट (३८° सें० से ४०-५०° सें०) तक पहुँचता है। मस्तक के अग्र भाग मे अत्यत तीव्र पीडा, नेत्रगोलको के पार्श्व मे पीडा, मासपेशियो तथा जोडो मे दर्द, रक्ताभ मुखमडल तथा तीव्र नाडीगति आदि, लक्षण ज्वर प्रकट हो जाते हैं। साधारणतया दो दिनो के पश्चात् उतर जाता है, किंतु अत्यत शैथिल्य और दौर्वल्य छोड जाता है। कुछ दिनो या सप्ताहो के पश्चात् व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ होता है।

यह ज्वर घातक नही होता। चिकित्सा भी कोई विशेष नही, केवल लाक्षणिक ही है।

वालूमक्खी का नाश, उसके सपर्क से वचाव तथा रोगी का उचित पृथक्करण ही इस रोग से वचाव के साधन है। यह मक्खी अत्यत सूक्ष्म होती है तथा मनुष्यो के निवास के पास ही पौधो, दरारो तथा अँधेरे स्थानो मे अडे देती है। इन अडो मे लार्वा उत्पन्न होते हैं, जो ग्रीष्म ऋतु के प्रारभ मे मक्खी का रूप धारण कर लेते हैं। यह मक्खी केवल सूर्यास्त के पश्चात् तथा सूर्योदय के

पूर्व ही रक्तपान करती हैं तथा धरती के पास ही रहती है। ऊपरी खड के शयनकक्ष कुछ सुरक्षित होते हैं। मसहरी अत्यत बारीक जाली की होनी चाहिए। डाइमेथिल थैलेट, डाइब्यूटिल थैलेट, बेंजील बेंजोएट आदि ओपधियाँ अनावृत त्वचा पर लगाने से भी मक्खी दूर रहती है। दीवारो आदि पर डी० डी० टी० के छिड़काव द्वारा रोगी के पास बालूमक्खी को पहुँचने से रोकना रोग से बचाव के लिये आवश्यक है। [गो० दा० अ०]

वालेश्वर (वालासोर Balasore) १ जिला, स्थिति २०° ४४' से २१° ५७' उ० अ० तथा ८६° १६' मे ८७° ३१' पू० दे०। यह भारत के उडीसा राज्य मे एक जिला है। इसके उत्तर-पूर्व मे मेदिनीपुर, उत्तरी और पश्चिमी सीमा पर मयूरभज, नीलगिरि एव केंदुझरगढ (क्योझर), दक्षिण मे वैतरणी नदी तथा पूर्व की ओर बगाल की खाडी इसकी सीमा बनाती है। यह जिला सागर एव पूर्वीघाट पहाड के बीच मे स्थित है। यहाँ पर जलोढ मिट्टी मिलती है। यह उत्तर मे ३० मील तथा दक्षिण में ४० मील तक चौडी पट्टी के रूप मे है। समुद्र के किनारे वाली करीब तीन मील चौडी पट्टी नमकीन एव कृपि के अयोग्य है। पश्चिमी भाग भी जगली एव अनुपजाऊ है। स्वर्णरेखा, सारथा, पाँचपारा, हासकुरा आदि नदियाँ बहती हैं। इसका क्षेत्रफल २,५०० वर्ग मील एव जनसख्या १४,१५,६२३ (१९६१) है। इसका मध्य भाग उपजाऊ है जहाँ धान की फसल प्रमुख है। धान साल में तीन बार पैदा किया जाता है। चटाई, सूती कपड़ा एव पीतल के बरतन बनाना प्रमुख उद्योग हैं।

२ नगर, स्थिति २१° ३०' उ० अ० तथा ८६° ५६' पू० दे०। वालेश्वर जिले मे बूढ़ाबलग नामक नदी के किनारे नदी के मुहाने से १५ मील ऊपर बसा नगर है। यहाँ से सागर सिर्फ छह मील दूर पडता है। जनसख्या ३३,९३१ (१९६१) है। इसका नाम महादेव बाणेश्वर के नाम पर पडा है। अंग्रेजी कपनी एव औरगजेब का युद्ध यहीं हुआ था। इतिहास मे इसका काफी नाम रहा है।

बॉल्कन प्रायद्वीप (Balkan peninsula) स्थिति ४४° ०' मे ३६° ०' उ० अ० तथा १८° ०' से २८° ०' पू० दे०। दक्षिणी यूरोप का यह तीसरे पूर्वी प्रायद्वीप है। इसके पूर्व मे कालासागर, इजिऐन सागर, मारमारा सागर, दक्षिण मे भूमध्यसागर, पश्चिम मे इयोनियन तथा एड्रिऐटिक सागर हैं तथा उत्तर मे सावा, कूपा और डैन्यूब नदियाँ बहती हैं। इस प्रकार सपूर्ण ऐल्बेनिया, यूनान, बल्गेरिया, यूगोस्लाविया और रूमानियाँ के कुछ भाग को बॉल्कन प्रायद्वीप कहा जाता है। उपर्युक्त छह देशों को बॉल्कन स्टेट भी कहा जाता है। यह पहाडी क्षेत्र है तथा इसकी मुख्य पर्वतमालाएँ डिनैरिक ऐल्प्स, बॉल्कन पर्वत तथा रोडोपे पर्वत हैं। यहाँ की मुख्य नदियाँ मोराबा, वार्दार, स्ट्रूमा (Struma), मेस्ता तथा मैरित्सा हैं। जलवायु महाद्वीपीय है परतु एड्रिऐटिक, इयोनियन तथा इजिऐन समुद्रो के तट पर रूमसागरीय जलवायु पाई जाती है, यह सपूर्ण क्षेत्र कृपिप्रधान है। इसके अलावा यहाँ पर लोहा, कोयला, मैंगनीज, ताँबा, जस्ता तथा सीस आदि के कीमती खनिज भी पाए जाते हैं। यहाँ पर अनेक मानव जातियाँ बसी हुई हैं। [श्री कृ० च० ख०]

बाल्कन युद्ध सन् १९१२ में रूस और फ्रास में यह समझौता हो गया कि यदि बाल्कन प्रायद्वीप के प्रश्न पर जर्मनी अथवा ऑस्ट्रिया रूस से युद्ध करेंगे तो फ्रास रूस के साथ रहेगा। फ्रांसीसी सहायता का आश्वासन मिल जाने पर बाल्कन प्रायद्वीप में रूस बेरोक टोक हस्तक्षेप करने लगा। रूस के उकसाने पर चार बाल्कन राज्यों ने मिलकर सन् १९१२ मे गुप्त रूप से एक समझौता किया। ये राज्य थे यूनान, बल्गेरिया, माटीनीग्रो तथा सर्बिया। इस समय टर्की निर्बल हो गया था और वहाँ आतरिक अशाति फैली हुई थी। बाल्कन राज्यों के समझौते का उद्देश्य यह था कि वे टर्की से युद्ध करके उसके शासन को यूरोप से समाप्त कर दें, इसके बाद जीते हुए क्षेत्रों को आपस में बाँट लें। मैसीडोनिया पर इन राज्यो की लोलुप दृष्टि विशेष रूप से थी। इसलिये इस समझौते में यह भी स्पष्ट कर लिया गया था कि टर्की की पराजय के पश्चात् मैसीडोनिया के प्रदेशो को किस प्रकार विभक्त किया जायगा। यह निश्चित हो गया था कि मैसीडोनिया का प्रमुख भाग बलगेरिया को दिया जायगा तथा अल्बानिया सर्बिया को दे दिया जायगा।

यह समझौता हो जाने पर बाल्कन राज्यो ने एक बहाना लेकर टर्की के विरुद्ध १७ अक्टूबर, १९१२ को युद्ध की घोषणा कर दी। इन राज्यो का कहना था कि मैसीडोनिया मे ईसाइयो के साथ बडा क्रूर अत्याचार हो रहा है। अत वे मैसीडोनिया को टर्की के घृणित शासन से मुक्त करना चाहते हैं। उन्होने टर्की से मैसीडोनिया में सुधार करने को कहा पर टर्की के इन्कार करने पर युद्ध प्रारभ हो गया। तुर्की सेना बुरी तरह हार गई और बाल्कन राज्यों को आशातीत सफलता मिली। मॉटीनीग्रो तथा सर्बिया की सेनाओं ने अल्बानिया पर अपना अधिकार कर लिया। यूनानी सेनाओ ने एड्रियानोपल के प्रसिद्ध दुर्ग को तुर्कों से छीन लिया। बलगेरियन सेना थ्रेस पर आक्रमण करके प्रमुख तुर्क सेना पर विजय प्राप्त करती हुई कास्टैंटिनोपल के बहुत निकट पहुँच गई। इस समय टर्की के सामने एक ही रास्ता था। उधर यूरोप के अन्य राज्य टर्की की दशा पर चिंतित हो रहे थे। उन्होने हस्तक्षेप करके टर्की तथा बाल्कन राज्यो मे एक अस्थायी सधि करवा दी। तत्पश्चात् दोनो पक्षो के प्रतिनिधि स्थायी सधि करने के लिये लदन मे एकत्रित हुए। बाल्कन राज्यो की सधि की शर्तें टर्की के लिये बडी मँहगी थी। उनको स्वीकार करने पर टर्की का यूरोप से अस्तित्व ही मिट जाता। इसपर तरुण तुर्क दल के नेतृत्व मे तुर्को ने पुन युद्ध छेड दिया। पर इस बार तुर्कों की और बुरी तरह हार हुई और वे अपने तीन और बडे दुर्गो से हाथ धो बैठे। हताश होकर टर्की के सुल्तान ने सधि का प्रस्ताव किया।

एक बार पुन. दोनो पक्षो के प्रतिनिधि १९१३ मे सधि करने के लिये लदन मे एकत्रित हुए। ३० मई, सन् १९१३ को लदन की सधि हो गई जिसके द्वारा प्रथम बाल्कन युद्ध समाप्त हो गया टर्की को क्रीट तथा अन्य यूरोपीय क्षेत्रो से वञ्चित कर दिया गया और ऑटोमन साम्राज्य केवल कास्टैंटिनोपल तथा उसके आसपास के कुछ भाग तक ही सीमित रह गया। पर इस प्रकार छीने गए प्रदेशों का आपस मे बँटवारा करने के सबध मे बाल्कन राज्यो मे परस्पर मतभेद हो गया।

द्वितीय वाल्कन युद्ध — यह कहना जरा कठिन है कि द्वितीय वाल्कन युद्ध का उत्तरदायित्व किसपर था। इसमे सदेह नहीं कि इस युद्ध मे ऑस्ट्रिया तथा इटली जैसे बडे देशो का हाथ था। वाल्कन युद्धो से पूर्व जो समझौता हुआ था उसके अनुसार सर्विया को अल्वानिया मिल जाना चाहिए था। पर ऑस्ट्रिया किसी मूल्य पर सर्विया के अधीन अल्वानिया नही होने देना चाहता था। इसका कारण यह था कि वोस्निया तथा हर्ज़ेगोविना की आवादी मुख्यत. यूगोस्लाव तथा सर्वों की थी। सर्विया के साथ मिलकर ये प्रदेश एक शक्तिशाली यूगोस्लाव राज्य का निर्माण करना चाह रहे थे। यदि ऐसा हो जाता तो सर्विया की शक्ति बढ़ जाती जो ऑस्ट्रिया के लिये अहितकर थी। फिर, अल्वानिया पर अधिकार प्राप्त करने से सर्विया की पहुँच एड्रियाटिक तक हो जाती। वास्तव में ऑस्ट्रिया की दृष्टि स्वय अल्वानिया पर जमी थी। इसीलिये प्रयत्न करके ऑस्ट्रिया ने अल्वानिया को एक पृथक् राज्य घोषित करवा दिया।

अल्वानिया के पृथक् अस्तित्व के फलस्वरूप मैसीडोनिया का विभाजन और भी दुष्कर प्रतीत होने लगा। अब सर्विया ने यह इच्छा प्रकट की कि अल्वानिया न मिलने पर उसे मैसीडोनिया में अधिक भाग मिलना चाहिए। पर इस सवध मे सर्विया तथा वलगेरिया परस्पर सहमत न हो सके। जब यह मामला शातिपूर्वक न सुलझ सका तब दोनों शक्तियो ने वलप्रयोग करने का निश्चय किया। २९ जून, १९१३ को वलगेरिया ने सर्विया के विरुद्ध युद्ध छेड दिया। इस युद्ध को द्वितीय वाल्कन युद्ध की सज्ञा दी जाती है। इस युद्ध में यूनान, रूमानिया तथा माटीनीग्रो ने वलगेरिया के विरुद्ध सर्विया का साथ दिया। अपने खोए हुए प्रदेशो का कुछ भाग मिल जाने की आशा मे टर्की ने भी वलगेरिया के विरुद्ध वाल्कन राज्यो की सहायता की। विवश होकर वलगेरिया ने सधि की प्रार्थना की।

दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो ने रूमानिया की राजधानी बुखारेस्ट मे १० अगस्त, १९१३ को एक सधि की। इस संधि के कारण वलगेरिया की वडी मानहानि हुई। सधि के द्वारा सर्विया तथा माटीनीग्रो ने वहुत से प्रदेश प्राप्त किए। यूनान ने भी सैलोनिका प्रदेश पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस विभाजन के वाद मैसीडोनिया का वचा हुआ भाग ही वलगेरिया को मिल सका। इस प्रकार द्वितीय वाल्कन युद्ध समाप्त हुआ।

बुखारेस्ट की सधि द्वारा वाल्कन राज्यो मे कुछ समय के लिये शाति स्थापित हो गई। वाल्कन युद्धो के फलस्वरूप सर्विया तथा यूनान सर्वाधिक लाभान्वित हुए। इन युद्धो का एक बडा परिणाम यह हुआ कि यूरोप मे तुर्की साम्राज्य लगभग समाप्त हो गया, और वाल्कन प्रायद्वीप मे ईसाई राज्यो का परिवर्धन प्रारभ हो गया। यह कहना अनुचित होगा कि उपर्युक्त युद्धो से वाल्कन समस्या शात हो गई। द्वितीय वाल्कन युद्ध के द्वारा वाल्कन राज्यो मे राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई जिसका विस्फोटक परिणाम था प्रथम महायुद्ध। [मि० च० पा०]

वाल्काश (Balkhash) स्थिति ४६° ०' उ० अ० तथा ७४° ५०' पू० दे०। यह एशियाई रूस के पूर्वी कजाक प्रजातत्र मे अराल झील से लगभग १,००० मील पूर्व, एक विशाल अर्धचद्राकार खारे पानी की झील है। यह लगभग ३०० मील लबी, चार से ५० मील तक चौडी तथा ३५ से ६५ फुट तक गहरी है। इसका क्षेत्रफल ६,७०० वर्ग मील तथा सागरतल से ऊँचाई ९०० फुट है। ईली, आरक् और लेप्सा आदि नदियाँ इसमे गिरती हैं, किंतु इस झील से कोई नदी निकलती नही। यह रेगिस्तानी भाग मे स्थित है। इसका पूर्व तटीय भाग खारी मिट्टी का प्रदेश है। इसके तटो पर मछलियाँ पकडी जाती हैं। उत्तरी किनारे पर ताँवे की खानें हैं, एव वाल्काश नगर मे ताँवा गलाने का काम भी होता है। [श्री कृ० च० ख०]

बॉल्टिक सागर स्थिति ५६° ०' उ० अ० तथा २०° ०' पू० दे०। यह उत्तरी यूरोप के डेनमार्क, जर्मनी, पोलैंड, रूस, फिनलैंड और स्वीडन देशो से घिरा सागर है। इसका क्षेत्रफल १,६६,००० वर्ग मील है। यह ९३० मील लवा तथा ५० से ४२५ मील तक चौडा है। गोटलैंड तथा स्वीडन के बीच इसकी अधिकतम गहराई १,३८० फुट है किंतु औसत गहराई २१६ फुट है। ज्वार भी इसमे अधिक ऊँचा नही आता। ओडर, विश्चुला, नीमेन, मोटाला आदि छोटी बडी लगभग २५० नदियाँ इसमे गिरती है। खारेपन की मात्रा कम रहती है क्योकि नदियो के पानी मे क्षारो की कमी है। उच्च अक्षाश, उथला जल, कम खारापन तथा लघु ज्वार होने के कारण यह लगभग पाँच माह वर्फ से ढका रहता है। इसके मध्य जीलैंड, फ्यूनन, बॉर्नहॉल्म, समसो एव ला लैंड के अतिरिक्त कई अन्य छोटे वडे द्वीप हैं जिनका क्षेत्रफल १२,००० वर्ग मील है। इनमे से कुछ द्वीप डेनमार्क के अधिकार में हैं। इसमें वॉथनियाँ, फिनलैंड, राइगा तथा डैजिग नामक चार वडी खाडियाँ हैं। वॉल्टिक सागर को गोटा नहर द्वारा उत्तरी सागर से मिला दिया गया है। लेनिनग्रैड, रीगा, टैलिन, हेलसिंकी, स्टॉकहोम, डैजिग एव कोपेनहेगेन आदि वॉल्टिक सागर के प्रमुख वदरगाह हैं। [शि० म० सिं०]

बॉल्टिमोर (Baltimore) स्थिति ३९° १८' उ० अ० एव ७६° ३७' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका के मेरीलैंड राज्य का प्रमुख नगर है, जो वाशिंगटन से ३५ मील उत्तर-पूर्व तथा फिलाडेल्फिया से ९० मील पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम पटैप्सको नदी पर स्थित है। इसकी स्थापना लार्ड वॉल्टिमोर ने की थी। यह मेरीलैंड का सवसे वडा एव सयुक्त राज्य का द्वितीय वडा वदरगाह है। यह व्यापारिक, औद्योगिक, प्रशासकीय एव गमनागमन का तथा शैक्षणिक केंद्र भी है। रेल, सडक एव वायुमार्गो द्वारा देश के विभिन्न भागो तथा दूसरे देशो से सवद्ध है। वदरगाह का पोताश्रय विस्तृत है। इसके समीप में ही अन्य औद्योगिक जिले हैं। यहाँ धातु और कोयला उतारने चढाने के घाट तथा जलयान निर्माण एव मरम्मत करने के कारखाने हैं। समीप ही स्पैरो प्वाइट मे विशाल जलयान निर्माण तथा देश का सवसे वडा इस्पात निर्माण का कारखाना है। यह विदेशी लौह धातुओ के आयात का प्रधान वदरगाह है। आयात की मुख्य वस्तुएँ क्रोम, जस्ता, मैंगनीज, चीनी, खनिज तेल, रवर, कहवा, चाय, गरम मसाला, कार्क, उष्णकटिवधीय फल, गरी का गोला, उर्वरक एव काष्ठमद हैं। निर्यात की वस्तुओ में अनाज, आटा, कोयला, लोहा, इस्पात, सीमेंट, यत्र और मोटरगाडियाँ उल्लेखनीय हैं। वॉल्टिमोर मे यत्र, ट्रैक्टर, मोटर, रेल के सामान, रसायनक, टिन के डिब्बे, दवा, उर्वरक

साबुन, शीशे की वस्तुएँ, वैज्ञानिक एव विद्युत् यत्र, वायुयान, वस्त्र, कागज, प्रकाशन एव मुद्रण यत्र बनाने तथा चीनी निर्माण के कारखाने और ताँबा गलाने का एक विशाल सयत्र, खनिज तेल शोधन एव कहवा तथा मास को डिब्बो में भरने के कारखाने हैं। जॉन हापकिंस विश्वविद्यालय एव चिकित्सालय तथा दवा, कानून, दतविज्ञान, भैपजकी विद्यालय, मेरीलैंड विश्वविद्यालय के कुछ विभाग, सेंट मेरी विश्वविद्यालय, कई सग्रहालय, राष्ट्रीय स्मारक एव गिरजाघर हैं। वेस्टमिंस्टर चर्चयार्ड मे एडगर ऐलेन पो की कब्र है। प्रैट पुस्तकालय, वास्तुकला विद्यालय एव अधो के लिये प्रशिक्षणालय भी महत्वपूर्ण है। राज्यीय बदी-सुधार-गृह तथा बहुत से उद्यान एव सगीत विद्यालय यहाँ हैं। इस नगर का क्षेत्रफल ९१ ९३ वर्ग मील तथा जनसख्या ९,३९,०२४ (१९६०) है। [रा० प्र० सि०]

बाल्ड्विन, स्टैन्ले का जन्म वुस्टरशायर के ब्यूडले नगर मे ३ अगस्त, १८६७ को हुआ। सपन्न माता पिता का वह एकमात्र पुत्र था। हैरो के प्रसिद्ध स्कूल मे अध्ययन के बाद १८८५ मे कैंब्रिज विश्वविद्यालय में उसका प्रवेश हुआ और वही से १८८८ मे उसने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। अध्ययन के बाद वह पिता की इजीनियरिंग फर्म बाल्डविन लिमिटेड के काम मे हाथ बँटाने लगा और १८९२ मे पश्चिमी वुस्टरशायर से पिता के पार्लमेंट का सदस्य चुने जाने के बाद उसने फर्म का सारा काम सँभाल लिया। इस वर्ष ही उसका विवाह हुआ। १९०६ में किडरमिंस्टर से पार्लमेंट की सदस्यता प्राप्ति के प्रयत्न मे वह असफल रहा किंतु अपने क्षेत्र मे पैरिश और काउटी कौंसिलो के सदस्य तथा मैजिस्ट्रेट के रूप मे सार्वजनिक और सरकारी कार्यों का उसने अनुभव कर लिया था।

१९०८ मे पिता की मृत्यु के बाद पिता के क्षेत्र से ही वह निर्विरोध पार्लमेंट मे पहुँच गया और १९३७ तक निरतर सदस्य चुना जाता रहा। पिता पुत्र दोनो अनुदार (कजर्वेटिव) दल के सदस्य थे। पार्लमेंट मे उसका पहला भाषण १९०८ के कोयला खान के मजदूरो के बिल के विरोध मे हुआ। अगले आठ वर्षों मे कम अवसरो पर ही उसने पार्लमेंट में अपने विचार व्यक्त किए। १९१६ मे युद्ध मत्रिमडल बनने पर वित्तमत्री (चासलर ऑव दि ऐक्सचैकर) बोनर ला ने उसको निजी ससदीय सचिव नियुक्त किया। जून, १९१७ मे उसे कोष विभाग के सयुक्त अर्थमत्री का कार्य सौंपा गया। १९१८ के चुनाव के बाद भी वह इस पद पर बना रहा। युद्धऋण से उत्पन्न आर्थिक सकट मे १९१९ में उसने १,५०,००० पौंड के अपने ऋण से सरकार को मुक्त कर दिया। छद्म नाम से अन्य ऋणदाता श्रीमतो से भी ऐसा करने की अपील की। १९२० मे वह प्रिवी कौंसिल का सदस्य बनाया गया और अप्रैल, १९२१ मे वह लॉयड जॉर्ज के सयुक्त दलीय मत्रिमडल में व्यापार बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त हुआ।

१९२२ के चुनाव के अवसर पर उसने सयुक्त दलीय सरकार की समाप्ति और अनुदार दल के स्वतत्र रूप से निर्वाचन मे भाग लेने का समर्थन किया। अनुदार दल के सदस्यो को पार्लमेंट मे बहुमत प्राप्त हुआ। १३ वर्षों के बाद बोनर ला के नेतृत्व मे गठित अनुदार दल के मत्रिमडल मे बाल्डविन वित्तमत्री नियुक्त हुआ। सयुक्त राष्ट्र अमरीका के युद्धऋण के भुगतान के सबध में समझौता इस पद पर रहते उसका महत्वपूर्ण कार्य था। अस्वस्थता के कारण बोनर ला के प्रधान मत्री के पद से हट जाने के बाद २२ मई, १९२३ से बाल्डविन इस पद पर नियुक्त हुआ। बढती हुई बेरोजगारी को दूर करने की सरक्षणात्मक प्रशुल्क की उसकी योजना को देश का समर्थन नहीं मिला। इस प्रश्न पर हुए नवबर के निर्वाचन के अनुसार दल की स्थिति कमजोर हो गई। जनवरी, १९२४ मे उदार (लिबरल) और मजदूर (लेबर) दलो के सदस्यो के मतों से पार्लमेंट मे हारने पर बाल्डविन ने इस्तीफा दे दिया।

मजदूर दल के नेता मैकडॉनल्ड का मत्रिमडल भी रूस सबधी नीति के विरोध के कारण नौ मास मे ही अपदस्थ हो गया। नए चुनाव मे अनुदार दल को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। नवबर मे बाल्डविन दूसरी बार प्रधान मत्री नियुक्त हुआ और जून, १९२९ तक इस पद पर रहा। १९२६ मे द्वितीय साम्राज्य समेलन की उसने अध्यक्षता की और ब्रिटेन के स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों का साम्राज्य के अतर्गत बराबरी का दर्जा घोषित किया। १९२७ मे उसने राजकुमार के साथ कैनाडा की यात्रा की। लोकार्नो समझौता, स्थानीय स्वशासन, वयस्क मताधिकार, पेंशन और बिजली सबधी कानून तथा लगभग पाँच लाख आवासो का निर्माण उसके कार्यकाल की उपलब्धियाँ हैं। पर बेरोजगारी और व्यापार की मदी को दूर करने के उसके प्रयत्न असफल रहे। मई, १९२९ के चुनाव मे लॉयड जर्ज के शब्दो में 'निश्चेष्ट, गुप्त और बाँझ' सरकार हार गई। मजदूर दल का दूसरा मत्रिमडल बना, पर बेरोजगारी दूर करने के प्रश्न पर दल के सदस्यों में मतभेद के कारण यह मत्रिमडल अगस्त, १९३१ में भग हो गया। मैकडॉनल्ड के ही नेतृत्व मे गठित सयुक्त दलीय राष्ट्रीय मत्रिमडल मे बाल्डविन को कौंसिल का लार्ड प्रेसिडेंट बनाया गया। अपने दल के प्रभावशाली सदस्यो के विरोध की उपेक्षा कर १९३१ मे साइमन कमीशन की भारतीय सविधान सबधी रिपोर्ट का उसने गोलमेज समेलन मे समर्थन किया। कमीशन की नियुक्ति उसके प्रधान मत्रित्व काल मे १९२७ मे हुई थी।

दुर्बल स्वास्थ्य के कारण मई, १९३५ मे मैकडॉनल्ड प्रधान मत्री के पद से हट गया। एक मास बाद बाल्डविन ने तीसरी बार इस पद का भार सँभाला और इस वर्ष ही पार्लमेंट मे इडिया ऐक्ट पारित कराया। नात्सी जर्मनी के तुष्टिकरण की अपनी नीति मे वह असफल रहा और देश के शस्त्रीकरण की योजना उसको अपनानी पड़ी। सम्राट् ऐडवर्ड अष्टम के विवाह के प्रश्न से उत्पन्न सकट मे १९३६ के अतिम महीनो मे उसने अपूर्व दृढता दिखाई। एडवर्ड ने राज्यत्याग किया। नए सम्राट् जॉर्ज षष्ठ के राज्यारोहण के बाद बाल्ड्विन ने २८ मई, १९३७ को राज्य की सेवा से अवकाश ले लिया। सम्राट् ने ब्यूड्ले के अर्ल की उपाधि से उसे समानित किया। जीवन के शेष वर्ष उसने रेडियो श्रवण, समाचारपत्रो और पुस्तकों के अध्ययन मे घर पर ही बिताए। सितबर, १९४२ मे उसने अपने विवाह की स्वर्ण जयती मनाई। पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष बाद, १४ दिसबर, १९४७ को उसका देहावसान हुआ। पत्नी की समाधि के समीप ही निजी गिरजाघर मे उसके शव को समाधि दी गई।

१९२१ और १९३१ के बीच बाल्डविन सेंट ऐंड्रूज़ और कैंब्रिज विश्वविद्यालयों का चासलर और ऐडिनबरा तथा ग्लासगो विश्व-

विद्यालयो का लॉर्डरेक्टर भी रहा। कई विषयो पर उसने पुस्तकें लिखी। क्लैरिक्स ऐंड दी प्लेन मैन, ऑन इंग्लैंड ऐंड दी अदर ऐसेज, १९२६, अवर इनहैरिटैंस (भाषण संग्रह), १९२८, दिस टॉर्च ऑव फ्रीडम, पीस ऐंड गुडविल इन इंडस्ट्री, १९३५, सर्विस ऑव अवर लाइव्ज़ १९३७, और ऐन इंटरप्रेटर ऑव इंग्लैंड १९३९ उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं। [त्रि० प०]

बाल्फर, आर्थर जेम्स (१८४८ - १९३०) अंग्रेज राजनीतिज्ञ और दार्शनिक। कैंब्रिज मे शिक्षा प्राप्त की। १८७४ मे हाउस ऑव कामन्स का सदस्य निर्वाचित हुआ। १८७८ से १८८८ तक वह विदेश विभाग मे अपने चाचा मार्क्विस ऑव सैलिसबरी का निजी सचिव रहा और उसके साथ बर्लिन संधि मे भाग लिया। १८७९ मे उसकी पुस्तक 'ए डिफेंस ऑव् फिलसॉफिक डाउट' प्रकाशित हुई। १८८५ के आम चुनाव मे वह ईस्ट मैनचेस्टर का प्रतिनिधि चुना गया, और १९०६ तक इसी क्षेत्र का प्रतिनिधि रहा। १८८६ मे वह स्कॉटलैंड का सचिव और १८८७ मे आयरलैंड का प्रधान सचिव बनाया गया। लार्ड सैलिसबरी के त्यागपत्र देने के पश्चात् वह जुलाई, १९०२ मे इंग्लैंड का प्रधान मंत्री नियुक्त हुआ, इस पद पर वह दिसंबर, १९०५ तक रहा। १९०६ के निर्वाचन मे उसकी पार्टी हार गई। वह स्वयं भी पराजित हो गया। उपनिर्वाचन मे लंदन नगर से चुना गया और १९११ तक सदन मे विरोधी दल का नेता रहा। तदनंतर वह दार्शनिक लेखन मे व्यस्त हो गया। १९१४ मे उसकी प्रसिद्ध कृति 'थीज्म ऐंड ह्यू मैनिज्म प्रकाशित हुई।

जून, १९१५ मे, हर्बर्ट हेनरी ऐस्क्विथ के मंत्रिमंडल मे समिलित होने के लिये आमंत्रित किया गया और विंस्टन चर्चिल के बाद लार्ड ऑव् एडमिरैलटी का पद सँभाला। १९१६ मे लॉयड जार्ज के प्रधान मंत्रित्व मे गठित मंत्रिमंडल मे वह विदेशमंत्री नियुक्त हुआ।

बाल्फर १९२० मे लीग ऑव नेशंस असेंबली मे और १९२१-२२ मे 'वाशिंगटन नेवल डिसार्ममेंट कॉन्फरेंस' मे इंग्लैंड का प्रधान प्रतिनिधि था।

बाल्फर, सर जेम्स सेशन्स कोर्ट (स्कॉटलैंड) के लार्ड प्रेसीडेंट थे। इनके पिता का नाम सर माईकेल बाल्फर था। १५४७ ई० मे सेंट एंड्रूज के किले पर फ्रांस का कब्जा हो जाने पर नॉक्स के साथ बाल्फर भी बंदी बनाकर फ्रांस भेज दिए गए। दो वर्ष बाद अपने सिद्धांतो का गला घोटने पर उनको मुक्ति प्राप्त हुई। स्कॉटलैंड पुन वापस आने पर उन्होने प्रत्येक दल से संबध स्थापित किया, प्रत्येक से संबध विच्छेद किया, फिर भी प्रत्येक दल से लाभान्वित हुए। मॉरटन के रीजेंट बनने पर, किसी भाँति बाल्फर उसके कृपाभाजन बन गए। मॉरटन के आदेशानुसार उन्होने कानून का एक साधारणीकरण "प्रैक्टिक्स ऑव स्काट ला" नाम से तैयार किया, किंतु इसके एकमेव प्रणेता होने मे बाल्फर के संबध मे संदेह किया जाता है। स्कॉटलैंड मे अपना जीवन असुरक्षित पाकर, सन् १५७३ मे बाल्फर फ्रांस चले गए। १५८३ ई० मे उनकी मृत्यु हो गई। [ला० सिं०]

बाल्सम कुछ पेड पौधो से नि स्राव (exude) निकलता है। कुछ से तो स्वत निकलता है और कुछ से छेदने या काटने से निकलता है। इनमे से कुछ नि स्रावो को बाल्सम कहते हैं। बाल्सम मे रेज़िन, अल्प मात्रा मे गोंद, कुछ वाष्पशील तेल और विभिन्न मात्राओ मे सौरभिक अम्ल और उनके एस्टर रहते हैं। यदि नि स्राव मे वाष्पशील तेल की मात्रा अधिक और ठोस सौरभिक अम्ल की मात्रा बिलकुल न हो तो ऐसे नि स्राव को 'ओलिओरेज़िन' कहते हैं।

बाल्सम साधारणतया श्यान द्रव, अथवा अर्ध ठोस, होता है। इसमें विशेष सौरभ होता है और तीक्ष्ण, पर कुछ रुचिकर स्वाद होता है। सौरभ प्रदान करनेवाले पदार्थ बेंज़ोइक, सिनेमिक और इसी प्रकार के अन्य कार्बनिक अम्ल और उनके एस्टर हैं। बाल्सम कई प्रकार के होते हैं, जिनमे बेंज़ोइन (लोबान), पेरू बाल्सम, स्टोरैक्स, टोलूबाल्सम, जैथोरिया, कैनाडा बाल्सम और कोपैवा बाल्सम महत्व के हैं।

बेंज़ोइन — बेंज़ोइन को अरबी भाषा मे लोबान तथा संस्कृत मे देवधूप कहते हैं। यह पेडो से प्राप्त होता है। ये पेड कोरिया, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपो मे पाए जाते हैं। व्यापार का लोबान कोरिया, सुमात्रा, पलेम्बाग, पाडाग और पेनाग बाल्सम के नामो से ख्यात है। सब बाल्सम संगठन मे एक से नही होते। उनमे विभिन्नता पाई जाती है।

बेंज़ोइन पेडो से स्वत नही निकलता। पेडो के तनो को कुल्हाडी से गहरा काटने से जो कटाव बन जाता है, उससे बाल्सम निकलकर इकट्ठा होता है। पर्याप्त कठोर हो जाने पर इसका निर्यात होता है। छोटे छोटे टुकडो अथवा कुदो में यह बाहर भेजा जाता है। अच्छे किस्म के बाल्सम मे मद, रुचिकर गंध होती है। निम्न कोटि के सुमात्रा बेंज़ोइन को 'पेनाग बेंज़ोइन, कहते हैं। पलेम्बाग बेंज़ोइन भी सुमात्रा से ही आता है। ये बेंज़ोइन धूप के लिये उपयुक्त होते हैं।

व्यापार के बेंज़ोइन मे बहुत से बाह्य पदार्थ मिले रहते है। यदि उसमे कोई मिलावट न हो, तो गंध और ऐल्कोहॉल मे विलेयता उसकी पहचान है।

बेंज़ोइन मे प्राय २० प्रति शत सिनेमिक अम्ल और १० से १५ प्रति शत बेंज़ोइक अम्ल, प्रधानतया एस्टर के रूप मे, रहते हैं। इनके अतिरिक्त स्टाइरिन, वेनिलिन, फिनोल - प्रोपील सिनेमेट, सिनेमिल सिनेमेट, बेंज़ोरेसिनोल सिनेमेट, बेंज़ल्डीहाइड और बेंज़ीन (लेश) रहते हैं। कोरिया के बेंज़ोइन मे सिनेमिक अम्ल बिलकुल नही होता।

ओषधियो मे प्रयुक्त होनेवाले बाल्सम मे निम्नलिखित विशेषताएँ रहनी चाहिए

१ इसमे असंयुक्त बाल्सेमिक अम्ल १९ प्रति शत से कम और २९ प्रति शत से अधिक नही रहना चाहिए।

२. समस्त बाल्सेमिक अम्ल ३० प्रति शत से कम और ६० प्रति शत से अधिक नही रहना चाहिए।

३ ९० प्रति शत ऐल्कोहॉल से निकर्षण के बाद १००° सें० पर सूखा अवशिष्ट अंश २० प्रति शत से अधिक नही रहना चाहिए।

४. ऐल्कोहॉल मे विलेय अंश का अम्लमान ११५-१६३, एस्टरमान ४७-८३ और साबुनीकरण मान १६९-२२३ रहना चाहिए। राख की प्रतिशतता दो से अधिक नही रहनी चाहिए।

बेंजोइन का उपयोग ओषधियो और सुगधित द्रव्यों के निर्माण में होता है।

पेरू बालसम — यह भूरे रग का छोए जैसा श्यान द्रव है। इसमे प्रवल रुचिकर और बालसम सी गध होती है। सुगधित द्रव्यो के निर्माण और अल्प मात्रा मे ओषधियो में इसका उपयोग होता है। इससे नकली ऐंवर भी बनता है। इसका आपेक्षिक घनत्व १ १४ से १ १७ और अपवर्तनाक १ ५८० से १ ५८६ है। इसमे बालसम एस्टर ५३ प्रति शत से कम नही रहना चाहिए।

पेड की छाल को झुलसाने के वाद बाल्सम निकलता है, जो तने मे लपेटे कपडो मे इकठ्ठा होता है। इस कपडे के निचोडने से बालसम प्राप्त होता है। जल के साथ उबालने से इसका शोधन होता है।

स्टोरैक्स — टर्की देश मे एक पेड होता है, जिसके छिंवने या पीटने से बालसम निकलता है। यह पाराध, धूसर रग का श्यान द्रव होता है, जिसमे पेड की कुछ छाल मिली रहती है। इसमे २० से ३० प्रति शत जल रहता है। ओषधियो मे इसका व्यवहार होता है। ब्रिटिश फार्माकोपिया के अनुसार इसमे निम्नलिखित विशेषताएँ रहनी चाहिए जल ऊष्मक पर एक घटा सुखाने पर जो नमूना प्राप्त होता है, उसमे ३० प्रति शत बाल्समिक अम्ल रहना चाहिए। जल ऊष्मक पर सुखाने से ५ प्रति शत से अधिक का ह्रास नही होना चाहिए। सूखे नमूने का अम्लमान ५५ से ९०, एस्टरमान १०० से १३२ और साबुनीकरण मान १७० से २०० रहना चाहिए।

टोलू बालसम — वेनिज्वीला, एक्वाडॉर और ब्राज़ील मे पाए जाने वाले एक पेड के तने से यह बालसम प्राप्त होता है। यह कोमल, पर दृढ, रेजिन सा पदार्थ है, जो रखने पर कडा और जाडे मे भगुर हो जाता है। इसका स्वाद खट्टा और गध रुचिकर होती है। सुगधित द्रव्यो के निर्माण मे इसका व्यवहार होता है। गधो के स्थायीकारक के रूप मे यह काम आता है। इसमे १० से १५ प्रति शत असयुक्त सिनेमिक अम्ल और सात से दस प्रति शत असयुक्त बेंजोइक अम्ल रहता है। सिनेमिक और बेंजोइक अम्लो के बेंज़ील एस्टर इसमे आठ प्रति शत तक रहते हैं। वेनिलिन का लेश रहता है। यह ऐल्कोहॉल, बेंज़ीन, क्लोरोफॉर्म, ईथर और ग्लेशियल ऐसीटिक अम्ल मे विलेय होता है।

ज़ैंथॉरिया (Xanthorrhoea) बालसम — ऑस्ट्रेलिया में एक पेड होता है, जिससे यह बालसम निकलता है। इस बालसम को 'ऐकेरायड' (acaroid) रेजिन भी कहते हैं। यह लाल और पीला, दो रग का होता है। इसमे सुगध होती है और सुगधित द्रव्यो के निर्माण मे बेंज़ोइन, स्टोरैक्स और टोलू बालसम के स्थान में प्रयुक्त हो सकता है। यह धूप के लिये भी व्यवहृत होता है और मोहर के सस्ते चपडे के निर्माण मे काम आता है। दोनो रग के बालसम एक ही सगठन के होते हैं। अवयवों की विभिन्नता से रग मे अतर आ जाता है। एक मे सिनेमिक अम्ल रहता और दूसरे मे पाराकुमेरिक अम्ल। इससे पिक्रिक अम्ल बन सकता है।

कैनाडा और कोपेबा बालसम का वर्णन रेजिन प्रकरण मे मिलेगा। [फू० स० व०]

बॉसपोरस (Bosporus) स्थिति ४१° १०' उ० अ० तथा २९° १०' पू० दे०। यह एशिया एव यूरोप के मध्य, उत्तर-पूर्व मे कालासागर और दक्षिण-पश्चिम मे मारमारा (Marmara) सागर को मिलानेवाला जलडमरूमध्य है। कुछ दूर तक यह यूरोप तथा एशिया को विभाजित करता है। यह लगभग १८ मील लबा, दो से एक तिहाई मील तक चौडा तथा २० फैदम से ६६ फैदम तक गहरा है। कालासागर से मारमारा सागर की ओर एक धारा पाँच मील प्रति घटा की गति से चलती है तथा इसके विपरीत भी एक जलधारा चलती है जो काफी धीमी है। यह सदा बहनेवाले जलाशय की तरह है। यह महत्वपूर्ण जलमार्ग भी है। कालासागर से भूमध्यसागर की तरफ होनेवाले सारे व्यापार का नियत्रण इस मार्ग द्वारा होता है। इसी महत्व के कारण यह क्षेत्र पूर्वी यूरोप की राजनीति का बहुत महत्वपूर्ण केंद्र हो गया है। [उ० कु० सिं०]

बासूतोलैंड (देखें, लेसोथो)।

बास्तील मूलत प्रतिरक्षा अथवा आक्रमण से बचाव के लिये बनाया गया कोई भी दुर्ग। फ्रांसीसी शब्द बास्तिर अर्थात् बनाना से व्युत्पन्न हुआ है। पेरिस की कई एक पुरानी इमारतें बास्तील नाम से जानी जाती रही हैं। सेंट ऐंतायन की इमारत के द्वार पर दो विशाल गुबद थे जिन्हे चार्ल्स चतुर्थ के समय मे परिवर्धित करके आठ गुबद बना दिए गए। ये सभी एक मोटी दीवार द्वारा एक दूसरे से सयुक्त थे और इनके चारो ओर चौडी खाइँ थी। इस किस्म के अन्य दुर्गों के निर्माण के बाद केवल इसी सेंट ऐंतायन के दुर्ग को ही बास्तील कहा जाने लगा। इस दुर्ग का फ्रास के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान है। चार्ल्स सप्तम के विरोधी शत्रुओ ने इसी में रहकर उसका सामना किया था और अतत रसद समाप्त होने के बाद ही समर्पण किया। सन् १५८८ मे गाइज़ के ड्यूक ने इसपर अधिकार किया। हेनरी चतुर्थ ने तो इसे अपना कोषागार भी बनाया। सन् १६४९ से १६५१ तक यह फ्राडे की सेनाओं के अधिकार मे रहा। बास्तील का प्रयोग सामान्यत राजकीय कैदखाने के रूप मे किया जाता रहा है। प्रारभ मे यहाँ राजनीतिक अपराधी ही रखे जाते थे पर बाद मे इसकी स्थिति किले की अपेक्षा जेल की ही अधिक हो गई, इसलिये सामान्य कैदियों को भी यही कैद किया जाने लगा। लुई १२वें के समय तक तो यह पूरी तरह जेल के रूप मे ही परिवर्तित हो गया। प्राय ऐसे कैदी भी यहाँ आते थे जो किसी प्रभावशाली व्यक्ति की कुदृष्टि के शिकार हो जाते थे। ऐसे कैदी बिना किसी न्यायविचार के वर्षो यातनाएँ झेलते थे। सरकार के आलोचको को यहाँ विशेष रूप से कठोरता के साथ कैद किया जाता था। सन् १७८९ की राज्यक्राति के समय इसीलिये क्रातिकारियो ने इसपर आक्रमण किया था कि इसमे तमाम ऐसे कैदी थे जो सरकार की आलोचना करने के कारण ही यातनाएँ झेल रहे थे। क्रातिकारियो ने इसे पूर्णत ध्वस्त कर दिया। राजनीतिक कैदियो को सजाएँ राजा की इच्छा पर ही प्राय निर्भर करती थी। बास्तील मे कैद किए जानेवाले कुछ विश्वविख्यात व्यक्तियो मे से वाल्तेयर, निकोलस फुके, कोत द लैली आदि प्रमुख हैं।

[मु० दा०]

बॉस्वेल, जेम्स (१७४०–१७९५) अंग्रेजी जीवनी लेखक । जन्मस्थान एडिनबरा, स्कॉटलैंड । एडिनबरा, ग्लासगो और यूट्रेक्ट विश्वविद्यालयो मे कानून का अध्ययन किया, परतु अनिच्छापूर्वक, क्योकि इसकी महत्वाकाक्षा साहित्यिक अथवा राजनीतिक क्षेत्र मे प्रसिद्धि प्राप्त करने की थी । १७६३ मे लदन की अपनी दूसरी यात्रा पर वह पहली बार डॉ० जॉन्सन (१७०९–८४) से मिला और उसके शक्तिशाली व्यक्तित्व से ऐसा प्रभावित हुआ कि उसकी जीवनी लिखने का निश्चय कर लिया । प्रारंभ से ही वह इस बात के लिये सचेष्ट हो गया कि जीवनी के लिये हर सभव सामग्री एकत्रित कर ले, तथा अपनी उपस्थिति मे जानसन द्वारा कही गई, हर बात को हूबहू लिख ले । १७६५–६६ मे यूरोप भ्रमण के दौरान कॉर्सिका मे उसका परिचय जनरल पाओली से हुआ । कॉर्सिका के स्वातत्र्य युद्ध मे उसने ऐसी दिलचस्पी ली कि वह जनरल पाओलो का आजीवन मित्र बन गया । १७६८ मे उसने 'ऐन अकाउट ऑव कॉर्सिका' भी प्रकाशित की जिसका यूरोप की कई भाषाओ मे अनुवाद हुआ । इसकी लोकप्रियता के कारण यूरोप मे उसे 'मिस्टर कॉर्सिका बॉस्वेल' कहा जाता था । महान विभूतियो के प्रति अपने आकर्षण के कारण वह रूसो और वॉल्तेर से भी मिला, परतु जीवनी लिखने के लिये सबसे उपयुक्त विषय उसे जॉन्सन मे ही मिला । १७७३ मे वह जॉन्सन के 'लिटरेरी क्लब' का सदस्य चुना गया । इसी वर्ष वह जॉन्सन को स्कॉटलैंड तथा हेब्रिडीज़ द्वीपो के भ्रमण पर ले गया । इस यात्रा के वृत्तात 'दि जर्नल ऑव ए टुअर टु दि हेब्रिडीज' (१७८५) को उसकी महान् जीवनी की अभ्यासभूमि माना जा सकता है । १७९१ मे प्रकाशित होते ही 'दि लाइफ ऑव सैमुएल जॉन्सन, एल-एल० डी०' को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई वह अभी तक कम नही हुई । इसे न केवल अंग्रेजी साहित्य वल्कि विश्वसाहित्य की महानतम जीवनी माना गया है । यद्यपि यह सही है कि बॉस्वेल की अभूतपूर्व सफलता काफी हद तक जॉन्सन के आकर्षक व्यक्तित्व पर आधारित थी, तथापि इसमें सदेह नही कि उसकी साहित्यिक प्रतिभा अत्यत उच्च कोटि की थी ।

[ज० वि० मि०]

बाहरी मार्ग (Bycpass) या उपमार्ग नगरो के भीडवाले क्षेत्रो, या अन्य ऐसी रुकावटो, को छोडकर धुर (through) यातायात के सीधा निकल जाने के लिये बनाए जाते हैं । जब किसी नगर, पुर या ग्राम के बीचोबीच कोई धुर सडक गुजरती है, तो इस सडक पर चलनेवाले भारी यातायात से उस नगर के व्यवसायियो और अन्य लोगो को बडी असुविधा होती है । कभी कभी बडी दुर्घटनाएँ भी हो जाती हैं । इसके अतिरिक्त उस धुर सडक की यातायात वहन सामर्थ्य (एक घटे मे अधिकतम गाडियाँ गुजरने की सख्या) सडक के उस भीडवाले खड के कारण घट जाती हैं । इसलिये उस सडक के उपयोग पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है और धुर जानेवाली गाडियो का बहुत समय नष्ट होता है । इसलिये ऐसी अवस्थाओ मे बाहरी मार्ग की आवश्यकता प्रतीत होती है और उसके बन जाने के बाद उपर्युक्त कमियाँ दूर हो जाती हैं । बाहरी मार्ग का निर्माण धुर जानेवाले यातायात और उस भीडवाले क्षेत्र दोनो के लिये ही हितकर होता है । अमरीका में किए गए अध्ययनो से पता चलता है कि बड़ी सड़को पर होनेवाले यातायात के ८५ से ९० प्रति शत लोगो को राह मे पडनेवाले नगर में कोई कार्य नही होता । उसके बहुत थोडे से अश को नगर मे से निकलकर जाने की आवश्यकता होती है । बाहरी मार्ग अधिकतर नगर की बाहरी सीमा के गिर्द ही बनाए जाते हैं, जिससे उसपर स्थानीय यातायात का कम से कम प्रभाव पडे । प्राय बाहरी मार्ग की लबाई उस सडक की नगर के बीचो बीच पडनेवाली लबाई से कही अधिक होती है । इसलिये उसके बनाने की लागत बहुत बैठती है । बाहरी मार्ग तभी बनाना चाहिये, जब धन लगाने से पहले लागत और लाभ का अध्ययन कर लिया जाए और उससे बाहरी मार्ग बनाना उचित सिद्ध हो ।

बाहरी मार्ग की चौडाई और अन्य मानक वही होने चाहिए जो खुले प्रदेश मे गुजरनेवाली उस प्रकार की सडक के हो । चाहे पिछले प्रकार की सडक पर एक गलीवाला ही यानमार्ग हो, बाहरी मार्ग पर दो गली वाला यानमार्ग ही बनाना चाहिए, क्योकि बडे नगरो और पुरो के पडोस मे बने बाहरी मार्गो पर यातायात भारी होता है ।

अब भारत मे राष्ट्रीय मार्गो के साथ बाहरी मार्ग अधिकतर बनाए जा रहे हैं, जिससे यातायात की गति मे रुकावट न हो ।

[ज० मि० श्रे०]

बाह्य प्रत्यक्षवाद ज्ञानमीमासा के इस सिद्धात के अनुसार बाह्य वस्तु का ज्ञान अनुमान से नही वरन् प्रत्यक्ष प्राप्त होता है । प्रत्यक्ष ज्ञान सभव माने बिना अनुमान नही लगाया जा सकता । यदि बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष कभी न हुआ हो, तो मानसिक प्रतिरूपो से बाह्य वस्तु का अस्तित्व सिद्ध ही नही हो सकता । इसलिये बाह्य वस्तु का ज्ञान अनिवार्य रूप से प्रत्यक्ष ही होता है । इद्रियो के द्वारा जो कुछ दिखाई या सुनाई पडता है, बाह्य वस्तुएँ वैसी ही होती हैं ।

भारत मे बौद्ध दर्शन की वैभाषिक शाखा के प्रवर्तक इस सिद्धात को स्वीकार करते हैं । वे बाह्य वस्तु और मन दोनो का अस्तित्व मानते हैं । मन मे बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है । यह प्रत्यक्ष ज्ञान इद्रियो के माध्यम से होता है । इद्रियाँ बाह्य जगत् के साथ सपर्क मे आकर उससे एक प्रकार का सस्कार प्राप्त करती हैं । वे उन सस्कारो के साथ चित्त को प्रबुद्ध कर उसमे चेतना उत्पन्न कर देती हैं । तभी चित्त मे ससार के ज्ञान का उदय होता है । जो वस्तु इद्रियग्राह्य नही है, उसे मन भी नही जान सकता । अत इद्रियातीत वस्तुओ की सत्ता (जैसे आत्मा) वैभाषिको को स्वीकार नही है ।

पश्चिम मे आधुनिक नव्यवस्तुवादी (नियो रियलिस्ट) भी बाह्यप्रत्यक्षवाद का समर्थन करते हैं । वस्तुवादी विचारधारा नई नही है और न बाह्यप्रत्यक्षवाद । मनुष्य स्वभाव से ही इस सिद्धात को आदि काल से मानता आ रहा है । अरस्तू के दर्शन मे इसके तत्व उपलब्ध हैं । सत टॉमस एक्विनस् ने १३वी शताब्दी मे इसका पुन प्रतिपादन किया । आधुनिक युग मे बाह्यप्रत्यक्षवादी विचारधारा जर्मनी मे उदित हुई । वहाँ वस्तुवादी दार्शनिक फ्रेंज ब्रेंटानो, एलेक्जेंडर मीनाग, एडमड हुसरल आदि ने बाह्य-प्रत्यक्षवाद का समर्थन किया । उनसे प्रभावित इग्लैंड के दार्शनिक जी० ई० मूर, बर्ट्रेंड रसेल आदि ने भी इस सिद्धात को स्वीकार किया । इसके उपरात अमरीका तथा अन्य अनेक देशो मे इसके अनुयायी पैदा हो गए । आजकल इसके समर्थको की सख्या बहुत अधिक है । [ह० ना० मि०]

बाह्यानुमेयवाद यह ज्ञानमीमांसा का एक सिद्धांत है। इसके अनुसार संसार का, बाह्य वस्तुओं का, ज्ञान वस्तुजनित मानसिक आकारों के अनुमान द्वारा प्राप्त होता है। हमें न तो बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और न अपरोक्ष अपनी मानसिक अवस्था ही बाह्य वस्तु के सदृश प्रतीत होती है। मन और बाह्य वस्तु दोनों की सत्ता है। बाह्य वस्तु के अनुरूप मन में आकार उत्पन्न होते हैं। उन आकारों से ही बाह्य वस्तु के स्वरूप का अनुमान लगता है।

भारत में बौद्ध दर्शन की सौत्रांतिक शाखा के प्रवर्तक इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार ज्ञान के चार प्रत्यय हैं — आलंबन, समनंतर, अधिपति और सहकारी। बाह्य वस्तु ज्ञान का आलंबन कारण है। मानसिक आकृतियाँ उन्हीं से निर्मित होती हैं। ज्ञान के अव्यवहित पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था से उत्पन्न चेतना समनंतर कारण है। इसके बिना ज्ञान की प्रतीति हो ही नहीं सकती है। इंद्रियाँ अधिपति कारण हैं। रूप स्पर्शज्ञान प्राप्त होता है या अन्य कोई, यह इंद्रियों पर ही निर्भर है। प्रकाश, दूरत्व आदि सहकारी कारण हैं। इन चार कारणों या प्रत्ययों के उपस्थित होने पर ही किसी वस्तु का ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष नहीं है। प्रत्यक्ष तो केवल मानसिक प्रत्यय हैं। उनसे बाह्य वस्तुओं का अनुमानित ज्ञान होता है।

पश्चिम में बाह्य अनुमेयवाद के समतुल्य लाक जैसे दार्शनिकों का 'प्रत्ययों का प्रतिकृति सिद्धांत' ध्यातव्य है। उसके अनुसार मन और वस्तु दोनों की सत्ता है। वस्तुएँ स्वच्छ पट्टिका (टेबुला रासा) जैसे मन पर अपनी प्रतिकृति उत्पन्न करती हैं। इन्हीं प्रतिकृतियों के ज्ञान को हम निश्चयात्मक कह सकते हैं। उनके परे यथार्थ क्या है यह जानने का कोई निश्चित साधन नहीं है। मानसिक प्रतिकृतियों के ज्ञान से ही बाह्य वस्तुओं का अनुमान लगाया जा सकता है।

आधुनिक युग का विवेचनात्मक वस्तुवाद (क्रिटिकल रियलिज्म) भी बहुत कुछ बाह्य अनुमेयवाद का समर्थन करता है। इस सिद्धांत के प्रतिपादक प्रधानतः अमरीका के दार्शनिक ड्रेक, लवजाय, प्रेट रोजर्स, सांतायना, सेलर्स, स्ट्राग आदि हैं। [ह० ना० मि०]

बिंदुसार मौर्य सम्राट् चंद्रगुप्त का उत्तराधिकारी। स्ट्राबो के अनुसार सैंड्रकोट्टस (चंद्रगुप्त) के बाद अमित्रोकेटिज उत्तराधिकारी हुआ जिसे एथेनेइयस ने अमित्रोकातिस (सं० अमित्रघात) कहा है। जैन ग्रंथ राजावलिकथे में उसे सिंहसेन कहा गया है। बिंदुसार नाम हमें पुराणों में प्राप्त होता है। चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के रूप में वही नाम स्वीकार कर लिया गया है। पुराणों के अतिरिक्त परंपरा में प्राप्त नामों से उसके विजयी होने की ध्वनि मिलती है। संभवतः चाणक्य चंद्रगुप्त के बाद भी महामंत्री बना रहा और तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने बताया कि उसने पूरे भारत की एकता कायम की। ऐसा मानने पर प्रतीत होता है कि बिंदुसार ने कुछ देश विजय भी किए। इसी आधार पर कुछ विद्वानों के अनुसार बिंदुसार ने दक्षिण पर विजय प्राप्त की। किंतु यह समीचीन नहीं प्रतीत होता। 'दिव्यावदान' के अनुसार तक्षशिला में राज्य के प्रति प्रतिक्रिया हुई। उसे शांत करने के लिये बिंदुसार ने वहाँ अपने लड़के अशोक को कुमारामात्य बनाकर भेजा। जब वह वहाँ पहुँचा, लोगों ने कहा कि हम न बिंदुसार से विरोध करते हैं न राजकुमार से ही, हम केवल दुष्ट मंत्रियों से और विरोध प्रदर्शित करते हैं। बिंदुसार की विजयों को पुष्ट करने अथवा खंडित करने के लिए कुछ भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि उसने शासन पर अधिकार बनाए रखने का प्रयास किया। सीरिया के सम्राट् से इसके राजनय संबंध में भी मित्रता कायम रही। मेगस्थनीज का उत्तराधिकारी डाइमेकस सीरिया के सम्राट् का दूत बनकर बिंदुसार के दरबार में रहता था। प्लिनी के अनुसार मिस्र के सम्राट् टॉलेमी फिलेडेल्फस (२८५–२४७ ई० पू०) ने भी अपना राजदूत भारतीय नरेश के दरबार में भेजा था, यद्यपि स्पष्ट नहीं होता कि यह नरेश बिंदुसार ही था। एथेनियस ने सीरिया के सम्राट् एंटियोकस प्रथम सोटर तथा बिंदुसार के पत्रव्यवहार का उल्लेख किया है। राजा अमित्रघात ने एंटियोकस से अपने देश की शराब, तथा सॉफिस्ट खरीदकर भेजने के लिये प्रार्थना की थी। उत्तर में कहा गया था कि हम आपके पास शराब भेज सकते हैं किंतु यूनानी विधान के अनुसार सॉफिस्ट का विक्रय नहीं होता।

बिंदुसार के कई लड़के थे। अशोक के पाँचवें शिलालेख से विदित है कि उसके अनेक भाई बहिन थे। सबका नाम नहीं मिलता। 'दिव्यावदान' में केवल सुसीम तथा विगताशोक इन दो का नाम मिलता है। सिंहली परंपरा में उन्हें सुमन तथा तिष्य कहा गया है। कुछ विद्वान् इस प्रकार अशोक के चार भाइयों की कल्पना करते हैं। जैन परंपरा के अनुसार बिंदुसार की माता का नाम दुर्धरा था।

[प० ना० पा०]

बिकिनी स्थिति ११° ०' उ० अ० तथा १६५° ३०' पू० दे०। प्रशांत महासागर में हवाई द्वीप के दक्षिण-पश्चिम स्थित मार्शल द्वीप समूह के उत्तर पश्चिमी भाग का एक प्रवालद्वीपीय वलय है। इसमें लगभग १७० वर्ग मील में फैले २७ द्वीप शामिल हैं। यहाँ पर सन् १९४६ में संयुक्त राज्य, अमरीका द्वारा अणुबम के दो ऐतिहासिक परीक्षण किए गए थे। परीक्षण के पूर्व यहाँ के निवासियों को अन्यत्र भेज दिया गया था। परीक्षण के परिणामस्वरूप यहाँ का प्राणिजीवन तथा वनस्पतिजीवन प्रायः संपूर्ण नष्ट हो गया है।

बिच्छू आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) संघ का मांस लेनेवाला ऐरैक्निड (मकड़ी) है। इसकी अनेक जातियाँ हैं, जिनमें आपसी अंतर बहुत मामूली है। यहाँ बूथस (Buthus) वंश का विवरण दिया जा रहा है, जो लगभग सभी जातियों पर घटता है।

बाह्य लक्षण — बिच्छू का शरीर लंबा, चपटा और परिवर्ती रंगों का होता है। शरीर दो भागों का बना होता है, एक छोटा अग्र भाग शिरोवक्ष या अग्रकाय (cephalothorax, prosoma) और दूसरा लंबा पश्चभाग, उदर (abdomen, opisthosoma) है। शिरोवक्ष एक पृष्ठवर्म (carapace) से पृष्ठत: आच्छादित रहता है, जिसके लगभग मध्य में एक जोड़ा बड़ी आँखें और उसके अग्र पार्श्विक क्षेत्र में अनेक जोड़ा छोटी आँखें होती हैं। उदर का अगला चौड़ा भाग मध्यकाय (Mesosoma) सात खंडों का बना होता है। प्रत्येक खंड ऊपर पृष्ठक (tergum) से और नीचे उरोस्थि (sternum)

से आवृत होता है। ये दोनो पार्श्वंत एक दूसरे से कोमल त्वचा द्वारा जुडे होते है।

पश्चकाय (metasoma) उदर का पश्च, सँकरा भाग है जिसमे पाँच खड होते हैं। जीवित प्राणियो मे पश्चकाय का अतिम भाग, जो पुच्छ है, स्वभावत पीठ पर मुडा होता है। इसके अतिम
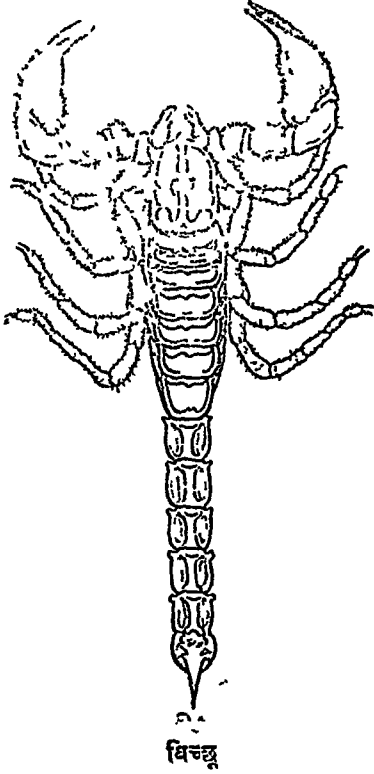
बिच्छू

खंड से अतस्थ उपाग (appendage) सधिबद्ध (articulated) होता है और पुच्छीय मेरुदड (caudal spine) आधार पर फूला और शीर्ष पर, जहाँ विषग्रथियो की वाहिनियाँ खुलती हैं, नुकीला होता है। अतिम खड के अधर पृष्ठ (ventral surface) पर डक के ठीक सामने गुदा द्वार स्थित होता है। मुख एक छोटा सा छिद्र है, जो अग्रकाय के अगले सिरे पर अधरत स्थित होता है। मुख पर लैब्रम (labrum) छाया रहता है।

अग्रकाय के उपाग — ये छह जोडा हैं। कीलिसैराएँ (chelicerae) अग्रतम उपांग हैं और ये शिकार के अध्यावरण (integument) को फाडने के काम मे आते हैं। प्रत्येक कीलिसैरा तीन जोडोवाला होता है और कीला (chela) पर समाप्त होता है। पश्चस्पर्शक (Pedipalps) द्वितीय जोडा होने के कारण आक्रमण करने तथा पकडने के समर्थ साधन सिद्ध होते हैं।

चलने के काम आनेवाले चारो पैर रचना की दृष्टि से एक से हैं और शिरोवक्ष की बगल में देह से जुडे हैं। पहले दो जोडे के आधारिक (basal) खड इस प्रकार रूपातरित हुए हैं कि वे लगभग जबडे की तरह काम कर सकें।

मध्यकाय के उपाग — मध्यकाय के प्रथम खड की उरोस्थि (sternum) पर जननागी प्रच्छद ढक्कन (genital operculum) पाया जाता है, जो दरार (cleft) से विभाजित, कोमल, मध्यस्थ, गोल पालि (lobe) है। इसके आधार पर जननागी वाहिनी का मुँह होता है। दूसरे खड की उरोस्थि से दो कघीनुमा पेक्टिन (pectins) जुडे होते हैं। क्रिया की दृष्टि से ये स्पर्शक (tactile) हैं।

मध्यकाय के तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे खडो की उरोस्थियाँ बहुत चौडी होती है और प्रत्येक पर दो तिर्यक् रेखाछिद्र (oblique slits) रहते हैं, जिन्हे दृक्बिंदु (stigmata) कहते हैं। ये फुफ्फुसी कोश (Pulmonary sacs) मे पाए जाते हैं। शेष मध्यकायिक तथा मेटासोमा के खड उपागविहीन होते हैं।

अंत ककाल — शिरोवक्ष के अग्र मे अनेक प्रक्रियाओ का एक काइटिनी (chitinous) प्लेट है, जिससे विभिन्नदिशाओ से आनेवाली पेशियाँ जुडी होती हैं। इस काइटिनी प्लेट को एडोस्टर्नाइट (Endosternite) कहते हैं।

पाचकतत्र — आहारनाल (alimentary canal) एक सीधी नली है, जो मुँह से गुदा तक जाती है। इसे चार प्रधान भागो मे विभक्त किया जा सकता है (१) मुखपूर्वी कोटर (preoral cavity), (२) अग्रांत्र (foregut) या मुखपथ (stomadaeum), (३) मध्यांत्र (midgut) या मेसेंटरॉन (mesenteron) और (४) पश्चात्र या गुदपथ (proctodaeum) या पाचन की प्रक्रिया मे उदर ग्रथियाँ और हेपैटोपैंक्रिअस (hepato pancreas) सहचरित अग (organs) होते हैं।

परिसचरण तत्र — बिच्छू का परिसचरण तत्र सुविकसित होता है। इसमे नलिकाकार ऑस्टिएट (ostiate), हृदय, धमनियाँ, शिराएँ और कोटर (sinuses) हैं। रक्त रगहीन तरल के रूप मे नीली छटा से युक्त होता है, जो उसमे घुले हीमोसायनिन रगद्रव्य के कारण होती है। इसमे असस्य केंद्रिकित (nucleated) कणिकाएँ होती हैं।

श्वसन अग — तीसरे से छठे मध्यकायिक खड के अधर पार्श्वक बगल मे चार जोडा पुस्त-फुफ्फुस (booklungs) स्थित होते हैं। प्रत्येक पुस्त-फुफ्फुस (१) फुफ्फुस कोष्ठ, जिसमे खोखली पटलिकाएँ होती है तथा जिनमे रक्त प्रवाहित होता है, (२) वायुपरिकोष्ठ (atsium) और (३) बाहर की ओर खुलनेवाले दृग्विदु (stigma) का बना होता है।

बिच्छू की श्वसन क्रियाविधि में शरीर की पृष्ठपार्श्वीय (dorso lateral) पेशियो की सक्रियता के कारण फुफ्फुस का तालबद्ध सकुचन और शिथिलन (contraction & relaxation) होता है। बिच्छू मे पुस्तफुफ्फुस के अतिरिक्त अन्य श्वसन अगो का अभाव है। त्वक्श्वसन (cutaneous respiration) नही होता।

उत्सर्जन तत्र — बिच्छू मे तीन भिन्न अगो से उत्सर्जन की क्रिया होती है (१) एक जोडा मैलपीगी नलिकाएँ (Malpighian tubules), जिनका रग भूरा होता है, (२) एक जोडा श्रोणि ग्रथियाँ (coxal glands) तथा (३) एक यकृत अथवा हेपैटोपैंक्रिअस (Hepato-pancreas) ।

जननतत्र — नर मादा के लिंग अलग अलग होते हैं। नर मादा की अपेक्षा छोटा होता है और उसका उदर अपेक्षाकृत सँकरा होता है। नर के पश्चस्पर्शक प्राय अपेक्षाकृत लबे और अगुलियाँ छोटी

और पुष्ट होती हैं। नर की दुम प्राय मादा की अपेक्षा लंबी होती है। जननिक प्रच्छद (genital operculum) सदैव दो आवरकों (flaps) का बना होता है।

नर के वृषण (testes) मे आडी शाखाओ से जुडी हुई दो जोड़ा अनुदैर्घ्य नलियाँ होती हैं। प्रत्येक वृषण, एक मध्यस्थ शुक्रवाहक (median vas deferens) से जुडा होता है, जिसका अंतस्थ भाग सहायक ग्रंथि (accessory gland) युक्त और द्विशिश्न (double penis) के रूप मे रूपातरित होता है। वृषण का अतस्थ सिरा प्रच्छद ढक्कन (operculum) के ठीक पीछे होता है।

मादा मे तीन अनुदैर्घ्य नलियों का एक अयुग्मित अडाशय (ovary) होता है, जिसमें आडी योजक शाखाएँ होती हैं। अडवाहिनियाँ (oviduct) प्रच्छद ढक्कन पर खुलती हैं।

तत्रिकातत्र — केंद्रीय तत्रिकातत्र में मस्तिष्क, अधर-तत्रिका-रज्जु (ventral nerve cord) और तत्रिकाएँ होती हैं। आँख और पेक्टिन (pectins) विशिष्ट सवेदी अग हैं।

विषग्रथि — विच्छू में एक जोडा विषग्रथियाँ होती हैं, जो पुच्छखड (telson) की तुबिका (ampulla) मे अगल बगल रहती हैं। इनकी पेशियाँ मजबूत होती हैं और विषग्रथियो की वाहिकाएँ दश के सिरे पर खुलती हैं।

विष स्वादहीन, गधहीन और अल्पश्यान (viscous) तरल है। यह पानी, नमकीन विलयन और ग्लिसरीन मे विलेय है। पर ऐल्कोहॉल और ईथर में नही घुलता। विच्छू बिना छेडे डक नहीं मारते। मनुष्यो पर विष का घातक प्रभाव नही पडता और स्वय विच्छू पर भी कोई कुप्रभाव नहीं पडता।

स्वभाव — पथरीले स्थान और बलुई मिट्टी विच्छू के प्राकृतिक आवास हैं। ये प्राय विदरिकाओ (crevices) और चपटे पत्थरों के नीचे पाए जाते हैं। ये स्वभावत अकेले रहते हैं, पर वर्षाऋतु के आरभ मे पत्थरो के नीचे बडी सख्या में पाए जाते हैं। ये मक्खियो, तिलचट्टो और अन्य कीटों पर निर्वाह करनेवाले परभक्षी हैं और अपने शिकार के शरीर से सिर्फ तरल पदार्थ चूसते हैं। चूसने की क्रिया मे दो घटे से अधिक समय लग जाता है। इनमे स्वजातिभक्षण भी होता है। चलते समय ये अपने पश्चस्पर्शको को, जो स्पर्शक और परिग्राही (Prehensile) अग का कार्य करते हैं, क्षैतिज रखते हैं। शरीर, पैरो पर उठा होता है, दुम पीठ पर आगे की ओर मुडी होती है और डक पीठ पर नीचे की ओर झुका रहता है। विच्छुओ का स्पर्शज्ञान विकसित और दृष्टि अत्यल्प होती है।

ये सजीव प्रजक (viviparous) हैं। नवजात शिशु माता की पीठ पर रहते हैं। प्रजनन वर्षाऋतु के गरम दिनो में होता है। सगम के समय नर और मादा दुम उलझाकर कामदनृत्य (nuptial dance) करते हैं। नर अपने पश्चस्पर्शक से मादा का पश्चस्पर्शक पकडकर, आगे पीछे की ओर चलता है और मादा प्राय स्वेच्छा से उसका साथ देती है। वे घटों गोलाई मे घूमते रहते हैं। अत में नर मादा को पकडे हुए ही, एक उपयुक्त पत्थर के नीचे गड्ढा खोदता है और फिर दोनों उसमें चले जाते हैं। सगम के उपरात मादा नर को निगल जाती है।

वितरण — बूथस (Buthus) वश ध्रुवीय और आर्कटिक क्षेत्र, इथियोपियाई क्षेत्र, जावेरी, चीन, भारत तथा भूमध्यसागरीय देशो मे सर्वत्र पाया जाता है। यह भारत में मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत एव सपूर्ण पश्चिम भारत मे पाया जाता है। बर्मा, लका और पश्चिमी घाट के दक्षिण मे मलाबार तट मे नही पाया जाता, यद्यपि कोंकण में पाया जाता है। [रा० चं० स०]

बिजनौर १ जिला, स्थिति २९° २७′ उ० अ० तथा ७८° ११′ पू० दे०। यह भारत में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग मे स्थित है। इसका क्षेत्रफल १,८६६ वर्ग मील तथा जनसख्या ११,६०,९८७ (१९६१) है। इसके पश्चिम मे मुजफ्फरनगर तथा मेरठ, दक्षिण मे मुरादाबाद, उत्तर मे कोटद्वार तथा पूर्व में नैनीताल आदि जिले स्थित हैं। इसकी पश्चिमी सीमा गगा नदी बनाती है। भूमि समतल तथा उत्तर की ओर क्रमश १,३४२ फुट तक ऊँची होकर हिमालय में मिल जाती है। गगा, खोह एव रामगगा नदियाँ बहती हैं। गंगा की सहायक नदी मालिन के किनारे के दृश्य कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुतलम्' में मिलते हैं। यहाँ की जलवायु ठढी एव उत्तम है। उत्तम जलप्रवाह के कारण मलेरिया का प्रकोप नही होता। वार्षिक वर्षा का औसत ४४ इच है। मध्य का निम्न प्रदेश अति उपजाऊ है तथा पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा सिंचाई की भी सुविधा अधिक है। पश्चिम का उच्च प्रदेश रेतीला होने पर भी उपजाऊ है। कृषि मे चावल, गेहूँ, जौ, बाजरा, चना, गन्ना, कपास, तिलहन प्रमुख हैं। उद्योगों में चीनी बनाना तथा मोटा सूती कपडा बनाना प्रमुख है। बिजनौर मे जनेऊ तथा नगीना में रस्सी बनाने का काम होता है। व्यापार के मुख्य केंद्र शिवहारा, धामपुर, नगीना, नजीबाबाद एव बिजनौर आदि हैं। यातायात के साधनो का भी काफी विकास हुआ है।

२ नगर, स्थिति २९° २२′ उ० अ० तथा ७८° ८′ पू० दे०। पश्चिमी बिजनौर जिले मे, गगा नदी से लगभग तीन मील पूर्व की ओर, नगीना रेलवे स्टेशन से १९ मील दूर स्थित जिले का सबसे प्रमुख नगर है। यहाँ चीनी का व्यापार अधिक होता है। चाकू एव जनेऊ भी बनाए जाते हैं। यहाँ की जनसख्या ३३,२२१ (१९६१) है। [र० च० दु०]

बिस्मार्क द्वीपसमूह स्थिति ४° ०′ द० अ० तथा १५०° ०′ पू० दे०। दक्षिणी प्रशात महासागर मे, न्यूगिनी के उत्तर-पूर्व घोडे के खुर के आकार मे स्थित द्वीपो का समूह है। इसमें ऐडमिरैल्टी, मुसाऊ, न्यूआयरलैंड, न्यूब्रिटेन आदि द्वीप शामिल हैं। इनका क्षेत्रफल १९,६५० वर्ग मील है। यहाँ की राजधानी रबौल है। नारियल, आम, केला, काकाओ (cacao), काफी, चाय तथा रबर आदि प्रमुख फसलें हैं। अधिकाश द्वीप पहाडी हैं। जलवायु उष्ण एव आर्द्र है।

विट्ठलदास गौड़, राजा राजा गोपालदास गौड का दूसरा पुत्र। मुगल सम्राट् शाहजहाँ के प्रारभिक काल मे तीन हजारी १५०० सवार का मसबदार हुआ। जुझारसिंह के विद्रोह करने पर यह खानजहाँ लोदी के साथ उसके दमन को नियुक्त हुआ। किंतु जब खानजहाँ लोदी ने ही विद्रोह के चिह्न प्रकट किए, तो उसके दमन का भी कार्य इसे सौंपा गया। राजा गजसिंह के सहायक के रूप मे इसने खानजहाँ लोदी के दाँत खट्टे किए।

इसके बाद सम्राट् ने इसे क्रमश रणथंभोर का दुर्गाध्यक्ष और अजमेर मे फौजदार नियुक्त किया। परेंद दुर्ग के घेरे मे राजकुमार मुहम्मद शुजा के साथ रहा। जब दुर्ग विजित नही हो पाया, तो इसे पुन अजमेर मे रखा गया। दक्षिण मे शाह जी भोसला का विद्रोह दबाने के लिये सम्राट् ने इसे भी भेजा था। उसके पश्चात् यह आगरे का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ। इसका मसब पाँच हजारी सवार का कर दिया गया, और यह राजकुमार मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ पर आक्रमण करने को नियुक्त हुआ। बलख विजय के अनतर यह वहाँ से राजकुमार के साथ लौट आया। राजकुमार औरगजेब के साथ काधार के काजिलबाशो के विरुद्ध युद्ध मे इसने यश प्राप्त किया। जीवन के अतिम समय मे यह अपने प्रात लौट गया और वही १६५१ ई० मे इसकी मृत्यु हुई।

बिन्यन, रॉबर्ट लारेंस (१८६९-१९४३) अग्रेज कवि, चित्र तथा वास्तुकला विशेषज्ञ, जन्मस्थान लैंकेस्टर। सेंट पाल स्कूल तथा ट्रिनिटी कालेज मे शिक्षा। 'परसीफोन' नामक कविता पर न्यूडीगेट पुरस्कार (१८९०); १९२९–३० जापान का भ्रमण, १९३३-३४ मे अमरीका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय मे कविता पढाने के लिये चार्ल्स इलियट नॉर्टन प्रोफेसर, १९४० मे एथेंस विश्वविद्यालय मे अग्रेजी साहित्य के बायरन प्रोफेसर।

बिन्यन ने अग्रेजी चित्रकला तथा जापानी काष्ठकला की सूचना पूर्ण सूची प्रकाशित करके पूर्व और पश्चिम की कला का समन्वय किया। वे चित्रकला के विशेषज्ञ थे। 'पेंटिंग इन दि फार ईस्ट' १९०८ में प्रकाशित किया। कवि के रूप मे अनेक गीतकाव्य उनकी ख्याति मे सहायक हुए। उनकी कविताएँ 'फॉर दि फालेन' (१९१४) दि आइडाल्स (१९२८) अग्रेजी साहित्य मे विशेष प्रसिद्ध हुईं। वे पद्यनाटक को पुन रगमच पर लाने के समर्थक थे। इस प्रकार के कई नाटक लिखे जिनमे 'एटिला' (१९०७), 'आर्थर' (१९२३), 'दि यग किंग' (१९२४) आदि हैं। वे काव्य को वक्तृता का अग बनाना चाहते थे। वे युद्ध को सभ्यता का विनाशक मानते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध से वे इतने दुखी हुए कि एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए महाकवि दाँते की रचना का अनुवाद करना आरभ किया। उन्होने कविता में शब्दचयन और ध्वनि पर विशेष ध्यान रखा। वे भाषा को एकता, सौंदर्य और कला का साधन मानते थे। उन्होने भारत की भावना और विचार को पक्षपात रहित होकर पश्चिमी देशो मे पहुँचाया। वे भारत के सच्चे मित्र थे। वे अन्याय और अत्याचार के विरोधी थे, सत्य, सौंदर्य तथा पवित्रता के समर्थक। उनकी कविता वर्ड्सवर्थ तथा आर्नाल्ड से प्रभावित है। [गि० ना० श०]

बिन्ह डिन्ह (Binh Dinh) स्थिति १३° ५५' उ० अ० तथा १०९° ७' पू० दे०। दक्षिणी वियतनाम मे ह्यू से २१० मील दक्षिण-पूर्व, पूर्वी समुद्रतट से कुछ ही दूर स्थित एक नगर है। नगर के समीपस्थ भाग मे धान, सेमवर्गीय फलियाँ, बदगोभी, शकरकद, नारियल, सुपाडी तथा चाय पैदा की जाती है। रेशम का धधा नगर का प्रमुख उद्योग है। नगर की जनसख्या १,६०,००० (१९४९) है।

बिल विविध प्रकार के लेख्यो के लिये यह शब्द प्रयुक्त किया जाता है। यह अग्रेजी शब्द है, किंतु अब इसका प्रयोग भारतीय भाषाओं मे होने लगा है। न्याय, व्यापार और विधि से सबधित विषयो के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। न्याय मे अभियोग चलाने से पहले कानूनी सलाह देनेवाले सॉलिसिटर द्वारा मुवक्किल को दी हुई व्यय की सूची को बिल ऑव कास्ट कहते हैं। व्यापार मे विक्रय की हुई वस्तुओ की, मूल्यो सहित सूची को बिल कहते हैं। बिल का विधेयक के अर्थ मे प्रयोग ससद द्वारा पारित विधि के सबध मे भी किया जाता है। इग्लैंड की ससद ही ससदीय पद्धति की जन्मदात्री है। इग्लैंड के राजा हेनरी षष्ठ के काल से पहले राजनियम बनाने की प्रथा दूसरे प्रकार की थी। पार्लमेंट राजा के पास प्रार्थनापत्र भेजती थी कि राजा अमुक नियम बनाए। परतु धीरे धीरे राजनियम बनाने का अधिकार ब्रिटिश ससद् ने अपने हाथ मे लेना शुरू किया और ब्रिटिश ससद ही पूर्णतया विधि बनाने की अधिकारिणी हो गई। इस प्रथा का अनुसरण ससार की सभी विधायिनी सभाओ ने किया है। बिल या विधेयक एक प्रस्ताव होता है जिसे विधि का स्वरूप देना होता है। कुछ देशो मे, जैसे इग्लैंड या भारत मे, विधेयको की दो श्रेणियाँ होती हैं— सार्वजनिक तथा असार्वजनिक विधेयक। इनके अतिरिक्त यदि कोई विधेयक सरकार द्वारा प्रेषित होता है तो उसे सरकारी विधेयक कहते हैं। सरकारी विधेयक दो प्रकार के होते हैं सामान्य सार्वजनिक विधेयक तथा धन विधेयक। पर जब ससद का कोई साधारण सदस्य सार्वजनिक विधेयक प्रस्तुत करता है तब इसे प्राइवेट सदस्य का सार्वजनिक विधेयक कहते हैं। सार्वजनिक तथा असार्वजनिक विधेयको को पारित करने की प्रक्रिया मे अतर होता है। सयुक्तराष्ट्र अमेरिका में सार्वजनिक या असार्वजनिक विधेयक जैसे भेद नही हैं। साधारणतया ससद के दोनों सदनो मे समान कार्यविधि की व्यवस्था होती है। प्रत्येक विधेयक को कानून बनने से पहले प्रत्येक सदन मे अलग अलग पाच स्थितियो से गुजरना पडता है और उसके तीन वाचन (Reading) होते हैं। पाँचों स्थितियाँ इस प्रकार हैं पहला वाचन, दूसरा वाचन, प्रवर समिति की स्थिति, प्रतिवेदन काल (report stage) तथा तीसरा वाचन। जब दोनो सदनो में इन पाँचो स्थितियो से विधेयक गुजर कर बहुमत से प्रत्येक सदन में पारित हो जाता है तब विधेयक सर्वोच्च कार्यपालिका के हस्ताक्षर के लिये भेजा जाता है। सर्वोच्च कार्यपालिका की अनुमति के बिना कोई विधेयक कानून नही बन सकता। अत किसी भी विधेयक को विधि मे परिणत होने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि वह दोनो सभाओ द्वारा स्वीकृत हो। इसके उपरात सर्वोच्च कार्यपालिका की, हस्ताक्षर सहित, स्वीकृत भी अनिवार्य है। [शु० ते०]

बिलासपुर १. जिला, स्थिति २१° ३७' से २३° ७' उ० अ० तथा ८१° १२' से ८३° ४०' पू० दे०। भारत मे मध्य प्रदेश राज्य का जिला है जो उत्तर मे सरगुजा, पूर्व में रायगढ, दक्षिण मे रायपुर एव दुर्ग तथा पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में मडला एव शहडोल से घिरा है। इसका क्षेत्रफल ७,६१५ वर्ग मील तथा जनसख्या २०,२१,७९३ (१९६१) है। यहाँ पर एक २,०० फुट तक ऊँचा पठार है। २५ मील तक महानदी बहकर अन्य जिलो मे चली जाती

है। यहाँ की जलवायु उत्तम नही है। बिलासपुर नगर की औसत वर्षा ५० इंच है। मिट्टी का अधिकाश काली या कंकड युक्त मिट्टी से बना है। धान के अलावा गेहूँ, कोदो, तिलहन, दलहन, एवं गन्ने की कृषि होती है। खनिजो मे कुछ मात्रा मे लोहा, कोयला, सोना तथा अभ्रक मिलता है। सूती कपडा, धातु के बरतन, दियासलाई आदि बनाने का काम होता है।

२ नगर, स्थिति २२° ५' उ० अ० तथा ८२° १०' पू० दे०। मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले मे स्थित नगर है। इसके समीप ही अर्पा नदी बहती है। टसर रेशम तथा सूती कपडा बनाना यहाँ के प्रमुख उद्योग हैं। इसकी जनसंख्या ८६,७०७ (१९६१) है।

३ जिला, स्थिति ३१° १९' उ० अ० तथा ७६° ५०' पू० दे०। भारत के केंद्र शासित हिमाचल प्रदेश में जिला है। पहले यह एक देशी रियासत था। इसका क्षेत्रफल ४४८ वर्ग मील तथा जनसंख्या १,५८,८०६ (१९६१) है। इसी जिले मे बिलासपुर नाम का नगर भी है जिसकी जनसंख्या ७,४२४ (१९६१) है। [रा० रा० ख०]

बिलियर्ड (Billiard) घर के अंदर मेज पर तीन रंगीन गेंदो तथा छडी से खेला जानेवाला खेल है, जो दो खिलाडियो के मध्य खेला जाता है। मेज की लंबाई १२ फुट और चौडाई ६ फुट १½ इंच तथा ऊँचाई २ फुट ९.५ इंच से २ फुट १०.५ इंच तक होती है। मेज की सतह स्लेट की बनी होती है, जिसपर ऊनी कपडा कसकर चढा रहता है। सतह के किनारे चारों ओर कडी लकडी का चौखटा लगा रहता है, जिसमें भीतर की ओर रबर का ढालुआँ किनारा बनाया जाता है। इसकी मोटाई १.५ इंच से दो इंच तक होती है। इस प्रकार खेलने के क्षेत्र की लंबाई ११ फुट ८ इंच से ११ फुट ९ इंच तक तथा चौडाई ५ फुट ९.५ इंच से ५ फुट १०.५ इंच तक रह जाती है। मेज मे कुल छह थैलियाँ (pockets) रहती हैं। इनमे से चार, चार कोनों पर तथा दो लंबाई के मध्य मे दोनो ओर बनाई जाती हैं। इन थैलियो के मुँह का व्यास गेंद के व्यास के अनुरूप रहता है। इस खेल का डंडा क्यू (cue) कहलाता है। इसकी लंबाई ३ फुट से ४ फुट १० इंच तक एवं उसके नुकीले सिरे का व्यास ३/१० इंच से २/५ इंच तक होता हैं। इसकी नोक पर चमडे की टोपी एवं उसपर खडिया मिट्टी लगा दी जाती है। इसकी मुठिया के, जो हाथ से पकडी जाती है, सिरे का व्यास १ इंच से कुछ अधिक होता है। यह छडी ऐश (ash) नामक लकडी की बनी होती है।

इस खेल की गेंदो का व्यास २$\frac{1}{16}$ से २$\frac{3}{32}$ इंच तक होता है। ये आजकल क्रिस्टलेट (crystalate) की बनती हैं, जब कि पहले ये हाथीदाँत की बनाई जाती थी। गेंदों मे से एक लाल रंग की, दूसरी सफेद तथा तीसरी एक काले बिंदुवाली होती है, जिसे स्पॉटेड बॉल (spotted ball) कहते हैं। गेंदो का आकार बिलकुल गोल तथा उनका भार और माप बिलकुल बराबर होनी चाहिए। लाल गेंद दोनों खिलाडी खेलते हैं तथा अन्य दोनो गेंदों के लिये टॉस (toss) की व्यवस्था है।

क्रीडाक्षेत्र में अंकित होनेवाली रेखाओ मे सबसे पहले मेज के एक सिरे से २९ इंच की दूरी पर मेज की चौडाई की ओर एक रेखा खीची जाती है, जिसे बॉक लाइन (baulk line) कहते हैं। बाक लाइन के केंद्र से ११.५ इंच की दूरी पर भीतर की ओर एक अर्धवृत्त खीचा जाता है, जिसको डी (D) कहते हैं। मेज के दूसरे सिरे पर चौडाईवाली रेखा के मध्य से ठीक १२$\frac{3}{4}$ इंच की दूरी पर भीतर की ओर एक छोटा सा चिह्न (चित्र मे क) रहता है, जिसे बिलियर्ड स्पॉट (billiard spot) कहते हैं। क्षेत्र के केंद्र में एक अन्य बिंदु स रहता है, जिसे सेंटर स्पॉट (centre spot) कहते हैं, तथा साथ ही बिलियर्ड स्पॉट तथा सेंटर स्पॉट के ठीक मध्य में एक बिंदु (ख) रहता है, जिसे पिरामिड स्पाट (pyramid spot) कहते हैं। ये बिंदु या तो रेशम के छोटे टुकडो से, या खडिया मिट्टी से, चिह्नित किए जाते हैं।

खेल प्रारंभ करने के लिये 'टॉस' तथा स्ट्रिंग (to string) द्वारा प्रथम एवं द्वितीय खिलाडी का निर्धारण होता है। इस खेल में
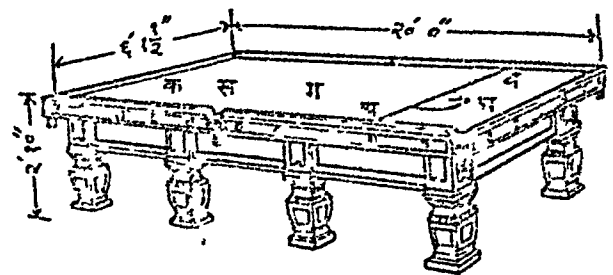
बिलियर्ड की मेज

क बिलियर्ड स्पॉट, ख पिरामिड स्पाट, ग सेंटर स्पॉट, घ डी तथा ङ बॉक लाइन।

हार जीत का निर्धारण अंको से या समय निश्चित करके किया जाता है।

किसी भी खिलाडी द्वारा अंक प्राप्त करने की मुख्यतया निम्नलिखित तीन विधियाँ हैं

(१) जब किसी भी खिलाडी द्वारा चोट (strike) की हुई गेंद विरोधी की गेंद एवं लाल गेंद से साथ ही टकरा लगा दे तब खिलाडी को दो अंक प्राप्त होता है तथा इस खेल को कैनन (cannon) कहते है।

(२) घाटे की चाल या लूजिंग हैज़र्ड्स (Losing Hazards)—छडी से मारी गई गेंद यदि किसी गेंद से टकराकर थैली में चली जाय, तो इसे घाटे की चाल कहते हैं। यदि वह गेंद विरोधी के सफेद गेंद को टक्कर मारकर थैली मे चली जाती है, तो दो अंक, तथा लाल गेंद को टक्कर मारकर थैली मे चला जाता है, तो तीन अंक, प्राप्त होते हैं।

(३) विजय की चाल या विनिंग हेजर्ड्स (Winning Hazards) — यदि खिलाडी अपनी चोट की हुई गेंद से, जिसे क्यू बाल भी कहते हैं, विरोधी की गेंद को, जिसे ऑब्जेक्ट बॉल (object ball) भी कहते है, थैली (pocket) मे डाल दे, तो खिलाडी को दो अंक, तथा यदि लाल गेंद को थैली मे प्रविष्ट करा दे, तो उसे तीन अंक, प्राप्त होते हैं।

लूजिंग हैज़र्ड तथा विनिंग हैज़र्ड नाम पडने का कारण केवल इतना है कि लूजिंग हैजर्ड मे अपनी गेंद थैली में चली जाती है,

जिससे अपनी पारी समाप्त हो जाती है, तथा विनिंग हैज़र्ड मे विरोधी की गेंद थैली मे जाती है, जिससे स्वय को चोट करने का पुन मौका मिलता है। इनके अलावा भी कुछ अन्य सभावनाएँ हैं, जो अचानक उठ खडी होती हैं, जैसे कैनन के साथ भी लूज़िंग हैज़र्ड्स या विनिंग हैज़र्ड्स का होना। ऐसी अवस्था मे यदि खिलाडी कैनन के साथ लूज़िंग हैज़र्ड्स या विनिंग हैज़र्ड्स बनाता है, तो उसे कैनन का दो अक तथा हैज़र्ड का भी दो अक प्राप्त होता है। कैनन के साथ हैज़र्ड्स बनाते समय यदि 'लाल गेंद' को चोट करें, तो उसका तीन अक होता है। ऐसे ही कभी कभी खिलाडी कैनन के साथ अपनी गेंद को लाल गेंद के पीछे चोट कराकर, पुन उसे अपनी वॉक रेखा के अदर लौटा लेता है, तो उसको छह अक मिल जाते हैं।

५०, या ५० से अधिक, अक प्राप्त करने पर रेफरी (referee) जब किसी खिलाडी को समय देता है, तो उसे ब्रेक (break) कहते हैं। यदि खिलाडी विरोधी की गेंद को थैली मे डाल देता है, तो खेल उस समय तक रुक जाता है जब तक विरोधी अपनी गेंद लेकर पुन न खेलना प्रारभ कर दे। लेकिन इसके ठीक विपरीत यदि खिलाडी लाल गेंद को थैली मे डाल दे, तो उसे पुन निकालकर खेल प्रारभ हो जाता है। गेंद पर चोट करनेवाला खिलाडी स्ट्राइकर (Striker) तथा दूसरा खिलाडी नॉनस्ट्राइकर (Non-striker) कहलाता है।

खिलाड़ी अपना अक न बनते देख झूठी चोट भी करते हैं। और अपनी गेंद को हलकी चोट लगाकर रेखा मे पुन लौटा लेते हैं। इससे यह लाभ होता है कि विरोधी का कोई लाभ नही हो पाता। इस खेल मे झूठी चोट के साथ ही सुरक्षात्मक चोट (defensive shot) भी की जाती है। उस चोट को भी, जिससे अपनी गेंद और लाल गेंद को एक ऐसे स्थान में कर दिया जाए कि विरोधी अक न बना सके, सुरक्षात्मक चोट कहते हैं।

जब खिलाडी जान बूझकर अपनी गेंद को थैली मे डाल देता है, जिससे विरोधी को कैनन इत्यादि बनाने का मौका न मिले, तो उसे रन-ए-कू (run a coup) कहते हैं। यह भी एक चाल है कि रन-ए-कू से विरोधी की 'रेड बाल' पर चोट करना पडेगा, जिसे वह कर नही सकता।

खेल का प्रारभ 'वॉक एरिया' से किया जाता है। खिलाडी को गेंद 'वॉक एरिया' से किसी भी तरफ मार करने की छूट है तथा बाहर मारना आवश्यक भी है। जैसे गोल होने पर फुटबाल या हाकी मे गेंद केंद्र मे लाया जाता है, वैसे ही बिलियर्ड खेल का आरभ वॉक एरिया से ही किया जाता है।

लाल गेंद यदि थैली मे चली जाती है, तो उसे पुन निकालकर बिलियर्ड स्पॉट पर रखते हैं, पर यदि वहाँ पर कोई गेंद है तो उसे पिरामिड स्पॉट पर रखा जाता है। यदि लाल गेंद को दो बार थैली मे डाल दिया जाय, तो उसे निकालकर सेंटर स्पॉट पर रखा जाता है। यदि सेंटर स्पॉट पर कोई गेंद हो, तो उसे 'पिरामिड स्पॉट' पर रखा जाता है। यदि गेंद उछलकर मेज से नीचे गिर जाय, तो उसे 'फाउल' (foul) समझा जाता है। जब गेंद नीचे गिर जाती है तो लाल गेंद को बिलियर्ड स्पॉट पर तथा सफेद गेंद को सेंटर स्पॉट पर रखा जाता है।

जितनी बार खिलाडी की गेंद, जिसे क्यू वॉल भी कहा जाता है, थैली मे प्रवेश करती है, उतनी बार दूसरा खिलाडी खेल घ या डी (D) से प्रारभ करता है। जब कोई खिलाडी अक नही बना पाता, तो अवसर दूसरे को दिया जाता है। झूठी चाल सभी खिलाडी चल सकते हैं, पर एक को लगातार दो झूठी चाल चलने की अनुमति नही है। हर एक झूठी चाल पर एक अक विरोधी के अक मे जोड दिया जाता है।

खेल मे होनेवाले नियमभग निम्नलिखित हैं ·

१. 'क्यू' से गेंद को ढकेलना नियमविरुद्ध (foul) है।

२ गेंद को उछालकर मेज से नीचे ले जाना नियमविरुद्ध है।

३ दोनो पैरो को फर्श से उछालकर खेलना गलत है।

४ जब तक खेली गई गेंदें स्थिर न हो जायँ, तब तक चोट करना नियमविरुद्ध है।

५. यदि गेंद क्यू टिप (cue tip) के अलावा क्यू के अन्य किसी भाग से छू जाय, या शरीर के किसी भाग से छू जाय, या कपडे इत्यादि से छू जाय, तो इन दशाओ मे खेल नियमविरुद्ध समझा जायगा।

६ यदि खिलाडी अपनी गेंद से वॉक रेखा के अदर ही चोट करे, तो यह नियमविरुद्ध है।

७ चोट करने के पहले खिलाडी द्वारा गेंद को क्यू की नोक से हिलाना डुलाना नियमविरुद्ध है।

८ अपनी गेंद से ही खेलना चाहिए। दूसरे खिलाडी की गेंद से खेलना नियमविरुद्ध है।

९ गेंद को चिह्नित (spotted), अर्थात् उचित स्थान पर, रखने का तात्पर्य है सफेद बाल को क्रीडाक्षेत्र के केंद्र मे रखना तथा लाल गेंद को बिलियर्ड स्पॉट पर रखना। इसके विपरीत किया गया कार्य नियमविरुद्ध माना जाता है।

१० गेंद को 'स्ट्राइक' (strike) करके कोई भी अक न प्राप्त करने से एक अक का पेनाल्टी (penalty) तथा रन ए कू (run a coup) करने से तीन अक का पेनाल्टी देना पडता है।

११ यदि 'लाइन वॉल' (line ball), अर्थात् गेंद, वॉक रेखा के अदर लाइन पर हो, तो खिलाडी उसे सीधा नही खेल सकता, क्योकि वह वॉक रेखा के अदर समझी जाती है। उसके लिये कोई परोक्ष कैनन या हैज़र्ड बनाना आवश्यक है।

१२ किसी भी खिलाडी को लगातार ३५ कैनन से अधिक नही बनाना चाहिए। परोक्ष कैनन या हैज़र्ड बनाना आवश्यक है।

१३ जब खिलाडी अपनी गेंद से विपक्षी की गेंद को छूता है और अक नही प्राप्त कर पाता, तो उसे स्पॉटेड (spotted) कर देना पडता है।

१४ जब रेफरी चाल गलत बता दे, तो दूसरे को वही से खेलना चाहिए, अथवा रेफरी से पूछकर स्पॉटेड करके खेले, यह खिलाडी की इच्छा की बात है।

१५ जब गेंद क्रीडाक्षेत्र मे पडी हो, तो 'क्यू वॉल' तथा आवजेक्ट वॉल, या रेड वॉल मे, १२ इच से १५ इच की दूरी होनी चाहिए।

१६ एक खिलाड़ी को २५ हैज़र्ड्स से अधिक बनाने का अधिकार

नहीं है। यदि उसकी आखिरी मार के साथ विपक्षी 'क्रू' खेलता है, तो उसे अधिकार है कि वह पुन हेज़र्ड बनावे।

सभी खेलो की भाँति इस खेल मे भी एक रेफरी या निर्णायक होता है। खेल के नियमो का पालन कराना, गेंद को थैली से निकालकर स्पॉटेड (spotted) करना, खिलाडी को विश्राम देना, उसकी गेद अत मे उसे देना, स्कोर (score) बोलना तथा खिलाडी की हर गलती को बतलाना निर्णायक का मुख्य कार्य है। रेफरी सहायता के लिये 'मार्कर' भी रख लेता है, जो 'स्कोर बोर्ड' देखता है। रेफरी अपने निर्णय मे दर्शको से भी सहायता ले सकता है। [भा० सि० गौ०]

बिल्फिंगेर, जार्ज बर्नहार्ड (१६९३-१७५०) जर्मन दार्शनिक, गणितज्ञ एव राजनयिक, जो वोल्फ से बडा प्रभावित था। हाल यूनिवर्सिटी मे अध्यापन के पश्चात् उसे ड्यूक चार्ल्स एलेक्ज़ेंडर ने प्रिवी काउंसिलर बनाया। ड्यूक की मृत्यु के बाद, रिजेंसी कौंसिल के सदस्य के रूप मे शिक्षा, धर्म, कृषि और वाणिज्य मे उसका प्रबध अत्यत सफल रहा, और सही अर्थों मे वह राज्य का प्रमुख बन गया। [श्री० स०]

बिल्ली मासभक्षी गण (order Carnivora) के फीलिडी कुल (family Felidae) का स्तनपायी जीव है। यह ससार के प्राय सभी भागो मे जगली और पालतू अवस्था मे पाई जाती है। यह एशिया मे बोर्नियो के आगे नही पाई जाती और ऑस्ट्रेलिया तथा मैडागैस्कर मे भी नही दिखाई पडती।

सब देशो की बिल्लियो का स्वभाव एक जैसा ही होता है और ये सब अपना मारा हुआ शिकार ही खाती हैं। छोटे मोटे जानवर,
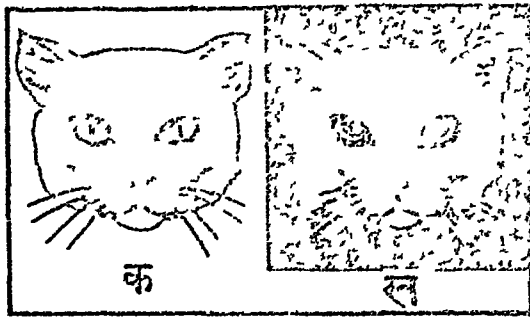
चित्र १ बिल्ली की आँखें
क दिन मे तथा, ख रात में।

चिडियाँ, चूहे, सरीसृप, मेढक, मछली और कीडे मकोडे इनके मुख्य भोजन हैं। पालतू बिल्लियाँ दूध, दही और पनीर भी बडे स्वाद से खाती हैं।

फीलिडी कुल बहुत विस्तृत कुल है। इसमें सिंह (lion), जैग्वार (jaguar), बाघ (tiger), तेंदुआ (leopard), स्याहगोश (caracal), तेंदुआ बिल्ली (leopard cat), प्यूमा (puma), चीता सिल्मार (marbled cat), शाह (snow leopard), लमचित्ता (clouded leopard), बाघदशा (fishing cat) आदि, बहुत से मासभक्षी जीव आते हैं। तेज पजे और नुकीले कुकुरदत इनकी विशेषताएँ हैं।

बिल्लियाँ सबसे पहले मिस्र देश मे, अन्नसग्रह को चूहो से बचाने के लिये, ईसा के ३,००० वर्ष पूर्व पालतू की गईं। मनुष्यो के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होने पर, मिस्र मे इन्हे एक देवता का स्वरूप
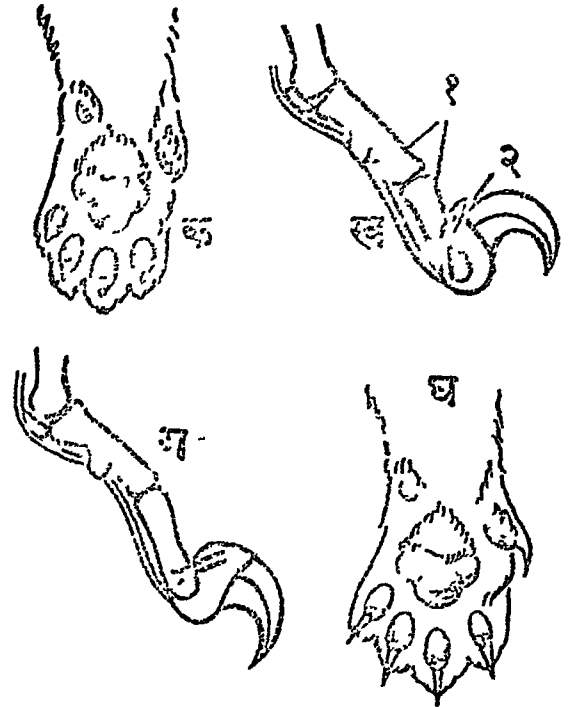
चित्र २. बिल्ली के पजो की क्रिया

क आच्छन्न नखो से युक्त अगला पजा, ख पजे के आच्छन्न होने पर नखो की स्थिति (१ हड्डियाँ तथा २ कडरा, अर्थात् tendon), ग पजे के फैलने पर नख की स्थिति तथा घ निकले हुए नखो से युक्त अगला पजा।

दे दिया गया। अफ्रीका की जगली बिल्ली (Felis lybica) को मिस्र मे पालतू बनाया गया। यह सिलेटी रग की बिल्ली थी और इसके शरीर पर काली धारियाँ और धब्बे थे। इसके बाल छोटे और दुम का सिरा काला रहता था।

मिस्र से ये पालतू बिल्लियाँ अन्य सभ्य देशो मे फैली, जहाँ इनसे और यूरोप की जगली बिल्लियो (Felis selvestris) के मेल से एक नई जाति निकली। इन बिल्लियो की दुम और शरीर पर के बाल लबे होने लगे। मिस्र देश की पालतू बिल्लियाँ व्यापारियो के द्वारा इटली पहुँचीं और वहाँ से ये सारे यूरोप मे फैल गईं।

पालतू बिल्लियो की इतनी अधिक जातियाँ नही होती जितनी हम कुत्तो मे पाते हैं और न कुत्तों की तरह इनकी गतियो मे भेद ही रहता है। इनको हम दो मुख्य भागो मे बाँट सकते हैं १ छोटे बालोवाली बिल्लियाँ तथा २ बडे बालोवाली बिल्लियाँ।

छोटे बालोवाली बिल्लियाँ यूरोप, एशिया और अफ्रीका मे फैली हुई हैं, लेकिन बडे बालोवाली बिल्लियाँ केवल ईरान, अफगानिस्तान तथा इनके पडोसी देशो मे ही पाई जाती हैं।

बडे बालोवाली बिल्लियाँ भी अगोरा (Angora) और ईरानी (Persian), इन दो जातियो मे विभक्त हैं। अगोरा बिल्लियो के बाल ईरानी बिल्लियो से बडे और मुलायम होते हैं और इनका मुँह भी गोल न होकर लबोतरा रहता है। ईरानी बिल्लियो का मुँह गोल रहता है और इनकी दुम का सिरा झबरा रहता है। यूरोप और अमरीका में ईरानी बिल्लियाँ अँगोरा बिल्लियो से अधिक सख्या मे दिखाई पडती हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये बिल्लियाँ मध्य एशिया के फीलीस मैनुल (Felis manul) वश की जंगली बिल्ली से पालतू की गई हैं।

मैंक्स (Manx), या बिना दुम की बिल्लियाँ, मलाया और फिलिपीन्स आदि पूर्वी देशो मे उसी तरह फैली हुई हैं जिस प्रकार यूरोप मे ईरानी बिल्लियाँ। इनके दुम के स्थान पर बालो का गुच्छा सा रहता है, लेकिन उसमें हड्डी नही रहती। हमारे देश की पालतू बिल्लियाँ बहुत कुछ अफ्रीका की जगली बिल्लियो जैसी होती हैं और इनके सिलेटी बदन पर काली धारियाँ और धब्बे पडे रहते है। ये शायद यहाँ की जगली बिल्ली (Felis constantina ornata) से पालतू की गई हैं।

ऐबिसिनिया की बिल्लियों का रग खैरा और दुम का सिरा काला होता है, लेकिन इनके शरीर पर न तो काली धारियाँ ही रहती हैं और न धब्बे ही। इनके बाल छोटे और कान बडे होते हैं।

स्याम देश की बिल्लियाँ भी यूरोप और अमरीका में काफी सख्या मे फैली हुई हैं। इनका रग हलका भूरा या सदली रहता है। चेहरा, कान, दुम और पंजे कलछौंह, या गाढे कत्थई रहते हैं। आँखें पीली या नीली, सर बडा और लबोतरा और शरीर के बाल छोटे होते है।

अपने छोटे बालो के कारण स्याम देश की बिल्लियाँ ज्यादा पसद की जाती हैं, क्योकि बडे बालोवाली अगोरा और ईरानी बिल्लियो के मुकाबले इनका पालना आसान होता है। [सु० सिं०]

बिल्वमंगल, ठाकुर 'लीलाशुक' नामातर से प्रसिद्ध कृष्णकर्णामृत, कृष्णबालचरित, कृष्णाह्निक कौमुदी, गोविंदस्तोत्र, बालकृष्ण क्रीडा काव्य, बिल्वमगल स्तोत्र, गोविंद दामोदरस्तव आदि सस्कृत स्तोत्र एव काव्यग्रथो के प्रणेता, दाक्षिणात्य ब्राह्मण तथा कृष्णभक्त कवि थे।

प्रवाद है कि बाल्यावस्था मे धनी पिता की मृत्यु के बाद ये युवाकाल मे विपुल सपत्ति के उत्तराधिकारी होने के कारण उच्छृखल तथा अनुशासनहीन हो गए और चितामणि नामक वेश्या से प्रेम करने लगे। ये उसमे इतने आसक्त थे कि वर्षाकाल मे घनी वृष्टि और भयकर बाढ की परवाह न कर लकडी के भ्रम मे अधजले मुर्दे के सहारे, इन्होंने कृष्णवेण्वा नदी को पार किया और द्वार बद पा भवन के पीछे लटकते साँप की पूंछ को रस्सी समझ और उसके सहारे चढकर वेश्या का साक्षात्कार किया। सब कुछ जानने के बाद उसने इन्हे बहुत धिक्कारा जिससे इनके मन मे कृष्ण के प्रति सख्य भाव के साथ विवेकपूर्ण वैराग्य उत्पन्न हुआ। यहाँ से लौटकर इन्होने सोमगिरि से कृष्णमत्र की दीक्षा ली और कृष्णप्रेम मे उन्मत्त रहते हुए भगवद्दर्शन की इच्छा से वृंदावन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे एक वणिक् सुदरी को देख कामासक्त हुए और द्वार पर पहुँच इन्होने उसके पति से उस स्त्री को आँख भर देखने की इच्छा प्रकट की। वणिक ने साधु की इच्छा पूरी की। तत्पश्चात् ग्लानिवश उस स्त्री से सुई लेकर इन्होने अपनी आँखें फोड ली और कृष्णप्रेम के गीत गाते हुए वृदावन की राह ली। ये दोनो कथाएँ गोस्वामी तुलसीदास तथा सूरदास के सबध मे प्रचलित किंवदतियो से मिलती जुलती हैं। भक्तमाल के अनुसार कृष्ण ने इन्हे नेत्रदान देकर युगलरूप में दर्शन दिया था। कहते हैं, वे इन्हे गोपवेश मे भोजन कराते थे।

[श्या० ति०]

बिवा (Biwa) स्थिति ३५° १५' उ० अ० तथा १३६° ४५' पू० दे०। दक्षिण हॉन्शू (जापान) मे क्योटो से सात मील उत्तर-पूर्व स्थित एक झील है जो ४० मील लबी और सात मील चौडी है। इसका क्षेत्रफल १८० वर्ग मील है। यह जापान की सबसे बडी तथा सुदर झील है। इस झील से एक नहर क्योटो तक निकाली गई है जहाँ पर जलविद्युत् उत्पन्न की जाती है। बिवा झील से सात मील की दूरी पर क्योटो नगर है, जो १८६८ ई० तक जापान की राजधानी भी रहा है। झील के आसपास की भूमि ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रही है। यहाँ की प्राकृतिक बनावट अति सुदर है, अत: यह एक विश्रामस्थल भी है। [शीकृ० च० स०]

बिशप ईसाई धर्म के प्रारभ से विभिन्न स्थानीय समुदायो का शासन एक ही अध्यक्ष के हाथ मे था, द्वितीय शताब्दी के प्रारभिक दशको से उसी पदाधिकारी के लिये 'बिशप' शब्द का प्रयोग होने लगा। रोमन काथलिक धर्म, प्राच्य चर्च तथा ऐंग्लिकन समुदाय मे बिशप ईसा के पट्टशिष्यो (एपोसल्स) के उत्तराधिकारी माने जाते हैं, वे पौरोहित्य सस्कार की परिपूर्णता प्राप्त कर चुके होते हैं और दूसरो को भी पुरोहित बना सकते हैं (दे० पुरोहित)। कई लूथरन तथा प्रोटेस्टैंट सप्रदायो मे भी बिशप की उपाधि प्रचलित है किंतु वहाँ बिशप तथा साधारण पुरोहित, सभी समान रूप से सुसमाचार के सेवक माने जाते हैं, बिशप की प्रतिष्ठा केवल इसमे है कि वह चर्च का प्रशासन करते हैं। रोमन काथलिक चर्च मे माना जाता है कि ईसा ने अपने शिष्यो मे से बारह पट्टशिष्यो को चुनकर तथा उन्हे विशेषाधिकार प्रदान कर बिशप का पद ठहराया है, अत अपने अभिषेक द्वारा बिशप को भी वे ही अधिकार प्राप्त हो जाते हैं और वह ईसा के इच्छानुसार विश्व भर के बिशपो तथा पोप से सयुक्त रहकर पोप के नाम पर नही अपितु ईसा द्वारा प्रदत्त अधिकार के बल पर अपनी प्रजा का आध्यात्मिक सचालन करते हैं (दे० पोप)। [का० बु०]

बिसमथ (Bismuth) विस्मय आवर्त सारणी के पचम मुख्य समूह का तत्व है। इसका केवल एक स्थिर समस्थानिक (isotope) प्राप्त है, जिसकी द्रव्यमान सख्या २०९ है, यद्यपि यूरेनियम और थोरियम अयस्को मे इसके रेडियोऐक्टिव (radioactive) समस्थानिक मिलते हैं। इनके नाम क्रमश रेडियम ई (Ra E, द्रव्यमान सख्या २१०), ऐक्टीनियम–सी (Ac C, द्रव्यमान सख्या २११), थोरियम–सी (Th C, द्रव्यमान सख्या २१२) तथा रेडियम–सी (Ra C, द्रव्यमान सख्या २१४) है। इनके अतिरिक्त

प्रयोगों द्वारा इनके कृत्रिम पाँच अल्पजीवी समस्थानिक भी बनाए गए हैं, जिनकी द्रव्यमान संख्याएँ १९९, २००, २०४, २०६ और २१० हैं।

बिस्मथ तत्व की पहचान सोलहवीं शताब्दी में पेरासेल्सस तथा अग्रिकोला ने की थी। सन् १७३९ में पोट नामक वैज्ञानिक ने इसके गुणों का अध्ययन किया। इसकी क्रियाओं का क्रमबद्ध रूप में सर्वप्रथम अध्ययन १७८० ई० में बर्गमैन ने किया था। बिस्मथ का नाम जर्मन शब्द वाइज़मुथ (Weissmuth) पर आधारित है, जिसका अर्थ श्वेत पदार्थ है।

उपस्थिति एवं उत्पादन — पृथ्वी की सतह पर बिस्मथ की अनुमानित मात्रा लगभग १० प्रति शत है। कभी कभी यह मुक्त अवस्था में भी मिलता है। बिस्मथ के मुख्य अयस्क बिस्मथिनाइट बि₂ग₃ (Bi_2S_3), बिस्मथाइट, (बिओ)₂ कार्बो.हा₂ओ [$(BiO)_2CO_3 \cdot H_2O$] और बिस्माइट, बि₂ओ₃.३हा₂ओ ($Bi_2O_3 \cdot 3H_2O$) हैं। दक्षिण अमरीका के बोलीविया और पेरू में इसके अयस्क पाए जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया, कैनाडा, रूस और मध्य यूरोप में भी इसके अयस्क प्राप्य हैं।

बिस्मथ प्राप्त करने की अनेक विधियाँ ज्ञात हैं। प्राकृतिक बिस्मथ को झुकी हुई पात्रों में गरम करने पर उसका द्रवीकरण हो जाता है। द्रव बिस्मथ बह जाता है और अशुद्धियाँ पात्र में पिछली रहती हैं। ऑक्साइड अथवा सल्फाइड अयस्क में कोबल्ट, निकेल, ताम्र, लोह, रजत, सीस, वंग, सेलीनियम आदि अशुद्धियाँ वर्तमान रहती हैं। अयस्क को भून (roast) कर अपचायक पदार्थ, जैसे लकड़ी का कोयला अथवा लोह, के साथ गरम करते हैं। इस क्रिया में गालक (flux) पदार्थ भी मिलाए जाते हैं, जैसे चूना, सोडा, सोडियम सल्फेट, फ्लोरस्पार आदि। बिस्मथ द्रव अवस्था में मुक्त होकर नीचे बैठ जाता है। इसे शुद्ध करने के लिये नाइट्रिक अम्ल द्वारा प्रक्रिया की जाती है। प्राप्त बिस्मथ नाइट्रेट के जल अपघटन द्वारा बिस्मथ ऑक्सिनाइट्रेट का अवक्षेप प्राप्त होता है। अवक्षेप निस्तापन (calcination) से विशुद्ध बिस्मथ ऑक्साइड प्राप्त होता है। इसका कार्बन द्वारा अपचयन करके विशुद्ध धातु मिलती है। सीसे के विद्युत् अपघटन क्रिया द्वारा विशुद्धीकरण करने पर बची धनाग्र अवपंक (anode slime) से भी बिस्मथ प्राप्त होता है।

गुण — बिस्मथ हलका लाल रंग लिए, भुरभुरे गुणवाली धातु है। इसमें धात्विक चमक होती है, जिसपर वायु में ऑक्साइड की हलकी परत जम जाती है। इसके कुछ गुण निम्नांकित हैं : संकेत बि (Bi), परमाणु संख्या ८३, परमाणु भार २०८.९८, गलनांक २७१.३० सें०, क्वथनांक १,४२० सें०, घनत्व ९.८ ग्राम प्रति घ० सेंमी०, परमाणु व्यास ३.६४ ऐंग्स्ट्रॉम (A°) तथा विद्युत्प्रतिरोधकता १०६.८ माइक्रोओह्म् सेंमी०।

बिस्मथ वायु में गरम करने पर जलकर बिस्मथ ऑक्साइड, बि₂ओ₃, (Bi_2O_3), बनाएगा। यह हैलोजन तत्वों से क्रिया कर यौगिक बनाता है। खनिज अम्लों में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल इसपर शिथिलता से क्रिया करता है। गरम सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया द्वारा बिस्मथ सल्फेट बनेगा और सल्फर डाइऑक्साइड, गओ₂ (SO_2), मुक्त होगा। नाइट्रिक अम्ल की क्रिया द्वारा बिस्मथ नाइट्रेट, बि (ना ओ₃)₃[$Bi(NO_3)_3$] बनाता है। क्षारीय अथवा अम्लीय [illegible] के [illegible] पर बिस्मथ का [illegible] हो जाता है। [illegible] कोई प्रभाव नहीं होता। [illegible] धातुओं (जैसे सोडियम, पोटैसियम, मैग्नीशियम, कैल्सियम आदि) से बिस्मथ [illegible] बनाता है। इन यौगिकों [illegible]।

बिस्मथ अधिकांश [illegible] यौगिकों में त्रिसंयोजक [illegible] है। पंचसंयोजी यौगिकों में इसके [illegible] गुण [illegible] हैं।

यौगिक — हाइड्रोजन के साथ बिस्मथ बिस्मथहाइड्राइड, बिहा₃ (BiH_3) यौगिक बनाता है। इसके [illegible] अस्थिर गैस है, जिसका १६०° सें० पर शीघ्र विघटन होकर बिस्मथ का दर्पण बन जाता है।

[illegible] बिस्मथ [illegible] आयन, [बि(ओ हा)₂]⁺ [$Bi(OH)_2$]⁺ [illegible] रहते हैं। [illegible] बिस्मथ [illegible] विलयन में [illegible] है।

ऑक्साइड — बिस्मथ के चार ऑक्साइड ज्ञात हैं : [illegible] ऑक्साइड, बिओ (BiO), [illegible], बि₂ओ₃ (Bi_2O_3), टेट्राऑक्साइड, बि₂ओ₄ (Bi_2O_4) और [illegible], बि₂ओ₅ (Bi_2O_5), ज्ञात हैं। बिस्मथ [illegible] गरम करने पर बिओ (BiO) प्राप्त होता है। [illegible] बिस्मथ [illegible] द्वारा [illegible] में [illegible] बिस्मथ पेंटॉक्साइड बनाता है। बिस्मथ पेंटॉक्साइड पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया [illegible] रंग का बिस्मथ हेक्साआक्साइड होगा। यह [illegible] क्षारीय विलयन में [illegible] है। [illegible] गुण प्रदर्शित करता है।

हैलाइड — बिस्मथ के हैलाइड यौगिकों [illegible] हैं। [illegible] या ब्रोमीन में [illegible] मात्रा में [illegible] डाइक्लोराइड, बिक्लो₂ ($BiCl_2$) या डाइब्रोमाइड, बिब्रो₂ ($BiBr_2$), बनेंगे। बिस्मथ डाइआयोडाइड, बिआ₂ (BiI_2) भी ज्ञात है। त्रिसंयोजक अवस्था में फ्लोराइड, बिफ्लो₃ (BiF_3), क्लोराइड बिक्लो₃ ($BiCl_3$), ब्रोमाइड बिब्रो₃ ($BiBr_3$) और आयोडाइड बिआ₃ (BiI_3) भी ज्ञात हैं। बिस्मथ की क्लोरीन, ब्रोमीन तथा आयोडीन से प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा निर्मित होते हैं। ये जल द्वारा शीघ्र जल अपघटित हो ऑक्सी यौगिक, जैसे बिओक्लो (BiOCl) बनाते हैं। पंचसंयोजित अवस्था में पेंटाफ्लोराइड, बिफ्लो₅ (BiF_5), तथा ऑक्सीफ्लोराइड ($BiOF_3$) बनाए गए हैं।

सल्फाइड — बिस्मथ ट्राइसल्फाइड, बि₂ग₃ (Bi_2S_3), अनेक अपररूपीय रूपांतरण (allotropic modifications) में मिलता है। सामान्यतः यह भूरे या काले रूप में बनता है। बिस्मथ और गंधक के सम्मिश्रण को उच्च दाब पर गरम करने से यह तैयार किया जा सकता है। बिस्मथ के त्रिसंयोजी विलयन में हाइड्रोजन सल्फाइड की क्रिया से भी यह बनेगा।

बिस्मथेट — मेटाबिस्मथिक अम्ल, हाबिओ₃ ($HBiO_3$), के लवण बिस्मथेट कहलाते हैं। सोडियम बिस्मथेट वैश्लेषिक रसायन में ऑक्सीकारक के रूप में प्रयुक्त होता है। पोटैसियम बिस्मथेट, पोबिओ₃ ($KBiO_3$), लाल रंग का पदार्थ है, जो कॉस्टिक पोटाश में बिस्मथ

ट्राइग्रॉक्साइड के निलब (suspension) में क्लोरीन प्रवाहित करने पर, अवक्षेपित हो जाता है। बिस्मथेट यौगिक विशुद्ध अवस्था मे नहीं मिलते।

बिस्मथ के कार्बनिक यौगिक — बिस्मथ के भी कार्बनिक यौगिक मिलते हैं। ग्रिगनार्ड यौगिको की बिस्मथ क्लोराइड पर क्रिया द्वारा वि मू$_3$ (Bi R$_3$) समूह के यौगिक बनते हैं (R कार्बनिक मूलक)। सामान्यत ये तरल पदार्थ होते हैं, जिनका वायु मे विस्फोट द्वारा ऑक्सीकरण हो जाता है। पचसयोजी रूप मे मू$_3$वि य$_2$ (R$_3$ Bi X$_2$) प्रकार के भी यौगिक बनाए जा सकते हैं, जिनमे य (X) विद्युऋणात्मक (electronegative) परमाणु या समूह रहता है।

उपयोग — बिस्मथ का उपयोग मुख्यत मिश्रधातु (alloys) बनाने मे होता है। इसकी अनेक मिश्रधातुओ का गलनाक नीचे ताप पर होता है और वे सरलता से ढाले जा सकते हैं। इसका उपयोग सुरक्षा डाट (safety plug), गैस वेलन, सोल्डर, समपात अवगाह (constant temperature bath) आदि बनाने मे होता है। उच्च ताप मापने के थर्मोपाइल मे बिस्मथ मिश्रधातु के कतिपय उपयोग हुए हैं।

इसके अतिरिक्त बिस्मथ यौगिक ओषधि के रूप मे प्रयुक्त होते हैं। बिस्मथ ट्राइऑक्साइड काच तथा चीनी मिट्टी के उद्योग मे काम आता है। बिस्मथ को रेडियोऐक्टिव प्रयोगो मे भी काम मे लाते है।

दैहिकीय प्रभाव — बिस्मथ के हाइड्रॉक्साइड, कार्बोनेट, क्लोराइड आदि चर्मरोगो की चिकित्सा मे काम आते है। इनमें कुछ कृमिनाशक (antiseptic) गुण वर्तमान हैं। इसी कारण ये कुछ आतरिक रोगो, जैसे पेचिश, गैस्ट्रिक अलसर आदि, मे लाभदायक होते हैं। एक्स विकिरण द्वारा आँत के चित्र लेने मे बिस्मथ यौगिकों का उपयोग होता है। सिफलिस के उपचार मे बिस्मथ धातु, या बिस्मथ सैलिसिलेट, के इजेक्शन से लाभ पहुँचता है।

बिस्मथ लवण आँतो द्वारा बहुत कम मात्रा मे अवशोषित होते हैं। इस कारण इनका शरीर पर नही के बराबर हानिकारक प्रभाव पडता हैं। बिस्मथ यौगिको के विषकारी प्रभाव उनमे उपस्थित आर्सेनिक या टेलूरियम की अशुद्धि के कारण होते हैं, परतु चोट आदि के घावो पर बिस्मथ यौगिको का विषकारी प्रभाव हो सकता है। बिस्मथ यौगिको के इजेक्शन भी हानिकारक सिद्ध होते हैं। इनके फलस्वरूप मसूडो, जीभ और गले मे घाव, या मुख पर काले चिह्न आदि उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे चिह्नो के उत्पन्न होने पर बिस्मथ यौगिको का उपयोग बद कर देना चाहिए। [र० च० क०]

बिस्मार्क ओटो एडुअर्ड लिओपोल्ड (१८१५–९८), जर्मन राजनेता, जन्म शून हौसेन में १ अप्रैल, १८१५ को। गार्टिजेन तथा बर्लिन मे कानून का अध्ययन किया। बाद में कुछ समय के लिये नागरिक तथा सैनिक सेवा मे नियुक्त हुआ। १८४७ ई० मे वह प्रशा की विधान सभा का सदस्य बना। १८४८–४९ की क्राति के समय उसने राजा के 'दिव्य अधिकार' का जोरो से समर्थन किया। सन् १८५१ मे वह फ्रैंकफर्ट की सघीय सभा मे प्रशा का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। वहाँ उसने जर्मनी मे आस्ट्रिया के आधिपत्य का कडा विरोध किया और प्रशा को समान अधिकार देने पर बल दिया। आठ वर्ष फ्रैंकफर्ट मे रहने के बाद १८५९ मे वह रूस में राजदूत नियुक्त हुआ। १८६२ मे वह पैरिस मे राजदूत बनाया गया और उसी वर्ष सेना के विस्तार के प्रश्न पर ससदीय सकट उपस्थित होने पर वह परराष्ट्रमत्री तथा प्रधान मत्री के पद पर नियुक्त किया गया। सेना के पुनर्गठन की स्वीकृति प्राप्त करने तथा बजट पास कराने मे जब उसे सफलता नही मिली तो उसने पार्लमेंट से बिना पूछे ही कार्य करना प्रारभ किया और जनता से वह टैक्स भी वसूल करता रहा। यह 'सघर्ष' अभी चल ही रहा था कि श्लेजविग होल्सटीन के प्रभुत्व का प्रश्न पुन उठ खडा हुआ। जर्मन राष्ट्रीयता की भावना से लाभ उठाकर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के सहयोग से डेनमार्क पर हमला कर दिया और दोनो ने मिलकर इस क्षेत्र को अपने राज्य मे मिला लिया (१८६४)।

दो वर्ष बाद बिस्मार्क ने आस्ट्रिया से भी सघर्ष छेड दिया। युद्ध मे आस्ट्रिया की पराजय हुई और उसे जर्मनी से हट जाना पडा। अब बिस्मार्क के नेतृत्व मे जर्मनी के सभी उत्तरस्थ राज्यो को मिलाकर उत्तरी जर्मन सघराज्य की स्थापना हुई। जर्मनी की इस शक्तिवृद्धि से फ्रास आतकित हो उठा। स्पेन की गद्दी के उत्तराधिकार के प्रश्न पर फ्रास जर्मनी मे तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई और अत मे १८७० मे दोनो के बीच युद्ध ठन गया (दे० फ्रासीसी-जर्मन युद्ध)। फ्रास की हार हुई और उसे अलससलोरेन का प्रात तथा भारी हर्जाना देकर जर्मनी से सधि करनी पडी। १८७१ मे नए जर्मन राज्य की घोषणा कर दी गई। इस नवस्थापित राज्य को सुसगठित और प्रबल बनाना ही अब बिस्मार्क का प्रधान लक्ष्य बन गया। इसी दृष्टि से उसने आस्ट्रिया और इटली से मिलकर एक त्रिराष्ट्र सधि की। पोप की 'अमोघ' सत्ता का खतरा कम करने के लिये उसने कैथलिको के शक्तिरोध के लिये कई कानून बनाए और समाजवादी आदोलन के दमन का भी प्रयत्न किया। इसमे उसे अधिक सफलता नही मिली। साम्राज्य मे तनाव और असतोष की स्थिति उत्पन्न हो गई। अततोगत्वा सन् १८९० मे नए जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय से मतभेद उत्पन्न हो जाने के कारण उसने पदत्याग कर दिया।

बिहार यह भारत सघ के अतर्गत एक राज्य है। ब्रिटिश काल मे बगाल प्रात का यह एक भाग था। १९११ ई० में दिल्ली दरबार की एक घोषणा से यह बगाल प्रात से अलग होकर उडीसा के साथ मिलकर बिहार और उडीसा नामक अलग प्रात बना। १९३५ ई० मे बिहार उडीसा से अलग होकर एक नया प्रात बना। यह उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण-पूर्व मे उडीसा तक तथा पूर्व में पश्चिमी बगाल से लेकर पश्चिम मे उत्तर प्रदेश तक फैला हुआ है। छोटा नागपुर भी इसी के अतर्गत है। बिहार राज्य का क्षेत्रफल ६७,१९८ वर्ग मील तथा जनसख्या ४,६४,५७,०४२ (१९६१) है।

बौद्ध मठो को एक समय बिहार कहते थे। इन्ही बिहारों की उपस्थिति एव अधिकता के कारण एक स्थान का नाम बिहार पडा, जो बिहार की राजधानी पटना से ६४ किमी० पूर्व मे स्थित है और आज भी उसको बिहार शरीफ कहते हैं, जो पटना जिले का एक उपमडल भी है। सभवत आठवीं शती में नगर का नाम

बिहार पड़ा था। पाल शासकों के राज्यकाल में बिहार शरीफ उनकी राजधानी था। मुस्लिम शासनकाल में १६वीं शती तक यह राजधानी रहा, फिर राजधानी बिहार शरीफ से हटकर पटना चली गई। बिहार राज्य में आज १७ जिले हैं, जिनमें पटना, भागलपुर, गया, जमशेदपुर और रांची प्रमुख हैं। गंगा नदी द्वारा बिहार राज्य दो
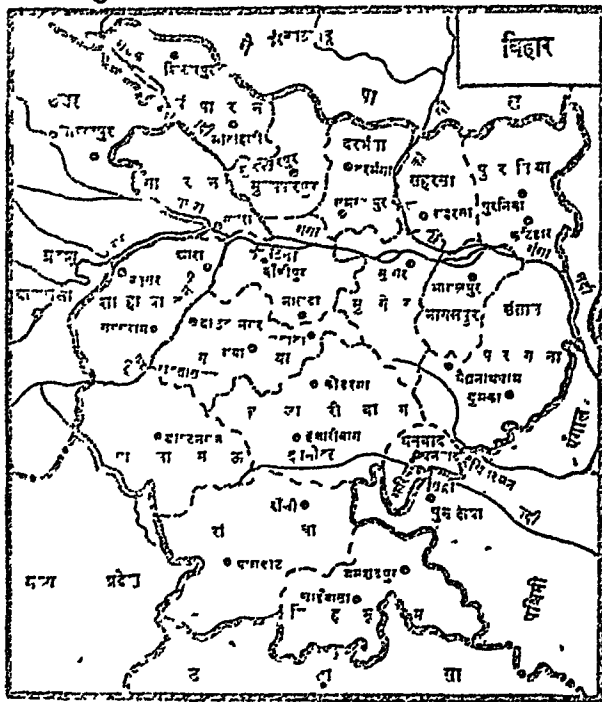
भागों में बँटा हुआ है। गंगा नदी के उत्तरी भाग को उत्तरी बिहार और गंगा नदी के दक्षिणी भाग को दक्षिणी बिहार कहते हैं। उत्तरी बिहार की भूमि सपाट और बड़ी उपजाऊ है तथा यह भाग अधिक घना बसा हुआ है। दक्षिणी बिहार का अधिकांश भाग पहाड़ी है पर यह बहुमूल्य खनिजों से भरा है। छोटा नागपुर इसी भाग में है।

अधिवासी — बिहार के अधिवासी आर्य, पीत और कुछ हब्शी प्रकार के हैं। यहाँ के उच्च हिंदू और उच्च मुसलमान आर्य जाति के हैं। चपारन जिले के मगर और थारू, मुजफ्फरपुर के नेवार, पुरनिया जिले के कोच, पालिम और गंगाइयों में पीत रुधिर का होना स्पष्ट रूप से मालूम पड़ता है। राँची और संताल परगने के जिलों के आदिवासियों में हब्शियों के कुछ विशिष्ट लक्षण पाए जाते हैं। यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि ये आस्ट्रेलिया के आदिवासियों से अधिक मिलते जुलते हैं। बिहार के आदिवासियों में संताल, ओरांव, मुंडा, हो, खोंड, खरिया, भूइयाँ और पहाड़ियाँ महत्व के हैं।

भाषा—बिहार की भाषा हिंदी, बंगाली एवं उर्दू है। शुद्ध हिंदी यद्यपि कहीं बोली नहीं जाती, केवल पुस्तकों में ही पढ़ी जाती है। यहाँ की प्रमुख बोलियाँ भोजपुरी, मैथिली और मगही हैं। मैथिली, मिथिला में बोली जाती है। भोजपुरी बिहार के पश्चिमी भाग में और मगही बिहार के दक्षिणी भाग में बोली जाती है। इनमें मैथिली सबसे अधिक समृद्धिशाली है और विद्यापति के पदों ने मैथिली को बहुत ऊँचा स्थान प्रदान किया है। छोटा नागपुर के कुरमी लोग कूर्माली बोली बोलते हैं। डा० विश्वनाथप्रसाद ने सिद्ध किया है कि कूर्माली हिंदी का ही रूपांतर है। यद्यपि कुछ बंगालवाले इसे बंगाली का ही एक रूपांतर मानते हैं। बिहार के आदिवासी स्थानीय बोलियों के साथ साथ अपनी बोलियाँ भी बोलते हैं। विभिन्न आदिवासियों की बोली भिन्न भिन्न है। इनकी बोलियों को संताली, मुंदारी, मलहरा, गोंडी आदि नामों से पुकारते हैं।

जलवायु — बिहार के कुछ भागों में बहुत अधिक गरमी पड़ती है तथा कुछ भाग ठंढे रहते हैं। बिहार में गया का ताप सबसे ऊँचा रहता है जो कभी कभी ४८° सें० तक पहुँच जाता है पर साधारणतया ग्रीष्मकाल में ताप ४०° सें० के लगभग रहता है। निम्नतम ताप शीतकाल में चार या पाँच डिग्री सें० तक पहुँच जाता है। छोटा नागपुर के कुछ स्थानों का ताप सामान्यतया ३८° सें० से ऊपर नहीं जाता। औसत वर्षा ५० इंच होती है। छोटा नागपुर की औसत वर्षा ५३ इंच के लगभग है।

पेड़ पौधे—बिहार में उष्ण देशों के सभी पेड़ उगते हुए पाए गए हैं। यहाँ आम, महुआ, जामुन, बेल, नीम, पीपल, बेर, बड़, पाकर, बबूल, साल तथा शीशम के पेड़ प्रचुरता से उगते हैं। कृषि में ईख धान, गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर, मूँग, मक्का, सावाँ, कोदो, मड़ुआ, खेसारी, चीना, उड़द, कुटकी, तिल, कुसुम, सरसों, राई तथा तीसी आदि का प्रमुख स्थान है।

खनिज—बिहार खनिजों के भंडार से भरा पड़ा है। कोयले के अतिरिक्त लौह खनिज, ऐलम, ऐपेटाइट, ऐंटीमनी, आर्सेनिक, ऐस्बेस्टस, बेराइटीज, बौक्साइट, क्रोमाइट, चीनी मिट्टी, अग्निसह मिट्टी, चूना पत्थर, बालूपत्थर, ताँबा, कोरंडम, ग्रेफाइट, गैलेना, मैंगनीज, अभ्रक, गेरु, टंग्सटन, यूरेनियम, केनाइट तथा शील खड़ी (soapstone) आदि अनेक खनिज भिन्न भिन्न स्थानों पर पाए जाते हैं। यहाँ का अभ्रक जगत्प्रसिद्ध है।

उद्योग-धंधे—बिहार में पहले उद्योग धंधों की कमी थी, पर अब अनेक उद्योग धंधे सफलता से चल रहे हैं। जमशेदपुर का लोहे का कारखाना एशिया का संभवत सबसे बड़ा कारखाना है। राँची में हैवी इंजीनियरिंग कारखाना, बरौनी का तेल शोधन कारखाना, डालमियानगर का कागज का कारखाना, सिंद्री का उर्वरक कारखाना, गोमियाँ का विस्फोटक निर्माण का कारखाना, डालमियानगर तथा पलामू जिले में सीमेंट के कारखाने हैं। चीनी के अनेक कारखाने बिहार में हैं। चीनी के उत्पादन में उत्तर प्रदेश के बाद बिहार का ही स्थान आता है।

तीर्थस्थान—बिहार में अनेक तीर्थ स्थान हैं। हिंदुओं के लिये गया का विष्णुपद मंदिर, वैद्यनाथधाम का शिवलिंग मंदिर ऐसे तीर्थस्थान हैं, जहाँ भारत के कोने कोने से लाखों की संख्या में तीर्थ यात्री आते हैं। समस्त भारत में गया ही एक स्थान है जहाँ पितरों को पिंडदान करने पर मुक्ति मिल जाती है, अत लाखों मनुष्य इसके लिये आश्विन मास के पितृ (कृष्ण) पक्ष में इकट्ठे होते हैं और पिंडदान देते हैं। इसके अतिरिक्त सोनपुर का हरिहर मंदिर भी पवित्र तीर्थस्थान है जहाँ कार्तिक पूर्णिमा को पशुओं का एक बड़ा मेला लगता है। यह मेला लगभग एक मास तक चलता है तथा एशिया खंड

का सबसे बडा मेला है जिसमे हजारो की सख्या मे हाथी, घोडे, गाय, भैंस, तथा बैल बिक्री के लिये आते हैं। बौद्धो के लिये बुद्धगया और राजगिरि पवित्र स्थान हैं। प्रति वर्ष जापान, थाइलैंड, वियतनाम, कबोडिया, तिब्बत और नेपाल तथा यूरोप से लाखो बौद्ध तीर्थयात्री यहाँ आते हैं। वैशाली, पावापुरी और पारसनाथ जैनियो के प्रसिद्ध धार्मिक स्थान हैं। वैशाली में जैनियो के तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ था तथा पावापुरी मे उन्होने अपना पार्थिव शरीर त्यागा था। पारसनाथ पहाडी पर तीर्थंकर पारसनाथ का मदिर है जहाँ रहकर वे तपस्या करते थे और चतुर्मास व्यतीत करते थे।

पटना नगर मे सिखो का प्रसिद्ध गुरुद्वारा 'हरिहर मदिर' है जहाँ सिखो के दसवें गुरु गोविंदसिंह का जन्म हुआ था और यही पर उन्होने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। इस मदिर मे गुरु गोविंद सिंह जी के स्मृतिचिह्न रखे हुए हैं।

ऐतिहासिक स्थान — बिहार में ऐतिहासिक महत्व के स्थान बहुत बडी सख्या मे हैं, जिनमे राजगिरि, नालदा, बुद्धगया, सहसराम, बराबर पहाडी, वैशाली, सुल्तानगज, कहलगाँव, राजमहल, पटने के खडहर एव मुगेर का किला प्रसिद्ध है।

शिक्षा — बिहार के अलग राज्य बनने के समय यहाँ स्कूलो की सख्या बहुत कम थी। बाद में उनकी सख्या बढने लगी तथा स्वतत्रताप्राप्ति के बाद तो बडी तेजी से बढी। आज बिहार मे उच्च विद्यालयो की सख्या लगभग १,५०० से ऊपर है। प्रारभ मे बिहार के सब महाविद्यालय कलकत्ता विश्वविद्यालय से सबधित थे। १९१६ ई० मे बिहार विश्वविद्यालय कानून पारित हुआ और उसके फलस्वरूप १९१७ ई० मे पटना विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। पटना विश्वविद्यालय का काम बढ जाने से एक दूसरे विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता मालूम हुई। अत सन् १९५२ मे बिहार विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। उस समय इस विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयो की सख्या लगभग ६० थी, जो शीघ्र ही बढकर ९० से अधिक हो गई। इन महाविद्यालयो की समुचित व्यवस्था के लिये कुछ अन्य विश्वविद्यालयो की स्थापना की गई, इनमें भागलपुर विश्वविद्यालय (१९६०), राँची विश्वविद्यालय (१९६०), मगध विश्वविद्यालय (गया में, १९६१) तथा दरभगा सस्कृत विश्वविद्यालय (१९६१) की स्थापना हुई है। इनके अतिरिक्त जैन दर्शन के अध्ययन के लिये नालदा अनुसधान संस्थान की स्थापना हुई। बिहार मे तीन महत्वपूर्ण अनुसधान प्रयोगशालाएँ हैं जियालगोडे की ईंधन राष्ट्रीय प्रयोगशाला, जमशेदपुर की धातुकर्म राष्ट्रीय प्रयोगशाला तथा नामकुम (राँची) का लाख अनुसधान सस्थान। [फू० स० व०]

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् भारतीय स्वाधीनता की सिद्धि के बाद की राज्य सरकार ने बिहार विधान सभा द्वारा, सन् १९४८ ई० मे स्वीकृत एक सकल्प के परिणामस्वरूप 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' की स्थापना राष्ट्रभाषा हिंदी की सर्वांगीण समृद्धि की सिद्धि के पवित्र उद्देश्य से सन् १९५० ई० के जुलाई मास के मध्य मे की और इसका उद्घाटन समारोह, ११ मार्च, सन् १९५१ ई० के दिन बिहार के तत्कालीन राज्यपाल, महामहिम माधव श्रीहरि अणे की गौरवपूर्ण अध्यक्षता मे, सपन्न हुआ। हिंदी की आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा मे बिहार राज्य सरकार के सकल्प का यह सस्थान मूर्तरूप है।

परिषद् के सामने दस उद्देश्य हैं . (१) हिंदी के अभावों की पूर्ति करनेवाले ग्रथो का प्रकाशन, (२) प्राचीन पाडुलिपियो का शोध और अनुशीलन, (३) लोकसाहित्य का सग्रह और प्रकाशन, (४) लोकभाषा विशेषज्ञों की भाषणमाला का आयोजन, (५) पुरस्कार प्रदान कर साहित्यिको को समानित और प्रोत्साहित करना, (६) हिंदी निबध प्रतियोगिता मे सफल छात्र छात्राओं को पुरस्कृत करना, (७) महत्वपूर्ण प्रकाशन के लिये साहित्यिक संस्थाओ को अनुदान (८) साहित्यिक शोध के लिये अनुसधान पुस्तकालय सचालित करना, (९) देश विदेश की प्रमुख भाषाओं के प्रामाणिक ग्रथो के हिंदी अनुवाद द्वारा राष्ट्रभाषा साहित्य को समृद्ध करना और (१०) विभिन्न विषयो के विशिष्ट विद्वानों को व्याख्यान के लिये आमत्रित करना तथा उनके भाषणो को सपादित ग्रथाकार कराकर प्रकाशित करना।

अब तक परिषद् के १२ वार्षिकोत्सव सपन्न हुए हैं, जिनमे क्रमश. निम्नलिखित मनीषी विद्वान् और हिंदी के उन्नायक सभापति पद को अलकृत कर चुके हैं। डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह, डॉ० धीरेंद्र वर्मा, आचार्य नरेंद्रदेव, श्री उच्छगराय नवलशकर ढेबर, डॉ० सपूर्णानद, श्री कुमार गगानद सिंह, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सेठ गोविंददास, आचार्य काका साहेब कालेलकर, डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधाशु', महामहिम अनतशयनम आयगर और डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।

अबतक हिंदी निबध प्रतियोगिता में साहित्य विषयक पुरस्कार से २४, राजनीति विषयक १६, वाणिज्य व्यवसाय विषयक ९, अर्थशास्त्र विषयक १६, विज्ञान विषयक १८, मनोविज्ञान विषयक ८, भूगोल विषयक ७, कृषि विषयक ९, चिकित्साविज्ञान विषयक ५, अभियत्रण कला विषयक ६, इतिहास विषयक २ और दर्शन विषयक २, छात्र पुरस्कृत हुए हैं।

साहित्यरचना तथा मुद्रण प्रकाशन में रत साहित्यिक सस्थाओं को मौलिक ग्रथो के प्रकाशनार्थ आर्थिक अनुदान दिया जाता है। अबतक २९ सस्थाओं को कुल ५१,६९२ रु० दिए गए हैं।

विविध भाषाओ, क्षेत्रीय भाषाओ के साहित्य पर ३७ विद्वानो के भाषण हुए हैं, जो ग्रंथाकार दो खडों में प्रकाशित हैं।

परिषद् के प्रकाशन विभाग के तत्वावधान में अमूल्य और महत्वपूर्ण साहित्यिक शोध कृतियों का प्रकाशन होता है। अबतक ९४ महत्वपूर्ण प्रकाशन हो चुके हैं, जिन्हे अनेकानेक मूर्धन्य विद्वानो ने मुक्त कठ से सराहा है। परिषद् के कृतिकारो मे म० म० गोपीनाथ कविराज, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, महापडित राहुल साकृत्यायन, डॉ० विनयमोहन शर्मा, प० गिरिवर शर्मा चतुर्वेदी, आचार्य नरेंद्रदेव आदि के नाम सादर उल्लेख्य हैं। इन कृतियो मे साहित्य अकादमी पुरस्कार से रचनाएँ पुरस्कृत हुई हैं। परिषद् से प्रकाशित होनेवाली साहित्य सस्कृति-प्रधान त्रैमासिक 'परिषद् पत्रिका'

ने शोध और अनुसधान के लिये नए साहित्यिक वातायन का उद्‌घाटन किया है।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रथशोध विभाग के तत्वावधान मे अब तक ३६८१ प्राचीन पाडुलिपियाँ सगृहीत हुई हैं। छह खडो मे 'प्राचीन हस्तलिखित पोथियो का विवरण' प्रकाशित हुआ है। साथ ही 'दरिया ग्रथावली, 'सतमत का सरभग सप्रदाय', 'हरिचरित' का प्रकाशन इस विभाग का मुख्य अवदान है।

लोकभाषा अनुसधान विभाग परिषद् का मुख्य शोध विभाग है। विभाग की ओर से 'कृपिकोश' तथा 'लोकगाथा परिचय', लोकसाहित्य आकर प्रकाशित हुआ है।

'कहावत कोश,' 'अगिका सस्कारगीत,' 'भोजपुरी सस्कारगीत' के प्रकाशन मे हाथ लगा हुआ है।

विद्यापति विभाग द्वारा विद्यापति के सबध मे अनुसधान चल रहा है। विद्यापति की प्रामाणिक पदावलियो का सचयन, सपादन तथा आलोचन इस विभाग की विशेषता है। 'विद्यापति पदावली' का प्रथम खड प्रकाशित हो चुका है।

भारतीय शब्दकोश विभाग द्वारा हिंदी शब्दकोश का निर्माण प्रामाणिक विद्वन्मडली के सपादकत्व मे तत्परता के साथ होता है। अब तक शकाब्द १८८२, १८८३, १८८४, १८८५ प्रकाशित हुआ है।

इस समय परिषद् के अनुसधान पुस्तकालय में कुल १३,६१६ ग्रथो तथा २,६१४ महत्वपूर्ण दुर्लभ पत्र पत्रिकाओ की फाइलें सकलित हुई हैं। पुस्तकालय मे विश्वविद्यालय के अनुसधित्सु प्राध्यापक तथा छात्र लाभान्वित होते हैं।

परिषद् की गौरववृद्धि की चर्चा मे इसके आद्यसचालक पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय का नाम चिरस्मरणीय है। परिषद् बिहार सरकार के अधीन पूर्णत गरकारी प्रतिष्ठान है, जिसमे शोध और प्रकाशन की मुख्यता है। इसके सचालन के लिये सचालकमडल तथा समिति सरकार द्वारा गठित है। [मु० ना० मि०]

बिहार शरीफ स्थिति २५° ११' उ० अ० तथा ८५° ३१' पू० दे०। यह भारत मे बिहार राज्य के मध्य भाग मे, एव पटना नगर से लगभग ३० मील दक्षिण पूर्व, पचान नदी के किनारे स्थित, पटना जिले का एक प्रसिद्ध उपमडल एव नगर है। यहाँ लगभग ४५ से ६० इच तक वर्षा होती है तथा सर्दियाँ स्वच्छ, ठढी तथा शुष्क रहती हैं। यह धान, जौ, मक्का, चना, गन्ना, आलू एव तिलहन के उत्पादक क्षेत्र मे स्थित होने के कारण बाजार बन गया है। बहुत समय तक यह मगध की राजधानी भी रहा है। प्राचीन काल मे भगवान् बुद्ध ने यहाँ पर उपदेश दिए थे। बुद्धकालीन भग्नावशेष देखने से मालूम होता है कि यह नगर काफी पुराना है। यहाँ कई मस्जिदें एव मकबरे हैं जिनमे सरीफुद्दीन मकदूम का मकबरा प्रसिद्ध है। यहाँ से कुछ ही मील दक्षिण-पूर्व नालदा स्थान है, जहाँ बौद्धकाल मे एक बडा विश्वविद्यालय स्थित था, जिसमे सुदूर भारत से ही नही चीन और तिब्बत से भी बौद्ध धर्म और भारतीय दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने के लिये छात्र आते थे। यहाँ के खडहरों मे प्राप्त प्राचीन वस्तुओं का एक सग्रहालय स्थापित हुआ है और बौद्ध धर्म के अध्ययन और अनुसधान के लिये पाली संस्थान की स्थापना भी यहाँ हुई है। इसके निदेशक पाली के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री जगदीश कश्यप हैं। इसकी जनसख्या ७८,५८१ (१९६१) है।

बिहारीलाल (स० १६६०–१७२०) हिंदी साहित्य विकास के रीति काल मे मुक्तकठ से श्लाघ्य बिहारीलाल 'बिहारी' नाम से ही स्मरणीय हैं। इन्होने कोई विशेष उपनाम अपना नही रखा केवल अपना यही नाम रखा है यथा—'यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल।'

बिहारी दोहासिद्ध कवि, छदरचना विचार से, और शृगाररससिद्ध रस रचना विचार से, ठहरते हैं। इन्होंने दोहा छद रचना में अप्रतिम सफलता प्राप्त की है और केवल इसी छद मे रचना की है। कुछ सोरठे भी लिखे हैं, सोरठा वस्तुत दोहे का उलटा हुआ छद ही है। भावविचार से इन दोनो छदों का पृथक् प्रयोग किया जाता है। मुक्तक रचना के लिये, विशेषतया सक्षिप्तता के साथ भावगाभीर्य रखने के हेतु यह छद सर्वथा समीचीन है।

इनकी प्रसिद्ध मुक्तक रचना सतसई (सप्तशती) के नाम से लोकप्रिय है, जिसमे ७०० से ऊपर दोहे हैं। कतिपय दोहे सदिग्ध भी माने जाते हैं। यो सभी दोहे सुदर और सराहनीय हैं तथापि तनिक विचारपूर्वक बारीकी से देखने पर लगभग २०० दोहे अति उत्कृष्ट ठहरते हैं। सतसई को तीन मुख्य भागो मे विभक्त कर सकते हैं—नीति विषयक, भक्ति और अध्यात्म भाव परक, तथा शृगारपरक इनमे से शृगारात्मक भाग अधिक है। कलाचमत्कार सर्वत्र चातुर्य के साथ प्राप्त होता है।

शृगारात्मक भाग मे रूपाग सौंदर्य, सौदर्योपकरण, नायक-नायिकाभेद तथा हाव, भाव, विलास का कथन किया गया है। नायक-नायिका-निरूपण भी मुख्यत तीन रूपो मे मिलता है—प्रथम रूप मे नायक कृष्ण और नायिका राधा है। इनका चित्रण करते हुए धार्मिक और दार्शनिक विचार को ध्यान मे रखा गया है इसलिये इसम गूढार्थ व्यजना प्रधान है, और आध्यात्मिक रहस्य तथा धर्ममर्म निहित है, द्वितीय रूप में राधा और कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख नही किया गया किंतु उनके आभास की प्रदीप्ति दी गई है और कल्पनादर्श रूप रौचिर्य रचकर आदर्श चित्र विचित्र व्यजना के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। इससे इसमें लौकिक वासना का विलास नही मिलता। तृतीय रूप मे लोकसभव नायक नायिका का स्पष्ट चित्र है। इसमे भी कल्पना कला कौशल और कवि परपरागत आदर्शों का पुट पूर्ण रूप मे प्राप्त होता है। नितात लौकिक रूप बहुत ही न्यून और बहुत ही कम है।

'सतसई' के मुक्तक दोहों को क्रमबद्ध करने के प्रयास किए गए हैं, २५ प्रकार के क्रम कहे जाते हैं जिनमे से १४ प्रकार के क्रम देखे गए हैं शेष ११ प्रकार के क्रम जिन टीकाओ मे है, वे प्राप्त नहीं। किंतु कोई निश्चित क्रम नही दिया जा सका। वस्तुत बात यह जान पडती है कि ये दोहे समय समय पर मुक्तक रूप मे ही रचे गए, फिर चुन चुनकर एकत्रित कर सकलित कर दिए गए। केवल मगलाचरणात्मक दोहो के विषय मे भी इसी से विचार वैचित्र्य है। यदि 'मेरी भव बाधा हरौ' इस दोहे को प्रथम मगलाचरणात्मक अर्थात् केवल राधोपासक होने का विचार स्पष्ट होता है और यदि 'मोर मुकुट कटि काछिनि'—इस दोहे को लें, तो केवल एक विशेष बानकवाली

कृष्णमूर्ति ही बिहारी की ग्रभीष्टोपास्य मूर्ति मुरय ठहरती है — बिहारी वस्तुत कृष्णोपासक थे, यह स्पष्ट है।

सतसई के देखने से स्पष्ट होता है कि बिहारी के लिये काव्य मे रस और अलकार चातुर्य चमत्कार तथा कथन कौशल दोनो ही अनिवार्यावश्यक है। उनके दोहो को दो वर्गों मे इस प्रकार भी रख सकते है, एक वर्ग मे वे दोहे आएँगे जिनमे रस रौचिर्य का प्राबल्य है और रसात्मकता का ही विशेष ध्यान रखा गया है। अलकार चमत्कार इनमें भी है किंतु विशेष प्रधान नही, वरन् रस परिपोषकता और भावोत्कर्षकता के लिये ही सहायक रूप मे यह है।

दूसरे वर्ग मे वे दोहे हैं जिनमे रसात्मकता को विशेषता नही दी गई वरन् अलकार चमत्कार और वचनचातुरी अथवा कथन-कला-कौशल को ही प्रधानता दी गई है। किसी विशेष अलकार को उक्ति-वैचित्र्य के साथ सफलता से निवाहा गया है। इस प्रकार देखते हुए भी यह मानना पडता है कि अलकार चमत्कार को कही नितात भुलाया भी नही गया। रस को उत्कर्ष देते हुए भी अलकार कौशल का अपकर्ष भी नही होने दिया गया। इस प्रकार कहना चाहिए कि बिहारी रसालकारसिद्ध कवि थे, रससिद्ध ही नही।

नीति विषयक दोहो मे वस्तुत सरसता रखना कठिन होता है, उनमे उक्तिऔचित्य और वचनवक्रता के साथ चारु चातुर्य चमत्कार ही प्रभावोत्पादक और ध्यानाकर्षण मे सहायक होता है। यह बात नीत्यात्मक दोहो मे स्पष्ट रूप से मिलती है। फिर भी बिहारी ने इनमे सरसता का सराहनीय प्रयास किया है।

ऐसी ही बात दार्शनिक सिद्धातो और धार्मिक भाव मर्मों के भी प्रस्तुत करने मे आती है क्योकि उनमे अपनी विरसता स्वभावत रहती है। फिर भी बिहारी ने उन्हें सरसता के साथ प्रस्तुत करने मे सफलता पाई है।

भक्ति के हार्दिक भाव बहुत ही कम दोहो मे दिखाई पडते हैं, समयावस्था विशेष में बिहारी के भावुक हृदय मे भक्तिभावना का उदय हुआ और उसकी अभिव्यक्ति भी हुई। बिहारी मे दैन्य भाव का प्राधान्य नही, वे प्रभु प्रार्थना करते हैं, किंतु अति हीन होकर नही। प्रभु की इच्छा को ही मुख्य मानकर विनय करते हैं।

मूलभाव बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध कविवरो की मुक्तक रचनाओ, जैसे आर्यासप्तशती, गाथा सप्तशती, अमरुकशतक आदि से लिए हैं — कही उन भावो को काट छाँटकर सु दर रूप दिया है, कही कुछ उन्नत किया है और कहीं ज्यो का त्यो ही सा रखा है। सौंदर्य यह है कि दीर्घ भावो को सक्षिप्त रूप मे रम्यता के साथ अपनी छाप छोडते हुए रखने का सफल प्रयास किया गया है।

'सतसई' पर अनेक कवियो और लेखको ने टीकाएँ लिखी। कुल ५४ टीकाएँ मुख्य रूप से प्राप्त हुई हैं। रत्नाकर जी की टीका एक प्रकार से अतिम टीका है, यह सर्वाग सु दर है। सतसई के अनुवाद भी सस्कृत, उर्दू (फारसी) आदि मे हुए हैं और कतिपय कवियो ने सतसई के दोहो को स्पष्ट करते हुए कुडलिया आदि छदो के द्वारा विशिष्टीकृत किया है। अन्य पूर्वापरवर्ती कवियो के साथ भावसाम्य भी प्रकट किया गया है। कुछ टीकाएँ फारसी और सस्कृत मे लिखी गई हैं। टीकाकारो ने सतसई मे दोहो के क्रम भी अपने अपने विचार से रखे हैं। साथ ही दोहो की सख्या भी न्यूनाधिक दी है। यह नितात निश्चित नही कि कुल कितने दोहे रचे गए थे। सभव है, जो सतसई मे आए वे चुनकर आए कुल दोहे ७०० से कही अधिक रचे गए होंगे। सारे जीवन मे बिहारी ने इतने ही दोहे रचे हो, यह सर्वथा मान्य नही ठहरता।

'सतसई' मे ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा ही उस समय उत्तर भारत की एक सर्वमान्य तथा सर्व-कवि-समानित ग्राह्य काव्यभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित थी। इसका प्रचार और प्रसार इतना हो चुका था कि इसमे अनेकरूपता का आ जाना सहज सभव था। बिहारी ने इसे एकरूपता के साथ रखने का स्तुत्य सफल प्रयास किया और इसे निश्चित साहित्यिक रूप मे रख दिया। इससे ब्रजभाषा मँजकर निखर उठी।

'सतसई' पर कतिपय आलोचको ने अपनी आलोचनाएँ लिखी हैं। रीति काव्य से ही इसकी आलोचना चलती आ रही है। प्रथम कवियो ने सतसई की मार्मिक विशेषता को साकेतिक रूप से सूचित करते हुए दोहे और छद लिखे। उर्दू के शायरो ने भी इसी प्रकार किया। यथा :

> सतसइया के दोहरे, ज्यो नावक के तीर।
> देखत में छोटे लगें, घाव करैं गभीर॥
> × × ×
> बिहारी की बलागत और ब्रजभाषा की शीरीनी,
> हमें तारीफ करने के लिये मजबूर करती हैं॥
> × × ×

इस प्रकार की कितनी ही उक्तियाँ प्रचलित है। विस्तृत रूप मे सतसई पर आलोचनात्मक पुस्तकें भी इधर कई लिखी गई हैं। साथ ही आधुनिक काल मे इसकी कई टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इनकी तुलना विशेष रूप से कविवर देव से की गई और एक ओर देव को, दूसरी ओर बिहारी को बढकर सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया। दो पुस्तकें, 'देव और बिहारी' प० कृष्णबिहारी मिश्र लिखित तथा 'बिहारी और देव' लाला भगवानदीन लिखित उल्लेखनीय हैं। रत्नाकर जी के द्वारा सपादित 'बिहारी रत्नाकर' नामक टीका और 'कविवर बिहारी' नामक आलोचनात्मक विवेचन विशेष रूप मे अवलोकनीय और प्रामाणिक हैं। [रा० श० शु०]

बिहारीलाल भट्ट जन्म आश्विन शुक्ला विजयदशमी, स० १९४६ वि० को बु देलखड के अतर्गत बिजावर मे हुआ। इस ब्रह्मभट्ट वश में कवि होते ही आए थे। पितामह दिलीप, जो अच्छे कवि थे, की देखरेख मे बिहारीलाल का बाल्यकाल बीता और उन्ही के द्वारा इन्हे प्रारभिक शिक्षा भी मिली। बिजावर राज्य के मुसाहिब हनुमतप्रसाद बिहारीलाल के काव्यगुरु थे। दस वर्ष की अवस्था से ही ये काव्यरचना करने लगे थे। बिजावरनरेश सावतसिंह जू देव इनके आश्रयदाता थे। उन्होने इनकी जीविका का भी समुचित प्रबंध किया था। इसके अतिरिक्त ओरछा, पन्ना, चरखारी, अजयगढ, छतरपुर और धौलपुर के राजाओ ने भी इनका यथोचित संमान किया था।

तीन वर्ष के सतत् परिश्रम और अपने आश्रयदाता सावतसिंह जू देव की आज्ञा से बिहारीलाल ने 'साहित्यसागर' सज्ञक प्रसिद्ध

रीतिबद्ध दशांग काव्य की रचना की। इसमें दो खंड, १५ तरंग, ६०० पृष्ठ और लगभग २,००० छंद हैं जिसमें लक्षण ग्रंथों की परिपाटीविहित पद्धति पर ही साहित्यिक लक्षण, काव्यलक्षण, काव्यकारण, काव्यप्रयोजन, गुण, वृत्ति, शब्दशक्ति, तुक, रसांग नायक-नायिका-भेद, अलंकार, दोष, चित्रकाव्य, निर्वाण और दान आदि का वर्णन भेदोपभेदों के साथ किया गया है। लक्षण उदाहरण पद्यबद्ध ही दिए गए हैं।

कवि की दृष्टि में अध्यात्म का विशेष महत्व है। उसके विचार से 'कवि उस (भगवत्) की कला का कलेवर है जहाँ से मनुष्य की वाणी का प्रभाव जीवों पर पड़ने लगता है। वहाँ से वह मनुष्य कवि कोटि में जाता है।' उसकी मान्यता है कि कवि चार प्रकार के होते हैं—(१) ब्रह्मकोटि, (२) ईशकोटि, (३) जीवकोटि और (४) विश्वकोटि। तपोपूत और ब्रह्मसाक्षात्कारी वाल्मीकि व्यासादि कवि ब्रह्म कोटि, मलरहित अंतःकरणवाले और ईश्वरसाक्षात्कारी कवि चंद, सूर, तुलसी आदि कवि ईशकोटि, दिव्यरूप का जिनको लक्ष्य रहता है और जीव जिनकी वाणी के वशवर्ती हैं, वे भूषण आदि कवि जीवकोटि और धर्मशास्त्र-बल-संपन्न एवं विद्या साहित्यादि साक्षात्कारी तथा जगत्‌जाग्रतकारी कवि विश्वकोटि में आते हैं।

नायिकाभेद में अध्यात्म तत्व की प्रतिष्ठा करने और उसके क्रम में एकसूत्रता तथा शृंखलाबद्धता के लिये उन्होंने अपने 'साहित्य-सागर' में नवीन प्रयास किए हैं, जैसे, एक नायिका उत्कंठिता है, गमन करने पर वही अभिसारिका हुई, पुनः संकेत पर विप्रलब्धा योग से वही विप्रलब्ध हुई, इत्यादि। चित्रकाव्य में भी कुछ नवीनता है। इस प्रवृत्ति के अन्य कवियों की भाँति शृंगार ही उनका भी प्रमुख वर्ण्यविषय था।

सं० ग्रं० — बिहारीलाल भट्ट 'साहित्य सागर (प्रथम व द्वितीय भाग) गंगा फाइन आर्ट प्रेस, लखनऊ, सं० १९९४, 'हिंदी साहित्य कोश' भा० २, ज्ञानमंडल लिमिटेड, संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा तथा अन्य वाराणसी, सं० २०२०, डॉ० भगीरथ मिश्र, हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास' लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, सं० २०१५।

[रा० फे० त्रि०]

बीकानेर १ जिला, स्थिति २७° ७' से २९° ३' उ० अ० तथा ७१° ५३' से ७४° १५' पू० दे०। यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर में गंगानगर, पूर्व में चूरू, दक्षिण में जोधपुर, दक्षिण-पूर्व में नागौर, दक्षिण-पश्चिम में जैसलमेर तथा पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान स्थित है। इसका क्षेत्रफल १०,५६१ वर्ग मील तथा जनसंख्या ४,४४,५१५ (१९६१) है। पहले यह एक रियासत था। जिले का संपूर्ण भाग मरुस्थली है एवं बालुकास्तूपों से परिपूर्ण है। यहाँ लूनकरनसर में प्राकृतिक तथा सुजानगढ़ के पास एक कृत्रिम झील है। जलवायु शुष्क किंतु स्वास्थ्यप्रद है। मई, जून माह में गरम हवाएँ तेजी के साथ चलती हैं। धूलभरे ववंडर भी अधिक चला करते हैं। बीकानेर नगर का औसत ताप लगभग २७° सें० तथा संपूर्ण जिले की औसत वर्षा केवल १२ इंच है। यहाँ वनस्पति का अभाव है। कृषि में ज्वार, बाजरा, गेहूँ, जौ एवं चना की फसलें प्रमुख हैं। यहाँ के उद्योगों में ऊनी गलीचे, हाथीदाँत की चूड़ियाँ, चीनी मिट्टी के बरतन एवं मशकें आदि बनाना प्रमुख हैं। खनिजों में कोयला, ताँबा, चूना तथा नमक आदि मिलते हैं।

२ नगर, स्थिति २८° उ० अ० तथा ७३° १८' पू० दे०। बीकानेर जिले की राजधानी एवं प्रमुख नगर है। यह मरुस्थल के बीचोबीच एक झील के पास, दिल्ली से ४६३ कि० मी० पश्चिम में स्थित है। इस नगर की स्थापना १४८८ ई० में एक राठौर सरदार बीका (राव जोधा के छठे पुत्र) ने की थी। इन्हीं के नाम पर इसका नाम भी पड़ा। नगर में कई ऊँचे मकान, मंदिर एवं एक विशाल किला है। राजा रायसिंह का बनवाया बड़ा एवं आधुनिक किला, नगर के कोटद्वार से ३०० गज की दूरी पर है। इसके अतिरिक्त लालगढ़ विक्टोरिया मेमोरियल क्लब, गंगा कचहरी, लक्ष्मीनाथ मंदिर एवं अजायबघर दर्शनीय हैं। नगर में श्वेत मिश्री, ऊनी माल, गोटियाँ, चटाइयाँ एवं बरतन बनाने का कार्य होता है। नगर की जनसंख्या १,५०,६३४ (१९६१) है। [कृ० च० श०]

बीजगणित (Algebra) गणित की उस शाखा को कहते हैं जिसमें संख्याओं के गुणों और उनके पारस्परिक संबंधों का विवेचन सामान्य प्रतीकों (symbols) द्वारा किया जाता है। ये प्रतीक अविकाशत अक्षर (a, b, c, . , x, y, z) और संक्रिया चिह्न (operation signs) (+, −, ×,) और संबंधसूचक चिह्न (=, >, <) होते हैं। उदाहरणत, $x^2+3x=28$ का अर्थ है, 'कोई ऐसी संख्या x है, जिसके वर्ग में यदि उसका तीन गुना जोड़ दिया जाय, तो फल २८ मिलता है, बीजगणितीय प्रतीकों और संक्रियाओं का उपयोग न केवल गणित में किंतु विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में होने लगा है। व्यापक अर्थ में बीजगणित में निम्नलिखित विषयों का विवेचन सम्मिलित होता है :

समीकरण (equation), बहुपद (polynomial), वितत भिन्न (continued fraction), श्रेणी (series), संख्या अनुक्रम (sequence of numbers), सारणिक (determinant), समघात (form), नए प्रकार की संख्याएँ, जैसे संख्यायुग, मैट्रिक्स।

इतिहास — ६२८ ई० के लगभग भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त द्वारा लिखे 'बीजगणित' नामक ग्रंथ के आधार पर विषय का नाम बीजगणित पड़ा। इसमें बीजों, अर्थात् मूलभूत अवयवों, से परिगणन (calculation) किया जाता है। बाद में १२वीं शताब्दी में भास्कर ने भी बीजगणित पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। ८२५ ई० के आसपास मुहम्मद इब्नमूसा अल ख्वारिज्मी ने बगदाद में अपने एक ग्रंथ का नाम अलजब्र व अल मुकाबला रखा। अलजब्र अरबी का शब्द है तथा मुकाबला फारसी का और दोनों का अर्थ समीकरण या उससे संबंधित है। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के नाम पर ही यूरोप में इस विषय का नाम ऐलजेबरा पड़ा। चीनी भाषा में इसके लिये ट्सैन-यू (अर्थात् दैवी अवयव), जापानी में किगेन-सी हो (अर्थात् अज्ञातबोधी), इटाली में आर्स मेग्ना (अर्थात् महान् कला) प्रयुक्त हुआ। इनके अतिरिक्त भी अन्य नाम हैं, जो विषय की पुरातनता के द्योतक हैं।

यदि समस्यासाधन हेतु वैज्ञानिक ढंग से की गई अटकलबाजी को मान्यता देना स्वीकार हो, तो २,००० वर्ष ई० पू० और उससे

भी पहले बीजगणित के प्रादुर्भाव का संकेत मिलता है। यदि शब्दगत समीकरण व्याख्या को और घनमूल वाले सरल समीकरणों के ज्यामितीय आरेखो पर अवलंबित हल को मान्यता दी जाय, तो कहना होगा कि ३०० ई० पू० मे यूक्लिड और ऐलेक्ज़ेंड्रिया स्कूल को बीजगणित का ज्ञान था। १६वीं शताब्दी मे मुद्रण कला के विकास और रुडोल्फ, राबर्ट रेकार्ड, रैफिल नोवेली तथा क्रेवियस आदि विद्वानो के प्रयासों से इस विषय ने व्यापकीकृत अंकगणित का रूप धारण कर लिया और १७वी शताब्दी मे प्रतीक पद्धति के परिपूर्ण हो जाने पर बीजगणित का विकास बहुत जोरो से हुआ। संक्षेप मे बीजगणित के विकास मे उसकी विषय सीमा इन स्तरो से विस्तृत होती गई (१) लगभग १,८०० ई० पू० से २७५ ई० तक के काल मे संख्या संबंधी पहेलियो का हल, बिना किसी प्रतीक-पद्धति की सहायता के, किया जाना, (२) दिए हुए क्षेत्रफल का वर्ग ज्यामितीय विधि से खीचना, (३) स्थूल प्रतीक पद्धति का विकास, (४) समीकरणों का अधिक तर्कयुक्त विवेचन ८००–१२०० ई० तक, (५) १६वी शताब्दी मे द्विघात और त्रिघात समीकरणों के साधन हेतु सिद्धांत का प्रतिपादन, (६) सुस्पष्ट और सुविधामय प्रतीक पद्धति का विकास तथा (७) १८०० ई० से अमूर्त बीजगणित का विकास।

संख्याएँ — वस्तुओ के गिनने मे जो संख्याएँ प्रयुक्त होती हैं प्राकृतिक संख्याएँ (natural numbers) कहलाती है। अन्य संख्याओ को कृत्रिम संख्याएँ (artificial numbers) कहते है। कृत्रिम संख्याओ का अध्ययन अंकगणित मे ही आरंभ हो जाता है, किंतु वहाँ केवल भिन्नो का ज्ञान पर्याप्त होता है। बीजगणित मे ऋण संख्याओ, अपरिमेय, बीजातीत, मिश्र आदि संख्याओं का विवेचन आवश्यक हो जाता है।

बीजीय व्यंजक — २a का अर्थ है a+a, अर्थात् a का दुगुना। व्यापक रूप से, यदि m कोई धन पूर्ण संख्या है, तो ma का अर्थ है a का m गुना। ma को m और a का गुणनफल भी कहते हैं।

a^2 का अर्थ है $a \times a$, a^3 का अर्थ है $a \times a \times a$। व्यापक रूप से, यदि m कोई धन पूर्ण संख्या है तो a^m का अर्थ है

$a \times a \times$. m बार।

a^m मे m को घात (exponent) और a को आधार (base) कहते हैं। आगे चलकर ma और a^m के अर्थ विस्तृत कर उन स्थितियो मे भी बताए जाते हैं जब m ऋण, भिन्न, अपरिमेय आदि कोई भी संख्या हो। सामान्य संख्याओ के प्रतीक एक या अधिक अक्षरो और किसी संख्या के गुणनफल को पद (term) कहते है, जैसे $3a^2b, -4a$, x (अर्थात् 1x)। कई एक पदो के योगफल को बीजीय व्यंजक (algebraic expression) कहते हैं। पूर्वोक्त तीन पदोवाला व्यंजक $3a^2b-4a+x$ है। यहाँ 4a के पहले + चिह्न लगाना व्यर्थ था। अकेले पद को एकपद व्यंजक (monomial), दो पदोवाले व्यंजक को द्विपद (binomial), तीन पदवाले को त्रिपद (trinomial) कहते हैं। एक से अधिक पदवाले व्यंजक को बहुपद (polynomial) कहते हैं। दो या अधिक पदो के गुणनफल से एक पद ही प्राप्त होता है। गुणा किया जानेवाला प्रत्येक पद गुणनफलवाले पद का गुणनखंड (factor) कहलाता है।

वैसे तो पद के किसी एक गुणनखंड का गुणांक (coefficient) शेष गुणनखंडो का गुणनफल है, जैसे $3a^3b^2$ मे a^3 का गुणांक $3b^2$ कहा जा सकता है, किंतु प्रथा आरंभवाले गुणनखंडो के गुणनफल को शेष खंडो के गुणनफल का गुणांक मानने की है। इस प्रकार b^2 का गुणांक $3a^3$ है, a^3b^2 का गुणांक 3 है। यदि गुणांक संख्यामात्र हो, तो उसे संख्यात्मक गुणांक कहते हैं। कोष्ठकों में बंद कर व्यंजक को एक पद की भाँति प्रयुक्त किया जा सकता है। (देखें, फलन और गुणनखंड)।

प्रारंभिक संक्रियाएँ — बहुपदो पर सामान्य संक्रियाओ, योग, व्यवकलन, गुणन तथा विभाजन के अतिरिक्त गुणनखंडन, घातक्रिया (involution), वर्गमूल निर्धारण, दो या अधिक बहुपदो के लघुतम समापवर्त्य तथा महत्तम समापवर्तक ज्ञात करने की विधियाँ प्रारंभिक बीजगणित की पुस्तको मे अच्छी तरह समझाई रहती है (देखें बहुपद)। अनुपात और गुणनखंड व्यापक अर्थ मे सभी प्रकार की संख्याओ के लिये प्रयुक्त होते हैं।

समीकरण — समता मुख्यत तीन प्रकार की होती है (१) $3+2=5$ संख्याओ का संबंध है। (२) $x+2x=3x$ ऐसा संबंध है जो x के सभी मानो के लिये सत्य है, इसे सर्वसमिका (identity) कहते है। (३) $x+3=2$ ऐसी समता है जो x के केवल एक ही मान (वस्तुत -1) के लिये सत्य है, इसे समीकरण (equation) कहते हैं। प्राय सर्वसमिका मे उसका समीकरण से विभेद स्पष्ट करने के लिये, चिह्न = के स्थान मे तुल्यचिह्न ≡ का प्रयोग किया जाता है। एकघात और द्विघात समीकरणो का हल डायफेंटस ने लगभग २५० ई० मे दिया था (देखें डायोफैंटीय समीकरण)। भारत मे आर्यभट्ट ने ४७६ ई० मे द्विघात समीकरण का हल मौलिक रूप से दिया।

प्रारंभिक श्रेढियाँ — मध्यकालीन युग मे समांतर (arithmetic), गुणोत्तर, आदि श्रेढियो के अध्ययन की ओर काफी रुचि थी। इसी कारण इन श्रेढियो का संकलन (योगफल ज्ञात करना) प्रारंभिक बीजगणित का रोचक विषय है। उदाहरणार्थ दो सूत्र लीजिए :

$$1+2+3+\ \ m \text{ पदो तक } = \tfrac{1}{2} m (m+1)$$
$$1^2+2^2+3^2+.\ m \text{ पदो तक } = \tfrac{1}{6} m (m+1)(2m+1)$$

गुणोत्तर श्रेढी का अध्ययन हमे अनंत श्रेणियो के अध्ययन पर ले जाता है। तब सीमा आदि महत्वपूर्ण संकल्पनाएँ आवश्यक हो जाती है और अवकलन तथा समाकलन बोधगम्य हो जाते हैं।

बीजगणित का महत्व — अंकगणित की अपेक्षा अधिक प्रतीको का प्रयोग कर, कम श्रम से अत्यंत व्यापक फल प्राप्त करना बीजगणित की उपलब्धि है। इसीलिये बीजगणित को भाषा की आशुलिपि (short hand) कहते हैं। फ्रांसीसी गणितज्ञ बर्टेंड (सन् १८२२–१९००) के अनुसार बीजगणित मे संक्रियाओ और परिकल्पनात्मक क्रिया कलाप का अध्ययन, जिन संख्याओ पर वे प्रयोज्य होती है उनसे स्वतंत्र रहकर किया जाता है। यही इस विज्ञान की विशेषता है। विज्ञान की साधना मे बीजगणित का अध्ययन आवश्यक है। सूत्रो के रूप में तो बीजगणित की अनिवार्यता तुरत प्रकट हो जाती है।

व्यापकीकरण और अमूर्त बीजगणित — बीजगणित व्यापकीकृत अंकगणित है और व्यापकीकरण की क्रिया बीजगणित के उत्तरोत्तर विकास मे जारी रहती है। प्रारभिक बीजगणित मे ही ab, a^m, $a^m\ a^n$, $(a^m)^n$ आदि के अर्थों को व्यापक कर a, b, m, n के सभी मानों के लिये निश्चित अर्थवाला बना दिया जाता है। यह सब $\sqrt{(-1)}$ राशि की कल्पना के कारण ही सभव हुआ। दुर्भाग्य से इस राशि को काल्पनिक मान लिया गया और इसके अंग्रेजी अनुवाद (imaginary) का पहला अक्षर i इसका प्रतीक बना। जब १७ वी और १८ वी शताब्दी मे समस्या साधन हेतु i को इतना अधिक उपयोगी पाया गया, तो इसकी प्रकृति की ओर ध्यान गया। इसे सख्या न माने जाने पर, अमूर्त रूप से इसे सख्यायुग्मो पर कुछ स्वेच्छ सक्रियाओ का प्रतीक माना गया और मूर्त रूप मे इसकी ज्यामितीय व्याख्या 'समतल मे समकोण तक घुमाओ' दी गई। इन व्याख्याओ से प्रेरणा हुई कि क्यो न 'i' जैसे अन्य प्रतीक खोजे जायें। इसी प्रयास मे सन् १८४३ मे हैमिल्टन ने त्रिविमी घूर्णन के सदर्भ मे क्वार्टनियस i और j का आविष्कार किया और बताया कि $ij = -ji$। यह अत्यत महत्वपूर्ण खोज थी, क्योकि अब तक के बीजगणित में सदा ही $ab = ba$ था। अब गणितज्ञो ने नाना प्रकार की 'अतिसमिश्र सख्याओं' और सक्रिया प्रतीको की खोज कर डाली। अतत यह प्रश्न उठता ही था कि क्यों न साधारण सख्याओ के स्थान मे किन्ही प्रतीको को लेकर और उनके सयोजन के नियम निर्धारित कर, विशेष प्रकार के बीजगणित की रचना की जाय।

इस प्रकार सदिश और मैट्रिक्स (या व्यूह) बीजगणित की रचना हुई। बीजगणित की मूलभूत सक्रियाओं के व्यापकीकरण से नाना प्रकार के बीजीय तत्र (algebraic systems) मिलते हैं। इन तत्रो मे अवयवो के सयोजन (combination) सबधी अलग अलग नियम होते हैं, जिनसे अन्य अवयव बनते हैं। चूँकि इन तत्रों के अध्ययन मे इस बात की विशेष महत्ता नही होती कि अवयव वास्तव मे क्या हैं, वरन् उनमे नियमों की प्राथमिकता होती है। इसलिये इन तत्रो को अमूर्त बीजगणित (abstract algebra) की सज्ञा दी गई है।

अमूर्त तत्रो के कुछ उदाहरण देने के लिये किसी सक्रिया $*$ के प्रति निम्न सकल्पनाएँ आवश्यक हैं—१ अवगुठन (Closure). यदि किसी समुच्चय के कोई दो अवयव (elements) a और b हो, तो $a*b$ भी उसी समुच्चय का अवयव है। २ क्रमविनिमेयता (Commutativity) $a*b = b*a$। ३ साहचर्य नियम (Associativity) यदि a, b, c, समुच्चय के अवयव हो, तो $(a*b)*c = a*(b*c)$। ४ सर्वसमिका (identity) का अस्तित्व समुच्चय मे ऐसा अवयव e हो कि $a*e = e*a = a$। ५ प्रतिलोम (inverse) का अस्तित्व समुच्चय मे किसी भी अवयव a के सगत ऐसा अवयव a^{-1} हो कि $a*a^{-1} = a^{-1}*a = e$। ६ पहली सक्रिया और दूसरी सक्रिया के प्रति वितरण नियम $a \frown (b*c) = (a \frown b) * (a \frown c)$ और ६' $(b*c) \frown a = (b \frown a) * (c \frown a)$

किसी समुच्चय को सक्रिया $*$ के प्रति ग्रुप (या सघ) तब कहते है जब उसमे गुणधर्म १, ३, ४, ५ हो। यदि गुणधर्म २ भी हो तो उसे क्रम विनिमेयी, अथवा आबेली ग्रुप कहते हैं (देखें सघ) दो सक्रियाओ $*$ और $\frown$ के प्रति समुच्चय को रिंग तब कहा जाता है जब पहली के प्रति पाँचो गुणधर्म १ से ५ तक हों, दूसरी के प्रति १, ३, और समिलित दोनो के प्रति ६, ६' हो। ऐसी रिंग को फील्ड कहते हैं, जिसमें दूसरी सक्रिया के प्रति गुणधर्म २ तथा ४ हों और पहली सक्रिया के सर्वसमक (अर्थात् $a*a^{-1}$) को छोड अन्य हरेक अवयव का प्रतिलोम दूसरी सक्रिया के प्रति हो। उदाहरणतया, जोड और गुणन सक्रियाओं के प्रति (१) शून्य समेत सभी पूर्णसख्याओ का समुच्चय रिंग है (२) सभी परिमेय सख्याओ का, अथवा वास्तविक सख्याओं का, अथवा समिश्र सख्याओं का समुच्चय फील्ड है।

गणित की अन्य शाखाओ मे विशिष्ट समस्याओ के हल करने के प्रयास मे कई नए बीजीय तत्रो का प्रादुर्भाव हुआ। अवकल समीकरणों के वर्गीकरण प्रयास मे ली ग्रुप का आविष्कार हुआ। इसी प्रकार स्थिति विश्लेषण (topology) की कुछ समस्याओं ने होमोलोजिकल बीजगणित को जन्म दिया। १८५० ई० के लगभग बूल ने साकेतिक बीजगणित का विकास किया जिसका अब महत्वपूर्ण प्रयोग टेलीफोन परिपथ और इलेक्ट्रोनिक परिकलन यत्र के अभिकल्पन मे हुआ है।

१८०० ई० से पहले गणित का सरोकार मुख्यत दो सामान्य समझ बूझ की सकल्पनाओ, सख्या और आकृति से था। १९वीं शताब्दी के आरभ मे दो नए विचारो ने गणित के क्षेत्र को एकदम विस्तृत कर दिया पहला यह कि गणित का व्यवहार केवल सख्याओ और आकृतियो के लिये ही नही, वरन् किन्ही भी वस्तुओं के लिये किया जा सकता है। दूसरे विचार के अनुसार अमूर्त्तीकरण की प्रक्रिया को और आगे बढाकर, गणित को केवल तर्कयुक्त विधान माना जाने लगा, जिसका किसी वस्तुविशेष से कोई सरोकार न था। पहला विचार वैज्ञानिको को उपयोगी लगा और दूसरा शुद्ध गणितज्ञ को, जिसके लिये गणित केवल सुदर प्रतिरूपों का अध्ययन मात्र रह गया। इन दो दृष्टिकोणो मे कोई वास्तविक विरोधाभास नहीं, क्योंकि प्राय सुदर प्रतिरूप भौतिक प्रकृति मे ठीक बैठते हैं और वैज्ञानिक द्वारा प्रकृति मे पाए गए गणितीय प्रतिरूप प्राय सुदर होते हैं।

बीजीय ज्यामिति — गणित की वह शाखा है जिसमे बीजीय समीकरणो की सहायता से आरेखो और चित्रो के गुणधर्मों का विवेचन किया जाता है।

स० ग्र० — ज्योर्ज क्रिस्टल ऐल्जेबरा (ब्लैक, १८८९), डी० ई० स्मिथ हिस्ट्री ऑव मैथेमैटिक्स, बोस्टन (१९२५), एम० बोके हायर ऐलजेबरा (मैकमिलन, १९०७)। [ह० च० गु०]

बीजलेखन किसी सदेश के इस प्रकार लिखे जाने को कहते हैं कि प्राप्त सदेश का अर्थ केवल वही समझ पाए जिसके पास उसकी कुजी हो। यह गुप्तलेख विद्या (cryptography) द्वारा सभव होता है। इस विद्या का प्रयोग हजारों वर्ष से होता आ रहा है।

इतिहास — प्राय प्रत्येक प्राचीन देश मे गुह्य बातो को गुप्त रखने के लिये बीजो, कूटों अथवा प्रतीको का उपयोग होता रहा है। भारत के पुरातन इतिहास तथा साहित्य मे भी गुप्तलेखन के अनेक दृष्टात उपस्थित हैं। प्राचीन मिस्र मे मदिरो के पुजारी गुप्तलेखन के लिये चित्रो या चित्र भाषा का प्रयोग करते थे, जिसका अर्थ केवल मदिरो के सेवक ही समझते थे। यूरोप मे रोम के सीजर तथा अन्य

अधिकारियो के बीजलेखन द्वारा सदेश भेजने के उल्लेख हैं। कई शताब्दी पश्चात्, जब यूरोप के विभिन्न दरबारो मे स्थित राजनीतिज्ञ बहुधा षड्यत्रो और गुप्त योजनाओ की तैयारी मे लगे रहते थे, तब गुप्त लेखन का बहुत प्रचार हुआ तथा विरोधियो ने ऐसे बीजलेखों के अर्थ ढूँढ निकालने की विधियो का आविष्कार किया। आगे जब अपेक्षाकृत शाति का समय आया तथा सदेशवाहको को पकडकर उनसे पत्रादि छीने जाने का भय न रहा, तब गुप्तलेखन की प्रणालियो का प्रयोग भी कम हो गया, किंतु प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारभ होने पर इस विद्या की प्रगति मे भी ज्वार आया। इस युद्ध मे स्थल, जल और वायुसेनाओ द्वारा बेतार से सदेशों का भेजा जाना आवश्यक था, किंतु इन सदेशो को मित्र और शत्रु दोनो ही रेडियोग्राही यत्रो की सहायता से सुन सकते थे। अतएव ऐसे बीजो (ciphers) और कूटो (codes) द्वारा सदेश भेजे जाने लगे, जिनकी कुजी का ज्ञाता ही केवल सदेश का अर्थ समझ सकता था। विपक्षियो ने तब इन गुप्त सदेशो का अर्थ ढूँढ निकालने की चेष्टाएँ प्रारभ की और अनेक बार इसमे सफलता प्राप्त की। इस प्रकार प्रत्येक देश के युद्ध विभाग मे बीजाक और कूट अनुभाग स्थापित हुए, जो बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण गुप्तलेख विद्या मे अभूतपूर्व प्रगति हुई।

उपयोगिता—कुछ सप्रदाय, गुप्त समितियाँ तथा अपराधी वृत्ति के लोग विविध प्रकार के सरल अथवा कठिन बीजाको और कूटो का प्रयोग करते हैं। लडके भी गुप्त सदेशों को भेजने के लिये किसी न किसी प्रकार के बीजलेखन का आविष्कार कर लेते हैं। इस कला का उपयोग पशुओ को चिह्नित करने तथा व्यक्तिगत सदेशो मे भी होता है। व्यापार मे सदेशो को तार द्वारा भेजने की सुविधा के लिये छोटा रूप देने तथा गुप्त रखने के लिये बृहत् बीज और कूट कोशों का निर्माण हुआ है। विभिन्न देशो की सरकारो ने राजनयिक तथा सैनिक सदेश भेजने और अन्य गुप्त कार्यो के लिये अनेक जटिल, तथा विपक्षियों के लिये असाध्य, बीजलेखन प्रणालियाँ तैयार की हैं, जिनका विस्तृत उपयोग होता है। युद्धावस्था मे ऐसे बीजाको तथा कूटो के बिना काम चल ही नही सकता।

बीजलेखन की रीतियाँ — बीजाको के निर्माण के लिये सदेश के शब्दो को अन्य शब्दो या चिह्नो मे परिणत कर देते हैं। इससे वही मनुष्य सदेश को समझ सकता है जिसके पास उसकी कुजी होती है। सबसे सरल रीति मे सदेश के अक्षरो को थोडा हेर फेर के साथ लिख देते हैं, जैसे "जब तक मैं न लिखूँ तुम घर न आना' को यदि दाहिने से बाएँ लिखा जाय, तो इसका कूट रूप होगा। नाआ न रघ मतु खूँ लि न मैं कत बज' इसी के तीन तीन अक्षरो को साथ मिलाकर लिखें और अनुस्वार उडा दें, तो यह होगा 'नाआन रघम तुखूलि नमैक तबज'।

यदि उपर्युक्त मूल सदेश के विषम सख्यावाले अक्षरो को ऊपर एक लाइन मे और सम सख्यावालो को उसके नीचे लिख लिया जाय तो मिलेगा :

ज	त	मै	लि	तु	घ	न	ना
ब	क	न	खूँ	म	र	आ	

तीन तीन अक्षरो का समूह लेने पर बीज सदेश होगा "जतमैं लितुघ ननाब कनखूँ मरआ", जो मूल सदेश से सर्वथा भिन्न है। उपर्युक्त रीति के विपरीत, विषम सख्यावाले अक्षरो को नीचे और सम सख्या वालो को ऊपर भी लिखा जा सकता है। यदि सदेश लबा हो, तो उसे तीन अथवा अधिक पक्तियो मे लिख सकते हैं। जैसे सदेश 'पचास ऊँटो का कारवाँ फल रवाना होगा" को चार पक्तियो मे निम्न प्रकार से लिख लेते हैं

	१	२	३	४
१	प	चा	स	ऊँ
२	टों	का	का	र
३	वा	फ	ल	र
४	वा	ना	हो	गा

उपरिलिखित से प्रतिलेखन तैयार करने की कई रीतियाँ हो सकती हैं। दाहिने स्तभ से बाएँ ओर तथा नीचे से ऊपर को लिखने पर, बीजलेख होगा :

गाररऊ होलकास नाफकाचा वावांटोप

यदि मात्राओ का प्रयोग न करें तो इसका रूप "गररउ हलकस नफकच ववटप" हो जाता है, जिसे भेद जाननेवाला मनुष्य थोडे प्रयत्न से समझ ले सकता है, किंतु अन्य के लिये यह निरर्थक होता है।

बीजाको की रचना की अन्य सरल रीति प्रतिस्थापन सारणी का निर्माण करना है। वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर एक अन्य अक्षर मे बदल दिया जाता है, जैसे क = च, ख = म, ग = र इत्यादि। इस प्रकार की एक सूची तैयार कर, पूर्ण सदेश को नए अक्षरो मे लिख देने पर, बीज लेखन पूरा हो जाता है। इस सदेश को कुजी जाननेवाले मनुष्य के सिवाय अन्य लोग नही जान सकते। हिंदी मे बीजलेखन तैयार करने के लिये स्वरो मे से केवल मुख्य पाँच, अर्थात् अ इ उ ए तथा ओ, को लेने तथा मात्राओं और कुछ व्यजनो को छोड देने से सरलता हो जाती है। नीचे के दृष्टात मे व्यजन ङ, ञ, ण, न, ण तथा ष को छोड देते हैं और इनका काम इनसे मिलते जुलते अक्षर म, स और ख से लेते हैं। एक कूट शब्द ले लिया जाता है, जैसे परवल तथा इसे वर्णमाला के अन्य अक्षरो के साथ निम्नलिखित दो तरीको से सजा सकते हैं

प	र	व	ल
अ	इ	उ	ए
ओ	क	ख	ग
घ	च	छ	ज
झ	ट	ठ	ड
ढ	त	थ	द
ध	फ	ब	भ
म	ल	स	ह

(१)

प	र	व	ल	अ	इ	उ	ए
ओ	क	ख	ग	घ	च	छ	ज
झ	ट	ठ	ड	ढ	त	थ	द
ध	फ	ब	भ	म	ल	स	ह

(२)

मान लीजिए जो सदेस भेजना है वह यो है "पचास ऊँट का कारवाँ फल रवाना होगा, जिसकी मात्राएँ इत्यादि हटाने पर रूप होता है, पचस उट क करव फल रवन हग। अब इस सदेश को दो अक्षरो के समूह मे विभाजित कर लेते हैं पच सउ टक फर वक लर वन हग। उपरिलिखित सारणियो मे प्रथम दो अक्षरो को सीधी रेखा से जोडने पर जिस आयत का कर्ण बनता है, उसके अन्य दोनो विपरीत सिरो

पर पड़नेवाले अक्षर पूर्वअक्षरो के स्थान पर लिख दिए जाते हैं। एक ही (१) आडी या (२) खडी पक्ति मे पडनेवाले अक्षरो के स्थान पर, सारणी मे उनके (१) बाद अथवा (२) नीचे आनेवाले अक्षर दिए जाते हैं। यदि दाहिने स्तभ या (२) अतिम पंक्ति मे सदेश का अक्षर पडता है, तो (१) बाएँ पडनेवाला या (२) ऊपर की पक्ति मे पडनेवाला अक्षर उसके स्थान पर लिख दिया जाता है। इन नियमो के अनुसार प्रथम सारणी मे सदेश का बीज लेखन होगा

रघ हए तच चइ रख सव पस सख (१)

तथा द्वितीय सारणी से होगा

इओ हए फट टक रउ अव अव जभ (२)

तीन तीन या चार चार अक्षरो को मिलाकर लिखने से उक्त बीजलेखो की क्लिष्टता कुछ बढ जाएगी।

बीजलेखन अक्षरो मे न होकर शब्दो मे हो सकते हैं। इस आधार पर शब्दकोशों से चुने हुए शब्द लेकर प्रत्येक शब्द से एक पूर्ण विचार को जताने का काम लिया जाता है। ऐसे कूट शब्दों का प्रयोग व्यापारिक सदेशो मे बहुधा किया जाता है, क्योंकि इससे लबा सदेश गिने गिनाए शब्दो में व्यक्त किया जा सकता है। बीजाको में कृत्रिम अक्षरो, विशेष चिह्नों, अको आदि का प्रयोग कर उनकी जटिलता बढा दी जाती है। चक्र बीजाक (wheel cipher), रज्जु बीजाक (string cipher), वृत्त बीजाक (circle cipher) तथा अन्य अनेक गुप्तलेखन रीतियो का वर्णन बीजलेखन सबधी पुस्तको में दिया है। अब सदेशों को बीजाको मे विविध रीतियो से परिवर्तित करनेवाले यत्रों का भी आविष्कार हुआ है, जिनसे बहुत थोडे समय मे लबे सदेशो के ऐसे बीजलेख तैयार हो जाते हैं जिनके अर्थ का पता लगाने की विधि निकालना असभव है। सैनिक तथा राजनयिक सदेशो के लिये अत्यावश्यक है कि विरोधी उन्हे न जान पाए, क्योकि एक छोटी सी बात के प्रकट हो जाने के भी भयकर प्रतिफल हो सकते हैं। इस कार्य के लिये बीजलेखी यत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। व्यापारिक कार्यो के लिये टेलेक्रिप्टॉन (Telekrypton) नामक एक यत्र प्राप्य है, जिसके द्वारा भेजे जानेवाले सदेश का बीजलेखन तथा तार से प्राप्त बीज मे सदेश का पुनर्लेखन अपने आप हो जाता है तथा वह अतिशीघ्रता के साथ छपता भी जाता है। [भ० दा० व०]

बीजापुर १ जिला, स्थिति १६° ५०' उ० अ० तथा ७५° ४०' पू० दे०। यह भारत के मैसूर राज्य मे स्थित जिला है, जिसके उत्तर मे महाराष्ट्र राज्य, पूर्व मे गुलबर्गा, दक्षिण में रायचूर एव धारवाड तथा पश्चिम मे बेलगाँव जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल ६,५९४ वर्ग मील तथा जनसख्या १६,६०,१७८ (१९६१) है। कृष्णा यहाँ की प्रमुख नदी है तथा उत्तर-पूर्वी सीमा पर भीमा नदी बहती है। मार्च एव अप्रैल का अधिकतम ताप लगभग ४३° सें० तथा सबसे अधिक ठढे मास जनवरी का ताप लगभग २१° सें० तक पहुँच जाता है। बीजापुर नगर की औसत वार्षिक वर्षा २४ इच है। यहाँ प्राप्त काली एव लाल मिट्टी मे ज्वार, बाजरा, गेहूँ दलहन, कपास तथा तिलहन की कृषि होती है।

२ नगर, स्थिति १६° ४९' उ० अ० तथा ७५° ४३' पू० दे०। बीजापुर जिले मे, बबई से ३५० मील दक्षिण-पूर्व स्थित नगर है। पठारी भाग मे स्थित होने के कारण इसकी जलवायु शुष्क एव स्वास्थ्यकर है। बीजापुर का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक है। यहाँ प्राचीन महलो के खडहर, मस्जिद, मकबरे आदि हैं। यहाँ मोहम्मद आदिलशाह का मकबरा (गोल गुबज) है, जिसके ऊपर ससार का द्वितीय विशालतम गुबज है। नगर मे अनाज तथा पशुओं का व्यापार अधिक होता है। इसकी जनसख्या ७४,८५४ (१९६१) है। गुजरात राज्य के महेसाणा जिले मे भी इसी नाम का एक नगर है। [रा० स० ख०]

इतिहास — जब १५ वी शती में बहमनी राज्य पाँच स्वतत्र राज्यों मे विभक्त हुआ तो बीजापुर मे आदिलशाही राजवश सत्तारूढ हुआ (दे० बीजापुर का आदिलशाही राजवश)। १६८६ मे औरगजेब ने इस वश का अत कर दिया। १७२४ मे निजाम ने दक्षिण में स्वतत्र राज्य कायम करते हुए बीजापुर भी ले लिया। १७६० में इसे पेशवा ने छीन लिया। पेशवा का पतन होते ही १८१८ में अग्रेजों ने इसे हथिया कर सतारा के राजा को सौंप दिया। उत्तराधिकार के झगडे से तग आकर अग्रेजी सरकार ने सतारा राज्य को सरकारी सपत्ति घोषित कर दिया। (१८४८)। १८८५ मे बीजापुर जिले का प्रशासकीय केंद्र बना दिया गया। स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् यह मैसूर राज्य का एक जिला हो गया।

बीजापुर का आदिलशाही राजवंश (१४८९-१६८६) इस राजवश का सस्थापक यूसुफ आदिल खाँ (१४८९-१५१०) था। इसके सबध में फरिश्ता का दावा है कि वह कुस्तुतुनिया के आटोमन राजघराने की शाही वशपरपरा का था। यूसुफ का पालन पोषण ईरान के सवाह मे हुआ था। वहाँ से वह १४६० के लगभग बहमनी दरबार मे आया और बहमनी वजीर महमूद गावाँ का सेवक बन गया। ऐसी साधारण स्थिति से उन्नति करता हुआ वह एक दिन बीजापुर डिवीजन का गवर्नर (तरफदार) बन गया। जब बहमनी राज्य के विघटन के लक्षण दिखाई देने लगे तब यूसुफ आदिल खाँ ने, बरार के फतुल्ला इमाद उल् मुल्क के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, १४९० मे अपनी स्वतत्रता की घोषणा कर दी। यूसुफ आदिल शाह ने अपने जीवन के आरभिक वर्षों मे अपने नवसस्थापित राज्य का विस्तार किया और उसे सुदृढ बनाया। इस सिलसिले मे गुलबर्गा के दस्तूर दीनार और गोआ के बहादुर गिलानी के साथ उसका सघर्ष हुआ और उसने उनका निर्दलन कर उनके भूभाग बीजापुर मे मिला दिए। शासन के अतिम वर्ष (१५१०) के फरवरी मास में पुर्तगालियो ने गोआ पर कब्जा कर लिया किंतु यूसुफ ने उसी वर्ष मई मे उनसे गोआ को फिर छीन लिया। इसके बाद कुछ ही महीनों मे यूसुफ आदिल शाह मर गया (लगभग अक्तूबर १५१०) और पुर्तगालियों ने उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्माइल से पुन नवबर १५१० मे गोआ वापस ले लिया। यूसुफ आदिल शाह पहला भारतीय शासक था जिसने शिया धर्म स्वीकार किया।

यूसुफ के बाद आठ आदिलशाही सुलतानो ने बीजापुर पर शासन किया

इस्माइल आदिल शाह, १५१०-१५३४, मल्लू आदिल शाह, १५३४ (अपदस्थ), इब्राहीम आदिल शाह प्रथम, इस्माइल का पुत्र,

१५३४-१५५८; अली आदिल शाह प्रथम, इब्राहीम का पुत्र, १५५८-१५८०, इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय, अली प्रथम के भाई तहमस्प का पुत्र, १५८०-१६२७, मुहम्मद आदिल शाह, इब्राहीम द्वितीय का पुत्र १६२७-१६५६, अली आदिल शाह द्वितीय, मुहम्मद का पुत्र १६५६–१६७२, और सिकदर आदिल शाह, अली द्वितीय का पुत्र १६७२–१६८६।

बीजापुर का सोलहवी शताब्दी का इतिहास उत्तराधिकार मे प्राप्त राज्यो के पारस्परिक तथा विजयनगर के साथ निरतर होनेवाले युद्धो का इतिहास है। इन तमाम शत्रुतापूर्ण सघर्षो के तात्कालिक कारण तो नगण्य ही हुआ करते थे किंतु इनके मूल मे किसी न किसी रूप मे शक्तिसतुलन स्थापित करने की भावना भी रहती थी। जब दक्खिन के सुलतानो की सुरक्षा के लिये विजयनगर से गभीर सकट की स्थिति उत्पन्न हो गई तो इन सुलतानो ने मिलकर उस राज्य के खिलाफ रहने का निश्चय किया और उन्होने जनवरी, १५६५ मे रक्षास तागाड्, जिसे भ्रमवश तालीकोट कहा जाता है, को लडाई मे उसे जबर्दस्त हार दी। इससे बीजापुर को दक्षिण की ओर राज्य विस्तार करने और उस क्षेत्र में स्थित हीरे की खानो की ओर बढने का मौका मिला। इसी शताब्दी के आरभ मे १५४६-१५४८ के बीच गोआ के पुर्तगालियो ने बीजापुर के आतरिक सकटो से लाभ उठाकर गोआ से सटे हुए बारदेज़ और सालसेट जिलो पर कब्जा कर लिया। १५७० मे पुर्तगालियों को गोआ और चाउल से निकाल बाहर करने का एक विफल प्रयत्न हुआ।

सोलहवी शताब्दी के अत मे अकबर ने दक्खिनी सुलतानो की सल्तनतो के खिलाफ कूटनीतिक आक्रमण शुरू किया और अली प्रथम के शासनकाल में बीजापुर की ओर भी उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। मुगल शाहशाह ने दो कूटनीतिक प्रतिनिधिमडल बीजापुर भेजे और आदिलशाही दरबार मे उनका स्वागत हुआ। उत्तर से आए हुए इस खतरे का सामना करने मे इब्राहीम द्वितीय ने नेतृत्व प्रदान किया और एक सघीय शासनव्यवस्था के निर्माण का प्रयत्न किया किंतु इस दिशा में किये गये उसके सारे प्रयत्न बेकार चले गए, क्योकि बरार मे जनवरी, १५९७ मे हुई सोनपेठ की लडाई मे बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुडा की समिलित सैन्यशक्ति मुगलो द्वारा परास्त कर दी गई। मलिक अबर के उत्थान के बाद इब्राहीम ने इस निजामशाही राजपुरुष को मुगलो का बढाव रोकने मे कुछ समय तक बडी मदद दी किंतु इन दोनो मे आगे चलकर इतना तीव्र मतभेद पैदा हो गया कि इब्राहीम ने मलिक अबर के विरुद्ध मुगलों से दोस्ती कर ली। अहमदनगर के निकटस्थ भाटवाडी मे हुई लडाई (१६२४) में इब्राहीम और मुगलों की समिलित सैन्यशक्ति को करारी हार खानी पडी।

शाहजहाँ ने १६३६ मे निजामशाही राज्य के बचे खुचे अवशेषो को अतिम रूप से समाप्त कर दिया जिसके फलस्वरूप बीजापुर के लिये मुगल खतरा उग्र हो उठा किंतु मुगल समर्थक आदिल शाही राजनेता मुस्तफा खाँ ने शाहजहाँ से ऐसा समझौता कर लिया जिससे बीजापुर से सटे हुए अस्तगत निजामशाही राज्य के क्षेत्रो मे बीजापुर को भी एक हिस्सा मिल गया। इसके बदले मे मुहम्मद शाह को मुगलो की प्रभुसत्ता स्वीकार करनी पडी और शाहशाह को पेशकश देना मजूर करना पडा। शाति का यह समझौता २० वर्षो तक कायम रहा और बीजापुर को दक्षिण मे राज्यविस्तार करने का मौका मिल गया जिसके फलस्वरूप १६५६ में बीजापुर का राज्य विस्तार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। वह अरब सागर से लेकर बगाल की खाडी तक विस्तृत आधे प्रायद्वीप मे फैल गया।

इन्ही २० वर्षो की अवधि में शिवाजी का भी उत्थान हुआ। उन्होंने १६४६ से ही आदिलशाही क्षेत्र के इलाको को एक एक करके अधिकार मे लाना शुरू कर दिया और अत मे कोंकण तथा पूर्वी और पश्चिमी घाटो के ऊपर स्थित बहुत बडे भूभाग पर कब्जा कर लिया। उन्होने एक हद तक मुगलो के विरुद्ध बीजापुर को सहायता भी दी किंतु उनका प्रमुख उद्देश्य अपने लिये एक नए राज्य का निर्माण कर लेना था जिसमे वे सफल हुए।

१६५३ मे औरगजेब दक्खिन के मुगल प्रात का शासक (गवर्नर) नियुक्त हुआ। उसने बीजापुर के प्रति जो नीति अख्तियार की उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह आदिल शाही और कुतुब शाही दोनो राज्यो को समाप्त कर देने पर तुला हुआ था। मुगलो की निरतर बढती हुई माँग को सतुष्ट करने के लिये बीजापुर को एक एक करके अपने अनेक जिले दे डालने पडे। बीजापुर का बाल नरेश सिकदर आदिल शाह शिवाजी के निर्दलन के लिये औरगजेब को किसी प्रकार की सैनिक सहायता देने की स्थिति मे नही था। इसमे औरगजेब को बीजापुर के विरुद्ध युद्ध छेडने और अतत आदिलशाही राज्य को मुगल साम्राज्य मे मिला लेने का अच्छा खासा बहाना मिल गया। १३ सितबर, १६८६ मे सिकदर आदिलशाह ने औरगजेब के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और आदिलशाही राजवंश समाप्त हो गया।

इस राजवश का सास्कृतिक अवदान भी कोई कम महत्वपूर्ण नही है। इब्राहीम रोजा और गोल गुम्बज दो अत्यधिक प्रसिद्ध इमारत हैं और इब्राहीम द्वितीय के दरबार मे लिखी गई महान् ऐतिहासिक कृति का मध्यकालीन भारत के सामान्य इतिहास ग्रथो मे निश्चय ही प्रथम स्थान है। आदिल शाही सुलतान सामान्यत प्रबुद्ध थे और सगीत का महान् प्रेमी इब्राहीम द्वितीय अपने को अबलावली और जगद्गुरु कहने मे गर्व का अनुभव करता था। [पी० एम० जे०]

बीड़ १ जिला, स्थिति १८° २८' उ० अ० से १९° २७' उ० अ० तथा ७४° ५४' पू० दे० से ७६° ५७' पू० दे०। यह भारत के महाराष्ट्र राज्य का एक जिला है। इसका क्षेत्रफल ४,२६८ वर्ग मील तथा जनसख्या १०,०१,४६६ (१९६१) है। इसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्व मे औरगाबाद तथा परभणी, दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में उस्मानाबाद तथा पश्चिम में अहमदनगर जिले हैं। उत्तरी सीमा पर गोदावरी नदी बहती है। यहाँ की वार्षिक वर्षा ३० इच है। जलवायु उष्ण तथा स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ की मिट्टी रेगर तथा काली है जिसमें कपास, ज्वार, चना, गेहूँ, बाजरा, दलहन तथा तिलहन उगाए जाते हैं। बीड, गेवराई, मजलेगाँव प्रसिद्ध नगर हैं।

२ नगर, स्थिति १८° ५९' उ० अ० तथा ७४° ४६' पू० दे०। यह बीड जिले का प्रमुख नगर है जो बेंदसूरा (Bendsura) नदी

के किनारे स्थित है। शाहजहाँ के समय मे इसके समीप शाही फौज से बीजापुर एवं अहमदनगर की फौजो मे कई युद्ध हुए थे। यहाँ चमड़े का काम अधिक होता है। इस की जनसंख्या ३३,०६६ (१९६१) है। [ध० प्र० स०]

बीदर १ जिला, स्थिति १७° ३०' से १८° ५१' उ० अ० तथा ७६° ३०' से ७७° ५१' पू० दे०। यह भारत के उत्तर-पूर्वी मैसूर राज्य का एक जिला है, जिसके उत्तर मे नादेड तथा उस्मानाबाद, पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम मे उस्मानाबाद, दक्षिण मे गुलबर्गा तथा पूर्व मे मेदक जिले स्थित है। इसका क्षेत्रफल २,११६ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,६३,१७२ (१९६१) है। इसके मध्य मे २,३५० फुट ऊँचा पठार है। यहाँ का जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यप्रद है। वर्षा का वार्षिक औसत ३७ इंच है। कृषि मे ज्वार, गेहूँ, धान, बाजरा, कपास तथा तिलहन उगाए जाते हैं।

२ नगर, स्थिति १७° ५५' उ० अ० तथा ७७° ३२' पू० दे०। बीदर जिले मे पूर्व की ओर, ऊँचे पठार पर स्थित व्यापारिक, ऐतिहासिक तथा संपन्न नगर है (दे० बीदर की बरीदशाही)। यहाँ कई मंदिर तथा मस्जिदें हैं। यहाँ की जनसंख्या ३२,४२० (१९६१) है। [रा० स० स०]

बीदर की बरीदशाही (१४८७–१६१९) इस शासक वंश का संस्थापक मलिक कासिम बरीद, तुर्की गुलाम था जो मुहम्मद शाह बहमनी के सेवक के रूप मे काम करता था। यह बहुत ही बुद्धिमान् और गुणसंपन्न था और बढ़ते बढ़ते बीदर का कोतवाल बन गया। अपनी शक्ति क्षमता का सिक्का जमाकर यह पतनोन्मुख बहमनी राज्य का प्रधान मंत्री हो गया। शिहाबुद्दीन महमूद से लेकर कलीमुल्लाह तक सारे बहमनी सुलतान केवल नाम के शासक थे, सत्ता के असली मालिक कासिम बरीद (मृत्यु १५०४) और उसका पुत्र अमीर बरीद (१५०४–१५४३) थे। अंतिम बहमनी सुलतान कलीमुल्लाह के बीदर से भाग जाने के पश्चात् अमीर बरीद सर्वोच्च शासक बन बैठा। कासिम बरीद और अमीर दोनो अपने स्वार्थों की पूर्ति और उत्तराधिकारी राज्यो पर अपना प्रभुत्व बढाने के लिये बहमनी सुलतानों का नाम लेते थे, किंतु बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर ने उनकी दाल नहीं गलने दी। महमूदशाह बहमनी ने बीजापुर के इस्माइल आदिलशाह से अपील की कि वह बीदर मे अमीर बरीद के प्रभुत्व को समाप्त करे, किंतु ऐसा कदम उठाने मे इस्माइल को अन्य उत्तराधिकारी राज्यो के बीजापुर के विरुद्ध हो जाने का खतरा जान पड़ा। बीजापुर की बढ़ती हुई शक्ति से डरकर अमीर बरीद ने अहमदनगर और गोलकुंडा को उस राज्य के विरोधी बना देने की अनेक चालें चली, किंतु उसके षड्यंत्र सफल नहीं हुए। उसकी एक राज्य को दूसरे राज्य से लड़ाने की चालो के कारण ही उसे 'दक्षिण की लोमड़ी' कहा जाता था। उसने अहमदनगर के बुर्हाननिजाम को आदिलशाही राज्य पर आक्रमण करने और रायचूर दोआब पर कब्जा करने के लिये उकसाया (१५१७)। बीजापुर के अधिकारी कमाल खाँ को भी उभारा कि वह अपने राजा इस्माइल को हटाकर गद्दी पर अधिकार कर ले। उसने अहमदनगर और गोलकुंडा को मिलाकर बहमनी सुलतान के नाम पर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया किंतु बीजापुर के सेनापति असद खाँ की सैनिक चातुरी से संयुक्त सेनाएँ पराजित हो गई (१५१४)। इस्माइल आदिलशाह ने संपूर्ण सत्ता ग्रहण करने पर अमीर बरीद को अच्छा सबक सिखाया। १५२९ के आसपास उसने बीदर पर आक्रमण कर दिया और उदगीर किले के निकट अमीर बीदर को पकड लिया। इस्माइल ने पहले उसकी हत्या कर देने का आदेश दिया किंतु असद खाँ के हस्तक्षेप पर उसकी जान बची। बीदर पर इस्माइल का अधिकार हो गया किंतु दूसरे वर्ष (१५३०) अमीर बरीद को ससमान बीदर भेज दिया गया। लेकिन इस उदारता के व्यवहार से भी बरीद का बीजापुर से मैत्री संबंध स्थापित नही हुआ और दक्षिणी राजनीति मे पूर्ववत शरारत जारी रही। कल्याणी और कांधार पर बीजापुर अपना अधिकार मानता था और दोनो जिले उसमे संमिलित हो गए। अमीर बरीद १५४३ मे मर गया।

रंगीन महल और अपने शानदार मकबरे के निर्माता अली बरीद (१५४३–१५७९), ने लंबे समय तक राज्य किया और बरीदशाही के राजाओ मे उसने पहले पहल 'शाह' की उपाधि धारण की। निजामशाही के शासको से कुछ समय तक उसके संबंध तनावपूर्ण रहे। लेकिन वह विजयनगर के विरुद्ध मुस्लिम राज्यों के संघ मे संमिलित हो गया और संयुक्त सेनाओ के बाएँ बाजू का कमांडर बनाया गया। १५७८–७९ में मुर्तजा निजामशाह ने बीदर पर आक्रमण कर दिया और अलीबरीद ने बीजापुर के अली प्रथम की सहायता से अपनी रक्षा की।

बरीदशाही के पतन का आरंभ अली बरीद शाह प्रथम की मृत्यु (१५७९) के बाद से माना जा सकता है। उसके पुत्र इब्राहीम ने, जो उसका उत्तराधिकारी बना, सात वर्षों तक राज्य किया (१५७९–१५८६) और उसके बाद उसका भाई कासिम बरीद द्वितीय १५८६ से १५८९ तक गद्दी पर रहा। कासिम बरीद के युवक पुत्र मिर्जा अली बरीद ने बहुत न्यून अवधि तक शासन किया। उसे परिवार के ही संबंधी ने गद्दी से हटा दिया और स्वयं अमीर बीदर शाह द्वितीय के नाम से राजा बन गया। उसके उत्तराधिकारी के रूप मे मिर्जा अमीर बरीदशाह का नाम बीदर के एक अभिलेख में मिलता है। इसी मिर्जा वली अमीर बरीद शाह के राज्यकाल में १६१९ में बीदर बीजापुर मे मिला लिया गया।

कुछ अत्यंत सुंदर निर्मित भवन बरीद शाहो की याद दिलाते हैं। उनके द्वारा प्रचलित की हुई मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं।

[पी० एम० जो०]

बीमा बीमा शब्द फारसी से आया है। भावार्थ है, जिम्मेदारी लेना। डा० रघुवीर ने इसका अनुवाद किया है आगोप। उसका अंग्रेजी पर्याय 'इंश्योरेंस' (Insurance) है। बीमा एक प्रकार का अनुबंध—ठेका है। दो या अधिक व्यक्तियो मे ऐसा समझौता जो कानूनी रूप से लागू किया जा सके, अनुबंध कहलाता है। बीमा अनुबंध का व्यापक अर्थ है कि बीमापत्र (पॉलिसी) मे वर्णित घटना के घटित होने पर बीमा करनेवाला एक निश्चित धनराशि बीमा करानेवाले व्यक्ति को प्रदान करता है। बीमा करानेवाला जो सामयिक अध्याजि (बीमाकिस्त, प्रीमीयम) बीमा करनेवाले को देता रहता है वही इस अनुबंध का प्रतिदेय है।

जुआ खेलने या बाजी लगाने मे भी दो व्यक्ति यही समझौता करते है कि अमुक घटना घटित होने पर दूसरा व्यक्ति अमुक धनराशि अदा करेगा। लेकिन उसे बीमा नही कहा जा सकता क्योकि स्वय उस घटना के घटित होने या न होने मे उस बाजी लगानेवाले का कोई स्वतत्र हित नही होता। अस्तु, बीमा अनुबध के लिये सामान्य अनुबध के तत्वो के साथ साथ बीमाहित (Insurable Interest) का अस्तित्व आवश्यक है। उदाहरणार्थ क के जीवन का बीमा कोई अजनबी व्यक्ति ख नही करा सकता क्योकि क के जीवित रहने या न रहने मे ख का कोई स्वतत्र हित नही है। लेकिन यदि ख क की पत्नी हो तो क के जीवित रहने मे ख का हित निहित होने से ख द्वारा क के जीवन का बीमा करना नियमानुकूल होगा।

बीमा हित का अर्थ व्यापक है। पति पत्नी के जीवित रहने मे एक दूसरे का हित तो स्पष्ट ही है। कर्जदार के जीवन मे महाजन का हित भी वैसा ही मान्य है। इसी प्रकार सपत्ति बीमा के लिये बीमाहित उस सपत्ति के स्वामी को तो है ही। यह हित उस व्यक्ति को भी उपलब्ध हो जाता है, जिसे किसी अनुबध के अतर्गत कोई सपत्ति उपलब्ध होती है। यही नही, सपत्ति पर कब्जा मात्र होने से, भले ही वह कब्जा गैरकानूनी हो, बीमाहित उपलब्ध हो जाता है। उदाहरणार्थ अगर किसी दिवालिए के पास उसके कब्जे मे कोई सपत्ति है, भले ही वह अधिकार स्वत. गैरकानूनी हो क्योकि दिवाला निकलने के बाद उसकी सारी सपत्ति पर अधिकारी अभिहस्ताकिनी का अधिकार हो जाता है—किंतु उस सपत्ति का बीमा कराने के लिये उस दिवालिए को भी अधिकारी मान लिया जाता है। किसी अनुबध द्वारा बीमा हित उत्पन्न होने का आधार उत्तरदायित्व अथवा हित दोनो हो सकते हैं। उदाहरणार्थ जब कोई व्यक्ति कोई मकान किराए पर लेता है तो उस मकान की हिफाजत का कोई उत्तरदायित्व उस पर नही होता लेकिन चूँकि उस अनुबध से किराएदार को सुरक्षा की सुविधा उपलब्धि होती है अत उस मकान की सुरक्षा के बीमे के लिये भी उस किराएदार को बीमा हित उपलब्ध हो जाता है।

बीमा अनुबध के लिये बीमा हित की आवश्यकता उक्त अनुबध की वैधता आँकने के लिये तो है ही, क्षतिपूर्ति के नियमो का पालन करने के लिये भी यह आवश्यक है। इस सबध मे अग्रेजी विधि (नियम) और भारतीय विधि मे कुछ अतर है। अग्रेजी विधि के अनुसार (समुद्र बीमा विधि १९०६ और जीवन बीमा विधि १७७४) आगोप्य हित का वस्तुत अस्तित्व आवश्यक है। किंतु भारतीय विधि मे ऐसा नही हैं। भारतीय अनुबध विधि की धारा ३० के अनुसार चूँकि जुआ या शर्त बाजी आदि के समझौते अवैध करार दिए गए हैं इसलिये बीमाहित का अस्तित्व वस्तुत न भी हो किंतु उसे उपलब्ध करने की उचित आधार पर आशा हो तो भी वह बीमा अनुबध की वैधता के लिये पर्याप्त है।

बीमा अनुबध का दूसरा प्रमुख आधार सद्भाव एव निष्कपटता है। अत यह आवश्यक है कि दोनो पक्ष (बीमा करनेवाला तथा बीमा करानेवाला) बीमा विषयक सभी तथ्य प्रगट कर दें। प्रगट कर देने का अर्थ यही है कि जान बूझकर कुछ छिपाया न जाय। यदि कोई सार तथ्य प्रगट न किया गया हो तो दूसरा पक्ष उक्त अनुबध से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

इस सबध मे भी अंग्रेजी और भारतीय विधि नियमो में कुछ अतर है। भारतीय बीमा विधि की धारा ४५ के अनुसार जान बीमा मे अनजाने मे, जानबूझकर तथा बेईमानी की इच्छा से यदि कोई गलतबयानी हो जाय तो वह क्षम्य मानी गई है। लेकिन सामान्य विधि (अग्रेजी कानून) के अनुसार अनजाने मे भी कोई गलतबयानी उस अनुबध को प्रभावित कर देती है।

बीमा के अनुबध दो प्रकार की श्रेणियो मे विभाजित किए जा सकते हैं। वे अनुबध जिनमे क्षतिपूर्ति का उत्तरदायित्व होता है और वे जिनमे क्षतिपूर्ति का प्रश्न नही होता वरन् एक निश्चित धनराशि अदा करने का अनुबध होता है। क्षतिपूर्ति विषयक बीमा सामुद्रीय (मैरीन इश्योरेंस) भी हो सकता है और गैरसामुद्रीय भी। पहले का उदाहरण समुद्र द्वारा विदेशो को भेजे जानेवाले समान की सुरक्षा का बीमा है और दूसरे का उदाहरण अग्निभय अथवा मोटर का बीमा है। क्षतिपूर्ति के अनुबध मे केवल क्षति की पूर्ति की जाती है। यदि एक ही वस्तु का बीमा एक से अधिक स्थानो (बीमा सस्थानो) मे है तो भी बीमा करानेवाले को क्षतिपूर्ति की ही धनराशि उपलब्ध होती है। हाँ, वे बीमा कपनियाँ आपस मे अदायगी की धनराशि का भाग निश्चित कर लेती हैं। क्षतिपूर्ति अनुबध का यह सिद्धात जीवन बीमा तथा दुर्घटना बीमा पर लागू नही होता। अत जीवन बीमा तथा दुर्घटना बीमा कितनी भी धनराशि के लिये किया गया है बीमा करानेवाले को (यदि वह जीवित है) अथवा उसके मनोनीत व्यक्ति को वह पूरी रकम उपलब्ध होती है।

बीमा सिद्धात का इतिहास समुद्र व्यापार के प्रारभ से ही सबधित है। अपने आदि रूप मे क्षतिपूर्ति का बीमा सिद्धात सहकारिता के सिद्धात पर आधारित था जिसे 'जेनरल एवेरेज' कहा जाता था। समुद्र में तूफान के समय अथवा अन्य खतरो के समय कभी कभी यह आवश्यक हो जाता था कि जहाज़ तथा अन्य सामान की रक्षा के लिये कुछ सामान समुद्र मे फेंक कर जहाज को हल्का कर लिया जाय। इस प्रकार होनेवाली हानि उस व्यापार योजना मे भाग लेनेवाले सभी हित आनुपातिक रूप से वहन कर लेते थे। यही सहकारिता का सिद्धात क्रमश बीमा के रूप मे पनपा।

समुद्र बीमा अनुबध में केवल एक खतरे के विरुद्ध बीमा नही किया जाता वरन् उसमे उन सभी खतरो का उल्लेख होता है जो समुद्र-यात्रा में सभाव्य हैं। ध्यान रहे कि बीमा करने के उपयुक्त वही खतरे माने जाते हैं जो सभाव्य हैं। ऐसी यात्रा मे जो हानियाँ निश्चित हैं, जैसे पशु आदि का बीमार हो जाना अथवा फल आदि का सड जाना इत्यादि, उनका बीमा नही किया जाता।

समुद्र बीमा की एक शर्त यह भी है कि उक्त अनुबध लिखित हो अर्थात् बीमापत्र उक्त बीमा अनुबंध का पूर्ण प्रमाण माना जाता है। समुद्र बीमा चूँकि क्षतिपूर्ति का अनुबध है अत बीमा करानेवाले के वक्तव्य वस्तुत सत्य होने चाहिए। साथ ही यदि बीमा करानेवाले ने यह तथ्य प्रगट नही किया हैं कि पहले उक्त बीमा करने से किसी ने इनकार कर दिया था तो भी उसका उस अनुबध की वैधता पर कोई प्रभाव नही पडता। अन्य प्रकार के बीमा सबधों में पहले की अस्वीकृतियाँ छिपाना उस अनुबध को अवैध करार देने के लिये पर्याप्त है।

क्षतिपूर्ति के बीमा तथा अन्य प्रकार के बीमा अनुबंध का एक और अंतर ध्यान देने योग्य है। जान बीमा में बीमा हित का अस्तित्व बीमा कराने के समय होना आवश्यक है, भले ही बीमे में वर्णित घटना घटित होने के समय वह हित रहे या न रहे। उदाहरणार्थ क अपनी पुत्री के विवाह के लिये यदि १५ वर्ष की अवधि का बीमा करा रहा है तो 'क' की पुत्री का अस्तित्व बीमा कराने के समय आवश्यक है। उस १५ वर्ष की अवधि के पूर्व ही क की पुत्री की मृत्यु भले ही हो चुकी हो, किंतु वह धनराशि क को प्राप्त हो जायगी। लेकिन अगर क की पुत्री का जन्म नही हुआ है तो उक्त प्रकार के बीमा अनुबंध के लिये आवश्यक बीमा हित वर्तमान न होने से क उक्त प्रकार का बीमा नही करा सकता। इसके विपरीत क्षतिपूर्ति के बीमा अनुबंध पर बीमा हित बीमा कराने के समय वर्तमान हो या न हो लेकिन उक्त क्षति घटित होने के समय धनराशि चाहनेवाले में उक्त बीमा हित व्यक्त होना आवश्यक है। उदाहरण के लिये क ने अपने मकान का अग्नि बीमा कराया और उस बीमे के चालू रहते हुए वह मकान ख को बेच दिया। बिक्री होने के दूसरे दिन उस मकान मे आग लग गई। ऐसी स्थिति में क द्वारा कराया गया बीमा यद्यपि चालू है, फिर भी उस मकान में क का बीमा हित न रहने के कारण उक्त बीमा अनुबंध के आधार पर क्षतिपूर्ति का दावा क नही कर सकता है क्योंकि क्षति होने के समय मकान के साथ साथ मकान का बीमा हित भी ख में व्यक्त हो चुका है। इसी सिद्धांत का एक निष्कर्ष यह भी है कि जो वस्तु क्षतिग्रस्त हुई है उसका मूल्यांकन बीमा कराए जाने के समय के मूल्य पर नही वरन् क्षति घटित होने के समय के मूल्य के आधार पर ही किया जाता है।

अग्नि बीमा — जैसा कहा जा चुका है, अग्नि बीमा क्षतिपूर्ति का अनुबंध है अर्थात् जो धनराशि बीमापत्र पर अंकित है वह अवश्य मिल जाएगी, ऐसा नही वरन् उस सीमा तक क्षतिपूर्ति हो सकेगी। अग्नि बीमा अनुबंध यद्यपि किसी न किसी संपत्ति के संबंध में ही होता है, फिर भी वह व्यक्तिगत अनुबंध ही है अर्थात् उक्त संपत्ति के स्वामी अथवा उस संपत्ति में बीमा हित रखनेवाले व्यक्ति को उस अनुबंध द्वारा क्षतिपूर्ति से आश्वस्त किया जाता है। अतः अगर बीमा करानेवाले को किसी संपत्ति में स्वामित्व अथवा अन्य प्रकार का कोई ऐसा अधिकार नही है जिससे उसे बीमा हित उपलब्ध होता हो तो वह बीमा करा लेने के बाद भी अनुबंध का लाभ नहीं उठा सकता।

संपत्ति का स्वामित्व बदलने पर यद्यपि बीमा हित हस्तांतरित हो जाता है किंतु बीमा अनुबंध अंग्रेजी कानून के अनुसार स्वतः हस्तांतरित नही होता। यदि संपत्ति विक्रय के साथ साथ तत्संबंधी अनुबंध लाभ भी हस्तांतरित करना अभिप्रेत हो तो भी बीमा करने वाले की अनुमति आवश्यक है। भारतीय विधि में ऐसा नही है। स्थिर संपत्ति हस्तांतरण विधि की धारा ४९ और १३३ के अनुसार कोई विपरीत अनुबंध के अभाव मे संपत्ति प्राप्तकर्ता बीमा अनुबंध का लाभ क्षतिपूर्ति के लिये माँग सकता है। एक ही वस्तु मे एक से अधिक लोगों को कुछ कुछ अधिकार उपलब्ध हो सकते हैं एवं उनके विभिन्न प्रकार के बीमा हित हो सकते हैं। अतः वे सब अपने हितों के आधार पर उस एक की संपत्ति पर अनेक बीमे करा सकते हैं।

अग्नि बीमा अनुबंध पर क्षतिपूर्ति का दावा करने के लिये यह आवश्यक है कि क्षति का निकट कारण अग्नि ही हो और अग्नि का अर्थ है कि चिनगारी निकली हो (अंग्रेजी में इसे इग्निशन Ignition कहते हैं)। किसी वस्तु में अत्यधिक दबाव से उस वस्तु का जल जाना आग लगना नहीं माना जाता। बिजली गिरने से होनेवाली हानि पर 'चिनगारी लगने' की अनिवार्यता का नियम लागू नहीं होगा। विस्फोट द्वारा हुई हानि अग्नि से हानि नहीं कहलाती, भले ही वह विस्फोट अग्नि से ही हुआ हो। दूसरा आधार यह है कि हानि का निकट (Proximate cause) कारण अग्नि ही होना चाहिए। इसी प्रकार अग्नि लगने से उत्पन्न स्थिति में किसी तीसरे पक्ष द्वारा किए गए कृत्यों से उत्पन्न हानि भी अग्नि हानि में शामिल नहीं की जाती। लेकिन अग्नि अथवा क्षतिपूर्ति की सीमा का निर्धारण अग्नि बुझने के तुरंत बाद ही नहीं किया जाता वरन् उस समय किया जाता है जब उक्त बीमा संपत्ति बीमा करानेवाले को सौंपी जाती है।

अग्नि बीमा अनुबंध तीन प्रकार के होते हैं :

१—मूल्यांकित अथवा अमूल्यांकित

२—अपूर्ण तथा अनिश्चित

३—निर्धारित तथा औसत

मूल्यांकित बीमा अनुबंध में यदि संपत्ति पूर्ण नष्ट हो जाय तो बीमा पत्र पर लिखित धनराशि बीमा करनेवाले को अनिवार्य रूप से देनी पड़ती है। अमूल्यांकित बीमा अनुबंध में यदि पूर्ण संपत्ति नष्ट हो जाय तो उक्त संपत्ति का मूल्यांकन उस समय किया जाता है। अपूर्ण तथा अनिश्चित अग्नि बीमा अनुबंध में वस्तुओं की सूची नहीं दी जाती वरन् अग्नि से हानिवश का बीमा सामान्य रूप से किया जाता है। निर्धारित अग्नि बीमा अनुबंध में धनराशि निर्धारित बीमा पत्र पर लिखी रहती है। औसत अग्नि बीमा अनुबंध में आनुपातिक क्षतिपूर्ति की जाती है। अग्नि बीमा अनुबंध में पुनःस्थापन (Restoration or Restitution), औसत (Average) तथा आंशिक देनदारी (Partial liability) सिद्धांत लागू होते हैं।

जान बीमा — जान बीमा का प्रारंभ भी समुद्री बीमा के साथ साथ ही हुआ क्योंकि व्यापारिक यात्रा पर जानेवाले पोतों के मालिकों को जहाँ पोत नष्ट होने की संभावनाओं के विरुद्ध प्रबंध करने की चिंता थी, वहाँ उन जहाजों के कप्तान का जीवन भी उतना ही मूल्यवान था। साथ ही जब कारीगरों के संघों की स्थापना होने लगी और जन्म मृत्यु के लेखे रहने के साथ साथ आयु सीमा के औसत निकालने के नियमों की स्थापना की जा सकी तो जान बीमा अनुबंध का भी काफी प्रसार हो सका। लेकिन उस समय के बीमा पत्रों की शर्तें काफी कठिन होती थीं। अमरीकी गृहयुद्ध के पूर्व के जान बीमा अनुबंध की शर्तों के अनुसार बीमा पत्र का कोई समर्पण मूल्य (Surrender value) नही होता था। बीमे पर कोई कर्ज नहीं मिल सकता था। बीमा प्रव्याजि (प्रीमियम) अदा करने के लिये अतिरिक्त समय (Grace period) नही मिलता था तथा आत्महत्या, द्वंद्वयुद्ध अथवा समुद्रयात्रा करने पर बीमा अवैध करार दे दिया जाता था।

जान बीमा दो व्यक्तियों—बीमा करानेवाले और बीमा करने-वाले—के बीच ऐसा अनुबंध है जिसके अनुसार बीमा करानेवाला

निश्चित अवधि तक सामयिक अदायगियो के बदले एक निश्चित धनराशि प्राप्त करने का वचन लेता है और बीमा करानेवाला उन निर्धारित अदायगियो के बदले एक निश्चित रक़म निश्चित समय पर अदा करने का वचन देता है। अन्य प्रकार के बीमा अनुबधो और जान बीमा अनुबध का अतर यही है कि यह केवल मानव जीवन से सबधित है और बीमा अनुबध का प्रकार अथवा रूप कुछ भी हो उसमे मूल शर्त यही होती है कि अनुबध के चालू रहने के काल मे यदि बीमा करानेवाले की मृत्यु हो जायगी तो बीमा करनेवाला बीमापत्र पर लिखित धनराशि अदा करेगा। मृत्यु का कारण केवल दो स्थितियो मे ही इस अनुबध को समाप्त कर सकता है। एक, यदि बीमा कराने वाले के ही किसी गैरकानूनी कृत्य द्वारा उसकी मृत्यु हुई हो। दो, यदि बीमा करानेवाले की मृत्यु ऐसे कारणो से हुई हो जिन्हे बीमापत्र मे बाद कर दिया गया है। इस विषय पर अग्रेजी विधि और भारतीय विधि मे कुछ अतर है। भारत मे आत्महत्या का प्रयत्न करना तो अपराध है किंतु आत्महत्या अपराध नही है अत आत्महत्या करने पर ऐसा ही बीमा अनुबध समाप्त किया जा सकता है जिसके बीमापत्र मे यह शर्त लिखित हो। अग्रेजी विधि मे आत्महत्या का विषय पहली श्रेणी मे आता है।

जान बीमा मे मिलनेवाली धनराशि बीमा करनेवाले पर कर्ज माना गया है। इसलिये सपत्ति-हस्तातरण-विधि (T P A) की धारा तीन के अतर्गत यह 'सपत्ति' की श्रेणी मे आ जाता है तथा उक्त विधि की धारा १३० के अनुसार इसका हस्तातरण किया जा सकता था। अब जान बीमा की धनराशि के हस्तातरण की व्यवस्था बीमा विधि की धारा ३८ व ३९ मे की गई है। उक्त धनराशि का हस्तातरण अभिहस्ताकन (assignment) द्वारा भी किया सकता है (धारा ३८) और नामाकन (nomination) द्वारा भी (३९)। अभिहस्ताकन मे बीमा करानेवाला उस बीमा अनुबध से उत्पन्न अपने अधिकारो एव हितो को दूसरे को हस्तातरित कर देता है। नामाकन का अर्थ केवल यह है कि बीमा करानेवाले की मृत्यु पर यदि नामाकित व्यक्ति जीवित हो तो बीमे की धनराशि उसे उपलब्ध हो जाय। नामाकन बिना सूचना के बदला जा सकता है। यदि नामाकित व्यक्ति की मृत्यु पहले हो जाय तो बीमा करानेवाले को ही धनराशि पाने का अधिकार पुन प्राप्त हो जाता है। अभिहस्ताकन मे ऐसा नही है। यदि एक बार बीमा अनुबध के अधिकार अभिहस्ताकित कर दिए गए तो उसकी पूर्व अनुमति के बिना दूसरा अभिहस्ताकन नही किया जा सकता। यदि बीमा करानेवाले के पहले अभिहस्ताकित की मृत्यु हो जाय तो वे अधिकार बीमा करानेवाले को वापस नही मिलते वरन् उस मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारियो को उपलब्ध हो जाते हैं।

दुर्घटना बीमा अनुबध के अतर्गत दो प्रकार की परिस्थितियाँ आ सकती हैं। एक, दुर्घटनावश दूसरो की क्षतिपूर्ति करने का भार तथा दो, दुर्घटनावश स्वय अथवा स्वसपत्ति को होनेवाली हानि। अमरीका मे इसे कैजुअल्टी इश्योरेंस कहते हैं। अग्रेजी विधि मे इसे क्षतिपूर्ति बीमा की श्रेणी मे रखा जाता है। भारतीय बीमा विधि में ये प्रकार स्वीकार नही किए गए हैं वरन् यहाँ का विभाजन जान बीमा तथा सामान्य बीमा मे किया गया है। अत. उपर्युक्त वर्णित दो परिस्थितियो मे बादवाली परिस्थिति जान बीमा की श्रेणी मे आती है। इस प्रकार की दुर्घटनाओ का बीमा मोटर सवारी विधि (१९३०) तथा विमान वाहन विधि (Air navigation act १९३४) के अतर्गत अनिवार्य कर दिया गया है ताकि क्षतिग्रस्त के हितो की रक्षा हो सके। [जी० के० अ०]

बीमा विज्ञान (Insurance and Actuarial Science) केवल बीमे का साधारण ज्ञान नही है, अपितु यह गणित, रसायन आदि अन्य विज्ञानो की तरह ही एक विशेष प्रकार का विज्ञान है, जिसकी उन्नति विशेष रूप से बीमे के सबध मे हुई है। इसका समुचित उपयोग जीवन बीमा मे ही होता है, यद्यपि कुछ न कुछ उपयोग अन्य स्थलो मे भी हो सकता है।

इस विज्ञान की आधार भित्ति विशेषकर प्रायिकता (Probability) तथा साख्यिकीय विज्ञान (Statistical science) है। गणित की उन शाखाओ को जिनका उपयोग इस विज्ञान मे होता है, बीमा गणित (Acturial mathematics) कहा जा सकता है। इसी प्रकार साख्यिकी की उस शाखा को जिसका उपयोग इस विज्ञान मे होता है बीमा साख्यिकी (Actuarial statistics) कह सकते हैं।

भूत और वर्तमान काल के आँकडो के आधार पर बीमाविज्ञ हमे बतलाता है कि प्रति सेकड एक मनुष्य मर जाता है। इस प्रकार हर समय ही कोई न कोई मर रहा होता है। तब भी हम अपने दैनिक कार्यों मे कभी इस विचार को पास फटकने नहीं देते। यदि हम हर समय या अधिकाश समय यही सोचते रहे कि कही अगले क्षण हमे काल का ग्रास न बनना पडे, तो जीवन दूभर एव निराशामय हो जाएगा। ऐसा क्यो है? इसलिये कि हम सभी मे कुछ न कुछ 'बीमाविज्ञ' का अश विद्यमान है। एक दिन मे शायद २५ हजार मनुष्यो मे से एक के मरने की बारी आती हो, अत स्वाभाविक है हर एक अपने को २४,९९९ मे समझता है। इस हिसाब से कह सकते है कि एक मनुष्य को अगले चौबीस घटो मे मृत्यु की सभावना २५ हजार मे एक, या १/२५००० = ० ००००४, बार है और चौबीस घटे जीवित रहने की सभावना ० ९९९९६ बार है। दोनो मिलकर निश्चित ही पूरा एक होना चाहिए, क्योकि जीवित रहने या न रहने के सिवा तीसरा कोई मार्ग नही है।

उपर्युक्त गणना मे सब मनुष्यो को एकसाँ मृत्युशील माना गया है, पर वास्तव मे ऐसा नही है। किस प्रकार के मनुष्यो को एक जैसा माना जाए, और किस प्रकार के मनुष्यो को इनसे भिन्न और कितना भिन्न माना जाए, ये सब जटिल प्रश्न है और इनको हल करना बीमाविज्ञ का काम है। और तो और, जब कोई व्यक्ति जीवनवृत्ति (life annuity) के लिये आवेदनपत्र देता है, तो उसकी मर्त्यता कम मानी जाती है, और जब वही व्यक्ति जीवन बीमे का प्रस्ताव रखता है तब बहुधा उसकी डाक्टरी परीक्षा की जाती है और फिर भी 'मर्त्यता' कुछ अधिक मानी जाती है।

मान लीजिए सनई एक २० वर्षीय स्वस्थ युवक है। उसके व्यवसाय, वशपरपरा, रहन सहन आदि सब का विचार कर बीमा विज्ञ ने यह निश्चित किया कि एक वर्ष मे सनई जैसे एक हजार व्यक्तियो

मे से दो के मरने की आशा है, तो हम कहेंगे कि मर्त्यता की वार्षिक दर हजार मे दो, अथवा ० ००२, है।

बीमाविज्ञ आँकड़ों के आधार पर एक श्रेणी विशेष या समूह के लिये भविष्यवाणी करते है। उन्हें किसी व्यक्तिविशेष मे कोई रुचि नही होती। वे मरनेवाले व्यक्तियो के परिवार की सहायता करना चाहते हैं। इसके लिये उन्होने बीमा योजनाएँ बनाई हैं। वे प्रजक युवको को कहते हैं, "हमारी किसी जीवन बीमा योजना मे बीमा करा लो। असमय मे मरनेवालो का भला होगा, जीनेवालो का भी भला होगा।" जीवन बीमा तथा अन्य प्रकार के बीमो मे यह बडा अंतर है कि अन्य बीमा मे जिस वस्तु का बीमा होता है उसके नष्ट होने पर, मिलनेवाले बीमाधन मे वही वस्तु फिर प्राप्त हो सकती है। उसमे बीमाकृत वस्तु का मूल्य होता है, किंतु जीवन का मूल्य नहीं होता। जीवन का बीमा गारंटी के रूप मे नही हो सकता। जीवन लौटाया नही जा सकता। बीमाधन से अर्जक व्यक्ति की मृत्यु से उसके आश्रितो को होनेवाली आर्थिक हानि को दूर या कम किया जा सकता है। यही काम प्रत्येक जीवन बीमा योजना करती है। सनद चाहे बीमा कराने के तीन महीने बाद ही क्यों न मर जाय, उसके आश्रितो को पूरा बीमा धन मिलेगा।

बीमाविज्ञ जानते है कि थोडे से लोगो का बीमा करने से भविष्यवाणी के अंकों और वास्तविक अंकों मे अंतर अधिक हो सकता है, पर बडे पैमाने पर बीमा करने से भविष्यवाणी अधिक सही उतरती है। इसलिये किसी भी बीमायोग्य व्यक्ति को बिना बीमा कराए छोडना नही चाहिए। साथ ही बीमाविज्ञ यह भी जानते हैं कि अस्वस्थ मनुष्य अधिक सुगमता से बीमा कराने को तैयार हो जाते हैं तथा इस प्रकार के ही लोग सुगमता से बडी रकमो का बीमा प्रस्ताव करते हैं। अतएव बडी धनराशि तथा अधिक उम्रवाले लोगों के बीमा प्रस्तावो के संबंध मे वे विशेष सावधानी रखते हैं तथा उचित डाक्टरी परीक्षा की सलाह भी देते हैं।

बडे पैमाने पर बीमे का काम करने से बीमाकृत जनसमूह से बहुत बडी धनराशि आती है। भारतीय जीवन बीमा निगम (L I C I) को इस प्रकार लगभग ३५ लाख रुपए प्रति दिन की आय है। इतनी बडी धनराशि से अच्छा सूद कमाया जा सकता है। जीवन बीमा निगम के पास लगभग सात अरब रुपयो की धनराशि है, जिससे ब्याज आदि के रूप मे लगभग ३० करोड रुपये वार्षिक प्राप्त होते हैं। इतनी बडी धनराशि से राष्ट्र की बडी सेवा होती है। इस धनराशि का एक बडा भाग, सरकारो के पास सूद पर जमा किया जाता है, जिसका पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित करने में उपयोग होता है। साथ ही उपर्युक्त धनराशि से निजी व्यवसायो को भी पूँजी प्राप्त होती है। बडे पैमाने पर काम करने मे बडी मेहनत और बडे संगठन की भी आवश्यकता है। इसके प्रबंध मे बडा व्यय भी होता है। जीवन बीमा निगम का वार्षिक व्यय ३५ करोड रुपए है।

बीमाविज्ञ मर्त्यता, भविष्य मे कमाया जानेवाला ब्याज और होनेवाली आय तथा बीमे के लिये आवश्यक संगठन पर होनेवाले व्यय आदि पर ध्यान रखते हैं। ये सभी पहले से ठीक ठीक निश्चित नही किए जा सकते, फिर भी भूत, वर्तमान और समाज की दशा आदि देखकर यथासंभव सही अनुमान लग जाता है। इन्हीं सब बातों पर विचार कर बीमा किस्त निर्धारित की जाती है।

किसी बीमा संस्था की प्रमुख धनराशि को ही देखकर उसकी आर्थिक दशा का अनुमान नहीं किया जा सकता। जो कुछ बीमाकृत व्यक्तियों से प्राप्त होता रहता है, उसका अधिकांश उन्हें या उनके आश्रितों को कई वर्षों बाद बीमा धन के रूप में लौटाया जाता है। एक नई बीमा संस्था या तेजी से वृद्धि करनेवाली बीमा संस्था के पास आर्थिक दशा खराब होने पर भी अधिक धन राशि होगी, अतः मूल्यांकन के रूप में बीमाविज्ञ का अंकुश संस्था पर न हो तो प्रबंधकों को बढ़ती हुई धनराशि को लुटा देने का प्रलोभन हो सकता है। इसलिये बीमाविज्ञ को समय समय पर जीवनांकिक मूल्यांकन करना पड़ता है।

बीमाविज्ञ बनने के लिये गणित की योग्यता बहुत अच्छी होनी चाहिए। बीमाविज्ञ को किसी भी प्रश्न पर विचार करते समय, हर पक्ष से देखना होता है। उसे सांख्यिकी का अच्छा ज्ञान तथा व्यावहारिक अर्थशास्त्र का भी कुछ ज्ञान प्राप्त करना होता है। बीमा विज्ञान की शिक्षा एक उत्तम प्रकार की शिक्षा है और मनुष्य को किसी भी क्षेत्र में योग्यतापूर्वक काम करने में सहायता देती है।

गणित का एक स्नातक लगभग छह वर्षों में यह योग्यता प्राप्त कर सकता है। कुछ पहले ही बीमा गणित का अध्ययन प्रारंभ करने से वह और जल्दी भी योग्यता प्राप्त कर सकता है। इस समय भारत में लगभग १३० पूर्ण बीमाविज्ञ (F. I. A) हैं। इन सभी बीमाविज्ञ ६०० रु० से प्रारंभ कर २० वर्षों में १,६०० रु० मासिक वेतन पर पहुँचने की आशा कर सकते हैं। वे प्रायः तेजी से उन्नति कर शीघ्र ही सर्वोच्च पदों पर पहुँच सकते हैं। [ऑ० प्र०]

बीम्स, जॉन (१८३७–१९०२ ई०) — का जन्म २१ जून, १८३७ को हुआ। ये रारेंड टॉमस बीम्स के पुत्र थे। उन्होंने मर्चेंट टेलर्स स्कूल और हेलीबरी (१८५६-५७) में शिक्षा प्राप्त की। १८५८ में ये भारत आए और १८५९-६१ में आई० सी० एस० अफसर के रूप में पंजाब में कार्य किया।

तत्पश्चात् उनकी नियुक्ति लोअर बंगाल में हुई। ये कमिश्नर और बोर्ड ऑव रेवेन्यू के सदस्य रहे।

बीम्स अपने समय के एक प्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद थे। उनके ग्रंथ अब भी उपयोगी सिद्ध होते हैं। उनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रमुख रचना 'ए कंपैरेटिव ग्रामर ऑव दि आर्यन लैंग्वेजेज' (१८७२-७९) है। इसके अतिरिक्त 'आउटलाइंस ऑव इंडियन फ़ाइलालॉजी' (१८६७) और 'बंगाली व्याकरण' (१८९१) उनकी दो अन्य रचनाएँ हैं। १८६९ मे बीम्स ने सर एच० इलियट कृत 'सप्लीमेंटल ग्लोसरी ऑव इंडियन टर्म्स' का संपादन किया। उनके भाषा संबंधी तथा अन्य खोजपूर्ण लेख 'जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बेंगाल', 'इंपीरियल' और एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यूज' मे प्रकाशित हुए हैं। मई, १९०२ मे उनकी मृत्यु हो गई। [न० सा० वा०]

बीरबल साहनी (सन् १८९१-१९४९) अंतरराष्ट्रीय ख्याति के भारतीय वनस्पतिविज्ञानविद् थे। इनका जन्म १४ नवंबर, १८९१

ई० को शाहपुर जिले के भेडा गाँव मे हुआ था। इनके पिता रुचिराम साहनी रसायन के प्राध्यापक थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा लाहौर में हुई, जहाँ से स्नातकोत्तर शिक्षा के लिये ये कैंब्रिज गए और अन्वेषण कार्य भी वहाँ शुरू किया। इनको १९१९ ई० मे लदन विश्वविद्यालय से और १९२९ ई० मे कैंब्रिज विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधि मिली थी। भारत लौट आने पर ये पहले हिंदू विश्वविद्यालय मे वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त हुए। १९३६ ई० में ये रॉयल सोसायटी ऑव लदन के सदस्य (एफ० आर० एस०) चुने गए और कई वर्षों तक सायस काग्रेस और नैशनल ऐकेडेमी ऑव सायसेज़ के अध्यक्ष रहे। इनके अनुसधान फॉसिल पौधो पर सबसे अधिक हैं। इन्होने एक फॉसिल 'पेंटोजाइली' की खोज की, जो राजमहल पहाडियो मे मिला था। इसका दूसरा नमूना अभी तक कही नही मिला है। हिंदू विश्वविद्यालय से डा० साहनी लाहौर विश्वविद्यालय गए, जहाँ से लखनऊ मे आकर इन्होने २० वर्ष तक अध्यापन और अन्वेषण कार्य किया। ये अनेक विदेशी वैज्ञानिक सस्थाओ के सदस्य थे। लखनऊ मे डा० साहनी ने पैलिओबोटैनिक इस्टिट्यूट की स्थापना की, जिसका उद्‌घाटन प० जवाहरलाल ने १९४९ ई० के अप्रैल मे किया था। पैलिओबोटैनिक इस्टिट्युट के उद्‌घाटन के बाद शीघ्र ही साहनी महोदय की मृत्यु हो गई। इन्होने वनस्पति विज्ञान पर पुस्तकें लिखी हैं और इनके अनेक प्रबध ससार के भिन्न भिन्न वैज्ञानिक जर्नलो मे प्रकाशित हुए हैं। डा० साहनी केवल वैज्ञानिक ही नही थे, वरन् चित्रकला और सगीत के भी प्रेमी थे। भारतीय सायस काग्रेस ने इनके सम्मान मे 'बीरबल साहनी पदक' की स्थापना की है, जो भारत के सर्वश्रेष्ठ वनस्पति वैज्ञानिक को दिया जाता है। इनके छात्रो ने अनेक नए पौधो का नाम साहनी के नाम पर रखकर इनके नाम को अमर बनाए रखने का प्रयत्न किया है।

[फू० स० व०]

बीरभूम स्थिति २३° ३३' से २४° ३५' उ० अ० तथा ८७° १०' से ८८° २' पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी बगाल राज्य का एक जिला है। इसका क्षेत्रफल १,७५७ वर्ग मील तथा जनसख्या १४,४६,१५८ (१९६१) है। इसके पश्चिम मे सथाल परगना (बिहार), उत्तर मे मालदह, पूर्व मे मुर्शिदाबाद तथा दक्षिण मे वर्धमान जिले स्थित हैं। छोटा नागपुर पठार का पूर्वी किनारा यहाँ तक फैला है। दक्षिण-पूर्व की तरफ जलोढ मिट्टी के मैदान तथा पश्चिम की ओर ऊँची ऊँची कटक (रिज़) पहाडियाँ मिलती हैं। जलप्रवाह दक्षिण-पूर्व की ओर है। मोर, अजय, हिंगला, ब्राह्मणी एव द्वारिका आदि नदियाँ बहती हैं। कोई भी नदी नाव चलाने योग्य नही है। पूर्व की ओर धान की कृषि अधिक होती है। पश्चिमी भाग बीहड तथा अनुपजाऊ है। धान के अलावा मक्का, चना, गन्ना आदि भी पैदा किया जाता है। जलवायु शुष्क रहती है। वार्षिक वर्षा का औसत ५७ इच है। अत नदियो मे बाढ अधिक आती है। अजय नदी के किनारे कुछ मात्रा मे कोयला तथा पश्चिम की ओर लोहा मिलता है। इसके अलावा चूना पत्थर, अभ्रक, चीनी मिट्टी, बालू पत्थर आदि भी मिलता है। रायपुर, इलाम बाजार, अलुदा, सूरी आदि मे सूती कपडा तथा विष्णुपुर, करिधा, तातिपार आदि में रेशमी कपडा बुना जाता है। पूर्व मे रेशम उद्योग काफी महत्वपूर्ण है।

बी० सी० जी० बैसिलस कालमेट गेरें (Bacilns Calmette-Girerin) का सक्षिप्त नाम है। यह एक वैक्सीन है, जो सजीव किंतु विषहीन क्षय जीवाणुओ से तैयार किया जाता है। नीरोग व्यक्तियो को क्षय रोग से बचाने में यह वैक्सीन प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

बी० सी० जी० का जन्म — पैस्टर ने सिद्ध किया था कि जीवाणु जब एक पशु से दूसरे पशु के शरीर मे जाते हैं तब उनकी विषमयता बढती है और इसके विपरीत कृत्रिम सवर्धनो मे वे क्रमश विषहीन होते जाते हैं। इसी आधार पर पैस्टर के शिष्य और फ्रास में लील स्थित पैस्टर इस्टिट्यूट के निदेशक अलबर्ट कालमेट ने पशु चिकित्सा विशेषज्ञ कामिल गेरैन् के सहयोग से सन् १९०३ मे अनुसधान आरभ किए। सन् १९०६ मे कालमेट ने सिद्ध किया कि शरीर मे क्षय प्रतिरोध की क्षमता विषहीन जीवाणुओ की उपस्थिति पर निर्भर रहती है। अतएव अब ऐसा जीवाणु, जो विषहीन हो और साथ ही जिसके पैतृक गुण वैसे ही रहें तैयार करने का काम होने लगा। १९०८ ई० में विषहरण की विधि ज्ञात हुई और अनुसधान बी सी जी. निर्माण की ओर प्रवृत्त हुआ। विष भरे बोवाइन क्षय जीवाणुओ का ग्लिसरीनयुक्त वृषभपित्त मे उबाले आलू पर सवर्धन आरभ किया गया। २३ दिन तक निरतर सवर्धन करने पर, जीवाणुओ की विषमयता कम होने लगी। अनेक कठिनाइयो और प्रथम महायुद्ध की छाया मे, विषम परिस्थितियो के बावजूद, कालमेट और गेरैन् ने सवर्धन का क्रम अटूट रखा, हर तीसरे हफ्ते नया सवर्धन और नई पीढी की विषमयता की जाँच होती रही। याद रहे कि इस प्रयोग मे एक बडी कठिनाई यह थी कि कही क्रम टूटा तो पुन शुरू से चलना पडेगा। अततोगत्वा १३ वर्ष और २३० अनवरत सवर्धनो के बाद, सन् १९२१ मे नए जीवाणु का जन्म हुआ, जो क्षय का जीवाणु होते हुए भी विषहीन था तथा रोग उत्पन्न करने मे असमर्थ था।

बी० सी० जी० के प्रयोग — पहले पशुओं पर प्रयोग किए गए, जो सफल रहे। तब चैरिटी हॉस्पिटल, पैरिस के बालरोग विशेषज्ञ, डाक्टर वीलहाले, ने साहस किया और एक क्षयग्रस्त माता के नवजात शिशु को जन्म के तीसरे, पाँचवें और सातवें दिन मुख से छह मिलीग्राम बी० सी० जी० खिलाया गया। तीन महीने के बाद भी बच्चे को हानि नही हुई, उल्टे वह तपेदिक से भी बचा रहा। फिर तो १९२१ के बाद सैकडों बच्चो को सफलतापूर्वक बी० सी० जी० खिलाया गया।

१९३० ई० मे ल्युबेक मे भीषण दुर्घटना हो गई। यहाँ पर २४२ बच्चो को बी० सी० जी० दिया गया और इनमे से ६८ मर गए। बडा बावेला मचा। अत मे न्यायिक जाँच हुई और ल्युबेक के दो डाक्टर, बी सी जी के साथ असावधानी के कारण विषभरे क्षय जीवाणु मिला देने के, दोषी पाए गए। अगले २० वर्षों मे बी० सी० जी का जितना अध्ययन और प्रयोगात्मक परीक्षण हुआ उतना शायद ही किसी ओषधि का हुआ होगा। अब यह सिद्ध हो चुका है कि यह हानिरहित सफल टीका है और टीका लगवानेवालो मे से ८० % को चार पाँच वर्ष तक सुरक्षित रखता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद इसे पूर्ण मान्यता प्राप्त हुई। अनेक देशों ने यह टीका लगवाना कानूनन अनिवार्य कर दिया है। ससार की ५० से

अधिक प्रयोगशालाओं में यह टीका बनता है और २० करोड़ से अधिक लोगों को टीका लग चुका है।

भारत में बी० सी० जी० का टीका मद्रास के निकट गिंडी नामक स्थान पर बनता है और समूचे दक्षिण-पूर्व एशिया को भेजा जाता है। हमारे देश में अब तक १५ करोड़ से अधिक लोगों की परीक्षा हो चुकी है और पाँच करोड़ से अधिक लोगों को टीका लग चुका है।

बी० सी० जी० का टीका लगाने से पूर्व ट्यूबरक्युलिन परीक्षा करते हैं और यदि परीक्षाफल निगेटिव रहा तो बी० सी० जी० की सुई लगाते हैं। [भा० श० मे०]

बुंदेलखंड बुंदेला राजपूत शासकों द्वारा शासित भारत का वह भूभाग जिसके उत्तर में यमुना, पश्चिम और उत्तर में चंबल नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी तथा जबलपुर जिले का कुछ भाग तथा पूर्व में बघेलखंड, मिर्जापुर, विंध्याचल पर्वतमाला है। इसमें सागर, दमोह, जबलपुर जिले का कुछ भाग, हमीरपुर, जालौन, झाँसी, बाँदा, आदि जिले तथा स्वतंत्र भारत के पहले के देशी राज्य पन्ना, छतरपुर, ओरछा, दतिया, समथर, अजयगढ़, बिजावर, चरखारी, बिहट, सरीला, •अलीपुरा, गरौली आदि शामिल थे। यह क्षेत्र अधिकांश में पहाड़ी तथा अधित्यकामय है। बेतवा, धसान, बीरमा, केन, बागई आदि यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। गेहूँ, चना, मूँग आदि की अच्छी उपज यहाँ होती है और हीरे, लोहे, ताँबे, कोयले आदि की खानें भी यत्रतत्र बिखरी हुई हैं। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग २१,५०० वर्ग मील तथा आबादी १९०१ में ३७,६४,००० थी। देशी राज्यों वाला अनुभाग अब चरखारी, पन्ना, छतरपुर, दतिया आदि नवस्थापित जिलों अथवा आस पास के अन्य जिलों में बाँट दिया गया है।

इतिहास — कहते हैं, पहले यहाँ गोंड राजाओं का राज्य था। बाद में चंदेल वंशीय राजपूतों ने उन्हें परास्त कर अपनी सत्ता स्थापित की। यह भी प्रवाद है कि इसके कुछ भाग (संभवतः उत्तर एवं पश्चिम में स्थित) पर गहरवार राजपूतों का शासन था। इनके बाद परिहारों और फिर चंदेलों का राज्य हुआ। बुंदेलखंड भूखंड का प्रथम शासक कतिपय अभिलेखों के अनुसार, नानिक या नन्नुक कहा जाता है। वह संभवतः नवीं शती के आरंभ में हुआ। चौथा राजा राहिल (८९०-९१०) था। इसने राज्य की सीमा का विस्तार किया और महोबा में राहिल्यसागर का निर्माण कराया। प्रारंभ के चंदेल राजाओं में धंग (९५०-९९) अधिक शक्तिशाली था। उसने लाहौर के जयपाल को गजनी पर आक्रमण करने में (९८८ ई०) सहायता दी थी। उसके उत्तराधिकारी गंडा (नंदराय ९९९-१०२५ ई०) ने भी गजनवी के विरुद्ध अभियान में जयपाल को सहायता प्रदान की थी। कीर्तिवर्मा (१०४९-११००) ग्यारहवाँ राजा था, जिसके पुत्र सल्लक्षण चेदिनरेश वर्ण को पराजित किया। उसने महोबा में कीरतसागर का और अजयगढ़ में कई भवनों का निर्माण कराया। मदनवर्मा (११३०-६५) १५वाँ शासक था जिसने चंदेलों की राज्यसीमा बढ़ाई, चेदि राज्य पर पुनः सत्ता स्थापित की और गुजरात को भी जीता। इसके बाद परमर्दिदेव या परमाल (११६५-१२०३) राजा हुआ जिसे ११८२ ई० में दिल्ली के शासक पृथ्वीराज के हाथ शिकस्त खानी पड़ी। कालिंजर, खजराहो, महोबा, अजयगढ़ आदि में चंदेलों के प्रसिद्ध गढ़ थे। अभिलेखों में इस भूभाग का नाम जीजाकभुक्ति भी मिलता है, जिसका लघु रूप जिझौति है।

बुंदेला राजपूत — बुंदेला राजा अपने को गहरवार वंशी पंचम के वंशज मानते हैं जिसने देवी के सामने आत्मबलि देने की चेष्टा की थी। शुरू में उनकी सत्ता संभवतः मऊ के आस पास स्थापित हुई, फिर उन्होंने कालिंजर, कालपी आदि पर भी अधिकार कर लिया। १५०७ ई० के लगभग रुद्रप्रताप शासनारूढ़ हुआ। १५४५ में शेरशाह सूर ने कालिंजर पर आक्रमण किया और वहीं उसका प्राणांत हुआ। अंतिम चंदेल राजा कीरत सिंह इसलाम शाह द्वारा मार डाला गया। १५६९ में मुगल सम्राट् अकबर ने कालिंजर पर अधिकार कर लिया। ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने शाहजादा सलीम के कहने से अबुल फजल की हत्या के षड्यंत्र में भाग लिया जिससे उसे अकबर का कोपभाजन बनना पड़ा। महोबा नरेश चंपत राय ने विद्रोह में वीरसिंह देव का साथ दिया। चंपत राय के पुत्र छत्रसाल ने शाही सेनाओं को कई बार परास्त किया और राज्य की सीमा बहुत बढ़ा ली। १७२३ में मुहम्मद खाँ बंगश का आक्रमण होने पर छत्रसाल को मराठों से मदद माँगनी पड़ी। मुहम्मद खाँ की पराजय हुई और जीत के उपलक्ष्य में छत्रसाल ने झाँसी तथा जालौन का क्षेत्र पेशवा को उपहार में दे दिया। सन् १७७९ में मराठों से युद्ध होने पर अंग्रेजी सेनाएँ पहली बार बुंदेलखंड में घुसीं पर उन्होंने किसी भाग पर अधिकार नहीं किया। बाद में युद्ध द्वारा, संधियों द्वारा तथा स्वत्व समाप्ति (लैप्स) की नीति द्वारा अंग्रेजों ने क्रमशः अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया और बचे हुए राज्यों को भी संरक्षण तथा ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार करने के लिये विवश कर दिया गया। देश के स्वतंत्र होने पर यहाँ की रियासतों का विलयन मध्यप्रदेश या उत्तर प्रदेश में कर दिया गया।

बुकनैन, जार्ज (१५०६-१५८२) स्कॉट लेखक। शिक्षा इंवार्टन स्कूल तथा पैरिस स्कूल में हुई। सेंट ऐंड्रूज विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा पैरिस से एम० ए०। विद्यार्थीकाल से लैटिन कविता लिखना आरंभ किया। वे पैरिस आए और वहाँ तीन वर्ष तक लैटिन शिक्षक का कार्य करते रहे। उनके चार दुःखांत नाटक 'मिडिया', 'एलसेस्टिस', यूरुपीडस से अनुवादित तथा 'जेफ्था' व बैप्टिस्ट मौलिक रचनाएँ हैं जो विद्यार्थियों द्वारा अभिनीत करने के लिये लिखी गईं। प्रसिद्ध निबंधकार मांतेन उनका इसी समय का शिष्य था।

पुर्तगाल में नवस्थापित कालेज के प्राचार्य रूप में आने के तुरत बाद अपने धार्मिक विचारों के कारण मठ में बंदी बना लिए गए। यहाँ उन्होंने बाइबिल की प्रार्थनाओं का लैटिन में अनुवाद किया जो १९ वीं शताब्दी तक स्कॉटलैंड में पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता रहा। 'लेनोरा' नामक काव्य भी यहीं लिखा गया। १५६२ में स्कॉटलैंड की रानी मेरी के शिक्षक नियुक्त हुए पर लॉर्ड डार्नले की हत्या के बाद उन्होंने मेरी के विरुद्ध 'डिटेक्शियो' नामक पुस्तक लिखकर यूरोप में उसके अभियोग का प्रचार किया तथा 'कैस्केट लेटर्स' उसी द्वारा लिखे जाने का समर्थन किया। जेम्स छठे के पक्ष में रानी द्वारा गद्दी त्यागने पर पाँच वर्ष तक जेम्स के शिक्षक रहे। १५७९ में संसद के अधिकारी

हुए। 'डीजुरे रेनी एमिड स्कॉट्रा' (१५७०) लिखकर उन्होंने जनता को राजा की शक्ति का आधार बताया और रानी मेरी के प्रति किए गए वर्ताव का समर्थन किया। ससद् द्वारा इसका विरोध हुआ और यह पुस्तक ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा जलाई भी गई। १५८२ मे 'रेरम स्कॉट केरम हिस्ट्रिया' नामक स्कॉटलैंड का इतिहास लिखा।

लैटिन भाषा मे रचना करने के कारण वे विशेष जनप्रिय और अमर न हो सके। इस भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था और वे सच्चे अर्थ मे कवि थे। पाँच खडो मे 'डी स्फेरा' काव्य लिखकर उन्होने कोपरनिकस के मुकाबले टॉलेमी के ज्योतिष सिद्धातो का समर्थन किया। वे स्वतत्र विचारक, स्पष्टवादी व्यक्ति तथा सफल साहित्यिक थे। सारा यूरोप उन्हे प्रथम श्रेणी का कवि मानता था। १६०६ मे सारे स्कॉटलैंड मे उनकी शताब्दी बडे धूमधाम से मनाई गई थी।

[गि० ना० श०]

बुक्क १४वी सदी के पूर्वार्ध मे दक्षिण भारत मे तुगभद्रा नदी के किनारे विजयनगर राज्य की स्थापना हुई थी जिसके सस्थापक बुक्क तथा उसके ज्येष्ठ भ्राता हरिहर का नाम इतिहास मे विख्यात है। सगम नामक व्यक्ति के पाँच पुत्रो मे इन्ही दोनो की प्रधानता थी। प्रारभिक जीवन मे वारगल के शासक प्रतापरुद्र द्वितीय के अधीन पदाधिकारी थे। उत्तर भारत से आक्रमणकारी मुसलमानी सेना ने वारगल पर चढाई की, अत दोनो भ्राता (हरिहर एवं बुक्क) कापिलि चले गए। १३२७ ई० में बुक्क बदी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया और इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर दिल्ली सुल्तान का विश्वासपात्र बन गया। दक्षिण लौटने पर भारतीय जीवन का ह्रास देखकर बुक्क ने पुन हिंदू धर्म स्वीकार किया और विजयनगर की स्थापना मे हरिहर का सहयोगी रहा। ज्येष्ठ भ्राता द्वारा उत्तराधिकारी घोषित होने पर १३५७ ई० मे विजयनगर राज्य की बागडोर बुक्क के हाथो मे आई। उसने बीस वर्षों तक अथक परिश्रम से शासन किया। पूर्व शासक से अधिक भूभाग पर उसका प्रभुत्व विस्तृत था।

शांति स्थापित होने पर राजा बुक्क ने आदर्श मार्ग पर शासन व्यवस्थित किया। मत्रियो की सहायता से हिंदूधर्म मे नवजीवन का सचार किया। इसने कुमार कंपण को भेजकर मदुरा से मुसलमानों को निकाल भगाया जिसका वर्णन कपण की पत्नी गगादेवी ने 'मदुरा विजयम्' मे मार्मिक शब्दो मे किया है। बुक्क स्वय शैव होकर सभी मतो का समादर करता रहा। इसकी सरक्षता मे विद्वत् मडली ने सायण के नेतृत्व मे वैदिक सहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक पर टीका लिखकर महान् कार्य किया। अपने शासन काल मे (१३५७-१३७७ ई०) बुक्क प्रथम ने चीन देश को राजदूत भी भेजा जो स्मरणीय घटना थी। अनेक गुणो से युक्त होने के कारण माधवाचार्य ने जैमिनी न्यायमाला मे बुक्क की निम्न प्रशसा की है

जार्गात श्रुतिमत्प्रसग चरित.
श्री बुक्कण क्ष्मापति.।

[बा० उ०]

बुखनेर लुडविग (१८२४-१८९९) जर्मन दार्शनिक तथा चिकित्सक, जिसने यूनिवर्सिटी के अपने अध्यापनकाल मे प्रसिद्ध पुस्तक 'शक्ति और पदार्थ' की रचना की। वह अपनी अति भौतिकवादी विचारधारा के लिये बदनाम था, जिसके कारण अतत उसे यूनिवर्सिटी का अध्यापक पद छोडना पडा।

[श्री० स०]

बुखारा स्थिति ३९° ५०' उ० अ० तथा ६४° १०' पू० दे०। यह मध्य तथा दक्षिण-पश्चिमी सोवियत सघ के उजवेक सोवियत सोशलिस्ट गणतत्र का, समरकद नगर से १४२ मील पश्चिम, नखलिस्तान मे स्थित प्रसिद्ध व्यापारिक नगर है। बुखारा से कुछ मील दक्षिण-पूर्व मे स्थित कागान एक नया नगर है, जिसे कभी कभी न्यू बुखारा भी कहते हैं। पहले से ही बुखारा मुस्लिम धर्म तथा सस्कृति का प्रसिद्ध केंद्र है। सन् १९२४ मे यह रूस के अधिकार मे आया। यह आठ, नौ मील के घेरे मे एक ऊँची चारदीवारी से घिरा है जिसमे ११ दरवाजे हैं। मीर अरब की मस्जिद सबसे प्रसिद्ध मस्जिद है। कबल, रेशमी एव ऊनी कपडे तथा तलवार आदि बनाने के उद्योग यहाँ होते हैं। रेगिस्तानी जलवायु होने के कारण यहाँ पर दिन मे तेज धूप तथा रात्रि मे अधिक शीत पडती है। निकटवर्ती क्षेत्र मे अखरोट, सेब, अगूर, तबाकू तथा विभिन्न प्रकार के फूलो के बगीचे हैं। इसकी जनसख्या ६०,००० (१९५१) है।

[श्रीकृ० चं० ख०]

बुखारी, सहीह मुहम्मद-अल-बुखारी (पुत्र) इस्माईल (जन्म, जुलाई ८१० ई०) ने बाल्यावस्था मे हजरत मुहम्मद की हदीसो (कथन एव जीवनकाल की घटनाओ का सग्रह) का ज्ञान प्राप्त कर, हिजाज, खुरासान एव मिस्र में घूम घूमकर हदीसें एकत्र की। उनमे से चुनकर ७३९७ हदीसें इसनाद (सूत्रो) सहित सकलित की। यह ग्रथ सहीह के नाम से विख्यात है। समस्त हदीसें ९७ भागो मे तथा ३४५० अध्यायो में विभाजित हैं। कुरान के उपरात सहीह बुखारी ही सुन्नी मुसलमानो का सबसे अधिक प्रामाणिक धर्मग्रथ हैं। इस ग्रथ पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गईं।

स० ग्रं० — ब्रोकमान गेश्चिश्ते देर अरबिशेन लितरेत्यूर फान सी० बी० (बर्लिन, १८९८-१९०२), खड एक।

[रं० अ० अ० रि०]

बुडापेस्ट स्थिति ४७° २९' उ० अ० तथा १९° ५' पू० दे०। हगरी के मध्य-उत्तरी भाग मे डैन्यूब नदी के दोनो किनारो पर स्थित, देश की राजधानी एव सबसे बडा नगर है। यह चार बस्तियों बुडा, पेस्ट, ओ बुडा एव कोबान्या से मिलकर बना है। पुराना बुडा नदी के पश्चिमी पहाडी किनारे पर बसा है। यहाँ नदीतल से ४०० फुट की ऊँचाई पर एक किला बना है। पूर्वी निचले किनारे पर स्थित पेस्ट पुराना व्यापारकेंद्र है। बुडापेस्ट, माजार सस्कृति का केंद्र है। यहाँ बुडापेस्ट विश्वविद्यालय तथा टेक्निकल विश्वविद्यालय प्रसिद्ध हैं। यह देश के मध्य भाग मे स्थित होने के कारण यातायात मार्गो तथा व्यापार का प्रमुख केंद्र बन गया है। अनाज, गाय, बैल,

ऊन और चमड़े का व्यापार होता है। आटा पीसने, कपड़ा बुनने, मशीनरी और रसायनक के उद्योग होते हैं। बुडा एवं पेस्ट को मिलाने के लिये नदी पर कई पुल बने हैं। इसकी जनसंख्या १८,०७,००० (१९६०) है। यहाँ बाग, बगीचे, पार्क, अस्पताल, क्रीडास्थल, सुंदर भवन, एवं गिरजाघर आदि हैं। [दी० ना० व०]

बुद्ध और बौद्ध धर्म बौद्ध धर्म की खोज– पिछली शताब्दी के सास्कृतिक जागरण का एक परिणाम था बौद्धधर्म के विषय में आधुनिक जानकारी का विकास। भारतीयों के लिये यह एक विलुप्त गौरव और महिमा का प्रत्यभिज्ञान था, पाश्चात्य देशों के लिये अपूर्व उपलब्धि। दक्षिण, मध्य और पूर्व एशिया के बौद्ध देशों के लिये भी विद्या और साहित्य के इस उद्धार ने नवीन परिष्कार और प्रगति की ओर संकेत किया। टर्नर और फाउसबाल, चाइल्डर्स और ओल्देनबर्ग, राउज डैविड्स और श्रीमती राइज डेविड्स, धर्मानंद कोसंबी और बरुआ, एवं अन्यान्य विद्वानों के यत्न से पालि भाषा का परिशीलन अपने आधुनिक रूप में प्रकाश और विकसित हुआ। बर्नूफ, कर्न, मैक्समूलर और सिलवाँ लेवी, हरप्रसाद शास्त्री और राजेंद्रलाल मित्र आदि के प्रयत्नों से लुप्त प्राय बौद्ध संस्कृत साहित्य का पुनरुद्धार संपन्न हुआ। क्सोमा द कोरोस, शरच्चंद्र दास और विद्याभूषण, पूसें और श्चेरबात्स्की आदि ने तिब्बती भाषा, बौद्ध न्याय, सर्वास्तिवादी अभिधर्म आदि के आधुनिक ज्ञान का विस्तार किया। प्रिंसेप, कनिंघम और मार्शल, स्टाइन, फ्यूशेर और कुमारस्वामी आदि विद्वानों ने बौद्ध पुरातत्व और कलावशेषों की खोज और समय का दिक्प्रदर्शन किया। नाना भाषाओं और पुरातत्व के गहन परिशीलन के द्वारा शताधिक वर्षों के इस आधुनिक प्रयास ने बौद्ध धर्म की जानकारी को एक विशाल और जटिल कलेवर प्रदान किया है एवं इस तथ्य को प्रदर्शित किया है कि बौद्ध धर्म का सार और सार्थकता अपने में कितनी व्यापकता और सूक्ष्मता रखते हैं।

बुद्ध का जन्म और युग—प्रचलित सिंहली परंपरा के अनुसार भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण ई० पू० ५४४ में मानना चाहिए। इसी मान्यता के अनुसार मई १९५६ में निर्वाण से २५०० वर्षों की पूर्ति स्वीकार की गई। दूसरी ओर, बुद्ध बिंबिसार और अजातशत्रु के समकालीन थे एवं उनके परिनिर्वाण से २१८ वर्ष पश्चात् अशोक का राज्याभिषेक हुआ। ये तथ्य परिनिर्वाण को ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के प्रथम पाद में रखते हैं और इस संभावना का 'कैंटनीज डॉटेड रिकार्ड' से समर्थन होता है। इतिहासकार प्राय इसी मत को स्वीकार करते हैं।

छठी शताब्दी ई० पू० को विश्वइतिहास का जागरणकाल कहना अयुक्त न होगा। भारतीय इतिहास के परिवेश में इस समय तक आर्यों के प्रारंभिक संचार और संनिवेश का युग समाप्त हो चुका था एवं विभिन्न 'जनों' के स्थान पर 'जनपद' व्यवस्थित थे। छठी शताब्दी के पूर्वार्ध को 'षोडश महाजनपदों' का युग कहा गया है। राजाधीन और गणाधीन इन जनपदों को पारस्परिक संघर्ष भविष्य की एकता की ओर ले जा रहा था। आर्यों में पूर्ववर्ती विशाल सिंधु सभ्यता लुप्त हो चुकी थी किंतु उसकी अवशिष्ट परंपराओं के आर्य समाज में क्रमश आत्मसात्करण की प्रक्रिया अभी जारी थी। वैदिक युग में आर्य एवं आर्येतर सांस्कृतिक परंपराओं का परस्पर समन्वय भारतीय इतिहास की निर्णायक घटनाओं में है। जहाँ इस प्रक्रिया से एक ओर चातुर्वर्ण्य का विकास और आर्यभाषा से परिवर्तन हुआ, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

बुद्ध का युग गहन विचारमंथन का युग था जब कि नाना ब्राह्मण और श्रमण अपने विभिन्न मतों का प्रतिपादन करते थे और बुद्ध की खोज एवं उपदेश का संबंध इन प्रचलित विचारधाराओं से स्थापित करने का यत्न इतिहासकार के लिये स्वाभाविक है। एक मत के अनुसार जो विचारधारा उपनिषदों में उपलब्ध होती है उसी का एक विकास बौद्धधर्म में देखना चाहिए। किंतु यह स्मरणीय है कि उस युग में 'ब्राह्मण' और 'श्रमण' का पार्थक्य निर्विवाद था, यहाँ तक कि पतंजलि ने 'येषां च विरोध शाश्वतिक' इस पाणिनीय सूत्र की व्याख्या के प्रसंग में 'अहिनकुलम्' के समान 'ब्राह्मण श्रमणम्' का उदाहरण दिया है। अत पूर्वोक्त मत के अनुसार बौद्ध धर्म के मूल को ब्राह्मण विचारधारा के अंतर्गत किंतु श्रमणबाह्य मानना पड़ेगा, जो प्रमाणविरुद्ध है, अथवा श्रमण विचारधारा को ही वैदिक ब्राह्मण विचारधारा के साथ मूल संलग्न मानना पड़ेगा, जो कि कम से कम जैन धर्म की अवैदिकता के अब निर्विवाद होने के कारण अस्वीकार्य है। एक स्वतंत्र क्षत्रिय परंपरा की उद्भावना असिद्ध है। यह सत्य है कि उपनिषदों में, गीता में, और बौद्ध एवं जैन आगमों में अनेक क्षत्रिय शासक दार्शनिक चर्चा में भाग ग्रहण करते हैं किंतु उनके मत नाना हैं एवं उन्हें वैदिक धर्म के अंतर्भूत अथवा श्रमण धर्म के अंतर्भूत किया जा सकता है। अत ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि महाश्रमण भगवान् बुद्ध को मूलत श्रमण समुदाय एवं परंपरा के अंतर्गत मानना चाहिए तथापि यह स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है कि कुछ दिशाओं में उनके प्रतिपादन और उपनिषदों में प्रवृत्तिसाम्य से उनपर वैदिक प्रभाव सूचित होता है।

वैदिक धर्म मूलत प्रवृत्तिमार्गी था, श्रमण संप्रदाय निवृत्तिमार्गी। निवृत्ति का प्राधान्य संसारवाद के अभ्युपगम पर आश्रित था। पक्षांतर में प्राचीन वैदिक धर्म में संसारवाद अविदित था। उपनिषदों में ज्ञानचर्चा के साथ कुछ स्थलों पर संसारवाद आभासित है। इस कारण यह प्राय प्रतिपादित किया गया है कि उपनिषदों के इन स्थलों से ही निवृत्तिपरक धाराओं का उद्गम मानना चाहिए। अर्थात् सांख्य और योग, जैन और बौद्ध धर्म सभी का मूल उत्स उपनिषदों में ही कहीं न कहीं खोजना चाहिए। इस धारणा के पीछे यह विश्वास है कि बुद्ध से पूर्वतर युग का अथवा प्रतिनिधि चिंतन उपनिषदों में संगृहीत है। वस्तुत इस प्रकार की ऐतिहासिक परिस्थितियों में अनुपलब्धि से अभाव सिद्ध नहीं होता अत ऐसे 'आर्ग्युमेंटम् एक्स सिलेन्शियो' को हेत्वाभास ही मानना चाहिए। दूसरी ओर, जैन और बौद्ध सभी अपना वैदिक ऋण मानने के स्थान पर अपना अपना आगम स्वातंत्र्य ही घोषित करते हैं। पुरातात्विकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्य वैदिक परंपरा के पूर्व और अतिरिक्त एक सभ्यता की परंपरा ई० पू० तृतीय और द्वितीय सहस्राब्दियों में भारत में विदित थी अतएव विभिन्न श्रमण परंपराओं का अवैदिक अथवा आर्येतरीय मूल अब असंभव नहीं लगता। इस संभाव्यता के कारण

बाघ (देखें पृष्ठ २४७)

पानी पीता बाघ

बाघ के बच्चे

बुडापेस्ट (देखें पृष्ठ ३१३)
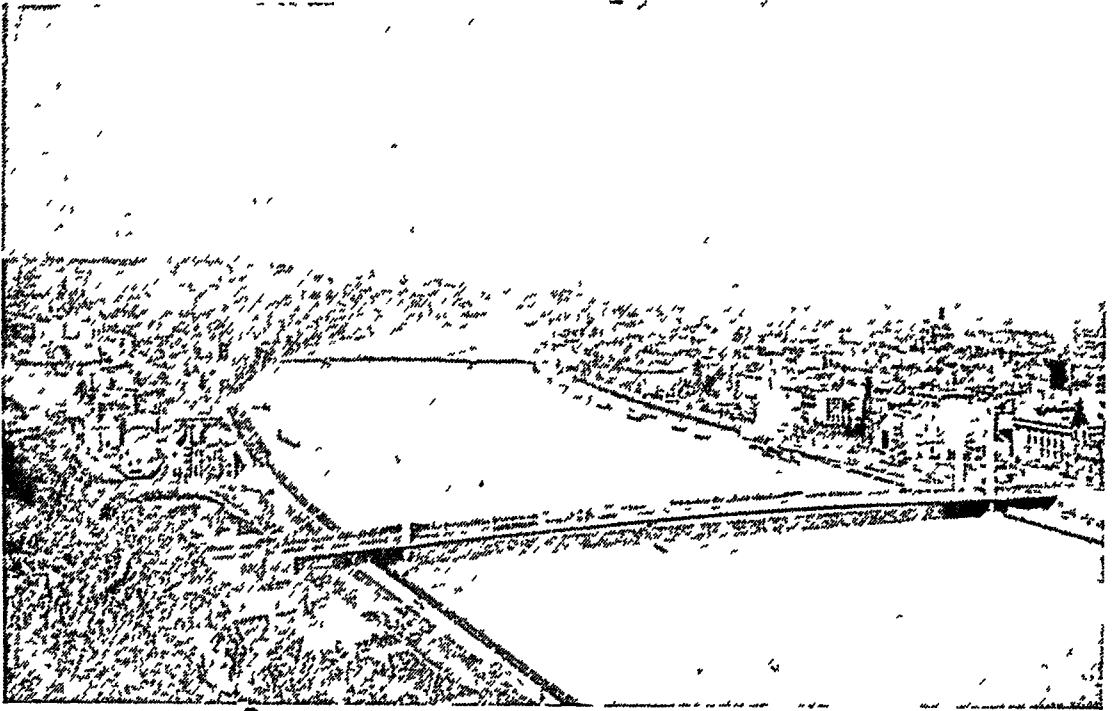
बुडापेस्ट नगर का दृश्य
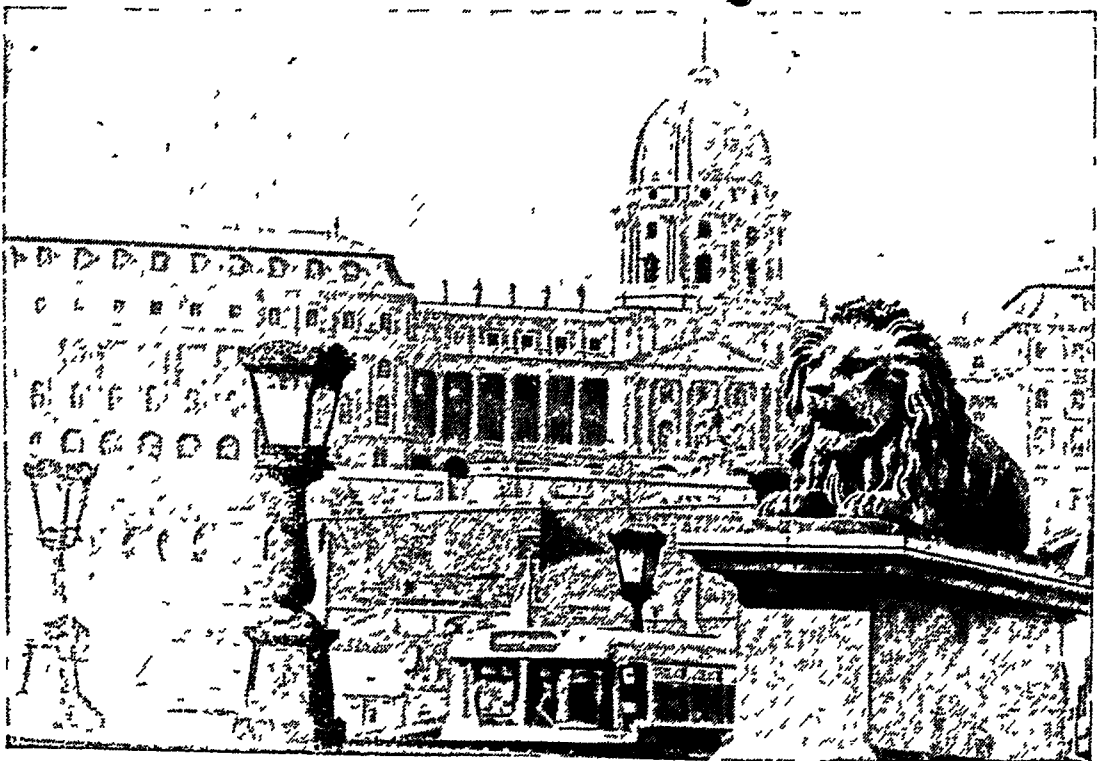
बुडा का राजभवन

इन परपराओ के मूल की अवैदिकता आपाततः तत्तद आगमसिद्ध है और इसके प्रमाणत निराकरण का भार प्रतिवादी पर स्थिर होता है। जहाँ तक उपनिषदों मे उपलब्ध 'ससारवाद' अथवा 'साख्य' आदि के मूल का प्रश्न है, यह सभव है कि स्वय उपनिषदो पर धारावर का प्रभाव कल्पनीय है। फलत जहाँ पहले बौद्ध धर्म का वैदिक मूल प्राय सर्वसमत था वहाँ अब पुरातात्विक और ऐतिहासिक खोज के परिप्रेक्ष्य मे इस मत को सदिग्ध कहना होगा। किंतु इसका यह अर्थ नही है कि बौद्ध धर्म पर वैदिक प्रभाव सदिग्ध है। वस्तुत यद्यपि भगवान् बुद्ध की पर्येषणा श्रमण पृष्ठभूमि मे प्रारब्ध और सबोधि मे पर्यवसित हुई, तथापि उनका तत्वप्रतिपादन अथवा देशना तत्कालीन श्रमण अभ्युपागमो को बुद्धिस्थ करने पर ही समझी जा सकती है।

वैदिक चिंतन मे जगत् के मूल तत्व की खोज तीन मुख्य दिशाओ मे की गई। एक ओर पुरुष को जगत् का कर्त्ता माना गया। दूसरी ओर जल, वायु आदि तत्वों मे से किसी एक को जगत् का मूल उपादान कहा गया। इस दिशा मे पारमार्थिक तत्व की कल्पना सत् अथवा असत् के रूप मे भी की गई। तीसरी दिशा मे जागतिक परिवर्तनों की नियमवत्ता देखकर ऋत और धर्म की उद्भावना की गई। पुरुष के स्वरूप पर विचार करते हुए क्रमश शरीर, इद्रियाँ, वाक्, प्राण, मन एव ज्ञान को उसके मौलिक स्वरूप का परिचायक माना गया। अतत यह निश्चित किया गया कि पुरुष अथवा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, एक सत् ही जगत् का उपादान और ब्रह्म पदवाच्य है, और आत्मा एव ब्रह्म ज्ञान एवं सत् परस्पर अभिन्न हैं। यही औपनिषदिक आत्माद्वैत अथवा ब्रह्माद्वैत का सिद्धात है। कुछ स्थलो पर आत्मा या ब्रह्म को अनिर्वचनीय एव सत् और असत् के परे भी कहा गया है।

उपनिषदो मे आभासित धर्म का सिद्धात प्रचलित कर्मवाद के साथ अनायास सश्लिष्ट हो गया क्योकि कर्म-फल-नियम ही मानव जीवन एव सृष्टि का गभीरतम नियामक कहा जा सकता था। इस सिद्धात का विशद और विस्तृत प्रतिपादन उन नाना श्रमण सप्रदायो मे देखा जा सकता था जिनके मतो का उल्लेख प्राचीन बौद्ध और जैन आगमो मे प्राप्त होता है। दीघनिकाय के सुविदित सामजफल सुत्तत के अनुसार पूर्ण काश्यप, प्रकुध कात्यायन, अजित केशकबली, सजय बेलट्ठिपुत्र, गोशाल एव निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र बुद्ध के समकालीन प्रसिद्ध श्रमण परिव्राजक गणाचार्य थे। अन्यत्र कालवाद, स्वभाववाद नियतिवाद, अज्ञानवाद, अक्रियावाद, क्रियावाद, शाश्वतवाद उच्छेदवाद आदि दृष्टियो का उल्लेख प्राप्त होता है। अधिकाश विचारक जीव के जन्म से जन्मातर ससरण को दु खात्मक और कर्म-फल-नियम के द्वारा व्यवस्थित मानते थे किंतु जीव, कर्म और मोक्ष के साधन के विषय मे प्रचुर और जटिल मतभेद था। ब्राह्मण और श्रमण विचारको द्वारा प्रतिपादित परमार्थ और व्यवहार सबधी इन धारणाओ और प्रवृत्तियो के परिवेश मे ही भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया।

बुद्ध की जीवनी—बुद्ध के जीवन के विषय मे प्रामाणिक सामग्री विरल है। इस प्रसग मे उपलब्ध अधिकाश वृत्तात एव कथानक परवर्ती एव भक्तिप्रधान रचनाएँ हैं। प्राचीनतम सामग्री मे पालि त्रिपिटक के कुछ स्थलो पर उपलब्ध बुद्ध की पर्येषणा, सबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन एवं महापरिनिर्वाण के अल्प विवरण उल्लेख्य हैं। यह स्मरणीय है कि दीघनिकाय के महापदानसुत्तत से सिद्ध होता है कि इसी अवस्था मे बौद्धगण का आग्रह भगवान् बुद्ध के जीवनचरित के विस्तृत ऐतिहासिक सग्रह मे न होकर उसमे एक 'धर्मता' अथवा सब बुद्धो के लिये एक अनिवार्य और नियत क्रम को प्रदर्शित कर सकने मे था। इस कारण गौतम बुद्ध के जीवनी साहित्य मे ऐतिहासिक स्मृति बुद्धत्व के आदर्श से प्रेरित कल्पनाप्रतानो से वैसे ही आच्छन्न हो गई जैसे चातुर्मास्य मे अरण्यपथ। बुद्ध की जीवनी के आधुनिक विवरण प्राय पालि की निदानकथा अथवा सस्कृत के महावस्तु, ललित-विस्तर एव अश्वघोष कृत बुद्धचरित पर आधारित होते हैं। किंतु इन विवरणों की ऐतिहासिकता वही तक स्वीकार की जा सकती है जहाँ तक उनके लिये प्राचीनतर समर्थन उपलब्ध हो। यह उल्लेख्य है कि एक नवीन मत के अनुसार मूल विनय मे बुद्ध की जीवनी और विनय के नियम, दोनो एक ही सश्लिष्ट विवरण के अग थे। यह मत सर्वथा प्रमाणित न होने पर भी सभाव्य है।

ई० पू० ५६३ के लगभग शाक्यो की राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुबिनी वन मे भगवान् बुद्ध का जन्म प्रसिद्ध है। वर्तमान नेपाल राज्य के अतर्गत यह स्थान भारत की सीमा से आजकल पाँच मील दूर है। यहाँ पर प्राप्त अशोक के रुम्मिनदेई स्तभलेख से ज्ञात होता है 'हिद बुधे जाते ति।' सुत्तनिपात मे शाक्यो को हिमालय के निकट कोशल मे रहनेवाले गौतम गोत्र के क्षत्रिय कहा गया है। कोशलराज के अधीन होते हुए भी शाक्य जनपद स्वय एक गणराज्य था। कदाचित् इस गण के पारिषद् अथवा प्रमुख राजशब्दोपजीवी होते थे। इस प्रकार के 'राजा' शुद्धोदन बुद्ध के पिता एव मायादेवी उनकी माता प्रसिद्ध हैं। जन्म के पाँचवे दिन बुद्ध को 'सिद्धार्थ' नाम दिया गया और जन्मसप्ताह मे ही माता के देहात के कारण उनका पालन पोषण उनकी मौसी एव विमाता महाप्रजापती गौतमी द्वारा हुआ। बुद्ध के शैशव के विषय मे प्राचीन सूचना अत्यत अल्प है। सिद्धार्थ के बत्तीस महापुरुषलक्षणों को देखकर असित ऋषि ने उनके बुद्धत्व की भविष्यवाणी की, इसके अनेकत्र वर्णन मिलते हैं। ऐसे ही कहा जाता है कि एक दिन जामुन की छाँह मे उन्हें सहज रूप मे प्रथम ध्यान की उपलब्धि हुई थी। दूसरी ओर ललित-विस्तर आदि ग्रथो मे उनके शैशव का चमत्कारपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। ललित-विस्तर के अनुसार जब सिद्धार्थ को देवायतन ले जाया गया देव-प्रतिमाओ ने स्वय उठकर उन्हे प्रणाम किया, उनके शरीर पर सब स्वर्णाभरण मलिन प्रतीत होते थे, लिपिशिक्षक आचार्य विश्वामित्र को उन्होने ६४ लिपियो का नाम लेकर और गणक महामात्र अर्जुन को परमाणु-रज-प्रवेशानुगत गणना के विवरण से विस्मय मे डाल दिया, और नाना शिल्प, अस्त्रविद्या, एव कलाओ मे सहज-निष्णात सिद्धार्थ का दडपाणि की पुत्री गोपा के साथ परिणय सपन्न हुआ। पालि आकरो के अनुसार सिद्धार्थ की पत्नी सुप्रबुद्ध की कन्या थी और उसका नाम 'भद्दकच्चाना' भद्रकात्यायनी, यशोधरा, बिंबा, अथवा बिबासु दरी था। विनय मे उसे केवल राहुलमाता कहा गया है। बुद्धचरित मे यशोधरा नाम दिया गया है। सिद्धार्थ के प्रव्रजित होने की भविष्यवाणी से भयभीत होकर शुद्धोदन ने उनके लिए तीन विशिष्ट प्रासाद बनवाए—ग्रैष्मिक, वार्षिक, एव हैमतिक। इन्हें रम्य, सुरम्य और शुभ की सज्ञा भी दी गई है। इन प्रासादो

में सिद्धार्थ को व्याधि और जरा मरण से दूर एक कृत्रिम, नित्य मनोरम लोक में रखा गया जहाँ सगीत, यौवन और सौंदर्य का अक्षत साम्राज्य था। किंतु देवताओ की प्रेरणा से सिद्धार्थ को उद्यानयात्रा मे व्याधि, जरा, मरण और परिव्राजक के दर्शन हुए और उनके चित्त मे प्रव्रज्या का सकल्प विरूढ हुआ। इस प्रकार के विवरण की अत्युक्ति और चमत्कारिता उसके आक्षरिक सत्य पर सदेह उत्पन्न करती है। यह निश्चित है कि सिद्धार्थ के मन मे सवेग ससार के अनिवार्य दुख पर विचार करने से उत्पन्न हुआ। उनकी ध्यानप्रवणता ने, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, इस दुख की अनुभूति को एक गभीर सत्य के रूप मे प्रकट किया होगा। निदानकथा के अनुसार इसी समय उन्होंने पुत्रजन्म का सवाद सुना और नवजात को राहुल नाम मिला। उसी अवसर पर प्रासाद की ओर जाते हुए सिद्धार्थ की शोभा से मुग्ध होकर कृशा गौतमी ने उनकी प्रशसा में एक प्रसिद्ध गाथा कही जिसमे निर्वृत (प्रशात) शब्द आता है। सिद्धार्थ को इस गाथा मे गुरुवाक्य के समान गभीर आध्यात्मिक सकेत उपलब्ध हुआ

> निब्बुता नून सा माता निब्बुतो नून सो पिता।
> निब्बुता नून सा नारी यस्सायमीदिसो पती ति ॥

निशीथ के अधकार मे सोती हुई पत्नी और पुत्र को छोड़कर सिद्धार्थ कथक पर आरूढ हो नगर से और कुटुबजीवन से निष्क्रात हुए। उस समय सिद्धार्थ २९ वर्ष के थे।

निदानकथा के अनुसार रात भर मे शाक्य, कोलिय और मल्ल (राम ग्राम) इन तीन राज्यो को पार कर सिद्धार्थ ३० योजन की दूरी पर अनोमा नाम की नदी के तट पर पहुँचे। वहीं उन्होंने प्रव्रज्या के उपयुक्त वेश धारण किया और छदक को विदा कर स्वय अपनी अनुत्तर शाति की पर्येपणा की ओर अग्रसर हुए। आर्य पर्येपणा के प्रसग मे सिद्धार्थ अनेक तपस्वियो से विशेषत आलार (आराड) कालाम एव उद्रक (रुद्रक) से मिले। ललितविस्तर मे अराड कालाम का स्थान वैशाली कहा गया है जबकि अश्वघोष के बुद्धचरित मे उसे विन्ध्य कोष्ठवासी बताया गया है। पालि निकायों से विदित होता है कि कालाम ने बोधिसत्व को 'आकिंचन्यायतन' नाम की 'अरूप समापत्ति' सिखाई। अश्वघोष ने कालाम के सिद्धातो का साख्य से सादृश्य प्रदर्शित किया है। ललित विस्तर मे रुद्रक का आश्रम राजगृह के निकट कहा गया है। रुद्रक के 'नैवसज्ञानासज्ञायतन' के उपदेश से भी बोधिसत्व असतुष्ट रहे। राजगृह में उनका मगधराज बिंबिसार से साक्षात्कार सुत्तनिपात के पब्बज्जसुत्त, ललितविस्तर और बुद्धचरित मे वर्णित है। गया मे बोधिसत्व ने यह विचार किया कि जैसे गीली अरणियो से अग्नि उत्पन्न नही हो सकती, ऐसे ही भोगो मे स्पृहा रहते हुए ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती। अतएव उरुविल्व के निकट सेनापति ग्राम मे नैरजना के तटवर्ती रमणीय प्रदेश मे उन्होने कठोर तपश्चर्या (प्रधान) का निश्चय किया। किंतु अततोगत्वा उन्होने तप को व्यर्थ समझकर छोड दिया। इसपर उनके साथी कौडिन्य आदि पचवर्गीय परिव्राजकों ने उन्हें तपोभ्रष्ट निश्चित कर त्याग दिया। बोधिसत्व ने अब शैशव में अनुभूत ध्यानाभ्यास का स्मरण कर ध्यान के द्वारा ज्ञानप्राप्ति का यत्न किया। इस ध्यानकाल मे उन्हें मार सेना का सामना करना पडा, यह प्राचीन ग्रथो मे उल्लिखित है। स्पष्ट ही मार धर्पण को काम और मृत्यु पर विजय का प्रतीकात्मक विवरण समझना चाहिए। आर्य पर्येपणा के छठे वर्ष के पूरे होने पर वैशाखी पूर्णिमा को बोधिसत्व ने सबोधि प्राप्त की। रात्रि के प्रथम याम मे उन्होने पूर्वजन्मों की स्मृति रूपी प्रथम विद्या, द्वितीय याम मे दिव्य चक्षु और तृतीय याम मे प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त किया। एक मत से इसके समानातर ही सर्वधर्माभिसमय रूप सर्वाकारक प्रज्ञा अथवा सबोधि का उदय हुआ।

सबोधि के अनतर बुद्ध के प्रथम वचनों के विषय मे विभिन्न परपराएँ हैं जिनमे बुद्धघोष के द्वारा समर्थित 'अनेक जाति ससार सधाविस्स पुनप्पुन' आदि गाथाएँ विशेषत उल्लेखनीय हैं। सबोधि की गभीरता के कारण बुद्ध के मन मे उसके उपदेश के प्रति उदासीनता स्वाभाविक थी। ससारी जीव उस गभीर सत्य को कैसे समझ पाएँगे जो अत्यत सूक्ष्म और अतर्क्य है? बुद्ध की इस अनभिरुचि पर ब्रह्मा ने उनसे धर्मचक्र-प्रवर्तन का अनुरोध किया जिसपर दुखमग्न ससारियो को देखते हुए बुद्ध ने उन्हें विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे पाया।

बुद्ध के लिये किसी वास्तविक सशय अथवा अभिरुचि के उदय का प्रश्न नही था। किंतु यह धर्मता के अनुरूप ही था कि देशना के पूर्व ससारियो के प्रतिनिधि के रूप मे महाब्रह्मा बुद्ध से देशना के लिये याचना करें। इस प्रकार ब्रह्मयाचन के प्रसग से प्रज्ञानुवर्तिता एव उपदेश की विनेयापेक्षता सूचित होती है।

सारनाथ के ऋषिपत्तन मृगदाव मे भगवान् बुद्ध ने पचवर्गीय भिक्षुओ को उपदेश देकर धर्मचक्रप्रवर्तन किया। इस प्रथम उपदेश मे दो अतो का परिवर्जन और मध्यमा प्रतिपदा की आश्रयणीयता बताई गई है। इन पचवर्गीयो के अनतर श्रेष्ठिपुत्र यश और उसके सबधी एव मित्र सद्धर्म मे दीक्षित हुए। इस प्रकार बुद्ध के अतिरिक्त ६० और अर्हत् उस समय थे जिन्हे बुद्ध ने नाना दिशाओ मे प्रचारार्थ भेजा और वे स्वय उरुवेला के सेनानिगम की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग मे ३० भद्रवर्गीय कुमारो को उपदेश देते हुए उरुवेला मे उन्होंने तीन जटिल काश्यपो को उनके एक सहस्र अनुयायियो के साथ चमत्कार और उपदेश के द्वारा धर्म मे दीक्षित किया। इसके पश्चात् राजगृह जाकर उन्होंने मगधराज बिंबिसार को धर्म का उपदेश दिया। बिंबिसार ने वेणुवन नामक उद्यान भिक्षुसघ को उपहार में दिया। राजगृह मे ही सजय नाम के परिव्राजक के दो शिष्य कोलित और उपतिष्य सद्धर्म मे दीक्षित होकर मौद्गल्यायन और सारिपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। विनय के महावग्ग मे दिया हुआ सबोधि के बाद की घटनाओ का क्रमबद्ध विवरण यहाँ पूरा हो जाता है।

उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने प्रति वर्ष जहाँ वर्षावास व्यतीत किया उन स्थानो की सूची बौद्ध परपरा मे रक्षित है और इस प्रकार है—पहला वर्षावास वाराणसी में, दूसरा-चौथा राजगृह मे, पाँचवाँ वैशाली मे, छठा मकुल गिरि मे, सातवाँ तावतिंस (त्रयस्त्रिंश) लोक मे, आठवाँ सुसुमार गिरि के निकट भर्ग प्रदेश मे, नवाँ कौशाबी मे, दसवा पारिलेय्यक वन मे, ग्यारहवाँ नालाग्राम मे, बारहवाँ वेरज मे, तेरहवाँ

चालियगिरि मे, चौदहवाँ श्रावस्ती मे, पन्द्रहवाँ कपिलवस्तु मे, सोलहवाँ आलवी मे, सत्रहवाँ राजगृह मे, अठारहवाँ चालियगिरि मे, उन्नीसवाँ राजगृह मे, इसके अनतर श्रावस्ती मे। इस प्रकार अस्सी वर्ष की आयु तक बुद्ध धर्म का प्रचार करते हुए उत्तर प्रदेश और विहार के जनपदो मे घूमते रहे। श्रावस्ती मे उनका सर्वाधिक निवास हुआ और उसके बाद राजगृह, वैशाली और कपिलवस्तु मे।

कोशल मे राजा प्रसेनजित् और रानी मल्लिका बुद्ध मे श्रद्धालु थे। श्रेष्ठियों मे कोटिपति अनार्थपिडक और विशाखा उपासक बने और उन्होने श्रावस्ती मे सघ को क्रमश जेतवन विहार और पूर्वाराम मृगारमातृ प्रासाद का दान किया। अग्निक भारद्वाज, पुष्कर सादी आदि कोसल के अनेक ब्राह्मणो ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार किया। शाक्यगण पहले बुद्ध के अनुकूल नही थे किंतु फिर चमत्कार देखकर उनकी रुचि परिवर्तित हुई। यद्यपि बुद्ध स्वय वैशाली के गणराज्य के विशेष प्रशसक थे, तथापि वहाँ निर्ग्रंथो के अधिक प्रभाव के कारण सद्धर्म का प्रचार सकुचित रहा। मगध में बिंबिसार की अनुकूलता कदाचित् सद्धर्म के प्रसार मे विशेष सहायक थी क्योकि यह विदित होता है कि यहाँ के अनेक श्रेष्ठी और गृहपति बौद्ध उपासक बने। यह उल्लेख्य है कि महाप्रजापती गौतमी और आनद के आग्रह से भगवान् बुद्ध ने स्त्रियो को भी सघ मे स्थान दिया।

प्रसिद्ध महापरिनिर्वाण सूत्र मे परवर्ती परिवर्तनो के बावजूद बुद्ध की अंतिम पदयात्रा का मार्मिक विवरण प्राप्त होता है। बुद्ध उस समय राजगृह मे थे जब मगधराज अजातशत्रु वृजि जनपद पर आक्रमण करना चाहता था। राजगृह से बुद्ध पाटलि ग्राम होते हुए गगा पार कर वैशाली पहुँचे जहाँ प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली ने उनको भिक्षुसघ के साथ भोजन कराया। इस समय परिनिर्वाण के तीन मास शेष थे। वेलुवग्राम मे भगवान् ने वर्षावास व्यतीत किया। यहाँ वे अत्यत रुग्ण हुए और आनद को यह शका हुई कि सघ से कहे बिना ही कही उनका परिनिर्वाण न हो जाए। इसपर बुद्ध ने कहा 'भिक्षुसघ मुझसे क्या चाहता है ? मैंने धर्म का निश्शेष उपदेश कर दिया है मेरी यह इच्छा नही है कि मैं सघ का नेतृत्व करता रहूँ' 'अब मैं अस्सी वर्ष का वृद्ध हूँ तुम्हे चाहिए कि 'अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा अनञ्जसरणा धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्जसरणा'। वैशाली से भगवान् भडग्राम और भोगनगर होते हुए पावा पहुँचे। वहाँ चुद कम्मारपुत्त के आतिथ्य ग्रहण मे 'सूकर मद्दव' खाने से उन्हें यत्रणामय रक्तातिसार उत्पन्न हुआ। रुग्णावस्था मे ही उन्होने कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया और हिरण्यवती नदी पार कर वे शालवन मे दो शालवृक्षो के बीच लेट गए। सुभद्र परिव्राजक को उन्होंने उपदेश दिया और भिक्षुओ से कहा कि उनके अनतर धर्म ही सघ का शास्ता रहेगा। छोटे मोटे शिक्षापदो में परिवर्तन करने की अनुमति भी इन्होने सघ को दी और छन्न भिक्षु पर ब्रह्मदड का विधान किया। पालि परपरा के अनुसार भगवान् के अंतिम शब्द थे 'वयधम्मा सखारा अप्पमादेन सपादेथाति।'

परपरा के अनुसार बुद्ध प्रात शरीर परिकर्म के अनतर भिक्षाचर्या के समय तक एकात आसन मे बैठते थे। भिक्षाचर्या कभी अकेले, कभी भिक्षुसंघ के साथ करते थे। श्रद्धालुओ के निमत्रण पर उनके यहाँ भोजन करते एव उपदेश देते थे। लौटने पर भिक्षुओ को उपदेश देते और फिर मुहूर्त भर विश्राम कर दर्शनार्थियों को उपदेश करते। सायं स्नान ध्यान के अनतर भिक्षुओ की समस्याएँ हल करते, रात्रि के मध्यम याम मे देवताओ के प्रश्नो के उत्तर देते, और रात्रि के अंतिम याम मे कुछ चक्रमण और कुछ विश्राम कर बुद्ध चक्षु से लोकावलोकन करते थे।

भगवान् बुद्ध को प्राचीन सदर्भो मे ध्यानशील तथा मौन और एकात के प्रेमी कहा गया है। उनकी दया और बुद्धिस्वातत्र्य विश्व-विदित हैं। वे अधश्रद्धा के कट्टर विरोधी थे और प्रत्यात्मवेदनीय सत्य का उपदेश करते थे। उनकी देशना मे जातिवाद और कर्मकाड का स्थान नही था। विद्या और आचरण से सपन्न पुरुष को ही वे सच्चा ब्राह्मण मानते थे, आभ्यतरिक ज्योति को ही वास्तविक अग्नि और परसेवा को ही पारमार्थिक अर्चन। इसी कारण उनकी देशना समाज के सभी वर्गों के लिये ग्राह्य थी और बौद्धिकता, नैतिकता एव आध्यात्मिकता की प्रगति मे एक विशिष्ट नया चरण थी।

बुद्ध देशना — भगवान् बुद्ध की मूल देशना क्या थी, इसपर प्रचुर विवाद है। स्वय बौद्धो मे कालातर मे नाना सप्रदायो का जन्म और विकास हुआ और वे सभी अपने को बुद्ध से अनुप्राणित मानते हैं। बुद्धवचन भी विभिन्न सप्रदायो मे समान रूप से सरक्षित नही है। और फिर जितना उनके नाम से सरक्षित है, विभिन्न भाषाओ और सप्रदायों मे, हीनयान और महायान मे, उन सब को बुद्धप्रोक्त कोई भी इतिहासकार नही मान सकता। स्पष्ट ही बुद्धवचन के सग्रह और सरक्षण मे नाना परिवर्तन और परिवर्धन अवश्य स्वीकार करने होगे और उसके निष्पन्न रूप को एक दीर्घकालीन विकास का परिणाम मानने के अतिरिक्त ऐतिहासिक आलोचना के समक्ष और युक्तियुक्त विकल्प नही है। महायानियो ने इस समस्या के हल के लिये एक ओर दो या तीन धर्मचक्रप्रवर्तनो की कल्पना की और दूसरी ओर 'विनयभेदान् देशनाभेद' इस सिद्धात की कल्पना की। अर्थात् भगवान् बुद्ध ने स्वय उपायकौशल्य से नाना प्रकार की धर्म देशना की। अधिकाश आधुनिक विद्वान् पालि त्रिपिटक के अतर्गत विनय और सुत्त पिटको मे सगृहीत सिद्धातो को मूल बुद्धदेशना मान लेते हैं। कुछ विद्वान् सर्वास्तिवाद अथवा महायान के साराश को मूल देशना स्वीकार करना चाहते हैं। अन्य विद्वान् मूल ग्रथो के ऐतिहासिक विश्लेषण से प्रारंभिक और उत्तरकालीन सिद्धातो मे अधिकाधिक विवेक करना चाहते हैं, जिसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान् इस प्रकार के विवेक के प्रयास को प्राय असभव समझते हैं। मतभेद होने पर भी नाना साप्रदायिक और ऐतिहासिक परिवर्तनो के पीछे मूल देशना की खोज नितात आवश्यक है क्योकि इस मूल सलग्नता पर ही आध्यात्मिक प्रामाणिकता निर्भर है।

भगवान् बुद्ध ने प्रचलित मागधी भाषा मे उपदेश दिए और सबको इसकी अनुमति दी कि वे उपदेशो को अपनी अपनी बोली (निरुक्ति) मे याद रखें। ऐसी स्थिति मे बौद्ध धर्म के प्रादेशिक प्रसार के साथ यह अनिवार्य था कि बुद्धवचन के क्रमश अनेक सग्रह प्रस्तुत हो जाएँ। इनमे केवल पालि का सग्रह ही अब पूर्ण है। अन्य सग्रहो के कुछ अश मूल रूप में एव कुछ अनुवादो मे ही मिलते हैं। इस प्रकार पालि त्रिपिटक का महत्व निर्विवाद है। इसकी

बुद्ध और बौद्ध धर्म

प्राचीनता भी असदिग्ध है क्योकि ई० पू० प्रथम शताब्दी मे इसको सुदूर सिहल मे लिपिबद्ध कर दिया गया था। तथापि यह स्वीकार करना कठिन है कि पालि मागधी है, साथ ही अभिधर्म पिटक की बुद्धोत्तरकालीनता आधुनिक विद्वानो मे प्राय निर्विवाद है। श्रीमती राइज डेविड्स तथा फाउवाल्नर आदि की खोजो मे प्रतीत होता है कि विनय एव सुत्त पिटको मे प्राचीन और अर्वाचीन अशो का भेद सर्वदा उपेक्षणीय है। उदाहरण के लिये विनय मे प्रातिमोक्ष प्राचीन है, सगीति विवरण अपेक्षाकृत अर्वाचीन, सुत्तपिटक मे सुत्तनिपात के अट्टक और पारायण वग्ग प्राचीन हैं, दीघ का महापदान सुत्त अपेक्षाकृत अर्वाचीन। यह कल्पना करना अयुक्त न होगा कि भगवान् बुद्ध ने गभीर आध्यात्मिक सत्य की ओर सरल, व्यावहारिक और मार्मिक रीति से परिस्थिति के अनुकूल सकेत किया और उन साकेतिक उक्तियो के सग्रह, व्याख्या, परिभाषा, वर्गीकरण आदि के द्वारा नाना साप्रदायिक सिद्धातो का विकास हुआ।

बुद्ध के युग मे अनेक श्रमण परिव्राजक ससार को एक दु खमय चक्र मानते थे। इस दृष्टि से बुद्ध सहमत थे और अनित्य ससार के द्वद्वात्मक दु ख से मुक्त होकर आत्यतिक शाति को उन्होंने स्वय अपनी पर्येषणा का लक्ष्य बनाया। ध्यान के द्वारा उन्होंने धर्मरूप परम सत्य का साक्षात्कार अथवा सबोधि की प्राप्ति की। यह पारमार्थिक धर्म तर्क का अगोचर था और उसके दो रूप निर्दिष्ट हैं— प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण। प्रतीत्यसमुत्पाद मे दु ख प्रपच की परतत्रता सकेतित है और निर्वाण मे परम शाति। अनित्य और परतत्र नाम रूप (चित्त और शरीर) को आत्मस्वरूप समझना ही मूल अविद्या है और उसी से तृष्णा एव कर्म द्वारा ससार-चक्र अनवरत गतिशील रहता है। इसके विपरीत शील अथवा सत्कर्म, वैराग्य, एवं प्रज्ञा ससार की हेतुपरपरा के निराकरण द्वारा निर्वाण की ओर ले जाते हैं। प्रज्ञा साक्षात्कारात्मक होती है। चार आर्य सत्यो मे मूलत यही सदेश प्रतिपादित है।

एक ओर भगवान् बुद्ध ने कर्मतत्व को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा चित्तप्रसूत बताकर यह प्रदर्शित कर दिया कि ससारवृक्ष का बीज मन ही है—'मनोपुब्बगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया' और दूसरी ओर मन की अनित्यता और परतत्रता के द्वारा उसकी अनात्मता और हेयता का उन्होंने स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया। ससार चित्त मे प्रतिष्ठित है और चित्त दु ख, अनित्य एव अनात्म के लक्षणो मे परिगृहीत। मूलत चित्त मे नैरात्म्य बोध के द्वारा चित्तोपशम ही निर्वाण है।

प्रथम आर्य सत्य की मीमासा करते हुए बौद्धो ने त्रिविधदु खता का प्रतिपादन किया है—दु ख दु खता जो सवेदनात्मक स्थूल दु ख है, परिणाम दु खता जो कि सुख के अन्यथाभाव से व्यक्त होती है, एव सस्कारदु खता जो सस्कारो की सचलनात्मकता है। इस सस्कार-दु खता के कारण ही 'सर्वं दु खम्' इस लक्षण का कही भी व्यभिचार नही होता। दु ख के सूक्ष्म एव विराट् रूप का सम्यग्बोध आध्यात्मिक सवेदनशीलता के विकसित होने पर ही सभव होता है। बौद्धो के अनुसार दु ख सत्य का साक्षात्कार होने पर पृथग्जन की स्थिति छूटकर आर्यत्व का उन्मेष होता है।

द्वितीय आर्य सत्य प्रतीत्यसमुत्पाद ही है। प्रतीत्यसमुत्पाद की अनेक प्राचीन और नवीन व्याख्याएँ हैं। कुछ व्याख्याकारों ने प्रतीत्य-समुत्पाद का मर्म कार्य-कारण-भाव का बोध एव उसका आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रयोग बताया है। अविद्या-सस्कार-विज्ञान नाम-रूप-षडायतन-स्पर्श-वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरा, मरण इन द्वादश निदानो अथवा कारणो की परपरा प्रतीत्यसमुत्पाद है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार प्रतीत्यसमुत्पाद शाश्वत और उच्छेद सदृश परस्पर विरुद्ध अतो का वर्जन करनेवाली मध्यम प्रतिपद् है। इस मध्यम प्रतिपद् का अर्थ एक ओर जगत् की प्रवाहरूपता किया गया है और दूसरी ओर सभी वस्तुओ की अन्योन्यापेक्षता अथवा स्वभावशून्यता बताया गया है। स्पष्ट ही इन और अन्य अनेक व्याख्याओ मे एक मूल अविशिष्ट भाव का विविध विकास देखा जाता है।

तृतीय आर्य सत्य दु खनिरोध है। यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या निर्वाण एक अभावमात्र है? कुछ सौत्रातिकों को छोडकर अन्य बौद्ध सप्रदायो मे निर्वाण को भाव रूप नही स्वीकार किया गया है। स्थविरवादी निर्वाण को भावरूप मानते हैं, वैभाषिक धर्म-स्वभाव रूप, योगाचार तथता स्वरूप, और माध्यमिक चतुष्कोटि विनिर्मुक्त शून्य स्वरूप। इतना निस्सदेह है कि निर्वाण मे दु ख, क्लेश कर्म और अविद्या का अभाव है। निर्वाण परम शात और परम अर्थ है, असस्कृत, निर्विकार और अनिर्वचनीय है। आध्यात्मिक साधना मे जैसे जैसे चित्त शुद्ध, प्रभास्वर और शात होता जाता है वैसे वैसे ही वह निर्वाण के अभिमुख होता है। इस साधनानिरत चित्तसतति की अतिम अवस्था अथवा लक्ष्यप्राप्ति का पूर्वावस्थाओ अथवा सतति सबध स्थापित कर सकना सभव प्रतीत नही होता। इस कठिनाई को दूर करने के लिये अनेक उपायो का आविष्कार किया गया था, तथा वैभाषिको के द्वारा 'प्राप्ति' और 'अप्राप्ति' नाम के विशिष्ट धर्मों की कल्पना। वस्तुत अतिम अवस्था मे अनिर्वचनीयता के आश्रय के अतिरिक्त और कोई उपाय नही है।

प्राय निर्वाण की भावाभावता का प्रश्न साभिप्राय होता है। पुद्गलवादियों के अतिरिक्त अन्य बौद्ध सप्रदायो मे आत्मा अथवा जीव की सत्ता का सर्वथा तिरस्कार बुद्ध का अभीष्ट माना गया है। प्राय इस प्रकार का आत्मातत्व तथा नैरात्म्यवाद बौद्ध दृष्टि की विशेषता बताई जाती है। बौद्ध दर्शन में आत्मा के स्थान पर पाच स्कधों का अनित्य सघात स्वीकार किया जाता है। पांच स्कध हैं—रूप, विज्ञान, वेदना, सज्ञा एव सस्कार। स्कध सतति का पूर्वापद सबध प्रतीत्य समुत्पाद अथवा हेतु प्रत्यय के अधीन है। अनुभव के घटक इन अनेक और अनित्य तत्वो में कोई भी ऐसा स्थिर और समान तत्व नही है जिसे आत्मा माना जा सके। ऐसी स्थिति मे कर्ता और भोक्ता के बिना ही कर्म और भोग की सत्ता माननी होगी। अथवा यह कहना चाहिए कि कर्म और भोग मे ही कर्तृत्व और भोक्तृत्व को प्रतिभासित या अध्यास्त मानना होगा। स्मृति एव प्रत्यभिज्ञान को समझाने के लिये इस दर्शन मे केवल सस्कार अथवा वासना को पर्याप्त समझा गया। इस प्रकार के नैरात्म्य के स्वीकार करने पर निर्वाण अनु-भव के अभाव के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है? साख्य, योग और वेदात मे चित्तनिरोध होने पर आत्मा स्वरूप प्रतिष्ठित होती है, अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति होने पर आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। जैन दर्शन मे कर्मनिवृत्ति होने पर जीव को अपने पारमार्थिक स्वरूप और शक्ति की उपलब्धि होती है। प्रश्न यह है कि अनात्मवादी बौद्ध

दर्शन में अज्ञान अथवा चित्त की निवृत्ति पर क्या शेष रहता है ? निर्वाण प्राप्त किसे होता है ? इसका एक उत्तर यह है कि सर्वं दु खम् को मान लेने पर निश्शेषता को ही श्रेयसी मानना चाहिए, यद्यपि इससे असतुष्ट होकर वात्सीपुत्रीय योगाचार संप्रदायो में 'पुद्गल' अथवा 'आलय विज्ञान' के नाम से एक आत्मवत् तत्व की कल्पना की गई। नागार्जुन का कहना है 'आत्मेत्यपि देशितप्रज्ञपितमनात्मेत्यपि। बुद्धैरात्मा न चानात्मा कश्चिदित्यपि देशितम्।' यहाँ इस तथ्य की ओर सकेत है कि प्राचीन बौद्ध आगम मे आत्मविषयक उक्तियाँ सब एकरस नही हैं। इस उक्तिभेद पर सूक्ष्मता से विचार कर कुछ आधुनिक विद्वानो ने यह मत प्रतिपादित किया है कि स्वय बुद्ध ने स्वय अनात्म तत्वो का अनात्मत्व बनाया था न कि आत्मा का अनस्तित्व। उन्होने यह कही नहीं कहा कि आत्मा है ही नही। उन्होने केवल यह कहा कि रूप, विज्ञान, आदि स्कध आत्मा नही है। अर्थात् बुद्ध का आत्मप्रतिषेध वास्तव मे अहकारप्रतिषेध के तुल्य है। आत्मा का स्कधो में अभिप्रेत अभाव अन्योन्याभाव है न कि आत्मा का सर्वथा अत्यताभाव। इसी कारण बुद्ध ने संयुत्तनिकाय मे स्पष्ट पूछे जाने पर भी आत्मा का प्रतिषेध नही किया, और न तथागत का मृत्यु के अनतर अभाव बताया। यह स्मरणीय है कि आत्मा के अनत और अपरिच्छिन्न होने के कारण उन्होने उसके अस्तित्व का भी स्थापन नही किया क्योकि साधारण अनुभव मे 'अस्ति' और नास्ति' पद परिच्छिन्न गोचर मे ही सार्थक होते हैं। इस दृष्टि से आत्मा और निर्वाण पर बुद्ध के गभीर अभिप्राय को शाश्वत और उच्छेद से परे एक अतर्क्य माध्यमिक प्रतिपद् मानना चाहिए। यही उनके आर्य मौन से पूरी तरह समजस हो सकता है।

चतुर्थ आर्यसत्य या निरोधगामिनी प्रतिपद् प्राय आर्य अष्टागिक मार्ग से अभिन्न प्रतिपादित है। अष्टागिक मार्ग के अग है—सम्यक् दृष्टि, ०सकल्प, ०वाक्, ०कर्मा त, ०आजीव, ०यायाम, ०स्मृति और ०समाधि। वस्तुत यह अष्टक बोधपाक्षिक धर्मों का सग्रह विशेष है। प्राय ३७ बोधिपाक्षिक धर्म उल्लिखित हैं। प्रकारातर से शील, समाधि और प्रज्ञा, इन तीन मे आध्यात्मिक साधन सगृहीत हो जाता है। बुद्धघोष ने 'विसुद्धिमग्गो' मे इसी क्रम का आश्रय लिया है। यह स्मरणीय है कि जिस क्रम से दु ख उत्पन्न होता है उसके विपरीत क्रम से वह आपातत निरुद्ध होता है। दु ख की कारणपरपरा है अविद्या—क्लेश-कर्म जिसमे उत्तरोत्तर स्थूल है। दु ख निवृत्ति की परपरा मे पहले शील के द्वारा कर्म का विशोधन होता है, फिर समाधि अथवा भावना के द्वारा क्लेशप्रहाण, और फिर प्रज्ञा अथवा साक्षात्कार के द्वारा अविद्या का अपाकरण। यह अवधेय है कि शीलाभ्यास के पूर्व ही सम्यग्दृष्टि आवश्यक है। सम्यग्दृष्टि स्वय परोक्षज्ञानरूपा है किंतु साधन की दिग्दर्शिका है। शील और समाधि दोनो ही सयम के रूप हैं—स्थूल और सूक्ष्म, पहले से कर्म का परिष्कार होता है, दूसरे से क्लेशो का तनूकरण। शील मे सफलता समाधि को सरल बनाती है, समाधि मे सफलता शील को पूर्णता प्रदान करती है। समाधि में पूर्णता होने पर सम्यग्दृष्टि का स्थान प्रज्ञा ले लेती है।

पटिसभिदामग्ग के अनुसार शील चेतना है, शील चैतसिक है, शील सवर है, शील अव्यतिक्रम है। उपासको के लिये पाच-शील उपदिष्ट है, अनुपसपन्न श्रामणेरो के लिये दशशील विहित है, उपसपन्न भिक्षु के लिये प्रातिमोक्ष संवर आदि प्रज्ञप्त हैं। पंचशील मे अहिंसा, अस्तेय, सत्य, अव्यभिचार और मद्यानुपसेवन संगृहीत हैं। यह स्मरणीय है कि पचशील पच विरतियो के रूप मे अभिहित हैं, यथा प्राणातिपात से विरति, अदत्तादान से विरति इत्यादि। सिगालोवाद सुत्तत आदि मे उपासक धर्म का और अधिक विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है।

प्रव्रज्या प्राप्त करने पर भिक्षु श्रामणेर कहलाता था और उसे एक उपाध्याय एव आचार्य के निश्रय मे रहना पडता था। उसके लिये शील मे १० विरतियाँ या वर्जनाएँ सगृहीत हैं—प्राणघात से, चोरी से, अब्रह्मचर्य से, झूठ से, शराब और नशीली वस्तुओ से, विकाल-भोजन से, नाच, गाना बजाना, और तमाशा देखने से, माला, गध, विलेपन और अलकरण से, ऊँची शय्या और बहुमूल्य शय्या से, और सोना चाँदी ग्रहण करने से। पिंडपात, चीवर, शयनासन, ग्लान प्रत्यय भेषज्य भिक्षु के चार निश्रय कहलाते हैं। इनमे क्रमश. अतिरिक्त लाभ की अनुमति भिक्षुजीवन और सघ की समृद्धि मे प्रगति सूचित करती है। भिक्षु जीवन और सगठन के नियम विनय-पिटक मे सगृहीत हैं। इनका भी एक विकास अनुमेय है। प्रारभिक अवस्था मे भिक्षुओं के एकात जीवन पर अत्यधिक जोर था। पीछे क्रमश' आवासिक जीवन पल्लवित हुआ। चातुर्दिश सघ प्राय तीन योजन से अनधिक सीमा के अनेक स्थानीय सघारामो मे विभक्त था जिनमे गणतत्र की प्रणाली से कार्यनिर्वाह होता था। एकत्रित भिक्षुसमूह मे ऐकमत्य, उद्वाहिका, शलाकाग्रहण, अथवा बहुमत से निश्चय पर पहुँचा जाता था।

भिक्षु उपोसथ के लिये प्रतिपक्ष एकत्र होते थे और उस अवसर पर प्रातिमोक्ष का पाठ किया जाता था। प्रातिमोक्ष के आठ विभाग हैं—पाराजिक, सघावशेष, अनियत, नैसर्गिक पातयतिक, पातयतिक, प्रतिदेशनीय, शैक्ष एव अधिकरण शमथ। इनके अतर्गत नियमो की सख्या सब सप्रदायो मे समान नही है। किंतु यह सख्याभेद मुख्यत शैक्ष धर्मो के परिगणन मे है। शेष वर्गो मे सख्या प्राय समान है और प्राचीन 'दियट्ठसिक्खापदसत' के उल्लेख से समंजस है। प्रत्येक वर्ग के पाठ के बाद सबसे तीन बार पूछा जाता था 'क्या आप लोग इन दोषो से शुद्ध हैं ?' अपराधी भिक्षु अपने व्यतिक्रम की आदेशना करते थे और उनपर उचित प्रायश्चित्त अथवा दड की व्यवस्था की जाती थी। वर्षावास के अपने नियम थे और उनके अनतर प्रवारणा नाम का पर्व होता था।

सगीतियाँ और निकाय—बौद्ध परपरा के अनुसार परिनिर्वाण के अनतर ही राजगृह मे प्रथम सगीति हुई थी और इस अवसर पर विनय और धर्म का सग्रह किया गया था। इस सगीति की ऐतिहासिकता पर इतिहासकारो मे प्रचुर विवाद रहा है किंतु इस विषय की खोज की वर्तमान अवस्था को इस सगीति की ऐतिहासिकता के अनुकूल कहना होगा, तथापि यह सदिग्ध रहता है कि इस अवसर पर कौन कौन से सदर्भ सगृहीत हुए। दूसरी सगीति परिनिर्वाण से सौ वर्ष पश्चात् वैशाली मे हुई जब कि महावस के अनुसार मगध का राजा कालाशोक था। इस समय सद्धर्म अवती से वैशाली और मथुरा से कोशावी तक फैला हुआ था। सगीति वैशाली के भिक्षुओं के द्वारा प्रचारित १० वस्तुओ के निर्णय के लिये हुई थी। ये १०

वस्तुएँ इस प्रकार थीं—शृंगि-लवण-कल्प, द्वि अंगुल-कल्प, ग्रामांतर-कल्प, आवास-कल्प, अनुमत-कल्प, आचीर्ण-कल्प, अमथित-कल्प, जलोगीपान-कल्प, अदशक-कल्प, जातरूप-रजत-कल्प। इन कल्पों को वज्जिपुत्तक भिक्षु विहित मानते थे और उन्होंने आयुष्मान् यश के विरोध का तिरस्कार किया। इसपर यश के प्रयत्न से वैशाली में ७०० पूर्वी और पश्चिमी भिक्षुओं की संगीति हुई जिसमें दसों वस्तुओं को विनयविरुद्ध ठहराया गया। दीपवंस के अनुसार वज्जिपुत्तकों ने इस निर्णय को स्वीकार न कर स्थविर अर्हंतों के बिना एक अन्य 'महासंगीति' की, यद्यपि यह स्मरणीय है कि इस प्रकार का विवरण किसी विनय में उपलब्ध नहीं होता। कदाचित् दूसरी संगीति के अनंतर किसी समय महासांघिकों का विकास एवं संघभेद का प्रादुर्भाव मानना चाहिए।

दूसरी संगीति से अशोक तक के अंतराल में १८ विभिन्न बौद्ध संप्रदायों का आविर्भाव बताया गया है। इन संप्रदायों के आविर्भाव का क्रम सांप्रदायिक परंपराओं में भिन्न भिन्न रूप से दिया गया है। उदाहरण के लिये दीपवंस के अनुसार पहले महासांघिक पृथक् हुए। उनसे कालांतर में एकब्बोहारिक और गोकुलिक, गोकुलिकों से पञ्जत्तिवादी, बाहुलिक और चेतियवादी। दूसरी ओर थेरवादियों से महिंसासक और वज्जिपुत्तक निकले। वज्जिपुत्तकों से धम्मुत्तरिय, भद्दयानिक, छन्नगरिक, एवं समितीय, तथा महिंसासकों से धम्मगुत्तिक, एवं सब्बत्थिवादी, सब्बत्थिवादियों से कस्सपिक, उनसे संकंतिक, और संकंतिकों से सुत्तवादी। यह विवरण थेरवादियों की दृष्टि से है। दूसरी ओर सर्वास्तिवादियों की दृष्टि वसुमित्र के समयभेदोपरचनचक्र में संगृहीत है। इसके अनुसार महासांघिक तीन शाखाओं में विभक्त हुए। एकव्यावहारिक, लोकोत्तरवादी एवं कौक्कुलिक। पीछे उनसे बहुश्रुतीय और प्रज्ञप्तिवादियों का आविर्भाव हुआ, तथा बुद्धाब्द के दूसरे शतक के समाप्त होते उनसे चैत्यशैल, अपरशैल और उत्तरशैल शाखाएँ निकलीं। दूसरी ओर स्थविरवादी सर्वास्तिवादी अथवा हेतुवादी, तथा मूलस्थविरवादी निकायों में विभक्त हुए। मूल स्थविर ही हैमवत कहलाए। पीछे सर्वास्तिवादियों से वात्सीपुत्रीय, महीशासक, काश्यपीय, एवं सौत्रांतिकों का आविर्भाव हुआ। वात्सीपुत्रीयों में धर्मोत्तरीय, भद्रयाणीय, सम्मतीय, एवं षण्णगरिक निकाय उत्पन्न हुए, तथा महीशासकों से धर्मगुप्तों का आविर्भाव हुआ। इन और अन्य सूचियों को देखने से इतना निश्चित होता ही है कि कुछ प्रमुख नैकायिक धाराएँ दूसरी बुद्धाब्द शती में प्रकट हुईं। इनमें महासांघिकों के अनुसार बुद्ध और बोधिसत्वों का जन्म सर्वथा लोकोत्तर होता है। बुद्ध का स्वभाव और सब धर्म लोकोत्तर हैं। उनका लोकवत् प्रतीयमान व्यवहार केवल लोकानुवर्तन हैं। उनकी रूपकाय, आयु और प्रभाव अमित हैं। उनकी देह अनास्रव धर्मों से निर्मित है। वे शाश्वत समाधि में स्थित रहते हैं और उनके शब्द केवल प्रतीत होते हैं। महासांघिक प्रकृतिभास्वर चित्त को असंस्कृत धर्म मानते थे। त्रिपिटक के अतिरिक्त उनमें संयुक्त पिटक और धारणीपिटक भी विदित थे। यह प्राय स्वीकार किया जाता है कि महासांघिक धारा ने महायान के आविर्भाव में विशेष भाग ग्रहण किया। महासांघिकों का आग्रह एक ओर बुद्ध और बोधिसत्व की अलौकिकता पर था, दूसरी ओर अर्हंतों की परिहाणीयता पर। उनकी एक शाखा का नाम ही लोकोत्तरवादी था और इनका एक प्रमुख ग्रंथ 'महावस्तु' सुविदित है। महासांघिक, वात्सीपुत्रीय, सर्वास्तिवादी एवं स्थविरवादी, ये चार प्रमुखतम निकाय थे। युवान् च्वांग ने इनके विहार वासियों में पाए थे और तारानाथ ने उनकी चार युग में सत्ता सूचित की है। आंध्रदेश में महासांघिकों का विशेष विकास हुआ। अमरावती और नागार्जुनीकोंड के अभिलेखों में इनके 'चैत्यक', 'पूर्वशैलीय', 'अपरशैलीय' आदि निकायों के नाम मिलते हैं। महासांघिकों के इन प्रभेदों को बुद्धघोष ने भी 'अंधक' अथवा अंधक कहा है।

वात्सीपुत्रीयों की कई शाखाओं के नाम मथुरा और अपरांत के अभिलेखों में उपलब्ध होते हैं। युवान् च्वांग ने उनके विहार प्रधानतया पश्चिम में देखे थे और इत्सिंग के विवरण से इसका समर्थन होता है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध शाखा सम्मितीयों की थी। वात्सीपुत्रीयों का मुख्य सिद्धांत पुद्गलवाद था। उनका कहना था कि पुद्गल न स्कंधों से भिन्न है न अभिन्न। आगम के प्रसिद्ध भारहार सूत्र का इस संप्रदाय में विशेष आदर था। कथावस्तु में सर्वप्रथम पुद्गलवाद का खंडन मिलता है और यह विचारपूर्वक प्रतिपादित किया गया है कि यह प्रथम पुद्गलकथा निस्संदेह कथावत्थु के प्राचीनतम अंशों में है।

परंपरा के अनुसार कथावत्थु की रचना मोग्गलिपुत्त तिस्स ने अशोककालीन तृतीय बौद्ध संगीति के अनंतर पर की थी। सिंहली परंपरा अपने को मूल और प्रामाणिक स्थविरवाद की परंपरा मानती है जिसे अशोक के प्रयत्नों ने सिंहल तक पहुँचाकर प्रतिष्ठित किया। इस परंपरा के अनुसार अशोक ने अपने समय में संघ की दुरवस्था देखकर मोग्गलिपुत्त तिस्स की प्रमुखता में पाटलिपुत्र में एक संगीति का आयोजन किया जिसमें स्थविरवाद (विभज्यवाद) की स्थापना हुई तथा अन्य विरोधी मतों का खंडन किया गया। संघ से उन भिक्षुओं का भी निष्कासन हुआ जिनकी दृष्टि एवं शील अशुद्ध थे। इस प्रकार अशोक के प्रयत्नों से संघ पुन शुद्ध एवं समग्र हुआ। परंपरा के अनुसार अशोक ने धर्मप्रचार के लिये नाना विहार, एवं स्तूप बनवाए। साथ ही मोग्गलिपुत्त के नेतृत्व में संघ ने नाना दिशाओं में धर्म के प्रचार के लिये विशेष व्यक्तियों को भेजा। कश्मीर गंधार के लिये मज्झंतिक भेजे गए, महिषमंडल के लिये महादेव, वनवासी के लिये रक्खित, अपरांत के लिये योनक धम्मरक्खित, महारट्ठ के लिये महाधम्मरक्खित, यवनों में महारक्खित, हिमवत्प्रदेश में मज्झिम, काश्यपगोत्र, मूलदेव, सहदेव और दुंदुभिस्सर, सुवर्णभूमि में सोण और उत्तर, ताम्रपर्णी में महेंद्र, 'इट्ठिय', उत्तिय, संबल और भद्दसाल। यह उल्लेखनीय है कि सांची और सोनारी के स्तूपों से प्राप्त अभिलेखों में 'सत्पुरुष मौद्गलीपुत्र', हैमवत दुंदुभिस्वर, सत्पुरुष मध्यम, एवं 'सर्वहैमवताचार्य काश्यपगोत्र' के नाम उपलब्ध होते हैं जिससे इस साहित्यिक परंपरा का समर्थन होता है। दूसरी ओर अशोक के अपने अभिलेखों में तृतीय संगीति का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अशोक जिस धर्म के प्रचार का सतत उल्लेख करता है उसे बौद्ध धर्म मानना भी सरल नहीं है। अशोक का धर्म आपातत सब धर्मों का सार ही प्रतीत होता है। इस कारण इतिहासकारों की यह प्रापित उक्ति कि अशोक के प्रयत्नों से मगध का एक स्थानीय धर्म विश्व धर्म बन गया, अयुक्त प्रतीत होती है। बौद्ध धर्म का प्रसार मूलत

बुद्ध प्रतिमा (नागार्जुनीकोंड)
[फोटो सूचना एवं जन संपर्क विभाग, आंध्र प्रदेश, हैदराबाद]

बुद्ध प्रतिमा स्वर्ण जटित कांस्य (नालंदा)
[फोटो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, जनपथ, नई दिल्ली]

बुद्ध प्रतिमा (सारनाथ के चीनी मंदिर में अवस्थित)
[फोटो . चंद्रधर त्रिपाठी, आई० ए० एस०, डिब्रूगढ, असम]

बड़ौदा (पृ० १८२)
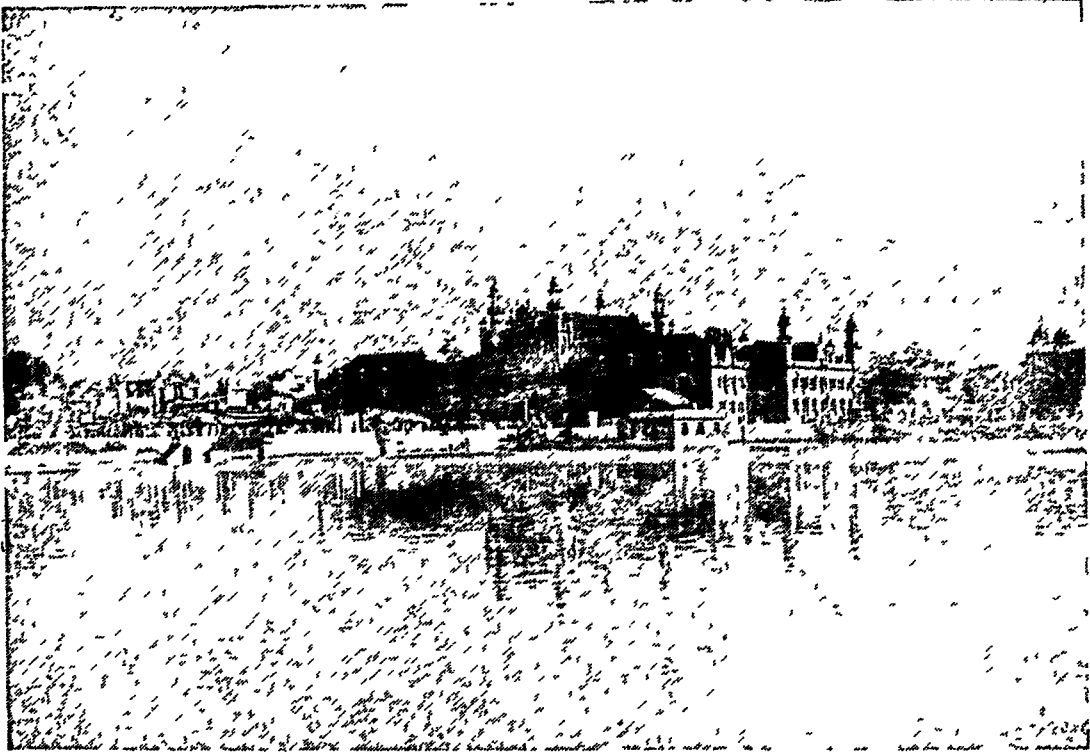
सुरसागर तलाव, बडोदरा (बडौदा)
[फोटो सूचना एवं संपर्क विभाग, गुजरात, अहमदाबाद]

ब्रिटिश संग्रहालय (पृ० ४०३–४०४)

[फोटो मेजर बी० पी० सी० ब्रिजवाटर, सेक्रेटरी ब्रिटिश म्यूज़ियम के सौजन्य से]
ब्रिटिश म्यूज़ियम लंदन का उक्त भवन ग्रेट रसेल स्ट्रीट में अवस्थित है जो सुप्रसिद्ध वास्तुविद् सर रॉबर्ट स्मर्क की परिकल्पना के अनुसार १८५२ ई० में बनकर तैयार हुआ।

स्वय सघ के प्रयत्नो का परिणाम था, यद्यपि इस प्रक्रिया मे एकाधिक महान् शासकों ने उचित योगदान दिया।

पालि त्रिपिटक सिंहल मे राजा वट्टगामणि के समय प्रथम शताब्दी ई० पू० मे लिपिबद्ध किया गया। परपरा के अनुसार महेंद्र अपने साथ अट्ठकथाएँ भी लाए थे और ये भी इसी समय लिखी गईं। ये सिंहली भाषा मे कई शताब्दियो तक उपलब्ध थी और उन्ही के आधार पर बुद्धघोष ने अपनी प्रसिद्ध पालि अट्ठकथाएँ लिखी। स्थविरवादी अभिधर्म और आचार्यों के अनुसार सत्य धर्मात्मक है। धर्म नाना और पृथक् पृथक् हैं। प्रत्येक अपने प्रतिविशिष्ट स्वभाव को धारण करता है और हेतु प्रत्यय से धारित होता है। आचार्य अनिरुद्ध के अनुसार रूप, चित्त, चैत्त और निर्वाण, ये चार धर्मो के मुख्य प्रकार हैं। चैत्त धर्मों मे वेदना, सज्ञा एव सस्कार सगृहीत हैं। इस प्रकार यह विभाजन प्राचीन पच स्कध और असस्कृत का ही परिष्कृत रूप है। सस्कार स्कध का विशेष विस्तार किया गया। चित्त का अकुशल, कुशल और अव्याकृत, यह त्रिविध मौलिक विभाजन किया गया। लोभ, द्वेष और मोह अकुशल मूल हैं। कुशल चित्त चतुर्विध है—कामावचर रूपावचर अरूपावचर और लोकोत्तर। अव्याकृत चित्त द्विविध है विपाक और क्रिया। धम्मसगणि मे कुल ८९ प्रकार के चित्तो का विवरण है। पट्ठानप्पकरण मे धर्मों का कार्य-कारण-भाव की दृष्टि से अभिसबध आलोचित किया गया है और २४ प्रकार के पच्चयो (प्रत्ययो) का विवरण दिया गया है। यदि यह विश्लेपण ज्ञान मीमासा और तर्क की दृष्टि से महत्वपूर्ण है तो मनोविज्ञान की दृष्टि से वीथिचित्त आदि का विश्लेषण एक अपूर्व गभीरता और सूक्ष्मता प्रकट करता है। इस प्रकार के विश्लेपण मे चित्त की प्रक्रियाओ का नियत अवस्थाक्रम प्रदर्शित किया गया है। जिस प्रकार अशोक और तृतीय सगीति स्थविरवाद के इतिहास के महत्वपूर्ण अग हैं, इसी प्रकार कनिष्क और चतुर्थ सगीति सर्वास्तिवाद के इतिहास मे महत्वपूर्ण हैं। अशोक और मिलिंद (मेनेंडर) के तुल्य ही कनिष्क का नाम बौद्ध इतिहास मे जाज्वल्यमान है। इस चतुर्थ सगीति के अध्यक्ष पार्श्व थे जो कनिष्क द्वारा स्थापित पुरुषपुर के आश्चर्य महाविहार के थे। सगीति का स्थान कश्मीर का कुंडलवन विहार अथवा जालधर का कुवन बताया गया है। इस सगीति मे पार्श्व के साथ ५०० अर्हत् और वसुमित्र के साथ ५०० बोधिसत्वो का भागग्रहण कहा गया है। किंतु बोधिसत्वो का इस प्रसग मे उल्लेख अधिक विश्वास्य नही प्रतीत होता। तृतीय सगीति के विरुद्ध इस सगीति मे सभी अष्टादश निकायो की प्रामाणिकता का स्वीकार बताया गया है। सगीति का सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी कार्य 'अभिधर्म महाविभाषा' की रचना थी।

सर्वास्तिवादियो के दो भेद प्रसिद्ध हैं — वैभाषिक और सौत्रातिक विभाषा के अनुयायी वैभाषिक कहलाते थे। धर्मत्रात, घोषक, वसुमित्र एव बुद्धदेव वैभाषिक कहलाते थे। इनमे घोषक तुषारजातीय थे। यह उल्लेख है कि वैभाषिको के दो मुख्य प्रभेद थे काश्मीर वैभाषिक और पाश्चात्य वैभाषिक जिनका केंद्र गधार मे था। सर्वास्तिवाद का मथन कर आचार्य वसुबधु ने अपना जगत्प्रसिद्ध 'अभिधर्मकोश' रचा। वसुबधु का कालनिर्णय प्रचुर विवाद का विषय रहा है। दो वसुबधुओ की सत्ता को अब सिद्ध मानना चाहिए किंतु यह सिद्ध नही है कि इनमे एक महायानी आचार्य विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि का रचयिता था और दूसरा कोश का। मुख्य वसुबधु को पाँचवी शताब्दी मे रखना ही प्रमाणसगत प्रतीत होता है।

सर्वास्तिवादियो का मुख्य सिद्धात था 'सर्वमस्ति'। वैभाषिको के अनुसार इसका अर्थ था सब धर्मों की त्रैयध्विक सत्ता का स्वीकार। अर्थात् अतीत और अनागत धर्मो के अस्तित्व का अभ्युपगम। आपातत यह मत साख्यो के परिणामवाद एव प्रवाहनित्यता के सिद्धात सदृश है। किंतु वैभाषिक सस्कृत लक्षणों के स्वीकार से शाश्वत प्रसग का निवारण करते थे। सस्कृत लक्षण चार हैं—उत्पाद, स्थिति, व्यय, एव निरोध या अनित्यता। ये आपातत विरुद्ध होने पर भी वस्तुत सहकारी हैं। त्रैयध्विक द्रव्य सत्ता के साथ अध्व भेद स्थापित करने के लिये अनेक मत उद्भावित किए गए जिनमे वसुमित्र के अवस्थान्यथात्व को वसुबधु ने शोभन कहा है। वैभाषिको के विरुद्ध सौत्रातिको का कहना था कि 'सर्व' शब्द से 'द्वादशायतन' समझना चाहिए।

वैभाषिक संस्कृत धर्मों मे रूप, चित्त, चैत्त और चित्तविप्रयुक्त सस्कार गिनते थे। इनके अतिरिक्त वे तीन असस्कृत धर्म स्वीकार करते थे, आकाश, प्रतिसख्यानिरोध, अप्रतिसख्यानिरोध। इन सब धर्मों के कार्य-कारण-भाव के विश्लेपण के द्वारा चार प्रत्यय, छह हेतु एव पाँच फल निर्धारित किए गए।

यशोमित्र ने सौत्रातिको के नामार्थ पर कहा है 'ये सूत्रप्रामाणिका न तु शास्त्रप्रामाणिकास्ते सौत्रातिका।' युवान्-च्वाग ने कुमारलब्ध (कुमारलात) को सौत्रातिक सप्रदाय का प्रवर्तक बताया है। कुमारलब्ध तक्षशिलावासी थे और अश्वघोष, नागार्जुन एव आर्यदेव के समकालीन प्रसिद्ध हैं। भारतीय दर्शन के विकास मे सौत्रातिको की सूक्ष्म समीक्षा अत्यत सहायक सिद्ध हुई। वैभाषिको के द्वारा स्वीकृत पचधर्मों मे सौत्रातिक असस्कृत को निरोधमात्र एव चित्तविप्रयुक्त को प्रज्ञप्तिमात्र मानते थे। रूप उनके मत से अनुमेय हो जाता है। इस प्रकार चित्त और चैत्त ही निश्चित और प्रमुख तत्व हो जाते हैं। वे एक सूक्ष्म और एकरस मनोविज्ञान की सत्ता मानते थे। इस प्रकार सौत्रातिको के सिद्धातो ने विज्ञानवाद एव बौद्ध न्याय, दोनो का ही मार्ग प्रशस्त किया।

महायान — हीनयान और महायान, इनका इस प्रकार नामकरण एव भेद महायान की कल्पना है। हीनयान को श्रावकयान भी कहा गया है, महायान को एकयान अग्रयान, बोधिसत्वयान एव बुद्धयान भी। यानभेद महायानसूत्रो मे आविर्भूत और महायान-शास्त्रो मे सविस्तर प्रतिपादित हुआ है। नागार्जुन के अनुसार बुद्ध ने अपनी वास्तविक देशना अधिकारी बोधिसत्वो को दी थी, उनकी प्रकट देशना न्यून अधिकारियो के लिये अर्हद्विषयक थी। इस प्रकार यानभेद का आधार अधिकारभेद एव लक्ष्यभेद था। महायान के सिद्धात-पक्ष मे बुद्धत्व, शून्यता एव चित्तमात्रता प्रधान हैं, साधन-पक्ष में बोधिसत्वचर्या जिसमे पारमिताएँ और भूमियाँ महत्वपूर्ण हैं।

हीनयानी का लक्ष्य केवल अपने लिये अर्हत्व की प्राप्ति है। महायानी का लक्ष्य सब प्राणियो के उद्धार के लिये बुद्धत्व की

प्राप्ति है। यही महायान की लक्ष्यगत महत्ता है और इसके अनुरूप प्रणिधान की योग्यता ही महायानी का उच्चाधिकार है। पुद्गल-शून्यता के बोध से क्लेशावरण का क्षय हो जाता है और इस प्रकार अर्हत्त्व प्राप्त होता है। किंतु इस साधन से ज्ञेयावरण के न हटने के कारण सर्वज्ञता अथवा बुद्धत्व की प्राप्ति नहीं होती। बुद्धत्व के लिये सर्वप्रथम अशेष प्राणियों के कल्याण के लिये बोधिप्राप्ति का संकल्प आवश्यक है। इस बोधिचित्त प्रणिधान के अनंतर नाना भूमियों में पारमिताओं का साधन किया जाता है। अंत में धर्मशून्यता के बोध से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है।

महायान में बोधिसत्वचर्या की तीन मुख्य अवस्थाएँ हैं जिनमें पहली प्रकृतिचर्या द्विविध है, गोत्रभूमि एवं अधिमुक्तिचर्या। गोत्र वास्तव में एक प्रकार का स्वभाव एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति है जिसका पूर्वकर्म के प्रभाव में निर्माण होता है। यही प्रकारांतर से 'अधिकार' का मूल है। दूसरी अवस्था बोधिसत्व भूमियों की है (दे० दशभूमीश्वर)।

महायान की उत्पत्ति के कारण, ऐतिहासिक क्रम एवं देश काल के विषय में ऐकमत्य नहीं है। महायानियों ने अपनी दृष्टि की प्रामाणिकता एवं मूल संलग्नता के पक्ष में अनेक युक्तियाँ दी हैं। उनका कहना है कि वास्तविक बुद्ध देशना का लक्षण, जो विनय और सूत्र में उपलब्ध हो तथा धर्मता से अविरुद्ध हो, महायान में ही है। यहाँ वे 'विनय' और 'सूत्र' से माहायानिक आगम को ही लेते थे। इस मत के विरोधी—और इनमें अधिकांश आधुनिक इतिहासकार सम्मिलित हैं—माहायानिक आगम को बुद्धवचन नहीं मान पाते क्योंकि उनकी उपलब्धि बुद्ध के युग के बहुत बाद में होती है। किंतु सूक्ष्म परीक्षा से यह दिखलाया जा सकता है कि कुछ प्रधान माहायानिक सिद्धांत बीज रूप से प्राचीन आगमों में भी संकेतित हैं। और फिर बुद्धवचन का अभिप्राय समझने में धर्मता का आनुलोम्य उपेक्ष्य नहीं हो सकता और महायान के पक्ष में कहना होगा कि उसने बुद्ध के अपने जीवन और साधन को सबके लिये आदर्श बता कर अपना एक अनिवार्य मूल्य प्रकट किया है। सैद्धांतिक विस्तार और अभिधान की दृष्टि से वास्तव में बुद्ध देशना को पूर्णत 'हीनयान' अथवा 'महायान' कह सकना कठिन है। अवश्य ही 'हीनयान' का विकास पहले हुआ किंतु उसके कुछ प्राचीन संप्रदायों में ऐसे सिद्धांत एवं प्रवृत्तियाँ थीं जो क्रमश विकसित होकर महायान में परिणत हुईं। इनमें महासांघिक और सर्वास्तिवादी संप्रदाय उल्लेख्य हैं।

महायान के उत्पत्ति स्थल के विषय में अष्टसाहस्रिका की प्रसिद्ध उक्ति महासांघिकों के आंध्र केंद्र की ओर संकेत करती है। ई० शताब्दी के मध्य तक प्रज्ञापारमिता का चीनी अनुवाद, एवं प्राय उस समय तक उसपर नागार्जुन का विशाल प्रज्ञापारमिताशास्त्र निबद्ध हो चुके थे। सुदूर पूर्व तक यह प्रसार और इतना शास्त्रीय विकास महायान की उत्पत्ति संभवत ई० पू० प्रथम शताब्दी में सूचित करता है। महायान-सूत्र-राशि कितनी विशाल है इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि महाव्युत्पत्ति में १०५ सूत्रों के नाम दिए गए हैं, शिक्षासमुच्चय में प्राय १०० सूत्रग्रंथों से उद्धरण प्राप्त होते हैं, नंजियों के चीनी त्रिपिटक में सात वर्गों में विभक्त ५४१ महायानसूत्रों का उल्लेख है। अधिकांश महायान साहित्य अपने मूल रूप में लुप्त हो चुका है तथापि आधुनिक खोज ने अनेक महत्वपूर्ण सूत्रों को प्रकाशित किया है। इनमें अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुंडरीक, ललितविस्तर, लंकावतार, सुवर्णप्रभास, गंडव्यूह, समाधिराज सुखावतीव्यूह, कारंडव्यूह, आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इनमें अष्टसाहस्रिका संभवत प्राचीनतम है और माहायानिक शून्यता का प्रतिपादन करती है। सद्धर्मपुंडरीक में बुद्ध का ऐश्वर्य, उपायकौशल से यान-भेद एवं बुद्ध-भक्ति का प्रतिपादन मिलता है। लंकावतार योगाचार की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

महायान का शास्त्रीय रूप एवं प्रचार सर्वाधिक ऋणी आचार्य नागार्जुन का है। इनके विषय में नाना ऐतिहासिक विवाद हैं किंतु यह निश्चित है कि वे दाक्षिणात्य थे एवं एक प्रसिद्ध राजा के समकालीन थे जो संभवत ई० दूसरी शताब्दी का था। उनके अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों में माध्यमिक कारिकाएँ सुधर्म्य हैं। इसमें शून्यता को प्रतीत्यसमुत्पाद और मध्यम प्रतिपद् से अभिन्न बताया गया है। धर्मों की परतंत्रता और परापेक्षता ही उनकी निःस्वभावता का द्योतन करती है। यह निःस्वभावता न भावरूप है, न अभावरूप। शून्यवाद परमार्थ की निर्विकल्पता और अनिर्वचनीयता सूचित करता है। इस मत की स्थापना केवल पर मत के प्रतिषेध के द्वारा की जा सकती है। नागार्जुन इसका विस्तारश प्रतिपादन करते हैं कि किसी भी वस्तु की सत्यता स्वीकार करने पर अपरिहार्य रूप से विरोध प्रसक्त होता है। इस तर्क प्रणाली को प्रसंगापादन या प्रासंगिक कहते हैं। नागार्जुन के अनंतर शून्यवाद के प्रमुख प्रतिपादकों में आर्यदेव, भावविवेक, बुद्धपालित एवं चंद्रकीर्ति के नाम उल्लेखनीय हैं।

योगाचार और विज्ञानवाद को प्राय समानार्थक माना जाता है। यह कहना अधिक सही होगा कि महायान सूत्रों में एवं मैत्रेयनाथ एवं असंग की कृतियों में योगाचार एक आध्यात्मिक दर्शन के रूप में प्रकट होता है। वसुबंधु एवं परवर्ती आचार्यों के दार्शनिक प्रतिपादनों में इसे विज्ञानवाद की संज्ञा का समुचित विषय मानना चाहिए। योगाचार के मूल सूत्रों में संधिनिर्मोचन, लंकावतार एवं घनव्यूह उल्लेख्य हैं। इनमें जगत् को स्वप्नवत् विज्ञानधारा में अध्यस्त माना गया है। इनमें सात प्रवृत्तिविज्ञान हैं जिनका आलयविज्ञान से तरंग और सागर का संबंध है क्योंकि आलय में प्रवृत्ति के बीज एवं संस्कार सन्निहित रहते हैं।

मैत्रेयनाथ को अब प्राय ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार किया जाता है। तारानाथ और बुदोन के अनुसार असंग ने मैत्रेय से पाँच शास्त्र प्राप्त किए--अभिसमयालंकार, सूत्रालंकार, मध्यांतविभंग, धर्मधर्मताविभंग एवं महायानोत्तरतंत्र। इनमें से पहले दो प्रसिद्ध ग्रंथों में बोधिसत्वचर्या के रूप में योगाचार की पद्धति एवं अवस्थाओं का सविस्तर विवरण है। असंग पुरुषपुर के एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे और वसुबंधु के अग्रज थे। उनके ग्रंथों में योगाचार-भूमिशास्त्र सबसे प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि असंग के प्रयत्नों से वसुबंधु ने महायान स्वीकार किया। परमार्थ एवं युवान् च्वाङ की गणना से एवं विक्रमादित्य एवं बालादित्य के के समकालीन होने से वसुबंधु का समय पाँचवीं शताब्दी ही स्थिर होता है। वसुबंधु ने विज्ञानवाद को शुद्ध तर्कभूमि में उपनीत किया।

दिङ्नाग ने इस न्यायानुसारिता को आगे बढाकर बौद्ध न्याय को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। न्यायदर्शन के आचार्यों से शास्त्रार्थ के प्रसग मे बौद्ध न्याय की अपूर्व प्रगति हुई तथा वह धर्मकीर्ति की कृतियो मे अपने सर्वोच्च शिखर को प्राप्त हुआ। धर्मकीर्ति को 'भारतीय काट' कहा गया है।

जहाँ एक ओर बौद्ध न्याय एव न्यायानुसारी दर्शन का विकास हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर बौद्धो मे तन्त्र शास्त्र की प्रगति भी निश्चित प्रकाश मे आई। बौद्ध तान्त्रिक परपरा के अनुसार तथागत ने धान्यकटक मे वज्रयान के लिए तृतीय धर्म चक्र प्रवर्तन किया था। धान्यकटक के उल्लेख से सूचित होता है कि वज्रयान का मूल भी महासाघिको मे ही खोजना चाहिए। इस प्रसग मे उनके रूप और रूपकाय विषयक मत, धारणीपिटक का स्वीकार, एव वैतुल्यको के द्वारा आभिप्रायिक मिथुनचर्या का स्वीकार लक्षणीय है। असग की कृतियो मे परावृत्ति एव अभिसधि के सिद्धात स्पष्टत तान्त्रिक प्रतीत होते हैं। प्राचीनतम उपलब्ध तन्त्र मजुश्रीमूलकल्प एव गुह्यसमाज है। तारानाथ के अनुसार ३०० वर्ष तक गुप्त रहकर तान्त्रिक परपरा प्रकाश मे आई और धर्मकीर्ति के पश्चात्, विशेष रूप से पाल युग मे, उसका अधिकाधिक प्रचार हुआ।

अद्वयवज्र के अनुसार महायान के दो प्रभेद हैं—पारमितानय और मन्त्रनय। इनमे मन्त्रनय की व्याख्या योगाचार और माध्यमिक स्थिति से होती है। मन्त्रनय ही बौद्ध तन्त्र अथवा वज्रयान का प्राण है। वज्रयान मे प्रज्ञा एव उपाय की युगनद्ध सत्ता को ही परमार्थ मानते हैं। इन्ही प्रज्ञा और उपाय को वज्र और पद्म भी कहते हैं। प्रकारातर से यही तथागत का स्वरूप है और कार्य वाक्चित्त वज्रधर कहा गया है जिनसे पचस्कधो के अधिष्ठाता पाँच 'ध्यानी' बुद्ध निस्सृत होते हैं। इन बुद्धो के साथ उनकी 'शक्तियाँ' एव बोधिसत्व मिलकर 'कुल' निष्पन्न होते हैं जिनके व्यवस्थापन से 'तथागत मडल' बनता है। बोधिचित्त के उत्पादन के अनतर मडल मे अद्वैतभावना से शक्ति सहचरित उपासना ही तान्त्रिक उपासना है।

बौद्ध धर्म का ह्रास—फाहियान (३९९–४१४), सुग युन (४१८–२१), युवान्-च्वाग, (६२९–४५), इत्सिग (६७१-९५) वूही-घू (७२६-२९) और इ-कुग (७५१-९०) के विवरणो से बौद्ध धर्म के मध्य एशिया और भारत मे क्रमिक ह्रास की सूचना मिलती है, जिसकी अन्य साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्य से पुष्टि होती है। साक्षीय है कि अनेक बौद्ध सूत्रो मे सद्धर्म की अवधि ५०० अथवा १००० अथवा १५०० वर्ष बताई गई है। कपिलवस्तु श्रावस्ती, गया एव वैशाली मे ह्रास गुप्त युग मे ही लक्ष्य था। गधार और उड्डियान मे हूणो के कारण सद्धम की क्षति हुई प्रतीत होती है। युवान् च्वाग ने पूर्वी दक्षिणापथ मे बौद्ध धर्म को लुप्तप्राय देखा। इ-त्सिग ने अपने समय मे केवल चार संप्रदायो को भारत मे प्रचारित पाया-महासाघिक, स्थविर, मूलसर्वास्तिवादी एव सम्मतीय। विहारो मे हीनयानी और महायानी मिले जुले थे। सिंध में बौद्ध धर्म अरब शासन के युग मे क्रमश क्षीण और लुप्त हुआ। गधार और उड्डियान मे वज्रयान और मन्त्रयान के प्रभाव से बौद्ध धर्म का आठवी शताब्दी में कुछ उज्जीवन ज्ञात होता है किंतु अलबेरूनी के समय तक तुर्की प्रभाव से वह ज्योति लुप्त हो गई थी। कश्मीर मे उसका लोप वहाँ भी इसलाम के प्रभुत्व की स्थापना से ही मानना चाहिए। पश्चिमी एव मध्य भारत मे बौद्ध धर्म का लोप राजकीय उपेक्षा एवं ब्राह्मण तथा जैन धर्मों के प्रसार के कारण प्रतीत होता है। मध्यप्रदेश मे गुप्तकाल से ही क्रमिक ह्रास देखा जा सकता है जिसका कारण राजकीय पोषण का अभाव ही प्रतीत होता है। मगध और पूर्व देश मे परम सौगत पाल नरेशो की छत्रछाया मे बौद्ध धर्म और उसके शिक्षाकेंद्र नालदा, विक्रमशिला, ओदतपुरी, अपनी ख्याति के चरम शिखर पर पहुँचे। इस प्रदेश मे सद्धम का ह्रास तुर्की विजय के कारण हुआ। यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म के ह्रासका मे मुख्य कारण उसका अपने को लौकिक सामाजिक जीवन का अनिवार्य अग न बना सकना था। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय उपेक्षा अथवा विरोध से विहारो के सकटग्रस्त होने पर उपासको मे सद्धर्म अनायास लुप्त होने लगता था। यह स्मरणीय है कि उदयनाचार्य के अनुसार ऐसा कोई सप्रदाय न था जो सावृत कहकर भी वैदिक क्रियाओ के अनुष्ठान को स्वीकार न करता हो। उपासको के लिये बौद्ध धर्म केवल शील अथवा ऐसी भक्ति के रूप मे था जिसे ब्राह्मण धर्म से मूलत पृथक् कर सकना जनता के लिये उतना ही कठिन था जितना शून्यता एव नैरात्म्य के सिद्धातो को समझ सकना। कदाचित् आजकल की कर्मकाडविमुख एव बुद्धिवादिनी जनता के लिये शील, प्रज्ञा एव समाधि का धर्म पहले की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हो।

स० ग्र० — शिसो हानायामा बिब्लियोग्राफी ऑन बुद्धिज्म, १९६१। किंतु इसमे प्राय द्वितीय महायुद्ध से पूर्व के प्रकाशन ही सूचित हैं। विंटरनित्स हिस्ट्री ऑव इडियन लिट्रेचर, जि० २, कलकत्ता, १९३३, हेल्ड, दॉइचे . बिब्लियोग्राफी देस बुद्धिस्मस . लाइ-पजिग, १९१६, मार्च : ए बुद्धिस्ट बिब्लियोग्राफी, लडन, १९३५, बिब्लियोग्राफी ऑव इडियन आर्कियोलॉजी (लाइडेन) विंटरनित्स, पूर्वोद्धृत, पृ० ५०७ और आगे जहाँ एतत्सबधी साहित्य सकेतित है। कैंब्रिज हिस्ट्री ऑव इडिया, जि० १, रायचौधरी पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एशेंट इडिया, फिक सोशल आर्गनाइजेशन इन नॉर्थईस्टर्न इडिया इन दि एज ऑव बुद्ध, टी० डब्लू० राइज डेविड्स बुद्धिस्ट इडिया, बी सी ला . इडिया इन अर्ली बुद्धिस्ट ऐंड जैन लिटरेचर,, जे० सी० जैन . एशेंट इडिया ऐजडिपिक्टेड इन जैन कैनन इत्यादि। कीथ : दि रिलिजन एड फिलॉसफी ऑव दि वेदज ऐंड दि उपनिषद्ज, मैकडॉनेल ऐंड कीथ वैदिक इडेक्स, ओल्देनबर्ग, दि रिलिगियोन देस वेद, दि लेर देर उपनिषदेन उद दी आर्फेंगे देस बुद्धिस्मस, बुद्धाइन लेबेन जाइन लेर जाइन गेमाइदे, बरुआ हिस्ट्री ऑव प्री बुद्धिस्टिक इडियन फिलॉसफी, आदेर उबेर देन ताद देर इदिशेन फिलासफी लुर रसाइत महावीरज उद बुद्धज, पाडे . ओरि जिंस आव बुद्धिज्म। ललितविस्तर (हाल, १९०२, १९०८), महावस्तु (पेरिस १८८२-९७), बुद्धचरित (आक्सफोर्ड, १८९३), निदानकथा आदि के अतिरिक्त, रॉकहिल दि लाइफ ऑव बुद्ध (कैगन पाल); ई० एच० ब्रूस्टर . दि लाइफ ऑव गोतम दि बुद्ध, एफ० बिगेंडेट . लाइफ

ऑर लेजेंड ऑव गौतम दि बुद्ध ऑव दि बर्मीज, एस० बीन, रोमैंटिक लेजेंड ऑव शाक्य बुद्ध, राहुल सांकृत्यायन बुद्धचर्या, ओल्देनबर्ग, ज्वाइन लेबेन इत्यादि, ई० जे० टॉमस दि लाइफ ऑव बुद्ध, कर्न मैन्युएल ऑव बुद्धिज्म; मिसेज राइज डेविड्स शाक्य, मललसेकर, डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, फाउवाल्नर, दि अर्लियेस्ट विनय ऐंड दि बिगिनिंग्ज ऑव बुद्धिस्ट लिटरेचर, नलिनाक्ष दत्त, अर्ली मोनैस्टिक बुद्धिज्म।

पालि त्रिपिटक, ४० जि० (देवनागरी में नालंदा संस्करण), रोजोनबर्ग, दि प्रॉब्लेम देर बुद्धिस्तिशेन फिलॉसफी (१९२८), मिसेज राइज डेविड्स, व्हाट वाज दि ओरिजिनल गॉस्पेल इन बुद्धिज्म, टी० डब्लू० राइज डेविड्स, हिब्बर्ट लेक्चर्स, अमेरिकन लेक्चर्स, विधुशेखर भट्टाचार्य, बेसिक कसेप्शन ऑव बुद्धिज्म, पांडेय बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पा चाउ, कंपेरेटिव स्टडी ऑव दि प्रातिमोक्ष, फाउवाल्नर, दि अर्लियेस्ट विनय ऐंड दि बिगिनिंग्स ऑव बुद्धिस्ट लिटरेचर, अकानुमा, दि कंपेरेटिव कैटेलॉग ऑव चाइनीज आगमज ऐंड पालि निकायज, गाइगर, धम्म उन्द ब्रह्म, कुमारस्वामी हिन्दुइज्म ऐन्ड बुद्धिज्म, राधाकृष्णन्, इन्डियन फिलॉसॉफी, जि० १, टामस, दि हिस्ट्री ऑव बुद्धिस्ट थॉट, कीथ, बुद्धिस्ट थॉट इन इंडिया, वासिलियेफ, देर बुद्धिस्मस, कर्न, लिस्त्वार दु बुद्धिज्म, पूसें, वे दु निर्वाण, ल दोग्म ए ला फिलॉसफी दु बुद्धिज्म, बुद्धिज्म ओपिनियो सुर लिस्त्वार दला दोगमातीक, आदेर, जे० पी० टी० एस०, १९०४–५)।

कथावत्थु (सं० जगदीश काश्यप), कथावत्थु-अट्ठकथा (सं० मीनयेव) मसुदा, ओरिजिन ऐन्ड डॉक्ट्रिन्स ऑव दि अर्ली इंडियन बुद्धिस्ट स्कूल्स (समयभेदोपरचनचक्र), दीपवंस (सं० ओल्देनबर्ग), महावंस (सं० गाइगर), विसुद्धिमग्गो (सं० कोसंबि), अभिधम्मत्थसंगहो (सं० कोसंबि), अभिधर्मकोश (फ्रेंच अनुवाद पूसें द्वारा, जिसका आचार्य नरेंद्रदेव के द्वारा हिंदी अनुवाद अंशतः प्रकाशित हुआ है), यशोमित्र, अभिधर्मकोशव्याख्या (सं० वोगिहारा), सुकुमार दत्त, फाइव हंड्रेड ईयर्स ऑव बुद्धिज्म, नलिनाक्ष दत्त, अर्ली मोनैस्टिक बुद्धिज्म, जि० २, वालेज़र, दी सेक्तेन देस आल्तेन बुद्धिस्मस, बारो, ले सेक्त बुद्धीक दु पेति वेहिकूल, लामोत, इस्त्वार दु बुद्धिज्म आन्द्या, ओबर मिलर (अनु०) बुदोन कृत सद्धर्म का इतिहास, शीफनर (अनु०) तारानाथ का भारत में सद्धर्म का इतिहास लेगी अनु० फाहियान (फाश्येन) का यात्रा विवरण, वाटर्स (अनु०) युवान्च्वांग यात्राविवरण, जगदीश काश्यप, दि फिलॉसफी ऑव अभिधम्म, मिसेज राइज डेविड्स, दि बर्थ ऑव इन्डियन साइकालॉजी ऐंड इट्स डेवलपमेंट इन बुद्धिज्म, सोगेन, सिस्टम्ज ऑव बुद्धिस्ट थॉट, गुन्थर, फिलॉसफी ऐन्ड साइकोलॉजी इन दि अभिधर्म, ससाकि, स्टडी ऑव अभिधर्म फिलॉसफी।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता (सं० राजेंद्रलाल मित्र), लंकावतारसूत्र (सं० नंजियो), सद्धर्मपुंडरीक (सं० दत्त), मध्यमकवृत्ति (सं० पूसें), सूत्रालंकार (सं० लेवि), विंशिका एवं त्रिंशिका (सं० लेवि) प्रमाणवार्तिक (सं० नोलि, सं० सांकृत्यायन), शिक्षासमुच्चय, बोधिचर्यावतार (बिब्लियोथिका इंडिका), तत्वसंग्रह (सं० कृष्णमाचार्य), गुह्यसमाज (सं० भट्टाचार्य), हेवज्रतंत्र (सं० स्नेलग्रोव), नैंजियो, कैटलाग ऑव दि चाइनीज ट्रांसलेशन ऑव दि बुद्धिस्ट त्रिपिटक (ऑक्सफर्ड, १८८३) नलिनाक्ष दत्त, ऐस्पेक्ट्स ऑव महायान, सुजुकि, आउट लाइन्स ऑव महायान, स्टडीज इन दि लंकावतार सूत्र, हरदयाल, बोधिसत्व डाक्ट्रिन, शेरबात्स्की, दि कंसेप्शन ऑव बुद्धिस्ट निर्वाण, बुद्धिस्ट लॉजिक, मुराकामी दि बुद्धिस्ट फिलॉसॉफी ऑव यूनिवर्सल फ्लक्स, मैकगवर्न, इंट्रोडक्शन टु महायान बुद्धिज्म, मैन्युएल ऑव बुद्धिस्ट फिलॉसफी, आचार्य नरेंद्रदेव, बौद्ध धर्म दर्शन।

हरप्रसाद शास्त्री बौद्ध गान ओ दोहा, बागची, दोहा कोश, सांकृत्यायन, दोहा कोश, तकाकुसु (अनु०), इ चिंग का भारत और मलय प्रायद्वीप में सद्धर्म का विवरण, तारानाथ (अनु० शीफनर) पूर्वोक्त, विद्याभूषण, हिस्ट्री ऑव दि मेडिएवल स्कूल ऑव इंडियन लॉजिक, मजुमदार (सं०) हिस्ट्री ऑव बंगाल, जि० १, मित्र, डिक्लाइन ऑव बुद्धिज्म इन इंडिया। [गो० च० पा]

बुद्धघोष पालि साहित्य के एक महान् बौद्धाचार्य। बुद्धघोसुप्पत्ति सद्धम्मसंगह, गंधवंश और शासन वंश में बुद्धघोष का जीवनचरित्र विस्तार से मिलता है, किंतु ये रचनाएँ १४वीं से १६वीं शती तक की हैं। इनमें पूर्व का एकमात्र महावंश के चूलवंश नामक उत्तर भाग या ३७वाँ परिच्छेद ऐसा है जिसकी २१५ से २४६ गाथाओं में बुद्धघोष का जीवनवृत्त पाया जाता है। यद्यपि इसकी रचना धर्मकीर्ति नामक भिक्षु द्वारा १३वीं शती में की गई है, तथापि वह किसी अविच्छिन्न श्रुतिपरंपरा के आधार पर लिखा गया प्रतीत होता है। इसके अनुसार बुद्धघोष का जन्म बिहार प्रदेश के अंतर्गत गया में बोधिवृक्ष के समीप ही कहीं हुआ था। बालक प्रतिभाशाली था, और उसने अल्पावस्था में ही वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया, योग का भी अभ्यास किया फिर वह अपनी ज्ञानवृद्धि के लिये देश में परिभ्रमण व विद्वानों से वादविवाद करने लगा। एक बार वह रात्रिविश्राम के लिये किसी बौद्धविहार में पहुँच गया। वहाँ रेवत नामक स्थविर से वाद में पराजित होकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् उन्होंने त्रिपिटक का अध्ययन किया। उनकी असाधारण प्रतिभा एवं बौद्धधर्म में श्रद्धा से प्रभावित होकर बौद्ध संघ ने उन्हें बुद्धघोष की पदवी प्रदान की। उसी विहार में रहकर उन्होंने 'ज्ञानोदय' नामक ग्रंथ भी रचा। यह ग्रंथ अभी तक मिला नहीं है। तत्पश्चात् उन्होंने अभिधम्मपिटक के प्रथम भाग धम्मसंगणि पर अट्ठसालिनी नामक टीका लिखी। उन्होंने त्रिपिटक की अट्ठकथा लिखना भी प्रारंभ किया। उनके गुरु रेवत ने उन्हें बतलाया कि भारत में केवल लंका से मूल पालि त्रिपिटक ही आ सकता है, उनकी महास्थविर महेंद्र द्वारा संकलित अट्ठकथाएँ सिंहली भाषा में लंका द्वीप में विद्यमान हैं। अतएव तुम्हें वहीं जाकर उनको सुनना चाहिए और फिर उनका मागधी भाषा में अनुवाद करना चाहिए। तदनुसार बुद्धघोष लंका गए। उस समय वहाँ महानाम राजा का राज्य था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अनुराधपुर के महाविहार में संघपाल नामक स्थविर से सिंहली अट्ठकथाओं और स्थविरवाद की परंपरा का श्रवण किया। बुद्धघोष को निश्चय हो गया कि धर्म के अधिनायक बुद्ध का वही अभिप्राय है।

उन्होने वहाँ के भिक्षुसघ से अट्टकथाओ का मागधी रूपातर करने का अपना अभिप्राय प्रकट किया। इसपर सघ ने उनकी योग्यता की परीक्षा करने के लिये 'अतो जटा, बाहि जटा' आदि दो प्राचीन गाथाएँ देकर उनकी व्याख्या करने को कहा। बुद्धघोष ने उनकी व्याख्या रूप विसुद्धिमग्ग की रचना की, जिसे देख सघ अति प्रसन्न हुआ और उसने उन्हे भावी बुद्ध मैत्रेय का अवतार माना। तत्पश्चात् उन्होने अनुराधपुर के ही ग्रथकार विहार मे बैठकर सिंहली अट्टकथाओ का मागधी रूपातर पूरा किया, और तत्पश्चात् भारत लौट आए।

इस जीवनवृत्त मे जो यह उल्लेख पाया जाता है कि बुद्धघोष राजा महानाम के शासनकाल में लका पहुँचे थे, उससे उनके काल का निर्णय हो जाता है, क्योकि महानाम का शासनकाल ई० की चौथी शती का प्रारभिक भाग सुनिश्चित है। अतएव यही समय बुद्धघोष की रचनाओ का माना गया है। विसुद्धिमग्ग मे अत मे उल्लेख है कि मोरड खेटक निवासी बुद्धघोष ने विसुद्धमग्ग की रचना की। उसी प्रकार मज्झिमनिकाय की अट्टकथा मे उसके मयूर सुत्त पट्टण मे रहते हुए बुद्धमित्र नामक स्थविर की प्रार्थना से लिखे जाने का उल्लेख मिलता है। अगुत्तरनिकाय की अट्टकथाओ मे उल्लेख है कि उन्होंने उसे स्थविर ज्योतिपाल की प्रार्थना से काचीपुर आदि स्थानो मे रहते हुए लिखा। इन उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी अट्टकथाएँ लका मे नही, वल्कि भारत मे, सभवत दक्षिण प्रदेश मे, लिखी गई थी। कबोडिया मे एक बुद्धघोष विहार नामक अति प्राचीन सस्थान है, तथा वहाँ के लोगो का विश्वास है कि वही पर उनका निर्वाण हुआ था और उसी स्मृति मे वह विहार बना।

बुद्धघोष द्वारा रचित माने जानेवाले ग्रंथ निम्न प्रकार हैं

१ विसुद्धिमग्ग मे सयुक्त निकाय की 'अतो जटा' आदि दो गाथाओ की व्याख्या दार्शनिक रूप से की गई है। इस ग्रथ की बौद्ध सप्रदाय मे बडी प्रतिष्ठा है।

२. सामंत पासादिका—विनयपिटक की अट्टकथा,

३ कखावितरणी— विनयपिटक के एक खड पातिमोक्ख की अट्टकथा,

४ सुमगलविलासिनी—दीघनिकाय की अट्टकथा,

५ पपचसूदनी— मज्झिमनिकाय की अट्टकथा,

६ सारत्थपकासिनी— सयुत्तनिकाय अट्ठकथा,

७ मनोरथजोतिका— अगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा,

८ परमत्थजोतिका— खुद्दकनिकाय के खुद्दकपाठ एव सुत्तनिपात की अट्टकथा,

९. धम्मपद-अट्टकथा,

१०. जातक-अट्ठवण्णना,

११ अट्ठशालिनी-अभिधम्मपिटक के धम्मसगणि की अट्टकथा,

११ समोहविनोदनी—विभग की अट्टकथा,

१३ पचप्पकरण अट्ठकथा— अभिधम्मपिटक के कथावत्थु, पुग्गल पण्णत्ति, धातुकथा, यमक और पट्ठाण इन पांच खडो पर की टीका है।

इस प्रकार बुद्धघोष ने पालि मे सर्वप्रथम अट्ठकथाओ की रचना की है। पालि त्रिपिटक के जिन अशो पर उन्होने अट्ठकथाएँ नही लिखी थी, उनपर बुद्धदत्त और धर्मपाल ने तथा आनद आदि अन्य भिक्षुओ ने अट्ठकथाएँ लिखकर पालि त्रिपिटक के विस्तृत व्याख्यान का कार्य पूरा किया। [ही० ला० जै०]

बुद्धिवाद बुद्धिवाद के अनुसार, सत्य की खोज मे बुद्धि प्रमुख अस्त्र और अतिम अधिकार है। ज्ञान के किसी भाग मे भी बुद्धि के अधिकार से बडा कोई अन्य अधिकार विद्यमान नही। यह दावा धर्म और ज्ञानमीमासा के क्षेत्रो मे विशेष रूप मे विवाद का विषय बनता रहा है।

ईसाई मत मे धर्म की नीव विश्वास पर रखी गई है। जो सत्य ईश्वर की ओर से आविष्कृत हुए हैं, वे मान्य हैं, चाहे वे बुद्धि की पहुँच के बाहर हो, उसके प्रतिकूल भी हो। १८ वी शती मे, इग्लैंड में कुछ विचारको ने धर्म को दैवी आविष्कार के बजाय मानव चितन की नीव पर खडा करने का यत्न किया। आरभ मे अलौकिक या प्रकृतिविरुद्ध सिद्धात उनके आक्रमण के विषय बने, इसके बाद ऐसी घटनाओ की बारी आई, जिन्हे ऐतिहासिक खोज ने असत्य बताया, और अत मे कहा गया कि जिस जीवनव्यवस्था को ईसाइयत आदर्श व्यवस्था के रूप मे उपस्थित करती है, वह स्वीकृति के योग्य नही। टोलैंड, चब्ब और बोलिंगब्रोक बुद्धिवाद के इन तीनो स्वरूपो के प्रतिनिधि तथा प्रसारक थे।

ज्ञानमीमासा मे बुद्धिवाद और अनुभववाद का विरोध है। अनुभववाद के अनुसार, मनुष्य का मन एक कोरी तख्ती है, जिसपर अनेक प्रकार के बाह्य प्रभाव अकित होते हैं, हमारा सारा ज्ञान बाहर से प्राप्त होता है। इसके विपरीत, बुद्धिवाद कहता है कि सारा ज्ञान अदर से उपजता है। जो कुछ इद्रियो के द्वारा प्राप्त होता है, उसे प्लेटो ने केवल 'समति' का पद दिया। बुद्धिवाद के अनुसार गणित सत्य ज्ञान का नमूना है। गणित की नीव लक्षणो और स्वयसिद्ध धारणाओ पर होती है, और ये दोनो मन की कृतियाँ हैं। आधुनिक काल मे, डेकार्ट ने निर्मल और स्पष्ट प्रत्ययो को सत्य की कसौटी बताया। स्पिनोजा ने अपनी विख्यात पुस्तक 'नीति' को रेखागणित का आकार दिया। वह कुछ परिभाषाओ और स्वत सिद्ध धारणाओ से आरभ करता है, और प्रत्येक साध्य को उपयोगी उपपत्ति मे प्रमाणित करता है।

[दी० च०]

बुनाई की प्रक्रिया नम्य पदार्थों की दो या अधिक कतारो का समकोण पर सग्रथन है। इसमें अनुदैर्घ्य कतार को ताना (warp) तथा अनुप्रस्थ को बाना (weft) कहते हैं। यहाँ पर बुनाई, बुनाई उद्योग के एक अग से सबधित है। नमदीय, वलित, जालदार, होजरी तथा लैस (lace) के वस्त्रो की बुनाई इस विषय के अतर्गत नही आती। नमदा बनाने के लिये ऊन या बाल ताप, गार्द्रता तथा घर्षण के सयुक्त प्रभाव से जमाया जाता है। वलित या उसके समान गुथी बुनावट के वस्त्रो में डोरे एक ही कतार में अनग्रंथित होते हैं। इसी प्रकार लैस की बुनाई मे डोरो के एक समूह को दूसरे समूह के बीच से तथा चारो ओर घुमाकर बुना जाता है।

इतिहास — मानव नूतन प्रस्तरयुग से ही वस्त्र बुनकर पहनता

रहा है। वह सन के रेशे से मोटे किस्म का कपड़ा बुनना उसी युग में सीख चुका था। प्राचीन मिस्र में लिनेन के कपड़े बनाने की कला पर्याप्त उन्नति कर चुकी थी। लगभग २,००० वर्ष ई० पू० चीनियों ने रेशम के कीटों से रेशम निकालने तथा उससे कपड़ा बुनने की विधियों के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली थी और लगभग उसी समय भारत के लोगों को कपास से सूत कातने तथा उससे वस्त्र बुनने की जानकारी प्राप्त हो गई थी। यूनान तथा रोम के प्राचीन अभिलेखों से पता चलता है कि वहाँ पर ऊनी, सूती रेशमी तथा लिनेन के कपड़ों की बुनाई काफी विकसित थी। विविधताप्रेमी मानव ने कताई बुनाई के आविष्कार के साथ ही विभिन्न प्रकार के वस्त्र बुनने की कई नई विधियों का आविष्कार किया। साधारण संरचना के कपड़ों में विविधता लाने के लिये भिन्न भिन्न रंगों के सूत, विभिन्न प्रकार के पदार्थ अलग अलग, या एक साथ, या संग्रथन की विभिन्न योजनाओं का उपयोग किया जाता रहा है। मध्ययुग या नवयुग में लोग कुगढ, या ग्राम्य करघों पर घरों में कपड़ा बुना करते थे। गृहिणी घर भर के लिये कपड़ा बुनती थी। १७वीं शताब्दी के अंतिम चरण में स्पिनिंग जेनी (Spinning jenny) नामक एक मशीन का आविष्कार हुआ, जो पादपों के रेशे तथा पशुओं के बालों से भी रेशे तैयार करती थी। इसके कुछ वर्षों के बाद विश्वप्रसिद्ध औद्योगिक क्रांति हुई। इसके परिणामस्वरूप बिजली से चलनेवाले करघों का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया। १९वीं शताब्दी में और उसके बाद अब तो मुख्यत: व्यापारिक कारखानों में कपड़े की बुनाई होने लगी है।

बुनाई की संरचना तथा अभिकल्प — कपड़े की बुनाई का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है: समूह (१) — इस समूह में वे सभी कपड़े आते हैं जो एक ताना तथा एक बाना के प्रयोग से बुने गए हों, जब कि तैयार कपड़े में सभी ताने तथा बाने आपस में समांतर रहते और एक दूसरे को ऊपर नीचे काटते हैं। समूह (२) — इसमें तीन प्रकार की बुनाई आती है: क दो ताने तथा एक बाने, या दो बाने तथा एक ताने से की गई बुनाई, ख दो या अधिक विशिष्ट बुनावट का कपड़ा, जो एक ही साथ दो या अधिक ताने या बाने से निर्मित है, जैसे दो, तीन या अधिक ऐंठनवाले सूत से बने कपड़ों (ply cloth) में होता है, ग ऐसी बुनाई, जिससे बने कपड़ों में दो या अधिक ताने और बाने इस तरह से विभक्त हों कि केवल एक प्रकार का तंतुविन्यास हो, जैसा करघे से बने चित्रित पर्दे के कपड़े में होता है। समूह (३) — इसमें रोएँदार कपड़ा आता है। तैयार वस्त्र के मूल आधार से ताने या बाने में से इकहरा रूप भाग निकलता है, जैसे मखमल, जाली मखमल, प्लश या रोएँदार कालीन इत्यादि। समूह (४) — इसके अंतर्गत वे सभी वस्त्र आते हैं जिनमें ताने का एक हिस्सा अंशत: या पूर्णत: दूसरे हिस्से में घुमाया और ऐंठा जाता है, जैसे गॉज (gauze) तथा [illegible] में।

कपड़े की संरचना और बुनाई द्वारा उसका अलंकरण, आकल्पी द्वारा एक वर्गाकार कागज पर पहले से ही तैयार कर लिया जाता है। प्रत्येक वर्ग की खड़ी रेखा ताने का तथा क्षैतिज रेखा बाने का प्रतिनिधित्व करती है। जब दो या अधिक ताने तथा बाने कपड़ा बुनने में प्रयुक्त होते हैं, तब उनकी कार्यविधि को दर्शाने के लिये अभिकल्प में भिन्न रंगों तथा चिह्नों का उपयोग करते हैं।

समूह १ — इस समूह के वस्त्र, सूत के रंग तथा धागों को विभक्त करने की योजना (scheme of intersecting) द्वारा प्रभावित होते हैं। इस समूह का सबसे महत्वपूर्ण वस्त्र सादा कपड़ा है, जिसमें ताने तथा बाने के सूत एक दूसरे के बराबर मोटे तथा समीप होते हैं और एकांतरत: एक दूसरे के ऊपर तथा नीचे से गुजरते हैं। इस तरह से निर्मित कपड़ों में सजावट या अलंकरण सामान्यत: नहीं होती। अलंकरण के लिये ताने तथा बाने के मोटे तथा पतले धागे एकांतरत: प्रयुक्त होते हैं, जिससे कपड़े की ऊपरी सतह नालीदार या झुर्रीदार हो जाती है और निचली सतह सादी ही रहती है, जैसे पॉप्लिन या ऐसा कपड़ा, जिसपर डोरियाँ उभरी हों। दुसूती बुनाई के कपड़े (twill) की अत्यधिक उपयोगिता के कारण सादा कपड़े के बाद उसका दूसरा स्थान है। दुसूती बुनाई में तिरछे उभरे हुए चिह्न बनते हैं, जिन्हें डोरियाँ (ribs) कहते हैं। ये ताना तथा बाना द्वारा प्रतिच्छेदन के समय छोटे हुए स्थान के कारण होती हैं। दुसूती बुनाई की बढ़िया या घटिया किस्म ताने बाने की विभक्तीकरण की योजना पर निर्भर रहती है। साटन या नकली साटन और ब्रोकेड की बुनाई भी इसी समूह के अंतर्गत आती है।

समूह २ — इसके अंतर्गत पृष्ठीय (backed), उत्क्रमणीय (reversible) तथा उन कपड़ों की बुनाई आती है जिनमें अलंकरण के लिये कुछ अतिरिक्त वस्तुएँ भी लगी रहती हैं। पुरुषों के पहनने के कपड़े अधिकतर उलटी (backed) बुनावट के होते हैं, जिसका उद्देश्य ऊपरी सतह में बिना कोई परिवर्तन किए पतले विन्यास के कपड़े को वजनी तथा मोटा बनाना होता है। ताने या बाने का उपयोग उलटी बुनाई में होता है। यदि उलटी बुनाई में ताने का उपयोग होता है, तो दो तानों की पंक्तियों के साथ बाने की एक पंक्ति रहती है और यदि बाने का उपयोग होता है तो ताने की एक पंक्ति तथा बाने की दो पंक्तियों का उपयोग होता है। ऊपरी सतहवाली बनावट पृष्ठीय बनावट पर अध्यारोपित होती है, परंतु ऊपरी सतह के धागों का नीचे वाले धागों से एक एक का, या दो एक का, अनुपात होता है। ऊपरी सतह की बुनाई में किसी प्रकार की गड़बड़ी न होने देने के लिये केवल उन्हीं धागों को उल्टी बुनावट (backing) में प्रयोग करते हैं, जो सतहवाले धागों से छिप जाते हैं।

उत्क्रमणीय (reversible) बुनावट में या तो विभिन्न रंगीन बानों की दो पंक्तियाँ, या तानों के धागों की एक पंक्ति, इस तरह से रहती है कि दोनों ओर की सतह के चित्र एक ही जैसे हों। उन कपड़ों में जिनपर सूत के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं (बाल, फर आदि) की सहायता से बुनने के समय चित्र बुना जाता है, ताने या बाने की दो पंक्तियाँ तथा दूसरी वस्तुओं की एक पंक्ति रहती है। इस प्रकार की बुनाई उत्क्रमणीय, या एकतरफा, बुनावट के कपड़े प्रस्तुत करती है। मिश्रित बुनावट के कपड़ों में निश्चित रूप से दो भिन्न भिन्न विन्यास होते हैं, जिन्हें देखने पर ऐसा मालूम होता है मानो वे अलग अलग करघों पर बुने गए हों।

समूह ३ — इस समूह में रोएँदार वस्त्रो की बुनाई आती है। रोएँदार कपडो की बुनाई मे ताने तथा वाने की स्थिति भिन्न होती है। ऊपर जो बुनाई के तरीके बताए गए हैं, उनमे ताने तथा वाने के धागे समातर अनुदैर्घ्य तथा अनुप्रस्थ रेखाओ मे होते हैं, परतु रोएँदार कपडे मे ताने तथा वाने का एक भाग कपडे की सतह से समकोण पर स्थित होता है। इस प्रकार की बुनाई मे यदि वाने के धागों की दो पक्तियाँ होती हैं, तो एक ताने की पक्ति के साथ आधार का दृढ विन्यास बनाती है तथा दूसरी आधार के साथ समान अतराल पर बँधी रहती हैं, जो बाद मे एक विशेष प्रकार के चाकू से काटी जाती हैं, ताकि रोएँ तैयार हो जाएँ और बुरुश की तरह की, या गुच्छेदार रोएँ की, एक सतह तैयार हो जाय। कालीन भी इसी तरीके से बनाए जाते हैं। मखमल या नकली मखमल बनाने के लिये ताने की दो पक्तियाँ तथा वाने की एक पक्ति का उपयोग होता है (देखें मखमल या नकली मखमल)।

समूह ४ — इस समूह के अतर्गत गॉज की तरह के वस्त्र आते हैं, जिनमे ताने के धागे एक दूसरे से मिलाकर बँटे जाते हैं। इस समूह के अतर्गत झालर जैसे वस्त्रो की बुनाई आती है। इसमें ताने के धागे अनुप्रस्थ रखे जाते है, जिससे वस्त्रो मे कसीदाकारी हो सके। इस प्रकार की बुनावट मे पर्दों के लिये, या सजावट के अन्य कार्यों मे प्रयुक्त होनेवाले, कपडे भी आते हैं। यद्यपि इस तरह की बुनाई के कपडे जालीदार या पतले होते हैं, तथापि इसमे जितना सूत लगा है तथा सूत की जो किस्म प्रयुक्त हुई है उसकी तुलना मे ये अधिक मजबूत होते हैं। [प्र० कु० पा०]

बुनियाद दीवार, खभे तथा भवन और पुलो के आधारस्तभो का भार उनकी नीव, अथवा बुनियाद द्वारा पृथ्वी पर वितरित किया जाता है। अत निर्माण कार्य मे बुनियाद, बहुत महत्वपूर्ण अग है। अगर बुनियाद कमजोर हो, तो पूरे भवन, अथवा पुल, के भारवाहन की शक्ति बहुत कम हो जाती है। अगर बुनियाद एक बार कमजोर रह गई, तो बाद मे उसे सुधारना प्राय असभव सा ही हो जाता है। अत बुनियाद का अभिकल्प बहुत दक्षता से बनाना चाहिए।

नीव का विशेष प्रयोजन यह है कि वह ऊपर के भार को बराबर से भूमि पर इस प्रकार वितरित करे कि वहाँ की मिट्टी (अथवा चट्टान) पर उसकी भारधारी क्षमता से अधिक बोझ न पडे, नही तो मिट्टी के बैठने से भवन इत्यादि मे दरार पडने का भय रहता है। नीव के अभिकल्प के लिये विभिन्न प्रकार की मिट्टी, अथवा चट्टानो, की भारधारी क्षमता का ज्ञान आवश्यक है। निम्नलिखित सारणी मे भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टियो की भारधारी क्षमता दी गई है —

नोट — १ पृथ्वी की सतह से गहराई जितनी बढेगी, साधारणत मिट्टी की भारधारी क्षमता भी गहराई के हिसाब से बढती जाएगी।

२ साधारणत पानी की नमी से मिट्टी की भारधारी क्षमता कुछ कम हो जाती है। इसीलिये अधिकतर भवनो की नीव जमीन से कम से कम तीन चार फुट गहरी रखी जाती है, जिससे वर्षा मे नमी का असर इन गहराई पर बहुत कम हो जाता है।

ऐसी जमीन की जहाँ पानी भरा रहता है, भारधारी क्षमता औसत से थोडी कम लेनी चाहिए। बडे भवन तथा पुल इत्यादि के लिये मिट्टी की पूरी जाँच मिट्टी जाँचनेवाली किसी प्रयोगशाला द्वारा करा लेनी चाहिए।

सारिणी

क्रमाक	जमीन की किस्म	भारधारी क्षमता (टन प्रति वर्ग फुट)
१	काली मिट्टी	१/२ से ३/४
२	रेतीली मिट्टी	३/४ से १
३	रवेदार ककड और बालू मिश्रित मिट्टी	१ १/२ से २
४	नम, साधारण रूप से कसी हुई मिट्टी	१ से १ १/२
५	सूखी चिकनी मिट्टी	२ से ३
६	बहुत कडी चिकनी मिट्टी	३ से ४
७	बारीक बालुकामिश्रित मिट्टी	१ से २
८	दृढीभूत बालू (compact sand)	३ से ४
९	मोटी बालूदार मिट्टी (coarse sand)	१ १/२ से २
१०	चट्टान	१०
११	कठोर चट्टान	१२ से १५
१२	बहुत कठोर चट्टान	२० से ३०

नीव की डिजाइन — नीव की डिजाइन मे सबसे आवश्यक इसकी चौडाई है, जिसके द्वारा नीव पर आनेवाले कुल बोझ को वह जमीन पर इस प्रकार फैला दे कि जमीन पर भार उसकी सहनशक्ति से अधिक न हो।

अगर जमीन की भारधारी क्षमता (अथवा सहनशक्ति) 'स' है तथा कुल भार (नीव के भार को भी लेकर) नीव की प्रति फुट लबाई पर 'भ' है, तो नीव की चौडाई 'च' निम्नलिखित समीकरण से निकाली जा सकती है

$$\text{च} = \frac{\text{भ}}{\text{स}}$$

नीव की गहराई — यह रैंकिन के निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त की जा सकती है

$$\text{गहराई ग} = \frac{\text{स}}{\text{ग}} \left(\frac{1 - \text{ज्या}\,\theta}{1 + \text{ज्या}\,\theta} \right)$$

इसमे स = जमीन की भारधारी क्षमता, अ = ईंट अथवा पत्थर या कक्रीट का, जिससे नीव बनेगी, प्रति वर्ग फुट भार तथा θ = वह कोण, जिसमे मिट्टी अपने आप प्राकृतिक ढग से हो जाती है (angle of repose of soil)।

प्राय भवननिर्माण में उपर्युक्त सूत्र द्वारा जो नीव की गहराई आएगी, वह बहुत थोडी होगी। साधारण मिट्टी मे नीव अधिकतर तीन, चार फुट गहरी रखी जाती है।

साधारणत भवननिर्माण मे तल मे चूना या सीमेंट कक्रीट और उसके ऊपर ईंट की चुनाई की नीव में बुनियाद को फैलाने के लिये

ईंट की चुनाई के हर रद्दे में २¼" का रास्ता छोड़कर बनाया जाता है जैसा चित्र में नीचे दिखाया गया है।

इस प्रकार की नींव के अतिरिक्त प्रबलित सीमेंट कंक्रीट (rein-

forced cement concrete), झँझरीदार नींव (grillage foundation), बेड़ेदार नींव (raft foundation) तथा उलटी डाट की नींव (reversed arch foundation) इत्यादि भी नींव के भिन्न भिन्न प्रकार हैं। यहाँ पर उनका पूरा विवरण देना संभव नहीं है।
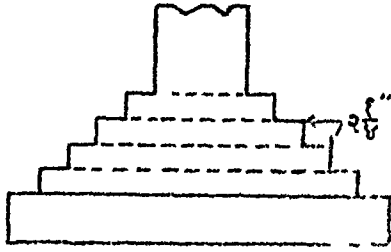
ऊँचे भवन, चिमनी तथा पुल इत्यादि की नींव रचना में हवा, भूचाल इत्यादि द्वारा जो क्षैतिज दबाव पड़ता है उसका भी विचार करना पड़ता है।

कई मंजिलवाले भवन (sky scrapers) तथा बड़े पुल या मीनारों की नींव के लिये कुएँ तथा लट्ठों (Piles) का प्रयोग किया जाता है। लट्ठे लकड़ी, लोहे की धरन अथवा प्रबलित सीमेंट कंक्रीट के हो सकते हैं और लट्ठे ठोंकने के लिये भाप अथवा संपीडित वायु (compressed air) से चलनेवाले लट्ठा ठोंकने के यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। [का० प्र०]

बुन्सेन ज्वालक या बुन्सेन बर्नर (Bunsen Burner) एक विशेष प्रकार का गैस ज्वालक है। गैस को जलाने से पूर्व इसमें हवा की एक निश्चित मात्रा मिलाने की युक्ति होती है। ऐसा करने के लिये इसमें एक नली रहती है, जिसके आधार के पास पार्श्व में हवा आने के लिये छिद्र होते हैं। गैस नीचे की ओर से आती है। यदि गैस और हवा का ठीक अनुपात में मिश्रण हो, तो यह मिश्रण जलने पर तप्त, किंतु ज्योतिहीन तथा निर्धूम ज्वाला देता है। बुन्सेन ज्वाला प्राप्त करने के लिये गैस और हवा का, आयतन के अनुसार, लगभग ३:१ का अनुपात होना चाहिए। इस प्रकार की ज्वाला के भीतरी निचले क्षेत्र में जलवाष्प, कार्बन मॉनोक्साइड, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड तथा हाइड्रोजन का मिश्रण रहता है। ज्वाला के बाह्य दहन क्षेत्र में गैस और नाइट्रोजन पहुँचती है। गैस हवा की अधिक मात्रा के आने पर जल उठती है। ज्वाला और धौंकनी की सहायता से संगलन, अवकरण और ऑक्सीकरण की क्रियाएँ संभव है। कुछ धात्विक लवण इस रंगहीन ज्वाला को विशिष्ट रंग देते हैं।

इस प्रकार के ज्वालक के आविष्कार का श्रेय बुन्सेन को दिया जाता है, परंतु बाद की खोजों से पता चला है कि इसका वास्तविक डिजाइन पीटर डेसगा (Peter Desdga) ने बनाया था और इसने भी बहुत पूर्व इसी सिद्धांत पर माइकेल फैरेडे ने एक समजनीय
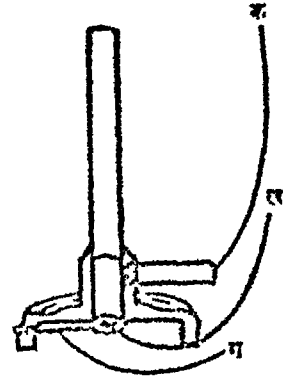
चित्र १. मार्शल का बुन्सेन ज्वालक

गैस को जलाने के पूर्व सही अनुपात में उसके साथ वायु मिलाई जाती है, जिससे उच्च तापवाली ज्योतिहीन ज्वाला प्राप्त होती है। क गैस, ख वायु तथा ग नियंत्रक।

ज्वालक बनाया था। बुन्सेन ज्वाला उत्पन्न करने के इस सिद्धांत पर बने आज करोड़ों ज्वालक प्रयोगशालाओं में काम में आ रहे हैं।

हवा और गैस के मिश्रण और नियंत्रण की अलग अलग विधियों के कारण बुन्सेन ज्वालक के अनेक भेद हो गए हैं, जिनमें ऊष्मा कम या अधिक और ज्वाला छोटी या बड़ी होती है। इनमें मेकर ज्वालक
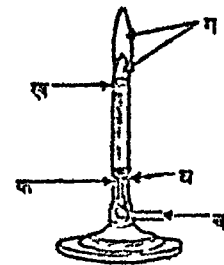
चित्र २. अन्य बुन्सेन ज्वालक

क जेट (jet), ख. लुंड, ग ज्वाला शंकु, घ वायु-प्रवेश तथा च गैस प्रवेश।

और फिशर ज्वालक (Fisher burner) अधिक प्रसिद्ध हैं। मार्शल ज्वालक में (देखें चित्र १) केंद्रीय गैस जेट संबंधी त्रुटियों को दूर करने के लिये गैस को पार्श्व से और हवा को नीचे से नली में प्रवेश कराते हैं। इसके नीचे की ओर एक नियंत्रक होता है। कोयला गैस, तैल गैस और ऐसेटिलीन गैस को जलाने के लिये भी बुन्सेन ज्वालक बनाए जाते हैं। [च० ला० गु०]

बुन्सेन, रॉबर्ट विल्हेल्म (Bunsen, Robert Wilhelm, १८११-१८९९ ई०) जर्मन रसायनज्ञ तथा सीज़ियम और रुबिडियम तत्वों के प्रसिद्ध आविष्कारक थे। इनका जन्म पश्चिमी जर्मनी के गटिंगेन नगर में हुआ था। यहीं के विश्वविद्यालय से इन्होंने १८३१ ई० में स्नातक

उपाधि पाई। १८३३ ई० मे ये गटिंगेन मे प्राइवेट डोजॉं (Private Dozente) हो गए और १८३६ ई० मे कैसल मे वलर (Wohler) के स्थान पर टेकनिकल स्कूल मे नियुक्त हो गए। १८३९ ई० मे मारबुर्ग विश्वविद्यालय मे ये ऐसोशिएट प्रोफसर और फिर १८४१ ई० मे वही पर रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए। १८४६ ई० मे ये एक वैज्ञानिक अभियान मे आइसलैंड गए। इसके बाद ये एक वर्ष ब्रेसलॉ मे अध्यापक रहकर १८५२ ई० मे हाईडेलबर्ग विश्वविद्यालय मे रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए। यही से १८८९ ई० में इन्होने ७८ वर्ष की उम्र मे अवकाश ग्रहण किया।

बुन्सेन का सर्वप्रथम कार्य तो कैकोडिल मूलको (cacodyl radicals) पर हुआ था। आर्सेनिक से तैयार किए गए प्रसिद्ध कार्बनिक यौगिको मे इस मूलक की खोज बुन्सेन ने की। कार्बनिक रसायन के क्षेत्र मे बुन्सेन का यही एकमात्र कार्य है, पर १८४६ ई० के बाद से बुन्सेन भौतिक रसायन और अकार्बनिक रसायन के विशेषज्ञ बन गए और इनके समस्त अनुसधान इन्ही क्षेत्रो मे हैं। प्रयोगो के करने मे ये बडे दक्ष थे। केवल सैद्धातिक कार्यों मे इनकी रुचि न थी। इन्होने एक नए प्रकार का वोल्टीय सेल बनाया, जो बुन्सेन सेल के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। प्रयोगशालाओ मे काम आनेवाले ज्वालको या बर्नरो मे बुन्सेन बर्नर के नाम से सभी परिचित हैं। गैस विश्लेपण की विधियो मे भी इन्होने सशोधन प्रस्तुत किए। खनिजो के परीक्षण की शुष्क विधियाँ इन्होने प्रचलित की, जिनमे से ज्वालापरीक्षण को विशेष महत्व मिला। जी आर किर्खहॉफ (Kirchoff) के साथ इन्होने स्पेक्ट्रम विश्लेपण पर युगातकारी कार्य आरभ किया, जिसपर आधुनिक स्पेक्ट्रम-विज्ञान की नीव पडी। १८३० ई० मे इनकी पुस्तक 'स्पेक्ट्रल विश्लेपण द्वारा रासायनिक विश्लेपण' विषय पर प्रकाशित हुई। इस स्पेक्ट्रम विश्लेपण द्वारा ही १८६१ ई० मे बुन्सेन रुविडियम और सीजियम तत्वो की खोज मे सफल हुए, क्योकि इन तत्वो के लवण स्पेक्ट्रम मे पृथक् रेखाएँ देते थे। क्षार और कोयले के सयोग से १८४७ ई० मे बुन्सेन ने सायनाइड भी तैयार किया था। बुन्सेन न केवल प्रसिद्ध अनुसधान कर्ता थे, अपितु वे सफल अध्यापक भी थे। [सत्य० प्र०]

बुरंजी अहोम राज्य सभा के पुरातत्व लेखो का सकलन बुरजी मे हुआ है। आरभ मे अहोम भाषा मे इनकी रचना होती थी, कालातर मे असमिया भाषा इन ऐतिहासिक लेखो की माध्यम हुई। इसमे राज्य की प्रमुख घटनाओ, युद्ध, सधि, राज्यघोषणा, राजदूत तथा राज्यपालो के विविध कार्य, शिष्टमडल का आदान प्रदान आदि का उल्लेख प्राप्त होता है — राजा तथा मत्री के दैनिक कार्यो के विवरण पर भी प्रकाश डाला गया है। असम प्रदेश मे इनके अनेक बृहदाकार खड प्राप्त हुए हैं। राजा अथवा राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारी के निर्देशानुसार शासनतत्र से पूर्ण परिचित विद्वान् अथवा शासन के योग्य पदाधिकारी इनकी रचना करते थे। घटनाओ का चित्रण सरल एव स्पष्ट भाषा मे किया गया है, इन कृतियो की भाषा मे अलकारिकता का अभाव है। सोलहवी शती के आरभ से उन्नीसवी शती के अत तक इनका आलेखन होता रहा। बुरजी राष्ट्रीय असमिया साहित्य का अभिन्न अग है। गदाधर सिंह के राजत्वकाल मे पुरनि असम बुरजी का निर्माण हुआ जिसका सपादन हेमचद्र गोस्वामी ने किया है। पूर्वी असम की भाषा मे इन बुरजियो की रचना हुई है।

स० ग्र० — हुरकात बरुआ, असम बुरजी, दडधाई असम बुरजी, टुगपुगिया बुरजी, कछारी बुरजी, जयतिया बुरजी, त्रिपुरा बुरजी, असम बुरजी, पुरनि असम बुरजी। [ला० गु०]

बुरहानपुर स्थिति २१° १८' उ० अ० तथा ७६° १४' पू० दे०। यह भारत के मध्य प्रदेश राज्य मे पूर्वी निमाड जिले का एक नगर है जो रेलवे लाइन के किनारे, बबई से पूर्व में लगभग ३१० मील की दूरी पर स्थित है। इसके दक्षिणी भाग से होकर ताप्ती नदी बहती है। इस नगर की स्थापना १४०० ई० मे नासिर खाँ द्वारा की गई थी। यह कपास के निर्यात का एक केंद्र है। कपास साफ करने के कारखाने हैं। यहाँ के लोगो के हस्तकला उद्योगो में सोने चाँदी के तारो से काम किये हुए रेशमी कपडो का उत्पादन प्रमुख है। अन्य लघु उद्योगो में सजानेवाले फ्रास्टेड शीशे के रगीन ग्लोबो का उत्पादन महत्वपूर्ण है। इसकी जनसख्या ८२,०९० (१९६१) है। [रा० स० स०]

बुर्सा (Bursa) १. प्रात, यह उत्तर-पश्चिमी टर्की का एक प्रात है। इसका क्षेत्रफल ५,२४३ वर्ग मील तथा जनसख्या ६,५६,०९९ (१९६०) है। यहाँ का जलवायु मृदु (mild) है। जनवरी सर्वाधिक ठढा माह है तथा वार्षिक औसत वर्षा २५ से ३५ इच होती है। कृषि मे सब्जियाँ, खाद्यान्न, कपास, तबाकू, पोस्ता तथा तिलहन प्रमुख हैं।

२ नगर, स्थिति ४०° १५' उ० अ० तथा २९° ५' पू० दे०। यह नगर मारमारा सागर पर स्थित मुडान्या बदरगाह से १८ मील दक्षिण-पूर्व स्थित बुर्सा प्रात की राजधानी है। इसकी जनसख्या १,५३,५७४ (१९६०) हैं। धनी एव कृषिप्रधान क्षेत्र का केंद्रीय बाजार है। यहाँ का रेशम, कालीन और ऊन का उद्योग तथा सोने चाँदी का काम उन्नति पर है। तेल, फल और शराब का व्यापार होता है। इस नगर को आग एव भूचाल ने बडी क्षति पहुँचाई है। यहाँ अनेक सुदर प्राचीन मस्जिदें हैं जिनमें से ग्रीन मस्जिद और बेजाजित प्रथम की मस्जिद विशेष उल्लेखनीय है। इस नगर को ब्रुसा (Brusa) भी कहा जाता है। गरम जल के सोते तथा ओलपस पर्वत पास मे होने के कारण भ्रमणार्थी अधिक आते हैं। [श्रीकृ० चं० स०]

बुर्हानुद्दीन गरीब अर्थात् शैख मुहम्मद बिन नूरुद्दीन मुहम्मद, शैख जलालुद्दीन अहमद नुमानी हाँसवी के भाजे और शैख निजामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्यो और खलीफाओ मे थे। ६५४।१२५६ मे हाँसी मे जन्म हुआ। प्रारभिक वर्ष हाँसी मे बिताए, तत्पश्चात् शिक्षा प्राप्त करने के लिये दिल्ली गए और यहाँ फिक्ह, उसूल और अरबी का अध्ययन किया। तदुपरात शैख निजामुद्दीन औलिया से दीक्षित हुए और उनके जीवनकाल तक यहीं रहे। उन्होने उस समय देवगिरि के लिए प्रस्थान किया जब १३२७ ई० मे मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली के सूफियो, उलिमा और अन्य व्यक्तियो को अपनी नवीन राजधानी

दौलताबाद में जाकर बसने और इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए बलपूर्वक भेजा था। इस समय वह बूढ़े हो चले थे। देवगिरि में वह जीवन के अंतिम समय तक रहे। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने दकन में इस्लाम धर्म और इस्लामी संस्कृति के प्रचार में प्रशंसनीय कार्य किया और भारी संख्या में ऐसे शिष्य बनाए जिन्होंने उनके स्वर्गवास के उपरांत इस कार्य को आगे बढ़ाया। हम्माद बिन इमाद काशानी ने उनके 'मल्फ़ूज़ात' को अहसनुल अक़वाल के नाम से संगृहीत किया था। इसके अध्ययन से मालूम होता है कि वह अपने शिष्यों के आध्यात्मिक शिक्षण के लिए कितने प्रयत्नशील थे। समा (सूफ़ी संगीत) के प्रति उनकी अत्यधिक अभिरुचि थी तथा विशेष रूप से संगीत सुनते और आनंदमग्न होकर नाचते भी थे। उनके संगीत के समासद 'बुर्हानी' कहलाते थे। बुर्हानपुर नगर उन्हीं के नाम पर बसाया गया था क्योंकि उन्होंने नसीरुद्दीन फ़ारूक़ी (८०१-८४१।१३९९-१४३७) को सिंहासनारूढ़ होने का आशीर्वाद दिया था। उस वंश के शासक उनमें बड़ी आस्था रखते थे और उनकी समाधि से जागीर लगा दी थी। वार्षिक उत्सव के समय दूर दूर से आस्थावान् दर्शनार्थी आते थे। अब इस अवसर पर वहाँ मेला लगता है। उनकी समाधि के घेरे में सम्राट् औरंगजेब और निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह प्रथम की भी क़ब्रें हैं। दारा शिकोह भी उनकी समाधि पर गया था। ११ सफ़र ७३७।८ सितंबर, १३३७ अथवा ७४१।१३४०-४१ में उनकी मृत्यु हुई।

सं० ग्रं० — मुहम्मद किर्मानी सेयरुल औलिया (दिल्ली) २७९-२८२, अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी अख़्बारुल अख़्यार (उर्दू अनुवाद, करांची, १९६३) १७३-१७५, दारा शिकोह सफ़ीनतुल औलिया (उर्दू अनुवाद, करांची, १९६१) पृ० १३६, मौलवी ग़ुलाम सर्वर ख़ज़ीनतुल अस्फ़िया (नवलकिशोर) १,३८६-३८८, मुहम्मद क़ासिम हिंदू शाह फ़रिश्ता तारीख़े फ़रिश्ता (मूल ग्रंथ) (नवल किशोर) (मक़ाला सशुम) ३७९, मकाला दुआज़दहुम, ४००-४०१, मुहम्मद गौसी मंडवी गुलज़ारे अबरार (उर्दू अनुवाद, आगरा, १३२६) ९०, शेख़ मुहम्मद इकराम आबे कौसर (करांची १९५२) ४१२-४१४, ख़लीक़ अहमद निज़ामी तारीख़े मशायख़े चिश्त (दिल्ली, १९५३), २०४-२०६, एनसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम (न्यू एडीशन, लंदन, १९६०) १, १३२८-१३२९। [मु० उ०]

बुलंदशहर १ जिला, स्थिति २८° २८' उ० अ० तथा ७७° ५८' पू० दे०। यह भारत में उत्तर प्रदेश राज्य के ठीक पश्चिम में स्थित है। पूर्व में गंगा नदी व पश्चिम में यमुना नदी इसकी सीमा बनाती हैं। उसके उत्तर में मेरठ तथा दक्षिण में अलीगढ़ जिले हैं। पश्चिम में राजस्थान राज्य पड़ता है। इसका क्षेत्रफल १,८८७ वर्ग मील तथा जनसंख्या १७,३७,३९७ (१९६१) है। यहाँ की भूमि उर्वर एवं समतल है। गंगा की नहर से सिंचाई और यातायात दोनों का काम लिया जाता है। निम्न गंगा नहर का प्रधान कार्यालय नरोरा स्थान पर है। वर्षा का वार्षिक औसत २६ इंच रहता है। पूरब की ओर पश्चिम से अधिक वर्षा होती है। कहीं कहीं मिट्टी में रेह होने से ऊसर बन गए हैं। कुछ स्थानों पर अहीर तथा जाटों के परिश्रम से भूमि कृषि योग्य कर ली गई है। यहाँ की मुख्य उपजें गेहूँ, चना, मक्का, जौ, ज्वार, बाजरा, कपास एवं गन्ना आदि हैं। सूत कातने, कपड़े बनाने का काम जहाँगीराबाद में, बरतनों का काम ख़ुर्जा, लकड़ी का काम बुलंदशहर व सिकंदरपुर में होता है। काँच से चूड़ियाँ, बोतलें आदि भी बनती हैं। करघे से कालीन बुना जाता है। अनूपशहर, ख़ुर्जा, बुलंदशहर प्रमुख नगर हैं। यातायात का काफी विकास हो गया है।

२ नगर, स्थिति : २८° २५' उ० अ० तथा ७७° ५२' पू० दे०। यह बुलंदशहर जिले के ठीक मध्य में ग्रांड ट्रंक रोड पर, चोला स्टेशन से १० मील पूर्व की ओर, काली नदी के पूर्व में स्थित है। यह एक व्यापारिक शहर है, जो जिले के बाजार का केंद्र भी है। इसकी जनसंख्या ४४,१६३ (१९६१) है। इसका प्राचीन नाम बरन था।

[रा० च० दु०]

बुलडोज़र मिट्टी को इधर से उधर हटानेवाली मशीनें हैं। लगभग सन् १९२४ से निर्माण कार्य शीघ्रतापूर्वक करने में ये मशीनें सहायक होती रही हैं। अनेक प्रकार के कठिन काम करने में इनका उपयोग हो जाता है।

बुलडोज़र का प्रमुख अवयव इस्पात का बना हुआ एक फल होता है, जो ढकेलता है और काटता है। यह एक इस्पात के ढाँचे में लगा है तथा यह ढाँचा एक कर्षित्र (ट्रैक्टर) के ढाँचे में कील से जुड़ा रहता है। कर्षित्र में रबर टायर के भारी पहिए, या सतत पहिएदार माला (निरंतर पट्टी पथ, caterpillar tracks), लगे रहते हैं। फल आकार में वक्र चंद्रमा सा होता है और कर्षित्र की चाल की दिशा से समकोण बनाता हुआ लगाया जाता है। कर्षित्र की अश्वशक्ति ६५ से १६० तक तथा फल की चौड़ाई ८ से ११ फुट तक होती है। जब फल का समंजन इस प्रकार किया जा सके कि वह कर्षित्र की चाल की दिशा तथा क्षैतिज रेखा के साथ कोई भी कोण बना सके, तो मशीन कोणडोज़र कहलाती है।

इस मशीन से मिट्टी, गिट्टी, रोड़े, गोलाश्म (boulders) आदि के ढेर खिसकाए और समतल किए जाते हैं। यह नालियाँ भरने और ठोस भूमि काटकर बराबर करने के भी काम आती है। इससे सड़क के स्तर निर्माण के लिये कटाई और निर्माणस्थान की सफाई भी की जाती है। झाड़ उखाड़ने, पेड़ों तथा ऐसी ही अन्य बाधाएँ हटाने के लिये इसका उपयोग होता है। इस प्रकार इससे किए जानेवाले कार्यों की विविधता महत्वपूर्ण है।

कोणडोज़र सड़क में ढाल बनाने तथा उसके मध्य में उभार देने के काम आता है और इसके फल को क्षैतिज करके इससे मिट्टी भी हटाई जा सकती है। पहाड़ों की एक तरफ से कटाई करने के लिये कोणडोज़र आदर्श मशीन है।

जब डंपर या लारियाँ ढेर की ढेर मिट्टी आदि उलटती हैं, तब उसे फैलाकर बराबर करने के लिये बुलडोज़र सबसे अधिक सुविधाजनक मशीन है। इसी प्रकार ये खड्डों तथा बाँधों के लिये भराव करने में उपयोगी होते हैं। यदि फासला २०० फुट से अधिक हो, तो बिना डंपर या लारी की सहायता के ही डोज़र से भराई की जा सकती है। काम अच्छा और सस्ता करने के लिये, इसके चलाने में निपुणता तथा अभ्यास होना अनिवार्य है। पहाड़ों में काम करते समय जहाँ तक संभव हो, डोज़र का प्रयोग मिट्टी नीचे की ओर ढकेलने के लिये करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार काम अधिक होता है और सस्ता

बुलडोज़र (देखें पृष्ठ ३३०)
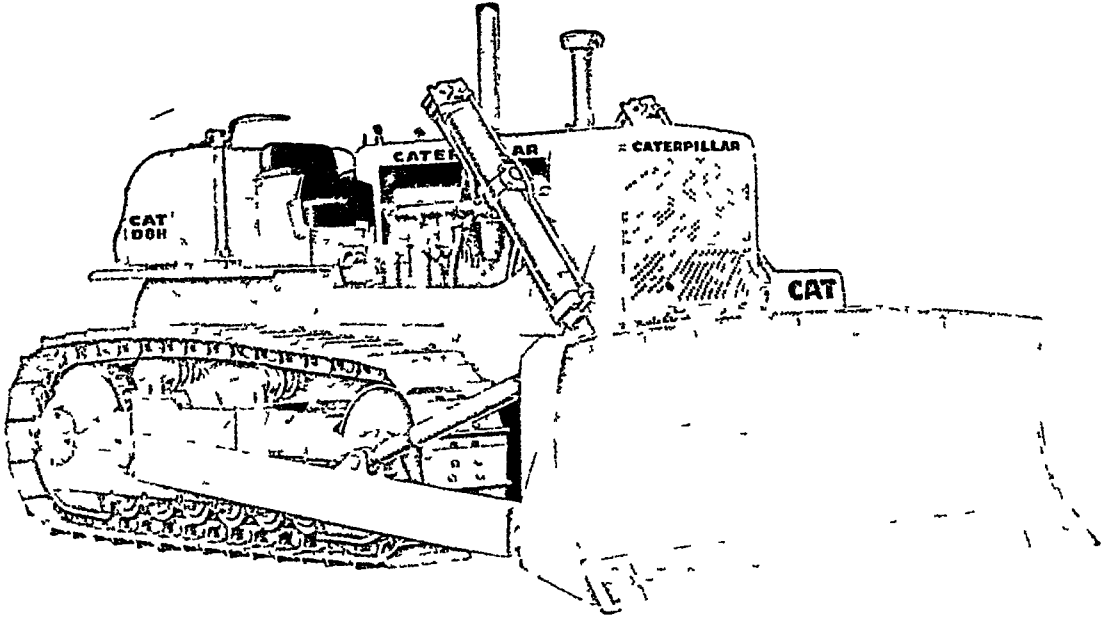
सगलीदार पहियोंवाले ट्रैक्टर के साथ बुलडोज़र
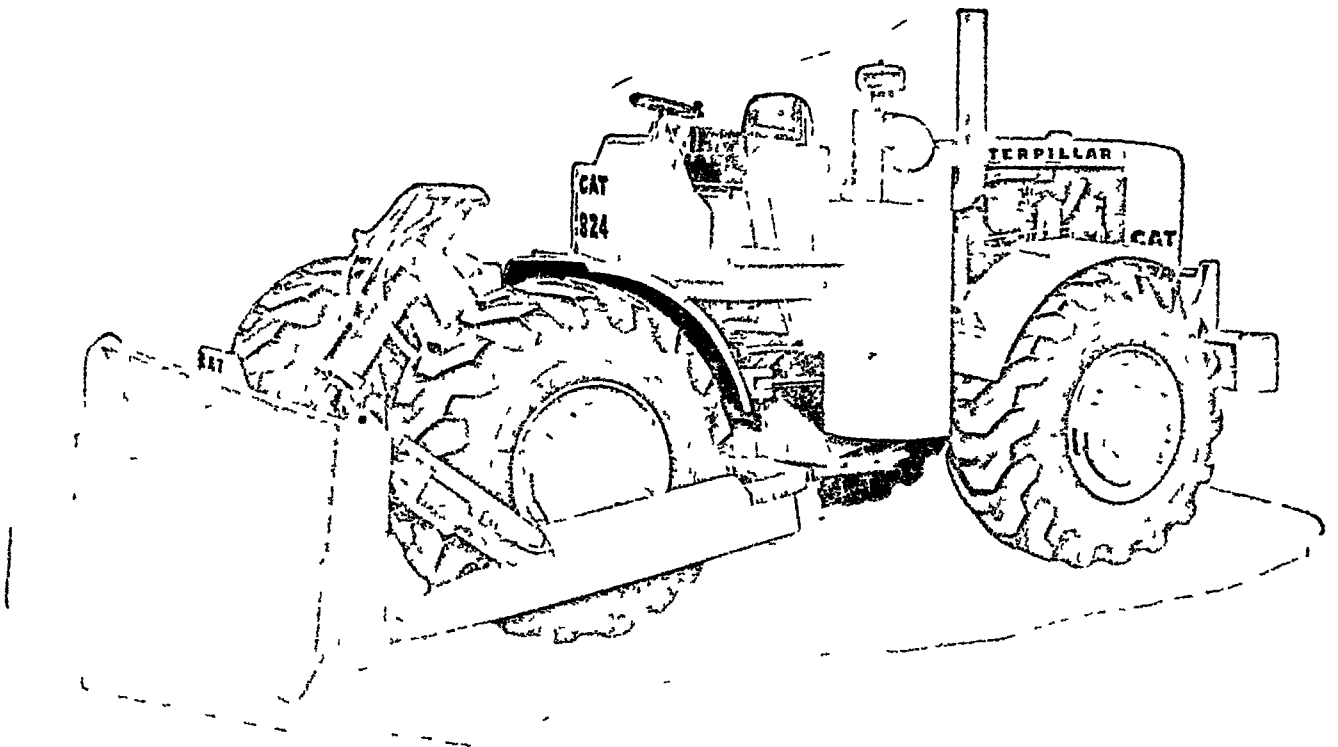
भारी टायर के पहियोंवाले ट्रैक्टर के साथ बुलडोजर

बेरूत (देखें-पृष्ठ ३५२)

बेरूत का बंदरगाह

समुद्र से रास बेरूत का दृश्य

बेरूत का घाट किनारा
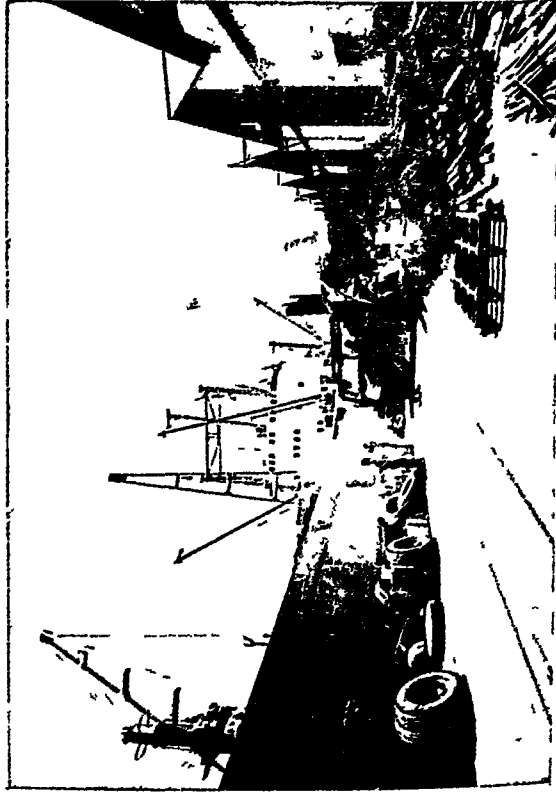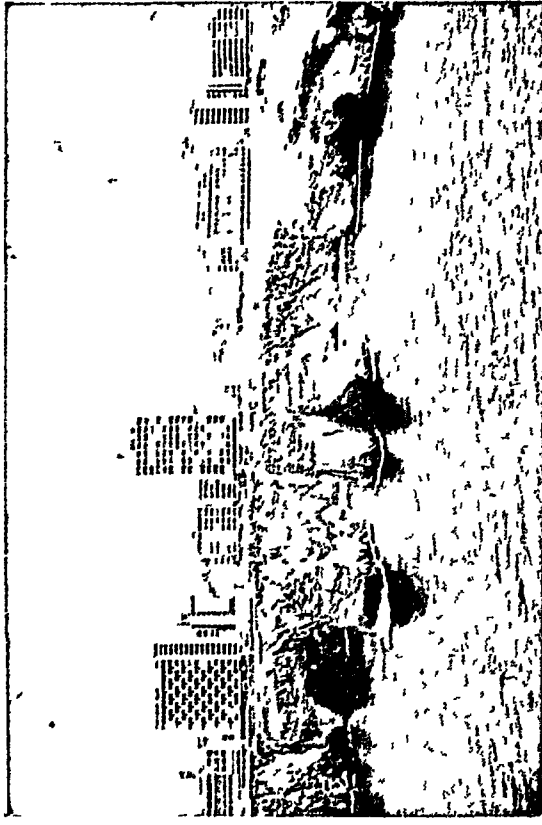
कपोत शिला, बेरूत

भी पडता है। स्थान समतल करने के लिये फल नीचा करके कर्षित्र उलटा चलाया जाता है। मिट्टी आगे खिसकाने के लिये फल का समजन इस प्रकार करना चाहिए कि मशीन चलाने मे न अवरोध हो, और न सगलमाला (tracks) ही फिसले। [ज० मि० श्रे०]

बुलबुल शाखाशायी गण के पिकनोनॉटिडी कुल (Pycnonotidae) का पक्षी है, जो प्रसिद्ध गायक पक्षी 'बुलबुल हजारदास्ताँ' से एक दम भिन्न है। ये कीडे मकोडे और फल फूल खानेवाले पक्षी है। ये अपनी मीठी बोली के लिये नही, बल्कि लडने की आदत के कारण शौकीनो द्वारा पाले जाते हैं। ये कलछौह भूरे मटमैले या गदे पीले और हरे रग के पक्षी है, जो अपने पतले शरीर, लबी दुम और उठी हुई चोटी के कारण बडी आसानी से पहचान लिए जाते है। इनकी कई जातियाँ हमारे देश मे मिलती है, जिनमे 'गुलदुम बुलबुल' सबसे प्रसिद्ध है। इसे लोग लडाने के लिये पालते हैं और पिंजडे मे नही, बल्कि लोहे के एक टी (T) शक्ल के चक्कस पर बिठाए रहते हैं। इनके पेट मे एक पेटी बाँध दी जाती है, जो एक लबी डोरी के सहारे चक्कस मे बँधी रहती है।

भारत मे पाई जानेवाली बुलबुल की कुछ प्रसिद्ध जातियाँ निम्नलिखित हैं १ गुलदुम (red vented) बुलबुल, २ सिपाही (red whiskered) बुलबुल, ३ मछरिया (white browed) बुलबुल, ४ पीला (yellow browed) बुलबुल तथा ५ कॉंगडा (white checked) बुलबुल। [सु० सिं०]

बुल्डाना १ जिला, भारत के महाराष्ट्र राज्य का एक जिला है। इसके पूर्व मे अकोला, दक्षिण-पूर्व मे परभणी, दक्षिण-पश्चिम मे औरगाबाद, पश्चिम मे जलगाँव तथा उत्तर मे मध्य प्रदेश राज्य का पूर्वी निमाड जिला है। इसका क्षेत्रफल ३,७५१ वर्ग मील तथा जनसख्या १०,५६,६६८ (१९६१) है। यहाँ की जलवायु साधारण, नम तथा गरम है। वर्षा का औसत २० से ३० इच रहता है।

२ नगर, स्थिति २०° ३२' उ० अ० तथा ७६° १४' पू० दे०। बुल्डाना जिले का प्रमुख नगर है। इसकी सागर तल से ऊँचाई २,१९० फुट है। इसके निकट ही पेनगगा नदी बहती है। जिले का यह सबसे ठढा व मनोहारी स्थल है। यहाँ की जनसख्या १५,९८५ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बुल्लेशाह, सैयद, मीर, (१६८०–१७५३ ई०) पजाब के सर्वप्रसिद्ध सूफी फकीर और कवि। जन्मस्थान पडोक, इलाका लाहौर। पिता का नाम मुहम्मद दरवेश। कसूर (जिला लाहौर) मे रहकर सूफी औलियाओ से शिक्षा ग्रहण की और वही अपनी साधना पूरी की। लाहौर आकर सूफी वली हजरत शाह इनायत को अपना गुरु (पीर) बनाया। गुरु मौन व्रत मे विश्वास रखते और ये हाल मे आकर मसूर की तरह चिल्लाते, गाते और नाचते थे। इस पर गुरु ने इन्हें निकाल दिया। गुरु के विरह में इन्होंने अनेक मर्मस्पर्शी काफियाँ लिखी। इनकी श्रद्धा, दृढता, तल्लीनता और भावुकता देखकर गुरु ने इन्हें पुन अगीकार कर लिया। पीर की मृत्यु के उपरात ये ३० वर्ष गद्दी पर रहे। इनायत शाह की गुरुपरंपरा शाह मुहम्मद गौस ग्वालियरी से जा मिलती है। ये कादिरी शत्तारी सप्रदाय के नेता थे।

बुल्लेशाह की गणना पजाबी साहित्य के महान् कवियो मे होती है। इन्होने काफियाँ, सीहर्फियाँ, चौबैतियाँ, गढाँ, दोहडे, अठवारा बारहमाह आदि अनेक विधाओ मे काव्यरचना की। इनकी सर्वाधिक ख्याति काफियो के कारण है जो पजाब के शिक्षित, अशिक्षित, सिक्ख, हिंदू, मुसलमान सभी वर्गों मे प्रचलित हैं। काफियाँ कबीर और नानक ने भी लिखी हैं और बाद के कवियो ने अनुकरण किया, किंतु बुल्लेशाह की काफियो की सी सगीतात्मकता, विषय और शैली की स्पष्टता, प्रखरता और प्रभावोत्पादकता, उनका घरेलू वातावरण, भाषा का ठेठपन और छुटीलापन अन्यत्र दुर्लभ है। इनमे वैराग्य, प्रेम, तौहीद (एकेश्वरवाद), तरीकत (उपासना), मार्फत (सिद्धि) और मानवतावाद का स्वर स्पष्ट है। इनकी अन्य कृतियो मे भाषा का हिंदवी रूप भी प्राप्त होता है। बुल्लेशाह बहुत पढे लिखे नही जान पडते। उनका कहना है कि 'अलिफ' से अल्लाह मिल जाता है, और उसके आगे चलने की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है। बुल्लेशाह की कृतियाँ विशेषतया ढाढी चारणो और कव्वालो के पास है। कुछ सग्रह प्रकाशित हुए हैं, पर वे अधूरे हैं।

स० ग्र० अनवर रोहतकी कानूने इश्क, लाहौर, मुफ्ती सरवर लाहौरी खजीनातुल आसफिया, बुल्लेशाह, पजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर, १९३०। [ह० बा०]

बुश्मन भाषाएँ दे० 'अफ्रीकी भाषाएँ'।

बूसिंगो, ज्हाँ बैप्तिस्त (जोजेफ दिउदोने) (सन् १८०२–१८८७) फ्रासीसी कृषि वैज्ञानिक का जन्म पैरिस मे हुआ। प्रारभिक शिक्षा के पश्चात् इन्होने सेंट एटीन स्थित माइनिंग स्कूल मे वैज्ञानिक एव रासायनिक दक्षता प्राप्त की। २० वर्ष की ही उम्र मे इन्हे दक्षिणी अमरीका मे उत्खनन इजीनियर का पद प्राप्त हुआ, जहाँ १० वर्षों से अधिक समय तक रहे और भूविज्ञान, खनिज विज्ञान आदि पर अनेक शोध निबध लिखे। साथ ही कृषि सबधी अनेक निरीक्षण भी करते रहे। फ्रास लौटने पर कुछ समय तक लीओं मे रसायन शिक्षक रहे। अपनी पत्नी के कारण ऐल्सेस के पास बेशेलब्रान मे भूमि सपत्ति के प्रति रुचि बढी, तो इस भूमि पर इन्होने क्षेत्रपरीक्षण प्रारभ कर दिए। ये प्रयोग बीजो के उगते समय उनकी सरचना, पौधों द्वारा वायुमडलीय नाइट्रोजन का स्वागीकरण, फसलो के हेरफेर, उर्वरको के उपयोग, बाडे की खाद की सुरक्षा, दुग्ध के उत्पादन एव उसकी सरचना पर चारे के प्रभाव तथा कृषि सबधी अन्य व्यावहारिक विषयो से सबद्ध थे। इन क्षेत्रप्रयोगो के साथ साथ इन्होंने नियत्रित दशा मे प्रयोगशाला मे भी ऐसे ही प्रयोग किए और प्राप्त परिणामों को सन् १८३६ के पश्चात् लगातार "एनाल्स द शिमी ए द फिजीक" (Annales de chimie et de physique) मे प्रकाशित करते रहे। बूसिंगो के इन परिणामो के प्रकाशन के साथ ही कृषिरसायन के क्षेत्र मे नवीन युग का सूत्रपात हुआ। यही कारण है कि सर जॉन रसेल ने (सन् १९३६) इन्हे ऐसी विधि का जनक कहा है जिसके द्वारा नवीन कृषिविज्ञान का प्रारभ हुआ।

इस पुस्तक में इन्होने मिट्टियो, पौधो, उर्वरको, फसलों के

हेरफेर, पशुओं के चारो, पशुपालन, जलवायु, वायुमडल इत्यादि के सबध मे विस्तार से वर्णन किया है। इन्होंने ही पहले पहल प्रयोग करके सिद्ध किया कि द्विदलीय फसलो के बोने से मिट्टी मे नाइट्रोजन की मात्रा बढ जाती है तथा गेहूँ, जई सदृश फसलों के बोने से नाइट्रोजन की मात्रा की वृद्धि नही होती।

इन्होंने जानवरो को दिए गए चारे तथा मलमूत्र के विश्लेषणो द्वारा स्वागीकृत नाइट्रोजन का पता लगाया और इस प्रकार बचत तालिका (balance sheet) प्रणाली को जन्म दिया। कपोस्ट बनाने के सबध मे भी इनके विचार अत्यत सारगर्भित थे। नाइट्रोजन ही कपोस्ट का प्राण है, अत उसे पानी मे घुलने से बचाने का पूरा प्रयत्न होना चाहिए।

सन् १८४८-१८५२ तक राजनीतिक जीवन बिताने के पश्चात्, ये पुन अध्यापन एव शोधकार्य मे लग गए। इन शोधों के विवरण सन् १८६० से १८८४ के बीच प्रकाशित "ऐग्रॉनोमी, शिमी ऐग्रिकोल एट फिजिऑलोजी" (Agronomie, chimie Agricole et physiologie) के सात खडो मे प्रकाशित हुए। [शि० गो० मि०]

बुसी (१७१८–१७८५ ई०) बुसी फ्रास का यशस्वी सेनानायक तथा सफल कूटनीतिज्ञ था। प्रथम कर्नाटक युद्ध के समय वह लाबूर्दने के साथ पाँडिचेरी पहुँचा। अबर के युद्ध (१७४८) मे वह डूप्ले का विश्वासपात्र बना।

डूप्ले की साम्राज्य-निर्माण-योजना कार्यान्वित करने मे बुसी ने विशेष कौशल दिखाया। इससे भारत मे फ्रासीसियों की प्रतिष्ठा बढी। १७५० मे जिजी की विजय बुसी की पहली सफलता थी। १७५१ मे पाँडिचेरी से औरगाबाद तक उसका प्रयाण तथा मार्ग मे मुजफ्फरजग की मृत्यु के बाद सलाबतजग को निजाम घोषित करके आतरिक तथा बाह्य शत्रुओं से उसे सुरक्षित बनाना उसकी बडी सफलता थी। इससे दक्षिण भारत मे फ्रासीसियो की धाक जम गई, सैनिक खर्च के लिये उन्हे उत्तरी सरकार के जिले मिले, डूप्ले को कृष्णा नदी के दक्षिण के प्रदेश की सूबेदारी मिली, तथा अंग्रेजो की सभी चालें विफल हुई।

तृतीय कर्नाटक युद्ध के समय बुसी को हैदराबाद से वापस बुलाया गया। फलत फ्रासीसी प्रभाव वहाँ से जाता रहा तथा उत्तरी सरकार प्रदेश उनसे छिन गया। मद्रास के घेरे तथा वाडीवाश के युद्ध मे बुसी ने लैली को हार्दिक सहायता दी। सन् १७६० ई० मे अंग्रेजो ने उसे बदी बना लिया और सधि हो जाने पर फ्रास भेज दिया।

सन् १७८३ ई० मे वह पुन भारत आया और कुदालोर मे उसने अंग्रेजो से रक्षात्मक युद्ध किया। युद्ध समाप्त होने पर उसे भारत मे फ्रासीसियों का भविष्य निराशाजनक प्रतीत हुआ। १७८५ मे उसका देहात हो गया। [ही० ता० गु०]

बुस्तानी, अल (१८१९–८३) सेरन जाति का लेबनानी साहित्य पडित। अमरीकी मिशनरियो के संपर्क में आकर वह ऐवे में अध्यापक हुआ। उसने अली स्मिथ के बाइबिल के अरबी अनुवाद मे सहायक का कार्य किया। इसके लिये उसको इब्रानी, यूनानी, सीरियाई और लैटिन भाषाएँ भी सीखनी पडी। वह अंग्रेजी, फ्रासीसी और इतालीय भाषाओ का भी विद्वान् था। उसने एक विस्तृत अरबी शब्दकोश का भी सपादन किया। उसका दूसरा सपादित ग्रथ 'दाग्ररात अल-म-आरिफ' (विश्वकोश) भी बहुत प्रसिद्ध है। १८६० में, मुसलमानो और ईसाइयो के बीच गृहयुद्ध के दौरान अपने पत्र 'नफीर सूरीया' के माध्यम से सद्भावना और सुमति का सदेश प्रचारित किया। अपने जीवन भर बुस्तानी सहिष्णुता और देशभक्ति के मूल्यो का प्रचार करता रहा।

बूँदी १ जिला, यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है, जो आठवी शती से भारत के स्वतत्र होने के दो वर्ष बाद तक हाडा वशीय नरेशो के अधीन देशी राज्य था। इसके उत्तर में टोंक, पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व मे कोटा, पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम मे भीलवाडा जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,१४८ वर्ग मील तथा जनसख्या ३,३८,०१० (१९६१) है। कृषि मे मक्का, ज्वार, मूँग, गेहूँ, जौ, चना एव तिलहन आदि उगाए जाते हैं। खनिजो मे कही कही चूना पत्थर प्राप्त किया जाता है।

२ नगर, स्थिति २५° ३०' उ० अ० तथा ७५° ४५' पू० दे०। बूँदी जिले का प्रमुख नगर एव शासन का केंद्र है। इसका नाम बूदा नामक एक कबीला सरदार के नाम पर पडा है। यह अजमेर नगर से लगभग १०० मील दक्षिण-पूर्व मे स्थित है तथा दर्शनीय स्थल है। यहाँ का मुख्य बाजार शहर की सपूर्ण लबाई मे फैला हुआ है। यहाँ के राजमहल से और ऊपर तारागढ नामक किला है और यहाँ की पहाडी का स्पर (spur) एक बडे सुदर छतरी का काम करता है जिसे सूरज (sundome) कहते हैं। इनके अतिरिक्त उत्तर-पश्चिम मे फूलसागर, उत्तर-पूर्व में जैतसागर (इसके किनारे सुखमहल है) एव सार बाग आदि दर्शनीय स्थल हैं। नगर की जनसख्या २६,४७८ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बूकारेस्ट (Bucharest) स्थिति ४४ २५' उ० अ० तथा २६° १०' पू० दे०। डिंबॉवीत्सा नदी के किनारे, दक्षिणी रोमानिया मे स्थित रोमानिया की राजधानी है। इसकी जनसख्या १२,२६,१३५ (१९६१) है। यह व्यापारिक महत्व का नगर है। आधुनिक इमारतें, पार्क, चौडी सडकें, विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा गिरजाघर आदि के कारण इसे पूर्वी पैरिस कहा जाता है। यहाँ आटा पीसने, मिट्टी का तेल साफ करने, चमडा कमाने, कपडा बुनने, रसायनक, साबुन, कागज तथा औजार बनाने के उद्योग होते हैं।

बूगैंडा (Buganda) स्थिति २° ५३' द० अ० तथा २९° १४' पू० दे०। यह यूगैंडा (पूर्वी अफ्रीका) का एक प्रात है जो आंग्ल रक्षित राज्य के दक्षिण-मध्यवर्तीय भाग को घेरे हुए है और टैंगैन्यीका झील इसकी दक्षिणी सीमा बनाती है। इसकी राजधानी कपाला है। १९६२ ई० मे यह ब्रिटिश रक्षित राज्य से पूर्णत स्वतत्र हो गया है। इसका क्षेत्रफल लगभग २५,६३१ वर्ग मील तथा जनसख्या १८,८१,१४९ (१९५९) है। मुख्य निवासी बूगैंडा नीग्रो हैं जो बटू भाषा बोलते हैं। यहाँ पर घने जगल हैं जिनमे उष्णकटिबधीय जीवजतु तथा वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। ऊँचे क्षेत्रो मे कपास पैदा की जाती है जो मुख्य व्यापारिक फसल है। [श्रीकृ० च० ख०]

बूकारेस्ट (पृ० ३३२)
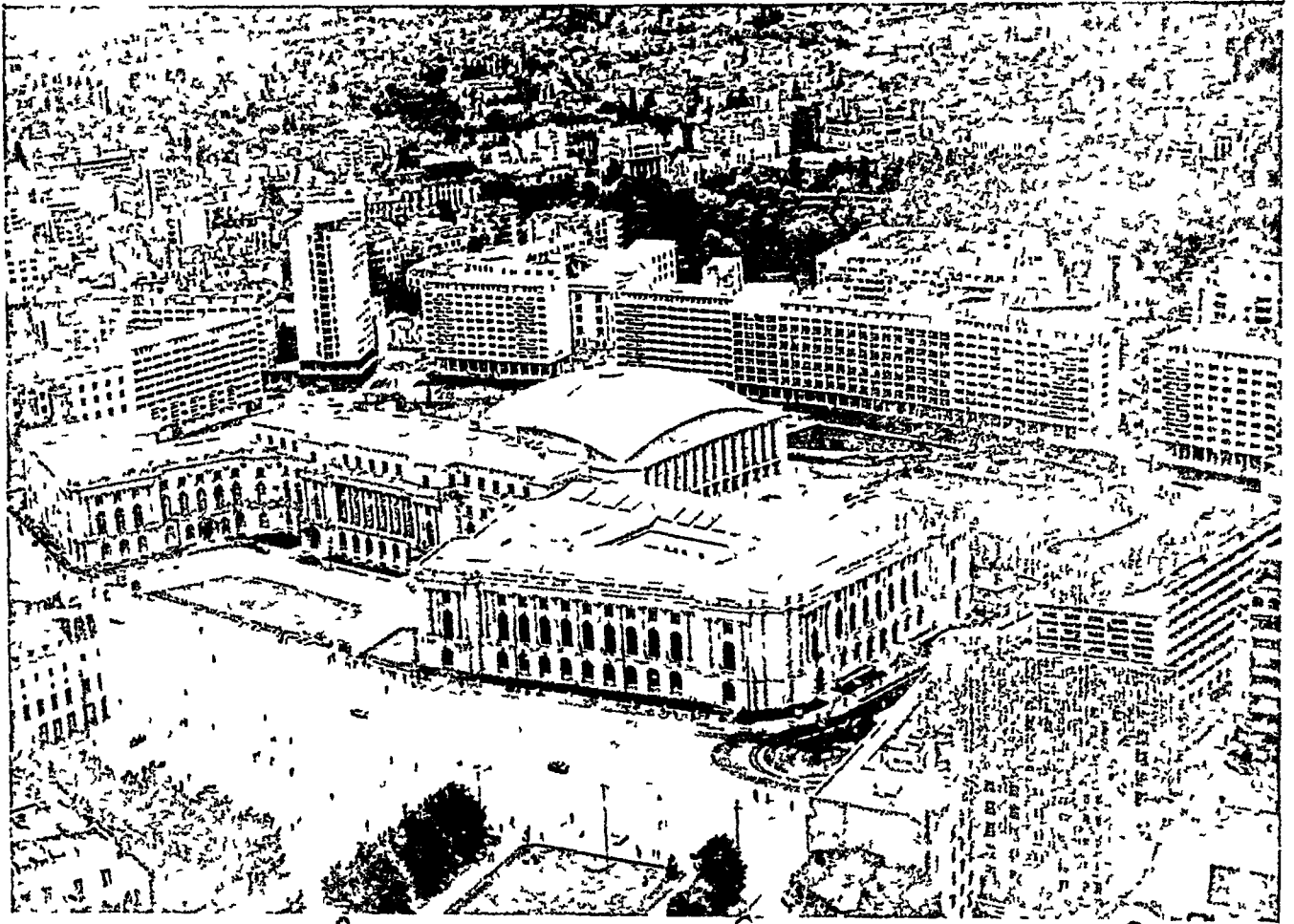
[फोटो रोमानियाई दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]
रिपब्लिक स्क्वायर
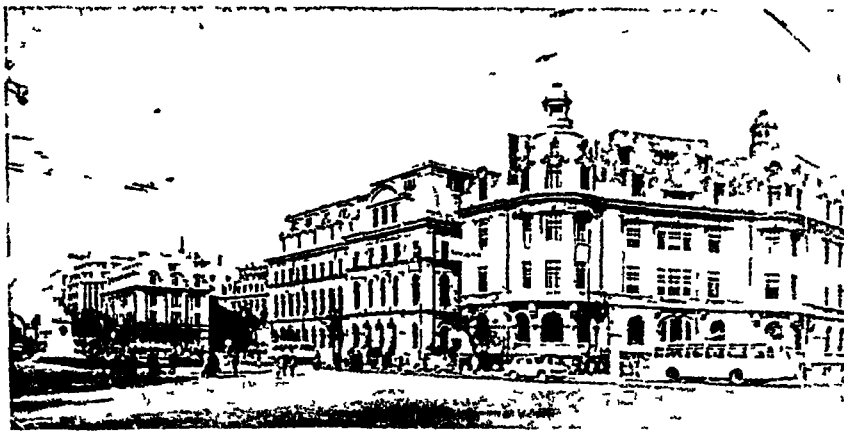
[फोटो रोमानियाई दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]
बूकारेस्ट विश्वविद्यालय

बूकारेस्ट (पृ० ३३२)
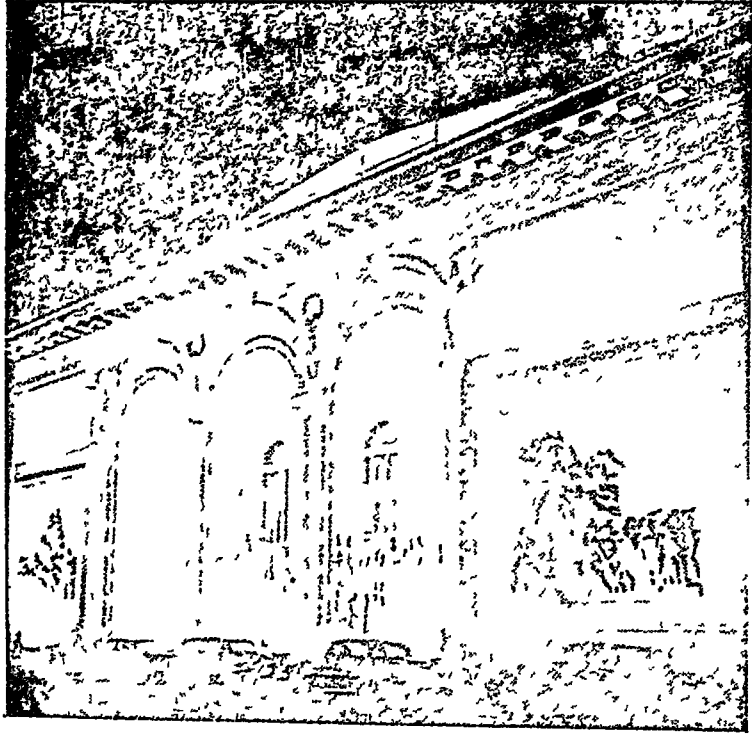
चित्र १

चित्र २
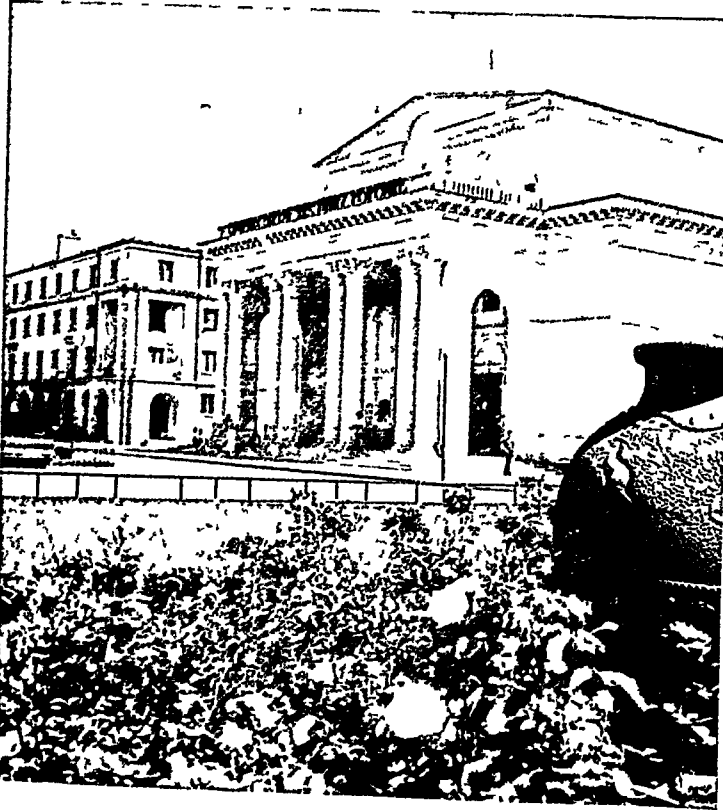
चित्र ३

१ दि स्टेट ऑपेरा हाउस
२ अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा
३ अभिनव सिनेमा गृह
[फोटो . रौमानियाई दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]

बूमरैंग (Boomerang) एक प्रकार का अस्त्र है, जिसका उपयोग प्राचीन मिस्र निवासी युद्ध और शिकार के लिये करते थे और ऑस्ट्रेलिया के आदिवासी आज भी इसी रूप मे इसका उपयोग करते हैं। इसकी दो किस्मे १ प्रत्यावर्त्य (return) बूमरैंग तथा २ अप्रत्यावर्त्य (nonreturn) बूमरैंग हैं। इन दोनो किस्मो की आकृति हँसिया की तरह होती है और ये दोनो ही लकडी की बनाई जाती है। भारत मे इस्पात तथा हाथी दांत का भी उपयोग इनके बनाने मे होता है। इनकी लबाई ६ इच से ४ फुट, चौडाई लबाई की १/१२ तथा मोटाई चौडाई का १/६ होती है। प्रत्यावर्त्य बूमरैंग की दोनों भुजाओ के मध्य ७०° से १२०° तक का कोण होता है, किंतु ऑस्ट्रेलिया मे व्यवहृत होने वाले प्रत्यावर्त्य बूमरैंग की दोनों भुजाओ के मध्य ९०° का कोण, विस्तार १८" से २४" तक तथा कुल भार
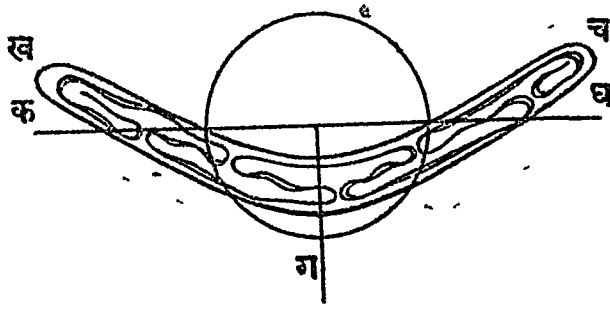
बूमरैंग

ख और घ सिरे केंद्र के तल से ऊपर तथा क और च नीचे रहते हैं।

८ औंस होता है। दोनो भुजाओ के केंद्र से जानेवाले कल्पित धरातल को आधार मानकर दोनो भुजाओ को २° से ३° तक ऐंठकर तिरछा कर दिया जाता है। अप्रत्यावर्त्य बूमरैंग का तिरछापन प्रत्यावर्त्य की विपरीत दिशा मे होता है। बूमरैंग की उडान तिरछेपन पर ही निर्भर करती है। प्रत्यावर्त्य बूमरैंग को सीधा पकडकर पृथ्वी के समातर दिशा मे फेंकते हैं और फेंकते समय यथासभव घूर्णन (rotation) दिया जाता है। ३० गज या अधिक दूरी तक सीधा जाने के बाद, यह बाईं ओर झुककर हवा मे १५० फुट तक ऊपर उठता है और ५० गज के व्यास का वृत्त बनाकर पाँच चक्कर लेने के बाद, यह फेंकनेवाले के पास वापस लौट आता है। अप्रत्यावर्त्य बूमरैंग को प्रत्यावर्त्य करने के लिये ४५° का कोण बनाते हुए फेंका जाता है, जो बहुत दूरी तक जाता है। सिद्धहस्त व्यक्ति के हाथ मे जाकर यह एक घातक अस्त्र हो जाता है। यह फेंकनेवाले तथा लक्ष्य दोनो के लिये घातक हो सकता है। [अ० ना० मे०]

बूरहावे, हेरमान (Boerhaave, Hermann, सन् १६६८-१७३८), डच चिकित्साविद, का जन्म लाइडन (Leiden) के निकट वूरहूट (Voorhout) मे हुआ था। लाइडन मे शरीरक्रिया विज्ञान और हार्डरविक मे आपने चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। लाइडन के विश्वविद्यालय मे आप वनस्पति तथा चिकित्सा शास्त्रो के प्राध्यापक, विश्वविद्यालय के रेक्टर तथा व्यावहारिक चिकित्सा एव रसायन विज्ञान के प्रोफेसर रहे।

१७वीं शताब्दी तक चिकित्सा विज्ञान की पढाई केवल पुस्तको तक ही सीमित रहती थी। रोगी से उसका कोई सबध नही रहता था। सन् १६३६ मे लाइडन मे प्रथम बार रोगी की शय्या के पास खडे होकर अध्ययन का प्रारभ हुआ तथा बूरहावे को इस प्रकार के प्रथम महान् अध्यापक होने का श्रेय प्राप्त है। इन्होने इस क्षेत्र मे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की कि चीन के एक अधिकारी द्वारा लिखा पत्र, जिसपर पते के स्थान पर केवल 'सेवा मे यशस्वी बूरहावे, यूरोप के चिकित्सक' लिखा था, भेजा गया और वह सीधे बूरहावे के पास जा पहुचा। उनके शिष्यो मे पीटर महान् भी थे। चिकित्सा शास्त्र के अध्यापन के आधुनिक तरीको का आरंभ बूरहावे से हुआ।

ये 'इस्टिट्यूशोस मेडिसि' (सन् १७०८), एफोरेज्मी डी कग्नो-सेंडिस एट क्यूरडिस (सन् १७०९), जिसपर जेरार्ड फॉन स्वीटेन ने पाँच खडो मे टीका लिखी थी, तथा अन्य महत्व की पुस्तको के प्रणेता भी थे। [भा० श० मे०]

बृहत्त्रयी (सस्कृत महाकाव्य) इस त्रयी के अतर्गत तीन महाकाव्य आते हैं—'किरातार्जुनीय' 'शिशुपालवध' और 'नैषधीयचरित'। भामह और दडी द्वारा परिभाषित महाकाव्य लक्षण की रूढियो के अनुरूप निर्मित होनेवाले मध्ययुग के अलकरण प्रधान सस्कृत महाकाव्यो में ये तीनो कृतियाँ अत्यत विख्यात और प्रतिष्ठाभाजन बनी। कालिदास के काव्यो मे कथावस्तु की प्रवाहमयी जो गतिमत्ता है, मानवमन के भावपक्ष की जो सहज, पर प्रभावकारी अभिव्यक्ति है, इतिवृत्ति के चित्रफलक (कैन्वैस) की जो व्यापकता है—इन काव्यों मे उनकी अवहेलना लक्षित होती है। छोटे छोटे वर्ण्य वृत्तो को लेकर महाकाव्य रूढियो के विस्तृत वर्णनो और कलात्मक, आलकारिक और शास्त्रीय उक्तियो एव चमत्कारमयी अभिव्यक्तियो द्वारा काव्य की आकारमूर्ति को इनमे विस्तार मिला है। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित मे इन प्रवृत्तिया का क्रमश अधिकाधिक विकास होता गया है। इसी से कुछ पडित, इस हर्षवर्धनोत्तर सस्कृत साहित्य को काव्यसर्जन की दृष्टि से 'ह्रासोन्मुखयुगीन' मानते है। परतु कलापक्षीय काव्यपरपरा की रूढ रीतियो का पक्ष इन काव्यो मे बडे उत्कर्ष के साथ प्रकट हुआ। इन काव्यो मे भाषा की कलात्मकता, शब्दार्थलकारो के गुफन द्वारा उक्तिगत चमत्कारसर्जन, चित्र और श्लिष्ट काव्यविधान का सायास कौशल, विविध विहारकेलियो और वर्णनो का सग्रथन आदि काव्य के रूढरूप और कलापक्षीय प्रौढता के निदर्शक है। इनमे शृगाररस की विलासिक परिधि के वर्णनो का रग असदिग्ध रूप से पर्याप्त चटकीला है। हृदय के भावप्रेरित, अनुभूतिबोध की सहज की अपेक्षा, वासनामूलक ऐंद्रिय विलासिता का अधिक उद्वेलन है। फिर पाडित्य की प्रौढता, उक्ति की प्रगल्भता और अभिव्यक्तिशिल्प की शक्तिमत्ता ने इनकी काव्यप्रतिभा को दीप्तिमय बना दिया है। साहित्यक्षेत्र का पडित बनने के लिये इनका अध्ययन अनिवार्य माना गया है।

किरातार्जुनीय — बृहत्त्रयी के महाकाव्यो में रचनाकालक्रम की दृष्टि से यह सर्वप्रथम और आकार की दृष्टि से लघुतम है। इसके निर्माता भारवि ने अपने काव्य मे स्ववृत्तपरिचयात्मक कुछ भी नहीं लिखा है। महाकवि के रूप मे प्रसिद्धि का एकमात्र आधार किरातार्जुनीय ही है। प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण उनके विषय मे अन्यत्र भी अनुपलब्ध है। ६३४ ई० मे उत्कीर्ण 'आयोहल' (ऐहोल)

शिलालेख के उल्लेख और दंडी की 'अवंतिसुंदरीकथा' के संकेत से अनुमान किया जाता है कि 'भारवि' परमशैव और दाक्षिणात्य कवि थे। पुलकेशी द्वितीय के अनुज, राजा विष्णुवर्धन के राजसभा पंडित थे और ६०० ई० के आसपास विद्यमान थे। किरातार्जुनीय काव्य की महाभारत से गृहीत कथावस्तु प्रकृत्या छोटी है—भाइयों सहित युधिष्ठिर द्वैत वनवास कर रहे थे। उसे किरातवेशी गुप्तचर दुर्योधन की शासननीति का विवरण मिला। अपने (पांडवों के) आगामी कर्तव्यपथ के निर्धारणार्थ भीम, द्रौपदी सहित वे विचार करने लगे। उसी समय महर्षि व्यास ने आकर पथप्रदर्शन किया। तदनुसार दिव्यास्त्र लाभार्थ इंद्रकील पर्वत पर जाकर अर्जुन घोर तपस्या करते हैं। इंद्र द्वारा प्रेषित स्वर्गाप्सराओं से भी तपोभंग नहीं होता। प्रसन्न इंद्र के प्रकट होकर प्रेरणा देने पर वे तपस्या करते हैं। उसमें अंतराय बनकर एक दानव, शूकर रूप में आकर आक्रमण करता है। किरातवेषधारी महादेव पहले अर्जुन की रक्षा करते हैं, तदनंतर परीक्षायुद्ध में अर्जुन की वीरता पर प्रसन्न होकर अजेय दिव्यास्त्र का वरदान देते हैं। यहीं काव्य समाप्त होता है। इस काव्य का आरंभ श्री शब्द से है। कलात्मक अलंकरणवाली काव्यशैली के अनुसर्गी इस काव्य में शब्द और अर्थ उभयमूलक अलंकारों का चमत्कार, वर्ण और शब्द पर आधृत चित्रकाव्यता, अप्रस्तुत विधान का कल्पनापरक ललित नियोजन आदि उत्कृष्ट रूप में शिल्पित हैं, राजनीति और व्यवहारनीति के उपदेश, प्रभावपूर्ण संवाद, आदि से इस काव्य का निर्माणशिल्प अत्यंत सज्जित है। दंडी के महाकाव्य लक्षण की अनुसरप्रेरणावश इसमें ऋतु, पर्वत, नदी, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि के कल्पनाप्रसूत वर्णन हैं। शृंगार रस की विविध केलियों और प्रसंगों के कामशास्त्रीय विवरणचित्रों द्वारा लघुकथावस्तु वाले इस काव्य में पर्याप्त विस्तार हुआ है। इसका मुख्य अंगी 'रस' वीर है। फिर भी शृंगार के विलासपरक संदर्भ इसमें बड़े आसंजन से वर्णित हैं। साधर्म्यमूलक उपमा उत्प्रेक्षादि अलंकारों की योजना में उत्कृष्ट कला प्रकट होती है। इस काव्य में लक्षित अर्थगौरव की बड़ी प्रशंसा हुई है। भावपक्ष का सहज प्रवाह कलापक्ष की अपेक्षा गौण होने पर भी 'वीर', 'शृंगार' आदि के संदर्भ में अच्छे ढंग से निर्वाहित है। वाल्मीकि और कालिदास की सहजानुभूति का अवाधितविलास न रहने पर भी काव्य में वर्णनलालित्य का अभाव नहीं है। यह काव्य निश्चय ही अलंकृत काव्य-रचना-शैली का है। इसमें बुद्धि और हृदय, शृंगाररसिकता और राजनीति कुशलता, वर्णननैपुण्य और कलात्मक चमत्कार एक साथ मिलते हैं। इसकी काव्यसंपत्ति अपने ढंग की अनूठी है। परंतु शिशुपाल वध में किरातार्जुनीय की अपेक्षा सब दृष्टियों से उत्कर्ष योग अधिक है।

शिशुपालवध—(माघ महाकाव्य) संस्कृत के कवि प्रशस्तिपरक सुभाषितोक्ति के अनुसार माघ कवि के इस महाकाव्य में कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव और दंडी (या श्रीहर्ष) का पदलालित्य तीनों एकत्र समन्वित हैं। कालिदास का भावप्रवाह, भारवि का कलानैपुण्य और भट्टिकार के व्याकरणपांडित्य के एकत्र योग से उसका उत्कर्ष बढ़ गया है। पाणिनीय संस्कृत की मुहावरेदार भाषा के प्रयोग नैपुण्य में शिशुपाल वध भट्टि काव्य से भी श्रेष्ठ है। भावह्रासोन्मुखी अलंकृतकाव्ययुगीन संस्कृत काव्यों में सर्वाधिक प्रिय माघकाव्य को पथप्रदर्शक और आदर्श मान लिया गया था। माघ के एकमात्र उपलब्ध इस महाकाव्य पर उनकी युगांतस्थायी कीर्ति अवलंबित है। 'भोजप्रबंध', 'प्रबंधचिंतामणि' तथा 'शिशुपालवध' के अंत में उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर इनका जीवनवृत्त संकलित है। गुर्जरगत किसी प्रांत के शासक 'धर्मनाम' (वर्मनाम या वर्मलात) नामक राजा के यहाँ इनके दादा सुप्रभदेव प्रधान मंत्री थे। पिता का नाम दत्तक था। वे बड़े विद्वान् और दानशील थे। प्रस्तुत महाकवि का जन्म भीनमाल में और अत्यंत संपन्न परिवार में हुआ था। इनका शैशव और यौवन—वैभव और विलास में बीता था। नागर रसिकों की विलासचर्या और रसभोग की प्रकृति का इन्हें पूर्ण परिचय और अनुभव था। माघदंपति अत्यंत दानी और कृपालु थे। दान में अपना सब कुछ वितरित करने से इनका वार्धक्य अर्थदारिद्र्य से कष्टमय बीता। इनका विद्यमानकाल अधिकांश विद्वानों ने सातवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है। शिशुपालवध की रचना—जनश्रुतियों में कहा जाता है—किरातार्जुनीय के अनुकरण पर हुई थी। एकाक्षर द्व्यक्षरवाले पद्यादि तथा चित्रबंधात्मक शब्दचित्र काव्य भी यहाँ हैं और आरंभिक दो सर्गों में राजनीतिक मंत्रणा भी। स्पष्ट ही इसपर भारविकाव्य की प्रतिच्छाया है। परंतु अलंकृत-काव्य-रचना-कौशल तथा प्रकृत्यादि के वर्णन की दृष्टि से किरातार्जुनीय की अपेक्षा शिशुपालवध बहुत उत्कृष्ट है। इसके वर्णन पांडित्यपूर्ण, अलंकृत और रूढ़िग्रथित होने पर भी बड़े सप्राण हैं। उनमें कवि के प्रत्यक्ष निरीक्षण और राग की सजीवता है। किरातकाव्यतुल्य अलंकृतवर्णन की शैली पर चलकर भी इसके विषयवर्णनों में भावतरलता, अभिव्यंजनशैली की प्रौढ़ता, मूर्तप्रत्यक्षीकरण, समर्थ अलंकारविधान आदि से यह काव्य अत्यंत सरस और प्रौढ़ कहा जाता है। परंतु इसकी भी महाभारत गृहीत मूल कथा लघु है जो वर्णनविस्तार से स्फीतकलेवर हो गई है। अत्याचार और बल से त्रस्त त्रैलोक्य की दशा नारद से सुनकर कृष्ण, बलराम और उद्धव ने मंत्रणा की और पांडवों के राजसूय यज्ञ में जाने का निश्चय किया। तृतीय सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक यात्रा, विश्राम आदि अवांतर प्रसंगों और विहारकेलियों का ऐसा वर्णन है जहाँ इतिवृत्त के निर्वाह का पूरा अभाव है। चौदहवें से लेकर बीसवें सर्ग तक युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ तथा कृष्ण और शिशुपाल के युद्ध एवं तत्संबद्ध अवांतर प्रसंगों का कलात्मक और अलंकृत वर्णन है। यह काव्य भी मुख्यत वीर रस का है पर शृंगार की केलियों और विलास की वासनात्मक मधुरिमा से संपन्न। परंतु वीर रस से संपृक्त वर्णन भी इसमें बड़े जीवंत और प्रभावशाली हैं। मूल कथा, १, २, १४ तथा २० संख्यक सर्गों में ही (अवांतर वर्णनों के रहने पर भी) मुख्यत है। परंतु शृंगारी वर्णनों में—विशेषत विभावानुभावों के अंकन में संश्लिष्ट चित्र सजीव और गतिमय हैं। उनका प्रकृतिवर्णन भी अप्रस्तुत विधानों के अलंकरणभार से बोझिल होकर भी सरस है। वे स्वभावोक्ति और प्रौढोक्ति द्विविध निर्माण के निष्णात शिल्पी हैं। कुल मिलाकर शिशुपालवध अपने ढंग का उत्कृष्टतम काव्य है जिसका प्रभावमय कवित्व और वैदुष्य बेजोड़ है।

नैषधीय चरित — अलंकृत काव्यरचना शैली की प्रधानतावाले माघोत्तरयुगी कवियों द्वारा निर्मित काव्यों में अलंकरण प्रधानता, प्रौढोक्ति कल्पना से प्रेरित वर्णन प्रसंगों की स्फीतता तथा पांडित्यलब्ध ज्ञानगरिष्ठता अतिसंयोजन आदि की प्रवृत्ति बढ़ी। उस रुचि का पूर्ण

उत्कर्ष श्रीहर्ष के नैपधीय चरित (या जिसे केवल 'नैषध' भी कहते हैं) मे देखा जा सकता है। वृहत्त्रयी के इस वृहत्तम महाकाव्य का महाकवि, न्याय, मीमासा, योगशास्त्र आदि का उद्भट विद्वान् था और था तार्किक पद्धति का महान् अद्वैत वेदाती। नैपध मे शास्त्रीय वैदुष्य और कल्पना की अत्युच्च उडान, आद्यत देखने को मिलती है। (कवि का जीवनवृत्त, समय, ग्रथपरिचय आदि दे० 'श्रीहर्ष')। इस महाकाव्य का मूल आधार है 'महाभारत' का 'नलोपाख्यान'। मूल कथा के मूल रूप मे यथावश्यक परिवर्तन भी यत्रतत्र किया गया है। ऐसा मालूम पडता है कि इस पुराणकथा की लोकप्रियता ने वडे प्राचीन काल से ही इसे लोककथा वना दिया है। इस कारण कवि ने वहाँ से भी कुछ तत्व लिए। यह महाकाव्य आद्यत शृ गारी है। पूर्वराग, विरह, हस का दूतकर्म, स्वयवर, नल-दमयती-विवाह, दपति का प्रथम समागम और अष्टयामचर्या तथा सयोगविलास की खडकाव्यीय कथावस्तु को कवि के वर्णनचित्रों और कल्पनाजन्य वैदुष्य-विलास ने अत्यत वृहदाकार वना दिया है। शृगारपरिकर के वर्ण्य-चित्रो ने भी उस विस्तारण मे योग दिया है। अपनी कल्पना की उडान के वल से पडित कवि द्वारा एक ही चित्र को नई नई अप्रस्तुत योजनाओ द्वारा अनेक रूपों मे विस्तार के साथ रखा गया है। लगता है, एक प्रस्तुत को एक के वाद एक इतर अप्रस्तुतो द्वारा आकलित करने मे कवि की प्रज्ञा थकती ही नही। प्रकृतिजगत् के स्वभावोक्तिपथ रूपचित्राकन, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, श्लेप आदि अर्थालकारो की समर्थयोजना, अनुप्रासयमक, शव्दश्लेप, शव्दचित्रादि चमत्कारो का साधिकार प्रयोग और शव्दकोश के विनियोग प्रयोग की अद्भुत क्षमता, शास्त्रीय पक्षो का मार्मिक, प्रौढ और समीचीन नियोजन, कल्पनाओ और भावचित्रो का समुचित निवेशन, प्रथम-समागम-कालीन मुग्धनववधू की मन स्थिति, लज्जा और उत्कठा का सजीव अकन, अलकरण और चमत्कार की अलकृत काव्यशैली का अनायास उद्भावन और अपने पदलालित्य आदि के कारण इस काव्य का सस्कृत की पडितमडली मे आज तक निरतर अभूतपूर्व समादर होता चला आ रहा है। माघ कवि से भी अधिक श्रीहर्ष ने इसे काव्यवाधक पाडित्यप्रदर्शन के योग से वहुत वढा दिया है जिससे लघुकथानकवाला काव्य अति वृहत् हो गया है। शृगारी विलासो और मुत्यत सयोग केलियो के कुशलशिल्पी और रसिक नागरो की विलासवृत्तियो के अकन मे आसजनशील होकर भी कवि के दार्शनिक वैदुष्य के कारण काव्य मे स्थान स्थान पर रूक्षता वढ गई। पुनरुक्ति, च्युतसस्कृति आदि अनेक दोप भी यत्र तत्र ढूँढे जा सकते हैं। परतु इनके रहने पर भी अपनी भव्यता और उदात्तता, कल्पनाशीलता और वैदुष्यमत्ता, पदलालित्य और अर्थ-प्रौढता के कारण महाकाव्य मे कलाकार की अद्भुत प्रतिभा चमक उठी है, अलकारमडित होने पर भी उसकी क्रीडा मे सहज विलास है। उसमे प्रौढ शास्त्रीयता और कल्पनामनोहर भव्यता है। वृहत्त्रयी के तीनो महाकाव्यो का अध्ययन पडितो के लिये आज भी परमा-वश्यक माना जाता है। [क० प० त्रि०]

वृहदारण्यक उपनिषद् जो शुक्लयजुर्वेद से सवधित है अद्वैत वेदात और सन्यासनिष्ठा का प्रतिपादक है। उपनिपदों मे सर्वाधिक वृहदाकार इसके ६ अध्याय, ४७ ब्राह्मण और प्रलवित ४३५ पदों का शाति पाठ 'ॐ पूर्णमद' इत्यादि है और ब्रह्मा इसकी सप्रदाय परपरा के प्रवर्तक हैं।

इस उपनिपद् का ब्रह्मनिरूपणात्मक अधिकाश उन व्याख्याओ का समुच्चय है जिनसे अजातशत्रु ने गार्ग्य वालाकि की, जैवलि प्रवाहण ने श्वेतकेतु की, याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी और जनक की तथा जनक के यज्ञ मे समवेत गार्गी और जारत्कारव आर्तभाग इत्यादि आठ मनीपियो की ब्रह्मजिज्ञासा निवृत्त की थी।

इस उपनिपद् के अनुसार सृष्टि के पहले केवल ब्रह्म था। वह अव्याकृत था। उसने अहकार किया जिससे उसने व्याकृत सृष्टि उत्पन्न की, दो पैरवाले, चार पैरवाले, पुर उसने वनाए और उनमे पक्षी वनकर पैठ गया। उसने अपनी माया से वहुत रूप धारण किए और इस प्रकार नाना रूप से भासमान ब्रह्माड की रचना करके उसमें नखाग्र से शिखा तक अनुप्रविष्ट हो गया। शरीर मे जो आत्मा है वही ब्रह्माड मे व्याप्त है और हमें जो नाना प्रकार का भान होता है वह ब्रह्म रूप है। पृथिवी, जल, और अग्नि उसी के मूर्त एव वायु तथा आकाश अमूर्त रूप हैं।

स्त्री, सतान अथवा जिस किसी से मनुष्य प्रेम करता है वह वस्तुत अपने लिये करता है। अस्तु, यह आत्मा क्या है, इसे ढूँढना चाहिए, ज्ञानियो से इसके विपय मे सुनना, इसका मनन करना और समाधि मे साक्षात्कार करना ही परम पुरुषार्थ है।

'चक्षुर्वै सत्यम्' अर्थात् आँख देखी वात सत्य मानने की लोकधारणा के विचार से जगत् सत्य है, परतु वह प्रत्यक्षत अनित्य और परिवर्तनशील है और निश्चय ही उसके मूल मे स्थित तत्व नित्य और अविकारी है। अतएव मूल तत्व को 'सत्य का सत्य' अथवा अमृत कहते हैं। नाशवान् 'सत्य' से अमृत ढँका हुआ है।

अज्ञान अर्थात् आत्मस्वरूप को न जानने के कारण मनुष्य ससार के नाना प्रकार के व्यापारो मे लिपटा हुआ सासारिक वित्त आदि नाशवान् पदार्थों से अक्षय सुख की व्यर्थ आशा करता है। कामनामय होने से जिस उद्देश्य की वह कामना करता है तद्रूप हो जाता है, पुण्य कर्मों से पुण्यवान् और पाप कर्मों से पापी होता और मृत्यु काल मे उसके प्राण उत्क्रमण करके कर्मानुसार मृत्युलोक, पितृलोक अथवा देवलोक प्राप्त करते है। जिस देवता की वह उपासना करता है मानो उसी का पशु हो जाता है। यह अज्ञान आत्मा की 'महती विनष्टि, (सव से वडी क्षति) है।

आत्मा और ब्रह्म एक हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नही है। जिसे नानात्व दिखता है वह मृत्यु से मृत्यु की ओर वढता है। आत्मा महान्, अनत, अपार, अविनाशी, अनुच्छित्तिधर्मा और विज्ञानघन है। नमक की डली पानी मे घुल जाने पर एकरस हो जाने से जैसे नमक और पानी का अभेद हो जाता है ब्रह्मात्मैक्य तद्रूप अभेदात्मक है। जिस समय साधक को यह अपरोक्षानुभूति हो जाती है कि मैं ब्रह्म हूँ और भूतात्माएँ और मैं एक हैं उसके द्रष्टा और दृष्टि, ज्ञाता और ज्ञेय इत्यादि भेद विलीन हो जाते हैं, और वह 'ब्रह्म भवतिय एव वेद,—ब्रह्मभूत हो जाता है। उसके प्राण उत्क्रमण नही करते, वह यही जीवन्मुक्त हो जाता है। वह विधि निषेध के परे है। उसे सन्यास लेकर भैक्ष्यचर्या करनी चाहिए। यह ज्ञान की परमावधि,

आत्मा की परम गति और परमानंद है जिसका अंश प्राणियों का जीवनस्रोत है।

यह शोक-मोह-रहित, विज्वर और विलक्षण आनंद की स्थिति है जिससे ब्रह्म को 'विज्ञानमानंदब्रह्म' कहा गया है। यह स्वरूप मन और इंद्रियों के अगोचर और केवल समाधि में प्रत्यक्षानुभूति का विषय एवं नामरूप से परे होने के कारण, ब्रह्म का 'नेति नेति' शब्दों द्वारा अंतिम निर्देश है।

आत्मसाक्षात्कार के लिये वेदानुवचन, यज्ञ, दान और तपोपवासादि से चित्तशुद्धि करके सूर्य, चंद्र, विद्युत्, आकाश, वायु, जल इत्यादि अथवा प्राणरूप से ब्रह्म की उपासना का निर्देश करते हुए आत्मचिंतन सर्वश्रेष्ठ उपासना बतलाई गई है। [च० त्रि०]

बृहद्रथ इस नाम के कई व्यक्तियों का उल्लेख वैदिक तथा पुराणेतिहास ग्रंथों में हुआ है जो निम्नांकित हैं

(१) पुराकालीन व्यक्ति की स्थिति से बृहद्रथ का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद (१ ३६-१८) में दो बार नववास्त्व के साथ हुआ है जो इंद्र से पराजित होकर मारा गया था (ऋ० १०।४६।६)।

(२) चेदिराज उपरिचर वसु का पुत्र, जरासंध का पिता जो मगध का राजा और महान् योद्धा था (महा०, आदि०, ५७।२६, सभा०, १६।१२)।

(३) विदेहराज दैवराति जिसने, समस्त ब्रह्मज्ञानियों से श्रेष्ठ जानकर, याज्ञवल्क्य से तत्वज्ञान का उपदेश ग्रहण किया था।

(४) अंग जनपद का दानवीर राजा जो परशुराम द्वारा क्षत्रिय संहार के समय गोलांगूल की कृपा से रक्षित हुआ था।

(५) एक पौराणिक राजा जो पृथुलाक्ष (भा० पु०), बृहत्कर्मन् (वायु०) अथवा भद्ररथ (विष्णु०) का पुत्र था।

अन्य अनेक पौराणिक व्यक्ति इसी नाम से संबोधित हैं जो एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं जैसे, (क) इंदुमती के पति, एक राजा (स्कंद० ६।१।३७), (ख) सूक्ष्म नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न महाभारतकालीन राजा, (ग) कौरव सेना का एक योद्धा, (घ) तिमिराजा का पुत्र, (ङ) शतधन्वन् का पुत्र जो मौर्यवंश का अंतिम राजा था, (च) मैत्रायणी उपनिषद् में चर्चित एक ब्रह्मज्ञानी आदि।

[श्या० ति०]

बृहन्नला दे० अर्जुन।

बृहस्पति ऋग्वेद में बृहस्पति का अनेक जगह उल्लेख मिलता है। ये एक तपस्वी ऋषि थे। इन्हें तीक्ष्णशृंग भी कहा गया है। धनुष बाण और सोने का परशु इनके हथियार थे और ताम्र रंग के घोड़े इनके रथ में जोते जाते थे।

बृहस्पति को अत्यंत पराक्रमी बताया जाता है। इंद्र को पराजित कर इन्होंने उनसे गायों को छुड़ाया था। युद्ध में अजेय होने के कारण योद्धा लोग इनकी प्रार्थना करते थे। ये अत्यंत परोपकारी थे जो शुद्धाचरणवाले व्यक्ति को संकटों से छुड़ाते थे। इन्हें गृहपुरोहित भी कहा गया है, इनके बिना यज्ञयाग सफल नहीं होते।

वेदोत्तर साहित्य में बृहस्पति को देवताओं का पुरोहित माना गया है। ये अंगिरा ऋषि की सुरूपा नाम की पत्नी से पैदा हुए थे। तारा और शुभा इनकी दो पत्नियाँ थीं। एक बार सोम (चंद्रमा) तारा को उठा ले गया। इसपर बृहस्पति और सोम में युद्ध ठन गया। अंत में ब्रह्मा के हस्तक्षेप करने पर सोम ने बृहस्पति की पत्नी को लौटाया। तारा ने बुध को जन्म दिया जो चंद्रवंशी राजाओं का पूर्वज कहलाया।

महाभारत के अनुसार बृहस्पति के संवर्त और उतथ्य नाम के दो भाई थे। संवर्त के साथ बृहस्पति का हमेशा झगड़ा रहता था। पद्मपुराण के अनुसार देवों और दानवों के युद्ध में जब देव पराजित हो गए और दानव देवों को कष्ट देने लगे तो बृहस्पति ने शुक्राचार्य का रूप धारणकर दानवों का मर्दन किया और नास्तिक मत का प्रचार कर उन्हें धर्मभ्रष्ट किया।

बृहस्पति ने धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और वास्तुशास्त्र पर ग्रंथ लिखे। आजकल ८० श्लोक प्रमाण इनकी एक स्मृति उपलब्ध है।

सं० ग्रं० — सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, प्राचीन चरित्रकोश (मराठी)। [ज० चं० जै०]

२. शुक्र और कभी कभी मंगल को छोड़कर, सबसे कांतिमय ग्रह है। सौर परिवार में सूर्य को छोड़ यह अन्य सभी सदस्यों से बड़ा है। पृथ्वी के आकार के १,४१० गोले बृहस्पति में समा सकते हैं। सौर परिवार के अन्य सभी सदस्यों की अपेक्षा इसका द्रव्यमान अधिक है। इसका द्रव्यमान पृथ्वी से ३१८ गुना है। इसका विषुवत् व्यास ८८,७०० मील और ध्रुवीय व्यास ८२,६०० मील है। ध्रुवों पर चपटा होने के कारण यह दीर्घवृत्ताकार है। यह ११.८६ वर्ष में एक बार सूर्य की परिक्रमा करता है। दूरदर्शक से देखने पर बृहस्पति का पृष्ठ विषुवत् के समांतर, कांतिमय और काले बादलों जैसे कटिबंध से अंकित जान पड़ता है। इन कटिबंधों का आकार और अक्षांश परिवर्तनशील है। इन तथ्यों से प्रकट है कि हम बृहस्पति का ठोस पृष्ठ नहीं देख पाते। हमें मेघ दिखाई पड़ते हैं और ये ग्रह के ०.४१ कांत्यनुपात (albedo) के उत्तरदायी हैं। दूरदर्शक प्रेक्षण से प्रकट होता है कि बृहस्पति के चिह्न मंडलक (disc) के आड़े चलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि बृहस्पति का बृहद् पिंड अपनी धुरी पर घूम रहा है। यह नौ घंटे ५० मिनट में असाधारण वेग से घूर्णन करता है, जिससे इसका वायुमंडल अत्यंत प्रक्षुब्ध हो जाता है। घूर्णन के वेग में अक्षांश के साथ परिवर्तन होता है। लगभग २०° दक्षिण अक्षांश पर लाल रंग का एक विशाल अंडाकार चिप्पा बृहस्पति के पृष्ठ का असाधारण लक्षण है। यह चिप्पा ३०,००० मील लंबा और ६,००० मील चौड़ा है। चिप्पा स्थिर नहीं है। यह पृष्ठ पर घूर्णन करता है, किंतु इसका आकार लगभग एक ही रहता है। स्पेक्ट्रम अध्ययनों से ग्रह के ऊपरी वायुमंडल में हाइड्रोजन, अमोनिया, हीलियम और मिथेन के बहुत बड़े परिमाण में अस्तित्व का संकेत प्राप्त होता है। बृहस्पति के ज्ञात उपग्रहों की संख्या १२ है। १६१० ई० में गैलिलिओ ने बृहस्पति के चार चंद्रों का पता लगाया था। इनमें से कुछ उपग्रह बुधग्रह के बराबर हैं। १२ उपग्रहों में से चार बृहस्पति के चारों ओर विपरीत दिशा में चलते हैं। संभव है, ये बृहस्पति के प्रभाव में क्षुद्र बंदीकृत ग्रह हों। [मं० म० प०]

बेंगलूरु (Bangalore) १ जिला, भारत के मैसूर राज्य का एक जिला है जिसका क्षेत्रफल ३,०८१ वर्ग मील तथा जनसंख्या २५,०४,४६२ (१९६१) है। पश्चिम के पहाड़ी क्षेत्र की जलवायु अस्वास्थ्यकर है। यहाँ की औसत वर्षा ३५ इंच है। इसकी ऊँचाई समुद्रतल से ३,११३ फुट है। जलवायु समशीतोष्ण है।

२ नगर, स्थिति. १२° ५९′ उ० अ० तथा ७७° ४०′ पू० दे०। मैसूर राज्य की राजधानी तथा प्रसिद्ध नगर है। यह मद्रास से २१९ मील दूर स्थित है। यह कावेरी तथा इसकी सहायक कब्बैनी नदी के दोआब मे बसा हुआ है। क्षेत्रफल लगभग २५ वर्ग मील है।

बेंगलूरु भारतीय एयर फोर्स का प्रधान केंद्र है। एक समय अंग्रेजी सैनिको की यह एक बडी छावनी थी। नगर के पश्चिमी भाग मे ऊनी, सूती और रेशमी वस्त्र, तेल, साबुन, ईंट बनाने का उद्योग, दक्षिणी भाग मे रेशम के कीडे पालने का व्यवसाय और दक्षिण-पश्चिमी भाग की ओर शराब निर्माण का कार्य अधिक होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ सिटी स्टेशन के निकट लोकोमोटिव एवं लोहे की ढलाई तथा छावनी स्टेशन के पास काफी साफ करने तथा खाद तैयार करने के धंधे होते हैं। टाटा द्वारा विज्ञान के अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण संस्थान, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑव सायंस की स्थापना बेंगलूरु मे ही हुई है जिसमे वैज्ञानिक विषयो पर बडे महत्व के आविष्कार हुए और हो रहे हैं। यहाँ की प्रयोगशाला बडी सुसज्जित है। पुस्तकालय भी बहुत बडा है। भौतिकविद् रामन की व्यक्तिक प्रयोगशाला भी यही है जिसमें अनेक वैज्ञानिक भौतिकी पर शोधकार्य कर रहे हैं। [रा० स० ख०]

बेंजामिन याकूब का कनिष्ठ पुत्र (दे० याकूब)। यूसुफ ने अपने भाइयो की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उन्हें आदेश दिया कि वे बेंजामिन को मिस्र से उनके पास ले आवें (दे० उत्पत्ति ग्रंथ ४२, ४)। बेंजामिन इसराएल राज्य के बारह वंशों मे से एक के प्रवर्तक हैं। बेंजामिन वंश यूदा (येरुसलेम) के उत्तर मे बस गया, उसका इतिहास यूदावंश से घनिष्ठ संबंध रखता है। संत पाल बेंजामिन वंशी थे। [आ० बे०]

बेंज़ीन (Benzene) हाइड्रोकार्बन है तथा इसका सूत्र का$_6$हा$_6$ (C_6H_6) है। कोयले के शुष्क आसवन से अलकतरा तथा अलकतरे के प्रभाजी (fractional) आसवन से बेंज़ीन बडी मात्रा में तैयार होता है। प्रदीपन गैस से प्राप्त तेल से फैराडे ने १८२५ ई० में सर्वप्रथम इसे प्राप्त किया था। मिटशरले ने १८३४ ई० मे बेंजोइक अम्ल से इसे प्राप्त किया और इसका नाम बेंज़ीन रखा। अलकतरे मे इसकी उपस्थिति का पता पहले पहल १८४५ ई० में हॉफमैन (Hoffmann) ने लगाया था। जर्मनी मे बेंज़ीन को बेंज़ोल कहते हैं। बेंज़ीन कार्बन और हाइड्रोजन का एक यौगिक, हाइड्रो-कार्बन, है। यह वर्णहीन और प्रबल अपवर्तक द्रव है। इसका क्वथनांक ८०° सें०, ठोस बनने का ताप ५.५° सें० और घनत्व ०° सें० पर ०.८९९ है। इसकी गंध ऐरोमैटिक और स्वाद विशिष्ट होता है। जल में यह बडा अल्प विलेय, ऐल्कोहॉल मे अधिक विलेय तथा ईथर और कार्बन डाइ-सल्फाइड मे सब अनुपातो मे विलेय है। विलायक के रूप मे रबर, गोंद, वसा, गंधक और रेज़िन के घुलाने में प्रचुरता से प्रयुक्त होता है। जलते समय इससे धुँआँ निकलता है। रसायनत यह सक्रिय होता है। क्लोरीन से दो प्रकार का यौगिक बनता है एक योगशील और दूसरा प्रतिस्थापित यौगिक। सल्फ्यूरिक अम्ल से बेंज़ीन सल्फोनिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल से नाइट्रो बेंज़ीन और ओज़ोन से बेंज़ीन ट्राइओज़ोनाइड, का$_6$ हा$_6$ (ओ$_3$)$_3$, [$C_6H_6(O_3)_3$] बनता हैं। अवकरण से बेंज़ीन साइक्लो हेक्सेन बनता है।

विलायक के अतिरिक्त, बेंज़ीन बडी मात्रा मे ऐनिलीन, कृत्रिम प्रक्षालक, कृमिनाशक, डी डी टी., फिनोल (जिससे प्लास्टिक बनते है), इत्यादि के निर्माण मे प्रयुक्त होता है। मोटर इंजन के लिये पेट्रोल मे कुछ बेंज़ीन मिलाने से पेट्रोल की उत्कृष्टता बढ जाती है।

संरचना — बेंज़ीन में छह कार्बन परमाणु और छह हाइड्रोजन परमाणु हैं, अत इसका अणुसूत्र का$_6$ हा$_6$ (C_6H_6) है। केकूले ने १८६५ ई० मे पहले पहल सिद्ध किया कि इसके छह कार्बन परमाणु एक वलय के रूप में विद्यमान हैं, जिसको बेंज़ीन वलय की संज्ञा दी गई है। प्रत्येक कार्बन परमाणु एक बंध से हाइड्रोजन से और दो से अन्य

हा-का, का-हा … या … या … (हा का)
H–C, C–H … OR … OR … (HC, CH)
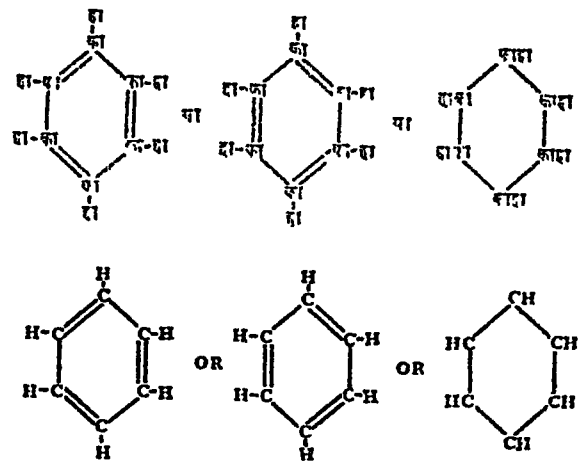
बेंज़ीन

निकटवर्ती कार्बन परमाणुओ से संबद्ध रहता है। कार्बन का चौथा बंध युग्म बंध के रूप मे उपस्थित माना गया है। ऐसे संरचनासूत्र से बेंज़ीन के गुणो की व्याख्या बडी सरलता से हो जाती हैं। ऊपर दिया हुआ यह सूत्र प्राय सर्वमान्य है।

बेंज़ीन की प्राप्ति के लिये अलकतरे को इस्पात के भभको में आसुत करते हैं। जो आसुत ९०° सें० और १७०° सें० के बीच प्राप्त होता है, उसे हलका तेल कहते हैं। पानी से हलका होने के कारण यह हलका कहा है। हलके तेल को पहले सोडियम हाइड्रॉक्साइड के जलीय विलयन जाता से धोकर अम्लो को निकाल लेते हैं। फिर सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल से धोकर क्षारो को निकाल लेते हैं। इसके बाद प्रभाजी स्तंभ की सहायता से प्रभाजन कर बेंज़ीन को पृथक् करते हैं। यही व्यापार का बेंज़ीन है। इसमें अब भी कुछ अपद्रव्य, थायोफीन और अन्य हाइड्रोकार्बन मिले रहते हैं। सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा उपचार के बाद उत्पाद के क्रिस्टलीकरण से शुद्ध बेंज़ीन प्राप्त होता है। [स० व०]

बेंज़ैल्डिहाइड (Benzaldehyde) को बेंज़ीन कारबोनल (Benzene carbonal) तथा कडवा बादाम का तेल (Oil of bitter almonds) भी कहते हैं। इसका सूत्र का$_6$हा$_5$ काहाओ (C_6H_5CHO) है। यह कडवे बादाम में स्थित ग्लूकोसाइड, ऐमिग्डालिन (Amygdalin), मे विद्यमान रहता है और इसके जलीय

विश्लेषण द्वारा ग्लूकोज़ तथा हाइड्रोसायनिक अम्ल के साथ प्राप्त किया जा सकता है। यह एक रगहीन द्रव है, जिसकी गध कडवे वादाम से मिलती जुलती है। यह पानी में बहुत कम घुलता है, परतु ऐल्कोहॉल और ईथर मे सहज विलेय है। यह पानी की भाप के साथ वाष्पशील है। दीर्घ काल तक वोतलो मे रखे रहने पर, यह वहुधा हवा से ऑक्सीकृत हो जाने से वेंज़ोइक अम्ल मे परिणत हो जाता है। इसका क्वथनाक १७९° सें० है। वेंज़ैल्डिहाइड की रासायनिक क्रियाशीलता असाधारण है। इसी कारण इसका कार्वनिक उद्योगो मे विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इसका वार्षिक उत्पादन २० लाख पाउड मे अधिक कूता गया है। इसके निर्माण की अनेक विधियाँ हैं, जिनमे निम्नलिखित प्रमुख हैं (१) लोहचूर्ण उत्प्रेरक की उपस्थिति मे १००° सें० ताप पर वेंज़ाइल क्लोराइड के जलीय विश्लेपण द्वारा, (२) ताम्र या सीस नाइट्रेट के जलीय विलयन के साथ कार्वन डाइऑक्साइड के प्रवाह में वेंज़ाइल क्लोराइड के क्वथन से; (३) वाष्प या द्रव अवस्था मे टालूईन के ऑक्सीकरण से, जो नाइट्रोजन से तनूकृत हवा द्वारा ५००° सें० ताप पर मैंगनीज, मोलिब्डेनम तथा ज़रकोनियम ऑक्साइड के उत्प्रेरण से साध्य है, (४) मैंगनीज़ डाइऑक्साइड और ६५% सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा ४०° सें० पर टालूईन के द्रव अवस्था में ऑक्सीकरण द्वारा तथा (५) उच्च दवाव पर (९० वायुमडलीय दाव पर) ऐल्युमिनियम क्लोराइड उत्प्रेरित कार्वन मोनोक्साइड, वेंज़ीन और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की अभिक्रिया द्वारा। इन विधियो मे विधि चार और पांच विशेष महत्व की हैं।

वेंज़ैल्टिहाइड शिफ-अभिकर्मक के साथ गुलावी या लाल रग देता है। यह अमोनियामय रजत नाइट्रेट के अवकरण से चाँदी मुक्त करता है। इसका स्वत ऑक्सीकरण (auto-oxidation) हवा से सहज ही हो जाता है और इस अभिक्रिया मे परवेनज़ोइक अम्ल मध्यस्थ का कार्य करता है।

दूसरे ऐल्डिहाइडो के समान यह सोडियम वाइसल्फाइट तथा पोटैशियम सायनाइड के साथ योगशील यौगिक और हाइड्राक्सिल ऐमिन तथा फेनिल हाइड्रेज़िन के साथ सघनन यौगिक वनाता है। तनु क्षारीय विलयन के साथ कैनिज़ारो अभिक्रिया (Cannizaro reaction) से यह वेंज़ोइक अम्ल तथा वेंज़ाइल ऐल्कोहॉल मे परिणत होता है। रासायनिक सश्लेपण मे इसकी क्लैसेन (Claisen), पर्किन (Perkin), वेंज़ोइन कडेंसेशन आदि अभिक्रियाएँ और फिनोल (phenols) तथा तृतीय ऐमिनो (tertiary amines) से सघनन विशेष महत्व रखता है। इनके द्वारा अनेकानेक रजक ओषधियाँ और रासायनिक मध्यस्थ पदार्थों का निर्माण किया जाता है। वेंज़ैल्डिहाइड का प्रयोग कुछ मात्रा मे वासक (flavourging) और सुगधित पदार्थों के निर्माण मे भी किया जाता है। [रा० ह० स०]

वेंज़ोइक अम्ल (Benzoic Acid) ऐरोमेटिक कार्वोक्सिलिक अम्ल है। यह हलके, रगहीन, चमकदार, क्रिस्टलीय चूर्ण के रूप मे प्राप्य है। इसका सूत्र का$_{६}$हा$_{५}$ काओओहा (C_6H_5 COOH), गलनाक १२२.४° सें० और क्वथनाक २५०° सें० है। जल मे अल्प विलेय, किंतु ईथर और ऐल्कोहॉल में अपेक्षाकृत सुगमता से विलेय है।

वेंज़ोइक अम्ल प्रकृति मे स्वतत्र रूप से, या सयुक्त अवस्था मे लोवान (Gum benzoin) में और कई प्रकार के वाल्समो में पाया जाता है। औद्योगिक स्तर पर व्यापारिक वेंज़ोइक अम्ल का निर्माण अनेक विधियो से किया जाता है, जैसे (१) वेंज़ो-ट्राइक्लोराइड का$_{६}$हा$_{५}$ काक्लो$_{3}$ (C_6H_5, CCl_3) के जलविश्लेपण से, जिसमें लोहचूर्ण और चूना उत्प्रेरक के रूप मे प्रयुक्त होते हैं, (२) भाप और ज़िंक ऑक्साइड की उपस्थिति मे थैलिक ऐनहाइड्राइड से थैलिक अम्ल वनाकर, उसका डीकार्वोक्सिलेशन से तथा (३) मैंगनीज डाइऑक्साइड एव सल्फ्यूरिक अम्ल से, या कोवाल्ट उत्प्रेरक के समक्ष हवा से, टॉलूईन के ऑक्सीकरण से।

इस अम्ल की रासायनिक सक्रियता अपेक्षाकृत कम होने के कारण रासायनिक सश्लेपण मे उसकी उपादेयता सीमित है। इसके सीधे (प्रत्यक्ष) क्लोरीकरण से पैरा-क्लोरोवेंज़ोइक अम्ल और अल्प मात्रा मे २,५– और ३, ४– डाइक्लोरो वेंज़ोइक अम्ल वनाए जाते हैं। सल्फ्यूरिक और नाइट्रिक अम्लो के मिश्रण द्वारा सीधा नाइट्रेशन करने से साधारण ताप पर मेटा-नाइट्रो-वेंज़ोइक अम्ल और ऊँचे ताप पर ३, ५– डाइनाइट्रोवेंज़ोइक अम्ल वनते हैं।

वेंज़ोइक अम्ल तवाकू ससाधन (curing) के लिये और छींट छपाई (calicoprinting) में प्रयुक्त होता है। इसके अनेक सजात, जैसे सोडियम वेंज़ोएट, एस्टर और वेंज़ोइल क्लोराइड महत्व के और उपयोगी पदार्थ हैं। सोडियम वेंज़ोएट ओषधि में प्रयुक्त होता है। इसका अधिक महत्व का उपयोग खाद्य पदार्थों के परिरक्षण मे है। चटनियो, अचार, मुरव्वे, फल फूलों के रस, शरवत आदि तथा डिब्बे और वोतलो मे वद परिरक्षित आहारो को सडने, किण्वन और खराव होने से वचाने के लिये उनके साथ थोडी मात्रा में सोडियम वेंज़ोएट डाला जाता है और इसके इस उपयोग मे वैधानिक आपत्ति भी नहीं है। फॉर्मैल्डिहाइड, सोडियम मेटावाइसल्फाइट और वोरिक अम्ल इत्यादि आपत्तिजनक खाद्य परिरक्षकों से यह श्रेष्ठ है और शरीर के लिये हानिकारक भी नही है। शरीर मे इसका उत्सर्जन हिप्यूरिक अम्ल, का$_{६}$हा$_{५}$ का ओ नाहा का हा$_{२}$ काओओहा (C_6H_5 CO NH. CH_2 COOH) के रूप मे होता है। सोडियम वेंज़ोएट के ऊपर वताए गए उपयोग, इसकी अणुजीवों की वृद्धि-निरोध-क्षमता पर निर्भर हैं, इसलिये यह भेपजीय निर्माणो मे और सौंदर्यप्रसाधनो मे भी प्रयुक्त होता है।

वेंज़ोइक अम्ल के एस्टर सुगधित होते हैं और सुगध (इत्र, तैल इत्यादि) तथा ओषधिनिर्माण में प्रयुक्त होते हैं। वेंज़िल वेंज़ोएट इस समूह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पदार्थ है और उद्वेष्टरोधी (antispasmodic) तथा पूतिरोधी (antiseptic) ओषधियाँ और सुगधित प्रसाधन वनाने मे प्रयुक्त होता है।

वेंज़ोइल क्लोराइड, का$_{६}$ हा$_{५}$ काओ क्लो (C_6H_5 CO Cl), वेंज़ोइक अम्ल का सजात है। यह सोडियम वेंज़ोएट, या वेंज़ोइक अम्ल से फॉस्फोरस पेंटाक्लोराइड की अभिक्रिया द्वारा वनाया जाता है। सश्लेपणात्मक रासायनिक क्रियाओ मे इसका महत्वपूर्ण योगदान है और रासायनिक प्रयोगशालाओ मे अभिकर्मक के रूप मे विशेष रूप से उपयोगी है। [रा० ह० स०]

वेंटिंक, लार्ड विलियम जन्म, १७७४ ई०; मृत्यु, १८३९। तृतीय ड्यूक ऑव पोर्टलैंड का द्वितीय पुत्र विलियम वेंटिंक १४ सितवर,

१७७४ को जन्मा था। वह सरल, शिष्ट, तथा प्रगतिशील व्यक्ति था। १७ वर्ष की अवस्था मे उसने सेना मे प्रवेश किया (१७९२), तथा १७९३ मे वह लेफ्टिनेंट कर्नल के पद पर नियुक्त हुआ। उसने फलैंडर्स मे युद्ध, मे भाग लिया (१७९४)। उत्तरी इटली और स्विट्जरलैंड में मार्शल सुवारों (Suwarrow) के सैनिक अभियान में वह इग्लैंड के सैनिक प्रतिनिधि के रूप मे समिलित हुआ। १८०३ मे उसने लेडी मेरी अचेसन (Acheson) से विवाह किया। विवाह के तीन महीने बाद वह मदरास का गवर्नर नियुक्त हुआ। वेल्लोर मे सिपाही विद्रोह के कारण उसे पदत्याग करना पडा (१८०७)। तदनतर, उसने कोरुन्ना (Corunna) के युद्ध मे भाग लिया, सर आर्थर वेलेजली के नेतृत्व मे पुर्तगाल मे लडा; तथा सिसिली मे अँगरेजी सेना का नायकत्व ग्रहण किया। १८१९ मे उसने मदरास मे गवर्नर नियुक्त होने के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। परतु १८२७ मे वह भारत का गवर्नर-जनरल निर्णीत हुआ।

बेंटिक के पदारोहण के समय ईस्ट इडिया कपनी के चीनी व्यवसाय के एकाधिकार की समाप्ति की आशका मे, तथा बर्मा मे युद्ध मे अत्यधिक व्यय के कारण इग्लैंड मे कंपनी के अधिकारियो ने मितव्ययिता की नीति निर्धारित कर दी तथा वाह्य नीति मे तटस्थता की नीति का अनुमोदन किया। मितव्ययिता का उत्तरदायित्व बेंटिक ने इतनी दक्षता से निभाया कि जब उसके आगमन के समय राजकोष मे प्राय एक करोड रुपए का घाटा था, प्रस्थान के समय प्राय. दो करोड रुपए का राजकोष मे आधिक्य था। भारतीय सेना के अधिकारियो का आधा-भत्ता बद कर देने के कारण वह अँगरेज समुदाय मे अलोकप्रिय प्रमाणित हुआ। तीनो प्रातो के सैनिक सस्थापनो मे कटौतियाँ की तथा प्रातीय अपील और सर्किट के न्यायालयो को समाप्त कर दिया। असैनिक सस्थापनो मे भी उसने छटनी की। उसका सबसे महत्वपूर्ण तथा प्रगतिशील सुधार भारतीयो को पहली बार उच्चतर प्रशासकीय पदो पर नियुक्त करना था।

वाह्य क्षेत्र मे बेंटिक ने सिंध के अमीरो से सधि द्वारा (१८३२) सिंधु नदी मे भारतीय व्यापार का प्रवेश स्थापित किया। तटस्थता की नीति ग्रहण करने पर भी मैसूर तथा कुर्ग राज्यो को उनकी आतरिक अव्यवस्था के कारण ब्रिटिश साम्राज्य मे समिलित कर लिया।

भारतीय इतिहास मे बेंटिक का समाननीय स्थान उसके प्रगतिशील सामाजिक सुधारो के कारण है। वास्तव मे, उसी के शासनकाल से भारतीय आधुनिकीकरण का सूत्रपात हुआ। इसमे उसे एक ओर चार्ल्स मेटकाफ से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, तथा दूसरी ओर आधुनिक भारतीयता के जनक राजा राममोहन राय से। उसने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। ठगी का समूलोच्छेदन किया। वह प्रेस की स्वतत्रता का भी समर्थक था। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य मैकाले की सहायता से अगरेजी को शिक्षा का माध्यम तथा राजभाषा निर्मित करना था। बेंटिक ने गगा पर प्रथम वाष्प पोत भी चालू किया था। उसका बबई तथा सुएज (Suez) के मध्य वाष्प पोत के आवागमन का प्रस्ताव १८४३ मे कार्यान्वित हो सका। २० मार्च, १८३५ को उसने भारत छोडा। १७ जून, १८३९ को पेरिस में उसकी मृत्यु हुई।

[रा० ना०]

बेंथम, जेरेमी (१७४८-१८३२) प्रसिद्ध दार्शनिक तथा विधि-सुधारक। सन् १७७६ मे उसकी 'शासन पर स्फुट विचार' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें उसने यह मत व्यक्त किया कि किसी भी कानून की उपयोगिता की कसौटी यह है कि जिन लोगो से उसका सबध हो, उनके आनद, हित और सुख की अधिक से अधिक वृद्धि वह करे। उसकी दूसरी पुस्तक 'आचार और विधान (कानून) के सिद्धात' १७८९ मे निकली जिसमे उसके उपयोगितावाद का सार मर्म सनिहित है। उसने इस बात पर बल दिया कि 'अधिकतम व्यक्तियो का अधिकतम सुख' ही प्रत्येक विधान का लक्ष्य होना चाहिए (दे० उपयोगितावाद)। 'उपयोगिता' का सिद्धात वह अर्थशास्त्र मे भी लागू करना चाहता था। उसका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति को, किसी भी तरह के प्रतिबध के बिना, अपना हित सपन्न करने की स्वतत्रता रहनी चाहिए। सूदखोरी के समर्थन मे उसने एक पुस्तक 'डिफेंस ऑव यूजरी' सन् १७८७ मे लिखी थी। उसने गरीबो सबधी कानून (पूअर लॉ) मे सुधार करने के लिये जो सुझाव दिए, उन्ही के आधार पर सन् १८३४ मे उसमे कई सशोधन किए गए। पार्लियमेट मे सुधार कराने के सबध मे भी उसने एक पुस्तक लिखी थी (१८१७)। इसमे उसने सुझाव दिया था कि मतदान का अधिकार प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मिलना चाहिए और चुनाव प्रति वर्ष किया जाना चाहिए। उसने बदीगृहो के सुधार पर भी बल दिया और १८२५ में 'दड और पुरस्कार' शीर्षक एक पुस्तक लिखी।

बेकन, फ्रांसिस (१५६१–१६२६) अग्रेज राजनीतिज्ञ, दार्शनिक और लेखक। रानी एलिजबेथ के राज्य मे उसके परिवार का बडा प्रभाव था। कैंब्रिज और ग्रेज इन मे शिक्षा प्राप्त की। १५७७ मे वह फ्रास स्थित अग्रेजी दूतावास मे नियुक्त हुआ, किंतु पिता सर निकोलस बेकन की मृत्यु के पश्चात् १५७९ मे वापस लौट आया। उसने वकालत का पेशा अपनाने के लिये कानून का अध्ययन किया। प्रारभ से ही उसकी रुचि सक्रिय राजनीतिक जीवन मे थी। १५८४ मे वह ब्रिटिश लोकसभा का सदस्य निर्वाचित हुआ। ससद की, जिसमे वह १६१४ तक रहा, कार्यप्रणाली मे उसका योगदान अत्यत महत्वपूर्ण रहा। समय समय पर वह महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्नो पर एलिजबेथ को निष्पक्ष समतियाँ देता रहा। कहते है, अगर उसकी समतियाँ उस समय मान ली गई होती तो बाद मे शाही और ससदीय अधिकारो के बीच होनेवाले विवाद उठे ही न होते। सब कुछ होते हुए भी उसकी योग्यता का ठीक ठीक मूल्याकन नही हुआ। लार्ड बर्ले ने उसे अपने पुत्र के मार्ग में बाधक मानकर सदा उसका विरोध किया। रानी एलिजबेथ ने भी उसका समर्थन नही किया क्योकि उसने शाही आवश्यकता के लिये ससदीय धनानुदान का विरोध किया था। १५९२ के लगभग वह अपने भाई एथोनी के साथ अर्ल ऑव एसेक्स का राजनीतिक सलाहकार नियुक्त हुआ। किंतु १६०१ में, जब एसेक्स ने लदन की जनता को विद्रोह के लिये भडकाया तो बेकन ने रानी के वकील की हैसियत से एसेक्स को राजद्रोह के अपराध मे दड दिलाया।

वह एलिजबेथ के राज्य में किसी महत्वपूर्ण पद पर नही रहा, किंतु जेम्स प्रथम के राजा होने पर उसका भाग्य चमका। वह १६०७ में सॉलिसिटर जनरल, १६१३ मे अटार्नी जनरल और १६१८ मे लार्ड

चासलर नियुक्त हुआ। १६०३ में नाइट और १६१८ में वेरन वेरुलम की उपाधियो से विभूषित किया गया। उसके बाद बेकन ने पतन के दिन देखे। उसपर घूसखोरी और पद के दुरुपयोग का आरोप लगाया गया। उसने आरोप स्वीकार करते हुए यह दलील दी कि उपहारो ने उसके निर्णयो को कभी प्रभावित नही किया। बेकन अपने पद से हटा दिया गया। जीवन के शेष दिन उसने सन्यास में बिताए।

राजनीतिक और कानूनी मामलो मे व्यस्त रहते हुए भी वह विज्ञान और दर्शन मे गभीर रुचि रखता था। उसकी साहित्यिक कृतियों में उसकी व्यावहारिक मनोवृत्ति दिखाई देती है। 'एसेज' उसके २८ वर्षों की अवधि मे लिखे गए ५८ निबधो का सग्रह है। सक्षेप, सूत्रात्मकता और चित्ताकर्षक रूपक उसकी शैली की विशेषताएँ थी। 'डि सैपिएशिया वेटेरम' (१६०९) (द विज़डम ऑव् द एशिएट्स (१६१९), और हिस्ट्री ऑव् द रेन ऑव् हेनरी सेवेन्थ (१६२२) नामक उसकी कृतियाँ ऐतिहासिक और राजनीतिक विषयो मे सूक्ष्म अनुसधान वृद्धि और विश्लेषण प्रतिभा का परिचय देती है। दार्शनिक कृतियो मे 'इस्टारेशियो मैग्ना' (Instauratio Magna) और 'नोवम आर्गेनम' (Novum Organum) उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'दि एडवासमेट आव लर्निंग' और 'डि आगमेंटिस साइशिएरम' ज्ञानमीमासा पर विस्तृत रचनाएँ है।

वस्तुत उसने वैज्ञानिक या दार्शनिक सिद्धातो मे कोई बहुत मौलिक योगदान नही किया। उसका महत्व वैज्ञानिक अन्वेषण मे विशेष दिशा की अपेक्षा सहज प्रभाव ग्रहण करने पर बल देने मे है। उसने जीवन मे केवल एक वैज्ञानिक प्रयोग किया—यह परीक्षण करने के लिये कि शीत, वस्तु या जीवन के ह्रास को कहाँ तक रोकता है एक कुक्कुटशावक को बर्फ मे बद कर दिया। परीक्षण का पूरा प्रभाव बेकन नही देख पाया, और इसी के दौरान शीत के प्रभाव से उसकी मृत्यु हो गई।

बेकारी एक विशेष अवस्था को, जब देश मे कार्य करनेवाली जनशक्ति अधिक होती हैं किंतु काम करने के लिये राजी होते हुए भी बहुतो को प्रचलित मजदूरी पर कार्य नही मिलता, बेकारी की सज्ञा दी जाती है। ऐसे व्यक्तियो का जो मानसिक एव शारीरिक दृष्टि से कार्य करने के योग्य और इच्छुक हैं परतु जिन्हें प्रचलित मजदूरी पर कार्य नही मिलता, उन्हें बेकार कहा जाता है। कार्य प्राप्त करने की इच्छा के सबध मे अनेक विचार हैं। विशेषकर प्रतिदिन कार्य करने के घटे, मजदूरी की दरें तथा मनुष्य की स्वस्थ दशाओ आदि पर विचार करने के पश्चात् ही कार्य करने की इच्छा के सबध में निश्चित रूप से जाना जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि किसी उद्योग में कार्य करने के सामान्य घटे आठ हैं परतु एक व्यक्ति नौ घटे कार्य करने की क्षमता रखता है ऐसी परिस्थिति मे यह नही कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति प्रति दिन एक घटा बेकार रहता है। बेकारी का सीधा तात्पर्य निष्क्रियता नहीं होता। उदाहरणार्थ—यदि व्यक्ति रात्रि मे सोता है तो उसे बेकार नही कहा जा सकता है।

इसी प्रकार मजदूरी की दर से तात्पर्य प्रचलित मजदूरी की दर से है और मजदूरी प्राप्त करने की इच्छा का अर्थ प्रचलित मजदूरी की दरों पर कार्य करने की इच्छा है। यदि कोई व्यक्ति उसी समय काम करना चाहे जब प्रचलित मजदूरी की दर पद्रह रुपए प्रतिदिन हो और उस समय काम करने से इन्कार कर दे जब प्रचलित मजदूरी बारह रुपए प्रतिदिन हो, ऐसे व्यक्ति को बेकार अथवा बेकारी की अवस्था से ग्रस्त नही कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त ऐसे भी व्यक्ति को बेकार अथवा बेकारी से ग्रस्त नही कह सकते जो कार्य तो करना चाहता है परतु बीमारी के कारण कार्य नहीं कर पाता। बालक, रोगी, वृद्ध तथा असहाय लोगो को 'रोजगार अयोग्य' (unemployables) तथा साधु, पीर, भिखमगे तथा कार्य न करनेवाले जमींदार, सामत आदि व्यक्तियों को पराश्रयी कहा जा सकता है।

बेकारी का अस्तित्व श्रम की माँग और उसकी पूर्ति के बीच स्थिर अनुपात पर निर्भर करता है। बेकारी के दो भेद हैं—असतुलनात्मक (फ्रिक्शनल) तथा ऐच्छिक (वालटरी)। असतुलनात्मक बेकारी श्रम की माँग मे परिवर्तन के कारण होती है। ऐच्छिक बेकारी का प्रादुर्भाव उस समय होता है जब मजदूर अपनी वास्तविक मजदूरी मे कटौती को स्वीकार नहीं करता। सक्षेपत. बेकारी श्रम की माँग और पूर्ति के बीच असतुलित स्थिति का प्रतिफल है।

प्रोफेसर जे० एम० कीन्स 'अनैच्छिक बेकारी' को भी बेकारी का भेद मानते हैं। 'अनैच्छिक बेकारी' की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है—'जब कोई व्यक्ति प्रचलित वास्तविक मजदूरी से कम वास्तविक मजदूरी पर कार्य करने के लिये तैयार हो जाता है, चाहे वह कम नकद मजदूरी स्वीकार करने के लिये तैयार न हो, तब इस अवस्था को अनैच्छिक बेकारी कहते हैं।'

यदि कोई व्यक्ति किसी उत्पादक व्यवसाय में कार्य करता है तो इसका यह अर्थ नही है कि वह बेकार नहीं है। ऐसे व्यक्तियो को पूर्णरूपेण रोजगार मे लगा हुआ नही माना जाता जो आशिक रूप से ही कार्य मे लगे हैं, अथवा उच्च कार्य की क्षमता रखते हुए भी निम्न प्रकार के लाभकारी व्यवसायो मे कार्य करते हैं।

सन् १९१९ ई० मे अतरराष्ट्रीय श्रमसमेलन के वाशिगटन अधिवेशन ने बेकारी अभिसमय (unemployment convention) सबधी एक प्रस्ताव स्वीकार किया था जिसमे कहा गया था कि केंद्रीय सत्ता के नियत्रण मे प्रत्येक देश मे सरकारी कामदिलाऊ अभिकरण स्थापित किए जाएँ। सन् १९३१ ई० मे भारत राजकीय श्रम के आयोग (Royal Commission on Labour) ने बेकारी की समस्या पर विचार किया और निष्कर्ष रूप में कहा कि बेकारी की समस्या विकट रूप धारण कर चुकी है। यद्यपि भारत ने अतरराष्ट्रीय श्रमसघ का 'बेकारी सबधी' समझौता सन् १९२१ ई० में स्वीकार कर लिया था परतु इसके कार्यान्वयन मे उसे दो दशक से भी अधिक का समय लग गया।

सन् १९३५ के गवर्नमेंट आव इडिया ऐक्ट मे बेकारी (बेरोजगारी) प्रातीय विषय के रूप में ग्रहण की गई। परतु द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के बाद युद्धरत तथा फैक्टरियो में काम करनेवाले कामगारो को फिर से काम पर लगाने की समस्या उठ खडी हुई। १९४२-१९४४ में देश के विभिन्न भागो मे कामदिलाऊ कार्यालय खोले गए परतु कामदिलाऊ कार्यालयों की व्यवस्था के बारे मे केंद्रीकरण तथा समन्वय का अनुभव किया गया। अत· एक पुनर्वास तथा नियोजन निदेशालय (Directorate of Resettlement and Employment) की स्थापना की गई है। [पु० बा०]

बेगूसराय १ उपमडल, स्थिति २५° १५' उ० अ० तथा ८५° ४७' पू० दे०। भारत के बिहार राज्य मे मुगेर जिले का एक उपमडल है। इसका क्षेत्रफल ७१५ वर्ग मील तथा जनसख्या ६,५४,७२७ (१९६१) है।

२ नगर, स्थिति : २५° २६' उ० अ० तथा ८६° ६' पू० दे०। बिहार के मुगेर जिले का एक नगर है जो पूर्वोत्तर रेलवे के बरौनी-कटिहार-खड का रेलवे स्टेशन भी है। यह रेल मार्ग द्वारा बरौनी से १६ किमी० दूर है। इसकी जनसख्या २७,३४६ (१९६१) है।

[सु० च० श०]

बेचुआनालैंड (देखें, बोत्सवाना)।

बेतवा नदी यह उत्तरी भारत में उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश राज्यो मे बहनेवाली नदी है। भोपाल के दक्षिण-पश्चिम कुमरी गाँव के पास से निकलकर यह उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई भिलसा जिले में प्रवेश करती है। इसके बाद उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले को मध्य प्रदेश से अलग करती हुई तथा झाँसी जिले को पश्चिम से पूर्व पार कर पुन मध्य प्रदेश के टीकमगढ जिले के उत्तर-पश्चिमी कोने मे प्रवेश करती है, जहाँ से फिर उत्तर प्रदेश मे प्रवेश कर यमुना मे मिल जाती है। यह कही भी नौगम्य नही है। इसे पार करने के लिये कई बडे बडे पुल हैं। झाँसी से १५ मील दूर इसपर एक बाँध भी बनाया गया है, जहाँ से बेतवा नहर निकाली गई है। धसान, पावन, जमनी आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं। यह लगभग ३६० मील लबी है।

[रा० स० ख०]

बेतारी तारसंचार विद्युच्चुबकीय तरगो के उत्पादन एव सप्रेषण सबधी हर्ट्ज के प्रयोग (देखें, विद्युच्चुबकीय तरगें) के लगभग छह वर्षो के अनतर, सन् १८९४ मे, सर ऑलिवर लॉज नामक वैज्ञानिक ने बेतार के तार द्वारा सकेतप्रेषण का सर्वप्रथम सफल प्रयोग किया और सन् १८९७ ई० के लगभग प्रेषक एव सग्राहक परिपथो के समस्वरण (tuning) का सिद्धात प्रतिपादित किया। सन् १८९४ में ही गूलिएल्मो मारकोनी (Gulielmo Marconi) नामक इजीनियर ने बोलोन्या (Bologna) मे बेतार के तार द्वारा वार्तावहन का सफल प्रदर्शन किया और १८९९ ई० मे इग्लिश चैनेल के उस पार बेतार का सकेत प्रेषित करने मे सफलता प्राप्त की। सन् १९०१ मे मारकोनी ने न्यूफाउडलैड के सेंट जॉन्ज नगर मे एक पतग से एरियल लटकाकर इग्लैड मे कॉर्नवॉल के पोल्धू नामक स्थान से प्रेषित सिगनलों को ग्रहण किया।

मारकोनी द्वारा व्यवहृत व्यवस्था ऐतिहासिक एव आधुनिक बेतार के तार की यात्रिक प्रणाली के आद्य रूप मे अप्रतिम महत्व की है। इसे नीचे चित्र १ मे प्रदर्शित किया गया है। इसमे प्रत्येक बार कुजी बद करने पर रमकॉर्फ कुडली (Rhumkorff's coil), या स्फुलिंग कुंडली, से उच्च विभव के स्पदनो (pulses) की एक तरगावलि (train) उत्पन्न होती है। प्रत्येक ऐसे स्पदन (pulse) से प्लेट ग का विभव बढता है और अत मे स्फुलिंग अतराल (spark gap) च मे स्फुलिंग विसर्जन होता है। प्लेट ग और पृथ्वी के बीच होनेवाला विसर्जन दोलनी (oscillatory) होता है और इसकी आवृत्ति दोनों के बीच स्थित ऊर्ध्वाधर तार की धारिता और प्रेरकत्व (inductance) पर निर्भर करती है। इसे निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जाता है, जहाँ आ (f) दोलन की आवृत्ति, ल (L) प्रेरकत्व तथा धा (C) धारिता है

$$आ = \frac{१}{२\pi\sqrt{ल\, धा}} \quad \left[f = \frac{1}{2\pi\sqrt{LC}} \right]$$

तार मे इस प्रकार उत्पन्न दोलनी विद्युद्धारा से विद्युच्चुबकीय ऊर्जा का विकिरण होता है। इससे दोलनी धारा की प्रबलता भी अत्यत द्रुत गति से कम होती जाती है और प्लेट ग की वोल्टता भी अपना पुनरुत्थान होने तक अत्यंत
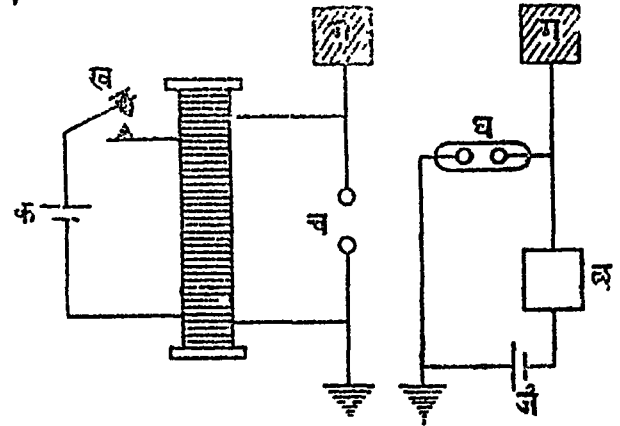
चित्र १.

क्षीणप्राय रह जाती है। इससे उत्पन्न तरगों का रूप चित्र १. मे नीचे प्रदर्शित है। चित्र २ मे प्रदर्शित सयत्र प्रणाली भी उपर्युक्त प्रणाली की ही भाँति कार्य करती है, किंतु इसमे प्रेषित्र एव ग्राही के साथ एक एक समस्वरित परिपथ भी सबद्ध है। प्रेषित्र मे सघनित्र ग प्रेरकत्व च और स्फुलिंग
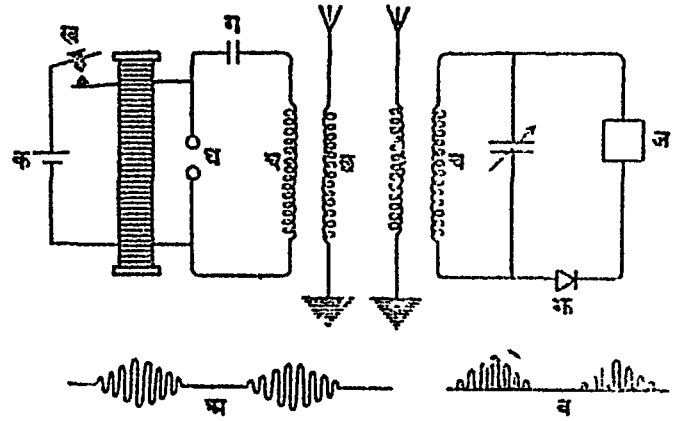
चित्र २

अतराल घ भी समिलित है। इसमें दोलनी धारा उत्पन्न होती है, किंतु मुख्य विकिरण सीधे इस परिपथ मे नही, अपितु च और ग युक्त तथा आ (f) आवृत्ति के लिये अनुनाद करनेवाले समस्वरित परिपथ से होता है। इस

एव तरग लवाई, त = १८८४ $\sqrt{\left(ल + \frac{ल_o}{३}\right) धा_o}$,

$$\left[\lambda = 1884 \sqrt{\left(L + \frac{L_o}{3}\right) C_o} \right],$$

जहाँ ल (L) ऊर्ध्वाधर भाग में निहित प्रेरकत्व है, $ल_o$ (L_o) तथा $धा_o$ (C_o) क्षैतिज भाग व स के क्रमश प्रेरकत्व एव धारिता हैं। एरियल परिपथ का सपूर्ण प्रतिरोध वस्तुत चार प्रतिरोधो का योग होता है, जो क्रमश क्षैतिज भाग का प्रतिरोध, कुडली प का प्रतिरोध, विकिरण प्रतिरोध एव उर्ध्वाधर भाग का प्रतिरोध है। विकिरण प्रतिरोध, तरगो के रूप में ऊर्जा के विकिरण के कारण प्रतिरोध मे होनेवाली वृद्धि है, जो परिमाण मे उस प्रतिरोध के बराबर होती है जिसे ऊर्ध्वाधर भाग मे रखने पर, उसके द्वारा उतनी ही ऊर्जा का अवशोषण होता जितनी ऊर्जा तरग के रूप मे विकिरित होती है। उपर्युक्त दृष्टात मे प्रदर्शित चौरस शीर्ष एरियल के लिये विकिरण प्रतिरोध का मान निम्नलिखित होता है -

$$१५८० \frac{ह_स^२}{त^२} \left(1580 \frac{h_s^2}{\lambda^2} \right) \text{ ओम।}$$

बेतार तरगों का सग्रहण — उपर्युक्त प्रेपित्र प्रणाली द्वारा उत्सर्जित विद्युत्तरगो के कारण र (r) दूरी पर स्थित, $ह_r$ (h_r) ऊँचाई के सग्राही एरियल के किसी विंदु पर व $ह_r$ ($E h_r$) वोल्ट का विद्युद्वाहक वल (electromotive force) उत्पन्न होता है। यहाँ व (E) उस प्रेपित्र द्वारा उत्पन्न विद्युत् क्षेत्र की तीव्रता है जो सूत्र (१) द्वारा व्यक्त होता है। इस सग्राही एरियल को एक प्रेरकत्व की सहायता से आगत विद्युत् की आवृत्ति के लिये समस्वरित किया जा सकता है। अनुनाद की दशा मे सगृहीत सकेतधारा सग्राही एरियल मे विद्युद्धारा के रूप मे नही, अपितु इसी प्रेरकत्व के सिरो के बीच उत्पन्न विद्युद्वाहक वल के रूप मे, ससूचित (detect) हो सकती है। इसे एक विभव प्रवर्धक (potential amplifier), यथा तापायनिक वाल्व प्रवर्धक, द्वारा प्रवर्धित कर क्रिस्टलीय या वाल्व ससूचक मे प्रविष्ट किया जाता है। इस प्रकार यह उस क्रिस्टल परिपथ या वाल्व के धनाग्र परिपथ मे सरल धारा मे रूपातरित हो जाता है और टेलीफोन या धारामापी (galvanometer) की सहायता से अपना अस्तित्ववोध कराता है।

दिशात्मक एरियल (Directive Aerial) — उपर्युक्त व्यवस्था मे किंचित् सुधार कर उसे दिशात्मक एरियल में भी परिणत किया जा सकता है। यदि खुले तार के स्थान पर एक वद कुडली या पाशकुडली (loop) का प्रयोग एरियल के रूप मे किया जाय (चित्र ४, अ व द स), तो दोनो ऊर्ध्वाधर भुजाओ में उत्पन्न विद्युद्वाहक वलो की कलाओ में अतर होने के कारण एक परिणामी विद्युद्वल, $व_r$ (E_r), उस कुडली मे कार्य करने लगेगा, जिसका परिमाण निम्नलिखित सूत्र द्वारा प्रकट होता है

$$व_r = \frac{२३६८ \text{ अ न } धा_स ह_स}{त^२ र}, \quad \left[E_r = \frac{2368 \text{ A N } 1_s h_s}{\lambda^2 r} \right]।$$

यहाँ अ (A) कुडली का क्षेत्रफल तथा न (N) उसमे तार के चक्करो की सख्या है। अनुनाद (resonance) की दशा मे इससे एक दोलनी
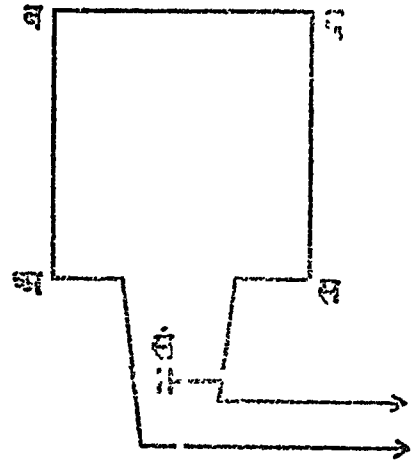
चित्र ४.

धारा $ध_r$ (1_r) उत्पन्न हो जाती है, जिसका मान निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त होता है

$$ध_r = \frac{२३६८ \text{ अ न } ध_स ह_स}{प त^२ र}, \quad \left[1_r = \frac{2368 \text{ A N } 1_s h_s}{R \lambda^2 r} \right],$$

जहाँ प(R) उस कुडली का प्रभावकारी प्रतिरोध है। ऐसे एरियल को एक सधनित्र, स (C) की सहायता से समस्वरित किया जाता है, जिसके दोनो सिरो के बीच उत्पन्न दोलनी विभव के रूप मे सकेत पुनरुत्पादित होता है। इस विभव का आयाम $\frac{ध_r}{२ \pi आ धा}$ $\left[\frac{1}{2\pi} \frac{1 r}{f C} \right]$ के बराबर होता है। इस एरियल के अक्ष की लववत् दिशा मे आनेवाली तरगो से इसमे अधिकतम सकेत तीव्रता उत्पन्न होती है और अक्ष की ही दिशा मे आनेवाली तरगो से शून्य या न्यूनतम सकेततीव्रता उत्पन्न होती है।

बेतार के तार मे मोर्स सकेत (Morse signal) भेजने के लिये प्राय दो विधियो का व्यवहार किया जाता है - एक मे तो विराम के लिये शून्य आयाम (amplitude) के तथा डॉट (dot) एव डैश (dash) के लिये नियत आयामो के सकेत प्रेपित किए जाते हैं। शून्य आयाम के सकेत को अतरण अतराल (spacing interval) तथा डॉट और डैश के सकेतो को चिह्नन अतराल (marking interval) कहते हैं। दूसरी विधि मे अतरण अतरालो में चिह्नन अवधि की अपेक्षा भिन्न तरग लवाई की तरगें प्रेपित की जाती हैं, किंतु ग्राही को ऐसा समस्वरित किया जाता है कि वह चिह्नन अतराल की ही तरगो को ग्रहण कर सके।

तरगो का सचरण या दिग्भ्रमण — बेतार के तार की तरगो के दिक् मे सचरण की प्रक्रिया का अध्ययन करते समय निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखना पडता है -

१ दीर्घ तरगो के सचरण पर विचार करते समय निम्नलिखित बातें विशेष रूप से विचारणीय होती हैं (अ) लघु दूरियों तक सचरण, जिनके लिये पृथ्वी को प्राय समतल माना जा सकता है तथा (व) दीर्घ दूरियो तक सचरण, जिनके लिये पृथ्वी की वक्रता को भी ध्यान मे रखना पडता है।

२ लघु तरगो का सचरण — इन तरगों की लबाई २०० मीटर से कम होती है और इनके सचरण की प्रक्रिया और दिशाएँ दीर्घ तरगो के सचरण से सर्वथा भिन्न होती हैं।

३ तरगसचरण के लिये रात और दिन की दशाएँ बहुधा भिन्न होती हैं। लघु तरगों के सचरण मे इन दिशाओं का प्रभाव उल्लेखनीय होता है।

लघु दूरी तक बेतार का तार प्रेषण — बेतार के सकेतो को थोडी दूर तक प्रेषित करने में सागरपार और स्थलपार दशाओ मे अतर होता है। सागरपार प्रेषण मे प्रेषित सकेतधारा तथा दूरी का गुणनफल दूरी बढने के साथ घटता है। रात्रि में यह परिवर्तन अधिक अनियमित हो जाता है और दूरी बढ़ने के साथ साथ अनियमितता भी बढती जाती है। लगभग १०० से १५० मील की दूरी पर प्राप्त संकेतों की तीव्रता रात्रि मे शून्य से लेकर दिवसीय मान की दूनी तक हो सकती है। अधिक दूरियों पर रात्रि के समय सकेतों की तीव्रता दिन की तुलना में कही अधिक बढ़ जाती है।

रेडियो संकेतो में यह परिवर्तन समझने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि प्रेपित्र से ग्राही तक रेडियो तरगें वायुमडल के आयनोस्फ़ियर क्षेत्र के केनेली हेवीसाइड स्तर (Kennely heaviside layer) से परावर्तित होकर पहुँचती हैं (चित्र ५)। जैसा चित्र से प्रदर्शित है, प्रेपित्र से तरगें आयनोस्फियर की ओर जाती हैं। इन्हे वायुमडलीय किरण कहते हैं। दूसरी किरण धरती के समातर ही जाती है। इसे भूमिकिरण कहते हैं। जब वायुमडलीय किरण आयनोस्फियर से परावर्तित होकर ग्राही पर उसी कला में पहुँचती है जिसमे भूमिकिरण पहुँचती है, तब सकेत की तीव्रता अधिकतम

चित्र ५

होती है। दिन के समय आयनोस्फीयर का निम्नतम स्तर काफी नीचे तक आ जाता है और रात्रि मे यह ऊपर चला जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि आयनोस्फियर मे वायु के आयनीकरण की क्रिया सूर्य की किरणों से प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न तरगदैर्घ्यों का परावर्तन आयनोस्फियर की विभिन्न सतहों से होता है। सामान्यत अधिक लबी तरगो का परावर्तन उसकी निचली सतहों से और लघु तरगों का परावर्तन ऊपर की सतहों से होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अधिक दूरी तक रेडियो सकेतों के प्रेषण के लिये लघु तरगो का उपयोग ही समीचीन होता है, क्योंकि ये ऊपरी सतहो से परावर्तित होने के कारण बहुत दूर तक, ऊर्जा का अधिक ह्रास हुए बिना ही, पहुँच सकती हैं। यह तथ्य चित्र ५ मे स्पष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर विभिन्न दूरियों पर रेडियो सकेतो की धूमिलता का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

कम दूरियों (यथा ५० मील) पर भूमिकिरण सीधे ग्राही तक पहुँच जाती है, जिससे रेडियो सकेतों की तीव्रता प्राय. अपरिवर्तित रहती है, क्योंकि इसकी तीव्रता दिन और रात के समय समान रहती है। अधिक दूरियो (यथा १०० से १५० मील) पर, रात्रि में अपरिवर्ती भूमि किरण के साथ साथ प्राय उसी तीव्रता की वायुमडलीय किरणें भी ग्राही तक पहुँचती हैं। चूँकि ये अग्रोगामी तरगें तीव्रता और कला, दोनो मे ही, भूमिकिरणो से भिन्न होती हैं, इसलिये भूमिकिरणों के साथ इनके सयोजन से उत्पन्न परिणामी संकेतों की तीव्रता शून्य से लेकर अहर्मान (daytime value) की दूनी तक हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि दोनो किरणें विपरीत या समान कलाओ मे सयोजित होती हैं। और भी अधिक दूरियों पर भूमि किरणो की तीव्रता बहुत घट जाती है। इस कारण प्राप्त होनेवाले सकेत पूर्णतया अधोगामी (परावर्तित) वायुमडलीय किरणों के कारण ही उत्पन्न होते हैं। फलस्वरूप इनकी तीव्रता में परिवर्तन तो पर्याप्त सीमा तक हो सकता है, किंतु सकेत पूर्णतया लुप्त नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न तरग लबाइयों के लिये यह दूरी, जिसपर समान तीव्रतावाली वायुमडलीय एव भूमिकिरणें पहुँच सकती हैं, भिन्न भिन्न होती है। लगभग १,६०० मीटर तरगदैर्घ्य वाली तरगों के लिये यह दूरी रात्रि मे प्राय ४८० से ६४० किलोमीटर तक होती है, पर १०० मीटरवाली तरगों के लिये यह दूरी केवल १६० किलोमीटर के ही लगभग होती है।

दिशात्मक एरियलों (directive aerials) के द्वारा प्राप्त होनेवाले सकेतों में भी रात्रि और दिन का अतर स्पष्ट परिलक्षित होता है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, ऐसे एरियलों को घुमाकर ऐसी स्थिति मे लाया जाता है कि उनके द्वारा गृहीत सकेतों की तीव्रता अधिकतम हो। उस दशा मे इस एरियल का अक्ष आगत तरगों की दिशा के लबवत् होता है। दिन में तो यह ठीक परिणाम देता है, किंतु रात्रि मे ९० अश तक की त्रुटि हो जाती है।

दीर्घ-दूरी रेडियो-तरग-प्रेषण — ऊपर बतलाया जा चुका है कि मारकोनी ने सन् १९०१ मे ही ऐटलैंटिक महासागर के पार तक बेतार के तार का सकेत भेजने में सफलता प्राप्त की थी, किंतु इसका स्पष्टीकरण हर्ट्ज़ के विवेचन के आधार पर प्राप्त प्रेषणसूत्र (१) द्वारा नहीं हो सका। इसलिये उपयुक्त सूत्र की प्राप्ति के प्रयत्न होते रहे। सन् १९१० मे ऑस्टिन ने दीर्घ दूरी तक रेडियो-तरंग-प्रेषण का सुविस्तृत अध्ययन किया और र (r) दूरी पर किसी एरियल पर उत्पन्न विद्युद्बल के लिये निम्नलिखित सशोधित सूत्र प्राप्त किया

$$\text{ब} = \frac{\text{३७७ घ}_{\text{म}}\ \text{इ}_{\text{ग}}}{\text{र त}} \cdot e^{-(\text{० ००१५ र}/\sqrt{\text{त}})}$$

$$\left[E = \frac{377\, i_s\, h_s}{r\lambda}\, e^{-(0\ 0015r/\sqrt{\lambda})} \right],$$

जहाँ घाताकीय पद (exponential term) को अवशोषण पद (absorption term) कहा जाता है। यह सूत्र केवल दिन के समय

तरगप्रेषण के लिये व्यवहृत होता है तथा केवल लगभग ४०० किमी० के लिये ही सत्य सिद्ध होता है। फुलर (Fuller) ने इस सूत्र मे उपयुक्त सशोधन करने की चेष्टा की और अत मे अधिक दूरी तथा अधिक लबाई की तरगो के लिये अहर्निश व्यवहार्य, व्यापक सूत्र

$$व = \frac{३७७ घ_{त} ह_{त}}{र त} \sqrt{\frac{\theta}{ज्या\,\theta}}\, e^{-(०\,००४५\, र/\sqrt{त})}$$

$$\left[E = \frac{377\, I_s h_s}{r\lambda} \sqrt{\frac{\theta}{\sin\,\theta}}\, e^{-(0\,0045\, r/\sqrt{\lambda})}\right]$$

का प्रतिपादन किया, जिसमे θ प्रेषक एव अभिग्राही केंद्रो के बीच भू-केंद्रिक कोण (geocentric angle), अर्थात् पृथ्वी के केंद्र से दोनो स्थानो को मिलानेवाली रेखाओ के बीच बननेवाला कोण, है।

हर्ट्‌ज के प्रारभिक प्रयोगो से यह अनुमान किया जाता था कि दीर्घ लबाई की तरगें अधिक दूर तक बेतार वार्तावहन के लिये अधिक उपयुक्त होती है, किंतु तापायनिक वाल्वो का आविष्कार होने पर लघुतरगो के साथ प्रयोग किए गए, जिनसे निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए (१) लघु तरगें बहुत अधिक दूरी तक, बिना अधिक ऊर्जाक्षीणन (attenuation) हुए ही, सचरित हो सकती हैं। इस कारण ऐसी तरगो मे अभीष्ट सकेतो के सफल सचरण के लिये निम्नशक्ति के प्रेषी केंद्रो (low power transmitting stations) की स्थापना की ही आवश्यकता पडती है, (२) यद्यपि लघु तरगो के सकेतो की तीव्रता अल्प दूरी तक दूरी मे वृद्धि के साथ घटती है, किंतु एक निश्चित दूरी पार करने के पश्चात् इन संकेतो की तीव्रता दूरी बढने के साथ बढती जाती है। इस विशिष्ट, या निश्चित, दूरी को मूकातराल (Skip distance) कहते है। यह दूरी सामान्यतया तरग लबाई, त (λ) के व्युत्क्रमानुपाती होती है। इसलिये लघु तरगो के लिये इनका मान काफी अधिक होता है; (३) लघु तरगो के लिये ऐसी अनुकूलतम (optimum) दूरियो के दो मान होते हैं एक दिन के समय तरगसचरण के लिये और दूसरा रात्रि के समय के लिये। इसलिये इनके सम्मिलित प्रयोग से वार्तावहन का क्रम अहर्निश कुशलतापूर्वक चलाया जा सकता है।

विकिरणो को अधिक प्रभावी एव शक्तिशाली बनाने के लिये उन्हे एक पु ज के रूप मे सघनित करने के उद्देश्य से, सर्वप्रथम मारकोनी कपनी के इजीनियरो ने तथा उनके पश्चात् फ्रैंकलिन ने, नए प्रकार के एरियल के निर्माण किए। इन एरियलो मे समातर ऊर्ध्वाधर तारो का एक फ्रेम प्रयुक्त किया गया था और उसके पीछे ठीक ऐसा ही एक अन्य फ्रेम भी रखा जाता था। इस पृष्ठस्थ फ्रेम को परावर्तक पर्दा (Reflecting Screen) कहा जाता था। इस व्यवस्था के दो लाभ हैं (१) पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र से विद्युत्तरगशक्ति का एकत्रीकरण, जिससे आपाती सकेतो की तीव्रता बढ जाती है, और (२) अन्य अवाछनीय सकेतो का परावर्तक द्वारा निस्यदीकरण, जिससे वाछित सकेत अन्य सकेतो द्वारा व्यतिकृत न हो सकें।

सौर प्रभाव (Solar Influence) — ऑस्टिन ने सर्वप्रथम पता लगाया था कि सौर सक्रियता से भी बेतार की तरगें प्रभावित होती हैं। जिन दिनो सूर्य के धब्बे (sunspots) अधिक दिखलाई पडते हैं, उन दिनो रेडियो सकेतो की तीव्रता अपेक्षाकृत

कम होती है। चुबकीय तूफानो के दिनो मे भी सकेतों की तीव्रता अन्य दिनो की अपेक्षा भिन्न हो जाती है। देखा गया है कि ऐसे दिनो मे लघु तरंग सकेत निर्बल एव दीर्घ तरगसकेत प्रबल हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि सौर सक्रियता के कारण वायुमडल के आयनोस्फियर मे आयनीकरण का परिमाण बढ जाता है। इस कारण उसमे होकर ऊपर तक जाने और वहाँ से परावर्तित होकर (और यह परावर्तन भी पूर्ण परावर्तन की ही भाँति वायुमडलीय किरणो के विरल माध्यम मे प्रवेश करने पर मुडने की क्रमिक क्रिया द्वारा होता है) आनेवाली तरगों का बहुत कुछ अवशोषण वायुमडलीय परतो मे हो जाता है। इसलिये दीर्घ तरगें तो, वायुमडल के निम्नतम स्तरो से परावर्तित होने के कारण, प्राय अप्रभावित रहती हैं, किंतु लघु तरगो का काफी अंश अवशोषित हो जाता है। ऑस्टिन ने '११ वर्षीय चक्र' (11 year cycle) के अनुसार भी रेडियो सकेतो की तीव्रता मे परिवर्तन का अध्ययन किया और यह पता लगाया कि दीर्घ तरगो का परावर्तन करनेवाले वायुमडलीय स्तर की विशिष्ट विद्युच्चालकता अधिकतम सूर्यकलक के दिनो मे न्यूनतम कलको के दिनो की अपेक्षा १५ गुना अधिक होती है।

वार्तावहन के लिये बेतार के तार का प्रयोग — यह कहने की आवश्यकता नही है कि वार्तावहन के लिये उपयोगिता की दृष्टि से बेतार के तार का महत्व अप्रतिम है। दूरस्थ केंद्रो के बीच, विशेषकर समुद्रपार वार्तावहन के लिये, यह सागरगर्भी तार के केबुलो की अपेक्षा अधिक सुगम, सस्ता एव उपयोगी साधन है। इसके लिये प्रेषित्र एव अभिग्राही केंद्रो का निर्माण अपेक्षाकृत कम व्ययसाध्य है, क्योंकि सागरगर्भी केबुलो को दीर्घ दूरियो तक बिछाने मे अत्यधिक धनराशि व्यय होती है। इसके अतिरिक्त एक और सबसे बडा लाभ यह भी है कि रेडियो तरग प्रेषित्र से चतुर्दिक् समान रूप से विकीर्ण होती है। इसलिये आवश्यक ग्राही उपकरण की व्यवस्था होने पर इस विधि से प्रेषित सूचना, समाचार, अथवा वक्तव्य ससार के भिन्न भिन्न भागो मे एक साथ प्राप्त किए जा सकते हैं। सकटग्रस्त जहाजो से बेतार के तार द्वारा अपनी रक्षा के लिये की गई गुहार इस प्रकार चारो ओर बिखरती है और उनके समीपस्थ जहाज तथा अन्य यान उनकी सहायता के लिये तुरत दौड पडते हैं। इसके अतिरिक्त बेतार के तार द्वारा दूर से चित्र, फोटोग्राफ, पत्रादि, लेखो की प्रतिलिपियाँ अति शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रेषित की जाती हैं।

एक कठिनाई, जिसका सामना सागरगर्भी केबुलो के उपयोग मे करना पडता है, यह है कि यदि उनमे कही क्षरण (leakage) होता है, या वे कही टूट जाते हैं, तो उनका पता लगाना अथवा मरम्मत कर सकना बडा कठिन एव अधिक समय मे सपन्न होनेवाला कार्य होता है। इसके लिये टूटे हुए केबुल के पार्श्व मे एक अन्य केबुल बिछाकर उसे वार्तावहन के लिये प्रयुक्त करने और उसके बाद ही क्षतिग्रस्त केबुल की मरम्मत करने की व्यवस्था करनी पडती है। इसी कठिनाई को हल करने के लिये अब प्रत्येक केबुल का प्रतिरूप (duplicate) भी साथ ही बिछाया जाता है, किंतु बेतार के प्रेषित्र या ग्राही सेट के क्षतिग्रस्त होने पर उसकी मरम्मत करने मे, या उनके स्थान पर दूसरे सेट की स्थापना मे, कोई ऐसी कठिनाई नहीं झेलनी पड़ती।

का रचनाकाल स० १८७५ वि० है। यह प्रमुख रूप से रसातर्गत नायिका-नायक-भेद का विवेचन करनेवाला ग्रथ है। कवित्व और शास्त्रीय दोनो दृष्टियो से यह महत्वपूर्ण रीतिग्रथ है। यह ग्रथ पद्माकर कृत 'जगद्विनोद' के आकार का है। भँडौवा कवि के कृतित्व मे अनूठे स्थान का अधिकारी है। इनसे उसको पर्याप्त ख्याति और प्रसिद्धि मिली है। इस कवि के भँडौवो का एक सग्रह भारतजीवन प्रेस, काशी मे हुआ था। यशलहरी में नाना देवी देवताओ का गुणानुवाद किया गया है।

इससे पूर्व भँडौवा शैली की रचनाओ की स्थिति नही देखी गई थी। भँडौवा हास्योत्पादक मनोरजनप्रधान रचना होती है, जिसे उर्दू मे 'हजो' और अग्रेजी मे 'सटायर' कहते है। इससे किसी व्यक्ति, वस्तु आदि की निंदा अथवा प्रशसा दोनों की जा सकती है। दयाराम के आमों, लखनऊ के ललकदास और किसी से पाई हुई रजाई की इस शैली मे अच्छी खिल्ली उडाई गई है। ये प्रसंग बड़े रोचक बन पडे हैं और प्राय इनकी ऐसी रचनाएँ प्राचीन काव्यरसिको की जबान पर होती हैं। सुकुमार भावव्यजना और कलागत वैशिष्ट्य के भी दर्शन कवि की रचनाओ मे होते हैं। [रा० के० त्रि०]

बेरहमपुर स्थिति १९° १८' उ० अ० तथा ८४° ४८' पू० दे०। यह भारत मे उडीसा राज्य के गजाम जिले मे, मद्रास से कलकत्ता जानेवाले मार्ग पर, कलकत्ता से ३७४ मील दूर स्थित नगर है। इस की जनसख्या ७६,९३१ (१९६१) है। यह जिले का सबसे वडा नगर तथा शासन का प्रमुख केंद्र है। नगर का आधा पूर्वी भाग जो 'भापुर' (Bhapur) कहलाता है, काफी स्वच्छ व सुदर है। पश्चिमी आधा भाग पाट-बेरहमपुर कहलाता है। पहिले यही पाट बेरहमपुर प्रमुख गाँव था, जो बाद मे नगर बना। यह काफी घना बसा है। प्रमुख उद्योग रेशम बुनना, टसर रेशम से विभिन्न रगो के वस्त्र बनाना, चीनी बनाना आदि हैं।

बेराइट (Barite) **या बराइटीज** (Barytes) यह खनिज आर्थोरोंबिक समुदाय मे क्रिस्टलीकृत होता है। इसका रासायनिक सूत्र बेगओ$_4$ ($BaSO_4$) है। इसका रग सफेद या लाल, चमक काचोपम, कठोरता ३-३ ५ तथा आपेक्षिक घनत्व ४ ५ होता है।

बेराइट से सफेद वर्णक तैयार किया जाता है। तेल के कूँए खोदते समय गैस को रोकने के लिये बेराइट का प्रयोग होता है। इससे अन्य रसायनक तैयार किए जाते हैं, जिनका उपयोग अनेक कामो मे होता है।

यह खनिज अधिकतर चूने की शिलाओ मे धारियो मे मिलता है। धात्विक निक्षेपो के साथ भी यह खनिज पाया जाता है। इग्लैंड मे वेस्टमोरलैंड काउटी की सीसे की खदान से बेराइट का एक सौ पाउड भार का एक क्रिस्टल उपलब्ध हुआ है। भारत मे आध्र प्रदेश बेराइट का सबसे बडा उत्पादक है। लगभग ९० प्रति शत बेराइट यहाँ के कर्नूल और कुडप्पा जिलो से प्राप्त होता है। बेराइट के अन्य महत्वपूर्ण निक्षेप राजस्थान मे अलवर के निकट हैं। [म० ना० मे०]

बेरार (बरार) का इमादशाही राजवश (१४८७ १५७४)। इसका स्थापना फतहउल्ला इमादुलमुल्क नामक व्यक्ति द्वारा की गई थी जो पहले हिंदू था। वह बहमनी दरबार का अमीर बन गया और जब १४८७ ई० में उसने स्वतत्र होने की घोषणा की तब वह बरार का तरफदार था। फतहउल्ला इमादशाह (१४८७-१५०४) तथा सीधी वशपरपरा मे उसके दो उत्तराधिकारियो ने [अलाउद्दीन इमादशाह (१५०४-२९) तथा दरिया इमादशाह (१५२९-६२)] बीजापुर राज्य के साथ सामान्यत मित्रतापूर्ण व्यवहार किया और दक्षिण के सुलतानो मे चल रहे आपसी झगडो मे नरमी पर बल देने का प्रयत्न किया। बरार के सुलतानो से अहमदनगर के निजाम शाहो का, जो उनके पडोसी थे, पथरी नामक इलाके के सबध मे बराबर झगडा चलता था। यह दोनो राज्यो की सीमा पर स्थित था और इसपर बरार का अधिकार था। अहमद निजामशाह का पिता मलिक हसन भी मुसलिम धर्म मे दीक्षित होने के पहले हिंदू था। उसका (मलिक हसन का) पिता पथरी का कुलकर्णी था। यही कारण है कि इस स्थान के लिये उनके दिल मे गहरी मुहब्बत हो, क्योकि यह उनकी पितृभूमि थी।

बीदर के महमूदशाह बहमनी ने अमीर बरीद की अधीनता से छुटकारा पाने के लिये अलाउद्दीन इमाद से सहायता माँगी। बुर्हान निजामशाह ने अमीर बरीद का साथ दिया जिससे बरार के सुल्तान को शिकस्त खानी पडी। निजामशाह ने अब पथरी के लिये दावा किया और सैनिक मुठभेड के बाद उसपर अधिकार कर लिया (१५१८ ई०)। अलाउद्दीन इमादशाह ने दुबारा उसे छीन लिया किंतु वह फिर उसके हाथ से निकल गया (१५२७)। अमीर बरीद की मदद से बुर्हान निजामशाह ने बरार पर आक्रमण कर दिया। अलाउद्दीन ने गुजरात के बहादुरशाह से सहायता की याचना की। इसपर बहादुरशाह ने निजामशाही राज्य पर हमला बोल दिया और अहमदनगर पर कब्जा कर लिया। अलाउद्दीन ने इस शर्त पर अपने मित्र का साथ छोड देना स्वीकार किया कि पथरी का इलाका बरार को लौटा दिया जाय। बुर्हान ने इसका वचन दिया किंतु बहादुर के वापस जाते ही उसने इसका पालन नही किया, इसलिये बरार और अहमदनगर का झगडा जारी रहा।

सन् १५३२ मे बीजापुर तथा अहमदनगर का आपसी मतभेद दूर हो गया और उनमे एक सधि हुई जिसके अनुसार बुर्हान निजामशाह को बरार के विरुद्ध आक्रमणात्मक नीति अपनाने की छूट दे दी गई। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र दरियाशाह १५२९ ई० मे बरार की राजधानी एलिचपुर मे गद्दी पर बैठा। अपनी स्थिति सुरक्षित बनाए रखने के लिये उसने कुछ लोगो से दोस्ती का गठबधन करने की नीति अपनाई। दक्षिण के राज्यो की अस्थिर राजनीति के कारण उसके लिये बीजापुर को अहमदनगर की मित्रता से हाथ खीच लेने के लिये राजी करने मे कोई कठिनाई नही हुई। कुछ वर्षों के बाद सबधो की इस अस्थिरता से दरिया इमादशाह और हुसेन निजामशाह मे मित्रता हो गई और वे बीजापुर के अली आदिलशाह प्रथम के विरोधी बन गए, जिसने हुसेन के खिलाफ विजयनगर के राम राजा से सहायता की याचना की थी। आक्रमण करनेवाली बीजापुर तथा विजयनगर की समिलित सेनाओ का मुकाबिला करने के लिये दरिया इमादशाह ने निजामशाह के सहायतार्थ अपने सेनापति जहाँगीर खाँ को भेजा। आक्रमणकारियो के सामने हुसेन की सेना ठहर न सकी और उसे अपमानजनक शर्तों पर सधि कर लेनी पड़ी। इसके अनुसार

उसे इमादशाही सेनापति जहाँगीर खाँ की हत्या करा देने के लिये राजी होना पड़ा, जो हुसेन का मित्र होने की वजह से आक्रामकों के लिये भारी चिंता का कारण था (१५६१)। इस घटना से दरिया इमादशाह को बड़ा धक्का लगा जिससे शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई (१५६२)।

दरिया इमादशाह के बाद उसका बालक पुत्र बुर्हान गद्दी पर बैठा और राज्य का पूरा अधिकार इमादशाही सेनापति तूफल खाँ के हाथ में आ गया। जहाँगीर खाँ की राजनीतिक हत्या संबंधी हुसेन निजामशाह के व्यवहार से क्षुब्ध होकर तूफल खाँ ने हुसेन निजामशाह के खिलाफ दुबारा कार्रवाई करने में बीजापुर तथा विजयनगर का साथ दिया। अंत में जब विजयनगर से निपट लेने के लिये मुसलिम राज्यों का संघ बनाया गया, तब बरार के शासकों ने इसमें संमिलित होने से इनकार कर दिया, क्योंकि जहाँगीर खाँ की हत्या को वे अभी तक भुला नहीं सके थे। इस बीच तूफल खाँ ने बालक सुलतान बुर्हान इमादशाह को अलग कर (१५६२) सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिए और वह अपना पृथक् राजवंश स्थापित करने की बात सोचने लगा। ऐसा वह कर नहीं सका, क्योंकि सन् १५६५ में विजयनगर पर मुसलमानों की विजय के बाद अहमदनगर के मुर्तजा निजामशाह ने तूफल खाँ के शासन का खात्मा करने का निश्चय कर लिया। विजयनगर की समाप्ति के बाद अब बीजापुर तथा गोलकुंडा के लिये दक्षिण में राज्यविस्तार की काफी गुंजाइश हो गई। उधर निजामशाही राज्य ने भी उत्तर में अपनी सत्ता का विस्तार करने का प्रयत्न किया और बरार पर आक्रमण करने की नीति अपनाकर मुर्तजा निजामशाह ने तूफल खाँ के शासन का अंत कर बरार को अपने राज्य में मिला लिया (१५७४)। [पी० एम० जे०]

बेरिंग, विटस (Bering, Vitus, सन् १६८१–१७४१) डेनमार्क निवासी, सुप्रसिद्ध समुद्रयात्री तथा समन्वेषक थे। इनका जन्म होरसेंस, जटलैंड, डेनमार्क में हुआ था तथा बेरिंग द्वीप में इन्होंने स्वदेशी नौसेना के सदस्य के रूप में १७०३ ई० में पूर्वी द्वीपसमूह (आधुनिक हिंदेशिया) की यात्रा की। १७०४ ई० में ये रूसी नौसेना में भर्ती हो गए। रूस के तत्कालीन सम्राट्, पीटर महान्, ने एशिया तथा अमरीका महादेश स्थल द्वारा जुड़े हुए हैं अथवा नहीं, इसका पता लगाने के लिये बेरिंग को नियुक्त किया। बेरिंग ने ५, फरवरी १७२५ में सेंट पीटर्सबर्ग (आधुनिक लेनिनग्राड) से अभियान किया और १७२८ में कैमचैटका नदी के दक्षिण में होते हुए, साइबेरिया के उत्तर-पूर्व समुद्री तट पर ६७° उत्तर अक्षांश तक गए। अमरीका तथ एशिया स्थल द्वारा नहीं जुड़े हैं, इस बात का पता लगाकर सन् १७३० में बेरिंग लौट आए। इस यात्रा से संतुष्ट न होने के कारण इन्होंने दूसरी यात्रा की स्वीकृति प्राप्त की। इनकी इस यात्रा के दो जहाज, 'सेंट पीटर' तथा 'सेंट पॉल', ६ अक्टूबर १७४०, को पेट्रोपाव्लाव्स्क पहुँचे। ४ जून, १७४१, को वहाँ से रवाना होने पर, बेरिंग दक्षिण-पूर्व की ओर 'गामालैंड' की खोज में निष्फल भटकते हुए कयाक (Kayak) द्वीप पहुँच गए। इस प्रकार ये पूर्व दिशा से अमरीका पहुँचने में सफल हुए। लौटते समय ये बीमार पड़ गए और उनका जहाज भी घने कुहरे में पथभ्रष्ट हो गया। फलत, इस अभियान दल को कैमचैटका के समीप स्थित एक निर्वसित द्वीप पर, जिसे उनके नाम पर अब बेरिंग द्वीप कहते हैं, नौ महीने तक रुकना पड़ा। वहीं बेरिंग की मृत्यु हो गई। [का० ना० सिं०]

बेरिंग सागर (Bering sea) स्थिति ५८° ०' उ० अ० तथा १६७° ०' पू० दे०। अलैस्का और पूर्वी साइबेरिया के मध्य स्थित प्रशांत महासागर का उत्तरी भाग है। इसकी दक्षिणी सीमा अलैस्का के चाप एवं अल्यूशन (Aleutian) द्वीपों द्वारा निर्धारित होती है। इसका क्षेत्रफल ८,८६,००० वर्ग मील है। इसका नाम इसके अन्वेषक विटस बेरिंग के नाम पर पड़ा है, जिन्होंने इसकी खोज सन् १७२८ में की थी। उत्तर में यह ५६ मील चौड़े बेरिंग जलसंयोजक द्वारा आर्कटिक सागर से मिल जाता है। उत्तर-पूर्व में यह कम गहरा तथा दक्षिण-पश्चिम में अधिक गहरा (लगभग ४,००० मीटर) है। जलसंयोजक के मध्य में डायोमीड द्वीप हैं जिनमें ग्रेट डायोमीड द्वीप में रूसी तथा लिटिल डायोमीड द्वीप में अमरीकी सैनिक चौकियाँ हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई द्वीप हैं। गरमी की ऋतु में कोहरे के कारण जलयातायात में बाधा पड़ती है। जाड़ों में उत्तरी भाग का जल ठंढ की अधिकता के कारण जम जाता है, किंतु सेंटलॉरेंस द्वीप जून के अंत तक घुला रहता है। अलैस्का तट के किनारे उत्तर की ओर तथा साइबेरिया तट के किनारे दक्षिण की ओर एक एक धारा चलती है। बेरिंग जलसंयोजक से होकर अंतरराष्ट्रीय तिथिरेखा गुजरती है। अत इसके दोनों तटों पर पंचांग सदैव पृथक् दिन दर्शाते हैं। [न० प्र०]

बेरियम (Barium) कैलसियम समूह का तत्व है। खनिज बेराइट इसका पहला खनिज था, जिसकी ओर सन् १६०२ में बोलोन के एक चर्मकार वी० केसिओरलस का ध्यान गया। उसने देखा कि यह पदार्थ दहनशील पदार्थ के साथ जलने पर स्फुरदीप्त होता है। इसी कारण इसको बोलोनी फॉस्फोरस भी कहा जाता है। सन् १७७४ में के० डब्ल्यू० शीले ने पाइरोलूसाइट खनिज की जाँच करते समय एक नई मृदा मालूम की, जिसे टी० ओ० बर्गमैन (Bergman) ने भारी मृदा (Terra Ponderosa) कहा। सन् १७७९ में लूई बर्नार्ड गितों द मोरवा (Louis Bernard Guyton de Morvean) ने इसे बेरोट (Barote) नाम दिया, जिसे लवाज़िये (Lavoisier) ने बदलकर बेराइटा कर दिया। आज भी इस मृदा के लिये यह नाम प्रचलित है। ग्रीक शब्द बेरस (Barus) से, जिसका अर्थ भारी है, यह बना है। बाद में मालूम हुआ कि यह एक नई धातु का ऑक्साइड है। इसी के नाम पर इस धातु को बेरियम कहा जाने लगा।

बेरियम धातु प्रकृति में शुद्ध रूप में नहीं मिलती। इसके प्रसिद्ध खनिज कार्बोनेट लवण, अर्थात् विदराइट (witherite), और सल्फेट लवण, अर्थात् बराइटीज के रूप में मिलते हैं। थोड़ी मात्रा में यह धातु बेराइटो कैल्साइट, बेराइटो सेलिसटाइन और अन्य सिलिकेट लवणों में भी मिलती है। सिलोमेलेन (Psilomelane), अर्थात् बेरियम मैंगनेटाइट, भी इसका एक खनिज है। भारत में बराइटीज खनिज बहुत पाया जाता है। मद्रास के कर्नूल और अलवर क्षेत्र इसके लिये प्रसिद्ध हैं।

बेरियम का ऑक्सीजन के प्रति इतना आकर्षण है कि शुद्ध धातु को प्राप्त करना बड़ा कठिन हो गया है। सन् १८०८ में डेवी ने बेरियम

सरस तैयार किया। इस सरस को सुखाकर, और फिर इसके पारे का आसवन कर बेरियम धातु तैयार की। इस विधि मे दो कठिनाइयाँ आती हैं। एक तो सरस मे पानी पूर्णत सुखा लेना आवश्यक है, दूसरे ऊँचे ताप पर भी बेरियम से पारा पूर्णत अलग नही होता। सन् १६०१ मे गुट्ज़ (Gunts) ने १,२००° सें० पर बेरियम ऑक्साइड का ऐल्यूमिनियम चूर्ण द्वारा अपचयन करके बेरियम प्राप्त किया। इसी ताप पर सी० मैटिग्नॉन (Matignon) ने निर्वात में फेरोसिलिकन (६५ प्रति शत सिलिकन) के साथ अपचयित कर ६८ ५ प्रति शत शुद्ध बेरियम का आसवन किया। आज भी ये ही विधियाँ प्रयोग मे आती है।

बेरियम सफेद नरम धातु है। इसका परमाणुभार १३७ ३७, परमाणु क्रमाक ५६, घनत्व ३ ७८, गलनाक ८५०° सें० और क्वथनाक १,५३७° सें० है। इसकी सयोजकताएँ दो हैं। एक ही श्रेणी के यौगिक बनाता है। पानी मे विलेय है और हाइड्रॉक्साइड बनाता है। क्षारो और अम्लो मे विलेय है। बेंज़ीन और हाइड्रोकार्बनो मे अविलेय है। इसके चूर्ण को हवा मे छोड दें तो यह जल उठता है। यह सीसे के समान आघातवर्धनीय है। ऐल्कोहॉल के साथ यह बेरियम ऐंथॉक्साइड बनाता है। केल्सियम से इस बात मे भिन्न है।

प्राकृत कार्बोनेट पर नाइट्रिक अम्ल की अभिक्रिया से नाइट्रेट बनता है। नाइट्रेट अधिक ताप पर बेराइट, अर्थात् बेरियम मॉनोऑक्साइड बे ओ (BaO), मे बदल जाता है। इसको हवा मे धीरे से गरम करने पर यह बेरियम डाइऑक्साइड मे बे ओ₂ ($Ba\ O_2$) मे बदल जाता है। डाइऑक्साइड को अधिक ताप पर गरम करने से आक्सीजन और बेरियम मोनो-ऑक्साइड मिलता है। इस अभिक्रिया का प्रयोग ऑक्सीजन बनाने की ब्रिन विधि मे किया जाता है। इसका एक तीसरा ऑक्साइड बेरियम सबऑक्साइड, बे₂ओ (Ba_2O), भी मिलता है।

बेराइटा पानी मे विलेय होकर हाइड्रॉक्साइड देता है। इसके विलयन की उपयोगिता अनुमापन मे है, क्योकि यह कार्बन डाइऑक्साइड से सदा मुक्त रहता है। जो कुछ कार्बन डाइऑक्साइड गैस अवशोषित हुई, वह अविलेय बेरियम कार्बोनेट बनकर पृथक् हो जाती है। यह विशेषता अन्य क्षारीय विलयनो, जैसे दाहक सोडा और ऐमोनिया, मे नही है। इसका उपयोग चीनी के साफ करने के लिये भी होता है।

किसी भी सल्फेट विलयन मे किसी बेरियम लवण का विलयन डालने से बेरियम सल्फेट का सफेद अवक्षेप मिलता है। इसी गुणधर्म के कारण बेरियम के विलेय लवण, विशेष तौर पर बेरियम क्लोराइड, का सलफ्यूरिक अम्ल और सल्फेट लवणो की जाँच के लिये प्रयोग होता है। वर्णक उद्योग मे बेरियम सल्फेट का अधिक उपयोग होता है। ब्लाक फिक्से (Blanc Fixe) और लिथोपोन (Lithopone) इसके प्रसिद्ध वर्णक हैं। बेरियम कार्बोनेट और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की अभिक्रिया से बेरियम क्लोराइड बनता है। बेरियम के विलेय लवणो मे यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसके विलेय लवण विषैले होते हैं।

सभी बेरियम लवण बुसन ज्वाला को हरा रग देते है। इसके विलेय लवण कैल्सियम सल्फेट के साथ सफेद अवक्षेप देते है और पोटैशियम क्रोमेट के विलयन के साथ बेरियम क्रोमेट का पीला अवक्षेप देते हैं।

सं० ग्र० — सत्यप्रकाश अकार्बनिक रसायन। [च० ला० गु०]

बेरिल या वैडूर्य (Beryl) आधुनिक युग का महत्वपूर्ण खनिज है। इसका सूत्र बे₃ ऐ₂ (सि ओ₃)₆ [$Be_3\ Al_2\ (Si\ O_3)_6$] है। इससे बेरिलियम धातु निकाली जाती है, जो हलकी किंतु कठोर तथा दृढ होती है। अत इसका उपयोग वायुयानो मे किया जाता है। अन्य धातुओ के साथ इसकी अनेक मिश्रधातुएँ तैयार की जाती हैं, जो विद्युत्, कैमरा आदि उद्योगो मे काम आती हैं। बेरिल की पारदर्शक किस्म को 'पन्ना' कहते है, जो एक रत्न पत्थर है तथा जिसका उपयोग आभूषणो मे किया जाता है।

बेरिल खनिज को क्षेत्र मे सरलता से पहचाना जा सकता है। यह षट्कोणीय समुदाय मे क्रिस्टलीकृत होता है तथा इसके क्रिस्टल प्रिज्मीय होते हैं। इसका रग नीला, हरा, या हल्का पीला होता है। कभी कभी यह सफेद रग मे भी मिलता है। इसकी टूट शखाभ (conchoidal), कठोरता ७ ५ से ८ तथा आपेक्षिक घनत्व २ ७ है।

बेरिल के आर्थिक निक्षेप पेग्मेटाइट शिलाओ मे मिलते हैं। भारत मे यह खनिज राजस्थान, बिहार तथा नेलोर की पेग्मेटाइट शिलाओ से प्राप्त किया जाता है। विश्व मे बेरिल उत्पादन मे भारत का स्थान दूसरा है। परमाणवीय महत्व का होने के कारण इसके उत्पादन आँकडे गोपनीय हैं। [म० ना० मे०]

बेरिलियम (Beryllium) आवर्त सारणी के द्वितीय समूह का पहला तत्व है। इसका केवल एक स्थिर समस्थानिक पाया गया है, जिसकी द्रव्यमान सख्या नौ है, परतु द्रव्यमान सख्या सात, आठ और १० वाले अस्थिर समस्थानिक कृत्रिम विधियो से निर्मित हुए हैं।

१७९८ ई० में सर्वप्रथम वोक्लै (Vauquelin) ने बेरिलियम को बेरिल अयस्क से पृथक् किया, जिसके आधार पर इसका नाम बेरिलियम रखा गया। इसके विलेय लवण मीठे स्वाद के होते हैं। इस कारण इसका नाम ग्लुसिनम (Glucinum) भी रखा गया था, परतु अब यह नाम लुप्त हो गया है। १८२८ ई० मे सर्वप्रथम वलर (Wohler) ने बेरिलियम धातु तैयार की।

पन्ना और बेरूज (aquamarine) बेरिलियम के यौगिक हैं, जो पुरातन काल से रत्न के रूप मे अपनाए गए है। अनेको ऐसे खनिज पदार्थ ज्ञात हैं, जिनमे बेरिलियम सयुक्त अवस्था मे रहता है, परतु केवल बेरिल, बे₃ऐ₂सि₆ओ₁₈ ($Be_3\ Al_2\ Si_6\ O_{18}$), ही एक अयस्क है, जिससे बेरिलियम निकाला जाता है। अन्य स्रोतो से बेरिलियम प्राप्त करना बहुत मँहगा पडता है। भारत मे ऐसा बेरिल, जो बेरिलियम निर्माण के लिये उत्तम सिद्ध हुआ है, अजमेर, बिहार राज्य तथा मद्रास राज्य मे मिलता है।

निर्माण — सर्वप्रथम बेरिल अयस्क को कैल्सियम, अथवा सोडियम कार्बोनेट, के साथ संगलित करते हैं। तत्पश्चात् सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ उच्च ताप पर गरम जल मे घुलाते हैं। विलयन से ऐल्यूमिनियम को अमोनियम एलम (alum) के रूप मे क्रिस्टलीकृत किया जाता है।

बचे विलयन से वेरिलियम सल्फेट के क्रिस्टल प्राप्त हो जाएँगे, जिसे जलाने पर वेरिलियम ऑक्साइड प्राप्त होगा।

वेरिलियम ऑक्साइड के कार्बन द्वारा विद्युत् भट्टी मे अपचयन से वेरिलियम धातु प्राप्त हो सकती है, परतु विशुद्ध धातु प्राप्त करने के लिये वेरिलियम क्लोराइड, वे, क्लो२ ($BeCl_2$) और सोडियम क्लोराइड, सोक्लो (NaCl) के सगलित मिश्रण का वैद्युत अपघटन (electrolysis) करते हैं।

गुणधर्म — वेरिलियम हल्की, चमकदार, श्वेत रग की कठोर धातु है। इसमे इस्पात की सी प्रत्यास्थता है। इसमे एक्स विकिरण (X-rays) ऐल्यूमिनियम से १७ गुना अधिक प्रवेश कर सकता है। वेरिलियम धातु मे ध्वनि का वेग इस्पात से ढाई गुना अधिक (१२,६०० मीटर प्रति सेकड) है। इसके कुछ भौतिक स्थिराक निम्नाकित हैं

सकेत वे (Be), परमाणुसख्या ४, परमाणुभार ९.०१२ गलनाक १,२८०° सें०, क्वथनाक २,७७०° सें०, घनत्व १.८६ ग्राम प्रति घ० सेंमी०, परमाणुव्यास २.२५ ऐंग्स्ट्रॉम (A°), विद्युत प्रतिरोधकता ५.८८ माइक्रोओम सेंमी० तथा आयनीकरण विभव ९.३२० इवो०।

रासायनिक अभिक्रियाओं मे वेरिलियम की समानता मैग्नीशियम तथा ऐल्यूमिनियम दोनो से है। इस कारण इस समानता को विकर्ण सममिति (diagonal symmetry) कहते हैं। वेरिलियम मे मैग्नीशियम से कम, परतु ऐल्युमिनियम से अधिक, धातुगुण हैं। ऐल्यूमिनियम की भाँति वेरिलियम को वायु मे गरम करने पर, उसकी सतह पर ऑक्साइड की पतली परत जम जाती है, जो ऑक्सीजन के अधिक आक्रमण को रोकती है। वेरिलियम धातु अम्लो द्वारा घुल जाती है, परतु उसके लवण शीघ्र जलविश्लेपित होते हैं। वेरिलियम धातु हैलोजन तत्वो से उच्च ताप पर अभिक्रिया कर, यौगिक बनाती है। १,२००° सें० ताप पर वेरिलियम कार्बन और नाइट्रोजन से अभिक्रिया करता है।

यौगिक — वेरिलियम दो सयोजकता के यौगिक बनाता है। वेरिलियम की ऑक्सीजन से अभिक्रिया द्वारा वेरिलियम ऑक्साइड वे, ऑ (BeO) बनेगा। यह उच्च गलनाक (२,५५०° सें०) का उष्मसह (refractory) पदार्थ है। इसका अपचयन करना कठिन कार्य है। इन गुणो के कारण इसका उपयोग प्रकाश उद्योग मे प्रदीप्त दीपकों (fluorescent lamps) के बनाने में होता रहा है, परतु विषैला होने के कारण इसका उपयोग कम हो गया है। वेरिलियम ऑक्साइड की मूपाएँ बनाई जाती हैं, जो मजबूत, निष्क्रिय और उच्च ताप को सहन कर सकती है। वेरिलियम ऑक्साइड अम्लो मे घुलकर लवण बनाता है। वेरिलियम लवण मे अमोनिया मिलाने पर, वेरिलियम हाइड्रॉक्साइड, वे, (ऑ हा)२ [$Be(OH)_2$] अवक्षेपित होता है, जो वेरिलियम लवण के विलयन मे घुल सकता है। इस कारण हाइड्रॉक्साइड को अवक्षेपित करने के लिये अधिक मात्रा मे अमोनिया की आवश्यकता पडती है। वेरिलियम ऑक्साइड तथा हाइड्रॉक्साइड ये दोनो ही सान्द्र क्षार विलयन म विलेय होकर, सो२वे२ऑ२ (Na_2BeO_2), रूप के यौगिक बनाते हैं। इसको उबालने या तनु करने पर, फिर हाइड्रॉक्साइड अवक्षेपित हो जाता है।

वेरिलियम नाइट्रेट, वे (ना ऑ३)२ [$(Be NO_3)_2$], और सल्फेट, वे ग ऑ४ ४ हा२ऑ ($BeSO_4\ 4H_2O$), वेरिलियम ऑक्साइड पर नाइट्रिक अम्ल या सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त होते हैं।

वेरिलियम लवण विलयन में अमोनियम कार्बोनेट, (ना हा४)२ का ऑ३ [$(NH_4)_2CO_3$], डालने पर वेरिलियम कार्बोनेट का अवक्षेप प्राप्त होगा, जो अधिक अमोनियम कार्बोनेट मिश्रित करने पर अमोनियम वेरिलियम का द्विगुण (double) कार्बोनेट बनेगा जो विलेय है।

वेरिलियम, कार्बन की उच्च ताप पर अभिक्रिया द्वारा, वेरिलियम कार्बाइड, वे२का (Be_2C), बनाता है, जो जलवाष्प से मद गति से अभिकृत होता है। गरम वेरिलियम धातु पर हाइड्रोजन क्लोराइड, हाक्लो (HCl), प्रवाहित करने पर वेरिलियम क्लोराइड बनता है। वेरिलियम के अन्य हैलाइड भी ज्ञात हैं।

वेरिलियम के अनेक कार्बनिक यौगिक बनाए गए हैं। ऐसीटिक अम्ल की वेरिलियम हाइड्रॉक्साइड पर अभिक्रिया से क्षारीय वेरिलियम ऐसीटेट, (का हा३ काओऑ)६ वे४ ऑ [$(CH_3COO)_6 Be_4O$] बनता है, जो जल मे मे अविलेय है, परतु अनेक कार्बनिक विलायक (ऐल्कोहॉल, ईथर, क्लोरोफार्म, ऐसीटिक अम्ल) मे विलेय है। इसी प्रकार प्रोपियोनेट, ब्यूटिरेट भी निर्मित हुए हैं।

वेरिलियम यौगिक विषैला पदार्थ है। इसका वाष्प तथा चूर्ण की धूल आँख, कान, नाक आदि की झिल्ली को और श्वासनलिका को हानि पहुँचाती हैं। इस कारण अनेक उद्योगो मे इनका उपयोग बद कर दिया गया है।

उपयोग — एक्स-रे उपकरणों मे वेरिलियम के गवाक्ष (window) प्रयुक्त हो रहे हैं।

वेरिलियम अनेक मिश्रधातुओ मे काम आता है। जगरोधी इस्पात मे १ प्रति शत वेरिलियम की सूक्ष्म मात्रा मिलाने पर, उससे बना हुआ स्प्रिंग अत्यत कठोर हो जाता है। वेरिलियम-ताम्र मिश्रधातु का स्प्रिंग बनाने मे बहुत उपयोग हो रहा है। यह स्प्रिंग सक्षारण प्रतिरोधी तथा टिकाऊ होता है। अन्य धातुओ मे वेरिलियम की सूक्ष्म मात्रा (०.००५ प्रति शत) मिलाने पर, वे ऑक्सीकरण प्रतिरोधी (oxidation resistant) हो जाते हैं।

परमाणु ऊर्जा मे वेरिलियम का उपयोग बढ रहा है। त्वरक यत्रो अथवा साइक्लोट्रॉन मे वेरिलियम लक्ष्य (target) द्वारा न्यूट्रॉन दड (beams) उत्पन्न किए जाते हैं। वेरिलियम न्यूट्रॉन द्वारा प्रभावित नही होता, परतु उसका वेग कम कर सकता है। इस कारण इसका उपयोग परमाणु रिऐक्टर (atomic reactor) में न्यूट्रॉन मदकन (moderation) के लिये होना प्रारभ हो गया है। पहले इस कार्य के लिये ग्रैफाइट का उपयोग होता था, परतु कम परमाणु भार के कारण वेरिलियम इस कार्य मे ग्रैफाइट से अधिक क्षमतावान् है। ऐसा अनुमान है कि भविष्य मे परमाणु ऊर्जा कार्यो में वेरिलियम का उपयोग और भी बढेगा। [र० च० क०]

विरल धातु, वेरिलियम मुख्यत आग्नेय शिलाओ मे प्रारभिक सहखनिज (accessory) की भाँति प्राप्त होती है। प्रकृति मे लगभग २७ वेरिलियममय खनिज हैं, किंतु आर्थिक स्तर पर केवल बेरिल

ही ऐसा अयस्क है जिसमे सर्वाधिक मात्रा मे बेरिलियम ऑक्साइड की मात्रा (१४ %) होती है। इसमे भी केवल ५ % बेरिलियम होता है। भारतीय बेरिल खनिज में ऑक्साइड का अनुपात ११ से १३ % होता है।

भारत में बेरिल का वितरण — भारत मे बेरिल विपुल मात्रा मे वितरित है। यह कैंब्रियन पूर्व युग के ग्रैनाइटो (granites) तथा नाइसो (gneisses) की पेग्मेटाइटी पिंडो (pegmatitic bodies) मे प्राप्त होता है। अधिक उत्पादक बेरिल निक्षेप बिहार के हजारीबाग, कोडरमा तथा गया क्षेत्रो मे, दक्षिणी और पूर्वी राजस्थान के अनेक भागो मे तथा मद्रास के कोयपुत्तुर और आध्र के नेल्लूरु जिले मे मिलते हैं। विशालतम स्तभी (columnar) बेरिल क्रिस्टलो (crystals) का, जिनकी ऊँचाई १५ से २० फुट, चौडाई ४ फुट तथा भार १० से २० टन तक होता है, खनन राजस्थान की कुछ खानो से किया गया है। हरे एव नीले वर्ण का बेरिल सर्वाधिक सामान्य है, यद्यपि यह अनेक अन्य वर्णों मे भी प्राप्य है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व भारत मे बेरिल का उत्पादन अत्यत अल्प था, किंतु १९४६ ई० के पश्चात् कुछ वर्षो तक इसका उत्पादन २,००० से ३,००० टन तक रहा और आजकल यह १,००० और २,००० टनो के बीच घटता बढता रहता है।

योजनाएँ और भविष्य — एक विशाल प्रारंभिक तथा प्रायोगिक सयत्र, जिससे आणविक शुद्धता का बेरिलियम ऑक्साइड प्राप्त किया जा सके तथा इसको ईंटो के आकार का बनाया जा सके, स्थापित किया जा रहा है। इस सयत्र की उत्पादन क्षमता प्रतिवर्ष लगभग १५ टन बेरिलियम ऑक्साइड की ईंटें होगी।

भू-भौतिकीय एव भू-रासायनिक परीक्षणो द्वारा ही पृथ्वी के गर्त मे छिपी हुई पेग्मेटाइट शिलाओ की वास्तविक स्थिति ज्ञात हो सकती है। वर्तमान समय मे भी बेरिल के भडार प्रचुर एव पर्याप्त हैं। सौभाग्य से भारत मे बेरिल का खनन अभ्रक-उत्पादन से बँधा हुआ है, अत जब तक भारत, अभ्रक-उत्पादन मे विश्व का अग्रगण्य, देश रहेगा तब तब बेरिल उत्पादन भी सह उद्योग की भाँति उन्नत ही रहेगा। [वि० सा० दू०]

बेरी बेरी विटामिन बी$_1$ की कमी से उत्पन्न कुपोषणजन्य रोग है। इसे पॉलिन्यूराइटिस इडेमिका, हाइड्रॉप्स ऐस्थमैटिक्स, काके, बारबियर्स आदि नामों से भी जानते हैं। ससार के जिन क्षेत्रो मे चावल मुख्य आहार है, उनमें यह रोग विशेष रूप से पाया जाता है। इस रोग की विशेषताएँ हैं (१) रक्तसकुलताजन्य हृदय की विफलता और शोथ (आर्द्र बेरीबेरी) तथा (२) सममित बहुतत्रिका शोथ, विशेषकर पैरो मे, जो आगे चलकर अपक्षयी पक्षाघात, सवेदनहीनता और चाल में गतिभगता लाता है (शुष्क बेरीबेरी)। तीव्र तथा उपतीव्र रूपो मे यदि उचित मात्रा में आनेतग, रवेदार विटामिन बी$_1$ रोग की प्रारंभिक अवस्था मे दिया जाय, तो लाभ होता है, पर जीर्ण बेरी बेरी का उपचार उतना सतोषजनक नही है।

रोग कारण — विटामिन वर्ग मे बी$_1$ तत्रिकाशोथ अवरोधी होता है और यह उसना चावल, कुटे और कम पालिश किए चावल मे वर्तमान होता है। मशीन से पॉलिश करने में भूसी के साथ चावल के दाने का परिस्तर और अकुर भी निकल जाता है और इसी भाग मे बी$_1$ प्रचुर मात्रा में होता है। पालिश किया चावल, सफेद आटा और चीनी मे विटामिन बी$_1$ नहीं होता। मारमाइट खमीर, अकुरित दालो, सूखे मेवो और बीजो मे बी$_1$ बहुत मिलता है। अब संश्लिष्ट बी$_1$ भी प्राप्य है। बी$_1$ से शरीर में को-कार्बोक्सिलेज बनता है, जो कार्बोहाइड्रेट के चयापचय मे उत्पन्न पाइरूविक अम्ल को ऑक्सीकरण द्वारा हटाता है। रक्त तथा ऊतियो मे पाइरूविक अम्ल की मात्रा बढने पर बेरीबेरी उत्पन्न होता है। यह बात रक्त मे इस अम्ल की मात्रा जाँचने से स्पष्ट हो जाती है। इसकी सामान्य मात्रा ०.४ से ०.६ मिलिग्राम प्रति शत है, जबकि बेरीबेरी मे यह मात्रा बढकर १ से ७ मिलिग्राम प्रति शत तक हो जाती है। इस दशा मे यदि पाँच मिलीग्राम बी$_1$ दे दिया जाय, तो १० से १५ घटे मे अम्ल की मात्रा घटकर सामान्य स्तर पर आ जाती है। बी$_1$ का अवशोषण शीघ्र होता है और सीमित मात्रा मे यकृत, हृदय तथा वृक्क मे इसका सचय होता है। इसी कारण कमी के कुछ ही सप्ताह बाद रोग उत्पन्न होता है।

विकृति — आर्द्र बेरीबेरी मे ग्रहणी और आमाशय के निम्न भाग की श्लैष्मिक कला मे तीव्र रक्तसकुलता होती है और कभी कभी इससे छोटे छोटे रक्तस्राव भी होते हैं। परिधितत्रिकाओ मे अपकर्ष होता है। हृदय की मासपेशियो मे अपकर्षी परिवर्तन दिखाई पडते हैं, विशेषकर दाईं ओर जहाँ वसीय अपकर्ष होता है। अपकर्ष के कारण यकृत का रूप जायफल सा हो जाता है। कोमल ऊतको मे शोथ तथा सीरस गुहाओ मे निस्सरण होता है।

लक्षण — विटामिन बी$_1$ की क्षीणता आरंभ होने के दो तीन मास बाद बेरी बेरी के लक्षण प्रकट होते हैं बहुतत्रिकाशोथ, धडकन के दौरे, दु श्वास तथा दुर्बलता। रोग जिस तत्रिका को पकडता है उसी के अनुसार अन्य लक्षण प्रकट होते हैं। बेरी बेरी बार बार हो सकती है।

प्रकार — (१) सूक्ष्म (ऐंबुलेटरी) इसमे रोगी सचल रहता है। पैर सुन्न होना, विभिन्न स्थलो का सवेदनाशून्य होना तथा जानु झटके मे कमी इसके लक्षण हैं और आहार मे बी$_1$ युक्त भोजन का समावेश होने से रोग गायब हो जाता है।

(२) तीव्र विस्फोटक बेरी बेरी। यह सहसा आरभ होती है। भूख बद हो जाती है, उदर के ऊपरी भाग मे कष्ट, मिचली, वमन, पैरो के सामने के हिस्से मे सवेदनशून्यता और विकृत सवेदन, सकुलता-जन्य हृदयविफलता, पक्षाघात और तीव्र हृदयविफलता के कारण कुछ घटो से लेकर कुछ ही दिनो तक के अदर मृत्यु।

(३) उपतीव्र या आर्द्र बेरी बेरी इसमे विकृत सवेदन हाथ मे भारीपन, जानु झटके मे आरभ मे तेजी और तब शिथिलता या पूर्ण रूप से अभाव। पिंडली मे स्पर्शासह्यता, सवेदना का कुद होना, अतिसवेदन या सवेदनशून्यता, दुर्बलता, उठकर खडे होने की असमर्थता, पैरों पर शोथ, दु श्वास, श्वासाल्पता, धडकन आदि लक्षण होते हैं।

(४) जीर्ण या शुष्क बेरी बेरी — इसमे शोथ नही होता, पाचन

की गड़बड़ी भी नहीं मिलती, पर मासपेशियाँ दुर्बल होकर सूखने लगती हैं। हृदय में क्षुब्धता, हाथ पैर में शून्यता, पिंडली में ऐंठन और पैर वर्फ से ठंढे रहते हैं। बैठने पर उठकर खड़ा होना कठिन होता है। वैसे पैर की एंटी फूल जा सकती है, या बड़े ऊँचे ढग की चाल हो जाती है।

(५) बच्चों की बेरी बेरी माता में बी$_1$ के अभाव से।

(६) गौण बेरी बेरी अन्य रोगों, यथा पाचनयंत्र के दोष, शराबीपन, पैलाग्रा, गर्भावस्था, मधुमेह, ज्वर आदि, के फलस्वरूप होती है।

(७) सहयोगी बेरी बेरी सर्वविटामिनहीनता, या व्यापक पोषणहीनता-जन्य रोगों में इसका भी हिस्सा रहता है।

निदान — लक्षणों, पोषण के इतिहास, सावधानी से रोगी की परीक्षा एवं मूत्र में विटामिन बी$_1$ की मात्रा देखकर, इसका निदान किया जाता है।

उपचार — बेरी बेरी न हो, इसके लिये उचित पोषण तथा बेरी बेरी जनक रुग्णावस्थाओं में अतिरिक्त मात्रा में बी$_1$ देना आवश्यक है। चिकित्सा है, बी$_1$ के अभाव की पूर्ति, और इसके लिये रवेदार विटामिन बी$_1$ के इंजेक्शन लगाते हैं। [भा० प्र० मे०]

बेरूत (Beirut) स्थिति ३३° ५३' उ० अ० तथा ३५° ३१' पू० दे०। लेबनान गणतंत्र की राजधानी एवं प्रसिद्ध बंदरगाह तथा लिवैंट क्षेत्र का प्रमुख नगर है। यहाँ की जलवायु रूमसागरीय है। त्रिभुजाकार यह नगर रमणीक स्थल पर बसा है। आधुनिक होटल, गिरजाघर, मस्जिदें तथा नाइटक्लबों की अधिकता है। यह मध्य पूर्व देशों का प्रमुख धार्मिक, सांस्कृतिक और व्यापारिक केंद्र है। अमरीकी, फ्रांसीसी, अरबी तथा राजकीय चार प्रमुख विश्वविद्यालय हैं। तटीय रेलमार्ग द्वारा अन्य प्रसिद्ध नगरों से रेल द्वारा जुड़ा है। यहाँ अंतरराष्ट्रीय वायुअड्डा भी है। इतिहास में भी इसका काफी महत्व है। यहाँ से रेशम, ऊन, गोंद, फल, तथा पशुओं से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का निर्यात होता है। रेशम उत्पादन यहाँ का प्रधान धंधा है। इसकी जनसंख्या ५,००,००० (१९६३) है। [रा० प्र० सि०]

बेर्तोलोमो बेनेतो (१४८०–१५५५) इस इतालीय चित्रकार ने वेनिस के जेनेती बेलिना से कलाशिक्षा ग्रहण की। कुछ समय क्रेमोना में रहे, लेकिन फेर्रारा में काम करते रहे। वेनिस स्थित 'मेदोना' का चित्र और बेर्गामो म्यूजियम में रखा सुंदर नैसर्गिक पृष्ठभूमि पर बच्चे के साथ मेदोना का चित्र इसी काल का है। बाद के चित्रों में विशेषत व्यक्तिचित्रों पर कलाकार मिलने के चित्रों का प्रभाव है। उनके रंग चमकदार पर सुसंगत हैं। आकार ठोस, सूक्ष्म और सशक्त हैं। महिलाओं के व्यक्तिचित्रों की रचना में उनकी मौलिकता है। नेशनल आर्ट गेलरी लंदन, फिजा विलियम म्यूजियम, मिलन और बुडापेस्ट की आर्ट गेलरियों में इनके बनाए चित्र हैं। [भा० स०]

बेर्तोलोत्जी फ्रांसेस्को (१७२५–१८१५) फ्लोरेंस के समीप एक देहात में इस इतालीय कलाकार का जन्म हुआ। पिता चाँदी के बर्तनों पर खुदाई करते थे। चित्रकला की ओर बेर्तोलोत्जी की रुचि अधिक होने पर भी पिता ने उन्हें वेनिस के जोजेफ वैगनर के पास खुदाई की कला सीखने भेज दिया। वे कुछ दिन रोम में रहे, वहाँ उन्होंने ग्रान नीरस की नवीन कथा से संबंधित कुछ तश्तरियाँ बनाईं। जार्ज तृतीय के आश्रय में वे सन् १७६४ में लंदन में स्थायी हो गए तथा वहाँ वे रॉयल अकादमी के सदस्य भी रहे। सन् १८०२ में पुर्तगीज राजकुमार रीजेंट ने उन्हें लिस्बन में बुलाकर 'एनग्रेविंग स्कूल' का अधीक्षक बना दिया। वे अंत तक वहीं रहे। [भा० स०]

बेर्नूलि (Bernoulli) स्विट्ज़रलैंड के बाजेल स्थान का प्रसिद्ध परिवार था, जिसमें एक शताब्दी में आठ गणितज्ञों ने जन्म लिया। इनमें से निम्नलिखित तीन अत्यंत महत्वपूर्ण हैं

(१) जेम्स बेर्नूलि (James Bernoulli, १६५४–१७०५ ई०) — बाजेल में १६८७ ई० से मृत्युपर्यंत गणित के प्रोफेसर थे। लाइब्नित्ज़-कलन की सहायता से इन्होंने समकोणाक्ष एवं कोणीय नियामकों में वक्रतीय त्रिज्या का सूत्र और तुल्यकालिक वक्रों पर लाइब्नित्ज़ के साध्य का हल दिया। इन्होंने रज्जुवक्र बेर्नूली के लैमनिस्केट एवं लघुगणकीय सर्पिल पर अनेक पेचीदे साध्यों का आविष्कार किया। १६९६ ई० में इन्होंने प्रसिद्ध 'तुल्य परिमिति के साध्यों' की उपस्थापना की और १७०१ ई० में स्वयं ही उसका हल भी उपस्थित किया। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्स कॉन्जेक्तांदी' (Ars Conjectandi) इनकी मृत्यु के आठ वर्ष पश्चात् चार खंडों में, प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम खंड में टीका सहित हाइगेन्स का संभाव्यता पर लेख, द्वितीय खंड में संचय एवं क्रमसंचय, तृतीय खंड में संभाव्यता के साध्यों के हल और चतुर्थ खंड में प्रसिद्ध बेर्नूली प्रमेय हैं।

(२) जॉन बेर्नूलि (John Bernoulli, १६६७–१७४८ ई०) — दस वर्ष तक ग्रोनिंगन में, और फिर अपने भाई जेम्स की मृत्यु के उपरांत बाजेल में, गणित के प्रोफेसर रहे। गणित में चलराशि कलन को इनकी अपूर्व देन हैं। इन्होंने घातीय कलन, द्रुततमावपात रेखा और परिणम्य घनत्व की एक तह से गुजरनेवाली किरण के पथ से इस रेखा का एक उत्तम संबंध स्थापित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनिर्णीत रूप $\frac{0}{0}$ का मान ज्ञात करने की विधि का अन्वेषण किया, त्रिकोणमिति के साध्यों को वैश्लेषिक ढंग से हल करने का प्रयत्न किया और प्रक्षेपपथ का अध्ययन किया। इनको पैरिस की विज्ञान अकादमी ने अनेक पारितोषिक प्रदान किए थे।

डैनियल बेर्नूलि (Daniel Bernoulli, १७००–१७८२ ई०) — जॉन बेर्नूलि के पुत्र थे। ये आरंभ में पीटर्सबर्ग अकादमी में गणित के, तदुपरांत बाजेल विश्वविद्यालय में प्रयोगात्मक तत्वज्ञान के, प्रोफेसर रहे। इनका गणित संबंधी प्रथम प्रकाशन रिकेटी द्वारा प्रस्तावित अवकल समीकरण का हल था। इन्होंने द्रवगतिविज्ञान पर महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। उत्क्रम त्रिकोणमितीय फलन के लिये इन्होंने ही सर्वप्रथम एक उचित संकेत का प्रयोग किया। संभाव्यता पर इनके अन्वेषण महत्वपूर्ण हैं। इसमें इन्होंने चलन कलन का भी प्रयोग किया। यह नैतिक प्रत्याशा (Moral expectation) के सिद्धांत के जन्मदाता थे, जिसके द्वारा इन्होंने तथाकथित 'पीटर्सबर्ग समस्या' का हल दिया। परंतु आजकल इस सिद्धांत का प्रयोग कोई नहीं करता। पैरिस की विज्ञान अकादमी ने इन्हें दस पारितोषिक प्रदान किए थे। [रा० कु०]

बेर्नूलि संख्याएँ यह नाम भिन्नों की एक श्रेणी को दिया जाता है, जैसे १/६, १/३०, १/४२, १/३०, ५/६६. आदि, जिसको क्रम

से $व_1, व_2, व_3, व_4, व_5$. , [B_1, B_2, B_3, B_4, B_5 .], या उचित समझा जाय तो $व_2$, $व_4$, [B_2, B_4,] आदि चिह्नो से दर्शाया जाता है।

जेकब बेर्नुलि (Jacob Bernoulli) ने इस श्रेणी का प्रतिपादन किया था तथा उन्होने इसका उपयोग प्रथम य (x) पूर्णांको के न (n) घातो का योग निकालने के लिये निम्न प्रकार से किया

$$यो_न = १ + २^न + \quad + य^न =$$

$$\frac{य}{न+१} + \frac{य}{२} - \frac{न}{२} व_१ य^{न-१} + \frac{न (न-१)(न-२)}{४!} . व य^{न-३}$$

$$[S_n = 1 + 2^n + \quad + x^n =]$$

$$\frac{x}{n+1} + \frac{x}{2} - \frac{n}{2} B_1 x^{n-1} + \frac{n(n-1)(n-2)}{4!} . Bx^{n-3} . .$$

इन सख्याश्रो का उपयोग सख्याश्रो के सिद्धात, श्रतरकलन तथा निश्चित समाकलो के सिद्धात से सबधित गणितीय निर्धारणो में किया जाता है।

$\frac{य}{ई^य - १}$ $\left[\frac{x}{e^x - 1} \right]$ के प्रसार मे गुणाकों के सदृश भी इनका उपयोग होता है। [भ० दा० व०]

वेल (बाल) प्रधान बाबुली देवता, जिसका अनेक जातियो मे अनेक देवतापरक अर्थों मे उपयोग हुआ है। सामी बाबुली भाषा मे 'वेल' का अर्थ होता था, स्वामी। वेल विशेषत प्रजनन और उपज का देवता था, वैसे बाबुलियो मे उसका आदर देवराज के रूप मे होता था। बाबुल और निकटवर्ती नगरो मे वेल के अनेक मदिर थे जिनमें उसकी मूर्तियाँ थी। उसके स्वामी अथवा शीर्पस्थ होने से ही इब्रानी मे 'बाल' का अर्थ केश या केशयुक्त पुरुष हुआ। बाल का अर्थ इब्रानी मे, पख, पक्षयुक्त प्राणी और बाण या बाणयुक्त व्यक्ति अर्थात् तीरदाज भी है।

बाइबिल मे 'बाल' का उपयोग स्वामी अथवा पंख के विशेषण के रूप मे अनेक बार हुआ है। जब तक बाबुलियो का प्रभाव यहूदियो, फिनीशियो आदि पर रहा, उन्होने इस शब्द का देवार्थ मे प्रयोग किया और इसी कारण बाइबिल की पुरानी पोथी मे इसका बार बार उल्लेख हुआ है। फिर उसी साधन और अनुष्ठान क्रियाओ के माध्यम से दक्षिण-पूर्वी यूरोपीय देशो मे भी उर्वरता की देवी आश्तोरोथ (आस्तार्ते, ईश्तर) के साथ साथ (जिससे ग्रीको और रोमनो की प्रेमदेवियाँ आफोदीती और वीनस जनमी) बाल की पूजा का श्रीगणेश हुआ। इसी प्रकार कार्थेजी (फिनीशी) हानिबाल और हस्द्रुबाल मे भी उसी देवता का नाम ध्वनित है। खत्तियो (मिस्री फराउन रामसेजकालीन) मे भी बाल की आराधना हुई और मिस्र मे बाल तथा अस्तार्ते दोनो पूजे गए। बाल ने फिर ग्रीकों मे 'बेलोस्' का रूप लिया जिसका एक रूप स्वय जिअस, दूसरा हैरेक्लीज माना गया। असीरिया ने बाबुल की जब सारी सास्कृतिक सपदा अपना ली तो बैल उसका भी आराध्य बना। [भ० श० उ०]

वेल, अलेक्जैंडर ग्राहम (सन् १८४७–१९२२) स्कॉट-अमरीकी वैज्ञानिक थे। इन्होंने एडिनबरा, लदन एव जर्मनी मे शिक्षा, प्राप्त की। सन् १८७१ मे ये कैनाडा की एक मूक एव बधिर पाठशाला में शिक्षक हो गए। थोडे दिन बाद, बोस्टन विश्वविद्यालय मे वाक् कायिकी (Vocal physiology) के प्रोफेसर नियुक्त हुए तथा अपने पिता द्वारा चलाई हुई शिक्षाप्रणाली से मूको एव बधिरो को शिक्षा देते रहे। हेडेनबर्ग विश्वविद्यालय ने, महत्वपूर्ण खोजो के लिये, आपको एम० डी० की उपाधि देकर समानित किया।

सन् १८७६ मे वेल ने अपने टेलीफोन का प्रदर्शन कर सारे ससार को आश्चर्यचकित कर दिया। मानवीय ध्वनि को विद्युत् मे परिवर्तित एव प्रसारित करने का यह पहला प्रयोग था। वेल का टेलीफोन, वेल ग्राही यत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस यत्र मे ग्राही एव प्रेपक यत्र एक ही प्रकार के थे। एडिसन द्वारा निर्मित, कार्बन प्रेपक यत्र का अब अधिकाश मे उपयोग किया जाता है। वेल के दूसरे महत्वपूर्ण आविष्कार, फोटोफोन एव ग्रामोफोन, क्रमश सन् १८८० एवं १८८७ मे हुए।

वेल ने मूक एव बधिर मनुष्यो के लिये महान् कार्य किए और उनकी शिक्षा के लिये मुक्तहस्त से दान दिया। [अ० प्र०]

वेलगाँव (Belgaum) १ जिला, स्थिति १५° २२' से १६° ५८' उ० अ० तथा ७४° २' से ७५° २५' पू० दे०। यह भारत के मैसूर राज्य का एक जिला है। इसके पूर्व मे बीजापुर, दक्षिण मे धारवाड, उत्तरी कन्नड, दक्षिण-पश्चिम मे गोवा, उत्तर में सागली तथा उत्तर-पश्चिम मे कोल्हापुर एव रत्नागिरि जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल ६,३३२ वर्ग मील तथा जनसख्या १६,८३,८११ (१९६१) है। यहाँ कृष्णा, घाटप्रभा, मालप्रभा आदि नदियाँ बहती हैं तथा यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद तथा आनददायक है। जनवरी का ताप लगभग ११° सें० तथा मई का ताप लगभग ३८° सें० रहता है। वर्षा का औसत लगभग ५० इच है। यहाँ की काली तथा लाल मिट्टियो मे कपास, दलहन, तिलहन, ज्वार, बाजरा, धान, गेहूँ आदि उगते हैं।

२ नगर, स्थिति १५° ५१' उ० अ० तथा ७४° ३१' पू० दे०। वेलगाँव जिले का एक नगर है जो सागरतल से लगभग २,५०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ एक प्रसिद्ध किला है जिसमे दो जैन मदिर हैं। असद खाँ की दरगाह तथा साफा मस्जिद दर्शनीय हैं। यहाँ फौजी छावनी भी है। नमक, सूखी मछलियाँ, खजूर, नारियल एव नारियल की जटा का व्यापार होता है। करघा और सूती वस्त्रो का उद्योग प्रमुख है। इसकी जनसख्या १,४६,७९० (१९६१) है। [रा० स० ख०]

वेलग्रेड (Belgrade) स्थिति ४४° ५०' उ० अ० तथा २०° ३७' पू० दे०। यूगोस्लाविया मे जाग्रेब नगर से २३० मील दक्षिण-पूर्व, डैन्यूब तथा सावा नदियो के सगमस्थल पर, मध्य यूरोप से इस्तबूल जानेवाले मार्ग पर स्थित, यूगोस्लाविया की राजधानी एव प्रमुख व्यापारिक नगर है। यहाँ गरमी का ताप १५° सें० तथा जाडे का ताप हिमाक से नीचे रहता है एव वर्षा का औसत २५ इच है। उद्योगों मे कम प्रगति हुई है, फिर भी लोहा, शराब, जूते, शक्कर, मिठाइयाँ, साबुन, चीनी मिट्टी के बरतन, कपडे बनाने तथा गोश्त को डिब्बो मे बद करने का काम होता है। सीसा तथा

उत्तम कोयले की खानें पास ही में स्थित हैं। यह रेल, सडक एव वायुमार्गों का प्रमुख केंद्र है। फिल्मो का निर्माण भी किया जाता है। विश्वविद्यालय के अतिरिक्त सैनिक अकादमी तथा बहुत से विद्यालय हैं। यहाँ बडे पादरी का आवास, दूतावास, ससद भवन, राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा वनस्पति उद्यान देखने योग्य हैं। डैन्यूब नदी पर एक मील लबे बने पुल द्वारा यह पासेबो नगर से जुडा है। १४वी शताब्दी मे यह सर्विया के अधीन होने पर उसकी राजधानी भी रहा है। इसकी जनसख्या ५,६८,३४६ (१९६१) है। [रा० प्र० सिं०]

वेलज़ेबब फिलिस्तीन जाति का देवता। यहूदियो मे 'वेलज़ेबब' शब्द की तीन प्रकार से व्युत्पत्ति दी जाती थी (अधिकतर उपहास करने के उद्देश्य से) (१) वेलज़ेबेल, उर्वरक का देवता, (२) वेलज़ेबुब, मक्खियो का देवता, (३) वेलज़ेबुल, नरक का देवता। फरीसियो ने ईसा पर यह आरोप लगाया कि वह वेलज़ेबब की सहायता से चमत्कार दिखलाते हैं। (मार्क ३,२२)। ईसा ने शैतान को और वेलज़ेबब को अभिन्न माना है (मत्ती, १२,१६)।

स० ग्र० — बाइबिल डिक्शनरी, शिकागो, १९६०। [आ० वे०]

वेलन (Cylinder) प्राचीन काल मे ऐसा विचार था कि यदि एक आयत इस प्रकार घुमाया जाय कि एक भुजा स्थिर रहे, तो दूसरी समातर भुजा एक पृष्ठ बनाती है जिसे बेलन कहते हैं। स्थिर भुजा को अक्ष कहते हैं और दूसरी समातर भुजा को जनक रेखा। ऐसे वेलन को लबवृत्तीय वेलन कहते हैं। मान लीजिए कखगघ कोई आयत है (चित्र १), जो रेखा कख पर घुमाया जाता है, तो कख अक्ष है और घग जनक रेखा है। भुजा खग एक वृत्त बनाती है जिसका केंद्र ख है। वृत्त गचज तथा घढझ वेलन के सिरे हैं। जब घूमनेवाली भुजा सिरो पर लब न हो, तब इसका एक व्यापक रूप प्राप्त होता है (देखें चित्र २)। सिरे इस स्थिति मे भी वृत्त बनाते हैं, जिनके केंद्र अक्ष पर हैं। इन सिरो की लाबिक दूरी वेलन की ऊँचाई कहलाती है। यदि

चित्र (१)

लबवृत्तीय वेलन (चित्र १) को किसी ऐसे समतल से काटा जाय जो अक्ष पर लब न हो, तो परिच्छेद दीर्घवृत्त होता है। सिरो पर इसका प्रक्षेप वृत्त होता है और यदि वेलन (चित्र २) को किसी ऐसे समतल से काटा जाय जो अक्ष पर लब हो, तो परिच्छेद दीर्घवृत्त होता है। यदि वेलन की त्रिज्या त्र (r) हो और ऊँचाई ऊ (h) हो, तो लब वृत्तीय वेलन के सिरो का क्षेत्रफल πत्र² (πr^2) होता है। इसके पृष्ठ का क्षेत्रफल २π त्र ऊ (२π r h) तथा इसका घनफल πत्र²ऊ($\pi r^2 h$) होता है।
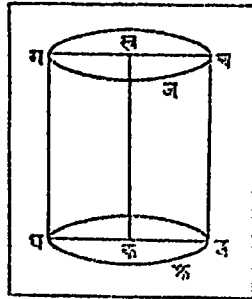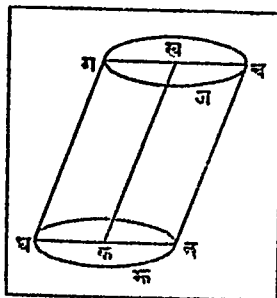
चित्र (२)

गणितज्ञ आर्किमिडीज़ ने, जिसका जन्म ईसा से २२५ वर्ष पूर्व हुआ था, यह ज्ञात किया था कि एक ही आधार और समान ऊँचाई के अर्धगोले, शकु और वेलन के घनफल में १ २ ३ का अनुपात होता है। परन्तु आजकल वेलन का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। यदि एक रेखा का एक सिरा किसी वक्र पर चले और रेखा स्वय अपनी मूल स्थिति के समातर रहे तो इस प्रकार बना हुआ पृष्ठ वेलन कहलाता है (चित्र ३)। रेखा को जनक रेखा और वक्र को नियता कहते हैं। ऐसा पृष्ठ यदि किसी जनक रेखा के सहारे काट दिया जाय, तो वह एक समतल पर विना मोडे तोडे फैलाया जा सकता है। इसीलिये ऐसे पृष्ठ को विकासनीय पृष्ठ कहते हैं। यदि नियता एक वृत्त हो, तो पृष्ठ को वृत्तीय बेलन कहते हैं। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, यदि नियता एक दीर्घवृत्त है, तो पृष्ठ को दीर्घवृत्तीय वेलन कहते हैं। यदि नियता परवलय या अतिपरवलय हो, तो वेलन को परवलयिक या अतिपरवलयिक वेलन कहते हैं। यदि जनक रेखा सिरे के समतल पर लब हो तो इसे लब वेलन कहते हैं। दोनो सिरे समान और समरूपत वक्र होते हैं।
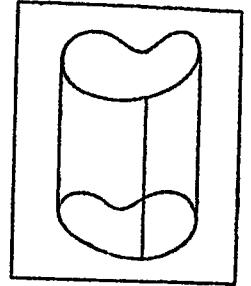
चित्र ३

वेलन की एक दूसरी परिभाषा भी दी जा सकती है। यदि कोई नियता अपने समातर किसी रेखा के सहारे चले, तो इस प्रकार बना हुआ पृष्ठ वेलन कहलाता है। यदि नियता सकेंद्र है, तो जिस रेखा मे केंद्र चलता है वह वेलन का अक्ष कहलाती है। यदि अक्ष मे होकर जानेवाला कोई समतल खीचे, तो यह वेलन को समातर चतुर्भुज में काटता है। यदि वेलन लबवृत्तीय है, तो चतुर्भुज आयत हो जाता है।

यदि किसी शकु का शीर्ष अनत पर स्थित हो, तो शकु वेलन हो जाता है। इस विचार से बहुत से शाकवो के सीमात रूप ज्ञात हो सकते हैं।

लबवृत्तीय वेलन का प्रयोग आजकल प्राथमिक मोटरो, पपों, इत्यादि बहुत सी मशीनो मे किया जाता है, जिनके विषय मे जानकारी बहुत सी मशीन सबधी पुस्तको से प्राप्त हो सकती है। [ऋ० ला० श०]

वेला (Violin) तारवाले वाद्ययत्रो, जैसे सारगी, सितार आदि, में वेला सबसे छोटा, परतु ऊँचे तारत्ववाला वाद्ययत्र है। इसमे एक विशेष प्रकार की अनुनाद मजूषा होती है, जिसके ऊपर से भिन्न भिन्न मोटाई के चार तार एक सेतु से होकर जाते है। तारो का तनाव घूमती हुई खूँटियो द्वारा ठीक किया जाता है।

प्रत्येक तार से जो मूल स्वर उत्पन्न होता है, उसकी आवृत्ति ४३५ होती है। दूसरे प्रकार के स्वरो को पैदा करने के लिये तारो की लबाई को घटाया वढाया जाता है। एक धनु को तारों पर दायें वायें घुमाकर तारो मे कपन उत्पन्न किया जाता है। इस धनु के दोनों सिरे घोडे के बालों से बंधे होते हैं। इस वाद्ययत्र की विशेषता यह है कि इसमे केवल चार ही तार होते हैं।

वेला के नियम बहुत ही जटिल हैं। उनके बारे मे यही कहा जा सकता है कि वे ध्वनि के परिचित सिद्धातों पर आधारित हैं। तारों

की लंबाई और तनाव मे परिवर्तन कर उनसे भिन्न भिन्न प्रकार के स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। वादक की कुशलता इस बात मे है कि वह आवश्यकतानुसार तारो की लंबाई और तनाव मे परिवर्तन कर सके।

तारों से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे अनुनाद मंजूषा प्रबल बनाती है। तारो द्वारा उत्पन्न जटिल कपनो को अनुनाद मजूषा किस प्रकार अभिवर्धित करेगी, यह कई बातों पर निर्भर है। इनमे से कुछ प्रमुख बातें ये हैं भागो मे अनुनाद मजूषा के पत्तरो की विभिन्न मोटाई, मजूषा के भीतरी भाग का आकार और विस्तार, उन ध्वनि रध्रो का आकार और विस्तार जिनमे से होकर मजूषा की भीतरी वायु के कपन बाहरी वायु तक पहुँचते हैं। जिस लकडी से वेला का निर्माण होता है, उसके लचीलेपन और अन्य गुणो का भी बहुत प्रभाव पडता है।

वेला के स्वरो की विशेषता का रहस्य इस बात मे है कि उसके मूल स्वरो मे बहुत से सनादी स्वर मिश्रित होते हैं। वेला के तार बहुत हल्के होते हैं, जिसके कारण बहुत ऊँचे तारत्ववाले सनादी स्वर उत्पन्न होते हैं। इन सनादी स्वरो के कारण ध्वनि उजागर हो उठती है। परतु ताँत (gut) का न्यून लचीलापन इन सनादी स्वरो को शीघ्र ही मद कर देता है, जिससे अततोगत्वा ध्वनि की रूक्षता समाप्त हो जाती है।

वेला के आरभिक निर्माताओ मे इटली के इन व्यक्तियो के नाम उल्लेखनीय हैं गास्पर दा सालो गियोवानी, पाओलो मेगिनी, ग्योविटा गेदियानो। निकोलस अनिती (सन् १५९६–१६८४) ने इसमे कुछ सुधार किए और उसके शिष्य एटिनियो (सन् १६४४–१७३७) ने इसे वह रूप दिया जो आज तक चला आ रहा है। स्ट्रादिवेरी ने वेला का जो नमूना बनाया था और जो १७वी शताब्दी से अब तक चला आ रहा है, उसका विवरण इस प्रकार है - लबाई १४ इच, ऊपर की चौडाई ६$\frac{9}{16}$ इच, नीचे की चौडाई ८$\frac{1}{4}$ इच, ऊपर की ऊँचाई १$\frac{3}{16}$ इच, नीचे की ऊचाई १$\frac{9}{32}$ इच।

इसके अलावा जेकोब स्टेनर ने एक वेला बनाया, जिसकी नकल इग्लैंड और जर्मनी ने १८वी सदी तक की। उसके बाद इसका प्रयोग क्रीमोना वेला के आने से कम हो गया।

वेला बनानेवाले अग्रेजों को तीन समुदायो मे विभक्त किया जा सकता है (१) प्राचीन वेला बनानेवाले, जिनमे रेमान, फेफीलोन, वारक, नॉरमन आदि हैं, (२) स्टेनर के अनुयायी, जिनमे स्मिथ, वैरट, फॉसहिल, नोरेस आदि हैं और (३) क्रीमोना वेला बनानेवाले, जिनमे वैट्स, कार्टर, पार्कर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वेला बनानेवाले फ्रासीसियो में निकोलम, स्लिवेस्ती आदि का उल्लेख किया जा सकता है। [कृ० न० दु०]

वेल्जियम स्थिति : ५१° ३० उ० अ० तथा ५° ०' पू० दे०। यूरोप महाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर स्थित एक देश है। इसका क्षेत्रफल ११,११३ वर्ग मील है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत के हिमाचल प्रदेश से कुछ बडा है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्व मे नीदरलैंड्स, पूर्व और दक्षिण-पूर्व मे जर्मनी एव लक्सेमबर्ग, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में उत्तरी सागर स्थित है। घनी जनसख्या एव पुरानी सभ्यता इस देश की विशेषताएँ हैं।

प्राकृतिक दशाएँ — वेल्जियम को तीन प्राकृतिक भागो मे बाँटा जा सकता है - १ फ्लैंडर्ज और कैंपाइन—सागरतट के बाँधों और बालुकास्तूपो के पूर्व मे सागर सतह के निचले हिस्से को पोल्डर कहते हैं। छिछले समुद्र मे बाँध लगाकर पवन चक्कियों द्वारा पानी को
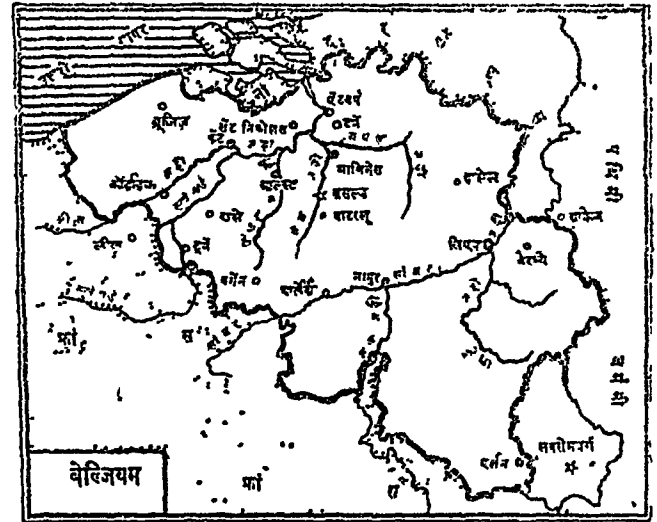
बाहर समुद्र में निकालकर यह भूमि प्राप्त की गई है। इसके दक्षिण-पूर्व की समतल भूमि को फ्लैंडर्ज कहते हैं। वेल्जियम का उत्तर-पूर्वी (कैंपाइन) क्षेत्र मुख्यत बजर है। २ बीच का मैदान और निचला पठार—यह पहले विभाग के दक्षिण-पूर्व मे है। यहाँ की मिट्टी काफी उपजाऊ है। वेल्जियम के प्रधान नगर यही पर स्थित है। ३ दक्षिण-पूर्व का आर्डेन (Ardennes) प्रदेश—यह जगलो से भरा क्षेत्र है जो १,००० से २,००० फुट तक ऊँचा है।

यहाँ की नदियो मे मज, साम्र, स्केल्डे, एव लीस प्रमुख हैं जो दक्षिण-पूर्व मे फ्रास से निकलकर उत्तर-पश्चिम दिशा मे बहती हुई नीदरलैंड्स मे जाकर उत्तरी सागर में गिर जाती हैं।

जलवायु — यहाँ की जलवायु सम है, न जाडो मे अधिक सरदी और न गरमी में अधिक गरमी ही पडती है। यहाँ का औसत ताप १०° सें० है। जाडे मे ताप हिमाक एव गरमी मे २१° सें० तक शायद ही पहुँचता है। वार्षिक वर्षा का औसत ३५ इच है। यहाँ पतझड मे पाए जानेवाले तथा कोणधारी दोनो प्रकार के पेड मिलते हैं।

जनसख्या — वेल्जियम की जनसख्या लगभग ९२,५१,००० (१९६२) है। यह यूरोप में नीदरलैंड्स के बाद सबसे घनी जनसख्यावाला देश है। ब्रसल्ज, ईस्ट फ्लैंडर्ज, वेस्ट फ्लैंडर्ज, लिएज, ब्राबैंट, एनो (Hainaut), लिंबर्ग, चार्लराय तथा नामुर यहाँ के प्रसिद्ध नगर हैं।

कृषि — देश की ६० प्रति शत भूमि पर खेती होती है। जौ, गेहूँ, जई, आलू और चुकदर यहाँ की प्रधान उपजें हैं। कृषि का तरीका उन्नत है। चरागाह अधिक होने के कारण खासकर दूध देनेवाले पशु अधिक पाले जाते हैं।

उद्योग — यह औद्योगिक देश है। कुशल कारीगर, घनी जनसख्या तथा उत्तम यानायात आदि औद्योगिक उन्नति के प्रमुख कारण हैं। लोहा, इस्पात तथा कपडे बनाने के उद्योग प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त, रसायनक, जस्ता, चमडे के सामान तथा शराव बनाने के उद्योग भी होते हैं। ऐंटवर्प मे हीरा तराशा जाता है।

खनिज — यहाँ का प्रधान खनिज कोयला है किंतु खुदाई खर्च अधिक होने के कारण उत्पादन कम होता जा रहा है। कोयला, साब्र और मज नदियो की घाटियो तथा कैंपाइन प्रदेश मे मिलता है।

यातायात — वेल्जियम मे यातायात का जाल ससार के सब देशो से घना है। ऐंटवर्प विश्व के प्रसिद्ध वदरगाहो मे से है। यहाँ हवाई यातायान, टेलिफोन, वेतार के तार तथा टेलिविजन का काफी विस्तार हुआ है।

इतिहास — देश का नामकरण यहाँ के प्राचीन केल्टिक निवासियों वेलजे (Belgae) के नाम पर हुआ है। जूलियस सीजर ने ५१ ई० पू० मे इस इलाके को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया था। तब से करीब पाँच शताब्दियो तक यह रोमन साम्राज्य में रहा। तब से करीब १४ वी शताब्दी तक देश छोटी छोटी रियासतो मे बँटा रहा तथा लडाइयाँ होती रही। लेकिन मध्ययुग मे कम्यूनो का विकास हुआ तथा धीरे धीरे सपन्नता आने लगी और १४वी-१५वी शताब्दी मे तो फ्लैंडर्स को 'पश्चिमी यूरोप का आर्थिक केंद्र' कहा जाता था। १३८४ मे यह इलाका वरगडी के राजा फिलिप द वोल्ड को दहेज मे मिला जिसने एकतत्र राज्य की नीव डाली। बाद मे शाही विवाहो द्वारा वेल्जियम (१५७७ ई० मे) आस्ट्रिया मे और फिर स्पेन मे मिल गया।

१६वी शताब्दी से १८३० ई० तक वेल्जियम पडोसी देशों की अतरराष्ट्रीय राजनीति मे उपहार स्वरूप था। सन् १७१३ मे यह आस्ट्रिया के और १७६७ मे फास के अधीन चला गया। नेपोलियन के पतन के बाद वियना कॉग्रेस के निर्णयानुसार यह नेदरलैंड का एक प्रात बन गया परतु भाषा, धर्म, रहन सहन तथा रीति रिवाजो की भिन्नता के कारण वेल्जियमवालो ने रोजियर के नेतृत्व मे आजादी की घोषणा कर दी। २१ जुलाई, १८३१ को सविधान के अनुसार राजकुमार ल्योपोल्ड को राजगद्दी पर बैठाया गया। इसी तिथि को वहाँ स्वतत्रतादिवस मनाया जाता है। ल्योपोल्ड प्रथम ने देश को सगठित कर नियमित शासनव्यवस्था की नीव डाली।

ल्योपोल्ड द्वितीय ने अफ्रीका मे कागो फ्री स्टेट या वेलजियन कागो की स्थापना की। १९१४ मे जर्मनी ने चढाई कर फ्लैंडर्स के उत्तर पश्चिम के छोटे से इलाके को छोडकर सारे वेल्जियम पर अधिकार कर लिया। पर बाद मे यह फिर स्वतत्र हो गया।

१० मई, १९४० ई० की चढाई मे जर्मनी ने वेल्जियम को फिर जीत लिया। पर ३ सितबर, १९४४ ई० को मित्रराष्ट्रो ने इसको आजाद कर दिया। १९४५ ई० मे राजकुमार चार्ल्स राजा बनाया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वेल्जियम तीव्र गति से उन्नति करने लगा। १९४२ ई० मे इसने नेदरलैंड और लक्जेमवर्ग के साथ मिलकर वेनेलक्स (वेल्जियम नेदरलैंड लक्जेमवर्ग) चुगी सघ का सघटन किया। १९४९ ई० मे यह उत्तरी अटलाटिक सधि सघ (नाटो) का सदस्य बना। १९५७ मे पश्चिमी यूरोप के पाँच देशो के साथ यह यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय का तथा १९५७ ई० मे यूरोपीय साझा वाजार का सदस्य बना। कुल मिलाकर देश इन सघो और समुदायो की सहायता से काफी उन्नति कर रहा है। १९६० ई० मे तो इसने वेल्जियम कागो के उपनिवेश को भी आजाद कर दिया है हालाँकि इससे इसको कुछ आर्थिक क्षति हुई है। [न० प्र० सि०]

वेल्फास्ट १ नगर, स्थिति ५४° ३५' उ० अ० तथा ५° ५६' प० दे०। उत्तरी आयरलैंड मे, आयरिश सागर से १२ मील दूर, लागन नदी के मुहाने पर, डवलिन नगर से ११३ मील उत्तर-पूर्व मे स्थित आयरलैंड की राजधानी, वदरगाह, रेलो का केंद्र तथा अल्स्टर प्रात का सबसे बडा नगर है। यह लागन नदी के दोनो किनारो पर वसा है। यहाँ लिनैन का उद्योग वहुत उन्नत है, इसके अतिरिक्त मलमल, सूती कपडे, तवाकू तथा रस्सा बनाना, हवाई जहाज तथा इजीनियरिंग सबधी काम होता है। वानस्पतिक उद्यान, सग्रहालय, विश्वविद्यालय तथा आर्ट गैलरी देखने योग्य है। द्वितीय महायुद्ध मे यहाँ कई वार बमवर्षा की गई थी। इसका हवाई सपर्क बर्मिघैम, ग्लास्गो, लिवरपूल, तथा लदन से है। यहाँ का प्रमुख हवाई अड्डा वेलफास्ट पहाडी के पीछे है तथा एक छोटा अड्डा नगर के समीप मे भी है। इसकी जनसख्या ४,१३,९०० (१९६२) है।

२ नगर, स्थिति २४° ३०' उ० अ० तथा ६९° ०' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका की वाल्डो काउटी मे, सागर के किनारे पेनॉवस्कॉट खाडी पर, वैंगॉर नगर से ६९ मील दक्षिण स्थित एक नगर है। सुदर भवनो के लिये यह नगर प्रसिद्ध है। इन भवनों में ब्लैसडेल मैंसन (Blaisdell mansion), स्टीफेंसन टेवर्न, जोंसन हाउस, फील्ड होम प्रसिद्ध हैं। लकडी काटने का उद्योग तथा वडे स्तर पर मत्स्य उद्योग होता है। इसकी जनसख्या ५,९६० (१९५०) है। इसी नाम के नगर सयुक्त राज्य, अमरीका के न्यूयॉर्क राज्य तथा न्यूज़ीलैंड एव ट्रैंसवाल मे भी हैं। [सु० प्र० सि०]

वेवरिज, विलियम हेनरी जन्म, १८७९। राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री तथा प्रशासक। सामाजिक सुधारो मे अभिरुचि। १९०८ मे सिविल सेवा में नियुक्ति। प्रथम महायुद्धकाल मे इसने इग्लैंड की राशनिंग प्रणाली का सगठन किया लायड जार्ज का सहायक तथा १९०६ से व्यापार परिषद् का सदस्य रहा। श्रम का निर्देशक। १९३७ मे कमर्शल युनिवर्सिटी कालेज, आक्सफोर्ड, का प्रधान (मास्टर) नियुक्त। १९३४ से १९४४ तक वेकारी वीमा समिति का सभापति तथा सामाजिक सुरक्षा एव सवधित सेवाओं के लिये अतरविभाग समिति का प्रधान। १९४२ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। योजना के अतर्गत इसने सभी ब्रिटिश नागरिको के लिये जन्म से मृत्यु तक सामाजिक सुरक्षा की सिफारिश की। पार्लिमेंट ने उसकी सिफारिशो को कार्यरूप देने के लिये अनेक ऐक्ट पास किए। सामाजिक सुरक्षा के इतिहास मे उसका स्थान अमर है। [उ० ना० पा०]

वेवरिज, हेनरी (१८३७–१९२९) उसका दादा नानवाई था, और पिता, हेनरी वेवरिज, क्रमश पादरी, वैरिस्टर, दिवालिया और भाडे का लेखक रहा। उसकी पुस्तक, कॉम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इडिया

तीन जिल्दो मे १८६२ मे छपी। अत, शैशवकाल से ही हेनरी वेवरिज (छोटा) घर में भारत की चर्चा सुनता रहता था।

शिक्षा क्वीज कालेज, वेलफास्ट मे हुई। भारतीय सिविल सर्विस की तृतीय परीक्षा मे वह सर्वप्रथम रहा, और १८५७ मे भारत आया। यही १८७५ मे उसने अपनी दूसरी पत्नी ग्रानेट (१८४२–१९२९) से शादी की। वगाल की सिविल सर्विस के न्याय विभाग मे ३५ वर्ष सेवा करने के वाद १८९२ मे विना हाईकोर्ट का जज वने, उसने अवकाश ग्रहण कर लिया। तरक्की न पाने का एक कारण यह था कि उसे भारत तथा भारतवासियो से शुरू से ही सहानुभूति थी। १८८८ मे भारतीय सेवाओ के लिये इग्लैंड से आए आयोग के समुख गवाही मे उसने इस बात को न्यायसगत बताया था कि इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा इग्लैड मे नही होनी चाहिए। वह धर्म मे भी अधिक विश्वास नही रखता था।

अवकाश ग्रहण करने के वाद हेनरी और उसकी धर्मपत्नी ग्रानेट ने भारतीय इतिहास के अध्ययन मे ही सारा समय लगाया। ग्रानेट ने पचास वर्ष की उम्र मे अपने पति के प्रोत्साहन से फारसी सीखी और गुलवदन वेगम के हुमायूँनामा का अग्रेजी मे अनुवाद (१९०२) किया, और बाद मे वावरनामा का तुर्की से अनुवाद (१९२२)। हेनरी की प्रथम पुस्तक, हिस्ट्री ऑव वाकरगज १८७६ मे छपी, ट्रायल ऑव नदकुमार १८८६ मे। १९११ मे उसके मआसिर-उल-उमरा (खड १) का अग्रेजी अनुवाद एशियाटिक सोसायटी ऑव वगाल ने छापा, और तुजुक-ए-जहाँगीरी का सशोधित सस्करण १९०९–१९१४ के वीच। उसका सवसे महत्वपूर्ण कार्य अबुलफज़ल के अकवरनामा का अग्रेजी अनुवाद है। यह कार्य उसने १४ वर्ष के परिश्रम के वाद १९२९ मे पूरा किया, और एशियाटिक सोसायटी ऑव वगाल ने इसे १९३९ मे छापा।

इसके अलावा वेवरिज के कतिपय लेख कलकत्ता रिव्यू, एशियाटिक रिव्यू, जर्नल ऑव दी रायल एशियाटिक सोसायटी और एशियाटिक सोसायटी ऑव वगाल मे छपे। १८९९ मे हस्तलिखित पुस्तकों की खोज मे वह दुबारा भारत आया। मृत्यु, ८ नववर, १९२९ को इग्लैड मे हुई। [स० च०]

वेसारेबिया (Bessarabia) स्थिति ४६° २०' उ० अ० तथा २९° ०' पू० दे०। यह सोवियत मॉल्डेविया और यूक्रेनिएन प्रजातत्र का एक अग है। पहले यह उत्तर-पूर्वी रोमानिया का एक प्रात था। इसके उत्तर और पूर्व में नीस्टर, पश्चिम मे प्रूत, दक्षिण मे डैन्यूव नदियाँ तथा दक्षिण-पूर्व मे काला सागर है। इसके उत्तर-पश्चिम मे कार्पेथिऐन पर्वत है। कृषि तथा पशुपालन प्रमुख उद्योग हैं। कारखानो की कमी है। कृषि मे मक्का, गेहूँ, तवाकू और अगूर प्रमुख फसलें हैं। इसका क्षेत्रफल १८,०३५ वर्ग मील तथा जनसख्या २५,२६,६७१ (१९४१) है। [सु० प्र० सि०]

वेहराम जी मलावारी प्रसिद्ध समाजसुधारक, वेहराम जी ने स्त्री समाज को मुक्ति दिलाना अपने जीवन का सिद्धात बना लिया था। भारतीयता के प्रति होते हुए अन्याय या अधर्म के विरुद्ध दादाभाई नौरोजी की लडाई मे वह उनके दाहिने हाथ सदृश थे। वह दिनशॉं-वाचा के पत्रकार जीवन और सार्वजनिक जीवन के मार्गदर्शक थे, भारतीय राजाओ की कुशल चाहनेवाले तथा उनके ऐडवोकेट थे। भारतीय जनता मे और ब्रिटिश शासको मे भी उन्हें सामयिक विषयो पर लेखनी उठानेवाले अपरिमित बुद्धिसपन्न व्यक्ति की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त एक मेधावी कवि, लेखक, विद्वान् और दार्शनिक के रूप में भी उनकी प्रसिद्धि थी क्योकि वे जनसमूह की अवस्था मे सुधार लाने की भावना से प्रेरित थे। आप शासको और शासितो के वीच तथा पूर्व और पश्चिम के वीच सवध जोडने-वाली कडी के सदृश थे, जिनके आदर्श उन्नत थे, जो देशभक्ति की तीव्र भावना से प्रेरित थे, जिनके प्रयास स्वार्थरहित थे और जो शात तथा मौन तरीके से समाजसेवा मे रत थे। वह अपने को कोलाहलपूर्ण राजनीति से प्राय दूर रखते थे।

'इडियन स्पेक्टेटर' नामक आपकी साप्ताहिक पत्रिका का काफी अच्छा प्रचार था। उसकी आवाज ब्रिटिश साम्राज्य की कौंसिल मे और फ्रास तथा अमरीका के पत्रकार ससार मे भी प्रविष्ट होती थी। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से उसे असफलता ही मिली, फिर भी मलावारी इससे निराश नही हुए। उन्होंने पत्रकारिता को कभी आय का जरिए अथवा व्यापार के रूप मे नही देखा। आपका हृदय सदैव गरीवो के साथ था और आपका लक्ष्य था उनका उद्धार और देश का पुनर्निर्माण। आप क्रियाशील राजीतिज्ञ नही थे किंतु आप परोपकारी नागरिक थे जिनके अपने पृथक और अविच्छिन्न नागरिक और राजनीतिक क्रियाकलाप थे। इस तरह की सर्वविदित घटनाओ मे दादाभाई के (वायस ऑव इडिया) 'भारत की आवाज' के प्रकाशन के आत्मत्याग से भरे हुए कार्य मे सहयोग देना महत्वपूर्ण है। यह भावना दादाभाई से ही उत्पन्न हुई थी। इग्लैड के आपके दीर्घकालीन निवास ने इस भावना से आपको प्रेरित किया कि भारत के कल्याण के प्रति और न्यायपूर्ण सुनवाई के लिये यह आवश्यक है कि 'पब्लिक ओपीनियन' के समकक्ष कोई एक मार्मिक पत्रिका इग्लैड मे ही प्रकाशित करवाई जाय। यद्यपि दादाभाई स्वय ही इग्लैड मे भारत की आवाज वन गए थे तथापि आपने सोचा कि अपनी आवाज को वुलद बनाने के लिये ब्रिटिश जनता को अपनी आवश्यकताओ की स्पष्ट रूपरेखा दिखाने के लिये और भारतीय जनता की भावनाओं और इच्छाओ को पूर्ण रूप से उन्हे विदित कराने के लिये ऐसे किसी पत्र का प्रकाशन आवश्यक है। इसलिये दादाभाई ने जब इसका प्रस्ताव किया तो मलावारी ने उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। 'वायस ऑव इडिया' का पहला अक पहली तारीख, सन् १८८३ को प्रकाशित हुआ। दादाभाई ने उसकी आर्थिक रूप से सहायता की तथा मलावारी ने दादाभाई की अनुपस्थिति मे उसे चलाने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया। आर्थिक कठिनाई के कारण १८९० की पहली जनवरी से 'वायस' को 'इडियन स्पेक्टेटर' के साथ मिला दिया गया।

इडियन नेशनल काग्रेस के सत्रारभ के पश्चात् आपने राष्ट्रीय आदोलन के लिये सहयोग प्राप्त करने मे दादाभाई की सहायता की। आप काग्रेस के सदस्य न थे और न हो सकते थे, क्योकि आपने अपने को उस गोल मे नही शामिल किया, यद्यपि काग्रेस के दृष्टिकोण और क्रियाकलापों से आप पूर्ण रूप से सहमत थे। आप स्वय अपने विषय मे कहते हैं

"मैं किसी एक गुट मे प्रवेश नही कर सकता।" 'इडियन स्पेक्टेटर' मे आपने कहा है "एक गोलाई मे कार्य करो। कांग्रेस आदोलन अपने स्थूल रूप मे मेरे जीवन के स्वप्नो मे से एक है लेकिन तुम यदि मुझे उसके बाहरी प्रतीको पर गिरने और उसकी पूजा करने के लिये कहो उसका भारी मच और वार्षिक दृश्य, उसके प्रस्ताव और बहुसख्यक मत इन सबके गौरव को अस्वीकार करता हू। मैं ऐसा नही कर सकता, परतु ऐसा करने के लिये आपसे झगडा नही करूँगा। यदि एक शब्द मे कहा जाय, यद्यपि मैं प्रकृति से कांग्रेस को प्रयोग मे लाने के लिये अयोग्य हूँ, सदैव उसके द्वारा अपने को प्रयोग मे लाने के लिये तैयार रहूँगा।"

स्वतत्रता के लिये राष्ट्रीय सघर्ष मे सहायता प्रदान करने के लिये जो लोग आगे आए उनमे दक्षिण अफ्रीका के पारसियो मे रुस्तम प्रमुख हैं जिनके क्रियाशील सहयोग और उत्साह का गाधी जी ने उदाहरण दिया था। भारत मे एस० आर० बोमनजी, जहाँगीर बोमनजी पेटिट, वी० पी० वाडिया, बरजोरजी बरुचा और नारीमन गाधी जी के असहयोग आदोलन प्रारभ करने के पूर्व होम रूल लीग के प्रमुख समर्थकों में थे। गाधी युग की पारसी आकृतियो मे प्रमुख और रुचिपूर्ण थी वे कुछ पारसी स्त्रियाँ जो उनके सिद्धातो के अनुकूल अपने को निरूपित करके दिखलाती थीं। असहयोग और सत्याग्रह की उन समर्थक स्त्रियो मे दादाभाई की चार पोतियाँ प्रमुख थी जिनका नाम क्रमश गोसप बहन, नरगिस, पेरिन और खुरशीद था। अन्य लोगों मे जैजी पेटिट, मिट्ठू बहन पेटिट और मैडम विकैजी कामा प्रमुख और उल्लेखनीय हैं।

बरजोर जी बरुचा प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होने पारसी राजनीय सभा की स्थापना की और जिन्होंने नवयुवक और नवयुवतियो के मित्र दार्शनिक और पथप्रदर्शक के रूप मे कार्य किया और स्वतत्रता प्राप्त करने के लिये जिसने राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किया। उन नवयुवको मे, जिन्होने नागपुर झडा सत्याग्रह मे बरजोरजी का अनुसरण किया, नारीमन, प्रो० रुस्तम चौकसी थे जो अब टाटा सस और रुस्तम के डाइरेक्टरों मे एक तथा कानूनी सलाहकार और लिखित पत्रो को प्रमाणित करनेवाले अफसरों मे हैं। [रु० म०]

बैंक, इंग्लैंड का यह बैंक इग्लैंड का केंद्रीय बैंक है। अशधारियों के बैंक के रूप मे इसकी स्थापना पार्लिमेट के एक विशिष्ट कानून द्वारा सन् १८४४ मे हुई थी। सन् १९४६ मे सरकार ने एक कानून द्वारा इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया।

बैंक के प्रबधसचालन के लिये एक प्रबधकारिणी समिति है जिसे 'कोर्ट' कहते हैं। कोर्ट मे एक गवर्नर, एक डिप्टी गवर्नर तथा १६ सचालक होते हैं। इन सबकी नियुक्ति इग्लैंड की महारानी द्वारा की जाती है। गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नर की कार्यावधि पाच वर्ष और सचालको की कार्यावधि चार वर्ष होती है पर इन्हें पुन नियुक्त भी किया जा सकता है। 'कोर्ट' की बैठक प्रति सप्ताह सामान्यत गुरुवार को होनी अनिवार्य है और तभी बैंक दर की घोषणा की जाती है।

आंतरिक व्यवस्था के लिये बैंक का कार्य अनेक विभागो मे विभक्त है। प्रत्येक विभाग की व्यवस्था विभागाध्यक्ष के अतिरिक्त प्रबध सचालको तथा गवर्नर और डिप्टी गवर्नर के अधीन होती है। बैंक मे लगभग ७,००० कर्मचारी उसकी दैनिक कार्यवाही सँभालते हैं। निरीक्षण एव कार्यान्वयन के हेतु बैंक में कई स्थायी समितियाँ हैं जिनमे से प्रत्येक को बैंक की क्रियाओ का नीतिनिर्धारण सबधी भार सँभालना पड़ता है। ट्रेजरी समिति (Treasury Committee) सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थायी समिति है जिसम गवर्नर, डिप्टी गवर्नर तथा 'कोर्ट' द्वारा निर्वाचित पाँच सचालक सदस्य होते हैं। बैंक की केंद्रीय बैंकिंग सबधी नीति का निर्धारण ट्रेजरी समिति की स्वीकृति द्वारा ही होता है।

देश का केंद्रीय बैंक होने के कारण, बैंक ऑव इग्लैंड सरकार का बैंकर, एजेंट तथा परामर्शदाता है। सरकारी कोष इसी बैंक मे जमा रहता तथा सार्वजनिक ऋण की व्यवस्था भी उसी बैंक के अधीन है। देश मे नोट जारी करने का एकाधिकार भी इसी बैंक को प्राप्त है। बैंक ऑव इग्लैंड देश मे 'बैंकों के बैंक' के रूप मे भी काम करता है। देश के अन्य बैंक अपने अपने लेखे बैंक ऑव इग्लैंड मे खोलते तथा उनमे निर्धारित राशि जमा करते हैं जिससे केंद्रीय बैंक को देश में प्रत्यय नियत्रण (Credit Control) का एक साधन मिल जाता है और वह समय पर इन बैंको की सहायता भी कर सकता है। इसी प्रकार देश के कटौती गृह (Discount Houses), जो लदन मुद्रामडी की अपनी विशेषता है, इसी बैंक मे अपने अपने लेखे खोलकर राशि जमा रखते और आवश्यकतानुसार ऋण लेते हैं। इन कटौती गृहो के लिये बैंक ऑव इग्लैंड 'अतिम ऋणदाता' (Lender of Last Resort) का काम करता है। देश की मुद्रामडी के साथ सरकार का सपर्क बैंक ऑव इग्लैंड के माध्यम द्वारा ही बना रहता है। मौद्रिक एवं साख सबधी कोई भी सरकारी नीति एव निर्णय इसी बैंक के माध्यम द्वारा देश के बैंकों तक पहुँचता है।

अन्य देशो के साथ इग्लैंड की सरकार के मौद्रिक सबधो के सदर्भ मे भी बैंक ऑव इग्लैंड कुछ महत्वपूर्ण योग देता है, जैसे, विनिमय समकारी लेखे (Exchange Equalization Accounts) का सचालन निदेश विनिमय की व्यवस्था, स्टर्लिंग क्षेत्रीय तथा अन्य देशो के केंद्रीय बैंको के साथ सपर्क रखना तथा अतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सस्थाओ मे इग्लैंड का प्रतिनिधित्व करना। बैंक ऑव इग्लैंड अपने देश की मौद्रिक प्रणाली का निर्माता, प्रवधक एव सरक्षक है। [गि० प्र० गु०]

बैंक तथा बैंककार्य आर्थिक आयोजन के वर्तमान युग में कृषि, उद्योग एव व्यापार के विकास के लिये बैंक एव बैंकिंग व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता मानी जाने लगी है। बैंक उस सस्था को कहते हैं जो जनता से धनराशि जमा करने तथा जनता को ऋण देने का काम करती है। लोग अपनी अपनी बचत राशि को सुरक्षा की दृष्टि से अथवा ब्याज कमाने के हेतु इन सस्थाओ मे जमा करते और आवश्यकतानुसार समय समय पर निकालते रहते हैं। बैंक इस प्रकार जमा से प्राप्त राशि को व्यापारियों एव व्यवसायियो को ऋण देकर ब्याज कमाते हैं। राशि जमा रखने तथा ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त बैंक अन्य काम भी करते हैं जैसे, सुरक्षा के लिये लोगो से उनके आभूषणादि बहुमूल्य वस्तुएँ जमा रखना, अपने ग्राहकों के लिये उनके चेको का सग्रहण करना, व्यापारिक बिलो की कटौती करना, एजेंसी का काम करना, गुप्त रीति से ग्राहको की आर्थिक स्थिति की जानकारी लेना देना। अत बैंक केवल मुद्रा का लेन देन ही नहीं करते वरन् साख का

व्यवहार भी करते हैं। इसीलिये बैंक को साख का सृजनकर्ता भी कहा जाता है। भारतीय बैंकिंग कपनी कानून, १९४९ के अतर्गत बैंक की परिभाषा निम्न शब्दो मे दी गई है

ऋण देना और विनियोग के लिये सामान्य जनता से राशि जमा करना तथा चेको, ड्राफ्टो तथा आदेशो द्वारा माँगने पर उस राशि का भुगतान करना बैंकिंग व्यवसाय कहलाता है और इस व्यवसाय को करनेवाली सस्था बैंक कहलाती है।

ईसा से दो हजार वर्ष पहले भी राशि उधार लेने देने की प्रथा प्रचलित थी। मनुस्मृति में व्याज के बदले राशि उधार देने का पर्याप्त सकेत मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी इस बात का पता चलता है कि प्राचीन काल मे साहूकारी का नियम था परतु व्याज की दर एव राशि वसूल करने के नियम आज जैसे न थे। मध्य एशिया मे हुडी का प्रयोग १२वी शती के आसपास होने लगा जबकि विदेशी व्यापार का क्षेत्र बढने लगा और एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन या राशि (रकम) भेजने की आवश्यकता हुई। मुगल सम्राटो ने धनी महाजनों और साहूकारो को करवसूली के अधिकार सौंपे और उन्हे स्थान स्थान पर कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। जनसाधारण अपनी बचत राशि को इन महाजनो के पास जमा करते और जमा राशि पर महाजन व्याज भी देते थे। आवश्यकता पडने पर लोग इन्ही महाजनो से राशि उधार लेते थे जिसपर उन्हे व्याज देना पडता था। इस प्रकार आधुनिक बैंको का प्रारभ होने के पूर्व महाजन ही बैंकिंग का काम करता था, जिसके पास धन राशि जमा की जाती थी और रुपया उधार भी मिलता था।

अगरेजो ने अपनी व्यापारिक एव मौद्रिक आवश्यकताओ के लिये एजेंसी गृह और ज्वाइन्ट स्टाक बैंक स्थापित किए। १८वी शताव्दी के अत मे औद्योगिक क्राति के परिणामस्वरूप इग्लैंड और यूरोप मे व्यापार की वृद्धि हुई और वहाँ नए नए व्यापारिक बैंक बनते गए। भारत में भी सन् १८०६ मे बैंक ऑव कलकत्ता स्थापित हुआ तथा इसके पश्चात् सन् १८४० तथा सन् १८४३ मे क्रमश बैंक ऑव बवई और बैंक ऑव मद्रास स्थापित किए गए। ये तीन प्रेसीडेंसी बैंक विदेशी पूँजी और सचालन से चलाए गए थे और इनका काम ईस्ट इडिया कपनी के व्यापार मे सहायता करना था। इसी काल मे सन् १८४४ मे बैंक चार्टर ऐक्ट के अनुसार इग्लैंड में बैंक ऑव इग्लैंड बनाया गया। अशधारियो का बैंक भारत में सीमित देनदारी के आधार पर सबसे पहले सन् १८८१ में 'अवध कमर्शियल बैंक' बनाया गया। यद्यपि इससे पहले भी इलाहाबाद बैंक और एलायस बैंक ऑव शिमला बन चुके थे परतु ये दोनों बैंक विदेशी प्रबध में थे। इसके पश्चात् व्यावसायिक बैंको की सख्या बढती गई। सन् १९०६ से लेकर सन् १९१३ तक बैंकों मे काफी वृद्धि हुई। भारत के प्रसिद्ध बैंक, जैसे बैंक ऑव इडिया, सेंट्रल बैंक ऑव इडिया, बैंक ऑव बडोदा इसी बीच स्थापित हुए। परतु सन् १९१३ के बाद बैंको का सकटकाल आया जिसमे अनेक बैंक बद करने पडे। सन् १९१३-१७ के बीच भारत मे लगभग ९० बैंको को अपना व्यवसाय बद करना पडा। प्रथम महायुद्ध समाप्त होने पर बैंको की स्थिति मे पुन सुधार हुआ। सन् १९२१ मे भारत के तीनो प्रेसीडेंसी बैंको को मिलाकर इपीरियल बैंक ऑव इडिया बनाया गया। यह एक सरकारी बैंक था पर जनता के साथ भी लेनदेन करता था। १ अप्रैल, १९३५ को भारत मे रिजर्व बैंक ऑव इडिया की स्थापना की गई।

द्वितीय युद्धकाल मे अनेक नए नए बैंक खोले गए। भारत का युनाइटेड कमर्शियल बैंक इसी काल मे बनाया गया। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् बैंकिंग व्यवसाय मे कुछ शिथिलता आने लगी। बैंकिंग कानूनो मे परिवर्तन सशोधन किए जाने लगे ताकि बैंको के प्रबंध सचालन में कुशलता एव मितव्ययिता आ जाय। भारत का बैंकिंग कपनी कानून सन् १९४९ मे पास किया गया। भारत मे रिजर्व बैंक ऑव इडिया तथा इपीरियल बैंक ऑव इडिया का राष्ट्रीयकरण क्रमश सन् १९४९ और सन् १९५५ मे कर लिया गया।

बैंक की क्रियाओ और सेवाओ को चार वर्गों मे बाँटा जा सकता है . (१) जनता से राशि लेकर जमा करना, (२) जनता को ऋण तथा अग्रिम धन देना, (३) ग्राहको के लिये एजेंट बनकर काम करना, (४) विविध सेवाएँ करना।

राशि जमा करने मे बैंक प्राय तीन प्रकार के लेखे खोलते हैं · (१) चल लेखे, (२) स्थिर लेखे, (३) बचत लेखे। चल लेखे मे जमा राशि बैंक को जमाकर्ता की माँग पर किसी समय भी भुगतान करनी पडती है। अत इसे बैंक की 'माँग देनदारी' भी कहते हैं। स्थिर लेखो मे एक निश्चित अवधि के लिये राशि जमा की जाती है जो अवधि समाप्त होने से पहले नही निकाली जा सकती। यदि कोई जमाकर्ता स्थिर लेखे मे जमा अपनी राशि को अवधि पूर्ण होने से पूर्व निकालना चाहे तो उसे राशि पर व्याज नही मिलता। इस प्रकार की जमा राशि को बैंक 'काल देनदारी' कहते हैं। तीसरे प्रकार की जमा बचत लेखे मे की जाती है। बचत लेखे मे निर्धारित सीमा से अधिक राशि जमा नही की जा सकती। इस प्रकार के लेखे कम आयवाले लोगो की बचत को प्रोत्साहन देने के लिये खोले जाते हैं। कभी कभी विशेष कार्यों के लिये विशेष प्रकार के लेखे भी खोले जाते हैं। उदाहरणार्थ, विवाह के लिये धनराशि सग्रह के हेतु विवाह लेखा, शिक्षा के लिये राशि सग्रह करने के हेतु शिक्षा लेखा आदि।

बैंक द्वारा ऋण तथा अग्रिम कई रूपो मे दिए जाते हैं . (१) सामान्य ऋण एव अग्रिम राशि स्वीकृत करके, (२) अधिविकर्ष द्वारा, (३) नकद साख के रूप मे, (४) बिलो की कटौती करके। बैंक अपने ग्राहकों और अन्य विश्वसनीय व्यक्तियो तथा सस्थाओं को केवल व्यवसाय एव उत्पादन सबधी कार्यों के लिये ऋण देते हैं। ऋण देते समय बैंक ऋणयाचक के नाम से एक लेखा खोलकर उसमे ऋणराशि जमा कर देते हैं जिसके बल पर ऋणयाचक आवश्यकतानुसार समय समय पर चेक लिखकर राशि लेता रहता है। इससे बैंक को सकल ऋणराशि एक साथ ही ऋणयाचक को दे देने की आवश्यकता नही होती जिससे बैंक का हानिभय कम हो जाता है। ऋण वैयक्तिक साख तथा माल की जमानत पर स्वीकृत किए जाते हैं। अधिविकर्ष द्वारा ऋण देने मे बैंक अपने जमाकर्ता को उसके चल तथा बचत लेखो मे जमा राशि से अधिक राशि निकालने का अधिकार दे देता है। पर ऐसा अधिकार प्राप्त करने से पूर्व ग्राहक को अपने बैंक के साथ अधिविकर्ष की राशि, उसकी

अवधि, व्याज की दर आदि मामलो पर निश्चित समझौता करना पडता है। बैंक व्यावसायिक माल की जमानत पर तथा प्रणपत्रो और साखपत्रो की साख पर भी ऋण देते हैं। माल को अपने गोदामो मे रखकर या व्यापारियो के गोदामो मे अपना ताला लगाकर उसकी जमानत पर ऋण दिए जाते हैं। पर इस प्रकार ऋण देने से पहले बैंक माल के वास्तविक मूल्य पर छूट लगा लेते हैं।

बिलो की कटौती द्वारा भी बैंक से ऋण प्राप्त किया जा सकता है। कोई भी मालविक्रेता अपने खरीदार के नाम विनिमय बिल लिखकर उसपर उसकी स्वीकृति प्राप्त करके किसी बैंक से उस स्वीकृत बिल की कटौती करा लेता है। कटौती करने पर बैंक अपना कमीशन काटकर बिल की शेष राशि बिलधारक को दे देता है और फिर बिल की अवधि समाप्त होने पर उसे बिल के स्वीकृतिकर्ता से पूरी राशि मिल जाती है। इस प्रकार दिया गया ऋण प्राय अल्पकालीन होता है।

बैंक अपने ग्राहको के लिये एजेंसी का काम भी करता है। एजेंसी सबधी क्रियाएँ इस प्रकार हैं ग्राहकों के लिये बिलो, चेको तथा प्रणपत्रो की राशि वसूल करना तथा उनकी ओर से चुकाए जानेवाले बिलो, चेको तथा प्रणपत्रो का भुगतान करना, किसी व्यक्ति अथवा सस्था को नियमित रूप से एक निश्चित राशि भुगताना, बीमा कपनियो को प्रव्याजि (बीमा की किश्त) की राशि चुकाना, सरकार को ग्राहको की ओर से आयकर चुकाना तथा उनकी ओर से मालगुजारी चुकाने की व्यवस्था करना, कपनी के अशो पर लाभाश तथा ऋणपत्रो पर व्याज वसूल करना और सरकारी सिक्यूरिटियो का क्रय विक्रय करना, तथा उनके सलाहकार और प्रतिनिधि की हैसियत से काम करना।

साराश यह कि बैंक देश की बिखरी और निठल्ली सपत्ति को केंद्रित करके देश मे उत्पादन के कार्यों मे लगाते हैं जिससे पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है और उत्पादन की प्रगति मे सहायता मिलती है।

एक ही बैंक के लिये व्यापार, वाणिज्य, उद्योग तथा कृषि की समुचित वित्तव्यवस्था करना असभव नही तो कठिन अवश्य होता है। अतएव विशिष्ट कार्यों के लिये अलग अलग बैंक स्थापित किए जाते हैं जैसे व्यापारिक बैंक, कृषि बैंक, औद्योगिक बैंक, विदेशी विनिमय बैंक तथा बचत बैंक। इन सब प्रकार के बैंकों को नियमपूर्वक चलाने तथा उनमे पारस्परिक तालमेल बनाए रखने के लिये केंद्रीय बैंक होता है जो देश भर की बैंकिंग व्यवस्था का सचालन करता है।

बैंकिंग व्यवहार मे बैंक और ग्राहक का सबध प्राय तीन प्रकार मे व्यक्त किया जा सकता है (१) लेनदार का सबध, (१) प्रधान एव प्रतिनिधि का सबध, (३) न्यासी एव प्रत्याशी का सबध। जब बैंक मे ग्राहक की राशि जमा हो, जिसका भुगतान बैंक को ग्राहक के माँगने पर करना पडे तो बैंक ग्राहक का देनदार और ग्राहक बैंक का लेनदार होता है। पर कभी कभी यह सबध विपरीत भी हो जाता है। जब ग्राहक बैंक से ऋण ले अथवा अपने लेखे में जमा राशि से अधिक राशि निकाले तो बैंक ग्राहक का लेनदार और ग्राहक उसका देनदार बन जाता है। सामान्य व्यवहार मे देनदार को, ऋण की अवधि बीतने पर, राशि का भुगतान लौटाना ही होता है चाहे उसकी माँग लेनदार की ओर से हो अथवा न हो। पर बैंक एक ऐसा देनदार होता है जो अपने पास जमा की हुई राशि को ग्राहक के माँगने पर ही लौटाता है, अन्यथा नही। पर यदि ग्राहक बैंक का देनदार हुआ तो उसे ऋण का भुगतान अवधि बीतने पर बैंक के माँगने पर व न माँगने पर भी करना होता है। बैंक द्वारा जमा रूप मे लिए हुए ऋणो के साथ अन्य सामान्य ऋणों की भाँति 'काल मर्यादा नियम' लागू नही होता। ग्राहक के लेखे मे राशि कितने ही समय तक जमा रह सकती है।

बैंक एक ही ग्राहक के विभिन्न लेखो को एकत्र मानकर अपना ऋण वसूल कर सकता है पर ग्राहक बैंक मे अपने विभिन्न लेखो को एकत्र मानकर राशि भुगतान करने के लिये बैंक को विवश नहीं कर सकता।

बैंक को ग्राहक से सामान्य लेनदेन मे आई हुई राशि अथवा सिक्यूरिटियो पर स्वत्व ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है। बैंक को ग्राहक की उन सिक्यूरिटियों पर, राशि पर तथा वस्तुओ पर ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है जो उसके पास किसी विशिष्ट उद्देश्य के हेतु न आई हो वरन् बैंकिग लेनदेन के सामान्य क्रम मे प्राप्त हुई हों। ग्रहणाधिकार के अतर्गत आई हुई वस्तुओ को बैंक बेचकर ग्राहक द्वारा ऋण का भुगतान न होने पर, अपनी ऋणराशि वसूल कर सकता है।

जिस समय बैंक अपने ग्राहक के आदेश से उसके लेखे पर सिक्यूरिटियो का क्रय विक्रय करता है, उसके लेखे पर आयकर, भूमिकर, बीमा की प्रव्याजि का (प्रीमियम), चदा आदि की राशि का भुगतान करता है तो उस स्थिति मे बैंक ग्राहक के प्रतिनिधि के रूप मे काम करता है।

जब तक ग्राहक की धरोहर बैंक के पास रखी रहती है तब तक बैंक ग्राहक का न्यासी तथा ग्राहक बैंक का प्रत्याशी कहलाता है। प्रत्याशी के रूप मे काम करते हुए बैंक को अपने प्रत्याशी के द्वारा जमा की हुई वस्तुओं को बडी सावधानी और सुरक्षा के साथ रखना आवश्यक होता है। इस सेवा के लिये बैंक ग्राहकों से कुछ शुल्क वसूल करते हैं।

बैंक मूलत साख का लेनदेन करते हैं—साख पर जनता से उनकी अतिरेक बचत राशि जमा लेते और उस जमा राशि को अन्य ऋणयाचको को ऋण रूप मे उधार देते हैं। इस प्रकार राशि के लेनदेन के क्रम मे बैंक साख का सृजन करते और साख के सृजनकर्ता कहे जाते हैं। साख की सृजनक्रिया मे जमा, कटौती तथा निर्गमन ये तीन कार्य सनिहित होते हैं। जब बैंक किसी व्यक्ति या सस्था को ऋण स्वीकृत करता है तो वह सामान्यत ऋणराशि नकद रूप मे एक साथ ही नही देता वरन् ऋणराशि को ऋण माँगनेवाले का लेखा खोलकर उसमे जमा कर लेता है और ऋणयाचक को अधिकार दे दिया जाता है कि वह अपने आवश्यकतानुसार चेक लिखकर ऋणराशि निकालता रहे। इस प्रकार एक ओर ऋण स्वीकृत किया जाता है तो दूसरी ओर उसी ऋण की राशि से जमा बना ली जाती है। अत ऋण जमा को जन्म देते हैं।

जब बैंक अपनी जमा राशि मे से ग्राहको को ऋण देता है तो उस समय जमा ऋण की जन्मदात्री होती है और जब बैंक

ऋण स्वीकृत करने मे जमा का निर्माण करते हैं, तो उस समय ऋण जमा के जन्मदाता बन जाते हैं। साख सृजन की तीसरी विधि है बैंक नोट निर्गमन द्वारा। पर यह अधिकार केवल देश के केंद्रीय बैंक को ही मिला होता है।

प्रत्येक बैंक अपनी साख सृजन नीति मे स्वतंत्र होता है तो भी उसे अपनी साख निर्माण की क्षमता मर्यादित करने के लिये अपने पास रखा जानेवाला नकद कोष, केंद्रीय बैंको के पास जमा बैंको का कोष, बैंको के पास जमा धात्विक कोष, ऋण याचको की साख, और देश की सामान्य आर्थिक एव राजनीतिक स्थिति का ध्यान रखना पडता है।

जनता मे धन राशि जमा कराने मे बैंक दो प्रकार का दायित्व अपने ऊपर लेता है—(१) माँग देनदारी, (२) काल देनदारी। माँग देनदारी का भुगतान बैंक को जमाकर्ताओ की वैधानिक माँग होने पर किमी समय भी करना पडता है, और काल देनदारी का भुगतान सामान्यत निश्चित अवधि समाप्त होने पर करना होता है।

ऐसी स्थिति मे बैंक अपने पास जमा कुल राशि को ऋण याचको को उधार नही दे सकता क्योकि उसे यह भय रहता है कि न मालूम कब जमाकर्ता माँग करके अपनी राशि लेने आ जाए। अत ऋण देने से पूर्व बैंक अपने पास कोष मे कुछ नकद राशि बचाकर रख लेता है जिससे समय आने पर उसमे से जमाकर्ताओ की माँग पूरी करता रहे। यह राशि बैंक का नकद कोष कहलाता है। कोई कोई बैंक नकद कोष अपने पास भी रखते हैं और केंद्रीय बैंक में भी जमा करा देते हैं ताकि आवश्यकता पडने पर वहाँ से राशि लेकर जमाकर्ताओ की माँग पूरी कर सकें। नकद कोष बैंक की साख बनाए रखने मे सहायक होता है। नकद कोष बैंक की रक्षा की 'प्रथम पक्ति' कहा जाता है। किसी भी समय नकद कोष की राशि निम्न परिस्थितियो पर निर्भर होती है

(अ) वैधानिक निर्णय, (आ) जमाकर्ताओ की औसत जमाराशि, (इ) लोगो की बैंकिंग आदत तथा प्रवृत्ति, (ई) ग्राहको की सामान्य प्रकृति, (उ) स्थानीय प्रथा एव परिस्थितियाँ, (ऊ) मुद्रामडी की व्यवस्था (ऋ) व्यापारिक परिस्थितियाँ अथवा (ऋ) देश मे समाशोधन गृह की सुविधाएँ। उक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त नकद कोष की मात्रा बैंक अधिकारियो के पूर्व अनुभव, उनकी दूरदर्शिता तथा उस देश की व्यापारिक स्थिति पर निर्भर होती है।

बैंक को जमाकर्ताओ से जो राशि प्राप्त होती है उसे वह दूसरों को उधार देकर व्याज वसूल करता है। इस व्याज की राशि मे से कुछ भाग वह जमाकर्ताओ को उनकी जमा राशि पर व्याज स्वरूप देकर शेष राशि वह अपने पास बचा लेता है। बैंक को अपनी सकल जमा राशि मे से कुछ भाग नकद कोष के रूप में रखकर शेष राशि का सावधानी से विनियोग करना आवश्यक होता है।

बैंक की विनियोग नीति भिन्न भिन्न देशो मे, भिन्न भिन्न अवसरो पर और विभिन्न बैंको के साथ भिन्न भिन्न होती है। प्रत्येक बैंक के लिये अपनी विनियोग नीति निर्धारित करते समय कई बातों का विचार करना आवश्यक होता है। बैंक की राशि का विनियोग इस प्रकार हो कि आवश्यकता होने पर उसे रोकड राशि मे बदलवाया जा सके, विनियोजित मूलधन सुरक्षित रहे, विनियोगो से सतोषजनक आय भी मिले, धनराशि का विनियोग किमी एक ही उद्योग व्यापार में न किया जाय, बैंक की राशि किसी व्यक्तिविशेष को ही ऋण के रूप मे न दी जाय, जमानतो का भली भाँति निरीक्षण कर लिया जाय, जमानत, जिसपर राशि विनियोजित की जा रही है, तरल, सुरक्षित और लाभप्रद हो, और यदि कभी किसी जमानत मे मूल्य का ह्रास होने लगे तो ऋणी से तुरत अन्य जमानत लेकर उस ह्रास को पूरा किया जा सके।

सामान्यत बैंक दो प्रकार से अपनी राशि का विनियोग किया करते हैं (१) व्यवसाय सचालन के लिये भूगृहादि, फर्नीचर आदि वस्तुएँ खरीदकर। इमसे बैंक को कोई आय नही मिलती। (२) अल्पकालीन ऋण देकर, बिलो की कटौती करके तथा सिक्यूरिटियो का क्रय विक्रय करके। इनसे बैंक को आय होती और लाभ मिलता है। लाभ कमाने के लिये बैंक अपनी राशि का विनियोग अल्पकालीन ऋण देकर, बिलो का क्रय करके तथा उनकी कटौती करके, विनियोग पत्र तथा अन्य सिक्यूरिटियो का क्रय करके, अथवा ऋण तथा अग्रिम स्वीकार करके करते हैं। बैंक द्वारा मान्य जमानतें अचल सपत्ति से सबद्ध अथवा वैयक्तिक हो सकती हैं।

सापार्श्विक जमानत ऋण लेनेवाले व्यक्ति की वैयक्तिक साख के अतिरिक्त माल अथवा माल के सबध मे अधिकारपत्र के रूप मे हो सकती है। इसमे सामान्यत तीन अधिकार होते हैं–(१) स्वत्व ग्रहणाधिकार, (२) आधि, और (३) बधक। ग्रहणाधिकार के अंतर्गत बैंक को अधिकार होता है कि यदि ऋणी ऋण का भुगतान न करे तो वह ऋणी द्वारा रखी गई जमानत को अपने अधिकार मे रख ले। बैंक को इस जमानत को बेचने का अधिकार नही होता और यदि वह ऐसा करना ही चाहे तो उसे न्यायालय से तत्सबधी आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक होता है। आधि मे जमानत का स्वामित्व बैंक के नाम पर हस्तानरित हो जाता है पर उस वस्तु पर अधिकार ऋणी का ही होता है। बधक के अतर्गत बैंक को जमानत पर ग्रहणाधिकार करने और फिर उसे उचित सूचना देकर बेचने का भी अधिकार होता है। सापार्श्विक जमानत मे व्यावसायिक माल तथा माल सबधी अधिकारपत्र, जीवनबीमा पत्र तथा स्टाक एक्सचेंज पर बिकनेवाली सिक्यूरिटियाँ होती हैं। सामान्यत बैंक अचल सपत्ति की साख पर ऋण नही देते।

वैयक्तिक जमानत अथवा गारटी दो प्रकार की हो सकती है (१) विशिष्ट राशि के लिये, (२) सपूर्ण राशि के लिये। विशिष्ट गारटी के अतर्गत गारटी करनेवाला व्यक्ति किसी विशिष्ट एव निश्चित राशि की गारटी कर देता है। सपूर्ण गारटी के अतिरिक्त ऋण की सकल राशि की गारटी की जाती है और उसका दायित्व सकल राशि के लिये होता है। गारटी लिखित अथवा मौखिक दी जा सकती है। गारटी लेते समय बैंक को गारटी करनेवाले व्यक्ति की साख एव आर्थिक स्थिति की भली भाँति पडताल कर लेना आवश्यक है जिससे भविष्य मे किसी प्रकार की हानि की सभावना न रहे। बैंक की सफलता अधिकाश मे उसके प्रवधको एव सचालको पर निर्भर होती है। [गि० प्र० गु०]

बैंका (Bangka या Banka) १ द्वीप, स्थिति २° ११' द० अ० तथा १०६° ०' पू० दे०। यह हिंदेशिया के अतर्गत, सुमात्रा द्वीप के उत्तर-पूर्व मे स्थित सुमात्रा द्वीप से बैंका जलडमरूमध्य द्वारा विभक्त लगभग १३८ मील लंबा तथा ६२ मील चौडा द्वीप है जिसका धरातल ऊबड खावड तथा क्षेत्रफल २,७६० वर्ग मील है। यहाँ की सरकार की आय का प्रमुख साधन टिन का विशाल भडार है। टिन के अतिरिक्त जस्ता, लोहा एव तांबा भी खोदा जाता है। कृषि मे धान, कॉफी, जायफल, खैर, कालीमिर्च तथा नारियल का स्थान प्रमुख है। पाकालपिनैग तथा मुटीक प्रमुख नगर हैं। इसकी जनसख्या २,५१,६३६ (१९६१) है।

२ द्वीप, स्थिति ७३° ३०' उ० अ० तथा २०° ०' प० दे०। कैनाडा के उत्तर में आर्कटिक महासागर मे स्थित आर्कटिक द्वीपसमूह का पश्चिमी द्वीप है जो २५० मील लवा तथा २२५ मील चौडा है। इसका सपूर्ण भाग पहाडी है। इसकी खोज सर राबर्ट मैक क्लूअर ने सन् १८५१ मे की थी।

३ दक्षिणी अमरीका मे कोलबिया तट के सामने ५० मील लवा एक द्वीप है।

४ न्यूहैब्रिज़ के उत्तर में गाउआ, वानुआ, वालुआ, लावा आदि छोटे छोटे द्वीपो का समूह है जिनका क्षेत्रफल ३०६ वर्ग मील है।

[सु० प्र० सिं०]

बैंकॉक स्थिति - १३° ४५' उ० अ० तथा १००° ३५' पू० दे०। स्याम की खाडी से १५ मील दूर, मीनाम नदी के मुहाने पर स्थित थाईलैंड (स्याम) की राजधानी तथा बदरगाह है। यह देश का सबसे बडा, सुदर तथा अनूठा नगर है। इस नगर को 'पूर्व का वेनिस' भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ अनेक नहरें एव नदियाँ हैं जिनसे यातायात का कार्य होता है। पानी पर तैरनेवाले अनेक घर भी बने हैं जिन पर लोग स्थायी रूप से रहते है। थाईलैंड का लगभग ३० प्रति शत से ऊपर व्यापार यही से होता है। यह रेलमार्ग तथा उद्योगो का भी केंद्र है। यहाँ का हवाई अड्डा दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रमुख अड्डा है। सयुक्त राज्य सगठन की अनेक सस्थाएँ पूर्वी देशो के लिये यहाँ काम करती हैं। १७६९ ई० से यह थाईलैंड की राजधानी रहा है। बौद्ध धर्म यहाँ का प्रधान धर्म है तथा इसके सैकडो मदिर हैं, जिनमे से कुछ अति प्राचीन तथा भव्य हैं। एक मदिर मे मरकत की बनी बुद्ध की मूर्ति है एव इस मदिर का निर्माण १७८५ ई० मे राजमहल के अदर हुआ था और उसी समय मूर्ति की स्थापना भी हुई थी। मूर्ति के अलकार और रत्नो को साल मे तीन बार बदला जाता है। बैंकॉक के आस पास धान अधिक उगता है। धान की कुटाई बैंकॉक मे ही होती है। यहाँ से चावल बडी मात्रा में जलयानो द्वारा बाहर भेजा जाता है। धान के अतिरिक्त नारियल, रबर, तबाकू, मक्का और साग सब्जियाँ भी उगाई जाती हैं। चावल की मिलो के अतिरिक्त विद्युत् उत्पादन के कारखाने और लकडी चीरने के कारखाने भी है। यहाँ की टीक लकडी बहुत प्रसिद्ध है। कुछ सीमेंट और वस्त्र भी बनते हैं। यहाँ प्राचीन और अर्वाचीन सस्कृति का सम्मिश्रण मिलता है। नगर मे चीनियो के अलावा बरमी, कबोडियन और अनामी भी रहते हैं। इसकी जनसख्या २३,००,००० (१९६०) है।

[सु० प्र० सिं०]

बैंगन भारत का देशज है। प्राचीन काल से भारत में इसकी खेती होती आ रही है। ऊँचे भागो को छोडकर समस्त भारत मे यह उगाया जाता है। बैंगन तुषारग्राही है। मौसम के बाद बोने से फसल अच्छी नही उगती। बैंगन ऐसे पौधे का फल है जो २ से ३ फुट ऊँचा खडा उगता है। फल बैंगनी या हरापन लिए हुए पीले रग का, या सफेद होता है और कई आकार मे, गोल, अडाकार, या सेब के आकार का और लवा तथा बडे से बडा फुटबाल गेंद सा हो सकता है। लवाई में एक फुट तक का हो सकता है।

बैंगन महीन, समृद्ध, भली भाँति जलोत्सारित, बलुई दुमट मिट्टी मे अच्छा उपजता है। पौधों को खेत मे बैठाने के पूर्व मिट्टी में सडी गोबर की खाद तथा अमोनियम सल्फेट उर्वरक प्रयुक्त किया जा सकता हैं। प्रति एकड चार गाडी राख भी डाली जा सकती है।

साधारण तौर पर बैंगन की तीन बोआई हो सकती है (१) जून जुलाई मे बीज डाला जा सकता है और पौधे जब ६" ऊँचे हो जाएँ तब खेत मे रोपा जा सकता है। ११५ से १२० दिनो मे फल लगने लगता है। फल का लगना कम हो जाने पर कभी कभी छँटाई करने से, नए प्ररोह निकलने और उनपर फिर फल लगने लगता है। (२) फरवरी मे बीज बोने से वर्षा ऋतु मे पौधे फल देने लगते हैं। (३) नवबर की रोपाई से फल फरवरी मे लगने लगते हैं। जाडे मे पौधों की वृद्धि कम होती है।

पहली बोआई सबसे अच्छी है और उससे अधिकतम फल प्राप्त होता है। प्रति एकड औसत उपज १००-१५० मन हो सकती है।

बैंगन कई प्रकार के, छोटे से लेकर बडे तक गोल और लबे भी, होते हैं गोल गहरा बैंगनी, लबा बैंगनी, लबा हरा, गोल हरा, हरापन लिए हुए सफेद, सफेद, छोटा गोल बैंगनी रगवाला, वामन बैंगन, ब्लैकब्यूटी (Black Beauty), गोल गहरे रग वाला, मुक्तकेशी, रामनगर बैंगन, गुच्छे वाले बैंगन आदि आदि। बैंगन सोलेनेसी (Solanaceae) कुल के सोलेनम मेलोगना (Solanum melongena) के अतर्गत आता है। इसके विभिन्न किस्म वेरएसक्युलेंटम (var-esculantum), वेर सर्पेटिनम (var-sarpentinum) और वेर डिप्रेसाम (var-depressum) जातियो के है। फल के पकने मे काफी समय लगता है। अत बीज की प्राप्ति के लिये किसी फल को चुनकर, उसमें कुछ चिह्न लगाकर, पकने के लिये छोड देना चाहिए।

बैंगन के रोग और उनकी रोकथाम — (१) बैंगन के फल और प्ररोह छिद्रक ल्युसिनोड आर्बोनेलिम (*Leucinodes orbonalis*) एक पतिंगा होता है, जिसकी सूडी (caterpillar) छोटे तनो और फलो मे छेद कर अदर चली जाती है। इससे पेड मुरझाकर सूख जाते हैं। फल खाने योग्य नही रह जाता और कभी कभी सड जाता है। इसकी रोकथाम के लिये रोगग्रस्त तनो को तुरत काटकर हटा देना और उसे जला देना चाहिए। रोपनी के पहले यदि पौधों पर कृमिनाशक धूल छिडक दी जाय, तो उससे भी सूडी का असर नही होता। एक मास के अतराल पर फसल पर कृमिनाशक ओषधि का छिडकाव करना चाहिए। छिडकाव के पूर्व रोगग्रस्त भाग को काटकर, निकालकर जला देना चाहिए। बैंगन की फसल के समाप्त हो जाने पर उसके ठूँठ मे आग लगाकर जला देना चाहिए और एक वर्ष तक उसमे बैंगन की फसल न बोनी चाहिए।

(२) बैगन के तने का छिद्रक यूज़ोफेरा पार्टिमेला (Euzophera perticella) नामक पतिंगे की सूँडी तने मे छेद कर प्रवेश कर जाती और उसका गूदा खाती है, जिससे पौधो का बढना रुक जाता और आक्रात भाग सूख जाता है। इसके निवारण का उपाय भी वही है जो ऊपर दिया हुआ है।

(३) एपिलेछुआ बीटल्स (Epilachua beetles) नामक जतु पौधों की नई और प्रौढ पत्तियों को खाते हैं। इनकी रोकथाम के लिये पौधो के आकार के अनुसार ५ प्रति शत बी॰ एच॰ सी॰ धूलन का प्रति एकड १० से २० पाउड की दर से, अथवा 'पाइरोडस्ट ४,०००' का प्रति एकड १०–१५ पाउड की दर से छिडकाव किया जा सकती है। [य॰ रा॰ मे॰]

वैंड स्पेक्ट्रम (Band Spectrum) जब किसी पदार्थ को विद्युत् या ऊष्मा शक्ति देकर उत्तेजित किया जाता है तब उससे विभिन्न वर्ण की रश्मियाँ (radiations) निकलने लगती है। स्पेक्ट्रोग्राफ की सहायता से इनका स्पेक्ट्रम प्राप्त किया जा सकता है। यदि पदार्थ को इतनी ऊर्जा दी जाय कि उसके अणु उत्तेजित हो जायँ, किंतु वे टूटकर परमाणुओ मे परिवर्तित न हो, तो उनसे उत्सर्जित रश्मियो के स्पेक्ट्रम मे विभिन्न वर्ण की छोटी छोटी पट्टियाँ, या वैंड, पाए जाते हैं। ऐसे स्पेक्ट्रम को वैंड स्पेक्ट्रम कहते हैं। यदि पदार्थ को बहुत अधिक ऊर्जा दी जाय तो अणु टूट जाते हैं और पदार्थ के परमाणु उत्तेजित हो जाते है। उत्तेजित परमाणुओ से जो स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है, उसमे विभिन्न वर्ण की रेखाएँ पाई जाती हैं। यह स्पेक्ट्रम वैंड स्पेक्ट्रम से सर्वथा भिन्न होता है। वैंड स्पेक्ट्रम अणुओ से प्राप्त होता है। अत इसे आणविक स्पेक्ट्रम भी कहते हैं। ऐसे स्पेक्ट्रम मे प्रत्येक पट्टी या वैंड का एक किनारा अधिक प्रखर दिखाई देता है। इस किनारे को वैंड शीर्ष (band head) कहते हैं। वैंड शीर्ष से परे पट्टी की प्रखरता क्रमश घटती जाती है और दूसरा किनारा बनने से पूर्व ही बहुधा अगले वैंड का शीर्ष आ जाता है, या इस वैंड की प्रखरता शून्य हो जाती है। यदि प्रखरता घटने का क्रम दीर्घ तरग से लघु तरग की ओर होता है, तो वैंड को बैंगनी अवक्रमित (violet degraded) और यदि यह क्रम लघु से दीर्घ तरग की ओर होता है, तो वैंड को लाल अवक्रमित (red degraded) कहते हैं। अच्छे स्पेक्ट्रॉस्कोप से देखने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक वैंड अनेक सूक्ष्म रेखाओ का क्रमिक समुदाय होता है। शीर्ष की ओर ये रेखाएँ अत्यधिक सघन होती जाती हैं और पूँछ की ओर क्रमश विरल होती जाती हैं।

वैंड स्पेक्ट्रम मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं, अवशोषण स्पेक्ट्रम (absorption spectrum) और उत्सर्जन स्पेक्ट्रम (emission spectrum)। पदार्थ के वाष्प को उचित ताप और दाब पर किसी नली मे बद कर दिया जाय और उसमे से अविरल रश्मियाँ भेजी जायँ, तो वाष्प द्वारा कुछ रश्मियाँ अवशोषित हो जाती हैं। किसी पदार्थ का वाष्प अत्यत उच्च ताप पर जिन रश्मियो को उत्सर्जित कर सकता है उन्ही रश्मियो को वह कम ताप पर अवशोषित करता है। अत नली से बाहर आनेवाली रश्मियो के अविरल स्पेक्ट्रम मे काले काले वैंड पाए जाते हैं। ऐसे स्पेक्ट्रम को अवशोषण स्पेक्ट्रम कहा जाता है। बहुत सी गैसो मे कम दाब पर विद्युद्विसर्जन कराने से भी वैंड स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। इन्हे उत्सर्जन स्पेक्ट्रम कहते हैं। ठोस और द्रव पदार्थो से अवशोषण और उत्सर्जन वैंड स्पेक्ट्रम प्राप्त करने के लिये उन्हें वाष्प के रूप में परिवर्तित किया जाता है। बहुत से पदार्थ पराबैंगनी किरणो के प्रभाव से चमकने लगते हैं और उनसे दृश्य प्रकाश निकलने लगता है। इसे प्रतिदीप्ति और स्फुरदीप्ति कहते हैं। इन विधियो द्वारा भी वैंड स्पेक्ट्रम प्राप्त किए जाते हैं।

स्पेक्ट्रम में वैंड व्यवस्था — सर्वप्रथम १८८५ ई॰ मे डिलाड्रे (Deslandres) ने आणविक स्पेक्ट्रम के वैंडशीर्षो की तरग-सख्याओ को सूत्रबद्ध करने का प्रयत्न किया और उन्हे नियमानुकूल सजाने के लिये एक सारणी बनाई, जिसको डिलाड्रे सारणी (Deslandres table) कहते हैं। स्पेक्ट्रम के जिन वैंडशीर्षो की तरग सख्याएँ एक ही सारणी मे रखी जा सकती हैं, वे सभी वैंड मिलकर एक वैंडप्रणाली (band system) बनाते हैं। प्रत्येक प्रणाली में वैंडों के छोटे छोटे समूह पाए जाते हैं। इन्हे डिलाड्रे सारणी की किसी एक ही पक्ति या एक ही कॉलम मे भरा जा सकता है। इन छोटे समूहो को वैंड अनुक्रम (Band sequences) कहते हैं। प्रत्येक वैंड अनेक रेखाओ का क्रमिक समुदाय होता है। अधिक विक्षेपण तथा विभेदनक्षमतावाले स्पेक्ट्रोग्राफ से किसी वैंड का फोटो लेने पर ये रेखाएँ स्पष्ट हो जाती हैं और इन्हे दो, या दो से अधिक, श्रेणियो मे सूत्रबद्ध किया जा सकता है। जिन द्विपरमाणुक अणुओ के परमाणु हल्के होते हैं, उनके वैंड की रेखाएँ अपेक्षाकृत विरल होती हैं। भारी अणुओ के वैंड स्पेक्ट्रम क्रमश- क्लिष्ट होते जाते हैं और उनके प्रत्येक वैंड की रेखाएँ बहुधा दर्जनो श्रेणियो मे बाँटी जा सकती हैं।

सैद्धातिक विवेचन — वैंड स्पेक्ट्रम अणुओ की उत्तेजना से प्राप्त होते हैं। द्विपरमाणुक अणुओ के स्पेक्ट्रम की रचना बहुपरमाणुक अणुओ के स्पेक्ट्रमो की अपेक्षा अधिक सरलतापूर्वक समझी जा सकती है। जिस प्रकार परमाणुओ के न्यूक्लियस के चारो ओर इलेक्ट्रॉन घूमते रहते हैं, उसी प्रकार अणु मे भी इलेक्ट्रॉनो की नियत कक्षाएँ होती हैं, जिनमे ये भ्रमण करते रहते हैं। प्रत्येक कक्षा मे इनकी सख्या नियत रहती है। सबसे अतिम कक्षा के इलेक्ट्रॉन अधिक स्वतत्र होते हैं। उन्हें ऑप्टिकल इलेक्ट्रॉन भी कहा जाता है। इलेक्ट्रानों के कोणीय आवेग के कारण परमाणु मे इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा पाई जाती है। किसी इलेक्ट्रॉन के कोणीय आवेग का मान $\frac{h}{2\pi}$, $\frac{2h}{2\pi}$, $\frac{3h}{2\pi}$ या $\frac{\Lambda h}{2\pi}$ ही हो सकता है। इन मूल्यो के अतिरिक्त अन्य मान के कोणीय आवेग असभव हैं। इस अनुबध या शर्त को क्वाटम अनुबध (Quantum Condition) कहते हैं। Λ को कोणीय आवेग की क्वाटम सख्या कहते हैं। इसी के आधार पर अणु की इलेक्ट्रानिक स्थितियो का भिन्न भिन्न नाम रख दिया गया है। यदि $\Lambda = 0, 1, 2, 3,$ हो तो इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा स्थितियों (energy states) का नाम क्रमश $\Sigma, \pi, \Delta, \phi$. होता है। किसी अणु की इलेक्ट्रॉनिक स्थितियो की सख्या ऑप्टिक इलेक्ट्रानो की सख्या पर निर्भर करती है। बहुधा एक से अधिक ऊर्जास्थितियाँ पाई जाती है, किंतु इनमे जिस स्थिति का ऊर्जामान सबसे कम होता है, अधिकाश अणु सामान्य ताप पर उसी

स्थिति मे रहते हैं। जब ऊष्मा, या विद्युच्छक्ति, या किसी अन्य प्रभाव से कोई ऑप्टिकल इलेक्ट्रॉन उत्तेजित हो जाता है तब वह अगली उच्चतर ऊर्जास्थिति मे चला जाता है। परतु शीघ्र ही वह पहली स्थिति मे वापस आ जाता है। इलेक्ट्रॉन के उच्चतर ऊर्जास्थिति मे सक्रमण (transition) करने से, दोनो स्थितियो के अतर के बराबर ऊर्जा विकीर्ण होती है। इसी ऊर्जा से स्पेक्ट्रम बनता है। यदि निम्न ऊर्जास्थिति मे अणु की इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा E और अगली स्थिति मे E' हो, तो इलेक्ट्रॉन के सक्रमण से $(E'-E=h\nu)$ ऊर्जा उत्सर्जित होती है।

प्रत्येक इलेक्ट्रॉन अपनी धुरी पर भी लट्टू की भाँति नाचता है। इस गति को चक्रण (spin) कहते हैं। चक्रण के कोणीय आवेग का मान $\pm\frac{1}{2}\ h/2\pi$ होता है। इस आवेग के कारण अणु की प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक स्थिति 'द्विधा' 'त्रिधा'.. पाई जाती है, अर्थात् एक ऊर्जा स्थिति के अत्यत पास पास एक या दो और स्थितियाँ भी पाई जाती हैं। इन द्विधा, त्रिधा, आदि स्थितियो को Σ, π, आदि चिह्नों के शीर्ष पर बाईं ओर छोटे से अक द्वारा व्यक्त कर दिया जाता है, जैसे $^2\Sigma$, $^3\Delta$, $^2\phi$ इत्यादि।

अणु मे इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा के अतिरिक्त कपनजन्य ऊर्जा और घूर्णनजन्य ऊर्जा भी होती है। अणु के दोनो परमाणु सरल आवर्त गति से कपन करते रहते हैं। इसमे अणु मे कपनजन्य ऊर्जा पाई जाती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अणु अपने गुरुत्वकेंद्र से जानेवाले किसी अक्ष पर घूर्णन भी करता है। इसके कारण अणु मे घूर्णनजन्य ऊर्जा होती है। इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा का मान बहुत अधिक होता है। कपनजन्य ऊर्जा का मान उससे कम और घूर्णनजन्य ऊर्जा का मान सबसे कम होता है। जिस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा के सभी मान सभव नही होते, उसी प्रकार कपन और घूर्णनजनित ऊर्जा के भी सभी मान सभव नहीं हैं। इस तथ्य को ऊर्जा का क्वांटीकरण (quantization) कहा जाता है।

अणु की विभिन्न ऊर्जास्थितियों को तरगसख्या (Wave number) से व्यक्त किया जाता है और प्रत्येक स्थिति को ऊर्जास्तर (Energy level) कहते हैं। सभी प्रकार के स्तरो को क्षैतिज रेखाओं द्वारा भिन्न भिन्न ऊँचाई पर व्यक्त किया जाता है। इससे स्पेक्ट्रम की रचना समझने मे सुविधा होती है। ऐसे लेखाचित्रो को ऊर्जास्तर चित्र कहते हैं।

अत्यत कम ताप पर अणु मे केवल घूर्णनजनित ऊर्जा ही पाई जाती है, अत. निम्न ताप पर केवल रेखाएँ मिलती हैं। घूर्णन ऊर्जास्तरो को निम्नलिखित सूत्र से व्यक्त किया जाता है $F=BJ\ (J+1)$, जहाँ F घूर्णनजन्य ऊर्जा का मान तरगसख्याओं मे है, B स्थिर राशि है तथा J घूर्णन की क्वांटम सख्या है, जो Λ की भाँति विभिन्न घूर्णन कोणीय आवेग का मान $h/2\pi$ के गुणकों मे व्यक्त करती है। जब अणु एक घूर्णन ऊर्जास्तर से दूसरे घूर्णन ऊर्जास्तर पर सक्रमण करता है, तब सबद्ध ऊर्जास्तरो के अतर के बराबर ऊर्जा उत्सर्जित, या अवशोषित, होती है और उसकी आवृत्ति (frequency) तरग सख्या के रूप मे निम्न सूत्र से व्यक्त होती है

$$\bar{\nu}=F''-F'=B'J'\ (J'+1)-B''J''\ \ (J''+1)\text{।}$$

कपनजन्य ऊर्जा को $G\ (v)=w\ (v+\frac{1}{2})$ से व्यक्त करते हैं, किंतु जब घूर्णन और कपन साथ साथ होते हैं, जैसा वास्तव मे पाया ही जाता है, तो $G\ (v)=w_e\ (v+\frac{1}{2})-w_e\ x_e\ (v+\frac{1}{2})^2+\ .$ से कपनजन्य ऊर्जा का मान व्यक्त किया जाता है। इन सूत्रो मे w या w_e किसी इलेक्ट्रॉनिक स्थिति मे अणु की मूल कपनावृत्ति (fundamental frequency) है और v कपन की क्वांटम सख्या है।

जब अणु को ऊष्मा या विद्युच्छक्ति देकर उत्तेजित किया जाता है, तब उसकी सभी प्रकार की ऊर्जास्थितियों मे परिवर्तन होता है और विभिन्न स्थितियो मे सक्रमण होने से पूरा स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। घूर्णन की ऊर्जास्थितियो मे सक्रमण होने से प्रत्येक बैंड की रेखाएँ बनती हैं, कपनजन्य ऊर्जा स्थितियो के सक्रमण से बैंड समुदाय बनते हैं और जितने बैंड किन्ही दो नियत इलेक्ट्रॉनिक स्थितियो के सक्रमण से सबद्ध होते हैं, वे सब मिलकर एक बैंडप्रणाली बनाते हैं।

अणु का भार ज्यो ज्यो बढ़ता जाता है, घूर्णन सरचना (rotational structure) क्लिष्ट होती जाती है। तीन या चार परमाणुवाले अणुओं की घूर्णन सरचना अत्यंत क्लिष्ट होती है। वैज्ञानिकों ने बहुत से ऐसे अणुओ की घूर्णन सरचना का अध्ययन करने मे सफलता प्राप्त की है। बहुपरमाणुक अणुओं की घूर्णन सरचना का अध्ययन अब तक सभव नही हो सका है। बेंजीन अणु मे १२ परमाणु होते हैं। हाल ही मे इसकी घूर्णन सरचना का अध्ययन सन् १९५३ में स्टायचेफ (B Stoicheff) द्वारा किया गया है। बहुपरमाणुक अणुओं के कपनजन्य स्पेक्ट्रम प्राप्त करना भी प्राय असुविधाजनक होता है, क्योंकि अधिक ऊर्जा पाने पर वे टूटकर परमाणुओं और छोटे अणुओ मे परिवर्तित हो जाते हैं। बहुधा रमन प्रभाव द्वारा और इन्फ्रारेड तथा अवशोषण स्पेक्ट्रम लेकर इनका अध्ययन किया जाता है।

बैंड स्पेक्ट्रम के अध्ययन से अणुओ की सीमात इलेक्ट्रॉनिक सरचना (periferal electronic structure) का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। रेखाओं की दीप्ति तथा अन्य गुणों के आधार पर स्रोत का ताप ज्ञात किया जा सकता है। बैंड स्पेक्ट्रम के अध्ययन से समस्थानिक परमाणुओं का पता लगाना सुविधाजनक होता है। बैंड स्पेक्ट्रम की घूर्णन सरचना के अध्ययन से न्यूक्लियस का चक्रण भी ज्ञात किया जा सकता है। [अ० कु० ति०]

बैडमिंटन खेल का विकास और प्रचलन भारत से ही हुआ है, यद्यपि यह कहा जाता था कि सन् १८६० के पूर्व यह खेल इग्लैंड के ग्लॉस्टरशिर नामक स्थान पर ड्यूक ऑव ब्यूफोर्ट के सरक्षण मे प्रारभ हुआ।

बैडमिंटन मुख्यत कमरे के अदर (indoor) खेला जानेवाला खेल है। बैडमिंटन हाल की ऊँचाई बीच मे २५ फुट से अधिक होनी चाहिए। पक्षियो के परो से बना चिड़ियोंनुमा फूल टेनिस के सदृश बल्ले से खेला जाता है। एक इच व्यास के गठे हुए काग के चतुर्दिक १६ कलहसी के पर एक दूसरे मे गोलाई से इस तरह गुँथे होते हैं कि ऊपर की ओर खुलकर इसका व्यास २½ इच हो जाता है। चिड़िया (shuttlecock) की लबाई ३½ इच होती है और जो रैकेट (racket) उपयोग मे लाया जाता है, उसका भार ५½

श्राउस से अधिक नही होना चाहिए। यह खेल दो अथवा चार खिलाडियो के बीच खेला जाता है। जब एकल (Singles) के मैच होते है, तो खेल का मैदान (court) ४४ फुट लवा तथा १७ फुट चौडा रहता है। युगल खेल के समय मैदान २० फुट चौडा कर दिया जाता है। मैदान के बीचो बीच २½ फुट चौडा जाल रहता है, जो दो पक्षो को विभक्त करता है। यह जाल ५ फुट ऊँचाई पर बाँधा जाता है।

प्रारभ मे जाल के निकट रैकेट घुमाकर टॉस किया जाता है और जीतनेवाले खिलाडी को मैदान का कोई भाग, अथवा सर्विस, चुनने का मौका मिलता है। चिडिया के कागवाले भाग को रैकेट से मारा जाता है। सर्विस के समय चिडिया जाल को स्पर्श किए विना ऊपर से जानी चाहिए और सर्विस करनेवाले खिलाडी का अगला पैर उठा हुआ न हो। साथ ही निशाना मारने पर चिडिया विपक्ष कोर्ट की सर्विस लाइन के बाद ही गिरनी चाहिए, अन्यथा दोनो स्थितियो मे नियमानुसार सर्विस समाप्त मानी जायगी।

जिसके पक्ष मे सर्विस मिलती है, वह खिलाडी खेल प्रारंभ करता है। रैकेट से चिडिया को दूसरे पक्ष की ओर मारा जाता है और यदि विपक्षी खिलाडी रैकेट से मारकर चिडिया लौटाने मे विफल हो जाता है, या चिडिया जाल से टकराकर विपक्षी क्षेत्र मे ही गिर जाती है, तो उसके लिये सर्विस करनेवाले खिलाडी को एक अक मिलता है। यदि गलती सर्विस करनेवाले खिलाडी की हो, तो सर्विस दूसरे खिलाडी को मिल जाती है। युगल (Doubles), खेलो मे एक ओर के दोनो खिलाडियो को वारी वारी से सर्विस मिलती है।

इस प्रकार अक उसी खिलाडी को मिलता है जिसकी सर्विस के समय विपक्षी खिलाडी गलती करता है। जब किसी खिलाडी के १५ अक हो जाते है, तव उसे विजयी घोपित किया जाता है। महिलाओं तथा वच्चो के खेलो मे अधिकाशत विजयी अक ११ होता है। यदि दोनो प्रतिद्वद्वियो के अक १४-१४ है, तो विजय तब तक नही होगी जब तक एक खिलाड़ी लगातार दो अक प्राप्त न कर ले। कही कही विजयी अक २१ माना गया है।

पहले वैडमिंटन खेल मे 'वुड' का नियम था, अर्थात् रैकेट की लकडीवाले भाग से निशाना लगने पर वह अनियमित माना जाता था और विपक्ष को एक अंक मिलता था, पर अव यह नियम समाप्त कर वैडमिंटन के खेल को सरल वना दिया गया है।

भारत मे इस शताव्दी के तीसरे दशक के प्रारभ मे 'वैडमिंटन ऐसोसिएशन ऑव इडिया' की स्थापना के वाद, इस खेल को महत्व प्राप्त हुआ और १९३४ ई० से राष्ट्रीय वैडमिंटन प्रतियोगिता शुरू हुई, जो प्रति वर्ष दिसवर के आस पास होती है। इस प्रतियोगिता मे पुरुप एकल तथा महिला एकल स्पर्धा में जो विजेता होता है, उसे राष्ट्रीय सर्वजेता (National Champion) कहा जाता है।

राष्ट्रीय सवजेता . (१९६५) दिनेश खन्ना, (१९६४) सुरेश गोयल, (१९६३) सुरेश गोयल, (१९६२) सुरेश गोयल, (१९६१) नदू नाटेकर, (१९६०) नदू नाटेकर, (१९५९) अलंलैंड कोप्स, (१९५८) नदू नाटेकर, तथा (१९५५ से १९५७) तक त्रिलोक नाथ सेठ।

१९४४ ई० से विभिन्न राज्यो के बीच अतरराज्य वैडमिंटन प्रतियोगिता प्रारभ हुई। पुरुपो के वर्ग मे जो राज्य विजयी होता है उसे रहमतुल्ला कप और महिलाओ के वर्ग मे विजयी टीम को चड्ढा कप मिलता है।

वैडमिंटन को विधिवत् अतरराष्ट्रीय स्वरूप १९३४ ई० मे प्राप्त हुआ, जव इटरनैशनल वैडमिंटन फेडरेशन की स्थापना हुई। आज इस फेडरेशन मे भारत सहित लगभग ५० देश सदस्य हैं। इस फेडरेशन ने विश्वयुद्ध के बाद १९४८ ई० मे पहले अतरराष्ट्रीय प्रतिनिधि टूर्नामेंट का आयोजन किया, जो टामस कप (Thomas Cup) के नाम से आज प्रसिद्ध है। १९३९ ई० मे फेडरेशन के तत्कालीन अध्यक्ष सर जॉर्ज टॉमस ने एक कप प्रदान किया था। इस टूर्नामेंट मे पुरुपो के ही खेल होते हैं। १९५६ ई० मे महिलाओ के लिये अलग से अतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता का प्रारभ यूवर कप के लिये हुआ। इसमे अब तक अमरीका ही सदा विजेता रहा है।

टॉमस कप के खेल प्रति दो वर्ष पर होते है। हर मैच मे ५ एकल तथा ४ युगल खेल होते हैं। सख्या काफी हो जाने से इन्हे अमरीका, एशिया, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोप इन चार क्षेत्रों में वाँट दिया गया हैं। टॉमस कप के अब तक विजेता इस प्रकार हैं

सन् १९४८-४९ मलाया, सन् १९५१-५२ मलाया, सन् १९५४-५५ मलाया, सन् १९५७-५८ इडोनीशिया, सन् १९६०-६१ इडोनीशिया, सन् १९६३-६४ इडोनीशिया।

प्रथम एशियाई वैडमिंटन चैंपियनशिप १९६५ ई० मे लखनऊ मे हुई थी, जिसमे पजाव के दिनेश खन्ना एकल विजेता (Single's champion) हुए थे। [म० खा०]

वैतूल १ जिला, स्थिति २१° २२' से २२° २३' उ० अ० तथा ७७° ११' से ७८° ३४' पू० दे०। यह भारत के मध्यप्रदेश राज्य का एक जिला है। इसके दक्षिण मे महाराष्ट्र का अमरावती, पूर्व मे छिंदवाडा, उत्तर मे होशगावाद, पश्चिम और उत्तर-पश्चिम मे पूर्वी निमाड जिला है। इसका क्षेत्रफल ३,८८४ वर्ग मील तथा जनसख्या ५,६०,४१२ (१९६१) है। यहाँ का धरातल पठारी है। जलवायु ठढा व स्वास्थ्यप्रद है। वर्षा का वार्षिक औसत ४६ इच है। कृपि मे कोदो, कुटकी, गेहूँ, ज्वार, तिल आदि का उत्पादन होता है। उद्योगो मे कोई विशेप प्रगति नही हुई है।

२ नगर, स्थिति २१° ५२' उ० अ० तथा ७७° ५६' पू० दे०। वैतूल जिले मे वाडनूर से तीन मील दूर इटारसी-नागपुर रेलमार्ग पर स्थित नगर है। इसकी जनसख्या १६,८६० (१९६१) है। वाडनूर के कारण इस नगर की प्रगति कम हो गई है। यहाँ वरतन वनाना, सोने, चाँदी का काम, लाख की चूडियों का छोटे पैमाने पर काम होता है। [रा० स० ख०]

वैथर्स्ट (Bathurst) १ द्वीप, यह आस्ट्रेलिया के टीमॉर समुद्र मे उत्तर मध्यवर्ती किनारे पर एव मेलवल द्वीप के ठीक पश्चिम मे स्थित द्वीप है। दक्षिण मे क्लेरेंस जलडमरूमध्य द्वारा यह द्वीप मुख्य भूमि से अलग हो गया है। इसकी चौडाई ४५ मील तथा क्षेत्रफल ७८६ वर्ग मील है। यहाँ पर मेंग्रोव के जगल है।

२ द्वीप, यह कैनाडा के उत्तर-पश्चिम मे आर्कटिक महासागर पर स्थित, पारी द्वीपसमूह का एक द्वीप है जो १६० मील लवा

और ५०-१०० मील चौडा है। १८१६ ई० में सर विलियम इडवर्ड पार्री ने इस द्वीप की खोज की थी। इसका समुद्रतट कटा फटा है। तथा कही कही गहरी घाटियाँ भी हैं। उत्तर-पूर्वी कैनाडा मे भी इसी नाम का एक नगर है।

३ आस्ट्रेलिया के न्यूसाउथवेल्स मे माक्वेर नदी के किनारे एक नगर है जहाँ ताँबा एव सोना खोदने, गेहूँ उगाने, भेड पालने का काम होता है।

४ अफ्रीका मे गैबिया द्वीप के मुहाने पर स्थित गैबिया की राजधानी है। यहाँ से मूँगफली, गरी और मोम का निर्यात होता है।

५ आर्कटिक सागर की एक खाडी है। [श्रीकृ० च० ए०]

बैनर्जी, गुरुदास का जन्म २६ जनवरी १८४४ को कलकत्ता मे हुआ। आपकी शिक्षा कलकत्ता के हेयर स्कूल, प्रेसीडेंसी कालेज और कलकत्ता विश्वविद्यालय में हुई। गणित विषय मे एम० ए० (१८६४ में) और बी० एल० (१८६५ में) परीक्षाएँ पास की। एम० ए० परीक्षा मे स्वर्णपदक भी प्राप्त किया। पहले आप बहरामपुर कालेज में कानून विषय के प्राध्यापक हुए किंतु १८७२ से कलकत्ता हाईकोर्ट मे वकालत करने लगे। १८७६ मे कानून विषय मे डाक्टरेट की उपाधि अर्जित की। १८७८ मे आप कलकत्ता विश्वविद्यालय मे 'टैगोर ला प्रोफेसर' नियुक्त हुए और इस रूप मे आपने 'हिंदू विवाह कानून और स्त्रीधन' विषय पर व्याख्यान दिए। आप १८७९ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'फेलो' चुने गए और १८८७ मे बगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य बनाए गए। १८८८ मे आप कलकत्ता हाईकोर्ट के जज नियुक्त हुए। १८९०-१८९३ तक आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चासलर रहे। सन् १९०२ मे 'इ डियन यूनिवर्सिटीज कमीशन' के सदस्य बनाए गए। सन् १९०४ मे आपने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया और उसी वर्ष आपको नाइटहुड ('सर') की उपाधि प्रदान की गई। आपने 'ए फ्यू थाट्स आन एजूकेशन' नामक ग्रथ की रचना की।

बैनर्जी, सुरेंद्रनाथ इनका जन्म बगाल के एक उच्च ब्राह्मण कुल मे सन् १८४८ मे हुआ था। बी० ए० पास करने के पश्चात् सुरेंद्रनाथ आई० सी० एस० की प्रतियोगिता मे प्रविष्ट हुए और सफल हो गए। उन्हें इस नौकरी के मिलने मे कई अडचनो का सामना करना पडा, क्योंकि अग्रेज वास्तव मे भारतीयों को इडियन सिविल सर्विस मे स्थान नहीं देना चाहते थे। पर अत मे उन्हे स्थान मिल गया। वह पहले भारतीय थे जिन्हे इडियन सिविल सर्विस मे नियुक्त किया गया था। वह कुछ दिन ही नौकरी कर पाए थे कि उन्हें एक भूल पर नौकरी से निकाल दिया गया। सुरेंद्रनाथ के नौकरी से अलग हो जाने से उनका स्वय लाभ हुआ, साथ ही उनके राजनीति मे प्रवेश करने से देश का भी हित हुआ।

वह शिक्षा के कार्यों मे काफी रुचि लेते थे। सन् १८८२ मे उन्होने एक कॉलेज की स्थापना की। इस समय भारतीय राजनीतिक क्षेत्र मे विचार प्रकट करने के लिये शिक्षित भारतीयो की कोई सस्था न थी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने इस कमी का अनुभव किया और सन् १८७६ मे 'इडियन एसोसिएशन' को जन्म दिया।

सुरेंद्रनाथ एक ओजस्वी तथा अजेय वक्ता थे। उनका भाषा लालित्य, उत्कृष्ट भावुकता, मौलिक कल्पना तथा सीधे हृदय से निकले उद्‌गार लोगो को प्रभावित किए बिना न रहते थे। उनके बारे में सर हेनरी कॉटन ने कहा था कि अपनी वक्तृत्व शक्ति से वह मुल्तान से चटगाँव तक विद्रोह की ज्वाला भडका सकते थे। उनकी स्मरणशक्ति विलक्षण थी। बडे बडे भाषणों अथवा पुस्तक के पृष्ठों को जैसा का तैसा दुहरा देना उनके लिये कोई विशेष बात न थी।

सन् १८८५ मे सुरेंद्रनाथ तथा ऐलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने मिलकर 'भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस' को जन्म दिया। काग्रेस के प्रथम अधिवेशन की सूचना मे ह्यूम तथा सुरेंद्रनाथ दोनो के हस्ताक्षर थे, यद्यपि सुरेंद्रनाथ इस अधिवेशन मे भाग न ले सके थे। सुरेंद्रनाथ का काग्रेस से लगभग ४० वर्ष तक सबध रहा। दो बार सन् १८९५ तथा १९०२ मे वह काग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। सन् १९१८ मे इस देशभक्त ने काग्रेस छोड दी और 'नैशनल लिबरल फेडरेशन' की स्थापना की। माटेग्यू चेम्सफर्ड सुधारों के बाद जब प्रातो मे द्विविध शासन प्रणाली आरभ हुई तब बगाल प्रात मे सुरेंद्रनाथ मत्री बने। सरकार ने इन्हे 'नाइट' की उपाधि दी।

राष्ट्रीय आदोलन के सबध मे सुरेंद्रनाथ ने प्रशसनीय कार्य किया। काग्रेस के अध्यक्ष पद से दिए गए उनके भाषणों की इग्लैंड के विद्वानो ने भूरि भूरि प्रशसा की। अपने तर्कों से वह विरोधियों को भी अपने पक्ष मे करने की क्षमता रखते थे। सन् १९०५ के कर्जन द्वारा किए गए बग विभाजन ने सुरेंद्रनाथ को अच्छा अवसर प्रदान किया। बगाल विभाजन के विरुद्ध देशव्यापी आदोलन शुरु हो गया। सुरेंद्रनाथ इस आदोलन के सर्वप्रिय नेता थे। बगाल विभाजन के विरुद्ध उन्होंने बगाल विधान परिषद् मे एक ऐतिहासिक भाषण किया जिसमे उन्होंने विभाजन का डटकर विरोध किया। इस समय देश मे स्वदेशी आदोलन तथा बहिष्कार का बडा जोर था। सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने स्वदेशी का समर्थन किया। वह बहिष्कार के पक्ष मे थे पर वह उग्रवादियों की नीति तथा अराजकता फैलाने से सहमत नहीं थे। उनके राजनीतिक कार्यो के कारण उन्हे राष्ट्रीय आदोलन का जनक कहा जाता है।

सुरेंद्रनाथ बनर्जी इटली के देशभक्त मात्सीनी के विचारो से काफी प्रभावित हुए। सुरेंद्रनाथ चाहते थे कि बगाल के नवयुवक अपनी शक्ति का विकास करके भारत का नवनिर्माण करें। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होने मात्सीनी के क्रातिकारी आदर्शों को त्यागकर वैधानिकता का मार्ग पकडा और भारतीयो को नि स्वार्थ भाव से देश की सेवा करने का सदेश दिया। इसी समय इडियन सिविल सर्विस के लिये भारतीयो की अवस्था २१ से घटाकर १९ वर्ष कर दी गई। भारतीय नवयुवको से १९ वर्ष की अवस्था मे सिविल सर्विस की प्रतियोगिता मे सफलतापूर्वक भाग लेने की आशा करना व्यर्थ था। इसका अर्थ हुआ कि व्यावहारिक रूप से सिविल सर्विस मे भारतीयों का प्रवेश निषिद्ध हो गया। इस निश्चय के विरुद्ध भारतीय जनमत को तैयार करने के लिये 'इडियन ऐसोसिएशन' ने सुरेंद्रनाथ को नियुक्त किया। सुरेंद्रनाथ ने लाहौर, अमृतसर, आगरा, इलाहाबाद, दिल्ली, अलीगढ, कानपुर आदि स्थानों पर सभाएँ कीं जिनमे उन्हें आशातीत सफलता मिली। इन सभाओ मे उन्होंने भारतीय एकता तथा सिविल सर्विस के विषयों पर ओजपूर्ण भाषण दिए।

राजनीतिक अधिकारो की प्राप्ति के लिये सुरेंद्रनाथ केवल वैधानिक आदोलन का ही सहारा लेना पसद करते थे। वह उदारवादी विचारधारा के थे। वह इस पक्ष मे थे कि भारत सरकार मे भारतीयो को अधिकाधिक प्रतिनिधित्व दिया जाय। वह देश की पूर्ण स्वतत्रता के पक्षपाती नही थे। वह चाहते थे कि भारतीय अग्रेजो के प्रति अपनी स्वामिभक्ति बनाए रखें। इग्लैड की पार्लमेंट को वह बहुत पवित्र वस्तु समझते थे क्योकि वह लोकतत्रात्मक सस्थाओ की जननी है। वह चाहते थे कि अग्रेज भारत मे लोकतत्रात्मक शासन का विस्तार करें। उनका विश्वास था कि अग्रेजो ने भारतीय हित मे कई कार्य किए हैं। उन्होने भारत मे स्वशासन की शिक्षा देने का श्रीगणेश किया, भारतीयो का चरित्र उन्नत किया, भारत की सामाजिक बुराइयो को दूर किया तथा अग्रेजी सभ्यता के सारे गुणो को भारत मे बिखरा दिया। सुरेंद्रनाथ के विचार से अग्रेजी सभ्यता ससार की सर्वश्रेष्ठ सभ्यता थी। उनकी कृति 'ए नेशन इन द मेकिंग' मे उनके जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है। [मि० च० पा०]

बैप्टिस्ट चर्च सन् १५२५ ई० मे स्विट्जरलैंड मे एक सप्रदाय का प्रचलन हुआ जिसमे माना जाता था कि बच्चों को दिया हुआ बपतिस्मा अमान्य है, अत उसके अनुयायी पुन बपतिस्मा लेते थे। इसलिये उन्हे अनाबैप्टिस्ट (पुन बपतिस्मा देनेवाले) का नाम दिया गया। इस सप्रदाय की दो शाखाएँ थी, एक उग्रवादी (जो बलप्रयोग का भी सहारा लेती थी, शीघ्र ही विलुप्त हो गई) और दूसरी शातिवादी। मेन्नो सिमस (सन् १४९६–१५६१) के नेतृत्व मे शातिवादी अनाबैप्टिस्ट सप्रदाय का काफी प्रचार हुआ। इससे उसके सदस्य प्राय मेन्नोनाइट कहलाते हैं। आजकल उसके अनुयायी चार लाख से अधिक हैं। अमरीका मे उसके सदस्य लगभग दो लाख हैं।

सन् १६०२ ई० मे ऐंगलिकन राजधर्म अस्वीकार कर कुछ अग्रेज जान स्मिथ के नेतृत्व मे हॉलैंड मे बस गए। वहाँ वे मेन्नोनाइट सप्रदाय से प्रभावित होकर बच्चो का बपतिस्मा अस्वीकार करने लगे। सन् १६१२ ई० मे टामस हेलविस के नेतृत्व मे इग्लैड लौटकर उन्होने बैप्टिस्ट चर्च की स्थापना की। वयस्क होने पर ही बपतिस्मा की मान्यता के अतिरिक्त इस चर्च मे बाइबिल को धर्म का एकमात्र आधार माना जाता है तथा इसपर बहुत बल दिया जाता है कि सरकार को नितात धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए। विलियम केरे (Carey) के धर्मप्रचार आदोलन के फलस्वरूप सन् १७९२ ई० मे बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी की स्थापना हुई जिसने मिशन क्षेत्रो मे सफलतापूर्वक कार्य किया है। ब्रिटेन मे आजकल तीन लाख से अधिक बैप्टिस्ट चर्च के वयस्क सदस्य है। अमरीका मे बैप्टिस्ट चर्च की स्थापना रोजर विलियम्स (१६४०–१६८३) द्वारा हुई थी। वहाँ उसे अपूर्व सफलता मिली है, आजकल उसकी सदस्यता दो करोड से भी अधिक है।

एड्वेंटिस्ट (adventist) सप्रदाय का प्रचलन १९वीं शताब्दी पूर्वार्ध मे हुआ था, उस सप्रदाय से सेवेंथ डे एवेंड्टिस्ट (seventh day adventist) सन् १८६० ई० मे अलग हो गए। बपतिस्मा के विषय मे उनका सिद्धात बैप्टिस्ट चर्च के अनुसार है। इसके अतिरिक्त वे इतवार के स्थान पर शनिवार को पवित्र मानते हैं, मदिरा तथा तंबाकू से परहेज करते हैं और अपनी आमदनी का दशमाश चर्च को प्रदान करते हैं। उनका विश्वास है कि अत मे ईश्वर शैतान को, नरकदूतो को तथा मुक्ति से वचित लोगो को नष्ट कर देगा। अमरीका मे यह सप्रदाय विशेष रूप से सक्रिय है; वह मिशन क्षेत्रो मे बहुत से अस्पतालो का सचालन करता है। दुनिया भर मे उसके लगभग दस लाख सदस्य हैं।

सन् १८७२ ई० मे चार्ल्स टी० रसल ने येहोवा साक्षी (Jehovah's witnesses) नामक सप्रदाय का प्रवर्तन किया। एड्वेंटिस्ट विचारधारा से प्रभावित इस सप्रदाय की अपनी विशेषताएँ हैं, अर्थात् रोमन काथलिक चर्च का विरोध, आत्मा के अमरत्व, ईसा के ईश्वरत्व तथा त्रित्व के सिद्धात का अस्वीकरण। यह सप्रदाय दुनिया भर मे फैला हुआ है किंतु अमरीका मे उसकी सदस्यता सर्वाधिक (२,८६,०००) है। [का० बु०]

बैफिन १ खाडी, उत्तरी ऐटलैंटिक महासागर मे, पूर्व की ओर ग्रीनलैंड पश्चिम की ओर उत्तर-पश्चिमी राज्यो के बीच ८०० मील लबी और २८० मील चौडी एक खाडी है। सन् १६१६ मे विलियम बैफिन ने इसकी खोज की थी। डेविस जलसयोजक इसे ऐटलैंटिक महासागर से जोडता है। स्मिथ जॉन्स तथा लैंकास्टर सागर सधियाँ इसे आर्कटिक सागर से मिलाती है। इसके खडे किनारो पर हिमाच्छादित पर्वत हैं। आर्कटिक की बर्फ बहकर यहाँ आती है तथा बैफिन द्वीप तक चली जाती है। लैब्राडॉर धारा जो इसके मध्य से गुजरती है, इन हिम शिलाओ को इस ओर बहा लाती है। अत नौकाचालन मे बाधा पडती है। खाडी की गहराई १,२०० फुट से ६,००० फुट तक है। अनुपजाऊ एव कटी फटी तटरेखावाले क्षेत्र मे समूरवाले पशु मिलते हैं।

२ द्वीप, स्थिति . ६८° ०' उ० अ० तथा ७७° ०' प० दे०। कैनाडा के लैब्राडॉर तट के पास एक द्वीप है जो कैनाडा का सबसे बडा आर्कटिक द्वीप है। यह लगभग ९०० मील उत्तर से दक्षिण लबा तथा २०० से ३०० मील पूर्व से पश्चिम चौडा है। इसका क्षेत्रफल लगभग २,००,००० वर्ग मील है। पूर्वी तट पर १०,००० फुट तक ऊँची पर्वतीय चोटियाँ हैं। यहाँ बडे बडे हिमनद पाए जाते हैं। दक्षिणी भाग लगभग २,५०० फुट ऊँचा, पहाडी तथा निर्जन है। उत्तर-पश्चिमी भाग १,००० फुट तक ऊँचा एक मैदानी भाग है। दक्षिणी, पूर्वी और उत्तरी तटो पर एस्किमो लोगों की बस्तियाँ, फर-विक्रय-केंद्र, मौसम विज्ञान स्टेशन तथा ईसाई मिशनरियाँ स्थित है। [रा० प्र० सिं०]

बैफिन, विलियम (Baffin, William, १५८४ – १६२२ ई०) अगरेज समन्वेषक तथा नौयात्री थे। बैफिन बडे साहसी पुरुष थे। भारत तथा एशिया के पूर्वी द्वीपों तक पहुँचने के लिये उत्तर पश्चिम समुद्री मार्ग की खोज पर निकले 'पेशेंस' (Patience) नामक जहाज पर एक चालक के रूप मे इन्होने सन् १६१२ मे ग्रीनलैंड के पश्चिमी तट की यात्रा की। इग्लैड लौटकर, सन् १६१३ तथा १६१४ मे, मस्कोवॉय कपनी द्वारा सचालित मछुआ जहाजी बेडे के प्रधान चालक के रूप मे इन्होने स्पिट्जबर्जेन के समुद्री क्षेत्र का भ्रमण किया। उत्तर पश्चिम पथ को खोज निकालने की धुन मे ये

१६१५ ई० मे पुन 'डिस्कवरी' नामक जहाज लेकर पश्चिम की ओर रवाना हो गए। इस यात्रा में इन्होंने हडसन का जल मुहाना तथा साउथम्प्टन द्वीप के पूर्वी तट का समन्वेषण किया। अक्षाश निर्धारण तथा समुद्री ज्वार सबंधी इनके आलेख सूक्ष्म एव महत्वपूर्ण हैं। १६१६ ई० में ये डेविस जल मुहाने की ओर बढे और स्थल खड मे प्रविष्ट इस विस्तृत समुद्री भाग को खोज निकाला। इसे इनके नाम पर बैफिन की खाडी कहते हैं। इन्होंने नई जलक्षेत्रों का पता लगाकर उनके नामकरण किए, जैसे स्मिथ साउड, लकास्टर साउड तथा जोन्स साउड।

लौटने पर इन्होंने ईस्ट इंडिया कपनी की नौकरी कर ली तथा लालसागर और ईरान की खाडी मे विशद मापन कार्य किए। होरमुज के निकट स्थित किश्म द्वीप पर आक्रमण के समय घायल होने के कारण, इनकी मृत्यु हो गई। चद्रमा की प्रदक्षिणा की सहायता से समुद्र पर देशातरो को निर्धारित करनेवाले ये प्रथम उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। [का० ना० सि०]

बैबिलोनिया (बाबुल) ईराक, जिसे प्राचीन ग्रीक द्वाब, नदियों के बीच का देश, मेसोपोटामिया कहते थे, कभी प्राचीनतम मानव सभ्यताओं की क्रीडाभूमि था। दजला और फरात की इसी घाटी मे दोनो नदियों के बीच सुमेरी बाबुली और असूरी सस्कृतियाँ फली फूली। यदि हम नदियो की इस घाटी को उत्तर और दक्षिण के दो भागो मे बाट दे तो उत्तरी भाग प्राचीन असुर देश होगा, असीरिया, और दक्षिणी बाबुल होगा, बैबिलोनिया। असीरिया अधिकतर दजला के ऊपर का देश था। असीरिया और बाबिलोनिया अपने साम्राज्य काल मे स्वाभाविक ही अपनी प्राकृतिक सीमाएँ लाघ गए थे। सुमेर या सुमेरिया नदियो के बीच उनके मुहानो के पास दक्षिण बैबिलोनिया की सीमा मे ही अवस्थित था और अधिकतर सागरवर्ती था। (दे० इराक)

प्राचीन काल मे बैबिलोनिया की पूर्वी सीमा दक्षिण-पश्चिम के एलाम राज्य और फारस की खाडी से लगी थी और उत्तरी असीरिया से, और उसके दक्षिण और पश्चिम अरब का मरु प्रसार चलता चला गया था। इस देश के प्रधान नगर राजधानी बाबुल (सस्कृत, बावेरु) के अतिरिक्त, निपुर, एरेख (उरुक, आधुनिक वर्का), लार्सा, ऊर, एरिदु और बोर्सिप्पा थे। बैबिलोनिया का विस्तार उस स्थल से आरभ होता था जहाँ फरात और दजला की शाखा शात-एल-हैय का सगम है। उसके दक्षिण-पश्चिम जैसे रेगिस्तान फैला था वैसे ही उत्तर-पूर्व पहाडी भूमि थी। और इन दोनो के बीच की भूमि बैबिलोनिया, प्राचीन आक्रमणशील जातियो का प्यारा शिकार का मैदान, सर्वथा पर्वतहीन था, नदियो के बीच की उनके तटों की भूमि या उनसे निकली नहरो से सीची जानेवाली धरती असाधारण उपजाऊ है। पर लोह आदि आवश्यकता की सभी वस्तुएँ बाबुली बाहर से मँगाते थे—पत्थर अरब और एशिया से, लकडी लेबनान से, सोना, चाँदी और सीसा (रांगा) लघु एशिया से, और ताँबा अरब और फारस से। असूरिया का देश उससे भिन्न था, दजला के पूर्व [illegible] का देश, चार चार धाराओं से सिक्त, [illegible] के [illegible] से, जहाँ से, और जो ये [illegible] लहराते थे, और बहुधा देशों के प्रसार के बीच बीच मैदान और पहाड के जगल थे। मरुविस्तार के कारण ही प्राचीन बैबिलोनिया में नहरों का बडा माहात्म्य था और महान् राजाओं के महत्तम अभियानों में उनका निर्माण माना जाता था।

प्राचीन काल मे बैबिलोनिया का नाम सुमेर (प्राचीन ग्रीको का सुमेरिया) और अक्काद (अक्कादिया) था। बाद मे सामी राजाओ के शासनकाल मे, विशेषत हम्मुराबी के समय, जब बाबुल साम्राज्य की राजधानी और प्रधान नगर बना उसी के नाम से देश की सज्ञा प्रसिद्ध हुई। कस्सी राजाओं के समय उस देश का नाम 'कार्दुनियाश' था। सुमेरी नगरराज्य और अक्कादी साम्राज्य वहाँ उठे और गिरे और असूरी, अमुर्री, खत्ती, हुर्री, कस्सी, खल्दी और ईरानी आर्यों की महत्वाकाक्षा ने उसे अपनी क्रीडाभूमि बनाया। ७० साल तक वहाँ बाइबिल की प्राचीन पोथी के यहूदी नबियों ने अपनी तपश्चर्या का बदी जीवन बिताया और अपनी धर्मपुस्तक के पाँच प्राचीनतम पुनीततम भाग, 'पेंतुतुख', लिखे। बाइबिल का नाम ही उस प्राचीन देश की राजधानी बाबुल से पडा। सही ग्रीक 'बिब्लस' से बाइबिल की उत्पत्ति मानी जाती है, पर स्वय पुस्तकार्थक शब्द 'बिब्लस्' की व्युत्पत्ति भी तो मूलत उन्ही बाबुली ईटो से सबधित है जिनपर सुमेरी अक्कादी कीलनुमा लिखावट-में पुस्तकें खुदी थी और जिस आधार से प्राचीन ग्रीक वर्णमाला की मूल इब्रानी और फिनीशी वर्णमालाएँ उठी।

बैबिलोनिया के इतिहास के प्रधानत चार अग हैं, अशेमी सुमेरी, शेमी अक्कादी, साम्राज्यवादी शेमी असूरी, और खल्दी। सागरवर्ती और नदियो के मुहाने की दलदल पर प्राय ४००० ई० पू० मे ही गाँव बसने लगे थे, जैसा अल उबेद और वर्का की खुदाइयो से प्रकट होता है। इसके बाद ही ३५०० ई० पू० के लगभग सुमेरी सभ्यता ने यहाँ की भूमि में अपनी जडें फैलना शुरू किया। उन अद्भुत और प्राचीन लिपियो मे सबसे महत्वपूर्ण कीलाक्षरी लिपि का सुमेरियो ने आविष्कार किया जिसमें सारे प्रधान और गौण सुमेरी, अक्कादी, असूरी, खत्ती, हुर्री प्रभ और हजारो राजनीतिक तथा व्यावसायिक अभिलेख सहस्राब्दियो, ई० पू० प्राय ३५०० और दूसरी सदी ईसवी के बीच, लिखे जाते रहे। इनका क्षेत्रविस्तार पूरब मे पाकिस्तानी पंजाब (अशोकीय खरोष्ठी के रूप मे) और फारस (एलामी, अस्सई और फारसी के रूप मे), पश्चिम मे लघु एशिया अनातोलिया तक, फिर दक्षिण मे एरेख-येमेन से उत्तर मे अरमीनिया- उरार्तू (आरारात) और कुर्दिस्तान (कास्पियन सागर) तक था। इस लिपि के प्राचीनतम चित्रलिपिप्राय जल-प्रलय-पूर्व के अभिलेख वर्का (एरेख) मे मिले हैं, जो ३००० ई० पू० से भी पहले के हैं।

इस गैरशेमी सभ्यता की सामग्री ऊर और लगाश की खुदाइयो से मिली है। इस सभ्यता की बागडोर सुमेरी पुरोहितों के हाथ मे थी। वे ही राजनीति और धर्म दोनों मे प्रबल थे। वे एक प्रकार से पुरोहित राजा थे। इससे प्रगट होता है कि पहले शायद एक ही व्यक्ति पूजा और शासन दोनों कार्य करता था, पीछे दोनो कृत्य अलग अलग हो गए। राज्य का सबसे महान व्यक्ति 'लुगाल' कहलाता था, जो धरा पर देवताओं का प्रतिनिधि माना जाता था। सुमेरियों का धर्म बहुदेववादी था और उनके अनेक देवता थे, परन्तु वे मिस्री देवताओ की भाँति सर्प, मार्जार, मगर, नदी आदि के प्रतीक न थे, स्वर्ग, नक्ष

आदि के थे। प्रत्येक नगर का अपना देवता था जो सृष्टि का कर्ता और पालक समझा जाता था। जब एक नगर दूसरे पर आक्रमण कर विजयी हो जाता था वह विजित नगर के देवता को आचारभ्रष्ट कर उसके स्थान पर अपने नगर का देवता प्रतिष्ठित करता था। इस प्रकार राजनीतिक उत्कर्ष के साथ साथ नगरो के देवता भी बदलते और चढते गिरते रहते थे। जब नगरराज्यो की सत्ता उठ चली और साम्राज्य स्थापित होने लगे, देवताओं का भी एक केंद्र या प्रधान देवता हुआ या अन्य देवता उसी एक के अग समझे जाने लगे। सुमेरियों का यह प्रधान देवता अनू था, स्वर्ग का देवता। इसके देववर्ग मे तूफान के देवता एन्लिल का स्थान देवराज अनु के बाद दूसरा था। निप्पुर मे इस एन्लिल की विशेष पूजा होती थी। इसी ने जलप्रलय के अवसर पर सुमेरी विश्वास के अनुसार, तूफान चलाया था जिसके परिणामस्वरूप आकाश मेघो से आच्छन्न हो गया था और पृथ्वी पर अधकार छा गया था और अनत जलवृष्टि होने लगी थी। सुमेरियो के मदिर उन ईंटो के बने ठोस मेचनुमा पिरामिडो से मिलते जुलते विशाल आधारो पर बनते थे। इनको जग्गुरत कहते थे।

मारी (फरात की उपरली घाटी) से प्राप्त अभिलेखो से प्रकट होता है कि सभी जातियाँ मेसोपोतामिया मे अत्यत प्राचीन काल मे बस चुकी थीं। धीरे धीरे अपने पराक्रम से उन्होने प्रदेशो पर अधिकार करना शुरू किया और ई० पू० २४वी सदी में वे असामान्य प्रबल हो गई। अगली दो सदियो ल० २३६०–२१८० ई० पू० मे पहला शेमी अक्कादी राजवंश मेसोपोतामिया मे अनिवार्य रूप से प्रतिष्ठित हो गया। इस अक्कादी साम्राज्य का आरभयिता सारगोन (शरूकिन) था। उस राजवश ने पश्चिमी एशिया के अधिकतर भागो पर अनातोलिया तक राज किया, यद्यपि सास्कृतिक क्षेत्र मे सत्ता सुमेरी भाषा, धर्म और कला की ही थी।

ई० पू० २१८० के लगभग अक्कादी राजकुल का अत हो गया। उसका अत जाग्रोस पहाडो की बर्बर गुती जाति ने किया। इससे सुमेर को एक लाभ हुआ, उसे साँस लेने की फुरसत मिली और उसकी चेतना को नई साँस मिली। ऊर के तृतीय राजवश (ल० २०६०–१६५० ई० पू०) ने शीघ्र राजनीतिक पासा पलट दिया और उसने जिस साम्राज्य का निर्माण किया वह शक्ति अथवा सीमा मे अक्कादी साम्राज्य से किसी मात्रा मे कम न था। उस राजवश के पहले राजा उर नम्मू ने वैबिलोनिया की प्राचीनतम कानून पद्धति घोषित की, २००० ई० पू० से भी पूर्व। ऊर के पिछले राजाओ के लगाश स्थित प्रतिनिधि शासक अपने भवननिर्माण, लबे सुमेरी अभिलेखो और मदिर निर्माण कार्य के लिये विशेष प्रसिद्ध हुए।

१६०० ई० पू० के आसपास दजला फरात के द्वाब मे एक नई राजनीतिक स्थिति का प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ के राज्यो पर अमुरी (पश्चिमी शेमी) सत्ता प्रतिष्ठित हुई। लारसा, एश्नुन्ना, मारी, बरबुल सर्वत्र अमुरी राजकुल राज्य करने लगे। ये सारे राज्य एक दूसरे से सर्वथा स्वतत्र बराबर चलते रहते थे और शक्ति के लिये निरतर कशमकश होती रहती थी। इस कशमकश के अंत मे जो शक्ति सर्वोपरि सिद्ध हुई वह बाबुल की थी। वहाँ के पहले राजकुल के छठे राजा हम्मुराबी (१७२८–१६८६ ई० पू०) ने लारसा के एलामी राजा रिमसिन तथा द्वाब के अपने अन्य प्रतिस्पर्धियो पर सपूर्ण विजय प्राप्त कर वैबिलोनिया मे नई उदीयमान शक्ति का साका चलाया। हम्मुराबी ने विजय इतनी की कि उसकी एक सीमा ईरान, दूसरी भूमध्यसागर से जा लगी, पर उससे भी महत्व की जो उसने बात की वह थी एक नई और सुविस्तृत दडनीति और नई कानून व्यवस्था जिसकी घोषणा पत्थर के स्तभ पर खुदी हमे प्राप्त हुई है और जो उस सुदूर काल के पश्चिमी एशिया के इतिहास, अपराध और उसके दडविधान पर इतना प्रकाश डालती है। वह ससार के सभी प्राचीन पद्धतिबद्ध दडविधानो से भी प्राचीनतर है। हम्मुराबी के शासन ने जिस शक्ति वातावरण की प्रतिष्ठा की वह बाबुली विज्ञान और ज्ञान के इतिहास मे स्वर्णयुग उतार लाया। कीलनुमा लिपि मे उस काल सर्वथा नए चिह्नो का आविष्कार हुआ और सुमेरी तथा अक्कादी दोनो मे कोश रचे गए। बाबुली ज्योतिषियों ने विशेषत ग्रहों की गति का अध्ययन कर उनको स्थायी पुस्तको मे अकित करना शुरू किया और नक्षत्रो की सूची प्रस्तुत की। निश्चय ही इसका आरभ फलित ज्योतिष, भविष्यकथन, जादू आदि से हुआ पर उससे धीरे धीरे विज्ञान को लाभ हुआ और अन्य विश्वासो के पार गणित की ठोस दीवार पर पडितो की नजर टिकी। हमे राशिचक्र, चौबीस घटों के दिन रात, और वृत्त मे ३६० डिग्री गिनने की पद्धति देने का श्रेय उन बाबुलियो को ही है जिन्होने (क्वाड्रेटिक इक्वेशन) द्विघात समीकरण को काल्पनिक स्थिति से हल करने का मार्ग बताया।

अगले डेढ़ सौ वर्षों मे दजला फरात की राजनीति ने करवट ली। सामी शक्ति को उसने प्राय सर्वत्र पराभूत कर दिया। सर्वत्र गैरशेमी जातियाँ विजयिनी हुई। खत्तियो के राजा मुरसिलि ने अनातोलिया से आकर (ल० १५३० ई० पू०) बाबुल को नष्ट कर दिया। उधर उत्तर मे हुर्रियो और भारतीय आर्यो मितन्नियो ने असूरिया पर अधिकार कर वहाँ अपना नया राज्य स्थापित किया। प्राय. तभी गैरशेमी कस्सियो ने बाबुल मे प्रवेश कर वहाँ अपने राजकुल की प्रतिष्ठा की और प्राय ४०० साल राज किया। उत्तरी असूरिया मे मितन्नी चिरकालिक सत्ता नही भोग सके और ई० पू० १४वीं सदी के मध्य उनके दुर्बल होते ही असुर राजाओं ने सिर उठाया और शक्ति सचित की। जब जब उन्हें अवसर मिला और उन्हें उनके उत्तरी पश्चिमी शत्रुओ ने दम लेने दिया, तब तब उन्होंने वैबिलोनिया पर आघात किए। एलाम बाबुल का पारस्परिक शत्रु था। वह भी इस बीच प्रबल हो गया था और उसके राजाओ ने बार बार बाबुल पर चढाई कर उसका पराभव किया। बाबुल के इस निरतर पतन के इतिहास मे बस एक अपवाद हुआ जब ईसिन के दूसरे राजवश के राजा ने बूखदनेज्जार प्रथम ने १२वी सदी ई० पू० के अत मे एलाम को भी परास्त किया और असूरिया को भी अपनी सीमा के भीतर रहने को बाध्य किया।

असूरिया का सूर्य १०७५ से ६२५ ई० पू० तक प्राय निस्तेज रहा पर वैबिलोनिया को उसका लाभ न हुआ। क्योकि उसके भाग्याकाश मे एक दूसरी शेमी जाति का इस बीच उदय हो आया था। इसी आरामाई जाति के एक राजा ने ११वी सदी ई० पू०

पाते। आज जो वावुली देवताओ की सख्या हमे उपलब्ध है उसमे से कौन देव सुमेरी, कौन वावुली है, यह कह सकना कठिन है। विद्वानों का मत है कि जिन देवो की पत्नियाँ या देवियो के पति नहीं हैं वे सुमेरी देवता है, शेष वावुली। उनका कहना है कि वावुली देवता वेल (या वाल) सभवत सुमेरी एलिल का प्रतिनिधि है, जैसे शमाश उतू का। वावुली देवराज मार्दुक को प्राय. सभी मूल रूप मे सुमेरी देवता स्वीकार करते हैं, वैसे ही विजली और तूफान के देवता रमान या अदाद को शुद्ध वावुली (शेमी)। शेमी देवियो मे प्रधान वेल की पत्नी, मार्दुक की पत्नी सार्पनीतुम, और नर्गाल की पत्नी लाज थी। आनूनीतुम मूल मे सभवत वावुली शेमी थी और ईश्तर सीरियाई अथवा कनानाई। इन देवियो की पूजा के लिये क्लीव पुजारी नियत थे और अधिकतर मदिरो मे देवदासियाँ देवकार्य सपन्न करती थी।

वावुली देवपरिवार बडा था और देवताओ की मूर्तियाँ बनती थी। वस्तुत आर्यों और इस्रायलियो को छोड तब की प्राय सभी जातियाँ, शेमी और गैरशेमी, मूर्तिपूजा करती थी। यह मूर्तिपूजा हज़रत मुहम्मद के प्रादुर्भाव काल तक उस भूखड मे प्रचलित रही। बाबुली देवता सृष्टि के विविध अगो के स्वामी थे, उनके अपने अपने देव कर्तव्य थे। देवराज मार्दुक इद्र वृत्र की भाँति अकाल के दैत्य तियामत को जलमोक्ष के लिये वज्र मारता था। वावुलियो मे भी स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल के प्रति विश्वास प्रचलित थे। उन्होने सुमेरी देवताओ के साथ ही उनकी कीलनुमा लिपि और साहित्य भी अपना लिए। सुमेरियो के जलप्रलय गिलगमेश आदि वीरकाव्य और अनुश्रुतियाँ उनकी लिपि की ही भाँति वावुलियो ने अपनी कर ली और साहित्यकथाओ तथा लिपि दोनो मे पर्याप्त और आकर्षक परिवर्तन कर उन्होने अन्यत्र उनका प्रचलन किया। उनमे देवताओ के अतिरिक्त साँडो की भी पूजा होती थी।

वावुली इतिहास से प्रकट है १७वी १६वी से पर्याप्त पूर्व वावुल मे धनुप वाण का उपयोग होने लगा था और रथो के साथ अब घुडसवारो पर भी सैन्य सगठन मे कुछ बल दिया जाने लगा था। सम्राट् हम्मुरावी के प्रसिद्ध अभिलेख से प्रमाणित है कि गणित और फलित ज्योतिष का प्रचार था और अन्न नदियो के अतिरिक्त नहरो द्वारा सीची भूमि मे उपजाया जाता था। टैक्स और लगान वस्तुओ या अन्न के रूप मे दिए जाते थे और व्यापार का क्षेत्र वडा था। यद्यपि सिक्के अभी नही चले थे, व्यवसाय वस्तुपरिवर्तन द्वारा होता था, बाट बटखरे प्रयुक्त होते थे और मूल्य चाँदी के वजन (शेकेल) मे आँका जाता था, स्वतत्र मजदूरो की स्थिति दासो से वदतर थी क्योंकि उन्हे मात्र भोजन मिलता था, स्वामी की सरक्षा उपलब्ध न थी। दासो की रक्षा कानून करता था। राजा द्वारा नियुक्त न्यायाधीश देश मे अभियान करते और न्याय का वितरण करते थे। भूमि पर अधिकतर राजा या मदिरो का स्वत्व था। मर्द सिर पर लवे वाल और दाढी रखते थे। उनका लिबास लवा होता था।

हम्मुरावी का विधान, जो आज भी उपलब्ध है और पैरिस के लुव्र-सग्रहालय मे सुरक्षित है, वावुली जीवन का प्रतिविंव है और उसके सबध मे अनत सामग्री प्रस्तुत करता है। सामाजिक और कानूनी दृष्टि से वह असाधारण महत्व का है। उस काल के बर्बर राजनीतिक जीवन को देखते हुए लगता है कि हम्मुरावी द्वारा उद्घोषित और प्रवर्धित वावुली कानून साधारणत न्यायसमत था। सम्राट् ने अपने कानून मे नारी के प्रति विशेष उदारता दिखाई। सुमेरी सभ्यता मे नारी को तलाक का अधिकार न था पर हम्मुरावी के कानून के अनुसार पत्नी को तलाक देनेवाले पति को उसका वैवाहिक धन लौटाने के अतिरिक्त उसका और उसके बच्चो का निर्वाह करना पडता था। पत्नी को ही बच्चे रखने का भी अधिकार होता था। उसे सपत्ति, गृह, दास सब रखने और न्यायालय मे अपनी वकालत करने का अधिकार प्राप्त था। देवदासियों को विशेष अधिकार प्राप्त थे और वावुली धर्म मे मदिरवर्ती वेश्यावृत्ति धार्मिक नियम सा बन गई थी। वावुली मुकदमे काफी लडते थे। मुकदमे अधिकतर भूमि के अधिकार, उसकी बिक्री और पट्टे सबधी होते थे। बिक्री और पट्टो का कार्य ईंट या पत्थर पर लिखकर, साहित्यो का साक्ष्य अकित कर मुहर छापकर सपन्न किया जाता था।

स० ग्र० — आर० डब्ल्यू० रॉजर्स . ए हिस्ट्री ऑव वैविलोनिया ऐंड असीरिया, न्यूयार्क, १९१५, एच० आर० हाल दि एशेंट हिस्ट्री ऑव दि नियर ईस्ट, त्रिपाठी, रामप्रसाद विश्व इतिहास (प्राचीन), हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ। [भ० श० उ०]

वैरगेन (Bergen) स्थिति ६०° २३' उ० अ० और ५° २०' पू० दे०। ओजलो के बाद नॉर्वे का दूसरा बडा बदरगाह एव नगर है जो ओजलो से १९० मील पश्चिम-उत्तर-पश्चिम रेलमार्ग पर स्थित है। इसके सुरक्षित पोताश्रय के पीछे ८००–१६०० फुट ऊँची पहाडियाँ है। नॉर्वे के मध्यकालीन राजाओ के किले एव प्रासाद अभी विद्यमान हैं। यहाँ की जलवायु आनददायक एव बहुत आर्द्र है। वर्षा का औसत ८९ इच है। १९४० ई० के जर्मन आक्रमण और तुरत द्वितीय विश्वयुद्ध के उपद्रवो मे वैरगेन किसी भी नॉर्वे के नगर की अपेक्षा बहुत ही अधिक बमवर्षा और अग्नि का शिकार हुआ अव बहुत से भागो को फिर से बनाया गया है। यहाँ कई चौक तथा बाजार हैं। समुद्रतट पर स्थित मछली बाजार सब से बडा बाजार है। इस नगर मे मछली के तेल, यंत्र, जलयान, शराव, वस्त्र, लौह इस्पात, साबुन, साज सज्जा, कागज, पियानो, रस्सी, सिगरेट, चीनी मिट्टी के बरतन, काच, चमडे और बिजली की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। यहाँ से न्यूकासल, राटरडैम, हैंवर्ग और न्यूयॉर्क को जलयान जाते हैं। वैरगेन में कई लेखक, नाटककार एव कवि पैदा हो चुके हैं। यहाँ विश्वविद्यालय के अतिरिक्त उच्च अध्ययन के लिये कई महाविद्यालय हैं जिनमे सगीत समुद्री एकैडमी, ऋतुविज्ञान एव भौगोलिक सस्थान तथा वाणिज्य महाविद्यालय उल्लेखनीय है। यहाँ के प्रसिद्ध भवनो मे सेंट मैरी एव वैरगेन का बडा गिरजाघर, पुरातत्वीय, औद्योगिक एव मत्स्यीय सग्रहालय, वैरगेनहूस का किला तथा एक भोजशाला दर्शनीय है। यहाँ थिएटर, पुस्तकालय, वेघशाला तथा कला-प्रदर्शन-कक्ष भी हैं। सुदर प्राकृतिक छटावाले क्षेत्र के बीच मे होने के कारण यह पर्यटको का एक प्रसिद्ध केंद्र है जहाँ आसानी से जाया जा सकता है। इस नगर की जनसख्या १,१६,५५५ (१९६३) है।

[रा० प्र० सि०]

वैरामजी जीजाभाई जीजाभाई परिवार के सस्थापक, जो जनसेवा तथा विश्वप्रेम के लिये प्रसिद्ध थे, सूरत जिले के इलाव गाँव से सन् १७२९ मे बवई आए थे। आपकी सबसे प्रसिद्ध सतति वैरामजी

जीजाभाई थे। बैंकों, रेलवे संस्थाओं और रूई के स्पिनिंग और वीविंग मिल के डाइरेक्टर होने के साथ ही आप बंबई प्रांत के वाणिज्य जीवन के प्रधान प्रेरक थे।

उन दिनो न्यायाधीशों की बेंच ही म्युनिसपल सरकार की देखरेख और नियंत्रण के लिये उत्तरदायी थी। वैरामजी १८५५ मे न्यायाधीश नियुक्त हुए। १८६७ मे आप बंबई विश्वविद्यालय के फेलो रूप मे नियुक्त हुए और बंबई की लेजिस्लेटिव कौंसिल के अतिरिक्त सदस्य बनाए गए। यहाँ आपने जनता की रुचि के अनुकूल पथप्रदर्शन के रूप मे सम्मान प्राप्त किया। उस समय जो बिल विचार विमर्श के लिये आए उनमें एक था अन्नो पर नगरकर लगाना। वैरामजी ने उसका घोर विरोध किया और जनता की भावनाओं को उत्साहपूर्वक सबके समुख पेश किया। उनका कहना था कि यदि अतिरिक्त रेवन्यू लगाने की आवश्यकता ही है तो स्पिरिट तथा उत्तेजक पेय पदार्थों पर कर लगाया जाय बनिस्पत इसके कि आधा पेट भोजन मात्र करनेवाली जनसख्या के भोजन पर लगाया जाय।

वाणिज्य और राजनीतिक जीवन से सबधित उनके कार्य और प्रयास जैसे ध्यान देने योग्य है वैसे ही वैरामजी के अनेक उपकार तथा दान दक्षिणाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। आपकी आर्थिक सहायताओं और दानो मे सबसे महत्वपूर्ण है, गरीब पारसी बच्चो की नि शुल्क शिक्षा के लिये एक सस्था की स्थापना हेतु ३,५०,००० के मूल्य के सरकारी कागजो का दान। आप से पर्याप्त रूप मे दान प्राप्त करनेवाले जातीय पक्षपात रहित सस्थाओं मे प्रमुख हैं अहमदाबाद और पूना का सरकारी मेडिकल स्कूल, थाना का हाईस्कूल, और भीवादी का ऐंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल। बबई का नेटिव जेनरल पुस्तकालय, अलेक्जाडरा नेटिव गर्ल्स इंगलिश इंस्टीट्यूशन और विक्टोरिया व एडवर्ड म्यूजियम तथा पिंजरापोल आपकी उदारता व अनुग्रह के भागी थे। [रु० म०]

वैवियरी, जोवनी फ्रांचेस्को (१५९१–१६६६) ऐतिहासिक चित्र बनानेवाले, इटली के इस चित्रकार का जन्म बोलोग्ना के पास सेंतो मे हुआ।

बोलोग्नीज चित्रशैली के चित्रकार बेंदेट्टो गेनरी के कलासानिध्य मे वे १७ वर्ष की उम्र मे आए। उनकी कलाप्रगति ने गुरु को पीछे छोड दिया। सन् १६१५ मे उन्होंने बोलोग्ना को छोड दिया। चित्रकार काराक्की तथा कारावाज्जिओ के चित्रो से बाद मे प्रभावित होने पर भी कुछ चित्रों मे समकालीन चित्रकार गुइदी के चित्रो का प्रभाव है। उन्होने ढाई सौ से कम चित्र नही बनाए। उसमे से १०६ चित्र विभिन्न चर्चों में बने हैं। उन्होंने अपना सबसे सुदर चित्र 'सान पेत्रोनिला' शीर्षक का रोम के १५वें ग्रेगरी के लिये विशेष रूप से बनाया था।

पावलो अतानिओ वैवियरी इनके भाई थे, जिन्होंने वस्तु तथा प्राणियों के चित्राकन मे प्रसिद्धि पाई। [भा० स०]

वैलिऐरिक (Balearic) स्थिति ३९° ३०' उ० अ० तथा ३° ०' पू० दे०। स्पेन के पूर्व मे, पश्चिमी भूमध्य महासागर मे स्थित द्वीपों का समूह है जिसमे मैलोर्का (१,३५० वर्ग मील), मेनोर्का (२६३ वर्ग मील), इविजा (२३० वर्ग मील) तथा फॉर्मेंटेरा (३८ वर्ग मील) के अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे द्वीप शामिल हैं। इसका कुल क्षेत्रफल १,९३६ वर्ग मील है। यहाँ भूमध्यसागरीय जलवायु पाई जाती है। ग्रीष्म काल मे वर्षा नही होती। यहाँ फलो के बगीचे लगाए गए हैं। अगूर, जैतून, बादाम और अजीर मुख्य उपजें हैं। कुछ खाद्यान्न भी उगाए जाते है, किंतु सिंचाई की कठिनाई के कारण उनका महत्व कम है। कुछ पशु भी पाले जाते हैं किंतु अच्छे चरागाहो का अभाव है। भेंडें अधिक सख्या मे पाली जाती हैं। इनसे दूध प्राप्त होता है। खनिज पदार्थों मे लिग्नाइट और समुद्री नमक उल्लेखनीय हैं। कोक और सीमेंट बनाने का व्यवसाय भी होता है। यहाँ से निर्यात होनेवाली वस्तुओं में सूअर, भेंड तथा फल हैं। [न० प्र०]

वैशकिरिया या वैशकिर स्थिति ५४° उ० अ० तथा ५७° ५०' पू० दे०। यह ऑटोनोमस सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक है जो १९१९ ई० मे बनी थी। यह यूराल पर्वत क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इसका क्षेत्रफल ५४,२२३ वर्ग मील तथा जनसख्या ३३,३५,००० (१९६१) है। यहाँ के २४ प्रति शत निवासी वैशकिर मुसलमान हैं जो वैशकिरी भाषा बोलते हैं। यहाँ की भूमि ३,९०० से ५,२३० फुट तक ऊँची है। पठार की औसत ऊँचाई १,००० फुट है। अधिकाश भाग जगलों से घिरा है। जगलो मे घोडे व अन्य मवेशी मिलते हैं तथा पश्चिमी भाग मे गेहूँ, राई, कुट्टक, जौ, तीसी, सूर्यमुखी, सनई, अन्य घासें तथा चुकदर की पैदावार होती है। जाडे मे नदियाँ जम जाती हैं और ताप ०° सें० से नीचे गिर जाता है। यहाँ ताँबे की खानें हैं तथा पेट्रोलियम भी निकाला जाता है। इसकी राजधानी उफा है जहाँ मशीन बनाने, लकडी के काम और तेल साफ करने का काम होता है। [दि० मु०]

वैसिलेरिएसिई (Bacillariaceae) यह काई वर्ग का एक कुल है, जिसके अतर्गत डायटम (diatoms) आते हैं। इनके प्रतिनिधि एक-कोशिकीय, अनेक आकार प्रकार तथा रूप के होते हैं। जैसे सामान्य बहुमूर्तिदर्शी (kaleidoscope) मे काच के छोटे छोटे टुकडे अनेक रूप के दिखाई देते हैं उन्ही रूपो के सदृश ये डायटम समूह भी होते हैं। प्रत्येक डायटम की कोशिका प्रचुर सिलिकायुक्त तथा इस बनावट की होती है मानो दो पेट्री डिश एक दूसरे मे सटकर बद रखे हो। प्रत्येक डायटम की जब ऊपरी तह से परीक्षा की जाती है, तो इसकी द्विपार्श्विक (bilateral), या अरीय, सममिति (radial symmetry) के चिह्न स्पष्ट प्रतीत होते हैं। कोशिका के भीतर एक अथवा अनेक, विविध आकार के भूरे पीले से वर्णकीलवक (chromatophores) होते हैं। कोशिका के बाह्य तक्षण (sculpturing) के आधार पर डायटमो का वर्गीकरण होता है। प्रत्येक डायटम की दोनो कोशिकाभित्तियाँ, आतरिक प्ररस सहित, फ्रसटयूल (frustule) कहलाती हैं। ऊपरी कोशिका भित्ति एपीथीका तथा भीतरी हाइपोथीका कहलाती है और दोनो का सिलिकामय भाग लगभग चौडे वाल्व का होता है, जिसके फ्लैंज (flange) सदृश उपात (margin) सयोजी बैंड (connecting band) या सिंगुलम (cingulum) से लगे होते हैं। यह सयोजी बैंड वाल्व के साथ प्राय अच्छे प्रकार से जुडा होता है। कभी कभी एक से अधिक भी सयोजी बैंड होते हैं। ये आतरीय बैंड कहलाते है। फ्रस्टयूल को वाल्व की ओर से देखने पर वाल्व तल

(valve view) तथा सयोजी बैंड की ओर से देखने पर वलयीतल (girdle view) दिखाई देता है। कुपिन (Coupin) के मतानुसार वह पदार्थ जिसके द्वारा फ्रसट्यूल सिलिकामय हो जाता है, ऐल्यूमिनियम सिलिकेट है। पियरसाल (Pearsall सन् १९२३) के मतानुसार जल माध्यम मे सिलिकेट लवणो की प्रचुरता से प्रजनन मे सहायता होती है। वाल्व मे जो सिलिकीय पदार्थ एकत्रित होता है, वह केंद्रिक डायटम मे एक केंद्रीय बिंदु के चारो ओर अरीय सममित होता है। पिन्नेट डायटमो मे अक्षीय पट्टिका (axial strip) से यह द्विपार्श्व सममित या असममित (asymmetrical) हो सकता है। कुछ समुद्री केंद्रिक डायटमो मे तक्षरण पर्याप्त खुरदुरा सा होता है। यह विशेपत यत्र तत्र गर्तरोम (areoles) के कारण होता है। इन गर्तरोमो मे बारीक खडी नाल रूपी (vertical canals) छिद्र (pores) होते हैं। कुछ पिन्नेलीज़ (Pennales) डायटमो मे एक या अधिक सत्य छिद्र (perforations) हो सकते हैं, जो गेमाइनहार्ट (Gemeinhardt, सन् १९२६) के अनुसार मध्य (median) अथवा ध्रुवीय होते हैं। ये पतले स्थल, जिन्हे पकटी (Punctae) कहते हैं, कतारो मे
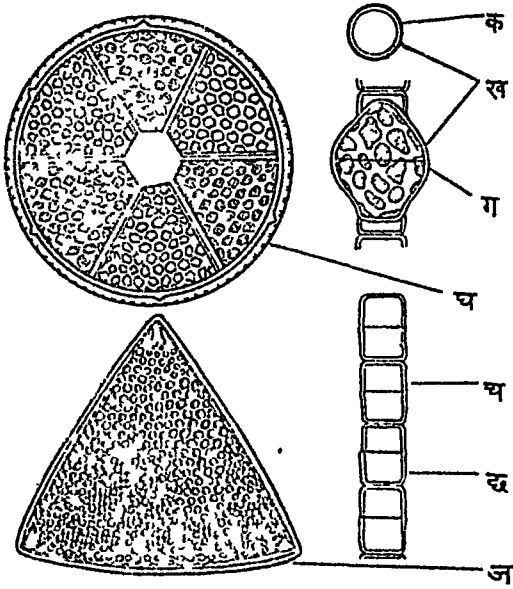
केंद्रिक डायटम के सिलिकामय कवच

क वाल्व दृश्य, ख. मेलोसिरा वैरिऐंस (Melosira Varians), ग मेखलादृश्य, जिसमे बीजाणुवर्धक का निर्माण दिखाया गया है, घ. ऐक्टिनोसाइक्लस अड्युलेटस (Actinocyclus undulatus), च मेलोसिरा वैरिऐंस (Melosira Varians), छ मेखलादृश्य तथा ज ट्राइसिरेशियम फेवस (Triceratium Favus)।

विन्यस्त तथा वाल्व की लवाई के साथ जाती हुई लवायमान पट्टिका, जिसे अक्षीय क्षेत्र (Axial field) कह सकते हैं, द्विपार्श्विक रूप मे होते हैं। यह अक्षीय क्षेत्र वनावट मे सम हो सकते हैं, अथवा इनमे एक लवी झिरी, राफे (Raphe), हो सकती है। लवी झिरी से रहित अक्षीय क्षेत्र कूट राफे (Pseudoraphe) कहलाता है। एक फ्रस्ट्यूल के दोनो वाल्व के अक्षीय क्षेत्र प्राय. समान होते हैं, यद्यपि कुछ जेनेरा मे एक मे राफे हो सकता है तथा दूसरे मे कूट राफे। प्रत्येक राफे के मध्य मे भित्ति के स्थूलन से एक केंद्रीय ग्रंथि (central nodule) बन जाती है और दोनो सिरो पर प्राय ध्रुवग्रंथियाँ (polar nodules) भी होती हैं।

फ्रस्ट्यूल के भीतर प्रोटोप्लास्ट (protoplast) मे सर्वप्रथम साइटोप्लाज्म (cytoplasm) की एक तह होती है, जिसमे एक या अनेक वर्णकरण होते हैं। साइटोप्लाज्म के और भीतर एक स्पष्ट रिक्तिका (vacuole) तथा इस रिक्तिका के मध्यभाग के कुछ साइटोप्लाज्म मे एक गोल सा नाभिक स्थित रहता है। वर्णकरण अनेक प्रकार के हो सकते हैं। इन्ही मे पाइरीनाएड मौजूद होते हैं, अथवा नही भी होते। वर्णकरण प्राय सुनहरे रग के होते हैं। सुरक्षित भोज्य सामग्री प्राय वसा है। राफे से युक्त डायटम गतिशील होते हैं। इनकी गति लवे अक्ष पर झटके से होती है। ये झटके एक के बाद एक होते हैं। कुछ आगे बढ जाने पर वैसे ही एक झटके से डायटम रुक जाता है और पुन. पीछे की ओर आता है। मुलर (१८८९, १८९६ ई०) के मतानुसार डायटम की यह गति साइटोप्लाज्म मे धाराओ (streaming cytoplasm) के कारण होती है। डायटम मे कोशिकाविभाजन भी होता है। इस क्रिया मे दो सतति कोशिकाएँ (daughter cells) निर्मित हो जाती हैं, जो आपस मे स्वभावत छोटी बडी होती है। नाभिकविभाजन के साथ ही वर्णकरण भी विभाजित होते हैं। कोशिका विभाजन के फलस्वरूप एक अनुजात प्रोटोप्लास्ट का अश इपीथिका के भीतर रहता है और दूसरा हाइपोथीका मे। इसके उपरात प्रत्येक सतति अश मे दूसरी ओर की कोशिकाभित्ति निर्मित होकर, दो नए डायटम तैयार हो जाते हैं। अनुमान किया जा सकता है कि नवनिर्मित आधा भाग सदैव हाइपोथीका होगा तथा पुराना अवशिष्ट भाग चाहे वह पहले एपीथिका रहा हो या हाइपोथीका, इस नए डायटम मे सदैव एपीथीका होगा। इससे एक कल्पना यह भी की जा सकती है कि इस प्रकार प्रत्येक विभाजन के फलस्वरूप कोशिकाएँ धीरे धीरे आकार मे छोटी होती जाएँगी (इसे मैकडानल्ड-फित्जर नियम भी कहते हैं) परतु अमल मे आगे चलकर छोटे आकार की नवीन कोशिकाएँ ऑक्सोस्पोर (auxospores) बनकर, पुन प्रारभिक आकार की कोशिकाओ को उत्पन्न कर देती है। पिन्नेलीज़ वर्ग मे ये ऑक्सोस्पोर दो कोशिकाओ के सयुग्मन से बनते हैं। दो कोशिकाओ के सयुग्मन से दो आक्सोस्पोर बन जाएँ, या दो कोशिकाएँ आपस मे एक चोल मे सट जाएँ और प्रत्येक बिना सयुग्मन के ही एक एक आक्सोस्पोर निर्मित कर दे, अथवा केवल एक कोशिका से एक आक्सोस्पोर बन जाय, या एक कोशिका से दो आक्सोस्पोर भी बन जा सकते हैं। सेंट्रेलीज़ वर्ग मे लघु बीजाणु (microspers) भी उत्पन्न होते हैं। इनकी सख्या एक कोशिका के भीतर ४, ८, १६ के क्रम से १२८ तक हो सकती है। कार्सटेन (१९०४ ई०) एव श्मिट (१९२३ ई०) के अनुसार इन लघु बीजाणुओ का निर्माण साइटोप्लाज्म मे सघन और फिर विभाजन के फलस्वरूप होता है। गाइटलर (१९५२ ई०) के मतानुसार यह क्रिया अर्धसूत्रण (meiosis) पर आधारित है। इन लघु बीजाणुओ मे कशाभ (flagella) भी होते हैं। अनेक केंद्रिक डायटमो मे मोटी

भित्तियुक्त एक और प्रकार के बीजाणु होते हैं, जिन्हें स्टैटोस्पोर (Statospores) कहते हैं।

डायटमों का वर्गीकरण मुख्यत शुट (Schutt, १८९६ ई०) के वर्गीकरण के आधार पर ही हुआ है। इसमे मुख्य तथ्य कोशिका-तक्षण की विभिन्नता है। फॉसिल रूप मे डायटम बहुसख्या में प्राप्त होते हैं, यहाँ तक कि इस पुज को डायटम मृत्तिका (diatomaceous) earth) की सज्ञा दी गई है। इन फॉसिल डायटमो के लिये भी यह वर्गीकरण उपयुक्त है। अधिकाश फॉसिल डायटम क्रिटेशस युग के पूर्व के नहीं हैं। इनकी प्रचुर सख्या एव मात्रा सेंटामेरिया ऑएल फील्ड्स, कैलिफॉर्निया मे प्राप्त हुई है। ये फॉसिल ७०० फुट मोटी तहो मे व्याप्त हैं, जो मीलो लबी चली गई है। फॉसिल डायटमो की मिट्टी व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चाँदी की पॉलिश करने मे यह उपयोगी है एव द्रव नाइट्रोग्लिसरिन को सोखने के लिये भी उपयुक्त है, जिससे डायनेमाइट अधिक सुरक्षा से स्थानातरित किया जा सकता है। आज लगभग ६०% डायटम मृत्तिका चीनी परिष्करण-शालाओ मे द्रवों को छानने के काम मे आती है। इसके अतिरिक्त इस मृत्तिका का उपयोग किसी अश तक पेंट तथा वारनिश आदि के निर्माण मे भी होता है। वात्या भट्ठियो मे, जहाँ ताप अत्यधिक होता है, डायटम मृत्तिका ऊष्मारोधी के रूप मे भी प्रयुक्त की जाती है। सामान्य ताप तो क्या ६००° सें० ताप तक यह ऊष्मारोधी के रूप में पूर्णत सफल रहती है। [वि० भा० शु०]

बोएक्लीन, आर्नल्ड (१८२७–१९०१) कुशल दृश्य चित्रकार। आर्नल्ड बोएक्लीन सन् १८२७ मे बासली मे उत्पन्न हुए थे। ब्रूसेल्स मे रहकर उन्होंने प्रसिद्ध डच कलाकारो के चित्रो की अनुकृति की। इससे काफी धन प्राप्त हुआ और वे पैरिस चले आए। १८४८ के आदोलन काल मे वह वही रहे और उसका उनकी कला पर काफी प्रभाव पडा है। उनके प्रत्येक चित्र मे भय, निराशा और अधेरा का कुहरा सा छाया रहता था। 'मृत्यु का द्वीप' (आइलैंड ऑव द डेड) उनका बहुचर्चित चित्र है। अपने जीवनकाल मे उन्हें उतनी प्रशसा न प्राप्त हो सकी जितना मृत्यु के पश्चात्। फ्लोरेंस के पास फियेसोल नामक स्थान पर सन् १९०१ मे वह परलोक सिधार गए। [रा० च० शु०]

बोखुम (Bochum) स्थिति ५०° २८' उ० अ० तथा ७° १२' पू० दे०। पश्चिमी मध्य जर्मनी के वेस्टफेलिया प्रदेश मे एसेन से नौ मील पूर्व एव डॉर्टमुट से ११ मील उत्तर-पश्चिम तथा पश्चिमी जर्मनी की राजधानी बॉन के दक्षिण में लगभग ५० मील की दूरी पर स्थित नगर है। यह राइन नदी की सहायक नदी पर बसा हुआ है। औद्योगिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यहाँ लोहा, इस्पात आदि का उद्योग होता है। यत्र तथा जस्ते भी बनते हैं। यहाँ की जनसख्या ३,४२,४०० (१९६१) है। [वि० मु०]

बोगी (Bogie), वाहनो के आगे और पीछेवाले धुरो के बीच का फासला जितना ही कम रखा जावे, उतना ही, पहियो की कोरो में घर्पण और पहियों के रेल से उतरने का खतरा बिना पैदा किए, सुरक्षापूर्वक रेलवाहनो के यातायात के लिये, अच्छा है। लेकिन आधुनिक आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये, लबे वाहन बनाना और भौगोलिक परिस्थितियो के कारण रेलमार्ग में कम त्रिज्या के मोड बनाना भी कई जगहो पर अनिवार्य हो जाता है। अत लबे वाहनो की इस असुविधा को दूर करने के लिये सन् १८१२ ई० मे इग्लैंड के विलियम चैपमैन नामक एक रेल इजन निर्माता ने, इजनो मे लगाने के उद्देश्य से, एक चौपहिया बोगी की अभिकल्पना की, जिसके धुरों का स्थिर फासला लगभग ६ फुट था। यातायात के इजनो मे इस प्रयुक्ति का सफलतापूर्वक प्रयोग १८३३ ई० से आरभ हुआ। १८४४ ई० मे इग्लैंड के जोज़ेफ राइट नामक इंजीनियर ने अपने बनाए सवारी वाहन के नीचे दो बोगियाँ लगाकर उसका पेटेंट करवाया। सन् १८७४ के बाद तो अमरीका और इग्लैंड दोनो देशो मे बोगीयुक्त वाहन काफी सख्या मे बनने लगे। बहुत बडे वाहनों के लिये तीन धुरों, अर्थात् ६ पहियो, की बोगियाँ भी अब बनाई जाती हैं।

मूलत बोगी दो धुरोवाले, चार पहियो के, ठेले के रूप में होती है। इसके ऊपरी तल के बीच में एक बडा छेद बना होता है, जिसम वाहन के नीचे की तरफ स्थिरता से जडी हुई चूलनुमा एक ऊर्ध्वाधर कीलक फँस जाती है और रेलपथ के मोडो पर वह समग्र ठेला ही उस चूल के सहारे आवश्यकतानुसार थोडा घूम जाता है और रेल पथ का सीधा भाग आते ही वह ठेला फिर वापस सीधा हो जाता है। इस सब क्रिया मे मुख्य वाहन का ऊपर वाला ढाँचा सीधा रहता है। बोगी के उक्त ढाँचे पर, जो टेढा सीधा होकर चलता रहता है, प्राय आकुंचन (bucketing) और पार्श्व विकृतियाँ (racking strains) काफी मात्रा मे पडा करती हैं। अत इसे समुचित प्रकार से दृढ बनाना पडता है। वाहनो की बोगियो के ढाँचो को तो उसी शैली के अनुसार बनाया जाता है जिसमे उन वाहनो के निचले ढाँचे (Under frames) बनाए जाते हैं और इजनो की बोगियाँ इजनो के फ्रेम की शैली के अनुसार बनाई जाती हैं।

चित्र १ (देखें फलक) में सवारी तथा मालगाडियो की बोगी का पार्श्व, सामने तथा प्लान के दृश्य दिखाकर, उसकी पूरी बनावट दिखाई है। इसके विभिन्न भागो को रिवेट द्वारा अथवा वेल्डिंग से जोडते हैं। फिर उचित प्रकार की भट्ठियों मे तपाकर आतरिक विकृतियाँ दूर कर लेते हैं। बोगी का केंद्रीय कीलक (pivot) भी दो भागो मे बनाया जाता है, जिसका ऊपरी भाग तो गाडी की निचली फ्रेम के आडे अवयवो मे स्थिरता से जड़ दिया जाता है और निचला भाग बोगी के ढाँचे की आडी स्लाइड मे सरकता रहता है। दोनो के सपर्कतलो में से एक को अवतल (concave) और दूसरे को उसी के अनुरूप उत्तल (convex) बनाते हैं। कीलक के निचले भाग की सतह पर तेल की झिरियाँ काटकर, उनमे तेल या ग्रीज भर देते हैं, जिससे उनके बीच घर्पण कम हो जाता है। इन दोनो के केंद्र मे छेद करके एक मोटी पिन भी फँसा देते हैं, जिससे गाडी के उछलकर चलते समय वे अलग न हो जाएँ। बोगी की आडी स्लाइट की सतहो पर भी ग्रीज आदि लगाने का प्रबध किया जाता है।

इजन की बोगियाँ — चित्र २ (देखें फलक) मे इजन के एक बोगी की बनावट पार्श्व और बीच मे से आडी काट करके दो दृश्यो मे दिखाई है। इसमे बोगी के फ्रेम प्लेट उसी प्लेट मे से बनाए जाते हैं जिससे कि इजन का फ्रेम बनता है। इसमे इस्पात के बने दो बेयरिंग कास्टिंग,
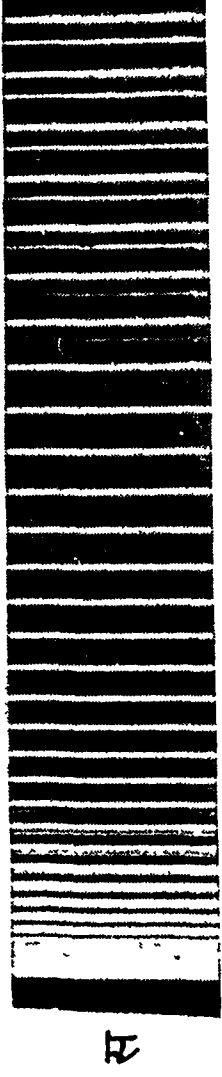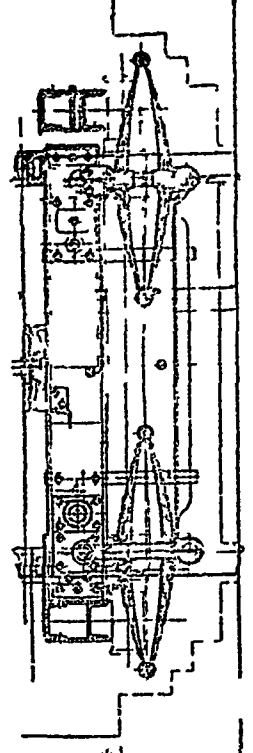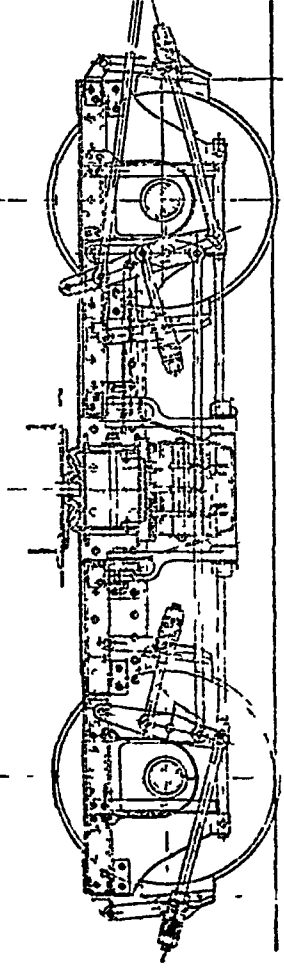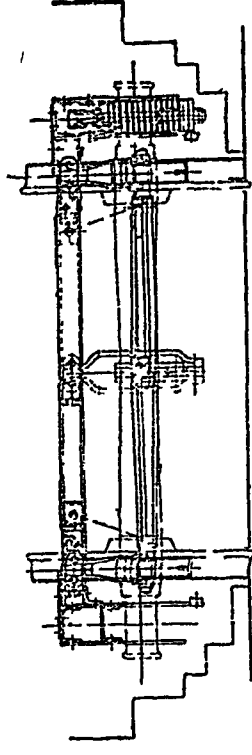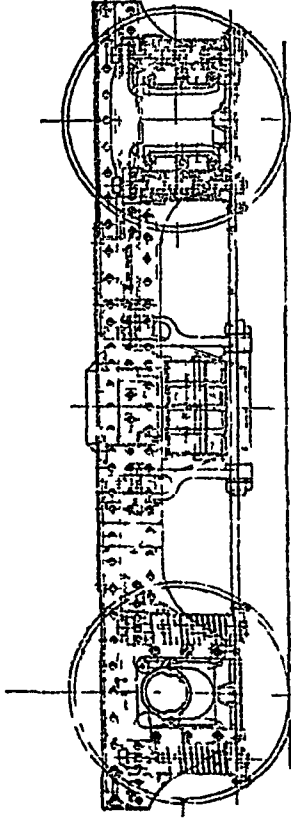
बोगी (देखें पृष्ठ ३७४)
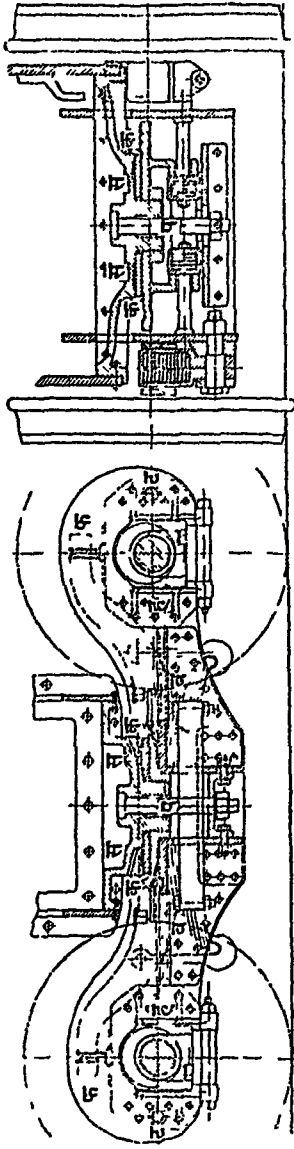
चित्र २
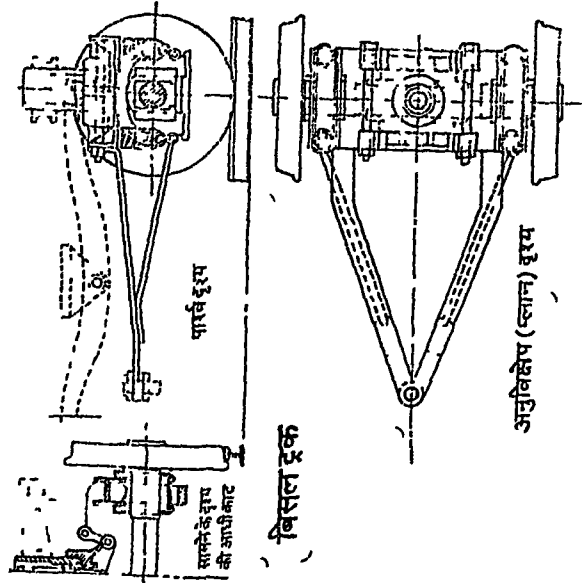
चित्र ३
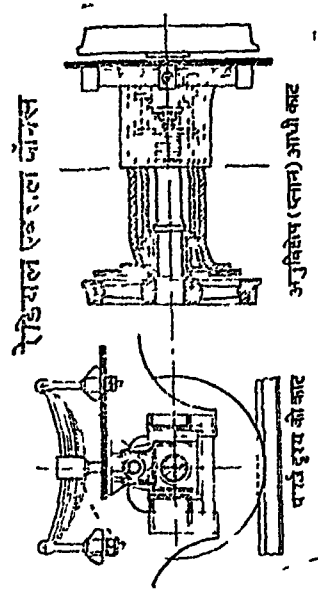
चित्र ४

दोनो फ्रेम प्लेटो के बीच मे लगभग १०" के फासले से समातर जड दिए जाते हैं। इनकी दूरी बोगी की मध्य रेखा से बराबर रहती है, जिससे वे केंद्रीय कास्टिंग 'क' के निचले भाग के लिये मार्गदर्शिका (guide) का काम कर सकें, क्योंकि वह इन्ही के ऊपर टिककर, बगलियो मे एक सीमा के भीतर भीतर सरकता है। अत इन बेयरिंग कास्टिंगों के रूप मे जो मार्गदर्शिका बनती है, उसकी लबाई लगभग दो फुट और चौडाई दोनो तरफ ६ इच के लगभग होती है। केंद्रीय कास्टिंग क मे बने छेदो तथा खांचो द्वारा इनपर तेल की चिकनाई फैलती रहती है। केंद्रीय कास्टिंग के ऊपरी भाग को गोल थालीनुमा चौरस खरादकर बना देते हैं, जिसमे पीतल का बना थालीनुमा ही एक अस्तर (liner) लगभग १ फुट ६ इच व्यास तथा ३/४" मोटा लगा दिया जाता है, जो सैडल प्लेट स और उपर्युक्त कास्टिंग क के बीच दबा रहता है। इजन का सैडल प्लेट स, जो ढले इस्पात से ही बनाया जाता है, अपनी फ्लैंजो के द्वारा, इजन के मुख्य फ्रेम प्लेटो मे ७/८" व्यास के, सही सही खरादे हुए, टाइट फिट बोल्टो द्वारा स्थिरता से कस दिया जाता है। सैडल प्लेट स का निचला भाग भी थाली के रूप मे सही सही खराद कर पीतल के उपर्युक्त घर्षण वाशर (अस्तर) पर टिकाव खाने योग्य बनाया जाता है। इनके बीच मे रहनेवाली कम से कम ६" व्यास की बेलनाकार चूल भी सही खरादकर ऐसी बनाते हैं कि वह घर्षण वाशर और केंद्रीय कास्टिंग क के मध्य मे बने तथा सही सही बोर किए छेद मे से होकर लगभग १०" नीचे निकल आती है। इस प्रकार की मजबूत बनी चूल के सहारे से ही बोगी का ठेला रेलपथ के मोडो पर आवश्यकतानुसार घूम जाता है। रास्ते मे चलते समय, रेल पथ की स्वल्प ऊँचाई निचाई के कारण, जब इजन कुछ उछलता है, उस समय यह चूल कही निकल न जाए इसलिये इसके केंद्र मे भी एक छेद बनाकर, उसमें एक मजबूत पिन प फँसा दी जाती है और नीचे की तरफ से उसे एक मजबूत नट और वाशर द्वारा कस देते है। कई इजनो मे उक्त चूल और पिन एकागी ही बनाई जाती है। चित्र मे ट चिह्नित दो मोटे स्टे (stay) भी लगे दिखाए है, जिनसे बोगी की फ्रेम को और भी अधिक दृढता प्राप्त होती है। चित्र मे ह एक्सल बक्सो के हॉर्न स्टे, ब बेयरिंग कमानी और फ, उनका भार पारेषक बीम है, जिसके सिरो के माध्यम से इजन का बोझा ऐक्सल के बक्सो पर पडता है। चित्र मे दाहिने हाथ की तरफ बने काट के दृश्य मे, एक एक मोटी छडो मे, जो ब्रैकटो के द्वारा स्थिरता से चूल के दोनो तरफ थमी हुई है, रबर की गद्दीनुमा कमानियाँ पिरो दी गई हैं। इनका काम रास्ते की मोडो पर चूल के एक तरफ सरक जाने के बाद, सीधा रास्ता आने पर, उसे फिर से मध्य मे लाना होता है।

जब रेल इजनों के आगे के भाग मे अधिक बोझा नही होता, अथवा जगह की कमी के कारण चौपहिया बोगी नही लग सकती तब उसके बदले में एक धुरेवाली बोगी ही लगाते हैं। चित्र ३ (देखें फलक) मे तिकोने फ्रेमवाली बोगी की बनावट तीन दृश्यो मे दिखाई है, जिसे बिसल ट्रक (Bissel truck) भी कहते हैं। इस तिकोने फ्रेम के शीर्ष को एक मजबूत पिन द्वारा, इजन की मुख्य फ्रेम के आडे स्टे के नीचे की तरफ स्थिरता से अटका देते हैं, जिसपर यह अग्रात घूमती रहती है।

रेलमार्ग की मोडो पर, इजन के चक्कों के स्थिर आधार को लचीलापन देने का एक तरीका त्रिज्यीय ऐक्सल बक्स (Radial axle box) का प्रयोग करना भी है। इसकी बनावट चित्र ४ (देखें फलक) मे दिखाई है। इसकी क्रिया पूर्वोक्त बोगियो के सिद्धात से सर्वथा भिन्न है, क्योकि इसके धुरे पर लगे ऐक्सल बक्स ही अपनी वक्र गाइडो मे, मोड आने पर, स्वय तिरछे हो जाते हैं। अत मध्यरेखा के दोनो तरफ इनकी पार्श्विक चाल (Sideplay), लगभग १३/४" रखना होता है।

बिसल ट्रक मे रेडियल ऐक्सल बक्सो की अपेक्षा घर्षण कम होता है, क्योकि बिसल ट्रक की स्विग लिंकें, रेडियल बक्सो की अपेक्षा, रास्ते की मोडो पर तिरछी होते समय कम मात्रा मे प्रतिरोध उपस्थित करती है। रेडियल ऐक्सल बक्सो की त्रिज्यीय गाइडों मे तथा उसकी कमानियो द्वारा काफी प्रतिरोध प्रस्तुत होता है। अत कई लोग रेडियल ऐक्सल बक्सो को इजन के पिछले भाग मे ही लगाना पसद करते हैं। बिसल ट्रक मे यह दोष है कि उसकी कडियाँ अपनी अपनी पिनो मे काफी ढीली रहती हैं, क्योकि घूमते समय उनमें काफी मरोड बल पडता है। अत उसकी चाल मे स्थिरता कम रहती है, वैसे तो उसके ऊपर लगा प्रतिकारी दड (compensating beam) स्थिरता बनाए रखने मे काफी सहायक होता है।

सं० ग्रं०—लेनीस रेलवे कैरेज ऐंड वैगस इन थ्योरी ऐंड प्रैक्टिस [ओ० ना० श०]

बोगोटा १ नगर, स्थिति ४° ४०' उ० अ० तथा ७४° १५' प० दे०। सागर तल से ८,५०० फुट ऊँचे पठार पर स्थित, कोलबिया की राजधानी एव सबसे बडा नगर है। यहाँ का जलवायु आर्द्र है। सन् १५३८ मे ही यह नवीन दुनिया का एक सास्कृतिक केंद्र था। यहाँ की नैशनल यूनिवर्सिटी मे चिकित्सा, कानून, राजनीति, इजीनियरिंग तथा शिक्षण सबंधी विभाग हैं। नगर के प्रमुख क्षेत्र (प्लाजा बोलिवर) मे राष्ट्रपतिभवन, साइमन बोलिवर का गृह तथा अन्य प्रसिद्ध भवन हैं। फुजा नदी के ऊपरी भाग मे एक सहायक सैन फ्रासिस्को नदी बहती है जो नगर से होकर गुजरती है। इसके पडोस मे पशुपालन होता है तथा खेती की जाती है। यह अपने सार्वजनिक स्थलो, पार्कों तथा बगीचो के लिये प्रसिद्ध है। नगर भर मे वैज्ञानिक, अविष्कारको, देशभक्तो, दार्शनिको तथा राष्ट्रपतियो की मूर्तियाँ लगी हैं। अच्छे होटल, सुदर दूकानें भी हैं। उद्योगों मे कपडे, सिगरेट, काच एव चमडे का सामान, चाकलेट, साबुन, दियासलाई, सीमेंट, आटा शराब तथा खाद्य पदार्थो का निर्माण होता है। इसकी जनसख्या १४,८७,००० (१९६४) है।

२ इसी नाम का एक नगर न्यूयॉर्क के उत्तर-पश्चिम न्यूजर्सी के बर्गेन प्रदेश मे हैं।

३ इस नाम की एक नदी है जो कोलबिया के मध्यवर्ती पठार से निकलकर, १६० मील बहने के बाद मैग्डालीना मे मिल जाती है।

[वि० मु०]

बोजांके, बर्नार्ड (१८४८-१९२३) प्रत्ययवादी बोजांके के अनुसार मनुष्य का अपूर्ण, असबधित एव सामजस्यविहीन अनुभव सदैव पूर्णता की प्राप्ति की चेष्टा करता रहता है। सीमित अनुभवो का विरोध

(Hahn), लिसे माइटनर (Lise Meitner) और फ्रिश के परमाणु विखंडन संबंधी सफल प्रयोगों की पुष्टि की। इसी वर्ष बोर द्वितीय महायुद्ध से पीडित होकर संयुक्त राज्य, अमरीका, पहुँच गए थे। बोर को परमाणु विखंडन की महत्ता स्पष्ट हो गई और इन्होंने अमरीका के वैज्ञानिकों को इस कार्य को व्यावहारिक रूप देने के लिये प्रेरित किया। २६ जनवरी, १९३९ ई० को बोर ने वाशिंगटन में सैद्धांतिक भौतिकी की एक कॉन्फ्रेंस में वैज्ञानिकों को परमाणु विखंडन से प्राप्त ऊर्जा के उपयोग के लिये संघटित किया। फर्मी आदि विख्यात वैज्ञानिकों के सहयोग से अंत में वे सफल प्रयोग हम लोगों के समक्ष आए, जिन्होंने परमाणु बम को जन्म दिया। बोर मार्च, १९३९ ई० को डेनमार्क लौटे। परमाणु बम प्रयोग की प्रेरणाएँ अमरीकी सरकार ने बोर और आइन्सटाइन से पाईं, जिनके फलस्वरूप ६ अगस्त, १९४५ ई० को हिरोशिमा इस बम का सर्वप्रथम शिकार हुआ।

बोर संसार के मूर्धन्य वैज्ञानिकों में माने जाते रहे हैं और सैद्धांतिक भौतिकी के ये प्रकांड पंडित थे। संसार के सभी देशों ने बोर को सम्मानित किया। अनेक विश्वविद्यालयों ने इन्हें डॉक्टर की उपाधि भेंट कर अपने को गौरवान्वित किया। १८ अक्टूबर, १९६२ ई० को नील्स बोर की मृत्यु हो गई। [सत्य० प्र०]

बोराइड (Borides) बोरॉन के धातु यौगिकों को कहते हैं। ये कठोर पदार्थ हैं, जिनकी क्रिस्टलीय संरचना धातु जैसी होती है। इनके रासायनिक सूत्र संयोजकता के नियमों से बद्ध नहीं होते। शुद्ध धातु की अपेक्षा बोराइड अधिक कठोर, तथा निष्क्रिय होते हैं। इनके गलनांक तथा विद्युत् प्रतिरोधकता धातु की अपेक्षा ऊँची होती है। बोराइड की रचना अनेक प्रकार की होती है। कुछ बोराइडों में धातु के परमाणुओं के विन्यास (arrangement) के मध्य में बोरॉन के परमाणु स्थान स्थान पर जड़े रहते हैं, कुछ में इसके प्रतिकूल रचना रहती है और अन्य बोराइडों की संरचना इन दोनों संरचनाओं का मध्यमान होती है।

अधिकतर बोराइड धातु और बोरॉन की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप बनते हैं। कुछ बोरॉन ऑक्साइड और धातु के ऑक्साइड, अथवा लवण, तथा किसी अपचायक पदार्थ के मिश्रण की क्रिया से भी बन सकते हैं। इन क्रियाओं के लिये १,०००° से २,०००° सें० का ताप आवश्यक है। इस ताप के लिये विद्युत् भट्ठी ही उपयोगी होती है, *जिसमें अक्रिय गैस का वातावरण रहना आवश्यक है*, अन्यथा ऑक्साइड बनने का डर रहता है। कभी कभी अपचायक पदार्थ के स्थान पर फ्लोराइड प्रयोग करने पर सरलता से बोराइड बनता है। इन क्रियाओं के पश्चात् भट्ठी में चूर्ण के रूप में बोरॉन तत्व बच रहता है। इसे नाइट्रिक अम्ल द्वारा घुला लिया जाता है।

एक्स-किरण द्वारा परीक्षण से धातु के बोराइडों को हम कई श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :

(१) धा$_२$ बो (M_2B) श्रेणी, जिसमें धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात २ १ होता है। ऐसे बोराइड टैंटेलम, टंग्स्टन, मोलिब्डेनम, मैंगनीज, लोह, कोबाल्ट और निकल के हैं।

(२) धा$_३$ बो$_२$ (M_3B_2) श्रेणी, जिसमें धातु और बोरॉन का अनुपात ३ २ है। ऐसे बोराइड *मैग्नीशियम और बेरीलियम के हैं।*

(३) धा बो ($M B$) श्रेणी, जिसमें धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात १ १ है। इसके अंतर्गत मैंगनीज, लोह, कोबाल्ट, मोलिब्डेनम, टंग्स्टन, नियोबियम, टैंटेलम और क्रोमियम के बोराइड हैं।

(४) धा$_३$ बो$_४$ (M_3B_4) श्रेणी, जिसमें धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात ३ ४ है। इसके अंतर्गत क्रोमियम, मैंगनीज, नियोबियम और टैंटेलम के बोराइड हैं। इस समूह में पहले की अपेक्षा *अधिक कठोरता* रहती है।

(५) धाबो$_२$ ($M B_2$) श्रेणी, जिसमें धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात १ २ है। इस श्रेणी में ऐल्यूमिनियम, मैग्नीशियम, वैनेडियम, नियोबियम, टैंटेलम, टाइटेनियम, ज़र्कोनियम, क्रोमियम और मोलिब्डेनम के बोराइड हैं।

(६) धा$_२$ बो$_५$ (M_2B_5) श्रेणी, जिसमें धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात २ ५ है। इस श्रेणी में मोलिब्डेनम और टंग्स्टन के बोराइड हैं।

(७) धाबो$_६$ (MB_6) श्रेणी, जिसमें धातु और बोरॉन का अनुपात १ ६ है। इसके अंतर्गत कैल्सियम, बेरियम, स्ट्रांशियम, ईट्रियम तथा लैथेनम के बोराइड और अन्य विरल मृदा तत्व तथा थोरियम बोराइड हैं। ये बोराइड सबसे कठोर और कम धातुगुण के होते हैं।

(८) धाबो$_{१२}$ (MB_{12}) श्रेणी, जिसके अंतर्गत यूरेनियम बोराइड है।

बोराइड बड़े उपयोगी पदार्थ हैं। कैल्सियम बोराइड इस्पात उद्योग में काम आता है। बोराइड की कठोरता का उपयोग खराद उपकरणों में बहुत होता है। मैग्नीशियम बोराइड, बोरॉन हाइड्राइड या बोरॉन के निर्माण में उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त बेरीलियम, ऐल्यूमिनियम, सीरियम, लोह, निकल तथा मैंगनीज़ बोराइड भी तनु अम्लों से क्रिया कर बोरॉन मुक्त करते हैं। [र० च० क०]

बोरॉन (Boron) आवर्त सारणी के तृतीय समूह का प्रथम तत्व है। इसके दो स्थिर समस्थानिक ज्ञात हैं, जिनकी द्रव्यमान संख्या १० और ११ है। इसका एक रेडियोऐक्टिव समस्थानिक (द्रव्यमान संख्या १२) कृत्रिम विधियों से निर्मित हुआ है।

प्राचीन काल से बोरॉन के एक यौगिक का उपयोग होता आया है। लगभग २,५०० वर्ष पूर्व लिखी सुश्रुतसंहिता में टंकण क्षार, अथवा सुहागा, का उल्लेख आया है, जिसके अनेक उपयोग ओषधि में बताए गए हैं। इसको धातुकर्म में भी प्रयुक्त किया जाता था। बोरॉन तत्व का उत्पादन सर्वप्रथम सन् १८०८ में गेलुसैक एवं थेनार्ड ने किया। उसी वर्ष डेवी ने भी इस धातु का उत्पादन किया तथा बोरॉन नाम प्रस्तावित किया।

बोरॉन सक्रिय तत्व होने के कारण असंयुक्त अवस्था में नहीं पाया जाता, परंतु अनेक ऑक्सीजन यौगिकों के रूप में पाया जाता है। *बोरेक्स, अथवा सुहागा*, सो$_२$ बो$_४$ औ$_७$, १० हा$_२$औ ($Na_2B_4O_7 10H_2O$), इसका प्रमुख यौगिक है, जिसका सबसे बड़ा स्रोत

अमरीका का कैलिफार्निया प्रदेश है। बोरैक्स पहले भारत में तिब्बत प्रदेश से आता था, परतु अब पूर्वी कश्मीर मे भी इसका स्रोत ज्ञात है। इसके अतिरिक्त केरनाइट (Kernite), सो$_2$बो$_4$ओ$_7$ ४ हा$_2$ओ ($Na_2B_4O_7$ 4 H_2O), भी इसका आवश्यक स्रोत है।

गेलुमेक ने बोरॉन ऑक्साइड, बो$_2$ ओ$_3$ ($B_2 O_3$), का पोटैशियम द्वारा अपचयन कर बोरॉन तत्व प्राप्त किया था। पोटैशियम बोरोफ्लोराइड के सोडियम द्वारा अपचयन से भी बोरॉन को तैयार कर सकते हैं। कुछ क्रियाओ मे बोरॉन क्लोराइड अथवा ब्रोमाइड का हाइड्रोजन द्वारा अपचयन करते हैं। इसमे हाइड्रोजन को उत्तेजित करने के लिये विद्युच्चाप की आवश्यकता पडती है।

औद्योगिक मात्रा मे बोरॉन तैयार करने की विधि इस प्रकार है बोरॉन ऑक्साइड, मैग्नीशियम ऑक्साइड और मैग्नीशियम फ्लोराइड के समिश्रण को लेकर उसके मध्य दिष्ट (direct) विद्युद्धारा प्रवाहित करते हैं। इस क्रिया का ताप १,१००° सें० रहता है, जिससे सारा समिश्रण सगलित अवस्था में रहे। इस प्रकार शुद्ध बोरॉन प्राप्त होता है।

गुणधर्म — शुद्ध बोरॉन का रग, चूर्ण अवस्था मे, काला रहता है, परतु क्रिस्टलीय बोरॉन चमकदार पारदर्शी पदार्थ है तथा हीरे की भाँति कठोर होता है। इसके कुछ भौतिक गुणधर्म निम्नाकित हैं

सकेत बो (B), परमाणुसख्या ५, परमाणुभार १०.८२, गलनाक २,३०० सें०, क्वथनाक २,५५०° सें०, घनत्व २.४५ ग्राम प्रति घन सेंमी०, विद्युत्प्रतिरोधकता १$^{\circ}$८×१० ओम सेंमी० (०° सें० पर) तथा आयनीकरण विभव ८.२९६ इवो०। धातुओ के विपरीत, बोरॉन की विद्युत्प्रतिरोधकता उच्च ताप पर शीघ्रता से घटती है।

बोरॉन और सिलिकन के गुणो मे बहुत समानता है, यद्यपि दोनो आवर्तसारणी के विभिन्न समूहो मे हैं। इस समानता को वर्णीय सममिति (diagonal symmetry) कहेंगे। सामान्य ताप पर बोरॉन प्राय अप्रभावित रहता है। सान्द्र नाइट्रिक अम्ल चूर्ण बोरॉन को मध्यम गति से बोरिक अम्ल मे परिवर्तित करता है। फ्लोरीन बोरॉन से सामान्य ताप पर क्रिया करता है, क्लोरीन ४००° सें० पर और ब्रोमीन ७००° सें० पर। उच्च ताप (लगभग ७००° सें०) पर, बोरॉन ऑक्सीजन मे तीव्र वेग से जलता है। ६००° सें० पर यह जलवाष्प से क्रिया कर बोरॉन ऑक्साइड और गधक के साथ बोरॉन सल्फाइड बनाता है। विद्युच्चाप के मध्य बोरॉन कार्बन से मिलकर बोरॉन कार्बाइड, बो$_6$ का (B_6 C), बनाता है, जो अत्यत कठोर पदार्थ है। अत्यत उच्च ताप पर बोरॉन और नाइट्रोजन से अभिक्रिया द्वारा बोरॉन नाइट्राइड, बोना (BN), बनता है। बोरॉन नाइट्राइड के क्रिस्टल हीरे से भी कठोर होते हैं। इस प्रकार अब हीरे से भी कठोर पदार्थ कृत्रिम विधि से बनाया जा चुका है।

बोरॉन मे अधातु गुण विशेष हैं, परतु इसके कुछ धातुगुणवाले यौगिक भी ज्ञात हैं, जैसे बोरॉन बाइसल्फेट, बो(हागंओ$_4$)$_3$ [$B(HSO_4)_3$] और बोरॉन फॉस्फेट, बो फा ओ$_4$ (BPO_4)। बोरॉन के हैलोजन तत्वों के साथ निर्मित यौगिको के गुणविशेष हैं। ये यौगिक शीघ्र जलविश्लेपित होते हैं। यद्यपि इन यौगिको मे बोरान तीन सयोजकता प्रदर्शित करता है तथापि उसमें चार सह संयोजकता (covalency) की प्रवृत्ति रहती है, जैसे बोफ्लो$_4^-$ (BF_4^-) आयन का निर्माण।

बोरॉन के अनेक कार्बनिक व्युत्पन्न भी बनाए गए हैं, जो ग्रिग्नार्ड अभिकर्मक की परपरा के हैं।

बोरॉन के हाइड्राइड — मैग्नीशियम बोराइड हाइड्रक्लोरिक अम्ल, हाक्लो (H Cl), से प्रक्रिया कर बोरॉन हाइड्राइड मुक्त करता है। बोरॉन के अनेक हाइड्राइड ज्ञात हैं।

बोरॉन यौगिको के संरचनात्मक सूत्र बनाने में कठिनाई ज्ञात हुई, क्योंकि बोरॉन परमाणु मे केवल तीन सयोजकता इलेक्ट्रॉन हैं, जिनसे चार रासायनिक बध बनना आवश्यक था। लुइस की सयोजकता के इलेक्ट्रॉनीय सिद्धात के अनुसार इनकी सतोषजनक सरचनाएँ नहीं बन सकती थीं, परतु अब क्वाटम यान्त्रिकी पर आधारित सिद्धात द्वारा इनकी सरचना की पहेली सुलझ गई है। उसके अनुसार दो इलेक्ट्रॉन युग्म दो परमाणुओं की अपेक्षा अधिक परमाणुओ के बीच में भागीदार हो सकते हैं। [र० च० व०]

बोरिक अम्ल हा$_3$बोओ$_3$ (Boric Acid, H_3BO_3) पृथ्वी मे सभी जगह एव जीवशरीर मे न्यून मात्रा मे उपस्थित रहता है। अनेक खनिज जलों मे यह अधिक मात्रा में विलीन रहता है। होमबर्ग ने १७०२ ई० मे सर्वप्रथम इसे सुहागे पर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया द्वारा निर्मित किया।

ज्वालामुखी जलो, या गरम स्रोतो, के जल के वाष्पीकरण से बोरिक अम्ल प्राप्त हो सकता है, पर आजकल इसे गरम सान्द्र बोरैक्स के विलयन पर सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त किया जाता है

बोरैक्स+सल्फ्यूरिक अम्ल + ५ जल = ४ बोरिक अम्ल+सोडियम सल्फेट

$$[Na_2B_4O_7 + H_2SO_4 + 5H_2O = 4B(OH)_3 + Na_2SO_4]$$

न्यून ताप पर बोरिक अम्ल की विलेयता बहुत कम है। इस कारण विलयन को ठढा करने पर बोरिक अम्ल के श्वेत क्रिस्टल निकल आते हैं।

गुणधर्म — बोरिक अम्ल श्वेत पट्टिकाओ मे क्रिस्टलीकृत होता है, जो छूने पर कोमल और साबुन जैसी ज्ञात होती हैं। इसकी ०° सें० ताप पर जलविलेयता २.६ प्रति शत, २५° सें० पर ६.२७ प्रति शत और १०७° सें० पर ३७ प्रति शत है।

१००° सें० ताप पर बोरिक अम्ल अनार्द्र होकर मेटाबोरिक अम्ल बनता है

$$\text{बोरिक अम्ल} \xrightarrow{१००^{\circ}\ \text{सें०}} \text{मेटाबोरिक अम्ल} + \text{जल}$$

$$[H_3BO_3 \xrightarrow{100^{\circ}\ C} HBO_2 + H_2O]$$
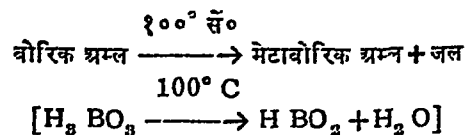
अधिक उच्च ताप पर बोरॉन ऑक्साइड बन जाता है। बोरिक अम्ल एक दुर्बल अम्ल है और केवल एकक्षारकी (monobasic) अम्ल की प्रतिक्रियाएँ देता है। ऐसा अनुमान है कि बोरिक अम्ल जलविलयन में जलयोजित (hydrated) रूप मे रहता है, जिसके फलस्वरूप केवल एक हाइड्रोजन आयन या प्रोटॉन मुक्त होता है।

$$\text{बो (ओ हा)}_3 + \text{हा}_2\text{ओ} = \text{बो (ओ हा)}_4^- + \text{हा}^+$$
$$[B(OH)_3 + H_2O = B(OH)_4^- + H^+]$$
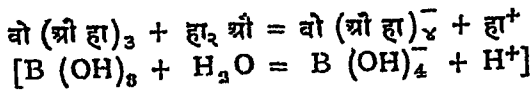
बोरिक अम्ल की दुर्बलता के कारण उसका क्षार के साथ अनुमापन (titration) नही हो सकता, परतु उसके विलयन मे ग्लिसरीन या मैनीटॉल डालने से उसके अम्लीय गुण मे वृद्धि हो जाती है, और तब उसका क्षार विलयन के साथ अनुमापन हो सकता है। सामान्य बोरिक अम्ल के गुण स्थिर नही होते, परतु मेटाबोरिक, सोबोओ$_2$ ($NaBO_2$) तथा अन्य अतर्वर्ती (intermediate) बोरिक अम्लो के लवण ज्ञात है। इनमे बोरैक्स या सुहागा, सो$_2$बो$_4$ओ$_7$, १०हा$_2$ओ ($Na_2B_4O_7, 10H_2O$), अत्यत उपयोगी लवण है। यह टेट्राबोरिक अम्ल, हा$_2$बो$_4$ओ$_7$ ($H_2 B_4 O_7$) का लवण है, जो स्वय असयुक्त अवस्था मे प्राप्त नही होता। जलविलयन में जलअपघटन (hydrolysis) के कारण इसमे क्षारगुण प्रधान हो जाता है, जिससे पीएच (pH) लगभग ९ रहता है। इस कारण बोरैक्स का विलयन उभय प्रतिरोधी (buffer) के रूप मे उपयोग मे आता है।

बोरिक अम्ल के अनेक कार्बनिक व्युत्पन्न ज्ञात हैं, जिनके द्वारा बोरॉन के कार्बनिक परपरा के यौगिक प्राप्त हो सकते हैं।

उपयोग — बोरिक अम्ल जीवाणुनाशक पदार्थ है और चिकित्सा मे काम आता है। यह खाद्य पदार्थो मे जीवाणुओ की रोकथाम कर सकता है, परतु स्वय इसमे कुछ विषैले गुण होने के कारण इसके खाद्य सबधी उपयोगो पर रोक लगा दी गई है। लकडी पर चमक तथा कपडो के ज्वाला प्रतिरोधी बनाने के यह काम आता है। इसको निकल के विद्युल्लेपन (electroplating) कार्य के विलयन मे भी डालते हैं। इसका उपयोग ऊष्मा प्रतिरोधी काच बनाने में हो रहा है। चीनी मिट्टी के बरतनो मे चमक लाने के लिये बोरिक अम्ल तथा बोरेट यौगिको का पुरातन काल से उपयोग होता आया है। बोरॉन सर्वदा मिट्टी मे सूक्ष्म मात्रा मे उपस्थित रहता है। यह पौधों की वृद्धि के लिये आवश्यक तत्व है। जिस भूमि मे बोरान की मात्रा कम हो गई हो, उसमे बोरिक अम्ल डालने से पौधो की समुचित वृद्धि होती है। बोरिक अम्ल हल्दी से क्रिया कर तीव्र लाल रग देता है, जो इसके विश्लेषण के लिये उपयोगी है। [र० च० क०]

बोर्नियो (Borneo) स्थिति ७° ०' से ४° २०' द० अ० तथा १०८° ५३' से ११९° २२' पू० दे०। प्रशात महासागर मे स्थित पूर्वी द्वीपसमूह का, विषुवत् रेखा के दोनो ओर स्थित एव विश्व का तीसरा सबसे बडा द्वीप है। यह उत्तर मे दक्षिणी चीन सागर, पूर्व-उत्तर मे सेलेबीज सागर, दक्षिण मे जावा सागर एव दक्षिण-पश्चिम मे कारिमाटा जलडमरूमध्य से घिरा है। यह ८८५ मील लबा तथा ६०० मील चौडा है। यहाँ के पर्वतो की ऊँचाई लगभग ६,००० फुट तक है। उत्तरी बोर्नियो में किनिबालू चोटी १३,४५५ फुट ऊँची है। दक्षिण-पूर्वी मानसून हवाओ मे स्थित होने के कारण १०० इच से २०० इच तक वर्षा होती है। यहाँ की जलवायु गरम तथा नम है। औसत ताप २७° सें० रहता है। निचले भागो मे दलदल तथा पहाडी भागो मे वन हैं। कापुआस, सेरोजान, कटिंगन, बारीटो, मोहकम, काजान तथा राजन आदि प्रमुख नदियाँ बहती हैं। यह राजनीतिक दृष्टि से चार भागों में बँटा है :

१ सारावाक — मलेशिया के अतर्गत बोर्नियो द्वीप का उत्तरी भाग है। इसका क्षेत्रफल लगभग ४८,२५० वर्ग मील तथा सागरतट ४५० मील लबा है। इसमे कई नाव्य नदियाँ बहती हैं। इसकी जनसख्या ७,९९,०३४ (१९६१) है। यहाँ का प्रमुख नगर एव राजधानी कुचिंग (जनसख्या ५०,६७९) है जो सारावाक नदी के किनारे, सागर से १८ मील अदर की ओर स्थित है। रेजॅग नदी के ८० मील ऊपर स्थित मिरी (१३,५००) भी एक प्रमुख नगर है। कृषि में धान, साबूदाना तथा काली मिर्च का उत्पादन किया जाता है। रबर, लकडी तथा तेल का बडी मात्रा मे उत्पादन एव निर्यात किया जाता है। खनिजो मे सोना, बॉक्साइट मिलता है तथा कोयले के भडार का भी पता चला है। यातायात के साधनो की विशेष उन्नति नही हुई है। रेलें बिल्कुल नही हैं। सडकें ही यातायात का साधन हैं।

२ ब्रूनेई — यह सारावाक के मलेशियन प्रात तथा द्वीप के उत्तरी तट के मध्य मे स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग २,२२६ वर्ग मील एव सागरतट १०० मील लबा है। इसकी जनसख्या ९०,००० (१९६२) है। ब्रूनेई (जनसंख्या ११,०००) यहाँ की राजधानी है जो ब्रूनेई नदी से नौ मील ऊपर स्थित है। यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबधीय है जिसपर समुद्र का प्रभाव भी पडता है। रातें ठडी होती हैं। यहाँ की भाषा मलय तथा अग्रेजी है। शिक्षा का काफी प्रसार है। यहाँ का प्रमुख उद्योग खनिज तेल पर आधारित है जिसमे ३, जनसख्या लगी हुई है। घरेलू तौर पर नावें बनाना, कपडे बुनना पीतल, चाँदी के सामान बनाना प्रमुख हैं। लकडी का निर्यात किया जाता है। उपजो में रबर, धान, जेलूटोग (Jelutong) तथा साबूदाना प्रमुख हैं। पेट्रोलियम अधिकाशत सागर के किनारे मिलता है। लूटॉन्ग में तेल शोधन होता है। यातायात मे सडक मार्ग, हवाई मार्ग एव जल मार्ग प्रमुख हैं।

३ कालीमेटन (या हिंदेशियाई बोर्नियो) — यह द्वीप के दक्षिणी भाग मे स्थित है तथा हिंदेशिया के अतर्गत आता है। इसका क्षेत्रफल २,०८,३०० वर्ग मील तथा जनसख्या ४१,०१,००० (१९६२) है। इसमे समूचे द्वीप का २/३ से अधिक भाग है। यह पर्वतीय भाग है। इसके दक्षिणी भाग मे अनेक नौगम्य नदियाँ बहती हैं। इस भाग की जलवायु मुख्यतया भूमध्यरेखीय है जो गरम एव नम रहती है। ऊँचे भागो मे रात मे ठढक रहती है। मैदानो मे ताप २०° सें० तक रहता है। अधिकाश भागो मे सदाबहार जगल पाए जाते हैं। इन जगलो मे हाथी, हरिण, गैडा एव जगली साँड रहते हैं। कृषि मे धान, मक्का, कसावा एव ककबर आदि प्रमुख हैं। कृषि मे धीरे धीरे उन्नति की जा रही है। तबाकू, रबर, कहवा तथा नारियल भी उत्पन्न किए जाते हैं। खनिज पदार्थो मे पेट्रोलियम, सोना, हीरा तथा कोयला प्रमुख हैं। इस भाग मे आदिवासी अधिक निवास करते हैं। अभी तक यह एक अविकसित भाग है। [श्रीना० सिं०]

४ उत्तरी बोर्नियो—देखें, नॉर्थ बोर्नियो।

बोलत्सानो (Bolzano) १ प्रात, स्थिति ४६° ३०' उ० अ० तथा ११° २०' पू० दे०। यह उत्तरी इटली का एक प्रात है। इसका क्षेत्रफल २,७३५ वर्ग मील है। यह प्रदेश पहाडी तथा जगलो से घिरा

हुआ है। यहाँ अनेक खनिज पाए जाते हैं जिनमें लोहा, एल्यूमिनियम और ऐंटीमनी प्रमुख हैं।

२ नगर, स्थिति ४६° ३०' उ० अ० तथा ११° २०' पू० दे०। यह बोलत्सानो प्रदेश की राजधानी है जो इसार्को (Isarco) और एडिजे (Adige) नदियों के सगम पर, सागरतल से ८६५ फुट की ऊँचाई पर पर्वतों से घिरे रमणीक स्थल पर बसा है। जर्मनी से इटली आनेवाले ब्रेनर मार्ग पर स्थित होने के कारण यह व्यापार के लिये बहुत महत्व का नगर बन गया है। इसकी जनसख्या ७६,६०० (१९६१) है। [वि० मु०]

बोलपुर स्थिति २३° ४०' उ०अ० तथा ८७° ४२' पू० दे०। भारत मे पश्चिमी बगाल राज्य के बीरभूम जिले मे, हावडा से ९९ मील उत्तर-पश्चिम की ओर एक नगर है। इसकी जनसख्या २३,३५७ (१९६१) है। सन् १९२१ मे श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक ग्रामविद्यालय की स्थापना के लिये इस स्थान को चुना था जिसके फलस्वरूप शातिनिकेतन की स्थापना हुई और वृक्षों की छाया मे शिक्षण कार्य प्रारभ हुआ जो आज भी बहुत कुछ वैसा ही होता है, यद्यपि प्रयोगशालाओं के लिये अब इमारतें बन गई हैं। यहाँ बडी बडी इमारतें नही हैं। स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद यह सस्था विश्वभारती विश्वविद्यालय के रूप मे विकसित हुई जहा ग्रामोद्योग, चित्रकला, मूर्तिकला, गायन, नृत्य-कला एव विभिन्न भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त चीनी, जापानी जर्मन, फ्रासीसी आदि विदेशी भाषाओं के अध्ययन की विशेष व्यवस्था है। इस विश्वविद्यालय के कुलपति रवींद्रनाथ ठाकुर, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री यथासमय रह चुके हैं। इस सस्था मे भारत के विभिन्न भागो से ही नहीं वरन् विदेशो से भी शिक्षार्थी एकत्र होते हैं और अपने ज्ञान की वृद्धि करते हैं। [रा० स० ग०]

बोलशेविक पार्टी रूसी सोशल डेमाक्रेटिक लेबर पार्टी का वह पक्ष बोलशेविक पार्टी कहलाया, जो दूसरे पक्ष से अपेक्षाकृत अधिक उग्र था और बुर्जुआवर्ग के विरुद्ध सीधी क्राति में विश्वास रखता था। १८९८ में नौ मार्क्सवादियों ने मिंस्क में रूसी सोशल डेमाक्रेटिक पार्टी की स्थापना की थी। वस्तुत रूस मे मार्क्सवादी आदोलन की शृखला 'श्रमिक-मुक्ति-सघर्ष सघ' (यूनिअन फॉर द स्ट्रगल फॉर इमैंसिपेशन ऑव लेबर) की स्थापना के साथ १८८३ मे आरभ हो गई थी। इस सगठन का प्राथमिक लक्ष्य औद्योगिक श्रमिकों में मार्क्स और एजेल्स के दर्शन का प्रचार करना था। १८९० के पश्चात् रूस के प्राय सभी मुख्य औद्योगिक केंद्रों—मास्को, कीएव और एकातिरीनोस्लाव—मे इस क्रातिकारी आदोलन की जडें गहराई से पैठ गई। शुरू से ही इस आदोलन को सुधारवादी अर्थशास्त्रियों और ऐसे पक्षो से सघर्ष करना पडा जो (१) श्रमिक आदोलन को आर्थिक समाधान तक ही सीमित रखना चाहते थे और (२) तत्कालीन उदारवादी बुर्जुआ आदोलन से समझौता कर लेना चाहते थे।

२०वीं सदी के आरम में निकोलाई लेनिन, जो सोशल डिमॉ-क्रेटिक लेबर पार्टी का सर्वाधिक प्रभावशाली नेता था, पार्टी के मुखपत्र इस्क्रा (चिनगारी) का प्रधान सपादक था। पार्टी के द्वितीय अधिवेशन (ब्रूसेल्स और लंदन, जुलाई-अगस्त, १९०३) में सदस्यों मे फूट पड गई और उसके दो भाग बोलशिव्की बहुमत और मेनशिव्की (अल्पमत) हो गए। बाद मे दोनों बोलशेविक और मेनशेविक कहलाए, जिनका नेतृत्व क्रमश लेनिन और मार्तोव कर रहे थे। इस समय ट्राट्स्की बडे ढीले ढाले तरीके से मेनशेविकों से जुडा हुआ था। १९०३ की फूट नीति के प्रश्न पर नही, अपितु सगठन के प्रश्न पर हुई थी। बाद मे दोनो के बीच अग्रियात्मक मतभेद भी पनपे। फिर भी, फूट के बावजूद दोनों पक्ष सोशल डेमॉ-क्रेटिक लेबर पार्टी के अधिवेशनों मे भाग लेते रहे। पार्टी के प्राग अधिवेशन (१९१८) में बोलशेविकों ने एक निर्णयात्मक कदम उठाकर मेनशेविकों को पार्टी से निकाल दिया। बोलशेविकों ने बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सीधे सघर्ष और सर्वहारा के अधिनायकवाद का नारा दिया था। दूसरी ओर मेनशेविक क्रमिक परिवर्तन और ससदीय तथा सवैधानिक पद्धतियों द्वारा जार की एकशाही समाप्त करने के पक्षपाती थे। मार्च, १९१७ मे बोलशेविक पर्टी ने अपना सघर्ष छेडने की अंतिम घोषणा कर दी। सपूर्ण क्राति (नवबर, १९१७) के बाद बोल-शेविक पार्टी का नाम कम्यूनिस्ट पार्टी हो गया और इसके बाद के रूस का इतिहास ही पार्टी का इतिहास है।

भारत मे बोलशेविक पार्टी की स्थापना वर्तमान शती के पाँचवें दशक मे कुछ मार्क्सवादी-लेनिनवादी तत्वो ने की थी। इसके सस्थापक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से विलग होनेवाले लोग थे। सहकारी खेती, पूर्ण नागरिक आजादी, मुफ्त शिक्षा, विदेशी पूँजी की जब्ती, बुनियादी उद्योगों — बैंक और बीमा—का राष्ट्रीयकरण, समाजवादी देशों से विशेष सबध और व्यापार, भारत पाक एकता और राष्ट्रमडल से सबध विच्छेद पार्टी की नीति के अग हैं। पार्टी आरभ से बगाल मे ही सीमित रही और अब तो इसका अस्तित्व केवल कलकत्ता नगर मे ही सिमटकर रह गया है। [चा० त्रि०]

बोलिवार १ विभाग, कोलंबिया का एक विभाग है जिसका क्षेत्रफल १३,९४८ वर्ग मील तथा जनसख्या ८,२६,००० (अनुमानित १९६४) है। यह कैरिबीएन सागर के किनारे स्थित है। जलवायु गरम तथा आर्द्र है। इसकी राजधानी कार्टजीना (१,९७,०००) यहाँ का प्रमुख व्यापारिक नगर है।

२. राज्य, स्थिति ८° ५' उ० अ० तथा ६३° ३०' प० दे०। यह वेनिजवीला का एक आतरिक राज्य है। इसका क्षेत्रफल ९१,८९२ वर्ग मील तथा जनसख्या २,५४,६१० (अनुमानित १९६८) है। यह ओरिनोको नदी के किनारे स्थित है। इसकी राजधानी स्यूदाद बोलीवार (Cuidad Bolivar) है जो ओरिनोको नदी के मुहाने से २४० मील ऊपर स्थित है। लकडी, खनिज तथा खालें प्रमुख उत्पादन हैं। कैरोनी नदी पर जलविद्युत् बनाई जाती है।

३ प्रात, इसी नाम का एक प्रात एक्वाडॉर में है। इसका क्षेत्रफल १,१५९ वर्ग मील तथा जनसख्या, १,४७,४०० (१९६०) है। यह अर्धविकसित वनाच्छादित प्रदेश है। इसकी राजधानी ग्वाराडा है। [पु० कु०]

बोलिविया स्थिति १७° ६' द० अ० तथा ६४° ०' प० दे०। यह दक्षिणी अमरीका का एक अतरस्थलीय प्रजातत्र है। इसका क्षेत्रफल ४,२४,१६० वर्ग मील तथा जनसख्या ३५,०९,००० (१९६१) है। इसके पश्चिम में चिली एव पेरू, उत्तर एव पूर्व में ब्राज़िल तथा दक्षिण

बोरिक अम्ल (देखें पृष्ठ ३७८)

बोरिक अम्ल का कारखाना

बिल्ली (देखें पृष्ठ २९२)

बन बिलाव

बोलपुर (पृष्ठ ३८०)
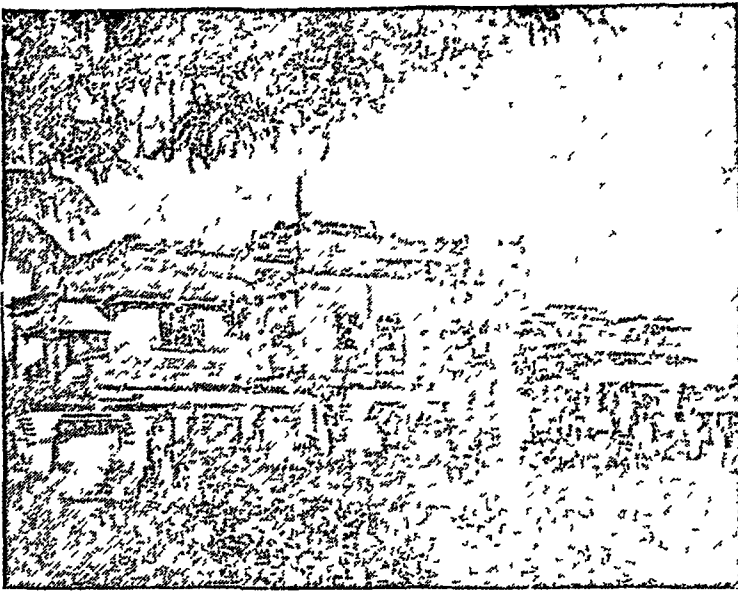
ऊपर से नीचे

उत्तरायण, शांतिनिकेतन,
घातिनतोल, शांतिनिकेतन,
प्रारंभिक शिक्षण, शांतिनिकेतन
[फोटो सूचना एवं जन संपर्क विभाग, पश्चिमी बंग राज्य सरकार, कलकत्ता ।]
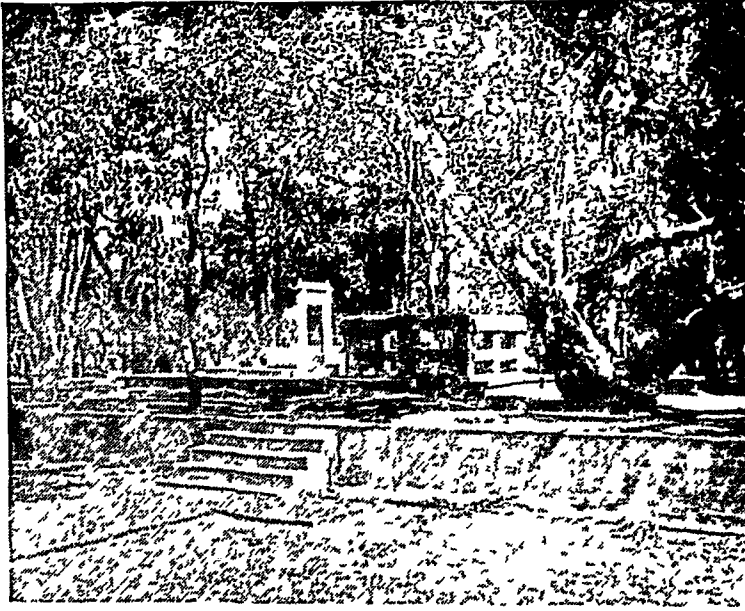
मे पैराग्वे एव अर्जेंटीना देश स्थित हैं। इसका एक तिहाई भाग पर्वतीय तथा दो तिहाई भाग मैदानी है। इसके पश्चिमी भाग मे पश्चिमी और पूर्वी कार्दियेरा पर्वत हैं। इन दोनो के बीच के पठार पर सागर-तल से १२,५०७ फुट की ऊँचाई पर टिटिकाका झील तथा १२,१२० फुट की ऊँचाई पर पोओपो झील है। वर्षा का औसत ३० से ५० इच है तथा औसत ताप २५° सें० रहता है। वैसे यहाँ की जलवायु ऊँचाई के द्वारा प्रभावित है। उच्च पठारी प्यूना प्रदेश मे वनस्पति की कमी है एव निचले भागो मे उष्ण कटिबधीय वन हैं। ऊँचे प्यूना प्रदेश मे ग्वानाको, अल्पाका, लामा तथा विकूना आदि पशु मिलते हैं।

बोलिविया के पहाडी भाग मे खनिज अधिक मिलते हैं। पोटोसी और ओरूरो क्षेत्र मे ससार की १५% टिन मिलती है। ताँवा, सीसा, जस्ता, ऐंटीमनी तथा टगस्टन भी निकाला जाता है। पूर्व की ओर पेट्रोलियम का महत्व बढ रहा है। कृषि मे मक्का, गेहूँ, जौ, धान, तथा आलू की कृषि की जाती है। पूर्वी प्रात मे कोकोआ, गन्ना, कपास तथा कहवा आदि उगाया जाता है। यहाँ का प्रधान धर्म रोमन कैथलिक तथा भाषा स्पेनिश है। सात से १४ वर्ष की उम्र तक के बालको की शिक्षा मुफ्त तथा अनिवार्य है। उद्योगो मे चमडे का काम, सीमेंट, काच, लकडी, फर्नीचर सबधी कार्य होते हैं तथा भवननिर्माण सबधी वस्तुएँ बनती हैं। रेलो, सडको की भी व्यवस्था है तथा डाक व्यवस्था भी उत्तम है। हवाई यातायात द्वारा सयुक्त राज्य आदि देशो से जुडा है। प्रशासकीय दृष्टि से यह नौ विभागो मे विभक्त है। ला पास (जनसख्या ३,४७,३९४) यहाँ का प्रसिद्ध नगर तथा राजधानी है। अन्य प्रमुख नगरो मे सूके, कोचाबाबा, ओरूरो, सैंटाक्रूज, पोटोसी, टारीहा, ट्रिनिडैड तथा कोबिजा हैं। [आ० स्व० जौ०]

बोली विज्ञान (Dialectology) भाषाविज्ञान की एक शाखा जो बोलियो को भौगोलिक वितरण और व्याकरण की दृष्टि से अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाती है। भौगोलिक वितरण पर विचार करते हुए सामाजिक वर्गों, जातीय स्तरो, व्यावसायिक वैविध्यो और धार्मिक, सास्कृतिक विशेषताओ का भी ध्यान रखा जाता है। व्याकरणिक शब्द आधुनिक शब्दावली के अनुसार ध्वनि · ध्वनिग्राम (Phone · Phoneme), पद पदग्राम (Morph Morpheme) तथा वाक्य-स्तर के सभी भाषीय रूपो का प्रतिनिधि है। इन सब के अतिरिक्त बोली विज्ञान का एक लक्ष्य और भी है जिसे कोशविज्ञान (lexicology) का अग माना जाता है। इसमे विभिन्न बोलियो के शब्दो को ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन (Phonetic Transcription) मे सगृहीत कर उनकी सकेतसीमा (Referent Range) स्पष्ट की जाती है।

भाषा और बोली के बीच की भेदकरेखा 'परस्पर बोधगम्यता' के अनुसार निर्धारित की जाती है। इस बोधगम्यता के चार स्तर होते है — (१) पूर्ण बोधगम्यता, (२) अपूर्ण बोधगम्यता, (३) आशिक बोधगम्यता, (४) शून्य बोधगम्यता। बोधगम्यता के इन्ही स्तरो के आधार पर व्यक्तिबोली, उपबोली, बोली तथा भाषा की पृथक् कोटियाँ वर्गीकृत होती है। पूर्ण बोधगम्यता एक बोली क्षेत्र के रहनेवाले व्यक्तियो की प्राय समान वाक्प्रवृत्ति का सकेत देती है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की आधुनिकतम मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की वाक्प्रवृत्ति पूर्णतया समान नही होती। किंतु यह असमानता इतनी स्थूल नही होती कि वे एक दूसरे की बात न समझ सकें। इस प्रकार व्यक्तिगत वाक्प्रवृत्तियो का समन्वित रूप व्यक्तिबोली है और व्यक्तिबोलियो का समन्वित रूप उपबोली तथा उपबोलियो का समन्वित रूप बोली है। इसी प्रकार बोलियो की समन्वित इकाई भाषा है। उपर्युक्त धारणा से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति बोली और भाषा के बीच बोधगम्यता के ही विविध स्तर सक्रिय होते हैं। भाषा के अध्ययन मे अधिकतर उपबोली के स्तर तक विचार किया जाता है किंतु बोली के सदर्भ मे व्यक्तिबोलियो का भी महत्व होता है। भाषीय स्तर पर व्यक्तिबोली एव उपबोली का एक युग्म होता है और बोली तथा भाषा का दूसरा। जिस प्रकार बोली और भाषा या भाषाओ के सीमावर्ती क्षेत्रो मे रूपवैशिष्ट्य होते हुए भी एक दूसरे को समझना सरल होता है, उसी प्रकार या उससे भी अधिक बोधगम्यता बोली या उपबोली की सीमाओं पर होती है। सीमावर्ती क्षेत्रो मे पाई जानेवाली ऐसी बोधगम्यता के कारण ही भाषा और बोली या बोली या उपबोली के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नही खीची जा सकती।

एक भाषीय क्षेत्र मे स्थानीय भेदों के अध्ययन को ब्लूमफील्ड ने बोली भूगोल का नाम देते हुए उसे तुलनात्मक विधा की उपलब्धियो का पूरक भी कहा है। बोलियो के अध्ययन को बोली एटलस के रूप मे प्रस्तुत करना सर्वाधिक प्रचलित है। बोली क्षेत्र के ये एटलस मानचित्रो के ऐसे सकलन हैं जिनपर भाषीय रूपवैशिष्ट्यो को स्थानीय वितरण के आधार पर समरूप रेखाओ (Isoglosses) के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। विस्तृत रूपवैशिष्ट्यों को इन मानचित्रो पर प्रदर्शित नही किया जा सकता। केवल भेदक रूप ही प्रदर्शित किए जाते हैं। इसीलिये कितने ही लोग बोली व्याकरण, बोलियो का सीमानिर्धारण, कोशसकलन और तुलनात्मक, ऐतिहासिक निष्कर्षों को ही बोली विज्ञान का साध्य मानते हैं। एटलसो को भाषा भूगोल से सबद्ध मानकर उसे बोली विज्ञान से पृथक् कर देते हैं।

समरूप रेखाओ द्वारा विभक्त क्षेत्र तीन होते हैं :

(१) अवशेष क्षेत्र (Relic Area) ऐसे क्षेत्र जहाँ के रहनेवाले आर्थिक दृष्टि से अविकसित होते हैं और जहाँ की भौगोलिक स्थिति ऐसी हो कि आसानी से पहुँच पाना कठिन हो, उन क्षेत्रो मे प्राचीनतम रूप मिल सकते हैं। दूसरे लोग इन स्थानो के रूपो को प्राय हेय मानते हैं।

(२) आकर्षण क्षेत्र (Focal Area) — इन क्षेत्रों मे आर्थिक या औद्योगिक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण केंद्र होता है। यही केंद्र नए रूपो की उद्भावना का स्रोत होता है। इसीलिये समरूप रेखाओ का झुकाव भी केंद्राभिमुख होता है।

(३) सक्रमण क्षेत्र — ऐसे क्षेत्रो मे रूपो का एकविध प्रयोग नही मिलता। समरूप रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई जाती हैं या उनके बीच का अतर अधिक होता है।

आकर्षण क्षेत्रो के बारे मे यह कहा जा सकता है कि इनके रूप इस क्षेत्र मे बहुत पहले से प्रचलित रहे होंगे और उन्होंने अपने

प्रतिद्वंद्वी शब्दो को व्यवहार की स्थिति से निकालकर पूरे क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया होगा। अवशेष क्षेत्र के रूप सब से पुराने माने जाते हैं और सक्रमण क्षेत्रवाले रूप इस बात का सकेत देते हैं कि किसी व्यवहारगत पुराने रूप के ऊपर किसी नए रूप को प्राथमिकता मिल रही है।

बोलियो के ऐसे अध्ययन का सूत्रपात १९वी शती के पहले चरण में श्मेलर से हुआ था। १८७३ मे स्कीट ने 'इग्लिश डायलेक्टॉलॉजी सोसायटी' की स्थापना की और एटलस बनाने का भी प्रयास किया। १८७६ मे जार्ज वेंकर ने ४० वाक्यो की प्रश्नावली को पूरे जर्मन राज्य की ४०,००० से भी अधिक स्थानीय बोलियों मे रूपातरित कराया। १८९६ से १९०८ के बीच एडमड एडमॉट के सहयोग से गिलेरो ने फ्रास का महत्वपूर्ण एटलस प्रस्तुत किया। इसी प्रकार स्वाविया और इटली के भी एटलस प्रकाशित हुए। १९३९-४३ के बीच हस कुरेथ के निर्देशन मे अमरीका और कैनाडा के भाषीय एटलस की पहली किश्त न्यू इग्लैंड के एटलस के रूप मे प्रकाशित हुई। इधर रूस, चीन और जापान मे भी इस तरह के प्रयास हो रहे हैं। भारत में इस शती के पहले चरण में किया गया ग्रियर्सन का भाषा सर्वेक्षण अपनी तरह का अकेला प्रयास है।

स० ग्र० — ब्लूमफील्ड लैंग्वेज, चार्ल्स एफ० हाकेट ए कोर्स इन मॉडर्न लिंग्विस्टिक्स। [र० ना० श०]

बोलोन्या (Bologna) १ प्रात, यह उत्तर मध्य इटली मे एमील्या क्षेत्र का एक प्रात है। इसका क्षेत्रफल १,४२६ वर्ग मील है। इसके उत्तर मे पो नदी का मैदान है तथा दक्षिण में ऐपिनाइज़ पर्वत है। इस प्रात मे रैनो, साटेनो आदि नदियाँ बहती हैं। कृषि तथा पशुपालन प्रमुख उद्योग हैं। यहाँ की राजधानी बोलोन्या नगर है।

२ नगर, स्थिति ४४° ३०' उ० अ० तथा ११° २०' पू० दे०। बोलोन्या प्रात का प्रमुख नगर है जो उत्तम जलवायु मे तथा उपजाऊ भूमि पर स्थित है। यह प्रमुख औद्योगिक नगर है जहाँ रेशमी कपडे तथा मखमल उद्योग अधिक होता है। यह एक ऊँची चारदीवारी से घिरा है। यहाँ अनेक महल तथा गिरजाघरो के अतिरिक्त दो झुके हुए बुर्ज हैं जिनमे से एक ३२० फुट ऊँचा है तथा इसका झुकाव चार फुट है। लगभग १३० पुराने गिरजाघर भी हैं। यहाँ का विश्वविद्यालय १२वी शती मे स्थापित किया गया था। इसकी जनसख्या ४,४१,१४३ (१९६१) है। [पु० क०]

बोस, सुभाषचंद्र भारतीय स्वाधीनता सग्राम के उन महारथियो मे एक हैं जिनका नाम इतिहास मे सदैव अमर रहेगा। द्वितीय विश्व-महायुद्ध के समय दक्षिण पूर्व एशिया के रणप्रागण मे आजाद हिंद फौज का सगठन करके और 'जयहिंद' तथा 'दिल्ली चलो' के नारे बुलद करके उन्होंने अपना 'नेता जी' उपनाम सार्थक कर दिया। अपने शौर्य और सगठनशक्ति द्वारा दलित मानवता का उद्धार करनेवाली शिवाजी, वाशिगटन, गैरीबाल्डी, कमाल अतातुर्क और ट्राट्स्की जैसी विश्व की अमर विभूतियो की कोटि में नेता जी सुभाषचद्र बोस का नाम सहज ही गिनाया जा सकता है। महात्मा गाधी के 'भारत छोडो' आदोलन को नेता जी ने अपनी आजाद हिंद फौज के कार्यकलापो द्वारा बहुत शक्तिशाली बनाया, जिसका सगठन करने मे उनके इस आह्वान ने — मुझे खून दो! मैं तुम्हें आजादी दूँगा!! जादू जैसा कमाल दिखाया।

सुभाष बाबू का जन्म २३ जनवरी, १८९७ को कटक मे हुआ। उनके पिता श्री जानकीनाथ बोस कटक के प्रमुख वकील थे और माता प्रभावती देवी थीं। वे अत्यत मेधावी किंतु साथ ही उद्दड विद्यार्थी थे। स्वदेश मे ही स्कूल और कालेज की पढाई समाप्त करके वे लदन मे १९२० मे आइ० सी० एस० परीक्षा में बैठे और उसमे सफल हुए। किंतु प्रशिक्षण अवधि मे ही उन्होने इस ऊँची नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इग्लैंड से स्वदेश वापस आकर वे सीधे महात्मा गाधी के पास गए, जिन्होने भारत मे ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध देशव्यापी असहयोग आदोलन उसी समय प्रारभ किया था। सुभाष बाबू उस समय २४ वर्ष के नवयुवक थे और महात्मा गाधी की पारखी राजनीतिक दृष्टि ने नवयुवक सुभाष के हृदय मे उद्दीप्त देशभक्ति की लगन को पहचान लिया। गाधी जी के आदेशानुसार सुभाष बाबू बगाल के महान् नेता देशबंधु चित्तरजनदास से मिले और पहली ही भेंट मे उनको अपना राजनीतिक गुरु मान लिया। दास बाबू भी अपने इस शिष्य से बहुत प्रभावित हुए और विनोद में उन्हें 'यग ओल्ड मैन' कहा करते थे।

सुभाषचद्र बोस ने १९२१ मे कलकत्ता मे प्रिंस ऑव् वेल्स का पूर्ण बहिष्कार करने में पहली बार अपनी सगठनशक्ति का परिचय दिया। जिस अवधि में देशबधु चित्तरजन दास कलकत्ता के मेयर थे, सुभाष बाबू ने नगर के निगम चीफ़ एक्जिक्यूटिव अफसर की हैसियत से प्रशासक शक्ति और अतिशय कार्यक्षमता का प्रशसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। अगरेजी सरकार ने उनकी गतिविधियो से भयभीत होकर उन्हे माडले जेल मे नजरबद कर दिया। उनपर यह आरोप लगाया गया कि वे बगाल के आतकवादियों के प्रति सक्रिय सहानुभूति रखते हैं। १९२० के अत में शारीरिक अस्वस्थता के कारण सुभाष बाबू को बिना शर्त रिहा कर दिया गया। परतु गिरे हुए स्वास्थ्य के बावजूद वे राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे—अपना सारा समय वे युवको के सगठन और ट्रेड यूनियन आदोलन मे देते थे।

जब १९२८ में मोतीलाल नेहरू समिति ने देश की स्वाधीनता के सबध मे 'डोमिनियन स्टेटस' के पक्ष में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचद्र बोस ने उसका तीखा विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि वे पूर्ण स्वतत्रता के अतिरिक्त किसी भी स्थिति को मान लेने के पक्ष में नहीं हैं। फलत 'इडिपेंडेंस लीग' की स्थापना की घोषणा कर दी गई, और भारत के सविधान को पूर्ण स्वतंत्रता पर आधारित करने के लिये पूरे वेग से आदोलन छेड दिया गया। कलकत्ता काग्रेस (१९१७) में, जिसकी अध्यक्षता मोतीलाल नेहरू ने की थी, नेहरू कमेटी की सिफारिशो की स्वीकृति के हेतु प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव पर जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचद्र बोस ने मिलते जुलते सशोधन पेश किए थे। उनका लक्ष्य, भारत के लिये डोमिनियन स्टेटस के प्रस्ताव को अमान्य करना था जो सर्वदलीय संमेलन में निर्मित सविधान मे समिलित किया गया था। यद्यपि सुभाष बाबू इसमें तत्काल सफल नही हुए, तथापि वे, बिना निराश हुए, काग्रेस अधिवेशन के पश्चात् अपने प्रयत्नो मे लगे रहे।

कलकत्ता कांग्रेस में अंग्रेजी सरकार को दिए गए एक वर्षीय अल्टीमेटम से देश मे जोश की लहर फैल गई थी और लाहौर कांग्रेस मे, जो १९२९ मे रावी के तट पर जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे हुआ, एक प्रस्ताव पारित करके यह स्पष्ट घोषणा की गई थी कि कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य है, जिसमे ब्रिटेन से सबधविच्छेद का भी भाव समिलित है। इस प्रकार वह अभियान, जिसमें सुभापचद्र वोस ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, लाहौर मे सफल हुआ। इसके तुरत वाद इडिपेंडेंस लीग विघटित कर दी गई क्योकि इसका उद्देश्य पूरा हो चुका था। इस प्रकार १९२०–१९३० की अवधि मे सुभापचद्र वोस कांग्रेस युवक सगठन और ट्रेड यूनियन में सुधारवादी परिवर्तन लाने का काम कर रहे थे, जिससे कांग्रेस भारतीय जनता, खेतो और कारखानों मे जूझनेवाले श्रमिको पर आधारित हो सकी। यह एक ऐसा कदम था जिसने कांग्रेस को सघर्ष-पथ पर और आगे वढाया।

गाधी जी के १९३० के सत्याग्रह ने सुभाष को घनघोर सघर्ष में झोक दिया। सरकार ने पहले की तरह उन्हें पुन· जेल मे वद कर दिया। उसी समय उनका स्वास्थ्य इतना खराव हो गया कि सरकार को उन्हें स्वास्थ्यलाभ करने के लिये यूरोप जाने की स्वीकृति देनी पडी। विदेश मे उन्होने भारत और यूरोप के वीच सास्कृतिक और राजनीतिक सवध दृढ करने की दृष्टि से अनेक यूरोपीय राजधानियो मे विचारकेंद्र स्थापित किए। कांग्रेस पार्टी ने अभी तक इस प्रकार के काम की ओर ध्यान नही दिया था और सुभाष उन पहले लोगो मे थे, जिन्होने द्रुत गति से परिवर्तनशील और परस्पर आश्रित ससार मे इस तरह के प्रचार पर वल दिया।

वे अपने कुछ मित्रों के आग्रह पर कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन (१९३६) मे भाग लेने के लिये भारत लौटे, किंतु स्वदेश की धरती पर कदम रखते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी गिरफ्तारी का देशव्यापी विरोध हुआ। केंद्रीय धारासभा मे कांग्रेस पार्टी के तत्कालीन नेता श्रीभूलाभाई देसाई ने सदन मे कार्यस्थगन का प्रस्ताव रखा। उसका विरोध करते हुए सरकारी प्रवक्ता ने कहा था—सुभाप बोस जैसा तीक्ष्णबुद्धि और सगठनक्षमता का व्यक्ति किसी भी राज्य के लिये खतरनाक होगा। सुभाप वावू जेल मे पुन वीमार पड गए, और उनका स्वास्थ्य तेजी से गिर गया। १९३७ के आम चुनाव 'गवर्नमेंट ऑव इंडिया ऐक्ट', १९३५ के अतर्गत हुए। इसके पश्चात् ११ राज्यो मे से ७ मे कांग्रेस मन्त्रिमडल वनने पर सुभाष वावू तुरत रिहा कर दिए गए। उसके वाद कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन (१९३८) में वे सर्वसमति से अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सुभाप वावू अपने लक्ष्यो के लिये एक दृढसकल्प क्रातिकारी तो थे, किंतु लक्ष्यप्राप्ति की प्रक्रिया के सवध मे दुराग्रही नही थे। उनकी दृष्टि मे सफलता के लिये सगठन अनिवार्य रूप से आवश्यक था और अनुशासित एकता ही लक्ष्य तक पहुँचानेवाला मार्ग थी। किसी निश्चित समय मे किसी एक तरीके का महत्व वे आतरिक तथा अतर्राष्ट्रीय परिस्थितियो के सदर्भ मे आँकते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान देश में तथा देश के बाहर उनकी इस नीति और दाँव पेच का अच्छा प्रमाण मिला। हरिपुरा अधिवेशन (फरवरी, १९३८) में उनका अध्यक्षीय भापण कांग्रेस की समयोचित नीतियो की स्पष्टता की दृष्टि से उल्लेखनीय था, और किसी हद तक कांग्रेस के भीतर फारवर्ड ब्लाक में अभ्युदय की ओर सकेत करता था। एक वर्ष वाद फारवर्ड ब्लाक वन भी गया।

कांग्रेस अध्यक्षो मे सुभाप पहले व्यक्ति थे, जिन्होने देश की उन्नति की योजना का ठोस प्रस्ताव प्रस्तुत किया, और कुछ महीनो के वाद ही उन्होने राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना करके अपने विचार को कार्यरूप दिया। हरिपुरा अधिवेशन मे उन्होने कहा था 'योजना आयोग के परामर्श पर राज्य उत्पादन और वितरण दोनो मे सपूर्ण कृपि और उद्योग के क्रमिक समाजीकरण का व्यापक कार्यक्रम बनाएगा।'

हरिपुरा कांग्रेस के वाद के वर्ष मे अतरराष्ट्रीय परिस्थिति वहुत ही विगड गई। यूरोप के सपूर्ण अतरिक्ष मे युद्ध के वादल छा गए। ऐसे ही उत्तेजनाच्छन्न वातावरण मे कांग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन हुआ (१९३९)।

कांग्रेस के इतिहास मे प्रथम वार अध्यक्षपद के लिये खुला निर्वाचन हुआ। सुभापचद्र बोस और डा० पट्टाभि सीतारामय्या इस पद के लिये प्रत्याशी थे। डा० सीतारामय्या को गाधी जी और कांग्रेस हाई कमान का समर्थन प्राप्त था। दोनो प्रत्याशियो के वीच विवाद इस प्रस्ताव पर था कि भारत के लिये सघ-शासन-योजना के आधार पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद से समझौता किया जाय या नही। सुभाप ने विगडती हुई अतर्राष्ट्रीय परिस्थितियो और युद्ध की निश्चितता की सभावना के सदर्भ में इस प्रस्ताव की निंदा की थी।

सुभाष पुन निर्वाचित हो गए, परतु दुर्भाग्य से उनके निर्वाचन से पार्टी मे एक सकट पैदा हो गया, जो कांग्रेस के इतिहास मे अपना सानी नही रखता। गाधी जी ने सुभाप की इस जीत को स्वय अपनी हार माना। गाधी जी की इस प्रतिक्रिया के अनुसार कार्यसमिति के सभी सदस्यो ने समिति से यह कहकर त्यागपत्र दे दिया कि वे सुभाप वावू के कार्यक्रम और नीतियो के मार्ग मे वाधक नही वनना चाहते।

रोगशय्या पर पडे पडे उन्होने अपना अध्यक्षीय भापण लिखा। शक्तिक्षीणता के कारण वे खुले अधिवेशन मे भाग नही ले पाए और उनका भापण उनके वडे भाई शरत्चद्र वोस ने पढा। भापण मे उन्होने अगले छह मास के भीतर ससार मे साम्राज्यवादी युद्ध छिड जाने की भविष्यवाणी की और कहा था कि उसी समय भारत के स्वराज्य की माँग उपस्थित करके छह महीने का तत्सवधी अल्टिमेटम अंग्रेजी सरकार को देना चाहिए। किंतु तत्कालीन कार्यसमिति ने उनके अल्टिमेटम के प्रस्ताव का विरोध किया। तीन वर्ष पश्चात् अगस्त, १९४२ मे महात्मा गाधी और उनके साथियो ने उसके महत्व को समझा।

आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के कलकत्ता अधिवेशन (अप्रैल,१९३९) मे सुभाष वावू ने कांग्रेस अध्यक्ष वने रहने की व्यर्थता समझकर त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस को स्वतन्त्रता की लोक इच्छा का प्रतीक वनाने के लिये उसका लोकतन्त्रीकरण और पुनर्नवीकरण करने के निमित्त उन्होने मई, १९३९ मे कांग्रेस के अतर्गत फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की घोपणा की। तदनुसार जून, १९३९ मे उनके नेतृत्व में वामपंथी एकता समिति की स्थापना हुई जिसमे कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी

कम्युनिस्ट पार्टी (राष्ट्रीय मोर्चा), एम० एन० राय की रेडिकल डिमोक्रेटिक पार्टी, कई ट्रेड यूनियन संगठन तथा किसान सभाएँ और नवजात फारवर्ड ब्लाक के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इस समिति के प्रथम अखिल भारतीय संमेलन मे, जो बबई मे हुआ, पूर्ण स्वतत्रता तथा स्वतत्रता के पश्चात् समाजवादी राज्य की स्थापना के लक्ष्य स्वीकार किए गए।

अप्रैल, १९४० मे फारवर्ड ब्लाक के आह्वान पर भारत मे देशव्यापी सत्याग्रह छिड गया। सत्याग्रह की इस लहर से सुभाष बाबू को बडा ही उत्साह मिला और उसके नागपुर अधिवेशन मे फारवर्ड ब्लॉक को एक स्वतत्र दल के रूप मे घोषित कर दिया गया। अब वह काग्रेस के भीतर प्रगतिशील तत्वो का मच मात्र नही था।

जुलाई, १९४० मे हालवेल स्मारक विरोधी सत्याग्रह के दौरान बगाल सरकार ने उनको भारतरक्षा कानून के अतर्गत गिरफ्तार किया। उन्हें उनके घर मे नजरबद कर दिया गया। जनवरी, १९४१ में वे भाग निकले, और पेशावर, काबुल तथा मास्को होते हुए बर्लिन पहुँच गए। बर्लिन मे नेता जी हिटलर से मिले और भारत की स्वाधीनता समस्या पर उससे वार्ता की। जनवरी, १९४२ में नेता जी ने जर्मनी मे 'स्वतत्र भारत स्वयसेवक दल' की स्थापना की जिसमें अधिकतर सैनिक भारतीय युद्धबदी थे। वे बर्लिन रेडियो से नियमित रूप से अपना भाषण प्रसारित करते थे, जिससे भारत मे विशेष उत्साह की लहर फैली।

१९४२ मे जब अग्रेजी, फ्रांसीसी और डच साम्राज्यवाद पूर्वी एशिया में जापानी ब्लिट्जक्रीग के मुकाबले चूर चूर हो गया तो नेता जी को लगा जैसे उनके कूद पडने का समय आ गया। जर्मन और जापानी सेनाओ के सहयोग से वे १९४३ के आरभ में जर्मनी से रवाना हो गए, और हबर्ग से पेनाग तक पनडुब्बी मे बैठकर तीन मास की कठिन यात्रा के पश्चात् वे टोकियो पहुँचे। वहाँ से २ जुलाई, १९४३ को वे सिंगापुर पहुँच गए।

दो दिन बाद ४ जुलाई को उन्हे रासबिहारी बोस ने दक्षिण पूर्व एशिया मे चलाए जानेवाले भारतीय स्वाधीनता आदोलन का नेतृत्व सौंप दिया। नेता जी ने आजाद हिंद फौज का सगठन किया। भारत की अस्थायी सरकार का गठन वही हुआ, जिसके वे अध्यक्ष बनाए गए। दिसबर मे अडमान और निकोबार द्वीपसमूह स्वतत्र करा लिए गए, जिनके नाम शहीद और स्वराज द्वीपसमूह रखे गए। जनवरी, १९४४ मे आजादहिंद फौज का मुख्य कार्यालय रगून लाया गया। अपनी मातृभूमि की ओर निरतर बढ़ते हुए आजादहिंद फौज ने बर्मा की सीमा पार कर १८ मार्च, १९४४ को भारत की धरती पर पैर रखे।

सैनिकों को अपनी जन्मभूमि का दर्शन करके असीम प्रसन्नता हुई, उन्होने प्रेमविह्वल होकर भारतमाता की मिट्टी को चूमा। वह बहादुर सेना तब कोहिमा और इफाल की ओर बढी। 'जयहिंद' और 'नेता जी जिंदाबाद' के गगनभेदी नारों के साथ स्वतत्र भारत का झडा वहाँ फहराया गया। किंतु हिरोशिमा और नागासाकी पर अमरीकी बमवर्षा ने जापान को हथियार डालने पर मजबूर कर दिया और आजाद हिंद फौज को पीछे हटना पडा।

१८ अगस्त, १९४५ को फारमोसा के ताइपेह नामक स्थान में वायुयान दुर्घटना में नेता जी की मृत्यु का समाचार मिला। निर्भय योद्धा, कर्मवादी दार्शनिक और विलक्षण राजनीतिज्ञ नेता जी उस समय ५० वर्ष के भी नही थे। [ह० वि० का०]

बोस्टन स्थिति : ४२° २०' उ० अ० तथा ७१° ३' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका के मासाचुसेट्स राज्य की राजधानी तथा न्यूइग्लैंड का सबसे बड़ा नगर है। यह न्यूयॉर्क नगर से वायुयान द्वारा १८८ मील दूर है एव औद्योगिक, व्यावसायिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा चिकित्सा एव शोधकार्य का केंद्र है। जनवरी का औसत ताप – ११° सें० तथा जुलाई का औसत ताप लगभग २२° सें० तथा औसत वर्षा ३९ इच होती है। मिस्टिक नदी शीतकाल मे हिम से मुक्त रहती है अत बदरगाह के लिये रास्ता खुला रहता है। यहाँ का बदरगाह बहुत उन्नत अवस्था मे है। २२१ फुट ऊँचा बकर हिल मोनूमेंट (Bunker Hill Monument), हिस्टोरिकल सोसायटी तथा सग्रहालय दर्शनीय हैं। यह बेंजामिन फ्रैंकलिन, पो तथा इमर्सन की जन्मभूमि है। यहाँ कई विश्वविद्यालय हैं। पूर्वी बोस्टन मे एक बडा अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। इसकी जनसख्या ६,९७,१९७ (१९६०) है। [पु० क०]

बोहरा पश्चिम भारत की व्यापारी जातिविशेष। इस शब्द का अर्थ ही है व्यापारी या महाजन जो सभवत संस्कृत 'व्यावहारिक' से व्युत्पन्न है। इस जाति के अधिकाश लोग, वर्तमान सहस्राब्दी की आरभिक शताब्दियो मे, इस्माइलियों द्वारा इस्लाम धर्म में परिवर्तित प्राय हिंदू व्यापारियो की सतान हैं जिनमे यमनी अरबों के रक्त का मिश्रण है। वैसे इनमें से कुछ, अरब और मिस्र से आए मुसलमानो को अपना पूर्वज मानते हैं। मुस्लिम धर्मावलंबी बोहरा दो भागों में विभक्त हैं— व्यापार करनेवाले बहुसख्यक भाग के लोग शिया हैं और खेतिहर अल्पसख्यक सुन्नी हैं। सन् १५३९ के पश्चात् इस्माइली बोहराओं का धर्माध्यक्ष यमन से आकर भारत मे बस गया। सन् १५८८ के पश्चात् इनमे फूट पड गई। गुजराती बोहराओं और इस्माइली बोहराओ ने भिन्न भिन्न धर्माध्यक्षों का समर्थन किया। इस प्रकार सुलेमानी और दाऊदी बोहराओ के अलग अलग केंद्र बडोदा और सूरत में बने। मुल्लियो के 'काजी' के समान 'आमिल' सुलेमानी बोहरा सप्रदाय का पौरोहित्य कर्म कराते हैं। बोहरा लोग प्राय अपनी जमात तक सीमित हैं और अन्य मुस्लिम सप्रदायों से वैवाहिक सबध नहीं करते। दाऊदी बोहरा अली और नागोशिया दो फिरको में बँटे हैं। नागोशिया मासभक्षण को गर्हित समझते हैं। सिंध, गुजरात और बबई के मुस्लिमबहुल बोहरा जाति के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश और पजाब के बोहरा हिंदू हैं। मेरठ कमिश्नरी के बोहरा अपने को गौड ब्राह्मण और कुमाऊँ के बोहरा अपने को खसिया राजपूत कहते हैं। औरगजेब की धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप गुजरात के इस्माइली बोहराओं का निर्दयतापूर्वक दमन किया गया था क्योंकि वे इस्लाम के कट्टर पक्षपाती न होकर उदार दृष्टिकोण रखते थे। उनके उपदेशक सत पकड लिए गए और उनके अनुयायियो को सुन्नी शिक्षाओ के लिये बाध्य किया गया। यही दशा खोजाओ की भी हुई जिससे वे विद्रोही होकर भडोच को तब तक दबाए रहे जब तक भयकर कत्लेआम मे वे मौत के घाट नहीं उतार दिए गए।

स० ग्र० — एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, खड १, १९६६, हटन : कास्ट इन इडिया, विलियम क्रुक दि ट्राइब्स ऐंड कास्टस

बोस, सुभाषचंद्र (पृ० ३८३–३८४)

[फ़ोटो . प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो, नई दिल्ली]

ऑव नार्थ-वेस्ट प्राविंसेज ऐंड श्रवध, खड १, कैंब्रिज हिस्ट्री ऑव इडिया, खड ४। [श्या० ति०]

बोहीमिया (Bohemia) यह चैकोस्लोवाकिया का एक क्षेत्र है जिसमे मॉरेविया तथा सायलेसिया शामिल हैं। इसका क्षेत्रफल २०,००० वर्ग मील तथा जनसख्या ५६,४७,००० (१९४७) है। यह एक टूटा फूटा आयताकार पठार है, जिसकी ऊँचाई ५०० फुट से २,००० फुट के बीच है। यह उत्तर-पश्चिम, उत्तर एव पूर्व मे सूडेटन (Sudeten) की एक श्रेणी से तथा दक्षिण-पश्चिम मे बोहमेरवाल्ड से घिरा है। जलवायु विषम है। यहाँ एल्ब तथा उसकी सहायक विल्टावा नदी बहती है एव बहुत से कृत्रिम तालाब भी हैं। नदी तट की मिट्टी बहुत उपजाऊ है। कृषि मे गेहूँ, गन्ना, चुकदर, जौ, जई, और आलू की खेती होती है। फलो के बहुत से बगीचे भी हैं। उत्तर-पश्चिम भाग मे पशु पाले जाते हैं। कोयला और लिगनाइट यहाँ के मुख्य खनिज हैं जिनकी सहायता से यहाँ औद्योगीकरण हुआ है। इनके अतिरिक्त चाँदी, सोना, टिन, ग्रेफाइट, तथा बहुमूल्य रत्न प्रमुख खनिज हैं। यातायात के साधन अच्छे होने के कारण इसका सबध मुख्य नगरो से है। यहाँ धातु के सामान, सूती कपडे, चमडे का सामान, मशीनें, रसायनक तथा पेंसिल बनाने का कार्य होता है। [पु० क०]

बौक्साइट (Bauxite), ऐ$_2$ औ$_3$ २ हा$_2$औ ($Al_2O_3 \cdot 2H_2O$) यह पत्थर सर्वप्रथम फ्रास मे लैस बौक्स के निकट मिला था। इसी आधार पर इस खनिज का नाम बौक्साइट पडा। इसी खनिज से विश्व का अधिकाश ऐल्यूमिनियम निकाला जाता है। इसका रग सफेद या भूरा होता है। सामान्यत इसमें लोहे का अश विद्यमान रहता है। लोहे की मात्रा पर निर्भर इसका रग गुलाबी या लाल होता है। खदान से निकलने पर यह इतना मुलायम होता है कि हाथ से टूट जाता है, पर वायुमडल के सपर्क मे आने पर इसकी कठोरता बढ जाती है। इसकी आकृति मटर के दानो के समान होती है, अत इसको पहचानने मे कभी कठिनाई नही होती। इसका आपेक्षिक घनत्व २० से २६ तक है।

बौक्साइट का निर्माण पृथ्वी की सतह पर, या उसके निकट मिट्टी तथा ऐल्यूमिनियम धनी, आग्नेय शिलाओ के विघटन से होता है। बौक्साइट पठारो के ऊपरी भागो मे, पटलाकार पहाडियो मे तथा चूने की शिलाओ मे अनियमित समुदायो मे मिलता है। भारत मे इसके निक्षेप बिहार, मध्य प्रदेश, उडीसा, मद्रास तथा कश्मीर मे है। [म० ना० मे०]

बौदले, चार्ल्स (१८२१–१८६७) फ्रास का एक अतिप्रसिद्ध कवि तथा प्रतीकवादी आदोलन का अग्रदूत। आधुनिक कविता को उसने बहुत बडे अश तक प्रभावित किया है। पेरिस के सपन्न परिवार मे जन्म लिया। बचपन मे ही उसके पिता की मृत्यु हो गई, और उसकी माँ ने पुनर्विवाह कर लिया। माँ के पुनर्विवाह का भावुक बालक बौदले पर गहरा प्रभाव पडा जिससे परिवार के साथ उसका सबध तनावपूर्ण हो गया। १८५७ मे उसने अपनी १०० कविताओ के सकलन 'फ्लावर्स ऑव एविल' का प्रथम सस्करण प्रकाशित किया। दूसरे सस्करण (१८६१) मे उसने इसमे ३२ कविताएँ और जोड दी। न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार छह कविताएँ प्रथम सस्करण से उसे निकाल देनी पडी। उसके गद्यगीतो का सकलन 'शार्ट प्रोज़ पोएम्स' के नाम से उसकी मृत्यु के पश्चात् १८६९ मे प्रकाशित हुआ।

बौदले ने अत समय तक दु खपूर्ण जीवन ही बिताया। आर्थिक कठिनाइयो, विषम स्वास्थ्य और पराजय की कुठा ने उसके विषाद को अधिक गहरा कर दिया था। उसकी कविताओ में एक नई गीति-व्यजना अभिव्यक्त हुई। वेदना, निर्वासन, कालसक्रमण और पवित्रता तथा सौंदर्य के अप्राप्तव्य आदर्श से उत्पन्न उद्वेग उसकी कविता में प्रधान विषय थे। वह कविता मे विशेष आकर्षण उत्पन्न करने के लिये जब तब अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करता था, किंतु प्राय वह साधारण शब्दो के प्रयोग मे ही अपनी गभीर भावुकता से असामान्य चमत्कार भर देता था। उसके काव्यचित्रो की मौलिकता और गहनता अतुलनीय है। उसने भिन्न भिन्न सवेदनाओ के सयोग से प्रतीको का विस्तार किया है। उसका एक अत्यत प्रसिद्ध सानेट 'करेसपाडेंस' अनेक तत्त्ववादी प्रतीको से व्यक्त होनेवाली प्रकृति की व्यापक एकरूपता पर बल देता है।

ब्रंज़विक (Brunswick) स्थिति ५२° १६' उ० अ० तथा १०° ३१' पू० दे०। यह पश्चिमी जर्मनी के लोअर सैक्सनी भाग मे ओकर नदी के किनारे स्थित एक नगर है। पहले यह इसी नाम के प्रात की राजधानी था। द्वितीय विश्व महायुद्ध मे इसे बडी क्षति उठानी पडी थी। यह एक बडा औद्योगिक केंद्र है जहाँ वाद्य और विद्युत् सयत्र बनाते हैं। इसकी जनसंख्या २,४५,०२७ (१९६१) है। इसी नाम के नगर जॉर्जिया (सयुक्त राज्य), कबरलैंड काउटी (इग्लैंड) तथा ओहायो (सयुक्त राज्य) मे भी हैं। [ह० श० गु०]

ब्रजनिधि (सवत् १८२१–१८६०) जयपुर नरेश प्रतापसिंह का काव्यप्रयुक्त उपनाम। प्रतापसिंह १४ वर्ष की अवस्था मे सिंहासनारूढ हो गए थे। युद्धो मे अत्यधिक व्यस्त एव रोगो से ग्रस्त रहने पर भी इन्होने अपने अल्प जीवन में लगभग १४०० वृत्तो का प्रणयन किया। लोकविश्रुत है कि महाराज परम भागवत थे।

भक्ति-रस-तरग अथवा मन की उमग मे वे जो पद, रेखते अथवा छद रचते थे, उन्हे उसी दिन या अगले दिन अपने इष्टदेव गोविंददेव तथा ठाकुर ब्रजनिधि महाराज को समर्पित करते थे। कम से कम पाँच वृत्त नित्य भेंट करने का उनका नियम था।

उनकी २२ रचनाएँ उपलब्ध हैं। किंतु सोरठ ख्याल, (३६ चरण की एक लघु रचना) उनके किसी पदसग्रह का ही एक अश दिखाई पडती है। २२ रचनाएँ, जिनका निजी स्वतत्र अस्तित्व है, काल क्रम से इस प्रकार है (क) सवत् १८४८ विरचित—प्रेमप्रकाश, फाग रग, प्रीतिलता,। (ख) सवत् १८४९ प्रणीत—सुहागरैनि। (ग) १८५० लिखित—विरहसरिता, रेखतासग्रह, स्नेहविहार। (घ) सवत् १८५१ रचित—रमक-जमक-बतीसी, प्रीतिपचीसी, ब्रज-शृगार। (ङ) सवत् १८५२ कृत—सनेहसग्राम, नीतिमजरी, शृगार-मजरी, वैराग्यमजरी, (च) रगचौपड, (सवत् १८५३)। (छ) प्रेमपथ, दुखहरनवेलि, रास का रेखता, श्रीब्रजनिधिमुक्तावली, ब्रजनिधि-पद-सग्रह, तथा हरिपदसग्रह, इन शीर्षक छह कृतियो

का रचनाकाल कवि ने नहीं दिया है। संख्या में २२ होने के कारण इन्हें 'ग्रंथबाईसी' कहते थे।

तीनों मंजरियाँ भर्तृहरि के शतकत्रय, क्रमश 'नीतिशतक', 'शृंगारशतक' एव 'वैराग्यशतक' का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद हैं। अन्य रचनाओं में राधा गोविंद तथा ब्रजनिधि की भक्ति, उनका लीला-विहार, विरहव्यथा, उद्धव के प्रति गोपियों की उक्तियाँ, कुब्जा की निंदा, कवि का दैन्य एवं भक्तिमयुक्त मनोभाव वर्णाए गए हैं। वस्तुत कृष्ण राधा का वैभवसंपन्न रूप, नीति के पद तथा चौपट का मेल, स्नेह संग्राम तथा यत्र तत्र शस्त्रास्त्रों की उपमाएँ जहाँ ब्रजनिधि की राजोचित प्रवृत्तियाँ प्रदर्शित करती हैं, वहाँ कृष्ण के नटवर रूप के प्रति आकर्षण के ब्रजरज, यमुना, गोकुल, मथुरा-निवास उनकी अनन्य भक्ति के परिचायक हैं। शांत रस के अतिरिक्त इन रचनाओं में वात्सल्य, शृंगार और हास्य रस के सुंदर उदाहरण मिलते हैं।

ब्रजनिधि की पदरचनाएँ राग-ताल-बद्ध हैं। वे स्वयं भी संगीत-प्रेमी थे। इस दिशा में उनके उस्ताद थे चाँदखाँ उर्फ दलखाँजी, जो बुधप्रकाश के नाम से प्रसिद्ध हैं। अन्यत्र दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, कुंडलियाँ, छप्पै, चौपाई, बरवै, रेखता प्रयुक्त हुए हैं। इनके काव्य में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष प्रभृति अलंकार अनायास ही आ गए हैं। 'रमक-जमक-बतीसी' में यमक की बानगी विशेष दर्शनीय है।

कवि ने अधिकतर ब्रजभाषा का प्रयोग किया है किंतु कई एक पद राजस्थानी और पंजाबी में भी हैं।

ब्रजनिधि ने अपने काव्य में अपने पूर्ववर्ती एवं समकालिक कवियों के लगभग १०० पद भी संगृहीत किए हैं। घनआनंद और नागरीदास का इनपर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। कई एक कवि आपके आश्रित थे। विश्वेश्वर महाशब्दे, बुधप्रकाश, भारती, रसपुंज, रसराज आदि विद्वानों ने आपकी प्रेरणा से संगीत, ज्योतिष, वैद्यक और काव्यग्रंथों का प्रणयन भी किया। फारसी के 'आइने अकबरी' और दीवान-ए-हाफिज' का भी हिंदी अनुवाद हुआ।

प्रतापसिंह ब्रजनिधि ने भवननिर्माण में भी विशेष रुचि दिखाई। चंद्रमहल के कई विशाल भवन रिधसिधपोल, बड़ा दीवानखाना, गोविंद जी के पिछाड़ी का हौज, हवामहल, गोवर्धननाथ, ब्रजराज-विहारी, ठाकुर ब्रजनिधि तथा मदनमोहन जी के मंदिर आपके स्थापत्य कलाप्रेम के द्योतक हैं।

सं० ग्रं० — पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संकलित) ब्रजनिधि ग्रंथावली (नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथमावृत्ति सं० १९९०)। [न० क०]

ब्रजबुलि उस काव्यभाषा का नाम है जिसका उपयोग उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों अर्थात् मिथिला, बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा के भक्त कवि प्रधान रूप से कृष्ण की लीलाओं के वर्णन के लिये करते रहे हैं। नेपाल में भी ब्रजबुलि में लिखे कुछ काव्य तथा नाटक-ग्रंथ मिले हैं। इस काव्यभाषा का उपयोग शताब्दियों तक होता रहा है। ईसवी सन् की १५वीं शताब्दी से लेकर १९वीं शताब्दी तक इस काव्यभाषा में लिखे पद मिलते हैं।

यद्यपि 'ब्रजबुलि साहित्य' की लंबी परंपरा रही है, फिर भी 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग ईसवी सन् की १९वीं शताब्दी में मिलता है। इस शब्द का प्रयोग अभी तक केवल बंगाली कवि ईश्वरचंद्र गुप्त की रचना में ही मिला है।

'ब्रजबुलि' शब्द की व्युत्पत्ति तथा ब्रजबुलि भाषा की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद है। यहाँ एक बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ब्रजबुलि, ब्रजभाषा नहीं है। व्याकरण संबंधी दोनों की अपनी अपनी अलग अलग विशेषताएँ हैं, वैसे भाषातत्त्व की दृष्टि से यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रजबुलि का संबंध ब्रजभाषा से है। ब्रजबुलि के पदों में ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है।

ब्रजबुलि की उत्पत्ति अवहट्ट से हुई। अवहट्ट संबंधी थोड़ी सी जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। कालक्रम से अपभ्रंश, साहित्य की भाषा बन चुका था, इसे परिनिष्ठित अपभ्रंश कह सकते हैं। यह परिनिष्ठित अपभ्रंश उत्तर भारत में राजस्थान से असम तक काव्यभाषा का रूप ले चुका था। लेकिन यहाँ यह भूल नहीं जाना चाहिए कि अपभ्रंश के विकास के साथ साथ विभिन्न क्षेत्रों की बोलियों का भी विकास हो रहा था और बाद में चलकर उन बोलियों में भी साहित्य की रचना होने लगी। इस प्रकार परवर्ती अपभ्रंश और विभिन्न प्रदेशों की विकसित बोलियों के बीच जो अपभ्रंश का रूप था और जिसका उपयोग साहित्य रचना के लिये किया गया उसे ही अवहट्ट कहा गया है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने बतलाया है कि शौरसेनी अपभ्रंश अर्थात् अवहट्ट मध्यदेश के अलावा बंगाल आदि प्रदेशों में भी काव्यभाषा के रूप में अपना आधिपत्य जमाए हुए था। यहाँ एक बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि यद्यपि अवहट्ट काव्यभाषा के रूप में ग्रहण किया गया था फिर भी यह स्वाभाविक था कि प्रांत विशेष की छाप उसपर लगती, इसीलिये काव्यभाषा होने पर भी विभिन्न अंचलों के शब्द, प्रकाशनभंगी आदि को हम उसमें प्रत्यक्ष करते हैं।

'ब्रजबुलि' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में कुछ लोगों ने अनुमान लगाया है कि 'ब्रजावली बोलि' का रूपांतर 'ब्रजाली बुलि' में हुआ और 'ब्रजाली बुलि' से 'ब्रजबुलि' बना। यह क्लिष्ट कल्पना है। वास्तव में अधिक तर्कसंगत यह लगता है कि इस भाषा में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है अतएव कृष्ण की लीलाभूमि 'ब्रज' के साथ इसका संबंध जोड़ इस भाषा को 'ब्रजबोली' समझा गया होगा जो बँगला के उच्चारण की विशिष्टता के कारण 'ब्रजबुलि' बन गया होगा।

ब्रजबुलि में लिखे पद मिथिला, बंगाल, असम और उड़ीसा में पाए गए हैं। असमी साहित्य में ब्रजबुलि का प्रमुख स्थान है। असम की ब्रजबुलि की रचनाओं में असमी भाषा का स्वभावत समिश्रण है। असम के वैष्णव भक्त कवियों में दास्य भाव की प्रधानता है। वे ब्रज से अधिक प्रभावित थे। बंगाल तथा उड़ीसा के भक्त कवियों में भी कहीं कहीं दास्य भाव के दर्शन होते हैं लेकिन उनमें सख्य और मधुर भाव की प्रधानता है। बंगाल और उड़ीसा का वैष्णव-भक्ति-साहित्य राधा और कृष्ण की लीलाओं से ओतप्रोत है, लेकिन असमी के ब्रजबुलि साहित्य में राधा को वैसा स्थान नहीं दिया गया है। मिथिला

मे विद्यापति के पदो मे राधा की प्रमुखता है। ब्रजबुलि के कुछ नाटक भी मिले हैं लेकिन ये नाटक केवल नेपाल और असम मे ही प्राप्त हुए हैं। बगाल या उडीसा मे ब्रजबुलि के नाटक अभी तक नही मिले हैं।

असम के भक्त कवियो मे शकरदेव (१४४९ ई०–१५६८ ई०) तथा उनके शिष्य माधवदेव (१४९८ ई०–१५९६ ई०) का मुख्य स्थान है। असम के जनजीवन तथा साहित्य पर शकरदेव तथा उनके अनुयायियो का गहरा प्रभाव पडा। ब्रजबुलि को इन लोगो ने अपने प्रचार का साधन बनाया। उडीसा के भक्त कवियो मे राय रामानद का प्रमुख स्थान था। ये उडीसा के गजपति राजा प्रताप रुद्र (राजत्वकाल १५०४ ई०–१५३२ ई०) के एक उच्च अधिकारी थे। महाप्रभु चैतन्य और राय रामानद के मिलन का जो वर्णन चैतन्य सप्रदाय के कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य चरितामृत' मे किया है उससे पता चलता है कि मधुर भक्ति के रहस्यो से दोनो पूर्ण परिचित थे। उडीसा के अन्य कवियो मे प्रतापरुद्र, माधवीदासी, राय चपति के नाम आते हैं।

बगाल मे गौडीय वैष्णव सप्रदाय के भक्त कवियो की सख्या बहुत अधिक है। उनमे कुछ के नाम यो हैं यशोराज खान (१६वी शताब्दी का प्रारभ), मुरारि गुप्त (१६वी शती का प्रारभ), वासुदेव घोष, रामानद बसु, द्विज हरिदास, परमानददास, ज्ञानदास (१५३० ई० के लगभग इनका जन्म हुआ), नरोत्तमदास, कृष्णदास कविराज, गोविंददास कविराज। ब्रजबुलि के अतिम श्रेष्ठ कवि के रूप में रवींद्रनाथ ठाकुर का नाम लिया जा सकता है। उनकी 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' सन् १८८६ ई० मे प्रकाशित हुई। ब्रजबुलि के पद, भाषा और भाव की दृष्टि से अत्यत मधुर हैं।

[रा० पू० ति०]

ब्रजभाषा मूलत ब्रजक्षेत्र की बोली है। (श्रीमद्भागवत के रचनाकाल मे 'व्रज' शब्द क्षेत्रवाची हो गया था—भाग० १०।१।१०)। विक्रम की १३वी शताब्दी से लेकर २०वी शताब्दी तक भारत के मध्य देश की साहित्यिक भाषा रहने के कारण ब्रज की इस जनपदीय बोली ने अपने उत्थान एव विकास के साथ आदरार्थ 'भाषा' नाम प्राप्त किया और 'ब्रजबोली' नाम से नही, अपितु 'ब्रजभाषा' नाम से विख्यात हुई। अपने विशुद्ध रूप मे यह आज भी आगरा, धौलपुर, मथुरा और अलीगढ जिलो मे बोली जाती है। इसे हम केंद्रीय ब्रजभाषा के नाम से भी पुकार सकते हैं। केंद्रीय ब्रजभाषा क्षेत्र के उत्तर पश्चिम की ओर बुलदशहर जिले की उत्तरी पट्टी से इसमे खडी बोली की लटक आने लगती है। उत्तरी-पूर्वी जिलो अर्थात् बदायूँ और एटा जिलो मे इसपर कन्नौजी का प्रभाव प्रारभ हो जाता है। डा० धीरेंद्र वर्मा 'कन्नौजी' को ब्रजभाषा का ही एक रूप मानते है। दक्षिण की ओर ग्वालियर मे पहुचकर इसमे बुदेली की झलक आने लगती है। पश्चिम की ओर गुडगाँवा तथा भरतपुर का क्षेत्र राजस्थानी से प्रभावित है।

भारतीय आर्यभाषाओं की परपरा मे विकसित होनेवाली 'ब्रजभाषा शौरसेनी अपभ्रश की कोख से जन्मी है। जनपदीय जीवन के प्रभाव से ब्रजभाषा के कई रूप हमे दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु थोडे से अतर के साथ उनमे एकरूपता की स्पष्ट झलक हमे देखने को मिलती है।

ब्रजभाषा की अपनी रूपगत प्रकृति औकारात है अर्थात् इसकी एकवचनीय पुलिंग सज्ञाएँ तथा विशेषण प्राय औकारात होते हैं, जैसे सुरपौ, यामरौ, माँझौ आदि संज्ञा शब्द औकारात हैं। इसी प्रकार कारौ, गोरौ, साँवरौ आदि विशेषण पद औकारात हैं। क्रिया का सामान्य भूतकालिक एकवचन पुंलिग रूप भी ब्रजभाषा मे प्रमुखरूपेण औकारात ही रहता है। यह बात अलग है कि उसके कुछ क्षेत्रो मे 'य्' श्रुति का आगम भी पाया जाता है। जिला अलीगढ की तहसील कोल की बोली मे सामान्य भूतकालीन रूप 'य्' श्रुति से रहित मिलता है, लेकिन जिला मथुरा तथा दक्षिणी बुलदशहर की तहसीलो मे 'य्' श्रुति अवश्य पाई जाती है। जैसे :

"कारौ छोरा बोलौ"—(कोल, जिला अलीगढ)।
"कारौ छोरा बोल्यौ"—(माट जिला मथुरा)
"कारौ लौडा बोल्यौ"—(बरन, जिला बुलदशहर)।

कन्नौजी की अपनी प्रकृति ओकारात है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूपो मे ब्रजभाषा जहाँ औकारातता लेकर चलती है वहाँ कन्नौजी ओकारातता का अनुसरण करती है। जिला अलीगढ की जनपदीय ब्रजभाषा मे यदि हम कहे कि—"कारौ छोरा बोलौ" (= काला लडका बोला) तो इसे ही कन्नौजी मे कहेंगे कि—"कारो लरिका बोलो। भविष्यत्कालीन क्रिया कन्नौजी मे तिङ्‌तरूपिणी होती है, लेकिन ब्रजभाषा मे वह कृदतरूपिणी पाई जाती है। यदि हम 'लडका जाएगा' और 'लडकी जाएगी' वाक्यो को कन्नौजी तथा ब्रजभाषा मे रूपातरित करके बोलें तो निम्नाकित रूप प्रदान करेंगे

कन्नौजी मे—(१) लरिका जइहै।
(२) बिटिया जइहै।
ब्रजभाषा में—(१) छोरा जाइगो।
(२) छोरी जाइगी।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के सामान्य भविष्यत् काल रूप मे क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार परिवर्तित होती है, जब कि कन्नौजी मे एकरूप रहती है।

इसके अतिरिक्त कन्नौजी मे अवधी की भाँति विवृति (Hiatus) की प्रवृत्ति भी पाई जाती है जिसका ब्रजभाषा मे अभाव है। कन्नौजी के सज्ञा, सर्वनाम आदि वाक्यपदो मे सधिराहित्य प्राय मिलता है, किंतु ब्रजभाषा मे वे पद सधिगत अवस्था मे मिलते हैं। उदाहरण

(१) कन्नौजी—"बउ गओ" (= वह गया)।
(२) ब्रजभाषा—"वो गयौ" (= वह गया)।

उपर्युक्त वाक्यो के सर्वनाम पद 'बउ' तथा 'वो' मे सधिराहित्य तथा सधि की अवस्थाएँ दोनो भाषाओ की प्रकृतियो को स्पष्ट करती हैं।

ब्रजभाषा क्षेत्र की भाषागत विभिन्नता को दृष्टि मे रखते हुए हम उसका विभाजन निम्नाकित रूप मे कर सकते हैं

(१) केंद्रीय ब्रज अर्थात् आदर्श ब्रजभाषा — अलीगढ, मथुरा तथा

पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा को 'आदर्श ब्रजभाषा' नाम दिया जा सकता है।

(२) बुंदेली प्रभावित ब्रजभाषा—ग्वालियर के उत्तर पश्चिम मे बोली जानेवाली भाषा को यह नाम प्रदान किया जा सकता है।

(३) राजस्थान की जयपुरी से प्रभावित ब्रजभाषा—यह भरतपुर तथा उसके दक्षिणी भाग मे बोली जाती है।

(४) सिकरवाडी ब्रजभाषा—ब्रजभाषा का यह रूप ग्वालियर के उत्तर पूर्व के अंचल मे प्रचलित है जहाँ सिकरवाड राजपूतों की बस्तियाँ पाई जाती हैं।

(५) जादोबाटी ब्रजभाषा—करौली के क्षेत्र तथा चंबल नदी के मैदान मे बोली जानेवाली ब्रजभाषा को 'जादोबाटी' नाम से पुकारा गया है। यहाँ जादो (यादव) राजपूतो की बस्तियाँ हैं।

(६) कन्नौजी से प्रभावित ब्रजभाषा—जिला एटा तथा तहसील अनूपशहर एवं अतरौली की भाषा कन्नौजी से प्रभावित है।

ब्रजभाषी क्षेत्र की जनपदीय ब्रजभाषा का रूप पश्चिम से पूर्व की ओर कैसा होता चला गया है, इसके लिये निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं.

जिला गुडगाँवा में—"तमासो देखने कू गए। आपस् में झगरो हो रह्यो हो। तब गानो बंद हो गयो।"

जिला बुलंदशहर मे—"लौंडा गाँम् कू आयी और वहू सू बोल्यौ के मैं नौकरी कू जाइगो।"

जिला अलीगढ़ मे—"छोरा गाँम् कूँ आयौ और वऊ ते बोलौ (बोल्यौ) कै मैं नौकरी कूँ जाइगो।"

जिला एटा मे—"छोरा गाँम् कूँ आओ और वऊ ते बोलो कै मैं नौकरी कूँ जाउँगो।"

इसी प्रकार उत्तर मे दक्षिण की ओर का परिवर्तन द्रष्टव्य है—

जिला अलीगढ मे—"वु छोरा मेरे घर् ते चलौ गयौ।"

जिला मथुरा मे—"वु छोरा मेरे घर् तै चल्यौ गयौ।"

जिला आगरा मे—"मुकती रुपइया अपनी बडयरि कूँ भजि दयौ।"

ग्वालियर (पश्चिमी भाग) मे—'बानै एक् बोकरा पाल लओ। तब वो आनंद मै रैबे लगो।"

जब से गोकुल वल्लभ संप्रदाय का केंद्र बना, ब्रजभाषा मे कृष्ण विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। इसी के प्रभाव से ब्रज की बोली साहित्यिक भाषा बन गई। भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि महात्मा सूरदास से लेकर आधुनिक काल के विख्यात कवि श्री वियोगी हरि तक ब्रजभाषा मे प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य समय समय पर रचे जाते रहे।

सं० ग्रं०—डॉ० ग्रियर्सन, जी० ए० मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदोस्तान (एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, १८८९), आचार्य रामचंद्र शुक्ल बुद्धचरित की भूमिका एवं हिंदी साहित्य का इतिहास (ना० प्र० सभा, वाराणसी), डॉ० धीरेंद्र वर्मा 'ले लाग दि ब्रज' हिंदी भाषा और लिपि। [अ० प्र० मु०]

ब्रज संस्कृति ब्रज संस्कृति का एक निश्चनसंस्कृत पुराना अर्थ—'चौरासी कोस' मे फैली उस भूमि विशेष के साथ जुड चुका था, जिसकी परिधि पूर्व मे एटा जिला, फर्रुखाबाद, जालौन आदि, पश्चिम में जयपुर, अलवर, भरतपुर, उत्तर मे जिला गुडगावाँ, दिल्ली, तथा दक्षिण मे आगरा, करौली, धौलपुर (राजस्थान), और चंबल पार ग्वालियर के कुछ भू-भाग तक फैली हुई है। पहले यह 'विंशतिर्योजनानांच' (वाराह पु०) कहा जाता था। बाद में

'इत बरहद, उत सोनहद', सूरसेन उत ग्राम।
ब्रज चौरासी कोस मम, मथुरा मंडल धाम॥

रूप से नित्य नित्य अभिवंदित किया जाने लगा, जहाँ आदि-शंकराचार्य के कथनानुसार 'अजन्मा' 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' (भागवत) ने जन्म लेकर नए नए रूपो मे अपनी ललित लीलाएँ रची थीं।

ब्रजभूमि का पुराना नाम 'शूर जनपद' कहा गया है। उत्तरापथ के संपूर्ण जनपदो के मध्य यह जनपद स्वर्णमुद्रिका में जडे सुंदर रत्न, अथवा वृत्त रूप कुरु, पांचाल, मत्स्यादि महाप्रतापी जनपदो से घिरा कमलकोश मे सुशोभित ओसबिंदु जैसा दर्शनीय रहा है।

शूर जनपद प्रेरणात्मक संस्कृतियो से एक महान् जनपद बन गया था और उसके राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की मधुर छाप उसके अगल बगलवाले जनपदो पर ही नही, भारत के आयत जनपदो पर भी पडी। इसके तीन व्यापक कारण थे धर्म, कला तथा शूर जनपद की भाषासुंदरता। धर्म के क्षेत्र में शूर जनपद की अमोघ देन है 'अपने से विपरीत धर्मों की समन्वय भावना, जो आगे चलकर 'भागवती' दृष्टि में खिली। वासुदेव श्रीकृष्ण को उसने 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य संभवामि युगे युगे' गीतोक्त महाविष्णु का प्रतीक ही नहीं, 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' रूप मे कहा, माना तथा वंदना की और उन्हें मध्य मे रखकर अनेक देव देवियो को सुसज्जित किया। शूर जनपद में पहले जो 'नाग, मातृका तथा दक्षपूजनो की सारहीन व्यवस्था थी उसे ब्रज संस्कृति ने अति ऊँचा उठाकर सरस बनाया। फलत शूर जनपद के 'गिरि, इंद्र तथा नदी महो को, 'गोवर्धन, इंद्र' और 'स्याम गंग स्याम ह्वै रही 'श्री जमुने' (छीतस्वामी) को अर्चनादि की अति मधुर लोकरंजनी भावना से युक्त किया, उन्हें 'उत्सव' रूप दिया। यह 'संत्यज्य सर्वविषयान् तव पादमूलं' (भागवत) रूप समन्वय भावना के गहरे रंग मे रँगी ब्रज की महती देन है, वह श्रीमद् भागवत के अनुसार है तथा ब्रज के कण कण मे बिंध रही है। साथ ही वह 'गंगा, यमुना, सरस्वती रूपेण 'ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन धर्मों के साथ एकरूप हो एक दूसरे का हितसंवर्धन करती हुई नित्य नए रूप से ब्रज मे बह रही है, आगे बढ रही है। तद्गत् कला और संस्कृति ने उस सुंदर लोक की सृष्टि की जिसमें धर्म की उदात्त साधना के नि.श्छल दर्शनो के साथ मानव अंगों के सुंदरतम रूपो की कलात्मक अभिव्यक्ति प्रस्फुटित होती है। और जिसे ब्रज जनपद के अंतर्द्रष्टा शिल्पियो ने अपनी गहरी आत्मनिष्ठा के साथ लगन से उकेरा है तथा विश्व मे उच्च स्थान प्राप्त कराया है। इस ब्रज संस्कृति की एक कलासमन्वित मधुर झलक उस समय देखी जा सकती है, जब भगवान् श्री कृष्ण अपने बडे भाई बलदेव जी तथा गोपकुमारो के साथ ध्वजवज्रांकुश' 'चर्चित चरणो से ब्रजराजधानी मथुरापुरी को निरखने पधारे थे। उस समय नानादेववंदित 'तीन लोक ते न्यारी प्यारी वेदन गाई (लोकगीत)

मथुरा कलारूपेण अनंत वैभवशालिनी थी, जैसा भागवतकार व्यास-पुत्र श्रीशुक मुनि कहते हैं, यथा

'मथुरा के विशाल सिंहद्वार तथा नागरिकों के गृहद्वार सब स्फटिक मणि से बने हुए थे और उनमें स्वर्ण के रत्नखचित किवाड शोभा दे रहे थे। घर घर में बंधे वंदनवार स्वर्ण पत्रावलि संयुक्त थे तथा नगरी के चौराहे स्वर्णविभूषित थे। धनियों के दरवाजे, उनके छज्जे तथा बाहर बैठने के चबूतरे सभी बहुमूल्य मणियों से मुखरित होने के कारण चमचमा रहे थे और वहाँ अनेक शुक, सारिका एवं हंसादि शुभ पक्षी अपने अपने अनुरूप रसपूर्ण ढंग से कलरव करते हुए नाच रहे थे। आस पास बाग बगीचों से मथुरा नगरी अति सुशोभित हो रही थी। गृहद्वार केलावृक्षों के खंभों से शोभित तथा बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों से आच्छादित एवं फूल माला तथा नारियल से अलंकृत और दधि चंदन से चर्चित स्वर्णकलश से मंडित थे। सुगंधित धूप तथा दीपों के जलने के कारण उसके धूएँ से मथुरा अति उल्लासमयी नगरी जैसी थी, इत्यादि (भागवत १०।४०।२०—२३)।

अतः ब्रज की अनेकविध समुन्नत संस्कृति को इस भागवत अवतरण से नमन किया जा सकता है, और उसकी मीठी झलक, यत्किंचित ही सही, उसकी वास्तुकला में निर्निमेष निरखी जा सकती है।

ब्रज संस्कृति में 'रासनृत्य', नारायणगीत एवं वंशीवादनकला ने भी चार चाँद लगाए (दे० भा०—१०।२६।१–६)। इन तीनों कलात्मक संस्कृतियों की परंपरा ब्रज में अति प्राचीन है। ब्रज के सांस्कृतिक जीवन को इन तीनों ने बहुत अधिक प्रभावित किया है। प्राचीन नारायणगीतों की गायिकी की परंपरा जो ध्रुपद गायिकी के रूपों में आगे बढी उसमें ब्रज के संगीत कलाकारों जैसे—महाकवि एवं गायक सूरदास प्रभृति अष्टछाप के भक्त तथा सुसंगीतज्ञ कवि, इनके चौंसठ (६४) सुगायक अंगी कवि, पंडितराज जगन्नाथ राजा आसकरण, रसखान, कृष्णजीवन लच्छीराम, घोंधी, रामदास इत्यादि, श्रीहरिदास, हित हरिवंश, व्यास जी, चाचा वृंदावनदास, श्रीभट्ट, विट्ठलविपुल, ललितकिशोरी, तानसेन, आदि अनेक हिंदू मुस्लिम संगीतसाधकों ने प्रचुर हाथ बँटाया। ध्रुपद गायिकी को सुमधुर बनाते हुए उसको चार 'डागौर, पागौर, खँडहार, दुंढहार नामांकित स्वरजटित परिधि बनाकर सुरक्षित किया। धमार, ख्याल, दादरा, टप्पा, ठुमरी, लावनी गायिकी को चमत्कृत करने के लिये उसे भाव और भाषा दी, जो आज तक फल फूल रही है। प्रमाणस्वरूप ब्रज के भारतविख्यात गायक नित्यस्मरणीय श्री गणेशलाल जी चतुर्वेदी (प्रख्यात संगीतज्ञ स्व० विष्णु दिगंबर के संगीतगुरु), श्री चंदन जी चौबे के नाम लिए जा सकते हैं। वादकों में श्री गणेश जी, उस्ताद लालन जी, इत्यादि भी नहीं भुलाए जा सकते। ब्रज में जब इन सबकी संगीत महफिलें जुडती थीं उसके सभी जड-जंगम-जीव प्रभावित होते थे। पत्ते पत्ते से मादक स्वर फूटते थे। मनुष्य जीवन के उल्लेखनीय मनोरम विविध उपायों का भी भगवान् कृष्ण की इस खेलनभूमि में समान महत्व रहा। कृष्ण-भ्राता बलराम के हलधर रूप द्वारा 'गोवंश रक्षा तथा उसके वर्धन के साथ कृषिरक्षा एवं प्राच्य उदीच्य के बीच वाणिज्यव्यवस्था आदि ब्रज-जन-संस्कृति की विशेषता रही है, जिससे प्रभावित होकर 'पाटलिपुत्र, कौशाम्बी तथा साकेत आदि के वणिक् टोल ब्रज राजधानी मथुरा आते जाते रहते थे। कपिशा, तक्षशिला तथा शाकल का व्यापारी वर्ग भी आता था और ब्रज की वस्तुओं से अपनी अपनी वस्तुओं का विनिमय कर लौट जाता था। इसी तरह विदेशी आक्रांताओं की संस्कृति का प्रभाव भी ब्रज-जन-जीवन पर पडा तथा उसे ब्रज जनपद ने सुंदर ढंग से अपनाया, और उसे अपना जैसा रूप देकर अपना ही बना लिया था। ब्रज संस्कृति का विधान विशुद्ध भारतीय था, जिसे सजाने सँवारने तथा चमकदार बनाने के लिये विदेशी संस्कृति को जरी के सूत्र रूप से काम में लाया गया और इस प्रकार विदेशी सांस्कृतिक अभिप्रायों को अपने अलंकरणों से सजाकर एक रूप दिया, जैसे डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के कथनानुसार 'यूनानी चिरप्रवृत्ति सुरापान' को कैलाशवासी कुबेर और उनके यक्षसमुदाय के 'मधुपान' रूप में बदल देना, ईरानी सूर्यपूजा को भारतीय सूर्यपूजा में घुला मिलाकर अपना बना लेना इत्यादि।

ब्रज की चित्रकला ब्रजेश्वरी कीर्तिकुमारी राधिका की साँझी निर्माणलीला से पुष्पित मानी जाती है, जिसके नाना गुण अष्टछाप के विभिन्न कवियों ने नाना रूप से गाए हैं। बाद में यह ब्रज के ग्राम्य जीवन में उतरी और बिखरी तथा गाय भैंस के गोबर से गुंफित हुई। अतः आश्विन मास के प्रथम पक्ष के संपूर्ण दिनों में वह क्रमशः बीरन-बेटी-डोला, चौपड, मौर बैठना, छबरिया, खजूर पंखा, बारह द्वारी, नौ नारियल, दस पान आदि बृहद्रूपेण चित्रित की जाती है। यह गाय भैंस के गोबर से बनी अनुपम कला मधुर और चित्ताकर्षक होती है।

साँझी का दूसरा रूप नाना-रंग-रंजित है, जिसे ब्रज के बाहर गुजरात, महाराष्ट्र प्रदेशों में रंगोली या राँगोली कहा जाता है। यह वहाँ गृहकला के रूप में काफी मुखरित है। मथुरा में इस कला की पराकाष्ठा है। भीखा चौबे का साँझा (चौबे जी हर स्त्रीलिंग शब्द को पुल्लिंग बनाकर बोलते थे जिसमें काफी हास्योत्पादन होता था), सरवर सुलतान, कृष्ण गंगा, द्वारकाधीश मंदिर की साँझियाँ अत्यंत स्वाभाविक और कलापूर्ण बनती थी—विशेषकर स्वामीघाट (मथुरा) की। इन सुंदर मनोहर साँझियों में कागजों के कलेजे कतर कतर-कर बीस बीस खाके के मूल साँचों के अनुसार साँझी पृष्ठभूमि से लेकर उसके विविध रंगों के खिलते चुनाव, रंगों की हलकी भारी उडानें तथा बादले की यथास्थान चमक देकर साँचे की उठान तथा मिलान सब कुछ अद्भुत होता है। गोबरगठित ब्रज की साँझी कला अब भी ब्रजबालाओं के हाथों में खिलकर उसके नए पुराने रूपों को मिला रही है।

ब्रज साँझीकला के दो खिलते हुए रूप और मुखर हैं, जो फूलों एवं फूल पत्तों तथा केला वृक्ष के विविध अंगों (गाभा) से सँजोए जाते हैं। फूल, फूल की पंखुडियों तथा कोमल हरे पीले पत्तों की मनोहर कलात्मक काट छाँट के बाद सबको चित्र के कल्पित मानदंड लकडी की या ईंट माटी की छोटी बडी चौकियाँ बनाकर तथा उनपर बराबर का मोटा कपडा बिछा पानी तथा आलपीनों के सहारे सँजोना सब कुछ दर्शनीय होता है। ब्रज में केले के वृक्ष से,

उसके विविध अंगो से और भी कलात्मक वस्तुएँ, जैसे हिंडोरा, बँगला, मकान, इत्यादि भी सँवारे जाते हैं। इनमे जाली के कटाव, फूलो का उभार, हल्के, भारी रगो का उतार चढाव प्रशंसनीय होता है।

ब्रज चित्रकला का मूल, राजस्थानी चित्रकला है, किंतु उसकी उपत्यका मे तद्भूत उठक बैठक अपनी हैं। यथास्थान गहरे हल्के रगो का चुनाव, अग अग का रेखाकन आदि सभी उसके अपने है। उदाहरण नही मिलते, जो भी मिलते हैं उनमे 'गोवर्धन' मे बनी भरतपुर राजाओ की मृत्यु स्मारक-छत्रियाँ, दीग के महल, मथुरा के प्रसिद्ध द्वारिकाधीश मदिर के मडप के, जिसे एक अनाडी शासक ने अब घिनौना रूप दे दिया है, भित्तिचित्र ब्रज की चित्रकला के दर्शनीय स्थल विशेष हैं। ब्रज संस्कृति कोटा, बूँदी, जोधपुर (राजस्थान) की चित्रकला पर भी खिलती दीखती है, कृष्णगढ शैली पर बरस पडी है, क्योकि इनका आधार ब्रजेश्वरी राधा तथा भगवान् कृष्ण की नाना लीलाएँ रहा। ब्रजभूत रागरजन भी इनका विषय रहा। पहाडी (काँगडा) कलम पर इसका उज्ज्वल प्रकाश पडा और वह कृष्ण लीलामय होने के कारण खिल उठा। उसके रग रेशे रसभीने बन गए और जन जन के प्राण हो गए।

ब्रज संस्कृति का समुन्नत सगीत-सुधा-भाड 'रसिया' लोकगान माना जाता है, जिसमें उसके जनजीवन का कण कण घुला है। वस्तुत रसिया, अपने नाम और अर्थ के अनुसार रसपूर्ण लोक-साहित्य है, जिसके बोल बोल में लोकजीवन की स्वच्छ मिश्री मिली हुई है। ब्रज लोकगीत 'रसिया' कोई अतीत वस्तु नही जनजीवन के संपूर्ण पूर्वापर बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक गतिविधियों का निखरा लेखा जोखा है। अत उसे निरखे परखे बिना ब्रज संस्कृति के वास्तविक इतिहास का निर्माण या निर्णय करना खोखला ही माना जायगा, क्योकि उसका उलझाव 'नृशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा और साहित्यशास्त्र, तद्भूत इतिहास, तथा पुरातत्व से घनिष्ठ रूप से सबद्ध है। ब्रज का 'रसिया साहित्य' उसके तीज त्योहारों एव अपनी हँसी खुशी की तथा कारुण्य की वह खुली किताब है, जिसमे उसके आद्यत व्यवहारो का हिसाब किताब सुदर टाइपो मे लोकजीवन की नाना प्रवृत्तियों तथा अभिव्यक्तियो की चमकीली स्याही से छपा है। साथ ही वह रसों का रगबिरगा निरतर प्रवाही ऐसा झरना है, जो रससयुक्त सामाजिक रगरेलियो की मर्यादा की गतिविधि को उल्लघन करने से भी नही चूकता। उसके सुरीले स्वर जब तब चचल होकर जनजीवन की यथार्थ भित्तियों पर ऐसा मनभावना कुठाराघात करते हैं कि उसे देख सुनकर कभी कभी सकोच सा होने लगता है। वह आघात बडा सरस और मधुर होता है, और उसकी सर्वांगीण सुदरता का प्रतीक बन जाता है तथा उसके हृदय से श्रद्धा के साथ उठनेवाले शाश्वत स्वरो के उठान को सुदर बनाता हुआ चार चाँद लगा देता है। 'रसिया' सगीत ब्रजजनों के आनदविभोर मन की वह वाणी है जिसका धरातल नित नित का नया बननेवाला जीवन है। अत रसिया साहित्य ब्रज के लोकजीवन का रसविशेष है और उसकी परपरा अखड है तथा वह ब्रज के वातावरण मे नए नए रूपो में तैरता रहता है एव अपनी समय समय की कुठाओ को बनाता, सँवारता तथा सजाता विविध रगों मे बदलता रहता है। ब्रज का 'रसिया गान' समय समय की नूवी लेकर अपनी 'टेक' (पूर्व प्रथम पक्ति) में ही लुभावना बनकर लोगों के हृदय का हार बन जाता है, पर जब वह अपने अतराओं कडियो (पक्तियों) से पनपकर मचलता हुआ रसानद बिखेरता और व्यग्य बरसाता है तब उसे 'कहते नही, सुनते ही बनता है।'

ब्रज अन्य ललित कलाओ, विशेषकर 'मूर्ति' तथा 'वास्तु' कलाओं का केंद्र भी रहा है। ई० पू० सातवी शती से १२वीं शती तक ब्रज कला ने अगणित विहार, मदिर, महल, स्तूप इत्यादि निर्मित किए और कराए जो सुंदरता मे अपना जोट नही रखते। अच्छे अच्छे कलाविद् उन्हें देखते और कहते 'ये मनुष्यकृत नही, देवनिर्मित हैं।' मथुरा मे उपस्थित वाराह भगवान्, पद्मनाभ, मथुरानाथ इत्यादि की मूर्तियाँ इस कथित दायरे में नही अटती। वे जैन बौद्ध काल की सजावट से पहले की अर्थात् इन कालों से पूर्व ब्राह्मणकाल की परिधि मे प्रवेश करती हुई सी जान पडती हैं। ब्रजकला का स्वर्णयुग 'कुषाण काल' से प्रारभ होकर 'गुप्त काल' तक फैला हुआ दीखता है। उसने 'मुगल काल' की उँगली पकड उसे भी अपना जैसा इतिहासप्रसिद्ध बनाया। ब्रज संस्कृति तथा कला का फैलाव पूरे भारतवर्ष पर आतुरता के साथ छा गया था। शक, पल्लव, यवनादि आक्रामक जो भी यहाँ आए सबके सब ब्रज की संस्कृति और कला पर मुग्ध हो उसके सवर्धन मे तन मन धन से पूर्ण सहयोग देने लगे। यही नही, ब्रज कला तथा संस्कृति के प्रति वे इतने अधिक आकर्षित हुए कि उन्होने भारतीय धर्म स्वीकार कर अपने तद्वत नाम वासुदेव, इद्राग्निदत्त, सुदास' इत्यादि रख लिए, जैसा उनके सिक्को से जाना जाता है।

[ज० ला० च०]

ब्रयांस्क (Bryansk) स्थिति ५३° १५' उ० अ० तथा ३४° २०' पू० दे०। सोवियत संघ का एक क्षेत्र है। जिसका क्षेत्रफल १३,४०० वर्गमील तथा जनसंख्या १८,५०,००० इसकी राजधानी ब्रयास्क नगर है। लकडी का व्यापार यहाँ का प्रमुख उद्योग है। आलू, राई, पटुआ, जौ, चुकदर, गेहूँ, तबाकू मुख्य उपजें हैं। ब्रयास्क तथा बेजित्सा म मशीनें बनती हैं और सीमेंट्री मे सीमेंट बनता है। [पु० क०]

ब्रसेल्ज स्थिति ५०° ५१' उ० अ० तथा ४° २१' पू० दे०। यह बेल्जियम के मध्य में ब्राबेंट प्रात मे ऐंटवर्प (आनवेयर Anvers) से २६ मील दक्षिण सीन नदी के किनारे तथा ऐंटवर्प को शार्लेर्वा (Charleroi) से मिलानेवाली नहर पर स्थित, बेल्जियम की राजधानी तथा प्रसिद्ध औद्योगिक नगर है। इसका निचला भाग पुराना तथा ऊपरी भाग नया है। यहाँ सेंट माइकेल एव सेंट गुडूले (Gudule) के गिरजाघर, नॉट्रे डैम डेस विक्टोइर्स (Notre Dam des victoires) का गिरजाघर, ग्राड प्लेस, राजा का महल, आधुनिक आर्ट सग्रहालय, ससदभवन दर्शनीय हैं। यहाँ विश्वविद्यालय है, तथा सुदर पार्क भी हैं। वाटरलू का प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र यहाँ से ९½ मील दक्षिण मे है। यह हवाई मार्ग द्वारा बर्लिन, पैरिस, लदन, न्यूयॉर्क, काहिरा, तेहरान, ट्रिपोली आदि से सबद्ध है। फीते, दरियाँ, कपडे, फर्नीचर, रसायनक, साबुन, पर्दे, विद्युत् सयत्र आदि बनाने का काम होता है। उपनगरो सहित इसकी जनसख्या १०,१६,५४३ (१९६१) है। [पु० क०]

ब्रह्मगुप्त ये आबू पर्वत तथा लुणी नदी के बीच स्थित, भिनमाल नामक ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम जिष्णु था। इनका जन्म

शक संवत् ५२० में हुआ था। इन्होंने प्राचीन ब्रह्म पितामह सिद्धांत के आधार पर ब्रह्म स्फुट सिद्धांत तथा खंड खाद्य नामक करण ग्रंथ लिखे, जिनका अनुवाद अरबी भाषा में, अनुमानत खलीफा मंसूर के समय, सिंधिंद और अल अर्कन्द के नाम से हुआ। इनका एक अन्य ग्रंथ ध्यान ग्रहोपदेश नाम का भी है। इन ग्रंथो के कुछ परिणामो का विश्वगणित मे अपूर्व स्थान है।

इनकी सबसे महत्वपूर्ण देन चक्रीय चतुर्भुज संबंधी प्रमेय हैं। इन्होने चक्रीय चतुर्भुज के क्षेत्रफल निकालने के सूत्र

$$\sqrt{(स-क)(स-ख)(स-ग)(स-घ)}$$

$$[\sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$$

का आविष्कार किया और सिद्ध किया कि यदि किसी चक्रीय चतुर्भुज की भुजाएँ क (a), ख (b), ग (c), घ (d) और विकर्ण य (x) तथा र (y) हो, तो

$$य = \sqrt{\left(\frac{क घ + ख ग}{क ख + ग घ}\right)(क ग + ख घ)} \quad \text{और}$$

$$र = \sqrt{\left(\frac{क ख + ग घ}{क घ + ख ग}\right)(क ग + ख घ)}$$

$$\left[\; x = \sqrt{\left(\frac{ad + bc}{ab + cd}\right)(ac + bd)} \quad \text{तथा}\right.$$

$$\left. y = \sqrt{\left(\frac{ab + cd}{ad + bc}\right)(ac + bd)} \;\right]$$

ब्रह्मगुप्त अनावर्त वितत भिन्नो के सिद्धांत से परिचित थे। इन्होने एक घातीय अनिर्णीत समीकरण का पूर्णांको में व्यापक हल दिया, जो आधुनिक पुस्तको मे इसी रूप मे पाया जाता है, और अनिर्णीत वर्ग समीकरण, का $र^2 + १ = य^2$, $[\,K y^2 + 1 = x^2\,]$, को भी हल करने का प्रयत्न किया।

इनका वर्षमान अन्य सिद्धांतो के वर्षमानो से कम और सूक्ष्म है। ये अच्छे वेधकर्ता थे और इन्होने वेधो के अनुकूल भगणो की कल्पना की है। प्रसिद्ध गणित ज्योतिषी, भास्कराचार्य, ने अपने सिद्धांत शिरोमणि नामक ग्रंथ के लिये ब्रह्मस्फुट सिद्धांत को आधार माना है और बहुत स्थानो पर इनकी विद्वत्ता की प्रशंसा की है।

[रा० कु० तथा मु० ला० श०]

ब्रह्मपुत्र नदी तिब्बत तथा उत्तर-पूर्वी भारत मे बहती है। उपयोगिता की दृष्टि से इसका स्थान संसार की प्रमुख नदियों में है। इसकी कुल लंबाई १,८०० मील है और इसके संपर्क मे आनेवाला क्षेत्र ३,६१,२०० वर्ग मील है। तिब्बत मे इसे सांपो नदी कहते है। सांपो का उद्गम क्षेत्र सिंधु और सतलुज के उद्गम स्थल के पास ही है। असम की घाटी मे इसका बहाव तेज रहता है। असम की घाटी मे ४५० मील दक्षिण-पश्चिम बहने के बाद यह गारो पहाड़ियों का चक्कर लगाती हुई ठीक दक्षिण की ओर बहती है। असम घाटी को छोड़ने के बाद इसमे 'धरला और तिस्ता नामक नदियाँ चिलमारी के दक्षिण-पश्चिम मे इसके दाहिने किनारे पर मिलती हैं। यह नदी सागर से करीब ८०० मील उत्तर मे डिब्रूगढ तक नौगम्य है अत इस भाग मे नावें चला करती हैं। इसके दाहिने किनारे पर सिराजगंज, (जूट का प्रमुख केंद्र) धुबुरी, तेजपुर, विश्वनाथ तथा बायें किनारे पर गोआलपाडा, गोहाटी, सिलघाट, डिब्रूगढ आदि नगर स्थित हैं।

ब्रह्मसमाज ब्रह्मसमाज का इतिहास मूलत उस आध्यात्मिक आंदोलन की कहानी है जो १९वी शताब्दी के नवजाग्रत भारत की विशेषता थी। इस आंदोलन ने स्वतंत्रता की सर्वव्यापी भावना का सूत्रपात किया एवं जनसाधारण के बौद्धिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को नवीन रूप प्रदान किया। वस्तुत ब्रह्मसमाज के विश्वासों एवं सिद्धांतो ने न केवल विगत १३० वर्षों मे भारतीय विचारधारा को ही नवीन मोड दिया, अपितु भारतीय राष्ट्रीय एकीकरण, अंतरराष्ट्रीयता एवं मानवता के उदय की भी अभिवृद्धि की।

१८वी शती के अंत मे भारत पाश्चात्य प्रभावो एवं राष्ट्रीय रूढ़िवादिता के चतुष्पथ पर खडा था। शक्तियों के इस संघर्ष के फलस्वरूप एक नवीन गतिशीलता का उदय हुआ जो सुधार के उस युग का प्रतीक थी जिसका शुभारंभ पथान्वेषक एवं भारतीय नवजाग्रति के प्रथम अग्रदूत राजा राममोहन राय के आगमन के साथ हुआ। राजा राममोहन राय ने ईश्वरीय ऐक्य 'एकमेवाद्वितीयम्' परमात्मा के पितृमयत्व एवं तज्जन्य मानवमात्र के भ्रातृत्व का संदेश दिया। इस सुदृढ तथा विस्तृत आधार पर ब्रह्मसमाज के सर्वव्यापी धर्म के उत्कृष्ट भवन का निर्माण हुआ।

राममोहन राय का जन्म पश्चिम बंगाल के राधानगर ग्राम मे २२ मई, १७७२ ई० को हुआ था। उनके पिता रमाकांत राय संभ्रांत ब्राह्मण थे। इसलामी एवं हिंदू धर्मग्रंथो के मूलरूप मे अध्ययन के फलस्वरूप राममोहन राय ने मूर्तिपूजा का परित्याग कर एकेश्वरवाद स्वीकार किया। जन्मजात सत्यान्वेषक होने के नाते उन्होने लगभग तीन वर्ष सुदूर तिब्बत मे बौद्धधर्म के परिज्ञानार्थ व्यतीत किए। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा मे रहकर राममोहन राय ने ईसाई धर्म का अध्ययन किया तथा आंग्ल मनीषियो से उनका संपर्क हुआ। राममोहन राय की प्रथम पुस्तक 'तुहफतुल मुहावदीन' (एकेश्वर वादियो के लिये एक उपहार) ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि एक ईश्वर मे विश्वास सभी धर्मों का सार है। उन्होने हिंदू एवं ईसाई उभय रूढिवादिता के विरुद्ध सफल संघर्ष किया। राममोहन राय के अनन्य जीवन का सर्वोपरि कार्य था २३ जनवरी, (माघ ११), १८३० को ब्रह्मसमाज की स्थापना, सगुण ब्रह्म की उपासना का प्रथम सर्वोपरि मंदिर। यहीं से नवीन धार्मिक आंदोलन का जन्म होता है। राममोहन राय का स्वर्गवास २७ सितंबर, १८३३ को ब्रिस्टल, इंग्लैंड मे हुआ जहाँ वे सामाजिक तथा राजनीतिक उद्देश्य से गए थे।

राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित एकमेवाद्वितीय ब्रह्म की जाति, धर्म तथा निरपेक्ष उपासना ने प्रिंस द्वारिकानाथ के आत्मज महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर (१८१७-१९०५) पर अति गंभीर प्रभाव डाला। देवेंद्रनाथ ने ही ब्रह्मसमाज को प्रथम सिद्धांत प्रदान किए तथा ध्यानगम्य उपनिषदीय पवित्रता के अभ्यास का सूत्रपात किया।

प्रथमाचार्य देवेंद्रनाथ की उपासनाविधि इस प्रकार प्रधानत उपनिषदीय थी। प्रेममय ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त अनुभूतिगम्य आत्मसाक्षात्कार उनका महत्वपूर्ण योग था। उन्होने आध्यात्मिक साधना हेतु एक सस्था तत्वबोधिनी सभा का आरभ किया। तत्वबोधिनी पत्रिका, सभा की प्रमुख पत्रिका के रूप मे, बहुतो के लिये प्रेरणा का स्रोत बनी। देवेंद्रनाथ के नेतृत्व मे एक अपूर्व निर्णय लिया गया कि वेद अच्युत नही हैं तथा तर्क एव अत.करण को सर्वोपरि प्रमाण मानना है। ब्रह्मसमाज ने प्रचार का तथा समाजसुधार का कार्य अपने हाथ मे लिया। ब्रह्मसमाज के अतर्गत केशवचद्र सेन के आगमन के साथ द्रुत गति से प्रसार पानेवाले इस आध्यात्मिक आदोलन के सबसे गतिशील अध्याय का आरभ हुआ।

केशवचद्र का जन्म १६ नवबर, १८३८ को कलकत्ता मे हुआ। उनके पिता प्यारेमोहन प्रसिद्ध वैष्णव एव विद्वान् दीवान रामकमल के पुत्र थे। बाल्यावस्था से ही केशवचद्र का उच्च आध्यात्मिक जीवन था। महर्षि ने उचित ही उन्हें ब्रह्मानद की सज्ञा दी तथा उन्हे समाज का आचार्य बनाया। केशवचद्र के आकर्षक व्यक्तित्व ने ब्रह्मसमाज आदोलन को स्फूर्ति प्रदान की। उन्होंने भारत के शैक्षिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक पुनर्जनन मे चिरस्थायी योग दिया। केशवचद्र के सतत अग्रगामी दृष्टिकोण एव क्रियाकलापों के साथ साथ चल सकना देवेंद्रनाथ के लिये कठिन था, यद्यपि दोनों महानुभावो की भावना मे सदैव सतैक्य था। १८६६ मे केशवचद्र ने भारतवर्षीय ब्रह्मसमाज की स्थापना की। इसपर देवेंद्रनाथ ने अपने समाज का नाम आदि ब्रह्मसमाज रख दिया।

केशवचद्र के प्रेरक नेतृत्व मे भारत का ब्रह्मसमाज देश की एक महती शक्ति बन गया। इसकी विस्तृताधारीय सर्वव्याप्ति की अभिव्यक्ति 'श्लोकसग्रह' मे हुई जो एक अपूर्व सग्रह है तथा सभी राष्ट्रो एव सभी युगो के धर्मग्रथो मे अपने प्रकार की प्रथम कृति है। सर्वांग उपासना की दीक्षा केशवचद्र द्वारा दी गई जिसके भीतर उद्बोधन, आराधना, ध्यान, साधारण प्रार्थना, तथा शातिवाचन, पाठ एव उपदेश प्रार्थना का समावेश है। सभी भक्तो के लिये यह उनका अमूल्य दान है।

धर्मतत्व ने तत्कालीन दार्शनिक विचारधारा को नवीन रूप दिया। १८७० मे केशवचद्र ने इग्लैड की यात्रा की। इस यात्रा से पूर्व तथा पश्चिम एक दूसरे के निकट आए तथा अतरराष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। १८७५ मे केशवचद्र ने ईश्वर के नवीन स्वरूप —नव विधान समरूप धर्म (औपचारिक रूप से १८८० मे घोषित) नवीन धर्म की सपूर्णता (ससिद्धि) का सदेश दिया। अपनी नवसहिता मे केशवचद्र ने इस विश्वधर्म का प्रतिपादन इस प्रकार किया

हमारा विश्वास विश्वधर्म है जो समस्त प्राचीन ज्ञान का सरक्षक है एव जिसमे समस्त आधुनिक विज्ञान गाह्य है, जो सभी धर्म गुरुओ तथा सतो मे एकरूपता, सभी धर्मग्रथो में एकता एव समस्त रूपों मे सातत्य स्वीकार करता है, जिनमे उन सभी का परित्याग है जो पार्थक्य तथा विभाजन उत्पन्न करते हैं एव जिसमे सदैव एकता तथा शांति की अभिवृद्धि है, जो तर्क तथा विश्वास योग्य तथा भक्ति, तपश्चर्या और समाजधर्म को उनके उच्चतम रूपों मे समरूपता प्रदान करता है एव जो कालातर मे सभी राष्ट्रो तथा धर्मों को एक राज्य तथा एक परिवार का रूप दे सकेगा।

केशवचद्र का विधान (दैवी सव्यवहार विधि), आदेश (साकार ब्रह्म की प्रत्यक्ष प्रेरणा), तथा साधुसमागम (सतो तथा धर्मगुरुओ से आध्यात्मिक सयोग) पर विशेष बल देना ब्रह्मसमाजियों के एक दलविशेष को, जो नितात तर्कवादी एव कट्टर विधानवादी था, अच्छा न लगा। यह तथा केशवचद्र की पुत्री के कूचविहार के महाराज के साथ विवाह विषयक मतभेद विघटन के कारण बने, जिसका परिणाम यह हुआ कि पडित शिवनाथ शास्त्री के सशक्त नेतृत्व में १८७८ मे साधारण ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई। इस समाज ने कालातर मे देश के सामाजिक एव शैक्षिक विकास मे बडा योग दिया। केशवचद्र १८८४ मे दिवगत हुए।

इन समाजो मे सैद्धातिक मतभेद शनै शनै कम होते गए हैं। आज 'आर्य', 'भारतवर्षीय' अथवा 'नवविधान' तथा 'साधारण' समाजों के बीच, जिनकी शाखाएँ समस्त भारत मे फैली हैं, अपेक्षाकृत अधिक अवबोध तथा सहकारिता है।

इसस र्वव्यापी आध्यात्मिक आदोलन के दर्शन तथा साहित्य की चरम परिणति महर्षि देवेंद्रनाथ के आत्मज विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर (१८६२-१९४२) की सुदरतम कृतियो मे हुई। रवींद्रनाथ ने विशेषतया अपने श्रेष्ठतम एव अनुकरणीय ब्रह्मसगीत के द्वारा एकरूपता तथा विश्वप्रेम का सदेश सुनाया।

इस प्रकार ब्रह्मसमाज अथवा निरतरोद्विकासी धर्मसश्लेषण हमे अपेक्षाकृत कम समय मे एक ब्रह्म, एक विश्व तथा एक मानवता के वाछित लक्ष्य के निकट पहुँचाने मे समर्थ हो सका है। [प्र० व०]

ब्रह्मांड अनादिकाल से सृष्टि की उत्पत्ति, जीवो के निर्माण एव ब्रह्माड की रचना मानव के लिये रहस्यपूर्ण तथा कौतूहल के विषय रहे हैं। सृष्टि की उत्पत्ति और ब्रह्माड की रचना के साथ विभिन्न देशो में अनेक पुराकथाएँ (Myths) जुडी हुई हैं। कालातर मे लोगो ने इसे धार्मिक एव दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न किया और सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ साथ मानव का अन्वेषक मन इसकी तर्कपूर्ण एव वैज्ञानिक परिभाषा देने मे भी सफल हुआ है।

बैबीलोनिया — यहाँ की एक पुराकथा बहुत प्रसिद्ध है। समुद्र के किनारे हरिदू बदरगाह मे अटसू स्थान पर "ई" (इया) देवता रहता था, जो गहराई का प्रतीक था। अधकार और अशाति के दैत्यराज 'टियामद्' ने वहाँ अत्याचार अनाचार मचा रखा था। 'बेलमेरोडाक' नामक देवता ने टियामद् दानव को दो टुकडो मे काट डाला। एक टुकडे से आकाश की और दूसरे से पृथ्वी की रचना हुई। तब पृथ्वी पर मनुष्य का सृजन किया गया, ताकि शाति और धर्म की रक्षा हो सके।

मिस्र—मिस्र में भी ब्रह्माड की रचना के सबध मे कई पुराकथाएँ प्रचलित हैं। आकाश अथवा स्वर्ग 'नट' और पृथ्वी 'सेब' जब सयोग के बाद अलग हुए, तो उन्होंने 'रा' अथवा 'सू' (सूर्य) की सृष्टि की। कुछ लोगो ने 'रा' को दैवी गऊ, 'नट' का बछडा माना है और एक अन्य मतानुसार 'सू' की उत्पत्ति अडे से मानी गई है।

यूनान — यूनानी विचारकों ने ब्रह्माड की रचना को दार्शनिक

रूप देने का प्रयत्न किया है। थेलस ने जल को सारे प्राकृत जगत् का आदि अत कहा। एनैक्सिमिनीज ने जगत् की उत्पत्ति का कारण वायु में देखना चाहा। पाइथागोरस ने सख्या को विश्व का मूलतत्व बयान किया। हिरैक्लाइटस ने अग्नि को जल और वायु दोनो से वलिष्ठ और व्यापक कहा। उसके मतानुसार अग्नि विश्व का मूलतत्व है—एनैक्सेगोरस ने कहा कि सूर्य जलता हुआ पत्थर है, और चद्रमा मिट्टी का बना है। पदार्थों की उत्पत्ति परमाणुओ का सयोग है, और उनका विनाश परमाणुओ का वियोग है।

प्लेटो के विचार से सृष्टिरचना एक स्रष्टा की क्रिया है। वह प्रकृति को प्रत्ययो का रूप देता है। इस क्रिया के पूर्व प्रकृति आकार-रहित और अभेद होती है। प्लेटो की मूल प्रकृति साख्य के अव्यक्त से मिलती है। साख्य मे अव्यक्त पुरुष की दृष्टि मे अव्यक्त बनता है, और प्लेटो के विचार से यह स्रष्टा की क्रिया का फल है।

अरस्तू ने दृश्यजगत् को दो भागो मे बाँटा। पहला भाग चद्रमा से नीचे और दूसरा चद्रमा से ऊपर। चद्रमा से नीचे का भाग पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि, इन चार तत्वो का बना है। ये चारो तत्व चार विविध गुण—सर्दी' गर्मी, तरी और खुश्की हैं। इन गुणो के वियोग और नए संयोगो से पृथ्वी आदि तत्व एक दूसरे में बदल सकते हैं।

चद्रमा से ऊपर विश्व के दूसरे भाग में द्युलोक है, जिसमे ये चारो तत्व विद्यमान नही हैं। वहाँ केवल पाँचवाँ तत्व आकाश विद्यमान है। इसमे कोई परिवर्तन नहीं होता और इसकी गति निरतर चक्राकार होती रहती है।

ईसाई मत — ब्रह्मांड की रचना के सबध मे धार्मिक मत भी प्रचलित हैं। ईसाई मत के अनुसार आरभ मे 'गॉड', ईश्वर आदि तत्व थे। वे इसराइल के परमात्मा 'जावेह' थे। 'उन्होने पानी को अपनी हथेली से नापा और स्वर्ग को अपने हाथो मे बाँध लिया। उन्होने पृथ्वी की धूल को मुट्ठी मे लेकर पर्वतो की रचना की। वही पृथ्वी के केंद्र मे विद्यमान हैं। वे स्वर्ग का पर्दा उठाते हैं, प्रकाश और अधकार का निर्माण करते हैं, शाति और बुराइयो का निर्माण करते हैं—वे यह सब करते हैं।'

ईसामसीह ने ईश्वर को 'पृथ्वी और स्वर्ग का स्वामी' कहा है।

मुस्लिम मत — कुरानशरीफ के सुप्रसिद्ध टीकाकार जमाहशारी और बैदावी के अनुसार खुदा का तख्त बहिश्त और जमीन से पहले विद्यमान था। उसके नीचे से धुआँ उठा और पानी के ऊपर छा गया। पानी सूख गया। इससे जमीन बन गई और धुएँ से बहिश्त का निर्माण हुआ। बहिश्त का निर्माण जुमेरात को हुआ; चाँद, सूरज सितारो की सृष्टि जुमा को हुई, और इसी शाम को आदम का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् आदम और हव्वा के सयोग से सृष्टि का विकास हुआ।

भारतीय — भारत मे पहली बार सृष्टि की उत्पत्ति को धार्मिक एव दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा गया। वैदिककाल में ससार को तीन भागो मे बाँटा गया—पृथ्वी, वायु और आकाश अथवा स्वर्ग। पृथ्वी और स्वर्ग मे देवपुत्र निवास करते थे। इद्र, अग्नि, रुद्र, सोम आदि देवताओ ने सृष्टिरचना की। उन्होने दक्ष और अदिति को उत्पन्न किया, और इन दोनो के सयोग से सृष्टि का विकास हुआ। दक्ष पुरुष और अदिति नारी के ससर्ग से सृष्टि का निर्माण हुआ। (ऋग्वेद, पुरुष सूक्त, १०, ९०)।

ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् काल मे इसी तथ्य को घुमा फिराकर कहा गया। पृथ्वी, वायु और आकाश को 'भू, भुव और स्व, नाम से सबोधित किया गया है। ये तीन लोक थे। कालातर मे इन तीन लोको के स्थान पर सात लोको की कल्पना की गई—'मह, जन, तपस् और सत्यम्' लोक उपर्युक्त लोको मे जोड दिए गए। 'अभ', जल को स्वर्ग धारण करता है। पृथ्वी नीचे जल है, और वहाँ भी सप्तलोक हैं—अतल, पाताल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, और तलातल।

पृथ्वी शेषनाग के सिर पर अथवा कच्छप की पीठ पर स्थित है। दसो दिशाओ मे दिक्पाल उसे साधे हुए हैं।

पुराणो में इस परिकल्पना को दूसरा रूप दिया गया। सृष्टा ईश्वर को ब्रह्म, नारायण, विष्णु और शभु शिव कहा गया। ब्रह्म से ही ब्रह्माड की उत्पत्ति हुई है। तमस अधकार और जल से हिरण्यगर्भ अथवा पुरुष की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के सात मानसपुत्र मारीचि आदि हुए। अदिति के ससर्ग से इन मानसपुत्रो ने सृष्टि का निर्माण किया। सृष्टि का विनाश प्रलयकाल में होता है। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय का चक्र कल्प, मन्वतर और युगो में चलता रहता है। दे० 'प्रलय।'

सृष्टि की उत्पत्ति का एक रूप साख्य दर्शन मे भी मिलता है। इस क्षेत्र मे—इसे सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास कहा जा सकता है। यह विकासवाद के नाम से प्रचलित है। 'नित्य-शुद्ध बुद्ध-स्वभाव बहुश्च' पुरुष और मूलाप्रकृति प्रसवधर्मी त्रिगुणात्मिका' प्रकृति के 'सानिध्य-माध्यम' से निम्नलिखित तत्वो की उत्पत्ति होती है —
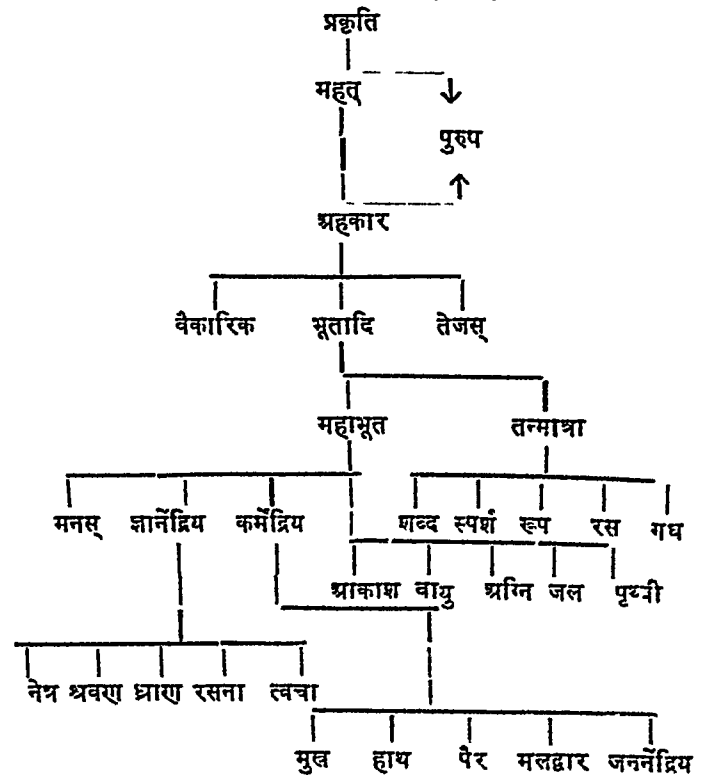
इस प्रकार सांख्य का विकासवाद परमाणुओं का अधसंयोग मात्र नहीं, वह प्रयोजनवादी है।

इसके अतिरिक्त बौद्धदर्शन और जैनदर्शनों में भी ब्रह्मांड और सृष्टि की कल्पना की गई है, किंतु वह सनातन पौराणिक एवं पुराकथाओं की पुनरावृत्ति मात्र है।

ब्रह्मांड की रचना के विषय मे एक पक्ष वैज्ञानिक पक्ष भी है। सुदूर अतीत के न जाने किस युग से जिज्ञासुओं और मनीषियों की प्रश्नवाचक मुद्रा चाँद सितारों के गली कूचों मे गर्दिश करती हुई यह जानने की कोशिश करती रही है कि सृष्टि का मूलरूप क्या है? क्या है यह ब्रह्मांड? गैलिलियो, लाइवनीत्ज, जीस और एडिंग्टन ने अपने अनुसार ब्रह्मांड की उत्पत्ति और सृष्टि के आदि क्रम पर विचार व्यक्त किए। अभी कुछ समय पूर्व तक इस संबध मे आइस्टाइन का विचार सर्वमान्य था। इसके अनुसार ब्रह्मांड निरंतर फैल रहा है। पर गत दस वर्षों में रेडियो-नक्षत्र-विद्या की खोजी आँख ने कुछ ऐसे करिश्मे देखे, जो आइस्टाइन के इस सिद्धात से कतई मेल नहीं खाते। रेडियो दूरदर्शियों की साक्षी के कथनानुसार ब्रह्मांड की निश्चित सीमाओं के भीतर ही नए लोको और विश्वो का निर्माण हो रहा है। इन अवलोकनों के सूक्ष्म परिणामों की भी आइस्टाइन के सिद्धात मे गुंजाइश नहीं वल्कि उन्होंने उल्टे इस सिद्धात में संदेह पैदा किए हैं।

इस प्रकार रेडियो दूरदर्शियों के प्रयोग ने सृष्टिसिद्धात के क्षेत्र मे एक अभाव, एक शून्य को पैदा कर दिया। इस अभाव की पूर्ति अभी हाल में डॉ० नार्लीकर के उस सिद्धांत मे हुई, जो उन्होंने प्रो० हायल के साथ प्रतिपादित किया है।

अंग्रेज वैज्ञानिक फ्रेड हायल तथा रेडियो ज्योतिर्विद मार्टिन राइल, एलन सैंडेज आदि ब्रह्मांड की सतत गतिशीलता के प्रतिपादक हैं। दे० 'ब्रह्मांडोत्पत्ति'।

सं० ग्रं० — एल० डब्लु० किंग द सेवेन टेबिल्स ऑव क्रिएशन, १९०२, द फ्री प्रेस, न्यूयार्क, थियरीज़ ऑव द यूनिवर्स, मिल्टन के० म्यूनिट्ज़ द्वारा संपादित, १९६५। [मु० गु०]

ब्रह्मांडोत्पत्ति (Cosmogony) से उन सिद्धातो, उपकल्पनाओं या अनुमानों से अभिप्राय है जो संपूर्ण विश्व, या ब्रह्मांड, अथवा उसके किसी अंश, सौरमंडल, तारामंडल आदि के उद्गम और विकास की अवस्थाओं की व्याख्या करते हैं। ब्रह्मांडोत्पत्ति का विश्व के स्वरूप से घनिष्ठ संबंध है। अति प्राचीन काल मे लोग पृथ्वी को ही ऐसे ब्रह्मांड का मुख्य अंश समझते थे जिसमे सूर्य, चंद्र तथा तारे प्रकाश के लिये निर्मित थे, अथवा सूर्य, चंद्र, तारे आदि देव स्वरूप थे, जो पृथ्वीवासियों के रक्षक तथा पूज्य थे। अतएव प्रचीन धार्मिक ग्रंथों मे मुख्यतया पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय मे अनेक कल्पनाएँ है। इनके साथ ही सूर्य, चंद्र तथा तारों का कुछ संबंध जोड़ा गया है। ज्योतिष के ज्ञान में वृद्धि तथा वेध के उपकरणों मे परिशुद्धता आने पर, जैसे जैसे ब्रह्मांड के स्वरूप के विषय मे जन धारणाओं मे परिवर्तन होता गया वैसे वैसे ब्रह्मांडोत्पत्ति के सिद्धात भी बदलते गए।

ब्रह्मांडोत्पत्ति के प्रारंभिक सिद्धांत — आज से दो या तीन शताब्दी पूर्व ज्योतिष विद्या का क्षेत्र सौर परिवार तक सीमित था। अत. उस समय ब्रह्मांडोत्पत्ति का विषय भी सौर परिवार की उत्पत्ति तक सीमित था। ऐतिहासिक दृष्टि से वैज्ञानिक ढंग से ब्रह्मांडोत्पत्ति का अध्ययन फ्रांसीसी वैज्ञानिक जॉर्जेस द बुफान (Georges de Buffon) की उस परिकल्पना (hypothesis) से हुआ जिसमे उन्होंने ग्रहों की सृष्टि को पास से गुजरते हुए, किसी धूमकेतु के सूर्य से टकरा जाने के कारण टूटे हुए द्रव्यों के संघटन से बताया। किंतु उससे कुछ समय बाद एक नीहारिका से सूर्य तथा उसके परिवार के जन्म की परिकल्पना को महत्व मिल गया। इसका प्रतिपादन दो प्रसिद्ध विद्वानों ने स्वतंत्र रूप से किया। इनमे एक थे जर्मनी के दार्शनिक, इमेनुअल कांट (Immanuel Kant, १७२४-१८०४ ई०) तथा दूसरे थे फ्रांसीसी गणितज्ञ, पियरी साइमन द लाप्लास (Pierre Simon de Laplace, १७४९-१८२७ ई०)। कांट-लाप्लास परिकल्पना के आधार पर सूर्य तथा सौर परिवार की उत्पत्ति गैस तथा धूल के एक मेघ, अथवा मूलरूप मे नीहारिकाकार द्रव्यसमवाय से हुई। यह नीहारिका मंदगति से घूर्णन कर रही थी। इसके भीतरी भागों में अनियमित विक्षोभात्मक (Turbulent) गतियाँ थीं। जब यह द्रव्य न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात के अनुसार सिकुड़ने लगा तब अक्ष के चारों ओर इसकी घूर्णन गति मे तीव्रता आने लगी। उस अवस्था में मंद घूर्णनवाले द्रव्य केंद्र की ओर एकत्रित होते गए, जिनसे सूर्य का जन्म हुआ तथा उत्तरोत्तर तीव्र घूर्णन गति के द्रव्यसमवाय एकत्रित होकर ग्रहों के रूप मे उसकी परिक्रमा करने लगे। सौर परिवार की उत्पत्ति का यह सिद्धात १९वीं शताब्दी के अंत तक मान्य रहा, किंतु १९वीं शताब्दी के अंतिम चरण मे प्रसिद्ध अंग्रेज, भौतिकीविज्ञानी, क्लार्क मैक्सवेल (Clark Maxwell), ने शनि के वलयों संबधी अपने सिद्धात का, नीहारिका द्वारा सौर परिवार के जन्म के सिद्धान्त पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि केंद्रीय पिंड, सूर्य, के चारों ओर घूर्णन करते हुए ग्रहमूलक द्रव्यसमुदायों के वलयों मे ही रहने की संभावना थी, वे कभी भी ग्रहों के रूप मे संघटित नहीं हो सकते थे।

मैक्सवेल द्वारा सौर परिवार की उत्पत्ति की नीहारिकामूलक परिकल्पना के खंडित हो जाने के पश्चात्, सौर परिवार की उत्पत्ति का कारण ज्वारभाटा उपकल्पना (Tidal hypothesis) तथा टक्कर की उपकल्पना मानी गई। ज्वारभाटा की उपकल्पना के अनुसार, अतिदूर भूतकाल मे कोई विशाल तारा सूर्य के पास से अति वेग से गुजरा, जिसके कारण सूर्य पिंड मे भयंकर ज्वार भाटा उठा और सूर्य के द्रव्य की बहुत सी मात्रा सूर्य के चारों ओर फैल गई। तारे के चले जाने के पश्चात्, उस द्रव्यमात्रा का अधिकांश पुन सूर्य मे आ गिरा, किंतु शेष द्रव्यमात्रा अंशों मे जमकर ग्रहों मे परिवर्तित हो गई। टक्कर की उपकल्पना के अनुसार सूर्य, अथवा इस कल्पना के अनुसार युग्मतारा, की किसी तारे से अथवा अपने सहचर से टक्कर हो जाने के कारण बिखरी हुई द्रव्यमात्रा से ग्रहों का जन्म हुआ। ज्वारभाटा उपकल्पना के प्रवर्तक थे भौतिकीविद, सर जेम्स जीन्स (Sir Games Geans) तथा हेरॉल्ड जेफ्रीज़ (Herold Jeffreys)। इन सिद्धातों के अनुसार ग्रहों से पूर्ववर्ती सूर्य की कल्पना की गई थी, जो जँचती न थी तथा ये सिद्धात ग्रहों के कोणीय वेग के कारण की भी यथार्थ व्याख्या नहीं कर पाते थे। अत ये उपकल्पनाएँ मान्य न हो सकीं।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कार्ल फॉन विजाकर (Carl von

Wizsacker) ने सशोधित रूप मे पुन काट-लाप्लास-उपकल्पना को उपस्थित किया। उन्होने क्लार्क मैक्सवेल की शका को निराधार बताया, क्योंकि मूल सौर गैस मेघ के मूलतत्व, जो प्राय हाइड्रोजन तथा हीलियम थे, शनि के मूलतत्वो से भिन्न थे। अतएव वे ग्रह रूप मे सघटित हो सकते थे। इन्ही के अनुयायी डच अमरीकी ज्योतिपी, जी० पी० कुइपर (G. P Kuiper), ने यह सिद्ध किया कि ग्रहो की भी रचना लगभग उसी समय हुई जब सूर्य अपने स्वरूप के निर्माण की अवस्था मे था। सूर्य के प्रकाश के दबाव के कारण, सूर्य के निकट-वर्ती ग्रहो के तल की हीलियम तथा हाइड्रोजन मूलक हलकी गैसें उड जाने से, इनमे भारी तत्वो का आधिक्य है। यह उपकल्पना अब प्राय मान्यता प्राप्त कर चुकी है।

वर्तमान शताब्दी के प्रारभ मे वेध के शक्तिशाली यत्रो की उपलब्धि से विश्व के स्वरूप की मूलभूत धारणाओ मे महान् परिवर्तन हो गया। ज्योतिषियो ने इन यत्रो की सहायता से तारा पद्धति से ऊपर उठकर विश्व के नए सदस्यो के बारे मे ज्ञान प्राप्त करना शुरू किया। ये थे गैसमेघ, तारातवर्ती गैस तथा धूल, नीहारिकाएँ, तारागुच्छ और आकाश गगाएँ। इन अध्ययनो से यह सिद्ध हो गया कि हमारी अपनी तारापद्धति सूर्य केंद्रिक है। हमारी आकाशगगा स्वय मे एक विश्वद्वीप है। विश्व मे इस प्रकार के अनेक विश्वद्वीप है, जिनकी सख्या अरबो मे है तथा ये आकाशद्वीप हमारे दूरदर्शियों की पहुँच की अतिम सीमाओ तक भी दिखलाई देते हैं। तब सबसे पहले यह प्रश्न उठा कि विश्व की सीमा क्या है। बिना इस प्रश्न के उत्तर के हम विश्व के सभी विश्वद्वीपो की उत्पत्ति का ज्ञान नही प्राप्त कर सकते थे।

ब्रह्मांडोत्पत्ति का व्यापक अध्ययन वर्तमान शताब्दी के प्रारभ से शुरू होता हैं, जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइस्टाइन के सापेक्षवाद के समीकरणो का व्यापक प्रयोग अतिदूरवर्ती खगोलीय पिंडो पर किया गया तथा इनसे ब्रह्माड (cosmos) को जानने का प्रयत्न किया गया। ब्रह्माडोत्पत्ति का वही सिद्धात वैज्ञानिक हो सकता है जो ब्रह्माडरूप, उसके दैर्घ्य विस्तार, उसके घनत्व तथा पडो की गतियों से मेल खाता हो। सर्वप्रथम आइस्टाइन ने बद, अनत-गोलाकृति ब्रह्माड की कल्पना की, किंतु इस कल्पना का विस्तारशील ब्रह्माड के सिद्धात से मेल न होने के कारण, इसे मान्यता न मिल सकी।

विस्तारशील ब्रह्माड — ब्रह्माडोत्पत्ति के आधुनिक सिद्धात विस्तार-शील ब्रह्माड के सिद्धात से अत्यत प्रभावित हुए हैं। इसके प्रवर्तक अमरीकी वैज्ञानिक हबल हैं। उन्होने वर्तमान शताब्दी के दूसरे दशक मे माउट विल्सन वेधशाला मे अति दूरवर्ती आकाशगगाओ के स्पेक्ट्रमो का अध्ययन किया और देखा कि उनकी रेखाएँ स्पेक्ट्रम के लाल छोर की ओर स्थानातरित है। इसपर उन्होने डॉपलर के नियम से ज्ञात किया कि ये आकाशगगाएँ हमसे अपसरण कर रही हैं। इन अध्ययनो से उन्हें यह भी पता चला कि ज्यो ज्यो आकाशगगाओ की दूरी हमसे बढ रही है, त्यों त्यों इनका अपसरण वेग भी बढ रहा है, जो प्राय उनकी हमसे दूरी का अनुपाती है। इससे उन्होने यह सिद्ध किया कि ब्रह्माड विस्तारशील है।

मूल द्रव्यपिंड के विस्फोट से ब्रह्मांडोत्पत्ति — विस्तारशील विश्व की कल्पना से तालमेल खाते हुए ब्रह्माडोत्पत्ति के सिद्धात को सर्वप्रथम बेल्जियम के ज्योतिपी ऐबि लमैत्र (Abbe Lemaitre) ने महा-द्रव्याणु विस्फोट के कारण बताया। इसी से मिलते जुलते सिद्धात के परिष्कृत रूप को जॉर्ज वाशिंगटन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० जॉर्ज गेमो ने अपने सहयोगियो राल्फ अल्फर, आर० सी० हरमैन, जे० एम० स्मार्ट, एनरिको फेर्मी तथा ऐंटनी टर्केविच की सहायता से अपनी १९५१ ई० मे प्रकाशित पुस्तक, क्रियेशन ऑव यूनिवर्स, मे प्रतिपादित किया है। उसका साराश यह है कि ब्रह्माड की उत्पत्ति के आरभ मे विश्व का सारा मूलद्रव्य एक विशाल पिंड (primeval atom) के रूप मे था, जिसे डा० गेमों ने 'ईलम' नाम दिया है। उस समय उस मूल द्रव्य का घनत्व अत्यधिक था, जो सभवत $१०^{१४}$ प्रति घन सेंटीमीटर था। अत्यधिक दबाव (pressure) के कारण उसका भीतरी ताप अरबो अशो मे था। दबाव के अत्यधिक हो हो जाने से मूलद्रव्य के पिंड मे विस्फोट हो गया और परिणाम स्वरूप मूलद्रव्य चारो ओर फैलने लगा। विस्फोट के एक घटे के बाद विश्व का ताप २,५०,००,००,०००° था। ज्यो ज्यो मूल द्रव्य फैलता गया, त्यो त्यो ब्रह्माड का ताप कम होता गया। ब्रह्माड के प्रसरण के आरभ होने के २५,००,००,००० वर्षों के पश्चात् विश्व का ताप इस प्रकार का हो गया कि उसमे विभिन्न प्रकार के हमारे परिचित द्रव्यो के अणुओ का और मूल द्रव्य के बडे बडे भागो मे गुरुत्वाकर्पण क्षेत्रो का जन्म होने लगा उस समय मूलद्रव्य के बडे बडे विशाल भाग गोलाकार गैस के मेघ सरीखे थे। ये ही कालातर में ब्रह्माड की बडी इकाइयो, आकाशगगाओ,—मे परिणत हो गए, किंतु उनके भीतरी भागो मे भी अणुओ की विक्षुब्ध गतियो (turbulent motions) के कारण उनके भीतर भी गैसमेघो के छोटे छोटे गोलाकार खड बन गए, जिनके अपने गुरुत्वाकर्पण क्षेत्र बन गए। इन गैसमेघो के आकार के अनुसार, कालातर में द्रव्य के सकुचित होने पर, इनमे तारो तथा तारागुच्छो आदि का जन्म हुआ। तारो के पास बिखरा हुआ द्रव्य छोटे छोटे ग्रहो मे परिवर्तित हो गया। डा० गेमो के अनुसार विश्वनिर्माण की इस क्रिया मे मुश्किल से आधा घटा लगा होगा। इन आकाशगगा पद्धतियो मे दो तरह का वेग था एक तो विस्फोटजनित, जिससे ये विस्फोट-बिंदु से उत्तरोत्तर दूर होती रहीं और होती जा रही हैं, तथा दूसरा उनकी तारापद्धतियो का अपनी नियत अक्ष रेखा के प्रति घूर्णन था। घूर्णन की गति के कारण आकाशगगाओ के स्वरूपो मे सर्पिल, दीर्घगोलाकार आदि परिवर्तन हुए। इस सिद्धात के अनुसार विश्व के निर्माण का अर्थ है, जो लगभग चार अरब पूर्व हुआ था, और उसकी इति भी है जो अब से लगभग दस अरब वर्प के आसन्न होगी। उस समय आकाशगगाएँ, एक दूसरे से हटती हुई, अनत मे विलीन हो जाएँगी और प्रत्येक आकाशगगा के तारे ठढे होकर मृत हो जाएँगे। न प्रकाश होगा न गति होगी। ब्रह्माड मे एक पूर्ण विराम आ जायगा।

ब्रह्माड की आयु का सिद्धात — ब्रह्माड की आयु से, विश्व के वर्तमान स्वरूप तक विकसित होने मे लगनेवाले काल से अभिप्राय है। इसका अध्ययन करने के लिये वैज्ञानिकों ने विश्व के विभिन्न सदस्यो की आयु का अध्ययन किया है। यूरेनियम धातु के सीसे (lead) मे बदलने तथा समुद्र के वर्तमान क्षार की मात्रा आदि से पृथ्वी की वर्तमान आयु को ज्ञात किया गया है। चद्रमा के पृथ्वी से अपसरण वेग (लगभग ५ इच प्रति वर्प) द्वारा चद्रमा की आयु को

१८११ को हुआ। इसके पिता जेकब ब्राइट ने इसके जन्म से दो वर्ष पूर्व रोफडेल में सूती मिल की स्थापना की थी। ब्राइट की प्रारंभिक शिक्षा घर के समीप एक बोर्डिंग स्कूल मे हुई। उसने एक्वर्थ, पार्क और न्यूटन के स्कूलों मे भी अध्ययन किया। उच्च शिक्षा वह प्राप्त न कर सका। १६ वर्ष की उम्र मे वह पिता के व्यवसाय मे समिलित हुआ और फिर उसका साझेदार बन गया। १८३३ मे उसके प्रयत्न से एक साहित्यिक सस्था की स्थापना हुई। इसमे दिए गए अपने भाषणो के प्रभाव से उसको अपनी वाक्शक्ति की जानकारी हुई जिसका उसने उत्तरोत्तर उपयोग किया। १८३८ मे अनाज कानून के विरोध मे रोकडेल मे दिए गए उसके तथ्ययुक्त और तर्कपूर्ण भाषण ने उसके प्रभाव मे वृद्धि की। अगले वर्ष मैंचेस्टर में एंटीकार्न ला लीग (अनाज कानून विरोधी सघ) की स्थापना मे ब्राइट का विशेष हाथ था। इस प्रजापीडक कानून की समाप्ति के लिये सघ के प्रमुख नेता कौबडेन के साथ ब्राइट ने अथक परिश्रम किया। १८४६ मे दल के प्रधानमत्री रावर्ट पील ने इस कानून को उठा लिया। इसी वर्ष सघ को भी समाप्त कर दिया गया।

ब्राइट अबाध व्यापार का समर्थक था। १८४३ मे डरहम से निर्विरोध निर्वाचित होकर वह पार्लमेंट मे पहुँच गया था। वहाँ उसने शासन में उदार सिद्धातो के व्यवहार, आवश्यक आर्थिक सुधार और अनाज कानून की समाप्ति के पक्ष मे मत व्यक्त किया। श्रमिको के काम के घटो के सीमित करने और धर्माधिकारियो द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा के नियत्रण के प्रस्तावो का उसने पार्लमेंट मे विरोध किया। उसने दोषपूर्ण निर्वाचन प्रणाली के सुधार के लिये कार्य किया। वह शातिवादी था। रूस के विरुद्ध क्रीमिया की लडाई मे इग्लैड के सहयोग का उसने उग्र विरोध किया किंतु उसके क्षेत्र ने उसके विरोध का समर्थन नही किया। उन्होने रूस का एजेंट कहकर ब्राइट को बदनाम किया और नगर की सडकों पर उसके पुतले जलाए। १८५७ के चुनाव मे मैंचेस्टर से वह और कावडेन दोनो ही हार गए। किंतु अगले ही वर्ष दूसरे औद्योगिक नगर बर्मिघम से उसका निर्विरोध चुनाव हो गया। ब्राइट जीवन के अतिम दिन तक पार्लमेंट का सदस्य रहा। बर्मिघम नगर ने प्रत्येक चुनाव मे उसको अपना प्रतिनिधि निर्वाचित किया। फरवरी, १८५८ में षड्यत्र सबधी सरकारी कानून का ब्राइट ने उग्र विरोध किया। कानून स्वीकृत न हो सका। प्रधान मत्री पामर्स्टन को पदत्याग करना पडा। इग्लैड मे यहूदियो का पार्लमेंट मे प्रवेश निषिद्ध था। उनके प्रतिबंधो को हटाने का ब्राइट ने समर्थन किया। जुलाई, १८५८ मे यहूदियो को पार्लमेंट का सदस्य बनने की सुविधा प्राप्त हो गई। भारत मे ईस्ट इडिया कपनी के शासन की समाप्ति और इग्लैड की सरकार द्वारा उस देश के शासन का उसने समर्थन किया। १८५९ से १८६७ तक ब्राइट ने पार्लमेंट के सुधार के पक्ष मे लोकमत तैयार करने के लिये अनवरत परिश्रम किया। सुधार सबधी प्रस्तावो का उसने प्रत्येक अवसर पर पार्लमेंट मे समर्थन किया। १८६७ मे सुधारविरोधी अनुदार दल की सरकार को ही इस सबध का कानून बनाना पडा।

ब्राइट के कार्य अपने देश तक ही सीमित न थे। दासत्व के विरुद्ध सघर्षरत अमरीका के उत्तरी राज्यो का भी उसने समर्थन किया। भारतवासियो की स्थिति मे सुधार के लिये भी उसने प्रयत्न किया। १८६८ मे उदार दल की सरकार बनने पर प्रधान मत्री ग्लैडस्टन ने ब्राइट को व्यापार बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त किया। इस पद के कार्यकाल मे ब्राइटन ने आयरलैड के धर्म और भूमि के मामलो मे प्रधान मत्री के निर्णयों का समर्थन किया। अस्वस्थता के कारण दिसबर १८७० मे उसने अपना पद त्याग दिया। पर अगस्त, १८७३ मे लकास्टर की डची के चासलर के रूप मे उसको फिर मत्रिमडल मे स्थान प्राप्त हो गया। १८७४ के चुनाव मे अनुदार दल की बहुमत से विजय हुई किंतु ब्राइट उस वर्ष भी मैंचेस्टर से निर्विरोध निर्वाचित हुआ। यूरोप के पूर्वी राज्यो के सबध मे ग्लैडस्टन की सरकार विरोधी नीति का उसने समर्थन किया, १८८० के चुनाव मे उदार दल की विजय होने पर प्रधान मत्री ग्लैडस्टन ने ब्राइट को दूसरी बार लकास्टर की डची के चासलर के पद पर नियुक्त किया। वह दो वर्ष ही इस पद पर रहा। मिस्र मे हस्तक्षेप की मत्रिमडल की नीति उसे ग्राह्य न थी। अलैग्जेंड्रिया पर गोलाबारी के बाद १५ जुलाई, १८८२ को उसने यह पद त्याग दिया और भविष्य में कोई सरकारी पद न ग्रहण किया। आयरलैंड को स्वशासन का अधिकार देने के ग्लैडस्टन के प्रस्ताव का उसने विरोध किया। इस प्रश्न पर दल के सदस्यो मे मतभद कराने में ब्राइट का प्रमुख हाथ था किंतु अनुदार दल के प्रभाव की वृद्धि, उस दल के हाथ में शासनसूत्र जाने, दल के द्वारा व्यापार-सरक्षण-नीति के उपयोग तथा साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाये जाने से जीवन के अतिम वर्षों मे वह दुखी रहा। उसके अत के पाँच मास शैय्या पर ही बीते। २७ मार्च, १८८९ को उसकी मृत्यु हो गई। राजनीतिक जीवन के स्तर को ऊँचा करने के लिये ब्राइट निरतर प्रयत्नशील रहा। इग्लैड के महान् पुरुषो मे उसका स्थान है।

ब्राइस, जेम्स (१८३८-१९२२) यह कुशल राजनीतिज्ञ, कानून मे प्रवीण तथा ख्यातिप्राप्त इतिहासकार था। सन् १८६७ ई० मे इसने वकालत करना प्रारभ किया। आक्सफर्ड मे दीवानी कानून का प्राध्यापक सन् १८७० से १८९३ ई० तक रहा। यह अपनी बौद्धिक क्षमता एव राजनीतिक कार्यक्षमता के लिये उदारवादी दल का विचारक माना जाने लगा। सन् १८८० ई० मे ससद का सदस्य बना। विदेशी विभाग का उपसचिव तथा व्यापारिक समिति का सभापति रहा। १९०५ मे आयरलैड का सचिव बनाया गया। १९०७ से १९१३ तक यह राजदूत बनाकर सयुक्त राष्ट्र अमरीका भेजा गया। वह अपनी विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध है। इसने 'अमरीका का गणतत्र' १८८८ मे, 'धर्मशास्त्र का इतिहास' १९०१ मे, 'समकालीन मनीषियो की आत्मकथा' आदि अनेक ग्रथ लिखे। देश विदेश के विश्वविद्यालयो ने इसे इसकी विद्वत्ता के लिये उपाधियाँ दी। १८९४ मे यह रायल सोसायटी का सभासद बनाया गया और १९०७ मे ब्रिटिश एकाडेमी का प्रधान। [गु० ते०]

ब्राउनी गति (Brownian Movement) यदि काच के बरतन मे पानी रखकर उसकी परीक्षा की जाय, तो स्थिर अवस्था मे वह तरल समाग, विच्छिन्न तथा गतिहीन प्रतीत होता है। किंतु यदि इस जल मे कोई चूर्ण पदार्थ डालकर द्रव को हिला दिया जाय, तो उस पदार्थ के अति सूक्ष्म कण विभिन्न दिशाओ मे गति करते प्रतीत होते हैं और कुछ समय बाद जब सब कण पूर्ण रूप से प्रसरित हो जाएँगे तब द्रव स्थिर सा लगेगा। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर विदित होगा कि

चूर्ण पदार्थ के कण निरंतर इधर उधर तीव्र गति से चलते रहते हैं और उनकी गति यदृच्छ (haphazard) तथा अनियमित है। इस प्रकार की गति का अध्ययन १८२७ ई० में ब्राउन महोदय ने किया था। अत इसे उनके नाम से संबंधित करके ब्राउनी गति कहते हैं।

जल के अतिरिक्त अन्य द्रवों में भी इस प्रकार की गति देखी जा सकती है, परंतु यह गति उन द्रवों की श्यानता (viscosity) के व्युत्क्रमानुपाती (inversely proportional) होगी। ज्यों ज्यों कणों के आकार को कम किया जाता है यह गति बढ़ती जाती है। इस गुण को ब्राउन ने इस गति की खोज करने के साथ ही बताया था। तापवृद्धि से गति भी बढ़ती जाती है।

इस गति की एक विशेषता यह है कि यह कभी रुकती नहीं, निरंतर होती रहती है। २०वीं शताब्दी में वैज्ञानिक पेरँ (Perrin) ने ब्राउनी गति पर विस्तृत कार्य किया और अपने प्रयोगों के फलस्वरूप ग्रामाणु में उपस्थित अणुओं की संख्या ज्ञात की। उस समय तक गतिज विज्ञान कल्पना मात्र था, परंतु पेरँ के प्रयोगों द्वारा उसे परीक्षण पुष्टि मिली।

कोलाइडी (colloidal) विलयनों की अतिसूक्ष्मदर्शी (ultra-microscope) द्वारा परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि इनमें भी कण निरंतर गतिवान रहते हैं। थोड़ी देर तक ये सीधी रेखा में चलते हैं, फिर एक दम दिशा बदलकर दूसरी ओर सीधी रेखा में जाते हैं, और इसी प्रकार थोड़ी थोड़ी देर बाद ये अपना मार्ग बदलते रहते हैं। वाइनर (Weiner) ने १८६३ ई० में यह प्रदर्शित किया कि कोलॉइडी कणों की यह गति उनके रासायनिक स्वभाव पर नहीं निर्भर करती, किंतु यदि कणों का आकार कम कर दिया जाय तो गति में वृद्धि हो जाती है। ब्राउनी गति अणुओं की गति के कारण होती है। माध्यम के अणुओं से टक्करें खाकर कोलाइडी कण विभिन्न दिशाओं में गति करते हैं। [रा० दा० ति०]

ब्रॉक, सर टॉमस (१८४७–१९२२) रायल अकादमी के आजीवन सदस्य तथा प्रसिद्ध अंग्रेज शिल्पकार ब्रॉक द्वारा बनाई गई लार्ड सिडेनहम की कृति बंबई में है। लीड्स के मध्यवर्ती चौराहे पर घोड़े पर सवार एडवर्ड की प्रतिकृति १९०१ में इन्होंने बनाई थी। उसी साल इन्होंने बकिंघम राजभवन के सामने रानी विक्टोरिया की स्मृति में शिल्पाकृति बनाई, जिसपर उन्हें राजा से 'कमिशन' का सम्मान मिला। उनकी कृतियाँ सुंदर हैं। उनके बनाए व्यक्तिशिल्प भावनाओं की कोमलता, भव्यता, संयम, सुरुचि एवं अलंकारपूर्ण रचना के उदाहरण हैं। शिल्पकार फोले का प्रभाव आरंभ के कुछ दिनों की इनकी कृतियों पर रहा। [भा० स०]

ब्राज़िल स्थिति ५° ०' उ० अ० से ३४° ०' द० अ० तथा ३५° ०' प० दे० से ७४° ०' प० दे०। दक्षिणी अमरीका के उत्तर-पूर्व में स्थित दक्षिणी अमरीका का सबसे बड़ा तथा रूस, कैनाडा, चीन, संयुक्त राज्य अमरीका के बाद विश्व का पाँचवाँ सबसे बड़ा देश है। इसका क्षेत्रफल ३२,८६,१११ वर्ग मील है। इसके उत्तर-पूर्व, पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व में ऐटलैंटिक महासागर ४,६०० मील की समुद्री रेखा बनाता है। इसके पश्चिम में पेरू, बोलिविया, दक्षिण-पश्चिम में पैराग्वे, अर्जेंटीना तथा यूरुग्वे, उत्तर-पश्चिम में कोलंबिया, वेनिज़ुएला, गिआना आदि हैं। यह २२ राज्यों में विभक्त है।

धरातल — ब्राज़िल के उत्तरी भाग में ऐमेज़ान तथा उसकी सहायक नदियों का बेसिन विस्तृत है। इस बेसिन के उत्तर में गिआना का उच्च प्रदेश है। ब्राज़िलियन उच्च प्रदेश १,००० से ३,००० फुट तक ऊँचा है। ऐमेज़ान, जापूरा, पूरस, माडियरा, टापा जॉस, शिंगू तथा साउ फ्रैंसीस्कू प्रमुख नदियाँ हैं।

जलवायु — यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबंधीय है। वैसे जलवायु में बड़ी विभिन्नता मिलती है। सबसे ठंढा समय मई से सितंबर तथा सबसे गरम समय दिसंबर से मार्च तक रहता है। औसत वार्षिक वर्षा ४० इंच है तथा ऐमेज़ान की घाटी में वर्षा ८० इंच तक हो जाती है। रीओ डे जानेरो में सबसे गरम मास का औसत ताप लगभग २६° सें० तथा सबसे ठंडे मास का औसत ताप लगभग २०° सें० रहता है।

जनसंख्या — यहाँ की जनसंख्या ७,०७,९९,३५२ (१९६०) है। यहाँ का सबसे बड़ा नगर साउ पौलू है। इसके अन्य प्रसिद्ध नगर ब्रैसिलिया (राजधानी), रीओ डे जानेरो, सैल्वाडार, रेसीफे, बेलेम आदि हैं। यहाँ के लोगों की प्रमुख भाषा पुर्तगाली है, तथा प्रमुख धर्म रोमन कैथलिक (ईसाई) है।

यातायात — रेलों, सड़कों तथा वायुमार्ग में काफी प्रगति हुई है। नदियों द्वारा यातायात की काफी सुविधा है। लगभग १५ बंदरगाह उन्नत अवस्था में हैं।

कृषि — ब्राज़िल कृषिप्रधान देश है। केला, सेम (bean), कैस्टर बीन (caster bean), कहवा तथा धान के उत्पादन में विश्व में इसका प्रथम तथा कोकोआ में द्वितीय स्थान (सन् १९५९) है। इनके अतिरिक्त मक्का, गन्ना, कपास तथा गेहूँ भी पैदा होता है। वनों से प्राप्त उपजों में रबर, अखरोट, रेशा, मोम तथा इमारती लकड़ी प्रमुख हैं। कृषि विशेषकर पूर्वी भाग में होती है।

खनिज — खनिजों में यह धनी है। मीना जेराइस में सोना मिलता है। इसके अतिरिक्त बेरीलियम, क्रोम, ग्रैफाइट, मैंग्नेटाइट, अभ्रक, स्फटिक, थोरियम, टिटेनियम जिरकोनियम, बॉक्साइट, ताँबा, सोना, जस्ता, सीसा, टिन आदि खनिज प्राप्त होते हैं। हीरे जवाहरात यहाँ के प्रमुख खनिज हैं।

उद्योग — उद्योगों में यह देश उन्नति कर रहा है। सूती वस्त्र एवं लोह इस्पात उद्योग प्रमुख हैं। रीओ, साउ पौलू, मीना जेराइस, वॉल्टा रेडोंडा उद्योगों के प्रमुख केंद्र हैं। यहाँ रबर बनाने के कारखाने भी हैं। इसके अलावा चूना, चमड़ा, सिगरेट आदि के उद्योग उन्नति कर रहे हैं। साउ पौलू सूती कपड़े का सबसे बड़ा केंद्र है।

शिक्षा — सात से ११ वर्ष के बच्चों की शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क है। वैसे शिक्षा में कोई विशेष उन्नति नहीं हो पाई है। रीओ डे जानेरो, मीना जेराइस, साउ पौलू, रीओ ग्रैंडे दो सुल, बाईआ, रेसीफे, पाराना तथा ब्रेसिलिया में विश्वविद्यालय हैं। इनके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी टेक्निकल, कृषि संबंधी तथा वैज्ञानिक शिक्षा दी जाती है। [आ० स्व० जौ०]

ब्राटिस्लावा (Bratislava) स्थिति ४८° १०' उ० अ० तथा १७° ७' पू० दे०। यह दक्षिणी मध्य चेकोस्लोवेकिया में, विएना से
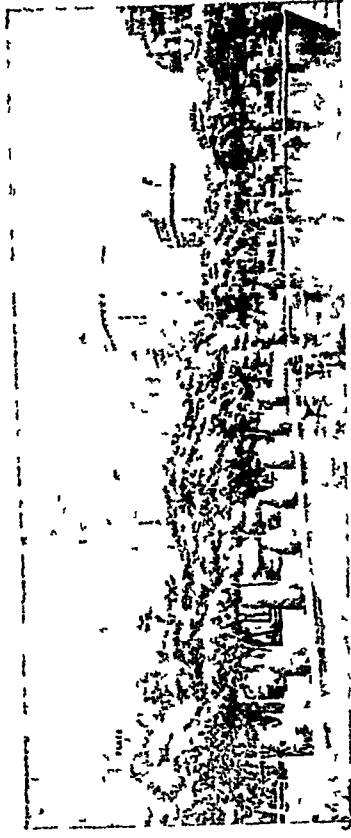
माटु ग्रोसु (Mato Grosso) की दलदल मे चौपाए

रीओ डे जानेरो का प्रासा पैरिस नामक चौक

बाईआ (Bahia) का इतापुआ सागरतट

पोर्टो आलेग्रे नगर का वायव्य दृश्य
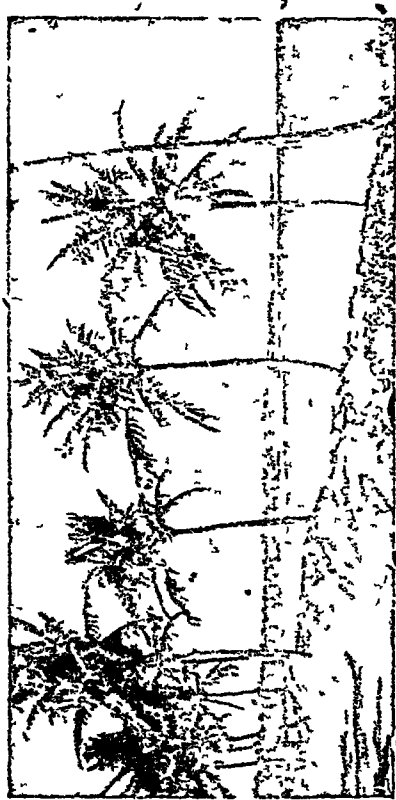
गोयास तथा मीना जेराइस के मध्य अद्भुत जलप्रपात

टेरेसोपॉलिस, रीओ डे जानेरो

ब्राज़िल (देखें पृष्ठ ३६८)

साँ पोलू नगर की एक सड़क

१८ वीं शती की कला के नमूने
मीना जेरेगाइस स्थित पेगबगो की सेलगढी की मूर्तियाँ
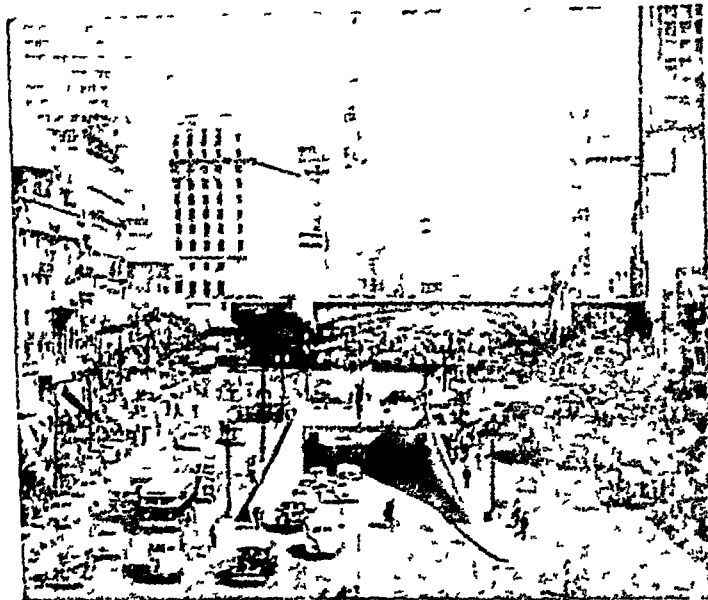
साँ पोलू (Sao Paulo) नगर का दृश्य

लगभग ३५ मील पूर्व, डैन्यूब नदी के किनारे, स्लोवेकिया प्रदेश की राजधानी है। सन् १५४१ मे यह हगरी की राजधानी था। यह उपजाऊ मैदान तथा औद्योगिक क्षेत्र के बीच मे स्थित है। कई सुदर पार्क तथा भवन, पुराने तथा आधुनिक गिरजाघर, नगरपालिका भवन, एक आधुनिक अस्पताल, स्लोवेक विश्वविद्यालय, राज्य बीमा हेडक्वार्टर्स आदि ने नगर की उन्नति में योग दिया है। उत्तम वायुमार्ग द्वारा अन्य नगरो से जुडा है। उद्योगो मे लोहा-इस्पात-उद्योग, सूती कपडा उद्योग, रसायनक, खाद्य ससाधन (processing), कागज, लकडी का काम तथा विद्युत सबधी काम होते हैं। इसकी जनसख्या २,४२,००० (१९६१) है। [नि० को०]

ब्राबैंट १ प्रात, स्थिति ४६° १५' उ० अ० तथा ५° २०' पू० दे०। यह बेल्जियम का एक प्रात है। इसे नीदरलैंड्स के उत्तरी ब्राबैंट से अलग करने के लिये दक्षिणी ब्राबैंट भी कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १,२६७ वर्ग मील तथा जनसख्या १६,६२,४५८ (१९६१) है। इसके उत्तर मे ऐंटवर्प, पश्चिम मे लिंवर्ग तथा लिएज, दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम मे नामुर तथा एनो (Hainaut) तथा पश्चिम मे पूर्वी फ्लैंडर्ज़ प्रात है। यहाँ ४०० फुट ऊँचा एक उपजाऊ पठार है। डायले, डेमर, सेन आदि नदियाँ बहती है। यहाँ कृषि मे खाद्यान्न, फल, चुकदर, पटुवा तथा तबाकू प्रमुख उपजें हैं। उद्योगो मे सूती कपडा, मलमल, फीता, कागज बनाना तथा खान मे खुदाई एव चमडा शोधन का कार्य भी होता है। देश की राजधानी ब्रसल्ज इसी प्रात मे है। वाटरलू यहाँ का प्रमुख ऐतिहासिक स्थल है।

२ प्रात, इसी नाम का प्रात नीदरलैंड्स मे है इसे उत्तरी ब्राबैंट भी कहते हैं। इसका क्षेत्रफल १,६२१ वर्ग मील तथा जनसख्या १०,८७,३६० (१९४२) है। इसके पश्चिम मे उत्तरी सागर, उत्तर मे दक्षिणी नीदरलैंड्स, पूर्व मे लिंवर्ग तथा दक्षिण मे बेल्जियम है। ब्रेडा, टिलबर्ग, हेलमड आदि प्रमुख नगर है। इसकी राजधानी हर्टोजेनबोस (Hertogenbosch) है। पशुपालन प्रमुख उद्योग है। उद्योगो मे सिगार, लोहा, सूती कपडा, जूता तथा जलयान उद्योग प्रमुख हैं। यातायात के अच्छे साधन हैं। [नि० को०]

ब्रामांते, लात्सारी (१४४४-१५१४) इटली के प्रसिद्ध वास्तुशिल्पी ब्रामाते का असली नाम डोनेटो दि अग्नेलो था। उनका जन्म उरबिनो के मॉन्ते आम्ब्रुअल मे हुआ। वे चित्रकार के रूप मे भी जाने जाते रहे। उनकी चित्राकृतियो से पता लगता है कि उन्होने शायद चित्रकार मॉन्तेना, पियरो देला फ्राचेस्का तथा विंसेंसो फोपा से कलाशिक्षा ग्रहण की। रोम में रह कर उन्होने अनेक छोटे छोटे भवननिर्माण का कार्य किया। उनमे पोप के लिये बनाया हुआ चासेंदी का महल तथा सान पियेत्रो-अ-मॉन्तेरिओ मे बना गोल मदिर प्रसिद्ध हैं। [भा० स०]

ब्रामा का संपीडक प्रेस (Bramah's press) यह द्रवचालित प्रेस (दाबक) पैस्कैल के द्रव-दाब-सबधी नियम के आधार पर बनाया गया है। इसे नीचे चित्र मे दिखलाया गया है। पिस्टन च को हत्थे द्वारा ऊपर नीचे चलाया जाता है, छोटे बेलन का वाल्व छ खुल जाता है और बडे बेलन घ का वाल्व बद हो जाता है। इससे छोटे बेलन मे, आंशिक निर्वात हो जाने के कारण, हौज से पानी खिचकर भर जाता है। पिस्टन च को नीचे दबाने पर वाल्व छ बद
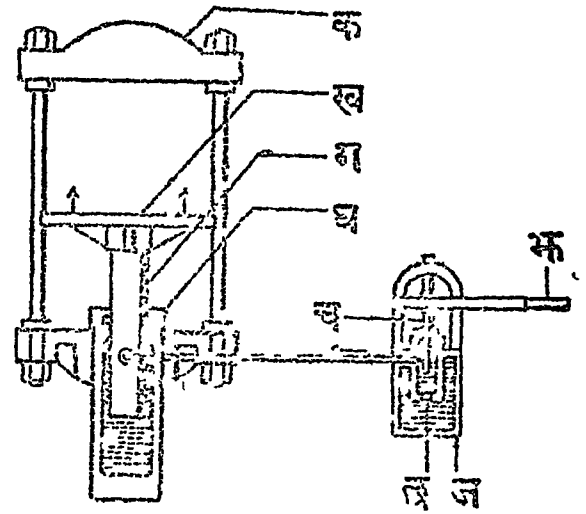
ब्रामा प्रेस

क शीर्ष, ख मच (platen), ग दबानेवाला दड, घ बडा वेल्व, च पिस्टन, छ छोटे बलन का वाल्व, ज पप तथा झ पप चलानेवाला हत्था।

हो जाता है और बडे बेलन का वाल्व खुल जाता है। इससे बडे बेलन मे पानी भर जाता है और दबानेवाले दड ग को ऊपर की ओर दबाता है। यह दड ऊपर उठकर मच ख को ऊपर उठाता है। मच और प्रेस की छत के बीच रूई, कागज इत्यादि के गट्ठर, जिन्हे दबाना होता है, रख दिए जाते हैं। मच के ऊपर उठने से उनका आयतन कम हो जाता है। तब उनके बडल आसानी से बाँधे जा सकते हैं। [सु० च० गौ०]

ब्रायोफाइटा (Bryophyta) वनस्पति जगत् का एक बडा वर्ग है। यह ससार के हर भूभाग मे पाया जाता है, परतु यह मनुष्य के लिये किसी विशेष उपयोग का नही है। वैज्ञानिक प्राय इस एक मत के ही है कि यह वर्ग हरे शैवाल से उत्पन्न हुआ होगा। इस मत की पूरी तरह पुष्टि किसी फॉसिल से नही हो सकी है। पौधो के वर्गीकरण मे ब्रायोफाइटा का स्थान शैवाल (Algae) और टेरिडोफाइटा (Pteridophyta) के बीच मे आता है। इस वर्ग मे लगभग ९०० वश और २३,००० जातियाँ हैं।

ब्रायोफाइटा को आरभ मे दो भागों मे बाँटा जाता था (१) हिपैटिसी (Hepaticae) और (२) मसाइ (Musci), परतु बीसवी शताब्दी के शुरू से ही ऐंथोसिरोटेलीज़ (Anthocerotales) को हिपैटिसी से अलग एक स्वतत्र उपवर्ग ऐंथोसिरोटी (Anthocerotae) मे रखा जाने लगा है। अधिकाश वैज्ञानिक ब्रायोफाइटा को तीन उपवर्गो मे बाँटते हैं। ये हैं (क) हिपैटिसी या हिपैटिकॉप्सिडा (Hepaticopsida), (ख) ऐंथोसिरोटी, या ऐंथोसिरोटॉप्सिडा (Anthocerotopsida) और (ग) मसाइ (Musci) या ब्रायॉप्सिडा (Bryopsida)।

(क) हिपैटिकॉप्सिडा — इसमे लगभग २२५ वश और ८,५००

जातियाँ पाई जाती हैं। इस उपवर्ग मे युग्मकोद्भिद (Gametophyte) चपटा और पृष्ठाधारी रूप से विभेदित (dorsiventrally differentiated) होता है या फिर तने और पत्तियो जैसे आकार धारण करता है। पौधे के चाप काटने से अंदर के ऊतक या तो एक ही प्रकार के होते हैं, या फिर ऊपर और नीचे के ऊतक भिन्न रूप के होते हैं और भिन्न कार्य करते हैं। चपटे हिपैटिमी मे नीचे के भाग से, जो मिट्टी या चट्टान से लगा होता है, पतले बाल जैसे मूलाभास या राइज़ॉयड (rhizoid) निकलते हैं, जो जल और लवण सोखते हैं। इनके अतिरिक्त बैंगनी रग के शल्कपत्र (scales) निकलते हैं, जो पौधे को मिट्टी से जकड़कर रखते हैं।

इस उपवर्ग को सामान्यत चार गण (orders) में विभाजित किया जाता है। ये हैं (१) स्फीरोकारपेलीज़ (Sphaerocarpales), (२) मार्केन्शिएलीज (Marchantiales), (३) जगरमैनिएलीज़ (Jungermanniales) और (४) कैलोब्रियेलीज़ (Calobryales)।

(१) स्फीरोकॉर्पेलीज़ गण में दो कुल हैं (अ) स्फ़ीरोकॉर्पेसीई (Sphaerocarpaceae), जिसमें दो प्रजातियाँ स्फीरोकार्पस (Sphaerocarpus) और जीओथैलस (Geothallus) हैं। ये द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical) होते हैं और एक ही प्रकार के होते हैं। (ब) रियलेसी (Riellaceae) कुल मे केवल एक ही वश रियला (Riella) है, जिसकी १७ जातियाँ विश्व मे पाई जाती हैं। भारत में केवल दो जातियाँ हैं रि० इंडिका (R indica) जो लाहौर के निकट पहले पाई गई थी और रि० विश्वनाथी (R vishwanathii), जो चकिया के पास लतीफशाह झील (जिला वाराणसी) मे ही केवल पाई जाती है।

(२) मार्केन्शिएलीज — यह एक मुख्य गण है, जिसमे चपटे पौधे पृथ्वी पर उगते हैं और ऊपर के ऊतक हरे होते हैं। इनमे हवा रहने की जगह रहती है और ये मुख्यत भोजन बनाते हैं तथा नीचे के ऊतक तैयार भोजन संचय करते हैं। इस गण मे करीब ३० या ३२ वश तथा लगभग ४०० जातियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें पाँच कुल में रखा जाता है। ये कुल हैं (१) रिक्सिऐसीई (Ricciaceae), (२) कॉरसिनिएसीई (Corsiniaceae), (३)

चित्र १ रिक्सिया

टारजिओनिएसीई (Targioniaceae), (४) मॉनोक्लिआएसीई (Monocleaceae) और (५) मार्केन्शिएसीई (Marchantiacae)। मुख्य वश रिक्सिया (Riccia) और मार्केन्शिया (Marchantia), टारजिओनिया (Targionia), आदि हैं।

रिक्सिया की करीब १३० जातियाँ नम भूमि, पेड़ के तने, चट्टानों, इत्यादि पर उगती हैं। इसकी एक जाति रि० फ्लूइटैंस (R fluitans) तो जल मे रहती है। भारत में रिक्सिया की कई जातियाँ पाई जाती हैं, जिनमे से रि० हिमालयेन्सिस (R himalayensis) ९,००० फुट और रि० रोबस्टा (R robusta) तो १३,००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती हैं। इनमें अन्य जातियों या वशो की भाँति लैंगिक तथा अलैंगिक प्रजनन होते हैं।

मार्केन्शिया (Marchantia) की बहुत सी जातियाँ भारत के पहाड़ो पर, मुख्यत हिमालय पर्वत पर, पाई जाती हैं। दो जातियो का तो नाम ही मार्केन्शिया नेपालेनासिस और मा०
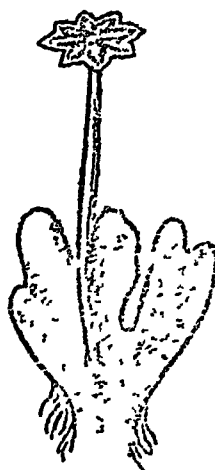
चित्र २ मार्केन्शिया (नर पौधा)

चित्र ३. मार्केन्शिया (मादा पौधा)

सिमलाना है। मार्केन्शिया मे एक प्रकार की प्याली जैसा जेमा कप (Gemma Cup) होता है, जिसमे कई छोटे छोटे जेमा निकलते हैं। ये प्रजनन के कार्य के लिये विशेष प्रकार के साधन हैं।

(३) जगरमैनिएलीज़ (Gungermanniales) लगभग १९० वश और ८,००० जातियोवाला एक गण है। ये पौधे अधिकाश गरम तथा अधिक वर्षावाले भूभाग मे पाए जाते हैं और अधिकाश तने एवं पत्तियों से युक्त होते हैं। जगरमैनिएलीज़ को दो उपगणो मे बाँटा गया है (अ) मेट्सजीरिनीई (Metzgerineae) या ऐनैएक्रोगाइनस जगरमैनिएलीज़ (Anachrogynous jungermanniales) और (ब) जगरमैनिनीई (Gungermannineae)

चित्र ४. मार्केन्शिया (अलैंगिक प्रजनन)
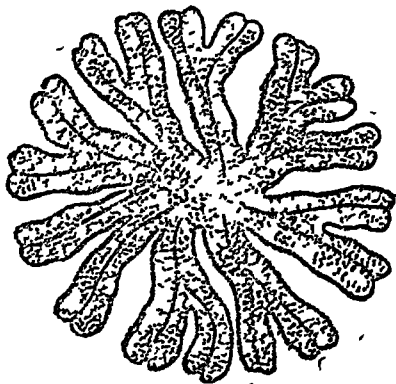
या एक्रोगाइनस जगरमैनिएलीज (Achrogynous Jungermanniales)

(अ) मेट्सजीरिनीई मे लगभग २० वश और ५०० जातियाँ हैं, जिन्हे पाँच या छह कुलो मे रखा जाता है। प्रमुख पौधे पेलिया (Pellia), रिकार्डिया (Riccardia), फॉसॉम्ब्रोनिया (Fossombronia), इत्यादि हैं। रिकार्डिया की लगभग एक दर्जन जातियाँ भारत मे पाई जाती हैं। इन जातियों के आकार और कभी कभी रग भी बहुत भिन्न होते हैं।

(ब) जगरमैनीनीई के हर पौधे पत्तीयुक्त होते हैं और इसके लगभग १८० वश और ७,५०० जातियाँ पाई जाती हैं। इनमे कुछ प्रमुख पौधो के नाम इस प्रकार हैं पोरेला या मैडोथीका (Porella or Madotheca), फ्रुलानिया (Frullania), शिफनेरिया (Schiffneria), सेफालोजिएला (Cephaloziella), इत्यादि। पोरेला की लगभग १८० जातियाँ हैं। इनमे २१ हिमालय पर्वत पर उगती हैं। कुछ और दक्षिण भारत मे भी पाई जाती हैं।

(ख) ऐंथोसिरोटॉप्सिडा — इसमे पौधे बहुत ही साधारण और पृष्ठाधरी रूप से विभेदित (dorsiventrally differentiated) होते है, पर मध्यशिरा (mid rib) नही होती। इस उपवर्ग मे एक ही गण ऐंथोसिरोटैलीज है, जिसमे पाँच या छह वश और लगभग ३०० जातियाँ हैं। इनमे ऐंथोसिरोस (Anthoceros) और नोटोथिलस (Notothylas) प्रमुख वश हैं। ये पौधे ससार के कई भागो मे पाए जाते हैं। भारत में यह हिमालय की तराई तथा पर्वत पर और कुछ जातियाँ नीचे मैदान मे भी पाई जाती हैं।
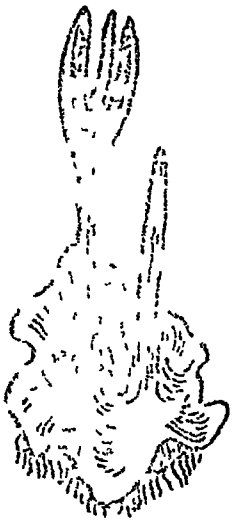
चित्र ५. ऐंथोसिरोस (स्पोरोफाइट के साथ)

चित्र ६ नोटोथिलस

(ग) ब्रायॉप्सिडा या मसाइ — यह एक वृहत् उपवर्ग है, जिसमें लगभग ६६० वश और १४,५०० जातियाँ हैं। इन्हे कभी कभी केवल मॉस या हरिता भी कहते हैं। ये मिट्टी, पत्थर या चट्टान, जल, सूखती लकडी, या पेड की डालियो पर और मकान तथा दीवार पर उगते हैं। मॉस की अनेक जातियों को निम्नलिखित तीन भागो मे बाँटा जाता है

(१) स्फैग्नोब्रिया (Sphagnobrya), या स्फैग्नेलीज (Sphagnales); (२) ऐंड्रियोब्रिया (Andreaeobrya), या ऐंड्रिएलीज (Andreaeales), और (३) यूब्रिया (Eubrya), या यूब्रिएलीज (Eubryales), या केवल ब्राइएलीज (Bryales)

(१) स्फैग्नोब्रिया मे एक ही वश स्फैग्नम (Sphagnum) है, जिसकी कुल ३३५ जातियाँ पाई जाती हैं। यह अधिकाश दलदली या छिछले तालावो मे काफी घने रूप से उगता है। इसके मरने पर एक प्रकार का खास दलदल बनता है, जिसे पीट (peat) कहते हैं। इसका आकार पतली रस्सी की तरह तथा रग हरा होता है। इसमे से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं और तने पतली, छोटी पत्तियो से युक्त होते हैं।
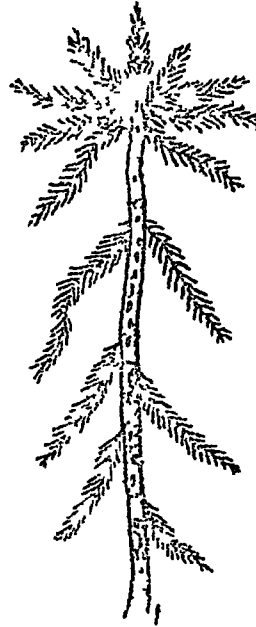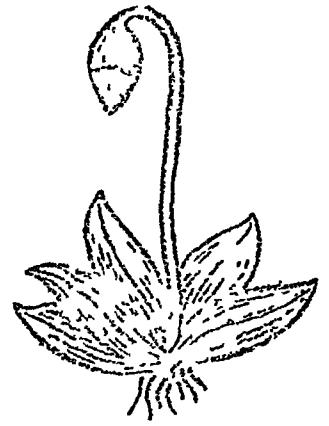
चित्र ७ स्फैग्नम

चित्र ८. फ्यूनेरिया

(२) ऐंड्रियोब्रिया मे केवल दो वश ऐंड्रीया (Andrea) और न्यूरोलोमा (Neuroloma) हैं। ऐंड्रीया काफी विस्तृत वश है और इसकी कुल १५० जातियाँ हैं। न्यूरोलोमा की सिर्फ एक ही जाति है।

(३) यूब्रिया मे लगभग ६५० वश तथा १४,००० जातियाँ हैं, जिन्हे लगभग १५ गणो मे रखा जाता है। इस वर्ग के पौधे पृथ्वी के हर भाग में, उत्तर से लेकर भूमध्यरेखीय वनो तक मे, तालाब, झरने, दलदली मिट्टी, चट्टान, पेड के तने या शाखा पर, दीवार या मकान की छत पर, या अन्य नम स्थानो पर उगते हैं। कुछ जातियाँ तो सूखे या कम प्रकाशित स्थानो पर भी उगती हैं। इनमे युग्मकोद्भिद दो प्रकार के होते हैं एक तो प्रोटोनिमा (Protonema), जो पतला होता है जैसा पृथ्वी मे रहता है और कुछ शाखाओं मे विभाजित होता रहता है और दूसरा वह जिसकी

प्रजनन शाखाएँ इन प्रोटोनिमा से निकल कर ऊपर हवा मे आ जाती हैं और हरी पत्तियों से युक्त होती हैं। ये भोजन का निर्माण करती हैं और शाखाओ के ऊपर लैंगिक प्रजनन हेतु नर प्रजननाग, अथवा मादा प्रजननाग, के गुच्छे बनाती हैं। इनमें या तो पुधानी (Antheridia), या योनिका (Archegonia) बनती हैं। ब्रूयिया को लगभग १५ गणों और ८० कुलों मे विभाजित किया गया है। इसमे फ्यूनेरिया (Funaria), बारबुला (Barbula), नीयम (Mnium), पॉलीट्राइकम (Polytrichum), डाइक्रेनेला (Dicranella), बक्सबामिया (Buxbaumia), स्प्लैकनम (Splachnum), इत्यादि मुख्य वंश हैं।

मूलाग, जो पतले धागे जैसा होता है, जल तथा लवण मिट्टी से लेता है तथा जड के सभी कार्य करता है। पत्तियों द्वारा भोजन का निर्माण इन पदार्थों तथा कार्बन डाइऑक्साइड की मदद से पत्तियो मे होता है। गर्भाधान के पश्चात् युग्मनज (zygote) बढता है और एक प्रकार के नए पीढी के बीजाणु उद्भिद, (Sporophyte) को जन्म देता है। यह अपने सभी भोजन इत्यादि के लिये युग्मकोद्भिद पर ही निर्भर रहता है। बीजाणु उद्भिद के ऊपरी भाग को सपुटिका (Capsule) कहते हैं। इसमें असख्य बीजाणु (spores) बनते हैं, जो झड जाने पर मिट्टी मे गिर जाते हैं और एक सिरे से फिर प्रोटोनिया और नए पौधे को जन्म देते हैं। [रा० श्या० अ०]

ब्रिज (Bridge) ताश का खेल है। इस खेल का इतिहास लगभग चार सौ वर्ष पुराना है। ताश के खेल मे यह विकसित खेल समझा जाता है। यह साधारणतया विश्व के सभी देशो मे खेला जाता है। ब्रिज के कुछ प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं (अ) कॉण्ट्रैक्ट (Contract), (ब) पिवॉट (Pivot), (स) प्रोग्रेसिव (Progressive), (द) डुप्लिकेट (Duplicate), (य) कट थ्रोट (Cut throat), (र) टोई (Towie), (ल) हनीमून (Honeymoon), तथा (स) ऑक्शन (Auction)।

'कॉण्ट्रैक्ट ब्रिज' का खेल ताश के ५२ पत्तो से खेला जाता है। हुकुम (Spades) के पत्ते का दर्जा सबसे ऊँचा रखा जाता है। पान (Heart), ईंटा (Diamond) तथा चिड़िया (Club) का दर्जा क्रमश एक दूसरे मे छोटा होता जाता है। यद्यपि हुकुम के पत्ते का दर्जा सबसे ऊँचा है, तब भी सर बनाते समय रग (trump) घोषित किया जाता है। पत्तो को बाएँ हाथ के खिलाडी से बाँटना आरम्भ किया जाता है। इस खेल के चारों खिलाडी फेटकर, उलटे रखे हुए पत्तों में से पत्ते खीचते हैं। जिन दो के पत्ते क्रम से बढे होंगे, वे ही दो साथी होंगे, शेष दो एक साथ। बाँटनेवाला सब को क्रम मे एक एक पत्ता देगा। इस तरह प्रत्येक को कुल १३ पत्ते ही मिलेंगे। अधिक से अधिक हाथ बनाने की बोली होती है। अधिक से अधिक बोलनेवाला ही रग बोलता है। रग बोलनेवाला अपने साथी का सारा पत्ता खुला हुआ अपनी मेज पर रख लेता है और उसकी चाल भी स्वय चलता है। यदि ऐसा हुआ कि १३, १३ सर बनाने की दोनो तरफ से घोषणा हो जाती है, तो उसमे हुकुम, पान, ईंटा तथा चिडिया के स्तर से निश्चय किया जाता है। छह हाथ बनाना अनिवार्य है। १२ हाथ या सर बनाने को 'स्मॉल स्लैम' तथा १३ हाथ बनाने को 'ग्रैंड स्लैम' कहते हैं। इसकी घोषणा पहले ही करनी पडती है। हार जीत का निर्णय अधिक या कम हाथ बनाने पर, या सर के पत्ते के अकों के आधार पर किया जाता है।

पिवॉट ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज मे चार या अधिक खिलाडी भी खेल सकते हैं, पर एक केंद्र बन जाता है और सारा खेल उसी केंद्र को धुरी मानकर चलता रहता है। एक खिलाडी हर बाजी मे हारता जाएगा, अर्थात् हर हालत में खेलनेवाले चार ही होंगे। इस खेल मे ऐसी व्यवस्था है कि चार से अधिक खिलाडी यदि आ जायें, तो उनको भी मिलाया जा सकता है। प्रत्येक खिलाडी, हर एक के साथ परिवर्तित केंद्र बन, खेलने का अवसर प्राप्त करता है।

प्रोग्रेसिव ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज मे आठ खिलाडी, या उससे भी अधिक, चार चार के जोडे मे खेलते हैं। पत्ते १३, १३ के हिसाब से सभी खिलाडियों के लिये होते हैं। यह खेल 'प्रोग्रेसिव' इसलिये माना जाता है कि हारनेवाले पीछे की मेज पर तथा जीतनेवाले आगे की मेज पर बढते जाते हैं। अपने खेल की उत्कृष्टता के साथ वे एक दूसरे से अग्रसर होते रहते हैं।

डुप्लिकेट ब्रिज — इस खेल की विशेषता यह है कि एक ही तरह के पत्ते दो या दो से अधिक खिलाडी को दिए जाते हैं तथा देखा जाता है कि कौन अच्छे अक प्राप्त कर लेता है। इसमें खेल की चतुरता ही प्रमुख है।

कट थ्रोट ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज में खिलाडी खेल में एक दूसरे के साथी बनकर नहीं, बल्कि विरोधी बनकर अपना अपना सर या अक बनाते हैं। यदि खिलाडी चाहें, तो एक दूसरे के साथ होकर भी खेल सकते हैं। इसकी दूसरी शाखा मे तीन खिलाडी भी खेल सकते हैं।

टोई ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज में खिलाडी सक्रिय (active) तथा निष्क्रिय (inactive), दो तरह के, माने जाते हैं। तीन खिलाडियो के खेलने की व्यवस्था है। यदि एक और आ जाय तो उसे निष्क्रिय खिलाडी माना जाएगा। इसमें एक दूसरे का हाथ बिगाडकर आगे बढने की प्रवृत्ति रहती है।

हनीमून ब्रिज — यह खेल दो खिलाडियों मे ही खेला जाता है। यह दापत्य जीवन का उत्कृष्टतम खेल समझा जाता है। पत्ते कुल चार स्थान पर बाँटे जाएँगे, पर खेले जाएँगे दो ही एक साथ। उनको खेल लेने के पश्चात् दो काल्पनिक साथियों के शेष बँटे हुए पत्ते भी खेले जाएँगे।

ऑक्शन ब्रिज — इस खेल में बिना रग बोले भी खेलते हैं। अकों की बोली ही प्रधान है। इसमें तथा कॉण्ट्रैक्ट ब्रिज में बहुत मामूली अतर है। [भा० सिं० गौ०]

ब्रिज़बेन (Brisbane) स्थिति २७° २५' द० अ० तथा १५२° ५४' पू० दे०। यह उत्तर-पूर्वी आस्ट्रेलिया मे दक्षिण-पूर्वी क्वीजलैंड की राजधानी है एवं सिडनी से ५०० मील उत्तर मे ब्रिजबेन नदी के किनारे, मुहाने से १४ मील ऊपर स्थित है। यहाँ की जलवायु उपोष्ण है। औसत ताप लगभग २५° सें० तथा वार्षिक औसत वर्षा ४५ इच है। कृषि, पशुपालन एव खनन क्षेत्र के बीच स्थित इस नगर मे यत्र, वस्त्र, अस्त्र शस्त्र, लौह इस्पात, मोटर गाड़ियाँ, जलयान

एव लकडी तथा चमडे की वस्तुग्रो का निर्माण होता है। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ मास, पशुचर्म, ऊन, चीनी, सोना, कोयला, मक्का एव दुग्धपदार्थ हैं। यह एक विस्तृत, सुनिर्मित एव सुनियोजित नगर है जहाँ खेलकूद एव मनोरजन की व्यापक सुविधाएँ हैं। यह क्वीजलैंड का सबसे बडा एव उन्नत बदरगाह है। इसकी जनसख्या ६,३५,५०० (१६६२) है। [रा० प्र० सि०]

ब्रिजेज, राबर्ट (१८४४–१६३०) के जीवन तथा उनकी साहित्यिक कृतियो मे समता इस बात की है कि दोनों मे मौलिक तत्व शाति है। उनके जीवन की रोचक घटनाएँ भौतिक नही अपितु साहित्यिक हैं। उनके जीवन का आरभ चिकित्सक के व्यवसाय से हुआ परतु उनका स्वाभाविक झुकाव सदैव साहित्य की ओर रहा और सन् १८८२ मे अपने व्यवसाय को त्याग कर उन्होने साहित्यसेवा मे ही जीवन अर्पित कर दिया। उनकी कला इतनी उच्च कोटि की थी कि वे अपने जीवन मे कभी भी लोकप्रिय लेखक न हो सके, परतु उनकी साहित्यसाधना बराबर चलती रही, यद्यपि ख्यातिप्राप्ति के लिये उन्होने कभी भी प्रयत्न नही किया। १८७३ और १८६६ के बीच उन्होने अनेक फुटकल कविताओ का सृजन किया, जिनका सकलन 'शॉर्टर पोएम्स' के नाम से हुआ। १८७६ मे 'ग्रोथ ऑव लव' का प्रकाशन हुआ जो बाद को काफी सवर्धित किया गया। इन शृखलाबद्ध सॉनटो मे उन्होने वैज्ञानिक विचार के विरुद्ध कला के महत्व का प्रतिपादन किया है। इसके बाद कुछ पौराणिक कथाओ का आश्रय लेकर उन्होने लबी काव्यगाथाओ का निर्माण किया—प्रोमेथिएयस दि फ़ायरगिवर (१८८३) और 'ईरॉस ऐंड साइकी' (१८८५)। इसके साथ ही साथ उनके गीत काव्यो की रचना भी जारी रही और इन्ही काव्यो मे उनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती रही। इसके पश्चात् १० वर्ष तक उन्होने पद्य-नाटको का निर्माण करने का असफल प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप नीरो, दि रिटर्न ऑव यूलीसीज तथा देमितर का सृजन हुआ।

महाकवि मिल्टन के छदसिद्धातो का गहरा अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने 'मिल्टन्स प्रोसोडी' नामक समीक्षाग्रथ प्रकाशित किया। उनका छदप्रयोग भी चलता रहा और उन्होने प्राचीन तथा आधुनिक प्रणालियो का समन्वय करने का वर्षो तक लगातार प्रयत्न किया। उनकी साधना मनीषियो की पैनी दृष्टि से छिपी न रह सकी और सन् १६१३ मे 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से इन्हे विभूषित कर इग्लैंड की सरकार ने अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया। ब्रिजेज के व्यापक अध्ययन, विस्तृत अनुभव तथा दार्शनिक गरिमा एव काव्य-कला-मर्मज्ञता का पूर्ण समावेश उनके दीर्घकाय तथा गभीर काव्य 'दि टेस्टामेट ऑव ब्यूटी' (१६२६) मे हुआ है, जो अपने युग का सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक काव्य माना गया था। परतु वर्तमानकालीन समीक्षको का कहना है कि इस लबे काव्य के कुछ अश ही उत्कृष्ट हैं, समस्त कविता सर्वाग सफल, सुदर तथा सुगठित नही है। ब्रिजेज की सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय कविताएँ उनके गीतकाव्य मे हैं और इन्ही पर उनके स्थायी यश की भित्ति स्थिर रहेगी। परतु इनके गीतकाव्यो मे नैसर्गिक गायक के भावोद्गार तथा अनियन्त्रित उत्साह, उल्लास अथवा आतरिक रुदन नही है। यद्यपि यह महाकवि कीट्स की कविता से काफी प्रभावित रहे, तथापि इनका विशेष ध्यान कीट्स के कलापक्ष की ही ओर गया, भावों को उन्होंने सदैव मर्यादा तथा अनुशासन की सीमा के अतर्गत ही रखा। इसी कारण एक समालोचक ने कहा है कि ब्रिजेज की सर्वोत्कृष्ट कृतियो मे वह सौंदर्य है जो वसत के प्रभात मे निहित रहता है, वह प्रभात जिसमें रजत की धवल काति है परतु उष्णता की रक्तिम आभा नही है।

ब्रिजेज सौंदर्य के उपासक थे। इनका आनद दार्शनिक तथा साहित्य अथवा सौंदर्य पुजारी का था जो हृदयातर को अलौकिक करता था परतु अशात करने मे असमर्थ था। इन्ही गुणो के कारण इनके गीतकाव्य, जैसे 'लडनस्नो', 'दि नाइटिंगेल्स', 'दि वॉयस ऑव नेचर' इत्यादि इतने सर्वप्रिय हैं।

स० ग्र० — एफ० ई० ब्रैट रॉबर्ट ब्रिजेज—ए क्रिटिकल स्टडी, (१६१४), जी० एस० गार्डन . रावर्ट ब्रिजेज (१६३२) एडवर्ड टॉम्सन . रॉबर्ट ब्रिजेज (१६४४)। [वि० रा०]

ब्रिटिश संग्रहालय (ब्रिटिश म्यूजियम) हास स्लोन (१६६०–१७५३) के वसीयतनामे के अनुसार उनकी पुस्तको, पाडुलिपियो एव प्राकृतिक इतिहास की सामग्रियो के सपूर्ण सग्रह से, उनकी पुत्रियो को २०,००० पौंड देकर राष्ट्रीय पुस्तकालय एव इतिहास तथा कला का सग्रहालय स्थापित किया गया। स्लोन तत्कालीन नवजागरण काल के प्रमुख सग्रहकर्ताओ मे से एक थे। उन्होने एक नए प्रकार की सस्था की रूपरेखा के विषय मे सोचा था, वह थी ब्रिटिश राष्ट्र के निमित्त एक जनसामान्य के उपयोग के लिये सग्रहालय जो उनके ही शब्दो मे, 'जितना सभव हो सके उसे उपयोगी बनाया जाय, वह लोगो की जिज्ञासाओ को शात कर सके और विभिन्न जानकारियो एव ज्ञान की अभिवृद्धि मे सहायक हो।' स्लोन की मृत्यु के दो मास बाद पार्लिमेंट के एक विशेष अधिनियम द्वारा उनके दान को मान्य कर लिया गया और एक व्यवस्थापिका समिति गठित की गई। इस व्यवस्थापिका समिति को सर रॉबर्ट कॉटन (१५७१–१६३१) के पुस्तकालय एव प्राच्य वस्तुओ के सग्रह की व्यवस्था का भार भी सौंप दिया गया जो १७०७ से जनसामान्य के उपयोग के लिये उपलब्ध था। इस व्यवस्थापिका समिति को हार्लियन पाडुलिपि सग्रह को खरीदने का अधिकार भी दिया गया जिसके लिये धनसग्रह लॉटरी द्वारा किया गया था। दो वर्ष बाद जार्ज द्वितीय द्वारा पुराना राजकीय पुस्तकालय दान मे प्राप्त हुआ और साथ ही यहाँ प्रकाशित पुस्तको की प्रतियाँ आवश्यक रूप से जमा कराई जाने लगी। १७५६ की १५ जनवरी को ब्रिटिश सग्रहालय खोला गया। यद्यपि प्रवेश नि शुल्क था, तथापि कुछ ही पाठको को पुस्तकालय मे प्रवेश की सुविधा प्रदान की गई। पर्यटको को भीतर घूमने के लिये पारपत्र की व्यवस्था की गई थी और उन्हें एक अधिकारी भीतर घुमाता था। यह व्यवस्था क्रमश ढीली होती गई और १८७६ मे प्रवेश हेतु सभी प्रकार का प्रतिबध समाप्त कर दिया गया।

सग्रहालय की प्रगति इतनी शीघ्रता से हो रही थी कि माटेग्यू भवन शीघ्र ही छोटा पड़ गया। १६वी शती के प्रारभ मे आसपास के बगीचे मे कई प्रसार किए गए और १८२७ मे सर राबर्ट स्मिक ने प्रथम स्थायी योगदान किंग्स पुस्तकालय के रूप मे किया जिसमें

जार्ज तृतीय की पुस्तकों को रखा गया। १९वी शती के मध्य तक माटेग्यू भवन वस्तुत एक समबाहु चतुर्भुज के आकार के नए भवन मे स्थानातरित कर दिया गया जो सग्रहालय के लिये अधिक उपयुक्त था। पुस्तकालय के परिवर्धन के साथ ही १८५७ मे नए भवन के प्रागण मे एक भवन बनाया गया जिसके केंद्र मे एक वाचनालय एव उसके चारो ओर गोलाई मे पुस्तकें रखने के स्थान बनाए गए। १८२४ मे निर्मित ह्वाइट प्रखड सग्रहालय के पूर्वी भाग मे निर्मित किया गया और १९१४ मे एडवर्ड सप्तम वीथियों को जनसामान्य के लिये खोल दिया गया। १९०५ में कोलिनडेल मे समाचार-पत्र सग्रहालय बनवाया गया जिसके लिये एक विशेष वाचनालय १९३२ में बनवाया गया।

प्रारभिक सग्रह की प्रवृत्ति कुछ ऐसी बहुमुखी थी कि सग्रहालय मे विकास की अनेक सभावनाएँ थी। सग्रहालय का रूप दान, सग्रहालय द्वारा आयोजित खोज कार्यो एव खरीदो से क्रमश वृद्धि पाता रहा। खरीदो आदि के लिये व्यवस्थापिका समिति को १८३४ से ही धनराशि प्राप्त हो रही थी। प्रारभ मे ब्रिटिश सग्रहालय को तीन विस्तृत विभागो मे सयोजित किया गया—छपी पुस्तको, पाडुलिपियो एव प्राकृतिक और कृत्रिम उत्पादनों के विभाग। १८०८ मे तीसरा विभाग प्राकृतिक इतिहास एव प्राच्य वस्तुओ के उपविभाग मे बाँट दिया गया और १८८३ मे प्राकृतिक इतिहास विभाग दक्षिण कॅसिग्टन मे बने नए भवन मे भेज दिया गया।

वर्तमान समय मे सग्रहालय के कुल ११ विभिन्न विभाग हैं जिनमे से तीन पुस्तकालय के विभाग हैं। सर्वप्रथम छपी पुस्तको का खड है जहाँ सपूर्णत ब्रिटिश पुस्तको एव चुनी हुई विदेशी पुस्तको का सग्रह है जो विभिन्न विषयों से सबधित हैं। यही विभाग १९६६ मे स्थापित हुए विज्ञान एव अन्वेषणों के लिये राष्ट्रीय सदर्भ पुस्तकालय एव राजकीय पत्र पत्रिका-गृह की भी देखरेख करता है। पाडुलिपियों से सबधित विभाग पाश्चात्य भाषाओ में सभी विषयों पर लिखी गई पुस्तकों एव साथ ही उन पुस्तकों से भी सबधित है जो एशियाई देशो से सबधित हैं। उन दो विभागो मे से प्राच्य पुस्तको की छपी एव पाडुलिपि प्रतियो के सग्रह का विभाग १८६७ और १८९२ के बीच अस्तित्व मे आया। यह विभाग सदर्भ पुस्तकालय के रूप मे प्राच्य अध्ययन करनेवाले लोगो की सेवा उन पुस्तको एव पाडुलिपियों द्वारा करता है जो एशिया एव उत्तरी अफ्रीका की भाषाओ मे है और रोमन लिपि मे नही लिखी गई हैं। प्राचीन वस्तुएँ पाँच विभिन्न विभागो मे हैं—मिस्रीय, पश्चिम एशियाई (सुमेर, बैबिलोन एव असीरिया के इतिहास का परिचय देनेवाला विभाग), यूनानी एव रोमीय, ब्रिटेनीय तथा मध्यकालीन विभाग जिसमें सुदूरपूर्व एव दक्षिणी एशिया के नवप्रस्तरकाल एव इसलामीय जगत् की ७वी शती के काल तक की वस्तुएँ सगृहीत हैं। सग्रहालय मे छापे एव चित्र, सिक्को, पदक एव नृशास्त्र सबधी विभाग भी हैं। सग्रहालय के लिये उससे सबधित एव शोध-प्रयोगशाला है जो सभी पुस्तकालयो एव सग्रहालयो की सेवा करती है। अभी हाल मे ब्रिटिश सग्रहालय की सेवाओ मे प्रगति हुई है जिससे यह सग्रहालय विभिन्न विभागो से लगे हुए वाचनालय, विद्वानों के भाषणो के आयोजन, पथप्रदर्शक पुस्तिकाएँ, प्रदर्शनियाँ, फोटोग्राफी की सुविधाएँ, विद्यार्थी कक्षो मे विशेष विषयो से सबधित सूचनाएं एव मार्गदर्शन प्राप्त करने की सुविधाएँ आदि प्रदान करता हैं। [ए० गौ०]

ब्रिस्टल स्थिति ५१° २६' उ० अ० तथा २° ३५' प० दे०। पश्चिमी इग्लैंड मे इसी नाम की काउटी मे स्थित नगर है जो ऐवन नदी के मुहाने से छह मील ऊपर स्थित है। तबाकू, अनाज, केला आदि फल, मिट्टी का तेल, इमारती लकडी, तिलहन, जस्ता, रसायनक और शराब का व्यापार होता है। सिगरेट, चॉकलेट हवाई जहाज, मोटर साइकिल, चीनी आदि के उद्योग होते हैं। चिड़ियाघर, गरम चश्मे आदि दर्शनीय हैं। यह उत्तम बदरगाह भी है। लदन से यह ११८ मील पश्चिम मे स्थित है। इसकी जनसख्या ४,३६,००० (१९६१) है। इसी नाम के नगर सयुक्त राज्य, अमरीका की हर्टफर्ड एव वाशिंगटन काउटियो मे भी है। [नि० कौ०]

ब्रुकलिन (Brooklyn) स्थिति ४०° ४५' उ० अ० तथा ७३° ५८' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका, मे न्यूयॉर्क काउटी का एक प्रसिद्ध नगर है। यहाँ सेना के पडाव हैं तथा यातायात का आधुनिकतम प्रबध है। कपडे, जूते, रसायनक, विद्युत् सयत्र तथा लकडी, काच, चमडा, धातु, कागज से निर्मित वस्तुएँ बनाना प्रमुख उद्योग है। वरो सहित इसकी जनसख्या २६,२७,३१९ (१९६०) है।

ब्रूनेल, आइसँबार्ड किंग्डम (Brunel, Isambard Kingdom, सन् १८०६–१८५९), अग्रेज इजीनियर, सर मा० आ० ब्रूनेल के पुत्र थे। इनका जन्म पोर्ट्समथ मे हुआ था और पैरिस मे इन्होंने शिक्षा पाई। जब १९ वर्ष के थे, ये टेम्स नदी के नीचे बननेवाली सुरग के आवासी इजीनियर नियुक्त हुए।

२४ वर्ष की उम्र मे ये रॉयल सोसायटी के सदस्य चुने गए। क्लिफ्टन उपनगर मे ऐवन (Avon) नदी पर इन्होंने पुल की योजना बनाई तथा लदन मे टेम्स नदी पर एक झूला पुल बनाया। सन् १८३३ मे २७ वर्ष की अल्पावस्था मे ब्रूनेल प्रस्तावित ग्रेट वेस्टर्न रेलवे के इजीनियर नियुक्त हुए। तब तक रेल की पटरियाँ कम चौडी होती थी। इन्होने सात फुट चौडी, बडी पटरियो की रेल चलाई। कॉर्नवेल प्रदेश के साल्टऐश नगर मे टेमर नदी पर इन्होने 'रॉयल ऐल्बर्ट ब्रिज' नामक पुल बनाया।

समुद्र पर भाप द्वारा जहाज चलाने के विकास मे ब्रूनेल ने प्रमुख भाग लिया। अध महासागर के आर पार नियमित रूप से यात्रा के लिये 'ग्रेट वेस्टर्न' तथा 'ग्रेट ब्रिटेन' नामक दो जहाज बनाए। इनमें से 'ग्रेट ब्रिटेन' मे, जिसकी प्रथम यात्रा सन् १८४५ मे हुई थी, तीन विशेषताएँ थी। यह न केवल विश्व का तत्कालीन सबसे बडा जहाज था, वरन् लोहे का बना सर्वप्रथम ऐसा जहाज था जिसमे स्क्रू नोदक (screw propeller) का प्रयोग किया गया था। इसके पश्चात् इन्होंने 'ग्रेट ईस्टर्न' नामक इससे भी बडा जहाज बनाया, जिसका जलावतरण सन् १८५८ मे हुआ।

ब्रूनेल ने अनेक गोदियो (docks) और पायो (piers) का भी निर्माण किया, बडी तोपो के निर्माण में उन्नति की तथा

तोपो के लिये युद्धोपयोगी तैरता हुआ परिवहन बनाया। अनेक अन्य इजीनियरी के महत् कार्यो का श्रेय भी इन्हे प्राप्त है।

[भ० दा० व०]

ब्रूनेल, सर मार्क आइसैंबार्ड सर मार्क आइसैंबार्ड (Brunel, Sir Marc Isambard, सन् १७६६–१८४६), आविष्कारक तथा इजीनियर का जन्म फ्रास देश के रूआँ (Rouen) नामक नगर के पास हुआ था। छह वर्ष तक इन्होने फ्रास की नौसेना मे सेवा की। तत्पश्चात् सन् १७९३ मे फ्रास मे क्राति के दगो के कारण ये अमरीका चले गए। न्यूयॉर्क मे बॉवरी थियेटर का पुनर्निर्माण इनकी देखरेख मे हुआ तथा इन्होने यहाँ की आयुधशाला तथा तोप के कारखाने मे अपनी आविष्कृत और सुकल्पित मशीनें लगाईं।

सन् १७९९ मे ये इग्लैंड गए। यहाँ की गवर्नमेंट के समुख इन्होंने जहाजों में लगनेवाली लकडी को मशीनो से कार्ययोग्य बनाने का प्रस्ताव रखा, जो स्वीकृत हो गया। इस काम के लिये इन्होंने अनेक यात्रिक औजारो का आविष्कार किया तथा लकडी चीरने और उसे झुकाने की उन्नत मशीनें बनाईं। भाप की शक्ति से जहाज चलाने के प्रयत्नो मे भी आपने भाग लिया। सन् १८१४ मे रॉयल सोसायटी के सदस्य चुने गए। सन् १८१६ मे इन्होने मोजे और बनियाइन बनानेवाली अपनी गोल मशीन का एकस्व प्राप्त किया। सूत के गोले बनाने, आलेखो की प्रतिलिपि तैयार करने, लकडी के छोटे बक्स तथा कीलें बनाने, पन्नी तैयार करने और छापने के लिये उन्नत प्रकार के स्टीरिओटाइप पट्टो के निर्माण सबधी आविष्कार भी किए।

रूआँ, सेंट पीटर्सबर्ग तथा बूर्वाँ द्वीप पर पुल, झूला पुल तथा लिवरपूल पत्तन के लिये जल पर तैरते हुए अवतरण मच की योजनाएँ बनाने का श्रेय भी इन्ही को है। सन् १८२४ में टेम्स नदी के नीचे सुरग खोदकर, एक किनारे से दूसरे किनारे तक मार्ग बनाने का कार्य इन्ही के निर्देश मे आरभ हुआ। इस सुरग के बनने मे २० वर्ष लगे।

फ्रास की सरकार ने इन्हे लीजन ऑव ऑनर का पदक प्रदान किया तथा इग्लैंड मे इन्हे नाइट की उपाधि मिली।

[भ० दा० व०]

ब्रेक (रोधक) यत्रविद्या मे प्राकृतिक शक्तियो को नियोजित कर, इच्छित प्रकार की गति और त्वरण प्राप्त कर, उससे उपयोगी काम लेने से भी अधिक महत्व का काम इच्छित समय पर उचित प्रकार से उनकी गति और त्वरण का अवरोध करना है। गति और त्वरण का अवरोध करने के लिये मुख्य यत्र के साथ जो उपयत्र लगाया जाता है, उसे ही ब्रेक कहते हैं। सही काम करने की दृष्टि से, और राजकीय नियमो के अनुसार सुरक्षा की दृष्टि से भी, प्रत्येक चलनेवाले यत्र के साथ ब्रेक का होना आवश्यक है। अवरोधक यत्र को क्रियाशील करने के लिये भी कई प्रकार की यात्रिक और प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग किया जाता है और इन उपयत्रो मे अनेक प्रकार की यात्रिक प्रयुक्तियाँ भी काम मे लाई जाती है। इन भिन्नताओ के कारण ब्रेको का वर्गीकरण निम्नलिखित तीन कोटियो में किया जाता है

(१) पट्टा ब्रेक — इसमें एक लचीला पट्टा ब्रेक ढोल पर लपेट कर कसने से घर्षण के कारण गत्यवरोध होता है।

(२) गुटका ब्रेक — इसमे वृत्त खडाकार गुटके लीवरो के सहारे से लटकाकर, पहिए या ढोल की परिधि के सपर्क मे लाए जाते हैं।

(३) अक्षीय ब्रेक — जो ब्रेक पहिए अथवा ढोल पर लगाने के बदले मुख्य धुरे अथवा उसके समातर रहनेवाले अगों पर लगाए जाते हैं, उन्हे अक्षीय ब्रेक (Axial brake) कहते है। इन्हीं के अन्य नाम भारीय (load) ब्रेक, सुरक्षा (safety), स्वचल (automatic) और यात्रिक (mechanical) ब्रेक भी हैं। इनकी रचना इस प्रकार की होती है जिससे गत्यवरोधक बल धुरे पर पडनेवाले बलआघूर्ण (torque) के अनुपात से होता है, जैसा बिजली और हाथ से चलाए जानेवाले क्रेनो मे। जब बिजली की चालक शक्ति, अथवा हाथ का बल, अकस्मात् निर्बल पड जाय, तो इस प्रकार के ब्रेक के द्वारा लटकता हुआ बोझा वही का वही रुक जाता है। इसी कारण इस ब्रेक को स्वचल कहते हैं, लेकिन यह उस प्रकार का स्वचल ब्रेक नही है जैसा रेलगाडियो मे स्वत ही लग जाता है।

लगभग सभी प्रकार के ब्रेको मे गत्यवरोध का कारण ढोल, पहिए, अथवा धुरे आदि, के साथ होनेवाला घर्षण ही है, लेकिन सिलिंडर और पिस्टन की शक्ति से चलनेवाले इजन और यत्रो मे यदि पिस्टन की दूसरी तरफ भी कार्यकारी माध्यम (working medium), यथा वाष्प, या सपीडित हवा, या गैस, पहुँचा दिया जाय, तब भी उस यत्र की गति का अवरोधन हो जाता है। ऐसा ब्रेक घर्षणहीन ब्रेक कहलाता है। गत्यात्मक (Dynamic) ब्रेको की गिनती भी इसी कोटि मे होती है, उदाहरणत यत्र को गति देनेवाले बिजली के मोटर को कुछ क्षणो के लिये यदि डायनामो मे परिवर्तित कर दिया जाय, तो चालित यत्र की गति का अवरोध हो जाता है।

चित्र १ मे पट्टाब्रेको की रचना कई प्रकार से दिखाई गई है। पट्टो के दो सिरो मे से एक सिरा क्ष तो स्थिर और दूसरा सिरा य गतिशील
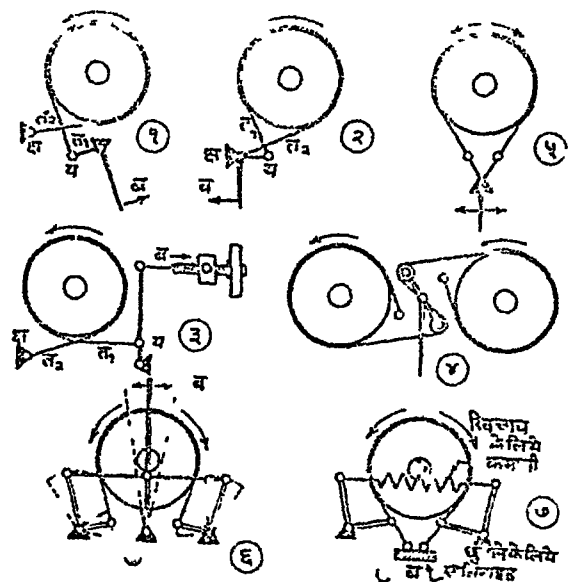
चित्र १

होता है, जिसे लीवर द्वारा खीचकर ताना जाता है। इन दोनो मे तनाव की तीव्रता भिन्न भिन्न हुआ करती है, जो निम्न सूत्रो मे $त_1$

[T_1] और त₂ [T_2] द्वारा व्यक्त की गई है, जब कि ढोल दक्षिणावर्त दिशा मे घूमता है। जब वह वामावर्त घूमता है, तब क्ष पर $त_2$ [T_2] और य पर $त_1$ [T_1] तनाव होगा।

यदि ब (F) = लिवर पर लगनेवाला बल पाउंडो में, द (P) = ब्रेकढोल की परिधि पर लगनेवाला स्पर्शीय बल पाउडो मे, उ (e) = नेपीरियन लघुगणक का आधार = २.७१८२८, μ = पट्टे और ब्रेकढोल के बीच का घर्षण गुणाक, θ = पट्टे और ब्रेकढोल के बीच का सपर्क कोण रेडियनो में, तो

$$त_1 = द \frac{१}{उ^{\mu\theta} - १} \quad \left[T_1 = P \frac{1}{e^{\mu\theta} - 1}\right] \text{ और}$$

$$त_2 = द \frac{उ^{\mu\theta}}{उ^{\mu\theta} - १} \quad \left[T_2 = P \frac{e^{\mu\theta}}{e^{\mu\theta} - 1}\right]$$

ब और द का मान लीवर के सिद्धात की सहायता से गणना द्वारा निकाल लिया जाता है। निम्न सारणी में μ का मान विभिन्न परिस्थितियो के अनुसार दिया गया है

घर्षक पदार्थों का नाम	गति के समय घर्षण गुणाक (μ)		
	सूखी सतह	गीली सतह	तेल से चिकनी सतह
ऐस्बस्टस और धातु का चक्का	०.३७	—	०.२० से ०.२५ तक
इस्पात और ढलवाँ लोहा	०.१५ से ०.२४ तक	०.३१	०.२०
चमडा और ढलवाँ लोहा या इस्पात	—	१.२७	१.०१ से १.२७ तक
लकडी और ढलवाँ लोहा या इस्पात	०.२० से ०.६२ तक	०.२४	०.२०

गुटकेयुक्त ब्रेक — चित्र २ मे इस प्रकार की चार आकृतियाँ दिखाई हैं जिनमे से प्रथम तीन तो साधारण प्रकार के गुटके हैं, केवल
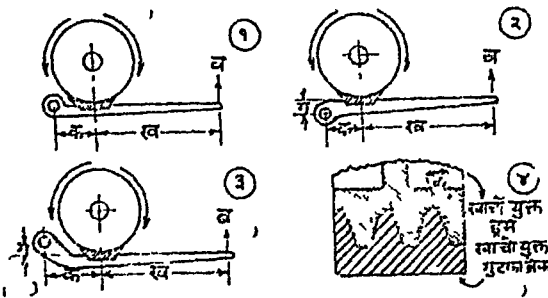
चित्र २

आलब की स्थितियो मे भिन्नता है, और चौथा खाँचेयुक्त गुटका है। इनके द्वारा ढोल पर लगनेवाले बल की गणना निम्न सूत्रो की सहायता से की जा सकती है। इन सूत्रो मे यदि ब [F] = लीवर के सिरे पर लगनेवाला बल पाउडों मे, द [P] = ढोल की परिधि पर लगनेवाला स्पर्शीय बल पाउडो मे, μ = गुटके और ढोल के बीच घर्षण गुणाक, तो क, ख और ग चिह्नित लिवर के भाग यदि क्रमश: A, B और C द्वारा अकित किए जाएँ तो प्रथम आकृति मे दोनो दिशाओ मे घूमते समय

$$ब = द \frac{ख}{क + ख} \times \frac{१}{\mu} = \frac{द\, ख}{क + ख}\left(\frac{१}{\mu}\right)$$

$$\left[F = P \frac{B}{A + B} \times \frac{1}{\mu} = \frac{P B}{A + B}\left(\frac{1}{\mu}\right)\right]।$$

द्वितीय आकृति में दक्षिणावर्त घूमते समय

$$ब = \frac{\frac{द\, ख}{\mu} - द\, ग}{क + ख} = \frac{द\, ख}{क + ख}\left(\frac{१}{\mu} - \frac{ग}{ख}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} - P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B}\left(\frac{1}{\mu} - \frac{C}{B}\right)\right]।$$

यही वामावर्त घूमते समय

$$ब = \frac{\frac{द\, ख}{\mu} + द\, ग}{क + ख} = \frac{द\, ख}{क + ख}\left(\frac{१}{\mu} + \frac{ग}{ख}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} + P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B}\left(\frac{1}{\mu} + \frac{C}{B}\right)\right]।$$

तृतीय आकृति मे दक्षिणावर्त घूमते समय

$$ब = \frac{\frac{द\, ख}{\mu} + द\, ग}{क + ख} = \frac{द\, ख}{क + ख}\left(\frac{१}{\mu} + \frac{ग}{ख}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} + P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B}\left(\frac{1}{\mu} + \frac{C}{B}\right)\right]।$$

यही वामावर्त घूमते समय

$$ब = \frac{\frac{द\, ख}{\mu} - द\, ग}{क + ख} = \frac{द\, ख}{क + ख}\left(\frac{१}{\mu} - \frac{ग}{ख}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} - P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B}\left(\frac{1}{\mu} + \frac{C}{B}\right)\right]।$$

चौथी आकृति के अनुसार यदि गुटके मे खाँचे बने हों, तो

$$\text{घर्षण गुणाक} = \frac{\mu}{ज्या\,\alpha + \mu\ कोज्या\,\alpha} \quad \left[\frac{\mu}{\sin\alpha + \mu\cos\alpha}\right]$$

होगा, जिसमे α खाँचों के कोण का आधा समझना चाहिए और फिर आलब की भिन्नता के अनुसार उपर्युक्त सूत्र ही लागू होगे।

स्वचल तथा सुरक्षा ब्रेक — चित्र ३ मे वेस्टन ब्रेक की बनावट दिखाई गई है, जो प्राय क्रेनो मे लगाया जाता है। चित्र मे फ दाँतेदार पहिया है जो धुरे पर ढीला लगा है। उसके बाएँ हब पर, धुरे के समकोण तल में, एक सर्पिल खाँचा बना है और फिरें के दाहिने सिरे को समतल बना दिया है, जो घर्षक चकलियो, च, के सपर्क में रहता है। कॉलर घ को धुरे पर चाबी द्वारा पक्का बैठाकर, उसके दाहिने सिरे पर भी सर्पिल खाँचा बना दिया है, जो फिरें के खाँचे से मिल

जाता है और इसके भी बाईं तरफ एक चिरा हुआ वाशर छ लगा देते है, जो बगल से आनेवाले दाब को सह लेता है। घर्षण चकलियो के दाहिनी तरफ एक फ्लैंज, ख, धुरे पर ढीला लगा है, जिसकी परिधि के दाहिने किनारे पर रैचेट के काँटेनुमा दाँत बने हैं, जिनके घूमते समय काँटा ग अटककर चलता है। किर्रे क और फ्लैंज ख मे भीतर की ओर सरकनेवाली दाँतेदार दो चाबियाँ, ल और य, क्रमश लगी हैं, जिनके लिये घर्षण चकलियो मे भी खाँचे कटे हैं, जिस कारण प्रत्येक चकली की गति अपनी पडोसी चकली की गति की उलटी दिशा मे होती है। एकातर चकलियाँ दो भिन्न धातुओ की बनाई जाती हैं, यथा एक पीतल की तो दूसरी इस्पात की, तीसरी पीतल की और चौथी इस्पात की। चित्र मे चार ही चकलियाँ दिखाई गई हैं, जिनके द्वारा पाँच घर्षण तल बन जाते हैं। जब बोझा उठाया जाता है, तब तो धुरे के घूमने की दिशा वामावर्त होती है, किंतु उतारते समय दक्षिणावर्त होती है। अत बोझा
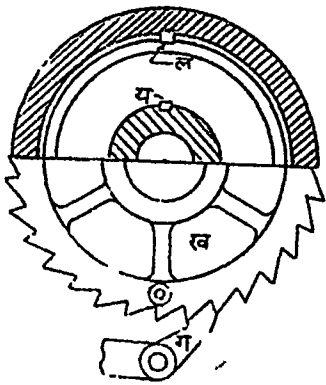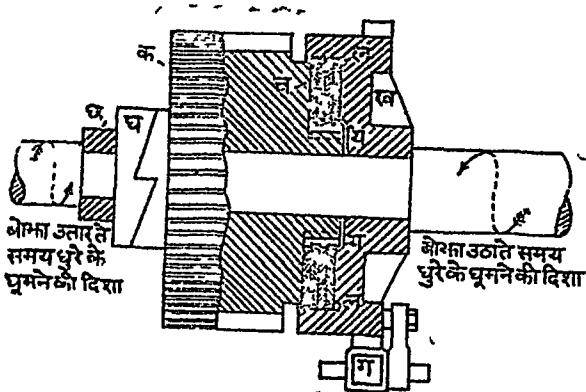
चित्र ३

उठाते समय तो काँटा ग फ्लैंज के दाँतो में नही अटकता, लेकिन उतारते समय अटकने लगता है। धुरे के जिस भाग पर क और ख लगाए जाते हैं, उस भाग का व्यास कम कर दिया जाता है, जिससे ख के दाहिनी तरफ भी एक स्कध बन जाता है, जो इन सब पुर्जो को बगल से दाब पडने पर सरकने नही देता।

सक्षेप मे इस ब्रेक की क्रिया निम्न प्रकार से होती हैं बोझा उठाते समय जब किर्रे क पर भार आता है, तब उसकी प्रवृत्ति तो दक्षिणावर्त घूमने की और धुरे की वामावर्त घूमने की होती है, लेकिन कॉलर घ धुरे पर पक्का लगा होने के कारण उसके साथ वामावर्त ही घूमेगा, जिससे उन दोनो के सर्पिल खाँचे सरक कर और जाम होकर, क को ख फ्लैंज की तरफ ढकेल देंगे। इस कारण पुर्जे घ, क, च और ख आपस मे जुटकर ठोस हो जाएँगे और बोझा उठाते समय किर्रा क भी धुरे के साथ ही वामावर्त घूमने लगेगा। बोझा उतारते समय आरंभ मे तो सब पुर्जे जुटकर ठोस हो जाने के कारण उनकी प्रवृत्ति दक्षिणावर्त घूमने की ही होती है, लेकिन ख पर बने रैचट के दाँत और काँटा ग इसका विरोध करते हैं, जिससे क और घ के बीच का सर्पिल खुल जाता है और ऐसा होते ही भार के कारण किर्रा क सरलता से दक्षिणावर्त घूमने लगता है। लेकिन यह गति धुरे की विरोधी दिशा मे होने के कारण सर्पिल फिर चल पडता है, जिससे चकलियो मे घर्षण उत्पन्न होकर फिर सब पुर्जे ठोस होकर रुक जाते हैं और भार नीचे उतर आता, अर्थात् ब्रेक लग जाता है। इस ब्रेक यत्र की बनावट इस प्रकार की होती है कि यदि क्रेन के मुख्य चालक से शक्ति निरतर मिलती रहे, तो यह ब्रेक अत्यत सूक्ष्म समय के अतरो मे स्वत ही पकडता और छोडता रहेगा और बोझा बिना किसी झटके के धीरे धीरे नीचे उतरता रहेगा, और ज्यो ही मुख्य शक्ति ने धुरे को चलाना बद किया, त्यो ही यह ब्रेक बोझे को जकडकर पकड लेगा, अर्थात् वह नीचे नही उतरेगा।

विद्युच्चालित ब्रेक — इनका उपयोग क्रेनो और अन्य प्रकार के यत्रो को चलानेवाले बिजली के मोटरो की रफ्तार को बद करने तथा रोकने के लिये किया जाता है। यह मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं (१) परिनालिका (solenoid) चालित घर्षण ब्रेक, जिनमे घर्षण उत्पन्न करनेवाले भागो पर नियत्रण विद्युच्चुबको द्वारा किया जाता है। अतत ये ब्रेक भी यात्रिक क्रिया द्वारा कार्य करते हैं। ये भी बनावट के अनुसार तीन प्रकार के होते हैं, यथा गुटकेयुक्त, पट्टेयुक्त और चकली युक्त। ब्रेक का ढोल किसी भी दिशा मे चले, गुटको द्वारा बडी स्थिरता से उसका गत्यवरोध होता है। पट्टेयुक्त ब्रेको मे गुटके-युक्त ब्रेकों की अपेक्षा शक्ति कम लगानी पडती है, लेकिन इसके द्वारा एक ही दिशा में गत्यवरोध अच्छा होता है और दूसरी दिशा मे कमजोर पड जाता है। चकलीयुक्त ब्रेक मे घर्षण चकलियाँ, धुरे पर लगी चकलियो से रगड खाती हैं, जो कमानियो की ताकत से दबाई जाती है, लेकिन उन्हे छुडाने के लिये परिनालिका की चुबकीय शक्ति का उपयोग करना होता है। यह ब्रेक दोनो दिशाओं मे घूमते समय अपना प्रभाव डालता है और अधिक विश्वसनीय भी है। पट्टेयुक्त ब्रेको मे साधारण उपयोग के समय तो चुबक का भार ही काम करता है और उन्हे छुडाने के लिये चुबक का खिचाव। खुलने और बद होनेवाले पुलों को उठाने और वापस बैठाने के लिये यदि इस प्रकार के ब्रेक का उपयोग किया जाय, तो पुल की स्थिति बदलने के कारण सपूर्ण ब्रेक यत्र ही टेढा तिरछा हो जाता है। ऐसी हालत मे केवल चुबक का भार ब्रेको को पकडने की शक्ति देने मे असमर्थ रहता है। अत इसके साथ कमानियो का भी उपयोग करना पडता है।

ब्रेक के लिये चुबक और उसकी कुडलियाँ — जहाँ दिष्ट धारा (D C) का उपयोग किया जाता है, वहाँ चकलीयुक्त ब्रेको मे परि-नालिका प्रकार का, और पट्टेयुक्त तथा गुटके युक्त ब्रेकों मे अश्वनाल नुमा चुबक का, उपयोग होता है, लेकिन जहाँ प्रत्यावर्त (A C)

धारा प्रयुक्त होती है वहाँ सब प्रकार के ब्रेकों में परिनालिका चुबक का ही प्राय उपयोग होता है। लेकिन उस परिनालिका का कोर परतयुक्त बनाना होता है। दिष्ट धारा के चुबक का कुडलीकरण नियत्रक यत्र की बनावट के आवश्यकतानुसार श्रेणी मे, अथवा पार्श्ववाही रखा जा सकता है। प्राय एक ही नियत्रक यत्र द्वारा मोटर और ब्रेक, दोनो ही को शक्ति दी जाती है। अत ऐसा प्रबध किया जाता है कि ज्यो ही चालक मोटर को शक्ति देना बद किया जाय, त्यों ही ब्रेकों मे शक्ति का आवेश होकर ब्रेक स्वत ही लग जाएँ और जब मोटर को पुन शक्ति दी जाए तो ब्रेक स्वत ही छुट जाएँ। ऐसी योजना मे कुडलियाँ श्रेणी मे लगाई जाती है। जहाँ प्रत्यावर्त धारा का उपयोग होता है वहाँ चुबकीय कुडलियाँ सदैव पार्श्ववाही पद्धति के अनुसार लगाई जाती हैं।

परिनालिका ब्रेक की क्षमता सदैव बोझ को थामने और गति मदन में प्रयुक्त होनेवाले बलआघूर्ण (torque) के रूप मे व्यक्त की जाती है। गणना करते समय पूर्ण भार वहन करने के निमित्त चालक मोटर मे जो बलआघूर्ण होता है, उसका यह कुछ प्रति शत अश रूप मे लिया जाता है, जिसका सूत्र निम्न प्रकार है :

$$\text{बलआघूर्ण} = \frac{५२५० \times \text{मोटर की अश्वशक्ति}}{\text{मोटर के चक्कर प्रति मिनट}} \text{ फुट पाउड मे}$$

$$\left[\text{Torque} = \frac{5250 \times \text{HP of motor}}{\text{R P M of motor}} \text{ foot lbs}\right]$$

अनुभव से देखा गया है कि गतिमदन के लिये, सपूर्ण भारवाही बलआघूर्ण का यह २० से २०० % तक होता है। जहाँ क्रेन आदि मे पूरे भार को एक दम बीच मे ही लटकता हुआ रोकना होता है, वहाँ १०० % से २०० % तक बलआघूर्ण लगा देना होता है। छापेखाने के यत्रों मे जहाँ कागज के फट जाने का डर रहता है २० से २५ % तक ही बल लगाया जाता है और यातायात वाहनों में ५० % तक लगाया जाता है।

गत्यात्मक ब्रेक (Dynamic Brake) — जब किसी दिष्टधारा के पार्श्व कुडलीयुक्त मोटर का पार्श्वपथ क्षेत्र (shunt field) उत्तेजित रहता है, उसी समय यदि उसे किसी अन्य चालक माध्यम द्वारा चालित रखा जाय, जैसे उसी के आर्मेचर (armature) के सवेग अथवा उससे सबधित अन्य यत्रों के सवेग द्वारा, तो वह मोटर उस समय डायनामो का काम करने लगता है, क्योकि उस समय मोटर का यात्र मुख्य शक्तिस्रोत से असबद्ध होकर धारानियत्रक (rheostat) से सबधित हो जाता है, जिससे वह मोटर की गति का अवरोध उसी प्रकार करने लगता है जिस प्रकार डायनामो अपने चालक इजन की गति का अवरोध करता है। प्रत्यावर्त्त धारा के मोटरो से जब इस प्रकार का काम लिया जाता है, तब उसके तारो का सबध प्रत्यावर्त्त डायनामो के समान ही कर दिया जाता है। प्राय प्रेरक मोटर (induction motor) का उत्तेजन निम्न वोल्टता की दिष्टधारा से किया जाता है और रोटर को (rotor) धारा नियत्रक से सबद्ध कर देते हैं। ऐसा करने से मोटर की चाल का नियत्रण धारा नियत्रक मे होने वाले प्रतिरोध की मात्रा से ठीक वैसे ही हो जाता है जैसा दिष्ट धारा के प्रयोग मे होता है।

गत्यात्मक पुनर्योजी (Dynamic Regensrative) प्रणाली के ब्रेकों के लगते समय जो यात्रिक ऊर्जा का शोषण होता है, वह धारा नियत्रक मे नष्ट हो जाने के बदले स्थिर वोल्टीय प्रणाली को वापस लौट जाता है। इस प्रणाली मे दिष्ट, अथवा प्रत्यावर्त्त, किसी भी प्रकार की धारा का उपयोग किया जा सकता। कई ब्रेक यत्रो मे गत्यात्मक और पुनर्योजी, दोनों ही प्रकार की प्रणालियो का मिश्रित उपयोग होता है।

मोटर गाड़ियों का ब्रेक — मोटरगाडियो मे पैर से दबाकर चलाए जानेवाले विशुद्ध यात्रिक ब्रेक और द्रवचालित, दोनों ही प्रकार के, ब्रेको का उपयोग किया जाता है। चित्र ४ मे एक ड्रम य गाडी के
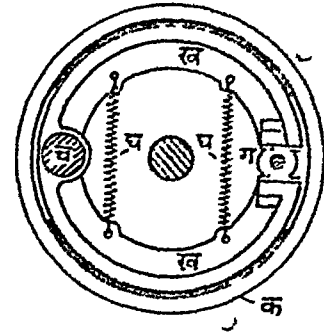
चित्र ४

प्रत्येक चक्के के साथ लगाया जाता है, जिसके भीतर की ओर अर्ध वृत्ताकार दो ब्रेक गुटके, ख, लीवर के रूप मे लगाए जाते हैं, जिनके बाईं तरफ के सिरे तो कब्जे च के रूप में एक दूसरे से जुड़े हैं और दाहिनी ओर के सिरों के बीच मे एक अडाकार कैम ग लगा है। ड्राइवर द्वारा पेडल दबाए जाने पर, कैम अपनी धुरी पर घूमकर, अपने बड़े व्यास से लीवरो के सिरो को ढकेलकर अधिक दूर कर देता है, जिससे लीवरो की अर्धवृत्ताकार परिधि ड्रम के भीतरी भाग मे रगड खाकर गत्यवरोध करती है। पेडल की दाब ढीली होते ही कमानी के जोर से कैम उलटा घूम जाता है, जिससे लीवर ढीले पड जाते हैं और लीवरो से सबधित कमानियाँ, घ, उन्हें भीतर की तरफ खींचकर ड्रम की परिधि से अलग कर देती हैं।

द्रव चालित ब्रेक — यह उपर्युक्त वर्णित ड्रम मे ही लगाया जाता है, (देखें चित्र ५)। इसमे लीवरो को ड्रम की परिधि पर दबाने के लिये कैम के बदले एक दुमुहा सिलिडर, घ, लगा है, जिसमें दोनों ओर १½ इच व्यास के दो पिस्टन लगे हैं। द्रव दाब उत्पादन और पारेषण करनेवाला प्रधान सिलिंडर इजन के पास लगा होता है, जिसमे अडी का तेल और ईथर आदि का मिश्रण पूरा पूरा भरा रहता है। यह बड़ी मजबूत तथा लचीली नलियो द्वारा उपर्युक्त ड्रम के सिलिडरो तक पहुँचता है। ड्राइवर द्वारा पैडल दबाए जाने पर, मुख्य सिलिडरों मे लगभग ½ वर्ग इच क्षेत्र का एक छोटा पिस्टन उसमे भरे द्रव को दबाता है, लेकिन यह द्रव असपीड्य होने के कारण उस दाब को ड्रम मे लगे सिलिडरो तक पारेषित कर, उनके पिस्टनो को चलाकर लीवरो और परिधि के बीच घर्षण द्वारा गत्यवरोध करता है। पैर के साधारण दबाव से सिलिडरो मे १०० पाउड प्रति वर्ग इच तक

दाब उत्पन्न होती है और आवश्यकता के समय अधिक जोर से दवाने पर ३५० पाउड प्रति वर्ग इंच तक हो जाती है।

ट्राम गाडियों मे हाथ के बल से, संपीडित वायु के बल से और विद्युच्चालित तीन प्रकार के ब्रेक लगाए जाते हैं। प्रथम और अतिम प्रकार के ब्रेकों का वर्णन तो ऊपर हो ही चुका है, सपीडित वायु चालित ब्रेको के सिद्धात का वर्णन रेलगाडियो के सबध मे अभी आगे किया जाएगा।

चित्र ५.

रेलगाडी के ब्रेक — इजनो और प्रत्येक वाहन में जो ब्रेक लगाए जाते हैं वे सपीडित वाष्प, हवा, अथवा निर्वात या हस्तशक्ति चालित हुआ करते है। सपीडित हवा तथा निर्वात के कारण चलनेवाले ब्रेक स्वयचालित होते हैं, जो रेलगाडियों के बफर सयोजको के टूट जाने या
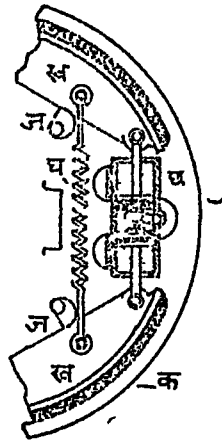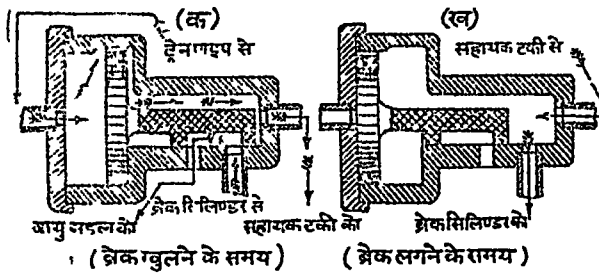
ट्रिपल वाल्व

चित्र ६

असवधित हो जाने पर, जब ट्रेन के दो भाग हो जाते हैं, स्वत ही सब वाहनो मे लगकर ट्रेन के दोनो खडो को रोक देते हैं। प्रत्येक इजन और अलहदा वैगनो तथा विशेष प्रकार के सवारी डिब्बो मे हाथ ब्रेक तो अवश्य ही होता है, जिससे इजन की शक्ति के अभाव मे, यार्ड (yard) मे उन्हें इच्छित स्थान पर रोक दिया जाय और ढाल अथवा वायु के झोको के कारण लुढककर वे चल न पड़ें। इजनो और उनके साथ लगनेवाली कोयले और पानी की टकियो मे हाथ के अतिरिक्त वाष्पचालित ब्रेक भी लगाया जाता है, जिसके ब्रेक सिलिंडर मे जाकर उसके पिस्टन को दवाते हैं। इससे लीवरो की सहायता से ब्रेक गुटके चक्को को पकड लेते हैं।
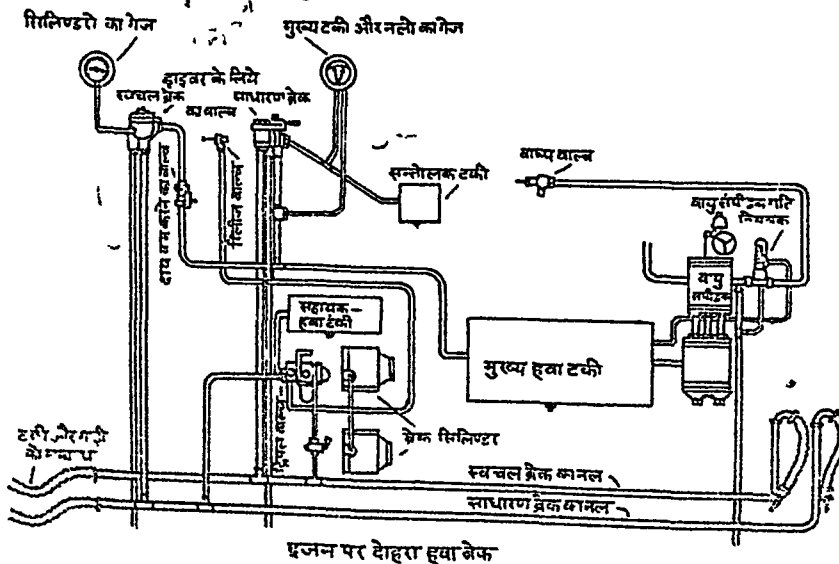
वेस्टिंगहाउस का सपीडित हवा ब्रेक — यह इजन सहित पूरी रेलगाडी मे काम करता है। यदि रेलगाडी को चलाने के लिये वाष्प इजन हो, तो उसके बॉयलर के वाष्प से, और बिजली के इजन मे मोटर द्वारा, एक वायुसंपीडक पप चलाया जाता है, जिसमे इजन पर लगी एक बडी मुख्य टकी मे ९० से १०० पाउड प्रति वर्ग इंच की दाव से हवा भर दी जाती है। इजन के पीछे चलनेवाली गाडियो में भी एक एक छोटी सहायक टकी लगा दी जाती है, जिसमे लगभग १२ से १५ घन फुट तक स्थान रहता है। इजन रेलगाडी मे जुत जाने पर इजन की मुख्य टकी मे से दबी हवा को ट्रेन पाइप मे छोड दिया जाता है, जो पाइप की शाखाओ मे से होती हुई सहायक टकी मे भर जाती है, लेकिन गाडी में लगे ब्रेक सिलिंडरों में यह हवा केवल उसी समय पहुँचती है जब ब्रेक लगाना आवश्यक होता है। इजन मे ड्राइवर के ब्रेक नियत्रक वाल्व के निकट ही भरण (feed) वाल्व लगा होता है, जिसके माध्यम से गाडी के चलने की हालत में उसकी सब टकी आदि मे ७० पाउंड प्रति वर्ग इंच के लगभग हवा की दाव बनी रहती है। जब ड्राइवर अपनी इच्छा से ब्रेक लगाना चाहता है, अथवा कोई बिगाड होने के कारण जब स्वत ही ब्रेक लगने लगते हैं, उस समय ट्रेन पाइप की हवा किसी न किसी मार्ग से, चाहे वह ड्राइवर अथवा गार्ड का ब्रेक वाल्व हो अथवा कोई अन्य मार्ग हो, वायुमडल में निकलने लगती है, जिससे ट्रेन पाइप की हवा की दाब घटते ही सब गाडियो मे लगे ट्रिपल वाल्वो के पिस्टन सरक जाते हैं (देखें चित्र ६)। इससे प्रत्येक गाडी की टकियो में भरी हुई दवी हवा ब्रेक सिलिंडरों मे जाकर उनके पिस्टनों को ताकत से सरका देती है, जिससे लीवरो के जरिए ब्रेक गुटके चक्को को पकड़ लेते हैं। ब्रेको को छुडाने के लिये इजन की मुख्य टकी मे से दवी हवा फिर से ट्रेन पाइप मे भर दी जाती है, जिससे उसमें दवाव वट जाने से ट्रिपल वाल्वो के पिस्टन अपने पुराने स्थानो पर लौट आते

इजन पर दोहरा हवा ब्रेक

चित्र ७

हैं। इससे ब्रेक सिलिंडरों में भरी दबी हवा या मार्ग ट्रिपल वाल्व के माध्यम से वायुमंडल में खुल जाता है और ब्रेक छूट जाते हैं। चित्र ७ में सांकेतिक रूप से इंजन में लगनेवाले दोहरे ब्रेक के उपकरणों का प्रबंध दिखाया गया है।

निर्वात ब्रेक जिन गाड़ियों में लगा होता है उनके प्रत्येक वाहन में चित्र ८ जैसा एक सिलिंडर लगा होता है, जिसमें एक सरकता हुआ पोला पिस्टन उसे दो वायुरोधी (airtight) भागों में बाँट देता है। जिस समय गाड़ियाँ बेकार खड़ी होती हैं, उस समय सिलिंडर में पिस्टन के दोनों तरफ साधारण हवा भरी रहती है और पिस्टन अपने बोझे से नीचे की तरफ बैठा रहता है। गाड़ियों को इंजन में जोत देने पर, ट्रेन पाइपों के माध्यम से उन सब सिलिंडरों को इंजन में लगे, वायुनिष्कासक यंत्र (ejector) से संबंधित कर देते हैं और बॉयलर की वाष्प की द्रुतगामिनी धारा की सहायता से वह यंत्र समग्र गाड़ियों के ट्रेन
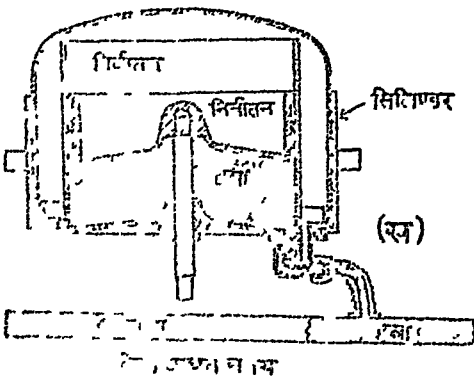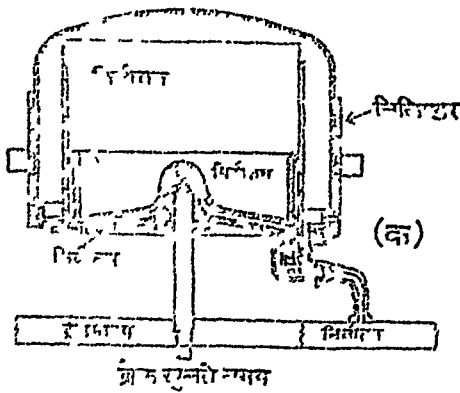
चित्र ८

पाइप और उससे संबंधित सिलिंडरों की हवा को चूषण क्रिया द्वारा बाहर फेंककर, उनमें २२ इंच तक का निर्वातन कर देता है। निर्वातन के समय भी पिस्टन के दोनों ओर निर्वात हो जाने के कारण, वह यथापूर्व अपने बोझे से नीचे ही बैठा रहता है। जब ब्रेक लगाना होता है, उस समय ड्राइवर अपने वाल्व, अथवा गार्ड अपने वाल्व, के द्वारा, अथवा यात्री लोग जंजीर खींचकर, एक छोटे वाल्व द्वारा ट्रेन पाइप में हवा को प्रविष्ट करवा देते हैं। इससे वह पाइप की शाखाओं में से होती हुई ब्रेक सिलिंडरों में पिस्टनों के नीचे की ओर पहुँच जाती है। उसके ऊपर की ओर जाने के रास्ते में एक गोलीनुमा वाल्व लगा रहता है, जो हवा के दबाव से बंद हो जाता है, और हवा के ऊपर न जा सकने के कारण पिस्टन के ऊपर निर्वात बना रहता है। अतः नीचे से वायुमंडल की हवा उसे ऊपर उठा देती है, जिससे पिस्टन दंड से संबंधित ब्रेक गुटके चक्कों को पकड़ लेते हैं। ब्रेकों को छुड़ाने के लिये फिर से निर्वात करने पर, जब पिस्टन के नीचे आई हुई हवा निकल जाती है, तब पिस्टन के दोनों ओर एक सी दाब होने के कारण अपने बोझे से वह नीचे बैठ जाता है और ब्रेक छूट जाते हैं।

सं० ग्रं० — मिकैनिकल इंजीनियरिंग, भाग १, मैग्गिन्स पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयार्क, २ ब्रेक पावर, लोकोमोटिव पब्लिशिंग कंपनी, लंदन।
[ओ० ना० श०]

ब्रैडले, फ्रैंसिस हरबर्ट (१८४६–१९२४ ई०) ब्रैडले का जन्म ३० जनवरी, १८४६ को गालसबरी, ब्रेकनाक (इंग्लैंड) में हुआ था। उन्होंने यूनिवर्सिटी कालेज ऑक्सफोर्ड में शिक्षा पाई और सन् १८७६ में 'फेलो ऑव मार्टन' हो गए। जून, १९२४ में वे विशिष्ट पुरुषों की श्रेणी (आर्डर आव मेरिट) में लिए गए और उसी वर्ष १८ सितंबर को उनकी मृत्यु हो गई। उनको आंग्ल अध्यात्मवादियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और ख्यातिप्राप्त दार्शनिक माना जाता है। उनकी तर्कनापद्धति के कारण उन्हें आधुनिक दर्शन का जीनों भी कहा जाता है। उन्होंने इतनी तीक्ष्ण विवेचनात्मक पद्धति अपनाई है और विचारों को इतने अधिक सूक्ष्म और मौलिक रूप से प्रस्तुत किया है कि आज तक उन्हें अपने ढंग का अकेला दार्शनिक माना जाता है। उनका युक्तिवाद भारतीय बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन और वेदांती श्रीहर्ष की तर्कनापद्धति का नवीन संस्करण मालूम होता है।

ब्रैडले का प्रथम महत्वपूर्ण ग्रंथ 'ऐथीकल स्टडीज' है। उसके उपरांत उन्होंने 'दी प्रिंसिपिल ऑव लाजिक', 'एपियरेंस ऐंड रियलिटी', 'एसेज आन ट्रुथ ऐंड रियलटी', 'दी प्रिसपोजीशन ऑव क्रिटिकल हिस्ट्री' तथा 'मिस्टर सिजविक्स हिडोनिज्म' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ भी लिखे हैं। 'एपियरेंस ऐंड रियलिटी' का हिंदी रूपांतर 'आभास और सत्' नाम से हिंदी समिति (उ० प्र० सरकार) द्वारा प्रकाशित हुआ है।

'एथीकल स्टडीज' (१८७६) में मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व की उपलब्धि, संसार से उसका सामंजस्य और अनंत सत्ता से उसका तादात्म्य वांछनीय बताया गया है। उसमें उपयोगितावाद (यूटीलिटेरियनिज्म) का खंडन कर सर्वसामान्य, स्वप्रकाशित तथा आत्मोपम शुभेच्छा (गुडविल) अर्जित करने का समर्थन किया गया है।

'दी प्रिंसिपिल ऑव लाजिक' (१८८३) में मिल द्वारा पूर्वस्थापित तार्किक सिद्धांतों की सीमाएँ और न्यूनताएँ दिखाई गई हैं और विशेष रूप से उनके अनुमान के सहचारी (ऐसोसिएनिस्ट) सिद्धांत का खंडन किया गया है। यही नहीं, न्यायशास्त्र के अध्येताओं को उसमें नवीन सामग्री भी प्राप्त होती है।

ब्रैडले का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'एपियरेंस ऐंड रियलिटी' (१८९३) है। यह उनके दार्शनिक चिंतन का सार है। इसी विषय पर उन्होंने

'ऐसेज़ ग्रान ट्रुथ ऐंड रियलिटी' (१६१४) नामक ग्रथ भी लिखा है। उनके अनुसार हमे निरपेक्ष का ज्ञान निश्चित और वास्तविक होता है किंतु यह भी निश्चय है कि उसकी अनुभूति अपूर्ण ही है। सत् को समझने के लिये उन्मेषनी अतर्दृष्टि होनी चाहिए। जिस अनुभव के द्वारा सत् का बोध होता है वह केवल बुद्धिविवेचन या विचार नही है बल्कि सकल्प और भावना भी उसमे समिलित है। सत् का विचार करने की अनेक पद्धतियो की ब्रैडले ने परीक्षा की और देखा कि वे सब आत्मव्याघातपूर्ण हैं। आत्मव्याघातपूर्ण वस्तु को आभास ही समझना चाहिए क्योकि अंतिम सत् में स्वय कोई विरोध नही हो सकता है। विचार करना ही विवेचन करना है, विवेचन करना ही आलोचना करना है और आलोचना करना ही सत्य का कोई मापदड प्रयोग करना है। ब्रेडले के अनुसार सत्य का मापदड यही है कि अतिम सत् स्वयविरोधी नही हो सकता। प्रधान और अप्रधान गुण, द्रव्य और विशेषण, सबध और गुण, दिक् और काल, गति और परिवर्तन, कारणता और क्रिया, आत्मा और अपने आपमे वस्तुएँ—इन सब की विवेचना करके ब्रेडले इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इन सब प्रकार से विचार करने मे स्वयं व्याघात है। इसके विपरीत निरपेक्ष सत् सगतस्वरूप, एक, व्यक्तिगत, मूर्त, चेतन अनुभवरूप, अविभाज्य, पूर्ण और परम है। उसमे दु ख के ऊपर सुख का सतुलन है। दु ख के अस्तित्व को अस्वीकार तो नही किया जा सकता क्योकि उसकी अनुभूति तो होती है किंतु सुख के साथ उसकी मात्रा क्षीण होती रहती है। अत मे दु ख से सुख की मात्रा ही अधिक होती है। निरपेक्ष सत् को ईश्वर कह सकते हैं किंतु वह धर्मप्रतिपादित ईश्वर नही है। धर्म के अतर्गत मनुष्य और ईश्वर के बीच एक सबध है। यह सबध आत्मविरोधी है। निरपेक्ष सत् मे आशिकता नही है क्योकि वह पूर्ण है। आभास मे आशिक सत् है। वह सर्वथा भ्रात और त्याज्य नही है। चूँकि पूर्ण सामजस्ययुक्त ही पूर्ण, यथार्थ और सत् है अत न्यूनतर सामजस्ययुक्त वस्तुएँ आशिक सत् कही जा सकती हैं। दो प्रस्तुत आभासो मे से एक, जो अधिक विस्तृत अथवा अधिक समन्वयशील है, अधिक वास्तविक है। जो तथ्य परम सत् मे परिणत होने के लिये पुनर्व्यवस्था तथा वृद्धि की कम अपेक्षा रखता है, वह अधिक वास्तविक और अधिक सत् है। [ह० ना० मि०]

ब्रैंग्वीन, सर फ्रैंक (१८६७-१९५६) वेल्स का लोकप्रिय चित्रकार, ब्रैंग्वीन ने अधिकतर दीवार पर चित्र (म्यूरल) बनाए हैं। वह एक ही चित्र मे तमाम आकृतियाँ चित्रित करता था। चित्र बडे ही रग बिरगे हैं। १९१६ मे उसे राजकीय कलाकार का पद मिला। १९४१ मे उसे 'नाइटहुड' (सर) का खिताब मिला। उसके बनाए चित्र स्किनर्स हाल, रायल एक्सचेंज, लायड्स रजिस्टर लदन मे हैं तथा कोर्ट हाउस, क्लीवलैंड, ओहाय, मिजूरी स्टेट कैपिटल तथा न्यूयार्क के रॉकफेलर सेंटर मे मिलते हैं। हाउस ऑव लार्ड्स के गिल्ड हाल तथा स्वान सी में भी उसके चित्र हैं। फ्रास मे उसके चित्रों का एक पूरा सग्रहालय ही है। ब्रूजेज, जहाँ वह उत्पन्न हुआ था, तथा आरेंज (फ्रास) मे भी उसके चित्र मिलते हैं। [रा० च० शु०]

ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) अकशेरुकी प्राणियो का सघ है जिसके सभी सदस्य समुद्री प्राणी हैं। इस सघ के प्राणी द्विकपाटी (bivalve) कवच (shell), अखड (unsegmented) देहगुहा, द्विपार्श्वी (bilateral) तथा स्पर्शकयुक्त मुख खाँचा (buccal groove) वाले हैं। ये द्विपार्श्व, असममित प्राणी हैं।

कवच—ब्रैकियोपोडा का शरीर द्विकपाटी कवच के अदर बद रहता है। ये कवच क्रमश पृष्ठ (dorsal) तथा अधर (ventral) कपाट कहलाते हैं (चित्र १)। पृष्ठकपाट छोटा होता है। टेरिब्रैचला (Terebratula) तथा वाल्डहाइमिआ (Waldheimia) वश के प्राणियो में अधर कपाट प्राय लबा होता है और चोंच की
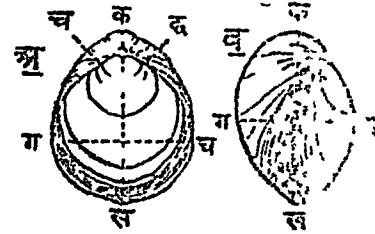
चित्र १. टेरिब्रैचला सेमिग्लोबोसा

अ पृष्ठ कपाट क-ख लबाई, ग-घ चौडाई तथा च-छ हिंज रेखा; ब अधर कपाट ' क-ख लबाई तथा ग-घ मोटाई ($\frac{1}{3}\times$)

तरह पीछे की ओर बढा रहता है। इस चोच को ककुद (umbo) कहते हैं। वृत के लिये ककुद छिद्रित रहता है। वृत के द्वारा प्राणी पत्थर या चट्टान से जुडा रहता है। क्रेनिया (Crania) वश के प्राणियो में वृत नही होता, क्योंकि इस वश के प्राणियो का अधर कपाट चट्टान से जुडा रहता है।

प्रत्येक कपाट सगत प्रावार फ्लैप (mantle flap) से प्रच्छन्न रहता है। प्रावार उपकला (mantle epithelium) सूक्ष्म पैपिली (papillae) के रूप मे वृद्धि करती है और कवच के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती है। पैपिली जिन कोशिकाओ के बने होते हैं, वे कोशिकाएँ प्राय सूक्ष्म शाखन प्ररूप की होती हैं। कवच की वृद्धि पैपिली पर निर्भर रहती है। प्रत्येक कवच का बाह्यतर कार्बनिक पदार्थ का बना होता है। इस स्तर के नीचे शुद्ध कैल्सियम कार्बोनेट का पतला स्तर रहता है तथा कैल्सियमी एव आशिक कार्बनिक पदार्थों का बना मोटा आतर प्रिज्मीय स्तर (prismatic layer) रहता है। कवच के कपाट पेशी तत्र द्वारा खुलते और बद होते हैं। हिंज (hinge) रेखा पीछे और प्रावार गुहिका (mantle cavity) आगे होती है।

लोफोफोर (Lophophore) — कवच को खोल देने पर दिखाई पडता है कि अधिकाश स्थान एक जटिल रचनावाले अग ने घेर रखा है, जिसे लोफोफोर कहते हैं। लोफोफोर के अनुप्रस्थ खाँचे मे मुँह स्थित रहता है। यह खाँचा पृष्ठ मे सतत ओष्ठ द्वारा तथा अधर मे स्पर्शको की पक्ति द्वारा घिरा रहता है। खाँचा बहुत बढा रहता है और इसके दोनो किनारे दो बाहुओं का रूप ले लेते हैं। ये बाहु प्राय सर्पिल वलित रहती हैं। स्पर्शक (tentacle) लबे होते हैं और कवच की दरार से बाहर निकल सकते हैं। स्पर्शक और प्रावार की सतह पर स्थित पक्ष्माभिकाएँ (cilia) अपनी कशाघाती गति (lashing movement) द्वारा लोफोफोर की दो बाहुओं के सामने दूसरी ओर

अंदर जानेवाली जल की दो धाराएँ उत्पन्न करती हैं। बाहर निकलनेवाली जल की धारा दोनो बाहुओ के मध्य मे होती है। कवच के अंदर उपर्युक्त दोनो जलधाराओ मे से प्रत्येक लोफोफोर के स्पर्शको के मध्य में जाती है, जहाँ पानी मे तैरते हुए हलके खाद्य पदार्थ छन
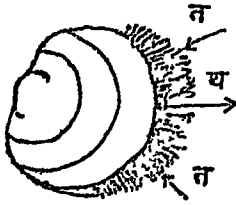
चित्र २ क्रेनिया (Crania)
(स्पर्शको से भोजन ग्रहण करते हुए)
त अंदर जाता हुआ, जल तथा खाद्य और थ जल का निर्गम

जाते हैं। ये पदार्थ दूसरी पक्ष्माभिका द्वारा मुँह के साँचे मे और वहाँ से मुँह मे जाते हैं। भारी पदार्थ अधर प्रावारपालि पर रह जाते हैं और बाहर जानेवाली जलधारा द्वारा बाहर चले जाते हैं।

पाचक तंत्र — मुँह पक्ष्माभिकामय (ciliated) आहारनाल मे खुलता है। आहारनाल की आकृति वी (v) की तरह होती है और इसमे थैली (sac) के आकार का आमाशय समिलित है। आमाशय मे शाखित नलियोवाली पाचक ग्रथियाँ खुलती हैं, जिनकी गुहा में अधिकाश पाचन होता है। आत्र सीधी नली की तरह का होता है। वाल्डहाइमिआ मे आत्र अत मे पूर्ण बंद रहता है (चित्र ३)। लेकिन क्रेनिया
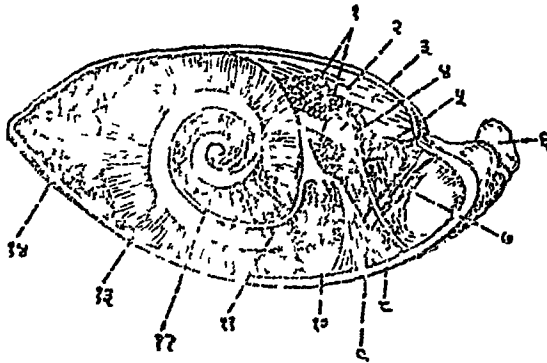
चित्र ३ वाल्डहाइमिआ (Waldheimia) की अनुदैर्घ्य काट
१ पाचक ग्रंथि, २ कवच (shell) पर उर्ध्वाधर कटक, ३ आमाशय, ४ हृदय, ५ पेशी, ६ वृंत, ७. वृक्क मुख, ८. आत्र, ९ देहभित्ति, १० मुँह, ११ लोफोफोर, १२ लोफोफोर का ओष्ठ, १३ स्पर्शक तथा १४ अतस्थ स्पर्शक।

और लिंगुला में गुदा रहती है (देखें चित्र ४ अ)। देहगुहा विस्तृत होती है तथा अधरापृष्ठी (dorsoventral) आत्रयोजनी (mesentery) द्वारा दाहिने और बाएँ, दो भागो, में बँटी रहती है। अनुप्रस्थ आत्रयोजनी भी होती है। यह लोफोफोर तथा स्पर्शक मे जाती है और प्रावार मे प्रावार कोटर (pallial sinus) के रूप में जाती है।

जनन अंग — नर मादा प्राय अलग अलग होते हैं। कुछ प्राणी उभयलिंगी (hermaphrodite) भी होते हैं। जनन अंग देहगुहा की उपकला से आत्र के पास विकसित होते हैं। जनन ग्रंथियाँ मोटी, पीली पट्टी की तरह दिखाई पड़ती हैं। परिपक्व लिंगकोशिकाएँ देहगुहा मे मुक्त होकर वृक्क से बाहर जाती हैं। कुछ वशों मे अंडों के विकास का प्रथम चरण वृक्क के पास स्थित भ्रूणधानियो (brood pouch) में पूरा होता है। यही वृक्क उत्सर्जन का भी कार्य करता है। ये वृक्क एक जोड़ा या कभी कभी दो जोड़ा होते हैं। अधिकाश ब्रैकियोपोडा मे निषेचन माता पिता के कवच के बाहर होता है।

परिवहन तंत्र — यह अल्प विकसित होता है। पृष्ठ आत्र योजनी मे एक अनुदैर्घ्य वाहिनी होती है, जिसके एक क्षेत्र मे सकुचनशील आशय (contractile vesicle) होता है। यह आशय हृदय कहलाता है और आमाशय के पृष्ठ की ओर रहता है। अनेक वाहिनियाँ, जो आगे मुँह की ओर पीछे प्रावार एव जनन अंगो की ओर जाती हैं, अत में पूर्ण बंद हो जाती हैं। रक्त रंगहीन होता है।

तंत्रिका तंत्र — परिग्रसनी (circumoesophageal) सयोजी द्वारा सयोजित अधिग्रसिका (supraoesophageal) तथा अधोग्रासनली गुच्छिका (suboesophageal ganglion) क्रमश मुँह के सामने और पीछे रहती हैं। अधोग्रासनली से निकली तंत्रिकाएँ बाहु, पृष्ठप्रावार पालि अभिवर्तनी (adductor) पेशियो तथा दो छोटी छोटी गुच्छिकाओं मे जाती हैं। इन गुच्छिकाओ से निकली तंत्रिकाएँ वृंत (peduncle) तथा अधरप्रावार पालि मे जाती हैं। सभी गुच्छिकाएँ एव पन्योजियाँ (commissures) बाह्य त्वचा के निरंतर सपर्क मे रहती हैं। प्रत्येक स्पर्शक मे भी तंत्रिका जाती है। ब्रैकियोपोडा मे किसी विशेष ज्ञानेंद्रिय की उपस्थिति ज्ञात नहीं है।

विकास — ब्रैकियोपोडा के लार्वा स्वतंत्र रूप से तैरते हैं। लार्वा के तीन खड होते हैं (१) अग्र (२) मध्य तथा (३) पश्च। अग्रखड ट्रोफोस्फियर (trophosphere) के मुखपूर्वी खड की तरह होता है। मध्य भाग मे प्रावार की दो पालियाँ होती हैं, जो आरंभिक होती हैं। पश्च भाग प्रावार पालि से छिपा रहता है और यह वृंत मे परिवर्तित हो जाता है। प्रावार पालियो मे से शूक (chaetae) के चार पूल निकलते हैं (देखें चित्र ४)। बाद में ये पालियाँ अग्र खड को घेरने के लिये आगे की ओर मुड़ जाती हैं। अब अग्र खड से लोफोफोर का विकास प्रारंभ होता है। कवच कपाट प्रावार पालियो पर बनने लगता है, जबकि पश्चखड वृंत्त के रूप मे वृद्धि करता है। देहगुहा एक जोड़ा कोष्ठ (pouch), या एक कोष्ठ, के रूप मे आद्यत्र (archenteron) से विकसित होती है। प्राय विदलन (cleavage) अरीय (radial) होता है, किंतु एक स्पीशीज मे सर्पिल विदलन भी होता है।

सामान्य विशेषताएँ — ब्रैकियोपोडा कैंब्रियन (cambrian) काल से ही समुद्र की तली मे निवास करते हैं, किंतु उस काल में ये दूर तक नही फैले थे। पुराजीवी महाकल्प (Palaeozoic era) की चट्टानो में ब्रैकियोपोडा के ४५६ वंश तथा मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic era) की चट्टानो मे १७७ वंश मिलते हैं। ये वंश उस समय के अकशेरुकी ससार के महत्वपूर्ण जतुसमुदाय थे। ब्रैकियोपोडा के ७०

वश, जिनमें लगभग २२५ स्पीशीज हैं, वर्तमान काल मे मिलते हैं। आधुनिक लिंगुला (Lingula) वश तथा आर्डोविशन कल्प के लिंगुला सर्वसम हैं। ५० करोड वर्ष पुराने इस वश को ज्ञात प्राणियो का सबसे पुराना वश होने का गौरव प्राप्त है। अधिकाश वर्तमान ब्रैकियोपोडा उथले जल मे रहते हैं और कुछ गहरे जल मे। फॉसिल के रूप मे प्राप्त प्राणियो के कवचों के विस्तार, अलकरण (ornamentation) तथा आकृतियाँ विभिन्न होती हैं। जीवित ब्रैकियोपोडाओं के कवच हरे, लाल भूरे या सफेद होते हैं। इन कवचों पर अरीय या सकेंद्रीय चिह्न होते हैं। ये कवच चिकने, या शिरायुक्त (costate), या शूलयुक्त होते हैं।
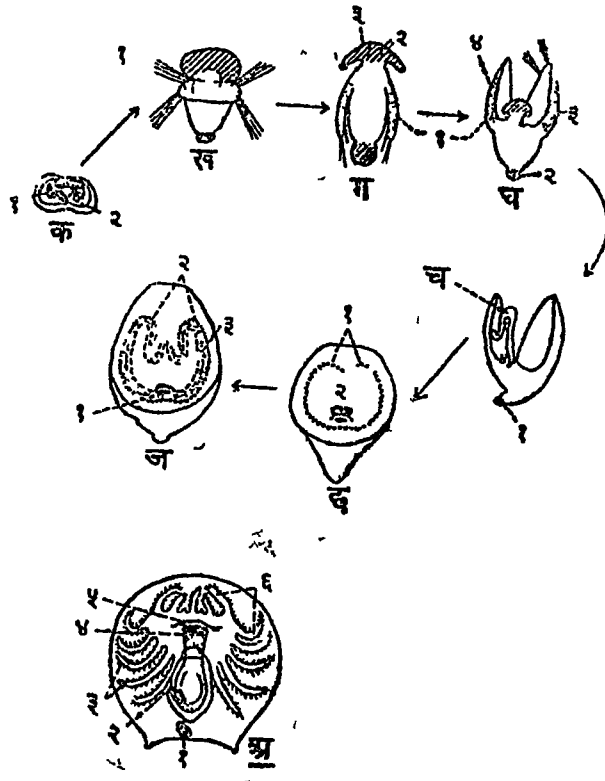
चित्र ४ ब्रैकियोपोडा का विकास

क गैस्ट्रुला भवन (gastrulation) के अत के समय के लार्वा की काट : १ देहगुहा तथा २ आहार नाल, ख तीन खडो मे बँटा हुआ लार्वा : १ शूक, ग चर लार्वा १ प्रावारपालि, २ आँखें तथा ३ मूखपूर्वी खड, घ उत्थित प्रावारपालि : १ प्रावारपालि, २ वृत, ३ अधर कपाट तथा ४ पृष्ठीय कपाट, च लोफोफोर का विकास १ वृत, छ पृष्ठीय कपाट का आतरिक दृश्य १ स्पर्शक तथा २ ओष्ठ, ज लोफोफोर के विकास में बाद की अवस्था १ मुह २ स्पर्शक तथा ३ बाहु।

अ लिंगुला (lingula) के लार्वा के पृष्ठीय कपाट का आतरिक दृश्य १ वृत, २ गुदा, ३. स्पर्शक, ४ मुँह, ५ पृष्ठीय ओष्ठ तथा ५ स्पर्शक।

वर्गीकरण — ब्रैकियोपोडा सघ दो वर्गों मे विभक्त है : (१) इनआर्टिकुलेटा (Inarticulata), या ईकार्डिनीज़ (Ecardines), तथा आर्टिकुलेटा (Articulata)।

इनआर्टिकुलेटा — इस वर्ग के प्राणी के दोनो कवच लगभग समान होते हैं। कवच मे हिंज नही होता। ये दोनो कवच पेशी से बँधे होते हैं तथा इनकी गठन शृगी होती है। इनमे गुदा रहती है। लिंगुला तथा क्रेनिया इसके वर्तमान वश है। लिंगुला हिंद महासागर तथा प्रशात महासागर मे मिलते हैं। लिंगुला पक मे बिल बनाकर रहना पसद करता है।

आर्टिकुलेटा वर्ग — इस वर्ग के प्राणियो के दोनो कवच असमान होते हैं। इसमे वृत के लिये ककुद (umbo) रहता है तथा हिंज भी रहता है। गुदा नही होती। इसके वर्तमान जीवित वश वाल्डहाइमिश्रा तथा टेरिब्रैचला हैं।

स० ग्र०—जी ए केयरकट द इनवर्टिब्रेटा (चतुर्थ खड), डा० एस० एन० प्रसाद ए टेक्स्ट बुक ऑव इनवर्टिब्रेट ज़ोऑलोजी।

[अ० ना० मे०]

ब्रैग (Bragg) १ सर विलियम हेनरी, ओ० एम० (सन् १८६२-१९४२), ब्रिटिश भौतिकीविद्, का जन्म इग्लैंड के कवरलैंड काउटी में स्थित विग्टन नामक ग्राम मे हुआ था। आपकी शिक्षा कैंब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में पूर्ण हुई तथा आप ऐडिलेड (दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया) मे गणित तथा भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

यहाँ इन्होने रेडियोऐक्टिवता पर अनुसधान आरभ किए। इन अनुसधानो से ये प्रसिद्ध हो गए। सन् १९०९ मे आप लीड्स मे कैवेंडिश प्रोफेसर तथा सन् १९१५ मे लदन युनिवर्सिटी के क्वेन प्रोफेसर नियुक्त हुए। अपने पुत्र सर विलियम लॉरेंस ब्रैग के सहयोग से आपने एक्स-रे-स्पेक्ट्रोमीटर का विकास किया तथा इस यत्र की सहायता से परमाणुओ और क्रिस्टलो के विन्यासो को स्पष्ट किया। सन् १९१५ मे इन्हें तथा इनके उपर्युक्त पुत्र को सयुक्त रूप से भौतिकी का नोबेल पुरस्कार और कोलबिया विश्वविद्यालय का बारनर्ड स्वर्णपदक प्रदान किया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय पनडुब्बी नावो का पता लगाने की समस्याओं के सबध मे ब्रिटिश नौसेना को आपने सहायता दी। आप सन् १९२८-२९ मे ब्रिटिश ऐसोसिएशन फॉर दि ऐडवान्समेट ऑव सायस के तथा सन् १९३५-४० तक रॉयल सोसायटी के प्रेसिडेंट थे। रेडियोऐक्टिविटी तथा क्रिस्टल विज्ञान पर अनेक प्रकाशनो के सिवाय ध्वनि, प्रकाश तथा प्रकृति सबधी आपके अन्य ग्रथ भी हैं।

ब्रैग, २ सर विलियम लॉरेंस (१८९०–१) पूर्वचर्चित ब्रैग के पुत्र थे। इनका जन्म ऐडिलेड (ऑस्ट्रेलिया) मे हुआ था। प्रारभिक शिक्षा इसी नगर मे पाने के पश्चात् सन् १९१६ मे आप कैंब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज के फैलो हो गए।

अपने पिता के साथ एक्स-रे-स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से आपने अनेक प्रकार के क्रिस्टलो की रचना की खोज की। इस कार्य के लिये इन्हे और इनके पिता को सयुक्त रूप से भौतिकी का नोबेल पुरस्कार तथा बारनर्ड स्वर्णपदक मिले। सन् १९१९ से १९३७ तक आप विक्टोरिया विश्वविद्यालय (मैंचेस्टर) मे भौतिकी के लैंगवर्दी

प्रोफेसर तथा सन् १९३७-३८ में नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी के निदेशक थे तथा सन् १९३८ में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में प्रायोगिक भौतिकी के कैवेंडिश प्रोफेसर नियुक्त हुए।

क्रिस्टल संरचना पर आपने कई एक महत्व के निबंध लिखे हैं। विद्युत्, क्रिस्टलों की संरचना तथा खनिजों की परमाण्वीय संरचना पर भी आपने पुस्तकें लिखी हैं। [भ० दा० व०]

ब्रोनो इल (आजेलो ऐलोरी, १५०३–७२) फ्लोरेंटाइन चित्रकार, पांटोर्मो का शिष्य आजेलो ब्रोनो ग्रैंड ड्यूक ऑव टस्कनी का दरबारी कलाकार था। वह अपने समय का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति चित्रकार (पोर्ट्रेट पेंटर) था। माइकेल ऐंजिलो की कला का इस पर विशेष प्रभाव था। इसके व्यक्तिचित्रों की आकृतियों में एक अमानुषिक सभ्यता प्रतिलक्षित होती है। उसके धार्मिक चित्र अधिकतर वर्णनात्मक हैं। 'वीनस', 'क्यूपिड', 'टाइम ऐंड फ़ाली' शीर्षक चित्रों में कुछ कुछ नग्नता और अश्लीलता भी दृष्टिगोचर होती है। उसके बनाए अधिकतर चित्र फ्लोरेंस में ही हैं। कुछ ऐंटवर्प, बर्लिन बोस्टन, शिकागो, सिनसिनाटी, डेट्राएट, लंदन, मैड्रिड, मिलान, न्यूयार्क, ओटावा, आक्सफोर्ड, पैरिस, पीसा, रोम, वियना, वाशिंगटन तथा वोर्सेस्टर मास में हैं। [रा० च० शु०]

ब्रोमीन (Bromine) ब्रोमीन आवर्तसारणी (periodic table) के सप्तम मुख्य समूह का तत्व है और सामान्य ताप पर केवल यही अधातु द्रव अवस्था में रहती है। इसके दो स्थिर समस्थानिक (isotopes) प्राप्य हैं, जिनकी द्रव्यमान संख्याएँ ७९ और ८१ हैं। इसके अतिरिक्त इस तत्व के ११ रेडियोऐक्टिव (radioactive) समस्थानिक निर्मित हुए हैं, जिनकी द्रव्यमान संख्याएँ ७५, ७६, ७७, ७८, ८०, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६ और ८८ हैं।

फ्रांस के वैज्ञानिक बैलार्ड ने ब्रोमीन की १८२६ ई० में खोज की। इसकी तीक्ष्ण गंध, के कारण ही उसने इसका नाम ब्रोमीन रखा, जिसका अर्थ यूनानी भाषा में दुर्गंध होता है।

ब्रोमीन सक्रिय तत्व होने के कारण मुक्त अवस्था में नहीं मिलता। इसके मुख्य यौगिक सोडियम, पोटैसियम और मैग्नीशियम के ब्रोमाइड नामक स्थान में है। जर्मनी के स्टासफुर्ट (Stassfurt) इसके यौगिक बहुत मात्रा में उपस्थित हैं। समुद्रतल भी इसका उत्तम स्रोत है। कुछ जलजीव एवं वनस्पति पदार्थों में ब्रोमीन यौगिक विद्यमान हैं।

निर्माण — समुद्र के एक लाख भाग में केवल ७ भाग ब्रोमीन यौगिक के रूप में उपस्थित है, परंतु समुद्र के अनंत विस्तार के कारण उससे ब्रोमीन निकालना लाभकारी है, इस विधि में चार दशाएँ हैं :

(१) क्लोरीन की आक्सीकारक अभिक्रिया द्वारा ब्रोमीन की मुक्ति।

(२) वायु द्वारा विलयन से ब्रोमीन को निकालना।

(३) क्षारीय कार्बोनेट विलयन द्वारा ब्रोमीन का अवशोषण।

(४) सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा विलयन से ब्रोमीन तत्व की मुक्ति।

इस क्रिया द्वारा प्राप्त ब्रोमीन को आसवन (distillation) द्वारा शुद्ध करते हैं।

गुणधर्म — ब्रोमीन गहरा लाल रंग लिए, तीक्ष्ण गंध का द्रव है। इसके वाष्प का रंग लाली लिए भूरा होता है। इसका संकेत ब्रो (Br), परमाणुसंख्या ३५, परमाणु भार ७९.९०९, गलनांक ७.२° सें०, क्वथनांक ५८ सें०, घनत्व ३.१२ ग्रा० प्रति घन सेंमी०, परमाणुव्यास २.२६ ऐंग्स्ट्राम A° तथा आयनिकरण विभव ११.८४ इवो० है। ब्रोमीन जल की अपेक्षा कुछ कार्बनिक द्रवों में अधिक विलेय है।

ब्रोमीन के रासायनिक गुण क्लोरीन और आयोडीन के मध्य में हैं। यह तीव्र ऑक्सीकारक पदार्थ है और अनेक तत्वों और यौगिकों से रासायनिक क्रिया करता है। ब्रोमीन और हाइड्रोजन उच्च ताप पर विस्फोट के साथ क्रिया करते हैं तथा हाइड्रोजन ब्रोमाइड बनाते हैं, जिसमें अम्लीय (acidic) गुण हैं। प्रकाश में ब्रोमीन का विलयन आक्सीकारक और विरंजक (bleaching) गुण रखता है। इस क्रिया में हाइपोब्रोमस अम्ल, हाब्रोऔ (H Br O), का निर्माण होता है, जो अस्थिर होने के कारण आक्सीजन मुक्त करता है।

ब्रो$_2$ + २ हा$_2$औ = हाब्रो + हाब्रोऔ

$$[Br_2 + 2H_2O = HBr + HBrO]$$

२ हाब्रोऔ = २ हाब्रो + औ

$$[2HBrO = 2HBr + O]$$

ब्रोमिन अनेक कार्बनिक पदार्थों से क्रिया कर व्युत्पन्न बनाता है।

हाइड्रोब्रोमिक अम्ल, हाब्रो (H Br), ब्रोमाइड के अतिरिक्त ब्रोमीन अनेक ऑक्सीजन अम्ल बनाता है, जैसे हाइपोब्रोमस अम्ल, हाब्रोऔ (HBrO), ब्रोमस अम्ल, हाब्रोऔ$_2$ ($HBrO_2$)। इन अम्लों के लवण प्राप्त हैं, जो रासायनिक क्रियाओं में उपयोगी हुए हैं। ब्रोमीन के अन्य हैलोजन तत्वों के साथ यौगिक प्राप्त हैं, जैसे, ब्रोक्लो (BrCl) ब्रोफ्लो$_3$ (BrF_3), ब्रोफ्लो$_5$ (BrF_5), आब्रो (IBr) आदि। ऑक्सीजन के साथ इसके तीन यौगिक प्राप्त हैं: ब्रो$_2$औ, (Br_2O), ब्रोऔ$_2$ (BrO_2) और ब्रोऔ$_3$ (BrO_3)। गंधक के साथ ग$_2$ब्रो$_2$ (S_2Br_2) यौगिक भी बनता है।

उपयोग — कार्बनिक व्युत्पन्नों के बनाने में ब्रोमीन का बहुत उपयोग हुआ है। एथीलीन ब्रोमाइड, का$_2$हा$_4$ब्रो$_2$ ($C_2H_4Br_2$) पेट्रोल उद्योग में ऐंटिनॉक (antiknock) के रूप में बहुत आवश्यक यौगिक है। अनेक कीटमारकों के निर्माण में ब्रोमीन का उपयोग होता है। ब्रोमीन के कुछ यौगिक, जैसे पोटैसियम ब्रोमाइड, ओषधि के रूप में और फोटोग्राफी क्रिया में काम आते हैं। सिलवर ब्रोमाइड, रब्रो (AgBr), प्रकाशसंवेदी (photosensitive) होने के कारण फोटोग्राफी प्लेट एवं कागज बनाने में बहुत मात्रा में काम आता है।

ब्रोमीन विषैला पदार्थ है। इसका वाष्प, आँख, नाक, तथा गले को हानि पहुँचाता है। चर्म पर गिरने पर यह ऊतकों को नष्ट करता है। इस कारण इसके उपयोग में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। [र० च० क०]

ब्लॉक बनाना आधुनिक पुस्तकों में दो प्रकार के चित्र छपते हैं, एक तो रेखाचित्र और दूसरे बिंदुचित्र। इनके ब्लाकों को क्रमश लाइन ब्लॉक और हाफटोन ब्लॉक कहते हैं। लाइन ब्लॉकों से एकरंगी रेखाएँ तथा धब्बे आते हैं, जिनके रंग की गहराई एक सी ही

होती है। हाफटोन ब्लॉको से रग के हलके और गहरे कई दरजे के टोन (tone) फोटो के जैसे आते हैं। हाफटोन ब्लॉक भी दो प्रकार के होते है, एकरगे और बहुरगे। आजकल प्रयुक्त सभी प्रकार के ब्लॉक फोटो की विधि से बनाए जाते हैं, क्योकि हाथ से इनका बनाना कठिन है, और फिर वे इतने सुदर भी नही बनते। उपर्युक्त आधुनिक विधि से ब्लॉक बनाने मे कुछ यत्रो तथा उपकरणो की आवश्यकता होती है जिनका ब्योरा सक्षेप मे इस प्रकार है

१ कैमरा — इस कैमरे की बनावट चित्र १ में दिखाई है,
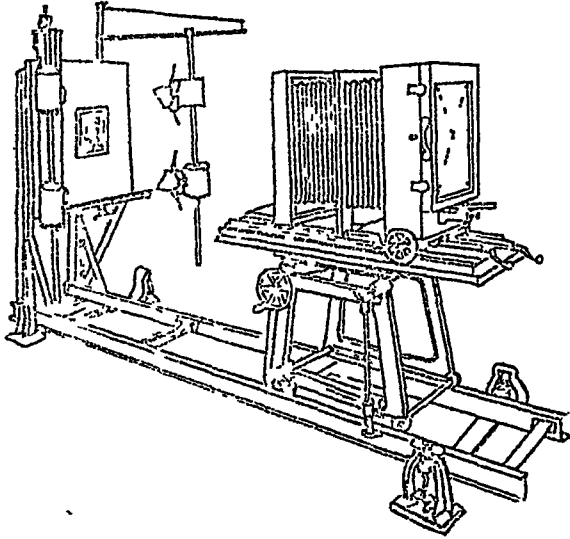
चित्र १ कैमरे का रेखाचित्र

जिसके स्टैंड का फ्रेम नीचे की तरफ से दो लबे रेलो के रूप मे होता है, जो स्प्रिंगदार चार पायो पर रखा रहता है।

२. निक्षारण (Etching) मशीन — ब्लॉक बनाने के सुग्राही
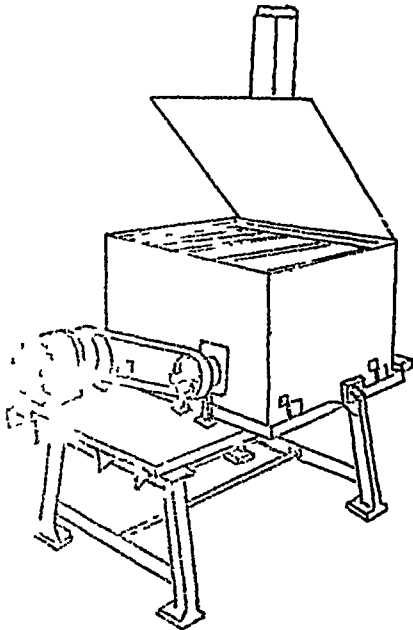
चित्र २ निक्षारण मशीन

प्लेट पर चित्र छाप लेने के बाद, उसे अम्ल से निक्षारण द्वारा उत्कीर्णित किया जाता है। यह काम फोटोग्राफी की तश्तरियो (dish) मे प्लेट पर तनु अम्ल का विलयन डालकर और उन्हें हिल हिलाकर भी किया जा सकता है, लेकिन चित्र २ मे दिखाई गई मशीन की टकी मे ब्लॉक के प्लेट को रखकर तथा एक नाप तक अम्ल भरकर, ढकना बद करने के बाद, मोटर चला देने से एक घूमती हुई फिरकी के अपकेंद्रण द्वारा अम्ल के छींटे उस प्लेट पर उछल उछलकर इस प्रकार गिरते हैं कि मिनटों मे ही उससे ब्लाक की रेखाएँ और बिंदियाँ बहुत स्पष्ट उभर आती हैं।

३ वैक्युअम प्रिंटिंग फ्रेम — चित्र के नेगेटिव से धातु के सुग्राही प्लेट पर चित्र छापने के लिये फोटोग्राफरो का साधारण प्रिंटिंग फ्रेम भी काम मे आ सकता है, लेकिन उसमें कमानियो का दवाव सव
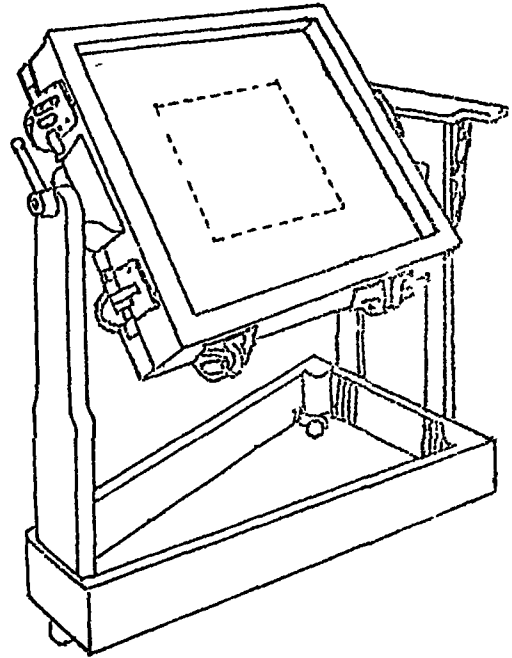
चित्र ३. वैक्युम प्रिंटिंग फ्रेम

जगह एक सा न पडने के कारण प्रकाश का एक सा अच्छा असर नही होता। अत चित्र ३ मे दिखाए गए प्रिंटिंग फ्रेम का उपयोग करने से निर्वात के प्रभाव से नेगेटिव और धातु के सुग्राही प्लेट के तल एक दूसरे से बिलकुल सट कर मिल जाते हैं, अत सुग्राही प्लेट पर प्रकाश का एक समान सब जगह अच्छा असर होता है। चित्र मे दाहिने हाथ की तरफ निर्वात (vacuum) करने की नली दिखाई गई है।

४ राउटिंग मशीन — ब्लॉको की खुदाई अम्ल से कर चुकने के बाद, जस्ते अथवा ताँबे की चादर के खुले, अर्थात् रेखारहित, बड़े बडे स्थानो को राउटिंग मशीन से काटकर निकाल देते हैं, जिससे छपाई करते समय वहाँ रोशनाई के लचीले बेलन के कुछ धस जाने पर रोशनाई न लगने पाए। चित्र ४ मे इस मशीन की आकृति दिखाई गई है। इसकी बनावट कारखानो मे प्रयुक्त होनेवाली खडी मिलिंग (milling) मशीन और सवेदनशील नाजुक बरमे से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इसमे एक बरमा बिजली के मोटर से तीन चार हजार चक्कर प्रति मिनट की रफ्तार से घूमकर अना-

वश्यक भागों को छीलकर निकाल देता है। अत इसके द्वारा काम बहुत जल्दी और अच्छा होता है। इस यत्र के अभाव में यही काम
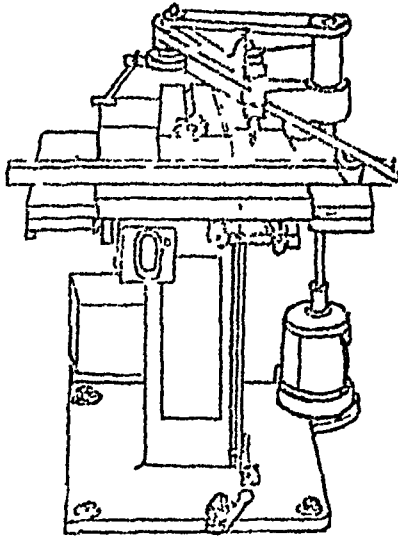
चित्र ४ राउटिंग मशीन

फ्रेट सॉ से भी किया जा सकता है। हाफटोन ब्लॉकों के लिये तो उक्त यत्र का होना अत्यत ही आवश्यक है।

५ गोल आरी — ब्लॉक तैयार होने पर और लकड़ी पर जड़ने के पहले, उसके चारो किनारे सीधे और समकोण पर बनाए जाते हैं। यह काम मोटर से चलनेवाली एक गोल आरी मशीन से किया जाता है। यह छोटा यत्र लकड़ी के चीरघरो के बड़े गोल आरे के नमूने पर ही बना होता है। इसकी आरी के ऊपर काच के प्लेट का
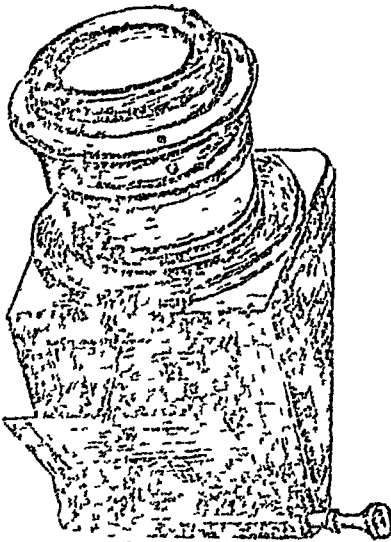
चित्र ५ लेंस

एक गार्ड लगा रहता है, जिससे ब्लाक के प्लेट को सीधा करने का काम करते समय धातु का जो बारीक बुरादा उड़ता है, आँख में नहीं जाने पाता और काच के भीतर से कटाई का काम भी ध्यान से देखा जा सकता है।

६. रदा मशीन — ब्लॉक का प्लेट लकड़ी पर जड़ने के बाद, उस सबकी ऊँचाई टाइप के ठीक बराबर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। यह यत्र कुछ बढ़ई के रदानुमा होता है। यह एक जिग (jig) के सहारे से लकड़ी को सही छीलता है और हाथ से चलाया जाता है। दूसरी मशीन गोल प्लेट की चकरीनुमा होती है, जो रूटी मिलिंग की भाँति घूमकर काटती है, इसका सचालन एक मोटर द्वारा किया जाता है और इसमें ब्लॉक स्वय ही आगे सरकता रहता है।

७ कैमरे के सहायक उपकरण — (क) कैमरे के लिये लेंस बड़ी ही महत्व की वस्तु है। अत फोटो उत्कीर्णन के लिये सदैव अनबिंदुक (Anastigmatic) लेंस ही होना चाहिए, जो तीन या अधिक सरल लेंसों को मिलाकर बनाया जाता है। इन लेंसों के होल्डर मे एक खाँचा बना होता है, जिसमे छेद को छोटा बड़ा करने के डायफाम और उनके आवश्यक स्टॉप लगे रहते हैं। इस काम में इन स्टॉपो का बड़ा महत्व होता है, क्योंकि इनकी स्थिति के अनुसार ही स्क्रीन की बिंदियों की संख्या का निश्चय किया जाता है।

(ख) प्रिज्म — सीधी छपाई (direct printing) के सब तरीकों मे हाफटोन चित्रों के लिये नेगेटिव को सदैव उलटना पड़ता है,
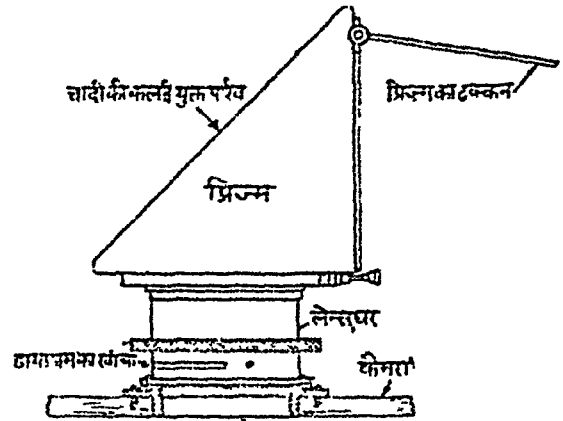
चित्र ६

अर्थात् बाएँ से दाएँ को। अत यह काम प्रकाश की किरणों को लेंसो में से गुजरने के पहले एक त्रिपार्श्व प्रिज्म मे से गुजारने से होता है। साधारण फोटो का नेगेटिव उलटा होता है। उसके द्वारा सुग्राही कागज पर चित्र सीधा छप जाता है। लेकिन ब्लॉक बनाने के लिये सुग्राही कागज का स्थान ब्लॉक का सुग्राही प्लेट ले लेता है, जो नेगेटिव ही होना चाहिए। तभी पुस्तक में वह सीधी आकृति छाप सकता है। अत इसी उद्देश्य से प्रिज्म का उपयोग किया जाता है। प्रिज्म के कर्णीय स्थानवाले पार्श्व पर चाँदी की कलई चढ़ी होती है, जो दर्पण का काम करती है।

(ग) स्क्रीन — हाफटोन चित्रो की बनावट बहुत ही छोटे छोटे दानो से मिलकर होती है, जिनके कारण ही चित्र मे हलकी और गहरी झाइयाँ (tone) आ पाती हैं। इस प्रकार के बिंदु बनाने के

लिये काच के स्क्रीनो का उपयोग किया जाता है, जिन्हे काच के सुग्राही प्लेट के ठीक पहले कैमरा मे लगा दिया जाता है, जिससे प्रकाश उस स्क्रीन मे से छनकर ही सुग्राही प्लेट पर पहुँचे। प्रत्येक स्क्रीन दो काच के प्लेटों को एक दूसरे के ऊपर चिपका कर तैयार किया जाता है। इस पर बहुत पास पास, ४५° के कोण पर, बहुत बारीक बारीक समातर रेखाएँ, हीराकनी की रुखानी से यत्र द्वारा समविभाजित अतरो पर खोदकर, उनमे काला रग भरकर, एक दूसरे पर इस प्रकार से चिपका दिया जाता है कि दोनों काचो की रेखाएँ आमने सामने रहते हुए एक दूसरी को समकोण पर काटती हुई हो, जिससे एक चौकोर जाली के समान दिखाई पडे। चित्र ७ क, ख और ग मे
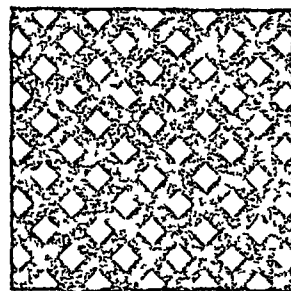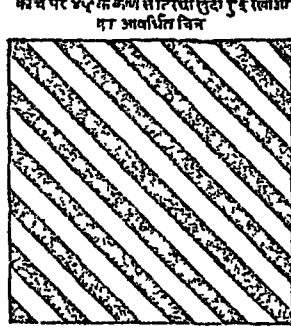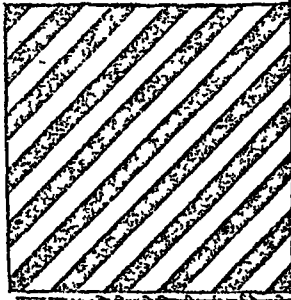
चित्र ७ स्क्रीन

इन रेखाओ को बहुत ही परिवर्धित करके दिखाया गया है। वास्तव में ये रेखाएँ बहुत ही बारीक तथा नजदीक होती हैं। इनकी गिनती प्रति इच ४५ से लेकर २२५ तक होती है। प्रति इच रेखाओ की सख्या से ही स्क्रीनो का नाम व्यक्त किया जाता है।

४५,५५,६५ और ८५ नबर के स्क्रीनो से बने ब्लॉकों का उपयोग सस्ते कागज, अथवा समाचारपत्रो के घटिया कागज, पर छापने के लिये किया जाता है। इनका स्टीरियो (stereo) भी अच्छा बन जाता है। १००, ११०, १२०, १३३ न० के स्क्रीनो से बने ब्लॉक, मशीन फिनिश, सुपर कैलेंडर्ड और इमिटेशन आर्ट के कागजो पर अच्छे छपते है। साप्ताहिक या मासिक पत्रिकाओं के लिये १२० स्क्रीन अच्छा होता है। तिजारती सूचीपत्रो, फोल्डर आदि के लिये १३३ स्क्रीन के ब्लॉक अच्छे समझे जाते हैं। १५० और १७५ स्क्रीन के ब्लॉक बहुत बढिया काम के लिये, बहुत ही बढिया कागज पर, छापे जाते हैं। २०० और २२५ स्क्रीन के ब्लॉक वैज्ञानिक चित्रो के लिये ही प्रयुक्त होते हैं, जिनमे बहुत बारीकियाँ दिखाई जाती हैं।

(घ) रगीन फिल्टर — रगीन चित्रो के लिये हाफटोन ब्लॉक बनाते समय मूल चित्र से प्रकाश की किरणें कैमरे के प्रिज्म, लैंस और प्लेट के पास लगे स्क्रीन मे से ही होकर नही गुजरती, बल्कि लैंसो के पीछे लगे विशेष रगो के काच द्वारा बने प्लेटो, जिन्हें वर्ण फिल्टर कहते हैं, मे से भी होकर गुजरती हैं, ये प्रकाशत बहुत ही समतल (optically flat), समरस, रगीन काचो के होते हैं। इनके रगो का नमूना फलक के चित्रो मे दिखाया है।

जब लैंस मे से होकर फोटो प्लेट पर प्रकाश जाने लगता है, तब उस फिल्टर के कारण उसके पूरक रगो (complementary colours) का प्रकाश ही उक्त फोटो प्लेट तक जा पाता है और अन्य रगो के प्रकाश को वह सोख लेता है।

लाइन ब्लॉक — सफेद कागज पर काली, अथवा किसी भी गहरे एकरस रग की रोशनाई की रेखा वाले, अथवा बडे धब्बोयुक्त चित्रो को, रेखाचित्र कहते हैं। इन्हे बनाने के लिये पूर्ववर्णित कैमरे से मूलचित्र का फोटो इच्छित नाप के अनुसार (कुछ छोटा करके) फोटोग्राफिक प्लेट पर लेकर उसे डेवेलप (develop) कर लिया जाता है। फोटो लेने के विशेष प्रकार के प्लेट बनाए जाते हैं, जिन्हें प्रोसेस (process) प्लेट कहते हैं। ये या तो कॉलोडियन युक्त गीले प्लेट होते हैं, या इमल्शनयुक्त सूखे प्लेट होते हैं।

अब नेगेटिव से जस्ते अथवा ताँबे के सुग्राही प्लेट पर चित्र को उतारने की बारी आती है। लाइन ब्लॉक साधारणतया जस्ते के प्लेट पर ही बनाए जाते है, क्योकि वह सस्ता पडता है। जस्ते का सुग्राही प्लेट मसाला चढा तैयार भी खरीदा जा सकता है और चाहें तो स्टूडियो मे भी तैयार किया जा सकता है।

अब प्लेट को जरा सा गरम कर उसपर तालरक्त (dragon blood) का बारीक चूर्ण भुरक देते हैं। जस्ते को गरम करने से उसपर लगी स्याही चिपचिपी हो जाती है। अत. जहाँ जहाँ स्याही रहती है वहाँ वहाँ तालरक्त चिपक जाता है और फालतू ताल-रक्त ब्रुश से झाड दिया जाता है। फिर चादर को इतना गरम करते हैं कि रेखाओ पर लगा तालरक्त पिघल तो जाए, परतु जलने न पाए। जस्ते के प्लेट को आँच से हटाने के बाद पानी से भीगे, फलालैन मढ़े बेलनों पर फेरकर जल्दी से ठढा कर लेते हैं। अब प्लेट की कोरी पीठ और किनारो पर चपड़े और स्पिरिट द्वारा बना वार्निश पोतकर निक्षारण मशीन में डालने से, जहाँ जहाँ तालरक्त चिपका रहता है, अथवा वार्निश लगा रहता है, वहाँ वहाँ अम्ल जस्ते को नही खा सकता। इस काम के लिये मशीन की टकी मे नाइट्रिक अम्ल का विलयन डाला जाता है।

पहली बार जस्ते को अम्ल में केवल आधे मिनिट तक रखते हैं, क्योंकि अधिक समय रखने से रेखाओं की बगल को भी अम्ल खा जाता है और रेखाएँ कटकर निकल जाती हैं। अत अम्ल से निकालकर बहते पानी से धोकर जस्ते को सुखा लेते हैं और फिर नरम बुरुश को बराबर एक दिशा में चलाकर तालरक्त का बारीक चूर्ण जस्ते की रेखाओं पर पोतने की चेष्टा करते हैं। स्वभावत चूर्ण केवल रेखाओं के पास ही ठहर पाता है, सपाट जगहों मे बुरुश की रगड से हट जाता है। अब जस्ते को गरम कर, उस एक तरफ से लगे तालरक्त को पिघलाकर पक्का कर लेते हैं। तब उलटी दिशा से ठीक पहले की तरह तालरक्त लगाकर उसे पिघलाकर पक्का कर लेते हैं। फिर इसी प्रकार क्रमश ऊपर और नीचे की तरफ से बुरुश चलाकर तालरक्त लगाते हैं। लेकिन इस तीसरी और चौथी बेर लगाते समय भी चादर को पहले की तरह ही पट, अर्थात क्षैतिज धरातल में, रखते हैं। इस प्रकार रेखाओं के चारों तरफ पिघला हुआ तालरक्त चिपक जाता है।

उक्त क्रिया के बाद प्लेट को फिर अम्ल मे डालते हैं और अबकी बार उसे दो मिनट तक अम्ल के पात्र में रहने देते हैं। इसके बाद फिर प्लेट को धो और सुखाकर, बारी बारी से चारों ओर से तालरक्त लगा और पिघलाकर, फिर अम्ल मे डालते हैं। यह क्रिया कई बार दोहराई जाती है जब तक कि रेखाएँ काफी उभरी हुई न दिखाई पड़ें।

फिर प्लेट को धोकर, राउटिंग मशीन से फालतू भाग काटकर, निकाल देते हैं और फिर यथाविधि लकडी पर जड देते हैं।

हाफटोन चित्र — हाफटोन चित्रों के ब्लॉक बनाने की विधि सिद्धांतत तो वही है, जैसी ऊपर लाइन ब्लाकों के लिये बताई गई है। अंतर केवल नेगेटिव बनाने की विधि में ही है। इस प्रकार के चित्रो में हलकी और गहरी अनेक प्रकार की टोन (tone) प्रदर्शित करनी पड़ती है। यह जस्ते या ताँबे के ब्लॉकों के प्लेटों पर बहुत छोटी छोटी बिंदियों के आपसी फासले के द्वारा प्रदर्शित की जाती है। किसी आर्ट पेपर पर छपे बढिया चित्र को यदि प्रवर्धक ताल से देखा जाए, तो चित्र में अगण्य बिंदियाँ ही बिंदियाँ दिखाई देंगी। जहाँ चित्र काला है वहाँ ये बिंदियाँ एक दूसरे से सटी हुई दिखाई देती हैं और जहाँ चित्र प्राय श्वेत है वहाँ बहुत विरल और छोटी दिखाई देती हैं। वास्तव मे इन बिंदियों के घनीभूत तथा विरल होने के कारण ही चित्र कहीं अधिक और कहीं कम काला जान पडता है। इस प्रकार से बिंदियाँ बनाने के लिये कैमरे मे सुग्राही प्लेट के बहुत निकट, सामने की तरफ जिधर से प्रकाश लेंस में से आता है, एक चारखानेदार शीशा लगा दिया जाता है, जिसे हाफटोन स्क्रीन कहते हैं। देखें चित्र ७ (ग)। चित्र ८ मे इसके लगाने का स्थान भी बताया है। चित्र को देखने से मालूम होगा कि कैमरे मे ऐसा प्रबंध रहता है कि उसके बाहर लगे एक हत्थे को चलाने से वह स्क्रीन प्लेट के बहुत पास तक लाया जा सकता है। स्क्रीन का प्लेट से फासला जानने का सूचक भी हत्थे के पास ही लगा है। स्क्रीन का उपयोग करते समय यह ध्यान रखना परमावश्यक है कि वह नेगेटिव बननेवाले सुग्राही प्लेट के समानर दूरी पर रहे, अर्थात स्क्रीन के चारों कोने सुग्राही प्लेट के धरातल से ठीक समान दूरी पर रहें। इससे बिंदियाँ सब एक नाप की बनेंगी, क्योंकि स्क्रीन की रेखाओं के बीच में रहनेवाली पारदर्शक बिंदियों के भीतर से ही फोटो से जो प्रकाश आने पाता है वही काली बिंदियो के रूप में सुग्राही प्लेट पर अकित हो जाता है। प्रति इंच जितनी ही अधिक रेखाएँ होंगी उतनी ही बारीक बिंदियो का ब्लॉक बनेगा और छपा हुआ चित्र उतना ही सुंदर लगेगा, क्योंकि टोन खूब मिली हुई दिखाई देंगी। स्क्रीन और सुग्राही प्लेट के बीच की दूरी स्क्रीन की बारीकी, कैमरे के लेंस के छेद और अन्य कई बातों पर निर्भर करती है। अत स्क्रीन को उचित दूरी पर रखकर फोटो लेने से ही सही बिंदियाँ बन सकती हैं। लेंस के साथ प्रिज्म लगाकर फोटो लेते समय कैमरे की मध्य रेखा को रेलनुमा नीचे के फ्रेम से समकोण पर घुमाकर रखना होता है, जैसा चित्र ८ मे दिखाया गया है। इस स्थिति में ही प्रिज्म का मुँह चित्रपट की ओर हो सकता है। सादी फोटो लेने के लिये प्रिज्म को निकालकर सीधे कैमरे का उपयोग किया जाता है। प्रकाश द्वारा उद्भासन के बाद नेगेटिव को साधारण रीति से डेवलप तथा स्थायी कर, जस्ते या ताँबे के सुग्राही प्लेट पर छापने की बारी आती है, जिसके लिये पूर्ववर्णित वैक्युअम फ्रेम का उपयोग करने से बिंदियाँ बहुत ही साफ छपती जाती हैं।

प्लेट के मसाले पर प्रकाश की रासायनिक क्रिया के कारण, जिस जिस भाग पर प्रकाश पडता है उसका मसाला बाहर से अविलेय हो जाता है और शेष विलेय बना रहता है। अत प्रकाश द्वारा उद्भासन के बाद प्लेट को पानी की हलकी फुहार के नीचे अँधेरी कोठरी में रखकर धोया जाता है, जिससे बिंदियों के बीचवाले खाली स्थानों से मसाला पानी में घुलकर बह जाय। इसके बाद उस प्लेट को विशेष प्रकार के बैंगनी रंग मे डुबोते हैं, जिससे बिंदियाँ अपने मसाले के रँगे जाने के कारण स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। अत चित्र में यदि कहीं कोई त्रुटि रह जाती है तो अब स्पष्ट दिखाई देने के कारण उसे ठीक कर दिया जाता है। अब उस धातु के प्लेट को खूब गरम कर धीरे धीरे ठंढा करते हैं, जिससे उसपर चढा मसाला इतना कडा हो जाता है कि अम्ल से भी नहीं कटता। फिर इस प्लेट की बगलियों तथा पीठ को चपडा और स्पिरिट मिला वार्निश लगाकर अम्लसह बना देते हैं। इसके बाद उसे सिरका और नमक मिले पानी से धोते हैं, जिससे कि बारीक बिंदियों के बीच के खाली स्थान पर जरा सा भी मसाला न लगा रहे। फिर उसे साफ बहते पानी से धोते हैं।

यदि वह प्लेट ताँबे का हो, तो उसे आयरन-पर-क्लोराइड, अथवा तूतिया के विलयन मे डालकर, बिजली चालू कर देते हैं, जिससे ताँबा धीरे धीरे कटने लगता है और बिंदियो के बीच के स्थानो में कुछ गहरा हो जाता है। यदि जस्ते के प्लेट पर ब्लॉक बनाना हो तो नाइट्रिक अम्ल का उपयोग किया जाता है। अम्ल का उपयोग करते समय पूर्ववर्णित निक्षारण मशीन से काम लेते हैं। एक निश्चित समय बाद उन प्लेटो की जाँच की जाती है और जहाँ जहाँ बिंदियों के बीच की जगह काफी गहरी हो जाती है, वहाँ वहाँ एक विशेष प्रकार की वार्निश पोतकर उन्हें सुरक्षित कर देते हैं और शेष भागों के और अधिक उत्कीर्णन के लिये बिजली के अथवा निक्षारण यंत्र में रख देते हैं। इस प्रकार चार पाँच बार में बारीक बिंदियाँ भी स्पष्ट हो जाती हैं। यदि बीच बीच मे सँभाल के साथ

वार्निश पोतकर नाजुक भागो की रक्षा न की जाए, तो उन भागो की विंदियाँ आवश्यकता से भी इतनी अधिक छोटी हो जाती हैं कि छापने पर चित्र बहुत फीका लगता है। निक्षारण के बाद के सब काम लाइन ब्लॉको के समान ही होते हैं।

बहुरगे हाफटोन चित्र — बहुरगे हाफटोन चित्रो के ब्लॉक बनाने के सबध मे हमे पहले यह जानना चाहिए कि सफेद प्रकाश के स्पेक्ट्रम मे मूल रग केवल तीन ही होते हैं, पीला, लाल, और नीला। शेष अन्य प्रकार के दिखाई पडनेवाले रग इन्ही के हलके और गहरे मिश्रण से बन जाते हैं। अत रगीन चित्र छापने के लिये इन तीनों रगो के अलग अलग ब्लॉक बनाकर, तथा एक के ऊपर एक छाप देने पर, रगो का मिश्रण हो जाने से अनेक रगो के टोन दिखाई देने लगते हैं। फलक के चित्र मे ड, च, और ज क्रमश पीले, लाल और नीले रग के हलके गहरे टोन युक्त तीन ब्लॉक हैं। ड ब्लाक को पहले छापकर उसपर च ब्लाक छाप देने से दो रगो की झाँइयाँ मिलकर छ के समान दिखाई देने लगती है, और इसी के ऊपर नीले रग का ज चिह्नित ब्लॉक छाप देने से झ के समान बहुरगी वर्णपट बन जाता है। किस रग के कितने टोन के मिश्रण से कौन सा रग बनता है, यह चित्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। बहुरगे मूल चित्र मे से मूल रगो का विश्लेपण कर अलग अलग नेगेटिव बनाने के लिये लेंस के पीछे किसी विशेष रग का फिल्टर लगाना होता है, जिससे वह नेगेटिव अपने ही रग के गहरे और हलके टोनो को यथास्थान अकित कर सके। कैमरे में फिल्टर लगाने का स्थान चित्र ८. मे बताया गया है। फिल्टरो का रग फलक के चित्र मे क, ख, ग और घ मे दिखाया है। ये केवल अपने ही सपूरक रगो की किरणो को अपने मे से आर पार जाने देते हैं और शेष को अपने मे सोख लेते हैं। उधर सुग्राही प्लेट भी पैंक्रोमैटिक (panchromatic) प्रकार के होने चाहिए।
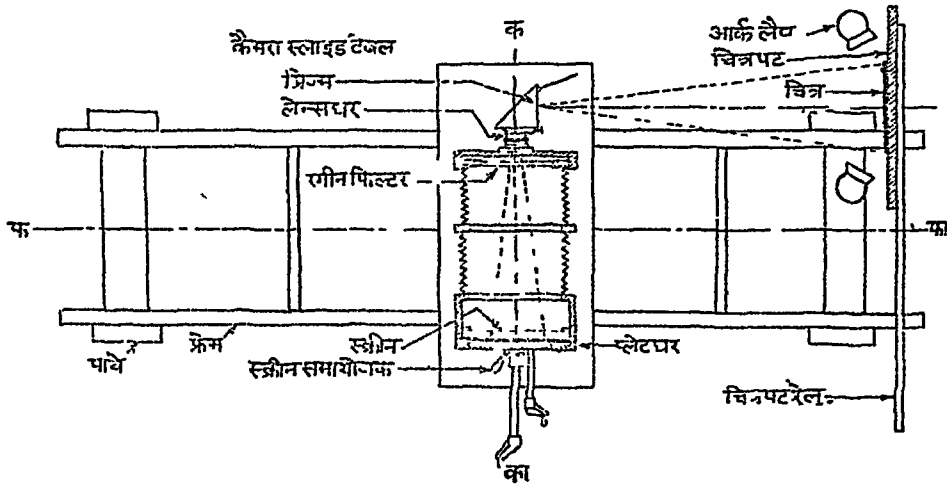
जैसा एकरगे हाफटोन ब्लॉक के सबध मे बताया गया है कि सुग्राही प्लेट के सामने प्रकाश के मार्ग में बारीक चारखानेदार एक स्क्रीन लगा दिया जाता है, वैसा ही स्क्रीन रगीन ब्लॉक बनाते समय भी लगाना पड़ता है, लेकिन वह इस प्रकार का गोल घूमनेवाला बनाया जाता है कि उसके चारखाने की पक्तियो को घुमाकर किसी भी कोण पर जमाया जा सकता है। जबकि साधारण हाफटोन ब्लॉकों के स्क्रीन की धारियो का कोण ४५° ही रहता है, रगीन ब्लॉको के नेगेटिव बनाते समय प्रत्येक रग के लिये विशेष कोण ही नियत हैं, जिससे छपाई के समय जब एक पर दूसरे रग के ब्लॉक छापे जाएँ तो मिश्रित रगों के स्थानो मे मखमलीपन (moired effect) आने के स्थान पर कोई और ही प्रकार की अवाछनीय आकृतियाँ न बन जाएँ। अत ऊर्ध्वाधर दिशा से यदि एक रंग के दानो की पक्तियो के झुकाव का कोण ४५° रखा जाता है तो दूसरे रग के लिये ७५° और तीसरे के लिये १५° रखा जाएगा। प्रकाश द्वारा उद्भासन के बाद उन नेगेटिवो से ताँबे के सुग्राही प्लेटो पर छापने, उन्हें डेवेलप करने तथा तेजाब आदि से उत्कीर्ण करने की विधियाँ ठीक वैसी ही होती हैं जैसी इकरगे हाफटोन ब्लॉको के लिये बताई जा चुकी हैं। लेकिन रगीन ब्लॉकों को उत्कीर्ण करने के लिये उत्कीर्णक मे बडी कुशलता, नैपुण्य तथा अनुभव होना चाहिए, क्योकि दानो की गहराई मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतर पड जाने से रग के टोन मे बडा अतर पड जाता है। अत उत्कीर्णक मे विविध रगो के टोनो को मूल रगो मे विश्लेपित कर उनके हलके और गहरेपन का सही अनुमान लगाने की योग्यता होनी चाहिए। तेजाब से उत्कीर्ण करते समय कहाँ कितना कम उत्कीर्ण करना है और कहाँ कितना ज्यादा करना है, इसके लिये वहाँ पर वार्निश आदि लगाकर उचित नियत्रण भी करना पडता है। कई बार प्रूफ भी उठाने पडते हैं और ऐसा काम करना होता है कि अत मे छपाई करने पर ब्लॉकों से छपा चित्र मूल चित्र से बिलकुल मिल जाए।

चित्र ८ फोटो लेते समय कैमरे का सयोजन

आजकल एक चौथे रग के ब्लॉक का भी रगीन छपाई मे उपयोग किया जाता है, जिसके द्वारा सलेटी (grey) काला रग छपता है। जैसे अन्य तीन रगो का फिल्मो के द्वारा विश्लेषण कर लिया जाता है वैसे इसका विश्लेषण नही हो सकता, क्योकि काले रग मे सभी रग मिश्रित रहते हैं। फिर भी काले रग से छापने का ऐंबर नेगेटिव बनाते समय, अबरी रग के फिल्टर का प्रयोग किया जाता है (देखें फलक मे चित्र घ)। इस फिल्टर के द्वारा चित्र की समस्त शेड (shade) यथास्थान आ जाते हैं। इसके छापने पर प्रत्येक रग को आवश्यक गहराई प्राप्त होकर चटकपना आ जाता है और चित्र का फीकापन भी नष्ट हो जाता है तथा छोटी छोटी त्रुटियाँ भी ठीक हो जाती हैं। बनाते समय ब्लॉको का निरीक्षण करनेवाले उत्कीर्णक के लिये यह मार्गदर्शन प्लेट का भी काम देता है।

स० ग्र० — श्री कृष्णप्रसाद दर . आधुनिक छपाई, लॉ जरनल प्रेस, इलाहाबाद; डॉ० गोरखप्रसाद फोटोग्राफी।

[ओं० ना० श०]

ब्लैक, जोसेफ (Black, Joseph, सन् १७२८–९९), प्रसिद्ध रसायनज्ञ, का जन्म बॉर्डो में हुआ था। बेलफास्ट (आयरलैंड) में उनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। १७४६ ई० मे वे ग्लासगो विश्वविद्यालय मे ओषधविज्ञान पढने के लिये भर्ती हो गए और डा० क्यूलेन की शिष्यता मे इन्होने यहाँ रसायन का भी अध्ययन किया। १७५१ ई० मे ये एडिनबरा विश्वविद्यालय मे ओषधविज्ञान का पाठ्यक्रम पूरा करने के लिये आ गए। यहाँ १७५४ ई० मे इन्होने अपना मौलिक निबंध 'भोजन द्वारा जनित अम्लता और मैग्नीशियम ऐल्बा' विषय पर प्रस्तुत किया। १७५६ ई० को एक क्रांतिकारी निबंध 'मैग्नीशिया ऐल्बा, बरी का चूना और अम्ल क्षारीय पदार्थ' विषयक प्रकाशित हुआ। यह कार्य वस्तुतः इन्होने १७५० ई० मे ही आरंभ कर दिया था। १७५६ ई० मे कार्बोनेटों पर और बरी के चूने (क्विक लाइम) पर प्रयोग करके ब्लैक ने यह सिद्ध कर दिया था कि चूने के पत्थर और बरी के चूने मे केवल एक गैस का अंतर है, जिसे आजकल हम कार्बन डाइऑक्साइड कहते हैं और जिसका नाम ब्लैक ने 'फिक्स्ड एयर या संयुक्तवायु' रखा था। लाव्वाज़ये (Lavoisier) ने इस गैस का नाम कार्बोनिक ऐसिड रखा था। १७६६ ई० मे क्यूलेन ने जब एडिनबरा छोडा, तो ब्लैक की नियुक्ति यहाँ के विश्वविद्यालय मे रसायन के प्रोफेसर के पद पर हो गई। यहाँ ये मृत्यु पर्यंत रहे। ब्लैक लोकप्रिय अध्यापक थे। इन्होंने विशिष्ट ऊष्मा एव गुप्त ऊष्मा पर भी जो प्रयोग किए और जो विचार प्रस्तुत किए (१७५७ ई०), उनका उपयोग जेम्स वाट ने स्टीम इंजिन बनाने मे किया। ब्लैक अच्छे चिकित्सक भी थे। [सत्य० प्र०]

ब्लैक सी (काला सागर) स्थिति ४३° ३०' उ० अ० तथा ३५° ० पू० दे०। यह लघु एशिया (टर्की) तथा दक्षिण-पूर्वी-यूरोप के मध्य स्थित पूर्व से पश्चिम ७४८ मील लबा तथा अज़ोव सागर सहित उत्तर मे दक्षिण ३७४ मील चौडा एक आतरिक सागर है। इसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्व मे रूस, दक्षिण मे टर्की तथा पश्चिम मे बलगेरिया एव रोमानिया देश हैं। इसकी औसत गहराई ३,९३० फुट है। उत्तर की ओर यह उथला तथा मध्य एव दक्षिण मे लगभग ७,३५० फुट तक गहरा हो जाता है। इसमे डैन्यूब, नीस्टर, बूग, नीपर, डॉन आदि बडी बडी नदियाँ गिरती हैं। इसका संबंध एक पतले मार्ग मारमारा और डार्डनेल्ज़ द्वारा भूमध्य सागर से है। इसमे द्वीप नही हैं। अज़ोव सागर भी एक पतले केर्च (kerch) जलसयोजक द्वारा इससे जुडा है। सागर का उत्तरी भाग जाडो मे जम जाता है किंतु दक्षिणी भाग का ताप लगभग ७° सें० रहता है। इसके किनारे पर कई प्रसिद्ध बंदरगाह हैं। [न० प्र०]

ब्लॉकमैन, हेनरी फरडीनेंड (१८३८–१८७८) का जन्म जर्मनी के ड्रेस्डन शहर मे ८ जनवरी, १८३८ को हुआ। उसके पिता छपाई का धंधा करते थे। ब्लॉकमैन ने ड्रेस्डन, लाइप्ज़िक और पैरिस मे शिक्षा प्राप्त की। १८५८ में अंग्रेजी फौज में भर्ती हुआ, किंतु शीघ्र ही फौज की नौकरी छोडकर पी० ऐंड ओ० (जहाजरानी क०) मे दुभाषिये के पद पर नियुक्त हो गया। वारन हेस्टिंग्ज़ द्वारा स्थापित कलकत्ता मदरसा में १८६० मे सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुआ। १८६१ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् तीन वर्ष तक डवटन कालेज मे प्राध्यापक रहा। १८६५ मे वह कलकत्ता मदरसा की सेवा मे वापिस आ गया, और अपनी मृत्यु तक उसका प्रेसीडेंट रहा। ब्लॉकमैन को प्रारंभ से ही एशियाटिक सोसाइटी मे विशेष दिलचस्पी थी और वह उसके भाषाशास्त्रीय विभाग (philological section) का सेक्रेटरी था। एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका मे ब्लॉकमैन के बहुत से लेख छपे। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य अबुल फजल की आईने-अकबरी की पहली जिल्द का अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद करना था। यह पुस्तक १८७३ मे पहली बार कलकत्ता से प्रकाशित हुई। इसका दूसरा संशोधित सस्करण १९२७ मे छपा। यह अनुवाद ब्लॉकमैन ने कई नुस्खो के आधार पर किया, और एक फारसी प्रतिलिपि भी तैयार की जो नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से (बिना ब्लॉकमैन का नाम बताए) १८८२ में प्रकाशित हुई।

ब्लॉकमैन का अनुवाद फ्रांसिस ग्लेडविन के अनुवाद की अपेक्षा, जो १७८३ मे छपा था, कहीं अधिक विश्वसनीय है। ब्लॉकमैन की पादटिप्पणियो ने इस पुस्तक को और भी मूल्यवान् बना दिया है। किंतु ब्लॉकमैन को आईने-अकबरी के सर्वश्रेष्ठ नुस्खे, जो ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित हैं, प्राप्त न हो सकने के कारण और भूमिव्यवस्था का समुचित ज्ञान न होने के कारण अंग्रेजी अनुवाद मे बहुत सी अशुद्धियाँ आ गई हैं। ब्लॉकमैन को फारसी और अरबी का बडा अच्छा ज्ञान था। उसने एक और पुस्तक दी प्रोसोडी ऑव द पर्शियज़ (The Prosody of the Persians) भी लिखी है। ब्लॉकमैन की मृत्यु १३ जुलाई, १८७८ को हुई।

स० ग्र० — सी० ई० बकलैंड कृत डिक्शनरी ऑव इंडियन बायोग्राफी [स० च०]

ब्वेनस एयरिज़ (Buenos Aires) १, प्रांत, स्थिति ३५° ०' द० अ० तथा ५८° ०' प० दे०। यह दक्षिणी अमरीका में अर्जेंटीना का सब से बडा और सर्वाधिक जनसख्यावाला प्रदेश है जो रीओ डि ला प्लाटा के मुहाने पर एव ऐटलैंटिक महासागर के किनारे स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग ३,७०,५६९ वर्ग किमी० और जनसख्या लगभग ५४,५७,७०० (१९६०) है। इसके दक्षिणी भाग मे स्थित सेयरा डैल टडील को छोडकर बाकी सपूर्ण प्रांत विस्तृत एव अत्यंत उपजाऊ मैदान है। कृषि और पशुपालन यहाँ के मुख्य व्यवसाय हैं। मास को डिब्बो मे भरना, मछली मारना और अनाज से खाद्य पदार्थ तैयार करना यहाँ के मुख्य उद्योग हैं। मुख्य नगरो मे ला प्लाटा (राजधानी), ब्वेनस एयरिज़, बाइआ ब्लैका (जलसेना का प्रधान केंद्र) और मरडेल प्लाटा (समुद्रतटीय क्रीडास्थल) प्रसिद्ध हैं।

२ नगर, स्थिति ३४° ३६' द० अ० तथा ५८° २२' प० दे०। यह नगर अर्जेंटीना देश की राजधानी है। तथा ऐटलैंटिक महासागर से लगभग २४० किमी० दूर रीओ डि ला प्लाटा नदी के दाहिने किनारे पर, समुद्री सतह से लगभग २० मीटर ऊँचाई पर स्थित है। इसे 'पूर्व का द्वार' कहा जाता है। पहले प्लाटा का मुहाना इतना छिछला था कि समुद्री जहाजो को भाटा के समय नगर से १६ किमी० दूर ही लंगर डालना पडता था। किंतु अब नदी की तली खोदकर गहरी बनाई गई है और दलदली भूमि को स्वास्थ्यप्रद बनाया गया है। इस नगर का क्षेत्रफल लगभग १९७ वर्ग किमी० और जनसख्या लगभग ३७,३३,००० (१९४७) है। यह राष्ट्र का सुव्यवस्थित

राजनीतिक, सास्कृतिक एव व्यावसायिक जीवन का मुख्य केंद्र बन गया है।

आज यह नगर सुप्रसिद्ध आधुनिक बदरगाह के रूप में प्राकृतिक कठिनाइयों पर मानव की विजय का प्रतीक बन गया है। एकाकार भवनो की आयताकार बस्तियो, पक्तिवद्ध वृक्षो से युक्त चौडे मार्गों तथा जलवितरण एव सफाई की नालियो और सुदर क्रीडास्थल एव उद्यानो से यह नगर सुसज्जित है। अच्छे होटलों की सख्या भी अधिक है। देश के औद्योगिक उत्पादन का ४० प्रति शत सामान इसी नगर मे बनता है। कपडा, आटा, तवाकू, मास तथा चमडे के उद्योग उल्लेखनीय हैं। देश का अधिकाश आयात तथा निर्यात इसी वदरगाह से होता है। शिक्षा की सुदर व्यवस्था है। भिन्न भिन्न स्तरो की अनेक शिक्षण सस्थाएँ एव पुस्तकालय हैं। यहाँ लगभग आधा दर्जन आकाशवाणी प्रसारण केंद्र हैं। यहाँ के नागरिको का जीवनस्तर अधिक ऊँचा है। [न० प्र०]

३ झील, ४६° ३५' द० अ० तथा ७२° ३०' प० दे०। दक्षिणी अमरीका मे चिली देश के दक्षिण-पूर्व मे आयसेन प्रात की, ७०५ फुट की ऊँचाई पर एक ताजे पानी की झील है जो ८० मील लबी तथा १३ मील चौडी है। अतरराष्ट्रीय सीमारेखा इसे उत्तर-दक्षिण काटती है। इसके चारो तरफ वन तथा पहाड़ हैं। [रा० प्र० सिं०]

भंडारा १ जिला, स्थिति २०° ४०' से २१° ४७' उ० अ० तथा ७९° २७' से ८०° ४०' पू० दे०। यह भारत के महाराष्ट्र राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर में बालाघाट, पूर्व मे दुर्ग, दक्षिण मे चाँदा और पश्चिम मे वर्धा एव यवतमाल जिले हैं। इसका क्षेत्रफल ३,५८२ वर्ग मील तथा जनसख्या १२,६८,२८६ (१९६१) है। जिले का पूर्वी भाग अधिकतर पहाडी है तथा अन्य क्षेत्रो मे भी वनो से आच्छादित पहाडियाँ हैं। यहाँ लगभग ३०० छोटी छोटी झीलें व तालाब हैं। उत्तर-पश्चिम मे ज्वार एव दक्षिण-पश्चिम मे धान तथा गेहूँ उत्पन्न होता है। यहाँ मैंगनीज खनिज के विस्तृत भडार हैं। मैंगनीज खोदना, सिगरेट आदि बनाना प्रमुख उद्योग हैं। यहाँ की जलवायु नागपुर से कुछ ठढी रहती है। गरमी का ताप लगभग ४४° सें० से ऊपर नही जाता। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग ५५ इच है। गोदिया, तुमसर तथा भडारा जिले के प्रमुख नगर हैं।

२ नगर, स्थिति २१° १०' उ० अ० तथा ७९° ४०' पू० दे०। भडारा जिले मे वेनगगा नदी के किनारे स्थित एक नगर है। यहाँ सूती कपडा, पीतल के तार आदि बनाने का कार्य होता है। पीतल के उद्योग मे इस नगर की ख्याति पूर्वकाल में अधिक रही है। इसीलिये पीतल की तश्तरी जिसको वहाँ 'भान' कहते हैं के आधार पर ही नगर का नाम भडारा पडा। नगर मे गाओलिस (Gaolis) का बनवाया एक किला है। यहाँ की जनसख्या २७,७१० (१९६१) है। [सु० च० श०]

भड़ैंती (फार्स) का साधारण अर्थ है निम्नकोटि का प्रहसन जिसका उद्देश्य भावभगी, मुद्रा, अभिनय, परिस्थिति या हँसी विनोद के द्वारा हास्य उत्पन्न करना होता है और जो चरित्र या रीति विषयक प्रहसनो (कोमेडी ऑफ कैरेक्टर्स ऐंड मैनर्स) से पूर्णत: पृथक् होती है (दे० प्रहसन)। हास्य नाटकों में तो भडैती (फार्स) को प्रधान तात्विक गुण ही समझना चाहिए। इस दृष्टि से उसके लक्ष्य का क्षेत्र केवल स्थानीय, सामारिक अथवा स्वयुगीन परिस्थितियो तक ही परिमित नही होता। मूकाभिनय के रूप मे तो वह भाषा के बधनो से मुक्त होने के कारण और भी उद्दाम होता है और प्रहसन के अत्यत अशिष्ट तथा विकृत रूपो तक व्याप्त रहता है। उसका प्रारभिक रूप सर्कस के विदूषक की भाव-भगियो और क्रियाओ तथा मूकनाटकों (पेंटोमीम) के हँसीविनोद में प्राप्त होता है जो अधिक से अधिक लोगो को क्षण भर हँसा देता है। ज्यो ज्यो यह अभिनय सूक्ष्म और कलात्मक होता चलता है त्यो त्यो उससे भावित होनेवाले दर्शको की सख्या भी कम होती चलती है क्योकि जब किसी अभिनीत भाव को समझाने के लिये शब्दो या वाक्यो की आवश्यकता पडती है और विचारहीन हास्य के बदले धीरे धीरे समझ की मुस्कराहट आने लगती है तब यह प्रेरणा तथा प्रभाव और छोटे मडल तक परिमित हो जाता है।

प्रारभ मे भडैती के लिये प्रयुक्त होनेवाला फार्स शब्द, जिसका अर्थ 'ठूँसना' (स्टफिग) है, उसी प्रकार की क्रियाओ के लिये आता था जो गिरजाघरो के कर्मकाड में बीच बीच मे होती रहती थी। इस भाव-साम्य के कारण इस शब्द का प्रयोग उन दृश्यो के लिये भी होने लगा जो फ्रास के रहस्यात्मक नाटक (मिस्तरे) के बीच मे व्यापक विनोद के लिये जोड दिए जाते थे। इस प्रकार के दृश्य अँगरेजी नाटकचक्र (साइक्लिक प्लेज), नैतिक नाटक (मोरेलिटी) और सतो के नाटक (सेंट्स प्लेज) मे बहुत पाए जाते हैं। १६वी शताब्दी मे रहस्यात्मक नाटको के समाप्त होने के पश्चात् भडैती (फार्स) और विनोदनाट्य (सोती) का प्रयोग छोटे हास्यनाटको के रूप में नाट्यातर दृश्य (इटरल्यूड) बनकर गभीर नाटको मे भी जा पहुँचे।

इग्लैंड मे सन् १८०० ई० के लगभग वे सब छोटे नाटक ही फार्स कहलाने लगे जो मुख्य नाटक के पश्चात् खेले जाते थे, चाहे वे जिस भी प्रकार के क्यो न हो और इसी लिये १९वीं शताब्दी मे उनका ठीक नाटकीय नामकरण न होने के कारण, उनके मूल रूप ही लुप्त हो गए और अपनी सूक्ष्मता के अतिरिक्त अन्य सब बातो में भडैती (फार्स) शब्द आचारनाटक (कोमेदी ऑव मैनर्स), हास्यनृत्य (वादेविले), अटर सटर (एक्सट्रावेगेंजा) और मूक, नाट्य (पेंटोमीम) से लेकर प्रहासक (बरलेस्क) के सब रूपो के लिये प्रयुक्त होने लगा। इन सभी रूपो मे हँसी, विनोद, भडैती, विचित्र वेशभूषा, विकृत भावभगी और अभिनेताओ की हास्यक्रिया ही अधिक होती थी और जब इनमे सवाद भी जोड दिया जाता था तब इनमे श्लेष, अभिनेता द्वारा बीच बीच में व्यग्य तथा विनोदपूर्ण बातें और सामयिक घटनाओ पर टिप्पणी भी होती चलती थी। १९वी और २०वी शताब्दी मे भडैती ने, प्रभाव की दृष्टि से शारीरिक क्रिया के प्रहसन का (फार्स ऑफ फिजिकल ऐक्शन) मूल रूप धारण कर लिया था।

शारीरिक क्रिया के फार्स तीन प्रकार से प्रचलित हुए जिन्हे विनोद मे आत्मघाती, पितृघाती और परघाती कहते हैं। इनमे से प्रथम अर्थात् आत्मघाती शारीरिक भडैती मे अभिनेता स्वय अपने

व्यावहारिक विनोद का आखेट बनता है। दूसरे मे विदूषक का साथी (जमूरा) मूर्ख बनाया जाता है। यह सहायक प्राय. दर्शको के बीच बैठा रहता है, मानो वह भी भोलाभाला दर्शक मात्र हो। इस प्रकार की सफलता से तीसरे प्रकार की भँड़ैती का जन्म हुआ जिसमे वहाँ उपस्थित प्रसिद्ध लोगो पर श्लेष और विनोद करने की प्राचीन परिपाटी के अतिरिक्त सीधे दर्शक ही फद मे फँसा लिए जाते हैं। जैसे—सामने दर्शको मे बैठे हुए किसी तुदिल या मोटे दर्शक की गोद मे सहसा एक भारी बरफ का ढोंका रख दिया जाता है, या समवेत गायक सामने दर्शको के बीच से अपने गीत मे सम्मिलित होने के लिये लोगो को पुकारते हैं जिससे वहाँ बैठी हुई स्त्रियो को तो बड़ी झुँझलाहट होती है किंतु अन्य सब को आनद मिलता है। इन सब प्रकार की भँड़ैतियो मे जो परिणाम होता है वह अधिक आनददायक होता है, विशेषत तब जब कि उस विनोद का आखेट पूर्णत लक्ष्य को ही उलट देता है। तीसरे प्रकार की शारीरिक भँड़ैती मे जिस व्यक्ति के साथ विनोद किया जाता है उसे पुरस्कार भी दिया जाता है जैसे, मोटे व्यक्ति की गोद मे बरफ रख देने के पश्चात् उसपर किसी पेय पदार्थ की बहुमूल्य बोतल भी रख दी जाती है और इस प्रकार दृश्य मे जनता के सहयोग की भावना अधिक प्रबल हो जाती है।

भारतीय भँड़ैतियो मे अश्लील उक्तियों और अश्लील विनोद का प्राधान्य रहता है और इस कारण निम्न प्रकार की वृत्तियों को तुष्ट करने तथा निम्न सस्कार के लोगो को प्रसन्न करने का प्रयास अधिक रहता है। विदेसिया नाटक जैसे लोकनाटको मे भी ऐसी भँड़ैतियो का अधिक समावेश होता है। काशी के भाँड और शाहपुर के नक्काल अपनी भँड़ैती के लिये प्रसिद्ध हैं जो केवल आगिक या वाचिक व्यग्य विनोद से ही नही वरन् यथातथ्य अनुकरण के द्वारा हास्य का रूप ही खड़ा कर देते हैं।

स० ग्र०—लियोरजेज एटीटयूड ऑव सम रेस्टोरेशन ड्रमेटिस्ट्स टुवर्ड फार्स, पी० क्यू० १९४०, एच० सी० लकास्टर फाइव फ्रेंच फार्सेज। (१६५५ से १६६४), १९३७, जे० एच० मकडोनल सम पिक्टोरियल आस्पेक्ट्स ऑव अर्ली कमीदिया; दलार्ते ऐक्टिंग, एस० पी० ३९, १९४२, कार्ल यग दि इन्फ्लुएंस ऑव फ्रेंच फार्स अपोन दी प्लेज ऑव जीन हे वुड, १९०४; डब्ल्यू० बेयर प्लाउत्स ऐंड दी फबूला अत्तेलाना, १९३०। [सी० च०]

भक्ति भजन है। किसका भजन? ब्रह्म का, महान् का। महान् वह है जो चेतना के स्तरो मे मूर्धन्य है, यज्ञियो मे यज्ञिय है, पूजनीयों मे पूजनीय है, सात्वतो, सत्वसपन्नो मे शिरोमणि है और एक होता हुआ भी अनेक का शासक, कर्मफलप्रदाता तथा भक्तो की आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाला है।

मानव चिरकाल से इस एक अनादि सत्ता—ब्रह्म में विश्वास करता आया है। आधुनिक विज्ञान ने प्रारभ मे इस विश्वास को कुछ धक्का पहुँचाया था, परतु वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धात हमे देश तथा काल को अतिक्रात करती हुई एक परम स्रष्टा की शक्ति मे विश्वास करने के लिये बाध्य करता है। जो वैज्ञानिक प्रकृति के विभिन्न रूपों में विश्वास करके आगे बढता है, वह ईश्वरविश्वास पर आपत्ति कैसे कर सकता है? विश्वास तर्क का आश्रय ग्रहण नही करता। वह एक मान्यता है। विज्ञान अपने अन्वेषणों से इस मान्यता को अधिक महनीय एव गभीर बना देता है। यह हृदयग्राह्य ही नही, बुद्धिगम्य रूप भी धारण कर लेती है।

हमारे हृदय मे नम्रता की एक भावना है जो श्रद्धा की सहज सगिनी है। यह भावना उस परम सत्ता का भी सकेत देती है, सकेत ही नही, उद्घोष भी करती है जिसके सामने हम आदरभाव मे प्रणत हो सकें। श्रद्धा की भावना प्रथम प्रशंसा, फिर आदर और पूजा की भावना में परिणत हो जाती है। यहाँ एक से बढकर एक प्रशसनीय और आदरणीय है, पर जो प्रशसनीयों का भी प्रशसनीय, श्रद्धेयों का भी श्रद्धेय और पूजनीयों का भी पूजनीय है, वही श्रद्धा-भावना का सबसे ऊँचा आधार है। वही भक्तिभाजन है—वही उपासनीय एव आश्रयणीय है।

जहाँ आधार है, वहीं श्रेष्ठता है और जहाँ श्रेष्ठता है, वहीं पवित्रता है। धार्मिक दृष्टि से जहाँ शुभ की सीमा है, पवित्रता की पराकाष्ठा है, वही ब्रह्म या भगवान् है। तत्वदर्शी ज्ञानी इसे ब्रह्म कहते है, कर्मकाडी इसे परमात्मा कहते हैं और भक्त इसी को भगवान् कहते हैं।

अन्वयव्यतिरेक की पद्धति हमे ससार की सत्तात्मकता से हटाकर चेतना के स्तरों मे ले जाती है, और वहाँ से भी हटाकर आनंद-धाम के अनुमान मे छोड़ देती है। भगवान हैं, काल्पनिक नही वास्तविक, जड नही चेतन, निरानद नही, स्वय आनदरूप। वे असीम हैं, देश और काल की परिधि से परे हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, अपने लिये किसी पर आश्रित नही हैं और आनद के धाम हैं। भक्त अपनी वृत्तियों को समेटकर उनमे केंद्रित कर देता है वह आत्मतृप्त और आत्मानदी बन जाता है। यह स्थिति भक्तिमार्ग द्वारा ही सपन्न होती है।

आनद न सत के प्रसार मे है, न चित्त के ज्ञान तथा प्रयत्न मे। उसका स्थान न शरीर है, न प्राण, न मन और न बुद्धि। विश्व का एक एक कण, उसका एक एक अवयव विवशता की वह्नि मे, दुख की दावा मे दग्ध हो रहा है। वह मानव को आनद कैसे दे सकता है? आनद का निकेतन भगवान् हैं। जड तथा जीव दोनों के वही विश्रामस्थल हैं, एकमात्र अवलबन हैं। इन्ही के साथ रहना, इन्ही गुणो मे रमण करना और इन्ही को अपना समग्र स्वत्व समर्पित कर देना आनदप्राप्ति का मार्ग है। यही मार्ग भक्तिकाड के नाम से प्रख्यात है।

भक्ति का ज्ञान और कर्म के साथ क्या सबध है? कर्म गति है, परतु विचारसहित। किसी गति के साथ जब विचार सम्मिलित हो जाता है, उसकी सज्ञा कर्म होती है। तमोगुणी व्यक्ति विचारशून्य होता है, अत जड कहलाता है। जडत्व के ऊपर राग-द्वेष-पूर्ण रजोगुण की स्थिति है। रजोगुणी व्यक्ति क्रियाशील होता है। रजोगुण से ऊपर सत्वगुण की स्थिति है। यह ज्ञान और प्रकाश का क्षेत्र है। तम रज मे तथा रज सत् मे विलीन हो जाता है। सत् किसमें विलीन होगा? भाव में। भक्ति एक भाव ही है। अतएव कर्म और ज्ञान का पर्यवसान भक्ति मे होता है। कर्म और ज्ञान दोनो ही भक्ति की उपलब्धि के लिये साधन बनते है। भक्ति स्वय आनदरूप प्रभु की प्राप्ति के लिये साधन रूप है।

भक्ति का सौंदर्यशास्त्र से भी घनिष्ठ सबध है। विश्व में जहाँ जहाँ सौंदर्य है—सु दर शरीर, शोभन प्राणवत्ता, शुभ्रचेष्टाएँ, आकर्षक आत्माएँ—वहाँ उस मूल सौंदर्य की शाश्वत सु दरता की शाखाएँ फूटकर आ गई हैं।

भक्ति साधन तथा साध्य द्विविध है। साधक साधन में ही जब रस लेने लगता है, उसके फलो की ओर से उदासीन हो जाता है। यही साधन का साध्य बन जाता है। पर प्रत्येक साधन का अपना पृथक् फल भी है। भक्ति भी साधक को पूर्ण स्वाधीनता, पवित्रता, एकत्वभावना तथा प्रभुप्राप्ति जैसे मधुर फल देती है। प्रभुप्राप्ति का अर्थ जीव की समाप्ति नही है, सयुजा और सखाभाव से प्रभु मे अवस्थित होकर आनद का उपभोग करना है। आचार्य रामानुज, मध्व, निंबार्क आदि का मत यही है। महर्षि दयानद लिखते हैं जिस प्रकार अग्नि के पास जाकर शीत की निवृत्ति तथा उष्णता का अनुभव होता है, उसी प्रकार प्रभु के पास पहुँचकर दु ख की निवृत्ति तथा आनद की उपलब्धि होती है। 'परमेश्वर के समीप होने से सब दोष दु ख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि पर्वत के समान दु ख प्राप्त होने पर भी वह नही घबराएगा और सबको सहन कर सकेगा।

ईसाई प्रभु मे पितृभावना रखते हैं क्योकि पाश्चात्य विचारकों के अनुसार जीव को सर्वप्रथम प्रभु के नियामक, शासक एव दडदाता रूप का ही अनुभव होता है। ब्रह्माड का वह नियामक है, जीवो का शासक तथा उनके शुभाशुभ कर्मों का फलदाता होने के कारण न्यायकारी दडदाता भी है। यह स्वामित्व की भावना है जो पितृभावना से थोडी हटकर है। इस रूप मे जीव परमात्मा की शक्ति से भयभीत एव त्रस्त रहता है पर उसके महत्व एव ऐश्वर्य से आकर्षित भी होता है। अपनी क्षुद्रता, विवशता एवं अल्पज्ञता की दु खद स्थिति उसे सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ एव महान् प्रभु की ओर खीच ले जाती है। भक्ति मे दास्यभाव का प्रारभ स्वामी के सामीप्यलाभ का अमोघ साधन समझा जाता है। प्रभु की रुचि भक्त की रुचि बन जाती है। अपनी व्यक्तिगत इच्छाओ का परित्याग होने लगता है। स्वामी की सेवा का सातत्य स्वामी और सेवक के बीच की दूरी को दूर करनेवाला है। इससे भक्त भगवान् के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है और उसके परिवार का एक अग बन जाता है। प्रभु उसे अपने सगे सबधी प्रतीत होने लगते हैं। प्रभु मेरे पिता हैं, मैं उनका पुत्र हूँ, यह भावना दास्यभावना से अधिक आकर्षणकारी तथा प्रभु के निकट लानेवाली है। उपासना शब्द का अर्थ ही भक्त को भगवान् के निकट ले जाना है।

वात्सल्यभाव का क्षेत्र व्यापक है। यह मानवक्षेत्र को अतिक्रात करके पशु एव पक्षियों के क्षेत्र मे भी व्याप्त है। पितृभावना से भी बढकर मातृभावना है। पुत्र पिता की ओर आकर्षित होता है, पर साथ ही डरता भी है। मातृभावना में वह डर दूर हो जाता है। माता प्रेम की मूर्ति है, ममत्व की प्रतिमा है। पुत्र उसके समीप नि शक भाव से चला जाता है। यह भावना वात्सल्यभाव को जन्म देती है। रामानुजीय वैष्णव सप्रदाय मे केवल वात्सल्य और कर्ममिश्र वात्सल्य को लेकर, जो मार्जारकिशोर तथा कपिकिशोर न्याय द्वारा समझाए जाते हैं, दो दल हो गए थे—टेंकले तथा बडकले एक केवल प्रपत्ति को ही सब कुछ समझते थे। दूसरे प्रपत्ति के साथ कर्म को भी आवश्यक मानते थे।

स्वामी तथा पिता दोनो को हम श्रद्धा की दृष्टि से अधिक देखते हैं। मातृभावना में प्रेम बढ जाता है, पर दापत्य भावना मे श्रद्धा का स्थान ही प्रेम ले लेता है। प्रेम दूरी नहीं नैकट्य चाहता है और दापत्यभावना में यह उसे प्राप्त हो जाता है। शृगार, मधुर अथवा उज्ज्वल रस भक्ति के क्षेत्र मे इसी कारण अधिक अपनाया भी गया है। वेदकाल के ऋषियो से लेकर मध्यकालीन भक्त सतों की हृदयभूमि को पवित्र करता हुआ यह अद्यावधि अपनी व्यापकता एवं प्रभविष्णुता को प्रकट कर रहा है।

भक्ति क्षेत्र की चरम साधना सख्यभाव में समवसित होती है। जीव ईश्वर का शाश्वत सखा है। प्रकृति रूपी वृक्ष पर दोनो बैठे हैं। जीव इस वृक्ष के फल चखने लगता है और परिणामत ईश्वर के सखाभाव से पृथक् हो जाता है। जब साधना करता हुआ भक्ति के द्वारा वह प्रभु की ओर उन्मुख होता है तो दास्य, वात्सल्य, दापत्य आदि सीढियो को पार करके पुन सखाभाव को प्राप्त कर लेता है। इस भाव मे न दास का दूरत्व है, न पुत्र का सकोच है और न पत्नी का अधीन भाव है। ईश्वर का सखा जीव स्वाधीन है, मर्यादाओ से ऊपर है और उसका वरेण्य प्रभु है। आचार्य वल्लभ ने प्रवाह, मर्यादा, शुद्ध अथवा पुष्ट नाम के जो चार भेद पुष्टिमार्गीय भक्तों के किए हैं, उनमें पुष्टि का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं . कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीन पुष्टिरुच्यते। सख्य भाव की यह स्वाधीनता उसे भक्तिक्षेत्र मे ऊर्ध्व स्थान पर स्थित कर देती है।

भक्ति का तात्विक विवेचन वैष्णव आचार्यों द्वारा विशेष रूप से हुआ है। वैष्णव सप्रदाय भक्तिप्रधान सप्रदाय रहा है। श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता के अतिरिक्त वैष्णव भक्ति पर अनेक श्लोकबद्ध सहिताओं की रचना हुई। सूत्र शैली मे उसपर नारद भक्तिसूत्र तथा शाडिल्य भक्तिसूत्र जैसे अनुपम ग्रथ लिखे गए। पराधीनता के समय मे भी महात्मा रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिंधु तथा उज्ज्वलनीलमणि और मधुसूदन सरस्वती ने भक्तिरसायन जैसे अमूल्य ग्रथो का प्रणयन किया। भक्ति-तत्व-तत्र को हृदयगम करने के लिये इन ग्रथो का अध्ययन अनिवार्यत अपेक्षित है। आचार्य वल्लभ की भागवत पर सुबोधिनी टीका तथा नारायण भट्ट की भक्तिचद्रिका भी पठनीय एव मननीय हैं।

नारद भक्तिसूत्र सख्या दो और शाडिल्य भक्तिसूत्र सख्या दो के अनुसार प्रभु मे पराकाष्ठा की अनुरक्ति रखना ही भक्ति है। परम प्रेमरूपा या परानुरक्ति के समान ही श्रीमद्भागवत मे भी भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है ·

> सवै पुसा परो धर्मो यतो भक्ति रधोक्षजे।
> अहैतुक्य प्रतिहता ययात्मा सप्रसीदति ॥ १ २ ६

भगवान् मे हेतुरहित, निष्काम एक निष्ठायुक्त, अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है। यही पुरुषों का परम धर्म है। इसी से आत्मा प्रसन्न होती है। 'भक्तिरसामृतसिंधु', के अनुसार भक्ति के दो भेद हैं—गौणी तथा परा। गौणी भक्ति साधनावस्था तथा परा भक्ति

सिद्धावस्था की सूचक है। गौणी भक्ति भी दो प्रकार की है, वैधी तथा रागानुगा। प्रथम मे शास्त्रानुमोदित विधि निषेध अर्थात् मर्यादा मार्ग तथा द्वितीय मे राग या प्रेम की प्रधानता है। आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित विहिता एव अविहिता नाम की द्विविधा भक्ति भी इसी प्रकार की है और मोक्ष की साधिका है। शाडिल्य ने सूत्रसख्या १० मे इन्ही को इतरा तथा मुख्या नाम दिए हैं।

श्रीमद्भागवत् मे नवधा भक्ति का वर्णन है

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वदन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्॥ ७,५,२३

नारद भक्तिसूत्र सख्या ८२ मे भक्ति के जो एकादश भेद हैं, उनमे गुण माहात्म्य के अदर नवधा भक्ति के श्रवण और कीर्तन, पूजा के अदर अर्चन, पादसेवन तथा वदन और स्मरण-दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन मे इन्हीं नामोंवाली भक्ति अन्तर्भुक्त हो जाती है। रूपासक्ति, कातासक्ति तथा वात्सल्यासक्ति भागवत के नवधा भक्ति-वर्णन मे स्थान नही पाती।

निर्गुण या अव्यक्त तथा सगुण नाम से भी भक्ति के दो भेद किए जाते हैं। गीता, भागवत तथा सूरसागर ने निर्गुण भक्ति को अगम्य तथा क्लेशकर कहा है, परतु वैष्णव भक्ति का प्रथम युग जो निवृत्तिप्रधान तथा ज्ञान-ध्यान-परायणता का युग है, निर्गुण भक्ति से ही सबद्ध है। चित्रशिखडी नाम के सात ऋषि इसी रूप मे प्रभुध्यान मे मग्न रहते थे। राजा वसु उपरिचर के साथ इस भक्ति का दूसरा युग प्रारभ हुआ जिसमे यज्ञानुष्ठान की प्रवृत्तिमूलकता तथा तपश्चर्या की निवृत्तिमूलकता दृष्टिगोचर होती है। तीसरा युग कृष्ण के साथ प्रारभ होता है जिसमे अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई तथा द्रव्यमय यज्ञों के स्थान पर ज्ञानमय एव भावमय यज्ञो का प्रचार हुआ।

चतुर्थ युग में प्रतिमापूजन, देवमदिर निर्माण, शृगारसज्जा तथा षोडशोपचार (कलश-शख-घटी-दीप-पुष्प आदि) पद्धति की प्रधानता है। इसमे वहिर्मुखी प्रवृत्ति है। पचम युग मे भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम के अतीव आकर्षक रूप दिखाई देते हैं। वेद का यह पुराण मे परिणमन है। इसमे निराकार साकार बना, अनत सात तथा सूक्ष्म स्थूल बना। प्रभु स्थावर एव जगम दोनों की आत्मा है। फिर जगम चेतना ही क्यो ? स्थावर द्वारा ही उसकी अभिव्यक्ति और भक्ति क्यो न की जाय ?

वैष्णव आचार्य, कवि एव साधक स्थूल तक ही सीमित नही, वे स्थूल द्वारा सूक्ष्म तक पहुँचे हैं। उनकी रचनाएँ नाम द्वारा नामी का बोध कराती हैं। उन्होने भगवान् के जिन नामो रूपो लीलाओ तथा धामो का वर्णन किया है, वे न केवल स्थूल मास-पिंडो से ही सबधित हैं, अपितु उसी के समान आधिदैविक जगत् तथा आध्यात्मिक क्षेत्र से भी सबधित हैं। राधा और कृष्ण, सीता और राम, पार्वती और परमेश्वर, माया और ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष, शक्ति और शक्तिमान्, विद्युत् और मेघ, किरण और सूर्य, ज्योत्स्ना और चद्र आदि सभी परस्पर एक दूसरे मे अनुस्यूत हैं। विरहानुभूति को लेकर भक्तिक्षेत्र मे वैष्णव भक्तो ने, चाहे वे दक्षिण के हो या उत्तर के, जिस मार्मिक पीडा को अभिव्यक्त किया है, वह साधक के हृदय पर सीधे चोट करती है और बहुत देर तक उसे वही निमग्न रखती है। लोक से कुछ समय के लिये आलोक मे पहुँचा देनेवाली वैष्णव भक्तो की यह देन कितनी श्लाघनीय है, कितनी मूल्यवान् है ! और इससे भी अधिक मूल्यवान् है उनकी स्वर्गप्राप्ति की मान्यता। मुक्ति नही, क्योकि वह मुक्ति का ही उत्कृष्ट रूप है, भक्ति ही अपेक्षणीय है। स्वर्ग परित्याज्य है, उपेक्षणीय है। इसके स्थान पर प्रभुप्रेम ही स्वीकरणीय है। वैष्णव सप्रदाय की इस देन की अमिट छाप भारतीय हृदय पर पड़ी है। उसने भक्ति को ही आत्मा का आहार स्वीकार किया है।

भक्ति तर्क पर नहीं, श्रद्धा एव विश्वास पर अवलबित है। पुरुष ज्ञान से भी अधिक श्रद्धामय है। मनुष्य जैसा विचार करता है, वैसा ही बन जाता है, इससे भी अधिक सत्य इस कथन मे है कि मनुष्य की जैसी श्रद्धा होती है उसी के अनुकूल और अनुपात मे उसका निर्माण होता है। प्रेरक भाव है, विचार नही। जो भक्ति भूमि से हटाकर धावा में प्रवेश करा दे, मिट्टी से ज्योति बना दे, उसकी उपलब्धि हम सबके लिये निस्सदेह महीयसी है। धी के ज्ञान और धर्म दोनो अर्थ हैं। हृदय श्रद्धा या भाव का प्रतीक है। भाव का प्रभाव, धर्म भी, सर्वप्रथम हृदय के स्पदनों मे ही लक्षित होता है।

[मु० रा० श०]

भक्ति (ईसाई) ईसाई विश्वास के अनुसार ईश्वर ने प्रेम से प्रेरित होकर मनुष्य को अपने परमानद का भागी बनाने के उद्देश्य से उसकी सृष्टि की है (दे० मुक्ति)। प्रथम मनुष्य ने ईश्वर की इस योजना को ठुकरा दिया और इस प्रकार ससार में पाप का प्रवेश हुआ (दे० आदिपाप)। मनुष्यों को पाप से छुटकारा दिलाने और उनके लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से ईश्वर ने अवतार लिया और ईसा के रूप मे प्रकट होकर मनुष्य के लिये धर्म का तत्व स्पष्ट कर दिया। ईसा ने सिखलाया कि ईश्वर का वास्तविक स्वरूप प्रेम मे है, वह एक दयालु पिता है जो सभी मनुष्यो को अपनी सतान मानकर उन्हें अपने पास बुलाना चाहता है। मनुष्य को ईश्वर की यह योजना स्वीकार करनी चाहिए और अपने पापो के लिये पश्चात्ताप करना चाहिए, क्योकि पाप ईश्वर के प्रति विद्रोह है (दे० पाप, ईसाई)। धर्म का सार इसमे है कि मनुष्य ईश्वर पर विश्वास करे, उसपर भरोसा रखे और उसके प्रति प्रेमपूर्ण आत्म-समर्पण करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसाई धर्म भक्तिभावप्रधान धर्म है, यद्यपि इसमे कर्मकाड की उपेक्षा नही होती (दे० सस्कार)। ईसाइयों की भक्तिभावना निर्गुण ईश्वर की भक्ति तक सीमित नही होती है। वे ईसा को ईश्वर मानते हैं और ईसा के जीवन की घटनाओ पर, विशेषकर उनके दु खभोग तथा उनकी क्रूस की मृत्यु पर, मनन और ध्यान करते हुए अपने हृदय मे कोमल भक्तिभाव उत्पन्न करते हैं और जीवन की कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने के लिये ईसा के उदाहरण से प्रेरणा लेते हैं।

रोमन काथलिक और प्राच्य चर्च में ईसा की माता मरियम तथा सतो से भी प्रार्थना की जाती है क्योंकि विश्वास किया जाता है कि वे भी मनुष्यों की विनतियाँ सुनते हैं और ईश्वर के विधान के अनुसार उनकी सहायता करते हैं।

[का० बु०]

भक्तिरसशास्त्र (वैष्णव) उज्ज्वलनीलमणि—महाप्रभु चैतन्य (१४८६–१५३३ ई०) की प्रेरणा से वृंदावन के षट्गोस्वामियो मे अन्यतम रूपगोस्वामी (१४७०–१५५४ ई०) ने वैष्णव सप्रदाय के धर्मदर्शन की छाया मे भक्तिरसशास्त्र का प्रवर्तन किया। भक्तिरसामृत सिंधु तथा उज्ज्वलनीलमणि वैष्णव रसशास्त्र के जिसमे कामशास्त्र की परपराओं का रिक्थ है, मौलिक और उपजीव्य ग्रथ हैं। जयदेव और लीलाशुक (सस्कृत), विद्यापति और चडीदास (बँगला) की कृष्णभक्तिपरक मधुर रचनाओ तथा कृष्णभक्तो की 'स्वानुभवसिद्ध' भावना ने भक्ति को रसराज मानने तथा उसके सागोपाग विवेचन के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया था। भक्तिरसामृतसिंधु मे भक्ति तथा भक्तिरसो का विशद विवेचन करने के बाद शृगार अथवा मधुर भक्तिरस का विशेष प्रतिपादन उज्ज्वलनीलमणि का प्रतिपाद्य है। इस मधुर रस का स्थायी भाव कृष्ण तथा गोपियो की पारस्परिक प्रियता (जो सभोग का आदि कारण है) मधुरा रति है। विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो से इस रति के आस्वाद का मधुर रस है, यह रस रहस्य है सभी भक्त इसके अधिकारी नही हैं किंतु सभी भक्तिरसो जैसे कि शात प्रीति, वात्सल्य से यह श्रेष्ठ है। इसे भक्तिरस-राज कहा गया है। भक्तिरसामृतसिंधु की पद्धति और आधार पर नाट्यशास्त्र के ग्रथो मे वर्णित भेद प्रभेद के ग्रहण, परिहार, परिवर्धन के साथ चैतन्य सप्रदाय की सास्कृतिक चेतना के नए सदर्भ मे इन्ही विभावादि तथा आनुषगिक प्रसग का विवेचन उज्ज्वलनीलमणि का विषय है। मधुरा रति के आलबन विभाव नायकचूडामणि कृष्ण तथा हरिप्रियाएँ हैं। नायकभेद—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीर प्रशात के अतिरिक्त व्रज मे पूर्णतम, मथुरा मे पूर्णतर, द्वारका मे पूर्ण के रूप मे नीतिभेद, दक्षिण, षट, धृष्टभेदो को मिलाकर नायक के ९६ भेद माने गए हैं। नायक के पाँच सहायक हैं। नायिका भेद मूलत दो हैं। शृगार का परमोत्कर्ष इसी मे प्रतिष्ठित है। स्वकीया के साधनपरा, देवी, नित्यप्रिया ये तीन भेद तथा अनेक उपभेद हैं। अभिसारिका, वासकसज्जा उत्कठिता आदि आठ भेद हैं, इन सभी भेदोपभेदो को मिलाकर नायिकाभेद ३६० हैं, यो स्वकीया की ही सख्या १६१०८ है। दूती के स्वयदूती तथा आप्तदूती दो भेद तथा अतिम के तीन प्रधान उपभेद माने गए हैं। उद्दीपन विभाव कृष्ण तथा हरिप्रियाओ से सबधित भेदोपभेद से अनेक प्रकार के हैं। अनुभावों मे बाईस अलकार (भाव, हाव, हेला आदि) सात ईद्भास्वर सात वाचिक (आलाप विलापादि) तथा सात्विक भाव वर्णित हैं। तैंतीस प्रख्यात व्यभिचारिभावो का (उग्रता तथा आलस्य को छोडकर) भाव के उदयादि के भेद से वर्णन है। अत मे मधुरा रति के स्वरूप तथा पक्षो का तथा मधुर रस (सयोग विप्रलभ) के भेदोपभेदो का वर्णन सर्वथा मौलिक है। [रा० च० द्वि०]

भगतसिंह, सरदार का जन्म अक्टूबर सन् १९०७ ईसवी में पजाब के लायलपुर जिले मे प्रसिद्ध देशभक्त तथा त्यागी सिख परिवार मे हुआ। आपकी दादी श्रीमती जयकौर अत्यत वीर भावनाओ-वाली महिला थीं। पुत्रो तथा पौत्रों का पालन पोषण उन्होने ही किया और बचपन से उनमे राष्ट्रीयता का सस्कार भरा। यह अति प्रसिद्ध है कि भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह ने ही लाला लाजपत राय को राजनीतिक क्षेत्र की ओर आकृष्ट किया था। परिवार की परपरा तथा जन्मजात सस्कारो के कारण आपने १४ वर्ष की अवस्था से ही पजाब की क्रातिकारी सस्थाओ में कार्य करना शुरु किया। सन् १९१४ तथा १९१५ के लाहौर षड्यत्रो में सिखो के आत्मबलिदान का प्रभाव भी आपपर पडा। सन् १९२३ मे आपने इटरमीडिएट परीक्षा पास की और जब माता पिता ने आपको विवाहबधन मे बाँधने की तैयारी की तो चुपके से आप लाहौर से निकल भागे।

पजाब छोडकर जब आप कानपुर आए तो श्री गणेशशकर विद्यार्थी का आपको हार्दिक समर्थन एव सहयोग मिला। देश की स्वतत्रता के लिये अखिल भारतीय स्तर पर क्रातिकारी दल का पुनर्गठन करने का श्रेय आपको है। आपने 'प्रताप' कानपुर तथा अर्जुन दिल्ली के सपादकीय विभाग में क्रमश बलवत तथा अर्जुन-सिंह के नाम से कुछ समय तक कार्य किया। पत्रकारिता के साथ साथ आप क्रातिकारी दल का काम भी करते थे। सकटग्रस्त जनता की सेवा में भी आपकी गहरी रुचि थी। कानपुर निवास के समय जब गगा की बाढ के कारण भीषण संकट उपस्थित हुआ तो आपने श्री बटुकेश्वर दत्त के साथ पीडितो की सराहनीय सेवा की। काकोरी षड्यत्र केस मे चार अभियुक्तो को प्राणदड तथा अन्य को दीर्घ कारावास के दड से आप उत्तेजित हो गए थे। सन् १९२६ के अक्टूबर मे लाहौर मे रामलीला मेले मे किसी ने बम फेंका। इस अभियोग मे सरदार भगत-सिंह गिरफ्तार हुए। वस्तुत यह आपके विरुद्ध पुलिस का कुचक्रमात्र था। इन्हीं दिनो आपने नौजवान भारत सभा के सगठन मे प्रमुख भाग लिया तथा काकोरी षड्यत्र के शहीदों की स्मृति मे काकोरी दिवस का आयोजन किया। आपने जुलाई, १९२८ मे कानपुर मे सभा कर देश के क्रातिकारियो से सपर्क के लिये दौरा किया। उसी वर्ष सितबर में दिल्ली के किले में देश के विभिन्न राज्यो के क्रातिकारियो का समेलन हुआ, जिसमे आपके प्रस्ताव के अनुसार दल का नाम हिंदुस्तान रिपब्लिकन असोसिएशन के स्थान पर हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन असोसिएशन रखा गया। आपने विश्व के क्रातिकारी आदोलन का गहन अध्ययन किया था।

अक्टूबर, १९२८ ई० मे लाहौर मे साइमन कमीशन का विरोध करने के लिये लाला लाजपत राय के नेतृत्व में विशाल जुलूस निकला। जुलूस पर पुलिस अधिकारियों ने भीषण लाठी वर्षा की, जिससे लाला जी आहत हो गए और १७ नवबर को उनका निधन हो गया। इसके ठीक एक महीने बाद सरदार भगतसिंह ने अपने अन्यतम साथियो श्री राजगुरु तथा श्री चद्रशेखर आजाद के साथ लाला जी का बदला लिया तथा पुलिस अधिकारी साडर्स की हत्या की। सरदार भगतसिंह अपने साथियों सहित उक्त हत्याकाड के बाद जिस प्रकार पुलिस की आँख मे धूल झोंककर लाहौर से निकल आए वह क्रातिकारी आदोलन का अत्यंत रोचक तथा रोमाचक प्रकरण है। ८ अप्रैल, १९२९ को सरदार भगतसिंह तथा श्री बटुकेश्वर दत्त ने असेंबली भवन मे सरकारी अफसरों की ओर बम फेंके और स्थिर भाव से खडे रहे। सरदार भगतसिंह चाहते तो बम फेंककर निकल भाग सकते थे किंतु गिरफ्तारी के पूर्व 'इकलाब जिंदाबाद'

तथा 'साम्राज्यवाद का नाश' के नारे लगाए तथा हिंदुस्थान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के परचे वितरित किए, जिसमे जनता से विप्लव के लिये तैयार होने की अपील की गई थी। लाहौर षड्यत्र का मुकदमा चला। इसके माध्यम से भी सरदार भगतसिंह ने ब्रिटिश सरकार की अत्याचारी तथा अन्यायपूर्ण नीतियो का रहस्योद्घाटन कर देश मे क्राति तथा जाग्रति की भावना फैलाई। अतत ७ अक्टूबर, १९३० को आपको दोनो साथियो सहित फाँसी की सजा दी गई, जिससे देश में हाहाकार मच गया। आपके प्राणो की रक्षा के लिये समस्त देश ने प्रार्थना की किंतु वह ठुकरा दी गई और २३ मार्च, १९३१ की रात में आपको फाँसी दे दी गई। इन्कलाब जिंदाबाद का नारा लगाते हुए आपने हँसते हँसते मृत्यु का आलिंगन किया। [ल० प्र० व्या०]

भगदत्त प्राग्ज्योतिष (आसाम) देश के अधिपति नरकासुर भौमासुर और भूमि के पुत्र थे। एक बार भौमासुर ने इंद्र के कवच और कुडल छीन लिए। इसपर कृष्ण ने क्रुद्ध होकर भौमासुर के सात पुत्रो का वध कर डाला। भूमि ने कृष्ण से भगदत्त की रक्षा के लिये अभयदान माँगा।

भौमासुर की मृत्यु के पश्चात् भगदत्त प्राग्ज्योतिष के अधिपति बने। भगदत्त ने अर्जुन, भीम और कर्ण के साथ युद्ध किया। हस्ति युद्ध मे भगदत्त अत्यत कुशल थे। कृतप्रज्ञ और वज्रदत्त नाम के इनके दो पुत्र थे, इनमे कृतप्रज्ञ की मृत्यु नकुल के हाथ से हुई। वज्रदत्त राजा होने पर अर्जुन से पराजित हुआ। [ज० चं० जै०]

भगवंतराय खीची (अथवा भगवतसिंह असोथर) जिला फतेहपुर के रहनेवाले थे। ये कई सुकवियों के आश्रयदाता और बडे गुणग्राही नरेश थे। महाराज छत्रसाल और छत्रपति शिवाजी का जैसा गुणगान 'भूषण' ने किया वैसे ही अनेक सुकवियों ने इनका भी गुणगान किया। स० १७९३ वि० मे ये अवध के प्रथम नवाब वजीर बुर्हान-उल-मुल्क से युद्ध करते हुए स्वर्गवासी हुए। 'रामायण' और 'हनुमत-पचीसी' इनकी दो रचनाएँ कही जाती हैं। कांडों मे विभक्त रचना 'रामायण' कवित्त छद में ही लिखी गई है। २५ ओजस्वी छदो मे हनुमान के शौर्य पराक्रम का 'हनुमतपचीसी' मे कवित्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

इनकी 'हनुमतपचासा' नामक एक और कृति मिली है जिसमे कुल ५२ छद हैं। सभव है यह कृति 'रामायण' का कोई अश हो। प्राचीन काव्यसग्रहों मे इनके छिट पुट रूप मे शृंगारी छद भी पाए जाते हैं। [रा० फे० त्रि०]

भगवत मुदित इनके पिता माधव मुदित चैतन्य सप्रदाय के भक्त सुकवि तथा आगरा के निवासी थे। इनका समय स० १६३० तथा स० १७२० वि० के मध्य मे था। यह आगरा मे शुजाअ के दीवान थे और वहाँ से विरक्त होकर वृदावन में आ बसे थे। इन्हें हित सप्रदाय के भक्तों का भी सत्सग प्राप्त था और इन्होने इस सप्रदाय के ३५ भक्तों का चरित्र रसिक अनन्यमाल मे ग्रथित किया है। प्रबोधानद सरस्वती के अनेक वृदावन शतको मे से एक का इन्होने पद्यानुवाद किया है, जो स० १७०७ की रचना है। इनके दो सौ सात स्फुट पद अब तक मिले हैं। यह भी चैतन्य सप्रदाय के राधारमणी वैष्णव थे। [ब्र० ० दा०]

भगवानदास यह जयपुर स्थित आमेर राज्य के राजपूत शासक राजा बिहारीमल का पुत्र था। सन् १५६२ में जब बिहारीमल ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तो भगवानदास अपने पिता के साथ आगरा गया। अकबर ने इन राजपूतों का यथोचित सत्कार किया। भगवानदास को मुगल सेना में एक उच्च पद पर नियुक्त कर दिया गया। आमेर पहला राजपूत राज्य था जिसने अकबर की अधीनता स्वीकार की और उससे वैवाहिक सबध स्थापित करके मित्रता बढ़ाई।

अकबर के आदेश पर भगवानदास कासिम खाँ के साथ पाँच हजार सैनिकों का नेतृत्व करता हुआ कश्मीर विजय को निकल पड़ा। सन् १५८६ में उसने कश्मीर के शासक यूसुफशाह को सरलतापूर्वक हरा दिया। यूसुफ के पुत्र याकूब ने भगवानदास के विरुद्ध युद्ध करने की धृष्टचेष्टा की। भगवानदास ने उसे भी बुरी तरह हरा दिया। इसके पश्चात् कश्मीर का राज्य मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। पुरस्कार स्वरूप भगवानदास को कुछ जागीर मिली और 'राजा' की उपाधि दी गई। राजा भगवानदास फारसी के विद्वान् थे। उन्होंने कई रचनाएँ की जिनमें फतूहात-ए-आलमगीरी भी समिलित है। [मि० चं० पा०]

भगवान्दास, डाक्टर (१८६९-१९५८) का जन्म १२ जनवरी, १८६९ ई० मे वाराणसी मे हुआ था। सन् १८८७ में उन्होंने १८ वर्ष की अवस्था में पाश्चात्य दर्शन मे एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। १८९० से १८९८ तक उत्तर प्रदेश मे विभिन्न जिलों में मजिस्ट्रेट के रूप मे सरकारी नौकरी करते रहे। सन् १८९९ से १९१४ तक सेंट्रल हिंदू कालेज के सस्थापक-सदस्य और अवैतनिक मत्री रहे। १९१४ मे यही कालेज काशी हिंदू विश्वविद्यालय के रूप मे परिणत कर दिया गया। डा० भगवान्दास हिंदू विश्वविद्यालय के सस्थापक-सदस्यों मे से एक थे। सन् १९२१ मे काशी विद्यापीठ की स्थापना के समय से १९४० तक उसके कुलपति रहे। असहयोग आदोलन मे भाग लेने के कारण सन् १९२१ मे इन्हें एक वर्ष का कारावास दड मिला। थोडे ही दिनो बाद इन्हें कारावास से मुक्त कर दिया गया। किंतु वर्ष के शेष महीनों मे घर से अलग काशी विद्यापीठ मे रहते हुए एकातवास करके उन्होने कारावास की अवधि पूरी की। १९३५ मे उत्तरप्रदेश के सात शहरो से भारत की केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुने गए। सन् १९३८ मे उन्होंने केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और एकात रूप से दार्शनिक चिंतन एव भारतीय विचारधारा की व्याख्या में सलग्न रहे। भारत के राष्ट्रपति ने सन् १९५५ मे उन्हें भारतरत्न की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया।

दर्शन — 'अह् म एतत् न' ('मैं-यह-नही') ऐसा महावाक्य है कि यदि इसके तीनों शब्दों के अर्थ एक साथ लिए जायँ तो केवल एक एकाकार, एक रस, अखड, निष्क्रिय, सवित् देख पडती है। 'मैं-यह-नही' इसमे कोई क्रिया विक्रिया नही है, कोई परिवर्त परिणमन नही है। केवल एक बात सदा के लिये कूटस्थवत् स्थिर है, अर्थात् केवल 'मैं' है और 'मैं' के सिवाय और कुछ नही है। अथच 'मैं' अपने सिवाय कोई अन्य वस्तु, ऐसे ऐसे रूप रग नाम आदि का अन्य पदार्थ नही हूँ। यदि इस वाक्य के दो खड कीजिए, पहले

'मैं-यह' और फिर 'यह—नही' तो इसी वाक्य मे ससार की सब कुछ क्रिया, इसके सपूर्ण परिवर्त का तत्व, देख पडता है 'मैं-यह-हूँ', यह जीवन का, जनन का, शरीरधारण का, स्वरूप है। 'मैं यह नही हूँ', यही मरण का, शरीरत्याग का, स्वरूप है। क्रियामात्र का यही द्वद्व स्वरूप है — लेना और देना, पकडना और छोडना, वढना और घटना, हँसना और रोना, जीना और मरना, उपाधि का ग्रहण करना और उसमे अहकार करना और फिर उसको छोडकर उससे विमुख होना, पहले एक वस्तु मे सुख मानना और फिर उसी वस्तु मे पीछे दु ख मानना। अध्यारोप और अपवाद, प्रवृत्ति और निवृत्ति, इन दो शब्दो मे ससार का, ससरण का तत्व सब कह दिया है। द्रष्टा और दृश्य, भोक्ता और भोग्य, विषय और विषयी, ज्ञाता और ज्ञेय, गृष्टा और द्रष्य, कर्त्ता और कार्य, जीव और देह, चेतन और जड, आत्मा और अनात्मा, 'मैं' और 'यह', दोनों इसमे मौजूद हैं। जिस जिस वस्तु का निषेध, प्रतिषेध, अपलाप, अथवा निराकरण, निरास किया जाता है, उसका पहले अभ्युपगम, अध्यारोप, विधान, सभावन सकल्प, अभ्यास कर लिया जाता है। पहले यह माना जाता है कि उसका सभव है और तव उसकी वास्तवता का निषेध होता है। इसी से असत् पदार्थ पर सत्ता का मिथ्या आरोप देख पडता है।

इसी महाचेतना में सब ससार की सृष्टि, स्थिति और लय है। 'अहम्' अर्थात् 'मैं' आत्मा का स्वरूप है। 'एतत्' अर्थात् 'यह' अनात्मा का स्वरूप है। इन दोनो का सवध निषेध रूप है। 'मैं यह नही हूँ' इस भावना, इस धारणा, इस सवित् को यदि क्रमदृष्टि से देखिए तो इसमें तीन वातें अवश्य मिलती हैं। पहले तो 'मैं' के सामने 'यह' पदार्थ आता है। इस क्षण मे ज्ञान होता है। इसके पीछे 'मैं' और 'यह' के सयोग वियोग का सभव होता है। यही इच्छा है। तीसरे क्षण मे सयोग वियोग होता है। यह क्रिया है। सयोग वियोग दोहरा शब्द इसलिये कहा जाता है कि पहले सयोग होकर पीछे वियोग होता है। पहले राग, पीछे द्वेष, पहले प्रवृत्ति पीछे निवृत्ति, पहले लेना पीछे देना, पहले जन्म पीछे मरण, पुन जन्म पुन मरण, यही ससरण क्रिया है।

जैसा भगवानृदासजी प्रतिपादित करते थे प्रति क्षण मे प्रत्येक जीव इसी ज्ञान, इच्छा, क्रिया के फेरे मे फिरा करता है। पहले ज्ञान, तव इच्छा, तव क्रिया। और क्रिया के बाद फिर ज्ञान, फिर इच्छा, फिर क्रिया। यह अनत चक्र सर्वदा चल रहा है। अहम्-आत्मा-पुरुष अथवा प्रत्यगात्मा मे जो इन तीन पदार्थो का वीज है उसको सत्-चित् और आनद के नाम से कहते हैं। अर्थात् ज्ञान चिदात्मक, क्रिया सदात्मक और इच्छा आनदात्मक। तथा अनात्मा अर्थात् मूल प्रकृति मे ये ही तीन पदार्थ सत्वज्ञानात्मक, रजस् क्रियात्मक, और तमस् इच्छात्मक कहलाते हैं। ये ही तीन प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक ब्रह्माड में सदा विद्यमान है।

मनोविज्ञान—मनोविज्ञान मे डा० भगवानृदास का नाम आवेगों अथवा रागद्वेष के परपरित वर्गीकरण के लिये स्मरण किया जाता है। सुखद वस्तुओ के लिये आकर्षण और दु खद वस्तुओं के लिये विकर्षण जव चेतन प्राणियों के सवध मे प्रयुक्त होते हैं, तव ये ही राग अथवा प्रेम और द्वेष का रूप ले लेते हैं। आलंबन के प्रति महत्ता, समानता तथा हीनता की भावना के अनुसार यही राग या प्रेम क्रमश श्रद्धा, स्नेह तथा दया का रूप ले लेता है और इसी प्रकार द्वेष आलवनभेद से भय, क्रोध तथा घृणा का रूप ले लेता है। अपने वड़े के प्रति श्रद्धा या भय होता है, वरावर के प्रति स्नेह तथा क्रोध होता है और छोटे के प्रति दया अथवा घृणा होती है। ये ही छह आवेग अतिरजित होने अथवा अनुपयुक्त विषयो के साथ सलग्न होने पर मनोविकार वन जाते हैं और अतिम रूप मे अनेक प्रकार के उन्मादो का रूप ले लेते हैं।

वैयक्तिक सामाजिक सगठन — परमात्मा के स्वभाव से, प्रकृति से, उत्पन्न तीन गुण, सत्व, रजस्, तमस्, ही ज्ञान, क्रिया, और इच्छा के मूलतत्व या वीज हैं। डाक्टर साहव के विचारानुसार इनकी प्रधानता से, तीन प्रकार के, तीन प्रकृति के, मनुष्य होते हैं—(१) ज्ञानप्रधान, ज्ञानी, शिक्षक, (२) क्रियाप्रधान, रक्षक, शूर, (३) इच्छाप्रधान, पोषक, सग्रही; और (४) इन तीन के साथ चौथी प्रकृति, 'वालकवुद्धि' जिसमे किसी एक गुण की प्रधानता, विशेष विकास, न देख पडे, 'गुणसाम्य' हो, वह सेवक, श्रमी। ये हुए चार वर्ण। किसी देश के किसी भी सभ्य समाज में ये वर्ण अवश्य पाए जाते हैं, पर उतने विवेक से, और उस काम-दाम-आराम के, धर्म-कर्म-जीविका के, विभाजन के साथ नही, जैसा भारतवर्ष मे, प्राचीन स्मृतियो ने इनके लिये आदेश किया है।

जैसे समाज के जीवन मे चार मुख्य पेशे हैं वैसे ही प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे चार 'आश्रम' हैं, (१) ब्रह्मचारी, विद्या सीखने का, (२) गृहस्थ का, (३) वानप्रस्थ का, (४) सन्यासी का।

मनुष्य के चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष वा ब्रह्मानद। पहले तीन आश्रमो मे अधिकतर धर्म-अर्थ-काम, और चौथे में विशेष रूप से मोक्ष को साधना चाहिए।

तीन (अथवा चार) ऋणों को लेकर मनुष्य पैदा होता है। (१) देवो का ऋण जिन्होंने पचमहाभूतों की सृष्टि, परमात्मा के नियमों के अनुसार फैलाई है; जिन महाभूतों से हमारी पचेंद्रियो के सब विषय बने हैं, (२) पितरों का ऋण, जिनकी सतति, वश-परपरा से, हम हैं, जिनसे हमको यह शरीर मिला है, जो देह हमारे सब अनुभवों का साधन है, (३) ऋषियों का ऋण, जिन्होने वह महासचय, विविध प्रकार के ज्ञानों का, शास्त्रों मे भरकर रख दिया है, जिसकी सहायता से हमारा वैयक्तिक और सामाजिक जीवन सभ्य, शिष्ट बनता है, जिसके विना हम पशुप्राय होते; (४) चौथा ऋण, परमात्मा का, कहा जा सकता है, जो हमारा चेतन ही है, प्राण ही है, जिसके बिना हम निर्जीव होते। इन चार ऋणो के निर्मोचन निर्यातन का उपाय भी चार आश्रमो के धर्म कर्मों का उचित निर्वाह ही है। (१) विद्यासग्रहण, और सतति को विद्यादान, से ऋषिऋण चुकता होता है, (२) सतति के उत्पादन, पालन, पोषण से पितरो का ऋण चुकता है, (३) विविध प्रकार के यज्ञ करने से देवों का ऋण चुकता है। यथा, वायु देवता से हमारा श्वास प्रश्वास चलता है, हवा को हम गदा करते हैं; उत्तम सुगधित पदार्थों के धूप-दीप से, होम हवन से, हवा पुन स्वच्छ करनी चाहिए। जगल काट काटकर हम लकडी को जलाने में, मकान और सामान के काम में, खर्च कर डालते हैं। नए लखराँव, बाग, उद्यान लगाकर फिर नए पेड़ तैयार कर देना

चाहिए। वरुण देव के जल का प्रति दिन हम लोग व्यय करते रहते हैं, नए तालाब, कुएँ, नहर आदि बनाकर, उसकी पूर्ति करनी चाहिए। ये सब यज्ञ है। परोपकारार्थ जो भी काम किया जाय यह सब यज्ञ हैं। (४) परमात्मा का ऋण, मुक्ति प्राप्त करने से, सब मे एक ही आत्मा को व्याप्त देखने से, चुकता है। क्रम से, चार आश्रमों मे चार ऋण अदा होते हैं।

ऐसी ही तीन या चार एषणाएँ, आकाक्षाएँ, वासनाएँ मनुष्य की, स्वाभाविक, होती हैं। (१) लोकैषणा, अहं स्याम्, मै इस लोक और परलोक मे सदा बना रहूँ, मेरा नाश कभी न हो, इसका शरीर रूप आहार की इच्छा है, और मानस रूप, समान, यश, कीर्ति की इच्छा, (२) वित्तैषणा, 'अहं बहु स्याम्', मै और अधिक होऊँ, इसका शरीर रूप, सब अंगो की, हाथ पर की, पुष्टि, बलवृद्धि, सौंदर्यवृद्धि और मानसरूप, विविध प्रकार के धन दौलत का बढाना, (३) दार सुतैषणा, 'अहं बहुधा स्याम्,' मै अकेला हूँ सो बहुत हो जाऊँ, मेरे पत्नी हो, और बालबच्चे हो, बहुतो पर मेरा अधिकार हो, ऐश्वर्य हो, (४) चौथी एषणा मोक्षैषणा है, इस सब जंजाल मे, बहुत भटक चुका, अब इससे छुटकारा हो। ये चार एषणाएँ भी चार पुरुषार्थों की रूपातर ही हैं और चारो आश्रमों के धर्म कर्म से उचित रीति से पूरी होती हैं।

डा० भगवान्दास 'कर्मणा वर्ण, जन्म अभिकर्मणा' सिद्धात के प्रतिपादक थे। उनके मत से बिना कर्मणा वर्णसिद्धात को माने इस समय, वर्तमान अवस्था मे, किसी भी दूसरे उपाय से हिंदू समाज का कल्याण नही हो सकता।

चारो वर्णों के लिये चार मुख्य धर्म अर्थात् कर्तव्य, और चार वृत्तियाँ, जीविका, और चार तोषण, राधन, प्रोत्साहन, हैं। (१) विद्योपजीवी, विद्वान्, शिक्षक, उपदेष्टा, के लिये, ज्ञानसग्रह और ज्ञानप्रचार करना, अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह, यानी, विद्या सिखाकर, किसी विषय का ज्ञान देकर उसके लिये आदरसहित दक्षिणा लेना, किसी 'यज्ञ' मे, 'पब्लिक वर्क' मे, सार्वजनिक हित के कार्य मे, ज्ञान की, सहायता देकर, दक्षिणा लेना, वा आदर के साथ जो कोई दान दे, 'भेंट', पुरस्कार, दे वह लेना। (२) क्रियोपजीवी, 'शास्त्री', रक्षक, शासक, के लिये अस्त्र शस्त्र के द्वारा, दूसरो की रक्षा करना, और उसके लिये, जो कर, लगान, मालगुजारी, राष्ट्र की ओर से वेतन, मिले, उसे लेना। (३) वार्तोपजीवी, कृषक, गोपालक, वणिक्, के लिये अन्न वस्त्र आदि जीवनोपयोगी, विविध प्रकार के, आवश्यक और विलासीय पदार्थ, उत्पन्न करना, और उचित दाम लेकर देना, और जो इस रोजगार से लाभ हो, वह लेना। (४) श्रमोपजीवी, भृतक, कर्मकर, किंकर के लिये, अन्य तीन वर्णों की सेवा सहायता करके, जो मजदूरी भृत्ति, मिले वह लेना।

धर्मविज्ञान—डा० भगवान्दास ने तटस्थ रूप से धर्मों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। उनके मत से सभी धर्मों के उसूल एक हैं। सभी धर्मो मे यह माना गया है कि परमात्मा सबके हृदय मे आत्मा रूप से मौजूद है। सब भूतों, सब प्राणियो के भीतर मे बैठा है। सबके आगे, सबके पीछे, 'मैं' ही है। सभी धर्मों मे तीन अंग हैं, ज्ञान, भक्ति, और कर्म। उसूली 'अकायद' यानी ज्ञानकाड और, 'हकीकत' की बातें तो सब मजहबों मे एक हैं ही, 'इबादत' यानी भक्तिकाड और 'तरीकत' की बातें भी एक ही हैं, और 'आमिलात यानी कर्मकाड या 'शरियत' की ऊपरी, सतही बातें भी एक या एक सी हैं। यह बात सभी मजहबवाले मानते हैं कि खुदा है और वह एक है, वाहिद है, अद्वितीय है। यह भी सब मानते हैं कि पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख होता है। व्रत उपवास, तीर्थयात्रा, धर्मार्थ दान ये भी सब मजहबो मे हैं। सभी धर्मों मे धर्म के चार मूल माने गए हैं—श्रुति, स्मृति, सदाचार, और हृदयाभ्यनुज्ञा। खुदा को ला-मकान और निराकार कहते हुए भी सभी उसके लिये खास खास मकान बनाते हैं, मंदिर, मस्जिद और चर्च आदि के नाम से।

डा० भगवान्दास ने सभी धर्मों के अनुयायियों की नासमझी मे भी समता दिखाई है। मेरा मजहब सबसे अच्छा है, दूसरे मजहब-वालो को जबरदस्ती से अपने मजहब मे लाना चाहिए, यह अहंकार सबमे देखा जाता है। यह नहीं समझते कि खास खास तरीके खास खास देशकाल अवस्था के लिये बताए गए हैं। अत में डा० भगवान्दास ने इस बात पर बल दिया है कि आदमी की रूह इन सबों मे बडी है। आदमियो ने ही मजहब की शक्ल समय समय पर बदल डाली है।

स्वराज की रूपरेखा

डा० भगवान्दास ने श्री चितरंजनदास के साथ मिलकर स्वराज की रूपरेखा जनवरी, १९२३ ई० मे लिखी थी। इस योजना के अनुसार प्रशासन का आधार ग्राम तथा नगर होंगे और उनके ऊपर क्रमश जिला, प्रात या राज्य तथा अखिल भारतीय केंद्र होंगे। चुनाव अप्रत्यक्ष प्रणाली से क्रमश. नीचे से ऊपर के संगठन के लिये होंगे। प्रत्येक पुरुष या स्त्री, जो भारत मे कम से कम ७ वर्ष रह चुका है और जिसकी उम्र यदि पुरुष है तो २५ वर्ष की और स्त्री है तो २१ वर्ष की है, प्रारंभिक ग्राम या नगर पचायत का मतदाता हो सकता या सकती है। ग्राम अथवा नगर से लेकर राष्ट्र पचायत तक सभी के सदस्य देश के स्थायी निवासी होंगे और उनकी उम्र ४० वर्ष से कम न होगी। इसके अतिरिक्त उनके लिये पचायत की मर्यादा के अनुसार अधिकाधिक शिक्षित होना और जीवन के किसी क्षेत्र मे अच्छा कार्य करके सम्मानप्राप्त होना तथा जीवकोपार्जन के कार्य से निवृत्त होना आवश्यक होगा।

डा० भगवान्दास गाधीयुग के महान् दार्शनिक थे। गाधी जी और रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ वह भारत के उन तीन नेताओं मे से एक थे जो ज्ञान, भाव एव क्रिया के क्षेत्रो का नेतृत्व करते थे और सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् के मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते थे। डा० भगवान्दास के साथ दार्शनिकों की उन महान् परपरा का अत होता है जो प्राच्य और पाश्चात्य भूत और वर्तमान के समन्वय पर प्रतिष्ठित थी। डा० भगवान्दास ने अपने दर्शन मे हीगेल और शकराचार्य के दर्शनो का, निर्विकार ब्रह्म के सिद्धातो का मौलिक रूप के समन्वय किया है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ ये हैं—१ मानवधर्मसार, २ प्रणववाद, ३ पुरुषार्थ, ४ समन्वय, ५ विविधार्थ, ६ बुद्धिवाद बनाम शास्त्रवाद ७ दार्शनिक प्रयोजन।

८ दि साइस ऑव इमोशस, ९ दि साइस ऑव पीस, १० कृष्ण, ११ दि इसेंशल यूनिटी ऑव ऑल रिलीजस, १२ दि साइस ऑव सोशल आर्गेनाइजेशन, १३ दि साइस ऑव दि सेल्फ, १४ एशेंट साइको-सिंथेसिस वर्सस माडर्न साइको-एनालिसिस।

[रा० रा० शा०]

भगीरथ इक्ष्वाकुवशीय सम्राट् दिलीप के पुत्र जिन्होने घोर तपस्या से गगा को पृथ्वी पर अवतरित कर कपिल मुनि के शाप से भस्म हुए ६० हजार सगरपुत्रो के उद्धारार्थ पीढियो से चले प्रयत्नो को सफल किया था। गगा को पृथ्वी पर लाने का श्रेय भगीरथ को है, इसलिये इनके नाम पर उन्हे 'भागीरथी' कहा गया। गगावतरण की इस घटना का क्रमवद्ध वर्णन वायु (४७।३७), विष्णु (४।४।१७), हरवश (१।१५), ब्रह्मवैवर्त (१।१०), महाभारत (अनु० १२६।२६), भागवत (६।९) आदि पुराणो तथा वाल्मीकीय रामायण (बाल०, १।४२–४४) मे मिलता है। [श्या० ति०]

भटनागर, सर शांतिस्वरूप, (सन् १८९४–१९५५) भारतीय वैज्ञानिक का जन्म पश्चिमी पजाव (अव पाकिस्तान) के जिला शाहपुर के भेड़ा नामक स्थान मे हुआ था, जहाँ तीन वर्ष पूर्व एक अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिक, डा० वीरबल साहनी, ने जन्म लिया था। इनके पिता, लाला परमेश्वरीसहाय, स्कूल मे अध्यापक थे, और जब शातिस्वरूप केवल आठ मास के थे, तब उनका स्वर्गवास हो गया। इनके नाना, मुशी प्यारेलाल ने आठ, नौ साल की उम्र तक इन्हे पाला और पढ़ाया, पर वाद मे इनकी शिक्षा का भार इनके पिता के मित्र, लाला रघुनाथसहाय ने अपने ऊपर ले लिया।

लाहौर के दयालसिंह हाई स्कूल से प्रथम श्रेणी मे एंट्रेंस की परीक्षा पास कर दयालसिंह कालेज में भरती होने के वाद ये प्रोफेसर रुचिराम साहनी तथा डा० जगदीशचद्र वसु के सपर्क मे आए, जिससे इनका विज्ञानप्रेम प्रगाढ हो गया। एम० एस-सी० परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के पश्चात् ये दयालसिह कालेज मे डिमास्ट्रेटर के पद पर नियुक्त हुए, किंतु सन् १९१९ मे इसी कालेज से छात्रवृत्ति पा तथा लदन युनिवर्सिटी मे भरती होकर इन्होने सर विलियम रैमजे इस्टिट्यूट मे अनुसधान कार्य आरभ किया। यहाँ आपको एक और छात्रवृत्ति मिली जिससे छुट्टियो मे जर्मनी के कैसर विल्हेल्म इस्टिट्यूट तथा पैरिस की सारवान नामक वैज्ञानिक सस्था मे भी आप अध्ययन कर सके। सन् १९२१ मे लदन युनिवर्सिटी से आपको डी० एस० सी० की उपाधि मिली।

भारत मे वापस आने पर आप काशी हिंदू विश्वविद्यालय मे रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए, जहाँ आपके अनुसधान कार्यों से आपकी प्रसिद्धि हुई। सन् १९२४ मे आप जाव युनिवर्सिटी मे प्रोफेसर तथा रसायनशालाओ के डाइरेक्टर होकर चले गए। यहाँ आपकी प्रतिभा और चमक उठी। आपके अनुसधानो से कई उद्योगपतियो ने लाभ उठाकर, जो धन आपको दिया वह सब आपने युनिवर्सिटी की कैमिकल सोसायटी को दान कर दिया। आगे चलकर भारत सरकार के औद्योगिक एव वैज्ञानिक अन्वेषण वोर्ड के डाइरेक्टर के पद पर आपकी नियुक्ति से भारतीय उद्योगो को वड़ी सहायता मिली।

डाक्टर भटनागर ने पायस सबधी विस्तृत खोजें की, जिनसे अन्य वैज्ञानिको ने भी लाभ उठाया। अणुओ की रचना, उनके चुवकीय गुण तथा रासायनिक चुवक विज्ञान के क्षेत्र मे आपने विशेष रूप से अन्वेषण किए, जिनसे आपकी गणना ससार के प्रमुख वैज्ञानिको मे की जाने लगी। चुवकीय रसायन पर अग्रेजी में *सर्वप्रथम प्रकाशित होनेवाला ग्रथ* आपने प्रो० ए० एस० माथुर के सहयोग से लिखा। कोलाइड तथा प्रकाश रसायन पर भी आपने उल्लेखनीय अनुसधान किए।

इनके अतिरिक्त, डा० भटनागर ने अनेक औद्योगिक महत्व के अनुसधान किए, जिनमे पेट्रोलियम सवधी अनुसधान विशिष्ट हैं। इनसे लाभ उठाकर स्टील ब्रदर्स नामक व्यापारी सस्था ने आपको चार लाख रुपए नकद तथा लाभ का एक अश दिया। यह धन तथा इस प्रकार की अन्य आय आपने पजाव युनिवर्सिटी को दे दी। मिट्टी के तेल से अधिक प्रकाश प्राप्त करना, गूदड से पश्मीना सिल्क वनाना, वनस्पति तेलो से अधिक उपयोगी वस्तुएँ तैयार करना तथा सुधारित वैकेलाइट, प्लैस्टिक इत्यादि बनाना, ऐसी अनेक नई रीतियो की खोज इन्होने की।

डा० भटनागर को भारत के अधिकाश विश्वविद्यालयो ने समानित किया था। सन् १९३८ मे भारतीय विज्ञान कांग्रेस के आप सभापति मनोनीत किए गए थे। लदन की कैमिकल सोसायटी तथा इंस्टिट्यूट ऑव फिजिक्स के आप फेलो तथा फैरेडे सोसायटी के समानित सदस्य चुने गए। भारत की विदेशी सरकार ने भी आपको 'आर्डर ऑव दि ब्रिटिश एपायर' का तमगा तथा नाइट की उपाधि प्रदान कर समानित किया। वैज्ञानिक के सिवाय आप साहित्यसेवी तथा उर्दू के कवि भी थे। आपकी मृत्यु १ जनवरी, सन् १९५५ को हुई।

स० ग्र० — श्री श्यामनारायण कपूर भारतीय वैज्ञानिक

[भ० दा० व०]

भटिंडा १ जिला, भारत के हरियाना राज्य का एक जिला है जो उत्तर-पूर्व मे सगरूर, पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम मे फिरोजपुर तथा दक्षिण मे हिसार से घिरा है। इसका क्षेत्रफल २,७०६ वर्ग मील तथा जनसख्या १०,५५,१७७ (१९६१) है।

२ नगर, स्थिति ३०° १३' उ० अ० तथा ७५° ०' पू० दे०। भटिंडा जिले का प्रमुख नगर है। प्राचीन काल मे इसका नाम 'विक्रम गढ' था। प्रसिद्ध अनाज उत्पादक क्षेत्र मे स्थित होने के कारण अनाज के व्यापार का प्रमुख केंद्र है। यहाँ से चीनी, चावल तथा बिनौले का आयात एव गेहूँ, चना तथा तिलहन का निर्यात किया जाता है। यह ऐतिहासिक स्थान है जहाँ ११८ फुट ऊँचा एक किला है जो कई मील दूर से देखा जा सकता है। इस किले मे ३८ वुर्ज हैं। इसकी जनसख्या ५२,२५३ (१९६१) है।

भट्ट, गदाधर तैलग देश के हनुमानपुर से यह उत्तर आए। जीव गोस्वामी ने इनका एक पद *'श्याम रग रँगी'* सुनकर इन्हे वृदावन बुलाया और स० १६०० के लगभग यह वृंदावन पहुँचे। इन्होंने रघुनाथ भट्ट से दीक्षा ली और उन्ही के समान श्रीमद्भागवत की सरस कथा सबको सुनाने लगे। इन्होने मदनमोहन का प्रतिष्ठापन

कर सेवा आरंभ की। यह मंदिर वर्तमान है और इनके वंशज अब तक सेवा करते हैं। भट्ट जी की रचना 'मोहिनि वाणी' में संकलित तथा प्रकाशित हो चुकी है। इनका समय स० १५६० से स० १६३० के मध्य है। [ब्र० र० दा०]

भट्ट गोपाल गोस्वामी कावेरी नदी के तट पर श्रीरंग के पास वेलगुडी ग्राम में इनका जन्म स० १५५३ वि० मे हुआ। स० १५६८ मे जब श्रीगौराग दक्षिण यात्रा करते हुए श्रीरंग आए, वेंकट भट्ट के यहाँ चातुर्मास व्यतीत किया था। गोपाल भट्ट की सेवा से प्रसन्न हो इन्हे दीक्षा दी तथा जाते समय विवाह न करने और अध्ययन एव माता पिता की सेवा करने का उपदेश दिया। माता पिता की मृत्यु पर स० १५८८ मे वृदावन आए। श्रीगौराग के अप्रकट होने पर वृद्ध गोस्वामियो के विशेष आग्रह पर यह उस आसन पर बैठे। उत्तरी तथा पश्चिमी भारत के बहुत से लोग इनके शिष्य हुए। इसके अनतर यह यात्रा को निकले। देववन में गोपीनाथ को शिष्य बनाया तथा गडकी नदी से एक शालिग्राम शिला ले आए, जिसकी निरतर पूजा करते। स० १५९९ मे इनकी अभिलाषा के कारण शिला से राधारमण की मूर्ति का प्राकट्य हुआ। महारासस्थली का स्थान निश्चित कर कुटी बनाई और उसी मे सेवा पूजा करने लगे। स० १६४२ मे भट्ट जी का तिरोधान हुआ। कृष्णतत्व तथा अवतारवाद पर कई स्फुट सदर्भ लिखकर जीव गोस्वामी को सुशृखलित करने को दिया और उन्होने षट् सदर्भ पूरा किया। इनका हरिभक्तिविलास वृहत् ग्रथ है, जो वैष्णव स्मृति रूप मे विख्यात है। [ब्र० र० दा०]

भट्ट नारायण अपनी केवल एक कृति वेणीसहार के द्वारा सस्कृत साहित्य मे अमर हैं। सस्कृत वाड्मय मे समुपलब्ध नाटको मे इसका विशिष्ट स्थान है। विद्वज्जन इसे नाट्यशास्त्र के सिद्धातों के अनुकूल दृष्टिकोण से लिखा गया नाटक मानते हैं इसीलिये इसके उदाहरणों को अपने लक्षणग्रथो मे वामन, विश्वनाथ आदि ने विशेष रूप से उद्धृत किया है। नाटकीय सिद्धातों के निदर्शन का विशेष लक्ष्य होने के कारण ही यद्यपि इसमे गतिशीलता का अभाव माना गया है तथापि इसके पद्यो मे रौद्र का जो सरस प्रवाह है वह सहृदय को प्रगतिशील बनाने के लिये पर्याप्त है। इसकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है। महाभारत के द्यूत प्रसग में पाचाली द्रौपदी का भरी सभा मे दु शासन के द्वारा घोर अपमान हुआ था। दुर्योधन आदि की आज्ञा से दु शासन उसे केश पकडकर घसीट लाया था जिसपर उसने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक इस अपमान का बदला नही चुकाया जायगा, मैं अपने इन केशो को नही बाँधूँगी। बलशाली भीम ने उसकी यह प्रतिज्ञा पूर्ण की और दु शासन का वध कर रुधिर से रगे हुए हाथों से द्रौपदी की वेणी गूँथी जिससे उसका हृदय शात हुआ। भट्ट नारायण ने इस कथानक को परम रमणीय नाटक के रूप मे प्रस्तुत किया है। उनके निशाचित्रण इतने सजीव हैं कि उनको मनीषिवर्ग ने 'निशानारायण' की उपाधि से अलकृत किया है। उनका जीवनवृत्त अनिश्चित है किंतु वामन और आनदवर्धनाचार्य के ग्रथो में वेणीसहार के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि यह उनसे पूर्ववर्ती हैं। वामन का समय वेलवल्कर ने सप्तम शताब्दी का अंतिम भाग स्वीकृत किया है। इस प्रकार भट्ट नारायण अष्टम शताब्दी से पूर्व के सिद्ध होते हैं। विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की पारिवारिक परपरा में यह बात स्वीकृत की जाती है कि सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे बगाल के राजा आदिशूर ने इनको कान्यकुब्ज से बुलवाया था। आदिशूर ने बगाल मे पाल वश से पूर्व राज्य किया था। [रा० च० या०]

भट्ट, बाण सस्कृत महाकवियों में बाण भट्ट का विशिष्ट महत्व है। उत्कृष्ट गद्यकाव्यकार के रूप में उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त, ऐतिहासिक दृष्टि से भी उनको अपूर्व विशेषता प्राप्त है। सस्कृत इतिहास के वे ऐसे अकेले कलाकार हैं जिनके जीवनवृत्त के विषय मे हमें बहुत सी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त है, जो प्राय उन्हीं के ग्रथो मे उपलब्ध है। हर्षकालीन राजनीतिक और सामाजिक अनेक विषयो के ज्ञान और सूचना देने के कारण 'हर्ष-चरित' का विशेष महत्व है। यह भी पता चलता है कि बाण का काल हर्षवर्धन के शासनकाल (६०६ ई० से ६४६ ई०) के आसपास ही था। उस युग मे कवि ने काव्यरचना भी की थी। 'हर्षचरित' के तीन आरभिक उच्छ्वासों तथा 'कादवरी' के आरभिक पद्यों मे बाण के वश और जीवनवृत्त से सबद्ध जो सूचना मिलती है उसका साराश यह है -

उनके पूर्वज वेदवेदागनिष्णात और विविध-विद्या-विशारद वात्स्यायन गोत्री थे। सोननद के किनारे 'प्रीतिकूट' में उनके पूर्वजों का निवास था। इसी वश मे इनके वृद्ध प्रपितामह हुए थे। उनका नाम 'कुबेर' था और गुप्तवशीय राजाओं द्वारा उन्हें संमान प्राप्त हुआ था। उनके पुत्रों मे पाशुपत के अनेक पुत्र थे। उनमें से अर्थपति एक था जिसके ११ पुत्रों मे चित्रभानु थे। इन्ही के पुत्र थे बाण भट्ट। इनकी माता राजदेवी का देहात तभी हो गया था जब बाण शिशु थे। इनका परिवार धनसपन्न था। माता के निधन पर चित्रभानु ने माता पिता दोनों के वात्सल्य और कर्तव्य का भार उठाया। बाण जब १४ वर्ष के थे तभी पिता का स्वर्गवास हो जाने से बडे दु खी हुए। पैतृक धन, वैभव, योग्य अभिभावक का अभाव और युवावस्था की चपलता के कारण वे आखेट आदि के व्यसनों मे पड गए। घुमक्कडी प्रकृति और अल्हडता के कारण वे आवारा होकर कुसगति मे जा पडे। नर्तक, गायक, नट, विट आदि मडली बनाकर वे देशाटन को निकल पडे। जब घूम फिर कर वापस आए तब स्वार्जित अनुभूतियो के कारण उनकी बुद्धि विकसित हुई। जब वे हर्ष के यहाँ पहुचे तो पहले तो 'हर्ष' ने उनपर व्यग्य कसे तथा उनकी अवहेलना की। पर बाद में 'बाण' के पाडित्य, शास्त्रज्ञान और काव्यप्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हे राजसभा मे आश्रय, समान और अपना स्नेह दिया। कुछ समय बाद घर लौटने पर लोगों द्वारा और अपने छोटे भाई के बार बार पूछने पर उन्होने 'हर्ष' की प्रशस्ति मे 'हर्षचरित' नामक गद्यकाव्य लिखा।

बाण भट्ट के सर्वाधिक प्रसिद्ध दो ग्रथ—(१) हर्षचरित (बाण के अनुसार ऐतिहासिक कथा से सबद्ध होने के कारण आख्यायिका) और (२) कादवरी (कल्पित वृत्ताश्रित होने से कथा)—हैं। 'हर्षचरित' को कुछ लोग ऐतिहासिक कृति मानते हैं। परतु शैली,

वृत्तवर्णन, कल्पनात्मकता और कथारूढियों (मोटिफ) के प्रयोग विनियोग के कारण इसे 'ऐतिहासिक रोमास' कहना कदाचित् असगत न होगा। कादबरी का आधार कल्पित कथा है। 'सुबधु' ने गद्यकाव्य की जिस अलकृत शैली को प्रवर्तित किया, बाण ने उसे विकसित और उन्नत बनाया। कादबरी मे उसका उत्कृष्टतम रूप निखर उठा है। सस्कृत गद्यकाव्यो मे इस कथाकाव्य का स्थान अप्रतिम है। इन दोनों कृतियो मे तत्कालीन धर्म, सस्कृति, समाज, परपरा, आस्थाविश्वास, कला, साहित्य, मनोरजन, राजकीय वैलासिक जीवन आदि का इतना सश्लिष्ट, ब्योरेवार और जीवत चित्र है जैसा अन्यत्र दुर्लभ है। बाण की भाषा शैली प्रौढ है, यद्यपि विशेषणो की बहुलता को आडबर बताकर अनेक आलोचकों ने उसे बोझिल, गतिहीन और अल्पसार बताया है। अशत यह सही भी है किंतु आलकारिक चमत्कारसर्जना युक्त उनकी वर्णनशैली मे विशेषण प्रयोग अर्थहीन नही हैं। वर्ण्यवस्तु का चित्रोत्थापक और ब्योरेवार वर्णन इस कारण लबा चौडा हो गया है जिससे शब्दों द्वारा अकित सश्लिष्ट बिंब के सभी रगो और रेखाओ का सूक्ष्मतम चित्रण किया जा सके चित्रग्राहिणी प्रतिभा की सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति से सपन्न बाण को बिंबोत्थापन मे जो सफलता मिली है, वह सस्कृत साहित्य में कदाचित किसी को भी नही मिली। इन कृतियो को, इन्हीं ब्योरेवार वर्णन के कारण, तत्कालीन सास्कृतिक इतिवृत्त का अनुपम साधन कहा जा सकता है। उनकी शैली में वर्णननैपुण्य, निरीक्षणप्रज्ञा, कवि प्रतिभा, शास्त्रवैदुष्य, रसभावघनता, अलकारचमत्कृति, रीतिप्रौढता आदि गुणो का पूर्ण उन्मेष है। लबे लबे, विशेषण डबरित और समासजटिल भाषाशैली की रचना मे वे जितने पटु और समर्थ हैं—उतने ही कुशल और सफल हैं समासहीन और प्रभावोत्पादक में छोटे छोटे लघुतम वाक्यो के अत्यत समर्थ प्रयोग मे। कोमलकात पदावली और ओज क्रातिमयी शब्दयोजना में भी उनकी शक्ति विलक्षण थी। कादबरी उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। पर इसकी कथा कुछ उलझी हुई है। पूर्वार्ध की ही रचना—(जो ग्रथ का २/३ भाग है)—बाण कर पाए थे—शायद इस कारण भी कथा सुलझ न पाई। इनके पुत्र पुर्दि (भूषण) ने सफलतापूर्वक उत्तरार्ध लिखकर इसे पूरा किया। पिता की शैली के अनुकरण में उन्हे आशिक सफलता ही मिली। कहा जाता है कि पद्य मे भी 'बाण' ने कादबरी कथा लिखी थी। पर उक्त ग्रथ अबतक अप्राप्त है। 'चडीशत' नामक स्तोत्र को बाणरचित माना जाता है। ('पार्वती परिणय' नाटक को भी कुछ पडित बाणकृत मानते हैं। पर कुछ शोधको ने उसे १४वी शती के वामनभट्ट बाण की कृति माना है)।

सं० ग्र०—हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर—कलकत्ता विश्वविद्यालय, सस्कृत सुकवि समीक्षा—बलदेव उपाध्याय, 'चौखभा विद्याभवन, वाराणसी। सस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गरौला, वही। सस्कृत काव्यकार—डा० हरिदत्त शास्त्री।

भट्टिकाव्य महाकवि भट्टि की कृति। इसका वास्तविक नाम रावणवध है। इसमें भगवान् रामचद्र की कथा जन्म से लगाकर लकेश्वर रावण के सहार तक उपवर्णित है। इस महाकाव्य का उपजीव्य ग्रथ वाल्मीकिकृत रामायण है। कथाभाग के उपकथन की दृष्टि से यह महाकाव्य २२ सर्गों में विभाजित है तथा महाकाव्य के सकल लक्षणों से समन्वित है। रचना का मुख्य उद्देश्य व्याकरण एव साहित्य के लक्षणो को लक्ष्य द्वारा उपस्थित करने का है।

लक्ष्य द्वारा लक्षणों को उपस्थित करने की दृष्टि से यह महाकाव्य चार काडों मे विभाजित है जिसमे तीन काड सस्कृत व्याकरण के अनुसार विविध शब्दरूपो को प्रयुक्त कर रचयिता की उद्देश्यसिद्धि करते हैं। मध्य मे एक काड काव्यसौष्ठव के कतिपय अगो को अभिलक्षित कर रचा गया है। रचना का अनुक्रम इस प्रकार है कि प्रथम काड व्याकरणानुसारी विविध शब्दरूपो को प्रकीर्ण रूप से सगृहीत करता हैं। द्वितीय काड अधिकार काड है जिसमे पाणिनीय व्याकरण के कतिपय विशिष्ट अधिकारों मे प्रदर्शित नियमो के अनुसार शब्दप्रयोग है। तृतीय काड साहित्यिक विशेषताओ को अभिलक्षित करने की दृष्टि से रचा गया है अतएव इस काड को महाकवि ने प्रसन्नकाड की सज्ञा दी है। इस काड मे चार अधिकरण हैं प्रथम अधिकरण में शब्दालकार एव अर्थालकार के लक्ष्य हैं—द्वितीय अधिकरण मे माधुर्य गुण के स्वरूप का प्रदर्शन लक्ष्य द्वारा किया गया है, तृतीय अधिकरण मे भाविकत्व का स्वरूप प्रदर्शन करते हुए कथानक के प्रसगानुसार राजनीति के विविध तत्वो एव उपायो पर प्रकाश डाला गया है। प्रसन्न काड का चौथा अधिकरण इस महाकाव्य का एक विशेष रूप है—इसमे ऐसे पद्यो की रचना की गई है जिनमे सस्कृत तथा प्राकृत भाषा का समानातर समावेश है, वही पद्य सस्कृत में उपनिबद्ध है जिसकी पदावली प्राकृत पद्य का भी यथावत् स्वरूप लिए है और दोनो भाषा मे प्रतिपाद्य अर्थ एक ही है। भाषा सम का उदाहरण प्रस्तुत करता हुआ यह अश भट्टिकाव्य की निजी विशेषता है। अतिम काड पुन. सस्कृत व्याकरण के एक जटिल स्वरूप तिङन्त के विविध शब्दरूप को प्रदर्शित करता है। यह काड सबसे बडा है।

लक्षणात्मक इन चार काडो में कथावस्तु के विभाजन की दृष्टि से प्रथम काड मे पहले पाँच सर्ग हैं जिनमे क्रमश रामजन्म, सीताविवाह, राम का वनगमन एव सीताहरण तथा राम के द्वारा सीतान्वेषण का उपक्रम वर्णित है। द्वितीय काड अगले चार सर्गों को व्याप्त करता है जिसमें सुग्रीव का राज्याभिषेक, वानर भटो द्वारा सीता की खोज, लौट आने पर अशोकवाटिका का भग और मारुति को पकडकर सभा मे उपस्थित किए जाने की कथावस्तु वर्णित है। तीसरे, प्रसन्नकाड मे अगले चार सर्ग हैं जिनमे सीता के अभिज्ञान का प्रदर्शन, लका में प्रभात का वर्णन, विभीषण का राम के पास आगमन तथा सेतुबध की कथा है। अतिम, तिङन्त काड अगले नौ सर्ग ले लेता है जिनमे शरवध से लगाकर राजा रामचद्र के अयोध्या लौट आने तक का कथाभाग वर्णित है। चारों काड और २२ सर्गों में १६२५ पद्य हैं, जिनमे प्रथम पद्य मगलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक है तथा अतिम पद्य काव्योपसहार का है। १६२५ पद्यसख्या के इस महाकाव्य मे अधिकाश प्रयोग अनुष्टुभ श्लोको का है जिनमे सर्ग छह, नौ तथा १४ वाँ एव २२ वाँ उपनिबद्ध हैं। उपजाति छद मे चार सर्ग हैं, पहला, दूसरा, ११ वाँ और १२ वाँ। दसवें सर्ग मे विविध छदो का प्रयोग किया गया है जिनमें पुष्पिताग्रा प्रमुख है। इनके अतिरिक्त प्रहर्षिणी, मालिनी, औपच्छदसिक, वशस्थ, वैतालीय, अश्वललित, नदन, पृथ्वी, रुचिरा, नर्कुटक, तनुमध्या, त्रोटक, द्रुतविलबित, प्रमिताक्षरा, प्रहरणकलिका, मदाक्राता, शार्दूलविक्रीडित

एवं स्रग्धरा का छुटपुट प्रयोग दिखाई देता है। साहित्य की दृष्टि से भट्टिकाव्य में प्रधानत ओजोगुण एवं गौडी रीति है, तथापि अन्य माधुर्यादि गुणों के एव वैदर्भी तथा लाटी रीति के निदर्शन भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होते हैं।

स्वय प्रणेता के अनुसार भट्टिकाव्य की रचना गुर्जर देश के अतगत वलभी नगर मे हुई। भट्टि कवि का नाम 'भर्तृ' शब्द का अपभ्रश रूप है। कतिपय समीक्षक कवि का पूरा नाम भर्तृहरि मानते हैं, परतु यह भर्तृहरि निश्चित ही शतकत्रय के निर्माता अथवा वाक्यपदीय के प्रणेता भर्तृहरि से भिन्न हैं। भट्टि उपनाम भर्तृहरि कवि वलभीनरेश श्रीधर सेन से सबधित है। महाकवि भट्टि का समय ईसवी छठी शताब्दी का उत्तरार्ध सर्वसमत है। अलकार वर्ग में निर्दाशत उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भट्टि और भामह एक ही परपरा के अनुयायी हैं। भट्टि ने स्वय अपनी रचना का गौरव प्रकट करते हुए कहा है कि यह मेरी रचना व्याकरण के ज्ञान से हीन पाठकों के लिये नही है। यह काव्य टीका के सहारे ही समझा जा सकता है। यह मेधावी विद्वान् के मनोविनोद के लिये रचा गया है, तथा सुबोध छात्र को प्रायोगिक पद्धति से व्याकरण के दुरूह नियमों से अवगत कराने के लिये।

भट्टिकाव्य की प्रौढता ने उसे कठिन होते हुए भी जनप्रिय एव मान्य बनाया है। प्राचीन पठनपाठन की परिपाटी मे भट्टिकाव्य को सुप्रसिद्ध पच महाकाव्य के अतर्गत स्थान दिया गया है। लगभग १४ टीकाएँ भट्टिकाव्य पर लिखी गई जिनमें से सर्वाधिक प्रचलित टीकाएँ जयमगला, मल्लिनाथ की सर्वपथीन एव जीवानद कृत हैं। माधवीयधातुवृत्ति मे शकराचार्य द्वारा भट्टिकाव्य पर प्रणीत टीका का उल्लेख मिलता है। [सु० ना० शा०]

भट्टोजि दीक्षित (१७वीं शताब्दी) इनका निवासस्थान काशी था। पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन की प्राचीन परिपाटी मे पाणिनीय सूत्रपाठ के क्रम को आधार माना जाता था। यह क्रम प्रयोगसिद्धि की दृष्टि मे कठिन था क्योंकि एक ही प्रयोग का साधन करने के लिये विभिन्न अध्यायों के सूत्र लगाने पडते थे। इस कठिनाई को देखकर ऐसी पद्धति के आविष्कार की आवश्यकता पडी जिसमे प्रयोगविशेष की सिद्धि के लिये आवश्यक सभी सूत्र एक जगह उपलब्ध हों। भट्टोजि दीक्षित ने प्रक्रिया कौमुदी के आधार पर सिद्धात कौमुदी की रचना इसी पद्धति पर की। इस ग्रथ पर उन्होने स्वय प्रौढ मनोरमा टीका लिखी। पाणिनीय सूत्रों पर अष्टाध्यायी क्रम से एक अपूर्ण व्याख्या, शब्दकौस्तुभ तथा वैयाकरणभूषण कारिका भी इनके ग्रथ हैं। इनकी सिद्धात कौमुदी लोकप्रिय है।

[रा० च० पा०]

भदोही स्थिति २५° २४' उ० अ० तथा ८२° ३८' पू० दे०। भारत के उत्तर प्रदेश राज्य मे वाराणसी जिले की एक तहसील एव नगर है। वाराणसी से ४५ किमी० पश्चिम मे स्थित है। यहाँ की जलवायु गरम तथा नम है और भूमि उपजाऊ है। कृषि के अतिरिक्त कालीन तथा दरी बनाने के कुटीर उद्योग भी यहाँ हैं। भदोही व्यापारिक केंद्र भी है जहाँ से कालीन, दरियाँ तथा बचे हुए कृषि उत्पाद बाहर भेजे जाते हैं। यहाँ की जनसख्या २०,३०२ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

भद्र (Porch) ड्योढी या द्वारमडप किसी भवन के मुख्यद्वार की सुरक्षा के निमित्त उसके सामने बनाई हुई सरचना है। प्राय यह तीन ओर से खुली होती है, और छत स्तभों पर, या कभी कभी बिना स्तभों के ही मुख्य भवन से निकली हुई बाहुधरनों पर आलबित रहती है। अनेक प्राचीन मदिरो मे जैसे ऐहोल के दुर्गामदिर मे (५वीं शती), खजुराहो के महादेवमदिर मे (१०-११वीं शती), ओसिया, मारवाड के सूर्यमदिर मे (९-१०वीं शती) या मोढेरा, गुजरात के सूर्यमदिर मे भद्र का 'द्वारमडप' स्वरूप विशेष दृष्टिगोचर है। खजुराहो के मदिरो मे इसे 'अर्धमडप' नाम दिया जाता है। मुख्य मदिर के अतिरिक्त यह अर्धमडप होने के कारण, ड्योढी भी कहा जाने लगा। कहीं कहीं यह तीन ओर से खुला न होकर केवल सामने की ओर ही खुला रहता है, जैसे काचीपुरम् (काजीवरम्) के वैकुठ पेरुमल मदिर में (८वीं शती) या भुवनेश्वर के वैताल देवल मदिर में। कालातर मे मुख्यद्वार के सामने निकले हुए किसी प्रकार के छज्जे को, और अलकरण के लिये बनाए गए स्तभों को भी भद्र कहा जाने लगा। पश्चिम मे भी 'पोर्च' शब्द का उपयोग वास्तविक ड्योढी या द्वारमडप के अर्थ मे तो होता ही है, मुख्यद्वार पर बने स्तभो सहित छज्जे के लिये या स्तभश्रेणी के लिये भी होता है। अमरीका मे तो तीन ओर से खुली हुई छतयुक्त कोई भी उप सरचना जो किसी भी भवन से मिली हो 'पोर्च' कही जाती है। इस प्रकार इसमे और किसी बरामदे या शयनप्रागण मे प्राय कुछ अतर ही नही रह जाता।

अति प्राचीन सरचनाओं से भी भद्र के मूल रूप का अनुमान किया जा सकता है। इस दृष्टि से बाडावार पहाडियों में लोमश ऋषि की कुटी (३री शती ई० पू०) उल्लेखनीय है। यद्यपि इसका द्वारमडप तीन ओर से नही, केवल सामने से ही खुला है। 'स्तंभश्रेणी के रूप मे भद्र नासिक की गुफाओ (३री शती) मे देखे जा सकते हैं, जिनका अनुकरण बाद मे बौद्ध वास्तुकला मे अबाध गति से हुआ है। मुख्यद्वार पर होने के कारण अलकरण की दृष्टि से भी इनका महत्वपूर्ण स्थान था।

मिस्र के भित्तिचित्रो से प्रकट होता है कि वहाँ के घरों में भी कभी कभी भद्र बनाए जाते थे। एथेंस के टावर ऑव विंड्स (१ ली शती ई० पू०) के यूनानी भद्र उल्लेखनीय हैं। पाँपेई मे भी ऐसे ही भद्र थे। रोम मे कभी कभी घरो के सामने सडक की ओर लबी स्तभ श्रेणी होती थी, जिसे भद्र कहा जा सकता है। रोमैनेस्क (Romanesque) युग मे गिरजाघरो मे पश्चिमी द्वारों पर बाहर निकला हुआ सामान्य भद्र बनाया जाने लगा। इतालवी रोमैनेस्क कालीन इमारतो मे ऐसे ही भद्रों के नमूने वेरोना (१२ वी शती), मोदेना (१२वीं शती) और परमा (१३वीं शती) मे देखे जा सकते हैं। फ्रास मे और विशेषकर बरगडी में भद्र के स्वरूप में और भी विकास हुआ। वहाँ पर एक ऊँची गुबजवाली सरचना के रूप मे यह इमारत का विशेष महत्वशाली अग हो गया जो काफी चौडा, कभी कभी तो सारे गिरजाघर की चौडाई के बराबर ही, होता था।

विविधताप्रेमी इग्लैंड ने भद्र का इस प्रकार विकास किया कि इसने 'गैलिली' नाम से एक अलग सरचना का ही रूप ले लिया। पुनरुद्धार काल में भद्र का उपयोग पोर्टिको या ओसारा के रूप मे

ही होने लगा। किंतु १८वीं शती के अंत तक इंग्लैंड और अमरीका में सभी घरों मे दो या चार स्तभवाले सादे भद्रों का निर्माण आम हो गया।

आजकल भी मदिर या कलाभवन आदि जैसी प्राचीन परिपाटी की उद्धारक कतिपय विशेप इमारतो को छोड़कर प्राय सभी महत्वपूर्ण इमारतों मे भद्र का प्रयोग उपयोगमूलक हो गया है। उपयोग की दृष्टि से स्तभ अनावश्यक ही नही, बाधक भी समझे जाने लगे हैं, और द्वार पर छाया के लिये बाहुधरनों पर आलवित सादे भद्र ही पर्याप्त माने जाते हैं। स्तभ होते भी हैं तो पीछे की ओर ही, ताकि द्वार पर आनेवाले वाहनो के लिये तीन ओर से बिल्कुल खुला निर्बाध स्थान उपलब्ध हो सके। वर्तमान ढाँचेदार सरचनापद्धति, सादे छज्जे जैसे भद्रो के लिये विशेप अनुकूल सिद्ध हुई है। अलकरण के नाम पर सपूर्ति सामग्री की विविधता और कुछ खडी तथा कुछ पडी सीधी रेखाओ को ही प्रमुखता दी जाती है। भारी और अलकृत स्तभो युक्त भद्र भारवाही सरचनापद्धति के साथ ही, बल्कि उससे भी अधिक तेजी से लुप्त होते जा रहे हैं। [वि० प्र० गु०]

भद्रबाहु महावीर निर्वाण के लगभग १५० वर्ष पश्चात् (ईसवी सन् के पूर्व लगभग ३६७) भद्रबाहु नाम के सुप्रसिद्ध जैन आचार्य हो गए हैं जो दिगबर और श्वेतावर दोनो सप्रदायो द्वारा अतिम श्रुतकेवली माने जाते हैं। भद्रबाहु चद्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे। उस समय जब मगध में भयकर दुष्काल पडा तो अनेक जैन भिक्षु भद्रबाहु के नेतृत्व मे समुद्रतट की ओर प्रस्थान कर गए, शेष स्थूलभद्र के नेतृत्व मे मगध मे ही रहे। (दिगबर मान्यता के अनुसार चद्रगुप्त जब उज्जैनी मे राज्य करते थे तो भद्रबाहु ने द्वादशवर्षीय अकाल पडने की भविष्यवाणी की। इसपर भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य सघ को लेकर पुन्नार चले गए, जबकि रामिल्ल, स्थूलभद्र और भद्राचार्य ने सिंधुदेश के लिये प्रस्थान किया)। दुष्काल समाप्त हो जाने पर जैन आगमो को व्यवस्थित करने के लिये जैन श्रमणो का एक समेलन पाटलिपुत्र मे बुलाया गया। जैन आगमों के ११ अगो का तो सकलन कर लिया गया लेकिन १२वाँ अग दृष्टवाद चौदह पूर्वों के ज्ञाता भद्रबाहु के सिवाय और किसी को स्मरण नही था। लेकिन भद्रबाहु उस समय नेपाल में थे। ऐसी परिस्थिति मे पूर्वों का ज्ञान संपादन करने के लिये जैन सघ की ओर से स्थूलभद्र आदि साधुओं को नेपाल भेजा गया, और भद्रबाहु ने स्थूलभद्र को पूर्वों की शिक्षा दी।

भद्रबाहु का सबसे प्राचीन उल्लेख देवर्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा ४५३ ई० में रचित 'कल्पसूत्र' की 'स्थविरावलि' मे मिलता है, जहाँ इन्हे यशोभद्र का शिष्य बताया है। भद्रबाहु बृहत्कल्प, व्यवहार और दशाश्रुतस्कध नाम के तीन छेदसूत्रो के कर्ता माने जाते हैं।

भद्रबाहु ने आचाराग, सूत्रकृताग, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्यवहार, कल्प (बृहत्कल्प) दशाश्रुतस्कध, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और ऋषिभाषित नामक दस आगम ग्रथो पर प्राकृत गाथाओं मे निर्युक्तियो की भी रचना की है, लेकिन ये भद्रबाहु दूसरे हैं। इनका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी बताया जाता है। भद्रबाहु ने (उपसर्गहर) स्तव की भी रचना की है। मेरुतुग के प्रबध-चिंतामणि में वराहमिहिर नाम के प्रबध मे वराहमिहिर को भद्रबाहु का ज्येष्ठ भ्राता कहा है। वराहमिहिर ज्योतिपशास्त्र के बडे विद्वान् थे, इन्होने वाराहीसहिता नाम के ज्योतिपशास्त्र की रचना की है। राजशेखर के प्रबधकोप मे भी भद्रबाहु और वराहमिहिर का उल्लेख मिलता है।

स० ग्रं०—जगदीशचद्र जैन प्राकृत साहित्य का इतिहास।

[ज० च० जै०]

भद्रावती स्थिति १३° ५२' उ० अ० तथा ७५° ४०' पू० दे०। भारत मे मैसूर राज्य के शिवमोगा जिले का, शिवमोगा से १८ किमी० दूर स्थित एक नगर है। लोहा इस्पात के कारखाने के कारण नगर की काफी प्रसिद्धि है। इस कारखाने की विशेपता यह है कि इसमें इंधन के रूप मे लकडी के कोयले का उपयोग होता है। लोहा बाबाबूदन की पहाडियो एव चूना मडी गुड्डा से प्राप्त किया जाता है। लोहे इस्पात के अतिरिक्त अल्कतरा, अमोनियम सल्फेट, सीमेंट आदि पदार्थों का उत्पादन भी होता है। इसकी जनसख्या ६५,७७६ (१९६१) है। [सु० च० श०]

भरणपोषण (Maintenance, मेटनेंस) विधि द्वारा कतिपय व्यक्ति बाध्य हैं कि वे कुछ व्यक्तियो का, जो उनसे विशेप सबध रखते हैं, भरणपोषण करें। यही भरणपोषण या गुजारा पाने का अधिकार है। भरणपोषण मे अन्न, वस्त्र एव निवास ही नही वरन् आधारित व्यक्ति के स्तर की सुख और सुविधा की वस्तुएँ भी समिलित हैं।

भरणपोषण पाने का अधिकार व्यक्तिगत विधि मे भी प्रदत्त है और आपराधिक व्यवहारसहिता धारा ४८८ मे भी। हिंदू दत्तक एव पोषण विधि, १९५६, मे इस अधिकार को विस्तृत कर दिया गया है।

दो प्रकार के व्यक्ति भरणपोषण के अधिकारी हैं १ वे जिनका अधिकार सबध पर आधारित है, २ वे जिनका आधार देनदार के कब्जे में सपत्ति होने पर निर्भर है।

प्रत्येक हिंदू अपने वृद्ध माता, पिता, पत्नी, अवयस्क पुत्र, एवं अविवाहित पुत्रियो का (चाहे वे वैध हो या अवैध) भरणपोषण करने के लिये बाध्य है। उपपत्नी, पितामह तथा पितामही और पौत्रादि के पोषण का भार वहन करना, उसके लिये आवश्यक नही है। इस व्यक्तिगत दायित्व के अतिरिक्त यदि किसी हिंदू को सपत्ति दाय के रूप मे प्राप्त होती है तो उसका दायित्व हो जाता है कि वह उन सब व्यक्तियो का पोषण करे जिनका पोषण मृतक का वैधानिक या नैतिक कर्तव्य था। उदाहरणार्थ श्वसुर का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपनी निर्धन और विधवा पुत्रवधू का भरणपोषण करे, किंतु यदि उसकी मृत्यु के पश्चात् पुत्र उसकी सपत्ति पाते हैं तब उनका विधि के अतर्गत दायित्व है कि वे उस सपत्ति द्वारा उसका पोषण करें। सयुक्त परिवार के कर्ता का दायित्व है कि वह सभी सदस्यो का उनकी विधवा पत्नियो तथा सतानो का पोषण करे। यदि किसी सदस्य को किसी निर्योग्यता के कारण दाय से वचित होना पडता है तो उसकी सपत्ति (अर्थात् जो भाग उसे मिलता वह) पोषणार्थ उत्तरदायी है।

पत्नी का भरणपोषण — पत्नी को भरणपोषण पाने का अधिकार है, चाहे पति के पास संपत्ति हो अथवा न हो। यदि पत्नी उचित कारणवश, जैसे पति के दुष्टतापूर्ण व्यवहार के कारण या उसके संक्रामक रोगों से आक्रांत होने के कारण, पति से विलग रहती है तब भी वह पोषण की अधिकारिणी है। पति के उत्तराधिकारी से भी वह अधिकार की माँग कर सकती है किंतु यह आवश्यक है कि वह अविवाहित और सुचरित्र रहे। हिंदू उत्तराधिकार विधि, १९५६, के अंतर्गत पत्नी को पति की मृत्यु के बाद संपत्ति का भागी होने का अधिकार है। यदि संयुक्त परिवार के अन्य सदस्य उसे उसका अंश देकर विलग कर दें तो पोषण की माँग पत्नी न कर सकेगी।

उपपत्नी का पोषण—उपपत्नी का संबंध चाहे जितने दीर्घकाल तक क्यों न रहा हो उसे अपने उपपति से पोषण पाने का कोई अधिकार नहीं है किंतु यदि वह मृत्यु पर्यंत उपपति के साथ धर्मपूर्वक रही हो तो उसे अपने उपपति की संपत्ति द्वारा पोषण पाने का अधिकार है।

भरणपोषण का धन — धन का परिमाण, चाहे वह अनुबंध द्वारा निश्चित हो चाहे न्यायालय द्वारा, यदि आवश्यकता हो तो परिवार की आय में कमी या वृद्धि होने पर तदनुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है। किंतु यदि पत्नी को एक बार ही पर्याप्त धन दे दिया गया है और उस धन को वह व्यय कर चुकी है तब उसे पुन धन पाने का अधिकार नहीं है।

निवास एवं पोषण— विधवा पत्नी तथा अविवाहिता पुत्रियों को यह अधिकार है कि वे परिवार के निवासगृह में रहें। यदि संयुक्त परिवार के अन्य सदस्य वह मकान विक्रय कर देते हैं और क्रेता को इस अधिकार का ज्ञान है तब इस स्थिति में निवास का अधिकार नष्ट नहीं होता। किंतु यदि हस्तांतरी को इस अधिकार का ज्ञान है तब भी वह उन्हें तब तक स्थानच्युत नहीं कर सकता जब तक वह उन्हें कोई अन्य उपयुक्त वासस्थान न दे। किंतु पत्नी या अविवाहिता पुत्रियों के इस अधिकार की माँग उस क्रेता के विरुद्ध नहीं की जा सकती जिसने मकान पति या पिता से क्रय किया हो या जिसने पति या पिता के विरुद्ध डिक्री निष्पादन में लिया हो, या उसकी संपत्ति के विरुद्ध डिक्री निष्पादन में लिया हो, यदि पिता या परिवार का कर्ता किसी ऐसे उद्देश्य के लिये विक्रय करे जो कुटुंब के लाभ का हो तो, या अन्यथा वैध हो तब भी यह अधिकार विनष्ट हो जाता है। इसी प्रकार यदि ऋण चुकाने के लिये संपत्ति का हस्तांतरण पिता या कर्ता द्वारा किया गया हो और ऋण मान्य हो तो क्रेता का अधिकार पुत्री के अधिकार पर अधिमान पा जाता है। यदि उसकी माँग संपत्ति पर आरोपित हो तो निवास का अधिकार स्थित रहेगा। इसी प्रकार दान या वसीयत द्वारा समस्त संपत्ति हस्तांतरित हो जाने पर भी पोषण का अधिकार बना ही रहेगा।

मुस्लिम विधि में पोषण को नफ़क कहते हैं। अधिकार तीन कारणों से उत्पन्न होता है—विवाह, संबंध और संपत्ति। विवाह से सर्वाधिक महत्वपूर्ण दायित्व उत्पन्न होता है। पत्नी और संतति का भरणपोषण प्राथमिक कर्तव्य है।

पत्नी को चाहे वह स्वयं साधनसंपन्न हो और पति के पास आय के साधन न हों तब भी पोषण माँगने का अधिकार है। संतति की अपेक्षा पत्नी को अधिमान देना आवश्यक है। पति का वैधिक दायित्व तभी आरंभ होता है जब पत्नी मुस्लिम विधि के अनुसार वयस्क हो जाए, आज्ञाकारी हो एवं पति से मिलना अस्वीकार न करे।

यदि विवाह के समय अनुबंध द्वारा पति ने पत्नी को गुजारा, खर्च-ए-पानदान आदि देने का वचन दिया है तो यह अनुबंध वैध रहेगा।

पत्नी का अधिकार पति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है अतएव मृत्यु के पश्चात् इद्दत की अवधि में पोषण पाने का अधिकार नहीं है। मुस्लिम विवाहभंग विधि, १९३९, के अंतर्गत पोषण न देने पर विवाह भंग हो सकता है। पुत्र को वयस्क होने तक और पुत्रियों को विवाह होने तक पोषण का अधिकार है। विधवा एवं विवाहविच्छिन्न पुत्रियाँ भी अधिकारी हैं। किंतु पुत्रवधू के अवैध पुत्र को अधिकार नहीं है। अवैध पुत्र अपनी माता से अधिकार माँग सकता है, पिता से नहीं। [प्र० कि० म०]

भरत इस नाम के पाँच प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं जिनमें मुख्य दाशरथि नाम के परम उपासक एवं भक्तशिरोमणि कैकेयीसुत हैं। पहले भरत तो प्रथम मन्वंतर के एक राजा थे जो विष्णुभक्त थे, दूसरे वैदिक भरत योद्धा एवं राजा थे जिनके नाम पर एक मानवकुल प्रसिद्ध है (ऐ० मार्क०, ऋ० ३।३३।११–१२), तीसरे अयोध्या के भरत अपने नाना केकयराज अश्वपति के ही साथ प्राय रहे और वहीं उनकी शिक्षा दीक्षा हुई। इनका ब्याह जनकपुर की माण्डवी से हुआ था और इन्होंने अपने राज्यकाल में तीन करोड़ गंधर्वों को मारकर उनके देश पर अधिकार किया था। चौथे भरत चंद्रवंशी राजा पुरु के वंश के दुष्यंत एवं शकुंतला के पुत्र भरत दौष्यंति थे। इन्हीं की नवीं पीढ़ी में कुरु हुए जिनके वंशज कौरव कहलाए। भारतवर्ष शब्द इन्हीं के नाम पर बना बतलाया जाता है। पाँचवें भरत प्रसिद्ध ऋषि और नाट्यशास्त्र के प्रणेता तथा आचार्य थे। इनके अतिरिक्त इस नाम के एक अन्य ऋषि भी थे (दे० जड़भरत)। [रा० द्वि०]

भरतपुर १ जिला, स्थिति २६° २०' से २७° ४७' उ० अ० तथा ७६° ५३' से ७८° १५' पू० दे०। यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर में उत्तर प्रदेश के मथुरा, आगरा, जिले, पूर्व में मध्यप्रदेश राज्य का मुरैना, पश्चिम में सवाई माधोपुर एवं अलवर तथा उत्तर में हरियाना राज्य का गुड़गाँव जिला स्थित है। इसका क्षेत्रफल ३,१२७ वर्ग मील एवं जनसंख्या ११,४६,८८३ (१९६१) है। जिला १२ तहसीलों में बँटा है। धरातल प्रायः समतल है केवल उत्तर में यत्र तत्र २०० फुट ऊँची पहाड़ियाँ हैं, जिनमें सुंदर इमारती पत्थर एवं कहीं कहीं लोहा भी मिलता है। बेनगंगा प्रमुख नदी है। पहले यह जिला एक रियासत था।

२ नगर, स्थिति २७° १३' उ० अ० और ७७° ३०' पू० दे०। भरतपुर जिले का प्रमुख नगर है, जिला जो भूतपूर्व भरतपुर रियासत की प्रमुख राजधानी था। संभवत पौराणिक भरत के नाम पर ही इसका नाम भरतपुर पड़ा है। नगर में मिट्टी की प्राचीन चहारदीवारी के भग्नावशेष अब भी उपस्थित हैं। नगर में सूरजमल का सुंदर महल है। यहाँ हाथीदाँत तथा चंदन की मूँठवाला चमर

बनाने का कार्य विशेष रूप से होता है। इसकी जनसख्या ४६,७७६ (१९६१) है। [सु० च० श०]

भरुच (भरुकच्छ) १ जिला, स्थिति २०° २५′ से २२° १५′ उ० अ० तथा ७२° ३१′ से ७३° १० पू० दे०। भारत के गुजरात राज्य का जिला है। इसके पश्चिम मे खभात की खाडी, दक्षिण मे सूरत, पूर्व मे धुलिया तथा उत्तर मे पचमहल एव खेडा जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,९८६ वर्ग मील तथा जनसख्या ८,६१,९६९ (१९६१) है। इसी जिले में आकर नर्मदा नदी सागर मे गिरती है। माही एव कीम अन्य नदियाँ भी बहती हैं। सागर की तरफ ५४ मील लबा एव २० से ४० मील चौडा जलोढ मिट्टी का एक ढलुवाँ मैदान स्थित है। इस मैदान की मिट्टी काली एव उपजाऊ है, कही कही भूरी मिट्टी भी मिलती है जिसमे बडी मात्रा मे कपास के अतिरिक्त तिल, ज्वार, तुर, गेहूँ, धान, दलहन, बाजरा, एव तबाकू उगाए जाते हैं। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। दिसबर का ताप लगभग ८° सें० तथा मई का ताप लगभग ४४° सें० रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत ३५ इच है। सूती कपडा बुनना प्रमुख उद्योग है।

२ नगर, स्थिति २१° ४२′ उ० अ० तथा ७२° ५९ पू० दे०। भरुच जिले मे, नर्मदा नदी के किनारे, इसके मुहाने से लगभग ३० मील ऊपर स्थित नगर है। यहाँ सूती कपडे के उद्योग, आटा मिल तथा हस्तकला उद्योग स्थित हैं। नगर मे पुरानी किलेबदी के अवशेष मिलते हैं। यहाँ भृगु ऋषि का एक मदिर है। इसकी जनसख्या ७३,६३९ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

प्राचीन इतिहास — आधुनिक भडौंच या भरुच का प्राचीन नाम भरुकच्छ था। यह बौद्धकालीन भारत का एक अति प्रसिद्ध पत्तन था। जातक ग्रथो मे ई० पू० छठी शती के वाणिज्य एव वणिक पथो के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उनके अध्ययन से पता चलता है कि उस समय भारत का वाणिज्य सबध ससार के अनेक बाहरी देशो से था तथा देश के भीतर विभिन्न प्रदेशों मे प्रचुर मात्रा में व्यापार होता था।

जातक ग्रथो मे कई प्रशस्त वणिक्पथो का उल्लेख है। सावत्थी (श्रावस्ती) से पतिठान (प्रतिष्ठान-हैदराबाद राज्य का पैठन) तक, द्वितीय सावत्थी से राजगह (राजगृह) तक तथा तृतीय सावत्थी से तक्षशिला तक जाता था। चतुर्थ वणिक्पथ काशी को पश्चिमी समुद्रतट के पत्तनो से सबद्ध करता था। इसी वणिक्पथ पर भरुकच्छ स्थित था। यहाँ से व्यापारी बावेरु (आधुनिक बैबिलोन) को जाते थे। इन वणिक्पथो पर सार्थवाह चलते थे। काशी से भरुकच्छ को चलनेवाले सार्थवाहो मे सहस्र बैलगाडियो के एक साथ चलने का उल्लेख जातको मे मिलता है। इनके रक्षार्थ सशस्त्र रक्षक होते थे। [र० उ०]

भल्लट सस्कृत कवि, इनकी लिखी एक ही रचना प्राप्त होती है जिसका नाम 'भल्लट शतक' है। इसका प्रकाशन काव्यमाला सिरीज के 'काव्यगुच्छ' सख्या दो मे हुआ है। मुक्तक पद्यों के इस संग्रह मे अन्य अलकारों की स्थिति होते हुए भी अन्योक्ति की बहुलता है और इस प्रकार की सरस एव अनूठी अन्योक्तियाँ जिनमे सरसता एवं सरलता के साथ उपदेश या शिक्षा का भी सुदर पुटपाक हो, सस्कृत साहित्य के विशाल भडार मे भी कम ही प्राप्त होती हैं।

अलकार शास्त्र के प्रथित आचार्यों ने, जिनमे आनदवर्धन, अभिनवगुप्त, क्षेमेद्र, मम्मट आदि है, इनके पद्यो को उत्तम काव्य के दृष्टात रूप मे बार बार उपस्थित किया है। अपनी कृतियो के माध्यम से विश्व को आह्लादित एवं अनुरजित करनेवाले सस्कृत साहित्य के प्रमुख कवियो की गणना करते हुए इन्हें 'श्रुतिमुकुटधर' कहा गया है।

भल्लट कश्मीर के निवासी थे। इनके सबध मे कुछ ऐसा विवरण प्राप्त नही होता जिससे इनके निवास, गुरु एव पितृपरपरा तथा राज्याश्रय आदि के सबध मे कुछ जाना जा सके। भल्लट का उल्लेख करनेवालो में आनदवर्धनाचार्य सबसे पूर्ववर्ती हैं, जिनका समय कश्मीर नरेश अवतिवर्मा का काल अर्थात् नवी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। अत इस आधार पर भल्लट का समय आठवी शती का उत्तरार्ध अनुमित है। [वि० त्रि०]

भवन ध्वानिकी (Acoustics of Buildings) ध्वनि विज्ञान की एक नवीन महत्वपूर्ण शाखा है। भवननिर्माण इजीनियरिंग मे इस शाखा का अध्ययन अति आवश्यक है। प्राचीन काल के विशाल गुबजों में शब्द के उच्चारण के बाद कुछ काल तक प्रतिध्वनि गूँजती रहती है, जैसा भुवनेश्वर मदिर, ताजमहल तथा पटने के गोलघर मे होता है। प्राचीन समय मे यूनान एव रोम के नाटक खेलनेवालो ने ऐसे सगीतभवनो या सभाभवनो की आवश्यकता अनुभव की जो प्रतिध्वनि एव अस्पष्ट आवाज से मुक्त हो, ताकि उच्चरित शब्द प्रत्येक श्रोता के पास स्पष्ट रूप मे पहुँच सके। सर्वप्रथम डी० बी० रीड (D B Reid) ने सभाभवन की इस कमी पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि एक विशाल कक्ष मे ध्वनि के अस्पष्ट सुनाई देने का कारण ध्वनि के अनुरणन (reverberation) द्वारा उत्पन्न प्रतिरोध है।

यूरोप और अमरीका मे राजनीतिक विचारों के बढते हुए प्रचार के कारण एव बोलते चलचित्रो के आविष्कार के कारण जनसमुदाय के एकत्रित होने के लिये प्रतिध्वनिरहित विशाल कक्षो की आवश्यकता अनुभव की गई। १८९५ ई० मे प्रोफेसर डब्ल्यू० सी० सैबिन (W C Sabin) ने एक श्रेष्ठ, प्रतिध्वनिरहित सभाभवन के लिये गणित की सहायता से एक सूत्र निकाला, जिसे सैबिन का सूत्र कहते हैं। यह भवननिर्माण में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अनुरणन काल (Reverberation Time) — जब एक वक्ता खुले मैदान में भाषण करता है तब ध्वनि की तरगें सभी दिशाओ मे फैल जाती हैं। श्रोता वक्ता की सीधी तरगो मे आती हुई प्रतिध्वनि रहित स्पष्ट आवाज को सुनता है। किंतु यदि यही भाषण एक बद विशाल कक्ष मे एकत्रित जनसमुदाय के सामने किया जाय, तो श्रोता को प्रतिध्वनि के कारण आवाज अस्पष्ट सुनाई देगी, क्योकि ध्वनि बंद कक्ष की छत, फर्श, दीवार एव अन्य विभिन्न वस्तुओ से परावर्तित हो जाएगी। ऐसा इसलिये होता है कि कक्ष के ये भाग कठोर प्लास्टर के बने होने के कारण ध्वनि के लिये अच्छे परावर्तक का कार्य करते हैं। परावर्तन में ध्वनि का कुछ भाग अवशोषित होता है। इसलिये प्रत्येक परावर्तन के पश्चात् ध्वनि की तीव्रता घटती जाती है

और कुछ काल पश्चात्, लगभग २०० परावर्तन के उपरांत, यह विभिन्न तीव्रता की ध्वनि के मिश्रण मे भर जाता है, जिसे प्राय. विसरित ध्वनि (diffused sound) कहते हैं। ऐसी अवस्था मे श्रोता को सीधी तरगो द्वारा लाई गई ध्वनि के अतिरिक्त बारबार परावर्तन के कारण क्रमश क्षीण होती हुई अस्पष्ट ध्वनि भी सुनाई देगी । इस प्रकार कई बार परिवर्तित होने से ध्वनि का श्रवणकाल बढ जाता है और इसी कारण से ध्वनि साफ साफ नहीं सुनाई देती है। परावर्तन द्वारा उत्पन्न ध्वनि के इस प्रभाव को ध्वनि का अनुरणन कहते हैं। यह हमारा नित्यप्रति का अनुभव है कि ध्वनि उत्पादक यत्र के बद कर देने पर ध्वनि तत्क्षण नष्ट नहीं हो जाती, बल्कि वह कक्ष मे कुछ काल तक गूंजा करती है, जिसकी तीव्रता धीरे. धीरे घटती है। इसलिये ध्वनि उत्पादक यत्र को बद करने के बाद ध्वनि का जो आभास होता है, उसे हम ध्वनि का अनुरणन कहते है। जितने समय तक यह आभास प्रतीत होता है, उसको ध्वनि का अनुरणन काल कहते है। चित्र मे यह t मे प्रदर्शित किया गया है। इसकी गणना उस समय से की जाती है जब से प्रारभिक ध्वनि उत्पन्न हुई
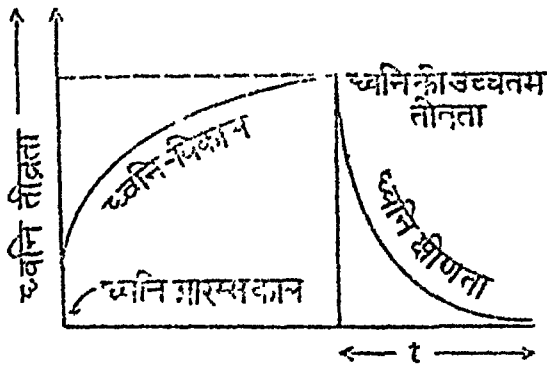
ध्वनि का अनुरणनकाल

हो। निरतर बोलते ध्वनिउत्पादक मे इस काल की गणना उस समय से की जाती है जब ध्वनिउत्पादक आवाज करना बद कर दे। कभी कभी ध्वनि के अनुरणनकाल की परिभाषा निम्नलिखित रूप मे भी दी जाती है

"कक्ष का अनुरणनकाल वह समय है जिसमे ध्वनिउत्पादक द्वारा ध्वनि का उत्पादन करने के बाद ध्वनि अपनी प्रारभिक तीव्रता की $१०^{-६}$ हो जाती है।" यदि प्रारभिक तीव्रता I_o हो तो t समय बाद इसकी तीव्रता निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है

$$I_t = I_o \times 10^{-6} \qquad (१)$$

यहाँ t ध्वनि का अनुरणनकाल है।

अस्तु, एक अच्छे ध्वनिनियत्रित कक्ष मे ध्वनि का अनुरणन काल कम होना चाहिए। किंतु यह इतना कम भी न होना चाहिए कि ध्वनि बिल्कुल ही अस्पष्ट सुनाई पडे। ध्वनि के गूंजते रहन का समुचित ज्ञान प्राप्त करना ही एक श्रेष्ठ कक्ष बनाने का रहस्य है। १०,००० घन आयतन के अच्छे ध्वनि नियत्रित कक्ष का अनुरणनकाल १·०३ सेकड होता है, जिसमे प्रत्येक शब्द उच्चारण के बाद स्पष्ट सुनाई देता है। ध्वनि के इस अनुरणनकाल को इष्टतम अनुरणनकाल (optimum reverberation time) कहते है। इसका सूत्र निम्नलिखित है

$$T = 75 + 175 \sqrt[3]{V} \qquad (२)$$

यहाँ T समय और V कक्ष का आयतन है

प्रोफेसर सबिन ने ध्वनि के अनुरणनकाल के लिये निम्नलिखित सूत्र निकाला था .

$$T = \frac{KV}{Sa} \qquad (३)$$

जहाँ T = ध्वनि का अनुरणनकाल, K = एक नियताक = ·०५, a = ध्वनि का अवशोषण गुणाक, S = ध्वनि को अवशोषित करनेवाले तल का क्षेत्रफल तथा V = कमरे का आयतन।

यदि कमरे का आयतन और ध्वनि का पूर्ण अवशोषण (S a) ज्ञात है, तो समय T की गणना की जा सकती है। ध्वनि के अवशोषण को घटा बढाकर अनुरणनकाल को निश्चित किया जा सकता है। उपर्युक्त सूत्र ऐसे कक्ष के लिये उपयुक्त है जिसमें कई परावर्तनों के पश्चात् ध्वनि श्रोता को स्पष्ट सुनाई देती है. किंतु ध्वनि के प्रसारण जैसे कार्य मे लाए जानेवाले कक्ष का (जिसका अवशोषण अधिक होता है) अनुरणनकाल अगर ऊपर के सूत्र से निकाला जाय, तो इस के वास्तविक अनुरणनकाल की मात्रा से अधिक आएगा। १९२८ ई० मे ईरिंग ने गूंजहीन कक्ष (dead rooms) के लिये निम्नलिखित सूत्र निकाला

$$T = \frac{KV}{S \log_e \frac{1}{(1-a)}} \qquad (४)$$

सूत्र से निकाले गए T के मान की तुलना विशेष प्रकार के कक्ष के T से की जाती है। यदि दो मानो मे कोई अंतर है, तो ध्वनि के अवशोषण (S a) तदनुरूप बदलते है। इसके लिये ध्वनि के अवशोषण गुणाक का ज्ञान आवश्यक है।

ध्वनि के अवशोषण गुणाक की गणना — सैबिन ने विभिन्न पदार्थों के अवशोषण गुणाक की गणना के लिये ५१२ आवृत्ति प्रति सेकड आवृत्तिवाले आर्गन पाइप का उपयोग किया था। गद्दे, अथवा ध्वनि को अवशोषित करनेवाली दूसरी वस्तुओं की उपस्थिति मे कमरे का अनुरणनकाल मालूम कर वस्तुओं को कमरे के बाहर निकाल दिया गया। इस प्रकार खिडकी के खुले भाग को इतना घटाया बढाया कि अनुरणन पहले के बराबर हो गया। इस विधि से गद्दे का वह क्षेत्र, जो ध्वनि के अवशोषण के अनुसार खुली खिडकी के एक वर्ग फुट के बराबर है, मालूम किया जा सकता है। खुली खिडकी पर गिरनेवाली ध्वनि का पूर्ण भाग उससे निकल जाता है। इस प्रकार खिडकी ध्वनि के पूर्ण अवशोषण का कार्य करती है। गद्दा, अथवा अन्य कोई वस्तु, ध्वनि को पूर्ण अवशोषित नहीं कर सकती। इसलिये खिडकी का क्षेत्रफल उसी ध्वनि को अवशोषित करनेवाले गद्दे के क्षेत्रफल का कोई अश होता है, जिसे ध्वनि का अवशोषण गुणाक कहते है। इसकी गणना निम्न-सूत्र से की जा सकती है

$$a = \frac{KV}{S}\left(\frac{1}{t_2} - \frac{1}{t_1}\right)$$

यहाँ t_1 तथा t_2 क्रमश कमरे मे वस्तुओ की अनुपस्थिति एव उपस्थिति मे ध्वनि के अनुरणनकाल हैं।

सैबिन के सूत्र से स्पष्ट है कि ध्वनि का अनुरणनकाल कक्ष में ध्वनि के अवशोषण की पर्याप्त मात्रा बढाकर आवश्यकतानुसार कम किया जा सकता है। इसकी निम्नलिखित विधियाँ हैं

(१) कक्ष मे खुली खिडकियो के प्रबध से, (२) दीवारो को रँगने से, (३) भारी परतदार परदो के उपयोग से, (४) एक अच्छे श्रोता जनसमुदाय की उपस्थिति से, (५) गोलाकार दीवारो के निराकरण से (इससे ध्वनि कक्ष में किसी एक विंदु पर केंद्रित न होगी), (६) दीवारो और छत आदि को ध्वनि का अवशोषण करनेवाले पदार्थों से मढकर समय पर्याप्त भाग मे कम किया जाता है। ध्वनि के अच्छे शोषकों मे सेलोटेक्स (celotex), कार्डबोर्ड, ऐस्बेस्टस आदि पदार्थ हैं तथा गद्दीदार कुर्सियाँ अच्छे ध्वनि अवशोषक का कार्य करती हैं।

सबिन ने विभिन्न पदार्थों के लिये अवशोषण गुणाक के मान निकाले, जो निम्नलिखित सारणी मे दिए हैं

नाम	अवशोषण गुणाक
खुली खिडकी	१ ००
काच की खिडकी	० ०२५
ईंट की दीवार	० ०३
गद्देदार कुर्सी	० ३०
सेलोटेक्स	० ३६

इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त अवशोषण गुणाक पदार्थ की मोटाई, उसके उपयोग की विधि तथा आपतित (incident) ध्वनि की आवृत्ति (frequency) पर आधारित है। ऊनी नमदे मे ध्वनि का अवशोषण गुणाक आपतित ध्वनि की आवृत्ति के साथ साथ कैसे बदलता है, यह नीचे की तालिका मे दिखाया गया है

आवृत्ति	अवशोषण गुणाक
१२८	० ०६
२५६	० २५
५१२	० ४०
२०२८	० ३३
४०९६	० ३५

ध्वनि के प्रसारणकक्ष का निर्माण (Design of Broadcasting Studio) — भवननिर्माण कला मे अनुरणनकाल विशेष महत्व रखता है। व्याख्यान के लिये निर्मित कक्ष पूर्णत गूँजरहित होने चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पूरी पूरी ध्वनि अवशोषित हो जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कक्ष की दीवारें और छत आदि को सेलोटेक्स जैसी सूक्ष्म छिद्रवाली वस्तुओ से मढ़ते हैं। आजकल दफ्ती, कार्डबोर्ड अथवा ऐस्बेस्टॉस को लगभग २ मिमी० व्यास के छिद्र करके उपयोग में लाया जाता है। सगीत कक्ष को इस प्रकार आयोजित किया जाता है कि ध्वनि की आवृत्ति बढने से अनुरणनकाल घटे। एक ही भवन मे विभिन्न कक्ष एक दूसरे से रोधित (insulated) रहते हैं, ताकि एक की ध्वनि दूसरे की ध्वनि से मिलकर विघ्न उत्पन्न न करे।

आजकल प्राय व्याख्यान आदि के अवसरो पर लाउडस्पीकर का उपयोग होता है। अगर एक से अधिक लाउडस्पीकरो का उपयोग करना है, तो उन्हें एक दूसरे से इतनी दूर रखना चाहिए कि एक ही स्थान पर कई लाउडस्पीकरो की ध्वनि सुनाई न पडे। लाउडस्पीकर और माइक्रोफोन मे भी पारस्परिक क्रिया (interaction) न होनी चाहिए।

सभाभवन का निर्माण (Design of Auditorium) — आधुनिक समय मे सभाभवन के निर्माण के पहले ही उसके ध्वानिक गुणधर्म (accustic properties) का अध्ययन कर लिया जाता है। इसके लिये जिस भवन का निर्माण करना है उसके एक छोटे से मॉडल का अनुदैर्घ्य खड (longitudinal section) तरग कुड (ripple-tank) मे रखा जाता है। कुंड में पानी भरा होता है। एक डिपर (dipper) को पानी की सतह पर ऊपर नीचे किया जाता है। इस तरह जो लहरें पैदा होती हैं, वे लकडी के मॉडल (model) मे उसकी आतरिक दीवारों से परावर्तित हो जाती हैं। परावर्तन का अध्ययन करने के लिये तरग कुड मे इस प्रकार का प्रबध करते हैं कि काच के बने कुड की तलहटी के नीचे रखे आर्क लैंप का प्रकाश पानी की सतह से ४५° पर झुके हुए एक काच के प्लेट से परावर्तित होकर एक पर्दे पर पडे। इस पर्दे पर पानी की सतह पर चलनेवाली लहरो की छाया पडती है, जिनका तात्क्षणिक चित्र लेकर कक्ष के बारे मे आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। इग्लैंड की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला मे बिजली की चिनगारी की सहायता से ऐसे मॉडल का अध्ययन किया जाता है। वहाँ पर अनुरणनकाल, अवशोषण गुणाक आदि पर तेजी से शोधकार्य चल रहा है।

ध्वनि का केंद्रीकरण (Focussing of Sound) — कक्ष की विशाल गोलाकार छत या दीवारें अनैच्छिक रूप से ध्वनि को किसी एक विंदु पर केंद्रित करती हैं। इस स्थान पर बैठे हुए श्रोता के कान मे सीधी एव परावर्तित ध्वनि भिन्न कला (different phase) विक्षोभ (disturbance) उत्पन्न करेंगी।

प्रतिध्वनि (Echo)—कक्ष मे प्रतिध्वनि की तीव्रता इतनी ही होनी चाहिए कि शब्दो के समान प्रवाह मे विघ्न उपस्थित न हो।

कोलाहल (Extraneous sound) — विगत कुछ वर्षों से विश्व के प्रत्येक भाग मे औद्योगिक यत्रों, यातायात साधनो आदि से अनैच्छिक ध्वनि की मात्रा बढ गई है। इसलिये सभाकक्ष में इस प्रकार की आवाज को कम करना अति आवश्यक हो गया है। कोलाहल को मापने के लिये इग्लैंड की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला के वैज्ञानिक, डेविस (Davis), का प्रयत्न सराहनीय है। अनैच्छिक कोलाहल दो प्रकार से कक्ष मे आता है (१) हवा के द्वारा, इसे वायुचालित कहते हैं, तथा (२) कक्ष की दीवार, छत आदि से होकर चलता है, इसे कक्ष के ढाँचे द्वारा चालित कोलाहल कहते हैं। पहले प्रकार को दुहरे या तिहरे दरवाजो और खिडकियो के उपयोग से, और दूसरे को दीवारो मे अवशोषक पदार्थ, जैसे ऐस्बेस्टस के उपयोग से, कम करते हैं।

[सु० सिं० कु०]

भस्मासुर ककड से उत्पन्न एक शिवभक्त दैत्य जिसे यह वरदान था कि जिस किसी के ऊपर वह अपना हाथ रख देगा, वह भस्म हो

जायगा। एक बार यह पार्वती जी पर आसक्त हो गया और शंकर जी को जला देने के लिये उनके पीछे दौड़ा। वे भागकर विष्णु के पास पहुँचे तो विष्णु ने मोहिनी रूप धारणकर भस्मासुर से कहा— 'मैं पार्वती हूँ और तुम्हारे प्रेम को स्वीकार करती हूँ। परतु तुम्हे मुझे एक नाच दिखाना पड़ेगा'। यह सुनकर राक्षस परम प्रसन्न हुआ और मस्त होकर नाचने लगा। परतु पार्वती ने कहा — 'ऐसा नाच नही, अपना एक हाथ अपने सिर पर और दूसरा अपने पुट्ठो के नीचे रखकर 'मुक्त निद्रा' मे नाचो।' प्रेम मे पागल भस्मासुर ने जैसे ही अपना एक हाथ सिर पर रखा कि वह वही भस्म हो गया और शिवजी की चिंता समाप्त हुई। [रा० द्वि०]

भांडारकर, रामकृष्ण गोपाल डा० भाडारकर साधारण क्लार्क के पुत्र थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा रत्नागिरि के साधारण विद्यालय मे हुई थी। उच्च शिक्षा के लिये ये एलफिस्टन कालेज मे आए। वहाँ पर बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाओ मे आपने सर्वोत्तम अक प्राप्त किए। कुछ दिनों तक हैदराबाद मे प्रधानाचार्य का काम उत्तम रीति से करने के बाद आप स्थायी रूप से डेकन कालेज पूना मे आचार्य पद पर नियुक्त हुए और सेवा निवृत्त होने तक यही पर अध्यापन करते रहे। १९०१ मे आप बंबई विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए।

आज से ७०-८० वर्ष पूर्व पुरातत्व विषयो मे भारतीयो को आकर्षण नही था। पाली, मागधी आदि प्राकृत भाषाओ का अध्यापन करनेवाले दुर्लभ थे और इन भाषाओ में ग्रथरचयिता प्राय थे ही नही। इसी समय डा० भाडारकर ने प्राकृत भाषाओ, ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि लिपियों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर इतिहास सबधी गवेषणाएँ की, और लुप्तप्राय इतिहास के तत्वों को प्रकाश मे लाए। इस प्रकार इतिहास के प्रामाणिक ज्ञान की ओर भारतीयो की रुचि बढी। क्रमश सरकार की दृष्टि भारत के हस्तलिखित ग्रथो की खोज और प्रकाशन की दिशा मे जाने लगी। अत यह कार्य डा० भाडारकर को सौंपा गया और उन्होने पाँच विशाल ग्रथों मे अपना कार्य पूर्ण किया। पुरातत्व के इतिहासकारो के लिये ये ग्रथ मार्गदर्शक हैं। १८८३ में इन्हे विएना मे प्राच्य भाषा विद्वानो के समेलन मे आमंत्रित किया गया, और वहाँ पर इनके अध्ययन की गभीरता एव अन्वेषण शैली से सरकार तथा विदेशी स्तभित हुए। सरकार ने इन्हे सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित किया। इनके अन्य उल्लेखनीय ग्रथ निम्नलिखित है। बॉबे गजेटियर के लिये दक्षिण भारत का इतिहास प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। प्राच्य पवित्र ग्रथमाला के लिये वायु पुराण का अंग्रेजी मे अनुवाद अपूर्ण ही रह गया। इसके अतिरिक्त इनकी कीर्ति को चिरकाल तक अमर बनानेवाले अनेकों निबध, तथा १८७६ मे भवभूति के 'मालती माधव' पर टीका, तथा अंग्रेजी पढनेवालो को दृष्टि मे रखते हुए प्रणीत सस्कृत व्याकरण का प्रथम और द्वितीय भाग, जो अत्यत उपादेय सिद्ध हुआ है, आदि पुस्तकें हैं। आपके सस्मरण मे पूना मे भाडारकर ओरियटल रिसर्च इंटिट्यूट की स्थापना की गई है। अपनी विधवा कन्या का पुनर्विवाह कर इन्होंने अपने साहस का परिचय दिया। अत्यधिक आदर और समान पाने पर भी इनमे अहमन्यता का भाव नही था। स्वाध्याय और सयम इनके जीवन का मूलमत्र था। [पु० ते०]

भाई परमानंद प्रसिद्ध क्रातिकारी, स्वतत्र विचारक, राष्ट्रीय नेता तथा इतिहास के प्रकांड पडित थे। आपका जन्म सन् १८७४ ई० मे हुआ। पजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर आप डी० ए० वी० कालेज मे प्राध्यापक के रूप मे कार्य करने लगे। भारत की प्राचीन सस्कृति तथा वैदिक धर्म मे आपकी रुचि देखकर महात्मा हसराज ने आपको भारतीय सस्कृति का प्रचार करने के लिये अफ्रीका भेजा। यहाँ आप तत्कालीन प्रमुख क्रातिकारियो सरदार अजीत सिंह, सूफी अबाप्रसाद आदि के सपर्क मे आए। इन क्रातिकारी नेताओ से सबध तथा क्रातिकारी दल की काररवाई पुलिस की दृष्टि से छिप न सकी। फलत आपको अफ्रीका छोड़कर दक्षिण अमरीका जाना पड़ा, जहाँ मार्तनिक उपनिवेश मे आपकी प्रख्यात क्रातिकारी लाला हरदयाल से भेंट हुई। भारत मे क्राति कराने के लिये प्रमुख कार्यकर्ताओ के दल को यहाँ सघटित किया जा रहा था। लाला हरदयाल की प्रेरणा से आप भी इस दल मे समिलित हो गए।

भारत आने पर गदर पार्टी के सदस्यो के साथ आप भी गिरफ्तार हुए। आपपर मुकदमा चला तथा फाँसी की सजा सुनाई गई। फाँसी की सजा बाद मे आजीवन कारावास मे बदल दी गई और आप सन् १९१५ मे कालापानी की सजा काटने अदमान भेज दिए गए। सन् १९२९ मे आमरण अनशन करने पर आपको रिहा किया गया। आप नवीन उत्साह के साथ स्वदेश आए किंतु इस समय तक देश का राजनीतिक वातावरण परिवर्तित हो चुका था। महात्मा गाधी का सविनय अवज्ञा आदोलन चल रहा था। भाई परमानद को कांग्रेस की मुसलमानो के तुष्टीकरण की नीति पसद न आई और आप उसके कटु आलोचक बन गए। यही कारण है कि आप राष्ट्रीय आदोलन मे समिलित नही हुए। आदोलन काल मे आपने राष्ट्रीय विद्यापीठ के कुलगुरु के रूप मे महत्वपूर्ण सेवा की तथा हिंदुओ के हितों की रक्षा के आदोलनो का निर्देश किया। बाद मे आप हिंदू महासभा मे समिलित हो गए। महामना पडित मदनमोहन मालवीय का निर्देश एव सहयोग आपको बराबर मिला। सन् १९३३ ई० मे आप अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अजमेर अधिवेशन मे अध्यक्ष चुने गए।

देशभक्ति, राजनीतिक दृढता तथा स्वतत्र विचारक के रूप मे भाई परमानद का नाम स्मरणीय रहेगा। आपने कठिन तथा सकटपूर्ण स्थितियो का सदा डटकर सामना किया और कभी विचलित नहीं हुए। आपने हिंदी मे भारत का इतिहास लिखा है। इतिहासलेखन मे आप राजाओ, युद्धो तथा महापुरुषो के जीवनवृत्तो को ही प्रधानता देने के पक्ष मे न थे। आपका मत है कि इतिहास मे जाति की भावनाओ, इच्छाओ, आकाक्षाओ, सस्कृति एव सभ्यता को भी महत्व दिया जाना चाहिए। आपने अपने जीवन के सस्मरण भी लिखे हैं। [ल० प्र० व्यास]

भाऊसिंह हाड़ा राव छत्रसाल के पुत्र। मुगल सम्राट् औरगजेब के दरबार मे एक सेवक। इसे तीन हजारी २००० सवार का मसब प्राप्त था। शुजाअ के विरुद्ध युद्ध मे तोपखाने की सेना मे कार्य किया। वहाँ से लौटने पर इन्हें दक्षिण का प्रबध सौंपा गया। चाकण दुर्ग (इस्लामाबाद) की विजय मे यह शाइस्ता खाँ के साथ थे। महाराज शिवाजी के विरुद्ध शाइस्ता खाँ के साथ और बाद मे मिरजा राजा जयसिंह के साथ थे। चाँदा के राजा पर आक्रमण के समय दिलेर

खाँ के साथ थे। औरंगाबाद में बहुत दिनों तक फौजदार रहे। वहाँ अनेक इमारतें बनवाईं, और अपनी वीरता तथा दानशीलता के कारण बहुत प्रसिद्ध हुए। सुल्तान मुहम्मद मुअज्जम से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। सन् १६७७ में इनकी मृत्यु हो गई।

भाखड़ा बाँध पंजाब की शिवालिक घाटी में सतलज नदी पर चंडीगढ़ से आठ मील दूरी पर बना है। यह हमारे देश की समृद्धि और वैज्ञानिक उन्नति का प्रतीक है। संसार के इस सबसे ऊँचे बाँध का निर्माण भारत के लिये गौरव का विषय है। इस बाँध का उद्घाटन २२ अक्टूबर, १९६३, को हमारे प्रथम प्रधान मंत्री स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा संपन्न हुआ था। इस अवसर पर उन्होंने कहा था "यह नवनिर्मित बाँध हमारा आधुनिक देवालय है।"

इसका निर्माण १९४८ ई० में शुरू हुआ। धरातल से १,७०० फुट नीचे से नींव डालकर इसे ऊपर लाया गया है। इसकी ऊँचाई ७४० फुट, अर्थात् कुतुबमीनार की ऊँचाई से तिगुनी, है। नीचे बाँध की चौड़ाई ३२५ फुट है, जो ऊपर जाकर ३० फुट रह गई है। इसके निर्माण में आठ लाख टन सीमेंट लगा है। जब सीमेंट का उपयोग किया जा रहा था, तब एक हजार टन सीमेंट की आवश्यकता प्रति दिन होती थी। इसके साथ लगभग ५४ लाख घन गज कंक्रीट लगा है। यह बाँध वस्तुतः कंक्रीट का बना एक विराट संयंत्र है, जिसमें मानव शरीर की नस नाड़ियों की तरह जाल बिछा हुआ है। सीमेंट के सूखने पर मौसम का असर उसपर कम से कम पड़े, इसके लिये पानी में मिलाने के बाद उसको एक निश्चित ताप तक ठंढा किया जाता था और कंक्रीट का ताप भी इसी प्रकार नियंत्रित किया जाता था। इसपर भी उसमें दरारें पड़ जाती थीं, जिन्हें समय समय पर भरना पड़ता था।
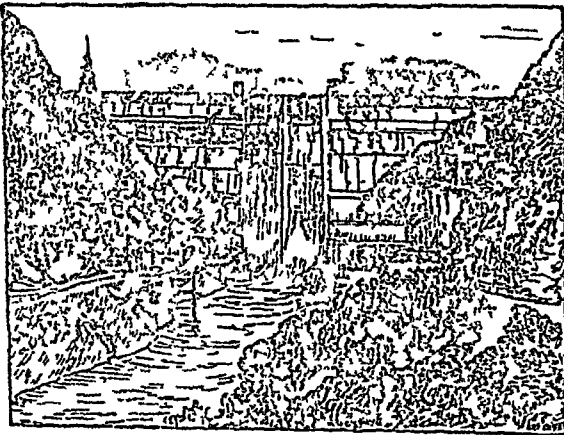
भाखड़ा बाँध

इस बाँध से गोविंदसागर झील का निर्माण हुआ है। यह झील ६० मील लंबी, ६५ वर्ग मील क्षेत्रफल की और ८० लाख एकड़-फुट पानी की धारितावाली है। इसमें से ६६ लाख एकड़-फुट पानी राजस्थान और पंजाब के अभावग्रस्त इलाकों को मिल सकेगा। पानी को ले जाने के लिये तीन हजार मील लंबी नहरें बनी हैं, जिनसे ३६ लाख एकड़ जमीन की सिंचाई होती है। इतनी जलराशि से पानी का रिसना स्वाभाविक है, जो निरंतर होता रहता है। रिसने से निकले पानी को नालियों द्वारा निकालकर टंकी में इकट्ठा किया जाता है, जहाँ से पंप द्वारा बाहर फेंक दिया जाता है। इस झील के निर्माण में ३६६ गाँव और नगर डुबाने पड़े, जिनके उजड़े लोगों की संख्या लगभग ३०,००० थी। इन्हें अन्यत्र बसाया गया है।

घाटी को पानी रहित करने के लिये बाँध के स्थान से पीछे हटकर आधी आधी मील लंबी दो सुरंगें पहाड़ों के बीच से निकाली गई हैं। इन सुरंगों का व्यास ५०-५० फुट है। २,९०,००० क्यूसेक पानी इन सुरंगों से निकल सकता है। इन सुरंगों को खोदने में प्रायः पाँच वर्ष (१९४८ से १९५३ तक) का समय लगा था। प्रत्येक सुरंग में लगभग दो करोड़ रुपए लगे हैं और ५७,७८,००० घन फुट कंक्रीट लगा है। सिंचाई के लिये पानी निकालने की दो सुरंगें हैं और विद्युदुत्पादक यंत्र के चक्के को पानी के आघात से घुमाने के लिये एक मुड़ी हुई सुरंग बनी है। यहाँ के बिजलीघर से आठ लाख किलोवाट बिजली पैदा हो सकती है। इसी बिजली से नंगल के खाद का कारखाना चल रहा है और भी अनेक कारखाने यहाँ से उत्पन्न बिजली से चल सकते हैं, जिससे राज्य को समृद्धिशाली बनाने में बड़ी सहायता मिलेगी। [फू० स० व०]

भागलपुर १ जिला, स्थिति २४° ३३' से २५° ३४' उ० अ० तथा ८६° १९' से ८७° ३१' पू० दे०। यह भारत के बिहार राज्य में एक जिला है। इसके उत्तर में पुरनिया और सहरसा, पूर्व एवं दक्षिण में संताल परगना तथा पश्चिम में मुंगेर जिले पड़ते हैं। यहाँ का क्षेत्रफल २,१८३ वर्ग मील तथा जनसंख्या १७,११,१३६ (१९६१) है। गंगा नदी के द्वारा यह दो भागों में बँट गया है। उत्तर का आधा तिरहुतवाला मैदान जलोढ मिट्टी का बना है, जिसमें कई छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं। गंगा नदी के दक्षिण का भाग नीचा है, किंतु लगभग २० मील के बाद भूमि की ऊँचाई बढ़ते बढ़ते छोटा नागपुर के पठार का रूप ले लेती है। गंगा के अलावा तिलयुजा, कोसी, धुसान, तथा घुघ्री आदि छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं। जलवायु उत्तम तथा स्वास्थ्यप्रद है। दक्षिण में गरमी अधिक पड़ती तथा उत्तर में ठंढ रहती है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ५१ इंच है। वर्षा उत्तर की ओर अधिक बढ़ती जाती है। उत्तम मिट्टी के कारण ऊँचे स्थानों पर धान, गेहूँ, जौ, जई, ईख, कपास, जूट, मक्का, मड़ुआ, ज्वार, तिलहन, तिल आदि भी अच्छे उगते हैं। यहाँ की प्रमुख फसल धान है। यातायात के साधनों का यहाँ अच्छा विकास हुआ है। शिक्षा में भी काफी प्रगति हुई है।

२ नगर, स्थिति २५° १५' उ० अ० तथा ८७° ०' पू० दे०। यह भागलपुर जिले में गंगा के दाहिने किनारे पर, रेल द्वारा कलकत्ता से २६५ मील दूर स्थित एक नगर है। यह यातायात के साधनों, कृषि तथा व्यापार में उन्नति के कारण काफी प्रगति करता जा रहा है। यहाँ एक सरकार द्वारा और दूसरा जमींदारों द्वारा स्थापित ऑगस्टॉस क्लीवलैंड के दो स्मारक हैं जो १८वीं शती के अंत में कलक्टर थे। इन्होंने संताल परगने के आदिवासियों को नियंत्रण में लाने में सफलता प्राप्त की थी। भागलपुर के निकट ही सबौर में एक कृषि कालेज है जहाँ एक समय बिहार सरकार का कृषि विभाग रहता था। यहाँ एक पुराना घरेली तेजनारायण कॉलेज है जिसकी स्थापना १८८७ ई० में हुई थी। हाल ही में वहाँ एक

इजीनियरी कालेज भी खुला है और एक मेडिकल कालेज खोलने का प्रस्ताव चल रहा है। ये सब कालेज भागलपुर विश्वविद्यालय से सबद्ध हैं जिसकी स्थापना हाल ही मे हुई है।

भागवत (श्रीमद्भागवत) अष्टादश पुराणो मे नितात महत्वपूर्ण तथा प्रख्यात पुराण। पुराणो की गणना मे भागवत अष्टम पुराण के रूप मे परिगृहीत किया जाता है (भागवत १२।७।२३)। आजकल भागवत आख्या धारण करनेवाले दो पुराण उपलब्ध होते हैं—(क) देवीभागवत तथा (ख) श्रीमद्भागवत। अत इन दोनो मे पुराण कोटि मे किसकी गणना अपेक्षित है? इस प्रश्न का समाधान आवश्यक है।

विविध प्रकार से समीक्षा करने पर अतत यही प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवत को ही पुराण मानना चाहिए तथा देवीभागवत को उपपुराण की कोटि मे रखना उचित है। श्रीमद्भागवत देवीभागवत के स्वरूपनिर्देश के विषय मे मौन है। परतु देवीभागवत 'भागवत' की गणना उपपुराणो के अतर्गत करता है (१।३।१६) तथा अपने आपको पुराणो के अतर्गत। देवीभागवत के अष्टम स्कध मे वर्णित भुवनकोश श्रीमद्भागवत के पचम स्कध में प्रस्तुत इस विषय का अक्षरश अनुकरण करता है। श्रीमद्भागवत मे भारतवर्ष की महिमा के प्रतिपादक आठो श्लोक (५।१९।२१–२८) देवी भागवत मे अक्षरश उसी क्रम से उद्धृत हैं (८।११।२२–२९)। दोनों के वर्णनो मे अतर इतना ही है कि श्रीमद्भागवत जहाँ वैज्ञानिक विषय के विवरण के निमित्त गद्य का नैसर्गिक माध्यम पकड़ता है, वहाँ विशिष्टता के प्रदर्शनार्थ देवीभागवत पद्य के कृत्रिम माध्यम का प्रयोग करता है।

श्रीमद्भागवत भक्तिरस तथा अध्यात्मज्ञान का समन्वय उपस्थित करता है। भागवत निगमकल्पतरु का स्वयफल माना जाता है जिसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मज्ञानी महर्षि शुक ने अपनी मधुर वाणी से सयुक्त कर अमृतमय बना डाला है।

भागवत मे १८ हजार श्लोक, ३३५ अध्याय तथा १२ स्कध हैं। इसके विभिन्न स्कधो मे विष्णु के लीलावतारो का वर्णन बडी सुकुमार भाषा मे किया गया है। परतु भगवान् कृष्ण की ललित लीलाओ का विशद विवरण प्रस्तुत करनेवाला दशम स्कध भागवत का हृदय है। अन्य पुराणो मे, जैसे विष्णुपुराण (पचम अश), ब्रह्मवैवर्त (कृष्णजन्म खड) आदि मे भी कृष्ण का चरित् निबद्ध है, परतु दशम स्कध में लीलापुरुषोत्तम का चरित् जितनी मधुर भाषा, कोमल पदविन्यास तथा भक्तिरस मे आप्लुत होकर वर्णित है वह अद्वितीय है। रासपचाध्यायी (१०।२९-३३) अध्यात्म तथा साहित्य उभय दृष्टियो से काव्यजगत् मे एक अनूठी वस्तु है। वेणुगीत (१०।२१), गोपीगीत (१०।३०), युगलगीत (१०।३५), भ्रमरगीत (१०।४७) ने भागवत को काव्य के उदात्त स्तर पर पहुँचा दिया है।

'विद्यावता भागवते परीक्षा' — भागवत विद्वत्ता की कसौटी है और इसी कारण टीकासपत्ति की दृष्टि से भी यह अतुलनीय है। विभिन्न वैष्णव सप्रदाय के विद्वानों ने अपने विशिष्ट मत की उपपत्ति तथा परिपुष्टि के निमित्त भागवत के ऊपर स्वसिद्धातानुयायी व्याख्याओ का प्रणयन किया है जिनमे कुछ टीकाकारों का यहाँ सक्षिप्त सकेत किया जा रहा है—श्रीधर स्वामी (भावार्थदीपिका; १३वीं शती, भागवत के सबसे प्रख्यात व्याख्याकार), सुदर्शन सूरि (१४वीं शती की शुकपक्षीया व्याख्या विशिष्टाद्वैतमतानुसारिणी है), विजयध्वज (पदरत्नावली १६वीं शती, माध्वमतानुयायी), वल्लभाचार्य (सुबोधिनी १६वीं श०, शुद्धाद्वैतवादी), शुकदेवाचार्य (सिद्धातप्रदीप, निंबार्कमतानुयायी), सनातन गोस्वामी (बृहद्वैष्णवतोषिणी), जीव गोस्वामी (क्रमसंदर्भ)।

देशकाल का प्रश्न—भागवत के देशकाल का यथार्थ निर्णय अभी तक नही हो पाया है। एकादश स्कध में (५।३८–४०) कावेरी, ताम्रपर्णी, कृतमाला आदि द्रविडदेशीय नदियो के जल पीनेवाले व्यक्तियो को भगवान् वासुदेव का अमलाशय भक्त बतलाया गया है। इसे विद्वान् लोग तमिल देश के आलवारो (वैष्णवभक्तों) का स्पष्ट सकेत मानते हैं। भागवत मे दक्षिण देश के वैष्णव तीर्थों, नदियो तथा पर्वतो के विशिष्ट सकेत होने से कतिपय विद्वान् तमिलदेश को इसके उदय का स्थान मानते हैं। काल के विषय मे भी पर्याप्त मतभेद है। इतना निश्चित है कि वोपदेव (१३वीं श० का उत्तरार्ध) जिन्होंने भागवत से सबद्ध 'हरिलीलामृत', 'मुक्ताफल' तथा 'परमहसप्रिया' का प्रणयन किया तथा जिनके आश्रयदाता, देवगिरि के यादव राजा महादेव (सन् १२६०–७१) तथा राजा रामचद्र (सन् १२७१-१३०९) के करणाधिपति तथा मत्री, प्रख्यात धर्मशास्त्री हेमाद्रि ने अपने 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' मे भागवत के अनेक वचन उद्धृत किए हैं भागवत के रचयिता नही माने जा सकते। शकराचार्य के दादा गुरु गौडपादाचार्य ने अपने 'पचीकरणव्याख्या' मे 'जगृहे पौरुष रूपम्' (भा० १।३।१) तथा 'उत्तरगीता टीका' मे 'श्रेय स्रुतिं भक्ति मुदस्य ते विभो' (भा० १०।१४।४) भागवत के दो श्लोकों को उद्धृत किया है। इससे भागवत की रचना सप्तम शती से अर्वाचीन नहीं मानी जा सकती।

भागवत का प्रभाव मध्ययुगीय वैष्णव सप्रदायो के उदय में नितात क्रियाशील था तथा भारत की प्रातीय भाषाओ के कृष्ण काव्यों के उत्थान मे विशेष महत्वशाली था। भागवत से ही स्फूर्ति तथा प्रेरणा ग्रहण कर ब्रजभाषा के अष्टछापी (सूरदास, नददास आदि) निंबार्की (श्रीभट्ट तथा हरिव्यास) राधावल्लभीय (हित हरिवश तथा हरिदास स्वामी) कवियो ने ब्रजभाषा मे राधाकृष्ण की लीलाओ का गायन किया। मिथिला के विद्यापति, बगाल के चडीदास, ज्ञानदास तथा गोविंददास, असम के शकरदेव तथा माधवदेव, उत्कल के उपेंद्रभज तथा दीनकृष्णदास, महाराष्ट्र के नामदेव तथा वामन पडित, गुजरात के नरसी मेहता तथा राजस्थान की मीरांबाई—इन सभी सतो तथा कवियो ने भागवत के रसमय वर्णन से प्रेरणा प्राप्त कर राधाकृष्ण की कमनीय केलि का गायन अपने विभिन्न काव्यो में किया है। तमिल, आध्र, कन्नड तथा मलयालम के वैष्णव कवियों के ऊपर भी भागवत का प्रभाव कम नही है।

भागवत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण अद्वैतवाद का है तथा साधनादृष्टि भक्ति की है। इस प्रकार अद्वैत के साथ भक्ति का सामरस्य भागवत की अपनी विशिष्टता है। इन्ही कारणों से भागवत वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत के साथ सस्कृत की 'उपजीव्य' काव्यत्रयी के अतर्भुत माना जाता है।

स० ग्र०—स्वामी अखडानद सरस्वती श्रीमद्भागवतरहस्य, बबई, १९६३ । बलदेव उपाध्याय . भागवत सप्रदाय, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, स० २०१०; डॉ० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य · फिलॉसफी ऑव श्रीमद्भागवत, दो खडो मे विश्वभारती से प्रकाशित, १९६० तथा १९६२] [ब० उ०]

भागवत धर्म वैष्णव धर्म का अत्यत प्रख्यात तथा लोकप्रिय स्वरूप । 'भागवत धर्म' का तात्पर्य उस धर्म से है जिसके उपास्य स्वय भगवान् हो । और वासुदेव कृष्ण ही 'भगवान्' शब्द के वाच्य हैं (कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्—भागवत) अत. भागवत धर्म मे कृष्ण ही परमोपास्य तत्व हैं जिनकी आराधना भक्ति के द्वारा सिद्ध होकर भक्तो को भगवान् का सानिध्य तथा सेवकत्व प्राप्त कराती है। सामान्यत यह नाम वैष्णव सप्रदायों के लिये व्यवहृत होता है, परतु यथार्थत यह उनमें एक विशिष्ट सप्रदाय का बोधक है। भागवतों का महामत्र है 'ओ नमो भगवते वासुदेवाय' जो द्वादशाक्षर मत्र की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। पाचरात्र तथा वैखानस मत 'नारायण' को ही परम तत्व मानते हैं, परतु इनसे विपरीत भागवत मत कृष्ण वासुदेव को ही परमाराध्य मानता है।

प्राचीनता — इस धर्म की प्राचीनता अनेक पुष्ट प्रमाणो के द्वारा प्रतिष्ठित है। गुप्त सम्राट् अपने को 'परम भागवत' की उपाधि से विभूषित करने मे गौरव का अनुभव करते थे। फलत उनके शिलालेखों मे यह उपाधि उनके नामो के साथ अनिवार्य रूप से उल्लिखित है। विक्रमपूर्व प्रथम तथा द्वितीय शताब्दियो मे भागवत धर्म की व्यापकता तथा लोकप्रियता शिलालेखो के साक्ष्य पर निर्विवाद सिद्ध होती है। ईसवी पूर्व प्रथम शतक मे महाक्षत्रप शोडाश (८० ई० पूर्व से ५७ ई० पू०) मथुरा मडल का अधिपति था। उसके समकालीन एक शिलालेख का उल्लेख है कि वसु नामक व्यक्ति ने महास्थान (जन्मस्थान) मे भगवान् वासुदेव के एक चतु शाल मदिर, तोरण तथा वेदिका (चौकी) की स्थापना की थी। मथुरा मे कृष्ण के मदिर के निर्माण का यह प्रथम उल्लेख है। नानाघाट के गुहाभिलेख (प्रथम शती ई० पू०) मे अन्य देवो के साथ सकर्पण तथा वासुदेव का भी नाम लखनऊ सग्रहालय मे सुरक्षित सकर्पण (बलराम) की द्विभुजी प्रतिमा (जिसके दाहिने हाथ मे मूसल और वाएँ हाथ मे हल है) इसी युग की मानी गई है। वेसनगर का प्रख्यात शिलालेख (२०० ई० पू०) इस विपय मे विशेष महत्व रखता है। इस शिलालेख का कहना है कि हेलियोदोर ने देवाधिदेव वासुदेव की प्रतिष्ठा मे इस गरुडस्तभ का निर्माण किया था। यह दिय का पुत्र, तक्षशिला का निवासी था जो राजा भागभद्र के दरबार में अतलिकित (भारतीय गीक राजा 'एटिअल किडस') नामक यवनराज का दूत बनकर रहता था। यह यूनानी राजदूत अपने को 'भागवत' कहता है। इस शिलालेख का ऐतिहासिक वैशिष्ट्य यह है कि उस युग मे वासुदेव देवाधिदेव (अर्थात् देवो के भी देव) माने जाते थे और उनके अनुयायी 'भागवत' नाम से प्रख्यात थे। भागवत धर्म भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश तक फैला हुआ था और यह विदेशी यूनानियो के द्वारा समादृत होता था। पातजल महाभाष्य से प्राचीनतर महर्पि पाणिनि के सूत्रो की समीक्षा भागवत धर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये नि सदिग्ध प्रमाण है।

पाणिनि ने 'वासुदेवार्जुनाभ्या वुन्' (४।३।९८) सूत्र मे वासुदेव की भक्ति करनेवाले व्यक्ति के अर्थ मे वुन् (अक) प्रत्यय का विधान किया है जिससे वासुदेव भक्त (वासुदेवो भक्तिरस्य) के लिये 'वासुदेवक' शब्द निष्पन्न होता है। इस सूत्र के भाष्य तथा प्रदीप के अनुशीलन से 'वासुदेव' का अर्थ नि सदिग्ध रूप से परमात्मा ही होता है, वसुदेव नामक क्षत्रिय का पुत्र नही ·

सज्ञैषा तत्र भगवत (महाभाष्य)

नित्य परमात्मदेवताविशेष इह वासदेवो गृह्यते (प्रदीप) कैयट का कथन है कि यहाँ नित्य परमात्मा देवता ही 'वासुदेव' शब्द से गृहीत किया गया है। काशिका इसी अर्थ की पुष्टि करती है (सज्ञैपा देवताविशेपस्य न क्षत्रियाख्या, ४।३।९८ सूत्र पर काशिका) तत्वबोधिनी मे इसी परपरा मे 'वासुदेव' का अर्थ परमात्मा किया गया है। पतंजलि के द्वारा 'कसवध' तथा 'बलिबधन' नाटको के अभिनय का उल्लेख स्पष्टत कृष्ण वासुदेव का ऐक्य 'विष्णु' के साथ सिद्ध कर रहा है— इसे वेबर, कीथ, ग्रियर्सन आदि पाश्चात्य विद्वान् भी मानते हैं। इन प्रमाणो से सिद्ध होता है कि पाणिनि के युग मे (ई० पूर्व पष्ठ शती मे) भागवत धर्म प्रतिष्ठित हो गया था। इतना ही नही, उस युग में देवो की प्रतिमा भी मदिरो मे या अन्यत्र स्थापित की जाती थी। ऐसी परिस्थिति मे पाणिनि से लगभग तीन सौ वर्ष पीछे चद्रगुप्त मौर्य के दरबार का यूनानी राजदूत मेगस्थीनीज जब मथुरा तथा यमुना के साथ सबद्ध 'सौरसेनाई' (शौरसेन) नामक भारतीय जाति मे 'हेरिक्लीज' नामक देवता की पूजा का उल्लेख करता है, हमे आश्चर्य करने का अवसर नही होता। 'हेरिक्लीज' शौर्य का प्रतिमान बनकर सकर्पण का द्योतक हो, चाहे कृष्ण का। उसकी पूजा भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार का सशयहीन प्रमाण है।

भागवत धर्म अपनी उदारता और सहिष्णुतावृत्ति के कारण अत्यत प्रख्यात है। इस धर्म मे दीक्षित होने का द्वार किसी के लिये कभी बद नहीं रहा। भगवान् वासुदेव के प्रति प्रेम रखनेवाला प्रत्येक जीव इस धर्म में आ सकता है, चाहे वह जात्या कोई भी हो तथा गुणत कितना भी नीच हो। भागवत पुराण का यह प्रख्यात कथन भागवत धर्म के औदार्य का स्पष्ट परिचायक है.

> किरात हूणाध्र पुलिंद पुल्कसा
> आभीरकका यवना खशादय ।
> ये ऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रया
> शुध्यति तस्मै प्रभविष्णवे नम ।।
>
> —(भा० २)

श्लोक का तात्पर्य है कि किरात, हूण, आध्र, पुलिद, पुल्कस, आभीर, कक, यवन, खश आदि जगली तथा विधर्मी जातियो ने और अन्य पापी जनो ने भगवान् के भक्तो का आश्रय लेकर शुद्धि प्राप्त की है, उन प्रभावशाली भगवान् को नमस्कार। यवन हेलियोदोर का भागवत धर्म मे दीक्षित होना इस पथ का ऐतिहासिक पोपक प्रमाण है। यह भागवतो की सहिष्णुतावृत्ति का नि सशय परिचायक तथा उद्बोधक है।

भागवत मत में अहिंसा का साम्राज्य है। भागवत मत वैदिक यज्ञयागो के अनुष्ठानो का विरोधी नही है, परतु वैदिक यज्ञो मे यह

हिंसा का प्रबल विरोधी है, नारायणीय पर्व के भगवद्भक्त राजा उपरिचर का आख्यान इसी सिद्धांत को पुष्ट करता है। उस नरपति ने महान् अश्वमेध किया, परंतु उसमे किसी प्रकार के पशु का हिंसन तथा बलिदान नही किया गया (सभूता सर्वसभारास्तमिन् राजन् महाक्रतौ। न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैव स्थितोऽभवत्।—शातिपर्व, अ० ३३६, श्लो० १०)। 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इस श्रुतिवाक्य का अक्षरश अनुगमन भागवतों ने ही सर्वप्रथम किया तथा इसका पालन अपने आचारानुष्ठानों मे किया।

साध्य पक्ष — भागवत मत का सर्वश्रेष्ठ मान्य ग्रंथ है— श्रीमद्भागवत जो अष्टादश पुराणो मे अपने विषयविवेचन की प्रौढ़ता तथा काव्यमयी सरसता के कारण सबसे अधिक महत्वशाली है (दे० 'भागवत')। भागवत के सिद्धांत भागवतधर्म के महनीय तथा माननीय सिद्धांत हैं। भागवत का कथन है कि परमार्थत एक ही अद्वय ज्ञान है। वही ज्ञानियों के द्वारा 'ब्रह्म', योगियो के द्वारा 'परमात्मा' तथा भगवद्भक्तो के द्वारा 'भगवान्' कहा जाता है। भेद है उपासको की दृष्टि का तथा उपासना के केवल तारतम्य का। एक अभिन्न परम तत्व नाना उपासना की दृष्टि मे भिन्न प्रतीत होता है, परतु वह अभिन्न अद्वयज्ञान रूप

वदंति तत् तत्वविदस्तत्व यज् ज्ञानमद्वयम्
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।
(भाग० १।२.११)

शक्तियो की संपत्ति ही भगवान् की भगवत्ता है। यह शक्ति एक न होकर अनेक हैं तथा अचिंतनीय है। अचिंत्यशक्ति का निवास होने के कारण वह 'लीलापुरुषोत्तम' है। इसी के कारण वह एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होता है और भासित होने पर भी वह वस्तुत एक है। इसीलिये वह बहुमूर्तिक होने पर भी एकमूर्तिक है (यजति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्, भाग० १०।४०।७)। विष्णुपुराण के 'एकानेक स्वरूपाय' तथा गोपालतापिनी के 'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति' वाक्य का लक्ष्य इसी अचिंत्य शक्ति की ओर है। इसी शक्ति के कारण भगवान् आश्रयशून्य, शरीररहित तथा स्वय अगुण होते हुए भी अपने स्वरूप के द्वारा ही इस सगुण विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करते हैं, परतु इन व्यापारो की सत्ता होने पर भी उनमें किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नही होता। इसलिये भगवान् का विहारयोग दु खबोध है, समझने मे नितात कठिन है

दु खबोध एवाय तव विहारयोग, यद् अशरणो शरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैव अविक्रियमाणेन सगुणमगुण सृजसि पासि हरसि (भाग० ६।९।३४)।

इस प्रकार भगवान् का स्वरूप तीन प्रकार का प्रतीत होता है (क) स्वयरूप (ख) तदेकात्मक रूप और (ग) आवेशरूप। इनमे 'स्वयरूप' ही अनन्यापेक्षी मुख्यरूप है। सच्चिदानद विग्रह, परम सौंदर्यनिकेतन, परमनयनाभिराम स्वयरूप ही भगवान् का सर्वश्रेष्ठ रूप है। 'तदेकात्मकरूप' स्वयरूप के साथ एकता रखने पर भी आकृति, आकार तथा चरितादिको के द्वारा उससे भिन्न के समान प्रतीत होता हैं। शक्तियो के उत्कर्ष और ह्रास के कारण इस रूप मे दो प्रकार होते हैं—विलास तथा स्वाश। 'विलास' का रूप मूलरूप से आकृति में भिन्न रहता हैं, परतु गुणों में वह प्राय. समान ही होता है। विलास में शक्ति का प्राकट्य अधिक होता है, परतु 'स्वांश' में शक्ति का प्राकट्य तदपेक्षया न्यून होता है। स्वयरूप में अनत गुणों की सत्ता होने पर भी ६४ गुणों का अस्तित्व और उनमें भी चार गुणो का अस्तित्व सर्वदा तथा सर्वथा माना जाता है। ये गुण हैं— (१) लोको को चमत्कृत करनेवाली लीला, (२) प्रेम द्वारा सुशोभित 'प्रियमडल', (३) चराचर को मुग्ध करनेवाली रूपमाधुरी तथा (४) जडचेतन को विस्मित करनेवाला मुरलीनिनाद। कृष्ण में इन चारो का सद्भाव उनकी भगवत्ता सिद्ध करने का परम उपाय है। 'आवेश' रूप मे भगवान् जीवों मे न्यूनाधिक रूप से अपनी शक्ति का आधान करते हैं। यह उनका सबसे छोटा रूप माना जाता है।

साधनपक्ष—भगवान् की उपलब्धि का एकमात्र साधन है—भक्ति। यह भक्ति मुक्ति से भी बढ़कर है। सामान्य जन आनदमयी मुक्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं, परतु भक्तों की दृष्टि में वह नितात हेय तथा नगण्य वस्तु है। प्रियतम के पादपद्मों की सेवा ही उसका एकमात्र लक्ष्य होता है। भगवान् मुक्ति देने के लिये उत्सुक रहते हैं, परतु एकांती भक्त उसे कथमपि ग्रहण नही करता :

न किंचित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकातिनो मम।
वाछत्यपि मया दत्त कैवल्यमपुनर्भवम्॥
(भाग० ११।२०।३४)।

भगवान् का भी आग्रह मुक्ति की अपेक्षा भक्ति पर ही अधिक है। माँगने पर भक्तों को वह मुक्ति तो देते हैं, परतु भक्ति नहीं :

भगवान् भजता मुकुंदो
मुक्ति ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्॥
(भाग० ५।६।१८)

तीव्र ज्ञान के बल पर मुक्ति की उपलब्धि होना एक सामान्य सर्वपरिचित व्यापार है, परतु भक्ति की प्राप्ति भगवान् की केवल कृपा से ही साध्य होती है। मुक्ति की अपेक्षा भक्ति के आकर्षण का एक गोपनीय रहस्य है। ज्ञान के द्वारा उपलभ्य ब्रह्मानद की अपेक्षा प्रेमाभक्ति का दर्जा कही ऊँचा है, क्योकि ब्रह्मानद रस नही होता, किंतु भक्ति रसात्मिका है। वासना के विनाश से उत्पन्न आनद को भक्त तनिक भी नही चाहता, वह वासना के विशोधन (सब्लिमेशन) से जायमान अलौकिक रसानद के लिये लालायित रहता है। इसीलिये मुक्ति से बढकर भक्ति की कक्षा होती है। परतु यह भक्ति साधनरूपा वैधी भक्ति नही है, अपितु साध्यरूपा रागानुगा प्रेमाभक्ति है जिसके विषय मे भागवत प्रवर प्रह्लाद का यह अनुभूत कथन है:

न दान न तपो नेज्या न शौच न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडबनम्॥

रागानुगा भक्ति की यह गभीर मीमासा भागवत धर्म की विश्व के धर्मों को महनीय देन है।

स० ग्र०—श्रीरूप गोस्वामी लघुभागवतामृतम्, वेंकटेश्वर प्रेस, मुबई, जीव गोस्वामी षट् सदर्भ (विशेषत भक्ति सदर्भ और प्रीति सदर्भ), डॉ० भाडारकर . वैष्णविज्म एँड माइनर सेक्ट्स, पूना, १९१८, गोपीनाथ कविराज भक्तिरहस्य, भारतीय दर्शन और साधना भाग २, बलदेव उपाध्याय भागवत सप्रदाय, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी स० २०१०, बलदेव उपाध्याय भारतीय साहित्य में श्रीराधा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना स० २०२०। [ब० उ०]

भागीदार, अंशधारी (Share holder) प्रमाडनिक व्यापार के सुसगठित रूप मे विकास को वृहत् रूप देनेवाले लाभो मे एक प्रमुख लाभ यह भी है कि इसमे सस्थापक को अपना कार्यक्षेत्र फैलाने का अवसर मिलता है। वह अनगिनत सख्या मे लोगो को उसके साथ कारोबार मे शामिल होवे को प्रेरित करता है। प्रत्येक व्यक्ति जो भी सस्थापित प्रमडल (Incorporated company) मे शामिल होता है उसका सदस्य बन जाता है। लेकिन हर सदस्य अशधारी नही होता। बहुत से प्रमडल ऐसे हैं, उदाहरणार्थ प्रत्याभूति द्वारा मर्यादित (limited by guarantee) जिनकी अश पूँजी ही न हो और इसलिये अशधारी न हों, परतु उनके सदस्य होते हैं।

निम्नलिखित प्रकारो मे किसी भी एक प्रकार से एक व्यक्ति सदस्य बन सकता है। प्रथमत प्रमडल अधिनियम १९५६ की धारा ४१ मे व्यवस्था दी गई है कि पार्षद सीमा नियम (memorandum of association) के अभिदाता (subscribers) प्रमडल के सदस्य बनने को सहमत माने जाएँगे, और उनके पजीकरण (Registration) के बाद उन्हें सदस्यो की पजिका (Register) में सदस्यो के रूप में लिखा जायगा।

दूसरे, कोई भी प्रमडल के अश क्रय करने को सहमत होकर सदस्य बन सकता है, जैसे आवटन (Allotement) द्वारा या खुले बाजार मे प्रमडल के अश क्रय कर या सप्रेक्षण से, जैसे, एक मृत या नष्टनिधि (Bankrupt) सदस्य के अशो के दायाधिकार (succession) द्वारा। इन सभी स्थितियो में जब तक उसका नाम सदस्यो की पजिका मे नही होता वह सदस्य नही माना जाता। अगर उसका नाम सदस्यपजिका मे है तो भले ही वह सदस्य न रहा हो, उसमें होने के नाते वह सदस्य माना जायगा।

सभी व्यक्ति, जो सविदा (contract) के लिये सक्षम (competent) हैं, विधान के अतर्गत सदस्य हो सकते हैं। इसलिये एक अल्पवयस्क (minor) और एक विक्षिप्त व्यक्ति सविदासक्षम न होने के कारण सदस्य नही बन सकता। पार्षद सीमा नियम की उद्देश्यात्मक उपधारा (objective clause) द्वारा अधिकृत एक प्रमडल दूसरे प्रमडल का सदस्य बन सकता है। अंग्रेजी विधान मे एक अल्पवयस्क भी सदस्य बन सकता है लेकिन उसके वयस्क बन जाने के बाद समुचित काल के अदर उसके विकल्प पर सविदा विवर्ज्य (voidable) है।

अपने अशो को हस्तातरित कर (transfer) या मृत्यु हो जाने पर अपहार (forfeiture) या समर्पण (surrender) अथवा प्रमडल का कार्य समाप्त कर दिए जाने पर और नही तो पार्षद अतर्नियमो की व्यवस्थाओ के अनुरूप एक व्यक्ति अपनी सदस्यता से वचित हो सकता है।

सदस्यों का दायित्व प्रमडल के स्वरूप पर निर्भर है। अगर प्रमडल अपरिमित दायित्व (unlimited liabilities) वाला है तो प्रत्येक सदस्य का पूर्ण दायित्व उसकी सदस्यता के काल मे प्रमडल द्वारा अनुबधित (contracted) सभी ऋणों का भुगतान हो जाता है। अगर प्रमडल प्रत्याभूति द्वारा परिमित दायित्वपूर्ण है तो प्रमडल के भंग होने पर (winding up) प्रत्येक सदस्य को पार्षद सीमा नियम की दायित्व उपधारा (liability clause) के अतर्गत निर्दिष्ट (specified) धनराशि का अनिवार्य रूप से भुगतान करना होगा। अगर प्रमडल अश परिमित (limited by shares) है तो प्रत्येक सदस्य को अनिवार्यत अपने अशो का अचिहित मूल्य चुकाना होगा और अगर उसके अशो का पूर्ण भुगतान हो गया है तो उसका कोई दायित्व नही रहता। एक भूतपूर्व सदस्य का भी आशिक देय दायित्व तब हो जाता है जब उसके अशो के हस्तातरण के एक वर्ष के अदर प्रमडल भग हो जाता है और तब भी, जब कि वर्तमान सदस्य पूर्णरूप से भुगतान कर पाने मे असमर्थ होते हैं, तो भी उसका दायित्व उन ऋणो के भुगतान का है जो उसके सदस्यता से मुक्त होने से पूर्व लिए गए थे। [अ० सि०]

भागीरथी १ हिमालय मे गगोत्री से निकली उस धारा को भागीरथी कहते हैं जो आगे बढने पर अलकनदा आदि सरिताओं से मिलने के बाद गगा के नाम से पुकारी जाती है।

२ गगा नदी जब पश्चिमी बगाल मे पहुँचती है तब वह कई धाराओ मे बँट जाती है। इन्ही मे से एक धारा का नाम भागीरथी है। यह धारा आगे चलकर कलकत्ते के समीप हुगली नदी के नाम से पुकारी जाती है। भागीरथी मुर्शिदाबाद मे २४° ३५' उ० अ० तथा ८८° ५५' पू० दे० पर गगा से अलग होती है। छोटा नागपुर से आकर इसके दाहिने तट पर अनेक नदियाँ इसमे मिलती हैं। मुर्शिदाबाद से बह कर यह बर्द्धमान और नदिया जिलो की सीमा बनाती है। जलंगी और दामोदर नदियो से मिलने के बाद यह हुगली नदी कहलाने लगती है। पौराणिक कथाओ के अनुसार, यह राजा सगर के ६०,००० पुत्रो का, जो ऋषि के शाप से जलकर राख हो गए थे, उद्धार करने के लिये राजा भगीरथ द्वारा इस पृथ्वी पर लाई गई थी। पूर्व काल मे गौडो, पडुवों, राजमहल तथा नवद्वीप आदि के राजाओ की राजधानियाँ इसी के किनारे थी। आज भी मुर्शिदाबाद, बरहमपुर, जगीपुर, कतवा और नवद्वीप आदि नगर इसके तट पर बसे हुए हैं। [सु० च० श०]

भाजन गणित मे वह क्रिया है जिससे शून्य से भिन्न दो सख्याओ (गुणनखडो) का गुणनफल और इन सख्याओ मे से एक के दिए रहने पर दूसरी ज्ञात की जाती है। दिए हुए गुणनफल को भाज्य, दी हुई सख्या को भाजक और अभीष्ट सख्या को भागफल कहते हैं। स्पष्ट है कि यदि भाज्य य और भाजक क धन पूर्ण सख्याएँ हैं, तो भागफल ल तभी पूर्ण सख्या होगा जब य, क का समापवर्तक हो, किंतु यदि य दो क्रमागत समापवर्त्यों क र और क (र+१) के बीच में है तो र को भागफल और य−क र को शेष कहते हैं। इस भाजन क्रिया को सशेष भाजन कहते हैं।

बीजगणित मे भी भाजन की अद्वितीय क्रिया हो सकती है। यह तब जब भाजक और भाज्य केवल एक चर य के बहुपद हो और यह समझा हुआ हो कि शेष को भाजक से कम घात का बहुपद होना चाहिए (देखें अकगणित और बीजगणित)।

जब भाजक द्विपद य−घ के रूप का हो, तो भाजनक्रिया सक्षिप्त की जा सकती है। उदाहरणत. मान लें भाज्य क $य^3$ + ख $य^2$ + ग य + घ है, तो इस सक्षिप्त विधि के अनुसार क्रिया को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है:

क ख ग घ च
कच छच जच
छ ज झ

जहां छ=ख+कच, ज=ग+छज, झ=घ+जच। भागफल कय^2+छय+ज और शेष झ है।

झ के मान मे पहले ज, फिर छ के मान रखने से विदित होगा कि झ=कच^3+खच^2+गच+घ, अर्थात् झ बहुपद का वह मान है, जब य=च। इसलिये इस सक्षिप्त विधि के उपयोग से चर का मान दिए रहने पर बहुपद का मान सुगमता से ज्ञात किया जा सकता है। इस विभाजन से हमें निम्न प्रमेय मिलता है

शेष प्रमेय — यदि किसी बहुपद फ (य) ≡ कय^n+खय$^{n-1}$ · +स मे बहुपद य−च से भाग दिया जाय तो शेष कच^n+खच$^{n-1}$ + +स बचता है जो फ (च) है, अर्थात् बहुपद में य के स्थान मे च रखने से प्राप्त होता है। इस प्रमेय का उपयोग गुणनखंड ज्ञात करने मे होता है (देखें गुणनखंड)। [ह० च० गु०]

भातखंडे, विष्णु नारायण भारतीय सगीत के लक्षण और लक्ष्य मे अनुसधान और स्तरीकरण के अग्रदूत। जन्म—बबई प्रातातर्गत वालकेश्वर में, १० अगस्त (गोकुलाष्टमी), सन् १८६०, मृत्यु—बबई मे, १९ सितबर (गणेशचतुर्थी) १९३६। सन् १८८३ मे बी०ए०, १८९० मे एल० एल०बी० पेशा—वकालत। एकाधिक सगीत गुरुओ से शिक्षा ग्रहण।

अनुसंधान कार्य — देश भर के राजकीय, देशी राज्यातर्गत, सस्थागत, मठ-मदिर-गत और व्यक्तिगत सग्रहालयों मे हस्तलिखित सगीत ग्रथो की खोज और उनके नामो का अपने ग्रथो मे प्रकाशन, देश के अनेक हिंदू मुस्लिम गायक वादको से लक्ष्य-लक्षण-चर्चा-पूर्वक सारोद्धार, और विपुलसख्यक गेय पदो का सगीत लिपि मे सग्रह, कर्णाटकीय मेलपद्धति के आदर्शानुसार राग वर्गीकरण की दश थाट् पद्धति का निर्धारण। इन सब कार्यों के निमित्त भारत के सभी प्रदेशो का व्यापक पर्यटन किया। सस्कृत एव उर्दू, फारसी, सगीत ग्रथों का तत्तद्भाषाविदो की सहायता से अध्ययन और हिंदी अग्रेजी ग्रथो का भी परिशीलनकर। अनेक रागों के लक्षणगीत, स्वरमालिका आदि की रचना और तत्कालीन विभिन्न प्रयत्नों के आधार पर सरलतानुरोध से सगीत-लिपि-पद्धति का स्तरीकरण किया।

सगीत-शिक्षा-सस्थाओ से संबध — मैरिस कॉलेज (वर्तमान भातखडे सगीत विद्यापीठ, लखनऊ) माधव सगीत विद्यालय, ग्वालियर, एव सगीत महाविद्यालय, बड़ोदा, की स्थापना अथवा उन्नति में प्रेरक सहयोगी रहे।

सगीतपरिषदो का आयोजन — १९१६ मे बडोदा मे देश भर के सगीतज्ञो की विशाल परिषद् का आयोजन किया। तदनतर दिल्ली, बनारस तथा लखनऊ मे सगीत परिषदें आयोजित हुई।

प्रकाशित ग्रंथ (क) सस्कृत — स्वलिखित मौलिक ग्रथ—(१) लक्ष्यसगीतम् १९१० में 'चतुर्पडित' उपनाम से प्रकाशित, द्वितीय सस्करण १९३४ मे वास्तविक नाम से प्रकाशित। (अपने मराठी ग्रथों में इसके विपुल उद्धरण अन्यपुरुष में ही दिए हैं)। (२) अभिनवरागमजरी। आपकी प्रेरणा से सपादित एव प्रकाशित लघु ग्रथ (जिनके वे सस्करण आज अप्राप्य हैं। अधिकाश का प्रकाशनकाल १९१४–२० तक)—पुडरीक विट्ठल कृत (१) रागमाला (२) रागमजरी (३) सद्रागचद्रोदय, व्यकटमखीकृत (४) चतुर्दंडी-प्रकाशिका, (५) रागलक्षणम्, रामामात्यकृत (६) स्वरमेलकला-निधि (मराठी टिप्पणी सहित), नारद (?) कृत (७) चत्वारिंश-च्छतरागनिरूपणम्, (८) सगीतसारामृतोद्धार (तुलजाधिप के सगीतसारामृत का सक्षेप), हृदयनारायण देव कृत (९) हृदय-कौतुकम् (१०) हृदयप्रकाश, भावभट्ट कृत (११) अनूपसगीत-रत्नाकर (१२) अनूपसगीताकुश (१३) अनूपसगीतविलास, अहोबल कृत (१४) सगीतपारिजात, (१५) रागविबोध (दोनो मराठी टीकासहित), लोचनकृत (१६) रागतरगिणी, अप्पा तुलसी कृत (१७) रागकल्पद्रुमाकुर। (इस तालिका में किंचित् अपूर्णता सभव है)।

(ख) मराठी — (१) हिंदुस्तानी सगीतपद्धति (स्वकृत 'लक्ष्य सगीतम्' का प्रश्नोत्तर शैली मे परोक्ष रूप से क्रमानुरोध निरपेक्ष भाष्य)—ग्रथमाला मे चार भाग, प्रथम तीन सन् १९१०–१४ में, एव चौथा आपके देहात से कुछ पूर्व प्रकाशित। कुल पृष्ठसख्या प्राय २०००। मुख्य प्रतिपाद्य विषय रागविवरण, प्रसगवशात् अन्य विषयो का यत्र तत्र प्रकीर्ण उल्लेख (२) क्रमिकपुस्तकमालिका—(गेय पदो का स्थूल रूपरेखात्मक सगीत-लिपि-समन्वित वृहत् सकलन)-ग्रथमाला में चार खडो के एकाधिक सस्करण जीवनकाल में एव ५वां ६ठा देहात के बाद १९३७ मे प्रकाशित। केवल रागविवरण की भाषा मराठी, सकलित गेय पदो की भाषा हिंदी, राजस्थानी, पजाबी आदि।

(ग) अग्रेजी (१) A comparative study of some of the leading music systems of the 15th—18th centuries—प्राय २० मध्ययुगीन लघुग्रथों का समीक्षात्मक विवरण (२) A short historical survey of the music of upper India—बडोदा सगीत परिषद् मे १९१६ मे प्रदत्त भाषण। (दोनो मराठी ग्रथमालाओ और अग्रेजी पुस्तको का हिंदी अनुवाद गत १० वर्षों मे प्रकाशित हुआ है)।

प्रमुख सहयोगी — प्रकाशन मे भा० सी० सुकथकर, सपादन में द० के० जोशी, श्रीकृष्ण ना० रातनजकर, शास्त्रानुसधान में अप्पा तुलसी, सकलन मे रामपुर के नवाब और वजीर खां, जयपुर के मोहम्मदअली खां, लखनऊ के नवाब अली खां।

विशेषोल्लेख — सगीतशास्त्र मे अनुसधानार्थ प्राचीन और मध्ययुगीन सस्कृत ग्रथो के अध्ययन की अनिवार्यता दृढ स्वर से उद्घोषित की, एव भावी अनुसंधान के लिये समस्याओ की तालिकाएँ प्रस्तुत की। [प्रे० ल० शा०]

भाप पानी की गैसीय अवस्था या जलवाष्प को कहते हैं। शुष्क भाप अदृश्य होती है, परतु जब भाप मे जल की छोटी छोटी बूंदें मिली होती हैं तब उसका रग सफेद होता है, जैसा रेल के इजन से निकलती भाप मे स्पष्ट दिखाई देता है।

कल्पना कीजिए कि एक बरतन मे कुछ पानी रखकर गरम

किया जा रहा है। पानी गरम करने से इसका आयतन थोडा बढता है। साधारण दाव पर पानी का महत्तम ताप १००° सें० तक पहुँचता है।

यदि इसे और अधिक गरम किया जाय, तो जल की मात्रा धीरे धीरे वाष्प मे परिवर्तित होने लगती है। भाप का आयतन बराबर मात्रा के जल के आयतन की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। जब भाप मे जल की बूंदें उपस्थित होती हैं, तो इसे आर्द्र भाप कहते है। यदि भाप मे जल की बूंदो का सर्वथा अभाव हो, तो यह शुष्क भाप कहलाती है। जिस ताप पर जल उबलता है, वह जल का क्वथनाक होता है।

मानक दाव पर जल का क्वथनाक १००° सें० है। पर दाव के घटने बढने से क्वथनाक भी घटता बढता है। पहाडो पर वायुमडल की दाव कम होती है। अत वहाँ पानी निम्न ताप पर उबलने लगता है। प्रत्येक निश्चित दाव के लिये क्वथन एक निश्चित ताप पर होता है।

जल को भाप मे बदलने के लिये जो ऊष्मा आवश्यक होती है उसे भाप की गुप्त ऊष्मा (Latent heat) कहते हैं। एक ग्राम जल को, जिसका ताप १००° सें० है, पूर्णतया वाष्पित करने मे ५३६ कैलोरी ऊष्मा आवश्यक होती है। यहाँ कैलोरी ऊष्मा की इकाई है। एक कैलोरी ऊष्मा का वह मान है जो एक ग्राम जल के ताप को १° सें० बढाने के लिये आवश्यक होता है।

भाप के गुण — जब भापइजन मे भाप का बहुत अधिक व्यावहारिक उपयोग होने लगा, तब भी इसके गुणो का सैद्धातिक अध्ययन नहीं हुआ था। अतएव इसके बारे मे विस्तृत जानकारी नही प्राप्त थी। भाप का अध्ययन १९वी सदी मे जॉन डाल्टन, जेम्स वाट, रेनो इत्यादि ने किया था। भाप के गुणो के बारे में आधुनिकतम समीक्षा जोसेफ एच कीनान (Joseph H Keenan) की मानी जाती है, जो १९३६ ई० मे प्रकाशित हुई थी।

भाप के गुणो का अध्ययन करने के लिये पूर्ण ऊष्मा (enthalpy) का उपयोग किया जाता है। पूर्ण ऊष्मा की मात्रा निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त होती है .

$$h = u + A\,p\,v$$

यहाँ u आतरिक ऊर्जा, p दाव, v आयतन और A गुणाक है, जो कार्य के एकक को ऊष्मा के एकक में परिणत करता है। विभिन्न दाव और ताप पर पूर्ण ऊष्मा का मान इसका गुण व्यक्त करता है। कीनान की समीक्षा मे विभिन्न दाव और ताप पर पूर्ण ऊष्मा का मान सारणी के रूप मे दिया है।

यदि गरम वाष्प को ठढा किया जाय, तो इसका ताप घटते हुए १००° सें० तक आता है और उसके बाद द्रवण आरभ हो जाता है। द्रवण के लिये छोटे छोटे कणो की आवश्यकता होती है, जिनपर वाष्प जमता है। यदि वाष्प इस प्रकार के कणो से सर्वथा रहित हो और उसे शीघ्रता से ठढा किया जाय, तो वाष्प का ताप १००° सें० से भी नीचे आ सकता है। इस अवस्था को अतिशीतित भाप (Supercooled steam) कहते हैं। यह अवस्था अस्थायी होती है और शीघ्र ही वाष्प द्रवित होने लगती है।

वाष्प के उपयोग — वाष्प को यात्रिक ऊर्जा के लिये उपयोग करने का प्रथम श्रेय ऐलेग्जैड्रिया के 'हीरो' (Hero) नामक व्यक्ति का है। इन्होने भाप की सहायता से छोटे खिलौने चलाने की व्यवस्था की और छोटे मोटे आश्चर्य दिखाए। बडे पैमाने पर वाष्प का उपयोग १९वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे आरभ हुआ था। जेम्स वाट ने अपने आविष्कार से इसका उपयोग बहुत बढाया। भाप का अधिकाश उपयोग ऊष्मा को यात्रिक ऊर्जा के रूप मे परिवर्तित करने मे होता है। कोयले इत्यादि को जलाकर जो ऊष्मा प्राप्त होती है, उससे जल का क्वथन होता है। इस भाप को ऊँचे ताप और दाव पर करके उससे इजन चलाए जाते हैं। इजन आदि के लिये अतितप्त भाप का उपयोग अधिक उपयुक्त होता है, क्योंकि इससे इजन की दक्षता अधिक होती है। इसके अतिरिक्त भाप अतितप्त होने से इजन के पुर्जों का अपरदन (erosion) कम होता है तथा ऊष्मा की हानि भी कम होती है।

इजन के अतिरिक्त भाप का बहुत अधिक उपयोग ऊष्मा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिये भी होता है। चूँकि एक ग्राम भाप मे ५३६ कैलोरी ऊष्मा गुप्त ऊष्मा के रूप मे प्राप्त होती है, अत भाप के द्रवण से बहुत अधिक ऊर्जा मुक्त होती है। ठढे प्रदेशो मे मकान इत्यादि को गरम करने के लिये भाप का उपयोग होता है। मकान के निचले भाग मे पानी गरम किया जाता है, जिससे भाप उत्पन्न होती है। यह भाप नलिकाओ द्वारा अन्य कमरो मे पहुँचाई जाती है, जहाँ धातु के विकिरक (radiator) होते हैं। ये गरम हो जाते हैं और कमरो को गरम रखते हैं।

इसके अतिरिक्त भारत मे प्राकृतिक चिकित्सा मे, तथा फिनलैंड, स्वीडन इत्यादि देशो मे सर्वसाधारण द्वारा, वाष्पस्नान का बहुत अधिक उपयोग होता है। इसके लिये व्यक्ति एक ऐसे कक्ष मे बैठता है जिसमे गरम वाष्प प्रवेश कराया जाता है। इससे पसीना छूटता है। अत रोमछिद्रो इत्यादि की सफाई हो जाती है।

[ध० कि० गु०]

भाप इंजन (Steam Engine) ऊष्माशक्ति से यात्रिक शक्ति का उत्पादन ऊष्मा इजन (heat engine) द्वारा होता है। ऊष्मा इजन मुख्यत दो प्रकार के होते हैं . अतर्दहन इजन (internal combustion engine) और बाह्यदहन इजन (external combustion engine)। बाह्यदहन इजन का सर्वोत्तम उदाहरण है, भापइजन। गरम जल-वाष्प द्वारा चलनेवाले इजन को 'भाप इजन' कहते हैं एव इस तरह के इजन भाप की ऊष्माशक्ति से यात्रिक शक्ति का उत्पादन करते हैं।

सक्षिप्त इतिहास — भाप इजन के आविष्कार का श्रेय सर जेम्स वाट को है, किंतु इस विषय के प्राप्त लेखो से सर्वेक्षण करने के पश्चात् पता चलता है कि न्यूकोमेन नामक वैज्ञानिक ने बहुत पहले भाप द्वारा चलनेवाले एक इजन का निर्माण किया था एव उसकी सहायता से कुएँ से जल निकाला था। कुछ लोग जेम्स वाट को इस प्रकार के इजन का प्रथम आविष्कारक नहीं मानते हैं, क्योंकि जेम्स वाट से करीब ७५ वर्ष पूर्व पेपिन नामक वैज्ञानिक ने भी एक ऐसा इजन बनाया था जो भाप द्वारा कार्य करता था और इसके लिये उसने एक पिस्टन (piston) और एक सिलिंडर (cylinder)

का उपयोग किया था। इस सिलसिले मे विशेषज्ञों का मत है कि सर जेम्स वॉट ने न्यूकोमेन के इजन के सिद्धात के आधार पर ही एक वृहदाकार इजन बनाया था, जिसमें बहुत सी विशेषताएँ थीं। जेम्स वाट के इजन मे कुछ सुधार कर जॉर्ज स्टीवेंसन ने रेलगाडी का इजन बनाया और सर्वप्रथम १८२५ ई० में रेलगाडी चलाई। तब से भाप इजन मे विभिन्न प्रकार के सुधार होते रहे हैं।

भाप इंजन के प्रकार — भाप इजन के निम्नलिखित मुख्य प्रकार हैं

(क) एक एव द्वि-क्रिया इजन (single and double acting engine)—एक क्रिया इजन मे भाप पिस्टन के एक ही ओर कार्य करती है एव द्विक्रिया इजन मे भाप पिस्टन के दोनो ओर कार्य करती है। यदि इन दोनों प्रकार के इंजनो में अन्य सभी अवस्थाएँ समान हो, तो द्वि-क्रिया इजन द्वारा प्राप्त शक्ति दूसरे प्रकार के इजन द्वारा प्राप्त शक्ति की दूनी होती है। यही कारण है कि इन दिनो एक क्रिया इजन कम ही व्यवहार मे लाया जाता है।

(ख) ऊर्ध्वाधर एव क्षैतिज इजन — सिलिंडर की धुरी के ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज होने के अनुसार इजन ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज कहा जाता है। क्षैतिज इजन ऊर्ध्वाधर इजन से अधिक जगह घेरता है। ऊर्ध्वाधर प्रकार के इजन मे घर्षण आदि कम होता है, जिसके कारण यह क्षैतिज इजन की तुलना मे अधिक दिन तक चल सकता है।

(ग) निम्न एव उच्च चाल इजन (Low and high speed engine) — भाप इजन की चाल वस्तुत इसके क्रैंक शैफ्ट (crank shaft) के परिक्रमण (revolutions) की प्रति मिनट की चाल होती है। चार फुट पिस्टन स्ट्रोक (piston stroke) एव ८० परिक्रमण प्रति मिनट वाले इजन मे औसत पिस्टन चाल ६४० फुट प्रति मिनट होगी। यह इजन निम्न चाल इजन कहा जायगा। साधारणत १०० परिक्रमण प्रति मिनट की चाल से कम चाल पर चलनेवाले इजन को निम्न चाल इजन कहते हैं एव २५० परिक्रमण प्रति मिनट की चाल से अधिक चाल पर चलनेवाले इजन को उच्च चाल इजन कहते हैं। १०० और २५० परिक्रमण प्रति मिनट के बीच की चाल पर चलनेवाले इजन को 'मध्यम चाल इजन' (medium speed engine) कहते हैं। उच्च चाल इजन का सबसे बडा गुण यह है कि समान शक्ति के लिये यह बहुत ही छोटे आकार का होता है। उच्च चाल के कारण भाप भी कम ही खर्च होती है, क्योंकि इस प्रकार के इजन में भाप और सिलिंडर के बीच ऊष्मा स्थानातरण (heat transfer) में बहुत ही कम समय लगता है।

(घ) सघनन और असघनन इजन (Condensing and non-condensing engine) — असघनन इजन वह भाप इजन है जिससे भाप का निकास (exhaust) सीधे वायुमडल में होता है एव इसके लिये सिलिंडर मे भाप की दाब वायुमडल की दाब से कभी कम नही होनी चाहिए। सघनन इजन मे भाप कार्य करने के बाद सघनित्र मे प्रवेश करती है एव वहाँ वह वायुमडल की दाब से बहुत ही कम दाब पर जल में परिवर्तित हो जाती है। सघनित्र का व्यवहार करने से भाप अधिक कार्य कर पाती है।

(च) सरल एव सयोजी इजन (Simple and compound engines) — सरल इजन में प्रत्येक सिलिंडर बॉयलर से सीधे भाप पाता है एव सीधे वायुमडल या सघनित्र मे निकास (exhaust) करता है। सयोजी इजन मे भाप एक सिलिंडर मे, जिसे उच्च दाब सिलिंडर कहते हैं, कुछ हद तक प्रसारित होती है और उसके बाद उससे कुछ बडे सिलिंडर में, जिसे निम्न दाब सिलिंडर कहते हैं, प्रवेश करती है एव यहाँ प्रसार की क्रिया पूर्ण होती है। बहुधा निम्न दाब सिलिंडर सघनित्र में निकास करता है। अगर तीन या चार सिलिंडर मे भी हो सकता है एव इन इजनो को त्रिप्रसार इजन (triple expansion engine) या चतुष्प्रसार इजन (quadruple expansion engine) कहते हैं।

प्रत्यागामी इजन की यत्रावली — (Reciprocating engine mechanism) — चित्र १ मे इजन के विभिन्न पुर्जे दिखाए गए हैं। सिलिंडर (१) फ्रेम (frame) (२) के एक ओर बोल्ट (bolt) द्वारा बँधा रहता है। सिलिंडर ढक्कन (cylinder cover) (३) सिलिंडर के दूसरी ओर बोल्ट द्वारा बँधा रहता है। सिलिंडर से ऊष्मा सचार को कम करने के लिये अचालक (non-conductor) परिवेष्टन (lagging) (४) द्वारा सिलिंडर को चारो ओर से ढँक दिया जाता
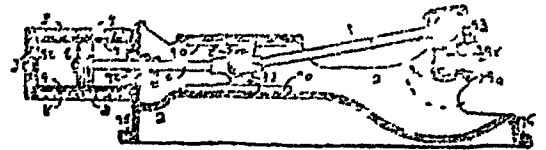
चित्र १.

है। इस परिवेष्टन को इस्पात की चादर (५) से लपेट दिया जाता है ताकि बाहर से देखने में अच्छा लगे। पिस्टन (६) पिस्टन दड (७) के एक ओर लगा रहता है, जो भरण बक्स (stuffing box) (८) के अदर से चलता है। क्रॉस हेड (cross head) (९) पिस्टन दड के दूसरी ओर लगा रहता है और गाइड (guide) (१०) पर टिका रहता है। योजक दड (connecting rod) (११) का एक किनारा क्रॉस हेड से गजन पिन (gudgeon pin) (१२) द्वारा जोडा रहता है। इसका दूसरा किनारा क्रैंक (crank) (१४) से क्रैंक पिन (crank pin) (१३) द्वारा बँधा रहता है। क्रैंक शैफ्ट (crank shaft) (१५) इजन का मुख्य पुर्जा है। यह मुख्य बेयरिंग (bearing) (१६) मे चलता है। इजन मे व्यवहृत स्नेहक तेल (lubricating oil) आदि इजन के फ्रेम के आधार के पास इकट्ठा किए जाते हैं (१७)। भाप द्वारों (ports) (१८) द्वारा सिलिंडर में प्रवेश करती हैं, या इससे बाहर निकलती है।

भाप इजन का कार्यसिद्धात (working principle) — ऊष्मा इजन की अधिकतम दक्षता(ता$_1$—ता$_2$)ता$_1$[$(T_1-T_2)/T_1$]होती है जिसमें ता$_1$ (T_1) और ता$_2$ (T_2) ऊष्मा इजन चक्र (heat engine cycle) मे अधिकतम एव न्यूनतम ताप हैं। इससे पता चलता है कि इजन की दक्षता इन दोनों तापों पर निर्भर करती है। भाप इजन की दक्षता उतनी ही बढती जायगी जितनी ता$_1$ (T_1) का मूल्य बढेगा एव ता$_2$ (T_2) का मूल्य घटेगा। ता$_1$ (T_1) के मूल्य को बढाने के लिये बायलर से निकलकर इजन मे आनेवाली भाप की दाब का बढ़ाना

होगा, क्योकि भाप की दाब जितनी ही अधिक होगी ता₁ (T_1) का मूल्य उतना ही बढेगा। ता₁ (T_1) को बढाने का एक और उपाय है। वह है भाप को अतितापित करना। अतितापक का बॉयलर में व्यवहार करके भाप का अधिताप बढाया जाता है। ता₂ (T_2) के मान को कम करने के लिये सघनित्र का व्यवहार करना आवश्यक हो जाता है। सघनित्र मे ठढे जल द्वारा भाप जल मे परिवर्तित की जाती है। अत अच्छे सघनित्र में ता₂ (T_2) का मान ठढे जल के ताप के बराबर हो सकता है। इससे पता चलता है कि भाप इजन मे अधिक दाब एव अधिक अतितप्त भाप द्वारा कार्य कराने से एवं कार्य कराने के बाद भाप को सघनित्र मे प्राप्य ठढे जल के ताप के बराबर ताप पर जल में परिवर्तित करने से इजन अधिक दक्ष होगा।

बॉयलर से भाप उच्च दाब पर भापपेटी (steam chest) में प्रवेश करती है। पिस्टन जैसे ही स्ट्रोक (stroke) के अंत में पहुँचता है, उस समय वाल्व चलता है, जिससे भापद्वार (steam port) खुल जाता है एव भाप सिलिंडर मे प्रवेश करती है। भाप की दाब द्वारा धक्का दिए जाने से पिस्टन आगे बढता है। इसे अग्र स्ट्रोक (forward stroke) कहते हैं। पिस्टन की चाल द्वारा क्रैंक, क्रैंक शाफ्ट एव उत्केंद्रक (eccentric) चलते हैं। उत्केंद्रक के चलने से द्वार कुछ और अधिक खुल जाता है। सिलिंडर मे भाप तब तक प्रवेश करती रहती है जब तक द्वार एकदम बद नही हो जाता। इस समय विच्छेद (cut off) होता है एव इसके बाद सिलिंडर में भाप का सभरण (supply) नहीं हो पाता। सिलिंडर मे आई हुई भाप अब प्रसारित होती है एव इस प्रसार मे भाप का आयतन बढ जाता है एव दाब कम हो जाती है। इसी प्रसार के समय भाप कार्य करती है। अग्र स्ट्रोक के अंत में वाल्व भाप द्वार को निकास की ओर खोल देता है, जिससे भाप निर्मुक्त होती है। निकली हुई भाप की दाब पश्च दाब (back pressure) के बराबर हो जाती है। निर्मोचन होने के कुछ क्षण के बाद पिस्टन पीछे की ओर लौटता है एव इसे प्रत्यावर्तन स्ट्रोक (return stroke) कहते हैं। इस स्ट्रोक मे लौटते समय पिस्टन सिलिंडर मे बची हुई भाप का निकास करता जाता है। जब पिस्टन इस स्ट्रोक के अत पर पहुंचता है, वाल्व निकास द्वार को बद कर देता है, जिससे भाप का प्रवाह बद हो जाता है। सिलिंडर शीर्ष और पिस्टन के बीच कुछ भाप बच जाती है, जो निर्मुक्त नही हो पाती है। फिर चक्र की पुनरावृत्ति होती है।

द्वि-क्रिया इजन मे इसी के सदृश चक्र की क्रिया सिलिंडर की दूसरी ओर होती है।

भाप का कार्नो चक्र (Carnot Cycle) — गैस के कार्नो चक्र में मे दो रुद्धोष्म (adiabatic) एव दो स्थिर ताप वाली क्रियाएँ होती हैं। भाप को व्यवहृत करने पर दो स्थिर ताप वाली क्रियाएँ स्थिर दाब की क्रियाएँ हो जाती हैं, क्योकि जल या भाप को स्थिर ताप पर रखने के लिये दाब को भी स्थिर रखना होगा। चित्र २ में भाप का कार्नो चक्र दर्शाया गया है। बिंदु अ से आरभ करने पर चक्र की ये चार क्रियाएँ हैं (१) बिंदु अ पर जल ता₁ (T_1) ताप एव द₁ (p_1) दाब पर रहता है। यह जल स्थिर ताप पर गरम किया जाता है। जल धीरे धीरे भाप मे परिवर्तित होता जाता है। जब वाष्पीकरण पूरा हो जाता है तब भाप की अवस्था बिंदु ब से एव यह क्रिया 'अ ब' से दिखाई जाती है। (२) बिंदु ब पर ऊष्मा का प्रदाय बंद हो जाता है एव भाप रुद्धोष्म तरीके से बिंदु स तक प्रसारित होती है। प्रसार के अत मे दाब एवं ताप घटकर क्रमश द₂ (p_2) एवं ता₂ (T_2) हो जाता है। यह क्रिया 'ब स' है। (३) बिंदु स से द तक भाप स्थिर ताप ता₂ (T_2) पर सपीडित होती है। इस क्रिया
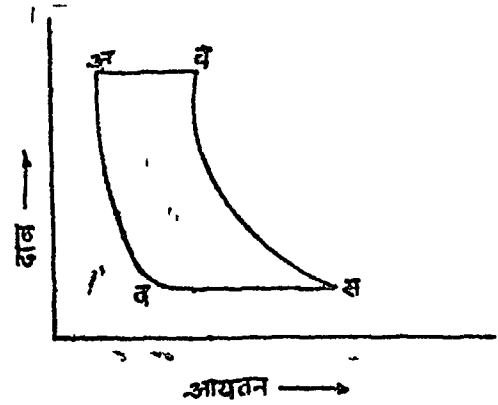
चित्र २.

से भाप का सघनन होता जाता है। द बिंदु पर पहुँचने पर कुछ भाप बच जाती है। (४) द बिंदु पर बची हुई भाप का रुद्धोष्म तरीके से 'द अ' द्वारा सपीडन होता है। इससे इसका आयतन बहुत ही कम हो जाता है। इसके बाद चक्र की पुनरावृत्ति होती है।

रैंकिन चक्र (Rankine Cycle) — रैंकिन चक्र एक सैद्धांतिक चक्र है, जिसके अनुसार भाप इजन कार्य करता है। यह चक्र चित्र ३. में अंकित किया गया है। मान लिया कि चक्र के आरभ मे सिलिंडर
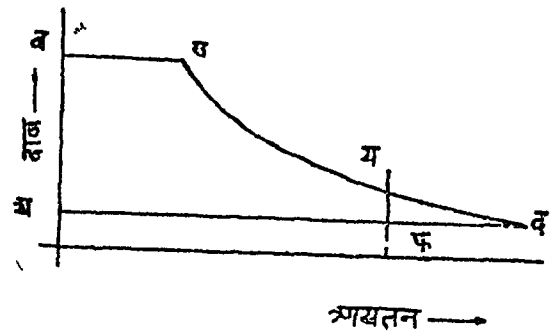
चित्र ३.

के अतरायतन (clearance volume) में कुछ जल है एवं इस जल का आयतन नगण्य है। इस अवस्था को बिंदु अ से दिखाया गया है। रैंकिन चक्र की ये क्रियाएँ हैं : (१) 'अ ब' सघनित्र से सघनित जल पप द्वारा बॉयलर में उच्च दाब पर भेजा जाता है। बॉयलर मे यह जल उच्च दाब के सतृप्त ताप (saturation temperature) तक गरम किया जाता है। (२) 'ब स' बॉयलर मे स्थिर दाब द₁ (p_1) पर गरम जल का वाष्पीकरण होता है। (३) 'स द' बिंदु स पर भाप बॉयलर से भाप इजन मे प्रवेश करती है। भाप इजन मे भाप का प्रसार रुद्धोष्म तरीके से बिंदु द तक होता है। इस प्रसार के द्वारा भाप कार्य करती है। प्रसार के अत मे भाप

की दाव दा₂ (p_2) हो जाती है। (४) 'द अ' के विंदु द पर भाप, इजन मे कार्य करने के वाद सघनित्र मे प्रवेश करती है। सघनित्र मे भाप स्थिर दाव पर जल के रूप में परिवर्तित होती है। विंदु अ से पुन चक्र की पुनरावृत्ति होती है।

व्यवहार मे रैंकिन चक्र का रूपातरण — वस्तुत व्यवहार में भाप को दाव-आयतन रेखाचित्र के अतिम छोर विंदु द तक प्रसारित करने से कुछ भी लाभ नही होता। इस रेखाचित्र का क्षेत्रफल भाप इजन द्वारा प्राप्त कार्य के बराबर होता है। इसे देखने से पता चलेगा कि यह अतिम सिरे की ओर बहुत ही सकीर्ण है, जिसके फलस्वरूप प्रसार स्ट्रोक के अंतिम भाग मे प्राप्त कार्य बहुत ही कम होगा। इस सकीर्ण भाग द्वारा प्राप्त कार्य इजन के गतिमान पुर्जो के घर्षण को भी पूरा कर सकने में असमर्थ होता है। इसी कारण प्रसार स्ट्रोक विंदु य पर ही समाप्त कर दिया जाता है। तब विंदु य से भाप की दाव स्थिर आयतन पर कम होती जाती है एव विंदु फ पर पहुँचने पर यह सघनित्र की दाव के बराबर हो जाती है। अत चित्र ३ मे 'अ व स य फ' रूपातरित रैंकिन चक्र है।

परिकल्पित और वास्तविक सूचक रेखाचित्र — चित्र ४ मे 'अ व स द य' परिकल्पित रेखाचित्र एव '१-२-३-४-५' वास्तविक रेखाचित्र है। भाप इजन का परिकल्पित सूचक रेखाचित्र वह सैद्धातिक
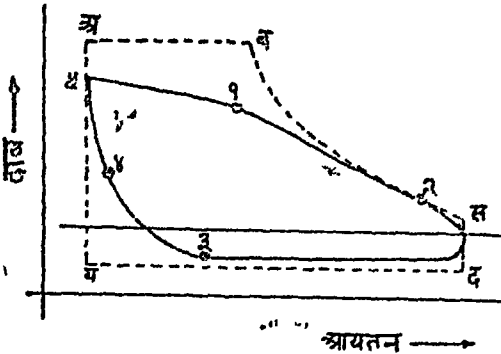
चित्र ४

रेखाचित्र है जो यह मानकर बनाया जाता है कि इंजन मे किसी भी प्रकार की क्षति नही हो रही है। इस प्रकार के रेखाचित्र को बनाते समय ये कल्पनाएँ कर ली जाती हैं (क) द्वारो का खुलना और बद होना तात्क्षणिक होता है। (ख) भाप के सघनन द्वारा दावक्षति (loss) नही होती है। (ग) वाल्व द्वारा अवरोघन क्रिया नही होती है। (घ) भाप बॉयलर की दाव पर इजन में प्रवेश करती है और सघनित्र की दाब पर उसकी निकासी होती है। (च) इजन मे भाप का अतिपरवलयिक (hyperbolic) प्रसार होता है।

वस्तुत वास्तविक इजन में क्षतियाँ होती हैं। इन क्षतियो के कारण इजन पर प्रयोग द्वारा मिलने वाले सूचक रेखाचित्र, जिन्हे 'वास्तविक सूचक रेखाचित्र' कहते है परिकल्पित रेखाचित्र से विभिन्न होते हैं। बॉयलर से भाप नली द्वारा इजन मे प्रवेश करती है। इस नली में गरम भाप के प्रवाह के कारण कुछ भाप का सघनन हो जाता है, जिसके कारण भाप की दाव कम हो जाती है। वाल्व द्वारा भाप के प्रवेश करते समय अवरोघन के कारण भी दाव में कुछ कमी हो जाती है। इन्हीं सब क्षतियों के कारण इजन में प्रवेश करते समय भाप की दाव बॉयलर की दाब से कम रहती है। सिलिंडर की दीवारें भाप की तुलना में ठढी होती हैं। इसके कारण भाप का सघनन होता है। इसके फलस्वरूप विच्छेद विंदु तक दाव मे धीरे धीरे क्षति होती जाती है। सिलिंडर की दीवारो द्वारा ताप के चालन के कारण प्रसारवक्र वास्तव में अतिपरवलयिक नही हो पाता है। भाप का उन्मोचन स्ट्रोक के पूर्ण होने के पहले ही हो जाता है। प्रवेश एव निकास द्वार के क्रमश वद होने और खुलने में लगनेवाले समय के कारण रेखाचित्र मे उन दो विंदुओ पर कुछ वक्रता आ जाती है। चूँकि कार्य करने के बाद भाप को सघनित्र मे भजना होता है, इसीलिये निकासी रेखा सघनित्र-दाव-रेखा से ऊपर रहती है। निकास द्वार के बद होने के बाद सिलिंडर मे बची हुई भाप का पिस्टन द्वारा सपीडन होता है। इसके कारण इस विंदु पर भी रेखाचित्र मे कुछ वक्रता आ जाती है। इस सपीडन स्ट्रोक के पूर्ण होने के ठीक कुछ पहले ताजी भाप इजन मे प्रवेश करती है। सिद्धात एव व्यवहार मे पाए जानेवाले इन्ही सब विचलनों के कारण दोनों रेखाचित्रों में अत्यत अतर हो जाता है। इसके कारण वास्तविक रेखाचित्र का क्षेत्रफल परिकल्पित रेखाचित्र के क्षेत्रफल से कम हो जाता है। इन दोनो क्षेत्रफलो के अनुपात को 'रेखाचित्र गुणक' (diagram factor) की सज्ञा दी गई है। रेखाचित्र गुणक का मान ०.६ से ०.९ तक होता है।

भाप इजन की अश्व शक्ति — ऊपर बताए गए परिकल्पित सूचक-रेखाचित्र द्वारा पता चलता है कि भाप की दाव पिस्टन के पूरे स्ट्रोक के समान नही रह पाती। इजन की अश्वशक्ति को जानने के लिये भाप की दाव के औसत मान का अकन करना आवश्यक हो जाता है। इस दाव को माघ्य प्रभावी दाव कहते हैं।

परिकल्पित माध्य प्रभावी दाव

$$= \frac{\text{द}_{\text{प्र}}}{\text{प्र}}(\,१ + \text{लघु प्र}\,) - \text{द}_{\text{प}}$$

$$\left[\frac{p_1}{r}(\,1 + \log_e r\,) - p_b\right]$$

जहाँ द$_\text{प्र}$ (p_1) = भाप इजनो में अतर्गम दाव, द$_\text{प}$ (p_b) = पश्च दाव और प्र (r) = प्रसार का अनुपात है। परिकल्पित सूचक-रेखाचित्र के आधार पर निकाली गई माध्य प्रभावी दाव को 'परिकल्पित माध्य प्रभावी दाव' कहते हैं। वास्तविक सूचक-रेखाचित्र द्वारा प्राप्त माध्य प्रभावी दाव को वास्तविक माध्य प्रभावी दाव कहते हैं।

दोनो मे निम्नलिखित सबध है :

वास्तविक माध्य प्रभावी दाव = (परिकल्पित माध्य प्रभावी दाव) × रेखाचित्र गुणक

भाप इजन पर वास्तविक सूचक रेखाचित्र, इजन सूचक द्वारा प्राप्त होता है। इजन सूचक एक ऐसा उपकरण है जो दो गतियो को दिखाता है एक, ऊर्ध्वगति जो दाव की अनुपाती होती है, एव दूसरी, क्षैतिज गति जो पिस्टन विस्थापन की अनुपाती होती है। इस उपकरण में एक छोटा सा सिलिंडर होता है, जिसमे एक बहुत ही चुस्त पिस्टन एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलता है। पिस्टन के

द्वारा पिस्टन दड चलता है, जिसपर एक कमानी लगी रहती है। कमानी का दूसरा छोर उपकरण के स्थिर हिस्से से कसकर बँधा रहता हैं। पिस्टन दड पेंसिल यन्त्रावली (pencil mechanism) को चलाता है, जो सूचक पिस्टन (indicator piston) की गति को ड्रम (drum) पर बढाकर दिखाता है। क्षैतिज विस्थापन एक दोलन ड्रम (oscillating drum) की सहायता से प्राप्त होता है। सूचक चित्र एक खास तरह के पत्रक (card) पर लिया जाता है। ड्रम के ऊपर पत्रक को पकडने के लिये दो क्लिप (clip) रहते हैं। ड्रम की गति इजन के पिस्टन की गति को अनुरूपित करती है और इसलिये एक खास माप पर पिस्टन के विस्थापन को दिखाती है।

सूचक रेखाचित्र के आधार पर निकाले गए माध्य प्रभावी दाब को व्यवहार करने से प्राप्त अश्वशक्ति को 'सूचित अश्वशक्ति' (Indicated horse power) कहते हैं।

$$\text{सूचित अश्व शक्ति} = \frac{(\text{दा}_{\text{मा}_1}\,\text{क्षे}_1 + \text{दा मा}_2\,\text{क्षे}_2) \times \text{स्ट्रो प}}{३३,०००}$$

$$\left[\frac{(p_{m1} A_1 + p_{m2} A_2)\, Ln}{33,000}\right]$$

जहाँ $\text{दा}_{\text{मा}_1}$ (p_{m1}) और $\text{दा}_{\text{मा}_2}$ (p_{m2}) भाप इंजन के दोनो ओर के माध्य प्रभावी दाब पाउड प्रति वर्ग इच मे हैं, क्षे_1 (A_1) तथा क्षे_2 (A_2) क्रमश दोनो ओर के क्षेत्रफल वर्ग इच मे हैं, स्ट्रो (L) = स्ट्रोक (stroke) की लबाई फुट में और प (N) = इजन का परिक्रमण प्रति मिनट है।

सिलिडर मे उत्पन्न की हुई शक्ति का कुछ हिस्सा इजन के गतिमान पुर्जों के घर्षण मे ही समाप्त हो जाता है। अत क्रैंकशैफ्ट पर प्राप्य ऊर्जा सपूर्ण ऊर्जा से सर्वदा कम रहती है। क्रैंकशैफ्ट पर प्राप्य शक्ति को बहुधा ब्रेक प्रणाली द्वारा मापा जाता है एव इसी के चलते इसे ब्रेक अश्वशक्ति कहते हैं। इंजन की अश्वशक्ति को मापने के उपकरण को डाइनेमोमीटर (Dynamometer) कहते हैं (देखें, डाइनेमोमीटर)।

इंजन के विभिन्न पुर्जों के घर्षण मे लगनेवाली शक्ति को 'घर्षण अश्वशक्ति' कहते हैं।

घर्षण अश्वशक्ति-सूचित अश्वशक्ति-ब्रेक अश्वशक्ति

भाप इजन का गतिनियामक (governor) — गति नियामक का मुख्य कार्य इजन की गति का नियमन करना है। भाप इजन मे गतिनियामक इन दो तरीको मे से एक की सहायता से परिभ्रमण की गति स्थिर रख पाता है (१) विच्छेद बिंदु को बदलने से तथा (२) भाप की प्रारंभिक दाब को परिवर्तित करने से। शक्ति की माँग के अनुसार भाप की दाब को बढाकर या घटाकर इजन की गति को नियमन करनेवाले गतिनियामक को अवरोध गतिनियामक (throttling governor) कहते हैं। गतिनियामक एक अवरोध वाल्व को चलाता है, जो मुख्य भाप नली मे रखा होता है। इस प्रकार के गतिनियामकों मे मुख्य गतिपालक कदुक गतिनियामक (fly ball governor) होता है। वाल्व सतुलित प्रकार का होता है, अर्थात् भापदाब द्वारा परिणामी बल (resultant force) शून्य होता है। जब इजन की गति बढती है, गतिनियामक कदुको के परिभ्रमण की गति मे भी वृद्धि हो जाती है, जिससे केंद्रापसारी बल बढ जाता है। बल की यह वृद्धि उन्हे गुरुत्वाकर्षणबल एवं नियन्त्रण कमानी के विरुद्ध बाहर चलने को बाध्य करती है। इसके चलते वाल्व कुछ अश मे बद हो जाता है। वाल्व द्वारा अवरोध होने पर पिस्टन पर कार्य करनेवाली भाप की दाब मे कमी हो जाती है, जिसके कारण उत्पन्न शक्ति भी कम हो जाती है एव इजन की गति मे कमी होने के कारण वाल्व कमानी ऊपर उठ जाती है एवं पिस्टन पर कार्य करनेवाली भाप की दाब में वृद्धि हो जाती है, जिसके फलस्वरूप गति बढकर सामान्य गति पर आ जाती है! अवरोध-गतिनियामक द्वारा नियमित भाप इजन मे प्रयोग के बाद यदि इजन में प्रति घंटे व्यवहृत भाप की तौल को अश्वशक्ति के साथ आँका जाय, तो एक सरल रेखा प्राप्त होगी। यह सबध सर्वप्रथम विलिअन ने पाया था। अत इन्ही के नाम पर इसे 'विलिअन की रेखा' (Willian's Line) कहते हैं।

गतिपालक चक्र (flywheel) — बहुधा गतिपालक चक्र ढालवें लोहे का बना होता है। इसमे एक घेरा (rim), एक नाभि (hub) एव नाभि को घेरा से जोडने के लिये भुजाएँ (arms) होती हैं। जिस ईषा (shaft) पर गतिपालक चक्र लगाना होता है, उसका व्यास ऐसा होना चाहिए कि उसपर नाभिक ठीक बैठ जाय। गतिपालक चक्र को ईषा के साथ चाभी के द्वारा अटकाया जाता है।

गतिपालक चक्र का मुख्य कार्य है इंजन के कार्य करते समय ऊर्जा के परिवर्तन द्वारा होनेवाली गति के परिवर्तन को कम करना। यह चक्र इंजन को निष्क्रिय स्थिति (dead centres) के ऊपर ले जाता है। निष्क्रिय स्थिति के समय क्रैंक और योजी दड स्ट्रोक के किसी भी ओर मे एक सीध मे रहता है और इस समय पिस्टन पर कार्य करनेवाली भाप क्रैंक को घुमाने मे असमर्थ हो जाती है। गतिपालक चक्र को चालक घिरनी (driving pulley) के रूप मे भी काम मे लाया जा सकता है। कार्य का सफलतापूर्वक संपादन करने के लिये इनका भारी होना आवश्यक है।

नौ इजन (Marine Engines) — निम्न गतिवाले भारवाहक जलपोतो (ship) में बडे नोदक (propellers) लगाए जाते हैं एवं ये नोदक प्रति मिनट ८० परिक्रमण करते हैं। इस तरह के जहाजो मे भाप इजन बहुत ही उपयुक्त हैं। उच्च गति पर चलनेवाले जहाजो मे भाप इंजन की जगह भाप टरबाइन का व्यवहार किया जा रहा है। समुद्रयान मे व्यवहार मे लाए जानेवाले भाप इजन में त्रिप्रसार प्रकार के इजन प्रसिद्ध हैं। समुद्रयान इजन सर्वदा पृष्ठ सघनक (surface condenser) द्वारा युक्त होता है, जिसमे पीतल की नलिकाएँ लगी रहती हैं। पप के द्वारा समुद्र का जल संघनित्र मे लाया जाता है। समुद्र के जल से ही सघनित्र मे आई हुई भाप का सघनन होता है। यद्यपि आजकल समुद्रयानो मे अतर्दहन इजन, भाप टरबाइन एव गैस टरबाइन व्यवहार मे लाया जा रहा है, फिर भी कुछ खास अवस्थाओं मे भाप इजन का व्यवहार अत्यत आवश्यक हो जाता है।

रेल इजन (Locomotive Engine) — साधारण रेल इजन में क्षैतिज भाप इजन का व्यवहार होता है। यह इजन रेल इजन बॉयलर (locomotive boiler) के पास ठोस आधार पर लगा

रहता है। प्रायः सभी रेल इंजनों में संघनित्र नहीं रहता है। कार्य करने के बाद भाप को सीधे वायुमंडल में छोड़ दिया जाता है। इस तरह के इंजन दो प्रकार के होते हैं : (१) बहि सिलिंडर इंजन, जिसमें सिलिंडर दूर तक फैले रहते हैं और ये इंजन के फ्रेम के बाहर ही लगाए जाते हैं तथा (२) अंत.सिलिंडर इंजन, जिसमें सिलिंडर इंजन के फ्रेम के अंतर्गत ही एक दूसरे के बगल में रखे जाते हैं। आधुनिक डिजाइन में इन दोनों प्रकारों को जोड़ दिया जाता है, अर्थात् कुछ सिलिंडर इंजन के फ्रेम के अंदर रहते हैं एवं कुछ सिलिंडर बाहर रहते हैं।

एकदिग्वाही इंजन (Uniflow engine) — चित्र ५ में इस प्रकार के इंजन के मुख्य सिद्धांत को दर्शाया गया है। स्ट्रोक के आरंभ में बॉयलर से भाप यंत्र द्वारा नियंत्रित वाल्व से होकर सिलिंडर में प्रवेश करती है और पिस्टन को दाएँ ओर ढकेलती है।
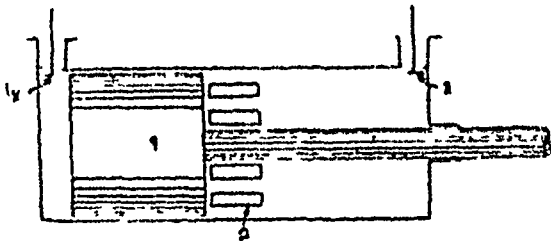
चित्र ५

यह वाल्व (४) विच्छेद होते ही बंद हो जाता है एवं भाप प्रसारित होती है। स्ट्रोक के अंत में पिस्टन का बायाँ भाग निकास द्वार (२) को खोल देता है। तब भाप इस द्वार से निकल जाती है। जब यह होता है, उस समय पिस्टन (१) का दायाँ भाग अंतर स्थान (clearance space) पर पहुँच जाता है, जिससे वाल्व (३) द्वारा ताजा भाप सिलिंडर के दाएँ भाग में प्रवेश करती है। साधारण भाप इंजन के विपरीत, एकदिग्वाही इंजन में भाप कार्य करने के लिये जिस दिशा में चलती है, उसी दिशा में चलकर वह कार्य करने के बाद निकल जाती है। भाप की एक ही दिशा वाली चाल के कारण इस प्रकार के इंजन को 'एकदिग्वाही इंजन' की संज्ञा दी गई है। इसमें भाप का संघनन कम होता है, जिसके कारण बहुत तरह की हानियाँ होने से बच जाती हैं। यह देखा गया है कि भाप की समान मात्रा द्वारा एकदिग्वाही इंजन में किया गया कार्य बहुपद इंजन (multistage engine) के कई सिलिंडरों में किए गए संपूर्ण कार्य के बराबर होता है। [च० भू० मि०]

भाप जनन जल सामान्यतः तीन रूपों में पाया जाता है। ०° सें० से नीचे ताप पर ठोस बर्फ के रूप में, ०° सें० से १००° सें० के बीच तरल जल के रूप में और १००° सें० से ऊपर ताप पर गैसीय, वाष्प या भाप के रूप में पाया जाता है। १००° सें० से नीचे ताप पर भी जल का वाष्प बनता है। ऐसा ही वाष्प वायुमंडल की वायु में विद्यमान रहता है। किसी खुले पात्र में जल रखने से वह धीरे धीरे वाष्प बनकर वायु में मिल जाता है। यह सब का सामान्य अनुभव है। यहाँ जल का वाष्पन होता है। वाष्पन सब ताप पर होता है। वाष्पन की गति वायुमंडल की आर्द्रता पर निर्भर करती है। यदि जल को गरम किया जाय, तो वाष्प बनने की मात्रा धीरे धीरे बढ़ने लगती है और जल का ताप बढ़ने लगता है। जब ताप १००° सें० के निकट पहुँचता है, तब जल उबलने लगता है। जिस ताप पर जल उबलता है, वह जल का क्वथनांक होता है। किसी द्रव का क्वथनांक वायुमंडल के दबाव पर निर्भर करता है। दबाव के कम होने से क्वथनांक नीचा हो जाता है और दबाव बढ़ने से क्वथनांक ऊँचा हो जाता है। ऊँचे पहाड़ों पर १००° सें० से नीचे ताप पर जल उबलता है।

जलवाष्प या भाप अदृश्य होती है। पर यदि उसमें जल के कण विद्यमान हों, तो वह दृश्य होता है। रेल इंजन से निकली भाप इसी कारण सफेद होती है और दिखाई पड़ती है। भाप में यदि जलकण विद्यमान हों, तो ऐसी भाप को 'आर्द्र भाप' कहते हैं। इसके विपरीत यदि जलकण उपस्थित नहीं हैं, तो ऐसी भाप को 'शुष्क भाप' कहते हैं। जल जब भाप में परिणत होता है, तब उसका आयतन बढ़ जाता है। १००° सें० पर जल का एक आयतन भाप के १,६७० आयतन में बदल जाता है। भाप को १००° सें० से ऊपर भी गरम किया जा सकता है। ऐसी भाप को 'अतितप्त भाप' कहते हैं। ऐसी अतितप्त भाप सामान्य भाप से अधिक काम करती है। अतः अनेक कारखानों में अतितप्त भाप ही काम में लाई जाती है। उच्च ताप पर गरम होने से अनेक रासायनिक प्रक्रमों का संपादन अतितप्त भाप से जल्द संपन्न होता है।

भाप का उपयोग अंतर्दहन इंजनों और टरबाइनों में होता है। शीत प्रदेशों में कमरे भी भाप से गरम रखे जाते हैं। अनेक रासायनिक प्रक्रमों के संपादन में, जहाँ उच्च ताप की आवश्यकता पड़ती है, भाप का उपयोग होता है।

भाप बॉयलरों में तैयार की जाती है। बॉयलर अनेक किस्म और अनेक आकार के होते हैं। कुछ बॉयलर क्षैतिज होते हैं और कुछ ऊर्ध्वाधर। कुछ बॉयलर गोलाकार होते हैं और कुछ बेलनाकार। कुछ बॉयलरों में केवल एक नली होती है और कुछ में अनेक (नलीदार बॉयलर)। बॉयलरों में जल रखकर गरम किया जाता है। गरम करने के लिये बिजली प्रयुक्त हो सकती है, अथवा ईंधन। ईंधन के रूप में ठोस कोयले या लकड़ी, द्रव ईंधन, पेट्रोलियम या डीजल तेल, या गैसीय ईंधन, प्राकृतिक गैस, वात्याभट्ठी गैस, कोक-भट्ठी गैस और उत्पादक गैस प्रयुक्त हो सकती हैं।

सामान्य कोयला, कोयलाचूर, लिग्नाइट तथा ऐंथ्रासाइट कोयला इस काम में प्रयुक्त हो सकते हैं। कोयले का कार्बन जलकर कार्बन डाइऑक्साइड बनता है। एक पाउंड कोयले के जलने से लगभग १४,६०० ब्रिटिश ऊष्मक मात्रक ऊष्मा बनती है और तब उसका समस्त कार्बन जलकर कार्बन डाइऑक्साइड बनता है। यदि कोयले का समस्त कार्बन जलकर केवल कार्बन मोनोक्साइड बनता है, तो केवल ४,४०० ब्रिटिश ऊष्मक मात्रक ऊष्मा प्राप्त होती है। अतः कोयले के जलने का भट्ठा ऐसा होना चाहिए कि समस्त कार्बन जलकर कार्बन डाइऑक्साइड बने। इसके लिये भट्ठे में वायु का प्रवेश प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है। सिद्धांततः जितनी वायु की आवश्यकता हो सकती है कम से कम उसकी ड्योढ़ी वायु का रहना आवश्यक है। इससे अधिक वायु रहने से ऊष्मा का ह्रास होता है। अधिक वायु

ऊष्मा को लेकर निकल जाती है, जिससे ऊष्मा का ह्रास होता है। भट्टे मे यदि वायु का क्षरण (leakage) होता है, तो उससे भी ऊष्मा का ह्रास होता है, अत अधिकतम ऊष्मा की प्राप्ति के लिये न बहुत अधिक वायु का प्रयोग होना चाहिए और न इतना कम कि कोयले का कार्बन जलकर पूर्ण रूप से कार्बन डाइआॅक्साइड न बने। भट्टे में जलने से जो गैसें बनती हैं, उनमे कार्बन डाइआॅक्साइड की मात्रा सामान्यत १२ प्रति शत रहती है। भट्ठो के दहन के उत्पादन में धुआँ भी रहता है। सभवत अपूर्ण दहन से ही धुआँ बनता है। धुएँ में बिना जले कार्बन के कण रहते हैं। ईंधन के वायु के साथ भली भाँति न मिलने से ही धुआँ बनता है। धुआँ बनना रोकने के दो उपाय है। एक तो कोयला इतना चूर्ण हो कि वायु के साथ जल्द जल सके, या दहनकक्ष इतना बडा हो कि ईंधन अधिक समय तक वायु के ससर्ग मे रहे। दोनों उपाय किए गए हैं। धूल के रूप में कोयले का व्यवहार होता है और दहनकक्ष बडे से बडे रखे जाते हैं।

ईंधन की ऊष्मा से जल भाप मे परिणत होता है। सामान्य ताप पर एक ग्राम जल के ताप को १° सें० ऊपर उठाने मे एक कैलोरी ऊष्मा खर्च होती है, पर क्वथनाक पर एक ग्राम जल को उसी ताप पर भाप बनाने मे ५३७ कैलोरी ऊष्मा खर्च होती है। यह ५३७ कैलोरी भाप की गुप्त ऊष्मा है। जब भाप इजन मे प्रयुक्त होती है तब भाप की यही गुप्त ऊष्मा यात्रिक या वैद्युत ऊर्जा मे बदल जाती है। भाप के ताप और दबाव की वृद्धि से भाप की श्यानता और ऊष्मा सवहन मे वृद्धि होती है। भाप की विशिष्ट ऊष्मा जल की विशिष्ट ऊष्मा से प्राय आधी होती है, पर वायु की विशिष्ट ऊष्मा से दुगुनी होती है। अत ऊष्मीय ऊर्जा धारण करने की क्षमता भाप मे अधिक होती है। आज कल जो बॉयलर प्रयुक्त होते हैं, वे केवल बॉयलर ही नही हैं वरन् उनके साथ अनेक युक्तियाँ लगी हुई हैं, जिनसे उनको केवल बॉयलर न कहकर आजकल बॉयलर सयत्र कहते हैं।

आजकल ऐसे बॉयलर बने हैं जिनमे दबाव १,४०० पाउड प्रति वर्ग इच, ताप ५६०° से ६००° सें० तक, तथा भाप की मात्रा प्रति घटा १०,००,००० पाउड तक प्राप्त हो सकती है। ऐसे बॉयलर के निर्माण मे विशेप प्रकार की इस्पात मिश्रधातु प्रयुक्त होती है, जो इतने ऊँचे ताप और दबाव को सहन कर सके।

औद्योगिक सस्थानो मे उच्च दबाव पर अतितप्त भाप के उत्पादन के प्रक्रम इस प्रकार हैं ईंधन के जलने से जो ऊष्मा बनती है, उसका अवशोषण जल द्वारा होता है। इससे जल का ताप धीरे धीरे ऊपर उठता है और जल के क्वथनांक तक पहुँच जाता है, फिर जल भाप में परिणत होता है। भाप के दबाव मे धीरे धीरे वृद्धि होती है। इससे भाप अतितप्त हो जाती है। अतितप्त भाप की ऊष्मा मे वृद्धि होती है। यह कार्य बॉयलर मे होता है। बॉयलर की अतिरिक्त भट्ठी रहती हैं। वायु को पप करने के लिये पंप या आध्माता (blower) रहते हैं। भाप को अतितप्त करने के लिये वाष्प अधितप्तक जुडे रहते हैं। उस वायु के, जो भट्ठी मे जाती है, पूर्व तापन के लिये वायुतप्तक लगे रहते हैं, पूर्व तप्त वायु के प्रवेश से भट्ठी का ताप नीचे नहीं गिरता, जिससे ईंधन का दहन पूर्ण रूप से होता है और भट्ठी की दक्षता बढ़ जाती है। तप्त वायु के कारण ईंधन मे भी लगभग एक प्रति शत की बचत होती है। उच्च ताप और उच्च दबाव के भाप उत्पादन की भट्ठियाँ आजकल अधिकाधिक जल द्वारा ठढी की जाती हैं। भाप के सघनन से जो जल बनता है, उसका उपयोग बार बार बॉयलर मे हो सकता है। यह जल इसलिये अच्छा होता है कि लवण के रूप मे कोई अपद्रव्य इसमे नही रहता। बॉयलर मे कठोर जल का उपयोग इसलिये अच्छा नही है कि कठोर जल के लवण बॉयलर के तलो पर निक्षिप्त होकर उसकी दक्षता को कम कर देते हैं। यदि जल कठोर है, तो उसको कोमल बनाने के सयत्र भी बॉयलर के साथ साथ रहते हैं। बॉयलर के साथ सभरण जलतप्तक भी रहते हैं, जो उस ताप तक गरम किए जाते हैं जिस दबाव पर बॉयलर का ताप रहता है। इसके लिये खुले तप्तक, या बद तप्तक, या मितोपयोजक (economizers) प्रयुक्त होते हैं। पहले दोनो मे निष्कासित भाप और तीसरे मे भट्ठियो की निष्कासित गैसें प्रयुक्त होती हैं।

आजकल एक नये प्रकार के भाप उत्पादन सयत्र का अधिकाधिक उपयोग होता जा रहा है। इसे प्रणोदित प्रवाह (Forced flow) एकदा मध्यात् (Once through) वाष्प उत्पादन सयत्र कहते हैं। इस सयत्र मे पृथक् करनेवाला पीपा नही होता है, जलसभरण सयत्र मे नीचे से होता है और सतत गरम की हुई परिधि से होकर पहले सामान्य भाप के रूप मे, तदुपरात अतितप्त भाप होकर, निष्कासन द्वार तक पहुँचता है। अतितप्त भाप के ताप तथा दबाव का नियत्रण जल के प्रवेश तथा ईंधन सभरण पर निर्भर करता है। इस रीति द्वारा भाप उत्पादन पर कम खर्च पडता है, परतु इस विधि मे अति शुद्ध जल की आवश्यकता पडती है। [अ० सिं०]

भाभा, होमी जहाँगीर (१९०९-१९६६) जगत्प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी और परमाणु ऊर्जाविद् का जन्म १९०९ ई० मे बबई के एक सभ्रात पारसी परिवार में हुआ था। इनकी प्राथमिक शिक्षा बंबई मे ही हुई, जहाँ से ये इंग्लैंड गए और कैंब्रिज विश्वविद्यालय से गणित मे ट्राइपॉस परीक्षा उत्तीर्ण की। १९३२ ई० मे इन्हे पाउज वॉल ट्रैवलिंग स्टूडेंटशिप प्राप्त हुआ एव रोम के सुप्रसिद्ध प्रोफेसर फर्मी और युट्रेच (Utretch) के प्रोफेसर क्रैमर (Crammar) के अधीन इन्होने अध्ययन सपन्न किया। १९४२ ई० में उन्होने ऐडैम ऐवार्ड प्राप्त किया। बेंगलूरु इडियन इस्टिट्यूट ऑव साइस में अतरिक्ष किरण अनुसधान विभाग मे परमाणु केंद्रीय भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। कैंब्रिज विश्वविद्यालय मे अतरिक्ष किरण पर इन्होंने व्याख्यानमाला दी। ३२ वर्ष की अल्पावस्था मे ही सन् १९४५ ई० मे ये रॉयल सोसायटी के फेलो (F R S) नियुक्त हुए। १९५५ ई० मे जेनेवा में होनेवाले शाति उद्देश्यो के लिये परमाणु ऊर्जा के समेलन मे अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। भारत सरकार द्वारा भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त होकर, जीवन पर्यंत उस पद पर रहे। फडामेंटल सोसायटी के टाटा इस्टिट्यूट के निर्देशक नियुक्त हुए। अनेक विश्वविद्यालयो, जैसे पटना, लखनऊ, बनारस, आगरा आदि, ने इन्हें डी० एस-सी० की समानित उपाधि से विभूपित किया। भारत के परमाणु केंद्रीय ऊर्जा के विकास में इनका बहुत बडा हाथ रहा है। इनके अनुसार ये कुछ ही मास में परमाणु बम का निर्माण कर सकते थे। ससार के

प्रसिद्ध भौतिकियों में आपका प्रमुख स्थान था और आपके ही कारण संसार के परमाणु ऊर्जा के मानचित्र पर भारत को स्थान मिल सका है। कैनाडा से प्राप्त रिऐक्टर को स्थापित कर उसका संचालन करके समस्थानिकों के प्रस्तुत करने में आपको सफलता मिली है। आपने सैकड़ों युवक वैज्ञानिकों को परमाणु ऊर्जा संस्थान की स्थापना करके परमाणु ऊर्जा के विकास में प्रशिक्षित किया है। आपके प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत के अनेक स्थानों, जैसे बिहार, राजस्थान, मद्रास एवं केरल आदि राज्यों में यूरेनियम तत्व की उपस्थिति का पता लगा है और वहाँ से यूरेनियम प्राप्त करने के उपाय किए जा रहे हैं। [फू० म० प०]

भारत या इंडिया स्थिति ८° ४' से ३६° ६' ३० उ० अ० तथा ६८° ७' से ९७° २४' पू० दे०। सीमा दक्षिणी एशिया के तीन प्रायद्वीपों में से मध्यवर्ती प्रायद्वीप पर स्थित सबसे महत्वपूर्ण देश है। क्षेत्रफल में यह संसार का सातवाँ विशालतम देश है और केवल चीन में यहाँ से अधिक जनसंख्या पाई जाती है। भारत का क्षेत्रफल १२,६२,२७५ वर्ग मील (३२,६८,६९२ वर्ग किमी०) और जनसंख्या (सिक्किम सहित किंतु पाकिस्तान अधीनस्थ जम्मू कश्मीर के क्षेत्रों को छोड़कर) ४३,९२,३५,०८२ (१९६१) है। उत्तर से दक्षिण इसकी लंबाई २,००० मील और पूर्व से पश्चिम चौड़ाई १,८५० मील है। कर्क रेखा देश के लगभग बीच से गुजरती है। भारत के उत्तर में (नेपाल क्षेत्र छोड़कर) हिमालय की ऊँची पर्वतमाला है और दक्षिण में हिंद महासागर। कश्मीर की उत्तरी सीमा पर कराकोरम पहाड़ तथा पामीर का पठार है। हिमालय के उत्तर में चीन है। पूर्व में बर्मा तथा पूर्वी पाकिस्तान हैं, किंतु पूर्वी पाकिस्तान के पूर्व में भी असम, नागालैंड और त्रिपुरा के भारतीय क्षेत्र हैं। उत्तर-पश्चिमी सीमा पर पश्चिमी पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान हैं। बंगाल की खाड़ी में स्थित अंदमान तथा निकोबार द्वीपसमूह और अरब सागर में स्थित लक्षद्वीवी मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीपसमूह हैं। पूर्वी हिमालय में भूटान है जो वैदेशिक संबंध के मामलों में भारत सरकार के अधीन है पर अन्य बातों में स्वतंत्र है। भूटान के पश्चिम में सिक्किम भारत सरकार के संरक्षण (प्रोटेक्टरेट) में है।

राजनीतिक विभाग — १५ अगस्त, १९४७ ई० को भारत अंग्रेजों के शासन से मुक्त हुआ किंतु स्वतंत्र होने के साथ ही देश दो भागों में विभाजित कर दिया गया। जिन भागों में मुसलमानों की संख्या अधिक थी, उन्हें भारत से पृथक् कर पाकिस्तान नामक राज्य की स्थापना की गई और बचे हुए भाग का नाम भारत या इंडिया ही रहा। विभाजन के फलस्वरूप देश का लगभग २२ प्रति शत क्षेत्र और १७ प्रति शत जनसंख्या तथा अन्न उत्पादन का २४ प्रति शत भाग पाकिस्तान के हिस्से पड़ा। इसके कारण भारत में खाद्यान्न की समस्या पहले से अधिक जटिल हो गई। कपास के उत्पादन का ४० प्रति शत और जूट के उत्पादन का ८० प्रति शत से भी अधिक भाग पाकिस्तान के हिस्से में पड़ा, जिससे भारत के सूती वस्त्रोद्योग और जूट उद्योग को भारी धक्का पहुँचा।

२६ जनवरी, १९५० ई० को भारत ने अपने को ब्रिटिश कामनवेल्थ के अंतर्गत, एक प्रजातंत्रात्मक राज्य घोषित किया। शासनप्रबंध के विचार से भारत राज्यों का एक संघ है। ब्रिटिश शासनकाल में भारत में देशी राज्यों की संख्या ५६२ थी, जिनमें से कुछ बड़े, किंतु अधिकांश अत्यंत छोटे थे। स्वतंत्रता के बाद, सरदार पटेल की योजना के अनुसार अधिकांश छोटे छोटे देशी राज्यों को पास के निकटवर्ती राज्यों में मिला दिया गया; जैसे उड़ीसा के २६ छोटे छोटे देशी राज्य उड़ीसा राज्य में मिला दिए गए, और इसी प्रकार छोटे देशी तथा रजवाड़े बिहार में, तथा रामपुर, टेहरी आदि उत्तर प्रदेश में मिला दिए गए। जिन क्षेत्रों में अनेक देशी राज्य एक दूसरे से मिले हुए थे, उन्हें मिलाकर राज्यसंघों में परिणत कर दिया गया, जैसे, काठियावाड़ और गुजरात के लगभग २१९ छोटे बड़े राज्यों को मिलाकर सौराष्ट्र की रचना हुई और इसी प्रकार १० देशी राज्यों को मिलाकर राजस्थान, ३५ राज्यों को मिलाकर विंध्यप्रदेश, ८० राज्यों को मिलाकर मध्य भारत, तथा ८ देशी राज्यों को मिलाकर पेप्सू राज्यसंघों का निर्माण हुआ। हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन तथा जम्मू कश्मीर आदि राज्य अपनी पुरानी सीमाओं में ही पृथक् राज्यों की तरह राज्य बने रहे। इस प्रकार भारतीय संघ में चार प्रकार के राज्यों का निर्माण हुआ, जो अ, ब, स, द, (A, B, C, D) राज्य कहे गए। (१) 'अ' वर्ग के राज्य में पुराने प्रांत शामिल थे और राज्यपाल द्वारा शासित होते थे। इनके अंतर्गत आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, बंबई तथा मद्रास आते थे। सन् १९५३ में मद्रास से अलग होकर आंध्रप्रदेश 'अ' वर्ग का राज्य हो गया। (२) 'ब' वर्ग में बड़े बड़े देशी राज्य और उनके संघ थे। ये राजप्रमुख द्वारा शासित होते थे। इसके अंतर्गत सौराष्ट्र, हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर कोचीन, राजस्थान, मध्यभारत और पेप्सू (पटियाला तथा पूर्वी पंजाब की रियासतें) आते थे। (३) 'स' वर्ग के राज्य चीफ कमिश्नर द्वारा शासित होते थे और इनके शासन का उत्तरदायित्व केंद्रीय सरकार पर था। दिल्ली, अजमेर, मेवाड़ (?), भोपाल, कुर्ग, विंध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, त्रिपुरा तथा कच्छ के राज्य इसी वर्ग के अंतर्गत थे। (४) 'द' वर्ग के राज्य के अंतर्गत अंदमान तथा निकोबार द्वीपसमूह थे जो केंद्रीय सरकार द्वारा शासित होते थे। यह स्थिति अक्टूबर, १९५६ ई० तक रही। इनके अलावा जम्मू और कश्मीर राज्य का एक विशेष वर्ग रहा जो 'ब' वर्ग से मिलता जुलता था।

शासन की सुव्यवस्था तथा अन्य सुविधाओं के लिये इन राज्यों का मुख्यत भाषा के आधार पर १ नवंबर, १९५६ ई० को पुनर्गठन किया गया। पुनर्गठन के फलस्वरूप भारत को १४ राज्यों तथा ६ केंद्रीय शासित प्रदेशों में विभक्त किया गया। १ मई, १९६० ई० को बंबई राज्य को विभाजित कर महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्यों की रचना हुई। अगस्त, १९६१ ई० में दादरा और नागर हवेली, जो पुर्तगालियों के अधीन थे, केंद्र द्वारा शासित प्रदेश घोषित किए गए। दिसंबर, सन् १९६१ में गोआ, दामण और दीव जो पुर्तगाल के अधीन थे, भारत सरकार के अधिकार में आ गए और मार्च, सन् १९६२ में केंद्र द्वारा शासित प्रदेश घोषित किए गए। अगस्त, १९६२ ई० में फ्रांस के अधीनस्थ क्षेत्र पांडिचेरी, कारिकाल, माहि तथा यानाम भारत को लौटा दिए गए और उन्हें केंद्रशासित प्रदेश बना दिया गया। फरवरी, १९६१ ई० में असम के कुछ पूर्वी भागों को, जो मनीपुर के उत्तर और नेफा के दक्षिण में पड़ते थे, एक अलग राज्य बनाने की

भाचित्र
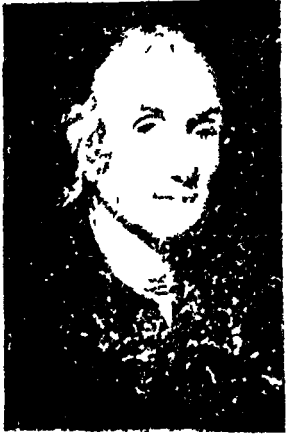
(देखें पृष्ठ २४)
प्रीस्टलि, जोसेफ

(देखें पृष्ठ ५६)
प्वांकारे, आंरी

(देखें पृष्ठ १३१)
फेर्मि, एनरिको

(देखें पृष्ठ १३२)
फैराडे, माइकेल

(देखें पृष्ठ १५१)
फोर्ड, हेनरी

(देखें पृष्ठ १५६)
फ्रैंकलिन, बेंजामिन

(देखें पृष्ठ १६८)
फ्लेमिंग, सर जॉन एंब्रोस

(देखें पृष्ठ १९२)
बर्तोले, क्लॉड लुइ

(देखें पृष्ठ १९३)
बरबैंक, लूथर

(देखें पृष्ठ २५६)
बॉयल, राबर्ट
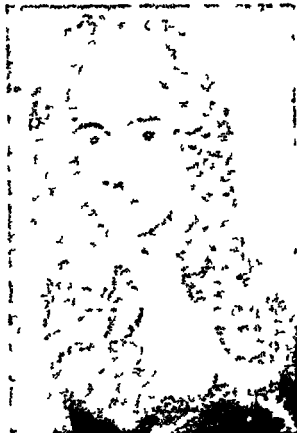
(देखें पृष्ठ ३५२)
बेर्नूलि, जेकब
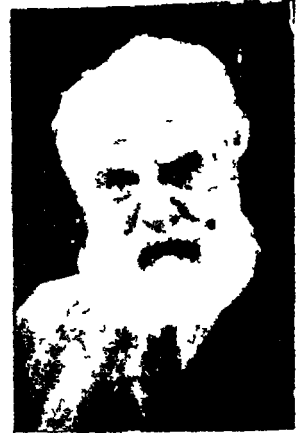
(देखें पृष्ठ ३५३)
बेल, ऐलेक्जैंडर ग्राहम

भारत के राज्य

राज्य तथा मुख्य भाषा (कोष्ठ मे)	क्षेत्रफल (वर्गमील मे)	जनसख्या (१९६१) लाख मे	राजधानी
असम, नेफा सहित (असमी)	७८,५२९	१२२ ०९	शिलौंग
बिहार (हिंदी)	६७,१९६	४६४ ५६	पटना
पश्चिमी बगाल (बगला)	३३,८२९	३४९ २६	कलकत्ता
उडीसा (उडिया)	६०,१७१	१७५ ४९	भुवनेश्वर
उत्तर प्रदेश (हिंदी)	१,१३,६५४	७३७ ४६	लखनऊ
मध्य प्रदेश (हिंदी)	१,७१,२१७	३२३ ७२	भोपाल
हरियाना (हिंदी) पजाब (पजाबी) नवबर, १९६६ ई० से पूर्व पजाब के आँकडे	४७,२०५	२०३ ०७	चडीगढ
जम्मू कश्मीर (डोगरी तथा कश्मीरी)	८६,०२३	३५'६१	श्रीनगर
राजस्थान (हिंदी)	१,३१,९४३	२०१ ५६	जयपुर
गुजरात (गुजराती)	७२,२४५	२०६ ३३	अहमदाबाद
महाराष्ट्र (मराठी)	१,१८,७१७	३९५ ५४	बबई
मैसूर (कन्नड)	७४,२२०	२३५ ८७	बेंगलूरु
आध्रप्रदेश (तेलगू)	१,०६,२८६	३५९ ८३	हैदराबाद
मद्रास (तमिल)	५०,३३१	३३६ ८७	मद्रास
केरल (मलयालम)	१५,००२	१६९ ०४	त्रिवेंद्रम
नागालैंड	६,३६६	३ ६९	कोहिमा
केंद्रशासित प्रदेश .		कुल जनसख्या (सन् १९६१)	
दिल्ली (हिंदी)	५७३	२६,५८,६१२	दिल्ली
हिमाचल प्रदेश (नवबर, १९६६ से पूर्व के आँकडे)	१०,८८५	१३,५१,१४४	शिमला
मनीपुर	८,६२८	७,८०,०३७	इफाल
त्रिपुरा	४,०३६	११,४२,००५	अगरतल्ला
अदमान और निकोबार द्वीपसमूह	३,२१५	६३,५४८	पोर्टब्लेयर
लक्षदीवी, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीपसमूह	११	२४,१०८	कवराथी
दादरा और नागर हवेली	१८९	५७,९६३	सिलवासा
गोआ, दामण और दीव	१,४२६	६,२६,९७८	पजिम
पाडिचेरी	१८५	३,६९,०७९	पाडिचेरी

घोषणा की गई और इसके फलस्वरूप १ दिसबर, १९६३ ई० को नागालैंड भारत का १६वाँ राज्य बनाया गया। १ नवबर, १९६६ को भाषा के आधार पर पजाब के विभाजन के फलस्वरूप हरियाना राज्य का जन्म हुआ एव पुराने पजाब के पहाडी जिले हिमाचल प्रदेश मे मिला दिए गए। इस प्रकार भारत मे अब १७ राज्य और नौ केंद्र शासित क्षेत्र है।

भूगर्भीय सरचना — भूगर्भीय सरचना के आधार पर भारत को हम तीन स्पष्ट विभागो मे बाँट सकते हैं १ दक्षिण का प्रायद्वीपीय पठार, २ उत्तर की विशाल पर्वतमाला तथा ३ इन दोनो के बीच स्थित विस्तृत समतल मैदान।

१. दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार — यह भारत का प्राचीनतम भूखड है। इसका निर्माण पृथ्वी के अन्य प्राचीनतम भूखडो की तरह, भूवैज्ञानिक इतिहास के प्रारभ काल मे हुआ था जिसे आद्यमहाकल्प (Archaear Era) कहते हैं। तब से यह बराबर स्थल रहा है और कभी भी समुद्र के नीचे नही गया है। इसका प्रमाण इसमे पाई जानेवाली चट्टानो से मिलता है। यह अधिकाशत प्राचीन आग्नेय तथा कायातरित चट्टानो मे बना हुआ है जिनमे मुख्य ग्रेनाइट, नाइस और शिस्ट है। जहाँ कही परतदार चट्टानें मिलती हैं, वे भी अत्यत पुरानी हैं और उनके समुद्र मे जमा होने का कोई प्रमाण नही मिलता। इससे स्पष्ट है कि यह अपने इतने लबे जीवनकाल मे कभी समुद्र के नीचे नही गया और बराबर स्थल ही के रूप मे वर्तमान रहा है। एक दूसरी विशेषता इस स्थलखड की यह है कि यह अत्यत प्राचीन काल से पर्वत निर्माणकारी भूसचलन से भी मुक्त रहा है। इस बीच मे ससार मे भूगर्भिक हलचल के जितने भी अवसर आए, उनसे यह अप्रभावित और अक्षुण्ण रहा है। विध्य पर्वत की परतदार चट्टानें इतनी पुरानी होने पर भी क्षैतिज अवस्था मे पाई जाती हैं। भूपटल के इस प्रकार के स्थिर खडों को शील्ड (shield) कहते हैं। इसमे मोड़दार पर्वत नही मिलते और जो पर्वत मिलते हैं वे अवशिष्ट अथवा घर्षित वर्ग के हैं। अरावली पर्वत भी एक अवशिष्ट पर्वत है। इसका निर्माण अत्यत प्राचीन काल मे हुआ था और उस समय इसका विस्तार शायद हिमालय पर्वत माला से कम नही था, किंतु इस समय हम उसका एक अवशेष मात्र पाते हैं। पूर्वी घाट तथा पश्चिमी घाट भी अवशिष्ट पहाडो के उदाहरण हैं। दक्षिणी प्रायद्वीप मे जो भी भूसचलन के प्रमाण मिलते हैं वे केवल लबवत् सचलन के हैं जिनसे दरारो अथवा भ्रशो का निर्माण हुआ। इस प्रकार का पहला सचलन मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era) अथवा गोंडवाना काल मे हुआ। समातर भ्रशो के बीच की भूमि नीचे धँस गई और उन धँसे भागो मे अनुप्रस्थ परतदार चट्टानो का निर्माण हुआ जिनमे मुख्य बालू पत्थर तथा शेल हैं। इन चट्टानो को गोंडवाना क्रम की चट्टानें कहते हैं। भारत का अधिकाश कोयला इन्हीं परतदार चट्टानो में मिलता है। इनका विस्तार दामोदर, महानदी तथा गोदावरी नदियो की घाटियों मे लबे एव संकीर्ण क्षेत्रो मे पाया जाता है। दूसरा लबवत् सचालन मध्यजीवी महाकल्प के अतिम काल मे हुआ, जबकि लबी दरारो से लावा निकल कर प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भागों के विस्तृत क्षेत्र मे फैल गया। दक्खन का यह लावा क्षेत्र अब भी लगभग दो लाख वर्ग मील मे फैला हुआ पाया जाता है। इस क्षेत्र की चट्टान बेसाल्ट है जिसके विखडन से काली मिट्टी का निर्माण हुआ है।

अत्यंत प्राचीन काल से स्थिर एवं स्थल भाग रहने के कारण दक्षिणी प्रायद्वीप में अनावृत्तिकरण शक्तियाँ निरंतर काम करती रही हैं जिसके फलस्वरूप इसका अधिकांश चपटा हो गया है, अंदर की पुरानी चट्टानें धरातल पर आ गई हैं और नदियाँ अपक्षरण के आधार तल तक पहुँच गई हैं।

२. हिमालय पर्वतमाला — इसकी संरचना दक्षिणी प्रायद्वीप से बहुत ही भिन्न है। यद्यपि इसके कुछ भागों में प्राचीन चट्टानें मिलती हैं, तथापि अधिकांशतः यह नवीन परतदार चट्टानों द्वारा निर्मित है, जो लाखों वर्षों तक टेथिस समुद्र में एकत्रित होती रही थीं। इन परतदार चट्टानों की मोटाई बहुत है और ये प्रायः भूवैज्ञानिक इतिहास के प्रथम (primary or palaeozoic) या पुराजीवी महाकल्प के कैंब्रियन काल से आरंभ होकर, द्वितीय (secondary or mesozoic) या मध्यजीवी महाकल्प होते हुए, तृतीय (Tertiary) महाकल्प के आरंभ तक समुद्र में जमा होती रहीं। सागर में एकत्रित मलबों ने तृतीय महाकल्प में भूसंचलन के कारण विशाल मोड़दार श्रेणियों का रूप धारण किया। इस प्रकार हिमालय पर्वतमाला मुख्यतः वैसी चट्टानों से निर्मित है, जो समुद्री निक्षेप से बनी हैं और दक्षिणी पठार की तुलना में यह एक स्थल है। इसमें पर्वत निर्माणकारी संचलन के प्रभाव के सभी प्रमाण मिलते हैं। परतदार चट्टानें जो क्षैतिज अवस्था में जमा हुई थीं, भूसंचलन के प्रभाव से अत्यंत मुड़ गई हैं और एक दूसरे पर चढ़ गई हैं। विशाल क्षेत्रों में वलन (folds), भ्रंश (faults), क्षेप-भ्रंश (thrust faults) तथा शयान वलन (recumbent folding) के उदाहरण मिलते हैं। ये वास्तविक अर्थ में पर्वत हैं जिनका निर्माण भूसंचलन द्वारा हुआ है। इनकी धरातलीय आकृति मुख्यतः इनकी संरचना पर निर्भर है और उसपर अनावृत्तीकरण शक्तियों ने उतना अधिक परिवर्तन नहीं किया है जितना दक्षिणी प्रायद्वीप में। यहाँ की नदियाँ अपनी युवावस्था में हैं और अभी तक अपनी तली को गहरी काटती जा रही हैं। इसलिये इनमें गहरी, संकीर्ण एवं खड़ी घाटियाँ तथा गार्ज (gorge) मिलते हैं। सिंधु, सतलुज तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के महान् गार्जों के अतिरिक्त अन्य नदियों ने भी इसमें गहरी घाटियाँ काटी हैं।

३ उत्तरी भारत का विस्तृत मैदान — यह भूवैज्ञानिक दृष्टि से सबसे नवीन तथा कम महत्वपूर्ण है। हिमालय पर्वतमाला के निर्माण के समय उत्तर से जो भूसंचलन आया उसके धक्के से प्रायद्वीप का उत्तरी किनारा नीचे धँस गया जिससे विशाल खड्ड बन गया। हिमालय पर्वत से निकलनेवाली नदियों ने अपने निक्षेपों द्वारा इस खड्ड को भरना शुरू किया, और इस प्रकार उन्होंने कालांतर में एक विस्तृत मैदान का निर्माण किया। इस प्रकार यह मैदान मुख्यतः हिमालय के अपक्षरण से उत्पन्न तलछट और नदियों द्वारा जमा किए हुए जलोढक से बना है। इसमें बालू तथा मिट्टी की तहें मिलती हैं, जो अत्यंतनूतन (Pleistocene) और नवीनतम काल की हैं। यह विस्तृत मैदान लगभग समतल है और इससे होकर उत्तर भारत (तथा पाकिस्तान) की नदियाँ गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र मंदगति से समुद्र की ओर बहती हैं।

धरातलीय रूप — धरातल के अनुसार भी भारत के तीन मुख्य प्राकृतिक विभाग हैं उत्तरी पर्वतमाला, उत्तरी भारत का मैदान और दक्षिण का पठार।

(१) उत्तरी पर्वतमाला — भारत के उत्तर में स्थित हिमालय की पर्वतमाला नए और मोड़दार पहाड़ों से बनी है। यह पर्वतश्रेणी असम से कश्मीर तक लगभग १,५०० मील तक फैली हुई है। इसकी चौड़ाई १५० से २०० मील तक है। यह संसार की सबसे ऊँची पर्वतमाला है और इसमें अनेक चोटियाँ २८,००० फुट से अधिक ऊँची हैं। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी माउंट एवरेस्ट है जिसकी ऊँचाई २९,०२८ फुट है। यह नेपाल में स्थित है। अन्य मुख्य चोटियाँ कांचनजुंगा (२८,१४६ फुट), धौलागिरि (२६,७९५ फुट), नंगा पर्वत (२६,६२० फुट), गोसाईंथान (२६,२९१ फुट), नंदादेवी (२५,६४५ फुट) इत्यादि हैं। गॉडविन ऑस्टिन (माउंट के २) जो २८,२५० फुट ऊँची है, हिमालय का नहीं, बल्कि कश्मीर के काराकोरम पर्वत का एक शिखर है। हिमालय प्रदेश में १६,००० फुट से अधिक ऊँचाई पर हमेशा बर्फ जमी रहती है। इसलिये इस पर्वतमाला को हिमालय कहना सर्वथा उपयुक्त है।

हिमालय के अधिकतर भाग में तीन समांतर श्रेणियाँ मिलती हैं। इन्हें उत्तर से दक्षिण क्रमशः (क) बृहत् अथवा आभ्यंतरिक हिमालय (The great or inner Himalayas), (ख) लघु अथवा मध्य हिमालय (The lesser or middle Himalayas) और (ग) बाह्य हिमालय (Outer Himalayas) कहते हैं। (क) सबसे उत्तर में पाई जानेवाली श्रेणी सबसे ऊँची है। यह कश्मीर से असम तक एक दुर्भेद्य दीवार की तरह खड़ी है। इसकी औसत ऊँचाई २०,००० फुट है। (ख) ज्यों ज्यों हम दक्षिण की ओर जाते हैं, पहाड़ों की ऊँचाई कम होती जाती है। लघु अथवा मध्य हिमालय की ऊँचाई प्रायः १२,००० से १५,००० फुट तक से अधिक नहीं है। औसत ऊँचाई लगभग १०,००० फुट है और चौड़ाई ८० से ५० मील।

मानचित्र १

इन श्रेणियों का क्रम जटिल है और इससे यत्र तत्र कई शाखाएँ निकलती हैं। बृहत् हिमालय और मध्य हिमालय के बीच अनेक
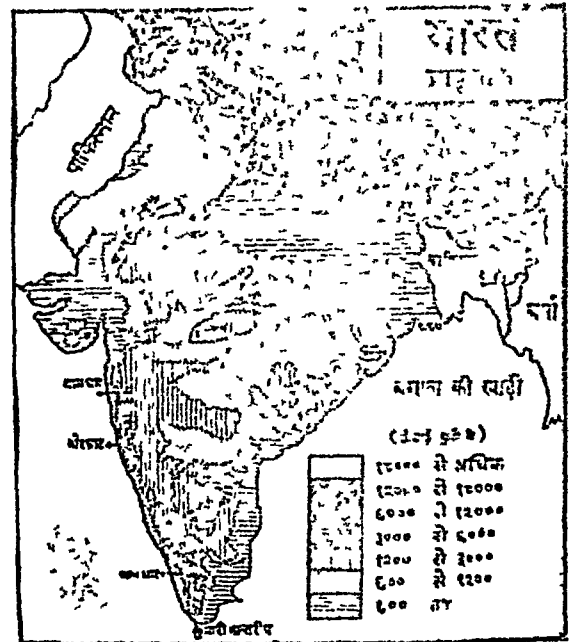
उपजाऊ घाटियाँ हैं जिनमे कश्मीर की घाटी तथा नेपाल मे काठमाडू की घाटी विशेष उल्लेखनीय है। भारत के प्रसिद्ध शैलावास शिमला, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिंग मध्य हिमालय के निचले भाग में, मुख्यत ६,००० से ७,५०० फुट तक की ऊँचाई पर स्थित हैं। (ग) बाह्य हिमालय की औसत ऊँचाई ३,०००–४,००० फुट है (मानचित्र १)। इसे शिवालिक की श्रेणी भी कहते हैं। यह श्रेणी हिमालय की सभी श्रेणियो से नई है और इसका निर्माण हिमालय निर्माण के अंतिम काल मे ककड, रेत तथा मिट्टी के दबने और मुडने से हुआ है। इसकी चौडाई पाँच से ६० मील तक है। मध्य और बाह्य हिमालय के बीच कई घाटियाँ मिलती हैं जिन्हें दून (देहरादून) कहते हैं।

पूर्व मे भारत और बर्मा के बीच के पहाड भिन्न भिन्न नामों से ख्यात है। उत्तर मे यह पटकोई की पहाडी कहलाती है। दक्षिण में नागा पहाडी, मनीपुर पठार तथा लुशाई की पहाडी है। नागा पर्वत से एक शाखा पश्चिम की ओर असम में चली गई हैं जिसमे खासी और गारो की पहाड़ियाँ है। इन पहाडों की औसत ऊँचाई ६,००० फुट है और अधिक वर्षा के कारण ये घने जगलो से आच्छादित हैं।

हिमालय की ऊँची पर्वतमाला को कुछ ही स्थानो पर, जहाँ दर्रे हैं, पार किया जा सकता है। इसलिये इन दर्रों का बडा महत्व है। उत्तर-पश्चिम मे खैबर और बोलन के दर्रे हैं जो अब पाकिस्तान मे हैं। उत्तर मे रावलपिंडी से कश्मीर जाने का रास्ता है जो अब पाकिस्तान के अधिकार मे है। भारत ने एक नया रास्ता पठानकोट से बनिहाल दर्रा होकर श्रीनगर जाने के लिये बनाया है। श्रीनगर से जोजीला दर्रे द्वारा लेह तक जाने का रास्ता है। हिमाचल प्रदेश से तिब्बत जाने के लिये शिपकी दर्रा है जो शिमला के पास है। फिर पूर्व में दार्जिलिंग का दर्रा है जहाँ से चुबी घाटी होते हुए तिब्बत की राजधानी लासा तक जाने का रास्ता है। पूर्व की पहाडियों मे भी कई दर्रे हैं जिनसे होकर बर्मा जाया जा सकता है। इनमे मुख्य मनीपुर तथा हुकौग घाटी के दर्रे हैं।

(२) उत्तरी भारत का मैदान — हिमालय के दक्षिण मे एक विस्तृत समतल मैदान है जो लगभग सारे उत्तर भारत मे फैला हुआ है। यह गगा, ब्रह्मपुत्र तथा सिंधु और उनकी सहायक नदियो द्वारा बना है। यह मैदान गगा सिंधु के मैदान के नाम से जाना जाता है। इसका अधिकतर भाग गगा, नदी के क्षेत्र में पडता है। सिंधु और उसकी सहायक नदियो के मैदान का आधे से अधिक भाग अब पश्चिमी पाकिस्तान मे पडता है और भारत मे सतलुज, रावी और व्यास का ही मैदान रह गया है। इसी प्रकार पूर्व मे, गगा नदी के डेल्टा का अधिकाश भाग पूर्वी पाकिस्तान मे पडता है। उत्तर का यह विशाल मैदान पूर्व से पश्चिम, भारत की सीमा के अदर लगभग १,५०० मील लबा है। इसकी चौड़ाई १५० से २०० मील तक है। इस मैदान मे कही कोई पहाड नहीं है। भूमि समतल है और समुद्र की सतह से धीरे धीरे पश्चिम की ओर उठती गई है। कहीं भी यह ६०० फुट से अधिक ऊँचा नही है। दिल्ली, जो गगा और सिंधु के मैदानो के बीच अपेक्षाकृत ऊँची भूमि पर स्थित है, केवल ७०० फुट ऊँची भूमि पर स्थित है। अत्यत चौरस होने के कारण इसकी धरातलीय आकृति मे एकरूपता का अनुभव होता है, किंतु वास्तव मे कुछ महत्वपूर्ण अतर पाए जाते हैं। हिमालय (शिवालिक) की तलहटी मे जहाँ नदियाँ पर्वतीय क्षेत्र को छोडकर मैदान मे प्रवेश करती हैं, एक सकीर्ण पेटी में कंकड पत्थर मिश्रित निक्षेप पाया जाता है जिसमे नदियाँ अतर्धान हो जाती हैं। इस ढालुवाँ क्षेत्र को भाभर कहते हैं। भाभर के दक्षिण में तराई प्रदेश है, जहाँ विलुप्त नदियाँ पुन प्रकट हो जाती हैं। यह क्षेत्र दलदलो और जगलो से भरा है। इसका निक्षेप भाभर की तुलना मे अधिक महीन कणो का है। भाभर की अपेक्षा यह अधिक समतल भी है। कभी कहीं जगलो को साफ कर इसमे खेती की जाती है। तराई के दक्षिण मे जलोढ मैदान पाया जाता है। मैदान मे जलोढक दो किस्म के हैं, पुराना जलोढक और नवीन जलोढक। पुराने जलोढक को बागर कहते हैं। यह अपेक्षाकृत ऊँची भूमि मे पाया जाता है, जहाँ नदियो की बाढ का जल नही पहुँच पाता। इसमे कही कही चूने के ककड मिलते हैं। नवीन जलोढ़क को खादर कहते हैं। यह नदियो की बाढ़ के मैदान तथा डेल्टा प्रदेश मे पाया जाता है, जहाँ नदियाँ प्रति वर्ष नई तलछट जमा करती हैं। मैदान के दक्षिणी भाग में कही कही दक्षिणी पठार से निकली हुई छोटी मोटी पहाडियाँ मिलती हैं। इसके उदाहरण बिहार में गया तथा राजगिरि की पहाडियाँ हैं।

आर्थिक दृष्टि से उत्तरी भारत का मैदान देश का सबसे अधिक उपजाऊ और विकसित भाग है। प्राचीन काल से यह आर्य सभ्यता का केंद्र रहा है। यहाँ कृषि के अतिरिक्त अनेक उद्योग धधे हैं, नगरों की बहुलता है और यातायात के साधन उन्नत हैं। यही भारत का सबसे घना आबाद क्षेत्र है और यही देश की लगभग दो तिहाई जनसख्या बसी है।

(३) दक्षिण का पठार — उत्तरी भारत के मैदान के दक्षिण का पूरा भाग एक विस्तृत पठार है जो दुनिया के सबसे पुराने स्थल खड का अवशेष है और मुख्यत कडी तथा दानेदार कायातरित चट्टानो से बना है। पठार तीन ओर पहाडी श्रेणियो से घिरा है। उत्तर मे विंध्याचल तथा सतपुडा की पहाडियाँ हैं, जिनके बीच नर्मदा नदी पश्चिम की ओर बहती है। नर्मदा घाटी के उत्तर विंध्याचल प्रपाती ढाल बनाता है। सतपुडा की पर्वतश्रेणी उत्तर भारत को दक्षिण भारत से अलग करती है, और पूर्व की ओर महादेव पहाडी तथा मैकाल पहाडी के नाम से जानी जाती है। सतपुडा के दक्षिण अजता की पहाडियाँ हैं। प्रायद्वीप के पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी घाट और पूर्वी किनारे पर पूर्वी घाट नामक पहाडियाँ हैं। पश्चिमी घाट पूर्वी घाट की अपेक्षा अधिक ऊँचा है और लगातार कई सौ मीलो तक, ३,५०० फुट की ऊँचाई तक चला गया है। पूर्वी घाट न केवल नीचा है, बल्कि बगाल की खाडी मे गिरनेवाली नदियो ने इसे कई स्थानो मे काट डाला है जिनमे उत्तर से दक्षिण महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी मुख्य हैं। दक्षिण में पूर्वी और पश्चिमी घाट नीलगिरि की पहाडी मे मिल जाते है, जहाँ दोदाबेटा की ८,७६० फुट ऊँची चोटी है। नीलगिरि के दक्षिण अन्नाईमलाई तथा कार्डेमम (इलायची) की पहाडियाँ हैं। अन्नाईमलाई पहाडी पर अनैमुडि, पठार की सबसे ऊँची चोटी (८,८४० फुट) है। इन पहाडियो और नीलगिरि के बीच पालघाट का दर्रा है जिससे होकर पश्चिम की ओर रेल गई है। पश्चिमी घाट

मे बबई के पास थालघाट और भोरघाट दो महत्वपूर्ण दर्रे हैं जिनसे होकर रेलें बबई तक गई हैं।

उत्तर पश्चिम मे विंध्याचल श्रेणी और अरावली श्रेणी के बीच मालवा का पठार है जो लावा द्वारा निर्मित है। अरावली श्रेणी दक्षिण मे गुजरात से लेकर उत्तर मे दिल्ली तक कई अवशिष्ट पहाड़ियो के रूप मे पाई जाती है। इसके सबसे ऊँचे, दक्षिण-पश्चिम छोर मे माउट आबू (५,६५० फुट) स्थित है। उत्तर-पूर्व मे छोटानागपुर का पठार है, जहाँ राजमहल पहाड़ी प्रायद्वीपीय पठार की उत्तर-पूर्वी सीमा बनाती है। किंतु असम का शिलॉंग पठार भी प्रायद्वीपीय पठार का ही भाग है जो गगा के मैदान द्वारा अलग हो गया है।

दक्षिण के पठार की औसत ऊँचाई १,५०० से ३,००० फुट तक है। ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। नर्मदा और ताप्ती को छोड़कर बाकी सभी नदियाँ पूर्व की ओर बगाल की खाड़ी मे गिरती हैं। पठार के पश्चिमी तथा पूर्वी किनारो पर उपजाऊ तटीय मैदान मिलते हैं। पश्चिमी तटीय मैदान सकीर्ण है, इसके उत्तरी भाग को कोंकण और दक्षिणी भाग को मालाबार कहते हैं। पूर्वी तटीय मैदान अपेक्षाकृत चौड़ा है और उत्तर मे उड़ीसा से दक्षिण मे कुमारी अतरीप तक फैला हुआ है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियाँ जहाँ डेल्टा बनाती हैं वहाँ यह मैदान और भी अधिक चौड़ा हो गया है। मैदान का दक्षिणी भाग कर्नाटक, और उत्तरी भाग उत्तरी सरकार कहलाता है। इनके तट का नाम क्रमश कारोमडल तट तथा गोलकुडा तट है।

जलवायु — विस्तृत क्षेत्र और प्राकृतिक रूप से विभिन्नता के कारण भारत के भिन्न भागो के जलवायु का भिन्न होना स्वाभाविक है, किंतु मानसूनी प्रभाव के कारण जलवायु की विभिन्नता मे एक समानता पैदा हो जाती है और पूरे भारत की जलवायु को मौसमी जलवायु कहा जाता है। हिमालय की ऊँची पर्वतमाला भारत को मध्य एशिया की वायुराशियो के प्रभाव से पृथक् रखती है। भारत पाकिस्तान का समिलित स्थलखड इतना विस्तृत है कि वह मध्य एशिया से अलग अपनी एक स्वतत्र मानसून प्रणाली बना लेता है। भारत के विभिन्न भागो मे ताप मे काफी विषमता पाई जाती है, किंतु इससे कही अधिक महत्वपूर्ण वर्षा की प्रादेशिक विभिन्नता है। फिर भी सभी जगह ऋतुओ का एक ही क्रम मिलता है और सीमित क्षेत्रो को छोड़कर सभी जगह प्राय तीन चौथाई से अधिक वर्षा ग्रीष्म ऋतु मे होती है। मोटे तौर पर भारत मे तीन ऋतुएँ होती हैं (१) शीतऋतु, नवबर से फरवरी तक, यह ऋतु करीब करीब वर्षाहीन है, (२) ग्रीष्म ऋतु, मार्च से जून के आरभ तक, भीषण गरमी पड़ती है किंतु वर्षा नही होती, (३) वर्षा ऋतु, जून के आरभ से नवबर तक, इसमे वर्षा होती है और गरमी कुछ कम हो जाती है।

शीतऋतु — इस समय सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध मे रहता है और ताप दक्षिण से उत्तर की ओर कम होता जाता है। इसलिये उत्तर भारत दक्षिण भारत की अपेक्षा ठढा रहता है। जनवरी मे मध्य तथा दक्षिण भारत में ताप २१° से २७° सें० के बीच और गगा के मैदान मे १३° से १८° सें० के बीच रहता है। जनवरी में मद्रास का ताप लगभग २४° सें०, कलकत्ता का १६° सें० और दिल्ली का १५° सें० रहता है। सबसे अधिक सर्दी उत्तर-पश्चिमी भागों में पड़ती है, जहाँ एक ऊँचे दबाव का क्षेत्र बन जाता है। हिमालय की ऊँची दीवार के कारण मध्य एशिया से चलनेवाली बर्फीली हवाएँ भारत तक नही पहुँच पातीं और यहाँ जाड़े का मौसम मृदु रहता है। हवाएँ स्थल से समुद्र की ओर बहती हैं, इसलिये शुष्क होती हैं और वर्षा नही होती। केवल दो ही क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ इस समय थोड़ी बहुत वर्षा होती है १ भारत का उत्तर-पश्चिमी तथा २ दक्षिण-पूर्वी भाग। उत्तर पश्चिम मे वर्षा चक्रवातो से होती है जो दिसबर से मार्च तक भूमध्यसागर से इराक, ईरान और पाकिस्तान होते हुए भारत पहुँचते हैं। यद्यपि इनसे वर्षा प्राय एक या दो इच होती है, फिर भी रबी फसलों के लिये यह अत्यत लाभदायक है। मद्रास एक दूसरा क्षेत्र है जहाँ थोड़ी बहुत वर्षा जनवरी फरवरी मे होती है। उत्तर-पूर्वी मानसूनी हवा बगाल की खाड़ी से वाष्प लेती है और कर्नाटक के पूर्वी किनारे पर वर्षा करती है।

ग्रीष्म ऋतु — ज्यो ज्यो सूर्य कर्क रेखा की ओर बढ़ता है, गरमी बढ़ती जाती है और मार्च से गरमी का मौसम शुरू हो जाता है। अप्रैल और मई मे सूर्य भारत पर लब रूप मे रहता है तथा गरमी तीव्र हो जाती है। दक्षिण भारत मे पठार की ऊँचाई तथा समुद्र की निकटता के कारण गरमी उतनी अधिक नहीं पड़ती, किंतु उत्तरी मैदान मे औसत ताप मई मे ३४° सें० से अधिक रहता है। दिन मे ताप प्राय ३८° सें० से अधिक और कभी कभी ४६° सें० तक चला जाता है। गरमी और सूखेपन के कारण सभी वनस्पतियाँ सूख जाती हैं और हरियाली प्राय कही देखने को नही मिलती। अत दक्षिण भारत की अपेक्षा, उत्तर भारत जाड़े मे अधिक ठढा और गरमी मे अधिक गरम रहता है। तटीय भागो मे समुद्री हवाओं से थोड़ी बहुत वर्षा होती है। इस ऋतु में उत्तर भारत मे प्राय आँधियाँ आती हैं जिन्हें नॉर्थवेस्टर (North wester) कहते हैं। इनसे विशेषकर बगाल तथा असम में वर्षा होती है। इस वर्षा से असम मे चाय की फसल को तथा अन्य भागों मे आम की फसल को लाभ होता है।

वर्षा ऋतु — जून के आरभ तक गरमी बढ़ती ही जाती है, किंतु आधे जून से मौसम अचानक बदल जाता है। हवा तेजी के साथ दक्षिण-पश्चिम से बहने लगती है, आकाश बादलो से आच्छादित हो जाता है और गर्जन तर्जन के साथ जोरो की वर्षा होती है। बबई तट पर दक्षिण-पश्चिमी मानसून लगभग ५ जून को, शुरू होता है, बगाल मे १५ जून को और पहली जुलाई तक सारा भारत इसके प्रभाव में आ जाता है। हवाओ का लक्ष्य उत्तर-पश्चिमी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान मे स्थित नीचे दबाव का क्षेत्र होता है। दक्षिण-पश्चिमी मानसून वास्तव मे दक्षिणी गोलार्द्ध की दक्षिण पूर्वी वाणिज्य वायु है, जो विषुवत् रेखा पार करने के बाद फैरेल के नियम के अनुसार अपनी दिशा बदल कर दक्षिण-पश्चिमी मानसून वायु के रूप में भारत पहुँचती है। दक्षिणी प्रायद्वीप के कारण इस हवा की दो शाखाएँ हो जाती हैं, अरब सागर शाखा और बगाल की खाड़ी शाखा। उत्तर भारत मे वर्षा बगाल की खाड़ी शाखा से होती है और दक्षिण भारत मे अरब सागर शाखा से। वर्षा के वितरण पर भूमि की आकृति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पश्चिमी घाट के पश्चिमी किनारे पर बहुत ही अधिक वर्षा होती है, किंतु दक्षिणी पठार का अधिक भाग पश्चिमी

घाट की वृष्टिछाया में पडता है। जून से सितबर के बीच, पश्चिमी किनारे पर स्थित मेंगलूरू में ११० इच वर्षा होती है, पठार के भीतरी भाग में स्थित बेंगलूरू मे २० इच और पूर्वी तट पर स्थित मद्रास में केवल १५ इच।

उत्तर भारत मे हवा की दिशा दक्षिण-पूर्व होती है। बगाल की खाडी से गंगा के मैदान मे पश्चिम की ओर वर्षा कम होती जाती है। जून से सितबर के बीच कलकत्ता मे ४७ इच, पटना मे ४० इच, इलाहाबाद मे ३६ इच और दिल्ली मे २२ इच वर्षा होती है। हिमालय से दक्षिण की ओर जाने पर भी वर्षा कम होती जाती है। सबसे अधिक वर्षा असम की पहाडियो मे होती है और जहाँ आराकान तथा खासी पहाडियाँ मिलती हैं वहाँ न केवल भारत में, बल्कि ससार में सबसे अधिक वर्षा होती है। यहाँ पहाडी पर स्थित चेरापूँजी मे जून से सितबर के बीच ३१६ इच (वार्षिक औसत ४२५ इच) वर्षा होती है। पहाडियो के दूसरी ओर, शिलौग में वर्षा इन चार महीनो में केवल ५६ इच होती है (देखें मानचित्र २)।

उत्तर-पश्चिम का निम्न दबाव का क्षेत्र, जिधर सारी हवाएँ आकर्षित होती हैं, स्वय वर्षारहित है। यहाँ तक पहुँचते पहुँचते बगाल की खाडी शाखा का सारा वाष्प समाप्त हो जाता है। अरब सागर शाखा से भी यहाँ वर्षा नही होती, क्योकि कच्छ से उत्तर यह नही जाती। यही कारण है कि राजस्थान, दक्षिण-पश्चिम पजाब (तथा पश्चिमी पाकिस्तान) मे १० इच से भी कम वर्षा होती है।

वर्षा ऋतु मे औसत ताप शुष्क ऋतु से कम होता है, किंतु आर्द्रता के कारण हवा मे इतनी उमस होती है कि मनुष्य शारीरिक कष्ट का अनुभव करता है। यद्यपि भारत में वर्षा मुख्यत दक्षिण-पश्चिम मानसून से होती है, तथापि इससे वर्षा इतनी अनिश्चित और अनियमित होती है कि कहा जाता है कि भारतीय कृषि मानसून के साथ जुए का खेल है। किसी वर्ष वर्षा आवश्यकता से अधिक, तो किसी वर्ष कम होती है। फिर कभी मानसून नियत समय से देर से बरसता है, तो कभी समय से पहले ही समाप्त हो जाता है।

वापसी मानसून का मौसम — अक्टूबर से वायुभार मे वृद्धि होने लगती है और मानसून हवाओ का देश के अदर पहुँचना कठिन हो जाता है। ज्यो ज्यो मानसून हटती जाती है, आकाश स्वच्छ होने लगता है और शीतकाल निकट होने पर भी अक्टूबर मे, विशेषकर दिन मे, ताप बढ जाता है। लौटती मानसून से अक्टूबर से दिसबर के बीच मद्रास मे लगभग ३२ इंच वर्षा होती है। मद्रास तट मे जाडे मे गरमी की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

वर्षा का प्रादेशिक वितरण—भारत को वार्षिक वर्षा के आधार पर चार विभागो मे बाँटा जा सकता है (१) अधिक वर्षा के प्रदेश — पश्चिमी घाट तथा पश्चिमी तट, असम, हिमालय की दक्षिणी ढाल तथा बगाल के कुछ भाग इसमे शामिल हैं। यहाँ वर्षा ८० इच से अधिक होती है, प्राकृतिक वनस्पति भूमध्यरेखीय सदाबहार वन है तथा धान मुख्य फसल है। यहाँ सिंचाई की आवश्यकता नही होती। (२) साधारण वर्षा के प्रदेश — यहाँ वर्षा ४० से ८० इच के बीच होती है। प्राकृतिक वनस्पति पतझडवाला मानसूनी जगल हैं, और मुख्य उपज धान है, पर शीतकाल मे अन्य फसलें उपजती हैं। धान की खेती में सिंचाई की आवश्यकता होती है। (३) कम वर्षा के क्षेत्र — यहाँ वर्षा २० से ४० इच के बीच होती है, वनस्पति कँटीले जगल और
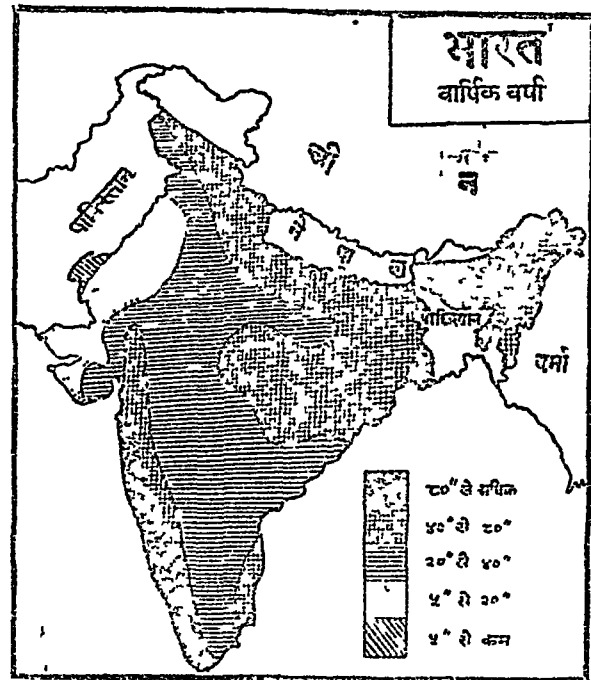
मानचित्र २

झाडियाँ हैं। खेती के लिये सिंचाई आवश्यक है। गेहूँ, ज्वार, बाजरा इत्यादि मुख्य अन्न हैं। इसमें दक्षिण भारत के अधिकाश भाग तथा ऊपरी गगा का मैदान समिलित है। (४) मरुस्थल तथा अर्द्धमरुस्थल — यहाँ वर्षा २० इंच से कम होती है। यहाँ प्राकृतिक वनस्पति का अभाव है और बिना सिंचाई के खेती असभव है। इसमे मुख्यत राजस्थान और पजाब का दक्षिणी भाग आता है। वर्षा के ये विभाग बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनका प्रभाव वनस्पति पर तो पडता ही है, इनकी सहायता से सिंचाई तथा भिन्न फसलो के वितरण को भी आसानी से समझा जा सकता है।

प्राकृतिक वनस्पति — वर्षा की मात्रा के साथ साथ वनस्पति भी बदलती जाती है। वनस्पति पर स्थलाकृति का भी प्रभाव पडता है। भारत मे लगभग छह प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति मिलती है जिसमे से चार की विशेषताएँ वर्षा से सबधित हैं और दो की स्थलाकृति से (देखें मानचित्र ३)। (१) सदाबहार वन — ये जंगल ८० इंच से अधिक वर्षावाले क्षेत्रो मे पाए जाते हैं। पश्चिमी घाट में बंबई के दक्षिण १,५०० से ४,५०० फुट की ऊँचाई के बीच तथा असम और पश्चिमी बगाल मे हिमालय मे ३,५०० फुट की ऊँचाई तक ये वन मिलते हैं और ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ वर्षा १२० इच से अधिक है, ये विशेष सघन हैं। जहाँ वर्षा कम है वहाँ सदाबहारी वन अर्द्धसदाबहारी वनों मे बदल जाते हैं। अधिक ऊष्मा और वर्षा के कारण सदाबहारी वनो के वृक्ष ऊँचे (१२० से १५० फुट) और घने होते हैं। पश्चिमी घाट मे विभिन्न प्रकार की कडी लकडियो के वृक्ष पाए जाते हैं, किंतु असम एव

बगाल में वृक्षों के प्रकार उतने अधिक नही हैं और विस्तृत क्षेत्रो मे बाँस पाए जाते हैं। (२) पतझड़वाले मानसूनी जगल — ये उन प्रदेशो में मिलते हैं, जहाँ वर्षा ४० से ८० इच तक होती है। ये मुख्यत पश्चिमी घाट की पूर्वी ढाल, पूर्वी घाट, छोटा नागपुर, पूर्वी मध्य-प्रदेश, उडीसा और हिमालय की तराई मे पाए जाते हैं। इनकी मुख्य

मानचित्र ३

अ उच्च पर्वतीय वन, ब पर्वतीय वन स तटीय या डेल्टाई वन, द मरुस्थली काँटेदार झाडियाँ, य खेतिहर क्षेत्र, र साधारण वर्षावाले घास के मैदान, ल पतझडवाले मानसूनी वन तथा, व सदाबहार वन।

विशेषता यह है कि वृक्ष अपनी पत्तियाँ ग्रीष्म ऋतु के आरभ मे गिरा देते हैं। आर्थिक दृष्टि से ये भारत के सबसे महत्वपूर्ण जगल हैं और इनमे अनेक उपयोगी लकडी के वृक्ष मिलते हैं, जैसे, सागौन, साखू, चदन इत्यादि। सागौन मुख्यत महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में, साखू मुख्यत छोटा नागपुर, मध्यप्रदेश तथा हिमालय की दक्षिणी ढाल पर मिलता है। सागौन के अच्छे फर्नीचर तथा किवाड बनते हैं और साखू का उपयोग रेल की पटरियाँ और मकान बनाने मे किया जाता है। चदन सदाबहारी वृक्ष है। यह मैसूर के पास पतझडवाले जगलों मे बहुत पाया जाता है। अन्य वृक्ष शीशम (पूर्वी हिमालय की ढाल), महुआ (छोटा नागपुर), बड, पीपल तथा हर्र, बहेडा, आँवला हैं। (३) सूखे जगल — ये पूर्वी राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तथा मैसूर के कुछ भाग और आंध्र प्रदेश तथा मद्रास के कुछ भागो मे, जहाँ वर्षा २० से ४० इच है, पाए जाते हैं। इसमे काँटेदार पेड पौधे तथा छोटी छोटी झाडियाँ मिलती हैं जिनमें बबूल और गोद उत्पन्न करनेवाले पेड प्रधान हैं। (४) अर्द्धमरुस्थलीय जगल — ये उन भागो मे पाए जाते हैं, जहाँ वर्षा २० इच से कम है। इसमे वनस्पति नाम मात्र की है। कही कही बबूल तथा खजूर के वृक्ष अथवा छोटी छोटी झाडियाँ मिलती हैं। इस प्रकार की वनस्पति पश्चिमी राजस्थान, पजाब तथा दक्षिणी पठार के शुष्क भागो मे मिलती है। (५) पर्वतीय वन — हिमालय पहाड पर ऊँचाई के साथ साथ ज्यों ज्यो गरमी कम होती जाती है, वनस्पति की किस्में भी बदलती जाती हैं। पूर्वी हिमालय मे पश्चिमी हिमालय से अधिक वर्षा होती है, इसलिये इन दोनों की वनस्पति में ऊँचाई के साथ परिवर्तन एक तरह का नही होता है। पूर्वी और पश्चिमी हिमालय के बीच विभाजक रेखा ८६°–८८° पू० द० है। पूर्वी हिमालय मे ३,००० से ६,००० फुट की ऊँचाई के बीच चौडी पत्तीवाले सदाबहार जगल मिलते हैं जिनमे बाज (oak) और चेस्टनट प्रधान हैं। ८,५०० से ११,५०० फुट की ऊँचाई तक कोणधारी वृक्ष मिलते हैं, किंतु नीचे की ओर को णधारी और चौडी पत्तीवाले वृक्षों का मिश्रित वन मिलता है। और अधिक ऊँचाई पर (९,५०० से १२,००० फुट) फर, जुनिपर, चीड, भूर्ज, रोडोडेनड्रॉन मिलते हैं। पश्चिमी हिमालय में वर्षा की कमी के कारण, सबसे नीचे पतझड वन मिलते हैं जिनमें साखू के वृक्ष प्रधान हैं। ३,००० से ६,००० फुट की ऊँचाई तक चेस्टनट और पॉपलर मिलते हैं और कुछ अधिक ऊँचाई पर बाज के वृक्ष पाए जाते हैं। ५,००० से ११,००० फुट के बीच कोणधारी (conifer) जगल मिलते हैं जिनमे देवदार, चीड और ब्लू पाइन मुख्य वृक्ष हैं। देवदार विशेषकर ४५-७० इच वर्षा के क्षेत्रों मे अत्यधिक होते हैं। ११,००० फुट से ऊपर रोडोडेनड्रॉन, सिल्वर फर, जुनिपर तथा भूर्ज के वृक्ष के वन मिलते हैं जिन्हें ऐल्पाइन वन कहते हैं। आर्थिक दृष्टि से पर्वतीय वन के मुख्य वृक्ष देवदार, ब्लू पाइन, चीड, सिल्वर फर तथा स्प्रूस (spruce) हैं। (६) तटीय वन — समुद्र के किनारे दलदली क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इन्हे मैनग्रोव जगल भी कहा जाता है। इस प्रकार के जगल के लिये दलदल और खारा पानी दोनों आवश्यक हैं। इसका सबसे विस्तृत क्षेत्र गगा नदी के डेल्टा में मिलता है जो सुंदरवन के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ सुदरी नामक वृक्ष सबसे अधिक पाया जाता है। इसकी लकडी मुख्यत जलाने के काम आती है। गोदावरी तथा कृष्णा नदियो के डेल्टा मे भी मैनग्रोव जगल पाए जाते हैं।

भारत मे खेती के प्रसार के कारण मैदानों तथा समतल भूमि मे जगलों को साफ कर दिया गया है और अब केवल पहाडी भागो में ही वन पाए जाते हैं। इन जगलो का क्षेत्रफल २,०४,००० वर्ग मील है जो देश की कुल भूमि का २२ प्रति शत है। इसके अतिरिक्त वनाच्छादित भूमि का वितरण बहुत असमान है। असम एव मध्य प्रदेश मे वनाच्छादित भूमि इन राज्यो के क्षेत्रफल का क्रमश ४२ और ३१ प्रति शत, उडीसा में २६ प्रति शत, जम्मू और कश्मीर मे २२ प्रति शत है, किंतु उत्तर प्रदेश मे यह प्रति शत ११, पश्चिमी बगाल मे ९, गुजरात में ५ और राजस्थान मे केवल ३ है।

भारतीय वनों का ७९ प्रति शत भाग सरकारी नियत्रण के अतर्गत है। इनमे से कुछ सुरक्षित वन हैं जिनमे पशुचारण तथा लकडी काटना निषिद्ध है, और कुछ सरक्षित वनों मे जहाँ सरकारी देखरेख है, स्थानीय निवासियो को पशु चराने तथा लकडी काटने की सुविधाएँ प्राप्त हैं। वनों की उचित व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि वर्तमान वनक्षेत्रों का सरक्षण एव विस्तार किया जाय एव यातायात के साधनो का विकास किया जाय और वैज्ञानिक ढग से वनों का सदुपयोग किया जाय।

मिट्टियाँ — हम भारत की मिट्टियो को चार प्रधान वर्गों में विभाजित कर सकते हैं १ जलोढ या काप मिट्टी — उत्तर के विस्तृत मैदान तथा प्रायद्वीपीय भारत के तटीय मैदानो मे मिलती है। यह अत्यत उपजाऊ है और इसपर भारत की लगभग आधी आवादी की जीविका निर्भर है। यह मिट्टी हिमालय से निकली हुई नदियो द्वारा लाकर जमा की गई है। पर्वतपदीय भाभर क्षेत्र मे मिट्टी रुखडी है, मैदान के पश्चिमी भागो मे बालू का अश अधिक है, किंतु गगा के डेल्टा की ओर मिट्टी महीन और चिकनी होती जाती है। जलोढ मिट्टियो के दो भाग हैं · बाँगर तथा खादर। बाँगर पुराना जलोढक है जहाँ नदियो का जल नही पहुँच पाता। खादर नवीन जलोढक है जो नदियो के बाढ का मैदान और डेल्टा क्षेत्र मे पाया जाता है। अधिकाश क्षेत्रो मे मिट्टी दोरस है। उर्वरता मुख्यत जलतल पर निर्भर करती है। इन मिट्टियो मे पोटाश, फॉस्फोरिक एसिड तथा चूना पर्याप्त है किंतु नाइट्रोजन और जीवाशो की कमी है। खादर मे ये तत्व बाँगर की तुलना मे अधिक मात्रा मे वर्तमान हैं, इसलिये खादर अधिक उपजाऊ है। बाँगर मे कम वर्षा के क्षेत्रों मे, कही कही खारी मिट्टी और कही लोना लगी हुई मिट्टी पाई जाती है। रेहयुक्त मिट्टी ऊसर अथवा बजर होती है। (२) काली मिट्टी — लावा के अनावृत्तीकरण से बनी है और महाराष्ट्र तथा गुजरात के अधिकाश भाग और पश्चिमी मध्य प्रदेश मे मिलती है। इसका विस्तार लावा क्षेत्र तक सीमित नही है, बल्कि नदियो ने इसे ले जाकर अपनी घाटियो मे भी जमा किया है। यह बहुत ही उपजाऊ है और कपास की उपज के लिये प्रसिद्ध है। इसलिये इसे कपासवाली काली मिट्टी कहते है। इस मिट्टी मे नमी रोक रखने की प्रचुर शक्ति है, इसलिये वर्षा कम होने पर भी सिंचाई की आवश्यकता नही होती। इसका काला रग शायद अत्यत महीन लौह अशो की उपस्थिति के कारण है। इस मिट्टी में पोटाश तथा चूना पर्याप्त मात्रा मे होता है, किंतु नाइट्रोजन, जीवाश तत्व तथा फॉस्फोरिक एसिड की मात्रा कुछ कम है। (३) लाल मिट्टी — इस वर्ग की मिट्टी मे अनेक प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं, जो पठार की पुरानी रवेदार चट्टानो के अनावृत्तीकरण से बनी हैं। इनका सामान्य रग लाल या लाली लिए हुए अवश्य है, पर इस वर्ग मे समिलित कुछ मिट्टियो का रग भूरा, धूसर तथा काला भी है। इनके रग, बनावट तथा गुण में मूल चट्टानो, जलवायु तथा स्थानीय धरातलीय रूप के साथ बहुत अतर मिलता है। पठार तथा पहाडियो पर इन मिट्टियो की उर्वराशक्ति कम है और ये ककरीली तथा रुखडी होती हैं, किंतु नीचे स्थानो मे अथवा नदियो की घाटियो मे ये दोरस हो जाती हैं और अधिक उपजाऊ हैं। इनमे प्राय उन्ही खनिजो की कमी है जिनकी कमी काली मिट्टी मे मिलती है, किंतु साधारणतया ये काली मिट्टी से कम उपजाऊ हैं और इनमे निक्षालन (leaching) भी अधिक हुआ है। तटीय मैदानो और काली मिट्टी के क्षेत्र को छोडकर, प्रायद्वीपीय पठार के अधिकाश भाग मे लाल मिट्टी पाई जाती है। (४) लैटेराइट मिट्टी — यह लैटेराइट नामक चट्टानों के टूटने फूटने से बनती है। यह देखने मे लाल मिट्टी की तरह लगती है, किंतु उससे कम उपजाऊ होती है। ऊँचे स्थलो मे यह प्राय पतली और ककडमिश्रित होती है और कृषि के योग्य नही रहती, किंतु मैदानी भागो मे यह खेती के काम में लाई जाती है। यह दक्षिण भारत के पठार, राजमहल तथा छोटानागपुर के पठार, असम इत्यादि मे सीमित क्षेत्रो मे पाई जाती है। दक्षिण भारत मे मैदानी भागो मे इसपर धान की खेती होती है और ऊँचे भागो मे चाय, कहवा, रवर तथा सिनकोना उपजाए जाते हैं। इस प्रकार की मिट्टी अधिक ऊष्मा और वर्षा के क्षेत्रो मे बनती है। इसलिये इसमे ह्यूमस की कमी होती है और निक्षालन अधिक हुआ करता है।

कृषि — भारत कृषिप्रधान देश है और यहाँ की लगभग ७० प्रति शत आबादी की जीविका कृषि पर निर्भर है। कृषिगत भूमि के ८० प्रति शत से अधिक भाग पर खाद्यान्न उत्पन्न किए जाते हैं, फिर भी देश मे लगभग १० प्रति शत खाद्यान्न की कमी रहती है जिसकी पूर्ति विदेशो से आयात द्वारा की जाती है। ऐसी कोई भी फसल नही है, जो पशुओ के चारे के लिये उपजाई जाती हो। जानवरो का चारा मुख्यत. खाद्यान्नो से प्राप्त भूसा है। हम चाहे जिस दृष्टि से देखें प्रति एकड उत्पादन, खाद एव उत्तम बीजो का व्यवहार, सिंचाई का प्रवध, पशुपालन इत्यादि की दृष्टि से भारत की कृषि अन्य देशो की तुलना मे बहुत पिछडी हुई है। प्रत्येक फसल का प्रति एकड उत्पादन विश्व औसत से कम है। यही कारण है कि अच्छी जलवायु और उपजाऊ मिट्टी के बावजूद यहाँ के किसान गरीब हैं। भारतीय कृषि के पिछडी होने के और प्रति एकड कम उत्पादन के चार मुख्य कारण हैं · (१) सिंचाईवाले क्षेत्रो को छोडकर, भारत के अधिकाश मे खेती मूलत मानसून वर्षा पर निर्भर है। जिस वर्ष वर्षा समय पर अथवा पर्याप्त मात्रा में नही होती, विस्तृत क्षेत्रो मे या तो फसल बोई नही जाती अथवा नष्ट हो जाती है। कभी कभी बाढ से ही काफी क्षति होती है, (२) निरतर बिना खाद के सदियो तक व्यवहार मे लाए जाने के कारण मिट्टी की उत्पादन शक्ति कम हो गई है। मवेशियो की सख्या अधिक होने पर भी गोवर खाद के रूप मे इस्तेमाल नही होता बल्कि लकडी की कमी के कारण, गोबर को मुख्यत. जलावन के काम मे लाया जाता है। कृत्रिम उर्वरको का उपयोग भी अधिक दाम, किसानो की अज्ञानता तथा सिंचाई के उचित प्रवध के अभाव के कारण बहुत सीमित है। (३) उसके खेत छोटे हैं और कई छोटे छोटे टुकडो मे बिखरे होते हैं जिसके कारण व्यावहारिक ढग से खेती नहीं हो पाती। इस स्थिति का मुख्य कारण उत्तराधिकार सवधी कानून है। छोटे और बिखरे खेतो के कारण काफी जमीन मेड मे बर्बाद हो जाती है और उनकी सिंचाई, रखवाली इत्यादि का उचित प्रवध करना असभव हो जाता है। फलत खेती का स्तर नीचा हो जाता है और उपज कम होती है। अधिकाश किसान विभाजित और बिखरे खेतो की बुराइयो से अनभिज्ञ हैं और प्राय चकबदी के लिये जल्द तैयार नही होते, यद्यपि पजाव, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश मे सहकारी समितियो द्वारा स्वेच्छापूर्वक चकवदी को सफलता मिली है। (४) अधिकाश किसान निर्धन और अनपढ हैं, उनके पास इतने पैसे नही कि वे अपने खेतो के लिये खाद और उत्तम बीज खरीद सकें या उन्नत औजार व्यवहार मे ला सकें।

सिंचाई — देश के बड़े भाग मे अपर्याप्त तथा अनिश्चित वर्षा के कारण सिंचाई की बडी आवश्यकता है। भारत मे ससार के सभी देशो से अधिक सिंचित भूमि पाई जाती है। यहाँ लगभग ६०० लाख एकड भूमि पर सिंचाई की जाती है, जो भारत की कुल कृषि के

अंतर्गत भूमि का सिर्फ छठा भाग है। अर्थात् इतनी अधिक सिंचित भूमि होने पर भी भारतीय कृषि मुख्यतः वर्षा की अनिश्चितता पर निर्भर है। देश मे अन्न की कमी है और बढती हुई जनसंख्या के पोषण के लिये खाद्यान्नो की उत्पत्ति बढाना आवश्यक है। इस दृष्टि से भी सिंचाई की सुविधा किसानो को अधिकाधिक प्राप्त होना आवश्यक है। सीचने से न केवल फसलो के नष्ट होने का भय जाता रहता है, बल्कि वर्ष में एक ही खेत से एक से अधिक फसलें उगाई जा सकती हैं और प्रति एकड उपज भी बहुत बढ़ जाती है।

भारत मे सिंचाई के तीन मुख्य साधन हैं नहर, तालाब और कुआँ। सिंचित भूमि का ४२ प्रति शत नहरो द्वारा, २० प्रति शत तालाबो द्वारा और ३० प्रति शत कुओं द्वारा सीचा जाता है। नहरें सिंचाई के प्रमुख साधन हैं। इनसे संपूर्ण भारत मे २५५ लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है। नहरो का विकास मुख्य रूप से हरियाना, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा बिहार और गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियो के डेल्टो में हुआ है।

पंजाब-हरियाना की नहरें — (१) पूर्वी यमुना नहर—यमुना नदी से ताजवाला नामक स्थान पर निकाली गई है, जिससे हरियाना तथा राजस्थान के कुछ भागो मे सिंचाई होती है। इस नहर को मूलत. १४ वी शताब्दी मे फिरोजशाह तुगलक ने बनवाया था, (२) सरहिंद नहर — सतलुज नदी से रूपड के पास निकाली गई है। इससे पंजाब और हरियाना मे लगभग १५ लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है, (३) ऊपरी बारी दोआब नहर — यह माधोपुर के समीप रावी नदी से निकाली गई है। यह पंजाब मे व्यास और रावी नदियों के बीच आठ लाख एकड भूमि को सीचती है तथा (४) नंगल नहर — १९५४ ई० मे सतलुज से निकाली गई है और भाखडा नंगल योजना के अंतर्गत है। इससे पंजाब, हरियाना तथा राजस्थान मे कुल २० लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है।

उत्तर प्रदेश की नहरें — (१) पूर्वी यमुना नहर—यमुना नदी के तटपर स्थित फैजाबाद नामक स्थान के पास से निकलती है और दिल्ली से उत्तर, गंगा-यमुना दोआब को सीचती है, (२) आगरा नहर — यमुना नदी के पश्चिमी किनारे से दिल्ली के पास ओखला से निकाली गई है और आगरा तथा मथुरा जिलो को सीचती है, (३) ऊपरी गंगा नहर — गंगा नदी से हरद्वार के पास निकलती है। यह गंगा-यमुना दोआब के उत्तरी भाग को सीचती है और निचली गंगा नहर को भी पानी देती है। यह लगभग १० लाख एकड भूमि सीचती है, (४) निचली गंगा नहर — गंगा नदी से अलीगढ़ के पास नरोरा से निकाली गई है। यह गंगा यमुना दोआब के मध्य तथा निचले भागो मे लगभग १२ लाख एकड भूमि को सीचती है तथा (५) शारदा नहर — घाघरा की सहायक नदी शारदा से, नेपाल की सीमा पर बनवासा नामक स्थान पर निकाली गई है और लखनऊ के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रो को सीचती है। यह उत्तर प्रदेश की प्रमुख नहर है और इससे ५४ लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है। उत्तर प्रदेश मे गन्ने की खेती के लिये इस नहर का विशेष महत्व है।

बिहार की नहरें — (१) सोन नहर — सोन नदी से डेहरी मे निकाली गई है और पटना, गया तथा शाहाबाद जिलो मे आठ लाख एकड भूमि को सीचती है। (२) त्रिवेणी नहर — गंडक से त्रिवेणी नामक स्थान से चंपारन मे निकाली गई है, (३) ढाका नहर — लाल बकया नदी से चंपारन के पास निकाली गई है। (४) सारन नहर — गंडक से सारन जिले मे निकाली गई है।

दक्षिण भारत की नहरें — दक्षिण भारत मे नहरो से सिंचाई मुख्यत डेल्टाओ के समतल तथा उपजाऊ भूमि मे होती है। कृष्णा, गोदावरी तथा कावेरी तीनो के डेल्टा मे नदियों को बाँध कर नहरें निकाली गई हैं। यद्यपि आंध्रप्रदेश और मद्रास मे तालाब सिंचाई के महत्वपूर्ण साधन हैं, किंतु इन दो राज्यों में नहरो से सिंचित भूमि तालाबो द्वारा सिंचित भूमि से कम नहीं है। आंध्र प्रदेश मे गोदावरी और कृष्णा के डेल्टा की नहरो (सिंचित भूमि १८ लाख एकड़) के अतिरिक्त तुंगभद्रा योजना तथा नागार्जुन सागर योजना की नहरों से विस्तृत क्षेत्रों मे सिंचाई होती है। मद्रास राज्य मे दक्षिण-पश्चिम मानसून काल मे कम वर्षा होने के कारण सिंचाई का विशेष महत्व है और यहाँ कृषिगत भूमि के लगभग ४० प्रति शत भाग मे सिंचाई होती है। कावेरी डेल्टा की नहरो (ये ११ वी शताब्दी मे बनाई गई थीं) मे लगभग १० लाख एकड भूमि मे, मुख्यत धान और फलों की सिंचाई होती है। इनके अतिरिक्त मद्रास मे मेट्टूर बाँध, पेरियर योजना, तथा निचली भवानी योजना की नहरो से बडे क्षेत्र मे धान, मूँगफली, कपास और तबाकू की सिंचाई होती है।

तालाब — भारत मे लगभग ११५ लाख एकड भूमि की सिंचाई तालाबो द्वारा होती है। तालाबो से सिंचाई मुख्यत आंध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर तथा छोटा नागपुर मे होती है। पथरीले भागों मे, छोटी नदियो के मार्ग मे जगह जगह पर मिट्टी तथा पत्थर से बाँध बनाकर पानी को रोक दिया जाता है जिससे बाँध के ऊपर वर्षा ऋतु मे पानी जमा हो जाता है। इस तरह ये तालाब मामूली अर्थ मे समझे जानेवाले तालाबो से भिन्न हैं। तालाबो से पानी नीचे की ओर हलकी ढाल पर गिराया जाता है। इसके लिये प्राय ढाल को सीढीनुमा काट देते हैं। प्राय. ऐसे खेतो मे धान की खेती होती है। तालाबो मे सिंचाई मुख्यत वर्षा ऋतु मे होती है और जिस वर्ष वर्षा कम होती है, तालाबो से सिंचाई के लिये पूरा पानी नही मिलता। उत्तर प्रदेश तथा उडीसा मे भी तालाबों एवं प्राकृतिक अथवा कृत्रिम गड्ढो मे वर्षा का पानी जमा कर उसे सिंचाई के काम मे लाया जाता है। तालाबो से आंध्र प्रदेश (तेलंगाना) तथा मद्रास में क्रमश २८ लाख और २२ लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है। मद्रास के मदुरै तथा रामनाड जिलो मे तालाबो से सिंचाई का सर्वोत्तम उदाहरण मिलता है।

कुएँ — कुओ द्वारा भारत मे लगभग १७५ लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है। कुआँ सिंचाई का पुराना साधन है। कुओ का निर्माण उन क्षेत्रो मे सुगम होता है जहाँ मिट्टी मुलायम हो तथा जलतल ऊँचा हो। एक साधारण कुएँ से लगभग पाँच एकड भूमि की सिंचाई होती है, यद्यपि पंजाब तथा हरियाना मे, जहाँ कुएँ बडे तथा स्थायी हैं, एक कुआँ से लगभग १२ एकड भूमि सीची जाती है। कुओ से सिंचाई अन्य साधनो की तुलना मे महँगी पडती है, क्योंकि

पानी को कुओ से उठाकर खेतो मे डालने में काफी मेहनत लगती है। इसलिये प्राय कुओ से सिंचाई वैसी फसलो के लिये की जाती है जो अपेक्षाकृत मँहगी हैं। साथ साथ जहाँ कुओ से सिंचाई होती है वहाँ खेती का स्तर ऊँचा होता है और किसान अधिक से अधिक उपज पैदा करने का प्रयत्न करते हैं। कुओ से पानी निकालने के कई तरीके हैं — ढेकली द्वारा, रहट अथवा पुरवट द्वारा तथा तेल या बिजली चालित इजनो द्वारा। उत्तर भारत के मैदान मे, जहाँ मिट्टी मुलायम तथा उपजाऊ है और जलतल ऊँचा है, कुओ का अधिक विकास हुआ है। कुओ से सबसे अधिक सिंचाई उत्तर प्रदेश, पजाब तथा हरियाना राज्यो में होती है, जहाँ भारत मे कुओं द्वारा सिंचित भूमि का आधे से अधिक भाग पाया जाता है। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मद्रास तथा बिहार मे भी सिंचाई के लिये कुओं का स्थान महत्वपूर्ण है।

नलकूप — इधर पिछले तीस वर्षों से सिंचाई के लिये नलकूपो का उपयोग किया जा रहा है। लोहे की नली जमीन के अदर काफी गहराई तक धँसा दी जाती है, और तेल या बिजली चालित इजिन की सहायता से पानी ऊपर खीचा जाता है। यद्यपि नलकूप के बनाने मे काफी लागत लगती है, फिर भी एक नलकूप से करीब ४०० एकड की सिंचाई हो सकती है। इसलिये नलकूप से सिंचाई कुओ की तुलना मे सस्ती पडती है। इसके अतिरिक्त जब साधारण कुएँ सूख जाते हैं तब भी नलकूपो से जल मिलता रहता है। उत्तर भारत के मैदान मे धरातल से काफी नीचे एक विस्तृत स्थायी सपृक्तता की पेटी मिलती है। इसको तराई तथा भाभर क्षेत्र मे वर्षा तथा नदियो से जल मिलता रहता है। नलकूप इसी पेटी से जल प्राप्त करते हैं। सबसे पहले पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे नलकूपो का विकास हुआ था और अभी भी सबसे अधिक सिंचाई नलकूपो से यही होती है। यहाँ इनसे अधिकतर गन्ने की सिंचाई होती है। पजाब, हरियाना तथा बिहार मे भी नलकूपो का बहुत विकास हुआ है। कुल मिलाकर भारत मे लगभग तीन लाख एकड भूमि नलकूपो द्वारा सींची जाती है।

नदी घाटी योजनाएँ — अभी नदियो का सिर्फ नौ प्रति शत पानी सिंचाई के काम मे आता है और बाकी ९१ प्रति शत बहकर नष्ट हो जाता है। इस पानी को सिंचाई तथा जलविद्युत् उत्पादन के काम में लाया जा सकता है। इसी उद्देश्य से भारत सरकार तथा राज्य सरकारो ने कई योजनाएँ तैयार की है जिनसे नदियो से सिंचाई की सुविधा के अतिरिक्त उनसे जलविद्युत् उत्पन्न की जा सके, नदियो मे बाढ के प्रकोप को रोका जा सके तथा जलयातायात की सुविधा प्राप्त हो सके और इस प्रकार नदी घाटी का समुचित एव सतुलित विकास सभव हो सके। इसी कारण इन्हे बहुधधी योजनाएँ कहते हैं। मुख्य योजनाएँ निम्नलिखित हैं दामोदर घाटी योजना (बगाल, बिहार), हीराकुड बाँध योजना (उडीसा, महानदी पर), कोसी योजना (बिहार), भाखडा नगल योजना (पजाब, हरियाना, सतलुज नदी पर), रिहद बाँध योजना (उत्तर प्रदेश, सोन की सहायक रिहद नदी पर), तुगभद्रा योजना (आध्रप्रदेश तथा मैसूर), नागार्जुन सागर योजना (आध्रप्रदेश मे कृष्णा नदी पर), चबल योजना (मध्यप्रदेश और राजस्थान) तथा गडक योजना (बिहार)।

मुख्य फसलें — भारत मे उत्पन्न की गई फसलों के दो भाग किए जाते हैं खरीफ तथा रबी। खरीफ की फसलें वर्षा के आरभ मे बोई जाती है और जाडे मे काट ली जाती हैं। इनमे मुख्य धान, बाजरा, ज्वार, मकई, कपास, जूट, गन्ना, मूँगफली हैं। रबी वर्षा के अत मे बोई जाती है और मार्च तक काटी जाती है। रबी की मुख्य फसलें
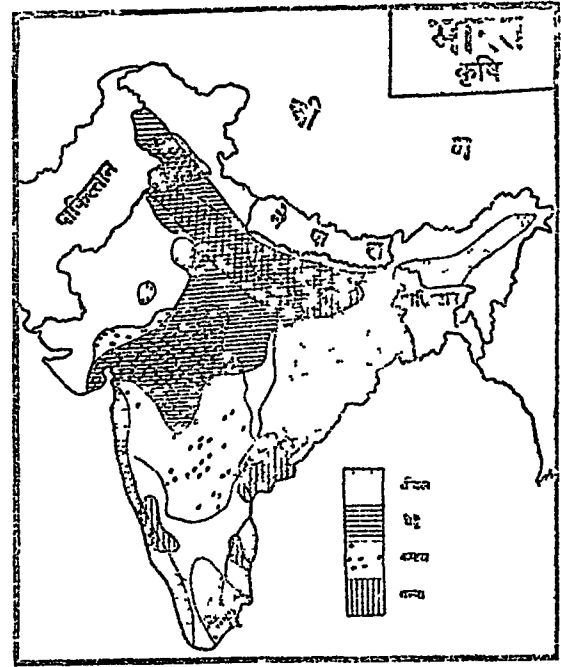
मानचित्र ४

मटर, गेहूँ, जौ, चना, मसूर, तीसी तथा सरसो हैं। भारत का स्थान ससार मे चाय, गन्ना, तिल, मूँगफली, सरसो, राई, इलायची और काली मिर्च के उत्पादन मे प्रथम, चावल, जूट तथा रेंडी मे दूसरा, तीसी, तबाकू मे तीसरा और कपास के उत्पादन मे चौथा है, यद्यपि ससार मे कपास के अतर्गत भूमि सबसे अधिक भारत मे ही है (देखें, मानचित्र ४) १९६३–६४ मे मुख्य फसलों के अतर्गत भूमि तथा प्रत्येक का कुल उत्पादन नीचे दिया गया है

फसलें	क्षेत्रफल (हजार हैक्टर मे)	उत्पादन (हजार मेट्रिक टन मे)
धान	३५,४७४	३६,४८९
ज्वार-बाजरा	२८,९८४	१२,९६३
मकई	४,५४६	४,५२७
गेहूँ	१३,३०५	६,७०८
कुल खाद्यान्न	९२,०८१	६९,५५५
कुल खाद्यान्न और		
दलहन	१,१५,८४९	७९,४३०
मूँगफली	६,८०४	५,२६०
सरसो, राई	३,००४	९०९
कुल तिलहन	१४,५५४	७,०९६
गन्ना	२,२१४	१०,२५८ (गुड)
कपास	७,९१९	५,४२६ (हजार गाठ)
जूट	८९२	५,९५७ (हजार गाठ)

धान — यह भारत की मुख्य फसल है। कुल कृषिगत भूमि के लगभग चौथाई भाग मे धान की खेती होती है। ससार मे धान के अतर्गत सबसे अधिक भूमि भारत ही मे है, पर प्रति एकड़ उपज कम

होने के कारण यहाँ उत्पादन चीन का लगभग आधा है। गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के समतल तथा उपजाऊ मैदान और दक्षिण भारत के तटीय मैदान इसके लिये विशेष अनुकूल हैं। जिन क्षेत्रों में वर्षा ४० इंच से अधिक है वहाँ इसकी खेती मुख्य रूप से होती है। पहाड़ों पर भी जहाँ वर्षा पर्याप्त है, सीढ़ीनुमा खेतों पर धान की खेती महत्वपूर्ण है। भारत का लगभग दो तिहाई धान देश के उत्तर पूर्वी भाग के एक अविच्छिन्न क्षेत्र में उत्पन्न होता है, जिसमें पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, पूर्वी मध्यप्रदेश और पूर्वी उत्तरप्रदेश सम्मिलित हैं। अन्य उत्पादक राज्य आंध्रप्रदेश, मद्रास तथा केरल हैं। प्रति एकड़ उत्पादन दक्षिण भारत में उत्तर भारत की तुलना में अधिक है। भारत में धान के अंतर्गत भूमि के लगभग २६ प्रति शत भाग में सिंचाई होती है। इसलिये जब पर्याप्त या उचित समय पर वर्षा नहीं होती है तो फसल बड़े क्षेत्रों में मारी जाती है। भारत को साधारणतया थोड़ा बहुत चावल दूसरे देशों से खरीदने की जरूरत पड़ जाती है।

गेहूँ — धान के बाद गेहूँ भारत का दूसरा मुख्य खाद्यान्न है। भारत की कुल कृषिगत भूमि के दशांश पर गेहूँ उपजाया जाता है। गेहूँ के लिये अधिक गरमी और वर्षा दोनों हानिकारक हैं, इसलिये जिन क्षेत्रों में धान की खेती होती है वहाँ प्राय गेहूँ महत्वपूर्ण नहीं है। यह शुष्कतर भागों में तथा शीत ऋतु में उत्पन्न किया जाता है। भारत का लगभग संपूर्ण गेहूँ क्षेत्र ४० इंच से कम वर्षावाले भाग में पड़ता है और लगभग ९० प्रति शत उत्पादन उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाना, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान से आता है। इन राज्यों के अतिरिक्त बिहार के उत्तर-पश्चिमी भाग, महाराष्ट्र, तथा गुजरात में भी गेहूँ की थोड़ी बहुत खेती होती है। उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाना तथा राजस्थान में लगभग ४५ प्रति शत गेहूँ के अंतर्गत भूमि सींची जाती है। देश के विभाजन के फलस्वरूप पश्चिमी पंजाब और सिंध का गेहूँ पैदा करनेवाला बड़ा इलाका पाकिस्तान में चला गया है। भारत बड़ी मात्रा (प्रति वर्ष २५ से ५० लाख टन तक) गेहूँ विदेशों से, मुख्यतः संयुक्त राज्य, अमरीका और आस्ट्रेलिया से आयात करता है।

जौ — भारत में जौ का मुख्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार है। भारत में वार्षिक उत्पादन लगभग ३० लाख टन है।

ज्वार, बाजरा आदि, (मिलेट, Millet) — इसके अंतर्गत कई मोटे अन्न आते हैं जिनमें ज्वार, बाजरा, तथा रागी (मड़ुआ) प्रधान हैं। भारत में मिलेट की कृषि के अंतर्गत भूमि धान से भी अधिक है। ये अन्न शुष्क प्रदेशों में जहाँ वर्षा २० से ४० इंच के बीच है, बिना सिंचाई के प्राय कम उपजाऊ मिट्टी में काफी मात्रा में उपजाए जाते हैं। प्रायद्वीपीय पठार पर इनकी उपज विशेष महत्वपूर्ण है और वहाँ गरीब लोगों का यह प्रधान भोजन है। वास्तव में धान तथा गेहूँ क्षेत्रों को छोड़कर सारे भारत में नीचे स्तर के लोगों के लिये मिलेट (कदन्न) महत्वपूर्ण खाद्यान्न हैं। यद्यपि ये चावल और गेहूँ से अधिक पुष्टिकर हैं, फिर भी इनकी गिनती निम्न भोज्यान्नों में होती है। ज्वार के मुख्य उत्पादक क्षेत्र महाराष्ट्र, गुजरात और मैसूर हैं, किंतु मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश में भी काफी ज्वार पैदा किया जाता है। अधिकांश उत्पादन काली मिट्टी पर होता है और महाराष्ट्र यहाँ ही भारत के उत्पादन का एक तिहाई उत्पन्न करता है। बाजरे का प्रमुख उत्पादक राजस्थान है जो अकेले ही भारत के उत्पादन का एक तिहाई बाजरा उत्पन्न करता है, किंतु गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मद्रास, आंध्र और मैसूर भी बाजरे के महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। बाजरा ज्वार से भी अधिक शुष्क फसल है और जिन क्षेत्रों में यह उत्पन्न होता है वहाँ वर्षा २० इंच से भी कम है। रागी का उत्पादन मुख्यत मैसूर, मद्रास, आंध्र तथा महाराष्ट्र में होता है। यह मुख्यत दक्षिण भारत की फसल है और मैसूर अकेले ही देश के उत्पादन का ४० प्रति शत से अधिक रागी उत्पन्न करता है।

मकई — यह साधारणतया वर्षा के क्षेत्रों में उपजाऊ मिट्टी में उत्पन्न की जाती है और चावल तथा गेहूँ के मध्यवर्ती इलाकों में उगाई जाती है। उत्तर भारत के मैदान तथा दक्षिण की ओर इससे सटे हुए पठारी भाग में यह एक महत्वपूर्ण पूरक खाद्यान्न है, किंतु जहाँ वर्षा ६० इंच से अधिक है वहाँ इसका महत्व समाप्त हो जाता है। देश के उत्पादन का लगभग तीन चौथाई हिस्सा बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाना तथा राजस्थान में होता है।

दलहन — दलहन के अंतर्गत चना, अरहर, मसूर, मटर, मूँग, उरद तथा खेसारी आते हैं। भारत की अधिकांश जनता शाकाहारी है और उन्हें अपने भोजन में प्रोटीन मुख्य रूप से दालों से मिलता है। दाल के पौधे वायु से नाइट्रोजन लेकर भूमि की उपज शक्ति को बनाए रखने में मदद करते हैं। जानवरों के भोजन में भी दालों तथा दानों से प्राप्त चराई का बहुत महत्व है। चना मुख्यत उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाना, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार में उपजता है। अरहर मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा बिहार में उपजाई जाती है। उरद थोड़ा बहुत भारत के सभी भागों में उत्पन्न किया जाता है, किंतु मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र देश के उत्पादन का आधा उड़द पैदा करते हैं। मूँग का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र पूर्वी महाराष्ट्र तथा उत्तरी आंध्रप्रदेश है, यद्यपि मध्यप्रदेश, उड़ीसा, मद्रास, बिहार, राजस्थान, पंजाब, हरियाना और उत्तरप्रदेश में भी इसका उत्पादन होता है। मसूर मुख्यत उत्तर और मध्य भारत की फसल है।

तिलहन — संसार में तिलहन पैदा करनेवाले देशों में भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। कुछ तिलहन खाद्य हैं और कुछ अखाद्य। खाद्य तिलहनों में मूँगफली, तिल, बिनौले, राई तथा सरसों और नारियल मुख्य हैं और अखाद्य तिलहनों में तीसी तथा रेंडी प्रधान हैं। लगभग सभी तेलों का उद्योगों में उपयोग होता है। तिलहनों की खली पशुओं के खिलाने के काम आती है और खेतों के लिये उत्तम खाद भी है। पहले तिलहनों का एक चौथाई से आधा भाग तक विदेशों को निर्यात कर दिया जाता था, किंतु पिछले कुछ वर्षों से सरकार की नीति यह है कि तिलहन की जगह तेलों का निर्यात किया जाय। भारत अकेले संसार की ४० प्रति शत मूँगफली उत्पन्न करता है। लगभग ५० वर्ष पहले भारत में इसका कोई महत्व नहीं था। भारत सरकार के कृषिविभाग के प्रयत्नों के फलस्वरूप तथा यूरोप में इसकी बढ़ती हुई माँग के कारण देश में इसका प्रचार हुआ और अब इसकी कृषि के अंतर्गत भूमि सभी तिलहनों से अधिक है। अधिकांश उत्पादन दक्षिण भारत से आता है और गुजरात, मद्रास तथा

महाराष्ट्र देश के उत्पादन का लगभग दो तिहाई भाग उत्पन्न करते हैं। मैसूर तथा आध्रप्रदेश भी महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। ससार मे तिल की कृषि के अतर्गत लगी भूमि का आधा भाग भारत ही मे है और ससार का एक तिहाई से अधिक तिल यही उत्पन्न होता है। मुख्य उत्पादक क्षेत्र उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मद्रास, आध्र, महाराष्ट्र और गुजरात हैं। भारत ससार के उत्पादन के ४० प्रति शत से अधिक राई तथा सरसो उत्पन्न करता है। यहाँ इसका उत्पादन मुख्यत उत्तर-प्रदेश, पजाव, हरियाना, राजस्थान, विहार, पश्चिमी वगाल, असम तथा पूर्वी मध्यप्रदेश में होता है। तीसी के दो महत्वपूर्ण उत्पादक मध्य प्रदेश तथा उत्तरप्रदेश हैं जो भारतीय उत्पादन का लगभग ७० प्रति शत उत्पन्न करते हैं। अन्य उल्लेखनीय राज्य महाराष्ट्र और विहार हैं। सरकारी आँकडो के अनुसार रेंडी के उत्पादन मे भारत का स्थान ब्राज़िल के वाद आता है। तीन प्रमुख उत्पादक आध्र, गुजरात और मैसूर हैं, यो विहार, उडीसा तथा मद्रास मे भी रेंडी की खेती होती है। विनौला कपास से प्राप्त होता है, अत इसका भौगोलिक विवरण वही है जो कपास का। अधिकाश उत्पाद पशुओ को खिलाने और जलावन के काम आता है। विनौले के तेल का उत्पादन थोडा है। नारियल उष्ण और आर्द्र जलवायु का वृक्ष है। यह भारत के दोनो तटो तथा मिनिकोय, लक्षदीवी और निकोवार द्वीपसमूह पर पाया जाता है, किंतु केरल मे यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इससे उत्पन्न मुख्य व्यापारिक पदार्थ कोपरा अथवा गरी है। कोपरा के उत्पादन में भारत का स्थान ससार में तीसरा है, फिर भी भारत साधारणत. नारियल के तेल का मलाया तथा लका से आयात करता है।

गन्ना — गन्ना भारत की एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। यहाँ ससार का सवसे अधिक गन्ना उत्पन्न होता है। उत्तरप्रदेश, पजाव, हरियाना तथा विहार लगभग तीन चौथाई गन्ना उत्पन्न करते हैं। यहाँ उपजाऊ मिट्टी और सिंचाई की सुविधा है, किंतु दक्षिण भारत की गरम जलवायु गन्ने के लिये अधिक उपयुक्त है। इसलिये यहाँ का गन्ना मोटा होता है और प्रति एकड़ पैदावार उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक है, पर सिंचाई और खाद पर अधिक खर्च के कारण दक्षिण भारत का गन्ना महँगा पडता है। फिर भी उच्च प्राकृतिक सुविधाएँ, प्रति एकड अधिक उत्पादन एव वढती हुई माँग के कारण, पिछले कुछ वर्षों मे गन्ने की खेती मे दक्षिण भारत मे वृद्धि हुई है और महाराष्ट्र, आध्रप्रदेश, मद्रास तथा मैसूर महत्वपूर्ण उत्पादक हो गए हैं। कोयपुत्तूर (मद्रास) में गन्ने की अनुसधानशाला भी है।

तवाकू — यद्यपि तवाकू भारत के सभी राज्यो मे थोडा वहुत उत्पन्न होता है, तथापि लगभग ६० प्रति शत उत्पादन आध्रप्रदेश और गुजरात से आता है। अन्य महत्वपूर्ण उत्पादक मद्रास, मैसूर, महाराष्ट्र, विहार, पश्चिम वगाल तथा उत्तरप्रदेश हैं। आध्र प्रदेश का गुटूर क्षेत्र तवाकू की उपज के लिये प्रसिद्ध है। गुटूर सिगरेट की तंबाकू का अनुसधानकेंद्र है।

चाय — अन्य फसलो की तुलना मे यह अपेक्षाकृत कम क्षेत्रो में उगाई जाती है, किंतु फिर भी यह भारत को विदेशी मुद्रा दिलानेवाली सबसे प्रमुख फसल है। भारत ही ससार मे चाय का मुख्य उत्पादक एव निर्यातक है। चाय की खेती ऊँचे ताप और अधिक वर्षा के क्षेत्रों मे हलकी ढालवाँ भूमि पर वडे वडे वागानो में होती है। इसकी खेती तथा उद्योग मे लगभग १० लाख श्रमिक काम करते हैं। भारत में तीन क्षेत्रो मे चाय का उत्पादन होता है (१) उत्तर — पूर्वी भारत जिसमे असम, त्रिपुरा और दार्जिलिंग (पश्चिमी वगाल) के क्षेत्र आते हैं, (२) दक्षिण भारत जिसमे मद्रास, मैसूर एव केरल मे स्थित नीलगिरि, अन्नाईमलाई एव कार्डेमम के पहाडी क्षेत्र शामिल हैं, और (३) पश्चिमी हिमालय, जहाँ उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश के पहाडी भागो मे चाय की थोडी वहुत खेती होती है। सवसे प्रधान क्षेत्र असम और पश्चिमी वगाल मे स्थित है जो कुल उत्पादन का तीन चौथाई भाग उत्पन्न करते हैं। सवसे उत्तम चाय दार्जिलिंग मे उत्पन्न होती है।

कहवा — यद्यपि भारत मे कहवा का उत्पादन दक्षिण भारत मे एक छोटे क्षेत्र मे सीमित है, फिर भी दक्षिण भारत मे कहवे की कृषि के अतर्गत भूमि चाय से कही अधिक है। कहवे की खेती मैसूर के कुर्ग, नीलगिरि पहाडी तथा निकटवर्ती केरल और मद्रास राज्यो मे होती है। कहवे के वागान मुख्यत १,००० फुट से ६,००० फुट की ऊँचाई के वीच पाए जाते हैं।

कपास — यद्यपि पाकिस्तान वन जाने से भारत का सवसे उत्तम कपास पैदा करनेवाला इलाका पश्चिमी पाकिस्तान मे चला गया, फिर भी ससार मे कपास की कृषि के अतर्गत भूमि सवसे अधिक भारत ही मे है। इसके उत्पादन मे भारत का स्थान सयुक्त राज्य अमरीका, रूस और चीन के वाद आता है। सबसे प्रमुख उत्पादक क्षेत्र महाराष्ट्र, गुजरात तथा मैसूर के काली मिट्टी के प्रदेश है, जहाँ मुख्यत छोटे और मध्यम रेशेवाली देशी कपास उत्पन्न होती है। दूसरा क्षेत्र पजाव, हरियाना तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश का है जहाँ उपजाऊ जलोढ मिट्टी और नहरो द्वारा सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त हैं और मुख्यत लवे रेशेवाली अमरीकन कपास की खेती होती है। तीसरा क्षेत्र मद्रास का है जहाँ उच्च कोटि की कवोडिया तथा युगैंडा किस्म की लवे रेशेवाली कपास काली एव लाल दोनो किस्म की मिट्टियो पर उपजती है। भारत छोटे रेशेवाली कपास का निर्यात करता है किंतु लगभग उतना ही या उससे कुछ अधिक उत्तम कपास मिस्र, सयुक्तराज्य अमरीका इत्यादि देशो से आयात करता है।

जूट—देश के विभाजन से लगभग तीन चौथाई जूट क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान मे चला गया, किंतु सभी जूट की मिलें जो हुगली नदी के किनारे हैं, भारत के हिस्से मे पडी। पाकिस्तान और भारत में अच्छा सवध नहीं रहने के कारण, भारत को पाकिस्तान से जूट मिलने मे वहुत दिक्कत होती थी। इसलिये पिछले १५-२० वर्षों मे भारत ने जूट के उत्पादन को वहुत वढाया है। भारत मे जूट का क्षेत्र अव पाकिस्तान से अधिक है किंतु भारत का प्रति एकड उत्पादन पाकिस्तान से कम है। इसलिये कुल उत्पादन मे भारत का स्थान पाकिस्तान के वाद आता है। इसकी खेती मुख्यत गगा नदी के डेल्टा, ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी तथा विहार के उत्तर-पूर्वी भागो मे होती है।

फल और सब्जियाँ — भारत मे नाना प्रकार के फल तथा सब्जियाँ उत्पन्न की जाती हैं। उत्तरप्रदेश, विहार तथा पश्चिमी वगाल भारत के उत्पादन का लगभग तीन चौथाई आम उत्पन्न करते हैं। दक्षिण भारत मे आम मुख्यत तटीय क्षेत्रो मे होता है जिनमे मद्रास, केरल, महाराष्ट्र

एवं मैसूर हैं, पर बंगाल, बिहार, उड़ीसा और असम भी महत्वपूर्ण हैं। संतरे के उत्पादन में महाराष्ट्र में नागपुर का क्षेत्र, पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग, और असम में ब्रह्मपुत्र की घाटी तथा खासी पहाड़ियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। रसदार फलों में नीबू भी महत्वपूर्ण है। इलाहाबाद का अमरूद तथा मुजफ्फरपुर की लीची प्रसिद्ध है। हिमालय की घाटियों में समशीतोष्ण जलवायुवाले लगभग सभी फल पैदा होते हैं और कश्मीर तथा कुल्लू इन फलों के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। सब्जियाँ प्रायः स्थानीय उपभोग के लिये बड़े शहरों के आसपास उगाई जाती हैं जहाँ उन्हें बाजार तथा यातायात की सुविधाएँ प्राप्त हैं। आलू का उत्पादन मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा पंजाब में होता है, यद्यपि दक्षिण भारत में महाराष्ट्र तथा मैसूर भी महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। बिहार का आलू जो मुख्यतः बिहार शरीफ के पास उपजता है, बीज के लिये पटना आलू के नाम से प्रसिद्ध है।

मसाले — भारत अत्यंत प्राचीन काल से मसालों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध रहा है और आज भी इनका भारत के निर्यात में महत्वपूर्ण स्थान है। साथ साथ देश के अंदर भी मसालों की काफी खपत है। मिर्च के प्रधान उत्पादक मद्रास, आंध्र तथा महाराष्ट्र हैं। उत्तर भारत में महत्वपूर्ण उत्पादक बिहार, हरियाना तथा पंजाब हैं। काली मिर्च लगभग पूर्णतः केरल तथा निकटवर्ती मैसूर और मद्रास राज्यों से आती है। अदरक की खेती सबसे अधिक पश्चिमी घाट की निचली ढालों पर होती है, पर केरल के अतिरिक्त थोड़ा बहुत अदरक बंगाल, मध्य प्रदेश, मैसूर, गुजरात, उड़ीसा तथा हिमाचल प्रदेश में भी होता है। इलायची केरल तथा मैसूर में कार्डमम पहाड़ियों के क्षेत्र में होती है। हल्दी मुख्यतः आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर तथा मध्य प्रदेश से आती है। दालचीनी मुख्यतः मालाबार तथा नीलगिरि में उत्पन्न की जाती है। धनियाँ का प्रधान उत्पादक आंध्रप्रदेश है, किंतु मद्रास, मैसूर तथा महाराष्ट्र भी महत्वपूर्ण हैं। लौंग का उत्पादन मद्रास तथा केरल में होता है।

पशुपालन — सन् १९६१ की गणना के अनुसार भारत में पशुओं की संख्या ३३.६५ करोड़ है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बैल, गायें और भैंसें हैं। भारत में खेती का सबसे बड़ा साधन बैल है। इसके अलावा देश की अधिकांश जनता के भोजन में दूध, दही तथा घी का बड़ा महत्व है। भारत में सभी देशों से अधिक गाय, बैल और भैंसें पाई जाती हैं, पर उनकी नस्ल, भोजन तथा स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। अधिक भागों में चरागाह की कमी है और पशुओं के लिये चारा भी अलग से नहीं उपजाया जाता। ऐसी स्थिति में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिकतर पशु घटिया किस्म के हैं और गाय और भैंस औसतन बहुत कम दूध देती हैं। प्रति व्यक्ति के लिये कम से कम १० औंस दूध आवश्यक समझा जाता है, किंतु भारत में प्रत्येक व्यक्ति का औसत हिस्सा केवल ५ औंस बैठता है। भारत में अधिक पशुओं की नहीं वरन् अच्छे पशुओं की आवश्यकता है।

अच्छी नस्ल की भारतीय गायों में साहीवाल (पंजाब) तथा गीर (गुजरात) महत्वपूर्ण हैं। अच्छी नस्ल के बैलों में हैंसी (पंजाब), नेल्लुर (आंध्र), हरियाना (पंजाब), बछौर (उत्तरी बिहार) इत्यादि प्रसिद्ध हैं। ककरेज और गीर जाति के अच्छे बैल भी होते हैं और अच्छी गायें भी। अच्छी नस्ल की भैंसों में मुख्य मुर्रा (पंजाब), जाफराबादी (सौराष्ट्र), मेहसाना (गुजरात), सुरती और नागपुरी इत्यादि हैं।

ऊँट मुख्यतः ५० इंच से कम वर्षावाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं और इनसे भार ढोने तथा खेतों में सिंचाई का काम लिया जाता है। भेड़ें मुख्यतः पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के शुष्क और पहाड़ी भागों में पाली जाती हैं और इनसे ऊन तथा मांस प्राप्त होता है। बकरियाँ प्रायः सभी जगह, दूध तथा मांस के लिये पाली जाती हैं।

खनिज संपत्ति — भौगोलिक तथा भूगर्भीय दृष्टि से विचार करें तो भारत खनिजों में बहुत धनी नहीं माना जा सकता, फिर भी कुछ खनिजों के उत्पादन तथा भंडार में भारत का स्थान संसार में महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के बाद से खनिजों के अन्वेषण एवं विकास की ओर काफी ध्यान दिया गया है और जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के अतिरिक्त अन्य नई सरकारी संस्थाएँ स्थापित की गई हैं जिनमें इंडियन ब्यूरो ऑफ माइन्स, नैशनल मिनरल डेवलपमेंट कारपोरेशन, मिनरल [illegible] ब्यूरो, [illegible] बोर्ड के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। भारत लोहा, मैंगनीज, [illegible], अभ्रक, बॉक्साइट, इल्मेनाइट, [illegible], [illegible], [illegible] तथा
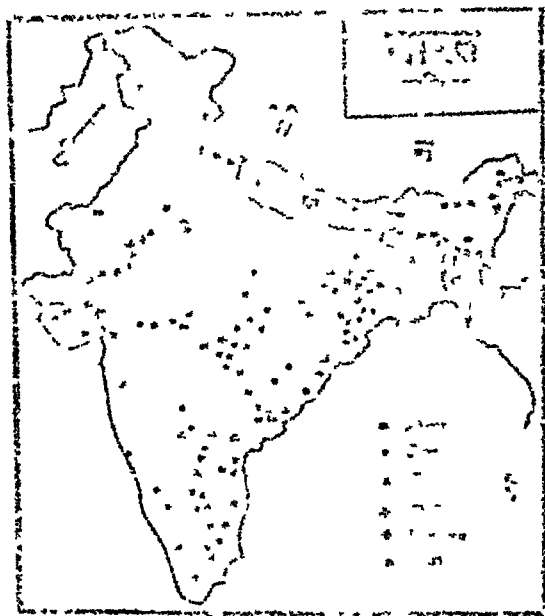
मानचित्र ४

चूना पत्थर में धनी है, किंतु टिन, तांबा, सीसा, जस्ता, निकेल, गंधक एवं पेट्रोलियम जैसे महत्वपूर्ण खनिज भारत में थोड़ी मात्रा में ही पाए जाते हैं। (देखें, मानचित्र ५ एवं ६)। भारत में खान खोदने के काम में सात लाख से कुछ कम आदमी लगे हुए हैं, जिनमें से अधिकांश कोयले की खानों में काम करते हैं।

भारत में अधिकांश खनिज प्रायद्वीपीय पठार में धारवाड़ युग की प्राचीन कायांतरित चट्टानों एवं गोंडवाना युग की परतदार चट्टानों में पाए जाते हैं। सबसे धनी इलाका छोटा नागपुर का पठार और इसके

निकटवर्ती भाग हैं जहाँ कोयला, कच्चा लोहा, अभ्रक और बौक्साइट के अतिरिक्त अन्य कई खनिज सचित हैं और जहाँ से अभी भारत के
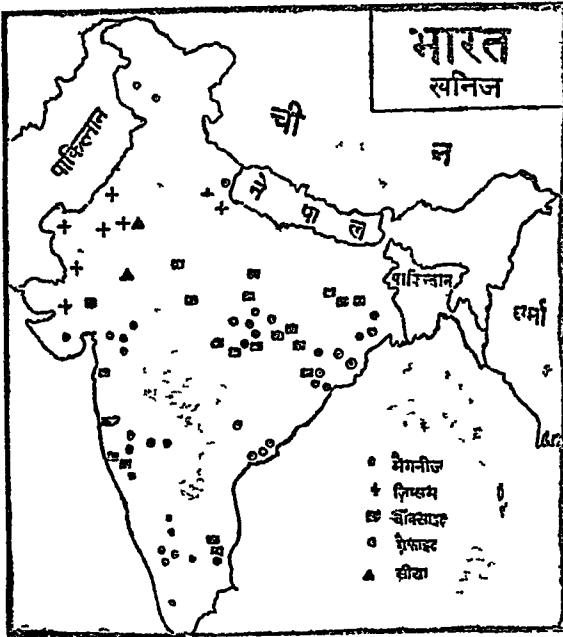
मानचित्र ६

खनिज उत्पादन का अधिक भाग प्राप्त होता है। मूल्य के अनुसार (१९६२) विहार भारत का ३९ प्रति शत, पश्चिमी बगाल २२ प्रति शत, मध्यप्रदेश ११ प्रति शत, उडीसा छह प्रति शत, आंध्र पाँच प्रति शत तथा मैसूर पाँच प्रति शत खनिज उत्पन्न करता है।

लोहा — ससार का लगभग एक चौथाई कच्चा लोहा अनुमानत भारत ही मे सचित है, किंतु भारत ससार के कुल उत्पादन का केवल तीन प्रति शत कच्चा लोहा उत्पन्न करता है। यहाँ का अधिकांश कच्चा लोहा उच्च कोटि का है जिसमे लौह अश ६० से ६८ प्रति शत है। सर्वप्रधान क्षेत्र विहार के सिंहभूम और उडीसा के निकटवर्ती केंदुझरगढ (क्योझर), सु दरगढ (वोनाई) तथा मयूरभज जिलो में स्थित है। भारत के कुल प्रमाणित भडार का ४३ प्रति शत यही स्थित है और इसी क्षेत्र से वार्षिक उत्पादन का लगभग दो तिहाई भाग प्राप्त होता है। जमशेदपुर, वर्नपुर, दुर्गापुर तथा रूरकेला के इस्पात के कारखाने इसी क्षेत्र से कच्चा लोहा लेते हैं और बोकारो के प्रस्तावित कारखाने को भी यही से कच्चा लोहा दिया जायगा। दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र मध्यप्रदेश मे दुर्ग और बस्तर का है जहाँ से भिलाई के इस्पात के कारखाने को कच्चा लोहा मिलता है। मैसूर की बाबावूदन पहाडी से प्राप्त कच्चा लोहा भद्रावती के इस्पात कारखाने मे व्यवहृत होता है। भारत अपने उत्पादन का एक तिहाई से कुछ कम कच्चा लोहा जापान, चेकोस्लोवाकिया इत्यादि देशो को निर्यात करता है।

मैंगनीज — यह दूसरा खनिज है जिसमे भारत धनी है। भारत ससार के उत्पादन का १० प्रति शत मैंगनीज उत्पन्न करता है और इसका स्थान उत्पादन मे रूस के बाद ही आता है, किंतु रूस का मैंगनीज निम्न कोटि का है और भारत का मैंगनीज उच्च कोटि का इस कारण विदेशो मे इसकी बहुत माँग है। भारत अपने उत्पादन का लगभग तीन चौथाई भाग निर्यात करता है। मैंगनीज के मुख्य क्षेत्र महाराष्ट्र के नागपुर और भडारा जिले तथा मध्य प्रदेश के निकटवर्ती बालाघाट और छिंदवाडा जिलो मे स्थित है। अन्य क्षेत्र गुजरात मे पचमहल तथा वडौदा, उडीसा में जामदा कोपरा घाटी, सु दरगढ तथा कोराचुट, विहार मे दक्षिणी सिंहभूम, मैसूर मे बल्लारि, उत्तरी कन्नड मे तुमकुर तथा शिवमोगा, आंध्र प्रदेश मे श्रीकाकुलम तथा राजस्थान मे जयपुर बाँसवाडा तथा उदयपुर हैं।

अभ्रक — इसके उत्पादन तथा निर्यात मे भारत का लगभग एकाधिकार है। भारत संसार के उत्पादन का तीन चौथाई से अधिक अभ्रक उत्पन्न करता है। मुख्य क्षेत्र विहार मे हजारीबाग जिला और निकटवर्ती गया, मु गेर और भागलपुर जिलों मे स्थित हैं। यहाँ का अभ्रक बहुत उच्च कोटि का मस्कोवाइट अभ्रक है जिसकी ससार के बाजार मे बहुत माँग है। अन्य क्षेत्र राजस्थान मे जयपुर-उदयपुर क्षेत्र और आंध्र प्रदेश में नेल्लूर हैं। भारत के उत्पादन का अधिकाश भाग सयुक्तराज्य अमरीका और ब्रिटेन खरीदते हैं।

ताँबा — भारत मे ताँबा कम मिलता है और लगभग सभी उत्पादन विहार के घाटशीला क्षेत्र (सिंहभूम) से आता है। घाटशीला के पास मौभडार मे इंडियन कॉपर कारपोरेशन का कारखाना है, जहाँ ताँबा गलाया और साफ किया जाता है।

बौक्साइट — भारत मे बौक्साइट का सचित भडार पर्याप्त है किंतु उत्पादन अभी बहुत कम है। सबसे धनी और मुख्य क्षेत्र विहार की दक्षिण-पश्चिमी और मध्य प्रदेश की पूर्वी सीमा पर स्थित राँची, पलामू सरगुजा, रायगढ तथा विलासपुर जिलो के पठारी भाग हैं। विहार मे उत्पादन केवल राँची मे होता है और राँची अकेले भारत के उत्पादन का दो तिहाई से अधिक बौक्साइट उत्पन्न करता है। मध्य प्रदेश में अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र मैकाल (अमरकटक) पहाडी तथा कटनी के क्षेत्र हैं। बौक्साइट उडीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास तथा जम्मू कश्मीर मे भी पाया जाता है, किंतु थोडा बहुत उत्पादन केवल गुजरात और मद्रास से आता है।

अन्य खनिज क्रोमाइट उडीसा के केंदुझरगढ (क्योझर) मयूरभज तथा विहार के सिंहभूम जिलो मे मुख्य रूप से पाया जाता है। मैग्नेसाइट के मुख्य क्षेत्र मद्रास मे सेलम, मैसूर मे दोदकन्या पहाडियाँ, उत्तर प्रदेश मे अलमोडा, राजस्थान मे डूँगरपुर तथा विहार मे सिंहभूम हैं। भारत ससार में कायनाइट का मुख्य उत्पादक और निर्यातक है और सिंहभूम मे स्थित लुप्सावुरु (खरसावाँ) क्षेत्र ससार मे सबसे बडा भडार समझा जाता है। इमारती पत्थरो मे मुख्य ग्रेनाइट, चूना पत्थर, सगमरमर, बालू पत्थर तथा स्लेट हैं। चूना पत्थर का उपयोग सीमेंट बनाने मे होता है। भारत मे चूना पत्थर का अपरिमित भंडार है। सबसे प्रधान क्षेत्र विहार, उडीसा, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान में हैं, किंतु दक्षिण भारत में भी कई राज्य महत्वपूर्ण हैं। जिप्सम मुख्यत राजस्थान से आता है, किंतु मद्रास, जम्मू और कश्मीर, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश मे भी इसके विशाल भडार हैं। गधक भारत मे केवल कश्मीर की पुगा घाटी मे मिलता

है किंतु उत्पादन अभी सभव नही है। हाल मे बिहार के शाहाबाद जिले मे आमजोर मे एक विस्तृत पायराइट के क्षेत्र का पता चला है, जिससे गधक निकाला जा सकता है।

भारत में बहुमूल्य धातुओ की कमी है। चाँदी केवल राजस्थान में नाम मात्र को मिलती है। सोना मैसूर के कोलार क्षेत्र से आता है। प्राचीन एव मध्यकालीन युग तक ससार के कीमती पत्थर और रत्न मुख्यत भारत से प्राप्त होते थे, किंतु अब इसका महत्व नही रहा। हीरा पन्ना के पास मिलता है। कश्मीर मे उच्च कोटि का नीलम, जगस्कार श्रेणी मे मिलता है और पन्ना या मरकत राजस्थान मे उदयपुर तथा अजमेर मेखाडा के क्षेत्रो मे मिलता है। इल्मेनाइट (टाइटेनियम) केरल तथा मद्रास के तटो की बालू मे मिलता है। केरल मे इल्मेनाइट का ससार मे सबसे बडा सचित भडार है। इल्मेनाइट के साथ बडी मात्रा मे थोरियम तथा यूरेनियम मिलते हैं जिनका महत्व परमाणु शक्ति के बनाने मे है। अन्य खनिज ऐपाटाइट मे सिंहभूम और विशाखापत्तनम, ऐस्बेस्टॉस मे आध्र, बिहार, मैसूर तथा उडीसा मे फेलसपार राजस्थान, बिहार, मैसूर मे, कैलसाइट राजस्थान एव गुजरात मे मिलता है। नमक हिमाचल प्रदेश की खान से, राजस्थान मे नमकीन झीलो से तथा पश्चिमी और पूर्वी तटो पर समुद्र के पानी से प्राप्त होता है।

शक्ति के साधन — तीन मुख्य साधन कोयला, पेट्रोलियम तथा जलविद्युत् हैं। इनके अतिरिक्त अणुशक्ति को भी विकसित करने का प्रयत्न किया जा रहा है किंतु अभी इसका महत्व कम है।

कोयला—ससार मे कोयला उत्पन्न करनेवाले देशो मे भारत का स्थान सातवाँ है और सचित भडार पर्याप्त है। कोयले के उत्पादन मे यहाँ पिछले १०-१५ वर्षो मे काफी वृद्धि हुई है और भारत अब फ्रास अथवा जापान से अधिक कोयला उत्पन्न करता है। भारत मे कोयला निम्नलिखित क्षेत्रो मे पाया जाता है (१) बिहार तथा पश्चिमी बगाल मे स्थित दामोदर नदी की घाटी, (२) महानदी तथा सोन नदियो की घाटी के बीच पूर्वी मध्य प्रदेश, (३) वर्धा तथा गोदावरी नदियों की घाटियाँ और (४) असम तथा दार्जिलिंग। सबसे महत्वपूर्ण खानें पश्चिमी बगाल मे रानीगज एवं बिहार मे झरिया, कर्णपुरा तथा बोकारो मे हैं। दामोदर घाटी क्षेत्र से भारत का लगभग ८० प्रति शत कोयला प्राप्त होता है। भारत में कोयले के कुल सचित भडार (लगभग ५,००० करोड टन) का ६० प्रति शत भाग दामोदर घाटी मे स्थित है। उच्च कोटि के कोयले का पूरा सचित भाडार इसी क्षेत्र मे सीमित है और कोककारी कोयला, जिसका उपयोग लोहा बनाने मे होता है, लगभग पूर्णत दामोदर घाटी मे ही सीमित है। रानीगज और झरिया मिलकर भारत के उत्पादन का दो तिहाई कोयला उत्पन्न करते हैं। झरिया का लगभग सभी कोयला कोकिंग किस्म का है। महानदी बेसिन की खानो मे सबसे महत्वपूर्ण कोरवा है जिसका विकास मुख्यत द्वितीय पचवर्षीय योजनाकाल मे हुआ है। असम का कोयला भी कोकिंग किस्म का है किंतु इसमे गधक की मात्रा अधिक होने के कारण इसका लोहा उद्योग मे व्यवहार नही होता। भारत मे कोयले का भौगोलिक वितरण असमान होने के कारण देश के पश्चिमी तथा दक्षिणी भागो को पर्याप्त मात्रा मे अथवा उचित समय पर कोयला मिलने मे दिक्कत होती है। रेलें जितना सामान ढोती हैं उनमें तौल के अनुसार सबसे मुख्य कोयला ही है। दक्षिण आर्काडु (मद्रास) जिले के निवेली क्षेत्र मे लिग्नाइट का एक विशाल भडार है जिसे विकसित कर बिजली उत्पन्न करने की बडी योजना चल रही है।

पेट्रोलियम — भारत मे पेट्रोलियम कम मिलता है और देश अधिकाशत दूसरे देशो से आयात पर निर्भर करता है। यह भारत के असम के डिगबोई तथा नहरकटिया के क्षेत्र और गुजरात के अकलेश्वर क्षेत्र मे मिलता है। पिछले १० वर्षो मे भारत के कई क्षेत्रो मे तेल की खोज की गई है और सबसे आशाजनक परिणाम गुजरात मे मिले हैं, जहाँ अकलेश्वर मे उत्पादन १९६१ ई० से शुरू हुआ है। असम के शिवसागर क्षेत्र मे भी पेट्रोलियम के भडार का पता चला है।

जलविद्युत शक्ति — भारत मे बिजली के कुल उत्पादन का लगभग ६० प्रति शत भाग कोयले से, ३५ प्रति शत पानी से और ५ प्रति शत पेट्रोलियम से प्राप्त होता है। भारत मे पेट्रोलियम का अभाव है और कोयला क्षेत्रो से दूर है, अत कोयले पर यातायात के खर्च के कारण कोयले से उत्पन्न बिजली महँगी पडती है। ऐसी स्थिति मे जलशक्ति को ही यथासभव विकसित करने का प्रयत्न उचित प्रतीत होता है। भाग्यवश भारत मे जलशक्ति का विशाल भडार है। भारत मे सभाव्य जलशक्ति ४ करोड १० लाख किलोवाट है। इसमे से अभी केवल पाँच प्रति शत भाग ही विकसित किया जा सका है।

भारत मे जलविद्युत् शक्ति के विकास के दो महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं (१) प्रायद्वीपीय भारत का पश्चिमी तथा दक्षिणी भाग जिसमे महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर तथा केरल के राज्य समिलित हैं और (२) उत्तर-पश्चिमी भारत जिसमे कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पजाब तथा उत्तरप्रदेश के राज्य आते हैं। कोयले तथा पेट्रोलियम का अभाव तथा जलशक्ति की प्रचुरता दोनो कारणों से इन क्षेत्रो मे जलशक्ति के विकास को प्रोत्साहन मिला है। महाराष्ट्र जलविद्युत् उत्पादन मे सभी राज्यों से आगे है। यहाँ टाटा की अधीनस्थ कपनियो ने पश्चिमी घाट पर कई कृत्रिम झीलें बनाई हैं जिनमें नदियों तथा वर्षा का पानी इकट्ठा किया जाता है और जल लगभग १,७५० फुट की ऊँचाई से खोपली, भीवपुरी तथा भीरा के पावर हाउस मे गिराया जाता है। इन्हें कल्याण तथा ट्राबे के कोयला चालित पावर हाउसो से सबद्ध कर दिया गया है। हाल मे कृष्णा की सहायक नदी कोयना पर बाँध बाँधा गया है जिससे बडी मात्रा में बिजली उत्पन्न की जाती है। मैसूर मे लगभग सभी बिजली जलशक्ति से उत्पन्न की जाती है। मुख्य स्रोत कावेरी पर शिवसमुद्रम प्रपात और शरवती पर जोगा (गरसोप्पा) प्रपात हैं। मद्रास मे पाईकारा, मेंदूर, पापनाशम, मोमार, पेरियार और कुदा योजनाओ से पनबिजली मिलती है। इन्हें एक दूसरे से तथा मद्रास और मदुरे के थर्मल पावर स्टेशनों से सबद्ध कर दिया गया है। केरल की मुख्य जलविद्युत् योजनाएँ पाल्लीवासल, सगुलम, पोरिंगल तथा इडिक्की हैं। उत्तर-पश्चिम भारत मे हिमाचल प्रदेश मे जोगिंदरनगर (मडी) एक महत्वपूर्ण जलविद्युत् उत्पादन-केंद्र है। हाल मे भाखडा-नगल योजना के विकसित होने से पजाब हरियाना मे बिजली उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई है। उत्तरप्रदेश मे रिहद योजना, से तथा उडीसा मे हीराकुड बाँध योजना से बडी मात्रा मे पनबिजली उत्पन्न की जाती है।

बिहार तथा पश्चिमी बंगाल मे दामोदर घाटी योजना के अंतर्गत थोड़ा बहुत जलविद्युत् का विकास हुआ है, किंतु यहाँ कोयले की खानो की निकटता के कारण अधिकाश बिजली कोयले से उत्पन्न की जाती है। कोयले से प्राप्त बिजली के प्रमुख उत्पादन केंद्र पश्चिमी बगाल में कलकत्ता, दुर्गापुर और बडेल हैं और बिहार मे बोकारो, पतरात, चद्रपुरा, सिंद्री तथा बरौनी हैं।

भारत में विद्युत् शक्ति का विकास अभी तक बडे शहरो तथा औद्योगिक केंद्रो मे मुख्य रूप से सीमित है। मद्रास, केरल, मैसूर, पजाब तथा उत्तरप्रदेश में इसका उपयोग सिंचाई तथा घरेलू उद्योगो के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रों मे छोटे तथा घरेलू उद्योगो के विकास तथा सिंचाई या अन्य कृषि कार्यों मे तरक्की के लिये आवश्यक है कि यथासभव शीघ्रता से देहातो तथा छोटे शहरो को बिजली की सुविधा प्रदान की जाय।

उद्योग धंधे

भारत प्राचीन काल से उद्योग धधों के लिये प्रसिद्ध रहा है। पहले भारत के सूती तथा रेशमी कपडे, धातु, लकडी तथा हाथीदाँत के सामान ससार के सुदूर देशों मे भेजे जाते थे। इन वस्तुओं का उत्पादन प्राय छोटे पैमाने पर कारीगरो के घरो में होता था। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद इन उद्योगो का बड़ी तेजी के साथ ह्रास होने लगा। इंग्लैंड से मशीन के बने सस्ते सामान, खासकर सस्ते कपड़े भारत मे वड़े पैमाने पर भेजे जाने लगे, अत. यहाँ के कारीगर बेरोजगार हो गए। लगभग सौ वर्ष हुए, भारत मे नए ढग के वड़े पैमाने के उद्योग मुख्यत बबई और कलकत्ता बंदरगाहों मे खुलने लगे और इनकी उत्तरोत्तर तरक्की होती रही। फिर भी भारत औद्योगिक क्षेत्र मे अभी काफी पीछे है और इन उद्योगो मे देश की जनसंख्या का बहुत ही छोटा भाग काम करता है। द्वितीय एव तृतीय पचवर्षीय योजना-कालों में भारत के औद्योगिक विकास पर बहुत जोर दिया गया है, जिससे हाल मे औद्योगिक विकास का वेग काफी तीव्र हो गया है।

देश के औद्योगिक विकास की नई नीति १६५६ ई० के प्रस्ताव में निर्धारित की गई है। इस प्रस्ताव के अनुसार १७ ऐसे उद्योग हैं जिनके भावी विकास की पूरी जिम्मेदारी सरकार की होगी। इनमें लोहा तथा इस्पात, कोयला तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण खनिज, पेट्रोलियम, हवाई जहाज, सामुद्रिक जहाज, बिजली, इंजीनियरिंग, का सामान, परमाणुशक्ति, रेलवे, हवाई यातायात इत्यादि हैं। दूसरे वर्ग में १२ उद्योगों की सूची दी गई है जिनका धीरे धीरे राष्ट्रीयकरण किया जायगा, किंतु निजी क्षेत्र को सहयोग का मौका रहेगा। इनमें कलपुर्जे, कुछ दवाइयाँ, ऐल्यूमिनियम, कुछ रासायनिक पदार्थ, सडक तथा सामुद्रिक यातायात शामिल हैं। अन्य उद्योगों का भावी विकास निजी क्षेत्र के लिये छोड़ दिया गया है। इस प्रस्ताव में यह भी बतलाया गया है कि किन उद्योगो को पहले विकसित करना आवश्यक है और क्या औद्योगिक प्राथमिकता होगी। इस प्रस्ताव के अनुसार सबसे पहला स्थान लोहा तथा इस्पात, भारी रासायनिक पदार्थ, नाइट्रोजनीय खादें, भारी इंजीनियरिंग सामान तथा मशीन बनानेवाले उद्योगों के विकास को दिया गया है। दूसरा स्थान ऐल्यूमिनियम, सीमेंट, रसायनक, लुगदी, रग, फॉस्फेटीय खाद और आवश्यक दवाओ को दिया गया है। तीसरी प्राथमिकता राष्ट्र के वर्तमान महत्वपूर्ण उद्योगो, जैसे जूट, सूती कपडे तथा चीनी के आधुनिकीकरण को दी गई है। चौथा स्थान उत्पादन शक्ति के पूर्ण सदुपयोग को दिया गया है। अत मे उपभोग्य वस्तुओं के, मुख्यत छोटे तथा कुटीर उद्योगो मे, विकास का स्थान है।

सूती कपड़े का उद्योग — यह भारत का सबसे उन्नत और महत्वपूर्ण उद्योग है। सूती कपड़े के कारखानो मे नौ लाख से अधिक मनुष्य काम करते हैं और इसके अतिरिक्त एक करोड जुलाहों (बुनकरो) का जीवननिर्वाह इन उद्योग से होता है। ससार मे सूत तथा कपडे के उत्पादन मे भारत का स्थान तीसरा है। भारत मे इस उद्योग के छह क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण हैं - महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, पश्चिमी बगाल, उत्तरप्रदेश, तथा मध्यप्रदेश। महाराष्ट्र एव गुजरात में भारत के लगभग ४० प्रति शत कारखाने हैं और देश का लगभग दो तिहाई कपड़ा तैयार होता है। महाराष्ट्र में प्रमुख केंद्र बबई है और गुजरात मे अहमदाबाद। ये दो शहर भारत में सूती कपडे के दो सबसे बड़े केंद्र हैं। बबई शहर मे लगभग ६० मिलें हैं और अहमदाबाद मे ६६, किंतु बबई शहर की मिलें बडी हैं और उनका उत्पादन अहमदाबाद का लगभग डेढ गुना है। बबई भारत मे रूई की सबसे बडी मडी है और प्रमुख बंदरगाह होने के कारण अन्य कई आर्थिक तथा व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। मद्रास एव मैसूर राज्यों मे जल विद्युत् शक्ति के विकास से इस उद्योग का विकास सभव हो सका है। मद्रास मे कोयम्बुत्तूर, मदुरै तथा मद्रास शहर महत्वपूर्ण केंद्र हैं और मैसूर मे बेंगलूरु। मद्रास में काफी सूत तैयार किया जाता है जिससे कुटीर उद्योगों मे बड़े पैमाने पर लु गी, साड़ी तथा चादर तैयार किए जाते हैं। उत्तरप्रदेश का प्रमुख केंद्र कानपुर है। इससे उत्तर-पश्चिम दिल्ली भी एक महत्वपूर्ण केंद्र है। पश्चिमी बगाल मे अधिकाश कारखाने हावड़ा तथा कलकत्ता के आसपास स्थित हैं और कलकत्ता भारत मे सूती कपडो का सबसे बड़ा बाजार है। मध्यप्रदेश के मुख्य केंद्र इंदौर, उज्जैन, ग्वालियर, भोपाल इत्यादि हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से भारत इस अवस्था में पहुच गया है कि वह अन्य देशो को कपडा निर्यात कर सके। इस समय ससार के सूती कपडे निर्यात करनेवाले देशों मे जापान सर्वप्रथम है और उसके बाद भारत का स्थान आता है।

जूट उद्योग — भारत के वैदेशिक व्यापार मे इस उद्योग का विशेष महत्व है, क्योंकि भारत के निर्यात मे प्रथम स्थान जूट की बनी चीजों का है और इन्हीं से भारत को सबसे अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। जूट की मिलें मुख्यत. पश्चिमी बगाल मे हुगली नदी के दोनो किनारों पर, कलकत्ता के दक्षिण ६० मील लबे किंतु दो मील चौड़े क्षेत्र में सीमित हैं। छोटे क्षेत्र में केंद्रित होने के कारण यह उद्योग सुसंगठित है और इसका सचालन उत्तम है। अधिकाश कारखाने भारतीय कंपनियो के अधिकार में हैं, किंतु आधे से कुछ कम करघे विदेशी प्रबधक एजेंसी कंपनियों के हाथ मे है जिनमें अधिकाश स्कॉटलैंड की हैं।

ऊनी वस्त्र उद्योग — भारत मे गरम जलवायु होने के कारण इस उद्योग का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है। मुख्य केंद्र पजाब में

धारीवाल, अमृतसर और लुधियाना, उत्तरप्रदेश मे कानपुर, कश्मीर में श्रीनगर, महाराष्ट्र मे बबई तथा मैसूर मे बैंगलूर हैं।

रेशम उद्योग — देश के विभिन्न भागो मे रेशम के कीडे पाले जाते है और उनसे तरह तरह के रेशम तैयार किए जाते है। इनमें मुख्य मलबेरी, टसर, अडी तथा मूंगा हैं। मलबेरी रेशम के कीडे शहतूत की कोमल पत्तियाँ खिलाकर पाले जाते हैं, और इनसे रेशम का उत्पादन मैसूर, पश्चिमी बगाल तथा कश्मीर में होता है। टसर जगली कीडो से प्राप्त किया जाता है और इसके दो प्रधान क्षेत्र मध्य प्रदेश तथा बिहार हैं। अडी और मूंगा लगभग पूर्णत असम से आता है। केवल मैसूर तथा कश्मीर में आधुनिक बिजली चालित सूत्रण (Filatures) है, अन्यथा अधिकाश सूत चर्खे पर लपेटकर तैयार किया जाता है। रेशमी कपडे बनाना मुख्यत कुटीर उद्योग है। श्रीनगर तथा बैंगलूर में रेशम के बडे कारखाने हैं।

लोहा तथा इस्पात उद्योग — भारत में उत्तम कच्चे लोहे की प्रचुरता इस उद्योग के लिये सबसे बडी प्राकृतिक सुविधा है, किंतु कोकिंग कोयला जो कच्चे लोहे को गलाकर लोहा बनाने के लिये आवश्यक है, अपेक्षाकृत कम मात्रा में पाया जाता है। चूना पत्थर तथा मैंगनीज और ऊष्मासह पदार्थ सभी कच्चा लोहा अथवा कोयले के क्षेत्रो के निकट सुलभ हैं। इस उद्योग के विकास के लिये सबसे उपयुक्त क्षेत्र प्रायद्वीपीय भारत का उत्तर-पूर्वी भाग है जिसमे छोटा नागपुर और उससे सटे हुए पश्चिमी बगाल और उडीसा के भाग तथा पूर्वी मध्यप्रदेश समिलित हैं। इसी प्रदेश मे लगभग सभी कच्चे माल के प्रधान क्षेत्र पाए जाते हैं और इस्पात के प्रमुख कारखाने केंद्रित हैं। इसलिये इसे कोयला-इस्पात-क्षेत्र (coal steel belt) की सज्ञा दी गई है। भारत मे लोहा तथा इस्पात उद्योग के छह केंद्र हैं तीन पुराने केंद्र कुल्टी, बर्नपुर (पश्चिमी बगाल), जमशेदपुर (बिहार) और भद्रावती (मैसूर) हैं, तथा तीन नए दुर्गापुर (पश्चिमी बगाल), रूरकेला (उडीसा) तथा भिलाई (मध्यप्रदेश) हैं। इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण जमशेदपुर है और सबसे कम उत्पादन भद्रावती का है। रूरकेला, दुर्गापुर तथा भिलाई के कारखाने भारत सरकार द्वारा द्वितीय पचवर्षीय योजनाकाल मे स्थापित किए गए हैं। यद्यपि लोहा तथा इस्पात के उत्पादन मे इधर काफी वृद्धि हुई, फिर भी माँग उत्पादन से कही अधिक है। इसलिये सभी वर्तमान केंद्रो मे उत्पादन बढाने की योजना है। साथ साथ बिहार मे बोकारो नामक स्थान पर एक नया विशाल कारखाना खोला जा रहा है। इस उद्योग के शीघ्र विकास मे दो बडी कठिनाइयाँ पूँजी तथा प्रशिक्षित टेक्निशियनो की कमी है।

ऐल्यूमिनियम उद्योग — ऐल्यूमीनियम बोक्साइट से बनाया जाता है। यह उद्योग केरल में अलवई, पश्चिमी बगाल मे बेलूर (कलकत्ता) और आसनसोल, बिहार मे मूरी, उडीसा मे हीराकुड, तथा उत्तर-प्रदेश मे पिपरी (रिहद) मे केंद्रित हैं। इसके लिये सस्ती और प्रचुर बिजली का मिलना परमावश्यक है। इसके विकास की बहुत सभावनाएँ हैं, क्योकि यहाँ बोक्साइट का विशाल भडार है, जल विद्युत् उत्पन्न करने की कइ योजनाएँ है और साथ साथ देश मे ऐल्यूमिनियम की बहुत माँग है।

इजीनीयरिंग उद्योग — इसके अतर्गत कई उद्योग समिलित हैं जो मुख्य रूप से लोहा तथा इस्पात से विभिन्न प्रकार के सामान बनाते हैं। इजीनियरिंग उद्योग मुख्यत कलकत्ता, जमशेदपुर, राँची तथा झरिया एव रानीगज के कोयला क्षेत्र मे केंद्रित हैं। बैंगलूर, बंबई, मद्रास और कानपुर मे भी इनका विकास हुआ है।

चीनी उद्योग — भारत दुनिया मे सभी देशों से अधिक गन्ना उत्पन्न करता है और सबसे अधिक चीनी (गुड सहित) यहीं तैयार की जाती है। यदि केवल सफेद चीनी को लिया जाय तो भारत का स्थान ससार में क्यूबा और ब्राज़िल के बाद आता है। भारत मे चीनी के कारखानों मे लगभग दो लाख मनुष्य काम करते हैं और गन्ने की खेती पर लगभग दो करोड़ किसानों और उनके परिवारो की जीविका निर्भर है। अधिकतर कारखाने उत्तरप्रदेश तथा बिहार मे हैं और कई महाराष्ट्र, आध्र, मैसूर तथा मद्रास में हैं। भारत की चीनी का लगभग ६० प्रति शत भाग उत्तरप्रदेश और बिहार उत्पन्न करते हैं। यद्यपि दक्षिण भारत मे इस उद्योग का उत्तर भारत की तुलना मे विकास कम हुआ है, किंतु दक्षिण मे अनेक प्राकृतिक कारणो एव आर्थिक सुविधाओं के कारण इसका सापेक्षिक महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। भारत मे प्रति एकड उत्पादन तथा गन्ने मे मिठास की मात्रा कम है। फिर भी भारत इतनी चीनी पैदा करता है कि उसे विदेश मे मँगाने की आवश्यकता नही पड़ती। १९६४-६५ मे चीनी का उत्पादन ३४ लाख टन था।

सीमेंट उद्योग — सीमेंट बनाने में मुख्यत चूनापत्थर, चिकनी मिट्टी, जिप्सम तथा कोयले की आवश्यकता होती है। इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण चूनापत्थर है और अधिकतर कारखाने चूनापत्थर की खानो के पास ही स्थापित किए गए हैं। कुछ कारखाने चूनापत्थर की जगह अन्य चूनेदार पदार्थो का इस्तेमाल करते हैं। सिंद्री का कारखाना खाद के कारखाने से फेंके गए कैलिसयम कार्बोनेट स्लज काम मे लाता है। चायबासा (बिहार) तथा भद्रावती (मैसूर) के कारखाने लोहा तथा इस्पात के कारखानो द्वारा फेंके गए ब्लास्ट फर्नेस स्लैग पर आधारित हैं। मुख्य उत्पादक बिहार, मद्रास, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा आध्रप्रदेश हैं। बिहार मे इस उद्योग के सबसे अधिक विकसित होने का कारण चूनापत्थर एव कोयले की प्रचुरता तथा निकटता और कलकत्ते का विस्तृत बाजार है। यहाँ यह उद्योग डालमिया नगर, जपला, बजारी, सिंद्री, खेलारी तथा चायबासा मे स्थित है। मध्यप्रदेश (कैमूर, सतना) तथा उडीसा (राजगगपुर) को भी स्थानीय चूनापत्थर तथा दामोदर घाटी से कोयले की सुविधाएँ प्राप्त हैं। राजस्थान में मुख्य केंद्र सवाई माधोपुर और लखेरी हैं, तथा गुजरात में पोरबदर, द्वारका, सिक्का इत्यादि। इमारतो, सडकों तथा नदीघाटी योजनाओ के लिये सीमेंट की बहुत आवश्यकता है। इसलिये सीमेंट के उत्पादन को तेजी से बढाया जा रहा है, फिर भी देश मे सीमेंट की बराबर कमी रही है।

कागज उद्योग — कागज भारत मे मुख्यत सवाई घास और बाँस से तैयार किया जाता है। मुख्य क्षेत्र पश्चिमी बंगाल है, जहाँ टीटागढ़, काकीनाडा, नईहाटी तथा रानीगज के कारखाने हैं। इन्हें बगाल, बिहार और उडीसा से बाँस मिल जाता है। बिहार मे कागज का कारखाना डालमियानगर में है तथा उडीसा मे ब्रजराजनगर मे। ये तीनो राज्य मिलकर भारत के उत्पादन का ६० प्रति शत कागज उत्पन्न

करते हैं । अन्य उल्लेखनीय केंद्र सहारनपुर (उत्तर प्रदेश), जगाधरी (पजाब), सीरपूर (आंध्र) तथा नेपानगर (मध्यप्रदेश) हैं। नेपानगर अखबारी कागज बनाता है। कागज के उद्योग मे अचानक वृद्धि के कारण तथा बांस की खेती वैज्ञानिक ढग से सचालित न होने के कारण कच्चे मालों की कमी हो गई है। कागज और लुगदी बनाने में गन्ने की खोई का उपयोग किया जा सकता है और दक्षिण भारत मे कुछ कारखाने खोई का उपयोग करते ही हैं।

काच का उद्योग — कांच एक विशेष प्रकार की बालू से तैयार किया जाता है जो मुख्य रूप से इलाहाबाद के दक्षिण शकरगढ के पास पाई जाती है। काच बनाने की फैक्ट्रियाँ अधिकतर उत्तर प्रदेश मे हैं जहाँ मुख्य केंद्र फिरोजाबाद, शिकोहाबाद, नैनी (इलाहाबाद), हाथरस तथा बहजोई हैं। फिरोजाबाद भारत में चूडियो का सबसे प्रमुख केंद्र है। आसनसोल और जमशेदपुर के पास कादरा, तथा भरकुंडा (हजारीबाग) मे चादर काच के बडे कारखाने हैं। कलकत्ता और बबई के पास कई कारखाने है, जहाँ लैंप, ट्यूब, गिलास, फ्लास्क इत्यादि चीजें बनाई जाती हैं।

चमडा उद्योग — भारत मे जानवरो से इतना अधिक चमडा और खाल मिल जाती है कि न केवल देश मे चमडा कमानेवाले उद्योग की जरूरतो की पूर्ति होती है, बल्कि कच्चा चमडा, खाल तथा कमाया हुआ चमडा निर्यात भी किया जाता है। अधिकाश बडे कारखाने उत्तरप्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बगाल मे स्थित हैं। उत्तर भारत मे सबसे प्रमुख केंद्र कानपुर है, किंतु बाटानगर (कलकत्ता), मोकामाघाट तथा दीघा (पटना के पास, बाटा) भी प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारत मे मद्रास चमडा उद्योग का महत्वपूर्ण केंद्र है।

यातायात के साधन — भारत मे सडकों की कुल लबाई लगभग ४,४१,००० मील है जिसमें केवल १,४७,००० मील पक्की सडकें (देखें, मानचित्र ७) हैं, जो यहाँ की जनसख्या और क्षेत्रफल को देखते हुए कम है। प्रति हजार मनुष्य के लिये भारत में केवल एक मील सडक है। महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास तथा मैसूर में पक्की सडको की लबाई कच्ची सडको से अधिक है। इसके विपरीत असम और बिहार मे कच्ची सडको की लबाई पक्की सडको से नौ गुनी, पश्चिमी बगाल मे छह गुनी और राजस्थान, पजाब तथा उत्तर प्रदेश मे लगभग ढाई गुनी है। भारत की सडको के चार वर्ग हैं राष्ट्रीय मुख्य मार्ग, राजकीय मुख्य मार्ग, जिलों की सडकें और गाँव की सडकें। राष्ट्रीय मुख्य मार्ग देश की प्रमुख सडकें हैं जो देश के विभिन्न भागो को जोडती हैं और जिनका आर्थिक एव सैनिक दृष्टि से राष्ट्र के लिये बडा महत्व है। इनके द्वारा राज्य की राजधानियाँ, बडे बडे औद्योगिक एव व्यापारिक केंद्र तथा बदरगाह एक दूसरे से मिला दिए गए हैं। इनकी लबाई लगभग १५,००० मील है। राज्य मुख्य मार्ग राज्यो की प्रमुख सडकें हैं जिनके निर्माण और मरमत की जिम्मेदारी राज्य सरकार की है। इनकी लबाई लगभग ३५,००० मील है। जिलो की सड़को की जिम्मेदारी जिलापरिषदो की है और इनका काम उत्पादन क्षेत्रों को मडियो और बाजारो से जोडना है। इनमे से अधिकाश कच्ची हैं। इनकी लबाई लगभग १,७४,००० मील है। गाँव की सड़कें पूर्णत कच्ची हैं और वर्षा के दिनो मे इन्हे काम मे लाना प्राय असभव हो जाता है। इनकी लबाई १,८७,००० मील है। सड़को के विकास के लिये एक बीस वर्षीय योजना (१९६१–८१)
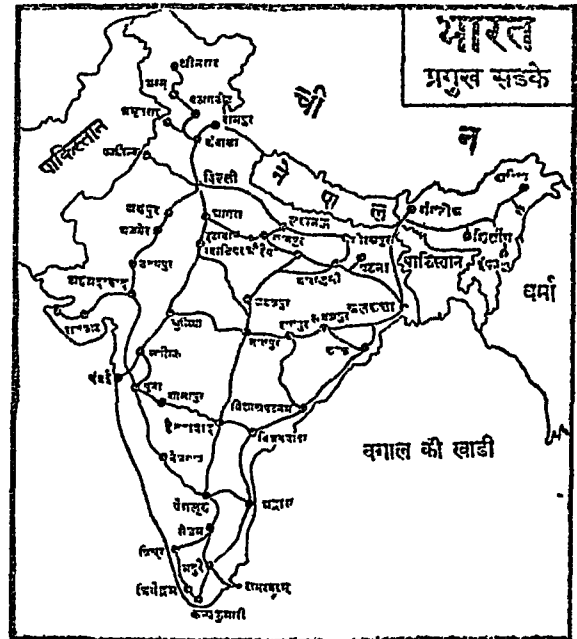
मानचित्र ७

बनाई गई है जिसका ध्येय सडको की कुल लबाई १९८१ ई० तक ६.५७ लाख मील करना है। देहातो की आर्थिक उन्नति एव विकास के लिये यह परमावश्यक है कि सडको का जल्द से जल्द विस्तार किया जाय और उन्हें यातायात की सुविधा प्रदान की जाय।

भारत की रेल व्यवस्था केंद्रीय सरकार के हाथ मे है और इसमे लगभग १२ लाख आदमी काम करते हैं। भारत मे रेलवे लाइनो की कुल लबाई लगभग ३६ हजार मील (५७ हजार किमी०) है। प्रति दिन लगभग ४३ लाख मनुष्य यात्रा करते हैं और कोई साढ़े चार लाख टन सामान ढोया जाता है। रेलें जितना सामान ढोती हैं उनमे तौल के अनुसार सबसे मुख्य कोयला है और उसके बाद खाद्यान्न, यद्यपि रेलवे को सबसे अधिक आमदनी कृषि पदार्थों के ढोने से होती है। भारत मे सबसे पहली रेलवे १८५३ ई० मे बबई और थाना (२१ मील) के बीच बनी। सन् १८५७ तक कुछ और लाइनें खोली गईं जिनमे बबई से कल्याण (३३ मील) कलकत्ता से रानी गज (१२० मील) और मद्रास से आरकोनम (३९ मील) की लाइनें थी। सन् १८८० तक रेल लाइनो की लबाई लगभग ८, ५०० मील हो गई और १९०० ई० तक प्राय सभी प्रमुख लाइनें बन गई थी। शुरू मे रेल मार्गों पर विभिन्न कपनियो का अधिकार था, लेकिन बाद मे सरकार ने उन्हें अपने अधिकार मे ले लिया। देश के भिन्न भागों में रेल की पटरियो की चौडाई भिन्न है। बडी लाइन मे रेल की पटरियो के बीच पांच फुट छह इच का अतर होता है, मीटर गेज अथवा छोटी लाइन मे तीन फुट ३$\frac{3}{8}$ इच का, और सँकरी लाइन (नैरोगेज) मे दो फुट छह इच या कभी कभी केवल दो फुट का। बडी लाइन (ब्राड गेज) की कुल लबाई १६,८७५

मील, मीटर गेज की १६,६२५ मील हजार और नैरोगेज की ३,१२५ मील है ।

भारत मे जलमार्ग का महत्व अपेक्षाकृत कम है। गगा, ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियाँ एव दक्षिण भारत मे गोदावरी तथा कृष्णा नदियाँ और कुछ नहरें महत्वपूर्ण हैं जिनपर काफी माल ढोया जाता है। नदी यातायात का विशेप महत्व उत्तर पूर्वी भारत मे है जिसमें असम, पश्चिमी बगाल और बिहार के राज्य शामिल हैं। असम और कलकत्ता के बीच जो लगभग २५ लाख टन माल प्रति वर्ष ढोया जाता है, उसका आधा भाग नदियो द्वारा आता है। इसमे एक बडी असुविधा यह है कि ब्रह्मपुत्र नदी का निचला भाग पूर्वी पाकिस्तान मे पडता है ।

हवाई मार्ग का उपयोग अधिकतर डाक तथा यात्रियो के लिये होता है। भारत के लगभग सभी मुख्य नगर हवाई मार्गो के द्वारा सबधित हैं। सभी हवाई मार्ग भारत सरकार के अधिकार मे हैं। भारत में कुल ९० हवाई अड्डे हैं जिनमे तीन अतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं जहाँ भारतीय वायुयानो के अलावा विदेशी वायुयान भी नियमित रूप से आते हैं—बबई (शाताक्रूज), कलकत्ता (दमदम) और दिल्ली (पालम)। इडियन एयर लाइन्स देश के अदर तथा कुछ निकटवर्ती देशों जैसे नेपाल, पाकिस्तान, लका के साथ वायु यातायात की व्यवस्था करता है। विदेशी वायु यातायात का प्रवध एअर इंडिया इटरनेशनल कपनी के हाथ में है।

जनसंख्या — सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसख्या ४३·९ करोड है और प्रति वर्ग मील घनत्व ३८४ है। सन् १९५१–१९६१ के बीच आबादी २१·५ प्रति शत बढी है। भारत मे जनसख्या का वितरण असमान है (देखें, मानचित्र ८)। उत्तर भारत के मैदान मे आबादी का घनत्व प्रति वर्ग मील ५०० से अधिक है, हिमालय क्षेत्र और राजस्थान मे आबादी प्राय प्रति वर्ग मील २०० से कम है और दक्षिण के प्रायद्वीपीय पठार मे तटीय मैदानों को छोडकर अधिकाश मे प्रति वर्ग मील घनत्व २०० से ५०० के बीच है। उत्तर भारत के विस्तृत मैदान तथा दक्षिण भारत के तटीय मैदान मे भारत की लगभग एक तिहाई भूमि पर यहा की दो तिहाई आबादी पाई जाती है, क्योकि इन क्षेत्रो मे खेती और भोजन-प्राप्ति की सुविधा है। गगा, सिंधु के मैदान मे ज्यों ज्यों हम पूर्व से पश्चिम जाते हैं, जनसख्या का घनत्व कम होता जाता है। पश्चिमी बगाल मे आबादी का प्रति वर्ग मील घनत्व १,०३२, बिहार में ६९१, उत्तर प्रदेश मे ६४९ और पजाब मे ४३० है। उसी दिशा मे वर्षा की मात्रा भी कम होती जाती है और साथ साथ चावल का महत्व भी कम होता जाता है। सबसे घनी आबादी उन प्रदेशों मे पाई जाती है जहाँ धान की खेती होती है, क्योकि सभी अन्नों से धान की प्रति एकड उपज अधिक होती है। इसी कारण पश्चिमी बगाल के अधिकाश जिलो, उत्तरी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश मे आबादी का घनत्व एक हजार प्रति वर्ग मील से अधिक है। इन्ही कारणो से दक्षिण भारत में केरल मे आबादी का घनत्व प्रति वर्ग मील १,१२७ है। मद्रास मे प्रति वर्ग मील घनत्व ६६९ है, किंतु धान उत्पन्न करनेवाले तटीय मैदानो मे घनत्व अधिक है। असम (२५२ प्रति वर्ग मील), मध्य प्रदेश (१८९), राजस्थान (१५३), हिमाचल प्रदेश (१२४), नागालैंड (५८), अदमान निकोबार (२०) मे आबादी कम है।

मानचित्र ८

ग्रामीण और नगरीय जनसख्या — लगभग ८२ प्रति शत भारतवासी देहातों मे रहते हैं और केवल १८ प्रति शत शहरों मे लगभग ३६ करोड मनुष्य ग्रामीण हैं और ८ करोड शहरी। भारत मे कुल ५,६४,७१८ गाँव है तथा २,६९० नगर। कुल शहरी आबादी का लगभग आधा भाग ऐसे १०७ शहरों में है जिनकी आबादी एक लाख या अधिक है। इन मे १३ ऐसे नगर हैं जिनमें से प्रत्येक की आबादी पाँच लाख से अधिक है। ये कलकत्ता (हावडा सहित ३४४ लाख), बृहत्तर बबई (४१ ५ लाख), दिल्ली (२३ ४ लाख), मद्रास (१७ ३ लाख), हैदराबाद (१२ ५ लाख), अहमदाबाद (१२ १ लाख), बेंगलूर (१२ १ लाख), कानपुर (९·७ लाख), पूना (७ २ लाख), लखनऊ (६ ६ लाख), नागपुर (६ ४ लाख) वाराणसी (५ ७ लाख) तथा आगरा (५·९ लाख) हैं।

लिंग अनुपात — भारत मे स्त्रियो की सख्या पुरुषो की तुलना मे कम है। देश मे लगभग २२ ६६ करोड पुरुष और २१ २९ करोड स्त्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रति १,००० पुरुषो पर ९४१ स्त्रियाँ हैं। ग्रामीण आबादी में लिंग अनुपात ९६३ और शहरी आबादी मे ८४५ है। यह लिंग अनुपात पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमरीका के विपरीत है जहाँ स्त्रियो की सख्या पुरुषो से अधिक है। भारत में जो शहर जितने बडे हैं वहाँ स्त्रियो की सख्या उतनी ही कम है। बृहत्तर बबई मे लिंग अनुपात ६६३, कलकत्ता मे ६१२, दिल्ली मे ७७७, कानपुर मे ७३९, अहमदाबाद मे ८०४, मद्रास मे ९०१ और हैदराबाद मे ९२९ है। दक्षिण भारत के शहरो मे स्त्रियो और पुरुषो की सख्या मे उतनी विषमता नही है जितनी उत्तर अथवा पश्चिमी भारत मे। भारत में कुछ ऐसे प्रदेश हैं जहाँ स्त्रियो की सख्या पुरुषो से अधिक है जैसे, पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा उत्तरी बिहार, उत्तरप्रदेश के हिमालय क्षेत्र, उडीसा तथा पूर्वी मध्यप्रदेश, आध्र तट, तामिलनाड तथा

मलाबार तट, कोकण तट तथा कच्छ और पूर्वी असम तथा असम के पहाडी क्षेत्र। इन सभी क्षेत्रो से पुरुष काम की खोज मे अन्य क्षेत्रो मे जाते हैं।

जनसख्या का व्यावसायिक विन्यास—भारत मे कुल १८ ८४ करोड श्रमिक हैं जिनमे १२ ९० करोड पुरुष और ५ ९४ करोड स्त्रियाँ हैं। इनमे से ९ ९५ करोड अर्थात् आधे से अधिक किसान हैं और ३ १५ करोड (१७%) कृषि मजदूर हैं। खानो, वनो, बगानो, फल उद्यानो इत्यादि मे काम करनेवालो तथा मछली पकडने वालों की सख्या ५२ लाख है। कुटीर उद्योगो मे काम करनेवालो की सख्या एक करोड २० लाख और अन्य उद्योग धधो मे ८० लाख है। व्यापार, वाणिज्य मे ७६ लाख, परिवहन, सग्रह तथा यातायात मे ३० लाख, निर्माण कार्य मे २१ लाख तथा दूसरी नौकरियो मे १ करोड ६५ लाख व्यक्ति लगे हुए हैं। ८० प्रति शत काम करनेवाली स्त्रियाँ कृषिकार्य मे लगी हुई हैं। अन्य व्यवसायो मे स्त्रियो की सख्या बहुत कम है। पुरुष श्रमिकों मे ९५ प्रति शत कृषिश्रमिक हैं।

जनसख्या समस्या—भारत की विशाल जनसख्या अपनी जीविका के लिये मूलत कृषि पर निर्भर है, किंतु प्रत्येक व्यक्ति पर कृषिभूमि एक एकड से भी कम है। जनसख्या बराबर बढती जा रही है, जबकि कृषिभूमि के क्षेत्रफल मे कोई खास वृद्धि नही हुई है। दो फसली जमीन तथा सिंचित क्षेत्रो के क्षेत्रफल मे भी जनसख्या के अनुपात मे वृद्धि नहीं हुई है। उत्पादन मे अथवा आय मे जो भी वृद्धि होती है वह जनसख्या की वार्षिक वृद्धि के कारण समाप्त हो जाती है। अत देश में गरीबी और बेकारी का जनसख्या की वृद्धि से घनिष्ट सबध है। इन समस्याओ के हल के लिये इतना ही आवश्यक नहीं है कि कृषि और उद्योग धधो का तीव्रता से विकास किया जाय, बल्कि साथ साथ जनसख्या की वृद्धि को भी नियत्रित करना आवश्यक है।

धर्म — १९६१ की जनगणना के अनुसार भारतवासियो मे ८३ ५ प्रति शत हिंदू, १० ७ प्रति शत मुसलमान, २ ५ प्रति शत ईसाई, १ ८ प्रति शत सिख तथा ० ५ प्रति शत जैन हैं।

साक्षरता — पढ़े लिखे लोगो की सख्या २४ प्रति शत है। सबसे अधिक साक्षर लोग केरल (४६ ८ प्रति शत), दिल्ली (५२ ७ प्रति शत), पांडिचेरी (३७ ४ प्रति शत) और अदमान निकोबार द्वीपसमूह मे (३३ ६ प्रति शत) मिलते हैं। मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र तथा पश्चिमी बगाल मे भी प्रति शत २९ से अधिक है। बिहार मे साक्षर लोगो की सख्या १८ ४ प्रति शत और उत्तर प्रदेश में १७ ६ प्रति शत है। सन् १९५१–६१ के बीच साक्षरता का प्रति शत १४ ६ से बढकर २४ हो गया है। पुरुषो मे यह प्रति शत ३४ ४ है और स्त्रियो मे १२ ९।

भाषाएँ—भारत मे १४ प्रधान भाषाएँ हैं। भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी है। लगभग ४० प्रति शत लोग हिंदी (उर्दू सहित), ७ ५ प्रति शत तेलगू, छह प्रति शत मराठी, छह प्रति शत तमिल, छह प्रति शत बँगला, चार प्रति शत गुजराती तथा तीन प्रति शत से कुछ अधिक लोग कन्नड, मलयालम और उडिया भाषा भाषी हैं।

वैदेशिक व्यापार तथा बदरगाह—भारत का अधिकाश वैदेशिक व्यापार समुद्र द्वारा छह बदरगाहो से होता है—बबई, कलकत्ता, मद्रास, विशाखापत्तनम, कोचीन तथा काडला। भारत का ४६ प्रति शत वैदेशिक व्यापार बबई द्वारा होता है। यहाँ से निर्यात की तुलना मे आयात अधिक होता है। यह भारत का प्रमुख यात्री बदरगाह भी है। कलकत्ता बदरगाह हुगली नदी पर बगाल की खाडी से ८० मील दूर स्थित है। तट से दूर होने के कारण बडे जहाज ज्वार भाटे के समय आते हैं। इसकी पृष्ठभूमि बहुत विस्तृत और उपजाऊ है। यहाँ से बबई की तुलना मे निर्यात अधिक होता है। मद्रास का बदरगाह कृत्रिम है। विशाखापत्तनम मे समुद्री जहाज बनते हैं तथा यहाँ से मैंगनीज और कच्चा लोहा निर्यात किया जाता है। कोचीन से मसाले निर्यात किए जाते हैं। स्वतत्रता के बाद काडला (कच्छ की खाडी पर स्थित) बदरगाह का विकास हुआ है। यहाँ आयात निर्यात से कही अधिक है।

कई ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके निर्यात मे भारत का स्थान सर्वप्रथम है, जैसे जूट के बने सामान, चाय, अभ्रक, मैंगनीज, लोहा इत्यादि। फिर भी देश के आकार तथा जनसख्या की दृष्टि से वैदेशिक व्यापार कम है। भारत सरकार की नीति, जहाँ तक सभव हो सके, आयात को कम करने और निर्यात को बढाने की है, किंतु फिर भी आयात प्राय निर्यात से अधिक अनुपात मे बढता रहा है। आयात और निर्यात दोनो मे तैयार माल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भारत का मुख्य आयात मशीनरी तथा सवारी के सामान है, जो मुख्यत ब्रिटेन, सयुक्त राज्य, अमरीका, जर्मनी तथा जापान से आते है। दूसरा महत्वपूर्ण आयात भोज्य पदार्थ है जिसमे गेहूँ और चावल (विशेषकर गेहूँ) प्रधान हैं। अन्य आयात रासायनिक पदार्थ, पेट्रोलियम, लोहा तथा इस्पात, बिजली के सामान, कपास, कागज, ऊन, रबर इत्यादि है। भारत के निर्यात में प्रथम स्थान जूट की बनी चीजो का है, दूसरा स्थान चाय का और तीसरा सूती कपडो का। अन्य महत्वपूर्ण निर्यात वनस्पति तेल (मुख्यत रेंडी का तेल), चमडा तथा चमडे के सामान, कच्चा लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, काजू, तंबाकू, रुई, मसाले, काफी, ऊन तथा लोह हैं। जूट की बनी चीजें मुख्यत सयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन तथा अर्जेंटीना खरीदते है। चाय प्रधानत ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और रूस जाती है। सूती कपडे पश्चिमी एशिया, दक्षिणी तथा पूर्वी अफ्रीका के देशो तथा इगलैंड को जाते हैं। रुई मुख्यत ब्रिटेन तथा जापान खरीदते हैं। भारत के मैंगनीज तथा अभ्रक का मुख्य खरीदार सयुक्त राज्य अमरीका है, और कच्चे लोहे का जापान।

पहले भारत सबसे अधिक ब्रिटेन से व्यापार करता था और अब भी भारत के निर्यात मे ब्रिटेन का ही स्थान प्रथम है। सयुक्त राज्य, अमरीका का भी स्थान आयात और निर्यात दोनो मे काफी महत्वपूर्ण है। ये ही दोनो देश भारत के वैदेशिक व्यापार मे प्रधान है। ब्रिटेन से भारत का व्यापार सतुलित है, किंतु सयुक्त राज्य अमरीका से भारत इतना अधिक माल खरीदता है कि आयात का मूल्य निर्यात से लगभग दुगुना है। जापान, रूस, जर्मनी, फ्रास, स्विट्सरलैंड इत्यादि देशो से भी आयात अधिक महत्वपूर्ण है। भारत के निर्यात के प्रधान खरीदार ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमरीका, रूस, जापान, कैनाडा, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी जर्मनी, लका, मिस्र तथा मध्य और दक्षिण यूरोप के देश हैं।

इतिहास — अत्यत प्राचीन काल से हिमालय और हिंद महासागर

के बीच स्थित भूखड का नाम भारत रहा है। भारत के लबे इतिहास में, उत्तर-पश्चिम से समय समय पर अनेक विदेशी जातियाँ आती रही हैं। सबसे प्रथम महत्वपूर्ण विशाल जनसमुदाय का आगमन आर्यों का हुआ जिनकी भाषा सस्कृत थी। उस समय भी यहाँ सभ्यता ऊँचे स्तर पर थी और कई नगर बसे हुए थे। तब से सदियो तक यहाँ हिंदुत्व का प्रभुत्व रहा। ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के अत मे दो महान् व्यक्तियो ने देश के धार्मिक और सास्कृतिक वातावरण को बदल दिया। वे थे गौतम बुद्ध (५४४–४८३ ई०पू०) और महावीर (५४०–४६८ ई० पू०) जिन्होने क्रमश बौद्ध तथा जैन धर्मों को जन्म दिया। उस समय सबसे प्रमुख साम्राज्य मगध था जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। सिकदर के आक्रमण के समय (३२७-३२५ ई० पू०) गगा के मैदान का अधिकाश भाग नदवश के अधिकार मे था। किंतु तुरत ही चद्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व मे मौर्यवश का उत्थान हुआ। इस वश ने भारत के महान् सम्राट् अशोक (२७४-२३७ ई० पू०) को जन्म दिया और अशोक के साम्राज्य में केवल तमिलनाड छोडकर सारा भारत संमिलित था। मौर्य साम्राज्य के ह्रास के तुरत ही बाद यूनानियों का आक्रमण हुआ और उसके बाद शको का जिन्होंने शक सवत् चलाया। इसके बाद कुषाणो का आक्रमण हुआ। कुषाण वश का प्रमुख राजा कनिष्क था जिसके राज्य के अतर्गत बनारस तक पूरा उत्तर भारत तथा मध्य एशिया के विस्तृत क्षेत्र समिलित थे। तीसरी शताब्दी से गुप्त वश की वृद्धि हुई। इस वश का सबसे विख्यात राजा चद्रगुप्त विक्रमादित्य हुआ जिसके समय मे सस्कृत साहित्य ऊँचे शिखर पर था। यही महाकवि कालिदास का युग था। सातवी शताब्दी मे हर्षवर्धन (६०६-६४७ ई०) उत्तर भारत का सम्राट् बना, किंतु दक्षिण के चालुक्यो ने उसकी प्रभुता को कभी स्वीकार नही किया। हर्षवर्धन साहित्य का बडा प्रेमी तथा स्वय सस्कृत नाटकों का लेखक था। उसके दरबार मे सस्कृत के प्रसिद्ध लेखक बाण रहते थे। हर्ष के ही समय में चीनी यात्री ह्वेन साग भारत आया था और उसने उस समय के इतिहास तथा सभ्यता का महत्वपूर्ण वर्णन लिखा है। ६५० से १२०० ई० तक भारत कई राज्यो मे बँट गया। देश जब विभाजित था, वैसी स्थिति मे ९९९ ई० में महमूद गजनवी ने आक्रमण किया और इसके बाद लगभग ५०० वर्षो तक अफगानी मुसलमानो का राज्य रहा। तत्पश्चात् मध्य एशिया के मगोलों अर्थात् मुगलों के आक्रमण हुए, १३९८ ई० मे तैमूरलग ने दिल्ली तथा उत्तर भारत को लूटा और सन् १५२६ मे बाबर ने दिल्ली के सुलतानों का तख्त उलट दिया। मुगलों का राज्य लगभग दो सौ वर्षों तक रहा। मुगलों के अवसान काल मे देश कई रजवाडो में विभाजित हो गया और दक्षिण मे शिवाजी के नेतृत्व मे तथा पजाब में रणजीतसिंह के नेतृत्व में हिंदुत्व का पुनरुत्थान हुआ। देश के विभाजित होने के कारण यूरोपीय प्रभाव के प्रसार को प्रोत्साहन मिला। सबसे पहले पुर्तगालियो का आगमन हुआ। वास्कोडिगामा १४९८ ई० में कालीकट पहुँचा। १६०० ई० में ब्रिटिश ईस्ट इडिया कपनी की स्थापना हुई। १८वीं शताब्दी के अर्ध भाग तक पुर्तगाली, अग्रेज तथा फासीसी प्रभुत्व के लिये झगडते रहे, अत मे अग्रेजों की विजय हुई। १७५७ ई० से १८५७ ई० तक भारत का अधिकाश ईस्ट इ डिया कपनी के अधिकार मे रहा। सन् १८५७ मे क्राति हुई और सन् १८५८ मे भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई यद्यपि गवर्नर जनरल की नियुक्ति सन् १७७४ से ही शुरू हो गई थी। १५ अगस्त, १९४७ ई० को भारत अग्रेजो के शासन से मुक्त होकर एक स्वतत्र देश हो गया।

सविधान — भारतीय सविधान के अनुसार सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म तथा उपासना की स्वतत्रता, समान सामाजिक स्थिति तथा अवसर प्राप्त होगे। भारत एक प्रभुसत्तासपन्न लोकतत्रात्मक गणराज्य है जिसमे शासन की ससदीय पद्धति अपनाई गई है। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त है जो भारत का नागरिक हो तथा उस निर्धारित तिथि को, जो उपयुक्त विधानमंडल द्वारा नियत की जायगी, २१ वर्ष से कम वय का न हो और जिसको सविधान अथवा किसी कानून द्वारा अन्यत्र वास, पागलपन, अपराध, भ्रष्टाचार अथवा गैरकानूनी कार्य के आधार पर अयोग्य न ठहराया गया हो।

केंद्रीय कार्यपालिका के अतर्गत राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान मत्री के नेतृत्व मे एक मत्रिपरिषद् होती है। राष्ट्रपति का चुनाव सानुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर एकल सक्रमणीय मत द्वारा एक निर्वाचक मडल करता है जिसमें ससद् के दोनों सदनों के तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं। राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार अनिवार्य रूप से भारत का नागरिक, कम से कम ३५ वर्ष की उम्र का तथा लोकसभा का सदस्य बनने का पात्र होना चाहिए। राष्ट्रपति का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है और वह राष्ट्रपति पद के लिये दूसरी बार भी चुना जा सकता है। उपराष्ट्रपति का चुनाव उपर्युक्त विधि द्वारा ससद के दोनो सदनो के सदस्य करते हैं। उपराष्ट्रपति का भी कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है तथा वह राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। राष्ट्रपति को कार्यसचालन में सहायता तथा परामर्श देने के लिये प्रधान मत्री के नेतृत्व में एक मत्रिपरिषद् की व्यवस्था है। प्रधान मत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। अन्य मत्रियो की नियुक्ति के सबध में प्रधान मत्री राष्ट्रपति को परामर्श देता है। यद्यपि मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल राष्ट्रपति की इच्छा पर ही निर्भर करता है, तथापि परिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।

सविधान के अनुसार भारतीय सघ की राजभाषा हिंदी होगी जो देवनागरी लिपि में लिखी जायगी तथा सरकारी कार्यों के लिये भारतीय अको के अतरराष्ट्रीय रूपो का उपयोग होगा किंतु हिंदी के अतिरिक्त अग्रेजी का भी उपयोग सरकारी कार्यों के लिये जारी रखने की व्यवस्था, ससद ने अपने अधिकार के अनुसार की है।

राष्ट्र के प्रतीक — भारत का राष्ट्रीय चिह्न सारनाथ स्थित अशोक के उस सिंहस्तभ की अनुकृति है जो सारनाथ के सग्रहालय मे सुरक्षित है। भारत सरकार ने यह चिह्न २६ जनवरी, १९५० को अपनाया। उसमे केवल तीन सिंह दिखाई पडते हैं, चौथा सिंह दृष्टिगोचर नही है। राष्ट्रीय चिह्न के नीचे देवनागरी लिपि मे 'सत्यमेव जयते' अकित है।

भारत के राष्ट्रीय झडे में तीन समातर आयताकार पट्टियाँ हैं। ऊपर की पट्टी केसरिया रग की, मध्य की पट्टी सफेद रग की तथा नीचे की पट्टी गहरे हरे रग की है। झडे की लबाई चौडाई का अनुपात तीन और आठ का है। सफेद पट्टी पर चर्खे की जगह सारनाथ के सिंह स्तभ वाले धर्मचक्र की अनुकृति है जिसका रग गहरा नीला है। चक्र

का व्यास लगभग सफेद पट्टी की चौडाई जितना है और उसमें २४ अरे हैं।

कवि रवीद्रनाथ ठाकुर द्वारा लिखित 'जन-गण-मन' के प्रथम अश को भारत के राष्ट्रीय गान के रूप मे २४ जनवरी, १६५० ई०, को अपनाया गया। साथ साथ यह भी निर्णय किया गया कि बकिमचद्र चटर्जी द्वारा लिखित 'वदेमातरम्' को भी 'जन-गण-मन' के समान ही दर्जा दिया जायगा, क्योंकि स्वतत्रता सग्राम मे 'वदेमातरम्' गान जनता का प्रेरणास्रोत था।

भारत सरकार ने देश भर के लिये राष्ट्रीय पचाग के रूप मे शक सवत् को अपनाया है। इसका प्रथम मास चैत है और वर्ष सामान्यत ३६५ दिन का है। इस पचाग के दिन स्थायी रूप से अंग्रेजी पचाग के मास दिनो के अनुरूप बैठते हैं। सरकारी कार्यों के लिये अंग्रेजी कैलेंडर के साथ साथ राष्ट्रीय पचाग का भी प्रयोग किया जाता है।

शिक्षा — भारत मे शिक्षा का उत्तरदायित्व मूलत राज्य सरकारो पर है। केंद्रीय सरकार शिक्षा की सुविधाओ मे तालमेल स्थापित करती है, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से उच्च शिक्षा का स्तर निश्चित करती है और अनुसधान तथा वैज्ञानिक एव प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था करती है। शिक्षा की विकास योजनाओ का काम केंद्र तथा राज्य सरकारें मिलकर करती हैं। पिछले १५ वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र मे बहुत प्रगति हुई थी। सन् १६५०–५१ मे प्राथमिक शिक्षा के मान्यता-प्राप्त विद्यालयो की सख्या २ १ लाख थी, जो १६६२-६३ में बढकर ३ ६७ लाख हो गई और इसी अवधि में विद्यार्थियों की सख्या लगभग १८३ लाख से बढकर ३१३ लाख हो गई। माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि जहाँ सन् १६५०–५१ मे कुल २०,८४४ माध्यमिक विद्यालय, लगभग ५२ ३ लाख विद्यार्थी और २ १ लाख अध्यापक थे, वहाँ सन् १६६२–६३ मे विद्यालयो की सख्या ८२,८४६, विद्यार्थियो की सख्या २२६ ७० लाख तथा अध्यापको की सख्या ७ ८६, लाख हो गई। सन् १६६४ मे भारत मे ६२ विश्वविद्यालय थे, जिनमे लगभग १२ लाख विद्यार्थी थे। [प० द०]

भारत की अनुसूचित जातियाँ और कबीले अनुसूचित जातियो की पहली आधिकारिक सूची भारत सरकार के (अनुसूचित जाति) आज्ञापत्र १६३६ के साथ परिशिष्ट रूप में दी गई थी। यह सूची तत्कालीन असम, बगाल, बिहार, बबई, मध्यप्रदेश एव बरार, मद्रास, उडीसा, पजाब और युक्त प्रातो के लिये विशेष रूप से तैयार की गई थी। इसके पूर्व ये जातियाँ दलित वर्गों के रूप मे जानी जाती थी।

२ 'अनुसूचित जनजाति या कबीला' नाम का उपयोग भारत के सविधान के लागू होने से पूर्व नही किया गया था। भारत सरकार के अधिनियम १६३५ मे 'पिछडे कबीलो' का उल्लेख प्रातीय लेजिस्लेटिव असेंबलियो के गठन के सिलसिले में हुआ था; और उसके बाद ही भारत सरकार (प्रातीय लेजिस्लेटिव असेंबलियो) के आज्ञापत्र १६३६ के १३वें अनुच्छेद में इनकी निश्चित सूची दे दी गई। जिन तत्कालीन प्रातो के लिये पिछडे कबीलो का निश्चयीकरण हुआ था, वे थे असम, बिहार, बबई, मध्य प्रदेश, मद्रास व उडीसा।

३ सविधान अपनाए जाने के बाद अनुसूचित जातियो, तथा अनुसूचित कबीलो की भी नई तालिकाएँ राष्ट्रपति द्वारा सविधान की ३४१ एव ३४२ धाराओ की शर्तों के अनुसार अनुज्ञापित की गईं।

४ अनुसूचित जाति की सभाव्य कसौटी यह है कि वह अस्पृश्यता के व्यवहारो से उत्पन्न किसी अनर्हता या कठिनाइयो से उत्पीडित है या नही।

५ आबादी—पिछली दो जनगणनाओ के आधार पर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलो की जनसख्या नीचे दी है .

जनगणना का वर्ष	समिलित कुल सख्या	अनुसूचित जातियो की सख्या	अनुसूचित कबीलो की सख्या
१	२	३	४
१६५१	३६,०६,६१,८६७	५,५३,२७,०२१	२,२५,२५,४७७
१६६१	४३,६०,७२,८६३	६,४५ ०४,११३	२,६८,४६,३००

अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलो की सख्या का अनुपात १६६१ की जनगणना के आधार पर प्राप्त पूरे देश की जनसख्या का क्रमश १४ ६४% तथा ६ ८०% था जबकि यह १६५१ की जनगणना के अनुसार क्रमश १५ ३२% तथा ६ २३% रहा।

६ सवैधानिक सुरक्षा व्यवस्था—भारत का संविधान अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलो के लिये अनेक सुरक्षात्मक व्यवस्थाएँ प्रस्तुत करता है। ये सारी सुरक्षा व्यवस्थाएँ प्रकट रूप मे सविधान की ४६वी धारा मे निहित उस उच्च 'निदेशात्मक सिद्धात' (Directive principle) को लागू करने के कार्य में सुविधा प्रदान करने के लिये उपबधित की गई हैं जो निम्नलिखित हैं :

राज्य जनता के पिछडे वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियो (कबीलो) के लोगो के शैक्षणिक एव आर्थिक हितो की अभिवृद्धि के लिये विशेष सावधानी से प्रदत्त करेगा और सामाजिक अन्याय तथा हर प्रकार के प्रशोषण से उनकी रक्षा करेगा।

ये सुरक्षा व्यवस्थाएँ लोकसभा में तथा राज्यो के विधान मडलो मे सुरक्षित सीटो, सरकारी सेवाओ, आर्थिक, शैक्षणिक तथा सामान्य विकास, नागरिक अधिकारो के सरक्षण इत्यादि विषयो से सबद्ध हैं। इनका विवरण नीचे दिया जाता है

(क) लोकसभा तथा राज्यों के विधानमडलों मे प्रतिनिधित्व — सविधान की ३३०, ३३२ तथा ३३४ धाराएँ अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलों के लिये लोकसभा एव विधानमडलो में सीटो के सरक्षण की व्यवस्था करती है। प्रारभ मे ये सरक्षण सविधान लागू

होने के बाद १० वर्षों तक के लिये किए गए थे। अब यह अवधि संविधान की ३३४वी धारा के एक संशोधन द्वारा १० वर्ष और आगे तक की कर दी गई है।

संविधान की ८१वी तथा ३३०वी धाराओं की शर्तों के अनुसार परिसीमन आयोग (Delimitation commission) ने लोकसभा तथा विधानसभाओ मे चुनाव द्वारा भरी जानेवाली सीटों का निर्धारण विभिन्न राज्यो के लिये जिनमे जम्मू कश्मीर और नागालैंड अपवाद थे, १९६१ की मतगणना के आंकडों के आधार पर किया। ऐसी सीटो की कुल सख्या ४९० निर्धारित हुई जो १९५१ की मतगणना के आधार पर ४८१ थी। इन ४९० सीटो मे ७५ (१९५१ की जनगणना के आधार पर ७४) अनुसूचित जातियो के लिये तथा ३३ (१९५१ मतगणना के आधार पर २९) अनुसूचित कबीलो के लिये हैं। आयोग ने चुनाव के लिये २७ और भी स्थान निर्धारित किए, जम्मू और कश्मीर के लिये छह, नागालैंड के लिये एक, 'नेफा' क्षेत्र के लिये एक, तथा केंद्र के अधीन अन्यान्य राज्यो के लिये १९। १९५१ की जनगणना के आधार पर जम्मू और कश्मीर के लिये छह, 'नेफा' के लिये एक सीट तथा अन्य सघीय राज्यों के लिये १८ सीटें रखी गई थीं, इन १८ स्थानों में से दो अनुसूचित जातियों के लिये तथा दो अनुसूचित कबीलो के लिये सुरक्षित रखे गए थे।

जहाँ तक राज्य की विधानसभाओ की बात थी, परिसीमन आयोग ने १९६१ की मतगणना के आधार पर ३,२३८ सीटों का निर्धारण किया जब कि इसके पूर्व १९५१ की जनगणना के आधार पर निर्धारित सीटो की सख्या ३,१०२ थी। इन ३,२३८ सीटों में ४७१ (१९५१ के जनगणनानुसार ४७०) तथा २२७ (१९५१ के जनगणनानुसार २१) सीटो का सरक्षण क्रमश अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलों के लिये किया गया है।

सविधान की १६४वी धारा में कबीलो के हित के लिये एक पृथक् मत्री की भी गुजायश बिहार, मध्यप्रदेश एव उडीसा के राज्यो के लिये की गई है। इस मत्री पर ही अनुसूचित जातियो तथा पिछडे वर्ग के भी हितो की रक्षा का प्रभार रहेगा। असम मे भी, सविधान के छठे अनुच्छेद की धारा तीन, पैरा १४ के अनुसार राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्य के स्वशासित जिलों तथा स्वशासित क्षेत्रों के लिये जनकल्याण का प्रभार, मन्त्रियों मे से किसी एक को विशिष्ट रूप से सौंप दे। (नीचे अनुच्छेद ५ का अनुभाग (१) तथा (२) देखिए) किंतु तथ्य यह है कि व्यवहार रूप मे उन सभी राज्यो मे, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र अथवा अनुसूचित कबीले हैं, कबीलों के जनकल्याण के लिये मन्त्रियों की नियुक्ति कर दी गई है, जो अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिये भी उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त व्यवहारत सभी ऐसे राज्यो, अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित जातियो के किसी एक व्यक्ति को भी मन्त्रिपद दिया गया है, यद्यपि सविधान में ऐसा कोई प्रावधान नही है।

(ख) राज्य सेवाओं मे प्रतिनिधित्व — सविधान की ३३५वी धारा मे इस बात की गुजायश रखी गई है कि सघ अथवा राज्य की सेवाओ एव पदों के लिये नियुक्तियाँ करते समय प्रशासन की क्षमता को बनाए रखने का ध्यान रखते हुए अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलो के दावों पर भी विचार किया जाय। १६ (४) वी धारा राज्यों के लिये इस बात की गुजायश रखती है कि वह नागरिकों की ऐसी किसी पिछडी जाति के लाभार्थ नियुक्तियों अथवा पदो को सुरक्षित रखे जिसके सबध में वह समझती हो कि राज्य की सेवाओं मे उसका उपयुक्त प्रतिनिधित्व नहीं हो सका है।

१६वी मुख्य धारा मे इस बात की गुजायश रखी गई है कि सरकारी नौकरियो के मामले मे धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, वश, जन्मस्थान, आवास आदि अथवा इनमे मे किसी एक का भी विचार किए बिना ही अवसर प्रदान करने मे समानता बरती जाय।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भारत सरकार ने निश्चय किया है कि जनवरी, १९५० के बाद सेवाओ मे जो स्थान रिक्त हों और जिनकी आपूर्ति भारतव्यापी आधार पर प्रत्यक्ष रूप से की जाय, उनमें अनुसूचित जातियों एव कबीलो के लिये क्रमश १२½ तथा ५ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे जायँ। तीसरी एव चौथी श्रेणी के पदो के लिये सीधी भर्ती के लिये जो सामान्यत किसी स्थान अथवा क्षेत्र के प्रत्याशियों को आकर्षित करती है, प्रदेशों, सघीय राज्यों मे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों की जनसख्या के आनुपातिक आधार पर स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं।

केंद्रीय सरकार की सेवाओ के लिये नियुक्तियो के विषय में अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलो के लिये कुछ और भी सुविधाएँ दी गई हैं, जैसे :

(क) नियुक्ति के लिये निर्धारित अधिकतम उम्र की सीमा में पाँच वर्ष की छूट तथा तत्सबधी किसी भी परीक्षा मे बैठने अथवा चुने जाने के लिये निर्धारित शुल्क मे चतुर्थांश की कटौती।

(ख) परीक्षा द्वारा सीधी भरती किए जाने की स्थिति में केंद्रीय लोकसेवा आयोग तथा नियुक्ति करनेवाले अन्य अधिकारियो को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलो के वैसे प्रत्याशियों को अपना विशेष अनुमोदन देने की स्वतन्त्रता जो परीक्षा मे कुछ कम अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए हों।

(ग) जहाँ भरती परीक्षा द्वारा न होकर अन्य किसी जरिए होती हो, नियुक्ति अधिकारियो को इस बात की छूट है कि वे अनुसूचित जातियों एव अनुसूचित कबीलो के प्रत्याशियों के लिये अर्हता का कुछ नीचा स्तर मान्य समझें, बशर्ते कि वे प्राविधिक एव शैक्षणिक योग्यता की अल्पतम सीमा पूरी करते हो।

इसी भाँति विभिन्न राज्य सरकारो ने भी अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलो के लिये मुख्यत राज्य मे उनकी जनसख्या के आधार पर जगहें सुरक्षित कर दी हैं। इन्होंने भी उपर्युक्त सभी अथवा अन्य कई सुविधाएँ भी अनुसूचित या परिगणित जातियो और परिगणित कबीलों को दे रखी हैं।

अनुसूचित जातियो और अनुसूचित कबीलो के प्रत्याशियों के शैक्षणिक स्तर को ऊँचा करने तथा उन्हें अखिल भारतीय प्रतियोगितात्मक परीक्षाओ के लायक तैयार करने के लिये केंद्रीय सरकार ने इलाहाबाद तथा बंगलोर मे स्थानीय विश्वविद्यालयो द्वारा एक परीक्षापूर्व प्रशिक्षण का कार्यक्रम आरभ किया है।

(ग) अस्पृश्यता निवारण

अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई है और सविधान की १७वी धारा के अनुसार 'अस्पृश्यता' का किसी भी रूप मे व्यवहार निषिद्ध ठहराया

गया है। अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी भी प्रकार की अनर्हता को बलात् लागू करना इस धारा के अतर्गत कानून द्वारा दडनीय घोषित कर दिया गया है।

(घ) अनुसूचित जातियो और अनुसूचित कबीलों के नागरिक अधिकारो की सुरक्षा तथा उनका शोषण न होने देने की व्यवस्था—

सविधान की १५वी धारा किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमे किसी एक के आधार पर इन मामलो मे भेद भाव बरतने का निषेध करती है — (अ) दूकानो, सार्वजनिक जलपानगृहो, होटलो तथा सार्वजनिक मनोरजनगृहो मे प्रवेश अथवा (आ) कुओ, तालावो, नहाने के घाटों, सडको तथा ऐसे सार्वजनिक स्थानो का उपयोग, जो पूर्णतया अथवा आशिक रूप से गए सरकारी खर्च से बने हो या सार्वजनिक उपयोग के लिये घोषित किए गए हो। धारा २६ (२) के अतर्गत किसी भी नागरिक को किसी शिक्षण सस्था मे, जो सरकार द्वारा चलाई जाती हो अथवा सरकारी कोष से सहायता पाती हो, मात्र किसी धर्म, नस्ल, जाति, भाषा अथवा इनमे से किसी एक के भी आधार पर प्रवेश करने से रोका नही जा सकता। सविधान की उपर्युक्त शर्तों के सदर्भ मे राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह सामाजिक एव शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे नागरिकों के किसी भी वर्ग, अनुसूचित जातियो अथवा अनुसूचित कबीलो के उत्थान के लिये विशेष सुविधाएँ प्रदान करे।

धारा १९ अन्य बातो के साथ इस बात की भी सुरक्षापूर्ण सुविधा प्रदान करती है कि कोई भी व्यक्ति भारत के पूरे राज्य मे कहीं भी बेरोकटोक आ जा सकता है, ठहर सकता अथवा बस सकता है तथा सपत्ति प्राप्त या अधिकृत कर सकता है, अथवा उसे इच्छानुसार बेच दे सकता है। इस मामले मे भी राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि इन अधिकारो के उपयोग पर सार्वजनिक हित की दृष्टि से अथवा किसी परिगणित कबीले के हित की रक्षा के लिये युक्तियुक्त सीमा तक बधन लगा सके।

सविधान की २३वी धारा के अनुसार आदमियो का बेचा या खरीदा जाना, बेगार, तथा अन्य सभी प्रकार के बलात् श्रम निषिद्ध करार दिए गए हैं।

सविधान के उपर्युक्त प्रतिबध अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित कबीलो के हितो की रक्षा के लिये बडे ही सहायक सिद्ध हुए हैं। पिछडे तथा अज्ञानी होने के कारण ये लोग अवाछनीय व्यक्तियो द्वारा, जिनमे ठीकेदार, महाजन तथा सरकारी महकमो के छोटे अधिकारी तक आते हैं, बराबर बरगला लाए जाते रहे हैं। सरकार ने अब इन्हे ठगे जाने या शोषित किए जाने से बचाने के सबध मे उचित कदम उठाए हैं।

(ङ) आर्थिक, शैक्षणिक एव सामान्य विकास — पचवर्षीय योजनाओ के अतर्गत होनेवाले सामान्य विकास कार्यक्रमो से अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित कबीलो को भी, सामान्य जनसख्या का अग होने के नाते, समान रूप से लाभ उठाने का हक है। तथापि ऐसा देखा गया कि इन लाभो मे अपना उपयुक्त हिस्सा प्राप्त करने मे ये असमर्थ रहे हैं। अत देश मे इन समुदायों को सामान्य स्तर पर लाने के लिये सविधान की ४६वी तथा २७५वी धाराओं के अनुसार विशेष कार्यक्रम तैयार किए गए हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे इन लोगो के लिये कोई सुनियोजित कार्यक्रम नही बनाया गया था। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये केवल ३२ करोड रु० (परिगणित जातियो के लिये सात करोड तथा परिगणित कबीलो के लिये २५ करोड रु०) की व्यवस्था की गई थी। दूसरी योजना की अवधि के अतर्गत ही इनके लिये सुनियोजित कार्यक्रमो की व्यवस्था हुई। इस योजना मे ७९ करोड रुपयों की रकम परिगणित जातियो (२९ करोड) तथा परिगणित कबीलो (५० करोड) के लिये निर्धारित की गई। इन कल्याणकारी योजनाओ मे केंद्र तथा राज्य सरकारो ने ५०.५० के अनुपात मे हिस्सा बटाना स्थिर किया। द्वितीय योजना के कार्यकाल मे अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलो के हित के लिये कुछ ऐसे भी महत्वपूर्ण कार्यक्रम स्थिर किए गए जिनके शत प्रति शत व्यय की पूर्ति केंद्र सरकार के ही अनुदान से करना स्थिर हुआ। योजना मे इन समुदायो के लिये निर्धारित कुल ७९ करोड रुपयो की रकम मे से ५२.०६ करोड रुपए (जिसमें २३.०८ करोड़ अनुसूचित या परिगणित जातियो तथा २८.९८ करोड परिगणित कबीलो के लिये है) राज्य क्षेत्र द्वारा (५०.५० के साझे पर) निर्धारित की गई है तथा २६.७४ करोड रु० की रकम (५.७३ करोड परिगणित जातियो के लिये तथा २१.०१ करोड परिगणित कबीलो के लिये) केंद्रीय सरकार के जिम्मे (शतप्रतिशत अनुदान स्वीकृति के आधार पर) रखी गई। उपलब्ध सूचनाओ से पता चलता है कि प्रथम योजना काल मे जहाँ ३२ करोड़ रु० की रकम स्थिर की गई थी, केवल २६.९१ करोड रु० का व्यय ही सभव हो सका (इसमें ७.०८ करोड परिगणित जातियो के लिये तथा १९.८३ करोड परिगणित कबीलो के लिये था)। दूसरी योजना के काल मे ७९ करोड की निर्धारित रकम मे से ७०.६६ करोड ही खर्च हुए।

प्रथम तथा द्वितीय योजना कालो में अनुसुचित कबीलों के लिये अनेक विकास कार्यक्रमो को कार्यान्वित किया गया। इनमे से मुख्य ये हैं—जमीन की बदोबस्ती, पडती भूमि को कृषि योग्य बनाना, बीजो का वितरण तथा प्रदर्शन फार्मों की स्थापना, कर्मचारियो की तथा वनश्रमिको की सहकार समितियो की स्थापना, सचारव्यवस्था मे सुधार, विशिष्ट वृत्तियो, शुल्को से मुक्ति तथा वजीफो की सुविधाएँ (मैट्रिक पास करने के पहले तथा बाद की), नए स्कूलो तथा आश्रय-विद्यालयो की स्थापना, पीने योग्य जल की आपूर्ति, आवासो की दशा मे सुधार, दवाखानो, जच्चागृहो तथा शिशुकल्याण केंद्रों तथा चलते फिरते स्वास्थ्य सगठनो की स्थापना, इत्यादि इत्यादि।

जहाँ तक अनुसूचित अर्थात् परिगणित जातियो का सवाल था, प्रथम दो पचवर्षीय योजनाओ मे जो कार्य हाथ मे लिए गए उनमे सामान्यत उनके शैक्षणिक विकास एव अस्पृश्यता निवारण पर ही जोर दिया गया था।

प्रथम दो पचवर्षीय योजनाओ में प्राप्त अनुभवो के आधार पर तृतीय पचवर्षीय योजना मे एक काफी सुविचारित कार्यक्रम बनाया गया। एतदर्थ १०० करोड़ रु० की एकमुश्त रकम पूरी योजनावधि के लिये निर्धारित की गई जिसमे से ४० करोड रु० (८ करोड़ रु०

केंद्रीय निधि से तथा ३२ करोड़ राज्यनिधि से) परिगणित जातियों के लिये और ६० करोड़ रु० (२२ करोड़ रु० केंद्रीय निधि से तथा ३८ करोड़ रु० राज्य निधि से) परिगणित कबीलों के लिये था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित कबीलों के लिये जो कार्यक्रम निश्चित हुआ उसके अंतर्गत ये कार्य आते हैं—रोपनी के काम (shifting cultivation) में लगे हुए व्यक्तियों का पुनर्वासन (rehabilitetion), परिगणित कबीलों की वन श्रमिक सहकार समितियों के कार्यसंचालन की व्यवस्था, कबाइली क्षेत्रों के किसानों तथा बढ़ई, लोहार आदि को विशेष रुपया उधार मिलने की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बहुद्देशीय सहकार समितियों की स्थापना, भूमिसुधार, परती भूमि को कृषियोग्य बनाना तथा भूमि संरक्षण, सिंचाई की छोटी मोटी सुविधाएँ, उन्नत बीज, खाद, औजार तथा बैलों की आपूर्ति, उन्नत तरीकों के प्रदर्शन-प्रशिक्षण की सुविधाओं की व्यवस्था, मवेशी, मत्स्योद्योग, कुक्कुट, सूअर, भेड़ पालन का विकास, प्रशिक्षण तथा उत्पादन के मिले जुले केंद्रों की स्थापना और ग्रामोद्योगों में लगे देहाती कारीगरों को सहायता तथा सलाह देने की व्यवस्था, शिक्षा की सभी अवस्थाओं में फीस का माफ किया जाना, छात्रवृत्तियों तथा छात्रावासों की सुविधा, प्राविधिक प्रशिक्षण के लिये वजीफे एवं शुल्क मुक्ति, दुर्गम स्थानों पर पहुँचने के हेतु पुलियों, पगडंडियों एवं पुलों का निर्माण, सतत्य पर्वो तथा जीप चलाने लायक जंगली रास्तों का निर्माण, दूरवर्ती एवं दुर्गम स्थानों से जोड़नेवाले सपर्क मार्गों की मरम्मत, विभिन्न कबाइली क्षेत्रों में रोगों की रोकथाम के उपाय, दवादारू के लिये चलते फिरते चिकित्सालयों की सुविधा, जच्चाघरों तथा शिशुकल्याण केंद्रों की स्थापना, आवश्यक स्थानों पर पेय जल की व्यवस्था इत्यादि।

योजना के अंतर्गत कबाइली विकास प्रखंडों की स्थापना का एक बड़ा महत्वाकांक्षी कार्यक्रम भी है जिसका कार्यान्वयन कबाइली क्षेत्रों में सामुदायिक विकास प्रखंडों के ढंग पर हो रहा है। द्वितीय योजना काल में ऐसे ४३ प्रखंड खोले गए जिनमें से प्रत्येक पर २७ लाख रु० खर्च किए गए। तीसरी योजना में यह रकम २७ लाख के बजाय २२ लाख रुपये प्रति ब्लाक कर दी गई। इसके बाद आगे के पाँच वर्षों के ऐसे हर प्रखंड के लिये १० लाख रु० अधिक की गुंजायश की जायगी। इन प्रखंडों की स्थापना में मूल प्रेरक उद्देश्य यह है कि इनके द्वारा कबाइली क्षेत्रों में सघन तथा समन्वित विकास की स्थिति लाई जाय। तीसरी योजनावधि में ऐसे ४५० प्रखंड स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया। प्रखंडों पर होनेवाला शत-प्रति शत व्यय केंद्रप्रेरित कार्यक्रम के आधार पर किया जायगा।

अनुसूचित जातियों के लिये तय किए गए कार्यक्रमों में शैक्षणिक विकास, आर्थिक उन्नयन, स्वास्थ्य एवं आवास आदि की सुविधाएँ संमिलित हैं। ये सुविधाएँ निस्संदेह अनुसूचित जातियों को मिलनेवाले उन लाभों की अनुपूरक हैं जो उन्हें सामान्य विकास कार्यक्रमों के सिलसिले में योजना के अंतर्गत क्रमश: बढ़नेवाले पैमानों पर प्राप्त हैं। ऐसा इसलिये है कि अनुसूचित जातियाँ अनुसूचित कबीलों से बिलकुल भिन्न स्थिति में हैं और विस्तृत क्षेत्रों में बिखरी हुई हैं तथा सामान्य आबादी के साथ साथ जीवनयापन कर रही हैं।

निम्नलिखित कार्यक्रम जो अनुसूचित जातियों के कल्याण की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझे गए हैं, केंद्र द्वारा प्रेरित सामान्य कार्यक्रमों के अंतर्गत रखे गए हैं जिनका पूर्ण व्ययभार भारत सरकार ही शत-प्रति-शत वहन करेगी।

(अ) अस्वच्छ कार्यों में लगे हुए लोगों की काम करने की स्थितियों में सुधार जिसके अंतर्गत सिर पर मल का बोझ ढोने की प्रथा का निराकरण भी है।

(आ) मेहतरों और भंगियों के आवासगृहों के निर्माण के लिये धन की सहायता।

(इ) उन अनुसूचित जातियों के घर बनाने के लिये स्थान की व्यवस्था

(क) जो अस्वच्छ पेशों में लगे हुए हैं, और

(ख) जो भूमिहीन श्रमिक हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजनावधि में १.५८ करोड़ रु० अनुसूचित जातियों के लिये तथा ०.४२ करोड़ रु० अनुसूचित कबीलों के लिये मैट्रिक के बाद की शिक्षा के वजीफों पर खर्च किया गया। दूसरी योजनावधि में यही व्यय बढ़कर अनुसूचित जातियों के लिये ६.२६ करोड़ रु० तथा अनुसूचित कबीलों के लिये १.१० करोड़ रु० का हो गया। तीसरी योजना के प्रथम दो वर्षों में यह क्रमश: ४.८२ करोड़ तथा ०.८१ करोड़ रु० रहा।

१९५४ में अनुसूचित जातियों तथा कबीलों के लिये विदेशों में अध्ययनार्थ आर्थिक मदद देने की भी व्यवस्था की गई। तब से १९६२-६३ तक अनुसूचित जातियों के ३२ तथा अनुसूचित कबीलों के ३१ व्यक्तियों को ऐसी आर्थिक मदद दी गई। इसके अतिरिक्त कुछ विद्यार्थियों को समुद्रयात्रा का खर्च भी दिया गया।

गैरसरकारी संस्थाओं की भी बड़ी संख्या अनुसूचित जातियों तथा कबीलों के लिये अनेक क्षेत्रों में अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कर रही है। एक से अधिक राज्यों में कार्य करनेवाली संस्थाओं को भारत सरकार द्वारा अनुदान सहायता के लिये मान्यता दी गई है। तीसरी योजनावधि में १.२५ करोड़ की रकम इन संस्थाओं के लिये अनुदान के रूप में स्वीकृत की गई। अनुसूचित जातियों के लिये जिन संस्थाओं को अनुदान की सहायता के लिये चुना गया है वे हैं — हरिजन सेवक संघ, दिल्ली, भारतीय डिप्रेस्ड क्लासेज लीग, दिल्ली, ईश्वरशरण आश्रम, इलाहाबाद, भारत दलित सेवक संघ, पूना, दि इंडियन रेडक्रास सोसायटी, दिल्ली, दि रामकृष्ण मिशन, नरेंद्रपुर, दि हिंद स्वीपर्स सेवक समाज, दिल्ली, दि सर्वेंट्स ऑव इंडिया सोसायटी, पूना। अनुसूचित कबीलों के लिये काम करनेवाली जो संस्थाएँ ऐसा अनुदान पा रही हैं वे हैं — भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, दिल्ली; रामकृष्ण मिशन, चेरापूँजी, टाटा इंस्टीट्यूट ऑव सोशल साइंसेज, बंबई, आंध्र प्रदेश आदिम जाति सेवक संघ, हैदराबाद, दि इंडियन कौंसिल ऑव चाइल्ड वेलफेयर, दिल्ली, रामकृष्ण मिशन, शिलांग; तथा सर्वेंट्स ऑव इंडिया सोसायटी, पूना।

(च) अनुसूचित कबीलों के लिये अन्य एहतियाती कारखाइयाँ

१ संविधान की पाँचवीं अनुसूची — इसके अंतर्गत राष्ट्रपति को किसी भी ऐसे पिछड़े अविकसित क्षेत्र को, जहाँ अनुसूचित कबीलों की एक अच्छी खासी आबादी रहती हो, अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर

देने का अधिकार है। इन आठ राज्यों मे ऐसे क्षेत्रो की घोषणा की गई है—आध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा, पजाब और राजस्थान। यद्यपि ये अनुसूचित क्षेत्र भी उस राज्य के ही अग रूप में प्रशासित होते हैं, जिसमे वे स्थित है, तथापि इस अनुच्छेद के अनुसार राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया है कि वे (क) केंद्रीय अथवा राज्य सरकार के किसी कानून को वहाँ न लागू होने दें या सशोधित रूपमे लागू करने का आदेश दें तथा (ख) इन क्षेत्रों मे शाति एव अच्छे प्रशासन के लिये उपनियम तैयार करें, अन्य बातो के साथ साथ इन उद्देश्यो के लिये सचेष्ट हो—

(१) अनुसूचित कबीलो द्वारा अथवा उनके सदस्यो में भूमि हस्तातरण को रोकने या प्रतिबंधित करने के लिये।

(२) अनुसूचित कबीलो मे भूमि के बटन का नियमन करने के लिये।

(३) अनुसूचित कबीलो के सदस्यो को ऋण देनेवाले लोगो की सूदखोरी का नियत्रण करने के लिये।

इस पाँचवें अनुच्छेद मे यह भी गुजायश रखी गई है कि प्रत्येक अनुसूचित क्षेत्रोवाले राज्य अथवा यदि राष्ट्रपति का निर्देश हो तो उन राज्यो मे भी जहाँ अनुसूचित क्षेत्र तो नही किंतु अनुसूचित कबीले हैं, एक कबाइली सलाहकार समिति की स्थापना की जाय जिसका कर्तव्य यह हो कि वह उस राज्य के अनुसूचित कबीलो के कल्याण व उत्थान सबधी उन मामलो पर उचित सलाह दे जिसकी ओर राज्य के राज्यपाल महोदय ध्यान दिलावें। इन सभाओ मे १० से अधिक सदस्य नही रहने चाहिए जिसमे यदि हो सके तो तीन चौथाई तक की सख्या मे राज्य की विधानसभा मे अनुसूचित कबीलो के प्रतिनिधि ही रहे। यदि किसी राज्य मे ऐसी कबाइली सलाहकार समिति मे विधानसभा मे स्थित अनुसूचित कबीलो के प्रतिनिधियो की सख्या उनके द्वारा पूरी की जानेवाली निर्धारित जगहो से कम पडती हो तो उन शेष जगहो पर केवल अनुसूचित जातियो के ही सदस्य रखे जाने चाहिए। अब तक ऐसी कबाइली सलाहकार समितियाँ आध्रप्रदेश, गुजरात, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा, पजाब और राजस्थान मे कायम हुई हैं। इन सब राज्यो मे अनुसूचित कबीले तो हैं किंतु अनुसूचित क्षेत्र नही हैं।

पाँचवें अनुच्छेद (अनुसूची) की एक अन्य व्यवस्था या सुविधा के आधार पर केंद्रीय सरकार का कार्यकारी अधिकार इतना बढा दिया गया है कि वह राज्यो को अनुसूचित क्षेत्रो के प्रशासन के सबध मे निर्देश दे सके। अभी तक इस प्रकार का निर्देश देने का कोई अवसर नही आया है।

(२) सविधान का छठा अनुच्छेद—सविधान का छठा अनुच्छेद असम के कबाइली क्षेत्रो के प्रशासन से सबद्ध है। ये क्षेत्र इन विभागो में बँटे हुए हैं.

(क) स्वायत्त अधिशासी जिले जैसे सयुक्त खासी जैतिया पहाडियो का जिला, गारो पहाडियो का जिला, मिजो जिला, उत्तरी कछार पहाडियो का जिला, मिकिर पहाडियाँ, तथा

(ख) उत्तर पूर्वी सीमा एजेंसी (नेफा) जिसमे उत्तर पूर्वी सीमा का क्षेत्र (बलिपास सीमा क्षेत्र समेत) तिरप-सीमा भूभाग, अबोर पहाड़ियों का जिला, मिस्मी पहाडियो का जिला।

सभी ऐसे स्वायत्त जिलो के लिये अनुच्छेद मे जिला समितियो तथा स्वायत्त क्षेत्रो के लिये क्षेत्रीय समितियाँ स्थापित करने की व्यवस्था रखी गई है। इन समितियो मे २४ से अधिक सदस्य नही होगे जिनमे कम से कम तीन चौथाई सदस्य बालिग मतदान के आधार पर चुने जाएँगे। असम के सभी स्वायत्त जिलों मे ऐमी जिला समितियाँ कायम हैं और एक क्षेत्रीय समिति भी मिजो जिले के पावी लखेर क्षेत्र मे गठित हुई है।

इन जिला एव क्षेत्रीय समितियो के अधिकार ये हैं

(१) कबाइली क्षेत्र मे अनुसूचित जनजातियो को छोडकर इतर व्यक्तियो द्वारा किए जानेवाले महाजनी एव व्यापार के कार्य के नियमन नियत्रण के लिये नियम बनाना।

(२) शासी जिलो एव स्वशासी क्षेत्रो मे न्याय की व्यवस्था करना।

(३) प्राइमरी स्कूलो, दवाखानो, बाजारो, काँजीहाउसो, नौघाटो, मत्स्य क्षेत्रो, सडको एव नहरो की स्थापना, निर्माण एव प्रबध करना तथा प्राइमरी स्कूलो मे प्रारभिक शिक्षा के लिये उपयुक्त भाषा एव पढाने के लिये उपयुक्त भाषा को व्यवस्थित करना और,

(४) लगानो का निर्धारण एव सग्रह तथा निम्नलिखित कर लगाने और वसूल करने का काम

(क) पेशो, व्यापारो, व्यवसायो एव नौकरियो पर

(ख) जानवरो, सवारियों तथा किश्तियो पर

(ग) बिक्री के लिये बाजार मे लाई गई चीजो तथा नौघाटो पर आनेवाले सामान एव मुसाफिरो पर, तथा

(घ) स्कूलो, दवाखानो तथा सडको की रखरखाव के लिये।

इन अधिकारो मे निम्नोक्त विषयो के सबध मे कानून बनाने के अधिकार भी समिलित हैं

(क) उन भूमियो का, जो संरक्षित वन के रूप मे नही हैं,

कृषि या पशुचारण अथवा आवासीय या कृषि को अन्य उद्देश्यो, यथा किसी शहर या गाँव के निवासियों के लाभार्थ नियतन, अधिकरण, उपयोग अथवा पृथक्करण।

(ख) ऐसे किसी वन का प्रबधकार्य जो सरक्षित वन नही है।

(ग) कृषिकार्य के लिये किसी नहर अथवा जलमार्ग का उपयोग।

(घ) 'झूम' प्रणाली अथवा परिवर्ती कृषि के अन्य प्रकार का नियमन।

(ङ) गाँव या कस्बा समितियो अथवा सभाओ की स्थापना तथा उनके अधिकारो का निर्धारण।

(च) गाँव अथवा शहरसबधी किसी अन्य मामले यथा देहाती या शहरी पुलिस और सार्वजनिक स्वास्थ्य एव स्वच्छता के सबध मे।

(छ) मुखियो या प्रधानो की नियुक्ति या उत्तराधिकार।

(ज) सपत्ति की विरासत

(झ) विवाह और

(ञ) सामाजिक रीतिरिवाज

अनुच्छेद मे इस बात का भी उपबध है कि जिन विषयो के सबंध

कानून बनाने का अधिकार जिला सभाओ या क्षेत्रीय सभाओ को है, उनके सबध मे राज्य विधानमडल का कोई अधिनियम कानून नही बना सकता तथा राज्य विधानमडल का कोई भी अधिनियम जो कच्ची शराब की खपत को रोकने अथवा प्रतिबधित करने के विषय मे है, किसी भी स्वशासी जिले या क्षेत्र मे, वहाँ की क्षेत्रीय अथवा जिला सभाओ की सहमति के बिना लागू नही किया जा सकता। असम के राज्यपाल को भी इस बात का अधिकार है कि वह ससद द्वारा या असम विधानसभा द्वारा पारित किसी अधिनियम को, जिनका उल्लेख उपर्युक्त उपबधो मे न हुआ हो, नही है, सार्वजनिक सूचना द्वारा लागू होने से रोक दे अथवा कुछ सशोधनो के साथ ही किसी स्वायत्त जिले अथवा स्वायत्त क्षेत्र मे लागू होने दे।

अनुच्छेद असम के राज्यपाल को अधिकार भी देता है कि वह किसी स्वायत्त क्षेत्र के प्रशासन के सबध में या उनके द्वारा उल्लिखित किसी विशिष्ट मामले की जाँच करने और तत्सबधी विवरण देने के लिये किसी भी समय एक आयोग की नियुक्ति कर सके।

राष्ट्रपति की पूर्वानुमति लेकर असम का राज्यपाल, एक नोटिस जारी करके उपर्युक्त सभी अथवा कुछ उपबधो को 'नेफा' के किसी भी क्षेत्र मे लागू कर सकता है। जब तक कोई ऐसी नोटिस नही निकाली जाती 'नेफा' क्षेत्र का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के माध्यम से होता रहेगा। अभी तक ऐसी कोई नोटिस नही निकाली गई है।

(छ) अनुसूचित कबीलो के कल्याणार्थ हुई प्रगति के मूल्याकन की व्यवस्था—

सविधान की ३३९ धारा राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार देती है कि वह अनुसूचित क्षेत्रो के प्रशासन तथा अनुसूचित कबीलों के कल्याण कार्यों के सबध मे रिपोर्ट देने के लिये आयोग की नियुक्ति करे। ऐसा एक आयोग श्री यू० एन० ढेबर की अध्यक्षता मे नियुक्त किया गया था जिसने अत्यत उपयोगी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है। उक्त प्रतिवेदन मे समझाई गई बहुत सी बातों को सरकार ने कार्यान्वित करने की दृष्टि से स्वीकार कर लिया है।

राष्ट्रपति को सविधान की ३३८वी धारा के अतर्गत यह अधिकार दिया गया है कि अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित कबीलो के लिये सविधान मे जो रक्षात्मक उपबध रखे गए हैं, उनके सबध की सारी बातो की जाँच करने के लिये विशेष अधिकारी की नियुक्ति करे जो हर उपयुक्त अवधि के बाद इस बात का प्रतिवेदन प्रस्तुत करे कि उक्त सुरक्षात्मक उपाय ठीक तरह से काम दे रहे हैं या नहीं। नवबर, १९५० मे पहली बार ऐसा अधिकारी नियुक्त किया गया, जिसे अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलो के आयुक्त की सज्ञा दी गई। तब से इस आयुक्त द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष १२ ऐसे वार्षिक विवरण प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

सामान्य बातें—अनुसूचित जातियो की मुख्य समस्या है, उनके प्रति अस्पृश्यता के व्यवहार से उत्पन्न बाधाओ के कारण उनका शैक्षणिक, सामाजिक तथा आर्थिक मामलो में पिछड़ापन। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह कुरीति सविधान द्वारा निषिद्ध हो चुकी है तथा अस्पृश्यता का व्यवहार करनेवाले लोगों को दडित करने का कानून भी बन चुका है। यह कुप्रथा अब तेजी के साथ गायब होता जा रहा है।

जहाँ तक अनुसूचित जनजातियों (कबीलों) का सवाल है, समस्या बड़ी जटिल है। भारतीय कबीलो के लोग सामाजिक, आर्थिक दशा का ऐसा विस्तार उपस्थित करते हैं, जिसमें प्राय एकाकी कबाइली जीवन से लेकर विभिन्न अवस्था तक के आधुनिक स्वरूप, यहाँ तक कि सामान्य जनसमुदाय में पूर्ण आत्मसातीकरण की अवस्था तक शामिल है। उनके कल्याण के लिये अपनाए गए कार्यक्रमों में इस बात की पूरी सतर्कता बरती जाती है कि उनका विकास उनकी स्वतंत्र मेधा के आधार पर हो, और ऊपर बाहरी तौर से कुछ भी लादा न जाय। एक लबे समय से कुछ अवांछनीय व्यक्तियो द्वारा अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये उनका उपयोग किया जाता रहा है, अत. उनसे सौहार्द एव मैत्रीपूर्ण व्यवहार भी अपेक्षित है। उनके कल्याण के लिये बनाई गई परियोजनाएँ इन्हीं नीतियों के आधार पर प्रस्तुत की गई हैं। [वि० श०]

भारतचंद्र बगाल मे भारतचद्र विद्यासुदर काव्यपरपरा के श्रेष्ठ कवि हुए हैं। ईश्वरचद्र गुप्त ने भारतचद्र की बहुत सी रचनाओं की खोज करके उन्हे 'भारतचद्रेर ग्रथावली' नाम से सन् १८५५ ई० में पुस्तकाकार प्रकाशित किया। इसी में उन्होंने उनकी खोजपूर्ण जीवनी भी प्रकाशित की है। इसके अनुसार कवि दक्षिण राढ़ी भुरशिट परगने मे स्थित पेंडो वसतपुर ग्राम के निवासी एव मुखर्जी ब्राह्मण थे। इनके एक पूर्वपुरुष प्रतापनारायण अत्यत प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम नरेंद्रनारायण एव माता का नाम भवानी था। इनका जन्म १७१२-१३ ई० मे हुआ था एवं मृत्यु ४८ वर्ष की उम्र मे सन् १७६०-६१ में हुई थी। भारतचद्र ने विवाहोपरांत अल्प आयु में ही गृहत्याग कर दिया और देवानंदपुर में रामचद्र मुंशी के पास आश्रय लिया। वहीं इन्होंने सस्कृत और फारसी की शिक्षा ग्रहण की। शिक्षाकाल मे ही काव्यरचना भी प्रारभ कर दी थी। वहीं पर उन्होंने अपने आश्रयदाता के अनुरोध से सत्यनारायण संबंधी दो छोटे पाचाली काव्य लिखे थे। शिक्षा समाप्त करने के उपरात वे घर लौट आए। इनकी पैतृक जमींदारी को बर्दवान के दीवान ने आत्मसात् कर लिया था। भारतचद्र उसे छुड़ाने राजदरबार गए। वहाँ उन्हें बदी बना लिया गया। किसी प्रकार भाग कर पुरी पहुँचे। वहाँ से वैष्णव धर्म ग्रहण करके वृदावन की ओर चल दिए। राह से एक आत्मीय उन्हें लौटा लाया। कुछ दिनो के बाद वे गृहत्याग करके जीविका की खोज मे चल दिए। नवद्वीप के राजा कृष्णचद्र राय ने उन्हे अपने यहाँ आश्रय दिया। मूलाजोड़े नामक ग्राम मे उन्हें जमीन इत्यादि देकर उन्हे अपना सभाकवि बनाया। इनके तीन पुत्र थे परीक्षित, रामतनु और भगवान्।

भारतचद्र के नाम से कई एक छोटी, बड़ी रचनाएँ प्राप्त हैं। इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'अन्नदामगल' अथवा 'अन्नपूर्णामंगल' है। इसकी रचना राजा कृष्णचद्र राय की आज्ञा से हुई थी। इसमें तीन स्वतत्र उपाख्यान हैं। इस काव्य मे कई गीत बड़े सुदर हैं।

भारतचद्र नागाष्टक एव गगाष्टक नाम की दो रचनाएँ सस्कृत मे की थीं। रसमजरी नाम से एक नायक-नायिका-भेद सबधी अनुवाद ग्रथ भी प्राप्त है। भारतचद्र अत्यत सुदर कविता

करते थे। शब्दचयन, छदों का प्रवाह, अलकारो का प्रयोग, उक्तिचातुर्य सबको लेकर इनकी काव्यप्रतिभा विकसित हुई है। इनकी उक्तियाँ काफी प्रचलित हैं। प्राचीन काव्यो की विषयपरपरा के प्रतिकूल इन्होने नए विषयो, जैसे वर्षा, वसत, वासना इत्यादि पर कविता की है। इनके परवर्ती कवियो पर इनका बहुत प्रभाव है। [र० कु०]

भारत में डच, हॉलैंड के विभिन्न नगरो मे भारत से व्यापार करने के उद्देश्य से स्थापित कपनियो का दिसबर, १६०१ मे एक समिलित अधिवेशन हेग नगर मे हुआ जिसके एक प्रस्ताव के अतर्गत सयुक्त कपनी की रूपरेखा निर्धारित की गई, तथा इसे मार्च, १६०२ में राजकीय प्रमाणपत्र (चारटर) प्रदान किया गया। इस सयुक्त कपनी ने अपना प्रारभिक प्रयास मलाया प्रायद्वीप अथवा मसाले के द्वीपों तक ही सीमित रखा। जावा मे अपनी सत्ता का केंद्र स्थापित करके पुर्तगाल अधिकृत वहुत से स्थानो को हस्तगत कर लिया। १६०३ ई० मे कपनी के डाइरेक्टरो के आदेशानुसार व्यापारिक सुविधाओ की खोज कारोमंडल के तट पर की गई। १६०५ ई० मे मसुलीपटम वदरगाह मे प्रथम डच कोठी की स्थापना हुई। शीघ्र ही पेरापोली (निजामपटम) मे दूसरी कोठी का निर्माण हुआ। अगले वर्ष १६०६ मे गोलकुडा के सुलतान ने निर्यात कर की दर चार प्रति शत निर्धारित कर दी, परतु स्थानीय कर्मचारियो ने इस आज्ञा का उल्लघन किया। डच इस व्यवहार से क्रोधित हुए और उन्होंने उस स्थान को त्यागने की धमकी दी। अत उन्होने जिजी के नायक से समझौता करके देवनामपटनम् मे एक कोठी स्थापित कर ली और दुर्ग भी वहाँ बनाया। इसके वाद तीरूपापुलियूर मे भी उन्होने एक कोठी की स्थापना की।

डचो के रुख से प्रभावित होकर तथा निर्यात व्यापार में क्षति की सभावना से भय खाकर गोलकुडा के सुलतान ने उनको पुलीकट मे कोठी बनाने की आज्ञा प्रदान की और इसके साथ साथ पुर्तगालियो को वहाँ से निकाल दिया। पुलीकट मे डचो ने अपने सिक्के ढालना प्रारभ किया और थोडे समय वाद सुलतान से यह समझौता कर लिया कि निर्यात कर की जगह वह उसको ३००० पेगोडा प्रति वर्ष दिया करेंगे।

इस प्रकार कारोमडल तट पर डच व्यापार की निरतर वृद्धि होती रही। अत १६१७ मे उनके मुख्य केंद्र पुलीकट मे गवर्नर की नियुक्ति हुई। परतु जब १७वी शताब्दी के अतिम चरण मे गोलकुडा राज्य का विघटन होने लगा और मुगल अग्रसर नीति के परिणामस्वरूप शासनव्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई तब डचो ने १६८९ मे पुलीकट से अपना केंद्र हटाकर नागापटम् में स्थापित किया। इसके अतिरिक्त पोर्टो नोवो, सद्रासपटम, पालाकोला, नगलवाजे, विमलीपटम् इत्यादि मे भी उन्होंने व्यापारिक सुविधा हेतु इमारतें वनवाई।

यद्यपि डच मुख्यत: कारोमडल तट पर ही अपना ध्यान केंद्रित करते रहे और उन्होने इमी क्षेत्र मे अपने व्यापार को चलाने का पूर्ण प्रयास किया, तथापि वह भारतवर्ष के सामुद्रिक तट के अन्य क्षेत्रो के प्रति बिल्कुल ही उदासीन न रहे। आरभ मे जिन डच साहसी व्यक्तियों ने गुजरात पहुँचने का साहस किया उन्हे कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई। परतु क्रमश. इस दिशा मे भी उनका प्रवेश होता गया। कुछ डच व्यापारी १६०६ और १६०७ मे ही सूरत आ पहुँचे परतु पुर्तगालियो और मुगल अधिकारियो की शत्रुता से भयभीत होकर उन्होने आत्महत्या कर ली। अत मे अग्रेजो की सफलता से प्रोत्साहित होकर उन्होने भी उधर कदम उठाने का सकल्प किया।

डच कपनी गुजरात से व्यापार करने के लिये अत्यत उत्सुक थी। इस आशय से वान ड ब्रोइक १६१६ मे सूरत पहुँचा और सर टामस रो के विरोध के वावजूद स्थानीय लोगो को अपने सपर्क से प्रभावित करके उसने व्यापार के लिये आज्ञा प्राप्त कर ली और दो वर्ष तक सूरत में ही रुका रहा। उसने राजकुमार शाहजहाँ से भी सतोषजनक समझौता कर लिया। शीघ्र ही भडोंच, अहमदावाद, बुरहानपुर, आगरा मे डच कोठियाँ स्थापित हो गई जहाँ नील और सूती कपडों का व्यापार होने लगा। १६२४ में गुजरात क्षेत्र के लिये एक पृथक् कार्यमडल बना दिया गया।

१६२७ मे कारोमडल क्षेत्र से कुछ लोगो को वगाल मे व्यापारिक केंद्र स्थापित करने के लिये भेजा गया। सर्वप्रथम डचो ने पिप्पली को चुना, परतु बाद को ये लोग बालासोर मे जाकर वसे। १६५३ तक इनके व्यापार का इतना प्रसार हो गया कि इन्होने चिंसुरा, कासिम बाजार, पटना मे भी अपनी कोठियाँ वना ली। व्यापार से उन्हें अत्यधिक लाभ हुआ।

कार्यक्रम की गतिविधि मे डचो को मार्ग मे विभिन्न दिशाओ से आने वाली अड़चनो का सामना करना पडा। पुर्तगाली तो उनके घोर शत्रु थे ही, कुछ समय पश्चात् अग्रेजो ने भी उनका विरोध करना आरभ कर दिया। परतु इसका कारण केवल व्यापारिक द्वद्व ही न था, इसमे यूरोपीय कूटनीति की चालें भी निहित थी। इसके साथ साथ भारतवर्ष के क्षेत्र मे उनको मुगल अधिकारियो की नित्यप्रति परिवर्तनशील मनोवृत्ति भी दु खी किया करती थी। इतने पर भी ये लोग लगभग एक शताब्दी तक अपना काम चलाते रहे। परतु जब १८वी शताब्दी के प्रथम दशक से औरगजेब की मृत्यु के कारण देश की दशा अस्तव्यस्त होने लगी तो इसका दुष्प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू पर पडना स्वाभाविक ही था, अत डचो की भी क्षति होने लगी।

यद्यपि इस समय डच सत्ता और व्यापार का प्रमुख केंद्र वटेविया मे था परतु भारत के समुद्रीतटो विशेषत मलावार, कारोमडल, तथा बंगाल मे चिंसुरा आदि स्थानो मे भी इनकी कोठियाँ स्थापित हो चुकी थीं। मुगल साम्राज्य के विघटन के पश्चात् इन सब क्षेत्रों मे अर्धस्वतत्र राज्यो का प्रादुर्भाव हुआ। अतएव जब सुरक्षा की आवश्यकता से प्रेरित होकर डचो ने अपनी व्यापारिक कोठियो मे परिवर्तन कर दिया तब स्थानीय राजनीति मे उनकी रुचि अग्रसर होने लगी। मलावार क्षेत्र मे हैदरअली से इनका सघर्ष हुआ और कर्नाटक क्षेत्र मे नवाबो से, अत बगाल मे भी इन्होने अपने हाथ पैर चलाना प्रारभ किया। परतु स्थानीय शासकों के अतिरिक्त इनके यूरोपीय प्रतिद्वद्वियो ने भी इन्हे चैन से न रहने दिया। प्लासी के युद्ध के पश्चात् बगालमें डचो की परिस्थिति डावाँडोल होने लगी। अग्रेजो ने इनकी चिंसुरावाली कोठी छीन ली, तथा इस सदेह से प्रेरित होकर कि डचो और मीर जाफर के मध्य कोई गुप्त समझौता है, उनको उत्पीडित करना प्रारभ कर दिया। जब १७८० मे लार्ड

मैकार्टिनी मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया तब उसको यह आदेश दिया गया कि वह डचों की कोठियों को नष्टभ्रष्ट कर दे। अत. १७८० में अंग्रेजों ने नागापटम् पर अधिकार कर लिया। इस घटना के बहुत पूर्व १७५० ई० में फ्रांसीसी पदाधिकारी डूप्ले ने मसुलीपटम् को डचों के हाथ से छीन लिया था। इसी गतिविधि से डचों का अधिकार भारतवर्ष से हटने लगा और उनकी सत्ता एवं व्यापार दोनों ही का भारत से लोप हो गया। [ब० प्र० स०]

भारत में पुर्तगाली भारत में पुर्तगाली दो उद्देश्यों से प्रेरित होकर आए, एक था व्यापार का प्रसार और दूसरा था मसीही धर्म का प्रचार। सन् १४५३ ई० में कुस्तुनतुनिया में यूरोपवालों की पराजय के उपरांत पूर्वी देशों से संपर्क का स्थलीय मार्ग बंद हो गया। तब यूरोप के समुद्रतटीय प्रदेशों ने उस दिशा में पहुँचने के लिये जलमार्ग खोजने की योजनाएँ बनाना प्रारंभ किया। अत भारत को ढूँढ़ता हुआ कोलंबस अमरीका जा पहुँचा और अफ्रीका के पश्चिमी तट का सहारा लेकर वास्को द गामा १४९८ ई० में मलाबार स्थित कालीकट के बंदरगाह पर आ लगा। इन दोनों साहसी नाविकों को पुर्तगाल के सम्राट् ने प्रोत्साहित किया तथा उनकी सफलता के लिये साधन जुटाए।

अपनी तीसरी यात्रा के बाद ही वास्को द गामा कनानोर में एक व्यापारिक कोठी स्थापित कर सका। चूँकि द गामा और कालीकट के राजा (जमोरिन) में झगड़ा हो गया था, कोचीन के राजा ने नवागतुकों का पक्ष लेकर उन्हें व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान कीं और उन्हें क्वीलन और अन्य तटवर्ती स्थानों में कोठियाँ स्थापित करने के उद्देश्य से यथोचित सहायता भी दी। इस प्रकार मलाबार में पुर्तगाली प्रभाव की इतिश्री हुई। प्रथम पुर्तगाली नौसैनिक अधिकारी अलमीडा को सम्राट् ने आदेश दिया था कि भारत पहुँचकर अजदेव, कनानोर और कोचीन में दुर्गों का निर्माण करके पुर्तगाली सत्ता को अग्रसर करे। शीघ्र ही उसने समस्त हिंद महासागर पर अपना आतंक स्थापित कर लिया और पुर्तगाली साम्राज्य की नींव डाल दी। अलमीडा के उत्तराधिकारी अलबुकर्क ने गोवा पर १५१० में अधिकार कर लिया। तब उसने अदन तक प्रयाण किया और उसके कृत्यों का यह परिणाम हुआ कि भारतीय सामुद्रिक व्यापार अरब नाविकों के हाथ से पूर्णत निकल गया। इस महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन का प्रभाव भारतवर्ष के समुद्रतटीय राज्यों पर भी पड़ा।

१५२८ ई० में नूनो द कून्हा वायसराय नियुक्त होकर आया। इसने १५३० ई० में गुजरात तट पर स्थित डामन बंदरगाह पर अधिकार कर लिया। मुगल सम्राट् हुमायूँ के आक्रमण से उत्पीड़ित गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने कून्हा से सहायतार्थ संधि की जिसके अनुसार उसने न केवल गुजरात का सामुद्रिक निर्यात व्यापार ही पुर्तगालियों को सौंप दिया, बल्कि उन्हें ड्यू में एक दुर्ग निर्माण करने की सुविधा भी प्रदान की।

जब गुजराततट पर डामन, ड्यू और बसई पर तथा मलाबार तट पर गोवा, कालीकट, कोचीन और कनानोर पर पुर्तगालियों का दृढ़ अधिकार स्थापित हो गया तब इन्होंने दक्षिण के स्वतंत्र राज्यों के आंतरिक झगड़ों में भी हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। जब बीजापुर के आदिलशाही राज्य में इब्राहीम और अब्दुल्ला में युद्ध चला तब पुर्तगालियों ने अब्दुल्ला का इस शर्त पर पक्ष लिया कि वह इनको गोकर्ण का प्रदेश प्रदान कर देगा। दो बार पुर्तगाली सेना लेकर अब्दुल्ला ने बीजापुर पर आक्रमण भी किया परंतु उसका प्रयास असफल रहा। सं० १५६८–१५७१ में आदिलशाह, निज़ामशाह एवं कालीकट के ज़मोरिन ने मिलकर पुर्तगालियों के भारत से निष्कासन की योजना बनाई और इस आशय से उनके नागरिक अड्डों पर आक्रमण भी कर दिया, परंतु अंत में संधि हो गई जिसके द्वारा पुर्तगालियों का उनके अनेक स्थानों पर अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

जब मुगल सम्राट् अकबर ने १५७३ में सूरत पर घेरा डाला तो पुर्तगालियों ने गढ़रक्षक दुर्ग के सरदारों को सहायता देने से इनकार कर दिया और इस प्रकार सम्राट् की सद्भावना प्राप्त कर ली। बंगाल के मार्गी ही धर्मप्रचारकों से भी १५७६ में सम्राट् बहुत प्रभावित हुआ। उसके आमंत्रण पर गोवा के अधिकारियों ने तीन बार शिष्टमंडल मुगल दरबार में भेजे।

बंगाल में पुर्तगालियों के पहुँचने का संकेत सं० १५१८ में मिलता है, परंतु वास्तविक प्रयास इसके दस वर्ष बाद द कून्हा की प्रेरणा से हुआ। इसने मारटिन अफ़ोंसो को बंगाल में सुविधापूर्ण स्थान चयन करने के उद्देश्य से भेजा। परंतु इसका जहाज विध्वंस हो गया और चकोरिया निवासी खुदाबख्श खाँ ने इसे बंदी बना लिया। कुछ समय पश्चात् १५०० पौंड देकर इसे मुक्त करा लिया गया। अफ़ोंसो अपने स्वामी का विश्वासपात्र बन गया और उसका प्रतिनिधि होकर बंगाल के सुलतान नुसरतशाह के पास गया परंतु उसको अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त न हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि पुर्तगालियों ने चिटगाँव में आयात नियमों का उल्लंघन करने के कारण उसे क्रुद्ध कर दिया था, अत उसने इन सबको पकड़कर कारागार में डाल दिया। फिर भी इन लोगों का प्रभाव सीमित मात्रा में स्थापित हो गया और ये लोग व्यापार और धर्मप्रचार में संलग्न हो गए।

१५३७ में बंगाल पर शेर खाँ के आक्रमण के समय वहाँ के संकटग्रस्त शासक ने पुर्तगाली कप्तानों से सहायता की याचना की और यह वचन दिया कि विपत्ति से मुक्त होने के पश्चात् वह उनको चिटगाँव में दुर्ग बनाने के लिये एक स्थान प्रदान करेगा। पुर्तगालियों ने उसकी सहायता की भी परंतु व्यर्थ। शेर खाँ ने समस्त राज्य पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में अधिकांश पुर्तगाली सामुद्रिक डाकू बन गए और लूट मार के काम में व्यस्त रहने लगे।

इस प्रकार लगभग ७० वर्ष तक पुर्तगालियों का हिंद महासागर के तटों पर प्रभुत्व बना रहा। परंतु जब १५८१ ई० में पुर्तगाल राज्य स्पेन के राज्य में सम्मिलित हो गया तब पूर्वी देशों में उसकी सत्ता का ह्रास हो गया। अंग्रेजों और डचों की उन्नतिशील नौसैनिक शक्ति ने भारत में पुर्तगाली सत्ता पर लगातार चोट कर उसे नष्ट कर दिया।

भारतवर्ष के तट पर पुर्तगालियों को नष्ट करने का प्रयास १६१० ई० में मिडिल्टन ने सूरत के समीप किया। दो वर्ष बाद बेस्ट ने

पुर्तगाली वेडे को परास्त करके दक्षिण क्षेत्र मे सदा के लिये उनके भय को समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् १६१९ मे अग्रेजो ने ओरमुज पर अधिकार करके ईरान मे पुर्तगाली सत्ता का अत कर दिया और इसका प्रभाव भारतवर्ष के तट पर भी पडा। अपनी सफलताओ से प्रोत्साहित होकर अग्रेजो और डच लोगो ने एक साथ मिलकर बबई द्वीप मे स्थित पुर्तगाली कोठी पर भी धावा मारा और सूरत मे उनके व्यापारिक केंद्र को नष्ट कर दिया।

जिस प्रकार १६वी शताब्दी मे पुर्तगालियो का उत्थान हुआ, ठीक उसी तरह १७ वी शताब्दी मे उनका पतन भी हुआ। अग्रेजो और डच लोगो से सघर्ष मे उनको निरतर क्षति ही पहुँचती रही। इसके अतिरिक्त जब पुर्तगाल देश का स्वतत्र अस्तित्व ही मिट गया तब एक ओर योग्य और कुशल व्यक्तियो के अभाव और दूसरी ओर धनवल और जनवल की कमी के कारण उनका औपनिवेशिक साम्राज्य निर्जीव हो गया। शेरशाह से लेकर शाहजहाँ के समय तक बगाल मे उनका निरतर दमन होता रहा अतएव इस क्षेत्र मे उनका अस्तित्व डाकुओं और लुटेरो से अधिक न रह गया था। हिंद महासागर तथा अरब सागर के तटो पर उनकी सत्ता का आधार उनकी नौसेना ही थी। जब इसी पर आघात होने लगे तो उनकी सत्ता स्थिर न रह सकी। धीरे धीरे भारत के समुद्री तट से उन्हे हटना पडा और उनके अधिकार मे गोवा, डामन, ड्यू के अतिरिक्त कोई स्थान न रह गया। फिर भी १७ वी शताब्दी मे समय समय पर इन लोगो ने मराठो से लोहा लिया और उन्हें एक जटिल समस्या मे उलझाए रखा। इनकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण मुसलमानो और हिंदुओ से इन्हे कोई विशेष सहानुभूति प्राप्त न हो पाई। यद्यपि १६४० मे पुर्तगाल ने स्पेन से अपना सबध विच्छेद कर लिया लेकिन पूर्व मे उसको भूतपूर्व गौरव पुन प्राप्त न हो सका। नैपोलियन की साम्राज्यवादी नीति ने उसे और अधिक क्षीण कर दिया।

इतना होते हुए भी जब तक यूरोप की जातियो का भारत पर प्रभुत्व स्थिर रहा तब तक पुर्तगाली भारत मे अपनी अवक्रत औपनिवेशिक सस्था से चिपके रहे। परतु स्वतत्र भारत इस अपमान को सहन न कर सका। जब नीति सफल न हुई तब सरकार ने बल का प्रयोग करके दादरा और नगर हवेली को अगस्त १९६१, और गोवा, डामन, ड्यू को दिसबर १९६१ मे अधिकृत कर लिया।

[ब० प्र० स०]

भारत में फ्रांसीसी भारत मे फ्रासीसियो के इतिहास को तीन भागों में बाँटा जा सकता है (१) प्रारभिक काल जब इन लोगो ने व्यापार प्रसार का प्रयत्न किया (२) मध्यकाल जब इन्होने राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया, तथा (३) अतिम काल जब कि उनके उपायो की असफलता के कारण और उनकी आर्थिक क्षतियो के परिणाम स्वरूप उनकी दशा दयनीय हो गई।

भारत से फ्रासीसियो का प्रथम सपर्क १५२७ ई० मे हुआ जबकि उनके एक पोत ने सूरत (स्वालीरोड) के बदरगाह मे लगर डाला परतु इसके बाद ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग इस ओर से उदासीन से हो गए। १६४२ मे रिशलू की सहायता द्वारा फ्रासीसी मैडागास्कर द्वीप जा पहुँचे और उन्होने वहाँ डाफिन नाम के दुर्ग का निर्माण किया।

टैवरनियर जैसे यात्रियो के अनुभवो से प्रभावित होकर लूई चतुर्दश ने १६६४ ई० मे 'द कैमपेन द इडीज़ द ओरियताल' की स्थापना की और धनवान् लोगो को प्रोत्साहन देने के विचार से स्वय ३० लाख लिरा चदे के रूप मे दिया। इस प्रकार फ्रासीसी व्यापारिक कपनी प्रारभ से ही शासन के हाथ का अस्त्र बन गई। सम्राट् ने ईरान के शाह और मुगल शाहशाह को व्यक्तिगत पत्र लिखकर उनका सहयोग प्राप्त करने की भी चेष्टा की। अत जब प्रथम व्यापारिक जहाज स्वाली के बदरगाह मे पहुँचे तब सम्राट् औरगजेब ने एक फरमान द्वारा फ्रासीसियो को उन्ही शर्तो पर व्यापार करने की आज्ञा प्रदान की जो अग्रेजो और डचो पर लागू थी।

फ्रासीसियो को अग्रेजो और डचो के विरोध का सामना करना पडा। फ्रासीसियो ने अपनी नाविक सत्ता का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से १६६९ में एक जहाजी बेडा अरब सागर मे भेजा जो डामन, बबई, गोवा, कालीकट, कगनोर, कोचीन होता हुआ निकल गया। इसका तत्काल फल यह हुआ कि मलाबार तट पर कुछ फ्रासीसी कोठियाँ स्थापित हो गई और कॉरोमडल तट पर मसुलीपटम् मे एक कोठी स्थापित हो गई। १६७२ मे इन्होने सैनटामी (मायलापुर) पर बलात् अधिकार कर लिया। इसके दो वर्ष बाद इन्होंने पाडिचेरी मे एक कोठी स्थापित की। यद्यपि डचो ने १६९१ मे इसे छीन लिया परतु रिजविक की सधि के अतर्गत १६९३ मे इसे वापस कर दिया। १६९० मे चद्रनगर में भी एक कोठी स्थापित हुई। इस प्रकार फ्रासीसियो की प्रगति तो होती रही परतु व्यापार मे उन्हे निरतर घाटा ही होता रहा। १७२० मे उनके अधिकार मे मसुलीपटम्, कालीकट और माही थे। १७२४ मे उन्होने माही में दुर्ग का निर्माण किया और १७३९ मे कारीकाल पर भी अधिकार कर लिया। इन घटनाओ के कुछ पूर्व १७१७ मे जीन ला ने पुरानी कपनी का पुनर्गठन किया और उसका नाम रखा 'कैमपेन डेस इडीज़'। इस प्रकार फ्रासीसी व्यापार का प्रथम चरण समाप्त हुआ। सरकार से घनिष्ठ सबध होने के कारण सदैव इसपर राजनीति का कुप्रभाव पडता रहा। फलत आर्थिक क्षेत्र मे यह सस्था कभी भी समृद्धशाली न हो पाई।

इसके द्वितीय चरण का प्रारभ १७४० से होता है। यद्यपि व्यापार के क्षेत्र मे इसकी प्रगति अब भी मद होती रही, परतु राजनीति मे निरतर उग्रता बढने लगी। डचो मे प्रतिद्वता तो कम हो गई, लेकिन उनकी जगह अग्रेजो ने ले ली। अब मुगल साम्राज्य सत्ताहीन हो चुका था। दक्षिण भारत मे जहाँ फ्रासीसियो ने अपने पैर जमाए थे, मराठो का बोलबाला था। मराठे उत्तर की ओर निरतर बढते जा रहे थे। दक्षिण मे निज़ामशाही राज्य किसी प्रकार अपना अस्तित्व सुरक्षित किए था और उसके अधीन था कर्नाटक का नवाब। शीघ्र ही इन दोनो क्षेत्रो मे कुछ ऐसी राजनीतिक गुत्थियाँ प्रस्तुत हुई जिनसे फ्रासीसी लाभ उठाने लगे। इन्होने स्थानीय सघर्षों में भाग लेना प्रारभ कर दिया।

अब दक्षिण मे आग्ल-फ्रेंच-द्वद्व की प्रगति हुई। यूरोप मे १७४०

और १७६३ के मध्य दो घमासान युद्ध हुए, आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध। इन दोनों के परिणामस्वरूप भारत में भी फ्रांसीसियो और अंग्रेजो मे भिड़त हुई। पहले युद्ध के समय फ्रांसीसियो ने मद्रास पर अधिकार कर लिया जिसके प्रत्युत्तर मे अंग्रेजो ने पांडिचेरी पर अधिकार कर लिया। परतु जब १७४८ मे एक्सलाशैपिल की संधि हुई तब दोनो पक्षो ने एक दूसरे के अधिकृत स्थानो को वापस कर दिया। डूप्ले ने और अंग्रेजो ने भी, अर्काट के नवाब से प्रार्थना की कि वह दोनो पक्षो के बीच शांति रखने का प्रयत्न करे। परंतु नवाब संघर्ष को रोकने मे असमर्थ रहा।

इस प्रथम ऐंग्लो फ्रेंच युद्ध के तत्काल दो परिणाम हुए. (१) फ्रासीसियो की नाविक सत्ता की धाक जम गई, और (२) यह स्पष्ट हो गया कि स्थानीय शासक शांति सुरक्षित नही रख सकता। शीघ्र ही अनेक कारणो से करनाटक तथा हैदराबाद मे राजनीतिक विप्लव उत्पन्न हुए और प्रभुता की समस्या ने भीषण रूप धारण किया। जब फ्रासीसियो ने एक प्रतिद्वंद्वी का साथ दिया तब अंग्रेजो ने दूसरे का पक्ष ग्रहण किया। इस संघर्ष में जो घटनाएँ घटी उनमे अर्काट के क्लाइव द्वारा घेरे की विशेष महत्ता है। दूसरी घटना है डूप्ले का हैदराबाद की गद्दी के लिये मुजफ्फरजंग को और करनाटक की गद्दी के लिये चंदा साहब को सहयोग देना। कृतार्थ होकर दोनो ने डूप्ले को विलिअनालर और बाहूर के मध्य का क्षेत्र, मसुलीपटम का प्रांत, और डीवी का द्वीप प्रदान किए। यद्यपि अंग्रेजो के हस्तक्षेप के कारण करनाटक मे तो फ्रासीसियो को विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी, परंतु हैदराबाद मे उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया, अत ये लोग दक्षिण की राजनीति मे सक्रिय भाग लेने लगे। इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण कदम था डूप्ले के सहयोगी बुसी का हैदराबाद के नवाब से मुस्तफानगर, एलौर, राजामुंदरी, चिकाकोल की सरकारो का व्यक्तिगत रूप से अनुदान प्राप्त करना। उसने नवाब को यह वचन दिया कि इसके बाद वह अपनी सेना के वेतन के संबध मे किसी प्रकार की भी माँग न करेगा। यह पहला अवसर था कि जब किसी देशी शासक ने यूरोपीय सुरक्षा सेना की सेवा के बदले भूमि का अनुदान दिया। १७५४ मे फ्रास की सरकार ने डूप्ले को वापस बुला लिया, परंतु हैदराबाद मे बुसी उसकी निर्धारित नीति पर चलता रहा। जब डूप्ले का स्थान गाडह्यू ने ग्रहण किया तब उसे करनाटक मे अंग्रेजो की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी। फिर भी अपने औपनिवेशिक प्रसार के इस द्वितीय चरण मे फ्रांसीसियों को अद्भुत सफलता और कीर्ति प्राप्त हुई जिसका अधिकतम श्रेय डूप्ले को है।

यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध के छिड़ते ही भारत मे फ्रासीसी सत्ता के इतिहास का अंतिम चरण प्रारंभ हो जाता है। अनुकूल परिस्थिति बदलकर प्रतिकूल हो गई। अंग्रेजों की नाविक शक्ति निरंतर बढ़ती जा रही थी, तथा फ्रासीसियो को विभिन्न क्षेत्रो मे संघर्ष का सामना करना पड़ रहा था। नये गवर्नर एवं सेनापति काउंट लैली ने भारत पहुँचकर सेंट डेविड के दुर्ग पर अधिकार कर लिया, तथा बुसी को हैदराबाद से वापस बुला लिया। यह देखकर नवाब ने अंग्रेजो से मेल कर लिया और उनको उत्तरी सरकार के प्रदेश प्रदान कर दिए। लैली ने मद्रास पर अधिकार करने की चेष्टा की, परंतु उसे सफलता न प्राप्त हुई। उसे पांडिचेरी की ओर प्रस्थान करना पड़ा। रास्ते में वांडेवाश स्थान पर अंग्रेज सेनापति सर आयरकूट ने उसे पराजित किया और बुसी को बंदी बना लिया। अप्रैल, १७६० में कारीकाल हाथ से निकल गया। अगले वर्ष पांडिचेरी और जिंजी पर भी शत्रु का अधिकार हो गया। इसी प्रकार माही से भी इन लोगो को वंचित होना पड़ा। जब १७६३ में पेरिस की संधि द्वारा सप्तवर्षीय युद्ध का अंत हुआ तो एक धारा के अनुसार फ्रांसीसियों को उनके पूर्व अधिकृत प्रदेश लौटा तो दिए गए, परंतु उनको यह छूट न दी गई कि वह उनका दुर्गीकरण करें। उन्होंने १७८२ मे मैसूर के सुलतान हैदरअली की अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता की और उसके पुत्र टीपू से मैत्री संबंध स्थापित किया। १७८७ मे पूना तथा हैदराबाद के राज्यों से फ्रांसीसी प्रतिनिधियो को वापस बुला लिया गया और टीपू सुलतान को यह आश्वासन दिया गया कि उसको अंग्रेजों के विरुद्ध यथेष्ट सहायता दी जाएगी। प्रोत्साहित होकर टीपू ने एक राजदूत फ्रांस भेजा और सहयोग की आशा करके उसने ट्रावनकोर की रियासत पर आक्रमण भी कर दिया। वहाँ का राजा अंग्रेजों के आश्रित था। फलतः मैसूर और अंग्रेजों के बीच युद्ध छिड़ गया। इसका परिणाम फ्रांसीसियो के लिये घातक सिद्ध हुआ। टीपू सुलतान ने लड़ते लड़ते जान दी और मलाबार तट पर फ्रांसीसियो की क्षति हुई। नेपोलियन ने पूर्व मे सत्ता जमाने का निष्फल प्रयास किया। सहायक संधियों द्वारा अंग्रेजों ने देशी रियासतो को अपने संरक्षण मे लेकर फ्रांसीसी प्रभाव को मूलतः नष्ट कर दिया।

यद्यपि आगामी १५० वर्षों तक फ्रांसीसियो का पांडिचेरी इत्यादि नगरो पर अधिकार रहा परंतु वह पुनः सत्तारूढ़ न हो सके। जब भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया तब फ्रेंच सरकार ने बड़ी बुद्धिमत्ता से संधि द्वारा अपने अधिकृत क्षेत्रों को भारत को लौटा दिया। पांडिचेरी पर वास्तविक रूप से भारतीय अधिकार १९५४ मे हो गया। १९५५ मे फ्रांस की संसद ने उसकी पुष्टि कर दी। [बं० प्र० स०]

भारत में ब्रिटिश सत्ता यूरोपीय लोग व्यापारियो के रूप मे भारत आए। रानी एलिजाबेथ ने ३१ दिसबर, १६०० को अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को एक अधिकारपत्र देकर उसे १५ वर्षो के लिये पूर्वीय व्यापार पर एकाधिकार प्रदान कर दिया। मुख्यत कप्तान हाकिंस तथा सर टामस रो के प्रयत्नो से कंपनी ने १६१९ तक मुगल सरकार से सूरत, आगरा, अहमदाबाद और भरुच (भड़ौंच) मे व्यापारिक कोठियाँ कायम करने की अनुमति प्राप्त कर ली। १६६८ मे कंपनी को चार्ल्स द्वितीय से बंबई प्राप्त हुआ। बंबई चार्ल्स द्वितीय को अपनी पत्नी ब्रगांजा की कैथराइन को पुर्तगाल से मिले दहेज के रूप मे प्राप्त हुआ था। १६११ और १६२६ के बीच कंपनी ने मछलीपट्टम् और अरमागाव मे कोठियाँ खोल ली। १६३२ और १६३४ मे गोलकुंडा के सुल्तान से कंपनी को दो फरमान मिल गए जिनके द्वारा उसे ५०० पगोडा वार्षिक चुंगी की अदायगी की शर्त पर गोलकुंडा राज्य के अधिकारक्षेत्र के अंतर्गत स्थित बंदरगाहो मे व्यापार करने की अनुमति प्राप्त हो गई। १६३९ मे उसे चंद्रगिरि के शासक से मद्रास का केंद्र भी प्राप्त हो गया और वहाँ पर उसने अपनी फ़िलेक्टरी कायम कर ली जो आगे चलकर फोर्ट जार्ज नाम से प्रसिद्ध हुई। उत्तर पूर्व की ओर १६३३ मे हरिहरपुर और बालासोर

मे, १६५१ मे हुगली में और इसी सिलसिले मे पटना और कासिम-बाजार मे भी कोठियाँ खुल गईं।

१६५७ मे क्रामवेल द्वारा कपनी को अधिकारपत्र मिल जाने और आगे चलकर चार्ल्स द्वितीय तथा जेम्स द्वितीय द्वारा उसके विशेष अधिकारो एव शक्ति में वृद्धि कर दिए जाने के बाद उसका निरतर विस्तार होता गया और उसकी समृद्धि बढती गई। भारत मे होनेवाली कुछ राजनीतिक गडबडियो से भी उसे अनेक भूभागो पर कब्जा करके अपना प्रभाव और शक्ति बढाने के लिये कोशिश करने की हिम्मत होने लगी। इस प्रयत्न मे मुगल सरकार से भी उसकी कई मुठभेडे हुईं जिनमे अतत उसे मुँह की खानी पडी और १६९० मे सधि के लिये भी विवश होना पडा। उसी साल जॉब चार्नाक ने सूतानूती मे कोठी कायम की। इस तरह 'ब्रिटिश भारत की भावी राजधानी का शिलान्यास' हो गया। बर्दवान जिले के शोभासिह नामक जमीदार के विद्रोह करने पर अंग्रेजो को १६९६ में अपनी नई किलेबदी करने का बहाना मिल गया। उन्होने १६९८ मे सूतानूती, कालिकाता और गोविंदपुर के तीन गाँवो की जमीदारी ले ली जिसके बदले उन्होने पुराने भूस्वामियो को १२०० रुपए दिए।

कपनी को १६५१ मे सुल्तान शुजा, १६७२ मे शाइस्ता खाँ और १६८० मे औरगजेब से फरमान मिले जिनके जरिए उसे व्यापार के लिये कुछ रियायतें और विशेष अधिकार प्राप्त हो गए। १७१६–१७१७ मे शाहशाह फर्रुखसियर से एक और फरमान मिला जिससे अंग्रेजों को नए विशेषाधिकार प्राप्त हुए और बगाल मे समय समय पर स्थानीय अधिकारियों द्वारा उपस्थित की जानेवाली बाधाओ के बावजूद उनका व्यापार धीरे धीरे बढता ही गया।

१८वीं शताब्दी के मध्य से औरगजेब के दुर्बल उत्तराधिकारियों के अधीनस्थ मुगल साम्राज्य का जो क्रमिक विघटन और ह्रास हो रहा था उससे लाभ उठाकर अंग्रेज और फ्रासीसी व्यापारिक कपनियो ने भारत को अपनी शत्रुतापूर्ण काररवाइयो का केंद्र बना दिया। भारत मे उनका पहला सघर्ष यूरोप मे आस्ट्रियाई उत्तराधिकार के लिये हुए युद्ध (१७४०–१७४८) के बाद ही हुआ जिसमे पहले फ्रासीसियो का भाग्य खुलता नजर आया और उन्होने १७४६ मे मद्रास पर कब्जा कर लिया। यद्यपि ला बूर्दोने अंग्रेजो से भारी रकम वसूल कर मद्रास उन्हें वापस कर देना चाहता था किंतु डूप्ले ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और अंग्रेजो को १७४८ मे आई ला-शैपेल मे हुई सधि के बाद ही मद्रास वापस मिल सका।

भारतीय रियासतो की दुर्बलता के कारण यूरोपीय व्यापारियो को राजनीति के अखाडे मे कूद पडने का साहस हो गया और वे दक्खिन की सूबेदारी तथा कर्नाटक की नवाबी के लिये होनेवाले प्रतिद्वद्वी उत्तराधिकारियो के सघर्ष मे खुलकर एक दूसरे की तरफ से मैदान में आ गए। १७४८ मे निजामुलमुल्क की मृत्यु के बाद दक्खिन की सूबेदारी के उत्तराधिकार के लिये उसके दूसरे पुत्र नासिरजग और प्रिय पौत्र मुजफ्फरजग मे सघर्ष छिड गया। इसी तरह १७४९ मे कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन की मृत्यु के बाद उसकी गद्दी के दो प्रतिद्वद्वी उत्तराधिकारी मैदान मे आ गए—उसका पुत्र मुहम्मद अली और कर्नाटक के नवाब दोस्त अली का दामाद चाँदा साहब। इस सघर्ष मे एक ओर नासिरजग और मुहम्मद अली थे जिनकी सहायता अंग्रेज कर रहे थे और दूसरी ओर मुजफ्फरजग और चाँदा साहब थे जिनका पक्ष फ्रासीसी ले रहे थे। १७५० के अत तक फ्रासीसियो का पलडा भारी रहा और ऐसा प्रतीत होता था कि डूप्ले की नीति सफल हो जायगी किंतु शीघ्र ही मद्रास के सिविलियन कर्मचारी राबर्ट क्लाइव द्वारा आर्काट पर कब्जा (सितबर-अक्तूबर १७५१) कर लिए जाने के बाद अंग्रेजो का भाग्य खुल गया। डूप्ले अब भी दृढ़ सकल्प से युद्ध कर रहा था किंतु १७५४ मे फ्रास के अधिकारियो ने उसे फ्रास बुला लिया। अगस्त, १७५४ मे डूप्ले के स्थान पर गॉडेहू भारत आया। उसने डूप्ले की नीति उलट दी और अंग्रेजो से सधि कर ली जिसके अनुसार सधि के समय जिन क्षेत्रो पर जिस पक्ष का वास्तविक अधिकार था उनपर वह कायम रहा।

सप्तवर्षीय युद्ध का आरभ होने के साथ ही भारत में १७५६ मे अंग्रेजो और फ्रासीसियो की शत्रुतापूर्ण कारवाइयाँ चली। अंग्रेजो ने १७५७ मे चद्रनगर तथा बगाल मे स्थित अन्य फ्रासीसी बस्तियों पर कब्जा कर लिया और २२ जनवरी, १७६० मे वाडीवाश के निर्णायक युद्ध मे फ्रासीसियो को करारी हार दी। इसके फलस्वरूप पाडिचेरी तथा भारत स्थित अन्य फ्रासीसी बस्तियो को अंग्रेजो के सामने आत्मसमर्पण कर देना पडा यद्यपि बाद मे १७६३ मे पेरिस मे हुई सधि के अनुसार ये बस्तियाँ पुन फ्रासीसियो को मिल गई।

१८वी शताब्दी के मध्य मे बगाल मे होनेवाली राजनीतिक उथलपुथल प्लासी (२३ जून, १७५७) और बक्सर (२३ अक्तूबर, १७६४) मे हुए निर्णायक युद्धो से अपनी पूर्णता पर पहुँच गई और इसके फलस्वरूप बगाल मे ब्रिटेन की राजनीतिक सप्रभुता स्थापित हो गई। बगाल और बिहार मे अपना राजनीतिक प्रभुत्व पुन कायम कर लेने के लिये अभागे मुगल शाहशाह शाहआलम द्वितीय ने जो भी प्रयत्न किए वे निष्फल रहे और उसे परिस्थितियो से लाचार होकर अत मे १२ अगस्त, १७५६ मे अंग्रेजो को बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी देनी पडी और इस प्रकार बगाल में उनका प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा। इस व्यवस्था के अनुसार शाहआलम को बगाल से प्रति वर्ष २६ लाख रुपया नजराना के तौर पर मिलने लगा, बगाल के नवाब को ५३ लाख रुपया सालाना की बँधी रकम मिलने लगी और बाकी सारी मालगुजारी कपनी के नियत्रण मे आ गई। इस तरह से अंग्रेज समृद्ध बगाल प्रात के वास्तविक स्वामी बन गए। उन्होने भारत के अन्य भागो में अपनी शक्ति और सत्ता के क्रमिक विस्तार मे इसके समस्त साधनो का लाभजनक ढग से उपयोग किया।

यद्यपि प्रभुता का सारतत्व उपर्युक्त रीति से कपनी के हाथो मे आ गया, फिर भी क्लाइव ने, जो यहाँ दूसरी बार बगाल के गवर्नर के रूप मे आया था, अनेक बातो का ख्याल करते हुए प्रात के प्रशासन का प्रत्यक्ष उत्तरदयित्व नही स्वीकार किया और उसे नवाब के ऊपर छोड दिया जो नाममात्र का शासक था। इस द्वैध शासन में, जिसमे उत्तरदायित्व सत्ता से पूर्णत विच्छिन्न था, प्रशासनिक अव्यवस्था, सामाजिक अराजकता तथा आर्थिक ह्रास गभीर रूप धारण करने लगा जिससे सामान्य जनता को भारी कठिनाइयो एव तीव्र सकटो का सामना करना पड़ा। अनेक कारणो से भारत का आर्थिक ह्रास

तीव्र-होता गया और औद्योगिकता की प्रगति के बावजूद इस ह्रास से उबार पाने का स्वप्न साकार न हो सका। अप्रैल, १७७२ मे बगाल के गवर्नर के रूप मे वारेन हेस्टिंग्ज आया। उसे अपने मालिको से इस द्वैध शासन की बुराइयो को दूर करने के निर्देश मिले थे। उसने प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रो मे सुधार करने का प्रयत्न किया किंतु वह चतुर्दिक् व्याप्त बुराइयो को पूरी तरह दूर न कर सका। अवध के नवाब तथा बेगमो, रुहेलखड के शासक और बनारस के राजा चेतसिंह के सबध मे हेस्टिंग्ज ने जो नीतियाँ अख्तियार की उनका एकमात्र लक्ष्य कपनी का प्रभाव बढाना और उसके रिक्त कोप को भरना था। कतिपय दृष्टियो से हेस्टिंग्ज की ये नीतियाँ आपत्तिजनक भी थी। नदकुमार के मुकदमे मे तो न्याय का गला ही घोट दिया गया।

यद्यपि समसामयिक भारतीय राजे रजवाडे अपनी पारम्परिक ईर्ष्या एव आतरिक कलह के कारण भारत में बढती हुई ब्रिटिश प्रभुता का सयुक्त रूप से विरोध करने में विफल ही रहे, फिर भी मराठो तथा मैसूर के शासको ने इसकी बाढ को रोकने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन अत में वे भी पराभूत हो गए। मराठो ने अपने योग्य नेता पेशवा माधवराव प्रथम के नेतृत्व मे धीरे धीरे पानीपत के तृतीय युद्ध मे पहुँची हुई क्षति को दूर कर पुन शक्तिलाभ कर लिया। किंतु १७७२ मे उसकी मृत्यु के बाद मराठे अपने आतरिक झगडो मे फस गए जिससे अंग्रेजों को उनके मामलो मे हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया। फलत १७७५-१७८२ मे प्रथम आग्ल मराठा युद्ध हुआ। सालबाई मे मई १७८२ में हुई सधि से इस युद्ध की समाप्ति हुई। यह सधि मुख्यत महादजी सिंधियां की प्रेरणा से हुई थी। महादजी सिंधिया उत्तर भारत मे अपने विस्तार की स्वतत्रता चाहता था। सधि के अनुसार सालसेट्ट पर अग्रेजो का अधिकार पुष्ट हो गया, माधवराव नारायण को न्यायसमत पेशवा की मान्यता प्राप्त हो गई और राघोबा या रघुनाथ राव को पेंशन देकर गद्दी से वचित कर दिया गया।

मैसूर के हैदरअली और उसके पुत्र टीपू ने अग्रेजो के खिलाफ भीषण सकल्प और साहस के साथ सघर्ष किया। आग्ल मैसूर सघर्ष (१७६७-१७६९) के प्रथम चरण में हैदर इतना आगे बढ गया था कि मद्रास उसकी पहुँच से केवल पांच मील दूर रह गया था और अग्रेज करीब करीब उसके आदेश के अनुसार सधि पर हस्ताक्षर करने को विवश हो गए थे। अग्रेजो के साथ हुए शक्ति सघर्ष के दूसरे दौर मे १७८२ मे हैदर मर गया किंतु टीपू ने जो एक योग्य सैनिक नेता था, अग्रेजो के खिलाफ निर्भीक भाव से युद्ध जारी रखा। अतत १७८४ मे मगलोर मे एक सधि हुई जिसके अनुसार दोनो पक्षो द्वारा विजित प्रदेशो पर उनके विजेताओ का अधिकार स्वीकार कर लिया गया और युद्धबदियो को रिहा कर दिया गया। कार्नवालिस के शासनकाल मे टीपू और अग्रेजो के बीच पुन दो वर्षों तक लडाई चली और मार्च, १७९२ मे सेरिंगपट्टम की सधि हुई जिससे टीपू को अपने राज्य का आधा भाग अग्रेजो को सौंप देना पडा। इसके अतिरिक्त उसे लडाई के हरजाने के रूप में भारी रकम अदा करनी पडी और सधि की शर्तों की पूर्ति के लिये अपने दो पुत्रो को कार्नवालिस के शिविर मे बधक रखना पडा।

सालबाई की सधि के बाद करीब २० वर्षों तक मराठों का अग्रेजो के साथ शातिपूर्ण सबध कायम रहा किंतु धीरे धीरे सदस्यो के 'पारस्परिक अविश्वास और स्वार्थपूर्ण षडयत्रों' के कारण मराठा सघ की एकता एव अटूट दृढता नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त १७९४ और १८०० के बीच महादजी सिंधिया, अहल्या बाई, तुकोजी होल्कर और नाना फडनवीस जैसे योग्य मराठा नेता इस ससार से उठ गए। अनेक षड्यत्रों एव प्रतिषडयत्रो के बाद १७९६ मे राघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय पेशवा की मान्यता प्राप्त कर चुका था। मराठे तीव्र पारस्परिक कलह मे बुरी तरह फँस चुके थे। मार्क्वेस वेलेजली के गवर्नर जेनरल पद पर आरूढ रहने की कालावधि (१७९८–१८०५) में मराठो को इसकी भारी कीमत चुकानी पडी। सहायता देने की अपनी योजना से वेलेज़ली भारत मे ब्रिटिश प्रभाव को बढाने मे पूर्णत सफल हुआ। इसके अनुसार भारतीय राज्यों को ब्रिटिश सरक्षण स्वीकार करना पडता था जिसके लिये उन्हे अपने क्षेत्रो मे ब्रिटिश अधिकारियो के सेनापतित्व में ब्रिटिश फौज रखनी पडती थी और उसका व्यय वहन करना पडता था। ब्रिटिश सरक्षण की कीमत उन्हे अपनी आजादी बेचकर चुकानी पडती थी। जहाँ तक मराठो का प्रश्न था, दुर्बल और कुचक्री पेशवा बाजीराव द्वितीय ने ३१ दिसबर, १८०२ को बसई की सधिकर राज्य सहायता योजना मे शामिल होना स्वीकार कर लिया और अपने को पूरी तरह ब्रिटिश नियत्रण मे डाल दिया। इसे राष्ट्रीय अपमान समझकर बरार के रघुजी भोसले द्वितीय और दौलतराव सिंधिया जैसे दूसरे मराठा नेताओ ने पश्चात्तापग्रस्त पेशवा की मौन सहमति से १८०३–१८०४ में अग्रेजो के खिलाफ लडाई जारी रखी यद्यपि जसवतराव होल्कर और बडोदा के गायकवाड ने उनका साथ नहीं दिया। अग्रेजो द्वारा लडाई दो मुख्य केंद्रो मे सचालित होती रही—हिंदुस्तान मे जेनरल लेक के नेतृत्व मे और दक्खिन मे आर्थर वेलेज़ली के नेतृत्व में। इसके साथ ही अग्रेजो ने सहायता योजना कार्यान्वियन के तीन केंद्रों उडीसा, बुदेलखड और गुजरात मे भी लडाई जारी रखी। पाँच महीनो मे ही भोसले और सिंधिया पराजित हो गए और दोनो ने अलग अलग दो सधियाँ की। भोसले के साथ १७ दिसबर, १८०३ को देवगाँव में सधि हुई और सिंधिया के साथ ३० दिसबर, १८०३ को सुर्जीअर्जुनगाँव मे।

अग्रेजो का सबसे भयकर शत्रु टीपू भारत मे बढती हुई अंग्रेजी शक्ति के प्रतिरोध का अनवरत प्रयत्न करता रहा। अत मे ४ नवबर, १७९९ को वह अपनी राजधानी श्रीरगपट्टम् की प्रतिरक्षा मे बहादुरी से लडता हुआ मारा गया। टीपू के परिवार के लोग वेल्लोर मे नजरबद कर दिए गए और १८०६ मे वेल्लोर मे हुए सिपाही विद्रोह मे सलग्न होने की आशका पर उन्हें कलकत्ता भेज दिया गया। मैसूर राज्य के बडे भाग अग्रेजो और निज़ाम में परस्पर बाँट लिए गए। बचे खुचे भाग मैसूर के प्राचीन शासक वश के एक नाबालिग उत्तराधिकारी को दे दिए गए। इसने सहायता योजना सधि स्वीकार कर ली। भारतीय राजनीति मे हैदराबाद के निजाम की भूमिका बडी ही ढुलमुल किस्म की रही है। पहली सितबर, १७९८ को वह भी अग्रेजो की सहायता योजना सधि में शामिल हो गया और अग्रेजो के सरक्षण का मूल्य चुकाने के लिये उसने अपनी स्वतत्रता का बलिदान कर दिया। १७९९ मे वेलेजली ने तजोर के राजा और सूरत के नवाब को पेंशन देकर विदा कर

दिया और उनके क्षेत्रो को अपने अधिकार मे ले लिया। १८०१ मे उसने कर्नाटक के नवाब को विश्वासघाती षड्यंत्र का अभियोग लगाकर हटा दिया और उसके राज्य पर कब्जा कर लिया। अवध को अंग्रेज १७६५ से ही अतस्थ राज्य मानते थे। वेलेजली ने अवध के नवाब को भी १८०१ मे एक ऐसी सधि पर हस्ताक्षर करने के लिये विवश कर दिया जिससे अवध राज्य की सीमा अत्यत सकुचित हो गई।

आगे ब्रिटिश प्रभुता का प्रसार विशेष रूप से मार्क्वेस ऑव हेस्टिंग्ज के नाम से प्रसिद्ध अर्ल ऑव मोइरा के गवर्नर जेनरल पद पर आरूढ रहने के समय हुआ। नेपाल के गुरखा अंग्रेजों से बडी वहादुरी से लडे किंतु उन्हे १८१५–१८१६ मे अंग्रेजों से सधि के लिये विवश होना पडा। इस सधि के फलस्वरूप उन्हे अपने दक्षिणी सीमावर्ती तराई क्षेत्रो का दावा छोडना पडा, नेपाल के पश्चिम स्थित गढवाल और कुमायूँ जिलो को अंग्रेजो को दे देना पडा, सिक्किम से हटना पडा और काठमाडू मे ब्रिटिश रेजिडेंट को रखना स्वीकार करना पडा। हेस्टिंग्ज ने पिंडारियो और पठानो का भी दमन कर दिया और ब्रिटेन की प्रभुसत्ता राजपूताना और मध्यभारत पर भी स्थापित कर दी। १८१७–१८१६ मे अंग्रेजो से हुए अपने अतिम सघर्ष मे मराठे पूरी तरह हार गए। पेशवाई रद्द कर दी गई। वाजीराव द्वितीय का राज्य ब्रिटिश नियत्रण मे ले लिया गया और उसे कानपुर के निकट बिठूर मे अपने जीवन के अतिम दिन आठ लाख रुपया सालाना पेंशन पर काटने पडे। पेशवा के राज्य में से एक अग को काटकर सतारा की छोटी सी रियासत बनाई गई जिसे शिवाजी के वशक्रम मे आनेवाले तथा मराठा साम्राज्य के सैद्धातिक प्रधान प्रतापसिंह को दे दिया गया।

१८२३ तक ब्रिटेन की प्रभुता सतलज से लेकर ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से लेकर कुमारी अतरीप तक के व्यापक क्षेत्र पर प्रतिष्ठित हो गई। इस अवधि के वाद ब्रिटिश भारत की सीमाएँ उत्तर पश्चिम और पूर्व की ओर उन सीमाओ से भी आगे वढाई जाने लगी जहाँ तक वे अव तक पहुँच चुकी थी। इसके फलस्वरूप ब्रह्मपुत्र के पूर्व में असमियो और वर्मियो से तथा उत्तर पश्चिमी सीमा के सिखो और सिंधियों तथा पठान और वलूच कवीलो से और उसके भी आगे खैवर दर्रे से परे अफगानो से अंग्रेजों का सघर्ष हुआ।

पूर्वी सीमा पर अपना प्रभाव वढ़ाने के सिलसिले मे अंग्रेजो का सीधा सघर्ष वर्मियो से हुआ। प्रथम सघर्ष (१८२४-१८२६) का अत याडवू की सधि से हुआ जो २४ फरवरी, १८२६ को सपन्न हुई। इस सधि से अंग्रेजों को कुछ महत्वपूर्ण लाभ हुए। वर्मा सरकार ने युद्ध का हरजाना देना, अपनी राजधानी आवा में ब्रिटिश रेजिडेंट रखना, अराकान, तेनासरिम, असम, कछार और जयतिया को अंग्रेजो को सौंप देना और मणिपुर को एक स्वतत्र राज्य के रूप मे मान्यता प्रदान करना स्वीकार कर लिया। गवर्नर जेनरल डलहौजी के शासनकाल मे दूसरा आग्ल-वर्मी युद्ध हुआ। डलहौजी ने २० दिसवर, १८५२ को पेगू या निचले वर्मा को ब्रिटिश भारत मे मिला लिया। इससे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की पूर्वी सीमा सालवीन नदी के तट तक पहुँच गई और पूर्वी सीमाओ पर और भी प्रभावकारी ब्रिटिश नियत्रण कायम हो गया। तृतीय आग्ल वर्मी युद्ध मे ऊपरी वर्मा भी (१८८६ मे) ब्रिटिश साम्राज्य मे मिला लिया गया।

१८४३ मे लार्ड एलेनवरो ने सिंध को भी ववई प्रेसिडेंसी में मिला लिया। रणजीत सिंह के अधीन सिखो का एक सुदृढ एव शक्तिशाली राज्य सघटित हो गया था। १८३९ में सिखो के नेता रणजीत सिंह का देहात हो गया और सिख सेना राज्य का वास्तविक अधिनायक वन बैठी, उसपर नियत्रण करनेवाली कोई शक्ति न रह गई। आपसी फूट और कलह के कारण दो युद्धो मे ही अंग्रेजो ने सिख नेताओ को धर दवोचा। ये दो युद्ध क्रमश हार्डिज के प्रशासनकाल (१८४५-१८४६) और डलहौजी के समय (१८४८-१८४९) मे हुए थे। डलहौजी ने पूर्णत अपने उत्तरदायित्व पर ३० मार्च, १८४९ को पजाव को ब्रिटिश भारत मे मिला लिया।

१७५७ से १८५७ के बीच के सौ वर्ष भारत मे न केवल ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता के क्रमिक विस्तार की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं बल्कि इस काल का महत्व उस ब्रिटिश भारतीय प्रशासकीय प्रणाली के विकास की दृष्टि से भी है जिसकी स्थापना राजनीतिक सत्ता के विस्तार के स्वाभाविक परिणाम के रूप मे हुई है। वारेन हेस्टिंग्ज, कार्नवालिस, मुनरो, मैलूकॉम, मेट्कॉफ, बेंटिक और डलहौजी जैसे योग्य ब्रिटिश प्रशासको ने इस प्रशासकीय प्रणाली के विभिन्न अगो, यथा मालगुजारी और वित्त, कानून और न्याय, पुलिस और कारागार, को विकसित करने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यदि वारेन हेस्टिंग्ज ने इसकी नीव रखी तो कार्नवालिस ने महत्वपूर्ण सशोधन करके इसका विकास किया। १७९३ में कार्नवालिस द्वारा वगाल मे मालगुजारी वसूल करने के लिये इस्तमरारी वदोवस्त का आरभ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इससे जमीदार स्थायी भूस्वामी वन गए और उन्हे इसके लिये एक नियत तिथि पर एक निर्धारित वार्षिक मालगुजारी देनी पडती थी। हाल के वर्षों मे अनेक बुराइयो के कारण जमीदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया किंतु इसके पूर्व वगाल और विहार की आर्थिक स्थिति पर इस प्रथा का वडा ही जबर्दस्त प्रभाव था। मद्रास मे टामस मनरो ने धीरे धीरे रैयतवारी वदोवस्त का विकास किया। यह वदो-वस्त सीधे छोटे छोटे किसानो से किया जाता था जिन्हें भूमि पर हर तरह के अधिकार प्राप्त होते थे। इसके वदले मे उन्हे एक निर्धारित लगान देना पड़ता था जिसे राज्य सीधे अपने अधिकारियो द्वारा वसूल करता था।

कार्नवालिस के शासनकाल मे प्रशासन की विभिन्न शाखाओ मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। उसने प्रातो को जिलो मे बाँट दिया। दीवानी और फौजदारी के मुकदमो की सुनवाई के लिये अलग अलग अदालतें कायम की गईं और लगान तथा मालगुजारी का कार्य न्यायपालिका के हाथ से ले लिया गया। उसने कलकत्ता मे सदर दीवानी अदालत और निजामत अदालत के नाम से अपील के लिये सर्वोच्च न्यायालयो की स्थापना की। उसने चार प्रातीय अदालतो की भी स्थापना की जो सवसे ऊपर सदर दीवानी और सवसे नीचे जिला अदालत के वीच कार्य करती थी। जिला फौजदारी अदालतें समाप्त कर दी गई और फौजदारी मामलो मे न्याय करने का काम प्रातीय अदालतो के न्यायाधीशो को सौंप दिया गया जो वारी वारी से दौरे पर जाया करते थे। कलेक्टरो के न्याय पालन और मजिस्ट्रेटो से सवद्ध कर्तव्य

उनसे छीन लिए गए और उन्हें एक नए वर्ग के अधिकारियो के जिम्मे कर दिया गया जो न्यायाधीश कहे जाते थे। कलेक्टरो का काम केवल अधिशासी अधिकारियों के रूप मे रह गया जिनके जिम्मे लगानवसूली का काम रखा गया। बेंटिक ने कई जिलो को मिलाकर डिवीजनो का निर्माण किया। प्रत्येक डिवीजन कमिश्नर ऑव रेवेन्यू ऐंड सर्किट नामक अधिकारी के अधीन रखा गया। उसने प्रातीय अदालतें समाप्त कर दी, कलेक्टरो को न्यायिक अधिकार दिए और फारसी के स्थान पर अदालती भाषा के रूप मे वर्नाक्यूलर (मातृभाषा) को प्रतिष्ठित किया। कार्नवालिस अधिशासी और न्यायिक सेवाओं मे उत्तरदायित्वपूर्ण पदो पर भारतीयो की नियुक्ति नही करता था किंतु बेंटिक ने न्यायिक अधिकारियो के रूप मे भारतीयो की नियुक्ति की। इन्हे आगे चलकर अधीनस्थ या उपन्यायाधीश कहा जाने लगा। १८५४ मे बगाल, बिहार, उडीसा और असम को एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन किया गया। उसी वर्ष २८ अप्रैल को इसपर श्री एफ० जे० हैलिडे की नियुक्ति हुई।

प्रशासकीय परिवर्तनो के साथ ही साथ इस काल मे कई कल्याणकारी सामाजिक सुधार भी लागू किए गए। इन सुधारों के लिये कपनी सरकार को अनेक प्रबुद्ध भारतीयो का समर्थन प्राप्त हुआ जिनमें सर्वप्रमुख हैं राजा राममोहन राय और पडित ईश्वरचद्र विद्यासागर। बाल-हत्या-निषेध तथा सती प्रथा का उन्मूलन १८२९ मे एक अधिनियम द्वारा स्वीकृत किया गया और १८७६ मे उडीसा के खोडो द्वारा अनुचित नर बलि की प्रथा अवैध कर दी गई और एक विधान द्वारा विधवा विवाह को वैधता प्रदान की गई। इसी अवधि मे भारत मे अंग्रेजी शिक्षा के आरभ के लिये भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य किए गए। १८१३ मे चार्टर ऐक्ट के नवीनीकरण से शिक्षा के लिये प्रति वर्ष कम से कम एक लाख रुपए के अनुदान की व्यवस्था की गई। इस धनराशि का व्यय किस रूप मे किया जाय, इस सबध में कुछ विवाद हुआ किंतु बेंटिक सरकार ने शिक्षासमिति के अध्यक्ष और गवर्नर जेनरल की कौंसिल के कानून सदस्य लार्ड मैकाले के प्रसिद्ध विवरणपत्र द्वारा समर्थन प्राप्त कर ७ मार्च, १८३५ को एक प्रस्ताव द्वारा निर्णय किया कि सुलभ धनराशि का व्यय अंग्रेजी शिक्षा पर ही होना चाहिए। इसके बाद १९ जुलाई, १८५४ को बोर्ड ऑव कट्रोल के प्रेसिडेंट सर चार्ल्स वुड का प्रसिद्ध सवादपत्र प्रकाशित हुआ जिसने भारत मे नई शिक्षाप्रणाली की नीव रख दी। इसी नीव पर आगे शिक्षा का विकास हुआ। १८५७ मे कलकत्ता, मद्रास और बवई मे तीन विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई।

ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार तो होता जा रहा था किंतु इस देश की जनता के विभिन्न वर्गों मे असतोष की आग भी सुलग रही थी जो समय समय पर विद्रोह की ज्वालाओ मे फूटती रही है यथा, १८३१–१८३२ मे छोटा नागपुर का कोल विद्रोह, १८५५–१८५७ का सताल विद्रोह और इसी तरह के कुछ अन्य विद्रोह। ये सारे विद्रोह १८५७–१८५९ के आदोलन मे चरम परिणति को प्राप्त हो गए। यह आदोलन सैनिक गदर के रूप में शुरू हुआ किंतु शीघ्र ही देश के विभिन्न भागों मे सामान्य जनविद्रोह के रूप मे विकसित हो गया। भारत में ब्रिटिश राज के विरुद्ध उठनेवाली यह एक बहुत बडी और शक्तिशाली चुनौती थी। यद्यपि सरकार ने इसे बड़े परिश्रम और यत्न से दबा दिया, तथापि आगे चलकर अनेक रूपों मे इसके महत्वपूर्ण परिणाम प्रकट हुए। इसी के फलस्वरूप भारत मे कपनी शासन का अत हो गया और इसके विरोध के बावजूद २ अगस्त, १८५८ को भारत के लिये श्रेष्ठतर सरकार की स्थापना के उद्देश्य से पारित कानून के अनुसार भारत ब्रिटिश क्राउन के नियत्रण मे आ गया। इस परिवर्तन की घोषणा लार्ड कैनिंग द्वारा इलाहाबाद मे आयोजित एक दरबार मे सम्राज्ञी के नाम मे १ नवबर, १८५८ को जारी किए गए एक घोषणापत्र से की गई। इस घोषणापत्र द्वारा उन सभी लोगो को क्षमा प्रदान कर दी गई जिनका ब्रिटिश प्रजाजनो की हत्या मे प्रत्यक्ष हाथ नहीं था, भारतीय रजवाडो से की गई सधियो और समझौतो को पुष्ट किया गया, भारत में क्षेत्रीय प्रसार की सारी इच्छा का त्याग कर दिया गया, न्याय, उदारता और धार्मिक सहिष्णुता की नीति का उद्घोष किया गया और यह वचन दिया गया कि सभी सरकारी नौकरियो मे किसी जाति या धर्म का ख्याल किए बगैर सबकी नियुक्तियाँ की जाएँगी। ब्रिटिश सरकार ने अब से उन भारतीय राज्यो के प्रति नई नीति अख्तियार की जो ब्रिटिश क्राउन की प्रभुसत्ता स्वीकार करते हों और ऐसे सभी राज्यो को एक ही शासन व्यवस्था का अग माना गया। सेना और प्रशासन की कुछ अन्य शाखाओं मे भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए।

२०वीं शताब्दी के आरभिक वर्षों तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद निरतर वर्धमान था। कर्जन के शासनकाल में (१८९९–१९०५) यह उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच गया किंतु १८७० के बाद से, इसके साथ ही साथ, भारत मे धीरे धीरे राजनीतिक चेतना का भी जागरण होने लगा। १८८५ मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना इस दृष्टि से एक अत्यत महत्वपूर्ण घटना है। अनेक वर्षो तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नरमपथी नीति का ही अनुसरण करती हुई समय समय पर जनकल्याण के लिये विभिन्न सुधारो तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अतर्गत प्रातिनिधिक स्वशासन के समारभ की माग करती रही। किंतु इसी के साथ साथ कांग्रेस के ही अदर कुछ ऐसे भारतीय राष्ट्रवादियो का भी वर्ग था जिनका विचार आमूल परिवर्तनवादी और उग्र था। वह ब्रिटिश शासन से सपूर्ण मुक्ति की माँग करता था। इस वर्ग के प्रमुख प्रतिनिधि थे बाल गगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और विपिनचद्र पाल। १९०५ मे कर्जन की बगाल विभाजन की योजना के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई उसमे भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास मे एक नया मोड आ गया। बगाल में स्वदेशी आदोलन छिडा जिसका भारत के दूसरे भागो मे भी व्यापक प्रभाव हुआ। १९०६ मे हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में उसके राष्ट्रपति दादाभाई नौरोजी ने स्वराज अथवा 'ब्रिटेन या ब्रिटिश उपनिवेशो के अतर्गत स्वशासन' को भारत का लक्ष्य घोषित किया। आगे चलकर महात्मा गाधी के नेतृत्व मे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन शक्तिशाली होने लगा और एक के बाद एक असहयोग आदोलन (१९२०–१९२४), सविनय अवज्ञा आदोलन (१९३०–१९३४) तथा सन् १९४२–१९४३ के आदोलन के दौरान सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचद्र बोस जैसे देशभक्तो के अनवरत त्याग और बलिदान के फलस्वरूप १९४७ में भारत को स्वतत्रता प्राप्त हो गई और ब्रिटिश राज समाप्त हो गया।

[का० कि० द०]

भारत में लौह अयस्क (Iron ore in India) भारत, विश्व के उन देशो मे से है जहाँ विपुल मात्रा मे लौह अयस्क देश के अनेक भागो मे पाया जाता है। इन स्रोतो में से कुछ ऐसे भी हैं जो वर्तमान समय मे यातायात की कठिनाई, अथवा किसी अन्य कारणवश, अधिक आर्थिक महत्व के नही है। लगभग एक शताब्दी से इन स्रोतो का सर्वेक्षण होता आया है तथा लगभग अर्द्धशताब्दी से लौह तथा इस्पात के उत्पादन पर विशेष बल दिया गया है।

भारत मे प्राप्त लौह अयस्को मे चार प्रकार मुख्य हैं

(१) सर्वाधिक महत्वपूर्ण हेमेटाइट (Hematite) अयस्क है, जो बिहार, उडीसा तथा मध्य प्रदेश के विशाल निक्षेपो मे विद्यमान है। अपेक्षाकृत कुछ कम महत्व के निक्षेप मैसूर तथा महाराष्ट्र राज्यो में स्थित हैं।

(२) स्फटिक मैग्नेटाइट (Quartz Magnetite) शिलाएँ मुख्यत मद्रास राज्य के त्रिचनापल्ली तथा सेलम जिलों में और मैसूर के कुछ भागो मे पाई जाती हैं।

(३) लिमोनाइट तथा लोहउल्का (Limonite & Siderite ores) बगाल के रानीगज क्षेत्र मे विकसित, अधर गोंडवाना क्रम के लौह-प्रस्तर-शेल (shale) के अवयव के रूप मे पाई जाती है।

(४) लैटेराइट अयस्क (Laterite ore) इनका उद्भव विभिन्न प्रकार की शिलाओ से, जिनमे लौह का कुछ अश रहता हो, हो सकता है। इनमे ऋतुक्षरण (weathering) से सिलिका (silica), क्षारो एवम् क्षारीय मिट्टियो का लोप हो जाता है तथा लौह और ऐल्यूमीनियम के आर्द्र ऑक्साइडो का सकेंद्रण हो जाता है। इस प्रकार प्रसिद्ध लैटेराइट अस्तित्व मे आता है।

लौह अयस्क का भूवैज्ञानिक वितरण— सर्वाधिक महत्वपूर्ण अयस्क हेमेटाइट निक्षेप हैं, जो पूर्व कैंब्रियन युग के पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर (Banded Hematite Jasper) अवसादो के साहचर्य मे प्राप्त होते हैं। कुछ मैग्नेटाइट निक्षेप इन अवसादों के रूपातरण द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं।

कुछ निक्षेप नवीन शिलाओ मे भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ कडप (Cuddapah), विध्यन, गोडवाना, मेसोजोइक (Mesozoic) तथा तृतीयक (Tertiary) आदि मे, किंतु इनका विशेष आर्थिक महत्व नही है। कुछ महत्वपूर्ण निक्षेप भूवैज्ञानिक विभाजन के साथ आगे दिए जा रहे हैं। (देखें सारणी)

बिहार तथा उडीसा

सिंहभूम, किओनझर तथा बोनाई के लौह निक्षेप — बिहार के सिंहभूम तथा इससे सलग्न उडीसा के किओनझर तथा बोनाई जिलो मे लौह अयस्क विपुल मात्रा मे वितरित हैं। इस क्षेत्र मे पाई जानेवाली सरचनाओ (formations) मे अकायातरित (unmetamorphosed), पूर्व कैंब्रियन, अवसादित शिलाएँ, जिन्हे 'लौह अयस्क श्रेणी' भी कहते हैं, कुछ प्राचीन नाइसीय (gneissic) तथा शिस्टाभ (schistose) शिलाएँ एव ग्रेनाइट समिलित हैं।

दक्षिण सिंहभूम तथा सलग्न जिलो मे पट्टीवाली फेरोगिनस (feruginous) शिलाएँ वलित (folded) हैं, जिन्होने ऐसी कूट श्रृंखला को जन्म दिया है जिसके श्रृंग उत्तम प्रकार के लौह अयस्क (हेमेटाइट) से आच्छादित हैं। इन निक्षेपो को पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर कहा जाता है। इनमे हेमेटाइट तथा जैस्पर की पट्टियाँ एक के बाद एक के क्रम मे पाई जाती है। सरचनाओ की अधिकतम मोटाई बोनाई जिले मे लगभग ३,००० फुट है तथा सिंहभूम और किओनझर मे कुछ कम है। इस क्षेत्र की सरचना जटिल होने से मोटाई का ठीक ठीक अनुमान लगाना कठिन है।

महत्वपूर्ण निक्षेप

निक्षेप का विवरण	स्थिति
पूर्व कैंब्रियन की लौह अयस्क श्रेणियाँ तथा धारवाड पट्टी वाले लौह अवसाद	सिंहभूम (विहार), बोनाई, किओनझर तथा मयूरभज (उडीसा), चादा, द्रुग, बस्तर तथा जबलपुर (मध्य प्रदेश), रत्नगिरि, गोवा, सेलम, त्रिचनापल्ली, सादूर; हैदराबाद।
ग्रेनाइट (granite) मैग्नेनाइट तथा विघटित ग्रेनाइट	जयतिया पर्वत (असम)
कडप क्रम (system)	कर्नूलु (मद्रास)
विजावर श्रेणी (series)	रीवा (मध्य प्रदेश)
गोडवाना क्रम वराकर तथा महादेव श्रेणियाँ। लौह प्रस्तर शेल	वीरभूम रानीगज कोयला क्षेत्र (बगाल)
ट्राइसिक (Triassic)	कश्मीर
जूरेसिक (Jurassic)	काठियावाड
राजमहल पाश (trap)	वीरभूम (बगाल)
उत्तर तृतीयक (Upper tertiary) टीपम समूह (group)	उत्तर असम (upper assam)
लैटेराइट (laterite) [तृतीयक अथवा पश्चात्]	बगाल, हैदराबाद, मद्रास

इन क्षेत्रो मे अनेक प्रकार के अयस्क मिलते हैं, जिनमे चार प्रकार के मुख्य हैं.

(१) स्थूल अयस्क, जिसमे मुख्यत हेमेटाइट ही होता है। यह गहरे कत्थई से लेकर इस्पात के वर्ण तक का सघन अयस्क है, जो सामान्यत अयस्ककूटो के श्रृंगो को निर्मित करता है।

(२) पटलित अयस्क (laminated ore) मे पटल पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। अवश्य ही यह अयस्क, स्थूल अयस्क से कम सघन होता है तथा इसमे लौह का अनुपात ५५ % से ६० % तक होता है।

(३) शेली (shaly) अयस्क कुछ गहराई पर मिलता है। कुछ अयस्क पर्याप्त, यहाँ तक कि सघन अयस्क जितने, समृद्ध होते हैं तथा कुछ मे लौह का अनुपात ५० % अथवा उससे भी कम होता है।

(४) चूर्ण अयस्क अधिकाशत नीलश्याम (blue black) वर्ण का होता है। इसके चप्पे (patches) नोआमडी, गुआ, मनोहरपुर तथा अन्य निक्षेपो मे प्राप्त होते है, जहाँ खनन पुराने क्षेत्र मे होता है।

पालामऊ जिले के मैग्नेटाइट निक्षेप — पालामऊ जिले में डाल्टनगज के समीप, लादी में मैग्नेटाइट अयस्क दो समूहों में पाया जाता है। प्रथम समूह गोरे ग्राम के समीप पाँच पहाड़ियों का है, जो उ० उ० प०–द० द० पू० दिशा में १,०० गज तक फैला हुआ है। पहाड़ियों की चौड़ाई ३५० गज है।

अयस्क में मुख्यत मैग्नेटाइट है, जो अशत हेमेटाइट द्वारा स्थानातरित कर दिया गया है। समृद्ध अयस्क के दृश्याश (outcrop) की लबाई लगभग २,००० फुट तथा चौडाई ६० फुट है। अयस्क का आपेक्षिक घनत्व ४ ३–४ ६३ है। इसमे अच्छे वर्ग के मैग्नेटाइट की मात्रा का अनुमान ४,००,००० टन है। कुछ लोग इसका अनुमान ६,००,००० टन तक भी करते हैं। दूसरा वर्ग है विवाबाथन, जो विवाबाथन नामक ग्राम के दक्षिण पूर्व में लगभग आधा मील पर स्थित है। यहाँ मैग्नेटाइट शिस्ट (schist) का एक लघु दृश्याश (outcrop) देखा गया है। इस दृश्याश से सलग्न क्षेत्र मे लौह अयस्क के अनेक ढेर वृहत् मात्रा में फैले हुए हैं। मैग्नेटाइट अयस्क के अनुमानित भडार १,००,००० टन हैं।

टाइटेनियमयुक्त तथा वैनेडियमयुक्त मैग्नेटाइट निक्षेप — दक्षिण-पूर्व सिंहभूम तथा मयूरभज से सलग्न भागो में कुछ टाइटेनियमयुक्त मैग्नेटाइट के निक्षेप, जिनमे वैनेडियम का भी कुछ अवयव समिलित है, प्राप्त होते हैं। हुव्लावेरा, लागो, कुदर साही (सिंदोरपुर के दक्षिण मे) तथा वेतझरन के समीप अयस्क के प्राप्तिस्थान हैं। ये सभी छोटे निक्षेप हैं। सर्वाधिक विशाल निक्षेप मयूरभज राज्य के कुम्हारडूवी मे प्राप्त हुए है। इसके आसपास का क्षेत्र, जो ३/४ मील लबा और ३/८ मील चौडा हैं, प्लवी अयस्क (float ore), अथवा मैग्नेटाइट ससड (magnetite debris), से आच्छादित है। प्लवी अयस्क के अनुमानित भडार १० लाख टन के लगभग हैं।

मध्य प्रदेश

विशाल और महत्वपूर्ण लौह निक्षेप बस्तर, चाँदा, द्रुग तथा जबलपुर जिलो मे प्राप्य हैं।

बस्तर जिले के निक्षेप — ये निम्नलिखित हैं .

(अ) बैलाडिला — यहाँ लौह अयस्क पूर्वकैंब्रियन अवसादीय लौह सरचनाओं मे, जिन्हें 'बैलाडिला लौह अयस्क शृखला' कहते हैं, पाए जाते हैं। मूल शिला पट्टीवाली हेमेटाइट जैस्पर (B H. J) है, जो हेमेटाइट द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गई है। कुछ छोटे मोटे मैग्नेटाइट निक्षेप भी मिले हैं, किंतु महत्व के नही हैं। बैलाडिला शृखला मे दो समातर कूट हैं, जो उत्तर-दक्षिण में फैले हुए हैं। लगभग १४ निक्षेपों की स्थिति ज्ञात की जा चुकी है, जिनमे पाँच शृखला के पश्चिम में तथा नौ पूर्व मे स्थित हैं। तलीय अवलोकन द्वारा निक्षेपों का अनुमान दो सौ फुट तक की गहराई के लिये ६१ करोड टन आँका गया है। इसमें प्लवी अयस्क भी समिलित है। यह अनुमान पूर्णत विश्वसनीय नही है।

(ब) राउघाट (Rowghat) — यहाँ हेमेटाइट के कुछ महत्वपूर्ण निक्षेप मिले हैं। इस क्षेत्र मे लगभग छह निक्षेपो का रेखाकन हो चुका है और १५० फुट तक की गहराई में ७४ करोड़ टन अयस्क होने का अनुमान है। कारके गाँव के पश्चिम में राउघाट के दक्षिण पश्चिम कूट मे विशालतम निक्षेप स्थित हैं।

द्रुग जिले के निक्षेप — इस जिले के पश्चिमी भाग में धल्ली तथा रझारा पर्वतश्रेणियो पर, जो लगभग २० मील तक वक्र, किंतु सतत, पक्ति मे फैली हुई हैं, आस पास के क्षेत्र से ४०० फुट की ऊँचाई पर लौह निक्षेप प्राप्त होते हैं। इनका अयस्क उच्च वर्ग का हेमेटाइट है, जिसमें मैग्नेटाइट की कुछ मात्रा भी समिलित है। १५० फुट गहराई तक अयस्क के अनुमानित भडार १२ करोड टन आँके गए हैं।

चाँदा जिले के निक्षेप — लौह अयस्क के प्राप्तिस्थान मुख्य रूप से चाँदा जिले के उत्तरी भाग मे सीमित हैं, जहाँ वे लेंसो (lenses) की शृखला में पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर के साहचर्य में प्राप्त होते हैं। मुख्य प्राप्तिस्थान लोहारा, पिपलगाँव, असोला तथा दिवालगाँव हैं। लोहारा निक्षेप की चौडाई अपेक्षाकृत कम है, किंतु फिर भी १० फुट चौडाई को ध्यान मे रखते हुए यहाँ २१० लाख टन अयस्क मिलने की आशा है। पिपलगाँव, असोला तथा दिवालगाँव के निक्षेप छोटे हैं तथा कुल अयस्क का अनुमान १० लाख टन है।

जबलपुर जिले के निक्षेप — लौह अयस्क उत्तर पूर्वी भाग की शिलाओं मे, जो पहिले विजावर श्रेणी में समझी जाती थी किंतु अब धारवार वर्ग मे समिलित की जाती हैं, पाया जाता हैं। मुख्य लौह शिलाएँ अभ्रकी तथा सिलिकामय हैं।

अगरिया पहाडी में, जो सिहोरा रेलवे स्टेशन के द० द० पू० में १० मील की दूरी पर स्थित है, लैटेराइट के समृद्ध अयस्को मे लौह की मात्रा ४५–६० % तक विद्यमान है। इसकी अनुमानित मात्रा ७,५०,००० टन है।

इसके अतिरिक्त जौली, मिलोदी, गोसलपुर तथा घोगरा आदि मे साधारण अथवा निकृष्ट कोटि के निक्षेप हैं। कन्हवाडा पहाड़ियों में लैटेराइट पाया जाता है। यहाँ अयस्क की कुल मात्रा ४६० लाख टन के लगभग होगी। सरोली मे ३५ लाख टन अयस्क मिलने की सभावना है।

ग्वालियर जिले के उत्तरी भाग मे लौह प्रस्तर शेलें मिलती हैं। अयस्क सघन कठोर हेमेटाइट से लेकर कोमल पदार्थ तक के रूप में प्राप्य है। अयस्क मे कभी कभी ७०% तक लौह होता है।

बिजावर श्रेणी मे नर्मदा नदी के अनुप्रस्थ इदौर, धार तथा झबुआ जिलों मे लौह अयस्क अनियमित रूप से वितरित पाया जाता है।

गुना, शिवपुरी, भिलसा, शाजापुर, उज्जैन तथा मदसौर जिलो मे समृद्ध लैटराइट के छद (cappings) पाए गए हैं।

बगाल

बीरभूम — यहाँ लौह अयस्क अनेक स्रोतों से उत्पन्न हुए हैं। दामूदा तथा महादेव श्रेणियों के बालू पत्थर में हेमेटाइट की पट्टिकाएँ मिली हैं। दूसरा स्रोत लैटेराइट का है, जो राजमहल पाश के साहचर्य मे पाया जाता है। तामरा देवचा, सी पहाडी, दूधिया, काँडा तथा राजमहल पाश की दक्षिण सीमा के समीप खनन कार्य किया गया है।

(२) रानीगज कोयला क्षेत्र (वर्दवान) — लौह अयस्क दामूदा श्रेणी के मध्य भाग मे पाया जाता है जो लौह प्रस्तर शेल कहा जाता है। लौह प्रस्तर शेल की अनुमानित मोटाई लगभग १,४०० फुट है, तथा यह पूर्व पश्चिम दिशा में कुल्टी से लेकर लगभग ३३ मील की दूरी तक फैली हुई है। टी० डब्ल्यू० एच० ह्यूज (T. W H Hughes) के अनुसार इस क्षेत्र के प्रति वर्ग मील मे लगभग २० करोड टन लौह प्राप्त होने की सभावना है।

महाराष्ट्र और गोआ

लौह अयस्क के निक्षेप धारवाड़ क्रम मे अनावृत्तो (exposures) की शृखला के रूप मे ककोली के समीप, वाग्दा के पूर्व में स्थित कस्साल के पूर्व-उत्तर-पूर्व मे, कुडा के दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम एव कट्टा तथा रेडी के समीप पाए जाते हैं। कट्टा तथा रेडी के निक्षेप महत्वपूर्ण हैं और महाराष्ट्र तथा गोआ की सीमा पर वेनगुल्ला के दक्षिण-दक्षिण-पूर्व मे पश्चिमी तट पर स्थित हैं।

गोआ की सीमा मे बिचोलिम के समीप लोहे की खानें प्राप्त होने की सूचना मिली है। दो कूटो, जिनकी पारस्परिक दूरी ४०० मीटर है, पर दो समातर लौह अयस्क की पट्टियाँ हैं। यहाँ के अयस्क मे कुछ कठोर तथा रध्री हेमाटाइट, मैगनेटाइट के सूक्ष्म कणो के साथ प्राप्त होता है।

महाराष्ट्र तथा गोआ के लौह के निक्षेपो मे न्यूनतम ७० लाख टन उत्तम प्रकार के अयस्क मिलने की आशा है। इतनी ही मात्रा मे निकृष्ट कोटि के तथा लैटेराइट अयस्क भी प्राप्त हो सकते हैं। उत्तम प्रकार के अयस्क मे लगभग ६०% लौह होता है। समुद्र के समीप होने के कारण इन निक्षेपो का उपयोग मुख्य रूप से जापान के लिये अयस्क निर्यात करने के लिये किया जाता है।

मद्रास

सेलम तथा त्रिचनापल्ली के निक्षेप — मद्रास राज्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निक्षेप मैगनेटाइट स्फटिक शिलाओ का एक वर्ग है जो त्रिचनापल्ली और सेलम जिलो मे पूर्व-उत्तर-पूर्व पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम दिशा के अनुप्रस्थ फैला हुआ है। इस क्षेत्र के निक्षेपो को निम्नलिखित नौ वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है

(१) कज मलाई, (२) गोदु मलाई (३) पेरुम मलाई (४) आत्तुर क्षेत्र (५) चित्तेरी पहाडी (६) थीर्थ मलाई (७) नमक्कल तथा रासीपुर क्षेत्र, (८) कोल्लाइ मलाई एव (९) पचाइ मलाई।

सर्वाधिक महत्व के निक्षेप कज मलाई मे ही निहित हैं इसमे कोई सशय नही। कज मलाई विशाल पहाडी है जो सेलम नगर से पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम मे पाँच मील की दूरी पर स्थित है। इसकी रूपरेखा अडाकार है जिसकी लबाई ४½ मील तथा चौडाई २½ मील के लगभग है।

भडार — अनुमान केवल उन्ही अयस्कों का किया गया है जिनमें २५% से कम मैगनेटाइट नही है और जहाँ वाणिज्य स्तर पर कार्य किया जा सकता है। डा० एम० एस० कृष्णन् के अनुसार १०० फुट की गहराई तक निम्नलिखित भडारो की गणना की गई हैं

निक्षेप	मात्रा
कज मलाई	५ ४६ करोड़ टन
गोदु मलाई	१·२५ ,, ,,
पेरुम मलाई	१ ०४ ,, ,,
आत्तुर क्षेत्र	१ १७ ,, ,,
चित्तेरी पहाडी	५ ५४ ,, ,,
थीर्थ मलाई	४ ७५ ,, ,,
नमक्कल रासीपुर	३ ३९ ,, ,,
कोल्लाइ मलाई	६ ७४ ,, ,,
पचाइ मलाई	१ १ १ ,, ,,
योग =	३० ४५ करोड टन

कडप जिले के हेमाटाइट निक्षेप — चवाली निक्षेप, कडप क्रम के पुलीवेंडला क्वार्ट्ज़ाइट (Quartzites) के समृद्ध भाग को प्रदर्शित करते हैं। लौह अयस्क स्फटिक के अनियमित चप्पो मे प्राप्य हैं। अयस्क उत्तम प्रकार का हेमाटाइट है, किंतु कुछ भाग का अपरदन हो गया है। चवाली के समीप ही पगडालापाल्ले निक्षेप भी स्थित हैं। चवाली मे कई सौ हजार टन अयस्क मिलने की सभावना है।

कर्नूलु जिले के निक्षेप—रामाल्ला कोटा तथा वेलदुर्ती के समीप हेमाटाइट निक्षेप मिले हैं। वेलदुर्ती, गानीघाट्टू पहाडियों तथा ब्रह्मगुडम के अतर्गत अनेक निक्षेप प्राप्त हुए है। १०० फुट तक की गहराई के लिये अनुमानित भडारो की मात्रा ३७ लाख टन है।

मैसूर

हेमाटाइट अयस्क — इन अयस्को ने पूर्व कैंब्रियन धारवाड क्रम के भागो को निर्मित किया है। अयस्क खनिज मुख्यत हेमाटाइट है जिसके साहचर्य मे थोडा मैगनेटाइट भी मिलता है।

मैगनेटाइट अयस्क — स्फटिक (Quartz) मैगनेटाइट अयस्क लेंस रूप मे माड्डूर, हलागुर तथा सारगुर के समीप एक श्रेणी के अतर्गत मिलता है।

टाइटेनियम का मैगनेटाइट — यह विरल पट्टिकाओ तथा लेंसो मे मैसूर के दक्षिणी भाग मे प्राप्त होता है।

भडार — चिक्कमगलूर, चित्राल, दुर्ग तथा तुमकूरु जिलो मे हेमाटाइट अयस्क के विशालतम निक्षेप हैं। यहाँ अल्प गहराई तक ही लगभग १२ करोड टन अयस्क उपलब्ध है। इसमे ⅔ भाग उच्च कोटि का अयस्क है जिसमे ६० % के लगभग लौह है। १०० फुट की सामान्य गहराई मानते हुए कुल भडारो का अनुमान १०० करोड टन होगा जिसमे सभी कोटि के अयस्क समिलित हैं। मैसूर राज्य *के अन्य भागो मे १० करोड टन से भी अधिक स्फटिक मैगनेटाइट* अयस्क तथा तीन करोड टन के लगभग टाइटेनियमयुक्त मैगनेटाइट विद्यमान हैं।

सादूर (बल्लारि) के लौह निक्षेप — लौह अयस्क धारवाड़ (पूर्व कैंब्रियन) शिलाओ मे प्राप्य है। उडीसा की भाँति यहाँ भी अयस्क छादो से आच्छादित कूटो की एक शृखला है जो पट्टीवाली लौह सरचनाओ के समृद्ध सवर्धन से उत्पन्न हुई है। अयस्को मे उत्तम हेमाटाइट है।

भडार — ५० से ८० फुट गहराई तक विभिन्न निक्षेपो के अनुमानित भडार इस प्रकार हैं :

निक्षेप	मात्रा	
दोनाइ मलाई	२ ५६ करोड टन	
देवादरी शृखला	१·५०	,,
कुमारास्वामी काम्माधेरूवू शृखला	२ ५४	,,
काना वेहाली शृखला	० ०५	,,
रामन दुर्ग शृखला	३ ०३	,,
तिम्मापानागुडी शृखला	३·२८	,,
	योग = १२ ६६ करोड टन	

आंध्र प्रदेश

हैदराबाद मे विभिन्न आकार के अनेक निक्षेप प्राप्त हुए हैं। इनमे महत्वपूर्ण निक्षेप धारवाड क्रम मे ही सीमित हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्राप्तिस्थान चितियाला, कालेरा, रेवनपल्ली, चदोली (अवर पेट) तथा सिंगरेनी क्षेत्र आदि हैं।

कश्मीर

सर्वप्रथम लोह अयस्क का एक स्तर सगार मार्ग मे प्राप्त हुआ था। एक अन्य स्तर अशुद्ध कैल्सियम लोह अयस्क का है जो चूना पत्थर तथा शेलो के सपर्क में उत्तर ट्राऐसिक युग की शिलाओ मे सोफ ग्राम में पाया गया है।

पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश

कुछ साधारण निक्षेप पटियाला (पजाव) तथा हिमाचल प्रदेश में प्राप्त हुए हैं। इनमे कुछ महत्वपूर्ण निक्षेप भी होंगे ऐसी सभावना है।

भंडारों का अनुमान

यह स्वय सिद्ध है कि भारत में हेमाटाइट अयस्क पर्याप्त विस्तारो मे वितरित तथा मात्रा की दृष्टि से भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। व्यावहारिक रूप से सभी दशाओ में भडारो का अनुमान तलीय निरीक्षणो द्वारा ही किया गया है तथा बृहत् पूर्व सर्वेक्षण नही हुआ है। निम्नांकित अनुमान मे केवल उन्ही अयस्को की गणना की गई है जिनमें ६०% या उससे अधिक लोह अवयव विद्यमान है। अनुमानित भडार (करोड टन मे) निम्नलिखित है

हेमाटाइट अयस्क	भूवैज्ञानिक अनुमान	सभावित अनुमान
विहार तथा उडीसा		
सिंहभूम	१०४७	
केंदुभारगढ	६८८	
बोनाई	६४८	
मयूर भज	१७	
	२७००	८०००
मध्य प्रदेश		
लोहारा	२०	
पिपरागाँव	३	
आमोला दिवाल गाँव	२	
धल्ली राझारा पहाड़ियाँ	१२०	
बैनाडिला	६१०	
रावघाट आदि	७४०	
जबलपुर (विभिन्न प्रकार)	५५	
	१५५०	३०००
महाराष्ट्र तथा गोआ		
गोआ रतनगिरि	७	
आंध्र	३६	
मद्रास		
वेलदुर्ती (कर्नूलु)	७	
मैसूर	१२०	१००·०
सादूर (वल्लारि)	१३०	२५·०
हेमेटाइट अयस्क का योग	४५५०	१२२५·०

मैगनेटाइट	भूवैज्ञानिक अनुमान	सभावित अनुमान
मद्रास		
सेलम त्रिचनापल्ली	३०·५	१०००
मैसूर	१३०	२००
विहार तथा उडीसा		
सिंहभूम, मयूरभज	२	
पालामऊ	·१	
हिमाचल प्रदेश		
मडी	२५	
मेगनेटाइट अयस्क का योग	४६३	१२००

लिमोनाइटिक अयस्क	भूवैज्ञानिक अनुमान	सभावित अनुमान
बगाल		
रानीगज कोयला क्षेत्र		५०·०

भारतीय लौह व इस्पात उद्योग — अभी तक भारत में लोह व्यवसाय विकासशील अवस्था में है। देश में लोह खनिज का वार्षिक उत्पादन लगभग ५१ लाख टन है जिसमें से प्राय ६०% विहार और उडीसा के निक्षेपो से प्राप्त होता है। उत्पादित मात्रा का कुछ भाग जापान आदि देशो को निर्यात किया जाता है। देश मे लोह तथा इस्पात के चार पुराने कारखाने हैं जिनमे से एक टाटानगर में, दूसरा आसनसोल के समीप हीरापुर मे, तीसरा कुल्टी मे तथा चौथा मैसूर राज्य में भद्रावती मे स्थित है। इन सब मे मिलाकर १९ लाख टन कच्चा लोहा तथा १२ लाख टन लोहा और इस्पात उत्पन्न होता है। देश की विशालता तथा जनसख्या को देखते हुए यह मात्रा बहुत कम है और अत्यधिक परिमाण में लोह तथा इस्पात तथा उनसे बना हुआ सामान विदेशो से आयात करना अनिवार्य होता है। यन्त्रों के अतिरिक्त साधारण श्रेणी का लोहा तथा इसके सामान के आयात का वार्षिक मूल्य प्राय २२ करोड रुपए के लगभग होता है। इस अभाव को पूरा करने के लिये नवीन लोह तथा इस्पात के कारखानों के निर्माण की योजनाएँ बनाई गई हैं। उडीसा में रूरकेला, मध्यप्रदेश मे भिलाई तथा पश्चिमी बगाल मे दुर्गापुर मे नवीन कारखाने स्थापित हो गए हैं। [वि० सा० दु०]

भारत सर्वेक्षण आधुनिक काल मे किसी भी सभ्य देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये परिशुद्ध मानचित्र अत्यत आवश्यक है।

प्रशासन, सुरक्षा, कृषि, सिंचाई, वनप्रबध, उद्योग, सचार, आदि विविध क्षेत्रों में जनता की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए मानचित्र पहली आवश्यकता है। इस कार्य को समुचित रीति से करने के लिये भारत सरकार ने भारतीय सर्वेक्षण विभाग स्थापित किया है।

इतिहास — ईस्ट इडिया कपनी के अफसरो ने १७५० ई० में ही बबई, कलकत्ता और मद्रास के आसपास प्रशासन, राजस्वनिर्धारण और व्यापार की दृष्टि से जहाँ तहाँ सर्वेक्षण प्रारभ किया था। १७६७ ई० में मेजर रेनेल बगाल के प्रथम महासर्वेक्षक नियुक्त हुए। इनकी नियुक्ति का उद्देश्य सफल प्रशासन और वाणिज्यप्रसार के लिये बगाल का एक बृहत् मानचित्र तैयार करना था। इनके सहायक अधिकतर सैनिक इजीनियर थे जिन्हे खगोलीय निरीक्षण द्वारा मार्गसर्वेक्षण का अनुभव था और जिन्हें शाति के दिनो मे सेना से मुक्त किया जा सका था। ये मानचित्र सन् १७७६ मे इग्लैंड मे उत्कीर्ण और मुद्रित हुए और सारे बगाल मे ६० वर्षो तक ये ही प्राप्य नक्शे थे।

विश्वस्त अभिलेखो और सर्वेक्षणो के आधार पर बना हुआ रेनेल का 'हिंदुस्तान का मानचित्र' इग्लैंड मे १७८२ ई० मे उत्कीर्ण हुआ। इस मानचित्र का अधिकाश यात्रियो के रोजनामचो के आधार पर चित्रित हुआ था। समुद्र-तटन्रेखा तो नौचालको के निरीक्षणो के आधार पर कुछ हद तक शुद्ध अकित हुई थी लेकिन देश के भीतरी भाग का रेखाकन शुद्ध नही कहा जा सकता था।

देश भर में धरातल तथा भौगोलिक सर्वेक्षणो के आधारभूत परिशुद्ध बिंदुओ का निर्धारण करने के लिये १८०० ई० मे कैप्टन लैंबटन नियुक्त हुए। उन्होने देश भर मे फैले हुए सबधित बिंदुओ के अक्षाश और देशातर का ज्ञान करने के लिये आधाररेखा (base line) और त्रिकोणीय ढाँचे (triangulation frame work) पर त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण किया। अन्य भूगणितीय (geodetic) कार्य गौण महत्व के समझे गए। लैंबटन की मृत्यु के बाद इस सर्वेक्षण का नाम १ जनवरी, १८१८ को 'भारत का महान् त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण' (The Great Trignometrical Survey of India) रखा गया और लैंबटन की मृत्यु के पश्चात् कर्नल ऐवरेस्ट ने १८४० ई० के बाद इस कार्य को उत्तर मे हिमालय की ओर बढ़ाया।

१८१५ ई० तक बगाल, मद्रास और बबई मे अलग अलग एक एक महासर्वेक्षक था जो स्थानीय सरकार के अधीन कार्य करता था। १८१५ ई० में तीन स्वाधीन महासर्वेक्षको के पद को मिलाकर एक पद कर दिया गया, जिसपर कर्नल मैकेंजी भारत के एक महासर्वेक्षक नियुक्त हुए। कर्नल मैकेंजी का पहला कार्य भारत का प्रामाणिक मानचित्र तैयार करना था। १८३० से १८६१ ई० और १८७८ से १८८३ ई० तक भारत का महासर्वेक्षक ही त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण का अधीक्षक था, यद्यपि यह एक स्वतत्र विभाग बना रहा। भारत का चौथाई इच ऐटलस चालू होने पर लगभग १८२५ ई० में भारत का मानचित्र सामने आया और इस माला का पहला नक्शा १८२७ ई० मे मुद्रित हुआ। यह नक्शा केवल महान त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण के आधार पर ही बना और लदन मे सकलित तथा उत्कीर्ण हुआ। इस ऐटलस मे १८६८ ई० तक, जब उत्कीर्णन भारत मे होने लगा, देश के आधे से अधिक भाग के मानचित्रों को प्रदर्शित कर दिया गया था। इस ऐटलस का कार्य १६०५ ई० तक आगे बढता रहा। पर १६०५ ई० में १/४ इच अश मानचित्रो के एक नए विन्यास और एक इच नक्शो की लगातार मालाओ ने पुराने मानचित्रो का स्थान ले लिया।

१६०५ ई० के बाद के आधुनिक सर्वेक्षण और मानचित्र — १६०५ ई० तक के किए गए स्थलाकृति सर्वेक्षण आधुनिक आवश्यकताओ को देखते हुए परिमाण और गुण मे अपर्याप्त थे। अतएव १६०४-१६०५ ई० मे इस समस्या की जाँच के लिये इडियन सर्वे कमेटी नामक समिति गठित हुई। इस प्रकार भारत मे आधुनिक सर्वेक्षण का प्रारभ १६०५ ई० मे हुआ। उक्त समिति ने बृहत् योजना बनाकर भावी सर्वेक्षणो के सबध मे नीति निश्चित की और 'भारतीय सर्वेक्षण' विभाग ने अनेक रगो मे स्थलाकृति मानचित्र माला (जगलो के नक्शे सहित) तैयार करने का दायित्व सँभाला। राजस्व मानचित्रो का सर्वेक्षण प्रातो पर छोड दिया गया। इस कदम से भारत के सर्वेक्षण विभाग को सारे देश का मानचित्र शीघ्रता से तैयार करने मे काफी मदद मिली। इन प्रारभिक कार्यो से यह विभाग शनै शनै स्थलाकृतिक सर्वेक्षण, खोज और दक्षिण एशिया के अधिकाश भूभाग के भौगोलिक मानचित्रो का अनुरक्षण तथा भूगणितीय कार्य के लिये जिम्मेदार बन गया है। आजकल एक सुस्थापित सरकारी विभाग है जिसकी परिशुद्ध भारतीय सर्वेक्षण, मानचित्र सर्वेक्षण और भूगणितीय कार्यों की परपरा प्रशसनीय है। देश की विकास योजनाओ के लिये आधुनिक सर्वेक्षणो को निष्पादित करने और स्थलाकृतिक तथा भौगोलिक मानचित्रो के अनुरक्षण मे इसका महत्वपूर्ण हाथ है।

मानचित्रो का वर्गीकरण—मानचित्रो के साधारणतया निम्नलिखित प्रकार हैं (क) भौगोलिक मानचित्र, (ख) स्थालाकृतिक मानचित्र, (ग) भू कर तथा राजस्व मानचित्र, (ग) नगर तथा कस्बो के दर्शक मानचित्र, (ड) छावनी मानचित्र, (च) विशिष्ट उपयोग के मानचित्र तथा (छ) विविध मानचित्र।

१. भौगोलिक मानचित्र — इन मानचित्रो मे देश की साधारण भौगोलिक आकृतियाँ होती हैं और उनमे अप्रधान स्थालाकृति के विवरण नही दिखाए जाते। ऊँची नीची धराकृति (height relief) के ऊँचे नीचे स्तर रगो या रेखाच्छादन द्वारा दर्शाते है। इन मानचित्रो का पैमाना १ इच से ८ मील से लेकर १।१२० लाख या इमसे भी छोटा हो सकता है।

स्थलाकृतिक मानचित्र — स्थलाकृतिक मानचित्रो मे सभी प्राकृतिक और कृत्रिम आकृतियाँ विवरण सहित पैमाने के अदर यथासभव सुपाठ्य और स्पष्ट रूप दर्शाई जाती है। पहाडी आकृतियाँ, समतल रेखापद्धति से जिसे समोच्च रेखा कहते है, दिखाई जाती हैं। विशेष आकृति वाले स्थलो को औसत समुद्रतल से ऊपर की ऊँचाई के अक देकर दिखाया जाता है। भौतिक तथा सास्कृतिक लक्षणो, राजनीतिक तथा प्रशासनिक सीमाओ, आकृतियो और स्थानो के नामो से युक्त होने के कारण ये मानचित्र बहुत व्यापक होते हैं। ये मानचित्र ही विविध पैमानो मे भौगोलिक मानचित्र तैयार करने के आधार बनते है। विकास के लिये मूल योजनाएँ बनाने मे भी इन मानचित्रो का बहुत बडा हाथ

रहता है। इनका पैमाना एक मील के २५ इंच से, चार मील के एक इंच तक हो सकता है (भविष्य मे मानक स्थलाकृति मानचित्र माला का पैमाना १ २५,०००, १ ५०,०००, १ १००,०००, और १ : २५०,००० होगा)।

भूकर तथा राजस्व मानचित्र — ये मानचित्र राजस्व प्रयोजन के लिये राज्य सरकार द्वारा बनाए जाते हैं। इनका उद्देश्य स्थलाकृतिक विशेषताओं के दिखाने को छोड़कर गाँव, शहर, जागीर और व्यक्तिगत भूमि संपत्ति का परिसीमन है। इनका पैमाना प्राय एक मील के १६ इंच का है। माप का चुनाव १ ५०० से १ २५,००० तक हो सकता है और ये काली स्याही में ही छापे जाते हैं।

नगर और कस्बों के दर्शक मानचित्र — जैसा कि नाम से प्रकट है इन मानचित्रो मे नगर या कस्बे के सारे विवरण, जैसे सड़क, मकान, नगरपालिका सीमा, सरकारी दफ्तर, अस्पताल, बैंक, सिनेमा, बाजार, शिक्षा संस्थान, अजायबघर, बाग आदि दिखाए जाते हैं। ये मानचित्र स्थानीय संघटनो, परिवहन और नगर विकास समितियो, वाणिज्य संस्थाओं तथा पर्यटको के लिये उपयोगी होते हैं। पैमाना २४ इंच के १ मील से, ३ इंच के १ मील तक होता है। भविष्य मे दर्शक मानचित्रो का पैमाना १ २०,००० तथा १ १५००० होगा।

छावनी मानचित्र — ये मानचित्र विशेष रीति से सैनिक इंजीनियरी सेवा और छावनी अधिकारियो के लिये बने होते हैं। इनका पैमाना १६ इंच का एक मील और ६४ इंच का एक मील होता है। भविष्य मे पैमाना १ ५००० और १ : १००० होगा।

विविध मानचित्र — अनेक सरकारी विभागो और संस्थाओं को प्रशासन और विकास कार्यों के लिये विशेष विषयो से संबंधित नक्शे की आवश्यकता होती है। ये नक्शे ही अनेक विशेष अध्ययन के लिये उपयुक्त नक्शे के आधार बनते हैं। इनके उदाहरण हैं तटीय और सिंचाई मानचित्र, सड़क और रेलवे मानचित्र, भूवैज्ञानिक, मौसमविज्ञान, पर्यटक, नागरिक उड्डयन, टेलीग्राफ और टेलीफोन मानचित्र, नेशनल स्कूल और अन्य ऐटलसो के लिये मानचित्र तथा औद्योगिक संयत्र स्थान आदि के लिये मानचित्र।

विश्व वैमानिक चार्ट आई सी ए ओ (इंटरनैशनल सिविल एवियेशन ऑर्गनाइजेशन) १ १०,००,००० उल्लेखनीय है। इसी प्रकार भारतीय सर्वेक्षण द्वारा तैयार किए हुए अंतरराष्ट्रीय असैनिक वैमानिकी के मानचित्र भी महत्व के हैं। इंटरनैशनल सिविल एवियेशन ऑर्गनाइजेशन के सभी सदस्य राष्ट्रो को इन मानचित्रो का तैयार करना आवश्यक है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपनी सीमा के अंदर की मानचित्र माला तैयार करने के लिये उत्तरदायी हैं। शैली और विन्यास, मानक संकेत, रंग और संगमन (convention) और तैयारी की विधि की एकरूपता के लिये नियम बने हैं जिनका पालन होता है। इन मानचित्रो का पैमाना अधिकतर १ १०,००,००० होता है। १ २,५०,००० पैमाने के आई सी ए ओ इन्स्ट्रूमेंट ऐप्रोच चार्ट, और संसार के सभी महत्वपूर्ण हवाई अड्डों के पैमाने १ ३१,६८० के अवतरण चार्ट इन मानचित्रो के अनुपूरक चार्ट हैं।

प्रक्षेप — पृथ्वी का आकार लगभग गोलीय है। प्रक्षेप निर्धारण के लिये भिन्न देशो मे भिन्न आयाम के गोलाभो का उपयोग हुआ है। भारतीय मानचित्रो के लिये स्वीकृत गोलाभ 'एवरेस्ट गोलाभ' है।

मानचित्र प्रक्षेप कागज पर पार्थिव सदर्श रेखाओं के निरूपण द्वारा पृथ्वी की वक्र सतह को समतल पृष्ठ पर निरूपण करने की पद्धति है। सामान्य रूप से ये अक्षांश की समांतर रेखाएँ और देशांतर (याम्योत्तर) की रेखाएँ हैं। ये भूतल की वास्तविक, किंतु परिशुद्ध गणितीय गणना के योग्य रेखाएँ हैं। यह तो प्रकट ही है कि भूमंडल, जिसका आकार लगभग गोलीय है, समतल पृष्ठ पर ठीक ठीक निरूपित नही किया जा सकता। अत समतल कागज पर पृथ्वी की वक्र सतह के निरूपण के लिये प्रक्षेप का आश्रय लिया जाता है। उद्देश्य के अनुसार त्रुटि और विकृति को इच्छित अंश तक सीमित या दूर हटा दिया जाता है (देखें, प्रक्षेप)।

आकार को बनाए रखने के लिये दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है (१) देशांतर और अक्षांश रेखाएँ प्रक्षेप मे एक दूसरे के लंबवत् हों, (२) किसी निश्चित बिंदु पर सभी दिशाओं मे पैमाना एक हो चाहे वह भिन्न बिंदुओं पर विभिन्न हो। इसे समरूपी प्रक्षेप कहते हैं। भारतीय सर्वेक्षण के मानक मानचित्रों के लिये उचित हेर फेर के साथ समरूपी शक्वाकार प्रक्षेप प्रयुक्त होते हैं।

सर्वेक्षण विधियाँ — ठीक भौगोलिक स्थिति मे भू आकृति के स्थापन के लिये मानचित्र के क्षेत्र के अंदर ऐसे प्रमुख नियंत्रण बिंदुओं के जाल के प्रथम आवश्यकता है जिनके ग्रीनविच के सापेक्ष सही सही अक्षांश और देशांतर अथवा औसत समुद्रतल से ऊँचाई ज्ञात हो। महान् त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण ने भारत के अधिकांश मानचित्रों के निर्माण मे यह कर लिया है। सार रूप मे यह चौरस भूमि पर इन्वार (invar) धातु के तार या फीते से सावधानी से नापी हुई लगभग १० मील लंबी जमीन होती है जिसे 'आधार' कहते हैं।

आधार की स्थापना के बाद उसपर एक के बाद एक उपयुक्त भुजा और कोण के त्रिभुजो की माला रची जाती है। त्रिभुजों के कोणो का निरीक्षण कर भुजा तथा बिंदुओ के नियामकों की गणना कर ली जाती है। इसे त्रिकोणीय सर्वेक्षण कहते हैं। त्रिभुजो का जाल सर्वेक्षण मे सर्वत्र फैला होता है। मुख्य उपकरण काच चाप थियोडोलाइट है जिसमें ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज कोणों को चाप के एक सेकंड अंश या इससे भी कम तक सही पढने की क्षमता होती है। ये बिंदु काफी दूर दूर होते हैं। अत विस्तृत सर्वेक्षण संभव नही। इसके लिये यह आवश्यक है कि महान् त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण के बड़े त्रिभुजों को तोड़कर छोटे छोटे त्रिभुजो का जाल बनाकर सारी जमीन को कुछ मील के अंतर पर स्थित बिंदुओ की माला मे परिणत कर दिया जाय।

पटल चित्रण — इच्छित पैमाने पर प्रक्षेप बनाया जाता है। प्रक्षेप मे नियंत्रण बिंदु अंकित किए जाते हैं। इन बिंदुओ से प्रतिच्छेदन और स्थिति निर्धारण (intersecting and resecting) द्वारा पटलचित्रण और दृष्टिपट्टी की सहायता से विस्तृत सर्वेक्षण किया जाता है। इसे पटल चित्रण (Plane tabling) कहते हैं। भारतीय प्रवणतामापी (clinometer) नामक यंत्र से अतिरिक्त ऊँचाई निश्चित की जाती है। ऊँचाई से निश्चित ऊर्ध्वाधर अंतराल पर तलरेखा तक जिसे समोच्च रेखा कहते हैं, खीचे जा सकते है, जो भूमि की धराकृति अच्छी तरह प्रदर्शित करते हैं।

हवाई सर्वेक्षण — गत ३० वर्षों मे सर्वेक्षण के क्षेत्र मे प्रविष्ट, अत्यत प्रभावकारी विधि हवाई फोटोग्राफ की विधि है। सैनिक और असैनिक उपयोगिता की दृष्टि से हवाई फोटोग्राफी का महत्व प्रथम विश्वयुद्ध काल मे ही अनुभव किया जाने लगा था तथा सर्वेक्षण और मानचित्र निर्माणकार्य मे इसका उपयोग सर्वप्रथम १९१९ ई० मे इग्लैंड मे ऑर्डनास सर्वे की युद्धोत्तरकालीन योजना मे हुआ। तब से यूरोपीय देशो तथा उत्तरी अमरीका मे इस दिशा मे आश्चर्यजनक प्रगति हुई। अब तो हवाई फोटोग्राफी या फोटोग्रामेट्री द्वारा सर्वेक्षण एक अनूठी वैज्ञानिक प्रविधि है। हवाई फोटोग्राफ द्वारा सर्वेक्षण की दो विधियाँ हैं लेखाचित्रीय और यात्रिकी।

लेखाचित्रीय विधि — भारत मे लेखाचित्रीय विधि का कुछ वर्षों से अत्यधिक उपयोग हो रहा है और जहाँ तक स्थलाकृतीय मानचित्र अकन का प्रश्न है, यह विधि लगभग पूर्णता प्राप्त कर चुकी है। इसका आधारभूत सिद्धात यह है वास्तविक ऊर्ध्वाधर हवाई फोटोग्राफ मे विकिरण रेखाएँ, जो फोटोग्राफ मे थल विंदु तक फैली होती हैं, यथार्थ और स्थिर कोण वनाती हैं। आकृतियो का उच्चता विस्थापन (height displacements) मानचित्र के समतल मे दृष्टि विंदु से ठीक नीचे स्थित एक विंदु से [जिसे अवलव विंदु (Plumb line) कहते हैं और जो व्यवहार मे वास्तविक ऊर्ध्वाधर फोटो (true vertical photograph) का केंद्र माना जाता है] अरीय होते हैं जिससे विवरण, मानचित्र समतल के बाहर उसकी ऊँचाई और अवलव विंदु से दूरी के ठीक अनुपात मे वास्तविक मानचित्र स्थिति से विस्थापित हो जाता है। अभीष्ट शक्ल फोटो प्राप्त कर लेने के बाद त्रिकोणीकरण द्वारा निश्चित नियत्रण विंदुओ की सहायता और फोटो के अरीय गुण का उपयोग कर प्रक्षिप्त पत्रो पर, जिनका जिक्र हो चुका है, ठीक भौगोलिक स्थिति मे फोटो के केंद्र अकित किए जाते हैं। प्रत्येक फोटो के अरीय गुण का उपयोग कर विविध विवरणो का प्रतिच्छेदन उनकी सही स्थिति निश्चित की जाती है। लेखाचित्रीय विधि की सबसे वडी समस्या फोटो से परिशुद्ध उच्चता ज्ञात करना है। इस कठिनाई के कारण प्राय भूमि सर्वेक्षण विधियो मे पूरक उच्चता नियत्रण का घना जाल वनाया जाता है। इस मार्गदर्शक उच्चताओ की सहायता से त्रिविमदर्शी (stereoscope) के नीचे रखकर फोटो पर समोच्च रेखाएँ खीचकर उन्हे मानचित्र पत्र पर लगा दिया जाता है।

यात्रिक विधि — उद्भासन (Exposure) के समय कैमरा के प्रकाशाक्ष के ऊर्ध्वाधर न होने के कारण उपर्युक्त लेखाचित्रीय विधि से त्रुटिमुक्त मानचित्र नही वनते। यात्रिक सकलन (mechanical compilation) त्रिविम आलेखन उपकरण (stereoscopic plotting instruments) मे होता है जिससे फोटो ठीक उसी स्थिति मे उलटते, झुकते और घूम जाते हैं जिसमे उद्भासन के समय विमान था। ये उपकरण वायुसर्वेक्षण समस्याओं का ठीक समाधान कर देते हैं जब कि लेखाचित्रीय विधियाँ सनिकट समाधान प्रस्तुत करती हैं। भारत मे आजकल काम आनेवाले आलेखन उपकरण हैं वाइल्ड ऑटोग्राफ ४७, वाइल्ड ४८, मल्टीपलेक्स और स्टीरोटोप।

शुद्ध रेखण — पूर्वोक्त विधियों से विभिन्न सर्वेक्षण खडो का फोटो लेकर काली छाप तैयार की जाती है। इन्हे पृथक् पृथक् मानचित्रों द्वारा सकलित (mosaiced) कर लिया जाता है। इन सकलनो के वनाने मे बहुत सावधानी वरतनी चाहिए, ताकि सर्वेक्षणों की परिशुद्धता वनी रहे। काली छाप को मानचित्र प्रक्षेप पर जिसपर कि त्रिकोणमितीय ढाँचा अकित है, जोडा जाता है। यह इसलिये कि सर्वेक्षण का प्रत्येक भाग ठीक मानचित्रित स्थितियो मे जम जाय। इस प्रकार सकलन को अतिम प्रकाशन (final publication) के डेढगुने आकार मे फोटो चित्रित किया जाता है और एक अच्छे रेखणपत्र पर नीली छापो (blue print) का सग्रह प्राप्त कर लिया जाता है। परिवर्धन का कारण यह है कि अतिम प्रकाशन में रेखाकृति (line work) की स्पष्टता और सुदरता मे वृद्धि हो।

मानचित्र मे विवरण की जटिलता के कारण विविध प्राकृतिक तथा कृत्रिम आकृतियाँ सुपठ्यता की दृष्टि से प्रभेदक रगो (distinctive colours) में प्रस्तुत की जाती हैं। मौलिक रूप से जलाकृतियों के लिये नीला, पहाडी तथा मरुस्थल के लिये भूरा या उससे मिलता जुलता, वनस्पति के लिये हरा, कृषि क्षेत्र के लिये पीला, सडक और वस्तियो के लिये लाल, पहाडी आकृति और अन्य विवरणो, जैसे स्रोत, रेलवे आदि के लिये काले रग का उपयोग किया जाता है। अनुपगी विषयो जैसे सीमा पट्टी, जल आदि के लिये अन्य रगो का उपयोग करते हैं। अच्छे रेखाकन के लिये तीन नीली छाप चाहिए। पहाडी तथा मरुभूमि की समोच्च रेखा खीचने के लिये एक नीली छाप काम आती है। दूसरी नीली छाप से वन भूमि, छितरे वृक्ष, तरकारियो, चाय वगानो आदि वनस्पतियों का चित्रण होता है। तीसरी नीली छाप अन्य विवरणों तथा नामो के काम आती है। अच्छे रेखाकन के लिये नक्शानवीसी मे कुशलता तथा प्रवीणता होनी चाहिए और परिशुद्ध तथा सुरेख मूल तैयार करने के लिये धैर्य परमावश्यक है। मानचित्र की चरम सुदरता, सुपठ्यता और परिशुद्धता इस विधि पर निर्भर है।

मानचित्र सकलन — छोटे पैमाने पर स्थलाकृतिक तथा भौगोलिक मानचित्र सामान्यत वडे पैमाने के नक्शो से सकलित किए जाते हैं। विवरण का इच्छित परिमाण चुन लिया जाता है और प्रकाशित मानचित्रो पर गहरी रेखाओ से अकित कर दिया जाता है। इन अकित मानचित्रो का फोटो रेखाचित्र के प्रस्तावित पैमाने पर लिया जाता है। इस घटाए गए पैमाने पर काली छापें ली जाती हैं और उन्हे कागज के ऐसे तख्ते पर जोडा जाता है जिसपर सकलित मानचित्र की सीमारेखाएँ शुद्धता से प्रक्षिप्त की गई हो। इस सकलन से रेखण की सामग्री ली जाती है और पूर्ववर्ती पैराग्राफ मे वर्णित विधि से उसका शुद्ध रेखण चित्रण किया जाता है।

छपाई की विधियाँ — १८३० ई० के पूर्व भारत मे मानचित्र तैयार करने की एक ही विधि थी — हाथ से नकल करने की, जो बहुत मद और खर्चीली थी। ताँवे पर मानचित्र की नक्काशी सभव थी, किंतु भारत मे बहुत थोडे खासगी नक्काश थे और रेनेल के समय से ही नक्काशी का कार्य लंदन मे होता था।

फोटोजिंको छपाई — १८२३ ई० के बाद भारत मे लियो मुद्रण का प्रारभ हुआ और कलकत्ते मे एक सरकारी मुद्रणालय स्थापित हुआ। मानचित्र मुद्रण के लिये इसका बहुत कम उपयोग था लेकिन कलकत्ते मे निजी मुद्राणालयो मे कई सर्वेक्षण मानचित्र लियो द्वारा मुद्रित हुए। १८५२ ई० मे महासर्वेक्षक के कलकत्ता स्थित कार्यालय मे मानचित्र

मुद्रण कार्यालय स्थापित हुआ और १८६६ ई० में देहरादून मे एक और मुद्रणालय (फोटोजिको मुद्रणालय) चालू हुआ। महासर्वेक्षक के कार्यालय मे मानचित्र मुद्रण तथा विक्रय की द्रुत प्रगति हुई और १८६८ ई० से मानचित्रों का मुद्रण के लिये इग्लैंड जाना वद हो गया। तब से लिथो मुद्रण प्रगति कर रहा है और अब तो वह एक वैज्ञानिक विधि के रूप में विकसित हो गया है। इस विधि मे जस्ते के प्लेट काम मे आते हैं जिनसे रोटरी ऑफसेट मशीनें प्रति घटे हजारों प्रतियाँ छाप सकती हैं।

पूर्ववर्ती पैराग्राफो मे वर्णित विधि से शुद्ध रेखन द्वारा प्राप्त तीन मूल रेखाचित्रों का सही पैमाने पर फोटो लिया जाता है और काच के प्लेटो पर 'गीली प्लेट' विधि द्वारा उनके निगेटिव (प्रतिचित्र) तैयार किए जाते हैं। तीसरे शुद्ध रेखित मूल के निगेटिव से, जिसमे शेष विवरण का समावेश होता है, 'चूर्ण विधि' द्वारा द्वितीय प्रतिलिपि प्राप्त की जाती है। सार रूप मे इस विधि से विलग रग निगेटिव प्राप्त करने के लिये सस्ता प्रतिकृत निगेटिव प्राप्त किया जाता है। इस विधि से तैयार किए तीन निगेटिवो मे से एक पर वे सभी विवरण फोटोपेक से आलेपित कर लिए जाते हैं जिन्हें नीले और लाल रग में दिखाना होता है, केवल वे ही विवरण उसपर रहने देते हैं जिन्हे काले रग में छापना है। इसी प्रकार अन्य दो निगेटिवो पर केवल वे ही विवरण रहने देते हैं जिन्हें क्रमश नीले और लाल में प्रस्तुत करना होता है और अन्य विवरणो को आलेपित कर दिया जाता है। इन तीन निगेटिवों के परिणाम जस्ते के प्लेटो पर अतरित कर लिए जाते हैं। ये प्लेट क्रमश काले, लाल और नीले विवरण के लिये छपाई के प्लेट हो जाते हैं।

रोटरी ऑफसेट छपाई — छपाई प्रारभ करने के पूर्व यह आवश्यक है कि उन त्रुटियों को पूरी तरह ठीक कर दिया जाय जो जस्ते के प्लेट की तैयारी के लिये की गई विविध प्रक्रियाओ मे प्रविष्ट हो गई हो। इसके लिये प्रमाणक मशीन पर एक प्रूफ प्रति समग्र रगो मे तैयार की जाती है। प्लेटों के प्रमाणित होने पर उन्हे छपाई मशीनों मे रखा जाता है। आजकल कई प्रकार की आधुनिक छपाई मशीनें उपयोग मे हैं, किंतु आधुनिक छपाई के अनिवार्य यत्र 'स्वचालित भरण' (Automatic feed) और 'रबर ऑफसेट' हैं। दूसरे शब्दो में यत्र मे कागज का भरण यत्र के अपने भरण साधन से होता है। जस्ते के प्लेट से छाप रबर के आवरण पर अतरित की जाती है। रबर का आवरण उस छाप को कागज पर अतरित कर देता है। कागज और छपाई प्लेट के सीधे सपर्क से जैसी छाप प्राप्त होती है उससे उन्नत और तीव्रतर छाप ऑफसेट विधि से प्राप्त होती है। प्रत्येक कागज के तख्ते को कई बार मशीन मे से गुजरना पडता है। यह सख्या प्लेटो की सख्या पर निर्भर है और प्लेटों की सख्या अतिम मानचित्र में रगो की सख्या पर निर्भर है। आधुनिक मशीनो मे अधिकतर दो रोलर होते हैं। दो रोलरो से एक साथ दो रगो मे दो प्लेटो की छपाई हो सकती है।

भारतीय सर्वेक्षण विभाग में मानचित्र उत्पादन के आँकड़े — भारतीय सर्वेक्षण विभाग निम्नलिखित कोटि और प्रकार के मानचित्रों की तैयारी और देखभाल करता है

स्थलाकृतिक मानचित्र — (क) समूचे भारत की व्याप्ति, १ ५०,००० पैमाने पर। (ख) १ २,५०,००० पैमाने पर मानचित्रों की माला मे भारत की पूर्ण व्याप्ति।

अतरराष्ट्रीय मानचित्र — (क) भारत के लिये अतरराष्ट्रीय विशिष्टियो पर १ १०,००,००० कार्टे इटरनैशनल द्यू माड मानचित्र माला — विश्वव्याप्ति के एक भाग के रूप में। (ख) आई० सी० ए० ओ० विशिष्टियो के अनुसार विश्वमाला के एक भाग के रूप में १ १०,००,००० आई० सी० ए० ओ० मानचित्र। (ग) भारत के हवाई अड्डो के 'इस्ट्रूमेंट' ऐप्रोच चार्ट पैमाना १ २,५०,०००,। (घ) २ इच मे १ मील (१ ३१,६८०) पैमाने पर भारत के हवाई अड्डो का अवतरण चार्ट (मीट्रिक माप १ . ३०,००० होगी)। (च) प्रधान हवाई अड्डो के लिये १ १२,००० और लघु हवाई अड्डो के लिये १ २०,००० पैमाने पर अवरोध चार्ट।

भौगोलिक मानचित्र — (क) दक्षिणी एशिया माला, पैमाना १ २०,००,०००, (ख) भारत और सीमावर्ती देशो का मानचित्र तथा (ग) भारत का सडक मानचित्र, पैमाना १ २,५०,०००, (घ) भारत का रेलवे मानचित्र, पैमाना १ इच से ६७ ०८ मील (मीट्रिक माप १ ३५,००,०००)। (च) भारत का राजनीतिक मानचित्र, (छ) भारत का प्राकृतिक मानचित्र तथा (ज) भारत के पर्यटक मानचित्र, पैमाना १ इच मे ७० मील (मीट्रिक माप १ ४०,००,०००), (झ) भारत और सीमावर्ती देशो का मानचित्र, पैमाने १ इच मे १२८ मील (मीट्रिक माप १ ८०,००,०००), (ट) भारत और सीमावर्ती देशो का मानचित्र, पैमाने १ इच में १६२ मील (मीट्रिक माप १ १,२०,००,०००), (ठ) भारत और सीमावर्ती देशों का मानचित्र, पैमाना १ १,६०,००,०००, (ड) भारत के राज्यों का मानचित्र, पैमाना १ १०,००,०००, (ढ) चार इच से एक मील पैमाने पर चुने क्षेत्र के वन मानचित्र (मीट्रिक माप १ २५,००१)।

विविध मानचित्र — (क) भारत के प्रमुख नगरों एव कस्बो के सदर्शक मानचित्र विविध पैमाने के; (ख) तदर्थ आधार पर केंद्रीय और राज सरकार के विभागो के लिए बहुप्रयोजनी योजना मानचित्र तथा (ग) सरकारी और गैरसरकारी सस्थाओ के लिए अन्य विविध विभागीय मानचित्र।

विविध मानचित्र को छोडकर १६०५ ई० से अब तक फुट पाउड पद्धति पर छपे हुए अन्य मानक मानचित्र मालाओ की सख्या लगभग ३,६०० है और हर २५ से ४० वर्षों मे इनका बराबर पुनरीक्षण होता है।

भारतीय सर्वेक्षण विभाग का सगठन — अनेक प्रकार के मानचित्रो की तैयारी और सर्वेक्षण के लिये भारतीय सर्वेक्षण विभाग का सगठन नीचे दिया गया है

भारत का महासर्वेक्षक जो सैनिक सर्वेक्षण का निदेशक भी होता है, इसका प्रशासनिक और तकनीकी नियत्रण करता है। महासर्वेक्षक का मुख्य कार्यालय देहरादून मे है और उसका कार्यालय उपमहासर्वेक्षक के अधीन है जो निदेशक की कोटि का होता है। वह भारत के महासर्वेक्षक का सहायक होता है और विभाग के तकनीकी काम, बजट और विनिमय, एव भडार का उत्तरदायी होता है। अधीक्षक सर्वेक्षक की कोटि का एक अफसर और होता है जिसके पद का

नाम सहायक महासर्वेक्षक है और वही तकनीकी काम और विभाग की नित्यचर्या प्रशासन का उत्तरदायी होता है।

स्थलाकृतिक मंडल निम्नलिखित हैं : (१) मानचित्र प्रकाशन कार्यालय, (२) भूगणितीय तथा अनुसधान शाखा, (३) हवाई सर्वेक्षण और प्रशिक्षण निदेशालय। भूगणितीय तथा अनुसधान शाखा को छोडकर, जो उपनिदेशक के नियत्रण में हैं, शेष सभी मडल निदेशालय निदेशक के नियत्रण मे हैं। ये सभी भारत के महासर्वेक्षक के समक्ष उत्तरदायी हैं। प्रत्येक निदेशक के अधीन एक उपनिदेशक होता है जिसके अधीन विविध क्षेत्रीय हवाई सर्वेक्षण और फोटो माप सर्वेक्षण दल और प्राय एक रेखन कार्यालय होता है। कुल तीन मानचित्र पुन रचना कार्यालय हैं दो देहरादून मे निदेशक, मानचित्र प्रकाशन के अधीन और एक कलकत्ते मे निदेशक, पूर्वी मडल के अधीन।

निदेशक मानचित्र प्रकाशन — इसका मुख्यालय देहरादून मे है। इसके अधीन एक रेखन कार्यालय, दो मानचित्र पुनर्रचना कार्यालय (हाथी बरकला लिथो आफिस और फोटोजिको कार्यालय, छपाई कार्यालय को समिलित करके), एक मानचित्र सग्रह तथा निकास कार्यालय और एक लघु मोटर परिवहन वर्कशाप है। यह निदेशक मानचित्र सबधी नियम और नीति के निर्धारण मे भारत के महासर्वेक्षक का परामर्शदाता है। वह इस बात का उत्तरदायी है कि सब विभागीय मानचित्रो का रेखन और पुन रचना आदेशो के अनुसार हो और वह ही विभाग के रेखन और छपाई के काम का ठीक समन्वय करता है। सभी भौगोलिक मानचित्रो का रेखन, रेखन कार्यालय स० १ मे होता है जो इसके अधीन हैं। मानचित्र विक्रय विभाग, नई दिल्ली का सचालन भी यही निदेशालय करता है।

निदेशक, उत्तरी मडल — इसका मुख्यालय देहरादून में है। वह उत्तर भारत के जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश और पजाब तथा मध्यप्रदेश के भागो के कुछ स्थलाकृतिक, छावनी, वन और आयोजन सर्वेक्षण के लिये उत्तरदायी है। इसकी देखरेख मे देहरादून में एक रेखन कार्यालय और कई क्षेत्रीय दल हैं।

निदेशक, दक्षिणी मडल — इसका मुख्यालय बेंगलूरु मे है। दक्षिण भारत के आध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर, केरल, मध्य प्रदेश, लकदीवी, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप के कुछ भागो के सर्वेक्षण और मानचित्र बनाने के लिये उत्तरदायी है। दक्षिण भारत मे इसके अधीन कई क्षेत्रीय दल, एक प्रशिक्षण दल और एक रेखन कार्यालय है।

निदेशक, पूर्वी मडल — इसका मुख्यालय कलकत्ता में है। पूर्वी भारत मे उडीसा, पश्चिमी बगाल, बिहार, असम (नेफा सहित), सिक्किम, भूटान, अदमन और निकोबार द्वीप के सर्वेक्षण और मानचित्र बनाने के लिये उत्तरदायी है। इसके अधीन एक मडल रेखन कार्यालय, एक मुद्रण कार्यालय और कई क्षेत्रीय दल है।

निदेशक, पश्चिमी मडल — इसका मुख्यालय आबू मे है। यह राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र राज्यो के सर्वेक्षण और मानचित्र बनाने के लिये उत्तरादायी है। इसके अधीन एक रेखन कार्यालय और कई क्षेत्रीय दल हैं।

निदेशक, हवाई सर्वेक्षण और प्रशिक्षण निदेशालय — इसका मुख्यालय देहरादून मे है। यह हवाई सर्वेक्षणो के आयोजन और क्रियान्वयन के लिये उत्तरदायी है और उस कार्य का नियत्रण करता है जो फोटोमापी सर्वेक्षण की आलेखन मशीनो पर बहुत मितव्ययिता से हो सके। वह सभी अफसरो और विभाग के कुछ कर्मचारीवृंद के प्रशिक्षण के लिये भी उत्तरदायी है। उसके अधीन दो प्रशिक्षण दल तथा कई फोटोमापी सर्वेक्षण के दल कार्य करते हैं।

उपनिदेशक, भूगणितीय तथा अनुसधानशाखा — इसका मुख्यालय देहरादून मे है। यद्यपि इसके पद का नाम उपनिदेशक है, तथापि इसे निदेशक के सभी प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हैं। यह भारत भर में सभी भूगणितीय और भूभौतिकीय (Geophysical) सर्वेक्षणो के लिये उत्तरदायी है। इसके कार्य के अतर्गत हैं : उच्च परिशुद्ध, प्रधान और गौण तलेक्षण तथा ज्वारीय प्रेक्षण। वह भूगणितीय और भूभौतिकीय अनुसधान कार्य, विभागीय कार्य, अनुपगी तालिकाओ (auxiliary tables) और गणना फार्म तैयार कराने के लिये उत्तरदायी है। इसके अधीनस्थ एक गणना दल, एक ज्वारीय दल, एक भूभौतिकीय दल और अन्य क्षेत्रीय दल हैं। देहरादून में इसके अतर्गत वेधशालाएँ और एक वर्कशॉप भी है।

भारतीय सर्वेक्षण के मानचित्रो का विक्रय — मानचित्रो को सीधे ही भारतीय सर्वेक्षण विभाग के देहरादून, कलकत्ता, बेंगलूरु और दिल्ली के कार्यालय से मोल लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मानचित्र भारत मे सर्वत्र स्थापित मानचित्र विक्रय एजेंसियो से भी खरीदे जा सकते हैं, जो सारे देश मे विख्यात पुस्तक विक्रेताओ और प्रकाशको को दी गई हैं। भारतीय सर्वेक्षण के मानचित्र विक्रय कार्यालय इन पतो पर हैं

मैप रिकार्ड ऐंड इशू ऑफिस, हाथीबरकला, देहरादून। मैप रिकार्ड ऐंड इशू ऑफिस, १३, वुड स्ट्रीट, कलकत्ता। सदर्न सर्कल, सर्वे ऑव इडिया, २२, रिचमड रोड, बेंगलूरु। मानचित्र विक्रय विभाग, जनपथ बैरक्स, फ्लोर 'ए', नई दिल्ली। [रा० सिं० का०]

भारत सेवक समाज इस सस्था की स्थापना योजना आयोग द्वारा जनसहयोग प्राप्त करने के लिये सन् १९५१ मे बनाई गई, राष्ट्रीय सलाहकार समिति की सिफारिशो के अनुसार १२ अगस्त, १९५२ मे की गई थी।

उद्देश्य—इसके प्रमुख उद्देश्य ये हैं (१) देश के नागरिको के लिये अधिक से अधिक सेवा के अवसर मुहैया करना जिससे (क) राष्ट्रीय आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके और भारतीय जनसमुदाय की सामाजिक एव आर्थिक शक्ति सुदृढ हो सके तथा (ख) देश के साधनहीन एव पिछडे लोगो की कठिनाइयाँ और कष्ट दूर किए जा सकें। (२) जनता की उपलब्ध अतिरिक्त शक्ति, साधन और समय का सर्वेक्षण करना और उन्हे सगठित कर सामाजिक तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में उपयोग करना।

सदस्यता—१८ वर्ष का हर ऐसा व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है, जो सप्ताह मे कम से कम दो घटे स्वेच्छा से सेवाकार्य के लिये दे सके। सदस्यता का शुल्क एक रुपया वार्षिक है। जिन्होंने अपना पूरा समय सस्था की प्रवृतियो के लिये समर्पित कर दिया हो, वे इसके आजीवन सदस्य कहलाते हैं।

ऐसी स्वेच्छासेवी सस्थाएँ जो सूचनात्मक या समाजकल्याण के कार्यों मे लगी हो, इसकी सस्था सदस्य हो सकती हैं।

ऐसा कोई भी व्यक्ति, जो समाज का साधारण सदस्य हो और समाज की प्रवृत्तियो अथवा आर्थिक रूप मे नि स्वार्थ सहयोग देता हो, इसका सहायक सदस्य हो सकता है। सदस्यता के सबध मे एक प्रतिबध यह है कि जो व्यक्ति, हिंसा मे विश्वास करता हो या समाज का उपयोग व्यक्तिगत अथवा राजनीतिक क्षेत्र में करता हो वह इस सस्था का सदस्य नही हो सकता।

संगठन

भारत सेवक ऐसे सदस्य हो सकते हैं, जिन्हें साधारण सदस्य निश्चित व्यवस्था के अनुसार चुन लेते हैं।

समाज की नीति निर्धारित करने का काम भारत सेवक सभा करती है। इसके एक तिहाई सदस्य भारत सेवक सघ द्वारा, एक तिहाई सदस्य भारत सेवक समिति द्वारा भारत सेवक सघ के सदस्यो मे से मनोनीत किए जाते हैं और तिहाई सदस्य भारत सेवक सघ के सदस्यो के अतिरिक्त सभापति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। भारत सेवक सघ के सदस्यो का चुनाव भारत सेवक करते हैं। इस सघ की बैठक वर्ष मे एक बार होती है।

समाज के दिन प्रति दिन के कार्यों का सचालन केंद्रीय प्रधान मडल करता है। इसमे नौ सदस्य होते हैं, जिनमे दो सदस्य समाज के ट्रस्टियों द्वारा मनोनीत होते हैं।

इसी तरह केंद्रीय सगठन के अतर्गत प्रदेश, राज्य, जिला, प्रखड, नगर, ग्राम तथा मुहल्लो में भी शाखाओं का सगठन होता है।

कार्यक्षेत्र—लोकसेवा के लिये कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, जनजागरण तथा समाज कल्याण सबधी कार्य, गदी बस्तियो का सुधार, परिवार नियोजन आदि विविध कार्य इस सस्था के कार्यक्षेत्र के अतर्गत आते हैं।

लोककार्य का कार्यक्षेत्र जनजागरण की प्रक्रिया पूरी होने पर शुरू होता है। जनकल्याण के व्यापक कार्यक्रमों मे जनसहयोग प्राप्त करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। सारे देश मे समाज के सभी विभागो के सक्रिय कार्यकर्ता एवं अन्य स्वेच्छासेवी सस्थाओं के पूरे समय काम करनेवाले कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिये इस विभाग द्वारा दो प्रशिक्षण शिविर, एक दिल्ली तथा एक त्रिवेंद्रम मे चलाए जा रहे हैं। भारत सेवक दल का प्रशिक्षण भी इसी विभाग के अतर्गत होता है।

जनजागरण के कार्य में विचारगोष्ठियो का आयोजन, योजना सूचना केंद्रो का सचालन, बुलेटिनो, ब्रोशरो तथा छोटी पुस्तिकाओं के जरिए योजना का प्रचार करना और योजना-प्रचार-सप्ताहो का आयोजन करना आदि काम है।

समाज कल्याण के कार्यक्षेत्र मे रैनबसेरो का सचालन, उपनगर सुधार कार्यक्रम और महिला-बाल-कल्याण के कार्यक्रम आते हैं। नागरिक क्षेत्र मे आवश्यक वस्तुओं के मूल्यो की वृद्धि रोकने का काम भी अब इसके कार्यक्षेत्र मे आ गया है।

गदी बस्तियों के सुधार के कार्यक्षेत्र मे स्वच्छता-सफाई-अभियान, नागरिक नियमो की शिक्षा के सिवा साक्षरता कक्षाएँ तथा महिला शिल्प कक्षाएँ चलना आदि भी हैं।

निर्माणसेवा — इसका गठन सन् १९५५ में इस आधार पर किया गया था कि राष्ट्रीय धन की बचत की जा सके और सरकारी ठेके के कामो मे जो देर और अधेर होता है, उसे रोका जा सके। कोसी तटबध, शाहदरा का जमना बाँध, चबल बाँध, नागार्जुन सागर नहर, दिल्ली की अतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियो के अनेक मडपों का निर्माण, हवाई अड्डो, सडको तथा भवनो का निर्माण अब तक इस विभाग ने किया है।

गत पाँच वर्षों मे ४०० ९० लाख रुपयो का निर्माणकार्य किया गया जिसमे से १०६,९५ लाख रुपयो की बचत हुई। इस बचत मे से १७ ६६ लाख रुपया मजदूरो के कल्याण कार्य पर खर्च किया गया। कई राज्यो मे इसकी शाखाएँ खुल चुकी हैं।

युवक एव श्रम शिविर देश भर मे ग्राम युवकों और विद्यार्थियो के पाक्षिक शिविर लगाता है और शिविर मे किए गए श्रमदान कार्यो का मूल्याकन करता है। अब तक १० हजार शिविर लगाए जा चुके हैं, जिनमें चार लाख से अधिक युवको ने भाग लिया। इस विभाग में अब प्राथमिक चिकित्सा, गृह विज्ञान, शारीरिक प्रशिक्षण (पी०टी०) एव "अधिक अन्न उपजाओ आदोलन" शामिल किया जा चुका है। परिवार नियोजन भी युवक और श्रमशिविर के अतर्गत है, पर इसकी अपनी अलग कार्यकारिणी है। परिवार-नियोजन-शिविरो का मुख्य सचालक भी प्रादेशिक शिविर सचालक ही होता है।

स्वास्थ्य एव स्वच्छता अभियान मे प्रति वर्ष ग्रीष्मकालीन एव शरदकालीन स्वास्थ्य सप्ताह मनाया जाता है। २ अक्टूबर को राष्ट्रीय स्वच्छता दिवस और प्रति मास के अतिम रविवार को स्वच्छता अभियान भी किया जाता है।

प्रशिक्षण शिविर के दो केंद्र हैं एक दिल्ली के समीप अशोक बिहार मे और दूसरा है केरल के त्रिवेंद्रम नगर मे। इन शिविरों में भारत सेवक समाज के सभी विभागो मे काम करनेवाले तथा अन्य स्वेच्छासेवी सस्थाओं के कार्याकर्ता भी प्रशिक्षित किए जाते हैं।

प्रकाशन विभाग समाज से सबधित साहित्य प्रकाशित करता है। इसके साथ भारत सेवक मासिक पत्र हिंदी तथा अग्रेजी में प्रकाशित करता है। इसकी एक कार्यसमिति है, जिसमे सभापति, उपसभापति, मत्री और कुछ नामजद सदस्य होते हैं। छह प्रातीय भाषाओं में बुलेटिन निकाले जाते हैं।

योगासन का कार्य आसन और प्राणायाम का जनता मे व्यापक प्रचार करता है। इसने ६४ सरल आसनो का चुनाव किया है, जिनके प्रचार के लिये सन् १९५८ मे एक अ० भा० योगासन समिति बना दी गई। देश के प्राय सभी बडे बडे शहरो मे इसकी कक्षाएँ लगती हैं।

गैरसरकारी मूल्य जाँच सेवा — सन् १९६२ में इसका गठन हुआ। देश के कुछ चुने हुए औद्योगिक क्षेत्रो मे (१) मूल्यो की जाँच, (२) सहकारी उपभोक्ता भडारो की स्थापना, (३) विशुद्ध खाद्य पदार्थों का उत्पादन, (४) उपभोक्ताओ को प्रशिक्षित कर उनमे निरोध शक्ति पैदा करना, (६) मूल्य नियत्रण के लिये खुदरा थोक व्यापारियो का सगठन आदि कार्य करने की योजना है।

राष्ट्रीय सुरक्षा का सप्तसूत्री कार्यक्रम—चीनी आक्रमण के बाद इसका गठन हुआ है। सैनिक परिवारो को सहायता, जनता के नैतिक बल को टिकाए रखना, प्रतिरक्षा के लिये निर्माण इकाई का गठन,

मूल्यवृद्धि की रोक, बचत अभियान और स्वेच्छा-सेवी-सस्थाओ से सहयोग आदि कार्य हैं, जिन्हें अब समाज के उपर्युक्त विभागो मे मिला दिया गया है।

सयुक्त सदाचार समिति—सन् १९६४ में सबसे प्रथम दिल्ली मे इसकी शाखा खुली। लोगो मे सदाचार निर्माण कर सरकारी प्रशासन मे व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

आश्रय योजना—भारत सेवक समाज की यह भावी योजना है। इसका मूलोद्देश्य यही है कि इसके माध्यम से निष्ठावान्, सेवाभाववाले और निस्स्वार्थ ऐसे समाजसेवक तैयार किए जायें, जो अपना सारा जीवन समाजसेवा मे लगा दें और उनके जीवन की पाँचो आवश्यकताओ की पूर्ति उन्ही आश्रमों के माध्यम से हो।

व्यास समाज के गठन का मुख्य उद्देश्य कथा कीर्तनकारो के माध्यम से गाँव गाँव मे जनचेतना लाना और लोगों मे चरित्रनिर्माण की भावना भरना है। १९६० मे प्रयाग के कुभ मेले के अवसर पर पहला, १९६१-६२ मे बबई में दूसरा और १९६२-६३ में हरिद्वार मे तीसरा समेलन किया गया। हरिद्वार मे एक ४० दिन का प्रशिक्षण शिविर भी लगाया गया था, जिसमे ५३ कथा-कीर्तन-कारो को प्रशिक्षित किया गया।

विहगावलोकन—समाज के सक्रिय कार्यकर्ताओ की सख्या ५०,००० है, जिनमे पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता २,००० हैं, राज्यो की (प्रदेश) शाखाएँ २०, जिला शाखाएँ ३००, ग्राम समितियाँ ३,८०० हैं। १९६४ तक भारत सेवक दल के सदस्य ३०,०००, प्रशिक्षित सदस्य १२,०००, गदी बस्ती सुधार केंद्र ३९, सपर्क किए गए परिवार आठ लाख, समाज कल्याण विस्तार केंद्र २७, लाभान्वित परिवार १३,५०० तथा श्रम सेवा शिविर ६५०४ थे। इधर इन सस्थाओ मे और भी विस्तार हुआ है। [बि० दा० न०]

भारत सेवाश्रम संघ एक सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लोकहितैषी सघटन है जिसमें सन्यासी और नि स्वार्थी कार्यकर्त्ता भ्रातृभाव से कार्य करते हैं। सर्वांगीण राष्ट्रीय उद्धार इसका मुख्य उद्देश्य और सपूर्ण मानवता की नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति इसका सामान्य लक्ष्य है।

सघ के सन्यासियों ने लोक और व्यक्तिगत अभिरुचियो का परित्याग कर देने पर भी अपना निवास छोड़कर एकातवास नही ग्रहण किया। इसके विपरीत उन्हो ने अपने को मानवता की नि स्वार्थ सेवा के लिये अर्पित कर दिया है और इसके द्वारा वे ऊँची योग्यता प्राप्त करने और सर्वशक्तिमान् की यथार्थता को निरूपित करने का प्रयास करते हैं।

उद्गम—आचार्य स्वामी प्रणवानद जी, जिन्हे हम सर्वोच्च आध्यात्मिक लोहकातमणि की सज्ञा दे सकते हैं, इस सघ के सस्थापक थे।

इसके पार्श्व इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि विष्णुचरण दास नामक शिव के अनन्य भक्त पर एक बार क्रमश अनेक विपत्तियाँ पडी। इनके शमन और शिव को सतुष्ट करने के हेतु आपने वर्ष भर तक निद्रा और भोजन का परित्याग कर घोर तपस्या की। भगवान् शिव दयाभिभूत हो गए और कृपापूर्वक विष्णुराम को यह वरदान दिया कि वह अपने को उनका (शिव का) अवतारी पुत्र मान लें।

उस दैविक लडके का नाम विनोद पडा। शिव की प्रकृति के अनुकूल ही वह सदैव शात और गभीर रहता था तथा उसे अपने भोजन और खेल की बहुत कम चिंता रहती थी। जैसे जैसे बालक बढता गया, उसकी वृत्ति अधिक गभीर होती गई। वह अपने स्कूल सबधी अध्ययन में मन न लगा सका। घर में भी वह कई रात्रि जाग्रत रहकर भी बाह्य संसार से पूर्णत अचेतन होकर व्यतीत कर देता था। प्रात काल दरवाजा खटखटाए जाने पर ही उसकी चेतना लौटती थी।

आगे चलकर क्रमश छह वर्ष की लंबी अवधि तक उसने बिल्कुल ही निद्रा का परित्याग कर दिया। उस समय वह सपूर्ण दिन अपनी ही कोठरी में बद रहकर व्यतीत करता था और सपूर्ण रात्रि तपस्या और आध्यात्मिक अचेतनावस्था मे व्यतीत करता था।

अत मे भगवान् शिव ने अपनी सपूर्ण शक्ति के साथ प्रकट होकर इस सघ के निर्माता के श्रेष्ठ मानवीय व्यक्तित्व के माध्यम से १९१७ मे कार्य करना प्रारंभ किया। यही से सघ का प्रारभ होता है।

उद्देश्य — संघ का उद्देश्य भारत के राष्ट्रीय जीवन का पुन सगठन और पुनर्निर्माण सार्वलौकिक आदर्शों और सनातन धर्म के सिद्धातो के आधार पर करना है जो कि हजारो वर्षों से विदेशी आधिपत्य के नीचे छिन्न भिन्न हो गया था।

कार्य — सघ के बहुमुखी कार्य को हम मुख्य रूप से छह भागो मे विभाजित कर सकते हैं।

(१) सात उपदेश देनेवाले दलो द्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक प्रचार।

(२) मनुष्य को ऊँचा उठानेवाली शिक्षा का प्रसार, जो मस्तिष्क और हृदय की शक्तियो को समान रूप से विकसित करती हो।

(३) पवित्र तीर्थस्थानो का सुधार (तीर्थयात्रियों के रहने का मुफ्त प्रबध, धार्मिक सस्कारो को उचित मूल्य पर सपादित कराने का प्रबध, पडो की वृद्धि को रोकना, रोगी तीर्थयात्रियों की मुफ्त चिकित्सा की सुविधा आदि), पाप और अपराध निवारण का प्रयत्न करना।

(४) मानव जाति के प्रति प्रेम प्रकट करनेवाली विभिन्न सेवाएँ (जैसे, बाढ, अकाल और भूकप से पीडित लोगो की सहायता, जातीय कारणो से पीडित लोगो की रक्षा, युद्धकालीन शरणार्थियो का प्रबध, कुभ मेला व्यवस्था आदि)।

(५) हिंदू समाज का पुनर्निर्माण तथा सुधार (जिसके अतर्गत अस्पृश्यता की भावना को दूर करना, पिछडी जातियों का उद्धार, उनका कल्याण आदि शामिल है)।

(६) भारतीय सस्कृति के सार्वलौकिक आदर्शों का भारत मे और विदेशो में प्रचार।

कार्य का केंद्र — सघ का प्रमुख केंद्र कलकत्ता बालीगज (२११ राशबिहारी एवेन्यू) मे है और उनकी अनेक शाखाएँ गया (बिहार), वाराणसी, प्रयाग, वृ दावन (उत्तर प्रदेश), कुरुक्षेत्र (पश्चिमी पजाब),

पुरी (उड़ीसा), सूरत, अहमदाबाद (गुजरात), हैदराबाद (आंध्र) में है। और इन शाखाओं के दर्जनों केंद्र और अनेक हिंदू मिलन मंदिर पूर्वी बंगाल के विभिन्न जिलों और अन्य प्रांतों में हैं। इसके तीन स्थायी और निर्माणशील केंद्र वेस्ट इंडीज, ब्रिटिश गाइना, और लंदन में भी हैं।

संघ के दस मुख्य नियम — (१) लक्ष्य क्या है? महामुक्ति, आत्मोपलब्धि। (२) धर्म क्या है? त्याग, संयम, सत्य, ब्रह्मचर्य। (३) महामृत्यु क्या है? आत्मविस्मृति। (४) आदर्श जीवन क्या है? आत्मबोध, आत्मविस्मृति, आत्मानुभूति। (५) महापुण्य क्या है? वीरत्व, पुरुषत्व, मनुष्यत्व, मुमुक्षत्व। (६) महापाप क्या है? दुर्बलता, भीरुता, कापुरुषता, संकीर्णता, स्वार्थपरता। (७) महाशक्ति क्या है? धैर्य, स्थैर्य, सहिष्णुता। (८) महासबल क्या है? आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्ममर्यादा। (९) महाशत्रु कौन है? आलस्य, निद्रा, तंद्रा, जड़ता, रिपु और इंद्रियगण। (१०) परममित्र कौन है? उद्यम, उत्साह और अध्यवसाय।

अराजनीतिक और असांप्रदायिक — इस संघ के महान् संस्थापक ने अपनी आध्यात्मिक अचेतनावस्था और अपने सर्वोच्च तेज के प्रताप से घोषित किया कि—(१) यह सार्वलौकिक जाग्रति का युग है। (२) यह सार्वभौमिक पुनरेकीकरण का युग है। (३) यह सार्वलौकिक भाईचारे का युग है। (४) यह सार्वलौकिक निस्तार का युग है।

अतः यह कहना अनावश्यक ही है कि संघ अपने उद्देश्य और कार्यों द्वारा किसी राजनीतिक लक्ष्य का प्रसार नहीं करता और न उसका कोई राजनीतिक उद्देश्य ही है। सांप्रदायिकता और संकीर्णता से भी वह बिलकुल दूर है।

हिंदू राष्ट्रीयता — संघ का प्रमुख उद्देश्य महान् राष्ट्रीयता का निर्माण करना है। और संघ का दृढ़ विश्वास है कि इस लक्ष्य को पूर्ण करने का सबसे महत्वपूर्ण चरण होगा दृढ़ और व्यवहारकुशल हिंदू संस्थाओं का पुनः संगठन और पुनर्निर्माण।

मुसलमान तथा ईसाई यथेष्ट संगठित हैं और वे अपने ऊपर किए गए किसी भी आघात के विरुद्ध खड़े हो सकते हैं। केवल हिंदू ही, यद्यपि वे संपूर्ण भारतीय जनसंख्या के तीन चौथाई हैं, इतने ऐक्यहीन और तितर बितर हैं कि किसी भी आक्रमण के विरुद्ध आवाज नहीं उठा सकते। अतः सभी निमित्त और प्रयोजनों को देखते हुए भारत के राष्ट्रनिर्माण का तात्पर्य शक्तिशाली हिंदू राष्ट्रीय भावना का निर्माण मानना होगा।

इस संघ के प्रख्यात संस्थापक ने इस बात पर जोर दिया कि हमारा राष्ट्रनिर्माण संभव नहीं जब तक कि बेमेल हिंदू समूहों को दृढ़, संगठित और व्यवहारकुशल संस्था के रूप में पुनः संगठित न किया जाय।

हिंदू मिलन मंदिर और हिंदू रक्षी दल — भारत के विभिन्न राज्यों के प्रत्येक शहर और गाँव में हिंदू मिलन मंदिर की विभिन्न शाखाओं को स्थापित करके हिंदू समूह को पुनः संगठित करने का निश्चय किया गया। शिक्षित हिंदू समूहों में आत्मरक्षा की भावना भरने के लिये संघ हिंदू मिलन मंदिरों के साथ हिंदू रक्षी दलों का भी संगठन कर रहा है। संघ का विश्वास है कि एकता की शक्ति और आत्मरक्षा ही तितर बितर हुए हिंदू समूहों को पुनर्जीवित और सुसंगठित बनाकर उनमें सच्ची राष्ट्रीय भावना भर सकती है। [वे०]

भारतीय करव्यवस्था सामान्य रूप से शासन संबंधी कार्यसंचालन के लिये व्यक्तिगत इकाइयों पर अनिवार्य उद्ग्रहण के रूप में कर लगाए जाते हैं। करों को सामान्यतः राजस्ववृद्धि का ही साधन माना जाता है किंतु राष्ट्र की अर्थनीति को भी ये प्रभावित करते हैं। कर लगाने का उद्देश्य यथासंभव राष्ट्र की विषमता को दूर करना है। इसलिये जिनकी अधिक आय है, उन्हें कम आयवालों की अपेक्षा अधिक मात्रा में कर देना पड़ता है।

इतिहास — मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत बाद में चलकर शासन ने राजस्ववृद्धि के लिये करों का आश्रय लिया था, विशेषकर ऐसे करों का जो उचित रूप से लगाए जाते थे और जिनके संबंध में शासित जनों की सहमति ले ली जाती थी। शताब्दियों तक सार्वजनिक क्षेत्रों से ही मुख्य रूप से राजस्व का संकलन किया जाता था जिसमें घरेलू उपभोग की वस्तुओं पर लगाए गए उत्पादन शुल्क और विदेशी व्यापार पर लगाए गए सीमाशुल्क का स्थान मुख्य था। दास, अधीनस्थ, किसान, विजित तथा अन्य विशेषाधिकार रहित लोगों का यह कर्तव्य माना जाता था कि वे शासकीय वर्ग के लोगों का शुल्क आदि से पोषण करें। करों को दासता के बंधन के रूप में नहीं, अपितु स्वातंत्र्य के चिह्न के रूप में मान्यता देना आधुनिक युग की बात है।

भारत में १८वीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भूमिकर के अतिरिक्त देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष कर भी लगाए जाते थे। किंतु इन सब में भूमिकर ही प्रधान था। कुछ काल तक अंग्रेजों ने उनमें से अधिकांश उद्ग्रहणों को जारी रखा किंतु कालांतर में उन्हें बंद कर दिया। एक समय ऐसा भी था जब भूमिकर के अतिरिक्त देश में अन्य किसी प्रकार का प्रत्यक्ष कर नहीं ग्रहण किया जाता था। भारत में सन् १८६० में प्रथम बार आयकर की व्यवस्था की गई। १८८६ में इसे भारतीय करप्रणाली का स्थायी अंग बना दिया गया, किंतु इसके पूर्व यह शासनव्यवस्था में उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयों के निवारण के लिये समय समय पर अल्प मात्रा में ही लगाया जाता था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय शासन का खर्च अत्यधिक बढ़ जाने के कारण इस कर का महत्व बढ़ गया और राजस्ववृद्धि का यह एक प्रमुख स्रोत बन गया। सन् १९१७ में क्रमानुपातिक अधिकर (सूपरटैक्स) तथा १९१८ में अधिलाभकर (एक्सेस प्रॉफिट टैक्स) का प्रवर्तन किया गया।

भारत में आयकर लगाने और वसूल करने की पद्धति को नियमित रूप देने के लिये सन् १९२२ में एक समेकित (कॉनसालिडेटेड) अधिनियम पारित किया गया था। भारतीय आयकर अधिनियम १९२२ की संज्ञा से ज्ञात यह अधिनियम ३१ मार्च, १९६२ तक व्यवहार में रहा। समय समय पर इसमें संशोधन किए जाते रहे और अंत में यह आवश्यक हो गया कि इसे बदल दिया जाए। सितंबर, १९६१ में राष्ट्रपति ने आयकर अधिनियम १९६१ को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और १ अप्रैल, १९६२ से इस नए अधिनियम ने सन् १९२२ के अधिनियम का स्थान ले लिया।

आयकर के अतिरिक्त केंद्रीय शासन ने चार अन्य मुख्य उद्ग्रहणों की भी व्यवस्था की है जिनके नाम हैं—संपदा शुल्क १९५३, धनकर १९५७, उपहारकर १९५८ तथा व्ययकर १९५८।

अन्य कर—उपर्युक्त करो के अतिरिक्त कतिपय उपभोग करो की व्यवस्था है जो सामान्यत उपभोक्ताओ को अधिक मूल्य के रूप मे देने पडते हैं, यद्यपि आरभिक रूप में ये कर उत्पादको तथा वितरकों पर ही लगाए जाते हैं। इस प्रकार के करो को प्राय 'अप्रत्यक्ष कर' कहा जाता है। उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओ मे स्थूल आय या मूल्य के आधार पर ये कर अधिकतर चल करो के रूप मे लगाए जाते हैं, जैसे निर्माण की थोक तथा खुदरा अवस्थाओ मे विक्रय एव क्रय कर। अधिक सीमित रूपो मे ये कर विलासिता की तथा बहुत सी अन्य वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क के रूप में लगे देख पडते हैं। भारतीय सघीय शासन अतरप्रातीय विक्रय पर केंद्रीय विक्रय कर तथा बहुत सी अन्य सामग्रियो पर उत्पादन शुल्क का उद्ग्रहण करता है। विभिन्न प्रातीय शासन भी प्रदेश की सीमा के अतर्गत विक्रय की गई वस्तुओ पर विक्रीकर का उद्ग्रहण करते हैं।

सामान्य वर्गीकरण — करो के आधार वा स्रोतपरक वर्गीकरण के अतिरिक्त अत्यत महत्वपूर्ण वर्गीकरणों में से एक है—उत्कर्षपरक, आनुपातिक तथा अपकर्षपरक विभाजन। यह वर्गीकरण विशुद्ध आय की तुलना मे प्रभावशाली अर्घ अनुपात पर आधारित है। यदि आयवृद्धि के साथ साथ कर के अनुपात मे भी वृद्धि होती है अर्थात् जब किसी व्यक्ति की आय मे वृद्धि के साथ साथ उस आय पर निर्धारित किए जानेवाले कर के प्रतिशत मे भी वृद्धि होती चलती है, तब उस स्थिति मे वह वृद्धिशील कर है। यदि आयवृद्धि से कर के प्रतिशत पर कोई प्रभाव न पडे तो कर आनुपातिक है। जब आयवृद्धि के साथ साथ कर का प्रतिशत न्यून होता चले तब कर अपकर्षपरक है। ये सज्ञाएँ विशिष्ट कर एव सामान्य कर व्यवस्था— दोनो मे व्यवहार्य हैं। विशिष्ट करो में व्यक्तिगत आयकर, मृत्युकर तथा उपहारकर प्राय सार्वत्रिक उत्कर्षपरक हैं। ,अधिकतर सपत्ति, विक्रय तथा उत्पादन सबधी करो का आनुपातिक रूप मे उद्ग्रहण किया जाता है किंतु व्यवहार मे ये कर अपकर्षपरक होते हैं। उदाहरण के लिये अधिक आय की अपेक्षा कम आय पर लगा ७% कर राशि मे अधिक है क्योकि कम आय पर अधिक मदें कराई होती हैं बनिस्बत अधिक आय के।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करो मे देख पडनेवाला भेद ऐसा है जो बहुत प्रचलित है। सामान्यत प्रत्यक्ष कर उस व्यक्ति को अदा करना पडता है जिसपर यह लगाया जाता है। अप्रत्यक्ष कर वह है जो वास्तविक प्रदाता के नही अपितु किसी अन्य व्यक्ति के जिम्मे पडता है। वास्तविक करदाता या तो वस्तुओ का दाम बढाकर दूसरों से इसे वसूलता है या फिर स्वय वस्तुओ का कम मूल्य देकर इस कर से मुक्त रहना है। तब भी बहुत बार यह निश्चय कर पाना बडा कठिन हो जाता है कि कर प्रत्यक्ष है या अप्रत्यक्ष। व्यवहार मे आय, मृत्यु, उपहार और भूमि से सबधित करो को प्रत्यक्ष माना जाता है। उपभोग करों को सामान्यत अप्रत्यक्ष माना जाता है। साधारणतया प्रत्यक्ष कर ही दानक्षमता के सिद्धात पर आधारित होते हैं।

उद्देश्य—शासन की अन्य नीतियो के सामजस्य पर आधारित कराधान का व्यापक उद्देश्य जनता का अधिकाधिक कल्याण करना है। तात्विक कार्यों के सम्यक् सपादन के लिये करो द्वारा ही शासन को आर्थिक दृढता प्राप्त होती है। साथ ही सामाजिक और आर्थिक भलाई भी करो द्वारा होती है क्यो कि कर समाज मे व्याप्त अत्यधिक आर्थिक विषमताओ को कम करते हैं, जिससे महार्घता और युद्धकालिक अपसचय प्रवृत्ति को रोककर राष्ट्र मे आर्थिक दृढता स्थापित करने मे सहयोग प्राप्त होता है।

भारतीय केंद्रीय कर—भारत की तरह के सघीय सविधान मे कराधान का अधिकार केंद्र में तथा प्रदेशो अथवा इकाइयो मे विभक्त कर दिया जाता है। इन अधिकारो को दृष्टिगत रखते हुए कुछ वस्तुओ पर केंद्र कर लगा सकता है और कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनपर राज्य कर लगा सकते हैं। उदाहरण के लिये भारतीय सविधान के अनुसार आय, उपहार, धन, व्यय और सपदा से सबधित कर सघीय शासन द्वारा निर्धारित किए जाते हैं तथा राज्य शासन विक्रय, मनोरजन और कृषि सबधी उत्पादनो पर कर लगाते है।

आयकर — भारत मे व्यक्ति, व्यवसाय सघ, सयुक्त हिंदू परिवार, व्यक्तियो के समुदाय, स्थानीय निकायो और कपनियो पर आयकर अधिनियम १९६१ के अधीन आयकर लगाने की व्यवस्था है। इन इकाइयो को कुछ विशेष स्थितियों के आधार पर स्थूल रूप से वसतिपरक और वसतिरहित इन दो श्रेणियो मे विभक्त कर दिया गया है। दोनो पर निर्धारित किए जानेवाले कर मे भी भेद है। वसतिपरक पर करनिर्धारण भारत या बाहर से हुई उसकी कुल आय के आधार पर होता है तथा वसतिरहित की सामान्यत उसी आय पर कर लगता है जो उसे भारत के अतर्गत हुई हो। व्यक्तिगत आय पर कर उत्कर्षपरक होता है, आय के प्रत्येक फलक पर यह बढ़ता रहता है और आय ७०,००० रुपये के ऊपर पहुँचने पर कर की दर ८% हो जाती है। कपनियो पर कर स्थिर रूप से निर्धारित किया जाता है जो उन्हें अपने मुनाफे के ६०–७० प्रति शत के रूप मे देना पडता है। जब आय निर्धारित सीमा पर पहुँच जाती है तब उसपर अतिरिक्त कर लगाया जाता है।

धारा १० के अनुसार आय की कुछ मदें करदाता की पूर्ण आय में समिलित नही की जाती, इसलिये वे (मदें) करो से भी मुक्त हैं: जैसे — कृषि सबधी आय, छात्रवृत्तियाँ आदि। औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने के लिये कपनियो को आयकर अधिनियम के अनुसार बहुत सी कटौतियाँ और सुविधाएँ दी जाती हैं, जैसे धारा ३३ के अनुसार विकास कटौती या नवसस्थापित व्यवसायो को पङ्वर्षीय करावकाश अथवा धारा ८४ के अतर्गत होटलो को दी जाने वाली छूट।

आय को छह 'मदो' वा श्रेणियों मे विभक्त किया गया है — वेतनो से आय, जमा राशियो पर ब्याज, मकानो से आय, व्यापार तथा व्यवसाय में मुनाफा या लाभ, पूंजी से लाभ तथा अन्य साधनो से आय। इस विभाजन का उपयोग केवल इतना है कि तत्सबधी नियम उनपर लागू किए जा सकें। विभिन्न श्रेणियो की आय एक साथ जोड ली जाती है और कुल आय पर वर्तुलाकार रूप से कर का निरूपण किया जाता है। कर की दरें करदाता की कुल आय को ध्यान मे रखकर निर्धारित की जाती हैं। कुल आय से अभिप्राय करदाता की शुद्ध आय से है, निर्धारित छूटो को छोडकर।

'कर निरूपण वर्ष' के लिये कर का निर्धारण करदाता को 'पूर्व वर्ष' मे हुई आय के आधार पर किया जाता है। 'करनिरूपण वर्ष' से अभिप्राय उस वित्तीय वर्षपरिमाण से है जो १ अप्रैल से प्रारभ

होता है और आनेवाले वर्ष में ३१ मार्च को समाप्त होता है। 'पूर्व वर्ष' से अभिप्राय उस वित्तीय वर्ष से है जो 'निरूपण वर्ष' प्रारम्भ होने के ठीक पूर्व समाप्त होता है।

अधिनियम में घाटे को अलग कर देने और आगे ले जाने की तथा अंतरराष्ट्रीय दोहरे कराधान से बचाव की भी व्यवस्था है।

प्रशासन — आयकर प्रशासन की व्यवस्था के लिये आयकर अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है, जिनमें प्रारंभिक हैं निरीक्षक सहायक आयुक्त, अपीलीय सहायक आयुक्त तथा अपीलीय न्यायाधिकरण। अपीलीय न्यायाधिकरण के किसी निर्णय के संबंध में उच्च न्यायालय में अर्जी दी जा सकती है तथा जरूरत होने पर उच्चतम न्यायालय में भी अपील की जा सकती है।

सामान्यत सभी करदाताओं से अपेक्षा की जाती है कि वे कर निर्धारण वर्ष समाप्त होने के बाद ३० जून तक पूरा विवरण अधिकारियों के पास भेज दें। ये विवरण केवल सूचनापरक होते हैं। विवरणों में दी गई या उसके पास उपलब्ध किसी भी अन्य सूचना के आधार पर आयकर अधिकारी कर का निर्धारण करता है। यदि आयकर अधिकारियों को लगे कि किसी व्यक्ति ने वास्तविक आय को अथवा आय से संबंधित दस्तावेजों को छिपाया है, उस अवस्था में दस्तावेजों की जाँच या दस्तावेज एवं धनराशि अपने अधिकार में करने के लिये उन्हें अधिनियम में पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं।

संपदा शुल्क (एस्टेट ड्यूटी)—संपत्ति और उत्तराधिकार विषयक करों के निर्धारण के लिये संविधान द्वारा केंद्रीय शासन को प्रदत्त विशेष अधिकारों के अधीन केंद्रीय शासन ने संपदा शुल्क अधिनियम पारित कर सन् १९५३ में प्रथम बार संपदा शुल्क का उद्ग्रहण किया था। यह शुल्क इंग्लैंड में निर्धारित संपदा शुल्क पर आधारित है।

किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी को मिली या मिलनेवाली संपूर्ण संपत्ति के "प्रधान मूल्य" पर संपदा शुल्क का उद्ग्रहण किया जाता है। यह संपत्ति चल भी हो सकती है और अचल भी हो सकती है। "प्रधान मूल्य" से अभिप्राय उस मूल्य से है जितने में मृत व्यक्ति की मृत्यु के समय संपत्ति को खुले बाजार में बेचा जा सके। यहाँ अचल संपत्ति का अंतर्ग्रहण महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे संपदा शुल्क के अंतर्गत अनेक ऐसी मदें आ जाती हैं जो अन्यथा इस कर के दायरे के बाहर मान ली जा सकती हैं। किसी व्यक्ति के लिये प्रत्यक्ष या न्यास के माध्यम से उत्तराधिकार रूप में निश्चित संपत्ति अवस्थापित मानी गई है। संपदा शुल्क अधिनियम उन सभी व्यक्तियों पर लागू होता है—

१—जो भारत के अधिवासी हैं। उनकी मृत्यु के समय उनकी

(अ) भारत में स्थित चल तथा अचल संपत्ति, एवं

(ब) भारत के बाहर स्थित चल संपत्ति कराई होगी।

२—जो भारत के अधिवासी नहीं हैं, उनकी मृत्यु के समय भारत में स्थित उनकी चल तथा अचल संपत्ति कराई होगी एवं—

३—जो भारत के बाहर स्थित चल अवस्थापित संपत्ति का मृत्यु पर्यंत आभोगी रहा हो किंतु शर्त यह कि अवस्थापक अवस्थापन के समय भारत का अधिवासी रहा हो तो उसकी वह संपत्ति कराई होगी।

घरेलू सामान, परिधान, भारत के बाहर स्थित अचल संपत्ति आदि बहुत सी मदें धारा ३३ के अनुसार शुल्क से मुक्त हैं। संपदा शुल्क की दर निर्धारित करते समय इन मदों की गणना नहीं की जाती। कुछ मदें ऐसी हैं जिन्हें यद्यपि संपदा शुल्क से मुक्त माना गया है, तथापि शुल्क की दर तै करते समय उन्हें कुल संपदा में गिनने की व्यवस्था है (धारा ३४ (१))। कुल संपदा पर जिस दर से कर का निर्धारण किया जाता है, उसी अनुपात में मुक्त संपत्ति पर जितना कर बैठता है, उतना कर माफ कर दिया जाता है। इस प्रकार की मदों में से कुछ ये हैं .

(अ) २,५०० रुपए तक के मूल्य के ऐसे उपहार जो मृत व्यक्ति ने अपनी मृत्युतिथि से अधिकतम छह महीने पूर्व तक सार्वजनिक धर्मार्थ उद्देश्यों के लिये दिए हों (धारा ३३ (१) (अ))।

(ब) १,५०० रुपए तक के मूल्य का अन्य किसी भी प्रकार का एक या एकाधिक उपहार जो मृत्युतिथि से अधिकतम दो वर्ष पूर्व तक दिया गया हो (धारा ३३ (१) (ब))।

(ग) मृत व्यक्ति द्वारा अपने जीवन पर खरीदी गई जीवन बीमा पालिसियों की ५,०००, रुपए तक के मूल्य की प्राप्तियाँ (धारा ३३ (१) (द))।

अधिनियम में संपदा के मान में से बहुत सी अन्य कटौतियों की भी व्यवस्था है, जैसे अंतिम संस्कार के लिये १,००० रुपए तक। अधिनियम में एक ऐसी विशेष छूट की भी व्यवस्था है जिसे द्रुत उत्तराधिकार मोक कहा जाता है। यह कटौती संपत्ति के उस भाग पर लगनेवाले संपदा शुल्क में की जाती है जिस भाग पर मृत व्यक्ति की मृत्युतिथि से पाँच वर्ष पूर्व तक पूर्वाधिकारी की मृत्यु के समय कर का उद्ग्रहण किया जा चुका है (धारा ३१), उदाहरण के लिये इस प्रकार की संपत्ति पर लगनेवाले कर में १००% कटौती कर दी जाती है यदि उत्तराधिकारी पूर्व मृत व्यक्ति से तीन महीने के अंदर अंदर मर जाता है। यदि उत्तराधिकारी पूर्व मृत से एक साल के अंदर मर जाता है तो कर में ५०% की छूट दे दी जाती है (इसी प्रकार कुछ अन्य व्यवस्थाएँ भी हैं)।

केंद्रीय शासन को यह अधिकार है कि वह अन्य देशों के साथ इस प्रकार के पारस्परिक अनुबंध बना सके जिससे किसी व्यक्ति को भारतीय और विदेशी संपदा करों के अधीन दोहरा कर न देना पड़े। (धारा ३०)।

प्रशासन और प्रक्रिया — संपदा शुल्क का प्रशासन और उसे उगाहने का काम संपदा शुल्क नियंत्रकों द्वारा संपादित किया जाता है। केंद्रीय शासन द्वारा नियुक्त ये नियंत्रक राजस्व के केंद्रीय बोर्ड की सामान्य देखरेख में अपना काम करते हैं। अपीलीय नियंत्रकों को और अपीलीय न्यायाधिकरण को अपीलें सुनने का अधिकार होता है। इसके बाद उच्च न्यायालय में भी अपील की जा सकती है।

मृतक के वैधानिक प्रतिनिधि, जिन्हें मृतक की मृत्यु के बाद संपत्ति मिलती है तथा प्रत्ययी, जो मृतक की मृत्यु के बाद संपत्ति के प्रबंधक बनते हैं अथवा संपत्ति के किसी हिस्से में भागीदार बनते हैं उनसे अपेक्षा की जाती है कि मृतक की मृत्यु के अनंतर छह महीनों के अंदर अंदर संपदा शुल्क नियंत्रक के पास 'खाते' प्रस्तुत करें (धारा ५३)। विवरणों तथा लेखों से संतुष्ट होने पर नियंत्रक शुल्क का निर्धारण करेगा एवं संबद्ध व्यक्तियों को माँग की नोटिस देगा जिसमें उल्लिखित समय तथा स्थान पर उन्हें शुल्क की रकम जमा कर देनी चाहिए।

दर — सन् १९६५-६६ के लिये सपदा शुल्क की दरें इस प्रकार हैं

	की दर
(१) सपदा का मुख्य मूल्य यदि ५०,००० रुपयो के अदर हो	कुछ नही।
(२) सपदा का मुख्य मूल्य यदि ५०,००० रुपयो से अधिक तथा १,००,००० रुपयो से कम है	४%
(३) सपदा का मुख्य मूल्य यदि १,००,००० रुपयो से अधिक तथा २,००,००० रुपयो से कम है	८%
(४) सपदा का मुख्य मूल्य यदि २,००,००० रुपयो से अधिक तथा ५,००,००० रुपयो से कम है	१५%
(५) सपदा का मुख्य मूल्य यदि ५,००,००० रुपयों से अधिक तथा १०,००,००० रुपयो से कम है	२५%
(६) सपदा का मुख्य मूल्य यदि १०,००,००० रुपयों से अधिक तथा १५,००,००० रुपयो से कम है	४०%
(७) सपदा का मुख्य मूल्य यदि १५,००,००० रुपयो से अधिक तथा २०,००,००० रुपयो से कम है	५०%
(८) सपदा का मुख्य मूल्य इससे अधिक होने पर	८५%

धनकर (वेल्थ टेक्स) — निकोलस काल्डोर की सस्तुतियो पर अप्रैल, १९५७ मे प्रथम बार भारत में शुद्ध धन पर कर की व्यवस्था की गई थी। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के काल्डोर महोदय ने भारतीय शासन की प्रार्थना पर भारतीय करप्रणाली का अध्ययन करने के बाद उक्त सस्तुतियाँ की थी।

'मूल्य निर्धारण तिथि' को करदाता के पास कुल जितना कर योग्य या कराहं शुद्ध धन हो, उसी पर धनकर का वार्षिक उद्ग्रहण किया जाता है। शुद्ध धन से अभिप्राय है गणना के वर्ष के अतिम दिन करदाता के पास जितनी परिसपत्तियाँ हो, उन सबका कुल मूल्य। किसी भी परिसपत्ति का मूल्य वही माना जाएगा, जितने मे वह परिसपत्ति मूल्यनिर्धारण तिथि को खुले बाजार मे बेची जा सके।

धनकर केवल व्यक्तियो को तथा अविभाजित हिंदू परिवारो को ही अदा करना पडता है और यह क्रमिक रूप से वृद्धिशील होता है। प्रारभ मे कपनियो से भी इस कर का समान दर से उद्ग्रहण किया जाता था किंतु सन् १९६०-६१ से कपनियो को इस से मुक्त कर दिया गया। करग्रहण के उद्देश्य से इन दोनो इकाइयो को स्थानिक और अनिवासी इन दो भागो मे विभक्त कर दिया गया है। इस विभाजन का आधार वही है जो आयकर अधिनियम द्वारा निर्धारित है। कराहंता के निर्धारण मे राष्ट्रीयता का भी विचार किया जाता है। सामान्यत स्थानिक व्यक्तियो से उनके विश्वव्यापी शुद्ध धन के आधार पर कर ग्रहण किया जाता है और अन्य लोगो से केवल उनके भारत में स्थित धन के आधार पर।

अधिनियम मे कुछ इस प्रकार की परिसपत्तियो की सूची दी गई है जो धनकर से मुक्त हैं और कराहं धन के निर्धारण में जिन्हें बिल्कुल नही गिना जाता, जैसे—घरेलू वस्तुएँ, २५,००० रुपए मूल्य तक के गहने, कुछ शर्तों के साथ एक लाख रुपए मूल्य तक का निवासस्थान इत्यादि।

कोई इस ढग की करसधि वा समझौते की व्यवस्था नही है जिससे अंतरराष्ट्रीय दोहरा कराधान रोका जा सके अथवा करदाता को कुछ उन्मुक्ति दी जा सके और न ही अदा किए गए विदेशी शुद्ध धन सबधी कर के लिये आकलन की ही कोई व्यवस्था है जैसी आयकर अधिनियम की धारा ९१ मे है। तब भी सामान्यत स्थानिक नागरिको को और अविभाजित हिंदू परिवारो को विदेशी शुद्ध धन पर तथा अनिवासी विदेशियो को देशीय शुद्ध धन पर ५०% रियायत की व्यवस्था अधिनियम मे है।

प्रशासन और प्रक्रिया—सामान्य रूप से धनकर अधिनियम मे दी गई प्रशासन और प्रक्रिया सबधी व्यवस्था पूर्णत आयकर अधिनियम मे दी गई व्यवस्थाओं की अनुसारिणी है। आयकर विभाग के प्राधिकारी ही धनकर विभाग का काम देखते हैं। इस प्रकार आयकर अधिकारी ही धनकर अधिकारी हैं। अन्य प्राधिकारी हैं—निरीक्षक सहायक कमिश्नर, अपीलीय सहायक कमिश्नर धनकर का कमिश्नर और सब से ऊपर अपीलीय न्यायाधिकरण। धनकर अधिकारी के निर्णय के सबध मे अपीलीय - सहायक कमिश्नर के पास अपील की जा सकती है—और वहाँ से अपीलीय न्यायाधिकरण के पास। कानून की व्याख्या से सबधित अपीलें अपीलीय न्यायाधिकरण के पास से उच्च न्यायालय में ले जाई जा सकती हैं और वहाँ से उच्चतम न्यायालय मे।

करदाताओ से यह अपेक्षा की जाती है कि वे प्रति वर्ष ३० जून के पूर्व लेखा स्वय अधिकारियो के पास भेज दें। इस सबध मे उन्हे अधिकारियो से किसी प्रकार की सूचना की प्रतीक्षा नही करनी चाहिए। शुद्ध धन का अकन करके धनकर अधिकारी उस धन पर लगनेवाले कर का निर्धारण करता है। लेखे और दड का पुनर्विलोकन किए जाने की भी अधिनियम मे व्यवस्था है।

दरें—सन् १९६६—६५ के लिये धनकर की दरें इस प्रकार हैं—

	कर की दर
(अ) प्रत्येक व्यक्ति के मामले मे	
(१) एक लाख रुपयों तक के शुद्ध धन पर—	कुछ नही
(२) एक लाख के ऊपर पांच लाख रुपयो तक के शुद्ध धन पर	० ५%
(३) पांच लाख के ऊपर दस लाख रुपयो तक के शुद्ध धन पर	१ ०%
(४) दस लाख के ऊपर बीस लाख रुपयो तक के शुद्ध धन पर	२ ०%
(५) बीस लाख रुपए के ऊपर के शुद्ध धन पर	२ ५%
(ब) प्रत्येक अविभाजित हिंदू परिवार के मामले मे—	
(१) दो लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर—	कुछ नही
(२) दो लाख के ऊपर पांच लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर	० ५%
(३) पांच लाख के ऊपर दस लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर	१ ०%
(४) दस लाख के ऊपर बीस लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर	२ ०%
(५) बीस लाख रुपए के ऊपर के शुद्ध धन पर	२ ५%

उपहारकर—उपहारकर अधिनियम १९५८ के अधीन प्रथम बार भारत में उपहारकर की व्यवस्था की गई थी। यद्यपि यह अधिनियम

व्यय की कुछ मदें कर से मुक्त हैं जैसे व्यापार के संबंध मे होने वाला व्यय, भविष्य निधि अथवा अधिवर्ष निधि (सूपर ऐनुएशन फड) मे दिया गया अंशदान इत्यादि। कराई व्यय की सगणना मे अधिनियम में कुछ कटौतियों की व्यवस्था भी है, जैसे शासन को या स्थानीय अधिकारियो को दिया गया कोई भी कर (व्ययकर समेत), दीवानी या फौजदारी मुकदमों मे हुआ व्यय, जिस व्यक्ति पर कर बैठाया जानेवाला हो, उसके स्वय अपने विवाह या उसके आश्रित के विवाह के उपलक्ष्य मे प्रत्येक के लिये हुआ ५,००० रुपए तक का व्यय अधिनियम के अनुसार पूंजीगत व्ययके रूप मे सोना चांदी, बहुमूल्य रत्न, आभूषण, फर्नीचर तथा अन्य घरेलू उपयोग की वस्तुओं पर एव मोटर गाडी या अन्य व्यक्तिगत उपयोग के वाहन आदि पर करदाता वा उसके आश्रित द्वारा किया गया व्यय कर के उद्देश्य से पाँच वर्ष की अवधि तक फैला हुआ माना जा सकता है। इस प्रकार के कुल व्यय के ८०% की गणना उसी वर्ष के व्यय मे कर ली जाती है जिस वर्ष वह व्यय किया गया हो। शेष २०% अगले चार वर्षों में से प्रत्येक वर्ष मे किए गए व्यय मे जोड दिया जाता है (धारा ६ (१) (ङ))।

प्रशासन और प्रक्रिया — व्ययकर अधिनियम के अतर्गत प्रशासन और प्रक्रिया प्राय वैसी ही है जैसी आयकर अधिनियम मे दी गई है। आयकर अधिकारी ही पदेन व्ययकर अधिकारी भी होते हैं। व्यय कर के कमिश्नर तथा अपीलीय सहायक कमिश्नर की नियुक्ति का अधिकार राजस्व के केंद्रीय बोर्ड को है। पुर्नविचार, अपील, सग्रह और दड सबधी प्रक्रियाए वही हैं जो आयकर तथा धनकर के लिये हैं।

करदाताओं से अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक वर्ष की ३० जून तक गत वर्ष का विवरण अधिकारियों के पास भेज दें। इस विवरण के आधार पर व्ययकर अधिकारी उद्ग्रहणीय कर का निर्धारण करता है।

दरें—सन् १९६५-६६ के लिये व्ययकर की दरें निम्नलिखित हैं प्रत्येक व्यक्ति तथा हिंदू अविभाजित परिवार द्वारा किए गए व्यय के उस भाग पर

	कर की दर
१ जो ३६,००० रुपए से अधिक नही है	कुछ नही
२ जो ३६,००० रुपए से अधिक है किंतु ४८,००० रुपये से कम है।	५%
३ जो ४८,००० रुपए से अधिक है किंतु ६०,००० रुपये से कम है।	७ ५%
४ जो ६०,००० रुपए से अधिक है किंतु ७२,००० रुपये से कम है।	१०%
५ जो ७२,००० रुपए से अधिक है किंतु ८४,००० रुपये से कम है।	१५%
६ जो ८४,००० रुपए से अधिक है।	२०%

निर्धारण वर्ष १९६४-६५ तथा १९६५-६६ के लिये व्ययकर की अधिकतम दर १५% है और यह दर ७२,००० रुपए से अधिक की किसी भी राशि पर लागू होगी, निर्धारण वर्ष १९६६-६७ से व्ययकर की अधिकतम दर २०% होगी और उपरिनिर्दिष्ट पद्धति से लागू होगी।

पूर्ववर्णित पाँच बडे करों के अतिरिक्त केंद्रीय सरकार अतर प्रातीय विक्री कर, मुद्राक शुल्क, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क भी वसूल करती है।

स० ग्र० — कागा एड पाल्कीवाला 'दि लॉ एंड प्रेक्टिस् ऑव इनकम टैक्स,' श्रीनिवासन के० 'इनकम टैक्स लॉ', सुदरम् वी० रास० 'दि लॉ ऑव इनकम टैक्स इन् इडिया', वर्ल्ड टैक्स सीरीज, हार्वर्ड लॉ स्कूल 'टैक्सेशन इन् इडिया', नानावती, दि इस्टेट ड्यूटी ऐक्ट', कागजी एम० सी० 'इस्टेट ड्यूटी इन् इडिया—लॉ एड प्रेक्टिस', सेठी आर० बी० 'दि वेल्थ टैक्स ऐक्ट', सपत आयगर 'ओ न्यू टैक्सेज', अय्यर ए० एन० : दि एक्सपेंडिचर टैक्स ऐक्ट १९५७, बैनर्जी ए० जी० 'इडियन वेल्थ टैक्स ऐंड इडियन गिफ्ट टैक्स'; मुल्ला डी० एफ० : 'इडियन स्टैंप ऐक्ट', दि फिनास ऐक्ट ऑव द रेलेवेंट इयर ऐंड द लेटेस्ट रूल्ज, अगरवाल, एस० के० 'सेंट्रल सेल्ज टैक्स ऐक्ट'। [म० सी० वि०]

भारतीय खनिज संपत्ति भारत मे आर्थिक महत्व के लगभग ५५ खनिज पाए जाते है, जिनमे से १६ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं।

कोयला — इसका कुल उत्पादन लगभग ७ करोड टन तक है। आशा है कि चतुर्थ योजना के अत तक यह १० करोड टन तक हो जाएगा। इसमे से कोकिंग कोल का, जो इस्पात उद्योगों मे व्यवहृत होता है, उत्पादन केवल बिहार मे होता है और यहीं से सारे देश में भेजा जाता है। भारत लगभग २० लाख टन कोयला प्रतिवर्ष निर्यात भी करता है (देखें 'कोयला' तथा 'भारत')।

पेट्रोल — भारत मे लगभग १ करोड टन पेट्रोल की प्रतिवर्ष खपत होती है। गुजरात तथा असम के स्रोतो से कुल ६५ लाख टन पेट्रोल का उत्पादन होता हैं। बाकी विदेशो से मँगाया जाता हैं (देखें पेट्रोलियम तथा 'भारत')।

लोहा — देश में लोहे की कुल मात्रा ६४,२१० करोड टन अनुमानित है। तृतीय पचवर्षीय योजना तक भारत मे लौह अयस्क का उत्पादन ३ करोड टन था, जिसमे लगभग १ करोड टन का निर्यात किया जाता है (देखे 'भारत मे लौह अयस्क' तथा 'भारत')।

तांबा — औद्योगिक स्तर पर तांबे के अयस्क केवल बिहार, तथा राजस्थान की खानो से निकाले जाते हैं। मोसाबानी बिहार की प्रमुख खदान है। राजस्थान मे खेतरी की खदान प्रसिद्ध है। तीसरी योजना के अत तक देश मे लगभग १,७०,००० टन तांबे की खपत थी तथा उत्पादन ४९,००० टन था (देखें तांबा)।

सीस — यह औद्योगिक स्तर पर राजस्थान की जवर खानो से निकाला जाता है। भारत मे इसका उत्पादन लगभग ६,३८४ टन होता है और विदेशो से भी इसका आयात किया जाता है (देखें सीस)।

जस्ता — भारत मे सीसे की खानो मे जस्ता तथा चाँदी साथ साथ पाई जाती है। इनमे से मुख्य राजस्थान की उदयपुर की खानें तथा बिहार की सिहभूमि और हजारीबाग की खानें है। भारत मे इसकी खपत ८६,००० टन है, परतु केवल ५,००० टन उत्पादन है(देखें जस्ता)।

मैंगनीज—भारत मे यह औद्योगिक स्तर पर बालाघाट, छिंदवाड़ा, नागपुर, झबुआ तथा उडीसा राज्य के गंजम तथा कोरापुट जिले मे पाया जाता है। प्रतिवर्ष प्राय १२ लाख टन का उत्पादन होता है। इसका अधिकाश निर्यात कर दिया जाता है (देखें 'मैंगनीज तथा भारत)।

सोना — मैसूर की कोलार तथा हुट्टी खानों से सोने का उत्पादन होता है। १९६२ ई० मे ५,०८० किलोग्राम सोने का उत्पादन हुआ था (देखें सोना)।

ऐल्यूमिनियम — भारत में औद्योगिक स्तर पर यह बिहार (राँची, पालामऊ), गुजरात (हलर, कैरा), मध्यप्रदेश (बालाघाट, बिलासपुर, रायगढ़) तथा मद्रास (सलेम) में पाया जाता है। भारत मे उत्पादित समस्त ऐल्यूमिनियम की खपत देश में हो जाती है। आजादी के बाद मे इसके उत्पादन में ४० गुनी वृद्धि हुई है। (देखें ऐल्यूमिनियम)।

अभ्रक — भारत विश्व मे सर्वाधिक अभ्रक उत्पन्न करता है। १९६२ ई० में कुल उत्पादन २८,३५४ टन हुआ था। अधिकांश अभ्रक का निर्यात होता है। (देखें 'अभ्रक' तथा 'भारत')।

क्रोमियम — यह क्रोमाइट अयस्क से बनाया जाता है। आंध्र-प्रदेश, बिहार (सिंहभूमि), महाराष्ट्र, मद्रास तथा मैसूर में औद्योगिक स्तर पर इसका उत्पादन होता है, जो १९६२ ई० में ६,६६,४८,००० टन था। इसका अधिकांश निर्यात कर दिया जाता है (देखें, क्रोमियम)।

नमक — नमक भारत मे साभर झील, डेगाना तथा मंडी में पाया जाता है। बाकी नमक समुद्र के पानी से बनाया जाता है। १९६२ मे ऐसे नमक का उत्पादन ३८,८६, १०० टन था (देखें, नमक)।

जिप्सम — देश मे गधक की खानें न होने से इसका महत्व अधिक बढ़ गया है। यह राजस्थान मे पाया जाता है।

चूने का पत्थर—आंध्र प्रदेश, असम, बगाल, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, पजाब तथा उत्तर प्रदेश में यह औद्योगिक स्तर पर प्राप्त किया जाता है। भारत मे इसकी माँग १ करोड़ ८० लाख टन है तथा निकट भविष्य मे २५० करोड हो जाने की सभावना है। १९६२ ई० मे १ करोड ६९ लाख टन का उत्पादन हुआ था (देखें जिप्सम)।

सिलिमैनाइट तथा काइयानाइट — तापरोधक वस्तुओं के उत्पादन मे इसका प्रयोग किया जाता है। भारत मे यह सिंहभूमि, घाटीदीहा, मोहनपुर (बिहार), बोनाई तथा खासी चोटी (असम) में पाया जाता है। अब देश मे इसकी खपत बढ रही है (देखें काइआनाइट)।

मिट्टियाँ — इनमें चीनी मिट्टी, पेपर क्ले, बालू क्ले, स्टोन वेयर, ईंट तथा खपरैल बनाने की मिट्टियाँ हैं। ये मृत्तिकाशिल्प उद्योग के आधार हैं। भारत मे ये मिट्टियाँ विपुल मात्रा में पाई जाती हैं। १९६२ मे इनका उत्पादन ३८९,७१४ टन था।

इल्मेनाइट—सिंहभूमि, मयूर भज, किशोरभर तथा ट्रावनकोर मे यह पाया जाता है। १९६२ ई० मे इसका उत्पादन १,३८,००४ टन था। इसका अधिकांश निर्यात कर दिया जाता है (देखें इल्मेनाइट)।

भवननिर्माण के पत्थर — ग्रेनाइट, बसाल्ट, डोनेराइट, सैंडस्टोन तथा सगमरमर का उपयोग भवननिर्माण में किया जाता है। इन पत्थरो मे मकराना (राजस्थान) का सगमरमर अधिक प्रसिद्ध है। इसीसे ताजमहल का निर्माण हुआ था। [वि० सा० दु०]

भारतीय जनसघ देश के इस राजनीतिक दल की स्थापना २१ अक्टूबर, सन् १९५१ ई० को दिल्ली में हुई। इसके सस्थापक तथा प्रथम अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी थे। स्थापना के दो महीने बाद ही जनसघ ने देश के महा निर्वाचन मे भाग लेने का निश्चय किया। दल को चुनाव मे हार का सामना करना पडा और उसे लोकसभा में तीन, राज्य सभा में एक तथा राज्य विधान मडलों में चौंतीस स्थान मिले। सन् १९५५-५६ ई० में देश में इस दल के सदस्यों की सख्या चार लाख थी। चतुर्थ महानिर्वाचन मे जनसंघ को अनेक राज्यों मे उल्लेखनीय सफलता मिली, जिसके फलस्वरूप लोकसभा में उसने ३५ तथा विधान सभाओं में २६७ स्थान प्राप्त किए। राजनीतिक विचारधारा की दृष्टि से यह दक्षिण पथी दल है।

दल के राजनीतिक उद्देश्य तथा कार्यक्रम इस प्रकार हैं: (१) व्यक्तिस्वातत्र्य तथा विधिसमत व्यवस्था पर आधृत लोक तत्रात्मक शासन, (२) आर्थिक प्रशासनिक विकेंद्रीकरण के द्वारा ग्रामतत्र, (३) किसान को भूमि का स्वामित्व देनेवाले भूमिसुधार, (४) गोवध निषेध, (५) उद्योग मे निजी पूँजी के विस्तार को प्रोत्साहन, (६) विकेंद्रीकरण, स्वदेशी साधन तथा श्रमप्रधान औद्योगिक प्रणाली पर बल, (७) हड़ताल, तालाबदी को प्रोत्साहन नहीं, उद्योगों मे लाभ का बँटवारा, (८) बिना शर्त तथा बिना राजनीतिक दबाव के विदेशी पूँजी का स्वागत, (९) विनियत्रण तथा राष्ट्रीय व्यापार में अतर राज्यीय सीमाओं की समाप्ति, (१०) आर्थिक विषमता की समाप्ति की दृष्टि से करनियोजन, (११) सभी देशों से मैत्री; (१२) भारत की राष्ट्रमडल की सदस्यता पर पुनर्विचार, (१३) पाकिस्तान के प्रति 'जैसे को तैसे' की नीति; (१४) तिब्बत की मुक्ति और भारत का पुन एकीकरण विदेशी नीति का अग। पाकिस्तान तथा कम्युनिस्ट चीन द्वारा हस्तगत भूमि को मुक्त कराने की दृढ नीति (१५) बेकारी के उन्मूलन, कृषि की प्राथमिकता तथा औद्योगिक क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता का प्रयत्न, (१६) देश मे एकात्मक शासन की स्थापना जिसमें सभी राज्यों के अधिकार और स्थान बराबर होंगे, (१७) राष्ट्रभाषा के पद पर हिंदी की शीघ्र प्रतिष्ठा तथा सभी विद्यालयो मे हिंदी का पठन अनिवार्य किया जाना; (१८) भ्रष्टाचार की जाँच के लिये एक सत्ता सपन्न आयोग की नियुक्ति, (१९) राष्ट्रीय सुरक्षा को प्राथमिकता देना तथा सैनिक आत्म निर्भरता। सेना के तीनो अगों को सुदृढ और अद्यतन शस्त्रास्त्रों से, जिनमे अणु अस्त्र भी होंगे, साधनसपन्न बनाना। (२०) शिक्षा का भारतीयकरण तथा अभिनवीकरण; माध्यमिक स्तर तक नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था।

जनसघ के संस्थापक अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने संसद मे इस आशय का कथन किया था कि जनसघ विरोधी दल के रूप मे अपना विकास करना चाहता है और देश में वह लोकतत्रीय विकल्प की तैयारी करेगा। जनसघ सभी धर्म के लोगों तथा वर्ग को अपना सदस्य बनाता है। अनेक मुसलमान भी जनसघ के उम्मीदवार बनकर चुनाव में विजयी हुए हैं। मद्रास राज्य में जनसघ के प्रथम अध्यक्ष रोमन कैथलिक डा० वी० के० जॉन थे। जम्मू कश्मीर जनसघ के मत्री शेख अब्दुल रहमान हैं। जनसघ के वर्तमान अध्यक्ष प्रोफेसर बलराज मधोक का मत है कि जनसघ साप्रदायिक नहीं, राष्ट्रीय सघटन है—यह इसलिये नही कि इसके सदस्यो में मुसलिम तथा ईसाई भी हैं, अपितु इसकी विचारधारा तथा नीतियाँ पूर्णत. राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परिचालित हैं। प्रथम के बाद द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ महानिर्वाचन मे विरोधी दल के रूप मे जनसघ की शक्ति निरतर बढती गई है। चतुर्थ निर्वाचन के फलस्वरूप दिल्ली महापरिषद् में जनसघ को नेतृत्व प्राप्त हुआ है और ससद तथा अनेक राज्यों मे वह सबल प्रतिपक्षी दल के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ है। [ल० शा० व्या]